वी.एस. रमा देवी
भगवान गुजर

कार्यरत राज्य सभा

शमशेर के. शरीफ़
सम्पादक

तृतीय संस्करण

राज्य सभा सचिवालय
भारत

© **राज्य सभा सचिवालय**

वेबसाइट: http://parliamentofindia.nic.in
http://rajyasabha.nic.in
ई-मेल: rsrlib@sansad.nic.in

प्रथम संस्करण : 1996
द्वितीय संस्करण : 2006
तृतीय संस्करण : 2017

मूल्य: ₹ 590/-

महासचिव राज्य सभा द्वारा प्रकाशित और आकाशदीप प्रिन्टर्स, 20 - अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित।

वी. एस. रमा देवी

भगवान गुजर

कार्यरत राज्य सभा

शमशेर के. शरीफ़

सम्पादक

तृतीय संस्करण

[इस प्रकाशन का अंग्रेजी पाठ भी उपलब्ध है]

राज्य सभा सचिवालय

भारत

सभापति, राज्य सभा
संसद् भवन, नई दिल्ली

प्राक्कथन

एक विधायी निकाय अपने नियमों, प्रक्रियाओं, परंपराओं और परिपाटियों के अनुरूप कार्य करता है। यद्यपि संविधान में संसद् के दोनों सदनों के कार्यकरण हेतु विस्तृत नियम निर्धारित किए गए हैं तथापि समय के साथ-साथ दोनों सदनों ने सुचारु कार्य-संचालन हेतु अपने-अपने नियम, प्रक्रियाएं, परंपराएं और परिपाटियां विकसित की हैं। विकास की प्रक्रिया में न केवल पुराने नियमों को अनुकूल बनाया गया तथा उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन किया गया अपितु हमारे अपने अनुभवों और नई पद्धतियों के आधार पर नए नियम तथा प्रक्रियाएं भी जोड़ी गईं। मेरे लब्ध-प्रतिष्ठ पूर्ववर्तियों ने राज्य सभा के कार्य-संचालन हेतु नियमों एवं प्रक्रियाओं को आकार देकर और उन्हें मजबूती प्रदान करते हुए विकास की इस प्रक्रिया में महती योगदान दिया है। नियमों एवं प्रक्रियाओं के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया जारी है और मुझे सभा के कीमती समय का अधिक प्रभावी प्रबंधन करने और विधि-निर्माण की इसकी क्षमता के संवर्धन हेतु कतिपय प्रक्रियागत परिवर्तनों को लागू कर इस विरासत को आगे बढ़ाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

किसी भी विधायी निकाय की सफलता बहुत हद तक उसके सदस्यों की निपुणता, योग्यता, विशेषज्ञता और उनकी निष्ठा पर निर्भर करती है। संसद् की कार्यवाही के सीधे प्रसारण और सोशल मीडिया के प्रसार तथा व्यापकता के कारण सभा के भीतर और बाहर, सदस्यों का काम-काज, निरंतर समीक्षा और मूल्यांकन के दायरे में रहता है। अतः प्रभावकारी सांसद बनने के लिए प्रत्येक सदस्य हेतु आवश्यक कौशल अर्जित करना उत्तरोत्तर अनिवार्य हो गया है। प्रभावशाली संसद्-सदस्य बनने के लिए संविधान और कार्य-संचालन विषयक नियमों की व्यापक समझ के साथ-साथ उपलब्ध संसदीय साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करने की क्षमता का होना अनिवार्य है। जानकार सदस्य कार्य-संचालन विषयक नियमों की मदद से सभा के कार्यकरण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं क्योंकि वे अपना मत व्यक्त करने के लिए स्वयं को आवंटित समय का इष्टतम उपयोग करते हैं। प्रक्रियागत बारीकियों की जानकारी नहीं होने से इष्टतम रचनात्मक योगदान देने की सदस्यों की क्षमता सीमित हो जाती है।

राज्य सभा सचिवालय ने राज्य सभा के कार्य-संचालन विषयक नियम, उसकी परम्पराओं, परिपाटियों और प्रक्रियाओं को अपने कई प्रकाशनों में प्रकाशित किया है। वर्ष 1996 में पहली बार 'कार्यरत राज्य सभा' नामक व्यापक पुस्तक को प्रकाशित करने का कठिन, अन्वेषी और सराहनीय प्रयास किया गया था जिसमें राज्य सभा तथा उसकी समितियों के कार्यकरण के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत विवरण दिया गया था। इस प्रकाशन को हर दस वर्ष बाद संशोधित किया जाता है।

मुझे प्रसन्नता है कि राज्य सभा के महासचिव ने इस पुस्तक के संशोधित संस्करण के प्रकाशन हेतु पहल की है। इस संस्करण को सावधानीपूर्वक और व्यापक रूप से अद्यतन किया गया है तथा नियमों, प्रक्रियाओं, परम्पराओं और परिपाटियों में पिछले संस्करण से अब तक हुए परिवर्तनों को इसमें शामिल किया गया है। यह पुस्तक संसद्-सदस्यों के लिए एक बहुमूल्य संदर्भ पुस्तिका है और इसमें संसदीय नियमों, प्रक्रियाओं, परम्पराओं और परिपाटियों की सूक्ष्म बारीकियों की जानकारी देने का प्रयास किया गया है। सभापीठ के लिए यह पुस्तक सभा के कार्यकरण से संबंधित महत्वपूर्ण और प्रामाणिक जानकारी का स्रोत है।

मैं राज्य सभा से संबंधित इस आधिकारिक प्रकाशन को संशोधित और अद्यतन करने के कार्य से जुड़े सभी लोगों की सराहना करता हूं। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक संसद् सदस्यों के लिए उपयोगी सिद्ध होने के साथ-साथ संसदीय साहित्य के संग्रह को समृद्ध करेगी और हमारी संसदीय प्रणाली के कार्यकरण का अध्ययन करने के इच्छुक लोगों के लिए रुचिकर साबित होगी।

मो. हामिद अंसारी

नई दिल्ली

31 अक्तूबर, 2016

सत्यमेव जयते

उप-सभापति, राज्य सभा
संसद् भवन, नई दिल्ली

प्रस्तावना

राष्ट्रीय स्तर पर द्विसदनीय संसद् हमारे शासन के संवैधानिक ढांचे की एक निर्धारक विशेषता है। वर्ष 1952 में गठन के पश्चात् से ही संसद् की दोनों सभाएं अर्थात राज्य सभा और लोक सभा विधि-निर्माण और विमर्शी निकायों के रूप में एक प्रमुख भूमिका निभाती आ रही हैं। सरकार की जवाबदेही सुनिश्चित करने में दोनों सभाओं की भूमिका स्मरणीय और प्रशंसनीय रही है। संसद् के दोनों सदनों का हमारे लोकतंत्र को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

राज्य सभा संघ की इकाइयों अर्थात राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है और हमारी राज्य-व्यवस्था के चरित्र को बनाए रखती है। राज्यों की सभा होने के नाते वह उन्हें लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया में अपने हितों को अभिव्यक्त करने के लिए बहुमूल्य मंच प्रदान करती है। हमारे संसदीय ढांचे में एक स्थायी सदन के रूप में निरंतरता का सिद्धांत राज्य सभा की विशिष्टता है।

संसद् के द्वितीय सदन के रूप में राज्य सभा की स्थापना के पीछे हमारे संविधान निर्माताओं की यह संकल्पना थी कि इस सदन में विधेयकों का फिर से मूल्यांकन हो सकेगा और विधि-निर्माण में जल्दबाजी से बचा जा सकेगा। इसके अलावा, इसका उद्देश्य ऐसे अनुभवी तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को देश सेवा का अवसर प्रदान करना है जो साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा जैसे विविध क्षेत्रों में विशिष्ट स्थान रखते हों। ऐसे व्यक्तियों के होने से राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर विचार-विमर्श में अधिक गंभीरता आई है। अपने गठन के पश्चात् छह दशकों से अधिक की समयावधि में, राज्य सभा ने राष्ट्र-निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एक विधायी, विमर्शी और पर्यवेक्षी निकाय के रूप में राज्य सभा हमारी लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था में समय की कसौटी पर खरी उतरी है और शीर्ष स्तर पर प्रतिनिधिक निकाय के एक उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में उभरी है।

भारत के उपराष्ट्रपति, राज्य सभा के पदेन सभापति होते हैं और इस कारण इस सभा की गरिमा और प्रतिष्ठा में निश्चिय ही वृद्धि हुई है। राज्य सभा के सभी सभापतियों ने हमारे संसदीय तंत्र में राज्य सभा को महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। उन्होंने सभा में चर्चाओं के दौरान उत्तम रीति से मार्गदर्शन प्रदान किया है और सभा की कार्यवाहियों का अत्यन्त न्यायपूर्ण तथा निष्पक्ष ढंग से संचालन किया है। इस समृद्ध विरासत ने सभा के सुचारु तथा गरिमामय संचालन के लिए महान परंपराएं स्थापित की हैं।

हमारे वर्तमान सभापति, श्री मो. हामिद अंसारी प्रतिष्ठित राजनयिक और विद्वान अध्येता हैं। हमारे लोकतंत्र के इतिहास में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के बाद वे दूसरे ऐसे उप-राष्ट्रपति हैं, जिन्हें इस उच्च पद पर लगातार दो कार्यकालों तक सेवा प्रदान करने

का गौरव हासिल हुआ है। उन्होंने सभा की कार्यवाहियों को समृद्ध बनाने और उसकी छवि को प्रतिष्ठित करने के लिए कई महत्वपूर्ण उपाय किए हैं। हमारी राज्य-व्यवस्था और समाज के प्रति राज्य सभा के विधायी और विमर्शी उत्तरदायित्वों के महत्व को रेखांकित करते हुए सभापति ने 13 अगस्त, 2012 को राज्य सभा में उन्हें दी गई बधाइयों के उत्तर में कहा कि 'ये उत्तरदायित्व सार्वजनिक जीवन, न्याय, समावेशी विकास, सामाजिक एकजुटता और सामाजिक शांति के सभी पहलुओं में सुशासन और सत्यनिष्ठा के संबंध में तेजी से बदलती अपेक्षाओं के युग में सार्वजनिक हितों के साथ भी अपरिहार्य रूप से जुड़े हुए हैं। 'इस बात पर बल देते हुए कि अब संसद्-सदस्यों के आचरण पर जनता की नजर अधिक रहती है, उन्होंने कहा कि 'हम जिस ढंग से अपना कार्य करते हैं उस पर नागरिकों की पैनी दृष्टि रहती है।' उन्होंने राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों, विशेष रूप से प्रश्नों से संबंधित नियमों को संशोधित करके सभा के सुचारु कार्यकरण तथा उसके द्वारा कार्यपालिका की प्रभावी विधायी निगरानी के लिए महत्वपूर्ण पहलें की हैं। प्रश्नों के समय की गरिमा बनाए रखने और इसे व्यवधानों से सुरक्षा प्रदान करने के लिए उन्होंने इसका समय मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे से बदलकर मध्याह्न 12.00 बजे कर दिया है। उन्होंने सदा इस बात पर बल दिया है कि सदस्यों द्वारा छोटे और सारगर्भित प्रश्न पूछे जाएं और मंत्रियों द्वारा सुस्पष्ट और समुचित उत्तर दिए जाएं ताकि अधिक से अधिक संख्या में प्रश्नों को शामिल किया जा सके और अनुपस्थित सदस्यों के प्रश्न भी लिए जा सकें। उन्होंने इस बात को भी सुनिश्चित किया कि सभा की प्रत्येक बैठक में सभापीठ की अनुमति से सदस्यों को हाल के और अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों को नियमित रूप से उठाने के अवसर मिल सकें।

सभापति ने सभा में व्यवधान के मुद्दे पर समय-समय पर अपनी मनोव्यथा व्यक्त की है और सदस्यों को सभा की प्रतिष्ठा और गरिमा बनाए रखने के लिए प्रेरित किया है। उन्होंने एक बार कहा था, "सभापीठ इस बात को समझती है कि राजनैतिक सभा, जनता के रुझानों की अपनी समझ के अनुसार कार्य करती है। ऐसे में सामान्य अनुशासनिक प्रक्रियाओं की अपनी सीमाएं हैं। ऐसे में स्व-अनुशासन तथा एक वैधानिक निकाय के उद्देश्यों और प्रयोजनों को पूरा करने की प्रतिबद्धता इस दृष्टिकोण का दूसरा समाधान है"। उन्होंने सदस्यों से 'राज्य सभा की महत्ता को धूमिल करने वाले दृष्टिकोणों और कार्य-प्रणालियों से दूर रहने... और जवाबदेही सुनिश्चित करने तथा चर्चा के लिए प्रक्रिया संबंधी नियमों के तहत उन्हें प्राप्त साधनों का अधिकतम संभव उपयोग करने का आग्रह किया'।

इस सभ की समृद्ध परम्पराओं को संरक्षित रखने और उन्हें बनाए रखने के लिए सभी सदस्यों को प्रयास करने चाहिए। संसद्-सदस्यों के रूप में अपने-अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए उनसे इस सभा की गरिमा और शालीनता को बनाए रखने की आशा की जाती है। हम अपने प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के गुंजायमान शब्दों का स्मरण कर सकते हैं, उन्होंने कहा था, "यह संसद् देश के समक्ष एक तरह का उदाहरण पेश करती है। हम यहां एक-दूसरे के साथ, अपने कार्य के प्रति, आम जनता के साथ जिस

प्रकार का आचरण करेंगे, कुछ हद तक अन्य लोग अन्यत्र, हमारे लोकतंत्र की नींव अर्थात् ग्राम-पंचायतों तक, चाहे राज्यों के विधानमंडल अथवा स्व-शासन के कोई अन्य अंग, जो देश में विद्यमान हों अथवा विकसित हो रहे हों तो, भी उसी प्रकार आचरण करेंगे"।

राज्य सभा के साथ मेरा संबंध एक दशक से ज्यादा का रहा है तथा अब पिछले चार वर्षों से मुझे सभा के उप-सभापति के रूप में कार्य करने का विशेष अवसर और सम्मान प्राप्त हुआ है। मुझे इस सभा के कार्यकरण को निकट से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है तथा सदस्यों को देश के समक्ष उपस्थित महत्वपूर्ण मुद्दों पर भाव-प्रवणता के साथ सशक्त रूप से स्पष्ट शब्दों में अपने विचार प्रकट करते देखा है। उनके गहन विचार-विमर्शों ने देश की प्रगति की दिशा निर्धारित करने वाली सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों पर प्रभाव डाला है तथा लाखों लोगों के जीवन को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। राज्य सभा एक सशक्त निकाय है जो हमारी संघीय राजनीति की विविधताओं का प्रतिनिधित्व करती है और हितों एवं वैचारिक धारणाओं के व्यापक दायरे को प्रतिबिम्बित करती है। तथापि, ये भिन्नताएं सदस्यों द्वारा समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने-अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के मार्ग में आड़े नहीं आती हैं। वे सभी संसदीय लोकतंत्र को सशक्त बनाने के लिए सौहार्दपूर्ण भावना के साथ कार्य करते हैं। शोर-शराबे के ऐसे क्षण भी आते हैं जब व्यवधान उत्पन्न होते हैं और इससे पीठासीन अधिकारियों को अत्यधिक परेशानी होती है तथा मीडिया एवं जनता से प्रतिकूल आलोचना झेलनी पड़ती है। तथापि, ये सब सशक्त लोकतंत्र की अभिव्यक्तियां हैं।

वास्तव में पीठासीन अधिकारी का कार्य संवेदनशील होता है क्योंकि उन्हें यह सुनिश्चित करना होता है कि सभा के कार्य-संचालन में सभी सदस्य सभा के नियमों का यथार्थत: अनुसरण करें और साथ ही सदन के विचार-विमर्शों में भागीदारी करने में उन्हें पर्याप्त अवसर प्रदान किये जायें। यह कार्य बहुदलीय लोकतंत्र की गतिशीलता के संदर्भ में पीठासीन अधिकारी के लिए और ज्यादा चुनौतीपूर्ण हो गया है जिसमें अक्सर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जहां एक अथवा राजनैतिक दलों का कोई समूह निम्न सदन में बहुमत प्राप्त कर लेता है तथा उच्च सदन में बेहतर संख्यात्मक आधार की वजह से विपक्ष की स्थिति प्रबल होती है।

राज्य सभा के अस्तित्व में आने के बाद से इसके इतिहास में अनेक परिपाटियां, अभिसमय और पूर्वोदाहरण विकसित हुए हैं। इनमें से कुछ स्वयं में अद्वितीय हैं। ऐसी परिपाटियों के साथ-साथ इस सभा के कार्यकरण को संचालित करने वाली प्रक्रिया के औपचारिक नियमों से परिचित होना महत्वपूर्ण है। सदस्यों को संसदीय नियमों, परिपाटियों, प्रथाओं और अभिसमयों को समझने की जरूरत है जिससे कि वे सभा के विवेचनों में भागीदारी करते समय इसके मूल्यवान समय का इष्टतम उपयोग कर सकें। इस प्रकार के महत्वपूर्ण कार्यों के निष्पादन में, 'कार्यरत राज्य सभा' एक बहुत ही उपयोगी प्रकाशन है जो इस सभा के कार्यकरण के विभिन्न पहलुओं का वर्णन करता है। यह प्रकाशन इस तथ्य पर रोशनी डालता है कि हमारी लोकतांत्रिक राजनीति में राज्य सभा एक विशिष्ट निकाय है जो इस राष्ट्र के कार्यों

में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मैं जानता हूं कि इस पुस्तक का प्रथम संस्करण वर्ष 1996 में आया था और तत्पश्चात् वर्ष 2006 में इसे संशोधित किया गया। मैं इस महत्वपूर्ण प्रकाशन को अद्यतन करने में पहल करने के लिए महासचिव, राज्य सभा को हार्दिक बधाई देता हूं। मैं इस सचिवालय के उन सभी अधिकारियों जिन्होंने इस कठिन कार्य को पूरा करने में अपना योगदान दिया है, को भी शुभकामनाएं देता हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि यह संशोधित तृतीय संस्करण सदस्यों और उन सभी लोगों जो हमारे संसदीय लोकतंत्र के कार्यकरण में गहन रुचि रखते हैं, के लिए मूल्यवान एवं सूचनापरक संदर्भ मार्गदर्शिका सिद्ध होगा।

प्रो. पी. जे. कुरियन

नई दिल्ली

31 अक्तूबर, 2016

आमुख

वर्ष 1996 में "कार्यरत राज्य सभा" नामक प्रकाशन के पहले संस्करण को प्रकाशित करके एक साहसिक और प्रथप्रदर्शक पहल की गई थी। इसमें दिनांक 13 मई, 1952 को राज्य सभा की पहली बैठक से राज्य सभा के कार्यकरण से संबंधित प्रक्रियाओं और परिपाटियों को विस्तृत तथा व्यापक रूप से प्रलेखित किया गया है और इसके क्षेत्र में विगत वर्षों के दौरान राज्य सभा के विकास और इसके कार्यकरण, इसकी प्रक्रिया और परिपाटियों से संबंधित नियमों में किए गए परिवर्तनों और इसकी कार्यवाही के संचालन से संबंधित अन्य घटनाक्रमों को समाहित किया गया है। हम स्वर्गीय श्रीमती वी. एस. रमा देवी, पूर्व महासचिव, राज्य सभा और श्री बी.जी. गुजर, पूर्व निदेशक, राज्य सभा सचिवालय का इस उल्लेखनीय प्रकाशन का कठिन परिश्रम से संकलन करने और उसे प्रकाशित करने के लिए आभारी हैं।

इस पुस्तक का दूसरा संस्करण 2006 में प्रकाशित हुआ और उसे पहले संस्करण के पश्चात् हुए परिवर्तनों को शामिल करते हुए अद्यतन तथा संशोधित किया गया। एक दशक पहले दूसरे संस्करण के प्रकाशित होने के बाद सभा की परिपाटियों और प्रक्रियाओं में हुए मूलभूत परिवर्तनों, सभापीठ के नये विनिर्णयों आदि सहित अनेक घटनाक्रम हुए हैं और इसलिए इस पुस्तक का एक अद्यतन और संशोधित संस्करण लाने की आवश्यकता महसूस की गई। इस संशोधित संस्करण का उद्देश्य इस आवश्यकता को पूरा करना है।

संविधान का अनुच्छेद 87 लोक सभा के प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात् प्रथम सत्र के प्रारंभ तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के प्रारंभ में संसद् की दोनों सभाओं को राष्ट्रपति के अभिभाषण से संबंधित है। राष्ट्रपति का यह अभिभाषण सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों को दर्शाता है। राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 14 से 19, अन्य बातों के साथ-साथ, राष्ट्रपति के अभिभाषण, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के संबंध में चर्चा करने और इस प्रस्ताव के प्रति प्रस्तुत किए गए संशोधनों की गुंजाइश से संबंधित हैं। राष्ट्रपति के अभिभाषण के पश्चात् संसद् के दोनों सदनों में इस पर चर्चा होती है तथा प्रधान मंत्री अथवा सरकार का कोई अन्य मंत्री इस चर्चा की समाप्ति पर सरकार की स्थिति स्पष्ट करता है। सभा द्वारा राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव में संशोधनों को वर्ष 1980, 1989, 2001 और 2015 में स्वीकार किया गया, यद्यपि सामान्यत: ऐसा नहीं होता।

इस सभा के नियमों और प्रक्रियाओं का प्रयोजन सभा का सुव्यवस्थित रूप से कार्य-संचालन और इसके पास उपलब्ध समय का इष्टतम उपयोग सुनिश्चित करना है। पीठासीन अधिकारी के समक्ष सदस्यों से इन नियमों एवं प्रक्रियाओं का निष्ठापूर्वक पालन करवाने और उनके कार्य एवं आचरण के माध्यम से उच्च मानदण्ड स्थापित करवाने का चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। विगत कुछ समय में सभा की कार्यवाहियों में व्यवधान की घटनाओं में वृद्धि हुई है। वर्ष 2013 और 2014 के सत्रों के दौरान सभा की कार्यवाहियों में निरन्तर व्यवधान होते रहे जिसके परिणामस्वरूप बारम्बर स्थगन हुए और इससे सभा का मूल्यवान समय बर्बाद हुआ। इससे विधायी एवं अन्य कार्य प्रभावित हुए। सभा की कार्यवाहियों में हुए बारम्बार

व्यवधान, इसकी बैठकों की संख्या में आई कमी और वाद-विवाद के मानकों में देखी गई गिरावट पर संसद् में और संसद् से बाहर चिंता व्यक्त की गई। राज्य सभा के सभापति ने भी समय-समय पर इस मुद्दे पर चिंता व्यक्त की। सभापति ने 7 फरवरी, 2014 को यह टिप्पणी की कि सभापीठ के समक्ष खड़े होकर तथा निरंतर और जानबूझकर सभा की कार्यवाही में व्यवधान उत्पन्न कर राज्य सभा के नियमों और शिष्टाचार के उल्लंघन और घोर कदाचार में शामिल होने वाले सदस्यों के नाम संसदीय समाचार भाग-1 में प्रकाशित किए जाने चाहिए। फिर, एक अन्य अवसर पर सभापीठ ने एक सदस्य जिसने सभापीठ के समक्ष खड़े होकर नारेबाजी करके निरंतर सभा की कार्यवाही में व्यवधान उत्पन्न किया, के आचरण को गम्भीरता से लिया तथा यह टिप्पणी की कि उनका आचरण सभा के विशेषाधिकार का हनन हो सकता है। बाद में उस सदस्य को अपने आचरण के लिए लिखित रूप से क्षमा याचना करनी पड़ी थी। अन्य घटनाओं के साथ-साथ इन दृष्टांतों का उल्लेख इस पुस्तक के अध्याय 9 'आचरण और संसदीय शिष्टाचार के नियम' में किया गया है।

संसदीय शासन प्रणाली में संसद्, सरकार को उसके भूल-चूक के कृत्यों के लिए जिम्मेदार ठहराती है। सदस्यों द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्न इस प्रयोजनार्थ सबसे पुराने और सबसे ज्यादा प्रभावी साधनों में एक है। अनेक देशों में विधायिका के कार्य में संसदीय प्रश्नों के लिए अलग से एक निश्चित समय निर्धारित किया जाता है। राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों का नियम 38 यह कहता है कि जब तक सभापति अन्यथा निदेश न दे, प्रत्येक बैठक का पहला घंटा प्रश्न पूछने और उनके उत्तर देने के लिए होगा। बारम्बार होने वाले व्यवधानों को देखते हुए, सभापति ने प्रश्नों के समय की शुचिता एवं प्रभावोत्पादकता को बनाए रखने के लिए अनेक पहलें की हैं। 2014 के दौरान सामान्य प्रयोजन समिति (जीपीसी) के समक्ष प्रश्नों का समय म.पू. 11.00 बजे से 12.00 अपराह्न करने का प्रस्ताव रखा गया था, जिसे इसने स्वीकार कर लिया था। बाद में इस प्रस्ताव से नियम समिति भी सहमत हो गई थी और इसने अपने तेरहवें प्रतिवेदन में निम्नलिखित सिफारिशें कीं: (i) प्रश्नों के समय में बदलाव के संबंध में राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 38 में संशोधन करना; (ii) मौखिक उत्तर हेतु, प्रश्नों की संख्या को 20 से कम करके 15 तक सीमित किए जाने के संबंध में नियम 51क में संशोधन करना; और (iii) ध्यानाकर्षण पर विचार किए जाने के समय को बदलकर म.प. 5 बजे किए जाने के लिए नियम 180(5) में परिणामी संशोधन करना। नियम समिति के प्रतिवेदन को 25 नवम्बर, 2014 को सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया। सभा ने नियम समिति द्वारा की गई सिफारिश के अनुसार नियम 38 और 51क में संशोधन को स्वीकार कर लिया। तथापि, सभा ने यह निर्णय लिया कि ध्यानाकर्षण पर म.प. 5.00 बजे के स्थान पर म.प. 2.00 बजे विचार किया जायेगा। इसके परिणामस्वरूप अब म.पू. 11.00 बजे विचारार्थ ली जाने वाली कार्य की प्रथम मद सभापटल पर पत्र रखना और औपचारिक प्रकृति के अन्य कार्य हैं जिनके बाद सभापीठ की अनुमति से हालिया एवं अविलम्बनीय लोक महत्व (शून्यकाल के दौरान किए जाने वाले उल्लेख) के विषय होते हैं ऐसे मामलों की संख्या अधिकतम 15 हो सकती है और यदि समय उपलब्ध हो, तो अपराह्न 12.00 बजे तक विशेष उल्लेख (लोक महत्व के विषय को उठाने हेतु) लिये जाते हैं। 'ध्यानाकर्षण' पर विचार किये जाने का समय बदलकर म.प. 2.00 बजे कर दिया गया है। 'प्रश्न', 'शून्यकाल के दौरान किए जाने वाले उल्लेख', 'ध्यानाकर्षण' और 'कार्य की व्यवस्था' से संबंधित अध्यायों में इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों को दर्शाया गया है।

पूर्व में, जिस सदस्य के नाम से प्रश्न सम्मिलित किया गया होता था, अगर वह उत्तर दिए जाने के दिन अनुपस्थित होता था अथवा सभापीठ के कहने पर प्रश्न नहीं पूछता था तो वह प्रश्न सभा में अनुत्तरित रह जाता था, इस तरह से कार्यपालिका प्रश्न की विषय-वस्तु पर किसी भी विधायी जांच-पड़ताल से मुक्त हो जाती थी। सभापति की पहल पर संबंधित नियम को संशोधित करके यह व्यवस्था की गई कि प्रश्न पुकारे जाने पर, अगर प्रश्न पूछा नहीं जाता है अथवा जिस सदस्य के नाम से प्रश्न है वह अनुपस्थित है तो सभापीठ यह निदेश देगी कि उत्तर दिया जाये। प्रश्न से संबंधित नियमों में भी संशोधन करके यह व्यवस्था की गई है कि यदि एक ही दिन में मौखिक उत्तर हेतु किसी सदस्य के एक से अधिक प्रश्न गृहीत होते हैं, तो एक प्रश्न के बाद के प्रश्नों को लिखित उत्तर हेतु प्रश्न सूची में स्थानांतरित कर दिया जायेगा। इसके अलावा, किसी नियत दिन के लिए, मौखिक एवं लिखित उत्तर हेतु प्रश्न सूचियों में शामिल किए गए प्रश्नों की कुल संख्या 175 (मौखिक उत्तर हेतु 15 प्रश्न और लिखित उत्तर हेतु 160 प्रश्नों) तक सीमित कर दी गई है। इसमें एक प्रश्न सूची से लिखित उत्तर हेतु अन्य सूची में स्थगित प्रश्न तथा राष्ट्रपति के शासनाधीन राज्यों से संबंधित 15 प्रश्न भी शामिल हैं। सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग देरी को कम करने और ई-मेल सुविधा का प्रयोग करके सदस्यों के पास उपलब्ध संसदीय प्रश्नों के यथासमय उत्तर देने में किया जा रहा है। एक नया सॉफ्टवेयर अर्थात् 'पार्लियामेंट क्वेश्चन आन्सर पब्लिशिंग सिस्टम' (ई-रिप्लाई) विकसित किया गया है जो संबंधित मंत्रालयों/विभागों द्वारा प्रश्नों का समय समाप्त होने अथवा उन्हें सभापटल पर रखा गया माने जाने के तत्काल पश्चात् प्रश्नों के उत्तर अपलोड करने की सुविधा प्रदान करता है। सभापीठ द्वारा उपयुक्त नियमों को स्पष्ट करने वाले विनिर्णयों के साथ इन सभी प्रमुख घटनाक्रमों को अध्याय 17 जो 'प्रश्नों' से संबंधित है, में सम्मिलित किया गया है।

भारतीय संसद् के इतिहास में दोनों सभाओं द्वारा गैर-सरकारी सदस्यों के केवल 14 विधेयक पारित तथा विधियों के रूप में अधिनियमित किए गए हैं। ऐसे विधेयकों में अंतिम विधेयक उच्चतम न्यायालय (दाण्डिक अपीली अधिकारिता विस्तारण) विधेयक था जिसे 1970 में अधिनियमित किया गया था। 12 दिसम्बर, 2014 को विपरीतलिंगीं व्यक्तियों का अधिकार विधेयक, 2014 को राज्य सभा में गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक के रूप में पुर:स्थापित किया गया था तथा 24 अप्रैल, 2015 को इसके द्वारा पारित किया गया था। राज्य सभा द्वारा यथापारित विधेयक, 29 अप्रैल, 2015 को लोक सभा के पटल पर रखा गया, जिस पर सभा द्वारा विचार किया जाना अभी बाकी है।

दिसम्बर, 2011 में राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के प्रतिवेदनों पर विचार करने के लिए तथा संघ सरकार के क्षेत्राधिकार में आने वाले मुद्दों के संबंध में संघ सरकार द्वारा किए जाने वाले उपायों के बारे में दोनों सभाओं में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए तीस सदस्यों वाली एक नई समिति अर्थात् अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) कल्याण समिति का गठन किया गया इसके तीस सदस्यों में से बीस लोक सभा से जबकि दस राज्य सभा से होते हैं। इसके अतिरिक्त, संसद् भवन परिसर में खाद्य प्रबंधन संबंधी समिति का गठन किया गया। संसद् भवन परिसर में संरक्षण कार्य, मरम्मत, पुनर्वास तथा रख-रखाव संबंधी कार्यों के संबंध में नीति-निर्माण करने, दिशा-निर्देश तय करने तथा कार्यक्रम बनाने के लिए संसद् भवन परिसर

के पारंपरिक स्वरूप के अनुरक्षण और विकास संबंधी संयुक्त संसदीय समिति भी गठित की गई।

विधेयकों की गहरी जांच-पड़ताल करने तथा विधायी प्रक्रिया में विभिन्न संबंधित पक्षों की व्यापक प्रतिभागिता सुनिश्चित करने के लिए विधेयकों के संबंध में प्रवर समिति अथवा संयुक्त समिति का गठन भी किया जाता है। हाल के वर्षों में प्रवर समितियों के गठन में बहुत वृद्धि हुई है जो सभापति के निदेशों तथा नियंत्रण के अधीन कार्य करती हैं। इन समितियों में सम्मिलित हैं : लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, 2011 संबंधी प्रवर समिति, निरसन और संशोधन विधेयक, 2014 संबंधी प्रवर समिति, संदाय और निपटान प्रणाली (संशोधन) विधेयक, 2014 संबंधी प्रवर समिति, संविधान (एक सौ बाईसवां संशोधन) विधेयक, 2014 संबंधी प्रवर समिति, भू-संपदा (विनियमन और विकास) विधेयक, 2013 संबंधी प्रवर समिति इत्यादि। ऐसे समस्त नए घटनाक्रम "समितियां" नामक अध्याय 25 में वर्णित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त, इस अध्याय में राज्य सभा के सभापति द्वारा 1 जुलाई, 2011 को जारी किए निदेशों के विषय में बताया गया है, जिसमें कहा गया है कि याचिका समिति ऐसे अभ्यावेदनों, विभिन्न व्यक्तियों, संघों से प्राप्त पत्रों तथा तारों पर विचार करेगी जो किसी नियम के दायरे में नहीं आते। समिति, अनाम पत्रों अथवा ऐसे पत्रों पर जिनमें कोई विशेष अनुरोध नहीं किया गया हो, विचार नहीं करती।

संविधान की चौथी अनुसूची में राज्य सभा में विभिन्न राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से सीटों के आवंटन का प्रावधान है। जून, 2014 में आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 के अधिनियमित होने पर आन्ध्र प्रदेश से पृथक कर तेलंगाना नामक नए राज्य का गठन हुआ। अब राज्य सभा में उनतीस राज्यों तथा दिल्ली एवं पुदुचेरी दो संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि हैं। इसके साथ-साथ उत्तरांचल (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2006 तथा उड़ीसा (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2011 के परिणामस्वरूप दो राज्यों का नाम परिवर्तन करके क्रमश: 'उत्तराखंड' तथा 'ओडिशा' किया गया है। इन घटनाक्रमों को अध्याय 2 "राज्य सभा की संरचना" में शामिल किया गया है।

संविधान के अनुच्छेद 102 में संसद् की किसी भी सभा से सदस्यता के लिए निरर्हताओं से संबंधित उपबंध किए गए हैं। अनुच्छेद 102/(ङ) के अनुसार कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा यदि वह संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा अथवा उसके अधीन इस प्रकार निरर्हित कर दिया जाता है। संसद् ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 को अधिनियमित किया है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कतिपय अपराधों में दोषसिद्धि पर संसद् तथा राज्य विधान सभाओं की सदस्यता से निरर्हता का प्रावधान है। उच्चतम न्यायालय ने 10 जुलाई, 2013 को रिट याचिका (ग) 2005 का 490 तथा 2005 का 231 में अपने निर्णय में लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 8(4) को संविधान से अधिकारातीत घोषित किया था। सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के परिणामस्वरूप सितम्बर, 2013 एवं अप्रैल, 2014 में राज्य सभा के दो सदस्यों को राज्य सभा की सदस्यता से निरर्ह कर दिया गया था। राज्य सभा की सदस्यता से संबंधित अध्याय 3 में इन घटनाक्रमों को सम्मिलित किया गया है।

राज्य सभा के सचिवालय का गठन संविधान के अनुच्छेद 98 में वर्णित प्रावधानों के अनुपालन में हुआ और यह राज्य सभा के सभापति के संपूर्ण मार्गदर्शन और नियंत्रण में कार्य करता है। राज्य सभा सचिवालय में विभिन्न पदों पर भर्ती के लिए अक्तूबर, 2008 में भर्ती प्रकोष्ठ की स्थापना की गई थी। इसके पूर्व, राज्य सभा तथा लोक सभा की विभिन्न सेवाओं के लिए भर्ती का कार्य संयुक्त भर्ती प्रकोष्ठ संचालित करता था। इसे 'राज्य सभा की विभिन्न सेवाओं' से संबंधित अध्याय 27 में सम्मिलित किया गया है।

संसद् की पहुंच को और भी अधिक बढ़ाने के लिए राज्य सभा टेलीविज़न की स्थापना की गई है। चैनल ने अपना प्रसारण 26 अगस्त, 2011 से प्रारंभ किया और 18 दिसम्बर, 2011 से यह एक संपूर्ण रूप से कार्य करने वाला टेलीविज़न चैनल बन गया। सत्र के दौरान राज्य सभा की कार्यवाही के सीधे प्रसारण के अतिरिक्त, आरएसटीवी सभा की कार्यवाही तथा अन्य संसदीय गतिविधियों तथा कार्यक्रमों का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करता है। चैनल का सीधा वेबकास्ट राज्य सभा की वेबसाइट के होमपेज तथा यू ट्यूब पर भी उपलब्ध होता है। 2009 में राज्य सभा के संपादित वाद-विवाद के डिजिटलीकरण तथा डिजिटीकृत वाद-विवादों को राज्य सभा के वाद-विवाद पोर्टल पर अपलोड करने तथा राज्य सभा की हिंदी वेबसाइट को अद्यतन रखने के उद्देश्य से एक डिजिटाइजेशन एवं हिंदी वेब अद्यतनीकरण प्रकोष्ठ का गठन किया गया। इन कदमों को भी 'राज्य सभा की विभिन्न सेवाओं' से संबंधित अध्याय 27 में सम्मिलित किया गया है।

इस अवसर पर मैं भारत के माननीय उपराष्ट्रपति तथा राज्य सभा के सभापति श्री मो. हामिद अंसारी के प्रेरणादायी प्राक्कथन के लिए उनके प्रति आधिकारिक रूप से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। मैं राज्य सभा के माननीय उप-सभापति प्रो. पी.जे. कुरियन के प्रति भी पुस्तक की अत्यंत मूल्यवान प्रस्तावना लिखने के लिए आभार व्यक्त करता हूं।

इस प्रकार के विशद कार्य के अद्यतनीकरण में काफी समय लग गया है। इस प्रयास में राज्य सभा सचिवालय के समस्त अधिकारियों एवं अनुभागों ने अपना योगदान दिया है। मैं आधिकारिक रूप से इन सभी के प्रति विशेषकर विधायी शाखा, पटल कार्यालय, विधेयक कार्यालय, समिति, प्रश्न, मुद्रण तथा प्रकाशन एवं लार्डिस शाखाओं की सराहना करता हूं। मैं अनुवाद एवं संपादन सेवा को भी इस वृहद प्रकाशन के हिंदी अनुवाद कार्य को निष्पादित करने के लिए धन्यवाद देना चाहता हूं। आकाशदीप प्रिंटर्स नई दिल्ली ने इस प्रकाशन को सुरुचिपूर्ण ढंग से मुद्रित करने पर विशेष ध्यान दिया है।

मुझे आशा है कि 'कार्यरत राज्य सभा' का यह संशोधित संस्करण पीठासीन अधिकारियों, विधि निर्माताओं, संसदीय अधिकारियों, शोधकर्ताओं, विद्वानों तथा भारतीय संसदीय प्रणाली के कार्यकरण में रुचि रखने वाले अन्य सभी व्यक्तियों के लिए एक उपयोगी संदर्भ ग्रंथ सिद्ध होगा।

नई दिल्ली
31 अक्तूबर, 2016

शमशेर के. शरीफ
महासचिव, राज्य सभा

संक्षेपाक्षर

(इस पुस्तक में प्रयुक्त केवल प्रमुख संक्षेपाक्षरों को नीचे सूचीबद्ध किया गया है)

ए.डी.एम.के./अ.द्र.मु.क.	अन्ना द्रविड मुनेत्र कषघम
ए.जी.पी.	असम गण परिषद्
ए.आई.ए.डी.एम.के./अ.भा.अ.द्र.मु.क.	अखिल भारतीय अन्ना द्रविड मुनेत्र कषघम
ए.आई.एफ.बी.	ऑल इंडिया फॉरवर्ड ब्लॉक
ए.आई.टी.सी.	ऑल इंडिया तृणमूल कांग्रेस
ए.आई.आर.	ऑल इंडिया रिपोर्टर
ए.पी.एच.एल.सी.	ऑल पार्टी हिल लीडर्स कॉन्फ्रेंस
परि.	परिशिष्ट
अनु.	भारत के संविधान का/के अनुच्छेद
ए.टी.आर.	की गई कार्यवाही संबंधी प्रतिवेदन
ए.वी.आर.	स्वचालित मत रिकॉर्डर
का.म.स.	कार्य मंत्रणा समिति
बी.ए.एल.सी.ओ. (बाल्को)	भारत एल्युमीनियम कंपनी लिमिटेड
बी.एच.ई.एल.	भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड
बी.जे.डी.	बीजू जनता दल
भा.ज.पा./बी.जे.पी.	भारतीय जनता पार्टी
बी.के.डी./भा.क्रां.द.	भारतीय क्रांति दल
भा.लो.द.	भारतीय लोक दल
बी.पी. एफ.	बोडोलैंड पीपुल्स फ्रंट
बी.एस.एन.एल.	भारत संचार निगम लिमिटेड
ब.स.पा./बी.एस.पी.	बहुजन समाज पार्टी
सी. एंड ए.जी.	भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक
के.स.स्वा.यो.	केन्द्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना
सी.एच.ओ.जी.एम. (चोगम)	राष्ट्रकुल शासनाध्यक्षों का सम्मेलन
सी.आई.ए.	सेन्ट्रल इंटेलिजेंस एजेन्सी
स.आ.	संवैधानिक आदेश
संविधान	भारत का संविधान
सी.ओ.पी.	विशेषाधिकार समिति
कोपलोट	सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति

सी.ओ.पी.यू.	सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति
सी.ओ.एस.एल.	अधीनस्थ विधान संबंधी समिति
सी.पी.आई./भा.क.पा.	भारतीय साम्यवादी दल
सी.पी.आई. (एम)/भा.क.पा. (मा.)	भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी)
सी.आर.पी.सी.	दंड प्रक्रिया संहिता
सी.आर.पी.एफ.	केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल
रा.स.	राज्य सभा
डी.ए.	दैनिक भत्ता
डाइजेस्ट	पार्लियामेंटरी प्रिविलेजेज-डाइजेस्ट ऑफ केसेज, लोक सभा सचिवालय
डी.एम.के./द्र.मु.क.	द्रविड मुनेत्र कषघम
डी.पी.	दिल्ली पुलिस
डी.पी.ए.	विभाग/संसदीय कार्य मंत्रालय
डी.एस.पी.	लोकतांत्रिक समाजवादी दल
ता.	तारीख
ई.एल.आर.	निर्वाचन कानून प्रतिवेदन
फा.सं.	राज्य सभा सचिवालय में फाइल संख्या; संख्या के अंत में एक अक्षर जो फाइल रखने वाले अनुभाग का संक्षिप्त नाम इंगित करता है
गैट	जनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ एण्ड ट्रेड
गजट	राजपत्र
गज. एक्स्ट.	असाधारण राजपत्र
जी.एन.एल.एफ.	गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट
जी.पी.सी.	सामान्य प्रयोजन समिति
जी.एस.एल.वी.	भूस्थिर उपग्रह प्रक्षेपण यान
हंसार्ड	हाउस ऑफ कॉमन्स वाद-विवाद
हैंडबुक	हैंडबुक फॉर मेम्बर्स ऑफ राज्य सभा (सदस्यों के लिए दिग्दर्शिका)
एच.सी.	उच्च न्यायालय
लो.स.	लोक सभा
लो.स. डिबेट	लोक सभा वाद-विवाद
सभा/सदन	राज्य सभा

सभाएं/सदन	राज्य सभा और लोक सभा
आई.बी.	आसूचना ब्यूरो
वही	उसी स्थान
आई.सी.सी.	अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट काउंसिल
आई.एल.आर.	भारतीय विधि प्रतिवेदन
आई.एन.सी./भा.रा.कां.	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
इंफ्रा	नीचे
आई.एन.एल.डी.	भारतीय राष्ट्रीय लोक दल
इसरो	भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन
जे. एंड के.	जम्मू और कश्मीर
जे. एण्ड के.एन.सी.	जम्मू और कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस
जे.सी.ओ.पी.	लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति
ज.द.	जनता दल
ज.द. (एस.)	जनता दल (सेक्युलर)
ज.द. (यू.)	जनता दल (यूनाइटेड)
जे.एम.एम.	झारखंड मुक्ति मोर्चा
जे.एन.यू.	जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
जे.पी.सी.	संयुक्त संसदीय समिति
कौल एंड शकधर	' प्रैक्टिस एंड प्रोसिजर ऑफ पार्लियामेंट ' - एम.एन. कौल और एस.एल. शकधर, छठा संस्करण, 2009
के.सी. (एम.)	केरल कांग्रेस (एम.)
के.एम.पी.पी.	किसान मजदूर प्रजा पार्टी
एल.आई.सी.	भारतीय जीवन बीमा निगम
एल.ओ.बी.	कार्यावलि
एल.एस.आर.	लोक सभा नियम
मंत्रा	मशीन असिस्टेड ट्रांसलेशन टूल
मे	सर थॉमस अर्सकीन मे 'ट्रीटीज ऑन द लॉ, प्रिवेलेजेज, प्रोसीडिंग्स एंड यूसेज ऑफ पार्लियामेंट', 24वां संस्करण, 2011 (जब तक अन्यथा उल्लिखित न हो)
मनरेगा योजना	महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना
मीसा	आंतरिक सुरक्षा अधिनियम
एम.एल.	मुस्लिम लीग

एम.एल.ए.	विधायक
एम.एल.सी.	सदस्य, विधान परिषद
मिनट्स	समिति की बैठक के कार्यवृत्त
एम.पी.	संसद सदस्य
एमपीलैड्स	संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना
एम.पी.पी.	मणिपुर पीपल्स पार्टी
एम.टी.एन.एल.	महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड
टी.एम.सी.	तमिल मनिला कांग्रेस
एन.सी.	नेशनल कान्फ्रेंस
एन.सी.पी./रा.कां.पा.	राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी
एन.सी.टी.	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र
एन.डी.आर.एफ.	राष्ट्रीय आपदा मोचन बल
नेफा	नॉर्थ ईस्टन (पूर्वोत्तर) फ्रंटियर एजेन्सी
एन.आई.सी.	राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र
एन.पी.एफ.	नागा पीपल्स फ्रंट
एन.एस.जी.	राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड
ओ. एण्ड एम.	संगठन और प्रबंधन
ओ.एम. (का.ज्ञा.)	कार्यालय ज्ञापन
पृ.	वाद-विवाद/प्रकाशन में पृष्ठ
पी.ए.सी.	लोक लेखा समिति
पी.ए.क्यू.	अनंतिम स्वीकृत प्रश्न
पार्ल. डिबेट	संसदीय वाद-विवाद
पी.सी.	याचिका समिति
पी.डी.	प्रिविलेज डाइजेस्ट, लोक सभा सचिवालय
पी.डी.जी.	पार्लियामेंट ड्यूटी ग्रुप/संसद सेवा समूह
पी.डी.पी.	पीपल्स डेमोक्रेटिक पार्टी
पेप्सू	पटियाला एंड ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन
पी.आई.एल.	जनहित याचिका
पी.एम.के.	पट्टाली मक्कल काची
पी.एस.एल.वी.	ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान
पी.एस.पी.	प्रजा समाजवादी पार्टी

पी.एस.यू.	सरकारी क्षेत्र के उपक्रम
पी.टी.आई.	प्रैस ट्रस्ट ऑफ इंडिया
पी.डब्ल्यू.पी.	किसान कामगार पार्टी
लो.प्र. अधिनियम	यथास्थिति लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 या 1951
नियम	राज्य सभा की प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम
आर.जे.डी./रा.ज.द.	राष्ट्रीय जनता दल
आर.पी.	रिपब्लिकन पार्टी
आर.पी.आई.	रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया
आर.पी.आई. (ए.)	रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (अठावले)
आर.एस.पी.	रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी
आर.टी.आई. अधिनियम	सूचना का अधिकार अधिनियम
एस.ए.डी.	शिरोमणि अकाली दल
एस.सी.	उच्चतम न्यायालय
एस.सी./एस.टी.	अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति
एस.सी.ए.	उच्चतम न्यायालय अपील
एस.सी.आर.	उच्चतम न्यायालय रिपोर्टर
एस.डी.एफ.	सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट
सचिवालय	राज्य सभा सचिवालय
एस.एल.वी.	उपग्रह प्रक्षेपण यान
एस.एम.ओ.पी.	कार्यालयी प्रक्रिया संबंधी अनुभागीय नियम पुस्तिका
एस.एम.एस.	लघु संदेश सेवा
स.पा.	समाजवादी पार्टी
एस.पी.जी.	स्पेशल प्रोटेक्शन ग्रुप
एस.ओ.	स्थायी आदेश
सोश./एस.पी.	सोशलिस्ट पार्टी
का.नि.या.	कानूनी विनियामक आदेश
एस.एस.	शिव सेना
एस.एस.पी.	संयुक्त समाजवादी पार्टी
टी.डी.पी.	तेलुगु देशम पार्टी
यू.ए.ई.	संयुक्त अरब अमीरात

यू.ए.एम.	यूनाइटेड एसोसिएशन ऑफ मेम्बर्स
यू.डी.एफ.	संयुक्त लोकतांत्रिक फ्रंट
यू.जी.सी.	विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
यू.के.	यूनाइटेड किंगडम
यू.पी.एस.सी.	संघ लोक सेवा आयोग
वी.एच.पी.	विश्व हिन्दू परिषद
वी.एस.एन.एल.	विदेश संचार निगम लिमिटेड

विषय-सूची

		पृष्ठ सं.
प्राक्कथन		i
परिचय		iii
प्रस्तावना		vii
संक्षेपाक्षर		xiii
अध्याय 1	**राज्य सभा विकास, शक्तियां और स्थिति**	
अध्याय 2	**राज्य सभा की संरचना**	
संवैधानिक उपबंध		20
चौथी अनुसूची (26 नवम्बर, 1949 की स्थिति के अनुसार)		21
चौथी अनुसूची (26 जनवरी, 1950 की स्थिति के अनुसार)		21
राज्य सभा—प्रारम्भिक गठन		22
चौथी अनुसूची (1956 में यथासंशोधित)		23
संरचना में परिवर्तन		24
स्थानों का वर्तमान आवंटन		26
अध्याय 3	**राज्य सभा की सदस्यता**	
अर्हताएं		29
निरर्हताएं		30
संवैधानिक उपबंध		30
"लाभ के पद" शब्दों का प्रयोग		31
लाभ के पद संबंधी संयुक्त समिति		31
लाभ के पदों के संबंध में सांविधिक अपवाद		32
अतिरिक्त सांविधिक निरर्हताएं		33
निरर्हता के संबंध में निर्णय		35
दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता		35
अपवाद		36
दसवीं अनुसूची के अधीन निरर्हता के संबंध में निर्णय		36
दसवीं अनुसूची के अधीन बनाए गए नियम		38
निर्वाचन		40
एकल संक्रमणीय मत की प्रक्रिया		45
नामनिर्देशन		48
संसद्-सदस्य का पदनाम		50
पदावधि		51
स्थानों का रिक्त होना		56
वेतन, भत्ते, पेंशन और अन्य सुविधाएं		66

पृष्ठ सं.

अध्याय 4 राज्य सभा के पीठासीन अधिकारी और अन्य संसदीय अधिकारी

उपराष्ट्रपति पदेन सभापति........ 80
उपसभापति........ 90
अस्थायी सभापति........ 96
उपसभाध्यक्ष तालिका........ 96
तालिका से बाहर के सदस्य द्वारा सभापतित्व........ 98
उपसभापति/उपसभाध्यक्ष के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं........ 99
संसदीय समितियों के अध्यक्ष........ 101
सदन का नेता........ 102
विपक्ष का नेता........ 109
मंत्री........ 114
भारत का महान्यायवादी........ 119
सचेतक........ 121
महासचिव........ 123

अध्याय 5 संसद् के घटकों के पारस्परिक संबंध

राष्ट्रपति और संसद्........ 138
राष्ट्रपति संबंधी उपबंध 138
सभा में प्रक्रियागत प्रतिबंध........ 146
अभिभाषण के दौरान व्यवधान 148
सदनों के पारस्परिक संबंध 148
दोनों सदनों के बीच संवाद 149
सदनों की संयुक्त बैठक 151
अब तक हुई संयुक्त बैठकें 152
प्रथा और प्रक्रिया द्वारा पारस्परिक संबंध 154
सदनों के बीच विवाद 158

अध्याय 6 राज्य सभा के सत्र

राष्ट्रपति द्वारा आह्वान 175
सदस्यों को आहूत किया जाना 178
सत्र की अवधि का बढ़ाया जाना 185
अनियत तिथि के लिए स्थगन........ 186
निर्धारित समय से पूर्व अनियत तिथि के लिए स्थगन 186
सत्रावसान और इसके प्रभाव 188
राज्य सभा के कार्य पर लोक सभा के भंग होने का प्रभाव 191

पृष्ठ सं.

अध्याय 7 राष्ट्रपति का अभिभाषण, धन्यवाद प्रस्ताव और संदेश

संवैधानिक उपबंध 198
अभिभाषण की तारीख और समय 198
अभिभाषण से संबंधित समारोह 199
अवसर का महत्व 200
अभिभाषण के दौरान अशांति उत्पन्न करने की घटनाएं 201
अभिभाषण की विषय-वस्तु 202
अलग बैठक और अभिभाषण की प्रति का रखा जाना........ 203
अभिभाषण में किन्हीं त्रुटियों के संशोधनार्थ प्रक्रिया 204
धन्यवाद प्रस्ताव द्वारा अभिभाषण पर चर्चा 205
धन्यवाद प्रस्ताव पर रखे जाने वाले संशोधन 207
राष्ट्रपति को धन्यवाद प्रस्ताव भेजा जाना 211
राष्ट्रपति के संदेश और सभा को उनकी सूचना 212
राष्ट्रपति और राज्य सभा के बीच संवाद 213

अध्याय 8 संसदीय विशेषाधिकार

विशेषाधिकार का स्वरूप 217
अवमान क्या है........ 217
संवैधानिक उपबंध 218
सांविधिक उपबंध 218
प्रक्रिया संबंधी नियमों और पूर्व निर्णयों पर आधारित विशेषाधिकार 219
सदन की पारिणामिक शक्तियां 219
सदन की शास्तिक शक्तियां 219
बोलने की स्वतंत्रता और न्यायालय की कार्यवाही से उन्मुक्ति........ 219
सदन में किसी सदस्य द्वारा प्रकट की गई बात के लिए उससे प्रश्न किया जाना 221
बाहरी व्यक्तियों को अपवर्जित करने का अधिकार 222
कार्यवाहियों के प्रकाशन को नियंत्रित करने का अधिकार........ 223
कार्यवाही का समय पूर्व प्रकाशन 224
कार्यवाही से निकाले गए अंशों का प्रकाशन 224
कार्यवाही का मिथ्या-निरूपण 225
सदन को अपनी कार्यवाही विनियमित करने का अधिकार 227
न्यायालय के समक्ष दस्तावेजों को प्रस्तुत किया जाना 228
गिरफ्तारी से स्वतंत्रता 230
दांडिक अपराधों या निवारक निरोध विधियों के अधीन गिरफ्तारी 231

पृष्ठ सं.

निरुद्ध सदस्य का सत्र में उपस्थित होने का अधिकार 231
न्यायालय में साक्षी के रूप में उपस्थित होने से छूट... 232
सदन की प्रसीमा में विधिक प्रक्रिया की तामील और गिरफ्तारी से उन्मुक्ति 233
सदस्यों की गिरफ्तारी, आदि की सूचना 233
अभिरक्षाधीन किसी सदस्य के पत्र-व्यवहार को रोका जाना 235
पुलिस/जेल प्राधिकारियों द्वारा सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार किया जाना 235
सदस्यों को हथकड़ी लगाया जाना 237
सदस्यों पर लांछन लगाया जाना 238
सदन एवं सदस्यों आदि पर आक्षेप लगाने वाले भाषण और लेख 239
शपथ-पत्रों/रिटों में दिये गये विवरण 243
सदस्यों पर हमला आदि 244
सदस्यों को अभित्रस्त किया जाना 244
विशेषाधिकार का उल्लंघन या अवमान किये जाने पर दंड देने की सदन की शक्ति 244
विशेषाधिकार का उल्लंघन या अवमान करने के लिए दंड 245
दर्शक दीर्घा से विघ्न डालना 246
सदन में जानबूझकर भ्रामक वक्तव्य देना 247
ऐसे मामले जिनमें विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं होता 249
राज्य सभा में उठाये गये विशेषाधिकार के कुछ विशिष्ट मुद्दे 252
औचित्य का उल्लंघन 254
विशेषाधिकार के प्रश्नों से निपटने संबंधी प्रक्रिया 257
एक सदन दूसरे सदन की कार्यवाही पर टिप्पणी नहीं करेगा 264
सभापति द्वारा विशेषाधिकार के प्रश्नों को विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाना...................... 266
राज्य विधानमंडल की किसी समिति के समक्ष साक्षी के रूप में उपस्थित होने के लिए राज्य सभा के किसी सदस्य को बुलाये जाने संबंधी प्रक्रिया 267
उच्चतम न्यायालय और विशेषाधिकार का मामला 267
कानूनी प्रक्रिया 268
विदेशी राष्ट्रिक के संबंध में विशेषाधिकार का सीमा-क्षेत्र 269
विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध किया जाना 269

अध्याय 9 आचरण और संसदीय शिष्टाचार के नियम

सामान्य बातें.. 278
सदस्य द्वारा अभद्र आचरण करने पर दंड 279
आचरण की भर्त्सना 280
सदन से बाहर चले जाने का आदेश 281

पृष्ठ सं.

निलंबन.. 282
निष्कासन.. 284
प्रथाएं और परंपराएं.. 284
सदन में पालनीय नियम 287
बोलते समय कतिपय नियमों का पालन 295
सदस्यों के विरुद्ध आरोप 300
प्रश्नों को सभापीठ के माध्यम से पूछा जाना 300
असंगत बातें कहना या बार-बार एक ही बात कहना 300
सभापति के खड़े होने पर प्रक्रिया 301
सदन और उसकी समितियों के समक्ष विचाराधीन मामलों में सदस्यों का व्यक्तिगत हित होना.. 301
सदस्यों के लिए आचार संहिता 303

अध्याय 10 राज्य सभा का राजनैतिक स्वरूप

सभापति का निदेश 310
संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन किसी राजनैतिक दल की सदस्यता 312
निष्कासन और उससे किसी सदस्य की स्थिति पर पड़ने वाला प्रभाव 315
मान्यता के बाद दी जाने वाली सुविधाएं 318
राज्य सभा में दलों की बदलती रहने वाली स्थिति 321

अध्याय 11 राज्य सभा की बैठकें

बैठकों का नियत किया जाना 328
बैठकों की अस्थायी सारणी 328
शनिवार को बैठक 329
छुट्टियों का मनाया जाना 329
कुछ अवसरों पर बैठकों का नियत न किया जाना 332
बैठकों का रद्द किया जाना 332
किसी बैठक के आरंभ होने का समय 334
कुछ विशेष अवसरों पर बैठक के प्रारंभ होने का समय 336
किसी बैठक के प्रारंभ होने की प्रक्रिया 338
बैठक के लिए गणपूर्ति 338
मध्याह्न भोजन का अवकाश 342
कुछ समय के लिए बैठक का स्थगन/निलम्बित किया जाना 343
बैठक का समाप्त होना 345
सभा को निर्धारित समय से पूर्व दिनभर के लिए स्थगित किया जाना 346
मध्य रात्रि के बाद भी बैठक का जारी रहना 348
राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत की धुन का बजाया जाना 349

पृष्ठ सं.

सभा का अनियत तिथि के लिए स्थगित किया जाना 350

विशेष बैठकें............ 350

राज्य सभा की पहली बैठक 351

अध्याय 12 सदस्यों द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान

वैधानिक उपबंध............ 357

शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के पूर्व किसी सदस्य के अधिकार आदि 358

शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने की समय-सीमा 360

शपथ/प्रतिज्ञान के लिए प्रक्रिया 360

सभापति के कक्ष में शपथ/प्रतिज्ञान 365

अवसर की गंभीरता 367

अध्याय 13 सदन में सीटों की व्यवस्था

बैठने की क्षमता 371

पीठासीन अधिकारी की कुर्सी 372

बैठने की सामान्य व्यवस्था 372

सीटों का आवंटन 374

अध्याय 14 सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति

संवैधानिक और विधिक उपबंध 382

उपस्थिति पंजी 382

अनुपस्थिति की अनुमति प्राप्त करने की प्रक्रिया 384

अनुपस्थिति की अनुमति के आवेदनों को निपटाया जाना 387

अनुपस्थिति की अनुमति का न दिया जाना 388

अनुपस्थिति के कारण सीट का रिक्त होना 389

उपसभापति, सभा के नेता तथा मंत्रियों की अनुपस्थिति 390

मुख्य मंत्री के रूप में नियुक्त किसी सदस्य को अनुपस्थिति की अनुमति 391

ऐसे सदस्य को अनुपस्थिति की अनुमति जिसने शपथ नहीं ली है या प्रतिज्ञान नहीं किया है और उस पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं 391

ऐसे सदस्य को अनुपस्थिति की अनुमति जिसका त्याग-पत्र विचाराधीन है 391

अनुपस्थिति की अनुमति को रद्द किया जाना............ 392

अनुपस्थिति की अनुमति के दौरान दैनिक भत्ते का भुगतान............ 392

सदस्यों की उपस्थिति के बारे में सूचना उपलब्ध कराना 392

न्यायालय को उपस्थिति पंजी में से सूचना उपलब्ध कराना 392

अध्याय 15 कार्य की व्यवस्था

सरकारी कार्य 395

सभापटल पर रखे गए पत्र 396

पृष्ठ सं.

अशुद्धियों को ठीक करने के लिए वक्तव्य 398

ध्यानाकर्षण के उत्तर में दिए गए वक्तव्य 398

लोक महत्व के मामलों पर मंत्रियों द्वारा वक्तव्य 399

व्यक्तिगत स्पष्टीकरण 400

समितियों के लिए निर्वाचन हेतु प्रस्ताव 402

विधेयकों को पुर:स्थापित करने या वापस लेने के लिए प्रस्ताव 402

विधान कार्य........ 403

प्रस्ताव........ 403

संकल्प........ 403

चर्चाएं 404

वित्तीय कार्य........ 405

सरकारी कार्य का समय........ 405

सरकारी कार्य की व्यवस्था 406

सदन में किए जाने वाले सरकारी कार्य संबंधी वक्तव्य 407

गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य 411

कार्यावलि........ 414

अध्याय 16 दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि तथा अन्य उल्लेख

दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि........ 420

प्रशंसा और श्रद्धांजलि 433

बधाइयां, प्रशंसा और अभिनन्दन 434

राज्य सभा के महासचिव के बारे में उल्लेख........ 438

विदेशों के संसदीय शिष्टमंडलों का स्वागत 439

गंभीर अथवा महत्वपूर्ण अवसरों पर होने वाले उल्लेख 439

त्रासद घटनाओं का उल्लेख 441

निर्विरोध स्वीकृत किए गए संकल्प 444

निवृत होने वाले सदस्यों को शुभकामनाएं और नवनिर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों का स्वागत.... 445

सत्र की समाप्ति पर विदाई में कहे गये शब्द........ 445

अध्याय 17 प्रश्न

प्रश्नों के लिए समय 458

प्रश्नों के लिए समय नियत न करना........ 459

बढ़ाई गई सत्रावधि के दौरान प्रश्नों का समय 461

बैठक रद्द किये जाने के कारण प्रश्नों के समय का अन्तरण 463

व्यवधान से बचाने हेतु प्रश्नों के समय का अंतरण 463

पृष्ठ सं.

कुछ सदस्यों द्वारा सभा के सदस्यों के रूप में अपने अधिकारों के अतिलंघन किए जाने पर विशेषाधिकार भंग का नोटिस 464
प्रश्नों के समय का निलम्बन 464
प्रश्नों के समय का बढ़ाया जाना 467
निर्धारित समय से पूर्व प्रश्नों का समय समाप्त होना 469
प्रश्नों के समय के दौरान औचित्य-प्रश्न 470
कुछ आकस्मिकताओं में प्रश्नों का निपटारा 471
सदस्यों द्वारा प्रश्नों की सूचनाएं 475
प्रश्नों की सूचना का रूप 477
मंत्रियों को सूचना भेजना 478
प्रश्नों की श्रेणियां 479
प्रश्नों की संख्या के संबंध में सीमा 479
प्रश्नों के लिए दिन नियत करना 481
गैर-सरकारी सदस्यों से प्रश्न 482
प्रश्नों की ग्राह्यता की शर्तें 482
प्रश्नों की ग्राह्यता के संबंध में सभापति का निर्णय 491
प्रश्न-सूची और उसके लिए लॉटरी निकाला जाना 492
सदस्यों के नामों का एक साथ दिया जाना 495
एक ही विषय अथवा सहबद्ध विषयों से संबंधित प्रश्नों का समेकन 496
प्रश्नों के पुकारे जाने और पूछने का क्रम और रीति 496
समान प्रश्नों का एक साथ लिया जाना 497
प्रश्नों के उत्तरों की प्रतियों का उपलब्ध कराया जाना 498
मंत्रियों द्वारा प्रश्नों के उत्तर दिया जाना 500
प्रश्न का असंतोषजनक उत्तर 501
प्रश्नों के समय के दौरान मंत्री का उत्तरदायित्व 502
प्रश्नों के उत्तरों का संशोधन 503
प्रश्नों का वापस लिया जाना या स्थगित किया जाना 505
प्रश्नों का अंतरण 507
अनुपस्थित सदस्यों के प्रश्न 509
प्रश्नों के समय में प्रश्नकर्त्ताओं की अनुपस्थिति 513
अनुपूरक प्रश्न 514
अनुपूरक प्रश्नों की संख्या की सीमा और प्रश्नों के समय के दौरान लिये जाने वाले प्रश्न........ 517
प्रश्नों के समय के दौरान हिन्दी तथा अंग्रेजी से भिन्न किन्हीं अन्य भाषाओं का प्रयोग........ 523

पृष्ठ सं.

प्रश्नों के उत्तरों का समय से पहले प्रचार 524
अल्प सूचना प्रश्न 524
आधे घंटे की चर्चाएं 526
कम्प्यूटरीकरण 528
राज्य सभा की वेबसाइट पर प्रश्नों के उत्तरों को अपलोड किया जाना 529
प्रश्नों तथा तत्संबंधी अनुपूरक प्रश्नों के उत्तरों के बीच संयोजन स्थापित करना 530
अध्याय 18 ध्यानाकर्षण
राज्य सभा में स्थगन प्रस्ताव का न होना 544
पत्रों के लिए प्रस्ताव की पुरानी प्रक्रिया 545
ध्यानाकर्षण की प्रक्रिया का शुरू किया जाना 546
नियम 180 में उपबंध 547
सूचनाएं देने की प्रक्रिया 547
किसी सूचना का गृहीत किया जाना 548
किसी सूचना का गृहीत न किया जाना 551
किसी सूचना का रूपान्तरण और उसे किसी अन्य मंत्री को सौंपा जाना 551
सूचनाओं की पूर्ववर्तिता 553
सूचनाओं का व्यपगत हो जाना 554
गृहीत सूचना के बारे में जानकारी 555
एक दिन में एक से अधिक ध्यानाकर्षणों पर चर्चा 555
ध्यानाकर्षण किए जाने का समय 556
ध्यानाकर्षण का स्थगित किया जाना 557
ध्यानाकर्षण की रीति 559
सदन के भीतर वक्तव्य की प्रतियों को परिचालित किया जाना 560
ध्यानाकर्षण के उत्तर में मंत्री द्वारा वक्तव्य 560
अनुपस्थित सदस्य का ध्यानाकर्षण........ 564
स्पष्टीकरण मांगने के लिए प्रक्रिया 565
स्पष्टीकरण मांगने के लिए सदस्यों के पुकारे जाने का क्रम 565
स्पष्टीकरणों का स्थगित किया जाना 566
स्पष्टीकरण मांगे जाने के लिए समय-सीमा........ 566
स्पष्टीकरणों का उत्तर 567
वक्तव्यों का संशोधन या मुद्दों के बारे में और स्पष्टीकरण 568
ध्यानाकर्षण समाप्त करने में लगने वाला समय 568
ध्यानाकर्षण को चर्चा में परिवर्तित किया जाना 569

पृष्ठ सं.

न्यायालय में विचाराधीन मामले पर ध्यानाकर्षण 571

ध्यानाकर्षण के माध्यम से उठाए गए महत्वपूर्ण विषय 571

अध्याय 19 शून्यकाल के उल्लेख

परिभाषा.. 583

आरंभ 584

शून्यकाल का उद्देश्य 585

शून्यकाल को विनियमित करना 586

कार्य मंत्रणा समिति का मत 588

नियम समिति की सिफारिशें 588

वर्तमान प्रथा.. 589

हाल के घटनाक्रम... 590

सरकार का शून्यकाल के दौरान उत्तर देने के लिए बाध्य न होना 590

अनुवर्ती कार्यवाही... 591

अध्याय 20 विशेष उल्लेख

प्रक्रिया कब और कैसे आरम्भ हुई 593

प्रक्रिया 595

- सूचनाएं 595
- सभापति का विवेक 596
- प्रत्येक बैठक में विशेष उल्लेख के मामलों की संख्या 597
- विशेष उल्लेख करने का समय 598

हाल के घटनाक्रम 599

विशेष उल्लेख करने की रीति 599

सदस्य को अपने गृहीत पाठ तक ही सीमित रहना चाहिए 600

विशेष उल्लेख पर चर्चा न किया जाना... 600

विशेष उल्लेख समाप्त करने की समय-सीमा... 600

विशेष उल्लेख के संबंध में अनुपूरक प्रश्नों का न किया जाना 601

विशेष उल्लेखों को एक दिन छोड़कर लिया जाना 601

संसदीय समाचार भाग-1 में विशेष उल्लेखों का समावेश 601

विशेष उल्लेख के दौरान सभा में केबिनेट मंत्री का उपस्थित रहना 601

विशेष उल्लेखों के संबंध में अनुवर्ती कार्यवाही 602

अध्याय 21 विधान

विधेयक का प्ररूप 608

विधेयकों के प्रकार 610

किसी विधेयक के लिए आवश्यक बातें 610

सदन की विधायी सक्षमता 611

विधेयक के तीन वाचन 614

पृष्ठ सं.

राज्य सभा में आरम्भ किए जाने वाले सरकारी विधेयक 615
विधायी नीति का निरूपण 615
विधेयक को तैयार किया जाना 616
सदन का चयन........ 616
पुर:स्थापन से पूर्व विधेयक की संवीक्षा........ 617
पुर:स्थापन से पूर्व विधेयक का प्रकाशन 619
पुर:स्थापित किए जाने वाले विधेयकों की प्रतियों का परिचालन........ 620
विधेयक का पुर:स्थापन (प्रथम वाचन) 621
विधेयक के पुर:स्थापन के बाद उसका प्रकाशन एवं परिचालन 623
विधेयक के पुर:स्थापन के बाद प्रस्ताव (द्वितीय वाचन)........ 624
विचार के लिए प्रस्ताव........ 624
सार्वजनिक राय जानने के लिए परिचालन 625
विधेयक को किसी प्रवर अथवा संयुक्त समिति को सौंपे जाने हेतु प्रस्ताव 626
पीठासीन अधिकारियों द्वारा किसी विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपा जाना 632
विधेयक को विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समिति को सौंपा जाना 632
प्रवर/संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के उपस्थापन के बाद की प्रक्रिया 634
स्थायी समिति द्वारा प्रतिवेदन के उपस्थापन के बाद की प्रक्रिया 635
खण्डश: विचार किया जाना 636
खंडों का संशोधन 637
संशोधनकारी विधेयक में संशोधन........ 638
निरसनकारी और संशोधनकारी विधेयक में संशोधन 638
उन विधियों को जारी रखने संबंधी विधेयक में संशोधन किया जाना जिनकी कालावधि समाप्त हो रही हो 639
राष्ट्रपति की सिफारिश की अपेक्षा वाले संशोधन 639
संशोधनों की सूची 640
संशोधनों का उपस्थित किया जाना, उन पर विचार किया जाना और उनको वापस लिया जाना 641
विधेयक का पारण (तृतीय वाचन) 642
प्रत्यक्ष गलतियों का ठीक किया जाना 643
विधेयक पर वाद-विवाद का स्थगन 644
विधेयक का वापस लिया जाना 644
विधेयकों की पंजी से विधेयक का हटाया जाना 647
लोक सभा द्वारा संशोधन सहित लौटाए गए धन विधेयकों से इतर विधेयक 647
लोक सभा में आरम्भ होने वाले तथा राज्य सभा को पारेषित विधेयक 648

पृष्ठ सं.

विधेयकों को स्वीकृति 651

विधेयक को स्वीकृति.......... 652

स्वीकृति रोक लेना.......... 652

किसी गैर-धन विधेयक को पुनर्विचार हेतु लौटाया जाना 653

धन विधेयक और वित्तीय विधेयक 655

धन विधेयक 655

धन विधेयक की परिभाषा 655

घन विधेयक का प्रमाणीकरण 656

धन विधेयकों के संबंध में विशेष प्रक्रिया 657

धन विधेयक को राज्य सभा में पुर:स्थापित किए जाने पर आपत्ति 661

वित्तीय विधेयक 661

श्रेणी "क" के वित्तीय विधेयक 662

श्रेणी "ख" के वित्तीय विधेयक 662

कौन-से विधेयक वित्तीय विधेयक नहीं हैं 663

अनुच्छेद 117(1) के अधीन किसी विधेयक को पुर:स्थापित किए जाने पर आपत्ति किया जाना.......... 664

वित्तीय विधेयक को प्रवर/संयुक्त समिति को सौंपा जाना 665

अध्यादेशों का प्रतिस्थापन चाहने वाले विधेयक 666

अध्यादेशों का प्रख्यापन 666

सभा में आपत्ति उठाया जाना 666

अध्यादेश का सभापटल पर रखा जाना.......... 667

अध्यादेश का स्थान लेने वाला विधेयक 668

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक 669

सूचना.......... 669

प्रारूपण 669

पूर्ववर्तिता 670

पुर:स्थापन.......... 671

पुर:स्थापन के पश्चात् प्रस्ताव.......... 672

राष्ट्रपति की अनुशंसा.......... 673

वाद-विवाद की समय-सीमा 674

वाद-विवाद का स्थगन 674

राय जानने के लिए परिचालन 674

विधेयक पंजी 675

गैर-सरकारी सदस्यों के विधि में अधिनियमित विधेयक 676

पृष्ठ सं.

संविधान संशोधन विधेयक........ 681
- संविधान में संशोधन करने की संसद् की शक्ति 681
- अनुच्छेद 368 की विशेषताएं 681
- राज्य सभा में पुर-स्थापित किये गये संविधान संशोधन विधेयक........ 683
- संशोधनों की श्रेणियां 685
- साधारण बहुमत से संशोधन 685
- विशेष बहुमत से संशोधन........ 686
- विशेष बहुमत से संशोधन और राज्य विधानमंडलों द्वारा अनुसमर्थन 688

अध्याय 22 संकल्प

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प........ 704

सरकारी संकल्प 712
- अंतर्राष्ट्रीय संधियों, अभिसमयों अथवा करारों का अनुमोदन करने वाले संकल्प........ 713
- सरकार की कतिपय नीतियों को घोषित अथवा उनका अनुमोदन करने वाले संकल्प...... 714
- समितियों की सिफारिशों का अनुमोदन करने वाले संकल्प 714

परिनियत संकल्प 714
- संविधान के अधीन संकल्प 715
- अध्यादेश के निरनुमोदन के लिए संकल्प (अनुच्छेद 123)........ 716
- राज्य संबंधी विषय पर संसद् द्वारा विधान बनाने के लिए संकल्प (अनुच्छेद 249)........ 717
- अनुच्छेद 249 के संबंध में सरकारिया आयोग के विचार 719
- अखिल भारतीय सेवा के सृजन हेतु संकल्प (अनुच्छेद 312) 719
- आपातकालीन स्थिति की उद्घोषणा के अनुमोदनार्थ संकल्प (अनुच्छेद 352) 720
- किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने के संबंध में उद्घोषणा के अनुमोदनार्थ संकल्प (अनुच्छेद 356) 721
- वित्तीय आपातकाल की उद्घोषणा के अनुमोदन के लिए संकल्प (अनुच्छेद 360)........ 728

संसद् के अधिनियमों के अधीन संकल्प 728

संकल्पों का प्रभाव अथवा बल 729

अध्याय 23 प्रस्ताव और अल्पकालिक चर्चा

प्रस्ताव........ 736
- परिभाषा और वर्गीकरण 736
- प्रस्तावों से संबंधित सामान्य नियम 737
- अनियत दिन वाले प्रस्ताव 738
- प्रस्ताव पर चर्चा 739

प्रस्ताव की पुनरावृत्ति और इसे वापस लिया जाना 741

विलम्बकारी प्रस्ताव........ 742

संशोधन 742

पृष्ठ सं.

प्रस्ताव की विषय-वस्तु 743
10 अगस्त, 1978 को स्वीकृत हुए प्रस्ताव की प्रगति 744
गुजरात में हिंसा की अवस्थिति के संबंध में प्रस्ताव 748
सरकारी प्रस्ताव 748
परिनियत प्रस्ताव 749
उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाए जाने संबंधी प्रस्ताव........ 750
अल्पकालिक चर्चा 754
अनियत दिन वाले प्रस्ताव और अल्पकालिक चर्चा — अंतर 755
प्रस्ताव संबंधी सूचनाओं का अल्पकालिक चर्चा में संपरिवर्तन 757
महत्वपूर्ण मामलों के संबंध में अल्पकालिक चर्चा 757

अध्याय 24 वित्तीय विषयों संबंधी प्रक्रिया

बजट 765
बजट सेटों का वितरण 765
वित्त विधेयक का कथित रूप से पहले ही पता चल जाना 766
बजट का कथित रूप से पहले ही पता चल जाना 766
बजट पर सामान्य चर्चा 767
मंत्रालयों के कार्यकरण पर चर्चा 768
विनियोग और वित्त विधेयक 768

अध्याय 25 समितियां

समिति की सामान्य संरचना 772
राज्य सभा में समितियां सामान्यत: किस प्रकार गठित की जाती हैं 775
पृथक समितियां........ 777
- कार्य मंत्रणा समिति 777
- याचिका समिति 786
- विशेषाधिकार समिति 792
- आचार समिति 800
- अधीनस्थ विधान संबंधी समिति 805
- सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति 821
- सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति 827
- आवास समिति........ 833
- नियम समिति 835
- सामान्य प्रयोजन समिति 841
- राज्य सभा के सदस्यों हेतु कम्प्यूटरों के प्रावधान संबंधी समिति 844
- संसद्-सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी समिति 844

पृष्ठ सं.

विधेयकों संबंधी प्रवर अथवा संयुक्त समितियां 846
विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियां 861
वित्तीय तथा अन्य समितियां जिनमें राज्य सभा का प्रतिनिधित्व रहता है 869
लोक लेखा समिति 870
सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति 871
रेलवे अभिसमय समिति 872
अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति........ 873
अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण संबंधी समिति........ 874
लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति 874
ग्रंथालय समिति 875
महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति 875
सांविधिक संयुक्त समितियां 876
संसद्-सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति 876
राजभाषा संबंधी संयुक्त संसदीय समिति 877
न्यायाधीश (जांच) नियम, 1969 संबंधी तदर्थ संयुक्त समिति 877
राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियमों के अधीन गठित तदर्थ परामर्शदात्री समितियां........ 877
तदर्थ समितियां........ 877
राज्य सभा द्वारा गठित समिति 878
सभापति द्वारा नियुक्त समिति 878
प्रस्तावों द्वारा नियुक्त की गई संयुक्त समितियां 878
पीठासीन अधिकारियों द्वारा नियुक्त संयुक्त समितियां 879
परामर्शदात्री समितियां 881
सरकारी समितियां 882

अध्याय 26 प्रक्रिया के सामान्य नियम

सूचनाएं........ 902
राष्ट्रपति की सिफारिश 905
सदस्यों द्वारा अनुपालन किए जाने वाले नियम 906
न्यायाधीन मामलों पर चर्चा 906
किसी राज्य में मंत्री के रूप में नियुक्त किये गये सदस्य का सभा की कार्यवाही में भाग लेना........ 909
लोक सभा के सदस्य, जो मंत्री हैं, के द्वारा राज्य सभा की कार्यवाहियों में व्यवधान 909
किसी व्यक्ति के खिलाफ आरोप लगाया जाना 910
व्यक्तिगत स्पष्टीकरण 913
भाषणों का क्रम और उत्तर का अधिकार 917

पृष्ठ सं.

समापन.. 917

वाद-विवाद की परिसीमा 918

निर्णय के लिए प्रश्न 918

सभापटल पर पत्रों का रखा जाना 919

मंत्रियों द्वारा पत्रों का रखा जाना 919

मंत्रियों के बीच हुए पत्राचार का सभापटल पर रखा जाना 920

पांडिचेरी लाइसेंस मामले के संबंध में सी.बी.आई. के प्रतिवेदन का सभापटल पर रखा जाना.. 921

राष्ट्रपति तथा प्रधान मंत्री के बीच हुए पत्राचार को सभापटल पर रखना..................... 923

राज्य के पत्राचार को सभापटल पर रखना 923

सभापटल पर पत्र को रखने की सक्षमता 924

महासचिव द्वारा सभापटल पर पत्रों का रखा जाना 925

सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों का प्रमाणीकरण 926

सभापटल पर पत्र रखने की प्रक्रिया 926

वक्तव्य देने के बाद पत्र का रखा जाना 928

रखे जा रहे पत्र की संवैधानिकता.. 928

सभापटल पर रखे गए पत्र को सरकारी माना जाना 928

सभापटल पर रखे गये पत्र का परिचालन 928

पत्र को सभापटल पर पुन: रखना 929

एक सत्र के दौरान सभापटल पर रखे गए कानूनी आदेशों की सूची 929

संवेदनशील अधिसूचनाओं को सभापटल पर रखा जाना 929

संसदीय शिष्टमंडल के प्रतिवेदन को सभापटल पर रखा जाना 929

पत्रों की अभिरक्षा 930

गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पत्रों को सभापटल पर रखा जाना 931

पत्र को सभापटल पर रखने की अनुमति न दिया जाना 933

दस्तावेजों की प्रति से उद्धृत करना 934

गोपनीय दस्तावेजों (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के प्रतिवेदन) को पटल पर रखा जाना अथवा उसमें से उद्धृत करना 935

मंत्री द्वारा वक्तव्य 936

दिए जाने वाले वक्तव्य की प्रतियों का परिचालन 936

वक्तव्य देने तथा स्पष्टीकरण मांगने हेतु समय 937

केवल स्वप्रेरणा से दिए गए वक्तव्य पर स्पष्टीकरण 938

पृष्ठ सं.

वक्तव्य पर स्पष्टीकरणों का विनियमन 940
सभापीठ द्वारा निर्देश पर वक्तव्य 941
पहले से ही स्वीकृत किए गए ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के संबंध में वक्तव्य देना 941
अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने वाले विधेयक के संबंध में वक्तव्य 941
मत-विभाजन 942
मत-विभाजन की घंटियों का संचालन 944
मत-विभाजन के दौरान किसी भाषण का नहीं किया जाना 945
मत-विभाजन की अनुमति नहीं देने का सभापति का स्वनिर्णय 945
स्वचालित मतांकन यंत्र (ऑटोमैटिक वोट-रिकार्डर) द्वारा मत-विभाजन 945
पर्चियों के वितरण के माध्यम से मत-विभाजन 948
लॉबियों में जाने के माध्यम से मत-विभाजन 948
'उपस्थित और मतदान करने वाले' में मतदान न करने वाले की गणना न किया जाना... 949
पीठासीन अधिकारियों द्वारा मत दिया जाना 950
पीठासीन अधिकारी/समिति के अध्यक्ष द्वारा निर्णायक मत दिया जाना 950
औचित्य प्रश्न.. 951
भूमिका 951
औचित्य प्रश्न क्या होता है.. 951
राज्य सभा के नियमों में उपबंध 952
औचित्य प्रश्न किस प्रकार पूछा जाता है 952
औचित्य प्रश्न उठाये जाने के बाद अपनायी जाने वाली प्रक्रिया 953
औचित्य प्रश्न कौन उठा सकता है 953
औचित्य प्रश्न क्या नहीं होता या औचित्य प्रश्न किस समय नहीं उठाया जाना चाहिए..... 954
सभापीठ के विनिर्णयों पर औचित्य प्रश्न नहीं होता है... 955
जो कार्य सदन के समक्ष न हो उसके बारे में औचित्य प्रश्न नहीं होता है 955
किसी औचित्य प्रश्न के संबंध में कोई औचित्य प्रश्न नहीं पूछा जायेगा 955
सभापति के विचाराधीन किसी मामले के संबंध में किसी औचित्य प्रश्न का न पूछा जाना... 955
मंत्री की टिप्पणी पर प्रश्न पूछने के लिए किसी औचित्य प्रश्न का न उठाया जाना 955
प्रश्नकाल तथा आधे घंटे की चर्चा के दौरान कोई औचित्य प्रश्न नहीं पूछा जाएगा......... 956
मत-विभाजन के दौरान औचित्य प्रश्न नहीं पूछा जाएगा 956
प्रक्रिया के संबंध में परामर्श का अनुरोध के लिए औचित्य प्रश्न नहीं पूछा जाएगा........... 956
अन्य अवसर अथवा स्थितियां 956
आधिकारिक कार्यवाहियों का विवरण तैयार करना 958
कार्यवाही का वृत्तलेखन 959
समितियों की कार्यवाहियों का अभिलेखन 961

पृष्ठ सं.

सभा की कार्यवाही से शब्दों का निकाला जाना 961
कार्यवाही से निकाला जाना तथा बाद में पुनः शामिल किया जाना 964
राज्य सभा और उसकी दीर्घाओं आदि में अनजान व्यक्तियों का प्रवेश 965
नियमों का निलंबन 969
सभापति की अवशिष्ट शक्तियां 970

अध्याय 27 राज्य सभा की विभिन्न सेवाएं

राज्य सभा सचिवालय 979
भर्ती और सेवा शर्तें नियम 980
भर्ती प्रक्रिया 983
अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़े वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षण 984
विस्तृत संगठनात्मक ढांचा 984
वेतन और लेखा कार्यालय.................... 995
राज्य सभा की कार्यवाही का सीधा प्रसारण 996
राज्य सभा टेलीविजन (आर.एस.टी.वी.) : जनता से संवाद 996
राज्य सभा का बजट 997
परिशिष्ट—राज्य सभा के सत्र.................... 999
विषय-अनुक्रमणिका.................... 1007

अध्याय-1

राज्य सभा: विकास, शक्तियां और स्थिति

संविधान सभा को जिन अनेक विषयों पर विचार करना पड़ा उनमें से एक विषय भारतीय संसद् के लिए एक द्वितीय सदन गठित करने के बारे में था। संविधान सभा के सामने विश्व की प्रमुख संसदों के द्वितीय सदनों के नमूने ही नहीं थे बल्कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1919 (भारत शासन अधिनियम, 1919) के अधीन उस समय विद्यमान सेंट्रल लेजिस्लेचर (केन्द्रीय विधान-मंडल) का कार्यकरण भी उसके सामने था। यह विधानमंडल दो सदनों से मिलकर बनता था अर्थात् काउंसिल ऑफ स्टेट (राज्य परिषद्), जिसमें 60 सदस्य होते थे और लेजिस्लेटिव असेम्बली (विधान सभा) जिसमें 145 सदस्य होते थे। काउंसिल (परिषद्) की अध्यक्षता गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त प्रेज़ीडेंट (अध्यक्ष) द्वारा की जाती थी और वह यदि पहले ही भंग न कर दी गई हो तो पांच वर्ष तक चालू रह सकती थी। जैसाकि इंडियन स्टेट्यूटरी कमीशन (भारतीय कानूनी आयोग) द्वारा कहा गया था:

> काउंसिल ऑफ स्टेट के लिए निर्वाचक-मंडल इस तरह से बनाया गया है ताकि उच्च सदन का स्वरूप लेजिस्लेटिव असेम्बली से भिन्न हो और मताधिकार वस्तुत: अत्यंत सीमित हो। संपत्ति की अर्हताएं इतनी ऊंची रखी गई हैं ताकि धनी ज़मींदारों और व्यापारियों को प्रतिनिधित्व मिले, केन्द्रीय या प्रादेशिक विधान-मंडल में पूर्व अनुभव, किसी नगर परिषद् के सभापीठ में सेवा, किसी विश्वविद्यालय की सीनेट की सदस्यता और सार्वजनिक कार्यों में व्यक्तिगत प्रतिष्ठा और अनुभव की ऐसी ही कसौटियां मत देने की अर्हता प्रदान करती हैं। निर्वाचकों को अधिकांशत: सांप्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों में वर्गीकृत कर दिया गया है...महिलाओं को काउंसिल ऑफ स्टेट के चुनावों में मतदान करने या खड़े होने के लिए पेशकश करने का अधिकार नहीं है। यद्यपि काउंसिल ऑफ स्टेट को ऐसा संकल्प पारित करने की शक्ति है जिससे ये दोनों अवरोध दूर हो सकते हैं।[1]

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 (भारत शासन अधिनियम, 1935) में दो सदनों वाले परिसंघीय (फेडरल) विधानमंडल की परिकल्पना की गई थी। इन दो सदनों का नाम काउंसिल ऑफ स्टेट और हाउस ऑफ असेम्बली (या फेडरेल असेम्बली) रखा गया था। काउंसिल ऑफ स्टेट में 260 सदस्य होने थे जिनमें से 156 प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के और 104 प्रतिनिधि भारतीय राज्यों के थे। फेडरल असेम्बली की सदस्य संख्या 375 रखी गई थी जिनमें से 250 प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के और 125 प्रतिनिधि भारतीय राज्यों के थे। काउंसिल ऑफ स्टेट को ऐसा स्थायी निकाय होना था जिसे भंग नहीं किया जा सकता था किन्तु उसके सदस्यों में से यथासंभव एक-तिहाई सदस्यों को हर तीन साल में निवृत्त होना था। असेम्बली का कार्यकाल पांच वर्ष के लिए था।[2] किन्तु भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधीन जिस परिसंघीय योजना की परिकल्पना की गई थी वह कभी कार्यान्वित नहीं हुई। इस पर भी दोनों अधिनियमों में जिस योजना या तंत्र की व्यवस्था की गई थी वह नये संविधान के अधीन स्वतंत्र भारत के विधानमंडल की रूपरेखा तैयार करने के लिए संतोषजनक आधार नहीं बन सकी।[3]

संविधान सभा द्वारा श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में गठित की गई संघ संविधान समिति ने 21 जुलाई, 1947 को अपना प्रतिवेदन असेम्बली के समक्ष रखा था। इसमें केन्द्र में द्वितीय सदन के बारे में निम्नलिखित प्रस्ताव रखे गए थे:¬

(i) दो सदनों के नाम काउंसिल ऑफ स्टेट्स और हाउस ऑफ द पीपल होने चाहिए। इन नामों से उस रीति का पता चलता है जिसके अनुसार प्रत्येक सदन का गठन किया जाएगा; संघ की संसद् का नाम 'नेशनल असेम्बली' रखा जाएगा।

(ii) काउंसिल ऑफ स्टेट्स में 250 सदस्य होने चाहिए।

(iii) काउंसिल ऑफ स्टेट्स में इकाइयों का प्रतिनिधित्व पचास लाख की आबादी तक प्रत्येक पूरी दस लाख की आबादी के लिए एक सदस्य और साथ ही प्रत्येक अतिरिक्त बीस लाख की आबादी के लिए एक सदस्य के आधार पर होना चाहिए परंतु एक इकाई के लिए अधिकतम सदस्य संख्या बीस होनी चाहिए। इस सूत्र की सिफारिश एक उप-समिति द्वारा की गई थी जिसके सदस्य डा. अम्बेडकर, श्री गोपालस्वामी अय्यंगर, श्री के. एम. मुंशी और सरदार के. एम. पणिक्कर थे।

(iv) ऐसे दस सदस्यों को छोड़कर जो राष्ट्रपति द्वारा विश्वविद्यालयों और वैज्ञानिक निकायों से परामर्श करके नामनिर्देशित किए जाएंगे, प्रतिनिधियों को इकाइयों के विधानमंडलों के निम्न सदनों द्वारा निर्वाचित किया जाना चाहिए।

(v) भारत के उपराष्ट्रपति काउंसिल के पदेन सभापति होंगे; यदि कोई सदस्य उपराष्ट्रपति निर्वाचित होगा तो वह अपने स्थान को खाली करेगा।

(vi) सिवाय वहां तक जहां तक धन विधेयकों के संबंध में, दोनों सदस्यों के पास समान शक्तियां होंगी और गतिरोधों को संयुक्त बैठकों के द्वारा दूर किया जाएगा।

(vii) धन विधेयक हाउस ऑफ द पीपल में आरंभ होंगे और उनके संबंध में काउंसिल ऑफ स्टेट्स की शक्ति संशोधन के सुझाव देने तक सीमित होगी जिसे हाउस ऑफ द पीपल स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है।

(viii) काउंसिल ऑफ स्टेट्स भंग नहीं होगी। किन्तु उसके सदस्यों में से एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दूसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाएंगे।[4]

संविधान सभा ने 28 जुलाई, 1947 को समिति के प्रतिवेदन पर चर्चा की। चर्चा के दौरान द्वितीय सदन की स्थापना के बारे में भिन्न-भिन्न प्रकार के मत व्यक्त किए गए। उदाहरण के लिए श्री मो. ताहिर की राय थी कि द्वितीय सदन आवश्यक नहीं है।[5] एक अन्य सदस्य प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना की राय थी कि पिछले अनेक वर्षों का अनुभव यह रहा है कि उच्च सदन प्रगति के रास्ते में रोड़ा बन जाता है और इसलिए संविधान में उसे जारी रखना बुद्धिमत्ता की बात नहीं है।[6] दूसरी ओर श्री नजीरुद्दीन अहमद का विचार था कि अत्यधिक महत्व के विदेशी और घरेलू मामलों से निपटने के लिए द्वितीय सदन आदर्श होगा। उनका विचार था कि द्वितीय सदन से लाभ ही नहीं होगा बल्कि वह नितांत आवश्यक भी है। उनकी राय थी कि द्वितीय सदन से एक प्रकार का संयम आ सकेगा और पुनर्विचार का अवसर मिल सकेगा और द्वितीय सदन के बिना राज्यों के प्रतिनिधि समुचित भूमिका नहीं निभा पाएंगे।[7] वाद-विवाद का उत्तर देते हुए श्री गोपालस्वामी अय्यंगर ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> विश्व में जहां कहीं भी किसी महत्व के कोई परिसंघ हैं, प्राय: सर्वत्र द्वितीय सदन की आवश्यकता का अनुभव किया गया है। आखिरकार हमारे सामने विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या वह कोई उपयोगी कार्य करता है। हम द्वितीय सदन से अधिकतर यह अपेक्षा करते हैं कि वह संभवत: महत्वपूर्ण विषयों पर मर्यादित ढंग से वाद-विवाद कर सकेगा और ऐसे कानून को जल्दबाजी में बनाने से रोकेगा जो क्षणिक आवेश का परिणाम हो और तब तक उसे रोके रखेगा जब तक आवेश शांत न हो जाए और विधान-मंडल के समक्ष रखे गए विधान पर शांतिपूर्ण ढंग से विचार करना संभव न हो जाए और हम संविधान में सावधानीपूर्वक यह उपबंध करेंगे कि जब भी किन्हीं महत्वपूर्ण विषयों, विशेषत: वित्त संबंधी विषयों पर, हाउस ऑफ द पीपल और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के बीच टकराव होगा तब हाउस ऑफ द पीपल का मत ही सर्वोपरि रहेगा। अत: द्वितीय सदन के विद्यमान रहने से हमारी वास्तविक उपलब्धि यह होगी कि हम उसे एक ऐसे साधन के रूप में इस्तेमाल करेंगे जिससे हम जल्दबाजी की किसी कार्यवाही में विलंब कर सकेंगे और हम संभवत: ऐसे सुलझे हुए लोगों को अवसर दे सकेंगे, जो, हो सकता है कि राजनैतिक घमासान में बहुत अधिक उलझे हुए न हों किन्तु जो ऐसी विद्वता और महत्व के साथ वाद-विवाद में भाग लेने के इच्छुक हों, जिसकी सामान्यत: हम हाउस ऑफ द पीपल से अपेक्षा नहीं रखते। इस द्वितीय सदन के बारे में इतना ही प्रस्ताव है। मैं समझता हूं कि कुल मिलाकर जो विचार रखे गए हैं वे अधिकांशत: ऐसे द्वितीय सदन के पक्ष में हैं और इस बारे में सावधानी बरते जाने के पक्ष में हैं कि वह विधान या प्रशासन के रास्ते में कोई बाधा सिद्ध न हो।[8]

असेम्बली ने कुछ परिवर्तनों के साथ प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया। एक प्रस्तावित परिवर्तन यह था कि 'नेशनल असेम्बली' नाम छोड़ दिया जाए क्योंकि यह अनुभव किया गया कि बहुत अधिक नामों को रखना आवश्यक नहीं है।[9] दूसरा प्रस्तावित परिवर्तन श्री गोपालस्वामी अय्यंगर का था जो कुछ लंबे संशोधनों के रूप में था और उसमें यह उपबंध किया गया था कि काउंसिल ऑफ स्टेट्स की सदस्यता हाउस ऑफ द पीपल की सदस्यता के आधे से अधिक नहीं होनी चाहिए। इनमें से पच्चीस सदस्य 1937 के आयरलैंड के संविधान के अनुसार कार्यशील निर्वाचन-क्षेत्रों या पैनलों द्वारा निर्वाचित होने थे क्योंकि उनके अनुसार विश्वविद्यालयों और वैज्ञानिक निकायों से होने वाले नामनिर्देशन के मूल प्रस्ताव (जिसकी संघ संविधान समिति द्वारा सिफारिश की गई थी) का दायरा बहुत संकुचित था। उनका विचार था कि उन व्यक्तियों को, जो इन निकायों के न हों किन्तु जो राष्ट्रीय कार्य-कलापों के महत्वपूर्ण पहलुओं से जुड़े हुए हों, काउंसिल ऑफ स्टेट्स का सदस्य होना चाहिए। ऐसा होने पर भी (इकाइयों के दृष्टिकोण को संसदीय स्तर पर प्रभावी रूप से व्यक्त करने के साधन के रूप में) काउंसिल ऑफ स्टेट्स का वास्तविक मूल स्वरूप बना रहेगा और उसके सदस्य इकाई के निर्वाचित सदस्यों द्वारा न्यूनाधिक रूप से राज्यक्षेत्रीय आधार पर बहुत भारी संख्या में चुने जाएंगे और किसी विधानमंडल में दो सदन होने पर उसके निम्न सदन के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने जाएंगे। तथापि, संघ संविधान समिति को इन मामलों पर आगे विचार करने का प्राधिकार दिया गया और यह निदेश दिया गया कि वह असेम्बली के अध्यक्ष के समक्ष अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करे।[10] तदनुसार समिति ने इन ब्यौरों पर पुनर्विचार किया। यद्यपि समिति इकाइयों के प्रतिनिधित्व संबंधी अपने मूल जनसंख्या सूत्र पर दृढ़ रही तथापि, उसने अन्य बातों के साथ एक इकाई के लिए बीस की बजाय, जिसकी मूलत: सिफारिश की गई थी, पच्चीस की अधिकतम सीमा निश्चित की।

तदनुसार संविधान के पहले प्रारूप (अक्तूबर, 1947) में एक काउंसिल ऑफ स्टेट्स का उपबंध किया गया जिसकी सदस्य संख्या हाउस ऑफ द पीपल की सदस्य संख्या के आधे से अधिक

नहीं थी। पच्चीस सदस्य ऐसे पांच कार्यशील पैनलों से चुने जाने थे जिन्हें पहले आम चुनाव से पूर्व और उसके बाद प्रत्येक द्विवार्षिक निर्वाचन के पहले तैयार किया जाना था। इन पैनलों में उन व्यक्तियों के नाम रखे जाने थे जिनके पास निम्नलिखित विषयों का ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव था: (क) राष्ट्रभाषा और संस्कृति, साहित्य, कला, शिक्षा और ऐसे व्यावसायिक हित जिनकी परिभाषा परिसंघीय संसद् के अधिनियम के द्वारा की जा सकती हो; (ख) कृषि और तत्संबंधी हित; (ग) श्रम; (घ) उद्योग और वाणिज्य जिनमें बैंकिंग, वित्त, लेखाशास्त्र, इंजीनियरी और वास्तुकला शामिल होंगी; और (ङ) लोक प्रशासन और सामाजिक सेवाएं। संविधान के प्रारूप की चौथी अनुसूची में पैनल तैयार करने के लिए विस्तृत उपबंध किए गए थे। इन पैनलों से काउंसिल ऑफ स्टेट्स के लिए वास्तविक निर्वाचन हाउस ऑफ द पीपल के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाना था। काउंसिल के शेष सदस्य इकाइयों के निम्न सदन के सदस्यों द्वारा चुने जाने थे। चौथी अनुसूची में विभिन्न प्रदेशों के लिए सीटों के आवंटन के बारे में उपबंध किया गया था।

संविधान के प्रारूप में काउंसिल ऑफ स्टेट्स से संबंधित अन्य उपबंध इस प्रकार थे: काउंसिल ऑफ स्टेट्स एक स्थायी निकाय होगी जिसे भंग नहीं किया जा सकेगा और उसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दूसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाएंगे; राष्ट्रपति को प्रत्येक वर्ष में कम-से-कम एक बार प्रत्येक सदन को आहूत करने की शक्ति होगी; भारत का उपराष्ट्रपति काउंसिल ऑफ स्टेट्स का सभापति होगा; सभापति के अनुपस्थित होने पर या उसके द्वारा राष्ट्रपति के कर्त्तव्यों का निर्वहन किए जाने पर सभापति के कर्त्तव्यों का निर्वहन करने के लिए उपसभापति का निर्वाचन किया जाएगा, दोनों सदनों की समसामयिक सदस्यता का निषेध होगा; इसके साथ ही सदस्यता संबंधी निरर्हताओं, सदस्यों के विशेषाधिकारों, उन्मुक्तियों और वेतन तथा भत्तों के बारे में उपबंध किए गए थे। विधायी और वित्तीय प्रक्रिया आदि के बारे में प्रारूप में अन्य बातों के साथ यह उपबंध किया गया था कि जब तक किसी विधेयक को दोनों सदनों द्वारा समान रूप में नहीं पारित किया जाएगा तब तक उसे राष्ट्रपति की अनुमति के लिए नहीं प्रस्तुत किया जाएगा। धन विधेयकों के मामले के सिवाय दोनों सदनों को समान अधिकार प्राप्त होंगे और उनके बीच मतभेद होने पर उनका निपटारा दोनों सदनों की उस संयुक्त बैठक में बहुमत से होगा जिसे राष्ट्रपति द्वारा बुलाया जाएगा। प्रारूप में धन विधेयकों की परिभाषा दी गई थी और वे हाउस ऑफ द पीपल में ही आरंभ हो सकते थे। धन विधेयकों के संबंध में काउंसिल ऑफ स्टेट्स की शक्तियां संशोधन के लिए सुझाव देने तक सीमित की गई थीं। यह भी उपबंध किया गया था कि यदि इन सुझावों को हाउस ऑफ द पीपल द्वारा स्वीकार न किया जाए अथवा यदि काउंसिल ऑफ स्टेट्स तीस दिन के भीतर अपने संशोधन संबंधी सुझावों के साथ विधेयक को न लौटाए तो विधेयक को दोनों सदनों द्वारा उस रूप में पारित किया गया समझा जाएगा जिस रूप में वह हाउस ऑफ द पीपल द्वारा पारित किया गया था और उसे अनुमति के लिए राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। काउंसिल ऑफ स्टेट्स को पूर्तियों पर मतदान करने या परिसंघीय राजस्व से किए गए व्यय पर नियंत्रण करने की कोई शक्ति नहीं दी गई थी।[11]

प्रारूपण समिति ने संविधान के प्रारूप में इन उपबंधों पर विस्तारपूर्वक विचार किया और उसमें कुछ परिवर्तन किए। उसने निर्णय लिया कि भारत को राज्यों का संघ (परिसंघ नहीं) कहा जाएगा और इस निर्णय के फलस्वरूप संघ के विधानमंडल का नाम 'परिसंघ की संसद्' के स्थान

पर 'संघ की संसद्' कर दिया गया और अन्य अनुच्छेदों में उसका उल्लेख सिर्फ 'संसद्' के रूप में किया गया। जहां तक काउंसिल ऑफ स्टेट्स का संबंध था, यद्यपि समिति ने काउंसिल की सदस्य संख्या 250 ही बनाए रखी तथापि उसने आयरलैंड के अनुभव को देखते हुए कार्यशील पैनलों से संबंधित उपबंध का लोप कर दिया और उसके स्थान पर ऐसा उपबंध रखा जिसके द्वारा राष्ट्रपति को काउंसिल ऑफ स्टेट्स में ऐसे पन्द्रह सदस्यों को नामनिर्देशित करने की शक्ति प्रदान की गई थी जिन्हें निम्नलिखित विषयों का अनुभव व ज्ञान हो: (क) साहित्य, कला, विज्ञान और शिक्षा; (ख) कृषि, मत्स्य-पालन या तत्संबंधी विषय; (ग) इंजीनियरी और वास्तुकला और (घ) लोक प्रशासन और सामाजिक सेवाएं।

काउंसिल ऑफ स्टेट्स के निर्वाचित सदस्यों को राज्यों का प्रतिनिधि कहा गया था और उन्हें प्रत्येक विधानमंडल के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना था या किसी राज्य में दो सदनों वाला विधानमंडल होने पर निम्न सदन के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना था। संसद् के प्रत्येक सदन का सत्र प्रत्येक वर्ष में कम-से-कम एक बार की बजाय, जैसाकि प्रारूप में पहले उपबंध किया गया था, प्रत्येक छह महीने में कम-से-कम एक बार होना था। संसद् सदस्यों की निरर्हता के लिए व्यापक अनुबंध किया गया। चौथी अनुसूची का लोप कर दिया गया और चुनाव संबंधी मामलों का विनियमन संसदीय अधिनियमों पर छोड़ दिया गया।[12]

संविधान सभा ने 3 और 4 जनवरी, 18 से 20 एवं 23 मई और 8 एवं 9 जून, 1949 को हुई अपनी बैठकों में इन उपबंधों पर चर्चा की। चर्चा के दौरान कई संशोधन रखे गए। श्री लोकनाथ मिश्रा ने संविधान के प्रारूप के अनुच्छेद 66 से 'काउंसिल ऑफ स्टेट्स' शब्दों का लोप करने के लिए संशोधन रखा क्योंकि उनका विचार था कि द्वितीय सदन की न तो कोई आवश्यकता है और न ही कोई उपयोगिता है। उन्होंने कहा कि जब तक काउंसिल ऑफ स्टेट्स के गठन के तरीके को नहीं बदला जाएगा तब तक उच्च सदन के गठन से हाउस ऑफ द पीपल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।[13] इस संशोधन का विरोध करते हुए श्री एम. अनंतशयनम् अय्यंगर ने कहा कि देश की प्रगति के हित में ऐसा दूसरा सदन आवश्यक है जहां लोगों की प्रतिभा को पूरी तरह से प्रदर्शित होने का अवसर मिले। उनका यह भी कहना था कि निम्न सदन द्वारा जल्दबाजी में पारित किया गया कोई कानून उच्च सदन की धीमी चाल से निष्प्रभावी हो जाएगा और जहां उच्च सदन स्थायी निकाय है वहीं निम्न सदन स्थायी नहीं है।[14] प्रो. के. टी. शाह के एक अन्य संशोधन का उद्देश्य नामनिर्देशित सदस्यों से संबंधित उपबंध को हटाना था। संशोधन का प्रस्ताव करने वाले सदस्य द्वारा यह तर्क दिया गया कि नामनिर्देशन चाहे कितने ही छोटे पैमाने पर क्यों न किया जा रहा हो "वह हमारे विधायी निकायों की संरचना के सामंजस्य को बिगाड़ता है और निर्वाचन के सिद्धांत पर मूल रूप से कुठाराघात करता है।"[15] प्रो. के. टी. शाह ने एक और संशोधन के द्वारा यह सुझाव दिया कि काउंसिल ऑफ स्टेट्स में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए अर्थात् राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या समान होनी चाहिए और प्रत्येक संघटक राज्य को वयस्क नागरिकों के मतों के द्वारा पांच सदस्य निर्वाचित करने चाहिए।[16]

डा. बी.आर. अम्बेडकर ने कुछ संशोधन उपस्थित किए। उनका प्रस्ताव था कि नामनिर्देशित सदस्यों की संख्या को घटाकर बारह कर देना चाहिए।[17] उनका आशय यह था कि यद्यपि राष्ट्रपति द्वारा कुल मिलाकर पन्द्रह सदस्य नामनिर्देशित किए जाएंगे तथापि इनमें से बारह सदस्य अधिक सरल शब्दों में साहित्य, कला, विज्ञान या समाज-सेवा का ज्ञान और अनुभव रखने वाले व्यक्ति

होंगे; अन्य तीन सदस्यों के संबंध में उन्होंने 18 मई, 1949 को एक और संशोधन उपस्थित किया कि राष्ट्रपति संसद् के किसी सदन में पुर:स्थापित किए गए या पुर:स्थापित किए जाने वाले किसी विधेयक के संबंध में सहायता देने के लिए समय-समय पर तीन से अनधिक सदस्यों को नामनिर्देशित कर सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों को दोनों में से किसी सदन में या समितियों में या संयुक्त सत्रों में बोलने का अधिकार होगा किन्तु उन्हें मतदान का अधिकार नहीं होगा। तथापि आगे विचार करने पर उन्होंने इस संशोधन को वापस ले लिया और इस प्रकार नामनिर्देशित सदस्यों की संख्या बारह हो गई।[18] [संविधान के पुनरीक्षण की अवस्था में 'लेटर्स (साहित्यिक उपलब्धियां, विद्वत्ता)' शब्द के स्थान पर 'लिटरेचर (साहित्य)' शब्द प्रतिस्थापित कर दिया गया।] डा. अम्बेडकर ने यह संशोधन भी रखा कि काउंसिल ऑफ स्टेट्स की अधिकतम सदस्य संख्या 250 होनी चाहिए और यह आवश्यक नहीं कि वह उसकी वास्तविक संख्या हो, जैसाकि संविधान के प्रारूप में प्रस्ताव किया गया था। साथ ही उनका संशोधन था कि राज्यों के बीच स्थानों (सीटों) का आवंटन (जिसमें नामनिर्देशित सदस्यों के स्थान शामिल नहीं हैं) स्वयं संविधान में ही एक पृथक अनुसूची में समाविष्ट किया जाना चाहिए। [ऐसा अनुसूची 3क के रूप में किया गया जो 17 अक्तूबर, 1949 को असेम्बली के समक्ष रखी गई थी और बिना किसी वाद-विवाद के स्वीकार कर ली गई थी।][19]

इन उपबंधों पर अनेक अन्य संशोधन उपस्थित किए गए। श्री लोकनाथ मिश्रा ने काउंसिल ऑफ स्टेट्स की सदस्य-संख्या 150 निश्चित करने के लिए एक संशोधन उपस्थित किया। उनका विचार था कि लोगों की बड़ी संख्या से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा और यदि उनकी संख्या घटा दी जाए तो न केवल प्रयोजन ही सिद्ध होगा बल्कि धन और समय की भी बचत होगी।[20] श्री लक्ष्मीनारायण साहू की ओर से एक और संशोधन उपस्थित किया गया जिसका उद्देश्य नामनिर्देशन के उपबंध को पूरी तरह से हटा देना था और उसके स्थान पर कार्यशील प्रतिनिधित्व को लाने का सुझाव दिया गया। उनका कहना था: "यदि हम राष्ट्रपति को बारह व्यक्तियों को नामनिर्देशित करने का अधिकार दे देंगे तो उनके विरुद्ध पक्षपात और भाई-भतीजावाद के कटु आरोप लगाए जाएंगे जो वांछनीय नहीं होगा।"[21] श्री नजीरुद्दीन अहमद अपने संशोधन द्वारा यह चाहते थे कि नामनिर्देशित सदस्यों की संख्या सदन के सदस्यों की वास्तविक संख्या के किसी अनुपात में होनी चाहिए और इसलिए उन्होंने यह सुझाव दिया कि यह अनुपात छह प्रतिशत का होना चाहिए।[22] सरदार हुकुम सिंह द्वारा एक संशोधन में यह सुझाव दिया गया कि यह कहने की बजाय कि राष्ट्रपति को उपबंधित रीति से बारह सदस्यों को नामनिर्देशित करना चाहिए, यह कहा जाना चाहिए कि उन्हें दर्शायी गई कोटियों में से नामनिर्देशित किया जाना चाहिए।[23] श्री लोकनाथ मिश्रा ने एक अन्य संशोधन द्वारा सुझाव दिया कि ऐसे एक 'आत्मनिरीक्षणशील' भारत के पुनर्निर्माण के लिए ऐसे व्यक्तियों को प्राचीन भारतीय दर्शन और संस्कृति, कला और विज्ञान और समाज-सेवा का और उनके इतिहास का ज्ञान होना चाहिए और उन्हें इन विषयों के प्रति वस्तुत: समर्पित होना चाहिए।[24] श्री नजीरुद्दीन अहमद यह चाहते थे कि राष्ट्रपति की पसंद को सिर्फ चार कोटियों तक सीमित कर देने और दूसरी कोटियों को शामिल न करने की बजाय नामनिर्देशनों के लिए, "दर्शन, धर्म, विधि, पत्रकारिता, वाणिज्य और उद्योग की कोटियां भी रखी जानी चाहिए।"[25] श्री मोहम्मद ताहिर ने यह स्पष्ट किए जाने के लिए एक संशोधन उपस्थित किया कि जहां तक काउंसिल ऑफ स्टेट्स में प्रतिनिधियों के निर्वाचन का संबंध है, निर्वाचित सदस्यों और नामनिर्देशित सदस्यों के बीच कोई भेद नहीं किया जाना चाहिए।[26]

एक अनुसूची के अनुसार राज्यों के बीच स्थानों का आवंटन करने के संबंध में पंडित हृदय नाथ कुंजरू ने सुझाव दिया कि इसके लिए जनसंख्या को आधार बनाया जाना चाहिए जबकि प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना जनसंख्या को उसका आधार बनाने के लिए एक सूत्र (फॉर्मूला) का समावेश करना चाहते थे।[27] श्री लोकनाथ मिश्रा द्वारा एक संशोधन में प्रत्येक इकाई के लिए समान प्रतिनिधित्व और प्रति इकाई अधिकतम तीन प्रतिनिधियों का सुझाव दिया गया था।[28] श्री लक्ष्मीनारायण साहू एक संशोधन के माध्यम से यह चाहते थे कि यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए कि यथासंभव प्रत्येक इकाई को काउंसिल में प्रतिनिधित्व मिले।[29]

एक सदस्य ने सुझाव दिया कि जहां किसी राज्य के विधानमंडल में दो सदन हैं वहां राज्यों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जाना चाहिए और निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाना चाहिए।[30] असेम्बली ने बाद वाले सुझाव को स्वीकार कर लिया।[31]

डा. अम्बेडकर ने एक नए अनुच्छेद का प्रस्ताव किया अर्थात् प्रारूप अनुच्छेद 68क जो अब संविधान में अनुच्छेद 84 है। जिसमें यह उपबंध था कि संसद् का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित होने हेतु किसी व्यक्ति को भारत का नागरिक होना चाहिए और वह हाउस ऑफ द पीपल के मामले में कम-से-कम पच्चीस वर्ष की आयु का और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के मामले में कम-से-कम पैंतीस वर्ष की आयु का होना चाहिए। परंतु काउंसिल ऑफ स्टेट्स के मामले में श्रीमती जी. दुर्गाबाई द्वारा रखे गए एक संशोधन के द्वारा आयु की अर्हता घटाकर तीस वर्ष कर दी गई। इस अनुच्छेद में यह भी उपबंध किया गया था कि संसद् विधि द्वारा अन्य अर्हताएं भी विहित कर सकती है। असेम्बली ने यह संशोधन स्वीकार कर लिया।[32] संसद् का आह्वान करने से संबंधित अनुच्छेद के प्रारूप पर चर्चा के दौरान प्रो. के.टी. शाह द्वारा यह संशोधन उपस्थित किया गया कि संसद् का सत्र निरंतर चलता रहना चाहिए। श्री एच. वी. कामथ का संशोधन यह था कि प्रत्येक वर्ष कम-से-कम दो सत्रों की बजाय तीन सत्र होने चाहिए।[33] डा. अम्बेडकर का मत था कि चूंकि सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी है इसलिए संसद् के सत्र और अधिक बार होंगे। वास्तव में उन्हें आशंका थी कि संसद् के सत्र इतनी बार होंगे और इतने लंबे चलेंगे कि संभवतः स्वयं सदस्य ही उनसे उकता जाएंगे। कारण यह था कि सरकार अच्छे प्रशासन के लिए ही नहीं बल्कि दल के कार्यक्रम को अमल में लाने के लिए आवश्यक कानूनों को प्रभावी बनाने के लिए भी उत्तरदायी होगी। अतः उनका विचार था कि उन्होंने प्रत्येक वर्ष कम-से-कम दो सत्रों का जो प्रस्ताव किया है वह पर्याप्त है। प्रो. के. टी. शाह का एक संशोधन यह भी था कि यदि राष्ट्रपति तीन महीने की अवधि तक किसी भी सदन का सत्र बुलाने में चूक जाते हैं तो यथास्थिति अध्यक्ष या सभापति को ऐसे मामले में सत्र बुलाने की शक्ति होनी चाहिए। डा. अम्बेडकर का कहना था कि यह व्यावहारिक नहीं है क्योंकि सदन में क्या कार्य होगा यह बताना कार्यपालिका का काम है और इसलिए किए जाने वाले कार्य के बारे में समुचित व्यवस्था किए बिना पीठासीन अधिकारी को सदन की बैठक बुलाने की शक्ति देने से ही कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।[34]

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने एक नया अनुच्छेद अर्थात् प्रारूप अनुच्छेद 75क रखा जोकि अब संविधान में अनुच्छेद 92 है। इसमें यह उपबंध किया गया था कि जब काउंसिल ऑफ स्टेट्स में उपराष्ट्रपति को उसके पद से हटाने या काउंसिल के उपसभापति को उसके पद से हटाने के लिए किसी संकल्प पर चर्चा हो रही हो तब संकल्प से संबंधित पीठासीन अधिकारी वहां उपस्थित

रहते हुए भी सभा की बैठक में पीठासीन नहीं होगा। इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया।[35] प्रारूपण समिति ने पुनरीक्षण की अवस्था में संकल्प से संबंधित व्यक्ति को काउंसिल में बोलने का अधिकार देने के लिए एक और खंड जोड़ा हालांकि इस खंड में उसे मतदान करने का अधिकार नहीं दिया गया था।

संविधान के प्रारूप में मूलत: यह प्रस्ताव किया गया था कि काउंसिल ऑफ स्टेट्स द्वारा धन विधेयक को तीस दिन की अवधि के भीतर हाउस ऑफ द पीपल को लौटा दिया जाना चाहिए। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा रखे गए एक संशोधन द्वारा इस अवधि को घटाकर इक्कीस दिन कर दिया गया तथा उनके द्वारा और साथ ही डा. अम्बेडकर द्वारा इस संबंध में एक और संशोधन रखे जाने पर इस अवधि को भी घटाकर चौदह दिन कर दिया गया।[36]

डा. अम्बेडकर ने एक नए अनुच्छेद का प्रस्ताव किया जिसमें संसद् के प्रत्येक सदन के लिए पृथक् सचिवीय कर्मचारियों का उपबंध किया गया था। उन्होंने याद दिलाया कि भारत में कार्यपालक सरकार द्वारा विधान-मंडलों को सचिवीय सहायता प्रदान करने की प्रथा रही है और इस बात का भी उल्लेख किया कि बीस के दशक के बाद के वर्षों में इस संबंध में सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली के अध्यक्ष श्री विट्ठलभाई पटेल और तत्कालीन सरकार के बीच एक विवाद उत्पन्न हुआ था। इसके फलस्वरूप उस असेम्बली के लिए एक अलग सचिवालय स्थापित किया गया जो पीठासीन अधिकारी के नियंत्रण के अधीन था। किन्तु प्रदेशों में इस प्रथा को नहीं अपनाया गया। डा. अम्बेडकर का विचार था कि इसके लिए स्वयं संविधान में ही उपबंध करना आवश्यक है। इस अनुच्छेद को व्यापक समर्थन मिला और असेम्बली द्वारा उसे स्वीकार कर लिया गया।[37]

संवैधानिक सलाहकार श्री बी. एन. राव विदेशों के विख्यात न्यायशास्त्रियों और संवैधानिक विशेषज्ञों से विचार-विमर्श करने के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि संविधान में ऐसा उपबंध करना आवश्यक है जिसके द्वारा राष्ट्रहित में आवश्यक होने पर केन्द्र उन मामलों के संबंध में कानून बना सके जो सिर्फ प्रादेशिक क्षेत्र के दायरे में आते हैं। तदनुसार उन्होंने प्रस्ताव किया कि यदि काउंसिल ऑफ स्टेट्स उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों में से कम-से-कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित करे कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि संसद् प्रादेशिक विधायी सूची में उल्लिखित किसी विषय के संबंध में कानून बनाए तो परिसंघीय संसद् को उस विषय के संबंध में भारत परिसंघ के संपूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की शक्ति होगी। यह भी उपबंध किया गया कि इस प्रकार स्वीकृत संकल्प बाद में काउंसिल ऑफ स्टेट्स द्वारा इसी बहुमत से पारित संकल्प द्वारा रद्द किया जा सकता है। श्री बी.एन. राव ने यह स्पष्ट किया कि इस संशोधन का उद्देश्य एक ऐसे दोष को दूर करना है जो कनाडा के संविधान में पाए गए दोष की तरह है। प्रस्तावित उपबंध में काउंसिल ऑफ स्टेट्स के विशेष बहुमत की आवश्यकता का आशय प्रादेशिक क्षेत्र में अनुचित अतिक्रमण को रोकना है। प्रारूपण समिति ने प्रारूप अनुच्छेद 226 में श्री बी. एन. राव के सुझाव को उसके उस अंश को छोड़कर स्वीकार कर लिया जिसमें पूर्वतर संकल्प को रद्द करने के लिए दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता बताई गई थी।

किन्तु विशेष समिति ने (जिसमें अधिकांशत: संघ संविधान समिति, संघ की शक्तियों संबंधित समिति और प्रादेशिक संविधान समिति के कतिपय सदस्य थे) यह सिफारिश की कि काउंसिल

ऑफ स्टेट्स में ऐसे संकल्प को "संबंधित राज्य सरकारों से पहले परामर्श किए बिना" नहीं उपस्थित किया जाना चाहिए और जिस अवधि के लिए संसद् को यह शक्ति होगी वह तीन वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए और उसकी अवधि पुन: बढ़ाने के लिए, जो एक बार में तीन वर्ष से अधिक नहीं होगी, काउंसिल ऑफ स्टेट्स द्वारा इसी प्रकार के नए संकल्प पारित किए जा सकते हैं।

उपरोक्त अनुच्छेद का प्रारूप विधायी संबंधों के अध्याय में एक ऐसा उपबंध था जिसकी सर्वाधिक आलोचना हुई। कुछ सदस्यों ने कहा कि इसका स्वरूप परिसंघ-विरोधी है और वह किसी भी परिसंघीय पद्धति से असंगत है और इसलिए उसे निकाल दिया जाना चाहिए। यह तर्क भी दिया गया कि यदि इस अनुच्छेद को बनाए रखा जाएगा तो उसके संशोधन के संबंध में संविधान में उल्लिखित उपबंध अपना सारा महत्व खो देगा। श्री बी. एन. राव ने इस ओर ध्यान दिलाया कि इस अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त शक्ति का केन्द्र द्वारा तभी प्रयोग किया जाएगा जब काउंसिल ऑफ स्टेट्स, जो संघ की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करती है, दो-तिहाई बहुमत से अपेक्षित संकल्प को पारित कर दे। इसके अतिरिक्त प्रारूपण समिति द्वारा प्रस्तावित संशोधन को देखते हुए अवधि के मामले में केन्द्र की शक्ति सीमित हो सकती है और इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि संकल्प का प्रभाव संविधान के किसी संशोधन की तरह दूरगामी हो। प्रारूपण समिति ने, जिसने अनुच्छेद के प्रारूप पर पुनर्विचार किया, यह अनुभव किया कि राज्यों से पूर्व परामर्श करने की आवश्यकता का उपबंध करके, जैसी कि विशेष समिति द्वारा सिफारिश की गई थी, इस उपबंध को हल्का करने की आवश्यकता नहीं है। अत: प्रारूपण समिति ने इस शर्त को समाप्त कर दिया।[38]

संविधान सभा ने 13 जून, 1949 को संविधान के प्रारूप में विधायी संबंधों से संबंधित अनुच्छेदों पर विचार किया। डा. अम्बेडकर ने एक संशोधन उपस्थित किया जिसमें अनुच्छेद के प्रारूप के अधीन दी गई शक्ति के दायरे को एक वर्ष तक के लिये सीमित कर दिया गया और यह उपबंध भी किया गया कि जिस रीति से मूल संकल्प पारित किया गया है उसी रीति से काउंसिल ऑफ स्टेट्स द्वारा बाद में पारित संकल्प द्वारा पिछले संकल्प की अवधि को एक बार में एक वर्ष की अवधि के लिये बढ़ाया जा सकेगा और ऐसे संकल्प के अनुसरण में संसद् द्वारा बनाई गई कोई विधि, संकल्प के प्रवृत्त न रहने के बाद छह महीने की समाप्ति के बाद, प्रभावी नहीं रहेगी।[39] यद्यपि इन संशोधनों से मूलत: प्रस्तावित अनुच्छेद की चुभन काफी हद तक कम हो गई[40] तथापि इस उपबंध की आलोचना होती रही। कुछ सदस्यों का विचार था कि इन संशोधनों से उस प्रयोजन के लिए उपबंध की उपयोगिता काफी कम हो जाती है जिसके लिए वह लाया गया है और राज्यों संबंधी मामले पर कानून अधिनियमित करने के लिए संसद् को प्राधिकार देने की प्रक्रिया को अनावश्यक रूप से बोझिल बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त यह तर्क भी दिया गया कि चूंकि काउंसिल ऑफ स्टेट्स में केन्द्र को प्रत्येक वर्ष दो-तिहाई बहुमत मिलने की संभावना बहुत कम है, इसलिए केन्द्र द्वारा कोई बड़ी स्कीम हाथ में नहीं ली जा सकेगी। दूसरी ओर श्री एच.वी. पटास्कर तथा श्री ओ.वी. अलागेसन जैसे सदस्यों द्वारा यह माना जाता रहा कि अनुच्छेद आपत्तिजनक है और शक्तियों के परिसंघीय वितरण की संकल्पना के विरुद्ध है। उनका कहना था कि संविधान के प्रारूप के दो अन्य प्रस्तावित उपबंधों को देखते हुए यह उपबंध अनावश्यक है। उनमें से पहला उपबंध वह था जिसके अधीन राज्य विधानमंडल राज्यों के किसी विषय पर कानून बनाने के लिए संसद् को हमेशा प्राधिकृत कर सकते थे (प्रारूप अनुच्छेद 229) और दूसरा उपबंध (अर्थात् प्रारूप अनुच्छेद 227) वह था जिसके अधीन आपात की स्थिति में संसद् को राज्य सूची के किसी भी विषय के संबंध में कोई कानून बनाने की स्वतंत्र और अप्रतिबंधित शक्ति दी गई थी। सदस्यों

का विचार था कि प्रस्तावित उपबंध निश्चय ही 'शरारतपूर्ण' है क्योंकि उसके द्वारा सामान्य स्थिति में भी संसद् को राज्य विधानमंडल की इच्छा की अनदेखी करते हुए राज्यों की सूची का अतिक्रमण करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने अनुच्छेद की आलोचना का विस्तार से उत्तर दिया। उनका कहना था कि डा. अम्बेडकर ने जिस अनुच्छेद के संशोधन का प्रस्ताव किया है वह मूल अनुच्छेद से भिन्न है और उसका दुरुपयोग नहीं हो सकता। उन्होंने कहा कि यदि कोई शरारत हो भी तो वह एक वर्ष की छोटी सी अवधि तक सीमित रहेगी और सिर्फ इसी सीमा के कारण केन्द्र को अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए इस अनुच्छेद का उपयोग करने का प्रलोभन नहीं होगा और यदि अनुच्छेद का उपयोग होगा भी तो भी वह निश्चित रूप से एक विधि-सम्मत और उपयोगी प्रयोजन के लिए होगा। उन्होंने नियंत्रण के उन उपायों का उल्लेख किया जिनका इकाइयों द्वारा काउंसिल ऑफ स्टेट्स में अपने प्रतिनिधियों द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। इसे देखते हुए इसकी काफी गुंजाइश थी कि राज्य अपने प्रतिनिधियों को यह कहें कि ऐसी केन्द्रीय शक्तियों का नवीकरण नहीं किया जाना चाहिए। यह बताते हुए कि इस अनुच्छेद के उपबंध और उस प्रारूप अनुच्छेद 229 के उपबंध के बीच कितना अंतर है जिसके अधीन राज्यों के विषयों पर कानून बनाने के लिए राज्यों द्वारा संसद् को प्राधिकृत किया जा सकता है, श्री कृष्णमाचारी ने कहा कि प्रारूप अनुच्छेद 229 का आशय मूलत: उन मामलों में होने वाली कार्यवाही में तालमेल करना है जिनमें स्वयं प्रदेशों की रुचि हो। ज्यादातर ऐसा होगा कि सिर्फ दो प्रदेशों की रुचि हो, इसलिए यह केन्द्र द्वारा कानून में तालमेल करने के लिए एक समर्थकारी उपबंध है। इसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद के अधीन जो कार्यवाही होगी उसमें बहुत समय लगेगा जबकि विचाराधीन प्रारूप अनुच्छेद 226 का उद्देश्य उन स्थितियों के लिए व्यवस्था करना है जहां केन्द्र यह चाहता हो कि किसी राज्य के किसी मामले में उन परिस्थितियों में अविलम्ब कार्यवाही की जाए जब आपात उपबंध लागू करना आवश्यक न हो या उसे लागू नहीं किया जा सकता हो। वाद-विवाद के अंत में यथासंशोधित अनुच्छेद स्वीकृत हुआ और संविधान में शामिल कर दिया गया।[41]

प्रारूप अनुच्छेद 282ग का संबंध उस स्थिति में संसद् के द्वारा विधि द्वारा अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन से था जब काउंसिल ऑफ स्टेट्स द्वारा इस प्रयोजन के लिए दो-तिहाई बहुमत द्वारा अपेक्षित संकल्प पारित कर दिया जाए। इस उपबंध की सिर्फ यह आलोचना की गई कि ऐसी सेवाओं को स्थापित करने का निर्णय काउंसिल ऑफ स्टेट्स की बजाय सम्पूर्ण संसद् पर छोड़ दिया जाना चाहिए। किन्तु डा. अम्बेडकर का कहना था कि राज्यों को अपनी ही सेवाएं स्थापित करने की जो स्वायत्तता दी गई है उस पर कुछ हद तक इस अनुच्छेद से हमला होता है और यह स्पष्ट है कि राज्यों की स्वायत्तता लेने के लिए केन्द्र को अधिकार देने का एक ही तरीका है और वह यह है कि इस संबंध में काउंसिल ऑफ स्टेट्स के दो-तिहाई सदस्यों की सहमति ली जाए क्योंकि वह ऐसा निकाय है जिसकी स्थापना मूलत: राज्यों के मत को व्यक्त करने के लिए और राज्यों के हितों की रक्षा करने के लिए की गई है। काउंसिल पूर्व कल्पना से राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है और उसका संकल्प राज्यों द्वारा दिए गए प्राधिकार के समान होगा। सभा ने अनुच्छेद को स्वीकार कर लिया।[42]

इस प्रकार संविधान में काउंसिल ऑफ स्टेट्स से संबंधित उपबंधों का स्वरूप सामने आया। संविधान के पुनरीक्षण की अवस्था में चौथी अनुसूची में कुछ परिवर्तन किए गए और नए राज्यों

और संघ राज्य क्षेत्रों के गठन के फलस्वरूप उसमें समय-समय पर संशोधन होते रहे। भारतीय संघ की इकाइयों का 'राज्यों' और 'संघ राज्य क्षेत्रों' के रूप में नामकरण कर दिए जाने के फलस्वरूप संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा अनुच्छेद 80 में कुछ संशोधन किए गए। पृथक् अध्याय में इसका वर्णन किया गया कि राज्य सभा की संरचना में समय-समय पर किस प्रकार परिवर्तन होते रहे जिनके फलस्वरूप 1949 में जब संविधान स्वीकृत किया गया था, राज्य सभा के निर्वाचित सदस्यों की जो संख्या 205 थी, आज 233 हो गई है।

1954 में दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों की घोषणाओं के द्वारा एक उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। इन घोषणाओं के द्वारा काउंसिल ऑफ स्टेट्स और हाउस ऑफ द पीपल को भारतीय नाम दे दिए गए और उन्हें क्रमश: राज्य सभा और लोक सभा कहा जाने लगा।[43]

> 23 जून, 1971 को सदनों के भारतीय नामों के संबंध में एक दिलचस्प औचित्य प्रश्न उठाया गया। आंतरिक सुरक्षा बनाए रखने संबंधी विधेयक पर, 'लोक सभा द्वारा पारित रूप में,' विचार किये जाने हेतु इसे सूचीबद्ध किया गया। एक सदस्य ने अनुच्छेद 79 का हवाला देते हुए, जिसमें सदनों के नाम राज्य सभा और लोक सभा की बजाय काउंसिल ऑफ स्टेट्स और हाउस ऑफ द पीपल दिए गए थे, एक औचित्य प्रश्न उठाया क्योंकि सदस्य के मतानुसार उस दिन की कार्यावलि में 'लोक सभा' शब्दों का प्रयोग असंवैधानिक था। उपसभापति ने अन्य बातों के साथ यह कहते हुए औचित्य प्रश्न को अस्वीकार कर दिया कि शुरू से ही 'लोक सभा' और 'राज्य सभा' शब्दों का इस्तेमाल होता रहा है और सभी पत्रों में इन नामों का उल्लेख किया जाता रहा है।[44]

दो सदनों की प्रणाली हमेशा से ही विवाद का मुद्दा रही है और राजनैतिक दार्शनिकों और संविधान के पंडितों के बीच उस पर जोर-शोर से बहस होती रही है। एक ओर विख्यात संविधानवेत्ता एबे सीयेज़ दूसरे सदन की संकल्पना को पूरी तरह से नकारते हुए कहते हैं: "यदि दूसरा सदन पहले सदन से सहमत नहीं होता तो वह शरारती (अनिष्टकर) है और यदि वह सहमत होता है तो वह अनावश्यक है" और दूसरी ओर सर हेनरी मेने यह दलील देते हैं कि किसी प्रकार के दूसरे सदन का होना न होने से बेहतर है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, संविधान सभा में चर्चा के दौरान काउंसिल ऑफ स्टेट्स भी इस विवाद से परे नहीं रही। कुछ सदस्यों के विचार में भारतीय संसद् के लिए दूसरा सदन अनावश्यक था जबकि दूसरे सदस्यों की दृष्टि में वह विशेष रूप से एक परिसंघीय ढांचे के संदर्भ में आवश्यक था। किन्तु अंतत: संघ के स्तर पर दो सदनों की पद्धति हमारे संविधान का एक अभिन्न अंग बन गई। ऐसा होने पर भी कालांतर में लोक सभा में राज्य सभा को समाप्त करने के लिए कुछ इक्का-दुक्का किन्तु असफल प्रयास हुए जिनका इस संदर्भ में उल्लेख किया जा सकता है।

> संविधान के अधीन संसद् के सदनों के गठन के लगभग दो वर्ष के भीतर लोक सभा में एक संकल्प पर चर्चा हुई थी जिसमें कहा गया था कि केन्द्र में दूसरे सदन का होना नितांत अनावश्यक है और इसलिए इस प्रयोजन के लिए संविधान में संशोधन किया जाना चाहिए। इस संकल्प को अस्वीकार कर दिया गया।[45] बाद में लोक सभा में एक और संकल्प उपस्थित किया गया जिसमें सरकार को निदेश दिया गया था कि वह "राज्य सभा को समाप्त करने का उपबंध करने के लिए" एक संविधान संशोधन लाए। इस संकल्प को वापस ले लिया गया।[46]
>
> 1971, 1972 और 1975 में लोक सभा में गैर-सरकारी सदस्यों ने एक-एक करके ऐसे तीन संविधान संशोधन विधेयकों को पुर:स्थापित करने का प्रयास किया जिनका उद्देश्य राज्य सभा को समाप्त करना था। गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी लोक सभा की समिति ने इन विधेयकों को पुर:स्थापित करने की सिफारिश नहीं की। समिति ने अनुभव किया कि इन विधेयकों से "संविधान

के अनुच्छेद 1 के खंड (1) में दिए गए उस मूल सिद्धांत पर आंच आती है जिस पर स्वयं संविधान का ढांचा टिका हुआ है।" समिति ने केशवानन्द भारती के मामले[47] में उच्चतम न्यायालय की इस टिप्पणी पर ध्यान दिया कि "संविधान का अनुच्छेद 368 संसद् को संविधान की आधारभूत संरचना या ढांचे में कोई परिवर्तन करने का सामर्थ्य प्रदान नहीं करता।"[48]

1981 में लोक सभा में एक गैर-सरकारी सदस्य ने राज्य सभा और राज्यों की विधान परिषदों को समाप्त करने के लिए एक और संविधान संशोधन विधेयक पुर:स्थापित करने का प्रयास किया। आरंभ में समिति ने इस विधेयक को भी पुर:स्थापित करने की सिफारिश नहीं की।[49] जब समिति का संबंधित प्रतिवेदन लोक सभा में स्वीकृति के लिए पेश किया गया तब प्रस्ताव पर एक संशोधन के स्वीकार कर लिए जाने पर विधेयक को पुनर्विचार के लिए समिति को पुन: सौंप दिया गया।[50] तदनुसार समिति ने विधेयक की फिर से जांच की, उस पर विधि मंत्रालय का मत प्राप्त किया,[51] संबंधित सदस्य के पक्ष को सुना और विधेयक पर आगे विचार स्थगित कर दिया।[52] किन्तु, अंततोगत्वा विधेयक को पुर:स्थापित नहीं किया गया।

इसके विपरीत जब लोक सभा भंग थी तब राज्य सभा में धन और वित्तीय मामलों में अपनी शक्तियों का विस्तार करने का एक प्रयास किया गया। यह प्रयास भी विफल रहा।

30 अगस्त, 1991 को, श्री रजनी रंजन साहू, गैर-सरकारी सदस्य ने राज्य सभा में एक संविधान संशोधन विधेयक पुर:स्थापित किया जिसका उद्देश्य "लोक सभा के भंग होने या सरकार द्वारा कार्य न करने के फलस्वरूप उत्पन्न हो सकने वाली अस्थायी वित्तीय कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से" संविधान में एक नए अनुच्छेद 117-क को अंत:स्थापित करना था। अन्य बातों के साथ इस विधेयक का उद्देश्य यह था कि उस समय लोक सभा की सभी वित्तीय शक्तियां राज्य सभा को प्रदान कर दी जाएं जब लोक सभा भंग रही हो या भंग कर दी गई हो या ऐसी कोई अन्य आकस्मिक स्थिति हो जब संविधान के अधीन जिस वित्तीय कार्य को पूरा किया जाना आवश्यक हो उसे उस सदन द्वारा समय पर पूरा न किया जा सकता हो। यह विधेयक 1991 में उत्पन्न हुई उस स्थिति के संदर्भ में था जब नियमित बजट पेश नहीं किया जा सका और लेखानुदान ही पेश करना पड़ा। विधेयक पर 21 दिसम्बर, 1991, 28 फरवरी, 1992 और 13 मार्च, 1992 को चर्चा हुई किन्तु उसे बाद में वापस ले लिया गया।

तथापि, 13 मई, 1952 को हुई राज्य सभा की पहली बैठक के कुछ दिन बाद ही यह स्पष्ट करने का अवसर आया कि राज्य सभा से किस प्रकार की भूमिका निभाने की आशा की जाती है। डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् को भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति और राज्य सभा के प्रथम सभापति के रूप में चुने जाने पर जो बधाइयां दी गई थीं उनका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था:

आम धारणा है कि यह सदन सरकारों को बना या गिरा नहीं सकता और इसलिए वह एक अनावश्यक निकाय है। किन्तु पुनरीक्षण करने वाला कोई सदन कई ऐसे कार्य कर सकता है जो लाभदायक हो सकते हैं। संसद् कानून बनाने वाला निकाय ही नहीं है, वह विचार-विमर्श करने वाला निकाय भी है। जहां तक इसके विचार-विमर्श करने संबंधी कार्यों का संबंध है, हमें बहुत बहुमूल्य योगदान देने के अवसर मिलेंगे और हम जो कार्य करेंगे उसके आधार पर ही हम इस द्विसदनात्मक प्रणाली का औचित्य सिद्ध कर सकते हैं जो अब हमारे संविधान का अभिन्न अंग है। अत: यह एक परीक्षा है जिससे हमें गुजरना है। हम पहली बार केन्द्र में एक द्वितीय सदन के साथ संसदीय प्रणाली के अंतर्गत कार्य करना शुरू कर रहे हैं और हमें इस देश की जनता के समक्ष इस बात का औचित्य सिद्ध करने का भरसक प्रयास करना चाहिए कि किसी कानून को जल्दबाजी में बनने से रोकने के लिए द्वितीय सदन नितांत आवश्यक है।[53]

श्री एन. गोपालस्वामी अय्यंगर और डा. अम्बेडकर संविधान के संस्थापक थे और दोनों ही राज्य सभा के सदस्य बने। इन दोनों व्यक्तियों और राज्य सभा के प्रथम सभापति डा. राधाकृष्णन्

की उपरोक्त टिप्पणियों से यह स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में एक विधायी सदन के रूप में (कानून बनाने में बाधा न बनते हुए कानून बनाने में जल्दबाजी को रोककर और उनका पुनरीक्षण करके), परिसंघात्मक सदन के रूप में (राज्यों के हितों का प्रतिनिधित्व करके) और विचार-विमर्श करने वाले सदन के रूप में (महत्वपूर्ण मुद्दों पर मर्यादित ढंग से चर्चा करके) राज्य सभा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली थी। संविधान निर्माताओं ने कतिपय धन संबंधी/वित्तीय मामलों, पूर्तियों (अनुदानों की मांगों) पर मतदान और 'सरकारों को बनाने या गिराने' की शक्तियों को छोड़कर दोनों सदनों (लोक सभा और राज्य सभा) को समान शक्तियां प्रदान कीं।

संविधान के अधीन धन विधेयक और कतिपय वित्तीय विधेयकों को छोड़कर, जिनके संबंध में अंतिम निर्णय लोक सभा का होता है, एक विधायी निकाय के रूप में अन्य विधेयकों को आरंभ करने के लिए राज्य सभा की शक्तियों पर कोई सीमा नहीं लगाई गई है। सामान्य विधान के संबंध में दोनों सदनों के बीच कोई विधायी गतिरोध उत्पन्न होने पर उसे दूर करने के लिए उनकी संयुक्त बैठक आयोजित करने की व्यवस्था की गई है। पिछले वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों के लिए अनेक महत्वपूर्ण कानूनों को राज्य सभा में आरंभ किया गया है। दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1959 में किए जाने वाले संशोधनों पर दोनों सदनों के बीच 1961 में संयुक्त बैठक द्वारा मतभेद दूर कर दिया गया, 1978 में बैंकिंग सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1977 को राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत किए जाने पर और पुन: आतंकवाद निवारक विधेयक, 2002 को लोक सभा द्वारा पारित रूप में 2002 में, राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत किए जाने पर संयुक्त बैठक के द्वारा दोनों सदनों के बीच गतिरोध को दूर किया गया। पुनरीक्षण करने वाले सदन के रूप में भी राज्य सभा ने लोक सभा द्वारा पारित अनेक विधेयकों में परिवर्तन करने की सिफारिशें की हैं और लोक सभा ने उन्हें स्वीकार किया है।

संसद् की संवैधानिक शक्ति के प्रयोग अर्थात् संविधान में संशोधन करने के संबंध में राज्य सभा और लोक सभा दोनों को एक-सी शक्तियां प्राप्त हैं। संविधान संशोधन विधेयक संसद् के किसी भी सदन में पुर:स्थापित किया जा सकता है और उसे प्रत्येक सदन के विशेष बहुमत से ही पारित किया जा सकता है। यदि राज्य सभा और लोक सभा के बीच कोई असहमति होती है तो विधेयक अस्वीकृत हो जाता है। दूसरे शब्दों में, किसी संवैधानिक विधेयक पर उत्पन्न हुए गतिरोध को दूर करने के लिए संयुक्त बैठक बुलाने का कोई उपबंध नहीं है। 1970 में तत्कालीन नरेशों के प्रिवी पर्सों को समाप्त करने से संबंधित संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, जिस रूप में वह लोक सभा द्वारा पारित किया गया था, राज्य सभा में अपेक्षित समर्थन न मिलने पर पारित नहीं किया जा सका और इसलिए वह अस्वीकृत हो गया। पुन: 1989 में संविधान (चौंसठवां और पैंसठवां संशोधन) विधेयकों को, जिन्हें लोक सभा द्वारा पहले पारित किया जा चुका था, राज्य सभा में अपेक्षित बहुमत न मिलने के कारण पारित नहीं किया जा सका। 1978 में राज्य सभा ने संविधान (पैंतालीसवां संशोधन) विधेयक में महत्वपूर्ण संशोधन पुर:स्थापित किए और उन्हें लोक सभा ने स्वीकार किया और वे संविधान का अंग बने।

जब तत्कालीन सरकार राज्य सभा में बहुमत में नहीं थी, तो इसने सावधानीपूर्वक कदम उठाया। 12 फरवरी, 1999 को बिहार राज्य[54] के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति के द्वारा एक घोषणा जारी की गई। जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 356 के खंड (3) के अधीन अपेक्षित है, लोक सभा द्वारा स्वीकृत[55] किए जाने के बावजूद घोषणा का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए सांविधिक संकल्प राज्य सभा के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया। बल्कि सरकार ने राष्ट्रपति द्वारा

जारी की गई घोषणा को वापस लेने का निर्णय लिया और दिनांक 12 फरवरी, 1999 को बिहार राज्य के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा की गई घोषणा को वापस करते हुए, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 356 के खंड (3) के अधीन अपेक्षित है, संविधान के अनुच्छेद 356 के खंड (2) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा 8 मार्च, 1999 को जारी की गई घोषणा की एक प्रति राज्य सभा के पटल पर रखी गई।[56]

धन विधेयकों और कतिपय वित्तीय विधेयकों को आरंभ करने, उनमें संशोधन करने और उनमें विलंब करने के मामले में राज्य सभा की शक्तियों पर कुछ सीमाएं लगाई गई हैं। राज्य सभा में इन विधेयकों को पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता, प्रत्यक्ष रूप से संशोधित नहीं किया जा सकता और उन्हें लौटाने में चौदह दिन से अधिक विलंब नहीं किया जा सकता। किंतु ऐसे वित्तीय विधेयकों के मामले में जिनमें धन संबंधी खंड न हों, ऐसी कोई सीमाएं नहीं हैं। धन विधेयकों के संबंध में राज्य सभा की सिफारिशों को मानना या न मानना लोक सभा का काम है, राज्य सभा उनके संबंध में उस सीमित समय के भीतर जो उसे उपलब्ध होता है, संशोधनों की सिफारिश करके एक उपयोगी भूमिका निभा सकती है। इस संबंध में एक विशिष्ट उदाहरण आय कर (संशोधन) विधेयक, 1961 का है जो एक धन विधेयक था। उसके संबंध में राज्य सभा ने जो संशोधनों संबंधी सिफारिशें की थीं उन्हें लोक सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया। किन्तु 1977 और 1978 के वित्त विधेयकों में राज्य सभा ने जिन संशोधनों की सिफारिश की थी उन्हें लोक सभा द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। संविधान के अनुच्छेद 112(1) में यह उपबंध किया गया है कि संघ के वार्षिक बजट को संसद् के दोनों सदनों में रखा जाना होगा। बजट पर राज्य सभा में भी चर्चा हो सकती है यद्यपि अनुदानों की मांगें सिर्फ लोक सभा में की जा सकती हैं। संघ के लेखाओं के संबंध में भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों को भी दोनों सदनों के समक्ष रखा जाना होता है। जैसा कि डा. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था:

> ब्रिटेन की संसद् में हाउस ऑफ लार्ड्स, हाउस ऑफ कॉमन्स द्वारा पारित वित्तीय उपबंधों पर केवल सहमति प्रकट करता है; जहां तक वित्त का संबंध है, उसने स्वयं को बिल्कुल समाप्त कर दिया है। हम यहां इस स्थिति में कुछ परिवर्तन कर रहे हैं और निम्न सदन द्वारा आरंभ किए गए कराधान संबंधी और वित्तीय प्रस्तावों को तैयार करने में उच्च सदन को कुछ अपनी बात भी रखने का अवसर दे रहे हैं। हम उसे ऐसा विशेषाधिकार दे रहे हैं जो उच्च सदन को सामान्यत: प्राप्त नहीं होता।[57]

संविधान-निर्माता केन्द्र में अंशत: निर्वाचित और अंशत: नामनिर्देशित द्वितीय सदन के पक्ष में थे क्योंकि उनका विचार था कि ऐसा करना देश की आवश्यकताओं को देखते हुए सर्वाधिक उपयुक्त है। द्वितीय सदन में 250 सदस्यों की कुल संख्या में से नामनिर्देशित सदस्यों की संख्या 12 तक सीमित कर दी गई है। बाकी सदस्य संघटक इकाइयों के प्रतिनिधि हैं। इस समय इनकी संख्या 233 है। द्वितीय सदन को परिसंघीय स्वरूप देने के लिए संबंधित राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा और संबंधित संघ राज्य-क्षेत्रों के निर्वाचकगण द्वारा इन प्रतिनिधियों के निर्वाचन का उपबंध किया गया है। चूंकि इन निर्वाचक निकायों का गठन वयस्क मताधिकार के आधार पर हुए प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा होता है, अत: राज्य सभा के लोकतांत्रिक स्वरूप को पूरी तरह से बनाए रखा गया है। प्रतिनिधियों का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है। निर्वाचन की इस रीति के द्वारा राज्य सभा अपनी संरचना में देश के प्राय: समूचे भिन्न-भिन्न राजनैतिक मतों को व्यापक रूप से प्रतिबिंबित करती है। संविधान ने राज्य सभा में भारतीय

संघ की संघटक इकाइयों हेतु समान प्रतिनिधित्व के लिए उपबंध नहीं किया है। विभिन्न राज्यों और संघ राज्य-क्षेत्रों के बीच स्थानों का आवंटन उनकी जनसंख्या के आधार पर किया गया है और उसके संबंध में संविधान की चौथी अनुसूची में उपबंध किया गया है।

लोक सभा के विपरीत, राज्य सभा भंग नहीं होती किन्तु उसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाते हैं। इससे सदन में निरंतरता बनी रहती है और परिवर्तन भी होता रहता है, सदस्य निवृत्त होते रहते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्य आते रहते हैं। जैसाकि तत्कालीन सभापति श्री एम. हिदायतुल्लाह ने कहा था: "कुछ ऐसे प्राणियों की तरह जो अपनी केंचुल उतार देते हैं, राज्य सभा भी अपने एक भाग को केंचुल की तरह उतार देती है।"[58] इसके फलस्वरूप एक-तिहाई सदस्यों के निवृत्त हो जाने पर राज्य सभा के लिए द्विवार्षिक चुनाव होते हैं। सदस्यों के निवृत्त होने और उनके स्थान पर नए सदस्यों के निर्वाचन के इस चक्र से राज्य/संघ राज्य-क्षेत्र दो वर्षों की आवृत्ति पर राज्य सभा में अपने प्रतिनिधित्व का नवीकरण या प्रतिस्थापन कर पाते हैं और संयोग से इससे राज्य सभा में, जिसे वयोवृद्ध लोगों की सभा कहा जाता है, नए और पुराने का संगम होता है। इस तरह की व्यवस्था पिछले मत के साथ-साथ वर्तमान मत का प्रतिनिधित्व करने के लिए और लोकनीति में निरंतरता बनाए रखने में सहायता देने के लिए की गई है।[59]

राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदन के रूप में राज्य सभा को उस स्थिति में एक विशेष भूमिका प्रदान की गई है जब राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन समझा जाए कि राज्यों के विधायी क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले विषयों के संबंध में केन्द्र द्वारा कानून बनाया जाना चाहिए। अनुच्छेद 249 के द्वारा संसद् को वह शक्ति प्रदान की गई है कि राज्य सभा द्वारा दो-तिहाई बहुमत से संकल्प पारित कर दिए जाने पर वह राज्य सूची में उल्लिखित किसी मामले के संबंध में कानून बना सकती है। राज्य सभा ने 1952 में राज्य सूची में प्रविष्टि 26 और 27 में[60] और 1986 में प्रविष्टि 1, 2, 4, 64, 65 और 66 में[61] उल्लिखित मामलों के संबंध में ऐसे संकल्प पारित किए। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 312 के अधीन राज्य सभा द्वारा आवश्यक संकल्प पारित कर दिए जाने पर संसद् को विधि द्वारा संघ तथा राज्यों के लिए सम्मिलित रूप से एक या एक से अधिक अखिल भारतीय सेवाएं स्थापित करने की शक्ति है। राज्य सभा ने 1961 और 1965 में भारतीय इंजीनियरी सेवा, भारतीय वन सेवा, भारतीय चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा, भारतीय कृषि सेवा और भारतीय शैक्षिक सेवा का सृजन करने के लिए ऐसे संकल्प पारित किए थे।[62] ऐसा समझा जाता है कि राज्य सभा द्वारा दो-तिहाई बहुमत से ऐसे संकल्पों को स्वीकार किया जाना राज्यों के विधायी क्षेत्र में केन्द्रीय हस्तक्षेप के लिए राज्यों द्वारा दी गई सहमति के समान है।

राज्य सभा को एक और शक्ति प्राप्त है जो आपात की उद्घोषणा (अनुच्छेद 352), राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने की उद्घोषणा (अनुच्छेद 356) और वित्तीय आपात की उद्घोषणा (अनुच्छेद 360) के संबंध में है। संसद् के दोनों सदनों द्वारा इन उद्घोषणाओं का विहित अवधि के भीतर अनुमोदन किया जाना आवश्यक है। किन्तु यदि ऐसी उद्घोषणा उस समय जारी की जाए जब लोक सभा भंग हो या उद्घोषणा के अनुमोदन के लिए विहित अवधि के दौरान लोक सभा भंग कर दी गई हो तो राज्य सभा को ऐसा संकल्प पारित करने की शक्ति दी गई है और लोक सभा बाद में उसे अपने पुनर्गठन के बाद पारित कर सकती है। 1977 में तमिलनाडु और नागालैंड में राष्ट्रपति के शासन की अवधि बढ़ाने के लिए[63] और पुन: 1991 में हरियाणा में राष्ट्रपति शासन के अनुमोदन के लिए[64] राज्य सभा को एक संक्षिप्त सत्र के लिए बुलाना पड़ा था। इन दोनों अवसरों पर लोक सभा भंग थी।

जहां तक राज्य सभा के विचार-विमर्श संबंधी कार्यों का संबंध है, राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में इस प्रयोजन के लिए विभिन्न तरीकों और अवसरों की व्यवस्था की गई है। प्रश्नों और अनुपूरक प्रश्नों, ध्यानाकर्षणों, विशेष उल्लेखों आदि के द्वारा राज्य सभा सरकार के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन करती है। प्रस्तावों और संकल्पों के द्वारा और बजट संबंधी चर्चा, अल्पकालिक चर्चा, मंत्रालयों के कार्यकरण पर चर्चा आदि के द्वारा, जिसमें मतदान नहीं होता, महत्वपूर्ण विचार-विमर्श होता है। जैसाकि ब्राइस सम्मेलन में कहा गया था, इस प्रकार की चर्चाओं का ऐसे सदन में होना अधिक उपयोगी है जहां कार्यपालक सरकार की किस्मत का फैसला ऐसी चर्चाओं पर निर्भर नहीं होता। यहां यह बताना प्रासंगिक है कि वर्ष 1952 से ही पारिस्थितिकी, नदियों की सफाई, जनसंख्या की समस्या, जल संरक्षण आदि जैसे विषयों पर राज्य सभा में बहस होती रही है। राज्य सभा की साठ वर्षों की यात्रा में जिसे इसने 13 मई, 2012 को पूरा कर लिया है, राज्य सभा ने जीवंत वाद-विवाद की परम्परा को जारी रखा है और विचारों की सभा के रूप में उभरी है।

अब सभा कार्यपालिका की कार्रवाइयों और लोगों की शिकायतों की जांच का कार्य अनेक समितियों के माध्यम से करती है। संसद् के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कार्य वर्ष 1993 में विभाग-संबंधित स्थायी समितियों का आरंभ होना था। इस निर्णय से पूर्व 11 मार्च, 1993 को राज्य सभा के सभापति की अध्यक्षता में राज्य सभा और लोक सभा की नियम समिति की संयुक्त बैठक में चर्चा की गई और केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों की विभाग-संबंधित संसदीय समितियां गठित करने का निर्णय लिया गया। अध्याय 25 में इस घटनाक्रम की और विस्तार से चर्चा है।

प्रत्येक द्विसदनात्मक विधानमंडल में प्रत्येक सदन को उस क्षेत्र के भीतर कार्य करना चाहिए जो संविधान के अधीन उसके लिए नियत किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि विधायी तंत्र के सफल रूप से कार्य करने के लिए दोनों सदनों के बीच घनिष्ठतम सहयोग और सद्भावपूर्ण संबंध होने चाहिए। अध्याय 5 में राज्य सभा व लोक सभा के बीच संबंधों के बारे में अधिक विस्तार से चर्चा की जाएगी। यद्यपि प्रारंभ के वर्षों में दोनों सदनों के बीच यदा-कदा टकराव हुए हैं तथापि कुल मिलाकर दोनों के बीच परस्पर सहिष्णुता, सद्भाव और सहयोग के संबंध रहे हैं। जैसाकि श्री जवाहरलाल नेहरू ने प्रारंभ के वर्षों में टकराव की एक घटना के संदर्भ में कहा था: "दोनों सदन वास्तव में एक ही ढांचे के भाग हैं और यदि सहयोग देने और एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की भावना में कोई कमी होगी तो उससे कठिनाइयां उत्पन्न होंगी और हमारे संविधान के समुचित कार्यकरण में बाधाएं आएंगी।" भारत के प्रथम प्रधान मंत्री द्वारा, दोनों सदनों के पारस्परिक संबंधों के बारे में की गई इस प्रामाणिक व्याख्या ने दोनों सदनों के आपसी संबंधों के बारे में पथ-प्रदर्शक का काम किया है। संविधान में, प्रत्येक सदन के प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों में और दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों और पारस्परिक संवाद से संबंधित नियमों में इन संबंधों को निर्धारित किया गया है। इसके अलावा कई छोटे-बड़े मामलों के बारे में परंपराओं और प्रथाओं का विकास होता रहा है। अत: राज्य सभा और लोक सभा की भूमिकाएं एक-दूसरे की पूरक और अनुपूरक रही हैं।

सामान्यत: द्वितीय सदन की भूमिका को नकारात्मक समझा जाता है अर्थात् यह कहा जाता है कि वह अलोकतांत्रिक, रूढ़िवादी, विलम्बकारी, अवरोधक और गौण होता है। किंतु इसमें से कोई भी बात राज्य सभा पर लागू नहीं होती। यह बताया जा चुका है कि राज्य सभा के लोकतांत्रिक

स्वरूप को कैसे सुनिश्चित किया जाता है। जैसाकि पहले कहा गया है, प्रिवी पर्सों को समाप्त करने से संबंधित संविधान संशोधन विधेयक राज्य सभा में पारित नहीं हुआ था। किंतु यहां पर यह भी कहना आवश्यक है कि इससे पहले राज्य सभा ने ही गैर-सरकारी सदस्यों के एक संकल्प को पारित किया था जिसमें ऐसे वैधानिक उपाय की सिफारिश की गई थी। राज्य सभा में सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों के संबंध में अनेक कार्यवाहियों को आरंभ किया गया है और उन्हें देखते हुए यह धारणा असत्य सिद्ध हो जाती है कि द्वितीय सदन हमेशा रूढ़िवादी होता है। जहां तक विधान को पारित करने में विलंब करने वाले सदन के रूप में राज्य सभा की भूमिका का संबंध है, ब्राइस सम्मेलन का यह कथन स्मरणीय है कि द्वितीय सदन का वास्तविक कार्य किसी विधेयक को पारित करके उसे कानून का रूप देने में केवल इतना विलंब करना है (और उससे अधिक नहीं) जो उस पर राष्ट्र के मत को पर्याप्त रूप से व्यक्त कराने के लिए आवश्यक हो। वास्तव में ऐसे कई उदाहरण हैं जब राज्य सभा ने परिस्थितियों की आवश्यकताओं को देखते हुए विधेयकों को पारित करने में शीघ्रता की है। उदाहरणार्थ, 25 अगस्त, 1984 को राज्य सभा में एक ही बैठक में, एक के बाद एक, पांच संविधान संशोधन विधेयक पारित किए गए। विधायी कार्यों में राज्य सभा की भागीदारी उत्तरोतर बढ़ती रही है और उसमें हुए वाद-विवाद ने सरकार की नीतियों को प्रभावित किया है। इससे यह पर्याप्त रूप से सिद्ध हो जाता है कि यद्यपि राज्य सभा को द्वितीय सदन कहा जाता है तथापि न तो वह कोई गौण भूमिका निभाती है और न ही वह कोई सजावट की वस्तु है। यहां पर उत्कृष्ट सांसद श्री एस. जयपाल रेड्डी के उन विचारों को स्मरण करना प्रासंगिक होगा जो उन्होंने राज्य सभा में उनके कार्यकाल की समाप्ति पर व्यक्त किए थे:

> "राज्य सभा एक संवैधानिक कारवां है जो लोक सभा से इतर निरंतर और बिना रुके चलता रहता है। यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण संवैधानिक भूमिका निभाता है। हमारी निर्वाचन प्रणाली में व्यापक चुनावी लहरों और परिणामी राजनीतिक उतार-चढ़ाव से लोक सभा आश्चर्यचकित हो सकती है। यह राज्य सभा है जो लगाम लगाती है, कई बार बहुत स्वस्थ लगाम लगाती है।"[65]

अत: राज्य सभा सभी दृष्टियों से हमारे संवैधानिक और संसदीय तंत्र के एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्रियाशील अंग के रूप में सामने आई है। आगे के अध्यायों में कार्यरत राज्य सभा के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. मॉरिस ग्वायर और ए. अप्पादुरै, स्पीचेज़ एंड डॉक्यूमेंट्स ऑन द इंडियन कॉन्स्टीट्यूशन, [लेख]: वोल्यूम-I, पृष्ठ 32-33
2. भारत शासन अधिनियम, 1935, धारा 18
3. बी. शिवा राव, फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज़ कॉन्स्टीट्यूशन—ए स्टडी, पृष्ठ 418-20
4. -वही- पृष्ठ 422-23; कॉन्स्टीट्यूएंट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-4, 21.7.1947, एपेन्डिक्स-ए, पृष्ठ 716-36
5. कॉन्स्टीट्यूएंट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-4, 28.7.1947, पृष्ठ 873-74
6. -वही- पृष्ठ 875
7. -वही- पृष्ठ 876
8. -वही-
9. -वही- पृष्ठ 872 और 877
10. -वही- पृष्ठ 969-72
11. बी. शिवा राव, फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज़ कॉन्स्टीट्यूशन—ए स्टडी, पृष्ठ 424-28

12. बी. शिवा राव, फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज़ कॉन्स्टीट्यूशन–ए स्टडी, पृष्ठ 428-31
13. कॉन्स्टीट्यूएंट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-7, 3.1.1949, पृष्ठ 1195-96
14. -वही- पृष्ठ 1198
15. -वही- पृष्ठ 1200
16. -वही- पृष्ठ 1214-15
17. -वही- पृष्ठ 1202
18. -वही- वोल्यूम-8, 18.5.1949, पृष्ठ 82-83 और 23.5.1949, पृष्ठ 197
19. -वही- वोल्यूम-7, 3.1.1949, पृष्ठ 1202 और 1205
20. -वही- पृष्ठ 1202-03
21. -वही- पृष्ठ 1203-04
22. -वही- पृष्ठ 1204
23. -वही- पृष्ठ 1205
24. -वही- पृष्ठ 1211-12
25. -वही- पृष्ठ 1212-14
26. -वही- पृष्ठ 1215
27. -वही- पृष्ठ 1206-08
28. -वही- पृष्ठ 1208
29. -वही- पृष्ठ 1209
30. -वही- पृष्ठ 1216-18
31. -वही- पृष्ठ 1231
32. -वही- वोल्यूम-8, 18.5.1949, पृष्ठ 89-94
33. -वही- पृष्ठ 95-98
34. -वही- पृष्ठ 105-07
35. -वही- 19.5.1949, पृष्ठ 120-21
36. -वही- 20.5.1949, पृष्ठ 184-85
37. -वही- वोल्यूम-9, 30.7.1949, पृष्ठ 2-3
38. बी. शिवा राव, फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज़ कॉन्स्टीट्यूशन–ए स्टडी, पृष्ठ 615-26
39. कॉन्स्टीट्यूएंट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-8, 13.6.1949, पृष्ठ 799-800
40. -वही- पृष्ठ 800-805
41. -वही- पृष्ठ 800-09
42. -वही- वोल्यूम-9, 8.9.1949, पृष्ठ 1116-19
43. लोक सभा वाद-विवाद, 14.5.1954, कालम 7388-89; राज्य सभा वाद-विवाद, 23.8.1954, कालम 36-37; संविधान और संसदीय अधिनियमों के हिन्दी पाठ में काउंसिल ऑफ स्टेट्स और हाउस ऑफ द पीपल के लिए क्रमश: राज्य सभा और लोक सभा नामों का प्रयोग हुआ है। किंतु इनके अंग्रेजी पाठ में काउंसिल ऑफ स्टेट्स और हाउस ऑफ द पीपल नामों का प्रयोग जारी है। तथापि, दिल्ली (निर्माण कार्यों का नियंत्रण) अधिनियम, 1955 (अब निरसित) और सरकारी स्थान (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1971 के अंग्रेजी पाठ में राज्य सभा और लोक सभा नामों का प्रयोग किया गया था।
44. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.6.1971, कालम 77-79
45. लोक सभा वाद-विवाद, 18.3.1954, कालम 2640-52; और 2.4.1954, कालम 3974-4025
46. -वही- 30.3.1973, कालम 291-327; और 27.4.1973, कालम 352-76
47. ए.आई.आर. 1973, एस.सी. 1461

48. गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति का चौदहवां प्रतिवेदन (सातवीं लोक सभा), जो 19.2.1981 को प्रस्तुत किया गया
49. -वही-
50. लोक सभा संसदीय समाचार (1), 20.2.1981
51. गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति का पंद्रहवां प्रतिवेदन (सातवीं लोक सभा), जो 25.2.1981 को प्रस्तुत किया गया
52. गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति का उन्नीसवां प्रतिवेदन (सातवीं लोक सभा), जो 25.3.1981 को प्रस्तुत किया गया
53. कांउसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.5.1952, कालम 43
54. संसदीय समाचार (1), 22.2.1999
55. लोक सभा वाद-विवाद, 25.2.1999, कालम 383-476; और 26.2.1999, कालम 457-65 और कालम 469-626
56. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.3.1999, कालम 218-20
57. कॉन्स्टीट्यूएंट असेम्बली डिबेट्स, वोल्यूम-8, 20.5.1949, पृष्ठ 185
58. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.3.1984, कालम 193
59. बी. शिवा राव, फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज़ कॉन्स्टीट्यूशन—ए स्टडी, वोल्यूम-2 पृष्ठ 442
60. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 18.7.1952, और कालम 1481-92; 22.7.1952, कालम 1628-86
61. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.8.1986, कालम 395 और आगे के कालम; और 13.8.1986, कालम 183-227
62. -वही- 6.12.1961, कालम 1280-1305; और 30.3.1965, कालम 5010-91
63. -वही- 1.3.1977, कालम 41-154
64. -वही- 3.6.1991, कालम 1-24; और 4.6.1991, कालम 164-77
65. -वही- 7.3.1996, कालम 195

अध्याय-2

राज्य सभा की संरचना

संवैधानिक उपबंध

संसद् राष्ट्रपति और दो सदनों अर्थात् राज्य सभा (काउंसिल ऑफ स्टेट्स) और लोक सभा (हाउस ऑफ द पीपल) से मिलकर बनती है।[1] संविधान में "काउंसिल ऑफ स्टेट्स" और "हाउस ऑफ द पीपल" नामों को आज भी मान्यता मिली हुई है। किन्तु वास्तविक व्यवहार में इन सदनों को राज्य सभा और लोक सभा के नाम से जाना जाता है।

14 मई, 1954 को लोक सभा के अध्यक्ष ने घोषणा की कि हाउस ऑफ द पीपल को लोक सभा के नाम से जाना जाएगा।[2] 23 अगस्त, 1954 को राज्य सभा के सभापति ने निम्नलिखित घोषणा की:

> "प्रधान मंत्री और काउंसिल (परिषद्) के नेता की सहमति से मैंने निर्णय किया है कि काउंसिल ऑफ स्टेट्स को "राज्य सभा" और उसके सचिवालय को "राज्य सभा सचिवालय" कहा जायेगा।"[3]
>
> किन्तु तत्कालीन राज्य सभा सदस्य और इतिहासकार डा. राधा कुमुद मुकर्जी ने यह सुझाव दिया था कि "काउंसिल ऑफ स्टेट्स" को "राष्ट्र सभा" कहना उपयुक्त होगा।[4]

संविधान के अनुच्छेद 80 का संबंध राज्य सभा की संरचना से है। इस अनुच्छेद के खंड 1 में उपबंध किया गया है कि राज्य सभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 250 होगी जिसमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित किए जायेंगे और 238 सदस्य राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों के प्रतिनिधि होंगे।[5] अनुच्छेद 80(3) में यह उपबंध किया गया है कि राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित किए जाने वाले सदस्य ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा जैसे विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है।[6] राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के प्रतिनिधियों द्वारा भरे जाने वाले स्थानों का आवंटन संविधान की चौथी सूची में नियत किया गया है।[7] राज्य सभा के लिए प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों का निर्वाचन उस राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है।[8] राज्य सभा में संघ राज्यक्षेत्रों के प्रतिनिधि ऐसी रीति से चुने जाते हैं जो संसद् विधि द्वारा विहित करे।[9]

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 के भाग 4क में राज्य सभा में संघ राज्यक्षेत्रों को आवंटित स्थानों को भरने की रीति का उपबंध किया गया है। इस अधिनियम की धारा 27क में उपबंध किया गया है कि संविधान की चौथी अनुसूची में किसी संघ राज्यक्षेत्र को आवंटित स्थान या स्थानों को भरने के प्रयोजन के लिए प्रत्येक ऐसे राज्यक्षेत्र के लिए एक निर्वाचक-मंडल होगा।[10] दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 (1992 का 1) को अधिनियमित किए जाने से पहले संघ राज्यक्षेत्र दिल्ली के निर्वाचक-मंडल में दिल्ली प्रशासन अधिनियम, 1966 (1966 का 19) के अधीन गठित दिल्ली महानगर परिषद् के निर्वाचित सदस्य होते थे। अब संघ राज्यक्षेत्र दिल्ली के निर्वाचक-मंडल में दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 के अधीन गठित दिल्ली विधान सभा के निर्वाचित सदस्य होते हैं।[11] पुदुचेरी के संघ राज्यक्षेत्र के निर्वाचक-मंडल में संघ राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 (1963 का 20) के अधीन पुदुचेरी

विधान सभा के निर्वाचित सदस्य होते हैं।[12] राज्य सभा में अंदमान और निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, दादरा और नागर हवेली, दमण और दीव और चंडीगढ़ के कोई प्रतिनिधि नहीं हैं।

चौथी अनुसूची (26 नवम्बर, 1949 की स्थिति के अनुसार)

1949 में जब संविधान को अंगीकृत किया गया था, तब राज्य सभा के लिए 217 सदस्य थे जिनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित किए जाने थे और बाकी 205 सदस्यों को राज्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए निर्वाचित होना था। संविधान की मूल चौथी अनुसूची के अनुसार स्थानों का आवंटन इस प्रकार था:

भाग क राज्य		भाग ख राज्य		भाग ग राज्य	
असम	6	हैदराबाद	11	अजमेर	1
बिहार	21	जम्मू-कश्मीर	4	कुर्ग	
बम्बई	17	मध्य भारत	6	भोपाल	1
मध्य प्रदेश	12	मैसूर	6	बिलासपुर	1
मद्रास	27	पटियाला और पूर्वी पंजाब	3	हिमाचल प्रदेश	
उड़ीसा	9	के राज्यों का संघ		कूच बिहार	1
पंजाब	8	राजस्थान	9	दिल्ली	1
संयुक्त प्रांत	31	सौराष्ट्र	4	कच्छ	1
पश्चिमी बंगाल	14	त्रावणकोर-कोचीन	6	मणिपुर	1
		विन्ध्य प्रदेश	4	त्रिपुरा	
योग	**145**	**योग**	**53**	**योग**	**7**

स्थानों का आवंटन प्रत्येक राज्य की जनसंख्या के आधार पर किया गया था जिसका निश्चय संविधान के पारित होने के समय पर उपलब्ध जनगणना आंकड़ों से किया गया था। उन राज्यों के मामलों में जिनकी जनसंख्या 50 लाख से अधिक थी, प्रत्येक राज्य को आवंटित स्थानों की संख्या इस सूत्र के अनुसार निर्धारित की गई थी: "पहले 50 लाख के लिए प्रत्येक 10 लाख पर एक स्थान और एक स्थान प्रत्येक अतिरिक्त 20 लाख या उसके भाग के लिए, जो 10 लाख से अधिक हो।"[13]

चौथी अनुसूची (26 जनवरी, 1950 की स्थिति के अनुसार)

संविधान के अनुच्छेद 392(3) के साथ पठित अनुच्छेद 391[14] में उपबंध था कि यदि संविधान के पारित होने और उसके प्रारंभ के बीच किसी भी समय भारत शासन अधिनियम, 1935 के उपबंधों के अधीन ऐसी कार्यवाही की जाएगी जिससे चौथी अनुसूची में कोई संशोधन करना आवश्यक हो, तो उस स्थिति में भारत डोमिनियन के गवर्नर-जनरल को उक्त अनुसूची में आदेश द्वारा ऐसे संशोधन करने के लिए सशक्त किया गया है और, इसके अतिरिक्त, जब चौथी अनुसूची को इस प्रकार संशोधित किया जाए तो संविधान में उस अनुसूची के प्रति किसी निर्देश का अर्थ इस प्रकार संशोधित ऐसी अनुसूची के प्रति निर्देश होगा। तदनुसार, गवर्नर-जनरल ने संविधान (पहली तथा

चौथी अनुसूचियों का संशोधन) आदेश, 1950 नामक आदेश दिया जिसमें चौथी अनुसूची में अन्य बातों के साथ निम्नलिखित संशोधन किए गए थे:

(क) अनुसूची के भाग क में, "संयुक्त प्रांत" का नाम बदल कर "उत्तर प्रदेश" कर दिया गया;

(ख) भाग ख में "विन्ध्य प्रदेश" से संबंधित प्रविष्टि का लोप कर दिया गया (जिससे उस भाग के अंतर्गत कुल योग 53 से घटकर 49 हो गया);

(ग) भाग ग में (1) "कूच बिहार" से संबंधित प्रविष्टि का लोप कर दिया गया; और (2) "विन्ध्य प्रदेश" से संबंधित प्रविष्टि अंत:स्थापित की गई (जिससे उस भाग के अंतर्गत कुल योग 7 से बढ़कर 10 हो गया); और

(घ) सारिणी के अंत में कुल संख्या 205 से घटकर 204 हो गई।[15]

इस प्रकार जब 26 जनवरी, 1950 को संविधान प्रवृत्त हुआ तब राज्य सभा 216 सदस्यों से मिलकर बननी थी जिनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित किए जाने थे और शेष 204 सदस्य राज्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए निर्वाचित होने थे।

राज्य सभा – प्रारंभिक गठन

अंत:कालीन संसद् ने संविधान के अनुच्छेद 379 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (1951 का 43) को अधिनियमित किया जिसका उद्देश्य अन्य बातों के साथ संसद् के दो सदनों का और राज्य विधानमंडलों का यथोचित रूप से गठन करना और उनके लिए निर्वाचन कराना था।

तत्कालीन अनुच्छेद 80(4) में उपबंध किया गया था कि भाग क या भाग ख राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य राज्य सभा में अपने-अपने राज्यों के प्रतिनिधियों को निर्वाचित करेंगे जबकि अनुच्छेद 80(5) के द्वारा संसद् को शक्ति दी गई थी कि वह विधि द्वारा यह विहित करेगी कि भाग (ग) के राज्यों द्वारा राज्य सभा में अपने प्रतिनिधियों को किस रीति से चुना जाएगा। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 (धारा 27क से 27ट) ने इस प्रयोजन के लिए भाग (ग) के प्रत्येक राज्य के लिए निर्वाचक-मंडल का सृजन किया। इस अधिनियम द्वारा यह भी नियत किया गया कि जहां पर विधान सभा है वहां उसके सदस्यों से मिलकर निर्वाचक-मंडल बनेगा। भाग (ग) राज्य शासन अधिनियम, 1951 (1951 का 49) में अजमेर, भोपाल, कुर्ग, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश और विन्ध्य प्रदेश के भाग (ग) राज्यों की विधान सभाओं के गठन का उपबंध किया गया। अत: इन विधान सभाओं के सदस्य राज्य सभा में अपने प्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिए निर्वाचकगण बने। जहां तक भाग (ग) के बाकी तीन राज्यों अर्थात् कच्छ, मणिपुर और त्रिपुरा का संबंध था, वहां कोई विधान सभाएं नहीं थीं। अत: राज्य सभा में उन्हें आवंटित किए गए स्थानों को भरने के प्रयोजन से 1950 के अधिनियम में अधिनियम की धारा 27ग के अधीन दिए गए एक आदेश द्वारा राज्य क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्र से वयस्क मताधिकार द्वारा प्रत्येक के लिए 30 सदस्यों के निर्वाचक-मंडल के गठन का उपबंध किया गया।

दिसंबर, 1951 और जनवरी, 1952 के दौरान लोक सभा और विभिन्न राज्य विधान सभाओं आदि के लिए निर्वाचन हुए।

4 मार्च, 1952 को सभी विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों और कच्छ तथा त्रिपुरा के निर्वाचक-मंडलों से कहा गया कि वे राज्य सभा के लिए प्रतिनिधियों को निर्वाचित करें। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, राज्यों के समूहों के लिए दो स्थानों का आवंटन किया गया था ¬ एक स्थान अजमेर और कुर्ग और एक स्थान मणिपुर और त्रिपुरा से बने हुए समूह के लिए था। प्रारंभिक गठन के समय अजमेर-कुर्ग समूह के लिए आवंटित स्थान अजमेर द्वारा भरा गया और मणिपुर-त्रिपुरा समूह का स्थान त्रिपुरा द्वारा भरा गया। राज्य सभा के लिए निर्वाचन के विभिन्न चरणों की तारीखें इस प्रकार थीं:

(क) 13 मार्च, 1952 ¬ नामनिर्देशन करने की अन्तिम तारीख;

(ख) 14 मार्च, 1952 ¬ नामनिर्देशन की जांच की अन्तिम तारीख;

(ग) 17 मार्च, 1952 ¬ उम्मीदवारी वापस लेने की अन्तिम तारीख;

(घ) 27 मार्च, 1952 ¬ निर्वाचन कराने की तारीख; और

(ङ) 1 अप्रैल, 1952 ¬ तारीख जिसके पूर्व निर्वाचन पूरे कराए जाने थे।[16]

उपरोक्त समय-सूची के अनुसार मार्च, 1952 के अंत तक आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचन कराए गए और पूरे किए गए।[17]

राज्य सरकार की सिफारिश पर जम्मू और कश्मीर के चार प्रतिनिधियों को राष्ट्रपति द्वारा चुना गया, जैसाकि संविधान (जम्मू और कश्मीर पर लागू होना) आदेश, 1950 (संविधान आदेश 10) द्वारा अपेक्षित था। वास्तविक व्यवहार में राज्य सरकार ने राष्ट्रपति द्वारा चुने जाने वाले व्यक्तियों के नामों की सिफारिश करने में उस राज्य की संविधान सभा के सर्वसम्मत संकल्प को कार्यान्वित किया।[18]

संविधान (जम्मू और कश्मीर पर लागू होना) आदेश, 1954, तारीख 14 मई, 1954 के अनुसार जम्मू और कश्मीर राज्य से राज्य सभा में होने वाली सभी भावी रिक्तियों को जम्मू और कश्मीर विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा भरा जाना था। इस प्रकार का पहला निर्वाचन नवम्बर, 1954 में हुआ।[19]

स्थानों को भरने के लिए निर्वाचनों में निर्वाचित उम्मीदवारों के नामों का उल्लेख करने वाली घोषणाएं लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 67 के अधीन 31 मार्च, 1952 को प्रकाशित की गईं। संविधान के अनुच्छेद 80 के अधीन भाग (क) और भाग (ख) राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों, भाग (ग) राज्यों के निर्वाचक-मंडल के सदस्यों द्वारा निर्वाचित सदस्यों, जम्मू-कश्मीर के नामनिर्देशित सदस्यों और राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित 12 सदस्यों के नामों को उक्त अधिनियम की धारा 71 के अधीन 3 अप्रैल, 1952 को प्रकाशित किया गया।[20] इस प्रकार संविधान के अधीन, उस दिन राज्य सभा का प्रारंभ में गठन हुआ।

चौथी अनुसूची (1956 में यथासंशोधित)

चौथी अनुसूची का संशोधन आन्ध्र राज्य अधिनियम, 1953, राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 और बिहार तथा पश्चिमी बंगाल (राज्यक्षेत्रों का अंतरण) अधिनियम, 1956 द्वारा किया गया।

यथासंशोधित अनुसूची को संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 के अधीन निम्नलिखित अनुसूची के द्वारा पूर्ण रूप से प्रतिस्थापित कर दिया गया।[21] राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के बीच स्थानों का नया आवंटन इस प्रकार था:

	राज्य और संघ राज्य क्षेत्र	**स्थानों का आवंटन**
1.	आन्ध्र प्रदेश	18
2.	असम	7
3.	बिहार	22
4.	बम्बई	27
5.	केरल	9
6.	मध्य प्रदेश	16
7.	मद्रास	17
8.	मैसूर	12
9.	उड़ीसा	10
10.	पंजाब	11
11.	राजस्थान	10
12.	उत्तर प्रदेश	34
13.	पश्चिमी बंगाल	16
14.	जम्मू और कश्मीर	4
15.	दिल्ली	3
16.	हिमाचल प्रदेश	2
17.	मणिपुर	1
18.	त्रिपुरा	1
	योग	**220**

संरचना में परिवर्तन

राज्यों के पुनर्गठन और नए राज्यों के बनाए जाने के परिणामस्वरूप राज्य सभा में राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों को आवंटित किए गए निर्वाचन वाले स्थानों में 1952 से समय-समय पर वृद्धि हुई है जैसाकि अगले पृष्ठ पर दर्शाया गया है:

सारणी – 1

वर्ष		निर्वाचन वाले स्थानों की कुल संख्या
1952	जैसाकि संविधान में प्रारंभ में उपबंध किया गया था।	204
1954	आन्ध्र राज्य अधिनियम, 1953 (1953 का 30), धारा 6 के द्वारा तीन स्थानों की वृद्धि।	207
1956	तेरह स्थानों की वृद्धि, जैसाकि नीचे दर्शाया गया है:	220
	(क) राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 (1956 का 37), धारा 23 के अधीन राज्यों के पुनर्गठन के कारण एक स्थान।	
	(ख) बिहार तथा पश्चिमी बंगाल (राज्यक्षेत्रों का अन्तरण), अधिनियम, 1956 (1956 का 40), धारा 5 के द्वारा तीन स्थान।	
	(ग) संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956, धारा 3 के द्वारा नौ स्थान; असम, उड़ीसा और हिमाचल प्रदेश को एक-एक अतिरिक्त स्थान दिया गया; उत्तर प्रदेश और दिल्ली को क्रमश: तीन और दो अतिरिक्त स्थान दिए गए; मणिपुर और त्रिपुरा दोनों के लिए पहले जो एक स्थान दिया गया था उसके बजाय दोनों को एक-एक स्थान दिया गया।	
1960	चार स्थानों की वृद्धि ¬ आन्ध्र प्रदेश और मद्रास (सीमा-परिवर्तन) अधिनियम, 1959 (1959 का 56), धारा 8 के द्वारा मद्रास को एक स्थान और बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 (1960 का 11), धारा 6 के द्वारा महाराष्ट्र और गुजरात के लिए परस्पर तीन स्थान।	224
1964	दो स्थानों की वृद्धि ¬ नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962 (1962 का 27), धारा 6 द्वारा नागालैंड के लिए एक स्थान और संविधान (चौदहवां संशोधन) अधिनियम, 1962, धारा 6 द्वारा पांडिचेरी के लिए एक स्थान।	226
1966	पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 (1966 का 31), धारा 9 के द्वारा पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश के लिए परस्पर दो स्थानों की वृद्धि।	228

वर्ष		**निर्वाचन वाले स्थानों की कुल संख्या**
1972	तीन स्थानों की वृद्धि ¬ पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971 (1971 का 81), धारा 10 द्वारा मेघालय, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश के लिए एक-एक स्थान।	231
1976	संविधान (छत्तीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975, धारा 4 द्वारा एक स्थान (सिक्किम को आवंटित) की वृद्धि।	232
1987	गोआ, दमण और दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987 (1987 का 18), धारा 6 द्वारा एक स्थान (गोआ को आवंटित) की वृद्धि।	233

स्थानों का वर्तमान आवंटन

संविधान में राज्य सभा की अधिकतम सदस्यता 250 निर्धारित की गई। किन्तु इस समय सदस्य संख्या 245 है जिसमें से राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों के प्रतिनिधियों की संख्या 233 है और 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित हैं। इस समय संविधान की चौथी अनुसूची में राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के प्रतिनिधियों द्वारा भरे जाने वाले स्थानों का आवंटन इस प्रकार है:

सारणी – 2

क्र. सं.	**राज्य और संघ राज्यक्षेत्र**	**सदस्यों की संख्या**
1.	आन्ध्र प्रदेश	11 [22]
2.	अरुणाचल प्रदेश	1
3.	असम	7
4.	बिहार	16 [23]
5.	छत्तीसगढ़[24]	5
6.	गोवा	1
7.	गुजरात	11
8.	हरियाणा	5
9.	हिमाचल प्रदेश	3
10.	जम्मू और कश्मीर	4
11.	झारखंड[24]	6
12.	कर्नाटक	12
13.	केरल	9

क्र. सं.	राज्य और संघ राज्यक्षेत्र	सदस्यों की संख्या
14.	मध्य प्रदेश	11[23]
15.	महाराष्ट्र	19
16.	मणिपुर	1
17.	मेघालय	1
18.	मिजोरम	1
19.	नागालैंड	1
20.	ओडिशा[25]	10
21.	पंजाब	7
22.	राजस्थान	10
23.	सिक्किम	1
24.	तमिलनाडु	18
25.	तेलंगाना[26]	7
26.	त्रिपुरा	1
27.	उत्तराखंड[24]	3
28.	उत्तर प्रदेश	31[23]
29.	पश्चिमी बंगाल	16
	संघ राज्यक्षेत्र	
30.	दिल्ली	3
31.	पुदुचेरी[27]	1
	कुल योग	**233**

टिप्पणियां और संदर्भ

1. अनुच्छेद 79
2. हाउस ऑफ द पीपल वाद-विवाद, 14.5.1954, कालम 7388-89
3. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.8.1954, कालम 36-37
4. -वही-
5. अनुच्छेद 80(1)
6. -वही- 80(3)
7. -वही- 80(2)
8. -वही- 80(4)
9. -वही- 80(5)
10. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950, धारा 27क(1)

11. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950, धारा 27क(3) दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 (1992 का 1) की धारा 55 द्वारा यथासंशोधित
12. -वही- धारा 27क(4)
13. बी. शिवा राव, फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज़ कॉन्स्टीट्यूशन—ए स्टडी (1968), पृष्ठ 422
14. संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956, धारा 29 और अनुसूची द्वारा निरसित
15. असाधारण राजपत्र, 25.1.1950, अधिसूचना सं. सं.आ.3
16. देखिए, रिपोर्ट ऑन दि फर्स्ट जनरल इलेक्शन्स इन इंडिया, 1951-52, खंड-I, पृष्ठ107
17. 1952 में राज्य सभा निर्वाचनों में विभिन्न उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त किए गए प्रथम अधिमान मतों की संख्या के ब्यौरे के लिए देखिये, रिपोर्ट ऑन दि फर्स्ट जनरल इलेक्शन्स इन इंडिया, 1951-52, खंड-II, पृष्ठ 170-79
18. रिपोर्ट ऑन दि फर्स्ट जनरल इलेक्शन्स इन इंडिया, 1951-52, खंड-I, पृष्ठ 149
19. -वही- पृष्ठ.14
20. विधि मंत्रालय अधिसूचना सं.च. 24(4)/52-ग, 31.3.1952 और 10(15)/52-ग, 3.4.1952, उस तिथि का असाधारण राजपत्र [I(i)]
21. संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 धारा 3
22. देखिए, आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 के भाग III की धारा 12(क)
23. देखिए, बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 7; मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 7 और उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 7
24. मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000; बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 तथा उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 के द्वारा क्रमश: तीन राज्यों अर्थात् छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तरांचल का सृजन किया गया है। तदनन्तर, उत्तरांचल (नाम-परिवर्तन) अधिनियम, 2006 द्वारा इस राज्य के नाम को परिवर्तित कर "उत्तराखंड" किया गया
25. उड़ीसा (नाम-परिवर्तन) अधिनियम, 2011 द्वारा राज्य के नाम को परिवर्तित कर "ओडिशा" किया गया
26. तेलंगाना राज्य का सृजन आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 द्वारा किया गया है (अधिनियम के भाग II की धारा 3)
27. पांडिचेरी (नाम-परिवर्तन) अधिनियम, 2006 द्वारा इस संघ राज्यक्षेत्र के नाम को परिवर्तित कर "पुदुचेरी" किया गया

अध्याय-3

राज्य सभा की सदस्यता

अर्हताएं

संविधान का अनुच्छेद 84 संसद् की सदस्यता के लिए अर्हताएं निर्धारित करता है। न्यूनतम आयु और प्रतिनिधित्व संबंधी अर्हताओं के अलावा ये अर्हताएं दोनों सभाओं के लिए समान हैं। राज्य सभा का सदस्य होने के लिए किसी व्यक्ति के पास निम्नलिखित अर्हताएं होनी चाहिए:

(क) वह भारत का नागरिक हो और निर्वाचन आयोग द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष संविधान की तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए निम्नलिखित प्ररूप के अनुसार शपथ ले या प्रतिज्ञान करे और उस पर हस्ताक्षर करे:

"मैं, अमुक, जो राज्य सभा में स्थान भरने के लिए अभ्यर्थी के रूप में नामनिर्देशित हुआ हूं, ईश्वर की शपथ लेता हूं/सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा और मैं भारत की प्रभुता और अखंडता अक्षुण्ण रखूंगा।"[1]

निर्वाचन आयोग ने निम्नलिखित व्यक्तियों को ऐसे व्यक्तियों के रूप में प्राधिकृत किया है जिनके समक्ष राज्य सभा के लिए निर्वाचन हेतु कोई अभ्यर्थी शपथ ले सकेगा या प्रतिज्ञान कर सकेगा और उस पर हस्ताक्षर कर सकेगा:

(i) संबंधित निर्वाचन अधिकारी/सहायक निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर/असिस्टेंट रिटर्निंग ऑफिसर);

(ii) सभी वैतनिक प्रेजीडेंसी/प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट;

(iii) सभी जिला न्यायाधीश और किसी राज्य की न्यायिक सेवा के अन्य सभी व्यक्ति;

(iv) जेल अधीक्षक (जहां कोई उम्मीदवार जेल में हो);

(v) नजरबंदी शिविर का कमांडेंट (जहां कोई उम्मीदवार निवारक नजरबंदी के अधीन हो);

(vi) किसी अस्पताल का चिकित्सा अधीक्षक या संबंधित चिकित्सा व्यवसायी (जहां उम्मीदवार बिस्तर से न उठ सकता हो या बीमार हो);

(vii) भारत का राजनयिक या कौंसलीय प्रतिनिधि या उसके द्वारा प्राधिकृत कोई व्यक्ति (जहां उम्मीदवार भारत के बाहर हो); और

(viii) निर्वाचन आयोग के समक्ष इस संबंध में आवेदन किए जाने पर उसके द्वारा नामनिर्देशित कोई व्यक्ति (जहां कोई उम्मीदवार किसी अन्य कारण से संबंधित चुनाव अधिकारी/सहायक चुनाव अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने में असमर्थ हो या उसे ऐसा करने के लिए रोका गया हो)।[2]

(ख) उसकी आयु तीस वर्ष से कम नहीं होगी (नामनिर्देशन की छानबीन करने की तारीख को)।[3]

(ग) उसके पास ऐसी अन्य अर्हताएं होंगी जिन्हें इस संबंध में संसद् द्वारा या उसके द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन विहित किया जाए।[4]

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (1951 का 43) एक और अर्हता निर्धारित करता है कि कोई व्यक्ति जब तक भारत में किसी संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र के लिए निर्वाचक नहीं होगा, तब तक वह राज्य सभा में उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र का प्रतिनिधि चुने जाने के लिए योग्य नहीं होगा।[5] लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 (1950 का 43) किसी निर्वाचन-क्षेत्र के लिए निर्वाचक नामावली में पंजीकरण की शर्तें निर्धारित करता है अर्थात् कोई व्यक्ति अर्हता की तारीख को अठारह वर्ष से कम आयु का नहीं होना चाहिए और सामान्यत: उसे एक निर्वाचन-क्षेत्र का निवासी होना चाहिए।[6]

निरर्हताएं

संवैधानिक उपबंध

संसद् के किसी भी सदन की सदस्यता के लिए निरर्हताओं का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 102 में इस प्रकार किया गया है:

(1) कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए अयोग्य होगा¬

(क) यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर जिसको धारण करने वाले का अयोग्य न होना संसद् ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है;

(ख) यदि वह विकृतचित्त है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है;

(ग) यदि वह अनुन्मोचित दिवालिया है;

(घ) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है या उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या अनुषक्ति को अभिस्वीकार किए हुए है; और

(ङ) यदि वह संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा उसके अधीन इस प्रकार अयोग्य कर दिया जाता है।

स्पष्टीकरण — इस खंड के प्रयोजनों के लिए, कोई व्यक्ति केवल इस कारण भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का या ऐसे राज्य का मंत्री है।

(2) कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य होने के लिए अयोग्य होगा यदि वह दसवीं अनुसूची के अधीन इस प्रकार अयोग्य हो जाता है।

'लाभ के पद' शब्दों का प्रयोग

अनुच्छेद 102 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'सरकार के अधीन लाभ का पद' शब्दों की परिभाषा संविधान में या संसद के किसी अन्य कानून में नहीं दी गई है। अत: उसके विस्तार और परिधि का निर्धारण न्यायालयों और अन्य सक्षम प्राधिकरणों द्वारा समय-समय पर दिए गए फैसलों से होता है।[7]

"यद्यपि संसद् द्वारा अनुच्छेद 102(1)(क) के उपबंधों के मद्देनजर कतिपय अधिनियमितियां पारित की गई हैं, किंतु व्यापक स्तर पर यह महसूस किया गया कि कोई भी अधिनियम वस्तु-स्थिति की आवश्यकताओं को पूर्णत: पूरा नहीं करते हैं। इस पृष्ठ भूमि में और संसद् सदस्यों के अभ्यावेदनों के अनुसरण में श्री जी. वी. मावलंकर, अध्यक्ष, लोक सभा ने राज्य सभा के सभापति के परामर्श से 21 अगस्त, 1954 को पंडित ठाकुर दास भार्गव की अध्यक्षता में सदस्यों की निरर्हता से संबंधित विभिन्न मामलों का अध्ययन करने और इससे संबंधित सिफारिशें करने के लिए लाभ के पद संबंधी समिति का गठन किया गया ताकि सरकार ऐसे पहलुओं पर विचार-विमर्श कर सके जिनके आधार पर सभा के समक्ष एक व्यापक कानून लाया जा सके; और तथ्य, आंकड़े संग्रहीत कर सके तथा ऐसे सुझाव दे सके कि इस मामले का निराकरण किस प्रकार किया जाए।

भार्गव समिति की सिफारिशों के अनुसरण में सरकार ने 5 दिसंबर, 1957 को लोक सभा में संसद् (निरर्हता निवारण) विधेयक उपस्थित किया। इसे सभाओं की संयुक्त समिति को सौंप दिया गया, जिसने अपना प्रतिवेदन 10 सितम्बर, 1958 को लोक सभा में प्रस्तुत किया। विधेयक को, संसद् द्वारा और संशोधित तथा पारित रूप में, 4 अप्रैल, 1959 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हो गई।"[8]

लाभ के पद संबंधी संयुक्त समिति

लाभ के पदों संबंधी सभाओं की जो संयुक्त समिति गठित की गई है, वह अन्य बातों के साथ, उन सभी समितियों की संरचना और स्वरूप की जांच करती है, जिनकी सदस्यता संविधान के अनुच्छेद 102 के अधीन किसी व्यक्ति को संसद्-सदस्य के रूप में चुने जाने या संसद्-सदस्य होने के लिए अयोग्य कर सकती है तथा यह संयुक्त समिति 'लाभ का पद' संबंधी सभी मामलों की जांच करती है। वह समिति इस बात का निर्धारण करने के लिए कि क्या किसी पद के कारण उसके धारक को संसद्-सदस्य चुने जाने या संसद सदस्य होने के लिए अयोग्य किया जाए या नहीं, सामान्यत: निम्नलिखित मानदंडों का अनुसरण करती है:

(i) क्या सरकार पद पर नियुक्त किए जाने और उससे हटाए जाने पर और पद के कार्य-निष्पादन और कृत्यों पर नियंत्रण रखती है;

(ii) क्या धारक संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 2(क) में यथा-परिभाषित 'प्रतिपूरक भत्ते' के अतिरिक्त और कोई पारिश्रमिक लेता है;

(iii) क्या वह निकाय, जिसमें कोई पद धारण किया जाता है, कार्यपालक, विधायी या न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है या निधियों के वितरण, भूमि के आवंटन, लाइसेंसों को

जारी करने आदि की शक्तियां प्रदान करता है या नियुक्ति, छात्रवृत्तियां प्रदान करने आदि के संबंध में शक्तियां देता है; और

(iv) क्या वह निकाय, जिसमें कोई पद धारण किया जाता है, धारक को प्रश्रय देने के रूप में प्रभाव या शक्ति का इस्तेमाल करने का सामर्थ्य प्रदान करता है।

यदि उपरोक्त मानदंडों में से किसी का भी उत्तर "हां" हो तो संबंधित पद का धारक अयोग्य हो जाता है।[9]

लाभ के पद के संबंध में सांविधिक अपवाद

(i) *संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959*

यद्यपि कोई पद लाभ का पद हो सकता है तथापि संसद् यह घोषित कर सकती है कि उसका धारक अयोग्य नहीं होगा। संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 में उन पदों का उल्लेख है जिनके धारक संसद् की सदस्यता के लिए अयोग्य नहीं होते। इस अधिनियम में 1993, 1999, 2000, 2006 तथा 2013 में संशोधन किए गए। संक्षेप में, अधिनियम में यह उपबंध किया गया है कि यदि किसी सांविधिक/असांविधिक निकाय/कंपनी (अधिनियम की अनुसूची में जिनका विनिर्देश किया गया है उन्हें छोड़कर) का सदस्य/निदेशक प्रतिपूरक भत्ते के अतिरिक्त किसी अन्य पारिश्रमिक का हकदार नहीं है तो वह अयोग्य नहीं होगा। 'प्रतिपूरक भत्ते' की परिभाषा है: वह धनराशि जो किसी पद के धारक को दैनिक भत्ते के रूप में दी जाती है और जो संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के अधीन किसी संसद्-सदस्य को प्राप्त दैनिक भत्ते से अधिक नहीं होती, और उसके द्वारा इस लाभ के पद के कृत्यों के निर्वहन के लिए किए गए व्यय की प्रतिपूर्ति हेतु कोई वाहन भत्ता, मकान किराया भत्ता या यात्रा भत्ता। अधिनियम में विनिर्दिष्ट रूप से निम्नलिखित व्यक्तियों द्वारा धारित पदों को अपवर्जित किया गया है: (क) संघ या किसी राज्य का मंत्री या उप मंत्री, चाहे वह पदेन हो या नाम से; (ख) संसद् में विपक्ष का नेता; (ग) योजना आयोग का उपाध्यक्ष; (घ) संसद् में मुख्य सचेतक/उप-मुख्य सचेतक, सचेतक या संसदीय सचिव; (ङ) किसी मान्यताप्राप्त दल और संसद् के किसी भी सदन में मान्यताप्राप्त समूह का नेता या उपनेता; (च) राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग तथा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग का अध्यक्ष; (छ) नेशनल केडेट कोर, प्रादेशिक सेना या आरक्षित तथा सहायक वायु सेना या होम गार्ड का सदस्य; (ज) बंबई, कलकत्ता या मद्रास का शेरिफ; (झ) किसी विश्वविद्यालय या विश्वविद्यालय से संबंधित किसी निकाय के सिंडीकेट, सीनेट, कार्यपालक समिति, परिषद् या सभा (कोर्ट) का अध्यक्ष या सदस्य; (ञ) सरकार द्वारा किसी विशेष प्रयोजन के लिए भारत के बाहर भेजे गए किसी शिष्टमंडल या मिशन का सदस्य; (ट) किसी ऐसी समिति का अध्यक्ष या सदस्य जो लोक महत्व के किसी विषय पर सरकार को सलाह देने के लिए अस्थायी रूप से गठित की गई हो; (ठ) मंत्रिमंडल सचिवालय में भारत सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय सलाहकार परिषद का अध्यक्ष; (ड) तालिका में विनिर्दिष्ट किसी सांविधिक या असांविधिक निकाय में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव या सदस्य (चाहे जिस नाम से जाना जाता हो); (ढ) किसी सार्वजनिक या निजी न्यास, जो अनुसूची में विनिर्दिष्ट निकाय नहीं है, का अध्यक्ष या न्यासी (चाहे जिस नाम से जाना जाता हो); (ण) सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के

अधीन या सोसायटियों के रजिस्ट्रीकरण से संबंधित किसी अन्य कानून के अधीन पंजीकृत किसी सोसायटी के शासी निकाय, जो अनुसूची में विनिर्दिष्ट निकाय नहीं है, का चेयरमैन, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या प्रधान सचिव या सचिव; तथा (त) गांवों के राजस्व अधिकारी जो भू-राजस्व एकत्र करते हैं और एकत्र राशि में से अंश या कमीशन प्राप्त करते हैं।

संसद् अपने विवेकानुसार ऐसा कानून अधिनियमित करने में सक्षम है जिससे भूतलक्षी प्रभाव से निरर्हता समाप्त हो जाती है[10] या कोई पद निरर्हता से मुक्त हो जाता है।[11]

(ii) *अन्य संविधियां*

उपरोक्त पदों के अलावा, विशिष्ट अधिनियमों में घोषणात्मक खंडों के द्वारा इस आशय के ऐसे विशिष्ट उपबंध भी किए जाते हैं कि उनके अधीन सृजित पद निरर्हता के प्रयोजन के लिए "लाभ के पद" नहीं समझे जाएंगे। ऐसे घोषणात्मक खंडों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित अधिनियमों में मिलते हैं:

(क) कॉफी अधिनियम, 1942,[12] रबड़ अधिनियम, 1947,[13] चाय अधिनियम, 1953,[14] तम्बाकू बोर्ड अधिनियम, 1975,[15] मसाला बोर्ड अधिनियम, 1986[16] में घोषणा की गई है कि संबंधित अधिनियमों के अधीन गठित बोर्ड के सदस्य का पद उसके धारक को संसद् का सदस्य चुने जाने या सदस्य होने के लिए अयोग्य नहीं करेगा।

(ख) वक्फ अधिनियम, 1995 घोषित करता है कि किसी वक्फ बोर्ड के अध्यक्ष अथवा सदस्यों के पद धारक संसद्-सदस्य चुने जाने या संसद्-सदस्य होने के लिए अयोग्य नहीं किए जाएंगे और कभी भी अयोग्य नहीं समझे जाएंगे।[17]

(ग) प्रेस परिषद् अधिनियम, 1978 घोषित करता है कि उस अधिनियम के अधीन गठित परिषद् के सदस्य का पद उसके धारक को संसद् के किसी सदन का सदस्य चुने जाने या सदस्य होने के लिए अयोग्य नहीं करेगा।[18]

अतिरिक्त सांविधिक निरर्हताएं

अनुच्छेद 102(1) का उपखंड (क) संसद् को यह घोषित करने की शक्ति प्रदान करता है कि कतिपय पद, जो लाभ के पद हैं, उनके धारक को संसद् की सदस्यता के लिए अयोग्य नहीं करेंगे किंतु उसके उप-खंड (ङ) के द्वारा संसद् को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह अन्य विधि के माध्यम से उप-खंड (क) से (घ) में विनिर्दिष्ट निरर्हताओं से भिन्न निरर्हताओं के आधार को बताए। निर्वाचन विधि में कतिपय अन्य निरर्हताओं का उल्लेख किया है। मोटे तौर पर ये इस प्रकार हैं:

(i) भारतीय दंड संहिता, 1860 और सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 की कतिपय धाराओं, सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 (धारा 11), विधि-विरुद्ध गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1967 (उपधारा 10-12), विदेशी मुद्रा (विनियमन) अधिनियम, 1973, स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985, आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 (धारा 3), धार्मिक संस्था (दुरुपयोग निवारण) अधिनियम,

1988 (धारा 7), लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 [उपधारा 125, 135, 135क, और 136(2)(क)], पूजा स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1991 (धारा 6) अथवा राष्ट्र गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971 (उपधारा 2 और 3) के अधीन दंडनीय किसी अपराध का सिद्धदोष व्यक्ति दोषसिद्धि की तारीख से छह वर्ष की कालावधि के लिए अयोग्य होगा।[19]

(ii) जमाखोरी और मुनाफाखोरी या खाद्य या औषधियों के अपमिश्रण के निवारण या दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 या सती कराना (निवारण) अधिनियम, 1987 के बारे में उपबंध करने वाली किसी विधि के उल्लंघन के लिए, सिद्धदोष ठहराए गए और छह मास से अन्यून कारावास से दंडित व्यक्ति ऐसी दोषसिद्धि की तारीख से अयोग्य होगा और अपनी रिहाई से छह वर्ष की अतिरिक्त कालावधि के लिए अयोग्य बना रहेगा।[20]

(iii) उपरोक्त अपराधों के अतिरिक्त किसी अन्य अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए और दो वर्ष से अन्यून कारावास से दंडित व्यक्ति ऐसी दोषसिद्धि की तारीख से और अपनी रिहाई से छह वर्ष की अतिरिक्त कालावधि के लिए अयोग्य होगा।[21]

यदि इस प्रकार सिद्धदोष ठहराया गया व्यक्ति संसद्-सदस्य/विधान सभा/विधान परिषद का सदस्य है, तो उसकी निरर्हता सिद्धदोष ठहराए जाने की तारीख से प्रभावी होगी।[22] उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री रशीद मसूद को केन्द्रीय जांच ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश द्वारा भ्रष्टाचार के एक मामले में सिद्धदोष ठहराए जाने पर दिनांक 19 सितंबर, 2013 से अर्थात् सिद्धदोष ठहराए जाने की तिथि से राज्य सभा की सदस्यता से निरर्ह कर दिया गया था।[23] इसी प्रकार, लोक सभा के सदस्य श्री लालू प्रसाद और श्री जगदीश शर्मा को केन्द्रीय जांच ब्यूरो द्वारा सिद्धदोष ठहराए जाने पर 30 सितंबर, 2013 से अर्थात सिद्धदोष ठहराए जाने की तारीख से लोक सभा की सदस्यता से निरर्ह कर दिया गया था।[24] तमिलनाडु राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री टी. एम. सेल्वागणपति को सी.बी.आई. कोर्ट के विशेष न्यायाधीश द्वारा भ्रष्टाचार के एक मामले में सिद्धदोष ठहराए जाने पर दिनांक 17 अप्रैल, 2014 से अर्थात् सिद्धदोष ठहराए जाने की तारीख से राज्य सभा की सदस्यता से निरर्ह कर दिया गया था।[25]

(iv) निर्वाचन विधि के संगत उपबंधों के अधीन भ्रष्ट आचरण का दोषी व्यक्ति, यदि राष्ट्रपति ऐसा विनिश्चय करे, ऐसी अवधि के लिए अयोग्य हो जाएगा जिसे राष्ट्रपति निर्धारित करे किन्तु यह कालावधि आदेश की तारीख से छह वर्ष से अधिक नहीं होगी।[26]

(v) वह व्यक्ति जो भारत सरकार के अधीन या किसी राज्य सरकार के अधीन पद धारण करते हुए भ्रष्टाचार के कारण या राज्य के प्रति निष्ठाहीनता के कारण पदच्युत किया गया है, ऐसी पदच्युति की तारीख से पांच वर्ष की कालावधि के लिए अयोग्य होगा।[27]

(vi) ऐसा व्यक्ति जिसने अपने व्यापार या कारोबार के सिलसिले में केन्द्रीय सरकार के साथ वस्तुओं की आपूर्ति के लिए या उस सरकार द्वारा हाथ में लिए गए संकर्मों के निष्पादन के लिए करार किया है, करार के विद्यमान रहने तक अयोग्य रहेगा।[28]

(vii) ऐसा व्यक्ति जो ऐसी कंपनी या निगम (सहकारी सोसाइटी के अलावा) का प्रबंध अभिकर्ता, प्रबंधक या सचिव है जिसकी पूंजी में केन्द्रीय सरकार का पच्चीस प्रतिशत से कम अंश नहीं है, उस पद को धारण करने की अवधि तक अयोग्य रहेगा।[29]

(viii) ऐसा व्यक्ति जिसने बिना किसी अच्छे कारण या औचित्य के अपेक्षित समय के भीतर और अपेक्षित तरीके से चुनाव व्यय का लेखा-जोखा दाखिल नहीं किया है, निर्वाचन आयोग के आदेश की तारीख से तीन वर्ष तक अयोग्य रहेगा।[30]

मणिपुर राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य सभा के एक वर्तमान सदस्य ने 1989 में लोक सभा चुनाव लड़ा था। निर्वाचन आयोग ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 10क के अधीन जारी किए गए दिनांक 8 जुलाई, 1991 के अपने आदेश द्वारा [1989 के लोक सभा आम चुनाव में भीतरी (इनर) मणिपुर संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र से एक उम्मीदवार के रूप में किए गए चुनाव व्यय का लेखा-जोखा दाखिल करने में विफल रहने के कारण] अन्य व्यक्तियों के साथ इस सदस्य को आदेश की तारीख से 3 वर्ष की अवधि के लिए संसद् के किसी सदन या किसी राज्य के विधान-मंडल के सदस्य के रूप में चुने जाने या सदस्य होने के लिए अयोग्य कर दिया। इसके बाद सदस्य ने अधिनियम की धारा 11 के अधीन निरर्हता रद्द किए जाने या वैकल्पिक रूप से धारा 10क के अधीन निरर्हता के निराकरण के लिए याचिका दाखिल की। आयोग ने तारीख 20 सितम्बर, 1991 के अपने आदेश द्वारा याचिका को अस्वीकार कर दिया। सदस्य ने निर्वाचन आयोग के आदेश के विरुद्ध दिल्ली उच्च न्यायालय में समावेदन किया। उच्च न्यायालय ने 18 नवम्बर, 1991 के अपने आदेश द्वारा निर्वाचन आयोग के आदेश के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी। बाद में सदस्य ने याचिका वापस ले ली और आयोग का मूल आदेश प्रभावी हो गया।[31]

निरर्हता के संबंध में निर्णय

यदि किसी संसद्-सदस्य के निरर्ह हो जाने का प्रश्न उठता है या संसद् के किसी सदन के लिए हुए निर्वाचन में भ्रष्ट आचरण के आधार पर निरर्हता का ऐसा प्रश्न उठता है जिसमें ऐसी निरर्हता का हटाया जाना या कम किया जाना भी शामिल है तो ऐसे प्रश्न राष्ट्रपति को उसके निर्णय के लिए निर्देशित किए जाते हैं, जिसका निर्णय इन मामलों में अंतिम होता है। किन्तु राष्ट्रपति द्वारा ऐसे प्रश्न पर निर्णय देने के पहले उसके लिए निर्वाचन आयोग की राय लेना और ऐसी राय के अनुसार कार्य करना अपेक्षित है। अनुच्छेद 103 के अधीन किसी सदस्य की निरर्हता का जो प्रश्न राष्ट्रपति को भेजा जाता है वह निर्वाचन के बाद की निरर्हता अर्थात् किसी सदस्य के संसद् के लिए निर्वाचित होने के बाद हुई निरर्हता पर आधारित होना चाहिये।[32]

दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता

संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 के द्वारा अनुच्छेद 102 में खंड (2) जोड़ा गया। अधिनियम द्वारा संविधान में एक नई अनुसूची (दसवीं अनुसूची) जोड़ी गई जिसमें दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के संबंध में कतिपय उपबंध किए गए हैं। अधिनियम 1 मार्च, 1985 से प्रवृत्त हुआ।[33]

दसवीं अनुसूची के अधीन कोई सदस्य निम्नलिखित परिस्थितियों में सभा का सदस्य होने के लिए अयोग्य हो जाता है:

(i) यदि वह ऐसे किसी राजनैतिक दल का सदस्य है जिसने ऐसे सदस्य के रूप में निर्वाचन

के लिए उसे उम्मीदवार बनाया था और वह स्वेच्छा से उसकी सदस्यता छोड़ देता है; अथवा

(ii) यदि वह अपने राजनैतिक दल या उसके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा जारी निदेशों के विरुद्ध उस दल/व्यक्ति/प्राधिकारी की पूर्व अनुज्ञा के बिना सभा में मतदान करता है या मतदान से विरत रहा है और ऐसे मतदान को या मतदान करने से विरत रहने को ऐसे राजनैतिक दल/व्यक्ति/प्राधिकारी ने मतदान करने या मतदान करने से विरत रहने की तारीख से पन्द्रह दिन के भीतर माफ नहीं किया है;[34] अथवा

(iii) यदि सदन का कोई निर्वाचित सदस्य, जो किसी राजनैतिक दल द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवार के रूप में निर्वाचित नहीं हुआ है, अपने निर्वाचन के बाद किसी राजनैतिक दल का सदस्य हो जाता है;[35] अथवा

(iv) यदि कोई नामनिर्देशित सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने (शपथ लेकर या प्रतिज्ञान करके) की तारीख से छह मास की समाप्ति के पश्चात् किसी राजनैतिक दल में सम्मिलित हो जाता है,[36] यदि वह अपने नामनिर्देशन की तारीख को किसी राजनैतिक दल का सदस्य है तो उसे उसके पश्चात् उस दल का सदस्य समझा जाता है।[37]

अपवाद

किसी राजनैतिक दल के विलय की स्थिति में दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता लागू नहीं होती।[38] तथापि, संबंधित विधान-दल के दो-तिहाई से अन्यून सदस्यों को इस तरह के विलय के लिए सहमत होना चाहिए।[39]

जहां सदन के किसी सदस्य के मूल राजनैतिक दल का किसी अन्य राजनैतिक दल के साथ विलय हो जाता है और सदस्य दावा करता है कि वह और उसके मूल राजनैतिक दल के कोई अन्य सदस्य ऐसे अन्य राजनैतिक दल के या ऐसे विलय से बने नए राजनैतिक दल के सदस्य बन गए हैं तो ऐसी स्थिति में वह अयोग्य नहीं होगा।[40] ऐसी स्थिति में ऐसे विलय के समय से ऐसे अन्य राजनैतिक दल या नए राजनैतिक दल या समूह को उसका राजनैतिक दल समझा जाएगा।[41] किन्तु, सदस्य के मूल राजनैतिक दल का विलय हुआ है यह तभी और केवल तभी समझा जाएगा जब संबंधित विधान-दल के कम से कम दो-तिहाई सदस्य ऐसे विलय के लिए सहमत हो गए हों।[42]

कोई सदस्य जो राज्य सभा का उपसभापति निर्वाचित हुआ है, अयोग्य नहीं होगा यदि वह ऐसे पद पर अपने निर्वाचन के कारण ऐसे राजनैतिक दल की, जिसका वह ऐसे निर्वाचन के ठीक पहले सदस्य था/थी अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देता/देती है और उसके पश्चात् जब तक वह पद धारण किए रहता/रहती है तब तक वह उस राजनैतिक दल में पुनः सम्मिलित नहीं होता/होती है या दूसरे राजनैतिक दल का सदस्य नहीं बनता/बनती है या वह उपसभापति न रह जाने के पश्चात् ऐसे राजनैतिक दल में पुनः सम्मिलित हो जाता/जाती है।[43]

दसवीं अनुसूची के अधीन निरर्हता के संबंध में निर्णय

यदि यह प्रश्न उठता है कि सदन का कोई सदस्य दसवीं अनुसूची के अंतर्गत निरर्ह हो गया है या नहीं तो वह प्रश्न राज्य सभा के सभापति को उसके निर्णय के लिए निर्देशित किया

जाता है और उसका निर्णय अंतिम होता है।[44] इस संबंध में सभी कार्यवाहियों के बारे में यह समझा जाएगा कि वे संविधान के अनुच्छेद 122 के अर्थ में संसद् की कार्यवाहियां हैं[45] और किसी न्यायालय को इस अनुसूची के अधीन सदन के किसी सदस्य की निरर्हता से संबंधित किसी विषय के बारे में अधिकारिता नहीं होगी।[46] तथापि, उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है:

> निरर्हता के लिए एक अतिरिक्त आधार का उपबंध करने और विवादग्रस्त निरर्हताओं के न्याय-निर्णयन के लिए दसवीं अनुसूची कोई ऐसे संवैधानिक क्षेत्र का सृजन नहीं करना चाहती जो न्यायालयों के अधीन नहीं हो। ऐसे विवादों का निपटारा करने के लिए अध्यक्ष या सभापति को जो शक्ति दी गई है वह न्यायिक शक्ति है।
>
> दसवीं अनुसूची का पैरा 6(1) वहां तक विधिमान्य है जहां तक वह अध्यक्षों/सभापतियों के निर्णय को अन्तिमता प्रदान करना चाहता है। किन्तु पैरा 6(1) में सांविधिक अन्तिमता की जो अवधारणा है वह, जहां तक संवैधानिक आदेशों का उल्लंघन, असद्भाव, प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन न करने का और अनौचित्य का संबंध है, संविधान के अनुच्छेद 136, 226 और 227 के अधीन न्यायिक समीक्षा को न तो कम करती है और न रद्द करती है।
>
> दसवीं अनुसूची के पैरा 6(2) में जो 'समझे जाने' संबंधी उपबंध है वह संविधान के अनुच्छेद 122(1) और 212(1) के सदृश उन्मुक्ति प्रदान करता है, जैसाकि कार्यवाहियों की विधिमान्यता को प्रक्रिया संबंधी निरी अनियमितताओं से संरक्षित करने के लिए 1965(1) उच्चतम न्यायालय निर्णय 413 में समझा गया है और स्पष्ट किया गया है। समझे जाने संबंधी उपबंध "यह समझा जाएगा कि वे संसद् की कार्यवाहियां हैं" या "किसी राज्य के विधानमंडल की कार्यवाहियां" शब्दों को देखते हुए कल्पना के दायरे को तदनुसार सीमित कर देता है।
>
> अध्यक्ष/सभापति दसवीं अनुसूची के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए या कृत्यों का निर्वहन करते हुए दसवीं अनुसूची के अधीन अधिकारों और बाध्यताओं का न्याय-निर्णय करने वाले न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करते हैं और इस हैसियत में उनके निर्णयों की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।
>
> पैरा 6 में अन्तिमता के खंड के कारण न्यायिक समीक्षा के सीमित दायरे को देखते हुए और न्याय-निर्णय की शक्ति के धारक अर्थात् अध्यक्ष/सभापति की संवैधानिक व्याख्या और हैसियत को देखते हुए अध्यक्ष/सभापति द्वारा निर्णय किए जाने से पहले की अवस्था में न्यायिक समीक्षा उपलब्ध नहीं हो सकती और किसी आशंका के होने के आधार पर उस आशंका को रोकने की कार्यवाही करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। कार्यवाहियों की अंतर्वर्ती अवस्था में भी हस्तक्षेप की अनुमति नहीं दी जा सकती। तथापि, कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान जिन मामलों में निरर्हता या निलंबन लागू किया जाता है उन मामलों के संबंध में अपवाद करना होगा और ऐसी निरर्हता या निलंबन के गंभीर, तात्कालिक और न पलटे जा सकने वाले प्रभाव और परिणाम होने की संभावना है।
>
> यह दावा करना अनुचित होगा कि दसवीं अनुसूची में अध्यक्ष या सभापति द्वारा निर्धारण करने की अधिकारिता न्यायिक शक्ति नहीं है और ऐसे विधायी क्षेत्र के भीतर है जिसके बारे में न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता। वास्तव में पैरा 6(2) में जो कल्पना है वह उसे अनुच्छेद 122 या 212 के पहले खंड में, जैसी भी स्थिति हो, रख देती है। पैरा 6(2) में "संसद् की कार्यवाहियों या किसी राज्य के विधानमंडल की कार्यवाहियां" शब्दावली का जो प्रयोग हुआ है, वैसी ही शब्दावली क्रमश: अनुच्छेद 122(1) और 212(1) में हैं। इससे मात्र प्रक्रिया संबंधी अनियमितताओं से उन्मुक्ति प्राप्त होती है। इसके अलावा 1985 में दसवीं अनुसूची के लागू करने के बाद भी संविधान ने अनुच्छेद 19(1) और 102(1) के अधीन सदस्यों की निरर्हता से संबंधित विवादों के निपटारे के संदर्भ में अनुच्छेद 122 या 212 का सहारा लेने का इरादा नहीं दिखाया। केवल 'समझे जाने' के उपबंध से ही यह अर्थ निकलता है कि वास्तव में निरर्हता की कार्यवाहियां सभा के समक्ष नहीं हैं बल्कि विशिष्ट रूप से निर्दिष्ट एक प्राधिकारी के रूप में सिर्फ अध्यक्ष के समक्ष हैं। पैरा 6(1) के अंतर्गत जो निर्णय हैं वे सभा के निर्णय नहीं हैं और सभा द्वारा उनका अनुमोदन भी नहीं होता है। यह निर्णय सभा से स्वतंत्र रहकर लागू होता है। किसी 'समझे जाने' संबंधी उपबंध के बनने से ही वह उपबंध अपनी शक्ति से परे नहीं जा सकता।

अत: दसवीं अनुसूची के पैरा 6(1) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अध्यक्ष या सभापति द्वारा जो निर्णय लिया जाता है उसे अनुच्छेद 122 और 212 के अधीन न्यायिक छानबीन से मुक्त नहीं रखा जा सकता।[47]

दसवीं अनुसूची के अधीन बनाए गए नियम

राज्य सभा के सभापति ने दसवीं अनुसूची के अनुसार[48] राज्य सभा सदस्य (दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 बनाए हैं।[49] ये नियम, 16 दिसंबर, 1985 को राज्य सभा के सभा पटल पर रखे गए थे और पटल पर रखे जाने की तीस दिन की कुल अवधि (136वें सत्र के दौरान 4 दिन और 137वें सत्र के दौरान 26 दिन) के बाद 18 मार्च, 1986 को प्रवृत्त हुए थे।[50] उन्हें भारत के असाधारण राजपत्र और दिनांक 18 मार्च, 1986 के राज्य सभा संसदीय समाचार में अधिसूचित किया गया था।[51] नियमों के मुख्य उपबंध इस प्रकार हैं¬

सूचना प्रदान करना और उसका प्रकाशन

प्रत्येक विधान-मंडलीय दल के नेता के लिए यह आवश्यक है कि वह सभापति को एक विवरण दे जिसमें उसके दल के सदस्यों के नाम तथा अन्य ब्यौरे दिए गए हों।[52] यह विवरण नियमों के आरंभ के तीस दिनों के भीतर या जहां दल का गठन ऐसे आरंभ के बाद में हुआ हो उसके गठन के तीस दिनों के भीतर दे दिया जाना चाहिए।[53] यह एक-सदस्यीय विधान-मंडलीय दल पर भी लागू होता है।[54] जो सूचना दी जा चुकी हो उसमें परिवर्तन के बारे में[55] निदेश के विरुद्ध मतदान करने या मतदान से विरत रहने को माफ किए जाने या अन्यथा के बारे में भी सूचना देना आवश्यक है।[56] प्रत्येक सदस्य के लिए विहित प्रपत्र पर अपेक्षित सूचना देना आवश्यक है।[57] सदस्यों द्वारा दी गई सूचना के सारांश को राज्य सभा संसदीय समाचार में प्रकाशित करना आवश्यक है।[58]

याचिका द्वारा किसी प्रश्न का निर्देश

यदि यह प्रश्न उठता है कि क्या दसवीं अनुसूची के अधीन कोई सदस्य निरर्ह हो गया है तो उसके प्रति निर्देश केवल सभापति को याचिका देकर ही किया जा सकेगा। किसी सदस्य के संबंध में कोई याचिका सभापति को लिखित रूप में किसी अन्य सदस्य द्वारा दी जाएगी। यह याचिका लिखित रूप में होनी चाहिए, उसमें ठोस तथ्यों का संक्षिप्त विवरण होना चाहिए, उसके साथ दस्तावेजी साक्ष्य की प्रतियां होनी चाहिएं और उसे विधिवत् सत्यापित होना चाहिए।[59]

उड़ीसा उच्च न्यायालय, कटक ने 2012 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 14868, 14869, 14870 और 14871 (उत्कल केसरी परीदा *बनाम* अध्यक्ष, ओडिशा विधान सभा) में दिनांक 27 सितंबर, 2012 को अपना निर्णय दिया था कि कोई गैर-विधायक भी किसी विधायक द्वारा उसके उस दल जिसके टिकट पर उसका निर्वाचन हुआ था को छोड़ने और दूसरे राजनैतिक दल में शामिल होने के विरुद्ध निरर्हता संबंधी कार्यवाही शुरू कर सकता है।

तत्पश्चात् ओडिशा विधान सभा के अध्यक्ष ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक अपील दायर की जिसमें उड़ीसा उच्च न्यायालय के निर्णय पर प्रश्न उठाया गया था। उच्चतम न्यायालय ने 17 जनवरी, 2013 के अपने निर्णय में 2013 की सिविल अपील संख्या 469 (अध्यक्ष, ओडिशा

विधान सभा *बनाम* उत्कल केसरी परीदा) में अपील को खारिज करते हुए और उड़ीसा उच्च न्यायालय के निर्णय को सही मानते हुए अपने आदेश में यह कहा कि "विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के कथन जो अंततः संविधान (52वां संशोधन) अधिनियम, 1985 बन गया, में अन्य बातों के साथ-साथ यह उल्लेख था कि राजनैतिक दल-बदल रूपी बुराई राष्ट्रीय चिंता का विषय बन गया है और यदि उस पर रोक नहीं लगाई गई तो यह हमारे लोकतंत्र की नींव और उसे मजबूत बनाने वाले सिद्धांतों को ही हिला कर रख देगी। ऐसी स्थिति में, यदि दसवीं अनुसूची के उपबंधों की व्याख्या सभा के अध्यक्ष के संज्ञान में इस तथ्य को लाने के इच्छुक किसी व्यक्ति के अधिकार को समाप्त करने के लिए की जाती है कि उसका कोई या कुछ सदस्य पैराग्राफों 2 और 4 में बताई गई किसी परिस्थिति के कारण सभा की सदस्यता के लिए अयोग्य हो गए हैं, तो इससे संविधान में दसवीं अनुसूची को शामिल किया जाना निरर्थक हो जाएगा और संविधान के 52वें संशोधन के उद्देश्य और अभिप्राय निरर्थक हो जाएंगे।" न्यायालय का यह मत भी था कि "यद्यपि दसवीं अनुसूची का पैराग्राफ 8 सभा के अध्यक्ष को दसवीं अनुसूची के उपबंधों को लागू करने के लिए नियम बनाने की शक्तियां प्रदान करता है, तथापि, ऐसी शक्तियों के अंतर्गत बनाए गए नियम प्रत्यायोजित विधान होंगे जो अनुसूची में ही अंतर्विष्ट संविधान के मूल उपबंधों का अधिरोहण नहीं कर सकते हैं।"

प्रश्न के संबंध में कार्यवाही की प्रक्रिया

यदि याचिका नियमों के अनुरूप नहीं है तो वह खारिज कर दी जाती है। यदि वह नियमों के अनुरूप है तो वह उसके अनुपत्रों के साथ उस सदस्य को जिसके संबंध में वह दी जाती है, और उसके विधान-मंडलीय दल के नेता को भी (यदि सदस्य किसी विधान-मंडलीय दल का है और नेता स्वयं याचिकाकर्ता नहीं है) निर्धारित अवधि के भीतर टिप्पणियां देने के लिए भेजी जाती है।[60] टिप्पणियों पर विचार करने के पश्चात् सभापति स्वयं प्रश्न पर निर्णय देता है या उसके बारे में राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति को निर्देश करता है ताकि समिति उसकी प्रारंभिक जांच करे और उसे प्रतिवेदन दे।[61] यदि सभा का सत्र चल रहा हो तो सभा को एक घोषणा के द्वारा और यदि सत्र नहीं चल रहा हो तो एक संसदीय समाचार द्वारा ऐसे निर्देश की सूचना दी जाती है।[62]

> अक्तूबर, 1989 में प्राप्त एक याचिका का प्रश्न एक ऐसे सदस्य की निरर्हता के बारे में था जिसने संविधान (64वां और 65वां संशोधन) विधेयकों (जो पंचायती राज और नगरपालिकाओं के संबंध में थे) पर अपने राजनैतिक दल के निदेश के विरुद्ध मतदान किया था। याचिका को प्रारंभिक जांच करने और प्रतिवेदन देने के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया।[63] मामले के समिति में लंबित रहने के दौरान सदस्य और उसके साथ याचिकाकर्ता भी राज्य सभा की सदस्यता से निवृत्त हो गया। किन्तु सदस्य पुनः निर्वाचित हो गया। सभापति का मत था कि जिस सदस्य के संबंध में याचिका दी गई थी उसके सभा का सदस्य न रहने के बाद कार्यवाही का कारण भी समाप्त हो गया। अन्य बातों के साथ यह टिप्पणी की गई:
>
>> पद धारण करने की उस निरर्हता के विपरीत जो लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8क के अधीन भ्रष्ट आचरण के आधार पर होती है और जो छह वर्षों तक के लिए हो सकती है, दल-परिवर्तन के कानून के अधीन किसी सदस्य की निरर्हता उसकी पदावधि की समाप्ति के बाद नहीं रहती। दूसरे शब्दों में, दल-परिवर्तन कानून के अधीन निरर्हता तत्काल हो जाती है और सदस्य के सभा का सदस्य न रहने पर लागू नहीं रहती। इन बातों को देखते हुए, याचिका निष्फल हो

गई है। इसके अतिरिक्त यदि समिति इस मामले की जांच करेगी तो भी उसका कोई प्रभाव नहीं होगा क्योंकि सदस्य निवृत्त हो चुका है। ऐसी जांच करना एक निरर्थक प्रयास होगा।

अत: सभापति ने निदेश दिया कि समिति को निर्देश पर आगे कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं है और परिस्थितियों के बदल जाने के कारण इस निर्देश को निष्फल समझा जाना चाहिए।[64]

प्रतिवेदन के प्राप्त होने पर सभापति प्रश्न का निर्धारण करने के लिए उसी प्रकार से कार्यवाही करता है जिस प्रकार वह किसी सदस्य द्वारा सभा के विशेषाधिकार भंग के प्रश्न पर करता है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के पूर्व कि क्या कोई सदस्य दसवीं अनुसूची के अधीन निरर्ह हो गया है, समिति और सभापति द्वारा उस सदस्य को अपना पक्ष प्रस्तुत करने और स्वयं आकर अपनी बात कहने का युक्तियुक्त अवसर दिया जाना आवश्यक होता है।[65]

इसके पश्चात् सभापति एक लिखित आदेश द्वारा याचिका को खारिज कर देता है या घोषणा करता है कि सदस्य निरर्हता से ग्रस्त हो गया है और वह याचिकाकर्त्ता को, संबंधित सदस्य को और विधान-मंडलीय दल के नेता को, यदि कोई हो, आदेश की प्रतियां भिजवाता है या अग्रेषित करवाता है। यदि आदेश किसी सदस्य को निरर्ह घोषित करता है तो उसकी सूचना सभा को भी दी जाती है, उसे संसदीय समाचार भाग-2 में प्रकाशित किया जाता है, राजपत्र में अधिसूचित किया जाता है और निर्वाचन आयोग और केन्द्रीय सरकार को भेजा जाता है।[66]

निर्वाचन

सामान्य प्रक्रिया

राज्य सभा में प्रत्येक राज्य तथा दो संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन, यथास्थिति उस राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा और उस राज्यक्षेत्र के निर्वाचक-मंडल के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है।[67] मत खुले मतदान द्वारा डाले जाते हैं।[68] जैसाकि उल्लेख किया जा चुका है,[69] दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र का निर्वाचक-मंडल दिल्ली की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता है और पुदुचेरी के संघ राज्यक्षेत्र का निर्वाचक-मंडल पुदुचेरी विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता है। यदि कोई व्यक्ति, जो किसी निर्वाचक-मंडल का सदस्य है, संसद् के लिए होने वाले निर्वाचनों के संबंध में भ्रष्ट और गैर-कानूनी आचरण और अन्य अपराध से संबंधित किसी कानून के अधीन संसद् की सदस्यता के लिए किसी निरर्हता से ग्रस्त हो जाता है तो वह इस स्थिति में निर्वाचक-मंडल का सदस्य नहीं रहता।[70] किसी निर्वाचक-मंडल के द्वारा किए गए किसी निर्वाचन को सिर्फ इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि ऐसे निर्वाचक-मंडल की सदस्यता में कोई रिक्ति विद्यमान है।[71]

प्रत्येक दूसरे वर्ष सदस्यता से निवृत्त होने वाले सदस्यों के स्थान पर नए सदस्यों को लाने के लिए जो चुनाव होते हैं उन्हें 'द्विवार्षिक चुनाव' कहा जाता है। किसी सदस्य की पदावधि समाप्त होने पर उसके निवृत्त होने से हुई रिक्ति के अलावा हुई रिक्ति के लिए जो चुनाव होते हैं उन्हें 'उप-चुनाव' कहा जाता है।

अपनी पदावधि के समाप्त होने पर सेवानिवृत्त हो रहे राज्य सभा के सदस्यों के स्थानों को भरने के प्रयोजन से राष्ट्रपति ऐसी तारीख या तारीखों को, जिसकी सिफारिश निर्वाचन आयोग

द्वारा की जाए, भारत के राजपत्र में एक या अधिक अधिसूचनाओं द्वारा प्रत्येक राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों से या प्रत्येक संघ राज्य क्षेत्र के निर्वाचक-मंडल के सदस्यों से, जैसी भी स्थिति हो, अपेक्षा करता है कि वे लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 और उसके अधीन बनाए गये नियमों और किए गए आदेशों के उपबंधों के अनुसार राज्य सभा के सदस्य निर्वाचित करें। ऐसी कोई अधिसूचना उस तारीख से तीन महीने से अधिक पहले नहीं निकाली जा सकती जिस तारीख को सेवा निवृत्त होने वाले सदस्यों की पदावधि समाप्त होनी है।[72] राज्य सभा में किसी स्थान या स्थानों को भरने के लिए निर्वाचन कराने के लिए निर्वाचन आयोग राज्य सरकार से परामर्श करके एक निर्वाचन अधिकारी/सहायक निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर/असिस्टेंट रिटर्निंग ऑफिसर) की नियुक्ति करता है। सामान्यत: राज्य सभा के लिए होने वाले निर्वाचनों के लिए राज्य विधानमंडलों के सचिवों/अधिकारियों को निर्वाचन अधिकारी/सहायक निर्वाचन अधिकारी नियुक्त किया जाता है।

> एक बार उच्चतम न्यायालय ने राज्य सभा के लिए निर्वाचन हेतु चुनाव अधिकारी के रूप में ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति के बारे में निर्णय दिया जो किसी राज्य के विधानमंडल के एक अधिकारी के रूप में कार्य करता था। न्यायालय का कहना था:
>
>> यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 187 के अधीन वह राज्य विधानमंडल के कर्मचारिवृन्द का सदस्य है तथापि वह तब भी उस मोटे अर्थ में सरकार का अधिकारी है जिसमें संविधान के अनुच्छेद 102(1) (क) और अनुच्छेद 191(1) (क) में 'सरकार' शब्द प्रयोग किया गया है। यदि यहां पर प्रयुक्त 'सरकार' शब्द का अर्थ केवल कार्यपालक सरकार समझा जाता है तो उससे संविधान में इन उपबंधों का प्रयोजन ही निष्फल हो जाएगा। इसी प्रकार उसे लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 21 के प्रयोजनों के लिए सरकार का ऐसा अधिकारी मानना होगा जो अधिनियम के अधीन कराए गए किसी निर्वाचन के लिए निर्वाचन अधिकारी के रूप में नियुक्त होने की अर्हता भी रखता है। यह निर्विवाद है कि संविधान के आरंभ के पश्चात् राज्य विधानमंडलों के संचिवों को लगभग एक नियम के रूप में राज्य सभा के लिए हुए निर्वाचनों के लिए निर्वाचन अधिकारी नियुक्त किया जाता रहा है.... और यद्यपि संसद् ने अधिनियम की धारा 21 में एक बार संशोधन करके स्थानीय प्राधिकरणों के अधिकारियों को विनिर्दिष्ट रूप से शामिल किया है तथापि उसने यह उपयुक्त नहीं समझा है कि निर्वाचन अधिकारियों के रूप में नियुक्त किए जाने की अर्हता न रखने वाले व्यक्तियों में से राज्य विधानमंडलों के अधिकारियों को स्पष्ट रूप से शामिल करने के लिए इस धारा में समुचित संशोधन किया जाए। संसद् ने हमेशा धारा 21 के प्रयोजनों के लिए राज्य विधानमंडलों के सचिवों को सरकार के अधिकारियों के रूप में माना है और उनके द्वारा किए जाने वाले कार्य के स्वरूप को देखते हुए ऐसा करना सुविधाजनक पाया है... हमारा मत है कि संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) और अनुच्छेद 191(1)(क) में 'सरकार' शब्द आया है और अधिनियम की धारा 21 में जो 'सरकार का एक अधिकारी' शब्द आए हैं उनकी व्याख्या उदारतापूर्वक की जानी चाहिए ताकि उनके दायरे में विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका आ जाएं।[73]

निर्वाचन अधिकारी निर्वाचन आयोग की पूर्व स्वीकृति से उस स्थान को नियत करता है जहां ऐसे निर्वाचन के लिए मतदान होने वाला हो और वह इस प्रकार नियत किए गए स्थान को अधिसूचित करता है। निर्वाचन अधिकारी इस प्रकार नियत किए गए स्थान पर ऐसे निर्वाचन की अध्यक्षता करता है और अपनी सहायता हेतु मतदान अधिकारी नियुक्त करता है।[74]

उपरोक्त अधिसूचना के जारी होते ही निर्वाचन आयोग राजपत्र में एक अधिसूचना द्वारा निम्नलिखित तारीखें नियत करता है:

(क) नामनिर्देशन करने के लिए अन्तिम तारीख, जो प्रथम वर्णित अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के बाद वाले सातवें दिन की होगी या यदि वह दिन सार्वजनिक अवकाश का दिन है तो अगले उत्तरवर्ती ऐसे दिन की होगी जो सार्वजनिक अवकाश का दिन नहीं है;

(ख) नामनिर्देशनों की छानबीन की तारीख, जो नामनिर्देशन करने के लिए नियत अन्तिम तारीख के बिल्कुल अगले दिन की होगी या यदि वह दिन सार्वजनिक अवकाश का दिन है तो अगले उत्तरवर्ती ऐसे दिन की होगी जो सार्वजनिक अवकाश का दिन नहीं है;

(ग) उम्मीदवारियां वापस लेने के लिए नियत अन्तिम तारीख, जो नामनिर्देशनों की छानबीन के लिए तारीख के पश्चात् दूसरे दिन की होगी; यदि वह दिन सार्वजनिक अवकाश का दिन है, तो अगले उत्तरवर्ती ऐसे दिन की होगी जो सार्वजनिक अवकाश का दिन नहीं है;

(घ) यदि मतदान कराना आवश्यक हो तो मतदान की ऐसी तारीख (तारीखें) जो या जिनमें से पहली तारीख उम्मीदवारियां वापस लेने के लिए नियत अन्तिम तारीख के पश्चात् सातवें दिन के पहले की तारीख नहीं होगी; और

(ङ) वह तारीख जिसके पूर्व निर्वाचन समाप्त कर लिया जाएगा।[75]

उपरोक्त अधिसूचना के जारी होने के बाद निर्वाचन अधिकारी एक सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा ऐसे निर्वाचन के लिए उम्मीदवारों के नामनिर्देशनों को आमंत्रित करता है और उस स्थान को भी विनिर्दिष्ट करता है जहां नामनिर्देशन पत्रों को दिया जाना है।[76] ऐसा कोई भी व्यक्ति उम्मीदवार के रूप में नामनिर्देशित किया जा सकता है जो यथास्थिति, संविधान और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 अथवा संघ राज्य क्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 के उपबंधों के अधीन किसी स्थान (सीट) को भरने के लिए योग्य है।[77]

उपरोक्त रूप में नियत तारीख को या उससे पहले (सार्वजनिक अवकाश को छोड़कर) उम्मीदवार को पूर्वाह्न ग्यारह बजे और अपराह्न तीन बजे के बीच निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 के साथ संलग्न प्रपत्र 2ग के रूप में अपने नामनिर्देशन प्रपत्र को भरकर स्वयं या अपने प्रस्थापक (प्रस्तावक) द्वारा निर्वाचन अधिकारी को देना होता है। इस प्रपत्र पर उम्मीदवार द्वारा और यथास्थिति, राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों या संघ राज्यक्षेत्र के निर्वाचक-मंडल के दस प्रतिशत सदस्यों द्वारा या दस संबंधित सदस्यों द्वारा, जो भी कम हों, प्रस्तावकों के रूप में हस्ताक्षर करना आवश्यक है बशर्ते कि कोई व्यक्ति दो से अधिक सीटों को भरने के लिए उम्मीदवार के रूप में नामित नहीं किया जाए।[78] यदि प्रतिशत की इस गणना के फलस्वरूप सदस्यों की संख्या का भाग ऐसा होता है जो आधे से अधिक हो तो उसे एक के रूप में गिना जाता है और यदि वह आधे से कम हो तो उसे गिना नहीं जाता।[79] राज्य सभा के चुनावों की निर्वाचन नामावली

राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों/निर्वाचक-मंडल के सदस्यों की वह सूची होती है जिसे निर्वाचन अधिकारी विहित प्ररूप में चालू रखता है।[80]

> एक बार उच्चतम न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करना पड़ा कि क्या राज्य सभा के लिए निर्वाचन हेतु किसी विधिमान्य नामनिर्देशन के प्रस्थापक (प्रस्तावक) के रूप में कार्य करने का पात्र होने के लिए शपथ लेना/प्रतिज्ञान करना एक पूर्व शर्त है। न्यायालय ने निर्णय दिया कि कोई निर्वाचित सदस्य जिसने शपथ नहीं ली है किन्तु जिसके नाम का उल्लेख लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 73 के अधीन प्रकाशित अधिसूचना में किया गया है वह किसी निर्वाचित सदस्य के सभी गैर-विधायी कार्यकलापों में भाग ले सकता है। वह राज्य सभा के लिए किसी निर्वाचन में मतदान के अधिकार का भी प्रयोग कर सकता है। जैसाकि न्यायालय ने टिप्पणी की:
>
> > संविधान के अनुच्छेद 193 में निहित नियम यह है कि किसी विधान सभा के लिए निर्वाचित कोई सदस्य शपथ लिए बिना या प्रतिज्ञान किए बिना सभा में उपस्थित नहीं हो सकता और मतदान नहीं कर सकता। संविधान के अनुच्छेद 193 में "उपस्थित रहने और मत देने" का अर्थ संविधान के अनुच्छेद 174 के अधीन राज्यपाल द्वारा सदन को ऐसे समय और स्थान पर समवेत होने के लिए आहूत करना है जो वह उचित समझे, और उक्त आह्वान के अनुसार सदन की बैठक कराना है या बैठक स्थगित होने के बाद उसकी बैठक कराना है। एक निर्वाचित सदस्य संविधान के अनुच्छेद 193 का उल्लंघन करने के दंड का भागी तभी होता है जब वह सदन की ऐसी बैठकों में उपस्थित होता है और मतदान करता है। अधिनियम की धारा 73 के उपबंधों के अनुसार सदन के गठन और सदन की पहली बैठक के बीच निरपवाद रूप से एक अंतराल होता है। इस अंतराल के दौरान विधान सभा का निर्वाचित सदस्य, जिसके नाम का उल्लेख अधिनियम की धारा 73 के अधीन जारी की जाने वाली अधिसूचना में होता है, विधान सभा के किसी सदस्य के सभी विशेषाधिकारों, वेतन और भत्ते का हकदार होता है जिनमें राज्य सभा के किसी स्थान को भरने के लिए हुए किसी निर्वाचन में एक निर्वाचक के रूप में कार्य करने का अधिकार भी शामिल है। यह अधिनियम की धारा 73 का प्रभाव है जिसमें कहा गया है कि उसके अधीन अधिसूचना के प्रकाशित होने पर यह समझ ाा जाएगा कि सदन का गठन हो गया है। जिस निर्वाचन का यहां पर संदर्भ है वह सदन की बैठक में हुई विधायी कार्यवाही का भाग नहीं होता। ऐसे निर्वाचन में दिया गया मत सदन के समक्ष उत्पन्न होने वाले किसी मुद्दे पर दिया गया मत नहीं है। अध्यक्ष का निर्वाचन पर कोई नियंत्रण नहीं होता... इस प्रकार निर्वाचन के दौरान उठाए गए सभी कदम सदन की किसी बैठक में होने वाली कार्यवाही की परिधि के बाहर होते हैं।[81]

जैसाकि कहा जा चुका है, किसी उम्मीदवार को निर्वाचन के लिए संविधान की तीसरी अनुसूची में दिए गए प्ररूप के अनुसार शपथ लेनी पड़ती है या प्रतिज्ञान करना होता है। उम्मीदवार को अपने नामनिर्देशन के पश्चात किन्तु नामनिर्देशन पत्रों की छानबीन की तारीख के पहले ऐसी शपथ लेनी पड़ती है या ऐसा प्रतिज्ञान करना पड़ता है। जो उम्मीदवार ऐसा करने में विफल रहता है वह चुने जाने के लिए अयोग्य हो जाता है।[82] किन्तु यदि शपथ के प्ररूप में मात्र मुद्रण की अशुद्धि हो या किसी क्षेत्रीय भाषा में किसी शब्दावली के अनुवाद में अशुद्धि मात्र हो तो उसके अन्य दृष्टि से विधिमान्य होने पर किसी उम्मीदवार का निर्वाचन रद्द नहीं होता।[83] राज्य सभा के लिए निर्वाचन हेतु किसी उम्मीदवार के लिए यह आवश्यक है कि वह दस हजार रुपए (या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवार के मामले में पांच हजार रुपए) जमा करे।[84] उसे यह राशि निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर) के पास नकद जमा करनी चाहिए या उस राशि को भारतीय रिज़र्व बैंक या सरकारी खजाने में जमा करना चाहिए।[85] किन्तु एक उम्मीदवार के संबंध में अधिकतम 4 नामनिर्देशन पत्र उपस्थित किए जा सकते हैं और उस उम्मीदवार के लिए एक ही निक्षेप आवश्यक होगा।[86]

निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर) नामनिर्देशन पत्रों की जांच करता है और यह निर्णय करता है कि वे कानून के अनुसार मान्य हैं या नहीं। जिन आधारों पर नामनिर्देशन पत्र रद्द किया जा सकता है वे ये हैं कि छानबीन की तारीख को उम्मीदवार संविधान के अनुच्छेद 84 और अनुच्छेद 102 के अधीन या लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के भाग 2 के अधीन या संघ राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 की धारा 4 के अधीन स्थान (सीट) को भरने के लिए चुने जाने हेतु या तो योग्य नहीं है या अयोग्य है या उसका नामनिर्देशन पत्र लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अनुसार नहीं है या उसने आवश्यक राशि जमा नहीं की है या नामनिर्देशन पत्र पर उसके प्रस्थापक (प्रस्तावक) का हस्ताक्षर असली नहीं है।[87] तथापि, निर्वाचन अधिकारी किसी ऐसी त्रुटि के आधार पर नामनिर्देशन पत्र को अस्वीकार नहीं करेगा जिसका स्वरूप वास्तविक न हो।[88]

कोई उम्मीदवार अपनी उम्मीदवारी ऐसी लिखित सूचना द्वारा वापस ले सकेगा जिस पर उसके हस्ताक्षर होंगे और जिसे स्वयं उसके द्वारा या अपने प्रस्तावक द्वारा या अपने विधिवत् प्राधिकृत निर्वाचन अभिकर्त्ता द्वारा उम्मीदवारी वापस लेने के लिए नियत दिन को अपराह्न तीन बजे से पहले निर्वाचन अधिकारी को दे दिया जाएगा।[89] उम्मीदवारी वापस लेने की सूचना को वापस लेने की अनुमति नहीं दी जाएगी।[90] वापस लेने का समय समाप्त होने के तुरंत बाद निर्वाचन अधिकारी विधिमान्य रूप से नामनिर्देशित उम्मीदवारों की एक सूची अकारादि क्रम से तैयार करता है और उसे प्रकाशित करता है।[91]

यदि चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की संख्या भरे जाने वाले स्थानों के बराबर है तो निर्वाचन अधिकारी तत्काल ऐसे सभी उम्मीदवारों को उन स्थानों को भरने के लिए विधिवत् रूप से निर्वाचित घोषित करता है। यदि निर्वाचन लड़ने वाले उम्मीदवारों की संख्या भरे जाने वाले स्थानों की संख्या से अधिक है तो मतदान होता है[92] और वह निर्वाचन आयोग द्वारा नियत किए गए घंटों के दौरान होता है।[93] मतदान होने के बाद मतों की गणना होती है[94] और निर्वाचन अधिकारी निर्वाचन के परिणाम की घोषणा करता है।[95] निर्वाचन के परिणाम की घोषणा के बाद निर्वाचन अधिकारी यथाशीघ्र राज्य सभा के महासचिव और निर्वाचन आयोग को परिणाम की सूचना देता है।[96] इसके बाद विधि तथा न्याय मंत्रालय निर्वाचित प्रतिनिधियों के नामों वाली घोषणा को भारत के राजपत्र में प्रकाशित कराता है।[97] जिस तारीख को कोई उम्मीदवार निर्वाचित घोषित होता है वह तारीख उस उम्मीदवार के निर्वाचन की तारीख होती है।[98] किसी उम्मीदवार के निर्वाचित घोषित होने के बाद निर्वाचन अधिकारी उसे निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 के प्ररूप 24 में निर्वाचन का प्रमाणपत्र देता है और उम्मीदवार से उसकी रसीद प्राप्त करता है जिसमें उम्मीदवार के विधिवत् हस्ताक्षर होते हैं। वह इस रसीद को रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा राज्य सभा के महासचिव को भेजता है।[99]

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 12 के अधीन जारी की गई अधिसूचना के अनुसरण में किसी वर्ष हुए निर्वाचनों के बाद उन सदस्यों के नाम, जो राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा और दिल्ली और पुदुचेरी संघ राज्यक्षेत्रों के निर्वाचक-मंडल के सदस्यों द्वारा उक्त निर्वाचनों में निर्वाचित किए गए हैं, ऐसे किन्हीं व्यक्तियों के नामों के सहित, जिन्हें राष्ट्रपति ने राज्य सभा के लिए संविधान के अनुच्छेद 80 के खंड (1) के उपखंड (क) के अधीन नामनिर्देशित किया है, विधि मंत्रालय द्वारा भारत के राजपत्र में अधिसूचित किए जाते हैं।[100]

जब राज्य सभा के लिए निर्वाचित सदस्य की पदावधि की समाप्ति से पूर्व उसका स्थान रिक्त हो जाता है या रिक्त घोषित किया जाता है या राज्य सभा के लिए उसका निर्वाचन शून्य कर दिया जाता है तब निर्वाचन आयोग संबंधित विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों या निर्वाचक-मंडल के सदस्यों से एक अधिसूचना द्वारा अपेक्षा करता है कि वे ऐसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए एक व्यक्ति को निर्वाचित करें। रिक्ति होने के छह महीने के भीतर उप-चुनाव कराना आवश्यक होता है। तथापि, उस स्थिति में यह बात लागू नहीं होगी यदि, (1) रिक्ति के संबंध में किसी सदस्य को शेष कार्यकाल एक वर्ष से कम हो अथवा (2) निर्वाचन आयोग केन्द्रीय सरकार के परामर्श से यह प्रमाणित करे कि उस समयावधि के भीतर उपचुनाव कराना कठिन है।[101]

ऐसे निर्वाचन में किसी उम्मीदवार द्वारा या किसी निर्वाचक द्वारा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में विनिर्दिष्ट आधारों में से एक या एकाधिक आधारों पर[102] निर्वाचित उम्मीदवार के निर्वाचन की तारीख से पैंतालीस दिनों के भीतर[103] एक निर्वाचन याचिका द्वारा निर्वाचन को चुनौती दी जा सकती है।

एकल संक्रमणीय मत की प्रक्रिया

राज्य सभा के लिए सदस्यों का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। इस निर्वाचन पद्धति के सामान्य सिद्धांत संक्षिप्त रूप में इस प्रकार हैं:

एकल मत एक नामनिर्देशित व्यक्ति से दूसरे नामनिर्देशित व्यक्ति को अंतरित किया जा सकता है और ऐसा दो विशिष्ट स्थितियों में होता है जहां अन्यथा मत बर्बाद हो सकते हैं। ये स्थितियां निम्नलिखित हैं:

(1) जब किसी उम्मीदवार को उसकी सफलता के लिए अपेक्षित मतों से अधिक मत मिलते हैं और इसलिए उसके पास अनावश्यक अधिशेष हैं।

(2) जहां किसी उम्मीदवार को इतने कम मत मिलते हैं कि उसके सफल होने की कोई संभावना ही नहीं होती और इसलिए उसको मिलने वाले मत बर्बाद होते हैं।[104]

निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 के भाग-7 के नियम 71-85 और उसमें संलग्न अनुसूची उपरोक्त सिद्धांतों पर आधारित है।

उपरोक्त नियमों के द्वारा जिस प्रणाली और पद्धति को प्रस्तुत किया गया है उसके अधीन प्रत्येक निर्वाचक के पास केवल एक मत होता है, चाहे भरे जाने वाले स्थानों की संख्या कितनी ही क्यों न हो। किन्तु वह एकल मत एक उम्मीदवार से दूसरे उम्मीदवार को अंतरित किया जा सकता है। मतपत्र में उम्मीदवारों के नामों का उल्लेख होता है और निर्वाचन उसके द्वारा चुने गए नामों के सामने अंक 1, 2, 3, 4 इत्यादि के माध्यम से उम्मीदवारों के लिए अपने अधिमानों को मतपत्रों पर चिन्हित करता है और ऐसे उल्लेख का अर्थ यह समझा जाता है कि वे अधिमान दिए गए क्रम में निर्वाचक के विकल्प को दर्शाते हैं। निर्वाचक द्वारा किसी उम्मीदवार के नाम के सामने लिखे गए अंक 1 का अर्थ "प्रथम अधिमान" है; उम्मीदवार के नाम के सामने लिखे गए अंक 2 का अर्थ "द्वितीय अधिमान" है और इसी तरह से आगे भी होता है।[105]

निर्वाचन में किसी उम्मीदवार के चुने जाने के लिए विधिमान्य मतों की न्यूनतम संख्या को कोटा कहा जाता है। ऐसे निर्वाचन में जहां केवल एक स्थान को भरा जाना है, प्रत्येक गणना में प्रत्येक मतपत्र का मूल्यांक 1 का समझा जाता है और जहां तक कोटा का संबंध है, सभी उम्मीदवारों के नामों पर आकलित मूल्यांकों को जोड़कर और जोड़ को 2 से भाग देकर और यदि कुछ शेष बचता है तो उसका ध्यान न रखते हुए भागफल में 1 जोड़कर जो संख्या निकलती है वही कोटा है।[106]

ऐसे किसी निर्वाचन में जिसमें एक से अधिक स्थान भरे जाते हैं, हर मतपत्र का मूल्यांक 100 का समझा जाता है और जहां तक कोटा का संबंध है, सभी उम्मीदवारों के नाम आकलित मूल्यांकों को जोड़ा जाता है, जोड़ को उस संख्या से विभाजित किया जाता है जो भरी जाने वाली रिक्तियों की संख्या से 1 अधिक है और यदि कुछ शेष बचता है तो उसका ध्यान न रखते हुए भागफल में 1 जोड़ा जाता है और उसके फलस्वरूप जो संख्या निकलती है वही कोटा है।[107] उदाहरण के लिए मान लीजिए कि सात सदस्यों को निर्वाचित किया जाना है, उम्मीदवारों की संख्या सोलह है और एक सौ चालीस ऐसे निर्वाचक हैं जिनके मत विधिमान्य हैं तो कोटा इस प्रकार होगा:

$$\frac{140x100}{7+1} = \text{भागफल} + 1 = \text{कोटा; अथवा}$$

$$\frac{14000}{8} = 1750 + 1 = 1751 \text{ (कोटा)}$$ [108]

प्रारंभिक प्रक्रिया में गणना इस प्रकार होती है:

निर्वाचन अधिकारी प्रथमत: डाक-मतपत्रों वाले लिफाफों के संबंध में कार्यवाही करता है और उसके बाद मतपेटियों को खोलता है, मतपत्रों की गणना करता है और जो मतपत्र विधिमान्य नहीं पाए जाते उनकी छंटाई करता है और उन्हें अस्वीकार (प्रतिक्षेपित) करता है। वह मतपत्र विधिमान्य नहीं समझा जाता जिस पर¬

(क) अंक 1 चिन्हित नहीं है; अथवा

(ख) अंक 1 से अधिक उम्मीदवार के नाम के सामने लिखा गया है या ऐसे स्थान पर है जिससे यह सन्देहास्पद हो जाता है कि उसका आशय किस उम्मीदवार पर लागू होता है; अथवा

(ग) अंक 1 और कुछ अन्य अंक एक ही उम्मीदवार के सामने लिखे गए हैं; अथवा

(घ) कोई ऐसा चिन्ह या लिखावट है जिससे निर्वाचक पहचाना जा सकता है।[109]

जो मतपत्र विधिमान्य नहीं होते उन्हें अस्वीकार करने के बाद निर्वाचन अधिकारी (क) शेष मतपत्रों को हर एक उम्मीदवार के लिए अभिलिखित प्रथम अधिमान के अनुसार पार्सलों में रखता है; (ख) हर एक पार्सल में जो मतपत्र होते हैं उनकी गणना करता है और उनकी संख्या तथा कुल संख्या अभिलिखित करता है; और (ग) हर एक उम्मीदवार के नाम उसके पार्सल के मतपत्रों

के मूल्यांक आकलित करता है। इसके पश्चात् वह उपरोक्त रूप से कोटा निर्धारित करता है।

यदि किसी गणना के समाप्त होने पर उम्मीदवार के नाम पर आकलित मतपत्रों का मूल्यांक कोटे के बराबर है या कोटे से अधिक है तो वह उम्मीदवार निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है।[110]

यदि उम्मीदवार के नाम आकलित मतपत्रों का मूल्यांक कोटे से अधिक है तो अधिशेष को उस "बने रहने वाले उम्मीदवार" के पक्ष में अन्तरित कर दिया जाता है जो कि उस उम्मीदवार के मतपत्रों में निर्वाचक के अधिमान क्रम में अगले उम्मीदवार के रूप में दर्शाया गया है।[111] "अधिशेष" का अर्थ वह संख्या है जिससे किसी उम्मीदवार के मूल और अंतरित मतों का मूल्यांक कोटे से अधिक है। "बने रहने वाला उम्मीदवार" का अर्थ कोई ऐसा उम्मीदवार है जो निर्वाचित नहीं हुआ है और किसी दिए गए समय पर मतदान से बाहर (अपवर्जित) नहीं हुआ है।[112] यदि एक से अधिक उम्मीदवार को अधिशेष प्राप्त है तो अधिकतम अधिशेष के संबंध में पहले कार्यवाही होती है और दूसरे अधिशेषों पर उनके परिमाण के क्रम के अनुसार कार्यवाही होती है। जहां पर वितरण के लिए एक से अधिक अधिशेष है और दो या अधिक अधिशेष समान हैं वहां हर एक उम्मीदवार के "मूल मतों" को ध्यान में रखा जाएगा और जिस उम्मीदवार को सर्वाधिक मूल मत मिले हैं उसका अधिशेष सर्वप्रथम वितरित किया जाता है और यदि उनके मूल मतों का मूल्यांक समान है तो निर्वाचन अधिकारी लॉटरी द्वारा यह निर्णय करता है कि किस उम्मीदवार का अधिशेष सबसे पहले वितरित किया जाए।[113] किसी उम्मीदवार के संबंध में "मूल मत" का अर्थ वह मत है जो ऐसे मतपत्र से प्राप्त होता है जिसमें उस उम्मीदवार के लिए प्रथम अधिमान को अभिलिखित किया गया है।[114]

यदि किसी उम्मीदवार का वह अधिशेष, जो अंतरित किया जाना है, केवल मूल मतों से ही उत्पन्न हुआ है, तो निर्वाचन अधिकारी उस उम्मीदवार के पार्सल के सब मतपत्रों की पड़ताल करता है, अनिश्शेषित पत्रों (न चुके हुए पत्रों) को, उसमें अभिलिखित अगले अधिमानों के अनुसार, उप-पार्सलों में विभाजित करता है और निश्शेषित पत्रों (चुके हुए पत्रों) का एक अलग उप-पार्सल बनाता है।[115] "निश्शेषित (चुके हुए) पत्र" का अर्थ वह मतपत्र है जिस पर बने रहने वाले उम्मीदवार के लिए आगे और अधिमान अभिलिखित नहीं है परन्तु किसी पत्र को तभी निश्शेषित पत्र समझा जाता है जब कभी (क) दो या अधिक उम्मीदवारों के नाम, चाहे वे बने रहने वाले हों या न हों, एक ही अंक से चिन्हित हैं और अधिमान के क्रम में अगले हैं; या (ख) अधिमान के क्रम में अगले उम्मीदवार का नाम चाहे वह "बने रहने वाला" हो या न हो, ऐसे अंक से, जो मतपत्र पर किसी अन्य अंक से बिल्कुल बाद का अंक नहीं है या दो या अधिक अंकों से चिन्हित है।[116] निर्वाचन अधिकारी को प्रत्येक उप-पार्सल और सभी अनिश्शेषित (न चुके हुए) पत्रों के मूल्यांक का निर्धारण करना होता है। यदि अनिश्शेषित पत्रों का मूल्यांक अधिशेष के बराबर है या उससे कम है तो वह सभी अनिश्शेषित पत्रों को उस मूल्यांक पर अंतरित करता है जिस पर वे उस उम्मीदवार द्वारा प्राप्त किए गए थे जिसका अधिशेष अंतरित किया जाता रहा है। यदि अनिश्शेषित पत्रों का मूल्यांक अधिशेष से अधिक है तो वह अनिश्शेषित पत्रों के उप-पार्सलों का अंतरण उस कम मूल्यांक पर करता है जो अधिशेष को अनिश्शेषित मत पत्रों की कुल संख्या से विभक्त करके निर्धारित किया जाता है।[117] निर्वाचन अधिकारी को विहित प्रक्रिया के अनुसार अंतरित और मूल मतों से उत्पन्न होने वाले अधिशेष को अंतरित करना होता है।[118]

यदि सभी अधिशेषों के अंतरित कर दिए जाने के बाद निर्वाचित उम्मीदवारों की संख्या अपेक्षित संख्या से कम हो तो निर्वाचन अधिकारी मतदान में निम्नतम रहने वाले उम्मीदवार को मतदान से बाहर कर देता है और उसके अनिश्शेषित मतपत्रों को उन पर अभिलिखित अगले अधिमानों के अनुसार "बने रहने वाले उम्मीदवारों" के बीच वितरित कर देता है।[119] मतदान से बाहर कर दिए गए उम्मीदवार के मूल मतों वाले मतपत्र सर्वप्रथम एक सौ के मूल्यांक पर अंतरित किए जाते हैं।[120] तत्पश्चात् मतगणना से बाहर कर दिए गए उम्मीदवार के अंतरित मत उस क्रम में और उस मूल्यांक पर अंतरित किए जाते हैं जिस क्रम में और जिस मूल्यांक पर उन्हें उसने प्राप्त किया है।[121] यदि मतों के अंतरण के फलस्वरूप उम्मीदवार को प्राप्त हुए मतों का मूल्यांक कोटे के बराबर है या उससे अधिक है तो गणना आगे और अंतरण किए बिना पूरी कर ली जाती है।[122] यह प्रक्रिया मतदान में निम्नतम उम्मीदवारों में से एक के बाद दूसरे के मतदान से बाहर करते हुए तब तक दुहराई जाती है जब तक कोटे वाले उम्मीदवार के निर्वाचन द्वारा ऐसी रिक्ति न भर जाए।[123] जब "बने रहने वाले उम्मीदवारों" की संख्या घटकर न भरी गई शेष रिक्तियों की संख्या के बराबर हो जाती है तब "बने रहने वाले उम्मीदवारों" को निर्वाचित घोषित किया जाता है।[124] जब केवल एक रिक्ति बिना भरी रह जाती है और किसी एक उम्मीदवार के मतपत्रों का मूल्यांक किसी अंतरित न किए गए अधिशेष सहित अन्य "बने रहने वाले उम्मीदवारों" के मतपत्रों के कुल मूल्यांक से अधिक हो जाता है तब वह उम्मीदवार निर्वाचित घोषित किया जाता है।[125] जब केवल एक रिक्ति बिना भरी रह जाती है और "बने रहने वाले उम्मीदवार" दो ही रह जाते हैं और उनमें से हर एक के मतों का मूल्यांक बराबर है और ऐसा कोई अधिशेष नहीं रहा है जिसे अंतरित किया जा सकता है तब निर्वाचन अधिकारी लॉटरी निकालकर यह निर्णय करता है कि उनमें से कौन-सा उम्मीदवार अपवर्जित किया जाए और उसे अपवर्जित करने के पश्चात् वह दूसरे उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित करता है।[126]

नामनिर्देशन

राज्य सभा, राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के दो सौ अड़तीस प्रतिनिधियों के अलावा राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित उन बारह सदस्यों से मिलकर बनती है जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा जैसे विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है।[127] कार्य आवंटन नियम, 1961 के अधीन राज्य सभा के लिए नामनिर्देशन का विषय गृह कार्य मंत्रालय को सौंपा गया है जो नामनिर्देशनों की प्रक्रिया को शुरू करने वाला प्रशासनिक मंत्रालय है। राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशन कर दिए जाने के बाद गृह मंत्रालय उसे अधिसूचित करता है।

19 दिसंबर, 2012 को दिल्ली उच्च न्यायालय ने एक जनहित याचिका 'रामगोपाल सिंह सिसौदिया बनाम भारत संघ के सचिव और अन्य के माध्यम से भारत संघ' की सुनवाई के याचिका में श्री सचिन रमेश तेंदुलकर को राज्य सभा सदस्य के रूप में नामनिर्देशित करने को चुनौती दी थी। माननीय न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 80(3) की व्याप्ति की जांच की। इस अनुच्छेद में कहा गया है, "राष्ट्रपति द्वारा खंड (1) के उपखंड (क) के अधीन नामनिर्देशित किए जाने वाले सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हें निम्नलिखित विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है अर्थात्:¬"साहित्य, विज्ञान, कला और समाजसेवा।" न्यायालय ने अपने निर्णय में संविधान के अनुच्छेद 80वें खंड 3 के अधीन श्री सचिन रमेश तेंदुलकर के नामनिर्देशन को उचित माना। न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि अनुच्छेद 80(3) में "ऐसे विषयों

के संबंध में यथा" शब्दों का प्रयोग यह भी उपदर्शित करता है कि इन शब्दों के पश्चात् जो विषय अर्थात् साहित्य, विज्ञान, कला और समाजसेवा उल्लिखित है। वे उदाहरण हैं, संपूर्ण नहीं। न्यायालय ने कतिपय ऐसे मामलों का दृष्टांत दिया जिसमें भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि "जैसे/यथा" शब्द उपदर्शित करते हैं कि उनके पश्चात् जो कुछ भी उल्लिखित है वह उदाहरण है, संपूर्ण नहीं।

याचिका को खारिज करते हुए उच्च न्यायालय ने समुक्ति दी कि भारतीय संविधान निर्माताओं ने राज्य सभा में नामनिर्देशन के सिद्धांत को स्वीकार कर यह सुनिश्चित किया कि राष्ट्र को अपने-अपने क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त, देश के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सेवाएं प्राप्त हों। सरकार उन्हें राज्य सभा में इसलिए नामनिर्देशित करती है ताकि वे विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विशेषज्ञता और ज्ञान के जरिए वाद-विवाद को समृद्ध कर सकें।[128]

नामनिर्देशित सदस्य की किसी आकस्मिक रिक्ति के मामले में उस स्थान को भरने के लिए नामनिर्देशित सदस्य की पदावधि संविधान के अनुच्छेद 80 के खंड (1) के उपखंड (क) के अधीन जारी अधिसूचना की तारीख से आरंभ होती है।[129] वह सदस्य अपने पूर्ववर्ती सदस्य की पदावधि की शेष अवधि तक सदस्य बना रहता है।

एक बार विधि मंत्रालय को इस प्रश्न पर विचार करना पड़ा कि क्या नामनिर्देशित सदस्य के स्थान में कोई आकस्मिक रिक्ति हो सकती है। मंत्रालय ने इस संबंध में यह राय दी:

संविधान के अनुच्छेद 83, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 154(2) तथा नामनिर्देशन के संबंध में राष्ट्रपति के आदेश में जो व्यवस्था है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य सभा के एक-तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हों, निर्वाचित और नामनिर्देशित सदस्यों के साथ एक-समान व्यवहार होना चाहिए।...लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 154(1) और (3) को सामान्य रूप से पढ़ने से ही यह साफ हो जाता है कि राज्य सभा के निर्वाचित या नामनिर्देशित सदस्य की पदावधि छह वर्ष की है और नामनिर्देशित अथवा निर्वाचित सदस्य के स्थान में आकस्मिक रिक्ति हो सकती है।

संविधान के अनुच्छेद 83 या लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के किसी उपबंध में यह मानने का कोई आधार नहीं है कि किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए चुना गया नामनिर्देशित सदस्य छह वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेगा।

संविधान के अधीन आकस्मिक रिक्ति तब उत्पन्न हो सकती है जब किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो या रिक्त घोषित कर दिया जाता है या उसका निर्वाचन शून्य घोषित कर दिया जाता है।

अब तक जो प्रथा अपनाई जाती रही है उससे भी यह आभास होता है कि किसी नामनिर्देशित सदस्य की नियमित पदावधि पूरा होने के पूर्व उसके स्थान के रिक्त हो जाने पर ऐसी रिक्ति को आकस्मिक रिक्ति माना जाता रहा है।[130]

किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए चुने गए सदस्य के अलावा दूसरे सदस्यों की पदावधि छह वर्ष है।[131] जब किसी सदस्य के निवृत्त होने के कारण हुई रिक्ति को भरने के लिए राष्ट्रपति किसी व्यक्ति को नामनिर्देशित करता है तब लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 71 के अधीन विधि मंत्रालय द्वारा इसकी अधिसूचना जारी की जाती है और ऐसे सदस्य की पदावधि अधिसूचना की तारीख से आरंभ होती है। यद्यपि गृह मंत्रालय द्वारा व्यक्तियों के नामनिर्देशन की अधिसूचना की तारीख अधिनियम की धारा 71 के अधीन विधि मंत्रालय द्वारा जारी की गई अधिसूचना से पहले की होती है।

1952 से लेकर 2014 तक राज्य सभा के लिए 124 व्यक्ति नामनिर्देशित किए गए हैं। नामनिर्देशित सदस्यों को वे सभी शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्राप्त हैं जो अन्य निर्वाचित सदस्यों को उपलब्ध हैं। तथापि, वे राष्ट्रपति के निर्वाचन में मतदान करने की पात्रता नहीं रखते क्योंकि राष्ट्रपति का निर्वाचन एक ऐसे निर्वाचक-मंडल के सदस्य करते हैं जो संसद् के निर्वाचित सदस्यों और राज्यों (जिनमें दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र और पुडुचेरी का संघ राज्यक्षेत्र शामिल है) की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता है।[132] उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में ऐसी कोई रोक नहीं है क्योंकि इस निर्वाचन के लिए जो निर्वाचक-मंडल होता है वह संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनता है।[133] इस संबंध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि अभी तक केन्द्रीय मंत्रि-परिषद् में कोई नामनिर्देशित सदस्य शामिल नहीं किया गया है, यद्यपि संविधान के अधीन ऐसा करने पर कोई रोक नहीं है।

प्रोफेसर सैयद नूरुल हसन 1968 में राज्य सभा के लिए नामनिर्देशित किए गए थे। उन्होंने 30 सितम्बर, 1971 को राज्य सभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। उन्हें 4 अक्तूबर, 1971 को केन्द्रीय मंत्रि-परिषद् में शामिल किया गया। बाद में वे 11 नवम्बर, 1971 को उत्तर प्रदेश राज्य से राज्य सभा के लिए निर्वाचित हुए।

नामनिर्देशित सदस्यों को समितियों का सभापति नियुक्त करने के भी उदाहरण हैं।[134] दसवीं सूची के अंतर्गत यदि कोई नामनिर्देशित सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने की तारीख से छह महीने की समाप्ति के पश्चात् किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाता है तो वह सदन का सदस्य होने के लिए अयोग्य हो जाएगा।[135]

संसद्-सदस्य का पदनाम

लोक सभा के सदस्यों की भांति राज्य सभा के सदस्य भी अपने नामों के आगे संसद्-सदस्य (मेम्बर ऑफ पार्लियामेंट या संक्षेप में एम.पी.) पदनाम का प्रयोग कर सकते हैं।

1952 के आरंभ में काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्य अपने नामों के आगे "एम.सी. (मेम्बर ऑफ काउंसिल)" लगाया करते थे। 16 मई, 1952 को, जो काउंसिल ऑफ स्टेट्स की चौथी बैठक थी, एक सदस्य ने सभापति से पूछा कि काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्यों को क्या कहा जाएगा। सभापति ने उसे बताया कि मामला विचाराधीन है।[136] इस बीच 6 जून, 1952 को 'हाउस ऑफ द पीपल' के अध्यक्ष ने घोषणा की कि उन्होंने संसद्-सदस्यों को वेतन तथा भत्ते के भुगतान के संबंध में संयुक्त समिति नियुक्त कर दी है[137] और उन्होंने 20 जून, 1952 को एक और घोषणा करते हुए कहा कि समिति इस बात पर भी विचार करेगी कि हाउस ऑफ द पीपल और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्यों के लिए कौन-से संक्षिप्ताक्षर प्रयोग में लाए जाएं और यह समिति इस संबंध में संसद् को अपना प्रतिवेदन देगी। उन्होंने कहा:

> थोड़ा-सा असंतोष इस संबंध में व्यक्त किया गया था कि काउंसिल ऑफ स्टेट्स के कुछ सदस्य "एम.सी." पदनाम पसन्द नहीं करते और चूंकि संसद् दोनों सदनों से मिलकर बनती है इसलिए इस मुद्दे पर विचार करना आवश्यक है। यही कारण है कि एक निर्देश दिया गया है। अत: समिति अपनी सिफारिश देगी।[138]

संयुक्त समिति ने 28 जून, 1952 को हुई अपनी बैठक में दोनों सदनों के सदस्यों के लिए संक्षिप्ताक्षरों के स्वरूप के प्रश्न पर विचार किया। बैठक में इस प्रश्न पर कि दोनों सदनों के सदस्यों के लिए कौन-सा पदनाम प्रयुक्त किया जा सकता है, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण व्यक्त किए गए। उदाहरण के लिए एक सदस्य हाउस ऑफ द पीपल के सदस्यों के लिए एम.पी. और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्यों के लिए "काउंसिलर" पदनाम के पक्ष में था। एक अन्य सदस्य का मत था कि दोनों सदनों के सदस्यों को एम.पी. कहा जा सकता

है किन्तु संसदीय कार्य के प्रयोजनों के लिए हाउस ऑफ दि पीपल के सदस्यों को एम.पी. (एच.) और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्यों को एम.पी. (सी.) कहा जा सकता है। एक अन्य सदस्य की पसंद थी कि हाउस ऑफ दि पीपल के सदस्यों को "सीनेटर" और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्यों को "काउंसिलर" कहा जाए।[139]

समिति ने 15 जुलाई, 1952 को हुई अपनी बैठक में यह निर्णय किया कि दोनों ही सदनों के सदस्यों को संसद्-सदस्य (मेम्बर ऑफ पार्लियामेंट या एम.पी.) कहा जाना चाहिए।[140]

समिति ने 5 अगस्त, 1952 को हाउस ऑफ द पीपल में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में तदनुसार सिफारिश की।[141]

पदावधि

राज्य सभा का विघटन नहीं होता, किंतु उसके सदस्यों में से यथासंभव निकटतम एक-तिहाई सदस्य लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन इस निमित्त किए गए उपबंधों के अनुसार प्रत्येक दूसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाते हैं।[142] किसी सदस्य (चाहे वह निर्वाचित हो या नामनिर्देशित हो) की पदावधि छह वर्ष है।[143] किंतु आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए चुना गया सदस्य अपने पूर्ववर्ती के शेष भाग के लिए पद धारण करता है।[144] जहां तक किसी सदस्य की पदावधि के आरंभ होने का संबंध है, (i) वह द्विवार्षिक रूप से (अर्थात् हर दूसरे वर्ष के समाप्त होने पर) निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्य के मामले में उस तारीख से आरंभ होती है जब उसका नाम भारत सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचित किया जाता है[145] और (ii) किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्य के मामले में उसके निर्वाचन की घोषणा के शासकीय राजपत्र में प्रकाशित होने की तारीख से या उसके नामनिर्देशन की घोषणा करने वाली अधिसूचना की तारीख से, जैसी भी स्थिति हो, आरंभ होती है।[146]

राज्य सभा का आरंभिक गठन

राज्य सभा को सर्वप्रथम 3 अप्रैल, 1952 को गठित किया गया था और यह गठन विभिन्न राज्यों को आवंटित स्थानों के आधार पर किया गया था। जैसाकि संविधान की तत्कालीन चौथी अनुसूची में दर्शाया गया है।[147] वह उस समय 216 सदस्यों से मिलकर बनी थी जिनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित थे और बाकी 204 सदस्य राज्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए निर्वाचित किए गए थे। तत्कालीन लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 154(2) के अधीन राष्ट्रपति ने निर्वाचन आयोग से परामर्श करके राज्य सभा (सदस्यों की पदावधि) आदेश, 1952 बनाया[148] जिसके द्वारा उस समय चुने गए सदस्यों में से कुछ सदस्यों की पदावधि इस प्रकार कम कर दी गई थी ताकि हर एक वर्ग के स्थानों को धारण करने वाले सदस्यों में से यथासंभव एक-तिहाई हर दूसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाएं। इस आदेश में यह उपबंध किया गया था कि पहले, दूसरे या तीसरे प्रवर्ग में किसी सदस्य की स्थिति के अनुसार उसकी पदावधि 2 अप्रैल, 1958, 2 अप्रैल, 1956 और 2 अप्रैल, 1954 को समाप्त होगी।

निर्वाचित सदस्यों को राज्य-वार वर्गीकृत किया गया था किन्तु भोपाल, बिलासपुर एवं हिमाचल प्रदेश दिल्ली और कच्छ को एक ही समूह में रखा गया था। इसी प्रकार बारह नामनिर्देशित

सदस्यों को भी तीन प्रवर्गों में बांटा गया था। प्रत्येक प्रवर्ग में कौन-कौन से सदस्य रखे जाएं इसका निर्धारण निर्वाचन आयोग द्वारा 29 नवम्बर, 1952 को सार्वजनिक रूप से लॉटरी निकालकर किया गया।[149]

इस प्रवर्गीकरण और लॉटरी निकाले जाने के फलस्वरूप 72 सदस्य पहले प्रवर्ग अर्थात् 1958 में सदस्यता से निवृत्त होने वालों के प्रवर्ग में रखे गए और 71-71 सदस्य दूसरे और तीसरे प्रवर्ग अर्थात् क्रमश: 1956 और 1954 में निवृत्त होने वालों के प्रवर्ग में रखे गए। अजमेर-कुर्ग और त्रिपुरा-मणिपुर समूहों के दो सदस्यों की पदावधि पहले ही 2 वर्ष के लिए निर्धारित हो गई थी और इसलिए उन्हें इस प्रवर्गीकरण या लॉटरी निकाले जाने में शामिल नहीं किया गया।[150] सदस्यों की निर्धारित पदावधि को दर्शाने वाला एक विवरण भारत के असाधारण राजपत्र में प्रकाशित किया गया।[151] इस प्रकार उक्त प्रक्रिया द्वारा यह सुनिश्चित किया गया कि राज्य सभा के यथासंभव एक-तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष की दूसरी अप्रैल को निवृत्त होंगे और उनके स्थान पर नए सदस्य निर्वाचित होकर आएंगे।

बाद में किए गए परिवर्तन

किन्तु बाद में उपरोक्त रूप से निर्धारित पदावधि में राज्यों के निर्माण या पुनर्गठन के कारण कुछ सदस्यों के लिए परिवर्तन किया गया। इस प्रयोजन के लिए न्यूनाधिक रूप से उपरोक्त प्रक्रिया अपनाई गई। पुनर्गठन के फलस्वरूप जब भी स्थानों में वृद्धि की गई या स्थानों का अंतरण किया गया तब निर्वाचनों में निर्वाचित होने वाले सदस्यों की पदावधि निर्धारित करने के लिए कानून में विनिर्दिष्ट उपबंध शामिल किए गए।

आन्ध्र राज्य अधिनियम, 1953 के अधीन एक सदस्य की पदावधि इस प्रकार बढ़ाई गई कि वह 2 अप्रैल, 1958 को समाप्त हो और एक अन्य सदस्य की पदावधि इस प्रकार घटाई गई कि वह 2 अप्रैल, 1954 को समाप्त हो।[152] अधिनियम के उपबंधों के अनुसार यह प्रक्रिया राज्य सभा के सचिव ने लॉटरी निकालकर पूरी की।[153]

राज्य पुनर्गठन (राज्य सभा) (सदस्यों की पदावधि) आदेश, 1956[154] के अधीन, जो राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956[155] के अंतर्गत बनाया गया था, यह सुनिश्चित करने के लिए कि यथासंभव एक-तिहाई सदस्य अप्रैल, 1958 के दूसरे दिन निवृत्त हों और उसके पश्चात् हर दूसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हों, बम्बई से निर्वाचित तीन सदस्यों की पदावधि 1962 से घटाकर 1960 कर दी गई और वहां के चार अन्य सदस्यों की पदावधि 1960 से घटाकर 1958 कर दी गई; केरल से निर्वाचित एक सदस्य की पदावधि 1962 से घटाकर 1960 कर दी गई और वहां के एक दूसरे सदस्य की पदावधि 1960 से घटाकर 1958 कर दी गई; मध्य प्रदेश से निर्वाचित एक सदस्य की पदावधि 1958 से बढ़ाकर 1960 कर दी गई और वहां के दो अन्य सदस्यों की पदावधि 1960 से बढ़ाकर 1962 कर दी गई; मद्रास से निर्वाचित एक सदस्य और मैसूर से निर्वाचित एक सदस्य की पदावधि 1958 से बढ़ाकर 1960 कर दी गई।[156] उत्तर प्रदेश से निर्वाचित तीन सदस्यों की पदावधि इस प्रकार निर्धारित की गई कि वह 1962, 1960 और 1958 में समाप्त हो, दिल्ली से निर्वाचित दो सदस्यों की पदावधि इस प्रकार निर्धारित की गई कि वह 1960 और 1958 में समाप्त हो।[157] यह सब निर्वाचन आयोग द्वारा लॉटरी निकालकर किया गया।

बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 में उपबंध किया गया था कि महाराष्ट्र को आवंटित एक अतिरिक्त स्थान की पदावधि 2 अप्रैल, 1966 को समाप्त हो जाएगी। जहां तक गुजरात को आवंटित दो अतिरिक्त स्थानों

का संबंध था, अधिनियम में यह उपबंध किया गया था कि "उस सदस्य की पदावधि, जो मतों की गणना के समय सबसे अंत में निर्वाचित घोषित हो, या मतों में बराबरी पाए जाने पर उनमें से ऐसे किसी एक सदस्य की पदावधि, जैसाकि निर्वाचन अधिकारी लॉटरी निकाल कर निर्णय करेगा, 2 अप्रैल, 1964 को समाप्त होगी और अन्य सदस्य की पदावधि 2 अप्रैल, 1966 को समाप्त होगी।"[158]

पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 में उपबंध किया गया था कि हरियाणा को आवंटित स्थानों में विद्यमान रिक्तियों को भरने के लिए निर्वाचित हुए दो सदस्यों में से एक सदस्य की पदावधि 2 अप्रैल, 1968 को समाप्त होगी और दूसरे सदस्य की पदावधि 2 अप्रैल, 1972 को समाप्त होगी। इसका निर्धारण राज्य सभा के सभापति द्वारा लॉटरी निकाल कर किया गया।[159]

नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962 की धारा 8 में स्वयं यह उपबंध किया गया था कि नागालैंड को आवंटित स्थान को भरने के लिए पहली बार जो सदस्य निर्वाचित होगा उसकी पदावधि 2 अप्रैल, 1968 को समाप्त हो जाएगी। पूर्वोत्तर क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम, 1971 की धारा 12 के अधीन राज्य सभा में मेघालय को एक स्थान आवंटित किया गया था। अधिनियम में यह उपबंध नहीं था कि निर्वाचित होने पर उस सदस्य की पदावधि कितनी होगी। अत: राष्ट्रपति ने अधिनियम की धारा 87 के अधीन पूर्वोत्तर क्षेत्र पुनर्गठन (कठिनाइयों को दूर करना) आदेश संख्या 1 को जारी किया ताकि निर्वाचन आयोग लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 147 के अधीन स्थान को आकस्मिक रिक्ति मानकर उसे भर सके। उस अधिनियम की धारा 67 के अधीन उस सदस्य का निर्वाचन 13 अप्रैल, 1972 को अधिसूचित किया गया और उसकी पदावधि उसी तारीख से आरंभ हुई और 12 अप्रैल, 1978 तक रही।

गोवा, दमण और दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987 के अधीन राज्य सभा में गोवा के नए राज्य को एक स्थान आवंटित किया गया था, किन्तु उसमें भी निर्वाचित होने वाले सदस्य की पदावधि के संबंध में कोई उपबंध नहीं था। गोवा का स्थान न तो लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 12 (द्विवार्षिक निर्वाचन) के अधीन आता था और न उसकी धारा 147 (उप-निर्वाचन) के अधीन आता था। अत: 12 जून, 1987 को राष्ट्रपति ने गोवा, दमण और दीव पुनर्गठन (कठिनाइयों को दूर करना) आदेश संख्या 1 जारी किया जिसमें यह स्पष्ट किया गया था कि स्थान को आकस्मिक रिक्ति मानकर उसे उप-निर्वाचन के द्वारा भरा जाएगा। निर्वाचित सदस्य संबंधी अधिसूचना 8 जुलाई, 1987 को लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 67 के अधीन जारी की गई और सदस्य 7 जुलाई, 1993 तक पद पर बना रहा।[160]

वर्ष 2000 में क्रमश: मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों से तीन नए राज्य अर्थात् छत्तीसगढ़, उत्तरांचल और झारखंड बनाए गए। संबंधित राज्य पुनर्गठन अधिनियमों में उन सदस्यों के बारे में उपबंध किए गए जो वर्तमान राज्यों में से नवसृजित राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य माने जाएंगे, केवल उन सदस्यों के मामलों को छोड़कर जो नवसृजित राज्य उत्तरांचल से 2004 और 2006 में निवृत्त हो रहे हैं। उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 में एक परंतुक जोड़ा गया कि राज्य सभा के सभापति क्रमश: 2004 और 2006 में निवृत्त होने वाले उत्तर प्रदेश के सदस्यों में से एक-एक सदस्य का निर्धारण करने के लिए ड्रॉ निकाल सकते हैं, जिन्हें उत्तरांचल राज्य को आवंटित दो सीटों के लिए निर्वाचित माना जाएगा। तदनुसार, राज्य सभा के सभापति द्वारा 2 नवम्बर, 2000 को संसद् भवन में अपने कक्ष में एक ड्रॉ निकाला गया।

2014 में आन्ध्र प्रदेश राज्य से एक नये राज्य तेलंगाना का सृजन किया गया। आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 में उन सदस्यों के संबंध में उपबंध किये गये जो वर्तमान आन्ध्र प्रदेश राज्य से नवसृजित राज्य तेलंगाना राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य माने जायेंगे। आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 में एक उपबंध किया गया कि राज्य सभा के सभापति आन्ध्र प्रदेश राज्य के सदस्यों में से सात सदस्यों का निर्धारण करने हेतु ड्रॉ निकाल सकते हैं जिन्हें तेलंगाना राज्य को आवंटित सात सीटों के लिए निर्वाचित माना जाएगा। तदनुसार, राज्य सभा के सभापति द्वारा 30 मई, 2014 को संसद् भवन में अपने कक्ष में ड्रॉ निकाले गये।

1968 से यथाशक्य निकटतम एक-तिहाई सदस्यों के निवृत्त होने का चक्र गड़बड़ा गया है और निवृत्ति की तारीख में परिवर्तन करना आवश्यक हो गया है। इसका कारण विधान सभाओं का भंग होना और मध्यावधि आम चुनावों का कराया जाना है और इसके फलस्वरूप सदस्यों की पदावधि निर्वाचनों के कराए जाने के बाद से आरंभ हुई। इसके फलस्वरूप लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 154 और 155 के कानूनी उपबंधों के अधीन रिक्तियां निर्धारित तारीख को नहीं भरी जा सकतीं जिससे विसंगति की स्थिति उत्पन्न होती है और हर दूसरे वर्ष एक-तिहाई सदस्यों के निवृत्त होने का चक्र गड़बड़ा जाता है।

इस संदर्भ में दिल्ली और पंजाब के सदस्यों के मामले उल्लेखनीय हैं। राज्य सभा में दिल्ली के तीन सदस्य हैं। 15 अप्रैल, 1980 को एक सदस्य के निवृत्त होने के कारण और 2 अप्रैल, 1982 को एक दूसरे सदस्य के निवृत्त होने के कारण दिल्ली से राज्य सभा में दो रिक्तियां हुईं। ये रिक्तियां नहीं भरी जा सकीं क्योंकि तत्कालीन दिल्ली महानगर परिषद्, जिसके सदस्यों से निर्वाचन के लिए निर्वाचकगण बनता था, 7 फरवरी, 1983 तक भंग रही। उसका पुनर्गठन 8 फरवरी, 1983 को हुआ और उसके बाद एक एक-समान कार्यक्रम के अनुसार दो पृथक द्विवार्षिक चुनाव कराए गए और दोनों सदस्यों की पदावधि 21 नवम्बर, 1983 से आरंभ हुई और दोनों सदस्य 20 नवम्बर, 1989 को सेवानिवृत्त हुए। 2 अप्रैल, 1990 को बाकी बचे सदस्य के सेवा निवृत्त होने के कारण एक तीसरी रिक्ति हो गई। दिल्ली विधान सभा के गठित होने के बाद ही तीनों स्थानों के लिए द्विवार्षिक चुनाव हो सकते थे। चूंकि मूल रिक्तियां भिन्न-भिन्न तारीखों को उत्पन्न हुई थीं इसलिए उनके लिए द्विवार्षिक चुनाव एक एक-समान कार्यक्रम के अनुसार तीन अलग-अलग निर्वाचनों के रूप में हुए। तीनों सदस्यों की पदावधि 28 जनवरी, 1994 को आरंभ हुई और 27 जनवरी, 2000 को समाप्त हुई। दूसरे शब्दों में, दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले तीनों सदस्यों की पदावधि एक ही तारीख को साथ-साथ समाप्त हुई।

जहां तक पंजाब का संबंध है, राज्य सभा में उसके प्रतिनिधियों की संख्या पांच है। तीन सदस्य 2 अप्रैल, 1988 को और दो अन्य सदस्य 9 अप्रैल, 1990 को निवृत्त हुए। राज्य विधान सभा के भंग होने के कारण इस राज्य में इन रिक्तियों के लिए चुनाव नहीं हो सके। राज्य में चुनावों के बाद विधान सभा के विधिवत् गठित होने के बाद रिक्तियों की तारीखों के अनुसार दोनों वर्गों की रिक्तियों की अधिसूचना जारी की गई ताकि एक-समान कार्यक्रम के अधीन दोनों वर्गों की रिक्तियां भरी जा सकें। पांचों सदस्यों की पदावधि 10 अप्रैल, 1992 से आरंभ होकर छह वर्षों के लिए थीं (मूल रिक्तियों के बाकी समय के लिए नहीं) और पांचों सदस्य 9 अप्रैल, 1998 को एक साथ निवृत्त हुए।

ऐसी स्थितियों पर काबू पाने के लिए निर्वाचन आयोग ने सिफारिश की कि कानून को इस प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए कि यदि निर्वाचक-मंडल के अस्तित्व में न होने के कारण या अन्य कारण से निर्धारित तारीख पर चुनाव न कराए जा सकें तो बाद में निर्वाचित होने वाले सदस्य की पदावधि छह वर्ष की अवधि के बाकी समय तक ही रहनी चाहिए और इस समय कानून के अनुसार उसे जो छह वर्षों तक सदस्य बने रहने की अनुमति है वह नहीं दी जानी चाहिए। समिति का मत था कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 154 और 155 में

छोटे-से संशोधन करने से एक ही दिन एक-तिहाई से अधिक सदस्यों के निवृत्त होने की विसंगति दूर हो जाएगी।[161] तथापि, गोस्वामी समिति का विचार था कि सभी मामलों में एक ही दिन निवृत्त करने का उपबंध करने के लिए कानून में संशोधन करना आवश्यक नहीं है। समिति का यह भी विचार था कि ऐसा करने से राज्य सभा के सदस्यों की पदावधि अनावश्यक रूप से कम होगी और उसमें अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप भी होगा।[162]

एक बार एक सदस्य ने उल्लेख किया कि केरल से निर्वाचित तीन सदस्य 2 अप्रैल, 1966 को निवृत्त हो रहे हैं और चूंकि केरल विधान सभा कार्य नहीं कर रही है इसलिये वहां पर कोई निर्वाचन नहीं होंगे (केरल 24 मार्च, 1965 को राष्ट्रपति के शासन के अधीन लाया गया था और 6 मार्च, 1967 तक वहां राष्ट्रपति का शासन लागू रहा)। अतः सदस्य ने सुझाव दिया कि संविधान में यह उपबंध करने के लिये उसमें संशोधन किया जाना चाहिये कि जब तक नए सदस्य निर्वाचित न हों तब तक विद्यमान सदस्यों को पद पर बने रहने दिया जाए। गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने इसके उत्तर में कहा कि यदि संविधान में कोई ऐसा उपबंध है जिससे यह संभव हो सकता है तो सरकार इस बात को देखेगी और इस पर विचार करेगी कि संवैधानिक स्थिति क्या है या क्या होनी चाहिये।[163]

नामनिर्देशित सदस्यों के संबंध में भी ऐसी ही स्थिति है क्योंकि कुछ सदस्यों की पदावधि के समाप्त होने की तारीख के बाद नामनिर्देशनों में विलम्ब होने या उनके स्थगित कर दिये जाने के कारण नामनिर्देशित सदस्यों की निवृत्ति का चक्र भी टूट जाता है, जैसाकि निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट होगा:

2 अप्रैल, 1978 को चार नामनिर्देशित सदस्य निवृत्त हुये, उनके स्थानों पर उतने ही सदस्यों को 14 अप्रैल, 1978 को नामनिर्देशित किया गया और वे 13 अप्रैल, 1984 को निवृत्त हुये और उनके स्थानों पर तीन सदस्यों का नामनिर्देशन 9 मई, 1984 को किया गया और चौथे सदस्य का नामनिर्देशन 3 जनवरी, 1985 को किया गया; 8 मई, 1990 को निवृत्त हुये सदस्यों के स्थानों के लिये एक सदस्य का नामनिर्देशन 28 मई, 1990 को, दो सदस्यों का नामनिर्देशन 18 सितम्बर, 1990 को और चौथे सदस्य का नामनिर्देशन 11 जनवरी, 1991 को किया गया।

2 अप्रैल, 1986 को चार नामनिर्देशित सदस्य निवृत्त हुये, 12 मई, 1986 को उनके स्थानों के लिये नामनिर्देशन किये गये और 11 मई, 1992 को निवृत्त हुये सदस्यों के स्थानों पर 27 अगस्त, 1993 को नामनिर्देशन किये गये।

चार नामनिर्देशित सदस्य 26 सितम्बर, 1988 को सेवा निवृत्त हुए। उनके स्थान पर तीन सदस्यों के नामनिर्देशन 25 नवम्बर, 1988 को किए गये और चौथे सदस्य का नामनिर्देशन 15 जून, 1989 को किया गया।

एक नामनिर्देशित सदस्य का 12 जनवरी, 1992 को निधन हो गया, दो नामनिर्देशित सदस्य 24 नवम्बर, 1994 को सेवानिवृत्त हो गए, तीन नामनिर्देशित सदस्य क्रमशः 14 जून, 1995, 27 मई, 1996 और 10 जनवरी, 1997 को सेवानिवृत्त हो गए, दो नामनिर्देशित सदस्य 17 सितम्बर, 1996 को सेवानिवृत्त हो गए और एक नामनिर्देशित सदस्य का 24 मई, 1997 को निधन हो गया। इन 9 रिक्तियों के लिए 27 अगस्त, 1997 को नामनिर्देशन किया गया।

चार नामनिर्देशित सदस्य 26 अगस्त, 1999 को सेवानिवृत्त हुए और उनके स्थानों पर 22 नवम्बर, 1999 को नामनिर्देशन किए गए।

आठ नामनिर्देशित सदस्य 26 अगस्त, 2003 को सेवानिवृत्त हुए। सात सदस्य 27 अगस्त, 2003 को नामनिर्देशित हुए। एक अन्य सदस्य कुमारी निर्मला देशपांडे 24 जून, 2004 को नामनिर्देशित हुईं।

एक नाम-निर्देशित सदस्य श्री विद्या निवास मिश्र का फरवरी, 2005 में निधन हो गया और श्री मिश्र की शेष पदावधि अर्थात् 26 अगस्त, 2009 तक के लिए 10 अप्रैल, 2006 को श्री राम जेठमलानी को नामनिर्देशित किया गया।

21 नवंबर, 2005 को चार नामनिर्देशित सदस्य सेवा निवृत्त हुए। 16 फरवरी, 2006 को तीन सदस्यों और 10 अप्रैल, 2007 को एक सदस्य को नामनिर्देशित किया गया।

8 जुलाई, 2009 को एक नामनिर्देशित सदस्य, डा. के. कस्तूरीरंगन ने त्यागपत्र दे दिया और 26 अगस्त, 2009 को छह सदस्य सेवानिवृत्त हुए। 18 नवंबर, 2009 को दो सदस्यों और 22 मार्च, 2010 को पांच सदस्यों का नामनिर्देशन हुआ।

एक बार एक सदस्य ने एक विशेष उल्लेख के द्वारा सभा का ध्यान 2 अप्रैल, 1982 को चार नामनिर्देशित सदस्यों के सेवानिवृत्त होने के कारण हुई रिक्तियों को भरने में हुये अत्यधिक विलम्ब की ओर दिलाया। सदस्य ने, अन्य बातों के साथ, इस तथ्य पर जोर दिया कि तीस वर्षों में पहली बार ऐसा हुआ कि दो सत्र गुजर गये, साढ़े तीन महीने बीत गये और स्थान खाली पड़े हैं; सामान्यत: 3 अप्रैल, 1982 को ही, जब निर्वाचन आयोग ने द्विवार्षिक चुनावों में निर्वाचित हुये नए सदस्यों के बारे में अधिसूचना जारी की थी, नामनिर्देशनों की घोषणा हो जानी चाहिए थी। अत: सदस्य चाहता था कि सरकार सभा में अपनी स्थिति स्पष्ट करे।[164] तथापि, नामनिर्देशन 27 सितम्बर, 1982 को हुए।

स्थानों का रिक्त होना

जिन स्थितियों और परिस्थितियों में कोई सदस्य सदन का सदस्य नहीं रहता और उसका स्थान रिक्त हो जाता है वे इस प्रकार हैं:

1. कोई सदस्य अयोग्य हो जाता है¬

   (क) यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर जिसको धारण करने वाले का अयोग्य न होना संसद् ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है;[165]

राज्य सभा के एक आसीन सदस्य श्री मोहनरंगम् की निरर्हता के संबंध में भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 103(2) के अधीन निर्वाचन आयोग से राय प्राप्त करने से संबंधित 1981 के निर्देश मामले संख्या 7 में लोक सभा के सदस्यों श्री सी. टी. दंडपाणि और श्री सत्येन्द्रन् तथा अन्य व्यक्तियों ने तारीख 20 नवम्बर, 1981 की एक संयुक्त याचिका इस आधार पर प्रस्तुत की थी कि श्री मोहनरंगम् पर संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) में वर्णित निरर्हता लागू हो गई है क्योंकि वह नई दिल्ली में तमिलनाडु सरकार के विशेष प्रतिनिधि का पद धारण करते हैं। जांच के बाद निर्वाचन आयोग का यह निष्कर्ष था कि स्टाफ कार के उपयोग, तमिलनाडु भवन का कब्जा अपने पास रखने और टेलीफोन के उपयोग जैसे कुछ विशेषाधिकारों और लाभों का उपयोग करने के कारण विशेष प्रतिनिधि के पद के बारे में यह माना जाना चाहिए कि उससे लाभ प्राप्त हो सकता है और इस बात की युक्तियुक्त संभावना है कि पद धारण करने वाला व्यक्ति लाभ कमाएगा। इसके अतिरिक्त पद के धारक श्री मोहनरंगम् के लिये ये सुविधाएं ऐसी हैसियत और प्रतिष्ठा का प्रतीक हैं जो किसी संसद्-सदस्य के द्वारा सामान्यत: उपयोग में नहीं लाई जाती हैं। अत: आयोग की राय थी कि श्री मोहनरंगम् संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन राज्य सभा का सदस्य होने के लिए इसलिए अयोग्य हो गए हैं क्योंकि वह नई दिल्ली में तमिलनाडु सरकार के विशेष प्रतिनिधि का ऐसा पद धारण करते हैं जिसे उक्त अनुच्छेद के प्रयोजन के लिए "लाभ का पद" माना जाएगा। भारत के राष्ट्रपति ने तदनुसार 8 सितम्बर, 1982 को एक आदेश पारित किया।[166]

संविधान के अनुच्छेद 103(1) के अधीन श्रीमती जया बच्चन की कथित निरर्हता के संबंध में एक याचिका कानपुर के श्री मदन मोहन द्वारा राष्ट्रपति को प्रस्तुत की गई। उन्होंने निश्चयपूर्वक कहा कि राज्य सभा में उनके (श्रीमती बच्चन के) निर्वाचन के पश्चात् उत्तर प्रदेश सरकार ने श्रीमती बच्चन को 14 जुलाई, 2007 से उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद् के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया और इस प्रकार वह अनुच्छेद 102(1) के अर्थ के दायरे में लाभ का पद धारण करने लगीं। 2 मार्च, 2006 को निर्वाचन

आयोग ने मत व्यक्त किया कि सदस्य उक्त परिषद् में अध्यक्ष के रूप में उनकी नियुक्ति की तारीख 14 जुलाई, 2004 से अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन अयोग्य हो गईं। तदनुसार, भारत के राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 103(1) के अधीन श्रीमती जया बच्चन को 14 जुलाई, 2004 से राज्य सभा का सदस्य होने के लिए अयोग्य माने जाने का निर्णय किया।[167]

(ख) यदि उसे किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विकृतचित्त घोषित कर दिया जाता है;

(ग) यदि वह अनुन्मोचित दिवालिया हो जाता है;

(घ) यदि वह स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर लेता है या वह स्वीकार करता है कि वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा रखता है या उससे जुड़ा हुआ है; या

(ङ) यदि वह दसवीं अनुसूची के अधीन अयोग्य है।

मई 1989 और अगस्त 1989, दिसंबर 2005 और अप्रैल 2007 में सभापति को राज्य सभा के चार सदस्यों से चार अलग-अलग याचिकाएं प्राप्त हुईं जिनमें यह निवेदन किया गया था कि चूंकि मुफ्ती मोहम्मद सईद, श्री सत्यपाल मलिक, श्री जय नारायण प्रसाद निषाद और श्री इसम सिंह ने अपने दल की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है इसलिए उन्हें दसवीं अनुसूची और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अंतर्गत अयोग्य घोषित कर दिया जाए। सभापति ने इन मामलों को प्रारंभिक जांच के लिए और उसके बारे में उन्हें प्रतिवेदन देने के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंपा। तत्पश्चात् सभापति ने अपना निर्णय दिया कि संबंधित सदस्य अयोग्य हो गए हैं। निर्णयों की सभा में घोषणा की गई और उन्हें राज्य सभा संसदीय समाचार भाग-2 में प्रकाशित किया गया और भारत के राजपत्र में अधिसूचित किया गया।[168]

2. यदि कोई व्यक्ति दोनों सदनों का सदस्य चुन लिया जाता है किन्तु उसने दोनों में से किसी में अपना स्थान ग्रहण नहीं किया है तो वह, भारत के राजपत्र में इस घोषणा के प्रकाशन के दस दिनों के भीतर कि वह इस प्रकार चुना गया है, लिखित रूप से सूचना देगा कि वह किस सदन में सेवा करना चाहता है और ऐसा करने पर उसका उस सदन में वह स्थान, जिसमें वह सेवा नहीं करना चाहता, रिक्त हो जाता है। इस तरह दी गई सूचना अन्तिम होती है और उसे वापस नहीं लिया जा सकता। यदि वह ऐसी सूचना देने में विफल रहता है तो उस अवधि की समाप्ति के पश्चात् राज्य सभा में उसका स्थान खाली हो जाता है।[169]

3. यदि संसद् के एक सदन का सदस्य संसद् के दूसरे सदन का सदस्य चुन लिया जाता है तो पहले सदन में उस सदस्य का स्थान उस तारीख से रिक्त हो जाता है जिसको वह दूसरे सदन का सदस्य चुन लिया गया हो।[170]

भिन्न-भिन्न समयों पर लोक सभा का सदस्य चुन लिए जाने पर राज्य सभा की सदस्यता का त्याग कर देने वाले सदस्यों की संख्या इस प्रकार रही है:

1957 (दूसरी लोक सभा)-15; 1962 (तीसरी लोक सभा)-15; 1967-68 (चौथी लोक सभा)-14; 1971-72 (पांचवीं लोक सभा)-5; 1977 (छठी लोक सभा)-11; 1980 (सातवीं लोक सभा)-10; 1984 (आठवीं लोक सभा)-9; 1989 (नौवीं लोक सभा)-12; 1991 (दसवीं लोक सभा)-4; 1996 (ग्यारहवीं लोक सभा)-4; 1998 (बारहवीं लोक सभा)-9; 1999 (तेरहवीं लोक सभा)-4; 2004 (चौदहवीं लोक सभा)-8; 2009 (पन्द्रहवीं लोक सभा)-14 और 2014 (सोलहवीं लोक सभा)-6

1962 में एक सदस्य ने, जो लोक सभा के लिए निर्वाचित होने पर राज्य सभा का सदस्य नहीं रह गया था, यह मुद्दा उठाया कि राज्य सभा की उसकी सदस्यता की समाप्ति उस नई लोक सभा के गठन की तारीख को होनी चाहिए जिसके लिए वह निर्वाचित हुआ है और लोक सभा के लिए निर्वाचित होते ही तत्काल राज्य सभा की उसकी सदस्यता समाप्त नहीं होनी चाहिए। अत: विधि मंत्रालय को इस मुद्दे का निर्देश करते हुए यह सुझाव दिया कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 68 में "चुन लिया गया है" शब्दों का सामान्य स्वाभाविक अर्थ लगाया जाना चाहिए और धारा 69 में, जो आसीन सदस्य से संबंधित है, जिस तारीख को कोई व्यक्ति दूसरे सदन का सदस्य चुन लिया जाता है वह इस प्रकार होनी चाहिए (क) आम चुनाव में निर्वाचित हुए किसी सदस्य के मामले में वह तारीख जिसको नई लोक सभा विधिवत् गठित समझी जाएगी या वह तारीख जिसको वह निर्वाचित हुआ हो, जो भी बाद में हो, और (ख) किसी अन्य निर्वाचित सदस्य के मामले में, अर्थात् किसी उप-चुनाव के मामले में, उसके निर्वाचन की तारीख, और कानून में तदनुसार संशोधन किया जाना चाहिए। विधि मंत्रालय, अन्य बातों के साथ, निम्नलिखित कारणों से उपरोक्त सुझाव पर सहमत नहीं हुआ:

(i) ऐसा कोई विधिमान्य कारण प्रतीत नहीं होता जिससे "चुन लिया जाता है" शब्दों का सामान्य और स्वाभाविक अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए, चाहे आम चुनावों का मामला हो या उप-चुनावों का। हो सकता है कि आम चुनाव के बाद लोक सभा का गठन बाद में हो अर्थात् वह लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 73 के अधीन अधिसूचना के जारी किए जाने पर हो पर इससे यह तथ्य लुप्त नहीं हो सकता कि एक व्यक्ति पहले ही लोक सभा के सदस्य के रूप में "चुन लिया गया" है। यदि संविधान के निर्माताओं का इरादा इसके विपरीत होता तो उन्होंने अनुच्छेद 101(1) के दूसरे भाग में "चुन लिया गया है" शब्दों का प्रयोग ही नहीं किया होता।

(ii) सिद्धांत की दृष्टि से "चुन लिया गया है" शब्दों का अलग-अलग अर्थ लगाने का कोई कारण नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सिद्धांत का अर्थ यह है कि संसद् के दोनों सदनों के प्रति किसी व्यक्ति की विभक्त निष्ठा नहीं हो सकती। इस तथ्य से कि एक सदन का कोई आसीन सदस्य दूसरे सदन का सदस्य चुना गया है, यह दिखाई देता है कि जिस सदन का वह आसीन सदस्य है उसके प्रति उसमें निष्ठा और लगाव नहीं है। ऐसे मामले में, वह उस सदन को, जिसका वह आसीन सदस्य है, जितनी जल्दी छोड़ दे उतना ही उस सदन के लिए और उस सदस्य के लिए भी अधिक अच्छा होगा क्योंकि किसी व्यक्ति को ऐसे सदन की एक दिन के लिए भी सेवा करने का अधिकार नहीं है जिसे वह पसंद नहीं करता। नए सदन के लिए उसके चुन लिए जाने से यह सिद्ध होता है कि उससे उसे प्रेम है और यह कल्पना करना संभव है कि उसके इस प्रेम का उसके उस सदन के प्रति दायित्व और कर्त्तव्य से टकराव हो सकता है, जिसका वह आसीन सदस्य है। संसद् का प्रत्येक सदस्य यह शपथ लेता है या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता है कि वह "जिस पद को ग्रहण करने वाला है उसके कर्त्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करेगा।" यदि कोई व्यक्ति निर्वाचित होने के बाद, उदाहरणस्वरूप, लोक सभा के लिए निर्वाचित होने के बाद राज्य सभा का सदस्य बना रहता है तो हो सकता है कि वह राज्य सभा के सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वहन न कर सके और उसके कारण अपने द्वारा ली गई शपथ या सत्यनिष्ठा से किए गए प्रतिज्ञान के विपरीत कार्य करें। यही कारण है कि अनुच्छेद 101(1) के दूसरे भाग में "चुन लिया गया है" शब्दों का प्रयोग किया गया है और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की दोनों धाराओं अर्थात् धारा 68 और 69 में इन शब्दों का एक ही अर्थ लगाया गया है।

(iii) यह कल्पना करना संभव है कि दोनों सदनों के बीच टकराव की स्थिति पैदा हो सकती है। उदाहरण के लिए दो सदन किसी महत्वपूर्ण विधेयक पर असहमत हो सकते हैं और उनका राजनैतिक स्वरूप अलग-अलग हो सकता है। ऐसी स्थिति में यदि राज्य सभा के किसी आसीन सदस्य को, जो लोक सभा का सदस्य चुन लिया गया है, राज्य सभा का सदस्य बने रहने की अनुमति दी जाती है तो जिस सदन को उसने त्याग दिया है उसमें यदि वह मतदान

करता है तो उससे आसानी से पलड़ा एक ओर झुक सकता है और उसके कारण राजनैतिक और संवैधानिक संकट उत्पन्न हो सकता है जिसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

(iv) यह कहा गया है कि यदि राज्य सभा का कोई आसीन सदस्य लोक सभा के लिए उसके निर्वाचन की तारीख को राज्य सभा का सदस्य नहीं रहता तो वह लोक सभा के विधिवत् गठित होने के पहले ही राज्य सभा की सदस्यता से रहित हो जाता है और इसके कारण वह राज्य सभा के ऐसे किसी सत्र में उपस्थित नहीं हो सकता जो लोक सभा के गठित होने तक के अंतराल में बुलाया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि यह एक असुविधा है किन्तु इसकी संभावना नहीं है कि यह बहुत भारी असुविधा होगी क्योंकि किसी भी स्थिति में यह अंतराल अधिक दिनों तक नहीं रहेगा। उपरोक्त सिद्धांतों को देखते हुए राज्य सभा के ऐसे किसी भी आसीन सदस्य को, जो लोक सभा का सदस्य चुन लिया गया है, इस थोड़ी-सी असुविधा को सहन करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए।[171]

4. यदि कोई व्यक्ति सदन में एक से अधिक स्थान के लिए निर्वाचित हो गया है तो जब तक वह उन स्थानों में से एक को छोड़कर अन्य सबसे अपना त्याग-पत्र चौदह दिन के अंदर नहीं दे देता है, सभी स्थान रिक्त हो जाते हैं।[172]

श्री मेहर चन्द खन्ना अप्रैल, 1956 में दिल्ली से निर्वाचित हुए। बाद में वे 13 दिसंबर, 1956 को पश्चिमी बंगाल से निर्वाचित हो गए। उन्होंने 15 दिसंबर, 1956 को दिल्ली के अपने स्थान से त्याग-पत्र दे दिया। उन्होंने 17 दिसंबर, 1956 को पश्चिमी बंगाल से निर्वाचित सदस्य के रूप में शपथ ली।[173]

श्री जगन्नाथ प्रसाद 27 फरवरी, 1965 को राजस्थान से निर्वाचित हुए और उन्होंने 3 मार्च, 1965 को शपथ ली। उस राज्य के एक अन्य स्थान के भरे जाने के लिए वे वहां से 9 मार्च, 1966 को पुन: निर्वाचित हुए। उन्होंने 21 मार्च, 1966 को अपने पहले स्थान से त्यागपत्र दे दिया और 22 मार्च, 1966 को बाद वाले स्थान के लिए शपथ ली।[174]

श्री सोमप्पा आर. बोम्मई, 2 जुलाई, 1992 को ओडिशा से निर्वाचित हुए और उनकी पदावधि 1 जुलाई, 1998 को समाप्त होनी थी। वे 20 मार्च, 1998 को हुए राज्य सभा के द्विवार्षिक चुनाव में कर्णाटक से पुन:निर्वाचित हुए। उन्होंने निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 की धारा 91 के साथ पठित लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 70 के उपबंधों के अनुसार 2 अप्रैल, 1998 को ओडिशा राज्य की सीट से त्याग-पत्र दे दिया।[175]

प्रो. राम देव भंडारी 8 जुलाई, 1992 को बिहार से निर्वाचित हुए। वे 10 जून, 1998 को राज्य सभा के उपचुनाव में इसी राज्य से पुन:निर्वाचित हुए। उन्होंने निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 की धारा 91 के साथ पठित लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 70 के उपबंधों के अनुसार 22 जून, 1998 को अपनी पूर्व सीट से त्यागपत्र दे दिया।[176]

श्री नरेन्द्र बुढानिया 4 अगस्त, 2009 को राजस्थान से निर्वाचित हुए और उनकी पदावधि 4 जुलाई, 2010 को समाप्त होनी थी। वे 15 जून, 2010 को दूसरी सीट भरने हेतु इसी राज्य से पुन:निर्वाचित हुए। उन्होंने 22 जून, 2010 को अपनी पूर्व सीट से त्यागपत्र दे दिया और 26 जुलाई, 2010 को दूसरी सीट के लिए पुन: शपथ ग्रहण किया।[177]

श्री प्रेम चन्द गुप्ता 10 अप्रैल, 2008 को बिहार से निर्वाचित हुए और उनकी पदावधि 9 अप्रैल, 2014 को समाप्त होनी थी। वे 31 जनवरी, 2014 को हुए राज्य सभा के द्विवार्षिक चुनावों में झारखंड से पुन: निर्वाचित हुए। उन्होंने निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 की धारा 91 के साथ पठित लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 70 के उपबंधों के अनुसार 12 फरवरी, 2014 को अपनी पूर्व सीट से त्यागपत्र दे दिया।[178]

डा. कनवर दीप सिंह 8 जुलाई, 2010 को झारखंड से निर्वाचित हुए और उनका कार्यकाल 7 जुलाई, 2016 को समाप्त होना था। वे 7 फरवरी, 2014 को राज्य सभा के द्विवार्षिक चुनावों में पश्चिम बंगाल से पुन:निर्वाचित हुए। उन्होंने निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 की धारा 91 के साथ पठित लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 70 के उपबंधों के अनुसार 19 फरवरी, 2014 को अपने पहले वाले स्थान से इस्तीफा दे दिया।[179]

5. यदि कोई व्यक्ति राज्य सभा और राज्य विधानमंडल के किसी सदन, दोनों का सदस्य चुन लिया जाता है तो यदि वह भारत के राजपत्र अथवा राज्य के राजपत्र जो भी बाद में प्रकाशित हो, में अपने निर्वाचन की घोषणा के प्रकाशित होने के चौदह दिनों की अवधि के अंदर राज्य विधान-मंडल के अपने स्थान से त्यागपत्र नहीं देता है तो उस स्थिति में राज्य सभा में उसका स्थान रिक्त हो जाता है।[180]

श्री जय भद्र हेगजर नामक सदस्य 3 मार्च, 1962 को असम की विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। 17 मार्च, 1962 को राज्य सभा में उनका स्थान रिक्त हो गया।

श्री एम.ए.एम. नाइकर 1 अप्रैल, 1964 को तत्कालीन मद्रास विधान परिषद् के लिए निर्वाचित हुए। 15 अप्रैल, 1964 को राज्य सभा में उनका स्थान रिक्त हो गया।

श्री एल. गणेशन 28 मार्च, 1986 को तमिलनाडु विधान परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए। 10 अप्रैल, 1986 को राज्य सभा में उनका स्थान रिक्त हो गया।[181]

राज्य सभा के एक नामनिर्देशित सदस्य श्री गुलाम रसूल कर का स्थान 28 दिसंबर, 1987 को रिक्त हो गया क्योंकि वे 14 दिसंबर, 1987 को जम्मू-कश्मीर विधान परिषद् के लिए निर्वाचित हो गए थे।[182]

कर्णाटक से निर्वाचित सदस्य श्री डी. बी. चन्द्रे गौडा ने 14 दिसंबर, 1989 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया क्योंकि वे 30 नवम्बर, 1989 को कर्णाटक विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हो गए थे।[183]

मणिपुर से निर्वाचित सदस्य श्री आर.के. दोरेन्द्र सिंह ने 12 मार्च, 1990 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया क्योंकि वे मणिपुर विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हो गए थे।[184]

बिहार से निर्वाचित सदस्य डा. जगन्नाथ मिश्रा ने बिहार विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 16 मार्च, 1990 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[185]

अरूणाचल प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्रीमती ओमेम मोयोंग देवरी ने अरूणाचल प्रदेश विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 19 मार्च, 1990 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[186]

उत्तर प्रदेश से निर्वाचित सदस्य कुमारी मायावती ने उत्तर प्रदेश विधान सभा की सदस्य निर्वाचित होने पर 25 अक्टूबर, 1996 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[187]

गुजरात से निर्वाचित सदस्य श्रीमती आनंदीबेन जेठाभाई पटेल ने 12 मार्च, 1998 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया क्योंकि वे गुजरात विधान सभा की सदस्य निर्वाचित हो गई थीं।[188]

कर्णाटक से निर्वाचित सदस्य श्री एस.एम. कृष्णा ने कर्णाटक विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 14 अक्टूबर, 1999 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[189]

पंजाब से निर्वाचित सदस्य श्री राज मोहिन्दर सिंह ने 23 फरवरी, 2001 को पंजाब विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 1 मार्च, 2001 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[190]

उत्तर प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्री राजनाथ सिंह ने 9 अप्रैल, 2001 को उत्तर प्रदेश विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 19 अप्रैल, 2001 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[191]

तमिलनाडु से निर्वाचित सदस्य श्री एन. थलवै सुंदरम ने 13 मई, 2001 को तमिलनाडु विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 18 मई, 2001 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[192]

पश्चिम बंगाल से निर्वाचित सदस्य मोहम्मद सलीम ने पश्चिम बंगाल विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 24 मई, 2001 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[193]

पंजाब से निर्वाचित सदस्य सरदार बलविंदर सिंह भुंडर ने पंजाब विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 7 मार्च, 2002 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[194]

उत्तर प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्री मोहम्मद आज़म खान ने उत्तर प्रदेश विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 9 मार्च, 2002 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[195]

जम्मू और कश्मीर से निर्वाचित सदस्य श्री शरीफुद्दीन शरिक ने जम्मू और कश्मीर विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 26 अक्टूबर, 2002 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[196]

उत्तर प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्री मुनव्वर हसन ने उत्तर प्रदेश विधान परिषद का सदस्य निर्वाचित होने पर 27 जनवरी, 2004 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[197]

ओडिशा से निर्वाचित सदस्य श्री मनमोहन सामल ने ओडिशा विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 23 मई, 2004 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[198]

16 मार्च, 2005 को राज्य सभा में झारखंड से निर्वाचित सदस्य श्री स्टीफन मरांडी का स्थान समसामयिक सदस्यता का प्रतिषेध नियम, 1950 के नियम 2 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 101(2) के अधीन रिक्त घोषित कर दिया गया, क्योंकि वे झारखंड विधान परिषद के सदस्य निर्वाचित हो गए थे।[199]

जम्मू और कश्मीर से निर्वाचित सदस्य श्री गुलाम नबी आज़ाद ने जम्मू और कश्मीर विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 29 अप्रैल, 2006 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[200]

केरल से निर्वाचित सदस्य श्री एन.के. प्रेमचंद्रन ने 11 मई, 2006 को केरल विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर 17 मई, 2006 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[201]

हिमाचल प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्री सुरेश भारद्वाज ने 9 जनवरी, 2008 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया, क्योंकि वे दिसंबर, 2007 में हिमाचल प्रदेश विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हो गए थे।[202]

24 मार्च, 2008 को राज्य सभा में नागालैंड से निर्वाचित सदस्य श्री टी. आर. जेलियांग का स्थान समकालिक सदस्यता प्रतिषेध नियम, 1950 के नियम 2 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 101(2) के अनुसार रिक्त घोषित कर दिया गया क्योंकि वे 10 मार्च, 2008 को नागालैंड विधान सभा के लिए निर्वाचित हो गए थे।[203]

झारखंड से निर्वाचित सदस्य श्री हेमंत सोरेन ने 4 जनवरी, 2010 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया, क्योंकि वे 2009 में झारखंड विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हो गए थे।[204]

महाराष्ट्र से निर्वाचित सदस्य श्री पृथ्वीराज चव्हाण ने 6 मई, 2011 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया, क्योंकि वे 27 अप्रैल, 2011 को महाराष्ट्र विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हो गए थे।[205]

कर्णाटक से निर्वाचित सदस्य श्री अनिल एच. लाड ने 20 मई, 2013 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया, क्योंकि वे 8 मई, 2013 को कर्णाटक विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हो गए थे।[206]

मध्य प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्रीमती माया सिंह ने 23 दिसंबर, 2013 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया, क्योंकि वे 10 दिसंबर, 2013 को मध्य प्रदेश विधान सभा की सदस्य निर्वाचित हो गई थीं।[207]

ओडिशा से निर्वाचित सदस्य श्री शशि भुषण बेहरा और श्री रबिनारायण महापात्र ने क्रमश: 28 मई और 30 मई, 2014 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया, क्योंकि वे ओडिशा विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हो गए थे।[208]

हरियाणा एवं जम्मू और कश्मीर से निर्वाचित सदस्य श्री रणबीर सिंह प्रजापति और श्री मोहम्मद शफी ने क्रमश: 1 नवंबर, 2014 और 12 जनवरी, 2014 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया, क्योंकि वे क्रमश: हरियाणा एवं जम्मू और कश्मीर के सदस्य निर्वाचित हो गए थे।[209]

एक मुद्दा यह उठाया गया था कि क्या ऐसा सदस्य सदन की बैठकों में उपस्थित रहना जारी रख सकता है जो किसी राज्य में मंत्री नियुक्त हो गया हो। सभापति ने निर्णय दिया कि संबंधित मंत्री किसी भी निरर्हता के अधीन नहीं आता। निरर्हता का प्रश्न तभी उठ सकता है जब वह सदस्य किसी राज्य विधानमंडल का

सदस्य चुन लिया गया हो। ऐसे सदस्य द्वारा सभा की कार्यवाही में भाग लेने के औचित्य के प्रश्न पर सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> निस्संदेह यह कुछ विचित्र लगता है कि किसी राज्य में मंत्री नियुक्त हुआ कोई सदस्य राज्य सभा में उपस्थित हो और उसकी कार्यवाही में भाग ले। तथापि, मैं इसे सदस्य के विवेक पर छोड़ना चाहता हूं।[210]

6. यदि किसी सदस्य का निर्वाचन उच्च न्यायालय द्वारा शून्य घोषित कर दिया जाता है[211] तो उसका स्थान न्यायालय के आदेश के घोषित होते ही खाली हो जाता है।[212] जहां आदेश के प्रवर्तन पर रोक लगाई जाती है वहां यह समझा जाता है कि आदेश कभी भी प्रभावी नहीं हुआ।[213] जहां उच्चतम न्यायालय उक्त न्यायालय द्वारा अपील का निपटारा होने तक अपील करने वाले सदस्य को उसके स्थान के बने रहने के लिए आवश्यक दिनों तक के लिए सदन में उपस्थित होने की अनुमति देता है, वहां वह सदस्य उच्चतम न्यायालय के आदेश में वर्णित सीमाओं के अधीन रहते हुए सदन का सदस्य बना रहता है।

22 दिसंबर, 1960 को निर्वाचन अधिकरण, भोपाल ने मध्य प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्री के.पी. वर्मा के निर्वाचन को रद्द कर दिया और अपील करने पर बाद में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने उसे सही ठहराया।[214]

पंजाब से निर्वाचित एक सदस्य डा. अनूप सिंह का निर्वाचन 22 नवम्बर, 1962 को रद्द कर दिया गया था।[215]

मार्च, 1974 में हुए द्विवार्षिक चुनावों में श्री जॉन उर्फ वालमपुरी जॉन को तमिलनाडु राज्य से निर्वाचित घोषित किया गया। तथापि, उनके निर्वाचन को मद्रास उच्च न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी गई कि उन्होंने अपने नामनिर्देशन को दाखिल करने की तारीख को संविधान के अनुच्छेद 84 की अपेक्षाओं के अनुसार तीस वर्ष की आयु पूरी नहीं की थी। 14 अक्तूबर, 1974 को मद्रास उच्च न्यायालय ने राज्य सभा के लिए उनके निर्वाचन को शून्य घोषित कर दिया और इसे रद्द कर दिया। इसके बाद श्री जॉन ने मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की। उच्चतम न्यायालय ने 10 जनवरी, 1975 को कतिपय शर्तों पर एक पक्षीय रोक का आदेश दिया। 12 अप्रैल, 1977 को उच्चतम न्यायालय ने अपील खारिज कर दी और मद्रास उच्च न्यायालय के उस निर्णय को उचित ठहराया जिसमें श्री जॉन के निर्वाचन को इस आधार पर शून्य घोषित किया गया था कि उन्होंने नामनिर्देशनों की छानबीन की तारीख को तीस वर्ष की आयु पूरी नहीं की थी।[216]

उच्चतम न्यायालय ने 9 मई, 1980 को पंजाब से निर्वाचित श्री रघबीर सिंह गिल का निर्वाचन रद्द कर दिया था।[217]

गुवाहाटी उच्च न्यायाल ने 7 नवम्बर, 1990 को श्री अमृतलाल बसुमतारी का निर्वाचन रद्द कर दिया था और उच्चतम न्यायालय ने 1 अगस्त, 1991 के अपने आदेश द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय को सही ठहराया।[218]

श्री शिबू सोरेन के निर्वाचन को पटना उच्च न्यायालय ने दिनांक 10 मई, 2000 के अपने आदेश द्वारा रद्द कर दिया। श्री सोरेन द्वारा की गई अपील पर उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 22 मई, 2000 के अपने आदेश द्वारा पटना उच्च न्यायालय के आदेश पर अमल किए जाने पर रोक लगा दी। उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 19 जुलाई, 2001 के अपने निर्णय द्वारा श्री शिबू सोरेन के राज्य सभा में निर्वाचन को रद्द करने संबंधी पटना उच्च न्यायालय के निर्णय को सही ठहराया और श्री दयानन्द सहाय के पक्ष में उच्च न्यायालय द्वारा की गई घोषणा को उचित माना।[219]

7. यदि कोई सदस्य भारतीय दंड संहिता के अधीन सिद्धदोष हो गया है या लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 125 या धारा 135 या धारा 136 में वर्णित निर्वाचन अपराधों का दोषी

पाया गया है या वह उक्त अधिनियम के भाग-2 अध्याय 3 में वर्णित किसी अन्य निरर्हता से ग्रस्त हो जाता है तो ऐसे सदस्य का स्थान रिक्त हो जाता है।[220]

संसद्-सदस्य श्री रशीद मसूद को 19 सितम्बर, 2013 और 1 अक्टूबर, 2013 को भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 420 और 468 के साथ पठित धारा 120ख और भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम, 1988 (1988 का 49) की धारा 13 की उप-धारा (1) के खंड (घ) के साथ पठित धारा 13 की उप-धारा (2) के तहत, दोनों अधिनियमों के अधीन अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया था। अत: श्री मसूद को दोषसिद्धि की तारीख अर्थात् 19 सितंबर, 2013 से संविधान के अनुच्छेद 102 के खंड (1) के उपखंड (ङ) के साथ पठित लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (1951 का 43) की धारा 8 के अनुसार राज्य सभा की सदस्यता से निरर्हित कर दिया गया।[221]

8. यदि कोई सदस्य सभा की अनुमति के बिना साठ दिन या उससे अधिक की अवधि के लिए सभा की सभी बैठकों से अनुपस्थित रहता है तो उसका स्थान रिक्त घोषित किया जा सकता है।[222]

एक सदस्य को अनुपस्थिति की अनुमति नहीं दी गई थी किन्तु इस आधार पर उसकी सदस्यता समाप्त करने के लिए सभा में कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया गया।[223]

एक अन्य सदस्य ने साठ दिन से अधिक अवधि के लिए अनुपस्थित होने पर भी अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन नहीं किया किन्तु अनुच्छेद 101(4) के अधीन उसकी सदस्यता समाप्त करने के लिए कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई।[224]

पंजाब से निर्वाचित एक सदस्य (श्री बरजिंदर सिंह हमदर्द) राज्य सभा की बैठकों से राज्य सभा के सभापति को अनुपस्थिति के लिए आवेदन किये बिना साठ दिनों से अधिक अनुपस्थित रहे। यह तथ्य राज्य सभा के महासचिव द्वारा सदन के नेता (श्री जसवंत सिंह) की जानकारी में लाया गया। बाद में, संसदीय कार्य तथा सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री (श्री प्रमोद महाजन) ने 21 दिसंबर, 2000 को सभा में संविधान के अनुच्छेद 101(4) के अनुसरण में प्रस्ताव उपस्थित किया कि श्री बरजिंदर सिंह हमदर्द, जो सभा की सभी बैठकों से साठ दिन से अधिक अनुपस्थित रहे, के स्थान को रिक्त घोषित किया जाए। सभा द्वारा प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। उक्त सदस्य का स्थान रिक्त होने की घोषणा करते हुए एक अधिसूचना भी जारी की गई।[225]

9. यदि सभा द्वारा किसी सदस्य के निष्कासन का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है।

एक सदस्य के आचरण और गतिविधियों की जांच के प्रयोजन के लिए विशिष्ट रूप से नियुक्त की गई समिति के प्रतिवेदन के आधार पर सभा के नेता द्वारा उपस्थित तथा सदन द्वारा स्वीकृत किए गए एक प्रस्ताव द्वारा संबंधित सदस्य को अपने ऐसे आचरण के लिए सभा से निष्कासित किया गया जो सभा और उसके सदस्यों की प्रतिष्ठा को गिराने वाला था और सदन अपने सदस्यों के आचरण में उनके द्वारा जिन मानदंडों के अनुसरण की अपेक्षा रखता है उन मानदंडों के अनुरूप नहीं था।[226]

आचार समिति के सातवें प्रतिवेदन की सिफारिशों पर सहमति जताते हुए 23 दिसंबर, 2005 को सदन द्वारा एक प्रस्ताव स्वीकार करने के परिणामस्वरूप डा. छत्रपाल सिंह लोढ़ा को सदन की सदस्यता से निष्कासित कर दिया गया था, क्योंकि उनका आचरण सदन की गरिमा को ठेस पहुंचाने वाला और सदन द्वारा स्वीकार की गई आचार-संहिता के अनुरूप नहीं था। परिणामस्वरूप, डा. लोढ़ा 23 दिसंबर, 2005 के मध्याह्न पश्चात से राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे।[227]

आचार समिति के आठवें प्रतिवेदन के एक प्रस्ताव को सदन द्वारा स्वीकार किए जाने के परिणामस्वरूप डा. स्वामी साक्षीजी महाराज को 21 मार्च, 2006 को राज्य सभा की सदस्यता से निष्कासित कर दिया गया।[228]

10. यदि कोई सदस्य राष्ट्रपति के पद[229] के लिए या उपराष्ट्रपति के पद[230] के लिए निर्वाचित हो जाता है या किसी राज्य का राज्यपाल[231] नियुक्त किया जाता है तो जिस पद के लिए वह निर्वाचित या नियुक्त किया गया है, जैसी भी स्थिति हो, उसके ग्रहण कर लेने पर सदन में उसका स्थान रिक्त हो जाता है।

तीन सदस्य अर्थात् डा. ज़ाकिर हुसैन, हाफिज मुहम्मद इब्राहीम और श्री गोपाल स्वरूप पाठक क्रमश: बिहार, पंजाब और मैसूर के राज्यपाल नियुक्त किए गए थे। उन्होंने क्रमश: 6 अगस्त, 1957, 4 मई, 1964 और 13 मई, 1967 को पद ग्रहण किया। यद्यपि उन्होंने राज्य सभा की सदस्यता से त्यागपत्र नहीं दिया तथापि, वे इन तारीखों से राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे।

आन्ध्र प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्री बी. सत्यनारायण रेड्डी ने उत्तर प्रदेश का राज्यपाल नियुक्त होने पर 11 फरवरी, 1990 को राज्य सभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।[232]

उत्तर प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्री वीरेन्द्र वर्मा ने पंजाब का राज्यपाल नियुक्त होने पर 14 जून, 1990 को राज्य सभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।[233]

राजस्थान से निर्वाचित सदस्य श्री सुंदर सिंह भंडारी ने बिहार का राज्यपाल नियुक्त होने पर 26 अप्रैल, 1998 को राज्य सभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।[234]

उत्तर प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्री टी.एन. चतुर्वेदी ने कर्णाटक का राज्यपाल नियुक्त होने पर 20 अगस्त, 2002 को राज्य सभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।[235]

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली से निर्वाचित सदस्य डा. ए. आर. किदवई ने हरियाणा का राज्यपाल नियुक्त होने पर 7 जुलाई, 2004 को राज्य सभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।[236]

हरियाणा से निर्वाचित सदस्य श्री हंसराज भारद्वाज ने कर्णाटक का गवर्नर नियुक्त होने पर 29 जून, 2009 को राज्य सभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।[237]

महाराष्ट्र से निर्वाचित सदस्य श्री शिवराज वी. पाटिल ने पंजाब का गवर्नर नियुक्त होने पर 21 जनवरी, 2010 को राज्य सभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।[238]

मध्य प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्री कप्तान सिंह सोलंकी ने हरियाणा राज्य के राज्यपाल के रूप में पद ग्रहण करने की तिथि अर्थात् 27 जुलाई, 2014 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया।[239]

11. यदि कोई सदस्य सदन का सदस्य होने के लिए अयोग्य हो जाता है तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है।[240]

डा. एम. चेन्ना रेड्डी द्विवार्षिक चुनावों में राज्य सभा के लिए 3 अप्रैल, 1968 से आरंभ होने वाली पदावधि के लिए निर्वाचित हुए। इसके पहले वे फरवरी, 1967 में हुए चुनावों में आंध्र प्रदेश विधान सभा के लिए निर्वाचित हुए थे। इस निर्वाचन के संबंध में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि भ्रष्ट तरीके अपनाए जाने के आधार पर निर्वाचन अमान्य है। इसके बाद उच्चतम न्यायालय में अपील की गई और उसने भी उच्च न्यायालय के निर्णय को उचित ठहराया। ऐसा होने पर निर्वाचन आयोग ने सभी संबद्ध व्यक्तियों को सूचना दी कि डा. रेड्डी 26 अप्रैल, 1968 से, जो उच्च न्यायालय के निर्णय की तारीख थी, छह वर्षों के लिए संसद् या किसी राज्य विधान-मंडल का सदस्य होने के लिए आयोग्य हो गए हैं। अत: डा. रेड्डी उस तारीख से राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे।

भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के उपबंधों के अंतर्गत निम्नलिखित सदस्यों को निरर्हित कर दिया गया:¬

श्री मुफ्ती मोहम्मद सईद (भा.रा.कां) को 28 जुलाई, 1989 को निरर्हित किया गया।[241]

श्री सत्यपाल मलिक (भा.रा.कां) को 14 सितंबर, 1989 को निरर्हित किया गया।[242]

श्री जय नारायण प्रसाद निषाद (भा.ज.पा.) को 26 मार्च, 2008 को निरर्हित किया गया।[243]

श्री इसम सिंह (ब.स.पा) को 4 जुलाई, 2008 को निरर्हित किया गया।[244]

12. जब कोई सदस्य अपने स्थान से त्याग-पत्र देता है और उसका त्याग-पत्र सभापति द्वारा स्वीकृत हो जाता है तब वह त्याग-पत्र स्वीकार कर लिए जाने के बाद सदस्य नहीं रहता।[245]

मूलत: संविधान में पीठासीन अधिकारी द्वारा त्याग-पत्र स्वीकार किए जाने के लिए कोई उपबंध नहीं था। संविधान में पीठासीन अधिकारी द्वारा त्याग-पत्र स्वीकार किए जाने की आवश्यकता का उपबंध संविधान (तैंतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1974 के द्वारा आरंभ किया गया था ताकि बलपूर्वक दिलाए गए त्याग-पत्रों पर अंकुश लग सके।

किसी सदस्य का त्याग-पत्र लिखित रूप में और उसके हस्ताक्षर-सहित होना चाहिए और वह सभापति को संबोधित होना चाहिए।[246] यदि कोई सदस्य सभापति को अपना त्याग-पत्र देता है और उसे सूचित करता है कि त्याग-पत्र स्वैच्छिक और वास्तविक है और सभापति को इसके विपरीत कोई सूचना या जानकारी नहीं है तो सभापति त्याग-पत्र तुरंत स्वीकार कर सकता है।[247] यदि सभापति को डाक द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से त्याग-पत्र प्राप्त होता है तो सभापति अपनी संतुष्टि के लिए कि त्याग-पत्र स्वैच्छिक और वास्तविक है, ऐसी जांच कर सकता है जैसी वह उचित समझे। यदि सभापति स्वयं या राज्य सभा सचिवालय या अन्य किसी अभिकरण के माध्यम से जिसे वह उचित समझे, संक्षिप्त जांच किए जाने के पश्चात् इस बात से सन्तुष्ट हो कि त्याग-पत्र स्वैच्छिक या वास्तविक नहीं है तो वह त्याग-पत्र स्वीकार नहीं भी कर सकता।[248]

त्याग-पत्र सदस्य द्वारा विनिर्दिष्ट तारीख से प्रभावी होता है, यदि उसे उस तारीख तक सभापति द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो, और यदि कोई तारीख विनिर्दिष्ट नहीं की गई है तो वह त्याग-पत्र उस तारीख से प्रभावी होता है जब उसे सभापति द्वारा स्वीकार किया जाता है। सदस्य अपना त्याग-पत्र सभापति द्वारा उसे स्वीकृत किए जाने से पूर्व किसी भी समय वापस ले सकता है। यदि किसी सदस्य का त्याग-पत्र सभापति द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह सदस्य उसे वापस नहीं ले सकता।[249]

आन्ध्र प्रदेश से निर्वाचित एक सदस्य ने तारीख 1 नवम्बर, 1989 को एक पत्र भेजा, जो सचिवालय को 7 नवम्बर, 1989 को प्राप्त हुआ जिसमें उसने इस आधार पर राज्य सभा के अपने स्थान से त्याग-पत्र दिया था कि वह विधान सभा का चुनाव लड़ रहा है। यह समाधान करने के लिए कि क्या त्याग-पत्र स्वैच्छिक है, सदस्य से संपर्क करने का प्रयास किया गया। त्याग-पत्र पर निर्णय लिए जा सकने के पूर्व सदस्य स्वयं दिल्ली आया और उसने एक और पत्र दिया कि वह चुनाव हार गया है और वह राज्य सभा में बना रहना चाहता है और उसने त्याग-पत्र वापस ले लिया है। सभापति ने इस अनुरोध को स्वीकार किया और सदस्य को अपना त्याग-पत्र वापस लेने की अनुमति दे दी गई।[250]

सभापति द्वारा त्याग-पत्र स्वीकार किए जाने के पश्चात् सदन को सूचित किया जाता है कि संबंधित सदस्य ने सदन में अपने स्थान से त्याग-पत्र दे दिया है और सभापति ने त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया है।[251] यदि राज्य सभा का सत्र नहीं चल रहा हो तो जैसे ही वह पुन: समवेत होती है, यह सूचना उसे दे दी जाती है।[252]

सभापति द्वारा किसी सदस्य का त्याग-पत्र स्वीकार कर लिए जाने के बाद महासचिव यथाशीघ्र राज्य सभा संसदीय समाचार भाग-2 और भारत के असाधारण राजपत्र में इसकी सूचना प्रकाशित कराता है और राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना की एक प्रति निर्वाचन आयोग को भेजता है ताकि वह इस प्रकार हुई रिक्ति को भरने के लिए कार्यवाही करे। किन्तु जहां त्याग-पत्र भविष्य में किसी तारीख से लागू होना है, यह सूचना जिस तारीख से त्याग-पत्र लागू होना है उस तारीख से पूर्व संसदीय समाचार और राजपत्र में प्रकाशित नहीं की जाती।[253] सदस्य द्वारा त्याग-पत्र के जो कारण दिए जाते हैं उनकी सूचना सभा को नहीं दी जाती।

> जब सभापति ने एक सदस्य के द्वारा त्याग-पत्र दिए जाने की घोषणा की तब एक अन्य सदस्य ने पूछा "क्यों दिया गया?" सभापति ने कहा: "यदि कोई सदस्य त्याग-पत्र देता है तो मैं उसका कारण नहीं पूछता"[254] (ऐसा 1975 से पहले था)।
>
> एक बार जब सभापति ने एक सदस्य के त्याग-पत्र की सूचना दी तब एक अन्य सदस्य यह जानना चाहता था कि क्या त्याग-पत्र देने वाले सदस्य ने कोई कारण दिए हैं। सभापति ने उत्तर दिया: "नहीं"। एक अन्य सदस्य ने टिप्पणी की कि सभापति को अपना समाधान करना पड़ेगा कि त्याग-पत्र किसी दबाव में नहीं दिया गया है। अत: सदस्य यह जानना चाहता था कि क्या सभापति का समाधान हो गया है कि संबंधित सदस्य ने स्वेच्छा से त्याग-पत्र दिया है। सभापति ने कहा कि त्याग-पत्र के स्वीकार कर लिए जाने के बाद वह अंतिम होता है और किसी सदस्य को सभापति के निर्णय के बारे में प्रश्न उठाने का अधिकार नहीं है। तथापि, इस त्याग-पत्र के बारे में उन्होंने स्पष्ट किया:
>
>> मेरा समाधान हो गया है। मुझे संविधान के उपबंधों की जानकारी है। मैंने समय लिया। मैंने सदस्य से संपर्क किया। मैंने त्याग-पत्र को तभी स्वीकार किया जब मेरा पूरी तरह से समाधान हो गया कि उन्होंने दबाव में आकर त्याग-पत्र नहीं लिखा। उनके हस्ताक्षर मौजूद हैं। हर चीज मौजूद है। मेरा समाधान हो गया है और यह अंतिम है।[255]

कोई सदस्य आवश्यक शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के पहले भी अपने स्थान से त्याग-पत्र दे सकता है।

> राजस्थान से निर्वाचित सदस्य श्री हरिदेव जोशी ने 3 अप्रैल, 1958 से, जो उनकी पदावधि के आरंभ होने की तारीख थी, अपने स्थान से त्याग-पत्र दिया। उन्होंने शपथ नहीं ली और उनके त्याग-पत्र की कोई घोषणा नहीं की गई।
>
> श्री एम.सी. छागला महाराष्ट्र से निर्वाचित हुए थे और उनकी पदावधि 2 अप्रैल, 1962 से आरंभ हुई थी। उन्होंने 17 अप्रैल, 1962 को त्याग-पत्र दे दिया।[256] उन्होंने शपथ नहीं ली थी।
>
> श्री बी.डी. बेहरिंग मणिपुर से निर्वाचित हुए थे और उनकी पदावधि 10 अप्रैल, 1990 को प्रारंभ हुई थी किन्तु उन्होंने शपथ लिए या प्रतिज्ञान किए बिना इसी तारीख को त्याग-पत्र दे दिया।[257]
>
> कर्णाटक से चुनकर आई सदस्य श्रीमती लीलादेवी रेणुका प्रसाद ने शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने से पहले ही 22 अप्रैल, 1996 को त्याग-पत्र दे दिया। उनकी पदावधि 10 अप्रैल, 1996 से आरंभ हुई थी।[258]

वेतन, भत्ते, पेंशन और अन्य सुविधाएं

वेतन

संसद् के प्रत्येक सदन के सदस्य ऐसे वेतन और भत्ते के हकदार होते हैं जिन्हें संसद् समय-समय पर, विधि द्वारा निर्धारित करती है।[259] इस उपबंध के अनुसरण में संसद् ने

संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 (1954 का 30) लागू किया। इसमें सदस्यों के वेतन आदि से संबंधित मुख्य उपबंध किए गये हैं किन्तु ब्यौरे को संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनने वाली ऐसी संयुक्त समिति द्वारा तैयार किया जाता है जिसे दैनिक तथा यात्रा भत्ते और पेंशन के भुगतान को विनियमित करने के लिए केन्द्रीय सरकार से परामर्श करने के पश्चात् नियम बनाने का काम सौंपा गया है। ये नियम दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों के द्वारा उनका अनुमोदन और पुष्टि किए जाने के अध्यधीन होते हैं।[260]

मंत्री या सदन के अधिकारी के सिवाय प्रत्येक सदस्य अपनी सम्पूर्ण पदावधि के दौरान पचास हजार रुपए प्रतिमाह की दर से वेतन प्राप्त करने का हकदार है।[261] जब कोई सदस्य द्विवार्षिक चुनावों में निर्वाचित होता है या नामनिर्देशित होता है तब उसकी पदावधि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 71 के अधीन उसके निर्वाचन या नामनिर्देशन की शासकीय राजपत्र में अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से आरंभ होती है या जब वह किसी उप-चुनाव में निर्वाचित होता है या नामनिर्देशित होता है तो उसकी पदावधि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 67क के अधीन निर्वाचन की तारीख से या नामनिर्देशन की तारीख से, जैसी भी स्थिति हो, आरंभ होती है[262] और यह पदावधि उस तारीख को समाप्त होती है जब उसका स्थान मृत्यु, पदत्याग, निवृत्ति या अन्य प्रकार से खाली हो जाता है।

निर्वाचन-क्षेत्र भत्ता

प्रत्येक सदस्य अपनी समस्त पदावधि के दौरान पैंतालीस हजार रुपए प्रतिमाह निर्वाचन-क्षेत्र भत्ते[263] और पैंतालीस हजार रुपए प्रतिमाह कार्यालय व्यय भत्ते[264] का हकदार होता है। जिनमें से पन्द्रह हजार रुपए स्टेशनरी की वस्तुओं आदि पर व्यय के लिये होंगे। तीस हजार रुपए सचिवीय सहायता के लिये काम पर रखे गए व्यक्ति(यों) को दिए जाएंगे और इनमें से एक व्यक्ति कम्प्यूटर का ज्ञान रखने वाला होगा।

दैनिक भत्ता

उपरोक्त मासिक वेतन और भत्तों के अलावा प्रत्येक सदस्य को कर्त्तव्य-पालन अवधि के लिए निवास हेतु[265] अर्थात् ऐसे स्थान पर निवास करने की अवधि के लिए प्रतिदिन दो हजार रुपए की दर से भत्ता मिलता है जहां सदन का सत्र होता है या समिति की कोई बैठक होती है या जहां सत्र में या समिति की बैठक में उपस्थित होने के लिए ऐसे सदस्य के रूप में उसके कर्त्तव्यों से संबंधित कोई अन्य कार्य किया जाता है[266] तथापि, जब तक कोई सदस्य उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर नहीं करता तब तक वह इस भत्ते का हकदार नहीं होता।[267] दैनिक भत्ता सत्र के आरंभ से पहले के तीन दिनों और सभा के अनियत दिन के लिए स्थगित होने के बाद के तीन दिनों के दौरान या पांच दिन से अधिक की अवधि के लिए दिया जाता है।[268] दैनिक भत्ता समिति की किसी बैठक या अन्य कार्य के मामले में समिति की बैठक या कार्य के आरंभ होने से पहले के दो दिनों और उसके स्थगित होने के बाद के दो दिनों के लिए दिया जाता है।[269]

सत्र/समिति की बैठक के लिए यात्रा भत्ता

यदि कोई सदस्य किसी सदन के सत्र या परामर्श समिति सहित किसी समिति की बैठक में उपस्थित होने या सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों से संबंधित किसी अन्य कार्य में सम्मिलित होने के प्रयोजन से अपने सामान्य निवास-स्थान से कर्त्तव्य के स्थान पर जाता है और वहां से अपने सामान्य निवास-स्थान पर लौटता है तो इस यात्रा के लिए उसको निम्नलिखित दरों पर यात्रा भत्ता लेने का हक होता है:

(क) **रेल द्वारा यात्रा:** ऐसी प्रत्येक यात्रा के लिए एक प्रथम श्रेणी के साथ एक द्वितीय श्रेणी के भाड़े के बराबर राशि, चाहे सदस्य ने वस्तुत: किसी भी श्रेणी में यात्रा की हो,[270]

(ख) **विमान द्वारा यात्रा:** प्रत्येक यात्रा के लिए विमान-यात्रा भाड़े के सवा गुना के बराबर राशि,[271]

(ग) **स्टीमर द्वारा यात्रा:** प्रत्येक ऐसी यात्रा या उसके भाग के लिए स्टीमर में सर्वोच्च श्रेणी के भाड़े (भोजन के बिना) की $1\frac{3}{5}$ गुणा राशि के बराबर,[272] और

(घ) **सड़क द्वारा यात्रा:** प्रत्येक किलोमीटर के लिए सोलह रुपए की दर से सड़क मील भत्ता जिसमें सदस्य के सामान्य निवास-स्थान या नई दिल्ली के निवास-स्थान या किसी समिति की बैठक के स्थान से रेलवे स्टेशन पहुंचने और वहां से वापस आने, पत्तन या हवाई अड्डा पहुंचने और वहां से वापस आने के लिए की गई यात्रा शामिल है।[273]

किसी वर्ष के दौरान विमान यात्राएं

प्रत्येक सदस्य एक वर्ष के दौरान ऐसी चौंतीस एकल विमान-यात्राओं (अर्थात् एक विमान-यात्रा भाड़ा) का हकदार होता है जो उसने भारत के किसी स्थान से किसी दूसरे स्थान तक अकेले या पति/पत्नी या जितने भी साथियों अथवा संबंधियों के साथ की हों। यह 'वर्ष' सदस्य की पदावधि के आरंभ होने की तारीख से और बाद के हर वर्ष से आरंभ होता है। इन चौंतीस नि:शुल्क विमान यात्राओं में सदस्य का पति/पत्नी या साथी सदस्य से मिलने आने के लिए प्रतिवर्ष अकेले अधिकतम आठ विमान यात्राएं करने का हकदार होता है।[274] यदि किसी वर्ष के दौरान किसी सदस्य द्वारा की गई विमान-यात्राओं की संख्या चौंतीस से कम है, उसके द्वारा न की गई यात्राओं की संख्या अगले वर्ष को अग्रेणीत कर दी जाएंगी।[275] एक वर्ष में चौंतीस से अधिक की संख्या में की गई विमान यात्राओं में से अधिकतम आठ यात्राएं अगले वर्ष के लिए उपलब्ध चौंतीस विमान यात्राओं के कोटे में से समायोजित की जा सकती हैं।[276]

सत्र/समिति की बैठक के दौरान मध्यवर्ती यात्रा

कोई सदस्य सत्र या किसी समिति की किसी बैठक के बीच में 15 दिन से कम की कोई मध्यवर्ती यात्रा करता है तो उसकी हकदारी को इस प्रकार विनियमित किया जाता है:

(क) **रेल द्वारा यात्रा**: सदस्य को प्रत्येक ऐसी यात्रा के लिए मेल गाड़ी से एक प्रथम श्रेणी भाड़ा या सत्र या बैठक के स्थान में उसकी अनुपस्थिति के दिनों के लिए दिया जा सकने वाला दैनिक भत्ता, जो भी कम हो, दिया जाता है।

(ख) **विमान द्वारा यात्रा**: विमान यात्रा सदस्य को उपलब्ध एक वर्ष में 34 एकल विमान यात्राओं के कोटे में से समायोजित की जाएगी।

सत्र/संसदीय समितियों की बैठकों के छोटे अंतरालों के लिए भत्तों का भुगतान

यदि एक ही स्थान पर सभा या समिति की बैठक के स्थगन और सभा के पुन: समवेत होने/समिति की अगली बैठक के होने के बीच का अंतराल पांच दिनों से अधिक नहीं है और सदस्य इस अंतराल के दौरान उस स्थान पर ठहरा होता है तो उसे उस अवधि के लिए दैनिक भत्ता दिया जाता है। यदि वह इस अवधि के दौरान यात्रा करता है तो उसे उतना यात्रा-भत्ता दिया जाता है जितना वह मध्यवर्ती यात्रा के लिए हकदार है।[277]

जब सभा के स्थगन और उसके पुन: आरंभ होने के बीच का अंतराल पांच दिनों से अधिक होता है तो सदस्य को निम्नलिखित भत्ते दिए जाते हैं:

(1) सभा के स्थगन के बाद वापसी की यात्रा के लिए यात्रा भत्ता;

(2) सभा के पुन: आरंभ होने पर उसमें उपस्थित होने के लिए अग्र यात्रा (फॉरवर्ड जर्नी) के लिए यात्रा भत्ता;

(3) सभा के स्थगन के ठीक बाद के तीन दिनों के लिए दैनिक भत्ता, यदि सदस्य इस अवधि के दौरान दिल्ली में वस्तुत: रहता है; और

(4) सभा के पुन: समवेत होने के ठीक पहले के तीन दिनों के लिए दैनिक भत्ता, यदि सदस्य तीन दिन पहले पहुंचता है।

सभा/समिति के आस्थगन या अचानक स्थगन की स्थिति में यात्रा-भत्ता

किसी ऐसे सदस्य को जो उस स्थान पर जहां सदन का सत्र अथवा समिति की बैठक होती है, सत्र या बैठक के स्थगित होने के बारे में जाने बिना पहुंच जाता है, यात्रा-भत्ता मिल सकने के बारे में राज्य सभा के सभापति द्वारा प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर निर्णय किया जाता है। परामर्श समिति की आस्थगित बैठक के लिए यात्रा-भत्ता दिए जाने के बारे में संसदीय कार्य मंत्री द्वारा निर्णय किया जाता है। किन्तु ऐसे मामले में कोई दैनिक भत्ता नहीं दिया जाता।[278]

विदेश यात्रा के लिए यात्रा-भत्ता

यदि कोई सदस्य भारत के बाहर अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिए विदेश यात्रा करता है तो वह नियमानुसार यात्रा-भत्ते का हकदार होता है।[279]

रेल यात्रा सुविधाएं

प्रत्येक सदस्य को, निर्वाचन/नामनिर्देशन होने पर, एक पहचान पत्र-सह-रेल पास दिया जाता है। यह पत्र अहस्तांतरणीय होता है। इससे वह और उसकी पत्नी/उसका पति भारत की किसी रेलवे द्वारा किसी भी समय वातानुकूलित प्रथम श्रेणी या एक्जीक्यूटिव क्लास में और वातानुकूलित दो टीयर वाले यान में एक साथी सहित यात्रा करने का हकदार होता है।

जब तक किसी सदस्य को पहचान पत्र-सह-रेल पास नहीं दिया जाता तब तक वह संसद्-सदस्य के रूप में उसके कर्त्तव्यों के संबंध में उसके द्वारा की गई किसी भी यात्रा के लिए एक वातानुकूलित प्रथम श्रेणी अथवा एक्जीक्यूटिव क्लास के रेल भाड़े के बराबर राशि का हकदार होता है। इसी प्रकार जो सदस्य, सदस्य न रहने पर अपने पास को वापस कर देता है और सत्र या समिति की बैठक में उपस्थित होने के बाद रेल द्वारा वापसी यात्रा करता है, वह उस यात्रा के लिए एक वातानुकूलित प्रथम श्रेणी या एक्जीक्यूटिव क्लास रेल भाड़े के बराबर राशि का हकदार होता है।[280]

पति/पत्नी के लिए यात्रा सुविधाएं

प्रत्येक सदस्य को, निर्वाचित/नामनिर्देशित होने पर, अपनी पत्नी/पति के लिए अलग-अलग रेल पास जारी किए जाते हैं। इसके द्वारा उसका पति/पत्नी सदस्य के सामान्य निवास-स्थान से दिल्ली और दिल्ली से उसके सामान्य निवास-स्थान की यात्रा के लिए किसी भी रेलगाड़ी के प्रथम श्रेणी वातानुकूलित यान या एक्जीक्यूटिव क्लास में यात्रा करने का हकदार हो जाता/हो जाती है।[281] जब संसद का सत्र चल रहा हो तो सदस्य की पत्नी/पति सदस्य के सामान्य निवास स्थान से दिल्ली और दिल्ली से उसके सामान्य निवास स्थान के लिए विमान द्वारा और आंशिक रूप से रेल द्वारा यात्रा करने का हकदार होती/होता है बशर्ते कि ऐसी विमान यात्राओं की कुल संख्या एक वर्ष में आठ से अधिक नहीं होनी चाहिए।[282] यात्रा सत्र के लिए आमंत्रण जारी होने के बाद की जा सकती है और वापसी यात्रा ऐसे सत्र के सत्रावसान के पहले किसी भी समय की जा सकती है।

आवास सुविधाएं

प्रत्येक सदस्य अपने पूरे कार्यकाल तक लाइसेंस फीस दिए बिना फ्लैट के रूप में आवास की नि:शुल्क सुविधा का हकदार होता है। आवास का आवंटन आवास समिति द्वारा किया जाता है जो किसी विशिष्ट श्रेणी के आवास के लिए चाहे वह बंगला हो या फ्लैट हो, सदस्य की हकदारी के बारे में भी निर्णय करती है।

कोई सदस्य उसे आवंटित आवास को अपनी सेवानिवृत्ति या अपने पदत्याग के बाद अधिकतम एक महीने की अवधि तक रख सकता है। यदि किसी सदस्य की मृत्यु हो जाए तो उसका परिवार सदस्य की मृत्यु की तारीख से अधिकतम छह महीने की अवधि तक आवास को सामान्य किराये पर रख सकता है।[283]

बिजली और पानी की सुविधाएं

सदस्य के निवास पर लाइट मीटर पर मापे गए 25,000 यूनिट और पावर मीटर पर मापे गए 25,000 यूनिट या दोनों को मिलाकर, प्रतिवर्ष बिजली के 50,000 यूनिटों और पानी के 4000 किलोलीटरों की अधिकतम सीमा तक बिजली और पानी की नि:शुल्क सप्लाई की जाती है।[284]

टेलीफोन सुविधाएं

प्रत्येक सदस्य अपनी पदावधि के दौरान दो टेलीफोन कनेक्शनों का हकदार होता है¬ एक उसके दिल्ली निवास या कार्यालय में और दूसरा उसके राज्य या निर्वाचन क्षेत्र में किसी भी स्थान पर। उसे इन टेलीफोनों को लगाने के प्रभारों या उसके किराए संबंधी प्रभारों का भुगतान नहीं करना पड़ता। एक वर्ष के दौरान दोनों टेलीफोनों से की गई पहली 1,00,000 स्थानीय कॉलें, सम्मिलित रूप से निःशुल्क होती हैं। सदस्य के ट्रंक कॉल बिलों को 1,00,000 स्थानीय कॉलों की अधिकतम सीमा के बराबर धनराशि के भीतर समायोजित किया जा सकता है। अतिरिक्त कॉलें अगले वर्ष के कोटे के साथ समायोजित की जा सकती हैं।[285]

प्रत्येक सदस्य दिल्ली/नई दिल्ली में अपने निवास पर अथवा अपने सामान्य निवास स्थान या राज्य के भीतर उसके द्वारा चुने गए स्थान पर या जिस राज्य में वह रहता/रहती है उस राज्य में एक अतिरिक्त टेलीफोन और इंटरनेट कनेक्टिविटी के प्रयोजन के लिए वर्ष के दौरान 50,000 निःशुल्क स्थानीय कॉलों का भी हकदार होता है।[286] उनके अनुरोध पर महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड द्वारा प्रदान किए गए एक मोबाइल फोन तथा एम.टी.एन.एल. या भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा प्रदान किए गए दूसरे मोबाइल फोन के रजिस्ट्रीकरण और किराया प्रभार के संबंध में किसी शुल्क का भुगतान नहीं करना पड़ेगा और सदस्य द्वारा उस मोबाइल फोन से की गई कॉलें उन्हें उपलब्ध कुल निःशुल्क कॉलों में से समायोजित की जाएंगी।[287]

ब्रॉडबैंड इंटरनेट सेवा

प्रत्येक सदस्य को उपलब्ध प्रतिवर्ष 1,50,000 निःशुल्क स्थानीय कॉलों के कोटे में से 10,000 स्थानीय कॉलों के बदले में एक एम.बी.पी.एस. की गति वाली ब्रॉडबैंड इंटरनेट सुविधा सदस्यों को प्रदान की गई है जिसमें निःशुल्क डाटा डाउनलोड की कोई सीमा नहीं रखी गई है।[288]

जब कभी कोई सदस्य निवृत्त होता है या सदस्य नहीं रहता तो सभी टेलीफोन कनेक्शन तत्काल प्रभाव से बंद कर दिए जाते हैं। तथापि, उसकी सदस्यता के दौरान उसे दिए गए टेलीफोन कनेक्शन को 'निजी ग्राहक श्रेणी' के अंतर्गत स्थायी टेलीफोन कनेक्शन के रूप में निजी खाते में परिवर्तित करने की अनुमति दी जा सकती है। परन्तु यह अनुमति तब होगी जब उसने एक संसद् सदस्य/विधान सभा सदस्य/विधान परिषद् सदस्य आदि के रूप में इस प्रकार का कोई कनेक्शन पहले न लिया हो। टेलीफोन कनेक्शन के लिए सदस्य को एक सामान्य ग्राहक के रूप में सभी औपचारिकताएं पूरी करनी पड़ती हैं। किसी सदस्य की मृत्यु होने की स्थिति में उसका परिवार टेलीफोन को दो महीने तक रख सकता है।

चिकित्सा सुविधाएं

दिल्ली में केन्द्रीय सरकार के प्रथम श्रेणी के कर्मचारियों के लिए केन्द्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना जिस रूप में लागू है, उसी रूप में वह संसद्-सदस्यों और उनके परिवार के सदस्यों पर भी के.स.स्वा.यो. नियमों के अनुसार लागू की गई है।[289]

विदेशी मुद्रा

प्रत्येक सदस्य को अपने पूरे कार्यकाल के दौरान अध्ययन के लिए विदेश यात्रा हेतु एक लाख रुपए की विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का हक है। आवेदन करने पर वह सचिवालय द्वारा उपलब्ध कराई जाती है।[290]

भूतपूर्व सदस्य को पेंशन और दिवंगत सदस्य/पूर्व-सदस्य की पत्नी/पति या उसके आश्रित को परिवार पेंशन

प्रत्येक भूतपूर्व सदस्य, संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के अनुसार पेंशन प्राप्त करने का हकदार है। पेंशन की वर्तमान दर 20000 रुपए प्रतिमास है और पांच वर्षों के बाद प्रत्येक अतिरिक्त वर्ष के लिए 1500 रुपए प्रति मास और दिए जाते हैं।[291] यह पेंशन किसी अन्य पेंशन के अतिरिक्त है जो किसी भूतपूर्व सदस्य को प्राप्त हो। यदि किसी आसीन सदस्य/भूतपूर्व सदस्य की मृत्यु हो जाती है तो उसकी पत्नी/पति या आश्रित उस पेंशन की आधी राशि के बराबर परिवार/पेंशन प्राप्त करने का हकदार होगा जो उस सदस्य को अन्यथा प्राप्त होती।[292]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. संविधान (सोलहवां संशोधन) अधिनियम, 1963 द्वारा अंत:स्थापित
2. निर्वाचन आयोग अधिसूचना सं.का.आ. 1111, दिनांक 18.3.1968, असाधारण राजपत्र भाग-2, 3 (ii), मैन्युअल ऑफ इलेक्शन लॉ, वोल्यूम 1
3. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 36(2)(क)
4. अनुच्छेद 84(ग)
5. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 3, "उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में" शब्दों के स्थान पर लो.प्र. (संशोधन) अधिनियम, 2003 द्वारा "भारत में" शब्दों को प्रतिस्थापित किया गया।
6. लो.प्र. अधिनियम, 1950, धारा 19
7. रावन्ना सुबन्ना बनाम जी.एस. कग्गेरप्पा, ए.आई.आर. 1954, एस.सी. 653; अब्दुल शकूर बनाम रिखब चन्द ए.आई.आर. 1958, एस.सी. 52; गुरु गोविन्द बसु बनाम शंकरी प्रसाद घोषाल, ए.आई.आर. 1964, एस.सी. 254; उमराव सिंह बनाम दरबारा सिंह, ए.आई.आर. 1969, एस.सी. 262; डी.आर. गुरुसंतप्पा बनाम अब्दुल, ए.आई.आर. 1969, एस.सी. 744; कान्ता बनाम मानक चन्द, ए.आई.आर. 1970, एस.सी. 694; शिवमूर्ति स्वामी इनामदार आदि बनाम अगाड़ी, 1971(3), एस.सी. 870; भगवानदास सहगल बनाम हरियाणा राज्य तथा अन्य, ए.आई.आर. 1974, एस.सी. 2355; करभारी बनाम शंकर, ए.आई.आर. 1975, एस.सी. 275; दिव्य प्रकाश बनाम कुलतार चन्द राणा, ए.आई.आर. 1975, एस.सी. 1067; मधुकर बनाम जसवन्त छबीलदास राजानी तथा अन्य, ए.आई.आर. 1976, एस.सी. 2283; बिहारीलाल बनाम रोशनलाल, ए.आई.आर. 1984, एस.सी. 385; सत्रुचार्ला बनाम वाइरीचोर्ला; ए.आई.आर. 1992, एस.सी. 1959; ए.के. सुब्बैय्या बनाम रामकृष्ण हेगडे, ए.आई.आर. 1994, कर्णाटक 35
8. संसदीय समितियां—लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति: परिचयात्मक निर्देशिका, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, मई 2014, पृष्ठ 2-4
9. जेसीओपी-10आर, 7 एल.एस. पैरा 10.5 और 10.6
10. कान्ता बनाम मानक चन्द, ए.आई.आर. 1970, एस.सी. 694; इबोम्चा बनाम चन्द्रमणि, ए.आई.आर. 1977, एस.सी. 682
11. भगवानदास सहगल बनाम हरियाणा राज्य, ए.आई.आर. 1974, एस.सी. 2355
12. कॉफी अधिनियम, 1942, धारा 4(5)
13. रबड़ अधिनियम, 1947, धारा 4(8)
14. चाय अधिनियम, 1953, धारा 4(3क)
15. तम्बाकू बोर्ड अधिनियम, 1975, धारा 4 (4क)
16. मसाला बोर्ड अधिनियम, 1986, धारा 3 (4)
17. वक्फ अधिनियम, 1995, धारा 3

18. प्रेस परिषद् अधिनियम, 1978, धारा 7(3)
19. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 8(1) (क)-(ट)
20. -वही- धारा 8(2)
21. -वही- धारा 8(3)
22. रिट याचिका (सी) 2005 की 490 और 2005 की 231 में उच्चतम न्यायालय का निर्णय 10 जुलाई, 2013 जिसमें लो.प्र. अधिनियम, 1951 की धारा 8(4) को संविधान के अधिकारातीत घोषित किया गया है
23. फा.सं. आर.एस. 10/2013-टी; अधि. सं. आर.एस. 10/2013-टी दिनांक 21-10-2013
24. अधि.सं. 21/4/2013/टी.ओ.(बी) दिनांक 21.10.2013, लोक सभा सचिवालय द्वारा जारी गई
25. फा.सं. आर.एस. 46/2014-टी, अधि.सं. आर.एस. 46/2014-टी दिनांक 30.4.2014
26. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 8क(1)
27. -वही- धारा 9(1)
28. -वही- धारा 9क
29. -वही- धारा 10
30. -वही- धारा 10क
31. फा. सं. 10/91-टी और 10/96-टी
32. अनुच्छेद 103, लो.प्र. अधिनियम की धारा 8क के साथ पठित और निर्वाचन आयोग बनाम साका वेंकट राव, ए.आई.आर. 1953, एस.सी. 210
33. विधि तथा न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), अधिसूचना सा.का.नि. 131(अ) 1.3.85, असाधारण राजपत्र 2(i), 1.3.1985 में प्रकाशित
34. दसवीं अनुसूची पैरा 2(1), (क) और 2(1)(ख), स्पष्टीकरण (क) के साथ पठित
35. -वही- पैरा 2(2)
36. -वही- पैरा 2(3)
37. -वही- पैरा 2(1), स्पष्टीकरण (ख)
38. -वही- पैरा 4 और संविधान (इक्यानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2003
39. -वही- पैरा 4(2)
40. -वही- पैरा 4(1)
41. -वही- पैरा 4(1)
42. -वही- पैरा 4(2)
43. -वही- पैरा 5
44. -वही- पैरा 6(1)
45. -वही- पैरा 6(2)
46. -वही- पैरा 7
47. किहोता होल्लोहोन बनाम जाचिल्हू, ए.आई.आर. 1993, एस.सी. 412
48. दसवीं अनुसूची, पैरा 8
49. फा. सं. 46/85-टी
50. अधिसूचना सं. आर.एस. 46(ii)/86-टी, 18.3.1986
51. भारत का असाधारण राजपत्र भाग-I, खंड(i), 18.3.1986 और संसदीय समाचार (2), 18.3.1986
52. राज्य सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985, नियम 3(1)
53. -वही- नियम 3(1) और (2)
54. -वही- नियम 3(2) और (3)
55. -वही- नियम 3(4)

56. राज्य सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985, नियम 3(5)
57. -वही- नियम 4(1) और (2)
58. -वही- नियम 4(3), सूचना के सारांश के लिए देखिये संसदीय समाचार (2), 19.8.1986, 10.8.1989
59. -वही- नियम 6
60. -वही- नियम 7(1), (2) और (3)
61. -वही- नियम 7(4)
62. -वही- नियम 7(5)
63. संसदीय समाचार (2), 7.11.1989
64. फा. सं. आर.एस. 46/89-टी-वोल्यूम 4
65. राज्य सभा सदस्य (दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985, नियम 7(7)
66. -वही- नियम 8
67. अनुच्छेद 80(4) और (5), लो.प्र. अधिनियम, 1950, धारा 27क और 27(ज) के साथ पठित
68. लो. प्र. (संशोधन) अधिनियम, 2003 द्वारा अंत:स्थापित
69. अध्याय-2 के अंतर्गत देखिये
70. लो. प्र. अधिनियम, 1950, धारा 27छ
71. -वही- धारा 27ञ
72. लो. प्र. अधिनियम, 1951, धारा 12
73. पशुपति नाथ सुकुल बनाम नेम चन्द्र जैन तथा अन्य, ई.एल.आर., वोल्यूम 74, पृष्ठ 83-93
74. लो. प्र. अधिनियम, 1951, धारा 29
75. -वही- धारा 39
76. -वही- धारा 31
77. -वही- धारा 32
78. -वही- धारा 33(1), धारा 39(2), परंतुक (कक) के साथ पठित; धारा 33(7)(घ) जैसाकि 1996 के अधिनियम 21 द्वारा जोड़ा गया
79. -वही- धारा 39, परंतुक (कक)
80. -वही- धारा 39, परंतुक (क), धारा 152 के साथ पठित
81. पशुपति नाथ सुकुल बनाम नेम चन्द्र जैन तथा अन्य, ई.एल.आर., वोल्यूम 74, पृष्ठ 83-93
82. पशुपति नाथ सिंह बनाम हरिहर प्रसाद सिंह, ए.आई.आर. 1968, एस.सी. 1064
83. विरजी राम सुतारिया बनाम नाथालाल प्रेमजी धानवाड़िया, ए.आई.आर. 1970, एस.सी. 765
84. लो. प्र. अधिनियम, 1951, धारा 34(1)(क)
85. -वही- धारा 34(2)
86. -वही- धारा 33(6) और 34(1), परंतुक
87. -वही- धारा 36(2)
88. -वही- धारा 36(4)
89. -वही- धारा 37(1)
90. -वही- धारा 37(2)
91. -वही- धारा 38
92. -वही- धारा 53(1) और (2)
93. -वही- धारा 56
94. -वही- धारा 64
95. -वही- धारा 66
96. -वही- धारा 67
97. -वही-
98. -वही- धारा 67क

99. निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961, नियम 85
100. लो. प्र. अधिनियम, धारा 71
101. -वही- धारा 147 और 151क
102. -वही- धारा 100 और 101
103. -वही- धारा 81
104. 'द सिंगल ट्रांसफरेबल वोट', लेखक; के.वी. कृष्णास्वामी अय्यर, 1946 संस्करण, पृष्ठ 23
105. निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961, नियम 71(4)
106. -वही- नियम 75(1)
107. -वही- नियम 76
108. -वही- नियम 83 तथा अनुसूची
109. -वही- नियम 73(2)
110. -वही- नियम 78
111. -वही- नियम 79(1)
112. -वही- नियम 76(1)
113. -वही- नियम 79(2) और (3)
114. -वही- नियम 71(5)
115. -वही- नियम 79(4)(क)
116. -वही- नियम 71(3)
117. -वही- नियम 79(4)
118. -वही- नियम 79(5) से (7)
119. -वही- नियम 80(1)
120. -वही- नियम 80(2)
121. -वही- नियम 80(3)
122. -वही- नियम 80(5)
123. -वही- नियम 80(6)
124. -वही- नियम 81(1)
125. -वही- नियम 81(2)
126. -वही- नियम 81(3)
127. अनुच्छेद 80(3)
128. राम गोपाल सिंह सिसोदिया बनाम सचिव के माध्यम से भारत संघ एवं अन्य, रि.या. (सी) 2942/2012, 19 दिसम्बर, 2012
129. लो. प्र. अधिनियम, 1951, धारा 155(2)
130. फा. सं. 17/94-टी
131. लो. प्र. अधिनियम, 1951, धारा 154
132. अनुच्छेद 54 तथा संविधान (सत्तरवां संशोधन) अधिनियम, 1992 द्वारा उसमें जोड़ा गया स्पष्टीकरण
133. अनुच्छेद 66(1)
134. ब्यौरे के लिए अध्याय-4 देखिए
135. दसवीं अनुसूची, पैरा 2(3)
136. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.5.1952, कालम 46
137. हाउस ऑफ द पीपल वाद-विवाद (2), 6.6.1952, कालम 1245-47
138. -वही- 20.6.1952, कालम 2237

139. रिपोर्ट ऑफ द ज्वॉइन्ट कमेटी ऑन पेमेंट ऑफ सैलरी एंड ऐलाउन्सेज टु एंड एब्रीवियेशन्स फॉर मेम्बर्स ऑफ पार्लियामेंट, जुलाई 1952, कार्यवृत्त (मिनिट्स)
140. -वही-
141. -वही- पैरा 15
142. अनुच्छेद 83(1)
143. लो. प्र. अधिनियम, 195 धारा 154(1)
144. -वही- धारा 154(3)
145. -वही- धारा 155(1)
146. -वही- धारा 155(2)
147. विधि मंत्रालय अधिसूचना सं. एफ. 10(15)/52सी, 3.4.1952, असाधारण राजपत्र [I(i)], 3.4.1952 में प्रकाशित
148. विधि मंत्रालय अधिसूचना सं. एस.आर.ओ. 1669, 6.9.1952, असाधारण राजपत्र [II(iii)]
149. निर्वाचन आयोग अधिसूचना सं. 35/52-निर्वा. III, 12.11.1952, फा. सं. सी.एस. 35/52-एल
150. लो.प्र. अधिनियम, 1950, धारा 27झ, अब निरसित
151. निर्वाचन आयोग अधिसूचना सं. 35/52-निर्वा. III, 29.11.1952, राजपत्र [I(iii)], 29.11.1952; फा. सं. सी.एस. 35/52-एल
152. आन्ध्र राज्य अधिनियम, 1953, धारा 10, 10(2) (क) और (ख)
153. संसदीय समाचार (2), 15.12.1953 और 23.12.1953
154. विधि मंत्रालय अधिसूचना का नि. आ.सं. 2537, 1.11.1956, राजपत्र [II(iii)], 3.11.1956
155. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956, धारा 24-26
156. संसदीय समाचार (2), 15.11.1956 और 20.11.1956
157. संसदीय समाचार (2), 19.12.1956 और 21.12.1956
158. बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960, धारा 9
159. पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1960, धारा 10-11; संसदीय समाचार (2), 8.12.1966
160. रिपोर्ट ऑफ द इलेक्शन कमीशन, 198-87, पृष्ठ 29
161. फर्स्ट एन्युअल रिपोर्ट ऑफ द इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, 1983, पृष्ठ 50, 56
162. निर्वाचन सुधारों संबंधी समिति का प्रतिवेदन (1990), पैरा 13
163. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.2.1966, कालम 1404-05
164. -वही- 20.7.1982, कालम 279-80
165. अनुच्छेद 102(1)(क)
166. विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय (विधायी विभाग) अधिसूचना का.आ. सं. 654(अ), 8.9.1982; संसदीय समाचार (2), 29.9.1982
167. संसदीय समाचार (2), 18.3.2006; श्रीमती जया बच्चन जून, 2006 में उत्तर प्रदेश राज्य से पुन: निर्वाचित हुई थीं। उन्होंने 24 जुलाई, 2006 को सभा में शपथ ली और अपना स्थान ग्रहण किया
168. संसदीय समाचार (2), 15.5.1989, 28.7.1989; संसदीय समाचार (1), 9.8.1989; और संसदीय समाचार (2), 14.9.1989, 26.3.2008 और 4.7.2008
169. लो. प्र. अधिनियम, 1951, धारा 68
170. -वही- धारा 69
171. फा. सं. आर.एस. 18/5/62-एल; लोक सभा संसदीय समाचार (2), 2.5.1996 से तुलना कीजिए जिसमें लोक सभा के एक निर्वाचित सदस्य के स्थान को राज्य सभा में उसके निर्वाचन की तारीख अर्थात् 19.2.1996 से रिक्त घोषित किया गया था किन्तु राज्य सभा में उस सदस्य की पदावधि 10.4.1996 से आरंभ हुई

172. लो. प्र. अधिनियम, 1951, धारा 70; निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961, नियम 91 के साथ पठित
173. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.12.1956, कालम 2545; 17.12.1956, कालम 2677
174. -वही- 21.3.1966, कालम 3885; 22.3.1966, कालम 3973
175. फा.सं. आर.एस./10/1998-टी
176. फा.सं. आर.एस./10/1998-टी
177. फा.सं. आर.एस./10/2010-टी
178. फा.सं. आर.एस./10/2014-टी
179. फा.सं. आर.एस./10/2014-टी
180. समसामयिक सदस्यता का प्रतिषेध नियम, 1950, नियम 2
181. अधिसूचना संख्या आर.एस.10/86-टी, 24.4.1986, राजपत्र [I(i)], 24.4.1986
182. अधिसूचना संख्या आर.एस.10/88-टी, 11.1.1988, राजपत्र [I(i)], 11.1.1988
183. अधिसूचना संख्या आर.एस.10/89-टी, 27.12.1989, राजपत्र [I(i)], 27.12.1989
184. फा.सं. आर.एस.10/1990-टी
185. -वही-
186. -वही-
187. फा.सं. आर.एस.10/1996-टी
188. फा.सं. आर.एस.10/1998-टी
189. फा.सं. आर.एस.10/1999-टी
190. फा.सं. आर.एस.10/2001-टी
191. -वही-
192. -वही-
193. -वही-
194. फा.सं. आर.एस.10/2002-टी
195. -वही-
196. -वही-
197. फा.सं. आर.एस.10/2004-टी
198. -वही-
199. फा.सं. आर.एस.10/2005-टी
200. फा.सं. आर.एस.10/2006-टी
201. -वही-
202. फा.सं. आर.एस.10/2007-टी
203. फा.सं. आर.एस.10/2008-टी
204. फा.सं. आर.एस.10/2009-टी
205. फा.सं. आर.एस.10/2011-टी
206. फा.सं. आर.एस.10/2013-टी
207. -वही-
208. फा.सं. आर.एस.10/2014-टी, दिनांक 28.05.2014 एवं 30.05.2014
209. फा.सं. आर.एस.10/2014-टी, दिनांक 3.11.2014 एवं फा.सं. आर.एस.10/2015-टी, दिनांक 12.01.2015
210. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.11.1964, कालम 174-75; और 18.11.1964, कालम 330-31; राज्य सभा वाद विवाद, 15.3.1988, कालम 217-22 भी देखिये
211. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 100(1)

212. लो. प्र. अधिनियम, 1951, धारा 107(1)
213. -वही- धारा 116ख(3)
214. ई.एल.आर., वोल्यूम 23, पृष्ठ 171
215. -वही- वोल्यूम 26, पृष्ठ 396
216. फा. सं. 24/74-टी
217. ई.एल.आर., वोल्यूम 65, पृष्ठ 285
218. संसदीय समाचार (2), 29.8.1991
219. -वही- 27.7.2001
220. अनुच्छेद 102(1)
221. फा.सं. आर.एस.10/2013-टी
222. अनुच्छेद 101(4)
223. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.3.1976, कालम 78-80
224. फा. सं. 10/88-टी
225. संसदीय समाचार (1), 21.12.2000
226. -वही- 15.11.1976
227. फा.सं. आर.एस.31/2005-सी.ई.
228. फा.सं. आर.एस.31/2006-सी.ई.
229. अनुच्छेद 59(1)
230. अनुच्छेद 66(2)
231. अनुच्छेद 158(1)
232. फा.सं. आर.एस.10/1990-टी
233. -वही-
234. फा.सं. आर.एस.10/1998-टी
235. फा.सं. आर.एस.10/2002-टी
236. फा.सं. आर.एस.10/2004-टी
237. फा.सं. आर.एस.10/2009-टी
238. फा.सं. आर.एस.10/2010-टी
239. फा.सं. आर.एस.10/2014-टी
240. अनुच्छेद 101(3)(क)
241. फा.सं. आर.एस.46/1989-टी
242. -वही-
243. फा.सं. आर.एस.46/2005-टी
244. फा.सं. आर.एस.46/2007-टी
245. अनुच्छेद 101(3)(ख)
246. नियम 213(1)
247. नियम 213(2)
248. नियम 213(3)
249. नियम 213(4)
250. फा. सं. आर.एस 10/89-टी
251. नियम 213(5)
252. -वही- स्पष्टीकरण
253. नियम 213(6)

254. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.4.1955, कालम 4957
255. -वही- 17.8.1988, कालम 257-58
256. संसदीय समाचार (1), 19.4.1962
257. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.4.1990, कालम 4
258. संसदीय समाचार (2), 22.4.1996
259. अनुच्छेद 106
260. संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 9
261. -वही- धारा 3; 2010 के अधिनियम 37 द्वारा 18.05.2009 से प्रतिस्थापित
262. -वही- धारा 3, धारा 2(ङ) के साथ पठित
263. -वही- धारा 8 और संसद्-सदस्य (निर्वाचन-क्षेत्र भत्ता) नियम, 1986, नियम 2; भारत का राजपत्र, असाधारण, भाग 2, खंड 3, उप-खंड (i), दिनांक 13.12.2010 में प्रकाशित सा.का.नि. 970 (अ) द्वारा दिनांक 1.10.2010 से प्रतिस्थापित।
264. -वही- धारा 8 और संसद्-सदस्य (कार्यालय व्यय भत्ता) नियम, 1988, नियम 3; भारत का राजपत्र, असाधारण, भाग 2, खंड 3, उप-खंड (i), दिनांक 13.12.2010 में प्रकाशित सा.का.नि. 972(अ) द्वारा दिनांक 1.10.2010 से प्रतिस्थापित।
265. -वही- धारा 3; 2010 के अधिनियम 37 द्वारा 1.10.2010 से प्रतिस्थापित
266. -वही- धारा (2)(घ)
267. -वही- धारा (3), प्रथम परंतुक
268. -वही- धारा (2)(घ)(i)
269. संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, धारा (2)(घ)(ii)
270. -वही- धारा 4(1)(क)
271. -वही- धारा 4(1)(ख)
272. -वही- धारा 4(1)(ग)(1)
273. -वही- धारा 4(1)(ग)(2) 2010 के अधिनियम 37 द्वारा 1.10.2010 से प्रतिस्थापित
274. -वही- धारा 5(2), तीसरा परंतुक
275. -वही- धारा 5(2), दूसरा परंतुक
276. -वही- धारा 5(2), चौथा परंतुक
277. -वही- धारा 7
278. संसद्-सदस्य (यात्रा तथा दैनिक भत्ता) नियम, 1957, नियम 14
279. संसद्-सदस्य (विदेश यात्रा भत्ता) नियम, 1960
280. संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 6
281. -वही- धारा 6ख(2)(क)
282. -वही-
283. आवास और दूरभाष सुविधाएं (संसद्-सदस्य) नियमावली, 1956, नियम 2क
284. -वही- नियम 2(2)
285. -वही- नियम 4(5)
286. -वही-
287. -वही- नियम 4(6)
288. संसदीय समाचार (2), 9.4.2013
289. चिकित्सा सुविधाएं (संसद्-सदस्य) नियम, 1959
290. संसदीय समाचार (2), 31.3.1993
291. संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 धारा 8(क); 2010 के अधिनियम 37 द्वारा 18.5.2009 से प्रतिस्थापित
292. -वही- धारा 8(ए.सी.); 2006 के अधिनियम 40 द्वारा दिनांक 15.9.2006 से प्रतिस्थापित

अध्याय-4

राज्य सभा के पीठासीन अधिकारी और अन्य संसदीय अधिकारी

उपराष्ट्रपति पदेन सभापति

उपराष्ट्रपति के बारे में उपबंध

संविधान के अनुच्छेद 63 में उपबंध है कि भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा। अनुच्छेद 64 के अधीन उसे राज्य सभा का पदेन सभापति बनाया गया है। "संसद् के अधिकारी" "शीर्षक के अन्तर्गत राज्य सभा का पदेन सभापति होने के कारण उपराष्ट्रपति से संबद्ध उपबंध का पुन: उल्लेख किया गया है।[1]

उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग या पद से हटाये जाने के कारण हुई रिक्ति के दौरान नये राष्ट्रपति के निर्वाचन होने और पद ग्रहण करने तक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है।[2] जब राष्ट्रपति अनुपस्थिति, बीमारी या अन्य किसी कारण से अपना कार्य करने में असमर्थ हो, तब उपराष्ट्रपति तब तक राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करता है, जब तक कि राष्ट्रपति अपने कर्त्तव्यों को फिर से न संभाल ले।[3] पूर्ववर्ती स्थिति में जब कोई रिक्ति होती है, तब नये राष्ट्रपति को, रिक्ति होने की तारीख के पश्चात् यथाशीघ्र और प्रत्येक दशा में छह माह बीतने से पहले निर्वाचित करना आवश्यक है।[4] जब नया राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करता है, तब उपराष्ट्रपति अपने पद पर वापस आ जाता है। बाद वाली स्थिति में, जब राष्ट्रपति के पद पर कोई अस्थायी रिक्ति होती है, तब राष्ट्रपति द्वारा अपने कर्त्तव्यों को फिर से संभाले जाने तक उपराष्ट्रपति उसके कृत्यों का निर्वहन करता है।

> राष्ट्रपति डा. ज़ाकिर हुसैन की 3 मई, 1969 को मृत्यु होने पर तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि को, 19 जुलाई, 1969 तक भारत के कार्यकारी राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने के लिए शपथ दिलाई गई थी। इसी तरह जब 11 फरवरी, 1977 को राष्ट्रपति डा. फखरुद्दीन अली अहमद की मृत्यु हुई तब उपराष्ट्रपति श्री बी.डी. जत्ती को 24 जुलाई, 1977 तक भारत के कार्यकारी राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने के लिए शपथ दिलाई गई।

ऐसा कई बार हुआ है जब उपराष्ट्रपति ने, राष्ट्रपति की अनुपस्थिति या बीमारी के कारण उसके कृत्यों का निर्वहन किया है।

> जब राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद सोवियत संघ की राजकीय यात्रा पर गये थे तब उपराष्ट्रपति डा. एस. राधाकृष्णन् ने 20 जून, 1960 से 5 जुलाई, 1960 तक राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन किया था क्योंकि उस समय अगले दो सप्ताहों के दौरान ऐसी महत्वपूर्ण राजकीय घटनाएं होने वाली थीं जिनके लिए "राष्ट्रपति की औपचारिक स्वीकृति" अपेक्षित थी। एक और अवसर पर राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद की बीमारी के कारण डा. राधाकृष्णन् को 19 दिसंबर, 1961 तक राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करने के लिए 25 जुलाई, 1961 को शपथ दिलाई गई थी।[5]
>
> उपराष्ट्रपति डा. ज़ाकिर हुसैन ने उस समय, जब राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन् को फरवरी, 1964 में आंख का ऑपरेशन कराना पड़ा था और पुन: मार्च, 1965 में (5 फरवरी, 1964 से 21 फरवरी, 1964 तक और 16 मार्च, 1965 से 18 अप्रैल, 1965 तक) दो बार राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन किया था।
>
> उपराष्ट्रपति श्री एम. हिदायतुल्लाह ने राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह को 6 अक्तूबर, 1982 से 31 अक्तूबर, 1982 तक विदेश में चिकित्सीय उपचार के दौरान उनके कृत्यों का निर्वहन किया था।

तथापि, यह दृष्टव्य है कि इन दोनों ही आकस्मिकताओं में, अर्थात् राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए या राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए उपराष्ट्रपति को, राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति या राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए राष्ट्रपति कहा जाता है।

राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए उपराष्ट्रपति ने 10 फरवरी, 1964 को एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों के समक्ष राष्ट्रपति का अभिभाषण दिया था और तदनुसार 12 फरवरी, 1964 को अभिभाषण के संबंध में धन्यवाद का प्रस्ताव उपस्थित किया गया था।

राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति ने 28 मार्च, 1977 को राष्ट्रपति का अभिभाषण दिया था और तदनुसार 4 अप्रैल, 1977 को उसकी बाबत धन्यवाद का प्रस्ताव उपस्थित किया गया था।

राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए उपराष्ट्रपति डा. ज़ाकिर हुसैन ने 2 अप्रैल, 1965 को राज्य सभा के 51वें सत्र का अवसान किया था।

राज्य सभा के 52वें सत्र के लिए आह्वान आदेश पर राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन कर रहे उपराष्ट्रपति के रूप में डा. ज़ाकिर हुसैन द्वारा 4 अप्रैल, 1965 को हस्ताक्षर किये गये थे।

राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि द्वारा 21 मई, 1969 को राज्य सभा के 68वें सत्र का अवसान किया गया था।

राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति श्री बी.डी. जत्ती द्वारा 22 फरवरी, 1977 को राज्य सभा के 99वें सत्र के लिए आह्वान आदेश पर हस्ताक्षर किए गये थे।

राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति (श्री बी.डी. जत्ती) ने राज्य सभा में अस्थायी सभापति की नियुक्ति का आदेश 24 मार्च, 1977 को दिया था।[6]

राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए उपराष्ट्रपति (श्री एम. हिदायतुल्लाह) ने कुछ विधेयकों की बाबत संविधान के अनुच्छेद 117(3) के अधीन राज्य सभा के लिए सिफारिशें भेजी थीं।[7]

जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है या राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करता है तब उसके पास राष्ट्रपति की सभी शक्तियां और उन्मुक्तियां होती हैं और वह उन उपलब्धियों का हकदार होता है जिनका राष्ट्रपति हकदार है,[8] तथापि, इस अवधि के दौरान वह राज्य सभा के सभापति के पद के कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकता है।[9]

उपराष्ट्रपति, संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनने वाले निर्वाचक-मंडल के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किया जाता है और ऐसे निर्वाचन में मतदान गुप्त होता है।[10]

1961 से पहले उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद् के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में किया जाना अपेक्षित था किन्तु 1952 और 1957 में जब डा. एस. राधाकृष्णन् को निर्विरोध निर्वाचित किया गया था तब ऐसी कोई बैठक नहीं हुई थी।

संविधान (ग्यारहवां संशोधन) विधेयक, 1961 द्वारा संयुक्त बैठक की आवश्यकता समाप्त कर दी गई थी क्योंकि इस प्रकार की आवश्यकता "पूर्णत: अनावश्यक प्रतीत होती थी और इससे व्यावहारिक कठिनाइयां भी उत्पन्न होने की संभावना थी।"[11]

उपराष्ट्रपति संसद् या किसी राज्य के विधान-मंडल का सदस्य नहीं हो सकता है और यदि कोई ऐसा सदस्य निर्वाचित हो जाता है, तो यह समझा जायेगा कि उसने उस सदन में अपना स्थान उपराष्ट्रपति के रूप में अपने पद-ग्रहण की तारीख से रिक्त कर दिया है।[12] कोई व्यक्ति उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र तभी होगा जब वह भारत का नागरिक हो, पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर

चुका हो और राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित हो।[13] ऐसे व्यक्ति को भारत सरकार के या राज्य सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकरण के अधीन कोई लाभ का पद धारण नहीं करना चाहिए।[14] इस प्रयोजनार्थ राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यपाल, संघ या किसी राज्य के मंत्री के पद लाभ के पद नहीं हैं।[15]

राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 और उसके अन्तर्गत बनाये गये नियमों में उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन संबंधी विस्तृत उपबंधों को समाविष्ट किया गया है। स्थापित प्रथा के अनुसार उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए राज्य सभा अथवा लोक सभा के महासचिव को क्रमानुसार रिटर्निंग ऑफ़िसर के रूप में नियुक्त किया जाता है।

> पहले, दूसरे, चौथे, छठे, आठवें, दसवें, बारहवें और चौदहवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचनों के लिए लोक सभा के सचिव/महासचिव को और तीसरे, पांचवें, सातवें, नौवें और तेरहवें उपराष्ट्रतीय निर्वाचनों के लिए राज्य सभा के सचिव/महासचिव को रिटर्निंग ऑफ़िसर के रूप में नियुक्त किया गया था। तथापि, ग्यारहवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के दौरान, संसदीय कार्य मंत्रालय के सचिव को रिटर्निंग ऑफिसर नियुक्त किया गया था, जोकि राज्य सभा या लोक सभा के महासचिव को रिटर्निंग ऑफिसर के रूप में नियुक्त करने की स्थापित प्रथा से विचलन था।

निर्वाचन आयोग द्वारा उपराष्ट्रपति के निर्वाचन की विभिन्न अवस्थाओं को राजपत्र में अधिसूचित किया जाता है। ये अवस्थाएं हैं:¬ नामनिर्देशन करने की अंतिम तारीख, जो अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के पश्चात् चौदहवें दिन की तारीख होती है; नामनिर्देशन की संवीक्षा (छानबीन) की तारीख, जो नामनिर्देशन करने की तारीख के ठीक बाद के दिन की तारीख होती है; अभ्यर्थिता वापस लेने की अन्तिम तारीख, जो नामनिर्देशनों की संवीक्षा की तारीख के पश्चात् दूसरे दिन की तारीख होती है और मतदान की तारीख, यदि आवश्यक हो तो, जो अभ्यर्थिता वापस लेने की अंतिम तारीख के पश्चात् पन्द्रहवें दिन से पहले की तारीख नहीं होती है। यदि निर्धारित किया गया कोई भी दिन लोक-अवकाश का दिन है, तो उसके ठीक अगले दिन, जो लोक-अवकाश का दिन न हो, की तारीख को इस प्रयोजनार्थ उपयुक्त होना माना जाता है।[16]

उपराष्ट्रपति की पदावधि के अवसान से हुई रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचन की अधिसूचना पदमुक्त होने वाले उपराष्ट्रपति की पदावधि के अवसान से पूर्व के साठवें दिन को या उसके पश्चात् सुविधापूर्वक जितनी शीघ्र निकाली जा सके, निकाली जाती है और तारीखें ऐसे नियत की जाती हैं कि निर्वाचन ऐसे समय में पूरा हो जाये कि तद्द्वारा नव-निर्वाचित उपराष्ट्रपति अपना पद-ग्रहण पद-मुक्त होने वाले उपराष्ट्रपति की पदावधि के अवसान के अगले दिन को कर सके।[17] अन्य किसी भी मामले में अधिसूचना ऐसी रिक्ति के होने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र निकाली जानी होती है।[18]

1974 तक उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए नामनिर्देशन-पत्र के लिए प्रस्तावक के रूप में एक निर्वाचक और समर्थक के रूप में केवल एक निर्वाचक आवश्यक होता था और 'निक्षेप-राशि' जमा कराने की कोई आवश्कता नहीं होती थी। राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 में यह उपबन्ध करने के लिए संशोधन किया गया है कि नामनिर्देशन-पत्र पर कम-से-कम बीस निर्वाचकों के प्रस्तावक के रूप में और कम से कम बीस निर्वाचकों के समर्थक के रूप में हस्ताक्षर होने चाहिए।[19] यह भी उपबन्ध किया गया है कि अभ्यर्थी को सम्यक्तः नामनिर्दिष्ट अभ्यर्थी के रूप में विचार किये जाने के लिए 15,000 रुपये की राशि निक्षिप्त करनी होगी। जहां किसी अभ्यर्थी को एक से अधिक नामनिर्देशन पत्रों द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाए, वहां उसे एक बार ही नियत राशि निक्षिप्त करानी होगी।[20]

यह भी उपबंध किया गया है कि कोई निर्वाचक उसी निर्वाचन में चाहे प्रस्तावक के रूप में या समर्थक के रूप में, एक से अधिक नामनिर्देशन-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करेगा और यदि वह करता है, तो प्रथम परिदत्त नामनिर्देशन-पत्र से भिन्न किसी भी नामनिर्देशन-पत्र पर उसका हस्ताक्षर निष्प्रभावी होगा। इसके अलावा किसी अभ्यर्थी द्वारा या उसकी ओर से चार से अधिक नामनिर्देशन-पत्र प्रस्तुत नहीं किये जायेंगे या रिटर्निंग ऑफिसर द्वारा स्वीकार नहीं किये जायेंगे।[21]

उपराष्ट्रपति अपने पद-ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करता है परन्तु वह राष्ट्रपति को सम्बोधित अपने स्वहस्ताक्षरित-पत्र द्वारा अपना पद त्याग कर सकता है; उसे राज्य सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा, जिससे लोक सभा सहमत हो, पद से भी हटाया जा सकता है। संकल्प को प्रस्तावित करने के आशय की कम-से-कम चौदह दिन की सूचना देना आवश्यक है। उपराष्ट्रपति, अपने पद की अवधि समाप्त हो जाने पर भी तब तक पद धारण करता रहता है जब तक उसका उत्तराधिकारी अपना पद ग्रहण नहीं कर लेता है।[22]

प्रत्येक उपराष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष निम्नलिखित प्ररूप में शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है और उस पर अपने हस्ताक्षर करता है:

> "मैं, अमुक, ईश्वर की शपथ लेता हूं/मैं सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूं उसके कर्त्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करूंगा।"[23]

अब तक सम्पन्न हुए विभिन्न उपराष्ट्रपतीय निर्वाचनों का ब्यौरा निम्नलिखित है:

क्र. सं.	निर्वाचित उपराष्ट्रपति का नाम	प्रतिद्वंदियों की संख्या	निर्वाचन की तिथि	कार्यकाल
1.	डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्	निर्विरोध	25.4.1952	13.5.1952-12.5.1957
2.	डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्	निर्विरोध	23.4.1957	13.5.1957-12.5.1962
3.	डा. ज़ाकिर हुसैन	दो	7.5.1962	13.5.1962-12.5.1967
4.	श्री वी.वी. गिरि	दो	6.5.1967	13.5.1967-3.5.1969
5.	श्री जी.एस. पाठक	दो	30.8.1969	31.8.1969-30.8.1974
6.	श्री बी.डी. जत्ती	दो	27.8.1974	31.8.1974-30.8.1979
7.	श्री एम. हिदायतुल्लाह	निर्विरोध	9.8.1979	31.8.1979-30.8.1984
8.	श्री आर. वेंकटरामन्	दो	22.8.1984	31.8.1984-24.7.1987
9.	डा. शंकर दयाल शर्मा	निर्विरोध	21.8.1987	3.9.1987-24.7.1992
10.	श्री के.आर. नारायणन	दो	19.8.1992	21.8.1992-24.7.1997
11.	श्री कृष्ण कांत	दो	16.8.1997	21.8.1997-27.7.2002*
12.	श्री भैरों सिंह शेखावत	दो	12.8.2002	19.8.2002-21.7.2007**
13.	श्री मोहम्मद हामिद अंसारी	तीन	11.8.2007	11.8.2007-10.8.2012
14.	श्री मोहम्मद हामिद अंसारी	दो	7.8.2012	11.8.2012-आज की तारीख तक

* कार्यकाल में मृत्यु

** त्यागपत्र दिया

उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों की जांच और विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जायेगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा।[24] यदि उच्चतम न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति के उपराष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन को निष्प्रभावीत घोषित कर दिया जाता है तो उसके द्वारा अपने पद की शक्तियों के प्रयोग और कर्त्तव्यों के पालन में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय की तारीख को या उससे पहले किये गये कार्य उस घोषणा के कारण अविधिमान्य नहीं होंगे।[25]

उपराष्ट्रपति निर्वाचन को प्रश्नगत करने वाली अर्जी ऐसे निर्वाचन के किसी अभ्यर्थी द्वारा या दस या अधिक निर्वाचकों द्वारा संयुक्त अर्जीदारों के रूप में, उस घोषणा के, जिसमें निर्वाचन में निर्वाचित अभ्यर्थी का नाम हो, प्रकाशन की तारीख के पश्चात् किसी भी समय उच्चतम न्यायालय में पेश की जा सकती है किन्तु ऐसे प्रकाशन की तारीख से तीस दिनों के पश्चात् पेश नहीं की जा सकती।[26] निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित करने के निम्नलिखित आधार हैं:

(क) निर्वाचित अभ्यर्थी या निर्वाचित अभ्यर्थी की सहमति से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा निर्वाचन में रिश्वत या असम्यक् असर का अपराध किया जाना;

(ख) निर्वाचन के परिणाम पर√

- (i) किसी मत के अनुचित तौर पर लिये जाने या इन्कार किये जाने के कारण से; अथवा
- (ii) संविधान के या राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 या इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमों या किये आदेशों के उपबंधों का अनुपालन न किये जाने से; अथवा
- (iii) इस तथ्य के कारण कि किसी ऐसे अभ्यर्थी के (निर्वाचित अभ्यर्थी से भिन्न) नामनिर्देशन को जिसने अपनी अभ्यर्थिता वापस नहीं ली है, गलत रूप से स्वीकार किये जाने से; अथवा

(ग) किसी अभ्यर्थी के नामनिर्देशन को गलत रूप से इंकार किये जाने से या निर्वाचित अभ्यर्थी के नामनिर्देशन को गलत रूप से स्वीकार किये जाने से तात्विक रूप से प्रभाव पड़ा हो।[27]

राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के रूप में किसी व्यक्ति के निर्वाचन को उसे निर्वाचित करने वाले निर्वाचक-मंडल के सदस्यों में किसी भी कारण से विद्यमान किसी रिक्ति के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकता।[28]

यदि कोई व्यक्ति, जिसने निर्वाचन अर्जी पेश की है, निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को प्रश्नगत करने के अतिरिक्त इस घोषणा के लिए दावा करता है कि वह स्वयं या कोई अन्य अभ्यर्थी सम्यक् रूप से निर्वाचित हुआ है और उच्चतम न्यायालय की यह राय है कि वास्तव में अर्जीदार या ऐसे अन्य अभ्यर्थी ने विधिमान्य मतों में से बहुसंख्यक मत प्राप्त किये हैं तो उच्चतम न्यायालय निर्वाचित अभ्यर्थी का निर्वाचन शून्य घोषित करने के पश्चात् अर्जीदार या ऐसे अन्य अभ्यर्थी को सम्यक् रूप से निर्वाचित घोषित करेगा। लेकिन यदि यह साबित हो जाता है कि ऐसे अभ्यर्थी का निर्वाचन उस दशा में शून्य होता जिसमें वह निर्वाचित अभ्यर्थी रहता और उसके निर्वाचन को प्रश्नगत करने वाली अर्जी पेश की गई होती, तो ऐसे अर्जीदार या अन्य अभ्यर्थी को सम्यक् रूप से निर्वाचित घोषित नहीं किया जाना चाहिए।[29]

उपराष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति के नाते कोई वेतन प्राप्त नहीं करता है।[30] वह राज्य सभा के सभापति के रूप में वेतन प्राप्त करता है। उसका वेतन और भत्ते संसद् अधिकारी वेतन और भत्ता अधिनियम, 1953 और इसके अधीन बनाये गये नियमों द्वारा विनियमित होते हैं। अधिनियम के अंतर्गत सभापति को प्रतिमाह 1,25,000 रुपए वेतन प्राप्त होता है। उसे उसके पूरे कार्यकाल और उसके पश्चात् एक माह की अवधि के लिए नि:शुल्क सुसज्जित आवास उपलब्ध कराया जाता है और वह स्वयं एवं अपने परिवार के लिए नि:शुल्क चिकित्सा सुविधा प्राप्त करने का हकदार होता है। इसके अतिरिक्त, राजकीय यात्रा के दौरान उसे उतने यात्रा एवं दैनिक भत्ते प्राप्त होते हैं जो नियमों के तहत कैबिनेट मंत्री को ग्राह्य हैं। उपराष्ट्रपति को सभापति की हैसियत से देय वेतन और भत्ते भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं।[31] उपराष्ट्रपति को उपराष्ट्रपति के रूप में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए सहायतार्थ सचिवालय भी उपलब्ध कराया जाता है।

सभापति के रूप में शक्तियां और कर्त्तव्य

पीठासीन अधिकारी के रूप में, राज्य सभा का सभापति सभा की प्रतिष्ठा और सम्मान का निर्विवाद संरक्षक होता है। उसका निष्पक्ष और उचित निर्णय उसके पद की प्रतिष्ठा और गरिमा को बढ़ाता है।

> 20 अप्रैल, 1987 को कतिपय रक्षा-सौदों में कमीशन एजेन्टों की संलिप्तता की जांच करने के सरकार के निर्णय के संबंध में अल्पकालिक चर्चा के आरंभ होने से पूर्व सभापति श्री आर. वेंकटरामन् ने यह घोषणा की: "15 जनवरी, 1982 से मध्य जून, 1984 तक मैं रक्षा मंत्री था। अत: मेरे विचार में इस पर बहस के दौरान मेरा सभापीठ पर आसीन रहना उपयुक्त नहीं होगा।" अत: वे अपने आसन से उठकर चले गए और उपसभापति द्वारा कार्यवाही का संचालन किया गया।[32]

सभापति सभा का प्रमुख प्रवक्ता भी होता है और बाहर इसकी सामूहिक सम्मति की अभिव्यक्ति करता है।

राष्ट्रपति से सभा को संवाद सभापति को किए जाते हैं।[33] जब सभापति को राष्ट्रपति से कोई संदेश प्राप्त होता है चाहे वह संसद् में लंबित किसी विधेयक के संबंध में हो या अन्यथा हो, तो वह उसे सभा को पढ़कर सुनाता है और संदेश में निर्दिष्ट विषयों पर विचार करने के लिए अनुकरणीय प्रक्रिया के संबंध में आवश्यक निदेश देता है और ऐसे निदेश देने में सभापति को उस सीमा तक नियमों को निलम्बित या परिवर्तित करने की शक्ति प्राप्त होती है जिस सीमा तक कि आवश्यकता हो।[34] इसी प्रकार, राष्ट्रपति को संवाद सभा में प्रस्ताव उपस्थित किये जाने और उसके स्वीकृत हो जाने के बाद औपचारिक समावेदन द्वारा सभापति की मार्फत किया जाता है।[35] उदाहरणार्थ संसद् के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में दिये गये राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव की संसूचना, सभा द्वारा उसे स्वीकार कर लिए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति को सभापति द्वारा दी जाती है।

बाहर के व्यक्तियों के लिए सभा के प्रतिनिधि के रूप में, सभापति सभा के निर्णयों की सम्बद्ध प्राधिकारियों को संसूचना देता है और उनसे यह अपेक्षा रखता है कि ऐसे निर्णयों का पालन किया जायेगा। इसी तरह, सभापति, उसे सभापति के रूप में लिखे गए ऐसे दस्तावेजों और पत्रों के बारे में, जो उदाहरणार्थ सदन और उसके सदस्यों के अधिकारों और विशेषाधिकारों के बारे में हो सकते हैं, सदन को सूचना देता है।

21 अप्रैल, 1964 को सभापति ने उत्तर प्रदेश विधान सभा और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मध्य विवाद के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत विशेष निर्देश (1964 का संख्यांक 1) के मामले में उच्चतम न्यायालय से प्राप्त हुई सूचना के बारे में सभा को सूचित किया।[36]

पुन: 9 मई, 1974 को सभापति ने राष्ट्रपतीय निर्वाचन से संबंधित संविधान के अनुच्छेद 143 के अंतर्गत विशेष निर्देश (1974 का संख्यांक 1) के मामले में उच्चतम न्यायालय से प्राप्त हुई सूचना के बारे में सभा को सूचित किया। सभा इससे सहमत थी कि उक्त सूचना के संबंध में सभापति द्वारा कोई कार्यवाही किया जाना आवश्यक नहीं है।[37]

6 नवम्बर, 1987 को सभापति ने संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 की वैधता को चुनौती देने वाले दो संसद् सदस्यों द्वारा दायर की गई रिट याचिका के दिल्ली उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय में अन्तरणार्थ भारत के संघ की अन्तरण याचिका के मामले में उच्चतम न्यायालय से प्राप्त सूचना के बारे में सभा को सूचित किया।[38]

सभापति विदेशों और विधान-मंडलों से प्राप्त हुए संदेशों की भी सूचना देता है।

19 मई, 1952 को सभापति ने संविधान के अन्तर्गत राज्य सभा के विधिवत् गठन पर स्वीडन, नॉर्वे और डेनमार्क की संसदों से प्राप्त हुए शुभकामना संदेशों को पढ़कर सुनाया।[39]

वह आवश्यक होने पर सभा के आदेशों के क्रियान्वयन के लिए वारंट भी जारी करता है।

सभा द्वारा 21 दिसंबर, 1967 को स्वीकृत किये गये एक संकल्प के अनुसरण में, जिसमें एक व्यक्ति को "दर्शक-दीर्घा" से सभा में पर्चे फेंकने के लिए सत्र की समाप्ति तक 'सादा कारावास' का दंड दिया गया था, सभापति ने तिहाड़ कारागृह, दिल्ली के अधीक्षक को संबंधित सुपुर्दगी वारंट जारी किया था।[40]

18 मार्च, 1982 को सभा द्वारा लिये गये निर्णय के अनुसरण में, जिसमें "दर्शक-दीर्घा" से नारे लगाने के लिए चौदह व्यक्तियों को 24 मार्च, 1982 तक 'सादा कारावास' का दंड दिया गया था, सभापति ने तिहाड़ कारागृह, दिल्ली के अधीक्षक को संबोधित किए गए संबद्ध अपराधियों के पृथक्-पृथक् चौदह सुपुर्दगी वारंट जारी किये थे।[41]

तथापि, एक दर्शक द्वारा "दर्शक-दीर्घा" से नारे लगाने और सभा में चप्पल फेंके जाने के एक मामले में जिसे सभा ने एक संकल्प द्वारा सत्र की समाप्ति तक 'सादा कारावास' का दंड दिया था, सुपुर्दगी वारंट उपसभापति के हस्ताक्षर से जारी किया गया था, जोकि संकल्प स्वीकृत होने के समय पीठासीन थे।[42]

संविधान के अन्तर्गत सभापति मत बराबर होने की दशा में निर्णायक मत का ही प्रयोग करता है।[43] तथापि, यदि सभा की किसी बैठक में सभापति को उसके पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन है, तब वह उस बैठक में पीठासीन नहीं होगा।[44] वह ऐसे संकल्प पर या ऐसी कार्यवाहियों के दौरान किसी अन्य विषय पर भी बिल्कुल मत नहीं दे सकता।[45] संविधान में भी सभापति की कतिपय शक्तियों और कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है: उसे गणपूर्ति के अभाव में सभा को स्थगित करने या इसके अधिवेशन को निलम्बित करने की शक्ति प्राप्त है।[46] किसी सदस्य द्वारा सभा से त्याग-पत्र दे दिये जाने की स्थिति में, यदि प्राप्त जानकारी से या अन्यथा, और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, सभापति का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा त्याग-पत्र स्वैच्छिक या असली नहीं है, तो उससे उस त्याग-पत्र को स्वीकार नहीं करने की अपेक्षा की जाती है।[47] संविधान की दसवीं अनुसूची के अन्तर्गत सभापति दल-परिवर्तन के आधार पर राज्य सभा के किसी सदस्य की निरर्हता के प्रश्न का विनिश्चय करता है।[48] वह इस अनुसूची के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम भी बनाता है।[49] उसे यह निदेश देने की शक्ति प्राप्त है कि उक्त नियमों के जानबूझकर किये गये किसी उल्लंघन के बारे में उसी रीति से कार्यवाही की जाये जिस रीति से सदन के विशेषाधिकार

भंग के बारे में की जाती है;[50] और सभापति किसी सदस्य को, जो हिन्दी या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकता है।[51]

> जब एक सदस्य ने यह अनुरोध किया कि उसे अपनी मातृभाषा मलयालम में बोलने की अनुमति प्रदान की जाये, क्योंकि वह अंग्रेजी या हिन्दी में प्रभावी ढंग से बोल पाने में असमर्थ है, तो सभापीठ ने निम्नलिखित व्यवस्था दी:
>
> > यह भद्र पुरुष कह रहे हैं कि इन्हें हिन्दी या अंग्रेजी कोई भी राजभाषा नहीं आती। अत: वह अपनी मातृभाषा मलयालम में बोलना चाहते हैं। सभापीठ को इसकी अनुमति देने का अधिकार है बशर्ते कि हमें इसका अनुवाद सुलभ हो। हमें इस प्रकार की असामान्य स्थितियों को भी ध्यान में रखना होगा और हमारे संविधान में ऐसी स्थितियों को ध्यान में रखा गया है।[52]
>
> तथापि, एक अवसर पर एक सदस्य ने मैथिली में बोलना आरंभ कर दिया। इस पर आपत्ति किये जाने पर उपसभापति ने यह व्यवस्था दी कि कोई सदस्य हिन्दी और अंग्रेजी के अतिरिक्त आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं में ही बोल सकता है।[53]
>
> सभा में दिये गये भाषणों के साथ-साथ भाषान्तरण की व्यवस्था कर दिये जाने के पश्चात् अब कोई सदस्य एक घंटे पूर्व इस आशय की सूचना देकर संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित किसी भी भाषा में बोल सकता है।[54]

सभापति पीठासीन अधिकारी के रूप में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के अतिरिक्त सभा में होने वाले विचार-विमर्श में भाग नहीं लेता। तथापि, किसी व्यवस्था के प्रश्न पर या स्वेच्छा से वह किसी विषय पर चल रहे विचार-विमर्श में सदस्यों की सहायता करने की दृष्टि से किसी भी समय सभा को संबोधित कर सकता है।

> 19 मई, 1952 को जब सभा में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा आरंभ होने वाली थी, तब सभापति ने उक्त प्रस्ताव पर संशोधनों के संबंध में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के बारे में टिप्पणी की।[55]
>
> एक अन्य अवसर पर सभापति ने लोक सभा द्वारा यथापारित संविधान (पैंतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1978 पर खंडश: विचार करने के लिए अपनायी जाने वाली प्रक्रिया की घोषणा की।[56]

राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के अन्तर्गत सभा की कार्यवाहियों, समितियों और प्रश्नों, ध्यानाकर्षणों, प्रस्तावों, संकल्पों, विधेयकों में संशोधनों, विधेयकों के अधिप्रमाणन, याचिकाओं, सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों, वैयक्तिक स्पष्टीकरणों इत्यादि जैसे अन्य मामलों के संबंध में सभापति को विभिन्न शक्तियां प्रदान की गई हैं। सभापति स्वयं भी, यदि वह उचित समझे, स्थगन के दिन या समय के पूर्व अथवा सभा को अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दिये जाने के पश्चात् लेकिन उस स्थिति में जब राष्ट्रपति द्वारा सत्रावसान न किया गया हो, कभी भी सभा का अधिवेशन बुला सकता है।[57] सभा के विशेषाधिकार उल्लंघन का प्रश्न उठाने के लिए सभापति की सहमति आवश्यक होती है। वह स्वयमेव ऐसे किसी प्रश्न की जांच, छानबीन या उस पर प्रतिवेदन के लिए विशेषाधिकार समिति को भी सौंप सकता है।[58]

संसदीय समितियां, चाहे उनका गठन सभापति द्वारा किया गया हो या सभा द्वारा, उसके मार्ग-निर्देशों के अनुसार कार्य करती है। वह उनके अध्यक्षों की नियुक्ति करता है और उन्हें ऐसे निदेश जारी करता है, जो प्रक्रिया और कार्य के संबंध में आवश्यक हों। वह विभिन्न स्थायी समितियों और विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों के लिए सदस्यों का नामनिर्देशन करता है। वह कार्य मंत्रणा समिति,[59] नियम समिति[60] और सामान्य प्रयोजन समिति[61] का स्वयं अध्यक्ष होता है।

सभा में या इससे संबंधित मामलों में संविधान और नियमों की व्याख्या करना सभापति का अधिकार है और ऐसी व्याख्या के संबंध में कोई भी व्यक्ति सभापति से किसी प्रकार का कोई तर्क या विवाद नहीं कर सकता है। सभापति द्वारा दी गई व्यवस्थाएं पूर्वोदाहरण होती हैं जिन्हें मानना आवश्यक है। सभापति द्वारा दी गई व्यवस्थाओं पर आपत्ति अथवा उनकी आलोचना नहीं की जा सकती और सभापति द्वारा दी गई व्यवस्था का विरोध करना सभा और सभापति का अवमान होता है। सभापति के लिए अपने निर्णयों के लिए कारण बताना आवश्यक नहीं है। सभापति द्वारा व्यवस्थाएं सामान्यत: सभा में दी जाती हैं लेकिन किसी आकस्मिकता में उसके अनुरोध पर उसकी व्यवस्था को उपसभापति द्वारा सभा में पढ़कर सुनाया जा सकता है।

> महाराष्ट्र न्यासों के मामले में सदस्यों द्वारा वित्त मंत्री और एक दैनिक के सम्पादक के विरुद्ध विशेषाधिकार उल्लंघन की कतिपय सूचनाएं दी गई थीं। सभापति की व्यवस्था को सभा में उनकी ओर से उपसभापति द्वारा पढ़कर सुनाया गया था। व्यवस्था को पढ़कर सुनाते समय उपसभापति ने इस विषय में सभापति द्वारा उन्हें संबोधित किये गये पत्र को भी पढ़कर सुनाया।[62]

सभा में व्यवस्था बनाये रखना सभापति का प्राथमिक कर्त्तव्य है और उसे इस प्रयोजनार्थ जैसे किसी सदस्य के भाषण में असंगत बातों और पुनरुक्ति को रोकने,[63] किसी सदस्य द्वारा अनावश्यक या मानहानिकारक टिप्पणी करने पर उससे उक्त टिप्पणी को वापस लेने का निदेश देते हुए हस्तक्षेप करने के लिए नियमों के अन्तर्गत सभी आवश्यक अनुशासनात्मक शक्तियां प्रदान की गई हैं। सभापति वाद-विवाद में प्रयुक्त[64] किन्हीं असंसदीय या गरिमारहित शब्दों को निकाल देने का आदेश भी दे सकता है या यह आदेश दे सकता है कि किसी सदस्य द्वारा उनकी अनुमति के बिना कही गई किसी बात को अभिलिखित नहीं किया जायेगा। वह अमर्यादित व्यवहार के दोषी किसी भी सदस्य को सभा से चले जाने का निदेश दे सकता है[65] और यदि कोई सदस्य सभापीठ के प्राधिकार की उपेक्षा करता है और सभा के कार्य में बाधा डालता है तो सभापति उसे निलंबित कर सकता है।[66] वह सभा में घोर अव्यवस्था उत्पन्न होने की दशा में सभा को स्थगित कर सकता है या किसी बैठक को निलम्बित भी कर सकता है।[67]

संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा की वर्षगांठ, शहीद दिवस, भारत छोड़ो दिवस, हिरोशिमा और नागासाकी पर बम गिराये जाने की बरसी आदि गंभीर अवसरों पर सभापति द्वारा समुचित उल्लेख करना एक परिपाटी बन गई है। इसी तरह से, सभापति अतिमहत्वपूर्ण घटनाओं या किसी त्रासदी या सुखद घटना पर सभा की भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के मामलों पर सभा में प्रस्ताव या संकल्प रख सकता है। ऐसे प्रस्तावों या संकल्पों को बिना किसी चर्चा के सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है। राज्य सभा में स्थापित प्रथा के अनुसार सभापति ही सभा की ओर से दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता है, हालांकि कुछ मामलों में अपवादस्वरूप राज्य सभा में विभिन्न दलों/समूहों के नेता भी सभापति द्वारा व्यक्त की गई भावनाओं से स्वयं को सहबद्ध कर सकते हैं। सभापति राज्य सभा में अपना कार्यकाल पूरा कर लेने वाले सदस्यों के पद से निवृत्ति के समय विदाई-भाषण देता है और नव-निर्वाचित सदस्यों का स्वागत करता है। जब कभी भी विशिष्ट विदेशी अतिथि या विदेशी संसदीय शिष्टमंडलों के सदस्य सभा की कार्यवाही देखने के लिए "विशेष प्रकोष्ठ" में उपस्थित होते हैं, तब सभापति सभा की ओर से देश में उनका स्वागत करता है।[68]

सभापति को विधेयक में स्पष्ट अशुद्धियों को ठीक करने और ऐसे अन्य परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त है जो सभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों के परिणामस्वरूप किए जाने हों।[69] जब कोई विधेयक

संसद् के सदनों द्वारा पारित किया जाये और वह राज्य सभा के पास हो, तो सभापति उक्त विधेयक को सहमति के लिए राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने से पूर्व उसे अपने हस्ताक्षर से अधिप्रमाणित करता है।[70]

ऐसे सब विषय जिनका इन नियमों में विशिष्ट रूप से उपबंध न किया गया हो और इन नियमों के विस्तृत प्रवर्तन से संबंधित सब प्रश्न ऐसी नीति से विनियमित किये जाते हैं जिसका कि सभापति समय-समय पर निदेश दे।[71]

राज्य सभा सचिवालय सभापति के नियंत्रण और निदेश में कार्य करता है।[72] 'प्रेस दीर्घा' सहित विभिन्न दीर्घाओं में प्रवेश सभापति के निदेश के अन्तर्गत विनियमित होता है। सदस्यों के अधिकारों की रक्षा के लिए और उनके लिए सभी उचित सुविधाएं सुनिश्चित करने के लिए सभापति उत्तरदायी होता है। यदि किसी सदस्य को गिरफ्तार या निरुद्ध किया जाता है तो सम्बद्ध प्राधिकारी द्वारा सभापति को अविलम्ब इस तथ्य की सूचना देनी होती है।[73] सदस्य की रिहाई की सूचना भी सभापति को दी जानी होती है।[74] सभापति की अनुमति प्राप्त किये बिना, चाहे सभा का अधिवेशन चल रहा हो अथवा नहीं, सभा के परिसर में किसी भी सदस्य को न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न ही उसके विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही¬ सिविल या आपराधिक¬ आरम्भ की जा सकती है।

कुछ कानून भी सभापति के कर्त्तव्यों का निर्धारण करते हैं। उदाहरणार्थ, संसद्-सदस्य वेतन, भत्ते और पेंशन अधिनियम, 1954 के अन्तर्गत बनाये गये नियम तब तक प्रभावी नहीं होते जब तक कि सभापति और अध्यक्ष द्वारा उनका अनुमोदन और संपुष्टि नहीं कर दी जाती है।[75] न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के अन्तर्गत सभापति को उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाने के लिए प्रस्ताव प्राप्त होने पर किसी न्यायाधीश को हटाये जाने के अनुरोध के कारणों की जांच करने के लिए समिति गठित करनी होती है।[76] उस अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गये नियमों का भी सभापति और अध्यक्ष द्वारा अनुमोदन और उनकी संपुष्टि किया जाना आवश्यक होता है।[77] प्रेस परिषद् अधिनियम, 1978 के अन्तर्गत सभापति प्रेस परिषद् के अध्यक्ष का नामनिर्देशन करने वाली समिति का सदस्य होता है।[78]

सभापति संबंधित कानूनों के अन्तर्गत गठित बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, पांडिचेरी विश्वविद्यालय और हैदराबाद विश्वविद्यालय की कोर्ट, जामिया मिलिया इस्लामिया की अंजुमन (कोर्ट), हज समिति, भारतीय प्रेस परिषद्, विश्व भारती की संसद् (कोर्ट), राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् जैसे विभिन्न निकायों के लिए राज्य सभा के सदस्यों का नामनिर्देशन करता है। सभापति भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् की साधारण सभा, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड के साधारण निकाय, नियोजन और वास्तुकला विद्यालय की सामान्य परिषद्, हिन्दी शिक्षा समिति, संवैधानिक और संसदीय अध्ययन संस्थान आदि अन्य निकायों में भी राज्य सभा के सदस्यों का नामनिर्देशन करता है।[79]

सभापति, यदि सभा में सर्वसम्मति हो, सभा में उठाये गये किसी भी मामले की जांच कर सकता है, या उसके संबंध में सभा की कोई समिति भी नियुक्त कर सकता है।

10 अगस्त, 1978 को सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें सरकार से यह संस्तुति की गई थी कि वह प्रधान मंत्री और भूतपूर्व गृह मंत्री के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध लगाये गये भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में सभापति द्वारा नियुक्त की जाने वाली समिति से मार्ग-दर्शन और परामर्श प्राप्त करे या दो जांच आयोगों की नियुक्ति करे। 17 अगस्त, 1978 को की गई एक घोषणा में सभापति ने अन्य बातों के

साथ यह टिप्पणी की कि उनके द्वारा किसी समिति की नियुक्ति किया जाना इस बात पर निर्भर करेगा कि सरकार को उक्त प्रस्ताव में उल्लिखित दो विकल्पों में से कौन-सा विकल्प स्वीकार्य है। प्रधान मंत्री ने 24 अगस्त, 1978 को यह घोषणा की कि सरकार को दोनों में से कोई भी विकल्प स्वीकार्य नहीं है। इसलिए 29 अगस्त, 1978 को सभापति ने प्रधान मंत्री के वक्तव्य को ध्यान में रखते हुए यह घोषणा की कि उक्त प्रस्ताव में ऐसी कोई शर्त नहीं रखी गई है कि प्रस्ताव में उल्लिखित दोनों में से कोई भी विकल्प सरकार को स्वीकार्य न होने की स्थिति में भी सभापति द्वारा समिति की नियुक्ति की जानी चाहिए। अत: उनकी सम्मति में ऐसी परिस्थिति में उक्त प्रस्ताव के अनुसार उनके लिए ऐसी किसी समिति की नियुक्ति करना आवश्यक नहीं है।[80]

3 मार्च, 1987 को किसी गैर-सरकारी कम्पनी को जोर्डन में राजमार्ग के निर्माण का ठेका प्रदान किये जाने के बारे में तारांकित प्रश्न संख्या 87 पूछा गया था और उस पर अनुपूरक प्रश्न पूछे गये थे जिनमें इस बात पर जोर दिया गया था कि सरकारी क्षेत्र की कम्पनी के हितों की उपेक्षा कर गैर-सरकारी कम्पनी को लाभ पहुंचाया गया है। वाणिज्य मंत्री और अन्य सदस्य यह चाहते थे कि सभापति द्वारा इस मामले की जांच की जाये। सभापति इससे सहमत हो गये और उन्होंने तदनुसार इस मामले की जांच की और इस बारे में एक विस्तृत व्यवस्था दी।[81]

2 अगस्त, 1995 को रेलवे वैगनों की खरीद के बारे में तारांकित प्रश्न संख्या 42 पूछा गया था। इस बात पर सभी सहमत थे कि सभापति इस मुद्दे की जांच करने के लिए सभा की कोई समिति नियुक्त कर सकते हैं। रेल मंत्री भी इससे सहमत थे। तदनुसार, सभापति ने पन्द्रह सदस्यों की एक समिति गठित किये जाने की घोषणा की।[82]

उपसभापति

उपसभापति का निर्वाचन राज्य सभा द्वारा अपने सदस्यों में से किया जाता है।[83] उपसभापति का निर्वाचन उस तिथि को होता है जिसे सभापति नियत करे और महासचिव प्रत्येक सदस्य को इस तिथि की सूचना (नोटिस) भेजता है।[84] इस प्रकार से नियत तिथि के पहले दिन के मध्याह्न से पूर्व कोई भी सदस्य किसी भी समय इस प्रस्ताव की, कि किसी अन्य सदस्य को राज्य सभा का उपसभापति चुना जाये, महासचिव को सम्बोधित, लिखित में सूचना दे सकता है। उस सूचना का अनुमोदन एक तीसरे सदस्य से कराया जाना और सूचना के साथ प्रस्तावित सदस्य का यह कथन संलग्न किया जाना अपेक्षित है कि निर्वाचित होने पर वह उपसभापति के रूप में कार्य करने को सहमत है।[85] कोई सदस्य एक से अधिक प्रस्ताव प्रस्थापित या अनुमोदित नहीं कर सकता है।[86] सूचना प्राप्त करने की निर्धारित तिथि और निर्वाचन की तिथि तथा निर्वाचन की प्रक्रिया संसदीय समाचार में भी अधिसूचित की जाती है।[87]

इस प्रकार से प्राप्त प्रस्तावों की सूचनाएं उस कालानुक्रम में जिसमें वे सूचना कार्यालय में प्राप्त होती हैं, उस दिवस की कार्यावलि में सम्मिलित की जाती हैं जिस दिवस को उपसभापति का निर्वाचन होना है। प्रस्ताव का प्ररूप इस प्रकार है:

कि अमुक व्यक्ति को राज्य सभा का उपसभापति चुना जाये। निर्वाचन, प्रश्नों के समय के तत्काल पश्चात् होता है।

कार्यावलि में जिस सदस्य के नाम से कोई प्रस्ताव होता है, वह पुकारे जाने पर प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है या नहीं भी कर सकता है। यदि वह प्रस्ताव उपस्थित नहीं करता तो वह स्वयं को इस आशय के वक्तव्य तक ही सीमित रखता है। जो प्रस्ताव उपस्थित तथा विधिवत् समर्थित हो चुके हैं, वे सभापति द्वारा एक-एक करके उसी क्रम से रखे जाते हैं जिस क्रम में वे उपस्थित किए गये हैं और यदि आवश्यक हुआ तो विभाजन द्वारा उनका निर्णय किया जाता है। यदि कोई प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो सभापति अन्य प्रस्तावों को रखे बिना घोषणा करता है कि स्वीकृत प्रस्ताव में जिस सदस्य का नाम था उसे राज्य सभा का उपसभापति चुन लिया गया है।[88]

17 दिसम्बर, 1969 को उपसभापति के निर्वाचन के लिए प्रस्तावों पर विचार करने से पूर्व कुछ सदस्य यह चाहते थे कि गुप्त मतपत्र द्वारा मतदान कराया जाना चाहिए, और सभापति को नियम में छूट दे देनी चाहिए। सभापति ने वर्तमान नियम, परिपाटी और प्रक्रिया के आधार पर ऐसा करने से इंकार कर दिया। जहां तक नियम 7 का संबंध है, चूंकि इसमें मतदान का उपबंध नहीं किया गया है, अत: सभापति ने यह निर्णय दिया कि मतपत्र द्वारा मतदान नहीं कराया जा सकता है। हमेशा से यह परिपाटी रही है कि नियम को उसके वर्तमान स्वरूप में ही लागू किया जाता है और कोई भी परिपाटी वर्तमान नियम के विपरीत नहीं हो सकती है। यदि परिपाटी में परिवर्तन करना है, तो नियम में परिवर्तन करने के लिए उचित प्रक्रिया का सहारा लिया जाना चाहिए। सभापति ने संबद्ध नियम को निलंबित रखने के लिए भी अपनी अनुमति प्रदान नहीं की। अत: उन्होंने यह व्यवस्था दी कि प्रस्तावों को प्रस्ताव के क्रम-निर्धारण की परिपाटी के अनुसार उनके प्राप्त होने के समय के अनुरूप ही सूचीबद्ध किया गया है।[89]

29 जुलाई, 1980 को कुछ सदस्यों ने उपसभापति के निर्वाचन की विधि के बारे में एक मामला उठाया था, जो अगले दिन होना था। सदस्य चाहते थे कि निर्वाचन गुप्त मतदान द्वारा कराया जाना चाहिये और उन्होंने सभापीठ से नियमों में छूट देने का अनुरोध किया था।[90] सभापति ने आश्वासन दिया था कि वह इस मामले पर विचार करेंगे। उन्हीं के शब्दों में, "जैसाकि न्यायाधीश कहते हैं, मुझे सलाह के अनुसार इस मामले पर विचार करना होगा।" अगले दिन उन्होंने निम्नलिखित निर्णय दिया:

> मैंने पूर्वनिर्णयों और नियमों पर विचार किया है। उनमें एक पूर्वनिर्णय 1969 का और दूसरा 1977 का है। दूसरे मामले में माननीय श्री राम निवास मिर्धा सर्वसम्मति से निर्वाचित किए गये थे और कोई प्रश्न पैदा नहीं हुआ था। 1969 में दो प्रतिद्वन्द्वी थे और नियम 252 के साथ पठित अध्याय-III के नियम 7 की प्रक्रिया अपनाई गई थी। इस पूर्वनिर्णय के आधार पर मुझे भी वही प्रक्रिया अपनानी चाहिए। तथापि, माननीय सदस्यों ने अनुरोध किया है कि मैं नियम 267 के अन्तर्गत कार्य करूं। यह कहा गया है कि निर्वाचन, एक प्रस्ताव के द्वारा किया जाता है और उक्त नियम के द्वारा किसी नियम को निलम्बित किया जा सकता है।

यह सच है कि अध्याय-III के नियम 7 में जिसके अधीन निर्वाचन कराया जाता है, "प्रस्ताव" शब्द का प्रयोग किया गया है, किन्तु नियम 7 के उपनियम (3) और (4) जिनसे छूट देने की मांग की गई है, में छूट नहीं दी जा सकती है। उपनियम (3) में छूट इसलिए नहीं दी जा सकती क्योंकि किसी सदस्य को तो प्रस्ताव उपस्थित करना ही चाहिए अन्यथा निर्वाचन नहीं होगा। वह केवल अपना प्रस्ताव वापस ले सकता है। इस नियम से नहीं बचा जा सकता है। जहां तक उपनियम (4) का संबंध है, इसमें उपबंध है कि प्रत्येक प्रस्ताव पर बारी-बारी से सभा का मत लिया जायेगा और इसमें यह भी है कि "यदि आवश्यक हुआ तो विभाजन के द्वारा निर्वाचन किया जायेगा।" विभाजन की प्रक्रिया में पहले ध्वनिमत लिया जाता है, इसके बाद सदस्यों की गिनती की जाती है और तत्पश्चात् लॉबियों में जाकर या स्वचालित मत रिकार्डर के प्रचालन के द्वारा मतों को अभिलिखित किया जता है। यदि नियम 7 के उपनियम (4) को निलम्बित करना है तो नियम 252 से 254 को भी निलम्बित किया जाना चाहिये।

यहां उपस्थित वकीलों¬ सभा में बहुत से वकील हैं¬को 'लॉ लार्ड' की एक प्रसिद्ध टिप्पणी याद होगी जो न्यायालयों में हर रोज प्रयोग की जाती है जिसमें नियम को अत्यंत परिष्कृत शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है। यह टिप्पणी इस प्रकार है: "जब विधि में किसी कार्य को करने के लिए कतिपय रीति विहित कर दी जाती है तब वह कार्य उसी रीति से किया जाना चाहिए या बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिये: कार्य को करने की अन्य रीतियां आवश्यक रूप से निषिद्ध हैं।" जब तक मेरे पास या किसी और के पास कोई नया नियम बनाने की अधिकारिता न हो तब तक हमें सिलसिलेवार विभाजन की प्रक्रिया अपनानी चाहिए। हममें से कोई भी तदर्थ नियम नहीं बना सकता है। अत: विद्यमान नियम को ही अपनाया जाना चाहिए और अनुपालन की कोई अन्य रीति निर्मित नहीं की जा सकती है। इसलिए पूर्वनिर्णय और नियमों की युक्ति का अनुसरण करते हुए निर्वाचन विहित प्रक्रिया के अनुसार होगा।[91]

निर्वाचन के पश्चात् सभापति द्वारा उपसभापति का अभिनन्दन किया जाता है और इसके पश्चात् सभा का नेता और विपक्ष का नेता उपसभापति को सभापीठ तक ले जाते हैं। तत्पश्चात् सभा के सभी वर्गों के सदस्य उन्हें बधाई देते हैं जिसका उपसभापति द्वारा उत्तर दिया जाता है।

उपसभापति के अब तक हुए विभिन्न निर्वाचनों का ब्यौरा नीचे दिया गया है:

निर्वाचित उपसभापति का नाम	सत्र प्रारंभ होने की तारीख	सूचना/संसदीय समाचार भाग-2	निर्वाचन की तारीख	कार्यकाल
श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव	13.5.1952	28.5.1952	31.5.1952* (शनिवार)	31.5.1952-2.4.1956#
श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव	23.4.1956	9.4.1956	25.4.1956* (बुधवार)	25.4.1956-1.3.1962%
श्रीमती वायलेट आल्वा	17.4.1962	15.4.1962	19.4.1962* (बृहस्पतिवार)	19.4.1962-2.4.1966#
श्रीमती वायलेट आल्वा	14.2.1966	4.4.1966	7.4.1966* (बृहस्पतिवार)	7.4.1966-16.11.1969^
श्री बी.डी. खोबरागडे	17.11.1969	8.12.1969	17.12.1969@ (बुधवार)	17.12.1969-1.4.1972#
श्री गोडे मुराहरि	13.3.1972	10.4.1972	13.4.1972* (बृहस्पतिवार)	13.4.1972-2.4.1974#
श्री गोडे मुराहरि	22.4.1974	22.4.1974	26.4.1974* (शुक्रवार)	26.4.1974-20.3.1977%
श्री राम निवास मिर्धा	28.3.1977	28.3.1977	30.3.1977* (बुधवार)	30.3.1977-2.4.1980#
श्री श्याम लाल यादव	23.7.1980	26.7.1980	30.7.1980@ (बुधवार)	30.7.1980-2.4.1982#
श्री श्याम लाल यादव	26.4.1982	28.4.1982%	28.4.1982** (बुधवार)	28.4.1982-29.12.1984#
डा. (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला	17.1.1985	23.1.1985	25.1.1985* (शुक्रवार)	25.1.1985-20.1.1986^
श्री एम.एम. जैकब	20.2.1986	20.2.1986	26.2.1986** (बुधवार)	26.2.1986-22.10.1986^
श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील	4.11.1986	12.11.1986	18.11.1986** (मंगलवार)	18.11.1986-5.11.1988^
डा. (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला	2.11.1988	10.11.1988	18.11.1988* (शुक्रवार)	18.11.1988-4.7.1992#
डा. (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला	8.7.1992	6.7.1992	10.7.1992@ (शुक्रवार)	10.7.1992-4.7.1998#

निर्वाचित उपसभापति का नाम	सत्र प्रारंभ होने की तारीख	सूचना/संसदीय समाचार भाग-2	निर्वाचन की तारीख	कार्यकाल
डा. (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला	27.5.1998	6.7.1998	9.7.1998* (बृहस्पतिवार)	9.7.1998-10.6.2004
श्री के. रहमान खान	5.7.2004	19.7.2004	22.7.2004 (बृहस्पतिवार)	22.7.2004-2.4.2006
श्री के. रहमान खान	10.5.2006	9.5.2006	12.5.2006 (शुक्रवार)	12.5.2006-2.4.2012
प्रो. पी.जे. कुरियन	8.8.2012	14.8.2012	21.8.2012 (मंगलवार)	21.8.2012-आज की तारीख तक

*निर्विरोध निर्वाचित

@चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशी-2, ध्वनिमत से निर्णय लिया गया

** चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशी-2, ध्वनिमत से निर्णय लिया गया

निवृत्त

% लोक सभा के लिए निर्वाचित

^ त्याग-पत्र दिया

उपसभापति अपने निर्वाचन की तारीख से पद धारण करता है और जब वह सभा का सदस्य नहीं रहता/रहती है तो अपना पद रिक्त कर देता है/देती है[92] वह किसी भी समय सभापति को सम्बोधित स्वहस्ताक्षरित-पत्र द्वारा अपना पद त्याग सकेगा/सकेगी।[93] उपसभापति को सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित सभा के संकल्प द्वारा भी अपने पद से हटाया जा सकेगा। ऐसे किसी संकल्प के प्रस्तावित किए जाने के आशय की चौदह दिन की सूचना देना अपेक्षित है।[94] जब भी उपसभापति निर्वाचित किया जाता है, त्याग-पत्र देता है या अन्यथा पद रिक्त करता है, तब इस आशय की एक अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित की जाती है।

उपसभापति सभा का पूर्णकालिक अधिकारी है। संसद् अधिकारी वेतन और भत्ता अधिनियम, 1953 तथा इसके अधीन बनाये गये नियमों के अधीन उपसभापति को ऐसे अधिकारी के रूप में अपने सम्पूर्ण कार्यकाल के दौरान, 50,000/- रुपए प्रतिमाह वेतन, 45,000/- रुपए प्रतिमाह निर्वाचन क्षेत्र भत्ता, 1000/- रुपए प्रतिमाह सत्कार भत्ता और 2000/- रुपए प्रतिदिन दैनिक भत्ता मिलता है। उक्त अधिनियम में यात्रा और दैनिक भत्तों की दरों और अन्य सुविधाओं जैसे आवास, दूरभाष, चिकित्सा आदि, जिनके लिए उपसभापति हकदार है, के संबंध में भी उपबंध किया गया है। उपसभापति का वेतन भारत की संचित निधि पर भारित है और सभा के मत के अध्यधीन नहीं है।[95] उपसभापति, भारत सरकार के राज्य मंत्रियों, पूर्व के योजना आयोग के सदस्यों और लोक सभा के उपाध्यक्ष के साथ-साथ अग्रता क्रम में दसवें स्थान पर होता है। डा. (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला को 1999 में अंतर-संसदीय संघ की अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित होने पर कैबिनेट रैंक प्रदान किया गया था।[96] उपसभापति सभापीठ की बायीं ओर चैम्बर में सीट सं. 229 ग्रहण करता है। प्रो. पी.जे कुरियन को उनके कार्यकाल 1 जुलाई, 2018 तक के लिए व्यक्तिगत रूप से अग्रता सारणी में केन्द्रीय कैबिनट मंत्री का दर्जा प्रदान किया गया।[97]

जब सभापति का पद रिक्त हो या ऐसी अवधि में जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा हो या उसके कृत्यों का निर्वहन कर रहा हो तब उस पद के कर्त्तव्यों का पालन उपसभापति द्वारा किया जाता है।[98]

सभा की किसी बैठक से सभापति की अनुपस्थिति में, उपसभापति, सभापति के रूप में कार्य करता है।[99] जब वह ऐसा सभापतित्व कर रहा होता है या कर रही होती है तब उसे वही शक्तियां प्राप्त होती हैं जोकि सभा का सभापतित्व करते हुए सभापति को प्राप्त होती हैं और राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में सभापति के प्रति सभी उल्लेख उपसभापति के प्रति उल्लेख समझे जाते हैं।[100] उपसभापति द्वारा दिये गये विनिर्णय से सभा के समक्ष उपस्थित मामले का निपटारा हो जाता है और उस मामले को पुन: नहीं उठाया जा सकता है। तथापि, जब कभी सभा में उठाये गये किसी विषय पर किसी विचार की आवश्यकता होती है तब उपसभापति, सभापति के विचार और निर्णय के लिए उसे निर्देशित करने अथवा आरक्षित करने के लिए स्वतंत्र होता/होती है।

राज्य सभा का सभापति भारत का उपराष्ट्रपति भी होता है और इस प्रकार उसके पास दोहरे कृत्य और उत्तरदायित्व होते हैं। इससे स्पष्ट है कि वह पूरे समय सभा की बैठकों का सभापतित्व नहीं कर सकता है। प्राय: सभापति प्रश्नों के समय या बैठक के आरंभिक समय में सभापतित्व करता है और उसके पश्चात् प्राय: उपसभापति आसन ग्रहण कर लेता/लेती है।

आवश्यक सेवा विधेयक, 1981 पर विचार के दौरान जब सभा की बैठक 17 सितम्बर, 1981 को मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे से 18 सितम्बर, 1981 को मध्याह्न पूर्व 4.43 पर स्थगित होने तक जारी रही थी तब 40 मिनट के भोजनावकाश को छोड़कर उपसभापति ने केवल दो अल्प अन्तरालों के साथ 10 घंटे से अधिक अवधि तक पूरे समय सभापतित्व किया था।

तथापि, महत्वपूर्ण अवसरों और वाद-विवादों जैसे संविधान (संशोधन) विधेयक, आदि के समय सभापति भी, यदि सुविधाजनक हो, तो सभा की बैठक का सभापतित्व कर सकता है।

21 अप्रैल, 1987 को जब सभा में बोफोर्स के मामले पर वाद-विवाद हुआ था तब सभापति ने समूची बैठक के लिए सभा की कार्यवाही का सभापतित्व किया था।

आवश्यकतानुसार, उपसभापति सभा में तत्समय लंबित कार्य के संबंध में राज्य सभा में विभिन्न दलों और गुटों के नेताओं से परामर्श करने के लिए अनौपचारिक बैठकों का भी आयोजन करता/करती है।

प्रधान मंत्री के सुझाव पर, उपसभापति ने इस बात पर विचार के लिए कि उत्पाद-शुल्क के मामले की जांच के लिए संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया जाये अथवा नहीं, नेताओं के साथ बैठक की थी।[101]

एक अन्य अवसर पर, उपसभापति ने सरकार के त्याग-पत्र के पश्चात् सभा द्वारा निपटाये जाने वाले कार्य के बारे में निर्णय लेने के लिए बैठक का आयोजन किया था।[102]

संसद् की सभाओं की किसी संयुक्त बैठक से अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के अनुपस्थित होने के दौरान, उपसभापति सभापतित्व करता/करती है।[103]

उपसभापति, सभा के समक्ष किसी विषय पर सभा में बोल सकता/सकती है, विचार-विमर्श में भाग ले सकता/सकती है और एक सदस्य के रूप में मत दे सकता/सकती है, किन्तु ऐसा वह तभी कर सकता/सकती है जब सभापति पीठासीन हो।

1 अगस्त, 1954 को जब सभापति पीठासीन थे तब उपसभापति श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव ने केन्द्रीय रेशम बोर्ड (संशोधन) विधेयक, 1952 पर हुई चर्चा में भाग लिया था।

जब स्वयं उपसभापति पीठासीन हो तब वह, मतों के बराबर होने की अवस्था को छोड़कर, मत नहीं दे सकता/सकती है।[104]

परिपाटी के अनुसार, उपसभापति विधेयकों, संकल्पों आदि को प्रायोजित नहीं करता/करती है और न वह प्रश्न सभापटल पर रखता/रखती है।

राज्य सभा सदस्य डा. (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला ने 29 अप्रैल, 1983 को राज्य सभा में दिल्ली किराया नियंत्रण (संशोधन) विधेयक, 1983 पुर:स्थापित किया था। 25 जनवरी, 1985 को उन्हें उपसभापति निर्वाचित कर लिया गया। इसके पश्चात् उक्त विधेयक को गैर-सरकारी सदस्यों के लम्बित विधेयकों की सूची से हटा दिया गया।[105]

8 मार्च, 1996 को उपसभापति डा. (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला ने "अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस" के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति और उनके कल्याण के संबंध में एक संकल्प उस समय उपस्थित किया था जब सभापति, जिन्होंने उक्त संकल्प का प्रस्ताव किया था, पीठासीन थे और वह सभा द्वारा स्वीकृत कर लिया गया था।

उपसभापति कार्य मंत्रणा समिति,[106] नियम समिति[107] और सामान्य प्रयोजन समिति[108] का सदस्य होता है। यदि सभापति, जो इन समितियों का अध्यक्ष भी होता है, किसी कारण से इन समितियों में से किसी समिति की किसी बैठक का सभापतित्व करने में असमर्थ हो तो उपसभापति उस बैठक के अध्यक्ष के रूप में कार्य करता/करती है।[109]

1981 तक, उपसभापति कार्य मंत्रणा समिति या नियम समिति का/की सदस्य नहीं होता था/होती थी। तथापि एक परिपाटी और प्रथा के अनुसार उसे एक विशेष अतिथि के रूप में इन समितियों की बैठकों में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जाता था। इसके बाद नियम समिति ने यह सिफारिश की कि उपसभापति को इन समितियों का सदस्य बनाया जाये और इस प्रयोजनार्थ कार्य मंत्रणा समिति की सदस्य-संख्या को 10 से बढ़ाकर 11 कर दिया जाये और नियम समिति की सदस्य-संख्या को 15 से बढ़ाकर 16 कर दिया जाये। संगत नियमों में तदनुसार संशोधन किया गया।[110]

नियम समिति के प्रतिवेदन को प्राय: उस समय जब सभापति पीठासीन हो, उपसभापति द्वारा सभा में प्रस्तुत किया जाता है। तथापि, 14 फरवरी, 1995 को उपसभापति ने सभापीठ में सभापतित्व करते समय नियम समिति का सातवां प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था।

यदि उपसभापति किसी अन्य संसदीय समिति का सदस्य हो तो उसे उस समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है।[111]

उपसभापति को 1958 से विशेषाधिकार समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्देशित किया जाता रहा है और इसलिए उसे उस समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता रहा है।

केवल 1969 में, उपसभापति उस समिति का/की सदस्य नहीं था/थी और इसलिए एक अन्य सदस्य (श्री एम.सी. सीतलवाड) ने उस समिति की अध्यक्षता की थी।

उपसभापति को मार्च, 1997 से अप्रैल, 2012 तक राज्य सभा के सदस्यों के लिए कंप्यूटरों के प्रावधान संबंधी समिति का सदस्य भी नामनिर्देशित किया गया है और इसलिए उन्हें इस समिति का अध्यक्ष भी नियुक्त किया गया। इसके अतिरिक्त, उपसभापति को सितंबर, 1998 से संसद्-सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी-समिति के सदस्य के रूप में भी नामनिर्देशित किया गया है और इसलिए उन्हें इस समिति का अध्यक्ष भी नियुक्त किया गया है।

उपसभापति को निम्नलिखित विधेयकों के संबंध में संसद् की सभाओं की संयुक्त समिति का अध्यक्ष भी नियुक्त किया गया था:

(1) बालक विधेयक, 1959 (श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव)

(2) परिसीमा विधेयक, 1962 (श्रीमती वायलेट आल्वा)

(3) विदेशीय विवाह विधेयक, 1963 (श्रीमती वायलेट आल्वा)

(4) प्रेस परिषद् विधेयक, 1963 (श्रीमती वायलेट आल्वा)

(5) केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल विधेयक, 1966 (श्रीमती वायलेट आल्वा)

(6) एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1967 (श्रीमती वायलेट आल्वा)

(7) वक्फ विधेयक, 2010 (श्री के. रहमान खान)

उपसभापति (श्रीमती वायलेट आल्वा) को संविधान के अनुच्छेद 118 के खंड (1) के अधीन प्रक्रिया विषयक प्रारूप नियमों की सिफारिश करने के लिए गठित समिति के अध्यक्ष के रूप में भी नियुक्त किया गया था।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1994 के अधीन, उपसभापति उक्त अधिनियम के अन्तर्गत गठित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति की सिफारिश करने वाली समिति का भी एक सदस्य होता/होती है।[112]

अस्थायी सभापति

जब सभापति और उपसभापति दोनों के पद रिक्त हों तब राज्य सभा का ऐसा सदस्य जिसको राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए नियुक्त करे, सभापति के पद के कर्त्तव्यों का पालन करता है।[113] इस प्रकार नियुक्त सदस्य को अस्थायी सभापति (चेयरमैन प्रोटेम) कहा जाता है और यह नामकरण उसे पदेन सभापति से भिन्न कर देता है। राज्य सभा में पहली बार जब उपराष्ट्रपति (श्री बी.डी. जत्ती) राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे थे और श्री गोडे मुराहरि द्वारा धारित उपसभापति का पद, लोक सभा के लिए उनका निर्वाचन हो जाने के परिणामस्वरूप 20 मार्च, 1977 को रिक्त हो गया था तब राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उपराष्ट्रपति ने 24 मार्च, 1977 को निम्नलिखित आदेश दिया था:

> यत: उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे हैं और राज्य सभा के उपसभापति का पद भी रिक्त है:
>
> अत: मैं भारत के संविधान के अनुच्छेद 91 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सभा द्वारा उपसभापति चुन लिए जाने तक राज्य सभा के सभापति के पद के कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए राज्य सभा के सदस्य श्री बनारसी दास को नियुक्त करता हूं।[114]

28 मार्च, 1977 को 100वां सत्र आरंभ हुआ था। उस बैठक में केवल दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि और सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों संबंधी औपचारिक कार्य ही किया गया था।[115] 29 मार्च, 1977 के लिए नियत सभा की बैठक राम नवमी के उपलक्ष्य में रद्द कर दी गई थी।[116] उपसभापति का निर्वाचन 30 मार्च, 1977 को हुआ। इसके पश्चात् 'अस्थायी' सभापति ने पद छोड़ दिया।[117] इन दिनों में प्रश्नों का समय नहीं था क्योंकि सत्र का आह्वान अल्प सूचना पर कर दिया गया था।[118]

उपसभाध्यक्ष तालिका

सभापति, समय-समय पर सभा के सदस्यों में से अधिक से अधिक छह उपसभाध्यक्षों की एक तालिका नामनिर्देशित करता है। सभापति और उपसभापति की अनुपस्थिति में उनमें से कोई एक सभा का सभापतित्व करता है।[119]

सभापति द्वारा पहली तालिका, जो चार सदस्यों से मिलकर बननी थी, 16 मई, 1952 को (अर्थात राज्य सभा की पहली बैठक के तीन दिन पश्चात्) नामनिर्देशित की गई थी। सभापति ने सभा को सूचित

किया था कि उन्होंने उपसभाध्यक्षों की तालिका में तीन सदस्यों को नामनिर्देशित कर दिया है और एक रिक्ति भरी नहीं गई है। उन्होंने यह टिप्पणी की थी:

> "हमने कहा है कि चूंकि इस सभा के अध्यक्ष को सभापति की संज्ञा दी जाती है, इसलिए यहां उपसभाध्यक्षों की एक तालिका होगी। अत: यह कहा गया है कि सभा में उपसभाध्यक्षों की एक तालिका होगी... लोक सभा में भी सभापति की एक तालिका है।"[120]
>
> यह तालिका आचार्य नरेन्द्र देव, श्री मुकंद लाल पुरी और बेगम एज़ाज रसूल से मिलकर बनी थी। आचार्य नरेन्द्र देव ने तब तक शपथ नहीं ली थी/प्रतिज्ञान नहीं किया था। तथापि, सभापति को तार भेजकर उन्होंने उपसभाध्यक्ष के रूप में सेवा करने के लिए अपनी सहमति दे दी थी।[121] इसके पश्चात् समय-समय पर पूरी तालिका के पुनर्गठन/नामनिर्देशन की सामान्य प्रथा रही है।

1981 की समाप्ति तक उपसभाध्यक्षों की तालिका में चार सदस्य होते थे। नियम समिति ने यह सिफारिश की थी कि तालिका में सदस्यों की संख्या को बढ़ाकर छह किया जाना चाहिये और ऐसी सिफारिश करते समय समिति ने यह टिप्पणी की थी: "समिति के ध्यान में यह बात लाई गई है कि उक्त तालिका में चार उपसभाध्यक्षों की वर्तमान संख्या पर्याप्त नहीं है क्योंकि कभी-कभी, विशेषकर उस समय जब सभा की देर तक बैठकें होती हैं, तब सभापतित्व के लिए चार उपसभाध्यक्षों में से कोई भी उपलब्ध नहीं होता।"[122] नियम समिति ने 2 दिसंबर, 1981 को सभा में अपना तीसरा प्रतिवेदन प्रस्तुत किया और इस प्रतिवेदन को सभा द्वारा 24 दिसंबर, 1981 को स्वीकृत किया गया।

> तथापि, 1992 में नामनिर्देशित की गई तालिका में पांच सदस्य थे। छठे सदस्य को बाद में सम्मिलित किया गया।[123]

कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि तालिका से किसी सदस्य की नाम-वापसी या त्याग-पत्र या सेवानिवृत्ति को ध्यान में रखते हुए ऐसी तालिका एक ही वर्ष में एक से अधिक बार पुनर्गठित करनी पड़ी।[124]

1997 में ऐसा अवसर भी आया जब तालिका में छह से अधिक सदस्य थे। 180वें सत्र के दौरान, राज्य सभा के सभापति ने विद्यमान तालिका में दो अतिरिक्त सदस्यों को नामनिर्देशित किया था। नई तालिका, जिसका गठन सभापति द्वारा 1 अगस्त, 1997 को किया गया था, में आठ सदस्य थे।[125]

उपसभाध्यक्षों की तालिका के लिए सदस्यों के नामनिर्देशन में सभापति, सभा में विभिन्न दलों की सदस्य-संख्या को ध्यान में रखता है और परिपाटी के अनुसार, तालिका के लिए नामनिर्देशन हेतु विपक्षी दलों/गुटों के कुछ सदस्यों का भी चयन करता है। सभापति अन्तिम चयन करने से पहले इस प्रयोजनार्थ राजनीतिक दलों/गुटों के नेताओं से भी परामर्श कर सकता है। तथापि एक ऐसा उदाहरण रहा है जब एक नाम-निर्देशित सदस्य को उपसभाध्यक्ष की तालिका के लिए नाम-निर्देशित किया गया था। 21 जून, 2005 को, एक नाम-निर्देशित सदस्य श्री फाली एस.नारीमन को उपसभाध्यक्ष की तालिका के लिए नामनिर्देशित किया गया था।

कुछ ऐसे भी अवसर रहे हैं जब किसी उपसभाध्यक्ष ने सभापति और उपसभापति की अनुपस्थिति में किसी बैठक के आरंभ में भी सभापतित्व किया है।[126] एक बार, उपसभाध्यक्ष ने निरन्तर 5 घंटे से अधिक अवधि तक सभापतित्व किया था और सभा (119वें सत्र) को अनिश्चित काल तक स्थगित करने से पहले विनोद में कहा था: "यदि मुझे यह पता होता कि मेरी यह नियति होगी तो मैं अनुपस्थित रहता।"[127]

उपसभाध्यक्ष, जब सभा की किसी बैठक का सभापतित्व कर रहा हो तब उसे वही शक्तियां प्राप्त होती हैं जोकि इस प्रकार सभापतित्व करते हुए सभापति को प्राप्त होती हैं।[128] तथापि, वह सभा में सभी चर्चाओं में पूर्णत: भाग लेने के लिए स्वतंत्र है। सुस्थापित परिपाटी के अनुसार उपसभाध्यक्षों की तालिका के सदस्य

को कार्य मंत्रणा समिति की बैठकों में विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित किया जाता है। उन्हें सामान्य प्रयोजन समिति की बैठकों के लिए भी नामनिर्देशित किया जाता है।

उपसभाध्यक्ष जब सभा की किसी बैठक का सभापतित्व कर रहा हो तब प्रथमत: मत नहीं दे सकता है और बराबर मत होने की अवस्था में उसे निर्णायक मत देना पड़ता है। अब तक केवल एक ऐसा उदाहरण है जब उपसभाध्यक्ष ने बराबर मत होने की अवस्था में निर्णायक मत दिया था।[129]

5 अगस्त, 1991 को एक सदस्य (सत्तारूढ़ दल) ने दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अध्यादेश, 1991 का निरनुमोदन करने वाला एक संकल्प उपस्थित किया था। अध्यादेश और इसका स्थान लेने वाले विधेयक पर चर्चा के पश्चात् सदस्य ने संकल्प वापस लेने के लिए सभा की अनुमति मांगी थी। उपसभाध्यक्ष ने प्रस्ताव किया कि क्या सभा सदस्य को संकल्प वापस लेने की अनुमति देती है। जब एक विपक्षी सदस्य ने असहमति व्यक्त की तब संकल्प पर सभा का मत लिया गया।[130] जब मतों की गिनती की गई तो 'हां' वाले सदस्यों की संख्या उनतालीस थी और 'ना' वाले सदस्यों की संख्या भी उतनी ही थी। उस समय उपसभाध्यक्ष ने संकल्प के पक्ष में अर्थात् अध्यादेश के निरनुमोदन हेतु विपक्ष के साथ निर्णायक मत दिया था। हमारी संसद् के इतिहास में सभापीठ द्वारा संविधान के अनुच्छेद 100 के अधीन निर्णायक मत देने का यह पहला अवसर था।[131]

उपसभाध्यक्ष, नई उपसभाध्यक्ष-तालिका नामनिर्देशित होने तक पद धारण करता है।[132] एक ही सदस्य को पुन: नामनिर्देशित भी किया जा सकता है। यदि कोई उपसभाध्यक्ष अपने पद से त्याग-पत्र दे देता है तो उसके स्थान पर एक अन्य सदस्य को नामनिर्देशित किया जा सकता है।[133]

एक अवसर पर, उपसभाध्यक्ष के विरुद्ध कतिपय अनादरसूचक टिप्पणियां की गई थीं। सभा (67वां सत्र) को अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित करने से पूर्व उपसभाध्यक्ष ने टिप्पणी की थी: "सभापीठ की भावना को ठेस पहुंची है और सभापीठ के पद को उचित ठहराने के एक उपाय के रूप में मैं उपसभाध्यक्ष-तालिका से अपने त्याग-पत्र की घोषणा करता हूं।[134] तथापि, बाद में पुनर्गठित तालिका में उन्हें पुन: नामनिर्देशित कर लिया गया था।[135]

तालिका से बाहर के सदस्य द्वारा सभापतित्व

जब सभापतित्व करने के लिए न तो सभापति, न उपसभाति और न कोई उपसभाध्यक्ष उपस्थित हो तो ऐसा अन्य सदस्य जो सभा द्वारा अवधारित किया जाये सभापति के रूप में कार्य करता है।[136] यह प्रथा है कि सभापीठ छोड़ने वाला पीठासीन अधिकारी सभा के अनुमोदन से किसी सदस्य से सभापीठ ग्रहण करने का अनुरोध करता है। ऐसा सदस्य उपसभापति या किसी उपसभाध्यक्ष के सभापतित्व करने के लिए उपलब्ध होने तक अस्थायी रूप से सभापतित्व करता रहता है। दूसरे शब्दों में ऐसा सदस्य उस समय सभापतित्व नहीं कर सकता है जब कोई उपसभाध्यक्ष सभा में उपस्थित हो।

संविधान के अनुच्छेद 91(2) में अन्तर्विष्ट इस उपबंध का पहली बार 18 मार्च, 1987 को उस समय प्रयोग किया गया था जब उपसभापति ने यह कहा था: "अगला विषय लेने से पहले मुझे एक घोषणा करनी है। यदि सभा सहमत हो तो मैं श्री सुकुल से अनुरोध करूंगी कि वह मेरी अनुपस्थिति में सभापतित्व करें क्योंकि इस समय तालिका का कोई भी सदस्य सभा में उपस्थित नहीं है।" एक सदस्य ने इसके उत्तर में यह कहा था कि "हम इसका स्वागत करते हैं।"[137]

ऐसे अनेक उदाहरण रहे हैं जब तालिका के बाहर के सदस्य ने सभा की अनुमति से उपसभापति तथा उपसभाध्यक्ष की तालिका के सदस्यों की अनुपस्थिति में सभा की कार्यवाहियों का सभापतित्व किया है।[138]

उपसभापति/उपसभाध्यक्ष के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं

जैसाकि बताया जा चुका है, उपसभापति या उपसभाध्यक्ष पैनल के किसी सदस्य को सभापतित्व करते समय वही शक्तियां प्राप्त होती हैं जोकि सभापति को सभा की बैठक का सभापतित्व करते समय प्राप्त होती हैं।[139] निरन्तर यह निर्णय किया जाता रहा है कि सभापति की अनुपस्थिति में सभा की बैठक का सभापतित्व कर रहे उपसभापति या किसी अन्य सदस्य द्वारा दी गई व्यवस्था के विरुद्ध सभापति को कोई अपील नहीं की जा सकती है। सभापीठ से दी गई व्यवस्था के अनुसार सभा के सामने आए हुए मामले का निपटारा हो जाता है और उस पर पुन: विचार नहीं किया जा सकता है।

> 31 मार्च, 1967 को जब विदेश मंत्री सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) विधेयक, 1967 का संचालन कर रहे थे, तब यह औचित्य का प्रश्न उठाया गया था कि नागालैंड के भारत का एक अभिन्न अंग होने के कारण गृह मंत्री के बजाय क्या वह इस विधेयक का संचालन कर सकते हैं। उपसभाध्यक्ष ने यह कहते हुए उस औचित्य के प्रश्न को खारिज कर दिया कि इस मामले पर अन्तत: यह निर्णय लिया गया है कि विदेश मंत्री को ही यह कार्य करना चाहिए।[140] 3 अप्रैल, 1967 को जब सदस्य ने उसी औचित्य के प्रश्न को सभापति के सामने पुन: उठाना चाहा, तो उन्होंने यह व्यवस्था दी, "यदि किसी एक पीठासीन अधिकारी द्वारा किसी मामले का निपटान कर दिया गया है, तो दूसरा पीठासीन अधिकारी उस पर विचार नहीं करेगा।"[141]
>
> 2 दिसंबर, 1968 को उपसभापति ने यह व्यवस्था दी कि बैंककारी विधि (संशोधन) विधेयक, 1968 पर, जिस रूप में वह प्रवर समिति द्वारा प्रस्तुत किया गया था, विचार करने के प्रस्ताव पर और उक्त विधेयक को समिति को पुन: सौंपे जाने के संशोधन पर साथ-साथ चर्चा की जानी चाहिए। जब एक सदस्य ने यह सुझाव दिया कि इस मामले को व्यवस्था के लिए सभापति के पास भेजा जाना चाहिए, तब उपसभापति ने यह टिप्पणी की, "इस समय सभा का संचालन मैं कर रही हूं।"[142] इस मामले को 3 दिसंबर, 1968 को पुन: उठाया गया था। सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:
>
> > "मैं इस सभापीठ पर आसीन होने वाले भद्र पुरुष या महिला द्वारा दी गई व्यवस्थाओं में संशोधन नहीं कर सकता हूं...मैं उपसभापति या उपसभाध्यक्ष की व्यवस्था का सम्मान करना चाहूंगा। मेरे स्थान पर बैठने वाले व्यक्ति को सभापति के समान ही दर्जा और विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं और मैं इस प्रकार की कोई परम्परा नहीं बनाना चाहूंगा जिसमें सभापति, उपसभापति या उपसभाध्यक्ष की व्यवस्था के विपरीत निर्णय करें।"[143]
>
> एक अन्य अवसर पर उपसभाध्यक्ष ने यह आदेश दिया, "इस मुद्दे पर किसी भी बात को अभिलिखित नहीं किया जायेगा।[144] 1 जुलाई, 1980 को एक सदस्य ने सभा की कार्यवाही के किसी अंश को निकाले जाने के सभापीठ के आदेश के अधिकार पर आपत्ति करते हुए एक मामला उठाया था। सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:
>
> > "मुझे उपसभाध्यक्ष द्वारा दी गई व्यवस्था का, जो पीठासीन थे, समर्थन करना चाहिए। यह व्यवस्था मेरे द्वारा दी गई व्यवस्था जैसी ही है। यदि मैं उन व्यवस्थाओं में संशोधन करना आरंभ कर दूं, तो कार्य कभी समाप्त नहीं होगा और काफी कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी।"[145]
>
> 22 दिसंबर, 1980 को सभा की बैठक मध्य रात्रि के पश्चात् भी चलती रही और उस समय सभापतित्व कर रहे उपसभापति द्वारा बैठक को जारी रखने के विरुद्ध उठाये गये औचित्य के प्रश्न को खारिज कर दिया गया था।[146] 23 दिसंबर, 1980 को हुई अगली बैठक में जब कुछ सदस्यों ने इस मामले को उठाना चाहा तब सभापति ने यह टिप्पणी की, "जब उपसभापति इस सभापीठ पर आसीन होते हैं, तब वह मेरा ही प्रतिनिधित्व करते हैं और मैं उनके किसी कार्य के बारे में कोई निर्णय नहीं कर सकता हूं, अन्यथा प्रतिदिन मुझे अपीलें सुननी होंगी, संशोधन करने होंगे, समीक्षा करनी होगी और न जाने क्या-क्या करना होगा।"[147]

तथापि, जब कभी भी सभा में उठाये गये किसी मुद्दे पर विचार करने की आवश्यकता होती है या जिसमें पूर्वोदाहरण अथवा अध्ययन अन्तर्ग्रस्त होता है तब उपसभापति या उपसभाध्यक्ष उक्त मामले को सभापति

के विचार एवं उस पर उसके निर्णय के लिए आरक्षित रखने के लिए स्वतन्त्र होता है। जैसाकि सभापति ने एक अवसर पर टिप्पणी की है:

"जैसाकि हम उच्चतम न्यायालय और सभी न्यायालयों में करते हैं, यदि मैं किसी खंडपीठ में न्यायाधीश के रूप से सम्मिलित हूं, तो मैं निर्णय कर सकता हूं। लेकिन हमारा यह कहना होता है कि नहीं, मैं इस विषय को इससे बड़ी खंडपीठ के लिए आरक्षित करूंगा। वस्तुत: उपसभापति या उपसभाध्यक्ष जब मेरे लिए किसी विषय को आरक्षित करते हैं, तब वे यह मानते हैं कि यह एक ऐसा महत्वपूर्ण विषय हैं जिसकी जानकारी मुझे होनी चाहिए, और मुझे ही उस पर कोई निर्णय करना चाहिए। मेरे विचार में यह अत्यधिक विधि सम्मत कार्य प्रणाली है..."[148]

2 जुलाई, 1980 को सभापति ने सदस्यों को उत्तर प्रदेश और राजस्थान विधान सभाओं के अध्यक्षों के निर्वाचन के लिए अनुच्छेद 178 के अधीन संवैधानिक दायित्व के निर्वहन में विफल रहने से उत्पन्न स्थिति पर एक मामला उठाने की अनुमति प्रदान की थी। इस विषय पर चर्चा करने के सभा के अधिकार और उल्लेख हेतु इसे स्वीकार करने के औचित्य पर आपत्ति प्रकट की गई थी। उपसभाध्यक्ष ने इस विषय को सभापति द्वारा विचार किये जाने हेतु आरक्षित कर दिया।[149] सभापति ने अगले दिन अपनी व्यवस्था दी।[150]

25 अगस्त, 1981 को सभा में असम बजट और सम्बद्ध विनियोग विधेयक पर चर्चा के दौरान एक औचित्य प्रश्न उठाया गया जो असम के राज्यपाल द्वारा 1 अप्रैल, 1981 को प्रख्यापित असम (लेखानुदान) विनियोग अध्यादेश को सभा पटल पर न रखे जाने के बारे में था। यह अध्यादेश असम विधान सभा द्वारा दत्तमत अनुदानों को सम्मिलित करने के लिए था जिसका अनियत दिन के लिए स्थगन कर दिया गया था और बाद में उसके द्वारा विनियोग विधेयक पारित करने के पहले ही सत्रावसान कर दिया गया था। कुछ सदस्यों का यह तर्क था कि असम में राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने के पश्चात् संविधान के अनुच्छेद 213 के अंतर्गत अध्यादेश को संसद् की दोनों सभाओं के पटल पर रखा जाना चाहिए। उपसभापति ने यह व्यवस्था दी कि यह आवश्यक नहीं है।[151] विधेयक लोक सभा को लौटा दिया गया। तथापि, अगले दिन सभा में सभापति के समक्ष इस मामले को पुन: उठाया गया था। सभापति ने निम्नलिखित व्यवस्था दी:

"मैं तीन सामान्य कारणों से अब तक उठाये गये विवादास्पद मुद्दों पर कोई राय व्यक्त नहीं करता हूं और न ही कर सकता हूं। सर्वप्रथम पीठासीन सभापति द्वारा लिया गया कोई भी निर्णय सभा के लिए बाध्यकारी होता है; मेरे पास कोई अपीलीय या पुनरीक्षण शक्तियां नहीं हैं और यदि मैं सभापीठ द्वारा दी गई व्यवस्थाओं में हस्तक्षेप करने लगूं तो उससे इस तरह की बातों का कोई अन्त नहीं होगा। दूसरा कारण और भी अधिक महत्वपूर्ण है। जब इस मामले पर विचार-विमर्श हो रहा था, तब उपसभापति मुझसे या हमारे अन्य साथियों से बातचीत कर सकते थे। लेकिन अब यह मामला बिल्कुल भिन्न अवस्था में पहुंच गया है, अधिवक्ता इसे 'पदकार्य निवृत्त' की संज्ञा देते हैं, सभा अपना कार्य समाप्त कर चुकी है। विधेयक लोक सभा को लौटाया जा चुका है। हम उसे फिर से नहीं मंगा सकते हैं। हमारी सभा विधेयक से संबंधित अपना कार्य सम्पन्न कर चुकी है। अत: विधेयक इस सभा द्वारा पारित स्वरूप में ही बना रहना चाहिए। कोई अन्य अधिकरण, यदि आप इस मामले को किसी अन्य अधिकरण में उठाना चाहते हैं, आपके तर्क के संबंध में अपनी व्यवस्था दे सकता है, लेकिन इस सभा में कल जो कुछ भी हुआ है उस पर इस सभा का कोई भी सदस्य आपके तर्क पर अपनी व्यवस्था नहीं दे सकता है। तीसरा कारण यह है कि उच्च न्यायालय में कार्यवाही लंबित है। कुछ मुद्दों को अंशत: उठाया जाता है और उसमें संभवत: कुछ और मुद्दों को जोड़ा जा सकता है। अत: मैं यह आवश्यक नहीं समझता हूं कि मुझे अब तक जो कुछ कहा गया है उसके बारे में अपनी कोई व्यवस्था देनी चाहिए।"

तथापि, सभापति ने ऐसे समिति प्रश्नों की जांच करने का वचन दिया कि क्या भविष्य में इसी प्रकार की परिस्थितियों में अध्यादेश को सभापटल पर रखा जाना चाहिए और क्या विवादास्पद अध्यादेश को अभी भी सभापटल पर रखा जाना चाहिए।[152] तदनुसार सभापति ने 8 सितम्बर, 1981 को एक व्यवस्था दी।

संसदीय समितियों के अध्यक्ष

संसदीय समिति के अध्यक्ष (इसके पश्चात् इस भाग में समिति अध्यक्ष के रूप में निर्दिष्ट) की नियुक्ति सभापति द्वारा समिति के सदस्यों में से की जाती है। राज्य सभा में समिति अध्यक्षों के पदों पर अनौपचारिक प्रबंध और विचार-विमर्श से सत्तारूढ़ और विपक्षी दलों के सदस्यों की नियुक्तियां की जाती हैं। इससे समिति अध्यक्षों की नियुक्तियां करने का सभापति का कार्य आसान हो जाता है। राज्य सभा का सभापति तीन समितियों¬ कार्य मंत्रणा समिति, नियम समिति और सामान्य प्रयोजन समिति का अध्यक्ष होता है। यदि उपसभापति किसी अन्य समिति का सदस्य होता/होती है, तो उसे अनिवार्यत: उक्त समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है। उदाहरणार्थ, विशेषाधिकार समिति। राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये विधेयकों संबंधी संयुक्त/प्रवर समितियों के मामले में अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति हो सकता है, जो सत्तारूढ़ दल का न हो। निम्नलिखित दृष्टांतों में ऐसे सदस्यों को विभिन्न समितियों के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया था जोकि सत्तारूढ़ दल से संबद्ध नहीं थे:

श्री योगेन्द्र शर्मा (भाकपा)-अध्यक्ष, भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1970 संबंधी संयुक्त समिति;

श्री प्रकाश वीर शास्त्री (निर्दलीय)-अध्यक्ष, केन्द्रीय और अन्य सोसाइटी (विनियमन) विधेयक, 1972 संबंधी संयुक्त समिति;

प्रो. ए.आर. वाडिया (नामनिर्देशित)-अध्यक्ष, दिल्ली प्राथमिक शिक्षा विधेयक, 1960 संबंधी संयुक्त समिति;

श्री जैरामदास दौलतराम (नामनिर्देशित)-अध्यक्ष, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, 1964 संबंधी संयुक्त समिति;

श्री एम.एस. आदिशेषैया (नामनिर्देशित)-अध्यक्ष, विश्व भारती (संशोधन) विधेयक, 1978 संबंधी संयुक्त समिति;

श्री एरा सेजियन (जनता पार्टी)-अध्यक्ष, चिट फंड विधेयक, 1982 संबंधी प्रवर समिति।

यदि कोई समिति अध्यक्ष त्याग-पत्र दे देता है या किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ होता है, तो सभापति समिति के किसी अन्य सदस्य को उसके स्थान पर समिति अध्यक्ष के रूप में नियुक्त करता है। समिति की किसी बैठक में समिति अध्यक्ष की अनुपस्थिति में समिति किसी अन्य सदस्य को उस बैठक में समिति अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए चुनती है।[153]

समिति अध्यक्ष, समिति की बैठकों की अध्यक्षता करता है और सभा की कार्यवाहियों के संबंध में सभापति की भांति ही समिति की प्रक्रिया एवं कार्यकरण के संबंध में उसके विभिन्न दायित्व, कार्य और शक्तियां होती हैं। समिति अध्यक्ष ऐसी उपसमिति के अध्यक्ष/संयोजक की नियुक्ति करता है जिसका गठन करने का समिति निर्णय करे। वह समिति की बैठकों की तिथि एवं समय नियत करता है। यदि समिति की बैठक के लिए नियत समय पर या ऐसी बैठक में किसी समय "गणपूर्ति" का अभाव हो, तो वह "गणपूर्ति" होने तक या तो उस बैठक को निलंबित कर सकता है या बैठक को किसी अन्य दिन के लिए स्थगित कर सकता/सकती है।

विधेयकों संबंधी प्रवर समिति के संबंध में नियम 74(3) में यह उपबंध किया गया है कि समिति की बैठकों के लिए नियत की गई लगातार दो तिथियों को "गणपूर्ति" के अभाव में प्रवर समिति की बैठक स्थगित किये जाने पर समिति अध्यक्ष को सभा को इस तथ्य की जानकारी देनी होती है। अब तक सिर्फ एक बार ही ऐसा अवसर आया है जबकि एक समिति के अध्यक्ष द्वारा एक वक्तव्य के रूप में इसकी जानकारी दी गई है। पोत परिवहन अभिकर्ता (अनुज्ञापन) विधेयक, 1987 संबंधी सभाओं की संयुक्त समिति के अध्यक्ष (श्री बी.ए. मासोदकर) ने "गणपूर्ति" के अभाव में समिति की बैठकों के स्थगन के बारे में एक वक्तव्य दिया था।[154]

समिति में उठने वाले प्रक्रिया संबंधी मामलों का निर्णय समिति अध्यक्ष द्वारा किया जाता है। संदेह की स्थिति में, वह उस मुद्दे को, यदि वह उचित समझे, सभापति के पास निर्णयार्थ भेज सकता है। समिति में विचार-विमर्श के दौरान यदि किसी विषय पर लिए गये मतों की संख्या बराबर होती है, तो समिति अध्यक्ष प्रथमत: मतदान नहीं करता है लेकिन उसके पास निर्णायक मत होता है।[155] समिति अध्यक्ष द्वारा समिति की बैठकों के कार्यवृत्तों का अनुमोदन किया जाता है और समिति की ओर से उसके द्वारा इसके प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर किये जाते हैं।[156] यदि समिति अध्यक्ष की राय में समिति के प्रतिवेदन के साथ संलग्न किये जाने वाले किसी सदस्य की असहमति संबंधी कार्यवृत्त में ऐसे शब्द, वाक्यांश या अभिव्यक्तियां हैं, जोकि असंसदीय, असंगत या अन्यथा अनुचित हों, तो वह असहमति संबंधी कार्यवृत्त से ऐसे शब्दों, आदि को निकाल दिये जाने का आदेश दे सकता है।[157] समिति का प्रतिवेदन सभा में समिति अध्यक्ष द्वारा या उसकी अनुपस्थिति में समिति के किसी सदस्य द्वारा उपस्थित किया जाता है।[158]

> नियम 91(2) में यह उपबंध किया गया है कि किसी विधेयक संबंधी प्रवर समिति के प्रतिवेदन को उपस्थित करते समय समिति अध्यक्ष यदि कोई टिप्पणी करता है तो वह अपने आपको तथ्य के संक्षिप्त कथन तक सीमित रखेगा। अनेक अवसरों पर समिति अध्यक्षों ने सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति के प्रतिवेदन को उपस्थित करते समय आश्वासनों के क्रियान्वयन में हुई प्रगति के बारे में बताया है।[159]

किसी संसदीय समिति (विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति या अन्य कोई तदर्थ समिति के अतिरिक्त) के अध्यक्ष को दिल्ली या नई दिल्ली में उसके आवास पर लगाये गये टेलीफोन से की गई स्थानीय कॉल के लिए किसी प्रकार के प्रभारों के भुगतान से छूट प्राप्त होती है। यह छूट एक सदस्य के रूप में टेलीफोन प्रभारों के संबंध में उसे प्राप्त छूट के अतिरिक्त है।[160] वह समिति से संबंधित कार्य का निष्पादन करते समय किसी संसद्-सदस्य को दी जाने वाली दर से यात्रा एवं दैनिक भत्तों का हकदार भी होता है।[161]

सदन का नेता

सदन का नेता एक महत्वपूर्ण संसदीय कृत्यकारी है जो, पीठासीन अधिकारियों, विपक्ष के नेता और सचेतकों की भांति, वाद-विवाद में सदस्यों की सहभागिता को प्रभावी और सार्थक बनाने में सहायक होता है। यह देखा जा सकता है कि इस पद का प्रादुर्भाव यूनाइटेड किंगडम में "हाउस ऑफ कॉमन्स" में प्रचलित प्रथा से हुआ जहां सरकार के उस सदस्य को जो सरकारी कार्य की व्यवस्था के लिए प्रधान मंत्री के प्रति उत्तरदायी होता है, सदन के नेता के रूप में जाना जाता है। यह कोई सांविधिक पद नहीं है और न सभा के नेता को "क्राउन" द्वारा औपचारिक रूप से नियुक्त किया जाता है। प्राय: वह किसी और पद के साथ-साथ यह पद धारण करता/करती है।[162]

सदन का नेता "कार्यवाही के सभी प्रमुख विषयों की प्रक्रिया के बारे में सुझाव देता है और काफी हद तक उसे निर्धारित करता है, सदस्यों के क्रियाकलापों का पर्यवेक्षण करता है और उनमें सामंजस्य बनाये रखता है, औपचारिक प्रक्रिया के मामले में पहल करता है तथा कठिनाई उत्पन्न होने पर सदन को सलाह देता है"।[163] सरकारी कार्य की व्यवस्था उसके नियंत्रण के अध्यधीन मुख्य सचेतक द्वारा की जाती है और सदन का नेता सामान्यत: प्रत्येक बृहस्पतिवार को प्रश्नों के पश्चात् सरकारी कार्य की घोषणा करता है।

सभा के नेता को अपने पांच उत्तरदायित्वों अर्थात् सरकार के प्रति, पीछे की बैंचों में बैठने वाले सरकार के समर्थकों के प्रति, विपक्ष के प्रति, समूची सभा के प्रति और प्रत्येक प्रभारी मंत्री के प्रति सजग रहना चाहिये।[164] उसे यथासंभव सदन के दोनों पक्षों के लिए सुलभ होना चाहिये। सरकारी सचेतकों के साथ उसका घनिष्ठ, सौहार्दपूर्ण और सहयोगपूर्ण संबंध होना चाहिये। उसे यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि ऐसे मामलों पर

वाद-विवाद करने हेतु जिनमें वास्तव में सदन की दिलचस्पी है, सदन को सभी उचित सुविधाएं उपलब्ध कराना सरकार का कर्त्तव्य है और उसे स्वयं को न केवल सरकार का एक सदस्य समझना चाहिये बल्कि समूचे सदन के अधिकारों का प्रधान संरक्षक भी समझना चाहिये।[165] वह समय-समय पर सदन की कार्यवाही के बारे में प्रक्रियात्मक प्रस्ताव उपस्थित करता है, औपचारिक अवसरों पर सभा की भावना व्यक्त करता है और सरकार को इस बारे में सिफारिश करता है कि गैर-सरकारी सदस्यों के प्रस्तावों और विधेयकों पर सरकार को क्या दृष्टिकोण अपनाना चाहिये। अत: उसे सामान्यत: सदन में या अपने कक्ष में उपस्थित रहना पड़ता है ताकि सरकारी कार्य के संचालन हेतु एक उत्तरदायित्वपूर्ण निर्णय लिया जा सके। साथ ही सदन का नेता एक प्रबंधक से बढ़कर भूमिका निभाता है। वह न केवल अपने दल का नेता और सरकार का नेता होता है बल्कि सदन का भी नेता होता है। कुछ मामलों में तो वह अध्यक्ष (स्पीकर) का स्थान ले लेता है। संक्षेप में जब सदन में एक सम्मिलित निकाय के रूप में कोई चर्चा होती है तो उसमें वह सदन की ओर से बोलता है। वह राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय महत्व की घटना के अवसर पर सदन की ओर से एक सक्रिय प्रतिनिधि होता है।[166]

1968 में पीठासीन अधिकारियों द्वारा नियुक्त पागे समिति ने सदन के नेता के कर्त्तव्यों और कृत्यों के बारे में निम्नलिखित टिप्पणियां की थीं:

> उसे अधिकांश समय और प्रश्नों के समय के दौरान तथा इसके पश्चात् सदन की सामान्य कार्यवाही आरंभ होने पर सदन में उपस्थित रहना चाहिय। कार्यवाही के संचालन में अध्यक्ष की सहायता करना उसका सर्वोपरि कर्त्तव्य है। चर्चा में हस्तक्षेप करने, वाद-विवाद के लिये अवसर प्रदान किए जाने, चर्चा के लिए समय और तारीख नियत किए जाने के मामले में विपक्ष की मांगों का उत्तर देने, सदस्यों के उच्छृंखल व्यवहार को नियंत्रित करने और सदन के समक्ष आए हुए मामलों के संबंध में किन्हीं निर्णयों पर पहुंचने में अध्यक्ष की सहायता करने के लिए उसे हर समय तैयार रहना चाहिये। यदि सदन का नेता अपरिहार्य रूप से अनुपस्थित हो या अन्यथा व्यस्त हो तो उसे एक उपनेता नामनिर्देशित करना चाहिये जिसे सदन के नेता की अनुपस्थिति में उस समय उपर्युक्त कृत्यों का पालन करना चाहिये। इस तरह या तो नेता को या उपनेता को सदन में उपस्थित रहना चाहिये।[167]

राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 2(1) में दी गई परिभाषा के अनुसार सदन के नेता का तात्पर्य प्रधान मंत्री से है। यदि वह सदन का सदस्य हो या उस मंत्री से है जो सदन का सदस्य हो और सदन के नेता के रूप में कार्य करने के लिए प्रधान मंत्री द्वारा नामनिर्देशित किया गया हो। यद्यपि उक्त परिभाषा को 1981 में नियम पुस्तिका में 24 दिसंबर, 1981 को सदन में स्वीकृत संशोधन द्वारा सम्मिलित किया गया था तथापि राज्य सभा में सदन के नेता का पद, 1952 में राज्य सभा के प्रारंभ होने से ही विद्यमान है। सदन के नेता का उल्लेख सबसे पहले 21 मई, 1952 की राज्य सभा की कार्यवाही में पाया जाता है जब सदन के नेता (श्री एन. गोपालस्वामी अय्यंगर) ने वित्त आयोग के पहले प्रतिवेदन और उस पर की गई कार्यवाही संबंधी ज्ञापन की एक प्रति सदन के पटल पर रखी थी।[168] लगभग एक वर्ष पश्चात् पुन: सदन के नेता (श्री सी.सी. बिस्वास) ने रेल मंत्री, जिन्हें लोक सभा में भाषण देना था, की ओर से रेलवे की अनुमानित प्राप्तियों और व्यय का एक विवरण (रेल बजट) (रेल मंत्री के अभिभाषण के बिना) सदन के पटल पर रखा था।[169]

> सदन के नेता को, 24 नवम्बर, 1952 को सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति दी गई थी।[170] कुछ दिन पश्चात् एक सदस्य ने उल्लेख किया था कि सदन के नेता सदन में कदाचित् ही उपस्थित रहे हैं और सदन को इस मामले पर गंभीरता से विचार करना चाहिये।[171] दो दिन के पश्चात् पुन: सदन के नेता (कार्यकारी नेता श्री सी.सी. बिस्वास) की अनुपस्थिति का मामला सदन में उठाया गया था। यह बताया

गया था कि उस सत्र के दौरान सदन में नेता की उपस्थिति दो घंटे से अधिक की नहीं रही है। संबंधित सदस्य ने यह सुझाव दिया था कि यदि नेता के रूप में कार्य करने वाले सदस्य सदन में उपस्थित होने में समर्थ नहीं हैं तो इसके लिए किसी और सदस्य को नियुक्त किया जाना चाहिये।[172] [11 फरवरी, 1953 को प्रधान मंत्री ने श्री अय्यंगर के निधन का उल्लेख किया था।]

परिपाटी के अनुसार, यदि शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने वाले सदस्यों में से एक सदस्य सदन का नेता हो तो शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के लिए उसे सबसे पहले बुलाया जाता है।

श्री एन. गोपालस्वामी अय्यंगर, श्री बिस्वास, श्री जयसुखलाल हाथी और श्री प्रणब मुखर्जी जोकि सदन के नेता थे, को शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के लिए सबसे पहले बुलाया गया था। श्री मुखर्जी के मामले में, श्री मुखर्जी द्वारा शपथ लिए जाने के तत्काल पश्चात् सभापति ने प्रधान मंत्री द्वारा सदन के नेता के रूप में उनका नामनिर्देशन किए जाने की घोषणा की थी।[173]

24 मई, 1996 को सभापति ने श्री सिकंदर बख्त की सभा के नेता के रूप में नियुक्ति के बारे में घोषणा की। उन्होंने यह भी घोषणा की कि उन्होंने श्री एस.बी. चव्हाण को राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दे दी है। इसके बाद उन्होंने श्री सिकंदर बख्त को शपथ लेने और उस पर हस्ताक्षर करने के लिए बुलाया। उनके बाद श्री एस.बी. चव्हाण को ऐसा करने के लिए बुलाया गया। इसके बाद उस दिन बाकी सदस्यों ने शपथ ली और उस पर हस्ताक्षर किए।[174]

23 मार्च, 1998 को सभापति ने घोषणा की कि उन्होंने डा. मनमोहन सिंह को राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दे दी है और 5 जुलाई, 2004 को सभापति ने यह घोषणा की कि उन्होंने श्री जसवन्त सिंह को राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दे दी है और तदनुसार उन्हें पहले शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के लिए बुलाया गया। उनके बाद उस दिन बाकी सदस्यों ने शपथ ली/प्रतिज्ञान किया और उस पर हस्ताक्षर किए।[175]

सदन का नेता, सदन में सभापीठ के दाईं ओर सबसे पहले स्थान पर बैठता है। वह पीठासीन अधिकारी के परामर्श के लिए उपलब्ध रहता है। नियमों के अधीन, सभापति सदन में सरकारी कार्य की व्यवस्था के संबंध में,[176] राष्ट्रपति के अभिभाषण,[177] शुक्रवार से भिन्न किसी अन्य दिन गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य[178] अनियत दिन वाले प्रस्तावों[179] पर चर्चा, अल्पकालिक चर्चाओं[180] तथा किसी धन विधेयक[181] पर विचार और उसे लौटाये जाने के लिये दिनों के आवंटन अथवा समय के आवंटन के बारे में सदन के नेता से परामर्श करता है। किसी असाधारण व्यक्ति, राष्ट्रीय नेता या अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के निधन के मामले में सदन को पूरे दिन के लिए स्थगित किए जाने या न किए जाने के बारे में सभापति उससे परामर्श करता है।[182]

सदन के नेता ने सुझाव दिया था कि सदन (जोकि श्री वी.वी. गिरि के निधन के कारण पहले दिन स्थगित कर दिया गया था) को उस दिन (अगले दिन) जब स्वर्गीय श्री गिरि का दाह संस्कार किया जाना था, स्थगित कर दिया जाये। सदन इसके लिए सहमत हो गया था।[183]

अनेक अवसरों पर महत्वपूर्ण व्यक्तियों के निधन पर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सदन के नेता ने पहल की है; उदाहरण के लिए डा. राजेन्द्र प्रसाद, श्री गोविन्द बल्लभ पंत, श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री लाल बहादुर शास्त्री, डा. ज़ाकिर हुसैन, डा. फ़खरुद्दीन अली अहमद, श्री जगजीवन राम और चौधरी चरण सिंह के निधन पर ऐसी पहल की गई थी।[184]

श्री जवाहरलाल नेहरू, डा. ज़ाकिर हुसैन और डा. फ़खरुद्दीन अली अहमद के निधन पर तो सदन के नेता ने शोक संकल्प भी उपस्थित किए थे।[185]

एक सदस्य द्वारा यह सुझाव दिए जाने पर कि लोक सभा और राज्य सभा के एक भूतपूर्व सदस्य के निधन पर सदन स्थगित कर दिया जाना चाहिये जैसाकि लोक सभा में किया गया है, सदन के नेता ने श्रद्धांजलि अर्पित करने के विषय में सदन की प्रथा का उल्लेख किया था। सभा स्थगित नहीं की गई थी।[186]

परिपाटी के अनुसार, सदन के नेता से सामान्यत: उस समय परामर्श किया जाता है जब किसी सदस्य को सदन की सेवा से निलम्बित किए जाने का प्रस्ताव उपस्थित किया जाये। ऐसे भी उदाहरण हैं जब सदन के नेता ने स्वयं ऐसे प्रस्ताव उपस्थित किए हैं।[187]

सदन का नेता, सदन और उसके सदस्यों के विशेषाधिकार के विषय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 1964 से पूर्व यथा विद्यमान प्रक्रिया विषयक नियमों के नियम 167 के अधीन, सदन द्वारा विशेषाधिकार का मामला उठाये जाने की अनुमति दिए जाने के पश्चात् सदन के नेता द्वारा इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित किए जाने पर, उक्त मामला विशेषाधिकार समिति को सौंपा जा सकता है। 1964 में नियमों में संशोधन कर दिया गया ताकि सदन के नेता की अनुपस्थिति में कोई और सदस्य भी ऐसा प्रस्ताव उपस्थिति कर सके।[188] उदाहरण के लिए, विशेषाधिकार के मामले विशेषाधिकार समिति को सौंपने के लिए सदन के नेता ने 9 सितम्बर, 1966, 5 जून, 1967 और 7 सितम्बर, 1970 को ऐसे प्रस्ताव उपस्थित किए थे।[189] दर्शक दीर्घा से सदन में इश्तहार फैंकने वाले[190] या वहां से नारे लगाने वाले[191] या वहां से सदन में चप्पल फैंकने वाले[192] व्यक्तियों द्वारा सदन की अवमानना किए जाने पर सदन के नेता ने इस आशय के प्रस्ताव भी उपस्थित किए हैं।

संविधान के अनुच्छेद 101(4) के अधीन ऐसे सदस्य का स्थान जो सदन की अनुमति के बिना निरंतर साठ दिनों या इससे अधिक दिनों तक अनुपस्थित रहा है, सदन के नेता द्वारा प्रस्ताव उपस्थित किए जाने पर रिक्त घोषित कर दिया जाता है। तथापि, वह इस निमित्त अपने कृत्यों को सभा के किसी सदस्य को प्रत्यायोजित कर सकता है।[193]

> श्री बरजिन्दर सिंह हमदर्द, जिन्होंने साठ दिनों से अधिक की अवधि के लिए सभा की सभी बैठकों से स्वयं को अनुपस्थित रखा, के स्थान को भारत के संविधान के अनुच्छेद 101 के खंड (4) के अनुसार 21 दिसंबर, 2000 को रिक्त घोषित कर दिया गया। श्री हमदर्द के मामले में, सदन के नेता ने तत्कालीन संसदीय कार्य मंत्री श्री प्रमोद महाजन को अपने कृत्यों को प्रत्यायोजित कर दिया था।[194]

सदन के नेता 1981 से सदैव कार्य मंत्रणा समिति का सदस्य रहा था। तथापि, वर्ष 1966 के बाद से, सदन का नेता कार्य मंत्रणा समिति का सदस्य नहीं रहता है बल्कि उसे विशेष आमंत्रिती के रूप में समिति की बैठकों में आमंत्रित किया जाता है। यद्यपि वर्तमान प्रथा यह है कि अगले सप्ताह के लिए सरकारी कार्य की घोषणा संसदीय कार्य मंत्रालय के किसी मंत्री द्वारा की जाती है तथापि राज्य सभा में छठे दशक के आरंभ में ऐसे बहुत-से उदाहरण रहे हैं जब सरकारी कार्य की घोषणा या तो स्वयं सदन के नेता द्वारा की गई थी या स्पष्ट रूप से सदन के नेता की ओर से संसदीय कार्य मंत्री द्वारा की गई थी।[195] सदन के नेता को सामान्य प्रयोजन समिति के लिए, उसके एक सदस्य के रूप में भी नामनिर्देशित किया जाता है।

सदन का नेता सदन के कार्य से संबंधित प्रक्रियात्मक मामलों को निपटाता है और कोई कठिनाई उत्पन्न होने पर सदन को सलाह देता है।

> सदन के नेता (श्री एन. गोपालस्वामी अय्यंगर) ने राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव से संबंधित संशोधन की परिधि को स्पष्ट करने के लिए हस्तक्षेप किया था।[196]

> राज्य सभा से निवृत्त होने पर सदन के सदस्य न रहने के पश्चात् भी तीन मंत्रियों को मंत्री बनाये रखने के संबंध में लंबी चर्चा हुई थी। चर्चा के दौरान, कुछ सदस्यों ने इस विषय में अन्तर्ग्रस्त राजनीतिक नैतिकता के बारे में एक मुद्दा उठाया था। सदन के नेता ने आश्वासन दिया था कि वह सदस्यों की भावनाओं और विचारों को प्रधान मंत्री तक पहुंचा देंगे।[197]

विपक्ष के नेता को, जिसे पहली बार मान्यता प्रदान की गई थी, सुविधाएं दिए जाने के संबंध में राज्य सभा में पूरे दिन चर्चा चलती रही। सदन के नेता ने सदस्यों के विचारों को सरकार तक पहुंचाने और शीघ्र निर्णय लेने का वचन दिया था।[198]

जब कुछ सदस्यों ने प्रश्नों के समय को निलम्बित किए जाने का प्रस्ताव उपस्थित करने का प्रयत्न किया था तब सदन के नेता (श्री एस.बी. चव्हाण) ने सदस्यों से अनुरोध किया था कि वे अयोध्या मसले पर पिछले दिन की चर्चा को ध्यान में रखते हुए इसके लिए जोर न दें।[199]

जब एच.एस.डी. सौदे से संबंधित संगत फाइलों को उपलब्ध न कराकर लोक उपक्रम समिति के कार्य में बाधा डाले जाने के आधार पर सरकार के विरुद्ध विशेषाधिकार का मामला लाया गया था और सभापति ने सुझाव दिया था कि समिति में राज्य सभा की सदस्यता के संबंध में विद्यमान विसंगतियों को दूर करने के लिए नियम बनाया जाये तब सदन के नेता ने कहा था कि इस संबंध में एक परस्पर स्वीकार्य संतोषजनक समाधान का पता लगाया जा सकता है। इससे यह मामला शांत हो गया था।[200]

जब सदस्यों ने विशेष उल्लेख के मामलों के उत्तर विलम्ब से मिलने के बारे में शिकायत की थी तब सदन के नेता ने उन्हें यथाशीघ्र उत्तर दिलवाने में अपने सहयोग के बारे में आश्वासन दिया था।[201]

जब सदस्यों ने यह मांग की थी कि राज्य सभा में भी सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति होनी चाहिये तब सदन के नेता ने इस सुझाव पर अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त की थी।[202]

जब भी सामान्यत: राज्य सभा की समितियों का वार्षिक पुनर्गठन किया जाता है तब सदन का नेता राज्य सभा में दलों/गुटों के बीच समिति की सदस्यता/अध्यक्षता के आवंटन के बारे में निर्णय लेने के लिए अनेक नेताओं की औपचारिक बैठक बुलाकर, इस बारे में पहल करता है। इससे विभिन्न समितियों के लिए सदस्यों के नामनिर्देशन/अध्यक्षों की नियुक्ति का निर्णय लेने के मामले में सभापति का कार्य आसान हो जाता है।

सदन का नेता अपने दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों में अपने दल के नेता या सरकार के उस संबंधित मंत्री, जिसके साथ सदन के नेता का पद जुड़ा हुआ है, के रूप में कार्य करता है।

1952 से 1959 के वर्षों में सदन के नेता ने धन्यवाद के प्रस्तावों से संबंधित वाद-विवादों के उत्तर दिए थे। 1961 में विधि मंत्री और 1964 में गृह मंत्री ने सदन के नेता की ओर से, जो अस्वस्थ थे, उत्तर दिया था।

1979 और 1991 में सदन के नेता (क्रमश: श्री के.सी. पंत और श्री यशवन्त सिन्हा) ने सरकार के त्याग-पत्र के बारे में सदन को सूचित किया था और सभापीठ से सदन को क्रमश: अनिश्चित दिन तक और उस दिन के लिए स्थगित किये जाने का अनुरोध किया था।[203]

15 अप्रैल, 1999 को उद्योग मंत्री और सदन के नेता श्री सिकंदर बख्त ने एक सुझाव दिया कि 15, 16 और 17 अप्रैल, 1999 को लोक सभा में विश्वास प्रस्ताव पर हो रही चर्चा के दृष्टिगत, सभा को सोमवार, 19 अप्रैल, 1999 तक स्थगित किया जा सकता है और विपक्ष के नेता डा. मनमोहन सिंह इस प्रस्ताव से सहमत हो गए थे। सभापति ने, सभा की राय जानने के बाद, सभा को सोमवार, 19 अप्रैल, 1999 तक के लिए स्थगित कर दिया।[204]

अवसर की मांग के अनुसार सदन का नेता, समूचे सदन के प्रवक्ता और प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। उसकी इस भूमिका के अवसर मुख्यत: तब आते हैं जब समूचा सदन किसी विषय पर या लोक सभा के संबंध में अपनी स्थिति को परिभाषित करने या किसी घटना या अवसर आदि पर विचार अथवा भावना व्यक्ति करने की इच्छा प्रकट करे।

बजट पर सबसे पहले राज्य सभा में चर्चा किए जाने के संबंध में लोक सभा में आपत्ति की गई थी। राज्य सभा में इस विषय पर चर्चा के दौरान सदन के नेता (श्री एम.सी. छागला) ने स्थिति स्पष्ट की थी और

यह कहते हुए कि संविधान के अधीन राज्य सभा को बजट पर चर्चा करने का उतना ही अधिकार है जितना कि लोक सभा को है, उन्होंने सदन से अपील की थी कि सदन लोक सभा के साथ मतभेद या टकराव से बचने का प्रयत्न करे।[205]

इसी तरह, राज्य सभा के बजट प्राक्कलनों की संवीक्षा के प्रस्ताव पर सदन के नेता (श्री एम.सी. छागला) ने उन सिद्धांतों को स्पष्ट किया था जिन्हें इस निमित्त विद्यमान प्रक्रिया में कोई परिवर्तन किए जाने पर, ध्यान में रखा जाना चाहिये। उन्होंने इस मामले में राज्य सभा की इच्छा को लोक सभा अध्यक्ष तक पहुंचाने की पेशकश की थी।[206]

सदन के नेता ने निम्नलिखित संकल्प उपस्थित किए थे:

(1) कोलम्बो में हुए हमले में प्रधान मंत्री की सुरक्षा के बारे में राहत की भावना व्यक्त करने वाला;[207]

(2) असम में हुई हत्याओं की निन्दा करने वाला;[208]

(3) बाबरी मस्जिद गिराये जाने और उसे अपवित्र किए जाने की निन्दा करने वाला;[209]

(4) तालिबान शासन द्वारा बामियान (अफगानिस्तान) में बुद्ध की प्रतिमाओं और बौद्ध-स्थलों को नष्ट करने से संबंधित;[210]

(5) कथित तौर पर वी.एच.पी. और बजरंग दल के व्यक्तियों की उत्तेजित भीड़ द्वारा उड़ीसा के राज्य विधान-मंडल की सम्पदा और परिसर पर धावा बोलने से संबंधित;[211]

इस तरह सदन का नेता सदन के भीतर व्यापक भूमिका निभाता है। अत: सदन स्वभावत: उसके प्रति श्रद्धा और स्नेह रखता है और सर्वसम्मति से सदैव उसकी गरिमा को बनाये रखता है।

उदाहरण के लिए, 1952 में सदन के तत्कालीन नेता श्री एन. गोपालस्वामी अय्यंगर ने अनुपस्थित रहने की अनुमति मांगी थी क्योंकि वह अस्वस्थ थे। जहां एक सदस्य का यह विचार था कि उन्हें सदन की अनुमति की आवश्यकता नहीं, वहीं एक और सदस्य ने "सदन के नेता के शीघ्र स्वस्थ्य होने की" शुभकामनाएं व्यक्त की थीं।[212]

बाद में सदन के नेता श्री गोविन्द बल्लभ पंत के मामले में सभापति ने प्रश्नों के समय के पश्चात् यह कहा था: "श्री पंत, आपकी हाल की बीमारी के पश्चात् आपको सदन के नेता के रूप में पुन: अपने स्थान पर देखकर मैं अपनी प्रसन्नता व्यक्त करना चाहूंगा। मैं आशा करता हूं कि आप स्वयं पर अधिक दबाव नहीं डालेंगे।" इस पर सदन के नेता ने सभापति को धन्यवाद दिया था।[213]

जब प्रसिद्ध आयकर (संशोधन) विधेयक के मामले में, सदन के नेता (श्री सी.सी. बिस्वास) को लोक सभा में उपस्थित होने के लिए बुलाया गया था तब राज्य सभा में सदन के नेता को यह निदेश देते हुए एक संकल्प पारित किया गया था कि वह किसी भी हैसियत से लोक सभा में स्वयं उपस्थित न हों।[214]

एक बार, एक सदस्य ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के लिए निर्वाचन के प्रस्ताव पर एक संशोधन उपस्थित किया था ताकि इस प्रयोजनार्थ राज्य सभा की एक पृथक् समिति का गठन किया जा सके और उस सदस्य ने यह कहा था कि यह संशोधन सरकार द्वारा इस निमित्त दिये गये आश्वासन के अनुरूप है। सदन के नेता ने इस बात से इन्कार किया था कि ऐसा कोई आश्वासन दिया गया है। इस पर सभापति ने यह टिप्पणी की थी: "सदन के नेता ने अभी-अभी कहा है कि सरकार की ओर से ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया गया है और आपको इसे सही समझना चाहिए।"[215]

राज्य सभा में 1952 से निम्नलिखित व्यक्ति सदन के नेता रहे हैं:

	नाम	अवधि
1.	श्री एन. गोपालस्वमी अय्यंगर	मई, 1952 से फरवरी, 1953
2.	श्री चारू चन्द्र बिस्वास	फरवरी, 1953 से नवम्बर, 1954
3.	श्री लाल बहादुर शास्त्री	नवम्बर, 1954 से मार्च, 1955
4.	श्री गोविन्द बल्लभ पंत	मार्च, 1955 से फरवरी, 1961
5.	हाफिज़ मोहम्मद इब्राहिम	फरवरी, 1961 से अगस्त, 1963
6.	श्री वाई. बी. चव्हाण	अगस्त से दिसम्बर, 1963
7.	श्री जयसुखलाल हाथी	फरवरी से मार्च, 1964
8.	श्री मोहम्मद अली करीम छागला	मार्च, 1964 से नवम्बर, 1967
9.	श्री जयसुखलाल हाथी	नवम्बर, 1967 से नवम्बर, 1969
10.	श्री कोदारदास कालीदास शाह	नवम्बर, 1969 से मई, 1971
11.	श्री उमा शंकर दीक्षित	मई, 1971 से दिसम्बर, 1975
12.	श्री कमलापति त्रिपाठी	दिसम्बर, 1975 से मार्च, 1977
13.	श्री लाल कृष्ण आडवाणी	मार्च, 1977 से अगस्त, 1979
14.	श्री के.सी. पंत	अगस्त, 1979 से जनवरी, 1980
15.	श्री प्रणब मुखर्जी	जनवरी, 1980 से जुलाई, 1981 और अगस्त, 1981 से दिसम्बर, 1984
16.	श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह	दिसम्बर, 1984 से अप्रैल, 1987
17.	श्री नारायण दत्त तिवारी	अप्रैल, 1987 से जून, 1988
18.	श्री पी. शिवशंकर	जुलाई, 1988 से दिसम्बर, 1989
19.	श्री एम.एस. गुरुपदस्वामी	दिसम्बर, 1989 से नवम्बर, 1990
20.	श्री यशवन्त सिन्हा	दिसम्बर, 1990 से जून, 1991
21.	श्री एस.बी. चव्हाण	जुलाई, 1991 से अप्रैल,1996
22.	श्री सिकंदर बख्त	20 मई, 1996 से 31 मई, 1996
23.	श्री इन्द्र कुमार गुजराल	जून, 1996 से नवम्बर, 1996
24.	श्री एच.डी. देवेगौडा	नवम्बर, 1996 से अप्रैल, 1997

	नाम	अवधि
25.	श्री इन्द्र कुमार गुजराल	अप्रैल, 1997 से मार्च, 1998
26.	श्री सिकंदर बख्त	मार्च, 1998 से अक्तूबर, 1999
27.	श्री जसवंत सिंह	अक्तूबर, 1999 से मई, 2004
28.	डा. मनमोहन सिंह	जून, 2004 से मई, 2014
29.	श्री अरुण जेटली	जून, 2014 से अभी तक

विपक्ष का नेता

सदन के नेता की भांति विपक्ष के नेता का पद भी इंग्लैंड में परम्परा से आरम्भ हुआ है और इसके विधान या सदन के नियमों के अनुसार कोई पदीय कृत्य नहीं होते हैं।[216] तथापि, विपक्ष के नेता का कार्य सदन के नेता के कार्य की तरह उतना कठिन नहीं होता है लेकिन फिर भी यह पर्याप्त लोक महत्व का होता है। वस्तुत: यह इतना महत्वपूर्ण होता है कि उसे इंग्लैंड और भारत दोनों में ही संचित निधि से वेतन, आदि का भुगतान किया जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि विपक्ष लोकतांत्रिक सरकार का एक आवश्यक अंग होता है।[217] विपक्ष से प्रभावी आलोचना की अपेक्षा की जाती है।[218] अत: यह ठीक ही कहा गया है कि विपक्ष संसद् का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग होता है। सरकार शासन करती है और विपक्ष आलोचना करता है।[219] इस तरह से दोनों के अपने-अपने कार्य और अधिकार हैं।

विपक्ष का कार्य सरकार और मंत्रियों की आलोचना करना है। विरोध करना इसका दायित्व है। यह दायित्व ही भ्रष्टाचार और दोषपूर्ण प्रशासन पर मुख्य नियंत्रण होता है। यह वैयक्तिक अन्याय को रोकने का भी एक तरीका है। यह दायित्व सरकार से कम महत्व का नहीं है।[220] वस्तुत: विपक्ष और सरकार समझौते से परस्पर कार्य करते हैं। अल्पसंख्यक इससे सहमति व्यक्त करते हैं कि बहुसंख्यक शासन करें और बहुसंख्यक इस पर सहमत हैं कि अल्पसंख्यकों को आलोचना करनी चाहिए।[221] विपक्ष को इस प्रकार का व्यवधान डालने का कोई अधिकार नहीं है जिससे संसद् में कोई कार्य सम्पन्न न हो सके।[222] यदि कोई सरकार विपक्ष के अधिकारों में कमी करती है, तो ऐसा करना संसदीय भावना पर दलीय भावना की जीत का सुस्पष्ट प्रमाण होगा।[223] सरकार द्वारा विपक्ष के अधिकारों के प्रति निर्बाध सम्मान प्रदर्शित करना उसकी दृढ़ संसदीय निष्ठा का प्रथम दृष्टया प्रमाण होता है।[224] परस्पर सहिष्णुता के अभाव में संसदीय सरकार की प्रक्रिया भंग हो जायेगी।[225]

संसदीय लोकतंत्र में विपक्ष के महत्व को देखते हुए विपक्ष के नेता का पद वास्तव में उत्तरदायित्व का पद है। वह अन्य बातों के साथ-साथ अल्पसंख्यकों के अधिकारों के अतिक्रमण पर नज़र रखता है, सरकार द्वारा संसदीय आलोचना के बिना ही कार्य सम्पन्न करने का प्रयास करने पर बहस कराने की मांग करता है। उसे प्राय: अपने स्थान पर होना चाहिए और एक कुशल सांसद के सभी तौर-तरीके आने चाहिए और सदन के नियमों के अन्तर्गत सुलभ सभी अवसरों की जानकारी होनी चाहिए।[226]

राज्य सभा में 1969 तक सही और मान्य अर्थों में विपक्ष का कोई नेता नहीं था, क्योंकि किसी भी दल के सदस्यों की अपेक्षित संख्या सदन की कुल सदस्य-संख्या के दसवें भाग अर्थात्, पच्चीस

सदस्य जोकि सदन की "गणपूर्ति" के लिए भी अपेक्षित संख्या है, नहीं थी। तब तक सदस्यों की संख्या की दृष्टि से सबसे बड़े विरोधी दल के नेता को उसे बिना कोई औपचारिक मान्यता, पद या विशेषाधिकार प्रदान किये विपक्ष के नेता के रूप में पुकारे जाने की परिपाटी थी। 18 दिसम्बर, 1969 को कांग्रेस (ओ) को, जिसके दो सौ चालीस सदस्यों वाले सदन में उनतालीस सदस्य थे, विरोधी दल के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी और उसके नेता, श्री श्याम नन्दन मिश्र को राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी। इसके तत्काल बाद उन्हें सभापति, प्रधान मंत्री और राज्य सभा में दलों/समूहों के अन्य नेताओं द्वारा बधाइयां दी गई थीं।[227] उन्हें सभापीठ के बाईं ओर उपसभापति के स्थान के निकट पहली पंक्ति में स्थान आवंटित किया गया था।

> भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में विभाजन के पश्चात् विरोधी दल समूह में सबसे बड़े दल के नेता (श्री श्याम नन्दन मिश्र) ने 16 नवम्बर, 1969 को सभापति से यह अनुरोध किया कि राज्य सभा में उनके समूह के सदस्यों को पृथक स्थान आवंटित किये जाने चाहिए। वह उपसभापति के स्थान पर बैठ गये जोकि उपसभापति द्वारा त्याग-पत्र दे दिये जाने के कारण रिक्त था। श्री मिश्र के उक्त स्थान पर बैठ जाने पर कुछ सदस्यों ने आपत्ति की। सभापति ने यह व्यवस्था दी कि स्थान आवंटित किए जाने तक नये समूह के नेता और उसके सदस्य अपने-अपने स्थानों से बोलें, क्योंकि पुन: आवंटन में समय लगेगा। उस दिन सभा मध्याह्न पश्चात् 12 बजकर 54 मिनट पर मध्याह्न पश्चात् 2 बजे तक के लिए स्थगित कर दी गई थी। सभा के पुन: समवेत होने पर उपसभाध्यक्ष ने यह घोषणा की कि सभापति इस मामले पर विचार कर रहे हैं और उन्होंने सभा को एक घंटे के लिए स्थगित कर दिया। सभा के पुन: समवेत होने पर सभापति ने घोषणा की कि नेताओं और अन्य सदस्यों को स्थानों का पुन: आवंटन कर दिया गया है और वह व्यवस्था कल से प्रभावी होगी। तत्पश्चात् विपक्ष के नेता ने नये स्थान से अपना भाषण दिया।[228]

मान्यता प्रदान किये जाने के पश्चात् यह मांग की गई कि विपक्ष के नेता की प्रसुविधाओं और विशेषाधिकारों आदि का निर्धारण किया जाना चाहिए। सरकार की ओर से यह आश्वासन दिया गया कि इन पर पहले से ही विचार किया जा रहा है और उन्हें अन्तिम रूप दिया जायेगा और शीघ्र ही घोषणा की जायेगी। 14 मई, 1970 को सभा में पूरे दिन इस मुद्दे पर विचार-विमर्श होता रहा और इस मामले में सरकार के निर्णय के बारे में जानकारी मांगी गई। सदन के नेता ने सिर्फ इतना ही आश्वासन दिया कि वह सरकार को सदस्यों के विचारों से अवगत करा देंगे और इस बारे में शीघ्रतापूर्वक निर्णय लेने के लिए आग्रह करेंगे। श्री श्याम नन्दन मिश्र मार्च, 1971 तक विपक्ष के नेता के पद पर बने रहे और उसके बाद लोक सभा के लिए चुन लिये जाने पर राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे। उनके बाद श्री एम.एस. गुरूपदस्वामी विपक्ष के नेता बने। हालांकि सभा में इस आशय की कोई औपचारिक घोषणा नहीं की गई थी, लेकिन सभा की कार्यवाही में उनका इसी प्रकार से उल्लेख किया गया था।[229] वह अप्रैल, 1972 तक इस पद पर बने रहे। तत्पश्चात्, मार्च, 1977 तक राज्य सभा में किसी भी विरोधी दल के सदस्यों की संख्या मान्यता प्रदान किये जाने के लिए पर्याप्त नहीं थी और उक्त अवधि के दौरान विपक्ष का कोई मान्यता प्राप्त नेता नहीं था।

संसद् में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, 1977 द्वारा विपक्ष के नेता पद को सांविधिक मान्यता और दर्जा प्राप्त किया गया है। उक्त अधिनियम में विरोधी दल के नेता को संसद् के किसी सदन, "राज्य सभा या लोक सभा, यथास्थिति, के एक ऐसे सदस्य के रूप में परिभाषित किया गया है जोकि उस समय उस सदन में सबसे अधिक सदस्य-संख्या वाले विरोधी दल का नेता हो और जिसे राज्य सभा के सभापति या लोकसभाध्यक्ष, यथास्थिति, द्वारा उसे उस रूप में मान्यता प्रदान

की गई हो।"[230] इस प्रकार से विपक्ष के नेता को तीन शर्तें पूरी करनी होती हैं, अर्थात् वह सदन का सदस्य होना चाहिए, राज्य सभा में सर्वाधिक सदस्य-संख्या वाले विरोधी दल का नेता होना चाहिए और उसे सभापति द्वारा इस प्रकार की मान्यता प्राप्त होनी चाहिए। यह भी स्पष्ट कर दिया जाता है कि समान सदस्य-संख्या वाले दो या उससे अधिक विरोधी दलों के होने पर सभापति उन दलों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए ऐसे दलों के किसी भी नेता को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान करता है और इस प्रकार की मान्यता अंतिम और निश्चायक होती है।[231] किसी नेता को मान्यता प्रदान किये जाने या उसके नेता न रहने के उपरान्त राजपत्र में अधिसूचना जारी की जाती है। यह इस तथ्य का निश्चायक प्रमाण होता है कि सम्बद्ध सदस्य राजपत्र में निर्दिष्ट तिथि से विपक्ष का नेता बन गया है अथवा नहीं रहा है।[232] विपक्ष का नेता सभापीठ के बायीं ओर उपसभापति की सीट के बाद सीट सं. 228 ग्रहण करते हैं।

इस अधिनियम के अन्तर्गत विपक्ष के नेता को पचास हजार रुपए प्रतिमाह वेतन, दो हजार रुपए दैनिक भत्ता, अपने सम्पूर्ण कार्यकाल के दौरान प्रतिदिन, पैंतालीस हजार रुपए प्रतिमाह निर्वाचन-क्षेत्र भत्ता और दो हजार रुपए प्रतिमाह सत्कार भत्ता, की गई यात्राओं के लिए यात्रा-भत्ता, नि:शुल्क सुसज्जित आवास और टेलीफोन, सचिवीय और चिकित्सा सुविधाएं प्राप्त होती हैं। विपक्ष का नेता, यदि सचिवालय द्वारा चालक सहित वाहन सुविधा नहीं दी गई हो, तो तीन हजार रुपए प्रतिमाह वाहन भत्ता पाने का भी हकदार है। इन पर व्यय होने वाली राशि राज्य सभा सचिवालय के बजटीय अनुदानों से प्रदान की जा रही है।

ऊपर उल्लिखित उपबंध के अधिनियमन के पश्चात् अनेक अवसरों पर राज्य सभा में विपक्ष के नेता को मान्यता प्रदान करने या उसकी मान्यता वापस लेने के लिए उक्त उपबंध को प्रयुक्त किया गया है।

> 29 मार्च, 1977 को राज्य सभा के तत्कालीन मुख्य सचेतक, श्री ओम मेहता ने यह सूचित किया कि कांग्रेस दल द्वारा श्री कमलापति त्रिपाठी को राज्य सभा में विपक्ष का नेता निर्वाचित किया गया है। उस दल के सदस्यों की संख्या के आधार पर सभापति ने उन्हें विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की और 30 मार्च, 1977 को सभा में इस आशय की घोषणा की गई थी।[233]
>
> 10 जनवरी, 1978 को कांग्रेस दल के मुख्य सचेतक, श्री बिपिन पाल दास ने यह सूचित किया कि श्री कमलापति त्रिपाठी (दल में विभाजन के परिणामस्वरूप) उस दल के नेता नहीं रहे हैं। इस संदर्भ में यह प्रश्न उठा कि क्या सभापति को विपक्ष के नेता के रूप में किसी सदस्य की मान्यता को समाप्त करने की शक्ति प्राप्त है और यदि हां, तो किस तिथि से। अत: इस मामले को परामर्श हेतु विधि मंत्रालय के पास भेजा गया था। मंत्रालय ने निम्नलिखित परामर्श दिया था:
>
>> हालांकि इस अधिनियम की धारा 2 में सर्वाधिक सदस्यों वाले विरोधी दल के नेता के रूप में किसी सदस्य को मान्यता प्रदान किये जाने का ही उल्लेख किया गया है, तथापि, मान्यता समाप्त करने की शक्ति इसमें अन्तर्निहित है और यह मान्यता प्रदान करने की शक्ति में ही सन्निहित है। इस समय विचाराधीन मामले के अतिरिक्त ऐसे अविवादास्पद अवसर भी उत्पन्न हो सकते हैं जैसे किसी व्यक्ति का राज्य सभा का सदस्य न रह पाना, मृत्यु हो जाना या दल के नेता के पद से त्याग-पत्र दे देना... चूंकि धारा 9 के अंतर्गत अधिसूचना जारी करने की तिथि और किसी व्यक्ति के विरोधी दल का नेता बनने या नेता पद पर न बने रहने की तिथि में समय का अन्तराल हो सकता है, अत: अधिसूचना में किसी पिछली तिथि का उल्लेख करने पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यदि सभापति इस बात से संतुष्ट हैं कि श्री कमलापति त्रिपाठी वास्तव में 10 जनवरी, 1978 या किसी अन्य तिथि से सर्वाधिक सदस्यों वाले दल के नेता नहीं रहे हैं, तो वह इस आशय के निष्कर्ष पर पहुंच सकता है। लेकिन यदि इस मामले

पर विवाद उत्पन्न होने की संभावना हो, तो मान्यता को उस तिथि से समाप्त करने से, जिस तिथि को सभापति उक्त निष्कर्ष पर पहुंचा हो, विवाद उत्पन्न होने की संभावना कम हो जायेगी।[234]

स्थिति का पता लगाने के पश्चात् सभापति ने यह घोषणा की कि श्री त्रिपाठी 15 फरवरी, 1978 से राज्य सभा में विपक्ष के नेता नहीं रहे हैं।[235] इसके पश्चात् श्री बिपिन पाल दास से प्राप्त सूचना के आधार पर उस दल के नेता, श्री भोला पासवान शास्त्री को विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई।[236]

इस दौरान राज्य सभा में उस दल की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। कांग्रेस (आई) दल सबसे बड़े विरोधी दल के रूप में उभरकर सामने आया। श्री कमलापति त्रिपाठी को पुन: विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई और 23 मार्च, 1978 को श्री भोला पासवान शास्त्री की मान्यता समाप्त कर दी गई।[237] श्री त्रिपाठी 2 अप्रैल, 1978 को राज्य सभा की सदस्यता से निवृत्त होने पर विपक्ष के नेता नहीं रहे। उनके पुन: निर्वाचन के पश्चात्, 18 अप्रैल, 1978 को उन्हें पुन: विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी।[238] वह लोक सभा के लिए निर्वाचित हो जाने और राज्य सभा का सदस्य न रहने पर 8 जनवरी, 1980 तक इस पद पर बने रहे।[239]

जनता पार्टी के श्री लाल कृष्ण आडवाणी को 21 जनवरी, 1980 को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी क्योंकि यह पार्टी सदस्यों की संख्या की दृष्टि से सबसे बड़ी पार्टी थी।[240] तथापि, उन्होंने 7 अप्रैल, 1980 को इस पद से त्याग-पत्र दे दिया था और इस तरह वह उस तारीख से विपक्ष के नेता नहीं रहे थे।[241]

7 अप्रैल, 1980 से दिसम्बर, 1989 तक पुन: राज्य सभा में विपक्ष का कोई नेता नहीं था, क्योंकि किसी भी दल के पास मान्यता के लिए अपेक्षित सदस्य-संख्या अर्थात् पच्चीस सदस्य नहीं थे। कांग्रेस (आई) संसदीय दल के श्री पी. शिव शंकर को 18 दिसम्बर, 1989 को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी।[242] वह 2 जनवरी, 1991 तक इस पद पर बने रहे।[243]

नवम्बर, 1990 में श्री चन्द्रशेखर ने कांग्रेस (आई) दल के समर्थन से सरकार बनाई। विपक्ष के नेता के रूप में श्री शिव शंकर की स्थिति के संबंध में 27 दिसम्बर, 1990 का राज्य सभा में एक मामला उठाया गया, क्योंकि उनकी पार्टी सत्ताधारी पार्टी का समर्थन कर रही थी।[244] सभापति ने इस संबंध में महान्यायवादी का विचार मांगा, जिसका मुख्य अंश यह था "...संसदीय परिपाटी और संसद् में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, 1977 के उपबंधों के आलोक में इस समय विद्यमान विधि के अनुसार विपक्ष के नेता की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और कांग्रेस (आई) दल का नेता विपक्ष का नेता बना रहेगा।" सदन में महान्यायवादी के विचार को पढ़ते हुए सभापति ने यह भी घोषणा की कि कांग्रेस (आई) दल ने विपक्ष के नेता के पद को छोड़ दिया है और वह पद रिक्त हो गया है।[245]

इस बीच, उपचुनाव में उड़ीसा से एक सदस्य के निर्वाचित होने से 19 मार्च, 1991 को जनता दल की सदस्य-संख्या चौबीस से बढ़कर पच्चीस हो गई अत: उस दल के नेता, श्री एम.एस. गुरुपदस्वामी विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने के पात्र हो गये। तथापि, श्री चन्द्रशेखर के नेतृत्व वाली सरकार के त्याग-पत्र देने से यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या कांग्रेस (आई) सदस्य-संख्या की दृष्टि से सबसे बड़े विरोधी दल के रूप में अपनी स्थिति और विपक्ष के नेता के रूप में अपने नेता (श्री शिव शंकर) की स्थिति को पुन: प्राप्त कर सकती है। इससे पहले कि इन दोनों दलों के दावे का निर्णय हो सके, आम चुनाव के फलस्वरूप कांग्रेस (आई) पार्टी सत्ताधारी पार्टी बन गई; राज्य सभा में जनता दल की सदस्य-संख्या पच्चीस ही रही। अत: श्री एम.एस. गुरुपदस्वामी को 28 जून, 1991 से विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई।[246] (इस तरह, जनवरी और जून, 1991 के बीच विपक्ष का कोई नेता नहीं था)।

श्री गुरुपदस्वामी इस पद पर 21 जुलाई, 1991 तक बने रहे, इसके पश्चात् उनका स्थान श्री एस. जयपाल रेड्डी ने ले लिया, जिन्हें श्री गुरुपदस्वामी से प्राप्त पत्र के अनुसार राज्य सभा में जनता दल के नेता के रूप में निर्वाचित किया गया था।[247]

2 अप्रैल, 1992 को राज्य सभा से जनता दल के दो सदस्यों के निवृत्त होने से राज्य सभा में जनता दल की सदस्य-संख्या घटकर तेईस रह गई। अत: यह दल और इसके नेता श्री एस. जयपाल रेड्डी, सदस्य-संख्या की दृष्टि से क्रमश: सबसे बड़े विरोधी दल और विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने की योग्यता नहीं रखते थे। श्री रेड्डी ने, तद्नुसार, सभापति को सूचित किया, जिन्होंने 29 जून, 1992 से विपक्ष के नेता के रूप में श्री रेड्डी की मान्यता को रद्द करने का निर्णय लिया।[248]

भारतीय जनता पार्टी उनतीस सदस्यों के साथ सदस्य-संख्या की दृष्टि से सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी बन गई और संसद् में भारतीय जनता पार्टी के नेता (श्री लाल कृष्ण आडवाणी) से प्राप्त पत्र के अनुसार राज्य सभा में भारतीय जनता पार्टी के नेता श्री सिकंदर बख्त को 7 जुलाई, 1992 से विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई।[249]

संक्षेप में राज्य सभा में विपक्ष के नेताओं की सूची निम्नलिखित है:

	नाम	अवधि
1.	श्री श्याम नन्दन मिश्र	दिसम्बर, 1969 से मार्च, 1971 तक
2.	श्री एम.एस. गुरुपदस्वामी	मार्च, 1971 से अप्रैल, 1972 तक
3.	श्री कमलापति त्रिपाठी	30 मार्च, 1977 से 15 फरवरी, 1978 तक
4.	श्री भोला पासवान शास्त्री	24 फरवरी, 1978 से 23 मार्च, 1978 तक
5.	श्री कमलापति त्रिपाठी	23 मार्च, 1978 से 2 अप्रैल, 1978 तक और 18 अप्रैल, 1978 से 8 जनवरी, 1980 तक
6.	श्री लाल कृष्ण आडवाणी	21 जनवरी, 1980 से 7 अप्रैल, 1980 तक
7.	श्री पी. शिव शंकर	18 दिसंबर, 1989 से 2 जनवरी, 1991 तक
8.	श्री एम.एस. गुरुपदस्वामी	28 जून, 1991 से 21 जुलाई, 1991 तक
9.	श्री एस. जयपाल रेड्डी	22 जुलाई, 1991 से 29 जून, 1992 तक
10.	श्री सिकन्दर बख्त	7 जुलाई, 1992 से 10 अप्रैल, 1996 तक और 10 अप्रैल, 1996 से 23 मई, 1996 तक
11.	श्री एस.बी. चव्हाण	23 मई, 1996 से 1 जून, 1996 तक
12.	श्री सिकन्दर बख्त	1 जून, 1996 से 19 मार्च, 1998 तक
13.	डा. मनमोहन सिंह	21 मार्च, 1998 से 21 मई, 2004 तक
14.	श्री जसवन्त सिंह	3 जून, 2004 से 4 जुलाई, 2004 तक और 5 जुलाई, 2004 से 16 मई, 2009 तक
15.	श्री अरुण जेटली	3 जून, 2009 से 2 अप्रैल, 2012* तक और 3 अप्रैल, 2012 से 26 मई, 2014 तक
16.	श्री गुलाम नबी आज़ाद	8 जून, 2014 से 10 फरवरी, 2015 तक और 16 फरवरी, 2015 से अब तक

*2 अप्रैल, 2012 को राज्य सभा के सदस्य के रूप में अपने कार्यकाल की समाप्ति के परिणामस्वरूप, श्री अरुण जेटली विपक्ष के नेता भी नहीं रहे। राज्य सभा के लिए उनके पुनर्निर्वाचन के बाद, सभापति द्वारा उन्हें 3 अप्रैल, 2012 से राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में पुन: मान्यता प्रदान कर दी गई।

मंत्री

संविधान में राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रि-परिषद् का उपबन्ध किया गया है जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होता है और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करता है।[250] प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री की सलाह पर करता है।[251] प्रधान मंत्री की मृत्यु या उसके त्याग-पत्र देने पर सम्पूर्ण मंत्रि-परिषद् भंग हो जाती है। तथापि, त्याग-पत्र दिये जाने की स्थिति में, राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रियों से वैकल्पिक व्यवस्था होने तक अपने पदों पर बने रहने के लिए कहता है। मंत्रि-परिषद् में सभी श्रेणियों के मंत्री होते हैं चाहे वे मंत्रिमंडल स्तर के हों या राज्य मंत्री या उप मंत्री हों।[252] मंत्री, राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त अपने पद धारण करते हैं।[253] मंत्रि-परिषद् लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।[254] इसका यह आशय है कि मंत्रि-परिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव केवल लोक सभा में ही, न कि राज्य सभा में, उपस्थित किया जा सकता है। इसलिए राज्य सभा के नियमों में इस प्रकार का कोई प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए कोई उपबंध नहीं है और न ही नियमों में कोई ऐसा स्थगन प्रस्ताव, जिसे निन्दा प्रस्ताव समझा जाता हो, उपस्थित किये जाने का कोई उपबन्ध है। इस प्रयोजनार्थ केवल लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में ही उपबंध किये गये हैं।[255]

जब किसी नये मंत्री को नियुक्त किया जाता है और उसे शपथ दिलाई जाती है, तब प्रधान मंत्री या उनकी अनुपस्थिति में सदन के नेता सभा में यथाशीघ्र उसका परिचय कराते हैं। सामान्यत: मंत्री का परिचय प्रश्नों के समय के आरम्भ में कराया जाता है। तथापि, अनेक अवसरों पर सभा में मंत्रियों का परिचय दिन में बाद में किसी समय कराया गया है या परिचय के प्रथम दिन उनमें से किसी के उपस्थित न रहने पर सभा में अगले दिन उसका परिचय कराया गया है।

> एक मंत्री द्वारा प्रश्न और उस पर पूछे गये अनुपूरक प्रश्नों का उत्तर दिये जाने के पश्चात् एक सदस्य ने यह कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि इन प्रश्नों का उत्तर किसी अपरिचित व्यक्ति द्वारा दिया जा रहा है, क्योंकि उनका परिचय नहीं कराया गया है।" इस पर सभापति ने यह कहा, "हमारे यहां परिचय कराने की प्रथा है।" तत्पश्चात् एक वरिष्ठ मंत्री, श्री जयसुखलाल हाथी ने सभा में मंत्री का परिचय कराया।[256] एक अन्य अवसर पर एक अन्य मंत्री की अनुपस्थिति में, जिसका तब तक सभा में परिचय नहीं कराया गया था, एक मंत्री द्वारा कर्णाटक के संबंध में उद्घोषणा की प्रति सभा पटल पर रखे जाने पर आपत्ति प्रकट की गई थी।[257]

> प्रधान मंत्री ने भोजनावकाश के पश्चात् मंत्रियों का परिचय कराया। जिन मंत्रियों का परिचय कराया गया था उनमें से एक मंत्री पहले ही प्रात: कार्यवाही में भाग ले चुका था। यह औचित्य-प्रश्न उठाया गया था कि ऐसा किया जाना गलत है। सभापति ने यह व्यवस्था दी, "शपथ दिलाये जाने के पश्चात् मंत्री अपना कार्य-भार ग्रहण कर लेता है। उसका परिचय कराया जाना औपचारिकता-भर है।"[258]

> एक अवसर पर जब प्रधान मंत्री एक मंत्री का परिचय कराने वाले थे, तब कुछ सदस्यों ने आपत्ति की। आपत्ति इस बात को लेकर थी कि उस मंत्री-विशेष ने 'सती' प्रथा का समर्थन किया था। प्रधान मंत्री ने मंत्री द्वारा 'सती' का समर्थन किये जाने का खंडन करते हुए एक वक्तव्य दिया। मंत्री ने भी स्थिति स्पष्ट की। जब प्रधान मंत्री एक अन्य मंत्री का परिचय करा रहे थे, तब विपक्ष के नेता ने आपत्ति की और उनकी आपत्ति यह थी कि उस मंत्री के विरुद्ध एक आपराधिक मामला लंबित है।[259]

किसी ऐसे व्यक्ति को, जो संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं है, मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। लेकिन यदि वह मंत्री के रूप में अपनी नियुक्ति की तारीख से निरन्तर

छह मास की अवधि तक संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं बन पाता है, तो वह मंत्री नहीं रहेगा।[260]

3 अप्रैल, 1970 को तीन मंत्रियों डा. एस. चन्द्रशेखर, डा. (श्रीमती) फूलरेणु गुहा और श्रीमती जहांआरा जयपाल सिंह की संवैधानिक वैधता के संबंध में एक मुद्दा उठाया गया था, जोकि पिछले दिन राज्य सभा की सदस्यता से निवृत्त हो जाने पर सदस्य नहीं रहे थे। अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क भी दिया गया था कि इन मंत्रियों को त्याग-पत्र दे देना चाहिए था या यदि उन्हें अपने पद पर बने ही रहना था तो प्रधान मंत्री द्वारा उनकी फिर से नियुक्ति की जानी चाहिए थी। विधि मंत्री (श्री पी. गोविन्द मेनन) ने उत्तर देते हुए यह कहा कि प्रधान मंत्री ने इस मामले में महान्यायवादी की राय प्राप्त कर ली थी जोकि निम्नलिखित थी:

प्रधान मंत्री द्वारा मुझसे यह प्रश्न पूछा गया है कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति, जो मंत्री रहा है और राज्य सभा का सदस्य भी रहा है, परन्तु अब राज्य सभा का सदस्य नहीं रहा है, संविधान के अन्तर्गत मंत्री बना रह सकता है।

इस संबंध में संविधान में एकमात्र संगत उपबंध अनुच्छेद 75(5) है....

..इस उपबन्ध की मूल भावना यह है कि ऐसा कोई व्यक्ति, जो मंत्री है, निरंतर छह मास की अवधि तक संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं होने पर मंत्री नहीं रहेगा। इसका यह आशय है कि कोई व्यक्ति, जो मंत्री बन जाता है लेकिन किसी सदन का सदस्य नहीं है, तो उसके मंत्री पद ग्रहण करने के पश्चात् छह मास के अन्दर किसी सदन का सदस्य न बनने पर वह मंत्री नहीं रहेगा। इसका यह भी आशय है कि यदि छह मास की अवधि के पश्चात् वह किसी सदन का सदस्य नहीं रहता है, तो छह मास की अवधि उस तारीख से पुन: आरम्भ हो जायेगी, जिससे वह किसी सदन का सदस्य नहीं रहा है और यदि वह इस निरन्तर छह मास की अवधि की समाप्ति पर किसी सदन का सदस्य नहीं होता है, तो वह मंत्री नहीं रहेगा।

ऐसी स्थिति में कोई मंत्री, जो 2 अप्रैल, 1970 को राज्य सभा का सदस्य नहीं रहा है, मेरे विचार में निरन्तर छह मास की अवधि तक मंत्री रह सकता है, लेकिन किसी सदन का सदस्य बने बिना इससे अधिक अवधि तक मंत्री नहीं रह सकता है। उसके लिए त्याग-पत्र देना, फिर से शपथ लेना और तत्पश्चात्, मंत्री बनना आवश्यक नहीं होगा।

उपसभापति ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ इस चर्चा को समाप्त किया:

इसमें तीन पहलू अंतर्ग्रस्त हैं: पहला तथ्यात्मक है, दूसरा संवैधानिक है और तीसरा राजनीतिक नैतिकता का है...

जहां तक तथ्यात्मक पहलू का संबंध है, तीनों माननीय मंत्री 2 अप्रैल की मध्य रात्रि को किसी भी सदन के सदस्य नहीं रहे। जैसाकि माननीय मंत्री द्वारा बताया गया है, माननीय मंत्रियों ने अपने त्याग-पत्र दे दिये हैं और उनके त्याग-पत्रों को माननीय प्रधान मंत्री के पास भेज दिया गया है। इसका यह आशय है कि उन्होंने इस स्थिति में उचित कार्यवाही की है। माननीय प्रधान मंत्री ने ही उनसे कुछ और समय के लिए अपने पदों पर बने रहने के लिए कहा है। यह तथ्य है।

जहां तक संवैधानिक स्थिति का संबंध हे, परस्पर-विरोधी विचार व्यक्त किये गये हैं और मेरे विचार में संवैधानिक पहलू पर चर्चा करने और निर्णय करने के लिए यह उपयुक्त मंच नहीं है। संवैधानिक मामलों का निर्णय करने के लिए अन्य मंच हैं।

जहां तक राजनीतिक नैतिकता का संबंध है, मेरे विचार में इस मामले पर सरकार को विचार करना चाहिए। माननीय विधि मंत्री और सदन के नेता द्वारा यह बताया गया है कि वे दोनों ही माननीय सदस्यों की भावनाओं से प्रधान मंत्री को अवगत करा देंगे... अत: माननीय सदस्यों की भावनाओं या उनके द्वारा जो भी विचार व्यक्त किये गये हैं, उन पर माननीय प्रधान मंत्री द्वारा विचार किया जायेगा।[261]

अगले दिन इस मामले को पुन: उठाया गया। विरोधी दल के नेता (श्री श्याम नन्दन मिश्र) और श्री भूपेश गुप्त ने क्रमश: निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित करने चाहे, जिनको पिछले दिन उपसभापति द्वारा अनुमति नहीं दी गई थी:

"यह सभा डा. चन्द्रशेखर, श्रीमती फूलरेणु गुहा और श्रीमती जहांआरा जयपाल सिंह के मंत्रि-परिषद् के सदस्य बने रहने का निरनुमोदन करती है, क्योंकि वे इस सभा के सदस्य नहीं रहे हैं।"

"इस सभा की यह सम्मति है कि प्रधान मंत्री, श्रीमती जहांआरा जयपाल सिंह, डा. फूलरेणु गुहा और डा. चन्द्रशेखर के मंत्रि-परिषद् के सदस्य बने रहने के बारे में व्यक्त किय गये भिन्न-भिन्न और अत्यधिक परस्पर-विरोधी पर उचित ध्यान दें और औचित्य-मानकों और प्रशासनिक प्रभावकारिता को ध्यान में रखते हुए संविधान के उपबन्धों के अनुरूप उठाये गये मामले का निपटारा करें।"

सभापति ने भी उक्त प्रस्तावों को उपस्थित करने की अनुमति प्रदान नहीं की थी।[262] एक अन्य अवसर पर 27 अप्रैल, 1982 को इस मुद्दे को प्रश्नों के समय के दौरान पुन: उस समय उठाया गया जब एक मंत्री (श्री सवाई सिंह सिसोदिया) ने, जो सदस्यता से निवृत्त हो जाने पर सभा के सदस्य नहीं रह गये थे, प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ किया। सभापति ने कुछ सदस्यों की बात सुनने के पश्चात् अपने विनिर्णय को सुरक्षित रखा।[263] 5 मई, 1982 को उन्होंने निम्नलिखित व्यवस्था दी:

हाल ही में प्रश्नों के समय के दौरान एक माननीय मंत्री द्वारा, जो अवधि समाप्त हो जाने पर सभा के सदस्य नहीं रहे, मंत्री के रूप में प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ करने पर आपत्ति की गई थी। यह तर्क दिया गया था कि मंत्री के रूप में उनकी शपथ की अवधि समाप्त हो गई है और उन पर संविधान के अनुच्छेद 75(5) के उपबंध लागू होने से पूर्व उनकी पुन: नियुक्ति की जानी चाहिए और उन्हें मंत्री के रूप में शपथ दिलाई जानी चाहिए।

मैंने अपनी व्यवस्था सुरक्षित रखते हुए मंत्री को सरकार की ओर से प्रश्न का उत्तर देने की अनुमति प्रदान की। अब मैं अपनी व्यवस्था दे रहा हूं।

मेरा ध्यान सभा की 3 अप्रैल, 1970 की कार्यवाही की ओर आकृष्ट किया गया क्योंकि उस दिन भी इसी प्रकार का प्रश्न उठाया गया था। इस मामले पर काफी विस्तार से चर्चा की गई लेकिन उस समय मंत्रियों द्वारा त्याग-पत्र दे दिये जाने के कारण उपसभापति से इस पर अपनी सम्मति प्रकट करने के लिए नहीं कहा गया था। तथापि, महान्यायवादी ने मंत्री के रूप में कार्य निष्पादित करने के सम्बद्ध मंत्री के दावे की पुष्टि करते हुए अपनी राय व्यक्त की थी। मैंने वाद-विवाद और महान्यायवादी की राय का अध्ययन किया है। मैं उस राय से सहमत हूं। (पीछे देखिए)

मेरे विचार में स्थिति नि:संदेह रूप से स्पष्ट है और सभा में पूर्व-निर्णय भी इसी का समर्थन करते हैं जिनकी ओर सदन के नेता ने, उनके मामले सहित, ध्यान आकृष्ट किया है। नि:संदेह सभा की प्रक्रिया और पूर्व-निर्णय संविधान और विधि के विरुद्ध नहीं हो सकते हैं और इस मामले का हमेशा के लिए निपटारा कर दिया जाना चाहिए। मैं अपनी सम्मति में संविधान के उपबंधों पर ही निर्भर करता हूं।

अनुच्छेद 75(5), जोकि संगत उपबंध है, निम्नलिखित है और कृपया इसकी शब्दावली पर ध्यान दीजिये:

कोई मंत्री, जो निरन्तर छह मास की किसी अवधि तक संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं है, उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री नहीं रहेगा।

उप-अनुच्छेद "कोई मंत्री" शब्दों से आरम्भ होता है न कि "कोई व्यक्ति" शब्दों से। यह इस तथ्य को दर्शाता है कि कोई मंत्री निरन्तर छह माह की अवधि तक मंत्री के रूप से कार्य कर सकता है चाहे ऐसे व्यक्ति को मंत्री के रूप में नई शपथ दिलाई गई हो या उसने अपना कार्यकाल पूरा होने से पूर्व शपथ-ग्रहण की हो और मंत्री के रूप में कार्य कर रहा हो। यदि इसका आशय भिन्न होता, तो उप-अनुच्छेद निम्नलिखित रूप में होता:

कोई व्यक्ति जो संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं है या सदस्य नहीं रहता है, मंत्री के रूप में शपथ-ग्रहण कर सकता है, लेकिन यदि वह निरन्तर छह मास की अवधि तक संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं है, तो वह उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री नहीं रहेगा।

"निरन्तर छह मास" शब्दों पर दिये गये बल से यह निष्कर्ष निकलता है कि मंत्री, मंत्री के रूप में कार्यकाल के आरम्भ होने के अनन्तर मंत्री बना रहता है। उसके किसी सदन के सदस्य न रहने से इसकी निरन्तरता में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं होता है।

जहां तक शपथ का संबंध है, तत्काल यह कहा जा सकता है कि कोई मंत्री दो बार शपथ ग्रहण करता है। पहली बार वह सदन के सदस्य के रूप में शपथ ग्रहण करता है और दूसरी बार वह मंत्री पद ग्रहण करने से पूर्व शपथ ग्रहण करता है। पहली बार ली गई शपथ समाप्त हो जाती है क्योंकि वह किसी भी विधि द्वारा सदस्य के रूप में अपना दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता है लेकिन दूसरी बार ली गई शपथ समाप्त नहीं होती है क्योंकि अनुच्छेद 75(5) संविधान के बल से ही निरन्तर छह मास की अवधि तक मंत्री के रूप में उसकी पुष्टि करता है। नये सिरे से शपथ-ग्रहण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रयोजनार्थ ग्रहण की गई शपथ पर्याप्त होती है।[264]

इस प्रकार, ऐसे दृष्टान्त रहे हैं जब मंत्री, संसद् के किसी भी सदन के सदस्य नहीं होने के बाद भी मंत्री बने रहे हैं।

श्री सीताराम केसरी की राज्य सभा की सदस्यता की अवधि 2 अप्रैल, 1980 को समाप्त हो गई थी और वह जून, 1980 में पुन: निर्वाचित हुए; श्री प्रणब मुखर्जी की राज्य सभा की सदस्यता की अवधि 9 जुलाई, 1981 को समाप्त हो गई थी और पुन: निर्वाचित होने पर उनकी सदस्यता की नई अवधि 13 अगस्त, 1981 से आरंभ हुई। दोनों ही मंत्री बने रहे।[265] पुन: श्री योगेन्द्र मकवाणा की सदस्यता अवधि 2 अप्रैल, 1988 को समाप्त हो गई लेकिन वह 1 अक्तूबर, 1988 तक (अर्थात्, पूरे छह माह तक) मंत्री बने रहे।

तथापि, किसी मंत्री की उसके संसद्-सदस्य निर्वाचित होने पर मंत्री के रूप में पुन: नियुक्ति की जा सकती है।

श्री प्रणब मुखर्जी को 18 जनवरी, 1993 को मंत्री के रूप में शपथ दिलायी गई थी। वह उस समय संसद्-सदस्य नहीं थे। उन्होंने 9 जुलाई, 1993 से अपना पद त्याग दिया था।[266] वह पश्चिमी बंगाल से राज्य सभा के लिए निर्वाचित हुए और उनका कार्यकाल 19 अगस्त, 1993 से आरंभ हुआ। उन्हें 31 अगस्त, 1993 से मंत्री के रूप में पुन: नियुक्त किया गया था।[267]

मंत्री को दोनों सदनों में उपस्थित होने और कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार होता है लेकिन वह उस सदन में, जिसका वह सदस्य नहीं है, मत नहीं दे सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी मंत्री को, जो किसी एक सदन का सदस्य है, दूसरे सदन में बोलने और उसकी कार्यवाहियों में अन्यथा भाग लेने का अधिकार होता है, लेकिन उसे वहां मत देने का अधिकार नहीं होता है।[268]

राजभाषा विधेयक के संबंध में उठाये गये औचित्य प्रश्न पर जब एक मंत्री (दूसरे सदन के सदस्य थे) बोल रहे थे, तब यह आपत्ति की गई थी कि यह औचित्य प्रश्न विशुद्धत: सदन के अधिकारों और विशेषाधिकारों के संबंध में है और केवल सदन के सदस्यों को ही इस पर बोलना चाहिए। सभापति ने यह कहते हुए उस औचित्य प्रश्न को खारिज कर दिया, "सभी मंत्री किसी भी सदन में बोलने के लिए अधिकृत हैं।"[269]

जब एक मंत्री ने, जो दूसरे सदन के सदस्य थे, और औचित्य प्रश्न उठाना चाहा, तब नियम 258 को देखते हुए, जो सदन के सदस्य को ही कोई औचित्य-प्रश्न उठाने का अधिकार प्रदान करता है इस पर आपत्ति की गई थी। सभापति ने यह व्यवस्था दी कि पूर्ण-निर्णय और संविधान के अनुच्छेद 88 को देखते हुए जोकि "अधि-विधि" है, मंत्री औचित्य प्रश्न उठा सकता है।[270]

किसी मंत्री को, जो सदन का सदस्य नहीं है या किसी भी सदन का सदस्य नहीं है, राज्य सभा के सत्रों के लिए आह्वान-पत्र जारी नहीं किये जाते हैं। वस्तुत: कोई मंत्री, जो राज्य सभा का सदस्य नहीं है, सदन में मंत्री की हैसियत से ही बोल सकता है, वैयक्तिक हैसियत से नहीं।

तथापि, राज्य सभा में ऐसे अवसर आए हैं जब मंत्रियों ने अपनी वैयक्तिक हैसियत से अपने विचार व्यक्त किये हैं और इस मामले में किसी प्रकार की कोई आपत्ति प्रकट नहीं की गई है।

> 26 नवम्बर, 1954 को खाद्य और कृषि मंत्री (श्री ए.पी. जैन) गैर-सरकारी सदस्यों के प्रस्ताव पर हो रही बहस के दौरान हस्तक्षेप कर रहे थे। उन्होंने यह कहा कि उन्हें मंत्रालय का कार्य-भार संभाले चौबीस घंटे का समय भी नहीं हुआ है और वह इस संकल्प के विभिन्न निहितार्थों का अध्ययन करने की स्थिति में नहीं हैं। अत: जब वह यह कह रहे थे, तब वह ऐसा अपनी वैयक्तिक हैसियत से कह रहे थे और इसका शासकीय उत्तर अन्य सहयोगी द्वारा दिया जायेगा। इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई थी।[271]
>
> इसी तरह जब मानव संसाधन विकास मंत्री (श्री माधव राव सिंधिया) ने अपने वैयक्तिक विचार व्यक्त करने के लिए सरकारी सेवाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण पर चल रही चर्चा में हस्तक्षेप किया, तब इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई थी।[272]

किसी दिवस की कार्यावलि में उल्लिखित कार्य के निष्पादन के लिए मंत्री वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। यदि वे किसी कारण से सदन में उपस्थित हो पाने में असमर्थ होते हैं, तो शिष्टाचार और परम्परावश उनसे सभापति को इसकी पूर्व सूचना देने और अपनी अनुपस्थिति में संसदीय कार्य के निष्पादनार्थ अन्य मंत्री की वैकल्पिक व्यवस्था करने की अपेक्षा की जाती है।[273]

> 18 नवम्बर, 1985 को संसद् के सत्र के दौरान प्रधान मंत्री की विदेश यात्रा के कारण उनकी अनुपस्थिति के बारे में एक मुद्दा उठाया गया था। सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:
>
>> सदन के विशेषाधिकारों के अभिरक्षक के रूप में मुझे कुछ शब्द कहने हैं। यह सिद्धांत कि भारत का प्रधान मंत्री संसद् के सत्र के दौरान राजधानी में रहे, अनाक्रमणीय है, इसे स्वीकार किया गया है और इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई है या इसे कोई चुनौती नहीं दी गई है। लेकिन यह कोई अनन्य नियम नहीं है। अनेक अवसरों पर सरकार और प्रशासन की अत्यावश्यकताओं के कारण और देश के हितों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रधान मंत्री और कुछ मंत्रियों का बाहर जाना आवश्यक हो जाता है। इस मामले में प्रधान मंत्री ने सदन के सभापति के रूप में मुझे पत्र लिखा है। उन्होंने यह कहा है कि छह राष्ट्राध्यक्षों में उन्हें भी आमंत्रित किया गया है और जिन राष्ट्राध्यक्षों से उनकी भेंट होगी उनसे अत्यधिक लाभदायक चर्चा होगी। इसके अतिरिक्त, जैसाकि सदन के नेता ने कहा है, वहां 2,00,000 से भी अधिक भारतीय कार्य कर रहे हैं और उस देश से सद्भावनापूर्ण संबंध बनाये रखना आवश्यक है। इसलिए मेरे विचार में इस मामले में कुछ भी अनुचित नहीं है। मैं निस्सन्देह रूप से इस विचार का समर्थक हूं कि प्रधान मंत्री को सामान्यत: संसद् के सत्र के दौरान राजधानी में उपस्थित रहना चाहिए।[274]

संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री (अनुसंधान और विकास) की ओर से राष्ट्रीय कैडेट कोर और केन्द्रीय परामर्शदात्री समिति के एक सदस्य के निर्वाचन के लिए प्रस्ताव उपस्थित करना चाहा। इस बात पर यह आपत्ति की गई थी कि क्या रक्षा मंत्री ने संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री को अधिकृत करते हुए सभापति को इसकी लिखित रूप से सूचना दी थी। सभापति ने इस मुद्दे की संपुष्टि की। प्रस्ताव पर विचार नहीं किया गया।[275]

राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव जैसे महत्वपूर्ण वाद-विवादों के मामले में चर्चा के दौरान उठाये गये मुद्दों के संबंध में सामान्यत: प्रधान मंत्री सरकार की स्थिति को स्पष्ट करता है। तथापि, प्रमुख विषयों पर वाद-विवाद के दौरान सदन में किसी वरिष्ठ मंत्री की उपस्थिति हमेशा अपेक्षित होती है। अनेक अवसरों पर महत्वपूर्ण चर्चाओं के दौरान मंत्रियों की अनुपस्थिति पर सभापीठ को टिप्पणियां करनी पड़ी हैं। ऐसे भी अवसर आए हैं जब मंत्रियों की अनुपस्थिति के कारण सभा को कुछ समय के लिए स्थगित करना पड़ा है।[276]

भारत का महान्यायवादी

महान्यायवादी न तो संसद् का सदस्य होता है और न ही मंत्रि-परिषद् का। तथापि, उसे किसी भी सदन में, सदनों की किसी संयुक्त बैठक में और संसद् की किसी समिति में, जिसमें उसका नाम सदस्य के रूप में दिया गया है, बोलने और उसकी कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार होता है, किन्तु वह इस उपबंध के आधार पर मत नहीं दे सकता है।[277] वह संसद्-सदस्यों को सुलभ सभी विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के लिए अधिकृत होता है।[278]

राष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय[279] का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए अर्हित किसी व्यक्ति को महान्यायवादी नियुक्त करता है।[280] वह राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करता है।[281]

महान्यायवादी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसे विधि संबंधी विषयों पर भारत सरकार को परामर्श देगा और विधि संबंधी प्रकृति के ऐसे अन्य कार्य करेगा, जो समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा उसके पास भेजे जायें या प्रदत्त किये जायें। वह संविधान[282] या अन्य किसी विधि[283] द्वारा प्रदत्त कार्य भी करता है। महान्यायवादी को अपने कर्त्तव्यों के पालन में देश में सभी न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होता है।[284]

अभी तक ऐसा कोई अवसर नहीं आया है जब महान्यायवादी राज्य सभा के समक्ष उपस्थित हुआ हो। तथापि, अनेक अवसरों पर सदस्यों ने सदन के विचाराधीन मामले के कतिपय पहलुओं पर अपनी सम्मति देने के लिए सदन में महान्यायवादी के उपस्थित होने की मांग की है।[285]

जब उप वित्त मंत्री अनिवार्य निक्षेप विधेयक, 1963 की संवैधानिक वैधता पर महान्यायवादी की राय की एक प्रति सभा पटल पर रख रहे थे, तब सदन की यह आम राय थी चूंकि महान्यायवादी लोक सभा के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं अत: उन्हें राज्य सभा में भी आना चाहिए। तथापि, मंत्री को उक्त दस्तावेज को सभा पटल पर रखने की अनुमति प्रदान की गई थी।[286] [तथापि, महान्यायवादी को राज्य सभा के समक्ष उपस्थित होने के लिए नहीं बुलाया गया था।]

महान्यायवादी को 4 अगस्त, 1993 को लोक सभा में उपस्थित होना था। राज्य सभा में यह मांग की गई थी कि महान्यायवादी को यहां भी बुलाया जाना चाहिए। उपसभापति ने यह कहा कि वह सभापति को इन भावनाओं से अवगत करा देंगी।[287] अगले दिन पुन: इस मामले को उठाया गया। उपसभापति ने यह जानकारी दी कि कार्य मंत्रणा समिति, जिसकी उस दिन बैठक होनी थी, इसके बारे में निर्णय करेगी। कार्य मंत्रणा समिति का यह विचार था कि महान्यायवादी को निर्वाचन आयोग की शक्तियों आदि के मुद्दे पर अपनी राय व्यक्त करने के लिए सदन में बुलाने की आवश्यकता नहीं है।[288]

सदस्य किसी विधेयक या सदन के सदस्य के समक्ष किसी कार्य के संबंध में महान्यायवादी से सदन में उपस्थित होने का अनुरोध करते हुए किसी प्रस्ताव की सूचना दे सकते हैं। ऐसी सूचना को स्वीकार कर लिया जाता है और उस पर कोई निर्णय लेना सदन का कार्य है।

नियम 170 के अधीन निम्नलिखित प्रस्ताव को स्वीकार किया गया था:[289]

"यत: यह सदन बोफोर्स सौदे के संबंध में संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर विचार करेगा; और यत: प्रतिवेदन में विधि संबंधी अनेक मुद्दे उठाये गये हैं;

अत: यह सदन भारत के महान्यायवादी से इस सदन में उपस्थित होने और उक्त प्रतिवेदन से उत्पन्न मुद्दों के संबंध में परामर्श देने का अनुरोध करता है।"

सदन में बोफोर्स समझौते के संबंध में संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर अल्पकालिक चर्चा आरंभ होने से पूर्व इस प्रस्ताव को उपस्थित किया गया, इस पर चर्चा हुई और यह मत-विभाजन से अस्वीकृत हुआ।[290]

सभापति के निदेश के अन्तर्गत प्रक्रिया संबंधी विषयों या संवैधानिक उपबंधों के संबंध में महान्यायवादी की राय जानने के लिए ऐसे विषयों को उनके पास भेजा गया है।

संविधान (बासठवां संशोधन) विधेयक, 1988 पर, जिसमें मतदान की आयु 21 वर्ष से कम करके 18 वर्ष कर दी गयी थी, 16 दिसंबर, 1988 को विचार आरंभ हुआ। इस विधेयक पर 19 और 20 दिसंबर, 1988 को विचार किया गया था और 20 दिसंबर, 1988 को इसे अन्तिम रूप से पारित कर दिया गया था। 19 दिसंबर, 1988 को एक सदस्य को इस विधेयक का आधे राज्य विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन किये जाने की आवश्यकता के संबंध में विशेष उल्लेख करने की अनुमति प्रदान की गई थी। विशेष उल्लेख के दौरान सदस्य ने यह तर्क दिया कि इस विधेयक का अनुसमर्थन किये जाने की आवश्यकता नहीं है और यदि सरकार अभी भी ऐसा मानती है कि इसका अनुसमर्थन आवश्यक है, तो महान्यायवादी को सदन के समक्ष उपस्थित होने के लिए आमंत्रित किया जाना चाहिए।[291] 20 दिसंबर, 1988 को विधि मंत्री ने विधेयक के तृतीय वाचन का उत्तर देते हुए यह कहा कि विधि मंत्रालय[292] द्वारा व्यक्त किये गये और राज्य सभा सचिवालय को संसूचित विचार के अनुसार इस विधेयक के अनुसमर्थन की आवश्यकता होगी।[293] तथापि, एक सदस्य के लिखित अनुरोध पर सभापति ने इस मामले को अपनी राय व्यक्त करने के लिए महान्यायवादी के पास भेज दिया।[294] उन्होंने विधि मंत्रालय द्वारा व्यक्त किये गये विचार की संपुष्टि की।

27 दिसंबर, 1990 को गैर-कांग्रेस (आई) विरोधी दलों के सदस्यों ने कांग्रेस (आई) दल के समर्थन से जनता दल (एस) द्वारा सरकार के गठन के परिप्रेक्ष्य में राज्य सभा में कांग्रेस (आई) दल के विरोधी दल के रूप में बने रहने के संबंध में एक मुद्दा उठाया। सभापति ने 28 दिसंबर, 1990 को सदस्यों को यह सूचित किया कि वह इस मामले पर न्यायिक चित्त से निर्णय करेंगे। अत: इस मामले को महान्यायवादी के पास उनकी राय के लिए भेज दिया गया। 2 जनवरी, 1991 को सभापति ने महान्यायवादी की राय के एक अंश को उद्धृत करते हुए एक घोषणा की।[295]

समितियों ने भी अपने विचाराधीन मामलों को महान्यायवादी की राय जानने के लिए उनके पास भेजा है।

अधीनस्थ विधान संबंधी समिति ने विधि मंत्रालय के माध्यम से छावनी अधिनियम, 1924 के अधीन छावनी बोर्ड द्वारा लगाये गये करों से प्राप्त राशि के एक अंश को सरकार को अन्तरित करने की उसकी सक्षमता के संबंध में एक मामले को भेजा था।[296]

विशेषाधिकार समिति ने निम्नलिखित मुद्दों को महान्यायवादी की राय जानने के लिए उनके पास भेजा था:

(1) क्या संसद् विदेशी राष्ट्रिकों द्वारा भारत में अपने प्रवास के दौरान किसी विशेषाधिकार के उल्लंघन या अवमानना के लिए उन पर अपनी अधिकारिता रख सकती है।[297]

(2) संविधान के अनुच्छेद 79 का सुस्पष्ट विस्तार; क्या राष्ट्रपति पर लगाये गये आक्षेपों को संसद् का अनादर करना माना जा सकता है और इस तरह से इसकी विशेषाधिकार अधिकारिता को आकृष्ट किया जा सकता है और क्या राष्ट्रपति के विरुद्ध अनादर-सूचक और असम्मानजनक लेखों के लिए दंडित करने हेतु वर्तमान कानून पर्याप्त है।[298]

(3) अवमानना करने वाले व्यक्ति को अर्थदंड देने की संसद् की शक्ति (अनौपचारिक राय)।[299]

विधेयकों संबंधी संयुक्त समितियों ने भी उनके पास भेजे गये विधेयकों के विभिन्न पहलुओं के बारे में अपने विचार व्यक्त करने के लिए महान्यायवादी को आमंत्रित किया है। उदाहरणार्थ न्यायालय अवमान विधेयक, 1968[300] और दंड प्रक्रिया संहिता विधेयक, 1970[301] संबंधी संयुक्त समितियों के समक्ष महान्यायवादी उपस्थित हुए थे।

ऐसे अवसर भी आये हैं जब सरकार ने स्व-प्रेरणा से सदन में उठाये गये कतिपय प्रश्नों को महान्यायवादी की राय जानने के लिए उनके पास भेजा है और सभापति या सदन को तदनुसार सूचित किया है।

जब कुछ मंत्रियों के राज्य सभा के सदस्य न रहने पर भी पदों पर बने रहने का मामला उठाया गया था तब विधि मंत्री ने सदन को प्रधान मंत्री द्वारा महान्यायवादी से प्राप्त की गई राय के बारे में सूचित किया।[302]

मार्च-अप्रैल, 1989 (149वां सत्र) के दौरान सभा में यह विवाद उत्पन्न हो गया था कि क्या 27 मार्च, 1989 को सभा पटल पर रखा गया ठक्कर समिति का प्रतिवेदन सम्पूर्ण प्रतिवेदन है या नहीं और विपक्ष यह चाहता था कि सभापति प्रतिवेदन से संबद्ध पत्रों को सभापटल पर रखने के लिए सरकार को निदेश दें। सभापति ने यह कहा कि सरकार ने उन्हें यह सूचित किया है कि महान्यायवादी के परामर्श से कतिपय पत्र आयोग को उपलब्ध दस्तावेजों और आयोग की कार्यवाहियों की श्रेणी में आते हैं और जांच आयोग अधिनियम के अन्तर्गत "प्रतिवेदन" शब्द के अर्थान्तर्गत नहीं आते हैं और इसलिए उन्हें सभापटल पर नहीं रखा गया है। महान्यायवादी की राय से अवगत करा दिये जाने पर सभापति ने इस मामले में सरकार को कोई निदेश देने से इन्कार कर दिया।[303]

सचेतक

संसद् के कार्यकरण में सचेतक की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनका चयन सत्तारूढ़ दल और विरोधी दल या दलों और संसद् में किसी दल के आन्तरिक संगठन में महत्वपूर्ण व्यक्तियों में से किया जाता है। वे संसद् में दलों के महत्वपूर्ण पदाधिकारी होते हैं।

'सचेतक' शब्द अंग्रेजी के 'व्हिपर्स-इन' अथवा 'व्हिपस' से लिया गया है जिन्हें शिकार में 'हाउन्ड्स' पर नज़र रखने और आखेट-स्थल पर उन्हें एक साथ रखने के लिए नियुक्त किया गया हो।[304] 'कन्साइज़ ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' में 'सचेतक' को "अपने दल के सदस्यों में अनुशासन बनाये रखने, उनकी उपस्थिति सुनिश्चित करने और उन्हें आवश्यक जानकारी देने के लिए नियुक्त किये गये पदाधिकारी" के रूप में वर्णित किया गया है। यह शब्द ऐसे व्यक्ति द्वारा किये गये आह्वान या अपील पर भी लागू होता है और इस अर्थ में शब्दकोश द्वारा इसकी "ऐसी लिखित सूचना (अनेक रेखाओं द्वारा चिन्ह्ति और रेखाओं की संख्या से अत्यावश्यकता को दर्शाते हुए) के रूप में व्याख्या की गई है जिसमें किसी अवसर विशेष पर उपस्थिति का अनुरोध किया गया हो।"

सदन में अपनी सदस्य-संख्या के अनुरूप प्रत्येक दल का एक सचेतक या अनेक सचेतक होते हैं। संसद् में मान्यता-प्राप्त दलों तथा समूहों के नेता और मुख्य सचेतक (प्रसुविधाएं) अधिनियम, 1998 के अधीन, मान्यता-प्राप्त दलों से, राज्य सभा के संबंध में, वह प्रत्येक दल अभिप्रेत है जिसके सदस्यों की संख्या सभा में पच्चीस से कम न हो और मान्यता-प्राप्त समूह से राज्य सभा के संबंध में, वह प्रत्येक दल अभिप्रेत है जिसके सदस्यों की संख्या पन्द्रह से कम न हो।

सभी दलों के सचेतकों के कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य सरकार के मुख्य सचेतक का होता है, जो सत्र के लिए समय निर्धारित करता है, सरकारी कार्य को सम्पन्न कराता है और दिवस की बैठक के लिए कार्य नियत करता है। सदन के सत्र के दौरान सरकार के मुख्य सचेतक का मुख्य कार्य तयशुदा कार्यक्रम के अनुरूप सरकारी कार्य के निष्पादन को सुनिश्चित करना होता है। संसदीय कार्य और प्रक्रिया के संबंध में सरकार को परामर्श देना और ऐसे कार्य के संबंध में, जिससे मंत्रियों के विभाग प्रभावित होते हों, उनसे निकट सम्पर्क बनाये रखना भी उसका कर्त्तव्य है। सरकारी कार्य के सुचारू रूप से निष्पादन के प्रबंधन में सरकार के मुख्य सचेतक को प्रत्येक मत-विभाजन के समय बहुमत सुनिश्चित करना होता है। वह सभा के समक्ष किसी विशेष कार्यवाही के महत्व

के स्तर को स्पष्ट करते हुए सदस्यों को साधारण एक पंक्ति, दो पंक्तियों या तीन पंक्तियों के सचेतक की रीति के द्वारा अग्रिम सूचना भेजता है। उसे कार्यवाहियों पर भी सतर्कतापूर्वक ध्यान रखना होता है और किसी भी क्षण उत्पन्न आपात स्थिति का सामना करने के लिए भी तैयार रहना होता है। संक्षेप में उसे अधिकांश समय सदन की भावनाओं को समझना होता है। वह वाद-विवाद की व्यवस्था करता है और उसके स्वरूप को निर्धारित करता है क्योंकि वह अपने दल के वक्ताओं की सूची सभापति को प्रस्तुत करता है।

सरकारी सचेतकों का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य "सदन की बैठकें आयोजित करना और उक्त बैठकों में सदस्यों की उपस्थिति सुनिश्चित करना होता है"। सदन की व्यवस्था में यह सुनिश्चित करना होता है कि "गणपूर्ति" के लिए आवश्यक संख्या में सदस्य हमेशा उपस्थित रहें, विशेष रूप से अपने पसन्दीदा वक्ताओं का समर्थन करने के लिए सदस्य उपस्थित रहें।[305] सरकारी कार्य के निष्पादन को सुनिश्चित करने के लिए सरकारी सचेतक और अन्य सभी सचेतकों को परस्पर सम्पर्क बनाये रखना होता है। संसदीय पदावलि में "सामान्य सम्पर्क-सूत्रों" के रूप में विदित तरीके से जिसमें विभिन्न दलों के सचेतकों के मध्य नजदीकी कार्य-साधक संबंध सम्मिलित हैं, दिन-प्रतिदिन के कार्य-साधक प्रबंध और समझौते किये जाते हैं। सिद्धांततः, परस्पर मैत्रीपूर्ण संबंधों में किसी प्रकार की कोई दरार उत्पन्न न होने देने के लिए सचेतक वाद-विवादों में भाग नहीं लेते हैं। औपचारिक प्रस्तावों के अतिरिक्त, सरकारी सचेतक कार्यवाहियों के दौरान मौन धारण किये रहते हैं।

संसद् में मान्यता प्राप्त दलों तथा समूहों के नेता और मुख्य सचेतक (प्रसुविधाएं) अधिनियम, 1998 तथा उसके अधीन बनाए नए नियमों के अनुसार मान्यता-प्राप्त समूह तथा मान्यता-प्राप्त दल का प्रत्येक नेता, उप नेता और प्रत्येक मुख्य सचेतक भारतीय संसद् के सचिवालयों से दूरभाष और सचिवालयी सुविधायें पाने का हकदार है।

भारतीय संसद् में संसदीय कार्य मंत्री सरकार का मुख्य सचेतक होता है। कुछ राज्य मंत्री, जोकि दोनों सदनों के सदस्य होते हैं, उनकी सहायता करते हैं। राज्य सभा में संसदीय कार्य राज्य मंत्री सरकारी सचेतक होता है/होते हैं। मुख्य सचेतक द्वारा किये जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण कार्य हैं: संसद् के सत्र की अवधि का निर्धारण करना, दोनों सदनों के मध्य सत्र संबंधी कार्य का समायोजन करना, मंत्रालयों से परामर्श कर सरकारी कार्य को अन्तिम रूप देना, कार्यक्रम के अनुरूप सरकारी विधायी और गैर-विधायी तथा वित्तीय कार्य के निष्पादन को सुनिश्चित करना, साप्ताहिक सरकारी कार्य की घोषणा करना, सदस्यों को सूचना देना अर्थात्, सचेतक कार्य की तात्कालिकता और महत्व को दर्शाता है, दोनों सदनों में हर समय मंत्रियों की उपस्थिति को सुनिश्चित करने हेतु मंत्रियों के नामों की सूची बनाना, सामग्री और सामान्य मार्ग-दर्शन प्रदान कर सदस्यों की सहायता करना, सदन में विधेयकों और अन्य कार्य के संबंध में सभापीठ को वक्ताओं की सूची प्रदान करना ताकि वह वक्ताओं से बोलने के लिए कह सके, विभिन्न संसदीय समितियों और अन्य निकायों में नियुक्ति हेतु या विभिन्न संसदीय शिष्टमंडलों में सम्मिलित किये जाने हेतु सदस्यों के नामों का सुझाव देना, विभिन्न सरकारी कार्यों के लिए चर्चा और समय के आवंटनार्थ कार्य मंत्रणा समिति की बैठकों में भाग लेना। सरकार तथा विपक्षी दलों के सचेतक सामान्य हित के मामलों का हल निकालने के लिए और कई महत्वपूर्ण अवसरों पर एक दूसरे को समझने-समझाने के लिए एक दूसरे के संपर्क में आते हैं। इस प्रकार सत्तारूढ़ दल के सचेतक और विपक्ष के सचेतक संसदीय लोकतंत्र के निर्बाध और समुचित कार्यकरण में एक अहम भूमिका निभाते हैं।

संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम के अन्तर्गत कोई सदस्य सचेतक (अधिनियम में इसे 'निदेश' कहा गया है) के विरुद्ध मतदान करता है या स्वयं को मतदान से अलग रखता है, तो वह सदन में अपनी सदस्यता गंवा देने का खतरा मोल लेता है। इस तरह से सचेतक द्वारा भेजे गए दस्तावेज या लिखित सूचना ने संवैधानिक दर्जा प्राप्त कर लिया है।

भारत के उपराष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति श्री मोहम्मद हामिद अंसारी द्वारा संसदीय लोकतंत्र में सचेतकों द्वारा निष्पादित किए जाने वाले महत्वपूर्ण और विविध कार्यों के संबंध में की गई समुक्तियों का उल्लेख करना उचित होगा। उन्होंने कहा कि सचेतक "विधायिका के कार्यकरण को सुगम बनाते हैं तथा इसे अधिकतम कार्य करने योग्य बनाते हैं; विधायिका में दल के लोगों के लिए दैनिक आधार पर दल की नीति बताने के लिए एक माध्यम बनते हैं और उनकी राय जानने के लिए एक बैरोमीटर के रूप में कार्य करते हैं; अपने दल के सदस्यों के लिए परामर्शदाता तथा दल नेतृत्व के लिए सलाहकार के रूप में कार्य करते हैं"। उन्होंने यह भी कहा कि "अत: हमारी संसदीय प्रणाली के कार्यकरण पर कोई टीका-टिप्पणी करने का अर्थ सचेतकों की संस्था की प्रभावोत्पादकता या किसी अन्य बात पर टिप्पणी करना होगा।" विधायिका की कार्यवाही में बार-बार व्यवधान के मुद्दे पर उन्होंने कहा कि "सभापीठ को सचेतकों के साथ सदस्यों द्वारा आचरण संबंधी मापदंडों का उल्लंघन किए जाने की घटनाओं पर प्रतिदिन विचार करना चाहिए।" उन्होंने यह भी टिप्पणी की कि "संसदीय लोकतंत्र का कार्यकरण काफी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि आप सचेतक के रूप में अपनी जिम्मेवारियों को किस रूप में लेते हैं।"[306]

महासचिव

राज्य सभा में सभापति और उपसभापति के पश्चात् तीसरा महत्वपूर्ण अधिकारी महासचिव होता है।[307] वह सभापति का और सभापति के माध्यम से सदन का सलाहकार होता है। वह सभापति की ओर से तथा उसके नाम से सभी प्रशासनिक और कार्यपालक कृत्यों का निर्वहन करता है। कोई भी दो व्यक्ति सदन से संबंधित अपने-अपने कार्य के संबंध में इतनी घनिष्ठता से सहबद्ध नहीं होते हैं जितनी घनिष्ठता से सभापति और महासचिव सहबद्ध होते हैं। उनके बीच एक दूसरे के प्रति अत्यंत विश्वास का संबंध विद्यमान होता है। संसदीय व्यवस्था में महासचिव की भूमिका महत्वपूर्ण और अत्यधिक उत्तरदायित्वपूर्ण होती है। वह सदन के संचित निर्णयों और पूर्व निर्णयों का भंडार, सदन की परिपाटियों और परम्पराओं का अभिरक्षक और राज्य सभा की बदलती सदस्यता के बीच एक कड़ी होता है।

महासचिव सदन का एक स्थायी अधिकारी होता है और उसका चयन और उसकी नियुक्ति सभापति द्वारा उन व्यक्तियों में से की जाती है जिन्होंने संसद् अथवा राज्य विधान सभाओं अथवा सिविल सेवा में लंबे सेवा काल के द्वारा अपना विशिष्ट स्थान बनाया हो। अग्रता अधिपत्र में, वह भारत सरकार के समरूपी अधिकारियों के लिए यथा-विहित दर्जा धारण करता है।[308] महासचिव अपने कृत्यों के लिए केवल सभापति के प्रति उत्तरदायी और जवाबदेह है। वह राज्य सभा के सदन में सभापति के आसन के नीचे पहले आसन पर बैठता है और वह परामर्श और सलाह के लिए तथा प्रक्रिया संबंधी किसी संदेह या किसी नियम की व्याख्या के लिए निरन्तर उपलब्ध रहता है, क्योंकि उसके पास संसदीय प्रक्रियाओं, प्रथाओं और पूर्व निर्णयों का अनुभव और ज्ञान होता है।

महासचिव के कृत्य दोहरे होते हैं: संसदीय और प्रशासनिक। पहला कृत्य अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है। संसदीय कार्य से संबंधित, दिवस का सर्वाधिक निर्णायक समय, मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे सदन की बैठक से पहले महासचिव की सभापति के साथ दैनिक भेंट से आरंभ होता है। सदस्यों से प्राप्त अविलम्बनीय लोक महत्व के मामलों की अनेकानेक सूचनाओं पर चर्चा की जाती है और सभापति के कक्ष में उनका शीघ्र निपटारा किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर महासचिव सदन में भी अपनी सलाह और सुझावों के साथ पीठासीन अधिकारी के लिए आसानी से उपलब्ध रहता है। महासचिव की सलाह दलीय संबंधों का विचार किए बिना सभी सदस्यों के लिए उपलब्ध होती है। मांगे जाने पर सलाह वस्तुनिष्ठ, निष्पक्ष, पूर्ण और निष्कपट होती है।

महासचिव के कुछ संसदीय कर्त्तव्यों का उल्लेख राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में किया गया है किन्तु अन्य बहुत-से कर्त्तव्य अनेक प्रथाओं और परिपाटियों पर आधारित हैं। जब एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों को संबोधित करने के लिए राष्ट्रपति का आगमन होता है तब राज्य सभा के सभापति, लोक सभा के अध्यक्ष, प्रधान मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री के साथ दोनों सदनों के महासचिव संसद् भवन के द्वार पर राष्ट्रपति की अगवानी करते हैं और राष्ट्रपति के साथ एक शोभा यात्रा में केन्द्रीय कक्ष की ओर आते हैं। इसी तरह, जब राष्ट्रपति प्रस्थान करते हैं तब भी वे शोभायात्रा में सम्मिलित होते हैं। राष्ट्रपति के अभिभाषण के समापन के पश्चात् महासचिव, राष्ट्रपति द्वारा सम्यक् रूप से अधिप्रमाणित अभिभाषण के अंग्रेजी तथा हिन्दी रूपांतर की एक-एक प्रति सभापटल पर रखता है। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों के प्रयोजनार्थ राज्य सभा और लोक सभा के महासचिव बारी-बारी से निर्वाचन अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं।

जब कभी सदन का सत्र बुलाया जाता है तब महासचिव, राष्ट्रपति के आह्वान आदेश के आधार पर, प्रत्येक सदस्य को सत्र में भाग लेने के लिए आह्वान-पत्र भेजता है।[309]

वह सदन के सदस्यों की नामावलि रखता है जिस पर प्रत्येक नव-निर्वाचित सदस्य को, अपना स्थान ग्रहण करने से पहले उसकी उपस्थिति में अपने हस्ताक्षर करने आवश्यक हैं।[310] वह उपसभापति के निर्वाचन के लिए प्रत्येक सदस्य को तिथि की सूचना भी भेजता है और ऐसी सूचनाएं जो किसी सदस्य द्वारा इस पद के लिए प्रस्तावित नामों का उल्लेख करते हुए दी जायें, प्राप्त करता है।[311]

वह सरकारी कार्य का विन्यास ऐसे क्रम में करने के लिए, जो सभापति सदन के नेता के परामर्श से अवधारित करे[312] और सत्र के प्रत्येक दिवस के लिए कार्यावलि तैयार करने के लिए उत्तरदायी है।[313] वह कार्यावलि, गृहीत प्रश्नों की सूचियां, प्रत्येक संसदीय समाचार, संशोधनों की सूची और ऐसी सूचना या अन्य पत्र जो नियमों के अधीन सदस्यों को उपलब्ध कराया जाना अपेक्षित हो, परिचालित करता है।[314] नियमों में यह भी उपबंध है कि सदस्यों द्वारा, प्रत्येक सूचना को, जैसे किसी प्रश्न, प्रस्ताव, संकल्प, विधेयक, संशोधन, विशेषाधिकार के प्रस्ताव की सूचना, ध्यान दिलाने या अल्पकालिक चर्चा आदि की सूचना महासचिव को संबोधित करके लिखित रूप में दिया जाना आवश्यक है।[315]

जहां, संविधान के अधीन किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने या उस पर विचार करने या उसमें कोई संशोधन उपस्थित करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी या सिफारिश अपेक्षित हो, वहां संबंधित मंत्री या सदस्य को राष्ट्रपति की मंजूरी अथवा सिफारिश की संसूचना महासचिव को लिखित रूप में देनी पड़ती है।[316]

महासचिव राज्य सभा से लोक सभा को भेजे जाने वाले संदेशों पर हस्ताक्षर करता है और यदि सदन का सत्र चल रहा हो तो वह लोक सभा से प्राप्त संदेशों की सूचनाएं सदन को देता है और ऐसे संदेशों के माध्यम से प्राप्त विधेयकों की प्रतियां सदन के पटल पर भी रखता है, अथवा यदि सदन का सत्र न चल रहा हो, तो ऐसे संदेशों को संसदीय समाचार के माध्यम से सदस्यों को प्रेषित करता है। दूसरी स्थिति में, ऐसे संदेशों के माध्यम से प्राप्त विधेयकों की प्रतियों को वह, सदन की पुन: बैठक होने पर, सदन के पटल पर रखता है।[317] महासचिव, लोक सभा को प्रेषित अथवा लौटाये जाने वाले सभी विधेयकों को प्रमाणित भी करता है। अत्यावश्यकता की स्थिति में वह सभापति की अनुपस्थिति में विधेयकों को स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किए जाने से पहले, उन्हें अधिप्रमाणित करता है[318] और उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाने अथवा उसके द्वारा लौटाए जाने के पश्चात् उन्हें सदन के पटल पर रखता है।[319]

महासचिव सरकार के त्याग-पत्र के संबंध में प्रधान मंत्री और राष्ट्रपति के बीच हुए पत्र-व्यवहार की प्रतियां भी सदन के पटल पर रखता है।

> महासचिव ने 7 मार्च, 1991 को सरकार के त्याग-पत्र के संबंध में प्रधान मंत्री और राष्ट्रपति के बीच हुए पत्र-व्यवहार की प्रतियां सदन के पटल पर रखी थीं। इससे पहले भी 16 जुलाई, 1979 को ऐसे पत्र-व्यवहार की प्रतियां सदन के पटल पर रखने के लिए महासचिव को बुलाया गया था किन्तु वह व्यवधान के कारण ऐसा नहीं कर सका था।[320]

महासचिव सदन को संबोधित या सदन के लिए आशयित याचिकाओं, दस्तावेजों और पत्रों को प्राप्त करता है और उसके द्वारा प्राप्त और सभापति द्वारा गृहीत ऐसी किन्हीं याचिकाओं, आदि की सूचना सदन को देता है।[321] यदि कोई सदस्य कोई याचिका प्रस्तुत करना चाहता है तो उसे इसकी अग्रिम सूचना महासचिव को देनी पड़ती है।[322] सदन या सदन की किसी समिति और सचिवालय के सभी अभिलेख, दस्तावेज और पत्रादि उसकी अभिरक्षा के अंतर्गत होते हैं और वह, सभापति की अनुमति के बिना ऐसे किसी पत्रादि को संसद् भवन से बाहर ले जाने की अनुमति नहीं देता है।

यदि कोई मंत्री किसी तारांकित या अतारांकित या अल्प-सूचना या अनुपूरक प्रश्न के उत्तर में अथवा किसी वाद-विवाद में उसके द्वारा दी गई सूचना में किसी अशुद्धि को ठीक करना चाहता है तो उसे उक्त अशुद्धि को ठीक करने संबंधी अपने आशय की सूचना, इस संबंध में विवरण की एक प्रति के साथ, महासचिव को देनी पड़ती है।

किसी सदस्य द्वारा सदन में अपने स्थान से त्याग-पत्र दिए जाने की स्थिति में या उस स्थिति में जहां सदन द्वारा कोई स्थान रिक्त घोषित कर दिया जाये, महासचिव इसकी सूचना राजपत्र में प्रकाशित करवाता है और इस प्रकार हुई रिक्ति को भरने के लिए कदम उठाने हेतु अधिसूचना की एक प्रति निर्वाचन आयोग को प्रेषित करता है।[323] महासचिव के नाम से जारी दर्शक-कार्डों पर दर्शक दीर्घाओं में प्रवेश प्राप्त करते हैं। इसी तरह, सदस्यों और उनकी पत्नियों या पतियों को पहचान पत्र-सह-रेलवे पास भी महासचिव के नाम से ही जारी किए जाते हैं।

राज्य सभा का महासचिव होने के नाते वह सभी संसदीय समितियों के महासचिव के रूप में भी कार्य करता है और वह इन समितियों की बैठकों में स्वयं उपस्थित हो सकता है या अपने अधिकारियों को उपस्थित होने के लिए कह सकता है। किसी विधेयक संबंधी प्रवर समिति या संयुक्त समिति

के मामले में, यदि समिति का अध्यक्ष सुगमता से उपलब्ध नहीं है तो वह विधेयक के प्रभारी मंत्री के परामर्श से समिति की बैठक नियत करता है।[324] जब किसी साक्षी का साक्ष्य लेना आवश्यक समझा जाता है तब महासचिव सदन अथवा सदन की किसी समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए उसे आह्वान पत्र (सम्मन) जारी करता है।[325] यदि कोई संसदीय समिति अपना प्रतिवेदन पूरा कर लेती है और इसी बीच लोक सभा का विघटन हो जाता है तो राज्य सभा का महासचिव उस प्रतिवेदन को सबसे पहला अवसर मिलते ही सदन के पटल पर रखता है। यह बात उस समिति के प्रतिवेदन के मामले में भी लागू होती है जो राज्य सभा के सभापति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात् अस्तित्व में नहीं रहती है।[326]

सचिव/महासचिव ने लोक लेखा समिति के 67वें से 72वें प्रतिवेदन और लोक उपक्रम समिति के 35वें से 40वें प्रतिवेदन जो उनके अध्यक्षों द्वारा, 3 मार्च, 1967 को तीसरी लोक सभा के विघटन से पहले लोक सभा अध्यक्ष को प्रस्तुत किए गये थे, की एक-एक प्रति, लोक सभा सचिवालय से प्राप्त रूप में, सदन के पटल पर रखी थी। उन्होंने लोक लेखा समिति (1974-75) के 142वें, 165वें, 172वें, 173वें और 176वें, प्रतिवेदनों को भी सभा पटल पर रखा। इसी तरह, महासचिव ने लोक उपक्रम समिति के 98वें से 101वें प्रतिवेदन और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के 59वें और 60वें प्रतिवेदन, जो उनके अध्यक्षों द्वारा, 31 दिसंबर, 1984 को सातवीं लोक सभा के विघटन से पहले लोक सभा अध्यक्ष को प्रस्तुत किए गये थे, की एक-एक प्रति लोक सभा सचिवालय से प्राप्त रूप में, सदन के पटल पर रखी थी।[327]

भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 8(2) के अधीन महासचिव ने राज्य सभा के सभापति द्वारा सामान्य प्रयोजन समिति के निदेशानुसार बनाए गए राज्य सभा सदस्य (दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता नियम, 1985 की एक प्रति (अंग्रेजी और हिंदी में) सभा पटल पर रखी।[328]

सदन की बैठक प्रारंभ होने के नियत समय पर, लंबे समय तक गणपूर्ति की घंटी बजाए जाने के पश्चात् भी यदि गणपूर्ति नहीं होती है तो महासचिव इस मामले को पीठासीन अधिकारी के ध्यान में लाता है और पीठासीन अधिकारी के आदेश से सदन में उपस्थित सदस्यों को इस बात की सूचना देता है कि सदन की बैठक आगे किस समय होगी।

शुक्रवार, 8 दिसंबर, 1995 को, मध्याह्न भोजनावकाश के पश्चात्, लंबे समय तक गणपूर्ति की घंटी बजाये जाने के पश्चात् भी जब गणपूर्ति नहीं हुई तब महासचिव ने घोषणा की कि चूंकि गणपूर्ति नहीं है, इसलिए उपसभापति ने निदेश दिया है कि सभा सोमवार, 11 दिसंबर, 1995 को म.पू. 11.00 बजे समवेत होगी।[329]

महासचिव, सदन की प्रत्येक बैठक में, सदन की कार्यवाही का पूर्ण प्रतिवेदन तैयार करवाता है और उसे उस रूप में और उस रीति से प्रकाशित करवाता है, जैसा सभापति समय-समय पर निदेश दे।[330]

जब किसी विषय पर विभाजन होता है तब महासचिव विभाजन की प्रक्रिया को चालू करता है और यदि सभापति निदेश दे तो वह विभाजन की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है और सभापति के समक्ष "हां" वाले और "ना" वाले मतों का योग प्रस्तुत करता है।[331]

महासचिव, राज्य सभा सचिवालय का, जो सभापति के समग्र निदेशों के अन्तर्गत कार्य करता है, प्रमुख होता है। सदन के सचिवालय के प्रशासनिक प्रमुख के रूप में महासचिव सभापति में निहित शक्तियों का प्रयोग करता है जिनमें विभिन्न श्रेणियों के पदों की संख्या, भर्ती की विधि और उनकी

अर्हताओं का निर्धारण भी सम्मिलित है। वह सचिवालय के कतिपय वर्गों के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए नियुक्ति, दंड और अपील प्राधिकारी है। वह वित्तीय शक्तियों का प्रयोग करता है और राज्य सभा और उसके सचिवालय से संबंधित बजट प्रस्तावों पर पहल करता है। वह राज्य सभा और उसके सचिवालय की अनुदान मांगों के अधीन, व्यय हेतु सदन द्वारा मंजूर धन का मुख्य लेखा प्राधिकारी होता है और वह इस दायित्व का निर्वहन वेतन और लेखा अधिकारी के माध्यम से और उसकी सहायता से करता है जो उससे सीधा संबद्ध होकर कार्य करता है।

महासचिव सदन के कार्य अथवा ऐसे मामले के संबंध में, जिसके सदन के समक्ष उठने की संभावना हो, भारत सरकार के मंत्रालयों और विभागों तथा सदस्यों के साथ सीधे पत्र-व्यवहार करता है। वह राज्य सभा में द्विवार्षिक रूप से नवनिर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों के लिए विषय-बोध कार्यक्रमों का भी आयोजन करता है।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8(क)(1) के अधीन महासचिव को एक ऐसे प्राधिकारी के रूप में मान्यता दी गई है जो राज्य सभा के लिए किसी निर्वाचन के संबंध में भ्रष्ट आचरण के बारे में याचिकाएं ग्रहण कर सकता है।[332]

चाहे महासचिव सदन में अपने स्थान पर बैठा हो, समितियों की सहायता कर रहा हो या सदन की दिन-प्रतिदिन की कार्यवाही का निपटारा कर रहा हो, वह उन सदस्यों के लिए सुपरिचित हो जाता है जो अपनी दलगत संबद्धताओं का विचार किए बिना विधि और प्रक्रिया के मामलों में सलाह लेने के लिए उसके पास आते हैं। वह विभिन्न धारणाओं वाले सदस्यों के बीच रहने के बावजूद भी अपने प्रशिक्षण की वजह से अनासक्त रहता है। इस अनासक्ति की वजह से उसे सभी सदस्यों का विश्वास जीतने में सहायता मिलती है। महासचिव द्वारा सम्पादित कृत्य कठिन और नाजुक किस्म के होने की वजह से उसके कार्य को सार्वजनिक मान्यता मिल गई है और सभापति द्वारा और सदन में सभी राजनीतिक गुटों द्वारा उसके कार्य की सराहना की गई है। इन सभी ने महासचिव की इस बात के लिए सराहना की है कि वह हर दिन सौंपे जाने वाले कठिन कार्य को कभी-कभी जटिल परिस्थितियों में भी इस तरह से संपन्न करता है जिससे संसदीय संस्था के प्रति उसकी निष्ठा और समर्पण की महान भावना परिलक्षित होती है। अनाम रहकर काम करना और सौम्य व्यवहार महासचिव के पद की विशिष्टता है। चौसर ने ऑक्सफोर्ड के एक अधिकारी के बारे में जो वर्णन किया वह महासचिव पर पूरी तरह से लागू होता है। "आवश्यकता से अधिक वह एक भी शब्द नहीं बोला इस पर भी वह औपचारिक और विनयशील रहा। अपनी बात कहने में वह संक्षिप्त, सटीक और उदात्त रहा।...वह अपने स्थान पर मौन बैठा रहा।" अपनी असाधारण योग्यता, समर्पित सेवा और हर स्थिति में विनम्रतापूर्ण व्यवहार की वजह से महासचिव सदन में अपना सम्मानजनक स्थान बना लेता है।

राज्य सभा के प्रथम गठन की तिथि और इसकी प्रथम बैठक की तिथि (अप्रैल-मई, 1952) के बीच तत्कालीन प्रधान मंत्री, श्री जवाहरलाल नेहरू के प्रधान निजी सचिव, श्री बी.एन. कौल को राज्य सभा के सचिव के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया था।[333]

तत्पश्चात् निम्नलिखित व्यक्ति राज्य सभा के सचिव/महासचिव रहे हैं:

श्री एस.एन. मुखर्जी (13.5.1952-8.10.1963), इससे पहले वह संविधान सभा में संविधान के मुख्य प्रारूपकार थे। पद पर रहते हुए उनकी मृत्यु पर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते समय उनके कार्यों की अत्यंत सराहना की गई थी।[334]

श्री बी.एन. बनर्जी (9.10.1963-31.3.1976), राज्य सभा सचिवालय में कार्यभार ग्रहण करने से पहले वह लंदन में भारतीय उच्चायुक्त के विधिक सलाहकार थे। महासचिव के पद से निवृत्त होने पर, राष्ट्रपति द्वारा उन्हें राज्य सभा के लिए नामनिर्देशित किया गया था।[335]

श्री एस.एस. भालेराव (1.4.1976-30.4.1981), इससे पहले वह महाराष्ट्र विधान सभा के सचिव रहे थे। महासचिव के पद से निवृत्त होने पर सदन में उनकी प्रशंसा में उद्गार व्यक्त किए गये।[336]

श्री सुदर्शन अग्रवाल (1.5.1981-30.6.1993), न्यायिक सेवा के थे और राज्य सभा सचिवालय में कार्यभार ग्रहण करने से पहले उन्होंने जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में कार्य किया था। महासचिव के पद से निवृत्ति के समय सदन में जब उनकी प्रशंसा में उद्गार व्यक्त किए जा रहे थे तब एक विशेष सम्मान के रूप में उन्हें राज्य सभा कक्ष में 'स्पेशल बॉक्स' में बिठाया गया था।[337]

श्रीमती वी.एस. रमा देवी (1.7.1993-25.7.1997), भारतीय विधिक सेवा से थीं। महासचिव के रूप में नियुक्ति से पहले उन्होंने विभिन्न न्यायिक और अन्य पदों पर कार्य किया था, जैसे केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क, सीमा-शुल्क और स्वर्ण नियंत्रण अधिकरण की न्यायिक सदस्य; राष्ट्रीय महिला आयोग की अवैतनिक सलाहकार; विधि आयोग की सदस्य-सचिव; भारत सरकार (विधायी विभाग) की सचिव और थोड़े समय के लिए मुख्य निर्वाचन आयुक्त। सदन ने उनकी नियुक्ति के अवसर पर उनके प्रति प्रशंसात्मक उद्गार व्यक्त किए थे।[338]

श्री एस.एस. सोहनी (25.7.1997-2.10.1997) ने महासचिव के पद पर स्थानापन्न रूप से कार्य किया, वे राज्य सभा सचिवालय में अपर सचिव के पद पर कार्यरत थे। वह भारतीय प्रशासनिक सेवा के थे और 22 फरवरी, 1992 से स्थायी आमेलन के पश्चात् इस सचिवालय में उन्होंने अपर सचिव के रूप में पद भार संभाला।

श्री रमेश चन्द्र त्रिपाठी (3.10.1997-31.08.2002) ने 1958 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर के रूप में अपना कैरियर शुरू किया और 1964 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में शामिल हुए और राज्य सभा के महासचिव के रूप में अपनी नियुक्ति से पहले उन्होंने भारत सरकार, संसदीय कार्य मंत्रालय के सचिव; सलाहकार (शिक्षा), योजना आयोग, नई दिल्ली; प्रधान सचिव, ऊर्जा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार; प्रधान सचिव और महानिदेशक, लोक उद्यम विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार; संयुक्त सचिव, संस्कृति विभाग, भारत सरकार; महानिदेशक, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण; आदि जैसे विभिन्न पद धारित किए।

डा. योगेन्द्र नारायण (1.9.2002-14.9.2007), 1965 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में शामिल हुए और राज्य सभा के महासचिव के रूप में अपनी नियुक्ति से पहले उन्होंने मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार; भारत सरकार, रक्षा मंत्रालय के सचिव; आदि जैसे विभिन्न पद धारित किए।

डा. वी.के. अग्निहोत्री (29.10.2007-30.09.2012), 1968 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में शामिल हुए और राज्य सभा में महासचिव के रूप में नियुक्ति से पूर्व उन्होंने भारत सरकार में, संसदीय कार्य मंत्रालय के सचिव तथा पंचायती राज मंत्रालय के सचिव, लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी में संयुक्त सचिव; केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (प्रधान पीठ), नई दिल्ली के सदस्य (प्रशासन) आदि जैसे विभिन्न पद धारित किए।

श्री शमशेर के. शरीफ (01.10.2012 से अब तक) ने वर्ष 1974 में दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रवक्ता के रूप में अपने कैरियर की शुरुआत की और वर्ष 1977 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में शामिल हुए। राज्य सभा में महासचिव के रूप में उनकी नियुक्ति से पूर्व उन्होंने प्रधान सचिव (गृह), राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार; मुख्य सचिव, अंडमान एवं निकोबार प्रशासन के पद सहित विभिन्न पद धारित किए। एशियन डेवलपमेंट बैंक, मनीला के कार्यकारी निदेशक के वरिष्ठ सलाहकार के रूप में अपनी सेवाएं प्रदान कीं। वित्त मंत्रालय, भारत सरकार में, अनेक पदों पर कार्य किया तथा, भारत के उपराष्ट्रपति के सचिव, भारत के राष्ट्रपति के संयुक्त सचिव (अगस्त 2000 से जुलाई 2002 तक राष्ट्रपति के सचिव का प्रभार संभाला) आदि जैसे अनेक पद धारित किए। वर्ष 2011 में उन्होंने भारत सरकार में सचिव का पदधारण किया।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. अनुच्छेद 89
2. अनुच्छेद 65(1)
3. अनुच्छेद 65(2)
4. अनुच्छेद 62(2)
5. डा. राजेन्द्र प्रसाद—कॉरसपोन्डेंस एंड सेलेक्ट डॉक्यूमेंट्स, लेखक : वाल्मीकि चौधरी, वॉल्यूम 21, पृष्ठ 500-01
6. संसदीय समाचार (2), 24.3.1977
7. -वही- 11.10.1982, 16.10.1982, 18.10.1982, 20.10.1982 और 30.10.1982
8. अनुच्छेद 65(3)
9. अनुच्छेद 64
10. अनुच्छेद 66(1)
11. संविधान (ग्यारहवां संशोधन) विधेयक, 1961, उद्देश्यों और कारणों का कथन
12. अनुच्छेद 66(2)
13. अनुच्छेद 66(3)
14. अनुच्छेद 66(4)
15. -वही- स्पष्टीकरण
16. राष्ट्रपतीय तथा उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, धारा 4(1)
17. -वही- धारा 4(3)
18. -वही- धारा 4(4)
19. -वही- धारा 5ख(1) (ख)
20. -वही- धारा 5ग
21. -वही- धारा 5ख (5)
22. अनुच्छेद 67
23. अनुच्छेद 69
24. अनुच्छेद 71(1)
25. अनुच्छेद 71(2)
26. राष्ट्रपतीय तथा उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, धारा 14क
27. -वही- धारा 18
28. अनुच्छेद 71(4)
29. राष्ट्रपतीय तथा उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, धारा 19
30. अनुच्छेद 64
31. अनुच्छेद 112(3)
32. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.4.1987, कालम 174
33. नियम 221
34. नियम 21
35. नियम 222
36. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.4.1964, कालम 51-52 और 24.4.1964, कालम 358-59
37. -वही- 9.5.1974, कालम 121
38. -वही- 6.11.1987, कालम 244
39. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 19.5.1952, कालम 50-51

40. पार्लियामेंटरी प्रिविलेजेज़—डाइजेस्ट ऑफ केसेज़ (1950-85), पृष्ठ 745-46
41. -वही- पृष्ठ 747-48
42. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.11.1983, कालम 415-18 और फा. सं. 35/17/83-एल.
43. अनुच्छेद 100(1)
44. अनुच्छेद 92(1)
45. अनुच्छेद 92(2)
46. अनुच्छेद 100(4)
47. अनुच्छेद 101(3), परंतुक
48. दसवीं अनुसूची, पैरा 6(1)
49. -वही- पैरा 8(1)
50. दसवीं अनुसूची, पैरा 8(3)
51. अनुच्छेद 120(1), परंतुक
52. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 17.7.1952, कालम 1331
53. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.5.1981, कालम 282-87
54. संसदीय समाचार (2), 24.11.1995
55. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 19.5.1952, कालम 78-81
56. संसदीय समाचार (1), 31.8.1978
57. ब्यौरे के लिए अध्याय-6 देखिए
58. नियम 187 और 203
59. नियम 30(2)
60. नियम 217(2)
61. नियम 279(1)
62. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.9.1981, कालम 337-339
63. नियम 240
64. नियम 261
65. नियम 255
66. नियम 256(1)
67. नियम 257
68. ब्यौरे के लिए अध्याय-16 देखिए
69. नियम 108; काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 6.5.1954, कालम 5291
70. नियम 135
71. नियम 266
72. अनुच्छेद 98
73. नियम 222क
74. नियम 222ख
75. संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 9(4)
76. न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968, धारा 3(2)
77. -वही- धारा 7(5)
78. प्रेस परिषद् अधिनियम, 1978, धारा 5(2)
79. ब्यौरे के लिए राज्य सभा की समितियां और ऐसी अन्य संसदीय समितियां तथा निकाय, जिनमें राज्य सभा का प्रतिनिधित्व है, शीर्षकयुक्त पुस्तिका देखिए

80. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.8.1978, कालम 446-47; 17.8.1978, कालम 165-66; 24.8.1978, कालम 190-91; और 29.8.1978, कालम 6-7
81. -वही- 3.3.1987, कालम 36-37 और 6.5.1987, कालम 279-84
82. -वही- 2.8.1995 और संसदीय समाचार (1), 9.8.1995
83. अनुच्छेद 89(2)
84. नियम 7(1)
85. नियम 7(2)
86. -वही- परंतुक
87. उदाहरण के लिए देखिए, संसदीय समाचार (2), 6.7.1992
88. नियम 7(3) और (4)
89. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.12.1969, कालम 4517-19
90. -वही- 29.7.1980, कालम 139-53
91. -वही- 30.7.1980, कालम 165-66
92. अनुच्छेद 90(क)
93. अनुच्छेद 90(ख)
94. अनुच्छेद 90(ग)
95. अनुच्छेद 112(3)(ख)
96. फा. सं. 1/32/2/99-कैब.
97. फा. सं. आर.एस. 31/2014-टी और परिपत्र सं. आर.एस. 31/2014-टी दिनांक 5.3.2014
98. अनुच्छेद 91(1)
99. अनुच्छेद 91(2)
100. नियम 9
101. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.1.1991
102. -वही- 11.3.1991
103. संसद् के सदन (संयुक्त बैठकें और संवाद) नियम, नियम 5
104. अनुच्छेद 100(1)
105. संसदीय समाचार (2), 20.10.1984 और 1.3.1985
106. नियम 30(1)
107. नियम 217(1)
108. उदाहरण के लिए देखिए, संसदीय समाचार (2), 6.6.1994
109. नियम 30(4) और 217(5)
110. नियम समिति का तीसरा प्रतिवेदन (अंग्रेजी), पृष्ठ 3 और 5
111. उदाहरण के लिए नियम 73(1) का परंतुक देखिए
112. मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1994, धारा 4
113. अनुच्छेद 91(1)
114. संसदीय समाचार (2), 24.3.1977
115. संसदीय समाचार (1), 28.3.1977
116. संसदीय समाचार (2), 28.3.1977
117. संसदीय समाचार (1), 30.3.1977
118. बैठकों की अस्थायी सारणी (पूर्वाह्न)
119. नियम 8(1)
120. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.5.1952, कालम 45-46
121. -वही- 16.5.1952, कालम 46

122. नियम समिति का तीसरा प्रतिवेदन, पृष्ठ 1-2
123. संसदीय समाचार (2), 7.7.1992 और 9.7.1992
124. -वही- 22.2.1990, 2.5.1990, 17.7.1990, 27.4.1992, 7.7.1992, 1.12.1992, 11.5.2006, 21.7.2006, 17.7.2012, 19.7.2012 और 7.8.2012
125. संसदीय समाचार (1), 27.2.1997 और 1.8.1997
126. ब्यौरे के लिए अध्याय-11 देखिए
127. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.9.1981, कालम 507-08
128. नियम 9
129. अनुच्छेद 100(1)
130. नियम 229(2)
131. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.8.1981, कालम 177-81
132. नियम 8(2)
133. संसदीय समाचार (2), 15.9.1994
134. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.3.1969, कालम 6536
135. -वही- 19.5.1969, कालम 3723
136. अनुच्छेद 91(2)
137. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.3.1987, कालम 293
138. -वही- 24.3.2005, 18.3.2006, 20.8.2010 और 21.8.2010
139. नियम 9
140. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.3.1967, कालम 1797
141. -वही- 3.4.1967, कालम 1934-36
142. -वही- 2.12.1968, कालम 2261-62
143. -वही- 3.12.1968, कालम 2425-27
144. -वही- 30.6.1980, कालम 175
145. -वही- 1.7.1980, कालम 125-26
146. -वही- 22.12.1980, कालम 461
147. -वही- 23.12.1980, कालम 1-5, 34-35
148. -वही- कालम 4
149. -वही- 2.7.1980, कालम 195
150. -वही- 3.7.1980, कालम 1-4
151. -वही- 25.8.1981, कालम 345-46
152. -वही- 26.8.1981, कालम 145-49
153. विभिन्न समितियों संबंधी नियमों को देखिए
154. संसदीय समाचार (1), 28.7.1989
155. उदाहरण के लिए नियम 207(2) देखिए
156. नियम 90(5)
157. नियम 90(7)
158. नियम 211
159. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.5.1981, 17.9.1981 और 26.3.1982
160. आवास तथा टेलीफोन सुविधाएं (संसद्-सदस्य) नियम, 1956, नियम 4(2)
161. संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 2(घ), धारा 3 के साथ पठित
162. 'पार्लियामेंट', लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, दूसरा संस्करण, 1970, पृष्ठ 73-74
163. 'मे' पृष्ठ 201 में ग्लैडस्टोन द्वारा उद्धृत

164. 'गवर्नमेंट एंड पार्लियामेंट', लेखक: हरबर्ट मोरीसन, पृष्ठ 117-18
165. 'ऐन एनसाइक्लोपीडिया ऑफ पार्लियामेंट', पृष्ठ 427
166. 'पार्लियामेंट', लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, दूसरा संस्करण, 1970, पृष्ठ 73-79
167. रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑफ प्रिजाइडिंग ऑफिसर्स (पागे कमिटी), पैरा 47
168. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 21.5.1952, कालम 245
169. -वही- 18.2.1953, कालम 615
170. -वही- 24.11.1952, कालम 36-37
171. -वही- 3.12.1952, कालम 802
172. -वही- 6.12.1952, कालम 988-89
173. -वही- 13.5.1952, कालम 2; 19.4.1954, कालम 3303; राज्य सभा वाद-विवाद, 29.4.1968, कालम 1 और 17.8.1981, कालम 1-2
174. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.5.1996 कालम 1
175. -वही- 23.7.2002, कालम 1
176. नियम 23
177. नियम 14 और 20
178. नियम 24
179. नियम 172
180. नियम 177
181. नियम 186(2)
182. सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति का कार्यवृत्त, 1.9.1972 और संसदीय समाचार (2), 10.11.1972
183. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.6.1980, कालम 1-2
184. -वही- 7.3.1961, 1.3.1963, 29.5.1964, 14.2.1966, 5.5.1969, 28.2.1977, 17.7.1986 और 27.7.1987
185. -वही- 29.5.1964, 5.5.1969 और 28.2.1977
186. -वही- 27.7.1970, कालम 157-60
187. -वही- 25.7.1966, 16.11.1966 और 14.12.1967
188. नियम समिति (तीसरा प्रतिवेदन) की सिफारिश पर वर्तमान नियम 191 को, जो पुराने नियम 167 के समान था, 1981 में पुन: संशोधित किया गया ताकि समिति को प्रश्न सौंपने का प्रस्ताव उस सदस्य द्वारा, जिसने मामले को उठाया है, या किसी अन्य सदस्य द्वारा उपस्थित किया जा सके। दूसरे शब्दों में, अब नियम में सदन के नेता को प्रश्न सौंपे जाने के उपबंध का लोप कर दिया गया है।
189. विशेषाधिकार समिति का सातवां, नौवां, दसवां और तेरहवां प्रतिवेदन देखिए
190. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.12.1967, कालम 5236-56
191. -वही- 18.3.1982, कालम 202-33
192. -वही- 21.11.1983, कालम 415-18
193. नियम 215(1)
194. संसदीय समाचार (1), 21.12.2000
195. अध्याय-15 देखिए
196. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 19.5.1952, कालम 83-84
197. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.4.1970, कालम 58-118
198. -वही- 14.5.1970, कालम 200
199. -वही- 2.12.1992, कालम 3
200. -वही- 2.8.1982, कालम 145-157
201. -वही- 7.5.1985, कालम 171-72
202. -वही- 22.4.1981

203. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.8.1979, और 6.3.1991; 14.5.1985, 20.12.1989 और 4.9.1991 का राज्य सभा वाद-विवाद भी देखिए
204. -वही- 15.4.1999, कालम 1-2
205. -वही- 15.3.1965, कालम 3443
206. -वही- 3.5.1966, कालम 62-80
207. -वही- 31.7.1987, कालम 299-301
208. -वही- 22.2.1983, कालम 392-94
209. -वही- 16.12.1992, कालम 1048-50
210. -वही- 2.3.2001, पृष्ठ 194
211. -वही- 18.3.2002, पृष्ठ 279
212. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 24.11.1952, कालम 36-37
213. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.8.1959, कालम 65
214. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 1.5.1952, कालम 4625
215. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.4.1978, कालम 141-49
216. 'पार्लियामेंट', लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, पृष्ठ 79
217. 'कैबिनेट गवर्नमेंट', लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, अध्याय-15
218. -वही-
219. -वही- पृष्ठ 472
220. -वही- पृष्ठ 499
221. -वही- पृष्ठ 500
222. सिलेक्ट कमेटी ऑन प्रोसीजर, हाउस ऑफ कॉमन्स, 1931 का 161, प्रधान मंत्री रैमजे मेकडोनल्ड का साक्ष्य
223. 'ब्रिटिश गवर्नमेंट सिन्स 1918', कैम्पियन (संपादित), पृष्ठ 20-21
224. 'पार्लियामेंट: ए सर्वे', कैम्पियन (संपादित), पृष्ठ 29-31
225. 'कैबिनेट गवर्नमेंट', लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, पृष्ठ 500
226. 'पार्लियामेंट', लेखक: सर आइवर जेनिंग्स, पृष्ठ 84
227. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.12.1969, कालम 4775-97
228. -वही- 17.11.1969, कालम 107-24
229. -वही- उदाहरण के लिए 24.3.1971, कालम 6; 31.3.1971, कालम 131 और 1.4.1971, कालम 205
230. संसद में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, 1977 धारा 2
231. -वही- धारा 2 का स्पष्टीकरण
232. -वही-
233. संसदीय समाचार (1), 30.3.1977
234. फा. सं. 19/78-टी
235. संसदीय समाचार (2), 18.2.1978
236. संसदीय समाचार (1), 24.2.1978; संसदीय समाचार (2) 3.3.1978 भी देखिए
237. संसदीय समाचार (1), 23.3.1978; संसदीय समाचार (1) 8.3.1978 भी देखिए
238. संसदीय समाचार (2), 22.4.1978
239. फा. सं.19/80-टी
240. संसदीय समाचार (2), 22.1.1980
241. -वही- 29.4.1980
242. -वही- 19.12.1989
243. -वही- 3.1.1991

244. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.12.1990, कालम 7-53
245. -वही- 2.1.1991, कालम 835-43
246. फा.सं. 12/91/टी; संसदीय समाचार (2), 1.7.1991; और राज्य सभा वाद-विवाद, 1.7.1991
247. -वही- संसदीय समाचार (1), 24.7.1991
248. फा.सं. 12/91/टी; और संसदीय समाचार (2) 1.7.1992
249. -वही- 7.7.1992
250. अनुच्छेद 74(1)
251. अनुच्छेद 75(1)
252. मंत्री वेतन तथा भत्ता अधिनियम, 1952, धारा 2
253. अनुच्छेद 75(2)
254. अनुच्छेद 75(3)
255. लोक सभा नियम, 56-63, 198-199
256. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.3.1967, कालम 1554
257. -वही- 20.12.1989
258. -वही- 25.1.1980, कालम 59-60
259. -वही- 28.12.1990, कालम 1-17
260. अनुच्छेद 75(5)
261. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.4.1970, कालम 58-118
262. -वही- 4.4.1970, कालम 53-67
263. -वही- 27.4.1982, कालम 3-5
264. -वही- 5.5.1982, कालम 193-95
265. -वही- 27.4.1982, कालम 5
266. मंत्रिमंडल सचिवालय कार्यालय ज्ञापन सं. 55/1/1/93-कैब.(i), 18.1.1993 और 9.7.1993
267. -वही- 1.9.1993
268. अनुच्छेद 88
269. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.5.1963, कालम 1828; राज्य सभा वाद-विवाद, 15.12.1980, कालम 207-15 भी देखिए
270. -वही- 25.1.1980, कालम 52-56
271. -वही- 26.11.1954, कालम 41-42
272. -वही- 1.12.1995
273. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.3.1980, कालम 160
274. -वही- 18.11.1985, कालम 356-57
275. -वही- 31.7.1986, कालम 131
276. अध्याय 7 और 11 देखिए
277. अनुच्छेद 88
278. अनुच्छेद 105(4)
279. अनुच्छेद 124(3)
280. अनुच्छेद 76(1)
281. अनुच्छेद 76(4)
282. उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 139क
283. अनुच्छेद 76(2); विधि अधिकारी (नियुक्ति और सेवा की शर्तें) नियम, 1963
284. अनुच्छेद 76(3)

285. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.5.1986, कालम 228
286. -वही- 29.4.1963, कालम 1210-14
287. -वही- 4.8.1963, कालम 268-70
288. -वही- 5.8.1993, कालम 276-77; कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 5.8.1993
289. संसदीय समाचार (2), 10.5.1988
290. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.5.1988, कालम 339-64
291. -वही- 19.12.1988, कालम 8-15
292. -वही- 20.12.1988, कालम 153-54
293. फा. सं. 1/67/88-बी
294. -वही-
295. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.1.1991, कालम 835-43
296. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का दसवां प्रतिवेदन (अंग्रेजी), पृष्ठ 4 और परिशिष्ट-2
297. विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन (अंग्रेजी), पृष्ठ 2 और परिशिष्ट-4
298. विशेषाधिकार समिति का सत्ताईसवां प्रतिवेदन (अंग्रेजी), पृष्ठ 4 और परिशिष्ट-2
299. विशेषाधिकार समिति के उन्नीसवें प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, पृष्ठ 16 और 17
300. न्यायालय अवमान विधेयक, 1968 संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन (अंग्रेजी), कार्यवृत्त, 12.10.1969
301. दंड प्रक्रिया संहिता विधेयक, 1970 संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, कार्यवृत्त, 15.10.1971
302. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.4.1970, कालम 58-118
303. -वही- 4.4.1989, कालम 52-53
304. 'ए पार्लियामेंटरी डिक्शनरी', लेखक: अब्राहम एंड हॉट्रे
305. 'दि पार्टी सिस्टम इन ग्रेट ब्रिटेन', लेखक: आइवर बुलमर थॉमस, पृष्ठ 110
306. 4 फरवरी, 2008 को मुम्बई में चौदहवें अखिल भारतीय सचेतक सम्मेलन के उद्घाटन में राज्य सभा के माननीय सभापति का अभिभाषण
307. नवम्बर, 1973 तक उसका पदनाम 'सचिव' होता था; पदनाम में परिवर्तन की घोषणा के लिए राज्य सभा वाद-विवाद, 15-11-1973, कालम-153-54 देखिए
308. महासचिव को अग्रता अधिपत्र (वारंट ऑफ प्रिसीडेन्स) के अनुच्छेद 23 में रखा गया है
309. नियम 3
310. नियम 5
311. नियम 7
312. नियम 23
313. नियम 29
314. नियम 95(2) और 160(3)
315. नियम 223
316. नियम 63 और 98
317. संसदीय समाचार (2), 21.5.1993 और 18.5.1994; संसदीय समाचार (1), 26.7.1993 और 13.6.1994
318. नियम 135
319. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.3.1991 और 17.9.1991; भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक, 1986 राष्ट्रपति द्वारा लौटाया गया और 12.3.1990 को सभा पटल पर रखा गया
320. संसदीय समाचार (1), 7.3.1991 और राज्य सभा वाद-विवाद, 16.7.1979, कालम 3
321. नियम 145
322. नियम 144
323. नियम 213 (6)
324. नियम 79

325. नियम 84(2), 196(2), 208(2) (2) और 212ङ (2) 212ठ (2)
326. सभापति का निदेश, संसदीय समाचार (2), 25.1.1996; निदेश के अनुसरण में रखे गए प्रतिवेदनों के लिए संसदीय समाचार (1), 27.8.1986 देखिए
327. संसदीय समाचार (1), 20.3.1967, 28.3.1967, 29.3.1967, 7.4.1967, 6.5.1978, 8.1.1985 और 22.1.1985
328. -वही- 16.12.1985; सामान्य प्रयोजन समिति का कार्यवृत्त, 12.12.1985
329. -वही- 8.12.1995
330. नियम 260
331. नियम 253(2) और 254(2)
332. अधिसूचना सं. का.आ. 367(अ), 25.5.1976 (मैनुअल ऑफ इलेक्शन लॉ, खंड 1, पृष्ठ 166)
333. भालेराव, एस.एस., "द सेकंड चैम्बर", पृष्ठ 408-434
334. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.11.1963, कालम 84-86
335. -वही- 2.4.1976, कालम 75-83
336. -वही- 4.5.1981, कालम 205-17
337. -वही- 26.7.1993, कालम 153-78
338. -वही-

अध्याय-5

संसद् के घटकों के पारस्परिक संबंध

राष्ट्रपति और संसद्

संविधान के अधीन संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और वह उसका प्रयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करता है।[1] अनुच्छेद 73(1) के अधीन संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उन विषयों तक होता है जिनके संबंध में संसद् को विधि बनाने की शक्ति है। संसद्, राष्ट्रपति और संसद् के दोनों सदनों अर्थात् काउंसिल ऑफ स्टेट्स (राज्य सभा) और हाउस ऑफ द पीपल (लोक सभा) से मिलकर बनती है।[2] इस प्रकार राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रमुख है और साथ ही संसद् का एक घटक भी है।

> भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह पर व्यक्तिगत रूप से किए गए आक्षेपों के कारण विशेषाधिकार भंग होने की सूचना का मामला विशेषाधिकार समिति को जांच-पड़ताल और प्रतिवेदन के लिए सौंपा गया था। इस संदर्भ में समिति ने संविधान के अनुच्छेद 79 के दायरे पर विचार किया, इस संबंध में समिति ने भारत के महान्यायवादी की राय मांगी जिन्होंने निम्नलिखित मत व्यक्त किया:
>
> > "संविधान के अनुच्छेद 79 के अधीन संघ के लिए एक संसद् होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम राज्य सभा और लोक सभा होंगे। संविधान के अनुच्छेद 168 के अधीन भी इसी प्रकार का उपबंध है। अनुच्छेद 168 के अधीन किसी राज्य का राज्यपाल राज्य के विधान-मंडल का एक घटक होता है। उच्चतम न्यायालय ने हैक्स्ट फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड तथा एक अन्य बनाम बिहार राज्य तथा अन्य (ए.आई.आर. 1983, एस.सी. 1019 का पृष्ठ 1048) में अन्य बातों के साथ निम्नलिखित टिप्पणी की:
> >
> > > अनुच्छेद 168 के अधीन राज्यपाल को किसी राज्य के विधानमंडल का एक घटक बनाया गया है क्योंकि किसी राज्य विधानमंडल द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक को अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल की अनुमति के लिए आरक्षित रखना आवश्यक है।
>
> अनुच्छेद 79 के दायरे के संबंध में इसी तर्क के आधार पर मेरा मत यह है कि राष्ट्रपति को संसद् का एक घटक इसलिए बनाया गया है कि संसद् के सदनों द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक को संविधान के अनुच्छेद 111 या अनुच्छेद 368 के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रखा जाना है।"[3]

राष्ट्रपति संबंधी उपबंध

निर्वाचन

राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा ऐसे निर्वाचक-मंडल के सदस्य गुप्त मतदान द्वारा करते हैं जिसमें संसद् के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य और राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं।[4] अनुच्छेद 54 और 55 में उल्लिखित 'राज्य' शब्द के अंतर्गत राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और पुदुचेरी का संघ राज्य क्षेत्र उस तारीख से शामिल होगा जो अधिसूचित की जानी है।[5]

संविधान में उपबंध किया गया है कि जहां तक साध्य हो, राष्ट्रपति के निर्वाचन में भिन्न-भिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व के मापमान में एकरूपता होगी। राज्यों में आपस में ऐसी एकरूपता

तथा समस्त राज्यों और संघ में समतुल्यता प्राप्त कराने के लिए संसद् और प्रत्येक राज्य की विधान सभा का प्रत्येक निर्वाचित सदस्य ऐसे निर्वाचन में जितने मत देने का हकदार है उनकी संख्या निम्नलिखित रूप से अवधारित की जाती है:

(क) किसी राज्य की विधान सभा के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के उतने मत होंगे जितने कि एक हजार के गुणित उस भागफल में हों जो राज्य की जनसंख्या को उस विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या से भाग देने पर आए;

(ख) यदि एक हजार के उक्त गुणितों को लेने के बाद शेष पांच सौ से कम नहीं हैं तो उपखंड (क) में निर्दिष्ट प्रत्येक सदस्य के मतों की संख्या में एक की और वृद्धि कर दी जाएगी;

(ग) संसद् के प्रत्येक सदन के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मतों की संख्या वह होगी जो उपखंड (क) और उपखंड (ख) के अधीन राज्यों की विधान सभाओं के सदस्यों के लिए नियत कुल मतों की संख्या को संसद् के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या से भाग देने पर आए, जिसमें आधे से अधिक भिन्न को एक गिना जाएगा और अन्य भिन्नों की उपेक्षा की जाएगी।[6]

संविधान (चौरासीवां) संशोधन अधिनियम, 2001 में यह उपबंध है कि जब तक वर्ष 2026 के पश्चात् लिए जाने वाले प्रथम जनगणना के आवश्यक जनसंख्या संबंधी आंकड़े प्रकाशित नहीं हो जाते हैं, तब तक राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए मतों के परिकलित मान के प्रयोजन से राज्यों की आबादी से वह आबादी अभिप्रेत होगी, जो 1971 की जनगणना के समय निर्धारित की गई थी।

उपरोक्त को स्पष्ट करने के लिए नीचे एक उदाहरण दिया गया है:

2012 के राष्ट्रपतीय निर्वाचन में उत्तर प्रदेश के प्रत्येक विधान सभा सदस्य की प्रतिनिधित्व क्षमता 208 नियत की गई थी। यह संख्या 8,38,49,905 को (जो 1971 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनसंख्या थी) 403 से (जो विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या थी) भाग देकर और इस भागफल को पुन: एक हजार से भाग देकर इस प्रकार प्राप्त हुई:

$$\frac{8,38,49,905}{403 \times 1000} = 208.06 = 208$$

इसी प्रकार सिक्किम विधान सभा के प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्यांक 7 था:

$$\frac{2,09,843}{32 \times 1000} = 6.55 = 7$$

इसके पश्चात् समस्त राज्यों और संघ में समतुल्यता प्राप्त कराने के लिए विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों के लिए इस प्रकार नियत किए गए सभी मतों के कुल मूल्यांक को संसद् के 776 सदस्यों में बराबर बांट दिया गया।

2012 के राष्ट्रपतीय निर्वाचन में अट्ठाईस राज्यों, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और पुदुचेरी की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों के लिए मतों का मूल्यांक 549474 निकला। इस संख्या को संसद् के 776 निर्वाचित सदस्यों में (जिनमें 543 लोक सभा के थे और 233 राज्य सभा के थे) बराबर बांट दिया गया। इस प्रकार एक संसद् सदस्य के मत का मूल्यांक 708.08 अर्थात् 708 नियत किया गया।

भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के लिए जो निर्वाचन होते हैं वे राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 और उसके अधीन बनाए गए नियमों के द्वारा विनियमित होते हैं। इन निर्वाचनों के प्रयोजन के लिए यह सुस्थापित प्रथा रही है कि लोक सभा के या

राज्य सभा के महासचिव को लोक सभा के अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति, जैसा मामला हो, के अनुमोदन से उक्त निर्वाचन कराने के लिए निर्वाचन अधिकारी के रूप में क्रमिक रूप से नियुक्त किया जाता है। केन्द्र में एक या एक से अधिक सहायक निर्वाचन अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं और उनके नाम निर्वाचन अधिकारी द्वारा अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति, जैसा भी मामला हो, के अनुमोदन से सुझाये जाते हैं।

पहले (1952), तीसरे (1962), पांचवें (1969), सातवें (1977), नौवें (1987) और ग्यारहवें (1997) राष्ट्रपतीय निर्वाचनों के लिए लोक सभा के सचिव/महासचिव रिटर्निंग ऑफिसर नियुक्त किए गए थे। दूसरे (1957), चौथे (1967), छठे (1974), आठवें (1982), दसवें (1992), बारहवें (2002) और चौदहवें (2012) राष्ट्रपतीय निर्वाचनों के लिए राज्य सभा के सचिव/महासचिव को रिटर्निंग ऑफिसर नियुक्त किया गया था।

वर्ष 2012 में भारत के निर्वाचन आयोग ने राज्य सभा के महासचिव को 14वें राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए रिटर्निंग ऑफिसर नियुक्त किया। 2012 में उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए लोक सभा के महासचिव को रिटर्निंग ऑफिसर नियुक्त किया गया। स्थापित परम्परा के अनुसार 1997 में राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए राज्य सभा के महासचिव को रिटर्निंग ऑफिसर नियुक्त किया जाना था। तथापि, 14 जुलाई, 1997[7] को हुए उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन में भारत के निर्वाचन आयोग ने इस परम्परा से हटकर रिटर्निंग ऑफिसर के रूप में संसदीय कार्य मंत्रालय के सचिव को नियुक्त किया। तदनुसार, संसदीय कार्य मंत्रालय के सचिव ने उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन की पूरी प्रक्रिया का संचालन किया और उक्त निर्वाचन में राज्य सभा के महासचिव अथवा राज्य सभा सचिवालय ने कोई भूमिका नहीं निभाई।

निर्वाचन आयोग द्वारा शासकीय राजपत्र में निर्वाचन के जो विभिन्न चरण अधिसूचित किए जाते हैं वे इस प्रकार हैं: (i) नामनिर्देशन करने की अन्तिम तारीख जो निर्वाचन की अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के पश्चात् चौदहवें दिन की तारीख होती है; (ii) नामनिर्देशनों की संवीक्षा (जांच) की तारीख जो नामनिर्देशन करने की अन्तिम तारीख के ठीक बाद के दिन की तारीख होती है; (iii) उम्मीदवारी (अभ्यर्थिता) वापस लेने की अंतिम तारीख जो नामनिर्देशनों की जांच के पश्चात् दूसरे दिन की तारीख होती है; और (iv) वह तारीख जिसको मतदान, यदि आवश्यक हो, होता है और जो ऐसी तारीख होती है जो उम्मीदवारी वापस लेने की अंतिम तारीख के पश्चात् पन्द्रहवें दिन से पहले की तारीख नहीं होती है। यदि नामनिर्देशन करने या उनकी जांच करने या उम्मीदवारी वापस लेने की तारीख सार्वजनिक छुट्टी का दिन हो तो उसके ठीक अगले दिन की तारीख, जो सार्वजनिक छुट्टी का दिन नहीं होगा, इस प्रयोजन के लिए समुचित तारीख मानी जाती है।[8] राष्ट्रपति की पदावधि के अवसान से हुई रिक्ति को भरने के लिए होने वाले निर्वाचन की अधिसूचना पद छोड़ने वाले राष्ट्रपति की पदावधि के अवसान से पूर्व के साठवें दिन को या उसके पश्चात् सुविधापूर्वक जितनी शीघ्र निकाली जा सके निकाली जाती है, चाहे ऐसे निर्वाचन के समय किसी राज्य की विधान सभा भंग ही क्यों न रहे,[9] और तारीख ऐसे नियत की जाती है कि निर्वाचन ऐसे समय में पूरा हो जाए कि एतद्द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति अपना पदग्रहण पद छोड़ने वाले राष्ट्रपति की पदावधि के अवसान के अगले दिन को कर सके। राष्ट्रपति की मृत्यु,

पदत्याग या पद से हटाए जाने अथवा अन्य कारण से हुई उसके पद की रिक्ति के भरे जाने की दशा में यह अपेक्षित है कि अधिसूचना को ऐसी रिक्ति के पश्चात् यथाशीघ्र निकाला जाए।[10]

1952 के अधिनियम में यह उपबंध किया गया है कि राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए नामनिर्देशन-पत्र पर कम से कम पचास निर्वाचकों के प्रस्थापकों (प्रस्तावकों) के रूप में और कम से कम पचास निर्वाचकों के समर्थकों के रूप में हस्ताक्षर होने चाहिए और कोई निर्वाचक उसी निर्वाचन में, चाहे प्रस्तावक के रूप में या समर्थक के रूप में, एक से अधिक नामनिर्देशन-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करेगा।[11] उम्मीदवार के लिए यह भी आवश्यक है कि वह निर्वाचन के लिए सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट समझे जाने के लिए पंद्रह हजार रुपए की राशि जमा करे,[12] राष्ट्रपति के पद के लिए चुनाव लड़ने का पात्र होने के लिए किसी उम्मीदवार को उस तरह से शपथ नहीं लेनी पड़ती या प्रतिज्ञान नहीं करना पड़ता जिस तरह से संसद् के चुनाव के लिए खड़े होने वाले उम्मीदवार के लिए आवश्यक है।[13]

अब तक (1952 से 2012) चौदह राष्ट्रपतीय निर्वाचन हो चुके हैं। निम्नलिखित तालिका में इन निर्वाचनों के ब्यौरे-वार कार्यक्रम और साथ ही राष्ट्रपतियों द्वारा पदग्रहण की तारीखों का उल्लेख किया गया है:

तालिका

क्र. सं.	निर्वाचित उम्मीदवार	वर्ष	अधिसूचना की तारीख	नाम निर्देशन की अंतिम तारीख	छानबीन की तारीख	वापस लेने की अंतिम तारीख	मतदान की तारीख	गणना और परिणाम घोषणा की तारीख	पदग्रहण की तारीख
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1.	डा. राजेन्द्र प्रसाद	1952	4/4/52	12/4/52	14/4/52	17/4/52	2/5/52	6/5/52	13/5/52
2.	डा. राजेन्द्र प्रसाद	1957	6/4/57	16/4/57	17/4/57	20/4/57	6/5/57	10/5/57	13/5/57
3.	डा. राधाकृष्णन्	1962	6/4/62	16/4/62	18/4/62	21/4/62	7/5/62	11/5/62	13/5/62
4.	डा. ज़ाकिर हुसैन	1967	3/4/67	13/4/67	15/4/67	18/4/67	6/5/67	9/5/67	13/5/67
5.	श्री वी. वी. गिरि	1969	14/7/69	24/7/69	26/7/69	29/7/69	16/8/69	20/8/69	24/8/69
6.	डा. फखरुद्दीन अली अहमद	1974	16/7/74	30/7/77	31/7/74	2/8/74	17/8/74	20/8/74	24/8/74
7.	श्री एन. संजीव रेड्डी	1977	4/7/77	18/7/77	19/7/77	21/7/77	6/8/77	21/7/77	25/7/77

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
8.	ज्ञानी जैल सिंह	1982	9/6/82	23/6/82	24/6/82	26/6/82	12/7/82	15/7/82	25/7/82
9.	श्री आर. वेंकटरामन्	1987	10/6/87	24/6/87	25/6/87	27/6/87	13/7/87	16/7/87	25/7/87
10.	डा. शंकर दयाल शर्मा	1992	10/6/92	24/6/92	25/6/92	27/6/92	13/7/92	16/7/92	25/7/92
11.	श्री के. आर. नारायणन	1997	9/6/97	23/6/97	24/6/97	26/6/97	14/7/97	17/7/97	25/7/97
12.	डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम	2002	11/6/02	25/6/02	26/6/02	28/6/02	15/7/02	18/7/02	25/7/02
13.	श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल	2007	16/6/07	30/6/07	02/7/07	04/7/07	19/7/07	21/7/07	25/7/07
14.	श्री प्रणब मुखर्जी	2012	16/6/12	30/6/12	02/7/12	04/7/12	19/7/12	22/2/12	25/7/12

अर्हताएं

जो व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र है उसे भारत का नागरिक होना चाहिए, उसकी आयु पैंतीस वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए, उसे लोक सभा का सदस्य होने के लिए अर्हित होना चाहिए और उसे भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद नहीं धारण करना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल का पद या संघ या किसी राज्य में मंत्री का पद लाभ का पद नहीं समझा जाता।[14] संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 3 के अधीन सरकार के अधीन लाभ के कतिपय पदों को ऐसा पद घोषित किया गया है जिसको धारण करने वाला व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए अयोग्य नहीं होता। संसद् या किसी राज्य के विधानमंडल के पीठासीन अधिकारियों सहित उनके सदस्य भी राष्ट्रपति के पद के लिए चुनाव लड़ सकते हैं किंतु यदि उनमें से कोई व्यक्ति राष्ट्रपति बन जाता है तो यह समझा जाता है कि उसने संसद् या विधानमंडल में अपना स्थान राष्ट्रपति के रूप में अपने पदग्रहण की तारीख से रिक्त कर दिया है।[15]

डा. राधाकृष्णन् (1962), डा. ज़ाकिर हुसैन (1967), श्री आर. वेंकटरामन् (1987), डा. शंकर दयाल शर्मा (1992) और श्री के. आर. नारायणन (1997) राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचन में उम्मीदवार थे, किंतु उन्होंने उपराष्ट्रपति के पद से इस्तीफा नहीं दिया। तथापि, 1969 में उपराष्ट्रपति, श्री वी.वी. गिरि और 1977 में लोक सभा अध्यक्ष श्री एन. संजीव रेड्डी ने राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए नामनिर्देशन-पत्र दाखिल करने से पहले अपने-अपने पदों से इस्तीफा दे दिया था।

पदावधि

राष्ट्रपति अपने पदग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करता है।[16] राष्ट्रपति अपने पद की अवधि समाप्त हो जाने पर भी तब तक पद धारण करता है जब तक

उसका उत्तराधिकारी अपना पद ग्रहण नहीं कर लेता। कोई व्यक्ति, जो राष्ट्रपति के रूप में पद धारण करता है या कर चुका है, संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए उस पद के लिए पुनर्निर्वाचन का पात्र होता है।[17] राष्ट्रपति अपनी पदावधि के समाप्त होने से पूर्व अपने हस्ताक्षर से उपराष्ट्रपति को पत्र लिखकर पदत्याग कर सकता है। ऐसे पदत्याग की सूचना लोक सभा अध्यक्ष को तुरंत दे दी जानी चाहिए।

राष्ट्रपति डा. ज़ाकिर हुसैन का निधन होने पर उपराष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे थे। श्री गिरि ने राष्ट्रपति को संबोधित पत्र के द्वारा उपराष्ट्रपति के पद से इस्तीफा दे दिया और, जैसाकि महान्यायवादी द्वारा सलाह दी गई थी, यह उल्लेख नहीं किया कि वे तब कौन सा पद धारण किए हुए थे और उन्होंने अपना इस्तीफा राष्ट्रपति के सचिवालय में रख दिया। इस्तीफे की प्रतियां प्रधान मंत्री और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को सूचनार्थ भेज दी गईं। पत्र को उसी दिन राजपत्र में भी अधिसूचित कर दिया गया।[18] यह निर्णय हुआ कि इस्तीफा देना पद को छोड़ने की एक प्रक्रिया थी और राष्ट्रपति का पद धारण करने वाले व्यक्ति के वहां पर न होने पर भी उनका पद निरंतर विद्यमान था और संविधान के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि इस्तीफे को प्रभावी बनाने के लिए उसे स्वीकार किया जाए और कानून में इस संभावना की परिकल्पना की गई है कि उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के न होने पर भी इस्तीफा दे सकता है।[19]

महाभियोग

राष्ट्रपति को उनकी पदावधि के समाप्त होने के पहले भी संविधान का अतिक्रमण करने पर पद से हटाया जा सकता है।[20] जब ऐसा करना होता है तब संसद् के किसी सदन द्वारा आरोप लगाया जाना आवश्यक है।[21] ऐसा कोई आरोप तब तक नहीं लगाया जा सकता जब कि—

(क) ऐसा आरोप लगाने की प्रस्थापना ऐसे संकल्प में अंतर्विष्ट नहीं है जो कम से कम चौदह दिन की ऐसी लिखित सूचना के दिए जाने के बाद प्रस्तावित किया गया है जिस पर उस सदन की कुल सदस्य-संख्या के कम से कम एक-चौथाई सदस्यों ने हस्ताक्षर करके उस संकल्प को प्रस्तावित करने का अपना आशय प्रकट किया है; और

(ख) उस सदन की कुल सदस्य-संख्या के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा ऐसा संकल्प पारित नहीं किया गया है।

जब आरोप संसद् के किसी सदन द्वारा इस प्रकार लगाया गया है तब दूसरा सदन उस आरोप का अन्वेषण करेगा या कराएगा और ऐसे अन्वेषण में उपस्थित होने का तथा अपना प्रतिनिधित्व कराने का राष्ट्रपति को अधिकार होगा। इस प्रकार के आरोप के अन्वेषण के लिए संसद् के किसी सदन द्वारा नियुक्त अथवा नामनिर्दिष्ट किसी न्यायालय, अधिकरण अथवा निकाय द्वारा राष्ट्रपति के आचरण का पुनर्विलोकन कराया जा सकता है।

यदि अन्वेषण के परिणामस्वरूप यह घोषित करने वाला संकल्प कि राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाया गया आरोप सिद्ध हो गया है, आरोप का अन्वेषण करने या कराने वाले सदन की कुल सदस्य-संख्या के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित कर दिया जाता है तो ऐसे संकल्प का प्रभाव उसके इस प्रकार पारित किए जाने की तारीख से राष्ट्रपति को उनके पद से हटाना होगा।[22]

पद की शपथ

राष्ट्रपति द्वारा अपना पद ग्रहण करने से पहले उन्हें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उसकी अनुपस्थिति में उच्चतम न्यायालय के उपलब्ध वरिष्ठतम न्यायाधीश द्वारा संविधान के अनुच्छेद 60 में उल्लिखित प्ररूप के अनुसार संसद् भवन के केन्द्रीय कक्ष अथवा राष्ट्रपति भवन में पद की शपथ दिलाई जाती है।

राष्ट्रपति के रूप में पदग्रहण तथा कृत्यों का निर्वहन

संविधान में उपबंध किया गया है कि राष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग या पद से हटाए जाने या अन्य कारण से उसके पद में हुई रिक्ति की दशा में उपराष्ट्रपति उस तारीख तक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा जिस तारीख को ऐसी रिक्ति को भरने के लिए नया राष्ट्रपति अपना पदग्रहण करता है और निर्वाचन पद रिक्त होने की तारीख से छह महीने के भीतर किया जाना होगा।[23] संविधान में यह उपबंध भी किया गया है कि जब राष्ट्रपति अनुपस्थिति, बीमारी या अन्य किसी कारण से अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ हो तब उपराष्ट्रपति उस तारीख तक उसके कृत्यों का निर्वहन करेगा जिस तारीख को राष्ट्रपति अपने कर्त्तव्यों को फिर से संभालता है।[24] तथापि, संविधान में उन मामलों के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया है जहां राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति दोनों के पदों में रिक्ति हो जाती है या जहां राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा या उसके कृत्यों का निर्वहन कर रहा उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने या उसके कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ हो जाता है। अत: संविधान के द्वारा संसद् को ऐसे उपबंध बनाने की शक्ति प्रदान की गई है जिन्हें वह संविधान में उपबंधित न की गई किसी आकस्मिक स्थिति में राष्ट्रपति के कृत्यों के निर्वहन के लिए उपयुक्त समझे।[25] तदनुसार, संसद् ने राष्ट्रपति (कृत्यों का निर्वहन) अधिनियम, 1969 बनाया जिसके अधीन ऐसे मामलों में भारत का मुख्य न्यायमूर्ति या उसकी अनुपस्थिति में उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करेगा।

> उपराष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि, राष्ट्रपति डा. ज़ाकिर हुसैन के निधन के कारण राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे थे। जब उन्होंने 20 जुलाई, 1969 के पूर्वाह्न से उपराष्ट्रपति के पद से त्यागपत्र दे दिया तब भारत के मुख्य न्यायमूर्ति श्री एम. हिदायतुल्लाह ने उक्त तारीख के पूर्वाह्न से राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन किया।[26]

संसद् के संबंध में शक्तियां और कृत्य

संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को संसद् के संबंध में कई शक्तियां प्रदान की गई हैं। वह समय-समय पर संसद् के प्रत्येक सदन को आहूत करता है और समय-समय पर सदनों या किसी सदन का सत्रावसान कर सकता है और लोक सभा का विघटन कर सकता है।[27] राष्ट्रपति लोक सभा के लिए प्रत्येक साधारण निर्वाचन के बाद के प्रथम सत्र के आरंभ में और प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरंभ में एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों में अभिभाषण करता है और संसद् को उसके आह्वान के कारण बताता है।[28] उसे संसद् के किसी एक सदन में या एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण करने का भी अधिकार है। वह सदन में उस समय लंबित किसी विधेयक से संबंधित संदेश या कोई अन्य संदेश संसद् के किसी भी सदन को भेज सकता है।[29]

राष्ट्रपति कतिपय परिस्थितियों में राज्य सभा का अस्थाई सभापति[30] या लोक सभा का अस्थाई अध्यक्ष[31] नियुक्त करता है। संसद् के प्रत्येक सदन के सदस्य को अपना स्थान ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त व्यक्ति के समक्ष शपथ लेनी पड़ती है या प्रतिज्ञान करना पड़ता है।[32] राष्ट्रपति साहित्य, विज्ञान, कला और समाज-सेवा जैसे विषयों में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखने वाले बारह व्यक्तियों को राज्य सभा के लिए नामनिर्देशित करता है।[33] यदि राष्ट्रपति की यह राय हो कि लोक सभा में आंग्ल-भारतीय (ऐंग्लो-इंडियन) समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह लोक सभा में उस समुदाय के दो से अनधिक सदस्य नामनिर्देशित कर सकता है।[34] राष्ट्रपति अनुच्छेद 102 के अंतर्गत किसी संसद्-सदस्य के निरर्हता से ग्रस्त होने के प्रश्न का भी निर्णय करता है।[35]

धन विधेयक को छोड़कर किसी अन्य विधेयक पर दोनों सदनों के बीच असहमति होने पर राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक आहूत कर सकता है।[36] राष्ट्रपति ने राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष से परामर्श करने के पश्चात् (1) दोनों सदनों की संयुक्त बैठक से संबंधित और उनमें परस्पर संवाद से संबंधित[37] और (2) संसद् के प्रत्येक सदन के सचिवीय कर्मचारिवृन्द में भर्ती का और नियुक्त व्यक्तियों की सेवा का विनियमन करने वाले नियम बनाए हैं। तथापि, सचिवीय कर्मचारिवृन्द से संबंधित नियम संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन रहते हुए प्रभावी होते हैं।[38]

निम्नलिखित विषयों के संबंध में राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है: (1) वित्तीय मामलों के संबंध में विधेयकों का पुर:स्थापन और संशोधनों का उपस्थित किया जाना;[39] (2) नए राज्यों के गठन या विद्यमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों के परिवर्तन से संबंधित विधेयकों का पुर:स्थापन;[40] (3) ऐसे कराधान पर, जिसमें राज्य हितबद्ध हैं, प्रभाव डालने वाले विधेयक का पुन:स्थापन या संशोधन का उपस्थित किया जाना;[41] और (4) ऐसे विधेयक पर विचार करना जिसे अधिनियमित और प्रवर्तित किए जाने पर भारत की संचित निधि में से व्यय करना पड़े।[42]

जब कोई विधेयक संसद् के सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है तब वह राष्ट्रपति के समक्ष उपस्थित किया जाता है। राष्ट्रपति विधेयक पर अनुमति देता है या अनुमति रोक लेता है। यदि विधेयक धन विधेयक नहीं है तो वह उसे सदनों को इस संदेश के साथ लौटा सकता है कि वे विधेयक पर या उसके किन्हीं विनिर्दिष्ट उपबंधों पर पुनर्विचार करें और विशिष्टतया किन्हीं ऐसे संशोधनों के पुर:स्थापन पर विचार करें जिनकी उसने अपने संदेश में सिफारिश की है। जब विधेयक इस प्रकार लौटा दिया जाता है तब सदन विधेयक पर तदनुसार विचार करते हैं। यदि विधेयक सदनों द्वारा संशोधन सहित या उसके बिना फिर से पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति उस पर अनुमति नहीं रोक सकता है।[43] राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में संसद् के दोनों सदनों के समक्ष भारत सरकार के उस वर्ष के लिए प्राक्कलित प्राप्तियों और व्यय का विवरण (अर्थात् बजट)[44] और जब भी आवश्यक हो अनुपूरक और अतिरिक्त अनुदानों को दर्शाने वाला विवरण (और लोक सभा में अधिक अनुदानों को दर्शाने वाला विवरण)[45] रखवाता है। वह संवैधानिक कृत्य करने वाले अधिकारियों या निकायों जैसे भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक,[46] वित्त आयोग,[47] संघ लोक सेवा आयोग,[48] अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयुक्त,[49] पिछड़ा वर्ग आयोग[50] और भाषाई अल्पसंख्यक आयुक्त[51] के प्रतिवेदन भी संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखवाता है।

उस समय को छोड़कर जब संसद् के दोनों सदन सत्र में हों, यदि किसी समय राष्ट्रपति इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तुरंत कार्रवाई करना उनके लिए आवश्यक हो गया है तो वह ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है जो उसे उन परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत हों। इस प्रकार प्रख्यापित अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होता है जो संसद् के किसी अधिनियम का होता है और उसे संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखना आवश्यक होता है। किंतु वह संसद् के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर, या यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले दोनों सदन उसके निरनुमोदन का संकल्प पारित कर देते हैं तो इनमें से दूसरे संकल्प के पारित होने पर, प्रवर्तन में नहीं रहता है। राष्ट्रपति द्वारा उसे किसी भी समय वापस लिया जा सकता है।[52]

यदि राष्ट्रपति इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि गंभीर आपात विद्यमान है जिससे युद्ध या बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह से भारत या उसके राज्यक्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है[53] या किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र विफल हो गया है[54] या ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे भारत या उसके राज्यक्षेत्र के किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या साख संकट में है[55] तो वह इस आशय की उद्घोषणा करता है। ये उद्घोषणाएं संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखनी पड़ती हैं और उनके द्वारा उद्घोषणाओं का अनुमोदन न किए जाने पर वे प्रवर्तन में नहीं रहती हैं।

सभा में प्रक्रियागत प्रतिबंध

सभा में बोलते हुए सदस्यों को जिन नियमों का पालन करना होता है उनमें से एक नियम यह है कि किसी सदस्य को वाद-विवाद को प्रभावित करने के लिए राष्ट्रपति का नाम नहीं लेना चाहिए।[56] एक और नियम किसी सदस्य द्वारा उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों के आचरण पर आक्षेप करने का निषेध करता है। राष्ट्रपति उन व्यक्तियों में से एक है जिसके आचरण पर संविधान के अधीन समुचित शब्दावली वाले मौलिक प्रस्ताव पर अर्थात् महाभियोग द्वारा ही चर्चा की जा सकती है। एक नियम यह भी है कि कोई प्रश्न ऐसे व्यक्ति के चरित्र या आचरण पर आक्षेप नहीं करेगा जिसके आचरण को मौलिक प्रस्ताव पर ही चुनौती दी जा सकती है।

> वित्त विधेयक, 1970 पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने राष्ट्रपति के नाम का उल्लेख किया। उपसभाध्यक्ष ने टिप्पणी की कि राष्ट्रपति के आचरण पर चर्चा नहीं की जानी चाहिए। जब एक अन्य सदस्य ने राष्ट्रपति के पद और राष्ट्रपति की व्यक्तिगत हैसियत के बीच विभेद करने का प्रयास किया और यह कहा कि राष्ट्रपति की जो व्यक्तिगत हैसियत है उसके संबंध में उनकी आलोचना करने के लिए वह स्वतंत्र है तब उपसभाध्यक्ष ने अन्य बातों के साथ निर्णय दिया "...यदि मैं यह फैसला दूं कि जब तक कोई व्यक्ति वह पद धारण करता है तब तक वह व्यक्ति और उसका पद अलग-अलग है तो मैं समझता हूं कि यह बहुत खतरनाक पूर्वोदाहरण होगा। इसीलिए जब तक कोई व्यक्ति राष्ट्रपति के पद पर है तब तक हमें राष्ट्रपति का नाम लेकर उनके आचरण पर चर्चा नहीं करनी चाहिए।"[57]

अत: उपरोक्त नियमों का उद्देश्य राष्ट्रपति की संस्था को आदर और सम्मान देना है और राष्ट्रपति के पद को विवाद से परे रखना है।

तथापि, ऐसे कई उदाहरण हैं और कई अवसर आए हैं जब राज्य सभा में राष्ट्रपति से संबंधित मामले उठाए गए हैं और ऐसे अवसरों पर कभी-कभी संवैधानिक पहलुओं से संबंधित अथवा कभी राष्ट्रपति के पद या उसकी व्यक्तिगत हैसियत से संबंधित मामले उठाए गए हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने नवम्बर, 1960 में भारतीय विधि संस्थान में एक भाषण दिया था जिसमें उन्होंने वकीलों से कहा कि वे इसका वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करें कि भारत के राष्ट्रपति की शक्तियां और कृत्य ब्रिटेन के राजा या रानी की शक्तियों और कृत्यों से कहां तक और किन-किन मामलों में भिन्न-भिन्न हैं। एक सदस्य ने राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर हो रही चर्चा के दौरान बोलते हुए कहा कि राष्ट्रपति को ऐसे मामले को नहीं उठाना चाहिए था क्योंकि उससे अत्यंत गंभीर राजनैतिक विवादों के उत्पन्न होने की संभावना है। गृह मंत्री ने इस पर पूछा कि क्या सभा राष्ट्रपति द्वारा अन्यत्र दिए गए किसी वक्तव्य पर या राष्ट्रपति द्वारा उस रूप में किए गए किसी कार्य पर चर्चा कर सकती है। इस पर उपसभापति ने, जो उस समय पीठासीन थे, यह निर्णय दिया: "राष्ट्रपति ने अन्यत्र जो कुछ कहा है उससे हमारा सरोकार नहीं है और आप यहां उस पर चर्चा नहीं कर सकते और न कोई आक्षेप कर सकते हैं।"[58]

13 मार्च, 1987 को प्रात: दिल्ली से निकलने वाले एक समाचार-पत्र ने राष्ट्रपति द्वारा प्रधान मंत्री को लिखे गए पत्र का तात्पर्यित पाठ प्रकाशित किया। उस दिन सभापति ने विपक्ष के तीन सदस्यों को सभा में इस विषय का उल्लेख करने की अनुमति दी।[59] 17 मार्च, 1987 को इस मामले को पुन: उठाया गया और तब सभापति ने यह सूचना दी कि वे मामले का गहराई से अध्ययन करेंगे।[60] 20 मार्च, 1987 को सभापति ने विपक्ष के विभिन्न समूहों के नेताओं को अपने-अपने विचार व्यक्त करने की अनुमति दी और उसके बाद इस प्रश्न पर एक विस्तृत निर्णय दिया कि क्या राज्य के प्रमुख द्वारा सरकार के प्रमुख को किसी मामले पर लिखे गए या सरकार के प्रमुख द्वारा राज्य के प्रमुख को लिखे गए पत्रों या तात्पर्यित पत्र में कही गई बातों को संसद् के सदनों में उठाया जा सकता है। यह निर्णय देते हुए सभापति ने संविधान सभा के वाद-विवादों से उद्धरण दिए और उच्चतम न्यायालय के निर्णयों और लोक सभा में प्रचलित प्रथा का उल्लेख किया। सभापति ने "संविधान के सुस्पष्ट उपबंधों, पृष्ठभूमि और दर्शन को देखते हुए लोक सभा में इसी तरह की स्थिति को देखते हुए और इस संबंध में परंपराओं के विकास को देखते हुए इस मामले पर चर्चा कराने की सदस्यों की मांग को स्वीकार नहीं किया।"[61]

13 सितम्बर, 1991 को प्रश्नकाल के आरंभ में एक सदस्य ने इस बात का उल्लेख किया कि राष्ट्रपति ने राष्ट्रपति भवन में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के एक प्रतिनिधिमंडल से मिलने से इन्कार किया और यह भी कहा कि इस अपमान के कारण वे उस दिन संसद् के दोनों सदनों की कार्यवाही का बहिष्कार कर रहे हैं।[62] अगले दिन इस मामले को पुन: उठाया गया। यद्यपि कुछ विचार व्यक्त किए गए तथापि एक स्थिति ऐसी आई जब उपसभाध्यक्ष ने यह कहा, "हम राष्ट्रपति के बारे में चर्चा नहीं कर सकते...हमारी परंपरा यही है।"[63]

9 मई, 1984 को एक सदस्य ने 29 अप्रैल, 1984 के 'संडे ऑब्ज़र्वर' में तत्कालीन राष्ट्रपति के बारे में छपे "एक अत्यंत मानहानिकारक वक्तव्य" की ओर सभा का ध्यान दिलाया और मांग की कि राष्ट्र के अध्यक्ष को बदनाम करने के कारण उसके लेखक, मुद्रक और प्रकाशक के विरुद्ध कार्यवाही की जाए।

सभा के नेता ने अन्य बातों के साथ कहा: "हमें यह देखना होगा कि विद्यमान कानून के दायरे के भीतर क्या-क्या करना संभव है। यदि हम यह पाते हैं कि वह पर्याप्त नहीं है तो निश्चित रूप से इस उच्च पद की प्रतिष्ठा और गरिमा की रक्षा करने के लिए कुछ न कुछ करना पड़ेगा। यदि यह पाया गया कि वर्तमान कानूनी व्यवस्था पर्याप्त नहीं है तो हमें कानून बनाने और अधिनियम बनाने की भी बात सोचनी होगी।"[64] बाद में सदस्य ने पत्रिका के विरुद्ध विशेषाधिकार भंग की सूचना दी क्योंकि लेख में सदस्य के बारे में भी आपत्तिजनक बातें थीं। इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया और इस समिति का कहना था कि हालांकि संबंधित सदस्य का विशेषाधिकार भंग नहीं हुआ है: "लेखक ने राष्ट्रपति की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की अवमानना की है और उसे लांछित किया है। हर व्यक्ति को ऐसे कार्य की और ऐसे लेख की घोर निंदा करनी चाहिए।" समिति को इस संबंध में कोई संदेह नहीं था कि सरकार सभा के नेता के कथन के अनुसार लेखक आदि के विरुद्ध समुचित कार्यवाही अवश्य करेगी।[65]

एक राजनैतिक दल के किसी कार्यकर्ता द्वारा दिए गए कथित वक्तव्य के संदर्भ में राष्ट्रपति पर व्यक्तिगत आक्षेप का मामला सदन में एक बार फिर उठा। यह वक्तव्य एक समाचार पत्र में "ज़ैल पार्ट ऑफ ए प्लॉट टु डिस्टेबिलाइज गवर्नमेंट" (सरकार को अस्थिर करने के षड्यंत्र में ज़ैल शामिल है) शीर्षक के अंतर्गत

प्रकाशित हुआ था। सभापति ने इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपते हुए उसे यह निदेश दिया कि वह अन्य बातों के साथ विशेष रूप से यह जांच करे कि क्या यह मामला संविधान के अनुच्छेद 79 के दायरे में आता है और यह बताए कि क्या राष्ट्रपति पर किए आक्षेप संसद् की संस्था की प्रतिष्ठा को गिराने वाले कहे जा सकते हैं और क्या कथित टिप्पणियां प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संसद् की संस्था को बदनाम करती हैं और सदन के विशेषाधिकार को भंग करती हैं। समिति ने इस मामले पर ब्रिटेन, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया के बारे में सूचना प्राप्त की और महान्यायवादी की राय भी ली। महान्यायवादी की राय थी कि संविधान के अनुच्छेद 105(3) की शब्दावली के अनुसार विशेषाधिकार इस रूप में संसद् को प्रदान नहीं किए गए हैं बल्कि वे सिर्फ संसद् के प्रत्येक सदन को, सदन के सदस्यों को और प्रत्येक सदन की समितियों को प्रदान किए गए हैं। संसद् के घटक के रूप में राष्ट्रपति को इस प्रकार कोई शक्तियां, विशेषाधिकार या उन्मुक्तियां प्रदान नहीं की गई हैं। तथापि, समिति ने उन मुद्दों पर कोई राय नहीं दी जो उसे सौंपे गए थे। चूंकि इस मामले को समिति को सौंपे हुए चार वर्ष हो चुके थे और इन चार वर्षों में परिस्थितियां बदल गई थीं इसलिए समिति ने सिफारिश की कि मामले को समाप्त समझा जाए।[66]

अभिभाषण के दौरान व्यवधान

18 फरवरी, 1963 को राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान राज्य सभा के एक सदस्य ने व्यवधान उत्पन्न किया और वह केन्द्रीय कक्ष से बाहर चले गए। अगले दिन सदन के सभी सदस्यों ने इस घटना पर खेद प्रकट किया और उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि सदन की भावनाओं को राष्ट्रपति तक पहुंचा दिया जाए और सभापति द्वारा ऐसा किया गया। सभापति को लिखे गए एक पत्र में राष्ट्रपति ने भी राज्य सभा द्वारा अभिव्यक्त की गयी भावनाओं की सराहना की।[67] इस विशेष घटना पर विचार करते हुए, श्री जवाहरलाल नेहरू ने मुख्य मंत्रियों को लिखे अपने एक पत्र में लिखा:

> "यह घटना संसद् में अपनी तरह की पहली घटना है और इसकी अवधि मात्र दो या तीन मिनट या उससे भी कम थी। तथापि, यह बहुत ही खेदजनक घटना थी। लगता है कि खासकर सोशलिस्ट पार्टी संसद् में दिक्कतें पैदा करने पर तुली हुई है और इस प्रकार लोकतांत्रिक संसदीय प्रक्रिया की पूरी व्यवस्था को ही बदनाम कर रही है।"[68]

23 मार्च, 1971 को पुन: राज्य सभा के तीन सदस्यों ने राष्ट्रपति के अभिभाषण के बीच व्यवधान उत्पन्न किया। 7 अप्रैल, 1971 को राज्य सभा ने एक प्रस्ताव पर विचार किया जिसमें संबंधित सदस्यों के "अवांछनीय, अमर्यादित और अशोभनीय आचरण" की निन्दा की गई थी। तथापि, चर्चा अधूरी ही रही और वह पुन: आरंभ नहीं हुई।[69]

सदनों के पारस्परिक संबंध

संविधान में परिकल्पना की गई है कि दोनों सदनों की हैसियत और स्थिति समान है। दोनों सदनों को उन क्षेत्रों के अंतर्गत कार्य करना होता है जो संविधान के अधीन उनके लिए नियत किए गए हैं। जहां लोक सभा को कतिपय मामलों में कतिपय विशेष शक्तियां दी गई हैं वहीं राज्य सभा को भी कतिपय प्रकार की विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं। लोक सभा के पास तीन विशेष शक्तियां हैं जो सिर्फ उसी को प्राप्त हैं, और वे इस प्रकार हैं कि मंत्रि-परिषद् लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है,[70] अनुदानों की मांगें लोक सभा के समक्ष रखी जाती हैं और लोक सभा को यह शक्ति है कि वह किसी मांग को अनुमति दे या अनुमति देने से इंकार कर दे अथवा किसी मांग को, उसमें विनिर्दिष्ट रकम को कम करके, अनुमति दे[71] और

कोई धन संबंधी विधेयक या धन संबंधी खंडों वाला वित्तीय विधेयक राज्य सभा में पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता या दूसरे शब्दों में ऐसा विधेयक केवल लोक सभा में ही पुर:स्थापित किया जा सकता है।[72]

राज्य सभा के पास भी तीन विशेष शक्तियां हैं जो सिर्फ उसी को प्राप्त हैं। ये शक्तियां संविधान के अनुच्छेद 249, 312, 352, 356 और 360 में निहित हैं। अनुच्छेद 249 के अधीन, राज्य सभा उपस्थित और मत देने वाले कम-से-कम दो तिहाई सदस्यों के बहुमत से यह संकल्प पारित कर सकती है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि संसद् राज्य सूची में उल्लिखित किसी भी विषय के संबंध में कानून बनाए। इसी प्रकार, यदि राज्य सभा अनुच्छेद 312 के अधीन, संघ और राज्यों के लिए समान, एक अथवा एक से अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन हेतु संकल्प पारित करती है तो संसद् को कानून द्वारा ऐसी सेवाओं के सृजन की शक्ति प्राप्त है। अनुच्छेद 352, 356 और 360 के अधीन, राज्य सभा उस समय उद्घोषणाओं का आरंभ में अनुमोदन कर सकती है अथवा बाद में उनकी अवधि बढ़ा सकती है जब लोक सभा भंग हो अथवा लोक सभा का विघटन उद्घोषणा के अनुमोदन हेतु निर्धारित अवधि के बीच में हो गया हो।

इन मामलों को छोड़कर दोनों सदनों के बीच पूर्ण समानता है। संविधान के उपबंधों के अनुसार अनेक पत्रों को दोनों सदनों के सभापटल पर रखना आवश्यक है। इनमें से विशेष रूप से उल्लेखनीय पत्र इस प्रकार हैं: बजट, अनुदानों की अनुपूरक मांगें, राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए अध्यादेश और उद्घोषणाएं और भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक, वित्त आयोग, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त, पिछड़ा वर्ग आयोग, भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के आयुक्त जैसे संवैधानिक अधिकारियों और आयोगों के प्रतिवेदन।[73] दोनों सदन राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन, राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने तथा उपराष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय अथवा किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के मामलों में भी भाग लेते हैं।[74]

इसके अतिरिक्त दोनों सदनों के पारस्परिक संबंधों को निर्धारित करने वाले नियम राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 118(3) के अनुसरण में राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष से परामर्श करने के पश्चात् बनाए जाते हैं। ये नियम दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों और उनमें परस्पर संवाद की प्रक्रिया के संबंध में होते हैं।[75]

दोनों सदनों के बीच संवाद

सदनों के बीच संवाद एक सदन से दूसरे सदन को एक लिखित संदेश द्वारा होता है जिस पर महासचिव के हस्ताक्षर होते हैं। यदि सदन का सत्र चल रहा हो तो संबंधित महासचिव संदेश के प्राप्त होने के बाद प्रथम सुविधाजनक अवसर पर सदन को उसकी सूचना देता है। यदि सदन का सत्र नहीं चल रहा हो, तो संसदीय समाचार (बुलेटिन) में एक पैरा द्वारा सदस्यों को संदेश के बारे में सूचित किया जाता है। संदेश की विषय-वस्तु पर प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के अनुसार कार्यवाही की जाती है।[76]

संदेशों की सूचना देने के अवसर विधेयकों, प्रस्तावों और संकल्पों के संबंध में उत्पन्न होते हैं। विधेयकों के सबंध में राज्य सभा द्वारा निम्नलिखित स्थितियों में लोक सभा को संदेश भेजे जाते हैं:

(1) राज्य सभा में पुर:स्थापित और पारित विधेयक लोक सभा को उसकी सहमति के लिए भेजा जाता है।[77]

(2) लोक सभा को उसकी सहमति के लिए भेजा गया विधेयक संशोधन के साथ राज्य सभा को लौटा दिया जाता है और राज्य सभा संशोधन को स्वीकार करती है या नहीं करती है या आगे और संशोधन करने का या वैकल्पिक संशोधन का प्रस्ताव करती है।[78]

(3) लोक सभा में आरंभ हुए और पारित हुए और राज्य सभा को भेजे गए विधेयक को राज्य सभा संशोधन के बिना या संशोधन सहित पारित करती है।[79]

(4) लोक सभा द्वारा पारित किसी विधेयक को राज्य सभा संशोधन सहित उस सदन को लौटा देती है और लोक सभा राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधन से सहमत नहीं होती या और संशोधन करने का प्रस्ताव करती है और राज्य सभा लोक सभा में मूलत: पारित रूप में विधेयक पर सहमत हो जाती है या लोक सभा द्वारा और संशोधित रूप में विधेयक पर सहमत हो जाती है या ऐसे संशोधन या संशोधनों के लिए आग्रह करती है जिस पर या जिन पर लोक सभा सहमत नहीं है।[80]

(5) लोक सभा द्वारा पारित किसी धन विधेयक को कोई संशोधन किए बिना या संशोधनों की सिफारिश सहित उस सदन को लौटा दिया जाता है।[81]

निम्नलिखित प्रकार के प्रस्तावों और संकल्पों संबंधी संदेश भी दूसरे सदन में भेजे जाते हैं:

(1) लोक सभा द्वारा पारित और राज्य सभा में लंबित विधेयक को वापस लिए जाने हेतु प्रस्ताव।[82]

(2) किसी विधेयक को सभाओं की संयुक्त समिति को सौंपने वाला प्रस्ताव जो समिति में सेवा के लिए लोक सभा के सदस्यों के नामों पर सहमति और उन नामों की सूचना देने के लिए हो।[83]

(3) संयुक्त समिति के प्रतिवेदन को प्रस्तुत करने के लिए समय बढ़ाने की सूचना देने वाला प्रस्ताव।[84]

(4) संयुक्त समिति में कार्य कर रहे लोक सभा सदस्यों की मृत्यु, पदत्याग या अन्यथा होने वाली रिक्तियों को भरने के लिए लोक सभा से सदस्यों को नियुक्त करने का अनुरोध करने वाला प्रस्ताव।

(5) लोक लेखा समिति, सार्वजनिक उपक्रमों संबंधी समिति, रेलवे अभिसमय समिति और अन्य संयुक्त संसदीय समितियों में कार्य करने के लिए राज्य सभा के सदस्यों के नाम भेजना।

(6) किसी नियम, विनियम (कानूनी लिखत) आदि में किए गए संशोधन जिस पर लोक सभा की सहमति चाहिए।

(7) राष्ट्रपति के शासन के अधीन किसी राज्य के संबंध में राज्य विधान-मंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम के अधीन बनाए गए "राष्ट्रपति के अधिनियम" में संशोधन करने वाला संकल्प, जिस पर लोक सभा की सहमति चाहिए।

सदनों की संयुक्त बैठक

भारत के संविधान में धन विधेयक या संविधान संशोधन विधेयक से भिन्न किसी विधेयक के संबंध में दोनों सदनों के बीच असहमति होने पर उसके समाधान की परिकल्पना की गई है। धन विधेयक के संबंध में राज्य सभा की शक्तियां लोक सभा द्वारा पारित विधेयक को सिर्फ 14 दिन की अवधि तक अपने पास रखने या विलंबित करने और विधेयक में ऐसा संशोधन या ऐसे संशोधन करने तक ही सीमित है जिसे या जिन्हें लोक सभा द्वारा स्वीकार किया जा सकता है या नहीं भी किया जा सकता है। संविधान संशोधन विधेयक के मामले में यदि दोनों सदन अनुच्छेद 368 के अनुसार समान शब्दावली में उसे पारित नहीं करते तो विधेयक समाप्त हो जाता है।

जब धन विधेयक या संविधान संशोधन विधेयक से भिन्न विधेयक एक सदन द्वारा पारित कर दिया जाता है और दूसरे सदन द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है या विधेयक में किए जाने वाले संशोधनों के बारे में दोनों सदन अंतिम रूप से असहमत हो जाते हैं या दूसरे सदन को विधेयक प्राप्त होने की तारीख से उसके द्वारा विधेयक पारित किए बिना छह मास से अधिक बीत जाते हैं तो उस दशा के सिवाय जिसमें लोक सभा का विघटन होने के कारण विधेयक व्यपगत हो गया है, राष्ट्रपति विधेयक पर विचार-विमर्श करने और मत देने के प्रयोजन के लिए सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के आशय की सूचना, यदि वे बैठक में हैं तो संदेश द्वारा या यदि वे बैठक में नहीं हैं तो लोक अधिसूचना द्वारा देता है।[85]

जब राष्ट्रपति सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की सूचना देता है तो कोई भी सदन विधेयक पर आगे कार्यवाही नहीं करेगा और राष्ट्रपति तत्पश्चात् सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आदेश जारी कर सकेगा।[86] सदनों की संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की राष्ट्रपति की सूचना के पश्चात् लोक सभा का विघटन बीच में हो जाने पर भी संयुक्त बैठक हो सकेगी और उसमें विधेयक पारित हो सकेगा।[87]

लोक सभा का महासचिव संयुक्त बैठक के महासचिव के रूप में कार्य करता है और लोक सभा और राज्य सभा के प्रत्येक सदस्य को आमन्त्रण-पत्र जारी करता है जिसमें संयुक्त बैठक के लिए राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित समय और स्थान विनिर्दिष्ट होता है।[88] लोक सभा का अध्यक्ष और उसकी अनुपस्थिति में लोक सभा का उपाध्यक्ष और यदि वह भी अनुपस्थित हो तो राज्य सभा का उपसभापति और यदि वह भी अनुपस्थित हो तो अन्य ऐसा व्यक्ति, जो बैठक में उपस्थित सदस्यों द्वारा अवधारित किया जाए, संयुक्त बैठक का सभापतित्व करता है।[89] संयुक्त बैठक में लोक सभा की प्रक्रिया ऐसे परिवर्तनों और रूपभेदों के साथ लागू होती है जिन्हें अध्यक्ष आवश्यक या समुचित समझे। अध्यक्ष इसका भी निर्धारण करता है कि संयुक्त बैठक किस दिन किस समय तक के लिए स्थगित की जाएगी। संयुक्त बैठक की गणपूर्ति दोनों सदनों की कुल सदस्य-संख्या की एक-दहाई से होती है।[90]

यदि संयुक्त बैठक में उसे सौंपा गया विधेयक ऐसे संशोधनों सहित, यदि कोई हों, जिन पर संयुक्त बैठक में सहमति हो जाती है, दोनों सदनों के उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की कुल संख्या के बहुमत द्वारा पारित हो जाता है तो संविधान के प्रयोजनों के लिए वह दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया समझा जाता है। किसी संयुक्त बैठक में ऐसे संशोधनों से भिन्न (यदि कोई हों), जो विधेयक के पारित होने में देरी के कारण आवश्यक हो गए हैं, विधेयक में किसी और संशोधन का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता और ऐसे अन्य संशोधनों का, जो उन विषयों से सुसंगत हैं जिन पर सदनों में सहमति नहीं हुई है, प्रस्ताव किया जा सकेगा। पीठासीन व्यक्ति का इस बारे में निर्णय अंतिम होता है कि कौन-से संशोधन ग्राह्य हैं।[91] संयुक्त बैठक में अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति प्रथमत: मत नहीं देगा किंतु मत बराबर होने की दशा में उसका निर्णायक मत होगा और वह उसका प्रयोग करेगा।[92]

अब तक हुई संयुक्त बैठकें

संयुक्त बैठक के लिए पहला अवसर तब आया जब दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1959 में किए जाने वाले कतिपय संशोधनों के संबंध में दोनों सदनों के बीच सहमति नहीं हुई। राज्य सभा ने लोक सभा द्वारा यथापारित विधेयक में निम्नलिखित तीन संशोधन किए:

(1) विधेयक के खंड 2 में दहेज की परिभाषा इस प्रकार थी: "कोई संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति जो विवाह के एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को या दोनों में से किसी पक्ष के माता-पिता द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दोनों पक्षों में से किसी को विवाह पर या उसके पूर्व या बाद में किसी अन्य व्यक्ति को विवाह के लिए प्रतिफल के रूप में दी गई हो या जिसे देने के लिए करार हो गया हो।" राज्य सभा ने इस परिभाषा में "प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से" शब्दों को जोड़ दिया जिससे दहेज का अर्थ अन्य बातों के साथ इस प्रकार हो गया। "कोई संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति जो... विवाह के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिफल के रूप में दी गई हो या जिसे देने के लिए करार हो गया हो।"

(2) दूसरे संशोधन द्वारा राज्य सभा ने खंड 2 के स्पष्टीकरण 1 को हटा दिया जिसमें घोषणा की गई थी कि विवाह के समय पर नकदी, आभूषण आदि के रूप में दिए गए किन्हीं उपहारों को, जब तक वे विवाह का प्रतिफल न बनाए गए हों, दहेज नहीं समझा जाएगा।

(3) विधेयक के खंड 4 में छह महीने तक के कारावास का दंड या पांच हजार रुपए तक के जुर्माने या दोनों का उपबंध था। राज्य सभा के संशोधन द्वारा इस खंड को हटा दिया गया था।[93]

लोक सभा ने इन संशोधनों पर विचार किया किंतु वह इनमें से किसी संशोधन पर सहमत नहीं हुई[94] और उसने तदनुसार राज्य सभा को एक संदेश भेजा।[95] लोक सभा ने विधेयक को लौटाते हुए विधेयक के अधिनियमन सूत्र और खंड 1 में औपचारिक परिवर्तन भी किए और उन पर राज्य सभा की सहमति के लिए अनुरोध किया।

राज्य सभा ने अपने संशोधनों पर पुनर्विचार किया और लोक सभा द्वारा किए गए औपचारिक संशोधनों पर विचार किया।[96] संशोधनों पर विचार के प्रस्ताव के स्वीकृत होने के बाद विधि मंत्री ने प्रस्ताव किया कि सदन खंड 2 और 4 के संशोधनों पर आग्रह नहीं करता (तीनों संशोधनों के बारे में तीन अलग-अलग प्रस्ताव उपस्थित किए गए) और वह लोक सभा द्वारा किए गए दो संशोधनों से सहमत है। यद्यपि संशोधनों से संबंधित प्रस्ताव अस्वीकृत हो गए तथापि लोक सभा के औपचारिक संशोधनों से संबंधित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।[97]

तदनुसार लोक सभा को दो संदेश भेजे गए। पहले संदेश में यह सूचित किया गया था कि राज्य सभा लोक सभा द्वारा किए गए संशोधनों से सहमत है और दूसरे में यह सूचित किया गया था कि राज्य सभा ने उसके द्वारा किए गए संशोधनों पर, जिनसे लोक सभा सहमत नहीं हुई थी, आग्रह किया है।[98] इस प्रकार यह समझा गया कि दोनों सदन संशोधनों पर अंतिम रूप से असहमत हो गए हैं[99] जिससे अनुच्छेद 108 के उपबंध के अनुसार कार्यवाही आवश्यक हो गई है।

अत: राष्ट्रपति ने विधेयक पर विचार-विमर्श करने और मतदान करने के प्रयोजन के लिए राज्य सभा और लोक सभा को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की सूचना दी। सभापति ने राष्ट्रपति का संदेश सदन तक पहुंचाया।[100] तदनुसार 6 और 9 मई, 1961 को संसद् के केन्द्रीय कक्ष में संयुक्त बैठकें हुईं और 9 मई को विधेयक इस प्रकार पारित किया गया कि खंड 2 के संशोधन (अर्थात् दहेज की परिभाषा में "प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से" शब्दों का अंत:स्थापन) को स्वीकार कर लिया गया और उसी खंड में उसके स्पष्टीकरण को हटा देने संबंधी संशोधन अस्वीकृत हो गया। खंड 4 का लोप कर दिए जाने से संबंधित तीसरे संशोधन पर संयुक्त बैठक में सहमति नहीं हुई किंतु इस खंड में यह परंतुक जोड़ दिया गया कि राज्य सरकार या उसके विनिर्दिष्ट प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के बिना न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान नहीं कर सकेंगे। औपचारिक संशोधनों को भी स्वीकार किया गया और यथासंशोधित विधेयक पारित किया गया।[101]

दूसरा अवसर तब आया जब राज्य सभा ने बैंककारी सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1977 को अस्वीकार कर दिया। 8 दिसंबर, 1977 को राज्य सभा में लोक सभा द्वारा यथासंशोधित विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया और इस आशय का एक संदेश लोक सभा को भेजा गया। राष्ट्रपति ने विधेयक पर विचार-विमर्श करने और मतदान करने के प्रयोजन के लिए राज्य सभा और लोक सभा को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की सूचना दी, सभापति ने सदन को राष्ट्रपति के इस संदेश की सूचना दी।[102] तदनुसार, 16 मई, 1978 को संसद् के केन्द्रीय कक्ष में एक संयुक्त बैठक हुई और उसमें यथासंशोधित विधेयक पारित हुआ।[103]

तीसरा अवसर तब आया जब राज्य सभा ने 21 मार्च, 2002[104] की अपनी बैठक में एक सदस्य द्वारा उपस्थित किए गए परिनियत संकल्प को गृहीत किया जिसमें 30 दिसंबर, 2001 को राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित आतंकवाद निवारण (दूसरा) अध्यादेश, 2001 का निरनुमोदन किया गया है और गृह मंत्री द्वारा उपस्थित किए गए तथा लोक सभा द्वारा यथापारित आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002 पर विचार करने का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। राज्य सभा द्वारा विधेयक अस्वीकार कर दिए जाने के पश्चात् इस आशय का संदेश लोक सभा को भेज दिया।

विधेयक के लोक सभा द्वारा पारित होने और राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत होने के कारण संविधान के अनुच्छेद 108 के खंड (क) का उपबंध लागू हुआ। राष्ट्रपति ने विधेयक पर विचार-विमर्श करने और मतदान करने के प्रयोजनार्थ राज्य सभा और लोक सभा की संयुक्त बैठक आहूत करने के अपने आशय की अधिसूचना जारी की जिसकी सूचना राज्य सभा को संसदीय कार्य मंत्री द्वारा दी गई।

सभापति ने 22 मार्च, 2002[105] को राष्ट्रपति के संदेश की घोषणा सभा में की। तदनुसार, 26 मार्च, 2002 को संसद् के केन्द्रीय कक्ष में दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक हुई और विधेयक, लोक सभा द्वारा पारित रूप में, पारित किया गया।

जैसाकि अनुच्छेद 108 की शब्दावली से पता चलता है, संयुक्त बैठक बुलाने का उपबंध केवल एक समर्थकारी उपबंध है जो राष्ट्रपति को सदनों के बीच विधायी गतिरोध को दूर करने के लिए कदम उठाने की शक्ति प्रदान करता है। राष्ट्रपति उक्त उपबंध का प्रयोग करने के लिए बाध्य नहीं है। इसके अलावा यह उपबंध दूसरे सदन को किसी विधेयक को छह महीने व्यतीत होने के बाद पारित करने से नहीं रोकता बशर्ते वह लोक सभा के विघटन के कारण व्यपगत नहीं हुआ हो या राष्ट्रपति संयुक्त बैठक बुलाने के अपने आशय की सूचना न दे चुका हो। ऐसे उदाहरण हैं जब संसद् के किसी सदन ने आरंभकर्ता सदन से विधेयक प्राप्त होने के छह महीने बाद विधेयक को पारित किया। ऐसे विधेयकों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

> लोक प्रतिनिधित्व (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1964 (27 नवम्बर, 1964 को लोक सभा द्वारा और 2 सितम्बर, 1965 को राज्य सभा द्वारा पारित); भांडागारण निगम (अनुपूरक) विधेयक, 1964 (27 नवम्बर, 1964 को लोक सभा द्वारा और 6 सितम्बर, 1965 को राज्य सभा द्वारा पारित); वास्तुविद् (संशोधन) विधेयक, 1980 (3 दिसंबर, 1980 को राज्य सभा द्वारा और 29 अप्रैल, 1982 को लोक सभा द्वारा पारित); विक्रय संवर्द्धन कर्मचारी (सेवा की शर्तें) संशोधन विधेयक, 1980 (11 दिसंबर, 1980 को राज्य सभा द्वारा और 16 अक्तूबर, 1982 को लोक सभा द्वारा पारित); विशेष न्यायालय (निरसन) विधेयक, 1980 (19 अगस्त, 1981 को राज्य सभा द्वारा और 29 जुलाई, 1982 को लोक सभा द्वारा पारित); गोदी कर्मकार (सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण) विधेयक, 1986 (2 दिसंबर, 1985 को लोक सभा द्वारा और 10 नवम्बर, 1986 को राज्य सभा द्वारा पारित); निरसन और संशोधन विधेयक, 1986 (28 जुलाई, 1986 को राज्य सभा द्वारा और 23 फरवरी, 1988 को लोक सभा द्वारा पारित); भ्रष्टाचार निवारण विधेयक, 1987 (7 मई, 1987 को लोक सभा द्वारा और 11 अगस्त, 1988 को राज्य सभा द्वारा पारित); राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (संशोधन) विधेयक, 2012 (19 अगस्त, 2011 को लोक सभा द्वारा और 30 अप्रैल, 2012 को राज्य सभा द्वारा पारित)। राज्य सभा द्वारा किए गए औपचारिक संशोधनों पर लोक सभा 11 मई, 2012 को सहमत हुई; और प्रौद्योगिकी संस्थान (संशोधन) विधेयक, 2012 (24 मार्च, 2011 को लोक सभा द्वारा पारित तथा 30 अप्रैल, 2012 को राज्य सभा द्वारा पारित। राज्य सभा द्वारा किए गए औपचारिक संशोधनों पर लोक सभा 11 मई, 2012 को सहमत हुई)।

प्रथा और प्रक्रिया द्वारा पारस्परिक संबंध

संवैधानिक उपबंधों के अलावा, दोनों सदनों के बीच स्वस्थ और निर्बाध संबंधों के विकास में प्रक्रिया विषयक नियमों का भी योगदान है।

उदाहरण के लिए इनमें से एक नियम जिसका किसी सदस्य को सदन में बोलते हुए पालन करना पड़ता है यह है कि उसे दूसरे सदन के कार्य-संचालन और कार्यवाहियों के बारे में (और अपने ही सदन के कार्य-संचालन और कार्यवाहियों के बारे में भी) अपमानजनक शब्दावली का प्रयोग नहीं करना चाहिए।[106]

> अगस्त 1977 में जब लोक सभा ने वित्त विधेयक में एक संशोधन के लिए राज्य सभा द्वारा की गई सिफारिश को अस्वीकार कर दिया[107] तब एक सदस्य ने लोक सभा के रवैये की आलोचना करने के लिए कुछ तीखे शब्दों का प्रयोग किया किंतु उसने शुरू में ही यह कहकर लोक सभा की गरिमा के बारे में सावधानी बरती: "....हम इस तथ्य को पूरी तरह से जानते हैं कि संविधान वित्त विधेयकों या धन विधेयकों के संबंध में लोक सभा को, जो प्रत्यक्ष रूप से चुना गया निकाय है, एक विशेष हैसियत प्रदान करता है। श्रीमन्,

इसलिए मैं इस संबंध में जो कुछ कह रहा हूं उससे सामूहिक रूप से लोक सभा के सदस्यों की बात तो दरकिनार, लोक सभा या उसकी प्रतिष्ठा और गरिमा पर किसी तरह से कोई आंच नहीं पहुंचती।[108]

सभा में एक लंबी परंपरा यह भी रही है कि दूसरी सभा की किसी घटना का उल्लेख न किया जाए अथवा यहां तक कि दूसरी सभा की कार्यवाही को भी उद्धृत न किया जाए। तथापि, सभा में इस संबंध में कुछ परिवर्तन भी हुआ है:

एक अवसर पर, एक सदस्य ने संसद अधिकारी वेतन और भत्ता विधेयक, 1953 पर बोलते हुए लोक सभा में दिए गए भाषणों को कई बार उद्धृत किया। उपसभाध्यक्ष ने टिप्पणी की:

बेहतर होगा कि आप अन्य सभा में दिए गए भाषणों का हवाला न दें, वरन् उन पर अपनी समुक्ति दें...यही सामान्य परिपाटी है। आप इसका अपने शब्दों में वर्णन करें।[109]

एक और ऐसा अवसर आया जब एक सदस्य स्वीडन की बोफोर्स कंपनी से तोपों की खरीद पर अल्पकालिक चर्चा पर अपना भाषण दे रहे थे, तो उन्होंने विगत दिवस लोक सभा में जो हुआ उसका हवाला दिया।

सभापति ने सदस्य को अन्य सभा में जो हुआ उसका हवाला देने से अनुमति नहीं प्रदान करते हुए टिप्पणी की:

मैं सदस्य को बताना चाहता हूं कि आप इस सभा में नीति इत्यादि के बिंदुओं के अतिरिक्त अन्य सभा में जो हुआ उसकी चर्चा न करें।[110]

एक अन्य नियम में यह उपबंध किया गया है कि किसी सदस्य द्वारा दूसरे सदन के किसी सदस्य के विरुद्ध ऐसा कोई आरोप नहीं लगाया जाना चाहिए जो मानहानिकारक हो या अभियोगात्मक हो।[111] यह परंपरा भी है कि किसी सदन के किसी सदस्य का नाम लेकर दूसरे सदन में उसकी आलोचना नहीं की जानी चाहिए और इस बारे में पूरी सावधानी बरती जानी चाहिए कि दूसरे सदन के सदस्य के बारे में कोई टीका-टिप्पणी नहीं की जाए।

एक बार, एक सदस्य ने लोक सभा के किसी सदस्य के विरुद्ध कतिपय आरोप लगाए। सभापति ने आरोप लगाने वाले सदस्य से कहा कि वह अपने आरोपों को प्रमाणित करे। इसके बाद सभापति ने मामले को समाप्त करते हुए अन्य बातों के साथ यह भी कहा: "...जो सदस्य अपने आरोपों को सिद्ध करने की स्थिति में नहीं हैं उन्हें ऐसे वक्तव्य नहीं देने चाहिए...आरोपों और प्रत्यारोपों से संसद् की गरिमा को ठेस पहुंचती है...मैं यह भी कहना चाहूंगा कि यह एक अच्छा नियम होगा कि एक सदन के सदस्य दूसरे सदन के सदस्यों के विरुद्ध अपने सदन में आरोप लगाने के लिए भाषण की स्वतंत्रता के अधिकार का उपयोग नहीं करेंगे।"[112]

एक सदस्य ने विनियोग विधेयक, 1970 पर हो रही चर्चा में भाग लेने के दौरान लोक सभा के कतिपय सदस्यों के नाम लिए और आरोप लगाया कि ऐसी अफवाहें हैं कि ये सदस्य संसद् के सदस्यों को खरीदने का प्रयास कर रहे हैं।[113] अगले दिन जब मामला पुन: उठाया गया तो उपसभापति ने यह संबंधित सदस्य पर छोड़ दिया कि वह अपनी आपत्तिजनक टिप्पणियों को वापस ले। उपसभापति ने यह भी कहा कि यदि वह अपनी टिप्पणियों को वापस नहीं लेंगे और आरोप सही नहीं होंगे तो किसी भी सदस्य को यह आजादी है कि वह सभा के प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों के अनुसार अगला कदम उठाए।[114] जब तीसरे दिन भी मामले को उठाया गया तब उपसभापति ने कहा कि संबंधित सदस्य ने जो टिप्पणियां की हैं वे अनुचित हैं।[115] लोक सभा में भी यह मामला उठा।[116] इसके बाद लोक सभा के अध्यक्ष ने इस मामले की ओर ध्यान दिलाते हुए सभापति को एक पत्र लिखा जिसमें अन्य बातों के साथ यह कहा गया था: "आप इस बात से सहमत होंगे कि किसी सदन के सदस्यों के लिए वह वांछनीय नहीं है कि वे अपने सदन में दूसरे सदन के सदस्यों पर आरोप लगाएं या उन पर आक्षेप करें।" अपने उत्तर में सभापति ने अध्यक्ष के

साथ सहमति प्रकट की और उन्हें सूचित किया कि उपसभापति यह टिप्पणी कर चुके हैं कि सदस्य ने आरोप लगाकर अनुचित कार्य किया है।[117]

एक और ऐसा अवसर आया जब राज्य सभा के द्विवार्षिक चुनावों में धनबल के प्रयोग के गंभीर आरोपों से संबंधित ध्यानाकर्षण पर हो रही चर्चा के दौरान एक सदस्य ने दूसरे सदन के सदस्य के नाम का उल्लेख किया। इस पर सभापति ने टिप्पणी की:

"... यह उचित नहीं है कि उन लोगों का नाम लिया जाए जो यहां पर अपना बचाव करने के लिए उपस्थित नहीं हैं। विशेषत: उन व्यक्तियों के प्रति यह न्यायोचित नहीं है जो दूसरे सदन के सदस्य हैं।... उन पर आक्षेप करना उचित नहीं है।"

सभापति ने यह सूचना भी दी कि उन्हें अध्यक्ष से एक पत्र प्राप्त हुआ है। अत: सभापति ने सदस्यों से आग्रह किया कि दूसरे सदन के सदस्यों के नाम इस तरह से न लिए जाएं जिससे कटुता पैदा हो या उन पर किसी तरह कोई आक्षेप हो।[118]

एक अन्य अवसर पर राज्य सभा के एक सदस्य ने लोक सभा में किसी विधेयक के विरुद्ध मतदान के संबंध में सदस्यों को रिश्वत देने का आरोप लगाते हुए सदन में कुछ टिप्पणियां कीं।[119] यह मामला लोक सभा में उठाया गया।[120] अध्यक्ष ने इस संबंध में सभापति को एक पत्र लिखा। अध्यक्ष के पत्र के उत्तर में सभापति ने अन्य बातों के साथ निम्नलिखित टिप्पणी की:

"मेरा हमेशा से यह मत रहा है कि सदन के सदस्यों को सदन के भीतर या बाहर दूसरे सदन के सदस्यों पर आरोप नहीं लगाने चाहिए और आक्षेप नहीं करने चाहिए। राज्य सभा में सभापीठ ने किसी भी सदस्य के ऐसे आचरण को हमेशा अनुचित बताया है।"[121]

कोई सदस्य दूसरे सदन में हुए वाद-विवाद का हवाला नहीं दे सकेगा।[122] विशेष रूप से, राज्य सभा के सदस्यों को लोक सभा में हुए वाद-विवाद का आलोचनात्मक संदर्भ देने से बचना चाहिए।

जब किसी सदस्य ने अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के संबंध में प्रस्ताव पर बोलते समय लोक सभा में इस विषय पर हुई बहस का कुछ आलोचनात्मक संदर्भ दिया, तो प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने सुझाव दिया कि राज्य सभा में, लोक सभा में हुए वाद-विवाद का हवाला देने की कोई परिपाटी नहीं होनी चाहिए और...यह एक गलत परिपाटी है। लोक सभा में राज्य सभा की चर्चा और राज्य सभा में लोक सभा की चर्चा, दोनों सभाओं में मुश्किल पैदा करती है। सभापति ने टिप्पणी की:

"मैं आपसे कहता हूं कि आप उस सभा का हवाला न दें...दूसरी सभा का दिया गया हवाला कार्यवाही से हटा दिया जाएगा।"[123]

तथापि दूसरे सदन में दिए गए सरकारी वक्तव्यों का उल्लेख करने की अनुमति देने में ढील दी जाती है।[124] कोई सदस्य लोक सभा में मंत्रियों द्वारा दिए गए वक्तव्यों का उल्लेख भी कर सकता है।

जब खान और खनिज विधेयक, 1957 विचाराधीन था किसी सदस्य ने लोक सभा में खान और तेल मंत्री श्री के.डी. मालवीय द्वारा दिए गए वक्तव्य के उद्धरण का हवाला दिया। अन्य किसी सदस्य ने पूछा कि क्या सदस्य दूसरी सभा की कार्यवाही को पढ़ कर सुना सकता है, उपसभापति ने विनिर्णय दिया:

वह माननीय मंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य का उद्धरण दे सकते हैं।[125]

इसी प्रकार किसी चालू सत्र के दौरान राज्य सभा में किसी प्रश्न के उत्तर में दूसरे सदन में दिए गए किसी प्रश्न के उत्तर या उस सदन की कार्यवाही का उल्लेख नहीं किया जा सकता।[126]

इस प्रकार वाद-विवाद के इन नियमों का उद्देश्य यह है कि दोनों सदन एक दूसरे के प्रति व्यवहार में संयम बरतें, एक दूसरे के प्रति सम्मान प्रदर्शित करें ताकि दोनों सदनों की कार्यवाही की पवित्रता और गरिमा बनी रहे। ये नियम दोनों सदनों की स्वतंत्रता को भी मान्यता प्रदान करते हैं।

जब महासचिव ने सभा में लोक सभा से प्राप्त एक संदेश पढ़कर सुनाया जिसमें सूचित किया गया था कि बोफोर्स संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन को प्रस्तुत करने की अवधि बढ़ा दी गई है तब विपक्ष के कुछ सदस्यों ने, जिन्होंने पूर्व सूचना दी थी, अपनी बात रखनी चाही। उपसभापति ने इसकी अनुमति नहीं दी और अपनी व्यवस्था देते हुए अन्य बातों के साथ यह भी कहा कि ऐसे किसी संदेश पर चर्चा करने या उसमें कही गई बातों पर टिप्पणी करने की कोई परिपाटी नहीं है। इस व्यवस्था में कई कारण दिए गए जिनमें से एक कारण यह था कि यह दूसरे सदन का संदेश है और कोई ऐसी बात नहीं कही जानी चाहिए जिससे दूसरे सदन के किसी निर्णय पर, जो संदेश द्वारा सूचित किया गया हो, कोई आक्षेप किया जाए। उन्होंने यह भी कहा कि सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए समिति अध्यक्ष के निदेश और नियंत्रण के अधीन कार्य कर रही है और इसलिए समिति के कार्यकरण पर की गई किसी टिप्पणी का अर्थ स्वयं अध्यक्ष पर आक्षेप होगा, चाहे वह अप्रत्यक्ष रूप से किया गया आक्षेप ही क्यों न हो।[127]

तथापि, एक अवसर पर जब वित्त विधेयक, 1978 पर राज्य सभा की सिफारिश को अस्वीकार करने के संबंध में लोक सभा के संदेश की सूचना दी गई थी तब एक सदस्य ने कुछ टिप्पणियां कीं किंतु यह कहकर सावधानी बरती कि उसने जो कुछ कहा है उसे लोक सभा की प्रतिष्ठा या गरिमा पर आक्षेप नहीं माना जाना चाहिए।[128]

प्रधान मंत्री द्वारा लोक सभा में विरोधी दलों के बारे में की गई कतिपय टिप्पणियों का मुद्दा राज्य सभा में उठाते हुए कुछ सदस्य यह चाहते थे कि इन टिप्पणियों पर चर्चा करने के लिए प्रश्नकाल को स्थगित कर दिया जाना चाहिए। तथापि, सभापति ने यह व्यवस्था देते हुए इसकी अनुमति नहीं दी कि यह एक सुस्थापित परिपाटी है कि दूसरे सदन में कही गई किसी बात पर राज्य सभा में चर्चा नहीं होगी।[129]

जब कुछ सदस्य एक ऐसे मंत्री द्वारा, जो राज्य सभा के सदस्य थे, लोक सभा के अध्यक्ष को गिरफ्तार करने की कथित धमकी के मामले को उठाना चाहते थे तब उपसभापति ने इसकी अनुमति नहीं दी क्योंकि मामला दूसरे सदन से संबंधित था।[130]

तथापि, 24 जुलाई, 1989 को राज्य सभा में लगभग पांच घंटों तक लोक सभा में विपक्ष के सदस्यों के इस्तीफे को लेकर एक तरह की बहस होती रही।

इसके अलावा, संसदीय कार्य-प्रणाली में कुछ ऐसी आंतरिक व्यवस्था है जो राज्य सभा और लोक सभा के बीच सुगम संबंध स्थापित और विनियमित करता है। यह आंतरिक व्यवस्था अंशत: संविधान पर आधारित है और अंशत: प्रथाओं और परंपराओं से विकसित हुई है। विधायी क्षेत्र में विरोध का समाधान करने की जो संवैधानिक व्यवस्था है उसका उल्लेख किया जा चुका है। प्रत्येक सदन को, उनके सदस्यों को और उनकी समितियों को समान शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्राप्त हैं। सदन में प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मंत्रियों की बारी नियत करने के मामले में यह सावधानी बरती जाती है कि एक ही मंत्री को दोनों सदनों में एक ही दिन को और एक ही समय पर उपस्थित न होना पड़े। परंपरा के अनुसार लोक लेखा समिति, लोक उपक्रम समिति, रेलवे अभिसमय समिति, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति कल्याण संबंधी समिति, अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण संबंधी समिति, लाभ के पदों संबंधी समिति, वेतन और भत्ता समिति और 24 विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों जैसी अनेक समितियों में लोक सभा और राज्य सभा के सदस्यों की संख्या 2:1 के अनुपात में नियत की जाती है।

सदनों के बीच विवाद

उपरोक्त से विदित होगा कि संविधान के विभिन्न उपबंध, प्रक्रिया विषयक नियम और परंपराएं दोनों सदनों के बीच पारस्परिक आदर और सम्मान, संसद् के कार्य संबंधी मामलों में सौहार्द और सहयोग की भावना को दर्शाती हैं। तथापि, प्रारंभिक वर्षों में विवादों या टकरावों के कुछ ऐसे अवसर आए जिनसे ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों सदनों के पारस्परिक संबंधों में कटुता आ गई है या दोनों के बीच क्षोभ या तनाव उत्पन्न हो गया है; मुख्यत: वित्तीय मामलों में, विशेषाधिकार के मामलों में और वित्तीय समितियों के गठन के मामले में भी ऐसे विवाद उत्पन्न हुए। किंतु ऐसे विवादों को एक दूसरे के दृष्टिकोण पर ध्यान देने और एक दूसरे के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने की भावना के साथ सुलझाया गया जैसाकि निम्नलिखित मामलों में स्पष्ट होगा:

(क) *आय-कर संशोधन विधेयक*

पहला विवाद 29 अप्रैल, 1953 को हुआ जब राज्य सभा ने भारतीय आय-कर (संशोधन) अधिनियम, 1953 को विचारार्थ लिया जिसे अध्यक्ष ने धन विधेयक के रूप में प्रमाणित किया था। यह मुद्दा उठाया गया कि क्या वह धन विधेयक है और यह तर्क दिया गया कि सदन, विधेयक को अध्यक्ष को वापस भेजने के लिए और उन परिस्थितियों की जांच करने के लिए सक्षम है जिनके अधीन विधेयक को धन विधेयक के रूप में प्रमाणित किया गया है। तत्कालीन विधि मंत्री, श्री सी. सी. बिस्वास, जो सभा के नेता भी थे, ने इन मुद्दों का उत्तर देते हुए अन्य बातों के साथ यह कहा कि उपलब्ध सूचना के अनुसार दूसरे सदन के सचिवालय ने विधेयक को संभवत: एक धन विधेयक समझा और अध्यक्ष के सामने इसी रूप में रखा और अध्यक्ष ने उसके साथ एक प्रमाण-पत्र संलग्न कर दिया जैसाकि संविधान के अधीन अपेक्षित है। अत: उन्होंने सुझाव दिया कि इस बात की जानकारी प्राप्त की जा सकती है कि क्या यह प्रमाण-पत्र औपचारिक रूप से दिया गया था या वह तब दिया गया था जब यह प्रश्न उठाया गया था कि वह धन विधेयक नहीं है।[131] अगले दिन अर्थात् 30 अप्रैल, 1953 को लोक सभा में विधि मंत्री द्वारा राज्य सभा में की गईं इन टिप्पणियों पर आपत्ति की गई। लोक सभा में इन टिप्पणियों को "नितांत अनुचित और अध्यक्ष की गरिमा के प्रतिकूल" कहा गया। पीठासीन अधिकारी ने कहा कि इस मामले को अगले दिन विचारार्थ रखा जा सकता है जब विधि मंत्री सदन (लोक सभा) में उपस्थित होंगे।[132]

विधि मंत्री से लोक सभा में उपस्थित होने के लिए कहे जाने का मुद्दा 1 मई, 1953 को राज्य सभा में उठाया गया और कुछ चर्चा होने के बाद राज्य सभा ने एक सदस्य द्वारा उपस्थित किया गया निम्नलिखित संकल्प स्वीकृत किया:

> "इस सभा का मत है कि सभा के नेता को यह निदेश दिया जाए कि भारतीय आय-कर (संशोधन) विधेयक, 1953 पर अध्यक्ष द्वारा पृष्ठांकित प्रमाण-पत्र के बारे में सभा के नेता के कथन के संदर्भ में पंडित ठाकुर दास भार्गव द्वारा उठाए जाने वाले मामले पर जब लोक सभा में चर्चा हो रही हो तब वे उस सदन में किसी भी हैसियत से उपस्थित न हों।"[133]

इसी के साथ-साथ राज्य सभा के सचिव ने लोक सभा के सचिव को एक संदेश भेजा जिसके साथ सभापति और सभा के नेता के वक्तव्यों की एक-एक प्रति अग्रेषित की और सभा द्वारा

संकल्प के पारण का संदेश भी संप्रेषित किया। सभापति ने अपने वक्तव्य में अन्य बातों के साथ यह कहा:

> यह किसी का आशय नहीं था, कम-से-कम सभा के नेता का तो कतई आशय नहीं था कि अध्यक्ष की ईमानदारी और निष्पक्षता पर आक्षेप हो। इस सभा में हमारी उत्कट इच्छा है कि हम अध्यक्ष की गरिमा और दूसरे सदन के विशेषाधिकारों की उसी प्रकार से रक्षा करने का भरसक प्रयास करें जिस प्रकार से हम दूसरे सदन द्वारा अपने हितों और विशेषाधिकारों की रक्षा किए जाने की आशा करते हैं।

सभा के नेता ने अन्य बातों के साथ कहा कि जो कुछ उन्होंने कहा था उसमें उन्होंने अध्यक्ष पर न तो कोई आक्षेप किया और न ऐसा करने का उनका कोई आशय था। उन्होंने कहा कि "मैं उपाध्यक्ष के निमंत्रण पर लोक सभा में शिष्टता के नाते, न कि किसी संवैधानिक बाध्यता के कारण, जाऊंगा और अच्छे आचरण का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए मुझे वहां जाना चाहिए।"[134] अत: सभापति ने सुझाव दिया कि मामले पर आगे चर्चा करने की शायद आवश्यकता नहीं है।

यद्यपि लोक सभा में पंडित ठाकुर दास भार्गव द्वारा उठाए जाने वाले मामलों पर आगे कार्यवाही छोड़ दी गई तथापि संविधान के अंतर्गत विधि मंत्री की लोक सभा के प्रति स्पष्ट जिम्मेदारी के संदर्भ में राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के औचित्य को चुनौती दी गई।[135]

चूंकि इस घटना से "संसद् के कार्य की सामान्य शांति में कुछ व्यवधान उत्पन्न हुआ" इसलिए प्रधान मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू) ने सारी स्थिति को स्पष्ट करते हुए राज्य सभा में एक वक्तव्य दिया। अन्य बातों के साथ उन्होंने निम्नलिखित उद्गार व्यक्त किए:

> हमारे संविधान के अधीन संसद् दो सदनों से मिलकर बनती है और दोनों सदन उस क्षेत्र के भीतर कार्य करते हैं जो इस संविधान के द्वारा उन्हें सौंपा गया है। हमें जो प्राधिकार मिले हैं वे इसी संविधान से मिले हैं। कभी-कभी हम ब्रिटेन की संसद् के सदनों में प्रचलित प्रथाओं और परंपराओं का हवाला देते हैं और यहां तक कि निम्न सदन और उच्च सदन की बात करते हैं जोकि गलत है। मैं नहीं समझता कि यह सही है। ब्रिटेन की संसद् की प्रक्रिया का हवाला देना भी हमेशा उपयोगी नहीं है क्योंकि वहां की प्रक्रिया सैकड़ों सालों के दौरान विकसित हुई है और वह मूलत: राजा की सत्ता के विरुद्ध संघर्ष के परिणामस्वरूप और कालांतर में हाउस ऑफ कॉमन्स और हाउस ऑफ लॉर्ड्स के बीच संघर्ष के परिणामस्वरूप विकसित हुई है। हमारे यहां ऐसी कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नहीं है हालांकि संविधान के निर्माण में हमने दूसरों के अनुभव से लाभ उठाया है। अत: हमारा पथ-प्रदर्शक हमारा अपना संविधान होना चाहिए जिसमें राज्य सभा और लोक सभा के कृत्यों को स्पष्ट रूप से विनिर्दिष्ट किया गया है। इनमें से किसी सदन को निम्न सदन कहना और किसी को उच्च सदन कहना सही नहीं है। संविधान की सीमाओं के भीतर प्रत्येक सदन को अपनी प्रक्रिया को विनियमित करने का पूरा अधिकार है। संसद् का गठन एक ही सदन से नहीं होता। भारत की संसद् दोनों ही सदनों से मिलकर बनती है।
>
> हमारा संविधान या कोई भी लोकतांत्रिक ढांचा तभी सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है जब दोनों सदनों के बीच घनिष्ठतम सहयोग हो। वे वास्तव में एक ही ढांचे के भाग हैं और यदि सहयोग और एक दूसरे के दृष्टिकोण पर समुचित ध्यान देने की इस भावना में कोई कमी आएगी तो उससे कठिनाइयां उत्पन्न होंगी और हमारे संविधान के समुचित कार्यकरण में बाधा पहुंचेगी। अत: यह... खेद की बात है कि दोनों सदनों के बीच संघर्ष की कोई भावना उत्पन्न हो। हमारे द्वारा शुरू किए गए राष्ट्र-निर्माण के महान प्रयोग की सफलता में रुचि रखने वाले लोगों का यह सर्वोच्च कर्त्तव्य है कि वे दोनों के बीच घनिष्ठ सहयोग और सम्मान का वातावरण बनाएं। दोनों सदनों के बीच कोई संवैधानिक अंतर नहीं हो सकता क्योंकि अंतिम सत्ता स्वयं संविधान ही है। कतिपय वित्तीय मामलों को छोड़कर जो एक मात्र लोक सभा की परिधि में आते हैं, संविधान के सामने दोनों सदन एक समान हैं। ये मामले क्या हैं इसका अंतिम रूप से निर्णय करना अध्यक्ष का काम है।[136]

विधि मंत्री ने प्रधान मंत्री के वक्तव्य से स्वयं को संबद्ध करते हुए इस घटना के लिए खेद प्रकट किया और क्षमा याचना की। उन्होंने लोक सभा में भी क्षमा याचना की,[137] इस प्रकार अंततः इस घटना का पटाक्षेप हुआ।

(ख) *अन्य वित्तीय विधेयक*

एक अन्य अवसर पर अनुच्छेद 117(1) के अधीन वित्तीय विधेयकों के संबंध में राज्य सभा में पुन: कुछ मुद्दे उठाए गए। प्रमुख पत्तन न्यास विधेयक, 1963 को लोक सभा ने दोनों सदनों की संयुक्त समिति को नहीं बल्कि अपनी प्रवर समिति को सौंपा। जब यह विधेयक राज्य सभा में विचार के लिए पेश हुआ तब यह मुद्दा उठाया गया कि राज्य सभा को समिति से संबद्ध नहीं किया गया है। परिवहन मंत्री ने यह मत व्यक्त किया कि चूंकि अध्यक्ष द्वारा यह व्यवस्था दी गई है कि अनुच्छेद 117(1) के अधीन किसी विधेयक को संयुक्त समिति को नहीं सौंपा जा सकता इसलिए इस विधेयक को लोक सभा की प्रवर समिति को ही भेजा गया है। वित्तीय मामलों में राज्य सभा के अधिकारों के बारे में कुछ चर्चा हुई। किन्तु विधेयक की तात्कालिकता को देखते हुए मामले को आगे नहीं बढ़ाया गया परन्तु राज्य सभा ने अपने अधिकार पर जोर देने के लिए विधेयक को अपनी प्रवर समिति को यह निर्देश देते हुए सौंपा कि वह तीन दिनों के भीतर अपना प्रतिवेदन दे।[138]

ऐसी ही स्थिति राज्य सभा में पुन: उत्पन्न हुई जब लोक सभा द्वारा यथापारित बैंककारी विधियां (संशोधन) विधेयक, 1968 सभा में विचारार्थ पेश हुआ। लोक सभा ने इस विधेयक को सदनों की संयुक्त समिति को नहीं बल्कि अपनी प्रवर समिति को सौंपा था। राज्य सभा में सदस्यों ने प्रमुख पत्तन न्यास विधेयक के पूर्वोदाहरण का उल्लेख करते हुए तर्क पेश किया कि विधेयक संयुक्त समिति को सौंपा जाना चाहिए था। संबंधित मंत्री ने कहा कि चूंकि विधेयक में संविधान के अनुच्छेद 110 में विनिर्दिष्ट मामले आते हैं इसलिए वह संयुक्त समिति को नहीं सौंपा गया।[139] तथापि, उन्होंने विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने के सदन के अधिकार को माना जिसके लिए एक सदस्य ने संशोधन पेश किया था। तद्नुसार विधेयक को राज्य सभा की प्रवर समिति को सौंपा गया।[140]

(ग) *विशेषाधिकार का प्रश्न (श्री एन. सी. चटर्जी का मामला)*

11 मई, 1954 को एक सदस्य ने यह आरोप लगाते हुए राज्य सभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया कि राज्य सभा में विचाराधीन विशेष विवाह विधेयक के संबंध में लोक सभा के सदस्य श्री एन. सी. चटर्जी ने बम्बई में किए गए सार्वजनिक भाषण में राज्य सभा के बारे में यह टिप्पणी की थी कि ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च सदन जिसे वयोवृद्ध व्यक्तियों का निकाय माना जाता है, छोकरों के गिरोह की तरह गैर-जिम्मेदाराना ढंग से आचरण कर रहा है और ऐसी टिप्पणी करके श्री चटर्जी ने राज्य सभा की कार्यवाही पर आक्षेप किया है।[141] श्री चटर्जी ने राज्य सभा के सचिव द्वारा उन्हें जारी की गई एक सूचना (नोटिस) के कारण उत्पन्न होने वाले विशेषाधिकार के प्रश्न को लोक सभा में उठाया।[142] इस प्रश्न को कि एक सदन के सदस्य द्वारा दूसरे सदन का विशेषाधिकार भंग किए जाने पर कौन-सी प्रक्रिया अपनायी जानी चाहिए, दोनों सदनों की विशेषाधिकार समितियों की एक संयुक्त बैठक को सौंपा गया।[143] इन समितियों ने ऐसे मामलों में एक स्वीकार्य प्रक्रिया बनायी।[144]

(घ) *लोक लेखा समिति में प्रतिनिधित्व*

दोनों सदनों के पारस्परिक संबंधों के बीच कटुता उत्पन्न होने का एक और उदाहरण है। यह कटुता तब उत्पन्न हुई जब राज्य सभा ने यह चाहा कि लोक लेखा समिति दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति हो और साथ ही, लोक सभा की प्राक्कलन समिति में भी उसका प्रतिनिधित्व हो।

राज्य सभा की नियम समिति ने 24 दिसंबर, 1952 को सभापति के समक्ष प्रस्तुत किए गए अपने प्रतिवेदन में यह कहा था कि लोक लेखा समिति में राज्य सभा का प्रतिनिधित्व होना चाहिए और "कार्य के अनावश्यक दोहरेपन से बचने के लिए" वह समिति संसद् के दोनों सदनों की संयुक्त समिति होनी चाहिए। समिति ने इस प्रयोजन के लिए एक नियमावली भी तैयार की जिसमें अन्य बातों के साथ यह उपबंध किया गया था कि इस समिति में लोक सभा और राज्य सभा का प्रतिनिधित्व 2:1 के अनुपात में होना चाहिए। नियम समिति ने सभापति से यह अनुरोध भी किया कि वे प्राक्कलन समिति में राज्य सभा के प्रतिनिधित्व के प्रश्न को समुचित प्राधिकारी के साथ उठाएं। तदनुसार राज्य सभा के सचिव ने सभापति के निर्देश के अधीन लोक सभा के सचिव के साथ यह मामला उठाया। अध्यक्ष ने इस मामले को लोक सभा नियम समिति को विचार के लिए और लोक लेखा समिति के अध्यक्ष को उनकी प्रतिक्रिया के लिए सौंपा।[145]

लोक लेखा समिति ने सर्वसम्मति से यह संकल्प स्वीकृत किया कि चूंकि संयुक्त लोक लेखा समिति या राज्य सभा की एक पृथक् प्राक्कलन समिति गठित करने का सुझाव संविधान में निहित सिद्धांतों के प्रतिकूल है इसलिए वह उसे स्वीकार्य नहीं है। लोक सभा की नियम समिति ने भी अपने प्रतिवेदन में अपने इस मत के समर्थन में विस्तृत तर्क प्रस्तुत किए कि किसी वित्तीय मामले पर दोनों सदनों की कोई संयुक्त समिति नहीं होनी चाहिए।[146]

यहां पर एक गतिरोध उत्पन्न हो गया किन्तु इस संबंध में पर्दे के पीछे विचार-विमर्श होता रहा क्योंकि दोनों सदनों के सदस्य ऐसा कोई हल खोजने के लिए उत्सुक थे जो वित्तीय मामलों में लोक सभा की सर्वोच्चता बनाए रखने संबंधी संवैधानिक उपबंधों के संदर्भ में दोनों सदनों को स्वीकार्य हो और जो साथ ही राज्य सभा के सदस्यों को वित्तीय मामलों में अपनी सलाह देने का अवसर दे सके। अंततः यह निर्णय हुआ कि यदि लोक सभा लोक लेखा समिति के साथ राज्य सभा के सदस्यों को संबद्ध करने के लिए अपनी ओर से प्रतिवर्ष एक संकल्प पारित कर दे तो दोनों लक्ष्यों की पूर्ति हो सकती है।[147]

12 मई, 1953 को प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने लोक सभा में निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया:

> यह सदन राज्य सभा से सिफारिश करता है कि वह 1953-54 के वर्ष के लिए इस सदन की लोक लेखा समिति से संबद्ध होने के लिए अपने 7 सदस्यों को नामनिर्देशित करने के लिए सहमत हो और सभा द्वारा इस प्रकार नामनिर्देशित सदस्यों के नामों की सूचना इस सदन को दे।[148]

लोक सभा में इस प्रस्ताव का विरोध किया गया। सदस्यों का विचार था कि यह संविधान के अधीन लोक सभा को दिए गए अनन्य अधिकारों और विशेषाधिकारों का अतिक्रमण है। सदस्यों ने विशेष रूप से इस तथ्य का उल्लेख किया कि धन विधेयकों और वित्तीय मामलों के संबंध में राज्य सभा की शक्तियां सीमित हैं। इस संबंध में लोक सभा में दो दिनों तक बहस चली। 13 मई, 1953 को प्रधान मंत्री ने एक अत्यंत विस्तृत उत्तर दिया जिसमें प्रश्न के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया था। इस आरोप का उत्तर देते हुए कि उनके द्वारा उपस्थित किए गए प्रस्ताव से लोक सभा की शक्तियों का अतिक्रमण करने का प्रयास किया जा रहा है, प्रधान मंत्री ने कहा:

सदन की शक्तियों पर बहुत बल दिया जा रहा है मानो कोई व्यक्ति उन्हें चुनौती दे रहा हो या उन पर हमला कर रहा हो। धन और वित्तीय मामलों के बारे में इस सदन की शक्तियां क्या हैं इसके बारे में कोई संदेह नहीं है। हम इसी आधार पर चलते हैं। यहीं मामला समाप्त हो जाता है। दूसरा मुद्दा यह है कि क्या इस नई चीज से, जो मेरे प्रस्ताव से आती हुई प्रतीत होती है, इन शक्तियों पर कोई आंच आती है। यदि इससे इन शक्तियों पर किसी प्रकार से कोई आंच आती है तो यह एक गलत प्रस्ताव है। यदि इससे इन शक्तियों पर आंच आने की संभावना है तो मैं यह मानता हूं कि हमें सावधान रहना चाहिए और यह देखना चाहिए कि इससे ऐसा नहीं होना चाहिए।[149]

जहां तक प्रस्ताव के अनुसार समिति के साथ राज्य सभा के सदस्यों के संबद्ध होने की बात थी, उन्होंने कहा:

इसके बाद संबद्ध सदस्यों के बारे में कुछ बातें कही गई हैं। ये संबद्ध सदस्य कौन हैं? यह प्रस्ताव बहुत सीधा-साधा है। यह राज्य सभा से अनुरोध करता है कि वह अपने 7 सदस्यों को लोक लेखा समिति के साथ संबद्ध करे। यह कहना हमारा काम नहीं है कि राज्य सभा उनका चयन कैसे करेगी। यह स्पष्ट है कि वह निर्वाचन द्वारा उनका चयन करेगी; वह किसी दूसरे तरीके से उनका चयन नहीं कर सकती। हम यह जानते हैं कि निर्णय करना उसका काम है। स्वाभाविक है कि वह समानुपातिक प्रतिनिधित्व आदि द्वारा निर्वाचन करेगी। चूंकि समिति का प्रमुख काम छानबीन करना है इसलिए यदि ये सदस्य समिति में आते हैं तो सदस्यों की दो श्रेणियां होने का कोई सवाल पैदा नहीं होता। उनकी श्रेणी और हैसियत एक जैसी होगी।

यह सच है कि यह मेरी इच्छा है और मैं समझता हूं कि सदन की भी यह इच्छा होनी चाहिए कि दूसरे सदन के साथ मित्रता और सहयोग के रिश्ते कायम होने चाहिए क्योंकि सारी चीजों के स्वरूप को देखते हुए और संविधान के स्वरूप को देखते हुए हर सदन सार्वजनिक कार्य में बाधा डाल सकता है और उसमें देरी कर सकता है। इसमें कोई शक नहीं है कि हर सदन के पास अच्छा काम करने की क्षमता है किन्तु उसके पास किसी काम में देर करने की क्षमता भी है और देर करने के तरीके अपनाकर दूसरे सदन को क्षुब्ध और परेशान करने की क्षमता भी है। संविधान की यह संकल्पना है कि संसद् एक एकीकृत निकाय है। यदि दूसरे सदन के सदस्य को बाहर का व्यक्ति कहा जाता है तो इस पर मुझे वैसा ही खेद होता है जैसाकि दूसरी ओर बैठे हुए मेरे माननीय सदस्य को होता है। एक संकीर्ण अर्थ में आप ऐसा कह सकते हैं किन्तु ऐसे कथन के पीछे जो धारणा है वह अच्छी नहीं है और संसद् में हम एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, संसद् के कर्त्तव्यों का बोझ उठा रहे हैं और भारत के लोगों की आशाएं हम पर टिकी हैं। मेरा निवेदन है कि जो प्रस्ताव मैंने रखा है उससे इस सदन की शक्तियों का या प्राधिकार का जरा-सा भी अतिक्रमण नहीं होता बल्कि वह दोनों सदनों के सम्मिलित प्रयास की दृष्टि से वांछनीय है और इस दृष्टि से भी वांछनीय है कि हम अन्य देशों और संसदों के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत कर सकें कि हम अपने संविधान के इस जटिल ढांचे के अधीन निर्बाध रूप से, प्रभावी रूप से और सद्भावना के साथ किस प्रकार कार्य कर सकते हैं।[150]

अंततः 24 दिसंबर, 1953 को लोक सभा ने उक्त प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी।[151]

लोक सभा के प्रस्ताव पर सहमति के लिए और 1954-55 के वर्ष के लिए समिति के लिए सात सदस्यों के नामनिर्देशन हेतु संसदीय कार्य मंत्री द्वारा 13 मई, 1954 को उपस्थित किए गए प्रस्ताव पर राज्य सभा द्वारा चर्चा की गई।[152] चर्चा के दौरान सदस्यों ने समिति में अपनी हैसियत के मुद्दे को उठाया। तथापि, प्रस्ताव सभापति की निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ स्वीकृत हुआ:

"... मैं समझता हूं कि सदस्यगण इस प्रस्ताव के इतिहास को जानते हैं और मेरे लिए उसे दोहराना आवश्यक नहीं है। बाइबिल की एक प्रसिद्ध कहावत है कि "सभी चीजें विधान-सम्मत हो सकती हैं पर सभी चीजें सुविधाजनक नहीं होती हैं।" जो प्रस्ताव हमारे सामने है वह उन्हीं शब्दों में है जिनका पिछले दिसंबर में हमारे सामने रखे गए प्रस्ताव में प्रयोग किया गया था, अर्थात् "राज्य सभा लोक लेखा समिति से संबद्ध होने के लिए अपने सात सदस्यों को नामनिर्देशित करने के लिए सहमत हो।" पिछली बार यही प्रस्ताव हमारे सामने आया था, अतः यह किसी रियायत का या किसी चीज को सहन करने का प्रश्न नहीं है। यह

अधिकार की बात है जो संसद् के उस प्रस्ताव के अनुसार है जो इस सदन द्वारा स्वीकृत किया गया है। संसदीय कार्य मंत्री ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि हम समिति में अन्य सदस्यों के साथ पूरी समानता के आधार पर कार्य करेंगे। लोक सभा की कार्यवाही के असंशोधित पाठ में अध्यक्ष ने कहा है: "जहां तक विचार-विमर्श, मतदान और अन्य बातों का संबंध है, उनकी हैसियत बराबरी की रहेगी।" अत: श्री सत्य नारायण सिन्हा का वक्तव्य वैसा ही है जैसा अध्यक्ष का है या अध्यक्ष द्वारा दिया गया वक्तव्य श्री सत्य नारायण सिन्हा द्वारा दोहराया गया है। अत: अब हमें वहां बैठने का अधिकार है और हमारे अधिकार बिल्कुल वही हैं जो अन्य सदस्यों के हैं। मुद्दा यह है कि इस समिति का विचार-विमर्श जिन नियमों के अधीन है वे नियम दूसरे सदन के नियम होंगे। अत: इसी से यह सारी भ्रांति उत्पन्न हुई है। छोटे-छोटे मतभेदों को तूल देना मैं बहुत अनुचित समझता हूं। मैं सभा को यह सलाह दूंगा कि वह इस प्रस्ताव को स्वीकार करे और अपने अधिकारों का पूरा-पूरा उपयोग करे।"[153]

(ङ) *सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति की सदस्यता*

जहां तक सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति का संबंध है, इस समिति में राज्य सभा के प्रतिनिधित्व के संदर्भ में ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इस समिति को पहली बार स्थापित करने के लिए 24 नवम्बर, 1961 को लोक सभा में एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया। उद्योग मंत्री द्वारा उपस्थित किए गए प्रस्ताव में समिति के कृत्यों का विस्तृत रूप से विवरण दिया गया था। यह समिति लोक सभा के दस सदस्यों और राज्य सभा के पांच सदस्यों से मिलकर बननी थी। प्रस्ताव के एक पैरा में राज्य सभा से सिफारिश की गई थी कि वह "उक्त समिति में सम्मिलित हो।" लोक सभा में प्रस्ताव पर हो रही बहस के दौरान इस शब्दावली पर आपत्ति प्रकट की गई। सदस्यों का विचार था कि इस शब्दावली का प्रयोग करना उस प्रक्रिया को नहीं अपनाना है जो लोक लेखा समिति के मामले में अपनाई गई थी क्योंकि उसमें दूसरे सदन के सदस्य केवल 'संबद्ध' सदस्य थे।[154] इसके बाद 21 सितम्बर, 1963 को लोक सभा में दो अलग-अलग प्रस्ताव उपस्थित किए गए जिनमें से एक सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति का गठन करने के संबंध में था और दूसरा राज्य सभा से यह सिफारिश करने के बारे में था कि वह समिति से संबद्ध होने के लिए पांच सदस्यों का नामनिर्देशन करे। लोक सभा में ये प्रस्ताव 20 नवम्बर, 1963 को स्वीकृत हुए।[155] राज्य सभा में 27 अगस्त, 1962 को राज्य सभा के अधिकारों के संबंध में मामला उठाया गया। सदन ने 26 नवम्बर और 2 दिसंबर, 1963 को समिति की स्थापना पर सहमति संबंधी प्रस्ताव पर विचार किया और 2 दिसंबर, 1963 को इस प्रस्ताव को स्वीकार किया।

(च) *वित्तीय समितियों में राज्य सभा के सदस्यों की स्थिति*

लोक लेखा समिति और सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति में राज्य सभा के सदस्यों की स्थिति या हैसियत के बारे में स्पष्ट और निश्चित व्याख्या होने पर भी दोनों सदनों में दो अवसरों पर और बिल्कुल भिन्न संदर्भों में स्थिति संबंधी विवाद पुन: उठा।

28 अप्रैल, 1975 को जब लोक लेखा समिति का 159वां प्रतिवेदन राज्य सभा के पटल पर रखा जा रहा था तब राज्य सभा के एक सदस्य ने (जो समिति के सदस्य भी थे) यह आपत्ति की कि समिति ने प्रतिवेदन को समुचित रूप से स्वीकृत नहीं किया है।[156] राज्य सभा में लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन पर प्रश्न उठाने की बात पर अगले दिन लोक सभा में आपत्ति की गई।[157] इसके बाद 30 अप्रैल, 1975 को उससे पिछले दिन लोक सभा की कार्यवाही के दौरान राज्य सभा के बारे में की गई कुछ अशोभनीय टिप्पणियों का मामला राज्य सभा में उठा। संसदीय कार्य

विभाग में राज्य मंत्री ने अन्य बातों के साथ कहा कि इस मामले को लोक सभा और राज्य सभा के बीच अधिकारों और विशेषाधिकारों के बारे में किसी विवाद के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए और पिछले अनेक वर्षों में यह अच्छी तरह सिद्ध हो गया कि लोक सभा के सदस्यों की तरह राज्य सभा के सदस्यों को भी समान अधिकार प्राप्त हैं जिनमें मत देने का अधिकार भी शामिल है और राज्य सभा के सदस्यों की हैसियत भी लोक सभा के सदस्यों के बराबर है। अंत में उपसभापति ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीः

> जहां तक हमारा संबंध है, जब लोक लेखा समिति की सदस्यता का मामला सर्वप्रथम उठा था तब डा. राधाकृष्णन् और तत्कालीन अध्यक्ष द्वारा जो टिप्पणियां की गई थीं उन्हें यहां उद्धृत किया गया है। श्री सत्य नारायण सिन्हा ने भी, जिन्होंने उस समय प्रस्ताव उपस्थित किया था इसे बहुत स्पष्ट कर दिया था। मैं उनके शब्दों को उद्धृत करूंगाः
>
> > मैं यह कहना चाहूंगा कि जहां तक सदस्यों की शक्तियों, कृत्यों और हैसियत का संबंध है, इस सदन के सदस्यों और उस सदन के सदस्यों के बीच बिल्कुल कोई अंतर नहीं है।
>
> उस समय यह पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया था, कि जहां तक सदस्यता का संबंध है, वे एक समिति के सदस्य हैं और किसी समिति की दो प्रकार की सदस्यता नहीं हो सकती। चाहे वे इस सदन के हों या उस सदन के, एक बार जब वे सदस्य बन जाते हैं तो वे समिति के सदस्य होते हैं और उनके अधिकारों और उनकी स्थिति में कोई अंतर होता ही नहीं। यह बिल्कुल स्पष्ट है।
>
> जहां तक वहां पर कल हुई चर्चा का संबंध है, मैं सिर्फ यही कह सकता हूं कि इस बात का हवाला देने के बजाय कि वहां पर क्या कहा गया है और फलां-फलां सदस्य ने क्या कहा है, हमारे लिए और दूसरे सदन के सदस्यों के लिए यह देखना अधिक प्रतिष्ठा की बात होगी कि हम एक ऐसी संसद् के रूप में कार्य करें जो अभिन्न है। संसद् राष्ट्रपति और संसद् के दोनों सदनों से मिलकर बनती है। अतः मैं समझता हूं कि दूसरे सदन के बारे में या इस सदन के बारे में ऐसी कोई भावना रखना असंगत है। मैं समझता हूं कि दोनों सदनों को वस्तुतः तालमेल के साथ कार्य करना चाहिए और एक दूसरे के अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए। मैं समझता हूं कि यह दुर्भाग्यपूर्ण बात यहीं पर और इसी समय समाप्त हो जाएगी।[158]

एक बार फिर 2 मई, 1975 को, जब संसदीय कार्य विभाग में राज्य मंत्री 1975-76 के वर्ष के लिए, लोक लेखा समिति के लिए राज्य सभा के सदस्यों के नामनिर्देशन का प्रस्ताव उपस्थित कर रहे थे, एक सदस्य ने टिप्पणी कीः "मैं संसद् की किसी समिति में किसी को तब तक नहीं भेजना चाहूंगा जब तक उसके पास सदन की ओर से कार्य करने के लिए पूरे अधिकार और पूरी गरिमा प्राप्त न हो।" उपसभापति ने अपनी पिछली टिप्पणियों का हवाला देते हुए (जिन्हें ऊपर उद्धृत किया गया है) यह कहाः "मैं सारे मामले पर निर्णय दे रहा हूं; ...मैं यही स्पष्ट कर रहा हूं कि जहां तक समिति के सदस्यों का संबंध है, उनके निर्वाचन की प्रक्रिया चाहे जो भी हो, एक बार जब वे समिति के सदस्य बन जाते हैं तब उनका दर्जा वही होता है जो समिति के अन्य सदस्यों का होता है।"[159]

14 जुलाई, 1982 को एक बार फिर जब सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के 47वें प्रतिवेदन से संबंधित बैठकों के कार्यवृत्त की एक प्रति राज्य सभा के पटल पर रखी जा रही थी, कुछ सदस्यों ने टिप्पणी की कि सभापटल पर रखा गया कार्यवृत्त तोड़-मरोड़ कर पेश किया गया है, वह तथ्यों पर आधारित नहीं है, एच.एस.डी. सौदे के संबंध में समिति की बैठक में जो कुछ हुआ था उसे सही ढंग से नहीं दर्शाया गया है और सरकार ने सौदे से संबंधित फाइलों को उपलब्ध न करके समिति के काम में रोड़ा अटकाया है। इस मुद्दे से विशेषाधिकार के अनेक मामले उठे। सभापति ने अपनी पहली व्यवस्था में यह कहा कि विशेषाधिकार का प्रश्न राज्य सभा की

समिति के बारे में ही उठाया जा सकता है और चूंकि सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति लोक सभा के अध्यक्ष के निदेश और नियंत्रण के अधीन कार्य करती है और सदन के नियमों के अधीन उसके बारे में उपबंध किए गए हैं इसलिए उस समिति के संबंध में विशेषाधिकार भंग की किसी शिकायत पर विचार करना राज्य सभा के क्षेत्राधिकार में नहीं आता। सदस्यों ने इस व्याख्या के संबंध निवेदन किए।

26 जुलाई, 1982 को सभापति ने अपनी पिछली व्यवस्था के बारे में विस्तृत रूप से कारण दिए। इसके बाद इस व्यवस्था के बारे में टिप्पणी करते हुए कुछ समाचार-पत्रों में लेख प्रकाशित हुए जिनके कारण उनके विरुद्ध विशेषाधिकार की सूचनाएं भी दी गईं। सभापति ने 2 अगस्त, 1982 की अपनी व्यवस्था में स्पष्ट किया:

"मैं जिस तथ्य को अपने निर्णय का आधार समझता हूं वह यह है कि क्या लोक उपक्रमों संबंधी समिति हमारे नियमों के नियम 187 के अधीन हमारे सदन की समिति के रूप में मानी जा सकती है। इस मामले पर बहुत सावधानी और ध्यान के साथ विचार करने के बाद मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि वह इस रूप में नहीं मानी जा सकती। संभवत: मेरे कथन के अर्थ को नहीं समझा गया और इसके कारण काफी गलतफहमी पैदा हो गई। मेरे निर्णय में अपने सदन के सदस्यों पर कोई आक्षेप की बात नहीं थी। मैं अपने सदन के माननीय सदस्यों के सम्मान और उनके अधिकारों के बारे में हमेशा से बहुत सचेत रहा हूं। मैंने अनेक बार ऐसा कहा है। इस विसंगतिपूर्ण स्थिति से मुझे कुछ कम परेशानी नहीं हुई कि समिति में काम करने वाले लोगों में कुछ तो विशेषाधिकार के हर मामले को उठा सकते हैं जबकि इस सदन के सदस्य, कुछ मामलों को छोड़कर जिनका मैंने उल्लेख किया है, ऐसा नहीं कर सकते। सदन के उन सदस्यों के अधिकारों के बारे में चिंतित होने के कारण जो लोक सभा के सदस्यों के साथ बैठते हैं किंतु स्वयं पूर्ण सदस्य नहीं हैं, मैंने वे बातें कही हैं जिन्हें कहना मैंने आवश्यक समझा है। ऐसा लगता है कि इस सवाल ने पहले भी इस सदन को परेशान किया था। यह तथ्य कि पंडित नेहरू और श्री कानूनगो को 'समान हैसियत और दर्जे' के बारे में आश्वासन देना पड़ा था, यह दर्शाता है कि यह मुद्दा अधिकार के रूप में नहीं उठा।"

सभापति ने सुझाव दिया कि ऐसी स्थितियों से निपटने के लिए और समिति में राज्य सभा की सदस्यता के संबंध में जो भी विसंगतियां हैं उन्हें दूर करने के लिए नियम बनाए जा सकते हैं। सभा के नेता ने कहा कि इस संबंध में ऐसा हल खोजा जा सकता है जो दोनों सदनों को स्वीकार्य हो। इस प्रकार मामले को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाया गया।

इस मामले के संबंध में 28 जुलाई, 1982 को अध्यक्ष ने श्री जवाहरलाल नेहरू के कथन को उद्धृत करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:

"राज्य सभा के सदस्य लोक लेखा समिति और लोक उपक्रमों संबंधी समिति के साथ क्रमश: 1954 और 1964 से संबद्ध रहे हैं। जैसाकि सुविदित है, राज्य सभा के माननीय सदस्य वित्तीय समितियों की शक्ति के स्रोत रहे हैं और उन्होंने उनके विचार-विमर्श के स्तर को ऊंचा उठाने में भारी योगदान दिया है। वित्तीय समितियों को महत्वपूर्ण विषयों की विस्तृत रूप से छानबीन करने का भारी दायित्व सौंपा गया है। राज्य सभा के माननीय सदस्यों को इन समितियों में बहुत आदर और सम्मान प्राप्त हुआ है और उन्हें इन वित्तीय समितियों की उपसमितियों/अध्ययन समूहों का संयोजक नियुक्त किया जाता रहा है। पंडित जवाहरलाल नेहरू संसदीय संस्थाओं के प्रमुख निर्माता थे और उन्होंने उन्हें आपस में जोड़ने का काम किया था। लोक लेखा समिति के साथ राज्य सभा के सदस्यों को संबद्ध करने के लिए रखे गए प्रस्ताव पर 13 मई, 1953 को बोलते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जो बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह दी थी उसका अक्षरश: और तत्वत: अनुसरण करने के लिए हम निरन्तर प्रयास करते रहे हैं।"[160]

विवादों की उक्त घटनाएं संसद् के कार्यकरण के संवेधानिक पहलुओं से संबंधित थीं। तथापि, कुछ अन्य प्रकार के विवाद भी उत्पन्न हुए जिनका निम्नानुसार उल्लेख किया जा सकता है:

(i) क्या 'संसद' में राज्य सभा शामिल है?

24 नवम्बर, 1952 को एक सदस्य ने सदन का ध्यान इस ओर खींचा कि संसद् में घुसते ही उन्होंने "संसदीय सूचना कार्यालय" नामक कमरा देखा जहां लोक सभा (तत्कालीन हाउस ऑफ द पीपल) की सूचनाएं लगी हुई थीं और राज्य सभा (तत्कालीन काउन्सिल ऑफ स्टेट्स) की सूचनाएं नहीं लगी थीं; उन्होंने कहा कि वे इसे "अपने सदन की आजादी और स्वतंत्रता का घोर अतिक्रमण" मानते हैं। अत: उन्होंने सभापीठ से अनुरोध किया कि इस मामले को सरकार के साथ उठाया जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि भारत की संसद् "वस्तुत: राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है।" उपसभापति ने सूचित किया कि इस संबंध में कुछ भ्रम रहा है और इस मामले की ओर अध्यक्ष का ध्यान दिलाया जा चुका है और "आपसी समझ-बूझ के साथ किसी सहमति पर पहुंच जाएंगे।"[161] तीन दिन बाद एक और सदस्य ने यह मामला उठाया। इस पर प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने, जो सदन में उपस्थित थे, निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "श्रीमन्, निस्संदेह यह सदन अनिवार्य रूप से संसद् का एक भाग है। यदि किसी प्रकार के सूचना बोर्ड से ¬ जिसके बारे में मुझे कतई जानकारी नहीं है ¬ कोई भ्रांति उत्पन्न होती है और फिर से कुछ व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है तो, श्रीमन्, मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि आप इस सदन के हितों की भलीभांति रक्षा कर सकते हैं।"[162]

(ii) सामान्य बजट पर पहले राज्य सभा में चर्चा

2 मार्च, 1963 को लोक सभा में एक मुद्दा उठाया गया जिसमें बजट पर लोक सभा द्वारा चर्चा होने के पहले उस पर राज्य सभा द्वारा चर्चा किए जाने पर आपत्ति की गई थी। यहां तक कहा गया कि राष्ट्रपति के अभिभाषण के बाद राज्य सभा को स्थगित कर दिया जाना चाहिए और इस बीच में लोक सभा द्वारा उस पर चर्चा कर लिए जाने के बाद राज्य सभा को मध्यावकाश के पश्चात् उस पर चर्चा करनी चाहिए।[163] राज्य सभा में यह मुद्दा उठने के बाद संसदीय कार्य मंत्री ने स्थिति स्पष्ट की। सभापति ने अन्य बातों के साथ निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "...जैसाकि आप सभी लोगों ने कहा है, संवैधानिक स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है। किसी भी बात में बड़े-छोटे का सवाल नहीं है। हम दो भिन्न सदन हैं, हमारे लिए कृत्य विहित किए गए हैं जिन्हें हमें पूरा करना है। कोई सदन दूसरे सदन से बड़ा है, यह सवाल नहीं उठता, इस मुद्दे पर कोई विवाद नहीं किया जा सकता। मैं यह नहीं समझता कि यह प्रश्न वहां क्यों उठाया गया था। हो सकता है कि यह प्रश्न गलतफहमी के कारण उठा हो। धन विधेयकों के संबंध में लोक सभा को जो विशेष अधिकार प्राप्त हैं उनके कारण संभवत: उनकी यह धारणा हो कि बजट पर यहां पहले चर्चा नहीं होनी चाहिए, जोकि गलत है। निश्चय ही कारण यही रहा होगा और मेरे विचार में इसमें अपमान की कोई बात नहीं है।"[164]

इसके बाद 12 मार्च, 1965 को लोक सभा में इसी प्रकार का एक मामला पुन: उठाया गया।[165] 15 मार्च, 1965 को एक सदस्य ने राज्य सभा में यह मामला उठाया और 12 मार्च को अध्यक्ष द्वारा की गई निम्नलिखित टिप्पणी का हवाला दिया:

> "हमें किसी तरह से यह नहीं दर्शाना चाहिए या ऐसा प्रतीत नहीं होना चाहिए कि हमें उनके द्वारा उनके अधिकारों के प्रयोग से कोई ईर्ष्या है किंतु कतिपय अधिकार ऐसे हैं जो इस सदन में निहित हैं। इस पर भी विचार करना पड़ेगा। यदि संविधान द्वारा सिर्फ इसी सदन को कतिपय विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं तो यह हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उनको कम न करें। माननीय मंत्री ने यह बताने के लिए कतिपय

टिप्पणियों का हवाला दिया है कि सरकार के पास करों और अन्य चीजों में परिवर्तन करने की शक्ति है। कानून के अधीन वह ऐसा कर सकती है। वह हमेशा ऐसा कर सकती है। किन्तु जब उस सदन में चर्चा होती है तब कभी-कभी मैं यह नहीं कहता कि इस बार या अगली बार ¬ कतिपय अवसरों पर ¬ यह आवश्यक हो सकती है और जहां तक इस कराधान का संबंध है, मंत्री महोदय को कोई घोषणा करने के लिए राजी किया जा सकता है। यह स्थिति कुछ विचित्र होगी क्योंकि सिर्फ यही सदन इन चीजों के लिए अनुरोध कर सकता है और मंत्री महोदय उसे देखते हुए रियायतें दे सकते हैं।"

सदस्य ने तर्क दिया कि उक्त टिप्पणियों से संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों में कमी आती है। सभा के नेता (श्री एम. सी. छागला) ने अपने उत्तर में निम्नलिखित टिप्पणी की:

"संविधान ने वित्तीय मामलों में लोक सभा और राज्य सभा की शक्तियों को स्पष्ट रूप से सीमांकित किया है। किन्तु मैं इस सदन से यही अनुरोध करूंगा कि हमें दूसरे सदन के साथ किसी टकराव या विवाद से बचने का प्रयास करना चाहिए और इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है कि इस सदन के अधिकार और विशेषाधिकार हमारे सभापति के हाथों में सुरक्षित हैं...संवैधानिक स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है। संविधान के अधीन लोक सभा की भांति हमें भी वित्तीय वक्तव्य पर चर्चा करने का पूरा अधिकार है और इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं है। संसद् दोनों सदनों से मिलकर बनती है।"[166]

(iii) राज्य सभा के बजट प्राक्कलनों की छानबीन

3 मई, 1966 को एक सदस्य ने समाचार-पत्रों में छपी खबर के आधार पर एक मामला उठाया कि राज्य सभा के बजट प्राक्कलनों की जांच के लिए संसद् के दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति गठित करने का प्रस्ताव किया गया है। सदस्य ने कहा कि ऐसे प्रस्ताव से दोनों सदनों के बीच मैत्री और तालमेल के संबंधों पर बुरा असर पड़ सकता है। सदस्यों ने इस मामले पर अपने विचार व्यक्त किए। सभा के नेता (श्री एम. सी. छागला) ने कहा कि अब तक जो परंपरा रही है वह बहुत अच्छी परंपरा है। परंपरा यह है कि प्रत्येक सदन के पीठासीन अधिकारी का काम है कि वह प्राक्कलनों का निपटारा करे और हर सदन को उस पर पूरा भरोसा हो। प्राक्कलनों पर लोक सभा या राज्य सभा में कभी चर्चा नहीं हुई। किन्तु यदि प्रक्रिया में कोई परिवर्तन करना ही है तो दो सिद्धांतों का ध्यान रखा जाना चाहिए। पहला सिद्धांत यह है कि जहां तक संभव हो, दोनों सदनों को आपसी तालमेल, सद्भावना और समझदारी के साथ कार्य करना चाहिए। दूसरा सिद्धांत यह है कि इस सभा की गरिमा को पूरी तरह से बनाए रखा जाना चाहिए। अत: सभा के नेता ने अध्यक्ष को या दूसरे सदन को राज्य सभा की इस इच्छा से अवगत कराने की पेशकश की या तो विद्यमान परंपरा जारी रखी जाए या यदि इस परंपरा को छोड़ देना है तो यह आवश्यक है कि हमारे अपने प्राक्कलनों की जांच और छानबीन के लिए हमारी ही एक समिति हो। यदि संयुक्त समिति ही बनाई जाती है तो वह राज्य सभा और लोक सभा दोनों के प्राक्कलनों की छानबीन करे। सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ चर्चा समाप्त की:

"पिछले साल लोक सभा के अध्यक्ष ने राज्य सभा के लेखाओं की भी जांच करने के लिए एक वैसी ही समिति नियुक्त करने की संभावना पर मेरे साथ विचार-विमर्श किया था जैसी उन्होंने लोक सभा के लेखाओं की जांच करने के लिए नियुक्त की थी। मैंने सभा में विभिन्न दलों के नेताओं से परामर्श करना उचित समझा और हमने अनौपचारिक रूप से विचार-विमर्श किया। इसके बाद मैंने अध्यक्ष के साथ यह मामला उठाया और उन्हें दो विकल्प दिए क्योंकि मुझे ऐसा करने का अधिकार दिया गया था। मैंने कहा कि यदि दो समितियां बनाई जाएं जिसमें से एक हमारी और दूसरी लोक सभा की हो तो इससे हमें बहुत खुशी होगी। उनकी समिति लोक सभा के लेखाओं की जांच करे और हमारी समिति राज्य सभा के लेखाओं की जांच करे। यदि किसी कारण से ऐसा करना संभव न हो या उचित न हो तो हम संयुक्त समिति के

गठन पर भी सहमत हो सकते हैं बशर्ते यह समिति राज्य सभा और लोक सभा दोनों के लेखाओं की साथ-साथ जांच करे। अध्यक्ष ने इन प्रस्तावों में से किसी को भी स्वीकार करना संभव नहीं पाया है। हम इस पर विचार-विमर्श करते रहे हैं। मैं उनके साथ अनेक बार विचार-विमर्श कर चुका हूं किन्तु हम किसी नतीजे पर नहीं पहुंचे। किन्तु यह विचार-विमर्श मेरे लिए बहुत हितकर रहा है। जो भी हो, बातचीत चलती रहेगी और मुझे इस विचार-विमर्श से पथ-प्रदर्शन प्राप्त हो सकेगा।"[167]

(iv) राज्य सभा को समाप्त करने के लिए लोक सभा में संकल्प

विगत में लोक सभा में राज्य सभा की समाप्ति के प्रयोजन से दो बार संकल्प उपस्थित किए गए हैं। एक संकल्प 18 मार्च, 1954 को उपस्थित किया गया और यह अस्वीकृत हुआ।[168] दूसरा संकल्प 30 मार्च, 1973 को उपस्थित किया गया था। प्रस्ताव उपस्थित करने वाले सदस्य के अलावा जिन सात सदस्यों ने बहस में भाग लिया था उनमें से सिर्फ एक ने संकल्प का समर्थन किया और सभी अन्य सदस्यों ने उसका विरोध किया। अंततः संकल्प अस्वीकृत हुआ।[169] 31 मार्च, 1973 को राज्य सभा में अनेक सदस्यों ने लोक सभा में उक्त संकल्प उपस्थित करने वाले सदस्य की कुछ कथित टिप्पणियों पर, जैसाकि वे एक प्रेस समाचार में छपी थीं, भारी रोष व्यक्त किया। सदस्यों का कहना था कि ऐसी टिप्पणियों से राज्य सभा की गरिमा और प्रतिष्ठा गिरती है और इसलिए यह सदन के विशेषाधिकार के भंग होने का मामला है। सभापति ने इस पर टिप्पणी की कि परंपरा यह है कि संसद् के दोनों सदन और उनके सदस्य एक-दूसरे के साथ पूरे सम्मान के साथ पेश आएं और एक-दूसरे की भावनाओं को पूरा महत्व दें और दोनों सदनों और उनके सदस्यों के बीच अच्छे से अच्छे संबंध हों। इसके साथ ही सभापति ने सदन को सूचित किया कि वे सदस्यों द्वारा व्यक्त विचारों से अध्यक्ष को अवगत कराएंगे। तदनुसार, सभापति ने अध्यक्ष को एक पत्र लिखा जिसके साथ सदन की कार्यवाही के संबद्ध उद्धरण भी संलग्न थे। पत्र में अध्यक्ष से निवेदन किया गया था कि वे इस संबंध में ऐसी कार्यवाही करें जिसे वे उचित समझें।[170] 30 अप्रैल, 1973 को सभापति ने मामले की पृष्ठभूमि को सामने रखते हुए एक घोषणा की और लोक सभा अध्यक्ष के दिनांक 5 अप्रैल, 1973 के उत्तर को पढ़कर सुनाया जिसमें अन्य बातों के साथ यह कहा गया था कि संबंधित सदस्य ने अपने भाषण में ऐसा कुछ नहीं कहा है जिसे समाचार पत्र में छपी खबर में सदस्य द्वारा कहा गया बताया गया है। अपने उत्तर में अध्यक्ष ने यह भी टिप्पणी की थी:

"दोनों सदनों के बीच और साथ ही उनके सदस्यों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों के बारे में आपने जो विचार व्यक्त किए हैं, मैं उनसे पूरी तरह से सहमत हूं।... मैं उस चिंता को भी समझता हूं जो आपके सदन के माननीय सदस्यों ने व्यक्त की है। लोक सभा की ओर से और मेरी ओर से भी उन्हें इस बारे में आश्वस्त करने की कृपा करें कि हम उनका पूरा सम्मान और आदर करते हैं।"

सभापति ने यह सूचना भी दी कि उन्हें 22 अप्रैल, 1973 को अध्यक्ष का एक और पत्र मिला है जिसके साथ उन्होंने उस घोषणा की एक प्रति भी भेजी है जो उन्होंने 19 अप्रैल, 1973 को लोक सभा में की थी। घोषणा के अंत में अध्यक्ष ने कहा था:

"क्या मैं इस अवसर पर माननीय सदस्यों से अनुरोध कर सकता हूं कि वे आवश्यक संयम बरतें और इस सभा में ऐसी कोई बात न कहें जिससे इस सभा और राज्य सभा के बीच कटुता पैदा हो सकती हो।"

इसके पश्चात् सभापति ने मामले को समाप्त कर दिया।[171]

(v) *राज्य सभा के सदस्य की वित्त मंत्री के रूप में नियुक्ति*

19 फरवरी, 1982 को जब लोक सभा में वित्त मंत्री को संबोधित दूसरा प्रश्न पुकारा गया तब एक सदस्य ने यह औचित्य प्रश्न उठाया (जिसे अध्यक्ष ने एक विशेष मामले के रूप में उठाने की अनुमति दी क्योंकि औचित्य प्रश्न का संबंध प्रश्न के साथ था) कि वित्त मंत्री (श्री प्रणब मुखर्जी) को, जो राज्य सभा के सदस्य हैं, वित्त मंत्रालय की अध्यक्षता करने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वित्तीय मामलों में लोक सभा के अधिकार सबसे बढ़-चढ़ कर हैं। अध्यक्ष ने विभिन्न तर्कों को सुनने के बाद और संविधान के अनुच्छेद 75, 77 और 80 का उल्लेख करते हुए अन्य बातों के साथ औचित्य प्रश्न को अमान्य ठहराया और अपने निर्णय के अंत में कहा कि "यह तथ्य कि दूसरे सदन से कोई सदस्य वित्त मंत्री नहीं बना, राज्य सभा के किसी सदस्य की वित्त मंत्री के रूप में नियुक्ति को नहीं रोकता।"[172]

23 फरवरी, 1982 को यह मामला राज्य सभा में एक सदस्य द्वारा उठाया गया जिसने यह तर्क किया कि लोक सभा में चर्चा के दौरान राज्य सभा पर "अप्रत्यक्ष रूप से लांछन लगाया गया है या आक्षेप किया गया है।" इस पर सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "संविधान में इस सदन के किसी सदस्य को वित्त मंत्री के रूप में नियुक्त करने पर कोई रोक नहीं है। वास्तव में संविधान निरपवाद रूप से यह कहता हुआ प्रतीत होता है कि मंत्री दो सदनों में से किसी भी सदन का सदस्य हो सकता है। इसमें सिर्फ यह रोक लगाई गई है कि वह उस सदन में मतदान नहीं कर सकता जिसका वह सदस्य नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारे सदन के किसी सदस्य को पहली बार वित्त मंत्री बनाया गया है। जहां तक मेरी बात है, मुझे खुशी है कि सभा के नेता को यह सम्मान प्राप्त हुआ है। हमें तो इसकी खुशी ही है। यह कहना आसान नहीं है कि विगत में ऐसी कोई प्रथा विकसित हुई है जो बद्ध मूल हो चुकी है क्योंकि एक बार यह प्रथा भी टूट चुकी है कि प्रधान मंत्री लोक सभा का सदस्य हो। ब्रिटेन की संसद् से सादृश्य स्थापित नहीं किया जा सकता क्योंकि हमारा संविधान एक लिखित संविधान है और...उसमें एक उपबंध है जो दूसरी दिशा की ओर इंगित करता है। मैं नहीं समझता कि यह कोई ऐसा मुद्दा है जिसका इस सदन से कोई सरोकार है। दूसरे सदन ने उन्हें (वित्त मंत्री को) पहले ही स्वीकार कर लिया है। यदि उसने ऐसा नहीं किया होता तो शायद हमें कुछ कहना पड़ता।"[173]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. अनुच्छेद 53(1)
2. अनुच्छेद 79
3. सत्ताईसवां प्रतिवेदन, विशेषाधिकार समिति (अंग्रेजी), पृष्ठ 22-23
4. अनुच्छेद 54 और 55(3)
5. अनुच्छेद 54, संविधान (सत्तरवां संशोधन) अधिनियम, 1992 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित स्पष्टीकरण
6. अनुच्छेद 55(2)
7. निर्वाचन आयोग का आदेश सं. 480/2/97(1), दिनांक 14.7.1997
8. राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, धारा 4(1)
9. ए.आई.आर. 1974, एस.सी. 1682
10. राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, धारा 4(3) और धारा (4)
11. -वही- धारा 5ख
12. -वही- धारा 5ग

13. बाबूराव पटेल बनाम डा. ज़ाकिर हुसैन, ए.आई.आर. 1968, एस.सी. 904
14. अनुच्छेद 58
15. अनुच्छेद 59(1)
16. अनुच्छेद 56
17. अनुच्छेद 57
18. असाधारण राजपत्र (II-3), 20.7.1969
19. लोक सभा वाद-विवाद, 1.8.1969, कालम 258-59
20. अनुच्छेद 56(1)(ख)
21. अनुच्छेद 61(1)
22. अनुच्छेद 61(2), 61(3), 361, पहला परंतुक और 61(4)
23. अनुच्छेद 65(1), अनुच्छेद 62(2) के साथ पठित
24. अनुच्छेद 65(2)
25. अनुच्छेद 70
26. असाधारण राजपत्र (II-3), 20.7.1969
27. अनुच्छेद 85
28. अनुच्छेद 87
29. अनुच्छेद 86
30. अनुच्छेद 91(1)
31. अनुच्छेद 95(1)
32. अनुच्छेद 99
33. अनुच्छेद 103
34. अनुच्छेद 108(3)
35. अनुच्छेद 103
36. अनुच्छेद 108(3)
37. अनुच्छेद 118(3)
38. अनुच्छेद 98
39. अनुच्छेद 117(1)
40. अनुच्छेद 3, परन्तुक
41. अनुच्छेद 274(1)
42. अनुच्छेद 117(3)
43. अनुच्छेद 111
44. अनुच्छेद 112
45. अनुच्छेद 115
46. अनुच्छेद 151(1)
47. अनुच्छेद 281
48. अनुच्छेद 323(1)
49. अनुच्छेद 338(2)
50. अनुच्छेद 340(3)
51. अनुच्छेद 350ख(2)
52. अनुच्छेद 123
53. अनुच्छेद 352
54. अनुच्छेद 356
55. अनुच्छेद 360

56. नियम 238(vi) और राज्य सभा वाद-विवाद, 7.6.1971, कालम 23
57. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.5.1970, कालम 169
58. -वही- 20.2.1961, कालम 499-501
59. -वही- 13.3.1987, कालम 202-05
60. -वही- 17.3.1987, कालम 220-22
61. -वही- 20.3.1987, कालम 240-66
62. -वही- 13.9.1991, कालम 1
63. -वही- 14.9.1991, कालम 17-23
64. -वही- 9.5.1984, कालम 147-50
65. छब्बीसवां प्रतिवेदन, विशेषाधिकार समिति
66. सत्ताईसवां प्रतिवेदन, विशेषाधिकार समिति
67. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.2.1963, कालम 81-91; और 20.2.1963, कालम 232-33
68. जवाहरलाल नेहरू, मुख्य मंत्रियों को पत्र, खंड 5 (1958-1964), पृष्ठ 577
69. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.4.1971, कालम 109-209 [ब्यौरे के लिए अध्याय-7 देखें]
70. अनुच्छेद 75(3)
71. अनुच्छेद 113(2)
72. अनुच्छेद 109(1) और 117(1)
73. इसी अध्याय में संदर्भ 43-54
74. अनुच्छेद 54, 60, 61 और 67(ख)
75. संसद् के सदन (संयुक्त बैठक और संवाद) नियम, असाधारण राजपत्र [I(1)], 20.5.1952 में सं. का. वि. अधि. सं. 5(1)-सं.का.-52, 16.5.1952 के अधीन प्रकाशित
76. -वही- नियम 9-12
77. नियम 111
78. नियम 115
79. नियम 127 और 128
80. नियम 131 और 132
81. नियम 186(6)
82. नियम 118
83. नियम 69(iii) और 70(2)
84. नियम 90(1), दूसरा परंतुक
85. अनुच्छेद 108(1)
86. अनुच्छेद 108(3)
87. अनुच्छेद 108(5)
88. संसद् के सदन (संयुक्त बैठक और संवाद) नियम, नियम 3
89. अनुच्छेद 118(4)
90. संसद् के सदन (संयुक्त बैठक और संवाद) नियम, नियम 6
91. अनुच्छेद 108(4)
92. अनुच्छेद 100(1)
93. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.12.1959, कालम 2768-2801
94. लोक सभा वाद-विवाद, 11.2.1960, कालम 588-608 और 23.2.1960 कालम 2407-2453
95. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.2.1960, कालम 1949-50
96. -वही- 10.3.1960, कालम 3456-80

97. संसदीय समाचार (1), 30.11.1960
98. लोक सभा संसदीय समाचार (1), 13.12.1960
99. नियम 116
100. संसदीय समाचार (1), 19.4.1961
101. संसद् के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक वाद-विवाद, 9.5.1961, कालम 282-314
102. संसदीय समाचार (1), 10.5.1978
103. संसद् के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक वाद-विवाद, 16.5.1978, कालम 150
104. संसदीय समाचार (2), 21.3.2002
105. -वही- 22.3.2002
106. नियम 238(iii)
107. लोक सभा वाद-विवाद, 2.8.1977, कालम 264-368
108. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.8.1977, कालम 185
109. -वही- 4.5.1953, कालम 4749-55
110. -वही- 21.7.1987, कालम 259
111. नियम 238क
112. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.6.1967, कालम 4656-59
113. -वही- 30.3.1970, कालम 192
114. -वही- 31.3.1970, कालम 147
115. -वही- 1.4.1970, कालम 53, 61
116. लोक सभा वाद-विवाद, 1.4.1970, कालम 234-37
117. संसदीय वाद-विवाद, 1950-1985, पृष्ठ 571
118. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.4.1970, कालम 10-11
119. -वही- 2.9.1970, कालम 152-55
120. लोक सभा वाद-विवाद, 3.9.1970, कालम 6-9
121. संसदीय वाद-विवाद, 1950-1985, पृष्ठ 97
122. मे, पृष्ठ 375 और नियम 354, एलएसआर
123. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.6.1962, कालम 1738-42
124. -वही- 15.9.1954, कालम 2311
125. -वही- 24.12.1957, कालम 4011-12
126. नियम 57
127. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.2.1988, कालम 299
128. -वही- 3.8.1977, कालम 185
129. -वही- 28.2.1989, कालम 19
130. -वही- 2.1.1991, कालम 740-50
131. -वही- 29.4.1953, कालम 4425-26
132. लोक सभा वाद-विवाद, 30.4.1953, कालम 5509-10
133. -वही- 1.5.1953, कालम 4623-24
134. -वही- 1.5.1953, कालम 5555
135. -वही- 1.5.1953, कालम 5543-5556
136. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.5.1953, कालम 5038-42
137. लोक सभा वाद-विवाद, 6.5.1953, कालम 5884
138. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.9.1963, कालम 4260-4340

139. नियम 74 और 75, एलएसआर द्वारा यथा संशोधित, लोक सभा संसदीय समाचार (2), 9.5.1989; राज्य सभा वाद-विवाद, 9.8.1968, कालम 2696-2701; 20.8.1968, कालम 3701-08
140. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.8.1968, कालम 4530
141. -वही- 11.5.1954, कालम 5999-6000
142. लोक सभा वाद-विवाद, 12.5.1954, कालम 7161-7169, 13.5.1954, कालम 7275-83
143. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.5.1954, कालम 6424-33 और 15.5.1954, कालम 6539-43
144. लोक सभा और राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति की संयुक्त समिति का प्रतिवेदन (1954), ब्यौरे के लिए अध्याय-8 आगे देखें
145. फा. सं. सीएस 3/53-एल; राज्य सभा वाद-विवाद, 9.4.1953, कालम 2501-03 भी देखें
146. फा. सं. सीएस-3/53-एल
147. एस.एल. शकधर, 'दोनों सदनों के पारस्परिक संबंध', द्वितीय सदन—आधुनिक विधानमंडलों में उसकी भूमिका—राज्य सभा के पच्चीस वर्ष, राज्य सभा सचिवालय, 1977, पृष्ठ 299
148. लोक सभा वाद-विवाद, 12.5.1953, कालम 6402
149. -वही- 13.5.1953, कालम 6592
150. -वही- कालम 6596-97
151. लोक सभा संसदीय समाचार (1), 24.12.1953
152. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.5.1954, कालम 6321-28
153. -वही- कालम 6327-28
154. लोक सभा वाद-विवाद, 24.11.1961, कालम 1010-66
155. लोक सभा संसदीय समाचार (1), 20.11.1963
156. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.4.1975, कालम 122-35
157. लोक सभा वाद-विवाद, 29.4.1975, कालम 204-22
158. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.4.1975, कालम 213-29
159. -वही- 2.5.1975, कालम 140-42
160. लोक सभा वाद-विवाद, 28.7.1982, कालम 332
161. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.11.1952, कालम 39-40
162. -वही- 27.11.1952, कालम 422
163. लोक सभा वाद-विवाद, 2.3.1963, कालम 1739-41
164. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.3.1963, कालम 1614-24
165. लोक सभा वाद-विवाद, 12.3.1965, कालम 4023-25
166. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.3.1965, कालम 3443
167. -वही- 3.5.1966, कालम 62-80
168. लोक सभा वाद-विवाद, 18.3.1954, कालम 2640 और 4010-11
169. -वही- 30.3.1973, कालम 291-327
170. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.3.1973, कालम 11-27
171. -वही- 30.4.1973, कालम 125-28
172. लोक सभा वाद-विवाद, 19.2.1982, कालम 9-27
173. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.2.1982, कालम 213-15

अध्याय-6

राज्य सभा के सत्र

राज्य सभा का विघटन नहीं होता[1] जबकि लोक सभा, यदि पहले ही विघटित नहीं कर दी जाती है तो वह अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियत तारीख से पांच वर्ष तक बनी रहती है और पांच वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति का परिणाम लोक सभा का विघटन होता है।[2]

संविधान में यह उपबंध है कि राष्ट्रपति समय-समय पर संसद् के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर, जो वह ठीक समझे, अधिवेशन के लिए आहूत करेगा किन्तु उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा।[3] राष्ट्रपति समय-समय पर सदनों का या किसी एक सदन का सत्रावसान कर सकता है।[4] राज्य सभा का सत्र राष्ट्रपति के आह्वान आदेश में उल्लिखित तारीख और समय पर आरंभ होता है और वह उस दिन समाप्त हो जाता है जब वह सदन का सत्रावसान करता है।

कोई भी सत्र संसद् के अधिवेशन और उसके सत्रावसान के बीच की कालावधि होता है। सत्र के दौरान कोई भी सदन अपनी इच्छानुसार किसी भी तारीख के लिए स्थगित हो सकता है। संसद् के सत्रावसान और नए सत्र में उसके पुन: समवेत होने की अवधि को मध्यावकाश (रिसेस)[5] कहा जाता है जबकि किसी सदन के स्थगन और उसकी बैठक के पुन: आरंभ होने के बीच की अवधि को सामान्यत: स्थगन (एडजोर्नमेंट)[6] कहा जाता है।

सामान्यत: 1994 तक राज्य सभा एक वर्ष में चार सत्रों में समवेत होती रही, अर्थात् फरवरी-मार्च और अप्रैल-मई के महीनों में बजट सत्र; जुलाई - अगस्त के महीनों में वर्षाकालीन सत्र और नवम्बर-दिसंबर के महीनों में शीतकालीन सत्र; किन्तु 1961, 1962, 1964, 1976, 1977, 1980, 1985 और 1991 के वर्षों में प्रत्येक के दौरान राज्य सभा के 5 सत्र हुए[7] और 1975 और 1984 के वर्षों में उसके केवल तीन सत्र हुए।

> प्रारंभिक वर्षों में बजट सत्र के दौरान राज्य सभा में मार्च और अप्रैल के बीच 2-3 सप्ताहों का मध्यावकाश होता था और सत्र को दो सत्रों के बजाय दो भागों में विभक्त कर दिया जाता था। उदाहरण के लिए, 1952 के पहले सत्र, 1953 के तीसरे सत्र और 1954 के छठे सत्र के दो-दो भाग थे।

1994 के 170वें सत्र (बजट सत्र) से, बजट सत्र को पूर्व प्रथा के अनुसार दो सत्रों में विभक्त न करके लगातार चलने वाला सत्र माना जा रहा है। 1993 में विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों की स्थापना के परिणामस्वरूप बजट सत्र को दो भागों में विभाजित कर दिया गया। समितियों से संबंधित नियम में यह उपबंध किया गया है कि सदनों में बजट पर सामान्य चर्चा की समाप्ति के पश्चात् सदनों को एक निश्चित अवधि के लिए स्थगित किया जाएगा और समितियों को उपरोक्त अवधि के दौरान संबद्ध मंत्रालयों की अनुदान मांगों पर विचार करना होगा।[8] एक सौ सत्तरवां सत्र इस अर्थ में भी अनोखा था कि वह तीन अवधियों में संपन्न हुआ अर्थात्, (1) 21 फरवरी, 1994 से 18 मार्च, 1994 तक, (2) 18 अप्रैल, 1994 से 13 मई, 1994 तक और (3) 13 जून, 1994 से 15 जून, 1994 तक।

चूंकि राज्य सभा सतत् रूप से विद्यमान रहने वाला निकाय है और उसका विघटन नहीं होता, अत: आरंभ से ही राज्य सभा के सत्रों और बैठकों को भी क्रम-वार और लगातार संख्यांकित किया जाता है।

राष्ट्रपति द्वारा आह्वान

राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए भारत सरकार (कार्य का आवंटन) नियमों के अधीन संसद् के दोनों सदनों का आह्वान और सत्रावसान करने की तारीख को नियत करना उन कृत्यों में से एक है जो संसदीय कार्य मंत्रालय को सौंपे गए हैं।[9] सरकारी कार्य को करने और समय-समय पर संसद्-सदस्यों की मांग के अनुसार जनहित के मामलों पर चर्चा के लिए आवश्यक संभावित समय का आकलन करके संसदीय कार्य मंत्रालय संसद् के किसी सत्र को आरंभ करने की तारीख और उसकी संभावित अवधि के संबंध में सिफारिश करने के लिए संसदीय कार्य संबंधी मंत्रिमंडलीय समिति के समक्ष टिप्पण प्रस्तुत करता है। यदि सिफारिश पर प्रधान मंत्री सहमत हो जाता है तो संसदीय कार्य मंत्रालय, सत्र को आरंभ करने की तारीखों को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकार किए जाने के लिए, सिफारिश को उसके पास भेजता है।[10] इसके पश्चात् संसदीय कार्य मंत्रालय से राज्य सभा सचिवालय को इस आशय की संसूचना प्राप्त होती है कि सरकार ने निर्णय किया है कि राज्य सभा को अमुक तारीख को आहूत किया जाए और सरकारी कार्य की अत्यावश्यकताओं के अधीन रहते हुए सत्र अमुक तारीख को समाप्त हो सकता है और संसदीय कार्य मंत्रालय ने राज्य सभा के सत्र के आरंभ की तारीख के बारे में राष्ट्रपति को सूचित किया है जिसने उसे स्वीकृत कर लिया है। इस संसूचना के आधार पर महासचिव द्वारा हस्ताक्षरित एक टिप्पण, एक आह्वान आदेश के साथ, जो राष्ट्रपति के अनुमोदन और हस्ताक्षर के लिए होता है, राष्ट्रपति के सचिव को भेजा जाता है। आह्वान आदेश का रूप निम्नलिखित है:

> संविधान के अनुच्छेद 85 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, मैं एतद्द्वारा राज्य सभा को...(दिन)... (तारीख) को मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे नई दिल्ली में समवेत होने के लिए आहूत करता हूं।
>
> ...20... (राष्ट्रपति)[11]

इसके पश्चात् राष्ट्रपति का आह्वान आदेश राज्य सभा सचिवालय की अधिसूचना द्वारा, जिसमें महासचिव के हस्ताक्षर होते हैं, भारत के असाधारण राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है। इस सूचना को समाचार-पत्रों और जन-संचार माध्यमों के द्वारा भी प्रकाशित किया जाता है। भारत सरकार के मंत्रालयों आदि को एक परिपत्र के द्वारा सभा का आह्वान करने के संबंध में राष्ट्रपति के आदेश के बारे में सूचित किया जाता है।

> 1955 में संसदीय कार्य विभाग ने सुझाव दिया कि अनुच्छेद 85 के अधीन संसद् के किसी सदन का आह्वान या सत्रावसान करने संबंधी राष्ट्रपति के आदेश के प्रकाशन की तत्कालीन प्रक्रिया में इस प्रकार से परिवर्तन किया जाना चाहिए:
>
> (1) संसद् का आह्वान या सत्रावसान करने के प्रधान मंत्री या मंत्रिमंडल के निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए अनुच्छेद 85 के अधीन सभी आदेश राष्ट्रपति द्वारा संसदीय कार्य विभाग के माध्यम से किए जाने चाहिए।
>
> (2) ऐसे आदेशों पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो जाने और उन्हें संसदीय कार्य विभाग को लौटाये जाने के बाद संसदीय कार्य विभाग को आगे की कार्यवाही के लिए, जहां तक संसद्-सदस्यों का संबंध है, आदेशों के बारे में दोनों सदनों के महासचिवों को तत्काल सूचित करना चाहिए और उन्हें भारत के राजपत्र में प्रकाशित करना चाहिए और उनकी प्रतियों को सूचना के लिए मंत्रालयों आदि को भेजना चाहिये।

यह तर्क दिया गया कि चूंकि संसदीय कार्य विभाग को संसद् और राष्ट्रपति अर्थात् सरकार के बीच संपर्क करने के लिए स्थापित और गठित किया गया है, प्रधान मंत्री या मंत्रिमंडल की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा की गई किसी कार्यवाही पर क्या किया जाए, यह देखना भी उस विभाग का कार्य है। संसद के सचिव भी राष्ट्रपति के प्रति प्रत्यक्षत: उत्तरदायी नहीं हैं।

किन्तु इस सुझाव को निम्नलिखित कारणों से स्वीकार नहीं किया गया:

(1) अनुच्छेद 85 के अधीन संसद् का आह्वान और सत्रावसान संबंधी आदेश संबंधित सदन के महासचिव राष्ट्रपति के नाम से नहीं करते हैं और न वह उन पर हस्ताक्षर करता है बल्कि ये आदेश स्वयं राष्ट्रपति द्वारा किए जाते हैं और उसके पश्चात् उन्हें संबंधित सदन के महासचिव द्वारा अधिसूचित किया जाता है। अत: अनुच्छेद 77(2) के अधीन इन आदेशों को अधिप्रमाणित करने का प्रश्न ही नहीं उठता;

(2) संसद् के आह्वान या सत्रावसान के बारे में प्रधान मंत्री या मंत्रिमंडल के निर्णय को प्राप्त करने से संबंधित कार्यपालक कार्यवाही संसदीय कार्य विभाग द्वारा की जाती है और सदन के सचिवालय का कार्य सिर्फ यही है कि वह, प्रधान मंत्री या मंत्रिमंडल द्वारा जिस आदेश के बारे में सिफारिश की जाती है, उस आदेश के सार भाग को राष्ट्रपति को भेज दे और उसके अनुमोदन और हस्ताक्षर के लिए आदेश का एक प्रारूप भी भेज दे। इसके पश्चात् आदेश को राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है। इस प्रक्रिया को सचिवालय द्वारा की गई कोई कार्यपालक कार्यवाही कहना युक्तियुक्त नहीं लगता;

(3) किसी सदन का आह्वान या सत्रावसान संसद् के कार्यकरण से संबंधित है और चूंकि राष्ट्रपति संसद् का घटक है इसलिए सचिवालय द्वारा प्रधान मंत्री या मंत्रिमंडल के निर्णय के बारे में राष्ट्रपति को सूचित करने में कोई अनौचित्य की बात नहीं है;

(4) यद्यपि राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की सलाह पर किसी विधेयक पर अपनी अनुमति देता है तथापि, सदन का सचिव किसी विधेयक को राष्ट्रपति को उसकी अनुमति के लिए भेजता है;

(5) राष्ट्रपति के आदेश को प्रकाशित करने का कार्य समुचित रूप से विधान-मंडल का है, कार्यपालिका का नहीं।[12]

राज्य सभा के आह्वान के लिए राष्ट्रपति के आदेश को जारी करने और उसके आरंभ की तारीख के बीच का समय सत्र को बुलाने के सरकार के निर्णय पर निर्भर है। सामान्यत: यह समय 3 से 10 सप्ताह तक का रहा है। जब बीच का समय बहुत थोड़ा होता है या सत्र को आपातकालिक रूप से या अल्प सूचना पर बुलाया जाता है तब तार द्वारा सदस्यों को आहूत किया जाता है और उसके बाद प्रेस विज्ञप्ति और शासकीय माध्यमों के द्वारा आह्वान की तारीख को प्रकाशित किया जाता है।[13] सभा को आपातकालिक रूप से या अल्प सूचना पर आहूत करने के उदाहरण निम्नलिखित हैं:

33वां सत्र (1961)—जब उड़ीसा राष्ट्रपति शासन के अधीन था तब उसके बजट को स्वीकृत करने के लिए; 75वां सत्र (1971)—आम चुनावों के बाद बुलाया गया सत्र; 99वां सत्र (1977)—अनुच्छेद 356(4) के द्वितीय परंतुक अधीन तमिलनाडु और नागालैंड में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाने के लिए; 100वां सत्र (1977)—आम चुनावों के बाद बुलाया गया सत्र और 158वां सत्र (1991)—अनुच्छेद 356(3) के परंतुक के अधीन हरियाणा में राष्ट्रपति शासन के अनुमोदन के लिए।

यदि आह्वान आदेश को जारी करने के पश्चात् सत्र के आरंभ की तारीख में कोई परिवर्तन होता है तो राष्ट्रपति से नया आह्वान आदेश प्राप्त किया जाता है, जैसाकि निम्नलिखित मामलों में हुआ था:

राज्य सभा के चौथे सत्र को मूलत: 17 अगस्त, 1953 को समवेत होने के लिए आहूत किया गया था। 28 मई, 1953 को राष्ट्रपति द्वारा आह्वान आदेश पर हस्ताक्षर हुए। इस बात को देखते हुए कि राज्य सभा के पास पर्याप्त कार्य नहीं था, सरकार ने सत्र को स्थगित करने और उसे 24 अगस्त, 1953 को बुलाने का निर्णय किया। 5 अगस्त, 1953 को पिछले आदेश का 'अधिक्रमण करते हुए' राष्ट्रपति ने एक नये आह्वान आदेश पर हस्ताक्षर किए। सत्र के आरंभ की तारीख को स्थगित किए जाने के बारे में सदस्यों ने सभा में आपत्ति की। सभा के नेता ने स्थिति स्पष्ट की। सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की कि यदि संसदीय कार्य की योजना सावधानीपूर्वक बनाई जाती तो स्थगन से बचा जा सकता था और इस टिप्पणी के साथ मामला समाप्त हो गया।[14]

41वां सत्र मूलत: 21 नवम्बर, 1962 को आरंभ करने का प्रस्ताव था। इस तारीख को बदलकर 8 नवम्बर, 1962 कर दिया गया और इससे पहले के आह्वान आदेश को रद्द कर दिया गया।[15]

51वां सत्र मूलत: 15 फरवरी, 1965 को आरंभ करने का प्रस्ताव था। तदनुसार आह्वान आदेश के एक प्रारूप को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया गया। किन्तु राष्ट्रपति द्वारा उस पर हस्ताक्षर किए जाने के पूर्व यह निर्णय किया गया कि सत्र 17 फरवरी, 1965 से आरंभ होना चाहिए। अत: राष्ट्रपति सचिवालय ने मूल आह्वान आदेश को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बिना लौटा दिया। इसके पश्चात् राष्ट्रपति के अनुमोदन और हस्ताक्षर के लिए आह्वान आदेश का संशोधित प्रारूप पुन: भेजा गया।[16]

59वां सत्र मूलत: 13 मार्च, 1967 को आरंभ होना था। इस तारीख को बदलकर 18 मार्च, 1967 कर दिया गया और पिछले आदेश का 'अधिक्रमण करते हुए' एक नया आह्वान आदेश जारी किया गया।[17]

92वां सत्र मूलत: 28 अप्रैल, 1975 को आरंभ होना था। इस तारीख को बदलकर 25 अप्रैल, 1975 कर दिया गया और पिछले आदेश का 'अधिक्रमण करते हुए' एक नया आह्वान आदेश जारी किया गया।[18]

101वां सत्र मूलत: 23 मई, 1977 को आरंभ होना था। इस तारीख को बदलकर 11 जून, 1977 कर दिया गया और पिछले आदेश का 'अधिक्रमण करते हुए' एक नया आह्वान आदेश जारी किया गया।[19]

तथापि, एक अवसर पर राज्य सभा को 14 जून, 1962 को समवेत होने के लिए आहूत किया गया था, किन्तु 10 जून, 1962 को सरकार ने मुहर्रम के उपलक्ष्य में (जो मूलत: 13 जून, 1962 को पड़ना था) 14 जून, 1962 को सार्वजनिक छुट्टी घोषित कर दी। चूंकि इस स्थिति में सत्र के आरंभ की तारीख को बदलना संभव नहीं था इसलिए सभा निर्धारित तारीख को बैठी और उसके बाद दिनभर के लिए स्थगित हो गई।[20]

यह आवश्यक नहीं है कि दोनों सदनों को एक साथ आहूत किया जाए या दोनों एक ही तारीख को समवेत हों।[21] 1961 तक वर्ष के प्रथम सत्र या लोक सभा के आम चुनाव के बाद हुए पहले सत्र के सिवाय दोनों सदनों ने अलग-अलग तारीखों को अपने सत्र आरंभ किए। राज्य सभा को लोक सभा के सत्र के आरंभ होने के कुछ दिनों के बाद या सामान्यत: एक सप्ताह या कभी-कभी दस दिन या दो सप्ताह के बाद आहूत किया जाता था। यह संभवत: लोक सभा द्वारा कुछ विधायी कार्य किए जाने की प्रतीक्षा करने के लिए किया जाता था ताकि बाद में उस पर राज्य सभा विचार कर सके अन्यथा राज्य सभा और लोक सभा के साथ-साथ बैठने पर राज्य सभा के पास कोई काम करने के लिए नहीं होता। उदाहरण के लिए, राज्य सभा का दूसरा सत्र 24 नवम्बर, 1952 को आरंभ हुआ जबकि लोक सभा का सत्र 5 नवम्बर, 1952 को आरंभ हुआ; राज्य सभा का चौथा सत्र 24 अगस्त, 1953 को आरंभ हुआ जबकि लोक सभा का सत्र 3 अगस्त, 1953 को आरंभ हुआ; राज्य सभा का अठारहवां सत्र 12 अगस्त, 1957 को आरंभ हुआ जबकि लोक सभा का सत्र 15 जुलाई, 1957 को आरंभ हुआ। किन्तु 1962 से दोनों सदन सामान्यत: साथ-साथ समवेत होते रहे हैं।

अनुच्छेद 356(4) के दूसरे परंतुक के अधीन तमिलनाडु और नागालैंड में राष्ट्रपति शासन की अवधि को बढ़ाने के लिए 28 फरवरी, 1977 और 1 मार्च, 1977 को राज्य सभा का दो दिन का विशेष सत्र (99वां सत्र)

आयोजित किया गया। दूसरा दो दिन का विशेष सत्र (158वां सत्र) अनुच्छेद 356(3) के परंतुक के अधीन हरियाणा में राष्ट्रपति शासन के अनुमोदन के लिए 3 जून, 1991 और 4 जून, 1991 को आयोजित किया गया। इन दोनों अवसरों पर लोक सभा के भंग रहने पर भी राज्य सभा की बैठक हुई।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा की 20वीं वर्षगांठ के अवसर पर संसदीय कार्य मंत्री द्वारा दिये गये इस सुझाव से सभापति सहमत नहीं हुए कि इस अवसर के उपलक्ष्य में एक विशेष सत्र आयोजित किया जाए। तथापि, मंत्री के सुझाव पर सभापति ने सभा में इस अवसर के बारे में विशेष रूप से एक उल्लेख किया।[22] एक अन्य अवसर पर एक सदस्य द्वारा दिये गये इस सुझाव पर सभा सहमत नहीं हुई कि भारत-चीन युद्ध की स्थिति पर चर्चा करने के लिए एक गुप्त सत्र आयोजित किया जाना चाहिए।[23]

सदस्यों को आहूत किया जाना

महासचिव प्रत्येक सदस्य को आह्वान जारी करता है।[24] सामान्यत: राष्ट्रपति के सचिवालय से राष्ट्रपति के आह्वान आदेश के प्राप्त होने के बाद यथाशीघ्र आह्वान जारी किये जाते हैं। आह्वान एक ओर हिंदी में और दूसरी ओर अंग्रेजी में मुद्रित किये जाते हैं और प्रत्येक सदस्य को उसके नाम से भेजे जाते हैं। आह्वान का रूप इस प्रकार होता है:

आमंत्रण

संसद् भवन,
नई दिल्ली

...(तारीख) 20...

श्री/श्रीमती संसद् सदस्य,

मुझे आपको यह सूचित करने का निदेश हुआ है कि राष्ट्रपति[25] ने संविधान के अनुच्छेद 85 के खंड (1) के द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सभा को ...(वार),... (तारीख), 20.... को मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे, नई दिल्ली में समवेत होने के लिए आमंत्रित किया है।

आपसे अनुरोध है कि आप तदनुसार राज्य सभा के सत्र में उपस्थित हों।

महासचिव।

1969 तक आह्वानों को निम्नलिखित रूप में जारी किया जाता था:

संविधान के अनुच्छेद 85 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति द्वारा कृपया यह निदेश दिए जाने पर कि राज्य सभा का सत्र नई दिल्ली में आयोजित किया जाए और इस सत्र को आरंभ करने की तारीख...19..., ...(वार), मध्याह्न पूर्व... नियत की जाए, आपको... (सदस्य का नाम) एतद्द्वारा उपरोक्त स्थान पर और तारीख को उक्त राज्य सभा में उपस्थित होने के लिए आहूत किया जाता है।

राष्ट्रपति के आदेश से,

सचिव।

15 दिसंबर, 1969 को हुई राज्य सभा की एक बैठक में एक सदस्य ने सुझाव दिया कि आह्वान के उपरोक्त रूप में परिवर्तन किया जाना चाहिए।[26] 23 दिसंबर, 1969 को राज्य सभा के सभापति की अध्यक्षता में राज्य सभा में विभिन्न दलों और समूहों के नेताओं की एक बैठक में आह्वान के उपरोक्त रूप के स्थान पर वर्तमान रूप का उपयोग करने का निर्णय किया गया और यह रूप 71वें सत्र (1970) से प्रचलित है।[27]

सदस्यों को जो आमंत्रण भेजे जाते हैं वे उनके दिल्ली के पते और स्थायी पते पर भेजे जाते हैं। ये आमंत्रण स्थायी पते पर स्पीड पोस्ट द्वारा भेजे जाते हैं। निरुद्ध सदस्य को संबंधित जेल प्राधिकारी की मार्फत आमंत्रण भेजे जाते हैं।

1975 में 93वें और 94वें सत्र के लिए; 1976 में 95वें से 98वें सत्रों के लिए; 1977 में 99वें सत्र के लिए; 1979 में 108वें सत्र के लिए; 1981 में 119वें सत्र के लिए; 1982 में 123वें सत्र के लिए; 1984 में 129वें और 130वें सत्र के लिए; और 1985 में 132वें और 133वें सत्र के लिए; 2012 में 225वें सत्र के लिए और 2013 में 230वें सत्र के लिए संबंधित जेल अधिकारियों की मार्फत निरुद्ध सदस्यों को आमंत्रण भेजे गये। पैरोल पर छोड़े गये एक सदस्य को उसके द्वारा बताये गये पते पर आमंत्रण भेजा गया।[28]

यदि कोई सदस्य सूचित करता है कि उसे आमंत्रण प्राप्त नहीं हुआ है तो उसकी दूसरी प्रति उसे जारी की जाती है।

सत्र की बैठक बुलाये जाने से संबंधित सूचना सदस्यों तक तुरंत प्रेषित करने के लिए वर्ष 2008 में राज्य सभा के 213वें सत्र से एसएमएस संदेश भेजने की परिपाटी शुरू की गई है। जैसे ही राष्ट्रपति द्वारा यथाहस्ताक्षरित आह्वान आदेश प्राप्त होता है, वैसे ही सदस्यों को उनके आधिकारिक मोबाइल नंबरों पर एसएमएस संदेश भेज दिया जाता है। एसएमएस में मूलभूत जानकारी, यथा सत्र के आरंभ होने की तारीख और उसकी अवधि, प्रश्नों के लिए बैलट की पहली तीन तारीखें, और गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों आदि के लिए बैलट की तारीख होती है।

आमंत्रण के साथ प्रत्येक सदस्य को बैठकों की अस्थायी सारणी की एक मुद्रित प्रति उपलब्ध कराई जाती है जिसमें यह दर्शाया जाता है कि राज्य सभा किस-किस तारीख को बैठेगी और ऐसी प्रत्येक बैठक में किस प्रकार का कार्य करेगी। किन्तु जब राज्य सभा को 1977 में (99वें सत्र के लिए) और पुन: 1991 में (158वें सत्र के लिए) दो दिन के छोटे से विशेष सत्र के लिए बुलाया गया था तब बैठकों की अस्थायी सारणी जारी नहीं की गई थी। राष्ट्रपति के अभिभाषण, सभा की बैठकों के समय, सत्र के दौरान गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए लॉटरी निकालने की प्रक्रिया और तारीखों, प्रश्नों का उत्तर देने के लिए दिनों के आवंटन और सूचनाओं को देने तथा प्रश्नों के लिए लॉटरी निकाले जाने से संबंधित प्रक्रिया आदि के बारे में संसदीय समाचार के द्वारा भी सदस्यों को विस्तारपूर्वक जानकारी दी जाती है। आमंत्रण के साथ प्रत्येक सदस्य को एक चार्ट भी भेजा जाता है जिसमें प्रश्नों की सूचनाओं की प्राप्ति की पहली और अन्तिम तारीखें दर्शायी जाती हैं।

यदि आमंत्रण के जारी होने के पश्चात् सत्र के आरंभ की तारीख में कोई परिवर्तन होता है तो पिछले आमंत्रण को रद्द करते हुए एक नया आमंत्रण जारी किया जाता है और सदस्यों को तदनुसार सूचना भी दी जाती है।

यदि सभा अनियत तारीख के लिए स्थगित कर दी जाती है, सत्रावसान के पूर्व उसे पुन: समवेत किया जा सकता है। सत्र के पुन: समवेत होने वाले भाग को उसका दूसरा भाग माना जाता है और नये आमंत्रण जारी नहीं किए जाते और सदस्यों को सभा के पुन: समवेत होने के बारे में पत्र/एसएमएस द्वारा सूचना दी जाती है।

151वां सत्र, जो 18 जुलाई, 1989 को आरंभ हुआ था, 18 अगस्त, 1989 को अनियत तारीख के लिए स्थगित किया गया था। राज्य सभा का सत्रावसान नहीं किया गया था। संसदीय कार्य मंत्री से एक प्रस्ताव प्राप्त होने पर सभापति ने 11 अक्तूबर, 1989 को सभा की बैठक पुन: बुलाई। 18 अगस्त, 1989 को राज्य सभा

के अनियत तारीख तक स्थगित होने की अवधि से पूर्व और पश्चात् के दो भागों को एक ही सत्र माना गया जिसके दो भाग थे अर्थात् भाग-1 और भाग-2 । सत्र के भाग-2 की समाप्ति पर राज्य सभा 13 अक्तूबर, 1989 को अनियत तारीख के लिए स्थगित की गई और 20 अक्तूबर, 1989 को राष्ट्रपति द्वारा उसका सत्रावसान किया गया।[29]

153वां सत्र 12 मार्च, 1990 को आरंभ हुआ। उसे 30 मार्च, 1990 को अनियत तारीख के लिए स्थगित किया गया। इसका सत्रावसान नहीं किया गया। संसदीय कार्य मंत्री से एक प्रस्ताव प्राप्त होने पर सभापति ने 9 अप्रैल, 1990 को सभा की बैठक पुन: बुलाई। 30 मार्च, 1990 को अनियत तारीख के लिए स्थगन के पूर्व और पश्चात् के दो भागों को एक सत्र माना गया जो दो भागों अर्थात् भाग-1 और भाग-2 में विभक्त था। 10 अप्रैल, 1990 को भाग-2 की समाप्ति पर राज्य सभा को उसी दिन अनियत तारीख के लिए स्थगित किया गया और 12 अप्रैल, 1990 को राष्ट्रपति द्वारा उसका सत्रावसान किया गया।[30]

155वां सत्र 7 अगस्त, 1990 को आरंभ हुआ। 7 सितंबर, 1990 को उसे अनियत तारीख के लिए स्थगित किया गया। सभा का सत्रावसान नहीं किया गया। संसदीय कार्य मंत्री से एक प्रस्ताव प्राप्त होने पर सभापति ने 1 अक्तूबर, 1990 को सभा की बैठक पुन: बुलाई। 7 सितंबर, 1990 को अनियत तारीख तक स्थगित किये जाने की अवधि के पूर्व और पश्चात् के दो भागों को एक सत्र माना गया जो दो भागों अर्थात् भाग-1 और भाग-2 में विभक्त था। 5 अक्तूबर, 1990 को भाग-2 की समाप्ति पर राज्य सभा को उसी दिन अनियत तारीख के लिए स्थगित किया गया और 11 अक्तूबर, 1990 को राष्ट्रपति द्वारा उसका सत्रावसान किया गया।[31]

200वां सत्र 2 दिसंबर, 2003 को आरंभ हुआ। उसे 23 दिसंबर, 2003 को अनियत तारीख के लिए स्थगित किया गया। सभा का सत्रावसान नहीं किया गया। संसदीय कार्य मंत्री से एक प्रस्ताव प्राप्त होने पर सभापति ने 30 जनवरी, 2004 को सभा की बैठक पुन: बुलाई। 23 दिसंबर, 2003 को अनियत तारीख तक स्थगित किये जाने की अवधि के पूर्व और पश्चात् के दो भागों को एक सत्र माना गया जो दो भागों अर्थात् भाग-1 और भाग-2 में विभक्त था। तदुपरांत, जब 30 जनवरी, 2004 को सभा 200वें सत्र के भाग-2 के लिए पुन: समवेत हुई तो उसे वर्ष का पहला सत्र नहीं माना गया और इसलिए राष्ट्रपति के अभिभाषण से आरंभ नहीं हुआ। 5 फरवरी, 2004 को सत्र के भाग-2 की समाप्ति पर सभा को उसी दिन अनियत तारीख के लिए स्थगित किया गया और 10 फरवरी, 2004 को राष्ट्रपति द्वारा उसका सत्रावसान किया गया।[32]

207वां सत्र, जो 16 फरवरी, 2006 को आरंभ हुआ, उसे मूल कार्यक्रम के अनुसार, 17 मार्च, 2006 को स्थगित होकर 3 अप्रैल, 2006 को पुन: समवेत होना था और 28 अप्रैल, 2006 तक चलना था। लेकिन सभा में लाभ के पद के मुद्दे पर विवाद होने के कारण सभा को 22 मार्च, 2006 को अनियत तारीख के लिए स्थगित किया गया (इससे पूर्व, सत्र के पहले भाग के मूल कार्यक्रम में भी परिवर्तन किया गया था)। संसदीय कार्य मंत्री से एक प्रस्ताव प्राप्त होने पर सभापति ने 10 मई, 2006 को सभा की बैठक पुन: बुलाई। सभा को 23 मई, 2006 को अनियत तारीख के लिए स्थगित किया गया।[33]

17 अक्तूबर, 2008 को आरंभ 214वां सत्र जल्द, अर्थात् 24 अक्तूबर, 2008 को स्थगित किया गया और 10 दिसंबर, 2008 को सभा की बैठक पुन: बुलाई गई। मूल कार्यक्रम के अनुसार सत्र 21 नवम्बर, 2008 तक चलना था किंतु कुछ राज्यों में विधान सभा चुनावों तथा सभा में सदस्यों के बीच आम सहमति के कारण सभा 10 दिसंबर, 2008 तक के लिए स्थगित कर दी गई। तत्पश्चात् संसदीय कार्य मंत्री ने सभापति को सत्र की बैठकें (दूसरा भाग) 23 दिसंबर, 2008 तक निर्धारित करने के लिए एक पत्र के द्वारा अनुरोध किया। इस प्रकार, 214वें सत्र में दो भाग थे, जिसमें पहला भाग 17 से 24 अक्तूबर, 2008 तक और दूसरा भाग 10 दिसंबर से 23 दिसंबर, 2008 तक चला। 24 दिसंबर, 2008 को राष्ट्रपति द्वारा उसका सत्रावसान किया गया।[34]

219वें सत्र का दूसरा भाग 12 अप्रैल, 2010 से शुरू होना था। किंतु संसदीय कार्य मंत्री ने पत्र लिखकर सभापति से यह अनुरोध किया कि 12, 13 और 14 अप्रैल, 2010 को कतिपय छुट्टियां होने के मद्देनज़र सभा

की बैठक 12 अप्रैल 2010 की जगह 15 अप्रैल, 2010 से आरंभ की जाए। तदनुसार सभा 219वें सत्र के दूसरे भाग के लिए 15 अप्रैल, 2010 को पुन: समवेत हुई। 12 और 13 अप्रैल, 2010 को नियत सभा की बैठकों को रद्द माना गया।[35]

5 दिसंबर, 2013 को आरंभ राज्य सभा का 230वां सत्र 20 दिसंबर, 2013 तक चलना था। किन्तु 18 दिसंबर, 2013 को इसे निर्धारित समय से पूर्व अनियत काल के लिए स्थगित कर दिया गया। सत्र के अवसान की घोषणा नहीं हुई। संसदीय कार्य मंत्री ने एक पत्र के द्वारा सभापति से अनुरोध किया कि 230वें सत्र को 5 फरवरी, 2014 को पुन: बुलाया जाए तथा सत्र की बैठकें 21 फरवरी, 2014 तक के लिए निर्धारित की जाएं। 21 फरवरी, 2014 को 230वां सत्र अनियत काल के लिए स्थगित हो गया और राष्ट्रपति द्वारा 27 फरवरी, 2014 को उसका सत्रावसान किया गया।[36]

नव-निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों को सरकारी राजपत्र में उनके निर्वाचन/नामनिर्देशन की अधिसूचना के बाद ही आमंत्रण जारी किए जाते हैं जैसाकि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन आवश्यक है।[37]

यदि कोई व्यक्ति सत्र के चालू रहने के दौरान सदस्य बन जाता है तो उसे आमंत्रण जारी नहीं किए जाते किन्तु उसे सत्र के आरंभ की तारीख के बारे में और उसकी समाप्ति की संभावित तारीख के बारे में सूचित किया जाता है।

21 फरवरी, 1994 को राज्य सभा का जो 170वां सत्र आरंभ हुआ था वह 18 अप्रैल, 1994 को पुन: समवेत होने के लिए 18 मार्च, 1994 को स्थगित किया गया। जनवरी और मार्च, 1994 के बीच हुए द्विवार्षिक चुनावों के परिणामस्वरूप राज्य सभा के लिए 58 सदस्य निर्वाचित हुए और उनका कार्यकाल 3 अप्रैल, 1994 को आरंभ हुआ। अत: इनमें से प्रत्येक सदस्य को महासचिव के हस्ताक्षर से एक पत्र भेजा गया जिसमें सत्र के पुन: समवेत होने की तारीख की सूचना दी गई थी। पत्र के साथ इस सत्र के लिए बैठकों की अस्थायी सारणी की एक प्रति भी प्रत्येक सदस्य को भेजी गई।[38]

इसी प्रकार, राज्य सभा का 189वां सत्र, जो 23 फरवरी, 2000 को आरंभ हुआ था, 17 मई, 2000 को पुन: समवेत होने के लिए 16 मार्च, 2000 को स्थगित हुआ। द्विवार्षिक चुनावों के परिणामस्वरूप राज्य सभा के लिए 58 सदस्य निर्वाचित हुए और 52 सदस्यों के लिए कार्यकाल 3 अप्रैल, 2000 को और 6 सदस्यों के लिए, 4 अप्रैल, 2000 को आरंभ हुआ। इन सदस्यों को महासचिव के हस्ताक्षर से एक पत्र भेजा गया जिसमें सत्र के पुन: समवेत होने की तारीख की सूचना दी गई। पूर्व प्रथा के अनुसार सत्र के लिए बैठकों की अस्थायी सारणी की एक प्रति भी भेजी गई।[39]

25 फरवरी, 2002 को राज्य सभा का जो 195वां सत्र आरंभ हुआ था, 22 मार्च, 2002 को स्थगित किया गया और 15 अप्रैल, 2002 को पुन: समवेत हुआ। द्विवार्षिक चुनावों के परिणामस्वरूप राज्य सभा के लिए 58 सदस्य निर्वाचित हुए और 22 सदस्यों के लिए कार्यकाल 3 अप्रैल, 2002 को तथा 36 सदस्यों के लिए 10 अप्रैल, 2002 को आरंभ हुआ। इन सदस्यों को महासचिव के हस्ताक्षर से एक पत्र भेजा गया जिसमें सत्र के पुन: समवेत होने की तारीख की सूचना दी गई थी और सत्र की बैठकों की अस्थायी सारणी की एक प्रति भी भेजी गई।[40]

ऐसे सदस्य को भी आमंत्रण जारी किए जाते हैं जो किसी राज्य के विधानमंडल के लिए निर्वाचित हो जाता है, किन्तु जिसने राज्य सभा की सदस्यता से त्याग-पत्र नहीं दिया है या राज्य विधानमंडल के लिए उसके निर्वाचन की तारीख से चौदह दिन की अवधि समाप्त नहीं हुई है। इसी कारण से आमंत्रण ऐसे सदस्य को भी जारी किए जाते हैं जो किसी राज्य में मंत्री बन जाता है जब तक वह राज्य सभा का सदस्य बना रहता है।

उड़ीसा विधान सभा के लिए राज्य सभा के दो सदस्य निर्वाचित हुए। समसामयिक सदस्यता प्रतिषेध नियम, 1950 के नियम 2 के साथ पठित अनुच्छेद 101(2) को देखते हुए उन्हें 75वें सत्र (1971) के लिए आमंत्रण जारी किए गए।[41]

उस स्थिति में जब सदस्य सत्र के आरंभ के पूर्व किन्तु आमंत्रण जारी होने के पश्चात् निर्वाचित/नामनिर्देशित होते हैं तब उस सत्र के लिए उन्हें आमंत्रण तभी जारी किए जाते हैं जब उनके निर्वाचन/नामनिर्देशन के बारे में सूचना प्राप्त हो जाए और ऐसे मामले में आमंत्रण जारी करने की मूल तारीख तो वही रहती है किन्तु उसके नीचे आमंत्रण के जारी करने की नई तारीख का भी उल्लेख किया जाता है। बहुत शीघ्र होने वाले द्विवार्षिक चुनावों के मामले में उन सदस्यों को आमंत्रण जारी नहीं किए जाते जो सत्र आरंभ होने के पूर्व निवृत्त होने वाले हैं। इस संबंध में अपनाई जाने वाली प्रथा निम्नलिखित मामलों से स्पष्ट होती है:

1954 में, जब एक तिहाई सदस्य निवृत्त हो गये थे, नव-निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों को आमंत्रण जारी नहीं किए गये क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा छठे सत्र का अवसान नहीं किया गया था बल्कि उसे बाद की तारीख में समवेत करने के लिये स्थगित कर दिया गया था। किन्तु सदस्यों के रूप में उन्हें सभा की बैठकों में उपस्थित होने का अनुरोध करने वाले पत्र भेजे गये थे।[42]

निम्नलिखित सत्रों के लिये आमंत्रण केवल निवृत्त न होने वाले सदस्यों को जारी किये गये और नव-निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों को द्विवार्षिक चुनाव के पूरा होने के बाद आमंत्रण जारी किये गये और उनमें विद्यमान तारीख के साथ जारी करने की नई तारीख का भी उसके नीचे उल्लेख किया गया: (i) 21वां सत्र (1958); (ii) 29वां सत्र (1960) (चूंकि 3 अप्रैल को हुये निर्वाचनों और 6 अप्रैल को सत्र के प्रारंभ होने के बीच का समय बहुत कम था इसलिए एक्सप्रेस तार द्वारा आमंत्रण जारी किये गये)[43]; (iii) 88वां सत्र (1974); (iv) 105वां सत्र (1978); (v) 107वां सत्र (1978); (vi) 109वां सत्र (1979); (vii) 134वां सत्र (1985); (viii) 135वां सत्र (1985); (ix) 138वां सत्र (1986); और (x) 139वां सत्र (1986)।

13 नवम्बर, 1972 को आरंभ होने वाले 82वें सत्र (1972) के लिये 16 सितम्बर, 1972 को आमंत्रण जारी किये गये। बाद में इस बात पर ध्यान गया कि जम्मू-कश्मीर से एक सदस्य का कार्यकाल 10 नवम्बर, 1972 को समाप्त होना था। उनसे निवेदन किया गया कि उन्हें जो आमंत्रण जारी किया गया था उसे वह रद्द मानें।[44]

106वें सत्र (1978) के लिये एक ऐसे सदस्य को आमंत्रण जारी नहीं किया गया जिसका कार्यकाल सत्र के एक दिन पूर्व समाप्त होना था। इस सदस्य के स्थान पर निर्वाचित हुये सदस्य को भी आमंत्रण जारी नहीं किया गया क्योंकि उस सदस्य की पदावधि सत्र के आरंभ होने के दिन से आरंभ हुई थी। उस सदस्य को सत्र के बारे में तार से सूचित किया गया।[45]

7 जुलाई, 1979 को बिहार से राज्य सभा के लिये होने वाली दो आकस्मिक रिक्तियों को भरने के लिये चुनाव हुये। बिहार विधान सभा के सचिव से यह अनुरोध किया गया कि वे निर्वाचित सदस्यों को 9 जुलाई, 1979 को 110वें सत्र के आरंभ होने के बारे में सूचना दें।[46]

13 अगस्त, 1981 को निवृत्त होने वाले गुजरात के तीन सदस्यों को आमंत्रण जारी नहीं किये गये क्योंकि 119वां सत्र 17 अगस्त, 1981 को आरंभ होना था। किन्तु 14 अगस्त, 1981 को उनके स्थान पर निर्वाचित सदस्यों को उस दिन उनके निर्वाचन की अधिसूचना के जारी होने पर आमंत्रण जारी किए गये।[47]

24 जुलाई, 1983 को निवृत्त होने वाले तमिलनाडु के छह सदस्यों को आमंत्रण जारी नहीं किये गये क्योंकि 127वां सत्र अगले दिन आरंभ होने वाला था। पांडिचेरी का एक सदस्य 27 जुलाई, 1983 को निवृत्त होने वाला था इसलिये उसे आमंत्रण जारी किया गया।[48]

153वें सत्र (द्वितीय भाग) के दौरान 30 मार्च, 1990 को राज्य सभा के अनियत दिन तक के लिए स्थगित होने के पश्चात् 9 और 10 अप्रैल, 1990 को दो दिन के लिए उसकी बैठक पुन: बुलाई गई। 2 अप्रैल को

चौंतीस सदस्य निवृत्त हो गये थे और 9 अप्रैल को अन्य अड़तीस सदस्य निवृत्त होने वाले थे। चूंकि यह कोई नया सत्र नहीं था। इसलिए सत्र के दूसरे भाग में सदस्यों को उपस्थित होने के लिए तीन प्रकार के पत्र/तार भेजे गए जो निम्नलिखित रूप में थे:

(i) निवृत्त न होने वाले सदस्यों और 2 अप्रैल को निर्वाचित सदस्यों से अनुरोध किया गया कि वे 9 और 10 अप्रैल की बैठकों में उपस्थित हों;

(ii) 9 अप्रैल को निवृत्त होने वाले सदस्यों से अनुरोध किया गया कि वे केवल उसी दिन की बैठक में उपस्थित हों;

(iii) उपरोक्त (ii) में उल्लिखित निवृत्त होने वाले सदस्यों के स्थान पर निर्वाचित हुए सदस्यों से अनुरोध किया गया कि वे केवल 10 अप्रैल की सभा की बैठक में उपस्थित हों।[49]

162वां सत्र 31 मार्च, 1992 को स्थगित होना था। किन्तु उसकी अवधि को 3 अप्रैल, 1992 तक बढ़ा दिया गया। द्विवार्षिक चुनाव में निर्वाचित हुए 18 सदस्यों को सत्र की अवधि को बढ़ाये जाने के बारे में तार द्वारा सूचित किया गया।[50]

यदि कोई सदस्य उसे सत्र में उपस्थित होने का आमंत्रण जारी होने के बाद सदस्य होने के लिए निरर्हित (अयोग्य) हो जाता है तो उससे निवेदन किया जाता है कि वह आमंत्रण को रद्द माने।

8 सितम्बर, 1982 को भारत के राष्ट्रपति ने निर्णय किया कि विद्यमान सदस्य श्री आर. मोहनरंगम् संविधान के अनुच्छेद 102(1) (क) के अधीन निरर्हित हो गये हैं। उनसे अनुरोध किया गया कि 124वें सत्र के संबंध में जो आमंत्रण उन्हें जारी किया गया है उसे वे रद्द समझें।[51]

ऐसे सदस्य को भी आमंत्रण जारी नहीं किए जाते जिसका राज्य सभा के लिए निर्वाचन न्यायालय द्वारा अमान्य घोषित कर दिया गया हो। जहां तक किसी सदस्य के निर्वाचन को रद्द करने वाले न्यायालय के निर्णय पर न्यायालय के रोक आदेश का संबंध है, इस प्रश्न का निर्णय कि क्या ऐसे सदस्य को आमंत्रण जारी किया जाए या नहीं, रोक आदेश की शर्तों के आधार पर किया जाता है। निम्नलिखित मामले इस संबंध में अपनाई जाने वाली प्रथा को दर्शाते हैं:

उच्चतम न्यायालय ने 21 मई, 1957 के अपने आदेश के द्वारा यह निर्देश दिया कि राज्य सभा के सदस्य मौलाना अब्दुल शकूर "सिवाय उस सीमा के राज्य सभा के सदस्य के रूप में कार्य नहीं करेंगे... जहां तक निरन्तर अनुपस्थित रहने के कारण अपनी सदस्यता को खो देने से बचने के प्रयोजन के लिए ही उक्त राज्य सभा के सत्र में उपस्थित रहना उनके लिए नितांत आवश्यक हो।" अत: न्यायालय के आदेश के लंबित रहने तक निरंतर अनुपस्थित होने के कारण अपनी सदस्यता को खो देने से बचने के प्रयोजन के लिए ही वे सभा में उपस्थित हो सकते थे। चूंकि उस सत्र की (अर्थात् 18वें सत्र की) समूची अवधि के दौरान सदस्य की अनुपस्थिति संविधान के अनुच्छेद 101(4) के अधीन 60 दिनों से अधिक नहीं थी इसलिए यह निर्णय किया गया कि सदस्य को सत्र में उपस्थित होने के लिए औपचारिक रूप से आमंत्रण जारी करना उच्चतम न्यायालय के आदेश के अनुरूप नहीं होगा। दूसरी ओर आमंत्रण के बिना भी सदस्य सत्र में उपस्थित रह सकते थे। अत: उस सत्र के लिए उन्हें कोई आमंत्रण जारी नहीं किया गया।[52]

पटना के निर्वाचन अधिकरण ने राज्य सभा के लिए श्री आर.पी. जैन का निर्वाचन अमान्य घोषित कर दिया। अत: उन्हें 53वें सत्र के लिए तारीख 3 जून, 1965 के आमंत्रण जारी नहीं किए गए। बाद में पटना उच्च न्यायालय ने 30 जून, 1965 को अधिकरण के आदेश के कार्यान्वयन पर रोक लगा दी। इसके पश्चात् सदस्य को आमंत्रण जारी किए गए "ताकि निर्वाचन अधिकरण को आदेश प्राप्त होने पर उन्हें सदस्यता के जिन अधिकारों से वंचित कर दिया गया था वे उन्हें पुन: प्राप्त हो सकें।"[53]

डा. एम. चेन्ना रेड्डी मार्च, 1967 में हुए आम चुनावों में आन्ध्र प्रदेश विधान सभा के लिए चुने गए थे। 3 अप्रैल, 1968 को राज्य सभा का सदस्य बनने से पहले उन्होंने विधान सभा में अपनी सदस्यता से

त्याग-पत्र दे दिया था। आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने 26 अप्रैल, 1968 को दिये गये एक निर्णय द्वारा विधान सभा के लिये उनका निर्वाचन रद्द कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने 4 जून, 1968 के अपने आदेश के द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय के कार्यान्वयन पर रोक लगा दी और यह आदेश दिया कि:

(क) डा. एम. चेन्ना रेड्डी को राज्य सभा की सदस्यता की शपथ लेने की अनुमति दी जाए;

(ख) उन्हें निरर्हता से बचने के लिए कम से कम जितने दिनों तक उपस्थित रहना पड़ेगा उतने दिनों तक उन्हें राज्य सभा में उपस्थित होने का हक होगा;

(ग) उन्हें सभा की कार्यवाही में भाग नहीं लेना चाहिए और उन्हें न तो मतदान करने और न ही कोई वेतन या भत्ते लेने का अधिकार होगा।

उपरोक्त को देखते हुए दिनांक 22 जुलाई, 1968 को आरंभ होने वाले 65वें सत्र के लिए डा. रेड्डी को 22 मई, 1968 का आमंत्रण जारी नहीं किया गया, किन्तु उन्हें केवल राज्य सभा संसदीय समाचार और बैठकों की सारणी भेजी गई।[54]

मद्रास उच्च न्यायालय ने दिनांक 14 अक्तूबर, 1974 के अपने आदेश के द्वारा मार्च, 1974 में द्विवार्षिक चुनावों में निर्वाचित किए गए श्री जॉन *उर्फ* वालमपुरी जॉन के निर्वाचन को रद्द कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने 10 जनवरी, 1975 को इस शर्त पर एकपक्षीय रोक आदेश दिया कि श्री जॉन अपने स्थान को बचाए रखने के लिए, कम से कम जितने दिनों तक उपस्थित रहना आवश्यक हो उतने दिनों तक, राज्य सभा के सत्रों में उपस्थित रहने और उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर करने के हकदार होंगे, किन्तु वे कार्यवाही में और मतदान में भाग नहीं लेंगे और उन्हें कोई पारिश्रमिक लेने का हक नहीं होगा। तथापि, उच्चतम न्यायालय में उनकी अपील का निपटारा होने तक 94वें सत्र (1975) और 99वें सत्र (1977) के लिए उन्हें आमंत्रण जारी किए गए।[55]

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 10 जुलाई, 1981 को राज्य सभा के लिए श्री पशुपति नाथ सुकुल का निर्वाचन अमान्य घोषित कर दिया। तथापि, न्यायालय ने निम्नलिखित शर्तों के अधीन तीन सप्ताह तक अर्थात् 4 अगस्त, 1981 तक रोक आदेश की मंजूरी दी:

(1) वे उन समितियों की बैठक में भाग ले सकेंगे जिनके वे सदस्य बनाए गए थे या जिनके लिए वे राज्य सभा के सदस्य की हैसियत से निर्वाचित किए गए थे किन्तु उन्हें राज्य सभा में मतदान करने या वाद-विवाद में भाग लेने का हक नहीं होगा;

(2) उन्हें राज्य सभा के किसी सदस्य को दिए जाने वाले वेतन या भत्तों को प्राप्त करने का हक नहीं होगा किन्तु उन्हें जो मकान आवंटित किया गया है उसमें वे रह सकते हैं।

17 अगस्त, 1981 को आरंभ होने वाले 119वें सत्र के लिए शुरू में उन्हें आमंत्रण जारी नहीं किए गए क्योंकि यह अनुभव किया गया कि रोक आदेश द्वारा श्री सुकुल की राज्य सभा की समिति की सदस्यता ही बची थी।

इस बीच श्री सुकुल ने उच्चतम न्यायालय से एकपक्षीय रोक आदेश के लिए निवेदन किया जिसकी 30 जुलाई, 1981 को मंजूरी दे दी गई। अत: उन्हें 3 अगस्त, 1981 को आमंत्रण जारी किया गया। उच्चतम न्यायालय द्वारा 12 अक्तूबर, 1981 को रोक आदेश की पुष्टि कर दी गई।[56]

गुवाहाटी उच्च न्यायालय ने दिनांक 7 नवम्बर, 1990 के अपने आदेश के द्वारा असम से राज्य सभा के लिए श्री अमृतलाल बसुमतारी के निर्वाचन को रद्द कर दिया और उनके स्थान पर श्री हितेश्वर सैकिया को निर्वाचित घोषित किया। 27 दिसंबर, 1990 से आरंभ होने वाले 156वें सत्र के लिए दोनों को आमंत्रण जारी नहीं किए गए। श्री बसुमतारी की अपील पर उच्चतम न्यायालय ने 6 दिसंबर, 1990 के आदेश द्वारा

उच्च न्यायालय के आदेश के कार्यान्वयन पर रोक लगाकर उन्हें राज्य सभा में उपस्थित होने और रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने की अनुमति दी किंतु आदेश दिया कि वे कार्यवाही में भाग लेने, मतदान के अपने अधिकार का प्रयोग करने और कोई पारिश्रमिक लेने के हकदार नहीं होंगे। रोक आदेश के पश्चात् 156वें, 157वें और 158वें सत्र के लिए आमंत्रण जारी किए गए। बाद में उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 1 अगस्त, 1991 के अपने आदेश द्वारा श्री बसुमतारी की अपील को खारिज कर दिया। चूंकि उच्चतम न्यायालय में श्री बसुमतारी की अपील के निर्णयाधीन रहने के दौरान श्री हितेश्वर सैकिया असम के मुख्य मंत्री बन गए थे और उच्चतम न्यायालय में उनकी ओर से इस आशय का अभ्यावेदन दे दिया गया था कि वे राज्य सभा का सदस्य बनने में रूचि नहीं रखते, अत: न्यायालय ने उस तारीख से उनके स्थान को रिक्त घोषित कर दिया।[57]

निर्वाचन आयोग ने 8 जुलाई, 1991 के आदेश के द्वारा, जो लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 10क के अधीन जारी किया गया था, श्री डब्ल्यू. कुलबिधु सिंह को संसद्/राज्य विधानमंडल का सदस्य होने के अयोग्य घोषित कर दिया। अत: 160वें सत्र के लिए उन्हें आमंत्रण तथा अन्य पत्र नहीं भेजे गए। उन्होंने दिल्ली उच्च न्यायालय में याचिका दायर की जिसने निर्वाचन आयोग को कारण बताओ नोटिस जारी किया किंतु आदेश के कार्यान्वयन पर रोक नहीं लगाई। 161वें सत्र के लिए भी उन्हें आमंत्रण जारी नहीं किया गया। बाद में दिल्ली उच्च न्यायालय ने 18 नवम्बर, 1991 को निर्वाचन आयोग के आदेश के कार्यान्वयन पर रोक लगा दी। अत: सदस्य को आमंत्रण जारी करना पुन: शुरू कर दिया गया।[58]

सत्र की अवधि का बढ़ाया जाना

किसी सत्र के आरंभ के पश्चात् बैठकों की अस्थायी सारणी में सदस्यों को अधिसूचित की गई निर्धारित समय-सीमा के बाद भी सभा की बैठकें करनी पड़ सकती हैं। सामान्यत: ऐसा सरकारी कार्य के निष्पादन के लिए किया जाता है और इस मामले पर कार्य मंत्रणा समिति में विचार किया जाता है और सभापीठ द्वारा उसकी सिफारिश की सभा में घोषणा की जाती है। साथ ही सदस्यों को इसके बारे में संसदीय समाचार द्वारा सूचित किया जाता है। भारत सरकार के मंत्रालयों आदि को भी इस संबंध में अलग परिपत्र द्वारा सूचित किया जाता है।

ऐसे कई अवसर आए हैं जब सत्र की अवधि एक दिन, दो दिन या उससे भी अधिक बढ़ाई गई है। सामान्यत: सभापीठ द्वारा अवधि बढ़ाए जाने की घोषणा की जाती है किंतु कभी-कभी सभा का नेता या संसदीय कार्य मंत्री भी ऐसी घोषणा कर सकता है।

राज्य सभा का 224वां सत्र मूलत: 22 नवम्बर, 2011 से 21 दिसंबर, 2011 तक होना था। इसे पहले एक दिन बढ़ाकर 22 दिसंबर, 2011 और पुन: तीन दिन बढ़ाकर 27, 28 और 29 दिसंबर, 2011 किया गया। इसे एक दिन के लिए 6 दिसंबर, 2012 को मुहर्रम होने के कारण 5 दिसंबर, 2011 की बैठक रद्द करने के कारण बढ़ाया गया। किन्तु 224वें सत्र में 3 दिन लोकपाल विधेयक, 2012 पर विचारार्थ बढ़ाया गया था।[59]

राज्य सभा का 229वां सत्र दो बार बढ़ाया गया। 5 अगस्त, 2013 को आरंभ सत्र को 30 अगस्त, 2013 को समाप्त होने के लिए निर्धारित किया गया था। इसे पहले 5 दिनों के लिए 6 सितम्बर, 2013 तक राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक, 2013 और भूमि अर्जन, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार विधेयक, 2013 पर विचार के लिए बढ़ाया गया। इसे पुन: एक दिन के लिए अर्थात् 7 सितम्बर, 2013 तक विनियोग (संख्यांक 4) विधेयक, 2013 तथा कुछ अन्य विधेयकों पर विचार के लिए बढ़ाया गया।[60]

अनियत तिथि के लिए स्थगन

किसी सत्र के दौरान राज्य सभा एक दिन या एक दिन से अधिक के लिए स्थगित हो सकती है। उसे अनियत तिथि के लिए भी स्थगित किया जा सकता है। सभा को स्थगित करने का अर्थ अगले दिन या किसी बाद के दिन या समय तक सभा की बैठक को निलम्बित रखना है। अनियत तिथि के लिए स्थगन का अर्थ सभा की अगली बैठक की निश्चित तारीख विनिर्दिष्ट या निर्धारित किए बिना सभा की बैठक को समाप्त करना है।

समय-समय पर या अनियत तिथि के लिए सभा को स्थगित करने की शक्ति पीठासीन अधिकारी में निहित है। वह सभा की राय लेकर किसी निश्चित समय पर या ऐसे किसी अन्य समय पर, जो वह निर्धारित करे, ऐसा कर सकता है। सभापति, यदि वह उचित समझे, सभा के स्थगित होने की तारीख या समय से पहले या सभा के अनियत तिथि के लिए स्थगित होने के बाद किसी भी समय किन्तु राष्ट्रपति द्वारा उसका सत्रावसान करने के पहले सभा की बैठक बुला सकता है।

3 दिसंबर, 1971 को राज्य सभा सोमवार, 6 दिसंबर, 1971 के लिए स्थगित कर दी गई थी। इसी बीच पाकिस्तान के साथ युद्ध छिड़ गया। सभापति ने निदेश दिया कि राज्य सभा शनिवार, 4 दिसंबर को बैठेगी और तदनुसार सभा की बैठक हुई। शुक्रवार, 3 दिसंबर को ही इस आशय का राज्य सभा संसदीय समाचार भाग-2 सदस्यों को जारी किया गया और 4 दिसंबर, 1971 के राज्य सभा संसदीय समाचार भाग-1 में कार्यवाही के अभिलेख के पहले निम्नलिखित टिप्पण दिया गया था:

> सभापति द्वारा यह निदेश दिए जाने पर कि राज्य सभा, जो सोमवार, 6 दिसंबर, 1971 तक के लिए स्थगित की गई थी, शनिवार, 4 दिसंबर, 1971 को मध्याह्न पूर्व 11 बजे समवेत होगी, राज्य सभा मध्याह्न पूर्व 11 बजे समवेत हुई।

निर्धारित समय से पूर्व अनियत तिथि के लिए स्थगन

बैठकों की अस्थाई सारणी के अनुसार 36वां सत्र 22 दिसंबर, 1961 को समाप्त होना था। 4 दिसंबर, 1961 को उपसभापति ने घोषणा की कि राज्य सभा 15 दिसंबर, 1961 को अनियत तिथि के लिए स्थगित होगी और तदनुसार 18, 19, 20, 21 और 22 दिसंबर, 1961 के लिए सभा की जो बैठकें निर्धारित की गई थीं वे रद्द कर दी गई हैं। तदनुसार 15 दिसंबर, 1961 को राज्य सभा अनियत तिथि के लिए स्थगित हो गई।

संसदीय कार्य मंत्री द्वारा 39वें सत्र के शेष भाग के लिए सरकारी कार्य की घोषणा 16 जून, 1962 को की गई और जिस अन्तिम मद का उल्लेख किया गया था वह 26 जून, 1962 के लिए थी। 19 जून, 1962 को सभापति ने घोषणा की कि संसदीय कार्य मंत्री द्वारा घोषित कार्यक्रम के अनुसार सत्र 26 जून, 1962 को समाप्त होगा। हालांकि सत्र 29 जून, 1962 को समाप्त होना था। तदनुसार सभा 26 जून, 1962 को अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दी गई।

16 जुलाई, 1979 को सभा की बैठक के आरंभ में विपक्ष के नेता (श्री कमलापति त्रिपाठी) ने कहा कि प्रधान मंत्री ने इस्तीफा दे दिया है। यह मांग की गई कि सभा स्थगित कर दी जाए। सभापति ने "मामले में राष्ट्रपति की संसूचना को देखते हुए" सभा को अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दिया।

20 अगस्त, 1979 को सभा के नेता (श्री कृष्ण चंद्र पंत) ने सभा को सूचित किया कि सरकार ने इस्तीफा दे दिया है और सभा के सामने कोई कार्य नहीं है और इसलिए उसे अनियत तिथि के लिए स्थगित किया जा सकता है। सभापति ने प्रधान मंत्री द्वारा लिखे गए निम्नलिखित पत्र को पढ़कर सुनाया:

प्रिय सभापति महोदय,

मैंने राष्ट्रपति को अपना तथा अपनी मंत्रिपरिषद् का त्याग-पत्र दे दिया है इसके परिणामस्वरूप मेरा निवेदन है कि आज के लिए निर्धारित कार्य को हाथ में न लिया जाए।

सभापति ने पूछा कि क्या वे सभा को स्थगित कर सकते हैं। कुछ सदस्यों द्वारा "हां" कहने पर उन्होंने सभा को अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दिया।

151वें सत्र के दूसरे भाग की बैठक 11 अक्तूबर, 1989 को बुलाई गई। मूलत: उसे 16 अक्तूबर, 1989 को समाप्त होना था। इस भाग में मुख्यत: पंचायती राज और नगरपालिकाओं के संबंध में संविधान (चौंसठवां संशोधन) विधेयक, 1989 और संविधान (पैंसठवां संशोधन) विधेयक, 1989 पर विचार होना था। सरकार ने 13 अक्तूबर, 1989 को ही विधेयकों को हाथ में लेने का निर्णय किया। संविधान के अनुच्छेद 368 के अधीन विधेयकों के लिए सभा में अपेक्षित बहुमत प्राप्त नहीं हो सका। मतदान के परिणाम की घोषणा करने के पश्चात् सभापति ने सभा को अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दिया।

157वां सत्र 27 मार्च, 1991 को समाप्त होना था। 6 मार्च, 1991 को जब मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद सभा पुन: समवेत हुई तब सभा के नेता (श्री यशवन्त सिन्हा) ने घोषणा की कि प्रधान मंत्री अपना तथा अपनी मंत्रिपरिषद् का त्याग-पत्र देने के लिए राष्ट्रपति भवन पहुंचने ही वाले हैं और उन्होंने सभापीठ से निवेदन किया कि वे उस दिन की बैठक को स्थगित कर दें। अगले दिन महासचिव ने प्रधान मंत्री द्वारा राष्ट्रपति को दिए गए त्याग-पत्र और राष्ट्रपति द्वारा प्रधान मंत्री का त्याग-पत्र स्वीकार करते हुए उन्हें (प्रधान मंत्री को) लिखे गए पत्र की एक-एक प्रति सभा पटल पर रखी। इसके बाद सभा 11 मार्च, 1991 तक के लिए स्थगित कर दी गई। अगले दो दिनों अर्थात् 12 मार्च, 1991 और 13 मार्च, 1991 में सभा ने संविधान (पचहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1991 (जो पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाने के लिए था) सहित अत्यंत आवश्यक विधायी और अन्य कार्य पर विचार किया और उसे निपटाया। उपसभापति के विदाई भाषण के बाद सभा 13 मार्च, 1991 को अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दी गई।

7 दिसंबर, 1994 को आरंभ हुए 172वें सत्र को बैठकों की अस्थाई सारणी के अनुसार 23 दिसंबर, 1994 को समाप्त हो जाना था। सत्र के अन्तिम दिन ज्ञान प्रकाश समिति के प्रतिवेदन से उठने वाले मुद्दों पर सभा में गंभीर अव्यवस्था उत्पन्न हो गई। उपसभापति ने बार-बार यह कहा कि वे प्रक्रिया के अनुसार सभा को अनियत तिथि के लिए स्थगित करेंगे। इसके पश्चात् राष्ट्रगीत (वन्दे मातरम्) की धुन बजाई गई और उपसभापति ने मध्याह्न पश्चात् 12 बजकर 17 मिनट पर सभा को अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दिया।

177वां सत्र, जोकि ग्यारहवीं लोक सभा के गठन के पश्चात् पहला सत्र था, 24 मई, 1996 को आरंभ हुआ तथा 31 मई, 1996 को समाप्त होना था किंतु, 29 मई, 1996 को प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा उनकी मंत्रिपरिषद् के त्याग-पत्र के कारण सभा 30 मई, 1996 को अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दी गई।

186वें सत्र का दूसरा भाग जिसकी बैठक 12 अप्रैल, 1999 को बुलाई गई थी, मूल रूप से 14 मई, 1999 को समाप्त होना था। श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली सरकार द्वारा 17 अप्रैल, 1999 को लोक सभा में विश्वास मत में हार जाने के कारण सत्र तय कार्यक्रम से पहले अर्थात् 23 अप्रैल, 1999 को समाप्त हो गया।

192वें सत्र का दूसरा भाग जिसकी बैठक 16 अप्रैल, 2001 को बुलाई गई थी मूल रूप से 11 मई, 2001 को समाप्त होना था। तथापि, तहलका टेपों में किये गए प्रकटनों के कारण सभा में निरंतर व्यवधान के कारण सभा 27 अप्रैल, 2001 को अनियत तारीख के लिए स्थगित कर दी गई।

194वां सत्र, जो 19 नवम्बर, 2001 को आरंभ हुआ था, बैठकों की अस्थायी सारणी के अनुसार 21 दिसंबर, 2001 को समाप्त होना था। 13 दिसंबर, 2001 को संसद पर आतंकवादी हमले के पश्चात् सभा ने हमले के कारण उत्पन्न स्थिति पर चर्चा की तथा 19 दिसंबर, 2001 को अनियत तारीख के लिए स्थगित हुई।

196वां सत्र, जो 15 जुलाई, 2002 को आरंभ हुआ था, बैठकों की अस्थायी सारणी के अनुसार 14 अगस्त, 2002 को समाप्त होना था। तथापि, पेट्रोल पंपों के आबंटन में हुई अनियमितताओं के मुद्दे पर सभा में निरंतर पांच दिनों तक चले व्यवधान के कारण सभा 12 अगस्त, 2002 को अनियत तारीख के लिए स्थगित कर दी गई।

222वां सत्र, जो 21 फरवरी, 2011 को आरंभ हुआ था, 21 अप्रैल, 2011 को समाप्त होना था। तथापि, पांच राज्यों, अर्थात् असम, केरल, पुदुचेरी, तमिलनाडु और पश्चिमी बंगाल में आगामी विधान सभाओं हेतु चुनाव के कारण सभा 25 मार्च, 2011 को अनियत तारीख के लिए स्थगित कर दी गई।

228वें सत्र का दूसरा भाग, जो 22 अप्रैल, 2013 को आरंभ हुआ था, 10 मई, 2013 को समाप्त होना था। तथापि, भ्रष्टाचार और कोयला ब्लॉकों के आबंटन के मुद्दे पर सभा में निरंतर व्यवधान के कारण सभा 8 मई, 2013 को अनियत तारीख के लिए स्थगित कर दी गई।

सत्रावसान और इसके प्रभाव

"सत्रावसान का अर्थ सत्र की समाप्ति है (संसद् की नहीं)।"[61] "सत्रावसान के द्वारा सत्र की समाप्ति होती है; स्थगन किसी सत्र के दौरान कार्यवाही का रुक जाना है।"[62] कोई सत्र केवल सत्रावसान द्वारा, न कि स्थगन द्वारा, समाप्त होता है।[63] सभा के सत्रावसान और नए सत्र के रूप में उसके पुन: समवेत होने के बीच की अवधि को 'अंत:सत्रावधि' या 'सत्रावकाश' कहा जाता है। सभा का सत्र उस 'सत्रावसान आदेश' नामक आदेश के द्वारा समाप्त होता है जो संविधान के अनुच्छेद 85(2) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है। सामान्यत: सभा को अनियत दिन के लिए स्थगित करने के बाद सत्रावसान होता है। संसदीय कार्य मंत्रालय सभा का सत्रावसान करने के लिए संसदीय कार्य संबंधी मंत्रिमंडल समिति की स्वीकृति प्राप्त करके महासचिव को सरकार के निर्णय की सूचना देता है।[64] इस संसूचना के आधार पर महासचिव द्वारा हस्ताक्षरित एक टिप्पण राष्ट्रपति के सचिव को भेजा जाता है जिसके साथ राष्ट्रपति के अनुमोदन और हस्ताक्षर के लिए एक सत्रावसान आदेश भी संलग्न होता है। सत्रावसान आदेश निम्नलिखित रूप में होता है:

संविधान के अनुच्छेद 85 के खंड (2) के उपखंड (क) के द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए मैं एतद्द्वारा राज्य सभा का सत्रावसान करता हूं।

...(तारीख) 20... राष्ट्रपति[65]

राष्ट्रपति द्वारा यथाहस्ताक्षरित आदेश प्राप्त होने पर उसे उसी दिन महासचिव के हस्ताक्षर सहित भारत के असाधारण राजपत्र में एक अधिसूचना के रूप में प्रकाशित कर दिया जाता है। सत्रावसान के बारे में सदस्यों को राज्य सभा संसदीय समाचार द्वारा, जनसाधारण को एक प्रेस विज्ञप्ति द्वारा और संचार माध्यमों तथा भारत के मंत्रालयों आदि को एक परिपत्र द्वारा सूचित किया जाता है।

सभा के अनियत तारीख के लिए स्थगन और उसके सत्रावसान के बीच की अवधि 2 से 10 दिनों तक की होती है। यद्यपि ऐसे उदाहरण हैं जब राज्य सभा का सत्रावसान उसके अनियत तारीख के लिए स्थगित होने के दिन या अगले दिन कर दिया गया था। ऐसे भी उदाहरण हैं जब सभा को अनियत तारीख के लिए स्थगित करने और उसके सत्रावसान के बीच की अवधि कुछ लंबी थी।

यह आवश्यक नहीं है कि दोनों सदनों का एक साथ सत्रावसान किया जाए।[66]

राज्य सभा का 170वां सत्र 21 फरवरी, 1994 को आरंभ हुआ था और वह 18 अप्रैल, 1994 को पुन: समवेत होने के लिए 18 मार्च, 1994 को स्थगित हुआ; वह 13 जून, 1994 को पुन: समवेत होने के लिए 13 मई, 1994 को पुन: स्थगित हुआ। लोक सभा भी इसी प्रकार स्थगित हुई। तथापि, 24 मई, 1994 को लोक सभा का सत्रावसान कर दिया गया[67] किन्तु राज्य सभा का सत्र चलता रहा।

दिनांक 24 और 25 मई, 1994 को राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 123(2)(क) के अधीन निम्नलिखित तीन अध्यादेशों को प्रख्यापित किया:[68]

(i) मणिपुर नगर पालिका अध्यादेश 1994 (1994 का संख्यांक 6);

(ii) पंजाब नगर निगम विधि (चंडीगढ़ तक विस्तार) अध्यादेश 1994 (1994 का संख्यांक 7); और

(iii) नई दिल्ली नगर परिषद् अध्यादेश, 1994 (1994 संख्यांक 8)

राज्य सभा का 234वां सत्र 23 फरवरी, 2015 को आरंभ हुआ और 20 अप्रैल, 2015 को पुन: समवेत होने के लिए 20 मार्च, 2015 को सभा स्थगित हुई। इसी प्रकार लोक सभा भी स्थगित हुई। तथापि, 28 मार्च, 2015 को राज्य सभा का सत्रावसान हुआ[69] किंतु लोक सभा का "सत्र जारी रहा"।

दिनांक 3 अप्रैल, 2015 को राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 123(2)(क) के अधीन भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार (संशोधन) अध्यादेश, 2015 (2015 का अध्यादेश संख्यांक 4) को प्रख्यापित किया।

सत्रावसान पर सभा का सत्र समाप्त हो जाता है। सत्रावसान से सभा के समक्ष लम्बित विभिन्न प्रकार के कार्यों पर निम्नलिखित रूप से प्रभाव पड़ता है:

(क) विधेयक : संविधान के अनुच्छेद 107(3) में स्पष्ट उपबंध है कि संसद् में लम्बित कोई विधेयक सदनों के सत्रावसान के कारण व्यपगत नहीं होगा। यह व्यावृत्ति सदन/सदनों की प्रवर समिति या संयुक्त समिति के समक्ष लम्बित विधेयकों पर भी लागू होती है।[70] सत्रावसान होने पर किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव रखने के इरादे की सूचनाएं भी व्यपगत नहीं होतीं और सिवाय उस स्थिति के जब किसी विधेयक के संबंध में संविधान के अधीन प्रदान की गई मंजूरी या सिफारिश प्रभावी न रह गई हो, उक्त प्रयोजन के लिए अगले सत्र में किसी नई सूचना (नोटिस) की आवश्यकता नहीं होती।[71]

(ख) प्रस्ताव तथा संकल्प : जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, सत्रावसान होने पर विधेयकों को पुर:स्थापित करने से संबंधित सूचनाओं के अतिरिक्त सभी लम्बित सूचनाएं व्यपगत हो जाती हैं और उनके लिए अगले सत्र में नई सूचनाएं देना आवश्यक है।[72] इसके अंतर्गत प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण, संकल्प, संशोधन आदि की सूचनाएं आती हैं। जो प्रस्ताव और संकल्प सत्र में उपस्थित किए जाते

हैं और सत्र के दौरान जिनका निपटान नहीं होता वे भी सत्रावसान के बाद व्यपगत हो जाते हैं और उस स्थिति को छोड़कर उन पर अगले सत्र में आगे चर्चा नहीं हो सकती जब तक कि उसके लिए एक विनिर्दिष्ट प्रस्ताव लाया और स्वीकृत न किया जाए या इस संबंध में सभा की आम सहमति न हो जाए।[73]

30 अप्रैल, 1954, 10 दिसंबर, 1954 और 6 मई, 1994 को विचाराधीन गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर वाद-विवाद को स्थगित करने और अगले सत्र में इसके लिए नियत दिन को पहली मद के रूप में उन पर विचार करने के लिए प्रस्ताव उपस्थित किए गए और सभा उन पर सहमत हुई। तदनुसार 30 अप्रैल, 1954 का संकल्प संबंधी वाद-विवाद 27 अगस्त, 1954 (सातवां सत्र) को और 10 दिसम्बर, 1954 का संकल्प संबंधी वाद-विवाद 4 मार्च, 1955 (नौवां सत्र) को पुन: आरंभ किया गया। जहां तक 6 मई, 1994 के संकल्प का संबंध था, 5 अगस्त, 1994 (171वां सत्र) को सभा में आम सहमति हुई कि उस पर आगे वाद-विवाद को स्थगित करके उसे उसी सत्र में गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प के लिए नियत किए गए अगले दिन अर्थात् 19 अगस्त, 1994 को दिवस की पहली मद के रूप में विचारार्थ लिया जाए। 19 अगस्त, 1994 को भी संकल्प पर आगे चर्चा समाप्त नहीं हुई और सभा की आम सहमति से सभापीठ द्वारा इस संबंध में एक घोषणा किए जाने पर संकल्प संबंधी चर्चा को अगले सत्र (172वां सत्र) के लिए जारी रखा गया। किन्तु 172वें सत्र में संकल्प पर चर्चा नहीं हो सकी क्योंकि 16 दिसंबर, 1994 को सभा अचानक स्थगित हो गई। कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर संकल्प पर आगे चर्चा 24 मार्च, 1995 (173वां सत्र) को शुरू हुई और उसी दिन समाप्त हुई।[74]

25 अगस्त, 1995 को सदन ने आम राय से यह निर्णय किया कि नई दूरसंचार नीति के संबंध में गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प पर चर्चा इस प्रयोजन के लिए आगामी सत्र (175वां सत्र) में नियत किए गए अगले दिन जारी रहनी चाहिए।[75]

14 दिसंबर, 2012 को सभा ने सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया कि सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 66(क) में संशोधन की आवश्यकता के संबंध में गैर-सरकारी सदस्यों के प्रस्ताव पर चर्चा आगामी सत्र (227वां सत्र) में इस उद्देश्य हेतु आबंटित अगले दिवस में पुन: आरंभ की जाएगी।[76]

7 सितंबर, 1970 को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के आयुक्त के प्रतिवेदनों संबंधी सरकारी प्रस्ताव पर आगे चर्चा अगले सत्र के पहले दिन आरंभ करने के लिए स्थगित कर दी गई थी।[77] तदनुसार उस पर 9 नवम्बर, 1970 (74वां सत्र) को चर्चा पुन: आरंभ हुई।

7 अप्रैल, 1971 को एक प्रस्ताव उपस्थित किए जाने पर राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान कुछ सदस्यों के आचरण का निरनुमोदन करने वाले प्रस्ताव से संबंधित चर्चा को अगले सत्र के लिए स्थगित कर दिया। (किन्तु उसके बाद के सत्र में यह चर्चा पुन: आरंभ नहीं हुई)।[78]

1 दिसंबर, 1988 को कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय में तथा गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने संघ लोक सेवा आयोग के कतिपय प्रतिवेदनों पर विचार किये जाने के लिए एक प्रस्ताव उपस्थित किया। चर्चा समाप्त नहीं हुई। अगले सत्र (149वां सत्र) में उस पर चर्चा पुन: आरंभ हुई यद्यपि इस संबंध में कोई प्रस्ताव नहीं रखा गया था।[79]

(ग) संसदीय समितियों के समक्ष लम्बित कार्य : प्रक्रिया के नियमों में विशेष रूप से यह उपबंध है कि किसी समिति के समक्ष लंबित कोई कार्य केवल सभा के सत्रावसान के कारण व्यपगत नहीं होगा और इस प्रकार सत्रावसान होने पर भी समिति कार्य करती रहेगी।[80]

संसद् के किसी सदन का सत्रावसान होने पर राष्ट्रपति के पास अनुच्छेद 123 के अधीन अध्यादेश जारी करने की शक्ति है। यदि सत्रावसान के आदेश के पूर्व कोई अध्यादेश जारी किया जाता है और अधिसूचित किया जाता है तो वह शून्य होगा।[81]

राज्य सभा के कार्य पर लोक सभा के भंग होने का प्रभाव

संविधान के अधीन केवल लोक सभा भंग होती है। इसके विपरीत राज्य सभा भंग नहीं होती।[82] लोक सभा के भंग होने पर उसके समक्ष लम्बित सभी कार्य व्यपगत हो जाते हैं। किन्तु लोक सभा के भंग होने से एक सीमा तक राज्य सभा के समक्ष लम्बित कार्य पर भी प्रभाव पड़ता है जैसाकि नीचे दर्शाया गया है:

(क) विधायी कार्य : अनुच्छेद 107(4) में उपबंध है कि राज्य सभा में लम्बित कोई विधेयक, जिसे लोक सभा द्वारा पारित नहीं किया गया है, लोक सभा के भंग होने पर व्यपगत नहीं होगा। किन्तु यदि अनुच्छेद 107(5) के अधीन कोई विधेयक, जो लोक सभा में लम्बित है या लोक सभा द्वारा पारित किया गया है और राज्य सभा में लंबित है तो वह लोक सभा के भंग होने पर व्यपगत हो जाता है। अनुच्छेद 108(5) के अधीन किसी विधेयक पर गतिरोध दूर करने के लिए सदनों को संयुक्त बैठक में समवेत होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की राष्ट्रपति की अधिसूचना के पश्चात् बीच में लोक सभा के भंग हो जाने पर भी संयुक्त बैठक हो सकेगी और उसमें विधेयक पारित हो सकेगा। अत: इन उपबंधों का प्रभाव इस प्रकार है:

(i) राज्य सभा में आरंभ होने वाले ऐसे विधेयक जो उस सदन में अभी लंबित हैं, लोक सभा के भंग होने पर व्यपगत हो जाते हैं।

(ii) राज्य सभा में आरंभ होने वाले ऐसे विधेयक जो उस सदन में पारित किए गए हैं और लोक सभा को भेजे गए हैं और वहां लंबित हैं, लोक सभा के भंग होने पर व्यपगत हो जाते हैं।

इस श्रेणी के अंतर्गत व्यपगत हुए विधेयकों की संख्या इस प्रकार रही है: पहली लोक सभा के दो, दूसरी लोक सभा का एक, तीसरी लोक सभा के छह, चौथी लोक सभा के तेरह, पांचवीं लोक सभा के तीन, छठी लोक सभा के चार, सातवीं और आठवीं लोक सभा के छह-छह, नौवीं लोक सभा के चार, दसवीं लोक सभा का एक, ग्यारहवीं लोक सभा का एक, बारहवीं लोक सभा के पांच, तेरहवीं लोक सभा के तीन और चौदहवीं लोक सभा का एक।

(iii) लोक सभा में आरंभ हुए ऐसे विधेयक जो उस सभा द्वारा पारित किए जाते हैं और राज्य सभा को भेज दिए जाते हैं और लोक सभा के भंग होने की तारीख को भी वहां लंबित रहते हैं, व्यपगत हो जाते हैं।

इस श्रेणी के अंतर्गत व्यपगत हुए विधेयकों की संख्या इस प्रकार रही है: दूसरी और चौथी लोक सभा के दो-दो, छठी लोक सभा के चार, सातवीं लोक सभा का एक, आठवीं और दसवीं लोक सभा के चार-चार, ग्यारहवीं लोक सभा का एक, बारहवीं लोक सभा के चार और चौदहवीं लोक सभा का एक।

(iv) राज्य सभा में आरंभ हुए ऐसे विधेयक जो लोक सभा द्वारा संशोधनों सहित उस सदन को लौटा दिए जाते हैं और उसके भंग होने की तारीख को भी वहां लंबित रहते हैं, व्यपगत हो जाते हैं।

वास्तुविद् विधेयक, 1968 राज्य सभा द्वारा 7 मई, 1970 को पारित किया गया था। लोक सभा ने 3 दिसंबर, 1970 को विधेयक को संशोधनों सहित राज्य सभा को लौटाया। यथासंशोधित विधेयक 27 दिसंबर, 1970 को लोक सभा के भंग किए जाने तक लंबित रहा। इस प्रकार विधेयक व्यपगत हो गया।

(v) कोई ऐसा विधेयक जिस पर सदनों की सहमति नहीं हुई है और जिस पर विचार करने के लिए सदनों की एक संयुक्त बैठक आहूत करने के लिए राष्ट्रपति ने लोक सभा के भंग होने के पूर्व अपने इरादे को अधिसूचित कर दिया है, लोक सभा के भंग होने पर व्यपगत नहीं होता।[83]

(vi) कोई ऐसा विधेयक जिसे संसद् के दोनों सदनों ने पारित कर दिया हो और जिसे अनुमति के लिए राष्ट्रपति के पास भेज दिया गया हो, लोक सभा के भंग होने पर व्यपगत नहीं होता।

राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिए लंबित विधेयक पर लोक सभा के भंग होने के कारण पड़ने वाले प्रभाव के बारे में संविधान में कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है। पुरुषोत्तम नाम्बियार बनाम केरल राज्य[84] के मामले में यह माना गया कि राज्यपाल या राष्ट्रपति की अनुमति के लिए लंबित कोई विधेयक अनुच्छेद 196 के खंड (5) की परिधि के बाहर है और यह नहीं कहा जा सकता कि वह विधान सभा के भंग होने पर व्यपगत हो जाएगा।[85]

लोक सभा द्वारा यथापारित संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक, 1991 राज्य सभा द्वारा 13 मार्च, 1991 को पारित किया गया था। उसी दिन नौवीं लोक सभा भंग कर दी गई। 18 मार्च, 1991 को राज्य सभा सचिवालय ने विधेयक को राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिए प्रस्तुत किया। 6 मार्च, 1992 को राष्ट्रपति ने विधेयक पर अनुमति रोक ली और 9 मार्च, 1992 को राज्य सभा को तदनुसार सूचित किया गया।[86]

(vii) यदि राष्ट्रपति द्वारा सदनों के पुनर्विचार के लिए कोई विधेयक राज्य सभा को लौटाया जाता है और उस विधेयक पर सदनों द्वारा पुनर्विचार होने के बिना ही लोक सभा भंग हो जाती है तो वह व्यपगत नहीं होता।

भारतीय डाक घर (संशोधन) विधेयक, 1986 जिस रूप में उसे संसद् के सदनों ने पारित किया था, 19 दिसंबर, 1986 को राष्ट्रपति के समक्ष उनकी अनुमति के लिए प्रस्तुत किया गया। 28 नवम्बर, 1989 को आठवीं लोक सभा के भंग होने तक विधेयक उनके समक्ष लंबित रहा। राष्ट्रपति ने विधेयक को सदनों द्वारा पुनर्विचार किए जाने के लिए 7 जनवरी, 1990 को राज्य सभा को लौटाया। 13 मार्च, 1991 को नौवीं लोक सभा भंग हो गई; दसवीं लोक सभा भी 15 मई, 1996 को भंग हो गई। विधेयक सदनों द्वारा पुनर्विचार किए जाने के लिए राज्य सभा में तब तक विद्यमान था जब तक कि इसे 21 मार्च, 2002 को वापिस नहीं लिया गया था।[87]

(ख) दोनों सदनों की संयुक्त समितियों के समक्ष लंबित कार्य

(1) विधेयकों संबंधी संयुक्त समितियां

लोक सभा के भंग होने पर उस सभा द्वारा प्रारंभ की गई दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनी संयुक्त समिति भी भंग हो जाती है और इस प्रकार ऐसी संयुक्त समिति में कार्य कर रहे राज्य सभा के सदस्य लोक सभा सदस्यों के सहित उस समिति के सदस्य नहीं रहते। इसी प्रकार राज्य सभा द्वारा प्रारंभ की गई और दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनी संयुक्त समिति में कार्य कर रहे लोक सभा के सदस्य (राज्य सभा के सदस्यों सहित) लोक सभा के भंग होने

पर समिति के सदस्य नहीं रहते। दोनों ही मामलों में संयुक्त समिति की कोई हैसियत नहीं रहती और वह निष्क्रिय हो जाती है। राज्य सभा द्वारा निम्नलिखित विधेयकों के संबंध में प्रारंभ की गई संयुक्त समितियां लोक सभा के भंग होने पर निष्क्रिय हो गई थीं:

(i) धार्मिक न्यास विधेयक, 1960; (ii) संविधान (बत्तीसवां संशोधन) विधेयक, 1973; (iii) बहु-राज्य सहकारी सोसाइटी विधेयक, 1977; (iv) खादी और ग्रामोद्योग आयोग (संशोधन) विधेयक, 1978; (v) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) विधेयक, 1978; (vi) प्रसार भारती (भारतीय प्रसारण निगम) विधेयक, 1979; (vii) पोत परिवहन अभिकर्ता (अनुज्ञापन) विधेयक, 1988; (viii) लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1990; और (ix) अर्जित प्रतिरक्षण न्यूनतम संलक्षण (एड्स) निवारण विधेयक, 1990।

जब लोक सभा के भंग होने के कारण कतिपय विधेयकों संबंधी पिछली संयुक्त समितियां निष्क्रिय हो गईं तो उन्हीं विधेयकों के संबंध में निम्नलिखित संयुक्त समितियां पुन: गठित की गईं:

(1) विदेशी विवाह विधेयक, 1963 संबंधी संयुक्त समिति;[88] (2) मोटर यान (संशोधन) विधेयक, 1965 संबंधी संयुक्त समिति;[89] (3) जल प्रदूषण निवारण विधेयक, 1969 संबंधी संयुक्त समिति;[90] (4) दंड प्रक्रिया संहिता विधेयक, 1970 संबंधी संयुक्त समिति;[91] (5) विश्व भारती (संशोधन) विधेयक, 1978 संबंधी संयुक्त समिति; और (6) मानसिक स्वास्थ्य विधेयक, 1981 संबंधी संयुक्त समिति।

23 मार्च, 1978 को राज्य सभा में पुर:स्थापित किए गए विश्व भारती (संशोधन) विधेयक, 1978 को एक प्रस्ताव द्वारा 25 जुलाई, 1978 को संसद् के सदनों की संयुक्त समिति को सौंपा गया था। 31 अगस्त, 1978 को लोक सभा इस प्रस्ताव पर सहमत हुई। इसके पहले कि संयुक्त समिति कार्य को पूरा करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करे, लोक सभा 22 अगस्त, 1979 को भंग हो गई। 21 जनवरी, 1980 को नई लोक सभा गठित हुई। जब 17 जून, 1980 को शिक्षा मंत्री ने राज्य सभा में इस विधेयक को एक नई संयुक्त समिति को नए सिरे से सौंपने का प्रस्ताव उपस्थित करना चाहा तब प्रस्ताव के रूप पर आपत्ति करते हुए एक औचित्य का प्रश्न उठाया गया। यह तर्क दिया गया कि चूंकि राज्य सभा ने ही पिछली बार इस संयुक्त समिति की स्थापना की थी इसलिए लोक सभा के भंग होने के कारण तत्कालीन समिति के अस्तित्व पर प्रभाव नहीं पड़ा। केवल लोक सभा के सदस्यों के स्थान रिक्त हुए और यह मानकर कि संयुक्त समिति अस्तित्व में है, इन रिक्तियों को भरा जाना चाहिए। संयुक्त समितियों को निष्क्रिय मानने वाले पिछले निर्णयों को सुधारा जाना चाहिए। 1 जुलाई, 1980 को इस संबंध में सभापति ने जो निर्णय दिया उसमें, अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया था:

> मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे विधेयक को जो संयुक्त समिति को सौंप दिया गया हो, लोक सभा के भंग होने के बाद संयुक्त समिति को नए सिरे से सौंपने का प्रस्ताव उपस्थित करने की प्रथा बद्धमूल हो चुकी है और जब तक किसी निश्चित नियम द्वारा पूर्व निर्णय निष्प्रभावी नहीं होते तब तक हमें इस प्रथा का अनुसरण करना चाहिए...चूंकि मामला अनिर्णीत नहीं है और पूर्व निर्णयों के अंतर्गत आता है इसलिए मेरा निर्णय है कि वर्तमान मामले में भी इन पूर्वनिर्णयों का, जो स्पष्ट हैं, अनुसरण किया जाना चाहिए।[92]

विधि तथा न्याय मंत्रालय से इस मामले में राय ली गई थी और उसका भी यह मत था कि पूर्वनिर्णयों का अनुसरण किया जाना चाहिए।[93] मानसिक स्वास्थ्य विधेयक, 1981 संबंधी संयुक्त समिति के संबंध में भी इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया गया।[94]

(2) सांविधिक संयुक्त समितियां

राजभाषा समिति दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनती है और इस समिति में कार्य करने के लिए चुने गए राज्य सभा सदस्य लोक सभा के भंग होने पर भी समिति में बने रहते

हैं। लोक सभा के भंग होने पर केवल लोक सभा के सदस्य समिति के सदस्य नहीं रहते। इस स्थिति का कारण यह है कि राजभाषा समिति को संसद् के एक अधिनियम द्वारा प्राधिकार प्राप्त है और उस समिति के सदस्यों का कार्यकाल सदन के सदस्यों के रूप में उनके कार्यकाल तक ही रहता है।[95] जैसाकि विधि तथा न्याय मंत्रालय द्वारा मत व्यक्त किया गया है:

> इस आधार पर इसमें भेद करना संभव है कि यह एक सांविधिक समिति है और चूंकि राज्य सभा द्वारा उसके सदस्य निर्वाचित किए जाते हैं इसलिए लोक सभा के भंग होने पर भी वे उसके सदस्य बने रहते हैं और लोक सभा के सदस्यों के उपस्थित न रहने पर भी समिति कार्य करती रह सकती है परंतु उसमें आवश्यक गणपूर्ति रहनी चाहिए।[96]

(3) तदर्थ समितियां

लोक सभा के भंग होने पर संसद् की तदर्थ समिति भी निष्क्रिय हो जाती है।

एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पर चर्चा के परिणामस्वरूप 29 अक्तूबर, 1996 को देश में वक्फ बोर्डों के कार्यकरण के संबंध में सभा की एक समिति[97] गठित की गई। बाद में इस समिति को एक संयुक्त समिति में परिवर्तित कर दिया गया जिसमें लोक सभा के सदस्य भी सम्मिलित थे। 4 दिसंबर, 1997 को ग्यारहवीं लोक सभा के भंग होने के कारण उक्त संयुक्त समिति भंग हो गई। कुछ सदस्यों के अनुरोध पर 28 जनवरी, 1999 को उक्त समिति का पुनर्गठन किया गया। 26 अप्रैल, 1999 को बारहवीं लोक सभा के भंग होने के कारण उक्त समिति पुन: भंग हो गई। तेरहवीं लोक सभा के गठन के पश्चात् 27 मई, 2000 को उक्त समिति का पुनर्गठन किया गया। 6 फरवरी, 2004 को तेरहवीं लोक सभा के भंग होने के साथ ही उक्त समिति पुन: भंग हो गई। 17 मई, 2004 को चौदहवीं लोक सभा के गठन के पश्चात् 2 जनवरी, 2006 को उक्त समिति का पुनर्गठन किया गया और मई, 2009 में लोक सभा के भंग होने के परिणामस्वरूप यह समिति भंग हो गई।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. अनुच्छेद 83(1)
2. अनुच्छेद 83(2)
3. अनुच्छेद 85(1)
4. अनुच्छेद 85(2)
5. राज्य सभा में इसके लिए सामान्य शब्द 'अंत:सत्रावधि' या 'सत्रावकाश' है
6. मे, पृष्ठ 220
7. 1962 और 1990 के अन्तिम सत्रों की अवधि क्रमश: जनवरी, 1963 और जनवरी, 1991 तक बढ़ी
8. नियम 272
9. अनुच्छेद 77(3)
10. संसदीय कार्य मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन, 1993-94 (अंग्रेजी), पृष्ठ 3
11. 36वें (1961), 52वें (1965) और 103वें (1977) सत्रों के आह्वान आदेशों पर उपराष्ट्रपति ने राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए हस्ताक्षर किए थे; 69वें (1969), 99वें (1977), 100वें (1977), 101वें (1977) और 102वें (1977) सत्रों के आह्वान आदेशों पर उपराष्ट्रपति ने राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए हस्ताक्षर किए थे
12. फा.सं. 1/4/55-एल
13. नियम 3(2)
14. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 24.8.1953, कालम 72-93
15. फा.सं. 1/5/62-एल
16. फा.सं. 1/1/65-एल

17. फा.सं. 1/1/67-एल
18. फा.सं. 1/2/75-एल
19. फा.सं. 1/3/77-एल
20. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.6.1962, कालम 1-2
21. अनुच्छेद 85(1)
22. फा.सं. 40/9/67-एल; और राज्य सभा वाद-विवाद, 10.12.1968, कालम 3333-34
23. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.11.1962, कालम 2364-65
24. नियम 3(1)
25. जब उपराष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए या राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए आह्वान आदेश पर हस्ताक्षर किए जाते हैं तो आह्वान में आवश्यक परिवर्तन कर दिया जाता है
26. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.12.1969, कालम 4172-73
27. फा.सं. 1/4/69-एल
28. फा.सं. 1/3/75-एल, 1/4/75-एल, 1/1/76-एल, 1/2/76-एल, 1/3/76-एल, 1/4/76-एल, 1/1/77-एल, 1/1/79-एल, 1/3/81-एल, 1/3/82-एल, 1/1/84-एल, 1/2/84-एल, 1/1/85-एल और 1/2/85-एल
29. फा.सं. 1/3/89-एल
30. फा.सं. 1/1/90-एल
31. फा.सं. 1/3/90-एल
32. फा.सं. 1/3/2003-एल
33. फा.सं. 1/1/2006-एल
34. फा.सं. 1/2/2008-एल
35. फा.सं. 1/1/2011-एल
36. फा.सं. 1/3/2013-एल
37. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 27
38. फा.सं. 1/1/94-एल
39. फा.सं. 1/1/2000-एल
40. फा.सं. 1/1/2002-एल
41. फा.सं. 1/1/71-एल
42. फा.सं. 1/2/54-एल
43. फा.सं. 1/4/60-एल
44. फा.सं. 1/3/72-एल
45. फा.सं. 1/3/78-एल
46. फा.सं. 1/3/79-एल
47. फा.सं. 1/3/81-एल
48. फा.सं. 1/3/83-एल
49. फा.सं. 1/1/90-एल
50. फा.सं. 1/1/92-एल
51. फा.सं. 1/4/82-एल; साथ ही संसदीय समाचार (2), 29.9.1982 देखिये
52. फा.सं. 1/3/57-एल
53. फा.सं. 1/3/65-एल
54. फा.सं. 1/3/68-एल और 35/1/68-एल

55. फा.सं. 24/74-टी,1/1/76-एल और 1/1/77-एल
56. फा.सं. 24/81-टी
57. फा.सं. 15/90-टी और 1/3/91-एल
58. फा.सं. 10/91-टी, 1/4/91-एल और 1/5/91-एल
59. फा.सं. आर.एस 1/3/2011-एल
60. संसदीय समाचार (2), 27.8.2013, 6.9.2013
61. इल्बर्ट सी., 'पार्लियामेंट, इट्स हिस्ट्री, कॉन्स्टीट्यूशन एंड प्रैक्टिस', तीसरा संस्करण, लंदन, ऑक्सफोर्ड, 1950
62. मे, पृष्ठ 221
63. एच. सिद्धवीरप्पा तथा अन्य बनाम मैसूर राज्य, ए.आई.आर. 1971, मैसूर 200
64. संसदीय कार्य मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन, 1993-94 (अंग्रेजी), पृष्ठ 3-4
65. 35वें और 36वें सत्रों (1961) और 51वें सत्र (1965) संबंधी सत्रावसान आदेशों पर उपराष्ट्रपति ने राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए हस्ताक्षर किए थे। 68वें सत्र (1969), 99वें, 100वें और 101वें सत्रों (1977) संबंधी सत्रावसान आदेशों पर उपराष्ट्रपति ने राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए हस्ताक्षर किए थे
66. अनुच्छेद 85(2)(क)
67. लोक सभा संसदीय समाचार (2), 24.5.1994
68. लोक सभा संसदीय समाचार (1), 13.6.1994
69. राज्य सभा संसदीय समाचार (2), 28.3.2015
70. नियम 226
71. नियम 225
72. -वही-
73. नियम 28(1)
74. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 30.4.1954, कालम 4776; 27.8.1954, कालम 602; 10.2.1954, कालम 1486; राज्य सभा वाद-विवाद, 4.3.1955, कालम 1154; 6.5.1994, 5.8.1994, 19.8.1994, 24.3.1995; और कार्य मंत्रणा समिति के कार्यवृत्त, 23.3.1995
75. -वही- 25.8.1995
76. -वही- 14.12.2012, पृष्ठ 410
77. -वही- 7.9.1970, कालम 134
78. -वही- 7.4.1971, कालम 209
79. -वही- 1.12.1988, कालम 358-78 और 3.4.1989, कालम 129-70
80. नियम 226
81. विद्या चौधरी बनाम बिहार प्रांत, ए.आई.आर. 1950, पटना 19
82. अनुच्छेद 83(1)
83. अनुच्छेद 108(5)
84. ए.आई.आर. 1962, एस.सी. 694
85. विधि तथा न्याय मंत्रालय का मत, फा.सं. 1/5/86-बी
86. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.3.1992, कालम 277 और फा.सं. 1/31/91-बी
87. विधि तथा न्याय मंत्रालय का मत

88. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.5.1968, कालम 2777-81
89. -वही- 13.2.1968, कालम 165-70
90. -वही- 30.7.1971, कालम 298-300
91. -वही- 31.3.1971, कालम 174-76
92. -वही- 1.7.1980, कालम 123-24
93. फा.सं. 1/11/78-बी
94. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.3.1985, कालम 191-92
95. राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 4
96. विधि तथा न्याय मंत्रालय का मत, पूर्वोक्त में
97. संसदीय समाचार (2), 31.10.1996; 28.1.1999 और 29.5.2000

अध्याय-7

राष्ट्रपति का अभिभाषण, धन्यवाद प्रस्ताव और संदेश

संवैधानिक उपबंध

संविधान के अनुच्छेद 86 और 87 का संबंध राष्ट्रपति के अभिभाषण से है। अनुच्छेद 86 के द्वारा राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह संसद् के किसी एक सदन में या एक साथ समवेत दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण कर सकेगा और इस प्रयोजन के लिए सदस्यों की उपस्थिति की अपेक्षा कर सकेगा। तथापि, संविधान के प्रारंभ से राष्ट्रपति ने अभी तक इस उपबंध के अधीन सदन या सदनों के समक्ष अभिभाषण नहीं किया है।

अनुच्छेद 87 राष्ट्रपति के विशेष अभिभाषण के संबंध में है और उसमें उपबंध किया गया है कि राष्ट्रपति लोक सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के आरंभ में और प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरंभ में एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों में अभिभाषण करेगा और संसद् को उसके आह्वान के कारण बताएगा।[1] अनुच्छेद 87(1) में मूलत: राष्ट्रपति से अपेक्षा की गई थी कि वह प्रत्येक सत्र के प्रारंभ में दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण करेगा। संविधान (पहला संशोधन) अधिनियम, 1951 के द्वारा इस उपबंध में संशोधन कर दिया गया। प्रधान मंत्री ने इस संबंध में हुई चर्चा का उत्तर देते हुए संविधान (पहला संशोधन) विधेयक, 1951 के खंड 7 के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणी की:

> इसमें कोई संदेह नहीं कि इसके लिए इस सदन के बाहर कुछ तैयारी करनी पड़ती है जो बहुधा परेशानी पैदा करने वाली होती है। सदस्यों को मालूम है कि जब छह घोड़ों वाली गाड़ी आती है तो इस प्रयोजन के लिए अनेक प्रकार के काम करने पड़ते हैं। जो भी हो, यह परेशानी सदन या उसके सदस्यों को नहीं बल्कि दिल्ली प्रशासन को भुगतनी पड़ती है।[2]

जब तक एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों के समक्ष राष्ट्रपति का अभिभाषण नहीं हो जाता तब तक कोई अन्य कार्य नहीं किया जाता। सैयद अब्दुल मंसूर हबीबुल्लाह बनाम अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल विधान सभा, ए.आई.आर. 1966, कलकत्ता 363 के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने राज्यपाल के अभिभाषण से संबंधित अनुच्छेद 176 में यह कहा था:

> यदि कोई विधानमंडल राज्यपाल के अभिभाषण के प्रारंभिक कार्य के बिना ही, जबकि अनुच्छेद 176 के अधीन यह प्रारंभिक कार्य करना अपेक्षित है, अपनी बैठक करता है और विधायी कार्य करता है तब उसकी कार्यवाही अवैधानिक और अमान्य है और उसे किसी न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

जैसाकि अनुच्छेद 87 में स्पष्ट कर दिया गया है कि अभिभाषण एक साथ समवेत हुए संसद् के दोनों सदनों के समक्ष होगा। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि यदि वर्ष के प्रथम सत्र के प्रारंभ में लोक सभा भंग कर दी गई है और राज्य सभा की बैठक होनी है तो राज्य सभा राष्ट्रपति के अभिभाषण के बिना ही अपना सत्र कर सकती है। 1977 और 1991 में लोक सभा के भंग होने के दौरान क्रमश: 1 फरवरी, 1977 और 3 जून, 1991 को राष्ट्रपति के अभिभाषण के बिना ही राज्य सभा के सत्र हुए थे।

अभिभाषण की तारीख और समय

किसी सत्र के प्रारंभ होने के बारे में संसदीय कार्य मंत्रालय से सूचना प्राप्त होती है।

जब राष्ट्रपति को एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण करना होता है तब मंत्रालय राष्ट्रपति के अभिभाषण और तारीख के बारे में भी सूचना देता है। तथापि, आह्वान में अभिभाषण के बारे में सूचना नहीं दी जाती है। सदस्यों को राष्ट्रपति के अभिभाषण की तारीख, समय और स्थान के बारे में बुलेटिन (संसदीय समाचार) में एक पैरा के द्वारा सूचना दी जाती है।

लोक सभा के लिए प्रत्येक आम चुनाव के बाद के प्रत्येक सत्र के मामले में राष्ट्रपति एक साथ समवेत हुए संसद् के दोनों सदनों के समक्ष तभी अभिभाषण करता है जब लोक सभा के सदस्यों ने शपथ ले ली हो या प्रतिज्ञान कर लिया हो और लोक सभा द्वारा अध्यक्ष चुन लिया गया हो। 1957, 1962, 1989, 1991, 1996 और 2009 के वर्षों में, जब लोक सभा के आम चुनाव भी हुए थे, राष्ट्रपति ने वर्ष के पहले सत्र के हो जाने के बाद एक साथ समवेत हुए संसद् के दोनों सदनों के समक्ष दो बार अभिभाषण किया।

प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के मामले में, राष्ट्रपति का अभिभाषण दोनों सदनों के सत्र के प्रारंभ के लिए अधिसूचित किए गए समय और तारीख को होता है। अभिभाषण के आधा घंटे बाद राज्य सभा और लोक सभा अपने-अपने सदनों में नियमित रूप से कार्य करने के लिए अलग-अलग समवेत होती हैं।

> तथापि, 2004 में जब सदन वर्ष में पहली बार 30 जनवरी, 2004 को समवेत हुआ, तब उसे वर्ष का पहला सत्र नहीं माना गया। इसके बजाए उसे राज्य सभा के 200वें सत्र, जो 2 दिसम्बर, 2003 को आरंभ हुआ था, का भाग-2 माना गया। इसलिए, यह सत्र राष्ट्रपति के अभिभाषण से आरंभ नहीं हुआ था। वर्ष 2004 में चौदहवीं लोक सभा के साधारण चुनावों के बाद 201वें सत्र में 7 जून, 2004 को राष्ट्रपति ने एक साथ समवेत हुए संसद् के दोनों सदनों को संबोधित किया।

राष्ट्रपति का अभिभाषण इस प्रयोजन के लिए निर्धारित तारीख को मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे होता है। तथापि, राष्ट्रपति के अभिभाषण का समय 16 मई, 1952 को मध्याह्न पूर्व 10.45 बजे निर्धारित किया गया। 11 फरवरी, 1953 को मध्याह्न पश्चात् 2.00 बजे, 15 फरवरी, 1954 को मध्याह्न पश्चात् 1.30 बजे, 1957 (13 मई, 1957) को मध्याह्न पूर्व 10.45 बजे और 1962 (18 अप्रैल, 1962) को मध्याह्न पूर्व 9.30 बजे निर्धारित किया गया था।

अभिभाषण से संबंधित समारोह

राष्ट्रपति के अभिभाषण के संबंध में कतिपय औपचारिकताएं बरती जाती हैं। अभिभाषण के लिए राष्ट्रपति के पहुंचने के काफी पहले सदस्यगण संसद् के केन्द्रीय कक्ष (सेंट्रल हॉल) में समवेत होते हैं। मंत्रियों, उपसभापति/उपाध्यक्ष और दोनों सदनों के विपक्षी दलों/समूहों के नेताओं के लिए आरक्षित स्थानों को छोड़कर सदस्य ऐसे अन्य स्थानों (सीटों) पर बैठते हैं जो विशिष्ट रूप से नियत या निर्धारित नहीं होते।

राष्ट्रपति संसद् भवन के द्वार सं. 5 (पश्चिमोत्तर द्वारमंडप) पर पहुंचते हैं। उनके साथ उनके सचिव और सैनिक सचिव होते हैं और उनकी अगवानी घुड़सवार अंगरक्षकों द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति के अंगरक्षक 'राष्ट्रीय सलामी' देते हैं और इसके पश्चात् राज्य सभा के सभापति, लोक सभा के अध्यक्ष, प्रधान मंत्री, संसदीय कार्य मंत्री और दोनों सदनों के महासचिव द्वार (गेट) पर राष्ट्रपति का स्वागत करते हैं। तत्पश्चात् राष्ट्रपति के काफिले को केन्द्रीय कक्ष की ओर ले जाया जाता है। जैसे ही राष्ट्रपति और उनके साथ का काफिला केन्द्रीय कक्ष में प्रवेश करता है, लोक सभा का मार्शल

राष्ट्रपति के आगमन की सूचना देता है और दो तुरही-वादक तब तक तुरही बजाते रहते हैं जब तक राष्ट्रपति मंच पर नहीं पहुंच जाते। इस समय सदस्यगण अपने-अपने स्थानों से उठ खड़े होते हैं और तब तक खड़े रहते हैं जब तक राष्ट्रपति अपने स्थान पर आसीन नहीं हो जाते।

मंच के सामने केन्द्रीय कक्ष के तल पर पहुंचने पर काफिला दो भागों में विभक्त हो जाता है: राष्ट्रपति और पीठासीन अधिकारी मंच पर अपने-अपने स्थानों की ओर जाते हैं, राष्ट्रपति मंच पर मध्यवर्ती स्थान पर आसीन होते हैं, राज्य सभा के सभापति राष्ट्रपति की दाईं ओर और लोक सभा के अध्यक्ष बाईं ओर जाते हैं, प्रधान मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री मंच के सामने की सीटों पर स्थान ग्रहण करते हैं, राज्य सभा के महासचिव, राष्ट्रपति के सचिव और दो ए.डी.सी. (परिसहायक) मंच की दाईं ओर केन्द्रीय कक्ष के निचले स्थान पर रखी कुर्सियों की ओर जाते हैं और लोक सभा के महासचिव, सैनिक सचिव और ए.डी.सी. मंच की बाईं ओर की कुर्सियों की ओर जाते हैं। मंच पर स्थित राष्ट्रपति की कुर्सी के पीछे दो ए.डी.सी. खड़े रहते हैं। इसके तुरंत पश्चात् राष्ट्रपति के बैंड द्वारा राष्ट्रगान की धुन बजाई जाती है जो केन्द्रीय कक्ष की लॉबियों में से एक लॉबी में खड़ा रहता है। इसके पश्चात् जैसे ही राष्ट्रपति बैठ जाते हैं, पीठासीन अधिकारी, सदस्य तथा दीर्घाओं में खड़े हुए दर्शक अपना-अपना स्थान पुन: ग्रहण कर लेते हैं। इसके बाद राष्ट्रपति अभिभाषण को हिन्दी या अंग्रेजी में पढ़ते हैं। अभिभाषण का अंग्रेजी या हिन्दी रूपान्तर, जैसी भी स्थिति हो, सामान्यत: उपराष्ट्रपति द्वारा पढ़ा जाता है।

1970 में राष्ट्रपति ने अपना अभिभाषण अंग्रेजी में किया और उसके प्रत्येक पैरा की समाप्ति पर उसका हिन्दी पाठ राष्ट्रपति के सचिव द्वारा पढ़ा गया। जब उस वर्ष राज्य सभा के सचिव राष्ट्रपति के अभिभाषण को सदन के सभापटल पर रखने वाले थे तब सदस्यों द्वारा औचित्य प्रश्न उठाए गए जिनमें अभिभाषण के हिन्दी पाठ को राष्ट्रपति के सचिव द्वारा पढ़े जाने पर आपत्ति की गई थी। सभापति ने औचित्य प्रश्नों को अस्वीकार करते हुए टिप्पणी की कि मामले के संबंध में सभा की कार्यवाही राष्ट्रपति के समक्ष रख दी जाएगी।[3] तथापि, वर्ष 2004 से चल रही परिपाटी के अनुसार भारत के उपराष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति के अभिभाषण का केवल पहला और अंतिम पैरा, यथास्थिति, अंग्रेजी अथवा हिन्दी में, जिस भाषा में राष्ट्रपति ने अभिभाषण नहीं दिया हो, पढ़ा जाता है।

अभिभाषण की समाप्ति पर ढोल बजते हैं और उसके बाद राष्ट्रगान होता है। तत्पश्चात् राष्ट्रपति एक काफिले में केन्द्रीय कक्ष से प्रस्थान करते हैं जिसका क्रम वही होता है जो उनके आगमन के समय पर था। जब काफिला केन्द्रीय कक्ष से प्रस्थान करता है तब सदस्यगण खड़े हो जाते हैं और जब तक वह केन्द्रीय कक्ष से नहीं चले जाते तब तक वे खड़े रहते हैं। द्वार पर पहुंचने पर राष्ट्रपति पीठासीन अधिकारियों, प्रधान मंत्री, संसदीय कार्य मंत्री और दोनों सदनों के महासचिवों से विदा लेते हैं। राष्ट्रपति के अंगरक्षक राष्ट्रीय सलामी देते हैं। राष्ट्रपति इसके पश्चात् राष्ट्रपति भवन लौट जाते हैं।

हिन्दी और अंग्रेजी में अभिभाषण सहित सारे समारोह में एक घंटा या कभी-कभी उससे अधिक समय लगता है। 20 दिसंबर, 1989 को दूरदर्शन द्वारा पहली बार इस समारोह और अभिभाषण का सीधा प्रसारण किया गया।

अवसर का महत्व

एक साथ समवेत हुए संसद् के दोनों सदनों के समक्ष राष्ट्रपति का अभिभाषण संविधान के अंतर्गत एक गंभीर और औपचारिक कार्य है। इस अवसर पर उसके अनुरूप गरिमा और मर्यादा

बनाए रखना आवश्यक है। अत: प्रत्येक सदस्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसी कोई बात नहीं कहेगा या ऐसा आचरण नहीं करेगा जिससे इस अवसर की गंभीरता या गरिमा पर कोई आंच आए। सदस्यों से एक संसदीय समाचार के माध्यम से यह भी अनुरोध किया जाता है कि वे अभिभाषण के दौरान केन्द्रीय कक्ष को छोड़कर बाहर न जाएं।

राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान कतिपय सदस्यों के आचरण के संबंध में लोक सभा द्वारा एक समिति नियुक्त की गई थी जिसने निम्नलिखित टिप्पणियां की थीं:

> यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति द्वारा एक साथ समवेत हुए संसद् के दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण करने और संसद् को आहूत करने के कारणों के बारे में उन्हें सूचना देने के संबंध में अनुच्छेद 87 के उपबंध आदेशात्मक हैं। यह राष्ट्रपति के लिए एक संवैधानिक बाध्यता है और वे राष्ट्र के अध्यक्ष के रूप में अपना अभिभाषण करते हैं। राष्ट्रपति का अभिभाषण सरकार की नीति का एक विवरण है और संवैधानिक अध्यक्ष होने के नाते वे उस नीति के प्रमुख प्रवक्ता हैं। यह स्पष्ट है कि जब राष्ट्राध्यक्ष अर्थात् राष्ट्रपति एक संवैधानिक उपबंध का प्रयोग करते हुए कार्य करते हैं और यह अपेक्षा करते हैं कि दोनों सदनों के सदस्य उनके अभिभाषण को सुनने के लिए उपस्थित हों, तब गंभीरता और गरिमा बनाए रखने को सर्वाधिक महत्व दिया जाना चाहिए। वे कार्यपालक प्राधिकारी ही नहीं हैं बल्कि एक प्रकार से संविधान का प्रतीक हैं। यह ध्यान देने की बात है कि ब्रिटेन की संसद् में प्रचलित प्रथा का वहां तक अनुसरण करने की दृष्टि से, जहां तक वह हमारे देश की परिस्थितियों में व्यावहारिक है, इस अवसर को एक गंभीर अवसर माना जाता है। अत: इस गंभीर अवसर पर मर्यादा और शालीनता का वातावरण होना चाहिए।
>
> संविधान के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित करने की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक सदस्य पूरी मर्यादा और शालीनता बनाए रखे। राष्ट्रपति के अभिभाषण को शालीनता और मर्यादा के साथ सुनने की संवैधानिक बाध्यता सदस्यों के लिए भी उतनी ही है जितनी कि राष्ट्रपति द्वारा संसद् में अभिभाषण करने की है। अत: राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर यदि कोई सदस्य ऐसी हरकत करता है जिससे वातावरण बिगड़ जाता है या अशांति उत्पन्न होती है तो ऐसा आचरण संसद्-सदस्य के रूप में उसके लिए अशोभनीय है।
>
> इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 79 के अनुसार संसद् राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनती है। जब राष्ट्रपति अनुच्छेद 87 के अधीन अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हैं तब प्रत्येक सदस्य को स्वयं संसद् की गरिमा बनाए रखने के लिए राष्ट्रपति के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना ही चाहिए।[4]

अभिभाषण के दौरान अशांति उत्पन्न करने की घटनाएं

यदि कोई सदस्य अभिभाषण के अवसर पर अशांति उत्पन्न करता है तो सदन उसके विरुद्ध ऐसी कार्यवाही कर सकता है जो वह उचित समझे। कभी-कभी सदन ने इस प्रकार की घटना की भर्त्सना की है या सदस्यों के अमर्यादित आचरण को अस्वीकार करने के प्रस्ताव पर चर्चा की है।

> 18 फरवरी, 1963 को अभिभाषण के आरंभ होने पर राज्य सभा का एक सदस्य कार्यवाही में व्यवधान डालने लगा। अगले दिन इस मामले पर राज्य सभा में चर्चा हुई। सदन ने घटना की निन्दा की और खेद व्यक्त किया। चर्चा की समाप्ति पर सभापति ने कहा:
>
> > "मैं सभा के सभी पक्षों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से सहमत हूं कि कल जिस सदस्य ने राष्ट्रपति के अभिभाषण में व्यवधान डाला और बहिर्गमन किया, उनका आचरण निन्दनीय और एक संसद्-सदस्य के लिए अशोभनीय था। राष्ट्रपति संविधान के द्वारा उन्हें सौंपे गए कार्य को कर रहे थे और यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि राष्ट्रपति स्वयं संसद् का भाग हैं। वे सर्वोच्च सम्मान के पात्र हैं और यदि कोई सदस्य शालीनता और मर्यादा के दायरे से बाहर चला जाता है तो वह दंडनीय है। मैं राष्ट्रपति को पत्र लिखकर उन्हें यह बताऊंगा कि इस अत्यंत खेदजनक घटना से सभा को गहरा दु:ख पहुंचा है।"[5]

दूसरे दिन सभापति ने राष्ट्रपति को पत्र लिखकर उन्हें यह बताया कि "एक साथ समवेत हुए संसद् के दोनों सदनों के समक्ष कल हुए आपके अभिभाषण के आरंभ में राज्य सभा के एक सदस्य के निंदनीय और किसी भी संसद्-सदस्य के किए अशोभनीय आचरण की जो अत्यंत खेदजनक घटना हुई है उस पर राज्य सभा को गहरा दुःख हुआ है।"[6] 20 फरवरी, 1963 को सभापति ने सदन में राष्ट्रपति से प्राप्त एक पत्र को पढ़कर सुनाया जिसमें राष्ट्रपति ने राज्य सभा की भावनाओं की सराहना की थी।[7]

23 मार्च, 1971 को राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान राज्य सभा के तीन सदस्यों ने व्यवधान डाला और राष्ट्रपति के प्रति असम्मान प्रदर्शित किया। 7 अप्रैल, 1971 को हुई राज्य सभा की बैठक में इन सदस्यों के आचरण की निन्दा करने के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया गया:

> "यह सभा श्री राजनारायण, श्री नागेश्वर प्रसाद शाही और श्री सीताराम सिंह के आचरण की घोर निन्दा करती है, और उनके अवांछनीय, अमर्यादित और अशोभनीय व्यवहार की भर्त्सना करती है जिन्होंने 23 मार्च, 1971 को भारत के संविधान के अनुच्छेद 87 के अधीन एक साथ समवेत हुए संसद् के दोनों सदनों के समक्ष राष्ट्रपति के अभिभाषण के गंभीर अवसर पर व्यवधान डाला और उनके प्रति असम्मान प्रदर्शित किया।"[8]

सदन ने इस मामले पर विस्तार से चर्चा की किंतु चूंकि और अधिक सदस्य चर्चा में भाग लेना चाहते थे इसलिए संसदीय कार्य मंत्री ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि "प्रस्ताव पर आगे चर्चा अगले सत्र के लिए स्थगित कर दी जाए" और प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।[9] तथापि, अगले या उसके बाद के किसी सत्र में प्रस्ताव को आगे चर्चा के लिए नहीं लिया गया।

किन्तु निम्नलिखित मामलों में सदन ने राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान अशांति उत्पन्न किए जाने पर कोई ध्यान नहीं दिया:

> 20 दिसंबर, 1989 को अभिभाषण के दौरान जैसे ही राष्ट्रपति ने मंडल आयोग से संबंधित पैरा को पढ़ा, राज्य सभा के एक सदस्य ने मंडल आयोग के संबंध में आश्वासनों को कार्यान्वित न किए जाने के बारे में शोर मचाना शुरू कर दिया।[10]
>
> 12 मार्च, 1990 को अभिभाषण के दैरान राज्य सभा के एक सदस्य ने मंडल आयोग के प्रतिवेदन को कार्यान्वित न किए जाने के विरोध में एक समानांतर भाषण शुरू कर दिया और बाद में वह केन्द्रीय कक्ष छोड़कर बाहर चले गए।[11]
>
> 21 फरवरी, 1991 को अभिभाषण के दौरान राज्य सभा के एक सदस्य खड़े हो गए और उन्होंने अभिभाषण में मंडल आयोग के प्रतिवेदन के बारे में कोई उल्लेख न होने पर आपत्ति की। इसके बाद वे केन्द्रीय कक्ष छोड़कर बाहर चले गए।[12]
>
> 11 जुलाई, 1991 को अभिभाषण के दौरान राज्य सभा के एक सदस्य ने व्यवधान डाला।[13]

अभिभाषण की विषय-वस्तु

राष्ट्रपति का अभिभाषण सरकार की नीति का विवरण होता है और इसलिए उसे सरकार द्वारा तैयार किया जाता है। अभिभाषण में कई पैरा होते हैं जो सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों द्वारा उपलब्ध कराई गई सामग्री के आधार पर तैयार किए जाते हैं। अभिभाषण के कुछ महीने पहले प्रधान मंत्री का कार्यालय भारत सरकार के सचिवों से निवेदन करता है कि वे अभिभाषण में सम्मिलित किए जाने के लिए अपने-अपने मंत्रालयों/विभागों से संबंधित विषयों पर सामग्री भेजें।[14] अत: अभिभाषण की विषय-वस्तु के लिए राष्ट्रपति नहीं बल्कि सरकार उत्तरदायी होती है:

> "राष्ट्रपति के अभिभाषण में एक विस्तृत क्षेत्र के बारे में वस्तुत: संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। राष्ट्रपति का अभिभाषण सरकार की नीति का निरूपण होता है... वह सरकार की नीति की पुनरावृत्ति है। हो सकता

है कि यह सरकार के प्रत्येक कार्य की पूर्ण रूप से पुनरावृत्ति न हो; स्वभावत: वह विदेशी तथा घरेलू क्षेत्रों का मोटे तौर पर एक सर्वेक्षण प्रस्तुत करता है या प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।"[15]

अभिभाषण में पिछले वर्ष के दौरान सरकार के कार्यकलापों और उपलब्धियों की समीक्षा होती है और महत्वपूर्ण घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में अपनाई गई नीति और सरकार के कार्यक्रम का उल्लेख होता है। किन्तु इसमें वर्ष के सभी सत्रों के दौरान किए जाने वाले समस्त संभावित विधायी कार्य का उल्लेख नहीं होता। अत: अभिभाषण के बाद अलग से एक बुलेटिन (संसदीय समाचार) जारी किया जाता है जिसमें ऐसे सरकारी, विधायी तथा अन्य कार्य की सूचना दी जाती है जिसे उस सत्र के दौरान लिये जाने की संभावना हो।

अलग बैठक और अभिभाषण की प्रति का रखा जाना

जब संसद् के दोनों सदन राष्ट्रपति के अभिभाषण को सुनने के लिए एक साथ समवेत होते हैं तब वह राज्य सभा (या लोक सभा) की बैठक नहीं होती क्योंकि राज्य सभा की बैठक विधिवत् रूप से तभी होती है जबकि उसकी अध्यक्षता सभापति द्वारा या संविधान के अधीन या राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के अधीन राज्य सभा की किसी बैठक की अध्यक्षता करने के लिए सक्षम किसी सदस्य द्वारा की जाती है।[16] वह दोनों सदनों की संयुक्त बैठक भी नहीं होती क्योंकि उसकी अध्यक्षता लोक सभा के अध्यक्ष या उसकी अनुपस्थिति में ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाती है जिसका संविधान के अनुच्छेद 118 के खंड (3) के अधीन प्रक्रिया विषयक नियमों द्वारा निर्धारण किया जाए। इसके अतिरिक्त दोनों सदनों की संयुक्त बैठक करने के बारे में कतिपय मामलों में ही सोचा जाता है और अनुच्छेद 87 के अधीन सदस्यों के समवेत होने का मामला इन मामलों में नहीं है।[17] तथापि, कभी-कभी राष्ट्रपति के अभिभाषण में दोनों सदनों के सदस्यों के इस प्रकार एक साथ समवेत होने को 'संयुक्त बैठक' की संज्ञा दी गई है जैसाकि निम्नलिखित उदाहरणों से विदित होगा:

18 मार्च, 1967 और 17 फरवरी, 1969 को किए गए राष्ट्रपति के अभिभाषणों में 'संसद् के दोनों सदनों का संयुक्त सत्र' शब्दों का प्रयोग किया गया था। 1971 और 1977 के अभिभाषणों के पहले वाक्य में क्रमश: 'पांचवीं संसद् का संयुक्त सत्र' और 'छठी संसद् का संयुक्त सत्र' शब्दों का प्रयोग किया गया था। 1980 में 'सातवीं संसद् का पहला संयुक्त सत्र' शब्दों का प्रयोग किया गया था। 1985 के अभिभाषण में 'आठवीं संसद् का पहला सत्र' शब्दों का प्रयोग किया गया था और 1991 के अभिभाषण में पुन: 'संसद् का संयुक्त सत्र' शब्दों का प्रयोग किया गया था।

1971 के राष्ट्रपति के अभिभाषण में आरंभ का वाक्य इस प्रकार था:

> "मुझे हमारे गणतंत्र की पांचवीं संसद् के संयुक्त सत्र में अभिभाषण करते हुए और नए प्रयासों के हेतु आपका आह्वान करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है।" एक सदस्य ने आरंभिक वाक्य के संबंध में एक प्रश्न उठाते हुए यह तर्क दिया कि "संयुक्त सत्र पांचवीं संसद् का नहीं है बल्कि पांचवीं लोक सभा चल रही है।" उन्होंने पूछा कि जब राज्य सभा एक स्थायी निकाय है तब यह कैसे कहा जा सकता है कि यह पांचवीं संसद् का संयुक्त सत्र है।[18]

अभिभाषण की समाप्ति के आधा घंटे बाद राज्य सभा और लोक सभा दोनों सदन अपने-अपने कक्षों में अलग-अलग समवेत होते हैं। संसदीय समाचार में एक पैरा के द्वारा और साथ ही सत्र की बैठकों की अस्थायी सारणी द्वारा सदस्यों को अलग बैठक की सूचना दी जाती है। बैठक की

तारीख को अभिभाषण के हिंदी और अंग्रेजी पाठ की एक-एक प्रति, जिसे राष्ट्रपति द्वारा विधिवत् अधिप्रमाणित किया जाता है, सचिवालय को राष्ट्रपति के सैनिक सचिव से प्राप्त होती है और महासचिव उसे राज्य सभा की उस दिन की बैठक में सभापटल पर रखते हैं। इस प्रकार सदन को औपचारिक रूप से अभिभाषण प्राप्त होता है।

अभिभाषण को औपचारिक रूप से सभापटल पर रखने के बाद ही अभिभाषण के अंग्रेजी तथा हिंदी पाठ की प्रतियां लॉबी में या प्रकाशन पटल (पब्लिकेशन्स काउंटर) पर सदस्यों में वितरित की जाती हैं। राज्य सभा के संसदीय समाचार के द्वारा सदस्यों को इस व्यवस्था के बारे में सूचित किया जाता है। दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि, अनुच्छेद 123 के अधीन अध्यादेशों या अनुच्छेद 356 के अधीन उद्घोषणाओं जैसे आवश्यक पत्रों को सभापटल पर रखने जैसे कतिपय औपचारिक कार्य करने के बाद सभा दिन-भर के लिए स्थगित कर दी जाती है।

अभिभाषण में किन्हीं त्रुटियों के संशोधनार्थ प्रक्रिया

कभी-कभी अभिभाषण में मुद्रण की त्रुटियां रह सकती हैं। इन त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाए जाने पर सचिवालय द्वारा सदस्यों की सूचना के लिए आवश्यक शुद्धि-पत्र जारी किया जाता है।

1959 में संसदीय कार्य विभाग ने 9 फरवरी, 1959 को किए गए अभिभाषण में मुद्रण की इस भूल की ओर ध्यान दिलाया कि अभिभाषण के पैरा 35 में "59 विधेयकों" के स्थान पर "49 विधेयकों" छप गया है और निवेदन किया कि विभाग चाहता है कि इस त्रुटि के बारे में सदस्यों को सूचित किया जाए। यद्यपि धन्यवाद का प्रस्ताव 17 फरवरी, 1959 को स्वीकृत हो गया था तथापि भूल का पता चलने पर 25 फरवरी, 1959 को शुद्धि-पत्र जारी किया गया।[19]

1994 में राष्ट्रपति सचिवालय ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि राष्ट्रपति के अभिभाषण के हिन्दी पाठ के पैरा 44 में निम्नलिखित वाक्य नहीं हैः

"इस संदर्भ में मैं आश्वस्त हूं कि पिछले शनिवार को "अग्नि" के प्रक्षेपण में जिस उच्च तकनीकी क्षमता का प्रदर्शन किया गया है, उसकी प्रशंसा करने में माननीय सदस्यगण मेरा साथ देंगे।"

यह स्पष्टीकरण दिया गया कि जब राष्ट्रपति ने अभिभाषण का हिन्दी पाठ पढ़ा तब उसमें यह वाक्य था। अत: इसके पहले कि सदन में धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा हो, सचिवालय ने इस संबंध में एक शुद्धि-पत्र जारी किया।[20]

अभिभाषण में अन्य किन्हीं अशुद्धियों के मामले में जिस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है वह यह है कि त्रुटि को दूर किए जाने और सही पाठ का सभा की कार्यवाही में समावेश किए जाने के पूर्व राष्ट्रपति सभा को एक संदेश भेजता है।

1982 में संसदीय कार्य मंत्रालय के सचिव ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि राष्ट्रपति के अभिभाषण (अंग्रेजी पाठ) के पैरा 17 में दो त्रुटियां रह गई हैं और यह निवेदन किया कि एक संसदीय समाचार के माध्यम से निम्नलिखित शुद्धि-पत्र जारी किया जाए:

(1) पृष्ठ 5 पर, पैरा 17, पंक्ति 7 में "1981" के स्थान पर "1980" पढ़िए।

(2) पृष्ठ 5 पर, पैरा 17, पंक्ति 12 में "अंडर-सी लिंक" शब्दों के बाद "विद मलयेशिया, माइक्रोवेव लिंक" शब्द जोड़िए।

(हिन्दी पाठ में भी यही अशुद्धियां थीं अर्थात् पैरा 17 में 1981 के स्थान पर 1980 होना चाहिए था और उसी पैरा में "मलयेशिया के साथ" शब्दों के बाद "समुद्री तार सम्पर्क, तथा श्रीलंका और बांग्लादेश के साथ माइक्रोवेव सम्पर्क कायम किया गया" शब्द होने चाहिए थे।)

सभापति का मत था कि यह कार्य राष्ट्रपति का है कि वे स्वयं अपना 'शुद्धि-पत्र' जारी करें जो सभापटल पर भी रखा जाएगा। अत: संसदीय कार्य विभाग को सूचित किया गया कि राष्ट्रपति का ध्यान उनके अभिभाषण में उक्त त्रुटियों की ओर दिलाया जाए और यदि वे भूल-सुधार का अनुमोदन कर देते हैं तो उनसे निवेदन किया जाए कि वे राज्य सभा को एक संदेश भेजें, चाहे वह सभापति को सीधे ही संबोधित हो या किसी मंत्री के माध्यम से दिया जाए, ताकि इसके बारे में सभा में घोषणा हो सके और उसके बाद उसका राज्य सभा की कार्यवाही और अधिकृत अभिलेखों में समावेश किया जा सके। किंतु सरकार से इस संबंध में आगे कोई संसूचना प्राप्त नहीं हुई।[21]

धन्यवाद प्रस्ताव द्वारा अभिभाषण पर चर्चा

संविधान में अपेक्षा की गई है कि प्रत्येक सदन की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों द्वारा राष्ट्रपति के अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों की चर्चा के लिए समय नियत करने के लिए उपबंध किया जाएगा।[22] अनुच्छेद 87(2) में, जैसाकि वह मूल रूप में अधिनियमित किया गया था, यह अपेक्षा की गई थी कि प्रत्येक सदन की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों द्वारा ऐसे अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों की चर्चा के लिए समय नियत करने के लिए और सदन के अन्य कार्य पर इस चर्चा को अग्रता देने के लिए उपबंध किया जाएगा। संविधान (पहला) संशोधन अधिनियम, 1951 के द्वारा "और सदन के अन्य कार्य पर इस चर्चा को अग्रता देने के लिए" शब्दों का लोप कर दिया गया। इस संबंध में प्रधान मंत्री ने कहा था:

"कठिनाई यह है कि राष्ट्रपति द्वारा अपना अभिभाषण किए जाने के बाद यह उपयुक्त होगा कि सदस्यों को उस पर तुरंत चर्चा करने के लिए कहने की बजाय उन्हें उस पर विचार करने और प्रस्ताव रखने के लिए दो या तीन दिन दिए जाएं। नहीं तो दो या तीन दिन बर्बाद हो सकते हैं और हम कुछ भी काम नहीं निपटा पाएंगे। इसलिए उद्देश्य यह नहीं है कि अभिभाषण पर विचार करना स्थगित किया जाए बल्कि यह है कि इन दो या तीन दिनों को बर्बाद न किया जाए, तीन या चार दिन बाद राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा करने के लिए तारीख नियत की जाए ताकि सदस्य अपने प्रस्तावों और दलीलों के साथ तैयार होकर आ सकें। इसमें शक नहीं कि अभिभाषण देने के काफी दिनों बाद उस पर चर्चा करने की कोशिश बेमानी होगी। समय की बर्बादी की कठिनाई को दूर करने के लिए ऐसा किया गया है।...बेशक यह चर्चा अभिभाषण करने के बाद जल्दी ही होनी चाहिए लेकिन अभिभाषण के तुरंत बाद नहीं।"[23]

इस प्रकार अभिभाषण के कुछ दिनों बाद उस पर चर्चा होती है और बीच की अवधि में दूसरा कार्य किया जाता है। तथापि, 1957 (पहला अभिभाषण), 1962 (पहला अभिभाषण), 1971, 1972 और 1976 में अभिभाषण के अगले दिन चर्चा शुरू हुई। 1978 में राष्ट्रपति का अभिभाषण 20 फरवरी, 1978 को हुआ। सदस्यों को जारी किए गए संसदीय समाचार के अनुसार चर्चा अगले दिन ही अर्थात् 21 फरवरी, 1978 को आरंभ होनी थी। कुछ सदस्यों ने इस पर आपत्ति की। सभापति के सुझाव पर मामला उनके कक्ष में निपटाया गया और चर्चा 22 फरवरी, 1978 को अभिभाषण के दो दिन बाद आरंभ हुई।[24]

1996 में साधारण चुनावों के बाद राष्ट्रपति ने 24 मई को एक साथ समवेत हुए दोनों सदनों के सदस्यों को संबोधित किया था। किंतु इस पर चर्चा नहीं हो पाई थी क्योंकि इस बीच 13 दिनों तक सत्ता में रहने के बाद श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली सरकार गिर गई थी।

2000 में राष्ट्रपति ने 23 फरवरी को एक साथ समवेत हुए दोनों सदनों के सदस्यों को संबोधित किया था। तथापि, बजट सत्र के पहले भाग में अभिभाषण पर चर्चा नहीं हो पाई थी क्योंकि गुजरात सरकार द्वारा आर.एस.एस. की गतिविधियों में अपने कर्मचारियों के भाग लेने पर लगे प्रतिबंध को

हटाए जाने के संबंध में एक परिपत्र जारी किए जाने और बिहार राज्य में सरकार के गठन के संबंध में बिहार के राज्यपाल की कार्यवाही के कारण सदन की कार्यवाही स्थगित होती रही थी। बजट सत्र के दूसरे भाग में 18 अप्रैल, 2000 को राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया और उसी दिन उस पर चर्चा भी आरंभ हुई।[25]

अभिभाषण पर चर्चा किसी सदस्य द्वारा धन्यवाद प्रस्ताव उपस्थित करने और किसी दूसरे सदस्य द्वारा उसका समर्थन करने के बाद आरंभ होती है।[26] धन्यवाद प्रस्ताव उपस्थित करने वाला सदस्य तथा उस प्रस्ताव का समर्थन करने वाला सदस्य सत्तारूढ़ दल का होता है। इस प्रकार के प्रस्ताव की सूचना (नोटिस) संसदीय कार्य मंत्रालय के माध्यम से प्राप्त होती है। इसके बाद संसदीय समाचार और कार्यावलि में धन्यवाद प्रस्ताव को प्रकाशित किया जाता है।

> एक अवसर पर (जो अपनी तरह का पहला अवसर था) 13 फरवरी, 1995 को दिए गए अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव दो सदस्यों के नाम से गृहीत हुआ था जिनमें से एक प्रस्तावक था और दूसरा समर्थक।[27] चर्चा की अस्थायी तारीखें 14, 15 और 20 मार्च, 1995 के लिए नियत की गई थीं।[28] 1 से 23 अप्रैल, 1995 तक सदन में बजट मध्यावकाश रहा। इस बीच संसदीय कार्य मंत्रालय ने एक प्रस्ताव भेजा जिसमें एक अन्य सदस्य का नाम प्रस्तावक के रूप में था जबकि समर्थक का नाम पहले जैसा ही रहा। यह प्रस्ताव पिछले प्रस्ताव के स्थान पर सम्यक् रूप से अधिसूचित किया गया था। 25 अप्रैल, 1995 को (अर्थात् अभिभाषण के बाद दो महीने से अधिक होने पर) धन्यवाद प्रस्ताव के लिए जाने पर एक सदस्य ने आरंभ में अधिसूचित किए गए सदस्य के नाम के स्थान पर एक अन्य सदस्य का नाम रखने के बारे में एक औचित्य प्रश्न उठाया। उपसभाध्यक्ष ने यह कहते हुए औचित्य प्रश्न की अनुमति नहीं दी कि इस मामले के बारे में उपसभापति से उनके कक्ष में बात हो चुकी है और वे इस पर विचार कर चुकी हैं।[29]

धन्यवाद प्रस्ताव का प्ररूप इस प्रकार है:

राष्ट्रपति ने....(तारीख) को संसद् की दोनों सभाओं की सम्मिलित बैठक में कृपया जो अभिभाषण दिया है उसके लिए राज्य सभा के सदस्य,[30] जो सभा के वर्तमान सत्र में उपस्थित हैं, राष्ट्रपति[31] के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

> जहां तक प्ररूप का संबंध है, प्रस्ताव में "ग्रेटफुल (कृतज्ञ)" शब्द का प्रयोग किए जाने पर आपत्ति करते हुए एक औचित्य प्रश्न उठाया गया। तर्क यह दिया गया कि जब नियम 15 में "थैंक्स (धन्यवाद)" के प्रस्ताव का उपबंध है तब प्रस्ताव में "ग्रेटफुल (कृतज्ञ)" शब्द का प्रयोग करना असंवैधानिक है। औचित्य प्रश्न को अस्वीकार करते हुए उपसभापति ने यह टिप्पणी की कि "ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी" के अनुसार "ग्रेटफुल" का अर्थ "थैंकफुल" होता है और इसके अतिरिक्त अनेक वर्षों से प्रस्ताव में इस शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है।[32]

सभापति अनुच्छेद 87(2) के अधीन सभा के नेता के साथ परामर्श करके अभिभाषण पर चर्चा करने के लिए समय का आवंटन करता है।[33] यद्यपि अनुच्छेद 86(1) में उसमें उल्लिखित मामलों पर चर्चा के लिए समय के आवंटन के लिए कोई उपबंध नहीं है तथापि, एक नियम बनाया गया है जिसके अधीन ऐसे अभिभाषण पर चर्चा के लिए भी समय का आवंटन करने के लिए सभापति को शक्ति प्रदान की गई है।[34]

अभिभाषण के लगभग एक सप्ताह पूर्व संसदीय कार्य मंत्रालय से पत्र प्राप्त होता है जिसमें अभिभाषण पर चर्चा के लिए प्रस्तावित तारीख का उल्लेख होता है। इन तारीखों को संसदीय समाचार में सदस्यों की सूचना के लिए अधिसूचित किया जाता है। किन्तु कभी-कभी सदन की इच्छा के अनुसार इन तारीखों में परिवर्तन भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, 24 मार्च, 1971 को धन्यवाद प्रस्ताव

पर चर्चा शुरू होने के पहले सभापति ने कार्य मंत्रणा समिति की इस सिफारिश की घोषणा की कि उस दिन की चर्चा के बाद उसे 31 मार्च, 1971 के बाद उन तारीखों को पुन: आरंभ किया जाएगा जिन्हें वे निर्धारित करेंगे।[35] तदनुसार चर्चा 1 अप्रैल, 1971 को पुन: आरंभ हुई। एक दूसरे अवसर पर अभिभाषण पर चर्चा मूल अधिसूचना के अनुसार 21 फरवरी, 1974 को शुरू होनी थी किन्तु 19 फरवरी, 1974 को संसदीय कार्य विभाग में राज्य मंत्री ने सुझाव दिया कि उस दिन डाक्टरों की हड़ताल पर चर्चा की मांग को देखते हुए अभिभाषण पर चर्चा को 25 फरवरी, 1974 के लिए स्थगित किया जाए। सदन इसके लिए सहमत हो गया।[36]

चर्चा सदस्य द्वारा उपस्थित किए गए धन्यवाद प्रस्ताव पर भाषण के साथ शुरू होती है और भाषण की समाप्ति पर प्रस्ताव का समर्थन करने वाला सदस्य भाषण देता है।

> एक बार प्रस्ताव का समर्थन करने वाले सदस्य ने भाषण नहीं किया किन्तु सिर्फ यह कहा कि उसने प्रस्ताव का समर्थन कर दिया है। उसने प्रस्ताव पर संशोधन रखे जाने के बाद भाषण किया।[37]

सामान्यत: आरंभ में चर्चा के लिए 3-4 दिन नियत किए जाते हैं यद्यपि अंतत: चर्चा का समय बढ़ सकता है। चर्चा के लिए नियत किए गए दिनों में सभा को अभिभाषण में उल्लिखित मामलों पर चर्चा करने का अधिकार है।[38]

धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा का दायरा बहुत व्यापक होता है और सदस्यों को राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय किसी भी मामले पर बोलने की छूट है। नियमों के द्वारा सदस्यों को सभा में बोलते समय कुछ सामान्य मर्यादाओं का पालन करना होता है। बोलते समय[39] सदस्य उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों[40] पर या दूसरे सदन के सदस्यों पर आक्षेप नहीं कर सकते[41] या राष्ट्रपति के नाम का उपयोग नहीं कर सकते[42] और न्यायालय में विचाराधीन[43] या किसी संसदीय समिति में विचाराधीन[44] मामलों का उल्लेख नहीं कर सकते। धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान भी सदस्यों को इन मर्यादाओं का पालन करना होता है।

धन्यवाद प्रस्ताव पर रखे जाने वाले संशोधन

धन्यवाद प्रस्ताव पर संशोधनों की सूचना राष्ट्रपति के अभिभाषण की समाप्ति पर ही दी जा सकती है। किन्तु धन्यवाद प्रस्ताव की सूचना मिलने और उसके संसदीय समाचार में प्रकाशित होने के बाद ही संशोधनों की सूचियां सदस्यों में वितरित की जाती हैं। परम्परा यह रही है कि धन्यवाद प्रस्ताव संबंधी संशोधन विपक्षी दलों के सदस्यों द्वारा ही दिए जाते हैं। किन्तु 1991 में स्वयं सत्तारूढ़ दल के सदस्यों ने धन्यवाद प्रस्ताव पर संशोधनों की सूचना दी थी और उन्हें उपस्थित किया था।[45]

2000 में राष्ट्रपति ने 23 फरवरी, 2000 को एक साथ समवेत हुए दोनों सदनों के सदस्यों को संबोधित किया। तथापि, 18 अप्रैल, 2000 (सत्र के दूसरे भाग में) को राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव ग्रहण किया गया। इस बीच संशोधनों की सूचना देने वाले राज्य सभा के कुछ सदस्य 18 अप्रैल, 2000 से पहले सेवानिवृत्त हो गए। परिणामस्वरूप सचिवालय द्वारा संशोधनों की संशोधित सूची जारी की गई जिसमें से सेवानिवृत्त सदस्यों के नाम वाले संशोधनों को हटा दिया गया।[46]

सामान्यत: सदस्यगण अभिभाषण में उल्लिखित मामलों के संबंध में संशोधन रखते हैं या ऐसे मामलों के संबंध में संशोधन रखते हैं जिनका उनकी राय में अभिभाषण उल्लेख करने में विफल रहा है।

> अनुच्छेद 87(2) और नियम 13,14 और 19 में अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों, शब्दों का प्रयोग किया गया है और इसे दृष्टि में रखते हुए धन्यवाद प्रस्ताव पर संशोधनों के दायरे के संबंध में राज्य सभा में लंबी-चौड़ी चर्चा हुई। कुछ चर्चा हो चुकने के बाद सभापति ने व्यवस्था दी कि वे धन्यवाद प्रस्ताव पर उन संशोधनों को स्वीकार करेंगे जिनका अभिभाषण में उल्लेख किया गया है। उन्होंने कहा कि यद्यपि वे मामले पर कोई संकीर्ण कानूनी दृष्टि नहीं अपनाएंगे और उनकी यथासंभव उदार से उदार व्याख्या करेंगे तथापि, वे संविधान के उपबंधों और उनके अधीन बनाए गए नियमों की उपेक्षा नहीं कर सकते।[47]
>
> कुछ वर्षों बाद धन्यवाद प्रस्ताव पर एक सदस्य के संशोधन को स्वीकृति न देने के संदर्भ में यह मामला फिर उठा। सभापति ने अपनी पिछली व्यवस्था का पुन: उल्लेख किया और यह टिप्पणी की कि जिन मामलों पर राष्ट्रपति के अभिभाषण में प्रत्यक्षत: चर्चा नहीं हुई है उन्हें संशोधनों के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए। किंतु सदस्यगण अपने भाषणों में उनका उल्लेख कर सकते हैं। किन्तु उन्होंने सुझाव दिया कि इसमें बच निकलने का रास्ता यह है कि संशोधन में यह कहा जा सकता है कि "खेद है कि अभिभाषण में अमुक-अमुक बातों का उल्लेख नहीं किया गया है।"
>
> जब सभापति का ध्यान बम्बई के द्विभाषी राज्य के संबंध में एक ऐसे संशोधन की ओर दिलाया गया जिसके बारे में अभिभाषण में उल्लेख न होते हुए भी उसे 1956 में धन्यवाद प्रस्ताव के लिए रखने की अनुमति दी गई थी तब सभापति ने टिप्पणी की कि यद्यपि अभिभाषण में उस मामले का विशेष रूप में उल्लेख नहीं था तथापि अभिभाषण में राज्यों के पुनर्गठन के मामले का उल्लेख किया गया था और यदि उसमें इस मामले का उल्लेख नहीं होता तो वे संशोधन की अनुमति कभी नहीं देते।[48]

धन्यवाद के प्रस्ताव पर ऐसे रूप में संशोधन उपस्थित किए जा सकते हैं जिसे सभापति उपयुक्त समझे।[49] संशोधन का सामान्य रूप इस प्रकार है:

> "प्रस्ताव के अंत में निम्नलिखित जोड़ा जाए, अर्थात्:
>
> 'किन्तु खेद है कि अभिभाषण में यह उल्लेख नहीं किया गया है/अभिभाषण यह उल्लेख करने में विफल रहा है/अभिभाषण में इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया....आदि, आदि'।
>
> किंतु एक बार एक संशोधन इस रूप में भी दिया गया था:
>
> "और इस बात को देखते हुए सभा को संतोष है" आदि, आदि।[50]

सदस्यों द्वारा जिन संशोधनों की सूचना दी जाती है उनकी सचिवालय द्वारा जांच की जाती है और उनमें से जो संशोधन प्रथम दृष्टि में नियमानुसार होते हैं उन्हें सदस्यों में परिचालित किया जाता है। ऐसे संशोधनों को गृहीत या परिचालित नहीं किया जाता है जो संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं होते या जिनमें किसी मित्र देश या राष्ट्राध्यक्ष के संबंध में अशिष्ट भाषा का प्रयोग किया गया हो या मुख्य मंत्री या प्रधान मंत्री या किसी राज्य विधान सभा के अध्यक्ष जैसे उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों के आचरण पर आक्षेप किया गया हो या जो तुच्छ स्वरूप के हों या जिनका कोई तथ्यात्मक आधार न हो या जो अस्पष्ट हों या अभिभाषण के दायरे में नहीं आते हों या उससे संबंधित न हों। किंतु ऐसे संशोधनों में से आपत्तिजनक अंशों को निकालकर परिचालित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए एक ऐसा संशोधन दिया गया था जिसमें मुख्य निर्वाचन आयुक्त की भूमिका का उल्लेख किया गया था। इस संशोधन में से मुख्य निर्वाचन आयुक्त का उल्लेख निकालकर उसे परिचालित कर दिया गया। सदस्यों ने इस पर आपत्ति की और संशोधनों को उपस्थित नहीं किया गया।[51]

अभिभाषण पर चर्चा का आरंभ प्रस्ताव उपस्थित करने वाले सदस्य के भाषण से होता है और उसके बाद प्रस्ताव का समर्थक भाषण देता है। संशोधनों की सूची के अनुसार जिन सदस्यों ने संशोधनों की सूचना दी होती है उनसे अपने संशोधनों को उपस्थित करने के लिए कहा जाता है। इस अवस्था में भी सभापति किसी संशोधन को, चाहे वह सदस्यों को परिचालित हो चुका हो, स्वविवेक के अनुसार नियम-विरुद्ध ठहरा सकता है।[52] सभापति ऐसे संशोधनों में से आपत्तिजनक अंशों के निकाले जाने के बाद उन्हें उपस्थित करने की अनुमति दे सकता है। चर्चा आरंभ होने के बाद संशोधनों को उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती। प्रस्ताव पर और उस पर उपस्थित किए गए संशोधनों पर एक साथ चर्चा होती है। संशोधनों पर अलग से चर्चा नहीं होती। अत: सदस्यों को अपने संशोधनों आदि पर अलग से समय दिए जाने का प्रश्न नहीं उठता।[53]

सभापति, यदि वह उपयुक्त समझे, भाषणों के लिए समय-सीमा विहित कर सकता है।[54] सामान्य स्थापित प्रक्रिया के अनुसार धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के लिए सभा द्वारा जो समय नियत किया जाता है उसे विभिन्न दलों और समूहों में सदन में उनकी संख्या के अनुसार बांट दिया जाता है।

सामान्यत: सभा की बैठक के दौरान अभिभाषण पर चर्चा को बीच में रोककर औपचारिक कार्य के सिवाय कोई अन्य कार्य नहीं किया जाता।[55] किंतु कई बार ऐसा हुआ है जब किसी ध्यानाकर्षण[56] या अल्पकालिक चर्चा[57] के लिए अभिभाषण पर चर्चा रोक दी गई। किसी सरकारी विधेयक पर चर्चा[58] या अन्य सरकारी कार्य[59] को करने के लिए अभिभाषण पर चर्चा को बीच में रोका जा सकता है।

अभिभाषण पर चर्चा के दौरान सभा को अपेक्षा होती है कि कोई कैबिनेट मंत्री/वरिष्ठ मंत्री सभा में हमेशा उपस्थित रहे। ऐसे मंत्रियों की अनुपस्थिति को देखते हुए सभापीठ ने कई बार टिप्पणियां की हैं।

1 मई, 1962 को जब मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद सभा धन्यवाद प्रस्ताव पर आगे चर्चा करने के लिए समवेत हुई तब यह औचित्य प्रश्न उठाया गया कि कोई भी मंत्री सभा में उपस्थित नहीं है। सभा को दस मिनट के लिए स्थगित कर दिया गया।[60] अगले दिन सभापति ने टिप्पणी की:

> "गत दस वर्षों में पहली बार सभा को दस मिनट के लिए स्थगित होना पड़ा। जब वहां गंभीर मामलों पर चर्चा हो रही थी तब सरकार का एक भी मंत्री उपस्थित नहीं था। मुझे आशा है कि ऐसी स्थिति फिर नहीं आएगी और सरकार सभा के प्रति अपने दायित्व के बारे में सावधान रहेगी।"[61]

एक अन्य अवसर पर, चर्चा के दौरान किसी भी वरिष्ठ मंत्री के अनुपस्थित रहने पर सभापति ने टिप्पणी की: "जब सभा में महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा हो रही हो तब सभा में वरिष्ठ मंत्रियों की उपस्थिति से बहुत लाभ होगा।" बाद में उपसभापति ने भी टिप्पणी की: "मैं सरकार से पुन: आग्रह करूंगी कि केबिनेट स्तर का कोई वरिष्ठ मंत्री यहां पर रहना चाहिए।" कुछ देर के बाद प्रधान मंत्री आए और उन्होंने खेद प्रकट करते हुए कहा: "मैं समझता हूं कि हममें से किसी को यहां उपस्थित रहना चाहिए।"[62]

एक दूसरे अवसर पर जब अभिभाषण पर चर्चा के दौरान किसी भी मंत्री के उपस्थित न रहने का ऐसा ही मुद्दा उठाया गया तब उपसभापति ने केबिनेट मंत्रियों द्वारा सभा के प्रति प्रदर्शित की गई अशिष्टता और असम्मान पर अत्यन्त खेद व्यक्त करते हुए सभा को पन्द्रह मिनट के लिए स्थगित कर दिया।[63]

21 मार्च, 1967 को राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान सभा में किसी भी मंत्री के उपस्थित न रहने के कारण उपसभापति ने सभा को दस मिनट के लिए स्थगित कर दिया।[64]

बाद में एक ऐसे ही अवसर पर सभापति को मंत्रियों के उपस्थित न रहने पर बहुत खेद हुआ। उन्होंने यह कहा कि सभा की भावनाओं को मंत्रि-मंडल के मंत्रियों तक पहुंचाया जाएगा।[65]

एक अन्य अवसर पर जब एक सदस्य ने मंत्रि-मंडल के किसी मंत्री के उपस्थित न रहने पर सभापीठ से व्यवस्था चाही तब उपसभाध्यक्ष ने टिप्पणी की "किसी केबिनेट मंत्री को भी यहां पर शिष्टाचार और सौजन्य के नाते उपस्थित रहना चाहिए।"[66]

चर्चा के अंत में सरकार की ओर से प्रधान मंत्री या किसी अन्य मंत्री को, चाहे उसने चर्चा में भाग लिया हो या नहीं, सरकार की स्थिति को स्पष्ट करने का सामान्य अधिकार होता है।[67] नियम 18 के हाशिए में दिए गए शीर्षक से प्रतीत होता है कि सरकार को उत्तर देने का अधिकार है (धन्यवाद प्रस्ताव को उपस्थित करने वाले सदस्य को नहीं)। किन्तु एक बार सभापति ने यह कहा कि प्रस्ताव उपस्थित करने वाले सदस्य को उत्तर देने का अधिकार है यद्यपि इसके बाद प्रस्तावक ने सिर्फ यह कहा कि प्रधान मंत्री के भाषण के बाद उसे (प्रस्तावक को) सभा का समय नहीं लेना चाहिए।[68] इसके होते हुए भी स्थापित नियम और प्रथा हमेशा से यही रही है कि धन्यवाद प्रस्ताव संबंधी चर्चा का उत्तर प्रधान मंत्री या कोई अन्य मंत्री देता है जैसा कि निम्नलिखित उदाहरणों से दिखाई देगा:

1952, 1953, 1954, 1957 और 1959 में प्रधान मंत्री ने वाद-विवाद के बीच में भाषण किया और सभा के नेता ने वाद-विवाद का उत्तर दिया; 1955, 1956 और 1958 में सभा के नेता ने वाद-विवाद का उत्तर दिया। 1961 में प्रधान मंत्री वाद-विवाद के बीच में बोले जबकि विधि मंत्री ने सभा के नेता के बीमार होने और उनके अनुपस्थित रहने पर वाद-विवाद का उत्तर दिया। 1964 में गृह मंत्री ने सभा के नेता के बीमार होने और उनके अनुपस्थित रहने पर वाद-विवाद का उत्तर दिया। 1960, 1962, 1963, 1965 में और बाद के वर्षों में प्रधान मंत्री ने धन्यवाद प्रस्ताव संबंधी वाद-विवाद का उत्तर दिया। 1999 और 2000 में सदन के नेता ने धन्यवाद प्रस्ताव पर हुई चर्चा का उत्तर दिया क्योंकि प्रधान मंत्री अस्वस्थ थे।

चर्चा के उत्तर के बाद उपस्थित किए गए संशोधनों को निपटाया जाता है। या तो उन्हें सभा की अनुमति से वापस लिया जाता है या उन पर सभा में मतदान कराया जाता है। यदि कोई सदस्य सभा में संशोधन उपस्थित कर चुका हो किन्तु मतदान के समय सभा में उपस्थित न हो तो सभा द्वारा उसकी अनुपस्थिति में ही संशोधन को निपटाया जाता है। यदि संशोधनों को अस्वीकृत कर दिया जाता है तो सभा में मूल रूप से उपस्थित धन्यवाद प्रस्ताव पर, आवश्यक होने पर विभाजन द्वारा भी, मत लिया जाता है और उसे स्वीकृत किया जाता है। किन्तु 1991 में, धन्यवाद प्रस्ताव पर 27 फरवरी, 1991 और 5 मार्च, 1991 को चर्चा हुई। चर्चा समाप्त नहीं हुई और धन्यवाद प्रस्ताव पर सभा का मत नहीं लिया गया। ऐसा होने का कारण यह था कि प्रधान मंत्री श्री चन्द्रशेखर ने 6 मार्च, 1991 को लोक सभा में अपनी सरकार का इस्तीफा दे दिया था।

यदि किसी संशोधन या किन्हीं संशोधनों को स्वीकार कर लिया जाता है तो यथासंशोधित धन्यवाद प्रस्ताव पर सभा का मत लिया जाता है और उसे स्वीकृत किया जाता है।

1980 में एक संशोधन के स्वीकृत होने पर धन्यवाद प्रस्ताव निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ:

"राष्ट्रपति ने 23 जनवरी, 1980 को संसद् की दोनों सभाओं की सम्मिलित बैठक में कृपया जो अभिभाषण दिया है उसके लिए राज्य सभा के सदस्य, जो वर्तमान सत्र में उपस्थित हैं, राष्ट्रपति के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, किन्तु खेद है कि अभिभाषण में गैर-कांग्रेस (आई) सरकारों वाले राज्यों की विधान सभाओं में बड़े पैमाने पर दल-बदल कराने और यहां तक कि सभी परिसंघीय सिद्धांतों का घोर उल्लंघन करके ऐसी विधान सभाओं को मनमाने तौर पर भंग करने के क्षोभजनक प्रयासों का कोई उल्लेख नहीं किया गया है और उसमें ऐसा कोई आश्वासन भी नहीं दिया गया है कि सरकार संविधान में उलट-पलट

करने और लोकतांत्रिक सिद्धांतों तथा मानदंडों की अवहेलना करने के ऐसे प्रयासों को किसी प्रकार से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समर्थन नहीं देगी।"[69]

1989 में धन्यवाद प्रस्ताव पर छह संशोधन स्वीकृत हुए और धन्यवाद प्रस्ताव निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ:

"राष्ट्रपति ने 20 दिसंबर, 1989 को संसद् की दोनों सभाओं की सम्मिलित बैठक में कृपया जो अभिभाषण दिया है उसके लिए राज्य सभा के सदस्य, जो सभा के वर्तमान सत्र में उपस्थित हैं, राष्ट्रपति के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, किन्तु खेद है कि अभिभाषण में¬

राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद के ज्वलंत विवाद और उसका समाधान करने के लिए सरकार द्वारा प्रस्तावित उपायों का उल्लेख नहीं किया गया है;

राज्य सरकारों को अस्थिर न होने देने के लिए उठाए जाने वाले कदमों का कोई उल्लेख नहीं किया गया है;

इस बात का कोई उल्लेख नहीं किया गया है कि सरकार "काम करने के अधिकार" को एक मूल अधिकार के रूप में सुनिश्चित करने के लिए संविधान में संशोधन करेगी;

भारत-श्रीलंका समझौते के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया है और यह भी उल्लेख नहीं किया गया है कि तमिल लोगों के जीवन और सुरक्षा के मामले में तथा पूर्वोत्तर प्रांतों को शक्तियां प्रदान करने के बारे में सरकार का स्पष्टत: क्या रुख है;

देश की एकता और अखंडता को संकट में डालने वाले आनन्दपुर साहब संकल्प के बारे में सरकार के रुख का सुस्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है;

जम्मू-कश्मीर में दिसंबर, 1989 में आतंकवादियों को रिहा करके राष्ट्र-विरोधी और अलगाववादी शक्तियों की मांगों के सामने सरकार द्वारा पूरी तरह से घुटने टेकने और उसके द्वारा समूचे राष्ट्र और उसकी प्रतिष्ठा को निर्लज्जतापूर्वक कलंकित किए जाने के बारे में कोई भी उल्लेख नहीं किया गया है।"[70]

2001 में, एक संशोधन के स्वीकृत होने पर धन्यवाद का प्रस्ताव निम्नलिखित रूप से अंगीकृत किया गया:

राष्ट्रपति ने 19 फरवरी, 2001 को संसद् की दोनों सभाओं की सम्मिलित बैठक में कृपया जो अभिभाषण दिया है उसके लिए राज्य सभा के सदस्य, जो सभा के वर्तमान सत्र में उपस्थित हैं, राष्ट्रपति के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, किन्तु खेद है कि अभिभाषण में शत-प्रतिशत केन्द्रीय स्वामित्व वाले सरकारी क्षेत्र के उपक्रम बाल्को जिसका सतत् रूप से लाभ कमाने का रिकॉर्ड रहा है और जिसके पास विशाल नकद भंडार था, को निजी क्षेत्र की एक ऐसी कंपनी को बेचने के सरकार के निर्णय का कोई उल्लेख नहीं किया गया है जिसका ऐलुमिनियम विनिर्माण करने वाली कंपनी का प्रबंधन करने और उसे चलाने का ट्रैक रिकॉर्ड ज्ञात नहीं है और जिसका स्वरूप भी संदेहास्पद है।[71]

2015 में, एक संशोधन के स्वीकृत होने पर धन्यवाद प्रस्ताव निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ:

राष्ट्रपति ने 23 फरवरी, 2015 को संसद् की दोनों सभाओं की सम्मिलित बैठक में जो अभिभाषण दिया है उसके लिए राज्य सभा के सदस्य, जो सभा के वर्तमान सत्र में उपस्थित हैं, राष्ट्रपति के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, किन्तु खेद प्रकट करते हैं कि अभिभाषण में उच्च-स्तर पर भ्रष्टाचार को रोकने और काले धन को वापस लाने में सरकार की विफ़लता के बारे में कोई उल्लेख नहीं है।[72]

राष्ट्रपति को धन्यवाद प्रस्ताव भेजा जाना

धन्यवाद प्रस्ताव को स्वीकार कर लिए जाने के बाद सभापति एक पत्र द्वारा उसे सीधे ही राष्ट्रपति के पास भेजता है।

1952 में पहला धन्यवाद प्रस्ताव राष्ट्रपति को एक पत्र के द्वारा भेजा गया था। एक सुझाव प्राप्त हुआ कि संबंधित सदनों के सचिव स्वयं राष्ट्रपति के पास जाकर उन्हें धन्यवाद प्रस्ताव दें और इसी प्रकार राष्ट्रपति

के उत्तर को भी राष्ट्रपति सचिवालय के एक अधिकारी द्वारा भेजा जाए। राष्ट्रपति ने राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष से परामर्श करके इस संबंध में विस्तृत प्रक्रिया का अनुमोदन किया। यह निर्णय किया गया कि इस नई प्रक्रिया को आने वाले वर्षों से लागू किया जाए, किंतु 1953, 1954 और 1955 में इन अवसरों पर राष्ट्रपति के दिल्ली से बाहर रहने के कारण इस प्रस्ताव को अमल में नहीं लाया जा सका। अत: 1956 में यह निर्णय किया गया कि एक पत्र द्वारा राष्ट्रपति के पास धन्यवाद प्रस्ताव भेजने की विद्यमान प्रक्रिया जारी रखी जाए।[73]

सामान्यत: पत्र का प्ररूप निम्नलिखित होता है:

प्रिय राष्ट्रपति महोदय,

आपके द्वारा.... (तारीख) को संसद् की दोनों सभाओं की सम्मिलित बैठक में किए गए अभिभाषण पर राज्य सभा द्वारा...(तारीख) को हुई अपनी बैठक में स्वीकृत किए गए धन्यवाद प्रस्ताव को आपके पास भेजते हुए मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है।

प्रस्ताव की शब्दावलि इस प्रकार है:

(स्वीकृत रूप में प्रस्ताव का पाठ)

भवदीय
सभापति

1989 में संशोधित रूप में धन्यवाद प्रस्ताव भेजते समय पत्र के प्रारंभिक अंश को इस प्रकार परिवर्तित किया गया: "मुझे आपके पास भेजना है।"[74]

सभापति के पत्र के उत्तर में प्रस्ताव की प्राप्ति को स्वीकार करते हुए राष्ट्रपति यह संदेश देते हैं कि उन्हें संसद् की दोनों सभाओं की सम्मिलित बैठक में "उनके अभिभाषण पर राज्य सभा के सदस्यों ने जो कृतज्ञता ज्ञापित की है, प्राप्त हुई है।" किंतु 1980, 1989 और 2001 में जब राष्ट्रपति को संशोधित रूप में धन्यवाद प्रस्ताव भेजे गए थे तब उन्होंने अपने संदेश में सभापति को उनके उन अर्धशासकीय पत्रों के लिए धन्यवाद दिया जिनमें उन्हें धन्यवाद प्रस्ताव की सूचना दी गई थी।[75] राष्ट्रपति का संदेश सभा में उस समय पीठासीन सभापति/उपसभापति/उपसभाध्यक्ष द्वारा पढ़ा जाता है।[76] किंतु यदि राष्ट्रपति का संदेश उस समय प्राप्त होता है जब सभा का सत्र नहीं चल रहा हो तो सदस्यों की सूचना के लिए उसे संसदीय समाचार के द्वारा अधिसूचित किया जाता है।[77]

राष्ट्रपति के संदेश और सभा को उनकी सूचना

राष्ट्रपति संसद् में उस समय लंबित किसी विधेयक से संबंधित संदेश या कोई अन्य संदेश, संसद् के किसी सदन को भेज सकता है और जिस सदन को कोई संदेश इस तरह भेजा गया है वह सदन उस संदेश द्वारा विचार करने के लिए अपेक्षित विषय पर सुविधानुसार शीघ्रता से विचार करता है।[78] जब सभापति को ऐसा संदेश मिलता है तब वह सभा में संदेश को पढ़कर सुनाता है और संदेश में उल्लिखित मामलों पर विचार करने के संबंध में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में आवश्यक निदेश देता है। ऐसे निदेश देने में सभापति को उस सीमा तक नियमों को निलंबित या परिवर्तित करने की शक्ति प्राप्त होती है जिस सीमा तक आवश्यक हो।[79] किंतु राष्ट्रपति ने संविधान के आरंभ से इस उपबंध के अधीन कोई संदेश नहीं भेजा है।

राष्ट्रपति धन विधेयक के अतिरिक्त किसी अन्य विधेयक पर विचार-विमर्श और मतदान कराने के प्रयोजन से दोनों सदनों की संयुक्त बैठक कराने के लिए उन्हें आहूत करने के अपने इरादे को अधिसूचित करने वाला संदेश भी भेज सकता है।[80] अनुच्छेद 108(1) में की गई अपेक्षा के अनुसार दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1959; बैंककारी सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1977 और आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002 के संबंध में क्रमश: 19 अप्रैल, 1961, 10 मई, 1978 और 22 मार्च, 2002 को संदेश प्राप्त हुए थे जिन पर दोनों सदन अंतत: सहमत हो गए थे। जब दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1959 के बारे में सभा में संदेश प्राप्त हुआ तब सभी सदस्य अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो गए।[81] सभापति ने संबंधित संयुक्त बैठकों के लिए निर्धारित तारीखों की भी घोषणा की। हालांकि आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002 पर संयुक्त बैठक की तारीख संसदीय कार्य मंत्री से सूचना प्राप्त होने के बाद राज्य सभा संसदीय समाचार भाग-2 में अधिसूचित की गयी।[82]

अनुमति के लिए अपने समक्ष विधेयक प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति यथाशीघ्र उस विधेयक को, यदि वह धन विधेयक नहीं है तो, सदनों को इस संदेश के साथ लौटा सकता है कि वे विधेयक पर या उसके किन्हीं विनिर्दिष्ट उपबंधों पर पुनर्विचार करें और विशिष्टतया किन्हीं ऐसे संशोधनों के पुर:स्थापन की वांछनीयता पर विचार करें जिनकी उसने अपने संदेश में सिफारिश की है और जब विधेयक इस प्रकार लौटा दिया जाता है तब सदन विधेयक पर तदनुसार पुनर्विचार करेंगे।[83] 7 जनवरी, 1990 को राष्ट्रपति द्वारा राज्य सभा को एक संदेश भेजा गया जिसमें भारतीय डाक-घर (संशोधन) विधेयक, 1986 को लौटाया गया था।[84] इसी प्रकार 30 मई, 2006 को राष्ट्रपति ने राज्य सभा को एक संदेश भेजा जिसमें संसद् (निरर्हता का निवारण) संशोधन विधेयक, 2006 को लौटाया गया था।[85]

राष्ट्रपति और राज्य सभा के बीच संवाद

राष्ट्रपति से राज्य सभा को संवाद, राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षर किए हुए लिखित संदेश द्वारा सभापति को किया जाता है और यदि राष्ट्रपति राज्य सभा की बैठक के स्थान से अनुपस्थित हो तो उसका संदेश मंत्री की मार्फत सभापति को पहुंचाया जाता है। राष्ट्रपति से प्राप्त संदेश सभापति द्वारा सभा के समक्ष पढ़े जाते हैं।[86]

राज्य सभा से राष्ट्रपति को संवाद¬

(1) सदन में प्रस्ताव उपस्थित किए जाने और उसके स्वीकृत हो जाने के बाद, औपचारिक समावेदन द्वारा; और

(2) सभापति की मार्फत किया जाता है।[87]

अभी तक राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव भेजने के सिवाय राज्य सभा ने राष्ट्रपति से और कोई संवाद नहीं किया है।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. अनुच्छेद 87(1)
2. संसदीय वाद-विवाद, (2), 2.6.1951, कालम 9960
3. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.2.1970, कालम 116
4. तारीख 8.3.1963 का प्रतिवेदन, 12.3.1963 को लोक सभा में प्रस्तुत, पृष्ठ 5-6
5. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.2.1963, कालम 91
6. फा.सं. 2/2/63-एल; और संसदीय समाचार (1), 19.2.1963
7. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.2.1963, कालम 232-33
8. -वही- 7.4.1971, कालम 126
9. -वही- कालम 209
10. हिन्दुस्तान टाइम्स, 21.12.1989
11. टाइम्स ऑफ इंडिया, 13.3.1990
12. -वही- 22.2.1991
13. हिन्दुस्तान टाइम्स, 12.9.1991
14. फा.सं. 2/1/74-एल और 2/1/90-एल
15. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.2.1953, कालम 361
16. अनुच्छेद 118 और नियम 10
17. अनुच्छेद 118(3) और (4); संसद् के सदन (संयुक्त बैठकें तथा संसूचनाएं) नियम का नियम 5
18. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.3.1971, कालम 51-52
19. फा.सं. 2/1/82-एल में उल्लिखित
20. फा.सं. 2/1/94-एल
21. फा.सं. 2/1/82-एल
22. अनुच्छेद 87(2) और नियम 14-19
23. संसदीय वाद-विवाद (2), 2.6.1951, कालम 9959
24. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.2.1978, कालम 31-40
25. संसदीय समाचार (1), 18.4.2000
26. नियम 15; तथापि सरकार बदल जाने के कारण, 24 मई, 1996 को दिए गए अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया गया था। देखिये, राज्य सभा वाद-विवाद, 16.7.1996, जब माननीय सदस्य ने अभिभाषण पर चर्चा की आवश्यकता के संबंध में एक विशेष उल्लेख किया
27. संसदीय समाचार (2), 17.2.1995
28. -वही- 21.2.1995
29. -वही- 29.3.1995 और राज्य सभा वाद-विवाद, 25.4.1995
30. 1954 तक धन्यवाद प्रस्ताव (1952, 1953 और 1954 के लिए) में राज्य सभा के स्थान पर काउंसिल ऑफ स्टेट्स का उल्लेख था। अप्रैल, 1954 में इसके लिए "राज्य सभा" का प्रयोग जारी हुआ।
31. जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए अथवा राष्ट्रपति के रूप में अभिभाषण करते हैं तब प्रस्ताव की शब्दावलि में उपयुक्त परिवर्तन किया जाता है। उदाहरणार्थ, 1964 और 1977 के धन्यवाद प्रस्तावों को देखिये
32. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.2.1974, कालम 106-11
33. नियम 14
34. नियम 20
35. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.3.1971, कालम 14
36. -वही- 19.2.1974, कालम 102-03 और 134
37. -वही- 4.4.1977, कालम 112 और 146-51

38. नियम 15
39. नियम 238
40. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.3.1984, कालम 292-93
41. -वही- 26.2.1979, कालम 283 और 289; और 27.12.1989, कालम 325
42. -वही- 20.2.1961, कालम 499-501
43. -वही- 8.1.1976, कालम 145-46
44. -वही- 1.3.1988, कालम 212
45. -वही- 17.7.1991 (संशोधन सं. 52-97, 192-225 और 257), कालम 226-37, 253-61 और 263-76
46. फा.सं. आर.एस. 2/1/(ए)/2000-एल
47. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 19.5.1952, कालम 78-94
48. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.2.1959, कालम 442-44
49. नियम 16
50. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.2.1963, कालम 264-65
51. -वही- 17.7.1991, कालम 222-25, 261-62, 280
52. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 19.5.1952, कालम 103; 13.2.1953, कालम 73; 17.2.1954, कालम 229; राज्य सभा वाद-विवाद, 23.2.1955, कालम 203; 19.3.1957, कालम 69; 16.5.1957, कालम 411; 12.2.1958, कालम 250; 11.2.1959, कालम 282; 10.2.1960, कालम 294-304; 13.3.1962, कालम 102; 20.2.1963, कालम 262-64; और 12.2.1964, कालम 283 और 308
53. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.3.1970, कालम 197
54. नियम 19
55. नियम 17(1)(ख)
56. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.2.1970, कालम 192 आदि; और 25.3.1971, कालम 18 आगे और भी
57. -वही- 24.2.1970, कालम 226
58. नियम 17(2); राज्य सभा वाद-विवाद, 25.3.1971, कालम 44 आगे और भी; 28.12.1989, कालम 356 आदि
59. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.3.1971, कालम 95 आदि
60. -वही- 1.5.1962, कालम 1295-97
61. -वही- 2.5.1962, कालम 1499-1500
62. -वही- 3.3.1965, कालम 1733, 1742 और 1782
63. -वही- 22.2.1966, कालम 929; और 24.2.1966, कालम 1252
64. -वही- 21.3.1967, कालम 355
65. -वही- 23.3.1967, कालम 608-10
66. -वही- 1.4.1971, कालम 173-74; और 22.2.1979, कालम 228
67. नियम 18
68. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.1.1980, कालम 344
69. -वही- कालम 351-56
70. -वही- 29.12.1989, कालम 363-64
71. -वही- 12.3.2001, कालम 523
72. राज्य सभा वाद-विवाद 3.3.2015, पृष्ठ 452
73. फा.सं. 2/1/55-एल और 2/1/56-एल
74. फा.सं. 2/2/89-एल
75. फा.सं. 2/1/80-एल; 2/2/89-एल; 2/1/2001/एल; और संसदीय समाचार (1), 20.3.2001
76. नियम 221

77. संसदीय समाचार (2), 16.4.1977 और 22.1.1990
78. अनुच्छेद 86(2)
79. नियम 21
80. अनुच्छेद 108(1)
81. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.4.1961, कालम 49; 10.5.1978, कालम 173-74; और 22.3.2002, पृष्ठ 235
82. संसदीय समाचार (2), 22.3.2002
83. अनुच्छेद 111 का परन्तुक
84. संसदीय समाचार (2), 10.1.1990
85. संसदीय समाचार (2), 31.5.2006
86. नियम 221
87. नियम 222

अध्याय-8

संसदीय विशेषाधिकार

विशेषाधिकार का स्वरूप

अर्सकीन मे के अनुसार "संसदीय विशेषाधिकार प्रत्येक सदन द्वारा सामूहिक रूप से...और प्रत्येक सदन के सदस्यों द्वारा वैयक्तिक रूप से उपयोग किये जाने वाले ऐसे कतिपय अधिकारों का समुच्चय है जिनके अभाव में वे अपने कृत्यों का निर्वहन नहीं कर सकते हैं और जो अन्य निकायों और व्यक्तियों को प्राप्त अधिकारों से अधिक है। कतिपय विशेषाधिकार केवल संसद् की विधि एवं परिपाटी के आधार पर दिए गए हैं जबकि अन्य विशेषाधिकारों को संविधि द्वारा परिभाषित किया गया है। गिरफ्तारी से मुक्ति, वाक्-स्वातंत्र्य जैसे कतिपय अधिकार और उन्मुक्तियां मुख्यत: प्रत्येक सदन के वैयक्तिक सदस्यों को उपलब्ध हैं और इसकी वजह से यह है कि सदन अपने सदस्यों की सेवाओं का निर्बाध रूप से उपयोग किये बिना अपने कार्यों का निष्पादन नहीं कर सकता है। मुख्यत: प्रत्येक सदन को सामूहिक निकाय के रूप में अन्य अधिकार और उन्मुक्तियां भी प्राप्त हैं जैसाकि अपने सदस्यों की सुरक्षा हेतु और अपने स्वयं के प्राधिकार और सम्मान की रक्षा हेतु अवमानना के लिए दण्डित करने की शक्ति और अपनी स्वयं की संरचना को विनियमित करने की शक्ति। तथापि, मूलत: यह सदन के सामूहिक कार्यों को प्रभावी ढंग से निष्पादित करने का साधन मात्र है और सदस्य इसी प्रयोजन से इन वैयक्तिक विशेषाधिकारों का उपयोग करते हैं।

"जब इनमें से किसी अधिकार और उन्मुक्ति का अनादर किया जाता है या उसका उल्लंघन किया जाता है, तो ऐसे अपराध को विशेषाधिकार भंग की संज्ञा दी गई है और यह संसद् की विधि के अन्तर्गत दण्डनीय है। प्रत्येक सदन अवमान के मामले को दण्डित करने का अधिकार रखने का दावा भी करता है अर्थात् वे कार्य, जिनसे कोई विशिष्ट विशेषाधिकार तो भंग नहीं होता परन्तु इसके कृत्यों के निष्पादन में व्यवधान या अवरोध उत्पन्न होता है अथवा जिनसे इसके प्राधिकार या सम्मान का तिरस्कार होता है, जैसाकि इसके विधि-सम्मत आदेशों की अवज्ञा अथवा इसके सदस्यों के या इसके अधिकारियों के प्रति अपमान वचन।"[1]

अवमान क्या है?

"सामान्यत: ऐसा कोई कार्य या त्रुटि, जो संसद् के किसी भी सदन के कार्यों के निष्पादन में अवरोध या व्यवधान उत्पन्न करता है या जो ऐसे सदन के किसी सदस्य या अधिकारी के अपने कर्त्तव्य के निर्वहन में अवरोध या व्यवधान उत्पन्न करता है या जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे परिणाम उत्पन्न करने वाला हो, तो उसे अवमान माना जायेगा, यद्यपि इस प्रकार के अपराध का कोई पूर्वोदाहरण नहीं है।"[2]

अत: इन विशेषाधिकारों की व्याख्या करने में इस सामान्य सिद्धान्त का ध्यान रखा जाना चाहिए कि सदस्यों को "संसद् में अपने दायित्वों को बिना किसी रुकावट या व्यवधान के निष्पादित करने" के प्रयोजन से संसदीय विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं।"[3] ये विशेषाधिकार सदन द्वारा निर्बाध रूप से अपने कार्यों को निष्पादित करने के लिए आवश्यक सीमा तक ही वैयक्तिक सदस्यों को प्राप्त हैं। "ये सदस्य को, सदस्य होने के नाते कहीं अधिक ऐसे सामाजिक दायित्वों से, जो

दूसरे नागरिकों पर लागू होते हैं, मुक्त नहीं करते हैं।"[4] संसदीय विशेषाधिकार कानून के मामले में किसी संसद् के हित में इस प्रकार का विभेद किये जाने के उचित और यथेष्ठ कारण न हों।[5]

संवैधानिक उपबंध

भारत के संविधान में कुछ विशेषाधिकारों का उल्लेख किया गया है। ये हैं—संसद् में वाक्-स्वातंत्र्य,[6] "संसद् या उसकी किसी समिति में सदस्य द्वारा कही गई किसी भी बात या उसके द्वारा दिये गये मत के सम्बन्ध में किसी न्यायालय में किसी प्रकार की कार्यवाही से उसे प्राप्त उन्मुक्ति,[7] संसद् के किसी भी सदन द्वारा या उसके प्राधिकार के अन्तर्गत किसी प्रतिवेदन, पत्र, मतों या कार्यवाहियों को प्रकाशित करने के संबंध में किसी न्यायालय में कार्यवाही से किसी व्यक्ति को प्राप्त उन्मुक्ति।[8] न्यायालयों को प्रक्रिया संबंधी कथित अनियमितताओं के आधार पर संसद् में किन्हीं भी कार्यवाहियों की वैधता की जांच करने से प्रतिषिद्ध किया गया है।[9] प्रक्रिया अथवा कार्य-संचालन को विनियमित करने अथवा संसद् में व्यवस्था बनाये रखने के लिए शक्ति प्रदत्त कोई भी अधिकारी या संसद्-सदस्य उनके द्वारा उन शक्तियों के प्रयोग के लिए किसी न्यायालय की अधिकारिता में नहीं लाया जा सकता है।[10] संसद् के किसी सदन की किसी कार्यवाही की सही रिपोर्ट को किसी समाचार-पत्र में प्रकाशित करने के लिए, जब तक कि यह सिद्ध नहीं हो जाता है कि इस प्रकार की रिपोर्ट को दुर्भावनावश प्रकाशित किया गया है, किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध किसी न्यायालय में सिविल या आपराधिक कार्यवाही नहीं की जा सकती है। बेतार वाले तार-संचार माध्यमों से प्रसारित रिपोर्ट या विषयों के बारे में भी यह उन्मुक्ति उपलब्ध है।"[11] तथापि, सदन की किसी गोपनीय बैठक की कार्यवाहियों के प्रकाशनार्थ यह उन्मुक्ति उपलब्ध नहीं है।[12]

अन्य बातों में, संसद् के प्रत्येक सदन की और प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ऐसी होंगी जो संसद्, समय-समय पर विधि द्वारा, परिनिश्चित करे और जब तक वे इस प्रकार परिनिश्चित नहीं की जाती हैं तब तक वही होंगी जो संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 15 के प्रवृत्त होने से ठीक पहले उस सदन की और उसके सदस्यों और समितियों की थीं।[13]

संविधान निर्माताओं ने सदस्यों आदि के लिए संविधान के प्रारम्भ के समय 'हाउस ऑफ कॉमन्स' को जो शक्तियां और विशेषाधिकार प्राप्त थे उन्हीं शक्तियों और विशेषाधिकारों का उपबंध किया है। अनुच्छेद 105 के खण्ड (3) में 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के उल्लेख का संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा विलोप कर दिया गया है। तथापि, चूंकि संसद् द्वारा विशेषाधिकार की व्याख्या करते हुए अभी तक कोई कानून नहीं बनाया गया है। अत: वास्तव में अभी भी वही स्थिति बनी हुई है जोकि संविधान के आरम्भ के समय थी।

सांविधिक उपबंध

संविधान में विनिर्दिष्ट विशेषाधिकारों के अतिरिक्त सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में सदन या इसकी समिति की बैठक के दौरान तथा इसके आरम्भ होने से चालीस दिन पूर्व और इसकी समाप्ति के चालीस दिन पश्चात् सिविल प्रक्रिया के अन्तर्गत सदस्यों की गिरफ्तारी और उन्हें निरुद्ध किये जाने से स्वतंत्रता का उपबंध किया गया है।[14]

प्रक्रिया संबंधी नियमों और पूर्व निर्णयों पर आधारित विशेषाधिकार

सभापति को किसी आपराधिक आरोप पर या किसी अपराध के लिए किसी सदस्य की गिरफ्तारी, उसे निरुद्ध किये जाने, दोषसिद्ध ठहराये जाने, कैद किये जाने और रिहा किये जाने की तुरन्त सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।[15]

सदन के सदस्यों या अधिकारियों को सदन की अनुमति के बिना न्यायालयों में सदन की कार्यवाही से संबंधित साक्ष्य देने या दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।[16]

सदन के सदस्यों या अधिकारियों को सदन की अनुमति के बिना और उस सदस्य की सहमति के बिना जिसकी उपस्थिति आवश्यक है, दूसरे सदन या राज्य विधान-मंडल के किसी सदन या उसकी किसी समिति के समक्ष साक्षियों के रूप में उपस्थित होने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है।[17]

सदन की पारिणामिक शक्तियां

उपर्युक्त विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के अतिरिक्त प्रत्येक सदन को अपने विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों की संरक्षा के लिए आवश्यक कतिपय पारिणामिक शक्तियां भी प्राप्त हैं। ये शक्तियां हैं : विशेषाधिकार उल्लंघन या सदन के अवमान के लिए व्यक्तियों को चाहे वे सदस्य हों या नहीं, सुपुर्द करना;[18] साक्षियों को उपस्थित होने के लिए विवश करना और व्यक्तियों, दस्तावेजों और अभिलेखों को बुला भेजना;[19] अपनी प्रक्रिया और कार्य-संचालन को विनियमित करना;[20] अपने वाद-विवाद और कार्यवाहियों के प्रकाशन को प्रतिषिद्ध करना[21] और अपरिचित व्यक्तियों को प्रवेश से वर्जित करना।[22]

सदन की शास्तिक शक्तियां

यदि कोई व्यक्ति या प्राधिकारी सदन अथवा सदस्यों अथवा सदन की समितियों के किसी विशेषाधिकार, शक्तियों और उन्मुक्तियों का अतिक्रमण करता है या उसकी अवहेलना करता है तो उसे "विशेषाधिकार भंग करने" या "सदन का अवमान करने" के लिए दण्ड दिया जा सकता है। सदन के पास इस बात का निश्चय करने की शक्ति है कि कौन-सा मामला विशेषाधिकार-भंग का मामला है और कौन-सा अवमान का। इस संबंध में सदन के सदस्य और बाहरी व्यक्ति तथा विशेषाधिकारों के अतिक्रमण का प्रत्येक कार्य, चाहे वह सदन में किया गया हो या सदन के बाहर, सदन की शास्तिक अधिकारिता के अंतर्गत आता है।

विशेषाधिकार-भंग या सदन के अवमान के लिए दोषी पाये गये व्यक्ति को कारावास[23] या भर्त्सना (चेतावनी)[24] या धिग्दंड[25] से दंडित किया जा सकता है। अवमान के लिए सदस्यों को दो अन्य दण्ड, अर्थात् सदन से "निलम्बन"[26] और "निष्कासन"[27] भी दिए जा सकते हैं।

बोलने की स्वतंत्रता और न्यायालय की कार्यवाही से उन्मुक्ति

सदस्यों को सदन में बोलने की स्वतंत्रता है और उन्हें संसद् में या संसद् की किसी समिति में कही गई किसी बात या उनके द्वारा दिये गये किसी मत की बाबत न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति (छूट) प्राप्त है। वस्तुतः, सदस्यों के लिए सदन में बोलने की स्वतंत्रता, उनके संसदीय

कर्त्तव्यों के दक्षतापूर्वक पालन हेतु आवश्यक पूर्वापेक्षा है, जिसकी अनुपस्थिति में वे निर्भय होकर सदन में अपने मन की बात कहने और अपने विचार व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे। संसद् सदस्यों के इस अधिकार के महत्व को, सदन के भीतर या सदन की किसी समिति में कोई भाषण/प्रकटीकरण या कोई मत देने के लिए न्यायालय में सिविल या दांडिक कार्यवाही किए जाने से उनको उन्मुक्ति प्रदान करके रेखांकित किया गया है। किसी सदस्य द्वारा अपने संसदीय कर्त्तव्यों का पालन करते हुए कही गई किसी बात या किए गये किसी कार्य की संसद् के बाहर जांच करना, संसद् में सदस्य की बोलने की स्वतंत्रता में गम्भीर हस्तक्षेप है। अत: सदन के भीतर किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात या दिए गये किसी मत के कारण उस पर प्रहार करना या उसके विरुद्ध कार्यवाही करना या कार्यवाही करने की धमकी देना, जिसमें कानूनी कार्यवाही प्रारम्भ करना सम्मिलित है, किसी सदस्य के विशेषाधिकारों का भारी अतिक्रमण होगा।

संसद् में कही गई बात, भले ही वह सदन के समक्ष कार्य में सर्वथा संबंधित न हो, अनुच्छेद 105(2) के अधीन सदस्यों को प्रदान की गई उन्मुक्ति के अन्तर्गत आती है। जैसा उच्चतम न्यायालय ने कहा है:

> "यह अनुच्छेद संसद् में कही गई किसी बात की बाबत, अन्य बातों के साथ-साथ उन्मुक्ति प्रदान करता है, इसमें "किसी बात" का अत्यधिक महत्व है और वह "प्रत्येक बात" के समतुल्य है। "संसद् में" शब्दों से ही एक मात्र परिसीमा उत्पन्न होती है, जिसका आशय है संसद् की बैठक के दौरान और संसद् के कार्य के दौरान...। एक बार यह साबित हो जाने पर कि उस समय संसद् की बैठक चल रही थी और संसदीय कार्य किया जा रहा था, उस कार्य के दौरान कही गई किसी बात को न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति प्राप्त होगी। यह उन्मुक्ति न केवल पूर्ण है बल्कि ऐसी है जैसी कि होनी चाहिये...। न्यायालयों का इस मामले में कोई दखल नहीं है और वस्तुत: उनका दखल होना भी नहीं चाहिये।"[28]

सदन के भीतर सदस्यों को उपलब्ध वाक्-स्वातंत्र्य अनुच्छेद 19(2) के अधीन नागरिकों को उपलब्ध वाक्-स्वातंत्र्य से भिन्न है। नागरिकों के वाक्-स्वातंत्र्य पर उपयुक्त प्रतिबंधों का उपबंध करते हुए इस अनुच्छेद के अधीन बनाए गये किसी कानून की परिधि के अन्तर्गत सदन की चारदीवारी के भीतर सदस्यों को प्राप्त वाक्-स्वातंत्र्य नहीं आयेगा।[29] इस मामले में सदस्यों को पूर्ण संरक्षण प्राप्त है, भले ही सदन में उनके द्वारा बोले गये शब्द विद्वेषपूर्ण और उनकी जानकारी में मिथ्या हों।[30] सदन में दिए गये भाषण के लिये भले ही उससे न्यायालय का अवमान क्यों न होता हो, किसी सदस्य के विरुद्ध कार्यवाही करना न्यायालय की अधिकारिता में नहीं है।[31]

इस तरह, अनुच्छेद 105 के खण्ड (1) और (2) में अन्तर्विष्ट स्पष्ट संवैधानिक उपबंध वाक्-स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार और सदन में कही गई या सदन के प्रतिवेदनों में प्रकाशित किसी बात के विधिक दायित्व से उन्मुक्ति के मामले में एक पूर्ण और निश्चायक संहिता है। अत: इन उपबंधों की परिधि से बाहर की कोई बात न्यायालयों द्वारा विधि के अनुसार निबटाई जानी चाहिए। इस प्रकार, यदि कोई सदस्य उन प्रश्नों को प्रकाशित करता है जो सभापति द्वारा अस्वीकृत कर दिए गये हैं और जो मानहानिकारक हैं तो उसके संबंध में किसी न्यायालय में मानहानि की विधि के अधीन कार्यवाही की जाएगी।[32]

तथापि, सदन में वाक्-स्वातंत्र्य का अधिकार, संवैधानिक उपबंधों[33] और प्रक्रिया विषयक नियमों[34] द्वारा परिसीमित किया गया है। जब कोई सदस्य किसी नियम का अतिक्रमण करता है तो सभापीठ को ऐसी स्थिति से निपटने के लिए नियमों द्वारा विपुल शक्तियां प्रदान की गई हैं।[35]

सदन में सदस्य के बोलने के अधिकार और कार्यवाही के अधिकार के मामले में प्रदत्त उन्मुक्ति को ध्यान में रखते हुए, इस अधिकार के दुरुपयोग का जनता के अधिकारों और स्वतंत्रता पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है जिसके लिए जनता, अन्यथा, न्यायालय के संरक्षण की मांग कर सकती थी। अत: जनप्रतिनिधि होने के नाते सदस्यों पर इस अधिकार का प्रयोग अत्यंत सावधानी के साथ और देश के कानून पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना करने का भारी दायित्व है। विशेषाधिकार समिति ने इस बात पर जोर दिया है कि किसी भी संसद्-सदस्य को सदन की चारदीवारी के भीतर बोलने की प्रतिबंधरहित छूट प्राप्त नहीं है। समिति ने यह टिप्पणी की है :

> "किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई मानहानिकारक वक्तव्य देना या अभियोगात्मक आरोप लगाना संसदीय वाद-विवाद और शालीनता के नियमों के विरुद्ध है और यदि ऐसे आरोप किन्हीं ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध लगाये जाते हैं जो सदन में स्वयं अपना बचाव करने की स्थिति में नहीं हैं तो यह और भी बुरी बात है। वाक्-स्वातंत्र्य का विशेषाधिकार केवल तभी सुरक्षित रह सकता है जब सदस्य इसका दुरुपयोग न करें।"[36]

उक्त टिप्पणी करते समय समिति ने हाउस ऑफ कॉमन्स की विशेषाधिकार समिति के दूसरे प्रतिवेदन (खण्ड 1978-79) (एच.सी. 222, पी.वी. पैरा 10) में अन्तर्विष्ट निम्नलिखित टिप्पणियों को स्वीकार करते हुए उल्लेख किया है :

> संसद् के कार्य में वाक्-स्वातंत्र्य का विशेषाधिकार एक महत्वपूर्ण और आवश्यक तत्व है। तथापि, जिस प्रकार की उन्मुक्ति यह प्रदान करता है उसके कारण इसके दुरुपयोग का गंभीर प्रभाव हो सकता है। आपकी समिति को सुविदित है कि समय-समय पर सदस्य अपनी बात कहने की उत्सुकता में वाक्-स्वातंत्र्य के अपने विशेषाधिकार का उपयोग कुछ इस प्रकार कर सकते हैं जो अन्य सदस्यों द्वारा अनुचित माना जाएगा, क्योंकि इससे अन्य महत्वपूर्ण अधिकारों अथवा स्वतंत्रताओं को नुकसान हो सकता है और उन व्यक्तियों को विषम क्षति पहुंच सकती है जो अन्यथा न्यायालय से संरक्षण की मांग कर सकते थे। ...अत: आपकी समिति सभी सदस्यों की इस बाध्यता पर जोर देना उचित समझती है कि सभा में ऐसे वक्तव्य देने का निर्णय लेते समय, जिन्हें, यदि सभा के बाहर दिया जाता तो वे मानहानिकारक या आपराधिक होते, इस बात का ध्यान रखें कि समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने और कार्यवाही के प्रसारित होने पर उन वक्तव्यों के व्यापक प्रभाव होंगे और उस प्रतिकूल और संभवत: अनुचित क्षति का भी ध्यान रखें जो उन नागरिकों को हो सकती है जो न तो उसका प्रतिकार कर सकते हैं और न उत्तर दे सकते हैं।

अनुच्छेद 105(2) के उपबंध उन व्यक्तियों, जिन्हें संविधान के आधार पर किसी भी सदन में या उसकी किसी समिति[37] में बोलने, और अन्यथा कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है, के मामले में भी उसी तरह लागू होते हैं जिस तरह वे संसद्-सदस्यों के मामले में लागू होते हैं।[38]

सदन में किसी सदस्य द्वारा प्रकट की गई बात के लिए उससे प्रश्न किया जाना

सदन के भीतर दिये गये किसी भाषण/प्रकट की गई किसी बात या दिये गये किसी मत के लिए किसी बाहरी निकाय द्वारा सदस्यों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता और उनसे कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता। सदन में उनके वाक्-स्वातंत्र्य को प्रभावी बनाने के लिए यह आवश्यक है। यह एक निश्चित प्रक्रिया भी है कि सदन का कोई भी सदस्य या अधिकारी पहले सदन की अनुमति प्राप्त किए बिना सदन या उसकी किसी समिति की किसी कार्यवाही के संबंध में अथवा ऐसे किसी दस्तावेज के संबंध में किसी न्यायालय में साक्ष्य नहीं देगा जो उक्त कार्यवाही

से संबंधित या सम्बद्ध हो अथवा सदन के अधिकारी की अभिरक्षा में रखा गया हो, और न ही वह ऐसे किसी दस्तावेज को पेश करेगा।[39]

जहां तक सदन के भीतर किसी सदस्य द्वारा कोई बात प्रकट करने तथा किसी बाहरी निकाय के प्रति उसकी जवाबदेही का संबंध है, विशेषाधिकार समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की है :

> "...यदि किसी सदस्य द्वारा संसद् में कोई बात प्रकट करने के लिए उससे संसद् से बाहर किसी स्थान पर प्रश्न किया जाता है तो यह उस संसद्-सदस्य के लिए सदस्य के रूप में कर्त्तव्य पालन में एक बाधा होगी। ब्रिटेन की तरह भारत में भी स्वतंत्र रूप से और किसी भय या पक्षपात के बिना कार्य करने का संसद्-सदस्य का अधिकार, एक संवैधानिक गारंटी है। यह गारंटी केवल सदन के नियमों और अंतत: स्वयं सदन की अनुशासनात्मक अधिकारिता के अध्यधीन है...किसी सदस्य द्वारा संसद्-सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए कही गई किसी बात या किए गये किसी कार्य की संसद् के बाहर जांच कराना ऐसे सदस्य के रूप में उसके कर्त्तव्यों के निर्वहन से संबंधित अधिकार के साथ गंभीर हस्तक्षेप होगा।"[40]

यदि किसी मामले में कोई सदस्य सदन के भीतर कोई ऐसी बात कहता है जो किसी आपराधिक जांच से सीधे संबंधित हो सकती है और जो जांच प्राधिकारियों के विचार से सकारात्मक साक्ष्य के रूप में उनके लिए विशेष महत्व रखती है तो इस बारे में समिति द्वारा निम्नलिखित प्रक्रिया विहित की गई है[41]:

> ...जांच प्राधिकारी गृह मंत्री को तदनुसार सूचित कर सकेगा। यदि मंत्री इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि उस मामले में संबंधित सदस्य की सहायता मांगना अपेक्षित है तो वह सभापति के माध्यम से सदस्य से अनुरोध करेगा कि वह उससे मिले। यदि सदस्य गृह मंत्री से मिलने और अपेक्षित सूचना देने के लिए सहमत हो जाता है तो गृह मंत्री उसका उपयोग इस तरह करेगा जो सदस्य के किसी संसदीय अधिकार के विरुद्ध न हो। तथापि, यदि सदस्य गृह मंत्री के अनुरोध का उत्तर देने से मना कर देता है तो उस मामले को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

बाहरी व्यक्तियों को अपवर्जित करने का अधिकार

बाहरी व्यक्तियों को सदन से अपवर्जित करने का सदन का अधिकार, सदन के भीतर वाक्-स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार का आवश्यक सहगामी है। संसद् जैसे विचार-विमर्शकारी निकाय में स्वतंत्र और निष्पक्ष चर्चा के लिए वाद-विवाद की गोपनीयता विधिक कार्यवाही से उन्मुक्ति से कम महत्वपूर्ण नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की है :

> ...(हाउस ऑफ कॉमन्स) द्वारा जिस वाक्-स्वातंत्र्य का दावा किया गया है और जिसे 'क्राउन' द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई है उसे आवश्यक होने पर, वाद-विवाद की गोपनीयता द्वारा सुनिश्चित किया जाता है जो वाद-विवादों और कार्यवाहियों के प्रकाशन को प्रतिषिद्ध करके और सदन से बाहरी व्यक्तियों को अपवर्जित करके संरक्षित की जाती है। इस अधिकार का प्रयोग 1923 में और पुन: काफी समय बाद 18 नवम्बर, 1958 को किया गया था। इससे प्रकट होता है कि जब-जब ऐसा अवसर आया है तब-तब बाहरी व्यक्तियों को हाउस से अपवर्जित करके वाद-विवाद की गोपनीयता द्वारा स्वयं को संरक्षित करने के मामले में हाउस ऑफ कॉमन्स की उत्सुकता में कोई कमी नहीं आई है।[42]

प्रक्रिया विषयक नियम सभापति को बाहरी व्यक्तियों के प्रवेश को नियमित करने[43] और सदन के किसी भाग से उनकी वापसी का आदेश देने[44] की शक्ति प्रदान करते हैं।

कार्यवाहियों के प्रकाशन को नियंत्रित करने का अधिकार

सदन के वाद-विवादों और कार्यवाहियों के प्रकाशन को प्रतिषिद्ध करने की सदन की शक्ति और बाहरी व्यक्तियों को अपवर्जित करने की उसकी शक्ति का निकट संबंध है। संविधान के अधीन, संसद् के किसी भी सदन की कार्यवाहियों के प्रकाशन से जुड़े सभी व्यक्तियों को, सदन के प्राधिकार से या उसके अधीन ऐसा प्रकाशन किए जाने पर, न्यायालय की कार्यवाही से पूर्ण उन्मुक्ति प्रदान की गई है। संसद् की कार्यवाहियों का प्रकाशन संबंधित सदनों के नियंत्रण के अध्यधीन है।[45]

महासचिव, उस रूप में और उस रीति से जो सभापति समय-समय पर निदेश दे, सदन की कार्यवाहियों की एक पूर्ण रिपोर्ट तैयार करने और प्रकाशित करने के लिए प्राधिकृत है।[46]

जब तक यह साबित न हो जाये कि प्रकाशन विद्वेष से किया गया है तब तक समाचार-पत्र में किसी व्यक्ति द्वारा संसद् के किसी भी सदन की किसी भी कार्यवाही के सारभूत रूप से सत्य रिपोर्ट का प्रकाशन किया जाना संविधान के अधीन न्यायालय की सिविल या दांडिक कार्यवाही से संरक्षित है।[47] ऐसे प्रकाशन को सांविधिक संरक्षा प्रदान की गई है।[48]

किन्तु जब सदन की या उसकी समितियों के वाद-विवादों या कार्यवाहियों की असद्भावपूर्वक रिपोर्ट दी जाये, अर्थात् जब विशेष सदस्यों के भाषणों की जानबूझकर गलत बयानी की जाये या उनके तथ्यों को छिपाया जाये या वाद-विवादों को विकृत करके, तोड़-मरोड़कर, और गलत अर्थ में पेश किया जाये तब सदन का विशेषाधिकार भंग होता है और उसका अवमान होता है। उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय किया है :

> ...हमारे संविधान के प्रारंभ के समय हाउस ऑफ कॉमन्स को हाउस के भीतर होने वाले वाद-विवादों या कार्यवाहियों की सत्य और सद्भावपूर्ण रिपोर्ट के प्रकाशन को भी प्रतिषिद्ध करने की शक्ति प्राप्त थी या विशेषाधिकार प्राप्त था।
>
> तदनुसार, सदन को ऐसे वाद-विवादों या कार्यवाहियों के अशुद्ध या विकृत रूपान्तर के प्रकाशन को प्रतिषिद्ध करने की शक्ति या विशेषाधिकार...प्राप्त था। हम इस विचार से भी सहमत नहीं हैं कि हमारे सदनों को ऐसी शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां सौंपना ठीक नहीं होगा क्योंकि हम अच्छी तरह से समझते हैं कि हमारे सदन प्रचार के लाभ का सम्मान करेंगे और सुस्पष्ट मामलों को छोड़कर इन शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का प्रयोग नहीं करेंगे।[49]

जैसाकि एक मामले में सभापति ने टिप्पणी की थी :

> समाचार-पत्र उस जनता, जो सदन में उपस्थित नहीं होती है, के नेत्र और कान होते हैं। जब तक सदन कोई पाबंदी न लगाये तब तक यह समझा जाना चाहिये कि समाचार-पत्रों को ऐसे किसी व्यक्ति, जो सदन या किसी विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं है, के प्रतिबंध या बाधा का विचार किए बिना कार्यवाहियों या कार्यवाही के किसी भाग को निष्पक्ष, सद्भावनापूर्ण और सही-सही प्रकाशित करने का अधिकार प्राप्त है। समाचार-पत्र पूर्णत: गलत छवि पेश करने के लिए कार्यवाही को सम्पादित करके, उसमें जोड़-तोड़ करके या गलत ढंग से कुछ बातों को विलुप्त करके मिथ्या निरूपण नहीं करेंगे।[50]

यदि किसी भी सदन का कोई सदस्य, संसद् की कार्यवाहियों के दौरान उसके द्वारा दिए गए भाषण को वाद-विवाद में से पृथक करके प्रकाशित करवाता है, तो वह उसका मुद्रित वक्तव्य एक पृथक प्रकाशन बन जाता है; जिसका संसद् की किसी कार्यवाही से कोई संबंध नहीं होता

है तथा वह किसी अपमानजनक बात, जो उस प्रकाशन में हो, के लिए कानूनी रूप से जिम्मेदार है।[51]

कार्यवाही का समय-पूर्व प्रकाशन

कार्यवाहियों, विशेषकर समितियों की कार्यवाहियों के समय-पूर्व प्रकाशन को विशेषाधिकारों का अतिक्रमण और सदन का अवमान माना गया है। एक मामले में, राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति के समक्ष किसी साक्षी द्वारा दिये गये साक्ष्य के अंशों को समिति का प्रतिवेदन सदन में प्रस्तुत किए जाने से पहले ही समाचार-पत्रों में प्रकाशित कर दिया गया था। इस पर समिति ने यह निर्णय दिया था कि किसी समिति की कार्यवाहियों के समय-पूर्व प्रकाशन का कार्य विशेषाधिकार भंग और सदन के अवमान का मामला है। तथापि, समाचार-पत्रों द्वारा व्यक्त किए गये खेद और उनकी क्षमा-याचना को ध्यान में रखते हुए समिति ने इस मामले में किसी दंड की सिफारिश नहीं की थी। सभी संबंधित व्यक्तियों को यह चेतावनी देते हुए कि भविष्य में, समितियों की कार्यवाही के समय-पूर्व प्रकाशन अथवा प्रकटीकरण के मामले में गम्भीरता से कार्यवाही की जायेगी, समिति ने यह टिप्पणी की थी[52] :

> यह सुस्थापित है कि किसी संसदीय समिति की कार्यवाही गोपनीय होती है और समिति की बैठकों में जो कुछ कहा गया है, जब तक उस कथन को सदन में प्रस्तुत नहीं कर दिया जाता या अन्यथा उसको अगोपनीय नहीं समझा जाता तब तक उसे प्रकट नहीं किया जाना चाहिये या उसका प्रचार नहीं किया जाना चाहिये।

संसदीय समिति के प्रारूप प्रतिवेदन अथवा अनुमोदित प्रतिवेदन को सभा अथवा सभापति को प्रस्तुत किए जाने से पूर्व प्रकाशित करना, सभा के विशेषाधिकार का उल्लंघन माना जाएगा।

कार्यवाही से निकाले गये अंशों का प्रकाशन

इसी तरह से सदन की कार्यवाही से निकाले गये अंशों को प्रकाशित करना विशेषाधिकार का उल्लंघन और सदन का अवमान है। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है :

> किसी सदस्य के भाषण के किसी अंश को निकाले जाने के संबंध में अध्यक्ष के आदेश का कानूनी दृष्टि से यह प्रभाव होता है कि उक्त अंश को यह समझा जायेगा कि उसे बोला नहीं गया है। ऐसी परिस्थितियों में सम्पूर्ण भाषण की रिपोर्ट को, हालांकि तथ्यात्मक दृष्टि से सही होने पर भी कानून की दृष्टि से गलत और अविश्वसनीय रिपोर्ट माना जायेगा और भाषण की ऐसी गलत अथवा अविश्वसनीय रिपोर्ट के प्रकाशन को अर्थात सदन में अध्यक्ष द्वारा दिये गये आदेशों का अवमान करते हुए निकाले गये अंश सहित भाषण की ऐसी गलत और अविश्वसनीय रिपोर्ट को प्रकाशित करना प्रथम दृष्ट्या आपत्तिजनक समाचार प्रकाशित किये जाने के कारण सदन के विशेषाधिकार का उल्लंघन समझा जायेगा।[53]

> श्री कुलदीप नैयर ने उनके द्वारा सदन में की गई टिप्पणियों को, जिन्हें सभापति द्वारा कार्यवाही से निकाल दिया गया था, 'दि पायनियर' के सम्पादक श्री चन्दन मित्र द्वारा एक समाचार-पत्र के सम्पादकीय में उद्धृत करने के लिए उनके विरुद्ध विशेषाधिकार भंग की सूचना दी थी। इस मामले की जांच करने तथा इस पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए इसे विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया था। श्री मित्र द्वारा क्षमा-याचना किए जाने और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विरोधाभासी लेख के पीछे कोई बुरा इरादा नहीं था, समिति ने इस मामले को छोड़ने का निर्णय किया तथा तदनुसार सदन को प्रतिवेदित किया।[54]

कार्यवाही का मिथ्या-निरूपण

संसद् की कार्यवाही के मिथ्या-निरूपण या उसकी गलत ढंग से रिपोर्ट देने को गंभीर प्रकार का विशेषाधिकार-भंग और सदन का अवमान माना जाता है।

> एक मामले में, प्रकाशकों ने वित्त (संख्यांक 2) विधेयक, 1980 को राज्य सभा द्वारा पारित किये जाने और राष्ट्रपति द्वारा सहमति प्रदान किये जाने से पूर्व ही किसी पुस्तक में वित्त (संख्यांक 2) अधिनियम, 1980 के रूप में प्रकाशित कर दिया। विशेषाधिकार समिति ने यह निर्णय किया कि लेखकों और प्रकाशकों ने सदन की कार्यवाही और कार्यों के मिथ्या-निरूपण के लिए जानबूझकर और स्वेच्छा से ऐसा किया। अत: इससे विशेषाधिकार का भंग और सदन का अवमान हुआ।[55] अत: समिति ने यह सिफारिश की कि प्रमुख अवमानकर्ता को सदन के सत्रावसान तक कारावास में रखा जाये और सह-लेखकों को सदन द्वारा धिग्दंडित किया जाये।[56] राज्य सभा के समक्ष 11 दिसम्बर, 1980 को जब समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया तब सदन ने अवमानकर्ताओं को दिये गये दण्ड के बारे में अपनी सिफारिश पर पुनर्विचार करने के लिए इस मामले को पुन: समिति को सुपुर्द किये जाने का एक प्रस्ताव स्वीकृत किया।[57] इस मामले पर पुनर्विचार करते हुए समिति ने अपने पश्चात्वर्ती प्रतिवेदन में यह सिफारिश की कि मुख्य अवमानकर्ता को भी सह-लेखकों के साथ धिग्दंडित किया जाना चाहिए।[58] तदनुसार, सभापति द्वारा 24 दिसम्बर, 1980 को सदन की 'बार' में अवमानकर्ताओं को धिग्दंडित किया गया था।[59]

सदस्य अनेक बार सदन या उसकी समितियों की कार्यवाही की कथित रूप से गलत ढंग से रिपोर्ट देने या विकृत करने के लिए संबद्ध व्यक्तियों या समाचार-पत्रों के विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचनाएं देते हैं। सभापति मामले के गुणावगुणों के आधार पर उक्त मामले के बारे में अपनी टिप्पणियां/व्यवस्था देने के बाद उसका निपटान कर देता है या उसकी जांच करने, छान-बीन करने और प्रतिवेदन देने के लिए उसे विशेषाधिकार समिति के पास भेज देता है। कुछ महत्वपूर्ण मामलों का नीचे उल्लेख किया गया है :

> समिति के पास भेजा गया पहला मामला ('थॉट' मामला) नई दिल्ली से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'थॉट' में प्रकाशित विशेष लेख में की गई कतिपय टिप्पणियों से उत्पन्न हुआ। लेख का संगत परिच्छेद यह था : जब एक कांग्रेस सदस्य, श्री एच. पी. सक्सेना (उत्तर प्रदेश) कुछ रहस्योद्घाटन करते हुए नागाओं के साम्यवादी मित्रों के कुछ कारनामों को प्रकट करने लगे, तो श्री गुप्ता वस्तुत: क्रोधित हो उठे और चीखते हुए (श्री गुप्ता की आवाज इतनी तीक्ष्ण थी कि उसे 'गर्जना' की संज्ञा नहीं दी जा सकती है) यह कहने लगे कि यह 'अविवेकपूर्ण, काल्पनिक और असत्य है।' चूंकि यह सदन की कार्यवाही की "जानबूझकर, अनुचित ढंग से और मिथ्या रूप से रिपोर्ट करना" प्रतीत हुआ, अत: सभापति ने इस मामले को समिति के पास भेज दिया जिसने सम्पादक द्वारा दिये गये स्पष्टीकरण और खेद प्रकट किये जाने पर यह सिफारिश की कि सदन द्वारा इस मामले में आगे कोई कार्यवाही किया जाना आवश्यक नहीं है।[60] सदन एक प्रस्ताव द्वारा इससे सहमत हो गया।[61]
>
> 12 अगस्त, 1966 को एक सदस्य ने "सैबोटेज़ बाइ रेड्स इन दुर्गापुर कन्फर्म्ड" शीर्षक से "टाइम्स ऑफ इण्डिया" में प्रकाशित एक रिपोर्ट की ओर सभापति का ध्यान सूचना देकर दिलाया। उक्त रिपोर्ट राज्य सभा की पिछले दिनों की कार्यवाही पर आधारित थी। इसमें यह कहा गया था कि सदन में साम्यवादियों पर लगाये गये आरोपों की सरकार द्वारा पुष्टि नहीं की गई है, अत: वह समाचार-पत्र संसद् में एक दल के विरुद्ध दुर्भावना से पाठकों को जानबूझकर भ्रमित करने का दोषी है। सभापति से इस मामले को विशेषाधिकार समिति के पास भेजने का अनुरोध किया गया था। तथापि, सभापति ने अन्य सदस्यों के विचारों को सुनने के पश्चात् निम्नलिखित टिप्पणी की :
>
> > ...मेरे विचार में शीर्षक उचित नहीं है। नि:संदेह, मैं इसे गंभीरता से नहीं लेना चाहता हूं, तो भी मैं 'प्रेस' को केवल यह बताना चाहता हूं कि उनकी इस सदन के प्रति अत्यधिक जिम्मेदारी है और उन्हें शीर्षक देते समय ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिसे पक्षपातपूर्ण या कुछ ऐसा ही समझा जाये।

संबंधित सदस्य द्वारा सूचना को वापिस ले लिया गया था।[62]

29 मार्च, 1967 को पुन: एक सदस्य ने सदन में यह बताया कि "इंडियन एक्सप्रेस" ने राज्य सभा की उस दिन की कार्यवाही को दुर्भावनापूर्ण और अनुचित ढंग से प्रकाशित किया है। "द न्यू फेमिलियर पासटाइम ऑफ बेटिंग जनरल्स कौल एण्ड चौधरी आक्यूपाइज़ हाफ ऑफ द क्वेश्चन आवर इन द राज्य सभा" वाक्य के बारे में यह तर्क दिया गया था कि इसमें सदन के दोनों पक्षों पर जनरलों को संपीड़ित करने का आरोप लगाया गया है जबकि सच्चाई यह है कि उक्त सूचना प्रश्नों के समय के दौरान प्राप्त की जा रही थी। सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की :

> "हम इस सदन में इसका विशेष ध्यान रखते हैं कि 'प्रेस' से हमारे मतभेद न हों और हम ऐसी अनेक बातों पर अपना ध्यान नहीं देते हैं जिन पर कि अन्यथा ध्यान दिया जा सकता है। लेकिन मेरी राय में यह बिल्कुल अनुचित है और 'प्रेस' का भी इस सदन के प्रति कुछ कर्त्तव्य है। सदन की कार्यवाही की सूचना वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए और इसमें सम्मति, सुझावों और आक्षेपों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। अन्यथा, इस सदन को इस मामले पर गंभीर दृष्टिकोण अपनाना होगा।"[63]

एक अन्य समाचार-पत्र 'द स्टेट्समैन' पर सदन में एक सदस्य द्वारा किये गये भाषण को गलत ढंग से और तोड़-मरोड़ कर प्रकाशित करके विशेषाधिकार का उल्लंघन करने का आरोप लगाया गया था। उक्त लेख को पढ़ने और इस मामले पर विचार के उपरान्त उपसभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> मेरे विचार से समाचार-पत्रों में विवरण देते समय और अधिक सावधानी बरती जानी चाहिए और जो बात सदस्यों द्वारा नहीं कही गई है, उसे इस तरह से नहीं दिया जाना चाहिए जैसे कि वह उनके द्वारा कही गई हो। 'प्रेस' नि:संदेह सदस्यों के भाषणों के बारे में उचित टिप्पणियां कर सकती है। वे चाहे जिस रूप में टिप्पणियां कर सकते हैं, परन्तु उद्धरण देना और यह कहना कि किसी सदस्य विशेष ने यह कहा है, जबकि उसने ऐसा नहीं कहा है, गलत है। मेरे विचार में समाचार-पत्रों को इस संबंध में और अधिक सावधानी बरतनी चाहिए।[64]

27 मार्च, 1973 को एक सदस्य ने कतिपय ऐसी अभ्युक्तियों के साथ उनका नाम जोड़े जाने के लिए जोकि उन्होंने सदन में नहीं कही थीं, "मदरलैंड" के सम्पादक के विरुद्ध विशेषाधिकार का प्रश्न उठाना चाहा। सम्पादक ने गलती स्वीकार कर ली, खेद प्रकट किया और उसे अपने समाचार-पत्र में प्रकाशित किया। सभापति ने इस मामले को छोड़ दिया।[65]

इसी तरह से जब एक सदस्य के भाषण का गलत विवरण देने के लिए "अलाई ओसाई" नामक एक तमिल दैनिक के विरुद्ध शिकायत की गई, तब उक्त समाचार-पत्र के सम्पादक ने अपना खेद प्रकट किया और इस मामले को छोड़ दिया गया।[66]

एक अन्य मामले में, "नेशनल हेराल्ड" में प्रकाशित उद्योग मंत्री के भाषण के संबंध में सदन की कार्यवाही की भ्रामक जानकारी देने के कारण विशेषाधिकार उल्लंघन की शिकायत की गई। उस समाचार में कोका कोला, आई.बी.एम. को बंद करने और बिड़ला घराने को धमकियां देने के बारे में कुछ कारणों का उल्लेख करके इसके लिए मंत्री को उत्तरदायी ठहराया गया था, जबकि मंत्री द्वारा इस प्रकार के कारणों का उल्लेख नहीं किया गया था या ऐसी धमकियां नहीं दी गई थीं। उक्त समाचार-पत्र ने इस संबंध में संशोधन प्रकाशित किया और सम्पादक ने इस गलती के लिए खेद प्रकट किया। सभापति ने इन टिप्पणियों के साथ इस मामले को छोड़ दिया, "...'प्रेस' सदन की कार्यवाही का यथार्थ विवरण देते समय अत्यधिक सावधानी बरतेगी ताकि भविष्य में इस प्रकार से गलत विवरण देने और तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने की स्थिति उत्पन्न न हो।"[67]

एक मामले में, "असम ट्रिब्यून" में 9 जून, 1980 को एक सदस्य द्वारा सदन में दिये गये भाषण के सार को प्रकाशित किया गया था। सदस्य ने यह आरोप लगाया कि उक्त समाचार-पत्र में उसके भाषण को गलत ढंग से प्रकाशित किया गया है। सदन को यह सूचित करते हुए सम्पादक ने अपनी क्षमा-याचना को प्रकाशित किया है और इस पर अपना खेद प्रकट किया है, सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की :

> मैं यह टिप्पणी करना चाहूंगा कि 'प्रेस' को सदन की कार्यवाही का विवरण देने में सावधानी बरतनी चाहिए...यदि तथ्यों को छिपाने या गलत तथ्यों का उल्लेख करने के प्रयोजन से सम्पादन किया जाता है, तो मैं अपने स्वयं के निर्णयानुसार उचित कार्यवाही करूंगा। मैं यह आशा करता हूं कि भविष्य में गलत विवरण देने या इसी प्रकार की अन्य बातें उत्पन्न नहीं होंगी।[68]

रक्षा मंत्रालय में तत्कालीन राज्य मंत्री, श्री सी.पी.एन. सिंह के विरुद्ध विशेषाधिकार के प्रश्न की सूचनाओं के संबंध में सभापति द्वारा 26 मार्च, 1981 को दी गई व्यवस्था को गलत ढंग से और तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने के लिए साप्ताहिक पत्रिका 'ब्लिट्ज' और दिल्ली ब्यूरो के इसके प्रमुख के विरुद्ध अनेक सदस्यों ने 23 अप्रैल, 1981 को विशेषाधिकार उल्लंघन की सूचनाएं दीं। इस मामले की जांच करने, छान-बीन करने और इस पर प्रतिवेदन देने के लिए इसे विशेषाधिकार समिति के पास भेज दिया गया। समिति ने इस मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के उपरान्त यह पाया कि साप्ताहिक पत्रिका के दिल्ली ब्यूरो के प्रधान ने सभापति की व्यवस्था को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया है और व्यवस्था के संबंध में असंयमित भाषा का प्रयोग किया है। समिति ने यह महसूस किया कि उक्त साप्ताहिक पत्रिका ने सभापति की व्यवस्था से अनुचित खिलवाड़ किया है, तथ्यों को गलत ढंग से प्रस्तुत किया है और उन्हें अनभिप्रेत अर्थ दिया है। समिति अपने प्रतिवेदन में इस निष्कर्ष पर पहुंची कि विवादास्पद लेख से सभापति द्वारा उल्लिखित और अभिप्रेत धारणा से विपरीत धारणा और प्रभाव उत्पन्न हुआ है और इस तरह से यह सदन की कार्यवाही को गलत ढंग से निरूपित करने के सदृश्य हैं। सम्पादक द्वारा खेद प्रकट कर दिये जाने की बात को ध्यान में रखते हुए समिति की सिफारिश के अनुसार इस मामले में कोई कार्यवाही नहीं की गई थी।[69]

सदन को अपनी कार्यवाही विनियमित करने का अधिकार

संसद् के प्रत्येक सदन को अपनी कार्यवाही को उस ढंग से, जैसा वह उचित समझे, संचालित और विनियमित करने का अन्तर्निहित और अनन्य प्राधिकार है। यह अधिकार सदन के अंदर कुछ कहने या करने के संबंध में किसी न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति का ही एक स्वाभाविक हिस्सा है। अब यह सुस्थापित हो चुका है कि प्रत्येक सदन का अपनी आंतरिक कार्यवाही पर अनन्य अधिकार होता है। सदन की कार्यवाही के संचालन संबंधी मामले में सदन और इसके पीठासीन अधिकारियों के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्राधिकारी को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।[70] तदनुसार, संविधान के अनुच्छेद 118 के अधीन संसद् के प्रत्येक सदन को अपनी प्रक्रिया और अपने कार्य-संचालन को विनियमित करने हेतु नियम बनाने के लिए सशक्त किया गया है। संविधान का अनुच्छेद 122 यह गारन्टी देता है कि संसद् की कार्यवाही की विधिमान्यता को किसी "प्रक्रिया की अभिकथित अनियमितता" के लिए किसी न्यायालय में 'प्रश्नगत नहीं' किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था :

> "अनुच्छेद 118, संसद् के प्रत्येक सदन को अपने प्रक्रिया विषयक नियम बनाने की शक्ति प्रदान करने वाला एक सामान्य उपबंध है। ये नियम सदन के लिए बाध्यकारी नहीं है और सदन द्वारा किसी भी समय इनमें परिवर्तन किया जा सकता है। ऐसे नियम का भंग अनुच्छेद 122 को ध्यान में रखते हुए न्यायिक समीक्षा के अध्यधीन नहीं है।"[71]

इस आधार पर कि उक्त कार्यवाहियां प्रक्रिया विषयक नियमों के अनुसार निष्पादित नहीं की गई हैं या सदन ने अनुच्छेद 118 के अधीन सम्यक् रूप से बनाये गये नियमों का पालन नहीं किया है, सदनों की कार्यवाहियों को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है। इन नियमों की व्याख्या भी अनन्य रूप से पीठासीन अधिकारी और अंतत: सदन के अधिकार के अन्तर्गत

आती है। किन्तु न्यायिक हस्तक्षेप से उन्मुक्ति, "प्रक्रिया की अवैधता" से भिन्न केवल "प्रक्रिया की अभिकथित अनियमितता"[72] के मामलों तक ही सीमित है। अनुच्छेद 122 के खंड (2) में यह उपबंध है कि प्रत्येक सदन का पीठासीन अधिकारी या संसद् का कोई ऐसा अन्य अधिकारी या सदस्य, जिसमें तत्समय, संसद् के सदन की कार्यवाही विनियमित करने, कार्य का संचालन करने या व्यवस्था बनाये रखने की शक्ति निहित है, उन शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्यायालयों की अधिकारिता के अध्यधीन नहीं होगा।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इस संबंध में यह अभिनिर्धारित किया था :

> ...यह न्यायालय, किसी भी दृष्टि से, विधान-मंडल के विरुद्ध या अध्यक्ष, जो सर्वोच्च सम्मान का एक पद धारण करता है और जिस पर अनन्य रूप से सदन की प्रतिष्ठा और गरिमा बनाये रखने का दायित्व है, के विनिर्णय के विरुद्ध अपील या पुनरीक्षा हेतु न्यायालय नहीं है।
>
> ...इस न्यायालय के पास, सदन के आन्तरिक मामलों को प्रभावित करने वाले किसी विषय के संबंध में रिट-निदेश या आदेश जारी करने का अधिकार नहीं है।[73]

अन्य शब्दों में सदन को, किसी न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना, इस बात का निर्णय करने का सामूहिक विशेषाधिकार प्राप्त है कि सदन किस-किस विषय पर और किस क्रम में चर्चा करेगा। पीठासीन अधिकारी को "किसी प्रश्न विशेष पर चर्चा की अनुमति देने से रोकने वाली या विधान-मंडल के किसी भी सदन की विधायी प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने वाली या किसी भी सदन में चर्चा अथवा विचार-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने वाली कोई रिट आदि किसी भी न्यायालय द्वारा जारी नहीं की जा सकती है।"[74]

न्यायालय के समक्ष दस्तावेजों को प्रस्तुत किया जाना

सदन को अपनी कार्यवाही के संबंध में अनन्य अधिकारिता प्राप्त है, ऐसी अवस्था में उस सदन की कार्यवाही या सदन की समितियों की कार्यवाहियों की बाबत किसी न्यायालय में साक्ष्य देने या उस सदन की कार्यवाही से संबंधित किसी दस्तावेज को प्रस्तुत करने के लिए सदन की अनुमति आवश्यक है। राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति के पहले प्रतिवेदन के अनुसार, "सदन के किसी भी सदस्य अथवा अधिकारी को सदन की पहले अनुमति प्राप्त किये बिना, सदन की या सदन की किसी समिति की किसी कार्यवाही या ऐसी किसी कार्यवाही से संबंधित या जुड़े हुए या सदन के अधिकारियों की अभिरक्षा में रखे किसी दस्तावेज की बाबत, किसी न्यायालय में साक्ष्य नहीं देना चाहिये या ऐसे किसी दस्तावेज को न्यायालय में प्रस्तुत नहीं करना चाहिये।"[75]

यदि ऐसे अनुरोध उस समय प्राप्त होते हैं जब सदन सत्राधीन नहीं है, तो न्याय दिलाने में विलम्ब को रोकने के लिए, उपर्युक्त किसी मामले की बाबत न्यायालय के समक्ष साक्ष्य देने या संगत दस्तावेज प्रस्तुत करने हेतु सदन के किसी सदस्य या अधिकारी को अनुमति दिए जाने के लिए सभापति को सशक्त किया गया है। यह बात सदन के समवेत होने के तत्काल पश्चात् सदन के ध्यान में लानी होती है। तथापि, यदि इस मामले में विशेषाधिकार, विशेषकर किसी साक्षी

के विशेषाधिकार, का मामला अन्तर्ग्रस्त है या यदि सभापति को ऐसा प्रतीत होता है कि दस्तावेज का प्रस्तुतीकरण स्वयं सदन के विवेकाधिकार का विषय है, तो वह अपेक्षित अनुमति प्रदान करने से इन्कार कर सकता है और ऐसे मामले को जांच और प्रतिवेदन के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंप सकता है।

जब कभी सदन या सदन की किसी कार्यवाही से संबंधित कोई दस्तावेज किसी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित हो तब न्यायालय को दस्तावेज के स्वरूप और जिस तारीख तक यह अपेक्षित है, उसका यथावत उल्लेख करते हुए सदन से अनुरोध करना चाहिये। प्रत्येक मामले में विशेष रूप से इस बात का भी उल्लेख किया जाना चाहिये कि क्या दस्तावेज की केवल प्रमाणित प्रति भेजी जाये या न्यायालय के समक्ष यह सभा के किसी अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की जाए।

> एक सदस्य की उपस्थिति तथा एक अन्य व्यक्ति को जारी किए गए प्रवेश-पत्र के दिखाने के संबंध में राज्य सभा के एक सुरक्षा अधिकारी को अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, पटियाला हाउस के न्यायालय में 14 फरवरी, 1997 को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के लिए न्यायालय के 'समन' प्राप्त हुए थे। इसके प्रत्युत्तर में अतिरिक्त अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश को इस तथ्य से अवगत कराया गया था कि महासचिव की अभिरक्षा में रखे गए प्रलेख को सभापति/सभा की अनुमति से या तो सचिवालय के अधिकारी द्वारा विधि न्यायालय में प्रस्तुत किया जा सकता है अथवा न्यायालय से इसके लिए अनुरोध प्राप्त होने पर उसकी प्रमाणित प्रति न्यायालय को दी जा सकती है। किसी भी प्रलेख की मूल प्रति प्रदान नहीं की जाती है। राज्य सभा के सभापति की अनुमति से प्रश्नाधीन प्रवेश-पत्र के अधपन्ने की मूल प्रति 7 जनवरी, 1998 को न्यायालय में प्रस्तुत की गई थी। जब न्यायाधीश ने इस बात पर जोर दिया कि प्रलेख की मूल प्रति को न्यायालय में जमा कर दिया जाए तब सचिवालय के अधिकारी ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह उसके लिए प्राधिकृत नहीं था। तद्नन्तर, न्यायालय को पत्र द्वारा इस संबंध में स्थिति से अवगत कराया गया तथा इस संबंध में सुस्थापित संसदीय परिपाटियों के अनुरूप न्यायालय में प्रवेश-पत्र के अधपन्ने की प्रमाणित प्रति को जमा करा दिया गया।[76]

उसी तरह जब सदन के किसी अधिकारी का मौखिक साक्ष्य अपेक्षित हो तब मामले का और जिस तारीख को उसका साक्ष्य अपेक्षित है उसका यथावत उल्लेख करते हुए न्यायालय को सभा से अनुरोध करना चाहिये। उसका साक्ष्य लेने का उद्देश्य भी स्पष्ट रूप से विनिर्दिष्ट किया जाना चाहिये। जब न्यायालय को सदन की अभिरक्षा में रखे किसी दस्तावेज का प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित होता है या सदन के किसी अधिकारी का मौखिक साक्ष्य अपेक्षित होता है तब न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने के लिए विधि मंत्रालय के परामर्श से गृह मंत्रालय द्वारा एक उपयुक्त प्रपत्र तैयार किया गया है।

जब सत्रावधि के दौरान न्यायालय से ऐसा कोई अनुरोध प्राप्त हो तब वह मामला सभापति द्वारा विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाये। समिति से कोई प्रतिवेदन प्राप्त होने पर समिति के अध्यक्ष या इसके किसी सदस्य द्वारा सदन में इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाये कि सदन प्रतिवेदन से सहमत है, और सदन के निर्णय के अनुसार आगे कार्यवाही की जानी चाहिये।[77]

> "1956-57 के दौरान राज्य सभा में स्वचालित मत अभिलेखन प्रणाली के प्रतिष्ठापन के बारे में इण्डो-जर्मन ट्रेड सेंटर, कलकत्ता के साथ किए गये पत्राचार की फाइल को किसी सक्षम व्यक्ति द्वारा" अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किए जाने हेतु राज्य सभा के सचिव द्वारा अप्रैल, 1958 में प्राप्त किए गये अनुरोध के संदर्भ

में समिति द्वारा उपर्युक्त प्रक्रिया निर्धारित की गई थी। जिस उपर्युक्त फर्म ने उक्त प्रणाली के प्रतिष्ठापन हेतु सरकार के साथ एक संविदा की थी उसके साथ लोक सभा सदस्य श्री वीरेन राय का संबंध होने के कारण उसकी अनर्हता संबंधी मामला अधिकरण के समक्ष था। समिति ने सिफारिश की थी कि पत्राचार अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाये। सदन ने 2 मई, 1958 को समिति का प्रतिवेदन स्वीकार किया था।[78]

सदस्यों की उपस्थिति से संबंधित सभी अभिलेख महासचिव की अभिरक्षा में होते हैं और इनकी आपूर्ति किसी न्यायालय को ही, यदि सदन सत्राधीन है तो उसकी अनुमति से अथवा यदि सदन सत्राधीन नहीं है तो सभापति की अनुमति से, की जा सकती है।

राज्य सभा सदस्य श्री आर. गोपालकृष्णन की उपस्थिति और हाजिरी को दर्शाते हुए राज्य सभा में 1 मार्च, 1963 से 15 मार्च, 1963 तक के हाजिरी रजिस्टर के प्रमाणित उद्धरणों के लिए सेशन न्यायाधीश, कुड्डालौर से एक अनुरोध प्राप्त हुआ था। चूंकि जिस समय उक्त अनुरोध प्राप्त हुआ था उस समय सदन सत्राधीन नहीं था इसलिए सभापति ने सत्र न्यायाधीश को हाजिरी रजिस्टर के संगत उद्धरणों की सम्यक् प्रमाणित प्रति भेजने की अनुमति दी थी। उद्धरण 30 जनवरी, 1964 को भेजे गये थे और उपसभापति ने तद्नुसार सदन को सूचित किया था।[79]

जहां तक सदन के मुद्रित/प्रकाशित वाद-विवादों को किसी न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने या भेजे जाने का संबंध है, वह विचार अपनाया गया कि इस प्रयोजन के लिए सदन की अनुमति अपेक्षित नहीं है। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 78 के अधीन विधान-मंडलों की कार्यवाही, सरकार के आदेश से मुद्रित कार्यवाही की प्रतियों द्वारा साबित की जा सकती है। सदन की अनुमति प्राप्त करने का प्रश्न केवल तभी पैदा होगा जब न्यायालय को सदन की कार्यवाही से संबंधित किसी सदस्य या अधिकारी की सहायता की आवश्यकता हो या सदन के महासचिव की अभिरक्षा में रखे दस्तावेजों को प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता हो।[80]

इस संबंध में यह भी कहा जा सकता है कि हाउस ऑफ कॉमन्स में, वाद के पक्षकार, जो ऐसा साक्ष्य या सभा के अधिकारियों की अभिरक्षा में रखे किसी अन्य दस्तावेज को प्रस्तुत करना चाहते हैं, तदनुसार यह निवेदन करते हुए सभा में याचिका करते हैं कि उपयुक्त अधिकारी उपस्थित हों और सामग्री प्रस्तुत करें। तथापि, वर्ष 1980 में हाउस ऑफ कॉमन्स ने सभा की अनुमति के लिए याचिका प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता के बिना, न्यायालय में आधिकारिक प्रतिवेदनों और समिति के प्रकाशित प्रतिवेदनों और समिति द्वारा लिए गए साक्ष्यों जैसे कतिपय संसदीय पत्रों का हवाला दिए जाने की अनुमति देने के लिए सहमति दे दी।[81]

ऐसे बहुत-से अवसर आये हैं जब विभिन्न मामलों के संबंध में संवीक्षा के लिए जांच एजेंसियों (पुलिस/केन्द्रीय जांच ब्यूरो) द्वारा अभिलेखों की मांग की गई है। उन सभी मामलों में उन्हें अभिलेख दिखाए गये और अभिलेखों की प्रतियां इस शर्त के साथ उन्हें उपलब्ध कराई गईं कि इस प्रयोजनार्थ सभापति की पूर्व अनुमति प्राप्त किए बिना न्यायालय के समक्ष उनका उपयोग नहीं किया जायेगा या उन्हें प्रस्तुत नहीं किया जायेगा।[82]

गिरफ्तारी से स्वतंत्रता

कोई भी संसद्-सदस्य, सदन के सत्र के चलते रहने के दौरान या ऐसी किसी समिति, जिसका वह सदस्य हो, की बैठकों के दौरान और ऐसे सत्र/बैठक से पूर्व और पश्चात् के चालीस दिनों के दौरान किसी सिविल प्रक्रिया के अधीन गिरफ्तार या कारागार में निरुद्ध किए जाने के दायित्व के अधीन नहीं है।[83]

संसद्-सदस्यों को गिरफ्तारी से स्वतंत्रता प्रदान किए जाने की आवश्यकता इस तथ्य में निहित है कि प्रत्येक विधान-मंडल को अपने सदस्यों की सेवाओं पर सबसे पहले दावा करने का

हक है और वह व्यक्ति या प्राधिकारी, जो किसी सदस्य को उसके संसदीय कर्त्तव्यों के पालन से रोकता है या बाधित करता है, विशेषाधिकार भंग और सदन के अवमान का दोषी है।

दांडिक अपराधों या निवारक निरोध विधियों के अधीन गिरफ्तारी

तथापि, गिरफ्तारी से स्वतंत्रता के विशेषाधिकार का आशय दांडिक न्याय के या निवारक निरोध जैसे आपात विधान से संबंधित विधियों के प्रशासन में हस्तक्षेप करना नहीं है। अत: यह उन्मुक्ति केवल सिविल मामलों तक ही सीमित की गई है। मद्रास उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां किसी संसद्-सदस्य पर अभ्यारोपणीय अपराध का आरोप हो वहां गिरफ्तारी से स्वतंत्रता का विशेषाधिकार प्रदान नहीं किया जा सकता है या उसके लागू होने का दावा नहीं किया जा सकता है।[84] अत: जहां किसी सदस्य पर किसी दांडिक या अभ्यारोपणीय अपराध का आरोप लगाया गया हो वहां मुख्यत: इस आधार पर कि सदन को दांडिक विधि की प्रक्रिया से किसी सदस्य को संरक्षण प्रदान नहीं करना चाहिये, गिरफ्तारी से स्वतंत्रता का विशेषाधिकार लागू नहीं रहता है। अत: वह राज्य को यह निदेश देते हुए कि उसे विधान-मंडल के सत्र में भाग लेने के लिए समर्थ बनाया जाये, किसी परमादेश रिट की प्रार्थना नहीं कर सकता है। वस्तुत: ऐसा विशेषाधिकार या उन्मुक्ति प्रदान करने का कोई कानूनी उपबंध नहीं है।[85]

कलकत्ता उच्च न्यायालय के अनुसार, निवारक निरोध सिविल स्वरूप के होने की अपेक्षा आपराधिक स्वरूप के अधिक होते हैं। ये केवल ऐसे व्यक्तियों को निरुद्ध किए जाने की अनुमति देते हैं जो राज्य के लिए खतरनाक हैं या जिनके खतरनाक होने की संभावना है। यह सत्य है कि निवारक निरोध के आदेश तब दिए जाते हैं जब दांडिक आरोप साबित होने की संभावना तो नहीं होती किन्तु आदेश जघन्य और दांडिक या देशद्रोहात्मक क्रियाकलापों में लिप्त होने के संदेह पर आधारित होते हैं।[86]

निरुद्ध सदस्य का सत्र में उपस्थित होने का अधिकार

यदि किसी सदस्य को निवारक निरोध अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार किया जाता है और उसे वास्तविक विचारण के बिना भी वैध तरीके से निरुद्ध किया जाता है, तो वह यह दावा नहीं कर सकता है कि संसद्-सत्र में उपस्थित होने के उसके अधिकार को उसके निरोध से वरीयता प्रदान की जानी चाहिए। जहां तक निरुद्ध किये जाने के वैध आदेश का संबंध है, संसद्-सदस्य सामान्य नागरिक की अपेक्षा किसी विशेष दर्जे का दावा नहीं कर सकते हैं और उन्हें किसी अन्य नागरिक की भांति ही इसके अधीन गिरफ्तार किया जा सकता है और निरुद्ध किया जा सकता है।[87]

इस सन्दर्भ में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है[88] :

> बहस में भाग लेने और अपना मत देने के लिए संसद्-सत्र में उपस्थित होने के किसी संसद्-सदस्य के अधिकार सही अर्थ में संवैधानिक अधिकार नहीं हैं और स्पष्टत: वे मौलिक अधिकार तो बिल्कुल नहीं हैं। जहां तक निरुद्ध किये जाने के वैध आदेश का संबंध है, कोई सदस्य किसी साधारण नागरिक की अपेक्षा किसी विशेष दर्जे का दावा नहीं कर सकता है।

आपात विधान के अंतर्गत या आपराधिक आरोपों पर निरुद्ध किये गये किसी सदस्य द्वारा इस आधार पर उन्मुक्ति का दावा नहीं किया जा सकता है कि उसे सत्र में उपस्थित होना है, भले ही उसे इस आशय का आमंत्रण प्राप्त हुआ हो। इस तरह से निरुद्ध किये गये सदस्यों से सदन की बैठकों में उपस्थित होने के लिए प्राप्त होने वाले अनुरोधों को सामान्यत: सभापति द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है। यदि किसी सदस्य को निवारक निरोध संबंधी किसी कानून के अंतर्गत या दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया है और निरुद्ध किया गया है, तो सभापति सदन की बैठकों में उपस्थित होने के लिए उसे अनुमति प्रदान करने हेतु सरकार को विवश नहीं कर सकते हैं अथवा निदेश नहीं दे सकते हैं।[89] तथापि, सदस्य इसके लिए सक्षम प्राधिकारी से अनुरोध कर सकता है जो उसे सदन के सत्र में उपस्थित होने और पुन: कारागार में चले आने की अनुमति प्रदान कर सकता है।

दो मामलों में राज्य सभा के सदस्यों को पुलिस के पहरे में सत्र में उपस्थित होने की अनुमति प्रदान की गई थी।

राज्य सभा के सदस्य, श्री राज नारायण को, जिन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107/117 के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया था, उच्चतम न्यायालय द्वारा पुलिस पहरे में सदन की कार्यवाही में भाग लेने के लिए अनुमति प्रदान की गई थी। तदनुसार वह 4 और 5 सितम्बर, 1970 को सदन में उपस्थित हुए और उन्होंने प्रिवी पर्सेज समाप्त करने से संबंधित संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, 1970 पर हुई बहस में भाग लिया।[90]

राज्य सभा की सदस्या कुमारी सरोज खापर्डे को न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी नागपुर द्वारा पुलिस पहरे में सत्र में उपस्थित होने की अनुमति प्रदान की गई थी। इस मामले में प्राप्त हुई सूचना के अनुसार उन्हें इस प्रयोजनार्थ नागपुर से दिल्ली लाया गया था। तदनुसार, कुमारी खापर्डे सदन में उपस्थित हुई।[91]

एक बार जब सभापति ने राज्य सभा के एक सदस्य को "दिल्ली में अपने कतिपय पारिवारिक मामले निपटाने हेतु" एक माह के अस्थायी पैरोल पर रिहा किये जाने के संबंध में मद्रास सरकार से प्राप्त हुई सूचना के बारे में सदन को सूचित किया, तब एक सदस्य ने सभापति से उस सदस्य को सदन में उपस्थित होने की अनुमति प्रदान करने का अनुरोध किया। सभापति ने यह कहते हुए उक्त अनुरोध को अस्वीकृत कर दिया कि "यदि किसी कानून के अन्तर्गत उन्हें रिहा किया जा सकता है तो उन्हें इसकी जानकारी नहीं है।" सदन के नेता ने यह कहा : "यदि कानून उन्हें इसकी अनुमति देता है, तो उनके मार्ग में कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होगी।"[92]

निरुद्ध किये गये सदस्यों के लिए सदन से अनुपस्थिति की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।[93]

न्यायालय में साक्षी के रूप में उपस्थित होने से छूट

किसी न्यायालय में साक्षी के रूप में उपस्थित होने से छूट का विशेषाधिकार किसी सिविल मामले में गिरफ्तारी से स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार के सदृश है और इस सिद्धान्त पर आधारित है कि सदन में सदस्य की उपस्थिति अन्य सभी दायित्वों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है और सदन का अपने सदस्यों की उपस्थिति और सेवा पर सर्वोपरि अधिकार होता है और उसका इस पर पहला दावा होता है।

1 मई, 1974 को सभापति को राष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत विशेष संदर्भ के मामले में उच्चतम न्यायालय से एक सूचना प्राप्त हुई। उक्त सूचना में सभापति से यह अपेक्षा की गई थी कि वह किसी अधिवक्ता के माध्यम से न्यायालय के समक्ष उपस्थित हों और न्यायालय

के समक्ष कार्यवाही में इस तरह से भाग लें, जैसाकि वह उचित समझें। सामान्य प्रयोजन समिति ने, जिसके समक्ष इस मामले को रखा गया था, यह परामर्श दिया कि सभापति द्वारा उक्त सूचना के संबंध में कोई कार्यवाही किये जाने की आवश्यकता नहीं है। सदन ने उक्त निर्णय से अपनी सहमति प्रकट की।[94]

सदन की प्रसीमा में विधिक प्रक्रिया की तामील और गिरफ्तारी से उन्मुक्ति

सदन की प्रसीमा में सभापति की अनुमति प्राप्त किये बिना न तो कोई गिरफ्तारी ही की जा सकती है और न ही किसी सिविल या आपराधिक विधिक प्रक्रिया की तामील की जा सकती है और इस प्रकार की अनुमति प्राप्त किया जाना अनिवार्य होता है, चाहे सदन का सत्र चल रहा हो या नहीं। सदन की प्रसीमा को नियम में परिभाषित किया गया है।[95]

भारत सरकार (गृह मंत्रालय) ने सम्बद्ध प्राधिकारियों को इस आशय के निर्देश जारी किये हैं कि न्यायालयों को सभापति या सचिवालय के माध्यम से संसद्-सदस्यों के संबंध में किसी सिविल या आपराधिक विधिक प्रक्रिया की तामील नहीं करनी चाहिए। ऐसी प्रक्रिया की तामील संसद् की प्रसीमा के बाहर अर्थात किसी सदस्य के आवास पर या किसी अन्य स्थान पर संबंधित सदस्यों के बारे में सीधे ही की जानी चाहिए।[96] इस आशय के निर्देश भी दिये गये हैं कि ऐसे अत्यावश्यक मामलों के अतिरिक्त जिनमें सभा के उस दिन स्थगित होने तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती है, सदन की प्रसीमा में गिरफ्तारियां करने के लिए अनुमति प्राप्त करने हेतु संबंधित प्राधिकारियों द्वारा नैत्यिक तौर पर अनुरोध नहीं किये जाने चाहिएं। प्रत्येक मामले में ऐसे अनुरोध पर कम से कम पुलिस उप-महानिरीक्षक स्तर के अधिकारी के हस्ताक्षर होने चाहिए और सदन की प्रसीमा में गिरफ्तारी की आवश्यकता के कारणों का उल्लेख किया जाना चाहिए।[97]

सचिवालय को जब कभी राज्य सभा के किसी सदस्य के संबंध में किसी न्यायालय या किसी आयोग से तामील के लिए कोई समन, सूचना या अन्य कोई प्रक्रिया विषयक सूचना प्राप्त होती है, तब उसे उक्त सूचना को जारी करने वाले प्राधिकारी के पास लौटा दिया जाता है और सचिवालय के माध्यम से प्रक्रियाओं की तामील न करने की परम्परा की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया जाता है।[98]

सदस्यों की गिरफ्तारी आदि की सूचना

किसी सदस्य को किसी आपराधिक आरोप पर या किसी अपराध के लिए गिरफ्तार किये जाने या किसी न्यायालय द्वारा कारावास का दंड दिये जाने या किसी कार्यकारी आदेश के अन्तर्गत निरुद्ध किये जाने पर सुपुर्दगीकार न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या कार्यकारी प्राधिकारी को यथास्थिति अविलम्ब इसकी सूचना सभापति को देनी होती है और उसे सदस्य को निरुद्ध किये जाने या कारागार में रखे जाने के स्थान सहित उसे गिरफ्तार, निरुद्ध या दोष-सिद्ध ठहराये जाने के यथास्थिति कारणों का निर्धारित-प्रपत्र में उल्लेख करना होता है।[99] किसी सदस्य की गिरफ्तारी और दोष-सिद्धि के उपरांत अपील के विनिर्णयन तक या अन्यथा जमानत पर रिहा किये जाने पर सम्बद्ध प्राधिकारी द्वारा निर्धारित-प्रपत्र में इस तथ्य की भी सूचना सभापति को देनी होती है।[100] सदस्यों की सूचनार्थ इस प्रकार से प्राप्त होने वाली जानकारी की सूचना, यदि सदन का सत्र चल रहा

हो तो सभापति द्वारा सदन को दी जाती है और यदि सदन का सत्र नहीं चल रहा हो, तो उसे संसदीय समाचार भाग-2 में प्रकाशित किया जाता है।[101] तथापि, यदि किसी सदस्य की चाहे जमानत या अपील करने पर उसके उन्मोचन पर रिहाई की सूचना सदन को उसकी गिरफ्तारी की सूचना से पहले प्राप्त हो जाती है, तो सदन को गिरफ्तारी या उसके बाद उसकी रिहाई या उन्मोचन की सूचना देना आवश्यक नहीं है।[102] इसी तरह, यदि कोई सदस्य सदन को उसकी रिहाई की सूचना प्राप्त होने से पूर्व ही सदन में उपस्थित होने लगता है, तो उस सूचना को सदन में पढ़कर नहीं सुनाया जाता है, अपितु उसे सदस्यों की सूचनार्थ संसदीय समाचार में प्रकाशित कर दिया जाता है।[103]

पुलिस द्वारा मद्रास में एक सदस्य को गिरफ्तार करने और उसे निरुद्ध किये जाने के बारे में सम्बद्ध प्राधिकारियों द्वारा सूचना न भेजने के आरोप पर विशेषाधिकार उल्लंघन की शिकायत की जांच करते समय विशेषाधिकार समिति ने यह टिप्पणी की कि किसी सदस्य के कहीं आने-जाने पर प्रतिबंध लगाये जाने संबंधी तथ्य, जैसे (सदस्य को किसी औपचारिक अभिरक्षा में लिये बिना) उसे किसी स्थान विशेष से हटाया जाना, सभापति को सूचनार्थ तुरन्त बताया जाना चाहिए, चाहे इस प्रकार का प्रतिबंध विधिक अर्थों में गिरफ्तारी या निरोध हो या नहीं।[104]

औपचारिक रूप से गिरफ्तार किये बिना संसद्-सदस्यों के एक शिष्टमंडल को दंगा-प्रभावित क्षेत्र में जाने से रोकने और पन्द्रह घंटे तक प्रतीक्षारत रखने के एक मामले में विशेषाधिकार समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित टिप्पणी की[105]:

> ...यदि सम्बद्ध प्राधिकारियों ने अत्यधिक सावधानी बरतते हुए शिष्टमंडल को जिन परिस्थितियों में दंगा-प्रभावित क्षेत्रों में जाने से रोका गया था, उनके बारे में तथ्यात्मक सूचना भेज दी होती, तो यह बेहतर होता।

राज्य सभा में अनेक बार सदस्यों ने असद्भाव से अपनी गिरफ्तारी किये जाने या सदस्यों को सदन में उपस्थित होने से रोकने या सदस्यों की गिरफ्तारी की विलंब से या अनुपयुक्त जानकारी देने की शिकायतें की हैं। कुछ महत्वपूर्ण मामलों का यहां नीचे उल्लेख किया गया है :

(i) असद्भावपूर्वक गिरफ्तारी

एक शिकायत में एक सदस्य ने यह आरोप लगाया कि उन्हें एक ऐसे वारंट के आधार पर गिरफ्तार किया गया था जिसकी प्रविष्टियों में हेर-फेर किया गया था और जिस पर मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर और न्यायालय की मोहर नहीं थी। प्रथम-दृष्टया उक्त वारंट के संदेहास्पद प्रलेख प्रतीत होने पर सभापति ने इस मामले को विशेषाधिकार समिति के पास भेज दिया। समिति ने मामले की पूर्ण जांच की और इस निष्कर्ष पर पहुंची कि वारंट में किये गये परिवर्तनों के लिये प्रति-हस्ताक्षर किये जाने चाहिए थे। तथापि, गिरफ्तारी न तो अवैध थी और न ही असद्भावपूर्वक।[106]

(ii) गिरफ्तारी और उसके परिणामस्वरूप सदस्य को सदन में उपस्थित होने से रोका जाना

23 दिसम्बर, 1969 को गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने पिछले दिन संसद् भवन के बाहर एक प्रदर्शन के संबंध में कतिपय संसद्-सदस्यों की गिरफ्तारी के बारे में एक वक्तव्य दिया। एक सदस्य ने यह आरोप

लगाया कि गिरफ्तारी के कारण सदस्य उस दिन सदन में उपस्थित नहीं हो सके। उपसभापति ने सामान्य परिस्थितियों में की जाने वाली गिरफ्तारी और असामान्य परिस्थितियों में की जाने वाली गिरफ्तारी में अन्तर करते हुए विशेषाधिकार के प्रश्न को अस्वीकृत कर दिया और यह कहा कि गिरफ्तारी की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखना होता है।[107]

(iii) गलत सूचना देना

सदस्य की गिरफ्तारी आदि के संबंध में संसदीय समाचार के माध्यम से संसूचित सूचना के आधार पर संबंधित सदस्य ने सदन में बताया कि वह संसदीय समाचार में दिए गये स्थान और समय पर कभी गिरफ्तार नहीं हुआ था और न ही उसमें उल्लिखित समय पर रिहा हुआ था। इस कथन के पश्चात् सदस्य ने विशेषाधिकार भंग की सूचना दी। यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया। इस मामले की जांच करने के पश्चात् समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि गलत सूचना दी गई थी। तथापि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पुलिस अधिकारियों की ओर से सद्भाव की कमी नहीं थी और न जानबूझकर सदन को गुमराह करने का कोई प्रयत्न किया गया था, समिति ने संबंधित पुलिस अधिकारियों द्वारा उसके समक्ष व्यक्त किए गये खेद और क्षमा-याचना को स्वीकार कर लिया। समिति ने यह भी टिप्पणी की :

> जिस लापरवाही और असावधानीपूर्ण रीति से सभापति को सूचना दी गई है वह बहुत असन्तोषजनक है। राज्य सभा की सूचनार्थ सभापति को संबोधित संदेश की मर्यादा की पूर्णत: अवहेलना करते हुए यह संदेश भेजा गया है।[108]

(iv) सूचना भेजने में विलम्ब

दिनांक 1 मार्च, 1981 को एक सदस्य को गिरफ्तार किया गया और बाद में उसी दिन रिहा कर दिया गया। सभापति को दिनांक 3 मार्च, 1981 का बेतार संदेश 4 मार्च, 1981 को प्राप्त हुआ, जो उसी दिन संसदीय समाचार में प्रकाशित कर दिया गया। दिनांक 5 मार्च, 1981 को, अनेक सदस्यों ने, उक्त सदस्य की गिरफ्तारी और रिहाई की सूचना भेजने में हुए विलम्ब का मामला सदन में उठाया। इसके पश्चात् संबंधित सदस्य ने विशेषाधिकार भंग की सूचना दी जो सभापति द्वारा विशेषाधिकार समिति को सौंप दी गई। समिति ने नोट किया कि इसमें दो दिन का विलम्ब हुआ था और परिणामस्वरूप, पुलिस अधिकारियों की ओर से चूक हुई थी। समिति को सूचित किया गया कि राज्य सरकार ने इस पर अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की है/संबंधित अधिकारियों की परिनिन्दा की है। अत: समिति ने यह सिफारिश की कि इस मामले को आगे बढ़ाये जाने की आवश्यकता नहीं है।[109]

अभिरक्षाधीन किसी सदस्य के पत्र-व्यवहार को रोका जाना

गिरफ्तार या निरुद्ध किए गए किसी सदस्य के ऐसे पत्र-व्यवहार, जो राज्य सभा के सभापति या महासचिव या किसी संसदीय समिति के अध्यक्ष को संबोधित हों, को रोकना विशेषाधिकार भंग का मामला बनता है। अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि निरुद्ध किया गया व्यक्ति जब तक सदन का सदस्य रहता है तब तक वह राज्य सभा के सभापति अथवा किसी समिति के अध्यक्ष के साथ पत्र-व्यवहार करने और अभ्यावेदन देने के अधिकार का हकदार है। कार्यपालिका के किसी भी प्राधिकारी को ऐसे पत्र-व्यवहार को रोकने का कोई अधिकार नहीं है। यह अधिकार न केवल नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत की वजह से मिलता है बल्कि एक सदस्य के रूप में संविधान द्वारा गारंटीकृत उसे प्राप्त कतिपय शक्तियों और विशेषाधिकारों से भी प्राप्त होता है।[110]

पुलिस/जेल प्राधिकारियों द्वारा सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार किया जाना

सदस्यों ने विधि प्रवर्तन एजेंसियों या जेल प्राधिकारियों द्वारा अभिकथित रूप से किए गये

कदाचार अथवा दुर्व्यवहार के कारण अनेक बार विशेषाधिकार भंग की सूचनाएं दी हैं उनमें से कुछ मामले नीचे दिए गये हैं :

दिनांक 31 जुलाई, 1967 को श्री भूपेश गुप्त, श्री ए. पी. चटर्जी, श्री राज नारायण तथा श्री मुल्का गोविंद रेड्डी ने सभा के समक्ष यह निवेदन किया कि दिनांक 29 तथा 30 जुलाई, 1967 को राज्य सभा तथा लोक सभा के कतिपय सदस्यों को पुलिस द्वारा प्रधान मंत्री आवास पर जाने से गैर-कानूनी तरीके से तथा बलपूर्वक रोका गया जबकि उनके पास इस आशय के कोई आदेश नहीं थे। उन्होंने यह तर्क दिया कि यह विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला है। उन्होंने पुलिस पर कथित तौर पर बुरा बर्ताव करने का भी आरोप लगाया। गृह मंत्री श्री वाई. बी. चव्हाण ने इस संबंध में उत्तर देते हुए कहा कि चूंकि सदस्य कथित तौर पर प्रधान मंत्री आवास पर धरना देने की बात कर रहे थे, अत: पुलिस यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रधान मंत्री आवास का प्रवेश एवं निर्गम मार्ग अवरुद्ध न हो, पुलिस अधिनियम के तहत अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन ही कर रही थी। सभापति ने दिनांक 2 अगस्त, 1967 को यह निदेश देते हुए कहा कि उक्त मामले में विशेषाधिकार के उल्लंघन का कोई प्रश्न नहीं है, तथापि उन्होंने इस बात को दोहराया कि संसद् सदस्य अत्यधिक आदर एवं सम्मान के हकदार हैं तथा पुलिस अथवा अन्य प्राधिकारियों को ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे उनके कर्त्तव्यों के समुचित निर्वहन में बाधा उत्पन्न होने की संभावना हो।[111]

एक बार सदस्यों ने उस रीति, जिस रीति से एक सदस्य को गिरफ्तार किया गया था और जेल में उसके साथ जो व्यवहार किया था, के बारे में मामला उठाने का प्रयत्न किया था। इस पर उपसभापति ने यह टिप्पणी की थी कि यदि किसी सदस्य को गिरफ्तार किया जाता है तो यह आवश्यक और अनिवार्य है कि उसे समुचित चिकित्सीय देख-रेख और परिचर्या प्रदान की जाये।[112]

जेल में एक सदस्य के साथ किए गए दुर्व्यवहार संबंधी उसकी शिकायत को विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया था, किंतु संबंधित सदस्य की ओर से राज्य सरकार के कथन का खंडन करते हुए कोई उत्तर न मिलने पर समिति ने महसूस किया कि इस मामले को आगे बढ़ाने से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।[113]

दिनांक 9 मार्च, 1989 को एक सदस्य ने उसकी गिरफ्तारी के दौरान उसके साथ किए गये दुर्व्यवहार के बारे में सदन में एक विशेष उल्लेख किया था, जिसके संबंध में गृह मंत्री ने सदन में उठाये गये मामले के उत्तर में एक वक्तव्य दिया था। सभापति ने यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया था। गृह मंत्रालय की संसूचना के अनुसार, संबंधित अधिकारी को भविष्य में सावधानी बरतने की चेतावनी दिये जाने की बात ध्यान में रखते हुए समिति ने सिफारिश की थी कि इस मामले में आगे कार्यवाही किए जाने की आवश्यकता नहीं है।[114]

एक महिला सदस्य के साथ दुर्व्यवहार की घटना का मामला, 23 मई, 1990 को सदन में उठाये जाने पर, सदन द्वारा विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया था, जिसके बारे में समिति ने यह महसूस किया था कि उपसभापति (समिति के अध्यक्ष) के समक्ष संबंधित पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई क्षमा-याचना को ध्यान में रखते हुए, इस मामले को आगे बढ़ाये जाने की आवश्यकता नहीं है।[115]

एक घटना में, राज्य सभा के एक सदस्य ने यह शिकायत की थी कि जब वह संसदीय सौंध से बाहर निकल रहे थे और सदन की बैठक में भाग लेने के लिए संसद् भवन की ओर जा रहे थे, तब एक कांस्टेबल उसकी तरफ दौड़ा आया और उसका दाहिना बाजू पकड़ लिया और सब चीज ठीक-ठाक होने तक, वस्तुत: उसे बलात् एक कोने में खड़ा रखा। सदस्य द्वारा अपना परिचय दिए जाने के बावजूद ऐसा हुआ। सभापति ने यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। समिति को बताया गया कि कांस्टेबल को निलम्बित कर दिया गया है और उसके विरुद्ध विभागीय जांच के भी आदेश दे दिए गये हैं। सदस्य के साथ पुलिसमैन द्वारा किए गये कदाचार के लिए स्वयं पुलिस उपायुक्त ने भी बिना शर्त क्षमा याचना की थी। अत: समिति ने यह सिफारिश की कि मामले को आगे बढ़ाये जाने की आवश्यकता नहीं है।[116]

पुलिस अधिकारियों द्वारा एक सदस्य के साथ किए गए दुर्व्यवहार के एक और मामले में विशेषाधिकार समिति, जिसे यह मामला सौंपा गया था, ने यह टिप्पणी की थी कि सदस्य के साथ शालीनता और गरिमापूर्ण व्यवहार नहीं किया गया था जिसका कि वह एक संसद्-सदस्य होने के नाते पात्र था। तथापि, भविष्य में ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए राज्य सरकार द्वारा उठाये गये कदमों और सभी संबंधित व्यक्तियों द्वारा व्यक्त किए गये खेद और बिना शर्त की गई क्षमा-याचना को ध्यान में रखते हुए समिति ने यह सिफारिश की थी कि इस मामले को आगे बढ़ाये जाने की आवश्यकता नहीं है।[117]

ऐसे आरोप के एक मामले जिसमें पुलिस अधिकारियों ने गाली-गलौज की भाषा का प्रयोग करते हुए एक सदस्य का अनादर और अपमान किया था, विशेषाधिकार समिति, जिसे यह मामला सभापति द्वारा सौंपा गया था, ने यह सिफारिश की थी कि सभी संबंधित व्यक्तियों द्वारा व्यक्त किए गये खेद और बिना शर्त की गई क्षमा-याचना को ध्यान में रखते हुए इस मामले को आगे बढ़ाये जाने की आवश्यकता नहीं है। तथापि, समिति ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि संबंधित राज्य सरकार को संसद्-सदस्यों के साथ शासकीय स्तर पर वार्तालाप के तौर-तरीकों की बाबत केन्द्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर जारी किए गये अनुदेशों का सम्यक् अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए।[118]

किसी अभिरक्षाधीन सदस्य के साथ किए गये दुर्व्यवहार के मामले पर विचार करते हुए विशेषाधिकार समिति ने यह टिप्पणी की थी कि "संसद्-सदस्य, लोक सेवकों द्वारा अत्यधिक सम्मान प्रदान किए जाने के पात्र हैं।" समिति ने आगे यह कहा था[119] :

पुलिस या किसी अन्य प्राधिकारी को ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए या ऐसी रीति से कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे सार्वजनिक व्यक्तियों के रूप में कार्य करते हुए संसद्-सदस्यों को कोई बाधा पहुंचे। संसद्-सदस्यों के साथ व्यवहार करते समय, संबंधित प्राधिकारियों को अत्यधिक संयम और सावधानी से कार्य करना चाहिए और पूर्ण शालीनता व्यक्त करनी चाहिए जिसके कि जन-प्रतिनिधि विधिसम्मत पात्र हैं। पुलिस को अत्यधिक समझ-बूझ और सहिष्णुता से काम लेना चाहिये और उसे अल्पावधि के लिए भी किसी नागरिक, विशेषकर संसद्-सदस्यों की वैयक्तिक स्वतंत्रता पर उससे अधिक पाबंदी नहीं लगानी चाहिए जितनी कि किसी विशेष परिस्थिति से निपटने के लिए समुचित रूप से आवश्यक है।

एक बार विशेषाधिकार समिति ने संसद् भवन या दिल्ली में अन्यत्र पुलिसकर्मियों द्वारा रुकावटें उत्पन्न करने/बुरी तरह पेश आने/दुर्व्यवहार करने के बारे में सदस्यों की अनेक शिकायतों पर जिन्हें इस समिति के पास भेजा गया था, विचार किया। समिति ने पुलिस द्वारा संसद्-सदस्यों के साथ किये गये व्यवहार पर अपना क्षोभ और चिन्ता व्यक्त की और सुस्पष्टतः यह महसूस किया कि संसद् में जन-प्रतिनिधि होने के कारण कानून को लागू करने वाले प्राधिकारियों को उनके साथ अत्यधिक शालीनता और सावधानी से व्यवहार करना चाहिए क्योंकि संसद्-सदस्यों के प्रति दर्शाये गये अनादर-भाव या अशिष्टता से सदस्यों के वैयक्तिक अनादर और परेशानी के साथ-साथ संसद् की गरिमा पर भी आंच आती है। बाद में, समिति के अनुरोध पर गृह मंत्री ने अनौपचारिक रूप से समिति से भेंट की और ऐसी घटनाओं, जिनमें संसद्-सदस्य अन्तर्ग्रस्त हों, की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए उचित कदम उठाने का आश्वासन दिया। समिति ने यह सिफारिश की कि सरकार को इस प्रकार की शिकायतों से बचने के लिए सदस्यों की गरिमा के अनुरूप (1) प्रशासन और विधायकों और (2) पुलिस और विधायकों के मध्य संव्यवहार के लिए विस्तृत मार्ग-निर्देश तैयार करने चाहिए। समिति ने यह आशा व्यक्त की कि अभद्र आचरण करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध चाहे वे प्रशासन में हों या पुलिस में, ऐसे आचरण के लिए सरकार द्वारा कड़ी कार्यवाही की जायेगी और यदि उचित मार्ग-निर्देशों को अक्षरशः क्रियान्वित किया जाता है तो इसमें भविष्य में इस प्रकार की शिकायतों को कम करने में मदद मिलेगी।[120]

सदस्यों को हथकड़ी लगाया जाना

किसी आपराधिक आरोप पर गिरफ्तार किये गये किसी सदस्य के लिए हथकड़ी का प्रयोग किया जाना विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं है।

एक सदस्य ने बड़ौदा डायनामाइट मुकदमे में एक अन्य सदस्य को न्यायालय ले जाते समय हथकड़ी लगाये जाने के बारे में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की सूचना दी। उपसभापति ने यह व्यवस्था दी कि यह विशेषाधिकार का मामला नहीं है।[121]

एक अन्य अवसर पर राज्य सभा के एक सदस्य को दांडिक विधि के अंतर्गत गिरफ्तार कर जेल में बंद कर दिया गया था। उन्हें हथकड़ी लगाकर न्यायालय ले जाया गया। उनके इस तर्क को सभापति द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया कि हथकड़ी लगाना संसद्-सदस्य के विशेषाधिकार का उल्लंघन है।[122]

गृह मंत्रालय ने गिरफ्तार किये गये संसद्-सदस्यों को हथकड़ी लगाये जाने के संबंध में निर्देश जारी किये हैं। इन निर्देशों के अनुसार संसद् और राज्य विधानमंडलों के सदस्यों, सार्वजनिक जीवन में उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों जैसे बंदियों को सामान्यतया हथकड़ी लगाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए और केवल ऐसे मामलों में ही हथकड़ी का उपयोग किया जाना चाहिए जिनमें कि बंदी खतरनाक व्यक्ति हो या यह विश्वास करने के पर्याप्त आधार हों कि वह हिंसा पर उतारू हो सकता है या भागने का प्रयास कर सकता है।[123]

सदस्यों पर लांछन लगाया जाना

यह सुस्थापित है कि सदन की कार्यवाही या उसके किसी सदस्य की सदन में सेवाओं के लिए या उनके संबंध में लांछन लगाते हुए भाषण देना और लेख लिखना या निरादरपूर्ण लेख प्रकाशित करना सदन के अधिकारों और विशेषाधिकारों का उल्लंघन है। यह भी निर्णय किया गया है कि किसी सदस्य के चरित्र या सदस्य की हैसियत से उसके व्यवहार पर लांछन लगाने वाले लिखित लांछन निर्णयन विधि (कॉमन लॉ) के अन्तर्गत अपमान लेख न होते हुए भी विशेषाधिकार का उल्लंघन है। तथापि, यह निर्णय करना सदन का कार्य है कि क्या कोई विशेष प्रकाशन सदन या इसके सदस्यों, सदस्य की हैसियत से उनकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है और संसद् का अवमान है।[124]

राम गोपाल गुप्ता के मामले में विशेषाधिकार समिति ने यह निर्णय दिया कि कानपुर के एक व्यापारी द्वारा परिचालित किये गये पत्र में अन्तर्विष्ट कतिपय परिच्छेदों में सदस्यों पर सदन में कतिपय प्रश्न पूछने के आरोप लगाये गये थे और इसलिए इसे विशेषाधिकार के उल्लंघन और सदन के सदस्यों एवं स्वयं सदन के अवमान का मामला माना गया। अपराध की प्रकृति को देखते हुए समिति ने यह संस्तुति करने का निर्णय किया कि अवमानकर्ता को सदन की बार में धिग्दंडित किया जाना चाहिए। तथापि, बाद में अवमानकर्ता ने बिना शर्त और अनर्हित क्षमा-याचना कर ली। अत: समिति ने यह संस्तुति की कि सदन इस मामले में आगे कोई महत्व न देते हुए अपनी गरिमा को ही बढ़ायेगा।[125]

राम नाथ गोयनका के मामले में "इंडियन एक्सप्रेस" में प्रकाशित समाचार के अनुसार श्री गोयनका द्वारा सदन में एक मंत्री द्वारा दिये गये कतिपय वक्तव्यों को "असद्भावपूर्वक भ्रामक" होना बताया गया था। समिति ने श्री गोयनका को विशेषाधिकार के उल्लंघन और सदन के अवमान का दोषी ठहराया था। तथापि, इस बीच में श्री गोयनका के लोक सभा में निर्वाचित हो जाने पर इस मामले में किसी प्रकार की कार्रवाई की संस्तुति नहीं की गई थी।[126]

इकॉनॉमिक टाइम्स से संबंधित मामले में, जिसमें उक्त समाचार-पत्र के सम्पादकीय में, एक अल्पकालिक चर्चा के दौरान अपने भाषण के लिए एक सदस्य पर "निकृष्ट" आरोप लगाये गये थे, समिति ने यह निर्णय किया कि उक्त सम्पादकीय में कतिपय टिप्पणियों द्वारा सदस्य पर परोक्ष रूप से आरोप लगाये गये थे। तथापि, सम्पादक द्वारा समिति के समक्ष प्रकट किये गये खेद और बाद में उक्त समाचार-पत्र के एक अंक में क्षमा-याचना को प्रकाशित करने पर समिति ने यह संस्तुति की कि सदन द्वारा इस मामले में आगे कार्रवाई किये जाने की आवश्यकता नहीं है।[127]

ग्रुप प्रेजिडेंट, रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड द्वारा एक सदस्य को लिखे गए पत्र में कथित तौर पर धमकी देने और अभियोग लगाने के मामले में विशेषाधिकार समिति द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह समुक्ति की गई कि जनता तथा उनके प्रतिनिधियों के बीच सूचना के स्वच्छंद प्रवाह के हित में इस प्रकार के पत्र-व्यवहार पर, उनका लहजा अनादरपूर्ण हो अथवा सूचना सही न हो, होने के बावजूद, तब तक रोक नहीं लगाई जा सकती है जब तक कि आशय किसी सदस्य को उसके संसदीय कर्त्तव्य के निर्वहन से रोकना अथवा उसके संसदीय आचरण को प्रभावित करना न हो। समिति ने इस मामले में विशेषाधिकार का कोई उल्लंघन नहीं होने का निर्णय देते हुए यह भी सिफारिश की कि सदन यह आशा करता है कि आम जनता की ओर से संसद सदस्यों को प्राप्त होने वाले पत्र शालीन एवं संयमित भाषा में हों ताकि सदस्यों को जन-प्रतिनिधि के रूप में अपने दायित्वों का निर्वहन अपनी सर्वोत्तम क्षमता से करने में सहायता मिल सके।[128]

सदन एवं सदस्यों आदि पर आक्षेप लगाने वाले भाषण और लेख

सदन या इसकी समितियों की कार्यवाही पर या सदन के किसी सदस्य पर संसद्-सदस्य के रूप में उसके चरित्र या आचरण पर आक्षेप लगाने वाले भाषण देना या अपमान लेख मुद्रित या प्रकाशित करना विशेषाधिकार का उल्लंघन और सदन का अवमान है। इस तरह के भाषणों या लेखों को अवमान मानते हुए इसके लिए सदन इस सिद्धान्त पर दण्डित करता है कि इस तरह के कार्य सदनों के सम्मान को कम करके उनके कार्यों के निष्पादन में अवरोध उत्पन्न करते हैं।[129]

'हिन्दुस्तान' के मामले में, हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' के सम्पादकीय में "निराधार, अनर्गल व अनुचित" शीर्षक के अन्तर्गत कतिपय बातें कही गई थीं। विशेषाधिकार समिति ने, जिसके पास सदन द्वारा यह मामला भेजा गया था, यह निर्णय किया कि सम्पादकीय में उक्त विवादास्पद बातों और इसी प्रकार की दूसरी चीजों से संसद् के चरित्र और इसकी कार्यवाहियों पर और इसके सदस्यों के आचरण पर गंभीर आक्षेप लगाये गये हैं और इस तरह से इससे संसद् और इसके सदस्यों की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंची है। समाचार-पत्र के सम्पादक द्वारा क्षमा-याचना करने और खेद व्यक्त करने पर समिति ने यह संस्तुति की कि इस मामले में आगे कोई कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए।[130]

तथापि, विशेषाधिकार के उल्लंघन के लिए यह आवश्यक है कि किसी संसद्-सदस्य के प्रति लिखित आक्षेप सदन का सदस्य होने के नाते उसके चरित्र या आचरण से संबंधित होना चाहिए।[131] अत: सदन के सदस्य होने की हैसियत के अतिरिक्त, सदस्यों पर लगाये गये आक्षेप विशेषाधिकार का उल्लंघन या सदन का अवमान नहीं माने जाते हैं।

एक सदस्य ने एक शिकायत की कि बम्बई से प्रकाशित होने वाली एक साप्ताहिक पत्रिका में उनकी "कामुक प्रवृत्ति" पर बल देते हुए एक लेख में उनके बारे में कतिपय बातें कही गई हैं, ऐसा करना संसद्-सदस्य के रूप में अपने दायित्व के निर्वहन में उनकी उपयुक्तता पर आक्षेप लगाने के सदृश है। विशेषाधिकार समिति, जिसे सभापति द्वारा यह मामला सौंपा गया था, इस निष्कर्ष पर पहुंची कि सम्बद्ध सदस्य के बारे में कही गई बातों और व्यंग्य-कथन का संसद्-सदस्य की हैसियत से उसके चरित्र अथवा आचरण से संबंध नहीं है और इस तरह से इसे विशेषाधिकार उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है।[132]

इसी तरह से सदस्यों के विरुद्ध अस्पष्ट आरोपों वाले भाषणों या लेखों या विशेषत: किसी लोक-विवाद के संबंध में कदाशयता का आक्षेप लगाये बिना उनके संसदीय आचरण की कड़े शब्दों में आलोचना किये जाने को सदन अवमान या विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं मानता है।

एक ऐसे मामले में, जिसमें बम्बई उच्च न्यायालय में एक मुकदमे में प्रस्तुत किये गये शपथ-पत्र के कतिपय अंशों के आधार पर शिकायत की गई थी, विशेषाधिकार समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि उक्त अंशों

में राज्य सभा के किसी भी सदस्य के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष आरोप नहीं लगाया गया है। तथापि, समिति की राय में उसमें अन्तर्विष्ट बातें अस्पष्ट हैं।[133]

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के मामले में विशेषाधिकार समिति 'नेशनल अफेयर्स' रूपक लेख में 'शेड्स ऑफ द स्टार चेम्बर' उप-शीर्षक से प्रकाशित कतिपय लेखों पर विचार कर रही थी। समिति के अनुसार उक्त रूपक लेख के लेखक ने कड़े शब्दों का प्रयोग करते हुए बिड़ला घराने के संबंध में राज्य सभा में हुई कतिपय चर्चाओं के बारे में उतने ही कड़े शब्दों में अपने विचार व्यक्त किये हैं। तथापि, समिति ने यह महसूस किया कि ऐसे लेखों को अनावश्यक महत्व देकर उन्हें सदन के विशेषाधिकार की परिधि के अन्तर्गत लाया जाना आवश्यक नहीं है। इस सम्बन्ध में समिति ने अनुमोदन सहित ग्लैडस्टोन की निम्नलिखित टिप्पणियों को उद्धृत किया :

> विशेषाधिकार भंग का दायरा अत्यधिक विस्तृत है और इस सदन में ऐसे सभी मामलों पर ध्यान दिया जाना अत्यधिक अवांछनीय होगा जिनमें कि माननीय सदस्यों की अनुचित रूप से आलोचना की गई है। विशेषाधिकार भंग की स्पष्ट व्याख्या नहीं की जा सकती है। उचित अवसरों पर, जब सदन की राय में विशेषाधिकार के प्रयोग के लिए उपयुक्त मामला उपस्थित हो, इसके प्रयोग हेतु इसे अमूर्त रूप में ही बने रहने देना श्रेयस्कर होगा। इस हथियार का अनुचित उपयोग असमान शर्तों पर, चाहे जहां और चाहे जिसके द्वारा, संघर्ष को न्यौता देने के समतुल्य है...वस्तुत: अपना मत व्यक्त करने की स्वतंत्रता परमावश्यक है। नि:संदेह, अपना मत प्रकट करने की उक्त स्वतंत्रता का कभी-कभी दुरुपयोग भी किया जा सकता है, परन्तु मेरे विचार में इसके ऐसे दुरुपयोग पर ध्यान देना सदन की गरिमा के अनुरूप नहीं है।[134]

सदस्यों पर आक्षेप लगाना, चाहे व्यक्ति-विशेष के नाम न लिए गए हों या अन्यथा उल्लेख न किया गया हो, सदन पर आक्षेप लगाने के सदृश है।[135] राज्य सभा में ऐसे अवसर आये हैं जब किसी सदस्य के नाम का उल्लेख न किये जाने पर भी संसद्-सदस्यों के विरुद्ध दिये गये सामान्य वक्तव्यों पर सदन द्वारा विचार किया गया है।[136]

'टाइम्स ऑफ इंडिया' में "ब्लैक मनी एण्ड क्राइम" शीर्षक से प्रकाशित एक लेख से, जिसका आरंभिक वाक्य "डेकायट्स, स्मग्लर्स एण्ड बूटलैगर्स आर नाउ ऑनर्ड मेंबर्स ऑफ द लेजिस्लेचर्स" था, उत्पन्न विशेषाधिकार संबंधी एक शिकायत का निपटान करते समय एक लम्बी व्यवस्था देते हुए सभापति ने सम्पादक के इस तर्क को अस्वीकृत कर दिया कि इसमें राज्य सभा का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। अत: यहां इस मामले को नहीं उठाया जा सकता है। उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ यह निर्णय दिया कि इस प्रकार के सामान्य वक्तव्य "किसी सदस्य विशेष या किसी सदन विशेष के प्रति अपमान-लेख नहीं है, अपितु पूर्णत: अपमान-लेख है...(विवादास्पद वाक्य में) बहुसंख्या-वाचक शब्दों का प्रचुर प्रयोग सामान्यत: विधायी संस्थाओं को बदनाम करने की इच्छा को प्रकट करता है और इन्हें यह दर्शाने के लिए जानबूझकर प्रयुक्त किया गया है कि विधायक सर्वत्र कलंकित होते हैं।"[137]

अमेरिका में भारत के राजदूत द्वारा संसद् सदस्यों के विरुद्ध कथित रूप से की गई अपमानजनक टिप्पणियों के मामले में, जो दिनांक 21 अगस्त, 2007 को 'एशियन एज' में प्रकाशित हुई थीं, जिसमें संसद् सदस्यों को भारत-अमेरिका नागरिक परमाणु समझौता से संबंधित मामले में "रनिंग एराउन्ड लाइक हेडलेस चिकेंस" कहा गया था, के मामले में, अन्य बातों के साथ-साथ समिति का विचार था कि वरिष्ठ और अनुभवी राजनयिक के सार्वजनिक कथन अपने व्यक्तिगत विचार से प्रभावित नहीं होने चाहिए थे। समिति ने टिप्पणी की कि राजनयिक को संवाददाता से बातचीत करते समय अत्यधिक सावधानी तथा संयम से काम लेना चाहिए था। राजनयिक द्वारा बिना शर्त मांगी गई माफी और उनके द्वारा यह स्वीकार किए जाने के मद्देनज़र कि उनकी टिप्पणियां न केवल अशोभनीय थीं बल्कि अनावश्यक थीं, समिति ने यह सिफारिश की कि मामले को यहीं विराम दे दिया जाए।[138]

ऐसे प्रत्येक मानहानिकारक वक्तव्य के मामले को, जोकि तकनीकी दृष्टि से विशेषाधिकार भंग या सदन का अवमान हो सकता है, गंभीरता से लेना या उस पर कोई कार्यवाही करना सदन की गरिमा के अनुरूप नहीं माना जाता है।

5 सितम्बर, 1974 को सदन ने यह प्रस्ताव स्वीकृत किया कि 'प्रतिपक्ष' नामक हिन्दी साप्ताहिक में 'संसद् या चोरों और दलालों का अड्डा' शीर्षक से प्रकाशित लेख विशेषाधिकार के उल्लंघन और सदन के अवमान का एक गंभीर मामला है और सदन इस मामले में आगे कोई कार्यवाही न करके अपनी गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखेगा।[139]

साप्ताहिक समाचार-पत्र 'जदीद मरकज़' में उपसभापति के द्वारा दी गई व्यवस्था की आलोचना और राज्य सभा की कार्यवाही से हटाए गए अंश का हवाला देते हुए उपसभापति पर आक्षेप लगाए जाने के अन्य मामले में समिति ने महसूस किया कि समाचार पत्र के संपादक ने जिम्मेदार पत्रकारिता के स्थापित मानकों की हदें पार कीं और ऐसे शब्दों तथा वाक्यों का प्रयोग किया जिनसे न केवल शालीनता की सीमा का उल्लंघन हुआ बल्कि ऐसा भी प्रतीत होता है कि इनके प्रयोग के पीछे सभापीठ के प्रति दुर्भावनापूर्ण उद्देश्य भी निहित है। समिति ने यह भी समुक्ति की कि बेहतर होगा कि सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने की एक मात्र मंशा से प्रकाशित किए गए ऐसे गैर-जिम्मेदाराना लेखों को अनावश्यक महत्व न देकर सदन अपनी गरिमा की रक्षा करे।[140]

ऊपर उल्लिखित घटनाएं सदन और इसके सदस्यों आदि पर लगाये गये आक्षेपों से उत्पन्न विशेषाधिकार के मामलों में सामान्यतया प्रयुक्त किये जाने वाले कुछ आधारभूत मानदंडों का उल्लेख करती हैं। तथापि, यह निर्णय करना कि क्या विशेषाधिकार का उल्लंघन या सदन का अवमान हुआ है, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कोई भी दो मामले एक-समान नहीं होते, अत: सदन या विशेषाधिकार समिति को अपने समक्ष उपलब्ध तथ्यों का मूल्यांकन करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचने की कुछ स्वतंत्रता होती है। तथापि, इन मामलों का अध्ययन करने पर यह कहा जा सकता है कि जब सदन के सदस्यों और इस तरह से स्वयं सदन या सभापीठ या सदस्यों की हैसियत से किसी सदस्य विशेष पर आक्षेप लगाये जाने के बारे में कोई शिकायत की जाती है, तो सदन सामान्यत: निम्न सिद्धान्तों को ध्यान में रखता है:

(1) जब तक कि सदन, इसके पीठासीन अधिकारी या सदस्यों पर गंभीर आक्षेप न लगाया जाये और सभा के सम्मान में कमी कर इसके प्राधिकार को कम करने के प्रयोजन से ऐसा किया जाये, तब तक विशेषाधिकार उल्लंघन के लिए दण्डात्मक कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए।

24 मई, 1990 को सदन ने यह निर्णय करते हुए एक संकल्प स्वीकृत किया कि श्री के. के. तिवारी, भूतपूर्व संसद्-सदस्य, के वक्तव्य से, जो उस दिन के समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है, राज्य सभा के सभापति के पद की गरिमा कम हुई है और इससे सदन का अवसान हुआ है। वक्तव्य की पुष्टि के उपरान्त, अवमानकर्ता को संकल्प में यथासंस्तुत, सदन की बार में बुलाकर धिग्दण्डित किया गया।[141]

(2) संसदीय विशेषाधिकार संबंधी कानून को इस तरह से लागू नहीं किया जाना चाहिए जिससे स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त करने या आलोचना करने में किसी प्रकार की कोई रुकावट आये अथवा उत्साह भंग हो।

विशेषाधिकार समिति ने एक मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की:

...प्रत्येक नागरिक को लोक रुचि के किसी विषय पर उचित आलोचना और, या टिप्पणियां करने का अधिकार है और यह सुझाव देना सही नहीं है कि सदस्य के नाते अपने दायित्वों के निर्वहन में किसी संसद्-सदस्य की आलोचना नहीं की जा सकती। किसी नागरिक द्वारा उचित टिप्पणियां या आलोचना विशेषत: उपयुक्त शब्दों में कतिपय तथ्यों को अपने ढंग से प्रस्तुत करना, जोकि सदन में किसी सदस्य या मंत्री द्वारा कही गई बात से भिन्न हो सकता है, आपत्तिजनक नहीं होगा। तथापि, जब नागरिक उचित टिप्पणी अथवा आलोचना की हद पार कर जाता है और किसी संसद्-सदस्य पर अनुचित उद्देश्य के आक्षेप लगाने लगता है, तब वह स्वयं को सदन के दाण्डिक प्राधिकार के अन्तर्गत ले आता है।[142]

समिति ने एक मामले में समाचार-पत्रों में प्रकाशित लेखों के सन्दर्भ में यह टिप्पणी की थी:

> समिति को इस बात की जानकारी है कि समाचार-पत्रों को सार्वजनिक महत्व के मामलों में बिना किसी भय अथवा पक्षपात के अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए...किन्तु तथ्यों को तोड़-मरोड़कर और किसी विशेष प्रयोजन से आरोप लगाकर इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए।[143]
>
> एक अन्य मामले में, सभापति ने "पेट्टी लिटिल लाइज़ इन पार्लियामेंट" शीर्षक से प्रकाशित इण्डियन एक्सप्रेस के कार्यकारी संपादक के लेख से उत्पन्न विशेषाधिकार सूचना को अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी करते हुए निपटाया था कि "समाचार-पत्र घटनाओं को सदा निकट से और आलोचनात्मक दृष्टि से देखते हैं...समाचार-पत्र जनता की आंख और कान है और यदि प्रत्येक नागरिक को अन्य नागरिकों के कार्यों की आलोचना करने का अधिकार है तो समाचार-पत्रों को भी, जिनका व्यवसाय, सार्वजनिक कार्यों में अनियमितताओं को जनता के समक्ष उजागर करना है, यह अधिकार प्राप्त है।"[144]

बाद के एक अन्य मामले में सभापति महोदय ने पुन: यह टिप्पणी की:

> जब एक ऐसी स्थिति आ जाती है और लेखन पत्रकारिता की कला न रहकर प्रत्यक्ष झूठ अथवा अन्य प्रकार से संसद् और इसके सदस्यों के कार्यकरण के मार्ग की अनुचित बाधा बन जाता है केवल तभी दण्डित किए जाने की कार्यवाही करने की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में सदन अपने प्रति अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह करने में कभी हिचकिचाएगा नहीं।"[145]
>
> 'स्टार न्यूज' द्वारा अपने कार्यक्रम "ऑपरेशन चक्रव्यूह" में एक सदस्य की कथित मानहानि के एक अन्य मामले में, समिति ने समुक्ति की कि यदि जनता का असंपादित कार्यक्रम को देखने का अवसर मिलता तो भी सदस्य के बारे में प्रसारित रूपांतरण में संचालक द्वारा जो धारणा प्रक्षेपित की गई थी, धारणा उससे बिल्कुल भिन्न बनी होती। समिति ने आगे यह समुक्ति की कि बहुत अधिक बहलाने-फुसलाने और प्रलोभन का सहारा लेना, संसद् के अन्य सदस्यों की सत्यनिष्ठा पर आक्षेप है तथा अनूठी कहानियां गढ़कर किसी को फंसाने का प्रयास करना संसदीय प्रणाली की कथित खामियों को उजागर करने का तरीका नहीं है। चैनल के प्रधान कार्यकारी अधिकारी द्वारा व्यक्त किए गए खेद और उनके द्वारा समिति के इस विचार को स्वीकार किए जाने को ध्यान में रखते हुए कि कार्यक्रम दिखाने के और भी तरीके हो सकते थे जिससे संबंधित सदस्य के बारे में एक भिन्न संदेश गया होता, समिति ने सिफारिश की कि मामले को आगे न बढ़ाया जाए।[146]

(3) संसदीय जांच की प्रक्रिया का उपयोग इस प्रकार से नहीं किया जाना चाहिए कि जिससे गैर-जिम्मेदाराना वक्तव्यों को महत्व मिले। ऐसे मामलों में परिपाटी यह है कि उनकी उपेक्षा कर दी जाए[147] अथवा उन्हें ध्यान देने के उपयुक्त न समझा जाए[148] अथवा उन्हें तुच्छ स्वरूप का समझा जाए।[149]

> कई सदस्यों ने इस सदन के सदस्य श्री खुशवन्त सिंह के विरुद्ध दिनांक 6 अगस्त, 1983 के 'दि हिन्दुस्तान टाइम्स' में उनके सुविख्यात स्तंभ—विद मेलाइस टुवार्ड्स वन एण्ड ऑल के संबंध में इस आधार पर विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचना दी थी कि एक ऐसे अंग्रेज लेखक के लेखों के कुछ अंशों को हमारी संसद् के सदस्यों पर लागू कर दिया गया है, जिसने आमतौर पर राजनेताओं की और विशेष रूप से संसद्-सदस्यों को स्वयं अपनी परिलब्धियां बढ़ाने के पक्ष में मतदान करने के लिए आलोचना की थी। सभापति ने इस लेख का बुद्धिमत्तापूर्ण विश्लेषण करने के उपरांत टिप्पणी की थी कि ऐसे लेखों पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता नहीं है।[150]
>
> एक अन्य मामले में विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचना के माध्यम से सभापति का ध्यान 3 अगस्त, 1986 के नवभारत टाइम्स में प्रकाशित आचार्य रजनीश की इस टिप्पणी की ओर दिलाया गया था कि "भारत

की संसद् के सदस्य मानसिक रूप से अल्पविकसित हैं। यदि जांच की जाए तो मालूम पड़ेगा कि उनकी मानसिक आयु केवल 14 वर्ष है।" सभापति ने टिप्पणी की थी : सामान्यत: हम ऐसी टिप्पणियों को ध्यान देने योग्य नहीं समझते।...एक निराश व्यक्ति की निन्दापूर्ण टिप्पणियों अथवा गैर-जिम्मेदाराना वक्तव्यों को कोई महत्व देना हमारी प्रतिष्ठा के खिलाफ है। उन्होंने साधु-संतों को "अच्छे व्यक्तियों को अकेला छोड़ देने" तथा समाचार-पत्रों को सांसदों के खिलाफ ऐसे गैर-जिम्मेदाराना वक्तव्यों का प्रचार न करने की सलाह देते हुए यह मामला बन्द कर दिया क्योंकि ऐसा करके वे संसद् नामक महान संस्था की कोई सेवा नहीं कर रहे हैं।[151]

(4) जब दोषी व्यक्ति खेद व्यक्त करता है और बिना शर्त माफी मांग लेता है और आरोप लगाने वाले लेख अथवा वक्तव्य को वापस ले लेता है तो सामान्यत: सदन ऐसे मामलों में आगे कार्यवाही नहीं करता। भले ही सदन अथवा समिति इस निर्णय पर पहुंच चुकी हो कि विशेषाधिकार का उल्लंघन अथवा सदन का अवमान हुआ है।[152]

'थॉट' मामले में[153] ऑर्गेनाइज़र[154] के मामले में और राम गोपाल गुप्ता के मामले[155] में विशेषाधिकार समिति ने यह सिफारिश की थी कि संबंधित व्यक्तियों द्वारा खेद व्यक्त किए जाने और माफी मांगे जाने को ध्यान में रखते हुए सदन द्वारा आगे कोई कार्यवाही न की जाये। समिति की सिफारिशों से सहमति व्यक्त करते हुए सदन द्वारा प्रस्ताव स्वीकृत कर लिये गए थे।

कुछ मामलों में सदस्यों पर कथित रूप से आक्षेप लगाये जाने पर विशेषाधिकार के उल्लंघन की शिकायतों को सभा द्वारा समिति को भेजे बिना ही संबंधित समाचार-पत्रों के साथ उठाया गया और संबंधित समाचार-पत्रों से उस संबंध में स्पष्टीकरण मांगे गए। तत्पश्चात् सदन उनके द्वारा खेद व्यक्त किए जाने को ध्यान में रखते हुए इस मामले को समाप्त समझने पर सहमत हो गया था।[156]

शपथ-पत्रों/रिटों में दिये गये विवरण

सभा न्यायालयों में दायर की गयी रिट याचिकाओं या शपथ-पत्रों में दिये गये विवरणों का संज्ञान कर सकेगी यदि उनमें विशेषाधिकार का उल्लंघन या सदन का अवमान अन्तर्ग्रस्त हो।

राज्य सभा की 1 मई, 1963 को हुई बैठक में, बम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष एक व्यवसायी द्वारा दायर किये गये एक शपथ-पत्र में अन्तर्विष्ट कतिपय पैराग्राफों से उत्पन्न विशेषाधिकार के उल्लंघन की एक शिकायत को, सदन द्वारा विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया था। उक्त शपथ-पत्र में, अन्य बातों के साथ-साथ यह बताया गया था कि प्रतिवादी पूर्व-नियोजित षड्यन्त्र के तहत संसद्-सदस्यों के बीच एक पुस्तिका (पैम्फलैट) परिचालित करने में सफल हो गये ताकि उक्त व्यवसायी के विरुद्ध सदन में भाषण दिये जा सकें और मंत्रियों आदि से इस मामले में प्रश्न पूछे जा सकें। समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि आक्षेपित पैराग्राफों में राज्य सभा के किसी सदस्य के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष या सुस्पष्ट आक्षेप नहीं लगाया गया है। अत: समिति ने यह सिफारिश की थी कि इस मामले पर आगे कार्यवाही न की जाये।[157] सदन समिति के प्रतिवेदन से सहमत था।[158]

एक कम्पनी और उसके निदेशक द्वारा कलकत्ता उच्च न्यायालय में दायर की गयी एक रिट याचिका में अन्तर्विष्ट कतिपय विवरणों को लेकर एक सदस्य ने उनके विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचना दी थी। सदस्य द्वारा यह तर्क दिया गया था कि उक्त याचिका में, याचिकादाताओं ने एक प्रश्न के संबंध में राज्य सभा की कार्यवाही के कतिपय अंशों का उल्लेख किया था और ऐसा करके उन्होंने प्रश्न पूछने वाले सदस्यों तथा उसका उत्तर देने वाले मंत्री की मंशा के संबंध में संदेह व्यक्त किया था। सभापति द्वारा इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया गया जिसे सदन की उसी कार्यवाही से संबंधित एक अन्य मामला भी सौंपा गया था। संबंधित सदस्य के लोक सभा के लिए निर्वाचित हो जाने को ध्यान में रखते हुए समिति ने इस मामले में आगे कोई कार्यवाही किये जाने की सिफारिश करना आवश्यक नहीं समझा।[159]

सदस्यों पर हमला आदि

किसी सदस्य को अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के दौरान अर्थात् जब वह सदन में उपस्थित हो या जब वह सदन के लिए आ रहा हो या सदन से जा रहा हो, बाधित करना या उत्पीड़ित करना या उस पर हमला करना, विशेषाधिकार का उल्लंघन और सदन का अवमान है। तथापि, जब कोई सदस्य किसी संसदीय कर्त्तव्य का पालन न कर रहा हो तब यह विशेषाधिकार उपलब्ध नहीं होता है।

> पश्चिमी बंगाल में एक मिल के कर्मचारी के आवासीय क्वार्टरों में सदन के एक सदस्य पर कुछ पुलिस वालों द्वारा कथित रूप से हमला किए जाने के कारण कुछ सदस्यों ने विशेषाधिकार का उल्लंघन किये जाने की एक शिकायत की सूचना दी थी। यह मामला सदन में भी उठाया गया था। बाद में गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने सदन में बताया कि पश्चिमी बंगाल की सरकार ने इस आरोप का खंडन किया है। संबंधित सदस्य ने इस खंडन को "नितांत असत्य" और "सफेद झूठ" बताया था। सभापति ने इस मामले पर विचार किया और इसे विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। समिति ने, उसके समक्ष दिये गये साक्ष्य के आधार पर यह बताया कि कथित घटना उस समय घटित हुई थी जब संबंधित सदस्य उस क्षेत्र में कर्मकारों से बात कर रहा था। अत: यह नहीं कहा जा सकता है कि घटना के समय वह सदस्य संसदीय कर्त्तव्यों का पालन कर रहा था और इसलिए उसकी गिरफ्तारी तथा उस पर कथित रूप से किया गया हमला, मामले की परिस्थितियों को देखते हुए विशेषाधिकार का उल्लंघन या सदन अथवा सदस्य के अवमान का मामला नहीं बनता।[160]

सदस्यों को अभित्रस्त किया जाना

सदस्यों के संसदीय आचरण को अनुचित तरीकों से प्रभावित करने के प्रयास को अवमान समझा जा सकता है।[161]

> विशेषाधिकार समिति ने एक सदस्य की इस शिकायत पर विचार किया कि बम्बई स्थित एक फर्म के प्रबंध-निदेशक ने अपनी कम्पनी से संबंधित मामले को सदस्य द्वारा विशेष उल्लेख के जरिये सदन में उठाये जाने के संबंध में उक्त सदस्य को, दो बार दूरभाष पर तथा पत्र लिखकर संसद्-सदस्य के रूप में उसके संसदीय कर्त्तव्यों का निर्वहन करने से अभित्रस्त और निरुत्साहित किया है। संबंधित व्यक्ति के इस दावे को कि संसद्-सदस्य को उसके संसदीय कर्त्तव्यों के पालन से अभित्रस्त या निरुत्साहित करने का उसका कोई इरादा नहीं था और उसकी बिना शर्त क्षमा-याचना को ध्यान में रखते हुए समिति ने यह सिफारिश की कि इस मामले में आगे कार्यवाही न की जाये।[162]

विशेषाधिकार का उल्लंघन या अवमान किये जाने पर दण्ड देने की सदन की शक्ति

अवमान या विशेषाधिकार के उल्लंघन के लिए दण्ड देने की सदन की शक्ति को "संसदीय विशेषाधिकार के आधार तत्व" के रूप में, ठीक ही, वर्णित किया गया है तथा सदन को, अपने कृत्यों का निर्वहन करने और अपने प्राधिकार और विशेषाधिकार की रक्षा करने में समर्थ बनाने के लिए इसे आवश्यक समझा गया है।[163] ऐसी शक्ति के बिना सदन "अत्यधिक अवमान और अकुशलता से ग्रस्त हो जायेगा।" अनेक न्यायालयी मामलों में इस शक्ति का न्यायिक्त अनुमोदन किया गया है।[164]

जिस अवधि के लिए सदन, अवमान किये जाने पर किसी दोषी व्यक्ति को अभिरक्षा और कारागार में भेज सकता है, वह सदन के सत्र की अवधि तक अर्थात् सदन का सत्रावसान होने तक सीमित है।[165]

विशेषाधिकार का उल्लंघन या अवमान करने के लिए दंड

कारावास और धिग्दंड

उन मामलों में जहां विशेषाधिकार का उल्लंघन या सदन के अवमान का अपराध गम्भीर स्वरूप का हो वहां दोषी व्यक्तियों को कारावास का दण्ड दिया जा सकता है। ऐसे भी अवसर आये हैं जब नारेबाजी करने/सदन में इश्तहार या अन्य आपत्तिजनक वस्तु फेंककर सदन का घोर अवमान करने के लिए राज्य सभा ने दोषी व्यक्तियों को कारावास की सजा सुनाई है। (आगे देखिए) अपेक्षाकृत कम गम्भीर मामलों में (दो अवसरों पर), अवमान करने वाले व्यक्तियों को सदन में बुलाकर धिग्दंडित किया गया। (पीछे देखिए)

जुर्माने का अधिरोपण

एक पुस्तक के सहलेखकों के लिए कारावास/धिग्दंड की सिफारिश करते समय विशेषाधिकार समिति ने यह विचार किया था कि उक्त लेखकों द्वारा, जोकि प्रकाशक भी थे, किये गये अवमान में आर्थिक अपराध के लक्षण विद्यमान थे और इस अवस्था में उन व्यक्तियों के अनधिकृत प्रकाशन से उन्हें धन का लाभ हुआ है और इसलिए उन पर जुर्माना किया जाना ही सबसे उपयुक्त शास्ति होगी। तथापि, इस विषय पर, कि क्या सदन को विशेषाधिकार के उल्लंघन के लिए जुर्माने की शास्ति अधिरोपित करने की शक्ति प्राप्त है, विधि और पूर्व निर्णयों की जांच करने और इस मामले में सक्षम राय लेने के पश्चात् समिति को, सदन के पास जुर्माने की शास्ति अधिरोपित करने की शक्ति होने पर संदेह हुआ।[166]

> महान्यायविदों ने, जिनसे समिति ने अनौपचारिक रूप से राय मांगी थी, यह टिप्पणी की थी : "यदि सदन की यह राय है कि दोषी व्यक्तियों, जो सदन के सदस्य अथवा बाहरी व्यक्ति हैं, के विरुद्ध एक बेहतर भयोपरापी के रूप में जुर्माना अधिरोपित किया जा सकता है और ऐसी शक्ति कभी ब्रिटेन के 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के पास थी जो प्रयोग न किए जाने के कारण अप्रचलित हो गई है और जिसे अब पुनर्जीवित किया जाना चाहिये जिसके लिए उचित तरीका यही होगा कि इसे किसी एक नियमित विधान द्वारा पुनर्जीवित किया जाये न कि किसी एक सदन द्वारा संकल्प पारित करके इसे पुनर्जीवित किया जाये।"[167]
>
> अभिलेख न्यायालय के रूप में हाउस ऑफ कॉमन्स के दर्जे पर संदेह व्यक्त किया गया है तथा कॉमन्स ने 1666 से किसी भी तरह के जुर्माने का अधिरोपण नहीं किया है। 1966 और 1977 में प्रवर समिति तथा 1999 में संसदीय विशेषाधिकार संबंधी संयुक्त समिति ने जुर्माना अधिरोपित करने के लिए कॉमन्स को सांविधिक अधिकार के संबंध में विधान पुर:स्थापित करने की सिफारिश की है।[168]

दोषी व्यक्तियों का अभियोजन

संयुक्त लेखकों के उपर्युक्त मामले में भी समिति ने यह सिफारिश की थी कि सरकार को प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम और भारतीय दंड संहिता के अधीन दोष के लिए लेखकों (और अन्य प्रकाशकों) के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही प्रारंभ करने की दृष्टि से उक्त मामले की जांच करनी चाहिये।[169]

सदन द्वारा अपने ही सदस्यों को दंड दिया जाना

सदन की शास्तिक शक्ति का प्रयोग न केवल किसी बाहरी व्यक्ति के विरुद्ध किया जाता है बल्कि सदन के किसी सदस्य के विरुद्ध भी किया जाता है। सदन से भिन्न किसी अन्य प्राधिकरण

अथवा अभिकरण को ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह सदन में किसी सदस्य द्वारा की गई भूल-चूक के लिए उसे दण्डित करे। सदन की अपने सदस्यों पर अधिकारिता और सदन के भीतर अनुशासन लागू करने का उसका अधिकार पूर्ण और अनन्य है।

राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियम सभापति को सदन में व्यवस्था बनाये रखने और अपने निर्णयों को लागू करने की शक्ति प्रदान करते हैं[170] और सदस्यों को सदन से बाहर निकालने और उनके निलम्बन का उपबंध करते हैं ताकि सभापति, सदस्यों द्वारा अव्यवस्था फैलाने, सभापीठ के प्राधिकार की अवहेलना किए जाने और सदन की कार्यवाही को जानबूझकर बाधित करके उक्त नियमों का दुरुपयोग किए जाने पर, उन पर अनुशासन लागू कर सके।[171]

यदि कोई उच्छृंखल सदस्य सभापीठ द्वारा सदन से बाहर निकलने का निदेश दिए जाने के बावजूद भी, सदन से बाहर नहीं जाता है तो सभापति कहकर उसे जबरदस्ती सदन से बाहर निकलवा सकता है और उसके निलम्बन के लिए तत्काल एक प्रस्ताव रख सकता है। यदि वह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो संबंधित सदस्य निलम्बित कर दिया जाता है।[172]

किसी सदस्य को उसके विच्छृंखल व्यवहार के लिए न केवल सदन के भीतर बल्कि सदन के बाहर उसके किसी ऐसे आचरण के लिए भी दंडित किया जा सकता है, जिससे सदन की गरिमा और उसके प्राधिकार को क्षति पहुंची हो। सदन के बाहर सदस्यों के किसी ऐसे आचरण के लिए, जो सदन और उसके सदस्यों की गरिमा के प्रतिकूल हो और सदस्यों से अपेक्षित व्यवहार के स्तर से असंगत हो, सदस्यों को दण्डित करने हेतु सदन की शक्ति का विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदन में उल्लेख किया गया है जो 1976 में राज्य सभा के सदस्य श्री सुब्रह्मण्यम स्वामी के आचरण और क्रिया-कलापों की जांच करने के लिए नियुक्त की गई थी। श्री स्वामी को सदन से निकाले जाने हेतु 15 नवम्बर, 1976 को उपस्थित किए गये और उसी दिन सर्वसम्मति से स्वीकृत किए गये प्रस्ताव पर उन्हें सदन से निष्कासित किया गया था। (पीछे देखिए)

तथापि, किसी सदस्य के निष्कासन के लिए सदन की शक्ति के बारे में विरोधाभासी निर्णय दिये गये हैं। 1977 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने यह घोषित किया था कि भारत में सदनों को निष्कासन की शक्ति प्राप्त नहीं है।[173]

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने 1966 में यह घोषित किया था कि सदनों को ऐसी शक्ति प्राप्त है।[174] ऐसे ही उच्चतम न्यायालय ने राजाराम पाल बनाम माननीय अध्यक्ष, लोक सभा और अन्य (2007) के मामले में संसद् से सदस्यों को निष्कासित करने के संसद् के अधिकार का अनुमोदन किया। न्यायालय ने यह समुक्ति की कि संसद् के पास संसद् की आंतरिक कार्रवाई को प्रभावित करने वाले रिट, निर्देश या आदेश जारी करने की अधिकारिता नहीं है। ऐसे ही सदन का पीठासीन अधिकारी, सदन की कार्यवाही को विनियमित करने की उसकी शक्ति के प्रयोग में विफलता के लिए किसी न्यायालय की अधिकारिता के अधीन नहीं है।

दर्शक दीर्घा से विघ्न डालना

दर्शकों द्वारा सदन की कार्यवाही में या तो नारेबाजी करके या इश्तहार आदि फेंककर व्यवधान डाले जाने को सदन द्वारा एक गम्भीर अपराध और सदन का घोर अवमान माना जाता है। ऐसे सभी मामलों में, चूंकि सबके सामने सदन का अवमान किया जाता है, इसलिए सदन, सामान्यत:

दोषी व्यक्ति की बात सुने बिना ही, उसके कार्य के लिए उसे दण्डित करने हेतु तुरंत कार्यवाही करता है। ऐसे मामलों में अवमान करने वाले व्यक्ति को अपराध की गम्भीरता को देखते हुए एक विनिर्दिष्ट अवधि के लिए कारावास का दण्ड दिया जाता है या फिर उसे चेतावनी दी जाती है।

> 21 दिसम्बर, 1967 को, एक व्यक्ति को, जिसने दर्शक दीर्घा से नारेबाजी की थी और सदन में कुछ इश्तहार फेंके थे, एक प्रस्ताव स्वीकृत होने पर गम्भीर अपराध और घोर अवमान करने का दोषी पाया गया था और उसे सत्र के समापन तक साधारण कारावास की सजा दी गयी थी और उसे दिल्ली की तिहाड़ जेल में निरुद्ध किया गया था। जब उक्त प्रस्ताव पर चर्चा चल रही थी तब सदन के नेता ने, जिन्होंने उक्त प्रस्ताव को उपस्थित किया था, यह बताया कि ऐसी ही एक घटना घटित हो चुकी है। उन्होंने तद्नुसार दूसरी घटना के लिए भी एक और प्रस्ताव उपस्थित किया। मत-विभाजन के द्वारा दोनों ही प्रस्ताव स्वीकृत हुए। तद्नुसार, सभापति द्वारा वारंट जारी किए जाने और जेल अधीक्षक को सम्बोधित किए जाने पर दोषी व्यक्तियों को जेल में रखा गया। जेल अधीक्षक द्वारा यह स्पष्टीकरण मांगे जाने पर कि दोनों व्यक्तियों को किस तारीख को और किस समय रिहा किया जाये, सदन ने चर्चा के पश्चात् एक प्रस्ताव पारित किया कि संबंधित व्यक्तियों को प्रस्ताव की तारीख को म.प. 5 बजे रिहा कर दिया जाये चूंकि सत्र उस दिन समाप्त हो रहा था।[175]
>
> एक अन्य घटना में दर्शक दीर्घा से सदन में इश्तहार फेंकने वाले दो व्यक्तियों को सदन द्वारा एक प्रस्ताव के जरिये उस दिन सदन के उठने तक रक्षा-प्रेक्षा अधिकारी की अभिरक्षा में निरुद्ध किए जाने का आदेश दिया गया था।[176]
>
> एक दूसरी घटना में 18 मार्च, 1982 को चौदह व्यक्तियों ने दर्शक दीर्घा से नारे लगाये थे। उन्हें रक्षा-प्रेक्षा कर्मचारियों द्वारा तत्काल अभिरक्षा में ले लिया गया। सदस्यों ने इस घटना पर अपनी चिन्ता व्यक्त की। मध्याह्न-भोजन अवकाश के दौरान सदन के नेता ने अपने दलों के नेताओं के साथ परामर्श किया और सदन के पुन: समवेत होने के पश्चात् उन्होंने सदन का उक्त व्यक्तियों द्वारा अवमान किये जाने के संबंध में एक प्रस्ताव उपस्थित किया। जिसमें यह सिफारिश की गई कि उक्त व्यक्तियों को 24 मार्च, 1982 के मध्याह्न 12 बजे तक साधारण कारावास की सजा देकर दिल्ली की तिहाड़ जेल में निरुद्ध किया जाये।[177]
>
> 23 मार्च, 1982 को एक महिला दर्शक को, जिसने दर्शक दीर्घा से नारे लगाये थे, चेतावनी देकर छोड़ दिया गया (क्योंकि रक्षा-प्रेक्षा अधिकारी की सूचना के अनुसार वह मानसिक रूप से व्यथित अवस्था में थी)।[178]
>
> एक युवा दर्शक को, जिसने दर्शक दीर्घा से नारे लगाने का प्रयत्न किया था, उसके द्वारा कार्यवाही में विघ्न डाले जाने से पहले ही पकड़ लिया गया। उसे एक सख्त चेतावनी देकर, जिसका कि उपसभापति ने सुझाव दिया था और जिस पर सदन ने अपनी सहमति व्यक्त की थी, छोड़ दिया गया।[179]
>
> 21 नवम्बर, 1983 को एक दर्शक ने दर्शक दीर्घा से नारे लगाये थे और सदन में एक चप्पल फेंकी थी। इस पर सदन ने उसे सत्र की समाप्ति तक (जो 22 दिसम्बर, 1983 को समाप्त हुआ था) साधारण कारावास की सजा देने के संबंध में संकल्प पारित किया था।[180]

सदन में जानबूझकर भ्रामक वक्तव्य देना

यह निश्चित है कि जानबूझकर दिए गए भ्रामक वक्तव्य को विशेषाधिकार का उल्लंघन और सदन का अवमान माना जाये। 'मे' के अनुसार, जानबूझकर दिए गए भ्रामक वक्तव्य को सदन अपना अवमान मान सकता है। 1963 में 'हाउस ऑफ कॉमन्स' ने यह संकल्प पारित किया था कि भूतपूर्व सदस्य ने वैयक्तिक वक्तव्य देते हुए यह स्वीकार किया था कि उसने पहले जो कुछ कहा था वह सही नहीं था और जिसके लिये वह घोर अवमान करने का दोषी है।[181] इस मुद्दे से संबंधित एक मामले की जांच करते समय राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति ने 'मे' की टिप्पणियों के निहितार्थों का इस प्रकार उल्लेख किया था:

समिति के विचार से, उपर्युक्त टिप्पणी से यह निष्कर्ष निकलता है कि भ्रामक अथवा भ्रम पैदा करने वाला कार्य, भ्रम में डालने या धोखा देने के इरादे से जानबूझकर किया गया होना चाहिए। अत: सदन को जानबूझ ाकर भ्रम में डालने के अभिकथित अपराध में किसी स्पष्ट उद्देश्य का होना आवश्यक है। समिति यह जानती है कि सदन के समक्ष ऐसे बहुत-से वक्तव्य दिए जाते हैं जो कभी-कभी पूर्णत: सत्य नहीं पाये जाते हैं। ऐसे बहुत-से वक्तव्य हो सकते हैं जो सदन के समक्ष दिए गए हों और जिनके बारे में अंत में यह पाया जाये कि वे, वक्तव्य देने वाले व्यक्तियों को उपलब्ध करायी गई गलत सूचना पर आधारित थे। इसलिए यदि व्यक्तियों ने ऐसे वक्तव्य इस विश्वास के साथ दिए हैं कि वक्तव्य में दी गई सूचना सत्य है तो समिति के विचार से ऐसे वक्तव्य अवमान करने वाले नहीं कहलायेंगे। इस संबंध में कौल और शकधर ने भी यह टिप्पणी की है :

> यदि किसी सदस्य या मंत्री द्वारा सदन में कोई वक्तव्य दिया जाता है जिसके बारे में किसी अन्य सदस्य का विश्वास है कि वह असत्य, अपूर्ण या गलत है तो उससे विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं होता। यदि कोई गलत वक्तव्य दिया जाता है तो ऐसे अन्य उपाय हैं जिनके द्वारा इस मामले का निर्णय किया जा सकता है। विशेषाधिकार के उल्लंघन या सदन के अवमान का मामला बनाने के लिए यह साबित करना होगा कि वक्तव्य न केवल गलत या भ्रामक था बल्कि यह सदन को भ्रम में डालने के लिए जानबूझकर दिया गया था। विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला केवल तभी उत्पन्न हो सकता है जब कोई सदस्य या मंत्री जानबूझकर, सोद्देश्य और जानते हुए कोई असत्य और गलत वक्तव्य दे। [कौल और शकधर, छठा संस्करण, खण्ड-I, पृष्ठ 305]

समिति ने लोक सभा अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर की गई टिप्पणियों/दिए गये विनिर्णयों का भी उल्लेख किया और विचार व्यक्त किया कि भ्रामक वक्तव्यों से उत्पन्न विशेषाधिकार के उल्लंघन के संदर्भ में सोद्देश्यता या भ्रमित करने का इरादा, अपराध के मूल तत्व हैं।[182]

पुलिस अधिकारी की गिरफ्तारी और बागपत में एक महिला के साथ बलात्कार के समाचार के बारे में मंत्रियों के अभिकथित भ्रामक वक्तव्यों के संबंध में सदन में उठाये गये दो मामलों का निपटारा करते हुए सभापति ने इस संकल्पना को इस तरह स्पष्ट किया था:

> इस संबंध में भ्रमित करने का आशय केवल यही होना चाहिए कि मंत्री कुछ ऐसी मिथ्या बात कहकर...जो सत्य नहीं थी, सदन को गलत दिशा की ओर ले गये हैं। इस मामले की जांच-पड़ताल वक्तव्य देने वाले व्यक्ति के आचरण से संबंधित है न कि किसी सामान्य मामले से।[183] सदन को भ्रमित करने के आरोप की पुष्टि निम्नलिखित आधारों में से किसी एक आधार पर ही होती है अर्थात् :
>
> (1) मंत्री ने कोई ऐसा वक्तव्य दिया जिसके गलत होने की उसे जानकारी थी; या
>
> (2) उसने कोई ऐसा वक्तव्य दिया जिसके बारे में उसे स्वयं यह विश्वास नहीं था कि वह सत्य है; या
>
> (3) उसने सम्यक् सावधानी बरते बिना तथा ध्यान दिए बिना कोई ऐसा वक्तव्य दिया है जिसमें उसने असावधानीवश किसी बात के सत्य होने का दावा किया है, जो बाद में असत्य निकली है।[184]

पहली दो परिस्थितियों में यह स्पष्ट है कि मंत्री द्वारा जानबूझकर भ्रमित करने का मामला बनना चाहिए। तीसरा मामला सीमा-रेखा पर है, जिसमें वक्तव्य देने वाला व्यक्ति इस बारे में अत्यंत उदासीन है कि वह जो कुछ कह रहा है वह सत्य है अथवा नहीं। किसी व्यक्ति से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह किसी बात के सत्य अथवा असत्य होने का पता लगाये बिना ही उसके बारे में कोई वक्तव्य दे। यदि वह ऐसा करता है तो बाद में यह पता लगने पर कि जिस बात के सत्य होने का उसने दावा किया था वह असत्य थी, उसे अपनी लापरवाही और विवेकहीनता के लिए कीमत चुकानी चाहिये। यह बात उस स्थिति में लागू नहीं होती है जब कोई व्यक्ति उन समुचित स्थानों पर जहां उसे पूछताछ करनी चाहिये, सम्यक् पूछताछ करने और उन

सभी व्यक्तियों से जिनके बारे में यह संभावना है कि उन्हें तथ्य की जानकारी होगी, जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् इस विश्वास के साथ कोई वक्तव्य देता है कि वह वक्तव्य सत्य है तो वह इस तरह के आरोप से बच जायेगा क्योंकि जिन लोगों से उसने पूछताछ की थी, उन लोगों ने उसे भ्रमित किया था। अत: किसी तथ्य के बारे में यह जानते हुए कि वह असत्य है या उसके सत्य होने का विश्वास न होते हुए या सच के बारे में इतना अधिक उदासीन रहते हुए कि इस बात की परवाह न करना कि जो कुछ उसने कहा है वह सत्य है अथवा नहीं, तथ्य की जानबूझकर गलत बयानी करना ही आरोप का मुख्य आधार है।[185]

इस संबंध में मंत्रियों के अभिकथित भ्रामक वक्तव्यों के आधार पर सदन में उठाये गये और सभापति द्वारा निपटाये गये कुछ अन्य महत्वपूर्ण मामलों का भी उल्लेख किया जा सकता है।

> किसी मंत्री के विरुद्ध, सभा में उसके द्वारा जानबूझकर भ्रामक वक्तव्य दिए जाने के आरोप को विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं माना जाएगा, यदि मंत्री का यह दावा है कि उसने उस समय उपलब्ध अपनी जानकारी के आधार पर सभा में वक्तव्य दिया था।[186]
>
> किसी समाचार-पत्र के सम्पादकीय लेख में संबंधित मंत्री द्वारा दिए गए उस वक्तव्य का खण्डन किया गया था जिसमें इस बात से इंकार किया गया था कि केन्द्रीय जांच ब्यूरो के बारे में उनके मंत्रालय ने कतिपय सूचना दी थी। दो सदस्यों ने मंत्री के विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचना दी थी। तब संबंधित मंत्री ने सदन में जो वक्तव्य दिया है उसमें उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ यह दावा किया है कि उन्होंने उस समय अपनी जानकारी के अनुसार कथित वक्तव्य दिया था। सभापति ने अपनी व्यवस्था देते हुए यह कहा था कि वह यह मानने में असमर्थ हैं कि इस मामले में यह साबित हो गया है कि मंत्री ने सदन में ऐसा कोई वक्तव्य दिया था, जिसके बारे में उस दिन उन्हें यह विश्वास था कि वह असत्य है और इस तरह उन्होंने सदन को भ्रमित करने का प्रयास किया था। विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला उठाये जाने के लिए सहमति देने से इंकार कर दिया गया था।[187]
>
> एक प्रश्न का अभिकथित रूप से गलत उत्तर दिए जाने से उत्पन्न एक और मामले में सभापति ने कहा था कि शिकायतकर्त्ता सदस्य की गलतफहमी न्यायालय में मूल अभियोजन और बाद में कार्यवाही के न्यायनिर्णयन के संबंध में स्थिति को संभवत: गलत ढंग से समझने से उत्पन्न हुई प्रतीत होती है।[188]
>
> सदन को कथित रूप से भ्रमित किए जाने के एक और मामले में संबंधित मंत्री ने एक प्रश्न के अपने उत्तर के संशोधनार्थ एक विवरण सभा पटल पर रखा था और सभापति का विचार था कि मंत्री का सभा को भ्रमित करने का कोई इरादा नहीं था।[189]
>
> राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री के बीच पत्र-व्यवहार के मामले में प्रधान मंत्री द्वारा सदन को अभिकथित रूप से भ्रमित किए जाने से उत्पन्न एक विशेषाधिकार का मामला सदस्यों द्वारा सदन में उठाया गया था जिसका निपटारा सभापति द्वारा संविधान के उपबंधों, ब्रिटेन और भारत के पूर्व निर्णयों के संदर्भ में किया गया था। अन्त में उन्होंने यह टिप्पणी की थी : "सभापीठ अपने प्रति पवित्र विश्वास को तभी बनाये रख सकेगी जब वह क्षणिक उत्तेजना की उपेक्षा करते हुए संविधान निर्माताओं द्वारा दिखाए गये पथ का अनुसरण करे।"[190]
>
> बोफोर्स सौदे में कोई बिचौलिया न होने के विषय में प्रधान मंत्री द्वारा अधिकथित रूप से भ्रामक वक्तव्य दिये जाने से संबंधित एक और मामले में सभापति ने प्रधान मंत्री से टिप्पणियां मांगने के पश्चात् सदन में एक ब्यौरे-वार व्यवस्था दी थी और माना था कि प्रधान मंत्री का वक्तव्य न तो गलत था और न ही वह सदन को जानबूझकर भ्रमित करने के लिए दिया गया था और इसलिए उनके विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन के आरोप की पुष्टि नहीं होती।[191]

ऐसे मामले जिनमें विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं होता

सदस्यों की डाक को बीच में रोकना

दो सदस्यों द्वारा 26 अगस्त, 1981 को विशेषाधिकार के उल्लंघन की दो सूचनाएं दी गई थीं जिनमें यह आरोप लगाया गया था कि उनकी डाक बीच में रोकी जा रही है, खोली जा

रही है और सेंसर की जा रही है जिससे उनके संसदीय कर्त्तव्यों के निष्पादन में बाधा पड़ी है। सभापति ने अपनी व्यवस्था में (जो उपसभापति द्वारा), भारतीय डाकघर अधिनियम, 1898 की धारा 26(1) का उल्लेख किया जिसमें लोक-आपात की स्थिति या सार्वजनिक सुरक्षा या शांति के हित में वस्तुओं को बीच में रोकने या निरुद्ध करने के लिए सरकार को प्राधिकृत किया गया है और उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि "इस धारा में, धारा के प्रवर्तन में किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग को छूट प्रदान नहीं की गई है। चूंकि एक अकेले व्यक्ति द्वारा विशिष्ट विशेषाधिकारों हेतु कोई दावा नहीं किया जा सकता अत: सदन या संसद् के सदस्यों की हैसियत से यह दावा किया जा रहा है। यह बात निश्चित है कि इस देश के कानूनों के लागू होने के मामले में संसद्-सदस्यों को कोई विशेष दर्जा प्राप्त नहीं है। लोक सभा और अन्यत्र के विनिर्णयों का हवाला देने के पश्चात् सभापति ने यह व्यवस्था दी कि इस विषय में विशेषाधिकार का कोई मामला नहीं बनता। तथापि, उन्होंने टिप्पणी की कि[192]:

> ...यदि यह साबित हो जाता है कि कोई असद्भावनापूर्ण कार्यवाही की गई है या इस सदन के माननीय सदस्यों के विधिसम्मत कर्त्तव्यों में कोई हस्तक्षेप किया गया है, तो उस स्थिति में यह व्यवस्था बचाव नहीं कर सकेगी। मैं माननीय लोक सभा अध्यक्ष की टिप्पणियों को भी सादर दोहराता हूं "मैं इस विषय के समापन से पहले एक टिप्पणी करना चाहूंगा और वह टिप्पणी, मेरे कार्यालय जिसमें लोक सभा सचिवालय भी सम्मिलित है, द्वारा सदस्यों को भेजे गये पत्रादि के बारे में है। मैं आशा करता हूं कि संबंधित प्राधिकारी यह महसूस करेंगे कि ऐसे पत्रादि की ओर सेंसरकर्ता-प्राधिकारियों का ध्यान आकर्षित नहीं होगा।" यही बात आवश्यक परिवर्तनों के साथ इस सदन में लागू होगी।

कुछ वर्षों के पश्चात् जब किसी सदस्य द्वारा ऐसा ही मामला पुन: उठाया गया जिसमें सदस्य ने यह शिकायत की थी कि तमिलनाडु के मुख्य सचिव ने संबंधित सदस्य की डाक वस्तुओं को सेंसर किए जाने का आदेश दिया है तब सभापति ने अपनी उपर्युक्त टिप्पणियों को ही दोहराया था।[193]

आरोप-पत्र में सदस्यों को बदनाम करने का प्रयास

कुछ सदस्यों ने विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचनाएं दी थीं जिनमें यह कहा गया था कि रामस्वरूप गुप्तचरी के मामले में, जिसका व्यापक प्रचार हुआ था, दायर किए गये आरोप-पत्र में उनके नामों का उल्लेख किया गया है जिससे उनकी सार्वजनिक छवि बिगड़ी है और उनके संसदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में बाधा डाली गई है। यह भी दावा किया गया था कि आरोप-पत्र में उनको बदनाम करने के इरादे से, सदस्यों के रूप में उनके आचरण पर प्रश्नचिन्ह लगाया गया था। सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की कि अभियुक्त द्वारा अपने संदिग्ध कामकाज को स्वत: बढ़ाने हेतु संबंध स्थापित करने के लिए उसके द्वारा अपनाई गई कार्य-प्रणाली का उल्लेख करते हुए आरोप-पत्र में उनके नाम का उल्लेख किए जाने मात्र से यह प्रकट नहीं होता है कि संबंधित संसद्-सदस्यों ने कोई असद्भावपूर्ण कार्य किया है। इसके अलावा इन संसद्-सदस्यों को न तो सह-अभियुक्त बनाया गया है और न साक्षी ही बनाया गया है। संबंधित सदस्यों ने सदन में वैयक्तिक स्पष्टीकरण देकर अपनी स्थिति पहले ही स्पष्ट कर दी थी इसलिए सभापति ने मामले को वहीं पर समाप्त कर दिया।[194]

दल से संबंधित मामले

सुस्थापित परिपाटी के अनुसार, दल की बैठकों में जो कुछ कहा जाता है सभापति उस पर ध्यान नहीं देते। सदस्यों द्वारा दल की बैठकों से संबंधित मामलों का उल्लेख किए जाने या उन्हें उठाये जाने के संबंध में दी गई कुछ व्यवस्थाएं नीचे दी गई हैं:

> एक सदस्य ने इस आशय के एक समाचार का उल्लेख किया था कि वित्त उपमंत्री (श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा), जिनके विरुद्ध पिछले दिन सदन में प्रश्नकाल के दौरान कुछ आरोप लगाये गये थे, इस मामले को कांग्रेस संसदीय दल की बैठक में उठायेंगी। सदस्य चाहते थे कि मंत्री महोदया इस संबंध में सदन में एक वक्तव्य दें। इस पर सभापति ने यह व्यवस्था दी कि दल के भीतर जो कुछ हुआ है उसमें उनकी दिलचस्पी नहीं है। यदि सार्वजनिक वजह से मंत्री, जनहित में सदन में वक्तव्य नहीं देता और संसदीय दल की बैठक में वक्तव्य देता है तो सभापीठ इस संबंध में उनसे पूछताछ करेगी।[195]

> एक सदस्य ने सभापति का ध्यान इस समाचार की ओर आकर्षित किया कि कांग्रेस के दो सदस्यों द्वारा, सदन में भाषण देते हुए सरकार की कटु समालोचना करने पर प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रियों द्वारा उन्हें डांटा और डराया गया था। सदस्य का विचार था कि इससे उक्त सदस्यों के सामान्य संसदीय कृत्यों में हस्तक्षेप किया गया है और इसलिए यह विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला बनता है। सभापति ने यह टिप्पणी की थी, "मैं नहीं समझता कि किसी दल की बैठक में घटित सामान्य घटनाओं को विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला बनाया जा सकता है।"[196]

> 'बिरला ग्रुप ऑफ कम्पनीज' के मामले में हुए वाद-विवाद के संबंध में उप-प्रधानमंत्री की आलोचना करते हुए, किसी सदस्य द्वारा की गई कतिपय टिप्पणियों के लिए कांग्रेस पार्टी द्वारा उस सदस्य के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही किए जाने के प्रस्ताव के समाचार के बारे में एक अन्य सदस्य ने विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति मांगी थी। इस पर सभापति ने अपनी सहमति नहीं दी थी।[197]

> राष्ट्रपति के चुनाव में एक सदस्य द्वारा उक्त चुनाव के दौरान अपनी अन्तरात्मा के अनुसार मतदान करने के अपने इरादे की सार्वजनिक घोषणा कर दिये जाने पर उसे डराये जाने के संबंध में एक अन्य सदस्य ने कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष और महासचिव के विरुद्ध एक विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति मांगी थी। उपसभापति ने विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति नहीं दी।[198]

> एक सदस्य द्वारा इस्पात मंत्रालय से संबंधित एक मामले में सदन में प्रश्न पूछे जाने पर उसके दल द्वारा उस सदस्य को अभिकथित रूप से उत्पीड़ित किए जाने के संबंध में एक अन्य सदस्य ने विशेषाधिकार का मामला उठाने के लिए अनुमति मांगी थी। संबंधित सदस्य ने उक्त आरोप का खण्डन किया और उपसभापति ने विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति नहीं दी।[199]

> एक सदस्य द्वारा कांग्रेस संसदीय दल के चुनावों का उल्लेख किए जाने पर, सभापति ने यह व्यवस्था दी थी, "यह दल का मामला है; दल की अपनी स्वायत्तता होती है और वह जो कुछ चाहे कर सकता है। यह मामला हमारे क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं आता और हम इस बारे में कुछ नहीं कर सकते।" संदर्भ यह था कि प्रधान मंत्री ने कांग्रेस संसदीय दल के लिए चुने जाने वाले सदस्यों की एक सूची परिचालित की थी।[200]

आश्वासनों का पूरा न किया जाना

एक सदस्य ने विशेषाधिकार का यह मामला उठाने की अनुमति मांगी थी कि वित्त मंत्री ने कम्पनी बोर्ड के गठन के मामले में सदन को दिए गए अपने आश्वासन की अवहेलना की है। उपसभापति ने, संगत कार्यवाही का अध्ययन करने और मामले की जांच करने के पश्चात्, इस मामले को सदन में उठाए जाने के लिए अनुमति देने से इन्कार कर दिया।[201]

संसद् भवन के समक्ष जुलूस पर पाबंदी

एक सदस्य ने दिल्ली के उपराज्यपाल द्वारा दिए गये उस वक्तव्य के संबंध में 14 नवम्बर, 1966 को विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति मांगी जिसमें उन्होंने यह कहा था कि संसद् से दो मील के घेरे में जुलूस निकाले जाने पर पाबंदी लगा दी जायेगी। सदस्य ने यह दावा किया था कि उपराज्यपाल को ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है और इस तरह उन्होंने संसद् और उसके सदस्यों के विशेषाधिकार का उल्लंघन किया है। सदन के नेता ने स्पष्ट किया कि उपराज्यपाल कानून और व्यवस्था के प्रभारी हैं और उन्होंने जो कुछ कहा है वह कानून और व्यवस्था के मामले से संबंधित है। उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा है जिससे संसद्, अपने कृत्यों के निष्पादन में बाधित हो या किसी व्यक्ति को संसद् तक पहुंचने से रोका जाये। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन उन्हें जुलूस पर पाबंदी लगाने का अधिकार प्राप्त है। सभापति ने विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति नहीं दी।[202]

राज्य सभा में उठाये गये विशेषाधिकार के कुछ विशिष्ट मुद्दे

सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के कार्यवृत्तों को कथित रूप से तोड़-मरोड़ कर सभा पटल पर रखा जाना

राज्य सभा के एक सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचनायें दी गयी थीं जिसने सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के एक सदस्य की हैसियत से समिति के 47वें प्रतिवेदन से संबंधित उसकी बैठकों के कार्यवृत्तों की एक प्रति राज्य सभा के पटल पर रखी थी। यह आरोप लगाया गया था कि कार्यवृत्त तथ्यों के अनुसार सही नहीं हैं और वे समिति की बैठक की कार्यवाही को सही-सही प्रतिबिम्बित नहीं करते तथा यह समिति को दी गयी महत्वपूर्ण सूचना को पूर्णतया तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने और तथ्य को छिपाने के बराबर है। सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के अध्यक्ष के विरुद्ध भी विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति मांगी गयी थी। उसपर सभापति ने यह कहा कि जिस सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार का उल्लंघन किये जाने की सूचनायें दी गयी थीं उसने इस सभा में समिति की ओर से पूर्णतया शासकीय कार्य का निष्पादन किया था और कार्यवृत्त को समिति के अध्यक्ष द्वारा अधिप्रमाणित किया गया था। अतः, सदस्य को कार्यवृत्त में अशुद्धियों के लिये, यदि कोई हों, व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। सभापति ने इस मामले में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति देने से इंकार कर दिया।[203]

सदन में जानकारी का प्रकट न किया जाना

ऐसे दो अवसर आए हैं जब सदन में चर्चा के दौरान किसी मंत्री द्वारा किसी जानकारी के प्रकट न किए जाने अथवा किसी मंत्री द्वारा सदन में कथित रूप से जानकारी देने से बचने के संबंध में प्रश्न उठाए गए थे। एक मामले में सभापीठ ने यह व्यवस्था दी थी कि उसमें प्रथम दृष्टया विशेषाधिकार के उल्लंघन का कोई मामला नहीं बनता और दूसरे मामले में संबंधित मंत्री द्वारा स्थिति को स्पष्ट कर दिए जाने के बाद उस मामले को बन्द कर दिया गया।[204]

सदस्यों का निरादर

राष्ट्रपति भवन में एक समारोह के दौरान सदस्यों के निरादर के संबंध में राज्य सभा में विशेषाधिकार का एक मुद्दा उठाया गया था। प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने स्थिति को स्पष्ट कर दिया था और किसी भी सदस्य को वहां से निष्कासित किए जाने पर खेद प्रकट किया था। सभापति ने यह कहकर मामले को समाप्त कर दिया था कि प्रधान मंत्री यह कह चुके हैं कि किसी भी संसद्-सदस्य का कभी भी निरादर करने अथवा उसके साथ अशिष्टता का व्यवहार करने की कोई मंशा नहीं रही है और उनके साथ अति शिष्टता एवं आदर के साथ ही पेश आना चाहिए।[205]

एक अन्य अवसर पर एक मंत्री द्वारा सभापीठ की अनुमति लिए बिना चर्चा के दौरान सदन छोड़कर चले जाने के संबंध में आपत्ति की गई थी। सदन के नेता ने उन परिस्थितियों को स्पष्ट करते हुए सरकार की ओर से क्षमा मांग ली थी और खेद प्रकट कर दिया था। इस मामले को वहीं समाप्त कर दिया गया था।[206]

राज्य सभा के सदस्यों को राज्य सरकार की कुछ समितियों में शामिल न किया जाना

9 अगस्त, 1983 को कई सदस्यों ने उड़ीसा सरकार की कुछ समितियों में राज्य सभा के सदस्यों को शामिल न किए जाने से संबंधित एक मामला सदन में उठाया था। उड़ीसा सरकार द्वारा स्थिति को स्पष्ट कर दिए जाने और यह निर्णय लेने के पश्चात् कि राज्य सभा के प्रत्येक सदस्य के नामिती को उस समिति के सदस्य के रूप में शामिल कर लिया जाए जिसमें से पूर्ववर्ती सदस्यों को राज्य सभा के सदस्य का प्रादेशिक चुनाव क्षेत्र न होने के कारण शामिल नहीं किया गया था, सभापति ने कहा कि इस मामले पर सदन में और आगे चर्चा नहीं होनी चाहिए।[207]

नगर निकाय द्वारा विशेषाधिकार का उल्लंघन

राज्य सभा में पहली बार नगर निकाय (पुणे नगर निगम) के विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन की एक शिकायत की गई थी। इस निकाय ने पुणे दंगों के संबंध में ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के दौरान राज्य सभा के एक सदस्य द्वारा अभिकथित रूप से दिए गए वक्तव्य की निंदा करते हुए स्थगन प्रस्ताव स्वीकृत किया था। उस स्थगन प्रस्ताव पर पार्षदों द्वारा दिए गए भाषणों की प्रतियां मंगवाई गईं और सभापति ने इस बात के प्रति संतुष्ट हो जाने के बाद कि प्रथम दृष्टया विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला बनता है, सदस्य को प्रश्न उठाने के लिए अपनी सहमति दे दी। किन्तु, ऐसा करते समय सदस्य ने कहा कि यदि सभापति कुछ टिप्पणी करें तो वह संतुष्ट हो जाएंगे। सदन के नेता भी इस पर सहमत हो गये। उसके बाद सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की कि नगर निगम से यह आशा की जाती है कि सदन अथवा उसके किसी भी सदस्य की आलोचना करने से पहले वह (तथ्यों को सुनिश्चित करते हुए) उचित ध्यान रखें। तथापि, सभापति ने कहा कि सदन को कार्रवाई करने के लिए परेशान न किया जाये और यह कि वह दोनों दिन की कार्यवाही की रिपोर्ट निगम को भेज रहे हैं। ताकि वह उपयुक्त संशोधन कर सकें। सदन सभापति के निर्णय से सहमत हो गया।[208]

राष्ट्रपति पर आक्षेप

27 अप्रैल, 1987 को कुछ सदस्यों ने तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह पर लगाए गए आक्षेपों, जैसा कि उससे एक दिन पहले एक समाचार-पत्र में कहा गया था, के बारे में सदन में एक मामला उठाया था। सभापति ने इस मामले को कुछ मुद्दों की जांच हेतु विशेषाधिकार समिति को भेज दिया। तथापि, समिति ने यह निर्णय किया कि इस मामले को बंद समझा जाए और उसे वहीं समाप्त कर दिया जाए।[209]

इससे पहले भी एक अवसर पर विशेषाधिकार समिति ने एक साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाशित कुछ लेखों की जांच की थी, जिनमें राष्ट्रपति पद पर आसीन व्यक्ति की अवमानना की गई थी। किन्तु समिति ने इस बात पर विस्तार से विचार नहीं किया कि क्या राष्ट्रपति पर लगाए गए आक्षेप संसद् पर लगाए गए आक्षेप माने जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप उसके विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला बनता हो।[210]

औचित्य का उल्लंघन

बजट की पूर्व-संध्या पर डाक दर में वृद्धि किया जाना

19 फरवरी, 1982 को जब संचार मंत्रालय में उपमंत्री ने डाक दर में वृद्धि किये जाने के संबंध में कतिपय अधिसूचनाओं को सभा पटल पर रखने की अनुमति मांगी तो उस समय इस तरह के मुद्दे उठाये गये कि ऐसी वृद्धि करना संसद् की अनदेखी करना तथा उसके प्राधिकार को कम करना है। सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह व्यवस्था दी कि सरकार को भारतीय तार अधिनियम के अधीन दर में वृद्धि करने की शक्ति और प्राधिकार प्राप्त है। इसमें वैधता का कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं है; यह तो औचित्य का प्रश्न है। अत: उन्होंने यह विचार प्रकट किया : "...औचित्य का तकाज़ा है कि यदि कर की दरों में इस प्रकार की कोई वृद्धि की जाती है, तो ऐसा बजट सत्र की पूर्व-संध्या पर नहीं किया जाना चाहिये बल्कि ऐसा कदम काफी पहले उठाया जाना चाहिये ताकि लोग यह जान जायें कि यह पेश किये जाने वाले बजट का हिस्सा नहीं है।"[211]

बजट की पूर्व-संध्या पर कतिपय मदों को सीमा-शुल्क से मुक्त रखा जाना

25 फरवरी, 1986 को, जब सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 के अधीन बयालीस अधिसूचनाओं के एक सेट को राज्य सभा के पटल पर रखे जाने की अनुमति मांगी गयी थी तो उस समय सदस्यों ने बजट की पूर्व-संध्या पर कतिपय मदों को सीमा-शुल्क के भुगतान से मुक्त रखे जाने के औचित्य के संबंध में एक मामला उठाया था। वित्त मंत्री ने यह तर्क दिया कि उनमें से कुछ अधिसूचनायें तो मात्र शुल्क दरों से छूट की अवधि बढ़ाये जाने और/या उन्हें आगे जारी रखे जाने से संबंधित हैं जोकि ऐसी अधिसूचनायें जारी न किये जाने की स्थिति में समाप्त हो जायेंगी। सभापति ने अपनी व्यवस्था में यह विचार प्रकट किया कि यदि उपर्युक्त तथ्यात्मक रूप से सही है तो ऐसे मामलों में औचित्य का कोई उल्लंघन नहीं होगा। इसके दूसरी तरफ, यदि इन अधिसूचनाओं

से कर में वृद्धि या कमी किये जाने जैसे राजस्व निहितार्थ रहे हों, तो बजट की पूर्व-संध्या पर ऐसी अधिसूचनाओं का जारी किया जाना संसदीय औचित्य के सिद्धान्तों का उल्लंघन होगा। तद्नुसार, सभापति ने यह व्यवस्था दी थी कि:

(क) सीमा-शुल्क अधिनियम के अनुसरण में जारी की गयी अधिसूचनायें वैध हैं;

(ख) ऐसे समय में, जब संसद् का सत्र न चल रहा हो अधिसूचनाओं का जारी किया जाना और उन अधिसूचनाओं को अधीनस्थ विधान संबंधी समिति की सिफारिशों के अनुसार सत्र के सात दिन के भीतर सभा पटल पर रखा जाना वैध तथा उचित है;

(ग) किसी विद्यमान शुल्क दर की मियाद को बढ़ाने वाली औपचारिक किस्म की अधिसूचनायें, जिनका कोई नया राजस्व निहितार्थ नहीं हो, वैध तथा उचित हैं; और

(घ) बजट की पूर्व-संध्या पर शुल्क ढांचे में वृद्धि या कमी किये जाने जैसे राजस्व निहितार्थ वाली अधिसूचनायें संसदीय औचित्य के विरुद्ध हैं।

जहां तक इन अधिसूचनाओं के गुणावगुण या विषय-वस्तु का संबंध है, उन्होंने कहा कि उनकी लोक लेखा समिति द्वारा जांच-पड़ताल की जा सकती है जैसाकि 1981 में किया गया था।[212]

तद्नुसार, लोक लेखा समिति के पास एक मामला भेजा गया था। सभापति ने लोक लेखा समिति की टिप्पणियों के बारे में सदन को जानकारी दी और इसकी इस आशय की निष्कर्षात्मक टिप्पणियों की ओर विशेष ध्यान आकर्षित किया कि अधिसूचनाओं की बाद में संसद् द्वारा स्वीकृति लिया जाना कराधान प्रस्तावों, विशेषकर जब वे स्वीकृत बजट से हटकर हों, के संबंध में पूर्व बहस तथा चर्चा का अनुकल्प नहीं था। अन्त में, सभापति ने यह विचार प्रकट किया, "मैं आशा करता हूं कि सरकार इस पर यथोचित ध्यान देगी और यह सुनिश्चित करने का प्रयास करेगी कि राजस्व निहितार्थों वाली अधिसूचनाओं को जारी किये जाने का कम से कम सहारा लिया जायेगा।"[213]

बजट की पूर्व-संध्या पर राजस्व निहितार्थों वाली अधिसूचनाओं का जारी किया जाना

एक बार फिर 25 फरवरी, 1987 को, जब सीमा-शुक और उत्पाद-शुल्क से संबंधित सत्रह अधिसूचनाओं को सभा पटल पर रखा जा रहा था उस समय सभापति की उपर्युक्त व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए बजट की पूर्व-संध्या पर उन अधिसूचनाओं को जारी किये जाने के औचित्य का प्रश्न उठाया गया था (इसके पिछले ही दिन उसी तरह की इकसठ अधिसूचनाओं को भी सभा पटल पर रखा गया था)। सभापति ने निदेश दिया कि राज्य सभा के पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति को अधिसूचनाओं (कुल मिलाकर अठहत्तर) की वास्तविक स्थिति की जांच-पड़ताल करनी चाहिए।[214] समिति ने तद्नुसार इस मामले पर विचार किया और 9 अक्तूबर, 1987 को अपना प्रतिवेदन सभापति को प्रस्तुत कर दिया। समिति ने साठ अधिसूचनाओं के जारी किये जाने के औचित्य को मान्य ठहराया था। जहां तक अठारह अन्य अधिसूचनाओं का संबंध है, समिति

ने यह पाया कि उस समय ऐसी परिस्थितियां विद्यमान नहीं थीं कि उन अधिसूचनाओं को जारी करना अत्यावश्यक है और इसलिए, उन अधिसूचनाओं का जारी किया जाना उस समय तक रोके रखा जाना चाहिये था, जब तक कि संसद् को उन पर विचार करने का अवसर प्राप्त न हो जाये। समिति ने इस संबंध में कुछ अन्य सामान्य सुझाव भी दिये थे।[215] सभापति ने 28 मार्च, 1988 को दी गयी अपनी व्यवस्था में लोक लेखा समिति की उपर्युक्त टिप्पणियों को दोहराया था और यह कहा था कि सरकार सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति द्वारा दिये गये सुझावों पर यथोचित ध्यान देगी और यह सुनिश्चित करेगी कि अधिसूचनाओं के जारी किये जाने के मामले में यह पूर्ववर्ती सभापति द्वारा 4 मार्च और 11 नवम्बर, 1986 को दी गयी व्यवस्था के तहत निर्धारित मानदण्ड का पालन करेगी।[216]

जब संसद् का सत्र चल रहा हो तो सदन से बाहर नीतिगत/महत्त्वपूर्ण वक्तव्य दिया जाना/घोषणाएं किया जाना

कई बार सदस्यगण, जब संसद् का सत्र चल रहा हो, सरकार द्वारा सदन के बाहर महत्वपूर्ण घोषणाएं किए जाने/नीतिगत वक्तव्य दिये जाने के संबंध में सदन के अवमान का प्रश्न उठाते हैं। ऐसे सभी मामलों में सामान्यत: यह माना गया है कि 'यदि जनहित के मामलों से संबंधित वक्तव्य सर्वप्रथम सदन में नहीं दिए जाते तो इसमें सदन के विशेषाधिकार का कोई मामला नहीं बनता। किन्तु किसी मंत्री के लिए यह औचित्य का उल्लंघन हो सकता है यदि वह उस समय सदन से बाहर कोई वक्तव्य दे जबकि सदन का सत्र चल रहा हो।' यह भी माना गया है कि यदि सदन का सत्र चल रहा हो तो नीतिगत वक्तव्यों को प्रेस में अथवा जनता के बीच जारी करने से पहले उन्हें सर्वप्रथम सदन में ही दिया जाना चाहिए किन्तु यदि ऐसे वक्तव्य सरकार की घोषित नीति के विरुद्ध नहीं हैं तो मंत्रियों को सदन से बाहर ऐसे वक्तव्य देने से रोका नहीं जा सकता।

जब मंत्री सरकारी क्षेत्र में कारों के विनिर्माण के संबंध में एक वक्तव्य देने के लिए खड़े हुए तो एक सदस्य ने उन्हें यह कहते हुए टोका कि यह वक्तव्य पहले से ही समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुका है और इस प्रकार सदन के विशेषाधिकार का उल्लंघन किया गया है। कुछ चर्चा करने के बाद उपसभापति ने विशेषाधिकार के प्रश्न को अस्वीकार करते हुए अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की कि[217]:

> जहां तक संसदीय प्रक्रिया का संबंध है, यदि महत्वपूर्ण नीतिगत मामलों अथवा नीतिगत निर्णयों के संबंध में कोई सूचना समाचार-पत्र में प्रकाशित हो जाती है तो यह निश्चित है कि इससे सदन के विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं होता...यह एक तरह से बहुत ही अनुचित बात यह है कि सदन में जानकारी दिये जाने से पहले ही कोई बात समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो जाए अथवा ऐसी किसी बात की सूचना प्रेस को पहले ही मिल जाए, यह एक बहुत ही अनुचित बात मानी जाएगी।...इसलिए, यदि किसी बात की जानकारी सदन को दिये जाने से पूर्व ही प्रेस को हो जाती है, तो संसदीय प्रक्रिया के अनुसार इसे निस्सन्देह विशेषाधिकार का उल्लंघन कभी भी नहीं माना जा सकता किन्तु यह बहुत ही अनुचित बात होगी। यह शिष्टाचार का उल्लंघन तो हो सकता है किन्तु विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं।

इसी प्रकार, देश में स्कूटरों के विनिर्माण के संबंध में मंत्री के वक्तव्य से संबंधित एक मामले में मंत्री ने कहा कि उक्त वक्तव्य मात्र उस निर्णय के कार्यान्वयन के बारे में है जो अक्तूबर, 1969 में लिया गया था और जिसके बारे में प्रेस को और देश के प्रत्येक व्यक्ति को जानकारी है। उपसभाध्यक्ष ने मंत्री जी के

तर्क को यथावत् मानते हुए कहा था कि यद्यपि इसमें विशेषाधिकार का कोई उल्लंघन अथवा सभा का अवमान अंतर्ग्रस्त नहीं है, तथापि यह उचित रहेगा कि आगे से इसमें सतर्कता बरती जाए जिससे ऐसी बातों की पुनरावृत्ति न हो तथा सरकार ऐसे मामलों में पहले से ज्यादा सावधान रहे।[218]

संसद् का सत्र चलते सदन के बाहर प्रेस आयोग के गठन के बारे में घोषणा करने से संबंधित एक मामले में सभापति ने यह व्यवस्था दी थी[219] :

> ...यदि सरकार द्वारा कोई महत्वपूर्ण घोषणा की जानी है तो यह घोषणा सदन में यथासंभव शीघ्र उस समय की जानी चाहिए जब सदन का सत्र चल रहा हो। मुझे आशा है कि भविष्य में इसका पालन किया जाएगा...यदि कोई नीतिगत वक्तव्य हो तो मंत्री को इसे सदन से बाहर नहीं देना चाहिए।

एक अन्य मामले में विशेषाधिकार का मुद्दा शनिवार के दिन सदन से बाहर, जबकि सभा का सत्र चल रहा था, कुछ नीतिगत घोषणाएं किए जाने से संबंधित था। संबंधित मंत्री ने तर्क दिया कि वे घोषणाएं नीतिगत वक्तव्य नहीं है, वे तो प्रशासनिक निर्णय है। सभापति ने इस सुस्थापित परिपाटी का उल्लेख करते हुए कहा कि नीतिगत वक्तव्यों को प्रेस में या जनता के बीच जारी करने से पहले उन्हें सर्वप्रथम सदन में ही दिया जाना चाहिए जबकि उसका सत्र चल रहा हो और यह कि यदि ऐसे वक्तव्य सरकार की घोषित नीति के विरुद्ध नहीं हैं तो मंत्रियों को ये वक्तव्य सदन से बाहर देने से रोका नहीं जा सकता। इसलिए, इस मुद्दे पर सवाल यह था कि मंत्री द्वारा की गई घोषणाएं क्या किसी नई नीति की घोषणा थी, नीति परिवर्तन की घोषणा थी या घोषित नीति के विरुद्ध की गई घोषणा थी। इस सन्दर्भ में विचार करने के बाद सभापति ने यह माना कि मंत्री जी की घोषणाओं में स्वीकार्य औचित्य के उल्लंघन का कोई मामला अन्तर्ग्रस्त नहीं है। किन्तु जहां तक मंत्री के इस तर्क का संबंध है कि ये घोषणाएं चूंकि प्रशासनिक निर्णय से संबंधित थीं अत: इसमें औचित्य का कोई उल्लंघन नहीं है, इस मामले में सभापति ने यह टिप्पणी की : "ऐसे किसी सामान्य तर्क को संसद् के पूर्ववर्ती निर्णयों से उचित नहीं ठहराया जा सकता। हो सकता है कि कुछ प्रशासनिक निर्णयों में मौजूदा नीति में परिवर्तन या उसके अतिक्रमण का मामला अन्तर्ग्रस्त हो और इस प्रकार की घोषणाएं सर्वप्रथम सदन में ही की जानी हों।" किन्तु उन्होंने इस बात को पहले से ही मानते हुए कि मंत्री की जिन घोषणाओं पर आपत्ति की गई थी वे नीतिगत वक्तव्य नहीं थे, उपर्युक्त मुद्दे पर अपना कोई निर्णय नहीं सुनाया।[220]

विशेषाधिकार के प्रश्नों से निपटने संबंधी प्रक्रिया

सभापति की पूर्वानुमति

कोई भी सदस्य, सभापति की सहमति से, कोई ऐसा प्रश्न उठा सकता है जिसमें या तो किसी सदस्य के या राज्य सभा के या उसकी किसी समिति के विशेषाधिकार का उल्लंघन अंतर्ग्रस्त हो।[221] जो सदस्य विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने का इच्छुक है उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह उसकी लिखित सूचना उस दिन की बैठक प्रारम्भ होने से पूर्व, जिस दिन कि प्रश्न उठाने का विचार हो, महासचिव को दे।[222] यदि विशेषाधिकार का प्रश्न किसी प्रलेख पर आधारित हो तो सूचना के साथ वह प्रलेख भी संलग्न किया जाना चाहिए।[223] सूचना मिलने पर सभापति द्वारा मामले पर विचार किया जाता है जो विशेषाधिकार के प्रश्न को सदन में उठाए जाने हेतु अपनी सहमति दे भी सकता है अथवा सहमति देने से इन्कार भी कर सकता है।

विशेषाधिकार का कोई भी मामला, जो सभापति के विचाराधीन है, सभा में नहीं उठाया जा सकता है।

25 मार्च, 1992 को, श्री प्रमोद महाजन विशेषाधिकार संबंधी ऐसे मामले पर बोलने के लिए खड़े हुए थे जिसकी सूचना सभापति को दे दी गई थी। उपसभापति ने सदस्य को इस आधार पर मामला उठाने

की अनुमति नहीं दी थी कि मामला सभापति के विचाराधीन था और नियमों के अनुसार सभापति की सहमति के बिना किसी भी सदस्य को सभा में विशेषाधिकार संबंधी मामला उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।[224]

कोई मामला वास्तव में विशेषाधिकार के उल्लंघन अथवा सदन के अवमान का मामला है या नहीं - इस प्रश्न का निर्णय पूर्णतया सदन पर निर्भर करता है। सभापति किसी मामले को सदन में उठाए जाने हेतु अपनी सहमति देने में केवल इस बात पर विचार करता है कि क्या मामला और जांच किये जाने के लिए उपयुक्त है और क्या इसे सदन के समक्ष लाया जाए अथवा नहीं। विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने का अधिकार दो शर्तों से अभिशासित होता है अर्थात् (i) प्रश्न हाल ही में हुए किसी विशिष्ट मामले तक सीमित होगा; और (ii) मामले में राज्य सभा का हस्तक्षेप अपेक्षित होगा।[225] इस संबंध में निर्णय लेने से पूर्व कि विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में उठाए जाने वाले प्रस्तावित मामले में सभा का हस्तक्षेप आवश्यक है अथवा नहीं और क्या उसे सभा में उठाने की सहमति दी जाए अथवा नहीं, सभापति आरोपित व्यक्ति को उसके समक्ष अपना पक्ष स्पष्ट करने का अवसर दे सकता है। सभापति यदि उपयुक्त समझे तो वह विशेषाधिकार के प्रश्न की ग्राह्यता के संबंध में निर्णय लेने से पूर्व सदस्यों के विचार सुन सकता है।[226]

सभापति विशेषाधिकार संबंधी सूचना की ग्राह्यता के संबंध में निर्णय लेने से पूर्व स्वयं को आश्वस्त करने हेतु संबंधित मंत्री से सूचना की जानकारी भी मांग सकता है।[227]

तथापि, सभापीठ द्वारा किसी विशेषाधिकार संबंधी सूचना को अस्वीकार करने हेतु कारण दिया जाना अपेक्षित नहीं है।

1 मार्च, 1982 को, श्री शिव चन्द्र झा ने नियम 190 के अधीन औचित्य का प्रश्न उठाया और सभा में एम.एस. गुजराल, अध्यक्ष, रेलवे बोर्ड के विरुद्ध अपने विशेषाधिकार प्रस्ताव को अस्वीकार किए जाने के कारणों को जानना चाहा। इस संबंध में, उप-सभापति ने विनिर्णय दिया कि 'सभापति अपनी सहमति देता है अथवा अपनी सहमति नहीं देता है और इसलिए सदैव इस बात का उल्लेख किया जाता है कि नियम 187 के अधीन सहमति वापस ले ली गई है। जहां तक नियम 190 का संबंध है, एक परंतुक के अधीन यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सभा में सभापति द्वारा ऐसा करना अनिवार्य नहीं है।'[228]

यदि कोई समाचार-पत्र कार्यवाही के कथित रूप से तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने या गलत ढंग से प्रस्तुत करने अथवा सदन या इसके सदस्यों के संबंध में निन्दात्मक टिप्पणियां करने के कारण अंतर्ग्रस्त है तो सभापति आरंभ में ही सदन में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाए जाने हेतु सहमति देने से पूर्व ही उस समाचार-पत्र के संपादक को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दे सकता है और सामान्यत: अवसर दे भी देता है। सभापति सामान्यतया संबंधित सम्पादक अथवा संवाददाता द्वारा खेद व्यक्त किए जाने अथवा गलती सुधारते हुए दूसरा लेख प्रकाशित किए जाने पर विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने हेतु अपनी सहमति नहीं देता। (पीछे देखिए)

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, सदस्यों ने पुलिस द्वारा स्वयं उनके साथ बुरा व्यवहार किये जाने अर्थात् पुलिस प्राधिकारियों द्वारा कथित रूप से अपशब्द कहे जाने, दुर्व्यवहार किये जाने अथवा उनके कार्य में बाधा पहुंचाये जाने के संबंध में विशेषाधिकार के प्रश्न उठाए हैं। ऐसे मामलों में, यदि सभापति संतुष्ट हों तो वह सदस्यों को सदन में विशेष उल्लेख[229] अथवा व्यक्तिगत

स्पष्टीकरण[230] के माध्यम से वक्तव्य देने की अनुमति दे सकता है। तत्पश्चात्, संबंधित मंत्री को तथ्यों का पता लगाकर सभापति अथवा सदन को उनसे अवगत करवाने का अवसर दिया जा सकता है।[231] सभापति अथवा सदन द्वारा तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मामले पर निर्णय लिया जा सकता है।[232]

सदन की अनुमति

जब सभापति अपनी सहमति दे दे और यह मान ले कि चर्चा के लिए प्रस्तावित विषय नियमानुकूल है तब वह संबंधित सदस्य को विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने के लिए सदन की अनुमति लेने को कहता है। संबंधित सदस्य को मुद्दे से संगत एक संक्षिप्त वक्तव्य देने की अनुमति दी जाती है। विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति प्रश्न-काल के बाद और कार्यावलि का कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व मांगी जाती है।[233] परन्तु, यदि सभापति विषय की अत्यावश्यकता के संबंध में संतुष्ट हो जाए तो वह प्रश्नों के निपटाए जाने के बाद बैठक के दौरान किसी भी समय विशेषाधिकार का प्रश्न उठाए जाने की अनुमति दे सकता है।[234]

> एक सदस्य को एक दिन मध्याह्न पूर्व पूछे गए अनुपूरक प्रश्न के उत्तर (भारत और यूरोपीय आर्थिक समुदाय के बीच व्यापार संबंधों से संबंधित तारांकित प्रश्न संख्या 183) से उत्पन्न विशेषाधिकार का एक मामला उठाने के लिए आधे घंटे (म.प. 2.56 से म.प. 3.26 तक) की अनुमति दी गई थी। किन्तु उपसभापति ने इसे विशेषाधिकार प्रस्ताव के रूप में नहीं माना था।[235]

यदि सभापति का यह मत हो कि चर्चा के लिए प्रस्तावित विषय नियमानुकूल नहीं है, तो यदि वह आवश्यकता समझे, उस विशेषाधिकार के प्रश्न की सूचना को पढ़कर सुना सकता है और कह सकता है कि वह सहमति देने से इन्कार करता है।[236]

जब सभापति की सहमति से मुद्दा उठाया जाता है तब सभापति पूछता है कि क्या सदस्य को प्रश्न उठाने के लिए सदन की अनुमति प्राप्त है। यदि कोई भी असहमति प्रकट नहीं करता है तो यह मान लिया जाता है कि अनुमति प्रदान कर दी गई है।[237] यदि अनुमति दिए जाने पर आपत्ति की जाती है तो सभापति उन सदस्यों से, जो अनुमति दिए जाने के पक्ष में हों, अपने-अपने स्थान पर खड़े होने के लिए कहता है और तद्नुसार यदि कम से कम पच्चीस सदस्य खड़े हो जाते हैं तो सभापति सूचित करता है कि अनुमति दी जाती है[238], अन्यथा वह उस सदस्य को सूचित करता है कि उसे सदन की अनुमति प्राप्त नहीं है।[239]

प्रश्न पर विचार किया जाना

यथोपरोक्त अनुमति दिए जाने के बाद सदन प्रश्न पर विचार कर सकेगा और निर्णय कर सकेगा,[240] अथवा उस सदस्य द्वारा, जिसने विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया है या किसी अन्य सदस्य द्वारा किए गए प्रस्ताव पर उसे विशेषाधिकार समिति को सौंप सकेगा।[241] सामान्य प्रक्रिया यह है कि मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाता है और सदन तब तक अपना निर्णय नहीं देता जब तक समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत न कर दी जाए। कई अवसरों पर सदन की औपचारिक अनुमति अथवा प्रस्ताव के बिना ही सदन मुद्दे को विशेषाधिकार समिति को सौंपने के लिए सहमत हो गया।[242]

सदस्यों के विरुद्ध शिकायतें

जब किसी सदस्य द्वारा किसी दूसरे सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार के कथित उल्लंघन अथवा सदन का अवमान करने की कोई शिकायत की जाती है तो जिस सदस्य के विरुद्ध शिकायत की गई हो उसे पहले एक नोटिस दिया जाता है और संबंधित सदस्य को सभापति अथवा सदन के समक्ष प्रश्न से संबंधित ऐसे तथ्य, जो सदस्य के पास हों, रखने का एक अवसर दिया जाता है।

5 जून, 1967 को एक सदस्य ने लोक सभा के एक सदस्य के विरुद्ध अपमानजनक वक्तव्य देने के लिए एक अन्य सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति मांगी थी। चूंकि जिस सदस्य के विरुद्ध शिकायत की गई थी वह सदन में उपस्थित नहीं था इसलिए सभापति ने यह टिप्पणी करते हुए शिकायतकर्ता सदस्य को विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में उस मुद्दे को उठाने की अनुमति नहीं दी कि वह उस सदन के विचार जानना चाहेंगे जिसके विरुद्ध शिकायत की गई है।[243]

23 दिसम्बर, 1980 को कुछ सदस्यों ने सदन में एक अन्य सदस्य द्वारा एक मंत्री के विरुद्ध कुछ आरोप लगाये जाने को लेकर उसके विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचना दी थी। सभापति ने नियम 203 के अन्तर्गत यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। किंतु अगले ही दिन उन्होंने समिति को इस मामले पर विचार करने से रोक दिया ताकि वह संबंधित सदस्य को अपने विचार प्रकट करने का एक अवसर दे सके और भावी कार्यवाही की दिशा तय कर सके। सदस्य की टिप्पणियों पर विचार करने के पश्चात् ही सभापति ने समिति को प्रश्न पर आगे विचार करने का निदेश दिया।[244]

एक बार एक सदस्य द्वारा समाचार-पत्रों में यथाप्रकाशित किसी सार्वजनिक वक्तव्य में किसी दूसरे सदस्य पर आक्षेप लगाने के लिए उसके विरुद्ध शिकायत की गई तो सभापति ने उस सदस्य को, जिस पर आक्षेप लगाए गए थे, अपनी स्थिति स्पष्ट करने हेतु व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति दे दी।[245]

विशेषाधिकार समिति ने दिनांक 7 जुलाई, 2009 को सदन में प्रस्तुत अपने चौवनवें प्रतिवेदन में सदस्यों के विरुद्ध शिकायतों से संबंधित दो मामलों पर विचार किया, (i) किसी सदस्य विशेष के विरुद्ध दूसरे सदस्य द्वारा सदन में दिए जा रहे भाषण को कथित रूप से रोकने/बाधित करने की शिकायत, तथा (ii) कुछ सदस्यों द्वारा निरंतर व्यवधान डालने के कारण प्रश्न न उठा पाने के संबंध में कुछ सदस्यों द्वारा की गई शिकायतें। समिति ने कहा कि यद्यपि ऐसी घटनाएं संसद् के सदनों में असामान्य नहीं हैं तथापि इन घटनाओं से संसद् तथा उसके सदस्यों की छवि उसी जनता की नज़रों से धूमिल होती है जिन्होंने उन्हें लोकतंत्र की सबसे बड़ी संस्था में भेजा है। समिति का यह मत था कि प्रत्येक सदस्य को सदन में अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार है परन्तु निश्चित रूप से इससे उन्हें उन अन्य सदस्यों के अधिकारों को बाधित करने का अधिकार नहीं मिल जाता है जिन्हें सभापति द्वारा बुलाए जाने पर बोलने का समान अधिकार प्राप्त है। समिति का मत था कि किसी विशिष्ट विषय के विरुद्ध आंदोलन करते समय सदस्य को सदन के नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए तथा नियमों का उल्लंघन किए बिना अपना विरोध व्यक्त करने के भी अनेक तरीके होते हैं। इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति से बचने के लिए समिति ने सदस्यों से अधिक सतर्क रहने का और सभापीठ के निर्देशों का अनुपालन करने का आग्रह किया।[246]

दूसरे सदन के सदस्यों या अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतें

एक ऐतिहासिक मामले में, लोक सभा के एक सदस्य श्री एन.सी. चटर्जी द्वारा संसद् से बाहर दिये गये एक भाषण में संसद् को 'अद्भुत संसद्' (वंडरफुल पार्लियामेंट) की संज्ञा देने तथा ऊपरी सदन अर्थात् राज्य सभा को 'शरारती लोगों का समूह' (पैक ऑफ अर्चिन्स) कहने से उत्पन्न हुए विशेषाधिकार के प्रश्न को 11 मई, 1954 को राज्य सभा में उठाये जाने की अनुमति मांगी गयी थी। राज्य सभा के सदस्यों ने राज्य सभा और उसके सदस्यों के संबंध में दिये गये

वक्तव्य पर गंभीर आपत्ति प्रकट की थी।[247] उपर्युक्त सदस्य ने भी अगले दिन लोक सभा में इस आधार पर विशेषाधिकार का एक मुद्दा उठाया कि उन्हें राज्य सभा के सचिव द्वारा एक नोटिस भेजा गया है जिसमें उनसे एक आपत्तिजनक वक्तव्य के संबंध में कतिपय सफाई/स्पष्टीकरण देने के लिये कहा गया है। अत: उन्होंने यह कहा था कि ऐसी कार्रवाई दूसरे सदन द्वारा लोक सभा के अधिकारों और विशेषाधिकारों को छीन लेने के बराबर है।[248]

इस मामले पर विस्तार से विचार करने के पश्चात् सभापति और लोक सभा अध्यक्ष द्वारा यह निर्णय किया गया कि दोनों सभाओं की विशेषाधिकार समितियां इस प्रकार के मामलों के लिये, जब संसद् के दोनों सदनों में से किसी एक सदन के किसी सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार का उल्लंघन किये जाने की कोई शिकायत हो, सहमति के आधार पर एक-समान प्रक्रिया तैयार करे। लोक सभा और राज्य सभा की विशेषाधिकार समितियों ने 23 अगस्त, 1954 को दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत अपने संयुक्त प्रतिवेदन में यह सिफारिश की थी कि ऐसे किसी मामले में, जिसमें एक सदन के किसी सदस्य, अधिकारी या कर्मचारी पर विशेषाधिकार का उल्लंघन किये जाने या दूसरे सदन का अवमान किये जाने का आरोप लगाया गया हो, निम्नलिखित प्रक्रिया का पालन किया जाये:

(क) जब किसी सदन में विशेषाधिकार का उल्लंघन किये जाने का ऐसा प्रश्न उठाया जाता है जिसमें दूसरे सदन का कोई सदस्य, अधिकारी या कर्मचारी अन्तर्ग्रस्त हो, तो पीठासीन अधिकारी उस मामले वाले सदस्य की बात सुनने या उस दस्तावेज की जांच करने के बाद जिस पर शिकायत आधारित हो, इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं किया गया है या मामला इतना तुच्छ है, जिस पर ध्यान दिया जाये, तो ऐसी स्थिति में यह विशेषाधिकार के उल्लंघन के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सकता है।

(ख) इस तरह से भेजे गये मामले पर, दूसरे सदन का पीठासीन अधिकारी उस मामले को उसी ढंग से निपटायेगा जैसे कि वह उसी सदन या उसके किसी सदस्य के विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला हो।

(ग) तत्पश्चात्, पीठासीन अधिकारी उस सदन के पीठासीन अधिकारी को संदेश भेजेगा जिसमें विशेषाधिकार का प्रश्न मूलत: उठाया गया और साथ ही यदि जांच के संबंध में कोई प्रतिवेदन हो, तो वह उसे भेजेगा तथा विचारार्थ मामले पर की गयी कार्रवाई की सूचना भी देगा।

(घ) समितियों का यह विचार है कि यदि गलती करने वाला सदस्य, अधिकारी या कर्मचारी उस सदन के पीठासीन अधिकारी से, जिसमें विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया है या दूसरे सदन के पीठासीन अधिकारी से, जिसके पास यह मामला भेजा गया है, क्षमा-याचना करता है तो इस प्रकार की क्षमा-याचना के पश्चात् इस मामले में आगे कोई कार्रवाई नहीं की जाये।[249]

विशेषाधिकार समितियों की संयुक्त बैठक के अध्यक्ष (डा. कैलाश नाथ काटजू) ने लोक सभा में 2 दिसम्बर, 1954 को और सदन के नेता (श्री सी.सी. बिस्वास) ने राज्य सभा में 6 दिसम्बर, 1954 को प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट सिफारिशों के अनुमोदन के लिए प्रस्ताव रखे। प्रस्ताव स्वीकृत हो गए।[250] बाद में सभापति को लोक सभा के अध्यक्ष का एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसके साथ संबंधित सदस्य का बयान संलग्न था जिसमें उसने कहा था कि राज्य सभा अथवा उसके सदस्यों का अनादर करने का उसका कोई इरादा नहीं था और यदि उसके वक्तव्य से ऐसा गलत आभास मिलता है तो उसके लिए खेद है। बयान को ध्यान में रखते हुए सभापति का विचार था कि वे इस मामले को समाप्त मान सकते हैं।[251]

21 मई, 1979 को सभापति ने सदन को सूचित किया कि उन्हें लोक सभा के अध्यक्ष से एक पत्र प्राप्त हुआ है जो राज्य सभा के सदस्य श्री प्रणब मुखर्जी द्वारा मंत्री के रूप में कार्य करते हुए 19 जनवरी, 1976 को लोक सभा में स्वेच्छा से आय और धन का विवरण प्रकट करते हुए गुमराह करने वाला कथित वक्तव्य देने के संबंध में लोक सभा में उठाए गए विशेषाधिकार के प्रश्न के बारे में है। श्री मुखर्जी से प्राप्त टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए मामले पर विचार करने के बाद सभापति ने मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। समिति ने महसूस किया कि श्री मुखर्जी ने प्रतिवादात्मक वक्तव्य देकर विशेषाधिकार का कोई उल्लंघन नहीं किया है और समिति ने उसी के अनुसार प्रतिवेदन दिया। राज्य सभा द्वारा इस मामले में आगे कोई कार्यवाही नहीं की गई। समिति के प्रतिवेदन की एक प्रति सभापति द्वारा लोक सभा अध्यक्ष को अग्रेषित की गई। लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा भी इस मामले में आगे कार्यवाही नहीं की गई।[252]

24 अगस्त, 1987 को उपसभापति ने सभा को सूचित किया कि उन्हें लोक सभा के अध्यक्ष से एक पत्र प्राप्त हुआ है जो राज्य सभा के सदस्य श्री अरुण सिंह द्वारा मंत्री के रूप में कार्य करते हुए रक्षा सौदे में कमीशन दिये जाने के विषय पर कथित रूप से गुमराह करने वाला वक्तव्य दिये जाने के संबंध में लोक सभा के सदस्य श्री सोमनाथ चटर्जी द्वारा विशेषाधिकार नोटिस दिये जाने के बारे में है। संसद् के दोनों सदनों में हुई बहस और उनके द्वारा दिए गए वक्तव्यों के संदर्भ में श्री अरुण सिंह द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के आलोक में इस मामले पर विचार करने के उपरांत सभापति ने व्यवस्था दी कि श्री सिंह ने ऐसा कोई वक्तव्य नहीं दिया है जिसका अर्थ यह माना जाए कि उन्होंने जानबूझकर लोक सभा को गुमराह किया है और उसके विशेषाधिकार का उल्लंघन किया है। इसलिए, उन्होंने महसूस किया कि इस मामले पर आगे कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं है।[253] सभापति ने अपने द्वारा दी गई व्यवस्था की एक प्रति श्री अरुण सिंह की टिप्पणियों के साथ लोक सभा के अध्यक्ष को भेज दी थी। लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा आगे कोई कार्यवाही नहीं की गई।[254]

11 सितम्बर, 1992 को सभापति को लोक सभा के अध्यक्ष का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसके साथ लोक सभा के सदस्य श्री जॉर्ज फर्नांडिस द्वारा वित्त मंत्रालय में राज्य मंत्री श्री रामेश्वर ठाकुर के विरुद्ध दी गई सूचना की वह प्रति संलग्न की गई थी जिसमें समिति के कार्य में रुकावट डालने के उद्देश्य से प्रतिभूति घोटाले संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के कुछ सदस्यों को कथित रूप से प्रभावित करने का प्रयास करने का आरोप लगाया गया था। सभापति ने श्री ठाकुर से उनकी टिप्पणी मांगने के बाद मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। समिति ने इस पर विचार किया और निष्कर्ष निकाला कि इसमें विशेषाधिकार का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है। सभा द्वारा इस मामले में आगे कोई कार्यवाही नहीं की गई।[255]

7 जुलाई 2008 को सभापति को अध्यक्ष लोक सभा का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसके साथ विभिन्न नोटिसों की प्रतियां संलग्न थीं। इनमें से एक नोटिस श्री देवेन्द्र प्रसाद यादव, सदस्य, लोक सभा द्वारा (जिस पर लोक सभा के 17 अन्य सदस्यों के भी हस्ताक्षर थे) शिव सेना पार्टी के नेता श्री बालासाहेब ठाकरे के विरुद्ध, दिया गया था जिसमें श्री ठाकरे पर उनके समाचार पत्र 'सामना' में महाराष्ट्र में उत्तर भारतीयों के प्रति हिंसा के मामले पर संसद् में चर्चा करने वाले सदस्यों की आलोचना करके लोक सभा की गरिमा को धूमिल करने और विशेषाधिकार का उल्लंघन करने का आरोप लगाया गया था। दूसरा नोटिस लोक सभा सदस्य श्री राम कृपाल यादव, द्वारा इसी विषय पर दिया गया था। तथापि उक्त समाचार पत्र की

सावधानीपूर्वक जांच करने पर यह पाया गया कि सदस्यों की आलोचना करते हुए की गई विवादित टिप्पणियां 'सामना' के कार्यकारी संपादक तथा राज्य सभा सदस्य श्री संजय राउत द्वारा लिखे गए लेख/संपादकीय में की गई थीं। सभापति ने इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। समिति ने मामले पर विचार किया और श्री राउत द्वारा मौखिक एवं लिखित रूप से खेद व्यक्त करने के मद्देनज़र यह राय व्यक्त की कि इस मामले को आगे बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है तथा समिति ने कोई कार्रवाई न करने की सिफारिश की।[256] लोक सभा अध्यक्ष को तद्नुसार सूचित कर दिया गया।

किसी सदस्य द्वारा दूसरे सदन में अथवा भारत में किसी राज्य विधान-मंडल में दिए गए भाषण के आधार पर विशेषाधिकार के उल्लंघन अथवा सदन के अवमान का कोई मामला नहीं बनता क्योंकि संसद् के प्रत्येक सदन और सभी विधान मंडलों की कार्यवाही विशेषाधिकार का मामला होती हैं और एक सदन में दूसरे सदन में कही गई किसी बात के लिए कार्यवाही नहीं की जा सकती।

कांग्रेस संसदीय दल की एक बैठक में राज्य सभा के एक सदस्य ने दो मंत्रियों के विरुद्ध कुछ आरोप लगाए थे। 20 जून, 1967 को प्रधान मंत्री ने लोक सभा में एक वक्तव्य दिया और कहा कि सदस्य द्वारा दी गई सामग्री के आधार पर लगाए गए आरोप सिद्ध नहीं होते। अगले दिन लोक सभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया कि चूंकि दोनों मंत्रियों, जो इस सभा के सदस्य हैं, के विरुद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध नहीं होते, इसलिए सारी सभा की बदनामी हुई है। एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि विशेषाधिकार का प्रश्न राज्य सभा के सभापति को दोनों सदनों की विशेषाधिकार समितियों की संयुक्त बैठक में विकसित की गई प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही किये जाने के लिए भेज दिया जाये। लम्बी बहस के बाद इस प्रस्ताव पर मत लिया गया और वह अस्वीकृत हो गया।[257] राज्य सभा में एक सदस्य ने इस आधार पर एक विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति मांगी कि राज्य सभा के एक अन्य सदस्य को लेकर विशेषाधिकार का मामला उठाया गया और दो मंत्रियों पर कुछ आरोप लगाने के लिए लोक सभा में उसे बुरा-भला कहा गया। सभापति ने यह टिप्पणी करते हुए चर्चा समाप्त कर दी कि:

> ...दूसरे सदन द्वारा हमारे सदस्य के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई। यदि कार्यवाही की गई होती, तो हम ध्यान देते। लोक सभा में जो कुछ हुआ, हमें उस पर चर्चा नहीं करनी चाहिए। लोक सभा के अध्यक्ष ने कहा कि वह स्वयं कार्यवाही कर सकते थे किन्तु वह दुविधा में थे और उन्होंने यह बेहतर समझा कि इस बात का निर्णय करना सभा पर छोड़ दिया जाये कि क्या शिकायत को आवश्यक कार्यवाही के लिए राज्य सभा के सभापति को भेजा जाए अथवा नहीं।[258]

30 मार्च, 1970 को, बहस के दौरान एक सदस्य ने लोक सभा के एक सदस्य के विरुद्ध कतिपय आरोप लगाये थे। यह मामला लोक सभा में उठाया गया और वहां चर्चा के पश्चात् अध्यक्ष ने यह कहा कि वह इस मामले को राज्य सभा के सभापति के साथ उठायेंगे। लोक सभा अध्यक्ष ने, तद्नुसार, सभापति को एक पत्र भेजा जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह विचार प्रकट किया गया था कि किसी एक सदन के सदस्य के लिये दूसरे सदन के सदस्यों पर सदन में आरोप लगाना या आक्षेप करना वांछनीय नहीं है। उसके उत्तर में सभापति, लोक सभा अध्यक्ष की समुक्तियों से सहमत थे और उन्हें यह सूचित किया कि संबंधित सदस्य ने राज्य सभा में जो कुछ कहा था, उपसभापति ने उसका पहले ही निरनुमोदन कर दिया था। तत्पश्चात् वह मामला वहीं पर समाप्त हो गया।[259]

एक अन्य मामले में, 2 सितम्बर, 1970 को राज्य सभा के सदस्य श्री भूपेश गुप्त ने राज्य सभा में बहस के दौरान निम्नलिखित टिप्पणियां की थीं :

> "गत रात्रि अनेक संसद् सदस्यों को कुछ राजाओं (प्रिंसेज़) तथा महाराजाओं के आवासों पर ले जाया गया था और मैं जानता हूं कि एक मामले में जहां एक दल के एक सदस्य को एक महाराजा के निवास-स्थान पर ले जाया गया, जहां राजमाता ने उसे रिश्वत देने की कोशिश की थी। मैं उस सदस्य को आपके समक्ष हाज़िर करने के लिये तैयार हूं। मैं उनसे हाज़िर होने तथा इस संबंध में आपको जानकारी देने के लिये कह सकता हूं..."

3 सितम्बर, 1970 को, लोक सभा के एक सदस्य श्री रामचरण ने श्री गुप्त के विरुद्ध इस आधार पर विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति मांगी थी कि राज्य सभा में की गयी उनकी उपर्युक्त टिप्पणियों में, जैसाकि 3 सितम्बर, 1970 के नवभारत टाइम्स में समाचार प्रकाशित हुआ था, श्री गुप्त ने यह आरोप लगाया था कि चार 'आदिवासी' और अन्य संसद्-सदस्यों ने संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, 1970 के विरुद्ध लोक सभा में इसलिये मत दिया था क्योंकि उन्हें रिश्वत दी गयी थी। इस मामले को लोक सभा अध्यक्ष द्वारा राज्य सभा के सभापति के पास भेज दिये जाने पर, सभापति ने लोक सभा अध्यक्ष के पत्र के उत्तर में यह विचार प्रकट किया था कि:

> श्री भूपेश गुप्त द्वारा लगाये गये आरोप, जिनका संसद् सदस्य श्री राम चरण ने स्पष्टतया उल्लेख किया है, लोक सभा या राज्य सभा दोनों में से किसी एक के किसी विशिष्ट सदस्य से संबंधित नहीं हैं...इसलिये आप देखेंगे कि श्री भूपेश गुप्त ने किसी एक सभा के किसी सदस्य के संबंध में व्यक्तिगत रूप से उल्लेख नहीं किया है। मेरा सदा यह विचार रहा है कि एक सदन के सदस्यों को सदन में या उससे बाहर, दूसरे सदन के सदस्यों पर आरोप नहीं लगाना चाहिये और न ही आक्षेप करना चाहिये। राज्य सभा में, सभापीठ ने किसी सदस्य के इस प्रकार के व्यवहार को सदा अनुचित समझा है।[260]

जहां तक संसद् के किसी सदस्य द्वारा किसी राज्य विधान-मंडल का या किसी राज्य विधान-मंडल के किसी सदस्य द्वारा संसद् के किसी सदस्य या किसी अन्य राज्य के विधान-मंडल के किसी सदस्य का अवमान किये जाने का संबंध है, इस बारे में संसद् में एक परिपाटी बनायी गयी है और जब राज्य विधान-मंडल के किसी सदस्य द्वारा संसद् के किसी सदस्य के विरुद्ध या संसद् के किसी सदस्य द्वारा किसी राज्य विधान-मंडल के किसी सदस्य के विरुद्ध कोई शिकायत की जाती है, तो उस स्थिति में वैसी ही प्रक्रिया का पालन किया जाता है। जब सभापति को किसी राज्य विधान-मंडल से इस तरह का कोई विचारणीय मामला प्राप्त होता है तो वह उस मामले की जांच करता है, यदि आवश्यक हो तो सदन के संबंधित सदस्यों से अपनी टिप्पणियां देने के लिये कहता है और तद्नुसार, उस मामले का निर्णय करता है। तत्पश्चात् सभापति के निर्णय के संबंध में उस राज्य विधान-मंडल के अध्यक्ष/सचिव को सूचित किया जाता है, जिससे उक्त विचारणीय मुद्दा प्राप्त हुआ था।[261]

एक सदन दूसरे सदन की कार्यवाही पर टिप्पणी नहीं करेगा

चूंकि संसद् के प्रत्येक सदन का अपनी कार्यवाही पर अनन्य क्षेत्राधिकार है, इसलिए कोई भी सदन दूसरे सदन अथवा किसी राज्य विधान-मंडल की कार्यवाही के संबंध में निर्णय नहीं ले सकता। इसी प्रकार, राज्यों के विधान-मंडल भी संसद् के किसी सदन की कार्यवाही पर टिप्पणी नहीं कर सकते। राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में किसी सदस्य द्वारा सदन में बोलते हुए लोक सभा अथवा किसी राज्य विधान-मंडल के कार्य संचालन अथवा कार्यवाही के बारे में कोई भी आक्रामक अभिव्यक्ति किए जाने की मनाही है।[262] सदस्यों से आशा की जाती है कि वे दूसरे सदन की कार्यवाही के संबंध में कोई भी टिप्पणी करते समय संयम से काम लेंगे। दूसरे सदन की कार्यवाही के संबंध में ऐसे उल्लेख अथवा टिप्पणियां अनिवार्य रूप से नियमों में अनुचित हैं और उन्हें सदन की कार्यवाही से निकाल दिया जाता है। तथापि, सभापति ने कुछ मामलों में राज्य विधान-मंडलों की कार्यवाही के संबंध में, मामले के गुणावगुण पर विचार किए बिना ही, संवैधानिक मुद्दों पर चर्चा की अनुमति दे दी।

एक अवसर पर अध्यक्ष की व्यवस्था के परिणामस्वरूप तमिलनाडु विधान सभा के कुछ सदस्यों को दल बदलने के आधार पर अयोग्य ठहराए जाने के मुद्दे को उठाए जाने की अनुमति दी गई थी। बहस के अंत में, सभापति ने टिप्पणी की:

> राज्य विधान-मंडलों के पीठासीन अधिकारी स्वतंत्र प्राधिकारी हैं। वे संसद् के पीठासीन अधिकारियों के अपीलीय क्षेत्राधिकार में नहीं आते। वास्तव में उन्हें भी वही अधिकार प्राप्त हैं जो हम में से किसी को प्राप्त हैं। किन्तु मैंने यह चर्चा किए जाने की अनुमति इसलिए दी थी कि माननीय सदस्य सुझाव दे सकें कि यदि भविष्य में इस प्रकार के मामले सामने आते हैं तो उनमें क्या किया जाना चाहिए और चूंकि इस तरह का मामला पहली बार उठा है, इसलिए कुछ सुझाव तो दिए गए हैं...किन्तु यह सभा तमिलनाडु विधान सभा के अध्यक्ष द्वारा की गई कार्रवाई के गुण-दोष के संबंध में कोई मत प्रकट नहीं करती और इसलिए यह चर्चा पूरी तरह उन्हीं सुझावों तक सीमित है जो इस प्रकार की स्थितियों से निपटने के लिए संगत हैं।[263]

इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर राज्य सभा के सभापति द्वारा "उत्तर प्रदेश और राजस्थान की विधान सभाओं के अध्यक्षों का चयन करने हेतु अनुच्छेद 178 के अन्तर्गत संवैधानिक उत्तरदायित्व न निभा पाने के कारण उत्पन्न स्थिति" से संबंधित एक विशेष उल्लेख स्वीकृत किया गया था। किन्तु कुछ सदस्यों ने इस आधार पर आपत्ति की थी कि राज्य विधान-मंडलों से संबंधित मामले सदन के अधिकार-क्षेत्र में नहीं आते। सभापति ने विशेष उल्लेख की अनुमति दिए जाने के पक्ष में बोलते हुए स्पष्ट किया कि अध्यक्ष के चयन में दो सत्ताएं शामिल हैं। एक ओर वे पूर्णत: सदस्य होते हैं, दूसरी ओर राज्यपाल होता है। उन्होंने सभा का ध्यान अनुच्छेद 355 की ओर दिलाया था जिसमें यह उपबंध किया गया है कि यह सुनिश्चित करना संघ सरकार का कर्त्तव्य होगा कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाई जाए। सभापति ने स्पष्ट किया कि 'प्रत्येक राज्य की सरकार' पदावलि में अन्य व्यक्तियों के साथ-साथ संबंधित राज्य का राज्यपाल भी शामिल है और यदि वह अपने को सौंपे गए कार्यों को निष्पादित करने में समर्थ नहीं है तो यह सुनिश्चित करना संघ सरकार का कर्त्तव्य हो जाता है कि राज्यपाल अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करे। तद्नुसार, राज्य सभा स्वत: ही इस तथ्य पर चर्चा करने का अधिकार रखती है। किन्तु सभापति ने यह स्पष्ट किया कि राज्य सभा विधान सभा की इस प्रकार से आलोचना नहीं कर सकती।[264]

समितियों के संदर्भ में सदन की कार्यवाही संबंधी परिपाटी का अनुसरण भी किया जाता है। एक सदन दूसरे सदन की समिति को प्रभावित करने वाले किसी मामले से संबंधित विशेषाधिकार हनन के प्रश्न को नहीं उठाता है।

जुलाई 1982 में राज्य सभा के कुछ सदस्यों ने प्रधान मंत्री और उसके कार्यालय तथा कुछ मंत्रियों के विरुद्ध एक मुद्दे जो सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति से संबंधित था, से संबंधित विशेषाधिकार हनन के नोटिस दिए थे। सभापति ने मामले को विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में उठाने की सहमति नहीं दी। उन्होंने व्यवस्था दी:

> सूचनाओं का प्रयोजन हमारे नियमों के नियम 187 के अधीन विशेषाधिकार का प्रश्न उठाना है जिसमें उपबंध है कि इन नियमों के उपबंधों के अधीन कोई भी सदस्य, सभापति की सहमति से, कोई ऐसा प्रश्न उठा सकेगा जिसमें या तो किसी सदस्य के या राज्य सभा के या उसकी किसी समिति के विशेषाधिकार का उल्लंघन अन्तर्ग्रस्त हो। संक्षिप्त रूप से कहा जाए, तो विशेषाधिकार के उल्लंघन के प्रश्न को केवल हमारी सभा की समिति को प्रभावित करने वाले मामले तक ही सीमित रखना होता है। सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों संबंधी समिति लोक सभा के प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 312क के अधीन गठित एक समिति है। यह लोक सभा के अध्यक्ष के निदेश और नियंत्रण के अधीन कार्य करती है। यद्यपि इस समिति से सम्बद्ध होने के लिए हमारी सभा के 7 सदस्यों को नाम-निर्देशित किया जाता है और वे समिति में मतदान करने और कार्यवाहियों में भाग लेने के लिए लोक सभा के सदस्यों के समान अधिकार रखते हैं, तथापि यह सत्य है कि यह सीमित अनिवार्य और मुख्य रूप से लोक सभा की समिति है। नियम 187, जिसका पहले उल्लेख किया गया है, के अधीन विशेषाधिकार के उल्लंघन का प्रश्न केवल हमारी समिति के संबंध में उठ सकता है। लोक

सभा की समिति के विशेषाधिकारों के मामले में राज्य सभा का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होता है। समिति से सूचनाओं को छिपाने अथवा किसी फाइल को रोके रखने अथवा उस पर कोई आक्षेप लगाने के आधार पर विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला उठाने का उपयुक्त मंच केवल लोक सभा ही हो सकती है।[265]

सभापति द्वारा विशेषाधिकार के प्रश्नों को विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाना

सभापति को यह अधिकार है कि वह विशेषाधिकार अथवा सदन की अवमानना के किसी भी प्रश्न को उसकी जांच, छानबीन और उस पर प्रतिवेदन हेतु स्वत: उसे विशेषाधिकार समिति को सौंप दे।[266] ऐसे कई मामलों में सभापति ने ऐसे विषय को पहले सभा के समक्ष प्रस्तुत किए बिना ही उसे सीधे ही समिति को सौंप दिया है।[267] ऐसे भी कई मामले हुए हैं जबकि सभापति ने ऐसे विषय को सदन में किसी सदस्य द्वारा उठाए जाने की अनुमति दे दी और उसके बाद यह घोषणा की कि वह अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए उस मामले को समिति को सौंप रहा है।[268] इस संबंध में निर्धारित परिपाटी के अनुसार जब कभी सभापति ऐसे विषय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए विशेषाधिकार समिति को सौंपता है, तब सदस्यों को उसकी सूचना संसदीय समाचार (बुलेटिन) में एक पैराग्राफ के माध्यम से दे दी जाती है।[269] इन मामलों में समिति के प्रतिवेदन भी सदन में उसी प्रकार प्रस्तुत किए जाते हैं जिस प्रकार से मामले सदन द्वारा समिति को सौंपे जाते हैं।

सामान्यत: सभापति किसी मामले को उसकी "जांच, छानबीन और उस पर प्रतिवेदन" के लिए नियम 203 के अन्तर्गत विशेषाधिकार समिति को सौंपता है। किन्तु कई अवसरों पर सभापति ने इन मामलों को "उसे प्रतिवेदन प्रस्तुत करने,"[270] "समिति के विचार जानने"[271] हेतु अथवा ऐसी स्थिति में जब राज्य सभा के किसी सदस्य से लोक सभा अथवा राज्य विधान-मंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु उपस्थित होने का अनुरोध किया गया हो, "एक उपयुक्त प्रक्रिया निर्धारित करने" हेतु समिति को सौंपा है।[272]

ऐसे भी दो अवसर आए हैं जब सभापति ने विशेषाधिकार उल्लंघन के मामले को समिति को सौंपने की बजाए उसकी स्वयं जांच-पड़ताल की है और अपनी जांच के परिणाम से सभा को अवगत कराने के बाद उक्त मामले को बन्द कर दिया गया है।

5 जून, 1967 को एक सदस्य ने लोक सभा के एक सदस्य के विरुद्ध अपमानजनक वक्तव्य देने के संबंध में एक अन्य सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति मांगी। अगले दिन जिस सदस्य के विरुद्ध शिकायत की गई थी, उसने आरोप को छोड़े बिना अथवा खेद व्यक्त किए बिना ही, जिसके लिए सभापति द्वारा परामर्श दिया गया था, एक वक्तव्य दिया। उसके बाद सभापति ने सदस्य को लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने के लिए कहा। सभापति ने जांच-पड़ताल की और संबंधित सदस्य ने एक लिखित वक्तव्य दायर किया। उस वक्तव्य के आधार पर सभापति ने 19 जून, 1967 को सदन में एक घोषणा करते हुए उस मामले को बन्द कर दिया, इसमें सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी भी की कि "...जो सदस्य आरोपों को सिद्ध नहीं कर पाते हैं...उन्हें ऐसे वक्तव्य नहीं देने चाहिएं। सदस्यों द्वारा...लगाए गए आरोपों-प्रत्यारोपों से संसद् की मान-मर्यादा कम हो जाती है।" उन्होंने अर्सकीन मे को भी उद्धृत किया जिन्होंने कहा था, "सद्भावना और संयम संसदीय भाषा की विशेषताएं हैं। जब कोई सदस्य अपने विरोधियों के विचारों और आचरण की चर्चा कर रहा हो, तो उस समय ही संसदीय भाषा का प्रयोग किया जाना सबसे अधिक वांछनीय होता है।"[273]

जोर्डन में एक राजमार्ग का ठेका किसी निजी कम्पनी और भारतीय खनिज एवं धातु व्यापार निगम (एम.एम.टी.सी.) को दिए जाने से संबंधित तारांकित प्रश्न संख्या 87 का उत्तर 3 मार्च, 1987 को राज्य सभा में दिया गया था। अनुपूरक प्रश्नों में इस बात पर बल दिया गया था कि संबंधित मंत्रालय ने उक्त ठेका देने में सरकारी उपक्रम की बजाय एक निजी कम्पनी को फायदा पहुंचाया है। संबंधित मंत्री और कुछ सदस्य यह चाहते थे कि इस मामले की सभापति द्वारा जांच करायी जाए। सभापति ने वैसा ही किया, उसने न केवल दस्तावेज मंगवाए, बल्कि उस सदस्य के जिसने पक्षपात का आरोप लगाया था और संबंधित सरकारी उपक्रम के अध्यक्ष के विचारों को भी व्यक्तिगत रूप से सुना और उक्त मामले में अपना निर्णय दिया।[274]

राज्य विधान-मंडल की किसी समिति के समक्ष साक्षी के रूप में उपस्थित होने के लिए राज्य सभा के किसी सदस्य को बुलाए जाने संबंधी प्रक्रिया

राज्य सभा के सभापति को महाराष्ट्र विधान परिषद् के अध्यक्ष से एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें यह अनुरोध किया गया था कि महाराष्ट्र विधान परिषद् के भूतपूर्व सदस्य और राज्य सभा के वर्तमान सदस्य, डा. श्रीकांत रामचन्द्र जिचकर को विशेषाधिकार के उल्लंघन और परिषद् के अध्यक्ष की अवमानना के प्रश्न से संबंधित उस परिषद् की विशेषाधिकार समिति के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु राज्य सभा की अनुमति देने का अनुरोध किया गया था, क्योंकि परिषद् में विशेषाधिकार की सूचना प्रस्तुत करने वाले दो सदस्यों में से एक सदस्य डा. जिचकर थे। चूंकि राज्य सभा में ऐसा मामला पहले कभी नहीं आया था, इसलिए सभापति ने इस प्रयोजन के लिए एक उपयुक्त प्रक्रिया निर्धारित किए जाने हेतु इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। विशेषाधिकार समिति ने निम्नलिखित प्रक्रिया निर्धारित की :

समिति की यह राय है कि सदन को अपने किसी भी सदस्य को लोक सभा अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष अथवा राज्य विधान-मंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष साक्ष्य देने के लिए तब तक अनुमति नहीं देनी चाहिए, जब तक उस सदस्य के उपस्थित होने के लिए स्पष्ट रूप से कारण एवं प्रयोजन बताते हुए विशिष्ट रूप से अनुरोध न किया गया हो और जब तक उस सदस्य की सहमति न हो, जिसकी कि उपस्थिति अपेक्षित है।

सदन के किसी सदस्य को भी लोक सभा या किसी राज्य विधान-मंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष तब तक साक्ष्य नहीं देना चाहिए, जब तक वह पहले सदन की अनुमति प्राप्त न कर ले। इसके अतिरिक्त, जब कभी ऐसा अनुरोध प्राप्त हो, जिसमें लोक सभा अथवा किसी राज्य विधान-मंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु किसी सदस्य के लिए सदन की अनुमति मांगी गई हो, तो उस मामले को सभापति द्वारा विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाए। समिति से प्रतिवेदन प्राप्त होने पर सभापति अथवा समिति के किसी सदस्य द्वारा सदन में इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाए कि सदन उक्त प्रतिवेदन से सहमत है और आगे की कार्यवाही सदन के निर्णय के अनुसार की जानी चाहिए।

उपर्युक्त मामले में समिति ने यह सिफारिश की कि चूंकि डा. जिचकर ने महाराष्ट्र विधान परिषद् की विशेषाधिकार समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए अपनी इच्छा की पुष्टि कर दी है, इसलिए उन्हें इसकी अनुमति दे दी जाए।[275] समिति का प्रतिवेदन 30 मार्च, 1993 को सदन द्वारा स्वीकृत कर लिया गया।[276]

उच्चतम न्यायालय और विशेषाधिकार का मामला

उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 143 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए उत्तर प्रदेश विधान सभा और इलाहाबाद उच्च न्यायालय (केशव सिंह मुकदमे) के मध्य संघर्ष से उत्पन्न विषय पर

बहुमत से यह राय व्यक्त की कि राज्य विधान-मंडलों को अनुच्छेद 194(3) के अंतर्गत दिए गए विशेषाधिकार मौलिक अधिकारों के अध्यधीन हैं और विधान-मंडलों को इस आशय का विशेषाधिकार नहीं है कि उनके साधारण आदेश भी निर्णायक समझे जाएं। उच्चतम न्यायालय ने शर्मा के मुकदमे[277] में यह मत व्यक्त किया कि इस मुकदमे में सभी मौलिक अधिकारों की प्रासंगिकता और उनके लागू होने का सामान्य मुद्दा उठाया ही नहीं गया। न्यायालय के अनुसार, अनुच्छेद 19(1)(क) के लागू न होने और अनुच्छेद 21 के लागू होने के मुद्दे को बहुमत के निर्णय से निपटाया जाए। न्यायालय ने आगे यह कहा[278]:

> अनुच्छेद 194 के खण्ड 3 में अंतर्विष्ट उपबंधों के प्रभाव के संबंध में विचार करते हुए, जब भी ऐसा लगे कि इन उपबंधों और मौलिक अधिकारों से संबंधित उपबंधों में कोई विरोध है, तो उसे सद्भावपूर्ण व्याख्या के नियम को स्वीकार करते हुए हल करने का प्रयास करना होगा।

उच्चतम न्यायालय के इस मत पर 1965 में आयोजित पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन के दौरान चर्चा की गई थी। सम्मेलन में एक प्रस्ताव स्वीकृत किया गया जिसमें यह सुझाव दिया गया था कि संविधान में संदेह से परे यह स्पष्ट करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए कि विधान-मंडलों और उनके सदस्यों तथा समितियों की शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों को किसी भी दशा में संविधान के किन्हीं अन्य अनुच्छेदों के अध्यधीन अथवा उनके अन्तर्गत होना नहीं माना जा सकता है। इस दौरान, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने विधान सभा की अपनी अवमानना के संबंध में कार्यवाही करने की शक्ति को उचित ठहराया है। इसलिए, उक्त संकल्प पर कोई कार्यवाही नहीं की गई।[279] 1984 में पुन: उच्चतम न्यायालय में लम्बित मामलों के संबंध में सम्मेलन ने एक अन्य संकल्प पारित किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह बात भी दोहरायी गयी कि भारत में विधायिका के पास सदन, उसके सदस्यों और समितियों के विशेषाधिकारों से संबंधित मामलों के संबंध में निर्णय लेने का अनन्य अधिकार है तथा इसमें कानूनी अदालतों अथवा किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।[280]

कानूनी प्रक्रिया

स्थापित परंपरा और अभिसमय के अनुसार कि सभापति अदालत में उपस्थित होने की किसी सूचना का उत्तर नहीं देता है। इस संबंध में कुछ दृष्टांतों का यहां नीचे उल्लेख किया गया है:

> 1964 में सभापति को उच्चतम न्यायालय से राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 143 के अंतर्गत सौंपे गए विशेष निर्देश (1964 का संख्यांक 1) के संबंध में (केशव सिंह के मुकदमे में) एक सूचना प्राप्त हुई। उक्त सूचना पर राज्य सभा में विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं की एक अनौपचारिक बैठक में चर्चा की गई थी। बैठक में इस बात पर सर्वसम्मति व्यक्त की गई कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष निर्देश में राज्य सभा के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं है। सदन इस पर सहमत था। सदन के सचिव को निदेश दिया गया कि वह उच्चतम न्यायालय को तद्नुसार सूचित कर दे।[281]

> 1974 में सभापति को उच्चतम न्यायालय से राष्ट्रपति के निर्वाचन के बारे में संविधान के अनुच्छेद 143 के अंतर्गत विशेष संदर्भ के मामले में एक सूचना प्राप्त हुई थी। सामान्य प्रयोजन समिति द्वारा की गई सिफारिश का पालन करते हुए उक्त सूचना पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। सदन भी इस पर सहमत था।[282]

> 1987 में सभापति को उच्चतम न्यायालय से, दो संसद्-सदस्यों द्वारा संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 की वैधता को चुनौती देते हुए दायर की गई रिट याचिका का स्थानांतरण चाहने वाली भारत संघ द्वारा दायर स्थानांतरण याचिका के बारे में एक सूचना प्राप्त हुई थी। सभापति ने सदन को सूचित किया

कि "प्रथा के अनुसार, हम इस सूचना का उत्तर देने अथवा अदालत में उपस्थित होने का प्रस्ताव नहीं करते," और वह संबंधित पत्रों को विधि और न्याय मंत्री को इस मामले में ऐसी कार्यवाही करने के लिए भेज रहे हैं, जैसी वह उचित समझे। सदन इस पर सहमत हो गया।[283]

विदेशी राष्ट्रिक के संबंध में विशेषाधिकार का सीमा क्षेत्र

स्वराज पॉल के मामले में, लन्दन स्थित उद्योगपति श्री स्वराज पॉल के विरुद्ध मुम्बई से प्रकाशित एक साप्ताहिक पत्रिका को दिए गए एक साक्षात्कार में राज्य सभा के दो सदस्यों पर कथित रूप से आक्षेप लगाने के लिए विशेषाधिकार के प्रश्न हेतु सूचनाएं दी गई थीं। चूंकि यह अपनी तरह का पहला मामला था और एक ऐसे व्यक्ति के संबंध में जो भारत का राष्ट्रिक अथवा नागरिक नहीं हो। अधिकार-क्षेत्र और ऐसे मामलों में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में कोई दिशा-निर्देश नहीं होने के कारण सभापति ने इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। समिति ने श्री पॉल द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को माफ करने की भावना से लिया और इस मामले में आगे कोई कार्यवाही न करने की सिफारिश की, किंतु समिति ने क्षेत्राधिकार के संबंध में महान्यायवादी की राय ली, महान्यायवादी की राय यह थी कि संसद् किसी विदेशी राष्ट्रिक द्वारा देश की सीमाओं में की गई अवमानना के संबंध में उसके विरुद्ध व्यक्तिबन्धी क्षेत्राधिकार का उपयोग कर सकती है।[284]

विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध किया जाना

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, संविधान के अनुच्छेद 105(3) में अन्य बातों के साथ-साथ संसद् के प्रत्येक सदन, उसके सदस्यों और उसकी समितियों की शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों को संसद् द्वारा विधि के माध्यम से परिभाषित किए जाने के लिए छोड़ दिया गया है। संसद् द्वारा अब तक इस संबंध में कोई व्यापक विधि नहीं बनायी गयी है। इस संबंध में, इस विषय पर कानून बनाने के मुद्दे पर पीठासीन अधिकारियों के विभिन्न सम्मेलनों में समय-समय पर विचार किया गया है। प्रेस आयोग ने भी विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने का अनुरोध किया है। इन्हें संहिताबद्ध करने के पक्ष और विपक्ष में विभिन्न तर्क दिए गए हैं।[285] 1994 में लोक सभा की विशेषाधिकार समिति ने इस विषय पर विभिन्न विचारों का एक अध्ययन आरंभ किया है। समिति यह मत व्यक्त करने पर बाध्य हो गई कि बहुमत की राय संसदीय विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध किए जाने के विरुद्ध है और उसने यह सिफारिश की कि ऐसा किया जाना उचित नहीं रहेगा।[286]

इसके अतिरिक्त लोक सभा की विशेषाधिकार समिति ने संसदीय विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध किए जाने के मामले पर विचार किया और इस संबंध में समिति का 11वां प्रतिवेदन 30 अप्रैल, 2008 को सभा पटल (लोक सभा) पर रखा गया। इस मामले में समिति ने विधानमंडल, विधिक व्यवसाय, मीडिया, शैक्षणिक वर्ग और विदेशी संसदों के प्रसिद्ध व्यक्तियों/संस्थानों से राय ली। समिति संसदीय विशेषाधिकार, मामलागत विधि, जमीनी हक़ीकतों और विशेषज्ञों की राय से संबंधित सभी पहलुओं पर विचार किए जाने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंची कि उक्त मामले पर विचार करने वालों में बहुमत की राय संसदीय विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध नहीं किए जाने के पक्ष में थी। अंततः समिति का यह मत था कि संसदीय विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने का कोई अवसर उत्पन्न नहीं होता है और इन्हें संहिताबद्ध न करने की सिफारिश की।[287]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. अर्सकीन मे, पार्लियामेन्ट्री प्रैक्टिस, बटरवर्थस्, लंदन, 24वां संस्करण, 2011, पृष्ठ 203
2. -वही- पृष्ठ 251
3. रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑफ प्रिविलेजेज़ इन कैप्टन रैमज़े केस, हाउस ऑफ कॉमन्स, 164 (1939-40), पैरा 19 कौल एंड शकधर में उद्धृत (छठा संस्करण), 2009, पृष्ठ 219
4. रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑफ प्रिविलेजेज़ इन लेविस केस, हाउस ऑफ कॉमन्स, 244 (1951), पैरा 22 (कौल एंड शकधर), -वही-
5. रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑफ स्पीकर्स, 1956, पैरा 18, कौल और शकधर, -वही-
6. अनुच्छेद 105(1)
7. अनुच्छेद 105(2)
8. -वही-
9. अनुच्छेद 122(1)
10. अनुच्छेद 122(2)
11. अनुच्छेद 361क
12. अनुच्छेद 361क(1), परंतुक
13. अनुच्छेद 105(3)
14. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, धारा 135क
15. नियम 222क और 222ख
16. विशेषाधिकार समिति का पहला प्रतिवेदन (2.5.1958 को स्वीकृत)
17. विशेषाधिकार समिति का तैंतीसवां प्रतिवेदन (30.3.1993 को स्वीकृत)
18. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.3.1973, कालम 115-16; और 21.11.1983, कालम 415-18
19. नियम 84, 196, 208, 212ङ, 212ठ और 212न
20. अनुच्छेद 118(1)
21. एम.एस.एम. शर्मा बनाम श्री कृष्ण सिन्हा, ए.आई.आर. 1959, एस.सी. 395
22. नियम 265
23. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.12.1967, कालम 5236-52, 54; और 18.3.1982, कालम 232
24. -वही- 23.3.1982, कालम 370-72; और 26.8.1983, कालम 500-01
25. -वही- 24.12.1980, कालम 1-2; और 1.6.1990, कालम 1-2
26. नियम 256
27. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.11.1976, कालम 162
28. तेज किरण जैन बनाम एन. संजीव रेड्डी, ए.आई.आर. 1970, एस.सी. 1573
29. एम.एस.एम. शर्मा, पूर्वोक्त
30. सुरेश चन्द्र बनर्जी बनाम पुनीत गोला, ए.आई.आर. 1951, कलकत्ता 176
31. सुरेन्द्र मोहन्ती बनाम नवकृष्ण चौधरी, ए.आई.आर. 1958, उड़ीसा 168
32. सतीश चन्द्र घोष, ए.आई.आर. 1956, कलकत्ता 433
33. उदाहरण के लिए अनुच्छेद 121
34. उदाहरण के लिए नियम 238 और 238क
35. नियम 238, 240, 261, 262, 255 और 256
36. विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 4
37. अनुच्छेद 88
38. अनुच्छेद 105(4)
39. विशेषाधिकार समिति का पहला प्रतिवेदन, पूर्वोक्त

40. विशेषाधिकार समिति का बारहवां प्रतिवेदन, (20.12.1968 को स्वीकृत)
41. -वही- गृह मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों आदि को लिखा गया पत्र, देखिए सं. 32/266/68-पी. 11 आई. (ए)/डी.एस., 13.6.1969; फाइल सं. 35/7/68-एल
42. एम.एस.एम. शर्मा, पूर्वोक्त
43. नियम 264
44. नियम 265
45. अनुच्छेद 105(2)
46. नियम 260
47. अनुच्छेद 361क
48. संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन-संरक्षण) अधिनियम, 1977 धारा 3 और 4, 1956 का मूल अधिनियम फरवरी, 1976 और अप्रैल, 1977 के बीच निरसित (रद्द) रहा
49. एम.एस.एम. शर्मा, पूर्वोक्त
50. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.3.1981, कालम 145
51. मे, पृष्ठ 87
52. विशेषाधिकार समिति का उनतीसवां प्रतिवेदन, पैरा 10
53. एम.एस.एम. शर्मा, पूर्वोक्त
54. विशेषाधिकार समिति का तेतालीसवां प्रतिवेदन
55. विशेषाधिकार समिति का उन्नीसवां प्रतिवेदन पृष्ठ 2-4
56. -वही- पृष्ठ 6
57. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.12.1980, कालम 209-12, पूर्ण विवरण के लिए देखिए पार्लियामेंटरी प्रिविलेजेज, डाइजेस्ट ऑफ केसेज (1950-85) (जिसका उल्लेख बाद में 'डाइजेस्ट', के रूप में किया गया है), पृष्ठ 421-26
58. विशेषाधिकार समिति का बीसवां प्रतिवेदन
59. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.12.1980, कालम 1-2
60. विशेषाधिकार समिति का तीसरा प्रतिवेदन
61. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.3.1959, कालम 3029-30
62. राज्य सभा वाद-विवाद 12.8.1966, कालम 2483-91; राज्य सभा वाद-विवाद, 11.12.1963, कालम 3046-47 भी देखिए
63. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.3.1967, कालम 1152-54
64. -वही- 1.6.1972, कालम 55-58; डाइजेस्ट, पृष्ठ 427 भी देखिए
65. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.03.1973, कालम 170-71; 31.03.1973, कालम 3-4; डाइजेस्ट, पृष्ठ 427 भी देखिए
66. -वही- 1.8.1973, कालम 181-82; 23.8.1973, कालम 116-118; डाइजेस्ट, पृष्ठ 431-32 भी देखिए
67. -वही- 10.5.1978, कालम 174-75; डाइजेस्ट, पृष्ठ 428 भी देखिए
68. -वही- 24.7.1980, कालम 85-86
69. विशेषाधिकार समिति का बाईसवां प्रतिवेदन
70. सुरेन्द्र मोहन्ती बनाम नवकृष्ण चौधरी, ए.आई.आर. 1958, उड़ीसा 168
71. सब-कमेटी ऑफ जुडिशियल एकाउन्टेबिलिटी बनाम भारत का संघ, ए.आई.आर. 1992, एस.सी. 320, पृष्ठ 353
72. राज्य बनाम आर. सुदर्शन बाबू तथा अन्य, आई.एल.आर. (केरल) 1983, पृष्ठ 661-700
73. राजनारायण सिंह बनाम आत्माराम गोविन्द, ए.आई.आर. 1954, इलाहाबाद 319
74. -वही-
75. विशेषाधिकार समिति का पहला प्रतिवेदन, पृष्ठ 5-6

76. फा.सं. आर.एस. 35/3ए/97-एल
77. विशेषाधिकार समिति का पहला प्रतिवेदन, पृष्ठ 5-6
78. -वही- राज्य सभा वाद-विवाद, 2.5.1958, कालम 1290-95
79. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.02.1964, कालम 101
80. फा. सं. 35/3/79-एल. और 35/3/96-एल
81. मे, पृष्ठ 231
82. फा. सं. 35/3/96-एल
83. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, धारा 135क
84. वेंकटेश्वरलू मामले में, ए.आई.आर. 1951, मद्रास 269
85. कुंजन नाडार बनाम राज्य, ए.आई.आर. 1955, त्रावणकोर-कोचीन 154
86. अंशुमाली मजूमदार बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य, ए.आई.आर. 1952, कलकत्ता 632
87. के. आनंदन् नाम्बियार, ए.आई.आर. 1952, मद्रास 117 के मामले में
88. के. आनंदन् नाम्बियार बनाम मुख्य सचिव, मद्रास सरकार, ए.आई.आर. 1966, एस.सी. 657
89. फा. सं. 35/19/76-एल और 35/3/77-एल
90. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.9.1970, कालम 50 और फा. सं. 35/19/76-एल
91. -वही- 4.12.1978, कालम 249-51
92. -वही- 24.3.1966, कालम 4363-64
93. -वही- 26.3.1965, कालम 4685-86
94. -वही- 9.5.1974, कालम 121
95. नियम 2(1)
96. गृह मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों आदि को लिखा गया पत्र सं. 1/16012/25/95-आई.एस. (डी.-III) 19.6.1996
97. गृह मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों आदि को लिखे गए पत्र सं. 56/58/ज्यूडी., 14.4.1953 और 30.9.1953 और सं. 35/2/57-पी. II, 8.2.1958
98. फा. सं. 39/1/94-एल
99. नियम 222क और दूसरी अनुसूची
100. नियम 222ख और दूसरी अनुसूची
101. नियम 222ग
102. -वही- पहला परंतुक
103. -वही- दूसरा परंतुक
104. विशेषाधिकार समिति का चौबीसवां प्रतिवेदन और गृह मंत्रालय पत्र सं. 1/13015/19/83/आई.एस. (डी-III) 29.3.1984 (फा. सं. 35/26/83-एल. में)
105. विशेषाधिकार समिति का तीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 3
106. विशेषाधिकार समिति का ग्यारहवां प्रतिवेदन
107. डाइजेस्ट, पृष्ठ 29
108. विशेषाधिकार समिति का इक्कीसवां प्रतिवेदन
109. -वही-
110. के. आनन्दन् नाम्बियार के पूर्वोक्त मामले में
111. सभापीठ से दिये गये विनिर्णय और समुक्तियां (1952-2008), पृष्ठ 335-36
112. डाइजेस्ट, पृष्ठ 29-30
113. विशेषाधिकार समिति का तीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 3-5
114. -वही- पृष्ठ 5-8
115. -वही- पृष्ठ 8-9
116. -वही- पृष्ठ 9-10

117. विशेषाधिकार समिति का चौंतीसवां प्रतिवेदन
118. विशेषाधिकार समिति का छत्तीसवां, अड़तीसवां प्रतिवेदन
119. विशेषाधिकार समिति का इक्कीसवां प्रतिवेदन
120. विशेषाधिकार समिति का तीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 13
121. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.3.1977, कालम 28-32
122. फा. सं. 35/19/76-एल
123. गृह मंत्रालय का पत्र सं. VII-11017/15/88-जी.पी.ए. II, 4.10.1988
124. विशेषाधिकार समिति का तेरहवां प्रतिवेदन, पैरा 12 और विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, पैरा 7
125. विशेषाधिकार समिति का सातवां प्रतिवेदन
126. विशेषाधिकार समिति का तेरहवां प्रतिवेदन
127. विशेषाधिकार समिति का अठारहवां प्रतिवेदन
128. विशेषाधिकार समिति का बयालीसवां प्रतिवेदन
129. मे, पृष्ठ 121; विशेषाधिकार समिति का तेरहवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 3 और विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 2-3
130. विशेषाधिकार समिति का नौवां प्रतिवेदन
131. मे, पृष्ठ 127
132. विशेषाधिकार समिति का छब्बीसवां प्रतिवेदन
133. विशेषाधिकार समिति का आठवां प्रतिवेदन
134. विशेषाधिकार समिति का दसवां प्रतिवेदन
135. मे, पृष्ठ 258
136. एम.ओ. मथाई का मामला (विशेषाधिकार समिति का दूसरा प्रतिवेदन); हिन्दुस्तान का मामला (विशेषाधिकार समिति का नौवां प्रतिवेदन); खुशवन्त सिंह का मामला (राज्य सभा वाद-विवाद, 16.8.1983, कालम 233-36); आचार्य रजनीश का मामला (राज्य सभा वाद-विवाद, 5.8.1986, कालम 156-57)
137. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.12.1981, कालम 202-04
138. विशेषाधिकार समिति का इक्यावनवां प्रतिवेदन
139. संसदीय समाचार (1), 5.9.1974
140. विशेषाधिकार समिति का तिरपनवां प्रतिवेदन
141. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अक्तूबर, 1990), पृष्ठ 6-9
142. विशेषाधिकार समिति का तेरहवां प्रतिवेदन; विशेषाधिकार समिति का अठारहवां प्रतिवेदन, पैरा 13 और विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 3
143. विशेषाधिकार समिति का नौवां प्रतिवेदन
144. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.9.1981, कालम 337-45
145. -वही- 22.12.1981, कालम 202-04
146. विशेषाधिकार समिति का पचासवां प्रतिवेदन
147. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.9.1981, कालम 337-45 और 29.7.1983, कालम 204
148. -वही- 22.12.1981, कालम 202-04
149. विशेषाधिकार समिति का चौदहवां प्रतिवेदन
150. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.8.1983, कालम 236
151. -वही- 5.8.1986, कालम 156-57
152. विशेषाधिकार समिति का दूसरा, नौवां, चौदहवां, अठारहवां, अट्ठाईसवां और पैंतीसवां प्रतिवेदन
153. विशेषाधिकार समिति का तीसरा प्रतिवेदन, 9.3.1959 को स्वीकृत
154. विशेषाधिकार समिति का चौथा प्रतिवेदन, 20.9.1963 को स्वीकृत

155. विशेषाधिकार समिति का सातवां प्रतिवेदन, 10.12.1966 को स्वीकृत
156. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.11.1967, कालम 1734-35; 5.4.1971, कालम 125-35; और 5.12.1980, कालम 151
157. विशेषाधिकार समिति का आठवां प्रतिवेदन
158. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.12.1966, कालम 5413-62
159. विशेषाधिकार समिति का तेरहवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 2 और 4
160. विशेषाधिकार समिति का सोलहवां प्रतिवेदन; राज्य सभा वाद-विवाद, 2.8.1967, कालम 1849-50; और विशेषाधिकार समिति का उनतीसवां प्रतिवेदन भी देखिए
161. मे, पृष्ठ 265
162. विशेषाधिकार समिति का इकतीसवां प्रतिवेदन
163. मे, बीसवां संस्करण, पृष्ठ 123-24
164. होमी डी. मिस्त्री बनाम नफीसुल हसन, आई.एल.आर. 1957, मुंबई 218; हरेन्द्र नाथ बरुआ बनाम देवकान्त बरुआ तथा अन्य, ए.आई.आर. 1958, असम 160
165. मे, पृष्ठ 104, 109; सुशांत कुमार चंद बनाम अध्यक्ष, उड़ीसा विधान सभा, ए.आई.आर. 1973, उड़ीसा 111
166. विशेषाधिकार समिति का उन्नीसवां प्रतिवेदन
167. फा. सं. 35/27/80-एल
168. मे, पृष्ठ 196
169. विशेषाधिकार समिति का उन्नीसवां प्रतिवेदन, पैरा 21 और विशेषाधिकार समिति का बीसवां प्रतिवेदन, पैरा 6
170. नियम 259
171. नियम 255 और 256
172. -वही-
173. हरद्वारी लाल का मामला, आई.एस.आर. (1977) 2, पंजाब तथा हरियाणा, पृष्ठ 269
174. यशवन्त राव मेघावले बनाम 1967, मध्य प्रदेश विधान सभा, ए.आई.आर. 1967, मध्य प्रदेश 95
175. डाइजेस्ट, पृष्ठ 745-46
176. -वही- पृष्ठ 747
177. -वही- 747-48
178. -वही- 748-49
179. -वही- पृष्ठ 749
180. -वही- 749-50
181. मे, पृष्ठ 254
182. विशेषाधिकार समिति का सत्रहवां प्रतिवेदन, पैरा 11-14
183. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.2.1980, कालम 53-54
184. -वही- 6.8.1980, कालम 265; राज्य सभा वाद-विवाद, 11.9.1981, कालम 337-45 भी देखिए
185. -वही- 2.2.1980, कालम 53-54
186. सभापीठ से दिए गए विनिर्दिष्ट और समुक्तियां (1952-2008), पृष्ठ 357
187. डाइजेस्ट, पृष्ठ 376-77
188. -वही- पृष्ठ 377
189. -वही- पृष्ठ 384
190. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अप्रैल, 1988), पृष्ठ 5-9
191. अप्रैल, 1988, पृष्ठ 14-16
192. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.3.1981, कालम 164-70

193. डाइजेस्ट, पृष्ठ, 115-16
194. -वही- (अप्रैल, 1986), पृष्ठ 10-11
195. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.6.1964, कालम 910-15
196. डाइजेस्ट, पृष्ठ 270-71
197. -वही- पृष्ठ 271
198. -वही-
199. -वही- पृष्ठ 247
200. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.4.1967, कालम 2927-33
201. डाइजेस्ट, पृष्ठ 90
202. -वही- पृष्ठ 525
203. -वही- पृष्ठ 79-80
204. -वही- पृष्ठ 454-55
205. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.11.1955, कालम 52-59
206. -वही- 21.3.1978, कालम 126-27 और 136-37
207. डाइजेस्ट, पृष्ठ 479
208. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.3.1982, कालम 163-69
209. विशेषाधिकार समिति का सत्ताईसवां प्रतिवेदन; अधिक ब्यौरे के लिए अध्याय-5 भी देखिए
210. विशेषाधिकार समिति का छब्बीसवां प्रतिवेदन; अधिक ब्यौरे के लिए अध्याय-5 भी देखिए
211. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.2.1982, कालम 183-85
212. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अप्रैल, 1986), पृष्ठ 9-10
213. -वही- (अप्रैल, 1987), पृष्ठ 4
214. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.2.1987, कालम 208-13
215. सभापटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति का प्रतिवेदन (विशेष प्रतिवेदन)
216. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.3.1988, कालम 254-57
217. डाइजेस्ट, पृष्ठ 709-10
218. -वही- पृष्ठ 710
219. -वही- पृष्ठ 711-12
220. -वही- पृष्ठ 712-13
221. नियम 187
222. नियम 188
223. -वही-
224. सभापीठ से दिए गए विनिर्णय और समुक्तियां (1952-2008), पृष्ठ 337
225. नियम 189
226. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.9.1981, कालम 223-84; 337-45
227. सभापीठ से दिए गए विनिर्णय और समुक्तियां (1952-2008), पृष्ठ 345
228. -वही- पृष्ठ 339
229. विशेषाधिकार समिति का तीसवां प्रतिवेदन, पैरा 15
230. -वही- पैरा 21
231. -वही- पैरा 14 और 20
232. -वही- पैरा 20 और 28
233. नियम 190(1)
234. -वही- दूसरा परंतुक
235. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.7.1978, कालम 185-98

236. नियम 190(1), पहला परंतुक
237. विशेषाधिकार समिति का सातवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 15; नौवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 21 और दसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 11
238. विशेषाधिकार समिति के सातवें, नौवें, दसवें, तेरहवें प्रतिवेदनों का पैरा 4, चौदहवें प्रतिवेदन का पैरा 3, पन्द्रहवें प्रतिवेदन का पैरा 4, अठारहवें प्रतिवेदन का पैरा 6 और संसदीय समाचार (1), 5.9.1974
239. नियम 190(2)
240. संसदीय समाचार (1), 5.9.1974
241. नियम 191; 230 का संदर्भ भी देखिए (पीछे देखिए)
242. विशेषाधिकार समिति का तीसवां प्रतिवेदन, पैरा 20 (श्रीमती सुशीला तिरिया, संसद्-सदस्य की गिरफ्तारी का मामला और पैरा 28 (मौलाना ओबैदुल्लाह खान आज़मी, संसद्-सदस्य की गिरफ्तारी का मामला))
243. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.6.1967, कालम 2213
244. विशेषाधिकार समिति का तेईसवां प्रतिवेदन, पैरा 3
245. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.8.1995, कालम 241-62
246. विशेषाधिकार समिति का चौवनवां प्रतिवेदन
247. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.5.1954, कालम 5999-6000
248. लोक सभा वाद-विवाद, भाग (1) 12.5.1954, कालम 7162-69
249. लोक सभा और राज्य सभा की विशेषाधिकार समितियों की संयुक्त बैठक का प्रतिवेदन
250. हाउस ऑफ पीपल वाद-विवाद, 6.12.1954, कालम 866-67
251. -वही- 8.12.1954, कालम 1134
252. डाइजेस्ट, पृष्ठ 361-64
253. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.3.1988, कालम 274-78
254. डाइजेस्ट (अप्रैल, 1988), पृष्ठ 1-5
255. विशेषाधिकार समिति का बत्तीसवां प्रतिवेदन
256. विशेषाधिकार समिति का छप्पनवां प्रतिवेदन
257. कौल और शकधर, पृष्ठ 269-70
258. डाइजेस्ट, पृष्ठ 608
259. -वही- पृष्ठ 571
260. -वही- पृष्ठ 97
261. मामलों के लिए फा. सं. 35/35/92-एल. देखिए
262. नियम 238(iii)
263. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.11.1986, कालम 182-83
264. -वही- 3.7.1980, कालम 1-4
265. सभापीठ से दिए गए विनिर्णय और समुक्तियां (1952-2008), पृष्ठ 346-47
266. नियम 203
267. उदाहरण के लिए, विशेषाधिकार समिति का दूसरा, तीसरा, छठा, बाईसवां, बत्तीसवां और पैंतीसवां प्रतिवेदन
268. उदाहरण के लिए, विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन (पैरा 4), अट्ठाईसवां प्रतिवेदन (पैरा 7) और इकतीसवां प्रतिवेदन (पैरा 2)
269. संसदीय समाचार (2), 22.3.1995, 12.5.1995, 14.12.1995, 1.3.1996 और 19.3.1996 देखिए
270. विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, पैरा 4
271. विशेषाधिकार समिति का छब्बीसवां प्रतिवेदन, पैरा 2
272. विशेषाधिकार समिति का तैंतीसवां प्रतिवेदन, पैरा 4

273. डाइजेस्ट, पृष्ठ 604-05
274. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.5.1987, कालम 279-84
275. विशेषाधिकार समिति का तैंतीसवां प्रतिवेदन
276. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.3.1993, कालम 300-09
277. एम.एस.एम. शर्मा, पूर्वोक्त
278. अनुच्छेद 143 के मामले में ए.आई.आर. 1965, एस.सी. 745
279. कौल और शकधर, पृष्ठ 241-42
280. -वही- पृष्ठ 244
281. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.4.1964, कालम 51-52 और 24.4.1964, कालम 358-59
282. डाइजेस्ट, पृष्ठ 295
283. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अप्रैल, 1988), पृष्ठ 17
284. विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, परिशिष्ट-4
285. कौल और शकधर, पृष्ठ 194-203
286. चौथा प्रतिवेदन (दसवीं लोक सभा) 10.12.1994 को लोक सभा के पटल पर रखा गया था
287. ग्यारहवां प्रतिवेदन (चौदहवीं लोक सभा) 30.04.2008 को लोक सभा के पटल पर रखा गया था

अध्याय-9

आचरण और संसदीय शिष्टाचार के नियम

सामान्य बातें

ऐसे कतिपय सुस्थापित संसदीय रीति-रिवाज, परंपराएं, शिष्टाचार और नियम हैं जिनका सदस्यों द्वारा सदन के भीतर और बाहर अनुसरण किया जाना आवश्यक है। वे न केवल राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों पर और सभापीठ द्वारा दिए गए निर्णयों और समुक्तियों पर बल्कि संसद् की पिछली प्रथाओं, रीतियों और अभिसमयों और पूर्ववृत्तों और परम्पराओं पर आधारित हैं जिनका ज्ञान किसी सदस्य को संसद् में अपने व्यक्तिगत अनुभव के द्वारा होता है। इन सबको तकनीकी रूप से संसदीय शिष्टाचार कहा जाता है।[1]

13 मई, 1952 को राज्य सभा की पहली बैठक के कुछ दिन पूर्व राज्य सभा संसदीय समाचार में "संसदीय शिष्टाचार" शीर्षक के अंतर्गत एक पैरा प्रकाशित हुआ था।[2] इसमें ऐसे कुछ महत्वपूर्ण नियम, जिनकी संख्या 27 थी, दिए गए थे जिनका सदन के भीतर अनुसरण करने की सामान्यत: आशा की जाती थी। एक सदस्य ने 16 मई, 1952 को इस आधार पर उक्त संसदीय समाचार पर आपत्ति की कि वह सदन के सदस्यों के विशेषाधिकारों के अनुरूप नहीं है। अत: सदस्य ने मांग की कि उस संसदीय समाचार को वापस ले लिया जाए। सभापति का कहना था कि संसदीय समाचार में उन प्रथाओं का उल्लेख किया गया है जिनका अब तक अनुसरण होता रहा है और जो केवल सदस्यों के मार्गदर्शन के लिए हैं और इनमें से अधिकांश नियम संसदीय शिष्टाचार के नियम हैं जिनका विश्वभर की संसदों द्वारा अनुसरण किया जाता है। सभापति का यह भी कहना था कि चूंकि कुछ सदस्य सदन के लिए नए हैं इसलिए ये सुझाव दिए गए हैं।[3] (तथापि इसके पश्चात् उक्त संसदीय समाचार की पुनरावृत्ति नहीं की गई।)

विभिन्न प्रथाओं और परंपराओं का उल्लेख अब 'हैंडबुक फॉर मेम्बर्स' नामक पुस्तिका में किया जाता है जिसे समय-समय पर राज्य सभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित किया जाता है। संसद्-सदस्यों द्वारा पालन किए जाने के लिए अपेक्षित संसदीय प्रथाओं और शिष्टाचार के बारे में सूचना को प्रत्येक सत्र के आरंभ से पहले संसदीय समाचार भाग-2 में प्रकाशित भी किया जाता है। एक प्रकार से इनके द्वारा सदस्यों का मार्गदर्शन किया जाता है ताकि वे जान सकें कि संसद्-सदस्य के रूप में उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। सामान्यत: यह कहा जा सकता है कि सदस्यों का आचरण ऐसा होना चाहिए जिससे सदन और उसके सदस्यों की गरिमा बढ़े। दूसरे शब्दों में सदस्यों का आचरण प्रचलित प्रथाओं और परंपराओं के विरुद्ध नहीं होना चाहिए या सदन की गरिमा और प्रतिष्ठा को ठेस लगाने वाला नहीं होना चाहिए या उन प्रतिमानों के विपरीत नहीं होना चाहिए जिनका अनुसरण करने की उनसे सदन द्वारा आशा की जाती है। यथार्थत: किस प्रकार का आचरण अशोभनीय है या अवांछनीय है इसकी पूर्ण रूप से परिभाषा नहीं की गई है। सदन को प्रत्येक मामले को जांचने-परखने की शक्ति है। सदन की विशेषाधिकार समिति सदस्यों द्वारा सदन के विशेषाधिकार के भंग होने के मामलों की जांच कर सकती है। इसके अलावा सदन अपने किसी सदस्य के आचरण की जांच के लिए एक तदर्थ समिति भी नियुक्त कर सकता

है ताकि यह तय हो सके कि क्या सदन के किसी सदस्य का कोई आचरण सदन की गरिमा को कम करता है और इसलिए उन प्रतिमानों के अनुरूप नहीं है जिनकी सदन उनसे आशा करता है। उदाहरण के लिए, सभा ने 1976 में एक सदस्य के आचरण की जांच के लिए ऐसी समिति नियुक्त की थी।[4]

सदस्य द्वारा अभद्र आचरण करने पर दंड

सदन को यह अधिकार है कि वह किसी सदस्य द्वारा सदन के भीतर या बाहर किए गए अभद्र आचरण के लिए उसे दंडित करे। सदस्यों के अभद्र आचरण या उनके द्वारा की गई अवमानना के मामलों में सदन भर्त्सना, धिक्कार, सदन से बाहर चले जाने के आदेश, सदन की सेवा से निलम्बित करने, बंदीकरण और सदन से निष्कासित करने का दंड दे सकता है।

> मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश विधान सभा के दो सदस्यों के निष्कासन को यह कहते हुए वैध ठहराया कि चूंकि विधान सभा को किसी सदस्य को निष्कासित करने की शक्ति और विशेषाधिकार प्राप्त है जिसके फलस्वरूप उसका स्थान रिक्त हो जाता है इसलिए संबंधित सदस्यों को निष्कासित करने वाले संकल्पों की यथार्थता, वैधता या औचित्य को न्यायालयों में चुनौती नहीं दी जा सकती।[5]
>
> तथापि, पंजाब तथा हरियाणा उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार किसी राज्य विधानमंडल को यह शक्ति नहीं है कि वह सदन की अवमानना के दंडस्वरूप किसी विधिवत् निर्वाचित सदस्य को निष्कासित करे। न्यायालय ने अन्य बातों के साथ यह टिप्पणी की कि यह "सुविदित है और सुनिर्धारित किया जा चुका है कि सदन की अवमानना का दंड धिक्कारना, निलंबन और जुर्माना है और अंतत: इस संबंध में मुख्य बात यह है कि अवमानना करने वाले को कारावास का दंड देने की शक्ति दी गई है।"[6]
>
> भारत के उच्चतम न्यायालय ने पैसे लेकर प्रश्न पूछने के घोटाले में और एमपीलैड स्कीम में कथित अनियमितताओं में संलिप्त सदस्यों को निष्कासित करने की संसद् की शक्ति का अनुमोदन करते हुए इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या भारत में विधानमंडलों की शक्तियों और विशेषाधिकारों में, विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 105 के खंड (3) के संदर्भ में, उनके सदस्यों को निष्कासित करना भी शामिल है। इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि भारतीय विधानमंडलों द्वारा निष्कासित करने की शक्ति का दावा संविधान के अनुच्छेद 105(3) और 194(3) के माध्यम से ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स से विरासत में प्राप्त एक विशेषाधिकार के रूप में किया जा सकता है। न्यायालय का यह मत था कि निष्कासित करने की शक्ति केवल ब्रिटिश हाउस ऑफ कामन्स की उसके गठन और संघटन को विनियमित करने की शक्ति से नहीं ली गई है। उच्चतम न्यायालय द्वारा यह भी कहा गया कि जुर्माना, कारावास या निष्कासन द्वारा विशेषाधिकारों को प्रवर्तित करने का अधिकार, किसी अन्य विशेषाधिकार का भाग नहीं है बल्कि स्वयं में एक पृथक और स्वतंत्र शक्ति या विशेषाधिकार है।[7]

जो अपराध काफी गंभीर नहीं हैं उनके लिए भर्त्सना करने या धिक्कारने (फटकारने) का दंड दिया जाता है। भर्त्सना करना धिग्दण्ड का एक हल्का रूप है; धिग्दण्ड दोनों में से अधिक गंभीर दंड है।[8] यद्यपि राज्य सभा के किसी सदस्य की भर्त्सना नहीं की गई है और उसे धिग्दण्ड नहीं दिया गया है तथापि एक बार कार्यावलि में एक ऐसे सदस्य के आचरण की निंदा करने के प्रस्ताव का उल्लेख था जिसने राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान व्यवधान डाला था और इस प्रस्ताव पर चर्चा हुई थी किंतु यह चर्चा असमाप्त रही।[9]

एक अन्य अवसर पर 188वें सत्र के दौरान सभापति द्वारा राज्य सभा के एक सदस्य को राजस्थान में एक हिन्दू की हत्या से संबंधित एक विशेष उल्लेख करते हुए उनके अशोभनीय आचरण के लिए फटकार लगाई गई।[10]

आचरण की भर्त्सना

ऐसे कुछ अवसर आए हैं जब सभापीठ ने किसी सदस्य के अभद्र आचरण या अनुचित व्यवहार पर प्रतिकूल टिप्पणी की है या ऐसे आचरण की भर्त्सना की है।

> एक बार जब एक सदस्य सभापति के आदेशों की लगातार अवहेलना कर रहे थे तब सभापति (डा. एस. राधाकृष्णन्) ने कहा: "मुझे बहुत खेद है कि आप इस तरह का आचरण कर रहे हैं। आपका आचरण समूचे सदन का अपमान है।"[11]
>
> 18 फरवरी, 1963 को राज्य सभा के एक सदस्य ने केन्द्रीय कक्ष में राष्ट्रपति के अभिभाषण में व्यवधान डाला और उसके बाद बहिर्गमन किया। अगले दिन सभा के समवेत होने पर सभी पक्षों द्वारा इस घटना पर खेद प्रकट किया गया। सभापति ने सदस्यों द्वारा व्यक्त किए गए इस विचार के साथ सहमति प्रकट की कि सदन के जिस सदस्य ने राष्ट्रपति के अभिभाषण में व्यवधान डाला उसका आचरण संसद्-सदस्य होने के नाते निंदनीय और अशोभनीय था। उन्होंने अन्य बातों के साथ यह भी कहा, "कोई भी सदस्य जो सदन की मर्यादा और गरिमा के प्रतिकूल आचरण करता है, दंडनीय है।"[12]
>
> एक बार फिर जब एक सदस्य ने दूसरे सदस्य को जबरन सभा में नहीं बोलने दिया तब सभापति ने संबंधित सदस्य के अमर्यादित आचरण पर अपनी चिंता व्यक्त की। सभापति ने कहा कि सदस्य का व्यवहार सदन की अवमानना है जिसकी सदन तुरंत भर्त्सना कर सकता था। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे व्यवहार से सदन की प्रतिष्ठा पर धब्बा लगता है और उसे सहन नहीं किया जा सकता। दोषी सदस्य द्वारा की गई क्षमा-याचना को देखते हुए उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई।[13]
>
> एक अन्य अवसर पर एक सदस्य ने सदन के दूसरे सदस्य के विरुद्ध कुछ अपमानजनक शब्द कहे जिन्हें उपसभापति ने सदन की कार्यवाही से निकाल दिया। सदस्य पर यह आरोप भी था कि उन्होंने सदन में दूसरे सदस्य को जूता दिखाया। सभापति ने उस सदस्य को, जिनके विरुद्ध यह शिकायत की गई थी, अपने कक्ष में बुलाया। सदस्य ने इस बात का खंडन किया कि उन्होंने जूता दिखाया था और उनके कथन को देखते हुए सभापति ने मामले को वहीं समाप्त कर दिया किंतु अन्य बातों के साथ निम्नलिखित टिप्पणी भी की:
>
> > "....इस तरह से अमर्यादित रूप से बोलना या व्यवहार करना किसी के लिए भी प्रशंसा की बात नहीं है। इस तरह के आचरण से समूचे सदन की बदनामी होती है। इस सदन के हर सदस्य से मेरा यह व्यक्तिगत रूप से अनुरोध है कि जनता ने जो काम हमारे जिम्मे सौंपा है उसे हम मर्यादित और व्यवस्थित रूप से पूरा करें।"[14]
>
> 26 अप्रैल, 1988 को बैठक के अंतिम भाग में बोफोर्स संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन की एक प्रति के सभा पटल पर रखे जाने के समय एक सदस्य ने नियम पुस्तक की प्रति फेंक दी और गुस्से के साथ सदन से बहिर्गमन किया। सभापति ने सदन को दिनभर के लिए स्थगित करने से पहले सदस्य के आचरण को "अत्यंत घृणित" बताया। अगले दिन सभापति ने इस घटना पर उपसभापति द्वारा दिए गए विवरण को पढ़कर सुनाने के बाद सदस्य के आचरण की निंदा की और यह कहा, "यदि हम कड़े शब्दों का इस्तेमाल न भी करें तो भी यह कहना पड़ेगा कि यह कार्य घृणाजनक और खेदजनक है। चाहे कितनी भी उत्तेजना क्यों न हो, ऐसे अशोभनीय और मर्यादाहीन आचरण का औचित्य नहीं ठहराया जा सकता।" सभापति ने चेतावनी दी कि ऐसे किसी भी कार्य को सहन नहीं किया जाएगा जिससे सदन की बदनामी होती हो।[15]

दिनांक 3 मार्च, 2008 को किसानों की ऋण माफी के मुद्दे पर आठ सदस्य प्रश्नकाल के दौरान नारे लगाते हुए सभापीठ के सामने आ गए। इसे सभापीठ ने उन सदस्यों द्वारा नियमों का उल्लंघन माना। बाद में, उसी दिन संसदीय समाचार भाग-2 जारी किया गया, जिसमें दोषी सदस्यों के नाम दिए गए थे और सदस्यों से स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती पर 1 सितम्बर, 1997 को राज्य सभा द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार किए गए संकल्प का स्मरण करने का आग्रह किया गया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उल्लेख है, "कि संसद् की गरिमा को सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियम और कार्य संबंधी व्यवस्थित आचरण, विशेष रूप से प्रश्नकाल की अनुलंघनीयता को बनाए रखकर, सभा के आधिकारिक क्षेत्रों के अतिक्रमण या किसी प्रकार के नारे लगाने से बचने से संबंधित पीठासीन अधिकारी के निर्देशों की पूरी व्यवस्था का सावधानीपूर्वक और सम्मानित ढंग से पालन करके भी संरक्षित रखी जाए और बढ़ाई जाए"। सदस्यों का ध्यान राज्य सभा में प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 235 की ओर भी दिलाया गया जो सभा में नियमों का पालन करने से संबंधित है। सदस्यों से व्यवहार संबंधी उन नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करने का अनुरोध किया गया।[16] तथापि संसदीय समाचार के उक्त पैरा को दोषी सदस्यों के दल के नेता द्वारा खेद प्रकट किए जाने और सभापति द्वारा उसे स्वीकार किए जाने के मद्देनज़र संसदीय समाचार भाग-2 दिनांक 5 मार्च, 2008 में एक अन्य पैरा द्वारा हटा दिया गया।[17]

230वां सत्र जो दो भागों में 5 से 18 दिसम्बर, 2013 और 5 से 21 फरवरी, 2014 को हुआ, निरंतर व्यवधानों से बाधित रहा जब प्रक्रिया संबंधी नियमों और संसदीय शिष्टाचार का घोर उल्लंघन करते हुए अनेक सदस्य नारे लगाते हुए और बैनर दिखाते हुए सभापीठ के सामने आ गये। इसके परिणामस्वरूप पूरे सत्र में प्रश्नकाल नहीं चल सका और मौखिक रूप से एक प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया जा सका। अनेक दिन, सभापीठ को सभा की कार्यवाही स्थगित करनी पड़ी। 230वें सत्र के दूसरे भाग के दौरान 7 फरवरी, 2014 को सभापति (श्री मो. हामिद अंसारी) ने अन्य बातों के साथ-साथ यह समुक्ति की:-

> "माननीय सदस्यों, अनेक दिनों से हम, सदस्यों के सभापीठ के सामने आने और नारे लगाने के कारण सभा के शिष्टाचार का उल्लंघन होते हुए देखते रहे हैं। मैं माननीय सदस्यों को सूचित करना चाहता हूं कि इसे निश्चित रूप से सभा की कार्यवाही में दर्शाया जाएगा।"

तदनुसार, उन सदस्यों, जिन्होंने बार-बार सभापीठ के सामने आकर राज्य सभा के नियमों और शिष्टाचार का उल्लंघन करके अत्यधिक नियम विरुद्ध आचरण दर्शाया है और निरंतर और जानबूझकर सभा की कार्यवाही में व्यवधान डाला है, के नाम संसदीय समाचार भाग-1 में दैनिक आधार पर प्रकाशित किए जाएंगे।[18]

230वें सत्र के दौरान एक सदस्य ने आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन विधेयक, 2014 को पारित करने का विरोध करते हुए सभापीठ के सामने आकर और नारे लगाकर सभा की कार्यवाही में लगातार व्यवधान डाला। एक अवसर पर, जब महासचिव लोक सभा द्वारा उक्त विधेयक को पारित किए जाने के संबंध में लोक सभा से प्राप्त संदेश की सूचना दे रहे थे, इस सदस्य ने महासचिव से विधेयक की प्रति को छीनने का प्रयास किया। उक्त सदस्य के आचरण को गंभीरता से लिया गया और पीठासीन उपसभापति ने समुक्ति की कि इसे सम्भवत: सभा के विशेषाधिकार का हनन माना जाएगा। बाद में, उस सदस्य ने सभा के सभी सदस्यों से बिना शर्त क्षमा मांगी और इस संदर्भ में लिखित रूप में भी क्षमा याचना प्रस्तुत की। सदस्य ने सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों को हुई असुविधा के लिए भी खेद व्यक्त किया। इसके बाद वह मामला समाप्त हो गया।[19]

सदन से बाहर चले जाने का आदेश

सभापति किसी सदस्य को, जिसका व्यवहार उसकी राय में घोर अव्यवस्था उत्पन्न करने वाला हो, तत्काल सदन से जाने के लिए कह सकता है।[20] राज्य सभा में ऐसे कई

अवसर आए हैं जब सदस्यों को घोर अव्यवस्थाजनक आचरण के लिए सदन से बाहर चले जाने का निदेश दिया गया है।

> जब प्रश्नकाल के दौरान एक सदस्य सदन की कार्यवाही में व्यवधान पैदा करते रहे और उन्होंने कहा कि वह चुप नहीं रहेंगे और अपनी आवाज उठाते रहेंगे तब सभापति ने उनसे सदन से जाने के लिए कहा क्योंकि सभापति की राय में उनका आचरण घोर अव्यवस्थाजनक था। जब सदस्य इसके बाद भी व्यवधान पैदा करते रहे तब सभापति ने कहा कि उन्हें सदस्य का नाम लेना पड़ेगा। इस पर वह सदस्य बाहर चले गए।[21]
>
> 25 जुलाई, 1989 को प्रश्नकाल के दौरान एक सदस्य ने दूसरे सदस्य को अनुपूरक प्रश्न पूछने से जबरन रोका। इस पर सभापति ने कहा: "किसी व्यक्ति को इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह किसी सदस्य के साथ हाथापाई करे।"[22] 27 जुलाई, 1989 को शून्यकाल के दौरान इस मामले को उठाया गया। कुछ सदस्य चाहते थे कि दोषी सदस्य को सदन से माफी मांगनी चाहिए। संबंधित सदस्य ने स्पष्ट किया कि चूंकि उन्होंने सभापति के कक्ष में इस घटना पर पहले ही खेद प्रकट कर दिया है इसलिए वह सदन में पुन: खेद प्रकट नहीं करेंगे। इस पर उपसभापति ने कहा कि यदि सदस्य माफी नहीं मांगते हैं तो उन्हें सदन में नहीं बैठना चाहिए। इसके बाद वह सदस्य सदन से चले गए।[23]
>
> जब प्रश्नकाल के दौरान एक सदस्य ने सभापति द्वारा ऐसे व्यवहार को रोके जाने के लिए बार-बार अनुरोध किए जाने पर भी नियमों का उल्लंघन करते हुए सभा की कार्यवाही में व्यवधान डालना जारी रखा तो सभापति ने समुक्ति की कि उन्हें राज्य सभा के प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 255 का प्रयोग करना पड़ेगा। सभापति ने उक्त नियम का प्रयोग करते हुए निदेश दिया कि इसे रिकॉर्ड में रखा जाना चाहिए।[24]
>
> 26, 27 अगस्त और 2 सितम्बर, 2013 को उपसभापति ने नियम 255 के तहत दो सदस्यों को सदन से तत्काल बाहर चले जाने का निदेश दिया। तत्पश्चात् उक्त सदस्य सदन से बाहर चले गए।[25]

निलंबन

यदि सभापति आवश्यक समझे तो वह उस सदस्य का नाम ले सकता है जो सभापति के अधिकार की उपेक्षा करता है या जो बार-बार और जानबूझकर सदन के कार्य में बाधा डालकर सदन के नियमों का दुरुपयोग करता है।[26] यदि किसी सदस्य का सभापति द्वारा इस तरह नाम लिया जाए तो उस सदस्य को सदन की सेवा से ऐसी अवधि तक निलंबित करने के लिए, जो सत्र के शेष भाग से अधिक न हो, एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है और सदन द्वारा स्वीकृत किया जाता है। किंतु सदन किसी दूसरे प्रस्ताव द्वारा निलंबन को समाप्त कर सकता है।[27] समय-समय पर सदस्यों को निलंबित करने के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:

> श्री गोडे मुराहरि को 3 सितम्बर, 1962 को सत्र के शेष भाग के लिए निलंबित किया गया था। उन्हें सदन के मार्शल ने सदन से हटाया।[28]
>
> 10 सितम्बर, 1966 का दिन राज्य सभा के 57वें सत्र का अंतिम दिन था। उस दिन श्री भूपेश गुप्त और श्री गोडे मुराहरि को दिन के शेष भाग के लिए निलंबित किया गया। इस संबंध में सरकारी पक्ष के मुख्य सचेतक (श्री आर.एस. दुग्गड़) ने दो अलग-अलग प्रस्ताव रखे।[29]
>
> सभा के नेता (श्री एम. सी. छागला) द्वारा 25 जुलाई, 1966 को उपस्थित किए गए और सदन द्वारा स्वीकृत किए गए दो अलग-अलग प्रस्तावों द्वारा श्री राजनारायण और श्री गोडे मुराहरि को एक सप्ताह

के लिए निलंबित किया गया। जब उन्होंने सदन से बाहर जाने से इनकार किया तब सदन के मार्शल ने उन्हें हटाया। अगले दिन सभापति ने और दलों के नेताओं ने इस घटना पर दु:ख प्रकट किया।[30]

सभा के नेता (श्री एम. सी. छागला) ने 16 नवम्बर, 1966 को श्री बी.एन. मंडल को 10 दिनों के लिए निलंबित करने का प्रस्ताव रखा। बाद में वह सदन से चले गए और सभा के नेता ने भी प्रस्ताव वापस ले लिया।[31]

सभा के नेता (श्री जयसुखलाल हाथी) ने 14 दिसम्बर, 1967 को श्री राजनारायण को सत्र के शेष भाग के लिए निलंबित करने का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ किन्तु श्री राजनारायण सदन से बाहर नहीं गए। सदन मध्याह्न-भोजन के अवकाश के लिए स्थगित हुआ। जब सदन पुन: समवेत हुआ तब श्री राजनारायण सदन में बैठे रहे। एक सदस्य ने प्रस्ताव रखा कि सभा दस मिनट तक के लिए स्थगित कर दी जाए। तदनुसार सभा स्थगित कर दी गई। सभा के पुन: समवेत होने के बाद एक प्रस्ताव के उपस्थित और स्वीकृत किए जाने पर सदस्य का निलंबन समाप्त कर दिया गया।[32]

संसदीय कार्य मंत्री (श्री ओम मेहता) ने 12 अगस्त, 1971 को श्री राजनारायण को सत्र के शेष भाग के लिए निलंबित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया और वह स्वीकृत हुआ। श्री राजनारायण द्वारा सदन से बाहर जाने से इनकार कर दिए जाने पर सदन के मार्शल ने उन्हें हटाया।[33]

संसदीय कार्य विभाग में राज्य मंत्री ने 24 जुलाई, 1974 को श्री राजनारायण को सत्र के शेष भाग के लिए निलंबित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया और वह स्वीकृत हुआ। उन्होंने सदन से बाहर जाने से इनकार किया। सदन के मार्शल को बुलाया गया और सदस्य को हटाया गया। इसके पश्चात् सदन ने मामले पर चर्चा की और उसके अंत में संसदीय कार्य विभाग के मंत्री ने निम्नलिखित प्रस्ताव रखा जो स्वीकृत हुआ:

> "श्री राजनारायण को दिन के शेष भाग के लिए सदन की सेवा से निलंबित किया जाए और सत्र के शेष भाग के लिए उनके निलंबन को, जैसाकि इससे पहले सदन ने संकल्प किया था, समाप्त किया जाए।"

अगले दिन श्री राजनारायण को इस घटना पर वक्तव्य देने की अनुमति दी गई।[34]

संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री (श्री एम. एम. जेकब) ने 29 जुलाई, 1987 को निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया:

> "माननीय सदस्य श्री पुट्टपागा राधाकृष्ण ने कागज के एक टुकड़े में लिखी अपमानजनक टिप्पणियों को प्रदर्शित करके इस सभा के नियमों का उल्लंघन किया है जो इस सभा की अवमानना है और सभा सर्वसम्मति से संकल्प करती है कि उन्हें सभा से एक सप्ताह के लिए निलंबित किया जाए।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। किन्तु श्री राधाकृष्ण सदन में बैठे रहे। तत्पश्चात् सदन एक घंटे के लिए और उसके बाद दिन के शेष भाग के लिए स्थगित किया गया।[35]

आचार समिति के पांचवें प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिश की स्वीकृति के परिणामस्वरूप डा. छत्रपाल सिंह लोधा को प्रश्न पूछने के लिए धनराशि लेते हुए टेप में पकड़े जाने के आधार पर सभा से निलंबित किया गया, जब तक कि समिति की अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की जाती।[36]

संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री (श्री पृथ्वीराज चव्हाण) ने 9 मार्च, 2010 को सात सदस्यों अर्थात् श्री कमाल अख्तर, श्री वीर पाल सिंह यादव, डा. ऐजाज़ अली, श्री साबिर अली, श्री सुभाष प्रसाद यादव, श्री अमीर आलम खान और श्री नन्द किशोर यादव को सत्र के शेष भाग से निलंबित करने के लिए एक प्रस्ताव उपस्थित किया। सभा द्वारा प्रस्ताव को स्वीकार किया गया। तदनुसार उक्त सदस्यों को 219वें सत्र के शेष भाग अर्थात् 9 मार्च से 7 मई, 2010 तक के लिए सभा की कार्यवाही से निलम्बित

कर दिया गया।[37] उन सदस्यों को, जब उन्होंने सभा से बाहर जाने से मना कर दिया और उसके फर्श पर बैठ गये और कार्यवाही में व्यवधान डालना जारी रखा, तो सभापीठ के निदेश पर संसद् सुरक्षा सेवा द्वारा सभा से बाहर कर दिया गया। तथापि बाद में, संसदीय कार्य मंत्री (श्री पवन कुमार बंसल) ने चार सदस्यों अर्थात् श्री वीर पाल सिंह यादव, श्री कमाल अख्तर, श्री नन्द किशोर यादव और श्री अमीर आलम खान को सभा की कार्यवाही से 9 मार्च, 2010 से 219वें सत्र के शेष भाग तक के निलंबन को समाप्त करने के लिए 15 मार्च, 2010 को एक प्रस्ताव उपस्थित किया। इस प्रस्ताव को सभा द्वारा स्वीकार किया गया।[38] तत्पश्चात् संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री (श्री पृथ्वीराज चव्हाण) द्वारा उपस्थित किए गए और सभा द्वारा स्वीकार किए गए दो प्रस्तावों के आधार पर श्री साबिर अली और श्री सुभाष प्रसाद यादव के निलम्बन को क्रमश: 23 अप्रैल और 28 अप्रैल, 2010 को समाप्त कर दिया गया।[39] तथापि, डा. ऐजाज़ अली का निलम्बन सत्र की समाप्ति तक जारी रहा।

निष्कासन

अत्यधिक अभद्र व्यवहार के मामले में सदन किसी सदस्य को सदन से निष्कासित कर सकता है। जैसाकि अर्सकीन मे ने कहा है: "राज्य सभा द्वारा अपने सदस्यों में से एक का निष्कासन अपने गठन को विनियमित करने संबंधी सभा के अधिकार के उदाहरण के रूप में समझा जा सकता है, यद्यपि इसे सुविधा के तौर पर सभा के अधिकार के अंतर्गत दंड की विधियों में से एक समझा जाता है।[40]

राज्य सभा के सदस्यों को निष्कासित किए जाने के तीन उदाहरण हैं:

श्री सुब्रह्मण्यम स्वामी को 15 नवम्बर, 1976 को उस समिति की रिपोर्ट के आधार पर निष्कासित किया गया जो उनके आचरण और क्रियाकलापों की जांच करने हेतु नियुक्त की गई थी। समिति के अनुसार उनका आचरण सदन और उसके सदस्यों की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाने वाला था और उन प्रतिमानों के अनुरूप नहीं था जिनकी सदन अपने सदस्यों से आशा करता है।[41]

डा. छत्रपाल सिंह लोधा को आचार समिति के सातवें प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिश से सहमत होते हुए सभा द्वारा प्रस्ताव को स्वीकार किए जाने के परिणामस्वरूप उनका आचारण सभा की प्रतिष्ठा के लिए अपमानजनक होने तथा आचार संहिता के अनुरूप न होने के कारण 23 दिसम्बर, 2005 को निष्कासित किया गया।[42]

डा. स्वामी साक्षीजी महाराज को उनके घोर दुराचरण जिससे सभा तथा इसके सदस्यों की प्रतिष्ठा गिरी तथा जिससे राज्य सभा सदस्यों के लिए आचार संहिता का उल्लंघन हुआ, के कारण आचार समिति के आठवें प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिश से सहमत होते हुए सभा द्वारा प्रस्ताव को स्वीकार किए जाने के परिणामस्वरूप 21 मार्च, 2006 को निष्कासित किया गया।[43]

प्रथाएं और परंपराएं

जो सदस्य पहली बार निर्वाचित होता है उसे कतिपय ऐसी प्रथाओं और परंपराओं की जानकारी प्राप्त करनी होती है जो अच्छी तरह से स्थापित हो चुकी हैं। कुछ ऐसी प्रथाएं और परंपराएं (जिन्हें संपूर्ण नहीं माना जा सकता) नीचे उल्लिखित हैं:

शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के पूर्व सदस्य प्रथानुसार सभापति के पास जाकर उनसे भेंट करते हैं। इसकी व्यवस्था पटल या सूचना कार्यालय (नोटिस ऑफिस) द्वारा की जाती

है जो सदस्यों को शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने की प्रक्रिया और उनके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले पत्रों के बारे में भी सलाह देता है।[44] सदस्यों को पटल कार्यालय में निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर) द्वारा जारी किए गए उनके निर्वाचन के प्रमाण-पत्र को भी जमा करना पड़ता है और संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन विहित प्रपत्र में अपनी राजनैतिक संबद्धता के संबंध में सूचना देनी होती है। अन्य जानकारी के लिए या अपनी सदस्यता या संसदीय कार्य से संबंधित मामलों के बारे में सदस्य राज्य सभा सूचना कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।

सभा की किसी बैठक में उपस्थित होने के लिए आ रहे प्रत्येक सदस्य को राज्य सभा सचिवालय द्वारा उसे जारी किए गए पहचान-पत्र को अपने साथ लाना चाहिए ताकि संसद् भवन में तैनात सुरक्षा कर्मचारी उसे बिना किसी बाधा के प्रवेश करने दें क्योंकि सुरक्षा कर्मचारियों को कड़े आदेश जारी किए गए हैं कि वे अजनबियों को संसद् भवन में प्रवेश न करने दें। कर्मचारियों के लिए यह हमेशा आसान नहीं होता कि वे अधिसंख्य सदस्यों के नामों और शक्ल-सूरत से परिचित हों।[45]

सदन में प्रवेश करने के पूर्व प्रत्येक सदस्य को प्रतिदिन उपस्थिति रजिस्टर में अपनी उपस्थिति दर्ज करनी पड़ती है। यह रजिस्टर लॉबी में एक पीठिका पर रखा होता है।[46]

सदन की बैठकों के दौरान किसी सदस्य को ऐसी पर्ची या पर्चियां दी जा सकती हैं जिनमें उनसे मिलने के लिए आए हुए किसी व्यक्ति के बारे में सूचना होती है। ऐसी व्यवस्था की गई है जिसके द्वारा सदस्यगण स्वागत कार्यालय में ऐसे आगंतुकों से भेंट कर सकते हैं। यह कार्यालय संसद् भवन के पास ही है।[47]

किसी सदस्य को सदन के भीतर ऐसा कुछ नहीं कहना चाहिए या नहीं करना चाहिए जो सदन के प्रक्रिया नियमों, निर्णयों या पूर्वोदाहरणों या मान्य तथा स्थापित प्रथाओं, परम्पराओं और परिपाटियों के अनुरूप न हों।[48]

यदि सदस्यों के पास संसद् सदस्य या संसदीय समितियों के सदस्य होने के नाते कोई गोपनीय सूचना हो, तो उन्हें अपने व्यक्तिगत हित को आगे बढ़ाने हेतु ऐसी सूचना को किसी के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिए।[49]

सदस्यों को ऐसे व्यक्तियों और संस्थानों को प्रमाण-पत्र नहीं देने चाहिए जिनकी उन्हें व्यक्तिगत जानकारी न हो और जो तथ्यों पर आधारित न हों।[50]

सभा में किसी मामले को उठाने की सूचना को किसी सदस्य या अन्य व्यक्ति द्वारा तब तक प्रचारित नहीं किया जाना चाहिए जब तक उसे सभापति द्वारा गृहीत न कर लिया गया हो और सदस्यों में परिचालित न कर दिया गया हो।[51]

सभापीठ द्वारा दी गई व्यवस्थाएं सदन के पूर्वोदाहरणों के अनुसार दी जाती हैं और जहां कोई पूर्वोदाहरण न हो वहां सभापीठ द्वारा सामान्य संसदीय प्रक्रिया का अनुसरण किया

जाता है। सदन के भीतर या बाहर और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सभापीठ की आलोचना नहीं की जानी चाहिए।[52]

> एक बार सभापति ने एक ध्यानाकर्षण की सूचना के लिए अनुमति नहीं दी। जब एक सदस्य ने सभापति के इस निर्णय के बारे में प्रश्न उठाया तब सभापति ने व्यवस्था दी...इस सदन में जो प्रथा प्रचलित है उसके अनुसार जो माननीय सदस्य सभापीठ की व्यवस्था या निर्णय के बारे में कुछ कहना चाहते हैं उन्हें सभापति से उनके कक्ष में मिलना चाहिए। सभापति की व्यवस्था और निर्णय पर सदन के भीतर विवाद नहीं किया जा सकता।[53]
>
> 25 फरवरी, 1970 को सभापीठ ने एक सदस्य द्वारा उच्चतम न्यायालय के विरुद्ध की गई टिप्पणियों को सदन की कार्यवाही से निकाल दिया। अगले दिन सदस्य ने इस मामले को सदन में उठाया। कुछ अन्य सदस्यों ने भी चर्चा में भाग लिया। इस पर उपसभापति द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियां की गईं:
>
> > ...यह वस्तुत: दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस पर सदन में चर्चा हुई है।... यदि कोई व्यक्ति पीठासीन अधिकारी द्वारा दी गई व्यवस्था से व्यथित होता है तो उसे इस सामान्य उपाय को उपयोग में लाना चाहिए कि वह इस संबंध में सभापति से मिले और तत्कालीन पीठासीन अधिकारी से परामर्श करते हुए सारे मामले पर सभापति से विचार-विमर्श करके उसका निपटारा कराए। यह वांछनीय नहीं है कि पीठासीन अधिकारियों द्वारा दी गई व्यवस्थाओं पर इस सदन में चर्चा हो। मुझे आशा है कि इसे किसी पूर्वोदाहरण के रूप में नहीं बल्कि एक अपवाद के रूप में माना जाएगा। मुझे आशा है कि भविष्य में ऐसी किसी व्यवस्था पर सदन में बहस और चर्चा नहीं होगी।[54]

सदन की कार्यवाही की मर्यादा और गंभीरता को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि सदन में "धन्यवाद", "आपको धन्यवाद", "जय हिन्द", "वन्दे मातरम्", या कोई और नारे न लगाए जाएं। सदन की कार्यवाही में किसी "करतलध्वनि" या "हर्षध्वनि" या "हंसी" को अभिलिखित नहीं किया जाता।[55]

राज्य सभा/लोक सभा सचिवालय, उनके कार्यकरण या राज्य सभा के सभापति/लोक सभा के अध्यक्ष के कार्यकरण से संबंधित मामलों को सदन में नहीं उठाया जाना चाहिए। उनसे संबंधित प्रश्न गृहीत नहीं किए जाते और न ही सदन में उनका उत्तर दिया जाता है। राज्य सभा/लोक सभा सचिवालय के बजट प्राक्कलन पर भी सदन में या उसकी समिति में चर्चा नहीं होती। वाद-विवाद में किसी सदन के अधिकारियों का हवाला देना या उनके बारे में कोई उल्लेख करना भी उचित नहीं है।[56]

> जब एक बार किसी सदस्य ने कुछ प्रश्नों के गृहीत किए जाने के संबंध में सचिवालय के बारे में कुछ टिप्पणियां की तब कुछ सदस्यों ने आपत्ति की कि ये टिप्पणियां अपमानजनक हैं। उपसभापति का कहना था कि सदन में सचिवालय पर कोई आक्षेप नहीं किए जाने चाहिए।[57]
>
> एक सदस्य ने विनियोग (संख्यांक 2) विधेयक, 1968 पर बोलते हुए सुझाव दिया कि राज्य सभा सचिवालय के अधिकारियों का हर तीन वर्ष बाद स्थानांतरण किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि यदि वह एक स्थान पर तीन वर्ष से अधिक समय तक रहेंगे तो एक प्रकार का निहित स्वार्थ उत्पन्न होगा और उससे निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता और न्यायशीलता नहीं आ सकेगी। अगले दिन सभापति ने यह कहा:
>
> > "कल की कार्यवाही में उन टिप्पणियों को पढ़कर मुझे दु:ख हुआ है जो एक सदस्य ने राज्य सभा और लोक सभा सचिवालय के बारे में की हैं। यह एक सुस्थापित परम्परा है कि सामान्यत: सदन

> में किसी सदन के सचिवालय या उसके किसी अधिकारी के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया जाता। यदि किसी सदस्य को किसी अधिकारी के विरुद्ध या सचिवालय में की गई किसी चीज से कोई शिकायत है तो उसके लिए उचित उपाय यह है कि वह पीठासीन अधिकारी के कक्ष में जाकर उनसे मिले। सदस्यों को याद रखना चाहिए कि सचिवालय के अधिकारियों को बहुत कठिन और कभी-कभी नाजुक काम करना होता है क्योंकि उनका सभी दलों और समूहों के सदस्यों के साथ वास्ता पड़ता है और उनसे आशा की जाती है कि वे भय या पक्षपात से मुक्त होकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे। यदि किसी भी मामले में किसी भी सदस्य को कोई शिकायत है तो उन्हें पीठासीन अधिकारी के कक्ष में उसका हल ढूंढना चाहिए क्योंकि पीठासीन अधिकारी सचिवालय के सभी कार्यों के लिए जिम्मेदार है।"[58]

एक अन्य अवसर पर एक ध्यानाकर्षण सूचना के बारे में एक सदस्य ने कहा कि सचिवालय एक सुपर कैबिनेट बन गया है।[59] 19 अगस्त, 1968 को सभापति ने ध्यानाकर्षण सूचनाओं को गृहीत करने के संबंध में एक व्यवस्था दी और सचिवालय के बारे में किए गए उल्लेख के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणी की:

> ...यह दुर्भाग्य की बात है कि इस संबंध में कुछ सदस्यों ने सचिवालय के बारे में टिप्पणियां की हैं ...सदस्यों को याद रखना चाहिए कि सचिवालय के अधिकारियों को बहुत कठिन और कभी-कभी नाजुक काम करना होता है क्योंकि उनका सभी दलों और समूहों के सदस्यों के साथ वास्ता पड़ता है और उनसे आशा की जाती है कि वे भय या पक्षपात से रहित होकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे। यदि सदस्यगण सदन में यह कहना शुरू कर देंगे कि फलां काम के पीछे सचिवालय की नीयत ऐसी थी या वैसी थी या यदि वे सचिवालय पर आरोप लगाएंगे तो उससे सचिवालय के कुशल और स्वतंत्र कार्यकरण में सहायता नहीं मिलेगी।[60]

एक बार एक सदस्य एक मामला उठाना चाहते थे जो सचिवालय में अनुसरण की जा रही प्रक्रिया (संभवत: सूचनाओं को गृहीत करने की प्रक्रिया) के बारे में एक समाचार-पत्र में छपे एक लेख के संबंध में था। इस पर उपसभापति ने इस परम्परा की ओर ध्यान दिलाया कि राज्य सभा सचिवालय में अपनाई जा रही प्रक्रिया या उसके कार्यकलापों के बारे में सदन में कभी कोई चर्चा नहीं हुई है।[61]

एक सदस्य ने प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक, 1986 पर हो रही चर्चा में भाग लेते हुए सभापति द्वारा सचिवालय में भारतीय प्रशासनिक सेवा के एक अधिकारी की नियुक्ति के बारे में टिप्पणी की।[62] सभापति ने इन अंशों को सदन की कार्यवाही से निकाल दिया और अगले दिन सभा का ध्यान इस सुस्थापित परम्परा की ओर दिलाया कि सचिवालय से संबंधित मामलों और सभापति के कार्यकरण से संबंधित मामलों के बारे में और सचिवालय के अधिकारियों के बारे में सदन के वाद-विवाद में उल्लेख करना उचित नहीं है। उन्होंने सदन से इस परम्परा का पालन करने का अनुरोध किया ताकि सदन निष्पक्षता के साथ और भय या पक्षपात से मुक्त होकर सचिवालय के अधिकारियों की सेवाओं को प्राप्त कर सके।[63]

30 अप्रैल, 1992 को अल्पसंख्यकों की शैक्षिक और तत्संबंधी समस्याओं से संबंधित विशेष उल्लेख के दौरान एक सदस्य ने लोक सभा सचिवालय के एक कर्मचारी के प्रति कथित अन्याय के एक मामले का उल्लेख किया। उस दिन सदस्य की टिप्पणी पर ध्यान नहीं गया। बाद में इस टिप्पणी की ओर ध्यान दिलाए जाने पर सभापति ने उसे सदन की कार्यवाही से निकालने का आदेश दिया और सदस्य को इसकी सूचना दी गई।[64]

सदन में पालनीय नियम

जब सभा की बैठक हो रही हो तब सदस्यों से संसदीय शिष्टाचार के कतिपय नियमों के पालन की आशा की जाती है। कुछ महत्वपूर्ण नियम निम्नलिखित हैं:

सदस्यों को बैठक के आरंभ होने के निर्धारित समय से, जो सामान्यत: मध्याह्न पूर्व

11 बजे होता है, कुछ मिनट पहले उपस्थित होना चाहिए। मार्शल नियत समय पर सभापति के आगमन की घोषणा करता है और उसके तुरंत बाद सभापति सदन में प्रवेश करता है। सभापति के प्रवेश करते ही सदस्यों को किसी भी प्रकार की बातचीत बंद कर देनी चाहिए, उन्हें अपने-अपने स्थानों पर होना चाहिए और वहां खड़ा हो जाना चाहिए। जो सदस्य इस समय सदन में प्रवेश करते हैं उन्हें तब तक प्रवेश-मार्ग पर चुपचाप खड़े रहना चाहिए जब तक सभापति अपना स्थान ग्रहण नहीं करता और उसके बाद उन्हें अपना-अपना स्थान ग्रहण करना चाहिए।[65]

प्रत्येक सदस्य को शालीनता के साथ और इस प्रकार से सदन में प्रवेश करना चाहिए और वहां से बाहर आना चाहिए ताकि सदन की कार्यवाही में कोई व्यवधान उत्पन्न न हो। बैठक के दौरान यदि सदस्य के लिए बाहर जाना आवश्यक हो तो वह सदन में अपनी सीट के समीपवर्ती द्वार से बाहर निकल सकता है ताकि सदन के कार्य में कोई बाधा उत्पन्न न हो। सदस्यों को सदन में इस तरह से आपस में बातचीत नहीं करनी चाहिए जिससे सदन की कार्यवाही में व्यवधान उत्पन्न हो। यद्यपि दूर से ऐसी बातचीत बहुत अधिक सुनाई नहीं देती तथापि सदन में विशेष और आधुनिकतम ध्वनि व्यवस्था होने के कारण काफी व्यवधान उत्पन्न हो सकता है।[66] इसके अतिरिक्त, जब सदस्य लॉबी में हों तब उन्हें धीमे स्वर में एक दूसरे से बातचीत करनी चाहिए और जोर-जोर से नहीं हंसना चाहिए ताकि सदन की कार्यवाही में विघ्न पैदा न हो।[67]

एक ध्यानाकर्षण चर्चा के दौरान जब कुछ सदस्य आपस में बात कर रहे थे तब उपसभापति ने टिप्पणी की:

"आपस में बातचीत और कानाफूसी रिकॉर्ड में नहीं जाएगी...जब तक कि उसे कार्यवाही में शामिल करना आवश्यक न हो।"[68]

सभा में प्रवेश करते समय या सदन से जाते समय या अपना स्थान ग्रहण करते समय या उसे छोड़ते समय प्रत्येक सदस्य को चाहिए कि वह सभापीठ के प्रति नमन करे।[69] यह प्रणाम समस्त सदन के प्रति आदर का प्रतीक है, केवल सभापीठ के प्रति नहीं।

किसी सदस्य को सभापीठ और सदन में बोल रहे किसी सदस्य के बीच से होकर नहीं गुजरना चाहिए।[70]

9 अगस्त, 1952 को एक सदस्य ने अन्य बातों के साथ यह टिप्पणी की "हर दिन मैं यह देख रहा हूं कि जब सार्जेन्ट (कर्मचारी) माननीय सदस्यों या सचिव के पास जाते हैं तो वे करीब-करीब रेंग रहे होते हैं।" इस पर सभापति का कहना था: "वे सभापीठ और वक्ता के बीच में नहीं आना चाहते।"[71]

किसी सदस्य को सभापीठ की ओर पीठ करके न तो बैठना चाहिए और न ही खड़े होना चाहिए।[72] ऐसा करना अनादर का सूचक माना जाता है और जब भी ऐसी बात सभापीठ के ध्यान में लाई जाती है तब संबंधित सदस्य को ऐसा करने से तुरंत रोका जाता है।

एक बार प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू अपनी सहयोगी श्रीमती लक्ष्मी मेनन से, जो अपनी सीट पर थीं, इस तरह से बात कर रहे थे कि सभापति को उनकी पीठ नजर आ गई। इस पर सभापति

(डा. एस. राधाकृष्णन्) ने दृढ़ता के साथ कहा: "प्रधान मंत्री महोदय, आप कर क्या रहे हैं?" प्रधान मंत्री को अपनी भूल महसूस हुई उन्होंने अपनी सीट पर वापस जाकर क्षमा मांगी।[73]

एक बार सभापति ने श्री पीलू मोदी से (जो एक स्थूलकाय सदस्य थे), यह निवेदन किया कि वे सभापीठ की तरफ अपनी पीठ न करें। सदस्य ने परिहास का पुट देते हुए यह स्पष्ट किया कि उनकी कुछ शारीरिक असमर्थताएं हैं और उनमें से एक यह है कि उनकी आंखें उनके शरीर के एक ही ओर हैं।[74] एक अन्य अवसर पर जब एक सदस्य ने इस ओर ध्यान दिलाया कि श्री मोदी सभापति की तरफ अपनी पीठ करके खड़े हैं तब श्री मोदी ने फिर कहा: "आप जानते हैं कि मैं गोलाकार हूं, मेरी न कोई पीठ है और न कोई पेट।[75]

एक बार सभापति ने यह देखकर कि एक सदस्य की पीठ उनकी ओर है, सदस्य को संबोधित करते हुए यह टिप्पणी की: "...आप बहुत खूबसूरत हैं, अपनी पीठ न दिखाएं।[76]

किसी सदस्य को, उस स्थिति को छोड़कर जब सदन की कार्यवाही के संबंध में ऐसा करना आवश्यक हो, अपने स्थान (सीट) पर किसी समाचार-पत्र, पत्रिका, पुस्तक या पत्र को नहीं पढ़ना चाहिए।[77]

जब एक सदस्य ने सभापति का ध्यान इस ओर दिलाया कि एक सदस्य सदन में समाचार-पत्र पढ़ रहा है। तब सभापति ने कहा:

> मैं समझता हूं कि सदन में अखबार पढ़ना सदन के प्रति—सभापीठ की बात तो छोड़िए—अत्यन्त अनुचित और अत्यन्त अशिष्ट व्यवहार है।

जब एक सदस्य ने तर्क दिया कि हो सकता है कि वह किसी खास विषय के बारे में हो तब सभापति ने फिर कहा: "वे उसे पकड़ के इस तरह नहीं पढ़ सकते....वे उसका हवाला दे सकते हैं।"[78]

किसी सदस्य को किसी दूसरे सदस्य के भाषण करते समय अव्यवस्थित ढंग से टिप्पणी करके, सीत्कार करके, भाषण के साथ-साथ टीका-टिप्पणी करके, शोर करके या अन्य किसी अव्यवस्थित ढंग से बाधा या व्यवधान नहीं डालना चाहिए।[79] जब वह सदन में नहीं बोल रहा हो तब उसे शांत रहना चाहिए।[80]

जब कोई सदस्य बोलना चाहता है तब उसे सभापति का ध्यान आकर्षित करने के लिए अपने स्थान पर खड़ा होना चाहिए। जब तक कोई सदस्य सभापीठ की दृष्टि में नहीं आ जाता और जब तक सभापीठ उसका नाम लेकर या इशारे से उसे बोलने के लिए नहीं कहता तब तक उसे नहीं बोलना चाहिए।[81]

एक बार जब एक सदस्य सभा के नेता के भाषण के दौरान बार-बार व्यवधान डालने का प्रयास कर रहे थे तब उपसभापति ने कहा:

> "मैने देखा है कि यहां पर सभापीठ की दृष्टि में आए बिना ही बोलने की प्रवृत्ति है। नियमों के अधीन ऐसा नहीं होना चाहिए। जब तक कोई सदस्य सभापीठ की दृष्टि में नहीं आ जाता तब तक वह भाषण नहीं कर सकता। जब तक सभापीठ की नज़र उस पर न पड़े तब तक किसी सदस्य को बीच में नहीं बोलना चाहिए, सदस्य को पहले सभापीठ की नज़र में आना चाहिए और उसके बाद ही बोलना शुरू करना चाहिए।"[82]

जब कोई सदस्य बोल रहा हो तब दूसरे सदस्य को उसके साथ बहस नहीं करनी चाहिए। परंतु वह भाषण कर रहे सदस्य से जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से सभापीठ के माध्यम से प्रश्न पूछ सकता है। किन्तु जो सदस्य सभापीठ की अनुमति से बोल रहा

हो उसे किसी सदस्य द्वारा बार-बार नहीं टोका जाना चाहिए। यदि व्यवधान सभापीठ की अनुमति से कोई औचित्य प्रश्न उठाने के लिए नहीं हो तो भाषण कर रहे सदस्य को अधिकार है कि वह दूसरे सदस्य को बोलने की अनुमति न दे और अपने भाषण को जारी रखे।[83]

हर सदस्य को उसके लिए नियत की गई सीट से ही बोलना चाहिए। किसी सदस्य के अपनी सीट पर न बैठे होने पर यह हो सकता है कि उसे अनुपूरक प्रश्न पूछने या बोलने के लिए न बुलाया जाए।[84]

> एक बार प्रश्नकाल के दौरान ऐसा देखा गया कि कई सदस्य उन सीटों से प्रश्न पूछ रहे हैं जो उनके लिए नियत नहीं की गई हैं। उपसभापति ने निवेदन किया कि प्रश्नकाल के दौरान प्रत्येक सदस्य को उसके लिए नियत सीट पर होना चाहिए।[85] एक अन्य अवसर पर किसी दूसरे सदस्य की सीट पर बैठे हुए एक सदस्य बार-बार व्यवधान डालने की कोशिश कर रहे थे तब उपसभापति ने सदस्य को याद दिलाया कि वह अपनी सीट पर नहीं हैं।[86]

किन्तु यदि अपनी सीट से बोल रहे किसी सदस्य की आवाज वृत्तलेखकों (रिपोर्टरों) को न सुनाई दे तो सभापीठ उन्हें माइक्रोफोन के निकट वाली सीट से बोलने की अनुमति दे सकता है।

> एक बार उपसभापति ने एक सदस्य से कहा कि वह माइक्रोफोन के निकट आकर बोलें, एक अन्य सदस्य ने औचित्य का प्रश्न उठाया कि सदस्य अपनी नियत सीट से नहीं बोल रहे हैं और संबंधित सदस्य ने अपनी सीट छोड़कर और माइक्रोफोन के निकट आकर सभा के प्रति अनादर दिखाया है। उपसभापति ने औचित्य प्रश्न को अस्वीकार करते हुए यह स्पष्ट किया कि उन्होंने सदस्य को दूसरी सीट से बोलने के लिए इसलिए अनुमति दी है क्योंकि वृत्तलेखक उनकी बात को उनकी सीट से नहीं सुन सके। उपसभापति का यह भी कहना था:
>
> > ...कई बार ऐसा हुआ है कि सदस्यों को अपनी सीट से माइक्रोफोन के निकट आकर बोलने की अनुमति दी गई है ताकि वृत्तलेखक उनके भाषण को अच्छी तरह सुनकर उसे लिख सकें। यहां तक कि कोई सीट किसी सदस्य की सीट नहीं है, तो भी सभापति के विवेक के अधीन है कि उन्हें वहां से बोलने की अनुमति दे। कभी-कभी कुछ सदस्यों को बैठकर भी बोलने की अनुमति दी गई है।[87]

यदि किसी सदस्य ने सभापति को कोई सूचना (नोटिस) या पत्र भेजा है तो उसे उसकी विषय-वस्तु का सदन में तब तक उल्लेख नहीं करना चाहिए जब तक उसे सभापति ने ऐसा करने के लिए स्पष्ट रूप से अनुमति न दी हो। यदि सूचना या पत्र के बारे में सदस्य को कोई जानकारी नहीं मिली हो तो उसे यह मान लेना चाहिए कि मामला सभापति के विचाराधीन है या उन्होंने उसके लिए अनुमति नहीं दी है।[88]

सदस्यों को अपने भाषणों को समाप्त करने के तुरंत बाद सदन को छोड़कर नहीं जाना चाहिए। सदन के प्रति शिष्टता का व्यवहार हो इसके लिए आवश्यक है कि सदस्य अपने भाषणों को समाप्त करने के बाद अपने-अपने स्थान पर पुन: बैठ जाएं और यदि आवश्यक हो तो ऐसा करने के बाद ही सदन को छोड़ें।[89]

यदि कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य या मंत्री की आलोचना करता है तो जिस सदस्य

या मंत्री की आलोचना की गई है उसे आलोचना करने वाले सदस्य से यह आशा करने का अधिकार है कि वह उसका उत्तर सुनने के लिए सदन में उपस्थित रहेगा।[90]

> एक सदस्य द्वारा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने के लिए मांगी गई अनुमति के बारे में अपनी व्यवस्था देते हुए सभापति ने अंत में निम्नलिखित टिप्पणी की:
>
> > मैं यह भी कहना चाहूंगा कि सामान्यत: जो सदस्य बहस में भाग लेते हैं और सरकार की आलोचना करते हैं उन्हें अपनी आलोचना के उत्तर को सुनने के लिए सभा में उपस्थित रहना चाहिए ताकि भविष्य में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के लिए वक्तव्य देने की स्थिति न आए।[91]

किसी सदस्य को सदन के भीतर से दीर्घा को संबोधित करके नहीं बोलना चाहिए और न ही उसे उसका कोई उल्लेख करना चाहिए या उससे कोई अपील करनी चाहिए। दीर्घा में बैठे हुए किसी व्यक्ति के लिए तालियां बजाना नियम-विरुद्ध है।[92] किन्तु उन अवसरों पर जब सभापति विशेष प्रकोष्ठ में लब्ध-प्रतिष्ठ विदेशी अतिथियों की उपस्थिति का उल्लेख करते हैं तब सदस्यगण मेजें थपथपाकर उन अतिथियों का स्वागत तो करते ही हैं।

> किसी विधेयक पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने औचित्य प्रश्न उठाया कि क्या सदन के किसी सदस्य को यह अधिकार है कि वह दर्शक दीर्घा में जाकर वहां से सदन की कार्यवाही देखे। सभा के दिनभर के लिए स्थगित होने से पहले उपसभापति ने टिप्पणी की कि यद्यपि सदस्यगण विभिन्न दीर्घाओं में जाते हैं तथापि यह किसी सदस्य के लिए उचित नहीं है कि वह उस दीर्घा के कार्डधारक को बैठने के स्थान से वंचित करके या उसकी ओर से अपने लिए उस दीर्घा में कोई स्थान सुरक्षित रखे।[93]

यदि कोई मंत्री उन अभिलेखों के आधार पर कोई वक्तव्य देता है जो उसके पास हैं तो उसके वक्तव्य को तब तक सही माना जाना चाहिए जब तक उसे चुनौती देने के लिए जानबूझकर कोई प्रश्न न उठाया जाए।[94]

यदि कोई सदस्य दूसरे सदस्य पर कोई वक्तव्य देने का आरोप लगाता है और दूसरे सदस्य का यह कहना हो कि उसने ऐसा वक्तव्य नहीं दिया है तो उसके खंडन को बिना किसी आपत्ति के मान लिया जाना चाहिए।[95]

कोट को हाथ में लटकाकर सदन में प्रवेश करना अनुचित है और सदन की शालीनता के विरुद्ध है।[96]

सदस्यों को सदन के आने-जाने के रास्ते में खड़ा नहीं होना चाहिए। उन्हें या तो सीट पर बैठ जाना चाहिए या बाहर चले जाना चाहिए।[97]

सदस्यों को कक्ष में धूम्रपान करने की मनाही है। सिगरेट और अन्य तंबाकू उत्पाद (विज्ञापन का प्रतिषेध और व्यापार तथा वाणिज्य, उत्पादन, प्रदाय और वितरण का विनियमन) अधिनियम, 2003 के बनने से तथा इसके अंतर्गत बने नियमों के अनुसार सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान वर्जित है। इस अधिनियम के उपबंध केन्द्रीय कक्ष, राज्य सभा की लॉबी और गलियारे तथा जलपान कक्ष सहित संसद् भवन परिसर पर भी लागू हैं।[98] संसदीय ग्रंथागार के किसी भी हिस्से में धूम्रपान करना तथा वाचन कक्ष में भोजन और/जलपान करना सख्त मना है।[99]

एक बार एक सदस्य ने एक राज्य सभा संसदीय समाचार का उल्लेख किया जिसमें सदस्यों को जमीन पर सिगरेट के टोटे फेंकने आदि के संबंध में हिदायतें दी गई थीं। सदस्य के विचार में उक्त संसदीय समाचार से सदस्यों के सम्मान को ठेस लगती थी। उन्होंने कहा कि जब सदन के भीतर धूम्रपान की अनुमति नहीं है तब ऐसी चीज को संसदीय समाचार में देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। सभापति का कहना था कि सिगरेट के टोटों पर समय बर्बाद नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा, "(समाचार में) इसका उल्लेख करने से पहले सिगरेट के टोटे अवश्य देखे गए होंगे। हमने मनुष्यों के शवों का उल्लेख नहीं किया, हमने जानवरों की लाशों का उल्लेख नहीं किया क्योंकि उन्हें नहीं पाया गया है।"[100]

दो सदस्यों को एक ही समय पर खड़ा नहीं रहना चाहिए।[101]

जब कोई सदस्य सदन में पहली बार भाषण कर रहा हो तब उसके भाषण के दौरान व्यवधान नहीं डाला जाना चाहिए।[102]

तथापि, यह देखा गया है कि सदस्य अपना प्रथम भाषण देते वक्त कभी-कभी सामान्य रूप से अपेक्षित समय-सीमा को पार कर जाते हैं और कभी-कभी विचाराधीन विषय-क्षेत्र के बाहर की बातें भी बोल जाते हैं।

माननीय सभापति ने निदेश दिया है कि सदस्य अपना प्रथम भाषण इस तरीके से प्रस्तुत करें कि उस दिन के लिए अनुसूचित कार्य हेतु समय प्रबंधन का उल्लंघन न हो और भाषण 15-20 मिनटों से ज्यादा का न हो।[103]

जहां तक संभव हो, सदस्यों को सदन में सभापीठ के निकट आकर बात नहीं करनी चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो सदस्य सभापीठ को पर्चियां भेज सकते हैं।[104]

एक बार एक ध्यानाकर्षण पर चर्चा के दौरान एक सदस्य कोई बात कहने के लिए सभापति के निकट गए। इस पर सभापति ने कहा:

"मैं माननीय सदस्यों से यह निवेदन करना चाहूंगा कि वाद-विवाद के दौरान वे मेरे पास न आएं। मुझे इसके लिए खेद है। मेरा ध्यान बिल्कुल दूसरी तरफ चला गया है... और इससे सदन को असुविधा होती है।"[105]

कुछ दिन बाद जब एक सदस्य सभापति से बात करने के लिए उनके निकट आए तब सभापति ने पुन: ऐसी टिप्पणी की।[106]

जब तक सभापति से लिखित रूप में अग्रिम अनुमति न ली गई हो तब तक सदस्यों को संसद् भवन की प्रसीमा के भीतर कोई साहित्य, प्रश्नावलि, पुस्तिका आदि वितरित नहीं करनी चाहिए।[107]

13 सितम्बर, 1963 को मध्याह्न-भोजन के अवकाश के तुरन्त बाद सभा के पुन: समवेत होने पर उपसभापति द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियां की गईं:

मेरा ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाया गया है कि आज दोपहर के बाद प्रत्येक सीट पर एक पर्चा रखा गया था। मैं समझती हूं कि प्रत्येक माननीय सदस्य इस सदन की इस सुस्थापित परंपरा को जानता है कि सभापति की पूर्व अनुमति के बिना इस सदन में कोई चीज वितरित नहीं की जानी चाहिए, चाहे वह पुस्तिका हो, प्रश्नावलि हो या अन्य किसी प्रकार का पत्र हो। मुझे आशा है कि प्रत्येक सदस्य द्वारा इस सुस्थापित परंपरा का अनुसरण किया जाएगा और जिस किसी ने भी ऐसा किया है उन्हें अहसास होगा कि भविष्य में ऐसा कभी नहीं करेंगे।[108]

जब तक सभापति द्वारा अस्वस्थता के आधार पर अनुमति नहीं दी गई हो तब तक किसी सदस्य को छड़ी लेकर सदन के भीतर नहीं आना चाहिए।[109]

संसद् भवन के परिसर के किसी भाग में सदस्यों को हथियार लेकर नहीं आना चाहिए और न ही उन्हें प्रदर्शित करना चाहिए। सदन में प्रदर्शन की किसी वस्तु को प्रदर्शित करना अनुचित है।[110] सदन में बिल्ले पहनकर आने और किन्हीं वस्तुओं का प्रदर्शन करने के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

> एक बार कुछ सदस्य श्रीलंका में तमिल लोगों पर हो रहे हमलों के विरोध में अपने बाजुओं पर काली पट्टियां लगाकर सदन में आए। जब उनमें से एक सदस्य इस विषय की ओर ध्यानाकर्षण कर रहे थे तब उनसे कहा गया कि वह बिल्ले को उतार दें।[111]
>
> एक सदस्य ने, जो बिल्ला लगाए हुए थे, कहा कि आन्ध्र प्रदेश में लोकतंत्र की हत्या हो रही है। सभापति ने उनसे कहा कि वह बिल्ला हटा दें। उन्होंने यह भी कहा: "मैं बिल्ला लगाए हुए किसी भी सदस्य से यह कहूंगा कि वह सदन के बाहर चले जाएं और साथ ही मैं उन्हें दिन-भर के लिए निलंबित कर दूंगा।...किसी बिल्ले, बाजूबंद-पट्टी आदि की अनुमति नहीं दी जाएगी। आखिरकार हम सदन के भीतर हैं।[112]
>
> 6 मई, 1985 को कुछ सदस्य कांग्रेस शताब्दी समारोह का बिल्ला लगाकर सदन में आए। औचित्य प्रश्न उठाए जाने पर उपसभापति ने इन सदस्यों से कहा कि वे बिल्ले उतार दें। इसके बाद कुछ दलीलें दी जाने लगीं। सभापति, जो अपने कक्ष में थे, सदन में वापस आए और उन्होंने यह निर्णय दिया कि यद्यपि ऐसा कोई नियम नहीं है जो सदस्यों द्वारा बिल्ले लगाने का निषेध करता हो तथापि ऐसा करना सदन की परंपरा के विरुद्ध है। इसके बाद संबंधित सदस्यों ने बिल्ले उतार दिए।[113]
>
> एक बार जब सदन मेहम (हरियाणा) कांड पर चर्चा करने वाला था तब एक सदस्य गोलियों का हार पहनकर सदन में आए। उपसभापति ने उनसे कहा कि वह उसे उतार दें क्योंकि ऐसा करना सदन की परंपरा के विरुद्ध है। शोर-शराबे और हंगामे के बीच सदन दिन-भर के लिए स्थगित कर दिया गया।[114]
>
> एक सदस्य ने सदन में जूस की बोतल दिखाने की कोशिश की जिसमें कोई बाहरी चीज़ पड़ी हुई थी। सभापति ने यह व्यवस्था देते हुए इसकी अनुमति नहीं दी कि ऐसा करना अनुचित है और यदि सदस्य ऐसा करते रहेंगे तो उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाएगी।[115]

परंतु ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब सदस्यों ने अपने कथन की पुष्टि में कोई वस्तु पेश की थी या दिखाई थी। उदाहरण के लिए प्याज का हार,[116] इन्सेट 1ए का मॉडल[117] छोटे सिक्के,[118] एक तीर,[119] खून से सने कपड़े,[120] दवा की बोतलें,[121] इडली में पाया गया (लकड़ी का) टुकड़ा[122] आदि।

> खाद्य और नागरिक आपूर्ति मंत्री ने एक समाचार-पत्र में प्रकाशित विज्ञापन दिखाया जिसमें एक आदमी को कड़वा मुंह बनाकर चाय पीते हुए दिखाया गया था। इसे दिखाकर मंत्री अपने इस कथन की पुष्टि कर रहे थे कि चीनी मिलों के मालिक आयातित चीनी के विरोध में प्रचार कर रहे हैं। उस दिन इस विषय पर एक ध्यानाकर्षण पर चर्चा होनी थी।[123]
>
> मॉस्को खेलों में भाग लेने वाली भारतीय टीम के सदस्यों को घटिया किस्म के जूतों की सप्लाई के बारे में विशेष उल्लेख करते हुए एक सदस्य ने इन जूतों का एक नमूना पेश किया।[124] अगले दिन सभापति के निदेश पर सदस्य ने क्षमा मांगी। सभापति ने कहा: "...सदन में किसी वस्तु को पेश करना सभी परंपराओं और नियमों के विरुद्ध है। उसे पेश किया गया था। आपने खेद प्रकट किया है। सभा को खुशी है।"[125]
>
> प्रश्नकाल के समाप्त होते ही एक सदस्य ने कुछ छायाचित्र दिखाए जिनमें राजनैतिक नेताओं को एक कथित तस्कर के साथ दिखाया गया था। इस पर उपसभापति को कहना पड़ा: "यह कोई चित्रशाला नहीं है, यहां पर छायाचित्रों को न लाएं।"[126]

किसी सदस्य को संसद् भवन की प्रसीमा या भू-क्षेत्र के भीतर धरना नहीं देना चाहिए, भूख-हड़ताल, प्रदर्शन आदि नहीं करने चाहिएं और कोई धार्मिक अनुष्ठान करने के प्रयोजन से उसका उपयोग नहीं करना चाहिए।[127]

जब एक सदस्य सदन की लॉबी में भूख-हड़ताल कर रहे थे तब उन्हें सभापति के आदेश पर संसद् भवन से हटा दिया गया। अगले दिन सभापति ने इस संबंध में निम्नलिखित टिप्पणी की:

> मैं यह पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि संसद् रात में सदस्यों के रहने के लिए या उनके द्वारा प्रदर्शन, भूख-हड़ताल या इस प्रकार कोई अन्य कार्य करने के लिए नहीं है। लोक सभा के एक सदस्य और राज्य सभा के एक सदस्य संसद् की प्रसीमा या संसद् के भू-क्षेत्र से नहीं जाना चाहते थे क्योंकि उन्होंने यह कहा कि वे यहां रात-भर रहना चाहते हैं और कोई राजनैतिक प्रदर्शन या भूख-हड़ताल करना चाहते हैं। जब उन्होंने जाने से इनकार किया तब मेरे आदेश से उन्हें हटाया गया। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि संसद् के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ कि किसी को यहां रात में रहने की अनुमति दी गई हो। यह संसद्, संसद् की प्रसीमा और संसद् का भू-क्षेत्र संसदीय कार्यों के लिए है और जब तक संसद् का कार्य चल रहा हो सदस्यों को तब तक यहां रहने का अधिकार है। उसके बाद उन्हें यहां ठहरने का कोई अधिकार नहीं है।

जब एक सदस्य ने कहा कि हड़ताली सदस्य और मंत्री में यह समझौता हुआ था कि सदस्य संसद् भवन की इमारत के बरामदे में बैठ सकते हैं तब सभापति ने कहा कि उन्हें इसकी कोई जानकारी नहीं है। उनका कहना था कि सरकार के अनुरोध पर भी ऐसा कोई समझौता नहीं हो सकता।

सभापति के उपरोक्त कथन पर एक सदस्य ने कहा कि संसद् छोड़ने का कोई निर्धारित समय नहीं है। इस पर सभापति ने कहा: "बैठक के समाप्त हो जाने के बाद इसके लिए एक निश्चित समय है, उपयुक्त समय है।" उन्होंने यह भी स्पष्ट किया: "इसका निर्णय करना मेरा काम है कि उपयुक्त समय क्या है।"[128]

सदस्यों को वाद-विवाद की शालीनता और गरिमा बनाए रखनी चाहिए और कोई तुच्छ या ओछी बात नहीं करनी चाहिए।

बजट पर चर्चा के दौरान एक मंत्री और सदस्य के बीच नोंक-झोंक हुई। इस पर सभापति का कहना था:

> हमारी चर्चाएं शालीनता, गरिमा और यहां तक कि अपने विरोधियों के प्रति उदारता के साथ होनी चाहिए और यदि मुझे यह दिखाई देता है कि इन गुणों का अभाव है तो मुझे सदन के लिए और स्वयं अपने लिए भी खेद है।[129]

एक दूसरे अवसर पर 17 मार्च, 1961 को "आयु में 15 वर्ष से अधिक का अंतर होने पर विवाह का निषेध" संबंधी संकल्प पर हुई चर्चा के दौरान दिए गए कुछ भाषणों के लहजे के बारे में सभापति ने निम्नलिखित उद्‌गार प्रकट किए:

> मैंने सदन की कल की कार्यवाही पढ़ी और मैंने देखा कि सदन में कई सदस्यों ने जो भाषण दिए उनमें गंभीरता नहीं थी जिससे मुझे बहुत दुःख हुआ। इस प्रकार के भाषणों से वक्ताओं की या सदन की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती।[130]

27 सितम्बर, 1955 को हुई सदन की कार्यवाही के कुछ अंशों को निकालने का आदेश देते हुए सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> ...हम इस सदन की प्रतिष्ठा और गरिमा को बनाए रखना चाहते हैं। हममें से प्रत्येक व्यक्ति इसमें उतनी ही रुचि रखता है जितनी मैं रखता हूं। मैं नहीं चाहता कि कोई यह कहे कि कभी-कभी इन चर्चाओं से ऐसा लगता है कि हम गंभीर और जिम्मेदार संसद्-सदस्यों की तरह नहीं बल्कि व्यावसायिक आंदोलनकारियों की तरह आचरण कर रहे हैं। इस सदन के सभी सदस्यों को, चाहे वे किसी भी पक्ष के क्यों न हों, इस धारणा को नहीं उत्पन्न होने देना चाहिए। हमें सावधान रहना होगा और अपनी प्रतिष्ठा और अपनी गरिमा को बनाए रखना होगा। मैं इसी के बारे में चिन्तित हूं।[131]

बोलते समय कतिपय नियमों का पालन

जब कोई सदस्य बोलने के लिए खड़ा होता है तब सभापति द्वारा उसका नाम पुकारा जाता है। यदि कई सदस्य एक साथ उठ खड़े हों तो उस सदस्य को बोलने का अधिकार होता है जिसका नाम पुकारा गया हो।[132]

किसी चर्चा या वाद-विवाद में भाग लेने के इच्छुक सदस्य निम्नलिखित तीन रीतियों में किसी एक के द्वारा इसकी सूचना दे सकते हैं।

(क) संसदीय दल/समूह द्वारा सभापति को सदस्यों के नाम दिए जा सकते हैं;

(ख) कोई सदस्य सभापति को सीधे ही यह लिख सकता है कि वह किसी चर्चा में बोलना चाहता है;

(ग) कोई सदस्य अपने स्थान पर खड़े होकर सभापति की दृष्टि में आने की सुविदित संसदीय प्रथा का अनुसरण कर सकता है।

सदन में किसी वाद-विवाद में भाग लेने के इच्छुक सदस्यों की सूची या इस संबंध में किसी सदस्य द्वारा व्यक्तिगत रूप से भेजी गई पर्ची पटल को भेजी जानी चाहिए, न कि सभापीठ को।

चाहे किसी सदस्य ने अपने दल/समूह के द्वारा या सीधे ही सभापति को लिखकर अपना नाम भेजा हो, उसे सभापति द्वारा बोलने के लिए तब तक नहीं बुलाया जाएगा जब तक वह अपने स्थान पर नहीं खड़ा होता और सभापति की दृष्टि में नहीं आ जाता।

सभापति उन सूचियों को या उन क्रम को अपनाने के लिए बाध्य नहीं है जिनके अनुसार दलों/समूहों द्वारा या सदस्यों द्वारा व्यक्तिगत रूप से नाम दिए जाते हैं। सूचियां केवल सभापति के पथ-प्रदर्शन के लिए होती हैं और जब भी सभापति आवश्यक समझे, उसे उनमें परिवर्तन करने का सदैव अधिकार होता है।

आधे घंटे के विचार-विमर्श, मंत्रियों द्वारा दिए गए स्वत: प्रेरित वक्तव्यों से संबंधित स्पष्टीकरण अथवा ध्यान दिलाए जाने संबंधी प्रस्तावों के उत्तर में वक्तव्य के मामलों में, स्पष्टीकरण प्राप्त करने के इच्छुक सदस्य अपने नाम पटल कार्यालय को भेज सकते हैं अथवा सभापति की दृष्टि में आने के पश्चात् सभापति द्वारा अनुमति दिए जाने पर बोल सकते हैं।

अल्पकालिक विचार-विमर्शों, विधेयकों, संकल्पों इत्यादि के मामले में, जहां सामान्यत: कार्य मंत्राणा समिति द्वारा समय का नियतन अथवा आवंटन किया जाता है, वहां समय का आवंटन दलीय आधार पर दलों की सदस्य संख्या के अनुपात में किया जाता है। भाग लेने के इच्छुक सदस्य समय की उपलब्धता के अध्यधीन वक्ताओं की सूची में शामिल किए जाने हेतु अपने नाम दल के नेता/प्रमुख के माध्यम से पटल कार्यालय को भेज सकते हैं। अनुमति प्राप्त सदस्य, सभापति द्वारा पुकारे जाने पर अपना मत व्यक्त कर सकते हैं।[133]

वस्तुत: यह पाया गया है कि वैयक्तिक सदस्यों को बोलने हेतु दिए गए समय के आवंटन एवं विनियमन में पीठासीन अधिकारी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है क्योंकि वाद-विवाद के आरंभ में बोलने के इच्छुक सदस्यों की पूर्ण सूची उपलब्ध नहीं हो पाती है। इस कठिनाई से निपटने के लिए तथा सभापति की ओर से बार-बार नाम पुकारे जाने की स्थिति से यथासंभव बचने के लिए यह निर्णय लिया गया है कि किसी वाद-विवाद में भाग लेने के इच्छुक सदस्यों को चर्चा शुरू होने के केवल 30 मिनट पूर्व अपने नाम पटल कार्यालय में देने का अनुरोध किया जाएगा।[134]

सदस्यों को अपने-अपने स्थानों से बोलना चाहिए और खड़े होकर सभापति को संबोधित करना चाहिए। परंतु यदि कोई सदस्य बीमार हो या शारीरिक रूप से असमर्थ हो तो उसे बैठकर बोलने की अनुमति दी जा सकती है।[135]

गृह मंत्री (श्री गोविन्द बल्लभ पंत) द्वारा संविधान (चौथा संशोधन) विधेयक, 1954 को एक संयुक्त समिति को सौंपने वाले प्रस्ताव को उपस्थित किए जाने के पूर्व सभापति ने उन्हें सुझाव दिया कि यदि उन्हें बैठकर बोलने में अधिक सुविधा होती है तो वे सदन की अनुमति से ऐसा कर सकते हैं। उन्होंने ऐसा ही किया और बैठकर बोलने की अनुमति देने के लिए सभापति तथा सदस्यों को धन्यवाद दिया।[136]

परंतु जब प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू जो अस्वस्थ थे और राज्य सभा में प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे, एक सदस्य ने सभापति के माध्यम से निवेदन किया कि प्रधान मंत्री बैठकर उत्तर दें और उन्हें हर बार खड़े होने की जरूरत नहीं है तब प्रधान मंत्री ने कहा: "श्रीमन्, मैं सदन की गरिमा को बनाए रखना चाहता हूं।"[137]

सदस्य अपने भाषणों में किसी ऐसे मामले का उल्लेख नहीं कर सकते जिस पर न्यायिक निर्णय लंबित हो[138] अर्थात् जो न्यायालय में विचाराधीन हो। जब कोई सदस्य अपने भाषण के दौरान ऐसा करता है तब सभापीठ उसे ऐसा न करने के लिए कहता है और वह उससे यह भी कह सकता है कि वह अपने भाषण को जारी न रखे।

सदस्यों को दूसरे सदस्यों के विरुद्ध व्यक्तिगत आरोप लगाने की अनुमति नहीं है।[139]

एक सदस्य ने विनियोग विधेयक पर चर्चा के दौरान प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के विरुद्ध कतिपय व्यक्तिगत आरोप लगाए।[140] सभापति ने नियम 238(ii) का उल्लेख करते हुए कहा कि हाल में उन्होंने कुछ सदस्यों की यह प्रवृत्ति देखी है कि वे इस महत्वपूर्ण नियम की अनदेखी कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि ऐसी प्रवृत्ति से सदन की गरिमा को ठेस पहुंचती है और निश्चय ही उससे सदन के सदस्यों की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती। उन्होंने यह भी सूचित किया कि प्रधान मंत्री ने उन्हें लिखे एक पत्र में इन आरोपों का खंडन करते हुए कहा कि वे नितांत निराधार हैं। अत: उन्होंने सदस्य से अपने आरोपों को वापस लेने के लिए कहा। जब सदस्य इसके लिए सहमत नहीं हुए तब सभा के नेता (श्री एम. सी. छागला) ने इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपने के लिए एक प्रस्ताव की सूचना पढ़कर सुनाई। इस प्रस्ताव पर सदन में चर्चा हुई।[141] अगले दिन एक सदस्य के सुझाव पर मामले का निपटारा सभापति पर छोड़ दिया गया और प्रस्ताव वापस ले लिया गया।[142] 7 सितम्बर, 1966 को आरोप लगाने वाले सदस्य की बात सुनने के बाद और प्रधान मंत्री द्वारा आरोपों का पुन: खंडन करने के बाद सभापति ने सदस्य से अपने कथन को वापस लेने के लिए कहा। सदस्य ने ऐसा ही किया और मामले को समाप्त कर दिया गया।[143]

किसी सदस्य से यह आशा नहीं की जाती कि वह सदनों या किसी राज्य विधान-मंडल के आचरण या कार्यवाही के बारे में आपत्तिजनक शब्दों का प्रयोग करे।[144] सभापीठ

के निर्णय से पुन: यह पुष्ट होता है कि सदस्यों को लोक सभा में वाद-विवादों के बारे में कोई आलोचनात्मक उल्लेख नहीं करना चाहिए।

> एक सदस्य ने अंतर्राष्ट्रीय स्थिति संबंधी एक प्रस्ताव पर बोलते हुए लोक सभा में इस विषय पर हुए वाद-विवाद का उल्लेख करते हुए उसकी आलोचना की। प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने यह सुझाव दिया कि राज्य सभा में लोक सभा में हुए वाद-विवाद का उल्लेख करने की प्रथा नहीं बननी चाहिए और चाहे तकनीकी दृष्टि से इसका औचित्य ठहराया भी जा सकता हो तब भी यह बुरी प्रथा होगी कि राज्य सभा लोक सभा पर बहस करे और लोक सभा राज्य सभा पर बहस करे और इससे दोनों सदनों के बीच अशांति पैदा होगी। सभापति ने सदस्य से लोक सभा का उल्लेख न करने को कहा और यह भी कहा कि सदस्य ने लोक सभा के बारे में जो कुछ कहा है उसे कार्यवाही से निकाल दिया जाएगा।[145]

> एक सदस्य ने उत्तर प्रदेश विधान सभा के कार्यकरण के तरीके के बारे कुछ टिप्पणियां कीं। इस पर आपत्ति किए जाने पर सभापति ने कहा कि वे यह नहीं चाहते कि सदन में उत्तर प्रदेश विधान सभा की कार्यवाही पर चर्चा हो। उत्तर प्रदेश विधान सभा से संबंधित टिप्पणियों को कार्यवाही से निकाल दिया गया।[146]

> गृह मंत्री (ज्ञानी जैल सिंह) ने नौ राज्यों की विधान सभाओं को भंग कर दिए जाने के संबंध में हुई बहस का उत्तर देते हुए लोक सभा की सदस्यता से श्रीमती इंदिरा गांधी को निष्कासित करने और उन्हें जेल भेजे जाने का उल्लेख किया। औचित्य का प्रश्न उठाया गया कि इस उल्लेख से दूसरे सदन पर आक्षेप होता है और ऐसा करने की अनुमति नहीं है। सभापति ने स्पष्ट किया कि मंत्री एक ऐसे दल की आलोचना कर रहे थे, जो एक विशिष्ट सदन के माध्यम से कार्य कर रहा था और वे सदन की आलोचना नहीं कर रहे हैं। किन्तु सभापति ने मंत्री से निवेदन किया कि वे जो कुछ भी कहना चाहते हैं वह दूसरे सदन पर आक्षेप किए बिना भी कहा जा सकता है।[147]

सदस्यों से यह भी आशा की जाती है कि वे राज्य सभा के किसी निश्चय पर, उसे रद्द करने के प्रस्ताव के अतिरिक्त, आक्षेप नहीं करेंगे।[148]

सदस्यों को उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप या उनके आचरण पर तब तक आक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक चर्चा संविधान के अधीन उचित शब्दों में रखे गए मूल प्रस्ताव पर आधारित न हो।[149]

> जब संघ लोक सेवा आयोग के कतिपय प्रतिवेदनों को चर्चा के लिए लिया जा रहा था तब उपसभापति ने उसके दायरे को स्पष्ट करते हुए कहा: "अनुच्छेद 317 और 318 के अधीन सरकार और आयोग की शक्तियों को निर्धारित किया गया है। यदि सरकार आयोग की सिफारिशों को अमल में नहीं लाती या उन्हें स्वीकार कर लेती है तो सरकार की इस कार्यवाही की आलोचना की जा सकती है किन्तु आयोग की सिफारिशों और उसके या उसके किन्हीं सदस्यों के कार्यों की आलोचना करना प्रासंगिक नहीं होगा।" इस संदर्भ में उन्होंने तत्कालीन नियम 200(5) को, (जो वर्तमान नियम 238(5) के अनुरूप था) उद्धृत किया।[150]

> जब नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (सेवा की शर्तें) विधेयक, 1953 पर विचार हो रहा था तब एक सदस्य ने कहा कि यद्यपि तत्कालीन नियंत्रक-महालेखापरीक्षक ने अपनी कुछ जिम्मेदारियों को बहुत अच्छी तरह से निभाया था तथापि वे अपनी आजादी के बावजूद कई चीजों पर नियंत्रण रखने में विफल रहे। इस पर उपसभापति ने टिप्पणी की:
>
> > मैं नियंत्रक-महालेखापरीक्षक पर आक्षेप करने की अनुमति नहीं दूंगा...वे उच्चाधिकार वाले व्यक्ति हैं जिन्हें संविधान के अधीन हटाया जा सकता है। यदि वे अपने कर्त्तव्य में विफल रहे हैं तो उन्हें हटाने के कुछ तरीके हैं...नियम 200(5) (जो वर्तमान नियम 238(5) के अनुरूप था) के अनुसार कोई सदस्य बोलते समय उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों के आचरण पर तब तक आक्षेप नहीं

करेगा जब तक कि चर्चा उचित शब्दों में रखे गए मूल प्रस्ताव पर आधारित न हो। यह महालेखापरीक्षक की आलोचना करने या उन्हें पद से हटाने का कोई मूल प्रस्ताव नहीं है।[151]

19 जुलाई, 1989 को सभापटल पर रखे गए भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रक्षा सेवाओं संबंधी प्रतिवेदन (पैरा 11 और 12) पर चर्चा के दौरान कुछ सदस्यों ने 21 और 25 जुलाई, 1989 को नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की आलोचना करते हुए कुछ ऐसी टिप्पणियां की थीं जिनसे नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के पद की प्रतिष्ठा और साथ ही व्यक्तिगत रूप से उनकी प्रतिष्ठा को भी ठेस पहुंचती थी। राज्य सभा के एक भूतपूर्व सदस्य ने इस संबंध में सभापति को एक अभ्यावेदन दिया जिसे देखते हुए सभापति ने कार्यवाही के आपत्तिजनक[152] अंशों को निकाले जाने का आदेश दिया जोकि सूचना कार्यालय में रखी गई सूची में दर्शाए गए हैं। यह आदेश देते हुए सभापति ने फाइल पर निम्नलिखित टिप्पणी की:

मुझे यह कहना पड़ रहा है कि चर्चा के दौरान जिस तरह से और जितनी बार आपत्तिजनक टिप्पणियां की गई हैं, उनसे मुझे बहुत दुःख हुआ है। इन टिप्पणियों से सदन और भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की गरिमा को आघात पहुंचा है। संवैधानिक मर्यादा और संसदीय शिष्टाचार को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि इन सभी अपमानजनक टिप्पणियों को सदन की कार्यवाही के अभिलेख से तुरंत निकाल दिए जाए।[153]

सदस्यों द्वारा वाद-विवाद पर प्रभाव डालने के प्रयोजन से राष्ट्रपति के नाम का उपयोग नहीं किया जा सकता।[154] सभा में राष्ट्रपति के आचरण पर भी चर्चा नहीं की जानी चाहिए।

वित्त विधेयक, 1970 पर चर्चा के दौरान श्री राज नारायण ने राष्ट्रपति का नाम लिया। उपसभाध्यक्ष ने कहा कि राष्ट्रपति के आचरण पर चर्चा नहीं की जायेगी। इस पर एक सदस्य ने राष्ट्रपति के पद और उनके व्यक्तित्व के बीच यह कहते हुए अन्तर करने का प्रयास किया कि किसी को भी उनकी व्यक्तिगत हैसियत के रूप में व्यक्ति की आलोचना करने की स्वतंत्रता है। इसको अस्वीकार करते हुए उपसभाध्यक्ष ने व्यवस्था दी:

अत: न तो राष्ट्रपति के नाम से न उनके राष्ट्रपति रहते हमें श्री गिरि के आचरण पर चर्चा करनी चाहिए। इसलिए मेरी व्यवस्था है कि इस प्रकार की चर्चा की अनुमति नहीं दी जा सकती।[155]

7 जून, 1971 को श्री ए. जी. कुलकर्णी ने एक अनुपूरक प्रश्न पूछते समय राष्ट्रपति के नाम का उल्लेख किया। सभापति ने टिप्पणी की:

राष्ट्रपति का नाम नहीं लिया जाना चाहिए था।[156]

बोलते समय सदस्यों को संसदीय भाषा का प्रयोग करना चाहिए। उन्हें देशद्रोहात्मक, राजद्रोहात्मक या मानहानिकारक शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।[157]

अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने पाकिस्तान के राष्ट्रपति के बारे में कुछ टिप्पणियां कीं। प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने इस पर आपत्ति करते हुए कहा कि सदस्य ने जिस भाषा में एक विदेशी राज्य के अध्यक्ष के बारे में सदन में टिप्पणी की है वह उचित नहीं है....कुछ मर्यादाओं का पालन करना ही होगा। उपसभाध्यक्ष का कहना था:

ऐसे कतिपय प्रक्रिया संबंधी नियम हैं जिनके अनुसार हम ऐसे शब्दों में किसी पड़ोसी राज्य के अध्यक्ष का उल्लेख नहीं कर सकते...मुझे आशा है कि माननीय सदस्य सावधानी बरतेंगे और ऐसी अपमानजनक शब्दावली का उपयोग नहीं करेंगे।

आपत्तिजनक शब्दों को सदन की कार्यवाही के अभिलेख से निकाल दिया गया।[158]

एक बार जब एक सदस्य द्वारा बांग्लादेश में छापामारों को दी जा रही मदद और कब्जे में ले लिए गए साज़-सामान के बारे में प्रश्न पूछा जा रहा था तब विदेश मंत्री ने कहा कि सदस्य ने जो कुछ

कहा है उसका अंतर्राष्ट्रीय मंचों में भारत के विरुद्ध इस्तेमाल किया जा सकता है। उन्होंने सदस्य से आग्रह किया कि वे इस तरह के मुद्दे न उठाएं। इस संबंध में उसभापति का कहना था:

> जब हम इस सभा में अपने कर्त्तव्यों का पालन कर रहे हों तब सदस्यों को संयत भाषा का प्रयोग करना चाहिए। सबसे बड़ी बात जो हर सदस्य को ध्यान में रखनी है यह है कि हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे हमारे राष्ट्रीय हितों को जरा भी आंच पहुंचे।[159]

सदस्यों को भाषण करने के अधिकार का उपयोग सदन के कार्य में बाधा डालने के प्रयोजन से नहीं करना चाहिए।[160]

सभापीठ की पूर्व अनुमति के बिना कोई सदस्य सदन में लिखित भाषण नहीं पढ़ सकता यद्यपि वह टिप्पणों का सहारा ले सकता है।[161]

यदि कोई सदस्य सदन में उपस्थित हो तब किसी दूसरे सदस्य को उसका भाषण पढ़ने की अनुमति नहीं दी जाती।[162]

किसी सदस्य को दूसरे सदस्य की नीयत पर आरोप लगाकर या उसकी सदाशयता पर संदेह व्यक्त करके तब तक कोई व्यक्तिगत उल्लेख नहीं करना चाहिए जब तक ऐसा करना अत्यंत आवश्यक न हो और ऐसे मुद्दे पर ही बहस न हो रही हो या जब तक मुद्दा बहस से संबंधित न हो।[163]

इस संबंध में अत्यधिक सतर्कता बरती जानी चाहिए कि सदन में वक्रोक्तियों तथा आपत्तिजनक और असंसदीय शब्दों का प्रयोग न किया जाए। यदि सभापीठ की राय में कोई शब्द या शब्दावली असंसदीय हो तो उसे तत्काल वापस ले लिया जाना चाहिए और उसके बारे में कोई बहस करने की कोशिश नहीं की जानी चाहिए। सभापीठ द्वारा जिन शब्दों को असंसदीय ठहराया जाता है और कार्यवाही से निकाले जाने का आदेश दिया जाता है उनका मुद्रित वाद-विवाद में उल्लेख नहीं किया जाता।[164]

सदस्यों को, प्रथानुसार, परामर्शी समितियों की बैठकों की कार्यवाही या उनके दौरान उठाए गए मुद्दों का उल्लेख नहीं करना चाहिए।

वित्त (संख्या 2) विधयेक, 1980 पर हो रही बहस में भाग लेते हुए एक सदस्य ऐसे दस्तावेज से उद्धरण देना चाहते थे जो वित्त मंत्रालय से संबंधित संसदीय परामर्शी समिति के सदस्यों में परिचालित किया गया था। इस पर आपत्ति किए जाने पर उपसभाध्यक्ष ने सदस्य को सलाह दी कि वे परामर्शी समिति का उल्लेख किए बिना अपनी बात को दूसरे तरीके से कहें। उनका कहना था:

> ...सामान्यत: हम परामर्शी समितियों के दस्तावेजों और उनकी चर्चाओं का उल्लेख नहीं करते। अत: परामर्शी समिति की बात किए बिना आप यह बता सकते हैं कि वित्त मंत्री ने क्या कहा था।....परामर्शी समिति को बीच में न लाएं।[165]

21 अगस्त, 1990 को रक्षा मंत्रालय में राज्य मंत्री (डा. राजा रामन्ना) ने सदन को सूचित किया कि प्रधान मंत्री अपराह्न 5 बजे भारत-पाकिस्तान सीमा पर गोलीबारी की घटना के बारे में एक वक्तव्य देंगे क्योंकि "यह विषय कुछ महत्व का है।" एक सदस्य द्वारा आपत्ति किए जाने पर उन्होंने "कुछ महत्व का है" शब्दों के प्रयोग को स्पष्ट करते हुए कहा कि (रक्षा संबंधी) परामर्शी समिति की बैठक में कुछ सदस्यों ने बहिर्गमन किया था। सदस्यों ने दलील दी कि सुस्थापित प्रथा के अनुसार परामर्शी समितियों की कार्यवाही से संबंधित मामलों का सदन में उल्लेख नहीं किया जाना चाहिए। मामले के संबंध में कुछ विवाद हुआ। बाद में मंत्री ने क्षमा-याचना की।[166]

27 मार्च, 1995 को श्रम मंत्री ने एक ध्यानाकर्षण के उत्तर में दिए गये एक लिखित वक्तव्य में 14 दिसम्बर, 1994 को हुई श्रम मंत्रालय की परामर्शी समिति की बैठक में हुई चर्चा का उल्लेख किया। जब इस पर आपत्ति की गई तब उन्होंने अपने वक्तव्य में से उन लगभग दो पैराओं का लोप कर दिया जिनमें परामर्शी समिति के बारे में उल्लेख किया गया था।[167]

किन्तु, एक बार श्रम मंत्रालय की सलाहकार समिति की बैठक के रद्द किए जाने का मामला सदन में उठाया गया था।[168]

सदस्यों के विरुद्ध आरोप

किसी सदस्य को किसी अन्य सदस्य या लोक सभा के किसी सदस्य के विरुद्ध तब तक मानहानिकारक या अभियोगात्मक आरोप नहीं लगाने चाहिए जब तक उसने सभापति और संबंधित मंत्री को भी इसकी पूर्व सूचना न दी हो ताकि मंत्री उत्तर देने के प्रयोजन से मामले की छानबीन कर सके। यदि सभापति की राय में ऐसा आरोप सदन की गरिमा को घटाने वाला हो या ऐसा आरोप लगाने से कोई जनहित सिद्ध न होता हो तो वह किसी भी समय सदस्य को ऐसा आरोप लगाने से मना कर सकते हैं।[169]

एक ध्यानाकर्षण पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने कहा कि तीन व्यक्तियों ने, जिनके नाम दिए गए हैं, और एक संसद्-सदस्य ने सूत का कोटा हथिया लिया है। अगले दिन उन्होंने यह कहते हुए अपने कथन पर खेद प्रकट किया: "संसद्-सदस्य के रूप में अपने 15 वर्षों के कार्यकाल में मैंने ऐसा नहीं किया है। एक संसद्-सदस्य के रूप में मुझे उन्मुक्ति मिली हुई है और मैंने अपने विशेषाधिकार का दुरुपयोग किया है।"[170]

प्रश्नों को सभापीठ के माध्यम से पूछा जाना

यदि कोई सदस्य ऐसे मामले के बारे में, जो सदन के समक्ष हो, कुछ कहना चाहता है या सदन में विचाराधीन किसी विषय के संबंध में, स्पष्टीकरण या व्याख्या के प्रयोजन के लिए किसी अन्य सदस्य का प्रश्न पूछना चाहता है तो उसे सभापीठ के माध्यम से ऐसा करना चाहिए।[171]

सदन में बोलते समय किसी सदस्य को दूसरे सदस्य को संबोधित करके कोई बात नहीं कहनी चाहिए बल्कि उसे हमेशा सभापीठ को संबोधित करना चाहिए और सदस्यों को अपनी बात सभापीठ के माध्यम से कहनी चाहिए। यह वांछनीय है कि जहां तक व्यावहारिक हो, किसी सदस्य का नाम लेकर उल्लेख नहीं किया जाना चाहिए किन्तु किसी अन्य समुचित रीति से उसका उल्लेख किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए ऐसा कहा जा सकता है: "जो सदस्य पहले बोल चुके हैं", "अमुक राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य", "अमुक राज्य से जो सदस्य आए हैं" आदि। यदि आवश्यक हो तो पूरा नाम लिया जा सकता है। इसी प्रकार मंत्रियों का उल्लेख उनके पदनाम के द्वारा किया जाना चाहिए, नाम लेकर नहीं।[172]

असंगत बातें कहना या बार-बार एक ही बात कहना

यदि सभापीठ को यह अनुभव होता है कि भाषण कर रहा सदस्य लगातार असंगत बातें कहता जा रहा है या बहस से अपनी ही दलीलों या अन्य सदस्यों द्वारा दी गई दलीलों की उकताऊ पुनरावृत्ति करता जा रहा है तो वह उस सदस्य को अपना भाषण बंद करने को कह सकते हैं।[173]

> एक बार ध्यानाकर्षण पर बोल रहे किसी सदस्य को उपसभापति द्वारा बार-बार चेतावनी दी गई थी कि वे ध्यानाकर्षण के विषय से संबंधित बातों के अलावा और बातें न कहें। जब सदस्य असंबद्ध विषय पर बोलते रहे तब उपसभापति ने आदेश दिया कि सदस्य के भाषण के बाकी भाग को अभिलिखित नहीं किया जाएगा। कुछ सदस्यों ने इस आदेश पर आपत्ति की। उपसभापति ने अपने आदेश के समर्थन में नियम 259 (सभापति व्यवस्था बनाये रखेगा और निर्णयों को लागू करेगा) का हवाला दिया। एक सदस्य ने इस पर भी विवाद किया। एक अन्य सदस्य का कहना था कि अति हो जाने वाले मामले में ही इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। उपसभापति ने अपनी व्यवस्था देते हुए कहा कि पीठासीन अधिकारी उस समय इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है जब तीन या चार बार चेतावनी देने के बाद भी कोई सदस्य अपने भाषण के दौरान लगातार असंबद्ध बातें करता जा रहा हो अन्यथा सदन की कार्यवाही को चलाना असंभव हो जाएगा। उन्होंने अंत में यह कहा: "किन्तु सदस्यों को कुछ अनुशासन का पालन तो करना ही चाहिए। तब ऐसी स्थिति पैदा नहीं होगी।"[174]

सभापति के खड़े होने पर प्रक्रिया

जब सभापति बोलने के लिए खड़ा हो तब सदस्यों को उसे शांतिपूर्वक सुनना चाहिए और यदि कोई सदस्य उस समय बोल रहा हो या बोलने वाला हो तो उसे बैठ जाना चाहिए। जब सभापति सभा को संबोधित कर रहा हो तब किसी सदस्य को अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहिए।[175]

यह एक सुविदित और सर्वमान्य संसदीय परंपरा है कि जब सभापति पीठासीन होने के लिए सदन में प्रवेश करता है या बोलने के लिए खड़ा होता है या 'शांति' बनाए रखने के लिए कहता है तब सदस्यों को तत्काल अपना स्थान ग्रहण कर लेना चाहिए।[176] इसका अर्थ यह है कि जब सभापति सदन को संबोधित कर रहा हो तब सदस्यों को कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठाना चाहिए।

> एक बार जब एक सदस्य ने एक विशेषाधिकर प्रश्न उठाना चाहा तब उपसभापति ने खड़े होकर कहा कि सदस्य ने सदन में जो तथ्य पेश किए हैं उन्हें सभापीठ के कक्ष में पेश किया जा चुका है। जब कई सदस्य एक साथ बोलने के लिए एकदम खड़े हो गए तब उपसभापति खड़ी हुईं और उन्होंने कहा: "...यह बहुत अशोभनीय है। जब पीठासीन व्यक्ति बोलने के लिए खड़ा हो तब सभी सदस्यों को अपना स्थान ग्रहण कर लेना चाहिए। मुझे आशा है कि ऐसी स्थिति इस सदन में कभी पुन: उत्पन्न नहीं होगी।"[177]

> एक बार जब कई सदस्य खड़े हो गए और उन्होंने सभापति के इस अनुरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया कि वे अपना स्थान ग्रहण कर लें, तब सभापति ने खड़े होकर कहा: "यदि मैं खड़ा हूं और तब भी कोई सदस्य बोलता है तो वृत्तलेखकों (रिपोर्टरों) को मेरी हिदायत है कि वे उस सदस्य के कथन को कार्यवाही में से बिल्कुल निकाल दें।"[178]

संसद् और उसकी समितियों के समक्ष आने वाले मामलों में व्यक्तिगत हित रखने वाले सदस्य

संसद अथवा किसी समिति द्वारा विचारार्थ किसी मामले में व्यक्तिगत अथवा आर्थिक हित (प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष) रखने वाला कोई सदस्य रजिस्टर में अपने हितों के पंजीकरण के होते हुए भी ऐसे हितों की प्रकृति की घोषणा करेगा और ऐसी घोषणा करने से पहले वह सदन अथवा इसकी समितियों में होने वाली किसी भी बहस में भाग नहीं लेगा।

सभा में मत-विभाजन होने पर यदि किसी सदस्य के मत को निर्णित किए जाने वाले किसी मामले के संबंध में व्यक्तिगत, आर्थिक अथवा प्रत्यक्ष हित के आधार पर चुनौती मिलती

है तो, सभापति, यदि उन्हें आवश्यक लगता है, चुनौती देने वाले सदस्य को उसके आपत्ति के आधार को सुस्पष्ट करने के लिए बुला सकते हैं और वह सदस्य जिसके मत को चुनौती दी गई है, अपने मामले के बारे में बताएगा और तब सभापति यह निर्णय लेंगे कि उस सदस्य को मत देने की अनुमति दी जाए अथवा नहीं और उनका निर्णय अंतिम होगा।[179]

आचार समिति ने 14 मार्च, 2005 को राज्य सभा में प्रस्तुत और 20 अप्रैल, 2005 को सदन द्वारा अंगीकृत अपने चौथे प्रतिवेदन में पांच आर्थिक हितों की पहचान की, यथा (i) लाभप्रद निदेशकत्व; (ii) सतत लाभप्रद कार्यकलाप; (iii) नियंत्रण प्रकृति की शेयरधारिता; (iv) सशुल्क परामर्श; और (v) व्यवसायिक अनुबंध। सदस्यों के लिए इन पांच आर्थिक हितों के संबंध में जानकारी देना अपेक्षित है, जोकि राज्य सभा के प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 293 के अधीन यथा उपबंधित "सदस्यों के हितों संबंधी रजिस्टर" में अनुरक्षित है। नियम 293 के अनुसार, समिति द्वारा अवधारित किए गए रूप में "सदस्यों के हितों संबंधी रजिस्टर" रखा जाएगा जिसे सदस्य अनुरोध पर निरीक्षण के लिए प्राप्त कर सकेंगे। रजिस्टर का रख-रखाव राज्य सभा के प्राधिकार के अंतर्गत किया जायेगा और समिति द्वारा समय-समय पर निर्धारित किए गए नियमों और प्रक्रियाओं के अनुसार रजिस्टर में निहित सूचना आम जनता को दी जा सकती है।[180]

यह भी उल्लेखनीय है कि सदस्यों के हितों के संबंध में विशिष्ट नियम बनाए जाने के पूर्व भी सदन में एक स्वस्थ संसदीय परंपरा मौजूद थी। किसी चर्चा में भाग लेने से पूर्व कोई सदस्य सदन अथवा समिति के समक्ष अपने वैयक्तिक, धन संबंधी अथवा प्रत्यक्ष हितों की घोषणा करेगा।

विशेषाधिकार समिति एक पत्र के विरुद्ध एक संसद्-सदस्य द्वारा विशेषाधिकार भंग की शिकायत पर विचार कर रही थी। स्वयं उनके निवेदन पर समिति इस पर सहमत हो गई कि चूंकि आपत्तिजनक टिप्पणियों में सदस्य पर व्यक्तिगत आक्षेप किए गए हैं इसलिए उनके लिए समिति के एक सदस्य के रूप में समिति के विचार-विमर्श में भाग लेना उचित नहीं होगा।[181]

एक दूसरे मामले में जब विशेषाधिकार समिति किसी कंपनी की प्रेस विज्ञप्ति से होने वाले विशेषाधिकार भंग की शिकायत पर विचार कर रही थी, समिति के सदस्य ने आरंभ में ही यह कहा कि चूंकि उनका संबंध ऐसे अनेक कानूनी मामलों से रहा है जिनमें यह कंपनी अंतर्ग्रस्त है, इसलिए उनके लिए यह उचित नहीं होगा कि वे समिति के सदस्य के रूप में उसकी कार्यवाही में भाग लें। अत: वे समिति की अनुमति से उसकी बैठक से हट गए।[182]

प्रतिभूति घोटाला संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर 30 दिसम्बर, 1993 को हुई अल्पकालिक चर्चा के दौरान एक सदस्य ने अपने भाषण के आरंभ में इस तथ्य का उद्घाटन किया कि वे घोटाले में अंतर्ग्रस्त मुख्य अभियुक्त के साथ व्यवसायिक रूप से सम्बद्ध रहे हैं और उन्होंने स्वयं पर स्वेच्छा से यह रोक लगाई है कि वे विवाद के इस अंश पर कोई टिप्पणी नहीं करेंगे जिसका अभियुक्त से जरा भी संबंध हो। सभापीठ ने कहा कि:

> "सदन के समक्ष किसी मामले में किसी सदस्य का वैयक्तिक, धन संबंधी अथवा प्रत्यक्ष हित होने पर उस सदस्य को उस मामले पर होने वाली कार्यवाही में भाग लेने के दौरान उस हित के स्वरूप की घोषणा करनी होगी।"[183]

31 अगस्त, 2001 को सभापति ने सभा में वाद-विवाद में भाग लेते समय एक सदस्य के धन संबंधी अथवा अन्य हित से संबंधित मुद्दे पर सभा में व्यवस्था दी। सभापति ने कहा:

> "जबकि यह सच है कि इस समय ऐसा कोई नियम नहीं है जो इस सभा के सदस्य को जनहित के विषय पर बोलने से केवल इसलिए रोकता हो क्योंकि इससे ऐसे व्यक्ति का मामला प्रभावित

> होता है जो इस या उस मामले में सदस्य का क्लाइंट है, प्रश्न अन्ततः औचित्य का है और मैं समझता हूं कि सभा मुझसे इस बात पर सहमत होगी कि इसे संबंधित सदस्य की समझ पर छोड़ दिया जाना चाहिए।"[184]

अतः सदस्यों द्वारा सभा के समक्ष विचाराधीन किसी मामले में प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष अथवा विशेष धन-संबंधी हित की घोषणा को इस संबंध में कोई नियम न होने की स्थिति में एक समुचित परिपाटी के रूप में स्वीकार किया गया है। राज्य सभा की आचार समिति के दूसरे प्रतिवेदन में इस पहलू को भी प्रमुखता से दर्शाया गया है। प्रतिवेदन के पैरा 6 में कहा गया है:

> ऐसे अवसर आते हैं जब सभा अथवा उसकी समिति द्वारा विचार किए जा रहे किसी मामले में सदस्य का प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष अथवा विशेष धन-संबंधी हित हो सकता है। ऐसे मामले में वह रजिस्टर में उसके हितों के किसी पंजीकरण के बावजूद ऐसे हित के स्वरूप की घोषणा कर सकता है और ऐसी घोषणा करने से पूर्व सभा अथवा उसकी समितियों में होने वाले ऐसे किसी वाद-विवाद अथवा मतदान में भाग नहीं लेगा।[185]

सदस्यों के लिए आचार संहिता

आचार समिति 8 दिसंबर, 1998 को राज्य सभा में प्रस्तुत और 15 दिसंबर, 1999 को इसके द्वारा अंगीकृत अपने प्रथम प्रतिवेदन में सदस्यों हेतु आचार संहिता पर विस्तार से चर्चा करने के पश्चात् एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंची कि राज्य सभा के सदस्यों हेतु आचार संहिता का एक कार्य-ढांचा तैयार किया जाए। समिति ने अपने चौथे प्रतिवेदन में सदस्यों हेतु आचार संहिता पर विचार किया और समिति की यह राय थी कि प्रथम प्रतिवेदन में उल्लिखित संहिता अत्यंत व्यापक है। तथापि, समिति ने सूचनार्थ और सदस्यों के अनुपालन हेतु उसे दोहराने की आवश्यकता महसूस की। समिति का चौथा प्रतिवेदन 14 मार्च, 2005 को राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया तथा 20 अप्रैल, 2005 को सभा द्वारा अंगीकृत किया गया। हमारे देश की विशेष आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समिति ने राज्य सभा के सदस्यों हेतु आचार संहिता के निम्नलिखित कार्य-ढांचे की सिफारिश की:[186]

राज्य सभा के सदस्यों को जनता द्वारा उनमें प्रकट किए गए विश्वास को बनाए रखने की अपनी जिम्मेदारी को स्वीकार करना चाहिए और लोगों की भलाई के लिए उन्हें मिले जनादेश का पालन करने के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए। उन्हें संविधान, कानून, संसदीय संस्थाओं और सबसे बढ़कर आम जनता के प्रति पूर्ण सम्मान रखना चाहिए। उन्हें संविधान की प्रस्तावना में दिए गए आदर्शों को वास्तविकता में परिवर्तित करने के लिए निरन्तर प्रयास करना चाहिए। उन्हें अपने कामकाज में निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन करना चाहिए:

(i) सदस्यों को कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे संसद् की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचे और उनकी विश्वसनीयता प्रभावित हो।

(ii) संदस्यों को संसद्-सदस्य के रूप में अपनी हैसियत का उपयोग आम जनता के कल्याणार्थ करना चाहिए।

(iii) अपने व्यवहार के दौरान यदि संसद्-सदस्यों को यह पता चलता है कि उनके निजी हितों और जनता द्वारा व्यक्त किए गए उन पर विश्वास के बीच कोई

टकराव होता है तो इस टकराव से उन्हें इस प्रकार से निपटना चाहिए कि उनके निजी हित, सार्वजनिक जीवन के उनके कर्त्तव्यों से आगे न निकल जाएं।

(iv) सदस्यों को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि उनके तथा उनके निकट परिवार* के व्यक्तिगत वित्तीय हित और सार्वजनिक हितों के बीच कोई टकराव न हो, और यदि कभी भी इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होती है तो उन्हें उसका इस प्रकार से समाधान निकालना चाहिए जिससे सार्वजनिक हितों की हानि न हो।

(v) सदस्यों को कभी भी विधयेक के पुरःस्थापन, किसी संकल्प को प्रस्तुत करने या न करने, प्रश्न पूछने या न पूछने हेतु सभा में मत देने अथवा मत न देने अथवा सभा या किसी संसदीय समिति की चर्चा में भाग लेने के लिए किसी शुल्क, पारिश्रमिक अथवा लाभ की आशा नहीं करनी चाहिए अथवा स्वीकार नहीं करना चाहिए।

(vi) सदस्यों को कोई ऐसा उपहार नहीं लेना चाहिए जिससे उनके सरकारी कर्त्तव्यों के ईमानदारीपूर्वक तथा निष्पक्षभाव से अनुपालन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। तथापि, वे प्रासंगिक उपहार या सस्ते स्मृति चिह्न या पारम्परिक आतिथ्य स्वीकार कर सकते हैं।

(vii) सार्वजनिक पदों पर कार्यरत सदस्यों को सार्वजनिक संसाधनों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए जिससे जनहित होता हो।

(viii) यदि संसद्-सदस्य या किसी संसदीय समिति का सदस्य होने के नाते सदस्यों के पास कोई गोपनीय सूचना हो, तो उन्हें उसका उद्घाटन व्यक्तिगत हितों के लिए नहीं करना चाहिए।

(ix) सदस्यों को ऐसे व्यक्तियों तथा संस्थाओं को प्रमाण-पत्र देने से बचना चाहिए जिनके संबंध में उन्हें व्यक्तिगत जानकारी नहीं है तथा जो तथ्यों पर आधारित नहीं हैं।

(x) सदस्यों को ऐसे किन्हीं मुद्दों का तत्काल समर्थन नहीं करना चाहिए जिनके बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं है अथवा मामूली जानकारी है।

(xi) सदस्यों को उन्हें प्रदान की गई सुविधाओं तथा सुख सुविधाओं का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

(xii) सदस्यों को किसी भी धर्म का अनादर नहीं करना चाहिए तथा धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के संवर्धन हेतु कार्य करना चाहिए।

(xiii) सदस्यों को संविधान के भाग (IV)क में सूचीबद्ध मौलिक कर्त्तव्यों को सर्वोपरि ध्यान में रखना चाहिए।

(xiv) सदस्यों से सार्वजनिक जीवन में नैतिकता, मर्यादा, शालीनता तथा मूल्यों का उच्च स्तर बनाये रखने की आशा की जाती है।

---

* परिवार में पति, पत्नी, आश्रित पुत्रियां व आश्रित पुत्र शामिल होंगे।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. हैंडबुक फॉर मेम्बर्स ऑफ राज्य सभा 2010, पैरा 2.3, (i) से (xii)
2. संसदीय समाचार (2), 8.5.1952
3. काउंसिल ऑफ स्टेट्स डिबेट्स, 16.5.1952, कालम 31-32
4. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.9.1976, कालम 8-38
5. यशवन्तराव मेघावले बनाम मध्य प्रदेश विधान सभा और अन्य, ए.आई.आर. 1967, एम.पी. 95
6. हरद्वारी लाल बनाम भारतीय चुनाव आयोग और अन्य, आई.एल.आर. (1977) 2, पंजाब और हरियाणा, 269
7. राजाराम पाल बनाम माननीय लोक सभा अध्यक्ष और अन्य (2007) 3 एससीसी 184, ओरियंट ब्लैक स्वैन प्रा.लि. द्वारा राज्य सभा सचिवालय हेतु प्रकाशित 'द लेजिस्लेचर एंड द ज्यूडीशियरी : ज्यूडीशियल प्रनाउंसमेंट इन पार्लियामेंट एंड स्टेट लेजिस्लेचर्स' में यथाउल्लिखित, 2011, पृष्ठ 22-23
8. नोर्मन वाइल्डिंग और फिलिप लौंडी, ऐन एनसाइक्लोपीडिया ऑफ पार्लियामेंट, लंदन, कैसल एंड कंपनी लि., 1958, पृष्ठ 494
9. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.4.1971, कालम 109-209
10. संसदीय समाचार (1), 23.12.1999
11. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.8.1955, कालम 188
12. -वही- 19.2.1963, कालम 81-91
13. संसदीय समाचार (1), 22.2.1978
14. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.3.1979, कालम 19-21
15. -वही- 26.4.1988, कालम 301; तथा 27.4.1988, कालम 190-91
16. संसदीय समाचार (2), 3.3.2008
17. -वही- 5.3.2008
18. संसदीय समाचार (1), 7.2.2014, 10.2.2014, 11.2.2014, 12.2.2014, 13.2.2014, 17.2.2014, 18.2.2014, 19.2.2014 और 20.2.2014
19. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.2.2014, 21.2.2014 और फा. सं. आर एस 35/7/2014-एल
20. नियम 225
21. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.11.1987, कालम 3-4
22. -वही- 25.7.1989, कालम 21
23. -वही- 27.7.1989, कालम 216-26
24. -वही- 24.4.2008
25. राज्य सभा वाद-विवाद और संसदीय समाचार (1), 26.8.2013, 27.8.2013 और 2.9.2013
26. नियम 256(1)
27. नियम 256(2)
28. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.9.1962, कालम 4651-55
29. -वही- 10.9.1966, कालम 6405 और 6407
30. -वही- 25.7.1966, कालम 135-39; 26.7-1966, कालम 248-61
31. -वही- 16.11.1966, कालम 1410-11
32. -वही- 14.12.1967, कालम 4059-64
33. -वही- 12.8.1971, कालम 147-50
34. -वही- 24.7.1974, कालम 207-21; 25.7.1974, कालम 188-91
35. -वही- 29.7.1987, कालम 1-4
36. संसदीय समाचार (2), 13.12.2005

37. संसदीय समाचार (1), 9.3.2010
38. -वही- 15.3.2010
39. -वही- 23.4.2010 तथा 28.4.2010
40. अर्सकीन मे द्वारा लिखित ट्रीटीज़ ऑन द लॉ, प्रिवलेजेस, प्रोसीडिंग्स एंड यूसेज ऑफ पॉर्लियामेंट (24वां संस्करण) पृष्ठ, 198-99
41. संसदीय समाचार (1), 15.11.1976
42. संसदीय समाचार (2), 23.12.2005
43. -वही- 21.3.2006
44. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.2(i)
45. -वही- पैरा 2.2(ii)
46. -वही- पैरा 2.2(iii)
47. -वही- पैरा 2.2(iv)
48. -वही- पैरा 2.2(v)
49. -वही- पैरा 2.4(viii)
50. -वही- पैरा 2.4(ix)
51. -वही- पैरा 2.2(viii)
52. -वही- पैरा 2.2(ix)
53. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.2.1970, कालम 123
54. -वही- तथा 26.2.1970, कालम 141-42
55. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.2(vi) और (vii)
56. -वही- पैरा 2.2(x), (xi) और (xii)
57. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.7.1969, कालम 1452
58. -वही- 1.5.1968, कालम 620-21; और 2.5.1968, कालम 777
59. -वही- 14.8.1968, कालम 3388-90
60. -वही- 19.8.1968, कालम 3477
61. -वही- 16.12.1981, कालम 130-31
62. -वही- 11.3.1986, कालम 266
63. -वही- 12.3.1986, कालम 121-22
64. फा. सं. 41/1/92-एल
65. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(i)
66. -वही- पैरा 2.3(iii), (vi) और (vii)
67. -वही- पैरा 2.3(xxi)
68. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.12.1974, कालम 129
69. नियम 235(iii) और हैंडबुक, 2010 पैरा 2.3(ii)
70. -वही- 235(iv) और -वही- पैरा 2.3(iv)
71. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 9.8.1952, कालम 3622
72. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(v)
73. राज्य सभा सचिवालय द्वारा 1988 में प्रकाशित "डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्—ए कोमेमोरेटिव वोल्यूम" में लक्ष्मी एन. मेनन का लेख, पृष्ठ 70 देखिए
74. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.4.1981, कालम 26
75. -वही- 24.3.1982, कालम 164-65
76. -वही- 9.12.1985, कालम 17
77. नियम 235(i) तथा हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(viii)

78. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.2.1981, कालम 16
79. नियम 235(ii) और (ix)
80. -वही- 235(viii)
81. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(ix)
82. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.7.1952, कालम 1379-80
83. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxiv)
84. -वही- पैरा 2.3(xxxii)
85. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.3.1965, कालम 3720
86. -वही- 20.3.1975, कालम 161
87. -वही- 24.7.1974, कालम 205-06
88. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(x)
89. -वही- पैरा 2.3(xv)
90 -वही- पैरा 2.3(xvi)
91. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.3.1969, कालम 3151
92. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxii)
93. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.4.1955, कालम 6279, 6300
94. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxvii)
95. -वही- पैरा 2.3(xxix)
96. -वही- पैरा 2.3(xxxviii)
97. -वही- पैरा 2.3(xxxix)
98. संसदीय समाचार (2), 14.2.2013
99. हैंडबुक, 2010, पैरा 5.10(xxv)
100. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.1.1980, कालम 17
101. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxxv)
102. -वही- पैरा 2.3(xxxvi)
103. संसदीय समाचार (2), 25.8.2010
104. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xl)
105. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.8.1968, कालम 3866
106. -वही- 23.8.1968, कालम 4256
107. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xli)
108. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.9.1963, कालम 4045
109. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xlii)
110. -वही- पैरा 2.2(xiii) और (xiv)
111. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.7.1983, कालम 199
112. -वही- 17.8.1984, कालम 3
113. -वही- 6.5.1985, कालम 190-92
114. -वही- 21.5.1990, कालम 186-92, 197-98
115. -वही- 7.5.1986, कालम 141
116. -वही- 23.11.1981, कालम 221-23
117. -वही- 28.4.1983, कालम 295
118. -वही- 26.7.1983, कालम 9
119. -वही- 20.12.1983, कालम 233-34

120. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.8.1977, कालम 10, 82; और 9.8.1977, कॉलम 26
121. -वही- 24.2.1984, कालम 294-95
122. -वही- 14.5.1986, कालम 8
123. -वही- 6.8.1985, कालम 299
124. -वही- 24.7.1986, कालम 188
125. -वही- 25.7.1986, कालम 163-64
126. -वही- 5.5.1989, कालम 327
127. संसदीय समाचार (2), 28.7.1995
128. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.8.1972, कालम, 115-16
129. -वही- 23.5.1957, कालम 1286
130. -वही- 18.3.1961, कालम, 3434
131. -वही- 28.9.1955, कालम 5037
132. नियम 236
133. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.7
134. संसदीय समाचार (2), 23.7.2009
135. नियम 237
136. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.3.1955, कालम 2226
137. -वही- 28.4.1964, कालम 847
138. नियम 238(i) और हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxxiii)(क)
139. नियम 238(ii) और हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxxiii)(ख)
140. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.8.1966, कालम 4844-47
141. -वही- 1.9.1966, कालम 5045-5101
142. -वही- 2.9.1966 कालम, 5267
143. -वही- 7.9.1966, कालम, 5969-70
144. नियम 238(iii) और हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxxiii)(ग)
145. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.6.1962, कालम 1741-42
146. -वही- 25.7.1966, कालम 113-24
147. -वही- 27.3.1980, कालम 375-78
148. नियम 238(iv) और हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxxiii)(घ)
149. नियम 238(v) और हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxxiii)(ज)
150. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.12.1954, कालम 3091-93
151. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 7.5.1953, कालम 5175-78
152. संसदीय समाचार (2), 18.8.1989
153. फा. सं. 35/31/89-एल
154. नियम 238(vi) तथा हैंडबुक, 2010 पैरा 2.3 (xxxiii)(ङ) और राज्य सभा वाद-विवाद, 7.6.1971, कालम 23
155. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.5.1970, कालम 162-69
156. -वही- 7.6.1971, कालम 23
157. नियम 238(vii) और हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxxiii)(च)
158. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.8.1961, कालम 1243-44
159. -वही- 21.7.1971, कालम 104-07
160. नियम 238(viii) और हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxxiii)(छ)

161. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xiii)
162. -वही- पैरा 2.3(xiv)
163. -वही- पैरा 2.3(xx)
164. नियम 261, 262 तथा हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxx)
165. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.8.1980, कालम 227-28
166. -वही- 21.8.1990, कालम 269-76
167. -वही- 27.3.1995, कालम 258
168. -वही- 8.1.1991, कालम 369-73
169. नियम 238क
170. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.2.1973, कालम 127 तथा 28.2.1973, कालम 211
171. नियम 239
172. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xxiii) और (xviii)
173. नियम 240
174. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.8.1975, कालम 128-35
175. नियम 243 और 235(v)
176. हैंडबुक, 2010, पैरा 2.3(xi)
177. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.2.1964, कालम 218-19 और 25.7.1989, कालम 2
178. -वही- 23.7.1980, कालम 14-16
179. नियम 294
180. नियम 293
181. विशेषाधिकार समिति का तीसरा प्रतिवेदन
182. विशेषाधिकार समिति का अट्ठाईसवां प्रतिवेदन, दिनांक 9.4.1991 का कार्यवृत्त
183. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.12.1993, कालम 226, 250
184. -वही- 31.8.2001, कालम 1-2
185. 13.12.1999 को प्रस्तुत तथा 15.12.1999 को स्वीकृत राज्य सभा की आचार समिति का दूसरा प्रतिवेदन
186. राज्य सभा सदस्यों के लिए आचार संहिता, 2005 और हैंडबुक, 2010, पैरा 2.4; राज्य सभा की आचार समिति का पहला और चौथा प्रतिवेदन भी देखें।

अध्याय-10

राज्य सभा का राजनैतिक स्वरूप

सभापति का निदेश

राज्य सभा में राजनैतिक दलों और समूहों को उनके संसदीय कार्यकरण के लिए जिन सामान्य सिद्धांतों के आधार पर मान्यता दी जा सकती है उन्हें 1980 में सभापति द्वारा नियम 266 के अनुसरण में जारी किए गए निम्नलिखित निदेश में निर्धारित किया गया है:

(1) सभापति सभा में कार्यकरण के प्रयोजन के लिए संसदीय दल या संसदीय समूह के रूप में सदस्यों के किसी संघ को मान्यता दे सकता है और इस विषय में उसका निर्णय अंतिम होगा।

(2) किसी संसदीय दल या संसदीय समूह को मान्यता देने में सभापति निम्नलिखित सिद्धांतों पर विचार करेगा :

(i) सदस्यों का जो संघ किसी संसदीय दल को गठित करने का प्रस्ताव करता है—

(क) उसकी ऐसी विशिष्ट विचारधारा और संसदीय-कार्य का ऐसा सामान्य कार्यक्रम होगा जिसके आधार पर उसके सदस्य निर्वाचित हुए हैं;

(ख) उसका सभा के भीतर और साथ ही बाहर भी एक संगठन होगा; और

(ग) उसकी सदस्य-संख्या सभा की किसी बैठक के होने के लिए निर्धारित गणपूर्ति अर्थात् सभा के सदस्यों की कुल संख्या के दसवें भाग के बराबर होगी।

(ii) किसी संसदीय समूह का गठन करने के लिए सदस्यों का कोई संघ खंड (i) के भाग (क) और (ख) में विनिर्दिष्ट शर्तों को पूरा करेगा और उसके सदस्यों की संख्या कम से कम 15 होगी।[1]

यद्यपि 1980 तक किसी राजनैतिक दल को मान्यता देने के लिए सभापति द्वारा इस प्रकार का कोई निदेश नहीं दिया गया था, तथापि राज्य सभा में सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए उपरोक्त निदेश से ही निहित सिद्धांतों का अनुसरण होता रहा था। उदाहरण के लिए यद्यपि राज्य सभा के आरंभ में ही उसमें विपक्ष में बैठने वाले 'दल' थे तथापि उन्हें 'दलों' के रूप में नहीं बल्कि 'समूहों' के रूप से ही मान्यता दी गई थी क्योंकि उनकी सदस्य-संख्या सदन की गणपूर्ति से कम थी और 1969 में कांग्रेस का विभाजन होने तक विपक्ष के दलों और विपक्ष के नेता को इस प्रकार मान्यता नहीं दी गई थी। कांग्रेस का जब यह विभाजन हुआ तो उसमें से पहली बार सदस्यों का एक समूह टूटकर निकला जो विरोधी दल के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए उक्त निदेश में निर्धारित सभी शर्तों को पूरा करता था और इसलिए इस समूह को विरोधी दल के रूप में मान्यता दी गई। बाद के मामलों में भी किसी दल को मान्यता प्रदान करने के लिए इन्हीं मानदंडों का अनुसरण किया गया।

> जब उपरोक्त निदेश का मुद्दा विचाराधीन था तब संसद् में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, 1977 की धारा 2 के संदर्भ में इस प्रश्न पर विचार किया गया कि क्या इस प्रकार का निदेश उस धारा के उपबंधों के विरुद्ध जा सकता है। 1977 के अधिनियम में और प्रक्रिया विषयक नियमों में 'दल' की परिभाषा नहीं की गई थी। अत: यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता था कि सांविधिक प्राधिकार के अभाव में यह पीठासीन अधिकारी की शक्तियों के बाहर है कि वह उस प्रकार से किसी दल को मान्यता प्रदान करे जिस प्रकार से उक्त निदेश चाहता था और यह भी तर्क दिया जा सकता था कि पीठासीन अधिकारी 1977 के अधिनियम के अनुसार सभा के ऐसे सदस्य को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता देने के लिए बाध्य है जो सरकार के विपक्ष में बैठने वाले ऐसे दल के नेता हैं जिसकी सदस्य-संख्या सदन की गणपूर्ति के बराबर न होने पर भी सबसे अधिक है। इस तर्क का खंडन यह कहकर किया गया कि यदि इस तर्क को उसकी तार्किक परिणति तक ले जाया जाएगा तो उसका अर्थ यह होगा कि किसी विरोधी दल में सिर्फ दो सदस्य होने पर भीइजबकि विपक्ष में सिर्फ बैठने वाले अन्य सदस्य निर्दलीय सदस्य होंगेझपीठासीन अधिकारी को 1977 के अधिनियम के प्रयोजन के लिए इस दो सदस्यों वाले दल के नेता को मान्यता देनी होगी जो स्पष्टत: एक अमान्य तर्क है। गणपूर्ति का मानदंड इस सुस्थापित संसदीय सिद्धांत पर आधारित है कि विपक्षी दल की सदस्य-संख्या इतनी होनी चाहिए कि वह वैकल्पिक सरकार बना सके या कम से कम कार्य के निष्पादन के लिए समुचित उपस्थिति दर्ज कर सके। अत:, यह अनुभव किया गया कि यद्यपि 'दल' शब्द की परिभाषा नहीं की गई है तथा 1977 का अधिनियम पीठासीन अधिकारी द्वारा किसी दल/समूह को मान्यता देने के संबंध में मानदंडों को निर्धारित करने का निषेध नहीं करता अथवा न उसे ऐसा करने से रोकता है। इस संबंध में विधि मंत्रालय से अनौपचारिक रूप से परामर्श किया गया था और वह इस विचार से सहमत था।[2]

कतिपय मामलों में सदस्यों के किसी संघ की सदस्य-संख्या पंद्रह से कम होने पर भी उसे सभापति के आदेश से औपचारिक मान्यता न देकर सभा में कार्यकरण के सीमित प्रयोजन के लिए समूह का नाम दिया जा सकता है। सामान्य प्रथा यह है कि जिस समूह की सदस्य-संख्या पांच या उससे अधिक है उसे सभा में कार्य करने के लिए एक संसदीय समूह के रूप में मान्यता दी जाती है। विभिन्न राजनैतिक दलों के सदस्यों को और असम्बद्ध सदस्यों को, जो कोई विशिष्ट नाम वाले संघ का गठन करते हैं, सभा में कार्य करने के लिए अर्थात् वाद-विवाद में भाग लेने के लिए समय के आवंटन और सभा में साथ-साथ लगने वाली सीटों के आवंटन के लिए संसदीय-समूह की संज्ञा दी जा सकती है।

> 1983 में विभिन्न राजनैतिक दलों के बाइस सदस्यों ने एक "यूनाइटेड एसोसिएशन ऑफ मेम्बर्स (यू.ए.एम.)" का गठन किया जिसे मान्यता प्रदान की गई।[3] 1990 में विभिन्न राजनैतिक दलों के छह सदस्यों ने एक "यूनाइटेड पार्लियामेंटरी ग्रुप (यू.पी.जी.)" का गठन किया।[4] बाद में इस ग्रुप की सदस्य-संख्या में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा।

मान्यता-प्राप्त करने के लिए सभी संबंधित सदस्यों को अपने-अपने हस्ताक्षर सहित सभापति के समक्ष औपचारिक रूप से निवेदन करना पड़ता है।

दो शब्दों "राजनैतिक दल" का उल्लेख संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 के लागू होने से पहले संविधान में नहीं था। यह संविधान की दसवीं अनुसूची बन गया और उसमें राजनैतिक दल और उसके कार्य क्षेत्र का उल्लेख था और इस प्रकार उन्हें संवैधानिक मंजूरी मिली।

अत: दिनांक 1 मार्च, 1985 से भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची और लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1988 (जिसमें सभी राजनैतिक दलों के अनिवार्य पंजीकरण का उपबंध

करने वाली धारा 29क शामिल है) के लागू होने के बाद, सभा में किसी दल की सदस्य संख्या के आधार पर राज्य सभा के सभापति द्वारा संसदीय दल/समूह की मान्यता के संदर्भ में संसदीय दलों/समूहों को मान्यता प्रदान करने की अवधारणा वस्तुत: परिवर्तित हो गई। दसवीं अनुसूची के प्रयोजनार्थ किसी राजनैतिक दल विशेष से संबंधित राज्य सभा के सभी सदस्य उस विधान दल की सदस्य संख्या पर विचार किए बिना सभा में उस विधान दल से संबंधित माने जाएंगे। अत: सभा में किसी राजनैतिक दल का एकमात्र सदस्य भी उस दल का विधान दल हो गया होता।

संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन किसी राजनैतिक दल की सदस्यता

संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985, 1 मार्च, 1985 से लागू हुआ था। इसमें किसी राजनैतिक दल की सदस्यता से संबंधित कई उपबंध हैं। यदि किसी राजनैतिक दल का निर्वाचित या नाम-निर्देशित सदस्य उस राजनैतिक दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देता है तो वह सभा का सदस्य होने के लिए निरर्हित हो जाता है।[5] कोई नामनिर्देशित सदस्य सभा में अपना स्थान ग्रहण करने की तारीख से छह महीने की समाप्ति से पूर्व किसी राजनैतिक दल में शामिल हो सकता है। यदि वह उस अवधि के बाद किसी दल में शामिल होता है या निर्धारित अवधि के भीतर सदस्य बनने पर बाद में अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देता है तो वह निरर्हित हो जाता है।[6] यदि कोई निर्दलीय सदस्य (अर्थात् एक सदस्य जो किसी राजनैतिक दल द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवार से भिन्न रूप में सदस्य निर्वाचित हुआ है।) ऐसे निर्वाचन के बाद किसी राजनैतिक दल में शामिल हो जाता है तो वह निरर्हित हो जाता है।[7]

निरर्हता का उपबंध उस दशा में लागू नहीं होता जहां सभा का कोई सदस्य यह दावा करता है कि उसके मूल राजनैतिक दल में विभाजन हो गया है और ऐसे विभाजन के फलस्वरूप जो गुट अस्तित्व में आया है उसकी सदस्य-संख्या विधान-दल के एक-तिहाई सदस्यों से कम नहीं है। संविधान (इक्यानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2003 के द्वारा दसवीं अनुसूची में संशोधन किए जाने के बाद अनुसूची के पैरा 3 में अंतर्विष्ट यह उपबंध हटा दिया गया है।[8]

निरर्हता का उपबंध उस दशा में लागू नहीं होता जहां किसी सदस्य के मूल राजनैतिक दल का किसी अन्य राजनैतिक दल के साथ विलय हो जाता है और सदस्य ऐसे अन्य राजनैतिक दल के या ऐसे विलय से बने नए राजनैतिक दल का सदस्य बन गया है बशर्ते उस समूह की सदस्य-संख्या, जिसका विलय हुआ है, मूल विधान-दल के सदस्यों के दो-तिहाई से कम न हो।[9] यदि सदस्य यह दावा करता है कि उसने या उसके मूल राजनैतिक दल के किन्हीं अन्य सदस्यों ने विलय स्वीकार नहीं किया है और एक पृथक् समूह के रूप में कार्य करने का विनिश्चय किया है तो वह और ऐसे अन्य सदस्य निरर्हित नहीं होते।[10]

संविधान (इक्यानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2003 ने संविधान में एक नया अनुच्छेद 361ख भी अंत:स्थापित किया है जो यह उपबंध करता है कि ऐसा सदस्य, जिसे दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के तहत सभा का सदस्य होने देने से निरर्हित किया गया हो, को उसकी निरर्हता की तारीख के आरंभ होने से ऐसे सदस्य के रूप में उसकी पदावधि समाप्त होने की तारीख तक अथवा सभा में निर्वाचन के लिए लड़ने से निर्वाचित घोषित होने तक की तारीख तक, जो भी पहले हो, की अवधि के लिए कोई लाभप्रद राजनीतिक पद धारण करने से भी निरर्हित किया जाएगा।[11]

भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के तहत राज्य सभा में पिछले कुछ वर्षों में घटित हुए मामले निम्नानुसार हैं :-

निरर्हता

वर्ष 1989 में, श्री मुफ्ती मोहम्मद सईद, जोकि जम्मू और कश्मीर राज्य से राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य थे, भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 2(1) (क) के संदर्भ में अपने मूल राजनैतिक दल, कांग्रेस (आई) की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ने के कारण राज्य सभा का सदस्य बनने से निरर्हित हुए।[12]

उसी वर्ष श्री सत्यपाल मलिक, जोकि उत्तर प्रदेश राज्य से राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य थे, अपने मूल राजनैतिक दल, कांग्रेस (आई) की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ने के कारण राज्य सभा का सदस्य बनने से निरर्हित हुए।[13]

वर्ष 2008 में, श्री जयनारायण प्रसाद निषाद, जोकि बिहार राज्य से राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य थे, अपने मूल राजनैतिक दल भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ने के कारण राज्य सभा का सदस्य बनने से निरर्हित हुए।[14]

उसी वर्ष श्री इसम सिंह, जोकि उत्तर प्रदेश राज्य से राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य थे, अपने मूल राजनैतिक दल बहुजन समाज पार्टी (बसपा) की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ने के कारण राज्य सभा के सदस्य बनने से निरर्हित हुए।[15]

विलय

वर्ष 1986 में, कांग्रेस (एस) पार्टी, जिसके सभा में 2 सदस्य थे, का संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 4 के संदर्भ में कांग्रेस (आई) पार्टी के साथ विलय हुआ।[16]

वर्ष 1988 में, जनता (जी), जिसका सभा में एक सदस्य था और लोक दल (ए) पार्टी, जिसके सभा में 4 सदस्य थे, का विलय हुआ और राज्य सभा में जनता पार्टी के नाम से एक नई पार्टी का गठन हुआ।[17]

वर्ष 1989 में, जनता पार्टी, जिसके सदस्यों की संख्या 17 थी और लोक दल, जिसके सदस्यों की संख्या सभा में 5 थी, का विलय हुआ और राज्य सभा में जनता दल नामक नई पार्टी का गठन हुआ।[18]

वर्ष 1990 में, श्री एम. विंसेंट, जोकि ए.आई.ए.डी.एम.के.-I के एकमात्र सदस्य थे, ने राज्य सभा में ए.आई.ए.डी.एम.के.-II पार्टी के साथ अपनी पार्टी का विलय किया।[19]

वर्ष 1991 में, श्री थॉमस कुथिरावत्तम, जोकि केरल कांग्रेस पार्टी के एकमात्र सदस्य थे, ने राज्य सभा में जनता दल (एस) पार्टी के साथ अपनी पार्टी का विलय किया।[20]

वर्ष 1992 में, कुमारी चंद्रिका प्रेमजी केनिया, जोकि शिवसेना पार्टी (छगन भुजबल दल) की एकमात्र सदस्या थीं, ने राज्य सभा में कांग्रेस (आई) पार्टी के साथ अपनी पार्टी का विलय किया।[21]

वर्ष 1992 में, श्री डेविड लेजर, जोकि नूतन असम गण परिषद् के एकमात्र सदस्य थे, ने राज्य सभा में कांग्रेस (आई) पार्टी के साथ अपनी पार्टी का विलय किया।[22]

वर्ष 1996 में, श्रीमती रेणुका चौधरी, जोकि तेलुगु देशम पार्टी-II की एकमात्र सदस्या थीं, ने राज्य सभा में तेलुगु देशम (नायडु) दल के साथ अपनी पार्टी का विलय किया।[23]

वर्ष 1996 में, श्री येरा नारायणसामी, जोकि तेलुगु देशम पार्टी-I के एकमात्र सदस्य थे, ने राज्य सभा में तेलुगु देशम (नायडु) दल के साथ अपनी पार्टी का विलय किया।[24]

वर्ष 1998 में, राज्य सभा में ए.आई.ए.डी.एम.के.-III दल, जिसके राज्य सभा में दो सदस्य थे, ने राज्य सभा में ए.आई.ए.डी.एम.के.-I दल के साथ विलय किया।[25]

वर्ष 1998 में, डा. डी. वेंकटेश्वर राव जोकि तेलुगु देशम-I पार्टी के एकमात्र सदस्य थे, ने राज्य सभा में भारतीय जनता पार्टी के साथ अपनी पार्टी का विलय किया।[26]

वर्ष 1999 में, श्री सुरेश कलमाडी, जोकि महाराष्ट्र विकास अघाडी पार्टी के एकमात्र सदस्य थे, ने राज्य सभा में इंडियन नेशनल कांग्रेस पार्टी के साथ अपनी पार्टी का विलय किया।[27]

वर्ष 2001 में, श्री आर. के. आनंद, जोकि झारखण्ड मुक्ति मोर्चा पार्टी के एकमात्र सदस्य थे, ने राज्य सभा में इंडियन नेशनल कांग्रेस पार्टी के साथ अपनी पार्टी का विलय किया।[28]

वर्ष 2003, में तमिल मानिला कांग्रेस (मूपनार) दल, जिसके सभा में दो सदस्य थे, ने राज्य सभा में इंडियन नेशनल कांग्रेस पार्टी के साथ विलय किया।[29]

वर्ष 2010 में, डा. कनवर दीप सिंह, जोकि झारखंड मुक्ति मोर्चा पार्टी के एकमात्र सदस्य थे, ने राज्य सभा में ऑल इंडिया तृणमूल कांग्रेस पार्टी के साथ अपनी पार्टी का विलय किया।[30]

वर्ष 2014 में, श्री राम कृपाल यादव, जोकि राष्ट्रीय जनता दल पार्टी के एकमात्र सदस्य थे, ने राज्य सभा में भारतीय जनता पार्टी के साथ अपनी पार्टी का विलय किया।[31]

विभाजन

वर्ष 1988 में, ए.आई.ए.डी.एम.के. पार्टी, जिसके सदस्यों की संख्या सभा में 11 थी, दो गुटों में विभाजित हुई और राज्य सभा के सभापति द्वारा इसे सभा के कार्यकरण के

लिए ए.आई.ए.डी.एम.के.-I (पांच सदस्यों की संख्या के साथ) और ए.आई.ए.डी.एम.के.-II (6 सदस्यों की संख्या के साथ) के रूप में पुन: नामित किया गया।[32]

वर्ष 1990 में, जनता दल, जिसके सदस्यों की सभा में संख्या 39 थी, में विभाजन हुआ और राज्य सभा के सभापति द्वारा सभा के कार्यकरण के लिए जनता दल (समाजवादी) नामक एक नए गुट को, जिसमें 15 सदस्य थे, मान्यता दी गई।[33]

वर्ष 1991 में, असम गण परिषद् पार्टी, जिसमें चार सदस्य थे, में विभाजन हुआ और राज्य सभा के सभापति द्वारा सभा के कार्यकरण के लिए नूतन असम गण परिषद् नामक नए गुट को, जिसमें 2 सदस्य थे, मान्यता दी गई।[34]

वर्ष 1992 में, जनता पार्टी, जिसमें 2 सदस्य थे, का विभाजन हुआ और राज्य सभा के सभापति द्वारा समाजवादी पार्टी नामक नए गुट को मान्यता दी गई।[35]

वर्ष 1994 में, जनता पार्टी (समाजवादी), जिसमें सदस्यों की संख्या 8 थी, का विभाजन हुआ और राज्य सभा के सभापति ने सभा के कार्यकरण के लिए राष्ट्रीय जनता दल नामक नए गुट को, जिसमें तीन सदस्य थे, मान्यता दी।[36]

वर्ष 1994 में, तेलुगु देशम पार्टी, जिसमें सदस्यों की संख्या 3 थी, का विभाजन हुआ और राज्य सभा के सभापति द्वारा सभा के कार्यकरण के लिए प्रत्येक गुट को तेलुगु देशम-I (एक सदस्य-श्रीमती रेणुका चौधरी के साथ) और तेलुगु देशम-II (दो सदस्यों के साथ) के रूप में पुन: नामित किया।[37]

वर्ष 1997 में, ए.आई.ए.डी.एम.के. पार्टी, जिसमें 14 सदस्य थे, का विभाजन हुआ और राज्य सभा के सभापति ने सभा के कार्यकरण के लिए प्रत्येक गुट को ए.आई.ए.डी.एम.के.-I और ए.आई.ए.डी.एम.के.-II (प्रत्येक में सात सदस्यों के साथ) के रूप में पुन: नामित किया।[38]

वर्ष 1997 में, जनता दल, जिसके सदस्यों की संख्या सभा में 13 थी, का विभाजन हुआ और राज्य सभा के सभापति ने सभा के कार्यकरण के लिए 5 सदस्यों से मिलकर बने राष्ट्रीय जनता दल नामक नए गुट को मान्यता दी।[39]

वर्ष 1997 में, ए.आई.ए.डी.एम.के.-II गुट, जिसमें उस समय 5 सदस्य थे, का पुन: विभाजन हुआ और राज्य सभा के सभापति द्वारा सभा के कार्यकरण के लिए एक नए गुट ए.आई.ए.डी.एम.के.-III को मान्यता दी गई जिसमें 2 सदस्य थे।[40]

वर्ष 1998 में, जनता दल, जिसके सदस्यों की संख्या सभा में 13 थी, का पुन: विभाजन हुआ और राज्य सभा के सभापति द्वारा सभा के कार्यकरण के लिए बीजू जनता दल नामक नए गुट को, जिसमें 5 सदस्य थे, मान्यता दी गई।[41]

निष्कासन और उससे किसी सदस्य की स्थिति पर पड़ने वाला प्रभाव

संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 में ऐसी स्थिति से निपटने के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है जहां किसी सदस्य को उसके दल द्वारा निष्कासित कर दिया जाता है। जब संविधान (बावनवां संशोधन) विधेयक लोक सभा में पुर:स्थापित किया गया था तब उसमें किसी निष्कासित सदस्य को निरर्हित करने का उपबंध था।[42] किंतु पुनर्विचार करने

के बाद यह अनुभव किया गया चूंकि निष्कासन का मामला राजनैतिक मामला है इसलिए उसे प्रस्तावित विधान के दायरे के बाहर रखा जाना चाहिए। इसलिए लोक सभा में विधेयक को पारित करने की अवस्था में इस उपबंध को हटा दिया गया। इस पृष्ठभूमि से यह स्पष्ट हो जाएगा कि निष्कासित सदस्य उस राजनैतिक दल का सदस्य नहीं रहता जिसके द्वारा उसे निर्वाचित किया गया था और सदन में ऐसे सदस्य की स्थिति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

तथापि, अभिलेख के प्रयोजनों के लिए अपने मूल राजनैतिक दलों से निष्कासित किए गए सदस्यों को दलीय संबद्धता से रहित (निर्दलीय) सदस्यों के रूप में दर्शाया जाता है। उदाहरण के लिए, संबंधित दलों के नेताओं/सचेतकों से प्राप्त पत्रों के आधार पर राज्य सभा के सदस्य श्री प्रणब मुखर्जी,[43] श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह,[44] श्री पर्वतनेनि उपेन्द्र,[45] श्री चिमनभाई मेहता और श्री वी. गोपालसामी,[46] जिन्हें अपने मूल राजनैतिक दलों से निष्कासित किया गया था, को राज्य सभा सचिवालय के अभिलेखों में निर्दलीय के रूप में दर्शाया गया था और संबंधित सदस्यों को तद्नुसार सूचित किया गया था। किन्तु लोक दल के तीन सदस्यों (श्री सत्य प्रकाश मालवीय, श्री रशीद मसूद और श्री अजीत सिंह) के निष्कासन के मामले में, चूंकि उन्होंने निष्कासन को चुनौती दी थी और दावा किया था कि दल में विभाजन हो गया है, लोक दल के दो गुटों को लोक दल (1) और लोक दल (2) का नाम दिया गया था और सभा में कार्य करने के सीमित प्रयोजन के लिए ही ऐसा किया गया था।[47] परंतु आर.जे.डी. से संबंधित तीन सदस्यों नामतः श्री रंजन प्रसाद यादव, श्रद्धेय धम्माविरियो और श्री महेन्द्र प्रसाद के मई, 2001 में निष्कासन के मामले में उन्हें दलीय संबद्धता से रहित सदस्यों के रूप में दर्शाने का निर्णय लिया गया और उन्हें राज्य सभा के अभिलेखों में "निर्दलीय और अन्य" शीर्षक के अंतर्गत दर्शाया गया और संबंधित सदस्यों को तद्नुसार सूचित किया गया था।[48]

इसी तरह, बहुजन समाज पार्टी से संबंधित श्री इसम सिंह का सितंबर, 2006 में;[49] समाजवादी पार्टी से श्री अमर सिंह का फरवरी, 2010 में;[50] बीजू जनता दल से श्री प्यारीमोहन महापात्र का मार्च, 2013 में;[51] और भारतीय जनता पार्टी से श्री राम जेठमलानी का सितंबर, 2013;[52] में निष्कासन के मामले में उन्हें "दलीय संबद्धता से रहित सदस्य" के रूप में प्रदर्शित करने का निर्णय लिया गया और उन्हें राज्य सभा सचिवालय के अभिलेखों में "निर्दलीय और अन्य" शीर्षक के अंतर्गत दर्शाया गया तथा संबंधित सदस्यों को तद्नुसार सूचित किया गया।

किसी सदस्य के अपने राजनैतिक दल से निष्कासित किए जाने के मामले में महान्यायवादी के समक्ष यह प्रश्न रखा गया कि यदि अपने मूल राजनैतिक दल से निष्कासित होने के फलस्वरूप किसी सदस्य को अध्यक्ष द्वारा "असम्बद्ध" घोषित कर दिया जाता है तो क्या ऐसे सदस्य को निरर्हित हुए बिना किसी नए दल का गठन करने या किसी दूसरे दल में सम्मिलित होने की छूट है। महान्यायवादी ने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया:

> संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम द्वारा जोड़ी गई दसवीं अनुसूची के पैरा 2 में दल-परिवर्तन के कारण निरर्हता के उपबंध किए गए हैं। इनमें से किसी उपबंध में यह नहीं कहा गया कि मूल राजनैतिक दल से निष्कासित होने पर जो सदस्य असम्बद्ध घोषित कर दिया जाता है वह इस तथ्य के होते हुए

भी निरर्हित नहीं होता कि उसने एक नया दल गठित कर लिया है या वह किसी अन्य दल में शामिल हो गया है। किन्तु सिर्फ इस आधार पर यह नहीं माना जा सकता कि ऐसा निष्कासित सदस्य जो किसी नए दल का गठन करता है या किसी अन्य दल में शामिल हो जाता है, संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम के अधीन निरर्हता से ग्रस्त नहीं हुआ है।

यह सच है कि कोई निष्कासित सदस्य उस दल का सदस्य नहीं रहता जिसका वह सदस्य था किंतु यह दलगत अनुशासन के प्रयोजन के लिए है। लोकतंत्र के हित में इस मुद्दे को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। किसी राजनैतिक दल के व्यक्ति में उस दल के प्रति निष्ठा होनी ही चाहिए। वह उस दल के अनुशासन से बंधा हुआ है। यह केवल राजनैतिक या नैतिक बाध्यता की बात नहीं है बल्कि जब तक वह उस दल का सदस्य है तब तक यह सुनिश्चित करना उसका कर्त्तव्य है कि उसके किसी भी कार्य से एक राजनैतिक दल के रूप में उस दल के प्रभावी कार्यकरण पर किसी प्रकार का कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

यह आवश्यक है कि निरर्हता के उपबंधों का वास्तविक अर्थ देखा जाए। कोई सदस्य दसवीं अनुसूची के पैरा 2(क) के अधीन संवैधानिक निरर्हता का खतरा उठाए बिना स्वेच्छा से अपने राजनैतिक दल की सदस्यता नहीं छोड़ सकता। संबंधित उपबंधों की इस प्रकार व्याख्या संभव है कि किसी दल से निष्कासित किया गया सदस्य जो निष्कासन का शिकार होते हुए भी अपने मूल राजनैतिक दल की सदस्यता को स्वेच्छा से नहीं छोड़ता उस राजनैतिक दल का सदस्य नहीं बना रह सकता जिससे उसे निष्कासित किया गया है। अत: जब तक वह स्वयं को मूल राजनैतिक दल के विभाजन के दायरे में नहीं ला सकता जिससे ऐसे विधान-दल के सदस्यों के एक-तिहाई से कम का समूह न बनता हो तब तक वह किसी अन्य दल का सदस्य नहीं हो सकता। अत: यद्यपि वह सदस्य बना रहता है किन्तु असम्बद्ध घोषित किया जाता है तथापि वह निरर्हता से ग्रस्त हुए बिना मूल राजनैतिक दल से निष्कासित होने के आधार पर नया दल नहीं बना सकता या किसी नए दल में शामिल नहीं हो सकता। यदि सदन का कोई निर्वाचित सदस्य जो किसी राजनैतिक दल द्वारा खड़े किए गए अभ्यर्थी से भिन्न रूप में सदस्य निर्वाचित हुआ है अर्थात् जो निर्दलीय अभ्यर्थी के रूप में निर्वाचित हुआ है, ऐसे निर्वाचन के बाद किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाता है, तो वह सदन का सदस्य होने के लिए निरर्हित हो जाता है। ऐसी दशा में किसी राजनैतिक दल से निष्कासित सदस्य की स्थिति किसी निर्दलीय सदस्य की स्थिति से अच्छी नहीं हो सकती। यद्यपि वह इसलिए निरर्हित नहीं होता क्योंकि उसने स्वेच्छा से अपनी सदस्यता नहीं छोड़ी है बल्कि उसे निष्कासित किया गया है, तथापि यदि वह असम्बद्ध सदस्य के रूप में कार्य करते हुए नया दल गठित करता है या किसी दूसरे दल में सम्मिलित होता है तो वह निरर्हित हो जाएगा। तथापि, ऐसा नहीं है कि इस स्थिति का खंडन करने के लिए कोई तर्क दिया ही नहीं जा सकता।"[53]

इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की :

यदि किसी राजनैतिक दल द्वारा अभ्यर्थी के रूप में खड़ा किया गया कोई व्यक्ति सभा के लिए निर्वाचित हो जाता है और उसके बाद वह किसी भी कारण से अन्य राजनैतिक दल में सम्मिलित हो जाता है, तो दल से अपने निष्कासन के कारण अथवा अन्यथा, वह स्वेच्छा से इस राजनैतिक दल की अपनी सदस्यता छोड़ देता है और निरर्हित हो जाता है। उसे "असंबद्ध" के रूप में माना जाना दसवीं अनुसूची के बाहर मात्र सुविधा का मामला है और इससे पैरा 2(1) के स्पष्टीकरण के अंतर्गत लिये जाने वाले तथ्य में कोई परिवर्तन नहीं आता। जहां तक दसवीं अनुसूची का संबंध है, इस प्रकार के प्रबंध तथा वर्गीकरण का कोई विधिसम्मत आशय नहीं है। दसवीं अनुसूची के पैरा 2(1) में दिये गये स्पष्टीकरण के अंतर्गत समझे जाने वाले अर्थ को पूर्णतया प्रभावी बनाना होगा, अन्यथा निष्कासित सदस्य विधि के कठोर नियंत्रण से बच जायेगा, जिसका आशय हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था को प्रदूषित करने वाली दल बदलने की बुराई को नियंत्रित करना था।

...किसी राजनैतिक दल से संबंधित सदन के किसी सदस्य के संबंध में विधायी दल का उल्लेख करते समय पैरा 1(ख) में पैरा 2, 3 और 4 के उपबंधों का उल्लेख मिलता है, जिसका अर्थ, यथा स्थिति, उक्त उपबंधों, अर्थात पैरा 2, 3 और 4 यथा प्रकरण, के अनुसार उस समय के लिए उस राजनैतिक दल से संबंधित उस सभा के सभी सदस्यों के समूह से है। स्पष्टीकरण के साथ पठित पैरा 2(1) में

यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि एक निर्वाचित सदस्य उस राजनैतिक दल से संबंधित रहेगा, जिसने उसे सदस्य के लिए होने वाले निर्वाचन हेतु अभ्यर्थी के रूप में खड़ा किया हो। उस दल से निकाले जाने अथवा निष्कासित किये जाने पर भी ऐसा होगा। यह मामला सदस्य तथा उसके दल के बीच का मामला है और इसका दसवीं अनुसूची के अंतर्गत समझे जाने वाले खंड से कोई संबंध नहीं है। एक राजनैतिक दल के सदस्य के रूप में उस दल के आचरण का कोई महत्व नहीं है और इससे दसवीं अनुसूची के अंतर्गत विधिक अर्थ का अतिक्रमण नहीं होता।[54]

संविधान की दसवीं अनुसूची के अन्तर्गत सदस्य की निरर्हता का मामला सभापति को सौंपा जा सकता है। वर्ष 2013 में भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा यह विधित: स्थापित किया गया है कि विधायक/संसद सदस्य से भिन्न कोई व्यक्ति किसी विधायक/संसद सदस्य के विरुद्ध निरर्हता संबंधी कार्यवाही शुरू कर सकता है। अपना दल, जिसके टिकट पर वह निर्वाचित हुआ, छोड़ने वाले एवं किसी अन्य राजनैतिक दल में शामिल हो गए। इससे संबंधित ब्यौरा अध्याय-3 'राज्य सभा की सदस्यता' में दिया गया है।

मान्यता के बाद दी जाने वाली सुविधाएं

किसी संसदीय दल या समूह को कतिपय सुविधाएं दी जाती हैं। सदस्यों के ऐसे संघ को भी जो संसदीय दल या समूह के रूप में मान्यता प्राप्त करने की शर्तें पूरी नहीं करता, कुछ सुविधाएं दी जा सकती हैं।

किसी मान्यता-प्राप्त संसदीय दल को सामान्यत: निम्नलिखित सुविधाएं दी जाती हैं :

(i) दल की सदस्य-संख्या और सदन में उपलब्ध सीटों की कुल संख्या के अनुपात में सदन में सीटों के खंडों (ब्लॉकों) का आवंटन।

(ii) *दल/समूह के संसदीय-कार्य के लिए संसद् भवन में स्थान का आवंटन :* यह लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा किया जाता है।

संसद् भवन में कांग्रेस (आई), लोक दल और डी.एम.के. के संसदीय दल कार्यालयों को सील किए जाने के बारे में राज्य सभा में कुछ सदस्यों ने एक मुद्दा उठाया। सभापति ने अन्य बातों के साथ यह टिप्पणी की: "संसद् भवन में स्थान का आवंटन अध्यक्ष के प्राधिकार के अधीन है।" सभापति ने यह भी कहा कि उन्होंने अध्यक्ष के साथ इस मामले को उठाया है और वे इस मामले में संबंधित सदस्य का पत्र अध्यक्ष को भेज रहे हैं।[55]

(iii) *दल की बैठकें आयोजित करने के लिए समिति कक्षों या अन्य उपलब्ध स्थानों का आवंटन:* केन्द्रीय कक्ष (सेंट्रल हॉल) और उन समिति कक्षों में स्थान का आवंटन अध्यक्ष द्वारा विनियमित किया जाता है जो लोक सभा सचिवालय के प्रशासनिक क्षेत्राधिकार के अधीन हैं। राज्य सभा सचिवालय के प्रशासनिक क्षेत्राधिकार के अधीन आने वाले समिति कक्षों को संसदीय बैठकों या संसदीय कार्य से संबंधित अन्य बैठकों के लिए दलों/समूहों के लिखित अनुरोध पर उस सचिवालय द्वारा उपलब्ध कराया जाता है।

(iv) *संसदीय पत्रों का उपलब्ध कराया जाना:* प्रश्नों की सूची, कार्यावलि आदि संसदीय-पत्र नियमित रूप से दलों/समूहों को उपलब्ध कराये जाते हैं।

(v) *संसदीय समितियों के लिए नामनिर्देशन:* संसदीय समितियों के लिए सदस्यों को नामनिर्देशित करने के लिए सदन में दलों के नेताओं से सदस्यों के नाम प्राप्त किए जाते हैं और उन सभापति द्वारा विचार किया जाता है। यद्यपि संसदीय समितियों के लिए सदस्यों को नामनिर्देशित करना सभापति का परमाधिकार है तथापि संबंधित नेताओं की सिफारिशें सामान्यत: सभापति द्वारा स्वीकार की जाती हैं। समितियों में दलों/समूहों का प्रतिनिधित्व, जहां सभापति द्वारा सदस्यों को नामनिर्देशित करना होता है, न्यूनाधिक रूप से सदन में दलों/समूहों की अपनी-अपनी सदस्य-संख्या के अनुपात में होता है। जब समितियों को वार्षिक रूप से पुनर्गठित करना होता है तब सामान्यत: सभा के नेता विभिन्न समितियों में स्थानों का आवंटन करने और उनके सभापतियों को नियुक्त करने के बारे में निर्णय करने के लिए विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं के साथ अनौपचारिक बैठक करते हैं जिससे सभापति द्वारा नामनिर्देशन की प्रक्रिया सुगम हो जाती है।

(vi) *विभिन्न निकायों के लिए नामनिर्देशन:* ऐसी कई समितियां, परिषदें, बोर्ड आदि होते हैं जिन्हें सरकार द्वारा गठित किया जाता है। उनमें दोनों सदनों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व भी होता है। ऐसे निकायों के लिए सदस्यों का नामनिर्देशन सभापति द्वारा संबंधित मंत्री के अनुरोध पर दलों/समूहों के नेताओं के साथ परामर्श करके किया जाता है।

(vii) *विदेश जाने वाले संसदीय शिष्टमंडलों के लिए नामनिर्देशन:* राज्य सभा के जो सदस्य विदेश जाने वाले किसी शिष्टमंडल में शामिल होते हैं उन्हें सभापति द्वारा संसदीय कार्य मंत्री और राज्य सभा में विपक्षी दलों/समूहों के नेताओं के साथ परामर्श करके चुना जाता है। सामान्यत: शिष्टमंडलों में शामिल किए जाने के लिए सदस्यों का चयन दल-वार और बारी-बारी से किया जाता है और इस प्रयोजन के लिए एक रोस्टर रखा जाता है ताकि सदन में विभिन्न दलों/समूहों के सदस्यों की संख्या के अनुपात में उनके वार्षिक आवंटन के कोटे के बारे में निर्णय किया जा सके।

(viii) *वक्ताओं की सूची:* सामान्यत: सदन के विचार-विमर्श में भाग लेने वाले वक्ताओं के चयन में दलों/समूहों के नेताओं को वरीयता दी जाती है। नेतागण अपने-अपने दलों/समूहों के सदस्यों के नाम भी देते हैं जिन्हें सभापीठ द्वारा वाद-विवाद में बोलने के लिए पुकारा जा सकता है।

(ix) *कार्य की व्यवस्था के बारे में परामर्श :* जब भी आवश्यक होता है सभा के समक्ष आने वाले महत्त्वपूर्ण मुद्दों के बारे में दलों/समूहों के नेताओं के साथ परामर्श किया जाता है। सभा में किसी मामले के कारण उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए भी ऐसा किया जाता है। अनेक अवसरों पर सदन के प्रक्रिया विषयक मामलों के बारे में अनौपचारिक बैठकों में सभापति/उपसभापति ने दलों/समूहों के नेताओं के साथ परामर्श किया :

> 12 नवम्बर, 1962 को सभापति ने विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं के साथ एक बैठक की जिसमें यह निर्णय किया गया कि प्रत्येक बैठक में तारांकित और अतारांकित प्रश्नों की संख्या प्रति सदस्य पांच तक सीमित कर दी जाए और प्रश्नों के उत्तर के लिए मंत्रालयों के तत्कालीन तीन समूहों (ग्रुपों) की बजाय चार समूह (ग्रुप) बना दिए जाएं।[56] बाद में विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं के साथ संसदीय कार्य मंत्री ने एक बैठक की जिसमें सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया कि 26 नवम्बर, 1962 से प्रश्नकाल को निलम्बित किया जा सकता है (41वें सत्र के दौरान)। मंत्री ने इसके अनुसार एक घोषणा की।[57]

1965 में राज्य सभा के बजट प्राक्कलनों की छानबीन के लिए एक समिति नियुक्त करने के एक प्रस्ताव पर विचार करने के लिए सभापति ने राज्य सभा में विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं के साथ एक बैठक की।[58]

23 दिसम्बर, 1969 को सभापति की अध्यक्षता में विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं की एक बैठक हुई जिसमें निर्णय किया गया कि आह्वान (समन्स) के तत्कालीन प्ररूप के स्थान पर उसके वर्तमान प्ररूप का अनुसरण किया जाए।[59]

उपसभापति के सुझाव पर 5 दिसम्बर, 1974 को सभापति के साथ दलों के नेताओं की एक बैठक हुई जिसमें पांडिचेरी लाइसेंस मामले के बारे में केन्द्रीय जांच ब्यूरो के प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखने के लिए सदन में की गई मांग पर विचार किया गया।[60]

प्रश्नकाल के दौरान अंग्रेजी और हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं के प्रयोग के मामले में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में सभापति ने 8 और 27 मार्च, 1979 को दलों के नेताओं के साथ दो बैठकें कीं।[61]

3 अगस्त और 21 अगस्त, 1970 और 19 जून, 1980 को हुई बैठकों में ध्यानाकर्षण और विशेष उल्लेख से संबंधित प्रथा और प्रक्रिया पर विचार किया गया और इस बारे में निर्णय लिए गए। 15 सितम्बर, 1981 को हुई एक और बैठक में इस पर सहमति हुई कि किसी ध्यानाकर्षण से संबंधित सभी स्पष्टीकरणों का उत्तर मंत्री द्वारा अंत में दिया जाएगा।[62]

प्रश्नकाल को सुव्यवस्थित करने के लिए सभापति ने विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं के साथ एक बैठक की।[63]

सत्र के आरंभ और समाप्ति पर क्रमशः राष्ट्रगान/राष्ट्रगीत की धुन बजाने के बारे में निर्णय करने के लिए नेताओं की एक बैठक हुई।[64]

20 अगस्त, 1995 की रात को कालिन्दी एक्सप्रेस और पुरुषोत्तम एक्सप्रेस के बीच हुई रेल दुर्घटना से उत्पन्न स्थिति पर चर्चा करने की प्रक्रिया के बारे में निर्णय करने के लिए 21 अगस्त, 1995 को नेताओं की बैठक हुई।[65]

20 मार्च, 1997 को विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं की बैठक में जलकृषि प्राधिकरण विधेयक, 1997 की अत्यावश्यकता के मद्देनजर उसी दिन इस विधेयक के पुर:स्थापन, विचारण और पारण पर सहमति बनी।[66]

बहु-ब्रांड खुदरा क्षेत्र में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के संबंध में प्रस्ताव पर चर्चा की स्वीकार्यता पर निर्णय लेने के लिए 29 नवंबर, 2012 को विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं की बैठक हुई ताकि संसद् सुचारु रूप से कामकाज कर सके। इसमें यह निर्णय किया गया कि उक्त चर्चा के लोक सभा में संपन्न हो जाने के बाद राज्य सभा में यह चर्चा की जा सकती है।[67]

17 दिसंबर, 2013 को लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक के पारण के संबंध में 16 दिसंबर, 2013 को विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं की बैठक हुई थी।[68]

28 जुलाई, 2015 को मध्यान्ह पूर्व 11.30 बजे माननीय सभापति के साथ विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं की एक बैठक हुई, जिसमें यह निर्णय लिया गया था कि 29 जुलाई, 2013 को राज्य सभा की बैठक नहीं होगी, ताकि सदस्य भारत के पूर्व राष्ट्रपति डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की अंत्येष्टि में सम्मिलित हो सकें।[69]

(x) *कार्य मंत्रणा समिति में प्रतिनिधित्व:* कार्य मंत्रणा समिति सदन द्वारा सरकारी और अन्य कार्यों के निष्पादन के लिए समय का आवंटन करती है। इस समिति में सभी प्रमुख दलों/समूहों का प्रतिनिधित्व होता है। चूंकि सभापति और उपसभापति सहित इस समिति में

स्थानों की संख्या ग्यारह तक सीमित है इसलिए इस समिति में प्रतिनिधित्व न पाने वाले मान्यता-प्राप्त समूहों के प्रतिनिधियों को इस समिति की बैठकों में उपस्थित होने के लिए आमंत्रित किया जाता है।

(xi) *केन्द्रीय कक्ष में पहली पंक्ति में सीट का आवंटनः* राष्ट्रपति के अभिभाषण या अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर राज्य सभा में पांच या उससे अधिक सदस्य-संख्या वाले सभी मान्यता-प्राप्त दलों और समूहों के नेताओं को लोक सभा सचिवालय द्वारा केन्द्रीय कक्ष में पहली पंक्ति की सीटें आवंटित की जाती हैं।[70]

(xii) संसद में मान्यता-प्राप्त दलों/समूहों के नेताओं, उपनेताओं और मुख्य सचेतकों को सामान्यतः निम्नलिखित टेलीफोन और सचिवालयी सुविधाएं दी जाती हैं :

(क) **टेलीफोन सुविधाएं** : मान्यता प्राप्त दल अथवा समूह का प्रत्येक नेता, प्रत्येक उपनेता और प्रत्येक मुख्य सचेतक को दिल्ली अथवा नई दिल्ली में उसके कार्यालय अथवा आवास पर एक टेलीफोन के प्रतिष्ठापन और रेंटल के संबंध में भुगतान नहीं देना होगा और इसी तरह से नेता, उपनेता और मुख्य सचेतक के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान वह उस टेलीफोन से किए गए काल का भुगतान करने का उत्तरदायी नहीं होगा बशर्ते वह यह प्रमाणित करे कि उसके द्वारा ये कॉल्स ऐसे नेता, उपनेता और मुख्य सचेतक के रूप में कर्त्तव्य निर्वहन को लेकर किये गए थे। ये कॉल्स उन्हें संसद् सदस्य के रुप में ग्राह्य फ्री कॉल्स के अलावा होते हैं।

(ख) **सचिवालयी सुविधाएं** : मान्यता-प्राप्त दल अथवा समूह का प्रत्येक नेता, प्रत्येक उपनेता और प्रत्येक मुख्य सचेतक सचिवालयी सहायता के लिए निजी सचिव (ग्रेड III) के ग्रेड में एक आशुलिपिक पाने का हकदार होगा।[71]

तथापि, अधिनियम के तहत अनुमेय टेलीफोन और सचिवालयी सुविधाएं अस्थायी होती हैं और ये मान्यता-प्राप्त दल अथवा समूह के नेता, उपनेता अथवा मुख्य सचेतक के कार्यकाल के साथ ही समाप्त हो जाती हैं।

इसके अलावा ये सुविधां ऐसे नेता, उपनेता अथवा मुख्य सचेतक, जैसाकि मामला हो, को नहीं मिलेंगी जो मंत्री, विपक्ष के नेता का पद धारण किए हो अथवा अन्य किसी ऐसे अधिकारी को भी नहीं मिलेंगी जिसे सरकार अथवा स्थानीय प्राधिकारी द्वारा तत्समान सुविधाएं दी गई हैं।

राज्य सभा में दलों की बदलती रहने वाली स्थिति

राज्य सभा के एक-तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष के बाद निवृत्त हो जाते हैं और इस प्रकार रिक्त हुए स्थानों को भरने के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा द्विवार्षिक चुनाव कराए जाते हैं। द्विवार्षिक चुनावों के कारण ही नहीं बल्कि उप-चुनावों के कारण भी राज्य सभा में दलों की स्थिति बदलती रहती है।

निम्नलिखित सारणियों में 1952 के वर्ष से उन राजनैतिक दलों की सदस्य-संख्या को दर्शाया गया है जिन्हें द्विवार्षिक रूप से राज्य सभा में प्रतिनिधित्व मिला है।

सारणी-I

राज्य सभा में विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा जीती गई सीटों की दल-वार संख्या

(वर्ष 1952-1976)

क्र.सं.	दल का नाम	1952	1952-54	1954-56	1956-58	1958-60	1960-62	1962-64	1964-66	1966-68	1968-70	1970-72	1972-74	1974-76
1.	कांग्रेस	146	164	186	177	173	164	162	166	140	99	107	128	146
2.	कम्युनिस्ट	9	10	9	11	8	8	8	8	8	9	-	-	-
3.	सोशलिस्ट	6	6	3	8	11	-	-	-	-	-	-	-	-
4.	जनसंघ	1	-	-	-	1	2	4	6	11	10	15	14	12
5.	स्वतंत्र	-	-	-	-	1	8	11	10	16	13	11	9	-
6.	कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस	4	4	4	4	4	-	-	-	-	-	-	-	-
7.	के.एम.पी.पी.	2	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
8.	गणतंत्र परिषद्	-	2	2	3	4	-	-	-	-	-	-	-	-
9.	संयुक्त सोशलिस्ट	-	-	-	2	2	-	-	-	-	-	-	-	-
10.	पी.एस.पी.	-	-	-	-	-	12	10	6	4	4	-	-	-
11.	कांग्रेस (ओ.)	-	-	-	-	-	-	-	-	-	42	25	14	7
12.	एस.एस.पी.	-	-	-	-	-	-	-	-	9	-	-	-	-
13.	सी.पी.आई.	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	10	10	12
14.	एस.पी.	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	9	3	2
15.	सी.पी.आई. (एम.)	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	8	8	5
16.	डी.एम.के.	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	7	10	9
17.	निर्दलीय	-	10	9	9	11	14	13	10	9	13	12	15	15
18.	नामनिर्देशित	12	12	12	12	12	12	12	12	12	11	12	11	8
19.	अन्य	36	11	7	10	9	16	14	16	21	36	18	21	24
20.	रिक्तियां	-	-	-	-	-	-	4	4	10	3	9	-	4
	कुल योग :	216	219	232	236	236	236	238	238	240	240	243	243	244

सारणी-II

राज्य सभा में विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा जीती गई सीटों की दल-वार संख्या (वर्ष 1976-1996)

क्र.सं.	दल का नाम	1976-78	1978-80	1980-82	1982-84	1984-86	1986-88	1988-90	1990-92	1992-94	1994-96 (30 अक्तूबर, 1996)
1.	कांग्रेस	72	65	-	-	-	-	-	-	-	-
2.	कांग्रेस (ओ.)	64	48	-	-	-	-	-	-	-	-
3.	कांग्रेस (आई.)	-	-	124	152	159	141	108	99	95	85
4.	भाजपा	-	-	14	8	8	8	17	30	45	41
5.	सी.पी.आई.	11	9	5	5	6	3	3	6	6	5
6.	सी.पी.आई. (एम.)	5	8	14	13	12	15	17	16	14	15
7.	डी.एम.के.	3	3	4	3	3	3	10	9	8	-
8.	जनता पार्टी	42	70	14	9	9	20	-	-	-	-
9.	ए.आई.ए.डी.एम.के.	10	9	9	11	11	-	4	6	6	14
10.	जनता दल	-	-	-	-	-	-	38	27	28	23
11.	जनता दल (एस.)	-	-	-	-	-	-	-	14	5	-
12.	तेलुगु देशम	-	-	-	5	5	14	10	5	3	##8
13.	समाजवादी पार्टी	-	-	-	-	-	-	-	-	5	5
14.	निर्दलीय	20	15	9	6	6	2	2	5	8	7
15.	नामनिर्देशित	8	8	7	6	3	6	5	4	4	%%1
16.	अन्य	@8	#9	$43	%21	^20	&28	*19	@@14	**13	$$15
17.	रिक्तियां	1	-	1	5	2	5	12	10	5	26
	कुल योग:	244	244	244	244	244	245	245	245	245	245

@सम्मिलित: एम.एल., बी.के.डी., झारखण्ड पी.डब्ल्यू.पी., आर.पी.पी., के.एम.बी.।

#सम्मिलित: एम.एल., अकाली दल, आर.पी.आई., पी.डब्ल्यू.डी., आर.एस.पी., फॉरवर्ड ब्लॉक, पी.सी.।

$सम्मिलित फॉरवर्ड ब्लॉक, के.सी., एम.एल., लोकतांत्रिक लोक दल, लोक दल, कांग्रेस (एस.) अकाली दल, आर.पी.आई. (खोबरागड़े), समाजवादी, यू.डी.एफ. (नागालैंड), एन.सी., डी.एस.पी., भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (एन्टोनी), आर.एस.पी.।

%सम्मिलित: नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी, लोकदल (सी.), नेशनल कांफ्रेंस, के.सी., एम.एल., जनता (जी.), कांग्रेस (एस.), नागा नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी, अकाली दल, जनवादी, एफ.बी., आर.एस.पी.।

^सम्मिलित: नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफ इंडिया, लोकदल, नेशनल कांफ्रेंस, केरल कांग्रेस, एम.एल., जनता (जी.), कांग्रेस (एस.), नागा नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी, अकाली दल, जनवादी, लोकदल (सी.), एफ.बी., आर.एस.पी.।

&सम्मिलित: ए.आई.ए.डी.एम.के. (I), ए.आई.ए.डी.एम.के. (II), ए.जी.पी., आर.एस.पी., अकाली दल, एफ.बी., एन.सी., एम.एल., केरल कांग्रेस, लोकदल, एस.एस.पी.।

*सम्मिलित: ए.जी.पी., आर.एस.पी., एन.सी., जनता, लोकदल, अकाली दल, एम.एल., केरल कांग्रेस, एफ.बी., एस.एस.पी., इंडियन कांग्रेस (एस.), हिल स्टेट पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, शिवसेना।

@@सम्मिलित: आर.एस.पी., नेशनल कांफ्रेंस, जनता पार्टी, असम गण परिषद्, नतून असम गण परिषद्, शिव सेना, मुस्लिम लीग, फॉरवर्ड ब्लॉक, एस.एस.पी., हिल स्टेट पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, नागालैण्ड पीपुल्स काउंसिल।

**सम्मिलित: राष्ट्रीय जनता दल, फॉरवर्ड ब्लॉक, आर.एस.पी., असम गण परिषद्, शिव सेना, मुस्लिम लीग, हिल स्टेट पीपुल्स काउंसिल, डेमोक्रेटिक पार्टी, नागालैण्ड पीपुल्स काउंसिल, सिक्किम संग्राम परिषद्, बहुजन समाज पार्टी।

##चन्द्रबाबू नायडू ग्रुप।

%%चार अन्य नामनिर्देशित सदस्य कांग्रेस (आई.) के हैं।

$$सम्मिलित: शिव सेना, मुस्लिम लीग, फारवर्ड ब्लॉक, असम गण परिषद्, आर.एस.पी., तेलुगु देशम, केरल कांग्रेस (एम.), नागालैण्ड पीपुल्स काउंसिल, सिक्किम संग्राम परिषद्, ऑटोनॉमस स्टेट डिमांड कमेटी।

सारणी-III

राज्य सभा में विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा जीती गई सीटों का दल-वार ब्यौरा (वर्ष 1996-2004)

क्र.सं.	पार्टी के नाम	1996-98	1998-2000	2000-2002	2002-2004 (जनवरी)
1.	भा.रा.कां.	65	57	58	64
2.	भा.ज.पा.	45	47	49	45
3.	भा.क.पा. (मा)	17	15	14	12
4.	तेलुगु देशम	11	13	13	13
5.	जनता दल	9	6	6	2
6.	समाजवादी पार्टी	9	9	9	9
7.	राष्ट्रीय जनता दल	9	10	7	8
8.	भा.क.पा.	7	6	6	5
9.	द्रमुक	7	9	9	7
10.	ए.आई.ए.डी.एम.के.	6	5	7	9
11.	शिव सेना	5	5	5	5
12.	शिरोमणी अकाली दल	5	5	5	4
13.	निर्दलीय	13	13	%14	°13
14.	नामनिर्देशित	@8	@@11	@@11	11
15.	अन्य	*29	**34	%%30	°°33
16.	रिक्तियां	-	-	2	5
	कुल :	245	245	245	245

@तीन नामनिर्देशित सदस्यों का संबंध भा.रा.कां. से है और एक नामनिर्देशित सदस्य का संबंध समाजवादी पार्टी से है।

*इसमें बी.जे.डी., टी.एम.सी., जे. एण्ड के.-एन.सी., एम.एल., एफ.बी., ए.जी.पी., ए.आई.ए.डी.एम.के.-II, एस.एस.पी., ए.एस.डी.सी., आर.एस.पी., एच.वी.सी., केरल कांग्रेस, जे.एम.एम., महाराष्ट्र विकास अघाडी, हरियाणा लोक दल (राष्ट्रीय), हरियाणा विकास पार्टी शामिल हैं।

@@एक नामनिर्देशित सदस्य का संबंध समाजवादी पार्टी से है।

**इसमें बी.एस.पी., बी.जे.डी., टी.एम.सी. (एम.) जे. एण्ड के. - एन.सी., आर.एस.पी., एम.एल., ए.जी.पी., जे.एम.एम., आई.एन.एल.डी., एफ.बी., ए.एस.डी.सी., एच.वी.सी., केरल कांग्रेस, हरियाणा विकास पार्टी, एस.डी.एफ. समता पार्टी, आर.पी.आई., एन.सी.पी., ए.बी.एल.सी. शामिल है।

%इसमें आर.जे.डी. के तीन निष्कासित सदस्य शामिल हैं।

%%इसमें बी.एस.पी., बी.जे.डी., जे. एण्ड के.-एन.सी., आर.एस.पी., टी.एम.सी. (एम.), एम.एल., आई.एन.एल.डी., ए.जी.पी., एफ.बी., ए.एस.डी.सी., एच.वी.सी., केरल कांग्रेस, हरियाणा विकास पार्टी, समता पार्टी, आर.पी.आई., एन.सी.पी., ए.बी.एल.सी. ए.डी.एफ. शामिल हैं।

°इसमें किसी भी पार्टी से असंबद्ध एक सदस्य शामिल है।

°°इसमें बी.जे.डी., एन.सी.पी., आर.एस.पी., जे. एण्ड के.-एन.सी., ए.जी.पी., एच.वी.सी., ए.आई.एफ.बी., के.सी., आर.पी.आई., ए.बी.एल.सी.पी., ए.आई.आई.सी., एम.एन.एफ., पी.डी.पी. शामिल हैं।

सारणी-IV

राज्य सभा में विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा जीती गई सीटों का दल-वार ब्यौरा (वर्ष 2004-2014)

क्र.सं.	पार्टी के नाम	2004-2006	2006-2008	2008-2010	2010-2012	2012-2014
1.	भा.रा.कां.	73	72	71	*71	*72
2.	भा.ज.पा.	#47	#46	44	51	47
3.	बहुजन समाज पार्टी	6	6	12	18	15
4.	भा.क.पा. (मा.)	12	14	15	13	11
5.	ए.आई.टी.सी.	2	3	2	6	9
6.	समाजवादी पार्टी	12	16	12	5	9
7.	जनता दल (युनाइटेड)	2	5	7	8	9
8.	डी.एम.के.	2	3	4	7	7
9.	बीजू जनता दल	5	4	4	6	6
10.	नेशनलिस्ट कांग्रेस पार्टी	5	5	6	7	65
11.	ए.आई.ए.डी.एम.के.	12	10	7	5	6
12.	तेलुगु देशम पार्टी	9	6	2	4	4
13.	भा.क.पा.	-	3	5	5	2
14.	राष्ट्रीय जनता दल	8	6	4	4	2
15.	निर्दलीय	$12	9	7	6	9
16.	नामनिर्देशित	%4	%9	6	@8	@9
17.	अन्य	E26	Y25	&24	Z19	B19
18.	रिक्तियां	8	3	13	2	3
	कुल :	245	245	245	245	245

*दो नामनिर्देशित सदस्यों सहित।

#तीन नामनिर्देशित सदस्यों सहित।

$इसमें किसी भी पार्टी से असंबद्ध एक सदस्य शामिल हैं।

%भाजपा के तीन नामनिर्देशित सदस्यों को छोड़कर।

@भा.रा.का. के दो नामनिर्देशित सदस्यों को छोड़कर।

Eसम्मिलित: आई.एन.एल.डी., एस.एस., आर.एस.पी., एम.एल., एस.ए.डी., समता पार्टी, जे. एंड के. - एन.सी., ए.आई.एफ.बी., आर.पी.आई., ए.बी.एल.सी., एस.डी.एफ., एम.एन.एफ., पी.डी.पी., एन.पी.एफ., एस.बी.पी., पी.एम.के., जे.डी. (एस.)।

Yसम्मिलित: एस.एस., एस.ए.डी., आई.एन.एल.डी., ए.आई.एफ.बी., जे.डी. (एस.), एम.एल., आर.एस.पी., समता पार्टी, जे. एंड के., - एन.सी., एस.डी.एफ., एम.एन.एफ., पी.डी.पी., एन.पी.एफ., एस.बी.पी., पी.एम.के., आर.एल.डी., ए.जी.पी.।

&सम्मिलित: एस.एस., एस.ए.डी., जे.डी. (एस.), ए.जी.पी., जे. एंड के., - एन.सी., एम.एल., आर.एस.पी., एस.डी.एफ., एम.एन.एफ., एस.बी.पी., पी.एम.के., आर.एल.डी., बी.पी.एफ., एल.जे.पी., एम.पी. (एफ.), ए.आई.एफ.बी.।

Zसम्मिलित: एस.एस., एस.ए.डी., ए.जी.पी., जे. एंड के., - एन.सी., एल.जे.पी., एस.डी.एफ., एम.एन.एफ., आर.एल.डी., बी.पी.एफ., एन.पी.एफ., ए.आई.एफ.बी., आई.एन.एल.डी.।

Bसम्मिलित: एस.एस., एस.ए.डी., ए.जी.पी., जे. एंड के. — एन.सी. एल.जे.पी., एस.डी.एफ., एम.एन.एफ., बी.पी.एफ., एन.पी.एफ., ए.आई.एफ.बी., आई.एन.एल.डी., जे.एम.एम., के.सी. (एम.)।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. संसदीय समाचार (2), 7.6.1980
2. फा. सं. आर.एस. 19/80-टी.
3. फा. सं. आर.एस. 11/83-टी.
4. फा. सं. आर.एस. 11/90-टी.
5. दसवीं अनुसूची, पैरा 2(1)(क) और स्पष्टीकरण (क)
6. -वही- पैरा 2(3)
7. -वही- पैरा 2(2)
8. संविधान (इक्यानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2003
9. दसवीं अनुसूची, पैरा 4(1)
10. -वही-
11. संविधान (इक्यानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2003
12. फा. सं. आर.एस. 46/89-टी. और संसदीय समाचार (2), 28.7.1989
13. -वही- और संसदीय समाचार (2), 14.9.1989
14. फा. सं. आर.एस. 46/2005-टी. और संसदीय समाचार (2), 26.3.2008
15. फा. सं. आर.एस. 46/2007-टी. और संसदीय समाचार (2), 4.7.2008
16. फा. सं. आर.एस. 46/86-टी.
17. फा. सं. आर.एस. 46/88-टी.
18. फा. सं. आर.एस. 46/89-टी.
19. फा. सं. आर.एस. 46/90-टी.
20. फा. सं. आर.एस. 46/91-टी.
21. फा. सं. आर.एस. 46/92-टी.
22. -वही-
23. फा. सं. आर.एस. 46/96-टी.
24. -वही-
25. फा. सं. आर.एस. 46/98-टी.
26. -वही-
27. फा. सं. आर.एस. 46/99-टी.
28. फा. सं. आर.एस. 46/2001-टी.
29. -वही-
30. फा. सं. आर.एस. 46/2010-टी.
31. फा. सं. आर.एस. 46/2014-टी.
32. फा. सं. आर.एस. 46/88-टी.
33. फा. सं. आर.एस. 46/91-टी.
34. फा. सं. आर.एस. 46/91-टी.
35. फा. सं. आर.एस. 46/92-टी.
36. फाइल सं. आर.एस. 46/94-टी.
37. -वही-
38. फा. सं. आर.एस. 46/97-टी.
39. -वही-
40. -वही-
41. फा. सं. आर.एस. 46/98-टी.

42. विधेयक के खंड 6 द्वारा दसवीं अनुसूची में पैरा 2(1)(ग) अंत:स्थापित करने का प्रस्ताव किया गया।
43. फा. सं. आर.एस. 11/86-टी.
44. फा. सं. आर.एस. 11/87-टी.
45. फा. सं. आर.एस. 11/92-टी.
46. फा. सं. आर.एस. 11/93-टी.
47. फा. सं. आर.एस. 11/87-टी.
48. फा. सं. आर.एस. 11/2002-टी.
49. फा. सं. आर.एस. 11/2006-टी.
50. फा. सं. आर.एस. 11/2010-टी.
51. फा. सं. आर.एस. 11/2012-टी.
52. फा. सं. आर.एस. 11/2013-टी.
53. जर्नल ऑफ पार्लियामेंटरी इन्फॉर्मेशन, लोक सभा सचिवालय, मार्च, 1989
54. जी. विश्वनाथन बनाम स्पीकर, तमिलनाडु असेम्बली, ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 1060
55. राज्य सभा वाद-विवाद 9.12.1985, कालम 229-36
56. -वही- 13.11.1962, कालम 857-58
57. -वही- 26.11.1962, कालम 2206
58. -वही- 3.5.1966, कालम 80
59. फा. सं. 1/4/69-एल.
60. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.12.1974, कालम 174-75 और 182
61. -वही- 28.3.1979, कालम 18-19
62. संसदीय समाचार (2), 23.5.1979, 3.7.1980 और राज्य सभा वाद-विवाद, 15.9.1981, कालम 17-18
63. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.7.1980, कालम 1-3
64. -वही- 23.12.1992
65. -वही- 21.8.1995, कालम 167
66. -वही- 20.3.1997
67. -वही- 30.11.2012 और 6.12.2012
68. -वही- 17.12.2012
69. संसदीय समाचार (2), 28.7.2015
70. कौल और शकधर, प्रैक्टिस एंड प्रोसीज़र ऑफ पार्लियामेंट, छठा संस्करण 2009, पृष्ठ, 389
71. संसद् में मान्यता-प्राप्त दलों और गुटों के नेता और मुख्य सचेतक (सुविधाएं) अधिनियम, 1998 और उसके अंतर्गत बनाए गए नियम।

अध्याय-11

राज्य सभा की बैठकें

बैठकों का नियत किया जाना

राज्य सभा की बैठकें उन दिनों होती हैं जिनका निदेश सभापति राज्य सभा के कार्य की स्थिति को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर दे।[1] सामान्यत: राज्य सभा की बैठकें एक वर्ष में औसतन लगभग 80-90 दिनों के लिए होती हैं। संसदीय कार्य मंत्रालय से सत्र के आरंभ और अवधि की तारीखों का सुझाव देने वाली संसूचना के प्राप्त होने पर सभापति के आदेशानुसार उन दिनों को नियत किया जाता है जब सरकारी और गैर-सरकारी कार्य के निष्पादन के लिए राज्य सभा की बैठकें होनी होती हैं।

6 मार्च, 1987 को (बजट सत्र के पहले भाग में) कुछ सदस्यों ने राज्य सभा की बैठकों की अवधि को उत्तरोत्तर कम किए जाने के संबंध में एक मामला उठाया। यह मामला 14वें सत्र के संदर्भ में उठा जिसके दौरान केवल 18 बैठकें नियत की गई थीं। सभापति ने यह कहकर मामले को समाप्त किया : "जहां तक मेरा संबंध है, मैंने निर्णय किया है कि सत्रावकाश के बाद बजट सत्र के दूसरे भाग के लिए राज्य सभा निर्धारित समय से एक सप्ताह पहले समवेत होगी।"[2]

अत: सभा अपने 142वें सत्र के लिए 13 अप्रैल, 1987 को समवेत हुई।

बैठकों की अस्थायी सारणी

किसी सत्र के लिए आह्वान करने के साथ-साथ बैठकों के लिए इस प्रकार निर्धारित कार्यक्रम को दर्शाने वाली बैठकों की अस्थायी सारणी भी सदस्यों को जारी की जाती है। [किन्तु जब राज्य सभा को 1977 में दो दिवस के छोटे से विशेष सत्र (99वें सत्र) के लिए और 1991 में (158वें सत्र) के लिए बुलाया गया था तब बैठकों की अस्थायी सारणी जारी नहीं की गई थी।] बैठकों की अस्थायी सारणी में निम्नलिखित बातें दर्शाई जाती हैं। (1) वे दिन जब सभा की बैठक होनी है; (2) वे दिन जब छुट्टियों के कारण या अन्यथा कोई बैठक नहीं होनी है; (3) प्रत्येक दिन की बैठक में किए जाने वाले कार्य का स्वरूप - चाहे वह सरकारी कार्य हो, या गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य (विधेयक या संकल्प) हो; और (4) सरकार के विभिन्न मंत्रालयों से संबंधित उन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए दिनों का आवंटन जिन्हें सप्ताह के विनिर्दिष्ट दिनों में लिए जाने के लिए पांच समूहों में वर्गीकृत किया जाता है।

1952 से 1954 तक की अवधि के दौरान बैठकों की अस्थायी सारणी में कार्य की विनिर्दिष्ट मदों को दर्शाया जाता था जैसे राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा, बजट पर सामान्य चर्चा, गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प या विधेयक। सरकारी कार्य को शासकीय कार्य के रूप में दर्शाया जाता था।

सत्र के आरंभ से संबंधित विभिन्न विषयों पर सूचना के साथ-साथ बैठकों के नियत किए जाने संबंधी सूचना को संसदीय समाचार के द्वारा भी सदस्यों को अधिसूचित किया जाता है। जब भी आवश्यक हो, बैठकों की अस्थायी सारणी में दर्शाए गए और संसदीय समाचार में अधिसूचित बैठकों के कार्यक्रम में परिवर्तन किया जाता है और सभापति द्वारा सभा में उसकी घोषणा की जाती है और उसे संसदीय समाचार में अधिसूचित किया जाता है।

43वें सत्र के लिए बैठकों की अस्थायी सारणी को संसदीय कार्य मंत्रालय को भेजे जाने के बाद यह सुझाव दिया गया था कि वित्त विधेयक, जिसे लोक सभा द्वारा 23 अप्रैल, 1963 को पारित कर दिए जाने की संभावना थी, पर चर्चा करने के लिए सदस्यों को पर्याप्त समय देने के लिए शुक्रवार 26 अप्रैल, 1963 को सरकारी कार्य के लिए आवंटित कर दिया जाए और गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए राज्य सभा की बैठक शनिवार, 27 अप्रैल, 1963 को हो सकती थी। सभापति के विदेश में होने के कारण सुझाए गए परिवर्तन के लिए उनके आदेश प्राप्त नहीं किए जा सके और बैठकों की अस्थायी सारणी, जिस रूप में वह मूलत: तैयार की गई थी, सदस्यों में परिचालित कर दी गई। विदेश से वापस आने के बाद जब सभापति मंत्रालय के प्रस्ताव से सहमत हो गए तब "तेतालीसवें सत्र के लिए बैठकों की अस्थायी सारणी-गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए दिनों का नियतन" शीर्षक के अंतर्गत एक संसदीय समाचार के जरिये सदस्यों को इस परिवर्तन के बारे में अधिसूचित किया गया।[3]

79वें सत्र के लिए बैठकों की अस्थायी सारणी के जारी होने के बाद किंतु उसके आरंभ के पूर्व संसदीय कार्य मंत्री ने सभापति से अनुरोध किया कि वे 18 और 25 मार्च, 1972 को, जो शनिवार थे, अतिरिक्त बैठकों की व्यवस्था करें। इस पर सहमति हुई और सदस्यों को संसदीय समाचार द्वारा इसकी सूचना दी गई।[4]

शनिवार को बैठक

सामान्यत: सभा सोमवार से लेकर शुक्रवार तक बैठती है। किंतु कार्य की अत्यावश्यकता के कारण कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर या सभा में आम राय से या सभापति या सरकार के सुझाव पर सभा कई बार शनिवार को बैठी है। कभी-कभी शनिवार के लिए नियत बैठकें भी रद्द कर दी गई हैं। केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में 5 दिन का सप्ताह कर देने के सरकार के निर्णय के बाद सभा कुछ अवसरों पर शनिवार को भी बैठी है।

उदाहरण के लिए सभा की बैठकें निम्नलिखित शनिवारों को हुई : 20 जुलाई, 1991 (सोमवार के स्थान पर क्योंकि उस दिन मुहर्रम था); 14 सितम्बर, 1991, 21 दिसम्बर, 1991, 8 अगस्त, 1992 (भारत छोड़ो आंदोलन की 50वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में विशेष बैठक), 26 अगस्त, 1995 (174वें सत्र की अवधि को बढ़ाने के कारण); 204वें सत्र के दौरान 19 मार्च, 2005; 223वें सत्र के दौरान 26 अगस्त, 2011 को बैठक रद्द हो जाने के कारण गैर-सरकारी सदस्यों के लंबित कार्य को करने के लिए 27 अगस्त, 2011 को और 229वें सत्र को आगे बढ़ाने के कारण 7 सितम्बर, 2013 को। तथापि, सरकारी विधान कार्य के करने के लिए शनिवार 5 मई, 2007 के लिए नियत की गई बैठक रद्द कर दी गई।

छुट्टियों का मनाया जाना

राज्य सभा में भारत सरकार द्वारा घोषित सभी नियमित और तदर्थ सार्वजनिक छुट्टियां होती हैं।

किंतु 13 मई, 1957 को जब बुद्ध पूर्णिमा के कारण छुट्टी थी, राष्ट्रपति ने दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण दिया और उस दिन राज्य सभा की एक पृथक बैठक हुई।

किंतु बैठकों को नियत करते समय भारत सरकार के कार्यालयों की प्रतिबंधित छुट्टियों को ध्यान में नहीं रखा जाता और ऐसे दिन बैठकें नियत की जा सकती हैं।

इसके अलावा सभा में कुछ ऐसे पर्वों पर भी छुट्टी होती है जब भारत सरकार के कार्यालयों में सार्वजनिक छुट्टी नहीं होती। सामान्यत: ऐसे दिन के लिए कोई बैठक नियत नहीं की जाती

और यदि ऐसी कोई बैठक नियत की भी जा चुकी हो तो उसे रद्द किया जा सकता है। ऐसी छुट्टियों का उल्लेख नीचे किया गया है :

(i) रक्षा बंधन

5 अगस्त, 1952 को जब सभा की बैठक मध्याह्न पूर्व 8.15 बजे हुई तब यह सुझाव दिया गया कि रक्षा बंधन के कारण सभा को स्थगित कर दिया जाना चाहिए। सभापीठ इस पर सहमत थी कि सभा म.पू. 9.30 बजे आधे घंटे के लिए स्थगित हो जानी चाहिए और म.पू. 10.00 बजे सभा पुन: आरंभ होनी चाहिए ताकि "हम राष्ट्रीय उत्सव के बारे में सामान्य रवैये के प्रति सहानुभूति व्यक्त कर सकें"। तदनुसार सभा स्थगित हुई और पुन: समवेत हुई।[5]

24 अगस्त, 1953 को, जो चौथे सत्र का पहला दिन था, प्रश्न-काल के बाद सभा आम राय से रक्षा बंधन के उपलक्ष्य में स्थगित कर दी गई।[6]

21 अगस्त, 1956 के लिए नियत की गई बैठक रक्षा बंधन के उपलक्ष्य में रद्द कर दी गई।[7] किंतु 29 अगस्त, 1958 और 18 अगस्त, 1959 को रक्षा बंधन का पर्व होने पर भी राज्य सभा की बैठक हुई।

बाद के वर्षों में रक्षा बंधन के दिन घोषित सार्वजनिक छुट्टी थी या उस दिन सभा की बैठक नहीं हुई।

(ii) मई दिवस (1 मई)

सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति ने सिफारिश की कि राज्य सभा को चाहिए कि वह मई दिवस को एक छुट्टी के रूप में मनाए और प्रतिवर्ष 1 मई को सभा की कोई बैठक नहीं होनी चाहिए। इस निर्णय को 1973 (84वें सत्र) से लागू किया गया।[8]

(iii) गुरु रविदास का जन्मदिन

18 फरवरी, 1981 को जब सभा की बैठक हुई तब उस दिन गुरु रविदास के जन्मदिन के उपलक्ष्य में छुट्टी करने के बारे में एक मुद्दा उठाया गया। कुछ चर्चा के बाद सभा को म.पू. 11.06 बजे स्थगित कर दिया गया।[9]

बैठकों की अस्थायी सारणी में मूलत: 24 फरवरी, 1986 गुरु रविदास जयंती को राज्य सभा की बैठक नियत की गई थी। 1981 के पूर्वोदाहरण को देखते हुए और सभापति के निदेशानुसार उस दिन के लिए नियत बैठक रद्द कर दी गई और इसके बारे में सदस्यों को संसदीय समाचार के द्वारा सूचित किया गया।[10]

(iv) महा शिवरात्रि

11 फरवरी, 1964 को सभा की आम राय के अनुसार महा शिवरात्रि के उपलक्ष्य में सभा की बैठक म.प. 1.30 बजे दिन के बाकी भाग के लिए स्थगित हो गई।[11] सभा ने यह निर्णय लिया कि 6 मार्च, 1970 को महाशिव रात्रि के उपलक्ष्य में उसकी बैठक नहीं होगी।[12] किंतु 29 फरवरी, 1984 को, जब महा शिवरात्रि का पर्व था, सरकार के अनुरोध पर बजट को सभा पटल पर रखने के लिए सभा की बैठक (शाम साढ़े छह बजे) नियत की गई।[13] बाद के वर्षों में महा शिवरात्रि को सार्वजनिक छुट्टी घोषित की गई[14] या सभा की कोई बैठक नहीं हुई।

(v) बैसाखी

राज्य सभा के सत्रों के दौरान केवल पांच बार ही बैसाखी का दिन आया। 13 अप्रैल, 1953 और 13 अप्रैल, 1955 को, जो बैसाखी के दिन थे, कोई बैठक नहीं हुई क्योंकि इन वर्षों के दौरान 13 अप्रैल

को पहले ही पूरी छुट्टी थी। 1960 और 1972 में 13 अप्रैल को सभा की बैठक हुई। 14 अप्रैल, 1987 को यद्यपि सार्वजनिक छुट्टी नहीं थी तथापि वैसाखी डा. बी. आर. अम्बेडकर की जयंती के उपलक्ष्य में उस दिन के लिए बैठक नियत नहीं की गई।

(vi) राम नवमी

सत्रों के दौरान राम नवमी 1955 में 1 अप्रैल, 1955 को, 1956 में 19 अप्रैल, 1956 को, 1966 में 31 मार्च, 1966 को, 1969 में 27 मार्च, 1969 को, 1972 में 23 मार्च, 1972 को और 1980 में 24 मार्च, 1980 को पड़ी और इन सभी तारीखों को सार्वजनिक छुट्टी थी। 29 मार्च, 1977 को, जो राम नवमी का दिन था, सार्वजनिक छुट्टी नहीं थी। उस दिन के लिए सभा की एक बैठक नियत की गई किंतु 28 मार्च, 1977 को सभा ने निर्णय किया कि 29 मार्च, 1977 की बैठक रद्द कर दी जाए।[15]

सत्र के दौरान जब भी किसी छुट्टी की तारीख बदली जाती है तब ऐसे दिन सभा की बैठक होगी या नहीं होगी इसका निर्णय स्वयं सभा द्वारा किया जाता है यदि व्यवहार्य हो तो इस मामले को कार्य मंत्रणा समिति के समक्ष रखा जाता है या उस पर सभापति द्वारा निर्णय लिया जाता है।

13 जून, 1962 को मुहर्रम होने के कारण मूलत: इस तारीख को छुट्टी घोषित की गई थी। अत: 17 मई, 1962 को राष्ट्रपति द्वारा दिए गए आदेश के द्वारा राज्य सभा को 14 जून, 1962 को समवेत होने का आह्वान किया गया। किन्तु 11 जून, 1962 को सरकार ने एक सूचना जारी की जिसमें मुहर्रम के कारण होने वाली छुट्टी की तारीख को 13 जून से बदलकर 14 जून कर दिया गया। चूंकि इस स्थिति में राज्य सभा के सत्र के आरंभ होने की तारीख को बदलना संभव नहीं था इसलिए सभा की बैठक निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार हुई। सदस्यों के अभ्यावेदन पर और सामान्य इच्छा को देखते हुए उस दिन सभा बिना किसी कार्य-संव्यवहार के मुहर्रम के कारण स्थगित कर दी गई।[16]

ईद के कारण मूलत: 11 दिसम्बर, 1969 के लिए कोई बैठक नियत नहीं की गई थी। ईद की तारीख बदल कर 12 दिसम्बर, 1969 कर दी गई। किंतु सभा की बैठक निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार 12 दिसम्बर, 1969 को हुई और इसके पश्चात् 17 मिनट की बैठक के बाद सभा स्थगित कर दी गई।[17]

यदि ऐसे किसी दिन की छुट्टी रखने का निर्णय किया जाता है और उसके कारण किसी बैठक को रद्द करना आवश्यक हो जाता है तो कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसार उसके स्थान पर सप्ताह के ऐसे किसी दिन सभा की बैठक नियत की जा सकती है जब सभा की बैठक पहले ही नियत न कर ली गई हो।

ईद-उल-जुहा के उपलक्ष्य में 27 फरवरी, 1969 को छुट्टी पड़ती थी, उसे बदलकर 28 फरवरी, 1969 के लिए कर दिया गया। अत: 28 फरवरी के लिए जो बैठक नियत की गई थी वह 27 फरवरी, 1969 के लिए नियत कर दी गई। किंतु बजट के कारण 28 फरवरी, 1969 को म.प. 6.15 बजे सभा की बैठक हुई।

12 दिसम्बर, 1978 को मुहर्रम के कारण जो छुट्टी पड़ती थी वह 11 दिसम्बर, 1978 के लिए कर दी गई। तद्नुसार सभा की बैठक 11 दिसम्बर के स्थान पर 12 दिसम्बर को हुई और 11 दिसम्बर की कार्यावलि में प्रश्नों सहित जिन कार्यों का मूलत: उल्लेख किया गया था वे 12 दिसम्बर को लिए गए।[18]

13 अगस्त, 1980 को ईद की छुट्टी को देखते हुए और इस बात को भी देखते हुए कि मुसलमान सदस्यों को ईद के बाद अपने-अपने घरों से वापस आने का समय मिल सके, 14 अगस्त, 1980 को नियत की गई बैठक रद्द कर दी गई और उसके स्थान पर सभा की बैठक 18 अगस्त, 1980 को हुई।[19]

6 अगस्त, 1987 को ईद-उल-जुहा के कारण जो छुट्टी थी वह 5 अगस्त, 1987 के लिए कर दी गई। 5 अगस्त, 1987 की बैठक रद्द कर दी गई और कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसार सभा की बैठक 6 अगस्त, 1987 को हुई।[20]

कुछ अवसरों पर बैठकों का नियत न किया जाना

शनिवारों के अलावा और उपरोक्त सरकारी तथा अन्य छुट्टियों के अलावा, विगत में जब बैठकें नियत नहीं की गई थीं, कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण भी बैठकें नियत नहीं की गईं।

125वें सत्र के दौरान संसदीय कार्य मंत्रालय ने सभापति से यह अनुरोध किया कि वे नई दिल्ली में होने वाले निर्गुट आंदोलन (एन.ए.एम.) के सातवें सम्मेलन को देखते हुए 7 से 10 मार्च, 1983 तक कोई बैठक नियत न करें। सभापति इस पर सहमत हुए और बैठकों की अस्थायी सारणी और सत्र के आरंभ संबंधी संसदीय समाचार में यह बताया गया कि इन तारीखों को "कोई बैठक नहीं होगी", किंतु यह नहीं बताया गया कि बैठकें क्यों नहीं होंगी।[21] इसी प्रकार 128वें सत्र के दौरान नई दिल्ली में राष्ट्रमंडल देशों के शासनाध्यक्षों की बैठक (चोगम) को देखते हुए 23 से 30 नवम्बर, 1983 तक के लिए कोई बैठक नियत नहीं की गई।[22]

148वें सत्र के दौरान संसदीय कार्य मंत्रालय के सुझाव पर 7 नवम्बर से 11 नवम्बर, 1988 तक के लिए कोई बैठकें नियत नहीं की गईं ताकि सदस्यगण अपने-अपने निर्वाचन-क्षेत्रों के लोगों के साथ दीपावली मना सकें। बैठकों की अस्थायी सारणी और सत्र के आरंभ संबंधी संसदीय समाचार में यह बताया गया था कि 'कोई बैठक नहीं होगी', किंतु यह नहीं बताया गया कि बैठकों के न होने का कारण क्या है। जैसाकि सभा में सभापति द्वारा घोषणा की गई थी, सोमवार, 14 नवम्बर, 1988 की बैठक भी रद्द कर दी गई।[23]

बैठकों का रद्द किया जाना

पहले से निर्धारित बैठक भी रद्द की जा सकती है। किसी बैठक को रद्द करने की आवश्यकता उस समय भी पड़ सकती है जब सभा के समक्ष कोई कार्य करने के लिए न हो या विनिर्दिष्ट नहीं किए गए किसी अन्य कारण से भी बैठक को रद्द करना आवश्यक हो सकता है। अनेक बार ऐसा हुआ कि कुछ परिस्थितियों/कारणों से कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर या सभा में दिए गए सुझाव पर या सभापति के सुझाव पर बैठकें रद्द की गई हैं।

28 मार्च, 1953 को उपसभापति ने सभा में घोषणा की कि 30 मार्च, 1953 से 8 अप्रैल, 1953 तक सभा की कोई बैठक नहीं होगी।[24]

5 मार्च, 1981 को कार्य मंत्रणा समिति द्वारा की गयी सिफारिश के अनुसार सरकारी कार्य को पूरा करने के लिए सभा की बैठक शनिवार, 14 मार्च, 1981 को होनी थी। किंतु 10 मार्च, 1981 को सभा के नेता ने घोषणा की कि "कतिपय समस्याओं के कारण" उस दिन सभा की बैठक आवश्यक नहीं रही है तद्नुसार सभा के कार्य का पुनर्निर्धारण किया गया।[25]

124वें सत्र के दौरान 26, 27 और 28 अक्तूबर, 1982 को दशहरा और मुहर्रम के उपलक्ष्य में छुट्टियां घोषित की गई थीं। 1 नवम्बर, 1982 को भी गुरु नानक के जन्मदिन के उपलक्ष्य में छुट्टी थी। कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसार सोमवार, 25 अक्तूबर, 1982 और शुक्रवार, 29 अक्तूबर, 1982 की बैठकों को रद्द कर दिया गया जिसके परिणामस्वरूप शनिवार, 23 अक्तूबर, 1982 से सोमवार, 1 नवम्बर, 1982 तक सभा की कोई बैठक नहीं हुई।[26]

जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि 125वें सत्र के दौरान दिल्ली में निर्गुट आंदोलन (एन.ए.एम.) के सम्मेलन को देखते हुए 7, 8, 9 और 10 मार्च, 1983 को राज्य सभा की कोई बैठक नियत नहीं की गई। कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसार शुक्रवार, 11 मार्च, 1983 की बैठक रद्द कर दी गई जिसके परिणामस्वरूप 5 से 13 मार्च, 1983 तक सभा की कोई बैठक नहीं हुई।[27]

148वें सत्र के दौरान सत्र की अवधि को 20 दिसम्बर, 1988 तक बढ़ाने की घोषणा करते हुए उपसभापति ने यह भी घोषणा की कि सभा के 7 दिसम्बर, 1988 को स्थगित होने के बाद वह 16 दिसम्बर, 1988 को पुन: समवेत होगी। इसके परिणामस्वरूप सभा को आठ दिनों का सत्रावकाश मिल गया।[28]

149वें सत्र के दौरान 20, 21 और 23 मार्च, 1989 की तीन बैठकें रद्द कर दी गईं जिसके परिणामस्वरूप सभा में लगातार दस दिनों का सत्रावकाश रहा।[29]

199वें सत्र के दौरान 11 अगस्त, 2003 के लिए नियत सभा की बैठक रद्द कर दी गई।[30]

इसी प्रकार 228वें सत्र के दौरान, 9 और 10 मई, 2013 के लिए निर्धारित बैठकें सभा में निरंतर व्यवधान के फलस्वरूप कार्य-संव्यवहार न होने के कारण रद्द कर दी गईं।[31]

कुछ विशेष कारण, जिनसे बैठकों को रद्द करना पड़ा था, इस प्रकार थे :

27 मई, 1964 को पंडित जवाहरलाल नेहरू, प्रधान मंत्री के निधन की घोषणा के बाद सभा 28 मई, 1964 को समवेत होने के लिए स्थगित कर दी गई। बाद में सभापति ने उस बैठक को रद्द कर दिया और निदेश दिया कि अगली बैठक 29 मई, 1964 को होगी।[32]

कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसार राष्ट्रपति के चुनाव को देखते हुए 12 जुलाई, 1982 के लिए नियत की गई सभा की बैठक रद्द कर दी गई।[33]

6 दिसम्बर, 1992 को अयोध्या में बाबरी मस्जिद के ढांचे को ढहा दिए जाने के बाद सभापति ने सभा को 9 दिसम्बर, 1992 को 15 दिसम्बर, 1992 तक के लिए स्थगित कर दिया। तद्नुसार 10, 11, 14 और 15 दिसम्बर, 1992 के लिए नियत बैठकें रद्द कर दी गईं।[34]

सभापति ने 9 अगस्त, 1993 के लिए नियत बैठकों को रद्द करने की घोषणा की थी ताकि सदस्यगण भारत छोड़ो आंदोलन के समारोहों में भाग ले सकें और स्वतंत्रता आंदोलन के शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित कर सकें।[35]

कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसार शुक्रवार, 11 और सोमवार, 14 अगस्त, 1995 के लिए नियत बैठकें रद्द कर दी गईं। 10 अगस्त, 1995 को रक्षा बंधन के उपलक्ष्य में छुट्टी थी। इस प्रकार 10 से 15 अगस्त, 1995 तक सत्र के बीच में लगातार अवकाश रहा।[36]

कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशों पर 16 और 17 अप्रैल, 2003 के लिए नियत सभा की बैठकें रद्द कर दी गईं।[37]

204वें सत्र के दौरान, 18 अप्रैल, 2005 को होने वाली बैठक राम नवमी के कारण रद्द कर दी गई। सभा 19 अप्रैल, 2005 को पुन: समवेत हुई।[38]

कभी-कभी तदर्थ छुट्टियों की घोषणा की जाती है जिसके कारण भी ऐसे दिनों के लिए नियत बैठकों को रद्द करना आवश्यक हो जाता है। ऐसी बैठक को रद्द करने का निर्णय सभापति द्वारा सामान्यत: कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर और समय की उपलब्धता को देखते हुए किया जाता है।

संसदीय कार्य मंत्री ने लोक सभा अध्यक्ष के साथ हुई विपक्ष के नेताओं की एक बैठक के दौरान यह घोषणा की कि 14 नवम्बर, 1974 को उस सभा में पूरी छुट्टी घोषित करने का अनुरोध किया गया था। इस पर राज्य सभा ने भी उस दिन छुट्टी रखने का निर्णय किया।[39]

गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर की 125वीं जयंती के उपलक्ष्य में 9 मई, 1986 को राष्ट्रीय छुट्टी घोषित किए जाने के कारण कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसार उस तारीख को होने वाली सभा की बैठक रद्द कर दी गई।[40]

4 नवम्बर, 1988 को सभा में घोषणा की गई कि पंडित जवाहरलाल नेहरू की 99वीं जयंती के उपलक्ष्य में 14 नवम्बर, 1988 को सभा की बैठक नहीं होगी।[41]

पैगम्बर मुहम्मद साहब के जन्मदिन के उपलक्ष्य में 31 जनवरी, 1980 और 3 अक्तूबर, 1990 को छुट्टी की घोषणा होने के कारण इन दिनों के लिए नियत बैठकें रद्द कर दी गईं।[42]

बैठकों के रद्द किए जाने के कारण कभी-कभी आवश्यक कार्य को पूरा करने के लिए सत्र की अवधि का विस्तार करना या शनिवार को अतिरिक्त बैठक करना या सत्र के दौरान होने वाली बैठक अधिक समय के लिए जारी रखना या मध्याह्न भोजन के अवकाश को छोड़ना आवश्यक हो सकता है। इस संबंध में समुचित निर्णय सामान्यत: कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश या सभा की आम राय के आधार पर किया जाता है।

कार्य मंत्रणा समिति ने सिफारिश की कि बृहस्पतिवार, 25 अगस्त और शुक्रवार, 26 अगस्त, 1988 की सभा की बैठकों को रद्द कर दिया जाए और जब भी आवश्यक हो सभा को सत्र की समाप्ति तक मध्याह्न भोजन के लिए निर्धारित समय के दौरान और प्रतिदिन काफी देर तक भी बैठना चाहिए।[43]

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार 156वें सत्र को 8 जनवरी, 1991 को समाप्त होना था। सभा में घोषणा की गई कि 31 दिसम्बर, 1990 और 1 जनवरी, 1991 को बैठकें नहीं होंगी और इन दिनों के बजाय सभा की बैठकें 9 जनवरी, 1991 और 10 जनवरी, 1991 को होंगी। इसके बाद सत्र की अवधि 11 जनवरी, 1991 तक बढ़ाई गई।[44]

कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसार 22 जुलाई, 1991 की बैठक रद्द कर दी गई और इसके बजाय सभा की बैठक शनिवार, 20 जुलाई, 1991 को हुई।[45]

कार्य मंत्रणा समिति ने सिफारिश की कि सभा की 26 मार्च, 1993 की बैठक रद्द कर दी जाए और सभा को सोमवार, 22 मार्च, 1993 से 31 मार्च, 1993 तक म.प. 8.00 बजे तक और आवश्यकता पड़ने पर उसके बाद भी बैठना चाहिए और सत्र के बाकी भाग के दौरान मध्याह्न भोजन के अवकाश को छोड़ देना चाहिए।[46]

किसी बैठक के आरंभ होने का समय

राज्य सभा की बैठक ऐसे समय प्रारंभ होती है जिसका कि सभापति निदेश देते हैं।[47] आह्वान (समन्स) के साथ-साथ प्रथम सामान्य संसदीय समाचार के माध्यम से सदस्यों को सूचित किया जाता है कि जब तक कि सभापति अन्यथा निदेश न दें, सत्र के दौरान बैठक के प्रारंभ का और उसके समाप्त होने का सामान्य समय क्या होगा। सभा को दिन-भर के लिए स्थगित करने से पहले सभापीठ अगली बैठक की तारीख और समय की भी घोषणा करती है। इसका उल्लेख उस दिन की कार्यवाही के शब्दश: अभिलेख और संसदीय समाचार भाग-1 में भी किया जाता है। प्रत्येक सत्र के प्रथम संसदीय समाचार में एक पैरा के माध्यम से सदस्यों को सत्र के दौरान राज्य सभा की बैठकों के समय के बारे में सूचित किया जाता है।

विगत में बैठकों के प्रारंभ होने का समय भिन्न-भिन्न होता था और अनेक प्रयोगों के बाद ही बैठकों के प्रारंभ होने का वर्तमान समय अंतत: तय हो पाया है। जैसाकि निम्नलिखित उदाहरणों से ज्ञात होगा :

पहला सत्र (1952) : 13 मई, 1952 और 16 मई, 1952 को सभा की बैठक म.पू. 10.45 बजे से म.प. 1.30 बजे तक और म.प. 3.30 बजे से म.प. 5.00 बजे तक हुई। 19 मई, 1952 को सभा के नेता ने सुझाव दिया कि सभा की बैठक दिन में दो बार के बजाय सिर्फ सवेरे लगातार पौने पांच घंटे तक होनी चाहिए। इस पर सहमति हुई और सभापति ने घोषणा की, कि अगले दिन से सभा की बैठक म.पू. 8.15 बजे से म.प. 1.00 बजे तक होगी।[48] उस सत्र के दौरान सामान्यत: इसी समय के अनुसार बैठकें हुईं। किंतु 22 मई, 1952 को सभा म.पू. 9.45 बजे पर थोड़े समय के लिए समवेत हुई, 23 मई, 1952 को बजट के लिए म.प. 5.30 बजे समवेत हुई, और चूंकि 29 मई, 1952 को कई मंत्रियों का दूसरी सभा में उपस्थित रहना आवश्यक था इसलिए उस दिन सभा की बैठक म.प. 4.00 बजे से म.प. 8.00 बजे तक हुई।[49] 4 अगस्त से 12 अगस्त, 1952 तक सभा की बैठक म.पू. 8.15 बजे से म.प. 1.00 बजे तक और म.प. 3.00 बजे या म.प. 3.30 बजे से म.प. 6.00 बजे तक हुई।

दूसरा सत्र (1952) : दूसरे सत्र के दौरान सभा दिसम्बर में लगभग एक सप्ताह तक म.पू. 10.00 बजे समवेत हुई और इस अवधि को छोड़कर वह सामान्यत: म.पू. 10.45 को समवेत हुई।[50] 27 नवम्बर, 1952 को हुई राज्य सभा की बैठक में यह सुझाव दिया गया कि सभा की बैठक एक दिन में दो भागों में होने के बजाय लगातार पौने पांच घंटे तक होनी चाहिए।[51] किंतु इस पर कोई सर्वसम्मति नहीं हुई। कुछ दिनों बाद इस सुझाव को दोहराया गया किंतु उस पर सहमति नहीं हुई।[52] सभा ने निर्णय किया कि 16 दिसम्बर, 1952 से उसकी बैठक प्रतिदिन म.पू. 10.00 बजे से म.प. 1.00 बजे तक और म.प. 2.30 बजे से म.प. 6.00 बजे तक होगी।[53]

तीसरा सत्र (1953) : तीसरे सत्र के दौरान आरंभ के दिनों में सामान्यत: सभा की बैठक लगातार म.प. 2.00 बजे से म.प. 7.30 बजे तक हुई तथापि, 11 फरवरी, 1953 को सभा की बैठक म.प. 2.00 बजे राष्ट्रपति के अभिभाषण के पश्चात् म.प. 4.00 बजे हुई; 27 फरवरी, 1953 को बजट के लिए उसकी बैठक म.प. 6.00 बजे हुई; 6 मार्च, 1953 को उसकी बैठक म.प. 2.30 बजे हुई और अगले दिन, जो शनिवार था, उसकी बैठक म.पू. 9.00 बजे से म.प. 1.00 बजे तक हुई। सत्र के दूसरे भाग में 14 अप्रैल, 1953 से सभा की बैठक म.पू. 8.15 बजे से म.प. 1.15 बजे तक हुई।[54]

चौथा सत्र (1953) : सभा की बैठक सामान्यत: प्रतिदिन म.पू. 8.15 बजे से म.प. 1.15 बजे तक हुई।

पांचवां सत्र (1953) : सभा की बैठक प्रतिदिन म.प. 1.30 बजे से म.प. 6.30 बजे तक हुई।

छठा सत्र (1954) : पहले भाग के दौरान सभा की बैठक का सामान्य समय म.प. 2.00 बजे से म.प. 7.00 बजे रहा। तथापि, 15 फरवरी, 1954 (शनिवार) को उसकी बैठक बजट के लिए म.प. 2.45 बजे हुई और 16 मार्च, 1954 को हिंदू विवाह विधेयक के लिए उसकी बैठक म.प. 1.00 बजे हुई। सत्र के दूसरे भाग के दौरान सभा की बैठकें 19 अप्रैल, 1954 को छोड़कर पुन: म.पू. 8.15 बजे से म.प. 1.15 बजे तक होती रही।[55] 19 अप्रैल, 1954 को सभा की बैठक म.प. 2.00 बजे हुई।

सातवां सत्र (1954) : 23 अगस्त, 1954 से 8 सितम्बर, 1954 तक सभा में पिछले सत्र के समय का अनुसरण हुआ अर्थात् उसकी बैठकें म.पू. 8.15 बजे से म.प. 1.15 बजे तक हुई। सभा ने 10 सितम्बर, 1954 से अपनी बैठकों के लिए नया समय अपनाया जो म.पू. 11.00 बजे से म.प. 1.00 बजे बजे तक और म.प. 2.30 बजे से म.प. 5.00 बजे तक का था।[56]

उपरोक्त से यह स्पष्ट हो सकेगा कि लगभग तीन वर्षों तक सभा ने अपनी बैठकों को आरंभ करने के भिन्न-भिन्न समय के बारे में परीक्षण किए और उसके बाद सभा की बैठकों को म.पू. 11.00 बजे से आरंभ करने का वर्तमान समय तय हुआ जिसका 10 सितम्बर, 1954 से अनुसरण किया जाने लगा। बाद के सत्रों में कम बार ही इस समय में परिवर्तन किया गया और जो परिवर्तन किए गए वे विशिष्ट प्रयोजनों या अवसरों के कारण या अपवादात्मक परिस्थितियों में हुए थे।

23 दिसम्बर, 1955 और 24 दिसम्बर, 1955 को राज्य पुनर्गठन आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए सभा की बैठकें म.पू. 10.00 बजे आरंभ हुईं।

13 मई, 1957 को सभा की बैठक म.पू. 9.30 बजे आरंभ हुई ताकि नव-निर्वाचित सदस्य उस दिन राष्ट्रपति के अभिभाषण के पहले शपथ ले सकें या प्रतिज्ञान कर सकें। इसके बाद सभा राष्ट्रपति के अभिभाषण के लिए म.पू. 9.59 बजे स्थगित हुई और उसके पश्चात् पुनःसमवेत हुई।

31 मई, 1957 को सभा की बैठक म.प. 3.00 बजे आरंभ हुई क्योंकि आवश्यक वस्तु (संशोधन) विधेयक, 1957 उस दिन दोपहर के बाद लोक सभा से प्राप्त होना था। अगले दिन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक के कारण सभा की बैठक म.पू. 8.00 बजे से म.प. 12.57 बजे तक हुई।

2 दिसम्बर, 1957 को सभा की बैठक म.प. 2.30 बजे हुई।

9 दिसम्बर, 1959 को सभा की बैठक म.पू. 10.00 बजे हुई ताकि भारत-चीन संबंधों के बारे में 8 दिसम्बर, 1959 को पेश किए गए प्रस्ताव पर हुई चर्चा का प्रधान मंत्री द्वारा उत्तर दिया जा सके। 22 दिसम्बर, 1959 को भी सभा की बैठक म.पू. 10.00 बजे हुई।

26 नवम्बर, 1962 से 8 दिसम्बर, 1962 तक सभा की बैठक मध्याह्न 12.00 बजे हुई। तथापि, कार्य मंत्रणा समिति ने सिफारिश की, कि 10 दिसम्बर, 1962 से सभा की बैठक म.पू. 11.00 बजे से म.प. 1.00 बजे तक और म.प. 2.00 बजे से म.प. 5.00 बजे तक होनी चाहिए।

9 सितम्बर, 1965 से 24 सितम्बर, 1965 तक पाकिस्तान से युद्ध होने और प्रकाशबंदी के कारण सभा की बैठक म.पू. 10.00 बजे से म.प. 4.00 बजे तक हुई। एक सुझाव दिया गया था कि सभा की बैठक म.पू. 10.30 बजे से म.प. 1.30 बजे या म.प. 2.30 बजे तक होनी चाहिए ताकि सरकार युद्ध के कारण किए जाने वाले कार्य पर ध्यान दे सके। किंतु इस सुझाव पर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हुई।[57]

पाकिस्तान ने 3 दिसम्बर, 1971 की शाम को भारत पर हमला किया था। सभा ने 4 दिसम्बर, 1971 को निर्णय किया कि 6 दिसम्बर, 1971 से सभा की बैठकों का समय म.पू. 10.00 बजे से म.प. 1.00 बजे होगा और सत्र के बाकी भाग के दौरान प्रश्न-काल और ध्यानाकर्षण नहीं होगा। तथापि, 20 दिसम्बर, 1971 को सभा ने निर्णय किया कि 21 दिसंबर, 1971 से सत्र के अंत तक अर्थात् 24 दिसंबर, 1971 तक सभा की बैठक पुराने समय के अनुसार, अर्थात् म.पू. 11.00 बजे से म.प. 1.00 बजे तक और म.प. 2.00 बजे से म.प. 5.00 बजे तक होगी।

कुछ विशेष अवसरों पर बैठक के प्रारंभ होने का समय

जैसाकि पहले कहा गया है, बैठक के आरंभ होने का सामान्य समय म.पू. 11.00 बजे है। तथापि, ऐसे कुछ विशेष दिन हैं जब सभा की बैठक भिन्न-भिन्न समय पर प्रारंभ होती है।

(i) राष्ट्रपति के अभिभाषण के दिन

जैसाकि पहले कहा गया है, राष्ट्रपति के अभिभाषण के आधे घंटे के बाद राज्य सभा की अलग बैठक होती है। इस संबंध में बैठकों की अस्थायी सारणी और संसदीय समाचार भाग-2 के द्वारा सदस्यों को आवश्यक सूचना दी जाती है।

(ii) बजट के दिन

सामान्यतः हर वर्ष फरवरी के अंतिम दिन लोक सभा में केन्द्रीय बजट पेश किया जाता है और उसकी एक प्रति राज्य सभा के पटल पर रखी जाती है। पहले यदि फरवरी का अंतिम दिन कार्य-दिवस होता था तो सभा म.प. 5.00 बजे से काफी समय पूर्व स्थगित कर दी जाती थी ताकि सदस्यगण लोक सभा में वित्त मंत्री के भाषण को दूसरे सदन में विनिर्दिष्ट राज्य सभा सदस्य दीर्घा से सुन सकें। इसके बाद बजट के सभा पटल पर रखे जाने के लिए राज्य सभा कुछ समय के लिए पुनः समवेत होती थी।

28 फरवरी, 1961 को सभा की बैठक म.पू. 11.00 बजे से म.प. 1.00 बजे तक हुई और बजट के लिए 6.15 बजे पुन: समवेत होने के लिए स्थगित हो गई। किंतु 14 मार्च, 1962 को सभा की बैठक बिना स्थगित हुए बजट के सभा पटल पर रखे जाने तक जारी रही।[58]

तथापि, 1999 में गत परम्परा से हटकर वित्त मंत्री ने लोक सभा में म.पू. 11.00 बजे 1999-2000 का बजट प्रस्तुत किया और म.प. 1.10[59] बजे राज्य सभा के पटल पर इसकी एक प्रति रखी। तब से इस नई परम्परा का पालन किया जा रहा है। तथापि, वर्ष 2000 में, लोक सभा में म.प. 2.00 बजे बजट प्रस्तुत किया गया और 29 फरवरी को म.प. 4.13 बजे राज्य सभा के पटल पर इसे रखा गया। बजट प्रस्तुत किये जाने वाले दिन, राज्य सभा की बैठक लोक सभा में बजट प्रस्तुत किये जाने के बाद ही होती है ताकि वित्त मंत्री सभा पटल पर इसकी प्रति रख सकें। सभा इसी प्रयोजन के लिए समवेत होती है और बजट रखे जाने के बाद स्थगित कर दी जाती है। जब अपनी सामान्य तिथि के पश्चात बजट-सत्र शुरू होता है, तो सरकार की सुविधा के अनुसार किसी भी दिन रेलवे और आम दोनों बजट प्रस्तुत किये जाते हैं। चुनाव के वर्ष में, बजट आम-तौर पर दो बार प्रस्तुत किया जाता है - प्रथम बार कुछ महीनों के लिए लेखा अनुदान प्राप्त करने हेतु और बाद में पूर्ण बजट प्रस्तुत करने के लिए। दूसरे, अर्थात्, चुनाव के उपरांत गठित सरकार की सुविधा के अनुसार किसी भी दिन संपूर्ण बजट प्रस्तुत किया जाता है।[60]

राज्य सभा में बजट के सभा पटल पर रखे जाने के समय के बारे में बैठकों की अस्थायी सारणी/संसदीय समाचार भाग–2 और कार्यावलि के द्वारा सदस्यों को पहले ही जानकारी दे दी जाती है। पिछले दिन या बजट के दिन, यदि सभा की बैठक हो रही हो, सभा को स्थगित करते समय सभापीठ द्वारा यह घोषणा भी की जाती है कि बजट के लिए सभा कब समवेत होगी या पुन: समवेत होगी, जैसी भी स्थिति हो। किंतु यदि लोक सभा में वित्त मंत्री के भाषण में अधिक समय लगने के कारण पहले से नियत समय पर सभा के समवेत होने में विलंब की सम्भावना होने पर पहले से नियत समय के बजाय दूसरे सदन में भाषण समाप्त होने के बाद सभा शीघ्र समवेत होती है और सामान्यत: सभा के समवेत होने के नए समय की घोषणा नहीं की जाती है।[61]

(iii) शहीद दिवस पर

30 जनवरी जिसे देश भर में शहीद दिवस के रूप में मनाया जाता है, के दिन सभा की बैठक केवल चार बार हुई है। 1976 और 1980 में सभा 30 जनवरी को सामान्य समय अर्थात् म.पू. 11 बजे समवेत हुई और बैठक की कार्यवाही की शुरुआत भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अपने प्राण न्यौछावर करने वालों की स्मृति में दो मिनट का मौन धारण करके हुई। किंतु 30 जनवरी, 1985 को सभा की बैठक म.पू. 11.00 बजे मौन धारण करने के लिए एक मिनट पहले अर्थात् म.पू. 10 बजकर 59 मिनट पर समवेत हुई। 30 जनवरी, 2004 को सभा म.प. 2.00 बजे समवेत हुई और इसने राष्ट्र गान के साथ अपनी कार्यवाही शुरू की और इसके बाद कुछ क्षण का मौन रखा।

(iv) संविधान सभा की प्रथम बैठक की 50वीं वर्षगांठ पर

9 दिसम्बर, 1996 को सभा म.प. 3.00 बजे समवेत हुई क्योंकि केन्द्रीय कक्ष में उस दिन प्रात: संविधान सभा की प्रथम बैठक की पचासवीं वर्षगांठ मनाने के लिए समारोह आयोजित किया गया था।

किसी बैठक के प्रारंभ होने की प्रक्रिया

सभा की कोई बैठक उस समय विधिवत् होती है जब उसकी अध्यक्षता सभापति द्वारा की जाती है या संविधान के अधीन या राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के अधीन सभा की बैठक की अध्यक्षता करने के लिए सक्षम किसी सदस्य द्वारा की जाती है।[62] अत: यह आवश्यक है कि सभापति या उपसभापति या राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के अधीन सभापति द्वारा नाम निर्देशित उपसभाध्यक्षों के पैनल के किसी सदस्य द्वारा बैठक की अध्यक्षता बैठक के प्रारंभ होने के लिए नियत किए गए समय पर और साथ ही बैठक के जारी रहने के समय तक की जाए। सामान्यत: सभापति या उपसभापति सभा की बैठक के प्रारंभ होने के समय पर सभा की अध्यक्षता करते हैं। किंतु कुछ अवसरों पर दोनों के अनुपस्थित होने पर उपसभाध्यक्षों के पैनल के किसी सदस्य द्वारा भी बैठक के प्रारंभ होने के समय सभा की अध्यक्षता की जाती है।[63]

किसी बैठक के प्रारंभ होने के समय पर किसी भी पीठासीन अधिकारी द्वारा सभापीठ का आसन ग्रहण करने के पूर्व सभा का मार्शल सभा में गणपूर्ति (कोरम) सुनिश्चित करता है। यदि गणपूर्ति नहीं है तो तब तक घंटी बजाई जाती है जब तक सभा में गणपूर्ति नहीं हो जाती।

मार्शल द्वारा सभा में पीठासीन होने वाले व्यक्ति के पहुंचने की घोषणा उसका हिन्दी में पदनाम लेकर की जाती है। घोषणा इस प्रकार होती है : माननीय सभासदों, माननीय सभापति जी/उपसभापति जी/उपसभाध्यक्ष जी। सभा में उपस्थित सभी व्यक्ति खड़े हो जाते हैं। पीठासीन होने वाला व्यक्ति सभापति के कक्ष से, जो सभापीठ के ठीक पीछे होता है, प्रवेश करता है, सभा का अभिवादन करता है और अपना आसन ग्रहण करता है। सदस्य उनके अभिवादन का प्रति उत्तर देते हैं और अपना-अपना आसन ग्रहण कर लेते हैं। सभा में गणपूर्ति होने पर और पीठासीन अधिकारी द्वारा आसन ग्रहण कर लिए जाने पर सभा की बैठक प्रारंभ होती है और पीठासीन अधिकारी कार्यावलि में दी गई दिवस की कार्यवाही के अनुसार कार्य आरंभ करता है। सभा मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद या अपनी बैठक के स्थगित होने के बाद जब पुन: समवेत होती है तब भी इसी प्रथा का अनुसरण किया जाता है।

बैठक के लिए गणपूर्ति

संविधान के अनुच्छेद 100 के खंड (3) और (4) में निम्नलिखित उपबंध हैं:

(3) जब तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक संसद् के प्रत्येक सदन का अधिवेशन गठित करने के लिए गणपूर्ति सदन के सदस्यों की कुल संख्या का दसवां भाग होगी।

(4) यदि सदन के अधिवेशन में किसी समय गणपूर्ति नहीं है तो सभापति या अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति का यह कर्त्तव्य होगा कि वह सदन को स्थगित कर दे या अधिवेशन को तब तक के लिए निलंबित कर दे जब तक गणपूर्ति नहीं हो जाती है।

संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 के द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ अनुच्छेद 100 में उपरोक्त उपबंधों का लोप किया गया और अनुच्छेद 118(1) का भी संशोधन किया गया ताकि सभा की बैठक के गठन हेतु गणपूर्ति सहित यथेष्ट नियम बनाने हेतु प्रत्येक सभा को सक्षम बनाया जा सके।[64] किंतु उपरोक्त अधिनियम के अधीन किए गए संगत संशोधनों का संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम 1978 के द्वारा लोप कर दिया गया।[65]

राज्य सभा की कुल सदस्यता 245 है। अत: 25 सदस्यों अर्थात् सभा में सदस्यों की कुल संख्या के 1/10वें भाग की उपस्थिति उसकी बैठक की गणपूर्ति के लिए पर्याप्त है। चूंकि राज्य सभा का सभापति सभा का सदस्य नहीं होता इसलिए गणपूर्ति के प्रयोजन के लिए उसकी गणना नहीं की जाती।

बैठक के प्रारंभ होने के बाद पीठासीन व्यक्ति, जब तक उसका ध्यान गणपूर्ति के न होने की ओर नहीं दिलाया जाता, यह मान लेता है कि सभा में गणपूर्ति है। जब गणपूर्ति के अभाव का प्रश्न उठाया जाता है तब पीठासीन अधिकारी का कर्तव्य होता है कि वह गणपूर्ति की घंटी बजाने का निदेश दे। यदि घंटी बजाने पर, गणपूर्ति हो जाती है या आवश्यकता पड़ने पर सभापीठ के निदेशानुसार दुबारा घंटी बजाने पर गणपूर्ति हो जाती है तो सभा की कार्यवाही आगे बढ़ती है।[66] अन्यथा, सभा गणपूर्ति होने तक, अथवा शेष दिवस के लिए परिस्थितियों के अनुसार जैसा भी करना आवश्यक हो, स्थगित कर दी जाती है।

सभा में गणपूर्ति के संबंध में यह सामान्य प्रथा है। तथापि, कभी-कभार यह प्रथा बदलती रही है। कभी-कभी गणपूर्ति के प्रश्न को उठाये जाने पर सभा की इस परंपरा का उल्लेख किया गया है कि गणपूर्ति का आग्रह नहीं किया जाना चाहिए। कभी-कभी गणपूर्ति की घंटी बजती रहने पर भी सभा में पहले से बोल रहे सदस्य को अपना भाषण जारी रखने के लिए कहा गया है या उसकी अनुमति दी गई है। अन्य अवसरों पर कार्यवाही निलम्बित कर दी गई और गणपूर्ति के न होने के कारण सभा स्थगित कर दी गई। इस संबंध में कुछ उदाहरण नीचे दिए गये हैं :

(क) परंपरा का उल्लेख

जब गणपूर्ति का प्रश्न उठाया गया तब सभापीठ ने टिप्पणी की "यदि आप गणपूर्ति का आग्रह करते हैं तो मुझे गणपूर्ति की घंटी बजाए जाने पर कोई आपत्ति नहीं होगी। किंतु परंपरा यह है कि गणपूर्ति के प्रश्न पर जोर नहीं दिया जाएगा।" इसके बाद सदस्य ने आग्रह नहीं किया किंतु यह कहा कि उसका प्रयोजन (गणपूर्ति बनाए रखने में) सरकारी पक्ष के सदस्यों की जिम्मेदारी की ओर ध्यान आकर्षित करना था।[67]

जब प्रधान मंत्री अपनी नेपाल यात्रा के बारे में एक वक्तव्य देने ही वाले थे तब गणपूर्ति का एक प्रश्न उठाया गया। घंटी नहीं बजाई गई। उपसभापति ने उपस्थित सदस्यों की संख्या गिनी और गणपूर्ति का प्रश्न न उठाने की परंपरा का उल्लेख किया। तथापि सभा म.प. 5 बजकर 47 मिनट पर स्थगित हो गई।[68]

जब एक सदस्य ने यह कहा कि रेल बजट पर चर्चा के दौरान मुश्किल से 15 सदस्य उपस्थित हैं तब उपसभाध्यक्ष ने टिप्पणी की : "सभा की यह परंपरा रही है कि गणपूर्ति के बिना भी हम कार्यवाही को चालू रख सकते हैं।"[69]

(ख) गणपूर्ति की घंटी का न बजाया जाना

मध्याह्न भोजन के अवकाश के बाद सभा के पुन: समवेत होने पर एक सदस्य ने कहा कि सभा में गणपूर्ति नहीं है। सभा में सिर्फ 21 सदस्य उपस्थित थे। एक अन्य सदस्य ने कहा कि सभापीठ के पास यह सुनिश्चित करने का विशेषाधिकार है कि सभा में गणपूर्ति हो और सभापीठ को इस विशेषाधिकार का प्रयोग करना चाहिए। इसी समय कुछ सदस्य सभा में आ गए और उपसभापति ने घोषणा की कि गणपूर्ति हो गई है।[70]

जब गणपूर्ति का प्रश्न उठाया गया तब घंटी नहीं बजाई गई और विनियोग विधेयक पर चर्चा को पूरा करने के लिए नेताओं की आपसी सहमति के कारण और सभापति के इस अनुरोध के कारण भी कि सदस्यों को सहयोग करना चाहिए, सभा की कार्यवाही जारी रही।[71]

जब गणपूर्ति का प्रश्न उठाया गया तब उपसभापति ने सुझाव दिया कि सभा स्थगित की जा सकती है। एक सदस्य ने इस पर आपत्ति की जबकि एक अन्य सदस्य ने सभा स्थगित किए जाने पर सहमति व्यक्त की। घंटी नहीं बजाई गई और सभा ने अपनी कार्यवाही जारी रखी।[72]

(ग) बिना घंटी बजाये सभा का स्थगित किया जाना

जब यह सुनिश्चित कर लिया गया कि सभा में गणपूर्ति नहीं है तब म.प. 4 बजकर 14 मिनट पर दिन के बाकी भाग के लिए सभा को स्थगित कर दिया गया।[73]

एक सदस्य ने यह कहते हुए कि सभा में सिर्फ 14 सदस्य उपस्थित हैं, एक औचित्य प्रश्न उठाया और पूछा कि क्या सभा में गणपूर्ति है। सभा में पहले से बोल रही एक महिला सदस्य के भाषण के समाप्त होने पर उपसभाध्यक्ष ने कहा कि चूंकि गणपूर्ति का प्रश्न उठाया गया है, इसलिए उनके पास सभा को स्थगित करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है और संबंधित मंत्री अगली बैठक में उत्तर देंगे। सभा मध्याह्न पश्चात् 5 बजकर 14 मिनट पर स्थगित हो गई।[74]

जब सभा में इस संबंध में कुछ विवाद हो रहा था कि क्या सभा को म.प. 8.00 बजे के बाद भी बैठना चाहिए तब सभा की बैठक के जारी रहने पर आपत्ति कर रहे सदस्य ने यह कहते हुए गणपूर्ति का प्रश्न उठाया कि गणपूर्ति न होने के कारण सभा की कार्यवाही आगे नहीं बढ़नी चाहिए और यदि कार्यवाही जारी रहती है तो वह गैर-कानूनी होगी। उपसभापति ने इसके बाद म.प. 8 बजकर 12 मिनट पर सभा को स्थगित कर दिया।[75]

एक बैठक के अंतिम चरण में एक सदस्य ने कहा कि सभा में सिर्फ छह सदस्य उपस्थित हैं। यद्यपि उन्होंने कहा कि वह गणपूर्ति का प्रश्न नहीं उठा रहे हैं। तथापि उन्होंने निवेदन किया : "यदि पर्याप्त संख्या में सदस्य उपस्थित नहीं होते तो सभा को दस मिनट के बाद स्थगित कर दिया जाना चाहिए।" चूंकि और कोई बोलने वाले सदस्य नहीं थे इसलिए सभापीठ ने सभा को दिन-भर के लिए स्थगित कर दिया।[76]

(घ) बाकी दिन के लिए कार्यवाही/बैठक का निलम्बित कर दिया जाना या सभा का स्थगित कर दिया जाना

जब सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) जारी रहना विधेयक, 1977 पर खंडश: विचार आरंभ हुआ तब गणपूर्ति का एक प्रश्न उठाया गया। घंटी बजाई गई। इसके बाद उपसभाध्यक्ष ने घोषणा की कि सभा में गणपूर्ति नहीं हुई है और उन्होंने मध्याह्न पश्चात् 6 बजकर 38 मिनट पर सदन को स्थगित कर दिया।[77]

जब गणपूर्ति की घंटी बजाई जाने पर भी गणपूर्ति नहीं हुई तब एक सदस्य ने सुझाव दिया कि चूंकि कोई मतदान नहीं होने जा रहा है इसलिए सभा की कार्यवाही गणपूर्ति के बिना ही चल सकती है। उपसभापति ने टिप्पणी की कि चूंकि गणपूर्ति का प्रश्न उठ चुका है इसलिए घंटी बजानी पड़ी। उपसभापति ने यह देखने के लिए कि गणपूर्ति होती है या नहीं, सभा को 10 मिनट के लिए स्थगित कर दिया। जब सभा पुन: समवेत हुई और उपस्थित सदस्यों की संख्या गिनी गई और चूंकि गणपूर्ति नहीं थी, अत: उपसभापति ने मध्याह्न पश्चात् 4 बजकर 14 मिनट पर सभा को दिन भर के लिए स्थगित कर दिया। सभापति का ध्यान इस पर गया और उन्होंने अगली बैठक में निम्नलिखित टिप्पणियां कीं :

मैंने इन 7-8 वर्षों के दौरान पहली बार यह देखा है कि गणपूर्ति के न होने के कारण शुक्रवार, 11 दिसंबर, 1959 को हमारे सदन को कार्यवाही निलंबित करनी पड़ी। राज्य सभा की सदस्यता गौरव और प्रतिष्ठा की बात है। इसके साथ ही जिम्मेदारी और दायित्व भी आता है। यदि आप अपनी जिम्मेदारी और दायित्व नहीं निभाएंगे तो आप अपने गौरव और प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचाएंगे।[78]

जब सशस्त्र बल (असम तथा मणिपुर) विशेष शक्तियां (संशोधन) विधेयक, 1972 का तृतीय वाचन आरंभ किया जाने वाला था, तब गणपूर्ति का प्रश्न उठाया गया। सदस्यों की संख्या गिनने के बाद सभापीठ ने सभा को मध्याह्न पश्चात् 4 बजकर 25 मिनट पर मध्याह्न पश्चात् 4 बजकर 45 मिनट तक के लिए स्थगित कर दिया।[79]

गणपूर्ति का प्रश्न उठाए जाने पर घंटी बजाई गई। गणपूर्ति न होने के कारण सभा मध्याह्न पश्चात् 12 बजकर 8 मिनट पर मध्याह्न पश्चात् ढाई बजे तक के लिए स्थगित कर दी गई। सभापीठ का कहना था : "गणपूर्ति न होने के कारण कोई कार्य नहीं हो सकता...।"[80]

4 अगस्त, 1994 को एक सदस्य ने गणपूर्ति का प्रश्न उठाया। जब किसी दूसरे सदस्य ने कहा कि गणपूर्ति बिल्कुल ठीक है तब उपसभापति ने टिप्पणी की : "यह निर्णय करना सभापीठ का काम है कि गणपूर्ति है या नहीं। जब तक गणपूर्ति नहीं होती तब तक हम कार्य नहीं कर सकते...आखिरकार सभा को सुव्यवस्थित ढंग से चलाया जाना चाहिए, यदि कोई सदस्य उन सदस्यों की अंतरात्मा को झकझोरता है जो यहां नहीं हैं तो हमें उस सदस्य की बात सुननी ही चाहिए।" जब एक सदस्य ने एक औचित्य प्रश्न उठाते हुए यह पूछा कि प्रतिभूति घोटाले संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर की गई कार्यवाही से संबंधित प्रतिवेदन के मुद्दे पर जब अधिसंख्य सदस्यों ने (समूचे विपक्ष ने) सदन का बहिष्कार किया है और वे उपस्थित नहीं है तब क्या गणपूर्ति के प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। इस पर उपसभापति का कहना था : "गणपूर्ति की जिम्मेदारी सरकार की है।' गणपूर्ति होने पर कार्यवाही आगे बढ़ी।[81]

शुक्रवार, 8 दिसम्बर, 1995 को सदन को मध्याह्न पश्चात् 2 बजे समवेत होने के लिए मध्याह्न पूर्व 11 बजकर 12 मिनट पर स्थगित किया गया। सदन के समवेत होने पर गणपूर्ति की घंटी बजाए जाने पर जब यह पाया गया कि गणपूर्ति नहीं हुई है तब महासचिव ने घोषणा की : "माननीय सदस्यगण, माननीय उपसभापति के निदेशों के अधीन मैं एतद्द्वारा घोषणा करती हूं कि गणपूर्ति न होने के कारण अब सदन की बैठक नहीं होगी और सदन सोमवार 11 दिसम्बर, 1995 को मध्याह्न पूर्व 11 बजे समवेत होगा।"[82]

(ङ) गणपूर्ति की घंटी बजते रहने पर भी कार्यवाही का जारी रहना

गणपूर्ति का प्रश्न उठाए जाने पर घंटी बजाई गई किंतु गणपूर्ति के न होने के कारण सभा को दिन-भर के लिए स्थगित करने से पहले जो सदस्य बोल रहे थे उन्हें 4-5 मिनट बोलने की अनुमति दी गई।[83]

जब एक सदस्य के भाषण के दौरान गणपूर्ति का प्रश्न उठाया गया तब एक अन्य सदस्य ने पूछा कि गणपूर्ति के न होने पर भी वह सदस्य कैसे बोल सकते हैं। सभापीठ का कहना था : "घंटी बज रही है। माननीय सदस्य भाषण जारी रख सकते हैं।"[84]

इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर घंटी बजते रहने पर भी मंत्री को अपना भाषण जारी रखने की अनुमति दी गई।[85]

गणपूर्ति का प्रश्न उठाए जाने पर घंटी बजाने का आदेश दिया गया और जो सदस्य बोल रहे थे उन्हें अपने भाषण को समाप्त करने की अनुमति दे दी गई। जब एक अन्य सदस्य ने कहा कि गणपूर्ति के बिना कार्यवाही नहीं चल सकती तब उपसभापति ने कहा कि गणपूर्ति की घंटी बजा दी गई है। इस बार गणपूर्ति की घंटी कई बार बजानी पड़ी और जब भी गणपूर्ति को चुनौती दी गई, सभापीठ ने घोषणा की कि गणपूर्ति है। गणपूर्ति के न होने पर भी और कई बार घंटी बजाए जाने पर भी कार्यवाही के जारी रहने पर आपत्ति की गई।[86] अगले दिन एक सदस्य ने इन कार्यवाहियों से संबंधित मामले को उठाया। उनका तर्क यह था कि गणपूर्ति की घंटी बजाए जाने और गणपूर्ति के बारे में सभापीठ की घोषणा होने के समय के बीच जो कुछ भी कहा गया है उसे अभिलिखित नहीं किया जाना चाहिए और कार्यवाही रोक दी जानी चाहिए थी। गणपूर्ति की घंटी का बजना बंद होने के बाद गिनती करने पर यदि गणपूर्ति नहीं थी तो सभा को किसी विशेष समय के लिए या बाकी दिन के लिए स्थगित कर दिया जाना चाहिए था। इसके उत्तर में उपसभापति ने कहा कि उन्होंने पहले ही यह घोषणा कर दी थी कि उस समय गणपूर्ति थी और उन्होंने सदस्य को सलाह दी कि वह अपनी आपत्तियों को लिखित रूप में दें या वह उनके कक्ष में उनसे इस मामले पर विचार-विमर्श करें। उन्होंने कहा: "ये ऐसी बातें नहीं हैं जिन्हें बिना सूचना के या हमें बिना बताए सदन में उठाया जाना चाहिए।[87]

मध्याह्न भोजन का अवकाश

आरंभ के वर्षों में राज्य सभा में मध्याह्न भोजन का अवकाश सामान्यत: डेढ़ घंटे का होता था। कार्य मंत्रणा समिति ने 22 अप्रैल, 1963 को हुई अपनी बैठक में सिफारिश की कि सभा में मध्याह्न भोजन का अवकाश म.प. 1.00 बजे से म.प. 2.00 बजे तक होना चाहिए। समिति ने 8 अगस्त, 1985 को हुई अपनी बैठक में सिफारिश की कि सोमवार, 12 अगस्त, 1985 से सभा में म.प. डेढ़ बजे से म.प. ढाई बजे तक मध्याह्न भोजन का अवकाश होना चाहिए। समिति ने 14 अगस्त, 1985 को हुई अपनी बैठक में सिफारिश की कि शुक्रवारों को म.प. 1.00 बजे से म.प. ढाई बजे तक मध्याह्न भोजन का अवकाश रखने की वर्तमान प्रथा जारी रहनी चाहिए। समिति ने 21 नवम्बर, 1985 को हुई अपनी बैठक में इस बात को दोहराया।[88]

नियम समिति ने सिफारिश की कि सभा की बैठक का समय म.पू. 11.00 बजे से म.प. 1.30 बजे और म.प. 2.30 बजे से म.प. 5.00 बजे की बजाय म.पू. 11.00 बजे से म.प. 1.00 बजे और म.प. 2.00 बजे से म.प. 5.00 बजे तक नियत किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में समिति की सिफारिश यह थी कि मध्याह्न भोजन का अवकाश म.प. 1.00 बजे से म.प. 2.00 बजे तक होना चाहिए।[89] समिति की इस सिफारिश को 174वें सत्र (जुलाई-अगस्त, 1995) से लागू किया गया।

राज्य सभा के प्रक्रिया और कार्य संचालन विषयक नियमों के नियम 11 और 13 के अनुसरण में सभापति ने निदेश दिया है कि 233वें सत्र से राज्य सभा की बैठक का समय, शुक्रवारों को छोड़कर जब सभा मध्याह्न भोजन के पश्चात् 2.30 बजे पुन: समवेत होगी, मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे से मध्याह्न पश्चात् 1.00 बजे तक और मध्याह्न पश्चात् 2.00 बजे से मध्याह्न पश्चात् 6.00 बजे तक होगा।[90]

तथापि, ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब सभा ने सामान्यत: कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश

पर या सभा की आम राय से मध्याह्न भोजन के अवकाश को छोड़ दिया ताकि सरकारी या अन्य कार्य के लिए अतिरिक्त समय मिल सके।

> एक बार जब सभा में इस पर कोई आम राय नहीं बनी कि सभा को मध्याह्न भोजन के लिए स्थगित होना चाहिये या लगातार बैठना चाहिए तब एक सदस्य ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया : "सभा की कार्यवाही मध्याह्न भोजन के अवकाश के बिना जारी रहेगी।" प्रस्ताव स्वीकृत हुआ किंतु इसके बाद अव्यवस्था उत्पन्न हो गई और सभा को पन्द्रह मिनट के लिए स्थगित करना पड़ा।[91]

कई बार सभा में ऐसा शोर-शराबा या विवाद हुआ, जिसे दलों/समूहों के नेताओं की आपसी बातचीत के जरिए शांत करना आवश्यक था या सभा में ऐसी विशेष परिस्थितियां उत्पन्न हुईं जिनके कारण सभापीठ ने मध्याह्न भोजन के अवकाश के निर्धारित समय के पहले ही सभा को स्थगित कर दिया।[92]

कुछ समय के लिए बैठक का निलंबित/स्थगन किया जाना

मध्याह्न भोजन के अवकाश के अतिरिक्त, राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन विषयक नियमों के नियम 257 के अनुसरण में राज्य सभा की बैठक सभा में घोर अव्यवस्था उत्पन्न होने अथवा गणपूर्ति के अभाव; अथवा किसी सदस्य अथवा किसी मंत्री अथवा किसी विशिष्ट व्यक्ति के निधन के कारण भी कुछ समय के लिए स्थगित की जा सकती है।[93]

कई बार किसी मंत्री के उपस्थित न रहने के कारण भी सभा को कुछ समय के लिए स्थगित किया गया है।[94]

> 16 दिसम्बर, 1952 को सभा पटल पर पत्रों के रखे जाने के तुरंत बाद सभापति ने सभा को सूचित किया कि पहली पंचवर्षीय योजना के अनुमोदन के संबंध में जो संकल्प प्रधान मंत्री के नाम पर है उसे पेश करने के लिए प्रधान मंत्री और आधे घंटे तक सभा में नहीं आ सकेंगे और उन्होंने निवेदन किया है कि सभा को म.पू. 11.30 बजे तक स्थगित कर दिया जाए। चूंकि म.पू. 11.00 बजे सभा के समक्ष कोई कार्य नहीं था इसलिए सभा आधे घंटे के लिए स्थगित कर दी गई।[95]

> रेल बजट को मध्याह्न पश्चात् 1.00 बजे सभा पटल पर रखा जाना था। मध्याह्न पश्चात् 1.00 बजे मंत्री के उपस्थित न होने के कारण उपसभापति ने यह कहते हुए सभा को स्थगित कर दिया : "मैं समझती हूं कि इस सदन से बेहतर व्यवहार किया जाना चाहिए था।" सभा के पुन: समवेत होने पर उपसभापति ने टिप्पणी की : "...मुझे खेद है कि सभा के साथ शिष्टता का व्यवहार नहीं किया गया है और ऐसी बात हुई है। मुझे अधिक शिष्टता की आशा है।" इसके बाद रेल मंत्री ने मामले को स्पष्ट किया और अपनी अनुपस्थिति के लिए क्षमा मांगी।[96]

> जब सभा धन्यवाद के प्रस्ताव पर चर्चा कर रही थी तब किसी भी मंत्री के उपस्थित न होने के कारण सभा 10 मिनट के लिए स्थगित कर दी गई। सभा के पुन: समवेत होने पर उपसभापति ने टिप्पणी की : "सभापीठ सरकारी पक्ष से इस पर ध्यान देने की मांग करती है कि इस सभा के साथ समुचित शिष्टता का व्यवहार किया जाए।"[97] अगले दिन सभापति ने निम्नलिखित उद्गार व्यक्त किए :
>
> > "पिछले दस वर्षों में पहली बार ऐसा हुआ कि सभा को दस मिनट के लिए स्थगित करना पड़ा है। जब सभा में गंभीर मामलों पर चर्चा की जा रही थी तब सरकार का एक भी प्रतिनिधि उपस्थित

नहीं था। मुझे आशा है कि ऐसी स्थिति पुन: उत्पन्न नहीं होगी और सरकार सभा के प्रति अपनी जिम्मेदारी के बारे में सावधान रहेगी।"[98]

एक बार स्वास्थ्य मंत्री को कीटनाशी विधेयक, 1964 पर विचार करने का प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए बुलाया गया किंतु वे अनुपस्थित थे और संसदीय कार्य तथा संचार विभागों के राज्य मंत्री स्वास्थ्य मंत्री की ओर से विधेयक पर विचार करने के प्रस्ताव को उपस्थित करने के लिए उठे। इसकी अनुमति नहीं दी गई और उपसभापति ने यह कहते हुए अगले विधेयक को लेने की घोषणा की : "...स्वास्थ्य मंत्रालय के दोनों मंत्रियों में से एक भी यहां उपस्थित नहीं है और यह एक अत्यंत आश्चर्यजनक बात है। इसे बहुत आसानी से माफ नहीं किया जा सकता..."। जब अगले विधेयक अर्थात् भारतीय शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1967 की मद को पुकारा गया तब यह देखा गया कि संबंधित मंत्री तैयार नहीं हैं। उपसभापति ने यह कहते हुए सभा को मध्याह्न भोजन के अवकाश के निर्धारित समय से पहले स्थगित कर दिया :

"मैं प्रधान मंत्री का और उनके माध्यम से मंत्रि-परिषद् का ध्यान इस ओर दिलाना चाहूंगी कि सभा के साथ इस प्रकार का अपमानजनक व्यवहार नहीं किया जा सकता और आप इस तरह से एक विधेयक से दूसरे विधेयक पर छलांग नहीं लगा सकते और किसी विधेयक को लेते समय किसी दूसरे विधेयक पर जाने के लिए नहीं कह सकते..."। मध्याह्न भोजन के अवकाश के बाद सभा के पुन:समवेत होने पर संबंधित मंत्री ने अपनी अनुपस्थिति के लिए क्षमा मांगी।[99]

सभा म.प. 5.00 बजे से म.प. 5 बजकर 17 मिनट तक स्थगित कर दी गई क्योंकि प्रधान मंत्री, जिन्हें धन्यवाद प्रस्ताव पर अपना उत्तर जारी रखना था, दूसरे सदन में व्यस्त थे।[100]

दूरदर्शन के एक कार्यक्रम में मौलाना आजाद के प्रति अपमानजनक टिप्पणियां करने के मामले में सूचना तथा प्रसारण मंत्री को बुलाने के लिए सभा 8 मिनट के लिए स्थगित कर दी गई है।[101]

शून्य-काल के दौरान सभा 15 मिनट के लिए स्थगित कर दी गई क्योंकि विपक्ष के कुछ सदस्यों ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि सभा में गृह मंत्रालय का काम-काज देखने वाला एक भी मंत्री उपस्थित नहीं है।[102]

कुछ अन्य कारणों, जिनकी वजह से सभा को कुछ समय के लिए स्थगित करना आवश्यक हो गया, का निम्नानुसार उल्लेख किया जा सकता है :

सभा के नेता के द्वारा एक प्रस्ताव उपस्थित किए जाने और उसे सभा द्वारा स्वीकृत किए जाने पर एक सदस्य को एक सप्ताह के लिए सभा की सेवा से निलंबित कर दिया गया। जब सदस्य सदन से बाहर नहीं गए तब सभा 10 मिनट के लिए स्थगित कर दी गई।[103] किसी अन्य अवसर पर जब उसी सदस्य को निलंबित कर दिया गया और उन्होंने सभा से बाहर जाने से इन्कार किया तब सभा 15 मिनट के लिए स्थगित कर दी गई।[104]

सभा इसलिए स्थगित की गई ताकि सभापति नव-गठित विपक्षी दल के सदस्यों को स्थानों (सीटों) का आवंटन कर सकें।[105]

सभा जमात-उल-विदा के कारण दो घंटे के लिए स्थगित की गई।[106]

निवृत्त हो रहे सदस्यों के सम्मान में जलपान के आयोजन के लिए सभा एक घंटे के लिए स्थगित की गई।[107]

इस बात को देखते हुए कि सभा की बैठक लंबे समय तक चलेगी, सभा रात्रि भोज (म.प. 9.39 बजे से म.प. 10.05 बजे तक) के लिए स्थगित की गई।[108]

इफ्तार के उपलक्ष्य में सभा म.प. 6.13 बजे से म.प. 7.30 बजे तक स्थगित की गई।[109]

सभा म.प. 6.31 बजे से म.प. 7.02 बजे तक स्थगित की गई ताकि गृह मंत्री उस सदस्य के बारे में पता कर सकें जिसे दिल्ली में गिरफ्तारी के बाद रिहा कर दिया गया था।[110]

सभा मध्याह्न पश्चात् 5.00 बजे पुन: समवेत होने के लिए म.प. 3.32 बजे पर स्थगित कर दी गई ताकि वित्त मंत्री वर्तमान राजकोषीय स्थिति पर वक्तव्य दे सकें।[111]

महासचिव द्वारा 18 विधेयकों के संबंध में लोक सभा का संदेश पढ़ कर सुनाए जाने के बाद सभा समवेत होने के दस मिनट के भीतर म.प. 2.30 बजे तक के लिए स्थगित कर दी गई। सभा म.प. 2.51 बजे से म.प. 3.55 बजे तक पुन: स्थगित कर दी गई क्योंकि लोक सभा से प्राप्त धन विधेयकों को लौटाया जाना था और उनके संबंध में कार्य-ज्ञापन तैयार किया जाना था।[112]

चरार-ए-शरीफ के विध्वंस से उत्पन्न स्थिति पर चर्चा करने के लिए प्रश्नकाल के निलंबन के प्रस्ताव के स्वीकृत किए जाने के बाद सभा एक घंटे के लिए स्थगित कर दी गई।[113]

सभा में बम रखे होने की आशंका के कारण उसे मध्याह्न पश्चात् 12 बजकर 32 मिनट पर स्थगित कर दिया गया और मध्याह्न पश्चात् 2 बजकर 5 मिनट पर वह पुन: समवेत हुई क्योंकि पूरी छानबीन के बाद भी सदन में ऐसी कोई चीज नहीं मिली।[114]

सभा म.पू. 11.08 बजे पर समवेत हुई, सभा स्थगित हुई और म.पू. 11.30 बजे पर पुन: समवेत हुई। सभापति ने स्वतंत्रता सेनानी श्रीमती अरुणा आसफ अली के निधन का उल्लेख किया। तत्पश्चात् सभा में मौन धारण किया गया तथा म.प. 6.00 बजे पुन: समवेत होने के लिए सभा स्थगित हुई।[115]

बैठक का समाप्त होना

राज्य सभा की बैठक ऐसे समय समाप्त होती है जिसका कि सभापति निदेश देते हैं।[116] सभा तभी स्थगित होती है और दिन की बैठक तभी समाप्त होती है जब सभापीठ द्वारा सभा में इस आशय की घोषणा की जाती है। किसी सत्र के प्रारंभ के संबंध में जारी किए गए संसदीय समाचार में सत्र के दौरान बैठकों के प्रारंभ होने तथा समाप्त होने के सामान्य समय के बारे में उल्लेख किया जाता है। पीठासीन अधिकारी इसके अनुसार या आवश्यकता होने पर सभा का अभिप्राय मालूम करके सभा को स्थगित करता है। राज्य सभा की मुद्रित कार्यवाही में किसी बैठक की समाप्ति के पश्चात् सभा के स्थगित होने के ठीक-ठीक समय का उल्लेख करने की प्रथा सातवें सत्र (29 अगस्त, 1954) से शुरू हुई।

सत्र के प्रारंभ के पहले कुछ दिनों के दौरान, यदि ऐसा कार्य न हो जिसके कारण म.प. 5.00 बजे के बाद बैठना आवश्यक हो, सभा की बैठक सामान्यत: म.प. 5.00 बजे समाप्त हो जाती है। सत्र के प्रारंभ होने के बाद जब कार्य मंत्रणा समिति की बैठक होती है तब वह सभा के कार्य की स्थिति पर विचार करती है और सिफारिश करती है कि सभा को प्रतिदिन म.प. 6.00 बजे तक और यदि आवश्यक हो तो उसके बाद भी बैठना चाहिए। यह सिफारिश, जब सभापीठ द्वारा उसकी घोषणा की जाती है, उस समय को निर्धारित करती है जब सभा को सामान्यत: दिन-भर के लिए स्थगित हो जाना चाहिए। किंतु म.प. 6.00 बजे के बाद सभा के जारी रहने का निर्णय सामान्यत: विभिन्न दलों के नेताओं के आपसी विचार-विमर्श या सभा की आम राय या यदि आवश्यक हो, तो मत-विभाजन से होता है। यदि आम राय नहीं बनती तो सभापीठ द्वारा सभा को तत्काल स्थगित किया जा सकता है।

कार्य मंत्रणा समिति ने 26 अगस्त, 1991 को हुई अपनी बैठक में सिफारिश की थी कि कार्य को पूरा करने के लिए सभा की बैठक म.प. 6.00 बजे तक होनी चाहिए। पर चूंकि यह सत्र (160वें) का पहला दिन था इसलिए सभा की आम राय से बैठक म.प. 5.06 बजे स्थगित हो गई।[117]

जब उपसभाध्यक्ष ने सुझाव दिया कि सिर्फ तीन वक्ताओं के बाकी रहने के कारण बोफोर्स के संबंध में संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर चर्चा उसी दिन समाप्त की जा सकती है तब एक सदस्य ने कहा कि सामान्य परंपरा यह रही है कि सभा की बैठक का समय बढ़ाने के पहले विपक्षी दलों के नेता, सभा के नेता और संसदीय कार्य मंत्री सामान्यत: एक दूसरे के साथ परामर्श करते हैं और इस प्रकार का परामर्श नहीं हुआ है। उपसभाध्यक्ष ने यह घोषणा करते हुए सभा को स्थगित कर दिया कि "सभा की बैठक का समय बढ़ाने के बारे में सर्वसम्मति नहीं है।"[118]

जब सभा में प्रसार भारती (प्रसारण निगम) विधेयक, 1990 पर चर्चा हो रही थी तब एक सदस्य ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि शाम के छह बज गए हैं। (इसका अर्थ यह था कि सभा स्थगित कर दी जानी चाहिए) बैठक के समय को बढ़ाने के मुद्दे को लेकर अव्यवस्था उत्पन्न हो गई। इसी बीच उपसभापति ने यह कहा कि वे इस मुद्दे पर मतदान कराना चाहती हैं कि सभा की बैठक आगे चलनी चाहिए या नहीं। एक सदस्य ने मत व्यक्त किया कि ऐसा कभी नहीं किया गया है और आम राय का अर्थ मतदान नहीं है। विचार-विमर्श के लिए सभा म.प. 7.15 बजे से म.प. 7.41 बजे तक (दो बार) स्थगित की गई। इस बात पर सहमति हुई कि दिन-भर के लिए स्थगित होने के पहले सभा एक घंटा और बैठेगी। इस प्रकार सभा ने एक घंटे से अधिक समय इस मुद्दे पर बहस करने में लगा दिया कि इसे शाम छह बजे के बाद बैठना चाहिए या नहीं।[119]

जब उपसभापति ने घोषणा की कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त द्वारा चुनावों को स्थगित करने के लिए दिए गए आदेश के बारे में विधि मंत्री शाम साढ़े पांच बजे एक वक्तव्य देंगे तब सदस्यों द्वारा आपत्तियां की गईं कि कार्य मंत्रणा समिति ने यह सिफारिश नहीं की है कि सभा की बैठक शाम पांच बजे के बाद होनी चाहिए। सभा का अभिप्राय मालूम करने के बाद सभा शाम पांच बजे स्थगित कर दी गई। दो दिन बाद फिर यही मुद्दा उठा। चूंकि शाम पांच बजे के बाद सभा की बैठक जारी रखने के बारे में सर्वसम्मति नहीं थी इसलिए वह स्थगित कर दी गई।[120]

सभा को निर्धारित समय से पूर्व दिन-भर के लिए स्थगित किया जाना

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, सभा का सामान्य समय मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे से मध्याह्न पश्चात् 5.00 बजे तक है। किंतु यदि कार्यावलि में उल्लिखित कार्य पहले ही पूरा हो जाए या सभी के समक्ष और कोई कार्य करने के लिए न हो तो सभा उस समय दिन-भर के लिए स्थगित की जा सकती है।[121]

इन कारणों से भी सभा समय से पहले स्थगित की जा सकती है : किसी सदस्य, मंत्री या विख्यात व्यक्ति का निधन या कोई दु:खद घटना[122] या गणपूर्ति का न होना[123] या सभा की आम राय।

जब इस मुद्दे पर कि सभा को कितनी देर तक बैठना चाहिए, कोई आम राय नहीं हो पाई तब एक प्रस्ताव पेश किया गया कि "जब तक सभा अनियत तिथि के लिए स्थगित नहीं हो जाती तब तक उसकी बैठक प्रतिदिन मध्याह्न पश्चात् 7 बजे तक होगी।" इसका निर्णय मत-विभाजन से किया गया।[124]

संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री ने प्रस्ताव पेश किया कि "सभा को अब स्थगित कर दिया जाए।" प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और सभा म.प. 4.22 बजे स्थगित हो गई।[125]

उपसभापति ने घोषणा की कि सभा की इच्छा और कोई कार्य करने की नहीं है और उन्होंने सभा को स्थगित कर दिया।[126]

यदि सभा में घोर अव्यवस्था उत्पन्न होने की स्थिति में पीठासीन अधिकारी सभा को स्थगित करना आवश्यक समझता है तो वह ऐसा कर सकता है।[127] विगत में जिन मुद्दों पर घोर अव्यवस्था उत्पन्न होने के कारण सभा को दिन के बाकी भाग के लिए स्थगित कर दिया गया था उनमें से कुछ मुद्दे इस प्रकार हैं :

यनम और माही में कतिपय पक्षों को दिए गए आयात लाइसेंसों के बारे में केन्द्रीय जांच ब्यूरो का प्रतिवेदन;[128] महाराष्ट्र में सरकार के गठन में विलंब,[129] श्री चरण सिंह द्वारा प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई के पुत्र के विरुद्ध लगाए गए आरोप,[130] प्रधान मंत्री और गृह मंत्री के बीच पत्र-व्यवहार,[131] प्रधान मंत्री और उप-प्रधान मंत्री के परिवार के सदस्यों पर भ्रष्टाचार के आरोप[132] श्री जय प्रकाश नारायण के निधन के बारे में दिया गया गलत समाचार,[133] दिल्ली में पानी का संकट,[134] रक्षा मंत्री के रूप में श्री वी.पी. सिंह का इस्तीफा,[135] बोफोर्स,[136] फेयर फैक्स;[137] लोक सभा में विपक्ष के सदस्यों का इस्तीफा;[138] कांग्रेस (आई) सदस्यों के विरुद्ध दर्ज किए गए झूठे मामले;[139] मेहम में हुई घटना;[140] श्री राजीव गांधी पर निगरानी;[141] अयोध्या का मामला;[142] डुंकेल प्रारूप/गैट (टैरिफ और व्यापार संबंधी सामान्य करार);[143] प्रतिभूति घोटाले संबंधी संयुक्त समिति के प्रतिवेदन पर की गई कार्यवाही का प्रतिवेदन;[144] चीनी के आयात पर ज्ञान प्रकाश समिति का प्रतिवेदन;[145] बिहार में राष्ट्रपति शासन लागू किया जाना;[146] नई दूरसंचार नीति (175वें सत्र के दौरान बार-बार स्थगन); हवाला मुद्दा (176वें सत्र के दौरान बार-बार स्थगन); अयोध्या मुद्दे पर प्रधान मंत्री का कथित वक्तव्य (191वें सत्र के दौरान बार-बार स्थगन); तहलका मुद्दा (192वें सत्र के दौरान बार-बार स्थगन); गुजरात दंगों के संदर्भ में नरेन्द्र मोदी सरकार को हटाये जाने की मांग (195वें सत्र के दौरान बार-बार स्थगन); और पेट्रोल पंपों के आवंटन में अनियमितताओं का मुद्दा (196वें सत्र के दौरान बार-बार स्थगन)।

उपरोक्त सामान्य कारणों के अलावा जिनसे सभा निर्धारित समय से पूर्व स्थगित हो सकती है, ऐसे कई अवसर हो सकते हैं या बहुत विशेष या विशिष्ट कारण हो सकते हैं जिन्हें देखते हुए सभा को निर्धारित समय से पूर्व स्थगित करना पड़ सकता है। विगत में ऐसे कुछ कारणों से सभा को समय से पहले स्थगित करना पड़ा है; उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

एक विधेयक विचार की अवस्था में वापस ले लिया गया। संबंधित मंत्री कार्यावलि में दर्ज अगले विधेयक के बारे में तैयार नहीं थे। यद्यपि कार्यावलि में एक विधेयक दर्ज था तब भी सभा मध्याह्न पश्चात् 1 बजकर 5 मिनट पर स्थगित कर दी गई। जब सभापति का ध्यान इस ओर गया तब उन्होंने अगले दिन टिप्पणी की : "यह खेद की बात है कि सत्र के दूसरे दिन ही हमें मध्याह्न पश्चात् 1 बजकर 5 मिनट पर स्थगित होना पड़ा।[147]

चूंकि सदस्यगण यह चाहते थे कि कार्यावलि में दर्ज विधेयक को एक मद के पूरा हो जाने के बाद अगले दिन लिया जाए इसलिए सभा को मध्याह्न पश्चात् 4 बजकर 23 मिनट पर स्थगित कर दिया गया।[148] 29 अप्रैल, 1969 को सभा म.प. 4.00 बजे स्थगित कर दी गई ताकि सदस्यगण सभा के एक भूतपूर्व सदस्य श्री पी.एन. सप्रू को, जिनका निधन उस दिन सवेरे हैदराबाद में हो गया था और जिनके शव को हवाई अड्डे पर लाया जाना था, अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर सकें।[149]

एक सदस्य के सुझाव पर सभा 21 नवम्बर, 1969 को मध्याह्न पश्चात् 2 बजकर 41 मिनट पर स्थगित कर दी गई ताकि सदस्यगण राज्य सभा की भूतपूर्व उपसभापति श्रीमती वायलेट आल्वा की अन्त्येष्टि में शामिल हो सकें जिनका पिछले दिन निधन हो गया था।[150]

कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया कि वे अगले दिन लिए जाने वाले वित्तीय कार्य से संबंधित पत्रों का अध्ययन करना चाहते हैं। इस सुझाव को देखते हुए सभा मध्याह्न पश्चात् 1 बजकर 9 मिनट पर स्थगित कर दी गई।[151]

इसी प्रकार, एक सदस्य ने सुझाव दिया कि सभा को दिन-भर के लिए स्थगित कर दिया जाए जिससे सदस्य उस दिन को घोषित किए जाने वाले विधान सभा के चुनावों के परिणाम देख सकें। इसके कारण सभा सर्व सहमति से म.पू. 11.03 बजे पर स्थगित हुई।[152]

प्रधान मंत्री द्वारा बांग्लादेश को मान्यता देने के संबंध में वक्तव्य दिए जाने के बाद सभा मध्याह्न पश्चात् 12 बजकर 13 मिनट पर स्थगित कर दी गई।[153]

एक सदस्य के सुझाव पर सभा मध्याह्न पश्चात् 3 बजकर 59 मिनट पर स्थगित कर दी गई।[154] कुछ शुक्रवार ऐसे भी आए जब सभा की बैठक समय से पूर्व स्थगित कर दी गई क्योंकि कार्यावलि में दर्ज गैर-सरकारी विधेयक जिन सदस्यों के नाम पर थे, वे उपस्थित नहीं थे।[155]

सभापति ने घोषणा की कि सभा मध्याह्न पश्चात् 4.00 बजे स्थगित हो जाएगी ताकि सदस्यगण 'बीटिंग द रिट्रीट' समारोह देख सकें। किंतु उस दिन दिल्ली में एक आसीन सदस्य के निधन के कारण सभा मध्याह्न पश्चात् 3 बजकर 19 मिनट पर स्थगित कर दी गई।[156]

एक सदस्य ने, जिसे एक सप्ताह के लिए सभा की सेवा से निलंबित किया गया था, सदन से बाहर जाने से इन्कार कर दिया। सभा प्रारम्भ में एक घंटे के लिए स्थगित की गई और उसके बाद पुन: मध्याह्न पश्चात् 3.00 बजे तक के लिए स्थगित की गई। जब सभा पुन: समवेत हुई तब उपसभापति ने सूचना दी कि दलों/समूहों के नेताओं के बीच विचार-विमर्श जारी है। अंतत: सभा को मध्याह्न पश्चात् 3 बजकर 1 मिनट पर बाकी दिन के लिए स्थगित कर दिया गया।[157]

प्रधान मंत्री ने आई.आर.एस.-1बी के प्रक्षेपण के बारे में एक वक्तव्य दिया। सभा में यह आम राय बनी कि सभा को स्थगित हो जाना चाहिए। तद्नुसार "उपग्रह के छोड़े जाने की खुशी में" सभा शाम पांच बजे स्थगित कर दी गई।[158]

गृह मंत्री शाम साढ़े पांच बजे अयोध्या में मंदिरों के गिराए जाने के संबंध में एक वक्तव्य देने वाले थे। चूंकि वक्तव्य की प्रतियां सभा में सदस्यों को वितरित किए जाने के लिए तैयार नहीं की जा सकी थीं। इसलिए सभा स्थगित कर दी गई।[159]

कार्य मंत्रणा समिति ने 10 जुलाई, 1992 को हुई अपनी बैठक में सिफारिश की कि सभापीठ सदस्यों की राय मालूम करके सोमवार, 13 जुलाई, 1992 को प्रश्न-काल के बाद सभा को स्थगित कर सकती है ताकि सदस्यगण 1992 के राष्ट्रपति निर्वाचन में मतदान कर सकें किंतु अयोध्या के मामले में गरमा-गरमी हो जाने के कारण सभा अपने समवेत होने के आधे घंटे के भीतर स्थगित हो गई।[160]

मध्यरात्रि के बाद भी बैठक का जारी रहना

जैसाकि पहले कहा गया है, सभा की बैठक ऐसे समय समाप्त होती है जिसका कि सभापति निदेश देते हैं किंतु सभा की बैठक ठीक-ठीक कितने समय तक होगी इसका निर्धारण सभा के कार्य की स्थिति और उसकी आम राय के अनुसार होता है। अत: कुछ अवसरों पर महत्वपूर्ण कार्यों पर विचार करने और उन्हें निपटाने के लिए राज्य सभा की बैठकें मध्यरात्रि के बाद भी जारी रही हैं।

22 दिसम्बर, 1980 को जब सभा द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा विधेयक, 1980 पर विचार किया जा रहा था तब मध्यरात्रि होने पर यह औचित्य प्रश्न उठाया गया कि कार्यावलि केवल उस दिन से संबंधित है और वह मध्यरात्रि होने पर लागू नहीं रहती और इसलिए सभा की बैठक मध्यरात्रि के बाद जारी नहीं रह सकती। उपसभापति ने राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 13 का हवाला देकर औचित्य के प्रश्न को अस्वीकार करते हुए कहा :

> "राज्य सभा की बैठक ऐसे समय समाप्त होगी जैसाकि सभापति निदेश दें।" मैंने कार्यवाही का संचालन किया और जब तक कि विधेयक पर चर्चा समाप्त न हो जाए कार्यवाही निर्बाध चलेगी। इसलिए, यह सभा व्यवस्थित है और इसके समाप्त होने तक विधेयक पर चर्चा जारी रहेगी। जैसाकि हमने निर्णय लिया है, आज सभा की बैठक मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे आरंभ होनी है और यह मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे ही आरंभ होगी...मोदी जी, आपको सभा के शिष्टाचार की जानकारी होनी चाहिए। जब

मैं बोल रहा हूं, तो आपको बैठ जाना चाहिए। अत: सभा की कार्यवाही विधेयक के पारित होने तक जारी रही और सभा 23 दिसम्बर, 1980 को पुन: समवेत होने के लिए मध्याह्न पूर्व 00.40 पर स्थगित हुई।[161]

उस दिन सभापति के समक्ष मामले को पुन: उठाया गया, कुछ सदस्यों का तर्क था कि सभा एक ही दिन में दो बार समवेत हो रही है और 22 दिसम्बर, 1980 की रात्रि 12 बजे के बाद जो कुछ भी कार्य हुआ था वह असंवैधानिक था। सभापति ने यह कहते हुए इस तर्क को अस्वीकार कर दिया कि जब उपसभापति पीठासीन थे तब वह उस बैठक के सभापति थे और वह उनकी (उपसभापति की) कार्यवाही पर फैसला नहीं दे सकते।[162]

आवश्यक सेवाएं बनाए रखना विधेयक, 1981 पर विचार करने तथा उसे पारित करने के लिए 17 सितम्बर, 1981 को हुई सभा की बैठक अगले दिन मध्याह्न पूर्व 4 बजकर 43 मिनट तक जारी रही।

मुस्लिम स्त्री (विवाह-विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) विधेयक, 1986 पर विचार करने और उसे पारित करने के लिए 8 मई, 1986 को हुई सभा की बैठक अगले दिन मध्याह्न पूर्व 1 बजकर 52 मिनट तक जारी रही।

बोफोर्स तोपों की खरीद के मुद्दे पर चर्चा करने के लिए 29 दिसम्बर, 1986 को हुई सभा की बैठक अगले दिन मध्याह्न पूर्व 3 बजकर 22 मिनट तक जारी रही।

फेयर फैक्स एजेंसी की नियुक्ति के संबंध में न्यायमूर्ति ठक्कर आयोग के प्रतिवेदन पर चर्चा करने के लिए 14 दिसम्बर, 1987 को हुई सभा की बैठक अगले दिन मध्याह्न पूर्व 1 बजकर 52 मिनट तक जारी रही।

बोफोर्स के बारे में संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर चर्चा करने के लिए 11 मई, 1988 को हुई सभा की बैठक अगले दिन मध्याह्न पूर्व 12 बजकर 36 मिनट तक जारी रही।

सांप्रदायिक स्थिति पर चर्चा करने के लिए 12 अक्तूबर, 1989 को हुई सभा की बैठक अगले दिन मध्याह्न पूर्व 12 बजकर 52 मिनट तक जारी रही।

पंचायतों और नगरपालिकाओं से संबंधित संविधान (चौसठवां संशोधन) विधेयक, 1989 और संविधान (पैंसठवां संशोधन) विधेयक, 1989 पर चर्चा करने और उन्हें पारित करने के लिए 13 अक्तूबर, 1989 को हुई सभा की बैठक अगले दिन मध्याह्न पूर्व 12 बजकर 31 मिनट तक जारी रही।

स्वर्गीय श्री राजीव गांधी को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान न करने के मुद्दे पर चर्चा करने के लिए 4 जून, 1991 को हुई सभा की बैठक अगले दिन मध्याह्न पूर्व 1 बजकर 15 मिनट तक जारी रही।

लोकपाल विधेयक, 2011 पर विचार करने के लिए प्रस्ताव पर चर्चा 29 दिसम्बर, 2011 को आरंभ हुई। यह सत्र का अन्तिम दिन था और सरकार सत्र की अवधि बढ़ाने के पक्ष में नहीं थी। सभा में मध्यरात्रि से पूर्व शुरू हुए निरंतर व्यवधान के कारण सभापीठ ने मध्याह्न पूर्व 00.03 पर सभा को स्थगित कर दिया।

राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत की धुन का बजाया जाना

सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति ने 23 नवम्बर, 1992 को हुई अपनी बैठक में राज्य सभा के सत्रों के आरंभ/समाप्ति पर 'वन्दे मातरम्'/राष्ट्रगान की धुन बजाने के एक प्रस्ताव पर विस्तारपूर्वक विचार किया। समिति का विचार था कि मामले पर विस्तारपूर्वक जांच करना आवश्यक है और इसलिए ऐसी जांच कराने के लिए निर्णय अस्थगित कर दिया जाना चाहिए। समिति का यह भी मत था कि दोनों सदनों द्वारा इस संबंध में एक-समान प्रथा का अनुसरण किया जाना चाहिए।[163] दलों/समूहों के नेताओं की एक अनौपचारिक बैठक में यह निर्णय किया गया कि सदन में राष्ट्रगान की धुन बजाई जानी चाहिए। तद्नुसार मंगलवार, 25 नवम्बर, 1992, जो 165वें सत्र का दूसरा दिन था, से यह प्रथा शुरू हुई।[164]

165वें सत्र से नियमित रूप से इस प्रथा का अनुसरण किया जाता रहा है कि प्रत्येक सत्र के प्रारंभ में राष्ट्रगान 'जन गण मन' की रिकॉर्ड की गई धुन बजाई जाएगी और सत्र की समाप्ति पर राष्ट्रगीत 'वन्दे मातरम्' की रिकॉर्ड की गई धुन बजाई जाएगी।[165]

सभा का अनियत तिथि के लिए स्थगित किया जाना

बैठकों की अस्थायी सारणी के अनुसार सत्र की अंतिम बैठक में या कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर या अन्यथा सत्र की अवधि बढ़ाए जाने पर बढ़ाए गए सत्र के अंतिम दिन की बैठक में सभापीठ द्वारा सभा को अनियत तिथि के लिए स्थगित किया जाता है। सभा को अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दिए जाने पर सत्र की समाप्ति हो जाती है। सामान्यत: सभा को अनियत तिथि के लिए स्थगित करने से पहले सभापीठ द्वारा विदाई में कुछ शब्द कहे जाते हैं और उसके बाद 'वन्दे मातरम्' की धुन बजाई जाती है।[166]

विशेष बैठकें

13 मई, 1952 और 17 अप्रैल, 1962 को नव-निर्वाचित/नाम-निर्देशित सदस्यों द्वारा शपथ लिए जाने/प्रतिज्ञान किए जाने के प्रयोजन के लिए सभा की विशेष (पृथक) बैठकें हुई थीं।[167]

कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश थी कि 'भारत छोड़ो आंदोलन' की पचासवीं वर्षगांठ के महत्वपूर्ण अवसर के उपलक्ष्य में और स्वतंत्रता संग्राम के शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए शनिवार, 8 अगस्त, 1992 को केन्द्रीय कक्ष में बैठक समाप्त होने के पन्द्रह मिनट बाद राज्य सभा द्वारा उसी दिन एक संकल्प स्वीकृत किए जाने के लिए सभा की एक विशेष बैठक आयोजित की जाए।[168] तद्नुसार शनिवार 8 अगस्त, 1992 को मध्याह्न पश्चात् 12 बजकर 17 मिनट पर सभा की एक विशेष बैठक हुई। भारत छोड़ो आंदोलन की पचासवीं वर्षगांठ के अवसर के उपलक्ष्य में उपसभापति द्वारा सभा के समक्ष एक संकल्प उपस्थित किया गया। सभा द्वारा संकल्प का अनुमोदन किए जाने के बाद शहीदों और स्वतंत्रता सेनानियों की स्मृति में सभा में उपस्थित सभी सदस्यों ने खड़े होकर एक मिनट तक मौन धारण किया। तत्पश्चात् सभा मध्याह्न पश्चात् 12 बजकर 20 मिनट पर स्थगित हो गई।

राज्य सभा का एक सौ इक्यासीवां सत्र 23 जुलाई, 1997 को शुरू हुआ। भारत की स्वतंत्रता का पचासवां वर्ष होने पर, सत्र के दौरान प्रश्नकाल, शून्यकाल और सरकारी कार्य रखे बिना 26 से 29 अगस्त, 1997 तक चार विशेष बैठकें नियत की गई थीं। चार विषयों—मानव विकास एवं विज्ञान और प्रौद्योगिकी; अर्थव्यवस्था और अवसंरचना; भारत और विश्व; और संसदीय लोकतंत्र पर चर्चा की गई। विशेष बैठकों को दो दिन के लिए बढ़ाया गया और तद्नुसार सभा 1 सितम्बर, 1997 को अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दी गई। अंतिम दिन सभा द्वारा सर्वसम्मति से एक संकल्प स्वीकृत किया गया।[169]

225वें सत्र के दौरान भारत की संसद् की प्रथम बैठक की साठवीं वर्षगांठ का उत्सव मनाने के लिए रविवार, 13 मई, 2012 को सभा की एक विशेष बैठक हुई। माननीय सभापति द्वारा एक संकल्प उपस्थित किया गया जिसे सभा द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया। तत्पश्चात् सभा अगले दिन समवेत होने के लिए स्थगित हुई।

राज्य सभा की पहली बैठक

संविधान के लागू होने के बाद 3 अप्रैल, 1952 को राज्य सभा का विधिवत् गठन हुआ और सोमवार, 13 मई, 1952 को मध्याह्न पूर्व 10 बजकर 45 मिनट पर सभा की पहली बैठक हुई जिसमें राज्य सभा के सभापति डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् पीठासीन थे। राज्य सभा के सचिव ने 11 मई, 1952 का राष्ट्रपति का आदेश पढ़कर सुनाया।[171] जिसके अधीन डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् और श्री एस. वी. कृष्णमूर्ति राव को ऐसे व्यक्तियों के रूप में नियुक्त किया गया था जिनमें से किसी एक के समक्ष राज्य सभा (तत्कालीन काउंसिल ऑफ स्टेट्स) के सदस्य शपथ ले सकते थे या प्रतिज्ञान कर सकते थे।

तत्पश्चात् सभापति के सुझाव पर संविधान के अधीन राज्य सभा (तत्कालीन काउंसिल ऑफ स्टेट्स) की पहली बैठक के अवसर के उपलक्ष्य में सदस्यों ने खड़े होकर दो मिनट का मौन धारण किया।[172] इसके बाद सभापति ने सदस्यों का स्वागत किया और आशा व्यक्त की कि "हम अपने कार्य-कलापों के द्वारा देश की जनता की त्वरित और सर्वतोमुखी प्रगति में योगदान देंगे।" उन्होंने शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने की प्रक्रिया समझाई और इसके बाद सदस्यों ने उस दिन शपथ ली/प्रतिज्ञान किया।[173] तत्पश्चात् सभा स्थगित कर दी गई।

टिप्पणियां तथा संदर्भ

1. नियम 12
2. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.3.1987, कालम 192-95
3. संसदीय समाचार (2), 20.4.1963; संसदीय समाचार (2), 9.5.1966 भी देखिए
4. -वही- 1.3.1972
5. काउंसिल आफ स्टेट्स वाद-विवाद, 5.8.1952, कालम 2945-46 और 2969
6. -वही- 24.8.1953, कालम 94-96
7. संसदीय समाचार (2), 16.8.1956
8. सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति का कार्यवृत्त, 1.9.1972
9. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.2.1981, कालम 1-4
10. संसदीय समाचार (2), 10.2.1986
11. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.2.1964, कालम 144
12. -वही- 5.3.1970, कालम 129-38
13. संसदीय समाचार (2), 27.2.1984 और फा. सं. 1/1/84-एल.
14. काउंसिल आफ स्टेट्स वाद-विवाद 11.2.1953, कालम 30
15. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.3.1977, कालम 13-14
16. -वही- 14.6.1962, कालम 1-2
17. -वही- 12.12.1969, कालम 3920-21 और 3982
18. -वही- 8.12.1978, कालम 144
19. -वही- 12.8.1980, कालम 1-8
20. -वही- 4.8.1987, कालम 281; और कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 4.8.1987
21. फा. सं. 1/1/83-एल. और संसदीय समाचार (2), 28.2.1983
22. फा. सं. 1/4/83-एल.
23. फा. सं. 1/4/88-एल. और संसदीय समाचार (2), 4.11.1988

24. काउंसिल आफ स्टेट्स वाद-विवाद 28.3.1953, कालम 2458
25. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.3.1981, कालम 349-50; और 10.3.1981, कालम 179-80
26. -वही- 6.10.1982, कालम 263; संसदीय समाचार (2), 6.10.1982, 22.10.1982, और कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त 6.10.1982
27. -वही- 28.2.1983, कालम 2273; संसदीय समाचार (2), 28.2.1983; और कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त 28.2.1983
28. -वही- 7.12.1988, कालम 294-95
29. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 8.3.1989; और संसदीय समाचार (2), 7.3.1989
30. संसदीय समाचार (1), 8.8.2003
31. -वही- 8.5.2013
32. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.5.1964, कालम 80; और संसदीय समाचार (2), 27.5.1964
33. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 9.7.1982
34. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.12.1992, कालम 216, और कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 9.12.1992
35. -वही- 6.8.1993, कालम 335
36. संसदीय समाचार (2), 8.8.1995
37. -वही- 8.4.2003
38. -वही- 15.4.2005
39. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.11.1974, कालम 131; और संसदीय समाचार (2), 11.11.1974
40. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 8.5.1986; और राज्य सभा वाद-विवाद, 8.5.1986, कालम 327
41. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.11.1988, कालम 246
42. संसदीय समाचार (2), 24.1.1980 और 28.9.1990
43. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 16.8.1988
44. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.12.1990, कालम 276-77; कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 28.12.1990 और संसदीय समाचार (2), 10.1.1991
45. -वही- 16.7.1991, कालम 304; कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त; 17.7.1991
46. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 18.3.1993
47. नियम 11
48. काउंसिल आफ स्टेट्स वाद-विवाद, 19.5.1952, कालम 149-50
49. -वही- 29.5.1952, कालम 691
50. -वही- 15.12.1952, कालम 1821
51. -वही- 27.11.1952, कालम 477-78
52. -वही- 2.12.1952, कालम 668
53. -वही- 15.12.1952, कालम 1821
54. -वही- 10.4.1953, कालम 2696
55. -वही- 15.3.1954, कालम 2673; और 19.4.54, कालम 3336
56. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.9.1954, कालम 1810
57. -वही- 7.9.1965, कालम 3031-32
58. -वही- 14.3.1962, कालम 189-340
59. संसदीय समाचार (1), 27.2.1999 और वित्त मंत्री का सभापटल पर रखा गया बजट भाषण
60. रा.ज.ग. सरकार द्वारा 3 फरवरी, 2004 को म.प. 12.15 बजे प्रस्तुत किया गया अंतरिम बजट और सं.प्र.ग. सरकार द्वारा 8.7.2004 को म.पू. 11.00 बजे प्रस्तुत किया गया संपूर्ण बजट
61. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.2.1983, कालम 355 और 24.7.1991, कालम 230
62. नियम 10

63. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.12.1963, 21.12.1963, 28.3.1966, 26.12.1967, 12.12.1969, 31.3.1980, 11.3.1988, 9.1.1991, 14.9.1991, 16.9.1991, 17.9.1991, 18.9.1991, 12.8.1994, 26.8.1995, 13.9.1996, 11.3.1997, 12.3.1997, 15.3.1997, 25.7.1997, 1.9.1997, 27.2.1999 और 16.3.2001
64. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976, धारा 18 और 22
65. संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978, धारा 45
66. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.12.1956, कालम 2544
67. -वही- 7.5.1984, कालम 464
68. -वही- 5.3.1991, कालम 364-72
69. -वही- 26.7.1991, कालम 351
70. काउंसिल आफ स्टेट्स वाद-विवाद, 13.12.1952, कालम 1713
71. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.3.1979, कालम 165-66
72. -वही- 1.6.1990, कालम 239-40
73. -वही- 11.12.1959, कालम 2282-84
74. -वही- 28.11.1968, कालम 1854
75. -वही- 2.3.1981, कालम 340
76. -वही- 20.7.1991, कालम 176-78
77. -वही- 31.3.1967, कालम 1828
78. -वही- 14.12.1959, कालम 2368
79. -वही- 18.3.1972, कालम 126
80. -वही- 6.3.1991, कालम 182-83
81. -वही- 4.8.1994; संसदीय समाचार (1), 6.9.1996 भी देखिए
82. -वही- 8.12.1995, कालम 158
83. -वही- 4.6.1971, कालम 245-46
84. -वही- 25.7.1997, कालम 320-21; राज्य सभा वाद-विवाद, 7.12.1967, कालम 3004 भी देखिए
85. -वही- 31.3.1980, कालम 103-04
86. -वही- 9.3.1978, कालम 187-92
87. -वही- 10.3.1978, कालम 187-92
88. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त 22.4.1963, 8.8.1985, 16.8.1985, 21.11.1985; राज्य सभा वाद-विवाद, 18.9.1981, कालम 235-36 (शुक्रवारों को मध्याह्न भोजन के अवकाश के समय के लिए); और 22.11.1985, कालम 248
89. नियम समिति का सातवां प्रतिवेदन
90. संसदीय समाचार (2), 11.11.2014
91. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.12.1969, कालम 4349-67
92. -वही- 21.7.1989, कालम 237-38, 17.5.1990, कालम 170; 6.9.1990, कालम 226; 4.3.1991, कालम 335; 11.3.1991, कालम 371; 22.7.1992, कालम 201; 8.12.1994, कालम 347; 7.8.1995, कालम 280 और 8.8.1995, कालम 244
93. -वही- 14.12.1967, कालम 4062-63; 26.11.1969, कालम 1558; 16.12.1969, कालम 4349-67; 15.12.1983, कालम 217; 3.7.1984 कालम 9 (प्रश्नकाल के दौरान); 17.8.1984, कालम 3, 13 (प्रश्नकाल के दौरान); 3.12.1987, कालम 200; 14.3.1988, कालम 312; 15.3.1988, कालम 169; 5.8.1988, कालम 214; 1.9.1988, कालम 6, 226, 17.11.1988, कालम 183-84; 27.3.1989, कालम 270; 21.7.1989, कालम 237-38; 24.7.1989, कालम 272; 3.8.1989, कालम 241; 18.8.1989, कालम 232; 26.8.1989, कालम 166; 31.5.1990, कालम 158-59; 16.8.1990, कालम 453; 20.8.1990, कालम 317; 4.9.1990, कालम 414; 6.9.1990, कालम 226; 11.1.1991, कालम 16; 26.2.1991, कालम 204; 12.3.1991, कालम 83; 1.8.1991, कालम 264; 6.9.1991, कालम 261; 2.12.1991,

कालम 148; 9.12.1991, कालम 194, 195; 26.2.1992, कालम 236 (सभी 4 बार स्थगित हुई); 10.7.1992, कालम 155 (प्रश्नकाल के दौरान सभा दो बार स्थगित हुई); 21.7.1992, कालम 4 (प्रश्नकाल के दौरान सभा स्थगित हुई); 31.7.1992, कालम 10 (प्रश्नकाल के दौरान सभा स्थगित हुई); 4.8.1992, कालम 320 (5.8.1992 को उपसभापति ने पिछले दिन के स्थगन के बारे में एक स्पष्टीकरण दिया); 24.2.1993 (सभा दो बार स्थगित हुई); 25.2.1993 (सभा तीन बार स्थगित हुई); 26.2.1993 (सभा दो बार स्थगित हुई); 10.8.1993 (सभा दो बार स्थगित हुई); 27.8.1993 (सभा दो बार स्थगित हुई); 8.12.1993 (सभा दो बार स्थगित हुई); 30.12.1993; 28.2.1994; 27.4.1994; 13.6.1994; 27.7.1994; 8.12.1994; 14.12.1994 आगे देखिए (सभा तीन बार स्थगित हुई); 23.3.1995 (सभा दो बार स्थगित हुई); 28.3.1995 और 31.7.1995

94. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.11.1962, कालम 2181; 24.2.1966, कालम 1252; 21.3.1967, कालम 355; 4.4.1967, कालम 2126; 24.7.1967, कालम 133-34; 22.12.1969, कालम 5262-65; 18.8.1970, कालम 195; 25.4.1988, कालम 243; 29.8.1988, कालम 252; 5.12.1991, कालम 270-72; और 26.8.1996
95. काउंसिल आफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.12.1952, कालम 1959-60
96. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.2.1959, कालम 1226-27
97. -वही- 1.5.1962, कालम 1295-97
98. -वही- 2.5.1962, कालम 1499-1500
99. -वही- 24.7.1967, कालम 129-36
100. -वही- 29.12.1989, कालम 288
101. -वही- 6.9.1991, कालम 261
102. -वही- 10.8.1993, कालम 487-88
103. -वही- 25.7.1966, कालम 138
104. -वही- 14.12.1967, कालम 4063
105. -वही- 17.11.1969, कालम 124
106. -वही- 19.11.1971, कालम 1, 128
107. -वही- 27.3.1980, कालम 195, 350
108. -वही- 18.8.1989, कालम 233
109. -वही- 30.3.1990, कालम 320-23, 337
110. -वही- 23.5.1990, कालम 347
111. -वही- 27.12.1990, कालम 253
112. -वही- 11.3.1991, कालम 387-88
113. -वही- 15.5.1995, कालम 11
114. संसदीय समाचार (1), 5.12.1995 और राज्य सभा वाद-विवाद, 5.12.1995, कालम 213
115. संसदीय समाचार (1), 30.7.1996
116. नियम 13
117. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.8.1991, कालम 202-06
118. -वही- 11.8.1987, कालम 301-303
119. -वही- 4.9.1990, कालम 379-414
120. -वही- 3.8.1993, कालम 464-73 और 5.8.1993, कालम 359-74
121. -वही- 10.5.1958 (म.प. 3.50 पर); 29.8.1958 (म.पू. 11.18 पर) (गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य); 7.9.1959 (म.प. 3.25 पर); 9.12.1959 (म.प. 3.02 पर); 16.12.1959 (म.प. 4.31 पर); 1.12.1960 (म.प. 3.47 पर); 2.12.1960 (म.प. 3.48 पर); 15.2.1961 (म.प. 1.15 पर); 18.3.1961 (म.प. 12.54 पर); 29.11.1961 (म.प. 4.22 पर); 6.8.1962 (म.प. 4.03 पर); 21.11.1963 (म.प. 5.20 पर); 31.3.1971 (म.प. 3.28 पर); 1.8.1972 (म.प. 3.40 पर); 21.8.1972 (म.प. 3.50 पर); 7.12.1972 (म.प. 3.40 पर); 23.12.1972 (म.प. 3.22 पर); 7.3.1973 (म.प. 4.28 पर); 16.8.1973 (म.प. 3.57 पर); 29.11.1973

(म.प. 3.49 पर); 24.12.1973 (म.प. 2.05 पर); 4.12.1974 (म.प. 3.56 पर); 24.4.1975 (म.प. 4.04 पर); 25.7.1975 (म.प. 3.23 पर); (गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य); 6.8.1975 (म.प. 3.32 पर); 8.8.1975 (म.प. 12.58 पर); 9.8.1975 (म.प. 12.15 पर); 16.1.1976 (म.प. 3.53 पर); 5.12.1976 (म.प. 4.00 पर); 10.3.1976 (म.प. 4.02 पर); 11.03.1976 (म.प. 4.03 पर); 12.5.1976 (म.प. 3.58 पर); 20.8.1976 (म.प. 1.00 पर); (गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य); 1.12.1977 (म.प. 4.16 पर); 13.12.1977 (म.प. 3.22 पर); 21.3.1978 (म.प. 4.00 पर); 24.4.1981 (म.प. 2.45 पर); 3.8.1987 (म.प. 3.17 पर); 12.3.1991 (म.प. 4.23 पर) और 13.3.1991 (म.प. 12.20 पर);

122. अध्याय-16 देखिए, आगे
123. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.12.1959, कालम 2282-84; 22.8.1963, कालम 1269-70; 4.6.1971, कालम 245-46; 25.7.1977, कालम 320-22; 5.3.1991, कालम 364-72 और 20.7.1991, कालम 176-78
124. -वही- 23.12.1968, कालम 5391
125. -वही- 18.7.1977, कालम 144; और 28.7.1977, कालम 246
126. -वही- 19.3.1978, कालम 210; और 26.12.1978, कालम 116
127. नियम 257
128. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.12.1974, कालम 205-40
129. -वही- 6.3.1978, कालम 122
130. -वही- 17.7.1978, कालम 194
131. -वही- 20.7.1978, कालम 258
132. -वही- 13.12.1978, कालम 238; 14.12.1978, कालम 218; 18.12.1978, कालम 242; 19.12.1978, कालम 210; 20.12.1978, कालम 144; और 22.12.1978, कालम 138
133. -वही- 22.3.1979, कालम 212
134. -वही- 13.7.1979, कालम 23 और 128
135. -वही- 13.4.1987, कालम 10 और 136
136. -वही- 28.7.1987, कालम 428; 29.7.1987, कालम 4; 30.7.1987, कालम 1-3 और 190; 19.7.1989, कालम 282 और 290; और 20.7.1989, कालम 230, 279-80 और 286
137. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.4.1987, कालम 153-276
138. -वही- 24.7.1989, कालम 352
139. -वही- 17.5.1990, कालम 177, 179-180; और 18.5.1990, कालम 242
140. -वही- 21.5.1990, कालम 198
141. -वही- 4.3.1991, कालम 331, 335-36
142. -वही- 10.7.1992, कालम 277-82; 22.7.1992, कालम 210; 23.7.1992, कालम 240; 7.12.1992, 8.12.1992, कालम 266; 9.12.1992, कालम 216; और 16.12.1992, कालम 1084
143. -वही- 15.12.1993, 16.12.1993; और 18.4.1994
144. -वही- 28.7.1994; 29.7.1994; 1.8.1994; और 7.12.1994
145. -वही- 14.12.1994; 15.12.1994; 16.12.1994; 20.12.1994; 21.12.1994; 22.12.1994; और 23.12.1994
146. -वही- 28.3.1995, कालम 308-12
147. -वही- 11.8.1959, कालम 264; और 12.8.1959, कालम 360-62
148. -वही- 18.2.1960, कालम 1195-1200
149. -वही- 29.4.1969, कालम 462
150. -वही- 21.11.1969, कालम 909-22
151. -वही- 26.3.1971, कालम 54
152. -वही- 4.12.2003
153. -वही- 6.12.1971, कालम 56

154. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.1.1976, कालम 196
155. -वही- 2.4.1976, कालम 118; 13.3.1981, कालम 239-40; और 31.7.1987, कालम 360
156. -वही- 29.1.1980, कालम 1 और 170
157. -वही- 29.7.1987, कालम 2-4
158. -वही- 29.8.1991, कालम 225-26
159. -वही- 24.3.1992, कालम 298-310
160. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 10.7.1992 और राज्य सभा वाद-विवाद, 13.7.1992
161. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.12.1980, कालम 449, 461 और 466
162. -वही- 23.12.1980, कालम 1-6 और 34-35
163. सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति का कार्यवृत्त, 23.11.1992 और फा. सं. 5(1)/90-एल.ओ.
164. फा. सं. 54/92-टी.
165. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.12.1992, कालम 352
166. अध्याय-6 भी देखिए, पीछे
167. अध्याय-12 देखिए, आगे
168. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 6.8.1992
169. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.9.1997, कालम 164-67
170. संसदीय समाचार (1), 13.5.2012
171. अध्याय-12 देखिए, आगे
172. काउंसिल आफ स्टेट्स वाद-विवाद, 13.5.1952, कालम 1-2
173. -वही-

अध्याय-12

सदस्यों द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान

वैधानिक उपबंध

किसी द्विवार्षिक चुनाव या उप-चुनाव में चुने गए या राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित किए गए राज्य सभा के प्रत्येक सदस्य के लिए अपेक्षित है कि वह सदन में अपना स्थान ग्रहण करने के पहले राष्ट्रपति के समक्ष या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त व्यक्ति के समक्ष निम्नलिखित प्ररूप के अनुसार शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा जो इस प्रयोजन के लिए संविधान की तीसरी अनुसूची में दिया गया है :[1]

"मैं, अमुक, जो राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित (या नामनिर्देशित) हुआ हूं, ईश्वर की शपथ लेता हूं/ सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा, मैं भारत की प्रभुता और अखण्डता अक्षुण्ण रखूंगा[2] तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूं उसके कर्त्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करूंगा।"

अनुच्छेद 99 के उपबंध का अनुसरण करते हुए राष्ट्रपति ने तारीख 11 मई, 1952 को निम्नलिखित आदेश जारी किया :

"मैं राजेन्द्र प्रसाद, भारत का राष्ट्रपति, एतद्द्वारा डा. एस. राधाकृष्णन् और श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव को ऐसे व्यक्तियों के रूप में नियुक्त करता हूं जिनमें से किसी एक के समक्ष राज्य सभा के सदस्य भारत के संविधान के अनुच्छेद 99 के उपबंधों के अनुसार शपथ ले सकेंगे या प्रतिज्ञान कर सकेंगे और उस पर हस्ताक्षर कर सकेंगे।"[3]

भारत के राष्ट्रपति ने उक्त आदेश का अधिक्रमण करते हुए 21 अप्रैल, 1956 को एक और आदेश किया जो इस प्रकार था :

"मैं, राजेन्द्र प्रसाद, भारत का राष्ट्रपति, एतद्द्वारा-

(i) सभापति को,

(ii) उपसभापति को,

(iii) भारत के संविधान के अनुच्छेद 91 के खंड (2) के अधीन राज्य सभा में पीठासीन होने के लिए सक्षम व्यक्तियों को,

ऐसे व्यक्तियों के रूप में नियुक्त करता हूं जिनमें से किसी के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 99 के अधीन राज्य सभा के सदस्य शपथ ले सकेंगे या प्रतिज्ञान कर सकेंगे या उस पर हस्ताक्षर कर सकेंगे।"

1956 का आदेश जो आज भी लागू है, सभा की बैठक आरंभ होने पर सदस्यों द्वारा शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के पूर्व राज्य सभा के सचिव द्वारा पढ़कर सुनाया गया।[4]

जब 6 अगस्त, 1962 को एक सदस्य शपथ लेने वाला था तब एक अन्य सदस्य द्वारा औचित्य प्रश्न उठाया गया कि अनुच्छेद 99 के अनुसार शपथ दिलाने के लिए प्रत्येक सदस्य के मामले में अर्थात् प्रत्येक ऐसे अवसर पर जब कोई नया सदस्य शपथ लेने या

> प्रतिज्ञान करने के लिए आता है, राष्ट्रपति को ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करना पड़ेगा जिसके समक्ष सदस्य शपथ ले सके या प्रतिज्ञान कर सके और सभापति को सभा को सूचित करना पड़ेगा कि उसे राष्ट्रपति से यह नियुक्ति प्राप्त हो चुकी है। सभापति ने औचित्य प्रश्न को अमान्य ठहराया और निर्णय दिया कि जो प्रक्रिया अपनाई जा रही है वह पूर्णत: नियमानुसार है और राष्ट्रपति ने एक आदेश द्वारा नियुक्ति कर दी है।[5]

संविधान के अनुच्छेद 104 में उल्लेख है कि "यदि संसद् के किसी सदन में कोई अनुच्छेद 99 की अपेक्षाओं को अनुपालन करने से पहले, या वह जानते हुए कि मैं उसकी सदस्यता के लिए अर्हित नहीं हूं या निरर्हित कर दिया गया हूं या संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों द्वारा ऐसा करने से प्रतिषिद्ध कर दिया गया हूं, सदस्य के रूप में बैठता है या मत देता है तो वह प्रत्येक दिन के लिए, जब वह इस प्रकार बैठता है या मत देता है, पांच सौ रुपए की शास्ति का भागी होगा जो संघ को देय ऋण के रूप में वसूल की जाएगी।[6]

राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 5 में उल्लेख है। "जिस सदस्य ने संविधान के अनुच्छेद 99 के अनुसार शपथ नहीं ली है या प्रतिज्ञान नहीं किया है और हस्ताक्षर नहीं किये हैं वह राज्य सभा की किसी बैठक के प्रारंभ में अथवा बैठक के किसी ऐसे अन्य समय पर जैसा कि सभापति निदेश दे, ऐसा कर सकेगा"।

राज्य सभा के लिए निर्वाचित या नामनिर्देशित किसी सदस्य की पदावधि सरकारी राजपत्र में ऐसे निर्वाचन या नामनिर्देशन, जैसा भी मामला हो की अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से शुरू हो जाता है। यद्यपि राज्य सभा के लिए किसी सदस्य के निर्वाचन के मामले में अधिसूचना विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग) द्वारा जारी की जाती है, तथापि नामनिर्देशन के मामले में अधिसूचना गृह मंत्रालय द्वारा जारी की जाती है।

जब राज्य सभा के महासचिव को राज्य सभा के लिए द्विवार्षिक चुनाव के परिणामों को सूचित करने वाला कोई पत्र प्राप्त होता है तो उनके द्वारा सभी नवनिर्वाचित सदस्यों को परिणामों की घोषणा में उल्लिखित पत्रों पर एक बधाई पत्र भेजा जाता है। उस बधाई पत्र में नवनिर्वाचित सदस्यों को सूचित किया जाता है कि उन्हें संसद् भवन में अपने आगमन पर सूचना कार्यालय से संपर्क करना चाहिए। जब वे अपने निर्वाचन का प्रमाण-पत्र और सदस्य के रूप में उनके नाम-निर्देशन की अधिसूचना को प्रस्तुत करने के लिए पटल कार्यालय जाते हैं, तब उन्हें संविधान की आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट उस भाषा के बारे में भी सूचित करना चाहिए जिसमें संबंधित सदस्य शपथ लेगा/प्रतिज्ञान करेगा और उस पर हस्ताक्षर करेगा। संविधान की तीसरी अनुसूची में दिए गए शपथ/प्रतिज्ञान प्रपत्र की एक फोटोप्रति लिपि उसे शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने और उस पर हस्ताक्षर करने के समय पर उसे लाने के अनुरोध के साथ दी जाती है।

शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के पूर्व किसी सदस्य के अधिकार आदि

राज्य सभा के लिए निर्वाचित या नामनिर्देशित किसी सदस्य को लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के संबंधित उपबंधों[7] के अधीन अपनी पदावधि के आरंभ होने पर ही सभा

में शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने और अपना स्थान ग्रहण करने का अधिकार है। जब तक वह शपथ नहीं लेता या प्रतिज्ञान नहीं करता और उस पर हस्ताक्षर नहीं करता तब तक उसे सदस्य के रूप में सभा में बैठे, कार्यवाही में भाग लेने और मत देने का अधिकार नहीं होता। किसी सदस्य को प्रवर समिति या सभा को अन्य समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्देशित और निर्वाचित किया जा सकता है परन्तु जब तक उसने शपथ नहीं ली है या प्रतिज्ञान नहीं किया है और उस पर हस्ताक्षर नहीं किया है तथा सभा में अपना स्थान ग्रहण नहीं किया है, तब तक वह ऐसी समिति के सदस्य के रूप में कार्य नहीं कर सकता है। किन्तु अपनी पदावधि के आरंभ होने पर शपथ न लेने और प्रतिज्ञान न करने और उस पर हस्ताक्षर न करने पर भी उसे सदस्य के रूप में वेतन और भत्ते प्राप्त करने का हक होता है।[8] उसे उपसभाध्यक्षों की तालिका (पैनल) के लिए नामनिर्देशित किया जा सकता है यद्यपि वह शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने और उस पर हस्ताक्षर करने के बाद ही इस रूप में कार्य कर सकता है।

> सभापति ने उपसभाध्यक्षों की पहली तालिका के गठन के लिए तीन सदस्यों में से एक सदस्य के रूप में आचार्य नरेन्द्र देव को नामनिर्देशित किया था जिन्होंने शपथ नहीं ली थी या प्रतिज्ञान नहीं किया था। सभापति को आचार्य नरेन्द्र देव से एक समुद्री तार प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने उपसभाध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए अपनी सम्मति दी थी।[9] किन्तु उन्हें 14 जुलाई, 1952 को शपथ दिलाई गई।[10]

> राष्ट्रपति ने 11 मई, 1952 के एक आदेश के द्वारा, जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में नियुक्त किया था जिनके समक्ष सदस्य शपथ ले सकते थे या प्रतिज्ञान कर सकते थे। किन्तु श्री राव ने 13 मई, 1952 को शपथ ली।

सदस्य शपथ लिए बिना या प्रतिज्ञान किए बिना संसद् की दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में राष्ट्रपति के अभिभाषण में उपस्थित हो सकते हैं।[11]

कोई ऐसा सदस्य जिसने सदन में स्थान ग्रहण नहीं किया है, किसी प्रश्न या संकल्प की सूचना दे सकता है और उसे कार्यावलि में शामिल किया जा सकता है किन्तु जब तक वह शपथ लेकर या प्रतिज्ञान करके अपना स्थान ग्रहण नहीं कर लेता तब तक वह न तो प्रश्न पूछ सकता है और न संकल्प ही पेश कर सकता है।

> एक सदस्य ने ध्यानाकर्षण की सूचना दी थी। जब वह स्वीकृत हुई तब वह सदन की सदस्यता से निवृत्त हो चुके थे। जिस दिन सदस्य को शपथ दिलाई गई उस दिन का कार्यावलि में शामिल ध्यानाकर्षण की गृहीत मद में से उनका नाम हटा दिया गया। सदस्य द्वारा उठाए गए औचित्य प्रश्न पर सभापति ने निर्णय दिया कि संबंधित सदस्य की सदस्यता समाप्त होने पर सूचना (नोटिस) व्यपगत हो गई। जिस समय कार्यावलि के अनुसार कार्यवाही शुरू हुई उस समय उसकी कोई सूचना नहीं थी।[12]

किसी ऐसे सदस्य को, जिसने सदन में स्थान ग्रहण नहीं किया है, सदन की बैठकों से अनुपस्थित रहने के लिए अनुमति लेनी पड़ती है ताकि उसका स्थान रिक्त घोषित न किया जा सके। कोई सदस्य शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने और उस पर हस्ताक्षर करने के पूर्व सभापति को पत्र लिखकर अपनी सदस्यता से इस्तीफा दे सकता है।

नामनिर्देशित सदस्य डा. जाकिर हुसैन और श्री आर.के. करंजिया तथा निर्वाचित सदस्य श्री लाल कृष्ण आडवाणी और श्री सुंदर सिंह भंडारी को अनुपस्थित रहने की अनुमति दी गई थी यद्यपि उन्होंने शपथ नहीं ली थी या प्रतिज्ञान नहीं किया था।[13]

महाराष्ट्र से एक सदस्य श्री एम.सी. छागला ने शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के पहले ही 17 अप्रैल, 1962 को अपनी सदस्यता से इस्तीफा दे दिया था, उनकी पदावधि 3 अप्रैल, 1962 से आरंभ हुई थी।[14]

मणिपुर से एक सदस्य श्री बी.डी. बेहरिंग ने 10 अप्रैल, 1990 को, जब उनकी पदावधि आरंभ ही हुई थी, शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के पहले ही अपनी सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।[15]

कर्णाटक से चुनकर आई एक सदस्या श्रीमती लीलादेवी रेणुका प्रसाद ने शपथ लिए बिना या प्रतिज्ञान किए बिना 22 अप्रैल, 1996 को अपनी सदस्यता से इस्तीफा दे दिया था। उनका कार्यकाल 10 अप्रैल, 1996 से आरंभ हुआ था।[16]

शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने की समय-सीमा

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, किसी सदस्य के सभा के लिए निर्वाचित या नामनिर्देशित होने के बाद उसका पहला कार्य सभा में शपथ लेना या प्रतिज्ञान करना होता है। संविधान या नियमों में इसके लिए कोई समय-सीमा विहित नहीं की गई है। शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से पूर्व सभा में स्थान ग्रहण करने और मतदान करने के लिए सदस्य जिस शास्ति का भागी होता है उसका निर्धारण संविधान के अनुच्छेद 104 में किया गया है, जो पिछले पैरे में उद्धृत किया जा चुका है। अत: सदस्यों से आशा की जाती है कि वे सभा के लिए अपने निर्वाचन या नामनिर्देशन के पश्चात् सुविधानुसार यथाशीघ्र शपथ लेंगे या प्रतिज्ञान करेंगे।

श्री लाल कृष्ण आडवाणी और श्री सुंदर सिंह भंडारी 1976 में आयोजित हुए द्विवार्षिक चुनाव में निर्वाचित हुए थे। उनकी पदावधि 3 अप्रैल, 1976 को आरंभ हुई। उन्होंने 28 फरवरी, 1977 को अर्थात् सदस्य बनने के लगभग 11 महीने बाद शपथ ली। उनके द्वारा उस दिन शपथ लिए जाने के बाद एक सदस्य ने जानना चाहा कि उन्होंने इतने लंबे अर्से के बाद शपथ क्यों ली। इस पर उपसभापति ने कोई टिप्पणी नहीं की।[17] तथापि यह एकमात्र ऐसा मामला था जब किसी सदस्य की पदावधि के आरंभ होने और उसके द्वारा सभा में अपना स्थान ग्रहण करने के बीच इतना बड़ा अंतराल रहा।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि मध्य-भारत उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि अधिकार-पृच्छा के लिए आवेदन इस आधार पर स्वीकार्य नहीं है कि किसी सदस्य ने शपथ नहीं ली है और इसलिए उसे सदस्य रहने का हक नहीं है।[18]

शपथ/प्रतिज्ञान के लिए प्रक्रिया

(क) सदस्य द्वारा निर्वचन/नामनिर्देशन के संदर्भ में सूचना प्रदान किया जाना

शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने अथवा उस पर हस्ताक्षर करने से पूर्व, किसी सदस्य को निर्वाचन संचालन नियम, 1961 के नियम 85 के तहत निर्वाचन अधिकारी द्वारा प्रदान किया गया निर्वाचन प्रमाण-पत्र अथवा नामनिर्देशित सदस्य के मामले में गृह मंत्रालय द्वारा उसे सदस्य के रूप में नामनिर्देशित करने हेतु जारी की गई अधिसूचना की सत्यापित प्रति और राज्य

सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 के नियम 4 के तहत अपेक्षित प्रारूप-III भी महासचिव को प्रस्तुत करना होता है।

(ख) प्रक्रिया के संबंध में सदस्य को सूचित किया जाना

द्विवार्षिक निर्वाचन के पश्चात्, जब बड़ी संख्या में नवनिर्वाचित सदस्यों को शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने की आवश्यकता होती है, तब सदस्यों को संसदीय समाचार भाग-2 के माध्यम से शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने की प्रक्रिया के संबंध में सूचित किया जाता है ताकि वे राज्य सभा के आगामी सत्र के प्रथम दिवस पर शपथ लें/प्रतिज्ञान कर सकें।

(ग) शपथ/प्रतिज्ञान का समय

संविधान के अनुच्छेद 99 के अनुसरण में जिस सदस्य ने शपथ नहीं ली है या प्रतिज्ञान नहीं किया है और उस पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, वह सभा की बैठक के आरंभ में या बैठक के किसी ऐसे समय में, जैसाकि सभापति निदेश दें।[19] ऐसा कर सकता है। सदन की किसी बैठक की कार्यावलि की पहली मद उन सदस्यों द्वारा शपथ लेना या प्रतिज्ञान करना होता है, जिन्होंने ऐसा नहीं किया है। जब यह सूचना मिलती है कि किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए किसी निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्य को शपथ लेनी है या प्रतिज्ञान करना है और उस पर हस्ताक्षर करने हैं तब कार्यावलि में इस आशय की एक प्रविष्टि की जाती है। यह प्रथा 26 अगस्त, 1991 से आरंभ हुई है। इसके पहले कार्यावलि में शपथ या प्रतिज्ञान के शीर्षक के अंतर्गत एक सामान्य प्रविष्टि होती थी जो इस प्रकार है : "जिन सदस्यों ने संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ नहीं ली है या प्रतिज्ञान नहीं किया है वे विहित रूप में ऐसा करेंगे।" तथापि, जब प्रत्येक दो वर्ष बाद निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों को बड़ी संख्या में शपथ लेनी होती है या प्रतिज्ञान करना होता है तब कार्यावलि में उनके नामों का उल्लेख नहीं किया जाता बल्कि उसमें उपर्युक्त रूप में एक सामान्य मद ही शामिल की जाती है। यहां तक कि शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने की मद के कार्यावलि में शामिल न होने पर भी यदि यह सूचना मिलती है कि कोई सदस्य शपथ लेना चाहता है तो उसे ऐसा करने की अनुमति दी जाती है।[20] सामान्य रूप से सदन की नियमित बैठक के दौरान शपथ ली जाती है या प्रतिज्ञान किया जाता है और उस पर हस्ताक्षर होते हैं। परंतु 13 मई, 1952 और 17 अप्रैल, 1962 को नवनिर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों द्वारा शपथ लिए जाने या प्रतिज्ञान किए जाने के लिए अलग बैठकें हुई थीं।

13 मई, 1952 को सदस्यों द्वारा शपथ लिए जाने के बाद सभापति ने घोषणा की:

> "...नाम पुकारने का पहला दौर समाप्त हो गया है और वे सदस्य, जो उनके नामों के पुकारे जाने के समय आगे नहीं आए, वे कृपया मध्याह्न पश्चात् 3 बजे एकत्र होकर शपथ ले सकते हैं या प्रतिज्ञान कर सकते हैं।" तदनुसार तीन सदस्यों को शपथ दिलाई गई।[21]
>
> 3 अप्रैल, 1972 को सभापति ने घोषणा की, "चूंकि (सत्र की) सूचना के बाद समय बहुत कम था, इसलिए जो सदस्य बाद में आएंगे वे सभा के स्थगित होने से पूर्व शपथ ले सकते हैं" और तदनुसार, मध्याह्न-भोजन के बाद के समय में कार्य की दो मदों के बीच में दो सदस्यों को शपथ दिलाई गई।[22]

4 अप्रैल, 1972 और 11 अप्रैल, 1972 को भी ऐसी ही घोषणाएं की गई थीं और सभा में दो-दो सदस्यों को शपथ दिलाई गई। दो सदस्यों को 4 अप्रैल, 1972 को सभा की कार्यवाही के दौरान तथा दो सदस्यों को 11 अप्रैल, 1972 को सभा की बैठक के स्थगित होने से पूर्व शपथ दिलाई गई थी।[23]

सदस्यों को बैठक के आरंभ होने के बाद भिन्न-भिन्न समय पर शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने या उस पर हस्ताक्षर करने की अनुमति दी गई है जो इस प्रकार है : सत्र के अन्तिम दिन के अन्तिम भाग में[24] मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद,[25] प्रश्नों का समय समाप्त होने के तुरंत बाद और ध्यानाकर्षण आरंभ होने के पहले,[26] मध्याह्न-भोजन के अवकाश के लिए सभा के स्थगित होने के पूर्व[27] या उसके बाद समवेत होने पर,[28] मध्याह्न पश्चात् लगभग 4 बजे[29] दोपहर के बाद (सभा के नेता श्री एम.एस. गुरुपदस्वामी को मध्याह्न 12 बजे के बाद शपथ दिलाई गई थी),[30] 168वें सत्र के अंतिम दिन मध्याह्न पश्चात् 6 बजकर 14 मिनट पर पांच नव-नामनिर्देशित सदस्यों को शपथ दिलाई गई थी। ये सदस्य इस दिन के आरंभिक भाग में नामनिर्देशित किए गए थे।[31] 20 मार्च, 2008 को दिवस की अंतिम मद के रूप में (श्री एजाज़ अली जो बिहार से उपचुनाव में निर्वाचित हुए, ने मध्याह्न पश्चात् 6.19 पर शपथ ली)।[32] कुछ सदस्यों को मध्याह्न पश्चात् 2 बजे,[33] मध्याह्न पश्चात 1.35[34] और मध्याह्न 12 बजे[35] की शपथ लेने अथवा प्रतिज्ञान करने की अनुमति प्रदान की गई।

(घ) सदस्यों को पुकारे जाने का क्रम

द्विवार्षिक चुनाव में निर्वाचित सदस्यों को शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के लिए महासचिव द्वारा राज्य-वार बुलाया जाता है और प्रत्येक राज्य के सदस्यों के नाम अकारादि क्रम से बुलाए जाते हैं।

22 अप्रैल, 1974 को एक सदस्य ने औचित्य प्रश्न उठाकर यह सुझाव दिया कि नवनिर्वाचित सदस्यों को अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार नहीं बल्कि देवनागरी के वर्णों के अकारादि क्रम के अनुसार बुलाया जाना चाहिए। सभापति ने औचित्य के इस प्रश्न को अमान्य ठहराया।[36]

यदि शपथ लेने वाले या प्रतिज्ञान करने वाले किसी सदस्य को सभा का नेता या विपक्ष का नेता नियुक्त किया गया हो तो उसे सबसे पहले शपथ या प्रतिज्ञान के लिए बुलाया जाता है।

सभा के नेता श्री एन. गोपालास्वामी अय्यंगर को शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के लिए सबसे पहले बुलाया गया और श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव को, जिन्हें अनुच्छेद 99 के अधीन ऐसे सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया था जिसके समक्ष भी अन्य सदस्य शपथ ले सकते थे और प्रतिज्ञान कर सकते थे, श्री अय्यंगर के तत्काल बाद बुलाया गया।[37] काउंसिल के नेता श्री सी.सी. बिस्वास को शपथ लेने के लिए सबसे पहले बुलाया गया।[38] 1968 और 1981 में हुए चुनावों में क्रमश: श्री जयसुखलाल हाथी[39] और श्री प्रणब मुखर्जी के सभा के नेता निर्वाचित होने पर, उन्हें शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के लिए सबसे पहले बुलाया गया। 1981 में सदस्यों द्वारा शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने के बाद सभापति ने घोषणा की कि प्रधान मंत्री ने श्री प्रणब मुखर्जी को सभा का नेता नियुक्त किया है।[40]

24 मई, 1996 को सभापति ने सभा के नेता के रूप में श्री सिकंदर बख्त की नियुक्ति की घोषणा की। उन्होंने यह भी घोषणा की कि उन्होंने श्री एस.बी. चव्हाण को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की है। तत्पश्चात् उन्होंने श्री सिकंदर बख्त को शपथ लेने और उस पर हस्ताक्षर करने के लिए बुलाया। उनके बाद श्री एस.बी. चव्हाण को ऐसा करने के लिए कहा गया। उनके बाद उस दिन बाकी सदस्यों ने शपथ ली और उस पर हस्ताक्षर किए।[41]

23 जुलाई, 2001 को सभापति ने यह घोषणा की कि उन्होंने, डा. मनमोहन सिंह को राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की है और तदनुसार उनको सर्वप्रथम शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के लिए बुलाया गया। उसके बाद उस दिन अन्य सदस्यों ने शपथ ली या प्रतिज्ञान किया।[42]

5 जुलाई, 2004 को सभापति ने यह घोषणा की कि उन्होंने, श्री जसवंत सिंह को राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की है और तदनुसार उनको सर्वप्रथम शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के लिए बुलाया गया। उसके बाद उस दिन अन्य सदस्यों ने शपथ ली या प्रतिज्ञान किया।[43]

24 अप्रैल, 2012 को राज्य सभा में विपक्ष के नेता श्री अरुण जेटली को सर्वप्रथम शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के लिए बुलाया गया। उस दिन अन्य सदस्यों ने उनके पश्चात् ही शपथ ली/प्रतिज्ञान किया। शपथ लेने की प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात् सभापति ने यह भी घोषणा की कि उन्होंने श्री अरुण जेटली को राज्य सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की है।[44]

जो सदस्य पहले दौर में शपथ लेने के लिए उपस्थित नहीं रहते उन्हें सभा द्वारा अगले कार्य को प्रारंभ करने से पूर्व पुनः बुलाया जाता है। यदि वे पहले दिन शपथ नहीं लेते या प्रतिज्ञान नहीं करते तो वे अगले दिन या उससे किसी अगले दिन, जब सभा की बैठक हो रही हो, ऐसा कर सकते हैं।

(ङ) शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने का प्ररूप और भाषा

किसी सदस्य को विहित प्ररूप में शपथ लेनी पड़ती है या प्रतिज्ञान करना पड़ता है[45] जो सुविधा के लिए उसे पहले ही दे दिया जाता है या पटल पर रख दिया जाता है। कोई सदस्य संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित किसी भी भाषा में शपथ ले सकता है या प्रतिज्ञान कर सकता है। इस प्रयोजन के लिए विधि मंत्रालय (राजभाषा स्कंध) द्वारा अनुमोदित शपथ या प्रतिज्ञान के अनुदित पाठ का अनुसरण किया जाता है।

22 अप्रैल, 1974 को शपथ लेने के दौरान एक सदस्य ने 'इंडिया' अथवा 'भारत' शब्द के स्थान पर उर्दू शब्द 'हिंद' का प्रयोग किया। दूसरे सदस्य ने औचित्य का प्रश्न उठाते हुए कहा कि संविधान में केवल 'इंडिया' और 'भारत' शब्द का ही उल्लेख है और इसीलिए उर्दू में शपथ लेने वाले संबंधित सदस्य द्वारा 'हिंद' शब्द का उल्लेख करना उचित नहीं है। सभापति ने टिप्पणी की :

'मैं, अब ली गई समस्त शपथों का समर्थन करता हूं।'[46]

सदस्यों से अनुरोध किया जाता है कि वे जिस भाषा में शपथ लेना या प्रतिज्ञान करना चाहते हैं उसके बारे में वे पहले से ही सूचना दे दें ताकि शपथ या प्रतिज्ञान का उपयुक्त प्ररूप उन्हें उपलब्ध कराया जा सके।

यदि कोई सदस्य विहित शपथ या प्रतिज्ञान को पढ़ते समय उसमें कुछ शब्दों को छोड़ देता है किन्तु इस कारण से उसके सार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तो शपथ या प्रतिज्ञान को पढ़ा हुआ माना जाता है।

एक सदस्य प्रतिज्ञान करना चाहते थे किन्तु उन्होंने शपथ के प्ररूप का प्रयोग किया और उन्होंने प्रतिज्ञान करते समय प्ररूप में ईश्वर के उल्लेख को छोड़ दिया। एक दूसरे सदस्य ने आपत्ति की कि शपथ पूरी नहीं है। सभापति ने निर्णय दिया कि उसे पढ़ा हुआ माना जाना चाहिए।[47]

26 जुलाई, 2010 को श्री राजीव प्रताप रूड़ी ने दो बार शपथ ली क्योंकि उनके द्वारा भोजपुरी भाषा में ली गई शपथ को अमान्य घोषित कर दिया गया, क्योंकि वह भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल नहीं है। उन्होंने तब हिंदी में शपथ ली।

किसी सदस्य को यह अनुमति नहीं है कि वह विहित प्ररूप में शपथ लेते समय या प्रतिज्ञान करते समय प्ररूप में कुछ शब्द जोड़ दें या उसके अलावा और कुछ कह दे और यदि वह ऐसा करता है तो वह कार्यवाही के अभिलेख का भाग नहीं रहता।

जब एक सदस्य ने शपथ में कुछ और शब्द जोड़ दिए तब कुछ सदस्यों ने आपत्ति की कि सदस्य ने शपथ लेते हुए उसमें कुछ शब्दों को जोड़कर उसके अर्थ को बदल दिया जिसके कारण उन्हें फिर से शपथ लेनी चाहिए। इस पर सभापति ने निर्णय दिया :

"सदस्य ने विहित प्ररूप के अनुसार शपथ ली है। उसके बाद उन्होंने जो कुछ भी कहा है उसे कार्यवाही के अभिलेख में शामिल नहीं किया जाएगा।

अत: सदस्य के कथन को अभिलिखित नहीं किया गया। एक और सदस्य ने भी जब शपथ के समय कुछ और भी कहा तो उनके कथन को भी अभिलिखित नहीं किया गया।[48]

किन्तु एक बार एक सदस्य ने शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने से पहले कुछ टिप्पणियां की थीं जो वयस्क मताधिकार पर आधारित मतदान के द्वारा भारत के संविधान को अंगीकृत न किए जाने के बारे में थीं। इन टिप्पणियों को अभिलिखित किया गया था।[49]

26 जुलाई, 2010 को एक सदस्य ने शपथ लेने अथवा प्रतिज्ञान करने से पूर्व राजस्थानी भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने के संबंध में कुछ टिप्पणी की। हालांकि, उसे अभिलिखित नहीं किया गया।

(च) शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने की विधि

महासचिव द्वारा किसी सदस्य का नाम पुकारे जाने के बाद, वह अपनी जगह से महासचिव की मेज की दाहिनी ओर जाता है। इसके बाद सदस्य को शपथ या प्रतिज्ञान, जैसी भी स्थिति हो, के प्ररूप की एक प्रति दी जाती है। यह प्ररूप उस भाषा में होता है जिसमें सदस्य शपथ लेना या प्रतिज्ञान करना चाहता है। सदस्य सभापति के सामने खड़ा होकर शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है और उसके बाद सभापति के मंच पर चढ़ता है, उनसे हाथ मिलाता है या उनका अभिवादन करता है और उसके बाद सभापीठ के पीछे से गुजरते हुए मंच से उतरकर महासचिव की मेज की दूसरी ओर जाता है जहां वह 'सदस्यों की नामावलि' पर हस्ताक्षर करता है।[50] सदस्यों को एक संसदीय समाचार द्वारा भी इस प्रक्रिया की सूचना दी जाती है।[51] 13 मई, 1952 को जब राज्य सभा की पहली बैठक हुई थी तब सभापति ने सभा में इस प्रक्रिया को समझाया था।[52] 'नामावलि' पर हस्ताक्षर करने के बाद सदस्य सभा में अपना स्थान ग्रहण करता/करती है।[53] इससे उसे सर्वप्रथम अवसर पर सभा की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि उसने किसी प्रश्न की सूचना दी है और उसे उस सदस्य द्वारा शपथ लेने या

प्रतिज्ञान करने के पहले स्वीकृत कर लिया जाता है तो सदस्य को प्रश्नों के समय के दौरान प्रश्न या अनुपूरक प्रश्न पूछने आदि का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

यदि कोई सदस्य सदन में सभापति के आसन के सामने के स्थान पर खड़े होकर शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने में शारीरिक रूप से असमर्थ है तो सभापति ऐसे सदस्य को अपने स्थान पर बैठकर शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने की अनुमति दे सकते हैं। ऐसी स्थिति में सदस्य द्वारा शपथ लिए जाने या प्रतिज्ञान किए जाने के बाद, पटल अधिकारी सदस्य के हस्ताक्षर के लिए 'सदस्यों की नामावलि' लेकर उसके पास जाता है।

> श्री त्रिदिब चौधरी ने, जो सभापटल के निकट जाने में शारीरिक रूप से असमर्थ थे, 24 अगस्त, 1993 को सामने की एक बेंच पर बैठकर प्रतिज्ञान किया और एक पटल अधिकारी उनके पास उनके हस्ताक्षर के लिए 'सदस्यों की नामावलि' लेकर गया।[54]

> श्री जॉर्ज फर्नांडीस, जो सभापटल तक जाने में शारीरिक रूप से असमर्थ थे, ने 4 अगस्त, 2009 को अपने स्थान से ही शपथ ली और पटल अधिकारी सदस्य के हस्ताक्षर के लिए 'सदस्यों की नामावलि' उनके पास ले गए। इसी तरह, श्री पंकज वोरा ने चिकित्सीय आधार पर 27 दिसंबर, 2011 को सीट सं. 62 से शपथ ली। पटल अधिकारी उनके हस्ताक्षर के लिए 'सदस्यों की नामावलि' उनके पास ले गए।

सभापति के कक्ष में शपथ/प्रतिज्ञान

जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है शपथ या प्रतिज्ञान और उस पर हस्ताक्षर सभा की नियमित बैठक में होते हैं। तथापि, 1994 में इससे भिन्न प्रथा का अनुसरण किया गया। राज्य सभा का 170वां सत्र (बजट सत्र) 18 मार्च, 1994 को स्थगित हुआ और उसे 18 अप्रैल, 1994 को पुन: समवेत होना था। सत्र के मध्यावकाश के दौरान विभिन्न मंत्रालयों की अनुदान मांगों पर विचार करने के लिए विभाग-संबंधित स्थायी समितियों की बैठकें हो रही थीं। उसी वर्ष फरवरी-मार्च में राज्य सभा के लिए द्विवार्षिक चुनाव हुए थे। इसमें निर्वाचित सदस्यों की पदावधि 3 अप्रैल, 1994 को आरंभ होनी थी। जब तक ये सदस्य शपथ नहीं लेते या प्रतिज्ञान नहीं करते और उस पर हस्ताक्षर नहीं करते तब तक वे इन समितियों की बैठकों में भाग नहीं ले सकते थे जिनके लिए उन्हें नामनिर्देशित किया जा सकता था। अत: यह प्रस्ताव रखा गया कि राज्य सभा के नवनिर्वाचित सदस्य सभापति के कक्ष में शपथ ले सकते हैं या प्रतिज्ञान कर सकते हैं ताकि उसके बाद वे विभाग-संबंधित स्थायी समितियों की बैठकों में भाग ले सकें।

यह प्रस्ताव राज्य सभा की सामान्य प्रयोजन समिति के समक्ष रखा गया। समिति ने विस्तृत विचार-विमर्श के बाद यह सिफारिश की कि नवनिर्वाचित सदस्य 4 अप्रैल, 1994 को सभापति के समक्ष उनके कक्ष में शपथ ले सकते हैं या प्रतिज्ञान कर सकते हैं और उस पर हस्ताक्षर कर सकते हैं। सदस्यों को अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार 4 अप्रैल, 1994 को सभापति के कक्ष में या 18 अप्रैल, 1994 को आरंभ होने वाली राज्य सभा की नियमित बैठक में शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने और उस पर हस्ताक्षर करने का विकल्प दिया गया था।[55]

तदनुसार संबंधित सदस्यों को और सदस्यों के भिन्न-भिन्न दलों के नेताओं को इस संबंध में आवश्यक सूचना भेजी गई।[56] इस प्रयोजन के लिए एक संसदीय समाचार भी जारी किया गया।[57] तदनुसार, 57 नवनिर्वाचित सदस्यों में से 46 सदस्यों ने सभापति के कक्ष में सभापति के समक्ष शपथ ली या प्रतिज्ञान किया और उस पर हस्ताक्षर किए।[58] इस अवसर पर जो प्रक्रिया अपनाई गई वह वैसी ही थी जैसाकि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है अर्थात् महासचिव ने राज्य-वार और प्रत्येक राज्य के सदस्यों को उनका नाम लेकर बुलाया। उन्होंने अपनी-अपनी पसंद की भाषा में शपथ ली या प्रतिज्ञान किया, सभापति से हाथ मिलाया और सभापति के पटल पर 'सदस्यों की नामावलि' पर हस्ताक्षर किए। इस अवसर पर कुछ दलों के नेता भी उपस्थित थे। यह पहला अवसर था जब सभापति के कक्ष में सदस्यों ने शपथ ली या प्रतिज्ञान किया। शपथ ग्रहण समारोह की कार्यवाही को दूरदर्शन पर दिखाया गया और इस संबंध में एक प्रेस विज्ञप्ति भी जारी की गई थी। 18 अप्रैल, 1994 को जब सभा सत्रावकाश के बाद पुन: समवेत हुई तब बाकी नवनिर्वाचित सदस्यों ने शपथ ली या प्रतिज्ञान किया और उस पर हस्ताक्षर किए।

इसके अतिरिक्त, केरल राज्य से राज्य सभा के द्विवार्षिक चुनावों में पुन: निर्वाचित हुए एक सदस्य ने 5 जुलाई, 1994 को (मध्याह्न-पश्चात् 5 बजे) सभापति के समक्ष प्रतिज्ञान किया।[59] कर्णाटक से राज्य सभा के लिए निर्वाचित होने पर प्रधान मंत्री श्री एच.डी. देवेगौडा ने 26 सितम्बर, 1996 को (मध्याह्न पूर्व 8.30 बजे) शपथ ली। इन अवसरों पर कुछ सदस्य उपस्थित थे जिन्हें दूरदर्शन पर प्रसारित किया गया और प्रत्येक अवसर पर प्रेस विज्ञप्ति भी जारी की गई।[60]

1997 में आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु तथा संघ राज्य क्षेत्र पुडुचेरी से निर्वाचित पांच सदस्यों ने राज्य सभा के सभापति के समक्ष उनके कक्ष में शपथ ली अथवा प्रतिज्ञान किया और उस पर हस्ताक्षर किए। इसी प्रकार नामनिर्देशित सदस्य श्रीमती शबाना आज़मी ने 27 अक्तूबर, 1997 को सभापति के कक्ष में प्रतिज्ञान किया और उस पर हस्ताक्षर किए।[61]

3 अप्रैल, 2002 को महाराष्ट्र, ओडिशा, तमिलनाडु तथा पश्चिमी बंगाल राज्यों से निर्वाचित तेरह सदस्यों ने सभापति के कक्ष में शपथ ली या प्रतिज्ञान किया तथा उस पर हस्ताक्षर किए।[62] 30 मई, 2002 को अरुणाचल प्रदेश, पंजाब, त्रिपुरा और उत्तर प्रदेश से निर्वाचित चार सदस्यों ने सभापति के कक्ष में शपथ ली या प्रतिज्ञान किया गया तथा उस पर हस्ताक्षर किए।[63]

13 जून, 2002[64] और 8 जुलाई, 2002[65] को झारखंड राज्य के दो सदस्यों ने सभापति के कक्ष में शपथ ली और प्रतिज्ञान किया।

18 सितम्बर, 2003 को दो नामनिर्देशित सदस्य, श्री दारा सिंह और डा. बिमल जालान ने सभापति के समक्ष उनके कक्ष में शपथ ली और हस्ताक्षर किए। दो और नामनिर्देशित सदस्यों, श्री विद्यानिवास मिश्र और श्रीमती हेमा मालिनी ने 16 अक्तूबर, 2003 को दो निर्वाचित सदस्यों, श्रीमती कमला मनहर और श्री वी. नारायणसामी के साथ सभापति के समक्ष उनके

कक्ष में शपथ ली और उस पर हस्ताक्षर किए। एक नामनिर्देशित सदस्य डा. के. कस्तूरीरंगन ने सभापति के कक्ष में उनके समक्ष 20 नवंबर, 2003 को शपथ ली और उस पर हस्ताक्षर किए।[66]

प्रधान मंत्री डा. मनमोहन सिंह और श्री सचिन रमेश तेंदुलकर ने क्रमश: 15 जून, 2007 और 4 जून, 2012 को सभापति के कक्ष में शपथ ली।[67]

अब एक परिपाटी बन गई है जिसके अंतर्गत जब राज्य सभा का सत्र नहीं चल रहा हो, तो सभापति की सुविधा के अनुसार नवनिर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्य संसद में सभापति के कक्ष में शपथ लेते हैं/प्रतिज्ञान करते हैं। यदि सभापति द्वारा अनुमति प्रदान कर दी जाती है, तो पटल कार्यालय संबंधित सदस्य/सदस्यों, उपसभापति, सदन के नेता/प्रधान मंत्री विपक्ष के नेता, संबंधित दलों के नेता, संसदीय कार्य मंत्रालय के प्रभारी मंत्री/मंत्रियों को शपथ ग्रहण समारोह के बारे में सूचित करता है। पटल कार्यालय द्वारा इस सचिवालय की संबंधित शाखाओं/अनुभागों से इस समारोह के लिए आवश्यक प्रबंध करने का अनुरोध भी किया जाता है। इस समारोह के उपरांत प्रेस विज्ञप्ति जारी की जाती है। इस अवसर पर संसदीय समाचार भाग-2 भी जारी किया जाता है।

अवसर की गंभीरता

सदस्यों द्वारा शपथ लेना या प्रतिज्ञान करना एक गंभीर अवसर है। आशा की जाती है कि सदस्यगण ऐसा कुछ नहीं करेंगे जिससे इस अवसर का गंभीर वातावरण खराब होता हो या उसमें अशांति उत्पन्न होती हो। किन्तु कुछ ऐसे अवसर आए हैं जब नवनिर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों द्वारा शपथ लेने या प्रतिज्ञान करते समय सदस्यों ने टिप्पणियां की हैं। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं:

> जब एक नवनिर्वाचित सदस्य शपथ लेने वाले थे तब एक अन्य सदस्य ने औचित्य प्रश्न उठाते हुए यह पूछा कि ऐसे व्यक्तियों को शपथ लेने की अनुमति कैसे दी जा सकती है जिन्होंने चुनावों में संविधान का उल्लंघन किया है, धन का इस्तेमाल किया है, प्रतिकूल मतदान किया है और रिश्वत दी है। सभापति ने निर्णय दिया कि संबंधित सदस्यों का निर्वाचन विधिवत् अधिसूचित हुआ है और उन्हें शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने का हक है। इसके पश्चात् औचित्य प्रश्न उठाने वाले सदस्य ने सभा से बहिर्गमन किया।[68]
>
> एक बार एक ऐसे सदस्य राज्य सभा के लिए निर्वाचित होने पर शपथ लेने वाले थे जिन्हें उच्च न्यायालय ने विधान सभा के आम चुनावों में भ्रष्ट आचरण के कारण सदस्य होने के लिए अयोग्य ठहराया था। इसी समय यह औचित्य प्रश्न उठाया गया कि उच्चतम न्यायालय के स्थगन आदेश के कारण उक्त सदस्य को सभा की कार्यवाही में भाग नहीं लेना चाहिए, उन्हें शपथ लेने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। उपसभापति ने औचित्य प्रश्न को अस्वीकार करते हुए उच्चतम न्यायालय को निम्नलिखित निर्णय पढ़कर सुनाया :
>
>> "याची/अपीलार्थी को इस शर्त पर राज्य सभा की सदस्यता की शपथ लेने की अनुमति दी जाती है कि याची/अपीलार्थी केवल सदस्यता के लिए अयोग्य (निरर्हित) होने से बचने के लिए राज्य सभा की कार्यवाही के समय उपस्थित रहेगा और अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए रजिस्टर में हस्ताक्षर करेगा, किंतु वह कार्यवाही या मतदान में भाग नहीं लेगा और कोई वेतन और भत्ता नहीं लेगा..."

इसके पश्चात् सदस्य को शपथ लेने की अनुमति दी गई।[69]

एक बार जब दो सदस्य शपथ लेने वाले थे और एक अन्य सदस्य कुछ कहना चाहते थे तब सभापति ने उसकी अनुमति नहीं दी और आदेश दिया कि सदस्य ने जो कुछ कहा है उसे अभिलिखित न किया जाए।[70]

एक अन्य अवसर पर जब एक नामनिर्देशित सदस्य शपथ लेने वाले थे तब विपक्ष के नेता ने कुछ टिप्पणियां कीं और अपने दल के सदस्यों के साथ बहिर्गमन किया।[71] एक बार जब एक अन्य सदस्य शपथ लेने ही वाले थे, विपक्ष के नेता ने कुछ टिप्पणियां कीं और इसके बाद वे सदन से उठकर बाहर चले गए।[72]

कुछ अवसरों पर शपथ/प्रतिज्ञान की कार्यवाही में कुछ सदस्यों द्वारा ऐसी टिप्पणियां करके व्यवधान डाला गया जो शपथ/प्रतिज्ञान के संबंध में नहीं थीं और इसके कारण शपथ या प्रतिज्ञान में विलंब हुआ। उदाहरण के लिए एक बार इसके पहले कि एक सदस्य को प्रतिज्ञान के लिए बुलाया जा सके, कुछ सदस्यों ने असम में हुई हत्याओं के बारे में मुद्दे उठाए। सभापीठ ने इन हत्याओं पर खेद प्रकट किया, सभा ने मौन धारण किया और उसके बाद ही उक्त सदस्य प्रतिज्ञान कर सके।[73] ऐसे दो अवसर आए जब सभापति ने शपथ या प्रतिज्ञान की कार्यवाही को बीच में रोककर विशेष बॉक्स में बैठे हुए अंतर-संसदीय परिषद् के अध्यक्ष[74] और कनाडा के एक संसदीय शिष्टमंडल के सदस्यों[75] का स्वागत किया।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. अनुच्छेद 99
2. शपथ के प्ररूप को संविधान (सोलहवां संशोधन) अधिनियम, 1963 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जिससे उसमें अन्य बातों के साथ "मैं भारत की प्रभुता और अखंडता अक्षुण्ण रखूंगा" शब्द सम्मिलित हुए
3. संसदीय समाचार (1), 13.5.1952
4. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.4.1956, कालम 1
5. -वही- 6.8.1962, कालम 1-3
6. अनुच्छेद 104
7. धारा 154 और 155
8. संसद्-सदस्यों का वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 2(ग)(ख)(i) और (iii) के साथ पठित धारा 3
9. काउंसिल ऑफ स्टेट्स डिबेट्स, 16.5.1952, कालम 45-46
10. -वही- 14.7.1952, कालम 991
11. संसदीय समाचार (2), 14.5.1952, 12.2.1954 और 22.5.1996
12. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.4.1970, कालम 4-15
13. काउंसिल ऑफ स्टेट्स डिबेट्स, 14.7.1952, कालम 993; राज्य सभा वाद-विवाद, 22.2.1991, कालम 166-67; 18.5.1976, कालम 81-82; 24.8.1976, कालम 104; और 12.11.1976, कालम 2
14. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.4.1962, कालम 91
15. -वही- 10.4.1990, कालम 4
16. संसदीय समाचार (1), 24.5.1996
17. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.2.1997, कालम 3
18. आनंद बनाम राम सहाय, ए.आई.आर. 1952, म.भा. 31
19. नियम 5
20. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.3.1983, कालम 1; 3.9.1991 और 16.12.2013

21. काउंसिल ऑफ स्टेट्स, वाद-विवाद, 13.5.1952, कालम 8
22. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.4.1972, कालम 1 और 185
23. -वही- 4.4.1972, कालम 2 और 166; 11.4.1972, कालम 1 और 182
24. -वही- 31.8.1968, कालम 5719
25. -वही- 14.8.1969, कालम 4198
26. -वही- 31.3.1970, कालम 111
27. -वही- 3.4.1970, कालम 15, 50; और 22.4.1970, कालम 103
28. -वही- 4.4.1970, कालम 68
29. -वही- 14.5.1986, कालम 138
30. -वही- 10.4.1990, कालम 24
31. -वही- 27.8.1993, कालम 544
32. संसदीय समाचार (1), 20.3.2008
33. -वही- 2.7.2009
34. -वही- 4.8.2009
35. -वही- 6.8.2009
36. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.4.1974, कालम 4-6
37. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 13.5.1952, कालम 2
38. -वही- 19.4.1954, कालम 3303
39. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.4.1968, कालम 1
40. -वही- 17.8.1981, कालम 1-2
41. संसदीय समाचार (1), 24.5.1996
42. -वही- 23.7.2001
43. -वही- 5.7.2004
44. -वही- 24.4.2012
45. अनुच्छेद 99 और तीसरी अनुसूची
46. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.4.1976, कालम 4-6
47. -वही- 18.7.1986, कालम 1
48. -वही- 25.4.1988, कालम 1-9
49. -वही- 17.4.1962, कालम 3
50. हैण्डबुक, 2002 पैरा 4(iv)
51. संसदीय समाचार (2), 9.4.1990
52. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 13.5.1952, कालम 1-2
53. नियम 6
54. स्टेट्समैन, नई दिल्ली, 25.8.1993
55. सामान्य प्रयोजन समिति का कार्यवृत्त, 17.3.1994
56. फा.सं. आर.एस. 6/94-टी
57. संसदीय समाचार (2), 21.3.1994
58. -वही- 4.4.1994
59. -वही- 5.7.1994 और फा.सं. आर.एस. 6/94-टी
60. -वही- 26.9.1996 और फा.सं. आर.एस. 6/96-टी
61. -वही- 15.10.1997 और 27.10.1997
62. -वही- 3.4.2002
63. -वही- 30.5.2002
64. -वही- 13.6.2002
65. -वही- 8.7.2002

66. फा.सं. आर.एस. 6/2003-टी
67. संसदीय समाचार (2), 15.6.2007 और 4.6.2012
68. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.4.1968, कालम 1-2
69. -वही- 1.8.1968, कालम 1565-71
70. -वही- 4.8.1986, कालम 1
71. -वही- 29.5.1990, कालम 1-2
72. -वही- 7.8.1990, कालम 1-2
73. -वही- 21.2.1983, कालम 2
74. -वही- 26.4.1982, कालम 3
75. -वही- 23.4.1984, कालम 2-3

अध्याय-13

सदन में सीटों की व्यवस्था

बैठने की क्षमता

राज्य सभा का सदन अर्द्ध-गोलाकार (या घोड़े की नाल के आकार का) है और उसमें 250 सदस्यों के बैठने की क्षमता है। संविधान को अंगीकार किए जाने से पूर्व यह प्रान्तों और काउंसिल ऑफ स्टेट का सदन था। मूलत: सदन में केवल 82 सदस्यों के बैठने की क्षमता थी। नए संविधान के अधीन निर्धारित 216 सदस्यों के बैठने की व्यवस्था करने के लिए सदन के रूप को बदला गया। 1957 में जब सदन में स्वचालित मतांकन उपकरण (ए.वी.आर.) लगाया गया था तब बैठने की क्षमता बढ़ाकर 250 सदस्यों के लिए कर दी गई थी जो 1956 में यथासंशोधित संविधान के अधीन उपबंधित अधिकतम सदस्य-संख्या है।[1] सदन छह खंडों में (या कहिए कि किसी केक के कटे हुए टुकड़ों में) विभक्त है और प्रत्येक खंड में सात पंक्तियां हैं। पहले और छठे खंडों में 23-23 सीटें होती हैं और बाकी खंडों (2 से 5) में 51-51 सीटें होती हैं। सीटों पर खंड-वार क्रमिक रूप से संख्या अंकित की गई है और संख्याओं के अंक पहले खंड में सभापीठ की दाहिनी ओर पहली सीट से शुरू होते हैं और दूसरे खंड में तथा अन्य खंडों में भी इसी प्रकार से अंक दिए गए हैं। 1957 तक सीटों को अर्द्धवृत्त (खण्ड-वार के बजाय) की पंक्तियों के अनुसार संख्यांकित किया जाता था और सीटों के अंक सभापीठ की दाहिनी ओर से शुरू होते थे। सदन में स्वचालित मतांकन प्रणाली खंड-वार जुड़ी हुई है और उसके सूचक बोर्ड के कार्यकरण के लिए इस व्यवस्था को बदला गया था।[2] निम्नांकित चित्र सदन के सामान्य रेखा चित्र और बैठने की व्यवस्था का प्रतिबिंब है।

सीटों की व्यवस्था

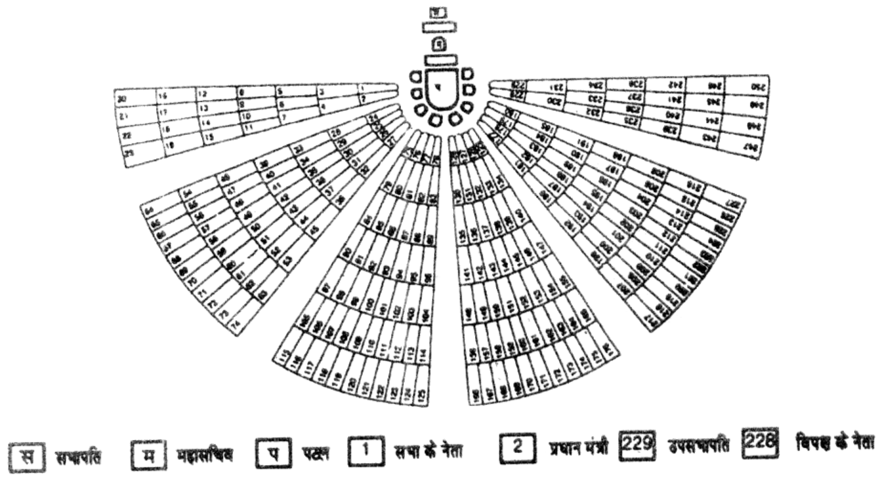

पीठासीन अधिकारी की कुर्सी

राज्य सभा के सभापति की कुर्सी सदन के ठीक मध्य में अर्द्धगोलाकार स्थान के दो छोरों को जोड़ने वाले ऊंचे स्थान पर रखी हुई है। सभापति की कुर्सी के काष्ठ खंड पर एक उत्कीर्ण लेख "हेवन्स लाइट अवर गाइड" ("ईश्वरीय प्रकाश हमारा मार्गदर्शक है"— बाइबल की प्रार्थना के शब्द) विद्यमान है। सदन के ऊपर तथा सभापति की कुर्सी के सामने काष्ठशिल्प पर राज्य सभा के प्रथम सभापति स्व. डा. एस. राधाकृष्णन् का चित्र टंगा हुआ है। सदन के "पिट" में कुर्सी के ठीक नीचे, महासचिव और अन्य अधिकारियों तथा अधिकृत वृत्तलेखकों, जो सभापटल के कार्य में सहायता करते हैं, की सीट होती है।

पीठासीन अधिकारी की कुर्सी के दाहिनी ओर अधिकारी दीर्घा है जो उन अधिकारियों के प्रयोग के लिये है जिन्हें सभा के कार्य के संबंध में मंत्रियों की सहायता के लिए बैठना होता है। बायीं ओर एक विशेष कक्ष है जो विदेशों से आए संसदीय शिष्टमंडल के सदस्यों जैसे उन विशेष अतिथियों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों के लिए आरक्षित है जिन्हें सभापति, स्वविवेक से, सभा की कार्यवाही को देखने के लिए स्थान देना चाहेंगे।

सदन के प्रथम तल पर विभिन्न दीर्घाएं (सार्वजनिक दीर्घा, विशिष्ट दर्शक दीर्घा, राजनयिक दीर्घा, पत्रकार दीर्घा और लोक सभा सदस्य दीर्घा) हैं। फर्श पर बिछे कालीनों, गद्दीदार कुर्सियों और साज-सामान का मैरून रंग राज्य सभा के सदन और इसकी लॉबियों को लोक सभा के हरे रंग से भिन्न करता है।

बैठने की सामान्य व्यवस्था

सदस्य ऐसे क्रम में बैठते हैं जैसा सभापति द्वारा निर्धारित किया जाए।[3] सुस्थापित परंपरा के अनुसार सत्तारूढ़ दल के सदस्यों को सभापीठ की दाहिनी ओर सीटें दी जाती हैं और विपक्षी दलों के सदस्यों को सभापीठ के बाईं ओर सीटें दी जाती हैं।

सभापीठ की दाहिनी ओर की पहली सीट सभा के नेता के लिए और दूसरी सीट प्रधान मंत्री के लिए आरक्षित है। सभापीठ की बाईं ओर की पहली सीट उपसभापति के लिए आरक्षित होती है और उससे अगली सीट विपक्ष के नेता के लिए आरक्षित होती है। जब तक विपक्ष का कोई मान्य नेता नहीं था तब तक यह सीट विपक्ष के उस समूह (ग्रुप) के नेता को आवंटित की जाती रही जिसके साथ सदस्य सर्वाधिक संख्या में संबद्ध थे।[4]

> 1952 में इस संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं बनाया गया था कि सभा में सीटों का आवंटन किस प्रकार किया जाएगा। सुविधा की दृष्टि से और इस दृष्टि से भी कि सभा की कार्यवाही के दौरान विशिष्ट समूहों के सदस्य एक दूसरे से सलाह करके कार्य कर सकें, इन समूहों के लिए कतिपय सीटें आवंटित की गईं थीं। साथ ही दीर्घकाल तक सार्वजनिक जीवन में रहे कुछ लब्ध-प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भी उनकी व्यक्तिगत हैसियत से कुछ सीटें आवंटित की गईं थीं, चाहे वे सदस्य किसी विशिष्ट दल का प्रतिनिधित्व करते थे या नहीं करते थे।[5] विपक्ष के कुछ सदस्यों को भी सीटें आवंटित की गई थीं[6] जो यथासंभव सामने की पंक्ति में होती थी।[7] ये सीटें इन सदस्यों के नाम पर आवंटित की जाती थीं और ऐसी प्रत्येक सीट पर एक कार्ड लगा होता था जिस पर सदस्य के नाम का उल्लेख होता था। 1957 के मानसून सत्र से सदस्यों की अपनी-अपनी सीटों पर नाम का लेबल लगाने की प्रणाली बदल दी गई और तब से सदस्यों की सीटों पर उन समूहों के नामों को दर्शाने वाले लेबल लगाए जा रहे थे जिन्हें सीटें आवंटित

की गई थीं। विपक्ष के समूहों के बाकी सदस्यों को यथासंभव अपने नेताओं की सीटों से ठीक पीछे की पंक्ति में सीटें दी गईं थीं।[8] जहां तक सत्तारूढ़ दल के सदस्यों का और ऐसे अन्य सदस्यों का संबंध है जिन्हें विशिष्ट रूप से सीटें आवंटित नहीं की गई थीं, वे बाकी सीटों पर बैठते थे और समूचे सत्र में ऐसा ही करते थे।[9]

1957 में स्वचालित मतांकन उपकरण के लगाए जाने के बाद सीटों पर खंड-वार संख्या अंकित करके संबंधित दल/समूह (ग्रुप) के नेताओं से (कांग्रेस के मामले में उप मुख्य सचेतक से) परामर्श करके उन्हें सत्तारूढ़ दल और विपक्ष के तीन समूहों को आवंटित किया गया (कम्युनिस्ट-11, डेमोक्रेटिक ग्रुप-8 और पी.एस.पी. ग्रुप-3) और उसके अलावा उन्हें सभापति के निदेशों के अनुसार निर्दलीय तथा अन्य सदस्यों को भी आवंटित किया गया।[10]

1957 में विभाजन में मतों की गणना के लिए जो स्वचालित मतांकन उपकरण लगाया गया था उसके कारण यह आवश्यक हो गया था कि प्रत्येक सदस्य को एक निश्चित सीट आवंटित की जाए जिस पर उसे बैठना होगा और जिसकी संख्या सभा में उसकी विभाजन-संख्या होगी। तब से प्रत्येक सदस्य को एक निश्चित सीट आवंटित की जाती है जहां से उसे सभापति को संबोधित करना होता है[11] हालांकि सभापति की अनुमति से वह दूसरे स्थान से भी बोल सकता है। बहुधा सभापति ऐसे सदस्यों को, जिनकी आवाज अपनी सीटों पर से बोलते हुए साफ सुनाई नहीं देती, सामने आकर बोलने या उस सीट से बोलने की अनुमति देते हैं जहां से उनकी आवाज साफ सुनाई पड़ सके और उन्हें संबोधित कर सकें। किन्तु यह सुविधा सिर्फ सभापति की अनुमति से दी जा सकती है।[12]

एक अवसर पर, सभापति ने यह समुक्ति की थी कि पीठासीन अधिकारी द्वारा किसी सदस्य को अपने स्थान से इतर स्थान से बोलने की अनुमति दी जा सकती है। 24 जुलाई, 1974 को उपसभापति ने श्री एस.ए. हाशमी को माइक के पास आकर बोलने का आग्रह किया था। जब श्री राज नारायण ने यह कहते हुए कि वह उस सदस्य की सीट नहीं है और अपनी सीट से उठकर माइक के निकट आकर उक्त सदस्य ने सभा का अपमान किया है, औचित्य का प्रश्न उठाया था तो उपसभापति ने यह समुक्ति दी थी :

> "मैंने श्री हाशमी को उस स्थान से बोलने की अनुमति इसलिए दी है क्योंकि वृत्तलेखक उन्हें उनके स्थान से बोलते हुए नहीं सुन पा रहे हैं। इसमें कोई औचित्य का प्रश्न नहीं है। अनेक अन्य अवसरों पर लोगों को अपनी सीटों से उठकर माइक के निकट आने की अनुमति दी गई है और अनेक अवसरों पर इस सभा के विपक्ष एवं सत्ताधारी दोनों ही दलों के सदस्यों को माइक के निकट आकर बोलने की अनुमति दी गई है ताकि वृत्तलेखक उन्हें साफ-साफ सुन कर वृत्तलेखन कर सकें। भले ही कोई सीट उस सदस्य विशेष की सीट न हो, तो भी उस सदस्य को उस सीट से बोलने की अनुमति देना सभापति का विवेकाधिकार होता है। कई बार कुछ सदस्यों को बैठकर भी बोलने की अनुमति दी गई है। अतः इसमें औचित्य का कोई प्रश्न नहीं है।"

विभाजन के समय सदस्य को एक हाथ से अपनी सीट पर लगे हुए वोट एक्टिवेशन बटन को दबाकर अपने मत को अंकित करना होता है और दूसरे हाथ से सीट के सामने वोटिंग कन्सोल पर मौजूद उसकी पसंद के वोटिंग बटन को दबाना होता है अन्यथा पीठासीन अधिकारी की सीट के दोनों ओर अवस्थित वैयक्तिक परिणाम डिस्प्ले पैनल और मशीन कक्ष में लगाए गए मुख्य बोर्ड पर उसके मतदान की सही स्थिति नहीं आएगी। सदस्य को सीट का आवंटन होने के बाद उसे एक पत्र द्वारा उसकी विभाजन-संख्या की

सूचना दी जाती है और उससे अनुरोध किया जाता है कि वह उस संख्या को हमेशा याद रखे और महासचिव को संबंधित प्रत्येक सूचना/संसूचना में उसका हवाला दे। इस प्रयोजन के लिए संसदीय समाचार भाग-2 में एक पैरा भी जारी किया जाता है।[13]

सीटों का आवंटन

मान्यता-प्राप्त दलों और समूहों (ग्रुपों) को उनकी अपनी-अपनी संख्या और सभा में उपलब्ध सीटों की कुल संख्या के अनुपात से सीटों के खंडों का आवंटन किया जाता है। सीटों के खंडों के आवंटन की दृष्टि से मान्यता-प्राप्त दल/समूह वे होते हैं जिनकी न्यूनतम सदस्य संख्या पांच हो।[14] सीटों के खंड में प्रत्येक सदस्य के लिए सीट का आवंटन संबंधित दल या समूह के नेता/सचेतक से परामर्श करके किया जाता है। छोटे या मान्यताविहीन समूहों के सदस्यों, निर्दलीय सदस्यों या उन नामनिर्देशित सदस्यों को जो किसी दल/समूह के नहीं हैं, सीटों का आवंटन सभापति द्वारा किया जाता है। ऐसे समूहों को जो सभा में कार्य करने के प्रयोजन से कोई संघ बना लेते हैं या एक साथ बैठने की इच्छा व्यक्त करते हैं, यथासंभव साथ-साथ लगी हुई सीटें आवंटित की जाती हैं।

> 1983 में, राज्य सभा के विभिन्न राजनीतिक दलों के बाईस सदस्यों ने सभापति से निवेदन किया कि उनके संघ को यूनाइटेड एसोसिएशन ऑफ मेम्बर्स (यू.ए.एम.) के रूप में मान्यता दी जाए। सभापति ने सभा में कार्यकरण के सीमित प्रयोजन के लिए अर्थात् वाद-विवाद में भाग लेने के लिए समय के आवंटन और सदन में साथ-साथ लगी हुई सीटों के आवंटन के लिए इस संघ को मान्यता प्रदान की।[15]
>
> 1990 में राज्य सभा के विभिन्न राजनीतिक दलों के छह सदस्यों ने राज्य सभा में आपसी तालमेल और समय को आपस में बांटने के प्रयोजन के लिए एक समूह (ग्रुप) के रूप में कार्य करने का निर्णय किया। सभापति ने उसे एक ऐसे ग्रुप के रूप में मान्यता दी जो यूनाइटेड पार्लियामेंटरी ग्रुप (यू.पी.जी) नाम से कार्य करेगा। इस ग्रुप की सदस्य-संख्या समय-समय पर बदलती रही और कार्यकाल के समाप्त होने पर उन सदस्यों की सेवानिवृत्ति के पश्चात ग्रुप का अस्तित्व समाप्त हो गया।[16]

जैसाकि कहा जा चुका है, उपसभापति को सभापीठ के बाईं ओर की पहली पंक्ति में पहली सीट आवंटित होती है। विपक्ष के नेता को उपसभापति की सीट से अगली सीट आवंटित की जाती है।

> 1977 तक राज्य सभा में विपक्ष के नेता की कोई कानूनी हैसियत नहीं थी। कम्युनिस्ट पार्टी 1964 में अपने विभाजन तक एक मान्यता-प्राप्त ग्रुप थी और उसके नेता को उपसभापति की सीट से अगली सीट आवंटित की गई थी और उस दल के अन्य सदस्यों को उसके नेता की सीट के पीछे साथ-साथ लगी हुई सीटें आवंटित की गईं थीं। बाद में सदस्य-संख्या में कमी हो जाने के कारण उसकी मान्यता समाप्त हो गई और उसका स्थान भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) ने ले लिया। नवम्बर, 1969 में कांग्रेस पार्टी के विभाजन के बाद कुछ सदस्यों ने कांग्रेस (ओ) नामक नई पार्टी बनाई। उसे पहली बार विपक्ष की पार्टी के रूप में मान्यता मिली और उसके नेता को उपसभापति की सीट से अगली सीट आवंटित की गई।[17]

जो सदस्य सभा के नेता रहे हैं उन्हें सभापीठ के सामने वाली पहली पंक्ति में सीटें आवंटित की जाती हैं। सभापीठ की दाईं ओर के तीनों खंडों की पहली पंक्ति सामान्यत: उन मंत्रियों के लिए आरक्षित होती हैं जो राज्य सभा के सदस्य होते हैं। उन्हें सभा के नेता या संसदीय कार्य मंत्री के परामर्श से सीटें आवंटित की जाती हैं। जो मंत्री राज्य सभा

के सदस्य नहीं होते उन्हें निश्चित सीटें आवंटित नहीं की जातीं। यदि इन पंक्तियों में कोई सीटें रिक्त रहती हैं तो ऐसे मंत्री उनमें बैठ सकते हैं जो सभा में कार्य के लिए उपस्थित होते हैं।

> पोत परिवहन मंत्रालय में राज्य मंत्री के रूप में नियुक्त किए जाने के पश्चात् श्री मुकुल रॉय (ए.आई.टी.सी.) की सीट दिनांक 3 जून, 2009 को 173 से बदल कर 84 कर दी गई थी।

किसी सीट विशेष के आवंटन हेतु एक से अधिक सदस्यों से अनुरोध प्राप्त होने पर इस संबंध में कोई निर्णय लेने से पूर्व उन अनुरोधों की जांच की जाती है।

> श्री डी. राजा (सी.पी.आई.) ने वर्ष 2008 तथा वर्ष 2009 के प्रारंभ में भी सीट सं. 132 (द्वितीय पंक्ति) के आवंटन का अनुरोध किया था। उसी समय प्रो. राम गोपाल यादव, जो नवम्बर, 2008 में राज्य सभा में निर्वाचित हुए थे, को सीट का आवंटन किए जाने का मुद्दा भी उठा था। इन तथ्यों के आधार पर कि प्रो. यादव एक वरिष्ठ सदस्य थे जिन्होंने पूर्व में राज्य सभा में दो कार्यकाल तथा लोक सभा में एक कार्यकाल पूरा किया था तथा समाजवादी पार्टी के भूतपूर्व नेता भी थे परंतु श्री डी. राजा पहली बार सदस्य के रूप में निर्वाचित हुए थे, सीट सं. 132 प्रो. राम गोपाल यादव को आवंटित करने का निर्णय लिया गया था।[18]

पहली पंक्ति में सामने की बीस सीटें होती हैं। जैसाकि कहा जा चुका है, उनमें से चार सीटें सभा के नेता, प्रधान मंत्री, उपसभापति और विपक्ष के नेता के लिए आरक्षित रहती हैं। बाकी सोलह सीटें विभिन्न मान्यता-प्राप्त दलों/समूहों को उनकी सदस्य-संख्या के अनुपात से विभक्त की जाती हैं। सामने की पंक्ति की सीटें राज्य सभा में कम से कम पांच सदस्यों वाले ग्रुपों के नेताओं के लिए होती हैं।[19] यदि सामने की पंक्ति में ऐसे ग्रुप के नेता के लिए सीट उपलब्ध न हो तो जब तक उसे ऐसी सीट उपलब्ध नहीं होती तब तक उसे कुछ समय के लिए अगली उपलब्ध पंक्ति में सीट दी जाती है किन्तु उसके ग्रुप की सदस्य-संख्या पांच या उससे अधिक बनी रहनी चाहिए।

> 1994 में द्विवार्षिक चुनावों के बाद समाजवादी पार्टी पांच सदस्यों वाली पार्टी के रूप में आई किन्तु सामने की पंक्ति में सीट उपलब्ध न होने पर उसके नेता (प्रो. राम गोपाल यादव) तीसरी पंक्ति में एक सीट पर बैठते रहे।[20]

> 2002 में द्विवार्षिक चुनावों के बाद बहुजन समाज पार्टी पांच सदस्यों वाली पार्टी के रूप में आई, किन्तु सामने की पंक्ति पर सीट उपलब्ध न होने पर उसके नेता (श्री कांशी राम) तीसरी पंक्ति में एक सीट पर बैठते रहे।[21]

सरकारी पार्टी के लिए आरक्षित खण्डों में सीटों का आवंटन सरकारी मुख्य सचेतक से परामर्श करके किया जाता है। सामान्यत: जो सदस्य पुन: चुनकर आते हैं उन्हें यथासंभव उनकी पहले की सीटें या उससे निकट की सीटें आवंटित की जाती हैं। भूतपूर्व मंत्रियों, राज्यपालों आदि को मंत्रियों की सीटों के पीछे की सीटें दी जाती हैं, लब्ध-प्रतिष्ठित या सक्रिय सदस्यों को सामने की पंक्तियों में सीटें दी जाती हैं और नए सदस्यों को सार्वजनिक जीवन आदि में उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार सीटें आवंटित की जाती हैं। जो सदस्य किसी न किसी समय सभा के नेता रहे हों उन्हें भी सामने की पंक्ति की सीटें आवंटित की जाती हैं चाहे वे किसी भी दल या ग्रुप से सम्बद्ध क्यों न हों।

श्री कमलापति त्रिपाठी, श्री लाल कृष्ण आडवाणी, श्री कृष्ण चन्द्र पंत, श्री प्रणब मुखर्जी, श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह, श्री एम.एस. गुरुपदस्वामी और श्री पी. शिवशंकर—ये सभी सभा के नेता रहे थे और उन्हें सदन में सामने की पंक्तियों की सीटें आवंटित की गईं।[22]

उप-चुनावों में चुनकर आने वाले सदस्यों द्वारा यह अनुरोध प्राप्त होने पर कि सीटों का जो आवंटन हो चुका है उसमें परिवर्तन किया जाए, ऐसे अनुरोधों को मुख्य सचेतक द्वारा निपटाया जाता है और यदि वह किसी परिवर्तन के लिए सहमत हो जाता है तो ऐसा परिवर्तन सभापति की स्वीकृति के बाद ही किया जाता है। सामान्यत: सदस्यों को एक बार सीटों का आवंटन हो जाने पर एक ही सत्र के दौरान उनमें तब तक परिवर्तन नहीं किये जाते जब तक वे नितांत आवश्यक न हों और यदि कुछ परिवर्तन किए भी जाते हैं तो यह सावधानी बरती जाती है कि उनके कारण सत्र की समाप्ति तक बैठने की सामान्य व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

राज्य सभा का 70वां सत्र 17 नवम्बर, 1969 को शुरू हुआ। 18 नवम्बर, 1969 को कांग्रेस पार्टी में विभाजन हो गया और उसे देखते हुए सदन में बैठने की व्यवस्था में परिवर्तन किया गया।[23]

1990 में, 153वें सत्र के दूसरे भाग में द्विवार्षिक चुनावों में चुने गए उनहत्तर सदस्यों ने 9 और 10 अप्रैल, 1990 को शपथ ली या प्रतिज्ञान किया और उस पर हस्ताक्षर किए और उसके बाद सदन में अपना स्थान ग्रहण किया और तद्नुसार सदन में बैठने की व्यवस्था में दो बार परिवर्तन किया गया।[24]

5 नवम्बर, 1990 को संसद् में जनता दल के नेता श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने कहा कि उनके दल के पांच सदस्यों को पार्टी-विरोधी गतिविधियों के कारण निष्कासित कर दिया गया है। इसके बाद उक्त पांच सदस्यों ने अन्य दस सदस्यों के साथ दावा किया कि मूल पार्टी में 5 नवम्बर, 1990 को विभाजन हो गया था और जनता दल (समाजवादी) नामक नई पार्टी बन गई थी। सभापति ने जनता दल (एस.) को सभा में कार्यकरण के प्रयोजन के लिए एक ग्रुप के रूप में मान्यता दे दी और सदस्यों को जनता दल (समाजवादी) नामक नई पार्टी के बारे में सूचित किया गया क्योंकि उस समय यह पार्टी सत्तारूढ़ पार्टी थी। इसके अनुसार सदन में बैठने की व्यवस्था में परिवर्तन किया गया।[25]

जैसाकि 2 जनवरी, 1991 को सभापति ने सभा में घोषणा की थी, कांग्रेस (आई.) पार्टी राज्य सभा में मुख्य विपक्षी दल नहीं रह गया था। इसके फलस्वरूप पार्टियों के नेताओं से परामर्श करके 7 फरवरी, 1991 में सदन में बैठने की व्यवस्था में समुचित परिवर्तन किया गया जिससे पार्टियों के नेता संतुष्ट थे। उस दिन विपक्ष के एक सदस्य ने एक अनुपूरक प्रश्न पूछते हुए कहा : "...अपना अनुपूरक प्रश्न पूछने के पहले क्या मुझे यह कहने की अनुमति दी जाएगी कि हम सब सदन में बैठने की नई व्यवस्था से पूरी तरह से संतुष्ट हैं।"[26]

विपक्ष के दलों और समूहों (ग्रुपों) को उनकी सदस्य-संख्या के अनुपात के अनुसार साथ-साथ लगी हुई सीटों के खंड आवंटित किए जाते हैं जो सभापीठ की बाईं ओर से शुरू होते हैं। सर्वाधिक सदस्य-संख्या वाले दल या समूह को बिल्कुल बाईं ओर सीटें आवंटित की जाती हैं और उसके बाद जिस दल की सदस्य-संख्या सबसे अधिक होती है उसे उस दल या समूह की दाईं ओर सीटें आवंटित की जाती हैं और यह क्रम चलता रहता है। सभा के वरिष्ठ सदस्यों को विशिष्ट सीटें आवंटित की जाती हैं और उपयुक्त मामलों में, इस बात पर विचार किए बिना कि वे किस दल या समूह के हैं, उन्हें सामने की पंक्तियों में सीटें आवंटित की जाती हैं।[27]

जब किसी दल या समूह की सदस्य-संख्या में परिवर्तन होता है तो उसकी बदली हुई सदस्य-संख्या के अनुपात में उसे सीटों का पुन: आवंटन किया जाता है। किन्तु यदि यह परिवर्तन सत्र की समाप्ति के कुछ ही दिन पहले होता है या यह संभावना होती है कि आसन्न द्विवार्षिक चुनावों में उसकी सदस्य-संख्या पहले जैसी हो जाएगी तो बैठने की व्यवस्था यथावत् ही रहती है।

पश्चिम बंगाल राज्य से राज्य सभा के छह सदस्य 9 जुलाई, 1993 को निवृत्त हुए। 168वां सत्र 26 जुलाई, 1993 से आरंभ हुआ। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य-संख्या घटकर ग्यारह हो गई और जनता दल (एस.) की संख्या बारह थी। उस राज्य में आसन्न द्विवार्षिक चुनावों तक सीटों की व्यवस्था यथावत् ही रही।[28]

जो अपेक्षाकृत छोटे समूह का सदस्य होता है उसे सभापति द्वारा सीट आवंटित की जाती है। ऐसे सदस्यों को सभापति के विवेकानुसार साथ-साथ लगी हुई सीटें दी जा सकती हैं या इस संबंध में अनुरोध किए जाने पर उन्हें अपनी सीटों की अदला-बदली करने की अनुमति दी जा सकती है।

जहां तक नामनिर्देशित सदस्यों का संबंध है, उन्हें सामान्यत: सभापति के सामने के चौथे और पांचवें खंडों में सीटें आवंटित की जाती हैं किन्तु उनमें से जो सदस्य किसी राजनैतिक दल के होते हैं उन्हें उस दल के लिए आरक्षित सीटें आवंटित की जाती हैं।

संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 तथा उसके अधीन बनाए गए नियमों के प्रवृत्त होने के पहले ग्यारह नामनिर्देशित सदस्यों में से नौ सदस्य कांग्रेस (आई) में शामिल हो गए थे (डा. लोकेश चन्द्र, श्री स्कातो स्वू, श्री वी.सी. गणेशन, श्री तिंडीवनम् के. राममूर्ति, श्री मदन भाटिया, श्री पुरुषोत्तम काकोडकर, श्री एच.एल. कपूर, श्री गुलाम रसूल कार और श्री हयात उल्ला अंसारी)। इन सदस्यों को कांग्रेस (आई.) के खंड में सीटें आवंटित की गईं।[29] इसी प्रकार 2003 में सात नामनिर्देशित सदस्यों में से तीन सदस्य (श्रीमती हेमा मालिनी, डा. नारायण सिंह मानकलाव और श्री दारा सिंह) भारतीय जनता पार्टी में शामिल हो गए थे और तदनुसार उन्हें भारतीय जनता पार्टी के खण्ड में सीटों का आवंटन किया गया था।[30]

वर्ष 2010 में पांच नामनिर्देशित सदस्यों में से तीन सदस्य डा. राम दयाल मुंडा, डा. भालचन्द्र मुणगेकर तथा श्री मणिशंकर अय्यर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हो गए थे और तदनुसार उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के खण्ड में सीटों का आवंटन किया गया।[31]

जब किसी उप-चुनाव में निर्वाचित या सत्र के बीच में नामनिर्देशित कोई सदस्य शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने और उस पर हस्ताक्षर करने के लिए आता है तब उसे उस खंड में सीट दी जाती है जहां उसके साथी बैठते हैं या उस खंड में सीट उपलब्ध न होने पर उसे उस खंड के निकटवर्ती खंड में अस्थायी रूप से सीट दी जाती है।

यदि संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 327ख और 4 के अनुसार विभाजन या विलय के फलस्वरूप कोई नई पार्टी या ग्रुप बनता है तो तदनुसार सीटों की व्यवस्था को बदला जाता है।

राज्य सभा में लोक दल ग्रुप के नेता ने यह सूचित किया कि उसके तीन सदस्यों को निष्कासित कर दिया गया है। चूंकि तीन निष्कासित सदस्यों ने यह तर्क दिया कि यह निष्कासन अमान्य है और यह दावा

नहीं किया कि विभाजन हो गया है, इसलिए इन दोनों धड़ों को लोक दल-1 और लोक दल-2 के रूप में अनौपचारिक रूप से मान्यता दी गई और तदनुसार सीटों का आवंटन किया गया।[32] 143वें सत्र (27 जुलाई, 1987 से 31 अगस्त, 1987) में लोक दल-1 के नेता को सामने की पंक्ति में सीट दी गई।[33]

1988 में लोक दल (ए) का, जो राज्य सभा में लोक दल-2 के रूप में था, जनता पार्टी में विलय हो गया। इसके पश्चात् लोक दल-1 के नेता श्री वीरेन्द्र वर्मा को सामने की पंक्ति में सीट दी गई।[34]

1988 में राज्य सभा में ए.आई.ए.डी.एम.के. ग्रुप में ग्यारह सदस्य थे। इस ग्रुप के एक धड़े ने यह दावा किया कि ग्रुप में विभाजन हो गया है। चूंकि विभाजन का दावा संविधान को दसवीं अनुसूची के पैरा 3 की अपेक्षाओं को पूरा करता था इसलिए ए.आई.ए.डी.एम.के. के दो धड़ों को सभा में कार्यकरण के सीमित प्रयोजन के लिए ए.आई.ए.डी.एम.के.-1 और ए.आई.ए.डी.एम.के.-2 का नाम दिया गया। दोनों धड़ों के नेताओं को सामने की पंक्ति में सीटें आवंटित की गईं।[35]

1994 में जनता दल (एस.) के आठ सदस्यों में से तीन सदस्यों ने सभापति को सूचित किया कि पार्टी में विभाजन हो गया है और नई पार्टी को राष्ट्रीय जनता दल का नाम दिया गया है। इस बात पर ध्यान देते हुए तीन सदस्यों के नए धड़े को अलग खंड में सीटें आवंटित की गईं।[36]

1994 में तेलुगु देशम् पार्टी में तीन सदस्य थे। श्रीमती रेणुका चौधरी ने पार्टी में विभाजन का दावा किया जबकि पार्टी के नेता का दावा था कि श्रीमती चौधरी को दल से निष्कासित कर दिया गया है। सभापति ने सभा में कार्यकरण के सीमित प्रयोजन के लिए दो सदस्यों वाली तेलुगु देशम् पार्टी को तेलुगु देशम् पार्टी-1 और श्रीमती रेणुका चौधरी की पार्टी को तेलुगु देशम् पार्टी-2 का नाम दिया और उसकी सीट को भी सत्र के बीच में बदल दिया गया।[37]

1997 में राज्य सभा में अखिल भारतीय अन्नाद्रमुक ग्रुप के नेता ने राज्य सभा में बताया कि उसके ग्रुप के सात सदस्यों को निष्कासित कर दिया गया है। सात सदस्यों ने इसका विरोध किया और विभाजन का दावा नहीं किया। इन दोनों धड़ों को अ.भा. अन्नाद्रमुक-1 और अ.भा. अन्नाद्रमुक-2 का नाम दिया गया। इसके बाद अ.भा. अन्नाद्रमुक-2 में विभाजन हो गया और इस धड़े को अ.भा. अन्नाद्रमुक-3 का नाम दिया गया। तदनुसार सदन में बैठने की व्यवस्था में परिवर्तन किया गया था।[38]

1997 में राज्य सभा में जनता दल में तेईस सदस्य थे। इस ग्रुप के एक धड़े ने विभाजन का दावा किया। चूंकि यह विभाजन, संविधान की दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 3 की अपेक्षाओं के अनुरूप था अत: इन दो धड़ों को जनता दल तथा राष्ट्रीय जनता दल का नाम दिया गया। इन दोनों ग्रुपों के नेताओं को सामने की पंक्ति में सीटों का आवंटन किया गया।[39]

1998 में उड़ीसा से जनता दल के एक सदस्य श्री दिलीप रे ने चार अन्य सदस्यों के साथ विभाजन का दावा किया। चूंकि यह दावा संविधान की दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 3 की अपेक्षाओं के अनुरूप था, अत: इस दल को 'बीजू जनता दल' के रूप में मान्यता दी गई तथा तदनुसार, सीटों का आवंटन किया गया।[40]

1998 में तेलुगु देशम्-1 के एक मात्र सदस्य डा. डी. वेंकटेश्वर राव ने अपने दल का भा.ज.पा. में विलय किया। इसी प्रकार अ.भा. अन्नाद्रमुक-3 के एकमात्र सदस्य श्री पी. सुंदरराजन ने अ.भा. अन्नाद्रमुक-1 के साथ अपने दल का विलय किया। इन दोनों दलों के क्रमश: विलय के बाद उक्त सदस्यों को सीटों का आवंटन उनके संबंधित दलों के साथ किया गया।[41]

1999 में महाराष्ट्र विकास अघाडी दल के एकमात्र सदस्य ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ विलय किया और तदनुसार उनको भा.रा.कां. के खण्ड के साथ सीट का आवंटन किया गया।[42]

वर्ष 2001 में राष्ट्रीय जनता दल के तीन सदस्य श्री रंजन प्रसाद यादव, श्रद्धेय धम्मा वीरियो और श्री महेन्द्र प्रसाद दल से निष्कासित किए गए थे। इन सदस्यों के निष्कासन के साथ राष्ट्रीय जनता दल की सदस्य-संख्या दस से घटकर सात हो गई, जो समाजवादी पार्टी, जिसके नौ सदस्य थे, की सदस्य-संख्या से कम थी। इस विषय को ध्यान में रखते हुए सभा-कक्ष में इन दोनों दलों के बैठने के स्थानों की अदला-बदली कर दी गई।[43]

वर्ष 2001 में झारखंड मुक्ति मोर्चा के एकमात्र सदस्य श्री आर.के. आनंद ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ अपने दल का विलय कर दिया और उन्हें तदनुसार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के खंड में एक स्थान आवंटित किया गया।[44]

वर्ष 2003 में तमिल मानिला कांग्रेस पार्टी (मूपनार) का, जिसके दो सदस्य (श्री जी.के. वासन और श्री बी.एस. ज्ञानादिशिखन) थे, राज्य सभा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ विलय हो गया। इस विषय को ध्यान में रखते हुए उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के खंड में स्थान आवंटित किए गए।[45]

3 जून, 2009 को सत्तारूढ़ संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन से पट्टली मक्काल कटची (पी.एम.के.) दल के अलग हो जाने से उस दल के सदस्य डा. अंबुमणि रामादास की सीट 30 से बदलकर 136 कर दी गई।[46]

15 नवंबर, 2010 से झारखंड मुक्ति मोर्चा (जे.एम.एम.) का अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस (ए.आई.टी.सी.) में विलय हो गया। तदनुसार, डा. कनवर दीप सिंह जो झारखंड मुक्ति मोर्चा पार्टी के एकमात्र सदस्य थे, की सीट 224 से बदलकर 122 कर दी गयी ताकि वह अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस पार्टी के अन्य सदस्यों के निकट बैठ सकें।[47]

यदि सदस्य/सदस्यों की ओर से स्वास्थ्य कारणों से सीट बदलने हेतु व्यक्तिगत अनुरोध किए जाते हैं, तो आवश्यकता पड़ने पर संबंधित पार्टी के नेता के साथ इस पर चर्चा की जाती है और तदनुसार उस पर निर्णय लिया जाता है।

श्री रवि शंकर प्रसाद ने 2 जुलाई, 2009 को चिकित्सा कारणों का हवाला देते हुए उसे रास्ते वाली बांहदार सीट आबंटित किए जाने का अनुरोध किया था। यह अनुरोध मान लिया गया था और श्री एन. बालगंगा के साथ परस्पर आदान-प्रदान के आधार पर उन्हें सीट सं. 186, जो रास्ते वाली सीट है, आबंटित की गई।[48]

ऐसे मामलों में जब किसी सदस्य को उनकी पार्टी निष्कासित कर देती है और उन्हें अभिलेख में 'किसी भी दल से असंबद्ध' सदस्य के रूप में दर्शाया जाता है, तो उसे उस राजनीतिक दल से दूर अलग सीट आबंटित की जाती है।

बहुजन समाज पार्टी से संबद्ध श्री ईसाम सिंह को उनकी पार्टी से 3 सितम्बर, 2006 को निष्कासित कर दिया गया था। उसे अलग सीट दिए जाने के लिए लिखित अनुरोध प्राप्त होने पर, उन्हें एक अलग सीट आबंटित की गई।[49]

श्री अमर सिंह को 23 फरवरी, 2010 को समाजवादी पार्टी से निष्कासित किया गया था। इसके फलस्वरूप उस तारीख से उनकी सीट 13 से बदलकर 82 कर दी गई थी। बाद में, 29 जुलाई, 2010 को उनकी सीट 82 से बदलकर अन्य निर्दलीय सदस्यों के पास 160 कर दी गई थी।[50]

श्री प्यारीमोहन महापात्र के पार्टी से निष्कासित होने के पश्चात् राज्य सभा में बीजू जनता दल (बीजद) के नेता श्री शशी भुषण बेहेरा से अनुरोध प्राप्त होने पर उनकी सीट को 130 से बदलकर 156 कर दिया गया था।[51]

इसी प्रकार, श्री राम जेठमलानी के भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) से निष्कासन के पश्चात् उनकी सीट 182 से बदलकर 161 कर दी गई थी।[52]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. फा.सं. सी.एस./13/52-जी.ए. और 38/1/57-टी
2. फा.सं. 38/1/57-टी
3. नियम 4
4. फा.सं. सी.एस./13/52-जी.ए.
5. -वही-
6. -वही- और संसदीय समाचार (2), 14.7.1952
7. फा.सं. 35/1/57-टी
8. फा.सं. 10/1/57-टी
9. फा.सं. सी.एस./13/52-जी.ए./टी
10. फा.सं. 35/1/57-टी
11. नियम 237
12. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.3.1970, कालम 186; और 23.3.1982, कालम 372-73
13. उदाहरण के लिए, संसदीय समाचार (2), 15.4.1994
14. फा.सं. 13/87-टी, 13/89-टी और 13/90-टी
15. फा.सं. 11/83-टी
16. फा.सं. 11/90-टी
17. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.11.1969, कालम 107-12
18. फा.सं. आर.एस. 13/2009-टी
19. फा.सं. 13/87-टी, 13/89-टी और 13/90-टी
20. फा.सं. 13/94-टी
21. फा.सं. 13/2002-टी
22. फा.सं. 13/82-टी, 13/85-टी, 13/86-टी, 13/87-टी, 13/90-टी और 13/91-टी
23. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.11.1969, कालम 124
24. फा.सं. 13/90-टी
25. फा.सं. 46/90-टी, 13/90-टी तथा संसदीय समाचार (2), 24.12.1990
26. फा.सं. 13/91-टी, राज्य सभा वाद-विवाद, 2.1.1991, कालम 835-43 और 7.1.1991, कालम 28
27. फा.सं. 13/87-टी
28. फा.सं. 13/93-टी
29. फा.सं. 11/85-टी
30. फा.सं. 11/2003-टी
31. किसी विधायी दल में विभाजन के मामले में निरर्हता से छूट संबंधी संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 3 का संविधान (इक्यानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2003 के द्वारा लोप कर दिया गया था
32. फा.सं. 11/87-टी
33. फा.सं. 13/87-टी
34. फा.सं. 13/88-टी
35. -वही-
36. फा.सं. 13/94-टी और संसदीय समाचार (2), 6.5.1994
37. -वही- तथा संसदीय समाचार (2), 5.8.1994
38. फा.सं. 46/97-टी
39. -वही-

40. फा.सं. 46/98-टी
41. -वही-
42. फा.सं. 46/99-टी
43. फा.सं. 11/2001-टी
44. फा.सं. 46/2001-टी
45. फा.सं. 46/2003-टी
46. फा.सं. आर.एस. 13/2009-टी
47. फा.सं. आर.एस. 13/2010-टी
48. फा.सं. आर.एस. 13/2009-टी
49. फा.सं. आर.एस. 13/2006-टी
50. फा.सं. आर.एस. 13/2010-टी
51. फा.सं. आर.एस. 13/2012-टी और आर.एस. 11/2012 टी
52. फा.सं. आर.एस. 13/2013-टी

अध्याय-14

सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति

जब सदस्य राज्य सभा के लिए निर्वाचित या नामनिर्देशित होते हैं तब उनसे आशा की जाती है कि वे उस स्थिति को छोड़कर जब वे अपरिहार्य कारणों से सभा से अनुपस्थित रहने के लिए बाध्य हो जाएं, सभा में अपना स्थान ग्रहण करेंगे और उसकी कार्यवाही के समय उपस्थित रहेंगे।

संवैधानिक और विधिक उपबंध

भारत के संविधान में उपबंध किया गया है कि यदि संसद् का कोई सदस्य साठ दिन की अवधि तक सदन की अनुज्ञा के बिना उसके सभी अधिवेशनों (बैठकों) से अनुपस्थित रहता है तो सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकेगा।[1] किन्तु साठ दिन की उक्त अवधि की गणना करने में किसी ऐसी अवधि को हिसाब में नहीं लिया जाएगा जिसके दौरान सदन सत्रावसित रहता है या निरंतर चार दिनों से अधिक दिनों के लिए स्थगित रहता है।[2]

संविधान में उल्लिखित साठ दिन की अवधि का अर्थ साठ दिन की निरंतर अवधि है और संविधान के उपबंधों का तभी प्रयोग होगा जब अनुपस्थिति लगातार रही हो। अनुपस्थिति की अवधि की गणना उस दिन से शुरू होती है जिस दिन सदस्य सभा की बैठक में अनुपस्थित रहता है और उस दिन खत्म होती है जिस दिन सदस्य सभा में उपस्थित होता है चाहे वह दिन उसी सत्र का हो या अगले सत्र या सत्रों का हो। इस गणना में सत्र के बीच के उन दिनों को शामिल किया जाता है जब सभा की बैठक नहीं होती किन्तु यदि इस गणना में सभा के सत्रावसान या स्थगन की अवधि लगातार चार दिन से अधिक होती है तो उस शामिल नहीं किया जाता।

यह संवैधानिक उपबंध केवल निदेशात्मक है, आदेशात्मक नहीं। चूंकि यह उपबंध एक समर्थकारी शक्ति के रूप में हैं इसलिए सभा किसी सदस्य की साठ दिन से अधिक की अवधि की अनुपस्थिति को माफ करने में सक्षम है।[3]

संविधान में प्रतिष्ठापित पूर्वोक्त उपबंध के अलावा, राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन विषयक नियम का नियम 214 भी सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति की अनुमति से संबंधित प्रक्रिया से संबद्ध है।

उपस्थिति पंजी

संविधान में विशेष रूप से जो उक्त उपबंध किया गया है उसे देखते हुए सदस्यों के लिए एक उपस्थिति पंजी रखना आवश्यक हो गया है। ऐसी पंजी सचिवालय द्वारा रखी जाती है ताकि उसमें सदस्यगण अपनी उपस्थिति दर्ज कर सकें। सभा में प्रवेश करने से पहले प्रत्येक सदस्य को प्रतिदिन पंजी पर हस्ताक्षर करके अपनी उपस्थिति दर्ज करानी होती है। सदस्यों की सुविधा के लिए इस समय उपस्थिति पंजी को 4 भागों में बांटा गया

है जिनमें निम्नलिखित विभाजन संख्याएं हैं अर्थात्: (1) विभाजन संख्या 1 से 61, (2) विभाजन संख्या 62 से 127, (3) विभाजन संख्या 128 से 195 और (4) विभाजन संख्या 196 से 250। प्रत्येक भाग को सभा की आंतरिक लॉबी में एक अलग पीठिका पर रखा जाता है। सदस्यों को प्रत्येक सत्र के आरंभ में संसदीय समाचार भाग-2 में एक पैरा के द्वारा इस व्यवस्था के बारे में सूचित किया जाता है।[4] जब तक सभा की बैठक चलती रहती है तब तक पंजी पीठिका पर ही रखी रहती है। प्रतिदिन सभा के स्थगित होने के बाद सभी चार भागों को एकत्र किया जाता है और उसके आधार पर लॉबी में रखी गई एक समेकित उपस्थिति पंजी में अंग्रेजी के "पी" अक्षर द्वारा सदस्यों की उपस्थिति दर्ज की जाती है। जब कोई सदस्य लिखित रूप में सूचित करता है कि अमुक दिन सभा में उपस्थित रहने पर भी वह उपस्थिति पंजी में हस्ताक्षर करना भूल गया था तब पंजी में उसकी उपस्थिति दर्ज न करके उसके मूल कथन को संबंधित उपस्थिति पत्र के साथ नत्थी कर दिया जाता है। इससे सदस्यों की उपस्थिति के पूरे अभिलेख का पता चल जाता है और सदस्यों की निरंतर अनुपस्थिति का हिसाब लगाने में सहायता मिलती है। सदस्यों की उपस्थिति को राज्य सभा की वेबसाइट पर भी दर्शाया जाता है।

उपस्थिति पंजी को मूलत: सदस्यों की उपस्थिति दर्ज करने की एक अनौपचारिक और सुविधाजनक व्यवस्था के रूप में आरंभ किया गया था किन्तु 9 जून 1993 से वह सांविधिक आवश्यकता बन गई है। संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 की धारा 3 में जोड़े गए एक नए परंतुक में निम्नानुसार कहा गया है:

> "परंतु कोई सदस्य उपरोक्त भत्ते (अर्थात् दैनिक भत्ते) का तब तक हकदार नहीं होगा जब तक वह लोक सभा या, यथास्थिति, राज्य सभा द्वारा इस प्रयोजन के लिए रखे गए रजिस्टर पर सभा के सत्र के उन सभी दिनों को हस्ताक्षर नहीं करेगा (बीच में पड़ने वाले अवकाश के दिनों के सिवाय जब इस प्रकार हस्ताक्षर करना आवश्यक नहीं है) जिनके लिए भत्ते का दावा किया गया है।"

अत: किसी सदस्य को दैनिक भत्ते का भुगतान तभी किया जा सकता है जब उसने पंजी (रजिस्टर) पर हस्ताक्षर कर दिए हों।[5] अधिनियम में जो स्पष्ट उपबंध किया गया है उसे देखते हुए यह प्रथा शुरू की गई है कि सदस्यों की उपस्थिति का दैनिक विवरण सचिवालय के वेतन तथा लेखा कार्यालय और सदस्यों की वेतन तथा भत्ता शाखा को भेजा जाए ताकि सचिवालय सदस्यों के दैनिक भत्तों के दावों का निपटान कर सके।[6]

सदस्यों को उनकी उपस्थिति से संबंधित संवैधानिक उपबंध का स्मरण दिलाने के लिए भी पंजी का उपयोग करने में सुविधा होती है। जैसे ही सभा की अनुमति के बिना किसी सदस्य की अनुपस्थिति चालीस दिनों की हो जाती है, सचिवालय उसे इस बात की जानकारी देता है ताकि वह समय पर अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन कर सके। यदि अनुपस्थिति की अनुमति के लिए सदस्य का आवेदन समय पर प्राप्त नहीं होता तो उसकी लगातार अनुपस्थिति की अवधि पचास दिन हो जाने पर उसे एक स्मरण-पत्र भेजा जाता है। यदि कोई सदस्य बिना अनुमति के सभा की बैठकों से निरंतर साठ दिन या उससे अधिक अवधि तक अनुपस्थित रहता है तो उसका ध्यान संवैधानिक उपबंध और संबंधित नियमों की ओर दिलाया जाता है और उसे सलाह दी जाती है कि वह संबंधित अवधि के लिए अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन दे जिसमें उसके अनुपस्थित रहने के कारणों का उल्लेख हो।

अनुपस्थिति की अनुमति प्राप्त करने की प्रक्रिया

जो सदस्य संविधान के अनुच्छेद 101 के खंड (4) के अधीन सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति चाहता है, उसके लिए यह अपेक्षित है कि वह इस संबंध में आवेदन दे और उसमें यह उल्लेख करे कि उसे सभा की बैठकों से कितनी अवधि के लिए अनुपस्थित रहने की अनुमति दी जाए।[7] सदस्य से विशेष रूप से अपेक्षा की जाती है कि वह अनुपस्थिति की अनुमति के लिए निवेदन करेगा। सदस्य के ऐसे पत्र पर कोई कार्यवाही नहीं की जाती जिसमें सिर्फ यह सूचित किया गया हो कि वह सत्र की बैठकों में अनुपस्थित रहेगा किन्तु जिसमें उसके लिए अनुमति नहीं मांगी गई हो।[8]

यह आवश्यक है कि अनुपस्थिति की अनुमति का आवेदन राज्य सभा के सभापति को संबोधित किया जाए। यह आवश्यक है कि आवेदन सदस्य द्वारा किया जाए, उस पर हस्ताक्षर भी सदस्य द्वारा किया जाए और वह सभापति को संबोधित हो। किन्तु कुछ अवसरों पर तार[9] या समुद्री तार[10] के आधार पर भी अनुपस्थिति की अनुमति दी गई है।

कभी-कभी किसी सदस्य द्वारा अनुपस्थिति की अनुमति का आवेदन सभापति की बजाय महासचिव को संबोधित करने पर भी ऐसे आवेदन को ग्रहण कर लिया गया है।[11] जब कोई सदस्य स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण स्वयं अनुपस्थिति की अनुमति का आवेदन करने में असमर्थ है और कोई दूसरा सदस्य उसकी ओर से आवेदन करता है तो उस स्थिति में भी उसके आवेदन को ग्रहण कर लिया गया है और उस आधार पर सदस्य को अनुमति दी गई है।[12] तथापि, एक ऐसे मामले में जब एक अस्वस्थ सदस्य के सलाहकार ने, सदस्य की ओर से अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन किया तब उस सलाहकार को सूचित किया गया कि अनुपस्थिति की अनुमति के आवेदन पर सदस्य को स्वयं हस्ताक्षर करना चाहिए और सलाहकार ने आवेदन पर सदस्य के हस्ताक्षर करा कर उसे भेजा।[13]

> राज्य सभा में सीपीआई (एम) दल के नेता श्री सीताराम येचुरी से दिनांक 29 जुलाई, 2010 को प्राप्त एक पत्र में बताया गया कि श्री पी. आर. राजन, संसद्-सदस्य गंभीर स्नायुतंत्रीय रोग के कारण एर्णाकुलम, केरल में एक अस्पताल के आईसीयू में भर्ती हैं और उन्होंने सभा से श्री पी. आर. राजन की अनुपस्थिति की अनुमति मांगी। यह निर्णय लिया गया कि चूँकि पत्र दल के नेता से मिला है और सदस्य जिनके लिए अनुमति हेतु आवेदन किया गया है उसी दल के हैं, और रोग की गंभीर प्रकृति को ध्यान में रखते हुए श्री पी. आर. राजन को 220वें सत्र के लिए अनुपस्थित रहने की अनुमति प्रदान की गई।[14]

संवैधानिक उपबंध को देखते हुए सदस्य जिस अवधि के लिए अनुपस्थिति की अनुमति चाहता है वह साठ दिन से अधिक की नहीं होनी चाहिए। यदि यथार्थत: देखा जाए तो संवैधानिक उपबंध के अधीन यह आवश्यक नहीं है कि साठ दिन से कम अवधि के लिए अनुपस्थित रहने के लिए अनुमति ली जाए। किन्तु सदस्य बचाव की दृष्टि से साठ दिन की अधिकतम अवधि के पूरा करने तक की प्रतीक्षा न करके अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन कर देते हैं। एक सुझाव दिया गया था कि राज्य सभा के प्रक्रिया तथा

कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 214 में, जो अनुपस्थिति की अनुमति के संबंध में है, विशिष्ट रूप से उपबंध करने के लिए संशोधन किया जाए कि अनुपस्थिति की अनुमति का आवेदन कभी भी साठ दिनों से अधिक अवधि के लिए नहीं होना चाहिए।[15] अत: सामान्यत: अनुपस्थिति की अनुमति विनिर्दिष्ट अवधियों के लिए दी गई है जैसे किसी वर्ष में किसी महीने के आरंभ या अंत के लिए[16] या सत्र के दौरान किसी विशिष्ट तारीख के बाद के लिए[17] या कई बैठकों, सप्ताहों या दिनों[18] या सत्र के किसी भाग के लिए[19] या भूतलक्षी प्रभाव से पिछले सत्रों में अनुपस्थिति के लिए।[20]

वर्तमान प्रथा यह है कि सामान्यत: अनुमति समूचे सत्र के लिए दी जाती है। सिर्फ उसी मामले में सभा के समक्ष अनुमति का आवेदन रखा जाता है जब मांगी गई अनुमति किसी सत्र में दस दिनों से अधिक की अवधि के लिए हो। दस दिनों से कम की अवधि की अनुपस्थिति हेतु अनुमति के लिए आवेदन सभा के समक्ष नहीं रखा जाता है।[21] यदि कोई सदस्य सत्र के किसी भाग के लिए अनुपस्थिति की अनुमति मांगता है तो उस स्थिति में उसका आवेदन सभा के समक्ष नहीं रखा जाता, जब वह एक दिन के लिए या कुछ दिनों के लिए सत्र में उपस्थित हो चुका हो[22] या उसकी अनुपस्थिति कुल मिलाकर साठ दिन या उससे अधिक न होने वाली हो। यदि अनुपस्थिति की अनुमति सत्र के एक भाग के लिए मांगी जाती है तो कभी-कभी आवेदन लंबित रखा जाता है और उसे सभा के समक्ष तभी रखा जाता है जब सदस्य विनिर्दिष्ट अवधि के बाद सभा में उपस्थित नहीं होता।[23] यदि कोई सदस्य किसी शर्त के साथ अनुमति मांगता है अर्थात् वह उस मामले में अनुमति मांगता है जब वह सत्र के दौरान किसी विशिष्ट तारीख तक सत्र में उपस्थित न हो सके तो आवेदन तब तक लम्बित रखा जाता है जब तक वह विनिर्दिष्ट तारीख तक उपस्थित नहीं होता या जब तक उससे आगे कोई और सूचना प्राप्त नहीं हो जाती और यदि वह उपस्थित होने में विफल रहता है तो अनुमति दिए जाने के लिए उसके आवेदन को सत्र के आखिरी दिनों में सभा के समक्ष रखा जाता है।[24]

अनुपस्थिति के लिए आवेदन करते समय सदस्य साधारणतया उस कारण का उल्लेख करता है जिसके आधार पर अनुमति मांगी गई है। सदस्यों द्वारा अनुपस्थिति की अनुमति जिन कारणों के आधार पर मांगी गई है उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

(1) अपनी बीमारी;

(2) परिवार में बीमारी, दुर्घटना, विपत्ति, मृत्यु, विवाह या अंत्येष्टि, आदि;

(3) विदेश यात्रा—व्यावसायिक कार्य के लिए या सम्मेलनों में या संयुक्त राष्ट्र संघ/संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) की बैठकों में एक प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने के लिए, अध्ययन के लिए या पारिवारिक दायित्वों को पूरा करने के लिए, आदि;

(4) चिकित्सक, कलाकार आदि के रूप में व्यावसायिक कार्य में व्यस्त रहना, आदि;

(5) गिरफ्तारी/निरुद्ध किया जाना;

सभा में यह औचित्य प्रश्न उठाए जाने पर कि क्या जेल जाने वाले सदस्यों को भी अनुपस्थिति की अनुमति दी जा सकती है, सभापति ने "हां" में अपना निर्णय देते हुए यह टिप्पणी की: "चाहे वे किसी भी कारण से उपस्थित होने में असमर्थ हों, उन्हें अनुमति दी जा सकती है।"[25] आपातकाल के दौरान कई सदस्यों के निरुद्ध किए जाने के कारण उन्हें अनुपस्थिति की अनुमति प्रदान की गई। एक निरुद्ध सदस्य को "सत्र में उपस्थित होने के लिए उसे तिहाड़ जेल, दिल्ली को स्थानांतरित न किए जाने के कारण" अनुपस्थिति की अनुमति दी गई।[26]

संसद्-सदस्या, श्रीमती कानीमोझी, जो न्यायिक हिरासत में थीं, को राज्य सभा के पूरे 223वें सत्र के लिए अनुपस्थित रहने की अनुमति दी गई। चूंकि उनकी न्यायिक हिरासत जारी रही, इसलिए प्रश्न यह उठा कि क्या उनके पूर्ववर्ती अनुरोध को निरंतर स्वरूप का पत्र मानकर उन्हें राज्य सभा के 224वें सत्र की पूरी अवधि के लिए अनुपस्थित रहने की अनुमति दे दी जाए। यह निर्णय लिया गया कि राज्य सभा के 224वें सत्र में अनुपस्थित रहने की अनुमति प्रदत्त करने हेतु उनसे दूसरा पत्र मांगा जाए। तथापि उन्हें दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा जमानत दी गई और वह 8 दिसम्बर, 2011 की राज्य सभा की बैठक में उपस्थित हुईं।[27]

(6) निजी या व्यक्तिगत कार्यों को निपटाना;[28]

(7) कुछ समस्याओं से ग्रस्त होना;[29]

(8) सार्वजनिक कार्यों में भारी व्यस्तता जैसे स्थानीय परिषद्, सम्मेलन, समिति आदि की बैठकों में भाग लेना आदि;[30]

(9) महत्वपूर्ण या अत्यावश्यक कार्य;[31]

(10) घरेलू अपरिहार्य स्थिति;[32]

(11) अपरिहार्य या बाध्यकर कारण या परिस्थितियां;[33]

(12) सदस्य के क्षेत्र में अशांति या अकाल की स्थिति जिसके कारण वहां उनकी उपस्थिति आवश्यक हो गई हो;[34]

(13) चुनाव याचिका/रिट याचिका के संबंध में उपस्थित होना;[35]

(14) उपस्थित होने में असमर्थता;[36]

एक अवसर पर यह प्रश्न उठाए जाने पर कि क्या अनुपस्थिति की अनुमति के आवेदन में सदस्य द्वारा कारणों का स्पष्टत: उल्लेख किया जाना चाहिए, सभापति ने इससे इन्कार करते हुए टिप्पणी की कि उन्होंने सभा को यथाप्राप्त आवेदन को पढ़ा है।[37] जब किसी सदस्य ने अपने गृह-नगर से अनुपस्थिति की अनुमति के लिए अनुरोध तो किया किन्तु उसके कोई कारण नहीं बताए तब सभापति ने सभा के समक्ष उसके आवेदन को पढ़कर सुनाया जिसके बाद अनुमति दे दी गई किन्तु सभापति ने यह टिप्पणी की कि कारण पर्याप्त नहीं हैं। सभापति की टिप्पणियां संबंधित सदस्य तक पहुंचा दी गई।[38]

(15) खेल कूद में भाग लेना;

श्री सचिन तेंदुलकर से प्राप्त दिनांक 7 मार्च, 2013 के पत्र में बताया गया कि वह 21 फरवरी से 7 मार्च, 2013 तक उस समय आस्ट्रेलिया के विरुद्ध क्रिकेट टेस्ट मैच में भाग लेने के कारण राज्य सभा की बैठकों में उपस्थित होने में असमर्थ होंगे। चूंकि खेल-कूद में भाग लेने के आधार पर लोक सभा के सदस्यों को अनुपस्थित रहने की अनुमति दी गई थी (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी लोक सभा की समिति की सिफारिश के अनुसार) इसलिए श्री सचिन तेंदुलकर को अनुपस्थित रहने की अनुमति दे दी गई।[39]

अनुपस्थिति की अनुमति के आवेदनों को निपटाया जाना

आवेदन प्राप्त होने के बाद सभापति आवेदन को यथाशीघ्र सभा के समक्ष पढ़कर सुनाता है। प्रश्नकाल को म.पू. 11.00 - मध्याह्न 12.00 बजे से बदलकर नवम्बर, 2014 में मध्याह्न 12.00 बजे से म.प. 1.00 बजे तक किए जाने तक, यह प्रश्नों के समय के बाद या यदि सभापटल पर कोई पत्र रखे जाने हों, तो उनके रखे जाने के बाद किया जाता है। तब से अनुपस्थिति की अनुमति के लिए किसी भी आवेदन को सामान्यत: शपथ/प्रतिज्ञान करना, दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने और सभापटल पर पत्रों को रखे जाने, यदि कोई हो, के पश्चात् सभा में पढ़कर सुनाया जाता है। किन्तु एक बार जब सत्र का अंतिम दिन था तब रात्रि को 9 बजकर 5 मिनट पर अनुपस्थिति की अनुमति प्रदान की गई थी।[40] आवेदन को पढ़कर सुनाने के बाद सभापति पूछता है: "क्या सभा अमुक सदस्य को अमुक अवधि के लिए सभा की सभी बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति देना चाहती है?" यदि कोई भी सदस्य असहमति व्यक्त नहीं करता तो सभापति कहता है: "अनुपस्थित रहने की अनुमति दी जाती है।" किन्तु यदि असहमति का कोई स्वर सुनाई पड़ता है तो सभापति यह देखता है कि सभा की राय क्या है और उसके बाद वह सभा के निश्चय की घोषणा करता है। इस मुद्दे पर सभा में कोई चर्चा नहीं होती। सभा का निर्णय जान लिए जाने के पश्चात् सदस्य को यथास्थिति इस बात की सूचना दी जाती है कि अनुपस्थिति की अनुमति दी गई है या नहीं दी गई है।[41]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नियम सभापति से यह अपेक्षा करता है कि वह अनुमति के आवेदन को सभा में पढ़कर सुनाए। इससे सभा को अपनी इच्छा व्यक्त करने के पहले मामले से संबंधित तथ्यों की जानकारी मिलती है। एक सुझाव दिया गया था कि आवेदन को पढ़कर सुनाने की बजाय सभापति को सभा के समक्ष इस संबंध में प्रस्ताव रखना चाहिए और इसका यथार्थत: निश्चय करना चाहिए कि अनुमति देने के मामले में सभा की इच्छा क्या है। नियम समिति ने इस सुझाव पर विचार तो किया किन्तु वह उस पर सहमत नहीं हुई।[42] किसी सदस्य को अनुमति देने के मामले में सभा के समक्ष कोई प्रस्ताव नहीं होता है और प्रस्तावों तथा संकल्पों के बारे में जो प्रक्रिया अपनाई जाती है वह अनुमति के मामले में नहीं अपनाई जाती। अत: सभापति अनुमति के किसी आवेदन पर सभा में कोई औपचारिक प्रस्ताव रखे बिना उसके बारे में सभा की इच्छा का यथार्थत: निश्चय करता है।[43]

> तथापि, जब एक बार सभापति ने सभा को सूचित किया कि उन्हें एक सदस्य से एक पत्र प्राप्त हुआ है जिसमें उन्होंने अनुपस्थिति की अनुमति प्रदान करने का अनुरोध किया है क्योंकि "इस महीने रायपुर में एक सर्वोदय सम्मेलन आयोजित किया जाने वाला है जिसमें चोटी के नेताओं द्वारा भाग लिए जाने की आशा है और उन्हें उसे सफल बनाने के लिए उसके आयोजन की व्यवस्था देखने के अलावा पैसा भी इकट्ठा करना है।" एक सदस्य ने औचित्य प्रश्न किया कि क्या यह सभा के सत्र से अनुपस्थित रहने का कोई समुचित कारण है। सभापति ने कहा कि वे केवल पत्र की प्राप्ति के बारे में सभा को सूचित कर रहे हैं और वे इस संबंध में सभा के मत के अनुसार चलेंगे। इसके पश्चात् उन्होंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि "वर्तमान सत्र के दौरान श्री एल. एन. दास को सभा की सभी बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति दी जाए।" प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।[44]

सभा के समक्ष अनुमति आवेदन पढ़कर सुनाने की वर्तमान प्रथा यह है कि सभापति समूचे अनुमति आवेदन को पढ़कर सुनाने की बजाय अनुमति मांगने के कारणों के सारांश के बारे में सभा को जानकारी देता है।[45] इस तरह से अनावश्यक ब्यौरे निकाल दिए जाते हैं, अनुमति के लंबे-चौड़े आवेदनों को संक्षिप्त कर दिया जाता है और मामले को अनुमति संबंधी आवेदन के सार्थक और संगत ब्यौरे तक ही सीमित रखा जाता है।

> 28 नवम्बर, 2002 को जब सुश्री लता मंगेशकर का अनुपस्थिति का आवेदन राज्य-सभा के 197वें सत्र के लिए अनुपस्थिति की अनुमति प्रदान करने हेतु प्रस्तुत किया गया, उपसभापति ने टिप्पणी की, "हम या तो अनुमति दें अथवा अनुमति नहीं दें" – इस बारे में निर्णय लेना होगा... अब, मैं वास्तव में नहीं जानता कि, क्या मुझे इस पर मत-विभाजन कराना चाहिए? मुख्य बात यह है, यदि कोई व्यक्ति इस सभा का सदस्य है तो उसे कम-से-कम, यदा-कदा तो सभा में उपस्थित होना ही चाहिए। इस महती निकाय का सदस्य होकर सभा में उपस्थित होने के उत्तरदायित्व की यूंही अनदेखी करना उचित नहीं है। मैं यह समझ सकता हूं कि कुछ समय के लिए कोई भी बीमार हो सकता है किंतु कोई एक-दो वर्षों के लिए बीमार नहीं हो सकता। तत्पश्चात् एक सदस्य ने सभापीठ से निवेदन किया यद्यपि अनुमति प्रदान की जा सकती है किन्तु सभा की इस भावना के बारे में भी सदस्य को सूचित किया जाए कि उसे यहाँ उपस्थित होना चाहिए। तब उपसभापति ने टिप्पणी की, "अनुपस्थित रहने की अनुमति प्रदान की जाती है। किन्तु उस सदस्य को यह भी सूचित किया जायेगा कि उसे कम-से-कम यदा-कदा तो सभा में उपस्थित होना चाहिए।"[46] तदनुसार, सदस्य को सूचित किया गया।[47]

जहां तक सभा की इच्छा (प्लेज़र) जानने का संबंध है, किसी सदस्य को अनुपस्थित रहने की अनुमति देने के संदर्भ में, 31 जुलाई, 1995 को उपसभापति ने कहा, "मैं सोचता हूं कि हमें प्लेज़र (इच्छा) शब्द को बदलना होगा। महासचिव इस बात को नोट करें कि इस तरह की अनुमति के लिए, हमें प्लेज़र (इच्छा) शब्द का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है..."[48] तदनुसार, वर्तमान प्रथा यह है कि पीठासीन अधिकारी सभा से पूछता है, "क्या सभा अमुक सदस्य को अनुपस्थित रहने की अनुमति देती है," आदि।[49]

अनुपस्थिति की अनुमति का न दिया जाना

अब तक एक ही ऐसा अवसर आया है जब राज्य सभा के किसी सदस्य को अनुपस्थिति की अनुमति नहीं दी गई। 22 मार्च, 1976 को हुई राज्य सभा की बैठक में सभापति ने सभा को सूचना दी कि श्री सुब्रह्मण्यन स्वामी, संसद्-सदस्य से, तारीख 1 मार्च, 1976 का निम्नलिखित पत्र प्राप्त हुआ है :

> मुझे सूचित किया गया है कि राज्य सभा का अगला सत्र 8 मार्च, 1976 से शुरू होने वाला है। चूंकि मैं अब भी विदेश यात्रा पर हूं और सत्र की संभावित अवधि के दौरान स्वदेश वापस नहीं लौट सकूंगा। इसलिए मेरा आपसे निवेदन है कि मुझे सभा के इस आसन्न सत्र में अनुपस्थित रहने की अनुमति दी जाए।

इसके बाद सभापति ने यह पूछा कि क्या सभा सदस्य को राज्य सभा के 95वें सत्र के दौरान सभी बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति देना चाहती है। इस पर कुछ सदस्यों ने "नहीं" कहा जबकि कुछ अन्य सदस्यों ने "हां" कहा। प्रक्रिया के अनुसार मामले

का निर्णय करने के लिए सभापति ने सभा की राय की जानकारी ली। यह देखते हुए कि कुछ सदस्य अनुमति देने के पक्ष में हैं और कुछ नहीं, सभापति ने घोषणा की: "सभा की राय यह है कि अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। अनुपस्थित रहने की अनुमति स्वीकार नहीं की जाती।" किसी सदस्य को अनुपस्थिति की अनुमति न देने का यह पहला अवसर था। जैसाकि सभापति ने एक प्रश्न के उत्तर में टिप्पणी की, "ऐसा राज्य सभा में पहली बार हुआ।"[50]

अनुपस्थिति के कारण सीट का रिक्त होना

यदि कोई सदस्य सभा की बैठकों में साठ दिन या उससे अधिक दिन तक अनुपस्थित रहता है और उसे सभा द्वारा अनुपस्थिति की अनुमति नहीं दी जाती तो सभा के नेता के या ऐसे किसी अन्य सदस्य के प्रस्ताव पर जिसे वह इस संबंध में अपने कृत्यों को सौंपे, उसका स्थान (सीट) रिक्त घोषित किया जाएगा। यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाए तो महासचिव यह जानकारी राजपत्र में प्रकाशित कराएगा और अधिसूचना की एक प्रति निर्वाचन आयोग को इस प्रकार रिक्त हुए स्थान की पूर्ति के हेतु कार्यवाही करने के लिए भेजेगा।[51]

अभी तक राज्य सभा में अनुपस्थिति के कारण सीट रिक्त होने का एक मामला हुआ है। उस सदस्य के मामले में जिसके संबंध में राज्य सभा में उसकी सीट (स्थान) रिक्त घोषित करने वाला प्रस्ताव सभा में 21 दिसंबर, 2000 को स्वीकृत हुआ था, सदस्य की सभा की बैठकों से अनुपस्थिति 42 दिन की होने पर और पुन: अनुपस्थिति 51 दिन की होने पर और अंतत: राज्य सभा के 190वें सत्र तक उनकी अनुपस्थिति 58 दिन की होने पर उनका ध्यान संविधान के अनुच्छेद 101 के खंड (4) के परंतुक की ओर आकृष्ट किया गया था। जब उनकी कुल अनुपस्थिति 60 दिनों से अधिक हो गई और सदस्य की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला तो सभा के नेता के पास उनकी सूचना हेतु एक टिप्पण भेजा गया था। तत्पश्चात् संसदीय कार्य और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री ने प्रस्ताव उपस्थित करने की अपनी मंशा संबंधी सूचना दी। तदनुसार, इस संबंध में एक मद 21 दिसंबर, 2000 की संशोधित कार्यावलि में सूचीबद्ध की गई थी।

21 दिसंबर, 2000 को संसदीय कार्य और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री श्री प्रमोद महाजन ने राज्य सभा में निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया:

> "कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 101 के खंड (4) के अनुसरण में राज्य सभा के सदस्य श्री बरजिंदर सिंह हमदर्द, जो सभा की सभी बैठकों से साठ दिनों की अवधि से अधिक समय से अनुपस्थित हैं, का स्थान एतद् द्वारा रिक्त घोषित किया जाता है।"[52]

उपरोक्त प्रस्ताव के स्वीकृत होने के फलस्वरूप, यह तथ्य कि संविधान के अनुच्छेद 101 के खंड (4) के अनुरूप सदस्य का स्थान रिक्त घोषित किया गया, भारत के राजपत्र में अधिसूचित किया गया था।

कोई सदस्य चाहे कितने ही समय के लिए अनुपस्थित क्यों न रहे, वह स्वत: अपना स्थान रिक्त नहीं करता, किंतु यदि वह साठ दिन की निरंतर अवधि के लिए (जिसमें

सत्रावसान या स्थगन की वह अवधि शामिल नहीं है जो लगातार चार दिन से अधिक हो) अनुपस्थित रहता है तो सभा एक प्रस्ताव के द्वारा उसका स्थान रिक्त घोषित कर सकती है। सभा ऐसा प्रस्ताव पारित करने के लिए बाध्य नहीं है। यद्यपि अनुच्छेद 101 के खंड (3) में उल्लिखित परिस्थितियों के कारण स्वत: रिक्ति हो जाती है। तथापि, अनुच्छेद 101(4) के अधीन अनुपस्थिति के कारण रिक्ति तभी होती है जब सभा सदस्य की सदस्यता समाप्त करना उचित समझे और स्थान को रिक्त घोषित कर दे।[53]

> राज्य सभा ने 5 मई, 1987 को एक सदस्य को सभा के 142वें सत्र के दौरान अनुपस्थित रहने की अनुमति प्रदान की थी। जब 144वें सत्र तक सदस्य की कुल अनुपस्थिति चौवन दिन की हो गई, तब उन्हें एक पत्र भेजा गया जिसमें संविधान के उपबंध 101(4) की ओर उनका ध्यान दिलाया गया और उन्हें यह सलाह दी गई कि वे अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन करें। उनसे कोई उत्तर नहीं मिला। अगले सत्र में उनकी कुल अनुपस्थिति अस्सी दिन की हो गई। उनसे कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई। अत: सभा के नेता को उनकी सूचना के लिए और ऐसी कार्यवाही के लिए जो उनके विचार में आवश्यक हो, एक टिप्पण भेजा गया। सदस्य मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के थे और इस पार्टी के नेता को भी इस मामले में सूचित किया गया। सभा के नेता ने औपचारिक रूप से सुझाव दिया कि संबंधित सदस्य को यह स्पष्टीकरण देने के लिए कहा जाए कि सभा की अनुमति के बिना उनके लंबे समय के लिए सभा में अनुपस्थित रहने के कारण उनके विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 101(4) के अधीन कार्यवाही क्यों न की जाए और ऐसा स्पष्टीकरण मांगते हुए उनसे यह निवेदन किया जाए कि वह यह बताएं कि वे जुलाई, 1986 से सत्र में किन कारणों से अनुपस्थित रहे और साथ ही यह भी बताएं कि वे किन परिस्थितियों के कारण अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन नहीं कर सके। सदस्य की पार्टी के नेता ने भी अनौपचारिक रूप से यह कहा कि कार्यवाही आरंभ करने पर उन्हें आपत्ति नहीं है। किंतु सदस्य की ओर से कोई उत्तर नहीं आया।[54] सूचना प्राप्त हुई कि 13 जनवरी, 1989 को सदस्य की हत्या कर दी गई थी।[55]

उपसभापति, सभा के नेता तथा मंत्रियों की अनुपस्थिति

उपसभापति सत्र के दौरान सभा की बैठकों में उपस्थित होने में जब भी असमर्थ होता है वह तदनुसार सभापति को सूचित करता है। इससे सभापति और उपसभापति की अनुपस्थिति में उपसभाध्यक्षों की तालिका के किसी सदस्य द्वारा सभा की अध्यक्षता की व्यवस्था होती है।

एक अवसर पर सभा के नेता को स्वास्थ्य खराब होने के कारण अनुपस्थिति की अनुमति दी गई थी। जब एक सदस्य ने यह कहा : "उन्हें हमारी अनुमति की आवश्यकता नहीं है"। तब उपसभापति ने टिप्पणी की : "उन्होंने एक पत्र लिखा है।"[56]

मंत्रियों को दिल्ली से बाहर अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन या अन्य किसी आधार पर सभा की बैठकों में उनकी अनुपस्थिति के लिए सभा की अनुमति के लिए आवेदन नहीं करना पड़ता। किंतु मंत्रियों को जब भी सत्र के दौरान लंबी अवधि के लिए अनुपस्थित रहना पड़ता है या विदेश यात्रा पर जाना होता है तब वे सभा के प्रति शिष्टाचार की दृष्टि से इस संबंध में सभापति को सूचित करते हैं।

मंत्रिगण बैठकों में थोड़े समय के लिए भी अनुपस्थित रहने के बारे में सभापति को

सूचित करते हैं और इस बात की भी सूचना देते हैं कि उनकी अनुपस्थिति में उनके जिम्मे जो संसदीय कार्य होगा उसे निपटाने के लिए क्या-क्या व्यवस्था की गई है।

मुख्य मंत्री के रूप में नियुक्त किसी सदस्य को अनुपस्थिति की अनुमति

किसी सदस्य को मुख्य मंत्री के रूप में नियुक्त कर दिया गया था किंतु उन्होंने राज्य सभा में अपनी सदस्यता से इस्तीफा नहीं दिया था। उन्होंने अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन किया किंतु उसमें किसी कारण का उल्लेख नहीं किया। यद्यपि आवेदन को लेने में कोई रोक नहीं थी तथापि इस मामले में कोई पूर्वोदाहरण नहीं था और आवेदन को लंबित रखा गया।[57]

ऐसे सदस्य को अनुपस्थिति की अनुमति जिसने शपथ नहीं ली है या प्रतिज्ञान नहीं किया है और उस पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं

यदि किसी सदस्य ने शपथ नहीं ली है या प्रतिज्ञान नहीं किया है तो संविधान में उल्लिखित शास्ति से बचने के लिए अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन कर सकता है।

डा. जाकिर हुसैन की पदावधि नामनिर्देशित सदस्य के रूप में 3 अप्रैल, 1952 को आरंभ हुई थी। उन्हें 14 जुलाई, 1952 को अनुपस्थिति की अनुमति दी गई थी। उन्होंने 13 मई, 1952 को आरंभ हुए राज्य सभा के पहले सत्र के दौरान 11 अगस्त, 1952 को शपथ ली थी।[58]

श्री लाल कृष्ण आडवाणी और श्री सुन्दर सिंह भंडारी की पदावधि 3 अप्रैल, 1976 को आरंभ हुई। उन्होंने 28 फरवरी, 1977 को शपथ ली। इस अवधि के बीच उन्हें अनुपस्थिति की अनुमति दी गई थी।[59] 18 मई, 1976 को श्री भंडारी को अनुपस्थिति की अनुमति प्रदान किए जाने के बाद किसी सदस्य ने सुझाव दिया कि यदि कोई कठिनाई न हो तो उपसभापति या कोई उपसभाध्यक्ष जेल में जाकर निरुद्ध सदस्य को शपथ दिला सकते हैं। सभापति ने टिप्पणी की : "ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे मामले में एक पूर्वोदाहरण है जब हमने अनुपस्थित रहने की अनुमति दी है। किंतु आपने जो सुझाव दिया है उस पर विचार किया जाएगा।"[60]

श्री आर. के. करंजिया को, जिन्हें 11 जनवरी, 1991 को राज्य सभा के लिए नामनिर्देशित किया गया था, राज्य सभा के 157वें सत्र के दौरान 22 फरवरी, 1991 को अनुपस्थिति की अनुमति दी गई थी। उन्होंने 11 जुलाई, 1991 को प्रतिज्ञान किया। जब यह मुद्दा उठाया गया कि श्री करंजिया ने शपथ लिये बिना या प्रतिज्ञान किए बिना और उस पर हस्ताक्षर किए बिना अनुपस्थिति की अनुमति मांगी है तब उपसभापति ने निर्णय दिया कि सदस्य को शपथ लिए बिना या प्रतिज्ञान किए बिना भी अनुपस्थिति की अनुमति मांगने का हक है।[61]

इसी प्रकार सुश्री लता मंगेशकर, जिन्हें 22 नवम्बर, 1999 को राज्य सभा के लिए नामनिर्देशित किया गया था, को राज्य सभा के 188वें सत्र के दौरान 6 दिसंबर, 1999 को अनुपस्थित रहने की अनुमति प्रदान की गई थी; उन्होंने 23 फरवरी, 2000 को शपथ ली थी।

ऐसे सदस्य को अनुपस्थिति की अनुमति जिसका त्याग-पत्र विचाराधीन है

कुछ सदस्य सभा में उपस्थित नहीं हो रहे थे क्योंकि सभा की सदस्यता से उनका त्याग-पत्र सभापति के विचाराधीन था। यह अनुभव किया गया कि उनके त्याग-पत्रों को देखते हुए, जो सभापति के विचाराधीन थे, यह आवश्यक नहीं है कि उनको पत्र लिखकर उनका ध्यान लगभग चालीस दिन या उससे अधिक की उनकी अनुपस्थिति की ओर दिलाया जाए।[62]

अनुपस्थिति की अनुमति को रद्द किया जाना

एक सदस्य को एक सत्र के दौरान सभा की सभी बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति दी गई थी। किन्तु वह सत्र के दौरान सभा की बैठकों में उपस्थित हुए और उन्होंने एक पत्र में अनुरोध किया कि अनुपस्थिति की जो अनुमति दी गई है उसे रद्द कर दिया जाए। अनुमति को इस प्रकार रद्द करने के संबंध में कोई उपबंध या पूर्वोदाहरण नहीं था और यह मत व्यक्त किया गया कि जिन दिनों के लिए सदस्य को अनुपस्थित रहने की अनुमति दी गई है उन दिनों सत्र की बैठकों में उपस्थित होने के लिए उन पर कोई पाबंदी नहीं है और अनुमति को रद्द करने का कोई प्रश्न नहीं उठता।[63] तथापि, यदि कोई सदस्य जिसे अनुपस्थिति की अनुमति प्रदान की गई है, उस अवधि जिसके दौरान उसे अनुपस्थिति की अनुमति प्रदान की गई थी उसमें सभा के सत्रों में भाग लेता है तो उसकी उपस्थिति पुन: आरम्भ होने की तिथि से अनुमति की असमाप्त अवधि व्यपगत हो जायेगी।

अनुपस्थिति की अनुमति के दौरान दैनिक भत्ते का भुगतान

संविधान के अनुच्छेद 101(4) के अधीन जिस सदस्य को अनुपस्थिति की अनुमति दी जाती है उसे अनुपस्थिति की अवधि में संसद् के सत्र के स्थान में निवास करने पर भी उस अवधि के लिए दैनिक भत्ता लेने का कोई हक नहीं होता। संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 की धारा 3 के परंतुक की अपेक्षानुसार भी स्पष्ट है कि किसी सदस्य द्वारा दैनिक भत्ते का दावा करने के लिए उपस्थिति पंजी में हस्ताक्षर करना आवश्यक है।[64]

सदस्यों की उपस्थिति के बारे में सूचना उपलब्ध कराना

किन्हीं विशिष्ट दिनों को सदस्य की उपस्थिति से संबंधित सूचना सदस्य द्वारा अनुरोध किए जाने पर उसे उपलब्ध कराई जाती है। ऐसा अनुरोध करते समय सदस्य को यह उल्लेख करना पड़ता है कि यह सूचना उसे किस प्रयोजन के लिए चाहिए। अनुरोध स्वीकार कर लिए जाने पर उपस्थिति पंजी में से केवल उन्हीं दिनों के बारे में सूचना दी जाती है जब सदस्य ने पंजी पर वस्तुत: हस्ताक्षर किए हों।

न्यायालय को उपस्थिति पंजी में से सूचना उपलब्ध कराना

सदस्यों की उपस्थिति से संबंधित सभी अभिलेख महासचिव की अभिरक्षा में रहते हैं और उन्हें सत्र के दौरान सभा की अनुमति से और यदि सत्र नहीं चल रहा हो तो सभापति की अनुमति से ही किसी न्यायालय को उपलब्ध कराया जा सकता है।[65]

> सत्र न्यायाधीश, कुड्डालूर से एक अनुरोध प्राप्त हुआ कि उसे राज्य सभा की उपस्थिति पंजी में से 1 मार्च, 1963 से 15 मार्च, 1963 तक की अवधि के ऐसे प्रमाणित उद्धरण भेजे जाएं जिनमें राज्य सभा के सदस्य श्री आर. गोपालकृष्णन् की हाजिरी और उपस्थिति दिखाई गई हो। चूंकि उक्त अनुरोध की प्राप्ति के समय सभा का सत्र नहीं चल रहा था इसलिए पंजी में से संगत उद्धरणों को विधिवत् प्रमाणित करके उन्हें सत्र न्यायाधीश को भेजे जाने की स्वीकृति सभापति द्वारा दी गई। उद्धरणों को 30 जनवरी 1964 को भेजा गया और उपसभापति ने सभा को तदनुसार सूचित किया।[66]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. अनुच्छेद 101(4)
2. -वही- परंतुक
3. कौल और शकधर, प्रैक्टिस एंड प्रोसिजर ऑफ पार्लियामेन्ट, छठा संस्करण, 2009, पृष्ठ 405
4. उदाहरण के लिए देखिये संसदीय समाचार (2), 18.11.1991
5. संसदीय समाचार (2), 10.8.1993
6. फा.सं. 5/2/93-एल.ओ.
7. नियम 214(1)
8. फा.सं. 1/4/84-एल.ओ. और 1/4/89-एल.ओ.
9. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 26.8.1953, कालम 296; 8.3.1954, कालम 1996-97; राज्य सभा वाद-विवाद, 4.9.1961, कालम 2912-13; 15.12.1972, कालम 113; 31.7.1975, कालम 4-5; 6.12.1978, कालम 146; 22.12.1992, कालम 296; और 14.2.1995, कालम 263
10. -वही- 15.5.1953, कालम 5993; 8.3.1954, कालम 1996; राज्य सभा वाद-विवाद, 2.8.1994, कालम 393; 17.8.1994, कालम 272-73; और 14.2.1995, कालम 263
11. फा.सं. 1/4/91-एल.ओ.
12. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.12.1983, कालम 225-27; तथापि इस मामले में सभापति को बीमार सदस्य से एक तार प्राप्त हुआ
13. फा.सं. 1/4/91-एल.ओ.
14. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.8.2010, कालम, 234-35
15. नियम समिति के तीसरे प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, 5.8.1981
16. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 27.5.1952, कालम 460-61; और 15.5.1953, कालम 5993
17. -वही- 19.12.1952, कालम 2450-51
18. -वही- 2.3.1953, कालम 1426; राज्य सभा वाद-विवाद, 10.8.1966, कालम 2137-38; 12.7.1979, कालम 155;18.8.1972, कालम 142 और 21.8.1972, कालम 126
19. -वही- 11.8.1952, कालम 3731-32; 4.12.1952, कालम 905-06; 19.12.1952, कालम 2450-51; 2.3.1953, कालम 1426; 16.4.1953, कालम 3064; राज्य सभा वाद-विवाद, 19.3.1955, कालम 2437; 5.4.1955 कालम 3998; 3.9.1958, कालम 1918-19; 28.3.1961, कालम 123; 2.9.1965, कालम 2481-82; और 17.8.1966, कालम 2876
20. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 25.11.1953, कालम 321-22; राज्य सभा वाद-विवाद, 14.9.1957, कालम 5663-64; और 23.4.1958, कालम 178-79
21. फा.सं. 1(4)/1992-एल.ओ.
22. फा.सं. 1/4/89-एल.ओ. और 1/4/92-एल.ओ.
23. फा.सं. 1/4/84-एल.ओ.
24. फा.सं. 1/4/89-एल.ओ.
25. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.12.1962, कालम 3734; और 26.3.1965, कालम 4685-86
26. -वही- 16.9.1991, कालम 10
27. फा.सं. 1(4)/2010 एल.ओ.
28. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.4.1953, कालम 3063-64; राज्य सभा वाद-विवाद, 14.12.1961, कालम 2390-91
29. -वही- 24.11.1953, कालम 177
30. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.9.1954, कालम 1241; 29.5.1957, कालम 1018; 31.5.1957, कालम 2546; और 15.6.1967, कालम 4072-73
31. -वही- 23.12.1954, कालम 3196; 15.3.1955, कालम 1954-55; 21.12.1956, कालम 3351; 20.8.1956, कालम 1652; और 23.11.1972, कालम 210

32. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.6.1967, कालम 2660-61
33. -वही- 14.9.1957, कालम 5663-64; 9.1.1976, कालम 86-87; 15.1.1976, कालम 257-58; और 12.3.1976, कालम 128
34. -वही- 17.9.1958, कालम 3629; 21.8.1972, कालम 126; और 18.8.1980, कालम 230
35. -वही- 7.12.1960, कालम 1136-37; 18.12.1964, कालम 4367; 24.2.1965, कालम 938; 13.5.1965, कालम 1887; और 19.12.1973, कालम 219
36. -वही- 31.3.1965, कालम 5185 और 21.3.1967, कालम 316-17
37. -वही- 26.5.1971, कालम 137-41
38. -वही- 5.5.1987, कालम 182-83 और फा.सं. 1/4/87-एल.ओ.
39. फा.सं. 2(2)/2013-एल.ओ.
40. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.8.1993, कालम 624
41. नियम 214
42. नियम समिति के तीसरे प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, 5.8.1981
43. नियम समिति ज्ञापन, 1980 का संख्यांक 32
44. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.12.1963, कालम 3749-50
45. फा.सं. 1/4/84-एल.ओ. पिछले उदाहरणों के लिए देखिए राज्य सभा वाद-विवाद, 21.11.1969, कालम 902; 28.4.1970, कालम, 142-43; 7.1.1976, कालम 133-34; 22.1.1976, कालम 131-32; 9.3.1976, कालम 126; 24.3.1976, कालम 125; 25.3.1976, कालम 116-17; 30.11.1977, कालम 138; 19.7.1978, कालम 213-14; 25.4.1979, कालम 113; 18.8.1980, कालम 230; और 25.7.1984, कालम 204
46. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.11.2002, कालम 203-04
47. फा.सं. 1/4/2001-एल.ओ.
48. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.7.1995, कालम 189-90
49. फा.सं. 1/4/95-एल.ओ. और राज्य सभा वाद-विवाद, 4.8.1995 और 26.8.1995
50. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.3.1976, कालम 78-80
51. नियम 215
52. संसदीय समाचार (1), 21.12.2000
53. कमेंटरी ऑन दि कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, लेखक डी. डी. बसु (पांचवां संस्करण), खंड 2, पृष्ठ 564
54. फा.सं. 10/88-टी
55. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.2.1989, कालम 35 जिसमें श्री टी. एस. गुरुंग को श्रद्धांजलि दी गई है
56. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 24.11.1952, कालम 36-37
57. फा.सं. 1/4/83-एल.ओ.
58. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 14.7.1952, कालम 993
59. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.5.1976, कालम 81-82; 24.8.1976, कालम 104; और 12.11.1976, कालम 2
60. -वही- 18.5.1976, कालम 81-82
61. -वही- 22.2.1991, कालम 166-67
62. फा.सं. 1/4/83-एल.ओ.
63. फा.सं. 1/4/82-एल.ओ.
64. फा.सं. 1/4/90-एल.ओ., और 1/12/93-एल.ओ.
65. द फर्स्ट रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑफ प्रिविलेजेज़
66. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.2.1964, कालम 101

अध्याय-15

कार्य की व्यवस्था

प्रथानुसार संसदीय कार्य दो मोटी-मोटी श्रेणियों में बांटा जाता है, अर्थात् सरकारी कार्य और गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य। प्रत्येक सत्र के आरंभ में बैठकों की जो अस्थायी सारणी जारी की जाती है वह सामान्य रूप से यह दर्शाती है कि सत्र के दौरान किस-किस दिन क्या-क्या कार्य होगा। इस अध्याय में कार्य की उन विभिन्न मदों को दर्शाया गया है जिन्हें सामान्यत: सभा में लिया जाता है। उनमें से प्रत्येक के संबंध में विस्तृत प्रक्रिया का उल्लेख संबंधित अध्याय में किया गया है।

सरकारी कार्य

वस्तुत: गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक और संकल्प ही ऐसी मदें हैं जो गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य की श्रेणी में आती है। इन पर प्रत्येक शुक्रवार को या ऐसे किसी दिन जिसे सभापति नियत करे, ढाई घंटे तक चर्चा की जाती है। सभा के समक्ष प्रतिदिन या समय-समय पर आने वाली अन्य सभी मदों को गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रारंभ किए जाने पर भी, सरकारी कार्य के लिए आवंटित समय में निपटाया जाता है। ऐसी मदें हैं: प्रश्न और अल्प-सूचना प्रश्न, ध्यानाकर्षण, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद का प्रस्ताव, अल्पकालिक चर्चा, संविधान या संसद् के किसी अधिनियम के अनुसरण में बनाए गए नियमों, विनियमों, उप-विधियों आदि के संशोधनार्थ सांविधिक प्रस्ताव, सार्वजनिक महत्व के विषयों पर प्रस्ताव, आधे घंटे की चर्चा, सांविधिक संकल्प, शून्य-काल के दौरान सदस्यों द्वारा किए गए उल्लेख, विशेष उल्लेख के मामले और विशेषाधिकार संबंधी मामले। इसके अतिरिक्त, कार्य की ऐसी मदें जैसे सदस्यों द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान, दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि और अन्य उल्लेख और सभापति द्वारा की गई घोषणाएं भी सरकारी समय में होती हैं।

> 93वें (1975) और 98वें (1976) सत्र के दौरान इस आशय के सरकारी प्रस्ताव स्वीकृत किए गए कि इन सत्रों के दौरान केवल सरकारी कार्य किया जाएगा और सभा के समक्ष कोई अन्य कार्य न तो लाया जाएगा और न किया जाएगा।[1]

शून्यकाल के उल्लेखों, विशेष उल्लेख संबंधी मामलों, विशेषाधिकार के मामलों, उल्लेखों और सभापीठ द्वारा की जाने वाली घोषणाओं, मंत्रियों के परिचय के अलावा अन्य सभी मदों को कार्यावलि में दर्ज किया जाता है। प्रश्नों, अल्प-सूचना प्रश्नों और सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों के मामले में पृथक् सूचियां छापी जाती हैं और इसलिए मुख्य कार्यावलि में इन सूचियों का उल्लेख मात्र होता है। सदस्यों द्वारा बड़ी संख्या में शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के मामले में कार्यावलि में एक सामान्य प्रविष्टि होती है जिसमें यह उल्लेख होता है कि जिन सदस्यों ने शपथ नहीं ली है या प्रतिज्ञान नहीं किया है वे विहित रूप से ऐसा करेंगे। यदि एक ही सदस्य को शपथ लेनी होती है या प्रतिज्ञान करना होता है और उसकी पूर्व सूचना प्राप्त हो जाती है तो शपथ/प्रतिज्ञान के शीर्षक के अंतर्गत उसके नाम का भी कार्यावलि में उल्लेख किया जाता है।

सभापति द्वारा सभा में समय-समय पर कतिपय मामलों के बारे में घोषणाएं की जाती हैं जैसे किसी सदस्य द्वारा त्याग-पत्र दिया जाना, किसी सदस्य की गिरफ्तारी, किसी सदस्य को निरुद्ध किया जाना, दोषसिद्धि या रिहाई, सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति, सभा की अध्यक्षता के लिए उपसभाध्यक्षों के नामों की सूची बनाना, राष्ट्रपति से प्राप्त संदेश, विशेष प्रकोष्ठ से सदन की कार्यवाही देखने के लिए आए हुए विदेशी संसदीय शिष्टमंडलों का स्वागत इत्यादि। ऐसी घोषणाओं के संबंध में कार्यावलि में कोई उल्लेख नहीं किया जाता। इन सभी मामलों को मुख्य कार्य के शुरू होने के पूर्व दिन के आरंभ में लिया जाता है।

सरकार द्वारा या सरकारी समय में आरंभ होने वाले कार्य की मदों को अनेक शीर्षों के अंतर्गत श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

सभापटल पर रखे गए पत्र

संविधान के संबंधित उपबंधों, संसद् के किसी अधिनियम या किसी अन्य कानून, सदन के नियम या विनियम या परंपरा या प्रथा या सदन के प्रक्रिया संबंधी नियमों के अधीन मंत्रियों द्वारा विभिन्न प्रतिवेदनों, पत्रों और दस्तावेजों को सभापटल पर रखा जाता है। सभा में इन पत्रों को रखने का प्रयोजन सभा को प्रामाणिक और प्राधिकृत सूचना या तथ्य उपलब्ध कराना है।

संविधान के अनुसार निम्नलिखित पत्रों को सभापटल पर रखना आवश्यक है: वार्षिक वित्तीय विवरण और अनुदानों की अनुपूरक मांगें,[2] राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए अध्यादेश और उद्घोषणाएं और इनसे संबंधित आदेश[3] तथा (1) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक का प्रतिवेदन[4], (2) वित्त आयोग का प्रतिवेदन, उस पर की गई कार्यवाही को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित,[5] (3) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों संबंधी विशेष अधिकारी (आयुक्त) का प्रतिवेदन,[6] (4) पिछड़ा वर्ग आयोग का प्रतिवेदन, उस पर की गई कार्यवाही को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित,[7] (5) भाषाई अल्पसंख्यकों के विशेष अधिकारी (भाषाई अल्पसंख्यकों के आयुक्त) का प्रतिवेदन[8] और (6) संघ लोक सेवा आयोग का प्रतिवेदन, उन मामलों के बारे में, यदि कोई हों, एक ज्ञापन सहित जहां सरकार द्वारा आयोग की सलाह नहीं मानी गई और सलाह न मानने के कारण।[9] यह भी आवश्यक है कि संघ लोक सेवा आयोग के कृत्यों के बारे में राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए विनियमों को सभापटल पर रखा जाए।[10] वित्त आयोग और पिछड़ा वर्ग आयोग के प्रतिवेदन समय-समय पर, जब भी वे राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किए जाएं, सभापटल पर रखे जाते हैं। अन्य प्राधिकारियों के प्रतिवेदन वार्षिक रूप से सभापटल पर रखे जाते हैं।

केन्द्रीय सरकार या किसी अन्य अधीनस्थ प्राधिकारी को नियम बनाने की शक्ति प्रदान करने वाले विभिन्न कानूनों में एक उपबंध है जिसके अधीन नियमों, विनियमों, उप-विधियों, स्कीमों आदि को तीस दिन की ऐसी अवधि के भीतर सभापटल पर रखना होता है जो एक सत्र या दो और उससे अधिक क्रमवर्ती सत्रों से मिलकर बनती है। इनके अतिरिक्त विशिष्ट कानूनों के अधीन गठित जांच आयोगों के प्रतिवेदनों और विभिन्न सार्वजनिक/सरकारी उपक्रमों के प्रतिवेदनों/लेखाओं को भी सभापटल पर रखना आवश्यक है।

प्रक्रिया संबंधी नियमों के अनुसार निम्नलिखित पत्रों को प्रस्तुत करना/सभापटल पर रखना आवश्यक है: विधेयकों संबंधी प्रवर/संयुक्त समितियों के प्रतिवेदन,[11] स्थायी समितियों के प्रतिवेदन,[12]

याचिकाएं[13] और अध्यादेशों के संबंध में विवरण।[14] समितियों के प्रतिवेदन संबंधित समितियों के अध्यक्ष या प्राधिकृत सदस्यों द्वारा सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं या सभापटल पर रखे जाते हैं और याचिकाएं उन सदस्यों जो ऐसी याचिकाओं पर प्रतिहस्ताक्षर करते हैं या महासचिव द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं। अध्यादेशों से संबंधित विवरण संबंधित मंत्रियों द्वारा सभापटल पर रखे जाते हैं और वे ऐसे अध्यादेशों के स्थान पर विधेयकों को भी पुरःस्थापित करते हैं।

प्रक्रिया संबंधी नियमों के अनुसार महासचिव द्वारा कतिपय पत्रों को सभापटल पर रखना भी आवश्यक है। ऐसे पत्र हैं: राज्य सभा द्वारा पारित और लोक सभा द्वारा संशोधनों सहित लौटाए गए विधेयक,[15] लोक सभा द्वारा पारित और राज्य सभा को भेजे गए विधेयक, जिनमें धन विधेयक भी शामिल हैं[16]। महासचिव संविधान के अनुच्छेद 87 के अधीन एक साथ समवेत हुए संसद के दोनों सदनों में राष्ट्रपति के अभिभाषण की एक प्रति भी सभापटल पर रखता है। सत्र के आरंभ में महासचिव सदन की सूचना के लिए संसद की दोनों सभाओं द्वारा पारित उन विधेयकों का विवरण सभापटल पर रखता है जिन पर राष्ट्रपति ने पिछले सत्र के दौरान अनुमति दे दी हो।

तथापि, विधेयकों के महत्व को ध्यान में रखते हुए, 28 मार्च, 1989[17] को राष्ट्रपति द्वारा सहमति दिए गए संविधान (इकसठवां संशोधन) विधेयक, 1988 की एक प्रति और 12 मार्च, 1991[18] को राष्ट्रपति द्वारा सहमति दिए गए संविधान (अड़सठवां संशोधन) विधेयक, 1991 की एक प्रति क्रमशः 147वें और 157वें सत्रों के दौरान महासचिव द्वारा सभा पटल पर रखी गई थीं।

महासचिव ने 214वें सत्र के दौरान संसद् द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्रदत्त राष्ट्रीय जूट बोर्ड विधेयक, 2008 की एक प्रति सभापटल पर रखी थी।[19]

216वें सत्र के पहले दिन सभापटल पर कोई विवरण नहीं रखा गया था क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा किसी विधेयक को सहमति प्रदान नहीं की गई थी।[20]

स्थापित प्रक्रिया के अनुसार पत्र/प्रतिवेदन आदि प्रश्नकाल के पूरा होने के बाद मध्याह्न 12 बजे सभापटल पर रखे जाते हैं। 222वें सत्र के दौरान 4 मार्च, 2011 को सभापति द्वारा प्रश्नकाल के पुनर्निर्धारण किए जाने के कारण प्रश्नों को पूछने और उनके उत्तर देने का समय सोमवार से बृहस्पतिवार तक म.प. 2.00 बजे से म.प. 3.00 बजे तक और शुक्रवार को म.प. 2.30 बजे से म.प. 3.30 बजे तक[21] निर्धारित किया गया, 222वें सत्र की शेष अवधि के दौरान पत्रों/प्रतिवेदनों को सभापटल पर म.प. 3.00 बजे (शुक्रवार को म.प. 3.30 बजे) रखा गया। तथापि दिनांक 1 अगस्त, 2011 से 223वें सत्र के दौरान प्रश्नकाल का सामान्य समय म.पू. 11.00 बजे बहाल कर दिया गया[22] और पत्रों/प्रतिवेदनों को पुनः प्रश्नकाल के पूरा होने के बाद मध्याह्न 12.00 बजे रखा जाने लगा। बाद में, दिनांक 24 नवम्बर, 2014 से 233वें सत्र और उसके बाद प्रश्नकाल को म.पू. 11.00-मध्याह्न 12.00 बजे से मध्याह्न 12.00 बजे—म.प. 1.00 बजे तक पुननिर्धारित किया गया।[23] तद्नुसार, पत्रों/प्रतिवेदनों को म.पू. 11.00 बजे सभापटल पर रखा गया।

तथापि, सरकार द्वारा किसी भी समय सभापटल पर पत्र रखे जा सकते हैं।

एक बार, वित्त मंत्रालय में उप मंत्री ने दिनांक 30 अप्रैल, 1974 को बैठक की समाप्ति के समय खांडसारी चीनी पर उत्पाद शुल्क को बढ़ाने से संबंधित अधिसूचना की एक प्रति सभापटल पर रखी। एक सदस्य ने उप मंत्री द्वारा किसी भी समय सभा पटल पर पत्र रखे जाने पर आपत्ति जताई। उपसभाध्यक्ष ने कहा कि:

सरकार की ओर से मंत्री किसी भी समय कोई विवरण रख सकता है।[24]

2 अगस्त, 1985 को वित्त मंत्रालय में राज्य मंत्री ने कॉफी पर निर्यात शुल्क को कम किए जाने के संबंध में एक पत्र म.प. 5.00 बजे सभापटल पर रखा। चूंकि वह उस दिन की संशोधित कार्यावलि में दर्ज नहीं था, इसलिए एक सदस्य ने सुझाव दिया कि ऐसी स्थिति में सभा को सूचित करने की मौजूदा औपचारिकता का पालन किया जाना चाहिए। इस पर उपसभाध्यक्ष ने कहा कि:

> मैं संसदीय कार्य मंत्री से सदस्य के सुझाव को नोट करने और यह देखने का अनुरोध करता हूं कि जहां पत्र संशोधित कार्यावलि में दर्ज न हों, और जब वे दिन की कार्यवाही के मध्य में आ जाते हैं तो उनके बारे में सदस्यों को सूचित किया जाए ताकि वे परिपाटी के अनुसार स्पष्टीकरणों की मांग कर सकें। मैं सरकार से इस बात को नोट करने का अनुरोध करता हूं।[25]

पत्रों को सभापटल पर रखे जाने को सुविधाजनक बनाने के लिये हाल में मंत्रालयों को अनुपालनार्थ कुछ दिशा-निर्देश जारी किये गये हैं। मंत्रालयों के लिये जरूरी है कि वे पत्रों को सभापटल पर रखने की तारीख से ठीक तीन कार्य-दिवसों से पूर्व अपने पत्र भेज दें। यह सुनिश्चित करने के लिए सभी मंत्रालयों को प्रत्येक सत्र के आरम्भ होने से पूर्व एक परिपत्र जारी किया जाता है जिसमें उनसे यह अनुरोध किया जाता है कि वे निर्धारित समय के भीतर अपने पत्र भेज दें। इन पत्रों के समय पर न मिलने पर उन्हें मंत्रालय को प्रश्नों के लिये आवंटित आगामी दिवस की सूची में डाल दिया जाता है।

अशुद्धियों को ठीक करने के लिए वक्तव्य

जब कोई मंत्री यह देखता है कि उसने तारांकित/अतारांकित, अल्प-सूचना प्रश्न या किसी अनुपूरक प्रश्न के उत्तर में या वाद-विवाद के दौरान सभा में गलत सूचना दी है तो वह अपने पिछले उत्तर या सूचना की अशुद्धि को दूर करने के लिए कोई वक्तव्य दे सकता है या विवरण सभापटल पर रख सकता है। इस मद को कार्यावलि में शामिल करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रस्तावित वक्तव्य/विवरण की पूर्व सूचना के साथ उसकी एक प्रति महासचिव को दी जाए। प्रश्नों से संबंधित अशुद्धियों को ठीक करने के लिए दिए जाने वाले वक्तव्य/विवरण सामान्यत: प्रश्नकाल की समाप्ति के तुरंत बाद दिए जाते हैं या सभापटल पर रखे जाते हैं। किसी वाद-विवाद के दौरान दी गई सूचना में हुई गलती को ठीक करने वाला वक्तव्य/विवरण ऐसे समय में दिया जा सकता है या सभापटल पर रखा जा सकता है जिसकी सभापति अनुमति दें।

उदाहरण के लिए रक्षा मंत्रालय में रक्षा उत्पादन और आपूर्ति विभाग के राज्य मंत्री ने बोफोर्स संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन के बारे में किए गए प्रस्ताव के संबंध में 12 अगस्त, 1987 को राज्य सभा में दिए गए अपने उत्तर की अशुद्धि को ठीक करने के लिए एक वक्तव्य दिया ताकि "सभी संदेहों का निराकरण हो सके"।[26]

ध्यानाकर्षण के उत्तर में दिए गए वक्तव्य

ध्यानाकर्षण के मामले को प्रश्नों के बाद और पत्रों के, यदि कोई हों, सभापटल पर रखे जाने के बाद और कार्यावलि में दर्ज किसी मद को लेने के पहले उठाया जाता है और मंत्री उसके उत्तर में एक संक्षिप्त वक्तव्य देता है।[27] ध्यानाकर्षण का मामला उठाये जाने के समय को अब नियम समिति के तेरहवें प्रतिवेदन, जिसे सभा द्वारा 26 नवम्बर, 2014 को स्वीकार किया

गया, में की गई सिफारिशों के आधार पर इस संशोधन के साथ बदल दिया गया है कि ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पर म.प. 2.00 बजे चर्चा की जाएगी।[28]

लोक महत्व के मामलों पर मंत्रियों द्वारा वक्तव्य

सभापति की अनुमति से कोई मंत्री लोक महत्व के किसी विषय पर वक्तव्य दे सकता है।[29] सामान्यत: जिस तारीख को मंत्री द्वारा वक्तव्य देने का विचार होता है उसके बारे में प्रस्तावित वक्तव्य की एक प्रति के साथ सचिवालय को उसकी अग्रिम सूचना भेजनी पड़ती है ताकि वह मद कार्यावलि में शामिल की जा सके। यदि किन्हीं अविलम्बनीय मामलों में मंत्री उसी दिन कोई वक्तव्य देने का अनुरोध करता है तो समय के उपलब्ध रहने पर एक अनुपूरक कार्यावलि जारी की जाती है जिसमें ऐसे वक्तव्य के समय का उल्लेख होता है अन्यथा सभापीठ द्वारा इस संबंध में घोषणा की जाती है और/या सदस्यों की सूचना के लिए सीसीटीवी में सूचना दर्शायी जाती है।

नियमानुसार "जिस समय वक्तव्य दिया जाए उस समय कोई प्रश्न नहीं पूछा जाएगा।"[30] किन्तु पिछले कई वर्षों के दौरान यह प्रथा या परंपरा विकसित हुई है कि सदस्यों को वक्तव्य पर स्पष्टीकरण प्राप्त करने की अनुमति दी जाए। स्पष्टीकरण मांगने संबंधी सदस्यों की मांगें इतनी सामान्य हो गयी हैं कि सभापीठ ने समय-समय पर इस प्रक्रिया के विनियमन की आवश्यकता पर बल दिया।

> 4 अक्तूबर, 1982 को सिंचाई मंत्री ने देश में बाढ़ की स्थिति के संबंध में वक्तव्य दिया। कुछ दल के सचेतकों ने स्पष्टीकरण मांगें। कुछ अन्य सदस्य भी स्पष्टीकरण मांगना चाहते थे। उपसभाध्यक्ष ने निर्णय दिया:
>
>> कोई स्पष्टीकरण मांगा नहीं जा सकता है और इसलिए, यह सभापीठ का अनुग्रह है कि कुछ स्पष्टीकरण की अनुमति दी जा रही है परंतु निश्चित रूप से कुछ विनियमन होना चाहिए... इस सभा में यह परंपरा रही है कि जब कभी कुछ अत्यावश्यक लोक महत्व का वक्तव्य दिया जाता है, तब सभापीठ मंत्री द्वारा स्पष्टीकरण के रूप में जवाब दिये जाने के लिए कुछ प्रश्नों की अनुमति देती है। परंतु निश्चित रूप से इसके आधार पर मुझ पर यह दवाब नहीं डाला जा सकता है कि प्रत्येक सदस्य और विशेषत: जो सदस्य बोल चुके हैं, स्पष्टीकरण मांगना जारी रखें। सभा के कार्य को भी विनियमित किया जाना चाहिए।[31]

वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मांगने की परंपरा अब काफी समय से राज्य सभा में जारी है। सामान्यत: वक्तव्य देने के तुरन्त बाद स्पष्टीकरण मांगे जाते हैं। किन्तु ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां किसी दिन वक्तव्य तो दे दिया गया है किन्तु स्पष्टीकरण बाद में मांगे गए हैं। यदि वक्तव्य की विषय-वस्तु पर चर्चा करने के लिए कोई अन्य अवसर उपलब्ध हो तो सदन स्पष्टीकरण को छोड़ने का भी निर्णय कर सकता है।

> उदाहरण के लिए कार्य मंत्रणा समिति ने सिफारिश की थी कि मैसर्स कुओ ऑयल से एचएसडी के खरीदे जाने के विषय पर 29 जुलाई, 1982 को होने वाली अल्पकालिक चर्चा को देखते हुए इस संबंध में 28 जुलाई, 1982 को दिए जाने वाले वक्तव्य पर कोई स्पष्टीकरण न मांगे जाएं।[32]
>
> सभापीठ ने सदस्यों को 18 मार्च, 2011 को मतों के लिए रुपयों के भुगतान संबंधी समाचार पत्र की खबर के संबंध में प्रधान मंत्री द्वारा वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति नहीं दी। इसके

बाद सदस्यों से प्राप्त नोटिसों के आधार पर वक्तव्य के विषय को गृहीत किया गया और 23 मार्च, 2011 को 'अल्पावधि चर्चा' के रूप में इस पर चर्चा की गई।[33]

17 अगस्त, 2011 को श्री अन्ना हजारे द्वारा प्रारंभ किये गये आंदोलन से उत्पन्न हुई स्थिति के संबंध में प्रधान मंत्री के वक्तव्य को सामान्य चर्चा में परिणत किया गया जिसमें 21 सदस्यों ने भाग लिया।[34]

इसी प्रकार 27 अगस्त, 2011 को लोकपाल की स्थापना से संबंधित मामलों पर वित्त मंत्री द्वारा दिये गये वक्तव्य को भी विस्तृत चर्चा में परिणत किया गया जो 7 घंटों से अधिक समय तक जारी रही और इसमें 26 सदस्यों ने भाग लिया।[35]

पिछले समय में मंत्रियों द्वारा वक्तव्य बैठक के आरंभिक समय के दौरान होते थे। स्पष्टीकरण मांगने की प्रथा को देखते हुए, कार्य मंत्रणा समिति ने सिफारिश की थी कि कोई मंत्री सभापति की सहमति से मध्याह्न पश्चात् पांच बजे या उसके बाद वक्तव्य दे सकता है किन्तु सभापति द्वारा अनुमति देने पर वह किसी अन्य समय पर भी वक्तव्य दे सकता है।[36] अत: आजकल कार्यावलि में वक्तव्य का समय सामान्यत: सभा की बैठक के उत्तरार्द्ध में मध्याह्न पश्चात् 5 बजे या कार्यावलि में दर्ज कार्य के पूरा होने के बाद और सभा के उठने के पहले का होता है।

जहां तक मंत्री के वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मांगने की प्रक्रिया का संबंध है, यह निर्धारित किया गया है कि:

(i) चार या उससे अधिक सदस्यों वाले दल/समूह में से केवल एक सदस्य को वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मांगने के लिए कहा जा सकता है और जहां तक कांग्रेस (आई) दल का संबंध है, उस दल से दो या तीन सदस्यों को स्पष्टीकरण के लिए बुलाया जा सकता है;

(ii) चार से कम सदस्य-संख्या वाले समूह के सदस्यों को वक्तव्य पर बारी-बारी से स्पष्टीकरण पूछने का अवसर दिया जा सकेगा, परन्तु तीन बार से अधिक नहीं; और

(iii) स्पष्टीकरण मांगने में कोई सदस्य तीन मिनट से अधिक समय नहीं लेगा।[37]

तथापि, मंत्री के जवाब देने के बाद कोई स्पष्टीकरण मांगा नहीं जा सकता है। स्वत: स्फूर्त वक्तव्य को पटल पर रखा नहीं जाता है, बल्कि पढ़ा जाता है।

व्यक्तिगत स्पष्टीकरण

कोई सदस्य सभापति की अनुमति से व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दे सकता है चाहे सभा में उसे देने का प्रश्न न भी हो। किन्तु इस मामले में कोई वाद-विवाद का विषय नहीं लाया जाना चाहिए और कोई वाद-विवाद नहीं होना चाहिए।[38] ऐसे सदस्य, जिनके विरुद्ध सभा में व्यक्तिगत रूप से टिप्पणियां की गई हों या जिनकी आलोचना की गई हो, सभापति की अनुमति से अपने बचाव में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दे सकते हैं। व्यक्तिगत स्पष्टीकरण एक ऐसा तरीका है जिसका प्रयोग करके कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य द्वारा उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप के उत्तर में या उसके विरुद्ध दिए गए किसी कथित गलत वक्तव्य का खंडन करने के लिए अपने आचरण और स्थिति को स्पष्ट कर सकता है। व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिवस के मुख्य कार्य को लेने के पहले दिया जाता है। किन्तु कोई सदस्य सभापति की अनुमति से ऐसे वाद-विवाद के दौरान भी व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दे सकता है जब उसके विरुद्ध कोई आरोप लगाए जाएं।

उदाहरण के लिए 31 जुलाई, 1991 को डा. वाई. शिवाजी ने व्यक्तिगत स्पष्टीकरण मांगने हेतु उपसभापति से अनुमति मांगी थी। इस सभा के नियम और प्रक्रिया के संबंध में सदस्य को याद दिलाते हुए उपसभापति ने निम्नलिखित समुक्ति की:

> आपको व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने हेतु सर्वप्रथम सभापति की अनुमति लेनी चाहिए। आप सभापति को लिखिए इसके बाद यदि सभापति अनुमति प्रदान करते हैं, तो मैं आपको अनुमति दूंगा कोई भी आपके प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार नहीं देने जा रहा है।[39]

यदि कोई सदस्य नियम का अनुसरण किए बिना वाद-विवाद के दौरान किसी सदस्य या मंत्री के विरुद्ध आरोप लगाता है तो जिस सदस्य या मंत्री के विरुद्ध आरोप लगाए गए हैं उसे उसके अनुरोध पर उसी दिन या बाद में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी जाती है ताकि वह अपनी स्थिति स्पष्ट कर सके। यदि वह तुरंत व्यक्तिगत स्पष्टीकरण नहीं देता या वह उस समय सभा में उपस्थित न हो तो उसे सभापति को लिखित निवेदन करने पर और उसके साथ उस सदस्य द्वारा दिए जाने वाले वक्तव्य की एक प्रति संलग्न करने पर बाद में वक्तव्य देने की अनुमति दी जाती है। ऐसी व्यवस्था इसलिए की गई है ताकि सभापति यह जानकारी प्राप्त कर सके कि जो सदस्य व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देना चाहता है वह ऐसी बात तो नहीं करने जा रहा है जो वाद-विवाद का विषय बन सकती है। यदि अनुमति दे दी जाती है तो सदस्य सभा में वक्तव्य देता है और उस पर कोई प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं होती और ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि व्यक्तिगत स्पष्टीकरण किसी बहस का रूप धारण न कर ले। किसी साधारण सदस्य द्वारा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिए जाने पर किसी अन्य सदस्य को उसके विरोध में कोई स्पष्टीकरण देने की अनुमति प्रदान करने की सामान्यत: प्रथा नहीं है। सभा की कार्यवाही के दौरान दोनों पक्षों द्वारा वक्तव्य दे दिए जाने के बाद मामले को समाप्त समझा जाता है।

यदि किसी सदस्य या मंत्री से व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के लिए कोई अनुरोध प्राप्त होता है और सभापति उसकी अनुमति दे देता है तो इस विषय के संबंध में कार्यावलि में एक मद शामिल की जाती है।

उदाहरण के लिए 17 नवम्बर, 1980 की कार्यावलि में एक मद शामिल की गई थी जो विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी मंत्री श्री सी.पी.एन. सिंह के व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के बारे में थी। यह व्यक्तिगत स्पष्टीकरण श्री सिंह के बारे में उन टिप्पणियों के संबंध में था जो 18 अगस्त, 1980 को दिवस के अंत में दो सदस्यों ने की थीं। इसके अतिरिक्त पर्यावरण और वन मंत्रालय में राज्य मंत्री श्रीमती मेनका गांधी के बारे में 28 अगस्त, 1990 को प्रश्नकाल के बाद कुछ टिप्पणियां की गई थीं और उनके बारे में श्रीमती गांधी द्वारा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिए जाने के संबंध में 30 अगस्त, 1990 की संशोधित कार्यावलि में एक मद शामिल की गई थी।

श्री राम जेठमलानी के सम्बन्ध में 28 जुलाई, 2000 को सभा में पत्रों/प्रतिवेदनों को सभापटल पर रखने के पश्चात् की गई कतिपय टिप्पणियों के बारे में श्री जेठमलानी द्वारा दिये जाने वाले व्यक्तिगत स्पष्टीकरण से सम्बन्धित एक मद अगस्त, 2000 की अनुपूरक कार्यावलि में शामिल की गई थी।

14 अगस्त 2006 की अनुपूरक कार्यावलि में श्री के. नटवर सिंह द्वारा दिये जाने वाले व्यक्तिगत स्पष्टीकरण से संबंधित एक मद शामिल की गई थी।

किसी अवसर पर श्री एम. वेंकैया नायडु को कार्यावलि में प्रविष्टि के बिना 9 मई, 2003 को व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी गई थी। किसी दूसरे अवसर पर श्री मुकुल राय को कार्यावलि

में प्रविष्टि के बिना केन्द्रीय मंत्री परिषद् से अपने त्याग-पत्र पर अपने व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी गई थी। तथापि, उन्होंने व्यक्तिगत स्पष्टीकरण नहीं दिया।

ऐसे मंत्रियों जो राज्य सभा के सदस्य नहीं हैं, को भी सभा में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी गई है।

30 अगस्त, 1990 को उपसभापति ने पर्यावरण और वन मंत्रालय में राज्य मंत्री श्रीमती मेनका गांधी को अपने और पर्यावरण और वन मंत्री श्री नीलमणि राउते के बीच विवाद के संबंध में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने के लिए बुलाया था। इस विषय पर श्री कमल मोरारका और अन्य सदस्यों ने औचित्य का प्रश्न उठाया कि श्रीमती मेनका गांधी राज्य सभा की सदस्य नहीं थीं और इस कारण वह व्यक्तिगत स्पष्टीकरण नहीं दे सकती थीं। उपसभापति ने समुक्ति की जो निम्नानुसार है:

> ...यदि श्रीमती मेनका गांधी उस सभा की सदस्य मात्र होतीं, तो सभापीठ उन पर कोई आरोप की अनुमति नहीं देती। इस आरोप पर अनुमति दी गई क्योंकि वह मंत्री के रूप में इस सभा में आती हैं और वह दोनों सभाओं में सदस्यों के प्रश्नों के प्रति उत्तरदायी हैं। और, यदि ऐसा नहीं था, तो मैं दूसरी सभा के किसी सदस्य के बारे में कुछ भी कहने की अनुमति प्रदान नहीं करता।
>
> दूसरी बात यह है कि सभापति ने अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए श्रीमती मेनका गांधी को व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी है। यही कारण है कि वह यहां हैं।[40]

ऐसे भी अवसर थे जब ऐसे मंत्रियों जो दूसरी सभा के सदस्य (गृह मंत्रालय के राज्य मंत्री श्री माणिक राव गावित और वित्त मंत्री श्री पी. चिदंबरम) को क्रमश: 14 अगस्त, 2006 और 29 अगस्त, 2005 को कार्यावलि में प्रविष्टि के बिना व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति प्रदान की गई थी।

समितियों के लिए निर्वाचन हेतु प्रस्ताव

कार्य की दूसरी औपचारिक मद ऐसी समिति, प्राधिकरण या निकाय में कार्य करने के लिए सदन के सदस्यों को निर्वाचित करने का प्रस्ताव है जो संसद के किसी अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या किसी सरकारी संकल्प के अनुसरण में गठित किया जाए। संसदीय कार्य मंत्रालय यह सूचित करता है कि संबंधित मंत्री ऐसा प्रस्ताव किस तारीख को उपस्थित करेगा और उस दिन की कार्यावलि में सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों की मद के बाद और मुख्य कार्यवाही की मद के पहले इस मद को दर्ज किया जाता है।

विधेयकों को पुर:स्थापित करने या वापस लेने के लिए प्रस्ताव

किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने या वापस लेने की अनुमति चाहने वाला प्रस्ताव कार्य की एक औपचारिक मद होने के नाते उसे दिवस के मुख्य कार्य को हाथ में लेने के पहले निपटाया जाता है। कार्यावलि में एक मद मंत्री के उस वक्तव्य के बारे में होती है जिनमें उन परिस्थितियों को स्पष्ट किया जाता है जिनके कारण अध्यादेश द्वारा तुरंत विधान बनाना आवश्यक हो गया था। कार्यावलि में इस मद को उस अध्यादेश का स्थान लेने वाले विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव से संबंधित मद से पहले दर्ज किया जाता है।[41] विधेयक या विधेयकों को पुर:स्थापित करने की अनुमति चाहने वाले प्रस्ताव या प्रस्तावों को किसी दिन की कार्यावलि में शामिल किया जा सकता है, चाहे वह दिन राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा करने[42] या वित्तीय कार्य को निपटाने के लिए[43] नियत कर दिया गया हो।

विधान कार्य

सदन में विधेयकों का पुरःस्थापन मंत्री और गैर-सरकारी सदस्य दोनों कर सकते हैं। किन्तु सरकारी समय के दौरान उन्हीं विधेयकों का पुरःस्थापन किया जाता है और उन्हीं पर विचार किया जाता है जिनके बारे में मंत्रियों द्वारा सूचना दी जाती है। गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों को पुरःस्थापित करने और उन्हें निपटाने का कार्य गैर-सरकारी सदस्यों के लिए आवंटित समय में ही किया जा सकता है।

प्रस्ताव

लोक महत्व के किसी मामले पर चर्चा करने का प्रस्ताव सभापति की अनुमति से उपस्थित किया जा सकता है। ऐसे प्रस्ताव जिसके लिए मंत्री द्वारा सूचना दी जाती है, को सरकारी प्रस्ताव कहा जाता है और इसे ऐसे प्रस्ताव से भिन्न किया जाता है जिसकी सूचना गैर-सरकारी सदस्य द्वारा दी जाती है। गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा दिये गये प्रस्ताव की सूचनाओं के मामले में सभापति सभा में कार्य की स्थिति पर विचार करने और सभा के नेता के परामर्श करने के उपरांत ऐसे किसी प्रस्ताव की चर्चा के लिए एक दिन या एक से अधिक दिन या दिन का कुछ हिस्सा आवंटित कर सकते हैं। किसी प्रस्ताव पर जो चर्चा होती है वह सरकारी समय में होती है, चाहे वह सरकारी प्रस्ताव हो या न हो। प्रथा यह है कि गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा जिन प्रस्तावों की सूचना दी जाती है और जिन्हें गृहीत कर लिया जाता है उनमें से उन्हीं प्रस्तावों को विचारार्थ लिया जाता है जिनकी कार्य मंत्रणा समिति द्वारा सिफारिश की गई हो या चयन किया गया हो। इस प्रयोजन के लिए कोई निश्चित समय निर्धारित नहीं किया गया है किन्तु कभी-कभी स्वयं कार्य मंत्रणा समिति प्रस्ताव का चयन करते हुए समय का आवंटन कर सकती है और यहां तक कि चर्चा की तारीख के बारे में भी सिफारिश कर सकती है।

> उदाहरण के लिए कार्य मंत्रणा समिति ने सिफारिश की थी कि प्रधान मंत्री के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध जांच आयोग की नियुक्ति से संबंधित प्रस्ताव पर 10 अगस्त, 1978 को चर्चा होनी चाहिए। तदनुसार इस प्रस्ताव को उसी दिन लिया गया।[44]
>
> कार्यमंत्रणा समिति ने उन आधारों की जांच हेतु गठित जांच समिति के प्रतिवेदन पर विचार हेतु प्रस्ताव पर चर्चा हेतु चार घंटों की सिफारिश की है, जिसके द्वारा 11 नवम्बर, 2010 को कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री सौमित्र सेन को पद से हटाने की मांग की गई थी। प्रस्ताव चर्चा हेतु 17 और 18 अगस्त, 2011 को स्वीकार किया गया।[45]

संकल्प

मंत्री और गैर-सरकारी सदस्य दोनों ही संकल्प उपस्थित कर सकते हैं किन्तु जैसाकि विधेयकों के मामले में होता है, मंत्रियों द्वारा उपस्थित किए गए संकल्पों को ही, जिन्हें सरकारी संकल्प कहा जाता है, सरकारी समय के दौरान लिया जाता है। तथापि, गैर-सरकारी सदस्यों के सांविधिक संकल्पों पर सरकारी समय के दौरान चर्चा होती है। ऐसे संकल्प हैं: राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश के निरनुमोदन के लिए संकल्प या संसद् के किसी अधिनियम के अनुसरण में

सभापटल पर रखे गए किसी सांविधिक नियम या आदेश के रूपांतरण के लिए या उसके रद्द करने के लिए संकल्प। गैर-सरकारी सदस्यों के अन्य संकल्पों, अर्थात् सांविधिक संकल्पों से भिन्न संकल्पों को गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए आवंटित समय के दौरान लिया जाता है।

चर्चाएं

संसदीय प्रथा के एक सामान्य नियम के रूप में कोई प्रस्ताव वह प्ररूप है जिसके अनुसार किसी विषय पर वाद-विवाद आरंभ करना आवश्यक है। तथापि, प्रक्रिया संबंधी नियमों में इसके कई अपवाद दिए गए हैं जिनके अंतर्गत किन्हीं औपचारिक प्रस्तावों के बिना भी चर्चाएं हो सकती हैं। किसी अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर बिना किसी औपचारिक प्रस्ताव के चर्चा हो सकती है।[46]

बजट पर सामान्य चर्चा होती है किन्तु उसके लिए कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जाता।[47] किसी मंत्रालय के कार्यकरण पर चर्चा लंबे समय से चली आ रही प्रथा के अनुसार हर वर्ष किसी औपचारिक प्रस्ताव के बिना ही होती है। किसी प्रश्न से उत्पन्न होने वाली आधे घंटे की चर्चा भी सदन में औपचारिक प्रस्ताव किए बिना होती है।[48]

यद्यपि किसी अल्पकालिक चर्चा के मामले में कार्यावलि में उन सभी सदस्यों के नाम होते हैं जिनकी किसी विषय से संबंधित सूचनाएं गृहीत कर ली गई हैं तथापि बजट और किसी मंत्रालय के कार्यकरण पर होने वाली चर्चाओं के बारे में कार्यावलि में सिर्फ एक सामान्य प्रविष्टि होती है। बजट पर सामान्य चर्चा सबसे बड़े विपक्षी दल के किसी सदस्य द्वारा आरंभ की जाती है और किसी मंत्रालय के कार्यकरण पर होने वाली चर्चा के मामले में दल/समूह अपने बीच यह फैसला करते हैं कि उसकी शुरुआत कौन करेगा। ये सभी चर्चाएं सरकारी समय में होती हैं। अल्पकालिक चर्चा के समय के बारे में सभापति द्वारा निर्णय किया जाता है। किन्तु कई बार कार्य मंत्रणा समिति ने यह भी सिफारिश की है यह चर्चा अमुक दिन के लिए नियत की जाए।[49] जहां तक आधे घंटे की चर्चा का संबंध है, सामान्यत: वह किसी बैठक के आखिरी समय पर अर्थात् मध्याह्न पश्चात् पांच या छह बजे या कार्य की दूसरी मदों के निबटने पर उससे पहले भी होती है। इस प्रयोजन के लिए कार्यावलि में एक मद शामिल की जाती है जिसके अंतर्गत उस सदस्य या उन सदस्यों के नामों का उल्लेख होता है जिसकी या जिनकी सूचना गृहीत कर ली जाती है।

तथापि, ऐसे भी अवसर आये हैं जब किसी न किसी कारण से सामान्य बजट और रेल बजट पर सामान्य चर्चा नहीं हो सकी। वर्ष 1999 में श्री अटल बिहारी वाजपेयी की अध्यक्षता वाली सरकार ने 17 अप्रैल, 1999 को लोक सभा में विश्वास-मत खो दिया और परिणामस्वरूप, इससे पहले कि सामान्य बजट और रेल बजट पर चर्चा हो पाती, लोक सभा भंग हो गई। वर्ष 2000 में, 189वें सत्र के दौरान सामान्य बजट (2000-2001) और विनियोग (रेल) विधेयक को बजट सत्र के पहले भाग के अन्तिम दिन बिना चर्चा के ही पारित कर दिया गया। वर्ष

2000-2001 के रेल बजट पर विस्तारपूर्वक चर्चा हुई। वर्ष 2001 में, 192वें सत्र के दौरान 'तहलका' द्वारा किये गये रहस्योद्‌घाटनों के संदर्भ में निरन्तर व्यवधान के कारण बजट सत्र के दौरान सामान्य बजट और रेल बजट पर सामान्य चर्चा नहीं हो पायी।

228वें सत्र के प्रथम भाग में बजट (सामान्य) 2013-14 और विनियोग विधेयकों पर चर्चा शुरू हुई[50] किंतु किसी राष्ट्रीय राजनीतिक दल के नेता के विरुद्ध किसी केन्द्रीय मंत्री द्वारा कथित टिप्पणी करने और संयुक्त राष्ट्र में श्रीलंका द्वारा युद्ध संबंधी अपराधों से संबंधित संकल्प पर भारत सरकार के रूख़ पर निरंतर व्यवधानों के कारण समाप्त नहीं हो पाई। नेताओं की बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार सभापति ने सदस्यों को सामान्य बजट और विनियोग विधेयक, 2013 पर अपने लिखित कारणों को सभा पटल पर रखने की अनुमति दी।[51]

हालांकि, 19 मार्च 2007 को बजट (सामान्य) 2007-08 पर चर्चा के दौरान वित्त मंत्री सभा में कोलाहल के कारण वाद-विवाद में अपना उत्तर पूरा नहीं कर पाए। राज्य सभा के उप-सभापति जो उस समय अध्यक्षता कर रहे थे, ने वित्त मंत्री को उनके भाषण के शेष भाग को सभापटल पर रखने का निदेश दिया। वित्त मंत्री ने तदनुसार अपने भाषण के शेष भाग को सभापटल पर रख दिया। परिणामस्वरूप एक प्रश्न उठा कि क्या सभापटल पर रखे गए भाषण उस दिन के शब्दश: वृत्तलेखन का भाग माना जाएगा अथवा 'सभापटल पर रखे गए पत्र' के रूप में दर्शाया जाएगा। मामले की जांच के बाद सभापति का अनुमोदन प्राप्त करने के पश्चात्, 19 मार्च, 2007 को वित्त मंत्री द्वारा दिया गया भाषण, जो राज्य सभा के सभापटल पर रखा गया था, को वाद-विवाद के भाग के रूप में, 'सभापटल पर रखे गए पत्र' के संकेत के साथ रखा गया।[52] 18 फरवरी, 2014 को जब विनियोग (रेल) विधेयक, 2014 विचार हेतु ग्रहण किए गए और मंत्री सभा में कोलाहल के कारण अपना उत्तर नहीं दे पाए, रेल मंत्री ने बजट प्रस्ताव 2014-15 पर एक विवरण सभापटल पर रखा।[53]

वित्तीय कार्य

सदन के वित्तीय कार्य में अन्य बातों के साथ-साथ रेल तथा सामान्य बजटों और अनुदानों की अनुपूरक मांगों और विवरणों को लोक सभा में प्रस्तुत करने के बाद सभापटल पर रखा जाना है। यह अपने आयाम में सामान्य तथा रेल बजटों पर सामान्य चर्चा, संबंधित विनियोग विधयेकों और वित्त विधेयक पर विचार और उनका लौटाया जाना, उन राज्यों के बजटों आदि का सभा पटल पर रखा जाना जो राष्ट्रपति शासन के अधीन हों और उनसे संबंधित विनियोग विधेयकों पर विचार और उनका लौटाया जाना और कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार के मंत्रालयों/विभागों के कार्यकरण पर चर्चा संपुटित करता है। कार्यावलि में इन सभी मदों के बारे में आवश्यक प्रविष्टियां की जाती हैं।

सरकारी कार्य का समय

सभा की बैठक का सामान्य समय एक घंटे के मध्याह्न-भोजन के अवकाश सहित मध्याह्न-पूर्व 11 बजे से म.प. 5 बजे तक का होता है। हालांकि 27 नवम्बर, 2014 से प्रभावी नियम समिति

के तेरहवें प्रतिवेदन को स्वीकार किए जाने के साथ सभा की बैठकों का सामान्य समय एक घण्टा बढ़ा दिया गया अर्थात् 11.00 पूर्वाह्न से 01:00 अपराह्न तक और 02:00 अपराह्न से 06:00 अपराह्न तक, केवल शुक्रवार को छोड़कर, जब सभाएं भोजनावकाश के पश्चात् 02:30 अपराह्न पर पुनः समवेत होती हैं। इस प्रकार मध्यावकाश के बाद सभा के पुनः समवेत होने पर ही वास्तविक सरकारी कार्य शुरू होता है। शुक्रवार को सरकारी काम नहीं के बराबर होता है तथापि, मध्याह्न 12 बजे और मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बीच या म.प. 5 बजे के बाद कुछ निर्धारित सरकारी कार्य किया जा सकता है।

सरकारी कार्य के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध न होने के विषय पर कार्य मंत्रणा समिति द्वारा समय-समय पर विचार किया जाता रहा है। उदाहरण के लिए 8 मार्च, 1982 को हुई अपनी बैठक में उसने सिफारिश की कि सभा के कार्य की व्यवस्था इस प्रकार की जाए कि सरकारी कार्य के लिए नियत किए गए दिवसों को सरकारी कार्य के लिए प्रतिदिन चार घंटे उपलब्ध हों। समिति की राय थी कि इसका अर्थ यह है कि सभा को कार्य का निष्पादन करने के लिए प्रतिदिन और अधिक समय तक अर्थात् आवश्यक होने पर मध्याह्न-पश्चात् 6 बजे के बाद भी बैठना पड़ेगा।[54] समिति ने 12 अगस्त, 1993 को हुई अपनी बैठक में यह मत व्यक्त किया कि सरकारी विधान कार्य को पूरा करने के लिए प्रतिदिन चार घंटे का समय होना चाहिए और विधान कार्य से भिन्न सभी कार्यों को मध्याह्न-पश्चात् ढाई बजे तक पूरा कर लिया जाना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो इसके लिए मध्याह्न-भोजन का अवकाश भी छोड़ दिया जाना चाहिए।[55] समिति ने 19 अगस्त, 1993 को हुई अपनी बैठक में इस राय को दोहराया।[56]

सरकारी कार्य की व्यवस्था

जो दिन सरकारी कार्य करने के लिए नियत किए जाते हैं उन दिनों सरकारी कार्य को प्राथमिकता दी जाती है।[57]

शिक्षा मंत्री ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के दूसरे प्रतिवेदन (1957-58) पर विचार करने के लिए एक प्रस्ताव की सूचना दी।[58] इसके पहले इसी विषय पर गैर-सरकारी सदस्यों का एक प्रस्ताव गृहीत किया गया था और उसे एक अनियत दिन वाले प्रस्ताव के रूप में अधिसूचित किया गया था।[59] कार्यावलि में केवल सरकारी प्रस्ताव को शामिल किया गया था क्योंकि संसदीय कार्य मंत्री द्वारा घोषित कार्यक्रम में यह उल्लेख किया गया था कि अगले सप्ताह में इस विषय के संबंध में केवल सरकारी प्रस्ताव पर चर्चा होगी।[60] तदनुसार 26 फरवरी, 1959 को सरकारी प्रस्ताव पर विचार किया गया।

16 अगस्त, 1962 को रेल दुर्घटनाओं के संबंध में सभापटल पर एक वक्तव्य रखा गया। इस वक्तव्य के संबंध में एक सरकारी प्रस्ताव गृहीत हुआ और उसे संसदीय समाचार में अधिसूचित किया गया।[61] इसके कुछ पहले लगातार हुई अनेक रेल दुर्घटनाओं के कारण उत्पन्न हुई स्थिति पर कुछ सदस्यों द्वारा प्रस्ताव के लिए दी गई सूचना गृहीत कर ली गई और उसे अनियत दिन वाले प्रस्ताव के रूप में अधिसूचित किया गया।[62] कार्यावलि में केवल सरकारी प्रस्ताव शामिल किया गया। व्यवस्था का प्रश्न उठाया गया और सरकार से पूछा गया कि उस स्थिति में सरकारी प्रस्ताव को सदन में कैसे लिया जा सकता है जब इसी प्रकार के एक प्रस्ताव की सूचना दो सदस्यों ने दी हो और सभापति द्वारा जिसे गृहीत किया जा चुका हो और उसे संसदीय समाचार में अधिसूचित भी किया जा चुका हो। व्यवस्था का प्रश्न उठाने वाले सदस्य ने तर्क दिया कि मंत्री का प्रस्ताव चाहे सदस्यों द्वारा दिये गए प्रस्ताव के समान ही क्यों न हो, जिन सदस्यों ने प्रस्ताव की सूचना पहले दी है उन्हें प्रस्ताव उपस्थित करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। इस पर उपासभाध्यक्ष ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

> अध्याय 10 में प्रस्तावों से संबंधित नियमों में सरकारी प्रस्ताव और गैर-सरकारी प्रस्ताव के बीच कोई विभेद नहीं किया गया है। इसलिए नियम दोनों प्रस्तावों पर लागू होते हैं....मेरा सदस्यों से

> अनुरोध है कि वे सरकारी कार्य से संबंधित नियम 22 को देखें। यदि आज गैर-सरकारी सदस्यों का दिन होता तो बात अलग होती। आज सरकारी कार्य का दिन है। अतः मेरा निर्णय है कि जहां सरकारी कार्य के दिन दो प्रस्ताव हों, जिनमें से एक सदस्यों का और दूसरा सरकार का हो, वहां सरकारी प्रस्ताव को पूर्ववर्तिता प्राप्त होगी।[63]
>
> चिट फंड विधेयक, 1982 पर विचार करने के प्रस्ताव पर एक सदस्य ने एक संशोधन दिया कि विधेयक को प्रवर समिति को सौंपा जाए। इसके बाद संबंधित मंत्री ने भी इस प्रयोजन के लिए एक संशोधन दिया। केवल मंत्री का संशोधन उपस्थित किया गया और उपसभापति ने टिप्पणी की "सदस्य के प्रस्ताव की अपेक्षा मंत्री के प्रस्ताव को प्राथमिकता दी जाएगी। नियम यही है।"[64]

महासचिव से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सरकारी कार्य की व्यवस्था ऐसे क्रम में करेगा जिसे कि सभापति सभा के नेता से परामर्श करने के बाद निर्धारित करे।[65]

किसी सत्र के आरंभ होने के कुछ दिन पहले संसदीय कार्य मंत्री संबंधित मंत्री से स्वीकृति लेने के बाद सचिवालय को एक विवरण उपलब्ध कराता है जिसमें यह सूचना होती है कि समूचे सत्र के दौरान सदन में क्या-क्या सरकारी कार्य होने की संभावना है। सदस्यों की सूचना के लिए यह सूचना संसदीय समाचार भाग-II में प्रकाशित की जाती है।[66] किसी सत्र के आरंभ होने के लगभग चार या पांच दिन पूर्व सत्र के पहले दो दिनों के लिए एक कार्यावलि जारी की जाती है जिसमें संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा सूचित किए गए कार्य का उल्लेख किया जाता है। सत्र के आरंभ होने के पूर्व के अंतिम कार्य-दिवस को पहले दिन की कार्यावलि में संशोधन किया जाता है और संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा सूचित किए गए सरकारी कार्य के अलावा सभापटल पर रखे जाने वाले पत्र, ध्यानाकर्षण, यदि कोई हों, और प्रतिवेदनों को प्रस्तुत करने जैसी कार्य की मदों को उसमें शामिल किया जाता है।

सत्र के आरंभ होने के बाद संसदीय कार्य मंत्रालय किए जाने वाले सरकारी कार्य को कार्यावलि में शामिल किए जाने के कार्य संपादन के बारे में प्रतिदिन सूचना देता है। यदि किसी दिन की कार्यावलि जारी की जा चुकी हो और संसदीय कार्य मंत्रालय या किसी अन्य मंत्रालय से उस दिन किए जाने वाले कार्य की कोई नई मद प्राप्त हो जाए तो उस मद का उल्लेख करने के लिए अनुपूरक कार्यावलि जारी की जाती है और आवश्यकता होने पर संशोधित कार्यावलि भी जारी की जाती है। जहां समय कम हो वहां अनुपूरक कार्यावलि उसी दिन सभा में ही सदस्यों को उपलब्ध करा दी जाती है।

ऐसे भी अवसर आए हैं, जब संसदीय कार्य मंत्रालय ने किसी भी सरकारी कार्य को कार्यावलि में समाविष्ट करने संबंधी जानकारी नहीं दी है।[67]

सदन में किए जाने वाले सरकारी कार्य संबंधी वक्तव्य

प्रत्येक सप्ताह अगले सप्ताह के दौरान सदन में किए जाने वाले सरकारी कार्य के बारे में सदन में एक वक्तव्य दिया जाता है ताकि सदस्यों को सदन द्वारा किए जाने वाले सरकारी कार्य के बारे में सूचना प्राप्त होती रहे।

> प्रारंभ के वर्षों में संसदीय कार्य मंत्री द्वारा सरकारी विधान कार्य के क्रम के बारे में समय-समय पर घोषणा किए जाने की प्रथा शुरू हुई। उदाहरण के लिए 1956 में एकाधिक बार ऐसे कार्य के

बारे में घोषणा हुई।[68] अगले सप्ताह के लिए सरकारी कार्य के बारे में लगभग नियमित रूप से घोषणा करने की प्रथा 1 सितम्बर, 1958 से शुरू हुई। सामान्यत: यह घोषणा पिछले सप्ताह के अंतिम कार्य-दिवस को की जाती थी या कभी-कभी आगामी सप्ताह के आरंभ में की जाती थी।[69]

1 सितम्बर, 1958 को संसदीय कार्य मंत्री द्वारा 'वर्तमान सप्ताह' के लिए सरकारी कार्य की घोषणा किए जाने के बाद एक सदस्य ने यह प्रतिक्रिया व्यक्त की कि इससे उन्हें खुशी हुई है। सभापति ने टिप्पणी की: "यह बिल्कुल ठीक है। वे हर हफ्ते घोषणा करेंगे।" इसके बाद सदस्य ने सुझाव दिया: "यह अच्छी बात है कि आज की शुरुआत के बाद माननीय मंत्री सप्ताह के कार्य के बारे में सभा में घोषणा करते रहेंगे। इससे हमें मदद मिलेगी। किंतु यदि वे सप्ताह का कार्यक्रम तय करने के पहले हमसे भी परामर्श करने की कृपा कर सकें तो उससे बहुत लाभ होगा क्योंकि यह आवश्यक है कि वे हमारी सुविधा को भी ध्यान में रखें। इसमें संदेह नहीं कि अंतिम निर्णय उन्हें ही करना है किंतु यह घोषणा करने से पहले वे हमारी राय ले सकते हैं।"[70]

संसदीय कार्य मंत्री द्वारा अगले सप्ताह के लिए सरकारी कार्य की घोषणा सामान्यत: शुक्रवार को की जाती है। इसके पहले सभापीठ द्वारा सरकारी कार्य की विभिन्न मदों के लिए समय के आवंटन के बारे में कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशों की घोषणा की जाती है। कार्य मंत्रणा समिति अपनी सिफारिशें एक साप्ताहिक बैठक के बाद करती है जो सामान्यत: बृहस्पतिवार को होती है। सदस्यों की सूचना के लिए उक्त घोषणा संसदीय समाचार भाग-2 में भी प्रकाशित की जाती है।

एक बार सभा के नेता (श्री एम. सी. छागला) ने सरकारी कार्य की घोषणा की। सदन में आपत्ति की गई कि सरकारी कार्य के बारे में संसदीय कार्य मंत्री द्वारा घोषणा किए जाने की सामान्य प्रथा का उल्लंघन किया गया है। एक सदस्य का तर्क था कि सभा के नेता संसदीय कार्य मंत्री की ओर से कार्य की घोषणा नहीं कर सकते क्योंकि सभा के नेता सभी सदस्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका कहना था कि चूंकि सरकारी कार्य की घोषणा की जा रही है इसलिए प्रवक्ता सरकारी प्रवक्ता ही होना चाहिए, सभा का नेता नहीं और सभा के नेता सरकार की ओर से कार्य की घोषणा करके उसके साथ स्वयं को जोड़ रहे हैं और ऐसा करके वे स्वयं को उस परामर्श से वंचित कर रहे हैं जो उनके और विपक्ष के बीच आवश्यक है, साथ ही वे विपक्ष के सुझाव के अनुसार एक खास तरीके से कार्य की अनुकूल व्यवस्था करने के लिए संसदीय कार्य मंत्री को सलाह देने के विशेषाधिकार से भी स्वयं को वंचित कर रहे हैं। सदस्य ने यह भी कहा कि ऐसा करके एक असंगत व्यवस्था और एक गलत प्रक्रिया की शुरुआत की जा रही है। इसलिए सदस्य ने सभापति से इस संबंध में अपना निर्णय देने का अनुरोध किया। सभा के नेता ने अपने उत्तर में मे की पुस्तक 'पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस' का हवाला देते हुए कहा कि हाउस ऑफ कॉमन्स के नेता और साथ ही हाउस ऑफ लॉर्ड्स के नेता को कार्य की घोषणा करने का विशेषाधिकार प्राप्त है। सभापति ने भी टिप्पणी की: "मे के अनुसार हाउस ऑफ कॉमन्स के नेता को ऐसा करही किसी मंत्री ने कोई वक्तव्य दिया है तो उसके पहले उन्होंने यह कहा है कि वे "सभा के नेता की ओर से" ऐसा कर रहे हैं।[73]

ऐसे भी कई अवसर आए हैं, जब सरकारी कार्य के संदर्भ में संसदीय कार्य मंत्री द्वारा कोई वक्तव्य नहीं दिया गया, अर्थात् 225वें सत्र (मार्च, 2012) के प्रथम भाग के दौरान तथा पूरे 227वें सत्र (नवंबर-दिसंबर, 2012) के दौरान ऐसा हुआ।

मोटे तौर पर अस्सी के दशक से पहले यह प्रथा अपनाई जाती रही कि कुछ सदस्यों को अगले सप्ताह के कार्यक्रम में शामिल किए जाने वाले विषयों के बारे में अपनी बात कहने की अनुमति दी जाती थी।

उदाहरण के लिए एक बार उपसभापति ने टिप्पणी की :

सामान्यत: जब कार्य की घोषणा की जाती है तब किसी खास विषय पर चर्चा करने में दिलचस्पी

रखने वाले सदस्य उस विषय की ओर माननीय मंत्री और सभा का ध्यान आकर्षित करते हैं।[74]

संसदीय कार्य विभाग में राज्य मंत्री द्वारा 26 अगस्त, 1974 से आरंभ होने वाले सप्ताह के लिए सरकारी कार्य की घोषणा के बाद कुछ सदस्यों ने कार्य के संबंध में निवेदन किया। इसके बाद उपसभापति ने टिप्पणी की: "आज सब ठीक है क्योंकि हमने कई सदस्यों की बातें सुनीं। किन्तु अगले सप्ताह के कार्य के इस खास मुद्दे के संबंध में मैं यह चाहूंगा कि अगली बार विभिन्न समूहों के नेता ही बोलें...वस्तुत: नियमों में इस तरह की कोई चीज नहीं है।" उन्होंने यह भी कहा, "यदि प्रत्येक समूह यह तय कर ले कि अगले सप्ताह के कार्य के बारे में कौन-सा मुद्दा उठाया जाए तो उस समूह के नेता या उसका कोई अन्य प्रतिनिधि बोल सकते हैं और इससे काफी समय बचेगा। यही मेरा सुझाव है।"[75]

सामान्यत: कार्य की व्यवस्था उसी क्रम में की जाती है जिस क्रम में संसदीय कार्य मंत्रालय सम्बद्ध मंत्री की पूर्वानुमति लेकर उसे प्रेषित करता है। जिस दिन कोई कार्य निपटारे के लिए रखा जाता है उस दिन कार्य के क्रम में तब तक परिवर्तन नहीं किया जाता जब तक सभापति का समाधान न हो जाए कि ऐसे परिवर्तन के लिए पर्याप्त आधार है[76] या उसके संबंध में सभा की आम राय है।

28 अगस्त, 1968 की कार्यावलि में अन्य मदों के साथ क्रमानुसार बिहार विनियोग विधेयक, स्वर्ण (नियंत्रण) विधेयक, विनियोग संख्यांक 3 विधेयक और विनियोग संख्यांक 4 विधेयक थे। उसी दिन सचिव ने उत्तर प्रदेश विनियोग (संख्यांक 3) विधेयक के बारे में संदेश की सूचना दी। यद्यपि कोई कार्यावलि जारी नहीं की गई थी तथापि इस विधेयक को लेने पर सहमति हो गई। सरकार ने कार्यावलि के क्रम में कुछ परिवर्तन करने के लिए विपक्ष के साथ बातचीत की क्योंकि ऐसी "विशेष कठिनाई" उत्पन्न हो गई थी जिसके कारण विनियोग विधेयकों को थोड़ी-सी प्राथमिकता देना आवश्यक था। विपक्ष इस पर सहमत हो गया। विपक्ष एक अत्यंत विशेष मामले के रूप में उत्तर प्रदेश विनियोग विधेयक को उसी दिन लिए जाने पर भी सहमत हो गया हालांकि उसने यह भी कहा कि इस मामले को परम्परा का रूप देकर सरकार को कभी भी लाभ नहीं उठाना चाहिए। सभापीठ ने भी यह कहा कि सभापति से इस मामले में परामर्श किया गया था और एक अत्यंत विशेष मामले के रूप में वे इस परिवर्तन पर सहमत हो गए थे।[77]

कार्यावलि में लोक सभा द्वारा यथापारित अतिरिक्त उपलब्धियां (अनिवार्य निक्षेप) संशोधन विधेयक, 1977 को विचारार्थ लिए जाने के बारे में दो दिन तक लगातार उल्लेख होता रहा। यह विधेयक संबंधित अध्यादेश का स्थान लेने के लिए था। जब 101वें सत्र के अंतिम दिन कार्यावलि में उसे कोई स्थान नहीं दिया गया तब व्यवस्था का एक प्रश्न उठाया गया। उपसभापति ने निर्णय दिया, "सदन के समय का वितरण करते समय कुछ समय सरकारी कार्य के लिए नियत किया जाता है और यह बहुत दीर्घकालीन परम्परा रही है कि सरकार किसी खास समय पर कुछ मामलों पर जोर देती है और किसी अन्य समय पर कुछ मामलों को वापस लेना चाहती है। जहां तक सभापीठ का संबंध है, इसमें कोई गलत बात नहीं है।"[78]

सभापति ने 23 फरवरी, 1984 को घोषणा की कि अगले दिन पंजाब के संबंध में एक ध्यानाकर्षण लिया जाएगा।[79] अगले दिन की कार्यावलि में इस मद का उल्लेख न होने पर कुछ सदस्यों ने मामले को उठाया। सभापति ने स्पष्ट किया कि ध्यानाकर्षण के उत्तर में वक्तव्य देने के लिए गृह मंत्री थोड़ा और समय चाहते थे और इसलिए उन्हें इसके लिए अनुमति दी गई है।[80]

9 मई, 1984 की संशोधित कार्यावलि में 'उद्योग मंत्रालय के कार्यकरण पर आगे चर्चा' शीर्षक के अंतर्गत एक मद शामिल की गई थी जिस पर पिछले दिन हुई चर्चा समाप्त हुई थी किन्तु कार्यावलि में उसका उल्लेख दिवस की पहली मद की बजाय अंतिम मद के रूप में किया गया था। इस पर व्यवस्था का प्रश्न उठा। उपसभापति ने नियम 23 के परंतुक का हवाला देते हुए व्यवस्था दी कि यदि सभापति का समाधान हो गया है तो ऐसा किया जा सकता है।[81]

एक बार कार्यावलि में मूल्य वृद्धि के संबंध में एक अल्पकालिक चर्चा मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद रखी गई थी। विपक्ष चाहता था कि इस मद को प्रश्नकाल के तुरंत बाद लिया जाए। इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया गया।[82]

सभापीठ ने 17 मई, 2012 को विपक्ष की मांग पर पाकिस्तान के साथ संबंध सामान्य बनाए जाने और पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के मानवाधिकार हनन संबंधी मामले को उस दिन के लिए सूचीबद्ध सरकारी विधायी कार्य के संबंध में अल्पकालिक चर्चा लेने को अनुमति प्रदान की।[83]

13 दिसम्बर, 2013 को सभापीठ ने घोषणा की कि विधान के महत्व को ध्यान में रखते हुए और सदस्यों को बहस में भाग लेने हेतु समय देने के लिए उस दिन के लिए संशोधित कार्यावलि में सूचीबद्ध गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य (संकल्प) लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक पर चर्चा करने के क्रम में अनावश्यक हो जाएंगे।[84]

कार्य की कोई मद उस स्थिति में कार्यावलि में शामिल की जा सकती है जहां सदन को उसकी पूर्व सूचना दे दी गई हो या दलों के नेता उस पर अनौपचारिक रूप से सहमत हो गए हों।

विधि मंत्री ने सदन को सूचित किया कि सरकार संविधान (चौथा संशोधन) विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपे जाने के लिए सदन की सहमति के लिए उसे 17 मार्च, 1955 को सदन में लाने का विचार रखती है क्योंकि यह आशा की जाती है कि लोक सभा इस प्रस्ताव को 15 मार्च, 1955 को स्वीकृति दे देगी। चूंकि 17 मार्च, 1955 की कार्यावलि में इस प्रस्ताव को शामिल करना 16 मार्च, 1955 से पहले संभव नहीं है इसलिए वे सदन को इस बारे में सूचित कर रहे हैं।[85]

30 नवंबर, 2012 को सभापीठ ने नियम 170 के तहत चर्चा हेतु विशिष्ट तारीख तथा समय निर्धारित किए बिना ही मल्टीब्रांड रिटेल सेक्टर में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश संबंधी प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। जैसा कि दिनांक 6 दिसम्बर, 2012 को नेताओं की बैठक में निर्णय लिया गया था। इस प्रस्ताव को कार्यावलि में शामिल किए बिना ही इस पर चर्चा की गई थी।[86]

यह एक सुस्थापित प्रथा है कि कार्य की ऐसी मद को, जिस पर अंशत: चर्चा हुई हो, सामान्यत: अन्य किसी मद के पहले चर्चा के लिए रखा जाता है। किन्तु उस स्थिति में ऐसी मद को अन्य मदों से पहले नहीं रखा जाता जहां संबंधित मंत्री या सभा के नेता के अनुरोध पर सभापति ऐसा करने का निदेश देते हैं या सदन उसके लिए सहमत हो जाता है।

भ्रष्टाचार निवारण (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1952 पर 1 अगस्त, 1952 को हुई चर्चा अधूरी रही। किन्तु अगले दिन (शनिवार) की कार्य-सूची में उक्त विधेयक के पहले एक दूसरे विधेयक का उल्लेख था। व्यवस्था का प्रश्न उठाया गया कि सदन के समक्ष जो विधेयक पहले से विचाराधीन था, क्या उसे निपटाए बिना दूसरे विधेयक को सभा के समक्ष रखना उचित है। सभापति ने निर्णय दिया:

> प्रश्न यह है कि कार्य का जो क्रम निर्धारित किया जा चुका है, क्या उसका उल्लंघन करना हमारे लिए उचित है। किन्तु सदन सर्वोच्च है और सभा की सहमति से हम कार्य के क्रम में परिवर्तन कर सकते हैं किन्तु यह कोई पूर्वोदाहरण नहीं बनना चाहिए।[87]

विवाह विधि (संशोधन) विधेयक, 2010 पर 30 अप्रैल, 2012 तथा 2 मई, 2012 पर हुई चर्चाएं अधूरी रहीं। विधेयक, जिस पर आंशिक रूप से चर्चा हुई, मंत्री के उत्तर के लिए 3 मई, 2012 को सूचीबद्ध नहीं की गई, परंतु अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों हेतु सेवा के दौरान प्रोन्नति में आरक्षण दिए जाने संबंधी मामला और अन्य सरकारी विधेयक अन्य बातों के साथ-साथ उस दिन सूचीबद्ध किए गए और उन पर चर्चा की गई। तथापि उक्त विधेयक, जिस पर आंशिक रूप से चर्चा हुई, पर आगे का विचार-विमर्श 21 मई, 2012 को आस्थगित कर दिया गया।[88]

संविधान (117वां संशोधन) विधेयक, 2010 पर 13 दिसंबर, 2012 को हुई चर्चा अधूरी रही। विधेयक, जिस पर आंशिक रूप से चर्चा हुई, 14 दिसंबर, 2012 के लिए सूचीबद्ध नहीं की गई और अन्य

> सरकारी विधेयक उसी दिन पारित कर दिए गए। विधेयक, जिस पर आंशिक रूप से चर्चा हुई, सरकारी विधायी कार्य के अंतर्गत प्रथम मद के रूप में 17 दिसंबर, 2012 को सूचीबद्ध की गई, परंतु अंततः सरकारी विधायी कार्य के द्वितीय मद के रूप में उसका उसी दिन निपटान किया गया।[89]

यदि किसी आसीन सदस्य या भूतपूर्व सदस्य या किसी विशिष्ट व्यक्ति की मृत्यु के कारण या किसी अन्य कारण से सदन कोई कार्य किए बिना स्थगित हो जाता है तो उस दिन की कार्यावलि में सम्मिलित की गई कार्य की औपचारिक मदों को सामान्यतः अगले दिन की कार्यावलि में शामिल किया जाता है।

गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य

1964 तक, तत्कालीन नियम के अनुसार सभापति सदन के कार्य की स्थिति पर विचार करने के बाद गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए इतने दिन नियत करता था जितने संभव होते थे।[90] किन्तु सामान्यतः ऐसे दिन शुक्रवार होते थे। 1964 में प्रारूप नियमों संबंधी समिति ने नियम में संशोधन करके यह उपबंध किया कि गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य का निष्पादन प्रत्येक शुक्रवार को किया जाएगा। जैसाकि कहा जा चुका है, न्यूनाधिक रूप से इसी प्रथा का अनुसरण किया जाता रहा था।[91] नियम समिति ने नियम पर विचार करते हुए यह कहा था:

> ...वर्तमान नियम में यह उपबंध नहीं है कि गैर-सरकारी कार्य को निश्चित रूप से किसी नियत समय पर लिया जाएगा। प्रथा यह रही है कि शुक्रवार को प्रश्नकाल, औपचारिक कार्य और ध्यानाकर्षण के बाद और यदि किन्हीं विषयों का उल्लेख हो तो उसके बाद उस दिन की कार्यावलि में शामिल गैर-सरकारी कार्यों को सदन में विचारार्थ लिया जाता है।
>
> एक बार यह देखा गया कि गैर-सरकारी कार्य के सिवाय कार्यावलि में दर्ज सभी कार्यों पर इतना समय लग गया कि कार्यावलि में शामिल गैर-सरकारी सदस्यों के मुख्य कार्य को नहीं लिया जा सका। अतः यह सुझाव दिया गया कि प्रत्येक शुक्रवार को अपराह्न की बैठक सिर्फ गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए आरक्षित की जाये ताकि गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य नियत समय पर कम से कम ढाई घंटे तक निश्चित रूप से हो सके।[92]
>
> उदाहरण के लिए, शुक्रवार, 18 दिसम्बर, 1970 को मंत्रियों द्वारा पांच वक्तव्य दिए गए। सारा समय उन पर स्पष्टीकरण प्राप्त करने में लग गया। इसलिए उस दिन की कार्यावलि में दर्ज संकल्पों को नहीं लिया जा सका। यह सत्र (74वां सत्र) का अंतिम दिन था।

अतः समिति ने एक संशोधित नियम की सिफारिश की जिसमें उपबंध किया गया था कि जब तक सभापति अन्यथा निदेश न दें, गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के निष्पादन के लिए शुक्रवार की बैठक में कम से कम ढाई घंटे नियत किए जाने चाहिए।[93] ऐसे कार्य की विभिन्न श्रेणियों, अर्थात् विधेयकों और संकल्पों को निपटाने के लिए अगल-अलग शुक्रवार नियत किए जाते हैं। प्रथा के अनुसार किसी सत्र का पहला शुक्रवार विधेयकों के लिए और दूसरा शुक्रवार संकल्पों के लिए नियत किया जाता है और यह क्रम चलता रहता है। इस प्रकार नियत किए गए शुक्रवारों को उस श्रेणी के कार्य को पूर्ववर्तिता प्राप्त होती है।[94]

> एक बार गैर-सरकारी कार्य के लिए नियत किए गए शुक्रवार को अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पर चर्चा हुई जो तीन घंटे तक चलती रही। इसके फलस्वरूप पहले संकल्प के निपटारे के बाद उस दिन लिए गए दूसरे संकल्प पर हुई चर्चा अधूरी रही। अतः सदन इस पर सहमत हो गया कि उसे अगले शुक्रवार को, जो गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए नियत किया गया था, उस समय विचाराधीन विधेयकों के निपटाए जाने के बाद लिया जाए। तदनुसार संकल्प को पहले से ही विचाराधीन एक

विधेयक के निपटाए जाने के बाद लिया गया।[95]

किन्तु एक अन्य अवसर पर एक बार मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन को नई दिशा देने से संबंधित एक संकल्प पर हुई चर्चा अधूरी रही। सभा में यह सुझाव दिया गया कि चर्चा अगले शुक्रवार को, जिसे गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए नियत किया गया था, जारी रखी जाए। कार्य मंत्रणा समिति ने सुझाव पर विचार किया और सिफारिश की कि चूंकि गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य को अधिसूचित किया जा चुका है इसलिए यथास्थिति बनाए रखी जाए और उस दिन गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों को निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार लिया जाए।[96]

सामान्यत: गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए ढाई घंटे का समय आवंटित किया जाता है जो अपराह्न ढाई बजे से पांच बजे तक का होता है। सदन के कार्य की अत्यावश्यकता को देखते हुए गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के समय को इस तरह बदला जा सकता है ताकि उसके लिए इतना समय उपलब्ध हो जो ढाई घंटे से कम न हो। सामान्य प्रयोजन समिति ने 28 अप्रैल, 2008 को हुई अपनी बैठक में निर्णय लिया कि दिनांक 2 मई, 1997 के राज्य सभा संसदीय समाचार भाग-2 के माध्यम से जारी सभापति के दिशा-निर्देश में विहित गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक पर चर्चा हेतु दो घंटे की समय सीमा का सख्ती से पालन किया जाए। इस संदर्भ में इसकी भी इसी तरह से सिफारिश की गई कि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प उसी दिन निपटा लिए जाएं जिस दिन वे निपटाए जाने के लिए प्रस्तावित हों।

उदाहरण के लिए कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर शुक्रवार, 19 दिसम्बर, 1991 के लिए नियत गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य अपराह्न ढाई बजे से पांच बजे तक की बजाय अपराह्न साढ़े तीन बजे से छह बजे तक हुआ।[97]

इसी प्रकार 17 मई, 2002 के लिये दर्ज गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य को 2.30 बजे की बजाय पत्रों/प्रतिवेदनों को सभापटल पर रखने और विशेष उल्लेखों के तुरंत पश्चात् 12.31 बजे ही ले लिया गया ताकि सभा उस दिन म.प. 3.30 बजे जम्मू और कश्मीर में आतंकवादियों द्वारा सिविलियनों, सैन्य कार्मिकों और उनके परिवारों के सदस्यों की हत्या के संबंध में अल्पकालिक चर्चा कर सकें।[98]

शुक्रवार, 22 फरवरी, 2013 हेतु निर्धारित गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य म.प. 2.30 बजे के बजाय म.प. 5.13 बजे लिया गया ताकि गृह मंत्री म.प. 3.00 बजे सदन पुन: समवेत होने के तुरंत बाद हैदराबाद में हुए बम विस्फोट के संदर्भ में वक्तव्य दे सकें।[99]

15 मार्च, 2013 को म.प. 2.30 बजे दर्ज गैर-सरकारी कार्य विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं के परामर्श से सभापति द्वारा यथा निश्चित बजट (रेलवे) 2013-14 तथा उससे संबंधित विनियोग विधेयकों की वापसी संबंधी चर्चा पर निष्कर्ष के पश्चात् म.प. 3.40 बजे तक लिए गए।[100]

उसी प्रकार, कार्य मंत्रणा समिति द्वारा यथा संस्तुत तथा सदन द्वारा यथा घोषित शुक्रवार 14 मार्च, 2008 हेतु सूचीबद्ध गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य (संकल्प), बजट (सामान्य) 2008-09 पर चर्चा को पूरी करने के लिए बृहस्पतिवार, 20 मार्च, 2008 को लिए गए।[101] इसके अलावा कार्य मंत्रणा समिति द्वारा यथा संस्तुत तथा सदन में यथा घोषित शुक्रवार, 20 अगस्त, 2010 के लिए सूचीबद्ध गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य (संकल्प) 21 अगस्त, 2010 को लिए गए।[102]

25 नवंबर, 2009 को उपसभापति ने सदन में घोषणा की कि शुक्रवार, 27 नवंबर, 2009 के लिए सूचीबद्ध गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य ईद-उल-जुहा के कारण सदन की बैठक निरस्त होने के फलस्वरूप बृहस्पतिवार, 26 नवंबर, 2009 को लिया जायेगा। तदनुसार 26 नवम्बर, 2009 को कार्य लिया गया।[103]

सभापति सदन के नेता से परामर्श करते हुए गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य निष्पादन के

लिए शुक्रवार की बजाय किसी अन्य दिन को भी नियत कर सकता है।[104]

> कई बार कार्य मंत्रणा समिति ने सिफारिश की है कि शुक्रवार को सरकारी कार्य किया जाए और गैर-सरकारी कार्य के लिए कोई अन्य दिन नियत किया जाए। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं: (i) 17 अगस्त, 1956 के स्थान पर 31 अगस्त, 1956, (ii) 8 अगस्त, 1969 के स्थान पर 14 अगस्त, 1969, (iii) 30 जुलाई, 1971 के स्थान पर 31 जुलाई, 1971, (iv) 23 दिसम्बर, 1977 के स्थान पर 24 दिसम्बर, 1977 और (v) 1 सितम्बर, 1988 के स्थान पर 2 सितम्बर, 1988।[105]

> जैसीकि कार्य मंत्रणा समिति ने सिफारिश की थी, शुक्रवार, 22 फरवरी, 1991 को खाड़ी युद्ध की स्थिति पर चर्चा करने के कारण, जिसके लिए प्रश्नकाल निलंबित कर दिया गया था, उस बुधवार के लिए कार्यावलि में उल्लिखित गैर-सरकारी विधेयकों को अपराह्न 3.30 बजे से 6 बजे तक लिया गया।[106]

> सदन ने 27 अप्रैल, 1995 को निर्णय किया कि राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा अगले दिन अर्थात् शुक्रवार को जारी रहेगी। तदनुसार, उस दिन के लिए कार्यावलि में दर्ज किए गए गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य अर्थात् संकल्पों को मंगलवार, 2 मई, 1995 के लिए स्थगित कर दिया गया।[107]

यदि शुक्रवार को सदन की कोई बैठक न हो तो सभापति यह निदेश देता है कि गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य को संपन्न करने के लिए उसी सप्ताह के किसी अन्य दिन की बैठक में इतना समय नियत किया जाए जो ढाई घंटे से कम न हो।[108] ऐसा तब किया जाता है जब किसी सत्र के दौरान सार्वजनिक छुट्टी या संसद् की छुट्टी या अन्य किसी कारण से शुक्रवार के लिए कोई बैठक नियत नहीं की जाती।

> उदाहरण के लिए 170वें सत्र के दौरान गुरु रविदास जयंती के कारण शुक्रवार, 25 फरवरी, 1994 को कोई बैठक नियत नहीं की गई। अत: गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य (संकल्प) के लिए बृहस्पतिवार, 24 फरवरी, 1994 का दिन नियत किया गया। 173वें सत्र के दौरान होली के कारण शुक्रवार, 17 मार्च, 1995 की छुट्टी थी और उस दिन के लिए कोई बैठक नहीं थी। अत: गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य (विधेयक) के लिए बृहस्पतिवार, 16 मई, 1995 का दिन नियत किया गया। 174वें सत्र के दौरान भी शुक्रवार, 18 अगस्त, 1995 को जन्माष्टमी की छुट्टी के कारण कोई बैठक नहीं थी। अत: गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य (विधेयक) के लिए बृहस्पतिवार, 17 अगस्त, 1995 का दिन नियत किया गया।[109]

> 189वें सत्र के दौरान शुक्रवार, 21 अप्रैल, 2000 को 'गुड फ्राइडे' की छुट्टी थी इसलिये इस दिन के लिये कोई बैठक नहीं रखी गई। इस कारण बृहस्पतिवार, 20 अप्रैल, 2000 का दिन गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य (संकल्प) के लिये आवंटित किया गया।

> 226वें सत्र के दौरान शुक्रवार, 10 अगस्त, 2012 को 'जन्माष्टमी' की छुट्टी के कारण बृहस्पतिवार, 9 अगस्त, 2012 को गैर-सरकारी सदस्यों के विधायी कार्य किए गए।

किन्तु उक्त नियम ऐसी स्थिति में लागू नहीं होता जब सत्र के बीच किसी शुक्रवार की बैठक रद्द कर दी जाती है या सरकारी कार्य के लिए सत्र की अवधि बढ़ा दी जाती है और बढ़ी हुई अवधि के दौरान कोई शुक्रवार पड़ता है।

> 218वें सत्र के दौरान 28 नवंबर, 2009 को ईद-उल-जुहा होने की वजह से शुक्रवार, 27 नवंबर, 2009 को सदन की बैठक रद्द कर दी गई। तदनुसार सभापीठ ने 25 नवम्बर, 2009 को गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य (संकल्प) को 26 नवंबर, 2009 तक स्थगित करने की पूर्व घोषणा की।

उपरोक्त के होते हुए भी सभापति के सुझाव पर या कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर सदन अपने कार्य को पूरा करने के लिए किसी शुक्रवार को सरकारी कार्य के दिन में परिणत कर सकता है।

प्रारंभ के वर्षों में कई अवसरों पर कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर किसी शुक्रवार के लिए नियत गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य को छोड़ दिया गया और वह दिन सरकारी कार्य के लिए नियत कर दिया गया।[110]

एक बार विभिन्न समूहों की ओर से किए गए एक अभ्यावेदन को देखते हुए सभापति ने मूलत: गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए नियत शुक्रवार को सरकारी कार्य करने की अनुमति दी।[111]

एक अन्य अवसर पर सभापीठ ने घोषणा की कि सभा के सभी दल यह चाहेंगे कि शुक्रवार को सरकारी कार्य के लिए नियत कर दिया जाए।[112]

एक अन्य अवसर पर कुछ सदस्यों द्वारा सुझाव दिये जाने और सभा द्वारा उस पर सहमति प्रकट किये जाने पर सभापीठ ने यह घोषणा की थी कि बिहार पुनर्गठन विधेयक, 2000 पर विचार करने और उसे पारित करने के काम को पूरा करने के लिये उस दिन अर्थात् 11 अगस्त, 2000 को सरकारी कार्य के हित में गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य को नहीं लिया जायेगा।[113]

राज्य सभा के 195वें सत्र के दौरान गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों सम्बन्धी काम के लिये पांच अलग-अलग तिथियां, अर्थात् 1 मार्च, 15 मार्च, 19 अप्रैल, 3 मई और 17 मई, 2002 आवंटित की गई थीं।[114] लेकिन 1 मार्च, 15 मार्च और 19 अप्रैल, 2002 को सभा के स्थगित हो जाने के कारण गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों संबंधी कार्य को नहीं लिया जा सका।[115] 3 मई, 2002 को सभा की सहमति लेने के पश्चात् यह निर्णय लिया गया कि इस बात के लिये कि सभा गुजरात संबंधी प्रस्ताव पर चर्चा कर सके, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों संबंधी काम को नहीं लिया जायेगा।[116]

220वें सत्र के दौरान शुक्रवार, 27 अगस्त, 2010 के लिए सूचीबद्ध गैर-सरकारी सदस्यों का विधायी कार्य कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर सरकारी कार्य के समर्थन में अनावश्यक बना दिया गया। तथापि उस दिन संसद् सदस्यों को गैर-सरकारी विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति दी गई।[117]

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों संबंधी कार्य को 10 मई, 2002 को लिया गया। यह दिन कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों संबंधी कार्य के लिए आवंटित था। उस दिन गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों से संबंधित कार्य मध्याह्न 12.00 बजे से प्रारम्भ होकर म.प. 2.30 बजे तक चला। उसके तुरंत पश्चात् गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों संबंधी कार्य को लिया गया जो म.प. 5.00 बजे तक चला।[118]

कार्यावलि

कार्यावलि सभा की किसी दिन की बैठक की कार्य-सूची होती है या एक क्रम-पत्र होता है जिसमें सरकारी और गैर-सरकारी दोनों प्रकार के कार्यों की उन मदों का क्रमबद्ध रूप से उल्लेख होता है जिन्हें किसी खास दिन या दिनों को लिया जाना होता है। संदर्भ की सुविधा के प्रयोजन के लिए कार्यावलि के रूप इस प्रकार हैं: मुख्य कार्यावलि जो किसी दिन के कार्य के लिए जारी की जाती है; सम्मिलित कार्यावलि जो दो या उससे अधिक दिनों के लिए जारी की जाती है;[119] कार्यावलि जो पिछली कार्यावलि का स्थान ले लेती है;[120] अनुपूरक कार्यावलि जो मुख्य कार्यावलि के अंतर्गत दर्ज नहीं की गई अतिरिक्त या नई मदों को शामिल करने के लिए

जारी की जाती है और संशोधित कार्यावलि जो मुख्य कार्यावलि में शामिल की जा चुकी मदों के क्रम में परिवर्तन करने और उनका विस्तार करने अथवा उनके समेकन के लिए जारी की जाती है।

महासचिव कार्यावलि को तैयार कराता है और उसे संबंधित दिन की सदन की बैठक के आरंभ होने के पूर्व प्रत्येक सदस्य को उपलब्ध करवाता है[121] "प्रश्न" का कार्यावलि में उल्लेख किया जाता है किन्तु किसी दिन के लिए नियत तारांकित, अतारांकित और अल्प-सूचना प्रश्नों की सूचियों को पृथक् सूचियों के रूप में मुद्रित और परिचालित किया जाता है। इसी प्रकार किसी विधेयक, प्रस्ताव (जिसमें धन्यवाद प्रस्ताव भी शामिल है), संकल्प आदि के संबंध में उपस्थित किए जाने वाले संशोधनों को भी अलग से मुद्रित और परिचालित किया जाता है। इस प्रकार किसी बैठक के लिए जो क्रम-सूची (ऑर्डर पेपर) या कार्य-सूची (एजेंडा) होती है वह कार्यावलि, प्रश्नों की सूचियों, सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों की सूची, विधेयकों, प्रस्तावों और संकल्पों से संबंधित संशोधनों की सूचियों से मिलकर बनती है।

सभापति की अनुमति के बिना सदन की किसी बैठक में ऐसा कार्य नहीं किया जा सकता जिसे दिवस की कार्यावलि में शामिल न किया गया हो।[122] दूसरे शब्दों में, कोई सदस्य कार्यावलि में शामिल न किए गए ऐसे मामले को तब तक नहीं उठा सकता जब तक सभापति ने उसके लिए अनुमति न दी हो, किन्तु, जैसा कि कहा जा चुका है, शपथ/प्रतिज्ञान, दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि और अन्य उल्लेख, मंत्रियों का परिचय, विशेषाधिकार के प्रश्न जैसी कार्य की मदों को कार्यावलि में उनका उल्लेख न होते हुए भी लिया जा सकता है। कोई मंत्री सभापति की पूर्व अनुमति से अनुपूरक कार्यावलि जारी न किए जाने पर भी किसी अविलंबनीय लोक महत्व के विषय पर वक्तव्य दे सकता है। ऐसे मामले में सामान्यत: सभापीठ द्वारा इस आशय की घोषणा की जाती है।

विदेश मंत्री के वक्तव्य को शामिल करने के लिए रविवार, 10 फरवरी, 2006 को अनुपूरक कार्यावलि जारी की गई।

नियमों के अधीन कार्य को जिस मद के लिए सूचना की आवश्यकता होती है उसे सूचना को अपेक्षित अवधि के समाप्त होने पर ही कार्यावलि में सम्मिलित किया जाता है।[123]

पत्रों की सूची को और अधिक सुसंबद्ध और सुगम बनाने के लिये सामान्य प्रयोजन समिति ने वर्ष 2001 में निम्नलिखित उपान्तरण किये जाने की सिफारिश की थी—

(i) राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 29 के उपबंधों के अनुसरण में, सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों की एक अलग सूची होगी जिसमें संविधान के उपबंधों, संसद् के अधिनियमों और सदन अथवा सभापति के सामान्य निदेशों के अनुसरण में मंत्रियों द्वारा सभापटल पर रखे जाने वाले विभिन्न पत्र शामिल होंगे;

(ii) 'सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों' की सूची एक भिन्न रंग के कागज पर एक पृथक् दस्तावेज के रूप में दिवस की कार्यावलि के साथ परिचालित की जायेगी। परन्तु यदि पत्रों को बहुत थोड़े समय में परिचालित किया जाना हो तो इसे पूर्व की भांति अनुपूरक कार्यावलि में सीधे शामिल किया जा सकेगा;

(iii) 'सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों' की पृथक् सूची को दिवस की मुख्य कार्यावलि का एक भाग माना जायेगा;

(iv) मुख्य कार्यावलि में पृथक् सूची में दर्ज पत्रों को सभापटल पर रखने वाले मंत्री/मंत्रियों के साथ उन मंत्रालयों के नाम शामिल होंगे जिनके पत्र सभापटल पर रखे जाने हैं; और

(v) यदि सभा मद से संबंधित कार्य को वास्तव में पूरा किये बिना ही स्थगित हो जाये तो जब तक कि सभापीठ अन्यथा निदेश न दे, उस दिन के लिये दर्ज पत्रों को संबद्ध मंत्रालय के लिए आवंटित अगले प्रश्न-दिवस की सूची में शामिल किया जा सकता है।

यह प्रक्रिया राज्य सभा के 193वें सत्र से अपनायी जा रही है और मुख्य/संशोधित कार्यावलि के साथ सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों की एक पृथक् सूची भी जारी की जा रही है जिसमें सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों का विस्तृत विवरण दिया जाता है। 'सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों' की सूची का मुद्रण हरे रंग के कागज पर किया जाता था परंतु 219वें सत्र के द्वितीय भाग से इसका मुद्रण गुलाबी रंग के कागज पर किया जाता है। दोनों के लिये पृष्ठ संख्या एक ही क्रम से दी जाती है और अनुपूरक पत्रों के मामले में, मद का सीधे सभापटल पर रखा जाना अनुपूरक कार्यावलि में दर्शाया जाता है।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.7.1975, कालम 24, 33-44 और 3.11.1976, कालम 38-49
2. अनुच्छेद 112(1) और 115(1)
3. अनुच्छेद 123(2)(क), 352(4), 356(3), 359(3), 360(2)
4. -वही- 151(1)
5. -वही- 281
6. -वही- 338(2)
7. -वही- 340(3)
8. -वही- 350ख(2)
9. -वही- 323(1)
10. -वही- 320(5)
11. नियम 91
12. -वही- 153, 198, 211, 212च, 212ड, 212फ, 219, 274(3)
13. -वही- 145
14. -वही- 66
15. -वही- 112
16. -वही- 121 और 186
17. संसदीय समाचार (1), 30.3.1989
18. -वही- 13.3.1991
19. -वही- 13.2.2009, 18.2.2009
20. -वही- 2.7.2009
21. -वही- 4.3.2011
22. -वही- 28.7.2011
23. -वही- 11.11.2014, 26.11.2014
24. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.4.1974, कालम 217
25. -वही- 2.8.1985, कालम 256-58
26. -वही- 14.8.87, कालम 337-38

27. नियम 180(5) प्रक्रिया के ब्यौरे के लिए आगे अध्याय-18 देखिए
28. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.11.2014
29. नियम 251
30. -वही-
31. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.10.1982, कालम 272-75
32. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 28.7.1982
33. संसदीय समाचार (1), 18.3.2011, 23.3.2011
34. -वही- 17.8.2011
35. -वही- 27.08.2011
36. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 9.8.1985
37. -वही- 1.8.1991
38. नियम 241
39. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.7.1991, कालम 341-42.
40. -वही- 30.8.190 कालम 152-57
41. नियम 66(1)
42. नियम 17(1)(क)
43. नियम 184
44. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 4.8.1978
45. संसदीय समाचार (2), 11.11.2010 और संसदीय समाचार (1), 17.8.2011, 18.8.2011
46. नियम 176
47. नियम 182(1)
48. नियम 60(5)
49. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 2.3.1994 और 26.7.1994
50. संसदीय समाचार (1), 18.3.2013
51. -वही- और संसदीय समाचार (2), 21.3.2013
52. फा. सं. आर. एस. 4/2013-टी.
53. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.2.2014
54. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त 8.3.1982
55. -वही- 12.8.1993
56. -वही- 19.8.1993
57. नियम 23
58. संसदीय समाचार (2), 21.2.1959
59. -वही- 19.2.1959
60. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.2.1959, कालम 1373
61. संसदीय समाचार (2), 17.8.1962
62. -वही- 10.8.1962
63. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.8.1962, कालम 2613-35
64. -वही- 2.8.1982, कालम 210
65. नियम 23
66. संसदीय समाचार (2), 13.2.1995
67. कार्यावलि, 22.3.2005, 23.3.2005, 28.2.2007, 27.2.2007, 4.12.2007
68. संसदीय समाचार (1), 21.2.1956, 8.3.1956 और 27.8.1956

69. संसदीय समाचार (1), 1.9.1958, 5.9.1958, 12.9.1958, 19.9.1958, 24.11.1958, 28.11.1958, 5.12.1958, 12.12.1958 और 19.12.1958
70. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.9.1958 कालम 1576-77
71. -वही- 17.2.1966, कालम 467-70
72. संसदीय समाचार (1), 25.2.1966, 4.3.1966, 11.3.1966, 18.3.1966, 25.3.1966, 1.4.1966, 7.5.1966, 13.5.1966, 29.7.1966, 5.8.1966, 16.2.1968, 26.7.1968, 2.8.1968, 23.8.1968, 22.11.1968, 6.12.1968, 13.12.1968 और 20.12.1968
73. -वही- 12.8.1966, 9.8.1968, 14.8.1968 और 29.11.1968
74. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.11.1971, कालम 145
75. -वही- 24.8.1974, कालम 44-46
76. नियम 23, परंतुक
77. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.8.1968, कालम 4990
78. -वही- 28.6.1977, कालम 103
79. -वही- 23.2.1984, कालम 26
80. -वही- 24.2.1984, कालम 192-99
81. -वही- 9.5.1984, कालम 179-99
82. -वही- 7.8.1990, कालम 211
83. संशोधित कार्यावलि और संसदीय समाचार (1), 17.5.2012
84. संसदीय समाचार (1), 13.12.2013
85. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.3.1955, कालम 1645
86. संसदीय समाचार (1), 30.11.2012 और 6.12.2012
87. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.8.1952, कालम 2681-83
88. संशोधित कार्यावलि 3.5.2012, संसदीय समाचार (1) 30.4.2012, 2.5.2012, 3.5.2012 और 21.5.2012
89. कार्यावलि 17.12.2012, संसदीय समाचार (1), 13.12.2012, 14.12.2012 और 17.12.2012
90. नियम 23 (जैसा कि वह 1964 से पहले था)
91. रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी आन ड्राफ्ट रूल्स ऑफ प्रोसीजर, पृष्ठ iv-v
92. नियम समिति का दूसरा प्रतिवेदन पृष्ठ 1-2
93. नियम 24
94. -वही- परंतुक
95. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.8.1954, कालम 602; संसदीय समाचार (1), 27.8.1954, 3.9.1954
96. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 1.8.1977
97. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.12.1991, कालम 509
98. संसदीय समाचार (1), 16.5.2002
99. -वही- 22.2.2013
100. -वही- 15.3.2013
101. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.3.2008 और 20.3.2008
102. -वही- 13.8.2010 और संसदीय समाचार (1) 21.8.2010
103. संसदीय समाचार (1), 25.11.2009 और 26.11.2009
104. नियम 24, दूसरा परंतुक
105. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 14.8.1956, 5.8.1969, 20.7.1971, 20.12.1977 और 1.9.1988
106. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.2.1991, कालम 139
107. संसदीय समाचार (1), 27.4.1995
108. नियम 24, तीसरा परंतुक

109. 170वें, 173वें और 174वें सत्रों के लिए बैठकों की अस्थाई सारणी
110. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 16.11.1962, 2.6.1994, 3.12.1965, 6.5.1966 और 7.3.1968
111. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.12.1962, कालम 3137
112. -वही- 12.3.1964, कालम 4168
113. -वही- 10.8.2000, कालम 332
114. 195वें सत्र की बैठकों की अस्थाई सारणी
115. संसदीय समाचार (1), 1.3.2002, 15.3.2002 और 19.4.2002
116. -वही- 3.5.2002
117. -वही- 27.8.2010
118. -वही- 10.5.2002
119. 2, 3 और 4 मई, 1994 के लिए जारी की गई कार्यावलि, दिनांक 29.4.1994
120. संशोधित कार्यावलि, दिनांक 24.8.1968 का स्थान लेने वाली कार्यावलि, दिनांक 26.8.1968; सम्मिलित कार्यावलि, दिनांक 18.11.1968 का स्थान लेने वाली कार्यावलि, दिनांक 19.11.1968; पिछली कार्यावलियों का स्थान लेने वाली दिनांक 22.5.1990, 7.8.1990 और 9.8.1994 की कार्यावलियां जो क्रमश: 23.5.1990, 8.8.1990 और 10.8.1994 के लिए जारी की गई थीं।
121. नियम 29(1)
122. नियम 29(2)
123. नियम 29(3)

अध्याय-16

दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि तथा अन्य उल्लेख

सदन में यह सामान्य परम्परा है कि आसीन सदस्यों, मंत्रियों, भूतपूर्व सदस्यों, विशिष्ट तथा विख्यात व्यक्तियों, राष्ट्रीय नेताओं और देश के सार्वजनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले व्यक्तियों और मित्र देशों के अध्यक्षों के निधन पर उन्हें श्रद्धांजलि दी जाती है। इसके अतिरिक्त ऐसी प्राकृतिक आपदाओं, दुर्घटनाओं और त्रासद घटनाओं, जिनमें जान-माल की क्षति अंतर्ग्रस्त हो, के बारे में भी सदन में उल्लेख किया जाता है। उपयुक्त अवसरों पर श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है। विशिष्ट उपलब्धियों, महत्त्वपूर्ण घटनाओं, स्मरणीय दिवसों अथवा गंभीर अवसरों पर भी सदन में साधुवाद दिया जाता है।

(क) दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि

सामान्य प्रक्रिया

13 नवम्बर, 1972 तक सदस्यों, मंत्रियों आदि के निधन पर उन्हें प्रश्न-काल के बाद श्रद्धांजलि दी जाती थी। 1972 में सामान्य प्रयोजन संबंधी समिति ने मंत्रियों, आसीन सदस्यों, राष्ट्रीय नेताओं और अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के निधन पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने और सदन को स्थगित करने के बारे में तत्कालीन प्रथा पर विचार करने के बाद निम्नलिखित सिफारिशें की थीं :

(i) राज्य सभा के आसीन सदस्य की मृत्यु के मामले में दिल्ली में मृत्यु होने पर सभा को दिन-भर के लिए स्थगित करने की वर्तमान प्रथा को जारी रखा जाए ताकि सदस्यगण अंत्येष्टि में या पार्थिव शरीर को दिल्ली से बाहर ले जाए जाने में भाग ले सकें।

(ii) किसी मंत्री की मृत्यु के मामले में, जो मृत्यु के समय राज्य सभा का सदस्य नहीं हो और जिसकी मृत्यु दिल्ली में हुई हो, सभा को दिन-भर के लिए स्थगित कर दिया जाना चाहिए ताकि सदस्यगण अंत्येष्टि में या पार्थिव शरीर को दिल्ली से बाहर ले जाए जाने में भाग ले सकें।

(iii) किसी राष्ट्रीय राजनैतिक दल के नेता की मृत्यु के मामले में निम्नलिखित स्थितियों में सभा को दिन-भर के लिए स्थगित कर दिया जाना चाहिए : (क) दिवंगत नेता अपनी मृत्यु के समय लोक सभा का आसीन सदस्य था; (ख) उसके दल का राज्य सभा में प्रतिनिधित्व हो और सभापति ने उसे सदन में एक दल या समूह के रूप में मान्यता दी हो; और (ग) मृत्यु दिल्ली में हुई हो (ताकि सदस्यगण अंत्येष्टि में या पार्थिव शरीर को दिल्ली से बाहर ले जाए जाने में भाग ले सकें)।

(iv) विशिष्ट व्यक्ति या राष्ट्रीय नेता या विदेश के उच्च पदस्थ व्यक्ति की मृत्यु के

मामले में सभापति, सभा के नेता के साथ परामर्श करके प्रत्येक मामले में यह निर्णय ले सकता है कि सभा को दिन-भर के लिए स्थगित किया जाए या नहीं।

(v) केवल सभापति द्वारा निधन का उल्लेख करने की वर्तमान प्रथा जारी रखी जानी चाहिए। किंतु विशेष अवसरों पर आम राय होने पर दलों/समूहों के नेताओं को दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त करने से रोका नहीं जाना चाहिए।

(vi) दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि सभा के समवेत होते ही अर्पित की जानी चाहिए।[1]

ये सिफारिशें सदस्यों की सूचना के लिए संसदीय समाचार (2) में अधिसूचित की गई थीं।[2]

किसी सदस्य, भूतपूर्व सदस्य, मंत्री आदि के निधन के बारे में प्रेस समाचार के माध्यम से सूचना प्राप्त होने या किसी आसीन सदस्य मृतक के किसी संबंधी या अन्य विश्वसनीय सूत्र से सूचना प्राप्त होने पर सदन में यथाशीघ्र दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है। यदि कोई संदेह हो तो उल्लेख करने से पहले राज्य सरकार के मुख्य सचिव, जिलाधीश जैसे समुचित अधिकारी से भी मृत्यु के समाचार की पुष्टि कराई जाती है।

> 23 मई, 1970 को दिन के बारह बजे से थोड़ा पहले एक सदस्य ने सूचित किया कि विधि मंत्री श्री पी. गोविन्द मेनन की हालत बहुत गंभीर है। एक अन्य सदस्य ने सूचना दी कि उनका निधन हो गया है। सभापति ने सचिव को पूछताछ करने का निदेश दिया। कुछ समय बाद मामला पुन: उठाया गया और सदस्यगण चाहते थे कि सभा स्थगित कर दी जाए। सचिव ने सभापति को सूचित किया कि प्रधान मंत्री सदन में आने वाली हैं। प्रधान मंत्री द्वारा समाचार की पुष्टि होने पर ही सभापति ने श्री मेनन के निधन का उल्लेख किया। इसके पहले उन्होंने कहा, "जब तक मैं पुष्टि न कर लेता, तब तक मैं घोषणा कैसे कर सकता था?"[3]

> 17 अगस्त, 1990 को अपराह्न सवा पांच बजे एक सदस्य ने सदन को सूचित किया कि कलकत्ता में लोक सभा की एक भूतपूर्व महिला सदस्य एक नृशंस हमले में मारी गई हैं। वे चाहते थे कि उनके निधन पर शोक व्यक्त करके सदन को स्थगित कर दिया जाए। अधिकृत सूत्रों से इस समाचार की पुष्टि नहीं हुई। जब एक सदस्य ने अनुरोध किया कि निधन का समाचार देने वाले सदस्य कुछ और जानकारी दें तब उपसभाध्यक्ष ने कहा, "सभा को विश्वास में लेने के मामले में सदन का कोई सदस्य सरकार के किसी सदस्य की भूमिका नहीं निभा सकता। अन्य कोई सूचना अनौपचारिक सूचना है।" कुछ अनौपचारिक कार्य के बाद सभा स्थगित कर दी गई।[4] गलत सूचना देने का मामला 20 अगस्त, 1990 को सभा में उठाया गया और अंतत: संबंधित सदस्य ने गलत सूचना देने के लिए माफी मांगी।[5]

यदि दिवस की कार्यावलि जारी करने से पहले यह मालूम हो जाता है कि सभा में दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की जानी है तो 13 नवम्बर, 1972 से चली आ रही प्रथा के अनुसार कार्यावलि में 'प्रश्नों' के पहले लेकिन 'शपथ अथवा प्रतिज्ञान' के पश्चात्, यदि कोई हो, 'दिवंगत (या दिवंगतों) के प्रति श्रद्धांजलि' शीर्षक के अंतर्गत एक प्रविष्टि की जाती है जिसमें मृतक के नाम का उल्लेख होने के साथ यह भी उल्लेख होता है कि मृतक आसीन सदस्य था या भूतपूर्व सदस्य था। नियम समिति के तेरहवें प्रतिवेदन को स्वीकार करते हुए प्रश्नों के समय को बदलते हुए 27.11.2014 से मध्याह्न 12 बजे से मध्याह्न पश्चात् 1 बजे कर दिया गया है। प्रश्नों के समय में परिवर्तन के साथ 'दिवंगतों के प्रति

श्रद्धांजलि' यदि कोई हो, को "शपथ अथवा प्रतिज्ञान" यदि कोई है, के पश्चात् और "सभापटल पर पत्रों का रखा जाना" से पहले सूचीबद्ध किया गया है।

विशेष रूप से सत्र के पहले दिन मृतकों की संख्या एक से अधिक होने पर कार्यावलि में उनके नामों का उल्लेख उनके निधन के क्रम में किया जाता है और बाह्य देशों तथा मित्र देशों के राष्ट्राध्यक्षों के नामों का उल्लेख सबसे पहले किया जाता है।

23 जनवरी, 1980 की कार्यावलि में "दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि" शीर्षक के अंतर्गत सबसे पहले लॉर्ड माउंटबेटन का नाम था और उनके बाद श्री जय प्रकाश नारायण और अन्य व्यक्तियों के नाम थे और इसी क्रम के अनुसार दिवंगतों को श्रद्धांजलि दी गई। अगले दिन सदन के एक सदस्य ने इस संबंध में अपनाई गई प्रक्रिया के बारे में व्यवस्था का प्रश्न उठाया और सुझाव दिया कि भविष्य में जब दिवंगत व्यक्तियों के उल्लेख पढ़े जाएं तब भारतीयों के नाम एक श्रेणी में और विदेशियों के नाम दूसरी श्रेणी मे रखे जाने चाहिएं और भारतीयों के मामले में उनकी ख्याति के अनुसार नामों का उल्लेख किया जाना चाहिए। सभापति का कहना था, "माननीय सदस्य ने ऐसा मुद्दा उठाया है जिसे मैं भविष्य में ध्यान में रखूंगा। इस समय निधन के क्रम पर विचार किया गया था और उसी को अपनाया गया था।"[6]

जिस सदस्य या व्यक्ति के निधन के बारे में उल्लेख किया जाना होता है, यदि उसकी मृत्यु की सूचना कार्यावलि जारी करने के बाद मिलती है तो ऐसे उल्लेख के मामले में कार्य के ज्ञापन में, जो सभापीठ के उपयोग के लिए तैयार किया जाता है, एक प्रविष्टि की जाती है।

भारत के उप-राष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति श्री कृष्णकांत के निधन पर सदन में उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित किये जाने का 29 जुलाई, 2002 की कार्यावलि में उल्लेख नहीं था। तथापि, सभापीठ के उपयोग के लिए तैयार किये जाने वाले कार्य-ज्ञापन में इस बात की एक प्रविष्टि की गई थी।[7]

4 जून, 2004 को कार्यावलि में प्रविष्टि के बिना ही पूर्व सदस्य डॉ. श्रीकान्त रामचंद्र जिचकर के दिवंगत होने पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

उसी तरह से वर्तमान सदस्य श्री सूर्यकान्त भाई आचार्य, श्री कृष्ण लाल बाल्मीकि और श्री बी.बी. तिवारी के लिए क्रमश: 21 दिसम्बर, 2009, 21 अप्रैल, 2010 और 25 अप्रैल 2012 को कार्यावलि में प्रविष्टि के बिना ही श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

एक ऐसा उदाहरण भी विद्यमान है जब कार्यावलि में दर्ज होने के बावजूद उस दिन पूर्व-सदस्य डा. वाई. राधाकृष्ण मूर्ति को श्रद्धांजलि अर्पित नहीं की गई। दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि का उल्लेख मूल रूप से 6 दिसम्बर, 2013 के लिए किया गया था। हालांकि उस दिन यथा 6 दिसम्बर, 2013 को दक्षिणी अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति श्री नेल्सन मंडेला को श्रद्धांजलि अर्पित की गई थी, यह निर्णय लिया गया था कि डॉ. वाई. राधाकृष्ण मूर्ति को 9 दिसम्बर, 2013 को श्रद्धांजलि अर्पित की जाएगी, तद्नुसार इसकी प्रविष्टि कार्यावलि में की गयी और सभापीठ द्वारा उस दिन श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

दिवंगत को श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद सभा कुछ क्षणों के लिए मौन धारण करती है और दिवंगत व्यक्ति के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए सभी सदस्य खड़े हो जाते हैं। इसके पश्चात् सभापति, महासचिव को निदेश देता है कि सदन के शोक और संवेदना को शोक-संतप्त परिवारजनों तक पहुंचाया जाए। इसके बाद जो भी निर्णय होता है उसके अनुसार 'कार्यावलि' में दर्ज अगली मद यथा 'पत्रों को सभापटल पर रखा जाना' को

लिया जाता है या सदन को दिन-भर के लिए स्थगित कर दिया जाता है। सभापति के निदेशानुसार दिवंगत व्यक्ति के निकटतम संबंधी को महासचिव के हस्ताक्षर से एक पत्र भेजा जाता है।

सामान्य प्रयोजन समिति की 9 दिसम्बर, 1998 को एक बैठक हुई। बाद में 28 जनवरी, 1999 के संसदीय समाचार भाग-2 में इसकी सूचना शामिल की गई। समिति ने इस बैठक में मंत्रियों, वर्तमान सदस्यों, राष्ट्रीय नेताओं और अन्य उत्कृष्ट व्यक्तियों के निधन पर सदन की बैठक स्थगित किये जाने और श्रद्धांजलि अर्पित किये जाने के संबंध में निम्नलिखित उपान्तरण किये जाने की सिफारिश की:

(i) राज्य सभा के ऐसे वर्तमान सदस्य के मामले में जिसकी मृत्यु संसद् के सत्र के दौरान हो जाती है, सदन की बैठक मृत्यु हो जाने का संदेश मिलते ही या यदि संदेश देरी से मिले तो अगले दिन स्थगित की जायेगी।

(ii) अंतर्सत्रावधि के दौरान किसी वर्तमान सदस्य की मृत्यु हो जाने पर, सदन की बैठक सत्र के पहले दिन, उस सदस्य के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के पश्चात् स्थगित कर दी जायेगी।

(iii) ऐसे किसी मंत्री की मृत्यु हो जाने पर जो अपनी मृत्यु के समय राज्य सभा का सदस्य न हो और उसकी मृत्यु दिल्ली में हुई हो, सदन की बैठक दिवस के लिये स्थगित कर दी जानी चाहिए ताकि सदस्य उसकी अन्त्येष्टि में या उसके पार्थिव शरीर को दिल्ली से बाहर ले जाने में भाग ले सकें।

(iv) किसी राष्ट्रीय राजनीतिक दल के मुखिया की मृत्यु के मामले में यदि मृतक (क) अपनी मृत्यु के समय लोक सभा का सदस्य हो; (ख) उसके दल का राज्य सभा में प्रतिनिधित्व हो और सभापति द्वारा उसे एक दल अथवा ग्रुप के रूप में मान्यता दी गई हो; और (ग) उसकी मृत्यु दिल्ली में हुई हो तो सदन की बैठक दिवस के लिये स्थगित की जानी चाहिये ताकि सदस्य उसकी अन्त्येष्टि में या उसके पार्थिव शरीर को दिल्ली से बाहर ले जाने में भाग ले सकें।

(v) किसी उत्कृष्ट व्यक्ति, अथवा राष्ट्रीय नेता या किसी विशिष्ट व्यक्ति की मृत्यु के मामले में सभापति सभा के नेता के परामर्श से प्रत्येक ऐसे मामले में यह निर्णय ले सकता है कि क्या सदन की बैठक दिवस के लिये स्थगित की जाये या न की जाये।

समिति ने यह भी सिफारिश की कि दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि के मामले में केवल सभापति द्वारा उल्लेख किए जाने की वर्तमान परिपाटी का अनुपालन किया जाना चाहिए। विशेष अवसरों पर, जब इस संबंध में सर्वसम्मति हो, दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि के मामले में दल/समूह के नेता भी भाग ले सकते हैं।

समिति ने यह भी सिफारिश की कि दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि के उल्लेख सदन की बैठक के आरंभ होते ही किये जाने चाहिए।[8]

सदस्यों, मंत्रियों आदि को श्रद्धांजलि अर्पित करने के संबंध में सामान्यत: उपरोक्त प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। किन्तु, परिस्थितियों की आवश्यकता को देखते हुए भिन्न प्रक्रिया का भी अनुसरण किया गया है।

एक बार राज्य सभा और लोक सभा के एक भूतपूर्व सदस्य श्री मेहर चंद खन्ना के दिल्ली में हुए निधन के बारे में 27 जुलाई, 1970 को उल्लेख किया गया। मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद सभा के पुन: समवेत होने पर एक सदस्य ने कहा कि श्री खन्ना की मृत्यु के कारण लोक सभा स्थगित हो गई है और इसलिए राज्य सभा को भी स्थगित हो जाना चाहिए। सभा के नेता का कहना था, "...सदन की परम्परा है कि यदि वह इस सदन का सदस्य है और सत्र के दौरान उसका निधन हो जाता है तो सभा स्थगित हो जाती है। लोक सभा के अध्यक्ष का यह कथन है कि इसे पूर्वोदाहरण के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। किंतु चूंकि सभी दलों के नेताओं ने सदन में अनुरोध किया, इसलिए सदन स्थगित कर दिया गया।" राज्य सभा को स्थगित करने के सुझाव को स्वीकार नहीं किया गया।[9]

एक अवसर ऐसा आया जब सभापति ने सभा को अनियत तिथि तक के लिए स्थगित करने से ठीक पहले श्रद्धांजलि अर्पित की। यह राज्य सभा के 29वें सत्र के अंतिम दिन 29 अप्रैल 1960 को घटित हुआ। सभापति ने सभा के सदस्य पंडित बालकृष्ण शर्मा के दु:खद निधन पर मध्याह्न पश्चात् 6 बजे उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने सूचित किया कि पंडित बाल कृष्ण शर्मा का निधन उस दिन सायंकाल मध्याह्न पश्चात् 3 और 4 के बीच हुआ और उन्होंने सभा के सभी सदस्यों से दिवंगत नेता के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए एक मिनट तक खड़ा होने का अनुरोध किया। सभापति द्वारा सभा के अनियत तिथि तक स्थगन से ठीक पहले सायंकाल को दी गई श्रद्धांजलि कुछेक विरल श्रद्धांजलियों में से एक है।[10]

सत्र के पहले दिन सदन का स्थगित होना

सत्र के पहले दिन आसीन सदस्यों, भूतपूर्व सदस्यों, मंत्रियों आदि की पिछले सत्रावकाश के दौरान हुई मृत्यु का उल्लेख किया जाता है। वर्ष 1999 से पहले सामान्यत: इसके बाद सदन स्थगित नहीं होता था, किन्तु वर्ष के प्रथम सत्र के पहले दिन राष्ट्रपति के अभिभाषण की एक प्रति के सभा पटल पर रखे जाने, दिवंगत या दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित किए जाने और औपचारिक स्वरूप वाले कार्य के बाद सदन स्थगित हो जाता है। किंतु इसके अपवाद रहे हैं और अन्य सत्रों के पहले दिन भी दिवंगतों के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए सदन स्थगित हुआ है। ऐसे दिवंगत व्यक्ति निम्नलिखित हैं: श्री रफी अहमद किदवई (खाद्य और कृषि मंत्री),[11] श्री एच. सी. दासप्पा (उद्योग और आपूर्ति मंत्री,)[12] श्री डी. संजीवैय्या,[13] श्री भूपेश गुप्त,[14] श्री बीर बहादुर सिंह,[15] श्री एन. ई. बलराम[16] (ये सभी आसीन सदस्य थे); राष्ट्रीय नेता श्री जगजीवन राम,[17] भूतपूर्व प्रधान मंत्री चौधरी चरण सिंह और श्री मोरारजी देसाई[18]। इन सभी का निधन तब हुआ जब सदन का सत्र नहीं चल रहा था। ऐसे मामलों में सभापति, दलों के नेताओं आदि की आम राय या सामान्य इच्छा के आधार पर निर्णय करता है।

एक उदाहरण ऐसा भी है जहां सत्र के पहले दिन एक आसीन सदस्य के निधन का उल्लेख नहीं किया गया और दूसरे दिन उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गई और उसके बाद सभा दिन-भर के लिए स्थगित हो गई।

आसीन सदस्य श्री दरबारा सिंह का 12 मार्च, 1990 को निधन हुआ और इसी दिन 153वें सत्र का आरंभ हुआ। अन्य दिवंगत व्यक्तियों के निधन का उल्लेख करने के बाद सभापति ने घोषणा की कि श्री दरबारा सिंह को 13 मार्च, 1990 को श्रद्धांजलि अर्पित की जाएगी। तद्नुसार ऐसा किया गया और तत्पश्चात् सदन स्थगित हो गया।[19]

बाकी दिन के लिए सदन का स्थगित होना

यदि सदन की किसी बैठक के दौरान किसी सदस्य, मंत्री या किसी विशिष्ट व्यक्ति

के निधन का समाचार प्राप्त होता है तो उस स्थिति में अपनाई जाने वाली प्रथा यह है कि निधन का उल्लेख करने के लिए या शोक व्यक्त करने के लिए कार्यवाही को रोक दिया जाता है और उसके बाद सदन बाकी दिन के लिए स्थगित हो जाता है।

> 14 मार्च, 1961 को अपराह्न साढ़े तीन बजे के लगभग उपसभापति ने सदन को एक आसीन सदस्य श्री राम कृपाल सिंह के निधन के बारे में सूचित किया। सभापीठ द्वारा निधन का संक्षेप में उल्लेख किया गया और सदन के सदस्यों द्वारा मौन धारण किया गया। उसके बाद सदन अपराह्न 3 बजकर 32 मिनट पर बाकी दिन के लिए स्थगित हो गया।[20]
>
> 29 अप्रैल, 1969 को प्रश्नकाल के समाप्त होते ही सभापति ने उस दिन सवेरे हैदराबाद में सदन के भूतपूर्व सदस्य श्री पी. एन. सप्रू के निधन का उल्लेख किया। इसके बाद सदन ने मौन धारण किया। एक सुझाव दिया गया कि "इस महान आत्मा के प्रति सम्मान और श्रद्धा व्यक्त करने के लिए" सदन को मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद स्थगित कर दिया जाए। सभापति का सुझाव था कि सदन अपराह्न साढ़े तीन बजे स्थगित हो। अपराह्न चार बजे उपसभाध्यक्ष ने सदन को सूचित किया कि संभावना है कि श्री सप्रू का पार्थिव शरीर अपराह्न साढ़े छह और सात के बीच दिल्ली पहुंचेगा और उन्होंने श्री सप्रू के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए सदन को अपराह्न 4 बजकर 2 मिनट पर स्थगित कर दिया।[21]
>
> राज्य सभा की भूतपूर्व उपसभापति श्रीमती वायलेट आल्वा के निधन पर उनके प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए 20 नवम्बर, 1969 को सदन स्थगित कर दिया गया। उसके अतिरिक्त एक सदस्य के सुझाव पर 21 नवम्बर, 1969 को भी अपराह्न 2 बजकर 41 मिनट पर सदन को स्थगित कर दिया गया ताकि सदस्य उनकी अंत्येष्टि में भाग ले सकें।[22]
>
> 23 मई, 1970 को दोपहर बारह बजे के बाद प्रधान मंत्री ने सभा को सूचित किया कि श्री पी. गोविन्द मेनन का दिल्ली में देहान्त हो गया है। सभापति द्वारा श्री मेनन के निधन का उल्लेख किए जाने और सभा द्वारा मौन धारण किए जाने के बाद सभा को उस दिन अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दिया गया क्योंकि वह दिन 72वें सत्र का अंतिम दिन था।[23]
>
> 23 नवम्बर, 1977 को जब सदन मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद पुनः समवेत हुआ तब रेल मंत्री ने अहमदाबाद-दिल्ली मेल के पटरी से उतर जाने के बारे में वक्तव्य देते हुए सभा को यह भी सूचित किया कि मृतकों में सदन के आसीन सदस्य श्री प्रकाश वीर शास्त्री भी थे। उपसभापति द्वारा उनके निधन का उल्लेख किए जाने और मौन धारण किए जाने के बाद सदन अपराह्न 2 बजकर 9 मिनट पर बाकी दिन के लिए स्थगित हो गया।[24]
>
> 8 दिसम्बर, 1981 को अपराह्न 12 बजकर 20 मिनट पर उपसभापति ने सदन को सूचित किया कि संचार मंत्रालय में राज्य मंत्री श्री कार्तिक ओरांव का देहान्त हो गया है। सभा ने मौन धारण किया और वह अपराह्न 12 बजकर 21 मिनट पर स्थगित हो गई।[25]

कभी-कभी सदन किसी सदस्य या मंत्री के निधन का समाचार मिलते ही स्थगित हो गया और दिवंगत को अगली बैठक में श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

> 13 अगस्त, 1963 को अपराह्न 3 बजकर 42 मिनट पर उपसभाध्यक्ष ने सदन को सूचित किया कि उस दिन थोड़ी देर पहले सदन के आसीन सदस्य श्री सत्यचरण शास्त्री का देहान्त हो गया है। सदन बाकी दिन के लिए स्थगित कर दिया गया और शास्त्री जी को अगले दिन श्रद्धांजलि दी गई।[26]
>
> 27 मई, 1964 को सदन के समवेत होते ही वित्त मंत्री (श्री टी.टी. कृष्णामाचारी) ने सदन को सूचित किया कि प्रातः 6 बजकर 25 मिनट पर प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू अचानक गंभीर रूप से बीमार हो गए और उनकी हालत चिंताजनक बनी हुई है। प्रश्नकाल के समाप्त होने पर एक सदस्य ने सभापति से अनुरोध किया कि प्रधान मंत्री के स्वास्थ्य-लाभ के लिए उन्हें सदन की शुभकामनाएं और प्रार्थनाएं भेजी जाएं। मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद अपराह्न ढाई बजे इस्पात, खान और भारी इंजीनियरी मंत्री (श्री सी. सुब्रह्मण्यम्) ने प्रधान मंत्री के निधन की दुःखद सूचना दी। सदन

बाकी दिन के लिए स्थगित हो गया और 29 मई, 1964 को स्वर्गीय प्रधान मंत्री को श्रद्धांजलि अर्पित की गई।[27]

27 अप्रैल, 1992 को अपराह्न में यह समाचार मिला कि उस दिन सदन के आसीन सदस्य श्री अरविन्द गणेश कुलकर्णी का पुणे में निधन हो गया है। सदन को तुरंत स्थगित करने की मांग की गई। उपसभाध्यक्ष ने परामर्श के लिए सदन को स्थगित कर दिया। सदन लगभग एक घंटे बाद पुन: समवेत हुआ। सभापति ने स्वर्गीय श्री कुलकर्णी के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए सदन को अपराह्न 3 बजकर 57 मिनट पर बाकी दिन के लिए स्थगित कर दिया। अगले दिन सभापति और विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं ने दिवंगत को श्रद्धांजलि अर्पित की।[28]

25 जुलाई, 2001 को मध्याह्न पश्चात् यह खबर मिली कि लोक सभा की वर्तमान सदस्य, श्रीमती फूलन देवी की मृत्यु हो गई है और यह कि उस दिन मध्याह्न पश्चात् 1 बजकर 30 मिनट पर उनके घर पर गोली मारकर उनकी हत्या की गई है। श्री रमा शंकर कौशिक ने सदन को उनकी मृत्यु की सूचना दी। उपसभापति महोदया सदन में आईं। उन्होंने सदन की राय ली। सदन ने मौन धारण किया। उसके पश्चात् सदन की बैठक दिवस के लिये स्थगित कर दी गई। दूसरे दिन सभापति ने इस त्रासदिक घटना का उल्लेख किया और सदन ने मौन धारण किया। सदन की बैठक दिवस के लिये स्थगित की गई ताकि सदस्यगण दिवंगत श्रीमती फूलन देवी की अन्त्येष्टि में भाग ले सकें।[29]

इसी प्रकार 19 मार्च, 2002 को मध्याह्न पश्चात् यह खबर मिली कि एक त्रासदिक सड़क दुर्घटना में राज्य सभा के एक वर्तमान सदस्य, श्री दयानन्द सहाय की मृत्यु हो गई है। उपसभाध्यक्ष (श्री अधिक शिरोडकर) ने सदन को श्री सहाय के निधन की सूचना दी। शेष दिवस के लिये सदन की बैठक स्थगित की गई। 20 मार्च, 2002 को सभापति ने श्री दयानन्द सहाय के निधन का उल्लेख किया और दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में सदन में मौन धारण किया गया और सदन की बैठक दिवस के लिये स्थगित की गई।[30]

15 दिसंबर, 2006 को सभापति ने मध्याह्न पश्चात् 2 बजकर 33 मिनट पर श्रीमती सुखवंश कौर की मृत्यु के बारे में सभा को सूचित किया और उस दिन मध्याह्न पश्चात् 2 बजकर 34 मिनट पर सभा को पूरे दिन भर के लिए स्थगित किया। 18 दिसंबर, 2006 को दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि दी गई।[31]

श्री विलासराव दागादोजीराव देशमुख जो वर्तमान सदस्य और केंद्रीय मंत्री थे, 14 अगस्त, 2012 को दिवंगत हुए। दु:खद समाचार मिलने के उपरांत सभा उस दिन के लिए स्थगित कर दी गई। 16 अगस्त, 2012 को सभापति द्वारा दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि दिये जाने और मौन रखने के बाद सभा उस दिन के लिए स्थगित कर दी गई।[32]

सदन का थोड़े समय के लिए स्थगित होना या न होना

कभी-कभी ऐसे कार्य को देखते हुए जिसे स्थगित नहीं किया जा सकता था, किसी सदस्य या मंत्री के निधन का समाचार मिलते ही सदन को थोड़ी देर के लिए स्थगित कर दिया गया और कार्य को पूरा करने के लिए पुन: समवेत हुआ।

31 जुलाई, 1974 को सभापति ने सभा में उल्लेख किया कि औद्योगिक विकास मंत्रालय में राज्य मंत्री श्री एम. बी. राणा का उस दिन तड़के कलकत्ता में निधन हो गया है। सदन ने एक मिनट के लिए मौन धारण किया और वह अपराह्न साढ़े पांच बजे तक के लिए स्थगित हुआ, सदन अपराह्न 5 बजकर 43 मिनट पर पुन: समवेत हुआ और अपराह्न 5 बजकर 46 मिनट पर स्थगित होने के पहले वित्त मंत्रालय में राज्य मंत्री (श्री के. आर. गणेश) ने वित्त (सं. 2) विधेयक, 1974 के लोक सभा में पुर:स्थापन के संबंध में वित्त मंत्री के एक वक्तव्य को सभा पटल पर रखा।[33]

किन्तु एक सत्र के अंतिम दिन एक बार ऐसा हुआ कि किए जाने वाले कार्य को देखते हुए एक आसीन सदस्य के निधन का उल्लेख करने के बाद सदन थोड़े समय के लिए या बाकी दिन के लिए स्थगित नहीं हुआ।

31 जनवरी, 1985 को सदन द्वारा संविधान (बावनवां संशोधन) विधेयक, 1985 पारित कर दिए जाने के बाद उपसभापति ने सभा को सूचित किया कि उस दिन अपराह्न को सदन के एक आसीन सदस्य श्री कल्याण राय का कलकत्ता में निधन हो गया और उन्होंने दिवंगत को श्रद्धांजलि अर्पित की। इसके बाद सभा ने एक मिनट के लिए मौन धारण किया। कार्यावलि की अगली मद थी: लोक सभा द्वारा यथापारित प्रशासनिक अधिकरण विधेयक, 1985 पर विचार और उसका पारित किया जाना। यह सुझाव दिया गया कि विधेयक को अगले सत्र के दौरान लिया जाए और स्वर्गीय राय के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए सदन को स्थगित कर दिया जाए। इस मामले को सदन के समक्ष रखते हुए उपसभापति ने कहा : "हम...इस विधेयक पर विचार-विमर्श समाप्त हो जाने के बाद दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहते थे। किन्तु हम यह चाहते थे कि हमारे अधिकांश सदस्य उपस्थित रहें... इसलिए हमने ऐसा किया" और विधेयक को विचारार्थ ले लिया गया।[34]

एक अन्य अवसर पर सभापति ने निधन का उल्लेख किया, सदन ने मौन धारण किया और दिवंगत के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए उसकी बैठक थोड़े समय के लिए स्थगित कर दी गई।

24 मार्च, 1992 को सभापति ने लोक सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष डा. गुरदयाल सिंह ढिल्लों के निधन का उल्लेख किया, सदन ने मौन धारण किया। अपराह्न 3 बजकर 19 मिनट पर सदन को स्थगित कर दिया गया ताकि सदस्यगण स्वर्गीय ढिल्लों के प्रति, जिनका पार्थिव शरीर संसद् भवन के द्वार संख्या 1 पर लाया गया था, सम्मान व्यक्त कर सकें। सदन अपराह्न 3 बजकर 33 मिनट पर पुन: समवेत हुआ।[35]

ऐसे पूर्व सदस्यों जिन्हें सभा में श्रद्धांजलि नहीं दी गयी थी, के प्रति श्रद्धांजलि

ऐसे उदाहरण भी हैं जब राज्य सभा के पूर्व सदस्यों को सभा में उनके दिवंगत होने की जानकारी देर से प्राप्त होने के कारण श्रद्धांजलि नहीं दी गयी थी। ऐसे मामलों में जब काफी लंबे समय के पश्चात् इस सचिवालय में पूर्व सदस्यों के दिवंगत होने की सूचना प्राप्त होती है, आवश्यक स्वीकृति प्राप्त करने के बाद दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि के रजिस्टर और संबंधित सदस्य के इंडेक्स कार्ड में निधन की तिथि के संबंध में प्रविष्टि की जाती है। इस सभा में इकतीस (31) पूर्व सदस्यों को श्रद्धांजलि नहीं दी गयी थी। इस संबंध में समय-समय पर सूची में अद्यतन प्रविष्टि कर दी जाती है।

दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने में नेताओं द्वारा भाग लिया जाना

जैसाकि कहा जा चुका है, सामान्य प्रथा यही है कि सदन की ओर से सभापति द्वारा ही दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है। अपवादात्मक मामलों में प्रधान मंत्री या सभा का नेता श्रद्धांजलि की शुरुआत कर सकता है और विभिन्न दलों/समूहों के नेता और प्रतिनिधि और कुछ अन्य सदस्य भी इसमें भाग ले सकते हैं और ऐसा होने पर सभापति अंत में सभा के विभिन्न पक्षों द्वारा व्यक्त भावनाओं से स्वयं को संबद्ध करता है।

प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नहेरू ने सदन को सूचित किया कि महान समाजवादी नेता और सदन के आसीन सदस्य आचार्य नरेन्द्र देव का देहावसान हो गया है। इसके पश्चात् सभापति ने प्रधान मंत्री द्वारा व्यक्त की गई भावनाओं से स्वयं को संबद्ध किया।[36]

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद[37], सभा के नेता श्री गोविन्द बल्लभ पंत,[38] प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू,[39] प्रधान मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री,[40] राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसैन,[41] राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद,[42] श्री जगजीवन राम[43] और चौधरी चरण सिंह[44] के निधन पर उनके प्रति श्रद्धांजलि की शुरुआत सभा के नेता ने की और उनके बाद राज्य सभा में विभिन्न दलों/समूहों के

नेता और प्रतिनिधि बोले। अन्त में सभापति/ उपसभापति ने इस प्रकार व्यक्त की गई भावनाओं से स्वयं को संबद्ध किया।

डा. राम मनोहर लोहिया,[45] प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी[46] और भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी[47] के मामले में श्रद्धांजलि की शुरुआत सभापति ने की और उसके बाद दलों/समूहों के नेताओं/प्रतिनिधियों आदि ने श्रद्धांजलि अर्पित की।

सभापति ने आसीन सदस्य और मंत्री श्री बीर बहादुर सिंह को श्रद्धाजंलि अर्पित की। उसके बाद प्रधान मंत्री बोले।[48]

सभापति ने एक आसीन सदस्य श्री अरविन्द गणेश कुलकर्णी के निधन पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। इसके पश्चात् विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं ने व्यक्त की गई भावनाओ से स्वयं को संबद्ध किया।[49]

शोक संकल्प

कुछ अपवादात्मक मामलों में दिवंगत व्यक्तियों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए सदन ने सभापति द्वारा रखे गए या सभा के नेता द्वारा उपस्थित किए गए संकल्पों को स्वीकृत किया है।

श्री जवाहरलाल नेहरू, डा. ज़ाकिर हुसैन और श्री फखरुद्दीन अली अहमद के निधन पर सभा के नेता ने शोक संकल्प उपस्थित किए।[50] श्रीमती इंदिरा गांधी, खान अब्दुल ग़फ्फार खान और श्री राजीव गांधी के निधन पर सभापति ने सभा के समक्ष शोक संकल्प रखे।[51]

विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं आदि द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित किए जाने के बाद सभी सदस्यों ने खड़े होकर मौन धारण किया और सदन ने संकल्प को पारित किया। इसके बाद अन्य सदस्यों और व्यक्तियों को श्रद्धांजलि अर्पित की गई और स्थगित होने से पूर्व सदन ने पुन: उनके लिए मौन धारण किया।

काले हाशिए वाला संसदीय समाचार

संसदीय समाचार भाग-1 में सदन की कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण होता है। जब दिवंगत को श्रद्धांजलि दी जाती है तब उसमें उस व्यक्ति के नाम का उल्लेख किया जाता है जिसे श्रद्धांजलि दी जाती है और साथ ही उसमें मौन धारण किए जाने और सदन के स्थगित किए जाने का उल्लेख किया जाता है। जून 1991 से यह प्रथा शुरू हुई है कि दिवंगत को श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद सदन के स्थगित होने की स्थिति में संसदीय समाचार के चारों तरफ वाला हाशिया रखा जाता है। विगत में चुने हुए व्यक्तियों के मामले में ही इस संसदीय समाचार के चारों तरफ काला हाशिया लगाया जाता था। केवल निम्नलिखित व्यक्तियों के मामले में ऐसा किया गया था:

आचार्य नरेन्द्र देव, लोक सभा अध्यक्ष श्री जी.वी. मावलंकर, श्री पी.सी. भंजेदव, श्री गोविन्द बल्लभ पंत, डा. राजेन्द्र प्रसाद, अमेरिका के राष्ट्रपति जॉन एफ. केनेडी, श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री लाल बहादुर शास्त्री, डा. ज़ाकिर हुसैन, श्रीमती वायलेट आल्वा, श्री फखरुद्दीन अली अहमद और श्रीमती इंदिरा गांधी।[52]

भूतपूर्व सभापतियों को श्रद्धांजलि

सदन ने राज्य सभा के भूतपूर्व सभापतियों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के बारे में निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई है:

भूतपूर्व सभापति डा. ज़ाकिर हुसैन का निधन 3 मई, 1969 (शनिवार) को हुआ और उस समय वे राष्ट्रपति थे। सदन के नेता ने 5 मई, 1969 को शोक संकल्प उपस्थित करते हुए दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि की शुरुआत की। इसके बाद दलों/समूहों के नेताओं और अन्य सदस्यों ने अपने उद्‌गार व्यक्त किए। उस समय सभापति राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे थे इसलिए उनकी अनुपस्थिति में उपसभापति ने सदन की अध्यक्षता करते हुए सदन में व्यक्त की गई भावनाओं के साथ स्वयं को संबद्ध किया। संकल्प स्वीकृत हुआ और सदस्यों ने दो मिनट के लिए मौन धारण किया। उपसभापति ने सदन को दिन-भर के लिए स्थगित करते हुए कहा : "हम सब सदन के उठने के आधा घंटे बाद दिवंगत राष्ट्रपति के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए राष्ट्रपति भवन में होंगे।"[53]

राज्य सभा के प्रथम सभापति और भूतपूर्व राष्ट्रपति डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का 17 अप्रैल, 1975 को निधन हुआ। सदन का सत्र नहीं चल रहा था। सभापति ने सदन के सत्र के पहले दिन अर्थात् 25 अप्रैल, 1975 को डा. राधाकृष्णन् और साथ ही दो भूतपूर्व सदस्यों को श्रद्धांजलि अर्पित की। दिवंगतों के सम्मान में सदन ने दो मिनट के लिए मौन धारण किया। इसके बाद महासचिव ने संविधान (सैंतीसवां) और संविधान (अड़तीसवां) संशोधन विधेयक, 1975 के संबंध में लोक सभा से प्राप्त दो संदेशों की सूचना दी और दोनों विधेयकों को सभा पटल पर रखा। तत्पश्चात् सदन दिन-भर के लिए स्थगित हो गया।[54]

24 जून, 1980 को सभापति ने भूतपूर्व सभापति और राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि को श्रद्धांजलि अर्पित की, जिनका निधन, उस दिन सवेरे हो गया था। सदन के सभी सदस्यों ने खड़े होकर उनकी स्मृति में एक मिनट का मौन धारण किया और उसके बाद सभा दिन-भर के लिए स्थगित हो गई। अगले दिन सदन की बैठक होने पर सदन के नेता ने सुझाव दिया कि उस दिन श्री गिरि के दाह-संस्कार के कारण सदन को कोई कार्य किए बिना स्थगित कर दिया जाए। सदन में दलों/समूहों के नेताओं/प्रतिनिधियों ने सुझाव का समर्थन किया। सभापति ने यह देखते हुए कि सुझाव सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया है, सभा को दिन-भर के लिए स्थगित कर दिया।[55]

श्री गोपाल स्वरूप पाठक का 31 अगस्त, 1982 को निधन हुआ। उस समय सदन का सत्र नहीं चल रहा था। 124वें सत्र के पहले दिन अर्थात् 4 अक्तूबर, 1982 को सभापति ने श्री पाठक, शेख मोहम्मद अब्दुल्ला, श्री सी. डी. देशमुख और राज्य सभा के दो भूतपूर्व सदस्यों को श्रद्धांजलि अर्पित की। सभा ने दिवंगतों की स्मृति में एक मिनट का मौन धारण किया।[56]

श्री एम. हिदायतुल्लाह का निधन 18 सितम्बर, 1992 को हुआ। उस समय सभा का सत्र नहीं चल रहा था। सभापति ने 165वें सत्र के पहले दिन अर्थात् 24 नवम्बर, 1992 को श्री एम. हिदायतुल्लाह और अन्य दिवंगत व्यक्तियों को श्रद्धांजलि अर्पित की। उस दिन सभा की बैठक होने के पहले दलों/समूहों के प्रतिनिधियों और नेताओं की सभापति के साथ एक बैठक हुई जिसमें सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया कि राज्य सभा के भूतपूर्व सभापति श्री हिदायतुल्लाह की स्मृति में सभा को दिन-भर के लिए स्थगित कर दिया जाए। मौन धारण करने के बाद सभा स्थगित हो गई।[57] सभापति श्री के. आर. नारायणन् उपराष्ट्रपति बनने के बाद इस दिन पहली बार सदन की अध्यक्षता कर रहे थे। इस दिन न तो राष्ट्रगान की धुन बजाई गई और न ही सभापति को बधाइयां दी गईं और ऐसा अगले दिन किया गया।

सभापति ने 15 जुलाई, 2002 को भारत के पूर्व उपराष्ट्रपति और राज्य सभा के पूर्व सभापति, श्री बासप्पा दानप्पा जत्ती के निधन का उल्लेख किया। सभा ने दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये मौन धारण किया और तत्पश्चात् सदन की बैठक दिवस के लिये स्थगित हो गई।[58]

29 जुलाई, 2002 को उपसभापति ने भारत के पूर्व उपराष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति श्री कृष्णकान्त के निधन का उल्लेख किया। सभा ने दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये एक मिनट का मौन धारण किया और तत्पश्चात् सदन की बैठक दिवस के लिये स्थगित हो गई।[59]

26 जुलाई, 2010 को सभापति ने 15 मई, 2010 को राज्य सभा के पूर्व सभापति श्री भैरो सिंह शेखावत के निधन का उल्लेख किया। सभा ने दिवंगत के सम्मान में एक मिनट का मौन रखा और तत्पश्चात् सभा उस दिन के लिए स्थगित हो गयी।[60]

लोक सभा के आसीन सदस्य के निधन पर श्रद्धांजलि

लोक सभा के किसी आसीन सदस्य के निधन पर सामान्यत: उसे तभी श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है जब वह विगत में राज्य सभा का सदस्य रहा हो या मंत्री रहा हो या वह अन्यथा कोई लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्ति हो। विख्यात वैज्ञानिक प्रोफेसर मेघनाद साहा[61] और समाजवादी नेता डा. राम मनोहर लोहिया[62] अपने निधन के समय लोक सभा के आसीन सदस्य थे और उन्हें राज्य सभा में श्रद्धांजलि दी गई थी। लोक सभा अध्यक्ष श्री जी. वी. मावलंकर,[63] श्री फीरोज़ गांधी,[64] भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष, श्री के. कामराज,[65] श्री संजय गांधी,[66] श्री ललित माकन[67] और श्री फ्रैंक एन्थनी[68] के निधन के कारण भी सभा दिन-भर के लिए स्थगित हो गई। (स्वर्गीय श्री ललित माकन के मामले में सभापति ने सभा का अभिप्राय जानकर उसे स्थगित कर दिया और श्री फ्रैंक एन्थनी के मामले में सभा को स्थगित करने के पूर्व उपसभापति ने उस दिन सवेरे अपने कक्ष में नेताओं के साथ एक अनौपचारिक बैठक की।)

केन्द्रीय मंत्री और लोक सभा के वर्तमान सदस्य, श्री एन.वी.एन. सोमू,[69] सुप्रसिद्ध नेता, वयोवृद्ध सांसद् और लोक सभा के वर्तमान सदस्य, श्री इन्द्रजीत गुप्ता,[70] केन्द्रीय मंत्री और लोक सभा के वर्तमान सदस्य, श्री पी. आर. कुमारमंगलम[71] और सुप्रसिद्ध सांसद्, पूर्व केन्द्रीय मंत्री और लोक सभा के वर्तमान सदस्य, श्री माधवराव सिंधिया[72] के निधन पर सभापति ने सदन में दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि दी, मौन धारण किया और सदन की बैठक को स्थगित किया।

सभापति ने 4 मार्च, 2002 को लोक सभा के अध्यक्ष, श्री जी.एम.सी. बालयोगी के निधन का उल्लेख किया और दिवंगत के सम्मान में मौन धारण करने के पश्चात् सदन की बैठक को निरन्तर तीन दिनों के लिये स्थगित किया।[73]

9 अगस्त, 1967 को लोक सभा अपने आसीन सदस्य श्री जय बहादुर सिंह के निधन के कारण स्थगित हो गई। यह सुझाव दिए जाने पर कि राज्य सभा को भी स्थगित कर दिया जाना चाहिए, सभापति ने कहा कि जब तक सभा के सभी पक्षों और नेताओं में सहमति न हो तब तक कोई नया पूर्वोदाहरण बनाना कठिन है क्योंकि विगत में इस बारे में लोक सभा के सदस्य श्री फीरोज़ गांधी का ही केवल एक अपवाद रहा है जिनके निधन पर राज्य सभा स्थगित की गई। अत: सभा स्थगित नहीं की गई। किंतु सभापति ने शोक व्यक्त किया और सभा ने उस सदस्य की स्मृति में एक मिनट का मौन धारण किया।[74]

पूर्व प्रधान मंत्रियों/उप-प्रधान मंत्रियों के प्रति श्रद्धांजलि

राज्य सभा में पूर्व प्रधान मंत्रियों श्री चरण सिंह, श्री राजीव गांधी, श्री मोरारजी देसाई श्री चन्द्रशेखर और श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह तथा पूर्व उप-प्रधान मंत्रियों श्री जगजीवन राम और श्री देवी लाल को श्रद्धांजलि दी गयी जिसके उपरांत सभा उस दिन के लिए स्थगित कर दी गयी।

203वें सत्र के अंतिम दिन 23 दिसंबर, 2004 को मध्याह्न पश्चात् 2 बजकर 41 मिनट पर पूर्व प्रधान मंत्री श्री पी. वी. नरसिम्हाराव के दिवंगत होने का समाचार प्राप्त हुआ। सभा ने दिवंगत की स्मृति मे मौन रखा और सभापति ने अनियत तिथि के लिए सभा को स्थगित किया। 25 फरवरी, 2005 को श्री पी. वी. नरसिम्हाराव के दिवंगत होने का उल्लेख किया जिसके बाद सभा ने मौन रखा।[75]

30 नवंबर, 2012 को मध्याह्न पश्चात् 3 बजकर 45 मिनटर पर गृह मंत्री द्वारा सभा को पूर्व प्रधान मंत्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल के दिवंगत होने की सूचना दी गई। दिवंगत के सम्मान में उस दिन सभा अविलंब स्थगित कर दी गई। 3 दिसंबर, 2012 को सभा में दिवंगत को श्रद्धांजलि दी गई और मौन रखने के बाद उस दिन के किए सभा स्थगित कर दी गई।[76]

देश के महत्वपूर्ण और लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्तियों को श्रद्धांजलि

प्रथानुसार देश के या विश्व के सार्वजनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले व्यक्तियों के निधन पर उन्हें सदन में श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है। सभापीठ द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित किए जाने के बाद दिवंगत की स्मृति में सभी सदस्य खड़े होकर मौन धारण करते हैं। नीचे कुछ ऐसे लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्तियों के नामों का उल्लेख किया गया है जिनके निधन पर सदन में श्रद्धांजलि अर्पित की गई और मौन धारण किया गया:

श्री बी. एन. राव, न्यायाधीश, इन्टरनेशनल कोर्ट ऑफ जस्टिस (अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय),[77] श्री मानेकजी बैरमजे दादाभाई, भूतपूर्व काउंसिल ऑफ स्टेट के सदस्य और अध्यक्ष (प्रेजीडेंट),[78] श्रीमती शिवकमम्मा राधाकृष्णन्, सभापति, डा. राधाकृष्णन् की धर्मपत्नी।[79]

सभापति ने इसके उत्तर में एक पत्र लिखा जिसे सभा में पढ़कर सुनाया गया। इस पत्र में सभापति ने दु:ख की घड़ी में राज्य सभा के सदस्यों की संवेदना के लिए उनके प्रति गहरा आभार व्यक्त करते हुए कहा: "कोई औपचारिक संकल्प नहीं भी होता तब भी मुझे इसकी सूचना मिल जाती। यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई है कि जिन सदस्यों के साथ कार्य करने का मुझे गौरव प्राप्त है वे (शोक की) इस घड़ी में मेरे लिए सहानुभूति व्यक्त करते हैं।"[80]

श्री टी. प्रकाशम्, आंध्र प्रदेश के मुख्य मंत्री;[81] डा. भगवान दास, दार्शनिक;[82] सैयद फज़ल अली, उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश और राज्य पुनर्गठन आयोग के अध्यक्ष;[83] डा. जॉन मथाई, भूतपूर्व वित्त मंत्री;[84] डा. पी. सुब्बारायन, भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री और महाराष्ट्र के राज्यपाल;[85] डा. बी. सी. रॉय, मुख्य मंत्री, पश्चिम बंगाल;[86] सिक्किम के महामहिम सर ताशी नामग्याल;[87] श्री दीन दयाल उपाध्याय, जन संघ के अध्यक्ष;[88] श्री एम.एस. अणे, लब्ध-प्रतिष्ठ नेता;[89] श्री चन्द्रशेखर वेंकटरमन, विख्यात वैज्ञानिक;[90] श्री श्रीप्रकाश, महाराष्ट्र के राज्यपाल;[91] श्री जी. एम. सादिक, मुख्य मंत्री, जम्मू-कश्मीर;[92] श्री सी. राजगोपालाचारी, प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल;[93] श्री माधव सदाशिव गोलवलकर, सर संघचालक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ;[94] श्री मुज़फ्फर अहमद, कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया के संस्थापक सदस्य;[95] शेख मोहम्मद अब्दुल्ला, जम्मू-कश्मीर के भूतपूर्व मुख्य मंत्री;[96] श्री सी. डी. देशमुख, भूतपूर्व केन्द्रीय वित्त मंत्री;[97] आचार्य विनोबा भावे, भूदान नेता;[98] सरदार हुकम सिंह, अध्यक्ष, लोक सभा;[99] श्री तेजनिंग नोर्गे, एवरेस्ट विजेता;[100] डा. नगेन्द्र सिंह, इंटरनेशनल कोर्ट ऑफ जस्टिस (अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय) के न्यायाधीश;[101] श्री हेमवती नंदन बहुगुणा, भूतपूर्व केन्द्रीय पेट्रोलियम तथा रसायन मंत्री;[102] श्री एस. एम. जोशी, समाजवादी नेता;[103] श्री एस. ए. डांगे, कम्युनिस्ट नेता;[104] श्री अच्युत पटवर्धन, समाजवादी नेता,[105] श्री एन. टी. रामाराव, आन्ध्र प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मंत्री और राष्ट्रीय नेता;[106] ज्ञानी जैल सिंह, भारत के पूर्व राष्ट्रपति,[107] श्रीमती अरुणा आसफ अली, सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी;[108] मदर टेरेसा, नोबल शान्ति पुरस्कार विजेता;[109] श्री ई. एम. एस. नम्बूदिरीपाद, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के वयोवृद्ध नेता;[110] श्री शंकर दयाल शर्मा, भारत के पूर्व राष्ट्रपति;[111] श्री एस. निजलिंगप्पा, संविधान सभा के सदस्य तथा सुप्रसिद्ध गांधीवादी;[112] और श्री सी. सुब्रह्मणियम, पूर्व केन्द्रीय मंत्री तथा संविधान सभा के सदस्य;[113] श्री मुरलीधर देवीदास आम्टे उर्फ बाबा आम्टे, जाने-माने सामाजिक कार्यकर्ता;[114] पंडित किशन महाराज, प्रख्यात तबला वादक;[115] फील्ड मार्शल एस. एच. एफ. जे. मानेकशॉ;[116] डा. वाई. एस. राजशेखर रेड्डी, आंध्र प्रदेश के मुख्य मंत्री;[117] श्री ज्योति बसु, पश्चिमी बंगाल के पूर्व मुख्य मंत्री;[118] पंडित भीमसेन जोशी, जाने-माने भारतीय शास्त्रीय गायक;[119] श्री डोर्जी खांडु, अरूणाचल प्रदेश के मुख्य मंत्री;[120] श्री सत्य साईं बाबा, आध्यात्मिक नेता;[121] डा. भुपेन्द्र हजारिका, गीतकार, संगीतकार और गायक;[122] श्री देव आनंद, फिल्म अभिनेता;[123] श्री राजेश खन्ना, फिल्म अभिनेता;[124] कैप्टन लक्ष्मी सहगल,

जानी-मानी स्वतंत्रता सेनानी;[125] श्री बाल ठाकरे, शिव सेना पार्टी के संस्थापक;[126] पंडित रवि शंकर, राज्य सभा के पूर्व सदस्य और सितार वादक;[127] डा. नरेन्द्र दाभोलकर, जाने-माने सामाजिक कार्यकर्ता[128] और श्री मन्ना डे, जाने-माने गायक।[129]

सभा निम्नलिखित व्यक्तियों की स्मृति में भी स्थगित हुई है:

डा. एस. सी. मुकर्जी, पश्चिम बंगाल के राज्यपाल;[130] श्री जय प्रकाश नारायण;[131] आचार्य जे. बी. कृपलानी;[132] संत हरचन्द सिंह लोंगोवाल, अकाली नेता;[133] श्री एम. जी. रामचन्द्रन, मुख्य मंत्री, तमिलनाडु;[134] श्री कर्पूरी ठाकुर, बिहार के भूतपूर्व मुख्य मंत्री;[135] जनरल ए. एस. वैद्य, भूतपूर्व थल सेना अध्यक्ष;[136] श्री जे.आर.डी. टाटा, उद्योगपति[137] और श्रीमती अरुणा आसफ अली, स्वतंत्रता सेनानी;[138] श्री चन्द्रशेखर, भारत के पूर्व प्रधान मंत्री;[139] श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह, भारत के पूर्व प्रधान मंत्री;[140] श्री आर. वेंकटरमण, भारत के पूर्व राष्ट्रपति;[141] श्री इन्द्र कुमार गुजराल, भारत के पूर्व प्रधान मंत्री;[142] और श्री शीश राम ओला, केन्द्रीय श्रम और रोजगार मंत्री और लोक सभा के वर्तमान सदस्य।[143]

कभी-कभी सभापीठ ने किसी खास व्यक्ति के निधन पर सदन की ओर से शोक व्यक्त किया है। पृथक् आंध्र प्रदेश राज्य के निर्माण के लिए आमरण अनशन करने वाले श्री पोत्ती श्रीरामुलु[144] और नागालैंड अंतरिम परिषद् के अध्यक्ष डा. इमकोंग्लीबा आवो[145] के निधन पर सभापति द्वारा शोक व्यक्त किया गया था।

विदेशों के राज्याध्यक्षों या गणमान्य अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तियों के निधन पर श्रद्धांजलि

किसी बाह्य देश के राज्याध्यक्ष या किसी गणमान्य या अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यक्ति के निधन पर सभापति या प्रधान मंत्री उसे श्रद्धांजलि अर्पित करता है और दिवंगत व्यक्ति की स्मृति के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए सदन मौन धारण करता है। निम्नलिखित व्यक्तियों के नामों का सदन में उल्लेख किया गया:

नेपाल नरेश, त्रिभुवन बीर विक्रम शाह;[146] लेडी माउंटबेटन;[147] भूटान के प्रधान मंत्री, जिगमे दोरजी;[148] ऑस्ट्रेलिया के प्रधान मंत्री, हेरोल्ड होल्ट;[149] यू.ए.आर. के राष्ट्रपति, अब्दुल नासर;[150] फ्रांस के भूतपूर्व राष्ट्रपति, जनरल दे गाल;[151] नेपाल नरेश, महेन्द्र बीर विक्रम शाह;[152] भूटान नरेश, जिगमे दोरजी वांगचुक;[153] महान बांग्ला कवि, काज़ी नज़रुल इस्लाम;[154] लॉर्ड माउंटबेटन;[155] यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति, जोसिप ब्रोज टीटो;[156] तत्कालीन सोवियत संघ के राष्ट्रपति, लियोनिद ब्रेज़नेव[157] और यूरी व्लादीमिरोविच आंद्रोपोव;[158] मॉरीशस के गवर्नर-जनरल, श्री शिवसागर रामगुलाम;[159] मोज़म्बीक के राष्ट्रपति, श्री समोरा मेकेल;[160] पाकिस्तान के राष्ट्रपति, ज़िया-उल-हक;[161] उत्तर कोरिया के राष्ट्रपति, किम-इल-सुंग;[162] इस्राइल के प्रधान मंत्री, श्री यिझाक रॉबिन,;[163] चीन के नेता, डेंग ज़िआओपिंग;[164] जॉर्डन के किंग हुसेन;[165] तनज़ानिया के भूतपूर्व राष्ट्रपति, जुलियस नैरेरे[166] और सीरिया के राष्ट्रपति, श्री हाफिज़-अल-असद;[167] श्री बोरिस निकोलेविच येल्तसिन, रशियन फेडरेशन के पूर्व राष्ट्रपति;[168] सर एडमंड हिलेरी, ऐतिहासिक पर्वतारोही;[169] लेक केजिंसकी, पोलैंड के राष्ट्रपति;[170] श्री ह्युगो शावेज, राष्ट्रपति, बोलिवेरियन रिपब्लिक ऑफ वेनेजुएला;[171] श्री मोहम्मद जिलुर्रहमान, बांग्लादेश के पिपुल्स रिपब्लिक के राष्ट्रपति;[172] लेडी मारगरेट थैचर, यूनाइटेड किंगडम की पूर्व प्रधान मंत्री;[173] और श्री नेल्सन मंडेला, दक्षिण अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति।[174]

6 मई, 1981 को सभा के समवेत होते ही कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया कि आयरलैंड के स्वतंत्रता सेनानी और ब्रिटेन की संसद् के सदस्य श्री बॉबी सैन्ड्स को श्रद्धांजलि अर्पित की जानी चाहिए। सभापति का कहना था कि वे सदन की भावनाओं को समझते है किंतु सदन के नेता द्वारा अपने विचार व्यक्त करने के पहले वे अपनी बात नहीं कह सकते। सदन के नेता ने अन्य बातों के साथ स्थिति स्पष्ट करते हुए सदन से कोई पूर्वोदाहरण न बनाने का अनुरोध किया। इसके बाद एक सदस्य बोले और उन्होंने अंत में विपक्ष से खड़े हो जाने के लिए निवेदन किया, इस समय विपक्षी दलों के कुछ सदस्य खड़े हो गए। सभापति ने कहा: "यह अच्छा नहीं लगता, मैं सदन को बता दूं कि

इसे दूसरे सदन में भी उठाया गया था। किंतु लोग मौन धारण करने के लिए खड़े नहीं हुए", "सभापति ने आगे कहा: "आपका... खड़ा होना सही नहीं लगता।" जब सत्तारूढ़ दल के एक सदस्य ने पूछा कि क्या यह सदन की अवमानना या अपमान नहीं है, तब सभापति ने यह कहकर विवाद को समाप्त कर दिया: "एक दु:खद मामले में इतनी गर्मी और इतना गुस्सा नहीं दिखाया जाना चाहिए। उन्होंने कभी-कभी सभा से बहिर्गमन करना पसंद किया है। यदि उन्होंने शांति से खड़ा होना पसंद किया है तो आपने ऐसा नहीं किया। आपने उनके साथ बहिर्गमन नहीं किया।...मैं उन्हें शांति या शोर के वातावरण में नहीं बिठा सकता," इसके बाद सभापति ने प्रश्न-काल की कार्यवाही शुरू कर दी।[175]

विदेशों के निम्नलिखित उच्च पदस्थ व्यक्तियों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद सदन दिन-भर के लिए स्थगित हो गया: तत्कालीन सोवियत संघ के मार्शल, स्तालिन;[176] अमेरिका के राष्ट्रपति, जॉन एफ. केनेडी;[177] तत्कालीन सोवियत संघ के राष्ट्रपति, कोन्स्तेन्तिन के. चेरनेंको;[178] स्वीडन के प्रधान मंत्री, ओलोफ पामे;[179] जापान के सम्राट, हिरोहितो;[180] ईरान के अयातुल्लाह रूहोल्लाह खोमीनी;[181] श्रीलंका के राष्ट्रपति, रणसिंघे प्रेमदास;[182] सभापति ने श्रीलंका की भूतपूर्व प्रधान मंत्री, श्रीमती श्रीमावो भंडारनायके;[183] और महाराजा बीरेन्द्र विक्रमशाह देव तथा उनके परिवार के सदस्यों;[184] और दक्षिण अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति श्री नेल्सन मंडेला[185] के निधन के बारे में उल्लेख किया और सदन में मौन धारण किया गया। तत्पश्चात् सभा स्थगित की गई।

जब भी विदेश के किसी उच्च पदस्थ व्यक्ति को श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है तब विदेश मंत्रालय को शोक संदेश भेज दिया जाता है ताकि उसे संबंधित देश की सरकार के समुचित व्यक्ति या प्राधिकारी तक पहुंचाया जा सके।[186]

(ख) प्रशंसा और श्रद्धांजलि

अवसर की आवश्यकता के अनुसार सभापति या सदस्य उल्लेखनीय कार्य करने वाले अथवा उपलब्धियां हासिल करने वाले व्यक्तियों की प्रशंसा करते हैं या उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध-विराम का आह्वान करने वाले संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के संकल्प पर सदन में एक अल्पकालिक चर्चा हुई। चर्चा के अंत में प्रधान मंत्री के सुझाव पर सदन के अनियत दिन के लिए स्थगित होने के पहले सभी सदस्यों ने खड़े होकर कृतज्ञतापूर्वक "उन सभी व्यक्तियों की स्मृति में एक मिनट का मौन धारण किया जिन्होंने इस बात की खातिर कि हम प्रतिष्ठा के साथ जी सकें अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया।"[187]

अविभाजित बंगाल के स्वतंत्रता सेनानी श्री त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती महाराज का 10 अगस्त, 1970 को निधन हुआ। नेताओं ने उनके प्रति प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त किए।[188]

सदन को यह सूचना दिए जाने के बाद कि बांग्लादेश में पश्चिम पाकिस्तान की सेना ने बिना किसी शर्त के आत्म-समर्पण कर दिया है, एक सदस्य के सुझाव पर सदन ने बांग्लादेश के लिए अपने प्राणों का बलिदान करने वाले शूरवीर सैनिकों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एक मिनट का मौन धारण किया।[189]

डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्[190] और श्री जी.वी. मावलंकर[191] की जन्म-शताब्दी के अवसर पर उनके कृतित्व और व्यक्तित्व की सराहना की गई।

कार्ल मार्क्स की मृत्यु-शताब्दी के अवसर पर उनके प्रति प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त किए गए।[192]

महात्मा गांधी की जन्म-शताब्दी के अवसर पर सभापति ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की और एक संकल्प उपस्थित किया जिसे सदस्यों ने खड़े होकर स्वीकृत किया।[193]

मई दिवस के अवसर पर उपसभापति ने मेहनतकश लोगों का अभिनंदन किया और उन सभी व्यक्तियों को श्रद्धांजलि अर्पित की जिन्होंने विश्व-भर में मेहनतकश वर्ग की दशा सुधारने और बेहतर बनाने के लिए प्रयास और संघर्ष किया।[194]

प्रधान मंत्री ने दक्षिणी रोडेशिया की अवैध सरकार द्वारा तीन अफ्रीकी देशभक्तों को प्राणदंड दिए जाने के बारे में एक वक्तव्य दिया। इसके बाद सदन ने अफ्रीकी देशभक्तों की स्मृति में मौन धारण किया।[195]

सभापति ने अफ्रीकन नेशनल पार्टी के चेयरमैन ओलीवर ताम्बो के निधन पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव क्रिस हेनी के निधन पर भी श्रद्धांजलि अर्पित की जिनकी हत्या कर दी गई थी।[196]

30 जनवरी शहीदी दिवस है। जब भी इस तारीख को सदन की बैठक होती है तब वह कार्यवाही शुरू करने के पहले उन व्यक्तियों की स्मृति में दो मिनट का मौन धारण करता है जिन्होंने देश की आजादी के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग किया था। 1976, 1980 और 1985 में 30 जनवरी को सदन की बैठक हुई और उसने कार्यवाही शुरू करने के पहले मौन धारण किया था।

9 अगस्त, 1967 को सभापति द्वारा 'भारत छोड़ो आंदोलन' की रजत जयन्ती का उल्लेख किए जाने पर "स्वतंत्रता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने जीवन की आहुति देने वाले और इस लक्ष्य के लिए अनेक कष्ट झेलने वाले लोगों के प्रति अत्यंत श्रद्धा और आदर व्यक्त करने के लिए" सदस्यों ने खड़े होकर एक मिनट के लिए मौन धारण किया। भारत छोड़ो आंदोलन की पचासवीं वर्षगांठ पर शहीदों को श्रद्धांजलि देने के लिए शनिवार, 8 अगस्त, 1992 को सदन की एक विशेष बैठक हुई। सदस्यों ने खड़े होकर मौन धारण किया और उपसभापति द्वारा उपस्थित किए गए एक संकल्प को सदन द्वारा स्वीकार किया गया।[197] वस्तुत: जब कभी 9 अगस्त को सभा की बैठक होती है तब भारत छोड़ो आंदोलन का उल्लेख करना और स्वतंत्रता सेनानियों के सम्मान में मौन धारण करना लगभग नियमित प्रचलन हो गया है।

23 मार्च, 1993 को और 23 मार्च, 2011 को भी भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू के बलिदान की वर्षगांठ पर सदन ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की और उनकी स्मृति में मौन धारण किया।[198]

अपने-अपने पदों से त्यागपत्र देने वाले निम्नलिखित व्यक्तियों के प्रति प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त किए गए। उपराष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि;[199] श्रीमती वायलेट आल्वा;[200] डा. (श्रीमती) नज़मा हेपतुल्ला;[201] श्री एम.एम. जेकब;[202] श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल;[203] (ये सभी व्यक्ति उपसभापति थे) और सभा के नेता श्री जयसुखलाल हाथी।[204]

8 मई, 2012 को गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर को भी उनकी 150वीं जयंती के अवसर पर श्रद्धांजलि अर्पित की गई।[205]

सभापति ने 5 सितंबर, 2012 को डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की जयंती के अवसर का भी उल्लेख किया।[206]

(ग) बधाइयां, प्रशंसा और अभिनन्दन

अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धियों के अवसर पर सदन की ओर से बधाइयां देने या अभिनन्दन करने की प्रथा है। ऐसे अवसरों का ब्यौरा इस प्रकार है:

लोक सभा अध्यक्ष डा. जी. एस. ढिल्लों और लोक सभा के महासचिव श्री श्यामलाल शकधर का क्रमश: इन्टर-पार्लियामेंटरी काउंसिल और एसोसिएशन ऑफ द सेक्रेटरीज-जनरल ऑफ पार्लियामेंट्स का अध्यक्ष (प्रेज़ीडेंट) चुना जाना;[207] अपोलो-8 के अंतरिक्ष यात्रियों और अमरीकी अंतरिक्ष यात्रियों का चन्द्रमा पर उतरना;[208] भारतीय हॉकी टीम का विश्व-विजेता बनना;[209] एसएलवी-3 का सफलतापूर्वक छोड़ा जाना;[210] मॉस्को ओलम्पिक खेलों में भारतीय हॉकी टीम की सफलता;[211] 'एपल' का सफलतापूर्वक छोड़ा जाना (इस संबंध में प्रधान मंत्री द्वारा उपस्थित किया गया एक संकल्प भी स्वीकृत हुआ);[212] भारत और सोवियत संघ की संयुक्त अंतरिक्ष उड़ान की सफलता;[213] भारतीय एवरेस्ट पर्वत अभियान के सदस्य श्री फू दोरजी द्वारा ऑक्सीजन के बिना एवरेस्ट पर्वत पर चढ़ना;[214] शारजाह में भारतीय क्रिकेट टीम की विजय;[215] सत्यजित रॉय को ऑस्कर पुरस्कार प्रदान किया जाना।[216]

सदन की बैठक के आरंभ होते ही सभापति ने यह उल्लेख किया कि दक्षिण अफ्रीका में सर्वजातीय लोकतांत्रिक चुनावों के सफलतापूर्वक संपन्न होने से वहां रंगभेद का अंत हो गया है और उन्होंने

वहां के लोगों को बधाई देते हुए उन्हें शुभकामनाएं दीं।[217] राज्य सभा में दलों/समूहों के नेताओं और प्रतिनिधियों ने दक्षिण अफ्रीका में नई सरकार के गठन पर प्रसन्नता व्यक्त की। इसके बाद उपसभापति ने इस घटना का स्वागत करते हुए सभा के समक्ष एक संकल्प रखा। संकल्प सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।[218]

28 नवम्बर, 1995 को सभापति ने उपसभापति डा. (श्रीमती) नज़मा हेपतुल्ला को इन्टर-पार्लियामेंटरी यूनियन की एक्जीक्यूटिव कमेटी के लिए चुने जाने पर बधाई दी।[219]

21 अक्तूबर, 1999 को सदन के नेता और विदेश मंत्री श्री जसवंत सिंह, विपक्ष के नेता, डा. मनमोहन सिंह और विभिन्न दलों/ग्रुपों के नेताओं तथा अन्य सदस्यों ने उपसभापति डा. (श्रीमती) नज़मा हेपतुल्ला को एकमत से इन्टर पार्लियामेंटरी काउंसिल का अध्यक्ष चुने जाने पर बधाई दी।[220]

भारत-मोरक्को मैत्री के गठन हेतु श्रेयस्कर प्रयासों के लिये मोरक्को के बादशाह महामहिम मोहम्मद VI द्वारा उपसभापति, डा. (श्रीमती) नज़मा हेपतुल्ला को 'ग्रैंड कोर्डन ऑफ अलावी-विस्सम' के सर्वोच्च नागरिक सम्मान से विभूषित किये जाने पर सभा के नेता, श्री जसवंत सिंह, विभिन्न दलों/ग्रुपों के नेताओं तथा अन्य सदस्यों ने 28 फरवरी, 2001 को बधाई दी।[221]

22 अक्तूबर, 2008 को चन्द्रमा पर भारत का प्रथम वैज्ञानिक मिशन[222] और बीजिंग ओलंपिक 2008 में पदक विजेताओं को भी बधाई दी गयी। सभापति ने 24 फरवरी, 2009 को उन तीन भारतीयों को भी बधाई दी जिन्हें ऑस्कर अवार्ड प्रदान किया गया था।[223] 24 अप्रैल, 2012 को अग्नि-V के प्रक्षेपण का उल्लेख किया गया।[224] 13 अगस्त, 2012 को लंदन ओलंपिक 2012 में पदक जीतने पर भारतीय खिलाड़ियों को बधाई दी गयी;[225] 27 अगस्त, 2012 को अंडर-19 विश्व कप जीतने पर भारतीय क्रिकेट टीम को भी बधाई दी गयी;[226] 26 फरवरी, 2013 को श्रीहरिकोटा में इसरो सतीश धवन स्पेस सेंटर से पीएसएलवी-सी 20 द्वारा भारत-फ्रांस उपग्रह 'सरल' के प्रक्षेपण;[227] 22 अप्रैल, 2013 को दक्षिण कोरिया में आईएसएसएफ विश्व कप में स्वर्ण पदक जीतने पर सुश्री राही सरनोबत;[228] आईसीसी चैम्पियन्स ट्रॉफी जीतने के लिए भारतीय क्रिकेट टीम;[229] कोलंबिया में तीसरे तीरंदाजी विश्व कप में पदक जीतने के लिए भारतीय तीरंदाजी टीम;[230] चेक रिपब्लिक में तेरहवां आईपीसीए वर्ल्ड वीमेन्स इन्डिविजुअल चेस चैम्पियनशिप फॉर डिजेबल्ड जीतने के लिए सुश्री के. जेनिथा एंटो;[231] मंगोलिया में एशियन कैडेट चैम्पियनशिप में 15 पदक और चैम्पियन्स ट्रॉफी जीतने के लिये भारतीय कुश्ती टीम;[232] कोलंबिया में वर्ल्ड गेम्स के मेन्स स्नूकर में स्वर्ण पदक जीतने के लिए श्री आदित्य मेहता;[233] जर्मनी में जूनियर वीमेंस हॉकी वर्ल्ड कप में कांस्य पदक जीतने के लिए जूनियर महिला हॉकी टीम;[234] भारतीय महिला धनुष (रिकर्व) टीम (तीरंदाजी), अंडर-23 भारतीय क्रिकेट टीम;[235] मंगलयान (मंगल पर अंतरिक्ष यान) का सफल प्रक्षेपण;[236] भारत रत्न दिये जाने पर श्री सचिन रमेश तेंदुलकर (राज्य सभा में नामनिर्देशित सदस्य);[237] और जीएसएलवी-डी 5 के सफल प्रक्षेपण से जुड़े वैज्ञानिकों और अभियंताओं;[238] को भी बधाई दी गयी।

सभापति तथा अन्य व्यक्तियों को बधाइयां

सदन की यह सुस्थापित परिपाटी है कि वह सभापति को भारत का उपराष्ट्रपति चुने जाने के उपलक्ष्य में सर्वप्रथम उपलब्ध अवसर पर बधाई देता है और उपसभापति को उनके चुने जाते ही बधाई देता है।

उपराष्ट्रपति का पद ग्रहण करने के बाद डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, मंगलवार, 13 मई, 1952 को, जब राज्य सभा की पहली बैठक हुई थी, पहली बार सभापति के आसन पर बैठे। इस तारीख को सदस्यों ने शपथ ली या प्रतिज्ञान किया और सदन शुक्रवार, 16 मई, 1952 तक के लिए स्थगित हुआ। इस बैठक में एक सदस्य ने निवेदन किया कि "इस उच्च पद के लिए आपके चुने जाने पर आपको बधाई देने के लिए हमें कोई अवसर नहीं दिया गया है।" इसके तुरंत बाद प्रधान मंत्री और

दलों के अन्य नेताओं/प्रतिनिधियों ने उन्हें बधाई दी। प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने इस अवसर पर जो उद्‌गार व्यक्त किए वे उल्लेखनीय हैं। उन्होंने कहा:

> "श्रीमन्, पिछले दो या तीन दिनों से हम इस सदन में और दूसरे सदन में भी विभिन्न औपचारिक कार्यों में व्यस्त रहे हैं। सदस्यों ने सेवा के लिए शपथ ली है और प्रतिज्ञान किया है। यह उचित है कि हम इन औपचारिकताओं को पूरा करें; उनका एक निश्चित अर्थ है।
>
> और अब हम इन दोनों सदनों में अपना वास्तविक कार्य शुरू करते हैं। श्रीमन्, इसके पहले कि हम ऐसा करें, मैं आपकी अनुमति से कुछ शब्द कहना चाहूंगा, इस उच्च पद पर आसीन होने के उपलक्ष्य में आपको बधाई देने के लिए नहीं बल्कि सदन को इस बात के लिए बधाई देने के लिए कि हमारे लिए यह गौरव की बात है कि आप यहां इस सदन के विचार-विमर्श में हमारे मार्गदर्शन के लिए ही नहीं बल्कि, यदि मैं ऐसा कह सकता हूं, एक अन्य उच्च पद पर आसीन होने के नाते अनेक प्रकार से हमारी मदद करने के लिए भी उपलब्ध होंगे।"[239]

डा. राधाकृष्णन् को उपराष्ट्रपति के रूप में दूसरी बार चुने जाने पर 13 मई, 1957 को पुन: बधाइयां दी गईं।[240] राज्य सभा के सभापति पद से निवृत्त होने पर भी उनके प्रति प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त किए गए।[241]

उपराष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित होने के बाद डा. ज़ाकिर हुसैन ने 14 जून, 1962 को पहली बार सदन की अध्यक्षता की। उस दिन सदन मुहर्रम के कारण स्थगित हो गया और इसलिए उन्हें 15 जून, 1962 को बधाइयां दी गईं।[242] सभा ने उन्हें 11 अप्रैल, 1967 को विदाई दी।[243]

श्री वी. वी. गिरि 13 मई, 1967 को उपराष्ट्रपति बने। सदन का सत्र नहीं चल रहा था। अत: उन्हें 60वें सत्र के पहले दिन अर्थात् 22 मई, 1967 को प्रश्नकाल की समाप्ति के बाद बधाइयां दी गईं।[244] उन्हें 22 जुलाई, 1969 को विदाई दी गई और उनके प्रति प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त किए गए।[245]

श्री गोपाल स्वरूप पाठक 31 अगस्त, 1969 को उपराष्ट्रपति बने। सदन का सत्र नहीं चल रहा था। अत: उन्हें 70वें सत्र के पहले दिन अर्थात् 17 नवम्बर, 1969 को प्रश्नकाल के बाद बधाइयां दी गईं।[246]

श्री बी. डी. जत्ती 31 अगस्त, 1974 को उपराष्ट्रपति बने। सदन ने उन्हें उस दिन हुई बैठक में बधाइयां दी।[247]

श्री एम. हिदायतुल्लाह ने 31 अगस्त, 1979 को उपराष्ट्रपति का पद ग्रहण किया। सदन का सत्र नहीं चल रहा था। सदन 112वें सत्र के लिए 23 जनवरी, 1980 को समवेत हुआ। वर्ष की पहली बैठक होने के कारण औपचारिक कार्य और दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि के बाद सदन की बैठक स्थगित हो गई। श्री हिदायतुल्लाह को 24 जनवरी, 1980 को बधाइयां दी गईं।[248] उनके निवृत्त होने पर सदन ने उन्हें 24 अगस्त, 1984 को विदाई दी।[249]

इसी प्रकार श्री आर. वेंकटरामन् 31 अगस्त, 1984 को उपराष्ट्रपति बने और उन्हें 18 जनवरी, 1985 को बधाइयां दी गईं क्योंकि 1985 में सदन का पहला सत्र 17 जनवरी, 1985 को आरम्भ हुआ था।[250]

डा. शंकर दयाल शर्मा 3 सितम्बर, 1987 को उपराष्ट्रपति बने। सदन का सत्र नहीं चल रहा था। सदन का 144वां सत्र 6 नवम्बर, 1987 को आरम्भ हुआ और उसी दिन उन्हें बधाइयां दी गईं।[251]

श्री के. आर. नारायणन् 21 अगस्त, 1992 को उपराष्ट्रपति बने। उस समय सदन का सत्र नहीं चल रहा था। सदन 24 नवम्बर, 1992 को अपने 165वें सत्र के लिए समवेत हुआ। उस दिन सदन की बैठक भूतपूर्व सभापति श्री एम. हिदायतुल्लाह की स्मृति में स्थगित हो गई। श्री नारायणन् को 25 नवम्बर, 1992 को बधाइयां दी गई।[252]

श्री कृष्ण कांत 21 अगस्त, 1997 को भारत के उपराष्ट्रपति बने। प्रधान मंत्री तथा अन्य सदस्यों ने उन्हें 26 अगस्त, 1997 को बधाइयां दी।[253]

श्री भैरों सिंह शेखावत 19 अगस्त, 2002 को भारत के उपराष्ट्रपति बने। उस समय सदन का सत्र नहीं चल रहा था। अत: प्रधान मंत्री तथा अन्य सदस्यों ने उन्हें 20 नवम्बर, 2002 को बधाइयां दीं।[254]

श्री मोहम्मद हामिद अंसारी 11 अगस्त, 2007 को उपराष्ट्रपति बने और 13 अगस्त, 2007 को उन्हें बधाई दी गयी।[255] 11 अगस्त, 2012 को उपराष्ट्रपति के रूप में पुन: निर्वाचित होने पर 13 अगस्त, 2012 को उन्हें पुन: बधाई दी गयी।[256]

यदि सदन की किसी बैठक के दिन सभापति का जन्मदिन पड़ता हो तो उन्हें बधाई देने और उनका अभिनंदन करने की भी प्रथा है। बैठक के आरंभ में सभापति के सदन में प्रवेश करते ही और प्रश्नों को लिए जाने से पहले ऐसा किया जाता है।

श्री गोपाल स्वरूप पाठक को 26 फरवरी, 1973, और 26 फरवरी, 1974 को जन्मदिन की बधाइयां दी गईं।[257] श्री बी. डी. जत्ती को 10 सितम्बर, 1974 को जन्मदिन की बधाइयां दी गईं;[258] और श्री एम. हिदायतुल्लाह को 17 दिसम्बर, 1980 और 17 दिसम्बर, 1981 को जन्मदिन की बधाइयां दी गईं। 7 दिसम्बर, 1981 को दी गई बधाइयों का उत्तर देतु हुए श्री हिदायतुल्लाह ने अन्य बातों के साथ यह कहा:

> मै यह व्यवस्था देना चाहता हूं कि प्रश्नकाल में ऐसा कुछ न हो। किंतु सदस्यों ने उदारतापूर्वक जो शब्द कहे हैं उन्हें देखते हुए मुझे ऐसी व्यवस्था नहीं देनी चाहिए और फिलहाल मैं इस व्यवस्था को रोके रखता हूं।[259]

श्री आर. वेंकटरामन् को 4 दिसम्बर, 1985 को और 4 दिसम्बर, 1986 को जन्मदिन की बधाइयां दी गईं। 4 दिसम्बर, 1985 को दी गई बधाइयों के उत्तर में अन्य बातों के साथ उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> मैं समझता हूं कि आपमें से हर कोई यह चाहता होगा कि मेरा जन्मदिन हर दिन आए क्योंकि हर सदस्य को बुलाने के लिए मैं आज इतना उदार रहा हूं जितना मैं अन्यथा नहीं होता... आज जो भी बात कही गई है उसे अभिलिखित किया जाएगा।[260]

डा. शंकर दयाल शर्मा को 19 अगस्त, 1988 को जन्मदिन की बधाइयां दी गईं। शुक्रवार, 17 अगस्त, 1990 को जैसे ही उन्होंने सभा में प्रवेश किया, कुछ सदस्यों ने उनके सुखद जन्मदिन की कामना की। सभापति ने धन्यवाद देते हुए कहा :

> "किंतु मेरा जन्मदिन आज नहीं है।" विपक्ष के नेता ने निवेदन किया, "श्रीमन् आप इसे पूर्व सूचना के रूप में स्वीकार करें। हम रविवार को आएंगे।"

सोमवार, 20 अगस्त, 1990 को कुछ सदस्यों और सभा के नेता ने उन्हें पुन: बधाइयां दीं।[261]

कभी-कभी जन्मदिन की बधाइयां या शुभकामनाएं सदस्यों/मंत्रियों को भी दी जाती हैं।

रक्षा मंत्री श्री यशवंतराव बलवंतराव चव्हाण को उनके 61वें जन्मदिन पर बधाई दी गई।[262] प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी को भी उनके जन्मदिन की बधाइयां दी गईं।[263]

सदन उपयुक्त मामलों में किसी सदस्य द्वारा दी गई सेवाओं की सराहना भी करता है।

13 जून, 1977 को हुई कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में महासचिव ने सूचना दी कि सामान्य प्रयोजन संबंधी समिति ने अपनी पिछली बैठक में सिफारिश की थी कि चूंकि श्री भूपेश गुप्त की राज्य

सभा की लगातार सदस्यता के पच्चीस वर्ष पूरे हो चुके हैं इसलिए इस संबंध में सदन में या सदन के बाहर किसी उपयुक्त समारोह में उनकी इस उपलिब्ध का समुचित रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए। समिति इस पर सहमत थी कि इस संबंध में सदन के नेता, विपक्ष के नेता और उपसभापति द्वारा 22 जून, 1977 को प्रश्नकाल समाप्त होते ही एक उल्लेख किया जाए। तद्नुसार सदन के सभी पक्षों और उपसभापति ने श्री भूपेश गुप्त की सेवाओं की सराहना की।[264]

राज्य सभा की सदस्यता से 13 अगस्त, 1993 को निवृत्त होने पर श्री पी. शिव शंकर के प्रति प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त किए गए।[265]

राहत या चिंता का व्यक्त किया जाना

सभापति या सदस्य किसी घटना पर राहत या संतोष भी व्यक्त करते हैं।

सभापति ने भूटान में राष्ट्रपति के दुर्घटना से बच जाने पर राहत व्यक्त की।[266]

उपसभापति ने जोरहाट के समीप एक विमान दुर्घटना में प्रधान मंत्री के बाल-बाल बच जाने के बारे में एक उल्लेख किया।[267]

सभापति तथा नेताओं ने मकालू विमान में तोड़-फोड़ करने के कृत्य की निंदा की जिसमें प्रधान मंत्री को अपनी विदेश यात्रा के लिए जाना था। उन्होंने प्रधान मंत्री के दीर्घ जीवन की कामना भी की।[268]

सदन के नेता ने एक संकल्प उपस्थित किया जिसमें 30 जुलाई, 1987 को कोलम्बो में हुए हमले में प्रधान मंत्री के सकुशल रहने पर राहत व्यक्त की गई थी। संकल्प स्वीकृत हुआ।[269]

सदन के समवेत होते ही कोई कार्य शुरू करने के पहले सदन के नेता और दलों/समूहों के नेताओं/प्रतिनिधियों ने सभापति के स्वास्थ्य-लाभ के बाद वापस आने पर उन्हें बधाई दी।[270]

सदस्यों ने पाकिस्तान में खान अब्दुल गफ्फार खान की नजरबंदी और उनके गिरते जा रहे स्वास्थ्य पर चिंता प्रकट की।[271]

सभापति ने कृषि और खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्री श्री शरद पवार पर हुए हमले पर चिंता प्रकट की और 25 नवंबर, 2011 को इस घटना का उल्लेख किया।[272]

(घ) राज्य सभा के महासचिव के बारे में उल्लेख

राज्य सभा के प्रथम महासचिव श्री एस. एन. मुखर्जी का पद पर रहते हुए निधन होने पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गई।[273]

सभापति और दलों/समूहों के नेताओं ने महासचिव श्री बी. एन. बनर्जी के सेवानिवृत्त होने पर उनके प्रति प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त किए और नए महासचिव के रूप में उनके उत्तराधिकारी श्री एस. एस. भालेराव का स्वागत किया।[274]

महासचिव श्री एस. एस. भालेराव के सेवानिवृत्त होने पर सभापति और दलों/समूहों के नेताओं ने उनके प्रति प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त किए और नए महासचिव के रूप में उनके उत्तराधिकारी श्री सुदर्शन अग्रवाल का स्वागत किया।[275]

महासचिव श्री सुदर्शन अग्रवाल के सेवानिवृत्त होने पर सभापति, उपसभापति और दलों/समूहों के नेताओं ने उनके प्रति प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त किए और उनके उत्तराधिकारी के रूप में नई महासचिव श्रीमती वी. एस. रमा देवी का स्वागत किया।[276] [इस कार्यवाही के

दौरान श्री अग्रवाल के प्रति विशेष सम्मान प्रदर्शित करने के लिए उन्हें विशेष प्रकोष्ठ (स्पेशल बॉक्स) में बैठाया गया था।]

महासचिव श्रीमती वी. एस. रमा देवी के सेवानिवृत्त होने पर सदस्यों ने उनकी सेवाओं के लिये, जो उन्होंने सदन को प्रदान कीं, अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की। सभापति ने 19 नवम्बर, 1997 को महासचिव श्री आर. सी. त्रिपाठी का सदन से परिचय कराया था।[277]

श्री आर. सी. त्रिपाठी 3 अक्तूबर, 1997 से 31 अगस्त, 2002 तक राज्य सभा के महासचिव रहे। उनके उत्तराधिकारी डा. योगेन्द्र नारायण 1 सितम्बर, 2002 को महासचिव बने। सभापति ने सदन से इनका परिचय 18 नवम्बर, 2002 को कराया था।[278]

23 जुलाई, 2001 को पूर्व महासचिव श्री एस. एस. भालेराव[279] और 18 नवम्बर, 2002 को पूर्व महासचिव श्री बी. एन. बनर्जी के निधन का उल्लेख भी किया गया।[280]

डा. वी. के. अग्निहोत्री जो 29 अक्तूबर, 2007 को महासचिव बने का परिचय सभापति द्वारा 15 नवंबर, 2007 को सभा से कराया गया।[281] 7 सितम्बर, 2012 को उनके पदत्याग करने पर सभापति द्वारा इसका उल्लेख भी किया गया।[282]

श्री शमशेर के. शरीफ जिन्हें 1 अक्तूबर, 2012 को महासचिव के रूप में नियुक्त किया गया, का परिचय सभापति द्वारा 22 नवंबर, 2012 को सभा से कराया गया था।[283]

22 अप्रैल, 2013 को सभापति द्वारा पूर्व महासचिव श्रीमती वी. एस. रमा देवी के निधन पर श्रद्धांजलि दी गयी।[284]

(ङ) विदेशों के संसदीय शिष्टमंडलों का स्वागत

जब भी कोई विशिष्ट विदेशी दर्शक या विदेश का कोई संसदीय शिष्टमंडल विशेष प्रकोष्ठ से राज्य सभा की कार्यवाही देखने के लिए आता है, सभापति सदन की कार्यवाही को बीच में रोककर सदन की ओर से दर्शकों का स्वागत करता है, देश में उनके निवास के दौरान उनका समय सुखपूर्वक व्यतीत होने की कामना करता है, संबंधित देश की सरकार और जनता को शुभकामनाएं देता है और उनका अभिनन्दन करता है। सामान्यत: विदेशी दर्शकों का आगमन प्रश्नकाल के दौरान होता है और सदस्यगण भी हर्षध्वनि करके लब्ध-प्रतिष्ठ दर्शकों का स्वागत करने में सभापति के साथ स्वयं को संबद्ध करते हैं। यह प्रथा राज्य सभा में 8 दिसम्बर, 1981 से आरम्भ हुई है।[285]

(च) गम्भीर अथवा महत्वपूर्ण अवसरों पर होने वाले उल्लेख

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं या अवसरों पर, चाहे वे गम्भीर हों या शोकजनक, सदन की भावनाओं को प्रतिध्वनित करने और व्यक्त करने के लिए सभापीठ

द्वारा उनका उल्लेख किया जाना एक परम्परागत प्रक्रिया बन गई है। सदन में निम्नलिखित अवसरों पर ऐसे उल्लेख किए गए हैं:

संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकार किए जाने की दसवीं, बीसवीं, पच्चीसवीं और चालीसवीं वर्षगांठ,[286] राज्य सभा की 3,000 बैठकों का सम्पन्न होना,[287] अमरीकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन और सोवियत नेता मिखाइल गोर्बाचोफ के बीच जिनेवा में हुई बैठक[288] 8 दिसम्बर, 1987 की अमरीकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन और सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव मिखाइल गोर्बाचोफ द्वारा इन्टरमीडिएट रेंज न्यूक्लिअर फोर्सेज (आई.एन.एफ.) एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर।[289]

रक्षा मंत्री ने भारत के विरुद्ध पाकिस्तान के युद्ध के बारे में एक वक्तव्य दिया। अंत में सभापति ने इस संबंध में सदन की एकजुटता की भावना व्यक्त की।[290]

प्रधान मंत्री ने गणप्रजातंत्री बांग्लादेश को मान्यता देने के बारे में एक वक्तव्य दिया। इस वक्तव्य में बांग्लादेश की सरकार और जनता को बधाइयां दी गई थीं और उनका अभिनन्दन किया गया था। इस वक्तव्य के बाद विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं और सभापति ने वक्तव्य में निहित भावनाओं के साथ स्वयं को संबद्ध किया।[291]

2 दिसबंर, 1985 को भोपाल गैस त्रासदी की पहली वर्षगांठ का उल्लेख किया गया।[292] 2010 और 2012 को भी इसका उल्लेख किया गया था।

अब यह नियमित प्रथा-सी बन गई है कि जब भी सदन किसी वर्ष 6/9 अगस्त को बैठता है तब क्रमश: 6 अगस्त और 9 अगस्त, 1945 को हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराए जाने का उल्लेख किया जाता है। ऐसे अवसर पर परमाणु बम के कारण हुए महाविनाश के शिकार हुए व्यक्तियों के सम्मान में सदन द्वारा मौन धारण किया जाता है।[293] तथापि 2012 में इस प्रचलन को समाप्त कर दिया गया।

सभापति ने नामीबिया के स्वतंत्र होने पर उसे बधाइयां दीं।[294]

अयोध्या में बाबरी मस्जिद के गिराए जाने के संदर्भ में सभापति ने सदन में देशवासियों से "राष्ट्र के सामने आई इस संकट की घड़ी में शान्ति, व्यवस्था और सौहार्द बनाए रखने" की अपील की और सदन को एक सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया ताकि सदस्यगण लोगों में शांति और सौहार्द बहाल करने के लिए अपने-अपने राज्यों और निर्वाचन-क्षेत्रों में जा सकें।[295]

उपसभापति द्वारा विजय दिवस—बांग्लादेश का 25वां मुक्ति दिवस—के सम्बन्ध में एक घोषणा की गई।[296]

सभापति ने मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के संबंध में उल्लेख किया।[297]

सभापति ने 26 नवम्बर, 1999 को भारतीय संविधान के पचास वर्ष पूरा होने के संबंध में उल्लेख किया।[298]

उपसभापति ने 8 मार्च, 2000 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के सम्बन्ध में उल्लेख किया। तत्पश्चात् यह एक नियमित प्रक्रिया बन गई है।[299]

14 दिसंबर, 2001 को सभापति द्वारा संसद भवन पर आतंकवादी हमले का उल्लेख किया गया। तत्पश्चात् यह एक नियमित प्रक्रिया बन गयी है।

सभापति ने कारगिल युद्ध में शहीद हुए जवानों के संबंध में उल्लेख किया। कारगिल में भारत की विजय की पहली वर्षगांठ के संबंध में भी उल्लेख किया गया।[300]

सभापति ने 13 मई, 2002 को राज्य सभा की पचासवीं वर्षगांठ के संबंध में उल्लेख किया।[301]

2010 और 2012 में मुम्बई आतंकवादी हमले की वर्षगांठ;[302] 2011 में गोवा की स्वतंत्रता की स्वर्ण

जयंती;[303] 2012 और 2013 में विश्व जल दिवस;[304] 2012 और 2013 में राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस;[305] और 2013 में विश्व पृथ्वी दिवस;[306] के अवसर पर भी उल्लेख किये गये।

(छ) त्रासद घटनाओं का उल्लेख

देश में या विदेश में हुई त्रासद घटनाओं और उनके कारण हुई जान-माल की क्षति का सदन में उल्लेख करने की प्रथा है। बड़ी रेल दुर्घटनाओं;[307] विमान दुर्घटनाओं;[308] भूकम्प और अन्य त्रासद घटनाओं अथवा प्राकृतिक विपदाओं के शिकार हुए व्यक्तियों के प्रति सभापति द्वारा सदन की ओर से सहानुभूति, दुःख और शोक व्यक्त किया जाता है। निम्नलिखित त्रासद घटनाओं का सदन में उल्लेख किया गया है:

पठानकोट सैनिक क्षेत्र में गोला-बारूद के पैकेजों में विस्फोट;[309] भाखड़ा बांध में हुई दुर्घटनाएं;[310] भिलाई इस्पात कारखाने में हुई दुर्घटनाएं;[311] अहमदाबाद का भीषण अग्निकांड और उसमें अनेक व्यक्तियों की मृत्यु;[312] 1986 में पंजाब में हुई हत्याएं (हत्याओं की निंदा करने के लिए सभापति द्वारा प्रस्तुत किए गए एक संकल्प को सदन ने पारित किया);[313] 1987 में पंजाब में हुई हत्याएं;[314] 1963 में कश्मीर में आया भूकम्प;[315] अगस्त, 1988 में बिहार, पश्चिम बंगाल, भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र और नेपाल तथा बांग्लादेश में आया भूकम्प;[316] दिसम्बर, 1988 में सोवियत संघ में आया भूकम्प[317] और गुजरात में साबरमती आश्रम के पावन परिसर में हुई हिंसा।[318]

सदन के नेता ने चक्रवात के कारण पूर्वी पाकिस्तान के लोगों पर आई विपदा के बारे में एक वक्तव्य दिया और लोगों के मारे जाने पर शोक और दुःख व्यक्त किया और साथ ही पाकिस्तान की सरकार और जनता के प्रति हार्दिक सहानुभूति और संवेदना व्यक्त की। विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं और उपसभापति ने इन भावनाओं के साथ स्वयं को संबद्ध किया।[319]

कभी-कभी घटनाओं की गंभीरता को देखते हुए सहानुभूति और शोक व्यक्त करने के अलावा ऐसी घटनाओं में मारे जाने वाले व्यक्तियों के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए सदन के सभी सदस्यों ने खड़े होकर मौन धारण किया है। ऐसी घटनाएं इस प्रकार हैं: रेल दुर्घटना;[320] विमान दुर्घटना;[321] 1967 में कोयना में आया भूकम्प;[322] 1970 में गुजरात में आया भूकम्प (सदन ने तीन सदस्यों द्वारा उपस्थित किया गया एक प्रस्ताव स्वीकृत किया जिसमें भूकम्प के शिकार हुए व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई थी।);[323] 1991 में गढ़वाल में आया भूकम्प;[324] 1993 में महाराष्ट्र के लातूर और उस्मानाबाद जिलों और आंध्र प्रदेश तथा कर्नाटक के कुछ भागों में आया भूकम्प;[325] 1957 में दिल्ली स्थित मल-जल संयंत्र दुर्घटना;[326] 1983 में असम में हुई हत्याएं[327] और 1984 में हुई भोपाल गैस त्रासदी।[328] जिन अन्य घटनाओं के संबंध में सदन ने मौन धारण किया वे इस प्रकार हैं : गाज़ा में इस्राइल द्वारा भारतीय कर्मचारियों पर हमला;[329] 1954 की कुंभ मेला त्रासदी (सदन ने सभापति द्वारा रखा गया शोक प्रस्ताव पारित किया;[330] 1986 की कुंभ मेला त्रासदी;[331] दक्षिण भारत में आए चक्रवात;[332] गुजरात स्थित मोरवी में आई बाढ़;[333] दिल्ली में गीता चोपड़ा और संजय चोपड़ा नामक दो बच्चों का अपहरण और उनकी नृशंस हत्या;[334] पंजाब और हरियाणा में हुई हत्याएं;[335] मुम्बई में हुए बम विस्फोट;[336] उड़ीसा के बारीपदा में 1997 में लगी भीषण आग में भक्तों की मृत्यु;[337] 1997 में मीना के निकट मीना में लगी भीषण आग में अनेक भारतीय हज यात्रियों की मृत्यु;[338] 1997 में ईरान में आये भूकम्प में भारी संख्या और परिमाण में हुई

जान-माल की हानि;[339] 1998 में मिदनापुर (पश्चिम बंगाल) और बालासौर (उड़ीसा) के अनेक गांवों में आया भारी तूफान;[340] 1998 में पंजाब में खन्ना में हुई त्रासदिक रेल दुर्घटना;[341] 1999 में दुर्घटनाग्रस्त हुआ मालवाहक विमान ए एन-32;[342] उत्तरी भारत के अनेक भागों में और विशेष रूप से गढ़वाल क्षेत्र में आया भूकम्प;[343] उड़ीसा के तटीय क्षेत्रों में आया अति उग्र चक्रवात;[344] कारगिल युद्ध;[345] लगभग हर दूसरे दिन जम्मू व कश्मीर में आतंकवादियों द्वारा बेकसूर लोगों की निर्मम हत्या;[346] 2001 में गुजरात के अनेक भागों में आया भीषण भूकम्प;[347] 2001 में अमरनाथ की यात्रा पर गये तीर्थ-यात्रियों की मृत्यु;[348] 2001 में जम्मू और कश्मीर विधान सभा में हुआ बम विस्फोट[349] और 2001 में अमरीका में हुआ आतंकवादी हमला।[350]

जम्मू शहर के बाहरी क्षेत्र में नरवाल बाई-पास के निकट स्थित कासिम नगर में आतंकवादियों द्वारा किये गये कत्लेआम;[351] और 6 अगस्त, 2002 को जम्मू और कश्मीर में अमरनाथ की यात्रा के दौरान आतंकवादियों द्वारा तीर्थयात्रियों की हत्या किये जाने और अनेक लोगों को जख्मी किये जाने के बारे में 196वें सत्र में उल्लेख किये गये।[352] सदन में सभी सदस्यों ने दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में खड़े होकर मौन धारण किया। 9 अगस्त, 2002 को उपसभापति ने 1942 में महात्मा गांधी के नेतृत्व में छेड़े गये 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का उल्लेख किया और उसमें शहीद हुए तथा उसमें भाग लेने वाले स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में सभी सदस्यों ने सदन में खड़े होकर मौन धारण किया।[353]

हावड़ा-नई दिल्ली राजधानी एक्सप्रेस के पटरी से उतरने; गांधी नगर के अक्षरधाम मन्दिर पर हुए आतंकवादी और मास्को के एक थिएटर में आतंकवादियों द्वारा लोगों को बंधक बनाये जाने (18.11.2002);[354] जम्मू में रघुनाथ मन्दिर पर हुए आतंकवादी आक्रमण (25.11.2002);[355] अल्जीरिया में आये भूकम्प (21.7.2003);[256] तेल और प्राकृतिक गैस आयोग के हेलीकॉप्टर का दुर्घटनाग्रस्त होकर अरब सागर में गिरना (13.8.2003);[357] मुम्बई में एक साथ हुए दो बम विस्फोटों (2.12.2003);[358] और ईरान में बाम में आये भूकम्प (20.1.2004)[359] 23 फरवरी, 2007 को पानीपत के नजदीक समझौता एक्सप्रेस में बम विस्फोट;[360] 26 अप्रैल, 2007 को अल्जियर्स में आतंकवादी हमले;[361] 26 अप्रैल 2007 को मोरक्को के कैसाब्लांका में आतंकवादी हमले;[362] 29 अगस्त, 2007 को हैदराबाद में दो बम विस्फोट;[363] 10 सितंबर, 2007 को राजस्थान के राजसमंद जिले में हुई ट्रक दुर्घटना;[364] 22 फरवरी, 2010 को हैती में भीषण भूकंप;[365] 9 मार्च 2010 को चिली में भूकंप;[366] 26 जुलाई, 2010 को मंगलोर में एयर इंडिया वायुयान दुर्घटना;[367] 26 जुलाई, 2010 को खड़गपुर के नजदीक मालगाड़ी के साथ ज्ञानेश्वरी एक्सप्रेस की टक्कर;[368] 26 जुलाई, 2010 को सिंथिया, पश्चिम बंगाल में वनांचल एक्सप्रेस के साथ उत्तर बंगा एक्सप्रेस की टक्कर;[369] 26 जुलाई, 2010 को छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा और नारायणपुर जिलों में माओवादी हमले;[370] 9 अगस्त, 2010 को लद्दाख के लेह शहर में बादल के फटने और अचानक आयी बाढ़;[371] 9 नवंबर, 2010 को इंडोनेशिया में सूनामी;[372] 18 नवंबर, 2010 को पूर्वी दिल्ली में भवन के ध्वस्त होने;[373] 26 नवंबर, 2010 को कंबोडिया में पुल पर भगदड़;[374] 21 फरवरी, 2011 को केरल में सबरीमाला मंदिर के समीप पुलुमेडु में भगदड़;[375] 4 मार्च, 2011 को न्यूजीलैंड के क्राइस्ट चर्च में भूकंप;[376] 14 मार्च, 2011 को जापान में भीषण भूकंप और सुनामी;[377] 1 अगस्त, 2011 को छपरा-मथुरा ट्रेन दुर्घटना;[378] 1 अगस्त, 2011 को गुवाहाटी-पुरी एक्सप्रेस में हावड़ा-कालका मेल का पटरी से उतरना और विस्फोट;[379] 1 अगस्त 2011 को रूस में क्रुज शिप का डूबना;[380] 1 अगस्त, 2011 को मुम्बई में सिलसिलेवार बम विस्फोट;[381] 1 अगस्त, 2011 को नार्वे के ओस्लो और ओटोया द्वीप में बम विस्फोट और गोलीबारी;[382] 22 नवंबर, 2011 को सिक्किम और तुर्की में भूकंप;[383] 22 नवंबर, 2011 को थाईलैंड में बाढ़;[384] 22 नवंबर, 2011 को दिल्ली की नन्द नगरी में ट्रांसजेंडरों

के राष्ट्रीय समारोह में आग;[385] 23 नवंबर, 2011 को हावड़ा-देहरादून एक्सप्रेस में आग;[386] 12 दिसंबर, 2011 को आमरी (ए एम आर आई) हॉस्पीटल में आग;[387] 20 दिसंबर, 2011 को फिलीपीन्स में उष्णकटिबंधीय तूफान 'वाशी';[388] 12 मार्च, 2012 को फिलीपीन्स में भूकम्प;[389] 12 मार्च, 2012 को जम्मू और कश्मीर के गुराज और सोनमर्ग में हिमस्खलन;[390] 28 मार्च, 2012 को महाराष्ट्र के गडचिरोली जिले में सीआरपीएफ जवानों पर माओवादी हमला;[391] 2 मई, 2012 को असम में फेरी दुर्घटना;[392] 16 मई, 2012 को नेपाल में वायुयान दुर्घटना;[393] 8 अगस्त, 2012 को असम में बाढ़ और भूस्खलन और जातीय हिंसा;[394] 8 अगस्त, 2012 को अमरनाथ यात्रा में दुर्घटना से हुई मौतें;[395] 8 अगस्त, 2012 को हरियाणा में सड़क दुर्घटना;[396] 8 अगस्त, 2012 को तमिलनाडु एक्सप्रेस में आग;[397] 8 अगस्त, 2012 को उत्तराखंड में बादल फटना और अचानक आयी बाढ़;[398] 8 अगस्त, 2012 को संयुक्त राज्य अमेरिका में गुरुद्वारा में गोलीबारी की घटना;[399] 14 अगस्त, 2012 को ईरान में भूकंप;[400] 6 सितंबर, 2012 को तमिलनाडु के शिवकाशी में पटाखे बनाने वाली इकाई में लगी आग;[401] 22 नवंबर, 2012 को संयुक्त राज्य अमेरिका में सुपरस्टॉर्म सैंडी;[402] 22 नवंबर, 2012 को तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश में चक्रवाती तूफान नीलम;[403] 4 दिसंबर, 2012 को बांग्लादेश में कपड़ा कारखाने में लगी आग;[404] 18 दिसंबर, 2012 को फिलीपीन्स में टाइफून बोफा/पाब्लो;[405] 21 फरवरी, 2013 को इलाहाबाद रेलवे स्टेशन पर भगदड़;[406] 22 फरवरी, 2013 को हैदराबाद में बम विस्फोट;[407] 1 मार्च, 2013 को सेंट्रल कोलकाता में सूर्यसेन स्ट्रीट के बाजार के भवन में लगी आग;[408] 6 मार्च, 2013 को जालंधर, पंजाब में स्कूल बस दुर्घटना;[409] 15 मार्च, 2013 को श्रीनगर में सुरक्षा कार्मिक पर हमले;[410] 20 मार्च, 2013 को महाराष्ट्र में सड़क दुर्घटना;[411] 22 अप्रैल, 2013 को सूडान में यू एन पीस कीपिंग मिशन के दौरान भारतीय सेना कार्मिक की हत्या;[412] 22 अप्रैल, 2013 को बोस्टन, संयुक्त राज्य अमेरिका में बम विस्फोट;[413] और 22 अप्रैल, 2013 को महाराष्ट्र के ठाणे में आवासीय भवन के धवस्त हो जाने;[414] के संबंध में भी उल्लेख किए गये।

जब सभापति 17 अक्तूबर, 2008 को बिहार में बाढ़-पीड़ितों का उल्लेख कर रहे थे,[415] कुछ सदस्यों ने अन्य बातों के साथ-साथ यह सुझाव दिया कि असम, ओडिशा, गुजरात और देश के अन्य भागों के बाढ़-पीड़ितों का भी उल्लेख किया जा सकता है। तत्पश्चात् सभा को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया और तदनुसार सभापीठ द्वारा उल्लेख किया गया।

सभापति ने पाकिस्तानी जेल में कैद भारतीय बंदी श्री सरबजीत सिंह जिस पर 2 मई, 2013 को साथी कैदियों द्वारा निर्मम हमला किया गया, के निधन;[416] 5 अगस्त, 2013 को उत्तराखंड में अचानक आयी बाढ़, भूस्खलन और बादल फटने;[417] 5 अगस्त, 2013 को छत्तीसगढ़ में माओवादी हमले;[418] श्रीनगर में आतंकी हमले;[419] झारखंड में माओवादी हमले;[420] बिहार के महाबोधि मंदिर में सिलसिलेवार बम विस्फोट;[421] बिहार के सारण जिले में मध्याह्न भोजन खाने के कारण बीमार पड़ने वाले पीड़ित;[422] आईएनएस सिंधुरक्षक पनडुब्बी त्रासदी के पीड़ित;[423] बिहार में राज्य रानी एक्सप्रेस 12567 की ट्रेन दुर्घटना के पीड़ित;[424] 13 अक्तूबर, 2013 को मध्य प्रदेश में रतनगढ़ मंदिर के नजदीक भगदड़;[425] 30 अक्तूबर, 2013 को आंध्र प्रदेश में बंगलौर-हैदराबाद राष्ट्रीय राजमार्ग पर लग्जरी बस और 14 नवंबर, 2013 को कर्णाटक के हवेरी में एक अन्य बस में लगी आग;[426] अगस्त 2013 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले में सिलसिलेवार घटनाएं और 27 अक्तूबर, 2013 को पटना की रैली में दुर्घटना;[427] बंगलौर-नांदेड़ एक्सप्रेस में आग;[428] महाराष्ट्र के मलशेज घाट में बस दुर्घटना;[428] महाराष्ट्र में मुम्बई-देहरादून एक्सप्रेस में लगी आग;[430] अंडमान और निकोबार द्वीपसमूहों में 'एक्वा मरीन' नाव के पलटने;[431] और पुणे-सतारा राजमार्ग पर सड़क दुर्घटना;[432] 21 से 24 सितंबर, 2013 तक केन्या के नैरोबी के शॉपिंग मॉल पर आतंकी हमले;[433] 8 नवंबर, 2013 को फिलीपीन्स में सुपर टाइफून 'योलांडा' (हैयां);[434] और 17 नवंबर, 2013 को रूस के कजॉं में बोइंग 737 के दुर्घटनाग्रस्त होने[435] का भी उल्लेख किया।

निम्नलिखित मामलों में सदन दिवंगत व्यक्तियों की स्मृति में स्थगित हो गया:

सदन गोवा में पुर्तगाली अधिकारियों द्वारा सत्याग्रहियों पर गोली चलाये जाने के कारण आधे घंटे

के लिए स्थगित हो गया।[436] कुतुब मीनार में हुई त्रासद घटना में अनेक बच्चों के मारे जाने के कारण सदन दिन-भर के लिए स्थगित हो गया। सदन की अगली बैठक में सभापति ने सदन द्वारा व्यक्त किए गए दु:ख के साथ स्वयं को संबद्ध किया।[437]

26 अगस्त, 1996 को सदन अमरनाथ जाने वाले तीर्थयात्रियों की मृत्यु का उल्लेख करने और मौन धारण करने के पश्चात् मध्याह्न तक स्थगित हुआ।[438] 13 दिसम्बर, 2001 को संसद् पर हुए आतंकवादी हमले में शहीद हुए सभी लोगों के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में सदन को दिवस के लिये स्थगित किया गया।[439]

सदन ने अफ्रीका के स्वतंत्रता सेनानी बेंजामिन मोलोइसे को प्राणदंड दिए जाने की निंदा की।[440]

(ज) निर्विरोध स्वीकृत किए गए संकल्प

जैसाकि कहा जा चुका है, शोक संकल्पों के अलावा सदन अत्यंत महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं या विषयों से संबंधित संकल्पों को भी बिना किसी असहमति या वाद-विवाद के स्वीकृत करता है। उन्हें सभापीठ, सदन के नेता, प्रधान मंत्री या किसी अन्य मंत्री द्वारा उपस्थित किया जाता है। ऐसे संकल्प सदन की सामान्य इच्छा को व्यक्त करते हैं।

(1) सभापीठ द्वारा उपस्थित किए गए संकल्प प्रस्ताव

महात्मा गांधी को उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए;[441] परमाणु निरस्त्रीकरण के संबंध में 28 जनवरी, 1985 को दिल्ली में हुए छह राष्ट्रों के शिखर सम्मेलन के अंत में जारी की गई दिल्ली घोषणा का (एक प्रस्ताव द्वारा) स्वागत करने के लिए;[442] 24 अक्तूबर, 1985 की संयुक्त राष्ट्र संगठन की स्थापना की चालीसवीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में;[443] अमेरिकी सेनाओं द्वारा लीबिया में बम गिराए जाने से संबंधित ध्यानाकर्षण के अंत में इस कृत्य की निंदा करने के लिए;[444] दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की निंदा करने के लिए;[445] पंजाब में हुई हत्याओं की निंदा करने के लिए;[446] नेल्सन मंडेला की तुरंत और बिना शर्त रिहाई की मांग करने के लिए;[447] बाबरी मस्जिद-राम जन्मभूमि विवाद के संदर्भ में सौहार्द और सद्भावना बनाए रखने और उसे बढ़ावा देने और भारत के पंथ-निरपेक्ष स्वरूप और परंपराओं को सुरक्षित रखने के लिए भारतवासियों का उद्बोधन करने के लिए;[448] नेल्सन मंडेला की रिहाई का स्वागत करने के लिए;[449] उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में सांप्रदायिक दंगों के संबंध में सदस्यों द्वारा उठाए गए मुद्दों के अंत में राजनैतिक दलों और धार्मिक संगठनों से सांप्रदायिक सद्भाव बनाए रखने की अपील करने के लिए;[450] खाड़ी संकट के संदर्भ में युद्ध न करने की अपील करने के लिए;[451] खाड़ी युद्ध को समाप्त करने का आग्रह करने के लिए;[452] डॉक्टरों की हड़ताल से संबंधित ध्यानाकर्षण के अंत में डॉक्टरों से हड़ताल समाप्त करने की अपील करने के लिए;[453] कावेरी जल-विवाद को लेकर कर्णाटक में हो रही हिंसा को समाप्त करने की अपील करने के लिए;[454] 'भारत छोड़ो आंदोलन' की पचासवीं वर्षगांठ के अवसर पर शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए;[455] पाकिस्तान द्वारा भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप किए जाने और जम्मू-कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ावा दिए जाने की निंदा करने के लिए;[456] दक्षिण अफ्रीका की नई सरकार के गठन का स्वागत करने के लिए;[457] और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की पचासवीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में;[458] और लश्कर-ए-तायबा और जैश-ए-मोहम्मद के आतंकवादियों द्वारा कालूचक, जम्मू पर हमला।[459] सभापति ने अमरीका द्वारा सम्प्रभु इराक के विरुद्ध गठबंधन बलों की सहायता से सैन्य कार्यवाही किये जाने की निंदा करते हुए 9 अप्रैल, 2003 को एक संकल्प उपस्थित किया जिसमें लड़ाई को तुरंत बंद किये जाने और गठबंधन सेनाओं को वापस बुलाये जाने तथा संयुक्त राष्ट्र को संप्रभु सरकार को संरक्षण प्रदान किये जाने के लिये कहा गया।[460]

11 दिसंबर, 2008[461] को सभापति ने पाकिस्तान के आतंकवादी तत्वों द्वारा मुम्बई में घृणित हमलों की स्पष्ट रूप से निन्दा करते हुए संकल्प उपस्थित किया। 13 मई, 2012 को संसद् की पहली बैठक की साठवीं वर्षगांठ के अवसर पर संसद् की विशेष बैठक में राज्य सभा द्वारा इस संकल्प

को स्वीकार किया गया;[462] सभापति ने क्रमश: 14 मार्च, 2013 और 13 अगस्त, 2013 को पाकिस्तान के नेशनल एसेम्बली द्वारा पारित संकल्प को अस्वीकार करते हुए 15 मार्च, 2013 और 14 अगस्त, 2013 को एक-एक संकल्प उपस्थित किया। इन दोनों प्रस्तावों को सभा द्वारा आम सहमति से स्वीकार किया गया।[463]

(2) प्रधान मंत्री द्वारा उपस्थित किया गया प्रस्ताव/संकल्प

पूर्वी बंगाल में हुई घटनाओं के संदर्भ में वहां की जनता को उसके संघर्ष में समर्थन देने के लिए;[464] 'एपल' के सफल प्रक्षेपण के संबंध में[465] और नई दिल्ली में हुए निर्गुट देशों के राज्याध्यक्षों/शासनाध्यक्षों के सातवें सम्मेलन के सफलतापूर्वक संपन्न होने की (एक प्रस्ताव द्वारा) सराहना करने के लिए।[466]

(3) सदन के नेता द्वारा उपस्थित किया गया संकल्प

असम की स्थिति से संबंधित प्रस्ताव पर चर्चा के अंत में असम में हुई हत्याओं पर गहरी चिंता व्यक्त करने के लिए और असम के लोगों से भाईचारे और सहयोग की भावनाओं को सुदृढ़ करने की अपील करने के लिए;[467] कोलम्बो में प्रधान मंत्री पर हुए कायरतापूर्ण हमले के संबंध में भावनाएं व्यक्त करने के लिए;[468] अयोध्या में बाबरी मस्जिद को अपवित्र और ध्वस्त किए जाने की निंदा करने के लिए;[469] अफगानिस्तान में तालिबान के बर्बरतापूर्ण और सभ्यता-विरोधी इरादों की कड़े से कड़े शब्दों में निंदा करने के लिये[470] और विश्व हिन्दू परिषद् तथा बजरंग दल के लोगों द्वारा उड़ीसा विधान-मण्डल परिसर पर धावा बोले जाने के संबंध में।[471]

(4) विपक्ष के नेता द्वारा उपस्थित किया गया प्रस्ताव

जम्मू-कश्मीर की स्थिति के संबंध में गृह मंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य पर चर्चा में भाग लेते हुए श्री पी. शिवशंकर ने वहां की घटनाओं पर सभा की चिंता व्यक्त करने के लिए एक प्रस्ताव रखा।[472]

(5) विदेश मंत्रालय में राज्य मंत्री द्वारा उपस्थित किया गया संकल्प

दक्षिण अफ्रीका के जातीय दंगों से संबंधित एक अल्पकालिक चर्चा के अंत में दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की निंदा करने और बेंजामिन मोलोइसे को बचाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से अपील करने के लिए सभा की अनुमति से एक संकल्प उपस्थित किया।[473]

(झ) निवृत्त होने वाले सदस्यों को शुभकामनाएं और नवनिर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों का स्वागत

राज्य सभा के लगभग एक-तिहाई सदस्य अपने कार्यकाल के समाप्त होने पर हर दूसरे वर्ष निवृत्त हो जाते हैं।[474] प्रथानुसार उन्हें प्रश्न-काल की समाप्ति पर शुभकामनाएं या औपचारिक विदाई दी जाती है। 1986 तक ऐसा सामान्यत: मार्च - अप्रैल के सत्र के समाप्त होने से थोड़ा पहले किया जाता था क्योंकि ऐसे अधिकांश सदस्य हर सम संख्या वाले वर्ष की 2 अप्रैल को निवृत्त होते थे। किंतु सम संख्या वाले वर्ष में 2 अप्रैल के अलावा अलग-अलग तारीखों को सदस्यों के निवृत्त होने के कारण सदस्यों की निवृत्ति का समय सन्निकट होने पर उन्हें सदन में विदाई दी जाती है और ऐसे सदस्य विदाई का उत्तर भी देते हैं।

नवनिर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों के शपथ/प्रतिज्ञान के बाद और उनके द्वारा अपना स्थान ग्रहण करने के बाद सभापति द्वारा सदन की ओर से उनका स्वागत किया जाता है।

(ञ) सत्र की समाप्ति पर विदाई में कहे गए शब्द

प्रथानुसार प्रत्येक सत्र में सदन के अनियत दिन के लिए स्थगित होने के पहले सभापीठ कार्य-संचालन में सहयोग के लिए सदस्यों और दलों के नेताओं के प्रति आभार

व्यक्त करते हुए विदाई में कुछ शब्द कहती है। यह प्रथा 37वें सत्र से शुरू हुई।[475] दलों के उपस्थित नेता/प्रतिनिधि भी सदन के कार्य के संचालन की सराहना करते हुए समुक्तियां करते हैं। तथापि, जब राज्य सभा का 172वां, 175वां, 177वां, 182वां, 186वां 203वां, 211वां, 213वां और 224वां सत्र अनिश्चित-काल के लिये स्थगित हुआ तो विदाई उद्‌गार प्रकट नहीं किये जा सके।[476] 196वें सत्र के अन्त में उपसभापति ने विदाई उद्‌गारों को लिखित रूप में सभा पटल पर रखा था।[477] दो अवसरों पर राज्य सभा के 155वें[478] और 200वें[479] सत्रों के पहले और दूसरे भागों में दो-दो बार विदाई उद्‌गार व्यक्त किये गये।

216वें सत्र से सभा में सभापीठ द्वारा विदाई भाषण दिये जाने के उपरांत सदस्यों को संबंधित सत्र की सांख्यिकीय जानकारी वितरित की जाती है। विदाई भाषण और सांख्यिकीय जानकारी भी राज्य सभा की वेबसाइट पर भी अपलोड कर दिये जाते हैं।[480] 224वें सत्र की समाप्ति पर कोई विदाई भाषण नहीं दिये गये थे, इस सत्र की सांख्यिकीय जानकारी वेबसाइट पर दी गयी थी।[481]

यद्यपि 230वां सत्र दो भागों में चला था, प्रथम भाग के बाद विदाई भाषण नहीं दिये गये थे और द्वितीय भाग की समाप्ति पर भी ऐसा ही हुआ। तथापि, 230वें सत्र के दोनों भागों की सांख्यिकीय जानकारी तैयार कर वेबसाइट पर डाल दी गयी।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. सामान्य प्रयोजन संबंधी समिति का कार्यवृत्त, 1.9.1972
2. संसदीय समाचार (2), 10.11.1972
3. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.5.1970, कालम 25 और 28-30
4. -वही- 17.8.1990, कालम 317-26
5. -वही- 20.8.1990, कालम 293-317
6. -वही- 24.1.1980, कालम 16-17
7. कार्यावलि, 29.7.2002
8. संसदीय समाचार (2), 28.1.1999
9. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.7.1970, कालम 157-60
10. -वहीं- 29.4.1960, कालम 2702
11. -वही- 25.11.1954, कालम 1-4
12. -वही- 16.11.1954, कालम 1-4
13. -वही- 8.5.1972, कालम 1-2
14. -वही- 17.8.1981, कालम 6
15. -वही- 18.7.1989, कालम 1-6
16. -वही- 25.7.1994, कालम 5-6
17. -वही- 17.7.1986, कालम 4-24
18. -वही- 27.7.1987, कालम 2-20, और 24.4.1995, कालम 2-3
19. -वही- 12.3.1990, कालम 35, और 13.3.1990, कालम 1-2
20. -वही- 14.3.1961, कालम 2848
21. -वही- 29.4.1969, कालम 358-59, 363 और 462
22. -वही- 21.11.1969, कालम 909 और 922

23. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.5.1970, कालम 28-30
24. -वही- 23.11.1977, कालम 188-90
25. -वही- 8.12.1981, कालम 177-78
26. -वही- 13.8.1963, कालम 154; 14.8.1963, कालम 233-34
27. -वही- 27.5.1964, कालम 1, 58, 80; और 29.5.1964, कालम 81-108
28. -वही- 27.4.1992 और 28.4.1992
29. संसदीय समाचार (1), 25.7.2001 और 26.7.2001
30. -वही- 29.3.2002 और 20.3.2002
31. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.12.2006 और 18.12.2006
32. -वही- 14.8.2012 और 16.8.2012
33. -वही- 31.7.1974, कालम 1-2 और 116
34. -वही- 31.1.1985, कालम 170-72
35. -वही- 24.3.1992, कालम 1-2
36. -वही- 20.2.1956, कालम 199-200
37. -वही- 1.3.1963, कालम 1369-82
38. -वही- 7.3.1961, कालम 1975-88
39. -वही- 29.5.1964, कालम 81-108
40. -वही- 14.2.1966, कालम 21-40
41. -वही- 5.5.1969, कालम 967-90
42. -वही- 28.2.1977, कालम 3-22
43. -वही- 17.7.1986, कालम 4-24
44. -वही- 27.7.1987, कालम 2-20
45. -वही- 20.11.1967, कालम 113-45
46. -वही- 17.1.1985, कालम 22-68
47. -वही- 3.6.1991, कालम 1-51
48. -वही- 18.7.1989, कालम 1-6
49. -वही- 28.4.1992, कालम 1-22
50. -वही- 29.5.1964, कालम 83; 5.5.1969, कालम 967; और 28.2.1977, कालम 5 और 20
51. -वही- 17.1.1985, कालम 22-68; 22.2.1988, कालम 45-46; और 3.6.1991, कालम 1-51
52. संसदीय समाचार (1), 20.2.1956, 27.2.1956, 5.3.1959, 7.3.1961, 1.3.1963, 25.11.1963, 29.5.1964, 14.2.1966, 5.5.1969, 20.11.1969, 28.2.1977 और 17.1.1985
53. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.5.1969, कालम 967-90
54. -वही- 25.4.1975, कालम 1-6
55. -वही- 24.6.1980, कालम 1-2; 25.6.1980, कालम 1-2
56. -वही- 4.10.1982, कालम 1-7
57. -वही- 24.11.1992, कालम 1-7
58. संसदीय समाचार (1) 15.7.2002
59. -वही- 29.7.2002
60. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.7.2010, पृष्ठ 3-6
61. -वही- 16.2.1956, कालम 59
62. -वही- 20.11.1967, कालम 113-45
63. -वही- 27.2.1956, कालम 823-26
64. -वही- 8.9.1960, कालम 4103-04

65. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.1.1976, कालम 21-22
66. -वही- 23.6.1980, कालम 1-2
67. -वही- 31.7.1985, कालम 143-44
68. -वही- 3.12.1993, कालम 1-2
69. संसदीय समाचार (1), 19.11.1997
70. -वही- 20.2.2001
71. -वही- 24.3.2000
72. -वही- 19.11.2001
73. -वही- 4.3.2002
74. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.8.1967, कालम 2900-02
75. -वही- 23.12.2004 और 25.2.2005
76. -वही- 30.11.2012 और 3.12.2012
77. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 30.11.1953, कालम 712-13
78. -वही- 15.12.1953, कालम 2302-03
79. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.11.1956, कालम 586
80. -वही- 30.11.1956, कालम 1203
81. -वही- 21.5.1957, कालम 871
82. -वही- 19.9.1958, कालम 3898-99
83. -वही- 24.8.1959, कालम 1533
84. -वही- 23.11.1959, कालम 56-57
85. -वही- 8.11.1962, कालम 185-86
86. -वही- 6.8.1962, कालम 186-87
87. -वही- 3.12.1963, कालम 1906-07
88. -वही- 12.2.1968, कालम 32-34
89. -वही-
90. -वही- 23.11.1970, कालम 105
91. -वही- 24.6.1971, कालम 1
92. -वही- 13.12.1971, कालम 1
93. -वही- 19.2.1973, कालम 23
94. -वही- 23.7.1973, कालम 4
95. -वही- 19.12.1973, कालम 1
96. -वही- 4.10.1982, कालम 4-5
97. -वही- 4.10.1982, कालम 6-7
98. -वही- 18.2.1983, कालम 19-26
99. -वही- 25.7.1983, कालम 3
100. -वही- 12.5.1986, कालम 139
101. -वही- 16.12.1988, कालम 1-2
102. -वही- 27.3.1989, कालम 1-2
103. -वही- 3.4.1989, कालम 1-2
104. -वही- 3.6.1991, कालम 51-52
105. -वही- 6.8.1992, कालम 1-2
106. -वही- 27.2.1996

107. संसदीय समाचार (1), 13.2.1995
108. -वही- 30.7.1996
109. -वही- 19.11.1997
110. -वही- 25.3.1998
111. -वही- 23.2.2000
112. -वही- 10.8.2000
113. -वही- 20.11.2000
114. -वही- 25.2.2008
115. -वही- 6.5.2008
116. -वही- 17.10.2008
117. -वही- 19.11.2009
118. -वही- 22.2.2010
119. -वही- 21.2.2011
120. -वही- 1.8.2011
121. -वही- 1.8.2011
122. -वही- 22.11.2011
123. -वही- 8.12.2011
124. -वही- 8.8.2012
125. -वही-
126. -वही- 22.11.2012
127. -वही- 12.12.2012
128. -वही- 23.8.2013
129. -वही- 5.12.2013
130. -वही- 8.8.1956, कालम 838-39
131. -वही- 23.1.1980, कालम 21-22
132. -वही- 19.3.1982, कालम 241-46
133. -वही- 21.8.1985, कालम 1-2
134. -वही- 22.2.1988, कालम 62-64
135. -वही- कालम 66-67
136. -वही- 11.8.1986, कालम 2-4
137. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.12.1993, कालम 1-5
138. -वही- 30.7.1996, कालम 1-2
139. -वही- 10.8.2007
140. -वही- 10.12.2008
141. -वही- 12.2.2009
142. -वही- 3.12.2012
143. -वही- 16.12.2013
144. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.12.1952, कालम 1958
145. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.8.1961, कालम 1977-80
146. -वही- 14.3.1955, कालम 1795
147. -वही- 22.2.1960, कालम 1373-74
148. -वही- 21.4.1964, कालम 50-51
149. -वही- 21.12.1967, कालम 5088-91

150. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.11.1970, कालम 105
151. -वही- 11.11.1970, कालम 95
152. -वही- 13.3.1972, कालम 24-25
153. -वही- 31.7.1972, कालम 154
154. -वही- 31.8.1976, कालम 1-2
155. -वही- 23.1.1980, कालम, 19-20
156. -वही- 9.6.1980, कालम 4-6
157. -वही- 18.2.1983, कालम 19-26
158. -वही- 23.2.1984, कालम 24-25
159. -वही- 16.12.1985, कालम 1
160. -वही- 4.11.1986, कालम 1-2
161. -वही- 18.8.1988, कालम 1-2
162. -वही- 25.7.1994, कालम 1-2
163. -वही- 27.11.1995, कालम 1-6
164. संसदीय समाचार (1), 21.2.1997
165. -वही- 22.2.1999
166. -वही- 21.10.1999
167. -वही- 24.7.2000
168. -वही- 27.4.2007
169. -वही- 25.2.2008
170. -वही- 15.4.2010
171. -वही- 7.3.2013
172. -वही- 21.3.2013
173. -वही- 22.4.2013
174. -वही- 6.12.2013
175. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.5.1981, कालम 1-12
176. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 6.3.1953, कालम 1953-58
177. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.11.1963, कालम 905-08
178. -वही- 13.3.1985, कालम 1-3
179. -वही- 3.3.1986, कालम 1-10
180. -वही- 21.2.1989, कालम 34
181. -वही- 18.7.1989, कालम 1-2
182. -वही- 3.5.1993, कालम 1-4
183. संसदीय समाचार (1), 20.11.2000
184. -वही- 23.7.2001
185. -वही- 6.12.2013
186. फा. सं. 20/84-टी, 20/85-टी, 20/86-टी, 20/88-टी, 20/89-टी, 20/93-टी, और 20/94-टी
187. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.9.1965, कालम 5609-10
188. -वही- 10.8.1970, कालम 174-83
189. -वही- 16.12.1971, कालम 124-26
190. -वही- 5.9.1988, कालम 1-41
191. -वही- 25.11.1988, कालम 1-2
192. -वही- 17.3.1983, कालम 1

193. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.12.1969, कालम 5703-05
194. -वही- 1.5.1970, कालम 146
195. -वही- 7.3.1968, कालम 3646-58
196. -वही- 29.4.1993, कालम 221-22
197. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.8.1967, कालम 2902 (रजत जयंती); 9.8.1985, कालम 182-83; 10.8.1987, कालम 219-23; 9.8.1988, कालम 1; 9.8.1989, कालम 1; 8.8.1992 (50वीं जयंती) कालम 1; और 9.8.1994, कालम 1
198. -वही- 23.3.1990, कालम 218-19; 23.3.1993, कालम 295, 302-07; और 23.3.1995 कालम 1-3
199. -वही- 22.7.1969, कालम 344-47
200. -वही- 18.11.1969, कालम 314-39
201. -वही- 21.2.1986, कालम 170-74
202. -वही- 4.11.1986, कालम 207-11
203. -वही- 15.11.1988, कालम 253-79
204. -वही- 18.11.1969, कालम 314-39
205. -वही- 8.5.2012
206. -वही- 5.9.2012
207. -वही- 13.11.1973, कालम 116-17
208. -वही- 28.12.1968, कालम 6035-37; और 21.7.1969, कालम 133
209. -वही- 17.3.1975, कालम 1
210. -वही- 23.7.1980, कालम 133-40
211. -वही- 30.7.1980, कालम 1 और 164-65
212. -वही- 20.8.1981, कालम 160-73
213. -वही- 23.4.1984, कालम 141
214. -वही- 10.5.1984, कालम 1-2
215. -वही- 29.3.1985, कालम 330-32
216. -वही- 16.12.1991, कालम 197-98
217. -वही- 4.5.1994, कालम 1-2
218. -वही- 10.5.1994, कालम 405-22
219. -वही- 28.11.1995, कालम 360
220. -वही- 21.10.1999, पृष्ठ 10-18
221. -वही- 28.2.2001, पृष्ठ 2-4
222. संसदीय समाचार (1), 22.10.2008
223. -वही- 24.2.2009
224. -वही- 24.4.2012
225. -वही- 13.8.2012
226. -वही- 27.8.2012
227. -वही- 26.2.2013
228. -वही- 22.4.2013
229. -वही- 5.8.2013
230. -वही- 5.8.2013
231. -वही-
232. -वही-
233. -वही-

234. संसदीय समाचार (1), 6.8.2013
235. -वही- 26.8.2013
236. -वही- 9.12.2013
237. -वही- 13.12.2013
238. -वही- 5.2.2014
239. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद 16.5.1952, कालम 32-34
240. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.5.1957. कालम 2-7
241. -वही- 11.5.1962, कालम 2937-48
242. -वही- 15.6.1962, कालम 1-17
243. -वही- 11.4.1967, कालम 3248-65
244. -वही- 22.5.1967, कालम 107-29
245. -वही- 22.7.1969, कालम 344-45; और 21.7.1969, कालम 149-52
246. -वही- 17.11.1969, कालम 106-07
247. -वही- 31.8.1974, कालम 1-23
248. -वही- 24.1.1980, कालम 3-16
249. -वही- 24.8.1984, कालम 212-35
250. -वही- 18.1.1985, कालम 93-106
251. -वही- 6.11.1987, कालम 4-24
252. -वही- 25.11.1992, कालम 1-25
253. -वही- 26.8.1997, कालम 2-24
254. संसदीय समाचार (1), 20.11.2002
255. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.8.2007
256. -वही- 13.8.2012
257. -वही- 26.2.1973, कालम 1 और 26.2.1974, कालम 1
258. -वही- 10.9.1974, कालम 1
259. -वही- 17.12.1980, कालम 1-2 और 17.12.1981, कालम 1-4
260. -वही- 4.12.1985, कालम 1-6 और 4.12.1986, कालम 1-2
261. -वही- 19.8.1988, कालम 1-3; 17.8.1990, कालम 1 और 20.8.1990, कालम 1
262. -वही- 12.3.1973, कालम 143
263. -वही- 20.8.1985, कालम 310 और 20.8.1987, कालम 1
264. सामान्य प्रयोजन संबंधी समिति का कार्यवृत्त, 2.5.1977; कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 13.6.1977; और राज्य सभा वाद-विवाद, 22.6.1977, कालम 156-69
265. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.8.1993, कालम 231-38
266. -वही- 29.4.1970, कालम 105
267. -वही- 14.11.1977, कालम 102-03
268. -वही- 28.4.1981, कालम 186-202
269. -वही- 31.7.1987, कालम 297-99
270. -वही- 21.2.1994, कालम 1-4
271. -वही- 25.8.1983, कालम 176-80
272. -वही- 25.11.2011
273. -वही- 18.11.1963, कालम 84-86
274. -वही- 2.4.1976, कालम 75-83
275. -वही- 4.5.1981, कालम 205-17
276. -वही- 26.7.1993, कालम 153-78
277. -वही- 19.11.1997, कालम 1

278. संसदीय समाचार (1), 18.11.2002
279. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.7.2001, पृष्ठ 5
280. संसदीय समाचार (1), 18.11.2002
281. -वही- 15.11.2007
282. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.9.2012, पृष्ठ 1-2
283. संसदीय समाचार (1), 22.11.2012
284. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.4.2013, पृष्ठ 2-3
285. -वही- 8.12.1981, कालम 17
286. -वही- 10.12.1958, कालम, 1695-96; 10.12.1969, कालम 3333-34; 10.12.1973, कालम 1-2; और 7.12.1988, कालम 1-2
287. -वही- 14.5.1985, कालम 1-2
288. -वही- 18.11.1985, कालम 348
289. -वही- 9.12.1987, कालम 251-52
290. -वही- 4.12.1971, कालम 29-30
291. -वही- 6.12.1971, कालम 18-19
292. -वही- 2.12.1985, कालम 262
293. -वही- 6.8.1985, कालम 141; 6.8.1987, कालम 207-08; 9.8.1989, कालम 1; 6.8.1991, कालम 1; 6.8.1992, कालम 1; 9.8.1994, कालम 1-2; और 9.8.1995, कालम 1
294. -वही- 21.3.1990, कालम 180-81
295. -वही- 9.12.1992, कालम 216
296. संसदीय समाचार (1), 16.12.1996
297. -वही- 10.12.1998, 10.12.2012, 10.12.2013
298. -वही- 29.11.1999
299. -वही- 8.3.2000
300. -वही- 25.10.1999, और 26.7.2000
301. -वही- 13.5.2002
302. -वही- 26.11.2010, और 26.11.2012
303. -वही- 19.11.2011
304. -वही- 22.3.2012, और 22.3.2013
305. -वही- 24.4.2012, और 23.4.2013
306. -वही- 22.4.2013
307. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.9.1956, कालम 3100; 11.2.1958, कालम 32; 8.3.1961, कालम 2126; 20.4.1961, कालम 215; 24.4.1962, कालम 427; और 24.4.1989, कालम 313
308. -वही- 12.9.1963, कालम 3836
309. -वही- 27.2.1958, कालम 1705
310. -वही- 24.8.1959, कालम 1541
311. -वही- 25.2.1960, कालम 1863-64
312. -वही- 8.12.1981, कालम 171-76
313. -वही- 1.12.1986, कालम 1-12
314. -वही- 20.8.1987, कालम 264-77
315. -वही- 3.9.1963, कालम 2594
316. -वही- 22.8.1988, कालम 2
317. -वही- 16.12.1988, कालम 2

318. संसदीय समाचार (1), 15.4.2002
319. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.11.1970, कालम 116-18
320. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 20.5.1952, कालम 177-78; राज्य सभा वाद-विवाद, 29.9.1954, कालम 3901; 26.11.1956, कालम 625; 7.8.1986, कालम 269; 21.8.1995 (पुरुषोत्तम एक्सप्रेस और कालिंदी एक्सप्रेस रेल दुर्घटना पर चर्चा करने के लिए प्रश्नकाल निलंबित किया गया)
321. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.9.1963; कालम 3836, 22.11.1963, कालम 993-94; 14.11.1977, कालम 102-03; और 23.7.1985, कालम 3-4
322. -वही- 12.12.1967, कालम 3567
323. -वही- 24.3.1970, कालम 121-37
324. -वही- 20.11.1991, कालम 3-5
325. -वही- 2.12.1993, कालम 6
326. -वही- 27.5.1957, कालम 1739-41
327. -वही- 21.2.1983, कालम 2
328. -वही- 18.1.1985, कालम 192
329. -वही- 7.6.1967, कालम 2665; और 9.6.1967, कालम 3222
330. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद 15.2.1954, कालम 20
331. राज्य सभा वाद-विवाद 21.4.1986, कालम 2-3
332. -वही- 21.11.1977, कालम 188
333. -वही- 20.8.1979, कालम 1
334. -वही- 30.8.1978, कालम 76
335. -वही- 24.2.1984, कालम 1
336. -वही- 15.3.1993, कालम 1-5
337. संसदीय समाचार (1), 24.2.1997
338. -वही- 21.4.1997
339. -वही- 12.5.1997
340. -वही- 25.3.1998
341. -वही- 30.11.1998
342. -वही- 8.3.1999
343. -वही- 19.4.1999
344. -वही- 29.11.1999
345. -वही- 25.10.1999
346. -वही- 11.8.2000
347. -वही- 19.2.2001
348. -वही- 23.7.2001
349. -वही- 19.11.2001
350. -वही-
351. -वही- 15.7.2002
352. -वही- 7.8.2002
353. -वही- 9.8.2002
354. -वही- 18.11.2002
355. -वही- 25.11.2002
356. -वही- 21.7.2003
357. -वही- 13.8.2003

358. संसदीय समाचार (1), 2.12.2003
359. -वही- 20.1.2004
360. -वही- 23.2.2007
361. -वही- 26.4.2007
362. -वही-
363. -वही- 29.8.2007
364. -वही- 10.9.2007
365. -वही- 22.2.2010
366. -वही- 9.3.2010
367. -वही- 26.7.2010
368. -वही-
369. -वही-
370. -वही- 26.7.2010
371. -वही- 9.8.2010
372. -वही- 9.11.2010
373. -वही- 18.11.2010
374. -वही- 26.11.2010
375. -वही- 21.2.2011
376. -वही- 4.3.2011
377. -वही- 14.3.2011
378. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.8.2011
379. -वही-
380. -वही-
381. -वही-
382. -वही-
383. -वही- 22.11.2011
384. -वही-
385. -वही-
386. -वही- 23.11.2013
387. -वही- 12.12.2011
388. -वही- 20.12.2011
389. -वही- 12.3.2012
390. -वही-
391. -वही- 28.3.2012
392. -वही- 2.5.2012
393. -वही- 16.5.2012
394. -वही- 8.8.2012
395. -वही-
396. -वही-
397. -वही-
398. -वही-
399. -वही-

400. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.8.2012
401. -वही- 6.9.2012
402. -वही- 22.11.2012
403. -वही-
404. -वही-
405. -वही- 4.12.2012
406. -वही- 18.12.2012
407. -वही- 21.2.2013
408. -वही- 22.2.2013
409. -वही- 1.3.2013
410. -वही- 6.3.2013
411. -वही- 15.3.2013
412. -वही- 20.3.2013
413. -वही- 22.4.2013
414. -वही-
415. -वही- 17.10.2008
416. -वही- 2.5.2013
417. -वही- 5.8.2013
418. -वही-
419. -वही-
420. -वही-
421. -वही-
422. -वही-
423. -वही- 19.8.2013
424. -वही-
425. -वही- 5.12.2013
426. -वही-
427. -वही- 9.12.2013
428. -वही- 5.2.2014
429. -वही-
430. -वही- 5.2.2014
431. -वही-
432. -वही-
433. -वही- 5.12.2013
434. -वही-
435. -वही-
436. -वही- 16.8.1955, कालम 51-54
437. -वही- 4.12.1981, कालम 276; और 7.12.1981, कालम 183-84
438. संसदीय समाचार (1), 26.8.1996
439. -वही- 14.12.2001
440. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.11.1985, कालम 347-48
441. -वही- 24.12.1969, कालम 5703-05
442. -वही- 30.1.1985, कालम 232-33

443. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.8.1985, कालम 1-4
444. -वही- 24.4.1986, कालम 223-24
445. -वही- 8.8.1986, कालम 218-220
446. -वही- 1.12.1986, कालम 1-12
447. -वही- 11.8.1988, कालम 124-25
448. -वही- 12.10.1989, कालम 317-18
449. -वही- 14.3.1990, कालम 327-28
450. -वही- 5.10.1990, कालम 178
451. -वही- 11.1.1991, कालम 105-06
452. -वही- 22.2.1991, कालम 294-96
453. -वही- 27.11.1991, कालम 299-300
454. -वही- 16.12.1991, कालम 197
455. -वही- 8.8.1992, कालम 1-2
456. -वही- 22.2.1994, कालम 281-83
457. -वही- 10.5.1994, कालम 405-22
458. -वही- 22.12.1994, कालम 260-61
459. संसदीय समाचार (1), 17.5.2002
460. -वही- 9.4.2003
461. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.12.2008, पृष्ठ 345-65
462. -वही- 13.5.2012, पृष्ठ 85
463. -वही- 15.3.2013, पृष्ठ 352-53 और 14.8.2013, पृष्ठ 1
464. -वही- 31.3.1971, कालम 123-24
465. -वही- 20.8.1981, कालम 160-73
466. -वही- 24.3.1983, कालम 368-70
467. -वही- 22.2.1983, कालम 392-94
468. -वही- 31.7.1987, कालम 297-99
469. -वही- 16.12.1992, कालम 1048-50
470. संसदीय समाचार (1) 2.3.2001
471. -वही- 18.3.2002
472. -वही- 14.3.1990, कालम, 365; और 15.3.1990, कालम 274-75
473. -वही- 20.8.1985, कालम 359-62
474. अनुच्छेद 83(1)
475. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.3.1962, कालम 1982
476. संसदीय समाचार (1), 23.12.1994, 22.12.1995, 30.5.1996, 1.12.1997, 23.4.1999, 10.9.2007, 6.5.2008 और 29.12.2011
477. -वही- 12.8.2002
478. -वही- 7.9.1990 और 5.10.1990
479. -वही- 23.12.2003 और 5.2.2004
480. फा. सं. आर.एस. 21/2009-टी
481. फा. सं. आर.एस. 21/2011-टी

अध्याय-17

प्रश्न

प्रश्नों के लिए समय

232वें सत्र तक, नियम में यह उल्लेख था कि जब तक कि सभापति अन्यथा निर्देश न दें, प्रत्येक बैठक के प्रथम घंटे में प्रश्न पूछे जा सकेंगे और उनके उत्तर दिये जा सकेंगे।[1] सभा की बैठक मध्याह्न-पूर्व 11 बजे आरम्भ होती है और सामान्यत: मध्याह्न 12.00 बजे तक प्रश्नों का समय होता है तथापि, नवम्बर 2014 में राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियम में संशोधन करके 233 वें सत्र से प्रश्नों का समय मध्याह्न 12:00 बजे से मध्याह्न पश्चात् 1:00 बजे तक स्थानान्तरित कर दिया गया।[2] इस समयावधि को साधारणतया 'प्रश्नों का समय' के नाम से जाना जाता है। राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियम में अब यह उल्लेख है कि जब तक सभापति अन्यथा निर्देश न दें प्रश्नों का समय मध्याह्न 12:00 बजे से मध्याह्न पश्चात् 1:00 बजे तक रहेगा।[3]

एक बार ऐसा भी हुआ जब सभा की बैठक मध्याह्न पश्चात् 3 बजे आरम्भ हुई। ऐसा 9 दिसम्बर, 1996 को हुआ जब संविधान सभा की पहली बैठक की 50वीं वर्षगांठ मनाने के लिए संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में मध्याह्न-पूर्व 10 बजे एक समारोह आयोजित किया गया।[4] तदनुसार प्रश्नों का समय मध्याह्न 4 बजे तक चला।

एब बार और सभापति के निदेश पर प्रश्नों का समय 7 मार्च, 2011 से 16 मार्च, 2011 के दौरान सोमवार से बृहस्पतिवार तक म.पू. 11 बजे—मध्याह्न 12 बजे से म.प. 2.00 बजे—म.प. 3.00 बजे तक स्थानान्तरित किया गया।[5]

13 मई, 1952 से 26 मई, 1952 तक राज्य सभा की जब पहली बार बैठकें हुईं, तब सभा में 'प्रश्नों का समय' नहीं रखा गया था। 16 मई, 1952 को हुई सभा की दूसरी बैठक में सभापति ने निम्नलिखित उद्घोषणा की:

> "...पर्याप्त विचार-विमर्श के उपरान्त मैंने यह निर्णय लिया है कि हमें हाउस ऑफ लॉर्ड्स की प्रक्रिया अपनानी चाहिए। हाउस ऑफ लॉर्ड्स में अपनाई गई प्रक्रिया के अनुसार सप्ताह में दो दिन प्रश्नों के लिए समय रखा जायेगा और एक दिन में तीन तारांकित प्रश्न पूछे जा सकते हैं। तीन प्रश्नों के उत्तर मौखिक रूप से दिये जायेंगे और प्रश्नों का चयन उनके प्राप्त होने के क्रमानुसार किया जायेगा।[6]

सभापति द्वारा की गई उद्घोषणा के फलस्वरूप 19 मई, 1952 को एक सदस्य ने निम्नलिखित विशेषाधिकार प्रश्न उठाया :

> ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान के अनुच्छेद 118(2) के अंतर्गत उन्हें प्रदत्त शक्तियों के अधीन सभापति ने पुराने काउंसिल ऑफ स्टेट में सदस्यों द्वारा प्रश्न पूछे जाने संबंधी प्रक्रिया में ऐसे सदस्यों के अधिकारों के प्रतिकूल संशोधन किया है।

सभापति ने यह कहा कि यह कोई विशेषाधिकार प्रश्न नहीं है। तथापि, इस पर नियम समिति के गठन के उपरान्त विचार किया जाएगा।[7] सदस्य यह उल्लेख कर रहा

था कि पुराने काउंसिल ऑफ स्टेट के स्थायी आदेश के अन्तर्गत प्रत्येक बैठक का प्रथम घंटा प्रश्नों के लिए उपलब्ध था[8] न कि सप्ताह में दो दिन ही।

20 मई, 1952 को राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव उपस्थित किये जाने के तत्काल पश्चात् सभापति ने सभा को सूचित किया :

> ...अगले मंगलवार और बुधवार (अर्थात् 27 और 28 मई) को आप यहां प्रश्न पूछ सकेंगे। आपको उनकी सूचना आज या कल दे देनी चाहिए। यदि आप अपने प्रश्न आज या कल पूछ सकते हैं तो उनके उत्तर अगले सप्ताह मंगलवार या बुधवार को दिये जा सकते हैं। पहला आधा घंटा प्रश्नों के लिए होगा।[9]

इसके बाद एक बुलेटिन द्वारा सदस्यों को मंगलवार, 27 मई और बुधवार, 28 मई, 1952 को प्रश्नों के उत्तर दिये जाने के लिए दिवसों के आवंटन की जानकारी दी गई थी।

तदनुसार 27 मई, 1952 के लिए 3 तारांकित प्रश्नों और 12 अतारांकित प्रश्नों की सूची तैयार की गई और अगले दिवस के लिए 3 तारांकित प्रश्नों और 45 अतारांकित प्रश्नों की सूची तैयार की गई। पहला प्रश्न श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव द्वारा पूछा गया था, जो बाद में 31 मई, 1952 को राज्य सभा के प्रथम उपसभापति बने।

14 जुलाई, 1952 को सभापति ने यह घोषणा की कि नियम समिति[10] की संस्तुति पर उन्होंने प्रश्नों से संबंधित उपबंधों में कतिपय संशोधन किये हैं संशोधित नियमों के अंतर्गत, प्रत्येक सोमवार, मंगलवार, बुधवार और बृहस्पतिवार को होने वाली बैठक में प्रथम घंटा प्रश्न पूछे जाने और उनके उत्तर दिये जाने के लिए उपलब्ध होगा। यदि इन दिवसों में से किसी दिवस को सभा की बैठक नहीं होती है, तो आगामी शुक्रवार को भी प्रश्न पूछे जा सकेंगे और उनके उत्तर दिये जा सकेंगे। प्रत्येक सदस्य तीन तारांकित प्रश्न[11] पूछने के लिए अधिकृत होगा। ये संशोधित उपबंध 21 जुलाई, 1952 से प्रभावी हो गये।[12] 1956 में यह मांग की गई कि शुक्रवार को भी प्रश्नों का समय होना चाहिए। सभापति ने यह बताया कि सभा द्वारा यह निर्णय किया गया था कि राज्य सभा में सप्ताह में चार दिवसों को ही प्रश्नों के लिए समय उपलब्ध होगा।[13] अत: सितम्बर, 1964 तक सप्ताह में चार दिवसों को ही 'प्रश्नों का समय' की व्यवस्था चलती रही।

संविधान के अनुच्छेद 118 के अन्तर्गत प्रक्रिया संबंधी नियमों का प्रारूप बनाने के लिए गठित समिति द्वारा 29 नवम्बर, 1963 को प्रस्तुत किये गये इसके प्रतिवेदन में यह प्रस्ताव किया गया कि प्रत्येक बैठक के प्रथम घंटे को प्रश्नों के लिए उपलब्ध कराया जाना चाहिए। तदनुसार, 9 सितम्बर, 1964 से आरम्भ हुए 49वें सत्र से राज्य सभा में नियमित रूप से सप्ताह में होने वाली सभी पांचों बैठकों में प्रश्न पूछे जाने और उनके उत्तर दिये जाने के लिए समय उपलब्ध करा दिया गया।

प्रश्नों के लिए समय नियत न करना

जैसाकि नियम 38 की आरम्भिक पदावली "जब तक कि सभापति अन्यथा निदेश न दें" से स्पष्ट हो जाता है, हालांकि प्रत्येक बैठक का प्रथम घंटा प्रश्नोत्तरों के लिए उपलब्ध होता है, सभापति को प्रश्नों के समय का परित्याग करने अथवा प्रश्नों के लिए किसी दिवस अथवा दिवसों का आवंटन नहीं करने का प्राधिकार है। सभा भी इस आशय के किसी प्रस्ताव

पर अथवा अन्यथा प्रश्नों के समय को स्थगित करने का निर्णय ले सकती है। अनेक अवसरों पर अन्य कार्य को अधिक समय प्रदान करने के लिए प्रश्नों के समय का परित्याग किया गया है अथवा किन्हीं विशेष कारणों से किसी सत्र विशेष पर्यन्त अथवा किसी सत्र की कुछ बैठकों में प्रश्नों का समय निर्धारित नहीं किया गया है।

> 15 मार्च, 1954 को उपसभापति ने यह उद्घोषणा की कि "हिन्दू विवाह और विवाह विच्छेद विधेयक, 1952 को संयुक्त समिति को सौंपे जाने के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए अधिक समय प्रदान करने हेतु" 16 मार्च, 1954 को "प्रश्नों का समय" नहीं होगा। प्रेस (आपत्तिजनक विषय) संशोधन विधेयक, 1953 पर विचार करने और उसे पारित करने के लिए पुन: 18 मार्च, 1954 को प्रश्नों के समय का परित्याग कर दिया गया था।[14]
>
> 33वें (1961), 93वें (1975), 98वें (1976) और 99वें (1977) सत्रों में प्रश्नों के समय की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी, क्योंकि ये सत्र विशेष प्रयोजनार्थ अर्थात् उडीसा बजट, आपात की उद्घोषणा का अनुमोदन, संविधान (चवालीसवां संशोधन) विधेयक, 1976 और क्रमश: तमिलनाडु और नागालैण्ड में राष्ट्रपति के शासन के अनुमोदनार्थ बुलाये गये थे।[15]

21 जुलाई, 1975 (93वां सत्र) को संसदीय कार्य विभाग में राज्य मंत्री ने निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया:

> यह सभा संकल्प करती है कि राज्य सभा के वर्तमान सत्र में कतिपय तात्कालिक एवं महत्वपूर्ण सरकारी कार्य के निष्पादनार्थ इस सत्र की तात्कालिक प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए इस सत्र में केवल सरकारी कार्य ही निष्पादित किया जायेगा और सत्रावधि में अन्य कोई भी कार्य नहीं लाया जायेगा अथवा निष्पादित किया जायेगा और इस विषय से संबंधित सभी संगत नियम उक्त समयावधि में स्थगित रहेंगे।
>
> लम्बी बहस के पश्चात् जिसमें प्रश्नों के समय को बचाने संबंधी एक संशोधन को अस्वीकृत कर दिया गया था, उक्त प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया गया था। उक्त प्रस्ताव को उपस्थित किये जाने से पूर्व कुछ सदस्यों ने यह जानना चाहा कि प्रस्ताव पारित होने तक नियम अथवा निदेश के किस उपबंध के अंतर्गत प्रश्नों के समय को स्थगित किया गया है। सभापति ने निम्नलिखित व्यवस्था दी:
>
> ...प्रश्नों के समय के लिए अनुमति प्रदान किया जाना अथवा अनुमति प्रदान नहीं किया जाना इसका निर्णय मुझे करना होता है।...नियम 38 इस बारे में अत्यन्त सुस्पष्ट है। वर्तमान परिस्थिति के महत्व पर विचार करते हुए मैंने स्वयं यह निर्णय लिया है कि प्रश्नों के समय के लिए समय उपलब्ध नहीं होगा। यह सभापति के प्राधिकार के अन्तर्गत आता है। वह इसका प्रयोग सरकार अथवा किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर रहे बिना स्वतन्त्र रूप से करता है। कोई भी व्यक्ति इस पर आपत्ति नहीं कर सकता है।[16]
>
> 3 नवम्बर, 1976 (98वां सत्र) को इसी प्रकार का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था और प्रश्नों के समय को स्थगित कर दिया गया था।[17] 41वें सत्र (1962) के दौरान संसदीय कार्य मंत्री ने विपक्ष के विभिन्न दलों के नेताओं और प्रतिनिधियों तथा अन्य संसद्-सदस्यों के साथ एक बैठक की और सभा में यह घोषणा की कि बैठक में उपस्थित व्यक्तियों की यह सर्वसम्मति थी कि 26 नवम्बर, 1962 से प्रश्नों के समय का परित्याग किया जा सकता है।[18]
>
> 194वें सत्र के दौरान सभापति ने घोषणा की कि 13 दिसम्बर, 2001 को संसद भवन पर हुए आतंकवादी हमले से उत्पन्न स्थिति पर सभा में चर्चा करने के लिए प्रश्नों के समय का परित्याग किया जाए और तदनुसार 18 और 19 दिसंबर, 2001 को प्रश्नों के समय का परित्याग किया गया।[19]

अनेक अवसरों पर अल्प अथवा अपर्याप्त सूचना के कारण 75वें, 100वें, 101वें और 112वें सत्रों के आरम्भिक कुछ दिवसों के लिए प्रश्नों का समय निर्धारित नहीं किया गया था।[20]

78वें सत्र के दौरान सभा ने यह निर्णय किया कि 6 दिसम्बर, 1971 से सत्र की शेष अवधि में (पाकिस्तान से युद्ध छिड़ जाने के कारण) "प्रश्नों का समय" नहीं होगा।[21]

201वें सत्र के दौरान प्रश्नों का समय नहीं रखा गया था क्योंकि सत्र के लिए आमंत्रण-पत्र अल्पकाल में जारी किया गया था।

214वें सत्र के दौरान, सभापति ने घोषणा की कि मुम्बई में हुए आतंकवादी हमले पर चर्चा करने के लिए प्रश्नों के समय का परित्याग किया जाए और तदनुसार 11 दिसम्बर, 2008[22] को प्रश्नों के समय का परित्याग किया गया।

216वें सत्र के दौरान, 15वीं लोकसभा के गठन[23] के पश्चात् संसद के दोनों सदनों की सम्मिलित बैठक में राष्ट्रपति के अभिभाषण के लिए बुलाए गए संक्षिप्त सत्र के होने के कारण प्रश्नों का समय नहीं हुआ।

219वें सत्र के दौरान, सभापति ने घोषणा की कि महंगाई की स्थिति पर अल्पकालिक चर्चा करने के लिए प्रश्नों के समय का परित्याग किया जाता है और तदनुसार, 25 फरवरी, 2010[24] को प्रश्नों के समय का परित्याग किया गया।

226वें सत्र के दौरान, सभापति ने घोषणा की कि देश के पूर्वोत्तर क्षेत्र के प्रवासियों पर हुए हमलों पर चर्चा करने हेतु अनेक सदस्यों द्वारा प्रश्नों के समय को निलम्बित करने के आग्रह पर प्रश्नों का समय निलम्बित किया जाता है और तदनुसार, 17 अगस्त, 2012 को प्रश्नों के समय का परित्याग किया गया[25]

227वें सत्र के दौरान सभापति ने घोषणा की कि मल्टी-ब्राण्ड खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश संबंधी प्रस्ताव पर चर्चा करने के कारण प्रश्नों का समय नहीं होगा और तदनुसार, 7 दिसंबर, 2012 को प्रश्नों का समय नहीं हुआ।[26]

बढ़ाई गई सत्रावधि के दौरान प्रश्नों का समय

जब सत्र का विस्तार उसके समापन की मूलत: नियत तारीख से आगे एक दिन या कुछ दिनों के लिए किया जाता है और सत्र के ऐसे विस्तार की घोषणा काफी समय पहले नहीं की जाती है तब बैठकों के बढ़ाये गये दिनों के लिए "प्रश्नों का समय" नियत नहीं किया जाता है।[27]सभापीठ द्वारा, सभा में सत्र के विस्तार की घोषणा करते समय, तद्नुसार घोषणा की जाती है कि 'प्रश्नों का समय' नहीं होगा।

सभापति की इस घोषणा के पश्चात् कि सदन की बैठकें 1, 2 और 4 अगस्त, 1952 को जारी रहेंगी, एक सदस्य ने पूछा कि क्या सत्र के बढ़ाये गये दिनों में "प्रश्नों का समय" होगा? सभापति ने उत्तर दिया कि अधिक कार्य होने की वजह से प्रश्नों का समय नहीं होगा।[28] कुछ दिनों के पश्चात् जब यह मामला उठाया गया तब सभापति ने यह टिप्पणी की: "हमने इसके पश्चात् सत्र की शेष अवधि की समाप्ति तक कोई प्रश्न न पूछने का निर्णय लिया है।[29]

218वें सत्र को एक दिन अर्थात् 22 दिसंबर, 2009 तक बढ़ा दिया गया और उस दिन के लिए प्रश्नों का समय निर्धारित नहीं किया गया।[30]

220वें सत्र को दो दिनों अर्थात् 31 अगस्त, 2010 तक बढ़ा दिया गया और उन दिनों के लिए प्रश्नों का समय निर्धारित नहीं किया गया।[31]

222वें सत्र का प्रथम भाग 21 फरवरी से 16 मार्च, 2011 तक निर्धारित था और दूसरा भाग 4 अप्रैल, 2011 से 21 अप्रैल, 2011 तक निर्धारित था। तथापि कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशों पर सत्र का प्रथम भाग 25 मार्च, 2011 तक बढ़ा दिया गया। बढ़ी हुई अवधि के दौरान कोई प्रश्नों का समय नहीं हुआ। 4 अप्रैल, 2011 से 21 अप्रैल, 2011 तक निर्धारित सत्र का दूसरा भाग निरस्त हुआ।[32]

कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशों पर 224वें सत्र जिसका समापन मूलत: 21 दिसंबर, 2011 को निर्धारित था, को प्रारंभ में 1 दिन अर्थात् 22 दिसंबर, 2011 तक के लिए बढ़ा दिया गया और बाद में तीन दिनों अर्थात् 27 से 29 दिसंबर, 2011 तक बढ़ा दिया गया। बढ़ी हुई अवधि के दौरान कोई प्रश्नों का समय नहीं हुआ।[33]

कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशों पर 229वां सत्र जिसका समापन मूलत: 30 अगस्त, 2013 को होना था, को प्रारम्भ में पांच दिनों अर्थात् 6 सितंबर, 2013 और बाद में 1 दिन अर्थात् 7 सितंबर, 2013 तक बढ़ा दिया गया। बढ़ी हुई अवधि के दौरान कोई प्रश्नों का समय नहीं हुआ।[34]

यदि सत्र के विस्तार का निर्णय काफी समय पहले ले लिया जाता है जिससे कि सदस्यों को बढ़ाई गई अवधि के दौरान प्रश्नों की सूचनाएं देने के लिए पर्याप्त समय मिल जाये तो, उन दिनों के भी 'प्रश्नों का समय' नियत कर दिया गया है।[35]

180वां सत्र जोकि मूलत: 20 फरवरी से 9 मई, 1997 तक होना था, 16 मई, 1997 तक बढ़ा दिया गया और 30 अप्रैल से 16 मई को हुई बैठकों को उस सत्र का तीसरा चरण माना गया। तथापि, प्रश्नों का समय 5 मई, 1997 से आरम्भ किया गया। पहले तीन दिन अर्थात् 30 अप्रैल, 1997, 1 मई, 1997 (मई दिवस) और 2 मई, 1997 को प्रश्नों का समय नहीं रखा गया।[36]

214वां सत्र 17 अक्टूबर, 2008 को प्रारंभ हुआ और इस सत्र का स्थगन 21 नवंबर, 2008 को निर्धारित था। तथापि सभा 10 दिसंबर, 2008 को पुन: समवेत होने के लिए 24 अक्तूबर, 2008 को स्थगित हुई। सत्र का दूसरा भाग 23 दिसंबर, 2008 तक जारी रहा। सत्र के दूसरे भाग के दौरान प्रश्नों का समय रखा गया था।[37]

230वां सत्र 5 दिसंबर, 2013 को प्रारंभ हुआ और इस सत्र का स्थगन 20 दिसंबर, 2013 को निर्धारित था। तथापि सभा 18 दिसंबर, 2013 को अनियत समय के लिए स्थगित हो गयी। सत्र का दूसरा भाग, जो 5 फरवरी, 2014 को प्रारंभ हुआ और 21 फरवरी, 2014 को अनियत समय के लिए स्थगित हुआ, के दौरान प्रश्नों का समय रखा गया था।[38]

तथापि, ऐसे मौके भी आये हैं जब सत्र के विस्तार का निर्णय तो काफी समय पहले ले लिया गया किन्तु बढ़ाई गई अवधि के दौरान "प्रश्नों का समय" नियत नहीं किया गया।

दिनांक 27 जून, 1980 को एक घोषणा करके 114वें सत्र को 9 जुलाई, 1980 तक बढ़ाया गया था। सत्र के बढ़ाये गये दिनों के दौरान "प्रश्नों का समय" का न तो कोई उल्लेख किया गया था और न ही उन दिनों के लिए "प्रश्नों का समय" नियत किया गया था।[39]

कार्य मंत्रणा समिति ने सिफारिश की थी कि 160वें सत्र को बढ़ा दिया जाये और 16, 17 और 18 सितम्बर, 1991 को सदन की बैठक होनी चाहिए। उक्त सिफारिश की घोषणा 5 सितम्बर,

1991 को की गई थी। तथापि, "प्रश्नों का समय" नियत नहीं किया गया था। सदन में यह मामला उठाया गया था और उपसभापति ने सदन की भावनाओं से सभापति को अवगत कराने का वचन दिया था।

यह मामला 17 सितम्बर, 1991 को पुन: उठाया गया।[40]

200वें सत्र को सरकार की ओर से आगामी निर्वाचनों के दृष्टिगत लेखानुदान पारित करने के लिए बढ़ाया गया था इसलिए इस दौरान कोई प्रश्नों का समय नहीं रखा गया।

जब सत्र के अतिरिक्त दिनों के लिए "प्रश्नों का समय" नियत किया जाता है, तब सदस्यों की सूचना के लिए मंत्रालयों और विभागों के वर्गों को दर्शाने वाला एक चार्ट, जिसमें उन वर्गों के लिए प्रश्नों को तारीखें और सूचनाएं प्राप्त करने की अन्तिम तारीखें निर्दिष्ट होती हैं, जारी कर दिया जाता है और उसे संसदीय समाचार में भी अधिसूचित कर दिया जाता है।[41]

बैठक रद्द किए जाने के कारण प्रश्नों के समय का अन्तरण

कभी-कभी ऐसा हुआ है कि जब किन्हीं दिनों के लिए मूलत: नियत बैठकें, ईद, मुहर्रम, होली, ईद-ए-मिलाद/मिलाद-उन-नबी आदि के अवकाशों में परिवर्तन होने के कारण, रद्द कर दी गईं और उन दिनों के लिए नियत प्रश्नों सहित कार्य, रद्द की गई बैठक के लिए नियत नये दिन के लिए जिसमें शनिवार भी सम्मिलित है, अग्रनीत कर दिया गया।

दिनांक 5 दिसम्बर, 1952 के लिए नियत सदन की बैठक रद्द कर दी गई थी और उस दिन के लिए सूचीबद्ध प्रश्न शनिवार, 6 दिसम्बर, 1952 को लिए गये थे।[42]

ईद-उल-जुहा के उपलक्ष्य में पड़ने वाला अवकाश 27 फरवरी, 1969 के बजाय 28 फरवरी, 1969 को कर दिया गया था। दिनांक 28 फरवरी, 1969 के लिए नियत प्रश्न आदि को बैठक होने पर पूर्ववर्ती दिवस में लिया गया।[43]

होली के उपलक्ष्य में 5 मार्च, 1969 को पड़ने वाला अवकाश 4 मार्च, 1969 को कर दिया गया था। फलस्वरूप 4 मार्च के लिए नियत प्रश्नों सहित अन्य कार्य 5 मार्च, 1969 को लिया गया।[44]

मुहर्रम के उपलक्ष्य में पड़ने वाला अवकाश 12 दिसम्बर, 1978 के बजाय 11 दिसम्बर, 1978 को कर दिया गया था। फलस्वरूप 11 दिसम्बर, 1978 के लिए नियत प्रश्नों सहित अन्य कार्य 12 दिसम्बर, 1978 को लिया गया।[45]

ईद-ए-मिलाद/मिलाद-उन-नबी के उपलक्ष्य में पड़ने वाला अवकाश 7 जुलाई से बदलकर 8 जुलाई, 1998 कर दिया गया था। परिणामस्वरूप बुधवार, 8 जुलाई, 1998 के लिए निर्धारित प्रश्न तथा अन्य कार्य मंगलवार, 7 जुलाई, 1998 को लिया गया।[46]

व्यवधान से बचाने हेतु प्रश्नों के समय का अंतरण

11 दिसंबर 2012 को जब सभा "प्रश्नों के समय" के लिए समवेत हुई, कई सदस्यों ने पत्रों का प्रदर्शन कर कार्यवाही में व्यवधान डाला। "प्रश्नों के समय" में सदस्यों द्वारा बार-बार व्यवधान डाले जाने पर बोलते हुए सभापति ने टिप्पणी की:

ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई है जिसमें सभापीठ को "प्रश्नों के समय" में बार-बार व्यवधान असहाय भाव से देखना पड़ता है। अत: मैं नियम समिति की बैठक आमंत्रित करने का प्रस्ताव करता हूं

और समिति के सदस्यों को दो विकल्प देता हूं। पहला विकल्प यह है कि "प्रश्नों के समय" को दिन के दूसरे हिस्से में कराया जाए। दूसरा विकल्प यह है कि चूंकि सदस्य प्रश्नों के उत्तर दिये जाने को अत्यधिक महत्व देते प्रतीत नहीं होते, प्रश्नों के समय को पूरी तरह समाप्त कर दिया जाए।[47]

कुछ सदस्यों द्वारा सभा के सदस्यों के रूप में अपने अधिकारों के अतिलंघन किये जाने पर विशेषाधिकार भंग का नोटिस

फरवरी 2008 में राज्य सभा में एक ऐसा उदाहरण रहा है जब सभा में व्यवधान के कारण कुछ सदस्य "प्रश्नों के समय" के दौरान प्रश्न नहीं पूछ सके। श्री संतोष बागड़ोदिया और कुछ सदस्यों ने कुछ ऐसे सदस्यों जिन्होंने सभा को नहीं चलने दिया, के विरुद्ध विशेषाधिकार भंग का संयुक्त नोटिस दिया इसके परिणामस्वरूप उन्हें सरकार से उत्तर प्राप्त करने का लाभ नहीं मिला जिससे सभा के सदस्य के रूप में उनके विशेषाधिकार का अतिलंघन हुआ। इस मामले को जांच-पड़ताल और प्रतिवेदन हेतु विशेषाधिकार समिति के पास भेज दिया गया। विशेषाधिकार समिति ने 7 जुलाई, 2009 को अपना चौवनवां प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। विशेषाधिकार संबंधी अध्याय 8 में इसकी चर्चा की गई है।

"प्रश्नों के समय" का निलंबन

तकनीकी दृष्टि से "प्रश्नों के समय" के निलम्बन हेतु राज्य सभा के प्रक्रिया विषयक नियमों में कोई विशिष्ट उपबंध नहीं है। तथापि, व्यवहार में जब कभी भी कोई सदस्य प्रश्नों से संबंधित नियम 38 के निलम्बन हेतु प्रस्ताव उपस्थित करना चाहता है तो उसे किसी नियम के निलम्बन से संबंधित नियम 267 का आश्रय लेना पड़ता है और वह सभापति की सहमति से ही ऐसा कोई प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है।

ऐसे भी उदाहरण रहे हैं जब सभापति ने "प्रश्नों के समय" के निलम्बन हेतु प्रस्ताव उपस्थित किये जाने की अनुमति पर अपनी सहमति रोक ली या अन्यथा सदस्यों के अनुरोध के अनुसार "प्रश्नों के समय" के निलंबन के लिए सहमत नहीं हुए।[48]

राज्य सभा में पहली बार एक अनुरोध किया गया था कि पश्चिमी बंगाल की सरकार की बर्खास्तगी से उत्पन्न वहां की स्थिति पर चर्चा करने के लिए प्रश्नों के समय को निलम्बित कर दिया जाये। सभापति ने इसकी अनुमति नहीं दी थी क्योंकि उन्होंने कहा था कि इस प्रयोजनार्थ उनके समक्ष कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया गया है।[49]

एक बार एक सदस्य, जिसने प्रश्नों के समय को निलम्बित किए जाने की सूचना दी थी, को इसकी अनुमति दी गई कि वह यह बताये कि सभापीठ उसकी सूचना पर क्यों सहमति व्यक्त करे और अन्ततः "प्रश्नों का समय" समाप्त हो गया।[50]

दूसरी बार लिब्रहान कमीशन रिपोर्ट के लीक होने के मुद्दे पर प्रश्नों के समय के निलंबन की सूचना प्राप्त हुई। सभापति ने एक सदस्य को प्रश्नों के समय के निलंबन की सूचना की स्वीकार्यता पर बोलने की अनुमति दी क्योंकि कार्य मंत्रणा समिति ने "बाबरी मस्जिद मामले के शीघ्र निपटारे और लिब्रहान कमीशन रिपोर्ट को पटल पर रखे जाने" के मुद्दे को चर्चा के लिए पहले ही अभिनिर्धारित कर लिया था। कुछ सदस्य इस मुद्दे पर बोले जिस पर संसदीय कार्य राज्य मंत्री

ने उत्तर दिया। इस प्रक्रिया में पूरा प्रश्नों का समय समाप्त हो गया और इसलिए, मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्न नहीं पूछे जा सके।[51]

17 दिसंबर, 2009 को विपक्ष के नेता ने सभापति से प्रश्न के समय को निलंबित करने का अनुरोध किया। सभापति ने उनसे पूछा कि क्या वह इस मामले पर कुछ कहना चाहते थे। जब उन्होंने 'हां' कहा, तो सभापति ने उन्हें बोलने की अनुमति प्रदान की। दो अन्य सदस्यों ने भी बोलने की अपनी इच्छा जाहिर की और सभापति द्वारा उनको ऐसा करने संबंधी उनके अनुरोध को स्वीकार कर लिया गया। तब सभापति ने बताया कि सरकार उचित समय पर इसका उत्तर देगी और उसके पश्चात् "प्रश्नों का समय" जारी रहा।[52]

ऐसे कुछ मामले जिनमें "प्रश्नों का समय" निलम्बित किये जाने का अनुरोध किया गया था, किन्तु उसे स्वीकार नहीं किया गया था, नीचे दिये गये हैं:

कच्छ अधिकरण पंचाट: सभापति ने सूचित किया था कि प्रधान मंत्री उक्त मामले पर वक्तव्य देंगे और उसके बाद उस पर चर्चा की जायेगी।[53]

उत्तर प्रदेश में अध्यापकों की हड़ताल: सभापति ने विनिर्णय दिया कि वह प्रश्नों के समय को निलम्बित करने के लिए तैयार नहीं हैं और प्रश्न जारी रहने चाहिए।[54]

इलाहाबाद जेल में छात्रों और अध्यापकों पर लाठी चार्ज: सभापति ने सूचित किया कि उक्त विषय पर "ध्यान दिलाने की सूचना" स्वीकार कर ली गई है और उस पर अगले दिन चर्चा की जायेगी।[55]

कुछ सदस्यों ने बोफोर्स तोपों की खरीद के मामले में बिचौलियों की उपस्थिति और दलाली की अदायगी के बारे में प्रधानमंत्री द्वारा राज्य सभा में कथित रूप से जानबूझकर दिये गये झूठे और गुमराह करने वाले वक्तव्य के लिए उनके विरुद्ध विशेषाधिकार भंग की सूचना पर चर्चा करने के लिए प्रश्नों के समय को निलंबित किए जाने की सूचनाएं दी थीं। सदस्यों को सुनने के पश्चात उपसभापति ने विनिर्णय दिया था कि इस प्रयोनार्थ "प्रश्नों का समय" निलंबित नहीं किया जा सकता है।[56]

श्री राजीव गांधी के कथित हत्यारों का बच निकलना : सभापति ने टिप्पणी की थी कि प्रश्नों के समय को अन्य सभी कार्यों से अधिक प्राथमिकता दी जाएगी। यदि यह इच्छा व्यक्त की जाती है कि प्रश्नों के समय को न लिया जाए तो इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाना चाहिए और यदि सदन ऐसा चाहता है तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी।[57]

अयोध्या का मामला : जब कुछ सदस्यों ने प्रश्नों के समय को निलंबित किए जाने का प्रस्ताव उपस्थित करने की मांग की तो सदन के नेता ने उनसे अनुरोध किया कि वे इस मामले पर पूर्ववर्ती दिवस को हुई चर्चा को ध्यान में रखते हुए इसके लिए जोर न दें। सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की जिसके पश्चात् प्रश्नों के समय की कार्यवाही जारी रही :

> मैं यह कहना चाहूंगा कि प्रश्नों का निलम्बन, एक बहुत ही गम्भीर मामला है जिससे समूचे सदन, सदन के प्रत्येक सदस्य विशेषकर, इस सदन में पीछे बैठने वाले सदस्यों के हित प्रभावित होते हैं। जैसाकि आप जानते हैं कि पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में एक निर्णय लिया गया था कि प्रश्नों के समय को कभी भी निलम्बित नहीं किया जाएगा। अत: मैं आपसे अनुरोध करना चाहूंगा कि इस मामले पर पैंतालीस मिनट के पश्चात् चर्चा की जाए जैसा कि माननीय गृह मंत्री ने सुझाव दिया है। अब हमें प्रश्नों के समय की कार्यवाही को आगे बढ़ाना चाहिए। मैं नहीं समझता कि अगले चालीस मिनट में कोई आपात स्थिति पैदा हो जाएगी। प्रश्न-काल की कार्यवाही को आगे बढ़ाने में ही समूचे सदन का हित है।[58]

कोयला घोटाला : जब एक सदस्य ने "प्रश्नों का समय" के निलम्बन की मांग की तो सभापति ने यह टिप्पणी की कि प्रश्न काल को निलंबित नहीं किया जा सकता है।[59]

ऐसे भी उदाहरण रहे हैं जब प्रश्नों के समय को निलम्बित किए जाने के प्रस्तावों पर मत लिया गया और वे अस्वीकृत हो गये।[60]

ऐसे भी दृष्टान्त रहे हैं जब प्रश्नों के समय को निलम्बित करने के लिए प्रस्ताव उपस्थित करने हेतु अनुमति प्रदान की गई और उन्हें स्वीकृत किया गया अथवा इसके लिए सर्वसम्मति बनी और अन्ध्र प्रदेश की घटनाओं,[61] कश्मीर की स्थिति,[62] में हम घटना (इस पर दो अवसरों पर चर्चा की गई और पहले अवसर पर "प्रश्नों का समय" को निलम्बित करने का प्रस्ताव मत-विभाजन द्वारा स्वीकृत हुआ),[63] विपक्षी दल के रूप में कांग्रेस (आई) की स्थिति,[64] खाड़ी युद्ध की स्थिति,[65] अयोध्या मामले (प्रश्नों के समय को निलम्बित करने के लिए उपस्थित किया गया प्रस्ताव मत-विभाजन द्वारा स्वीकृत हुआ),[66] अयोध्या घटना की भर्त्सना संबंधी संकल्प,[67] कश्मीर में 'चरार-ए-शरीफ' का विनाश,[68] पुरुषोत्तम एक्सप्रेस और कालिन्दी एक्सप्रेस रेल दुर्घटना,[69] संसद् पर आतंकवादी हमले से उत्पन्न स्थिति,[70] एक पूर्व मंत्री के संबंध में प्रकटन के संदर्भ में उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों में भ्रष्टाचार से संबंधित मामला[71] जैसे तात्कालिक मामलों पर विचार करने के लिए प्रश्नों के समय को निलंबित किया गया अथवा उसका परित्याग किया गया।

> एक बार, आन्ध्र प्रदेश में किसानों पर गोली चलाए जाने की घटना पर चर्चा करने के लिए प्रश्नों के समय को निलंबित किए जाने के प्रस्ताव को उपस्थित करने हेतु सहमति दे दी गई थी। किन्तु सूचना देने वाले सदस्य ने प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया और प्रश्नों के समय की कार्यवाही यथावत् जारी रही।[72]
>
> एक अन्य अवसर पर एक सदस्य को सभापति द्वारा "प्रश्नों का समय" के निलंबन का प्रस्ताव लाने की अनुमति दी गई। इस प्रस्ताव पर मध्याह्न 12.00 बजे तक मतदान नहीं हो सका। जब सदस्य द्वारा मतदान पर जोर दिया गया तो सभापीठ ने यह विनिर्णय दिया कि चूंकि प्रश्नों का समय मध्याह्न 12.00 बजे तक समाप्त हो गया है, इसलिए यह प्रस्ताव निष्फल हो गया है।[73]
>
> एक अन्य अवसर पर, सभापति ने विपक्ष के नेता द्वारा "प्रश्नों का समय" को निलंबित करने की सूचना को स्वीकार किया ताकि सभा में लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, 2011 पर चर्चा की जा सके।[74]

कई बार ऐसा हुआ है कि प्रश्नों के समय का औपचारिक या अनौपचारिक रूप से तो परित्याग नहीं किया गया किन्तु अव्यवस्था, हो-हल्ला या प्रश्नों के पूरे समय के दौरान सदस्यों के कतिपय मामलों के बारे में चर्चा का अनुरोध करते रहने या सभापीठ से प्रश्नों के समय को निलंबित करने का अनुरोध करते रहने के कारण प्रश्नों को मौखिक उत्तर के लिए नहीं लिया जा सका या सदन को बार-बार अथवा प्रश्नों के समय के बाद तक स्थगित करना पड़ा। ऐसे कुछ मामले जिनकी वजह से प्रश्नों को नहीं लिया जा सका, नीचे दिए गये है:

> मंत्रियों/मंत्रालयों के नये नाम;[75] एक महिला सदस्य को गिरफ्तार और निरुद्ध किए जाने;[76] दिल्ली मे जल-संकट;[77] महाराष्ट्र में कतिपय न्यासों को आयकर से छूट दिए जाने में हुई अनियमितताएं;[78] जम्मू और कश्मीर की स्थिति;[79] बिहार विधान सभा के चुनावों को स्थगित किया जाना;[80] बिहार विधान सभा के चुनावों की तारीख बदला जाना;[81] गया में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल द्वारा महिलाओं पर अत्याचार किया जाना;[82] बिहार में राष्ट्रपति शासन लागू किया जाना;[83] अपराधियों और राजनेताओं के बीच अन्तर्संबंधों के संबंध में वोहरा समिति का प्रतिवेदन;[84] दूर संचार नीति (175वां सत्र); हवाला

लेन-देन (176वां सत्र); तहलका डॉट कॉम रहस्योद्घाटन (192वां सत्र) तथा रक्षा उपकरणों की खरीद पर नियंत्रक महालेखापरीक्षक का प्रतिवेदन (194वां सत्र)। 2जी स्पेक्ट्रम आबंटन के संबंध में संयुक्त संसदीय समिति (जे.पी.सी.) गठित करने की मांग (221वां सत्र); कोयले के आबंटन और उत्पादन को बढ़ाने के संबंध में सी.ए.जी. के प्रतिवेदन (226वां सत्र); मल्टी ब्रांड रिटेल में एफ.डी.आई. और सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण का उपबंध करने वाला संविधान (संशोधन) विधेयक (227वां सत्र); विधि मंत्रालय द्वारा कोयला घोटाले पर सी.बी.आई. प्रतिवेदन की विधीक्षा किये जाने (228वां सत्र) और अलग तेलंगाना राज्य बनाये जाने का विरोध (230वां सत्र)।

एक अवसर पर जब एक सदस्य ने रक्षा उपकरणों की खरीद के संबंध में नियंत्रक महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन पर चर्चा करने के लिए प्रश्नों के समय को निलंबित करने की सूचना दी तो सभापति ने प्रश्नों का समय निलंबित किये बिना उसे वह मामला उठाने की अनुमति दे दी। जब कुछ सदस्यों ने "प्रश्नों के समय" के दौरान मामला उठाने पर आपत्ति की तब सभापति ने निर्णय दिया कि: "कृपया मेरी बात सुनिए। मैंने उन्हें मामला उठाने की अनुमति दी है, सभा के नेता उसका उत्तर देंगे और यदि उत्तर जारी रहता है तो उसके बाद "प्रश्नों का समय" आरम्भ होगा।"

चर्चा पैंतालीस मिनटों तक चलती रही। उसके पश्चात् तारांकित प्रश्न सं. 301 पुकारा गया और एक सदस्य ने प्रश्न पूछा और शोर-शराबे के बीच मंत्री ने उत्तर दिया। तथापि, शोरगुल के कारण सभा स्थगित हुई।[85]

209वें सत्र के दौरान कुछ सदस्यों ने कानपुर, उत्तर प्रदेश में डा. बी.आर. अंबेडकर की प्रतिमा को तोडे जाने का मुद्दा उठाने के लिए प्रश्नों के समय को निलंबित करने की मांग की। सभा ने उस कृत्य की भर्त्सना करते हुए एक संकल्प पारित किया और उस दिन मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्नों को नहीं लिया जा सका।[86]

210वें सत्र के दौरन, सभापति ने कुछ सदस्यों को भारत-अमरीका परमाणु करार के मुद्दे को उठाने की अनुमति दी जिसका उत्तर संसदीय कार्य मंत्री द्वारा दिया गया। तत्पश्चात्, मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्नों को लिया गया।[87]

211वें सत्र के दौरान, सभापति ने हैदराबाद में हुए दो बम विस्फोटों का उल्लेख किया और उस घटना के संबंध में कुछ सदस्यों को बोलने की अनुमति दी। तथापि, सदस्यों द्वारा व्यवधान के कारण सभा म.पू. 11.55 पर स्थगित हुई और मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्नों को नहीं लिया जा सका।[88]

228वें सत्र के दौरान, सभापति ने अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर का उल्लेख किया और इस अवसर पर सदस्यों को बोलने की अनुमति दी। उस दिन प्रश्नों के उत्तर नहीं दिये जा सके।[89]

प्रश्नों के समय का बढ़ाया जाना

सभा द्वारा प्रश्नों से पहले नवनिर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों द्वारा शपथ लिये जाने या प्रतिज्ञान किये जाने और हस्ताक्षर किये जाने तथा दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि और अभिनंदन/बधाई जैसे अन्य उल्लेख मंत्रियों के परिचय, नए सदस्यों के स्वागत आदि मदें ली जाती हैं। जब प्रश्नों का समय पहले घंटे में होता था तो शपथ ग्रहण, दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि आदि को "प्रश्नों का समय" के भाग के रूप में लिया जाता था। पहले 2014 को पूर्वावधि के दौरान ऐसे अनेक अवसर आए हैं जब दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि आदि मदों में पूरा पहला घंटा निकल गया। प्रश्नों के समय को पहले घंटे से आगे नहीं बढ़ाया जाता है जिसके अंत में सभापीठ द्वारा औपचारिक रूप से यह घोषणा की जाती है कि "प्रश्नों का समय

समाप्त हुआ"। सभापति द्वारा दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि, अभिनंदन आदि जैसी अन्य मदों पर खर्च हुए प्रश्न-काल के समय की क्षतिपूर्ति करने अथवा अगले प्रश्न को लेने[90] अथवा किसी अनुपूरक प्रश्न के उत्तर को पूरा करने के लिए प्रश्नों के समय को बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जाती है।

एक अवसर पर, प्रश्नों के समय के समाप्त हो जाने के बाद, जब एक सदस्य ने यह निवेदन किया कि अगला प्रश्न महत्वपूर्ण है, तो सभापति ने टिप्पणी की :

> "सामान्यत: पहला घंटा प्रश्नों के लिए होता है, अगला प्रश्न चाहे जो भी हो, हमें 12.00 बजे प्रश्नों को अवश्य समाप्त कर देना चाहिए।"[91]

सभापति द्वारा प्रश्नों के समय के समाप्त हो जाने की घोषणा किए जाने के बाद, एक सदस्य ने उस दिन की प्रश्न-सूची में दर्ज एक प्रश्न का उल्लेख किया जिसे सदस्य द्वारा प्रधानमंत्री से पूछा गया था और जिसका उत्तर गृह मंत्री द्वारा दिया जाना था। सभापति ने टिप्पणी की: "यह एक सुस्थापित परिपाटी है कि एक बार "प्रश्नों का समय" समाप्त हो जाने के बाद हम प्रश्नों का उल्लेख नहीं करते हैं।"[92]

"प्रश्नों का समय" समाप्त हो जाने के बाद, एक सदस्य ने एक अनुपूरक प्रश्न पूछना चाहा क्योंकि उसके प्रश्न का केवल आधा उत्तर दिया गया था। सभापति ने प्रश्नों के समय के समाप्त हो जाने के बाद और अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी।[93]

एक बार, प्रश्नों के समय के दौरान हिन्दी में मंत्रियों के पदनामों के सबंध में कुछ मुद्दे उठाए गए। उन मुद्दों पर प्रश्नों का सम्पूर्ण समय खर्च हो गया और कोई भी प्रश्न नहीं लिया जा सका। एक सदस्य ने सुझाव दिया कि नियम 38 के अधीन, सभापति प्रश्नों के समय को जारी रख सकते हैं। सभापति इस पर सहमत नहीं हुए।[94]

प्रश्नों का समय समाप्त होने की घोषणा किए जाने के बाद यह निवेदन किया गया कि मंत्री महोदय को प्रश्नों के समय के दौरान पूछे गये एक अनुपूरक प्रश्न का उत्तर देने की अनुमति दी जाए। सभापीठ ने इसकी अनमति नहीं दी। तथापि, बाद में दिन में मंत्री महोदय को एक वक्तव्य देने की अनुमति दी गई।[95] अगले दिन सभापति ने निम्नलिखित विनिर्णय दिया :

> "...सामान्यत: प्रश्नों के समय की अवधि गैर-सरकारी सदस्य द्वारा चाही गई चर्चा को जारी रखने के प्रयोजन से अथवा सरकार द्वारा तथ्यों को स्पष्ट करने के लिए नहीं बढ़ाई जानी चाहिए। निस्सन्देह, मंत्रियों को सदन में आने और सभापीठ की अनुमति से उद्घोषणा करने अथवा सरकारी वक्तव्य देने अथवा स्पष्टीकरण देने अथवा उनके विरुद्ध लगाए गए किसी आरोप के खंडन का अधिकार प्राप्त है। यह कार्य सदन की बैठक के दौरान किया जाना चाहिए भले ही वह मूल आरोप "प्रश्नों के समय" के दौरान लगाया गया हो। इसी तरह, गैर-सरकारी सदस्यों के पास ऐसे मुद्दों पर आगे चर्चा कराए जाने की मांग करने के उपाय हैं जिन्हें वे समझते हैं कि वे प्रश्नों के समय के दौरान समुचित रूप से नहीं उठाए गये हैं।"[96]

प्रश्नकाल के दौरान सदस्यों ने लगभग पैंतालीस मिनट तक बिहार की घटनाओं के संबंध में मामला उठाया और केवल दो प्रश्न ही लिए जा सके। "प्रश्नों का समय" समाप्त होने के बाद कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया कि प्रश्नों के समय को आधा घंटा बढ़ा दिया जाना चाहिए ताकि प्रश्न-सूची में कर्मचारियों के उत्पीड़न के संबंध में दर्ज एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर चर्चा की जा सके। सभापति ने इसकी अनुमति नहीं दी।[97]

एक अवसर पर शपथ लेने और दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने में प्रश्नों का संपूर्ण समय लग गया। एक सदस्य ने सुझाव दिया कि औद्योगिक एककों के बंद किए जाने, जोकि तारांकित प्रश्नों की सूची में चौदहवां प्रश्न था, के संबंध में चर्चा किए जाने के लिए प्रश्नों के समय को एक घंटा बढ़ा दिया जाना चाहिए। सभापति ने टिप्पणी की कि वह प्रश्नों के समय को नहीं बढ़ा सकते हैं, यही परिपाटी है।[98]

प्रश्नों का समय समाप्त होने की घोषणा किए जाने के बाद एक सदस्य ने अनुपूरक प्रश्न पूछना जारी रखा किन्तु सभापीठ ने घोषणा की कि मंत्री जी उसका उत्तर नहीं दे सकते हैं क्योंकि प्रश्नों का समय समाप्त हो गया है।[99]

अनेक अवसरों पर जब मंत्रियों ने पहले पूछे गये प्रश्नों के उत्तरों को पूरा करना चाहा तो सभापति ने ये टिप्पणियां करते हुए इसकी अनुमति नहीं दी, "अब मंत्री जी उत्तर नहीं देंगे" अथवा "प्रश्नों का समय समाप्त हो जाने के बाद मंत्री महोदय भी उत्तर देना जारी नही रख सकते हैं"[100]

सभापति द्वारा "प्रश्नों के समय" को समाप्त घोषित किये जाने के पश्चात् मंत्री ने कहा, "महोदय, मैं इसमें एक बात जोड़ना चाहता हूं।" सभापति ने कहा, "आप ऐसा नहीं कर सकते।"[101] एक अन्य अवसर पर सभापति ने दो बार यह घोषणा की कि प्रश्नों का समय समाप्त हुआ जब मंत्री ने यह कहा कि वह स्पष्टीकरण देना चाहती हैं तो सभापति ने कहा, "जी नहीं" और तीसरी बार यह घोषणा करते हुए कि प्रश्नों का समय समाप्त हुआ, "प्रश्नों का समय" समाप्त किया।[102]

जब प्रधान मंत्री एक प्रश्न का उत्तर दे रहे थे और उन्होंने अपना उत्तर पूरा नहीं किया था तब सभापति ने घोषणा की कि प्रश्नों का समय समाप्त हुआ। कुछ सदस्यों ने यह मांग की कि प्रधान मंत्री को अपना वक्तव्य पूरा करने की अनुमति दी जानी चाहिए। सभापति इससे सहमत नहीं हुए।[103]

कुछेक अवसरों पर मंत्रियों को प्रश्न काल समाप्त हो जाने के पश्चात् अनुपूरक प्रश्नों का उत्तर देने अथवा अपना उत्तर पूरा करने की अनुमति प्रदान की गई जिसके परिणामस्वरूप इस प्रयोजनार्थ प्रश्नों के समय को कुछ मिनटों के लिए बढ़ाना पड़ा।[104]

जब सभापति ने यह घोषणा की कि प्रश्नों का समय समाप्त हुआ तब कुछेक सदस्यों ने सुझाव दिया कि मंत्री महोदय को उत्तर पूरा करने की अनुमति दी जानी चाहिए। सभापति ने (मंत्री महोदय को संबोधित करते हुए) टिप्पणी की, "यदि आप मात्र दो-तीन मिनट का समय लेंगे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" तत्पश्चात् मंत्री महोदय ने अपना उत्तर दो मिनट में पूरा किया।[105]

प्रश्नों का समय समाप्त होने की घोषणा किये जाने के पश्चात्, इसे पांडिचेरी लाइसेंस मामले से संबंधित एक प्रश्न पर अनेक औचित्य प्रश्न उठाये जाने के कारण अठारह मिनट के लिए बढ़ाया गया था। "प्रश्नों का समय" केवल तभी समाप्त घोषित किया गया जब उपसभापति ने औचित्य प्रश्न का निपटान कर लिया।[106]

उपसभापति ने "प्रश्नों का समय" को समाप्त घोषित करते समय संबंधित मंत्री को सुझाव दिया कि वह उन सदस्यों को अपने कार्यालय में बुलाएं और उनके साथ विचार-विमर्श करें जिन्होंने यह प्रश्न पूछे थे। तत्पश्चात्, मंत्री महोदय ने अनुपूरक प्रश्न का उत्तर दिया।[107]

एक अवसर पर सभापति ने टिप्पणी की : "प्रश्नों का समय समाप्त हो गया है किन्तु उत्तर देना जारी रखें।" तत्पश्चात्, प्रधान मंत्री ने उत्तर पूरा किया। जब एक सदस्य ने यह सुझाव दिया कि उस दिन "प्रश्नों का समय" को बढ़ा दिया जाना चाहिए तब सभापति ने ऐसा करने से मना कर दिया और पुन: यह घोषणा की कि "प्रश्नों का समय" समाप्त हुआ।[108]

निर्धारित समय से पूर्व प्रश्नों का समय समाप्त होना

जबकि अनेक अवसरों पर सदस्यों ने प्रश्नों के समय को बढ़ाए जाने की मांग की है और सामान्यत: सभापीठ इस मांग से सहमत नहीं हुई है अथवा जैसाकि ऊपर उल्लिखित है, बहुत कम अवसरों पर इससे सहमत हुई है, अनेक ऐसे अवसर (यद्यपि विरल रूप से) भी आए हैं जब प्रश्न सूची के समाप्त हो जाने के कारण प्रश्नों का समय पहले ही समाप्त हो गया। उदाहरणार्थ, एक बार सभापति ने टिप्पणी की थी: "यह एक ऐसा अवसर

है जब हमने प्रश्नों का समय समाप्त होने से पूर्व ही प्रश्न समाप्त कर लिए हैं"[109] एक अन्य अवसर पर सभापति ने घोषणा की: "अब और कोई प्रश्न शेष नहीं है। यद्यपि प्रश्नों का समय अभी समाप्त नहीं हुआ है किन्तु प्रश्न सूची समाप्त हो गई है, वस्तुत: यह एक ऐतिहासिक घटना है।"[110] फिर, एक बार प्रश्नों का समय दो मिनट पूर्व ही समाप्त हो गया जबकि एक अन्य अवसर पर यह पांच मिनट पूर्व समाप्त हो गया था।[111]

प्रश्नों के समय के दौरान औचित्य-प्रश्न

सामान्यत: प्रश्नों के समय के दौरान कोई औचित्य-प्रश्न उठाने की अनुमति नही दी जाती है। इस प्रतिबंध के पीछे दो कारण प्रतीत होते हैं, पहला कारण यह है कि "प्रश्नों का समय" सामान्यत: प्रश्न पूछने और उनके उत्तर देने के लिए ही होता है। दूसरा कारण यह है कि यदि प्रश्नों का समय के दौरान कोई औचित्य-प्रश्न पूछने की अनुमति दे दी जाए तो इससे प्रश्नों और उत्तरों के प्रयोजन के लिए उपलब्ध सीमित समय के दौरान प्रश्नों और उत्तरों की प्रगति रुक सकती है और फलत: वह समय बरबाद हो सकता है। जैसाकि सभापति ने एक बार यह टिप्पणी की थी: "औचित्य-प्रश्न उठाकर हमें प्रश्नों के समय में कटौती नहीं करनी चाहिए।"[112] एक अन्य अवसर पर सभापति ने कहा: "इस सदन के एक नियम है...प्रश्नों का समय के दौरान कोई औचित्य-प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।"[113]

> एक बार एक सदस्य ने सभापति के ध्यान में यह बात लाने के लिए प्रश्नों के समय के दौरान एक औचित्य-प्रश्न उठाया था कि सभापति का यह विनिर्णय होने के बावजूद कि प्रश्नों को समय के दौरान किसी भी सदस्य को औचित्य-प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं दी जाएगी, सभापति ने 2-3 सदस्यों को औचित्य प्रश्न उठाने की अनुमति दे दी है। सदस्य इस बारे में सही स्थिति जानना चाहता था। इस पर सभापति ने यह टिप्पणी की थी:
>
>> दुर्भाग्य से सदन के सभी पक्षों की ओर से बार-बार औचित्य-प्रश्न उठाये जा रहे हैं। यह दुर्भाग्य की बात है। यदि हम वास्तव में चाहते हैं कि अधिक से अधिक प्रश्नों के उत्तर दिए जाएं तो हमें अपने मन में यह निश्चय अवश्य कर लेना चाहिए और ईमानदारी से यह सोच लेना चाहिए कि हम प्रश्नों के समय के दौरान कोई औचित्य-प्रश्न नहीं उठाएंगे।[114]
>
> एक अन्य अवसर पर जब कुछ सदस्य औचित्य-प्रश्न उठा रहे थे तब एक अन्य सदस्य ने यह सुझाव दिया कि ऐसे समय पर सभापति को यह घोषणा करनी चाहिए कि प्रश्नों के समय के दौरान कोई औचित्य प्रश्न-नहीं किया जाएगा। क्योंकि इससे प्रश्नों का समय अनावश्यक रूप से बरबाद हो रहा है। इस पर सभापति ने यह टिप्पणी की थी:
>
> मैं बार-बार कह चुका हूं कि इस बारे में नियम यह है कि जब तक कोई बहुत ही असाधारण मामला न हो तब तक प्रश्नों के समय के दौरान कोई औचित्य-प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिए और औचित्य-प्रश्न की आड़ में कभी भी वाद-विवाद की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।[115]
>
> एक बार जब एक सदस्य ने मंत्रियों द्वारा सदन को दी गई अभिकथित रूप से गलत और भ्रामक सूचना के संबंध में औचित्य-प्रश्न उठाने का प्रयत्न किया था तब सभापति ने यह टिप्पणी की थी:
>
>> मैं पहले ही कह चुका हूं कि जब तक प्रक्रिया का कोई स्पष्टत: अतिक्रमण न हो या कोई असाधारण मुद्दा न हो तब तक प्रश्नों के समय के दौरान कोई औचित्य-प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिये।

> इस पर जब एक सदस्य ने यह पूछा कि सदस्य की बात सुने बिना सभापति इस बात का विनिश्चय कैसे कर सकता है कि कोई असाधारण मुद्दा है अथवा नहीं, तब सभापति ने यह टिप्पणी की थी :
>
> > सदस्य ने पहले ही कहा है कि यह औचित्य प्रश्न, मंत्रियों द्वारा दिए गए भ्रामक उत्तरों से संबंधित है। भ्रामक उत्तरों या गलत उत्तरों की वजह से औचित्य प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है।
>
> तथापि, सदस्य द्वारा लगातार आग्रह किए जाने के कारण सभापति ने सदस्य को अपनी बात कहने की अनुमति दे दी ताकि सभापति "यह देख सके कि उसमें असाधारण बात क्या थी।"[116]
>
> एक सदस्य ने प्रधान मंत्री द्वारा एक प्रश्न के दिये गये उत्तर को चुनौती देने के लिए औचित्य-प्रश्न उठाया। इस पर सभापति ने यह विनिर्णय दिया कि सदस्य को प्रश्नों के समय के दौरान किसी गलत वक्तव्य को चुनौती देने का हक नहीं है बल्कि वह किसी अन्य मौके पर चुनौती दे सकते हैं। अगले दिन सदस्य ने उक्त मामला उठाया और प्रधानमंत्री ने उसका स्पष्टीकरण दिया।[117]

तथापि, जैसाकि सभापति ने टिप्पणी की थी, कुछ असाधारण मुद्दे हो सकते हैं या प्रक्रिया के अतिक्रमण के मामले हो सकते हैं जिनमें प्रश्नों के समय के दौरान भी औचित्य-प्रश्न उठाने की अनुमति देनी पड़ सकती है और ऐसे अवसर बहुत ही कम आए हैं।[118] कई बार निम्नलिखित के संबंध में औचित्य-प्रश्न उठाने की अनुमति दी गई है: (i) प्रश्नों के समय के आरंभ होने से पहले नियम 51 के संदर्भ में प्रश्नों की ग्राह्यता;[119] (ii) प्रश्नों के कवरेज में कटौती;[120] (iii) प्रश्नों के समय के दौरान और उसके पश्चात् किसी प्रश्न को स्थगित करना।[121]

> एक बार सभापति ने एक सदस्य को प्रश्नों के समय के आरम्भ होने पर "सरकार के संवैधानिक और नैतिक विधिमान्यता" के बारे में औचित्य-प्रश्न उठाने की अनुमति दी थी। सदस्य का दावा था कि सरकार अल्पमत में है। सभापति ने यह कहते हुए औचित्य-प्रश्न अस्वीकार कर दिया कि प्रधान मंत्री और उसकी सरकार को नियुक्त करने की शक्ति राष्ट्रपति के पास है और सरकार लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है।[122]
>
> पांडिचेरी लाइसेंस केस से संबंधित प्रश्न (तारांकित प्रश्न 730) के बारे में अनेक औचित्य-प्रश्न उठाने की अनुमति दी गई थी। प्रश्नों के समय को अठारह मिनट बढ़ाया गया था और प्रश्नों का समय उपसभापति के इस निदेश के साथ समाप्त हुआ था कि उक्त प्रश्न के उत्तर में जिन ससंद सदस्यों के नाम दिए गए हैं, सरकार उनके हस्ताक्षरों का सत्यापन करे और सदन को सूचित करें।[123]
>
> इस मामले पर कि क्या कोई मंत्री राज्य सभा की सदस्यता से अवकाश ग्रहण कर लेने के पश्चात् किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए सक्षम है, प्रश्नों के समय के दौरान एक औचित्य-प्रश्न उठाने की अनुमति दी गई थी।[124]

कुछ आकस्मिकताओं में प्रश्नों का निपटारा

ऐसी बहुत-सी आकस्मिकताएं या परिस्थितियां पैदा हो सकती हैं जब प्रश्नों के समय के निलंबन, बैठक के रद्द होने, किसी सदस्य या उच्च पदस्थ व्यक्ति के निधन के कारण सदन के स्थगित होने, शोर-शराबा या अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होने, सदस्यों द्वारा अन्य मामलों के संबंध में उल्लेख किए जाने, आदि जैसे विभिन्न कारणों की वजह से प्रश्नों का समय नहीं हो पाता है।

जब शपथ/दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि आदि मदों पर प्रश्नों का पूरा समय व्यतीत हो जाने के कारण प्रश्नों को नहीं लिया जाता है तब उस दिवस के लिए दर्ज सभी तारांकित प्रश्नों को अतारांकित प्रश्न समझा जाता है और उनके उत्तरों को, अतारांकित प्रश्नों के उत्तरों के साथ, उस दिवस के वाद-विवाद में मुद्रित कर दिया जाता है।[125]

जब दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के पश्चात् दिवंगत के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए सदन कोई अन्य कार्य किए बिना स्थगित हो जाता है तब उस दिवस की प्रश्नों की सूची में दर्ज तारांकित प्रश्नों को सदन की अगली बैठक के लिए अतारांकित प्रश्न समझा जाता है और उनके उत्तरों को सदन के पटल पर रखा गया मान लिया जाता है और उन्हें तद्नुसार अगली बैठक के मुद्रित वाद-विवाद में 'सम्मिलित' और निर्दिष्ट किया जाता है। सदन में अलग से कोई घोषणा नहीं की जाती है।[126]

> एक बार एक सदस्य के निधन के कारण सदन कोई कार्य सम्पन्न किए बिना ही स्थगित हो गया था। उस दिवस के लिए स्वीकृत प्रश्नों के उत्तर अगले दिन सभा पटल पर नहीं रखे गए। अगला दिन शुक्रवार था और उस दिन के लिए "प्रश्नों का समय" नियत नहीं था परन्तु ये उत्तर आगामी सोमवार को सभा पटल पर रखे गये थे।[127]
>
> एक बार सभापति ने सूचित किया कि पूर्ववर्ती दिवस की कार्यावलि में दर्ज प्रश्नों तथा अल्प सूचना प्रश्न के उत्तरों को उसी दिन सभा पटल पर रखा गया समझा जाएगा। पूर्ववर्ती दिवस को सदन, श्री फिरोज गांधी के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए, बिना कोई कार्य सम्पन्न किए ही स्थगित हो गया था।[128]
>
> तथापि, एक अवसर पर जब भूतवूर्व सभापति श्री एम. हिदायतुल्ला के प्रति सम्मान प्रकट करने हेतु उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने के पश्चात सदन को स्थगित कर दिया गया था तब उस दिन की प्रश्न-सूची में दर्ज प्रश्नों के उत्तरों को उसी दिन सभापटल पर रखा गया समझा गया जोकि सामान्य परिपाटी से हटकर था।[129]

उस अवस्था में जब दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने अथवा किसी अन्य कारणवश सदन प्रश्नों पर विचार किए बिना ही स्थगित हो जाता है और उसी दिन कुछ समय पश्चात् पुनः समवेत होता है तो प्रश्नों के उत्तरों को सभा पटल पर रख दिया गया समझा जाता है और उन्हें उसी दिन के वाद-विवाद में मुद्रित किया जाता है।

> औद्योगिक विकास मंत्रालय में राज्य मंत्री, श्री एम.बी. राणा के निधन पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने के पश्चात् सदन उसी दिन म.प. 5.30 पर पुनः समवेत होने के लिए स्थगित कर दिया गया था। प्रश्नों के उत्तरों को उस दिन के मुद्रित वाद-विवाद में दिवंगत को श्रद्धांजलि अर्पित करने से संबंधित कार्यवाही के तुरन्त बाद शामिल किया गया था।[130]

जब सदन की बैठक रद्द कर दी जाती है तो उस दिन के लिए सूची में दर्ज प्रश्नों के उत्तर सदन की अगली बैठक में सभा पटल पर रख दिये जाते हैं।[131]

> गुरु रविदास की जयन्ती के उपलक्ष्य में सदन की बैठक प्रारंभ होने के तत्काल बाद ही स्थगित कर दी गई। उस दिन के लिए सूची में दर्ज प्रश्नों के उत्तर अगले दिन सभापटल पर रखे गये थे।[132]
>
> 7 मार्च, 1991 की बैठक प्रधान मंत्री के त्यागपत्र और राष्ट्रपति के पत्र की प्रतियां सभापटल पर रखने के पश्चात् म.पू. 11.02 पर स्थगित कर दी गई थी। उस दिन के लिए सूची मे दर्ज प्रश्नों के उत्तर 11 मार्च, 1991 को जब सभा पुनः समवेत हुई, सभापटल पर रखे गये थे।[133]

राज्य सभा की शुक्रवार, 11 अगस्त और सोमवार, 14 अगस्त, 1995 के लिए निर्धारित बैठकों को रद्द कर दिए जाने के परिणामस्वरूप, इन दोनों दिनों के लिए सूची में दर्ज प्रश्नों को उनके उत्तरों सहित बुधवार, 16 अगस्त, 1995 को सभा पटल पर रखा गया था।[134]

तारांकित प्रश्न सं. 123 और 124 वित्त मंत्री को संबोधित थे। हालांकि वित्त मंत्री उत्तर देने के लिए तैयार थे लेकिन अस्वस्थता के कारण उन्हें चले जाने की अनुमति प्रदान कर दी गई। प्रश्नों के उत्तर सभा पटल पर रख दिये गये थे।[135]

जब कोई प्रस्ताव स्वीकार करके अथवा सर्वसम्मति से "प्रश्नों का समय" निलंबित कर दिया जाता है तब उस दिन के लिए सूची में दर्ज तारांकित प्रश्नों को अतारांकित प्रश्न समझ लिया जाता है और तत्संबंधित उत्तरों तथा अतारांकित प्रश्नों के उत्तरों को उसी दिन सभापटल पर रखा जाता है।[136] ऐसे प्रस्ताव के अस्वीकृत हो जाने और समय शेष रहने पर "प्रश्नों का समय" प्रारंभ हो जाता है।[137] यदि समय समाप्त हो जाता है तो तारांकित प्रश्नों को अतारांकित प्रश्न समझ लिया जाता है और सूची में दर्ज अतारांकित प्रश्नों के उत्तरों के साथ-साथ उनके उत्तरों को भी उसी दिन सभापटल पर रखा गया मान लिया जाता है।[138] यदि सदस्य प्रश्नों के समय को निलंबित करने हेतु निवेदन करते हैं और यह निवेदन प्रश्नों के सम्पूर्ण समय के दौरान किया जाता है तो उस दिन के लिए सूची में दर्ज प्रश्नों के उत्तर उसी दिन सभा पटल पर रख दिए जाते हैं।[139]

यदि प्रश्नों के समय के दौरान व्यवधान, अव्यवस्था इत्यादि के कारण सदन स्थगित किया जाता है तो उस दिन की सूची में दर्ज प्रश्नों के उत्तर उसी दिन सभापटल पर रख दिए गए समझ लिये जाते हैं।[140]

यदि सदस्य प्रश्न पूछने के बजाए अन्य मुद्दे उठाते हैं जिसमें प्रश्नों का संपूर्ण समय समाप्त हो जाता है तो सूची में दर्ज प्रश्नों के उत्तर उसी दिन सभा पटल पर रख दिये जाते हैं।[141]

24 मई, 1971 को "प्रश्नों का समय" प्रारंभ होते ही सदस्यों ने प्रश्न सूची के अंग्रेजी रूपांतर में मंत्रियों के पदनाम हिन्दी में मुद्रित किये जाने का एक मामला उठाया और प्रश्नों का संपूर्ण उसी बहस में समाप्त हो गया तब उस दिन की सूची में दर्ज सभी प्रश्नों के उत्तर उसी दिन सभा पटल पर रखे गये।[142]

जब किसी अन्य कार्य हेतु अधिक समय देने के लिए प्रश्नों के समय को विशेष रूप से छोड़ दिया जाता है तब उस दिन की सूची में दर्ज तारांकित प्रश्नों को अतारांकित प्रश्न मान लिया जाता हे और उनके उत्तरों को उसी दिन सभा पटल पर रख दिया जाता है।[143]

जब सत्र की समाप्ति से पूर्व सभा की बैठकें रद्द की जाती हैं अर्थात जब सत्र का शेष भाग रद्द किया जाता है अथवा दूसरे शब्दों में जब सत्र को पूर्व निर्धारित तिथि से पहले ही समाप्त कर दिया जाता है तो उन दिनों के लिए पहले से ही परिचालित प्रश्न-सूचियां और प्रश्नों की सूचनाएं व्यपगत हो जाती हैं।[144]

उपसभापति ने घोषणा की कि राज्य सभा 15 दिसंबर, 1961 को अनियत तिथि के लिए स्थगित होगी और सदन की 18 से 22 दिसंबर, 1961 के लिए नियत बैठकें रद्द कर दी गईं। इसलिए उन दिनों के लिए प्राप्त प्रश्नों की सूचनाएं व्यपगत हो गईं।[145]

राज्य सभा का 194वां सत्र 19 दिसंबर, 2001 से अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया तथा 20 और 21 दिसंबर, 2001 के लिए नियत बैठकें रद्द कर दी गईं। इसलिए, उन दिनों के लिए प्राप्त सूचनाएं व्यपगत हो गईं।[146]

राज्य सभा का 210वां सत्र 17 मई, 2007 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया तथा 18, 21 और 21 मई, 2007 के लिए नियत बैठकें रद्द हो गईं। इसलिए, उन दिनों के लिए प्राप्त सूचनाएं व्यपगत हो गईं।[147]

राज्य सभा का 211वां सत्र 10 सितंबर, 2007 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया तथा 11, 12, 13 और 14 सितंबर, 2007 के लिए नियत बैठकें रद्द हो गईं। इसलिए, उन दिनों के लिए प्राप्त सूचनाएं व्यपगत हो गईं।[148]

213वं सत्र के स्थगन के परिणामस्वरूप सभा 6 मई, 2008 को अनिश्चितकाल के लिए स्थगित हो गई । 7, 8 और 9 मई, 2007 के लिए नियत बैठकें रद्द कर दी गईं तथा उन दिनों के लिए प्राप्त प्रश्नों की सूचनाएं व्यपगत हो गईं।[149]

राज्य सभा का 228वां सत्र 8 मई 2013 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया तथा 9 और 10 मई, 2013 के लिए नियत बैठकें रद्द हो गईं। इसलिए, उन दिनों के लिए प्राप्त प्रश्नों की सूचनाएं रद्द हो गईं।[150]

राज्य सभा का 230वां सत्र (प्रथम भाग) 18 दिसंबर, 2013 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया तथा 19 और 20 दिसंबर, 2013 के लिए नियत बैठकें रद्द गईं। इसलिए, उन दिनों के लिए प्राप्त प्रश्नों की सूचनाएं व्यपगत हो गईं।[151]

जब कोई बैठक रद्द कर दी जाती है और सत्र के दौरान प्रश्नों के उस वर्ग की कोई अन्य बैठकें नहीं होती हैं तो सदन का सत्रावसान हो जाने पर प्रश्नों की सूचनाएं, यद्यपि वे प्रश्न-सूचियों में पहले से दर्ज होती है, व्यपगत हो जाती हैं।[152]

25 और 26 अगस्त, 1988 की बैठकें रद्द किए जाने के फलस्वरूप 25 अगस्त (वर्ग-IV) के लिए दी गई प्रश्नों की सूचनाएं 1 सितंबर, 1988 के लिए दी गईं समझी गईं। 26 अगस्त के लिए दी गईं सूचनाएं व्यपगत समझ ली गईं क्योंकि उस सत्र के दौरान (वर्ग-V) के प्रश्नों के लिए बाद में कोई दिन निर्धारित नहीं था।[153]

24 दिसंबर, 1993 की बैठक रद्द कर दी गई थी। यह घोषणा की गई कि उस दिन की प्रश्न-सूचियों में दर्ज प्रश्न व्यपगत समझे जाएं क्योंकि उस सत्र में उस वर्ग के प्रश्नों के उत्तर के लिए बाद में कोई दिन नहीं था। तथापि, सत्र की अवधि बढ़ा दी गई और प्रश्नों और उनके उत्तरों को बढ़ी हुई अवधि के प्रथम दिन (अर्थात् 29 दिसंबर, 1993) को सभापटल पर रख दिया जाना मान लिया गया।[154]

एक अवसर पर कार्य मंत्रणा समिति ने 16 जुलाई, 1991 को हुई अपनी बैठक में अन्य बातों के साथ-साथ यह सिफारिश की कि सदन की सोमवार, 22 जुलाई, 1991 के लिए निर्धारित बैठक (जो मुहर्रम के उपलक्ष्य में होने वाले अवकाश से पहले पड़ती थी) रद्द कर दी जाए और उस दिन के लिए दी गई प्रश्नों की सूचनाएं व्यपगत समझी जाएं।[155] तद्नुसार, सदन की अगली बैठक अर्थात् 24 जुलाई, 1991 की बैठक की कार्यवाही में एक पाद-टिप्पण सम्मिलित किया गया।[156]

एक अन्य अवसर पर, मंत्रिपरिषद् में विश्वास प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए लोक सभा में 15, 16 और 17 अप्रैल के दिन निर्धारित किये गये थे इसलिए सभा के नेता ने सुझाव दिया कि सभा को 19 अप्रैल, 1999 तक स्थगित कर दिया जाए। विपक्ष के नेता इस सुझाव पर सहमत थे तब सभा का मत जानने के पश्चात् सभापति ने सभा की बैठक स्थगित कर दी। विश्वास प्रस्ताव

17 अप्रैल, 1999 को लोक सभा में अस्वीकृत हो गया। तथापि, 15, 16 और 19 तारीख के लिए निर्धारित प्रश्नों के उत्तर सभा पटल पर रखे गये मान लिये गये। 20 अप्रैल, 1999 तथा उसके बाद की मुद्रित/परिचालित प्रश्न-सूचियां तथा प्राप्त हुई प्रश्न की सूचनाएं रद्द/व्यपगत मान ली गईं।[157] इस आशय का एक कार्यालय-ज्ञापन भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों के संसद् अनुभाग को भी भेजा गया था।

214वां सत्र 17 अक्टूबर, 2008 से 21 नवंबर, 2008 तक नियत था। सभा 24 अक्टूबर, 2008 को 10 दिसंबर, 2008 को पुन: समवेत होने के लिए स्थगित हुई। सत्र की शेष तिथियों के लिए पहले से प्राप्त प्रश्नों की सूचनाओं को अग्रेणित किया गया तथा 10 दिसंबर, 2008 को जब सभा ने अपनी बैठक पुन: आरंभ की तो उत्तरवर्ती तिथियों पर उत्तर दिए जाने के लिए स्वीकार किया। तथापि, 27 और 29 अक्टूबर, 2008 के लिए पहले ही परिचालित की जा चुकी प्रश्न सूचियों को रद्द कर दिया गया।[158]

सदस्यों द्वारा प्रश्नों की सूचनाएं

जब तक सभापति अन्यथा निदेश न दें, किसी सदस्य द्वारा प्रश्न के लिए कम-से-कम पूरे पन्द्रह दिन की सूचना देना अपेक्षित है। 4 जुलाई, 1996 को सभापति ने यह निदेश भी दिया कि सूचना-अवधि पूरे इक्कीस दिन से अधिक नहीं होनी चाहिए और उक्त निदेश 5 जुलाई, 1996 से प्रभावी हो गया है।[159] लेकिन सदस्यों को हो रही अत्यधिक असुविधा को ध्यान में रखते हुए सभापति ने निदेश पर पुन: विचार किया और 5 मई, 1998 से उस प्रतिबंध को समाप्त करने का निर्णय लिया।[160] पूरे पन्द्रह दिन की गणना करने में दोनों तारीखों को, जिस तारीख को सूचना सचिवालय में प्राप्त होती है और जिस तारीख को उत्तर के लिए प्रश्न को, यदि उसे गृहीत कर लिया जाए, रखा जाएगा, छोड़ दिया जाता है।

पहले प्रश्नों के लिए सूचना की अवधि पूरे दस दिन थी जिसे सामान्य प्रयोजन समिति की सिफारिश पर सभापति द्वारा जारी किए गए निदेश के अनुसार बढ़ाकर पन्द्रह दिन कर दिया गया।[161] बाद में, नियम समिति ने नियम 39 में विधिवत् संशोधन किए जाने की सिफारिश की।[162] संशोधन, 30 मई, 1995 को सदन द्वारा स्वीकृत रूप से 15 जून, 1995 (174वां सत्र) से प्रवृत्त हुआ।[163]

जब सत्र के आमंत्रण और आरंभ के बीच समय अंतराल पूरे 15 दिनों से कम होता है, सभापति नियम 39 के अधीन अपनी शक्ति का उपयोग करके पूरे 15 दिनों की अवधि में छूट दे सकते हैं।[164]

निदेश जारी किए जाने के बाद, 173वें सत्र के दौरान जब प्रश्नों के लिए आवंटित पहले दिन अर्थात् 14 फरवरी, 1995 के लिए सूचनाओं हेतु निर्धारित समय पन्द्रह दिन से कम हो गया तो सभापति ने सूचनाएं देने की अवधि को कम करके पूरे दस दिन कर दिया। सभापति ने 175वें सत्र के दौरान, 27,28, 29 और 30 नवंबर, तथा 1 दिसंबर, 1995 के लिए प्रश्नों की सूचनाएं देने की अवधि को भी पूरे पन्द्रह दिन से घटाकर क्रमश: पूरे दस, ग्यारह, बारह, तेरह और चौदह दिन कर दिया।[165]

224वें सत्र का आमंत्रण जारी किए जाने के बाद, जब पहली दो बैठकों अर्थात् 22 और 23 नवंबर, 2011 के लिए पूरे पन्द्रह दिनों की अवधि कम रह गई, सभापति ने 22 और 23 नवंबर,

2011 के लिए प्रश्नों की सूचनाएं देने हेतु सूचना अवधि को क्रमश: 13 और 14 दिन का कर दिया। तद्नुसार, 22 और 23 नवंबर, 2011 को उत्तर दिये जाने के लिए प्रश्नों की सूची में सदस्यों के प्रश्नों सहित परस्पर वरीयता के निर्धारण हेतु बैलट 24 नवंबर, 2011 की बैठक हेतु बैलट के साथ-साथ 8 नवंबर, 2011 को हुआ।[166]

226वें सत्र के आमंत्रण जारी किए जाने के बाद पन्द्रह दिवसों का अंतराल कम रहने पर, सभापति ने 8 और 9 अगस्त, 2012 के लिए नियत प्रश्नों की सूचनाएं देने के उद्देश्य से सूचना अवधि को क्रमश: 13 और 14 दिन कर दिया। तद्नुसार, 8 और 9 अगस्त, 2012 को उत्तर दिए जाने के लिए प्रश्नों की सूची में सदस्यों के प्रश्नों सहित परस्पर उनकी वरीयता के निर्धारण के लिए 25 जुलाई, 2012 को बैलट हुआ।[167]

228वें सत्र के आमंत्रण जारी किए जाने के बाद पूरे पन्द्रह दिनों का अंतराल कम रहने पर, सभापति ने 22 और 26 फरवरी, 2013 के लिए प्रश्नों की सूचनाएं देने के लिए सूचना अवधि को क्रमश: पूरे 10 और 14 दिन का कर दिया। तद्नुसार, 22 और 26 फरवरी, 2013 को उत्तर दिए जाने के लिए नियत प्रश्नों की सूची में सदस्यों के प्रश्नों सहित परस्पर उनकी वरीयता के निर्धारण के लिए 27 फरवरी, 2013 की बैठक के बैलट के साथ ही 11 फरवरी, 2013 को बैलट हुआ।[168]

229वें सत्र के आमंत्रण जारी किए जाने के बाद 5, 6 और 7 अगस्त, 2013 के लिए प्रश्नों की सूचनाएं देने हेतु समय अंतराल कम रहने पर सूचना अवधि को क्रमश: 12, 13 और 14 दिन का कर दिया गया। तद्नुसार, 5, 6 और 7 अगस्त, 2013 को उत्तर दिए जाने के लिए नियत प्रश्नों की सूची में सदस्यों के प्रश्नों सहित परस्पर उनकी वरीयता के निर्धारण के लिए 8 अगस्त, 2013 की बैठक के बैलट के साथ ही 23 जुलाई, 2013 को बैलट हुआ।[169]

सत्र के अंतिम दिनों के लिए दी गई प्रश्नों की सूचनाएं, जिनकी अपेक्षित सूचना-अवधि पूरी नहीं होती है तथा ऐसी सूचनाएं, जो सत्र के समाप्त हो जाने पर व्यपगत हो जाती हैं, सदस्यों को वापस कर दी जाती हैं।[170]

सदस्यों द्वारा दी गई प्रश्नों की सूचनाएं राज्य सभा में उनका कार्यकाल पूरा हो जाने के साथ ही व्यपगत हो जाती हैं चाहे सदस्य पुन: निर्वाचित होकर ही क्यों न आ जाएं। इस मामले में तब विस्तार से चर्चा की गई थी जब एक सदस्य का नाम अगले दिन की ध्यानाकर्षण सूची में से हटा दिया गया था क्योंकि वह पिछले दिन अवकाश ग्रहण कर चुका था। सभापति ने यह विनिर्णय दिया कि:

> मेरे विचार से श्री भूपेश गुप्त द्वारा दी गई सूचना उनकी सदस्यता समाप्त होने के साथ ही व्यपगत हो गई। जिस समय इस कार्यसूची में दर्ज मदों को लिया गया तब उनकी ओर से कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई थी।[171]

225वें सत्र के दौरान राज्य सभा के एक सदस्य का कार्यकाल 2 अप्रैल, 2012 को समाप्त हो गया। तथापि, सदस्य पुनर्निवाचित हुआ। उसके द्वारा दिए गए लिखित अनुरोध पर बजट सत्र के प्रथम चरण के दौरान उत्तर हेतु उसके द्वारा दी गई प्रश्नों की सूचनाओं को नई सूचनाएं मान ली गई।[172]

खालसा पंथ की त्रिशताब्दी मनाने के लिए 12 और 13 अप्रैल, 1999 के लिए निर्धारित सभा की बैठकें रद्द कर दी गई थीं। इन दिनों के लिए प्राप्त सूचनाओं पर क्रमश: वर्ग-I और वर्ग-II में होने वाली बाद की बैठकों के लिए विचार किया गया।[173]

जब 180वें सत्र के दूसरे भाग के दौरान, जोकि 21 अप्रैल, 1997 को आरंभ होना था, कांग्रेस द्वारा समर्थन वापस लेने के कारण लोक सभा में देवगौड़ा सरकार का बहुमत समाप्त हो गया था, तब मुद्रित/परिचालित की गईं प्रश्न-सूचियां तथा उक्त भाग के लिए प्राप्त हुईं प्रश्नों की सूचनाएं व्यपगत हुई मान ली गई थीं।[174]

इस दौरान, गुजराल सरकार ने शपथ ग्रहण की तब 180वें सत्र का तीसरा चरण 30 अप्रैल, 1997 से आरंभ होने के लिए निर्धारित किया गया। कुछ सदस्यों के अनुरोध पर, सत्र के दूसरे चरण के लिए सदस्यों द्वारा प्रश्नों के लिए दी गई सभी सूचनाओं को पूर्व बुलेटिन का अतिक्रमण करके पुन: लिया गया तथा तिथियों, समूहों तथा मंत्रियों के संबंध में उपयुक्त संशोधन किये जाने के बाद उन पर विचार किया गया।[175]

प्रश्नों की सूचनाएं प्राप्त करने की अंतिम तारीखें तथा प्रत्येक बैठक के बैलट की तारीख दर्शाने वाला एक चार्ट सदस्यों को "आमंत्रण" के साथ परिचालित किया जाता है। सत्र के प्रारंभ पर जारी किए जाने वाले संसदीय समाचार में भी प्रश्नों संबंधी प्रक्रिया के बारे में एक पैरा शामिल किया जाता है।

प्रश्नों की सूचना का रूप

सदस्य द्वारा प्रश्न की सूचना महासचिव को संबोधित करते हुए लिखित रूप में दी जाती है और प्रश्न के पाठ में (क) प्रश्न जिस मंत्री को संबोधित हो उसके अधिकारीय पद का नाम और (ख) वह तिथि जिसको कि प्रश्न उत्तर के लिए प्रश्न-सूची में रखवाने का विचार है का उल्लेख किया जाना अपेक्षित होता है।[176]

सदस्य को सूचना की विषय-वस्तु सहित अपने प्रश्नों को संबंधित मंत्रियों को सही-सही संबोधित करने में समर्थ बनाने के लिए सचिवालय द्वारा मंत्रिमंडल सचिवालय से एकत्र की गई जानकारी के आधार पर उन विषयों, जिनके लिए विभिन्न मंत्रालय उत्तरदायी हैं को दर्शाने वाली एक पुस्तिका द्विवार्षिक रूप से तैयार की जाती है और सदस्यों को परिचालित की जाती है।

जैसाकि संसदीय समाचार में अधिसूचित किया जाता है, सत्र के लिए 'आमंत्रण' भेजे जाने के बाद प्रश्नों की सूचनाएं राज्य सभा सूचना कार्यालय में सभी कार्य-दिवसों को मध्याह्न पूर्व 10.00 बजे से मध्याह्न पश्चात् 4.00 बजे तक प्राप्त की जाती है।[177] इसके बाद, प्रत्येक सत्र के प्रारंभ से पूर्व संसदीय समाचार-2 के अनुसार विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए इसमें परिवर्तन किया गया है।[178] मंत्रियों द्वारा प्रश्नों के उत्तर दिए जाने के लिए दिनों के आवंटन के संबंध में एक पैरा संसदीय समाचार में अधिसूचित किया जाता है।

प्रत्येक प्रश्न की सूचना पर सदस्य द्वारा अलग-अलग हस्ताक्षर किया जाना अपेक्षित है। हस्ताक्षर-रहित प्रश्नों की सूचनाएं स्वीकार नहीं की जाती हैं और उन्हें हस्ताक्षर के

लिए संबंधित सदस्यों को लौटा दिया जाता है। कोई अन्य व्यक्ति सदस्य के निमित्त या उसकी ओर से प्रश्न की सूचना पर हस्ताक्षर नहीं कर सकता है।

सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने प्रश्नों की सूचनाएं केवल अंग्रेजी अथवा हिन्दी में दें। सदस्य को प्रश्न के उत्तर के लिए केवल एक तारीख विनिर्दिष्ट करनी चाहिए न कि वैकल्पिक तारीखें।

सदस्यों की सुविधा के लिए तारांकित, अतारांकित और अल्प सूचना प्रश्नों की सूचनाएं देने के लिए उन्हें राज्य सभा के सूचना कार्यालय में मानकीकृत मुद्रित प्रपत्र उपलब्ध कराये जाते हैं। सामान्य प्रयोजन समिति द्वारा लिये गये निर्णय के अनुसार, 200वें सत्र से तारांकित और अतारांकित प्रश्नों की सूचनाएं देने के प्रपत्रों पर क्रम संख्या लगा दी गई है और यह प्रपत्र सदस्य द्वारा केवल लिखित रूप से मांग करने पर ही दिये जाते हैं।[179] तारांकित/अतारांकित और अल्प-सूचना प्रश्न पूछने हेतु पृथक् मानक वर्ष वार क्रम संख्या वाले सूचना प्रपत्र मुद्रित किये जाते हैं। तारांकित प्रश्नों को इस आधार पर तारांकित कहा जाता है कि उन्हें हमेशा तारांक से विभेद किया जाता है। तारांकित और अतारांकित प्रश्नों की सूचनाएं देने हेतु मुद्रित प्रपत्र क्रमशः गुलाबी और पीले रंग के होते हैं। 4 जुलाई, 1996 को सभापति द्वारा दिये गये निदेश के अनुसार प्रश्न की सूचना का पाठ मुद्रित प्रपत्र पर टंकित या सुपाठ्य हस्तलिपि में होना चाहिए। ऐसी सूचना पर, जिसका पाठ प्रपत्र पर पिन से नत्थी किया गया हो या चिपकाया गया हो, विचार नहीं किया जाता है और ऐसी सूचना सम्बद्ध सदस्य को लौटा दी जाती है।

मंत्रियों को सूचना भेजना

जब तक सभापति अन्यथा निदेश न दें, कोई प्रश्न उत्तर के लिए प्रश्न-सूची में तब तक नहीं रखा जाता है जब तक कि ऐसे प्रश्न की सूचना संबंधित मंत्री को भेजे हुए पांच दिन न बीत गये हों।[180]

पहले, प्रश्नों के उत्तर तैयार करने के लिए सामग्री एकत्र करने में मंत्रालयों को समर्थ बनाने की दृष्टि से, अनौपचारिक व्यवस्था के अंतर्गत सचिवालय में सूचनाएं प्राप्त होने के पश्चात सभी प्रश्नों की सूचनाओं की 'जीरोक्स' प्रतियां सरकार को भेज दी जाती थीं, तथापि किसी प्रश्न का गृहीत किए जाने का निर्णय लिए जाने के पश्चात ऐसे सभी प्रश्नों की अग्रिम प्रतियां भी मंत्रालयों को भेज दी जाती हैं, जिनके ऊपर "अनन्तिम रूप से गृहीत प्रश्न" लिखा रहता है। इस अनौपचारिक व्यवस्था के अंतर्गत मंत्रालयों के प्रतिनिधि प्रश्नों की सूचनाओं की 'जीरोक्स' प्रतियां और अनन्तिम रूप से गृहीत प्रश्न राज्य सभा सचिवालय से ले जाते हैं ताकि उन्हें अपने उत्तर तैयार करने के लिए और अधिक समय मिल सके। सामान्य प्रयोजन समिति (जी.पी.सी.) द्वारा 24 जनवरी, 2003 को हुई अपनी बैठक में लिए गए निर्णय द्वारा प्रश्नों की सभी सूचनाओं की जीरोक्स प्रतियां भेजने का प्रचलन समाप्त कर दिया गया। बैठक में यह भी निर्णय लिया गया कि अब 'अनन्तिम रूप से गृहीत प्रश्नों' की सूचनाओं की प्रतियां

ही संबंधित मंत्रालयों को भेजी जाएं। तथापि, इस प्रचलन में 2011 में पुन: संशोधन किया गया और अब अनंतिम रूप से गृहीत प्रश्नों को ईमेल द्वारा मंत्रालयों को भेजा जाता है जिनके शीर्ष पर 'अनंतिम रूप से गृहीत प्रश्न' लिखा रहता है। मंत्रालयों को प्रत्येक सत्र के प्रारंभ जारी किए जाने वाले कार्यालय ज्ञापन द्वारा इस प्रक्रिया की सूचना दी जाती है। प्रश्नों की मुद्रित सूची http://rajyasabha.nic.in/ लिंक के अंतर्गत राज्य सभा की वेबसाइट पर भी डाल दी जाती है किन्तु किसी दिवस विशेष को उत्तर दिये जाने के लिए प्रश्नों की मुद्रित सूचियां उत्तर की नियत तारीख से पांच दिन पहले उन्हें भेजी जानी होती हैं, जैसाकि उपर्युक्त नियम में विहित किया गया है।

प्रश्नों की श्रेणियां

प्रश्नों की तीन श्रेणियां होती हैं, अर्थात् मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न जो इस आशय से किए जाते हैं कि प्रश्नों के समय के दौरान सदन में इनका मौखिक उत्तर दिया जाना चाहिए, लिखित उत्तर के लिए प्रश्न जिनका उत्तर सदन में नहीं दिया जाता है लेकिन जिनके लिखित उत्तरों को, मौखिक उत्तरों वाले प्रश्नों के अंत में सभा पटल पर रखा गया समझ लिया जाता है और उन्हें सदन की शासकीय कार्यवाही में मुद्रित कर दिया जाता है, और नियम 39 में उल्लिखित अवधि (अर्थात् पन्द्रह दिन, जो पहले दस दिन थी) से कम अवधि की सूचना पर मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न।

जो सदस्य अपने प्रश्न का मौखिक उत्तर चाहता है तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह तारांक (*) लगाकर उसका विभेद करे। यदि वह प्रश्न पर तारांक लगाकर विभेद नहीं करता है तो वह प्रश्न, गृहीत किए जाने पर, लिखित उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में मुद्रित किया जाता है।[181]

प्रश्नों की संख्या के संबंध में सीमा

13 नवंबर, 1962 को आपात्काल के दौरान सभापति ने सदन के नेता, संसदीय कार्य मंत्री और राज्य सभा में सभी विपक्षी दलों के नेताओं और प्रतिनिधियों के साथ बैठक कर यह घोषणा की कि एक दिन के लिए एक सदस्य के तारांकित और अतारांकित दोनों प्रकार के पांच से अधिक प्रश्नों को प्रश्न-सूची में सम्मिलित नहीं किया जाएगा और इन पांच प्रश्नों में से तीन से अधिक प्रश्नों को मौखिक उत्तर हेतु प्रश्नों की सूची में सम्मिलित नहीं किया जाएगा। उन्होंने यह भी घोषणा की कि एक दिन में मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्नों की सूची में 30 से अधिक प्रश्न नहीं रखे जाएंगे। ये परिवर्तन 19 नवंबर, 1962 से प्रभावी हुए। सभापति द्वारा नियम समिति से परामर्श करके की गई घोषणा के अनुसार प्रति दिन मौखिक उत्तरों या तारांकित प्रश्नों की समग्र सीमा घटाकर 20 कर दी गई।[182]

4 जुलाई, 1996 को सभापति द्वारा दिये गये निदेश के अनुसार प्रश्न की सूचना उस तिथि से, जिस तिथि को प्रश्न पूछा जाना है, पूरे इक्कीस दिन से पहले नहीं दी जानी चाहिए। पूरे इक्कीस दिन से पहले प्राप्त प्रश्न की सूचना 'सूचना कार्यालय' (नोटिस ऑफिस) द्वारा स्वीकार नहीं की जाती है और यदि सूचना डाक द्वारा प्राप्त होती है तो

उस पर कोई कार्यवाही नहीं की जाती है और उसे सदस्य को मूल रूप में लौटा दिया जाता है। परन्तु यह प्रतिबंध समाप्त कर दिया गया है।[183] एक दिन के लिए एक सदस्य की प्रश्नों की सात से अधिक सूचनाओं पर विचार नहीं किया जाता है। इसके लिए सदस्य द्वारा सूचनाओं पर अंकित वरीयता क्रम के अनुसार या सूचनाओं पर वरीयता अंकित न किये जाने की स्थिति में सूचनाएं प्राप्त होने के समय के अनुसार उन पर विचार किया जाता है। सात से अधिक होने पर शेष सूचनाएं अगले दिन के लिए, यदि वह उपलब्ध हों, अग्रणीत कर दी जाती हैं।[184]

22 फरवरी, 2010 से पूर्व, एक दिन के लिए एक सदस्य के तारांकित और अतारांकित दोनों प्रकार के पांच से अधिक प्रश्नों को प्रश्न-सूची में सम्मिलित नहीं किया जाता था।[185] और इन पांच प्रश्नों में से तीन से अधिक प्रश्नों को मौखिक उत्तर हेतु प्रश्नों की सूची में सम्मिलित नहीं किया जा सकता था।[186] इसके बाद, उस दिन के "बैलट" में उस सदस्य द्वारा प्राप्त अग्रता के आधार पर इन तीन प्रश्नों में से केवल एक प्रश्न को पहले प्रश्नकर्ता के रूप में उसके नाम से रखा जाता है। शेष दो प्रश्नों, यदि कोई हों, की बाबत सदस्य का नाम, 'नाम जोड़े जाने' की प्रक्रिया में दूसरे प्रश्नकर्ता के रूप में दिया जा सकता; अन्यथा वे दोनों प्रश्न लिखित उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में सम्मिलित कर दिए जाते हैं।

यदि पहले चक्र की लॉटरी में स्थान प्राप्त करने वाले प्रत्येक सदस्य के एक-एक प्रश्न को, मौखिक उत्तर के लिए किसी एक दिन की प्रश्न-सूची में दर्ज किए जाने के पश्चात् उस दिन की सूची में सम्मिलित किए जाने वाले प्रश्नों की संख्या, अधिकतम संख्या अर्थात् बीस प्रश्न तक पहुंच जाती है तो उन सदस्यों के दूसरे और तीसरे प्रश्नों को भी उनके द्वारा इस निमित्त यदि कोई अधिमानता दी गई है, तो उस अधिमानता के क्रम के अनुसार लाटरी के अगले चक्र के लिए रखा जाता है। इस प्रक्रिया को निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है:

> 12 जुलाई, 1991 और 10 जुलाई, 1996 के लिए मौखिक उत्तरों हेतु प्रश्नों की सूचियां तैयार करते समय यह पाया गया कि सूचियों में दो-दो प्रश्न कम हैं, दूसरे शब्दों में उस दिन के लिए केवल अठारह सदस्यों के प्रश्नों की सूचनाएं अनुमत्य पायी गई थीं। इसलिए, उन दिनों की सूची में पहले दो प्रश्नकर्ताओं के नाम दो बार, अर्थात् प्रथमतः प्रश्न संख्या 1 और 2 में बाद में मूल प्रश्नकर्ताओं के रूप में प्रश्न सं. 19 और 20 में दिये गये थे, इस प्रकार उन दिनों, मौखिक उत्तरों हेतु प्रश्नों की सूची में उन दो सदस्यों के दो-दो प्रश्न, सम्मिलित किए गये थे।[187]

तथापि, 22 फरवरी, 2010 से प्रभावी नियम 43 में संशोधन के बाद, एक ही सदस्य द्वारा एक दिन में मौखिक उत्तर हेतु प्रश्नों की सूची में तारांक से विभेदित एक से अधिक प्रश्न शामिल नहीं किये जाएंगे। एक से अधिक प्रश्नों को लिखित उत्तर हेतु प्रश्नों की सूची में रखा जाएगा।[188]

मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में शामिल प्रत्येक प्रश्न बैलट में उसकी स्थिति के अनुसार एक ही सदस्य के नाम पर होगा।[189]

मौखिक उत्तरों के लिए तारांकित प्रश्नों की सूची तैयार करते समय, सदस्यों द्वारा प्रश्नों की सूचनाओं में दी गई वरीयता को ध्यान मे रखा जाता है और यदि सूचनाओं में ऐसी कोई वरीयता नहीं दी जाती है तो उन पर, उनकी प्राप्ति के समय के अनुसार विचार किया जाता है।

पहले, किसी दिवस विशेष के लिए लिखित उत्तरों हेतु शामिल किये जाने वाले गृहीत

प्रश्नों की संख्या की कोई सीमा तय नहीं थी। इसके परिणामस्वरूप कभी कभी किसी एक दिन के लिए अतारांकित प्रश्नों की सूची में भारी संख्या में सूचनाएं गृहीत कर ली जाती थीं जिससे सूची वृहदाकार तथा बोझिल हो जाती थी। उदाहरणार्थ, 31 अगस्त, 1988 की अतारांकित प्रश्नों की सूची में 346 प्रश्न सम्मिलित थे।

नियम समिति ने इस मामले पर विचार किया और उसकी यह राय थी कि प्रश्नों की संख्या 150 तक सीमित होनी चाहिए जिसमें मौखिक उत्तरों के लिए 20 प्रश्न, स्थगित किए गए प्रश्न, यदि कोई हो, तथा राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्यों से संबंधित 15 प्रश्न शामिल हों। समिति ने तद्नुसार इस प्रयोजनार्थ एक नये नियम (51क) का प्रस्ताव किया।[190] तथापि, सदन में नियम को स्वीकार करते समय समिति द्वारा अनुशंसित 150 प्रश्नों की सीमा को बढ़ाकर 175 कर दिया गया।[191] नया नियम 15 जून, 1995 (अर्थात् 174वें सत्र) से प्रभावी हुआ[192] और 232वें सत्र तक जारी रहा। हालांकि नवंबर 2014 में नियम 51 में संशोधनों के साथ मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्नों की सूची में 15 प्रश्न होंगे और लिखित उत्तरों के लिए प्रश्न सूची में 160 प्रश्न होंगे। नया नियम 8 दिसंबर, 2014 अर्थात् 233वें सत्र से लागू हुआ।[193]

प्रश्नों के लिए दिन नियत करना

प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उपलब्ध समय भिन्न-भिन्न दिनों में, संबद्ध मंत्रियों द्वारा प्रश्नों का उत्तर देने के लिए चक्रानुक्रम से ऐसे मंत्रालय या मंत्रालयों के लिए नियत किया जाता है जैसेकि सभापति समय-समय पर उपबंधित करे और प्रत्येक ऐसे दिन, जब तक कि सभापति संबद्ध मंत्री की सहमति से अन्यथा निदेश न दे, केवल ऐसे मंत्रालय या मंत्रालयों से संबद्ध प्रश्नों को ही मौखिक उत्तर देने के लिए प्रश्न-सूची में रखा जाता है जिनके लिए उस दिन समय नियत किया गया हो।[194]

जैसे ही किसी सत्र के प्रारंभ तथा समाप्त होने की तारीखें निर्धारित की जाती हैं वैसे ही प्रश्नों के उत्तर देने के लिए भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के लिए दिनों का नियतन कर दिया जाता है और उसे संसदीय समाचार में प्रकाशित किया जाता है, जो सत्र हेतु 'आमंत्रण' के साथ-साथ जारी कर दिया जाता है। यह सूचना 'बैठकों की अस्थायी सारणी' में शामिल की जाती है।

सदन में प्रश्नों के उत्तर देने के उद्देश्य से, मंत्रालयों को पांच वर्गों में विभाजित किया जाता है और मंत्री प्रश्नों के उत्तर उसी चक्रानुक्रम से देते हैं ताकि किसी एक मंत्रालय से संबंधित प्रश्नों के उत्तर सप्ताह में एक बार किसी एक ही निर्धारित दिवस को दिए जा सकें। मंत्रालयों का वर्गीकरण करते समय यह सुनिश्चित किया जाता है कि मंत्रालयों के लिए दिनों के नियतन से दूसरे सदन में उनके लिए नियत दिन में कोई टकराव न हो ताकि मंत्री प्रश्नों के उत्तर देने के लिए, उनके लिये नियत दिनों में, दोनों सदनों में उपस्थित हो सकें।

यदि प्रश्नों के उत्तर देने के लिए दिनों के नियतन से संबंधित अधिसूचना को प्रकाशित

करने वाले संसदीय समाचार के जारी होने के पश्चात् अथवा किसी सत्र के मध्य में, किसी मंत्रालय को दो भागों में विभाजित कर दिया जाता है अथवा कोई नया मंत्रालय सृजित किया जाता है तो ऐसे मंत्रालय के लिए दिनों का नियतन करने का निर्णय सभापति द्वारा किया जाता है और उसे संसदीय समाचार में अधिसूचित किया जाता है।[195] इसी प्रकार, किसी मंत्रालय के अंतरण के परिणामस्वरूप प्रश्नों के उत्तर देने के लिए दिनों के नियतन में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की सूचना भी सदस्यों को संसदीय समाचार में अधिसूचना के द्वारा दी जाती है।[196]

एक नया मंत्रालय अनिवासी भारतीय कार्य मंत्रालय के रूप में 27 मई 2004 को गठित किया गया। 3 सितम्बर 2004 को इसका नाम बदलकर प्रवासी भारतीय कार्य मंत्रालय कर दिया गया। 202वें सत्र से मंत्रालय के लिए उत्तर देने का दिन बृहस्पतिवार था जो विदेश मंत्रालय के लिए भी उत्तर देने का दिन था।[197] हालांकि जनवरी, 2016 में, प्रवासी भारतीय कार्य मंत्रालय का विदेश मंत्रालय में विलय करने का प्रस्ताव किया गया। उसके बाद आगामी 238वें सत्र में दोनों का विलय करके एक मंत्रालय यथा विदेश मंत्रालय बना दिया गया। उत्तर का दिन वही रहा।[198]

214वें सत्र के दौरान सत्र के उत्तरार्द्ध में, वित्त मंत्रालय जिसके उत्तर देने के दिन मंगलवार थे का प्रत्यक्ष कार्यभार प्रधान मंत्री के अधीन आया जिनके उत्तर देने के दिन बृहस्पतिवार थे, हालांकि, जैसे ही वित्त मंत्रालय के लिए बैलेट/प्रश्न सूची को सूचीबद्ध करना प्रधान मंत्री के अधीन आए तो यथास्थिति कायम रखी गई और वित्त मंत्रालय के लिए उत्तर देने का दिन नहीं बदला गया।[199]

221वें सत्र के दौरान, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के मंत्री ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय, पृथ्वी विज्ञान तथा संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय का अतिरिक्त कार्यभार ग्रहण किया। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के लिए उत्तर देने का दिन शुक्रवार एवं अतिरिक्त मंत्रालयों के लिए बृहस्पतिवार था। मंत्री द्वारा अनुरोध किए जाने पर नए मंत्रालयों के लिए उत्तर का दिन बदलकर शुक्रवार कर दिया गया।[200]

गैर-सरकारी सदस्यों से प्रश्न

प्रश्न किसी गैर-सरकारी सदस्य (अर्थात् ऐसा सदस्य जो मंत्री न हो) को भी संबोधित किया जा सकेगा, यदि प्रश्न का विषय किसी ऐसे विधेयक, संकल्प अथवा सदन के कार्य के अन्य विषय से संबंधित हो, जिसके लिए वह सदस्य उत्तरदायी हो और ऐसे प्रश्नों के संबंध में उसी प्रक्रिया का, जो किसी मंत्री के संबोधित प्रश्नों के संबंध में प्रयुक्त की जाती है ऐसे परिवर्तनों के साथ अनुसरण किया जाएगा जो सभापति आवश्यक या सुविधाजनक समझे।[201] अभी तक राज्य सभा में ऐसा कोई अवसर नहीं आया है जब किसी गैर-सरकारी सदस्य को संबोधित प्रश्न की कोई सूचना गृहीत की गई हो।

प्रश्नों की ग्राह्यता की शर्तें

कोई सदस्य लोक महत्व के किसी ऐसे विषय पर जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्न पूछ सकता है जो उस मंत्री के विशेष संज्ञान में हो जिसे वह संबोधित किया गया है।[202] तथापि, प्रश्न पूछने का अधिकार कतिपय शर्तों के अधीन है जो नीचे वर्णित हैं।

प्रश्न सटीक, सुस्पष्ट और केवल एक ही विषय तक सीमित होना चाहिए।[203]

इससे पहले यह नियत किया गया था कि प्रश्न "स्पष्टत: तथा यथार्थत: अभिव्यक्त" किया जाना चाहिए। नियम समिति ने सिफारिश की थी कि इन शब्दों के स्थान पर "सटीक, सुस्पष्ट और केवल एक ही विषय तक सीमित" शब्द प्रतिस्थापित किए जाने चाहिएं। नियम में तदनुसार संशोधन किया गया।[204]

प्रश्न में तर्क, अनुमान, व्यंग्यात्मक पद, अभ्यारोप, विशेषण या मानहानिकारक कथन नहीं होने चाहिए।[205]

जब एक सदस्य ने अनुपूरक प्रश्न पूछते समय प्रधान मंत्री के विरुद्ध कुछ आरोप लगाए तो सभापति ने नियम 47 के उपनियम (1) और (2) (i) से (iv) को पढ़कर सुनाया और निम्नलिखित टिप्पणी की:

> ... मैंने यह विनिश्चय किया है कि यदि विशेषण या अभ्यारोप लगाए जाते हैं तो मैं उन्हें कार्यवाही से निकालने के लिए अपने प्राधिकार का प्रयोग करूंगा। मैं इस सदन के प्रत्येक सदस्य को यह चेतावनी देना चाहता हूं। यदि ऐसी बातें जारी रहती हैं तो मुझे अत्यन्त कठोर उपाय करने पड़ेंगे अन्यथा इस सदन में कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता है।[206]

प्रश्न के पाठ को स्वत: पूर्ण बनाने के लिए उसमें सभी आवश्यक संदर्भ दिये होने चाहिए, अर्थात् यदि प्रश्न समाचार-पत्र में प्रकाशित किसी समाचार पर आधारित है तो समाचार पत्र का नाम और उसकी तारीख, यदि प्रश्न किसी पूर्ववर्ती प्रश्न के उत्तर के अनुसरण में है, तो पूर्ववर्ती प्रश्न की संख्या और उसकी तारीख, यदि प्रश्न किसी घटना के संबंध में जानकारी प्राप्त करने लिए है, तो उक्त घटना के घटित होने की तारीख और स्थान आदि।

प्रश्न में कोई ऐसा नाम या कथन नहीं होना चाहिए जो प्रश्न को सुबोध बनाने के लिए सर्वथा आवश्यक न हो।[207] प्रश्न को गृहीत करते समय, प्रश्न की सूचना के पाठ में दिए गए व्यक्तियों के नामों को साधारणतया छोड़ दिया जाता है, किन्तु किसी अधिकारी के मामले में उसके पदनाम का उल्लेख किया जा सकता है।

यदि प्रश्न में कोई कथन हो, तो सदस्य को उस कथन की परिशुद्धता के लिए उत्तरदायी होना पड़ेगा।[208] इस शर्त के अधीन परिकल्पित उत्तरदायित्व नैतिक उत्तरदायित्व है, न कि विधिक उत्तरदायित्व।

राय प्रकट करने या किसी अमूर्त विधि संबंधी प्रश्न या किसी काल्पनिक प्रस्थापना के समाधान के लिए प्रश्न नहीं पूछा जाना चाहिए।[209]

किसी व्यक्ति की पदेन या सार्वजनिक हैसियत के अतिरिक्त, उसके चरित्र या आचरण के बारे में प्रश्न नहीं पूछा जाना चाहिए।[210] अत: किसी व्यक्ति के विरुद्ध मानहानिकारक स्वरूप के आरोप या व्यक्तिगत आक्षेप ग्राह्य नहीं हैं।

प्रश्न में साधारणतया 100 से अधिक शब्द नहीं होने चाहिए।[211]

पहले 150 शब्दों की सीमा थी। नियम समिति ने यह सिफारिश की थी कि इस सीमा को घटाकर 50 शब्द कर दिया जाए। तथापि, सदन ने इसे बढ़ाकर 100 शब्द कर दिया और नियम में तदनुसार संशोधन कर दिया गया।[212]

एक लंबे प्रश्न को, यदि वह अन्यथा ग्राह्य हो, तो संभव होने पर उपयुक्त रूप से छोटा कर दिया जाता है। ऐसे प्रश्न की विषय-वस्तु को अक्षुण्ण रखते हुए उसमें से अनावश्यक अंशों और शब्दों को निकालकर उसे गृहीत किया जा सकता है, क्योंकि प्रश्न में अधिक ब्यौरे और विवरण देने से प्रश्न लंबा हो सकता है और उसमें प्रश्नकाल का काफी समय खर्च हो सकता है तथा इसकी वजह से अन्य यथार्थ प्रश्नों के लिए समय की कमी हो सकती है।

प्रश्न किसी ऐसे विषय से संबंधित नहीं होना चाहिए जो मुख्यतया भारत सरकार का विषय न हो।[213] राज्यों के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले प्रश्नों को सामान्यतया अस्वीकृत कर दिया जाता है। तथापि, यदि कोई प्रश्न भले ही राज्य के किसी विषय से संबंधित है, किन्तु यदि वह अखिल भारतीय महत्व का है, तो उसे गृहीत किया जा सकता है। जिस प्रश्न से मुख्यतया भारत सरकार का कोई संबंध नहीं है, उस प्रश्न को स्वीकार करने का निर्णय प्रत्येक मामले के गुणावगुण के आधार पर किया जाता है। कोई सदस्य ऐसा प्रश्न भी पूछ सकता है जिसमें केन्द्रीय सहायता के नियंत्रण, पर्यवेक्षण या प्रशासन या राज्यों को प्रदान किए गये अनुदानों से उत्पन्न मामलों के बारे में जानकारी मांगी गई हो।

प्रश्न में साधारणतया ऐसे विषयों के बारे में जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए जो संसदीय समिति के विचाराधीन हों।[214] उसमें किसी संसदीय समिति की ऐसी कार्यवाही के बारे में भी नहीं पूछा जाना चाहिए जो उस समिति के प्रतिवेदन द्वारा सदन के समक्ष न रखी गई हो।[215] यदि ऐसा कोई प्रश्न गृहीत कर लिया जाता है तो सदन में उस पर चर्चा की अनुमति नहीं दी जाती है।

> खराब टायरों की खरीद के संबंध में एक प्रश्न गृहीत किया गया था। प्रश्न पूछे जाने से पहले ही एक औचित्य प्रश्न उठाया गया कि उक्त मामला लोक लेखा समिति के विचाराधीन है और इसलिए यह प्रश्न ग्राह्य नहीं है। सभापति ने यह निदेश दिया कि प्रश्न पूछा जाए और उसका उत्तर दिया जाए और उसके बाद ही वह मामले पर विचार करेंगे।
>
> तदनुसार, प्रश्न पूछा गया और उसका उत्तर दिया गया। तत्पश्चात् सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की :
>
> > प्रश्न पूछे जाने के पश्चात् हमें यह ज्ञात हुआ है कि उक्त मामला लोक लेखा समिति के विचाराधीन है तथा जब लोक लेखा समिति का प्रतिवेदन आएगा तब हम प्रश्न पूछने का अवसर अवश्य देंगे।

इसके बाद सभापति ने अगले प्रश्न को ले लिया।[216]

लोक सभा में प्रश्नों के पहले दिये गये उत्तरों का हवाला देते हुए पचास से अधिक प्रमुख कंपनियों की ओर केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क की बकाया राशि के संबंध में एक प्रश्न की सूचना दी गई। तथापि, वित्त मंत्रालय के द्वारा यह बताया गया कि इस विषय पर सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति (लोक सभा) द्वारा विचार किया जा रहा है। तदनुसार, उस प्रश्न को अस्वीकृत कर दिया गया।[217]

जब किसी प्रश्न में किसी समिति की सिफारिशों का प्रत्यक्ष उल्लेख न किया गया हो किन्तु प्रश्न का विषय ऐसा हो जो समिति के विचाराधीन रहा हो, तब ऐसा प्रश्न केवल

तभी ग्राह्य हो सकता है जब उसमें कोई ऐसी तथ्यपरक जानकारी मांगी गई हो जो समिति के प्रतिवेदन में तत्काल उपलब्ध न हो। किसी समिति की विनिर्दिष्ट सिफारिशों, जोकि लम्बे समय से बकाया रही हों, से संबंधित अथवा सरकार द्वारा उन सिफारिशों के क्रियान्वयन में अनुचित विलंब किए जाने से संबंधित जानकारी मांगने वाले प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

संसदीय समिति की कार्यवाही को गोपनीय समझा जाता है और उस समिति के प्रतिवेदन को सदन में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व ऐसी किसी कार्यवाही से संबंधित किसी भी जानकारी को प्रकट करने की अनुमति नहीं दी जाती है। इसीलिए, किसी समिति की कार्यवाही के बारे में जानकारी मांगने वाले किसी भी प्रश्न को गृहीत नहीं किया जाता है। यही बात अनुपूरक प्रश्नों पर भी लागू होती है।

संसद सदस्यों की किसी परामर्शदात्री समिति में चर्चा किए जाने वाले विषयों अथवा उसकी कार्यवाहियों को प्रश्नकाल के दौरान सदन में उठाने अथवा उसका हवाला देने की अनुमति नहीं दी जाती है।[218]

प्रश्न में किसी ऐसे व्यक्ति के चरित्र अथवा आचरण पर अभ्युक्ति नहीं की जानी चाहिए, जिसके आचरण पर केवल मूल प्रस्ताव के द्वारा ही आपत्ति की जा सकती हो।[219] संविधान के अंतर्गत, कतिपय पदधारी व्यक्तियों के आचरण पर सदन में मूल प्रस्ताव के अतिरिक्त चर्चा नहीं की जा सकती। ऐसे पद हैं—राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, लोक सभा का अध्यक्ष, उच्चतम न्यायालय अथवा किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, मुख्य निर्वाचन आयुक्त और नियंत्रक-महालेखापरीक्षक।[220] इसीलिए, इनके बारे में प्रश्नों को गृहीत नहीं किया जाता है।

राष्ट्रपति के संबंध में प्रश्न तब तक गृहीत नहीं किये जाते जब तक कि ऐसे प्रश्नों में विशुद्धत: तथ्यपरक स्वरूप की जानकारी न मांगी गई हो, उदाहरणार्थ भारत के राष्ट्रपति की विदेश यात्रा।

> (क) हाल के सप्ताहों में भारत के राष्ट्रपति ने कितने देशों की यात्रा की, (ख) क्या राष्ट्रपति की विदेश यात्रा के दौरान भारत और उन देशों के बीच किन्हीं द्विपक्षीय समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए हैं, और (ग) तत्संबंधी ब्यौरा क्या है, के बारे में विदेश मंत्री से पूछा गया एक अतारांकित प्रश्न गृहीत किया गया था और उसका उत्तर दिया गया था।[221]

यही बात भारत के उपराष्ट्रपति से संबंधित प्रश्नों पर भी लागू होती है जोकि राज्य सभा का पदेन सभापति भी होता है।

> मनीला सम्मेलन से संबंधित एक तारांकित प्रश्न गृहीत किया गया था। एक सदस्य ने अनुपूरक प्रश्न पूछा था कि सरकार ने भारत के उपराष्ट्रपति को ऐसी सलाह क्यों दी कि वह थाईलैण्ड जाएं और वहां कतिपय ऐसे भाषण दें जो भारत सरकार की नीति से मेल नहीं खाते हैं। कुछ सदस्यों ने इस प्रश्न पर यह कहते हुए आपत्ति की थी कि ऐसा प्रश्न नहीं पूछा जा सकता क्योंकि इसमें आरोप लगाया गया है। सभापति ने इस प्रश्न को इस आधार पर अनुमति प्रदान कर दी कि इसमें सभापति की आलोचना नहीं की गई है और प्रश्नकर्ता सभापति का उल्लेख नहीं कर रहा है बल्कि वह भारत के उपराष्ट्रपति का उल्लेख कर रहा है।[222]

चूंकि राज्यपाल अपने-अपने राज्यों के प्रमुख होते हैं, इसलिए उनके बारे में कोई भी प्रश्न या ऐसे प्रश्न जिनमें उनके विरुद्ध अभ्युक्ति की गई हो या अभ्युक्ति ध्वनित होती हो, गृहीत नहीं किये जाते हैं।

इसी तरह, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के आचरण से संबंधित प्रश्नों की अनुमति नहीं दी जाती है।

'मिनरवा मिल्स' के मुकदमे में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के संबंध में एक अल्प-सूचना प्रश्न गृहीत किया गया था। जब एक अनुपूरक प्रश्न के दौरान एक सदस्य ने इस मुकदमे का फैसला सुनाने वाले एक न्यायाधीश द्वारा दिए गए कुछ वक्तव्यों का उल्लेख किया तो सभापति ने इसे नियम विरुद्ध बताते हुए यह टिप्पणी की: "मेरा यह विनिर्णय है कि श्री भगवती ने जो कुछ कहा है उसके आधार पर आप चार न्यायाधीशों के आचरण पर चर्चा नहीं करेंगे। यह श्री भगवती और उन चार न्यायाधीशों के बीच का मामला है। हम इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते...मैं अभिलेख को ध्यानपूर्वक देखूंगा और इसे अभिलेख से निकाल दूंगा...[223]

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक सेवारत न्यायाधीश द्वारा नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर न्यायालयिक कार्यवाही संचालित किये जाने के बारे में एक प्रश्न पूछा गया था। प्रश्न को मौखिक उत्तर दिये जाने के समय कछ सदस्यों ने प्रश्न को गृहीत किये जाने पर यह कहते हुए आपत्ति की कि इसमें न्यायाधीश के आचरण पर आक्षेप किया गया है। तथापि, इस प्रश्न पर सभा में चर्चा की जा सकी क्योंकि मंत्री महोदय ने सभा को यह जानकारी दी कि उच्चतम न्यायालय द्वारा इस मामले पर विचार किया जा रहा है और यह 'न्यायाधीन' है।[224]

किसी प्रश्न में व्यक्तिगत रूप का दोषारोपण नहीं किया जाना चाहिए या दोषारोपण ध्वनित नहीं होना चाहिए।[225] प्रश्नों में कुछ उत्तरदायी व्यक्तियों के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप के आक्षेप या व्यक्तिगत बातों के समावेश की या व्यक्तिगत रूप के दोषारोपण को ध्वनित करने की अनुमति नहीं है।

किसी प्रश्न में नीति संबंधी ऐसे प्रश्न भी नहीं उठाए जाने चाहिए जो इतने विस्तीर्ण हों कि प्रश्न के उत्तर की सीमा के भीतर न आ सकें।[226] नीतिगत मामले इतने विस्तीर्ण और व्यापक होते हैं कि ऐसे किसी मामले को उठाने वाले एक ही प्रश्न में समूचा प्रश्न-काल समाप्त हो जाएगा।[227] इसके अतिरिक्त, किसी नीतिगत मामले को उठाने या उस पर चर्चा करने के लिए प्रस्ताव अथवा संकल्प आदि ही उपयुक्त साधन होते हैं न कि प्रश्न। इस तरह के कुछ अस्वीकृत किए गए प्रश्नों का विवरण नीचे दिया गया है:

एक बार जब भारत में आयातित शराब के वितरण, बिक्री और उसके विनिर्माण से संबंधित एक प्रश्न पर एक सदस्य ने मद्यनिषेध के बारे में राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों के क्रियान्वयन के संबंध में एक अनुपूरक प्रश्न पूछा था तब उपसभापति ने यह टिप्पणी करते हुए इसकी अनुमति नहीं दी थी कि यह एक विस्तीर्ण प्रश्न है।[228]

कश्मीर में सीमा शुल्क की समाप्ति से संबंधित एक अन्य प्रश्न पर किसी सदस्य ने भाग 'ख' के सभी राज्यों में सीमा शुल्क समाप्त किए जाने के बारे में एक अनूपूरक प्रश्न पूछा था तब उपसभापति ने यह टिप्पणी की थी: "हम प्रश्नों के समय के दौरान नीतियों पर चर्चा नहीं कर सकते हैं।"[229]

इसी आधार पर, पूछे गए एक अनुपूरक प्रश्न को, जो आयुर्विज्ञान शिक्षा के स्तर को बढ़ाने के लिए किए जाने वाले उपायों के बारे में सभापति द्वारा नीतिगत प्रश्न बताकर अस्वीकृत कर दिया गया था।[230]

एक अनुपूरक प्रश्न पूछते समय जब एक सदस्य ने रेल दुर्घटना के प्रति मंत्री के संवैधानिक/प्रतिनिधिक उत्तरदायित्व के बारे में कुछ बोला था तब सभापति ने यह टिप्पणी की थी:

मेरी राय में प्रश्नों के समय के दौरान नीतिगत प्रश्नों पर चर्चा नहीं की जा सकती है तथा बजट पर चर्चा के दौरान निश्चित रूप से नीतिगत चर्चा की जा सकती है।[231]

इसी तरह जब भिलाई और बोकारो इस्पात संयंत्रों के बारे में एक प्रश्न पूछा गया था तब उस पर भारत और सोवियत संघ के बीच सहयोग के बारे में सरकार की नीति से संबंधित एक अनुपूरक प्रश्न पूछा गया था जिसे उपसभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी करते हुए अस्वीकार कर दिया था:

"प्रश्नों के समय को सामान्य नीतिगत मामलों पर चर्चा करने का अवसर नहीं बनाया जाना चाहिए; इस समय का उपयोग केवल सटीक प्रश्न पूछने के लिए ही किया जाना चाहिए। सदस्यों को ऐसे बहुत-से अवसर मिलते हैं जब वे अपनी इच्छानुसार चर्चा कर सकते हैं।"[232]

आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि के बारे में पूछे गये एक प्रश्न की बाबत एक सदस्य द्वारा यह अनुपूरक प्रश्न पूछे जाने पर कि क्या सरकार थोक व्यापार को अपने हाथ में लेगी और सार्वजनिक वितरण प्रणाली आरंभ करेगी, सभापति ने इस अनुपूरक प्रश्न को अस्वीकार कर दिया था और अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा था कि सभी वस्तुओं के लिए कोई एक नीति नहीं अपनाई जा सकती है, इसलिए उक्त अनुपूरक प्रश्न इतना विस्तीर्ण है कि मंत्री महोदय उसका उत्तर नहीं दे सकते हैं।[233]

तथापि, "नई औद्योगिक नीति" के बारे में पूछे गये तारांकित प्रश्न सं. 63 पर अनुपूरक प्रश्न आरंभ होने से पहले ही सभापति ने सदन का ध्यान नियम 47(2)(xiii) की ओर दिलाया था और कहा था कि इस प्रश्न के मामले में वह इस नियम पर ज्यादा जोर नहीं दे रहे हैं, किन्तु सदस्यों को इस नियम का अनुपालन करना चाहिए।[234]

एम.एम.टी.सी. द्वारा सोया आहार के निर्यात के संबंध में एक प्रश्न की बाबत एक सदस्य ने कहा था कि वह एक नीतिगत प्रश्न उठाना चाहेगा। इस पर सभापति ने यह टिप्पणी की थी कि नियमानुसार यह स्वीकार्य नहीं हैं, फिर भी उन्होंने उस सदस्य को अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दे दी थी।[235]

प्रश्न में ऐसे प्रश्नों की सारतः पुनरुक्ति नहीं होनी चाहिए जिनके उत्तर पहले ही दिया जा चुका हो या जिनके उत्तर देना अस्वीकार कर दिया गया हो।[236] यह नियम ऐसे प्रश्नों की पुनरुक्ति का निषेध करता है जिनके पूर्ण उत्तर पहले ही दिये जा चुके हों। ऐसी पुनरुक्ति को प्रश्न पूछने के अधिकार का दुरुपयोग समझा जाता है या इससे सदन की कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना रहती है और इसीलिए, ऐसे किसी प्रश्न को गृहीत नहीं किया जाता है। यदि ऐसा कोई प्रश्न हो जिसमें ऐसे किसी प्रश्न की पुनरुक्ति की गई प्रतीत होती हो जिसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है, तो संबंधित मंत्रालयों का यह कर्त्तव्य है कि वह इस तथ्य को सचिवालय की जानकारी में लाएं।

जब कोई मंत्री किसी प्रश्न का उत्तर देना अस्वीकार कर देता है तब उसी विषय से संबंधित प्रश्नों की परवर्ती सूचनाओं को नामंजूर कर दिया जाता है। सामान्यतः किसी भी प्रश्न को इस आधार पर नामंजूर नहीं किया जाता है कि लोक हित में उक्त जानकारी को प्रकट करना उचित नहीं है। यह मंत्री पर निर्भर करता है कि वह सदन में किसी प्रश्न का उत्तर देना लोक हित में अस्वीकार कर दे।

तारांकित प्रश्न सं. 675 जीवन बीमा निगम द्वारा पूंजी निवेश के बारे में पूछा गया था। उसके उत्तर में मंत्री ने कहा कि लोक हित में उन कंपनियों के नाम प्रकट करना उचित नहीं है जिनमें निगम ने पूंजी निवेश किया है। प्रश्नकाल के पश्चात् एक सदस्य ने इस मामले को उठाया और अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा कि ऐसा करना सदस्यों के विशेषाधिकार का उल्लंघन है और सभापति से अनुरोध किया कि वह संबंधित जानकारी उपलब्ध कराने के लिए मंत्री को निदेश दें।[237]

जब कुछ सदस्यों ने लघु उद्योगों को आपूर्ति करने से राज्य व्यापार निगम/खनिज तथा धातु व्यापार निगम द्वारा अर्जित किये जा रहे लाभ के बारे में जानना चाहा तो मंत्री ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा कि इस मामले का प्रचार करना लोक हित में उचित नहीं होगा। इससे उत्पन्न एक औचित्य प्रश्न पर सभापति ने विनिर्णय दिया कि:

> मंत्री का कहना है कि लाभ की दर प्रकट करना या जो जानकारी सदस्य उनसे मांग रहे हैं उसे बताना लोक हित में नहीं है। जो बात लोक हित में प्रकट करना उचित नहीं है उसे बताने के लिए मैं उन्हें बाध्य नहीं कर सकता।[238]

सामान्यतया, प्रश्न में नगण्य विषयों पर जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए।[239] इस नियम का आशय गौण विषयों का अल्प ब्यौरे चाहने वाले प्रश्नों या विशुद्ध रूप से स्थानीय मामलों से संबंधित प्रश्न पूछने को हतोत्साहित करना है जिन्हें कोई सदस्य किसी समुचित प्राधिकारी के साथ उठा सकता है।

प्रश्न में साधारणतया विगत इतिहास के विषयों पर जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए।[240] सामान्यत: विगत इतिहास या ऐसे विषयों, जो ऐतिहासिक अथवा शैक्षणिक स्वरूप के हों, पर जानकारी मांगने वाले प्रश्नों को गृहीत नहीं किया जाता है।

पहले सदस्यों से ऐसे प्रश्नों की बहुत-सी सूचनाएं प्राप्त होती थीं जिनमें सदस्य विगत कई वर्षों की समयावधि से संबंधित विषयों पर जानकारी मांगते थे। इसलिए, सदस्यों को यह सलाह दी गई कि नियम 47(2)(xvi) के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए उन्हें ऐसी कोई जानकारी नहीं मांगनी चाहिए जोकि विगत तीन वर्षों से अधिक की समयावधि के बारे में हों।[241]

इसलिए, ऐसे प्रश्नों, जिसमें तीन वर्ष की समयावधि से अधिक अथवा काफी लम्बी समयावधि से संबंधित जानकारी मांगी जाती है, और जो अन्यथा ग्राह्य होते हैं, उन्हें सामान्यत: संशोधित कर दिया जाता है ताकि संबंधित जानकारी को तीन वर्ष की समयावधि के लिए सीमित किया जा सके।

प्रश्न में ऐसी जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए जोकि सुलभ प्रलेखों या साधारण संदर्भ कृतियों में दी गई हों। ऐसे प्रश्नों को गृहीत नहीं किया जाता है जिनमें मांगी गई जानकारी राजपत्रों, प्रतिवेदनों, प्रलेखों, पुस्तकों तथा अन्य प्रपत्रों में उपलब्ध हो। लोक सभा के पूर्ववर्ती सत्रों की कार्यवाहियां सुलभ प्रलेखों की श्रेणी में आती है और इसीलिए, सामान्यत: राज्य सभा में ऐसे प्रश्नों को गृहीत नहीं किया जाता है जिनके उत्तर उक्त कार्यवाहियों में मिल जाते हों। जब कभी कोई जानकारी किसी सार्वजनिक पुस्तकालय अथवा किसी संदर्भ-ग्रंथ में उपलब्ध होती है, तत्संबंधी प्रश्नों को भी गृहीत नहीं किया जाता।[242]

प्रश्न में ऐसे विषय नहीं उठाए जाने चाहिए जो ऐसे निकायों या व्यक्तियों के नियंत्रण में हों जो मुख्यतया भारत सरकार के प्रति उत्तरदायी न हों।[243] ऐसे गैर-सरकारी संगठनों के कार्यों से संबंधित प्रश्नों को सामान्यत: तब तक गृहीत नहीं किया जाता है जब तक कि उनका संबंध सरकार के कार्यों से न हो अथवा सरकार द्वारा ऐसे संगठनों को अनुदान न दिया गया हो।

प्रश्न में किसी ऐसे विषय के संबंध में जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए जोकि भारत के किसी भाग में क्षेत्राधिकार रखने वाले किसी न्यायालय के न्यायनिर्णयाधीन हो,[244] अर्थात् जो विषय न्यायाधीन हों।

एक अनुपूरक प्रश्न के दौरान जब एक सदस्य ने एक नगरपालिका आयुक्त की गिरफ्तारी के बारे में जानना चाहा तब सभापति ने विनिर्णय दिया: "इस मामले की जांच की जा रही है। हम यह प्रश्न नहीं पूछ सकते कि उसकी गिरफ्तारी सही है या गलत है"[245]

कटक में पुलिस द्वारा तलाशी लिए जाने से संबंधित एक प्रश्न के उत्तर में मंत्री ने कहा कि चूंकि पुलिस द्वारा की जा रही तलाशी की कार्यवाही उड़ीसा उच्च न्यायालय के समक्ष न्यायाधीन है इसलिए, इस संबंध में और कोई ब्यौरा देना उचित नहीं है। सभापति ने उत्तर को सही मानते हुए इस पर कोई अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी।[246]

जब इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज के निदेशक द्वारा मानहानि के एक मामले में दाखिल किए गए शपथपत्र से संबंधित एक प्रश्न पूछा ही जाने वाला था उसी समय उस पर एक औचित्य प्रश्न उठाया गया कि यह प्रश्न इसलिए नहीं पूछा जा सकता क्योंकि यह न्यायालय में दिए गये एक शपथपत्र के संबंध में है जिसमें मुद्दे से संबंधित एक तथ्य का हवाला दिया गया है। तथापि, सभापति ने प्रश्न पूछने तथा उत्तर देने की अनुमति प्रदान कर दी और तदुपरांत, औचित्य-प्रश्न को सही ठहराते हुए उस पर और आगे चर्चा को अस्वीकार कर दिया।[247]

जब नागार्जुन सागर बांध की ऊंचाई के बारे में एक प्रश्न पर कुछ सदस्यों ने अनुपूरक प्रश्न पूछे तब संबंधित मंत्री ने कहा कि वह इस मामले पर चर्चा नही कर सकते क्योंकि यह अधिकरण के विचाराधीन है किन्तु जब एक सदस्य ने जानकारी प्राप्त करने का आग्रह किया तो उपसभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> माननीय मंत्री ने कहा कि जो सभी प्रश्न पूछे गये हैं वे उन मामलों से संबंधित हैं जिन्हें अधिकरण को सौंपा जा रहा है और उन पर उसी के द्वारा निर्णय लिया जाएगा, इसलिए, माननीय मंत्री कोई जानकारी देना नहीं चाहते क्योंकि ऐसा करने से अधिकरण की कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अत: माननीय मंत्री को उन तथ्यों के बारे में जानकारी देने के लिए बाध्य करना उचित नहीं होगा जोकि अधिकरण के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत हैं।[248]

मैसूर में दस डॉलर के नोटों के पकड़े जाने के बारे में पूछे गये एक प्रश्न के द्वारा एक सदस्य इस मामले में शामिल व्यक्ति का नाम जानना चाहता था। इस पर जब मंत्री ने यह कहा कि यदि सभापति अनुमति दें तो वह उसका नाम बता देंगे। तब सभापति ने यह टिप्पणी की थी:

> जब जांच करने वाला विभाग अर्थात् पुलिस विभाग, जो जांच कर रहा है, किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाएगा और वह यह अनुभव करेगा कि इसमें कोई प्रथम दृष्टया मामला रहा है तब नाम बताने में कोई हानि नहीं होगी क्योंकि वह नाम न्यायालय में दिया जाएगा और न्यायालय की कार्यवाही सार्वजनिक होती है किन्तु उस स्थिति तक पहुंचने से पहले मैं नहीं समझता कि नाम बताना उचित होगा। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं क्योंकि यदि पुलिस यह समझती है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता है और वह निर्दोष है तब अनावश्यक रूप से उसकी बदनामी होगी। किन्तु यदि पुलिस यह समझती है कि कोई व्यक्ति प्रथम दृष्टया दोषी है तो उसका नाम बताया जा सकता है।

तथापि, सभापति ने यह निदेश दिया कि यदि गृह मंत्री का यह विचार है कि नाम बता देने से जांच पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तब उन्हें नाम बताने की आवश्यकता नहीं है। तथापि, गृह मंत्री ने बाद में उसका नाम बता दिया था।[249]

जब एक सदस्य ने एक अनुपूरक प्रश्न पूछा तो कुछ सदस्यों ने यह तर्क दिया कि उठाया गया मामला न्यायाधीन है। सभापति ने निम्नलिखित निर्णय दिया :

> यदि किसी अनुपूरक प्रश्न के संबंध में इस प्रकार का विवाद जारी रहता है, मुख्य प्रश्न का उत्तर दिया जा चुका हो; सभापति इसका यह अर्थ लगायेंगे कि यह मामला समाप्त हो चुका है और अगला प्रश्न लेंगे।

द्वितीय अनुपूरक प्रश्न सहित उस प्रश्न पर किसी अन्य अनुपूरक की अनुमति नहीं दी गई और अगले प्रश्न को लेने के लिए कहा गया।[250]

प्रश्न किसी ऐसे विषय के बारे में नहीं होना चाहिए जिससे मंत्री का उनके पद की दृष्टि से संबंध न हो।[251] किसी मंत्री द्वारा गैर-पदीय हैसियत से कही गई किसी बात या किए गये किसी कार्य के बारे में प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जाती है।

प्रश्न में किसी मित्र देश के प्रति कोई अशिष्ट निर्देश नहीं होना चाहिए।[252] किसी विदेशी राष्ट्र के प्रशासन अथवा कार्य से संबंधित प्रश्न गृहीत नहीं किए जाते हैं।

प्रश्न में ऐसे विषयों के बारे में जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए, जो गोपनीय प्रकार के हों।[253] मंत्रिमंडल या उसकी समितियों या उप-समितियों के आंतरिक कार्यकरण, मंत्रिमंडल की चर्चाओं या किसी ऐसे विषय, जिसके संबंध में जानकारी प्रकट न करने की कोई सांविधिक, कानूनी या परंपरागत बाध्यता हो, के बारे में राष्ट्रपति को दी गई सलाह की बाबत जानकारी मांगने वाले प्रश्नों को गृहीत नहीं किया जाता है, क्योंकि उक्त विषयों को गोपनीय प्रकार का विषय माना जाता है।

जिन विषयों पर भारत सरकार और किसी राज्य सरकार के बीच पत्र-व्यवहार हो रहा हो या हो चुका हो, उनके बारे में तथ्यात्मक विषयों को छोड़कर कोई प्रश्न नहीं पूछा जाना चाहिए और ऐसे किसी प्रश्न का उत्तर तथ्यात्मक कथन तक ही सीमित होता है।[254]

> एक बार जब एक सदस्य ने किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा उस राज्य के मुख्य मंत्री को लिखे गये पत्र को पढ़कर सुनाया और यह पूछा कि सरकार ने उसके संबंध में क्या कदम उठाये हैं तो सभापति ने उस सदस्य से नियमों का पालन करने को कहा और यह टिप्पणी की कि "इस बारे में यह स्पष्ट नियम है कि इस सदन में भारत सरकार और राज्य सरकारों के बीच हुए पत्र-व्यवहार को किसी प्रश्न का विषय नहीं बनाया जाना चाहिए।"[255]

यदि समाचार पत्र के किसी समाचार पर आधारित प्रश्न में कोई सारभूत बात नहीं पूछी गई हो तो उसे गृहीत नहीं किया जाता है। समाचारों के ब्यौरे के बारे में पूछे गए प्रश्नों को सामान्यत: अस्वीकार कर दिया जाता है।

> एक तारांकित प्रश्न पर, जिसमें यह पूछा गया था कि क्या सरकार का ध्यान समाचार-पत्र के समाचार की ओर दिलाया गया है और उसका ब्यौरा क्या है, सभापति ने यह टिप्पणी की थी:
>
> > "मैंने पाया है कि अनेक प्रश्नों में यह पूछा जाता है कि समाचार-पत्र में अमुक समाचार छपा है, क्या सरकार का ध्यान उसकी ओर दिलाया गया है। इसके बजाए कि समाचार-पत्र राजनेताओं का प्रचार करें, राजनेता समाचार-पत्रों का प्रचार कर रहे हैं। आपको किसी समाचार के सारतत्व को ग्रहण करना चाहिए और तब यह पूछना चाहिए कि क्या यह सच है अथवा नहीं। आपको प्रश्नों में नहीं पूछना चाहिए कि क्या किसी समाचार पत्र में ऐसा कोई समाचार प्रकाशित किया गया है और वह समाचार क्या है। आप इसे भविष्य के लिए ध्यान में रख लें। यदि इसके बाद ऐसा कोई प्रश्न पूछा जाता है तो मैं उसकी अनुमति नहीं दूंगा।"[256]

सरकारी उपक्रमों/स्वायत्त निकायों/सांविधिक निगमों के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन से संबंधित प्रश्नों को साधारणत: तब तक उत्तर देने हेतु गृहीत नहीं किया जाता है जब तक कि उसमें नीतिगत अथवा जनहित का विषय अन्तर्ग्रस्त न हो। सदस्य उन सांविधिक निगमों और लिमिटेड कंपनियों के कार्यकरण के संबंध में, जिनमें सरकार का वित्तीय अथवा नियंत्रणकारी हित हो, संबंधित निगमों अथवा कंपनियों से सीधे जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रयोजनार्थ, भारत सरकार के मंत्रालयों ने अपने नियंत्रणाधीन कार्य कर रहे सांविधिक निकायों और लिमिटेड

कंपनियों को निदेश जारी किये हैं कि वे मांगे जाने पर, सदस्यों को अपेक्षित जानकारी सीधे ही उपलब्ध करायें।[257]

> 1982 में, कुछ सदस्यों के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के संकाय सदस्यों को वेतन वृद्धि दिए जाने, उनके द्वारा विदेश यात्राएं किए जाने, उनकी सेवाएं समाप्त किए जाने तथा विश्वविद्यालय के टेलीफोन बिलों, भोजनालय लेखाओं, वेतन व्यय के संबंध में जानकारी मांगते हुए प्रश्नों की सूचनाएं दी थीं। सभापति ने उक्त सूचनाओं को अस्वीकृत करते हुए फाइल पर अपने आदेशों में यह टिप्पणी की थी: "हम किसी स्वायत्त निकाय के घरेलू मामलों की इस तरह जांच किए जाने की अनुमति नहीं दे सकते। प्रश्न का विषय ऐसा होना चाहिए जिसका संबंध सभी लोगों से हो।"[258]

> बैंकों द्वारा ऋण दिए जाने के मामले में भेदभाव बरते जाने की बाबत पूछे गये प्रश्न पर अनुपूरक प्रश्न में एक सदस्य ने यह पूछा था कि हरियाणा राज्य वित्त निगम ने हरियाणा के मुख्य मंत्री के एक संबंधी को कुल कितनी राशि का ऋण मंजूर किया है? इस पर सभापति ने प्रश्न को अस्वीकृत करते हुए यह टिप्पणी की थी: "यह बैंक-व्यवसाय का सिद्धांत है और इस विधान-मंडल में भी इसी सिद्धांत का पालन किया जाता है कि किसी व्यक्ति के ऋण संबंधी लेन-देन के बारे में कोई प्रश्न नहीं पूछा जा सकता है"।[259]

दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों की अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले विषयों पर पूछे गये प्रश्नों को गृहीत नहीं किया जाता है। इसी प्रकार लोक सभा की अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले किसी विषय पर पूछे गये प्रश्न को भी गृहीत नही किया जाता है।

राज्य सभा में किसी प्रश्न के उत्तर में लोक सभा के चालू सत्र के दौरान दिये गये किसी प्रश्न के उत्तर या लोक सभा की कार्यवाही की ओर निर्देश नहीं किया जा सकता है।[260] अत: एक ही सत्र में दोनों सदनों में एक जैसे प्रश्नों को गृहीत किए जाने पर रोक नहीं है।

प्रश्नों की ग्राह्यता के संबंध में सभापति का निर्णय

ऊपर बताए गए प्रश्नों की ग्राह्यता की शर्तों में वे सभी आकस्मिकताएं शामिल नहीं हैं जिनमें प्रश्नों को गृहीत नहीं किया जा सकता। किसी ऐसे प्रश्न, जो नियमों में विशिष्ट उपबंधों के अंतर्गत नहीं आता है, की ग्राह्यता का निर्धारण पूर्वोदाहरणों तथा सुस्थापित संसदीय परिपाटियों, परम्पराओं तथा प्रथाओं को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। ऐसे तथा अन्य मामलों के संबंध में सभापति यह निर्णय करता है कि कोई प्रश्न अथवा उसका कोई भाग इन नियमों के अधीन ग्राह्य है अथवा नहीं और वह कोई प्रश्न या उसका कोई भाग अस्वीकृत कर सकता है जो उसकी राय में प्रश्न पूछने के अधिकार का दुरुपयोग हो या सदन की प्रक्रिया में बाधा डालने या उस पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए किया गया हो या इन नियमों का उल्लंघन करता हो।[261]

यदि सभापति यह राय रखता हो कि यह निर्णय करने के लिए कि प्रश्न ग्राह्य है या नहीं; अधिक समय की आवश्यकता है तो उसे यह निदेश देने का अधिकार है कि किसी प्रश्न को प्रश्न सूची में उत्तर के लिए सदस्य द्वारा अपनी सूचना में उल्लिखित तिथि के बाद की किसी तिथि को रखा जाए।[262] यह भी एक सुस्थापित परिपाटी है कि किसी प्रश्न के किसी पहलू के बारे में किसी प्रकार का संदेह होने की स्थिति में संबद्ध मंत्रालय को निर्दिष्ट किया जाता है और उससे तथ्यात्मक स्थिति प्राप्त की जाती है और ऐसे प्रश्न की

ग्राह्यता प्राप्त की गई तथ्यात्मक जानकारी को ध्यान में रखते हुए निर्धारित की जाती है। ऐसे किसी निर्देश के प्राप्त होने पर मंत्रालयों से यह आशा की जाती है कि वे संबंधित जानकारी तुरंत उपलब्ध कराएंगे और हर हाल में ऐसे निर्देश प्राप्त होने के तीन दिन के भीतर वह जानकारी अवश्य उपलब्ध कराएंगे। अस्वीकृत प्रश्न की ग्राह्यता पर संबंधित सदस्य से प्राप्त अभ्यावेदन के आधार पर पुनर्विचार किया जा सकता है।

यदि सभापति की राय में मौखिक उत्तर के लिए रखा गया कोई प्रश्न ऐसे स्वरूप का है कि उसका लिखित उत्तर अधिक उचित होगा तो सभापति यह निदेश दे सकेगा कि ऐसा प्रश्न लिखित उत्तर के लिए प्रश्न सूची में रख दिया जाए।[263]

गत तीन वर्षों के दौरान देश में हमारे स्वतंत्रता सेनानियों के सम्मान में बनाए गए स्मारकों की संख्या के संबंध में एक तारांकित प्रश्न संख्या 163 का उत्तर 14 नवंबर, 1996 को दिया गया था।[264] महासचिव को लिखे गये एक टिप्पण में सभापति ने यह निदेश दिया था कि जिन प्रश्नों में आंकड़ों के संबंध में जानकारी मांगी गई हो उन्हें अतारांकित प्रश्नों की सूची में दर्ज किया जाना चाहिए।

28 अप्रैल, 2010 की तारांकित प्रश्न सूची हेतु सदस्य द्वारा प्रस्तावित न्यूनतम डायरी संख्या वाले तारांकित प्रश्न संख्या 475 को अतारांकित प्रश्न के रूप में गृहीत किया गया क्योंकि प्रश्न में सांख्यिकीय जानकारी मांगी गई थी। इसके स्थान पर उस सदस्य का एक अन्य प्रश्न तारांकित सूची में जोड़ा गया।

सभापति, यदि वह ठीक समझे तो मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न की सूचना देने वाले सदस्य से मौखिक उत्तर चाहने के कारणों को संक्षेप में बताने के लिए भी कह सकेगा और उन पर विचार करने के बाद अपना निदेश देगा।[265]

सदस्य सभापति द्वारा किसी प्रश्न को गृहीत करने या अस्वीकार करने के उसके अधिकार पर आपत्ति नहीं कर सकते।[266]

जब किसी प्रश्न की सूचना अस्वीकृत कर दी जाती है तो संबंधित सदस्य को सचिवालय द्वारा प्रश्न को अस्वीकृत करने के कारणों के बारे में सूचित कर दिया जाता है।

एक बार एक सदस्य ने सूचना संबंधी मुद्दा उठाया कि उसने कतिपय प्रश्नों की सूचनाएं दी थीं और प्रत्युत्तर में उसे सूचित किया गया था कि सभापति ने उन सूचनाओं को अस्वीकृत कर दिया है। उस सदस्य ने पूर्व परिपाटी का उल्लेख किया जिसके अंतर्गत जब किसी प्रश्न को अस्वीकृत किया जाता था तब उस नियम को उद्धृत किया जाता था जिसका उल्लंघन होता था ताकि सदस्य को अपने प्रश्न के अस्वीकृत होने का कारण ज्ञात हो सके। सभापति ने टिप्पणी की: "सामान्यत: जब मैं प्रश्नों को अस्वीकृत करता हूं तब मेरे पास उन्हें अस्वीकृत करने के पर्याप्त कारण होते हैं और सचिव सदैव माननीय सदस्य द्वारा मांगी गई सूचना प्रदान करता है।"[267]

प्रश्न-सूची और उसके लिए लॉटरी निकाला जाना

जो प्रश्न अस्वीकृत नहीं होते हैं, उन्हें सभापति ने आदेश के अनुसार उस दिन की यथास्थिति मौखिक या लिखित उत्तर के लिए प्रश्न-सूची में दर्ज कर दिया जाता है।[268] किसी एक दिन हेतु मौखिक और लिखित उत्तरों हेतु प्रश्नों की सूचियों में प्रश्नों की कुल संख्या 175 [मौखिक उत्तर हेतु 15 प्रश्न और लिखित उत्तर हेतु 160 प्रश्न] तक सीमित रहेगी। जिसमें लिखित उत्तरों के लिए एक सूची से अन्य प्रश्न सूची में डाले गए प्रश्न और राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्यों से संबंधित पन्द्रह प्रश्न शामिल होंगे।[269] मौखिक उत्तरों के लिए गृहीत

प्रश्न सूची में सदस्यों के नामों को शामिल करने हेतु सदस्यों की परस्पर प्राथमिकता का निर्धारण करने की दृष्टि से दिवस-विशेष के लिए प्रश्नों की प्राप्ति के अंतिम दिवस को मध्याह्न पश्चात् 5.00 बजे केन्द्रीय कक्ष की लॉबी में बैलट या लॉटरी बैलट आयोजित की जाती है।

प्रश्नों की परस्पर प्राथमिकता का निर्धारण करने के लिए कार्यमंत्रणा समिति की सिफारिश पर पहली बार 1970 (71वें सत्र) में बैलट प्रक्रिया प्रारंभ की गई थी।[270] सामान्य प्रयोजन समिति ने 1974 में यह सिफारिश की थी कि किसी दिवस विशेष के लिए मध्याह्न पश्चात् 3.00 बजे तक प्राप्त तारांकित प्रश्नों की सूचनाओं के संबंध में नियम 39 के अधीन सूचनाओं की प्राप्ति के अंतिम दिवस को मध्याह्न पश्चात् 5.00 बजे एक बैलट कराया जाए ताकि उन सूचनाओं को देने वाले सदस्यों की परस्पर प्राथमिकता निर्धारित की जा सके और ऐसे बैलट के परिणाम के अनुरूप गृहीत तारांकित प्रश्नों की सूची तैयार की जानी चाहिए। जब किसी तारांकित प्रश्न की सूचना एक से अधिक सदस्यों द्वारा दी जाती है तो बैलट के प्रयोजनार्थ उस सूचना को केवल प्रथम हस्ताक्षरकर्ता द्वारा दिया गया समझा जाना चाहिए।[271] तारांकित प्रश्न सूची तैयार करने के लिए बैलट में पच्चीस सदस्यों का नाम निकाला जाता है। बैलट में पच्चीस सदस्यों की प्राथमिकता रखने का उद्देश्य उस स्थिति पर काबू पाना है जब उन सदस्यों का कोई भी प्रश्न गृहीत न हो जिन्होंने बैलट में पन्द्रहवें स्थान तक की स्थिति प्राप्त कर ली है। उस स्थिति में जिन सदस्यों ने पन्द्रहवें स्थान से इतर बैलट में स्थान प्राप्त किया होता है उनके तारांकित प्रश्न, तारांकित सूची में गृहीत किए जाते हैं।

107वें सत्र[272] से 232वें सत्र तक सूची में दर्ज किये जाने वाले तारांकित प्रश्नों की संख्या की सीमा 20 प्रश्न प्रतिदिन थी और 116वें सत्र[273] से 218वें सत्र तक किसी तारांकित प्रश्न में दिये जाने वाले सदस्यों के नामों की संख्या को दो तक सीमित कर दिया गया है। 27 नवंबर, 2014 (233वें सत्र) से प्रभावी नियमों के अनुसार प्रतिदिन तारांकित प्रश्नों की संख्या की सीमा 20 से घटाकर 15 कर दी गई है। इसके साथ ही 22 फरवरी, 2010 (219वें सत्र) से प्रभावी नियमों के अनुसार नाम जोड़े जाने के स्थान पर तारांकित सूची में प्रत्येक प्रश्न एक ही सदस्य के नाम पर होगा, जो बैलट में सदस्य के स्थान के अनुसार होगा।

1993 से प्रश्नों के बैलट के परिणाम को बाहरी लॉबी में सूचना-पट पर तथा संसद भवन मे सूचना कार्यालय में भी प्रदर्शित किया जा रहा है।[274] नवंबर 1994 से लॉटरी, जो पहले केन्दीय कक्ष में हाथ से निकाली जाती थी, को भी अब कंप्यूटरीकृत कर दिया गया है और किसी सदस्य, यदि वह बैलट देखने के लिए उपस्थित हो या महासचिव/प्रभागीय प्रमुख/प्रश्न शाखा के वरिष्ठ अधिकारी से प्रतिदिन लॉटरी निकालने के लिए कंप्यूटर को चलाने का अनुरोध किया जाता है। तथापि, तारांकित प्रश्नों की लाटरी हाथ से निकाले जाने का प्रचलन 199वें सत्र से पुन: प्रारंभ किया गया।[275] 227वें सत्र के दौरान अतारांकित प्रश्नों की

लॉटरी हाथ से निकाली गई क्योंकि अतारांकित प्रश्नों के कंप्यूटरीकृत प्री-बैलट चार्ट में कुछ सदस्यों के नाम कुछ तकनीकी खामी के कारण दो बार आ गये थे। तथापि, अतारांकित प्रश्नों की सूचियों की कंप्यूटरीकृत लॉटरी से निकाले जाने का प्रचलन 228वें सत्र से पुन: प्रारंभ हो गया।

दिनांक 14 अगस्त, 1991 के आमंत्रण आदेश द्वारा 160वें सत्र के लिए 26 अगस्त, 1991 को राज्य सभा की बैठक बुलाई गई थी। चूंकि 15 अगस्त 1991 को स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य में अवकाश था इसलिए 26 अगस्त, 1991 (सत्र का प्रथम दिवस) के प्रश्नों के लिए लॉटरी का आयोजन सामान्यत: पूरे दस दिन से एक दिन पूर्व अर्थात् 16 अगस्त, 1991 को किया गया था।[276]

पहली बार वर्ष 1970 (71वें सत्र) में कमरा सं. 119, संसद भवन में लॉटरी निकाली गई थी।[277] वर्ष 1975 में (91वें सत्र) इसका स्थान बदलकर कमरा सं. 32 कर दिया गया।[278] 94वें सत्र के दौरान (दिसंबर, 1975) लॉटरी कमरा सं. 239, संसदीय सौध में निकाली गई और जनवरी 1979 (108वां सत्र) तक इसी स्थान पर लॉटरी निकाली जाती रही।[279] तदुपरांत, लॉटरी निकाले जाने का स्थान अप्रैल, 1979 (109वां सत्र) से कमरा सं 31, संसद भवन[280] से अक्टूबर 1980 में (116वां सत्र) कमरा सं. 34, संसद भवन[281] और जनवरी, 1981 में (117वां सत्र) वहां से कमरा सं. 28, संसद भवन में अंतरित कर दिया गया।[282] जनवरी 1988 में 145वें सत्र के दौरान यह स्थान बदलकर केन्द्रीय कक्ष, संसद भवन कर दिया गया और तब से लेकर अब तक 'लॉटरी' निकाले जाने के स्थान में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।[283]

किसी तारीख विशेष के लिए सदस्यों द्वारा दिये गये प्रश्नों में से, संबंधित सदस्यों द्वारा दी गई वरीयताओं के आधार पर, प्रश्नों को सूची में दर्ज किया जाता है। इस प्रक्रिया में, जब प्रश्नों को अंतिम रूप से सूचीबद्ध किया जाता है तब कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि प्रश्न सूची में एक या दो मंत्रालयों को ही निरंतर स्थान मिले। इसके फलस्वरूप, प्रश्नों के समय में ज्यादा से ज्यादा केवल या दो मंत्रालयों के प्रश्न ही पूछे जा सकेंगे और उस तारीख के लिए निर्धारित अन्य मंत्रालयों के प्रश्न, प्रश्नकाल में नही लिये जा सकेंगे। नियम समिति ने इस मामले पर विचार किया और इस प्रयोजनार्थ एक नये नियम की सिफारिश की। तथापि, सदन में एक प्रस्ताव उपस्थित करके प्रस्तावित नियम को हटा दिया गया।[284]

जहां तक लिखित उत्तरों के लिए गृहीत प्रश्नों का संबंध है, 173वें सत्र तक प्रक्रिया यह थी कि सचिवालय में सूचनाओं की प्राप्ति के समय के अनुसार उन्हें क्रम-वार लगाया जाता था। तथापि, तारांकित और अतारांकित प्रश्नों हेतु एक दिन के लिए कुल 175 प्रश्नों की सीमा निर्धारित कर दिये जाने के कारण, 174वें सत्र से दो बैलट आयोजित किये जाते हैं- एक बैलट, तारांकित प्रश्नों के लिए जिसमें 20 प्रश्नों की सूची के लिए सदस्यों के नाम निर्दिष्ट किए जाते हैं और दूसरा बैलट, अतारांकित प्रश्नों के लिए जिसमें लिखित उत्तरों हेतु 155 प्रश्नों की सूची में सदस्यों के प्रश्नों को सम्मिलित करने के लिए सदस्यों की बैलट प्राथमिकता निर्दिष्ट की जाती है।[285]

एक बार ऐसा हुआ कि तारांकित प्रश्नों की संख्या 20 प्रश्नों से कम थी क्योंकि नियत तिथि के लिए केवल 17 सदस्यों से ही सूचनाएं प्राप्त हुई थीं। इस स्थिति से बचने के लिए प्रश्नों की सूचनाओं की गणना को पुन: शुरू किया गया और इसके फलस्वरूप प्रश्न-सूची में दर्ज प्रथम चार सदस्यों के नाम से दो-दो प्रश्न प्रथम प्रश्नकर्ता के रूप में सम्मिलित किये गये।[286] तथापि, मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची के बैलट में अपनी स्थिति के अनुसार एक सदस्य का नाम एक बार शामिल करने संबंधी नियम के प्रभावी होने के उपरांत

यदि ऐसे सदस्यों जिन्होंने एक तारांकित प्रश्न के लिए सूचनाएं दी हैं और बैठकों की संख्या 20 से कम है तो एक सदस्य का नाम दो बार नहीं आ सकता।

मौखिक और लिखित उत्तरों के लिए प्रश्नों पर पृथक संख्या अंकित की जाती है। प्रत्येक सूची के लिए पृथक-पृथक संख्या अंकित की जाती है। प्रश्नों की यह संख्या सत्र के आरंभ में 1 से शुरू होकर सत्र की समाप्ति तक क्रमानुसार लगातार बढ़ती रहती है। मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्नों की सूची में प्रश्न संख्या के पास तारांक लगाया जाता है।

मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्नों की सूची गुलाबी कागज पर मुद्रित की जाती है और लिखित उत्तरों के प्रश्नों की सूची पीले कागज पर मुद्रित की जाती है ताकि दोनों सूचियों को आसानी से पहचाना जा सके।

> 1974 में (87वां सत्र) सदस्यों को यह सूचित किया गया था कि पीले कागज की कमी के कारण अतारांकित प्रश्नों की सूचियां फिलहाल सफेद कागज पर मुद्रित की जा रही हैं।[287]

वे मंत्रालय जिनके प्रश्न किसी सूची विशेष में सम्मिलित किए जाते हैं, उन मंत्रालयों के नाम तथा उस सूची में सम्मिलित किए गये प्रश्नों की कुल संख्या, प्रश्नों की सूची के ऊपर निर्दिष्ट कर दिये जाते हैं। सूची के अंत में मंत्रालय-वार एक अनुक्रमणिका दी जाती है जिसमें प्रत्येक मंत्रालय के लिए सूची में सम्मिलित किए गये प्रश्नों की संख्या दी जाती है।

प्रश्नों की सूची में सम्मिलित प्रत्येक प्रश्न के ऊपर मोटे अक्षरों में प्रश्न का उपयुक्त शीर्षक, सदस्य (सदस्यों) का (के) नाम जिसने (जिन्होंने) प्रश्न पूछा जाता है और उस मंत्री का पदनाम जिसे प्रश्न सम्बोधित किया गया है, मोटे अक्षरों में मुद्रित किया जाता है। यदि सदन में किसी प्रश्न को लिए जाने से पहले ही प्रश्न को वापस लिया जाता है या उसे बाद की तारीख के लिए स्थगित कर दिया जाता है तो एक शुद्धिपत्र जारी करके उस प्रश्न को सूची से हटा दिया जाता है और संबंधित सदस्य को तदनुसार सूचित कर दिया जाता है।

सदस्यों के नामों का एक साथ दिया जाना

आरंभ के वर्षों में, इस बारे में कोई सीमा नहीं थी किस तारांकित प्रश्न के लिए एक साथ कितने सदस्यों के नाम दिए जा सकते हैं। इसके कारण कई बार एक ही तारांकित प्रश्न पर अनेक सदस्यों के नाम एक साथ देने पड़ते थे। उदाहरण के लिए, चार बार तो ऐसा हुआ कि यह संख्या 34 तक पहुंच गई।[288] स्पष्टत: इससे सदन में उत्तरों के लिए अधिक प्रश्नों को नहीं लिया जा सका।

> किसी राजनीतिक दल के मांग-पत्र के संबंध में 18 अगस्त, 1967 को पूछे गये तारांकित प्रश्न सं. 525 के लिए एक साथ सोलह सदस्यों के नाम दिए गये थे। उस दिन केवल दो प्रश्न ही लिए जा सके।

सामान्य प्रयोजन समिति के परामर्श से सभापति ने निर्देश दिया कि किसी तारांकित प्रश्न के लिए एक साथ पांच से अधिक सदस्यों के नाम नहीं दिए जाने चाहिए।[289] इसके बाद पांच से अधिक सदस्यों के नामों को छोड़ दिया गया। यह प्रक्रिया 1978 तक प्रचलित रही। इसके बाद नियम समिति ने यह सिफारिश की कि इस संख्या को घटाकर तीन कर

दिया जाना चाहिए।[290] तदनुसार, यह प्रक्रिया 1980 तक प्रचलन में रही। इसके पश्चात नियम समिति ने इस मामले पर फिर से विचार किया और किसी तारांकित प्रश्न के लिए एक साथ दिये जाने वाले सदस्यों के नामों की संख्या को और घटाकर दो कर दिया।[291] अत: किसी तारांकित प्रश्न के लिए एक साथ दो नाम दिये जाने और दो से अधिक नाम होने पर शेष नामों को छोड़ दिये जाने की परिपाटी 21 फरवरी, 2010 तक जारी रही। बैलट के परिणामानुसार पहले नाम के अतिरिक्त, अन्य सदस्यों के नाम उनकी सूचना प्राप्त होने के कालक्रम में रखे जाते हैं। जब किसी तारांकित प्रश्न की सूचना एकाधिक सदस्यों अर्थात् संयुक्त सूचना के रूप में दी जाती है तो बैलट तथा तारांकित सूची में नाम शामिल किए जाने के प्रयोजनार्थ वह सूचना केवल प्रथम हस्ताक्षरकर्ता द्वारा दी गई मानी जाती है। 22 फरवरी, 2010 से प्रभावी नियम 43 में संशोधन के बाद मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में शामिल प्रत्येक प्रश्न बैलट में सदस्य के स्थान के अनुसार उस एक ही सदस्य के नाम पर रहता है।[292]

जहां तक अतारांकित प्रश्नों का संबंध है, उसके लिए सदस्यों के नाम एक साथ रखे जाने के लिए कोई सीमा तय नहीं की गई है। तथापि, नामों को एक साथ रखते समय प्रति बैठक प्रति सदस्य के पांच प्रश्नों की समग्र सीमा को अवश्य ध्यान में रखा जाता है।

एक ही विषय अथवा सहबद्ध विषयों से संबंधित प्रश्नों का समेकन

विभिन्न सदस्यों द्वारा दी गई केवल उन प्रश्नों की सूचनाओं को एक साथ रखा जाता है जिनकी शब्द रचना समान होती है और उनकी परस्पर प्राथमिकता लॉटरी/उनकी प्राप्ति के समय के अनुसार निर्धारित की जाती है। एक ही विषय के ऐसे प्रश्नों को उस स्थिति में एक साथ नहीं रखा जाता जो उस विषय के भिन्न-भिन्न पहलुओं से संबंधित होते हैं और उनकी ग्राह्यता पृथक् रूप से निर्धारित की जाती है। नियम समिति ने समान प्रश्नों के समेकन के मामले पर विचार किया किन्तु यह महसूस किया कि ऊपर उल्लिखित वर्तमान परिपाटी संतोषजनक ढंग से कार्य कर रही है।[293]

प्रश्नों के पुकारे जाने और पूछने का क्रम और रीति

मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्न उसी क्रम से पुकारे जाते हैं जिसमें कि वे प्रश्न सूची में दिये गये हैं।[294]

सभापति प्रत्येक ऐसे सदस्य को, जिसके नाम में प्रश्न सूची में कोई प्रश्न होता है, क्रम से पुकारता है। इस प्रकार पुकारा गया सदस्य अपने स्थान पर खड़ा होता है और अपने नाम में रखे हुए प्रश्न को प्रश्न सूची में उसके क्रमांक के निर्देश से पूछता है।[295]

22 फरवरी, 2010 के पूर्व जब कोई प्रश्न दो सदस्यों के नाम में दिया जाता था और उनमें से एक सदस्य अनुपस्थित रहता था और यदि वह प्रश्न मौखिक उत्तर के लिए पुकारा जाता था, तब दूसरा सदस्य, जोकि वहां पर उपस्थित हो, वह प्रश्न पूछ सकता था। तथापि,

मुद्रित वाद-विवाद में दोनों ही सदस्यों के नाम मुद्रित किए जाते हैं और उसके साथ एक पाद-टिप्पण भी मुद्रित किया जाता है, जिसमें सदन में प्रश्न पूछने वाले सदस्य का नाम दर्शाया जाता है।

जब सभापति द्वारा नाम पुकारे जाने पर कोई सदस्य यह कहता है कि अपने नाम से रखे हुए प्रश्न को पूछने का उसका इरादा नहीं है[296] तो प्रश्न को वापस ले लिया गया माना जाता है और ऐसी स्थिति में यह समझा जाता है कि सभापटल पर उसका कोई लिखित उत्तर नहीं रखा गया है।[297] दूसरे शब्दों में, मुद्रित वाद-विवाद में वह प्रश्न नहीं दर्शाया जाता है।

> मंत्रिपरिषद् में रक्षा मंत्री को पुन: सम्मिलित किये जाने के विरोध में, 28 नवंबर, 2001 को उत्तर दिये जाने के लिए तारांकित प्रश्न 141 जिस सदस्य के नाम से दर्ज था, सभापति द्वारा उसका नाम पुकारे जाने पर उसने प्रश्न पूछने से इन्कार कर दिया। तत्पश्चात् सभापति ने यह निर्णय दिया: "यदि आप प्रश्न नहीं पूछ रहे हैं, तो इसे वापस ले लिया गया समझा जाएगा।" तदनुसार, तारांकित प्रश्न सं. 141 को वापस ले लिया गया समझा गया।[298]

तथापि, 22 फरवरी, 2010 से यदि किसी प्रश्न के लिए नाम पुकारे जाने पर इसे नहीं पूछा जाता है या जिसके नाम पर यह प्रश्न है, वह सदस्य अनुपस्थित है, तो सभापति यह निदेश देगें कि इस प्रश्न का उत्तर दिया जाए।[299]

समान प्रश्नों का एक साथ लिया जाना

जब एक ही मंत्री को संबोधित एक ही अथवा सहबद्ध अथवा समान विषय के दो प्रश्न किसी दिवस विशेष की तारांकित प्रश्नों की सूची में दिये गये होते हैं अथवा जब उनमें से पहले प्रश्न का उत्तर देने का समय आ जाता है तो सभापति स्वविवेक से अथवा किसी सदस्य के अनुरोध पर यह निदेश दे सकता है कि ऐसे प्रश्न, सूची में दिए गये उनके क्रम को ध्यान में रखे बिना उत्तर हेतु एक साथ लिए जा सकते हैं बशर्ते ऐसा किये जाने पर किसी सदस्य/मंत्री की ओर से कोई आपत्ति न की गई हो। ऐसी स्थिति में, दोनों प्रश्न एक-एक करके पूछे जाते हैं और उनके उत्तर पृथक् रूप से दिए जाते हैं।[300]

> 26 मई, 1972 के लिए सूची में दर्ज तारांकित प्रश्न सं. 409 इस्पात के वितरण से संबंधित था। एक सदस्य ने इसके कुवितरण से संबंधित एक अनुपूरक प्रश्न पूछा जोकि एक अन्य सदस्य के नाम में प्रश्न सं. 419 पर दर्ज था। दूसरे सदस्य ने सुझाव दिया कि यदि अनुपूरक प्रश्न की अनुमति दी जाती है तो दोनों प्रश्नों को एक साथ लिया जा सकता है अथवा अनुपूरक प्रश्न उस समय पूछा जाना चाहिए जब तारांकित प्रश्न सं. 419 का उत्तर दिया जा रहा हो। चूंकि अनुपूरक प्रश्न पहले ही पूछ लिया गया था इसलिए, सभापति ने यह देखते हुए कि कोई आपत्ति नहीं की गई है, दोनों प्रश्नों को एक साथ पूछने की स्वीकृति प्रदान कर दी।[301]
>
> एक सदस्य ने विशेष विवाह अधिनियम के अधीन विवाह अधिकारियों की नियुक्ति में विलंब के संबंध में एक अनुपूरक प्रश्न पूछा था। इस पर सभापति ने बताया कि वह प्रश्न सं. 4 पर था। मंत्री ने अपने उत्तर में, उस प्रश्न के उत्तर का हवाला दे दिया था। तब सभापति ने मंत्री को उसी समय वह उत्तर देने और दोनों प्रश्नों को एक साथ लेने का निदेश दिया था।[302]

ऐसे भी अवसर आये हैं जब तीन-तीन प्रश्नों को भी एक साथ लिया गया है।[303]

जब सभापति ने यह घोषणा की कि तीन विशेष प्रश्नों को एक साथ लिया जाएगा, तो एक सदस्य ने यह कहा कि ये तीनों भिन्न-भिन्न हैं। दो प्रश्न रामेश्वरम् के मछुआरों से संबंधित हैं और तीसरा प्रश्न श्रीलंका से शरणार्थियों के आगमन से संबंधित है। इस पर सभापति ने यह टिप्पणी की: "कोई बात नहीं। यदि मैं इन्हें असंगत बताऊंगा तो आप सहमत नहीं होंगे, आप मुझसे लड़ोगे इसलिए मैं इन सभी प्रश्नों को एक साथ रख रहा हूं।"[304]

तथापि, यदि सभापति को आपत्ति हो या उसका यह विचार हो कि प्रश्न एक ही विषय पर आधारित नहीं है तो वह प्रश्नों को एक साथ लिए जाने से मना कर सकता है।[305]

एक सदस्य ने सभापति से अनुरोध किया था कि उसके नाम पर दिये गये तीन प्रश्नों, अर्थात् प्रश्न सं. 39, 40 और 51 को एक साथ लिये जाने की अनुमति दी जाए क्योंकि तीनों प्रश्न एक ही विषय से संबंधित हैं और ऐसा करने से उनके एक साथ उत्तर दिये जा सकते हैं और उन पर अपेक्षाकृत कम अनुपूरक प्रश्न पूछे जाएंगे। सभापति इस पर सहमत नहीं हुए थे और उन्होंने कहा था कि "ऐसे प्रश्न सामान्यत: एक-एक करके पूछे जाते हैं।"[306]

जब एक सदस्य ने यह सुझाव दिया कि उसके नाम से दसवें स्थान पर दिये गये उसके एक अन्य प्रश्न को एक साथ लिया जाए, क्योंकि वह पहले प्रश्न के विषय से ही संबंधित है, तब संबंधित मंत्री ने यह कहा था कि दोनों प्रश्न भिन्न-भिन्न हैं इसलिए उन्हें अलग-अलग लिया जाए। इस पर सभापति सहमत हो गये थे।[307]

एक सदस्य ने यह अनुरोध किया था कि तीन प्रश्नों को एक साथ लिया जाये "ताकि सदस्य यह महत्वपूर्ण विषय एक साथ उठा सकें और इसका संतोषजनक उत्तर मिल सके।" इस पर जब सभापति ने सदन में यह पूछा कि क्या सदस्य इससे सहमत हैं, तो कुछ सदस्यों ने कहा, "नहीं"। इसलिए सभापति ने यह टिप्पणी की कि "तीनों प्रश्न जीवन बीमा निगम से संबंधित हैं किन्तु उनकी विषय-वस्तु भिन्न प्रतीत होती है।"[308]

सभापति ने यह सुझाव दिया था कि सं. 9 पर दिये गये प्रश्न को सं. 1 पर दिए गये प्रश्न के साथ जोड़ा जा सकता है। इस पर कुछ सदस्यों ने यह कहा था कि यह एक भिन्न प्रश्न है। इसके पश्चात् सभापति उसे अलग रखने पर सहमत हो गये थे। इस पर एक सदस्य ने यह सुझाव दिया था कि दोनों प्रश्नों को एक साथ जोड़ने का सभापति का पूर्व निर्णय ठीक था। इस पर सभापति ने यह कहा था कि "मैंने अपने निर्णय का पुनरीक्षण कर लिया है।"[309]

एक अवसर पर एक सदस्य ने सुझाव दिया कि सं. 15 के प्रश्न और सं. 1 के प्रश्न को एक साथ लिया जा सकता है, क्योंकि वे एक ही विषय से सबंधित थे। तथापि, सभापति ने इसकी अनुमति नहीं दी और कहा कि सं. 1 के प्रश्न का उत्तर पहले दिया जाए। तत्पश्चात् प्रश्नकाल में सं. 1 के प्रश्न पर अनुपूरकों का उत्तर दिया गया।[310]

एक अन्य अवसर पर, जब सभापति ने सं. 342 के प्रश्न का उत्तर देने के लिए कहा तो एक सदस्य ने अनुरोध किया कि सं. 348 का प्रश्न भी उसके साथ लिया जाए क्योंकि दोनों एक ही विषय से संबंधित थे। सभापति ने यह कहते हुए सहमति नहीं दी कि, "हम उन्हें उसी क्रम में मानते हैं, जिस क्रम में वे सूचीबद्ध हुए हैं। यह मत-पत्र का परिणाम है। मत-पत्र के परिणामों का ही अनुसरण किया जाएगा। जब सदस्य ने पुन: अनुरोध किया, तब सभापति ने टिप्पणी की कि, "नहीं, यह उचित नहीं होगा"।[311]

प्रश्नों के उत्तरों की प्रतियों का उपलब्ध कराया जाना

तारांकित प्रश्नों के उत्तर सदन में मौखिक रूप से दिये जाते हैं। यह एक सुस्थापित प्रथा है कि प्रश्नों के उत्तरों की अग्रिम प्रतियां उपलब्ध नहीं करायी जाती हैं।[312] जुलाई, 1952

में ही सदस्यों ने यह मामला उठाया था कि प्रश्नों के उत्तरों में सदन के पटल पर रखे जाने वाले विवरणों की अग्रिम प्रतियां उपलब्ध कराई जाएं ताकि सदस्य उत्तरों को समझ सकें और उन पर अनुपूरक प्रश्न पूछ सकें।[313] सभापति ने लोक सभा में अपनाई जा रही प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए कहा था कि विवरण की प्रतियां सूचना कार्यालय में आधा घंटे पहले रख दी जाएंगी।[314]

यह मामला पुन: 1968 में उठाया गया। चर्चा के दौरान यह कहा गया कि प्रक्रिया के अनुसार मंत्री को यह अधिकार है कि वह मौखिक उत्तर देने के लिए खड़ा होने तक किसी प्रश्न के उत्तर में परिवर्तन कर सकता है, हो सकता है कि उस समय तक उसे कोई नवीनतम जानकारी प्राप्त हो जाए या अंतिम क्षणों में उसे किसी दस्तावेज को पढ़कर कोई जानकारी मिल जाए और इससे, उसके उत्तर में भारी अंतर आ जाए। अत: यदि सदस्यों को उत्तर पहले ही उपलब्ध करा दिये जाएं, तो इससे न केवल प्रश्नों के समय की सक्रियता समाप्त हो जाएगी बल्कि इससे मंत्रियों को भी भारी कठिनाइयां पैदा हो सकती हैं। सभापति ने कहा कि वह इस मामले को नियम समिति को सौंपेंगे।[315]

नियम समिति ने इस मामले पर विचार किया और यह सिफारिश की कि उस दिन के लिए प्रश्नों की सूची में शामिल सभी तारांकित प्रश्नों के उत्तरों का एक सेट सदस्यों के अवलोकनार्थ मध्याह्न पूर्व 10.30 बजे तक सूचना कार्यालय में रख दिया जाना चाहिए। तथापि, इन उत्तरों को गोपनीय समझा जाएगा और तब तक अंतिम उत्तर के रूप में नहीं माना जाएगा जब तक प्रश्नों के उत्तर वास्तव में सदन में नहीं दिये जाते।[316] सभापति के एक निदेश द्वारा 109वें सत्र के आरंभ से इस सिफारिश को कार्यान्वित किया गया।[317]

वर्तमान परिपाटी यह है कि उस दिन के लिए प्रश्नों की सूची में शामिल सभी तारांकित प्रश्नों के ग्यारह सेट तथा अतारांकित प्रश्नों के उत्तरों के पांच सेट सदस्यों के अवलोकनार्थ मध्याह्न पूर्व 10.00 बजे तक सूचना कार्यालय में इस शर्त के साथ रख दिये जाते हैं कि उन उत्तरों को गोपनीय माना जाएगा और तब तक अंतिम उत्तर के रूप में नहीं माना जाएगा जब तक कि प्रश्नों के उत्तर वस्तुत: सदन में नहीं दे दिये जाते या उन्हें सभापटल पर रख दिया गया नहीं मान लिया जाता।[318] सुविधा के लिए पहले पांच तारांकित प्रश्नों के उत्तरों को बाह्य लॉबी में सूचना-पट पर भी प्रदर्शित किया जाता है।

जब किसी मौखिक उत्तर वाले किसी प्रश्न के संबंध में कोई विवरण सभापटल पर रखा जाना होता है अथवा जब किसी पूर्ववर्ती प्रश्न के उत्तर का उल्लेख किया जाना होता है तो उस विवरण अथवा पूर्ववर्ती प्रश्न के उत्तर की प्रतियां यथास्थिति संबंधित सदस्यों को एक घंटा पहले ही उपलब्ध करवा दी जाती हैं, ताकि वे उनका अध्ययन कर अनुपूरक प्रश्न पूछ सकें।[319]

> एक औचित्य-प्रश्न के संबंध में, एक सदस्य ने बताया कि एक प्रश्न के उत्तर में 1980-81 में पहले पूछे गये कई प्रश्नों का हवाला दिया गया है जो उसे अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए उस समय उपलब्ध नहीं करवाए गए। सभापति ने यह सुझाव दिया कि यदि पहले पूछे गये प्रश्नों के उत्तरों का हवाला दिया गया है तो उन उत्तरों को सदस्यों के अवलोकनार्थ एक उपाबंध के रूप में सभापटल पर रखा जाए।[320]

प्रश्न करने वाले सदस्य के अतिरिक्त अन्य सदस्यों को भी प्रस्तावित विवरण की एक प्रति दी जा सकती है, बशर्ते कि अतिरिक्त प्रतियां उपलब्ध हों। यदि किसी कारणवश ऐसा विवरण सभापटल पर नहीं रखा जाता है या उसका उत्तर नहीं दिया जाता है या संबंधित प्रश्न का सदन में उत्तर देते समय मंत्री द्वारा तत्संबंधित विषय-वस्तु में परिवर्तन किया जाता है तो मूल विवरण अथवा उत्तर को सार्वजनिक नहीं किया जाता।

मंत्रियों द्वारा प्रश्नों के उत्तर दिया जाना

जब कभी मौखिक उत्तर वाले किसी तारांकित प्रश्न का उत्तर काफी लंबा हो जाता है तो उसे सभापटल पर रखा जाना चाहिए ताकि प्रश्नकाल के दौरान उपलब्ध समय का सदुपयोग अधिकाधिक प्रश्न शामिल करने में किया जा सके।[321]

एक अवसर पर जब राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के नायकों से संबंधित एक अनुपूरक प्रश्न के उत्तर में मंत्री ने यह बताया कि इनकी सूची काफी लंबी है, तब सभापति ने निदेश दिया कि मंत्री इसे सभापटल पर रख दें।[322]

जब प्रस्तावित विवरण की एक प्रति न मिलने के कारण एक सदस्य ने इस बात पर जोर दिया कि मंत्री को इसे पढ़ने का निदेश दिया जाए, तब सभापति ने टिप्पणी की:

> "मंत्री को यह विवरण पढ़कर सुनाने के लिए कहने में कोई गलत बात नहीं है, किन्तु हम सदन का इतना समय व्यर्थ कर देंगे और इसके परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत कम प्रश्न पूछे जा सकेंगे। इसलिए, मैं सदस्यों से यह अनुरोध करता हूं कि वे लंबे विवरणों को पढ़ने पर जोर न दिया करें।" सभापति ने यह भी कहा कि यदि सदन यही चाहता है कि विवरण मंत्री द्वारा पढ़वाया जाए तो इस पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। तत्पश्चात् कुछ सदस्यों ने कहा कि उस विवरण को पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। सदस्यों द्वारा कुछ मुद्दे उठाए जाने के पश्चात् सभापति ने मंत्री से अनुरोध किया कि वह उस विवरण का सार प्रस्तुत करें। मंत्री ने उस विवरण के अत्यधिक लंबा होने के कारण उसका सार प्रस्तुत करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। तथापि, बाद में उसने सार प्रस्तुत किया।[323]

एक अवसर पर, जब एक मंत्री ने किसी प्रश्न का बहुत लंबा उत्तर दिया तो इस प्रश्न से संबंधित अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए कहने से पहले सभापति ने यह टिप्पणी की थी, "मैं सत्ता पक्ष का ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहती हूं कि उत्तरों को बहुत लंबा नहीं होना चाहिए। यदि उत्तर लंबे ही हों तो उन्हें विवरणों के रूप में सभापटल पर रखा जाना चाहिए। सदस्यों को अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए अपेक्षाकृत अधिक समय मिलना ही चाहिए।"[324]

एक अन्य अवसर पर, एक मंत्री ने एक प्रश्न के उत्तर में एक विवरण सभापटल पर रखा। जिस सदस्य के नाम से वह प्रश्न था उसने खड़े होकर विरोध प्रकट किया कि यह विवरण मात्र छह पंक्तियों का उत्तर है तथा इसे ऐसे अन्य सदस्यों के लाभार्थ पढ़ा जाना अधिक बेहतर होता जो इसके संबंध में अनुपूरक प्रश्न पूछना चाहते, और इस प्रकार से उनके प्रश्न पूछने के स्वयंसिद्ध अधिकार से वंचित किया जा रहा है। तत्पश्चात् सभापति ने यह टिप्पणी करते हुए मंत्री को विवरण पढ़कर सुनाने का निदेश दिया, "यदि उत्तर लंबा हो केवल तभी उसे सभापटल पर रखा जा सकता है। छोटे उत्तर को पढ़कर सुनाया जाए।"[325]

जब एक मंत्री ने एक प्रश्न का बहुत लंबा उत्तर पढ़ा और प्रश्नों का समय समाप्त होने वाला था तो सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की: "इस सदन में और प्रत्येक संसद् में यह नियम है कि यदि उत्तर लंबे हों तो उन्हें विवरण के रूप में सभापटल पर रखा जाना चाहिए ताकि सदस्य उन्हें पढ़ सकें।" सभापति ने मंत्री को भविष्य में इस नियम का सावधानीपूर्वक अनुपालन करने का निदेश दिया।[326]

सभापति द्वारा की गई उपर्युक्त टिप्पणी के अनुसरण में सचिवालय ने भारत सरकार के मंत्रालयों/विभागों को एक ज्ञापन भेजा जिसमें उनसे सभी सम्बद्ध पक्षों को ये निदेश जारी करने का अनुरोध किया गया था कि "जब कभी भी किसी तारांकित प्रश्न का उत्तर 5 या 6 पंक्तियों से अधिक हो अथवा उसमें आंकड़े दिये गये हों तो उसे निरपवाद रूप से उस प्रश्न के उत्तर में एक विवरण के रूप में सभापटल पर रखा जाना चाहिए।"[327]

तथापि, बाद के अवसरों पर भी सभापति को मंत्रियों को लंबे उत्तरों को विवरणों के रूप में सभापटल पर रखे जाने की सलाह देने के लिए हस्तक्षेप करना पड़ा।[328] उदाहरण के लिए, एक अवसर पर सभापति ने टिप्पणी की:

> "...कुछ लोग दोनों तरह से भूल करते हैं। कभी-कभी लोग बहुत छोटे वक्तव्य सभापटल पर रख देते हैं और कुछ लोग केवल लंबे-लंबे वक्तव्यों को ही पढ़ते जाते हैं। अत: आपको नियम के अनुसार चलना चाहिए। मैं यह निदेश दे रहा हूं कि छोटे वक्तव्यों को पढ़ा जाना चाहिए और लंबे वक्तव्यों को सभापटल पर रख दिया जाना चाहिए।"[329]

किसी तारीख को सदन में मौखिक रूप से दिये गये प्रश्नों के उत्तरों को दिवस की कार्यवाही में "प्रश्नों के मौखिक उत्तर" शीर्षक के अंतर्गत मुद्रित किया जाता है, जबकि लिखित उत्तरों के लिए प्रश्नों तथा ऐसे तारांकित प्रश्नों, जिनका सदन मे मौखिक रूप से उत्तर नहीं दिया गया है, के उत्तरों को कार्यवाही में "प्रश्नों के लिखित उत्तर" शीर्षक के अंतर्गत मुद्रित किया जाता है।

> एक अवसर पर, एक सदस्य ने प्रश्न सूची में अपने नाम पर दर्ज प्रश्न पूछा किन्तु मंत्री ने उसका उत्तर पढ़कर नहीं सुनाया। तथापि, उक्त प्रश्न को तारांकित प्रश्न समझा गया और उसके उत्तर को इस आशय के एक पाद-टिप्पण के साथ मुद्रित किया गया। सभापति द्वारा प्रश्नों का समय समाप्त होने की घोषणा करने से पहले, ऐसा किये जाने का कारण यह बताया गया कि मंत्री ने यह निर्णय लेने में कि क्या प्रश्न का उत्तर दिया जाना चाहिए या नहीं, एक मिनट का समय लिया है। सुस्पष्टत: वह इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहते (क्योंकि प्रश्नों का समय समाप्त होने वाला था)।[330]

प्रश्नों के लिखित उत्तरों और मौखिक उत्तरों के लिए ऐसे प्रश्नों के उत्तरों, जो सभापटल पर रख दिये जाते हैं, को उत्तरों में निर्दिष्ट मंत्री के नाम में दर्शाया जाता है।

प्रश्न का असंतोषजनक उत्तर

एक सदस्य ने यह सुनिश्चित करने के लिए सभापति का संरक्षण चाहा कि मंत्री प्रश्न के प्रत्येक भाग का उत्तर दें। उन्होंने कहा कि "जहां तक सदस्यों का संबंध है, हम अपने प्रश्नों को भाग (क), (ख) और (ग) आदि में देने को प्रयास करते हैं, लेकिन उनके सामान्य उत्तर दिये जाते हैं। प्रश्न के भाग (ख) में यह पूछा गया था: ये पद कब से रिक्त हैं? अब यह प्रश्न पूर्णत: अनुत्तरित रह गया है... मेरे विचार में मंत्रालय द्वारा प्रश्नों के सटीक उत्तर दिये जाने का प्रयास किया जाना चाहिए।"[331]

190वें सत्र के दौरान एक संसदीय प्रश्न के दिये गये उत्तर से उत्पन्न विशेषाधिकार के हनन की सूचना पर विचार करते समय सभापति ने यह टिप्पणी की कि यदि मंत्रालय ने प्रश्न के प्रत्येक भाग का अलग-अलग और स्पष्ट उत्तर दे दिया होता, तो काफी हद तक भ्रम की स्थिति से बचा जा सकता था। इसके बाद की कार्यवाही के रूप में,

25 अक्टूबर, 2000 को इस आशय का एक कार्यालय-ज्ञापन संसदीय कार्य मंत्रालय को जारी किया गया जिसमें सभापति ने उक्त निर्देश की ओर सभी मंत्रालयों का ध्यान आकृष्ट करने की बात कही गई थी। सभापति ने यह निदेश दिया है कि राज्य सभा में सभी प्रश्नों के उत्तर सुनिश्चित और पूर्ण होने चाहिए तथा प्रश्नों के प्रत्येक भाग अथवा उनमें मांगी गई जानकारी की प्रत्येक मद का पृथक उत्तर दिया जाना चाहिए और यदि सभापति को यह प्रतीत होता है कि यह शर्त पर खरा नहीं उतरता है तो वे मंत्री को उस प्रश्न के प्रत्येक भाग का संपूर्ण उत्तर देने को निदेश दे सकते हैं।[332]

जब भी किसी सदस्य से उनके प्रश्न के असंतोषजनक उत्तर के संबंध में शिकायत प्राप्त होती है तो उसे असंतोषजनक उत्तर के साथ उपरोक्त निदेश की ओर संबंधित मंत्री का ध्यान आकर्षित करते हुए उस प्रश्न को संबंधित मंत्री को भेज दिया जाता है।

> एक बार, एक सदस्य ने 18 मई, 2012 के अपने अतारांकित प्रश्न संख्या 4786 के रेल मंत्री द्वारा दिये गए भ्रामक उत्तर के विरुद्ध शिकायत की। सदस्य से शिकायत प्राप्त होने पर रेल मंत्री ने प्रश्न का गलत उत्तर दिये जाने पर खेद जताया और उत्तर को संशोधित करने वाला संशोधन विवरण सभापटल पर रखने के लिए सहमत हुए। तथापि, उन सदस्य ने मंत्रालय के प्रत्युत्तर पर असंतोष व्यक्त किया और यह मांग की कि मामले को समुचित कार्यवाही के लिए विशेषाधिकार समिति को भेजा जाए। संशोधन संबंधी विवरण 19 दिसम्बर, 2012 को सभापटल पर रखा गया।

प्रश्नों के समय के दौरान मंत्री का उत्तरदायित्व

जब कोई प्रश्न मौखिक उत्तर के लिए रखा जाता है तो संबंधित सदस्य, सभापति द्वारा पुकारे जाने पर, अपने स्थान पर खड़े होकर प्रश्न पूछता है।[333] इसलिए, यह आवश्यक है कि उसका उत्तर देने के लिए सदन में मंत्री को अवश्य उपस्थित रहना चाहिए। यद्यपि, तारांकित प्रश्नों संबंधी नियमों में 'अल्प सूचना प्रश्न' से संबंधित नियत से भिन्न उपबंध नहीं है कि "संबंधित मंत्री तुरंत उत्तर देगा",[334] तथापि सदन में मंत्रियों की उपस्थिति के संबंध में कुछ परम्पराएं विकसित हो गई हैं तथा उनमें से एक परम्परा यह है कि नियत दिवस को प्रश्नों का उत्तर देने के लिए संबंधित मंत्री को सदन में उपस्थित रहना चाहिए। किसी मंत्री के लिए किसी दिवस को नियत करने का मुख्य प्रयोजन उस मंत्री को संबोधित प्रश्नों के उत्तर देने के लिए सदन में उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करना प्रतीत होता है। परिपाटी के अनुसार जब भी कोई मंत्री सरकारी या किसी अन्य कार्यवश दिल्ली से बाहर जाता है तो उसे अग्रिम रूप से सभापति को इसकी सूचना देनी होती है और उसे अपनी अनुपस्थिति के दौरान सदन में प्रश्नों सहित उसके कार्य को संपादित करने के लिए उसके द्वारा की गई व्यवस्था की जानकारी भी देनी होती है।

इस संदर्भ में, यह उल्लेखनीय है कि एक अवसर पर एक मंत्री, जो प्रश्न के विषय के लिए उत्तरदायी नहीं था, ने एक अन्य मंत्री, जो उसके लिए उत्तरदायी था और सदन में उपस्थित था, की ओर से स्वेच्छा से उक्त प्रश्न का उत्तर देना चाहा तो सभापति ने विनिर्णय दिया :

यह परिपाटी रही है कि मंत्री यह अनुरोध भेजते हैं कि जब वे सदन में उपस्थित नहीं होंगे तो उनकी ओर से कोई अन्य मंत्री प्रश्नों के समय के दौरान प्रश्न का उत्तर देगा। यह परिपाटी पुरानी हो गई है और न केवल विगत में इसका अनुपालन किया गया है बल्कि मैंने भी इसका अनुपालन किया है। सामान्यत: यह परिपाटी ऐसे मंत्रालय पर लागू होती है जिसमें सभा में उपस्थित होने के लिए कोई अन्य उपमंत्री या राज्य मंत्री नहीं होता है। इसमें संयुक्त उत्तरदायित्व जैसी कोई बात ही नहीं है क्योंकि इस तरह से आप एक मंत्री नहीं बल्कि पांच मंत्रियों को सदन में भेज सकते हैं क्योंकि वे सभी संयुक्त रूप से उत्तरदायी होते हैं। वे कहेंगे कि सदन में जो भी मंत्री उपस्थित हो उसे प्रश्नों के उत्तर देने की अनुमति दी जाए। संयुक्त उत्तरदायित्व इतना अधिक व्यापक नहीं हो सकता है। संयुक्त उत्तरदायित्व के अंतर्गत एक मंत्री को किसी अन्य मंत्री का स्थान लेने की अनुमति दी जाएगी बशर्ते उस मंत्रालय में कोई अन्य मंत्री नहीं हो जो सदन में उक्त मंत्री का स्थान ले सके।

तथापि, सभापति ने कहा कि चूंकि मंत्री महोदय तैयार हैं, इसलिए उन्हें सदन की अनुमति से प्रश्न का उत्तर देने की अनुमति दी जा सकती है किन्तु, भविष्य में यदि मंत्रालय में कोई अन्य मंत्री आ जाता है तो वह सदन में उपस्थित रहता है तो किसी और को नहीं बल्कि उसे इसका उत्तर देना चाहिए।[335]

एक अवसर पर जब वाणिज्य मंत्रालय के दोनों मंत्री अनुपस्थित थे तो उनकी ओर से एक अन्य मंत्री उत्तर दे रहा था। एक समय एक सदस्य ने ध्यान दिलाया कि दो में से एक मंत्री को सदन में उपस्थित रहना चाहिए था। सभापति ने कहा कि नियमों में किसी मंत्री को किसी अन्य मंत्री की ओर से उत्तर देने की अनुमति दी गई है।[336]

एक अन्य अवसर पर विद्युत मंत्री हेतु सूचीबद्ध तारांकित प्रश्न संख्या 263 के एक अनुपूरक का उत्तर कोयला मंत्री द्वारा दिया गया।[337]

ऐसे अवसर रहे हैं जब तारांकित प्रश्नों के लिखित उत्तर उस मंत्री के नाम से प्राप्त हुए जिसे मूलत: प्रश्न संबोधित किये गये थे, लेकिन उन प्रश्नों के अनुपूरक प्रश्नों का उत्तर किन्ही अन्य मंत्रियों द्वारा दिया गया था। ऐसा उस समय भी हुआ जबकि ऐसे मंत्री जिन्हें मूलत: प्रश्न संबोधित थे, स्वयं सदन में उपस्थित थे।[338]

प्रश्नों के उत्तरों का संशोधन

जब सदन में दिये गये अथवा सभापटल पर रखे गये किसी प्रश्न के उत्तर के संबंध में बाद में मंत्री को यह पता लगता है कि वह उत्तर गलत था तो ऐसे मामलों में संबंधित मंत्री को, अपने पहले दिये गये उत्तर के संशोधानार्थ या तो उस तारांकित या अनुपूरक या अल्प सूचना प्रश्न के संबंध में एक वक्तव्य देना पड़ता है या यदि वह उत्तर अतारांकित प्रश्न के संबंध में होता है तो सभापटल पर एक विवरण रखना होता है।

ऐसे उदाहरण हैं जब तारांकित प्रश्नों से उत्पन्न होने वाले अनुपूरक प्रश्नों में अशुद्धियों को संशोधित गया है।

एक अवसर पर संबंधित मंत्री ने 18 मार्च, 2008 को तारांकित प्रश्न के उत्तर से उत्पन्न हुए अनुपूरक प्रश्न का राज्य सभा में दिये गये उत्तर में संशोधन करने के लिए वक्तव्य दिया।[339]

एक अन्य अवसर पर, 22 फरवरी, 2011 को एक सदस्य ने एक अनुपूरक प्रश्न के दिये गये उत्तर में तथ्यों से संबंधित विसंगतियों को उठाया। इसके पश्चात्, जब तथ्यों की जांच की गई और उस मंत्रालय द्वारा अशुद्धि की पुष्टि की गई तो संबंधित मंत्री सहमत हुए और उत्तर में संशोधन करते हुए वक्तव्य दिया।[340]

1982 से पूर्व, परिपाटी यह थी कि किसी भी प्रश्न, चाहे वह तारांकित, अतारांकित, अनुपूरक या अल्प सूचना प्रश्न हो, से संबंधित अपने उत्तर के संशोधनार्थ मंत्री को सदन में एक वक्तव्य देना पड़ता था। फरवरी, 1982 में, एक अतारांकित प्रश्न के उत्तर को संशोधित करने के लिए सभापति द्वारा दिये गये एक निदेश के अधीन इस प्रक्रिया में सुधार किया गया। उस निदेश, जोकि संसदीय समाचार में प्रकाशित किया गया था, में यह निर्दिष्ट किया गया था कि प्रचलित परिपाटी, जिसके अंतर्गत किसी अतारांकित प्रश्न के उत्तर के संशोधनार्थ मंत्री को सदन में वक्तव्य पढ़ता (देना पड़ता) था। उसके स्थान पर अब से संबंधित मंत्री इस संबंध में एक विवरण सभापटल पर रखेगा।[341] इस निदेश के पीछे तर्क यह था कि जहां अतारांकित प्रश्नों के उत्तरों को संबंधित मंत्री द्वारा प्रश्नकाल के अंत में सभापटल पर रखा गया मान लिया जाता है वहां किसी उत्तर के संशोधनार्थ वक्तव्य को सदन में पढ़ा जाता था। यह देखा गया था कि मंत्रियों द्वारा बार-बार संशोधनार्थ वक्तव्य दिये जाते थे और वे बहुत लंबे होते थे, इसलिए सदन में ऐसे वक्तव्य दिये जाने के बजाए यदि इन्हें विवरण के रूप में सभापटल पर रखने की अनुमति दे दी जाए तो सदन के समय की बचत की जा सकती है।[342]

> 25 फरवरी, 1982 को जब एक अतारांकित प्रश्न के उत्तर के संशोधनार्थ संबंधित मंत्री ने एक विवरण सभापटल पर रखा तब उस विवरण को पढ़े जाने की मांग की गई। उपसभापति ने सदस्यों का ध्यान सभापति द्वारा 17 फरवरी, 1982 को जारी किए गये निदेश की ओर दिलाया। कुछ सदस्यों ने इस विषय पर अपने-अपने विचार व्यक्त किये और उपसभापति ने उन्हें उस पृष्ठभूमि के बारे में बताया जिसके कारण यह निदेश जारी किया गया था।[343]

तथापि, उसके पश्चात् एक ऐसा अवसर भी आया है जब उपसभापति ने एक अतारांकित प्रश्न के उत्तर के संशोधनार्थ विवरण को, सदस्यों की मांग का सम्मान करते हुए संबंधित मंत्री को उसे पढ़ने के लिए कहा और साथ ही यह टिप्पणी भी की कि "ऐसा केवल आज के लिए किया गया है।"[344]

जब कोई मंत्री, किसी प्रश्न के अपने द्वारा दिये गये उत्तर की गलती को ठीक करना चाहता है तो वह इस आशय की सूचना महासचिव को देता है और उस सूचना के साथ प्रस्तावित वक्तव्य की एक प्रति भी संलग्न करता है जिसे वह सभा में पढ़ना चाहता है या सभापटल पर रखना चाहता है। तत्पश्चात्, सामान्यत: जिस दिन उस मंत्री के नाम प्रश्न होते हैं उस दिन या मंत्रालय द्वारा बताए गए किसी दिन की कार्यावलि में इस आशय की एक मद सम्मिलित कर ली जाती है। कार्यावलि में यह मद 'प्रश्न' के तत्काल बाद शामिल की जाती है। सदन की बैठक प्रारम्भ होने से आधार घंटा पहले विवरण की एक प्रति संबंधित सदस्य को भी सूचना कार्यालय में उपलब्ध करा दी जाती है।

नियत दिवस को, सभापति द्वारा पुकारे जाने पर, संबंधित मंत्री यथास्थिति सदन में वक्तव्य देता है अथवा उस वक्तव्य की एक प्रति सभापटल पर रखता है वह (वे) सदस्य जिसके (जिनके) प्रश्न के उत्तर में पूर्व उत्तर दिया गया था और जिसे मंत्री द्वारा संशोधित किये जाने की मांग की गई थी, उसे वक्तव्य दिये जाने के पश्चात् संक्षिप्त स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति दी जा सकती है[345] और उस संशोधन पर अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति भी दी जा सकती है जोकि सभापति के विवेक पर निर्भर करता है।[346]

जब संशोधनार्थ विवरण के संबंध में एक सदस्य ने एक अनुपूरक प्रश्न पूछना चाहा तो सभापति ने टिप्पणी की, "सामान्यत: ऐसा नहीं किया जाता है किन्तु इसके अपवाद भी हो सकते हैं जब मंत्री एक वक्तव्य दे देता है और उसे दूसरा वक्तव्य देना होता है। निस्सन्देह ऐसे मामलों में मैं सदस्यों को प्रश्न पूछने का अवसर प्रदान करना चाहूंगा।"[347]

सामान्यत: उत्तरों के संशोधनार्थ वक्तव्य यथासंभव शीघ्र सदन में दिये/रखे जाने चाहिएं। ऐसा करने में होने वाले विलंब के मामले को सदस्यों द्वारा समय-समय पर उठाया जाता रहा है, हालांकि ऐसे अवसर भी आये हैं जब मंत्रियों ने प्रश्नकाल की समाप्ति के तुरंत बाद[348] अथवा उत्तर दिये जाने वाले दिन कुछ ही समय पश्चात् उत्तरों को संशोधित कर दिया है।[349]

जब एक मंत्री ने डेढ़ वर्ष पूर्व दिए गए एक आतारांकित प्रश्न के उत्तर के संशोधनार्थ एक विवरण राज्य सभा के सभापटल पर रखना चाहा था, तो एक सदस्य द्वारा विलंब में एक औचित्य-प्रश्न उठाए जाने पर सभापति ने टिप्पणी की थी, "इसमें असाधारण विलंब हुआ है और सदन सरकार से यह अपेक्षा करता है कि इतना विलंब कभी भी न किया जाए क्योंकि इतने लम्बे समय के अंतराल के पश्चात् किसी उत्तर में किया गया कोई भी संशोधन एक मजाक बनकर रह जाएगा... ।"[350]

इसी तरह, एक मंत्री ने जब राज्य सभा में अतारांकित प्रश्न के दिये गये उत्तर के संशोधनार्थ उस मंत्रालय द्वारा उत्तर दिये जाने के लिए नियत दिवस के बजाय तीन सप्ताह पश्चात् एक विवरण रखना चाहा तो एक सदस्य ने विवरण रखे जाने में विलंब के संबंध में औचित्य का प्रश्न उठाया और यह कहा कि ऐसा मंत्रालय के लिए नियत किये गये दिवस को नहीं किया गया है। इस पर सभापति ने निम्न टिप्पणी की :

> यह संशोधन समय पर किया जाना चाहिए और संबंधित मंत्रालय को संशोधन प्रश्नों के उत्तर दिये जाने वाली तिथि को करने चाहिए।[351]

कोई गैर-सरकारी सदस्य भी किसी गलती को ठीक करने के लिए सभापति की अनुमति मांग सकता है।

एक सदस्य ने निवेदन किया कि पिछले दिन उसने दिल्ली के एक समाचार-पत्र में प्रकाशित एक कार्टून के बारे में एक अनुपूरक प्रश्न पूछा था। उसने कहा कि उसने वह कार्टून ठीक से नहीं देखा था इसलिए उसे समझने में गलती कर दी। उसने सभापति से अनुरोध किया कि उसके अनुपूरक प्रश्न को कार्यवाही में से निकाल दिया जाए। सभापति ने विनिर्णय दिया कि सदस्य का वक्तव्य अभिलिखित किया जाएगा।[352]

प्रश्नों का वापस लिया जाना या स्थगित किया जाना

कोई सदस्य उस बैठक से पहले जिसके लिए उसका प्रश्न स्वीकृत प्रश्न-सूची में पहले ही रखा गया है, किसी भी समय सूचना देकर अपने प्रश्न को वापस ले सकता है या उसे बाद के किसी दिन के लिए स्थगित कर सकता है।[353] यदि सदस्य सभापति द्वारा उसके प्रश्न को पुकारे जाने पर सदन में इस आशय का एक वक्तव्य देता है तो भी प्रश्न को वापस लिया जा सकता है।[354]

एक सदस्य के अनुरोध पर, दिनांक 5 अगस्त, 2013 को उत्तर के लिए नियत उसके अतारांकित प्रश्न सं. 21 को प्रश्नों की सूची से हटा दिया गया।[355]

जब कोई सदस्य अपने प्रश्न को स्थगित करना चाहता है तो सदस्य द्वारा सूचना में उस तारीख का, जिसके लिए उसे स्थगित किया जाना है, विशेष रूप से उल्लेख करना होता है तथा उस प्रश्न को बाद में उस दिन इस प्रकार से स्थगित नहीं किए गए सभी

प्रश्नों के बाद प्रश्न-सूची में रखा जाता है, बशर्ते कि वह दिन उस मंत्री के लिए नियत है जिसको वह प्रश्न संबोधित किया गया है।[356]

> एक सदस्य के अनुरोध पर, 8 मार्च, 2011 को उत्तर के लिए नियत उसके तारांकित प्रश्न सं. 171 को स्थगित किया गया और 15 मार्च, 2011 की तारांकित सूची में अंतिम प्रश्न के रूप में रखा गया है।[357]
>
> एक सदस्य के अनुरोध पर, 13 अगस्त, 2012 को उत्तर के लिए नियत उसके तारांकित प्रश्न सं. 41 को स्थगित किया गया और 27 अगस्त, 2012 को उत्तर के लिए तारांकित सूची में अंतिम प्रश्न के रूप में रखा गया।[358]

किसी प्रश्न को सभापति द्वारा सदन में भी स्थगित किया जा सकता है तथा जब तक कि सभापति अन्यथा निदेश न दे, ऐसे प्रश्न का मौखिक उत्तरों के लिए परवर्ती प्रश्न-सूची में वही स्थान रहता है जो उसे पूर्ववर्ती प्रश्न-सूची, जिससे उसे स्थगित किया गया था, में प्राप्त था।[359]

किसी तारांकित प्रश्न, जिसे सचिवालय के माध्यम से किए गए मंत्री महोदय के अनुरोध पर सदस्य द्वारा स्थगित किया गया है, का मौखिक उत्तरों के लिए परवर्ती प्रश्न-सूची में वही स्थान रहता है जो उसे पूर्ववर्ती प्रश्न-सूची, जिससे उसे स्थगित किया गया था, में प्राप्त था।[360]

कुछ विशिष्ट उदाहरण निम्नलिखित हैं, जब सभापति ने सदन में प्रश्नों को स्थगित किया था:

> सभापति ने घोषणा की कि वह एक प्रश्न को नहीं लेना चाहते हैं क्योंकि संबंधित मंत्री महोदय उस दिन स्वस्थ नहीं हैं तथा इस प्रश्न को किसी अन्य दिन लिया जाएगा।[361]
>
> जब एक प्रश्न छोड़ दिया गया तो संबंधित सदस्य ने उसके बारे में पूछा। सभापति ने उसको सूचित किया कि उसे बाद की किसी तारीख के लिए स्थगित कर दिया गया है। जब सदस्य ने इसका कारण जानना चाहा हो सभापति ने टिप्पणी की, "मेरा काम प्रश्नों को गृहीत करना है। जहां तक उनका उत्तर देने के काम का संबंध है, यह उसमें अंतर्ग्रस्त विभिन्न मंत्रालयों पर निर्भर करता है।" जब सदस्यों ने इस पर सभापति के विनिर्णय की मांग की कि सदस्य की सहमति के बिना किसी प्रश्न को स्थगित कैसे किया गया तो सभापति ने टिप्पणी की कि "...परिस्थितियों के कारण उन्हें प्रश्न को क्रमबद्ध करना पड़ा। मुद्दा यह है कि किस मंत्रालय को उत्तर देना है...।"[362]
>
> एक प्रश्न पर अनुपूरक प्रश्न पूछे जाने के दौरान एक सदस्य ने सुझाव दिया कि प्रश्न को स्थगित कर दिया जाना चाहिए। सभापति ने इससे सहमत होते हुए सुझाव दिया कि प्रश्न को अगले दिन, जब मंत्रिमंडल स्तर के संबंधित मंत्री सदन में उपस्थित होंगे, आगे अनूपूरक प्रश्न पूछने के लिए पहले प्रश्न के रूप में लिया जाए।[363]
>
> विदेश व्यापार मंत्री ने एक तारांकित प्रश्न के संबंध में अपने उत्तर की प्रतियां भेजी थीं। जब मंत्री महोदय प्रश्न का मौखिक उत्तर देने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने उत्तर दिया कि जानकारी एकत्र की जा रही है। इस पर सदस्य उत्तेजित हो गए। इसलिए उपसभापति ने प्रश्न को स्थगित कर दिया और कहा कि ऐसा समझा जाएगा कि प्रश्न का उत्तर नहीं दिया गया।[364]
>
> एक अवसर पर एक सदस्य ने शिकायत की कि उसके प्रश्न के उत्तर और विवरण, जिसे सभापटल पर रखा जाना था, की एक प्रति उसको उपलब्ध नहीं कराई गई है। सभापति ने प्रश्न को स्थगित कर दिया। प्रश्नों का समय समाप्त होने के बाद सभापति ने स्पष्ट किया कि प्रश्न के संबंध में भ्रम है। सदस्य ने सोचा था कि एक विवरण को सभापटल पर रखा गया था किन्तु वास्तव

में वह प्रश्न का उत्तर था। संभवत: मंत्री महोदय उसको पढ़ सकते थे। सभापति नहीं चाहते थे कि उस पर चर्चा करने में प्रश्नों का समय लिया जाए और इसलिए उन्होंने प्रश्न को स्थगित कर दिया।[365]

मूल प्रश्न के एक भाग के उत्तर में सभापटल पर रखे गये मंत्री के विवरण में कहा गया था कि अमुक प्रतिवेदन की प्रतियां संसद् ग्रंथालय में उपलब्ध हैं। अनुपूरक प्रश्न पूछे जाने के दौरान इस उत्तर पर आपत्ति की गई। सभापति ने टिप्पणी की, "सदस्य चाहते हैं कि उनके प्रश्न का उत्तर दिया जाए और वे जो कह रहे हैं वह सच भी है। आप उनसे यह नहीं कह सकते हैं कि वे ग्रंथालय में जाकर प्रतिवेदन देख लें। आपको उत्तर अवश्य देना चाहिए।" इसलिए, सभापति ने प्रश्न को अगले सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया।[366]

जम्मू और कश्मीर संबंधी समिति के बारे में एक प्रश्न पर अनुपूरक प्रश्न पूछे जाने के दौरान जब मंत्री महोदय का उत्तर स्पष्ट प्रतीत नहीं हुआ तो सभापति ने प्रश्न को स्थगित कर दिया।[367]

चीनी के संबंध में दो प्रश्न एक साथ लिए गये थे। एक अनुपूरक प्रश्न के उत्तर में एक बार मंत्री ने यह कहा कि वह उक्त सूचना संबंधित सदस्य को दे देंगे। तब सभापति ने कहा था कि मंत्री के पास उत्तर मौजूद रहना चाहिए। फिर सभापति ने मंत्री की सहमति से उस प्रश्न को स्थगित किये गए दिन को प्रथम प्रश्न के रूप में लिये जाने के लिए स्थगित कर दिया।[368]

वैगन इण्डिया लिमिटेड से वैगनों की खरीद के संबंध में एक तारांकित प्रश्न पर अनेक अनुपूरक प्रश्न पूछे गया जिनका मंत्री ने संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। तब उस उलझन को सुलझाने के लिए सभापति ने उस प्रश्न को स्थगित कर दिया।[369]

अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक लेन-देनों के बारे में एक समाचार से संबंधित एक तारांकित प्रश्न के उत्तर में, संबंधित मंत्री ने कहा कि सरकार के पास समाचार की प्रति उपलब्ध नहीं है और सरकार उसकी प्रति प्राप्त कर रही है। सभापति ने उस प्रश्न को स्थगित कर दिया।[370]

तथापि, एक अवसर पर प्रश्नों के समय के तुरंत बाद एक सदस्य ने गृह मंत्री द्वारा उत्तर हेतु उस दिन सूचीबद्ध प्रश्न पर सभापति का ध्यान दिलाया। उस सदस्य ने सुझाव दिया कि उसने वह प्रश्न प्रधान मंत्री को संबोधित किया था, और इसीलिए, उस प्रश्न का उत्तर सभापटल पर नहीं रखा जाना चाहिए, उस प्रश्न को स्थगित किया गया माना जाना चाहिए ताकि वह प्रधान मंत्री को संबोधित करते हुए उस प्रश्न की सूचना दे सके। सभापति ने यह टिप्पणी करते हुए अनुरोध को अस्वीकार कर दिया कि नियम इसकी अनुमति नहीं देता है।[371]

एक अवसर पर, किसी सदस्य के अनुरोध पर, 6 मार्च, 2000 को उत्तर के लिए निर्धारित अतारांकित प्रश्न सं. 1186 को 8 मई, 2000 को उत्तर दिये जाने हेतु स्थगित कर दिया गया। 8 मई को उस प्रश्न को कतिपय संशोधन के साथ अतारांकित प्रश्न सं 4541 के रूप में अतारांकित प्रश्न-सूची में शामिल किया गया। यद्यपि, बाद में सदस्य द्वारा उस प्रश्न को वापस ले लिया गया।[372]

27 फरवरी, 2013 को तारांकित प्रश्न सं. 42 के उत्तर में मंत्री ने कहा कि "सूचना एकत्र की जा रही है और उसे सभापटल पर रख दिया जाएगा।" इस पर, सदस्यों ने यह मांग की कि उसे प्रश्न को स्थगित किया जाए, जिस पर सभापति सहमत हुए और उस प्रश्न को स्थगित कर दिया गया और 6 मार्च, 2013 को उत्तर के लिए तारांकित प्रश्न सं. 122 (पूर्व के द्वितीय स्थान पर ही) के रूप में सूची में शामिल किया गया।[373]

प्रश्नों का अन्तरण

पहले प्रश्नों को एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालय में अन्तरित करने की परिपाटी थी। ऐसा तब किया जाता था जब प्रश्न के अन्तरण को स्वीकार करने वाले मंत्रालय से लिखित रूप में आशय की सूचना प्राप्त हो जाती थी। इस परिपाटी के कारण सदस्यों के

साथ-साथ सभापति के लिए भी असुविधा पैदा हो जाती थी जिससे बचा जा सकता था। प्राय: प्रश्न के अन्तरण का मामला सदन में उठाया जाता था। उदाहरणार्थ, 16 फरवरी, 1968 को मूलत: पेट्रोलियम और रसायन मंत्री ने उर्वरक नीति की समीक्षा करने के संबंध में पूछे गये एक तारांकित प्रश्न को खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्री को अन्तरित किए जाने पर सदस्यों द्वारा आपत्ति उठाई गई थी।[374] सभापति ने अन्तरण की परिस्थितियों की व्याख्या करते हुए विस्तृत विनिर्णय दिया था:

> प्रश्नों के अन्तरण के मामले में सभापीठ अथवा सचिवालय का उत्तरदायित्व नहीं है। नियमों के अंतर्गत सदस्य को कोई प्रश्न उस मंत्री को संबोधित करना होता है जो उस प्रश्न में पूछे गये विषय के लिए उत्तरदायी हों। माननीय सदस्य इस बात से अवगत हैं कि विभिन्न मंत्रालयों को भिन्न-भिन्न विषय आवंटित किए गये हैं और एक मुद्रित पुस्तिका, जो विषय-पुस्तिका के नाम से जानी जाती है। राज्य सभा सचिवालय द्वारा सदस्यों को परिचालित की जाती है जिसमें उन्हें उन विभिन्न विषयों के बारे में जानकारी दी जाती है जिनके लिए प्रत्येक मंत्रालय उत्तरदायी है। सामान्यत: सदस्य अपने प्रश्न सही मंत्री को ही सम्बोधित करते हैं जो उस विषय-विशेष के लिए उत्तरदायी होता है, किन्तु कभी-कभी गलत मंत्री को भी प्रश्न संबोधित किए जाते हैं। ऐसे मामलों में सभापीठ अथवा राज्य सभा सचिवालय ऐसे प्रश्नों को अन्य मंत्री के लिए अन्तरित करने का उत्तरदायित्व नहीं लेते हैं। इस संबंध में संसद् के दोनों ही सदनों में परिपाटी यह है कि यदि कोई प्रश्न किसी मंत्री को गलती से सम्बोधित किया गया है तो वह मंत्री संसद् सचिवालय को यह सूचित करता है कि वह प्रश्न सही मंत्री के लिए अन्तरित किया जा रहा है जिसके कार्यक्षेत्र के अंतर्गत वह विषय आता है। ऐसे मामलों में, संसद् सचिवालय उस प्रश्न को केवल तभी समुचित मंत्री के नाम में अंतरित करता है जब उसे इस प्रकार से अन्तरित किए गए प्रश्न को स्वीकार करने की सूचना उस मंत्री से प्राप्त हो जाती है जिसे वह प्रश्न अंतरित किया गया है। मैं यहां यह भी कहना चाहूंगा कि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वह मंत्री जिसे वह प्रश्न संबोधित किया गया हो, उस प्रश्न को किसी अन्य मंत्री के लिए अन्तरित करना चाहता हो किन्तु वह अन्य मंत्री ऐसे अंतरण को स्वीकार नहीं करता है। उस स्थिति में, संसद् सचिवालय ऐसे प्रश्न को अन्तरित नहीं करता है और उसे उसी मंत्री से पूछने के लिए रखा जाता है जिसे वह प्रश्न सदस्य ने संबोधित किया हो। इंग्लैंड में हाउस ऑफ कॉमन्स में भी यही परिपाटी अपनायी जाती है।
>
> प्रश्नों के अन्तरण के संबंध में हाउस ऑफ कॉमन्स में अपनायी जाने वाली परिपाटी को स्पष्ट करने के लिए 'चेस्टर एण्ड बाउरिंग' द्वारा लिखित "क्वेश्चन्स इन पार्लियामेंट" नामक पुस्तक से उद्धरण देने के पश्चात् सभापति ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला:
>
> > संक्षेप में (1) सदस्यों को इस संबंध में सावधानी बरतनी चाहिए कि वे अपने प्रश्न सदा उस मंत्री को भेजें जो प्रश्न से संबंधित विषय के लिए उत्तरदायी हों और (2) जिस मंत्री को प्रश्न भेजा गया हो उससे दूसरे मंत्री को अंतरित करने का काम राज्य सभा सचिवालय द्वारा सामान्यत: तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि अंतरण को स्वीकार करने वाले मंत्री महोदय से लिखित सूचना प्राप्त न हो जाए।[375]

वर्तमान परिपाटी यह है कि एक बार प्रश्न-सूची में मुद्रित हो जाने के पश्चात् किसी भी प्रश्न को संबंधित मंत्रालय के अनुरोध पर अन्तरित नहीं किया जाता। सामान्यत: किसी प्रश्न को एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालय में अंतरित करने का कार्य प्रश्न-सूची को अंतिम रूप देने और उसे मुद्रण के लिए मुद्रणालय को भेजने से पूर्व ही किया जाता है। सामान्य प्रयोजन समिति की सिफारिश पर सभापति ने निम्नलिखित निदेश जारी किया है:

> किसी प्रश्न के गृहीत तथा मुद्रित हो जाने के पश्चात्, उसे एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालय में अंतरित नहीं किया जाएगा। तथापि, यदि किसी प्रश्न को गृहीत तथा मुद्रित किए जाने से पूर्व

उसे एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालय में अंतरित किए जाने का अनुरोध किया जाए तो ऐसे मामले में निर्णय करने के लिए सभापति ही अंतिम प्राधिकारी होगा।[376]

अनुपस्थित सदस्यों के प्रश्न

22 फरवरी, 2010 से पूर्व, जब मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्नों की सूची के सब प्रश्न पुकारे जा चुके हों और 'प्रश्नकाल' समाप्त नहीं हुआ हो, तो सभापति ऐसे किसी प्रश्न को फिर से पुकार सकेगा, जो उस सदस्य की अनुपस्थिति के कारण न पूछा गया हो जिसके नाम पर प्रश्न हो और किसी सदस्य को अन्य किसी सदस्य के नाम मे रखे हुए प्रश्न को भी पूछने की अनुज्ञा दे सकेगा, यदि उस सदस्य ने उसे इस तरह का प्राधिकार दिया हो।[377] दूसरे शब्दों में, यदि समय बचा हो, तो ऐसे प्रश्न जो पहले दौर में न पूछे जा सके हों और उन्हें दूसरे दौर में पुन: पुकारा जा सकता है।[378] ताकि यदि कोई सदस्य जो पहले दौर में अनुपस्थित रहा हो किन्तु इस बीच सदन में आ गया हो, उसे अपना प्रश्न पूछने का अवसर मिल सके।[379]

एक बार, कुछ मिनट देर से आए एक सदस्य ने पुकारे जाने पर प्रश्न को पूछने का अवसर खो देने के पश्चात् जब सभापति से यह अनुरोध किया कि परिवार कल्याण से संबंधित उसका प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न है इसलिए यदि सदन सहमत हो तो उसे पहले लिया जाए, तब सभापति ने यह टिप्पणी की थी:

> "समस्या यह है कि प्रतिदिन कोई न कोई सदस्य अनुपस्थित रहेगा और यदि हमें सदन की अनुमति लेनी पड़े तो इससे उलझनपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाएगी और मैं ऐसा नहीं होने देना चाहता।"[380]

ऐसे सदस्यों के प्रश्नों, जो अनुपस्थित हों और जिन्होंने अन्य सदस्यों को अपनी ओर से प्रश्न पूछने के लिए प्राधिकृत किया हो, को भी समय बचने पर अंत में, अर्थात् दूसरे दौर में लिया जाता है।[381]

एक अनुपस्थित सदस्य ने एक अन्य सदस्य को अपनी ओर से तीन तारांकित प्रश्न पूछने के लिए प्राधिकृत किया था और वे तीनों प्रश्न दूसरे दौर में पूछे गये थे।[382]

किसी सदस्य द्वारा उसकी अनुपस्थिति में प्रश्न पूछने के लिए किसी अन्य सदस्य को दिया गया प्राधिकार लिखित रूप से होना आवश्यक है और उसमें स्पष्ट रूप से उस प्रश्न और तारीख का विवरण होना आवश्यक है जो पूछा जाना है। प्राधिकार-पत्र उस प्रश्न के पूछे जाने वाले दिन से कम-से-कम एक दिन पहले सचिवालय को भेजना आवश्यक है ताकि सभापति को तद्नुसार अवगत कराया जा सके। सभापति ने अनेक अवसरों पर ऐसे प्राधिकार-पत्र के प्राप्त न होने के कारण अनुपस्थित सदस्यों की ओर से अन्य सदस्यों को प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी है।[383]

जब सभापति ने, एक ऐसे सदस्य से जो एक अन्य अनुपस्थित सदस्य की ओर से प्रश्न पूछना चाह रहा था, यह पूछा कि क्या उन्हें ऐसा करने के लिए प्राधिकार दिया गया है, सदस्य ने 'हां' में उत्तर दिया। तथापि, सभापति ने कहा कि प्राधिकार-पत्र उन्हें दिया जाना चाहिए था और यह कहकर उन्होंने अगला प्रश्न पुकारा।[384]

जब एक सदस्य ने कहा कि उस सदस्य की अनुपस्थिति में जिनके नाम पर प्रश्न हो, किसी अन्य सदस्य को प्रश्न पूछने की अनुज्ञा देने हेतु सभापति को अधिकार प्राप्त है, तो सभापति ने

कहा कि वह तब तक ऐसा नहीं कर सकते जब तक कि सदस्य को इस तरह का प्राधिकार न दिया गया हो।[385]

जब एक सदस्य ने कहा कि अभी पर्याप्त समय शेष है और अगला प्रश्न लिया जा सकता है, क्योंकि सदन इसके उत्तर को जानने के लिए उत्सुक है। इस पर सभापति ने यह टिप्पणी की थी: "मैं यह जानता हूं किन्तु जिन सज्जन के नाम पर यह प्रश्न है वह यहां उपस्थित नहीं हैं और उन्होंने इसके लिए किसी अन्य सदस्य को प्राधिकार भी नहीं दिया है।" जब सदस्य ने कहा कि सभापति को प्राधिकार है, तो सभापति ने नकारात्मक उत्तर दिया।[386]

एक सदस्य ने कहा कि अन्य सदस्य की अनुपस्थिति में, सभापति द्वारा प्रश्न पूछा जाए ताकि उस प्रश्न के कारण उत्पन्न हुई बहुत सी गलतफहमियों को दूर किया जा सके, ऐसा करना सभापति को विशेषाधिकार है और वह इस प्रश्न को पूछ सकते हैं क्योंकि यह अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस पर सभापति ने यह टिप्पणी की थी, "मैं प्रश्न कैसे पूछ सकता हूं? मैं नहीं समझता कि मैं ऐसा कर सकता हूं।"[387]

एक बार जब उपसभाध्यक्ष पीठासीन थे और उनके नाम पर रखा गया प्रश्न उत्तर के लिए आया तब उन्होंने उसे छोड़ दिया और अगले प्रश्न को पुकारा। एक सदस्य ने उस प्रश्न को पूछने के लिए सभापीठ की अनुमति मांगी। एक अन्य सदस्य ने कहा कि जब कोई सदस्य सदन में उपस्थित हो और उसके नाम पर प्रश्न हो, तो सदन को उस प्रश्न पर चर्चा करने के अवसर से इनकार नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए, उसने इस मुद्दे पर उपसभाध्यक्ष का विनिर्णय जानना चाहा। उपसभाध्यक्ष ने टिप्पणी की थी: "किसी सदस्य के सदन में उपस्थित होने के बावजूद आप उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई प्रश्न पूछने के लिए उस पर दबाव नहीं डाल सकते।" इसलिए उस प्रश्न के लिखित उत्तर को मुद्रित कार्यवाही में दर्शाया गया था।[388]

तथापि, प्रारंभिक वर्षों में अनेक ऐसे अवसर आये हैं जब अनुपस्थित सदस्यों के प्रश्नों को पहले दौर में ही पूछने की अनुमति प्रदान कर दी गई थी।[389]

एक अनुपस्थित सदस्य के प्रश्न को इस प्रकार से प्राधिकृत किये जाने पर पहले ही दौर में पूछने की अनुमति प्रदान की गई थी।[390]

अनुपस्थित सदस्य की ओर से कोई प्राधिकार-पत्र प्राप्त न होने पर उसके प्रश्न को अतारांकित प्रश्न समझा जाता है और उसे उस दिन की बैठक, जिसके लिए उसे रखा गया था, की कार्यवाही में उसके उत्तर सहित मुद्रित किया जाता है।[391]

हालांकि ऐसे उदाहरण रहे हैं जब अनपुस्थित सदस्यों के प्रश्नों को इस तरह से प्राधिकृत किये बिना ही पहले ही दौर में पूछने की अनुमति दी गई थी।[392]

तथापि, यदि कोई प्रश्न पुकारे जाने पर न पूछा जाए या जिस सदस्य के नाम वह प्रश्न हो, वह अनुपस्थित हो, तो सभापति, किसी सदस्य की प्रार्थना पर, निदेश दे सकता है कि उसका उत्तर दिया जाए।[393] इस प्रकार उपयुक्त मामलों में सभापति, किसी अन्य सदस्य के अनुरोध पर यह निदेश दे सकता है कि किसी प्रश्न का उत्तर दिया जाए चाहे प्रश्न पूछने वाला सदस्य सदन में यह कहे कि वह प्रश्न पूछना नहीं चाहता है। नियमों में किए गए इस उपबंध पर सदन में सभापति के विनिर्णय की मांग करते हुए कई बार चर्चा हुई।

27 अगस्त, 1968 को जब तारांकित प्रश्न सं. 671 पुकारा गया तो संबंधित सदस्य ने कहा कि वह प्रश्न पूछना नहीं चाहता है। इस पर एक अन्य सदस्य ने आपत्ति की कि यदि कोई उपस्थित

सदस्य अपना प्रश्न नहीं पूछेगा तो अन्य सदस्य उस पर अनुपूरक प्रश्न पूछने के अवसर से वंचित रह जाएंगे। सभापति ने आश्वासन दिया कि वह मामले की जांच करेंगे।[394] सभापति ने अगले दिन दिए गए अपने विनिर्णय में अन्य बातों के साथ-साथ टिप्पणी की:

> मैंने नियमों और पूर्व निर्णयों की छानबीन की है। नियमों के नियम 54 के उप-नियम (2) में यह स्पष्ट किया गया है कि किसी सदस्य को उसका प्रश्न पुकारे जाने पर कहने का अधिकार है कि प्रश्न पूछने का उसका इरादा नहीं है और यदि वह ऐसा करता है तो, परिपाटी के अनुसार, प्रश्न को वापस लिया गया समझा जाता है और उसे अधिकारीय प्रतिवेदन में मुद्रित नहीं किया जाता है।
>
> तथापि, मैं नियम 54 के उप-नियम (3) का भी उल्लेख करना चाहता हूं। इस उप-नियम में यह उपबंध है कि यदि कोई प्रश्न पुकारे जाने पर न पूछा जाए तो सभापति किसी सदस्य के अनुरोध पर यह निदेश दे सकता है कि उसका उत्तर दिया जाए। इस प्रकार, उपयुक्त मामलों में, सभापति किसी अन्य सदस्य के अनुरोध पर यह निदेश दे सकता है कि किसी प्रश्न का उत्तर दिया जाए चाहे उस प्रश्न की सूचना देने वाला सदस्य सदन में यह कहे कि वह प्रश्न पूछना नहीं चाहता है। तथापि, मैं अवश्य स्पष्ट करना चाहता हूं कि सभापीठ की ओर से यह निदेश केवल अपवादिक मामलों में ही दिया जाएगा न कि सामान्य प्रक्रिया के रूप में।[395]
>
> तथापि, उस प्रश्न को वापस लिया गया समझा गया।

बाद में ऐसे ही एक अवसर पर जब तारांकित प्रश्न सं. 321 की सूचना देने वाले सदस्य 26 अप्रैल, 1995 को अनुपस्थित थे और कुछ अन्य सदस्यों ने निवेदन किया कि सभापति को गृह मंत्री से इस प्रश्न का उत्तर देने का अनुरोध करना चाहिए, तो नियम 54(3) और नियम 55 की व्याख्या के समर्थन और विरोध में कुछ मुद्दे उठाए गए। सभापति ने 28 अप्रैल, 1995 को विनिर्णय देते हुए 22 जुलाई, 1952 के एक पूर्व निर्णय का उल्लेख किया, जब तत्कालीन सभापति डा. एस. राधाकृष्णन ने एक सदस्य जिसके नाम पर मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्न-सूची में प्रश्न दर्ज था, की ओर से उस प्रश्न को पूछने की अनुमति दी थी और उस पर अनुपूरक प्रश्न भी पूछे गये थे। सभापति ने 28 अगस्त, 1968 को तत्कालीन सभापति, श्री वी.वी. गिरि द्वारा दिये गये विनिर्णय (ऊपर उद्धृत) का उल्लेख किया और टिप्पणी की:

> इस विषय में नियम स्पष्ट हैं और उनको सभा के पूर्व निर्णयों से बल मिलता है। वे सभापति को यह निदेश देने का विवेकाधिकार प्रदान करते हैं कि यदि कोई प्रश्न नहीं पूछा जाता है या जिस सदस्य के नाम पर वह प्रश्न है, वह अनुपस्थित है तो उस प्रश्न का उत्तर जाना चाहिए। किन्तु सभापीठ के इस विवेकाधिकार का प्रयोग अत्यंत अपवादिक मामलों में ही किया जाएगा।

अन्त में सभापति ने यह भी कहा :

> मैं यह भी स्पष्ट करना और आग्रह करना चाहता हूं कि जिस सदस्य के प्रश्न को गृहीत कर लिया जाता है उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रश्न पूछने के लिए सभा में उपस्थित रहे, जब तक कि वह सदस्य अपरिहार्य कारणों से ऐसा करने में असमर्थ न हो।

उसके बाद जब एक सदस्य ने सभापति से उस प्रश्न के लिए कोई तारीख नियत करने का अनुरोध किया, तो सभापति ने यह कहकर उसे अस्वीकार कर दिया कि इस संबंध में कोई पूर्वोदाहरण नहीं है, अतः, प्रश्न को अतारांकित प्रश्न समझा गया और उसके उत्तर को सभापटल पर रखा मान लिया गया।[396]

एक अवसर पर, जब प्रश्नकर्ता अनुपस्थित था और कुछ सदस्यों ने उक्त प्रश्न का उत्तर दिये जाने की अनुमति के लिए उपसभापति से अनुरोध किया तब उपसभापति ने यह कहते हुए इसकी

अनुमति नहीं दी..."जब प्रश्नकर्ता स्वयं सदन में उपस्थित नहीं है तो हम ऐसा करके सदन का समय ही बर्बाद कर रहे होंगे। प्रश्न दो माननीय सदस्यों द्वारा किया गया था। दोनों ही सदस्य यहां उपस्थित नहीं है। यदि वे सदन में उपस्थित नहीं रह सकते तो उन्हें प्रश्न पूछना ही नहीं चाहिए था।"[397]

एक अन्य अवसर पर जब तारांकित प्रश्न सं. 467 और 468 बुलाए गए, तो संबंधित सदस्य, यद्यपि सभा में मौजूद थे, परन्तु प्रश्न पूछने के लिए सभापति द्वारा बुलाए जाने पर उन्होंने उत्तर नहीं दिया। अन्य सदस्य ने इस मामले पर सभापीठ के विनिर्णय के लिए कहा और सभापति ने निम्नलिखित विनिर्णय दिया:

"जब कोई सदस्य सभा में उपस्थित है और वह प्रश्न पूछने की प्रक्रिया के संबंध में अपनी उपस्थिति के बारे में नहीं बताता है, तो सभापीठ के पास यह मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं है कि माननीय सदस्य प्रश्नों के समय के प्रयोजन हेतु सभा में उपस्थित नहीं हैं।"[398]

इसीलिए, प्रश्नों को अतारांकित माना गया और उन प्रश्नों के उत्तरों को सभापटल पर रखा गया मान लिया गया।

तथापि, अनुपस्थित सदस्यों के प्रश्नों को मौखिक उत्तर के लिए लिये जाने की अनुमति देने के लिए नियम 54(3) में संशोधन किया गया है। नियम 54(3) में संशोधन में यह प्रावधान किया गया है कि :

यदि किसी प्रश्न के बारे में पुकारे जाने पर वह प्रश्न नहीं रखा जाता है अथवा जिस सदस्य के नाम से वह प्रश्न है, वह अनुपस्थित है तो सभापति यह निदेश दे सकेगा कि इसका उत्तर दिया जाए।

इसलिए, अब यदि सभापति प्रश्न के लिए बुलाते हैं और संबंधित सदस्य अनुपस्थित हैं तो सभापति यह निदेश देते हैं कि मंत्री द्वारा इसका उत्तर दिया जाए। वह तीन अन्य सदस्यों द्वारा उस प्रश्न पर अनुपूरक प्रश्नों की अनुमति भी देता है।[399]

सामान्य प्रयोजन समिति ने 'प्रश्नों के समय के उपयोग में सुधार' के संबंध में ज्ञापन पर 27 जुलाई, 2009 को हुई अपनी बैठक में चर्चा के दौरान प्रश्नों के समय के दौरान सभापति द्वारा तारांकित सूची में शामिल प्रश्न पूछने के लिए सदस्य का नाम पुकारे जाने पर सभा में उस सदस्य के अनुपस्थित रहने के मुद्दे पर गौर किया। सदस्यों ने इस बात पर गंभीर आपत्ति व्यक्त की कि संबंधित सदस्य की अनुपस्थिति के कारण, कभी-कभी सभापटल पर कोई महत्वपूर्ण प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है जिससे लोक महत्व के मामले पर कार्यपालिका की जांच नहीं हो पाती है। उनका यह दृढ़ मत था कि जब कोई प्रश्न तारांकित सूची में शामिल किया जा चुका है, तो यह सभा की संपत्ति हो जाता है और प्रश्नकर्ता की अनुपस्थिति में, यदि सभा में उपस्थित कोई सदस्य उस प्रश्न को उठाने के लिए इच्छुक है, तो सभापति मंत्री को उस प्रश्न का उत्तर देने का निदेश दे और सामान्य परिपाटी के अनुसार उस पर अनुपूरक प्रश्नों की अनुमति दे। सभापति ने टिप्पणी की कि संबद्ध नियमों पर पुनर्विचार किया जाए ताकि सभापीठ के निदेश पर ऐसे प्रश्नों को सूची में उन्हें प्राप्त स्थानों के अनुसार उत्तर हेतु लिया जा सके। इस पृष्ठभूमि में, नियम समिति ने 25 नवंबर, 2009 को हुई

अपनी बैठक में इस मुद्दे पर विचार विमर्श किया और नियम 54(3) में संशोधन करने का सुझाव दिया।

प्रश्नों के समय में प्रश्नकर्त्ताओं की अनुपस्थिति

कतिपय अवसरों पर, ऐसे सदस्यों की बड़ी संख्या में अनुपस्थिति से जिनके नाम से उस दिन की प्रश्न-सूची में प्रश्न दर्ज थे, सदन में बड़ी ही अजीबो-गरीब स्थिति उत्पन्न हो गई थी।

> एक दिन सभापति ने प्रश्न सं. 181 से 185 तक पूछे जाने के लिए कहा किन्तु, प्रश्नकर्ता अनुपस्थित थे। उन्होंने यह टिप्पणी की– "मेरे विचार में आज प्रश्नों का समय बहुत शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा।" तदुपरांत प्रश्न संख्या 186 से 188 तक पूछे जाने के लिए कहे जाने पर और प्रश्नकर्ताओं के अनुपस्थित रहने पर सभापति ने यह कहा– "यदि सभी प्रश्न पूछ लिये जाते हैं तो इसके बाद में क्या करूंगा?" एक से बारह तक के प्रश्नों के प्रश्नकर्ता अनुपस्थित हैं। अठारहवें प्रश्न का भी मौखिक रूप से उत्तर दे दिया गया है। अंत में सभापति ने यह टिप्पणी की–"आज हमने लगभग सभी प्रश्न निपटा लिये हैं।"[400]

> एक बार ऐसे अनेक सदस्यों के अनुपस्थित रहने पर, जिनके नाम से प्रश्न-सूची में प्रश्न दर्ज थे, एक सदस्य ने यह सुझाव दिया कि अनुपस्थित रहने वाले सदस्यों को कम से कम एक सप्ताह की अवधि के लिए 'काली- सूची' में डाल दिया जाना चाहिए और उनके नाम प्रश्नों के लिए लॉटरी में सम्मिलित नहीं किये जाने चाहिएं। सभापति ने उक्त सुझाव पर यह कहते हुए अपनी सहमति व्यक्त की कि– "हां, मैं आपकी बात से सहमत हूं"। जब उस दिन पहले दस प्रश्नों के प्रश्नकर्ता लगातार अनुपस्थित रहे, तब सभापति ने यह कहा– "यह एक असामान्य स्थिति है। मेरे विचार में, संसद् भंग हो गई है"। दसवें प्रश्न के प्रश्नकर्ता का नाम पुकारे जाने के बाद आठवें प्रश्न का प्रश्नकर्ता जो कि अपना नाम पुकारे जाने के समय अनुपस्थिति था, उपस्थित हो गया। सदस्यों की अनुपस्थित के कारण तारांकित प्रश्न-सूची में दर्ज प्रश्नों के पूछे जाने के क्रम के पूरा हो जाने की आशंका से सभापति ने उसे अपना प्रश्न पूछने की अनुमति प्रदान कर दी। आठवें प्रश्न की समाप्ति पर जब छठे प्रश्न के प्रश्नकर्ता ने अपना प्रश्न पूछने के लिए यह कहते हुए सभापति से अनुमति मांगी, "महोदय, मैं प्रात: 11 बजकर 04 मिनट पर आ गया था और तब तक मेरा नाम पुकारा जा चुका था। मेरे प्रश्न की संख्या 506 थी। महोदय, मुझे अपना प्रश्न पूछने की अनुमति प्रदान की जाये।" सभापति ने यह विनिर्णय दिया– "यहां उत्पन्न हो गई असाधारण परिस्थिति के कारण मैं उन्हें अनुमति प्रदान कर रहा हूं।" उस दिन 17वें प्रश्न को मौखिक उत्तर के लिए लिया गया था।[401]

अन्य अवसरों पर 12वें[402] और 14वें[403] प्रश्नों को मौखिक उत्तर के लिए लिया गया था।

> एक दिन सदन में प्रश्नकर्त्ताओं की अनुपस्थिति पर नाराजगी प्रकट करते हुए उपसभापति ने गंभीर चिन्ता व्यक्त करते हुए यह कहा, "यह अत्यंत दु:खद बात है कि प्रश्न पूछने वाले सदस्य... परसों भी ऐसा ही हुआ था जब मैंने यह टिप्पणी की थी कि प्रश्न पूछने वाले सदस्य को इतना संजीदा तो होना ही चाहिए कि प्रश्नों के समय के दौरान वह सदन में उपस्थित रहें; अन्यथा उसका नाम प्रश्नों के लिए बैलट में सम्मिलित किये जाने पर अन्य सदस्य अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए अपनी तैयारी करते हैं और सदस्यों का अनुपस्थिति रहना उचित बात नहीं है...।"[404]

> 26 नवंबर, 2002 को प्रश्नों का समय पूरा जाने के तुरन्त पश्चात् सभापति ने यह कहा कि चूंकि किसी प्रश्न का उत्तर तैयार करने में काफी समय और प्रयास की जरूरत पड़ती है, अत: जिस सदस्य के नाम से प्रश्न-सूची में मौखिक उत्तर के लिए नाम दर्ज हो उसे प्रश्नों के समय के

दौरान सदन में उपस्थित रहना चाहिए अथवा ऐसा कर पाने में असमर्थता की स्थिति में उसे या तो सभापति को लिखित रूप में इसकी सूचना देनी चाहिए या फिर किसी अन्य सदस्य को अपनी ओर से उक्त प्रश्न पूछने के लिए अधिकृत करना चाहिए।[405]

अनुपूरक प्रश्न

प्रश्नों के समय में किसी प्रश्न या किसी प्रश्न के उत्तर के संबंध में चर्चा की अनुज्ञा नहीं दी जाती है।[406] तथापि, कोई सदस्य सभापति द्वारा पुकारे जाने पर, किसी ऐसे तथ्यात्मक विषय के और अधिक स्पष्टीकरण के प्रयोजन के लिए, जिसके बारे में उत्तर दिया गया है, अनुपूरक प्रश्न पूछ सकता है।[407] अत: अनुपूरक प्रश्न लम्बे भाषणों के बजाए संक्षिप्त तथा और अधिक जानकारी मांगने वाले होने चाहिएं। जैसाकि सभापति द्वारा टिप्पणी की गई थी, "प्रत्येक सदस्य को केवल प्रश्न पूछने चाहिए... और जहां तक संभव हो किसी प्रकार का भाषण नहीं देना चाहिए। कुछ प्रश्न अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं। किन्तु मेरे विचार से यदि प्रश्न छोटे हों तो इससे सदैव दक्षता में वृद्धि होती है और उनके उत्तर भी छोटे होते हैं। इस प्रकार हम और अधिक प्रश्नों पर विचार कर सकते हैं"।[408]

उत्तरवर्ती सभापतियों ने लम्बी भूमिका वाले अनुपूरक प्रश्नों के प्रति आगाह किया है और सदस्यों से संक्षिप्त प्रश्न पूछने का आग्रह किया है। उदाहरणार्थ, एक बार सभापति ने टिप्पणी की थी "मेरे लिए भाषण और प्रश्न के बीच अंतर करना अत्यंत कठिन कार्य है। इस सदन की कार्य-शैली ऐसी है कि प्रश्नों की आड़ में कई बार भाषण दिये जाते हैं"।[409] ऐसी ही एक स्थिति में सभापति ने विनिर्णय दिया था कि प्रश्न पूछने से पूर्व प्रश्नों के समय में कोई भाषण नहीं दिया जाना चाहिए।[410] एक अवसर पर सभापति ने टिप्पणी की थी:

> मैं प्रश्नकाल के दौरान किसी भी सदस्य को भाषण देने की अनुमति नहीं दूंगा। जहां तक प्रश्न-काल का संबंध है, इस दौरान हमें केवल केवल प्रश्न पूछने चाहिएं और उनके उत्तर प्राप्त करने चाहिएं। मैं किसी भी सदस्य द्वारा भाषण देने और उसके अन्त में प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति के विरुद्ध हूं।[411]

एक अन्य अवसर पर प्रश्नों के आरम्भ होने पर सभापति ने निम्नलिखित घोषणा की थी:

> माननीय सदस्यों को अपने प्रश्न पूछने के लिए पुकारने से पहले मैं उनसे यह अनुरोध करता हूं कि यदि कोई कोई अनुपूरक प्रश्न पूछना हो, तो वे पहले अनुपूरक प्रश्न तैयार कर लें और भाषण न दें क्योंकि अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए भाषण देने की आवश्यकता नहीं होती है। यदि कोई भाषण दिया जाता है तो मुझे बाध्य होकर ऐसे प्रश्न को अस्वीकार करना पड़ेगा।[412]

एक अन्य अवसर पर भी प्रश्न-काल आरंभ होने से पूर्व सभापति ने निम्नलिखित घोषणा की थी:

> मुझे माननीय सदस्यों से एकमात्र अनुरोध यह करना है कि वे अपने प्रश्नों को यथासंभव संक्षिप्त बनाएं। वस्तुत: नियमों में 150 शब्दों की सीमा रखी गई है और एक उचित प्रश्न को तैयार करने में संभवत: एक मिनट का समय लगता है। यदि माननीय सदस्य ऐसा करने में पांच-सात या दस

मिनट का समय लेंगे तो मैं उन्हें ऐसा करने से मना नहीं करूंगा क्योंकि मैं उनकी भावनाओं को ठेस पहुंचाना नहीं चाहता किन्तु तब संभवत: मैं यह बात ध्यान में रखूंगा और भविष्य में कुछ समय तक उन्हें नहीं पुकारूंगा। इसलिए, कृपया इस बात को ध्यान में रखिये। इसके साथ ही प्रश्न में टोका मत कीजिए। अपना प्रश्न चुनिये क्योंकि मैं यथासंभव अधिकाधिक सदस्यों को अवसर प्रदान करना चाहता हूं और इन 20 प्रश्नों में से कम से कम 15-16 प्रश्नों को निपटाना चाहता हूं।[413]

25 नवंबर, 1980 को एक सदस्य की इस टिप्पणी के संदर्भ में कि केवल तीन प्रश्न ही पूरे हुए हैं और इसलिए सदस्यों को (प्रश्न-काल के दौरान) लम्बे भाषण देने से रोका जाना चाहिए, सभापति ने कहा था कि, "यदि एक प्रश्न से दूसरे प्रश्न तक की यात्रा के दौरान यहां उपस्थित माननीय सदस्य बिना तैयारी किये प्रश्न पूछना चाहें और शोर-शराबा करते रहें तो मैं एक प्रश्न से दूसरे प्रश्न तक नहीं पहुंच सकूंगा।"[414]

10 जुलाई, 2009 को सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

....यदि प्रत्येक अनुपूरक प्रश्न भाषण हो जाएगा, तब संभवत: एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। यह निर्णय सदस्यों को करना होगा कि वे अन्य प्रश्नों का उत्तर दिया जाना चाहते हैं अथवा नहीं। अत: प्रश्नों को प्रश्न ही रहने दीजिए।

विचार-विमर्श के दौरान यह सहमति हुई कि सदस्यों द्वारा पूछे गये अनुपूरक प्रश्न संक्षिप्त, सटीक और विषय केन्द्रित होने चाहिएं। कुछ सदस्यों द्वारा यह भी सुझाव दिया गया और सभापति उस पर सहमत हुए कि मंत्रियों द्वारा दिये गये उत्तर भी प्रासंगिक होने चाहिएं और सदस्यों द्वारा उठाए गए अनुपूरक प्रश्नों के अनुरूप होने चाहिएं।[415]

इसी तरह, 15 जुलाई, 2009 को, सभापति ने टिप्पणी की:

माननीय सदस्यगण, प्रश्नों का समय केवल प्रश्न पूछने के लिए है और इसमें सामान्य वाद-विवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि आप प्रश्न के उत्तर के आधार पर अनुपूरक प्रश्न के माध्यम से कोई स्पष्टीकरण चाहते हैं, तो हम प्रक्रिया का अनुपालन करें और तब आप पूछें तथा मंत्री उत्तर देंगे।

सभापति ने यह भी कहा कि:

यदि प्रश्नों और उत्तर के लिए प्रक्रिया का अनुपालन नहीं किया जाता, तब सभापीठ के पास उस प्रश्न को छोड़ने तथा अगले प्रश्न पर जाने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं है।"

सभापति ने आगे टिप्पणी की :

देखिए, मैं जो सुझाव दे रहा हूं वह सब के हित में है ताकि पूछे गए प्रश्नों का सही तरीके से उत्तर दिया जा सके। यदि आप उस पर वाद-विवाद चाहते हैं, तब उसके लिए दूसरी प्रक्रिया है और उस प्रक्रिया का पालन किया जा सकता है। परन्तु यदि आप प्रश्नों के समय के दौरान सामान्य वाद-विवाद चाहते हैं, तब कुछ नहीं होगा।[416]

किसी मूल प्रश्न पर लागू होने वाली ग्राह्यता की शर्तें अनुपूरक प्रश्न पर भी लागू होती हैं और सभापति किसी अनुपूरक प्रश्न को अस्वीकार कर सकता है, यदि उनकी राय में इससे प्रश्नों संबंधी नियमों का उल्लंघन होता है। उदाहरण के लिए, सभापति ने ऐसे

किसी अनुपूरक प्रश्न को अस्वीकार कर दिया है, जो मूल प्रश्न से उत्पन्न नहीं हुआ है।[417] अथवा उसमें नीतिगत संबंधी किसी मामले के बारे में पूछा गया है।[418]

> 18 दिसंबर, 2008 को, सभापति ने टिप्पणी की कि अनुपूरक प्रश्नों का उद्देश्य मूल प्रश्न का अनुसरण करना है।[419] इसी प्रकार, 15 जुलाई, 2009 को सभापति ने टिप्पणी की कि अनुपूरक प्रश्न दिये गये उत्तर से अवश्य संबंधित होना चाहिए।[420]
>
> 31 जुलाई, 2009 को एक अन्य अवसर पर, सभापति ने यह निदेश दिया कि प्रश्न के राजस्थान से संबंधित होने के मद्देनजर, केवल उस राज्य से संबंधित अनुपूरक प्रश्नों के लिए अनुमति दी जाएगी।[421] 9 दिसंबर, 2009 को एक अन्य अवसर पर भी, सभापति ने विनिर्णय दिया:
>
> > विषय से संबंधित अनुपूरक पूछिए; मेरे विचार से इससे अलग परिपाटी का कोई विशेष लाभ नहीं होगा। मैं समझता हूं कि मेरे लिए इस पर विनिर्णय देना नियम विरुद्ध होगा क्योंकि यह प्रश्न से संबंधित नहीं है।[422]

ऐसे दृष्टांत हुए थे जब पूछे गए अनुपूरक प्रश्नों के सटीक उत्तर पर जोर देने के लिए, 4 अगस्त, 2010 को वाणिज्य और उद्योग मंत्री द्वारा किसी अनुपूरक प्रश्न के दिये जा रहे उत्तर की सीमा तय करते हुए सभापति ने टिप्पणी की :

> क्या आप केवल प्रश्न और उत्तर पर ही अपनी बात केन्द्रित कर सकते हैं?
>
> xxx xxx xxx
>
> हम प्रश्न के दायरे का विस्तार नहीं करेंगे।[423]
>
> एक अन्य अवसर पर, 13 अगस्त, 2010 को प्रश्नों के समय के आरंभ होने के समय, सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:
>
> > माननीय सदस्यगण, यह देखा गया है कि प्रश्नों के समय के दौरान और अनुपूरक प्रश्न पूछते समय, कभी-कभी ऐसे मामलों को उठाने का प्रयास किया जाता है जो गृहीत प्रश्न के दायरे से परे होते हैं। सदस्यों को स्मरण कराया जाता है कि अनुपूरक प्रश्न मूल प्रश्न से निकलने चाहिए। पूछे जाने वाला अनुपूरक प्रश्न संक्षिप्त, विशिष्ट, संगत और मूल प्रश्न के दायरे में होना चाहिए। सदस्यों को जानकारी देने के बजाए जानकारी मांगी जानी चाहिए अथवा कार्रवाई हेतु सुझाव दिए जाने चाहिए। उन्हें परिचयात्मक वक्तव्य के साथ अपने अनुपूरक प्रश्नों के प्राक्कथन देने से बचना चाहिए।
>
> मंत्रियों से अनुरोध है कि वे अनूपूरक प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर दें और यदि आवश्यक हो, तो विवरण उपलब्ध करवाएं।
>
> सभापति ने इस संबंध में सभी सदस्यों और मंत्रियों से सहयोग मांगा ताकि प्रश्नों के समय के दौरान अधिक से अधिक प्रश्नों का उत्तर दिया जा सके।[424]

इसी प्रकार 3 अगस्त, 2011 को, सभापति ने टिप्पणी की :

> अनुपूरक प्रश्न मूल प्रश्न और मूल प्रश्न के दिये गए उत्तर से ही उत्पन्न होने चाहिएं। यह किसी खुले वाद-विवाद का विषय नहीं हो सकता है।[425]

सभापति ने इन आधारों पर अनुपूरकों अथवा और अनुपूरकों की भी अनुमति नहीं दी है कि सरकार ने इस विषय पर वक्तव्य देने का वायदा किया है।[426], उस विषय पर चर्चा निर्धारित है[427], इस प्रश्न के लिए बजट भाषण की प्रतीक्षा की जा सकती है,[428] अथवा इस विषय पर इससे पूर्व चर्चा हो चुकी है।[429] सभापति ने यह भी विनिर्णय दिया है कि

अनुपूरकों को छोड़कर, उनकी अनुमति के बिना कहा गया कुछ भी अभिलिखित नहीं किया जाएगा और मंत्री को व्यवधानों का संज्ञान लेने की आवश्यकता नहीं है ताकि अधिक प्रश्नों के उत्तर दिए जा सकें।[430] जैसा कि सभापति द्वारा उल्लेख किया गया:

> मैंने यह सख्त निर्देश दिये हैं कि सभापीठ की अनुमति के बिना जो कुछ भी कहा जाता है, उसे अभिलिखित नहीं किया जाएगा। प्रश्नों के समय के दौरान अनुपालन किये जाने हेतु एक निर्धारित नियम है...यह एक सुस्थापित परिपाटी है। अन्यथा यहां उपस्थित सदस्यों की संख्या के बराबर वृत्त-लेखकों की आवश्यकता होगी क्योंकि कुछ व्यवधान इस तरफ से हो रहे हैं और कुछ उस तरफ से हो रहे हैं। प्रश्नों का समय बहुत महत्वपूर्ण है। इस दौरान हम गंभीरता से यह जानना चाहते हैं कि सरकार की ओर से क्या किया जा रहा है। यह समय विपक्ष... अथवा सत्तारूढ़ दल के लिए नहीं है, यह समय ऐसा है जब हम कुछ बातों को जानना चाहते हैं और ऐसा हम छोटे प्रश्न पूछने के द्वारा कर सकते हैं। हम अच्छे ढंग से प्रश्न पूछ सकते हैं, इसके बारे में मंत्री को बता सकते हैं, परन्तु इसे व्यवस्थित ढंग से चलने दें। अन्यथा, होता यह है कि जब हम सभी मुद्दे से हट जाते हैं, तो पूरा मुद्दा ही समाप्त हो जाता है। यदि कोई सदस्य मंत्री से कुछ अधिक जानना चाहता है, तो वह अनुपूरक पूछ सकता है।[431]

> एक अन्य अवसर पर, जब मंत्री जी एक सदस्य द्वारा पूछे गए अनुपूरक प्रश्न का उत्तर दे रहे थे तो मंत्री जी ने इस बात पर आपत्ति व्यक्त करते हुए कहा कि पूछे गये अनुपूरक प्रश्न का संबंध मुख्य प्रश्न से नहीं है। इस पर सदस्य ने तर्क दिया कि उनका अनुपूरक प्रश्न मुख्य प्रश्न से ही उत्पन्न हुआ है। तत्पश्चात् सभापति ने टिप्पणी की :
>
> > माननीय सदस्यगण, यदि ऐसा प्रस्ताव है कि प्रश्नों के समय को बदलकर इसे तर्क-वितर्क का समय बना दिया जाए तो मुझे नियम संबंधी समिति को बुलाना पड़ेगा और उसके समक्ष एक प्रस्ताव रखना पड़ेगा। यदि उत्तर असंतोषजनक है और यदि उत्तर भ्रामक है तो ऐसे विषय को उठाने के लिए सुस्थापित प्रक्रियाएं विद्यमान हैं अर्थात् हम ऐसे तर्क-वितर्क नहीं कर सकते हैं जिसमें लोग सदैव एक-दूसरे के बारे में बोलते रहें और ऐसी स्थिति में हम कोई भी कार्य करने में असमर्थ होंगे।[432]

सभापति द्वारा कल्पना अथवा धारणा दर आधारित अनुपूरक प्रश्नों को अस्वीकार कर दिया जाता है।

> 28 फरवरी, 1984 को, प्रश्नों के समय के दौरान एक सदस्य ने आयकर तथा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क विभागों द्वारा 27 दिसम्बर, 1983 को अशोक होटल, बंगलोर के कुछ कमरों में कुछ व्यक्तियों के पास उपलब्ध बेहिसाब धन तथा स्वर्ण को खोजने हेतु तलाशी लिए जाने के संबंध में एक प्रश्न उठाया था। एक अन्य सदस्य ने अनुपूरक प्रश्न पूछते समय कहा कि कुछ व्यक्तियों ने दूसरों के नाम से कमरों की बुकिंग करवाया करते थे किन्तु वास्तव में वे स्वयं वहां रहते थे। इसके अतिरिक्त, उन्होंने यह आशंका व्यक्त की थी कि कर्णाटक में जनता पार्टी की सरकार को गिराने का प्रयास किया गया था। सभापति ने अनुपूरक प्रश्न की अनुमति देते हुए यह टिप्पणी की थी[433]:
>
> > मुझे खेद है कि इस प्रश्न की अनुमति नहीं दी जा सकती है। आप अपनी कल्पना के आधार पर प्रश्न कर रहे हैं कि कमरा 'क' के नाम से बुक कराया गया था किन्तु उसमें 'ख' रह रहा था और इसलिए इसकी तलाशी होनी चाहिए थी। कानून के हिसाब से इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है।

अनुपूरक प्रश्नों की संख्या की सीमा और प्रश्नों के समय के दौरान लिये जाने वाले प्रश्न

यद्यपि मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्न-सूची में 15 प्रश्न दर्ज होते हैं किन्तु प्रश्नों के समय के दौरान औसतन 5-6 प्रश्न ही लिये जाते हैं और शेष प्रश्नों के केवल लिखित उत्तर ही प्राप्त होते हैं तथा उन पर अनुपूरक प्रश्न पूछने का अवसर प्राप्त नहीं होता है।

एक के बाद एक सभापति और सदन द्वारा भी प्रश्नों के समय के दौरान प्रश्नों को लिए जाने की समस्या पर विचार किया जाता रहा है। इस मामले में सभापीठ की दुविधा एक विवरणिका में सारगर्भित रूप में इस प्रकार व्यक्त की गई है:

> प्रश्न काल की एक उल्लेखनीय विशेषता यह होती है कि वक्ता अपनी बात कितनी नियंत्रित रफ्तार से कहता है। यदि वह बहुत अधिक अनुपूरक प्रश्न पूछता है तो मंत्री थोड़े से प्रश्नों की गहरी संवीक्षा करने के लिए बाध्य होगा किन्तु उत्तर दिए जाने वाले प्रश्नों की कुल संख्या कम होगी। यदि वह बहुत कम अनुपूरक प्रश्न पूछता है तो अधिक प्रश्नों का मौखिक उत्तर दिया जाएगा किन्तु मंत्री को बहुत आसानी से छुटकारा मिल जाएगा। एक संतुलन कायम करना होगा और यह संतुलन विभिन्न वक्ताओं द्वारा अलग-अलग ढंग से कायम किया जा सकता है।[434]

जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है, प्राय: सभापति द्वारा समय-समय पर सदस्यों से अपने अनुपूरक प्रश्नों को संक्षिप्त अथवा छोटा, सुनिश्चित और सुस्पष्ट[435] रखने का अनुरोध करके और अधिक लम्बे अनुपूरक प्रश्न पूछने या प्रश्नों के समय का उपयोग वाद-विवाद के समय के रूप में करने वाले किसी सदस्य पर नियंत्रण करके इस लक्ष्य को प्राप्त किया जाता है। जहां तक मंत्रियों का संबंध है, एक परिपाटी स्थापित की गई है कि यदि, वे लम्बे उत्तर देना चाहते हैं तो उनको उन उत्तरों को सदन में पढ़ने के बजाए सदन के पटल पर रखना चाहिए।

किसी प्रश्न पर अनुपूरक प्रश्नों की संख्या को सीमित करने और इस प्रकार प्रश्नों के समय के दौरान अधिक प्रश्नों को लेने के उद्देश्य से सभापतियों ने समय-समय पर अनौपचारिक नियम आरंभ किए हैं। उदाहरण के लिए सभापति, श्री वी.वी. गिरि ने यह नियम अपनाया था कि किसी महत्वपूर्ण प्रश्न के लिए दस मिनट से अनधिक और साधारण प्रश्न के लिए केवल पांच मिनट का समय दिया जाएगा।[436] सभापति, श्री एम. हिदायतुल्ला ने आठ मिनट प्रति-प्रश्न का नियम आरंभ किया था।[437] सभापति, श्री आर. वेंकटरामन ने दो मिनट समय का नियम शुरू किया था जिससे प्रश्नकर्ता को कोई अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए केवल दो मिनट दिए जाते थे।[438]

प्रश्नों के समय के दौरान प्रश्नों को लिए जाने के मामले को अनेक अवसरों पर सदन में उठाया गया है।[439]

> जब पूर्वी पाकिस्तान में अल्पसंख्यक समुदाय के संबंध में एक प्रश्न पर अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए अनेक सदस्य उठ खड़े हुए, तो सभापति ने टिप्पणी की:
>
> > मैं देखता हूं कि सदस्य पिछली बार किए गए मेरे इस अनुरोध को समझ नहीं पाए हैं कि उन्हें अपनी जिज्ञासा पर एक प्रकार का आत्मनियंत्रण लागू करना चाहिए क्योंकि यदि मैं प्रत्येक सदस्य, जो अनुपूरक प्रश्न पूछना चाहता है, को प्रश्न पूछने की अनुमति देता हूं तो मैं पाचं से अधिक प्रश्नों को नहीं ले पाऊंगा ऐसा प्रतीत होता है कि मैं इसमें कामयाब नहीं हुआ हूं। मैं अगली बार प्रत्येक सदस्य को अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति देने का प्रयास करूंगा ताकि सदस्य यह महसूस कर सकें कि ये कितना काम कर सकते हैं।[440]
>
> एक अवसर पर जब सभापति ने कहा कि पैंतीस मिनट हो चुके हैं और केवल एक प्रश्न पूरा हुआ है; और पूछा "क्या यह उचित है?" तब उन्होंने टिप्पणी की थी:

मैं यह भी स्पष्ट करना चाहता हूं कि जहां तक दलों के नेताओं का संबंध है, प्रश्नकर्ता के रूप में उन्हें मैं अत्यंत कठोरतापूर्वक दो से अधिक अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दूंगा। अन्य सदस्य केवल एक-एक अनुपूरक प्रश्न पूछ सकेंगे।[441]

20 नवंबर, 1967 को अगले प्रश्न के लिए नाम पुकारने से पूर्व, सभापति ने बताया कि पिछले प्रश्न ने 15 मिनट का समय लिया है और यह पूछा कि क्या सदन की राय में एक घंटे में मात्र चार प्रश्न ही लिये जाने चाहिएं? फिर, उन्होंने कहा:

मैं चाहता हूं कि एक दिन में यदि पंद्रह नहीं, तो कम-से-कम बारह प्रश्नों को तो निपटाना ही चाहिए। यदि कोई प्रश्न महत्वपूर्ण हो, तो मैं प्रतिदिन दो प्रश्नों को दस-दस मिनट का समय दूंगा और अन्य प्रश्नों को तीन-तीन मिनट का समय दिया जाएगा तथा किसी असाधारण प्रश्न को पांच मिनट का समय भी प्रदान किया जा सकता है। इस प्रकार से, कम-से कम बारह प्रश्नों को निपटाया जा सकेगा।[442]

जब मंत्री महोदय द्वारा एक अनुपूरक प्रश्न का उत्तर देने के पश्चात् अनेक सदस्य अपने अपने स्थान पर खड़े हो गए, तब सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणियां की:

मैं प्रश्नकर्त्ताओं को चार वर्गों में विभाजित करना चाहूंगा। पहला वर्ग है विभिन्न दलों के नेता। वस्तुत: इन नेताओं से मेरा यह विनम्र निवेदन है और सुझाव भी कि वे प्रश्नकाल के दौरान अपने साथियों को प्रश्न पूछने दें...दूसरा वर्ग है, हर बार प्रश्न उठाने वाले सदस्य। वही गिने-चुने सदस्य ही प्रत्येक प्रश्न पर खड़े हो जाते हैं। मुझे यह भय है कि यदि कहीं ऐसे सदस्य शुरू से ही इस प्रकार से हर प्रश्न पर खड़े होते रहे तो मुझे मजबूरन कतिपय प्रश्नों से उन्हें दूर रखना पड़ेगा। एक अन्य वर्ग है, ऐसे प्रश्नकर्त्ताओं का भी जो कभी-कभार ही खड़े होते हैं और निस्सन्देह, मैं यही प्रयास करता हूं कि उन्हें प्रश्न पूछने का अवसर अवश्य प्रदान किया जाए और निरन्तर प्रश्न पूछने वालों से बचा जाए...[443]

26 जून, 1980 को, उस समय प्रश्नों के निपटान का मामला फिर उभरा जब एक प्रश्न के सन्दर्भ में, जिसका उत्तर बहुत लम्बा था, एक सदस्य ने यह महसूस किया कि उसे सभा पटल पर रखा जाना चाहिए था। सभापति ने बताया कि प्रश्न काल को तर्कसंगत बनाने के लिए उपसभाध्यक्षों की एक बैठक बुलायी जाएगी। उस सदस्य ने सुझाव दिया कि इस बैठक में विभिन्न दलों के सदस्यों को भी आमंत्रित किया जाए।[444] तद्नुसार, राज्य सभा में विभिन्न राजनैतिक दलों के नेताओं के साथ सभापति ने यह सुनिश्चित करने के लिए एक बैठक की कि मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्नों को अधिकाधिक कवर किया जाए और उस बैठक में मुख्यत: निम्नलिखित बातों पर आम सहमति व्यक्त की गई थी:

(i) सदस्यों से. अनुरोध किया जाए कि उनके अनुपूरक प्रश्न संक्षिप्त तथा सटीक हों जिनमें पूर्व प्रस्तावना अथवा परिचयात्मक टिप्पणियां न हों। मंत्रियों द्वारा अनुपूरक प्रश्नों का उत्तर देते समय भी उन पर यही नियम लागू होना चाहिए।

(ii) ऐसे सदस्य को जिसे सभापति महोदय ने एक अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति प्रदान कर दी हो, उसे सामान्यत: उसी दिन के प्रश्न-काल के दौरान अन्य प्रश्न पूछने का अवसर प्रदान नहीं किया जाएगा।

(iii) सभापति हाथ उठाने वाले किसी भी सदस्य से, स्वविवेकानुसार, अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए कह सकते हैं किन्तु सभापति हाथ उठाने वाले प्रत्येक सदस्य को अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति देने के लिए बाध्य नहीं हैं।

(iv) सदन में विभिन्न राजनीतिक गुटों के नेताओं को इस संबंध में सभापति को पूरा सहयोग देना चाहिए।

यह भी निर्णय किया गया कि :

(i) किसी एक सदस्य के नाम से पूछे गये प्रश्न के मामले में उस प्रश्न पर दो अतिरिक्त अनुपूरक प्रश्न पूछने की और दो सदस्यों के नाम से पूछे गये प्रश्न के मामले में एक अतिरिक्त अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाएगी तथा तीन सदस्यों के नाम से पूछे गये प्रश्न पर कोई भी अतिरिक्त अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

(ii) प्रश्नों के समय के दौरान, दिवस की बीस प्रश्नों की सूची में से कम से कम दस से पंद्रह प्रश्नों को कवर किया जायेगा।

उपसभाध्यक्षों द्वारा 2 जुलाई, 1980 को हुई बैठक में उपर्युक्त सर्वसम्मति का व्यापक रूप से समर्थन किया गया था।

28 जुलाई, 1980 को प्रश्नों का समय आरंभ होने पर सभापति ने यह घोषणा की कि .... इस बात पर अनौपचारिक रूप से सहमति हो गई है कि किसी भी प्रश्न पर छह से अधिक अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जाएगी क्योंकि, अन्यथा दूसरों को बिल्कुल भी मौका नहीं मिलता है। उन्होंने यह भी बताया कि वह अनुपूरक प्रश्नों का नियमन किस प्रकार करेंगे।[445]

26 नवंबर, 1980 को प्रश्नों का समय आरम्भ होने पर सभापति ने यह घोषणा की:

> प्रत्येक प्रश्न के लिए आठ मिनट से अधिक का समय नहीं दिया जायेगा और आठ मिनट, जिसका निर्धारण "स्टॉप वॉच" से किया जाएगा, की समाप्ति पर मैं उस प्रश्न को रोक दूंगा भले ही वह बीच में ही क्यों न हो। यदि कोई सदस्य प्रश्न पूछने में एक मिनट से अधिक का समय लेगा तो मैं मंत्री से कहूंगा कि वह उस प्रश्न का उत्तर न दें...।[446]

एक सदस्य ने 17 दिसम्बर, 1980 को औचित्य प्रश्न के द्वारा यह शिकायत की कि प्रश्नों के समय में तीन प्रश्न से अधिक नहीं निपटाये जा सके हैं। सदस्य ने यह संकेत दिया कि सभापति (श्री एम. हिदायतुल्ला) ने एक सदस्य को एक ही अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति देते हुए आठ मिनट वाला नियम लागू करने का निर्णय लिया था। (अर्थात् एक प्रश्न आठ मिनट में पूरा हो जाना चाहिए) ताकि अधिक प्रश्न निपटाये जा सकें और इतना ही नहीं वह इस प्रयोजन के लिए "स्टॉप वॉच" भी ले आये थे और उन्होंने एक सदस्य द्वारा एक अनुपूरक प्रश्न पूछे जाने का भी निर्णय लिया था ताकि अधिक प्रश्न निपटाये जा सकें। इससे कुछ विरोधाभास पैदा हो गया था किन्तु सभापति ने इस टिप्पणी के साथ इस मामले को निपटाया: "कल से... सातवें मिनट पर यह घंटी बजेगी और आठ मिनट का समय होने पर, मैं वाक्य के बीच में ही सदस्य को रोक दूंगा।"[447]

प्रश्नों के समय में और अधिक संख्या में प्रश्नों के मौखिक उत्तर दिये जाने के लिए उपसभापति ने असम, राजस्थान और मध्य प्रदेश में राष्ट्रीय राजमार्गों की स्थिति के संबंध में अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए अपने हाथ उठाने वाले सत्रह सदस्यों को इसकी अनुमति नहीं दी क्योंकि इस प्रश्न पर चर्चा करते हुए पहले ही आधा घंटा हो चुका था। जब एक सदस्य ने, जिसे अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी गई थी, यह कहा, "मैं विरोध-स्वरूप सदन से बहिर्गमन कर रहा हूं" तब उपसभापति ने कहा, "ठीक है, आप जा सकते हैं क्योंकि अनेक व्यक्तियों को प्रश्न पूछने हैं...इसकी कोई सीमा होती है। आप किसी एक प्रश्न के 30-40 अनुपूरक प्रश्न नहीं पूछ सकते हैं...क्या आप समझते हैं कि अन्य कोई प्रश्न नहीं पूछे जाएंगे।" तत्पश्चात् जब अगले प्रश्न का उत्तर दिया जा रहा था, तब उपसभापति ने यह निर्णय दिया:

> पिछले प्रश्न में 17 प्रश्नकर्ता अपना प्रश्न नहीं पूछ सके। मैंने उनके नाम मंत्री को इस अनुरोध के साथ भेज दिये हैं कि वह उनके प्रश्नों के बारे में सभी को लिखित में उत्तर दें। अत: 17 माननीय सदस्य अपने प्रश्न मंत्री को भेज सकते हैं। मैं एक ही प्रश्न पर पहले ही नौ सदस्यों को अपने प्रश्न पूछने की अनुमति दे चुका हूं और 17 नाम और थे। अत: मंत्री उनके प्रश्नों का उत्तर देंगे।[448]

एक अवसर पर, जब कुछ सदस्य अनुपूरक प्रश्न उठाना चाहते थे तो सभापति ने टिप्पणी की कि "अनुपूरक प्रश्न पूछने का अधिकार उस सदस्य को है जिसके प्रश्न को गृहीत किया गया है। अन्य किसी को कोई अधिकार नहीं है। यह सभापति की ओर से दिखाया गया शिष्टाचार है।"[449]

एक अन्य अवसर पर, जब एक सदस्य ने बारम्बार यह आग्रह किया कि उसे भी अनुपूरक प्रश्न उठाने की अनुमति दी जाए तो सभापति ने टिप्पणी की कि "अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति एक संयोग तथा शिष्टाचार के आधार पर दी जाती है। यह कोई अधिकार नहीं है।"[450] इसके अतिरिक्त, उसी दिन सभापति ने पुन: समुक्ति की कि "अनुपूरक प्रश्न किसी दल का अधिकार नहीं है।"[451]

सभापति द्वारा जिस किसी सदस्य को अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जा चुकी है उसे सामान्यत: प्रश्नों के समय के दौरान उस दिन दूसरा अनुपूरक प्रश्न पूछने का अवसर नहीं दिया जाता है। सभापति हाथ उठाने वाले सदस्य को, स्वविवेकानुसार, अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दे सकते हैं किन्तु वह ऐसे प्रत्येक सदस्य को अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति देने के लिए बाध्य नहीं हैं। सामान्यत: सभापति उस सदस्य जिसके नाम पर अंकित प्रश्न सूचीबद्ध है, को दो अनुपूरक प्रश्न पूछने की और तीन और सदस्यों को एक अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति देते हैं।

तथापि, एक बार प्रथम प्रश्नकर्ता के अनुपस्थित रहने पर दूसरे प्रश्नकर्ता को दो अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति प्रदान की गई और इसी दौरान जब पहला प्रश्नकर्ता सदन में उपस्थित हुआ तब उसे भी एक अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी गई। जब सदन में समान प्रश्नों का मौखिक उत्तर दिया जाता है, तब पहले प्रश्न के प्रश्नकर्ता को दो अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है और बाद के प्रश्नकर्ताओं को एक-एक अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है।[452]

25 नवंबर, 2002 को प्रश्नों के समय के दौरान सभापति ने यह टिप्पणी की कि यहां से आगे किसी तारांकित प्रश्न के संबंध में उस सदस्य (सदस्यों) के अतिरिक्त, जिनके नाम से प्रश्न सूची में प्रश्न अंकित है, दो से अधिक सदस्यों को अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जाएगी ताकि अधिकाधिक संख्या में प्रश्नों के मौखिक उत्तर दिये जा सकें।[453]

7 दिसम्बर, 2007[454] को जब दो सदस्यों के नाम से सूचीबद्ध प्रश्न को पुकारा गया तो प्रथम प्रश्नकर्ता सभा में उपस्थित नहीं थे। सभापति ने दूसरे प्रश्नकर्ता को दो अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी थी। इसी दौरान, प्रथम प्रश्नकर्ता ने आकर अपना स्थान ग्रहण किया और उन्हें केवल एक अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति प्राप्त हुई।

तदुपरान्त, 11 मार्च, 2008 को सभापति द्वारा आहूत नेताओं की बैठक में यह निर्णय लिया गया कि प्रश्नकर्ता सदस्य/सदस्यों को अनुपूरक प्रश्नों के रूप में केवल दो ही अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाएगी।[455]

14 मार्च, 2008[456] को जब प्रथम प्रश्नकर्ता अपना अनुपूरक प्रश्न पूछते समय लंबा वक्तव्य दे रहे थे तो उस पर सभापति ने उन्हें सटीक और संक्षिप्त रूप में अपनी बात रखने को कहा। तथापि, उन्होंने अपना भाषण जारी रखा और परिणामस्वरूप सभापति ने उन्हें दूसरा अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी।

13 जुलाई, 2009[457] को जब एक सदस्य ने एक साथ दो अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति मांगी तो एक अन्य सदस्य ने यह बात सभापति के संज्ञान में लाए कि माननीय सदस्य को दो अनुपूरक प्रश्न पूछने का अवसर मिल गया है। इस पर माननीय सभापति ने टिप्पणी की कि, "मेरा बिन्दु अत्यंत सरल है। एक बार में एक अनुपूरक प्रश्न ही पूछा जाना चाहिए..." सभापति के इस बात से संतुष्ट हो जाने पर, कि सदस्य केवल एक ही अनुपूरक प्रश्न उठा रहे हैं, बाद में उन्हें इसकी अनुमति दे दी गई।

15 जुलाई, 2009[458] को जब एक सदस्य अनुपूरक प्रश्न पूछ रहे थे तो सभापति ने उनसे केवल एक अनुपूरक प्रश्न पूछने का अनुरोध किया। तथापि, सदस्य ने दूसरा अनुपूरक प्रश्न भी पूछ ही लिया। तत्पश्चात्, सभापति ने टिप्पणी की कि 'मैं माननीय मंत्री से अनुरोध करूंगा कि उन्हें जो भी प्रश्न उचित लगे, उस एक प्रश्न का उत्तर दें।'

17 जुलाई, 2009[459] को सभापति ने टिप्पणी की कि अनुपूरक प्रश्नों के संबंध मे, नियम यह है कि यदि एक ही सदस्य द्वारा एक से अधिक अनुपूरक प्रश्न पूछा जाता है तो संबंधित मंत्री द्वारा केवल एक प्रश्न का उत्तर ही दिया जाएगा।

27 जुलाई, 2009[460] को एक सदस्य, जोकि दूसरे प्रश्नकर्ता थे, ने दूसरा अनुपूरक प्रश्न उठाने का अनुरोध किया था। तथापि, सभापति ने यह टिप्पणी की कि:

> आप इस प्रश्न से केवल संबद्ध हैं। आपने यह प्रश्न नहीं पूछा। मुझे खेद है कि मुख्य प्रश्नकर्ता अनुपस्थित हैं और अन्य किसी व्यक्ति को यह अधिकार प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता है।

29 जुलाई, 2009[461] को एक सदस्य, जोकि दूसरे प्रश्नकर्ता थे, ने दो अनुपूरक प्रश्न उठाए। सभापति ने निदेश दिया कि मंत्री केवल प्रथम भाग का उत्तर दें।

7 अगस्त, 2009[462] को अनुपूरक प्रश्न पूछते समय, एक सदस्य ने एक से अधिक अनुपूरक प्रश्न पूछे। सभापति ने मंत्री जी से केवल एक प्रश्न का ही उत्तर देने का आग्रह किया। यद्यपि, मंत्री ने यह कहते हुए सभापति से सभी प्रश्नों के उत्तर देने की अनुमति का अनुरोध किया कि सदन के बाहर अनिश्चितता और भय का वातावरण है तथा विभिन्न चैनलों द्वारा विषय को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं दर्शाया जा रहा है और यह उपयुक्त समय है तथा उनके लिए यह सर्वोत्तम मंच है कि देशभर में सही संदेश प्रसारित करने की दिशा में यथा उपलब्ध सूचना साझी की जा सके। सभापति ने मंत्री को सदस्य के सभी अनुपूरक प्रश्नों का उत्तर देने की अनुमति दी थी।

26 नवंबर, 2009[463] को दूसरे प्रश्नकर्ता को उस समय दो अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी गई थी जब पहले प्रश्नकर्ता सदन में उपस्थित नहीं थे।

8 दिसंबर, 2009[464] को प्रथम प्रश्नकर्ता अनुपस्थित थे और दूसरे प्रश्नकर्ता को दो अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी गई थी। अनुपूरक प्रश्नों के उत्तर दिये जाने के पश्चात, पहले प्रश्नकर्ता आ पहुंचे और उन्हें केवल एक अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति प्रदान की गई थी।

तारांकित प्रश्नों के अनुपूरक प्रश्नों की संख्या के संबंध में वर्तमान परिपाटी सभापति के निम्नलिखित निदेशानुसार[465] संचालित होगी:

> जिस सदस्य के नाम तारांकित प्रश्न सूचीबद्ध है, उसे दो अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाएगी। इसके अतिरिक्त, तीन और सदस्यों को एक-एक अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाएगी। ऐसा तारांकित प्रश्न, जिसे सभापटल पर नहीं रखा गया है अथवा जिस सदस्य के नाम से यह सूचीबद्ध है वह अनुपस्थित है, के संबंध में तीन सदस्यों को एक-एक अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाएगी।

ऐसा निदेश जारी होने के पश्चात् भी ऐसे दृष्टांत रहे हैं जबकि सभापति को अनुपूरक प्रश्नों की संख्या के संबंध में टिप्पणियां करनी पड़ीं/विनिर्णय देने पड़े।

29 अप्रैल, 2010[466] को मूल प्रश्नकर्ता के पश्चात् तीन सदस्यों द्वारा अनुपूरक प्रश्न पूछ लिए जाने पर एक अन्य सदस्य अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए खड़े हो गये। इस पर सभापति ने विनिर्णय दिया कि, "आपने एक टिप्पणी की है। इसे अभिलिखित किया जाएगा। किन्तु यह अनुपूरक प्रश्न नहीं है।" इस अवसर पर सभापति द्वारा प्रथम/मूल प्रश्नकर्ता के अतिरिक्त, तीन अनुपूरक प्रश्न उठाने संबंधी नियम का अनुसरण किया गया।

4 मार्च, 2011[467] को एक अल्पसूचना प्रश्न के संबंध में, मंत्री द्वारा दो अनुपूरक प्रश्नों का उत्तर दिए जाने के पश्चात् सदस्य ने अपना तीसरा अनुपूरक प्रश्न उठाया। किन्तु, सभापति ने अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए अगले सदस्य का नाम पुकारा। मंत्री द्वारा तीसरे अनुपूरक प्रश्न का उत्तर देने हेतु अनुरोध करने पर सभापति ने टिप्पणी की कि, "मेरे विचार से आप अपने दो अनुपूरक प्रश्न पूछ चुके हैं।" इस पर सदस्य ने कहा, "हम केवल नियमों के आधार पर नहीं चल सकते।" तत्पश्चात् सभापति ने इस बात की अनुमति दी थी कि सदस्य द्वारा पूछे गए तीसरे अनुपूरक प्रश्न का उत्तर मंत्री मौखिक रूप से दे सकते हैं।

14 मई, 2012[468] को जब पांच अनुपूरक प्रश्न पहले ही पूछे जा चुके थे तब एक सदस्य ने एक अनुपूरक प्रश्न पूछना चाहा तो सभापति ने स्थिति पर एक स्पष्टीकरण दिया जिसमें यह कहा गया:

> ...मूल प्रश्नकर्ता के अतिरिक्त, मुख्य प्रश्न के संबंध में अनुपूरक प्रश्न की अनुमति व्यक्तियों को शिष्टाचार के नाते ही दी जाती है। जहां तक नियम पुस्तिका का संबंध है तो सभा में यह नियम है कि दो अनुपूरक प्रश्न पूछे जा सकते हैं। सभापति आपको तीन अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति प्रदान कर रहे हैं। जहां तक नियम पुस्तिका का संबंध है, सभा में दो अनुपूरक प्रश्न पूछे जाने की अनुमति का नियम है। सभापति सभा में दल-वार, आगे की सीटों तथा पीछे की सीटों इत्यादि के अनुसार अनुपूरक प्रश्नों को पूछे जाने का अवसर प्रदान करने का प्रयास करता है।

प्रश्नों के समय के दौरान हिन्दी तथा अंग्रेजी से भिन्न किन्हीं अन्य भाषाओं का प्रयोग

यदि कोई सदस्य, जिसके नाम से मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्नों की सूची में कोई प्रश्न दिया गया है, संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित किन्हीं भाषाओं (अंग्रेजी तथा हिन्दी से भिन्न भाषाओं) में अनुपूरक प्रश्न पूछना चाहता है तो उसे इस आशय की अग्रिम सूचना देना आवश्यक है। इस प्रयोजन के लिए साथ-साथ भाषान्तरण की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। यह सुविधा केवल उसी सदस्य को उपलब्ध कराई जाती है जिसके नाम से, मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्नों की सूची में प्रश्न दिया गया है। ऐसे मामले में संबंधित सदस्य के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस दिन प्रश्न का उत्तर दिया जाना है, उससे पूर्ववर्ती कार्य दिवस को म.प. 3.00 बजे तक इसकी अग्रिम सूचना दे दे। हिन्दी या अंग्रेजी से भिन्न किसी अन्य भाषा में पूछे गये अनुपूरक प्रश्न का केवल अंग्रेजी रूपान्तर ही मुद्रित कार्यवाही में सम्मिलित किया जाता है।[469]

एक बार, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्री (श्री राज नारायण) ने मूलतः तमिल में पूछे गये प्रश्न का उत्तर तमिल में दिया था। सदस्यों ने यह कहते हुए उस पर आपत्ति की थी कि वे उत्तर को समझने में असमर्थ हैं जोकि अंग्रेजी या हिन्दी में दिया जाना चाहिए था। सदस्यों द्वारा कुछ मुद्दे उठाये जाने के पश्चात सभापति ने यह विनिर्णय दिया था, "जब सदस्य प्रश्न पूछते हैं तो वे माननीय मंत्री से उत्तर प्राप्त करने के हकदार हो जाते हैं। सुस्थापित प्रक्रिया तो यह है कि उत्तर अंग्रेजी या हिन्दी में दिये जाने चाहिए।"[470]

एक सदस्य ने, जोकि प्रथम प्रश्नकर्ता नहीं था, बंगला में एक अनुपूरक प्रश्न पूछा था। जब मंत्री ने बंगला में उसका उत्तर देने की अनुमति मांगी और अंग्रेजी में भी उसका अनुवाद करने की पेशकश की तब सभापति ने यह कहते हुए कि तब तो इसका कोई अंत नहीं होगा, यह टिप्पणी की थी: "इस संबंध में नियम बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रश्न पूछने वाले मूल व्यक्ति को ही ऐसा करने की अनुमति दी जाती है और शेष सदस्यों को नहीं" सभापति ने मंत्री को अंग्रेजी में उत्तर देने का निदेश दिया। थोड़ी देर बाद, एक अन्य सदस्य ने, अपना अनुपूरक प्रश्न पूछने से पहले, यह कहा कि एक ऐसे सदस्य को, जो मूल प्रश्नकर्ता नहीं था, किसी प्रादेशिक भाषा में अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति देकर एक नई मिसाल कायम की गई है और सदस्य ने यह आशा व्यक्त की कि भविष्य में जब कोई सदस्य अपनी मातृ-भाषा में प्रश्न पूछना चाहेगा तो उसे रोका नहीं जाएगा। इस पर सभापति ने यह स्पष्ट किया कि उन्होंने कोई नई मिसाल कायम नहीं की है; बल्कि यह तो एक परिहास था।[471]

जब सदस्य द्वारा पूछे गये अनुपूरक प्रश्न का उत्तर मंत्री अंग्रेजी भाषा में दे रहे थे, तब प्रश्नकर्ता ने उनसे हिन्दी भाषा में उत्तर देने का अनुरोध किया परन्तु एक अन्य सदस्य ने यह कहते हुए इसका विरोध किया कि उसे हिन्दी भाषा समझ में नहीं आती है।

सभापति ने यह विनिर्णय दिया, "मैं इसे मंत्री पर छोड़ता हूं। वह किसी भी भाषा में उत्तर दे सकते हैं... मंत्री जिस भाषा में चाहें उत्तर दे सकते हैं।"[472]

प्रश्नों के उत्तरों का समय से पहले प्रचार

प्रश्नों के उत्तर, जो मंत्री सदन में देना चाहते हों, तब तक प्रकाशनार्थ नहीं दिए जाएंगे, जब तक कि वे सदन में न दिये जा चुके हों या सदन के पटल पर न रखे जा चुके हों।[473]

अल्प सूचना प्रश्न

किसी सदस्य द्वारा लोक महत्व के विषय के संबंध में मौखिक उत्तर दिये जाने के लिए कोई प्रश्न पूरे पन्द्रह दिन (पूर्वत: दस दिन) से कम समय की सूचना पर पूछा जा सकता है।[474] ऐसे मामले में सदस्य को अल्प सूचना पर प्रश्न पूछने का कारण संक्षेप में बताना पड़ता है। यदि प्रश्न की सूचना में कोई कारण नहीं दिया गया है तो वह प्रश्न सदस्य को लौटा दिया जाता है।[475] अल्प सूचना प्रश्न के लिए मानक मुद्रित सूचना प्रपत्र सूचना कार्यालय में उपलब्ध होते हैं। सूचना प्रपत्र को वेबसाइट http://rajyasabhahindi.nic.in से भी डाउनलोड किया जा सकता है।

पूर्व में, जहां ऐसी सूचना पर एक से अधिक सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए गये हों या जहां एक ही विषय पर दो या दो से अधिक सदस्यों द्वारा अलग-अलग अल्प सूचना प्रश्न दिये गये हों वहां तारांकित प्रश्न की तरह, अल्प सूचना प्रश्न की सूची में सम्मिलित किए जाने के लिए केवल दो सदस्यों जिनसे पहले सूचनाएं प्राप्त हुई हैं, के नाम दिये जाते हैं। पूर्वत: ऐसी कोई सीमा नहीं थी। एक बार, एक ऐसा दृष्टांत रहा है जब 9 अगस्त, 1971 को एक अल्प सूचना प्रश्न चौबीस सदस्यों के नाम से था। अभी मौखिक उत्तर हेतु सूचीबद्ध प्रश्न की तरह ही अल्प सूचना प्रश्न केवल एक सदस्य के नाम से ही सूचीबद्ध होता है।

यदि सभापति की यह राय हो कि प्रश्न अविलम्बनीय प्रकार का है तो वह संबंधित मंत्री से पूछ सकता है कि क्या वह अल्प सूचना पर प्रश्न का उत्तर देने की स्थिति में है और यदि हां, तो किस तिथि को।[476] यदि संबंधित मंत्री उत्तर देने की स्थिति में हो तो ऐसे प्रश्न का उत्तर उसके द्वारा बताए गये दिन, ऐसे समय दिया जाता है जो सभापति निश्चित करे।[477] इस आशय की सूचना संबंधित सदस्य (सदस्यों) को भेज दी जाती है। यदि मंत्री अल्प सूचना पर प्रश्न का उत्तर देने में अपनी असमर्थता व्यक्त करता है तो इसकी भी सूचना संबंधित सदस्य को भेज दी जाती है।

एक अवसर पर पंचायती राज मंत्री द्वारा उत्तर दिये जाने हेतु सदस्य की सूचना को तारांकित प्रश्न के रूप में उत्तर दिये जाने के लिए 8 दिसम्बर, 2011 की तिथि हेतु सूचीबद्ध किया गया। तथापि, सदस्य वाद-विवाद के दौरान उठाए गए अनुपूरक प्रश्नों के दिए गए उत्तरों से संतुष्ट नहीं थे। अन्य सदस्यों ने भी अनुपूरक प्रश्नों के लिए दिये गये उत्तरों पर अपना असंतोष व्यक्त किया। तत्पश्चात्, सबंधित मंत्री ने स्पष्ट किया कि उनका उत्तर पंचायती राज मंत्रालय से संबंधित विषयों के बारे में है न कि अन्य मंत्रालयों विशेष रूप से ग्रामीण विकास मंत्रालय के न्यायाधिकार क्षेत्र में आने वाले विषयों के बारे में। सदस्यों की ओर से आग्रह किए जाने पर सभापति ने बाद की तारीख के लिए उत्तर देने हेतु प्रश्न को स्थगित कर दिया। तत्पश्चात्, सदस्य ने ग्रामीण विकास मंत्री को अल्प सूचना प्रश्न का उत्तर देने हेतु अल्प सूचना प्रश्न की एक समरूप विषयक सूचना दी।[478]

ग्रामीण विकास मंत्री की सुविधा को अनदेखा करते हुए इस सूचना को 13 दिसंबर, 2011 के लिए सूचीबद्ध किया गया जिसके परिणामस्वरूप नियम 58 (1)[479] का उल्लंघन किया गया।

जहां प्रश्न में उल्लिखित विषय को अविलम्बनीय न समझा जाये वहां सदस्य के अनुरोध पर या अन्यथा, सामान्य प्रक्रिया के अनुसार अपेक्षित सूचना पर प्रश्न को उत्तर के लिए तारांकित अथवा अतारांकित समझा जा सकता है। यदि मंत्री अल्प सूचना पर प्रश्न का उत्तर देने की स्थिति में न हो और सभापति की यह राय हो कि प्रश्न इतने पर्याप्त लोक-महत्व का है कि सदन में उसका मौखिक उत्तर दिया जाना चाहिए तो सभापति यह निदेश दे सकता है कि प्रश्न को उस दिन की प्रश्न-सूची में प्रथम प्रश्न के रूप में रखा जाये, जिस दिन कि नियम 39 के अधीन उसका उत्तर दिया जा सकता हो। तथापि, किसी एक दिन की प्रश्न-सूची में ऐसे एक से अधिक प्रश्नों को पूर्ववर्तिता नहीं दी जा सकती है।[480]

प्रक्रिया विषयक प्रारूप नियमों की सिफारिश करने के लिए स्थापित की गई समिति ने अल्प सूचना प्रश्नों से संबंधित तत्कालीन नियम पर विचार करते हुए, सदस्यों की इस सामान्य भावना पर ध्यान दिया कि विद्यमान प्रक्रिया जिसके द्वारा अल्प सूचना प्रश्नों का उत्तर देने के मामले में मंत्री को अंतिम निर्णय की शक्ति प्रदान की गई है, प्राय: सदस्यों के लिए हानिकर रही है और इसलिए उक्त नियम में संशोधन किया जाना चाहिए ताकि इस संबंध में 'अंतिम प्राधिकार' सभापति में निहित हो सके। इसलिए समिति ने एक मध्य मार्ग के रूप में नये उप-नियम [58(3)] को सम्मिलित किए जाने की सिफारिश की।[481]

जब किसी अल्प सूचना प्रश्न को गृहीत कर लिया जाता है और उसे कार्यसूची में सम्मिलित कर लिया जाता है तब उसे सामान्यत: प्रश्नों के समय के तत्काल पश्चात् या दिवस के तारांकित प्रश्नों के निपटारे के पश्चात् पुकारा जाता है। यदि प्रश्नों के समय को छोड़ दिया गया है या उसका उपबंध नहीं किया गया है तो उसे कार्यावलि की पहली मद के रूप में उत्तर देने के लिए पुकारा जा सकता है और यदि शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के लिए कोई नया सदस्य है या दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि या कोई अन्य उल्लेख आदि है तो ऐसे प्रश्न को उत्तर के लिए उसके तत्काल पश्चात् पुकारा जा सकता है। तथापि, कभी-कभी अल्प सूचना प्रश्न को दिन में इसके बाद भी लिया जा सकता है।

एक बार एक अल्प सूचना प्रश्न को मध्याह्न भोजनावकाश के पश्चात् लिया गया था;[482] एक अन्य अवसर पर उसे म.प. 4.32 पर लिया गया था;[483] और एक बार तो ऐसा प्रश्न अवमानना करने वाले व्यक्ति को धिग्दंड देने के पश्चात् लिया गया था।[484]

साधारणत: अल्प सूचना प्रश्न अल्पावधि के भीतर पूरा कर लिया जाता है, हालांकि ऐसे भी उदाहरण हैं, जब अल्प सूचना प्रश्न एक घंटे या दो घंटे से भी अधिक अवधि तक चला है।[485]

सामान्यत: प्रथा के अनुसार, एक बैठक में केवल एक अल्प सूचना प्रश्न को उत्तर के लिए रखा जाता है, हालांकि प्रारंभिक वर्षों में ऐसे भी उदाहरण रहे हैं जब ऐसे एक से अधिक प्रश्नों को रखा गया है और उनके एक-एक करके उत्तर दिये गये हैं।

उदाहरण के लिए 17 नवंबर, 1965, 6 सितंबर, 1966, 9 सितंबर, 1966, 31 अगस्त, 1968 तथा 11 मई, 1978 को उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में दो-दो अल्प सूचना प्रश्नों को सम्मिलित किया गया था जबकि 10 सितंबर, 1957 और 3 सितंबर, 1966 को तीन-तीन तथा 26 जून, 1962 को ऐसे चार प्रश्नों को सम्मिलित किया गया था।

वह सदस्य, जिसने प्रश्न की सूचना दी है, सभापति द्वारा पुकारे जाने पर प्रश्नों की सूची में उसकी संख्या का उल्लेख करते हुए प्रश्न पूछेगा और संबंधित मंत्री उसका तुरंत उत्तर देगा।[486] अल्प सूचना प्रश्न (प्रश्नों) की सफेद कागज पर एक पृथक सूची मुद्रित की जाती है और ऐसे प्रश्नों पर प्रत्येक सत्र के लिए क्रमिक संख्या दी जाती है। अन्य प्रकरणों में अल्प सूचना प्रश्नों के लिए प्रक्रिया, ऐसे रूपांतरणों के साथ जिन्हें सभापति आवश्यक या सुविधाजनक समझे, वही होती है जो मौखिक उत्तरों हेतु साधारण प्रश्नों के लिए होती है।[487]

यदि वह सदस्य जिसके नाम पर अल्प सूचना प्रश्न है, अनुपस्थित हो तो उस प्रश्न का लिखित उत्तर सदन के पटल पर रख दिया जाता है।[488] कभी-कभी विशिष्ट प्राधिकार पर उस सदस्य की ओर से जो अनुपस्थित है, किसी अन्य सदस्य को अल्प सूचना प्रश्न पूछने की अनुमति दे दी जाती है। ऐसे मामले में सभापति सदन की सहमति प्राप्त करने के लिए उस मामले को सदन के समक्ष रख सकता है।[489]

> एक बार जब वह सदस्य, जिसके नाम पर अल्प सूचना प्रश्न था, अनुपस्थित था और दूसरा सदस्य उस प्रश्न को पूछना चाहता था तो उपसभापति ने इसकी अनुमति नहीं दी थी इसलिए उस प्रश्न का उत्तर सदन के पटल पर रख दिया गया था।[490]
>
> विद्युत मंत्री, श्री पी.आर. कुमारमंगलम के निधन पर दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि देने के उपरांत सदन के स्थगित हो जाने के कारण अल्प सूचना प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सका, इसे 24 अगस्त से 25 अगस्त, 2000 के लिए स्थगित कर दिया गया और उसका मौखिक उत्तर दिया गया।[491]
>
> सदन के स्थगन के कारण जब अल्प सूचना प्रश्न का मौखिक उत्तर नहीं दिया जाता तो उस प्रश्न के उत्तर को अगले दिन सभापटल पर रख दिया गया समझ लिया जाता है।[492]
>
> उस दिन सभा में 16 अगस्त, 2010 के लिए सूचीबद्ध अल्प सूचना प्रश्न को उत्तर हेतु नहीं लिया जा सका।[493] सभापति ने दोनों सदस्यों तथा संबंधित मंत्री के अनुरोध पर प्रश्न को 17 अगस्त, 2011 के लिए स्थगित कर दिया था।[494]
>
> वर्तमान में, यदि प्रश्नकर्ता अनुपस्थित हैं तो सभापति प्रश्न का उत्तर देने का निदेश देंगे।[495]

यदि कोई मंत्री किसी अल्प सूचना प्रश्न के उत्तर मे संशोधन करना चाहता है तो वह उस प्रश्न को पढ़ेगा जैसाकि किसी तारांकित या अनुपूरक प्रश्न के उत्तर के संशोधन के मामले में किया जाता है।[496]

आधे घंटे की चर्चाएं

सभापति किसी सदस्य को लोक-महत्व के किसी ऐसे विषय पर चर्चा उठाने की अनुमति दे सकता है जो हाल में किसी प्रश्न-मौखिक अथवा लिखित-का विषय रह चुका हो और जिसके उत्तर का किसी तथ्यात्मक विषय के संबंध में विशदीकरण आवश्यक हो।[497] जो सदस्य ऐसी कोई चर्चा उठाना चाहें, उसकी उस दिन से जिस दिन कि वह चर्चा उठाना चाहता हो, तीन दिन पहले लिखित सूचना देगा और संक्षेप में उस बात या उन बातों का उल्लेख करना आवश्यक है जिन्हें वह उठाना चाहता हो।[498] तथापि, सभापति संबंधित मंत्री की सहमति से सूचना की कालावधि हटा सकेगा।[499] सूचना कार्यालय में उपलब्ध हल्के हरे रंग के मानक प्रपत्र पर ही सूचना देना आवश्यक है। सूचना प्रपत्र को वेबसाइट http://rajyasabhahindi.nic.in से भी डाउनलोड किया जा सकता है। सूचना के साथ व्याख्यात्मक टिप्पणी दी जानी चाहिए

जिसमें उस विषय पर चर्चा उठाने के कारण दिये गये हों।[500] सूचना का समर्थन कम से कम दो अन्य सदस्यों के हस्ताक्षरों से किया जाना आवश्यक है।[501]

यदि दो से अधिक सूचनाएं प्राप्त हुई हों और सभापति द्वारा गृहीत कर ली गई हों तो उनमें से दो सूचनाओं का चयन करने की दृष्टि से लॉटरी द्वारा निर्णय किया जाता है और सूचनाएं उस क्रम में रखी जाती हैं जिस समय-क्रम में वे प्राप्त हुई हैं।[502] पहली बार 8 मई, 1981 को आधे घंटे की दो चर्चाओं को सूची में सम्मिलित किया गया था।

यदि सूचना गृहीत कर ली जाती है तो चर्चा आधे घंटे तक ही सीमित रहती है और म.प. 5.00 बजे से म.प. 5.30 बजे तक चर्चा की जाती है। यदि उस दिन के लिए रखा गया अन्य कार्य म.प. 5.00 बजे से पूर्व समाप्त हो जाए तो आधे घंटे का समय ऐसे अन्य कार्य की समाप्ति के समय से आरंभ होता है। तथापि, यदि सभापति की राय में ऐसी चर्चा आरंभ करने के समय में परिवर्तन करना आवश्यक या सुविधाजनक हो तो वह ऐसा कर सकता है।[503] किन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं जब आधे घंटे की चर्चा, आधे घंटे की निर्धारित अवधि से भी अधिक समय तक जारी रही।

> ब्रिटिश राष्ट्रिकता विधेयक,[504] नवोदय विद्यालयों और प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण के संबंध में आधे घंटे की चर्चा लगभग दो घंटे तक चली।[505] बोफोर्स के साथ प्रति-व्यापार करार के संबंध में इस तरह की चर्चा तीन घंटे तक चली थी,[506] बोफोर्स पर आधे घंटे की चर्चा म.प. 10.28 पर आरंभ हुई थी जो अगले दिन म.प. 3.00 बजे के बाद तक, लगभग पांच घंटे जारी रही थी।[507]

यदि किसी दिन-विशेष को आरंभ की गई आधे घंटे की चर्चा उस दिन पूरी न हो सके तो उसे संबंधित सदस्य की सहमति से अगले प्राप्य दिन की कार्यावलि में सम्मिलित कर लिया जाता है। किन्तु उस दिन की कार्यावलि में ऐसी दो चर्चाओं से अधिक चर्चाएं हर्गिज सम्मिलित नहीं की जाती हैं।

सदन के समक्ष न तो कोई औपचारिक प्रस्ताव होता है और न मतदान ही होता है। वह सदस्य जिसने सूचना दी है, एक संक्षिप्त वक्तव्य देकर चर्चा आरंभ करता है और इसके बाद संबंधित मंत्री संक्षेप में उसका उत्तर देता है। इसके पश्चात् जिन सदस्यों ने सभापति को पूर्व सूचना दे दी हो उन सदस्यों को किसी तथ्यात्मक विषय के और विशदीकरण के प्रयोजनार्थ एक-एक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है।[508] अंत में संबंधित मंत्री पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देता है और इसके बाद चर्चा समाप्त हो जाती है।

> एक बार मंत्री (श्री वी.वी. गिरि) ने "चर्चा को छोटा" करने के लिए चर्चा आरंभ होने से पहले ही एक वक्तव्य दे दिया था। विषय था — समाचार एजेंसी प्रबंध-मंडल और उनके कर्मचारियों के बीच विवाद के निपटारे के लिए एक केन्द्रीय अभिकरण की नियुक्ति।[509]
>
> एक अन्य अवसर पर संबंधित मंत्री के अनुरोध पर सदस्यों को पहले प्रश्न पूछने की अनुमति दी गई और मंत्री ने सामान्य प्रक्रिया से हटकर अंत में उत्तर दिया।[510]
>
> एक दिन आधे घंटे की चर्चा मध्याह्न 7.02 बजे आरंभ हुई। सूचना देने वाले सदस्यों ने चर्चा आरंभ की। सदस्यों द्वारा उठाये गये मुद्दों का संबंधित मंत्री द्वारा उत्तर दिया गया। तत्पश्चात् चार अन्य सदस्यों ने प्रश्न पूछे। म.प. 7.39 बजे उपसभाध्यक्ष ने सदन की इस पर सर्वसम्मति की घोषणा की कि चर्चा पर मंत्री के उत्तर को सदस्यों को लिखित रूप में भेज दिया जाये। यह संबंधित मंत्री द्वारा सदन में उत्तर दिये जाने की सामान्य परिपाटी से भिन्न था।[511]

12 अगस्त, 2011[512] को जब मंत्री जी 'अल्प-विकसित राज्यों में उच्च एवं तकनीकी शिक्षा का विकास' के संबंध में पूछे गये तारांकित प्रश्नों के अनुपूरक प्रश्नों के उत्तर दे रहे थे और सदस्य उत्तर प्रदेश में किसी नए केन्द्रीय विश्वविद्यालय हेतु मंजूरी नहीं दिए जाने पर आंदोलित थे तथा व्यवधान उत्पन्न हो रहा था। तब सभापति ने यह टिप्पणी की थी :

> जहां तक मुझे याद है मुझे यहां इस विषय पर चर्चा कर रहे माननीय सदस्यों में से किसी से भी कोई ऐसी सूचना प्राप्त नहीं हुई है, जो इस प्रश्न से संबंधित हो तथा यह अनुरोध किया गया हो कि इस पर अथवा इससे संबंधित विषय पर विचार-विमर्श किया जाए। अतः, मुझे समझ नहीं आ रहा है कि अचानक यह शोर-शराबा क्यों किया जा रहा है। यदि आपको लगता है किसी विषय पर चर्चा होनी चाहिए तो कृपया सूचना दीजिए।

यदि वह सदस्य जिसके नाम से कार्यावलि में आधे घंटे की चर्चा रखी गई है, अनुपस्थित हो तो कोई ऐसा सदस्य जिसने सूचना का समर्थन किया हो, सभापति की अनुज्ञा से चर्चा आरंभ कर सकता है।[513] जिस दिन आधे घंटे की चर्चा नियत हो, उस दिन संबंधित सदस्य के कतिपय अपरिहार्य कारणों से अनुपस्थित होने की स्थिति में अनुरोध किए जाने पर या मंत्री के अनुरोध पर या यदि सदन ऐसा निर्णय करे तो, चर्चा को किसी दूसरे दिन के लिए स्थगित किया जा सकता है।[514]

एक सदस्य ने अनुरोध किया कि सदस्यों की भावनाओं का संज्ञान लेते हुए इस विषय पर आधे घंटे की चर्चा की अनुमति दी जाए।

सभापति ने कहा, "मैं आपको अनुमति देना चाहता हूं। मुझे कोई समस्या नहीं है। किन्तु कृपया सूचना दीजिए।"

तदुपरांत दो सदस्यों द्वारा मुद्दे पर आधे घंटे की चर्चा आयोजित कराए जाने के संबंध में सूचना दी गई जिसे सभा की कार्यवाही तथा सभापति द्वारा की गई टिप्पणियों के दृष्टिगत मंत्रालय से तथ्यों की पड़ताल कराए बिना स्वीकार कर लिया गया। बाद में 25 अगस्त, 2011 को आधे घंटे की चर्चा का आयोजन किया गया।[515]

कंप्यूटरीकरण

त्वरित संपर्क, शीघ्र सुलभता और सूचना का प्रसार तथा कार्य का शीघ्रतर निपटान करने हेतु सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग इस युग की प्रमुख विशेषता रही है। अतः, सूचना के त्वरित प्रसंस्करण तथा संप्रेषण, तथ्यों एवं आंकड़ों के सटीक विश्लेषण, उच्चतर दक्षता एवं उत्पादकता आदि को सुकर बनाने के लिए कंप्यूटरों का उपयोग अपरिहार्य हो गया है। प्रश्न शाखा ने अपनी बहुविध गतिविधियों में सूचना प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग का अनुभव किया है। प्रश्न शाखा में कंप्यूटरीकरण की प्रक्रिया वर्ष 1999 में आरंभ हुई थी। राज्य सभा वेबसाइट पर निम्नलिखित सूचना उपलब्ध कराई गई है:

(i) प्रश्न चार्ट;

(ii) प्रश्न कलेंडर;

(iii) बैलट सूची;

(iv) मंत्रियों की सामूहिक सूची बनाया जाना;

(v) प्रश्नों के संबंध में सत्र-वार सांख्यिकीय सूचना;

(vi) नोडल अधिकारियों की मंत्रालय-वार सूची; उन विषयों से संबंधित पैम्फ्लेट जिनके लिए विभिन्न मंत्रालय राज्य सभा में प्रश्नों के उत्तर देने हेतु उत्तरदायी हैं;

(vii) पूर्वोदाहरण; तथा

(viii) प्रश्नों के संबंध में सामान्य सूचना।

सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग के माध्यम से सूचना के तीव्रतर संप्रेषण तथा प्रक्रियाओं के सरलीकरण हेतु निम्नलिखित सॉफ्टवेयर प्रचलन में हैं :

(i) पार्लियामेंट क्वेशचन प्रोसेसिंग सिस्टम एप्लीकेशन (डायरी सॉफ्टवेयर);

(ii) होल्डिंग बैलट ऑफ नोटिसिज ऑफ क्वेशचन्स (केवल लिखित उत्तरों हेतु सूचना);

(iii) इलेक्ट्रॉनिक ट्रांसमिशन ऑफ आन्सर्स टू क्वेशचन्स फ्रॉम मिनिस्ट्रीज टू द सैक्रेटरिएट;

(iv) इलेक्ट्रॉनिक सर्च ऑफ क्वेशचन्स एंड आन्सर्स;

(v) डैशबोर्ड एप्लीकेशन फॉर बैक-आफिस एप्लीकेशन्सज।

राज्य सभा की वेबसाइट पर प्रश्नों के उत्तरों को अपलोड किया जाना

संसदीय प्रश्नों के उत्तरों को 174वें सत्र से वेबसाइट पर उपलब्ध करवाया जाता है। प्रारंभ में, एन.आई.सी. (राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र) ने सभी मंत्रालयों/विभागों को ई-मेल की सुविधा उपलब्ध करवाई ताकि वे प्रश्न शाखा को मेल द्वारा अपने उत्तर भेज सकें। सामग्री के केन्द्रीकरण हेतु एल.ए.एन. (अथवा फ्लॉपी, यदि ई-मेल की सुविधा उपलब्ध न हो) के माध्यम से मंत्रालय में प्रश्नों और उनके उत्तरों को संसदीय प्रभाग में स्थानांतरित कर दिया जाता था। एन.आई.सी. के अधिकारी तथा संबंधित मंत्रालय का संसदीय प्रभाग यह पड़ताल करने के पश्चात् कि उस दिवस के लिए सभी उत्तर प्राप्त हो चुके हैं, उस दिवस के प्रश्नों का समय समाप्त होते ही प्रश्नों और उत्तरों का मूल पाठ ई-मेल (एक अनुलग्नक के रूप में) के माध्यम से राज्य सभा सचिवालय को संप्रेषित कर देते थे। उस समय कभी-कभी ई-मेल के माध्यम से कुछ उत्तरों के प्राप्त होने से कठिनाई आती थी। ये उत्तर अन्तर-सत्रावधि के दौरान, उनकी कागजी प्रतियों को स्कैन करने के पश्चात् अपलोड किए जाते थे। उन सभी उत्तरों, जो मंत्रालयों से ई-मेल के माध्यम से प्राप्त नहीं होते थे, को अगले सत्र के आरंभ होने से पूर्व अपलोड किया जाता था।

सभी मंत्रालयों/विभागों से ई-मेल के माध्यम से सभी उत्तरों के प्राप्त नहीं होने की समस्या को दूर करने हेतु सभी मंत्रालयों/विभागों से यह अनुरोध किया गया था कि प्रश्नों के उत्तरों को ई-मेल करने हेतु समन्वय स्थापित करने के लिए वे एक नोडल अधिकारी की नियुक्ति करें। तथापि, ई-मेल के माध्यम से भेजे जाने वाले उत्तरों के लंबित रहने का

क्रम जारी रहा। संसदीय प्रश्नों के उत्तरों को ई-मेल किए जाने के संबंध में उनके लंबित हो जाने की समस्या से छुटकारा पाने के लिए एक नए सॉफ्टवेयर अर्थात् 'पार्लियामेंट क्वेशचन-आन्सर पब्लिशिंग सिस्टम' (ई-रिप्लाई) का विकास किया गया। इसके परिणामस्वरूप संबंधित मंत्रालयों/विभागों को प्रश्नों के समय अथवा उत्तरों को सभा पटल पर रखे गये मान लिए जाने के तुरंत पश्चात् प्रश्नों के उत्तरों को अपलोड करने में सहायता मिलती है। इस नए सॉफ्टवेयर को 224वें सत्र से उपयोग में लाया जा रहा है तथा इसका कार्य-निष्पादन स्तर संतोषजनक रहा है। इस सॉफ्टवेयर के माध्यम से मंत्रालय/विभाग अपने उत्तरों के हिन्दी व अंग्रेजी रूपांतरों को उनके अनुलग्नकों सहित नियमित रूप से राज्य सभा की वेबसाइट पर अपलोड कर रहे हैं। इस सॉफ्टवेयर के माध्यम से अल्प-सूचना प्रश्नों के उत्तरों को अपलोड करने संबंधी कार्य 226वें सत्र से सफलतापूर्वक आरंभ किया जा चुका है।

प्रश्नों तथा तत्संबंधी अनुपूरक प्रश्नों के उत्तरों के बीच संयोजन स्थापित करना

वे तारांकित प्रश्न जिनका उत्तर मौखिक रूप से दिया गया है और जिनसे सबंधित अनुपूरक प्रश्न पूछे गए हैं, के बीच एक संयोजन स्थापित करने के लिए एक अन्य सॉफ्टवेयर का भी विकास किया गया था ताकि तारांकित प्रश्नों के साथ-साथ उनके अनुपूरक प्रश्नों के संपूर्ण उत्तरों को भी उपलब्ध करवाया जा सके।

यदि किसी तारांकित प्रश्न के संबंध में कोई 'अनुपूरक प्रश्न' पूछा जाता है तो एक 'अनुपूरक प्रश्न' संपर्क (लिंक) प्रश्न के अंत में प्रकट होता है। इस लिंक को क्लिक करने पर 'अनुपूरक प्रश्नों का ब्यौरा' नामक शीर्षक के साथ एक पृष्ठ खुलता है। 'प्रतिभागी' के विकल्प के समक्ष सदस्य का नाम क्लिक करने पर अनुपूरक प्रश्न संबंधी पृष्ठ खुलता है।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. नियम 38
2. संसदीय समाचार (2) 11.11.2014
3. -वही- 26.11.2014
4. -वही- 6.12.1996 और संसदीय समाचार (1) 9.12.1996
5. -वही- 4.3.2011
6. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद 16.5.1952, कालम 45 और 47
7. -वही- 19.5.1952, कालम 49-50
8. कानूनी आदेश 9
9. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद 20.5.1952, कालम 226
10. 10.7.1952 को प्रस्तुत प्रतिवेदन
11. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद 14.7.1952, कालम 993
12. अधिसूचना सं. सी.एस. 3/52-एल., 11.7.1952 और संसदीय समाचार (2), 15.7.1952
13. राज्य सभा वाद-विवाद 27.4.1956, कॉलम 493-94
14. -वही- 15.3.1954, कालम 2818; 16.3.1954, कालम 2823; 17.3.1954, कालम 3154 और 18.3.1954; कालम 1361
15. संसदीय समाचार (2), 24.3.1961, 11.7.1975, 20.9.1976 और 28.2.1977

16. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.7.1975 कालम 24 और 33-44
17. -वही- 3.11.1976, कालम 3849
18. -वही- 22.11.1962, कालम 2206
19. संसदीय समाचार (1), 18.12.2001 और 19.12.2001
20. 75वें, 100वें, 101वें और 112वें सत्रों के लिए बैठकों की अस्थायी सारणी, संसदीय समाचार (2) 17.3.1971, 16.5.1977
21. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.12.1971, कालम 153-54
22. -वही- 11.12.2008 पृष्ठ-2
23. संसदीय समाचार (2), 26.5.2009
24. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.2.2010, पृष्ठ 1
25. -वही- 17.8.2012 पृष्ठ 1
26. -वही- 7.12.2012 पृष्ठ 1
27. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 6.5.1954, कालम 5290; राज्य सभा वाद विवाद, 22.4.1955, कालम 5584; 21.9.1955, कालम 3946; 21.12.1963 कालम 4483; संसदीय समाचार (2) 30.7.1971; राज्य सभा वाद-विवाद 21.3.1974 कालम, 142; 12.12.1980, कालम 183, 22.8.1984, कालम 341-42; 30.4.1986 कालम 261-62; 12.8.1986, कालम 443; 6.5.1987, कालम 387; 28.8.1987, कालम 245 और 10.12.1987 का 306; संसदीय समाचार (2) 29.7.1998
28. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 25.7.1952, कालम 2041-43
29. -वही- 30.7.1952, कालम 2360।
30. संसदीय समाचार (2) 21.12.2009
31. -वही- 20.8.2010
32. -वही- 10.3.2011
33. -वही- 2.12.2011 और 21.12.2011
34. -वही- 27.8.2013 और 6.9.2013
35. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 23.4.1953, कालम 3908; 28.8.1953, कालम 533; राज्य सभा वाद विवाद, 13.8.1957, कालम 355; 14.8.1962, कालम 1609; 23.3.1966, कालम 4182; 30.3.1977, कालम 54-55; संसदीय समाचार (2), 13.6.1977, 29.4.1992, 27.7.1992, 26.4.1993 और 18.5.1994।
36. संसदीय समाचार (2), 23.4.1997
37. -वही- 21.11.2008
38. -वही- 18.1.2014
39. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.6.1980, कालम 197-98; राज्य सभा वाद-विवाद, 24.8.1974, कालम 38 और 51 भी देखिए।
40. -वही- 5.9.1991, कालम 394; 6.9.1991, कालम 242-43 और 17.9.1991, कालम 19-20
41. संसदीय समाचार (2), 26.4.1993 और 18.5.1994
42. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 4.12.1952 कालम 948; 6.12.1952, कालम 949; राज्य सभा वाद-विवाद, 14.6.1962 कालम 2 भी देखिए।
43. राज्य सभा वाद-विवाद 25.2.1969, कालम 1360
44. -वही- 3.3.1969, कालम 2009-10
45. -वही- 8.12.1978, कालम 144
46. संसदीय समाचार (2), 6.7.1998
47. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.12.2012, पृष्ठ 3
48. -वही- 31.7.1986, कालम 1-12; 13.4.1987, कालम 5; 28.7.1987, कालम 121; 22.5.1990, कालम 1-3 और 24.07.2000, पृष्ठ 3-4

49. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.11.1967, कालम 457-62
50. -वही- 1.9.1981, कालम 1-31
51. -वही- 23.11.2009 पृष्ठ 1-6
52. -वही- 17.12.2009 पृष्ठ 1-2
53. -वही- 20.2.1968, कालम 1119-21
54. -वही- 9.12.1968; कालम 3131-33.
55. -वही- 24.12.1968, कालम 5423-24
56. -वही- 28.7.1987, कालम 1-21
57. -वही- 2.11.1991, कालम 1-3
58. -वही- 2.12.1992, कालम 2-4
59. -वही- 22.3.2012 पृष्ठ 2-3
60. -वही- 8.8.1988, कालम 1-13; 15.3.1989, कालम 3-4; 24.4.1989, कालम 3; 30.4.1990 कालम 7; और 29.11.1991, कालम 2-3
61. -वही- 17.8.1984, कालम 13
62. -वही- 14.3.1990, कालम 1
63. -वही- 18.5.1990, कालम 1-3; और 21.5.1990, कालम 1-6
64. -वही- 27.12.1990, कालम 1-53
65. -वही- 22.2.1991, कालम 1-3
66. -वही- 24.3.1992, कालम 3-8
67. संसदीय समाचार (1), 16.12.1992
68. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.5.1995, कालम 438-598
69. -वही- 21.8.1995, कालम 1-167
70. -वही- 18.12.2001, कालम 1-2 और 19.12.2001, कालम 1
71. -वही- 3.12.2003, कालम 1-11
72. -वही- 31.7.1991, कालम 1-4
73. संसदीय समाचार (2) 22.04.2013
74. -वही- 17.12.2013
75. संसदीय समाचार (1) 24.5.1971
76. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.12.1978, कालम 1-57
77. -वही- 13.7.1979, कालम 1-23
78. -वही- 1.9.1981, कालम 1-41
79. -वही- 23.7.1984, कालम 10
80. -वही- 14.3.1995, कालम 2-35
81. -वही- 23.3.1995, कालम 330-94
82. -वही- 28.3.1995, कालम 1-13
83. -वही- 29.3.1995, कालम 1-2
84. -वही- 31.7.1995, कालम 4-9
85. -वही- 11.12.2001, पृ. 1-16 और 186-87
86. -वही- 1.12.2006 पृ. 1-12
87. -वही- 4.5.2007 पृ. 1-12
88. -वही- 29.8.2007 पृ. 2-15
89. -वही- 8.3.2013, पृ. 1-20
90. -वही- 17.12.1958, कालम 2622 और 24.7.1969 कालम 791-92

91. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.4.1958, कालम 26
92. -वही- 26.2.1969, कालम 1482
93. -वही- 9.6.1967, कालम 3109
94. -वही- 24.5.1971, कालम 22
95. -वही- 7.8.1967, कालम 2464-66 और 2644-48
96. -वही- 8.8.1967, कालम 2682-83
97. -वही- 11.11.1974, कालम 1-20 और 84-85
98. -वही- 23.4.1984, कालम 7
99. -वही- 29.1.1980, कालम 32-33
100. -वही- 20.3.1985, कालम 35; 27.2.1986, कालम 29, 6.3.1986 कालम 33; और 29.7.1986, कालम 31
101. -वही- 5.8.1988, कालम 29
102. -वही- 28.7.1989, कालम 33
103. -वही- 26.12.1989, कालम 30-34
104. -वही- 14.8.1963, कालम 201-03; 4.4.1966 कालम; 5311; 6.8.1970; कालम 29-32; 6.8.1974, कालम 30; 26.11.1974, कालम 30-32; 25.5.1976, कालम 30-31; 9.3.1978, कालम 35; 8.8.1978, कालम 39-40; 5.3.1979, कालम 39-40; 16.5.1979, कालम 42; और 5.9.1990, कालम 36
105. -वही- 22.8.1973, कालम 30-31
106. -वही- 27.8.1974, कालम 34
107. -वही- 21.11.1977, कालम 36
108. -वही- 10.9.1981, कालम 34
109. -वही- 10.3.1964, कालम 3719
110. -वही- 18.11.1964, कालम 286
111. -वही- 29.11.1956, कालम 1011; और 26.12.1958; कालम 1752
112. -वही- 6.5.1959, कालम 1899
113. -वही- 1.7.1980, कालम 1; और 4.5.1985, कालम 17 और 193-94
114. -वही- 20.3.1969, कालम 4888
115. -वही- 28.7.1970, -वही- कालम 7-8; और 3.8.1970, कालम 8-9
116. -वही- 4.8.1970, कालम 25-26
117. -वही- 19.9.1963, कालम 4806; और 20.9.1963, कालम 4972-97
118. -वही- 7.8.1967, कालम 2462-2644
119. -वही- 1.6.1967, कालम 1631-36
120. -वही- 31.7.1967, कालम 1293-95
121. -वही- 1.8.1967, कालम 1580-83 और 1636-39
122. -वही- 17.11.1969, कालम 1-6
123. -वही- 27.8.1974, कालम 34
124. -वही- 27.4.1982, कालम 3-5
125. -वही- 6.11.1987, कालम 49; 25.4.1988, कालम 1-10; 5.9.1988, कालम 1-41 और 21.8.1992
126. -वही- 28.2.1956, 25.2.1958, 8.3.1961, 2.3.1963, 26.11.1963, 25.9.1964, 17.11.1964, 6.5.1969, 9.5.1972, 3.3.1974, 27.6.1980, 18.8.1981, 14.3.1985, 22.8.1985, 4.3.1986, 18.7.1986, 12.8.1986, और 14.3.1990
127. -वही- 9.3.1959, कालम 2819-20 और 2998-3017
128. -वही- 9.9.1960, कालम 4105

129. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.11.1992, कालम 1-31
130. -वही- 31.7.1974, कालम 2
131. संसदीय समाचार (1), 16.8.1956, 9.3.1970, 15.1.1976, 18.8.1980, 12.5.1986, 6.8.1987, 7.3.1988, 16.8.1990, 2.1.1991;
132. राज्य सभा वाद-विवाद 18.2.1981, कालम 1-4; संसदीय समाचार (1), 19.2.1981
133. -वही- 11.3.1991, कालम 39
134. संसदीय समाचार (2), 8.8.1995
135. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.8.1995, कालम 18-19
136. -वही- 14.3.1981, कालम 1-20; 18.5.1990 कालम 1-17 और 21.5.1990, कालम 1-29
137. -वही- 15.3.1989, कालम 1-30; 24.4.1989 कालम 3-51 और 30.4.1990, कालम 3-7
138. -वही- 1.9.1981, कालम 1-59 और 8.7.1992, कालम 3-51
139. -वही- 1.9.1981, कालम 1-59; 17.8.1984, कालम 1-44 और 8.7.1991, कालम 3-29
140. -वही- 20.12.1978, 13.4.1987, 28.7.1987, 10.7.1992, 13.7.1992, 24.7.1992, 31.7.1992, 7.12.1992, 8.12.1992 और 9.12.1992
141. -वही- 4.12.1978, 13.7.1979, 23.7.1984, 29.7.1987, 30.7.1987, 22.5.1990, 21.7.1992 और 23.7.1992
142. -वही- 24.5.1971, कालम 1-23
143. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 15.3.1954, कालम 2818; 16.3.1954, कालम 2823; 17.3.1954, कालम 3154; 18.3.1954, कालम 3161; राज्य सभा वाद-विवाद, 18.12.2001 पृष्ठ 2 और 19.12.2001 पृष्ठ 1
144. राज्य सभा वाद-विवाद 2.11.1962, कालम 2205-06; 4.12.1971, कालम 153; और संसदीय समाचार (2), 23.11.1962, 19.4.1999, 27.4.2001, 19.12.2001
145. -वही- 4.12.1971, कालम 940
146. संसदीय समाचार (2) 19.12.2001
147. -वही- 17.05.2007
148. -वही- 10.09.2007
149. -वही- 06.05.2008
150. -वही- 08.05.2013
151. -वही- 18.12.2013
152. -वही- 18.3.1993
153. -वही- 11.8.1988
154. -वही- 22.12.1993 और 23.12.1993
155. -वही- 16.7.1991
156. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.7.1991, कालम 1
157. संसदीय समाचार (1), 19.4.1999 और संसदीय समाचार (2), 19.4.1999
158. संसदीय समाचार (2), 27.10.2008
159. नियम 39; संसदीय समाचार (2), 4.7.1996 (सं. 35727)
160. संसदीय समाचार (2), 5.5.1998
161. -वही- 30.3.1994
162. नियम समिति का 7वां प्रतिवेदन
163. संसदीय समाचार (2), 12.6.1995
164. -वही- 19.07.2013
165. -वही- 1.2.1995 तथा 14.11.1995
166. -वही- 3.11.2011

167. संसदीय समाचार (2), 20.7.2012
168. -वही- 6.2.2013
169. -वही- 19.07.2013
170. -वही- 6.2.1979
171. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.4.1970, कालम 7; संसदीय समाचार (2), 28.3.2000
172. फाइल सं. आर.एस./4/1/iii/2012-क्यू.
173. संसदीय समाचार (2), 7.4.1999
174. -वही- 19.4.1997
175. -वही- 23.4.1997
176. नियम 40.
177. नियम 223.
178. संसदीय समाचार (2), 12.11.2015 (सं. 54605)
179. -वही- 24.9.2003
180. नियम 41
181. नियम 42
182. संसदीय समाचार (2), 14.11.1962 और 17.10.1978
183. -वही- 5.5.1998
184. -वही- 30.3.1994
185. -वही- 14.11.1962
186. पुराना नियम 43
187. तारांकित प्रश्न सूची, 12.7.1991 और 10.7.1996
188. नियम 43 (1), संसदीय समाचार (2), 03.02.2010
189. नियम 43 (2)
190. नियम समिति का 7वां प्रतिवेदन
191. राज्य सभा वाद-विवाद 30.5.1995, कालम 356-59
192. संसदीय समाचार (2), 12.6.1995
193. -वही- 27.11.2014
194. नियम 44
195. संसदीय समाचार (2), 6.7.1992
196. -वही- 10.3.1993
197. -वही- 18.6.2004
198. -वही- 6.2.2016
199. -वही- 21.11.2008
200. -वही- 18.11.2010
201. नियम 46
202. नियम 47(1)
203. नियम 47(2) (i), 30.5.1995 को यथा-संशोधित
204. नियम समिति का 7वां प्रतिवेदन और संसदीय समाचार (2), 12.6.1995
205. नियम 47(2) (iv)
206. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.11.1968, कालम 459-60
207. नियम 47(2)(ii)
208. नियम 47(2)(iii)
209. नियम 47(2)(v)

210. नियम 47(2)(vi)
211. नियम 47(2)(vii), 30.5.1995 को यथा-संशोधित
212. नियम समिति का 7वां प्रतिवेदन, संसदीय समाचार (1), 30.5.1995 और संसदीय समाचार (2), 12.6.1995
213. नियम 47(2)(viii)
214. नियम 47(2)(ix)
215. नियम 47(2)(x)
216. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.6.1967, कालम 4801-07
217. नियम 47(2)(ix)
218. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.8.1980, कालम 227-28
219. नियम 47(2)(xi)
220. अनुच्छेद 61, 94(ग), 121 और 148
221. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.11.1988, कालम 68
222. -वही- 15.11.1966, कालम 1132-46
223. -वही- 11.8.1980, कालम 52-54
224. -वही- 25.4.2000, पृष्ठ 19-20
225. नियम 47(2) (xii)
226. नियम 47(2) (xiii); और राज्य सभा वाद-विवाद, 12.12.1968, कालम 3759-65
227. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.12.1968, कालम 5166; 14.8.1970, कालम 4-5; और 17.6.1977, कालम 4
228. -वही- 6.9.1954, कालम 1412
229. -वही- 8.9.1954, कालम 1678
230. -वही- 20.12.1967, कालम 4768-72
231. -वही- 23.12.1968, कालम 5166
232. -वही- 17.6.1977, कालम 4
233. -वही- 29.7.1980, कालम 11
234. -वही- 18.3.1985, कालम 9
235. -वही- 6.8.1985, कालम 2
236. नियम 47(2)(xiv)
237. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.8.1968, कालम 4644-45 और 4762-63
238. -वही- 31.7.1972, कालम 18-22; और 17.12.1970, कालम 4
239. नियम 47(2)(xv)
240. नियम 47(2)(xvi)
241. संसदीय समाचार (2), 2.7.1971 और 1.2.1995
242. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.3.1985, कालम 3
243. नियम 47(2)(xviii)
244. नियम 47(2)(xix)
245. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 28.4.1953, कालम 4167
246. -वही- 26.11.1952, कालम 286-88
247. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.8.1968, कालम 3201-04
248. -वही- 7.12.1970, कालम 116
249. -वही- 20.5.1970, कालम 18-21
250. -वही- 5.8.2012, पृष्ठ 22

251. नियम 47(2)(xx)
252. नियम 47(2)(xxi)
253. नियम 47(2)(xxii)
254. नियम 48
255. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.5.1959, कालम 1898-99
256. -वही- 5.3.1987, कालम 28
257. संसदीय समाचार (2), 1.2.1995
258. फा.सं. 13/82-क्यू.1
259. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.8.1995, कालम 16
260. नियम 57
261. नियम 49(1)
262. नियम 49(2)
263. नियम 50
264. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.11.1986 कालम 12
265. नियम 50, परन्तुक
266. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.2.1964, कालम 1138-39
267. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 28.7.1952, कालम 2100
268. नियम 51
269. संसदीय समाचार (2), 27.11.2014, नियम 51(क)
270. कार्यमंत्रणा समिति के कार्यवृत्त, 26.11.1969 और संसदीय समाचार (2), 7.1.1970
271. संसदीय समाचार (2), 14.5.1974
272. -वही- 17.10.1978
273. -वही- 5.11.1980
274. -वही- 23.11.1993
275. -वही- 30.6.2003
276. -वही- 14.8.1991; संसदीय समाचार (2), 18.11.1994 को भी देखिए
277. -वही- 7.1.1970
278. -वही- 21.1.1975 और 4.4.1975
279. -वही- 16.12.1975 और 21.1.1979
280. -वही- 9.4.1979
281. -वही- 15.10.1980
282. -वही- 9.8.1981
283. -वही- 29.1.1988
284. संसदीय समाचार (1), 30.5.1995
285. संसदीय समाचार (2), 22.6.1995
286. 6.7.2004 के लिए तारांकित प्रश्न सूची
287. संसदीय समाचार (2), 13.2.1974
288. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.7.1971, कालम 38; 26.2.1973, कालम 1-2; 30.8.1973, कालम 1-2 और 13.11.1973 कालम 19-20
289. संसदीय समाचार (2), 14.5.1974
290. नियम समिति के कार्यवृत्त, 19.6.1978
291. -वही- 5.11.1980
292. संसदीय समाचार (2), 3.2.2010

293. नियम समिति का 7वां प्रतिवेदन
294. नियम 52
295. नियम 54(1) और (2)
296. नियम 54(2)
297. नियम 45, परन्तुक
298. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.8.1968, कालम 4638-39; 28.11.2001
299. संसदीय समाचार (2) 3.2.2010
300. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद विवाद, 14.4.1953, कालम 2726; 13.5.1954, कालम 6268; राज्य सभा वाद-विवाद, 15.12.1955, कालम 2669; 28.5.1957, कालम 1913; 11.3.1959, कालम 3389; 19.11.1962, कालम 1554; 2.12.1963, कालम 1663; 30.9.1964, कालम 3609; 23.12.1964, कालम 4922; 4.5.1965, कालम 292-93; 10.11.1965, कालम 688; 10.8.1970, कालम 11; 26.5.1971, कालम 30; 12.5.1972, कालम 6; 21.2.1978, कालम; 24.8.1978, कालम 9; 18.3.1980, कालम 27; 6.8.1980, कालम 11-12; 9.12.1983, कालम 1; 21.1.1985, कालम 2; 25.7.1986, कालम 1; 22.8.1994, कालम 20-31; 26.8.1994, कालम 22-28 और 20.3.1995, कालम 17-30
301. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.5.1972, कालम 3
302. -वही- 22.2.1955, कालम 19-20
303. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.12.1952, कालम 1942; 18.12.1957, कालम 2978; 11.3.1959, कालम 3389 और 4.5.1965, कालम 293
304. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.3.1985, कालम 20
305. -वही- 6.11.1986, कालम 2
306. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 28.7.1952, कालम 2071
307. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.12.1963, कालम 3491; राज्य सभा वाद-विवाद, 25.5.1972, कालम 1 और 30.11.1987, कालम 1 को भी देखिये
308. -वही- 20.8.1974, कालम 1
309. -वही- 17.11.1980, कालम 5-6
310. -वही- 17.2.2009 पृष्ठ 1-7
311. -वही- 26.08.2011, पृष्ठ 8
312. नियम 59
313. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.7.1952, कालम 1215-17
314. -वही- 22.7.1952, कालम 1624
315. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.12.1968, कालम 4445-51
316. नियम समिति के दूसरे प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, 24.1.1979
317. संसदीय समाचार (2), 9.4.1979
318. -वही- 1.2.1995
319. -वही-
320. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.3.1982, कालम 7-8
321. -वही- 16.5.1985, कालम 7
322. -वही- 4.5.1964, कालम 1567
323. -वही- 21.11.1968, कालम 671-77
324. -वही- 13.5.1969, कालम 2473-75, राज्य सभा वाद-विवाद, 29.7.1969, कालम 1323 को भी देखिए।
325. -वही- 28.11.1972, कालम 6; राज्य सभा वाद-विवाद, 19.3.1985, कालम 1-2, और 10.5.1985, कालम 12-13 को भी देखिए

326. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.5.1985, कालम 5-7
327. कार्यालय ज्ञापन सं. 15/85-क्यू.-1, 19.7.1985
328. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.2.1986, कालम 3
329. -वही- 30.4.1987, कालम 15-16
330. -वही- 12.11.1973, कालम 26-27
331. -वही- 25.8.2000, पृष्ठ. 15
332. फा. सं. आर.एस. 35/15/2000-एल., दिनांक 19.9.2000
333. नियम 54(2)
334. नियम 58(5)
335. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.12.1981, कालम 21-27
336. -वही- 1.12.1987, कालम 19
337. -वही- 12.12.2011, पृष्ठ 26-28
338. -वही- 23.8.2001 पृष्ठ 15-24 और 20.11.2001 पृष्ठ 4-14
339. संसदीय समाचार (1) 22.4.2008
340. -वही- 30.8.2011, राज्य सभा वाद-विवाद 22.2.2011, पृष्ठ 25.
341. संसदीय समाचार (2), 17.2.1982
342. फा. सं. 3/82-क्यू-1
343. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.2.1982, कालम 161-67; राज्य सभा वाद-विवाद, 4.11.1982, कालम 315 को भी देखिए।
344. -वही- 9.8.1982, कालम 201-203
345. -वही- 25.7.1967, कालम 357-361
346. -वही- 5.6.1998, कालम 267-269
347. -वही- 9.8.1967, कालम 2986
348. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 21.4.1954, कालम 3599; राज्य सभा वाद-विवाद, 14.12.1954; कालम 1861; 24.2.1955, कालम 327; 18.11.1965, कालम 1814 और 23.11.1965, कालम 2364
349. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.3.1956, कालम 2606
350. -वही- 17.11.1987, कालम 183-86
351. -वही- 20.12.2002
352. -वही- 21.11.1962, कालम 1944
353. नियम 53
354. नियम 54(2)
355. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.8.2013, पृष्ठ 78-79.
356. नियम 53
357. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.3.2011, पृष्ठ 73 और 15.3.2011, पृष्ठ 89
358. -वही- 27.8.2012, पृष्ठ 42
359. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 2.3.1953, कालम 1416
360. एच.बी. पैरा 11(12)(ii); राज्य सभा वाद-विवाद, 9.3.2000 और 16.3.2000
361. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 29.4.1953, कालम 4311
362. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.8.1967, कालम 1580-83
363. -वही- 29.7.1970, कालम 13-14
364. -वही- 7.8.1972, कालम 1-7
365. -वही- 13.8.1985, कालम 23, 32

366. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.11.1987, कालम 17-25
367. -वही- 2.5.1990, कालम 25-30
368. -वही- 20.3.1995, कालम 28-30
369. -वही- 10.5.1995, कालम 11-23
370. -वही- 7.8.1995, कालम 2-5
371. -वही- 26.2.1969, कालम 1482
372. -वही- 8.5.2000, पृष्ठ 162
373. -वही- 27.2.2013, पृष्ठ 11-12 और 6.3.2013, पृष्ठ 6
374. -वही- 16.2.1968, कालम 688-91
375. -वही- 19.2.1968 कालम 970-74; 29.11.1968, कालम 1858-59 और 16.12.1993, कालम 14-16 भी देखिए।
376. संसदीय समाचार (2), 30.3.1994
377. नियम 55
378. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.12.1980, कालम 1 और 11.12.1981 कालम 38-39
379. -वही- 18.3.1987, कालम 27 और 4.5.1987, कालम 26, 31
380. -वही- 27.11.1974, कालम 11
381. -वही- 22.11.1962, कालम 2107 और 5.12.1980 कालम।
382. -वही- 21.2.1956, कालम 226 और 238-42
383. -वही- 23.12.1957, कालम 3711
384. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 3.12.1952, कालम 790
385. -वही- 2.12.1953, कालम 990
386. -वही- 18.2.1954 कालम 344
387. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.8.1963, कालम 533
388. -वही- 28.3.1966, कालम 4645 और 4672-74
389. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 22.7.1952, कालम 1613, 24.7.1952, कालम 1852 और राज्य सभा वाद-विवाद, 23.12.1954, कालम 3177
390. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.2.2003, पृष्ठ 8
391. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 27.3.1953, कालम 2333 14.12.1953, कालम 2102, 11.3.1954, कालम 2433 और राज्य सभा वाद-विवाद, 21.4.1955, कालम 5407 और 20.12.2014, पृष्ठ 12 और 24
392. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.12.2003, पृष्ठ 8
393. नियम 54(3)
394. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.8.1968, कालम 4638-40
395. -वही- 28.8.1968, कालम 4965-66
396. -वही- 26.4.1995, कालम 2-13, 28.4.1995 कालम 4
397. -वही- 17.3.1997, कालम 10-11
398. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.4.2008, पृष्ठ 27
399. संसदीय समाचार (2), 3.2.2010
400. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.3.1995, कालम 1-33
401. -वही- 9.9.1996, कालम 1-20
402. -वही- 14.3.1997, कालम 29-34
403. -वही- 5.6.1998, कालम 43
404. -वही- 19.3.1997, कालम 22-23

405. संसदीय समाचार (2), 3.12.2002
406. नियम 56(1)
407. नियम 56(2)
408. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.9.1964, कालम 3640
409. -वही- 27.8.1965, कालम 1624
410. -वही- 18.8.1967, कालम 4715
411. -वही- 13.2.1968, कालम 57
412. -वही- 11.3.1980, कालम 2
413. -वही- 17.11.1980, कालम 4
414. -वही- 25.11.1980, कालम 159-60
415. -वही- 10.7.2009, पृष्ठ 9-14
416. -वही- 15.7.2009, पृष्ठ 1-11
417. -वही- 16.8.1963, कालम 340 और 23.3.1983, कालम 32
418. -वही- 13.2.1968, कालम 56
419. -वही- 18.12.2008, पृष्ठ 11-15
420. -वही- 15.7.2009, पृष्ठ 3-11
421. -वही- 31.7.2009, पृष्ठ 3-11
422. -वही- 9.12.2009, पृष्ठ 10-15
423. -वही- 4.8.2010, पृष्ठ 11-16
424. -वही- 13.8.2010, पृष्ठ 1-2
425. -वही- 3.8.2011, पृष्ठ 6-10
426. -वही- 19.2.1969, कालम 273-74
427. -वही- 24.2.1969, कालम 926
428. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 18.2.1954, कालम 311-12
429. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.8.1965, कालम 2, 27.11.1980 कालम 21 और 29.7.1985 कालम 5
430. -वही- 23.7.1985, कालम 21 और 27.4.1998, कालम 7
431. -वही- 27.4.1988, कालम 9-11
432. -वही- 2-12-2009, पृष्ठ 2-15
433. -वही- 28.2.1984, कालम 10-12
434. क्वेश्चन्स इन द हाउस ऑफ कॉमन्स नामक पुस्तिका, लोक सूचना कार्यालय, सीरीज़ संख्या 1 (नव., 1979)
435. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.11.1987, कालम 17
436. -वही- 21.2.1968, कालम 1372
437. -वही- 17.12.1980, कालम 238 इत्यादि
438. -वही- 23.7.1985, कालम-11 तथा 24.7.1985, कालम 3
439. -वही- 28.3.1967, कालम 906-907, 24.7-1967, कालम 18-19; 27-7-1967, कालम 728 और 31.7.1967, कालम 1293-95
440. -वही- 31.8.1965, कालम 2030
441. -वही- 19.6.1967, कालम 4583
442. -वही- 20.11.1967, कालम 10; 23-11-1967, कालम 706 भी देखिए।
443. -वही- 6.3.1968, कालम 3384; 2.5.1968, कालम 697; 25.7.1968, कालम 679-87; 27.2.1969, कालम 1685 तथा 17.3.1969, कालम 4146 भी देखिए।

444. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.6.1980, कालम 5-8
445. -वही- 28.7.1980, कालम 1-3
446. -वही- 26.11.1980 कालम-1
447. -वही- 17.12.1980, कालम 238-43 तथा 255-56
448. -वही- 13.8.1997, कालम 9-26
449. -वही- 9.8.2010, पृष्ठ 26-37
450. -वही- 14.12.2012, पृष्ठ 1-8
451. -वही- 14.12.2012, पृष्ठ 8-14
452. -वही- 5.6.1998, कालम 3-6 और 24.7.2000, पृष्ठ 12
453. संसदीय समाचार (2), 27.11.2002
454. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.12.2007, पृष्ठ 1-15
455. संसदीय समाचार (2), 12.3.2008
456. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.3.2008, पृष्ठ 7-11
457. -वही- 13.7.2009, पृष्ठ 4-10
458. -वही- 15.7.2009, पृष्ठ 1-11
459. -वही- 17.7.2009, पृष्ठ 12-24
460. -वही- 27.7.2009, पृष्ठ 20-23
461. -वही- 29.07.2009, पृष्ठ 1-6
462. -वही- 07.08.2009, पृष्ठ 7-13
463. -वही- 26.11.2009, पृष्ठ 11-21
464. -वही- 8.12.2009, पृष्ठ 17-21.
465. संसदीय समाचार (2), 03.02.2010
466. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.04.2010, पृ. 12-20
467. -वही- 4.3.2011, पृष्ठ 272-279
468. -वही- 14.05.2012, पृष्ठ 11-19
469. -वही- 28.3.1979, कालम 18-19, संसदीय समाचार (2), 28.03.1979; 17.4.1986 तथा राज्य सभा वाद-विवाद 18.12.1980, कालम 10-11
470. -वही- 3.8.1977, कालम 18-23
471. -वही- 20.11.1987, कालम 16-17 और 20
472. -वही- 20.03.1995, कालम 21-22; 4.5.1995, कालम 9-10
473. नियम 59
474. नियम 58(1)
475. नियम 58(4)
476. नियम 58(1)
477. नियम 58(2)
478. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.12.2011, पृष्ठ 6-20
479. -वही- 13.12.2011, पृष्ठ 280-285
480. नियम 58(3)
481. प्रक्रिया विषयक प्रारूप नियमों संबंधी समिति का प्रतिवेदन (नवम्बर, 1963), पृ.-VI.
482. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.8.1978, कॉलम 207
483. -वही- 18.8.1980, कालम 378
484. -वही- 1.6.1990, कालम 2

485. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 14.8.1952, कालम, 4075-96; राज्य सभा वाद-विवाद 9.8.1971, कॉलम 121-51; 23.3.1979, कालम 32-70; 30.11.1979 कालम 3465 और 11.8.1980, कालम 44-82
486. नियम 58(5)
487. नियम 58(6)
488. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.12.1954, कालम 3279; 8.8.1977, कालम-1
489. -वही- 2.9.1957, कालम 2705; 26-11-1957, कालम 880-82.
490. -वही- 26.12.1978, कालम 1-3
491. -वही- 25.8.2000, पृष्ठ 23, संसदीय समाचार (1) 24.8.2000.
492. -वही- 15.03.2001, पृष्ठ 191-192.
493. राज्य सभा कार्यावलि, 16.8.2010
494. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.8.2010
495. नियम 54(3) और नियम 58(6)
496. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.4.1968, कालम 304; 31.8.1968, कालम 5602
497. नियम 60(1)
498. नियम 60(2)
499. -वही- तीसरा परंतुक
500. -वही- पहला परंतुक
501. -वही- दूसरा परंतुक
502. 60(4), राज्य सभा वाद-विवाद, 8.5.1981, कालम 359 और 386
503. नियम 60 (1)
504. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.5.1981, कालम 386-438
505. -वही- 8.8.1986, कालम 278-322; 2.12.1987 कालम 362-418.
506. -वही- 7.12.1981, कालम 405-84.
507. -वही- 29.12.1989, कालम 535 इत्यादि
508. नियम 60(5)
509. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.9.1953, कालम 2577-81
510. राज्य सभा वाद-विवाद 28.11.1986, कालम 329
511. -वही- 15.7.1998, कालम 360; संसदीय समाचार (1), 15.7.1998
512. -वही- 12.8.2011, पृष्ठ 8-16
513. नियम 60(5), परंतुक
514. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.03.1992, कालम 272; 3.4.1992, कालम 234
515. -वही- 25.8.2011, पृष्ठ 353-364

अध्याय-18

ध्यानाकर्षण

राज्य सभा में स्थगन प्रस्ताव का न होना

भारत शासन अधिनियम, 1919 के अधीन गठित होने वाली विधान सभा के लिए भारतीय विधायी नियमों में अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी निश्चित विषय पर चर्चा करने के लिए स्थगन प्रस्ताव उपस्थित करने का उपबंध सर्वप्रथम 1920 में किया गया था, जो ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमन्स में प्रचलित प्रक्रिया से अधिकांशत: मिलता-जुलता था। ये नियम केन्द्रीय विधान-मंडल के दोनों सदनों अर्थात् विधान सभा और राज्य परिषद् (काउंसिल ऑफ स्टेट) पर लागू होते थे। इन नियमों के नियम 11 के उप-नियम (1) में निम्नलिखित उपबंध किया गया था:

> नियम 22 के उप-नियम (2) के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी निश्चित विषय पर चर्चा करने के प्रयोजन से दोनों सदनों में किसी सदन के कार्य के स्थगन के लिए कोई प्रस्ताव अध्यक्ष की अनुमति से किया जा सकेगा।

किन्तु 1952 में, जब राज्य सभा और लोक सभा को गठित किया गया था, स्थगन प्रस्ताव का उपबंध लोक सभा के नियमों में केवल इस आधार पर बने रहने दिया गया था कि मंत्रिपरिषद् भारत के संविधान के अनुच्छेद 75(3) के अधीन सिर्फ लोक सभा के प्रति उत्तरदायी थी। तथापि, राज्य सभा में स्थगन प्रस्ताव के उपबंध का जो लोप कर दिया गया था उसकी प्रतिपूर्ति राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में "पत्रों के लिए प्रस्ताव" उपस्थित करने की प्रक्रिया को शामिल करके कर दी गई थी।[1]

काफी पहले अर्थात् 1952 में ही राज्य सभा की नियम समिति ने इस सुझाव पर विचार किया कि राज्य सभा के नियमों में भी एक उपबंध होना चाहिए ताकि उसके सदस्य स्थगन प्रस्ताव पेश कर सकें। इस सुझाव के समर्थन में यह मत व्यक्त किया गया कि राज्य सभा केवल पुनरीक्षण करने वाला निकाय नहीं है। धन संबंधी मामलों को छोड़कर उसकी शक्तियां उतनी ही हैं जितनी लोक सभा के पास हैं। किन्तु एक विपरीत मत यह भी था कि चूंकि संविधान के अंतर्गत राज्य सभा के पास कोई वित्तीय शक्ति नहीं है और स्पष्ट भाषा में यह कहा गया है कि मंत्रिपरिषद् केवल लोक सभा के प्रति उत्तरदायी थी इसलिए राज्य सभा का कार्य एक पर्यवेक्षक का होना चाहिए और उसे 'पत्रों के लिए प्रस्ताव' उपस्थित करने की प्रक्रिया का, जो हाउस ऑफ लॉर्ड्स द्वारा परिष्कृत की गई है, अनुसरण करना चाहिए जिसके द्वारा वह वास्तविक लोक महत्व के किसी भी विषय पर चर्चा कर सकती है और जिसके द्वारा प्रस्ताव उपस्थित करने वाले सदस्य को उत्तर देने का अधिकार प्राप्त होता है।[2]

समिति के सुझाव पर राज्य सभा के तत्कालीन सचिव ने द्वितीय सदनों में प्रश्नों और स्थगन प्रस्तावों के संबंध में एक टिप्पण तैयार किया था जिसमें कहा गया था:

> ऐसे प्रस्तावों (स्थगन प्रस्तावों) का स्वरूप ही ऐसा है कि वे लगभग हमेशा उन सदस्यों द्वारा पेश किए जाते हैं जो सरकार के विरोधी दलों के होते हैं। अत: सामान्यत: किसी स्थगन प्रस्ताव को सरकार की निंदा करने वाला प्रस्ताव समझा जाता है। अत: विशेषत: हमारे संविधान के अनुच्छेद 75(3) को दृष्टि में रखते हुए, जिसके अधीन मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है, राज्य सभा में ऐसे स्थगन प्रस्ताव को उपस्थित करने के संबंध में किसी उपबंध को शामिल करना अनुपयुक्त समझा गया है। जिन शर्तों के अधीन 'पत्रों के लिए प्रस्ताव' की अनुमति दी जा सकती है उनको उन शर्तों से कम कठोर बनाया गया है जिनके अधीन लोक सभा में स्थगन प्रस्ताव पेश किया जा सकता है। अत: यह समझा गया है कि पत्रों के लिए प्रस्ताव राज्य सभा में स्थगन के प्रस्ताव का बेहतर विकल्प होगा।[3]

16 मई, 1952 को, जब राज्य सभा की दूसरी बैठक हुई थी, सभापति ने प्रक्रिया संबंधी नियमों को स्पष्ट करते हुए कहा था:

> "...इस सभा में कोई स्थगन प्रस्ताव नहीं होते, क्योंकि सामान्यत: स्थगन प्रस्ताव का अर्थ सरकार की निन्दा या सरकार के प्रति असंतोष होता है। किंतु यही प्रयोजन पत्रों के लिए प्रस्ताव द्वारा सिद्ध हो जाता है। यह प्रक्रिया हाउस ऑफ लॉर्ड्स में भी अपनाई जाती है। अत:, 'स्थगन प्रस्तावों' के स्थान पर हमारे यहां 'पत्रों के लिए प्रस्ताव' है।"[4]

पत्रों के लिए प्रस्ताव की पुरानी प्रक्रिया

राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में वर्तमान नियम 180 को शामिल किये जाने के पूर्व अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए सदस्यों के पास एक ही तरीका था कि वे पत्रों के लिए प्रस्ताव पेश करें जिसका उस समय पुराने नियम 156 में उपबंध किया गया था।[5] 'पत्रों के लिए प्रस्ताव' की प्रक्रिया हाउस ऑफ लॉर्ड्स में पत्रों के लिए प्रस्ताव पेश करने के लिए विहित की गई प्रक्रिया से मिलती-जुलती थी। हाउस ऑफ लॉर्ड्स में यह सामान्य प्रथा है कि चर्चा के लिए जिस विषय की सूचना दी जाती है उसके अंत में "और पत्रों के लिए प्रस्ताव उपस्थित करेंगे" शब्द जोड़े जाते हैं। यह प्रक्रिया सामान्यत: इसलिए अपनाई जाती है ताकि सदन के समक्ष एक प्रस्ताव रखा जा सके और प्रस्ताव पेश करने वाले सदस्य को वाद-विवाद का उत्तर देने का अवसर मिल सके। ऐसा माना जाता है कि सामान्यत: ऐसे प्रस्ताव को वापस ले लिया जाना चाहिए क्योंकि उसे एक तटस्थ प्रस्ताव समझा जाता है और उस पर जोर देने का न कोई लाभ है न कोई अर्थ।[6]

'पत्रों के लिए प्रस्ताव' संबंधी नियम (156/175) इस प्रकार था:

(i) अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी विषय पर चर्चा आरम्भ करने का इच्छुक सदस्य 'पत्रों के लिए' किसी प्रस्ताव की सूचना दे सकता है और उठाए जाने वाले विषय को स्पष्टत: और यथार्थत: विनिर्दिष्ट कर सकता है।

(ii) यदि सभापति का, सूचना देने वाले सदस्य से और मंत्री से ऐसी जानकारी मांगने के बाद जिसे वह आवश्यक समझे, समाधान हो जाता है कि विषय अविलम्बनीय है और राज्य सभा में जल्दी ही किसी तारीख को उठाए जाने के लिए पर्याप्त लोक महत्व का है, तो वह प्रस्ताव पेश करने की अनुमति दे सकेगा और ऐसी तारीख निश्चित कर सकेगा जब ऐसा प्रस्ताव चर्चा के लिए लिया जा सके और चर्चा के लिए उतने समय की अनुमति दे सकेगा जितना कि वह परिस्थितियों में उचित समझे और जो तीन घंटे से अधिक न हो:

परंतु यदि ऐसे विषय पर चर्चा के लिए अन्यथा जल्दी अवसर उपलब्ध हो, तो सभापति प्रस्ताव को पेश किए जाने की अनुमति देने से इन्कार कर सकेगा।

(iii) यदि ऐसी चर्चा के अंत में प्रस्ताव को सभा की अनुमति से वापस नहीं लिया जाता या मंत्री

यह कहता है कि पटल पर रखने के लिए कोई पत्र नहीं है या यदि पत्र उपलब्ध हैं, तो वे इस आधार पर पटल पर नहीं रखे जा सकते कि लोकहित में ऐसा करना अहितकर होगा, तो किसी भी सदस्य को यह अनुमति होगी कि वह सभा की राय को ऐसे रूप में, जिसे सभापति ठीक समझे, अभिलिखित करने के लिए एक संशोधन पेश करे।

(iv) यदि कोई संशोधन पेश किया जाता है, तो जब तक सभापति अपने स्वविवेक से संशोधन से उत्पन्न होने वाले किन्हीं विषयों के स्पष्टीकरण के लिए और अधिक समय का आवंटन करना उचित न समझे, उसे बिना किसी चर्चा के सभा के समक्ष रखा जाएगा।

(v) अन्य बातों के संबंध में 'पत्रों के लिए प्रस्ताव' को पेश करने की अनुमति देने और उस पर चर्चा करने के नियम, ऐसे परिवर्तनों सहित, जिन्हें सभापति आवश्यक या सुविधाजनक समझे, वैसे ही होंगे जैसे लोकहित के विषयों के लिए होते हैं।

जो प्रक्रिया अपनाई गई थी वह यह थी कि चूंकि नियमों में 'पत्रों के लिए प्रस्ताव' के लिए प्रक्रिया का उपबंध करने का प्रमुख उद्देश्य सिर्फ यह था कि कोई सदस्य किसी महत्वपूर्ण और अविलम्बनीय विषय पर चर्चा आरंभ कर सके, सभापति इस प्रकार 'पत्रों के लिए प्रस्ताव' पेश करने की अनुमति देने के स्थान पर बिना किसी औपचारिक प्रस्ताव के सदस्य को सिर्फ चर्चा आरंभ करने की अनुमति देगा या लोकहित के किसी विषय संबंधी प्रस्ताव या किसी मंत्री के वक्तव्य आदि के माध्यम से किसी अन्य रूप में ऐसी चर्चा की अनुमति देगा। दूसरे शब्दों में, ऐसा एक भी अवसर नहीं आया जब उपरोक्त नियम के अनुसार 'पत्रों के लिए प्रस्ताव' को पेश करने के लिए औपचारिक रूप से अनुमति दी गई हो और उस पर सभा में चर्चा हुई हो।

ध्यानाकर्षण की प्रक्रिया का शुरू किया जाना

संविधान के अनुच्छेद 118(1) के अधीन प्रक्रिया के प्रारूप नियमों की सिफारिश करने के लिए गठित समिति ने "कुछ सदस्यों में व्याप्त इस भावना पर ध्यान दिया कि 'पत्रों के लिए प्रस्ताव' संबंधी प्रक्रिया इतनी कठोर है कि व्यवहार में यह पाया गया कि इस प्रक्रिया के अंतर्गत किसी सूचना को गृहीत करना कठिन है।" अत: अन्य बातों के साथ यह सिफारिश की गई कि राज्य सभा नियमों में एक ऐसा उपबंध किया जाए जिसके अधीन सदस्य अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर ध्यानाकर्षण की सूचना दे सकें। प्रतिवेदन को, जो 29 नवम्बर, 1963 को प्रस्तुत किया गया था, 2 जून, 1964 को सभा द्वारा स्वीकृत किया गया और ध्यानाकर्षण की नई प्रक्रिया 1 जुलाई, 1964 से प्रभावी हो गई।[7]

ध्यानाकर्षण और अल्पकालिक चर्चा की प्रक्रियाओं को लागू करने संबंधी उपरोक्त समिति के प्रतिवेदन के साथ संलग्न टिप्पण में समिति के एक सदस्य, श्री भूपेश गुप्त ने निम्नलिखित समुचित टिप्पणियां की थीं:

हमारे सदन में स्थगन प्रस्तावों के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है यद्यपि ऐसे उच्च सदन हैं जहां ऐसे स्थगन प्रस्तावों की अनुमति दी जाती है। उदाहरण के लिए कनाडा, आस्ट्रेलिया और आयर के उच्च सदनों में ऐसा होता है। इसमें संदेह नहीं कि ब्रिटेन के हाउस ऑफ लॉर्ड्स में ऐसा कोई उपबंध नहीं है, किन्तु राज्य सभा कोई हाउस ऑफ लॉर्ड्स तो है नहीं। अत: यह प्रचलित धारणा कि उच्च सदनों में स्थगन प्रस्ताव पेश नहीं किए जा सकते, गलत है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रस्ताव सरकार के प्रति अविश्वास या सरकार के इस्तीफे के प्रश्न से हमेशा जुड़ा हुआ हो। निस्संदेह, स्थगन प्रस्ताव के लिए कोई उपबंध न होने या अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों को उठाने के

लिए किसी प्रभावी विकल्प के अभाव के फलस्वरूप इन सारे वर्षों में हमारे सदन को परेशानी का सामना करना पड़ा है। नियम 176 इन कठिनाइयों को एक हद तक दूर करेगा किंतु शर्त यह है कि उसके अंतर्गत जो चर्चाएं हों उनके लिए यथासंभव अधिक से अधिक अवसर दिए जाएं। यह आशा की जाती है कि यह नियम 'पत्रों के लिए प्रस्ताव' संबंधी पुराने नियम की भांति ऐसा नियम सिद्ध नहीं होगा जिसका कभी उपयोग ही नहीं किया जा सके। मैं चाहूंगा कि इस संबंध में राज्य सभा किसी तरह से भी लोक सभा से पीछे न रहे। बल्कि मैं यह चाहूंगा कि इस नियम के अधीन चर्चा करने के लिए हमें अधिक सावधान और आग्रही होने और नियम को वस्तुत: एक जीवंत नियम बनाने का प्रयास करना चाहिए।

पूरी आशा है कि अध्याय 13 और 14 के अंतर्गत जो नियम हैं उनके द्वारा सदन की भूमिका का विस्तार होगा और साथ ही जनता की दृष्टि में उसकी प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। व्यवहार और परंपराओं की अपनी-अपनी भूमिका होगी।

नियम 180 में उपबंध

कोई सदस्य सभापति की पूर्व अनुमति से मंत्री का ध्यान अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी भी विषय की ओर आकर्षित कर सकता है और मंत्री एक संक्षिप्त वक्तव्य दे सकता है या बाद में किसी समय पर या तारीख को वक्तव्य देने के लिए समय देने का अनुरोध कर सकता है। कोई भी सदस्य किसी एक बैठक के लिए ऐसी दो सूचनाओं से अधिक सूचनाएं नहीं दे सकेगा। जब ऐसा वक्तव्य दिया जा रहा हो तब कोई वाद-विवाद नहीं होगा। एक ही बैठक में ऐसे एक से अधिक विषय नहीं उठाए जाएंगे। यदि एक ही दिन के लिए एक से अधिक विषय रखे जाएंगे तो उस विषय को प्राथमिकता दी जाएगी जो सभापति की राय में अधिक अविलम्बनीय और महत्वपूर्ण हो। प्रस्तावित विषय मध्याह्न पश्चात् 2 बजे उठाए जाएंगे और सभा की बैठक के दौरान किसी अन्य समय पर नहीं उठाए जाएंगे।[8]

सूचनाएं देने की प्रक्रिया

जो सदस्य अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी विषय की ओर किसी मंत्री का ध्यान आकर्षित करना चाहता है, उसे विहित प्ररूप में लिखित रूप में सूचना देनी होती है जिसे महासचिव को संबोधित करना होता है। ऐसी सूचनाओं की प्रारंभिक जांच को सुगमतापूर्वक कराने के लिए और देरी न होने देने के लिए सूचना की एक-एक प्रति को संबंधित मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री को पृष्ठांकित करना आवश्यक होता है।[9] सूचना को और उसकी दो प्रतियों को राज्य सभा के सूचना कार्यालय (नोटिस ऑफिस) में देना होता है। जो प्रतियां संबंधित मंत्री के लिए और संसदीय कार्य मंत्री के लिए होती हैं उन्हें संसदीय कार्य मंत्रालय ले लेता है और वे संबंधित मंत्रालय को भेज दी जाती हैं। इससे संबंधित मंत्री सूचना के बारे में पूर्व जानकारी प्राप्त कर लेता है जिससे वह सभा में उठाए जाने वाले प्रस्तावित विषय के बारे में सभापति को, यदि आवश्यक हो, तथ्यात्मक स्थिति की जानकारी दे सकता है जिसके आधार पर सभापति सूचना की ग्राह्यता के बारे में निर्णय कर सकता है। जहां तक संसदीय कार्य मंत्री का संबंध है, पूर्व जानकारी के आधार पर उसका मंत्रालय मामले के बारे में संबंधित मंत्रालय और राज्य सभा सचिवालय के बीच तालमेल स्थापित कर सकता है।

कतिपय निर्णयों के अनुसरण में जो (1) 19 जून, 1978 और 16 मई, 1979 को हुई नियम समिति की बैठकों, (2) 21 मार्च, 1975 को हुई सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति की

बैठक और (3) 3 अगस्त, 1970 और 21 अगस्त, 1970 को दलों और समूहों के नेताओं की सभापति के साथ हुई बैठकों में लिए गए थे, सभापति ने 23 मई, 1979 को सभा में एक घोषणा की जिसमें ध्यानाकर्षण के बारे में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया और उसके संचालन के बारे में सदस्यों को जानकारी दी गई थी और एक संसदीय समाचार द्वारा भी इसकी जानकारी दी गई थी।[10] तब से प्रत्येक सत्र के आरंभ में सदस्यों द्वारा ध्यानाकर्षण की सूचनाएं देते समय उनके द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में उन्हें एक संसदीय समाचार जारी किया जाता है।

जैसे ही सत्र के लिए आह्वान (समन) जारी किए जाते हैं वैसे ही सदस्य सूचनाएं दे सकते हैं।[11] जिस दिन सभा में मामले को उठाने का विचार हो उस दिन मध्याह्न पूर्व 10.30 बजे तक सूचना दी जानी होती है। किसी सप्ताह में किसी दिन के लिए प्राप्त सभी ध्यानाकर्षण सूचनाओं को उस पूरे सप्ताह के लिए जिसमें वह दिन पड़ता हो, विचारार्थ निलंबित रखा जाता है और वे प्रतिदिन सभापति के समक्ष उनके विचारार्थ रखी जाती हैं।[12]

> जहां तक नामों को मिलाने का संबंध था, पिछली प्रथा यह थी कि गृहीत विषय के संबंध में सूचनाओं को सत्र के अंत तक विचारार्थ निलंबित रखा जाता था। नियम समिति ने इस मामले पर विचार किया और सिफारिश की कि ध्यानार्षण सूचनाओं को सप्ताह के अंत तक ही विचारार्थ निलंबित रखना चाहिए।[13] तदनुसार सभा में एक घोषणा की गई।[14]
>
> समिति ने यह प्रस्ताव भी रखा कि यह उपबंध करने के लिए नियम 180 में एक उप-नियम जोड़ा जाए कि सभापति द्वारा स्वीकार न की गई सूचनाएं बैठक के अंत में व्यपगत हो जानी चाहिएं।[15] किन्तु सभा इस सिफारिश पर सहमत नहीं हुई।[16]

सप्ताह के जिस अंतिम दिन सभा की बैठक हो, उस दिन वे सभी सूचनाएं जिनका सभापति द्वारा चयन नहीं किया जाए, व्यपगत समझी जाएंगी। इसके बारे में सदस्यों को कोई सूचना नहीं दी जाएगी।[17] नियम समिति ने निम्नलिखित सिफारिश की:

> इस समय जिन सदस्यों की ध्यानाकर्षण सूचनाएं स्वीकार नहीं की जातीं उन्हें तदनुसार सूचना दे दी जाती हैं। समिति के विचार में ऐसा करना अनावश्यक है। स्वीकार की जा चुकी सूचना को सदस्यों की जानकारी के लिए नोटिस बोर्ड पर प्रदर्शित करना पर्याप्त होगा।[18]

किसी सदस्य द्वारा किसी एक बैठक के लिए दो से अधिक सूचनाएं नहीं दी जा सकतीं।[19] यह उपबंध नियम समिति की सिफारिश पर नियम 180 में जोड़ा गया था जिसने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> कई बार सदस्य किसी खास दिन के लिए विभिन्न विषयों पर अनेक सूचनाएं देते हैं। समिति की राय है कि एक बैठक के लिए सदस्य द्वारा दो से अधिक ध्यानाकर्षण सूचनाएं नहीं दी जानी चाहिए।[20]

किन्तु एक ही विषय पर एक से अधिक सदस्यों द्वारा संयुक्त रूप से या अलग-अलग सूचनाएं दी जा सकती हैं।

किसी सूचना का गृहीत किया जाना

किसी ध्यानाकर्षण को स्वीकार करने या न करने का अधिकार सभापति को प्राप्त है। किसी ध्यानाकर्षण को स्वीकार करने या न करने संबंधी निर्णय सभापति के स्वविवेक पर है।[21] किसी सूचना का गृहीत किया जाना नियमों के अधीन और सभापति के इस आकलन

के अधीन है कि जिस विषय को उठाने की अनुमति मांगी जा रही है उसके संबंध में मंत्री द्वारा शीघ्र उत्तर दिया जाना आवश्यक है। ध्यानाकर्षण सूचनाओं को गृहीत करने के दो आधारभूत मानदंड हैं: विषय की अविलम्बनीयता और लोक महत्व। सभापति इन दोनों मानदंडों के अनुसार गुणावगुण के आधार पर निर्णय लेता है और सभा की प्रत्येक बैठक के लिए सदस्यों द्वारा दी गई अनेक सूचनाओं में से एक विषय को चुनता है। सभापति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह "केवल इस सिद्धांत पर किसी विषय को चुने कि एक ध्यानाकर्षण होना ही चाहिए" या प्रतिदिन "समय को पूरा करने के लिए ध्यानाकर्षण होना ही चाहिए।"[22]

किसी सूचना को गृहीत करने की प्रक्रिया में ऐसा हो सकता है कि राज्य सभा में ध्यानाकर्षण के द्वारा किसी विषय को न लिया जाए और दूसरी सभा में ध्यानाकर्षण के द्वारा उसी तरह के विषय पर चर्चा हो जाए।

14 अगस्त, 1968 को कुछ सदस्यों ने सभा में उल्लेख किया कि उत्तर प्रदेश के कतिपय शहरों में पुलिस की ज्यादतियों के संबंध में एक ध्यानाकर्षण सूचना को गृहीत नहीं किया गया है और उन्होंने सूचनाओं को गृहीत करने के बारे में अपने विचार भी रखे। 19 अगस्त, 1968 को सभापति ने अन्य बातों के साथ 14 अगस्त, 1968 की कार्यवाही का उल्लेख करते हुए निम्नलिखित व्यवस्था दी:

> कभी-कभी सदस्यों ने मेरे समक्ष निवेदन किया है कि उनके द्वारा दी गई ध्यानाकर्षण सूचनाओं को अस्वीकार कर दिया गया है। उन्हें इस बात को ठीक-ठीक समझना चाहिए कि मुझे प्रत्येक बैठक के लिए औसतन लगभग 15 से 20 ध्यानाकर्षण सूचनाएं प्राप्त होती हैं और नियमों के अधीन एक दिन के लिए उनमें से एक ध्यानाकर्षण सूचना ही गृहीत की जा सकती है।
>
> जब मैं एक सूचना को स्वीकार करता हूं और अन्य सूचनाओं को स्वीकार नहीं करता तब सदस्यों को यह महसूस नहीं करना चाहिए कि मैंने उन सूचनाओं की अविलंबनीयता या महत्व को ठीक-ठीक नहीं समझा है। मैं सभी सूचनाओं पर विचार करता हूं और उनमें से एक को चुनता हूं और अन्य सूचनाओं के लिए अनुमति नहीं देता हूं। सदस्यगण इस बात से सहमत होंगे कि अनेक सूचनाओं में किसको स्वीकार किया जाए, इसका निर्णय करना मेरा ही काम होना चाहिए और सभा को मेरे निर्णय को मानना चाहिए।
>
> कभी-कभी सदस्यों ने मुझसे शिकायत की है कि यद्यपि राज्य सभा में किसी ध्यानाकर्षण सूचना को स्वीकार नहीं किया गया है, तथापि दूसरी सभा में उसी विषय पर सूचना स्वीकार की गई है। मैं इस मुद्दे पर सिर्फ यही कह सकता हूं कि मैं सूचना के विषय की अविलंबनीयता और महत्व को देखते हुए और विभिन्न विषयों पर जो अनेक सूचनाएं मुझे प्राप्त होती हैं उनके सापेक्ष महत्व और अविलंबनीयता पर विचार करते हुए गुणावगुण के आधार पर स्वतंत्र रूप से निर्णय लेता हूं और हो सकता है कि इस प्रक्रिया में कोई सूचना हमारी सभा में स्वीकार न की जाए और दूसरी सभा में उसी प्रकार के विषय के बारे में सूचना स्वीकार कर ली जाए। सभा मुझसे सहमत होगी कि कभी-कभी ऐसी स्थिति अपरिहार्य हो जाती है।[23]

एक बार जब सभापति ने विशेष उल्लेख की मद को लिया, तब एक सदस्य ने एक औचित्य प्रश्न उठाकर शिकायत की कि सत्र के दौरान केवल दो ध्यानाकर्षण सूचनाओं को स्वीकार किया गया है और सभा महत्वपूर्ण और अविलंबनीय विषयों पर चर्चा नहीं कर रही है। इस पर सभापति ने औचित्य प्रश्न को अमान्य ठहराते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:

> ध्यानाकर्षण को स्वीकार करना और उसे पेश करने की अनुमति देना सभापीठ के विवेक पर है। उसे सरकार और प्रशासन के कार्य को संतुलित करना पड़ता है। यदि वह देखता है कि वित्त विधेयक जैसे महत्वपूर्ण विषयों को लेने के बाद कुछ समय बचा है तो निश्चय ही वह समय देगा। किन्तु

सभापीठ वित्त विधेयक और सरकारी कार्य के स्थान पर ध्यानाकर्षण को प्राथमिकता न दे सकती है और न देगी।[24]

यह आवश्यक नहीं है कि सभा की प्रत्येक बैठक के लिए ध्यानाकर्षण सूचना स्वीकार की ही जाए।

पाकिस्तान का आक्रमण होने के कारण 4 दिसम्बर, 1971 को बैठकों के समय में परिवर्तन करते हुए यह निर्णय किया गया कि उस दिन से सत्र (78वां) के बाकी समय तक कोई 'प्रश्नों का समय' या ध्यानाकर्षण नहीं होगा।[25]

93वां सत्र मुख्यत: आपातकाल की घोषणा करने और अन्य संबंधित विषयों का अनुमोदन करने के लिए बुलाया गया था। इस सत्र के दौरान 21 जुलाई, 1975 को गृह मंत्रालय, कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग तथा संसदीय कार्य विभाग में राज्य मंत्री ने निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया जो चर्चा के पश्चात् स्वीकृत हो गया:

यह सभा संकल्प करती है कि चूंकि राज्य सभा का वर्तमान सत्र कतिपय अविलंबनीय और महत्वपूर्ण सरकारी कार्यों के निष्पादन के लिए एक आपातकालीन सत्र की तरह है, इसलिए सत्र के दौरान केवल सरकारी कार्य ही किया जाए तथा ध्यानाकर्षण और किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा आरंभ किए जाने वाले किसी अन्य कार्य सहित किसी भी अन्य कार्य को सभा के समक्ष न लाया जाए और न ही उसे सभा द्वारा किया जाए और राज्य सभा में प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के अंतर्गत सभी संबद्ध नियमों को उस सीमा तक एतद्द्वारा निलंबित किया जाता है।[26]

मंत्री द्वारा 3 नवम्बर, 1976 को पुन: निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया गया जो चर्चा के पश्चात् स्वीकृत हुआ:

यह सभा संकल्प करती है कि चूंकि राज्य सभा का वर्तमान सत्र संविधान (चवालीसवां संशोधन) विधेयक, 1976 और कतिपय अपरिहार्य और अत्यावश्यक सरकारी कार्यों पर विचार करने के लिए एक विशेष सत्र की तरह है, इसलिए सत्र के दौरान केवल सरकारी कार्य को ही निष्पादित किया जाए और प्रश्नों, ध्यानाकर्षण और किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा आरंभ किये जाने वाले किसी अन्य कार्य सहित किसी भी अन्य कार्य को सभा के समक्ष न लाया जाए और न ही उसे सभा द्वारा किया जाए और राज्य सभा में प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के अंतर्गत सभी संबद्ध नियमों को उस सीमा तक एतद्द्वारा निलंबित किया जाता है:

परंतु उक्त संविधान संशोधन विधेयक के निपटाए जाने के बाद यदि कुछ समय बचता है तो सभापति अपने विवेकानुसार, ध्यानाकर्षण और अल्पकालिक चर्चा की अनुमति दे सकता है।[27]

सरकार के पिछले प्रस्ताव की सूचना में परंतुक नहीं दिया गया था।[28] बाद में संबंधित मंत्री ने पिछले प्रस्ताव के स्थान पर उपरोक्त प्रस्ताव की सूचना दी।[29]

26 मार्च, 1985 को जब एक सदस्य ने शिकायत की कि समूचे सत्र (133वें सत्र) के दौरान, जो 13 मार्च, 1985 को आरंभ हुआ था, "एक भी ध्यानाकर्षण नहीं हुआ...राज्य सभा 'विशेष उल्लेख' सभा हो गई है," तब सभापति ने कहा: "कार्य की अधिकता को देखते हुए, कार्य मंत्रणा समिति के सदस्य इसके लिए सहमत थे कि इन दो सप्ताहों के दौरान किसी ध्यानाकर्षण को न लिया जाए।"[30]

कोई ऐसा सदस्य जिसकी सूचना अस्वीकृत हो गई हो या सप्ताह के अंत में व्यपगत हो गई हो, एक नई सूचना देकर अपनी सूचना को पुन: विचारार्थ पेश कर सकता है और सभापति अन्य सूचनाओं के साथ ऐसी सूचना पर पुनर्विचार करता है। कभी-कभी इस प्रक्रिया के द्वारा सभापति किसी ऐसी सूचना को स्वीकार कर सकता है जिसे वह किसी अन्य सूचना को प्राथमिकता दिए जाने के कारण या अन्य किसी कारण से किसी पिछले दिन या सप्ताह को स्वीकार नहीं कर सका था।[31]

किसी सूचना का गृहीत न किया जाना

जैसाकि कहा जा चुका है, सभापति को ध्यानाकर्षण की किसी सूचना को स्वीकार करने या न करने की पूरी विवेकाधीन शक्ति प्राप्त है। वह इस संबंध में अपने निर्णय के किन्हीं कारणों को बताने के लिए भी बाध्य नहीं है।

> एक सदस्य ने औचित्य प्रश्न उठाकर यह शिकायत की कि उसने ध्यानाकर्षण की एक सूचना दी थी जिसे गृहीत नहीं किया गया किंतु उस विषय पर लोक सभा में विचार हुआ। सभापति का कहना था: "यदि आप ध्यानाकर्षण की सूचना देते हैं और उसकी अनुमति नहीं दी जाती तो उसके संबंध में औचित्य प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।"[32]

> 15 और 16 मार्च, 1989 को प्रश्नों का समय आरंभ होने पर सदस्यों ने श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के बारे में एक समाचार-पत्र में किए गए रहस्योद्घाटन के संबंध में अपने ध्यानाकर्षण के लिए अनुमति न देने के बारे में एक मामला उठाया। सभापति ने व्यवस्था दी: "मामले के सभी पहलुओं पर पूर्ण रूप से विचार करने के बाद मैं पूर्ण रूप से संतुष्ट हूं कि ध्यानाकर्षण के मामले को उठाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।" जब एक सदस्य ने इसका कारण जानना चाहा तब सभापति ने टिप्पणी की: "नियमों के अधीन मैं यह सब कहने के लिए बाध्य नहीं हूं...किंतु मैं यह आपको पुन: आश्वासन देने के लिए कह रहा हूं कि इस ध्यानाकर्षण के लिए अत्यंत मान्य और ध्यान देने योग्य कारणों से अनुमति नहीं दी गई है...इस निर्णय को लेते समय मैंने सभी पहलुओं को...विशेषत: मानवीय पहलू को और न्याय तथा औचित्य के ऐसे सिद्धांतों को ध्यान में रखा है जिन्हें चुनौती नहीं दी जा सकती।"[33]

किसी सूचना का रूपान्तरण और उसे किसी अन्य मंत्री को सौंपा जाना

हो सकता है कि सदस्यगण एक विषय पर, जो सारत: एक जैसा ही हो, सूचनाएं दें किंतु उनकी सूचनाओं की शब्दावली भिन्न-भिन्न हो और वे इसे देखते हुए कि विषय में किस बात पर जोर दिया जाना है इन सूचनाओं को भिन्न-भिन्न मंत्रियों को संबोधित करें। इसके कारण एक ही विषय से संबंधित सभी सूचनाओं को एकीकृत करना पड़ सकता है या उनके शब्द-विन्यास में परिवर्तन करना पड़ सकता है ताकि उनमें जो समान बातें हों वे व्यक्त हो सकें या उनमें कही गई बातों का निचोड़ समग्र रूप से सामने आ सके या उन्हें ऐसा स्वरूप प्रदान किया जाए जिससे उन्हें अन्य प्रकार से स्वीकार किया जा सके। तथापि, जहां तक संभव होता है वहां तक सदस्य द्वारा दी गई ध्यानाकर्षण सूचना की भाषा को सारत: 'जैसे का तैसा' ही रहने दिया जाता है।

> विदेशी निधियों के उपयोग पर खुफिया ब्यूरो के प्रतिवेदन से संबंधित ध्यानाकर्षण में, जिस रूप से उसे गृहीत किया गया था, अन्य बातों के साथ साम्यवादी देशों का भी उल्लेख किया था। एक सदस्य ने औचित्य प्रश्न उठाकर इस उल्लेख पर आपत्ति की और उसे निकाल देने की मांग की। सभापति ने आपत्ति को अमान्य ठहराते हुए कहा: "मैंने इसके लिए अनुमति दी है और इसलिए अब आप कुछ नहीं कह सकते।"[34]

> एक ध्यानाकर्षण गृहीत किया गया था जिसका विषय था : "सोवियत संघ के स्टेट बैंक द्वारा रूबल के रुपया-मूल्य की तुलना में उसके कथित एकपक्षीय पुनर्मूल्यन और उसके कारण सोवियत संघ से लिए गए ऋण के भुगतान पर अत्यंत प्रतिकूल प्रभाव पड़ना।" एक सदस्य ने औचित्य प्रश्न उठाते हुए पूछा कि जब बातचीत अभी भी चल रही है तब क्या यह उचित है कि आप ऐसे ध्यानाकर्षण प्रस्ताव (ऐसा ही) के आधार पर कार्यवाही चलाएं जिसकी भाषा से यह निष्कर्ष निकलता है कि नकारात्मक

या प्रतिकूल प्रभाव पहले से ही पड़ रहा है। सदस्य का विचार था कि ध्यानाकर्षण की भाषा बहुत असंगत है। उपसभापति ने इस पर यह कहा:

> "जहां तक...भाषा का संबंध है, वह कतिपय सदस्यों की होती है और मेरे विचार में उन मामलों को छोड़कर जहां ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाता है जिसमें बदनीयती आदि का आरोप लगाने वाले शब्द होते हैं, हम प्रस्ताव की भाषा को बदल नहीं सकते।"[35]

एक अन्य अवसर पर, जब एक सदस्य ने कहा कि उन्होंने ऐसी ध्यानाकर्षण सूचना पर हस्ताक्षर किए हैं जो दूसरी तरह की थी तब सभापति ने टिप्पणी की: "इसके (अर्थात् सूचना के विषय के) शब्द-विन्यास में हमेशा परिवर्तन किया जाता है।"[36]

कुछ सदस्यों ने 16 फरवरी, 1981 को नई दिल्ली में हुई किसान रैली में सरकारी तंत्र के कथित दुरुपयोग पर चर्चा करने के लिए एक ध्यानाकर्षण सूचना दी थी। इस सूचना को इस रूप में स्वीकृत किया गया: "16 फरवरी, 1981 को नई दिल्ली में किसान रैली के आयोजन के लिए डीजल का कथित व्यय।" ध्यानाकर्षण के दायरे के बारे में औचित्य प्रश्न उठाए जाने पर उपसभापति ने कहा: "माननीय सदस्यों द्वारा दिए गए एक विषय पर सभापति ने ध्यानाकर्षण की अनुमति दी है...यहां पर प्रस्ताव (ऐसा ही) का सार देना होगा। मेरे विचार में उन्होंने डीजल के उपयोग और अन्य चीजों का भी उल्लेख किया होगा। अत: सभापति ने रैली के संबंध में एक बड़े दायरे में आने वाले मुद्दे— डीजल के व्यय को शामिल किया है। जहां तक रैली का संबंध है, हम किसान रैली पर चर्चा नहीं करने जा रहे हैं। यह सरकार का काम नहीं है। सरकार किसी दल की ओर से उत्तर नहीं दे सकती।"[37]

एक बार भारत की सुरक्षा के लिए उत्पन्न गंभीर खतरे से संबंधित ध्यानाकर्षण में निम्नलिखित पांच मुद्दों को, यद्यपि वे एक-दूसरे से संबंधित थे, मिला दिया गया ताकि विषय व्यापक हो सके: "(क) अमरीका द्वारा श्रीलंका में नौसैनिक अड्डों की स्थापना का प्रयास, (ख) कराची के निकट चीनी नौसैनिक अड्डों की स्थापना, (ग) हथियार बनाने वाली अमेरिकी कंपनियों और पाकिस्तान के बीच हथियारों का सौदा, (घ) सऊदी अरब द्वारा पाकिस्तान को अमरीकी हथियार खरीदने के लिए सहायता और (ङ) नाभिकीय हथियारों को अर्जित करने के लिए पाकिस्तान की योजनाएं।" इस प्रकार की प्रक्रिया के अपनाए जाने पर एक औचित्य प्रश्न उठाया गया जिसे सभापति ने अमान्य ठहराया।[38]

सभापति किसी सूचना को ऐसे मंत्री को अंतरित या आवंटित कर सकता है जिसे सदस्य द्वारा मूल सूचना में संबोधित न किया गया हो।

एक ध्यानाकर्षण का विषय इस प्रकार था: "ट्रांसमीटरों के साथ चीनी बैलूनों का कथित रूप से पकड़ा जाना, देश के विभिन्न भागों में प्रचार सामग्री का पाया जाना और मणिपुर में विदेशों में प्रशिक्षित छापामारों और कानून को अपने हाथ में लेने वाले तत्वों की गतिविधियां।" इस ध्यानाकर्षण के लिए अनुमति दे दी गई और उसे गृह मंत्री को संबोधित किया गया। ध्यानाकर्षण के उत्तर में मंत्री के वक्तव्य के बाद यह मुद्दे उठाए गए कि मूल सूचना में 3-4 विशिष्ट विषय थे और उसे विदेश मंत्री को संबोधित किया गया था। ध्यानाकर्षण करने वाले सदस्य से सहमत होते हुए उपसभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की :

> "सामान्यत: हम जो करते हैं और इस मामले में भी जो किया गया प्रतीत होता है वह यह है कि किसी विषय या किन्हीं संबंधित विषयों पर अनेक प्रस्ताव आपस में मिला दिए जाते हैं...चूंकि इस प्रस्ताव का विस्तार उन क्षेत्रों पर है जो विदेश मंत्रालय से भी संबंधित हैं इसलिए हमने स्वयं विदेश मंत्रालय को एक प्रति भेजी ताकि विदेश राज्य मंत्री, यदि वे चाहें, यहां पर आ सकें और वाद-विवाद के बीच में अपनी बात कह सकें।"[39]

एक ध्यानाकर्षण गढ़वाल संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र में लोक सभा के उप-चुनाव को स्थगित करने से उत्पन्न स्थिति के बारे में था जो मूलत: गृह मंत्री को संबोधित था परन्तु इसको गृहीत किए जाने के चरण पर इसे विधि और न्याय मंत्री को अंतरित कर दिया गया था और संबंधित सदस्यों को भी तदनुसार सूचना दे दी गई थी। बाद में जब सभापति को विधि तथा न्याय मंत्री से एक पत्र

प्राप्त हुआ तब उन्होंने निदेश दिया कि ध्यानाकर्षण का शब्द-विन्यास बदलकर उसे ऐसा सामान्य रूप दे दिया जाए अर्थात् "संसद् के किसी उप-चुनाव को संपन्न कराने के लिए निश्चित अवधि का उपबंध न करने की दृष्टि से निर्वाचन विधि में कमियां।" तदनुसार 25 नवम्बर, 1981 की कार्यावलि में ध्यानाकर्षण का संशोधित रूप छपा। जब उसे लिया गया तब ध्यानाकर्षण के रूप को सारत: संशोधित किए जाने और सदस्यों द्वारा उसे गृह मंत्री को संबोधित किए जाने पर भी उसे विधि तथा न्याय मंत्री को अंतरित किए जाने पर आपत्ति करते हुए सदस्यों ने अनेक औचित्य प्रश्न उठाए। विधि तथा न्याय मंत्री द्वारा स्थिति स्पष्ट किए जाने के बाद उपसभापति ने मामले पर रोशनी डालते हुए कहा: "सभापति को अधिकार है कि वह सदस्यों द्वारा दिए गए किसी भी ध्यानाकर्षण के शब्द-विन्यास को बदल दें...विगत में भी सभा में इसी प्रथा का अनुसरण किया गया है। जब कई ध्यानाकर्षण सूचनाएं दी जाती हैं तब सभापति निर्णय करते हैं और कतिपय बुनियादी मामलों को शामिल किया जाता है। शब्दावली कैसी हो, इसका निर्णय हमेशा सभापति द्वारा किया जाता है।" कुछ और मुद्दों के बाद जब उपसभापति ने उस सदस्य से ध्यानाकर्षण शुरू करने के लिए कहा जिसका नाम ध्यानाकर्षण करने वाले सदस्यों में सबसे ऊपर था तब उस सदस्य ने अपनी उस मूल सूचना को पढ़ना शुरू कर दिया जो गृह मंत्री को संबोधित था। उपसभापति ने यह टिप्पणी करते हुए इसकी अनुमति नहीं दी: "केवल कार्यावलि में छपी हुई सूचना ही अभिलिखित की जाएगी।" उपसभापति द्वारा यह निदेश दिए जाने के बाद कि समूची बहस के दौरान गृह मंत्री सभा में उपस्थित रहेंगे, ध्यानाकर्षण पर बहस आरम्भ हुई।[40]

नई दिल्ली में एशियाई खेलों के लिए निर्माणाधीन एक पुल के ढह जाने के संबंध में एक ध्यानाकर्षण रेल मंत्री द्वारा उत्तर दिए जाने के लिए गृहीत हुआ। एक सदस्य ने दलील दी कि इसमें तीन मंत्री अर्थात् रेल मंत्री, निर्माण तथा आवास मंत्री और नौवहन तथा परिवहन मंत्री अंतर्ग्रस्त हैं। सभापति ने टिप्पणी की कि ध्यानाकर्षण नौवहन और परिवहन मंत्री को संबोधित तो है किंतु चूंकि पुल का निर्माण रेलवे द्वारा हो रहा है इसलिए उसे रेल मंत्री को संबोधित किया गया है। उन्होंने आगे कहा :

> "पुल के ढह जाने के बारे में बहुत-सी सूचनाएं प्राप्त हुई हैं। कुछ सदस्यों ने अपनी सूचनाओं को नौवहन और परिवहन मंत्री को संबोधित किया था और कुछ अन्य सदस्यों ने अन्य मंत्रियों को संबोधित किया था। कुल मिलाकर पुल का निर्माण रेल मंत्री के प्रभार के अंतर्गत है इसलिए यह विषय उन्हीं को जाएगा...जब इतनी सारी सूचनाएं भिन्न-भिन्न शब्दावली में प्राप्त होती हैं किन्तु उनका मुख्य विषय एक ही होता है तब उन सबको मिला दिया जाता है। यदि सदस्य आग्रह करेंगे कि उनकी शब्दावली न बदली जाए तो उन्हीं को हानि होगी। तब केवल एक ही नाम रखा जाएगा और बाकी नामों का उल्लेख नहीं किया जाएगा क्योंकि विषय चाहे एक ही हो, शब्दावली अलग-अलग होगी।"

तदनुसार ध्यानाकर्षण का उत्तर रेल मंत्री द्वारा दिया गया यद्यपि नौवहन तथा पविहन मंत्री ने भी, जो उपस्थित थे, कुछ मुद्दों को स्पष्ट किया।[41]

पत्रकारों के वेतन और उन पर होने वाले हमलों के बारे में एक ध्यानाकर्षण, जो सूचना तथा प्रसारण मंत्री को संबोधित था, 5 दिसम्बर, 1983 के लिए गृहीत हुआ। बाद में उसके विषय को पत्रकारों के उत्पीड़न और उन पर हुए हमले की हाल ही की घटनाओं तक सीमित कर दिया गया और उसे गृह मंत्री को संबोधित किया गया।[42]

सूचनाओं की पूर्ववर्तिता

किसी विषय पर जो सूचनाएं सभापति द्वारा गृहीत की जाती हैं उनकी सापेक्ष पूर्ववर्तिता अलग-अलग सूचनाओं के मामले में उनके प्राप्त होने के समय के अनुसार निर्धारित की जाती हैं। कई सदस्यों द्वारा संयुक्त रूप से हस्ताक्षरित किसी सूचना के मामले में प्रायोजक सदस्य का नाम उन सभी सदस्यों से ऊपर होता है जिन्होंने सूचना पर हस्ताक्षर किए हैं। इसके बाद एक ही विषय पर संयुक्त रूप से या अलग-अलग सूचना देने वाले सभी सदस्यों के

नाम कार्यावलि में ध्यानाकर्षण की मद के अंतर्गत दर्ज किए जाते हैं। बहुत से उदाहरण हैं जहां ध्यानाकर्षण की मद के अधीन बड़ी संख्या में सदस्यों के नामों का उल्लेख हुआ है। ध्यानाकर्षण के माध्यम से कई सदस्यों (संख्या कोष्ठकों में दी गई है) द्वारा उठाए गए कुछ विषय निम्नलिखित हैं:

> बांग्लादेश की स्थिति के बारे में प्रिंस आगा खान का कथित वक्तव्य (60),[43] मई, 1978 को आगरा में पुलिस द्वारा गोली चलाए जाने की न्यायिक जांच कराने के लिए श्री एम.एन. गोविन्दन नायर, संसद् सदस्य द्वारा भूख-हड़ताल (102),[44] हरिजनों के अत्याचार (74),[45] गेहूं आदि के लिए लाभकारी मूल्य (65)[46], बेरोजगारी (55)[47], धान के लिए अपर्याप्त मूल्य (57),[48] किसानों की दयनीय स्थिति (51)[49], कृषि उपज के लिए लाभकारी मूल्य (65)[50], किसानों के लिए लाभकारी मूल्य (55)[51], गन्ना उत्पादकों के लिए लाभकारी मूल्य (75),[52] और (61),[53] साम्प्रदायिक स्थिति (61),[54] और रूस द्वारा क्रायोजेनिक रॉकेट इंजन के सौदे को रद्द किया जाना (51)[55]।

किन्तु किसी ध्यानाकर्षण सूचना के सभापति द्वारा गृहीत किए जाने की निर्धारक या निर्णायक कसौटी यह नहीं है कि उस पर कितने सदस्यों ने हस्ताक्षर किए हैं। कई बार ऐसे ध्यानाकर्षण के लिए अनुमति दी गई है जिसकी सूचना केवल एक सदस्य या दो या तीन सदस्यों द्वारा दी गई है। एक सुझाव दिया गया था कि ध्यानाकर्षण की मद के अंतर्गत सदस्यों के नामों की संख्या पांच तक सीमित रखी जानी चाहिए और इसका निर्धारण बैलट द्वारा होना चाहिए, नियम समिति ने इस सुझाव पर विचार किया किंतु वह उस पर सहमत नहीं हुई।[56]

जैसीकि कार्य मंत्रणा समिति द्वारा सिफारिश की गई थी, जो सदस्य किसी विषय को अन्य सदस्य/सदस्यों की पिछली सूचनाओं के आधार पर गृहीत कर लिए जाने के बाद उस विषय पर सूचनाएं देते हैं, उनके नामों को कार्यावलि में शामिल करने पर विचार नहीं किया जाता, जैसीकि पिछली प्रथा रही है।[57]

ऐसा कोई सदस्य जिसकी ध्यानाकर्षण सूचना किसी सप्ताह के दौरान नहीं चुनी गई है, अगले सप्ताह या सप्ताहों के दौरान उस सूचना को पुन: दे सकता है। ऐसे मामले में सूचना की पूर्ववर्तिता उस तारीख और समय के अनुसार होती है जब संबंधित सदस्य से वह सूचना सचिवालय को पुन: प्राप्त होती है और उसकी मूल या पिछली सूचना पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है जो उसी विषय पर एक सप्ताह के अंत में या अन्यथा व्यपगत हो गई हो।

> 14 दिसम्बर, 1981 को गन्ने के मूल्य के बारे में एक ध्यानाकर्षण को अनुमति देने के संबंध में एक सदस्य ने औचित्य प्रश्न उठाया कि उसने उसी विषय पर दो सप्ताह पहले सूचना दी थी जिसे गृहीत नहीं किया गया किंतु बाद में अन्य सदस्य/सदस्यों द्वारा दी गई सूचना गृहीत कर ली गई। एक अन्य सदस्य ने सुझाव दिया कि ऐसे मामले में पिछली सूचनाओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिए और उन सदस्यों का नाम पहले आना चाहिए जिन्होंने पहले ऐसी सूचनाएं दी हों। उपसभापति ने इस प्रक्रिया के बारे में सूचित किया कि एक सप्ताह के बाद सूचना व्यपगत हो जाती है और अगले सप्ताह नए सिरे से सूचना देनी होती है और यदि फिर से सूचना नहीं दी जाती, तो सदस्य का नाम नहीं जोड़ा जाता।[58]

सूचनाओं का व्यपगत हो जाना

जैसाकि कहा जा चुका है, सप्ताह के उस अंतिम दिन तक, जब सभा की बैठक होती है, गृहीत न की गई ध्यानाकर्षण सूचना व्यपगत हो जाती है। किसी ऐसे सदस्य की ध्यानाकर्षण

सूचना भी व्यपगत हो जाती है जो राज्य सभा में अपने कार्यकाल की समाप्ति के कारण सभा का सदस्य न रह गया हो, चाहे वह पुन: चुन लिया गया हो और उसने अपनी पिछली सदस्यता के दौरान ध्यानाकर्षण की सूचना दी हो।

> एक सदस्य ने शिकायत की कि उसका नाम 3 अप्रैल, 1970 के लिए गृहीत ध्यानाकर्षण में शामिल नहीं किया गया है। उन्होंने कहा कि उनके नाम का लोप कर देने का यह आधार कि वह 2 अप्रैल, 1970 को निवृत्त हो चुके थे, विधिमान्य नहीं है क्योंकि जब उनके तथा अन्य सदस्यों के नाम पर ध्यानाकर्षण की अनुमति दी गई थी तब वे सभा के सदस्य थे। वे मध्यरात्रि 12 बजे सदस्य नहीं रह गए थे। सभापति ने सदस्य के तर्क को स्वीकार नहीं किया और निर्णय दिया कि सदस्य ने जो सूचना दी थी वह उसकी सदस्यता के समाप्त होने के साथ व्यपगत हो गई थी। जब कार्य-सूची शुरू हुई थी तब उनके नाम से कोई सूचना नहीं थी।[59]

गृहीत सूचना के बारे में जानकारी

सभापति द्वारा ध्यानाकर्षण के लिए किसी विषय को चुन लिए जाने के बाद उन सदस्यों को, जिन्होंने सूचनाएं दी हैं, संबंधित मंत्री/मंत्रालय तथा संसदीय कार्य मंत्रालय को दूरभाष पर तथा पत्र के जरिए ध्यानाकर्षण सूचना गृहीत कर लिए जाने और जिस निर्धारित तिथि को उस पर सभा में विचार किया जाएगा, के संबंध में तत्काल सूचना दी जाती है। यदि ध्यानाकर्षण प्रस्ताव की विषयवस्तु अथवा उसका कोई पहलू एक से अधिक मंत्रियों के कार्यक्षेत्र में आता है तो गृहीत ध्यानाकर्षण प्रस्ताव की एक प्रति प्रत्येक मंत्री को भेजी जाती है ताकि चर्चा के दौरान सभी संबंधित मंत्री उपस्थित रह सकें और उनसे संबंधित विषय पर चर्चा कर सकें। गृहीत ध्यानाकर्षण प्रस्ताव को संसदीय समाचार भाग-2 में भी सूचनार्थ प्रकाशित किया जाता है। तत्पश्चात जिस दिन के लिए सूचना गृहीत की जाती है उस दिन की कार्यावलि में इस संबंध में एक मद शामिल की जाती है।

एक दिन में एक से अधिक ध्यानाकर्षणों पर चर्चा

(i) *ध्यानाकर्षण के दो विषय*

एक ही बैठक में एक से अधिक विषयों को ध्यानाकर्षण के लिए नहीं उठाया जा सकता है।[60] एक ही दिन के लिए एक से अधिक विषय उपस्थित किए जाने की स्थिति में उस विषय को पूर्ववर्तिता दी जाती है जो सभापति की राय में अधिक अविलम्बनीय और महत्वपूर्ण होता है।[61] ऐसे कई दृष्टान्त हैं जहां एक से अधिक ध्यानाकर्षण गृहीत हुए हैं और उन पर एक ही तारीख को चर्चा हुई है और ऐसी स्थिति में अधिक अविलम्बनीय और महत्वपूर्ण विषय पहले लिया गया है और दूसरा बैठक के दौरान बाद में लिया गया है।

विगत में दो ध्यानाकर्षणों को एक ही दिन के लिए गृहीत करने की स्थिति में जो प्रक्रिया अपनाई जाती थी वह यह थी कि या तो उन्हें कार्यावलि में दिए गए क्रम के अनुसार लिया जाए[62] या पहले ध्यानाकर्षण को प्रश्नों के बाद लिया जाए और दूसरे ध्यानाकर्षण को पत्रों को सभापटल पर रख देने और मंत्री के वक्तव्य जैसे किसी कार्य को या सरकारी

विधेयक को निपटाने के बाद लिया जाए।[63] बाद के दिनों में यह प्रथा रही थी कि पहले ध्यानाकर्षण को प्रश्नों और सभापटल पर पत्रों के रखने के बाद लिया जाए और दूसरे ध्यानाकर्षण को दिन की बैठक के अंतिम भाग में लिया जाए।[64]

कुछ अवसरों पर दो सदस्यों ने अलग-अलग और एक के बाद एक ऐसे दो ध्यानाकर्षण किए जो सारत: एक ही विषय से संबंधित थे। उदाहरण के लिए एक ही दिन ऐसे दो ध्यानाकर्षण किए गए जो (1) पश्चिमी बंगाल को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न की आपूर्ति न करने और (2) मुम्बई (तत्कालीन बम्बई) से कलकत्ता पहुंचाते समय रास्ते में खाद्यान्न की हानि होने के बारे में थे और संबंधित मंत्री ने दो भागों में एक सम्मिलित वक्तव्य दिया।[65]

एक दूसरे अवसर पर दो सदस्यों ने एक के बाद एक ऐसे दो ध्यानाकर्षण किए जो (1) राज्य व्यापार निगम के माध्यम से ऑस्ट्रेलिया से आयात किए गए ऊन को खरीदने से विनिर्माताओं द्वारा इन्कार और (2) ऊन के मूल्यों में वृद्धि के बारे में थे। पहले मामले में संबंधित मंत्री द्वारा सभापटल पर एक वक्तव्य रखा गया और दूसरे मामले में ध्यानाकर्षण के उत्तर में एक वक्तव्य दिया गया।[66]

(ii) *ध्यानाकर्षण के तीन विषय*

दो अवसरों पर एक बैठक के लिए तीन ध्यानाकर्षणों की भी अनुमति दी गई थी।

17 मई, 1966 को तीन ध्यानाकर्षण किए गए और वे निम्नलिखित विषयों से संबंधित थे: (क) दिल्ली में बिजली की आपूर्ति का अस्त-व्यस्त हो जाना, (ख) 16 मई, 1966 को बारामुला में जम्मू-कश्मीर के मुख्य मंत्री की हत्या का प्रयास और (ग) निर्माण, आवास और शहरी विकास मंत्री श्री मेहर चन्द खन्ना की हत्या का प्रयास।

2 सितम्बर, 1966 को जो तीन ध्यानाकर्षण किए गए थे उनके विषय थे: (क) हमारी सीमाओं पर पाकिस्तान द्वारा सैनिकों का जमा किया जाना, (ख) असम में भारत रक्षा नियमों का अंधाधुंध प्रयोग और (ग) असम में हो रही राष्ट्र-विरोधी और तोड़-फोड़ की गतिविधियों के संबंध में वहां के मुख्य मंत्री का कथित वक्तव्य। पहले दो विषय एक के बाद एक लिए गए। तीसरे विषय के संबंध में संबंधित मंत्री ने वक्तव्य देने के लिए कुछ दिनों का समय मांगा। तदनुसार वक्तव्य 5 सितम्बर, 1966 को दिया गया।[67]

ध्यानाकर्षण किए जाने का समय

30 जून, 1972 तक ध्यानाकर्षण को लेने की प्रक्रिया यह थी कि उसे प्रश्नों के समय के तुरंत बाद और किसी दिन की कार्यावलि में दर्ज किसी अन्य मद के लिए जाने के पहले लिया जाए। नियम समिति ने इस सुझाव पर विचार किया कि सभापटल पर पत्रों को रखने का औपचारिक कार्य प्रश्नों के तुरंत बाद लिया जाना चाहिये और इस प्रकार सभापटल पर पत्रों के रखे जाने के बाद ही ध्यानाकर्षण को लिया जाना चाहिये। यह सुझाव इस आधार पर दिया गया था कि ऐसा करने से मंत्री उस अनिश्चित समय तक, जब तक ध्यानाकर्षण समाप्त नहीं हो जाता सभा में प्रतीक्षा करने के बजाय अपने शासकीय कर्तव्यों को कर सकते हैं। नियम समिति इस सुझाव पर सहमत हो गई और तदनुसार अपने नियम 180(5) में संशोधन करने की सिफारिश की।[68] यह संशोधन 1 जून, 1972 को सभा द्वारा स्वीकार किया गया।[69] यह संशोधन 1 जुलाई, 1972 से प्रभावी हुआ।[70] एक सुझाव दिया गया कि ध्यानाकर्षण को अपराह्न पांच बजे लिया जाए। नियम समिति ने इस सुझाव पर भी विचार किया किन्तु वह उस पर सहमत नहीं हुई।[71] संशोधित नियम के अनुसार, प्रस्तावित विषय प्रश्नों के बाद और सभापटल पर पत्रों के, यदि कोई हों, रखे

जाने के बाद और कार्यावलि में दर्ज किसी अन्य मद के लिए जाने के पहले लिया जाता था और उसे सभा की बैठक के दौरान किसी अन्य समय पर नहीं लिया जाता। तदनुसार ध्यानाकर्षण की मद को प्रश्नों और सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों के ठीक बाद कार्यावलि में दर्शाया जाता था।

3 सितम्बर, 1991 को सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय पर चर्चा के दौरान उपसभाध्यक्ष ने घोषणा की कि वाद-विवाद को उस दिन समाप्त कर दिया जाएगा और सिर्फ वक्तव्य को अगले दिन मंत्री द्वारा दिया जाएगा। एक सदस्य ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि अगले दिन हरिजनों तथा अन्य कमजोर तबकों पर अत्याचार के बारे में ध्यानाकर्षण होगा और उसमें सारा दिन व्यतीत हो जाएगा। उसने कहा कि यदि मंत्री को उत्तर देना ही है तो अगले दिन उन्हें सबसे पहले प्रश्नों के समय के तुरंत बाद और ध्यानाकर्षण को लिए जाने के पहले अपना उत्तर देना चाहिये। उपसभाध्यक्ष ने कहा कि बहस अपराह्न सात बजे तक जारी रहेगी और मंत्री अगले दिन उत्तर देंगे।[72] तदनुसार 4 सितम्बर, 1991 की कार्यावलि में ध्यानाकर्षण की मद के ऊपर सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय के कार्यकरण पर आगे चर्चा की मद रखी गई। नियम 180(5) का उल्लेख करते हुए एक औचित्य प्रश्न उठाया गया। कुछ चर्चा के बाद उपसभापति ने मंत्री से उत्तर देने के लिए कहा और उसके बाद ध्यानाकर्षण की मद को लिया गया।[73]

कार्य मंत्रणा समिति ने 11 मई, 1992 को हुई अपनी बैठक में सिफारिश की थी कि लोक सभा ने संविधान (72वें संशोधन) विधेयक, 1992 में जो संशोधन किया था उसे 12 मई, 1992 को ध्यानाकर्षण के पहले विचारार्थ लिया जाए।[74]

27 जुलाई, 1993 को जब उपसभापति ने संबंधित मंत्री से एक अध्यादेश का प्रख्यापन आवश्यक हो जाने के कारणों के विवरण को सभापटल पर रखने और उसके बाद एक संबंधित विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए कहा तब नियम 180(5) के संदर्भ में एक औचित्य प्रश्न उठाया गया। औचित्य प्रश्न को सही ठहराया गया और ध्यानाकर्षण को ले लिया गया।[75]

जब कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया कि बी.सी.सी.आई. के कार्यकलापों के संबंध में जो अल्पकालिक चर्चा शनिवार, 14 सितम्बर, 1991 को समाप्त नहीं हुई थी उसे पहले लिया जाए और मूल्यों की स्थिति के संबंध में कार्यावलि में दर्ज ध्यानाकर्षण को बाद में लिया जाए तब एक सदस्य ने नियम 180 के अधीन इस पर गंभीर रूप से आपत्ति की। उपाध्यक्ष ने निर्णय दिया कि अल्पकालिक चर्चा ध्यानाकर्षण के बाद होगी।[76]

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है 26 नवम्बर, 2014 तक यह प्रक्रिया लागू थी कि ध्यानाकर्षण के प्रश्नों के बाद तथा पत्रों को सभापटल पर रखे जाने के पश्चात तथा कार्यावलि की किसी अन्य मद से पूर्व लिया जाता था तथा सभा की बैठक के दौरान किसी अन्य समय पर नहीं लिया जाता था। सभा द्वारा 26 नवम्बर, 2014 को नियम संबंधी समिति का 13वां प्रतिवेदन स्वीकृत किए जाने के पश्चात अब ध्यानाकर्षण को मध्याह्न पश्चात 2.00 बजे लिया जाता है। यह संशोधन 27 नवम्बर, 2014 से लागू हुआ था।[77]

ध्यानाकर्षण का स्थगित किया जाना

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, ध्यानाकर्षण को उस दिन लिया जाता है जिस दिन के लिए उसे कार्यावलि में दर्ज किया जाता है। तथापि, यह आवश्यक हो सकता है कि संबंधित मंत्री के अनुरोध पर[78] या सभा के किसी अत्यावश्यक कार्य के कारण[79] ध्यानाकर्षण को उसी दिन किसी और समय के लिए या अगले दिन के लिये स्थगित कर दिया जाए।

यदि कोई मद कार्यावलि में प्रकाशित हो गई है और सभापति के आदेश से उसे स्थगित कर दिया जाता है तो उसे संशोधित कार्यावलि में से, यदि उसे जारी किया जाए, निकाल दिया जाता है और सभा को तदनुसार सूचित कर दिया जाता है।

तथापि, ऐसे कई दृष्टांत हैं जब किसी मंत्री के अनुरोध पर या सभा में अधिक महत्वपूर्ण कार्य करने की अत्यावश्यकता के कारण ध्यानाकर्षण को सभा की आम राय लेकर सभा की बैठक के दौरान किसी अन्य समय पर लिया गया था। ऐसा किसी विचाराधीन सरकारी विधेयक या प्रस्ताव के निपटाए जाने के बाद या[80] मध्याह्न भोजन के अवकाश के बाद[81] या गैर-सरकारी कार्य के निपटाए जाने के बाद[82] या किसी बैठक के अंतिम भाग में[83] किया गया है।

संबंधित मंत्रियों के इस निवेदन पर कि वे दूसरे सदन में व्यस्त हैं, सभापीठ ने घोषणा की कि ध्यानाकर्षण उस दिन बाद में लिया जाएगा।[84]

एक बार जब संबंधित सदस्य ने विशाखापत्तनम में एक इस्पात कारखाना लगाए जाने की मांग की और लोहा तथा इस्पात मंत्री का ध्यान आकर्षित किया तब उप मंत्री ने कहा कि जो वक्तव्य दिया जाने वाला है वह महत्वपूर्ण है और यह अधिक अच्छा होता कि स्वयं मंत्री महोदय, जो विमान द्वारा शीघ्र पहुंचने वाले हैं, इस वक्तव्य को दें। अत: उन्होंने सभापति से निवेदन किया कि वे उस दिन अपराह्न में इसके लिए कुछ समय नियत करें। सभापति ने यह टिप्पणी करते हुए अपराह्न साढ़े चार बजे का समय नियत किया: "मंत्री को पूर्ववर्ती विमान में सीट नहीं मिल सकी थी।"[85]

31 अगस्त, 1981 को उपसभापति ने घोषणा की कि महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री द्वारा एक न्यास के लिए निधियों के कथित रूप से एकत्र किए जाने से संबंधित ध्यानाकर्षण अगले दिन लिया जाएगा। किन्तु 1 सितम्बर, 1981 को इस ध्यानाकर्षण की बजाय देश में बिजली के संकट से संबंधित एक अन्य ध्यानाकर्षण कार्यावलि में दर्ज था। जब इस मामले को उठाया गया तब सभा के नेता ने स्पष्ट किया कि चूंकि राज्य सरकार से कतिपय तथ्यों की निश्चित रूप से जानकारी प्राप्त करनी थी इसलिए एक दिन का और समय मांगा गया और सभापति ने इसके लिए स्वीकृति दे दी।[86]

सभापति ने सभा को सूचित किया कि कपास का लाभकर मूल्य देने के लिए किसानों द्वारा किए जा रहे आंदोलन से संबंधित ध्यानाकर्षण को उस दिन के अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ऋण संबंधी सरकारी प्रस्ताव को देखते हुए स्थगित कर दिया गया है।[87]

उपसभापति ने घोषणा की कि यद्यपि दिल्ली महानगर परिषद् के चुनावों और गढ़वाल संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र के उप-चुनाव से संबंधित ध्यानाकर्षण विधि मंत्री को सम्बोधित है और वे उपस्थित भी हैं तथापि गृह मंत्री की तीव्र इच्छा है कि वे उसका उत्तर दें। चूंकि गृह मंत्री दूसरे सदन में व्यस्त थे इसलिए उपसभापति ने ध्यानाकर्षण को उस दिन अपराह्न तीन बजे तक के लिए स्थगित कर दिया।[88]

उपसभापति ने सूचित किया कि केन्द्र द्वारा राज्यों को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न की आपूर्ति न करने से संबंधित ध्यानाकर्षण किसी और दिन के लिए स्थगित कर दिया गया है। ध्यानाकर्षण को आखिरी समय पर स्थगित करने पर सदस्यों ने आपत्ति की। सभा के नेता ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा कि संबंधित मंत्री शहर से बाहर गए हुए हैं और इसलिए वे सदन में उपस्थित नहीं हो सके हैं।[89]

उपसभापति ने सूचित किया कि दिल्ली के कतिपय भागों में जलशोथ की बीमारी के व्यापक रूप से फैलने से संबंधित ध्यानाकर्षण अपराह्न चार बजे लिया जाएगा। इसके लिए कोई कारण नहीं दिए गए।[90]

28 फरवरी, 1986 को जारी की गई कार्यावलि में मूलत: 4 मार्च, 1986 के लिए एक ध्यानाकर्षण की मद का उल्लेख किया गया था। संशोधित कार्यावलि में से इस मद को निकाल दिया गया। सभापति ने यह स्पष्ट किया कि उसे इसलिए स्थगित किया गया है ताकि सदस्यों को धन्यवाद

प्रस्ताव संबंधी चर्चा में भाग लेने के लिए अधिक समय मिल सके।[91]

एक ध्यानाकर्षण अपराह्न पांच बजे लिया गया क्योंकि "कुछ सदस्यों की यह तीव्र इच्छा थी कि वे एक विशिष्ट आगंतुक का स्वागत करने जाएंगे और वे ध्यानाकर्षण की चर्चा में भाग नहीं ले सकेंगे।"[92]

ध्यानाकर्षण की रीति

सभापीठ द्वारा बुलाए जाने पर वह सदस्य, जिसका नाम कार्यावलि में अविलम्बनीय लोक महत्व की ओर ध्यान दिलाने की मद के अंतर्गत सबसे पहले होता है, अपने स्थान पर खड़ा होता है और कार्यावलि में दिए गए पाठ के अनुसार मद में उल्लिखित मंत्री का ध्यान आकर्षित करता है। कार्यावलि में प्रकाशित पाठ ही अभिलिखित किया जाता है और यदि कोई सदस्य उसे पढ़ते समय कोई ऐसी बात जोड़ देता है जो पाठ में नहीं है तो उसकी अनुमति नहीं दी जाती है।

केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की निम्नलिखित मांगों को मध्यस्थ निर्णय के लिए सौंपने पर सरकार के सहमत न होने के बारे में एक ध्यानाकर्षण का विषय था: (क) महंगाई भत्ते का वेतन के साथ विलय करना, (ख) आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम वेतन देना और (ग) उसके फलस्वरूप केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के परिसंघ द्वारा हड़ताल करने का कथित निर्णय। जिस सदस्य के नाम पर ध्यानाकर्षण था उसने मद के तीसरे भाग को न पढ़ने की अनुमति मांगी क्योंकि उसने अपनी सूचना में उसका उल्लेख नहीं किया था। सदस्य की आपत्ति थी कि वह संगठन केवल एक कागजी संगठन है और उसका संयुक्त परामर्शी समिति में कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। सदस्य ने यह भी कहा कि उसने भाग (ख) तक पढ़ दिया है और सभापति किसी अन्य सदस्य को बाकी भाग पढ़ने की अनुमति दे सकते हैं। जब सभापति ने इस बाकी भाग को पढ़ने के लिए उस सदस्य से कहा जिसका नाम ध्यानाकर्षण की मद के अंतर्गत दूसरे स्थान पर था तब एक अन्य सदस्य ने दलील दी कि ध्यानाकर्षण के एक भाग को एक सदस्य द्वारा पढ़ा जाना और दूसरे भाग को किसी दूसरे सदस्य द्वारा पढ़ा जाना एक नया पूर्वोदाहरण बन जाएगा। सभापति ने सुझाव दिया कि जिस सदस्य के नाम पर यह ध्यानाकर्षण है उसे बाकी भाग को भी पढ़ना चाहिए क्योंकि वे यह नहीं चाहते कि उसे दो या तीन सदस्य पढ़ें। इसके बाद सदस्य ने भाग (ग) को भी पढ़ा।[93]

एक सदस्य ने ध्यानाकर्षण करते समय कहा: "क्या मैं गृह मंत्री का ध्यान उस प्रश्न की ओर आकर्षित कर सकता हूं जो मैंने राजस्थान और दिल्ली में सती प्रथा के समर्थन में आंदोलन किए जाने के बारे में उठाया है।" एक सदस्य ने औचित्य प्रश्न उठाते हुए कहा कि "ध्यानाकर्षण सभा में ठीक ढंग से नहीं रखा गया है। ध्यानाकर्षणों को उन्हीं शब्दों में पेश करना होगा जो कार्यावलि में दिए गए हैं।" उपसभापति ने संबंधित सदस्य से कहा कि वह मद को दुबारा पढ़ें।[94]

एक सदस्य ने मंत्री का ध्यान आकर्षित करते हुए कार्यावलि में उल्लिखित पाठ के बजाय अपनी मूल सूचना को पढ़ना शुरू कर दिया। सभापीठ ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दी।[95]

जब आवश्यक वस्तुओं की पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति न होने के कारण जनता को हो रही कठिनाइयों के बारे में एक ध्यानाकर्षण पेश करने के लिए कहा गया तब सदस्य ऐसे मुद्दे उठाने लगे जो ध्यानाकर्षण की परिधि के बाहर थे। उपसभापति ने इसकी अनुमति नहीं दी।[96]

यदि वह सदस्य, जिसका नाम ध्यानाकर्षण के लिए पुकारा जाता है, अनुपस्थित होता है या वह ध्यान आकर्षित नहीं करना चाहता तो ध्यानाकर्षण की मद में उस सदस्य के नाम के बाद किसी दूसरे सदस्य का नाम होने पर उस दूसरे सदस्य से ध्यान आकर्षित करने के लिए कहा जाता है। इस समय वह किसी स्पष्टीकरण के लिए नहीं कहता।

सदन के भीतर वक्तव्य की प्रतियों को परिचालित किया जाना

प्रचलित प्रथा के अनुसार मंत्री ध्यानाकर्षण के उत्तर में जो वक्तव्य देने का विचार रखता है उसकी प्रतियां मंत्री द्वारा उसे पढ़े जाने के ठीक पहले सदस्यों को उपलब्ध कराई जाती हैं। यह आवश्यक है कि वक्तव्य के हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही पाठ उपलब्ध किए जाएं।[97]

> प्रारंभ के दिनों में मंत्री के प्रस्तावित वक्तव्य की प्रतियों को पहले ही परिचालित करने की प्रथा नहीं थी। एक बार ध्यानाकर्षण के उत्तर में मंत्री द्वारा वक्तव्य दिए जाने के बाद एक सदस्य ने सुझाव दिया कि जब एक महत्वपूर्ण मुद्दा उठाया गया था और मंत्री द्वारा एक लंबा वक्तव्य दिया गया था तब "इसे पहले ही परिचालित करने पर ध्यान दिया जाना चाहिए था ताकि सदस्य बातों को समझ सकें, अन्यथा उस पर चर्चा करने की कोई उपयोगिता नहीं थी क्योंकि वह एक लंबा वक्तव्य था।" जब सभापति ने प्रथा के बारे में समझाया तब एक अन्य सदस्य ने सुझाव दिया कि चूंकि मंत्री ने बोलना शुरू कर दिया था इसलिए उनके वक्तव्य को कम-से-कम उन सदस्यों में परिचालित कर दिया जाना चाहिए था जिन्होंने ध्यानाकर्षण की सूचना दी थी।[98] जब 1982 में ऐसा सुझाव पुनः दिया गया तब उपसभापति ने कहा कि ऐसी कोई प्रथा नहीं है किन्तु भविष्य के लिए इस सुझाव पर विचार किया जा सकता है।[99]

ध्यानाकर्षण के उत्तर में मंत्री द्वारा वक्तव्य

(क) वक्तव्य का दिया जाना

किसी सदस्य द्वारा मंत्री का ध्यानाकर्षण करने के बाद संबंधित मंत्री संक्षिप्त वक्तव्य दे सकता है या बाद के समय या तारीख को वक्तव्य देने के लिए समय देने का निवेदन कर सकता है। सामान्यतः मंत्री प्रथानुसार ध्यानाकर्षण के उत्तर में एक तैयार किया हुआ वक्तव्य पढ़कर सुनाता है।

> एक बार जब एक मंत्री तैयार किए हुए वक्तव्य को पढ़ने की बजाय स्वयं उत्तर देना चाहते थे तब सभापति ने निर्णय दिया कि प्रक्रिया के अनुसार ऐसा नहीं होता और मंत्री को वक्तव्य पढ़ना पड़ा।[100]

ध्यानाकर्षण की विषय-वस्तु से संबंधित मंत्रालय के प्रभारी कैबिनेट मंत्री के सदन में उपस्थित होने पर भी वक्तव्य को किसी राज्य मंत्री द्वारा पढ़ा जा सकता है।

> एक औचित्य प्रश्न उठाया गया कि देश में सांप्रदायिक दंगों से संबंधित ध्यानाकर्षण के उत्तर में प्रारम्भिक वक्तव्य राज्य मंत्री की बजाय प्रधान मंत्री द्वारा दिया जाना चाहिए जो गृह मंत्री भी हैं और सभा में उपस्थित हैं। सभापति ने निर्णय दिया: "नियमों के अनुसार संयुक्त दायित्व और अलग-अलग दायित्व होता है। मंत्री, जो यहां पर उपस्थित हैं, ऐसा कर सकते हैं। यदि उन्हें कुछ कठिनाई होती है तो प्रधान मंत्री स्वतः उचित समय पर उत्तर देंगे... यहां पर कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठता क्योंकि दोनों में से कोई भी, राज्य मंत्री या कैबिनेट मंत्री, उत्तर दे सकता है।"[101]

चाहे ध्यानाकर्षण का विषय प्रत्यक्षतः उस मंत्री के क्षेत्र के अंतर्गत आता हो जो कार्यावलि में उल्लिखित मंत्री से भिन्न है, यह निर्णय करना सरकार का काम है कि किसी ध्यानाकर्षण को किस मंत्री को सौंपा जाए।

> एक ध्यानाकर्षण पाकिस्तान द्वारा नाभिकीय हथियारों को अर्जित और विकसित करने के प्रयास के संदर्भ में भारत के लिए नाभिकीय हथियारों का खतरा पैदा होने के बारे में था। जब विदेश मंत्रालय में राज्य मंत्री द्वारा उसका उत्तर दिया ही जाने वाला था, एक सदस्य ने सुझाव दिया कि रक्षा

मंत्री को इसका जिम्मा लेना चाहिए था। सभापति ने टिप्पणी की: "यह निर्णय करना सरकार का काम है कि कौन इसका जिम्मा लेगा।"[102]

यदि ध्यानाकर्षण का विषय या उसके कोई पहलू एक से अधिक मंत्रियों के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं, तो उन्हें गृहीत ध्यानाकर्षण की एक-एक प्रति भेजी जाती है ताकि सभी संबंधित मंत्री चर्चा के दौरान उपस्थित हो सकें और यदि विषय के कोई पहलू उनसे संबंधित हों तो वे उनका उत्तर दे सकें।

जीवन बीमा निगम के कर्मचारियों की हड़ताल से संबंधित एक ध्यानाकर्षण का उत्तर वित्त मंत्री द्वारा दिया गया। किंतु जब कुछ सदस्यों ने कहा कि मंत्री ने कर्मचारियों की मांगों पर कार्यवाही नहीं की है और जब वित्त मंत्री ने कहा कि उन्हें पिछली रात को ही सूचना प्राप्त हुई है और श्रम तथा पुनर्वास मंत्री ने, जो सभा में उपस्थित थे, यह कहा कि उन्हें सूचना मिली ही नहीं तब दोनों मंत्रियों को समुचित रूप से सूचना देने के लिए ध्यानाकर्षण को स्थगित कर दिया गया। तदनुसार जिस दिन के लिए ध्यानाकर्षण स्थगित किया गया था उस दिन दोनों मंत्रियों ने अपने-अपने कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आने वाले प्रश्नों का उत्तर दिया।[103]

एक ध्यानाकर्षण सूचना देश के कई भागों में प्रचार-सामग्री के साथ चीनी बैलूनों के पकड़े जाने के संबंध में थी और गृह मंत्री को संबंधित की गई थी। उसकी एक प्रति विदेश मंत्री को भी पृष्ठांकित की गई थी "ताकि यदि विदेश मंत्री चाहें तो सभा में उपस्थित हो सकें और वाद-विवाद के बीच में बोल सकें।"[104]

एक ध्यानाकर्षण सूचना का विषय आरंभ में गढ़वाल उप-चुनाव को स्थगित करने के बारे में था और वह गृह मंत्री को संबोधित थी। उसकी शब्दावलि बदलकर उसे एक सामान्य रूप दे दिया गया और उसे विधि मंत्री को संबोधित किया गया। इस पर कुछ सदस्यों द्वारा आपत्ति किए जाने पर उपसभापति ने आदेश दिया कि समूची बहस के दौरान गृह मंत्री को भी सदन में उपस्थित रहना चाहिए। इसके बाद ध्यानाकर्षण पर चर्चा शुरू हुई।[105]

(ख) वक्तव्य का सभापटल पर रखा जाना

सामान्यत: ध्यानाकर्षण का उत्तर देते समय संबंधित मंत्री को वक्तव्य देना होता है तथापि, कुछ अवसरों पर उसे उसके उत्तर में अपने वक्तव्य को सभापटल पर रखने की अनुमति दी जा सकती है और सदस्य बाद में उस पर स्पष्टीकरण प्राप्त कर सकते हैं। कुछ मामलों में, मंत्री एक संक्षिप्त वक्तव्य दे सकता है या वक्तव्य की मुख्य-मुख्य बातों को स्पष्ट कर सकता है और सभापीठ की अनुमति से विस्तृत वक्तव्य को सभापटल पर रख सकता है।

एक ध्यानाकर्षण जो भारत सरकार मुद्रणालय में हड़ताल के संबंध में था, बैठक के अंतिम भाग में चर्चा के लिए पेश हुआ। उसके उत्तर में मंत्री ने अपने वक्तव्य को सभापटल पर रखा और सदस्यों ने उस पर अगले दिन अपने-अपने स्पष्टीकरण मांगे।[106]

एक सदस्य ने पंजाब विनियोग अधिनियमों की विधिमान्यता के बारे में उच्चतम न्यायालय के निर्णय की ओर विधि मंत्री का ध्यान आकर्षित किया। जब मंत्री वक्तव्य को पढ़ने ही वाले थे, उपसभापति ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि वक्तव्य लगभग आठ पृष्ठों का है और उन्होंने इस संबंध में सदस्यों की राय मांगी कि क्या उसे पढ़ा जाना चाहिए या सभापटल पर रख दिया जाना चाहिए। सभा इस पर सहमत हो गई कि विषय तकनीकी और कानूनी है और वक्तव्य सभापटल पर रखा जा सकता है और उस पर बाद में स्पष्टीकरण मांगे जा सकते हैं।[107]

एक ध्यानाकर्षण अमरीका, ब्रिटेन और सोवियत संघ द्वारा हिन्द महासागर में नौसैनिक अड्डों को स्थापित करने के प्रयास के बारे में था। मंत्री के अनुरोध पर उसे अपराह्न चार बजे पेश किया गया। किन्तु सदस्यों द्वारा एक और विषय उठाए जाने के कारण मंत्री वक्तव्य नहीं दे सके। उसे सभापटल पर रखने की अनुमति दे दी गई।[108]

बेंगलूर में स्थित एच.एम.टी. में हड़ताल और तालाबंदी से संबंधित ध्यानाकर्षण के उत्तर में दिया जाने वाला वक्तव्य आठ पृष्ठों का था। मंत्री यह जानना चाहते थे कि चूंकि हड़ताल समाप्त हो चुकी है इसलिए क्या उन्हें केवल अंतिम पैराओं को पढ़ना चाहिए। वक्तव्य को सभापटल पर रखने की अनुमति दी गई और मंत्री ने मामले से संबंधित मोटे-मोटे तथ्यों को सामने रखा।[109]

वित्त मंत्री ने सरकारी उपक्रमों में बड़े पैमाने पर विनिवेश किए जाने से संबंधित ध्यानाकर्षण के उत्तर में एक संक्षिप्त वक्तव्य दिया और उपसभापति की अनुमति से एक अधिक विस्तृत वक्तव्य सभा-पटल पर रखा। वक्तव्य साइक्लोस्टाइल किए गए 13 पृष्ठों का था और उसके साथ एक अनुपत्र भी था।[110] कुछ दिनों बाद वक्तव्य पर सदस्यों द्वारा स्पष्टीकरण मांगे गए।[111]

एक सदस्य ने देश में चिकित्सीय परीक्षणों के दौरान होने वाली मौतों और उससे संबंधित मुद्दों से उत्पन्न स्थिति पर स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्री का ध्यान आकर्षित किया। सभा में बार-बार व्यवधान के कारण स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय में राज्य मंत्री ने उपसभापति की अनुमति से एक विवरण सभापटल पर रखा। सभापटल पर विवरण रखे जाने के बाद, सभा दिवस के लिए स्थगित हो गई।[112] इसी प्रकार सभा में लगातार व्यवधानों के कारण विदेश मंत्री को श्रीलंकाई नौ सेना द्वारा तमिलनाडु के मछुआरों पर बार-बार हमला किए जाने से संबंधित ध्यानाकर्षण के उत्तर में एक विवरण सभापटल पर रखने की अनुमति दी गई थी। विवरण सभापटल पर रखे जाने के बाद, सभा दिवस के लिए स्थगित हो गई।[113]

(ग) ध्यानाकर्षण के उत्तर में वक्तव्य का अलग से न दिया जाना

कुछ अवसर ऐसे आए हैं जब मंत्रियों ने स्वयमेव लोक-महत्व के विषयों पर वक्तव्य दिए हैं और बाद में सभापति ने उन्हीं विषयों पर ध्यानाकर्षण की अनुमति दी है। ऐसी स्थिति में मंत्रियों ने ऐसे ध्यानाकर्षण के उत्तर में फिर से वक्तव्य नहीं दिए हैं और जो वक्तव्य दिए जा चुके थे उन्हीं के आधार पर ध्यानाकर्षण पर चर्चा हुई।

18 मार्च, 1980 को जब सभापति ने बताया कि गृह मंत्री मुरादाबाद में हरिजनों की झोंपड़ियों के जलाए जाने के बारे में एक वक्तव्य देने जा रहे हैं, एक सदस्य ने औचित्य प्रश्न उठाया कि चूंकि उसने इस विषय पर ध्यानाकर्षण की एक सूचना पहले ही दे दी है इसलिए मंत्री को इस ध्यानाकर्षण को लिए जाने के पहले, जिसे अगले दिन गृहीत किए जाने की संभावना है, कोई वक्तव्य देने का अधिकार नहीं है। जब सभापति ने सुझाव दिया कि मंत्री तब तक के लिए अपना वक्तव्य स्थगित कर सकते हैं तब सभा के नेता ने नियम 251 के आधार पर कहा कि चाहे ध्यानाकर्षण की कोई सूचना लंबित हो या नहीं, मंत्री को लोक-महत्व के किसी अविलंबनीय विषय पर वक्तव्य देने का अधिकार है। सभापति ने उनकी बात से सहमत होते हुए कहा कि वे अगले दिन मामले पर पूरी बहस की अनुमति देंगे। किंतु इससे सदस्यगण संतुष्ट नहीं हुए। सभापति के कक्ष में विचार-विमर्श करने के लिए सभा को मध्याह्न-भोजन के निर्धारित अवकाश से पहले स्थगित कर दिया गया। सभा के पुन: समवेत होने के बाद सभापति के निदेशानुसार मंत्री को वक्तव्य देने की अनुमति दे दी गई। ध्यानाकर्षण अगले दिन लिया गया। मंत्री ने ध्यानाकर्षण के उत्तर में कोई नया वक्तव्य नहीं दिया किन्तु उन्होंने अपने पिछले वक्तव्य में कुछ तथ्यात्मक जानकारी जोड़ी।[114]

मैनपुरी (उत्तर प्रदेश) में हरिजनों की हत्या के संबंध में मंत्री ने स्वयं एक वक्तव्य दिया। अगले दिन उसी विषय पर एक ध्यानाकर्षण गृहीत किया गया। मंत्री ने यह कहते हुए ध्यानाकर्षण के उत्तर में पुन: कोई वक्तव्य नहीं दिया कि पिछले दिन अपने वक्तव्य में वे जो कुछ कह चुके हैं उसके अलावा उनके पास कहने के लिए कुछ नहीं है। तत्पश्चात् सदस्यों ने स्पष्टीकरण मांगे।[115]

पंजाब की स्थिति पर मंत्री ने एक वक्तव्य दिया। सदस्यों ने मांग की कि उस पर चर्चा होनी चाहिए। सदन इस पर सहमत हो गया कि मंत्री ने जो वक्तव्य दिया है उसे किसी ध्यानाकर्षण के उत्तर में दिया गया वक्तव्य माना जाएगा और सदस्य उस पर स्पष्टीकरण मांगेंगे। ध्यानाकर्षण के उत्तर में अलग से कोई वक्तव्य नहीं दिया गया और न ध्यानाकर्षण को लिए जाने के लिए औपचारिक

रूप से कोई निदेश दिया गया हालांकि कार्यावलि में ध्यानाकर्षण की सूचना देने वाले मंत्री के पिछले वक्तव्य पर स्पष्टीकरण दिए जाने का अनुरोध करने वाले सदस्यों के नामों का उस क्रम के अनुसार उल्लेख किया गया जिसमें ये अनुरोध प्राप्त हुए थे।[116]

पेट्रोलियम उत्पादों के मूल्यों में वृद्धि के संबंध में मंत्री ने एक वक्तव्य दिया। अगले दिन उसी विषय पर एक ध्यानाकर्षण गृहीत हुआ। ध्यानाकर्षण के उत्तर में अलग से कोई वक्तव्य नहीं दिया गया। किंतु तकनीकी प्रयोजनों के लिए ध्यानाकर्षण की मद कार्यावलि में दर्ज की गई और सदस्य से कहा गया कि वह औपचारिक रूप से ध्यानाकर्षण करे और उसके बाद सदस्यों ने उस पर स्पष्टीकरण मांगे।[117]

किन्तु कई बार जब मंत्री ने एक विषय पर स्वयं वक्तव्य दिया तब सभापति ने एक अगली बैठक के लिए उस विषय पर एक ध्यानाकर्षण की भी अनुमति दी और मंत्री ने ध्यानाकर्षण के उत्तर में पुन: एक नया वक्तव्य दिया।

13 मार्च, 1968 को गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री ए. एन. ग्रोवर को छुरा मारने के संबंध में एक वक्तव्य दिया। उसी विषय पर एक ध्यानाकर्षण 14 मार्च, 1968 के लिए गृहीत किया गया और गृह मंत्री ने ध्यानाकर्षण के उत्तर में एक वक्तव्य दिया।[118]

10 मई, 1968 को गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने दो वक्तव्य दिए जिनमें से एक 1968 के पंजाब विनियोग अधिनियमों के संबंध में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के फैसले के बारे में था और दूसरा इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश देने से इंकार किए जाने के बारे में था। उच्च न्यायालय द्वारा विनियोग अधिनियमों को अधिकार से परे घोषित करने के निर्णय से पंजाब में उत्पन्न हुए संवैधानिक संकट के बारे में एक ध्यानाकर्षण 11 मई, 1968 के लिए गृहीत किया गया और गृह मंत्री ने ध्यानाकर्षण के उत्तर में एक वक्तव्य दिया।[119]

गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने 7 मार्च, 1969 को एक वक्तव्य दिया जो पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल द्वारा 6 मार्च, 1969 को पश्चिमी बंगाल विधान-मंडल की दोनों सभाओं के सदस्यों के समक्ष दिए गए अभिभाषण के संबंध में था। पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल को वापस बुलाए जाने की मांग के संबंध में केन्द्र के रवैये के संवैधानिक निहितार्थों के बारे में ध्यानाकर्षण 7 मार्च, 1969 के लिए गृहीत किया गया। गृह मंत्री ने ध्यानाकर्षण के उत्तर में एक वक्तव्य दिया।[120]

गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने 5 मार्च, 1982 को लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी के निदेशक की समय-पूर्व सेवानिवृत्ति के बारे में स्वयमेव एक वक्तव्य दिया।

उपसभापति ने सूचित किया कि इस विषय पर एक ध्यानाकर्षण 8 मार्च, 1982 को लिया जाएगा। तदनुसार जब उसे लिया गया तब गृह मंत्रालय के एक अन्य राज्य मंत्री ने ध्यानाकर्षण के उत्तर में एक नया वक्तव्य दिया।[121] जो न्यूनाधिक रूप से पिछले वक्तव्य से मिलता-जुलता था।

(घ) वक्तव्य देने के समय को स्थगित किया जाना

जैसाकि कहा जा चुका है, मंत्री बाद के किसी समय या तारीख को वक्तव्य देने के लिए समय दिए जाने का अनुरोध कर सकता है।

जब एक सदस्य भारत रक्षा नियमों के प्रयोग के संबंध में उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियों की ओर गृह मंत्री का ध्यान आकर्षित करने ही वाले थे तब गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने कहा कि वे उस दिन अपराह्न पांच बजे वक्तव्य देने के लिए उपलब्ध होंगे। जब संबंधित सदस्य ने इस पर आपत्ति की तब सभापति ने कहा: "सरकार को समय मांगने का अधिकार है और मैंने उन्हें पांच बजे वक्तव्य देने की अनुमति दी है।"[122]

चीन द्वारा हाइड्रोजन बम के विस्फोट के बारे में एक ध्यानाकर्षण 20 जून, 1967 के लिए गृहीत किया गया। रक्षा मंत्री ने निवेदन किया कि उन्हें अगले दिन 'सभा के उठने के पहले' वक्तव्य देने की

अनुमति दी जाए क्योंकि वे उस दिन दूसरे सदन में भी वक्तव्य देने जा रहे हैं। सभापति ने घोषणा की कि वक्तव्य उस दिन अपराह्न ढाई बजे दिया जाएगा। एक सदस्य ने मंत्री द्वारा बताए गए कारण के आधार पर ध्यानाकर्षण को स्थगित करने के संबंध में एक मुद्दा उठाया। कुछ आपत्तियों के बाद सभापति ने आश्वासन दिया कि वक्तव्य अगले दिन मध्याह्न 12 बजे दिया जाएगा। तदनुसार वक्तव्य दिया गया।[123]

उपासभापति ने घोषणा की कि नागपुर में संतरों को ले जाने के लिए वैगनों की कमी से संबंधित ध्यानाकर्षण अपराह्न दो बजे लिया जाएगा क्योंकि रेल मंत्रालय में उपमंत्री ने इसके लिए इस आधार पर अनुरोध किया है कि ध्यानाकर्षण द्वारा मांगी गई सूचना न तो रेलवे बोर्ड के पास उपलब्ध है और न बंबई स्थित मध्य रेलवे के मुख्यालय में उपलब्ध है और इस सूचना को प्रभागीय प्रबंधक, नागपुर से प्राप्त करना होगा। जब सदन इस पर कोई निर्णय लेने वाला था तब संबंधित मंत्री सदन में आए और उन्होंने स्थिति के बारे में अपनी बात दुहराई। उपसभापति ने नियम 180 का हवाला देते हुए मंत्री द्वारा समय मांगने के अधिकार को माना किंतु यह टिप्पणी भी की: "जब मंत्रियों को सूचित कर दिया जाता है तब उन्हें सूचना के साथ तैयार रहना चाहिए और उन्हें सामान्यत: या अनावश्यक रूप से किसी ध्यानाकर्षण को स्थगित करने का अनुरोध नहीं करना चाहिए।"[124]

जैसाकि उपसभापति के साथ हुई नेताओं की बैठक में सहमति हुई थी, महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री द्वारा निधियों के कथित रूप से एकत्र किए जाने से संबंधित ध्यानाकर्षण औपचारिक रूप से 1 सितम्बर,1981 को लिया गया। वित्त मंत्री ने बताया कि चूंकि वे सभी तथ्यों को प्राप्त कर रहे हैं इसलिए वे अगले दिन वक्तव्य देंगे। तदनुसार 2 सितम्बर, 1981 को वक्तव्य दिया गया।[125]

अनुपस्थित सदस्य का ध्यानाकर्षण

जिस सदस्य या जिन सदस्यों के नाम पर ध्यानाकर्षण होता है यदि वह या वे अनुपस्थित हों या कार्यावलि में दिए गए पाठ के अनुसार ध्यानाकर्षण करने से इन्कार कर देते हैं तो उस स्थिति में वक्तव्य देने या उसे सभापटल पर रखने के संबंध में अपनाई जाने वाली प्रथा पूरी तरह से निर्धारित नहीं हुई है। कभी वक्तव्य सभापटल पर रखे गए हैं,[126] और कभी नहीं भी रखे गए हैं।[127]

जब संबंधित सदस्य से ध्यानाकर्षण करने के लिए (वास्तुकारों के उत्प्रवास के संबंध में) कहा गया, उन्होंने ध्यानाकर्षण करने की बजाय कुछ अन्य बातें कहने का प्रयास किया। उपसभापति ने इसकी अनुमति नहीं दी किंतु वह सदस्य बोलते रहे और उपसभापति ने आदेश दिया कि उनकी बात को अभिलिखित न किया जाए। जब उस सदस्य से ध्यानाकर्षण करने के लिए कहा गया जिसका नाम ध्यानाकर्षण की मद में दूसरे स्थान पर था तब उन्होंने भी विषय की ओर ध्यान आकर्षित नहीं किया। उपसभापति ने घोषणा की: "अब कोई कार्य नहीं है। मंत्री महोदय जा सकते हैं" और उन्होंने कार्यावलि में दर्ज अगली मद को ले लिया।[128]

गन्ने के मूल्यों के संबंध में एक ध्यानाकर्षण एक ही सदस्य के नाम पर था और वह उपस्थित नहीं थे। जब एक अन्य सदस्य ने यह निवेदन किया कि सभापीठ अपने विवेक का प्रयोग करे और अन्य सदस्यों को स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति दे तो उपसभापति ने यह कह कर ऐसा करने से इंकार किया कि केवल वही सदस्य ध्यानाकर्षण कर सकता है जिसके नाम पर ध्यानाकर्षण है; उसके बाद ही अन्य सदस्य प्रश्न पूछ सकते हैं। चूंकि सदस्य उपस्थित नहीं था इसलिए ध्यानाकर्षण नहीं लिया जा सका।[129]

एक ध्यानाकर्षण आवश्यक वस्तुओं की अपर्याप्त आपूर्ति के बारे में था और जिन सदस्यों के नाम पर यह ध्यानाकर्षण था, जब उन्होंने ध्यानाकर्षण करने के बजाय ऐसी बातों को उठाना शुरू कर दिया जो उससे संबंधित नहीं थीं तब उपसभापति ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दी। ध्यानाकर्षण उस दिन या किसी अगले दिन नहीं लिया जा सका।[130]

स्पष्टीकरण मांगने के लिए प्रक्रिया

जब वक्तव्य दिया जा रहा हो तब उस पर कोई बहस नहीं हो सकती।[131] किंतु सदस्यों को वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति है। सबसे पहले ध्यानाकर्षण को आरंभ करने वाला सदस्य स्पष्टीकरण मांगता है। ध्यानाकर्षण करने वाले सदस्य को सात मिनट से अधिक नहीं लेने चाहिए और सभापति द्वारा पुकारे जाने वाले प्रत्येक अन्य सदस्य को पांच मिनट से अधिक नहीं लेने चाहिए और उन्हें ध्यानाकर्षण के विषय पर केवल स्पष्टीकरण मांगने तक ही अपने आपको सीमित रखना चाहिए और लंबा भाषण देने से बचना चाहिए।

> जुलाई, 1979 में यह निर्णय किया गया कि ध्यानाकर्षण आरंभ करने वाले सदस्य को पांच मिनट से अधिक समय नहीं दिया जाना चाहिए।[132] 19 जून, 1980 को हुई नेताओं की एक बैठक में इस प्रक्रिया की समीक्षा की गई और यह निर्णय किया गया कि ध्यानाकर्षण आरंभ करने वाले सदस्य को सात मिनट से अधिक समय नहीं लेना चाहिए। सभापति ने सभा में तदनुसार घोषणा की।[133]

स्पष्टीकरण मांगने के लिए सदस्यों के नाम पुकारे जाने का क्रम

जब कोई ध्यानाकर्षण अनेक सदस्यों के नाम पर होता है तब स्पष्टीकरण चाहने वाले सदस्यों के चयन का पहला सिद्धांत दल/समूह (पार्टी/ग्रुप) होता है। सूचना देने वाले सदस्यों के दलों/समूहों को प्रत्येक दल/समूह में से एक-एक सदस्य को पुकारकर निबटा लेने के बाद सभापति उन दलों/समूहों के सदस्यों को बुला सकता है जो सूची में नहीं हैं।[134] दूसरे शब्दों में, सदस्यों के नाम उस क्रम से नहीं पुकारे जाते जिस क्रम में वे कार्यावलि में दिए जाते हैं और न ही सभापति उन सभी सदस्यों को बुलाने के लिए बाध्य हैं जिनके नाम कार्यावलि में दिए होते हैं। जहां तक छोटे समूहों (ग्रुपों) का संबंध है, कार्य मंत्रणा समिति ने अन्य बातों के साथ यह सिफारिश की थी कि कम से कम पांच सदस्यों वाले प्रत्येक दल या समूह में से एक-एक सदस्य को स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति दी जानी चाहिए। पांच से कम सदस्यों वाले समूह और निर्दलीय सदस्यों तथा अन्य सदस्यों में से एक सदस्य को चक्रानुक्रम से अनुमति देकर प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।[135] तथापि, जब इस सिफारिश की घोषणा हुई तब कुछ सदस्यों ने इस प्रथा को अपनाए जाने पर अपनी शंकाएं व्यक्त कीं।[136]

> कार्य मंत्रणा समिति ने 16 जुलाई, 1991 को हुई अपनी बैठक में ध्यानाकर्षण पर स्पष्टीकरण मांगने के संबंध में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया पर विचार किया और सिफारिश की कि किसी ध्यानाकर्षण पर स्पष्टीकरण मांगने के संबंध में प्रत्येक दल/समूह में से एक-एक सदस्य को अनुमति देने की पिछली प्रथा को जारी रखा जाए।[137]
>
> एक बार सूची में से छह सदस्यों के बोलने के बाद सभापति ने कहा कि वे अन्य दलों में से भी एक-एक सदस्य को अनुमति देंगे।[138] एक दूसरे अवसर पर सभापति का कहना था: "मैं यह देखने का प्रयास कर रहा हूं कि प्रत्येक राजनैतिक दल को, जो जहां पर है, मौका मिले। मैं एक ही दल के तीन या चार सदस्यों को खड़े होने और बोलने की अनुमति नहीं दे सकता।"[139] एक बार उपसभापति ने टिप्पणी की: "एक पिछली परंपरा का अनुसरण करते हुए मैंने प्रत्येक दल में से एक सदस्य को बुलाया है। कांग्रेस दल में से पांच सदस्य हैं, मैंने एक को बुलाया है।"[140]

ध्यानाकर्षण के संबंध में स्पष्टीकरण मांगने के लिए सदस्यों के नामों को पुकारने में जिस प्रथा का अनुसरण किया जाता है वह निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगी।

उदाहरण

> मान लीजिए कार्यावलि में ध्यानाकर्षण की मद के अंतर्गत 15 सदस्यों के नाम निम्नलिखित क्रम से दिए गए हैं—
>
> > पहले 3 'क' दल के हैं, अगले 2 'ख' दल के हैं अगले 4 'ग' दल के हैं अगले 2 पुन: 'क' दल के हैं, अगला 1 'घ' दल का है, अगले 2 'ङ' दल के हैं और अंतिम 1 पुन: 'ख' दल का है।
>
> पहला सदस्य जो 'क' दल का है सबसे पहले ध्यान आकर्षित करेगा और ध्यानाकर्षण के उत्तर में मंत्री के वक्तव्य के बाद स्पष्टीकरण मांगेगा। सूची में उल्लिखित उसी दल के अन्य सदस्यों को नहीं बुलाया जाएगा और अगला सदस्य 'ख' दल में से बुलाया जायेगा और यही क्रम चलता रहेगा। ध्यानाकर्षण की मद के अंतर्गत उल्लिखित सदस्यों के दलों में से प्रत्येक दल के एक-एक सदस्य को निबटाने के बाद सभापति अन्य सदस्यों द्वारा स्पष्टीकरण मांगने के अनुरोध पर विचार कर सकता है। यदि किसी दल का नेता/सचेतक कार्यावलि में उल्लिखित सदस्य के स्थान पर उस सदस्य को लाना चाहता है जिसके नाम का कार्यावलि में उल्लेख नहीं किया गया है तो वह कार्यावलि में दर्ज अपने दल के सदस्य की बारी आने पर नहीं बल्कि कार्यावलि में दर्ज सभी नामों के निबटाये जाने पर ही बोल सकेगा।

इस संदर्भ में नियम समिति ने इस सुझाव पर विचार किया कि ध्यानाकर्षण की मद के अंतर्गत सदस्यों के नामों की संख्या पांच तक सीमित कर देनी चाहिए और इसका निर्धारण बैलट द्वारा होना चाहिए और केवल उन्हीं सदस्यों को स्पष्टीकरण के लिए बुलाया जाना चाहिए जिनके नाम कार्यावलि में दर्ज हैं और दल की सूची के आधार पर किसी अन्य सदस्य को नहीं बुलाया जाना चाहिए। समिति के निदेशानुसार इस सुझाव को राज्य सभा में विभिन्न दलों और समूहों में परिचालित किया गया ताकि उस पर उनकी राय ली जा सके। नेताओं ने सुझाव को स्वीकार नहीं किया। अत: नियम समिति ने सिफारिश की कि नामों को मिलाने और स्पष्टीकरण मांगने के लिए सदस्यों को बुलाने की वर्तमान प्रथा जारी रह सकती है।[141]

स्पष्टीकरणों का स्थगित किया जाना

कभी-कभी विषय के महत्व को देखते हुए या ध्यानाकर्षण के उत्तर में मंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य का सदस्यों द्वारा अध्ययन किए जा सकने के लिए सभा उस पर स्पष्टीकरण मांगे जाने को स्थगित करने का निर्णय ले सकती है।[142]

स्पष्टीकरण मांगे जाने के लिए समय-सीमा

अगस्त, 1970 में सभापति के साथ दलों/समूहों के नेताओं की जो बैठक हुई थी उसमें यह निर्णय किया गया था कि ध्यानाकर्षण आरंभ करने वाले सदस्य को पांच मिनट से अधिक समय नहीं लेना चाहिए और स्पष्टीकरण मांगने के लिए अन्य सदस्यों को दिया जाने वाला समय सभापीठ के विवेक के अधीन होना चाहिए।[143] इसके बाद प्रक्रिया को सुचारु बनाने के लिए 19 जून, 1980 को नेताओं की जो बैठक हुई उसमें स्पष्टीकरण मांगने के लिए समय-सीमा के संबंध में आम राय यह थी कि ध्यानाकर्षण आरंभ करने वाले सदस्य को सात मिनट से अधिक समय नहीं लेना चाहिए और सभापीठ द्वारा बुलाए गए प्रत्येक सदस्य

को पांच मिनट से अधिक समय नहीं लेना चाहिए और स्वयं को स्पष्टीकरण मांगने तक ही सीमित रखना चाहिए और लंबे भाषण नहीं देने चाहिए।[144]

स्पष्टीकरणों का उत्तर

अस्सी के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक प्रथा यह थी कि किसी सदस्य द्वारा मांगे गए प्रत्येक स्पष्टीकरण के लिए मंत्री को अलग से उसका उत्तर देना पड़ता था।[145] तथापि, कभी-कभी सभा सभी स्पष्टीकरणों के अंत में मंत्री द्वारा उनका उत्तर देने पर सहमत हो जाया करती थी।

> एक बार अलीगढ़ की घटनाओं के विशेष संदर्भ में देश में सांप्रदायिक दंगे नामक ध्यानाकर्षण के विषय के महत्व को देखते हुए यह सुझाव दिया गया कि प्रधान मंत्री को सभी स्पष्टीकरणों का उत्तर अंत में देना चाहिए। इस सुझाव को स्वीकार कर लिया गया।[146]

> एक दूसरे अवसर पर सभापति ने घोषणा की कि जैसीकि नेताओं की सहमति है, ध्यानाकर्षण एक घंटे के भीतर समाप्त हो जाना चाहिए और किसी सदस्य को पांच मिनट से अधिक समय नहीं लेना चाहिए। भूतपूर्व महासचिव और तत्कालीन सदस्य श्री बी.एन. बनर्जी ने टिप्पणी की: "ध्यानाकर्षण में सामान्य प्रथा यह है कि सदस्यगण बोलते हैं और मंत्री उत्तर देते हैं। चूंकि आप समय को इसलिए सीमित कर रहे हैं ताकि सदस्यगण अपने विचार व्यक्त कर सकें इसलिए यह अधिक अच्छा होगा कि सदस्यगण अपनी बात कहें और एक विशेष मामले के रूप में मंत्री अपना उत्तर अंत में दें।" सभापति ने मंत्री को निदेश दिया कि वे इन बातों का ध्यान रखें और सभी बातों का उत्तर एक साथ दें।[147]

15 सितम्बर, 1981 को हुई नेताओं की बैठक में इस पर सहमति हुई कि एक विशेष मामले के रूप में मंत्री सभी स्पष्टीकरणों के उत्तर अंत में देंगे।[148] उपसभापति ने 20 अक्तूबर, 1982 को दिल्ली विश्वविद्यालय में हड़ताल से संबंधित ध्यानाकर्षण के आरंभ में घोषणा की:

> इस पर सहमति हो गई कि सदस्यगण अपनी बात कहेंगे, प्रश्न पूछेंगे और स्पष्टीकरण मांगेंगे और अंत में एक ही बार में उत्तर दिया जाएगा...इस पर सभी दल सहमत हैं...नेता सहमत हैं।[149]

किन्तु 1983 में प्रत्येक स्पष्टीकरण का अलग-अलग उत्तर देने की प्रथा का पुन: अनुसरण किया जाने लगा।[150] एक बार सभी स्पष्टीकरणों का एक साथ उत्तर देने के सुझाव पर सहमति नहीं हुई।[151] 15 मार्च, 1983 को कुछ समय तक अलग-अलग उत्तर दिए जाते रहे और अंतिम चरण में उपसभाध्यक्ष के सुझाव पर "समय बचाने की आवश्यकता के कारण" स्पष्टीकरणों का एकमुश्त उत्तर दिया गया।[152] 21 दिसम्बर, 1983 को ध्यानाकर्षण आरंभ करने वाले सदस्य द्वारा मांगे गए स्पष्टीकरणों के प्रथम उत्तर के बाद उपसभापति के सुझाव पर अन्य सदस्यों के स्पष्टीकरणों का इकट्ठा उत्तर दिया गया।[153] एक बार सदस्यों ने एक दिन स्पष्टीकरण मांगे और मंत्री ने उनका उत्तर किसी बाद के दिन दिया।[154] एक अन्य अवसर पर, जो संभवत: एक मात्र ऐसा अवसर था, सभा द्वारा साढ़े तीन घंटों तक ध्यानाकर्षण पर चर्चा होने के बाद चर्चा बंद कर दी गई क्योंकि संबंधित मंत्री को लोक सभा में अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान के लिए जाना था। चर्चा का कोई निष्कर्ष नहीं निकला।[155]

वर्तमान प्रथा, जिसका 1984 से अनुसरण किया जा रहा है, यह है कि सदस्यों द्वारा मंत्री के वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मांगे जाने के पश्चात् मंत्री एक साथ ही उन सबका उत्तर अंत में देता है।[156]

वक्तव्यों का संशोधन या मुद्दों के बारे में और स्पष्टीकरण

कई बार ऐसा हुआ है कि मंत्रियों ने ध्यानाकर्षण के उत्तर में या उस पर चर्चा के दौरान या मुद्दों को और स्पष्ट करने के लिए उनके द्वारा किए गए पिछले वक्तव्यों में संशोधन करने के लिए वक्तव्य दिए हैं। ऐसे वक्तव्य सभा में दिए गए हैं या सभापटल पर रखे गए हैं। ऐसे वक्तयों को कार्यावलि में उल्लिखित ध्यानाकर्षण के बाद, यदि कोई हों, या प्रश्नों के समय के समाप्त होने के तुरंत बाद देने या सभापटल पर रखने की अनुमति दी गई है।

तत्कालीन उप प्रधान मंत्री और वित्त मंत्री ने भारतीय दूतावास, वाशिंगटन के प्रचार सलाहकार के ठेके के नवीकरण से संबंधित ध्यानाकर्षण के उत्तर में 29 मार्च, 1967 को राज्य सभा में एक वक्तव्य दिया। उन्होंने इस वक्तव्य के संबंध में उठाए गए कतिपय मुद्दों के संबंध में 3 अप्रैल, 1967 को एक वक्तव्य दिया।[157]

31 जुलाई, 1967 को ध्यानाकर्षण के द्वारा उठाए गए मुद्दे से उत्पन्न होने वाले कतिपय प्रश्नों का उत्तर देते हुए पेट्रोलियम तथा रसायन मंत्रालय में राज्य मंत्री ने एक वक्तव्य दिया। उन्होंने 18 अगस्त, 1967 को इस आश्वासन के संबंध में एक वक्तव्य दिया।[158]

28 अगस्त, 1970 को गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने 3 अगस्त, 1970 को किए गए ध्यानाकर्षण के उत्तर में दिए गए अपने पिछले वक्तव्य के संशोधनार्थ एक वक्तव्य दिया।[159]

वित्त मंत्रालय में उपमंत्री ने 19 मई, 1970 को किए गए ध्यानाकर्षण के उत्तर में अपने पिछले वक्तव्य के संशोधनार्थ 3 सितम्बर, 1970 को एक वक्तव्य दिया।[160]

शिक्षा तथा युवा सेवाओं के मंत्री ने 10 अगस्त, 1970 को किए गए ध्यानाकर्षण के उत्तर में दिए गए अपने पिछले वक्तव्य के संशोधनार्थ एक वक्तव्य 4 सितम्बर, 1970 को सभापटल पर रखा।[161]

पेट्रोलियम तथा रसायन और खान तथा धातु मंत्रालय में राज्य मंत्री ने 17 मार्च, 1970 को किए गए ध्यानाकर्षण के उत्तर में दिए गए वक्तव्य से उत्पन्न होने वाले कतिपय प्रश्नों के उत्तर दिए। उन्होंने अपने उत्तरों के संशोधनार्थ 11 नवम्बर, 1970 को एक वक्तव्य दिया।[162]

30 जुलाई, 1971 को कार्यावलि में दर्ज ध्यानाकर्षण के निपटाए जाने के बाद गैर-सरकारी क्षेत्र में लघु इस्पात कारखानों की स्थापना के लिए औद्योगिक लाइसेंस देने के मुद्दे पर इस्पात तथा खान मंत्री द्वारा राज्य सभा में 10 जून, 1971 को ध्यानाकर्षण वक्तव्य के दौरान दिए गए उत्तर और लोक सभा में 27 मई, 1971 को अतारांकित प्रश्न सं. 472 के उत्तर के बीच विसंगतियां होने के बारे में एक सदस्य को स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति दी गई। संबंधित मंत्री ने उठाए गए प्रश्नों का उत्तर दिया।[163]

ध्यानाकर्षण समाप्त करने में लगने वाला समय

राज्य सभा में दलों/समूहों के नेताओं की 1970 में हुई एक बैठक में अन्य बातों के साथ यह निर्णय किया गया कि सामान्यत: एक ध्यानाकर्षण में तीस मिनट से अधिक समय नहीं लगना चाहिए और किसी भी स्थिति में उसे सभा के मध्याह्न भोजन के अवकाश के लिए स्थगित होने से पहले निपटा लिया जाना चाहिए। सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति ने सिफारिश की कि इस प्रयोजन के लिए एक घंटे से अधिक समय नहीं लिया जाना चाहिए। इस समय के समाप्त होने के बाद यह निर्णय करना पूर्णत: सभापीठ के विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए कि चर्चा में भाग लेने के इच्छुक किसी अन्य सदस्य को अनुमति दी जाए या नहीं। किसी भी स्थिति में ध्यानाकर्षण की व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि कार्यावलि में विधायी या अन्य नियमित कार्य के अलावा अन्य सभी फुटकर कार्यों को

सभा के मध्याह्न भोजन के अवकाश के लिए स्थगित होने के पहले निपटा लिया जाए।[164]

इन सिफारिशों के होते हुए भी कई बार ध्यानाकर्षण के विषय सभा के मध्याह्न भोजन के अवकाश के बाद भी चलता रहा है या सारे दिन चलते रहे हैं या विषय के महत्व को देखते हुए या सभा की आम राय से अगले दिन या उससे भी अगले दिन तक चलते रहे हैं।[165] ध्यानाकर्षण के कुछ महत्वपूर्ण विषय जिन पर सभा में चार घंटे या उससे अधिक समय लगा इस प्रकार थे:

> जीवन बीमा निगम के विकास अधिकारियों की हड़ताल (4.04 घंटे);[166] जमशेदपुर में हुए उपद्रव (दो दिन-9.38 घंटे);[167] अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को हथियारों की सहायता (4.34 घंटे);[168] बिहार शरीफ में और उसके आसपास हुई सांप्रदायिक घटनाएं (4.32 घंटे);[169] महाराष्ट्र के कतिपय न्यासों को आयकर से छूट देने में अनियमितताएं (दो दिन-5.32 घंटे);[170] तमिलनाडु में बड़े पैमाने पर हरिजनों को इस्लाम धर्म ग्रहण कराया जाना (4.46 घंटे);[171] निर्वाचन विधि की कमियां (4 घंटे);[172] फिल्मों में हिंसा और अश्लीलता (4.30 घंटे);[173] बाढ़ और सूखा (4 घंटे);[174] जम्मू और कश्मीर में हुई घटनाएं (6.08 घंटे);[175] पंजाब समझौते का अमल में न लाया जाना (4.11 घंटे);[176] जी.एन.एल.एफ. का आंदोलन (4.43 घंटे);[177] फेयरफैक्स एजेन्सी की नियुक्ति (5.16 घंटे);[178] जन-संचार माध्यमों का कार्यकरण (4.16 घंटे);[179] सांप्रदायिक घटनाएं (5.00 घंटे);[180] आवश्यक वस्तुओं की अपर्याप्त आपूर्ति (5.24 घंटे);[181] सांप्रदायिक स्थिति (तीन दिन - 9.14 घंटे);[182] हथकरघा बुनकरों की दुर्दशा (4.17 घंटे);[183] मूल्य स्थिति (4.53 घंटे);[184] सूखे की स्थिति (4.37 घंटे);[185] मुम्बई में 12 मार्च, 1993 को हुए बम विस्फोट (6.20 घंटे);[186] जम्मू-कश्मीर की स्थिति (5.22 घंटे);[187] बाढ़ की स्थिति (4.03 घंटे);[188] सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में निवेश का कम किया जाना (तीन दिन-4.00 घंटे);[189] सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों के लिए निधियां (4.51 घंटे);[190] ऊर्जा क्षेत्र में विदेशी निवेश के संदर्भ में सरकार द्वारा दी गई प्रति-गारंटी और आश्वासन विषयक प्रणाली (4.52 घंटे);[191] पुरुलिया में विमानों द्वारा घातक शस्त्रों के गिराये जाने से राष्ट्रीय सुरक्षा को उत्पन्न खतरे की स्थिति (4.05 घंटे);[192] पूर्वोत्तर राज्यों में बढ़ते हुए विद्रोह की स्थिति (5 घंटे);[193] पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा 45,000 करोड़ रुपये की राशि का 'वैयक्तिक लैजर खाता' में अंतरण (4.30 घंटे);[194] एयर इंडिया का घटिया कार्य-निष्पादन और कुप्रबंध (4.14 घंटे);[195] जम्मू और कश्मीर राज्य के संबंध में आंतरिक सुरक्षा संबंधी समस्या (4.13 घंटे);[196] बाल्को (बीएएलसीओ) की असामान्य रूप से कम कीमत पर बिक्री (6.47 घंटे);[197] स्टॉक मार्केट में अत्यधिक अस्थिरता (4.35 घंटे);[198] सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेश नीति (4.51 घंटे);[199] राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संदर्भ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा एनसीईआरटी पाठ्यक्रम संरचना के परिपत्र (5.23 घंटे);[200] अयोध्या के विवादित स्थल पर विश्व हिंदू परिषद द्वारा जबरदस्ती घुस जाना, जिसके परिणामस्वरूप उच्चतम न्यायालय के दिशा-निर्देशों की अवहेलना (3.26 घंटे);[201] श्रमिकों में बढ़ते असंतोष से उत्पन्न स्थिति (3.28 घंटे);[202] कावेरी और कृष्णा नदियों के अंतर राज्ययीय नदी जल बंटवारा संबंधी विवादों के फलस्वरूप उत्पन्न हालात (2.59 घंटे);[203] विदेशी चैनलों को जोड़ने हेतु कंडीशनल एक्सेस सिस्टम और मानदंड का क्रियान्वयन (4.00 घंटे);[204] पेट्रोलियम उत्पादों के दामों में अतिशय वृद्धि (3.29 घंटे);[205] अप्रत्याशित वर्षा के फलस्वरूप मुंबई और महाराष्ट्र के अन्य हिस्सों में जन-जीवन, संपत्ति और कार्यों को नुकसान (4.09 घंटे);[206] और 1984 के दंगा पीड़ितों को दी जाने वाली राहत में प्रगति (4.27 घंटे)[207]।

ध्यानाकर्षण को चर्चा में परिवर्तित किया जाना

कई बार विषय के महत्व या सभा की आम राय या लगातार मांग को देखते हुए ध्यानाकर्षणों का संबंधित मंत्रियों द्वारा उत्तर दिए जाने के बाद ऐसे ध्यानाकर्षणों को प्रस्तावों के रूप में[208] या अल्पकालिक चर्चा के रूप में[209] परिवर्तित कर दिया गया है। ऐसी चर्चाएं ध्यानाकर्षण करने के दिन या उसके अगले दिन या उसके बाद के दिन को हुई हैं।

चुनावों में विदेशी धन के उपयोग के संबंध में आसूचना ब्यूरो के प्रतिवेदन से संबंधित ध्यानाकर्षण के उत्तर में गृह मंत्री ने बताया कि प्रतिवेदन हाल ही में प्राप्त हुआ है और उस पर ध्यानपूर्वक विचार किया जा रहा है और सरकार को उसके आधार पर निष्कर्ष निकालने में समय लगेगा। सभापति ने इस वक्तव्य के संबंध में कुछ और कहने की अनुमति नहीं दी और सभा को यह सूचना दी कि इस पर उसी दिन अपराह्न 4.00 बजे एक चर्चा होगी। यह चर्चा उसी सदस्य ने आरंभ की जिसने ध्यानाकर्षण किया था।[210]

एक सदस्य ने देश में सी.आई.ए. की गतिविधियों के बारे में सी.आई.ए. के एक भूतपूर्व व्यक्ति द्वारा किए गए रहस्योद्घाटनों की ओर ध्यान आकर्षित किया और मंत्री ने उसके संबंध में एक वक्तव्य दिया। स्पष्टीकरणों के दौरान एक सदस्य ने सुझाव दिया कि सभा में इस मामले पर पूर्ण रूप से चर्चा होनी चाहिए। सभापति इस सुझाव पर सहमत हो गए और ध्यानाकर्षण को आगे नहीं बढ़ाया गया।[211] तदनुसार एक सदस्य द्वारा रखे गए प्रस्ताव के बाद मामले पर चर्चा हुई।[212]

पश्चिमी बंगाल विधान सभा के भीतर पुलिसकर्मियों द्वारा बलात् प्रवेश किए जाने से संबंधित ध्यानाकर्षण के बीच में कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया कि मामले पर पूर्ण रूप से चर्चा करना आवश्यक है। इस सुझाव पर सहमति हो गई और ध्यानाकर्षण को आगे नहीं बढ़ाया गया। अगले दिन इस विषय पर अल्पकालिक चर्चा हुई।[213]

राज्य सभा के द्विवार्षिक चुनावों में धन-बल के उपयोग के आरोपों और संसदीय लोकतंत्र के कार्यकरण और उसकी सुरक्षा के संबंध में उसके निहितार्थों के बारे में एक ध्यानाकर्षण के उत्तर में मंत्री ने एक वक्तव्य दिया। कुछ सदस्यों के सुझाव पर सभापति इस विषय पर चर्चा कराने पर सहमत हो गए। 4 अप्रैल, 1970 को सभा के अनियत दिन के लिए स्थगित होने के पूर्व उपसभाध्यक्ष ने घोषणा की कि चर्चा अगले सत्र (72वां) में होगी। तथापि, 73वें सत्र के दौरान 28 जुलाई, 1970 को इस पर एक अल्पकालिक चर्चा हुई।[214]

शरणार्थियों के आने के संबंध में एक ध्यानाकर्षण 27 जुलाई, 1970 के लिए गृहीत हुआ और मंत्री ने उसके उत्तर में एक वक्तव्य दिया। सभा में मांग उठी कि इस विषय पर सम्पूर्ण रूप से विचार हो। सभापति ने उसी दिन पत्रों के सभापटल पर रखे जाने के बाद इस विषय पर चर्चा कराने की अनुमति दे दी। उस सदस्य ने, जो पहले इस विषय की ओर ध्यान आकर्षित कर चुके थे, शरणार्थियों के आगमन पर विचार कराने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया। चर्चा के बाद सभा ने प्रस्ताव को संशोधित रूप से स्वीकृत किया।[215]

तमिलनाडु और पांडिचेरी में बाढ़ के कारण जान-माल की भारी हानि की ओर संबंधित सदस्य द्वारा ध्यान आकर्षित किए जाने के पहले सभापति ने सूचित किया कि अनेक सदस्यों के सुझाव पर वे ध्यानाकर्षण में देश के कतिपय भागों में बाढ़ की स्थिति को भी शामिल करके उसके दायरे को बढ़ाने के लिए सहमत हो गए हैं ताकि ध्यानाकर्षण के अंतर्गत तमिलनाडु में आई बाढ़ ही नहीं बल्कि सूखे और बाढ़ दोनों से उत्पन्न स्थिति आ सके। अत: संबंधित सदस्य ने इसी प्रकार विषय की ओर ध्यान आकर्षित किया। इसके बाद सभापति ने यह भी घोषणा की कि चूंकि दायरे को बढ़ा दिया गया है इसलिए इस विषय को ध्यानाकर्षण के रूप में नहीं बल्कि अल्पकालिक चर्चा के रूप में लिया जाना चाहिए। मंत्री द्वारा वक्तव्य देने के बाद उपसभापति ने बताया कि चूंकि यह अल्पकालिक चर्चा है इसलिए सदस्यों के नामों को दल-वार पुकारा जाएगा किन्तु जिस सदस्य ने ध्यानाकर्षण किया है वह चर्चा को भी आरंभ करेगा। इसके पश्चात् ध्यानाकर्षण पर अल्पकालिक चर्चा के रूप में बहस हुई।[216]

एक बार मूल्य स्थिति के संबंध में एक ध्यानाकर्षण सूचना गृहीत करके कार्यावलि में शामिल की गई। किन्तु संशोधित कार्यावलि में विषय का उल्लेख अल्पकालिक चर्चा के अंतर्गत किया गया था। ध्यानाकर्षण कुछ सदस्यों के नाम पर था, अल्पकालिक चर्चा कुछ और सदस्यों के नाम पर थी।[217]

नई दिल्ली में 6 अप्रैल, 1970 को पुलिस द्वारा एस.एस.पी. के प्रदर्शनकारियों पर लाठी चार्ज करने और उन पर आंसू गैस छोड़ने से संबंधित ध्यानाकर्षण के उत्तर में गृह मंत्री ने 27 अप्रैल, 1970

को एक वक्तव्य दिया। 28 अप्रैल, 1970 को एक सदस्य ने गृह मंत्री के वक्तव्य पर विचार करने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया। प्रस्ताव निम्नलिखित रूप से स्वीकृत हुआ:

> 27 अप्रैल, 1970 को राज्य सभा में गृह मंत्री द्वारा दिये गए वक्तव्य पर विचार किया जाए और उस पर विचार करने के बाद यह सभा नई दिल्ली में पटेल चौक में और उसके आस-पास हुए एस.एस.पी. के प्रदर्शन के संबंध में 6 अप्रैल, 1970 की हुई घटनाओं पर गंभीर चिंता व्यक्त करती है।[218]

कभी-कभी सभापति किसी ध्यानाकर्षण को औपचारिक रूप से अल्पकालिक चर्चा में परिवर्तित किए बिना ही सदस्यों की इच्छा को देखते हुए और अधिक सदस्यों को बोलने की अनुमति दे सकते हैं।[219]

न्यायालय में विचाराधीन मामले पर ध्यानाकर्षण

केरल में मध्यावधि चुनाव कराने के सरकार के निर्णय से संबंधित एक ध्यानाकर्षण के बारे में इस आधार पर औचित्य प्रश्न उठाया गया कि मामला उच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है। सभापति ने निर्णय दिया:

ध्यानाकर्षण कोई प्रस्ताव नहीं है। इस पर चर्चा नहीं होती। जो सदस्य सरकार का ध्यान आकर्षित करते हैं वे सरकार से यह जानना चाहते हैं कि तथ्य क्या हैं और सरकार की स्थिति क्या है... कोई चर्चा नहीं की जाती। ध्यानाकर्षण में सरकार द्वारा स्पष्टीकरण के लिए केवल प्रश्न पूछे जाते हैं।[220]

एक अन्य अवसर पर एक अखिल भारतीय प्रवेश परीक्षा कराने के भारतीय चिकित्सा परिषद के निर्णय से संबंधित ध्यानाकर्षण के गृहीत किए जाने के बारे में मंत्री ने ध्यानाकर्षण के उत्तर में वक्तव्य देते हुए बताया कि मामला न्यायालय में विचाराधीन है और उन्होंने सचिवालय को पहले ही इसकी सूचना दे दी है और वे यह नहीं जानती कि उसे गृहीत क्यों किया गया है। तथापि, चूंकि ध्यानाकर्षण गृहीत कर लिया गया था इसलिए मंत्री को वक्तव्य देना पड़ा। किन्तु करीब एक घंटे तक चले स्पष्टीकरणों के उत्तर में मंत्री ने सिर्फ यही कहा: "मैं अपने वक्तव्य के अलावा और कुछ नहीं कहूंगी...क्योंकि मामला न्यायालय में विचाराधीन है। मैं माननीय सदस्यों से अनुरोध करूंगी कि वे इस पर आग्रह न करें।"[221]

ध्यानाकर्षण के माध्यम से उठाए गए महत्वपूर्ण विषय

राज्य सभा नियमों में ध्यानाकर्षण संबंधी प्रक्रिया का समावेश हुए पांच दशकों से अधिक समय हो गया है तब से सदन में ध्यानाकर्षण के माध्यम से अनेक विषय उठाए गए हैं। सभा में इस प्रकार उठाए गए संवैधानिक, निर्वाचन संबंधी, न्यायिक और अन्य विविध विषयों में से कुछ विषय नीचे दिये गए हैं:

(क) संवैधानिक विषय

मध्यावधि चुनावों में केरल विधान सभा के लिए निर्वाचित कई सदस्यों का निरुद्ध किया जाना और उस राज्य में सरकार बनाए जाने की सामान्य संवैधानिक प्रक्रिया के अनुसरण पर उसका प्रभाव;[222] 26 फरवरी, 1966 को राजस्थान विधान सभा में राजस्थान के राज्यपाल के अभिभाषण के समय उनके द्वारा विधान सभा के कतिपय सदस्यों को बाहर निकालने का आदेश दिए जाने की कार्यवाही के संवैधानिक निहितार्थ;[223] राजस्थान के राज्यपाल द्वारा उस राज्य में गैर-कांग्रेसी दलों को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करने से इंकार किया जाना और वहां पर राष्ट्रपति के शासन का लागू किया जाना;[224] 20 जुलाई, 1967 को मध्य प्रदेश के राज्यपाल द्वारा विधान सभा का अचानक सत्रावसान

किए जाने से उस राज्य में उत्पन्न हुआ संवैधानिक संकट;[225] पश्चिमी बंगाल में संवैधानिक संकट;[226] पंजाब की विधान सभा में बजट के लंबित रहने पर भी विधान सभा अध्यक्ष द्वारा विधान सभा को 2 महीने के लिए स्थगित किए जाने के कारण उस राज्य में उत्पन्न हुआ संवैधानिक संकट;[227] पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल को वापस बुलाए जाने की मांग के संबंध में केन्द्र के रवैये के संवैधानिक निहितार्थ;[228] उत्तर प्रदेश विधान सभा के कुछ सदस्यों को उर्दू भाषा में शपथ दिलाए जाने/प्रतिज्ञान कराए जाने से इनकार किया जाना,[229] मध्य प्रदेश में संवैधानिक संकट;[230] 31 जुलाई, 1969 को पश्चिमी बंगाल विधान सभा की बैठक के दौरान उसके भीतर पुलिसकर्मियों का बलात् प्रवेश;[231] तमिलनाडु में संवैधानिक संकट;[232] नागालैंड विधान सभा द्वारा बजट पारित किए बिना ही उसे अनियत दिन तक स्थगित कर दिए जाने के कारण उत्पन्न हुआ संवैधानिक संकट;[233] जम्मू-कश्मीर के मुख्य मंत्री की सलाह पर उस राज्य की विधान सभा का भंग किया जाना;[234] असम के राज्यपाल द्वारा असम विधान सभा का सत्रावसान किए जाने और राज्य की संचित निधि में से धन का विनियोग करने के लिए अध्यादेश जारी किए जाने के कारण उस राज्य में उत्पन्न संवैधानिक संकट;[235] राज्यों में अध्यादेशों का जारी किया जाना और पुन: जारी किया जाना;[236] आन्ध्र प्रदेश विधान सभा द्वारा उस राज्य की विधान परिषद को समाप्त करने के लिए संकल्प का पारित किया जाना;[237] राज्य विधान-मंडलों द्वारा पारित और राज्यपालों द्वारा राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित विधेयकों पर सहमति देने में विलंब;[238] जम्मू-कश्मीर विधान सभा की मूर्छित अवस्था का जारी रहना;[239] और आन्ध्र प्रदेश विशेष शक्तियां (प्रेस) विधेयक के पुर:स्थापन के लिए भारत सरकार द्वारा आन्ध्र प्रदेश सरकार को अनुमति।[240]

(ख) निर्वाचन संबंधी विषय

राजस्थान के नोहर विधान सभा निर्वाचन-क्षेत्र में उप-चुनाव का स्थगित किया जाना;[241] दिल्ली नगर निगम के एक उप-चुनाव के लिए दिल्ली के सदर संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र में बस्ती जुलाहान वार्ड की निर्वाचन नामावलियों का संशोधन;[242] केरल में मध्यावधि चुनाव कराने का निर्णय;[243] चंडीगढ़ में पाए गए अधिशेष बैलट पत्रों के बारे में उप-मुख्य निर्वाचन आयुक्त द्वारा की गई जांच के परिणाम;[244] कुछ राज्यों में चुनावों के दौरान मतदाताओं को मतदान करने से रोकने और हिंसा की घटनाएं;[245] संसद् के किसी उप-चुनाव को पूरा करने के लिए एक निर्धारित अवधि का उपबंध न होने की दृष्टि से चुनाव संबंधी कानून की कमियां;[246] और दिल्ली महानगर परिषद के लिए चुनाव कराने और गढ़वाल संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र में उप-चुनाव कराने में विलंब।[247]

(ग) न्यायिक विषय

भारत रक्षा नियमों के लगातार प्रयोग के बारे में जी. सदानन्दन बनाम केरल राज्य तथा अन्य के मामले (रिट याचिका 1965 की सं. 136) में उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने निर्णय में की गई टिप्पणियां;[248] कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा न्यायपालिका की हैसियत, प्रतिष्ठा, वेतन एवं अन्य लाभों तथा उसकी गरिमा को कम करने वाली विभिन्न सेवा शर्तों के कारण त्यागपत्र देने का समाचार;[249] पंजाब विनियोग अधिनियमों की विधिमान्यता के संबंध में उच्चतम न्यायालय का निर्णय और विधान-मंडल तथा पीठासीन अधिकारियों की शक्तियों के विशिष्ट संदर्भ में उसके निहितार्थ;[250] 13 मार्च, 1968 को उच्चतम न्यायालय के सत्र की कार्यवाही के दौरान मुख्य न्यायमूर्ति के कक्ष में न्यायमूर्ति श्री ए.एन. ग्रोवर को छुरा मारा जाना;[251] नरेशों की मान्यता समाप्त करने वाले राष्ट्रपति के आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका पर उच्चतम न्यायालय का निर्णय;[252] मुल्की नियमों के संबंध में उच्चतम न्यायालय का निर्णय;[253] इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का मनमाने ढंग से कर्नाटक उच्च न्यायालय को स्थानांतरण;[254] अतिरिक्त और जिला सत्र-न्यायाधीशों द्वारा सामूहिक रूप से आकस्मिक छुट्टी लेने का विचार और संसद् भवन तक उनकी विरोध यात्रा;[255] बी.एच.ई.एल.–सीमेन्स करार के बारे में संसद्-सदस्यों को सूचना देने के कथित आरोप के आधार पर बी.एच.ई.एल. के प्रबंधक पर मुकदमा चलाया जाना;[256] सरकारी एजेंसियों द्वारा कथित रूप से परेशान किए जाने

के कारण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्रीवास्तव का इस्तीफा;[257] और उच्चतम न्यायालय द्वारा इस आधार पर एक उम्मीदवार के निर्वाचन को रद्द करने का निर्णय दिया जाना कि केरल के परूर विधान सभा निर्वाचन-क्षेत्र के कुछ मतदान केन्द्रों में इलेक्ट्रॉनिक मशीन का इस्तेमाल किया गया था जिसके लिए कोई कानूनी स्वीकृति नहीं थी।[258]

(घ) विविध विषय

पंजाब के मुख्य मंत्री के टेलीफोन की टैपिंग;[259] महात्मा गांधी की हत्या करने की नाथूराम गोडसे की योजना के संबंध में पुणे के एक भूतपूर्व संपादक द्वारा दिया गया वक्तव्य;[260] सरदार प्रताप सिंह कैरों की हत्या की जांच की प्रगति;[261] एक अमेरिकी नागरिक द्वारा गीतांजलि की मूल पांडुलिपि का खरीदा जाना;[262] भारत में निष्क्रांत संपत्ति के महा-अभिरक्षक के समक्ष ज़ेड. ए. भुट्टो का यह वक्तव्य कि वह भारतीय राष्ट्रिक थे;[263] लोक लेखा समिति के 50वें प्रतिवेदन में की गई टिप्पणियों के बारे में 19 मई, 1966 को राज्य सभा में सभा के नेता का आश्वासन और सम्बन्धित अधिकारी को ब्रुसेल्स में भारत के राजदूत के रूप में नियुक्त करने का सरकार का निर्णय;[264] कच्छ विवाद से संबंधित महत्वपूर्ण दस्तावेजों का गुम होना;[265] केन्द्रीय जांच ब्यूरो के प्रतिवेदन की एक अधिकृत प्रति को ओडिशा सरकार को देने में केन्द्रीय गृह मंत्रालय की अनिच्छा और भूतपूर्व मुख्य मंत्री श्री बीजू पटनायक के विरुद्ध कतिपय आरोपों के संबंध में मंत्रिमंडलीय उप-समिति के निष्कर्ष;[266] केन्द्रीय जांच ब्यूरो के इस निष्कर्ष के बारे में न्यूयॉर्क टाइम्स में छपा समाचार कि अमेरिका ने पिछले आम चुनाव में भारी रकम खर्च की थी;[267] मंगला बांध का निर्माण-कार्य पूरा होने पर प्रधान मंत्री द्वारा पाकिस्तान के राष्ट्रपति को बधाई संदेश;[268] तमिलनाडु के कतिपय भागों में हिन्दी-विरोधी प्रदर्शनकारियों द्वारा राष्ट्र-ध्वज और संविधान का जलाया जाना;[269] नई दिल्ली के अमेरिकी दूतावास द्वारा दिल्ली के एक मजिस्ट्रेट के समन को लेने से इन्कार किया जाना;[270] उप-विधि मंत्री श्री मोहम्मद यूनुस सलीम के प्रति विधि मंत्रालय (विधिक-कार्य विभाग) के सचिव का अपमानजनक व्यवहार;[271] माओ के विचारों के आधार पर भारत की एक कम्युनिस्ट पार्टी का गठन;[272] संविधान को भीतर से निष्प्रभावी बनाने के बारे में केरल के मुख्य मंत्री का वक्तव्य;[273] गांधीजी की मूर्ति को इंडिया गेट पर न लगाकर किसी अन्य स्थान पर लगाने का निर्णय;[274] संविधान को समाप्त करने, देश में राष्ट्रपति शासन लागू करने और थल सेना द्वारा प्रशासन चलाए जाने के लिए जनरल के.एम. करियप्पा का सुझाव;[275] तमिलनाडु के लिए एक अलग झंडे की व्यवस्था के लिए उस राज्य सरकार का अनुरोध;[276] पश्चिम बंगाल में पाकिस्तानी जासूसों के गिरोह की गतिविधियां और उस राज्य की सरकार के कुछ भूतपूर्व मंत्रियों और उस राज्य के एक संसद्-सदस्य का उनमें कथित रूप से शामिल होना;[277] संसद् के सत्र के ठीक पहले डाक-दरों में वृद्धि;[278] भारतीय लोक दल के अध्यक्ष द्वारा दल के चुनाव-चिन्ह के बारे में लिखे गए एक पत्र को निर्वाचन आयोग की फाइलों में से निकाल दिए जाने का समाचार;[279] प्रधान मंत्री और भूतपूर्व गृह मंत्री के बीच पत्र-व्यवहार;[280] कलकत्ता में एक हिंसक घटना जिसमें श्री जयप्रकाश नारायण की कार पर हमला हुआ और एक संसद्-सदस्य और उसके साथी को चोटें आई;[281] आंतरिक सुरक्षा अधिनियम, भारत रक्षा नियम आदि के अधीन अधिसंख्य राजनैतिक बंदियों का जेलों में बंद रहना;[282] समाचार-पत्रों के प्रबंधकों द्वारा पत्रकारों का उत्पीड़न;[283] जिम्बाब्वे की कठपुतली अश्वेत सरकार की स्थापना;[284] हरिजनों पर अत्याचारों को रोकने की मांग के समर्थन में एक संसद्-सदस्य द्वारा भूख-हड़ताल;[285] भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री नीलम संजीव रेड्डी और भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई के बीच हुए गोपनीय पत्र-व्यवहार के प्रकट होने का समाचार;[286] प्रतिभूति घोटाले के बारे में संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर अनुवर्ती कार्यवाही;[287] परमाणु अप्रसार संधि के संदर्भ में भारत की परमाणु नीति के संबंध में राष्ट्रीय सहमति बनाये जाने की आवश्यकता;[288] विमानों द्वारा पुरुलिया में घातक हथियार गिराये जाने से राष्ट्रीय सुरक्षा को उत्पन्न खतरे की स्थिति;[289] वित्तीय सहायता के अभाव और समय पर निर्णय न लेने के कारण केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के लाभ अर्जित कर रहे उपक्रमों के विनिवेश से उत्पन्न स्थिति;[290] सहकारी बैंकों में प्रतिभूति घोटाला और केन्द्रीय सरकार के विनियमों की विफलता तथा इस संबंध में सरकार द्वारा किये गये उपचारात्मक उपाय;[291] विदेश

संचार निगम लिमिटेड बोर्ड द्वारा टाटा टेली सर्विसेज लिमिटेड में 1200 करोड़ रुपये के निवेश संबंधी निर्णय से उत्पन्न मुद्दे;[292] महाराष्ट्र और देश के अन्य भागों में कपास उत्पादकों द्वारा की गई आत्महत्याएं;[293] गन्ना उत्पादकों की समस्याएं;[294] बागान क्षेत्र अर्थात् चाय, कॉफी, रबड़ इत्यादि में उत्पन्न संकट और सरकार द्वारा इस संबंध में उठाये गये कदम;[295] हिन्दुस्तान फर्टिलाइजर कॉरपोरेशन और फर्टिलाइजर कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया के विशेषत: देश के पूर्वी क्षेत्र में उर्वरक संयंत्रों को बन्द किया जाना;[296] प्लास्टिक बोरों में पैक किए जाने के कारण गेहूं, चावल, चीनी और अन्य खाद्य पदार्थों पर विषैला प्रभाव;[297] नौकरियां गंवाने, श्रम कानूनों के उल्लंघन, औद्योगिक एककों को बंद किए जाने, सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों के निजीकरण आदि से श्रमिकों में बढ़ रहे असंतोष से उत्पन्न स्थिति;[298] दोषपूर्ण सार्वजनिक वितरण प्रणाली;[299] इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश;[300] कृष्णा और कावेरी नदियों के अन्तर्राज्यीय जल-बंटवारे संबंधी विवाद से उत्पन्न स्थिति और इस संबंध में सरकार द्वारा की गई कार्यवाही;[301] कन्डीशनल एक्सेस सिस्टम (केस) प्रणाली को लागू किया जाना और विदेशी चैनलों को अपलिंक किया जाना;[302] बड़ी संख्या में चाय बागानों की रुग्णता और उन्हें बन्द किये जाने से चाय-बागान श्रमिकों की दयनीय स्थिति एवं इसके कारण भूख से होने वाली मौतें;[303] महाराष्ट्र में हाल ही में कुपोषण और भुखमरी के कारण हुई बच्चों की मौतें;[304] देश के विभिन्न भागों में किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्याएं और इस संबंध में सरकार द्वारा उठाये गये उपचारात्मक कदम;[305] और सेंटोर होटल, मुम्बई के विनिवेश में अनियमितताएं और विनिवेशोपरांत अवधि में शेयर धारकों के साथ हुए अनुबंध का उल्लंघन;[306] जलवायु परिवर्तन;[307] 1984 के दंगा-पीड़ितों को राहत;[308] पेड न्यूज सहित प्रिन्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका;[309] भारतीय चिकित्सा परिषद (एमसीआई) के कार्यकरण में अनियमितताएं;[310] भंडारण सुविधाओं की कमी के कारण खाद्यान्नों का सड़ना;[311] कृषियोग्य भूमि का गैर-कृषि प्रयोजन हेतु उपयोग;[312] रेलवे में बार-बार दुर्घटनाएं और रेल-सुरक्षा;[313] पूर्वोत्तर राज्यों के छात्रों के साथ भेदभाव और नस्ल के आधार पर संदेह;[314] राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के कार्यक्रमों के अंतर्गत बिहार में और देश के विभिन्न भागों में गरीबी रेखा से नीचे गुजर-बसर करने वाली (बीपीएल) महिलाओं के गर्भाशय को निकाल देना;[315] संगठित और असंगठित क्षेत्र के कामगारों द्वारा अखिल भारतीय हड़ताल;[316] श्रीलंका की नौ सेना द्वारा भारतीय मछुआरों पर बार-बार हमले से उत्पन्न स्थिति;[317] समुद्री जहाजों के उत्सर्जन से बने टार के गोलों से गोवा के समुद्री तटों पर हुआ प्रदूषण;[318] इराक में फंसे भारतीय कामगारों की स्थिति;[319] निधियों के आबंटन में मजदूरी के अवयव को घटाकर और कार्यक्षेत्र को सीमित कर महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम (मनरेगा) में परिवर्तन करने संबंधी सरकार का कदम;[320] इत्यादि।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. पुराना नियम 156
2. नियम समिति की बैठकों की कार्यवाही का सारांश, 3.6.1952 और 9.7.1952; फा. सं. सीएस/3/52-एल
3. "क्वेश्चन्स एंड एडजर्नमेंट मोशन्स इन सेकेंड चैम्बर्स" नामक पुस्तिका, जून, 1952
4. काउंसिल आफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.5.1952, कालम 44-45
5. बाद में संख्या बदलकर इसे नियम 175 कर दिया गया
6. मे, पृष्ठ 475
7. संसदीय समाचार (2), 1.7.1964
8. नियम 180; राज्य सभा वाद-विवाद, 26.11.2014, पृष्ठ 319-336, संसदीय समाचार (2) 26.11.2014 भी देखिए
9. संसदीय समाचार (2), 11.8.1964; राज्य सभा वाद-विवाद, 12.8.1968, कालम 28-74 और 14.8.1968, कालम 3401-02 भी देखिए
10. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.5.1979, कालम 1-3; संसदीय समाचार (2), 23.5.1979 और 6.7.1979

11. उदाहरणार्थ देखिए संसदीय समाचार (2), 3.2.1994
12. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.8.1968, कालम 3477-79
13. नियम समिति का दूसरा प्रतिवेदन, पृष्ठ 12, 21, 27
14. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.5.1979, कालम 1-3; संसदीय समाचार (2), 23.5.1979
15. नियम समिति का दूसरा प्रतिवेदन, पृष्ठ 3
16. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.12.1981, कालम 502
17. -वही- 15.12.1981, कालम 162-68
18. नियम समिति का दूसरा प्रतिवेदन
19. नियम 180(1), परंतुक
20. नियम समिति का दूसरा प्रतिवेदन, पृष्ठ 21
21. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.5.1986, कालम 184
22. -वही- 13.12.1985, कालम 200-02
23. -वही- 14.8.1968, कालम 3387-3402; 19.8.1968, कालम 3470-79; इसके अलावा राज्य सभा वाद-विवाद, 3.5.1978 कालम 131-38 भी देखिए
24. -वही- 6.5.1986, कालम 183-85
25. संसदीय समाचार (2), 4.12.1971
26. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.7.1975, कालम 33-44
27. -वही- 3.11.1976, कालम 38-49
28. संसदीय समाचार (2), 20.9.1976
29. -वही- 27.10.1976
30. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.3.1985, कालम 184-86
31. -वही- 19.8.1968, कालम 3477-79
32. -वही- 4.8.1978, कालम 106
33. -वही- 15.3.1989, कालम 1-4; 16.3.1989, कालम 1-8
34. -वही- 19.6.1967, कालम 4659-62
35. -वही- 21.3.1975, कालम 116-18
36. -वही- 5.8.1982, कालम 264
37. -वही- 27.2.1981, कालम 153-54; 25.11.1981, कालम 208-56 भी देखिए
38. -वही- 31.3.1981, कालम 294-96; उन उदाहरणों के लिए जब एक ही ध्यानाकर्षण में दो या अधिक विषयों को सम्मिलित किया गया था, देखिये संसदीय समाचार (1), 1.12.1964, 5.5.1966, 3.8.1966, 11.8.1966, 7.4.1967, 11.4.1967, 26.7.1967 और 19.8.1968
39. -वही- 28.7.1978, कालम 149-54
40. -वही- 25.11.1981, कालम 208-56
41. -वही- 11.12.1981, कालम 203-11
42. कार्यावलि, 2.12.1983; राज्य सभा वाद-विवाद, 5.12.1983, कालम 256-301
43. -वही- 21.6.1971
44. -वही- 20.7.1978
45. -वही- 11.8.1978
46. -वही- 6.3.1981
47. -वही- 17.3.1981
48. -वही- 20.8.1981
49. -वही- 27.4.1984
50. -वही- 4.8.1986

51. कार्यावलि, 27.8.1987
52. -वही- 13.11.1987
53. -वही- 2.12.1988
54. -वही- 2.1.1991
55. -वही- 18.8.1993
56. नियम समिति का दूसरा प्रतिवेदन, पृष्ठ 17, 22 और 26
57. कार्य मंत्रणा समिति के कार्यवृत्त, 13.10.1982; संसदीय समाचार (2), 14.10.1982
58. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.12.1981, कालम 162-68
59. -वही- 3.4.1970, कालम 4-15
60. नियम 180(3)
61. नियम 180(4)
62. संसदीय समाचार (1), 25.9.1964, 1.12.1964, 31.3.1965, 4.5.1965, 14.5.1965, 10.12.1965, 11.12.1965, 25.2.1966, 21.3.1966, 22.3,1966, 23.3.1966, 25.3.1966, 16.5.1966, 17.5.1966, 18.5.1966, 7.9.1966, 29.11.1966, 11.4.1967, 26.7.1967, 7.8.1967, 30.11.1967 और 13.5.1968
63. -वही- 10.3.1965, 11.11.1965, 18.11.1965, 23.3.1966, 26.8.1966
64. -वही- 13.5.1965, 17.8.1966, 23.8.1966, 24.8.1966, 5.4.1967, 6.4.1967, 23.11.1967, 19.3.1968, 8.5.1968, 1.9.1981, 13.8.1982, 5.11.1982 और 12.5.1989
65. -वही- 7.8.1967
66. -वही- 30.11.1967
67. -वही- 2.9.1966 और 5.9.1966
68. 10.4.1972 को सभा में प्रस्तुत नियम समिति का पहला प्रतिवेदन
69. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.6.1972
70. संसदीय समाचार (2), 1.7.1972
71. नियम समिति का पहला प्रतिवेदन, पृष्ठ 7
72. राज्य सभा वाद-विवाद 3.9.1991, कालम 351-52
73. -वही- 4.9.1991, कालम 185-202
74. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 11.5.1992
75. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.7.1993
76. -वही- 16.9.1991, कालम 14-15
77. नियम, 180 (5); राज्य सभा वाद-विवाद, 26.11.2014, पृष्ठ 319-336; संसदीय समाचार (2), 26.11.2014 भी देखिए
78. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.4.1981, कालम 199-201
79. -वही- 3.12.1981, कालम 192-94
80. -वही- 15.12.1964, 23.12.1964 और 9.3.1970
81. संसदीय समाचार (1), 9.8.1971, 6.3.1973, 21.3.1973, 15.11.1974, 20.2.1975, 13.6.1977, 15.6.1977, 21.6.1977, 20.7.1977, 29.7.1977, 5.12.1977, 6.12.1977, 22.3.1978, 22.4.1978, 26.4.1978, 19.7.1978, 21.2.1979 और 2.9.1981
82. -वही- 12.8.1966
83. -वही- 17.8.1966, 23.8.1966, 27.4.1970, 29.7.1971, 19.11.1973, 25.4.1978 और 24.8.1978
84. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.11.1970, कालम 131; 22.4.1981, कालम 191-201; 15.3.1982, कालम 189; 25.3.1982, कालम 175-77; 9.7.1982, कालम 186-99 और 25.2.1983, कालम 161
85. -वही- 8.11.1966, कालम 315-16 और 410-34
86. -वही- 31.8.1981, कालम 185; और 1.9.1981, कालम 11-12, 175
87. -वही- 3.12.1981, कालम 192

88. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.3.1982, कालम 148-49
89. -वही- 28.2.1983, कालम 262-74
90. -वही- 17.8.1983, कालम 170
91. -वही- 4.3.1986, कालम 527
92. -वही- 25.11.1986, कालम 185
93. -वही- 25.7.1968, कालम 687-88
94. -वही- 15.12.1980, कालम 218-19
95. -वही- 25.11.1981, कालम 247
96. -वही- 19.7.1989 कालम 275-90
97. -वही- 24.4.1986 कालम 171
98. -वही- 18.5.1973, कालम 13
99. -वही- 8.3.1982, कालम 209
100. -वही- 5.12.1985, कालम 176
101. -वही- 21.11.1978, कालम 167-73
102. -वही- 7.8.1985, कालम 147
103. -वही- 3.12.1968, कालम 2407-16 और 5.12.1968, कालम 2843-59
104. -वही- 28.7.1978, कालम 149-154
105. -वही- 25.11.1981, कालम 208-56; 11.12.1981, कालम 203-11 भी देखिये
106. -वही- 23.11.1967, कालम 944 और 24.11.1967, कालम, 1177-86
107. -वही- 7.8.1968, कालम 2427-29 और 13.8.1968, कालम 3060-98
108. -वही- 19.11.1970, कालम 131, 192 और 210
109. -वही- 30.11.1970, कालम 85-100
110. -वही- 6.8.1993, कालम 271
111. -वही- 10.8.1993, कालम 559-76; 12.8.1993, कालम 198 और 238
112. संसदीय समाचार (1), 30.8.2012
113. -वही- 6.9.2012
114. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.3.1980, कालम 150-60; 19.3.1980, कालम 162-206; कार्यावलि, 19.3.1980
115. -वही- 23.11.1981, कालम 300-08; 24.11.1981, कालम 185 और कार्यावलि, 24.11.1981
116. -वही- 4.11.1982, कालम 413-20; 5.11.1982, कालम 303-06 और कार्यावलि, 5.11.1982
117. -वही- 21.2.1983, कालम 291-93; 22.2.1983, कालम 202 और कार्यावलि, 22.2.1983
118. -वही- 13.3.1968 और 14.3.1968
119. -वही- 10.5.1968 और 11.5.1968
120. -वही- 6.3.1969 और 7.3.1969
121. -वही- 5.3.1982, कालम 172-74 और 8.3.1982, कालम 202
122. -वही- 25.2.1966, कालम 1395-96
123. -वही- 20.6.1967, कालम 4889-91, 4897-4900 और 21.6.1967, कालम 5127, आदि
124. -वही- 10.3.1981, कालम 184-94
125. -वही- 1.9.1981, कालम 11-12, 175, 269-72 और 2.9.1981, कालम 25, 248-396
126. -वही- 30.11.1967, कालम 1941 और संसदीय समाचार (1), 3.12.1973 (पूर्वाह्न)
127. -वही- 9.3.1978, कालम 184
128. -वही- 6.12.1974, कालम 177-79
129. -वही- 14.12.1981, कालम 176-81
130. -वही- 19.7.1989, कालम 275-90

131. नियम 180(2)
132. संसदीय समाचार (2), 20.4.1979 और 6.7.1979
133. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.7.1980, कालम 4-5 और संसदीय समाचार (2), 3.7.1980
134. संसदीय समाचार (2) 3.7.1980, राज्य सभा वाद-विवाद, 14.8.1971, कालम 10-12 भी देखिये
135. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 13.10.1980; और संसदीय समाचार (2), 14.10.1982
136. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.10.1982, कालम 177-88; 16.10.1982, कालम 67-69 और 20.10.1982, कालम 168-70
137. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 17.7.1991; कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 12.8.1993 भी देखिये
138. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.6.1967, कालम 3855
139. -वही- 26.7.1967, कालम 587
140. -वही- 17.8.1967, कालम 4553
141. नियम समिति (दूसरा प्रतिवेदन), पृष्ठ 17, 22 और 26
142. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.4.1967, कालम 2803-10; 8.4.1967, कालम 2904-24; 24.11.1967, कालम 1078; 7.8.1968, कालम 2427-29; 13.8.1968, कालम 3060; 3.12.1968, कालम 2411-16; 5.12.1968, कालम 2843 आदि; 6.5.1969, कालम 1184-96; संसदीय समाचार (1), 1.3.1979 (पूर्वाह्न) और 2.3.1979; राज्य सभा वाद-विवाद, 4.11.1982, कालम 335-67; 5.11.1982, कालम 430; 18.11.1983, कालम 242-69, 337-66 और 21.11.1983, कालम 306-66
143. संसदीय समाचार (2), 20.4.1979
144. -वही- 3.7.1980
145. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.2.1979, कालम 183-86
146. -वही- 21.11.1978, कालम 167-69
147. -वही- 24.12.1980, कालम 17-18
148. -वही- 15.9.1981, कालम 256-57
149. -वही- 20.10.1982, कालम 167
150. -वही- 22.2.1983, 1.3.1983, 3.3.1983, 23.3.1983, 3.5.1983, 5.5.1983, 10.5.1983, 26.7.1983, 28.7.1983, 29.7.1983, 2.8.1983, 5.8.1983, 8.8.1983, 9.8.1983, 12.8.1983 और 7.8.1983
151. -वही- 21.3.1983, कालम 251
152. -वही- 15.3.1983, कालम 242-92; 18.3.1983, कालम 242-71
153. -वही- 21.12.1983, कालम 201-24
154. -वही- 25.11.1986, कालम 268-334 और 26.11.1986, कालम 164-81
155. -वही- 15.7.1991, कालम 233
156. -वही- 6.5.1984, कालम 190-216 और 26.4.1984, कालम 132-66
157. -वही- 3.4.1967, कालम 1927-29
158. -वही- 18.8.1967, कालम 4838
159. -वही- 28.8.1970, कालम 171
160. -वही- 3.9.1970, कालम 16-18
161. -वही- 4.9.1970, कालम 29-30
162. -वही- 11.11.1970, कालम 110
163. -वही- 30.7.1971, कालम 178-84, 204-55
164. संसदीय समाचार (2), 20.4.1979

165. संसदीय समाचार (1), 1.5.1969 और 6.5.1969; 1.3.1979 और 2.3.1979; 24.4.1979 और 25.4.1979; 1.9.1981 और 2.9.1981; 4.11.1982 और 5.11.1982; 18.11.1983 और 21.11.1983; 4.11.1986 और 5.11.1986; 20.11.1987 और 24.11.1987; 27.8.1990 और 28.8.1990; 2.1.1991, 3.1.1991 और 4.1.1991; 6.8.1993, 10.8.1993 और 12.8.1993
166. -वही- 23.3.1978
167. -वही- 24.4.1979 और 25.4.1979
168. -वही- 24.1.1980
169. -वही- 6.5.1981
170. -वही- 1.9.1981 और 2.9.1981
171. -वही- 15.9.1981
172. -वही- 25.11.1981
173. -वही- 11.10.1982
174. -वही- 12.10.1982
175. -वही- 26.7.1984
176. -वही- 22.7.1986
177. -वही- 13.11.1986
178. -वही- 15.4.1987
179. -वही- 28.4.1987
180. -वही- 25.8.1987
181. -वही- 2.8.1989
182. -वही- 2.1.1991, 3.1.1991 और 4.1.1991
183. -वही- 4.12.1991
184. -वही- 18.12.1991
185. -वही- 12.5.1992
186. -वही- 15.3.1993
187. -वही- 12.5.1993
188. -वही- 26.7.1993
189. -वही- 6.8.1993, 10.8.1993 और 12.8.1993
190. -वही- 25.8.1994
191. -वही- 23.8.1994
192. -वही- 18.3.1996
193. -वही- 14.5.1997
194. -वही- 6.8.1997
195. -वही- 2.5.2000
196. -वही- 10.5.2000
197. -वही- 27.2.2001
198. -वही- 13.3.2001
199. -वही- 24.8.2001
200. -वही- 29.8.2001
201. -वही- 21.11.2001
202. -वही- 26.2.2003
203. -वही- 30.7.2003
204. -वही- 6.8.2003

205. संसदीय समाचार (1), 8.12.2004
206. -वही- 2.8.2005 और 3.8.2005
207. -वही- 14.12.2009
208. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.7.1968, कालम 101-04; 23.7.1968, कालम 310-412
209. -वही- 24.7.1967, कालम 119, 148; 29.2.1968, कालम 2539-45, 2592 आदि; 4.8.1969 कालम 2226-57; 5.8.1969, कालम 2469-549; 1.12.1969, कालम 2166-68 और 27.7.1977, कालम 127-30
210. राज्य सभा वाद-विवाद 19.6.1967, कालम 4659-63, 4740 आदि
211. -वही- 24.11.1967, कालम 1078-97
212. -वही- 12.12.1967, कालम 3591-3718; 13.12.1967, कालम 3827-3909
213. -वही- 4.8.1970, कालम 2226-57; 5.8.1969, कालम 2469-2549, 2553-58
214. -वही- 4.4.1970, कालम 2-28, 202; 19.5.1970, कालम 248-64 और 28-7-1970, कालम 170-250
215. -वही- 27.7.1970, कालम 131-41, 152 आदि
216. -वही- 18.11.1985, कालम 359-474
217. 7.8.1990 और 8.8.1990 की कार्यावलि और संशोधित कार्यावलि
218. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.4.1970, कालम 118-80 और 28.4.1970, कालम 119-38
219. -वही- 27.7.1983, कालम 214-59; 2.1.1991, कालम 761-62
220. -वही- 31.7.1970, कालम 126
221. -वही- 12.8.1985, कालम 242-75
222. संसदीय समाचार (1), 10.3.1965
223. -वही- 20.3.1966
224. -वही- 20.3.1967
225. -वही- 24.7.1967
226. -वही- 16.2.1968
227. -वही- 11.3.1968
228. -वही- 7.3.1969
229. -वही- 18.3.1969
230. -वही- 21.3.1969
231. -वही- 4.8.1969
232. -वही- 5.12.1972
233. -वही- 22.3.1975
234. -वही- 30.3.1977
235. -वही- 27.4.1981
236. -वही- 22.8.1983
237. -वही- 14.3.1984
238. -वही- 25.11.1985
239. -वही- 12.5.1986
240. -वही- 22.8.1968
241. -वही- 14.5.1965
242. -वही- 9.5.1969
243. -वही- 31.7.1970
244. -वही- 31.3.1971

245. संसदीय समाचार (1), 21.6.1977
246. -वही- 25.11.1981
247. -वही- 5.3.1982
248. -वही- 25.2.1966
249 -वही- 10.5.1968
250. -वही- 7.8.1968
251. -वही- 14.3.1968
252. -वही- 16.12.1970
253. -वही- 23.11.1972
254. -वही- 13.3.1978
255. -वही- 13.3.1979
256. -वही- 26.3.1980
257. -वही- 30.7.1980
258. -वही- 9.3.1984
259. -वही- 28.9.1964
260. -वही- 24.11.1964
261. -वही- 11.3.1965
262. -वही- 12.3.1965
263. -वही- 19.11.1965
264. -वही- 19.5.1966
265. -वही- 24.8.1966
266. -वही- 8.6.1967
267. -वही- 19.6.1967
268. -वही- 23.11.1967
269. -वही- 27.2.1968
270. -वही- 31.3.1969
271. -वही- 1.5.1969 और 6.5.1969
272. -वही- 7.5.1969
273. -वही- 22.7.1969
274. -वही- 3.12.1969
275. -वही- 12.3.1970
276. -वही- 25.8.1970
277. -वही- 31.5.1971
278. -वही- 9.3.1976
279. -वही- 24.6.1977
280. -वही- 19.7.1978
281. -वही- 28.4.1975
282. -वही- 6.4.1977
283. -वही- 17.6.1977
284. -वही- 20.3.1978
285. -वही- 20.7.1978
286. -वही- 25.8.1983
287. -वही- 10.5.1994

288. संसदीय समाचार (1), 17.5.1995
289. -वही- 8.3.1996
290. -वही- 19.12.1996
291. -वही- 16.5.2002
292. -वही- 1.8.2002
293. -वही- 27.11.2002
294. -वही- 2.12.2002
295. -वही- 9.12.2002
296. -वही- 12.12.2002
297. -वही- 13.12.2002
298. -वही- 26.2.2003
299. -वही- 30.4.2003
300. -वही- 9.5.2003
301. -वही- 30.7.2003
302. -वही- 6.8.2003
303. -वही- 19.12.2003
304. -वही- 9.7.2004
305. -वही- 14.7.2004
306. -वही- 18.8.2004
307. -वही- 24.11.2009
308. -वही- 14.12.2009
309. -वही- 5.3.2010
310 -वही- 4.5.2010
311. -वही- 10.8.2010
312. -वही- 15.3.2010
313. -वही- 4.8.2010
314. -वही- 4.5.2012
315. -वही- 28.8.2012
316. -वही- 15.3.2013
317. -वही- 20.2.2014
318. -वही- 8.7.2014
319. -वही- 4.8.2014
320. -वही- 27.11.2014

अध्याय-19

शून्यकाल के उल्लेख

राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में ऐसे विभिन्न प्रक्रियागत उपायों का उल्लेख किया गया है जिनके माध्यम से सदस्यगण सदन में सार्वजनिक महत्व के मामलों को उठा सकते हैं। गत वर्षों के दौरान परिपाटियों और प्रथाओं के द्वारा कुछ अन्य उपायों का भी विकास हुआ है हालांकि नियम पुस्तिका में विनिर्दिष्ट रूप से उन्हें स्वीकृति नहीं दी गई है। शून्यकाल (ज़ीरो आवर) के उल्लेख इसी श्रेणी में आते हैं।

परिभाषा

अंग्रेजी के शब्दकोशों में शून्यकाल (ज़ीरो आवर) के निम्नलिखित अर्थ दिए गए हैं: "वह समय (आवर) जिसमें कोई योजनाबद्ध कार्यवाही – विशेषत: सैनिक कार्यवाही आरंभ की जानी है", "एक नाजुक क्षण"[1], "किसी आक्रमण की शुरुआत के लिए निर्धारित किया गया समय", "एक निर्णायक या संकटापन्न समय",[2] "ऐसा समय जब कोई अत्यंत महत्वपूर्ण निर्णय लिया जाना है या घटनाक्रम में कोई निर्णायक परिवर्तन होने ही वाला है; दिन के समय की गणना के आधार के रूप में निर्धारित समय"।[3] तथापि, भारत में संसदीय व्यवहार की भाषा में शून्यकाल (ज़ीरो आवर) का एक विशेष अर्थ में प्रयोग किया जाता है क्योंकि उस काल (आवर) में सदन में 'असली कार्रवाई' शुरू होती है। इस अर्थ में शून्यकाल की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि वह प्रश्नकाल की समाप्ति और कार्यावलि में उल्लिखित नियमित कार्य के आरंभ के बीच का काल है। दूसरे शब्दों में, शून्यकाल प्रश्नकाल, जोकि पूर्वाह्न 11.00 बजे से मध्याह्न 12 बजे तक होता है, की समाप्ति पर अर्थात् मध्याह्न 12 बजे से शुरू होता है। 233वें सत्र अर्थात नवम्बर 2014 में प्रश्नकाल का समय मध्याहन 12 बजे से मध्याह्न 1.00 बजे तक कर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप 11.00 बजे की प्रथम मद पत्रों को सभापटल पर रखना इत्यादि होती है। तत्पश्चात सभापति की अनुमति से तात्कालिक और अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों पर विचार किया जाता है (शून्यकाल के उल्लेख), एक समय में ऐसे अधिकतम 15 मामले उठाए जा सकते है।[4] यद्यपि शिष्टोक्ति के रूप में इसे अंग्रेजी में ज़ीरो आवर अर्थात् घंटा कहा जाता है तथापि हो सकता है कि वह एक घंटे तक न चले और आधा घंटे या उससे अधिक या कम समय तक चले। कभी-कभी शून्यकाल पूरे एक घंटे तक या उससे भी अधिक समय तक चल सकता है और यह इस बात पर निर्भर है कि सदस्यगण कितने मामलों को उठाना चाहते हैं और ऐसे मामले कितने गंभीर और कितने महत्व के हैं। यह भी आवश्यक नहीं है कि सत्र के दौरान प्रतिदिन ही शून्यकाल के उल्लेख हों।[5]

उदाहरण के लिए, समूचे 130वें सत्र (23 अप्रैल, से 10 मई, 1984) के दौरान शून्यकाल के उल्लेखों में मुश्किल से एक घंटा लगा। 3 अगस्त, 1993 को शून्यकाल दो घंटे सत्तावन मिनट तक चलता रहा और इस दौरान मुख्य निर्वाचन आयुक्त द्वारा चुनावों के स्थगन के बारे में पन्द्रह सदस्य बोले। 5 अगस्त, 1993 को दो उल्लेखों पर मध्याह्न-भोजन से पहले का सारा समय व्यतीत हो गया। 18 अगस्त, 1994 को शून्यकाल के दौरान हुबली घटना के बारे में उठाए गए मामले में लगभग चार घंटे लग गए और उसने एक पूरे वाद-विवाद का रूप ले लिया। किंतु 4 मई, 1994 को शून्यकाल के दौरान उठाए तीन मामलों में सिर्फ नौ मिनट लगे और अगले दिन शून्यकाल में एक ही मामला उठाया गया जिसमें सिर्फ तीन मिनट लगे।

15 मार्च, 1995 को शून्यकाल में बिहार में संवैधानिक संकट का मामला उठाया गया और वह तब तक चलता रहा जब तक मध्याह्न-भोजन के अवकाश के लिए सदन की बैठक स्थगित नहीं हुई। 21 मार्च, 1995 को मुंबई में विदेशियों का पता लगाने के संबंध में महाराष्ट्र के मंत्रियों के कतिपय वक्तव्यों के बारे में शून्यकाल में एक मामला उठाया गया जिसमें दो घंटे सत्ताईस मिनट लग गए। पाकिस्तान उच्चायुक्त द्वारा विदेश मंत्रालय में राज्य मंत्री के प्रति कथित दुर्व्यवहार का मामला 28 मार्च, 1995 को शून्यकाल के दौरान उठाया गया और उसमें पचास मिनट लग गए। शिव सेना प्रमुख के कथित वक्तव्य के मामले पर 30 मार्च, 1995 को मध्याह्न-भोजन के पहले और उसके बाद कुल मिलाकर दो घंटे तैंतालीस मिनट लग गए और शून्यकाल अपराह्न 4 बजे तक चलता रहा। 10 मई, 1995; 19 मई, 1995; 30 मई, 1995; 1 जून, 1995 और 31 जुलाई, 1995 को शून्यकाल में उठाए गए मामलों पर हर दिन एक घंटे से अधिक समय लगा और एक से अधिक सदस्य बोले।

राज्य सभा अपने प्रारंभिक दिनों के दौरान मध्याह्न-भोजन के अवकाश के लिए मध्याह्न पश्चात् 1 बजे स्थगित हो जाया करती थी और सामान्यत: शून्यकाल उस समय तक समाप्त हो जाया करता था ताकि मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद सदन के पुन: समवेत होने पर कार्यावलि के अनुसार नियमित कार्य को आरंभ किया जा सके। ऐसा लगता है कि जन-संचार माध्यमों द्वारा शून्यकाल शब्द का प्रयोग करने का यही कारण है। शून्यकाल शब्द के गढ़े जाने का यह भी कारण है कि ऐसा समझा जाता है कि शून्यकाल 12 बजे से शुरू होता है और 12 बजे का उपनाम शून्यकाल (ज़ीरो आवर) है।

आरंभ

शून्यकाल का आरंभ साठ के दशक से हुआ जब सार्वजनिक महत्व के अत्यंत महत्वपूर्ण और अविलंबनीय विषयों को सदस्यों द्वारा प्रश्नकाल के समाप्त होते ही उठाया जाने लगा। सदस्यगण सभापति की पूर्व अनुमति से और कभी-कभी बिना अनुमति के ऐसे मुद्दे उठाते थे। एक बार सभापति की अनुमति से एक सदस्य ने यह मामला उठाया कि संसद् के सत्र के दौरान मंत्रिगण संसद् के बाहर नीति संबंधी घोषणाएं कर रहे हैं। इस पर एक अन्य सदस्य ने जब एक प्रक्रिया संबंधी मुद्दा उठाया कि नियम पुस्तक में उल्लिखित नियमों का उल्लंघन करके महत्वपूर्ण विषयों को उठाया जा रहा है। इस पर सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

"माननीय सदस्यों को विदित है कि संसद् में नियमों के अलावा परिपाटियां भी हैं। डा. राधाकृष्णन् के समय से इस सदन में शून्यकाल की परिपाटी रही है। शून्यकाल में सदस्यों को मुद्दे उठाने की अनुमति दी जाती रही है और दोनों ही सदनों में ऐसा होता रहा है।"[6]

इस प्रकार, नियमों में कोई विशिष्ट स्वीकृति न होते हुए भी एक नया तरीका अथवा संसदीय उपाय विकसित हुआ। एक ऐसी प्रथा विकसित होने लगी कि सभापति द्वारा प्रश्नकाल समाप्त होने की घोषणा होते ही कोई सदस्य ऐसे मामले को उठाने के लिए खड़ा हो जाता था जो उसके विचार में इतना अधिक महत्वपूर्ण होता था कि उसकी ओर सदन का और सदन के माध्यम से सरकार का ध्यान दिलाना आवश्यक था क्योंकि उस मामले में देरी सहन नहीं की जा सकती थी और सामान्यतया उपलब्ध प्रक्रिया के अधीन उसे उठाने के लिए प्रतीक्षा नहीं की जा सकती थी। तथापि, विख्यात संसद्विद् स्वर्गीय प्रोफेसर एन.जी. रंगा का कहना था कि "शून्यकाल का आरंभ होना एक अत्यंत विलक्षण और उत्तेजक घटना है। उसका जो विकास हुआ है और उसे जो स्थायित्व प्राप्त हुआ है उसके लिए प्रक्रिया नियमों की कमियां उतनी जिम्मेदार नहीं हैं जितनी मंत्रालयों की बढ़ती जा रही कमजोरी, सदस्यों का काबू से बाहर हो जाना और राजनैतिक वातावरण की उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही जटिलता जिम्मेदार है। इसके लिए किसी दिन होने वाली घटनाओं के संबंध में कार्यवाही करने का असहनीय और दुर्दमनीय आग्रह इतना अधिक जिम्मेदार नहीं हो सकता।"[7]

प्रश्नकाल की समाप्ति और नियमित कार्यवाही के आरंभ के बीच के समय का अब अनेक सदस्यों द्वारा उपयोग किया जा रहा है। कुछ वस्तुत: महत्वपूर्ण मुद्दों की ओर सदन का और

उनके माध्यम से राष्ट्र का ध्यान आकर्षित करने के लिए अनुभवी संसदविद् शून्यकाल का पूरे कौशल के साथ उपयोग करते हैं। इस प्रथा को संसद् में एक ऐसा विशिष्ट स्थान प्राप्त होने लगा जिसके बारे में कोई पूर्वोदाहरण नहीं था और वह "भारतीय संसद् की कार्य-सूची की स्थायी विशेषता तो बन गई किंतु ऐसा होने पर भी उसे कोई मान्यता नहीं मिली।"[8] शून्यकाल की कार्यवाही को जन-संचार माध्यमों में बढ़-चढ़ कर स्थान मिलने लगा और इसके कारण सदस्यगण इस अविलंब इस्तेमाल किए जा सकने वाले और सुविधाजनक उपाय को उत्तरोत्तर अधिकाधिक संख्या में अपनाने लगे।

1960 के दशक से शून्यकाल सदन की कार्यवाही का नियमित अंग बन गया है। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि जब एक बार सत्र की अवधि एक सप्ताह के लिए बढ़ाए जाने पर और सदन के कार्य पर विचार हो रहा था तब उपसभापति ने कहा, "किंतु हमें शून्यकाल को नहीं भूलना चाहिए। शून्यकाल बहुत कम समय के लिए होना चाहिए ताकि हम हर दिन कार्यावलि का उल्लंघन न करें।"[9] आशा के बारे में एक कहावत में थोड़ा-सा परिवर्तन करके हम शून्यकाल का संक्षिप्त किंतु सुस्पष्ट रूप से इस प्रकार वर्णन कर सकते हैं: "शून्यकाल देहात में एक पथ के समान है। वहां कोई पथ न होने पर भी जब लोग उस पर चलते हैं तो वह अस्तित्व में आ जाता है।"

शून्यकाल का उद्देश्य

यद्यपि, सदस्यों, जन-संचार माध्यमों और जनता के बीच शून्यकाल को लोकप्रियता और स्वीकार्यता मिल रही थी तथापि, पीठासीन अधिकारियों द्वारा उसका अनुमोदन नहीं किया गया क्योंकि शून्यकाल में सदन में अव्यवस्था और कटुता का वातावरण उत्पन्न हो जाता था जिससे सदस्यों का आचरण अमर्यादित हो जाता था और सभा का अमूल्य समय व्यर्थ चला जाता था। शून्यकाल की प्रथा के आरंभ होने और जड़ें जमा लेने के कारण भारत के विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों को बहुत चिंता होने लगी। 1967 में (नई दिल्ली में), 1969 में (गोवा में) और 1978 में (जयपुर में) पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में शून्यकाल के बारे में विचार-विमर्श हुआ। शून्यकाल के बारे में कहा गया कि वह "जनता के पैसे की बर्बादी है", "पागलपन का काल है", "एक बुरे दिन की महान शुरुआत है" और "एक अनचाही चीज़ है"। साथ ही इस तथ्य को भी माना गया कि प्रश्नकाल के बाद शून्यकाल ही ऐसा काल है जो जीवंत और महत्वपूर्ण हो गया है। यह भी माना गया कि वह व्यक्तिगत शिकायतों को सदन के सामने रखने का एक तरीका है और उसे न तो समाप्त किया जा सकता है और न ही छोड़ा जा सकता है। एक ओर यह विचारधारा थी कि पीठासीन अधिकारियों द्वारा सदन के सामान्य काम-काज को चलाने में शून्यकाल सबसे बड़ी अड़चन है और दूसरी ओर यह विचारधारा थी कि उसके द्वारा संसदीय शब्दकोश अथवा संसदीय प्रथा में मौलिक योगदान हुआ है।

पणजी (गोवा) में हुए सम्मेलन में एक पीठासीन अधिकारी ने शून्यकाल के कारणों का विश्लेषण करने के लिए नियुक्त हाउस ऑफ कॉमन्स की प्रक्रिया संबंधी प्रवर समिति के प्रतिवेदन का हवाला देते हुए कहा कि इस प्रतिवेदन से जो तस्वीर उभरती है वह भारत की स्थिति पर काफी हद तक लागू होती है। प्रवर समिति ने कहा था:

वर्तमान सार्वजनिक रुचि के महत्वपूर्ण मामलों पर बहस करने के अवसरों पर विचार करते हुए आपकी समिति को इस आलोचना की जानकारी है कि सदन सरकार के निर्धारित विधायी कार्यक्रम में इतना अधिक अंतर्ग्रस्त है कि वह उन मामलों पर ध्यान नहीं दे सकता जिनका बाहर के लोगों के साथ बिल्कुल निकट का सरोकार है। यह कहा जाता है कि राष्ट्रीय बहस के मंच के रूप में संसद् अपनी हैसियत खोती जा रही है।[10]

प्रवर समिति के समक्ष अपना साक्ष्य देते हुए हाउस ऑफ कॉमन्स के अध्यक्ष (स्पीकर) का कहना था:

संसद् सिर्फ सरकार और विपक्ष नहीं है, उसमें 630 अलग-अलग सदस्य हैं और उसमें अल्पमत वाले भी हैं, यहां तक कि एक सदस्यीय अल्पमत भी है। ऐसा सोचना पूरी तरह से उचित है कि ऐसा हो सकता है कि न तो सरकार और न ही प्राधिकृत विपक्ष विभिन्न कारणों से ऐसे मामले में शीघ्रतापूर्वक विचार करना चाहे जिस पर तुरंत विचार-विमर्श करना सदन में अल्पमत वाले थोड़े-से सदस्यों के विचार में आवश्यक हो। संसद् के सामने जो चिरंतन समस्या है वह यह है कि विभिन्न दावों अर्थात् सरकार, विपक्ष, अल्पमत और सदन में पीछे की बेंच पर बैठने वाले अकेले सदस्य के दावों के बीच संगति कैसे बिठाई जाए।[11]

शून्यकाल को विनियमित करना

सदन के वातावरण में कटुता उत्पन्न होने और उसका बहुमूल्य समय बर्बाद हो जाने के कारण सदन के निर्धारित कार्य को अस्त-व्यस्त न होने देने के लिए और उठाए गए मुद्दों का उत्तर देने के लिए सरकार को पर्याप्त अवसर देने हेतु राज्य सभा में सत्तर के दशक में विशेष उल्लेख की प्रक्रिया की शुरुआत की गई। किंतु पिछले अनेक वर्षों के दौरान शून्यकाल के उल्लेखों ने विशेष उल्लेखों का स्थान लेने की बजाय एक अतिरिक्त उपाय का रूप धारण कर लिया है। विशेष उल्लेख की प्रक्रिया के अपनाए जाने पर भी शून्यकाल के दौरान जनहित के मामले उठाने में सदस्यों की दिलचस्पी बढ़ती ही जा रही है।

एक सदस्य एक मामले को (लोक सभा के एक सदस्य की हत्या का प्रयास) विशेष उल्लेख के रूप में नहीं बल्कि शून्यकाल के उल्लेख के रूप में उठाना चाहते थे जिसके लिए उन्होंने सूचना दी थी। सभापति ने उनसे कहा कि वे इस मामले को विशेष उल्लेख के रूप में उठा सकते हैं किंतु सदस्य का आग्रह था कि उन्हें शून्यकाल में इस मामले को उठाने की अनुमति दी जाए। सदस्य को इसके लिए अनुमति दे दी गई किंतु साथ ही सभापीठ ने टिप्पणी की : "मेरे विचार में आप इसे दुहरा शून्यकाल बना रहे हैं।"[12]

एक सदस्य को विशेष उल्लेख के रूप में किसी मुद्दे को उठाने की अनुमति दी गई थी। उन्होंने इस विषय को शून्यकाल में उठाने के लिए अनुरोध करते हुए सभापीठ से कहा : "विशेष उल्लेख भिन्न है, शून्यकाल भिन्न है। यह मेरा शून्यकाल का मुद्दा है।" सभापीठ ने टिप्पणी की : "शून्यकाल का कोई मुद्दा नहीं होता।"[13]

एक अन्य अवसर पर उपसभापति ने टिप्पणी की : "घड़ी में कोई शून्य नहीं होता, उसमें सिर्फ 1 से 12 तक के अंक होते हैं।"[14]

एक बार उपसभाध्यक्ष ने यह टिप्पणी की : "मैं आप सभी को शून्यकाल को एक गरिमापूर्ण शांतिकाल बनाने के लिए धन्यवाद देता हूं।"[15]

एक बार उपसभापति ने कुछ सदस्यों को ध्यानाकर्षण के पूर्व मुद्दों को उठाने की अनुमति नहीं दी। इस पर एक सदस्य ने कहा : "आप शून्यकाल को चुनौती नहीं दे सकतीं और उसका विरोध नहीं कर सकतीं। शून्यकाल का दर्जा सबसे ऊपर है।" इस पर उपसभापति की टिप्पणी थी : "नियमों में शून्यकाल का कोई उल्लेख नहीं है।"[16]

> तथापि, एक बार जब कुछ सदस्यों ने मुख्य निर्वाचन आयुक्त द्वारा चुनावों को निलंबित किए जाने से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने के लिए प्रश्नकाल को निलंबित करने की सूचना दी थी तब सभापति ने उनसे कहा कि वे इस मामले को प्रश्नकाल के बाद उठाएं और अंततः शून्यकाल के दौरान इस मामले को उठाया गया।[17]

> अस्सी के दशक में सभापति (श्री आर. वेंकटरामन) ने एक दिन ध्यानाकर्षण संबंधी मामले उठाने और उससे अगले दिन विशेष उल्लेख करने की अनौपचारिक प्रथा शुरू की थी ताकि शून्यकाल से बचा जा सके। उदाहरण के लिए जब उन्होंने एक सदस्य को संसद् के सत्र के चलते रहने पर भी मंत्रियों द्वारा नीति संबंधी वक्तव्य देने के मामले को उठाने की अनुमति दी तब एक सदस्य ने इस पर आपत्ति की। सभापति का कहना था : "विपक्ष से मुझे जो सहयोग मिला है उसके फलस्वरूप मेरे लिए शून्यकाल समाप्त करना संभव हुआ है" किन्तु चूंकि इस मामले का संबंध सदन से था इसलिए उन्होंने इस मामले को उठाने की अनुमति दी थी।[18]

तथापि, शून्यकाल का समाप्त किया जाना सभी सदस्यों को पसंद नहीं आया। 13 दिसंबर, 1985 को एक सदस्य ने टिप्पणी की: "...एक के बाद एक विपक्ष के सभी हथियारों को, चाहे वह ध्यानाकर्षण हो या शून्यकाल हो, कुंद किया जा रहा है।" सभापति ने स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया:

> "सामान्यतः सवेरे दस बजे मैं अपने कक्ष में आ जाता हूं। जो सदस्य मुद्दों को, विशेष उल्लेख या ध्यानाकर्षण को, उठाना चाहते हैं वे मेरे पास आकर मुझसे बात करते हैं। यदि चार-पांच व्यक्ति चार-पांच अलग-अलग मुद्दों को उठाने की बात करते हैं तो मैं यह निर्णय करता हूं कि क्या महत्वपूर्ण है और इस आधार पर मैं उन्हें अनुमति देता हूं।"[19]

कुछ महीनों के बाद उसी सदस्य ने यह मामला उठाया कि शून्यकाल का विशेषाधिकार छीना जा रहा है और सिर्फ राज्य सभा में इसकी अनुमति नहीं दी जा रही है। सभापति ने पुनः अपनी स्थिति स्पष्ट की और यह भी कहा कि यदि सदस्यगण उनके चैम्बर में आकर इन सब बातों को कहते तो समय की बचत हो सकती थी।[20]

जनसंचार माध्यमों ने भी इस स्थिति पर अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। एक समाचार-पत्र ने 19 मार्च, 1985 से आरंभ हुए सप्ताह के लिए राज्य सभा की कार्यवाही की समीक्षा करते हुए इस बात पर दुख प्रकट किया कि राज्य सभा में शून्यकाल की वस्तुतः बलि दी जा रही है। समीक्षा के अंत में यह टिप्पणी की गई कि "यह सुनिश्चित करने के लिए कि शून्यकाल का अस्तित्व समाप्त न हो, सभापति को भी अपने पूर्ववर्तियों की भांति थोड़ा अधिक उदार होना पड़ेगा।"[21]

यद्यपि, तत्कालीन सभापति श्री कृष्ण कान्त के कार्यकाल के दौरान शून्यकाल के दौरान सदस्यों के उल्लेखों को अनुमति देने की प्रथा लगभग बंद कर दी गई थी। कभी-कभार ही, शून्यकाल के दौरान तत्कालीन सभापति ने कुछ सदस्यों को उल्लेख करने की अनुमति दी थी। शून्यकाल के दौरान उल्लेख किए जाने के लिए तत्कालीन सभापति द्वारा अनुमति दिए गए मामले "अनुमति से उठाए गए मामले" के रूप में संसदीय समाचार भाग-1 में परिलक्षित किए जाते थे; यह प्रथा पहले नहीं थी। उदाहरण के लिए, 190वें सत्र के दौरान 31 जुलाई एवं 8 अगस्त, 2000 को दो मामले अनुमति से उठाए गए थे। ऐसा इसलिए भी हुआ कि विशेष उल्लेख से संबंधित प्रक्रिया निर्मित हुई तथा विशेष उल्लेख से संबंधित नियम मई, 2000 में राज्य सभा के प्रक्रिया एवं कार्य- संचालन विषयक नियमों में समाहित किए गए। विशेष उल्लेख से संबंधित नया नियम (180अ से 180ङ) 1 जुलाई, 2000 से प्रभावी हुआ। इसके अतिरिक्त, श्री कृष्ण कान्त के कार्यकाल में,

सदस्यों को संसद् सत्र हेतु आमंत्रण-पत्र भेजे जाने के समय "अनुमति से उठाए गए मामलों" संबंधी प्रक्रिया का विवरण देने वाले पैरे को संसदीय समाचार भाग-2 में प्रकाशित किए जाने की परंपरा बंद कर दी गई। हालांकि, 211वें सत्र के दौरान 20 अगस्त, 2007 को, "अनुमति से उठाए गए मामलों" संबंधी प्रक्रिया का विवरण देने वाले शून्यकाल संबंधी पैरा को संसदीय समाचार भाग-2 में पुन: सम्मिलित कर लिया गया और तबसे सदस्यों को आमंत्रण-पत्र भेजे जाने के दौरान संसदीय समाचार भाग-2 में इस पैरे को लगातार शामिल किया जा रहा है, हां यह जरूर है कि इसे समय-समय पर प्रक्रिया में किए जाने वाले संशोधनों के साथ जारी किया गया है।

कार्य मंत्रणा समिति का मत

कार्य मंत्रणा समिति का मत था कि शून्यकाल के उल्लेखों की अनुमति यथासंभव कम से कम अवसरों पर दी जानी चाहिए और इसके लिए अनुमति मिलने पर किसी सदस्य को दो मिनट से अधिक समय नहीं लेना चाहिए।[22] समिति ने 5 मई, 1993 को हुई अपनी बैठक में ध्यानाकर्षण और विशेष उल्लेख से संबंधित प्रक्रिया पर विस्तार से विचार किया और यह मत प्रकट किया कि यथासंभव कम-से-कम अवसरों पर ही शून्यकाल के उल्लेखों के लिए अनुमति दी जानी चाहिए।[23] समिति ने 5 अगस्त, 1993 को हुई अपनी बैठक में शून्यकाल को विनियमित करने के उपायों पर विस्तारपूर्वक विचार करके यह सुझाव दिया कि शून्यकाल के उल्लेख के लिए यथासंभव कम-से-कम अवसरों पर अनुमति दी जानी चाहिए। समिति ने व्यवस्था दी कि एक बैठक में सिर्फ 3 या 4 उल्लेख हो सकते हैं, और वे भी सिर्फ तभी जब मामले अत्यावश्यक हों। जिस दिन के लिए ध्यानाकर्षण की मद गृहीत कर ली गई हो उस दिन शून्यकाल के उल्लेखों की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।[24] समिति ने 19 अगस्त, 1993 को हुई अपनी बैठक में इन सिफारिशों को दोहराया।[25]

नियम समिति की सिफारिशें

नियम समिति ने 14 फरवरी, 1995 को, अन्य बातों के साथ, शून्यकाल के उल्लेखों की प्रथा पर विचार किया और यह मत व्यक्त किया कि:

(i) शून्यकाल के उल्लेखों में आधा घंटे से अधिक समय नहीं लगना चाहिए;

(ii) सामान्यत: शून्यकाल के उल्लेखों की कुल संख्या प्रतिदिन सात से अधिक नहीं होनी चाहिए और किसी भी स्थिति में वह दस से अधिक नहीं होनी चाहिए और किसी सदस्य को ऐसा उल्लेख करने में तीन मिनट से अधिक समय नहीं लेना चाहिए;

(iii) किसी सप्ताह के दौरान कोई सदस्य सिर्फ एक विशेष उल्लेख या शून्यकाल उल्लेख कर सकता है; और

(iv) शून्यकालिक उल्लेखों और विशेष उल्लेखों को अपराह्न 1 बजे सदन को मध्याह्न-भोजन के लिए स्थगित करने से पहले समाप्त हो जाना चाहिए।[26]

30 मई, 1995 को सदन ने एक प्रस्ताव स्वीकृत किया जिसमें समिति की सिफारिशों पर सहमति प्रकट की गई थी। 30 मई, 1995 को अपने सातवें प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट शून्यकालिक उल्लेखों के संबंध में

नियम समिति की सिफारिशों को स्वीकार करने के बाद वर्ष 1999 के प्रारंभ तक न्यूनाधिक रूप से एक प्रथा का विकास हो चुका था जिसके अनुसार सदस्यगण सभापति से उनके कक्ष में मिलते थे और उन्हें लिखित रूप से यह सूचित करते थे कि वे किन विषयों को उठाना चाहते हैं। सामान्यत: वे ही सदस्य सदन में किसी मामले को उठा सकते थे जिन्हें उसे उठाने की अनुमति दी गई हो। विशेष उल्लेखों संबंधी प्रक्रिया के वर्ष 2000 में नियमबद्ध हो जाने के कारण सदस्यों को शून्यकाल के उल्लेखों के माध्यम से अविलम्बनीय लोक महत्व के मामलों को उठाने की अनुमति दिए जाने के मामले बहुत दुर्लभ हो गए। यह प्रचलन वास्तव में मई 1999 से प्रारंभ हुआ और लगभग 5-6 वर्ष तक चलता रहा, जब शून्यकाल के दौरान सिर्फ कभी-कभार ही कुछ मामलों को "अनुमति से उठाए गए मामलों" के रूप में अनुमति प्रदान की गई। इन मामलों को इसी रूप में संसदीय समाचार भाग-I में उल्लिखित किया गया।

सभापीठ द्वारा एक विनिर्णय दिया गया है कि सभा स्थगित होने के साथ ही शून्यकाल समाप्त हो जाता है। 24 नवंबर, 2006 को जनवादी गणराज्य चीन के प्रतिनिधियों द्वारा अरुणाचल प्रदेश के संबंध में की गई टिप्पणियों पर सभापीठ की अनुमति से चर्चा की गई। व्यवधान के कारण एक सदस्य का भाषण अचानक ही समाप्त हो गया और सभापति ने संबंधित मंत्री को उत्तर देने के लिए बुला लिया। मंत्री द्वारा उत्तर दिए जाने के पश्चात्, सभापति ने मध्याह्न पश्चात् 12.33 पर सभा स्थगित कर दी। भोजनावकाश के पश्चात् मध्याह्न पश्चात् 2 बजे जब सभा पुन: समवेत हुई तो उपसभापति ने घोषणा की कि अब विशेष उल्लेख किए जाएंगे। जिस सदस्य का भाषण व्यवधान के कारण अचानक समाप्त हो गया था, उन्होंने मांग की कि उन्हें भाषण पूरा करने दिया जाए। उपसभापति ने सदस्य की मांग पर आपत्ति की और यह विनिर्णय दिया, "जहां तक शून्यकाल में उठाए गए विषय पर चर्चा का संबंध है, परिपाटी यह है कि एक बार सभा के स्थगित हो जाने के बाद शून्यकाल समाप्त हो जाता है।"[27]

वर्तमान प्रथा

शून्यकाल की लोकप्रियता एवं प्रश्नों के समय के तुरंत बाद सदस्यों की अविलम्बनीय लोक महत्व के मामलों को उठाने की तीव्र इच्छा को नजरअंदाज नहीं किया जा सका और जल्दी ही यह महसूस किया गया कि इस तथ्य के बावजूद कि सरकार पर उन मामलों का औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से उत्तर देने की कोई बाध्यता नहीं है, शून्यकाल के दौरान उल्लेखों की अनुमति देने की अनौपचारिक प्रथा को बंद नहीं किया जा सकता। शून्यकाल को विनियमित करने और प्रश्नों के समय के तुरंत बाद सदस्यों को अविलम्बनीय लोक महत्व के मामलों को उठाने की अनुमति देने के मुद्दे पर कार्य मंत्रणा समिति[28] एवं राज्य सभा में दलों के नेताओं[29] की बैठकों में कई बार चर्चा की जा चुकी है। इन बैठकों में बनी सर्वसम्मति के आधार पर शून्यकाल को विनियमित करने के लिए कुछ दिशा-निर्देश विकसित किए गए थे और सदस्यों को प्रश्नों के समय और सभापटल पर पत्र, यदि कोई हों, रखने के पश्चात् और कार्यावलि में सूचीबद्ध किसी अन्य मद के लिए जाने से पहले मामले उठाने की नियमित रूप से अनुमति दिए जाने की परिपाटी रही थी। इन दिशा-निर्देशों में, अन्य बातों के साथ-साथ, यह प्रावधान किया गया है कि सिर्फ उन्हीं मामलों, जो हाल ही में उत्पन्न हुए हैं विशेषकर पिछले दिन की बैठक वाले दिन मध्याह्न पूर्व 10.00 बजे के बाद उत्पन्न हुए हों, को उठाए जाने की अनुमति दी जा सकती है। जो सदस्य किसी दिन विशेष को अविलंबनीय लोक महत्व का कोई मामला उठाना चाहता हो उसे अधिक से अधिक उस दिन मध्याह्न पूर्व 10.00 बजे तक सभापति को अपने इस आशय की सूचना देनी होगी और उसे अपनी सूचना में वह जिस विषय को उठाना चाहता है उसकी अविलम्बनीयता

एवं महत्व का औचित्य सिद्ध करते हुए, उसका सारांश भी देना होगा। सभापति ऐसी सभी सूचनाओं की जांच-पड़ताल और इन पर विचार करने के पश्चात् इन्हें "अनुमति से उठाए गए मामलों" के रूप में उठाए जाने हेतु गृहीत कर सकते हैं। एक विषय पर एक से अधिक उल्लेख की अनुमति नहीं दी जाएगी। कोई भी सदस्य "अनुमति से उठाए गए मामले" के रूप में एक सप्ताह में एक से अधिक उल्लेख नहीं कर सकेगा। पूर्व में एक दिन में दस से अधिक मामले उठाने की अनुमति नहीं थी। अब प्रतिदिन ऐसे अधिकतम पंद्रह मामलों को उठाए जाने की अनुमति है।[30] कोई सदस्य अपना उल्लेख करने के लिए तीन मिनट से अधिक का समय नहीं ले सकेगा। इसके लिए सभा में एक वामावर्त घड़ी लगी हुई है और उसके कारण मामले को उठाने वाले सदस्य का माइक तीन मिनट के पश्चात् स्वत: ही बंद हो जाता है। प्रत्येक सत्र के प्रारंभ होने से पूर्व संसदीय समाचार भाग-2 में ये दिशा-निर्देश प्रकाशित किए जाते हैं।[31] शून्यकाल में उठाए गए मामले संसदीय समाचार भाग-1 में 'अनुमति से उठाए गए मामले' शीर्षक के अंतर्गत उल्लिखित किए जाते हैं।

हाल के घटनाक्रम

नियम समिति ने 25 नवम्बर, 2014 को राज्य सभा में प्रस्तुत अपने 13वें प्रतिवेदन, जिसे सभा द्वारा 26 नवम्बर, 2014 को अंगीकृत किया गया था, में अन्य बातों के साथ-साथ प्रश्नकाल के समय को मध्याह्न पूर्व 11.00 से मध्याह्न 12 बजे से बदलकर मध्याह्न 12.00 से मध्याह्न पश्चात 1.00 बजे निर्धारित करके राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में संशोधन करने की सिफारिश की, क्योंकि गत कुछ वर्षों से प्रश्नकाल में विभिन्न कारणों से अक्सर व्यवधान उत्पन्न होता रहा है। समिति ने समुक्ति की कि जैसे ही प्रश्नकाल आरंभ होता है वैसे ही अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों को उठाने की सदस्यों की आतुरता के कारण प्रश्न काल में सबसे अधिक व्यवधान उत्पन्न होता है। अत: समिति द्वारा प्रश्नकाल का समय मध्याह्न 12.00 बजे से मध्याह्न पश्चात 1.00 बजे तक निर्धारित करने का प्रस्ताव किया गया ताकि संसद् के प्रति कार्यपालिका की जवाबदेही को सुनिश्चित करने के एक प्रभावी साधन के रूप में प्रश्नकाल की अनुल्लंघनीयता को बनाए रखा जा सके और इसके साथ ही अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों को उठाने हेतु सदस्यों को पर्याप्त अवसर प्रदान किए जा सकें। इसके परिणामस्वरूप मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे के लिए कार्य की प्रथम मद पत्रों को सभापटल पर रखना और अन्य औपचारिक प्रकृति के कार्य होते हैं, जिसके पश्चात सभापति की अनुमति से तात्कालिक और अविलंबनीय लोक महत्व के मामले (शून्यकाल से संबंधित मामले), ऐसे अधिकतम 15 मामलों की सीमा के अध्यधीन, उठाए जाते है; और इसके पश्चात् समय शेष रहने पर मध्याह्न 12.00 बजे तक विशेष उल्लेख (लोक महत्व के मामले उठाने के लिए) के तहत मामलों पर विचार किया जाता है।[32]

सरकार का शून्यकाल के दौरान उत्तर देने के लिए बाध्य न होना

सभापीठ ने कई मौकों पर यह विनिर्णय दिए हैं कि सरकार शून्यकाल के दौरान उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं है। 14 मई, 2007 को श्रम और रोजगार मंत्रालय में राज्य मंत्री द्वारा मातृत्व लाभ (संशोधन) विधेयक, 2007 पुर:स्थापित किए जाने के बाद सभा में कुछ व्यवधान उत्पन्न हुआ। एक सदस्य ने बबली परियोजना संबंधी मुद्दे का समाधान करने की मांग की और सरकार

से जवाब मांगा। उपसभापति ने स्पष्ट किया कि सदस्य को नियमों के तहत उचित सूचना देनी चाहिए और उन्होंने टिप्पणी की:

> "यह शून्यकाल है। सरकार उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं है।...मैं सरकार से शून्यकाल के दौरान उत्तर देने के लिए कैसे कह सकता हूं?... मैं सरकार से शून्यकाल के दौरान उत्तर देने के लिए नहीं कह सकता...."[33]

16 दिसंबर, 2008 को सभापीठ की अनुमति से उठाए गए मामलों के अंतर्गत स्पैक्ट्रम के आवंटन पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने कहा कि समाचार-पत्रों की रिपोर्टों के अनुसार केन्द्रीय दूरसंचार मंत्री पर मोबाइल सेवाओं के लिए 2जी स्पैक्ट्रम को वैश्विक नीलामी के माध्यम से आवंटित किए जाने के बजाय पहले आओ-पहले पाओ आधार पर आवंटित किए जाने का आरोप लगाया गया है। उन्होंने मंत्री की बर्खास्तगी तथा मामले की संयुक्त संसदीय समिति द्वारा जांच कराए जाने की मांग की। उपसभापति ने टिप्पणी की:

> "हम सभी शून्यकाल के लिए सहमत हुए हैं और यह सभा कतिपय नियमों का पालन कर रही है। अब, आपको पता है कि शून्यकाल में मंत्री उत्तर नहीं दे सकते। आप इस बात पर ज़ोर देते हैं कि शून्यकाल आरंभ किया जाना चाहिए और जब हम शून्यकाल आरंभ कर देते हैं तो आप कभी यह मांग करते हैं कभी वह। आपको ऐसा कहने का अधिकार है मगर सरकार कैसे उत्तर दे सकती है? आपको नियमों के अन्तर्गत उपलब्ध किसी अन्य मंच का उपयोग करना होगा। यदि आप अन्य मंच का प्रयोग नहीं करेंगे और कहेंगे कि शून्यकाल का उपयोग सभी प्रयोजनों के लिए किया जाता है, तो मुझे लगता है, यह सही नहीं है। सभी दलों की बैठक में हमने एक निर्णय लिया है। हमें उस निर्णय का सम्मान करना चाहिए। हमें उसी का पालन करना चाहिए।"[34]

अनुवर्ती कार्यवाही

विशेष उल्लेखों के बारे में अनुवर्ती कार्यवाही की जाती है किन्तु शून्यकाल के उल्लेखों के बारे में ऐसा नहीं किया जाता। 1992 में संसद् के कुछ सदस्यों के सुझाव पर संसदीय कार्य मंत्रालय ने यह निर्णय किया कि भारत सरकार के मंत्रालयों के लिए विशेष उल्लेखों की भांति शून्यकाल के उल्लेखों के बारे में सदस्यों को उत्तर भेजना अनिवार्य होना चाहिए।[35] ऐसा प्रतीत होता है कि शून्यकाल के उल्लेखों के बारे में संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा मंत्रालयों को अभी तक प्रक्रिया संबंधी निर्देश जारी नहीं किए गए हैं। तथापि, कभी-कभी उसके द्वारा अनुमति से उठाए गए मामले के संबंध में मंत्री द्वारा सदस्य को दिए गए उत्तर/प्रतिक्रिया की प्रति सचिवालय को भी भेज दी जाती है। इससे यह संकेत मिलता है कि संसदीय कार्य मंत्रालय संभवत: इन मामलों का हिसाब रखता है और इस संबंध में उस सदस्य को जवाब/प्रतिक्रिया भिजवाने के लिए संबंधित मंत्रालय के साथ पत्राचार करता है।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. द कन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी
2. द रैन्डम हाउस डिक्शनरी
3. वैब्स्टर्स थर्ड न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी
4. नियम समिति का तेरहवां प्रतिवेदन, राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, नवम्बर, 2014
5. उदाहरण के लिए, राज्य सभा वाद-विवाद, 3.5.1994, 10.5.1994, 28.8.1994 और 26.8.1994 देखिए
6. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.8.1985, कालम 239
7. जर्नल ऑफ पार्लियामेंटरी इन्फॉर्मेशन, मार्च, 1992

8. डा. बलराम जाखड़ द्वारा लिखित 'पीपल, पार्लियामेंट एंड एडमिनिस्ट्रेशन' में उद्धृत की गई प्रोफेसर रंगा की टिप्पणियां
9. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.6.1967, कालम 1962; राज्य सभा वाद-विवाद, 7.8.1968, कालम 2433 भी देखिए
10. सेकेंड रिपोर्ट फ्रॉम द सिलेक्ट कमिटी ऑन प्रोसीजर (हाउस ऑफ कॉमन्स, 1966-67, 282) ऑन अर्जेंट एंड टॉपिकल डिबेट्स, पैरा 12
11. स्पीकर द्वारा समिति को भेजा गया ज्ञापन, -वही-
12. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.12.1981, कालम 173-74
13. -वही- 29.8.1991, कालम 120
14. -वही- 19.7.1991, कालम 129
15. -वही- 17.9.1991, कालम 28
16. -वही- 27.7.1993, कालम 283
17. -वही- 3.8.1993, कालम 2
18. -वही- 12.8.1985, कालम 239
19. -वही- 13.12.1985, कालम 200-02
20. -वही- 6.5.1986, कालम 183-86
21. स्टेट्समैन, 25.3.1985
22. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 1.8.1991
23. -वही- 5.5.1993
24. -वही- 5.8.1993
25. -वही- 19.8.1993
26. नियम समिति का सातवां प्रतिवेदन; राज्य सभा वाद-विवाद, 14.2.1995 भी देखिए; तथापि, राज्य सभा वाद-विवाद, 21.3.1995, 23.3.1995, 28.3.1995, 30.3.1995 और 31.7.1995 भी देखिए जब शून्यकाल काफी देर तक चला
27. सभापीठ से दिए गए विनिर्णय और समुक्तियां (1952-2008), राज्य सभा सचिवालय, पृष्ठ 440
28. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 30.11.2006 और 16.07.2009
29. 9.5.2007, 20.8.2007 और 11.3.2008 को हुई दलों के नेताओं की बैठक
30. नियम समिति का तेरहवां प्रतिवेदन, राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, नवम्बर, 2014
31. संसदीय समाचार (2), 6.2.2013
32. नियम समिति का तेरहवां प्रतिवेदन, राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, नवम्बर, 2014
33. सभापीठ से दिए गए विनिर्णय और समुक्तियां (1952-2008), राज्य सभा सचिवालय, पृष्ठ 401
34. - वही -
35. फा. सं. 51/3/92-एल

अध्याय-20

विशेष उल्लेख

प्रक्रिया कब और कैसे आरंभ हुई

राज्य सभा के प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों में सदस्यों द्वारा सभा में अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों का उल्लेख करने के बारे में 1 जुलाई, 2000 तक कोई विशिष्ट उपबंध नहीं था। राज्य सभा के प्रारंभ के दो दशकों के दौरान यह प्रथा रही कि सामान्यतया जो सदस्य सभा और सरकार का ध्यान अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी विषय की ओर खींचना चाहता है वह सभा की बैठक के आरंभ होने के पूर्व सभापति से उनके कक्ष में मिल सकता है और विषय का उल्लेख करने के लिए उनकी पूर्व अनुमति ले सकता है। इसके बाद प्रश्नकाल की समाप्ति पर संबंधित सदस्य से कहा जाता था कि वह विषय का उल्लेख करे किंतु कभी-कभी बिना ऐसी अनुमति के भी सदस्यगण अचानक ऐसे मुद्दे उठा देते थे जिससे सभा में अप्रिय स्थिति पैदा हो जाती थी या ऐसी स्थिति पैदा हो जाती थी जिससे बचा जा सकता था। उदाहरण के लिए 16 अगस्त, 1963 को जब एक सदस्य सभापति की पूर्व अनुमति के बिना कोई विषय उठाना चाहते थे तब सभापति ने टिप्पणी की: "मुझे खेद है कि ऐसे विषय जो कार्यावलि में नहीं हैं तब तक सभा में इस प्रकार से नहीं उठाए जाने चाहिए जब तक उनके बारे में मुझसे पहले बात नहीं की गई हो।" जब वह सदस्य विषय को उठाने के बारे में आग्रह करते रहे तब सभापति ने कहा:

> "मैं समझता हूं कि सभा मेरी कठिनाई को समझेगी। यदि कोई विषय मुझे यह जानकारी दिए बिना उठाया जाता है कि वह किसके बारे में है तो संभवत: मैं उसके लिए अनुमति नहीं दूंगा... मुझे पहले ही यह बताया जाना चाहिए कि कौन-सा विषय सभा में उठाया जाने वाला है। यदि ऐसा नहीं होता तो यह कार्यावलि निरर्थक हो जाएगी।" यद्यपि सभापति ने सदस्य को मामले का उल्लेख करने की अनुमति दे दी किंतु उन्होंने यह भी टिप्पणी की: "मुझे आशा है कि आप दुबारा मुझसे ऐसा नहीं कराएंगे।"[1]
>
> पुन:, एक अन्य अवसर पर सदस्यों ने सभापति की पूर्व अनुमति से अपने मुद्दे उठाए तब एक सदस्य एक दूसरे मुद्दे को उठाने के लिए खड़े हो गए। सभापति ने उनसे कहा, "आपने मुझे यह सूचना कभी नहीं दी कि आप कोई प्रश्न उठाना चाहते हैं।" जब सदस्य ने यह स्पष्ट किया कि वह पहले उल्लिखित मामले पर ही एक अलग मुद्दा उठाना चाहते हैं तब उनको उसके लिए अनुमति दे दी गई।[2]

उस समय भी विषयों का उल्लेख करने की प्रथा अनौपचारिक थी। इस प्रथा पर राज्य सभा में दलों और समूहों के नेताओं की 3 अगस्त, 1970 और 21 अगस्त, 1970 को हुई बैठकों में विचार किया गया। उन्होंने निम्नलिखित निर्णय लिया:

> केवल वे सदस्य सभा में किसी विषय का उल्लेख कर सकते हैं जिन्हें सभापति ने उसके लिए अनुमति दी हो। कोई अन्य सदस्य उस पर तब तक न तो बोल सकता है और न उसका उल्लेख कर सकता है जब तक सभापति ने उसकी अनुमति न दी हो। किसी सदस्य को सभापति द्वारा अनुमति नहीं दिए जाने पर कोई मुद्दा उठाने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए।[3]

किंतु यह देखा गया कि इस संबंध में किसी निर्धारित प्रक्रिया के न होने के कारण इस

प्रथा से कई बार, विशेषत: उस समय जब सभापति सभा की बैठक से संबंधित अविलम्बनीय मामलों में व्यस्त रहते हैं, सदस्यों और सभापति को असुविधा होती है। अत: 11 नवम्बर, 1974 को आरंभ हुए राज्य सभा के 90वें सत्र से सभापति के निर्देशानुसार निम्नलिखित नई प्रक्रिया लागू की गई:

> कोई सदस्य जो सभा में अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय का उल्लेख करने के लिए सभापति की अनुमति प्राप्त करना चाहता है, उस दिन जब वह सभा में विषय का उल्लेख करने का विचार रखता है, इस प्रयोजन के लिए सूचना कार्यालय (नोटिस ऑफिस) में उपलब्ध प्रारूप में म.पू. 10.15 बजे तक, उसके पश्चात् नहीं, लिखित रूप में उस विषय की सूचना देगा। किंतु कोई सदस्य एक बैठक के लिए ऐसी दो से अधिक सूचनाएं नहीं देगा। इस प्रयोजन के लिए सदस्यों का सभापति से व्यक्तिगत रूप से मिलना आवश्यक नहीं होगा। म.पू. 10.15 बजे तक प्राप्त सूचनाएं सभापति के समक्ष उनके विचारार्थ रखी जाएंगी। सभापति द्वारा जिस सदस्य को किसी विशिष्ट मामले को उठाने की जिस दिन अनुमति दी जाएगी उस दिन उस सदस्य को प्रश्नकाल के दौरान अनुमति की सूचना दी जाएगी। जिस सदस्य को ऐसी अनुमति दी जाएगी वह प्रश्नों या ध्यानाकर्षण के, यदि कोई हों तो, निपटाए जाने के बाद उस विषय का उल्लेख कर सकेगा। केवल वह सदस्य सभा में विषय का उल्लेख कर सकेगा जिसे सभापति द्वारा अनुमति दी गई हो। जब तक सभापति द्वारा विशेष रूप से अनुमति न दी गई हो तब तक कोई अन्य सदस्य उस पर नहीं बोलेगा।
>
> जिन सदस्यों ने किन्हीं विषयों को उठाने की सूचना दी है किंतु जिन्हें उसकी अनुमति नहीं दी गई है उन्हें उन विषयों को सभा में उठाने की अनुमति नहीं दी जाएगी। किंतु वे किसी बाद के दिन विषयों को उठाने के लिए सभापति के विचारार्थ नई सूचनाएं दे सकते हैं।[4]

प्रत्येक सत्र के आरंभ होने के पूर्व सदस्यों को एक संसदीय समाचार द्वारा उपरोक्त प्रक्रिया के बारे में सूचित किया गया था। "राज्य सभा हैंडबुक फॉर मेम्बर्स" नामक पुस्तिका में भी उसका उल्लेख किया गया था।

इस प्रकार से लोक महत्व के विषयों के बारे में विशेष उल्लेख करने के लिए सदस्यों को अनुमति देने के बारे में राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में किसी विशिष्ट नियम का समावेश नहीं किया गया है तथापि, विशेष उल्लेख करने के लिए परंपरा और आम राय द्वारा एक स्थायी प्रथा का उपरोक्त रूप में विकास हुआ है और वह सुप्रतिष्ठित हो चुकी है।

> वर्ष 1978 में नियम समिति ने इस सुझाव पर विचार किया कि राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में विशेष उल्लेख के लिए विशिष्ट नियम सम्मिलित किया जाए। किंतु वह इस सुझाव पर सहमत नहीं हुई क्योंकि समिति की राय थी कि प्रक्रिया नियमों में "विशेष उल्लेख" का समावेश करके उसे औपचारिक मान्यता देना आवश्यक नहीं है।[5]
>
> समिति ने लगभग एक दशक बाद (1989) सुझाव पर पुनर्विचार किया और वह राज्य सभा नियमों में विशेष उल्लेखों के बारे में एक उपबंध की सिफारिश करने के लिए सहमत हो गई। उसने इस प्रयोजन के लिए एक नियम के प्रारूप का भी अनन्तिम रूप से अनुमोदन किया। तथापि, समिति ने इस मामले में अंतिम निर्णय नहीं लिया और उसे सभा में विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं पर उनके विचार-विमर्श के लिए छोड़ दिया।[6]
>
> बाद में, समिति विशेष उल्लेखों के लिए कोई विशिष्ट नियम बनाने पर सहमत नहीं हुई क्योंकि उसने अनुभव किया कि विद्यमान व्यवस्था संतोषजनक है। समिति का मत था कि विशेष उल्लेख के विषयों के लिए स्वीकृति देना/स्वीकृति न देना, उन्हें सूची में रखना और प्राथमिकता देना सभापति के विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए।[7]

विशेष उल्लेखों की स्वीकार्यता और विशेष उल्लेख करने की प्रक्रिया को शासित करने वाले नियमों के अभाव को सभा के कार्य के सुचारु संचालन में बाधा माना गया। इसलिए, इस मामले को सामान्य प्रयोजन समिति के समक्ष रखा गया था। जिसने अपनी 28 जुलाई, 1999 की बैठक में इस संबंध में नियम बनाने की आवश्यकता का समर्थन किया और मामले को नियम समिति को सौंपा गया। नियम समिति ने अपने आठवें प्रतिवेदन में, सामान्य प्रयोजन समिति से सहमत होते हुए, सभा में विशेष उल्लेख करने की प्रक्रिया को विनियमित करने के लिये नए नियम 180क से 180ङ का प्रस्ताव किया। सभा द्वारा समिति का प्रतिवेदन 15 मई, 2000 को स्वीकार किया गया था और नया नियम 1 जुलाई, 2000 से प्रभावी हुआ। तदनुसार 190वें सत्र से नियम 180क से 180ङ के अन्तर्गत अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों को भी विशेष उल्लेख के रूप में उठाया जा रहा है।

प्रक्रिया

सूचनाएं

प्रत्येक सत्र के आरंभ में सदस्यों को विशेष उल्लेखों के संबंध में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के बारे में सूचित किया जाता है। जो सदस्य विशेष उल्लेख करना चाहता है उसे विहित प्ररूप में लिखित रूप से, जिस दिन वह नए विषय को उठाना चाहता है, उस दिन के पहले दिन मध्याह्न पश्चात् पांच बजे तक सूचना देनी होती है। विषयों के संबंध में सूचनाएं जिन्हें किसी विशेष दिन के लिए नहीं चुना जाता है उन्हें सभापति के विचार के लिए अगले दिन के लिये आगे लाया जाता है। ऐसी सूचनाएं जिनका चयन उस सप्ताह के दौरान, जिसके लिये उन्हें दिया गया है, नहीं किया जाता है, सप्ताह के अन्त में व्यपगत हो जाती हैं और उसकी सूचना उस सदस्य को नहीं दी जाती जिसने सूचना दी थी। वे सदस्य जो अपनी सूचना (सूचनाओं) को अगले सप्ताह के लिए बनाए रखना चाहते हैं वे एक नई सूचना देकर ऐसा कर सकते हैं।[8]

इसके लिए कि सूचना स्वीकार कर ली जाए, इसके साथ एक विशेष उल्लेख का मूल पाठ, जिसमें 250 शब्दों से अधिक शब्द न हों, लगा होना चाहिए; इसमें ऐसे मामले का उल्लेख नहीं होना चाहिए जो मुख्य रूप से भारत सरकार की चिंता का विषय न हो; इसमें ऐसे मामले का उल्लेख नहीं होना चाहिए जिस पर उसी सत्र में चर्चा हुई हो अथवा जो विशेष उल्लेखों को शासित करने वाले नियमों के अधीन सत्र के दौरान किसी सदस्य द्वारा पहले ही उठाए गए मामले से अत्यधिक रूप से समान हो; इसमें एक से अधिक मुद्दे को नहीं उठाया जाना चाहिए और यह मुद्दा तुच्छ मामलों से संबंधित नहीं होना चाहिए; इसमें बहस, हस्तक्षेप, व्यंग्यात्मक अभिव्यक्तियां, आक्षेप, विशेषण अथवा अपमानजनक कथन नहीं होने चाहिए; यह किसी ऐसे मामले से संबंधित नहीं होना चाहिए जो भारत के किसी भाग में क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा निर्णयाधीन हो; यह हाल ही में हुई घटना के मामले तक ही सीमित होना चाहिए; इसमें संसदीय/परामर्शदात्री समिति की कार्यवाहियों का उल्लेख नहीं होना चाहिए; इसमें व्यक्तियों के आचरण और चरित्र, उनकी सार्वजनिक क्षमता को छोड़कर, का उल्लेख नहीं होना चाहिए और किसी मित्र देश के प्रति किसी अशिष्टता का उल्लेख नहीं होना चाहिए।[9]

किसी सदस्य को एक बैठक के लिए दो से अधिक सूचनाएं नहीं देनी चाहिए।[10] उपरोक्त समय तक प्राप्त सभी सूचनाओं को तारीख और घंटों-मिनटों के अनुसार क्रमबद्ध किया जाता है[11]

और उन्हें दिनानुदिन सभापति के विचारार्थ उनके समक्ष रखा जाता है। विशेष उल्लेख के लिए सभापति द्वारा स्वीकृति दिए जाने का निर्णय सभा में प्रश्नकाल के दौरान सदस्य तक पहुंचा दिया जाता है और उसकी सूचना इस टिप्पणी के साथ उसे लौटा दी जाती है: "माननीय सभापति ने स्वीकृति दे दी है।" जिन सदस्यों के विशेष उल्लेखों के विषयों के लिए स्वीकृति मिल जाती है उनके नामों तथा स्वीकृत विषयों की सूची प्रतिदिन तैयार की जाती है और सभापीठ के उपयोग के लिए उपलब्ध रहती है। यह सूची सभा के नेता, विपक्ष के नेता, संसदीय कार्य मंत्री और प्रेस को उपलब्ध करवाई जाती है।

> नियम समिति ने इस सुझाव पर विचार किया किंतु वह इस पर सहमत नहीं हुई कि सभापति द्वारा अनुमोदित विशेष उल्लेखों की सूची राज्य सभा के बाहरी सभाकक्ष (आउटर लॉबी) के नोटिस बोर्ड में लगाई जाए।[12]

सभापति का विवेक

किसी सदस्य द्वारा सभा में किए जाने वाले विशेष उल्लेख का चयन करना पूर्ण रूप से सभापति का विशेषाधिकार है। सामान्य परिस्थितियों में किसी सदस्य द्वारा एक सप्ताह के दौरान, जब तक सभापति अन्यथा निदेश न दें, केवल एक विशेष उल्लेख किए जाने की अनुमति है।[13] किसी विशेष उल्लेख को अनुमति देने या उसकी ग्राह्यता के मुद्दे को सभा में नहीं उठाया जाना चाहिए किंतु उसे सभापति के समक्ष उनके कक्ष में उठाया जा सकता है।[14]

> एक सदस्य को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के एक कर्मचारी द्वारा कथित आत्महत्या के बारे में विशेष उल्लेख करने की अनुमति दी गई थी। एक अन्य सदस्य ने इसी प्रकार के विषय पर ध्यानाकर्षण की सूचना दे रखी थी और जब वह उसके संबंध में निवेदन करना चाहते थे तब उपसभापति ने उन्हें बीच में रोकते हुए टिप्पणी की: "आप सभा में खड़े होकर सभापति के विवेक पर कैसे आक्षेप कर सकते हैं?....यदि प्रत्येक सदस्य उसके द्वारा दी गई सभी सूचनाओं पर बोलने के लिए उठ खड़ा होगा तो सभा को चलाना असंभव हो जाएगा।"[15]

सामान्यत: किसी एक सदस्य को एक ही विषय पर एक से अधिक उल्लेख करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यदि एक ही दिन के लिए एक साथ और एक ही विषय पर एक से अधिक सदस्यों से सूचनाएं प्राप्त होती हैं तो सभापति स्वविवेक के अनुसार यह निर्णय करता है कि किस सदस्य को विशेष उल्लेख करने की अनुमति दी जाए, चाहे सूचना का क्रम कुछ भी क्यों न हो।[16]

> 19 जून, 1980 को राज्य सभा में विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं की सभापति के साथ एक बैठक हुई जिसमें यह अनुभव किया गया कि यदि एक ही विषय पर एक साथ और एक ही दिन एक से अधिक सदस्यों से सूचनाएं प्राप्त होती हैं तो यह निर्णय करने के लिए एक बैलट किया जाना चाहिए कि किस सदस्य को उस विषय पर विशेष उल्लेख करने की अनुमति दी जाए।[17] किंतु इस सुझाव पर आगे कोई और कार्यवाही नहीं हुई।
>
> 1981 में एक सुझाव दिया गया कि यदि किसी विषय पर विशेष उल्लेख करने की अनुमति दी जाती है तो उन सभी सदस्यों को, जिन्होंने सूचनाएं दी हैं, बोलने की अनुमति दी जानी चाहिए। नियम समिति ने उस पर विचार किया किंतु वह उस पर सहमत नहीं हुई।[18]

किंतु कुछ ऐसे भी मामले हुए हैं जहां विषय के महत्व और संवेदनशीलता को देखते हुए अनेक सदस्यों को विशेष उल्लेख पर बोलने की अनुमति दी गई है। ऐसे महत्वपूर्ण विषयों में

से कुछ विषय और उन पर बोलने वाले सदस्यों की संख्या (जो कोष्ठकों में दी गई है) इस प्रकार है:

> न्यायमूर्ति वैद्यलिंगम् आयोग का प्रतिवेदन (8);[19] दिल्ली में पुलिस द्वारा नेत्रहीन लोगों के जुलूस पर लाठी चार्ज (12);[20] जीवन बीमा निगम के कर्मचारियों को बोनस की अदायगी के मामले में उच्चतम न्यायालय को राष्ट्रपति का निर्देश (10);[21] प्रधान मंत्री (श्री राजीव गांधी) की अमरीका यात्रा के दौरान उनकी हत्या करने का षड्यंत्र (11);[22] पत्रकारों में मजदूरी बोर्ड की सिफारिशों के बारे में असंतोष(11);[23] प्रेस की स्वाधीनता को खतरा (10);[24] इंडियन एक्सप्रेस के भवन के पट्टे का रद्द किया जाना; बैंकों के निजीकरण के संबंध में कोठारी पैनल का प्रतिवेदन (3+4);[25] इंडियन एक्सप्रेस के कर्मचारियों को कार्य पुन: आरंभ करने से रोकने के लिए पुलिस की कार्यवाही (6); इस्त्राइल के कार्मिकों की तैनाती बने रहने के बारे में श्रीलंका के मंत्री का वक्तव्य (4);[26] त्रिपुरा में चुनाव (4);[27] भोपाल गैस त्रासदी की तीसरी वर्षगांठ (6);[28] श्रीलंका में हुई घटनाएं (9);[29] त्रिपुरा राज्य को विक्षुब्ध क्षेत्र घोषित किया जाना (5);[30] कुओ तेल सौदा (5);[31] दिल्ली परिवहन निगम में हड़ताल (8);[32] एच.डी.डब्ल्यू. पनडुब्बी सौदा (4);[33] दैनिक भास्कर के ग्वालियर कार्यालय में पुलिस का छापा (4);[34] कतिपय माल में हथियारों का पता चलना (4);[35] तमिलनाडु के राज्यपाल द्वारा करों में कमी और रियायतें (7);[36] व्यवसाय संघ और औद्योगिक विवाद (संशोधन) विधेयक का विरोध (8);[37] प्रधान मंत्री और गृह मंत्री की हत्या का षड्यंत्र (13);[38] कुछ राजनीतिज्ञों और अन्य लोगों की टेलीफोन पर हुई बातचीत का बीच में चोरी-छुपे सुना जाना (9);[39] बिहार के जहाँनाबाद जिले में हरिजनों की हत्या (3);[40] आन्ध्र प्रदेश के मंत्रियों और विधायकों का बोट क्लब पर धरना (4);[41] मानहानि विधेयक, 1988 के विरोध में पत्रकारों की हड़ताल (8);[42] तिहाड़ जेल के अधिकारियों द्वारा राज्य सभा के सदस्य के साथ हाथापाई (8);[43] राज्यों द्वारा मतदान की आयु को कम करने संबंधी संविधान संशोधन विधेयक, 1988 का अनुसमर्थन (3);[44] बम्बई में इंडियन एक्सप्रेस के कार्यालयों पर छापे (5);[45] तस्करों और राजनीतिज्ञों के बीच संबंध (3);[46] त्रिपुरा में सरकारी कर्मचारियों पर हमले (13);[47] स्वतंत्रता दिवस पर कश्मीर में पाकिस्तानी झंडा फहराए जाने की घटनाएं (11);[48] कावेरी जल विवाद के संबंध में उच्चतम न्यायालय का निर्णय (3);[49] बैंक ऑफ इंग्लैंड में सोने का गिरवी रखा जाना (3);[50] महाराष्ट्र के एक गांव में अनुसूचित जाति के एक पुलिस अधिकारी की हत्या (4);[51] दूरदर्शन के एक कार्यक्रम में मौलाना अबुल कलाम आजाद की छवि को खराब करके प्रस्तुत किया जाना (1 + अन्य);[52] कर्नाटक में रहने वाले तमिलों के विरुद्ध हिंसा (1 + अन्य);[53] अयोध्या में मन्दिरों का गिराया जाना (17);[54] कुम्हेर में दलितों पर अत्याचार (3);[55] अमरीका द्वारा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन को काली सूची में रखा जाना (11);[56] और रूस द्वारा रॉकेट प्रौद्योगिकी की बिक्री (2)।[57]

विशेष उल्लेखों को शासित करने वाले नियम बनाए जाने के साथ ही किसी विशेष उल्लेख पर एक से अधिक सदस्य के बोलने की प्रथा 1 जुलाई, 2000 से समाप्त कर दी गई है। केवल एक सदस्य को बोलने की अनुमति दी जाती है और अन्य सदस्य, यदि वे चाहें तो वे केवल किसी अन्य सदस्य द्वारा किये गए विशेष उल्लेख के साथ स्वयं को सहबद्ध कर सकते हैं।

प्रत्येक बैठक में विशेष उल्लेख के मामलों की संख्या

जहां तक प्रत्येक बैठक में विशेष उल्लेखों की संख्या का संबंध है, इसकी व्यवस्था नियम 180घ(2) में की गई है कि यह संख्या सात से अधिक नहीं होगी। परंतु सभापति सभा की किसी बैठक के लिए विशेष उल्लेखों को अनुमति देते समय सभा में कार्य की स्थिति, विषय के महत्व तथा अन्य संबद्ध विषयों पर विचार करते हुए विहित संख्या से अधिक को अनुमति दे सकते हैं। नियम बनने से पहले भी सभा में एक दिन में किए जाने वाले विशेष उल्लेखों की संख्या

को विनियमित करने के प्रयास किए गए थे। सभापति ने 23 अप्रैल, 1981 को सभा को सूचित किया कि कार्य मंत्रणा समिति की 22 अप्रैल, 1981 को हुई बैठक में सर्वसम्मति से यह सुझाव दिया गया है सामान्यत: एक दिन में चार विशेष उल्लेखों से अधिक की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और यदि एक ही विषय पर एक साथ और एक ही दिन के लिए एक से अधिक सदस्यों से सूचना प्राप्त हो तो चाहे सूचना का क्रम जो भी हो, सभापति को स्वविवेक से यह निर्णय करना चाहिए कि किस सदस्य को विशेष उल्लेख करने की अनुमति दी जानी चाहिए। सभापति ने कहा कि उन्होंने सुझाव को स्वीकार कर लिया है और वे इस प्रक्रिया का अनुसरण करने का विचार रखते हैं।[58] किंतु एक सदस्य ने कहा कि वह इस सुझाव से सहमत नहीं हैं और यह चाहते हैं कि प्रत्येक सदस्य को एक या दो मिनट के लिए बोलने की अनुमति होनी चाहिए और यदि एक से अधिक सदस्य किसी मामले को उठाना चाहते हैं तो बैलट कराया जाना चाहिए।[59] कार्य मंत्रणा समिति ने 10 जुलाई, 1992 को हुई अपनी बैठक में अन्य बातों के साथ सिफारिश की कि जब ध्यानाकर्षण या अल्पकालिक चर्चा नहीं हो तो दस से अधिक विशेष उल्लेखों को एक दिन के लिए स्वीकृत किया जा सकता है। समिति ने 5 अगस्त, 1993 को हुई अपनी बैठक में यह मत व्यक्त किया कि सरकारी कार्य के लिए अधिक समय देने के लिए प्रत्येक बैठक में दस से अधिक विशेष उल्लेख नहीं होने चाहिए।[60] किन्तु 174वें सत्र से उनकी संख्या सात तक सीमित कर दी गई है।[61] तथापि, पिछले कई वर्षों से एक बैठक के दौरान दस से अधिक विशेष उल्लेखों की अनुमति दी गई है। उदाहरण के लिए 10 सितंबर, 1991 को तेईस विशेष उल्लेखों की अनुमति दी गई जबकि 13 मई, 1992 को उनकी संख्या तीस थी। 20 अगस्त, 1992 को तेईस, 31 मार्च, 1993 को बीस और 12 मई, 1994 को पच्चीस विशेष उल्लेख किए गए। 21 मार्च, 2007; 7 मई, 2010; 27 अगस्त, 2010; और 11 दिसंबर, 2012 को क्रमश: तीस, छत्तीस, चौंतीस और बत्तीस विशेष उल्लेख सभा पटल पर रखे गए।

विशेष उल्लेख करने का समय

सभा की किसी बैठक में किसी सदस्य द्वारा किए जाने वाले विशेष उल्लेख का चयन करना पूर्णत: सभापति के विवेक पर है और उसके संबंध में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।[62] यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक दिन विशेष उल्लेखों की अनुमति दी जाए। कभी-कभी सभा के कार्य को देखते हुए किसी दिन विशेष उल्लेख के मामले की अनुमति नहीं भी दी जा सकती है।

> उदाहरण के लिए, 25 जुलाई, 1991 को हुई कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में सदस्यों ने सुझाव दिया कि जब तक सभा का आवश्यक कार्य पूरा न हो जाए तब तक सभापति विशेष उल्लेख का मामला उठाने की अनुमति देने से इनकार कर सकते हैं।[63]

इन सब बातों को देखते हुए 'विशेष उल्लेख' की मद कार्यावलि में शामिल नहीं की जाती।

सामान्यत: विशेष उल्लेखों को प्रश्नों के निपटाए जाने के बाद तथा सभापटल पर पत्र रखे जाने के बाद लिया जाता था। कभी-कभी उन्हें मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद[64] या उन्हें पिछले दिन न लिए जाने पर प्रश्नकाल के तुरंत बाद या उनके बारे में सदन में आम राय होने पर ध्यानाकर्षण के पहले लिया गया है।[65]

> नियम समिति ने एक सुझाव पर विचार किया किंतु उसे स्वीकार नहीं किया कि विशेष उल्लेखों को ध्यानाकर्षण के पहले लिया जाना चाहिये।[66] कार्य मंत्रणा समिति की एक बैठक में कुछ सदस्यों ने

सुझाव दिया कि विशेष उल्लेख ध्यानाकर्षण से पहले होने चाहिए। समिति ने मत व्यक्त किया कि चूंकि मामला नियमों से संबंधित है इसलिए उसे नियम समिति को उसके विचारार्थ सौंपा जा सकता है।[67]

सभा की इच्छा के कारण या उसमें आम राय होने के कारण या अन्य अविलम्बनीय कार्य को निपटाना आवश्यक होने के कारण कई बार विशेष उल्लेख के मामलों को प्रश्नकाल के बाद नहीं लिया गया किंतु उन्हें मध्याह्न-भोजन के अवकाश के बाद या किसी अन्य समय या बैठक की समाप्ति के पहले लिया गया है।[68]

उदाहरण के लिए बजट पर चर्चा के कारण कार्य मंत्रणा समिति ने सुझाव दिया कि किसी दिन के लिए स्वीकृत विशेष उल्लेख को मंगलवार, 24 मार्च, 1992 से शुक्रवार 27 मार्च, 1992 तक म.प. 6 बजे तक लिया जा सकता है।[69] किंतु इन दिनों के दौरान कोई विशेष उल्लेख गृहीत नहीं किए गए।

228वें सत्र के दौरान, 11 मार्च, 2013 को सभापति ने इस बारे में निदेश दिया कि सभा की बैठक हेतु गृहीत विशेष उल्लेखों को, म.प. 5 बजे अथवा दिवस के लिए सभा स्थगित होने से पूर्व, जो भी बाद में हो, लिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त निदेश में यह भी विनिर्दिष्ट किया गया कि सदस्यों के पास विशेष उल्लेखों के अनुमोदित पाठ को पढ़ने अथवा उसे सभापटल पर रखने का विकल्प होगा।[70]

हाल के घटनाक्रम

नियम समिति ने 25 नवम्बर, 2014 को राज्य सभा में प्रस्तुत अपने 13वें प्रतिवेदन, जिसे सभा द्वारा 26 नवम्बर, 2014 को अंगीकृत किया गया था, में अन्य बातों के साथ-साथ प्रश्नकाल के समय को मध्याह्न पूर्व 11.00 से मध्याह्न 12 बजे से बदलकर मध्याह्न 12.00 से मध्याह्न पश्चात् 1.00 बजे निर्धारित करके राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन विषयक नियम में संशोधन करने की सिफारिश की, क्योंकि गत कुछ वर्षों से प्रश्नकाल में विभिन्न कारणों से अक्सर व्यवधान उत्पन्न होता रहा है। समिति ने समुक्ति की कि जैसे ही प्रश्नकाल आरंभ होता है वैसे ही अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों को उठाने की सदस्यों की आतुरता के कारण प्रश्नकाल में सबसे अधिक व्यवधान उत्पन्न होता है। अत: समिति द्वारा प्रश्नकाल का समय मध्याह्न 12.00 बजे से मध्याह्न पश्चात 1.00 बजे तक निर्धारित करने का प्रस्ताव किया गया ताकि संसद् के प्रति कार्यपालिका की जवाबदेही को सुनिश्चित करने के एक प्रभावी साधन के रूप में प्रश्नकाल की अनुल्लंघनीयता को बनाए रखा जा सके और इसके साथ ही अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों को उठाने हेतु सदस्यों को पर्याप्त अवसर प्रदान किए जा सकें। इसके परिणामस्वरूप मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे के लिए कार्य की प्रथम मद पत्रों को सभापटल पर रखना और अन्य औपचारिक प्रकृति के कार्य होते हैं, जिसके पश्चात सभापति की अनुमति से तात्कालिक और अविलंबनीय लोक महत्व के मामलें (शून्यकाल के उल्लेख), ऐसे अधिकतम 15 मामलों की सीमा के अध्ययीन, उठाए जाते है; और इसके पश्चात् समय शेष रहने पर मध्याह्न 12.00 बजे तक विशेष उल्लेख (लोक महत्व के मामले उठाने के लिए) के तहत मामलों पर विचार किया जाता है।[71]

विशेष उल्लेख करने की रीति

जिस सदस्य को अनुमति दी गई होती है वह बुलाए जाने पर खड़ा होता है और उस विषय के पाठ को पढ़ता है जिसके लिए अनुमति दी गई है। उसे उस विषय के अतिरिक्त, जिसके लिए उसे अनुमति दी गई है, किसी अन्य विषय का उल्लेख करने की अनुमति नहीं होती।

सदस्य को अपने गृहीत पाठ तक ही सीमित रहना चाहिए

10 दिसंबर, 2004 को, श्री वी. हनुमंत राव आन्ध्र प्रदेश में हृदय संबंधी समस्याओं से जूझ रहे ऐसे बच्चों, जिनको आपरेशन की जरूरत थी, की नाजुक स्थिति के संबंध में विशेष उल्लेख करते समय लिखित गृहीत पाठ से अलग हट गए।

तब उपसभापति ने समुक्ति की:

> "श्री हनुमंत राव, आप जो पढ़ रहे हैं, वह यहां पाठ में नहीं है... आपको केवल वही पाठ पढ़ना है जो आपने माननीय सभापति को दिया है।"[72]

सभापीठ की पूर्व अनुमति से ही कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य द्वारा किए उल्लेख से स्वयं को संबद्ध कर सकता है।[73] ऐसे मामले में उसे संबद्ध होने तक ही स्वयं को सीमित रखना चाहिये और लंबा भाषण नहीं देना चाहिये। जिस सदस्य को अनुमति नहीं दी गई है उसे सभा में विषय का उल्लेख नहीं करना चाहिये।[74] किसी सदस्य को विषय का उल्लेख करने में सामान्यत: तीन मिनट से अधिक समय नहीं लेना चाहिए।[75]

विशेष उल्लेख पर चर्चा न किया जाना

16 मई, 1985 को जब केन्द्र सरकार और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में भर्ती पर प्रतिबंध के परिणामों के संबंध में विशेष उल्लेख के दौरान व्यवधान उत्पन्न हो रहा था, तो सभापति ने कहा:

> "विशेष उल्लेख पर चर्चा की अनुमति नहीं दी जाती।"[76]

हाल ही के वर्षों में, सभापति ने समय बचाने की दृष्टि से, प्राय: सभा का मत लेते हुए सदस्यों को विशेष उल्लेखों के अनुमोदित पाठ को पढ़ने की बजाय उसे सभापटल पर रखने की अनुमति प्रदान की है।[77]

यदि किसी सदस्य को विशेष उल्लेख की अनुमति दी गई है तो यह उसके विवेक पर है कि वह उसे वापस ले या उस विशेष उल्लेख को न करे।

> आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल द्वारा व्यय की विहित अधिकतम सीमा का उल्लंघन किए जाने के बारे में एक विशेष उल्लेख को सदस्य ने विषय पर विवाद होने के कारण वापस ले लिया।[78]

विशेष उल्लेख समाप्त करने की समय-सीमा

जुलाई, 1980 में सभापति ने अन्य बातों के साथ घोषणा की कि विशेष उल्लेखों को यथासंभव 15 मिनटों के भीतर समाप्त कर दिया जाना चाहिये।[79] नियम समिति ने सिफारिश की थी कि विशेष उल्लेखों पर आधा घंटे से अधिक समय नहीं लगना चाहिए और उन्हें मध्याह्न पश्चात् 1 बजे तक समाप्त हो जाना चाहिए।[80] किन्तु पिछले वर्षों में प्रत्येक बैठक में विशेष उल्लेखों की संख्या को देखते हुए इस समय-सीमा के भीतर विशेष उल्लेखों को समाप्त करना संभव नहीं रहा है। वास्तव में ऐसे कई अवसर आए हैं जब एक ही विशेष उल्लेख में काफी समय लगा है। कुछ विशेष उल्लेखों के एक घंटे से अधिक चलने के कुछ हाल के उदाहरण इस प्रकार हैं:

> कश्मीर में बम विस्फोट और पाकिस्तानी झंडे का फहराया जाना;[81] वाराणसी में सांप्रदायिक घटनाएं;[82] अयोध्या में मंदिरों का गिराया जाना;[83] अमरीका द्वारा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) को काली सूची में दर्ज किया जाना।[84]

तथापि, विशेष उल्लेखों की प्रक्रिया को शासित करने वाले नियम को समाविष्ट किए जाने के साथ इस प्रयोजन के लिए लिया गया समय यथेष्ट रूप से कम हुआ है। चूंकि एक विषय पर एक ही सदस्य को बोलने की अनुमति है अत: किसी विशेष उल्लेख में तीन मिनट से अधिक समय लगने का प्रश्न ही नहीं उठता। किसी दिन के लिए अनुमति प्राप्त सभी विशेष उल्लेख सामान्यत: मध्याह्न भोजन के लिए सभा स्थगित होने से पहले ही और कभी-कभी उससे भी पहले ही समाप्त हो जाते हैं।

विशेष उल्लेख के संबंध में अनुपूरक प्रश्नों का न किया जाना

31 अगस्त, 1978 को, श्री नागेश्वर प्रसाद शाही विशेष उल्लेख प्रक्रिया के अंतर्गत काराकोरम राजमार्ग के संबंध में बोले थे। जब श्री रामेश्वर सिंह ने मांग की कि उक्त विषय पर प्रश्न करने के लिए कुछ समय दिया जाए, तब सभापति ने विनिर्णय दिया:

> "विशेष उल्लेखों के संबंध में अनुपूरक प्रश्नों की अनुमति नहीं है।"[85]

विशेष उल्लेखों को एक दिन छोड़कर लिया जाना

140वें सत्र (नवम्बर-दिसंबर 1986) के दौरान सभापति ने एक अनौपचारिक व्यवस्था प्रस्तुत की जिसके द्वारा उन्होंने एक सप्ताह में ध्यानाकर्षण के लिए एक दिन और विशेष उल्लेखों के लिए उससे अगला दिन नियत किया। कार्य मंत्रणा समिति ने 10 जुलाई, 1992 और 19 अगस्त, 1993 को हुई अपनी बैठकों में अन्य बातों के साथ सिफारिश की कि जिस दिन कार्य-सूची में ध्यानाकर्षण या अल्पकालिक चर्चा हो उस दिन विशेष उल्लेख करने की स्वीकृति नहीं दी जानी चाहिए।[86] किंतु कई अवसरों पर ऐसा हुआ है कि जिस दिन ध्यानाकर्षण या अल्पकालिक चर्चा थी उस दिन विशेष उल्लेख भी किए गए।[87]

संसदीय समाचार भाग-1 में समावेश

जिन सदस्यों को विशेष उल्लेख करने की अनुमति दी जाती है उनके नामों तथा उनके द्वारा उठाए गए विषयों का संसदीय समाचार भाग-1 में 'विशेष उल्लेख' शीर्षक के अंतर्गत उल्लेख किया जाता है। विगत में इस संबंध में संसदीय समाचार भाग-1 में "अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों का उल्लेख" के अधीन केवल सदस्यों के नामों का उल्लेख किया जाता था, विषयों का नहीं।[88] संसदीय समाचार भाग-1 में सदस्यों के नामों के साथ उनके द्वारा उठाए गए विषयों का उल्लेख करने की प्रथा 104वें सत्र से शुरू हुई।[89] इन विषयों को 'विशेष उल्लेख' शीर्षक के अंतर्गत दिखाने की प्रथा 1985 से शुरू हुई।[90]

विशेष उल्लेख के दौरान सभा में केबिनेट मंत्री का उपस्थित रहना

15 दिसंबर, 2004 को श्रीमती सुषमा स्वराज ने सभा में विशेष उल्लेख के दौरान मंत्री के उपस्थित रहने की मांग करते हुए एक विशेष उल्लेख किया और उन्होंने केबिनेट मंत्री की अनुपस्थिति में सभा को स्थगित करने के लिए उपसभापति से और इसके बाद सभापति से अनुरोध किया। इस वाद-विवाद में हस्तक्षेप करते हुए कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय में राज्य मंत्री तथा संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री, श्री सुरेश पचौरी ने कहा कि नियम पुस्तक में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि केबिनेट मंत्री की अनुपस्थिति में सभा को स्थगित किया जाना होता है। सभा में मंत्री के उपस्थित होने के बारे में उल्लेख है और राज्य या केबिनेट मंत्री के बारे में कोई विशिष्ट उल्लेख नहीं है।

इसका उत्तर देते हुए, सभापति ने कहा:

> ...सभा में सरकार का समुचित प्रतिनिधित्व रखा जाना उचित होगा और सरकार का समुचित प्रतिनिधित्व रखने के लिए, कम से कम एक-दो केबिनेट मंत्री होने चाहिए, यदि कुछ और अन्य मंत्री हों, तो यह बेहतर है। तथापि, यदि सभा में कोई केबिनेट मंत्री उपस्थित न हो, तो सदस्यों की मांग सही है।[91]

विशेष उल्लेखों के संबंध में अनुवर्ती कार्यवाही

जब विशेष उल्लेख के मामले उठाए जाते हैं तब एक सामान्य प्रथा के रूप में मंत्रीगण सभा में उपस्थित होने पर भी उनके संबंध में तुरंत प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते। यदि संबंधित मंत्री उपस्थित है और उत्तर देना चाहता है तो उसे ऐसा करने की अनुमति होती है किंतु वह उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं होता।[92] तथापि, महत्वपूर्ण विषयों पर सदस्यों की इच्छा जानने के लिए मंत्रिगण प्रतिक्रिया अवश्य व्यक्त करते हैं।[93]

अगस्त 1981 से, जैसाकि 19 अगस्त, 1981 को हुई कार्य मंत्रणा समिति में अनौपचारिक रूप से सुझाव दिया गया था,[94] विशेष उल्लेख किए जाने के बाद अगले दिन सभा की कार्यवाही में से संबंधित अंशों को भारत सरकार के संबंधित मंत्रालय/विभाग को इस अनुरोध के साथ भेजा जाता रहा है कि विशेष उल्लेख करने वाले सदस्य को उसके संबंध में सीधे ही उत्तर देने और इसकी सूचना राज्य सभा सचिवालय को देने के लिए उन अंशों को संबंधित मंत्री के समक्ष रखा जाए। पत्र की एक प्रति संसदीय कार्य मंत्रालय को भी भेजी जाती है जो विशेष उल्लेख द्वारा उठाए गए मामलों पर मंत्रालयों द्वारा अनुवर्ती कार्यवाही सुनिश्चित कराने वाला प्रमुख मंत्रालय है।[95] इस मंत्रालय ने मंत्रालयों/विभागों को विशेष उल्लेखों के विषयों पर उनके द्वारा की जाने वाली अनुवर्ती कार्यवाही और विशेष उल्लेखों के संबंध में उत्तर देने की समय-सीमा के बारे में विभिन्न अनुदेश और मार्गदर्शी सिद्धांत जारी किए हैं। मार्गदर्शी सिद्धांतों में, अन्य बातों के साथ, यह कहा गया है:

(1) सचिवालय से कार्यवाही के संबंधित अंश प्राप्त होने पर मंत्रालयों को उसे अपने मंत्रियों की सूचनार्थ उनके समक्ष रखना चाहिये।

(2) मंत्रालयों को विशेष उल्लेखों के विषयों की जांच करनी चाहिए और विषयों के उठाए जाने की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर उनका उल्लेख करने वाले सदस्यों को उत्तर भेजना चाहिये।

(3) यदि कई स्रोतों से सूचना एकत्र करने जैसे कारणों से किसी विषय के संबंध में इस समय-सीमा का पालन करना संभव न दिखाई दे तो मंत्री द्वारा संबंधित सदस्य को अंतरिम उत्तर भेजा जाना चाहिये जिसमें यह बताया जाना चाहिये कि कितने विलंब की संभावना है और मामले को अंतिम रूप से निपटाने में लगभग कितना समय लगेगा।

(4) जब संसद् का सत्र चल रहा हो तब सदस्यों को सभी पत्र उनके दिल्ली के पते पर भेजे जाने चाहिए। सत्रावकाश की अवधि में ऐसे पत्र सदस्यों के स्थानीय पतों के साथ स्थायी पतों पर भी भेजे जाने चाहिए।

(5) सामान्यत: सदस्यों को मंत्री के हस्ताक्षर से पत्र भेजे जाने चाहिए। किंतु अपवादात्मक मामलों में, उदाहरणत: जब मंत्री दौरे पर हों या बीमार हों, सदस्यों को ऐसे किसी अधिकारी के हस्ताक्षर से पत्र भेजे जा सकते हैं जिसका पद संयुक्त सचिव के पद से छोटा न हो।[96]

उपरोक्त के होते हुए भी विशेष उल्लेखों का निर्धारित समय पर उत्तर प्राप्त न होने का मामला सभा में समय-समय पर उठाया जाता रहा है।

7 मई, 1985 को प्रश्नकाल के तुरंत बाद सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

> मेरे सामने यह बात लाई गई है कि मंत्रियों ने इस सभा के सदस्यों द्वारा किए गए विशेष उल्लेखों का उत्तर नहीं भेजा है। मैं चाहता हूं कि सभा के नेता इस पर ध्यान दें और यह सुनिश्चित करें कि उत्तरों को भेजा जाए और शीघ्रता से भेजा जाए।[97]

सभा के नेता (श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह) ने इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि वह अधिक से अधिक सहयोग देंगे। इसके पश्चात् एक सदस्य ने उन तीन विशेष उल्लेखों का जिक्र किया जो उन्होंने पिछले सत्र में किए थे। एक अन्य सदस्य ने 1984-85 के वर्ष के लिए संसदीय कार्य मंत्रालय के वार्षिक प्रतिवेदन (अंग्रेजी) के पृष्ठ 46 में पैरा 7.15 का उल्लेख करते हुए विशेष उल्लेखों के ऐसे दो उदाहरणों को उद्धृत किया जहां एक महीने से अधिक अवधि के बाद उत्तर भेजे गए और यह कहा कि वार्षिक प्रतिवेदन में जो कुछ कहा गया है उसे अमल में नहीं लाया जा रहा है। सभा के नेता ने "यथाशीघ्र उत्तर दिलाने के लिए" अधिकतम सहयोग का आश्वासन दिया (वार्षिक प्रतिवेदन में मंत्रालयों द्वारा सदस्यों को उत्तर भेजने के लिए उपरोक्त एक सप्ताह की निर्धारित अवधि का उल्लेख किया गया)।

इसके बाद 5 सितम्बर, 1991 को एक सदस्य ने पुन: यह शिकायत की कि विशेष उल्लेखों के उत्तर कई वर्षों से नहीं दिए गए हैं।[98]

उपसभापति ने 9 दिसंबर, 1991 को निम्नलिखित टिप्पणियां की थीं:

> सदस्य विशेष उल्लेख करते हैं। वे कुछ विषयों का उल्लेख करते हैं। हमारे पास ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है जिससे हम मंत्री की प्रतिक्रिया तुरंत प्राप्त कर सकें किंतु कम-से-कम एक सप्ताह या दो सप्ताह के भीतर सदस्यों को उत्तर दे दिया जाना चाहिये। सदस्य कतिपय ऐसे मुद्दे उठाते हैं जो बहुत गंभीर होते हैं। मेरा संसदीय कार्य मंत्री से अनुरोध है कि वे इस संबंध में संबंधित मंत्रियों से बात करना और उनको पत्र लिखना आवश्यक समझें।[99]

एक सदस्य ने 18 मार्च, 1993 को विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में यह मामला उठाया कि उन्होंने 15 मई, 1990 को सभा में जो विशेष उल्लेख किया था उसका उत्तर उन्हें 10 मार्च, 1993 को अर्थात् लगभग तीन वर्ष बाद मिला।[100]

इस संदर्भ में, नियम समिति ने 1984 में कुछ सदस्यों के इस सुझाव पर विचार किया कि सभा की एक समिति गठित की जाए जो सदस्यों द्वारा सभा में किए गए विशेष उल्लेखों के उत्तर दिए जाने के संबंध में सतत् निरीक्षण करे। यद्यपि समिति इस सुझाव पर सहमत नहीं हुई तथापि उसने यह प्रस्ताव रखा कि जैसाकि सरकारी आश्वासनों के मामलों में होता है, संसदीय कार्य मंत्री को प्रत्येक सत्र के दौरान सभापटल पर एक विवरण रखना चाहिये जिसमें यह बताया गया हो कि सभा में सदस्यों द्वारा किए गए विशेष उल्लेखों पर सरकार ने क्या-क्या कार्यवाही की है। किंतु सरकार ने इस प्रस्ताव पर अनुकूल रुख नहीं अपनाया[101] इसके बाद 1992 में समिति ने इस सुझाव पर पुन: विचार किया। समिति ने अनुभव किया कि इस प्रयोजन के लिए सदस्यों की एक अनौपचारिक समिति गठित की जा सकती है। किंतु इस समय मामला यहीं पर अटका हुआ है।[102]

वर्ष 2009 में राज्य सभा के सभापति द्वारा व्यक्त चिन्ताओं के कारण सचिवालय ने स्वयं राज्य सभा में किए गए/पटल पर रखे गए विशेष उल्लेखों के उत्तरों के अत्यधिक समय तक लंबित रहने के मामले पर कार्रवाई शुरू की। संसदीय कार्य मंत्रालय और संबंधित मंत्रालयों के सचिवालयों से लंबित उत्तरों के संबंध में विवरण मांगा गया और विशेष उल्लेखों के संबंध में उनके पास लंबित उत्तर शीघ्र भेजने का आग्रह किया गया। इन प्रयासों के कारण उत्तरों की लंबितता काफी कम की जा सकी। किन्तु मंत्रियों द्वारा विशेष उल्लेखों का उत्तर नहीं भेजने या देरी से भेजने के मामले पर पीठासीन अधिकारी, संसदीय कार्य मंत्रालय और सरकार अभी भी सक्रियता से विचार कर रही है। संसदीय कार्य मंत्रालय, जो विशेष उल्लेखों के उत्तरों पर अनुवर्ती कार्रवाई की निगरानी के लिए जिम्मेवार है, इस संबंध में सत्रावकाश की अवधि में मंत्रालयों के साथ आवधिक बैठकें आयोजित करता है।[103]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.8.1963, कालम 425-26
2. -वही- 26.11.1963, कालम 1028-29
3. फा. सं. 7/4/70-एल
4. संसदीय समाचार (2), 30.10.1974 और 8.11.1974
5. नियम समिति के दूसरे प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, 19.6.1978, पृष्ठ 17-18
6. नियम समिति का कार्यवृत्त, 23.8.1989
7. -वही- 18.8.1992
8. नियम 180ग
9. नियम 180ख
10. समय-समय पर जारी किए गए संसदीय समाचार (2); उदाहरण के लिए देखिए 14.11.1995 का संसदीय समाचार (2)
11. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 1.8.1986
12. नियम समिति के दूसरे प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, 24.1.1979, पृष्ठ 26
13. नियम 180घ(1)
14. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.7.1978, कालम 217; 25.7.1978, कालम 174
15. -वही- 18.3.1975, कालम 156
16. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 22.4.1981; राज्य सभा वाद-विवाद, 23.4.1981, कालम 171; और संसदीय समाचार (2), 23.4.1981
17. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.7.1980, कालम 5; संसदीय समाचार (2), 3.7.1980
18. नियम समिति के तीसरे प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, 5.8.1981 (अंग्रेजी), पृष्ठ 37
19. संसदीय समाचार (1), 4.2.1980
20. -वही- 17.3.1980
21. -वही- 22.4.1981
22. -वही- 14.5.1985
23. -वही- 21.4.1986
24. -वही- 17.3.1987
25. -वही- 16.11.1987
26. -वही- 19.11.1987
27. -वही- 30.11.1987
28. -वही- 3.12.1987
29. -वही- 8.12.1987
30. -वही- 23.2.1988
31. -वही- 14.3.1988
32. -वही- 22.3.1988
33. -वही- 30.3.1988
34. -वही- 26.4.1988
35. -वही- 29.4.1988

36. संसदीय समाचार (1), 9.5.1988
37. -वही- 27.7.1988
38. -वही- 2.8.1988
39. -वही- 9.8.1988
40. -वही- 16.8.1988
41. -वही- 31.8.1988
42. -वही- 6.9.1988
43. -वही- 24.11.1988
44. -वही- 19.12.1988
45. -वही- 8.3.1989
46. -वही- 2.5.1989
47. -वही- 9.5.1989
48. -वही- 16.8.1989
49. -वही- 23.5.1990
50. -वही- 18.7.1991
51. -वही- 29.8.1991
52. -वही- 6.9.1991
53. -वही- 16.12.1991
54. -वही- 23.3.1992
55. -वही- 8.7.1992
56. -वही- 12.5.1992
57. -वही- 5.5.1992
58. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 22.4.1981; राज्य सभा वाद-विवाद, 23.4.1981, कालम 171; और संसदीय समाचार (2), 23.4.1981
59. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.4.1981, कालम 192-95
60. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 10.7.1992 और 5.8.1993
61. संसदीय समाचार (2), 13.7.1995
62. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.3.1975, कालम 156
63. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 25.7.1991
64. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.3.1982, कालम 190; 26.3.1982, कालम 3; 31.3.1982, कालम 91; और 27.4.1984, कालम 185
65. -वही- 26.7.1985, कालम 166; 16.9.1991, कालम 15, इत्यादि
66. नियम समिति के तीसरे प्रतिवेदन का कार्यवृत्त (अंग्रेजी), 5.8.1981, पृष्ठ 37
67. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 1.8.1986
68. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.1.1991, 10.1.1991, 11.1.1991, 26.2.1991, 5.3.1991, 15.7.1991, 25.7.1991, 13.9.1991, 29.11.1991, 2.12.1991, 5.12.1991, 6.12.1991, 11.12.1991, 13.12.1991, 10.3.1992, 16.3.1992, 18.3.1992, 31.3.1992, 29.4.1992, 8.5.1992, 13.5.1992, 14.5.1992, 10.8.1992, 18.8.1992, 19.8.1992, 20.8.1992, 19.3.1993, 31.3.1993, 10.5.1993, 26.7.1993, 29.7.1993, 27.8.1993, 22.12.1993, 16.3.1994, 26.4.1994, 12.5.1994, 15.6.1994, 26.7.1994, 22.8.1994 और 25.8.1994

69. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 23.3.1992
70. संसदीय समाचार भाग (2), 11.3.2013
71. दिनांक 25.11.2014 को नियम समिति द्वारा प्रस्तुत किया गया तथा 26.11.2014 को सभा द्वारा स्वीकृत किया यथा समिति का तेरहवां प्रतिवेदन
72. सभापीठ से दिए गए विनिर्णय और समुक्तियां (1952-2008), राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 380
73. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.3.1986, कालम 35
74. -वही- 25.3.1980, कालम 257; 24.11.1986, कालम 238
75. -वही- 3.7.1980, कालम 5; संसदीय समाचार (2), 3.7.1980; राज्य सभा वाद-विवाद, 20.3.1985, कालम 141
76. सभापीठ से दिए गए विनिर्णय और समुक्तियां (1952-2008), राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 383
77. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.8.2005, 7.9.2012, 24.4.2013, आदि
78. -वही- 23.2.1988, कालम 207-08
79. संसदीय समाचार (2), 3.7.1980
80. नियम समिति के सातवें प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, 21.12.1994 और 14.2.1995
81. संसदीय समाचार (1), 16.8.1989
82. -वही- 20.11.1991
83. -वही- 23.3.1992
84. -वही- 12.5.1992
85. सभापीठ से दिए गए विनिर्णय और समुक्तियां (1952-2008), राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 381
86. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 10.7.1992 और 19.8.1993
87. संसदीय समाचार (1), 25.11.1986, 8.5.1987, 16.3.1988, 28.4.1988, 7.12.1988, 26.4.1989, 10.5.1990, 10.1.1991, 15.7.1992, 23.2.1993, 29.7.1993, 15.3.1994, 14.6.1994, 23.8.1994 और 26.8.1994
88. -वही- 18.7.1977
89. -वही- 21.2.1978
90. -वही- 21.11.1985
91. सभापीठ से दिए गए विनिर्णय और समुक्तियां (1952-2008), राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 378
92. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.8.1985, कालम 145 और 20.12.1985, कालम 198
93. संसदीय समाचार (1), 22.4.1981, 12.3.1987, 24.11.1988, 19.12.1988, 3.4.1989, 2.5.1989, 20.8.1990, 12.7.1991, 16.7.1991, 18.7.1991, 10.9.1991, 2.12.1991, 6.12.1991, 16.12.1991, 27.2.1992, 4.3.1992, 9.3.1992, 23.3.1992, 13.5.1992, 26.11.1992, 2.3.1993, 11.3.1993, 17.8.1993, 23.8.1993 और 24.8.1993
94. फा. सं. 7/5/80-एल
95. संसदीय कार्य मंत्रालय कार्यालय ज्ञापन सं. एफ. 14(3)/89-लेज. 2, दिनांक 15.7.1993
96. -वही-
97. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.5.1985, कालम 171-73

98. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.9.1991, कालम 284
99. -वही- 9.12.1991, कालम 201
100. -वही- 18.3.1993 और फा. सं. 35/12/93-एल
101. नियम समिति के चौथे प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, 29.5.1984, पृष्ठ 20
102. नियम समिति का कार्यवृत्त, 18.8.1992
103. फा. सं. आर.एस. 4/3/2009-एल

अध्याय-21

विधान

संसद् ऐसी संस्था है जिसके अनेक कार्य होते हैं। इसका एक महत्वपूर्ण कार्य कानून बनाना है। विधान संबंधी सभी प्रस्ताव विधेयकों के रूप में संसद् के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। विधेयक प्रारूप परिनियम होता है और कोई भी विधेयक संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिये जाने और उसे राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्रदान कर दिये जाने तक कानून नहीं बन सकता है।

विधेयक का प्ररूप

किसी विधेयक की न्यूनाधिक निम्नलिखित विशेषताएं अथवा प्ररूप होता है:-

विस्तृत नाम: इसमें प्रस्तावित उपाय के स्वरूप का वर्णन होता है और यह विधेयक के आरंभ में होता है। "...आदि के लिए विधेयक"।

प्रस्तावना: यह विस्तृत नाम के पश्चात् और अधिनियमन सूत्र से पहले होती है और इसमें उन कतिपय कारणों को स्पष्ट किया जाता है जिनके कारण यह कानून बनाया जाना आवश्यक हो गया है। "जबकि... आदि।"[1] तथापि, हाल में अधिकांश विधेयकों में प्रस्तावना को समाविष्ट नहीं किया गया है।

अधिनियमन सूत्र: यह विधेयक में खंडों से पहले का संक्षिप्त पैराग्राफ होता है। अधिनियमन, सूत्र का प्ररूप इस प्रकार है:— "भारत गणराज्य के — वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप से यह अधिनियमित हो:—"[2]

संक्षिप्त नाम: यह किसी कानून का शीर्षक या सूचकांक-शीर्ष है और इसे विधेयक के प्रथम खंड में उद्धृत किया जाता है। "इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम...अधिनियम, 20..." है। दो या दो से अधिक विधेयकों को उसी वर्ष एक ही मूल अधिनियम में संशोधनार्थ पुर:स्थापित किये जाने पर उन्हें क्रमानुसार संख्यांकित किया जाता है।[3]

विस्तार-खंड: इसमें स्पष्टतया यह उल्लेख किया जाता है कि क्या प्रस्तावित कानून सम्पूर्ण भारत पर लागू होगा या जम्मू और कश्मीर राज्य के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत पर लागू होगा या केवल संघ-राज्य क्षेत्रों पर लागू होगा या उन राज्यों पर लागू होगा जिनके विधान-मंडलों ने संविधान के अनुच्छेद 252 के अंतर्गत[4] संकल्प पारित किये हैं या सम्पूर्ण भारत, भारत के नागरिकों या व्यक्तियों की कुछ अन्य श्रेणियों[5] पर भी लागू होगा।

प्रारम्भ-खंड: इसमें यह उल्लेख किया जाता है कि अधिनियम कब से लागू होगा। सामान्य परिपाटी यह है कि संक्षिप्त नाम, विस्तार तथा प्रारंभ खंडों को तीन उप-खंडों में विभाजित कर एक ही खंड में रखा जाता है। किसी अधिनियम के प्रारंभ के बारे में सामान्य नियम यह है कि किसी

स्पष्ट प्रतिकूल उपबंध के अभाव में अधिनियम उस तिथि से प्रवृत्त होता है, जिस तिथि को राष्ट्रपति उसे अपनी अनुमति प्रदान कर देते हैं।[6] इसलिए तत्काल प्रवृत्त होने वाले अधिनियम में सामान्यत: प्रारंभ खंड नहीं होता है। यदि कोई अधिनियम भूतलक्षी प्रभाव से प्राप्त होता है, तो उसके प्रारंभ खंड का निम्नलिखित स्वरूप होता है: यह अधिनियम...को प्रवृत्त होना समझा जाएगा।[7] अनेक मामलों में केन्द्रीय सरकार को किसी अधिनियम को 'उस तिथि से, जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे' प्रवृत्त करने की शक्ति प्रदान की जाती है और इसके अतिरिक्त कुछ अधिनियमों में यह उपबंध किया जा सकता है कि इनके विभिन्न उपबंध भिन्न-भिन्न तिथियों को प्रवृत्त होंगे।[8]

अवधि खंड: किसी अस्थायी विधेयक में इसे उस विधेयक के पहले खंड में एक उप-खंड के रूप में सम्मिलित किया जाता है और इसमें उक्त अधिनियम के प्रवृत्त रहने की अवधि को दर्शाया जाता है; और विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति पर इस प्रकार का अधिनियमन निष्प्रभावी हो जाता है।[9]

घोषणात्मक खंड: कतिपय विधेयकों में यह विधेयक के खंड एक (उद्धरण-खंड) के पश्चात् आता है और इसमें उस आवश्यकता या अपेक्षा के बारे में घोषणा की जाती है या बताया जाता है जिसकी पूर्ति हेतु परिनियम को बनाया गया है। सामान्यत: संविधान के अनुच्छेद 31-ग या सातवीं अनुसूची की संघ सूची में प्रविष्टि संख्या 7, 23, 27, 52, 53, 54, 56, 62, 63, 64 या 67 के अंतर्गत अनुध्यात् विधान में घोषणात्मक खंड अंतर्विष्ट होता है।[10]

परिभाषा खंड: यह सामान्यत: संक्षिप्त नाम के तत्काल बाद आता है और इसमें अधिनियम या अधिनियम के किसी भाग या अध्याय विशेष में प्रयुक्त शब्दों या वाक्यांशों की अस्पष्टता को दूर करने के लिए अधिनियम में आने वाली विभिन्न अभिव्यक्तियों की परिभाषा दी गई होती है।[11] परिभाषाएं अंग्रेजी के वर्ण-क्रमानुसार दी गई होती हैं।

नियम बनाने संबंधी खंड: इसमें प्रस्तावित कानून के अंतर्गत कार्यपालिका को नियम बनाने की शक्ति प्रत्यायोजित की जाती है, जिसका निर्धारित स्वरूप होता है और इसे नियम, विनियम आदि बनाने की शक्ति वाले सभी विधेयकों में अंत:स्थापित किया जाता है। यह तीन सामान्य सिद्धांतों पर आधारित होता है अर्थात् नियमों आदि को संसद् के प्रत्येक सदन के पटल पर रखा जाना चाहिए, नियम बनाये जाने के पहले अथवा यथाशीघ्र उसके पश्चात् उन्हें विनिर्दिष्ट अवधि के लिए पटल पर रखा जाना चाहिए और वे एक विहित अवधि के भीतर संसद् द्वारा संशोध्य होने चाहिए।

निरसन और व्यावृत्ति खंड: यह किसी विधेयक के अंत में होता है और किसी अधिनियम या अध्यादेश को निरस्त करता है और कुछ ऐसे प्रावधानों को आरक्षित करता है जिन्हें अन्यथा अधिनियम भाग की शब्दावली में सम्मिलित कर लिया गया होता है अथवा उन अधिकारों की रक्षा करता है जो विद्यमान कानून के अंतर्गत प्रोद्भूत हुए हों। निरसन और व्यावृत्तियों दोनों से संबंधित उपबंधों को एक ही खंड में समाविष्ट किया जाता है। साधारण खंड अधिनियम में किसी अधिनियम के निरसन के विभिन्न प्रभावों के बारे में उपबंध किया गया है।[12]

अनुसूचियां: इन्हें कुछ विधेयकों में संलग्न किया जाता है और इनमें ब्यौरे संबंधी विषयों जैसे— प्रारूप, सूचियां, तालिकाएं आदि दी गई होती हैं। इन्हें 'प्रथम अनुसूची', 'द्वितीय अनुसूची', आदि कहा जाता है और इनके आरंभ में विधेयक के संबंधित खंड का उल्लेख किया जाता है।

उपरोक्त खंडों के अतिरिक्त, किसी विधेयक में अपवाद और उन्मुक्ति, प्रक्रिया विषयक मामले, प्रस्तावित अधिनियम के अध्यारोही प्रभाव, शास्ति, शंकाओं का निराकरण और निर्देश जारी करने की शक्ति से संबंधित उपबंध भी हो सकते हैं। प्रत्येक खंड किसी प्रस्ताव सहित एक स्वत: पूर्ण पैराग्राफ होता है। किसी खंड को उपखंडों में विभक्त किया जा सकता है और किसी उपखंड को मदों में विभक्त किया जा सकता है। खंडों को क्रमानुसार 1, 2, 3 आदि, उपखंडों को (1), (2), (3), आदि और मदों को (i), (ii), (iii), आदि या (क), (ख), (ग) आदि संख्या प्रदान की जाती है। यदि कोई विधेयक लम्बा है, तो उसे अध्यायों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक अध्याय, खंड और अनुसूची को संक्षिप्त शीर्षक प्रदान किया जाता है। पच्चीस से अधिक खंडों वाले विधेयक में "खंडों का क्रम" नामक विधेयक की विषय-सूची भी होती है। पच्चीस से अधिक खंडों वाले विधेयकों या अत्यधिक तकनीकी स्वरूप के विधेयकों जैसे कुछ मामलों में, जो आसानी से समझ में नहीं आते हैं, "खंडों के संबंध में टिप्पण" संलग्न होते हैं, जो उनमें अंतर्विष्ट विभिन्न उपबंधों को स्पष्ट करते हैं। ये टिप्पण व्याख्यात्मक होते हैं और खंडों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने में सहायक होते हैं।[13] संशोधन विधेयकों में उक्त विधेयकों द्वारा संशोधित किये जाने वाले मूल अधिनियमों के संगत उपबंधों के उद्धरण भी अनुपत्रों के रूप में अंतर्विष्ट होते हैं।[14]

विधेयकों के प्रकार

विधेयकों को किसी मंत्री या गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रायोजित किये जाने के आधार पर सरकारी विधेयकों और गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विधेयकों को उनकी विषय-सूची के अनुसार मोटे तौर पर (क) नये प्रस्तावों, विचारों या नीतियों वाले मूल विधेयक, (ख) विद्यमान अधिनियमों में परिवर्तन, संशोधन या परिशोधन करने वाले संशोधन विधेयक, (ग) किसी विषय-विशेष के बारे में विद्यमान कानून/अधिनियमन को समेकित करने वाले समेकन विधेयक, (घ) ऐसे अधिनियमों को, जिनकी अवधि, अन्यथा, किसी विनिर्दिष्ट तिथि को समाप्त हो जायेगी, जारी रखने वाले अवसानोन्मुख विधि (प्रवृत्त बने रहना) विधेयक, (ङ) परिनियम पुस्तिका को सुस्पष्ट करने वाले निरसन और संशोधन विधेयक, (च) कतिपय कार्यों को विधि-मान्यता प्रदान करने वाले विधि-मान्यकरण विधेयक, (छ) अध्यादेशों को प्रतिस्थापित करने वाले विधेयक, (ज) धन और वित्तीय विधेयक और (झ) संविधान संशोधन विधेयकों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

किसी विधेयक के लिए आवश्यक बातें

नियमों के अंतर्गत, किसी विधेयक में इसके मूल पाठ के साथ-साथ उद्देश्यों और कारणों का कथन, प्रत्यायोजित विधान संबंधी ज्ञापन और वित्तीय ज्ञापन, जहां कहीं आवश्यक हो, का होना आवश्यक है।

उद्देश्यों और कारणों के कथन में प्रस्तावित विधान के प्रयोजन को संक्षेप में बताया जाता है। उक्त कथन में किसी विधेयक की विषय-वस्तु और उद्देश्यों की व्याख्या की जाती है और इससे उक्त विधेयक की आवश्यकता और उसकी व्याप्ति को समझने में मदद मिलती है। अत: इसे गैर-तकनीकी शब्दावली में तैयार किया जाना आवश्यक होता है; इनमें तर्कादि का समावेश नहीं किया जाना चाहिए।[15] इसमें सभापति द्वारा, यदि वह उचित समझे, संशोधन किया जा सकता है।[16]

> एक बार गैर-सरकारी सदस्यों के एक विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन को अत्यधिक लम्बा पाया गया और उसमें तर्कादि और विधेयक से असम्बद्ध बातों को भी समाविष्ट किया गया था। अत: उक्त कथन में संशोधन किया गया था। जब संबंधित सदस्य से उक्त विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए कहा गया, तब उसने यह शिकायत की कि कथन में कुछ परिवर्तन, संवर्धन और कुछ अंशों को निकालकर "काट-छांट" कर दी गई है। अत: वह यह चाहते थे कि उक्त कथन के उनके मूल पाठ को फिर से लगाया जाये और तत्पश्चात् इसे सदस्यों में परिचालित किया जाये। अत: सदस्य के अनुरोध पर उक्त विधेयक के पुर:स्थापन को स्थगित कर दिया गया था। बाद में संबंधित सदस्य से परामर्श कर उक्त कथन में और संशोधन किया गया और उसे विधेयक को पुर:स्थापित किये जाने वाले दिन सदस्यों में परिचालित किया गया।[17]

विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन संबंधी प्रस्तावों को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित उनकी व्याप्ति के प्रति ध्यान आकृष्ट करना और यह बताना भी आवश्यक है कि क्या उनकी व्याप्ति सामान्य या असाधारण प्रकृति की है।[18] सामान्य प्रकार के प्रत्यायोजित विधान में समर्थकारी अधिनियम में ही प्रत्यायोजित शक्तियों की सीमाओं की स्पष्ट व्याख्या कर दी जाती है और इसमें सैद्धांतिक मामलों या कर अधिरोपित करने के बारे में विधान बनाने या इस प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले या किसी अन्य अधिनियम सहित संसद द्वारा बनाये गये किसी अधिनियम में कोई संशोधन करने की शक्ति जैसी शक्तियां नहीं होती हैं। असाधारण प्रकार के प्रत्यायोजित विधान में इससे पूर्व उल्लिखित शक्तियां होती हैं या प्रदत्त शक्तियां इतनी विस्तृत होती हैं कि उनकी सीमाओं की व्याख्या करना संभव नहीं होता है या उनकी सीमाएं विनिर्दिष्ट करते समय उन पर न्यायालयों का नियंत्रण समाप्त हो जाता है।[19]

ऐसे किसी विधेयक में जिसमें, व्यय अंतर्ग्रस्त हो, वित्तीय ज्ञापन का होना आवश्यक है जिसमें विशेषत: उन खंडों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया हो, जिनमें कि व्यय अंतर्ग्रस्त हो और विधेयक के कानून का रूप ग्रहण कर लेने की स्थिति में आवर्ती और गैर-आवर्ती व्यय का भी अनुमान दिया गया हो। विधेयक की मुद्रित प्रति में इन खंडों को मोटे या तिरछे अक्षरों में दर्शाया जाता है।[20]

सुस्थापित प्रथा के अनुसार, किसी अध्यादेश के स्थान पर उक्त अध्यादेश के उपबंधों में संशोधनों युक्त किसी विधेयक को सदन में पुर:स्थापित करते समय विधेयक में अंतर्विष्ट संशोधनों की विधेयक के साथ संलग्न ज्ञापन में व्याख्या की जाती है।[21]

सदन की विधायी सक्षमता

संविधान की सातवीं अनुसूची में अंतर्विष्ट तीन सूचियों में संघ और राज्यों के मध्य विधायी शक्ति और दोनों के लिए समवर्ती शक्ति के विभाजन का उपबंध किया गया है। इन सूचियों में उन विषयों का वर्णन किया गया है जिनके बारे में संसद्, राज्य विधान मंडलों तथा संसद् और राज्य विधान मंडलों दोनों को, यथास्थिति कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। इन विषयों के तीन सूचियों में वर्गीकरण से सदन के समक्ष विषयों-विशेष के संबंध में विधान बनाने की संसद् की सक्षमता के बारे में सदन में अनेक बार प्रश्न उठाये गये हैं। अब यह एक सुस्थापित प्रथा बन चुकी है कि सभापति सदन की विधायी सक्षमता के बारे में कोई व्यवस्था नहीं देते हैं।

सदन किसी विधेयक की शक्तिमत्ता के विशिष्ट प्रश्न पर भी कोई निर्णय नहीं करता है। इस मामले में सदस्य अपने विचार प्रकट करने और विधेयक के बारे में विभिन्न प्रस्तावों पर मतदान करते समय इसकी शक्तिमत्ता के पहलू पर विचार करने के लिए स्वतंत्र हैं। सभापति, हालांकि वह इस पर अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं लेकिन सामान्यत: इस बारे में किसी अंतिम निर्णय को सदन पर ही छोड़ देते हैं।

एक सदस्य द्वारा पुर:स्थापित महिला और बाल संस्थाएं अनुज्ञप्ति विधेयक, 1953 पर विचार आरंभ करते समय संबंधित मंत्री द्वारा यह बताया गया था कि इस विधेयक को सम्पूर्ण भारत पर लागू किया जा रहा है, जबकि संसद् तत्समय भाग 'ग' के अंतर्गत आने वाले राज्यों के संबंध में विधान बना सकती थी। कुछ सदस्यों ने यह सुझाव दिया कि यह तकनीकी दोष है जिसे अनदेखा किया जा सकता है। उपसभापति इससे सहमत नहीं हुए और उक्त विधेयक पर आगे विचार किये जाने हेतु अनुमति प्रदान करने से इंकार कर दिया।[22]

1956 में उसी विषय पर उसी सदस्य द्वारा एक अन्य विधेयक पुर:स्थापित किये जाने पर यह औचित्य प्रश्न उठाया गया था कि चूंकि इस विधेयक की विषय-वस्तु राज्य सूची की प्रविष्टि 32 के अंतर्गत पूर्णत: राज्य के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आती है। अत: यह विधेयक संसद की विधायी सक्षमता के अंतर्गत नहीं आता। उपसभापति ने यह विचार व्यक्त किया कि यह विधेयक समवर्ती सूची की प्रविष्टि 28 के अंतर्गत भी आ सकता है। तथापि, उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> मैं कोई व्यवस्था देने की जिम्मेवारी स्वयं पर इसलिए नहीं लेना चाहता हूं क्योंकि इस बारे में पहले ही व्यवस्था दी जा चुकी है। केन्द्रीय विधान मंडल में 9 दिसम्बर, 1947 को किसी विधेयक विशेष पर चर्चा के दौरान यह मुद्दा उठाया गया था कि क्या यह विधेयक अधिकारातीत है। अध्यक्ष महोदय ने यह कहा है कि सामान्य परिपाटी यह रही है कि सभापीठ यह निर्णय करने और इस कारण से किसी विधेयक को अस्वीकृत करने का दायित्व स्वयं पर नहीं लेती है क्या कोई विधेयक विशेष अधिकारातीत है या नहीं[23] अत: मैं यह निर्णय करने का कार्य सदन पर छोड़ देता हूं कि क्या यह अधिकारातीत है या नहीं।[24]

एक अन्य अवसर पर एक सदस्य द्वारा पुर:स्थापित लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1959 पर, जिसमें लोक सभा और राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों को वापस बुलाने का उपबंध किया गया था, विचार आरंभ करते समय एक औचित्य-प्रश्न उठाते हुए विधि मंत्री ने यह निवेदन किया कि संसद् इस विधेयक पर विचार करने के लिए इसलिए सक्षम नहीं है क्योंकि संविधान में संसद् और राज्यों की विधान सभाओं के गठन को निर्धारित कर दिया गया है और निर्वाचित सदस्यों को वापस बुलाने के लिए उपबंध करने हेतु संविधान में संशोधन किया जाना आवश्यक है। सदस्यों के विचार सुनने के बाद उपसभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> ...विधेयक के पुर:स्थापन के समय यह आपत्ति नहीं की गई थी। लेकिन मैं अभी भी यह महसूस करता हूं कि विधि मंत्री द्वारा की गई आपत्ति काफी हद तक ठीक है और ऐसा करने के लिए संविधान में संशोधन किया जाना आवश्यक होगा। लेकिन सभापीठ ने किसी विधेयक के अधिकारातीत या अन्यथा होने का निर्णय करने का कभी भी दायित्व नहीं लिया है। इस संबंध में सभापीठ ने अनेक बार अपने निर्णय दिये हैं। वस्तुत: 23 अप्रैल, 1951 को अंत:कालीन संसद् में अग्रिम संविदा (विनियमन) विधेयक पर जब यह आपत्ति की गई थी कि यह संवैधानिक दृष्टि से अधिकारातीत है, तब अध्यक्ष ने निम्नलिखित टिप्पणी की:
>
> मैं यह स्पष्ट कर चुका हूं कि अधिकारातीत विषयक प्रश्न का निर्णय सभापीठ द्वारा नहीं किया जायेगा बल्कि इसे सदन पर छोड़ दिया जाना चाहिए। यदि सदन इस निष्कर्ष पर पहुंचता

है कि यह विधेयक अधिकारातीत है, तो वह इसे अस्वीकृत कर सकता है। यदि सदन विधेयक को विचारार्थ स्वीकार कर लेता है, तो व्यथित पक्ष उच्चतम न्यायालय या अन्य न्यायालयों से अपेक्षित राहत प्राप्त कर सकता है। इसीलिए मैंने यह कहा था कि संवैधानिक बारीकियों के प्रश्न पर विस्तृत चर्चा करने से कोई लाभ नहीं है क्योंकि इन विषयों पर अधिवक्ताओं द्वारा ही ठीक प्रकार से बहस आदि की जा सकती है और इन बारीकियों पर विस्तृत चर्चाएं कर सदन का समय नष्ट करना उचित नहीं है।

पुन: 1953 में, विधान सभा (निरर्हता निवारण) विधेयक की संवैधानिकता का प्रश्न उठाये जाने पर निम्नलिखित टिप्पणी की गई थी:

ऐसे सभी मामलों में अध्यक्ष ने कभी भी इस औचित्य प्रश्न का निर्णय करने का दायित्व स्वयं पर नहीं लिया है कि क्या यह संविधान सम्मत है या नहीं। किसी विधेयक को अस्वीकृत या स्वीकृत करते समय सदन को इस पहलू पर भी विचार करना चाहिए।

इन परिस्थितियों में, मैं इस विधेयक को स्वीकार करने या अस्वीकार करने का कार्य सदन पर ही छोड़ देता हूं। इस पर आगे चर्चा जारी रहेगी।[25]

पुन:, बाद में एक अन्य अवसर पर वित्त मंत्रालय में उपमंत्री द्वारा अनिवार्य निक्षेप योजना विधेयक, 1963 को विचारार्थ उपस्थित करते समय एक सदस्य ने यह तर्क दिया कि इस विधेयक में संविधान के कतिपय उपबंधों का उल्लंघन किया गया है क्योंकि यह किसी नागरिक के अपनी परिसम्पत्ति के इच्छित तरीके से निपटान करने के अधिकार का अतिक्रमण करता है। सदस्यों के विचार सुनने के पश्चात् सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

मैं माननीय सदस्यों को किसी निर्णय पर पहुंचने में मेरी सहायता करने के लिए धन्यवाद ज्ञापित करता हूं। मेरे विचार में, प्रथम दृष्टया, हम इस पर चर्चा कर सकते हैं, परन्तु मैं कोई व्यवस्था नहीं देना चाहता क्योंकि केन्द्रीय विधानमंडल में यह मान्य परिपाटी रही है कि सभापीठ यह निर्णय करने का स्वयं पर दायित्व नहीं लेती है कि क्या किसी विधेयक पर विचार करने के लिए सदन के पास विधायी सक्षमता है या क्या कोई विधेयक अधिकारातीत है। जब इस प्रकार का कोई प्रश्न उठाया जाता है, तो सामान्य परिपाटी यह रही है कि इस प्रकार के मामले को सदन के निर्णयार्थ छोड़ दिया जाये। ऐसा करने का मुख्य कारण यह है कि सदन की विधायी सक्षमता या प्रस्तावित विधान की संवैधानिकता से संबंधित प्रश्न प्राय: कठिन और पेचीदा होता है और इस प्रकार के प्रश्न के बारे में कोई निर्णय करना न्यायालय और अन्ततोगत्वा उच्चतम न्यायालय का कार्य है। पीठासीन अधिकारी को अनधिकार चेष्टा कर स्वयं न्यायालय के कार्यों का निष्पादन नहीं करना चाहिए, विशेषतया उसे इसलिए ऐसा नहीं करना चाहिए क्योंकि उसके पास कोई संतोषप्रद निर्णय करने के लिए सुविधाओं या सामग्री का अभाव होता है। किसी सदस्य द्वारा उपस्थित किये गये किसी प्रस्ताव से उत्पन्न प्रत्येक प्रश्न के बारे में कोई निर्णय करना सदन का ही विशेषाधिकार और दायित्व है। अत: यदि इस मामले को सदन के निर्णयार्थ छोड़ दिया जाता है, तो सदन, यदि उसकी सम्मति में यह विधेयक अधिकारातीत है, तो इसे अस्वीकृत कर सकता है। तथापि, यदि सदन विधेयक को स्वीकार कर लेता है तो इस अवस्था में भी व्यथित पक्ष न्यायालयों और अंतत: उच्चतम न्यायालय से अपेक्षित राहत प्राप्त कर सकता है। यह प्रश्न अनेक बार संसद् के समक्ष आया है और इस संबंध में वही मान्य प्रथा रही है, जिसका कि मैंने यहां उल्लेख किया है।[26]

मुस्लिम स्त्री (विवाह-विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) विधेयक, 1986, लोक सभा द्वारा पारित रूप में, पर विचार आरंभ करने से पूर्व सदस्यों ने विधेयक की संवैधानिकता के बारे में विभिन्न मुद्दे उठाये। सभापति ने उस पर पूर्ण चर्चा की अनुमति दी और तदुपरान्त निम्नलिखित व्यवस्था दी:

...संसद् के दोनों सदनों में यह सुस्थापित पूर्व-निर्णय दिया गया है कि सभापीठ किसी विधान की शक्तिमत्ता के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं देती है। यह इस बात की जांच नहीं करती

> है कि कोई विधान अधिकारातीत है या प्राधिकाराधीन। इसका निर्णय करना न्यायालय का कार्य है। यह बात संविधान के लागू होने के पश्चात् दिये गये सभी निर्णयों से सिद्ध हो जाती है। इसी सिद्धांत के अनुसरण में मैं यह निर्णय नहीं कर रहा हूं कि यह विधेयक प्राधिकाराधीन है या अधिकारातीत। सदन ने आपत्तियों को सुना है और सदस्य दोनों ओर से दिये गये तर्कों के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतंत्र हैं। जहां तक सभापीठ का सम्बन्ध है, सभापीठ यह व्यवस्था देती है कि सभापीठ का यह कार्य नहीं है कि वह इस पर निर्णय दे कि इस विधेयक पर विचार करना इस विधायिका की सक्षमता के अंतर्गत आता है अथवा नहीं।[27]

23 जनवरी, 1985 को साधारण बीमा कारबार (राष्ट्रीयकरण) संशोधन विधेयक, 1985 पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने औचित्य का प्रश्न उठाया। उन्होंने कहा कि मजदूर संघों, श्रमिकों को सौदेबाजी का मूल अधिकार प्राप्त है जिसे इस विधेयक द्वारा नकारा जा रहा है और यह विधेयक इस मूल अधिकार का उल्लंघन करता है। एक दूसरे सदस्य ने इस मुद्दे पर सभापीठ से विनिर्णय देने की मांग की। उप-सभाध्यक्ष ने टिप्पणी की:

> यह एक स्वीकार्य परिपाटी है कि सभापीठ इस बात के संबंध में किसी उठाए गए व्यवस्था के प्रश्न पर विनिर्णय नहीं देती है कि कोई विधेयक संवैधानिक रूप से सभा की विधायी सक्षमता के दायरे में आता है या नहीं...सदस्य इस मामले में अपने-अपने विचार रखने और विधेयक पर विचार किए जाने के पक्ष में और विपक्ष में अपने तर्क रखने के लिए स्वतंत्र हैं। सदस्य विधेयक पर विचार किए जाने के प्रस्ताव पर मत देते समय इस पहलु को ध्यान में रख सकते हैं। इस सुदीर्घ परिपाटी के मद्देनजर, मैं उठाए गए मुद्दों पर कोई विनिर्णय नहीं देना चाहता हूं।[28]

विधेयक के तीन वाचन

धन विधेयकों और अन्य वित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 109 और 117 के उपबंधों के अध्यधीन, कोई भी विधेयक संसद् के दोनों सदनों में से किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है।[29] इसके अतिरिक्त, कतिपय मामलों में दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों और धन विधेयक के संबंध में अनुच्छेद 108 और 109 के उपबंधों के अध्यधीन, किसी विधेयक को संसद् के दोनों सदनों द्वारा तब तक पारित कर दिया जाना नहीं माना जाता है, जब तक कि दोनों सदन उक्त विधेयक पर किसी संशोधन के बिना या सिर्फ ऐसे संशोधनों सहित, जिन पर दोनों सहमत हों, अपनी सहमति नहीं दे देते हैं।[30]

संसद् के प्रत्येक सदन में किसी विधेयक के तीन वाचन होते हैं। प्रथम वाचन किसी विधेयक के पुर:स्थापन से संबंधित है। किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए अनुमति संबंधी प्रस्ताव की स्वीकृति के उपरांत विधेयक को पुर:स्थापित किया जाता है या किसी विधेयक को पुर:स्थापित किये जाने संबंधी जानकारी को पहले ही राजपत्र में प्रकाशित कर दिया जाता है या दूसरे सदन, जहां विधेयक प्रस्तुत किया गया हो, द्वारा पारित रूप में उक्त विधेयक को सभा पटल पर रख दिया जाता है। द्वितीय वाचन में दो अवस्थाएं होती हैं: पहली अवस्था में सामान्यत: निम्नलिखित प्रस्तावों में से किसी एक प्रस्ताव पर विधेयक के सिद्धांतों और इसके उपबंधों पर चर्चा की जाती है: 'कि इस पर विचार किया जाये'; 'कि इसे राज्य सभा की प्रवर समिति को सौंपा जाये'; 'कि इसे लोक सभा की सहमति से दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सौंपा जाये'; 'कि इस पर

मत जानने के लिए इसे परिचालित किया जाये' और दूसरी अवस्था में विधेयक पर पुर:स्थापित रूप में या प्रवर/संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में खण्डश: विचार किया जाता है। तृतीय वाचन के समय इस प्रस्ताव पर चर्चा होती है कि 'विधेयक को (या यथासंशोधित विधेयक) पारित किया जाये या (धन विधेयक के मामले में लोक सभा को) लौटाया जाये।'

प्रत्येक विधेयक के तीन वाचन होते हैं या उसे ऊपर उल्लिखित अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है, लेकिन विधेयकों की कुछ श्रेणियां जैसे सरकारी विधेयकों, संविधान संशोधन विधेयकों, धन और वित्त विधेयकों, अध्यादेशों का स्थान लेने वाले विधेयकों और गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों में विशेष प्रक्रियात्मक पहलू होते हैं और इनके संबंध में इसलिए पृथक् प्रक्रिया अपनायी जाती है।

राज्य सभा में आरंभ किये जाने वाले सरकारी विधेयक

विधायी नीति का निरूपण

विधायी नीति का निरूपण किसी विधेयक को तैयार करने की पहली अवस्था है। परिनियम किसी विधायी नीति की औपचारिक और विधिक अभिव्यक्ति होता है और इसलिए किसी विधेयक का प्रारूप तैयार किये जाने से पूर्व संबंधित प्रशासनिक मंत्रालयों में प्रशासनिक वित्तीय और राजनीतिक दृष्टि से उसके द्वारा क्रियान्वित की जाने वाली नीति को निर्धारित और नियत कर दिया जाना चाहिए।[31] पर्याप्त विचार-मंथन के बाद ही किसी विधेयक का प्रारूप तैयार किया जाता है। सामान्यत: किसी शिकायत का निरूपण या यह अनुभव किया जाता है कि किसी नई आवश्यकता को पूरा करना होगा और ऐसा कानून में कुछ और जोड़कर या उसमें परिवर्तन करके ही किया जा सकता है। इसके पश्चात् इसका कोई उपयुक्त समाधान या उपाय ढूंढने का प्रयास किया जाता है जिसमें प्राय: परस्पर-विरोधी हितों में सामंजस्य स्थापित करना होता है। विधायी विचार किसी व्यथित व्यक्ति के मन में उत्पन्न हो सकता है या यह लोक हित के लिए सक्रिय किसी समाज या लोगों के समूह या किसी विधान का प्रस्ताव रखने में किसी लक्ष्य की प्राप्ति के उद्देश्य से किसी 'दबाव-समूह' के ठोस प्रयासों का प्रतिफल हो सकता है या किसी विषम समस्या से जूझ रही कार्यपालिका कोई ऐसा विधान बनाने पर विचार कर सकती है जिससे कि उसका समाधान किया जा सके या फिर कोई विधान बनाने संबंधी विचार सत्तारूढ़ दल की घोषित नीति का ही एक अंग हो सकता है।[32]

विधायी विचार उत्पन्न होने के पश्चात्, सरकार विधायी प्रस्ताव तैयार करती है। इस अवस्था में निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किये जाते हैं: प्रशासनिक मंत्रालय प्रस्ताव की विशिष्टताओं को दर्शाते हुए एक टिप्पण के रूप में उसकी मुख्य रूपरेखा तैयार करता है, विधि मंत्रालय उसकी संवैधानिक वैधता और विद्यमान कानून में संशोधन करने या नया कानून बनाये जाने की आवश्यकता की जांच कर उसे विधिक स्वरूप प्रदान करता है या उसे प्रारूप विधान के रूप में प्रस्तुत करता है।[33] इसके पश्चात् मामले के तथ्यों और प्रस्तावित विधायी उपायों को दर्शाते हुए एक पूर्ण सार तैयार किया जाता है और उसे विचार एवं अनुमोदनार्थ मंत्रिमंडल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।[34]

विधेयक को तैयार किया जाना

मंत्रिमंडल द्वारा किसी विधायी प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिये जाने पर इस संबंध में कार्य की शुरुआत करने वाला मंत्रालय विधान बनाये जाने के लिए निर्दिष्ट मानकों को स्पष्टत: दर्शाते हुए एक ज्ञापन तैयार करता है और विधि मंत्रालय से विधेयक को संसद् में पुर:स्थापित किये जाने हेतु उसका प्रारूप बनाने के लिए अनुरोध करता है।[35] किसी विधेयक का प्रारूप तैयार करने का कार्य प्रारूप विधान विषयक निर्देशों-युक्त ज्ञापन के प्राप्त हो जाने पर भी हमेशा ही आरंभ नहीं हो जाता है। विषय-वस्तु, नीति, विधि का स्वरूप और इसी प्रकार के अन्य मामले परस्पर गुंथे हुए होते हैं और विधेयक को अंतिम रूप दिये जाने से पूर्व प्रारूप-लेखक और विभागीय अधिकारियों के मध्य विभिन्न अवस्थाओं में विचार-विमर्श किया जाना आवश्यक है। छोटे विधेयक के मामले में एक या दो प्रारूप पर्याप्त हो सकते हैं, परन्तु बड़े विधेयक के लिए अनेक प्रारूप तैयार करने पड़ सकते हैं और उनके बारे में मिसिलों और सम्मेलनों दोनों में ही टिप्पणियां और आलोचना आदि की जा सकती है। किसी महत्वपूर्ण और पेचीदा विधेयक का प्रारूप तैयार करने की प्रक्रिया काफी लम्बी हो सकती है और यह उस समय तक जारी रहती है जब तक कि विधेयक के स्वरूप और विषय-वस्तु के बारे में विधेयक का प्रायोजक मंत्रालय और प्रारूप-लेखक दोनों ही संतुष्ट नहीं हो जाते हैं। तथापि, हाल ही में एक सम्पूर्ण प्रक्रिया विपरीत क्रम से भी आरंभ होने लगी है। प्रायोजक मंत्रालय द्वारा किसी विधेयक को अंतिम रूप प्रदान कर दिये जाने और उसका अनुमोदन कर दिये जाने पर उद्देश्यों और कारणों का कथन, प्रत्यायोजित विधान संबंधी ज्ञापन, वित्तीय ज्ञापन, आदि जैसाकि पहले ही उल्लेख कर दिया गया है, जैसी आवश्यक औपचारिकताएं पूरी की जाती हैं। सभी औपचारिकताओं को पूरा कर लिये जाने पर विधि मंत्रालय द्वारा विधेयक को इसके ज्ञापनों और अनुपत्रों सहित मुद्रणार्थ सरकारी मुद्रणालय को भेज दिया जाता है और प्रारूप-लेखक द्वारा प्रूफ की संवीक्षा कर उसे प्रमाणित किया जाता है। तत्पश्चात्, विधेयक को संसद् के उस सदन के सचिवालय के पास भेज दिया जाता है, जिसमें उसे पुर:स्थापित किया जाना हो।[36]

सदन का चयन

संविधान के अनुच्छेद 109 और 117(1) में धन और कतिपय वित्तीय विधेयकों को राज्य सभा में पुर:स्थापित करने पर प्रतिबंध लगाया गया है। इन प्रतिबंधों के अध्यधीन, विधेयकों को संसद् के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। संसदीय कार्य की स्थिति को देखते हुए सुविधानुसार किसी विधेयक (इन अनुच्छेदों के अंतर्गत आने वाले विधेयक के अतिरिक्त) को पुर:स्थापित करने के लिए सदन का चयन कर लिया जाता है। भारत सरकार कार्य आवंटन नियमों के अंतर्गत संसदीय कार्य मंत्रालय को सौंपे गये कार्यों में से एक कार्य दोनों सदनों में विधायी और अन्य सरकारी-कार्य की योजना और समन्वय भी है[37] और मंत्रालय यह निर्धारित करता है कि किसी गैर-धन विधेयक को किस सदन में पुर:स्थापित किया जाना है। लेकिन इस सम्बन्ध में बहुधा अपने विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए मंत्री की सदन की वरीयता निर्णायक भूमिका अदा करती है। इस संबंध में राज्य सभा के प्रक्रिया विषयक प्रारूप नियमों की अनुशंसार्थ नियुक्त की गई समिति ने 1963 के अपने प्रतिवेदन में यह विचार व्यक्त किया था कि सरकार को दोनों सदनों में अपने कार्य को, विशेषत: विधेयकों को पुर:स्थापित किये जाने के मामले में इस तरह से व्यवस्थित करना चाहिए कि दोनों सदनों में

कार्य का समान प्रवाह बना रहे। समिति ने यह अनुभव किया था कि राज्य सभा में तत्समय सरकारी कार्य संबंधी व्यवस्था की स्थिति संतोषप्रद नहीं थी।[38] तथापि, तब से इस स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है।

पुरःस्थापन से पूर्व विधेयक की संवीक्षा

यह निश्चित हो जाने पर कि विधेयक को किस सदन में पुरःस्थापित किया जाना है, विधि मंत्रालय विधायी परामर्शदाता (पूर्व में मुख्य प्रारूप-लेखक) द्वारा हस्ताक्षरित कार्यालय-ज्ञापन के साथ विधेयक के प्रूफ की प्रति सचिवालय को भेज देता है। विधायी परामर्शदाता द्वारा प्रमाणित विधेयक के अंग्रेजी और हिन्दी पाठों के प्रूफ की दो प्रतियां (पहली मूल प्रति और दूसरी अतिरिक्त प्रति) विधि मंत्रालय से सचिवालय को प्राप्त होती है। इसके पश्चात् विधेयक सदन के नियंत्रण में आ जाता है और तदुपरांत सचिवालय का यह दायित्व होता है कि वह विधेयक की स्वच्छ प्रतियां मुद्रित कराकर सदस्यों में परिचालित करे और इस संबंध में अन्य सभी कदम उठाये।

विधेयक की प्रूफ प्रति को अंतिम बार मुद्रणार्थ मुद्रणालय भेजने से पूर्व यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से इसकी संवीक्षा की जाती है कि क्या इसमें संविधान और प्रक्रिया विषयक नियमों के विभिन्न उपबंधों, विशेष रूप से निम्नलिखित बातों का अनुपालन किया गया है अर्थात्, क्या—

विधेयक की विषय-वस्तु संसद् की विधायी सक्षमता के अंतर्गत आती है; विधेयक को पुरःस्थापित किये जाने से पूर्व प्रकाशित किया गया है; विधेयक में पच्चीस से अधिक खंड हैं और यदि हां, तो क्या इसके साथ "खंडों का क्रम" संलग्न किया गया है; संशोधन विधेयक के मामले में मूल अधिनियम की संशोधित की जाने वाली धाराओं को उद्धृत करते हुए उन्हें विधेयक के साथ अनुपत्र के रूप में संलग्न किया गया है; विधेयक के साथ "उद्देश्यों और कारणों का कथन" संलग्न किया गया है; अनुच्छेद 3 के परन्तुक या अनुच्छेद 274(1) के अंतर्गत विधेयक को पुरःस्थापित किये जाने के लिए राष्ट्रपति की अनुशंसा की आवश्यकता है और यदि हां, तो क्या उनकी अनुशंसा प्राप्त कर ली गई है; विधेयक के अधिनियमित और प्रवृत्त हो जाने पर इसमें भारत की संचित निधि से व्यय अंतर्ग्रस्त होगा और यदि हां, तो क्या अनुच्छेद 117(3) के अंतर्गत राष्ट्रपति की अनुशंसा प्राप्त कर ली गई है; विधेयक के संबंध में वित्तीय ज्ञापन आवश्यक है और यदि हां, तो क्या विधेयक के साथ इसे संलग्न कर दिया गया है और संगत खंडों को मोटे या तिरछे अक्षरों में दर्शाया गया है; विधेयक में विधायी शक्ति का प्रत्यायोजन अंतर्ग्रस्त है और यदि हां, तो क्या विधेयक के साथ प्रत्यायोजित विधान संबंधी ज्ञापन संलग्न कर दिया गया है; विधेयक संशोधनों सहित किसी अध्यादेश का स्थान लेगा और यदि हां, तो क्या इसके साथ विधेयक में किये गये परिवर्तनों के बारे में व्याख्यात्मक-ज्ञापन संलग्न कर दिया गया है; विधेयक के संबंध में अनुच्छेद 249 या अनुच्छेद 312 के अंतर्गत राज्य सभा द्वारा कोई पूर्व संकल्प पारित किया जाना आवश्यक है और यदि हां, तो क्या ऐसा संकल्प पारित किया जा चुका है; विधेयक के संबंध में अनुच्छेद 169 या 252 के अंतर्गत राज्य विधान-मंडलों द्वारा पूर्व संकल्प पारित किये जाने आवश्यक हैं और यदि हां, तो क्या इन्हें पारित कर दिया गया है और "उद्देश्यों और कारणों का कथन" में इस आशय का संकेत दे दिया गया है; विधेयक संघ सूची में मद संख्या 7, 23, 24, 27, 52, 53, 54, 56, 62, 63, 64 या 67 के अंतर्गत

किसी विषय से संबंधित है और यदि हां, तो क्या इसमें किसी घोषणात्मक-खंड को अंतर्विष्ट किया गया है; और संविधान संशोधन विधेयक के मामले में राज्य विधान-मंडलों द्वारा संपुष्टि की आवश्यकता है और यदि हां, तो क्या इस पर विधि मंत्रालय की राय जानने के लिए इसे उसके पास भेजा गया है।

> राज्य सभा में आंध्र प्रदेश पुनर्गठन विधेयक, 2014 के पुर:स्थापन के लिए 230वें सत्र (30.1.14) के द्वितीय भाग के दौरान गृह मंत्री से एक सूचना प्राप्त हुई थी। विधायी विभाग से प्राप्त विधेयक की प्रूफ कॉपी की जांच करने पर यह पाया गया कि विधेयक के कुछ खंड अनुच्छेद 110(1)(क) और (ङ) के उपबंधों को आकर्षित करते हैं और इस प्रकार से विधेयक को वित्त विधेयक की श्रेणी-1 में रखा गया था। तद्नुसार राज्य सभा में पुर:स्थापन हेतु विधेयक की सूचना की स्वीकृति के लिए 10 फरवरी, 2014 को विधि और न्याय मंत्रालय से परामर्श मांगा गया था। हालांकि इसी बीच सरकार ने विधेयक को लोक सभा में पुर:स्थापित करने को वरीयता दी और विधेयक उस सभा में 13 फरवरी, 2014 को पुर:स्थापित किया गया।
>
> विधि और न्याय मंत्रालय के विधायी विभाग के सचिव ने 5 मई, 2014 के अपने पत्र के द्वारा महासचिव को यह सूचित किया कि विभाग का भी यही विचार है कि आंध्र प्रदेश पुनर्गठन विधेयक, 2014 के पुर:स्थापन के लिए संविधान के अनुच्छेद 3 और अनुच्छेद 117 के खंड (1) और (3) के अधीन राष्ट्रपति की अनुशंसा आवश्यक है और, तद्नुसार प्रशासनिक मंत्रालय को लोक सभा में विधेयक के पुर:स्थापन हेतु सूचना देने के लिए परामर्श दिया गया।[39]

इसके पश्चात् विधेयक को इस प्रयोजनार्थ रखी गई 'विधेयक पंजिका' में दर्ज किया जाता है और विधेयक के सबसे ऊपर "(रोमन अंकों में) 20...का विधेयक संख्यांक...." के रूप में 'विधेयक संख्या' दर्शायी जाती है। सबसे ऊपर "राज्य सभा" शब्दों के मध्य में विधेयक के दीर्घ नाम और राष्ट्रपति की अनुशंसा, यदि कोई हो,[40] और अंत में प्रभारी मंत्री के नाम और पदनामयुक्त सार पृष्ठ संलग्न कर दिया जाता है। इसके बाद मूल प्रूफ प्रति इन निर्देशों के साथ मुद्रणालय को भेज दी जाती है कि इसकी पंक्तियों की संख्या सहित प्रतियां मुद्रित की जायें। मुद्रित प्रतियां प्राप्त होने पर मूल प्रूफ प्रति के साथ एक प्रति की बारीकी से जांच की जाती है। तदुपरांत, विधायी-परामर्शदाता, विधि मंत्रालय को एक संशोधित प्रति संवीक्षार्थ भेजी जाती है। यदि आवश्यक हो, तो शुद्धि-पत्र (विधायी-परामर्शदाता द्वारा किये गये संशोधनों सहित) विधेयक के साथ या बाद में अलग से सदस्यों में परिचालित किया जाता है। "राज्य सभा में पुर:स्थापित किये जाने के लिए" और "राज्य सभा में पुर:स्थापित रूप में" मूर्धांकन सहित विधेयक की प्रतियां मुद्रित करायी जाती हैं और परवर्ती मामले में विधेयक को पुर:स्थापित करने के पश्चात् प्रतियों पर पुर:स्थापन की तिथि की मुहर अंकित कर दी जाती है।

विधायी-परामर्शदाता द्वारा प्रमाणित विधेयक के हिन्दी पाठ के प्रूफ की दो प्रतियां विधि मंत्रालय से भी प्राप्त की जाती हैं और विधेयक के हिन्दी पाठ की प्रतियां मुद्रित कराकर उन्हें उन सदस्यों में परिचालित किया जाता है जिन्हें हिन्दी में अपने संसदीय पत्र प्राप्त होते हैं।

> एक बार अनेक सदस्यों ने एक विधेयक के पुर:स्थापन पर इस आधार पर आपत्ति की कि उन्हें विधेयक के अंग्रेजी पाठ के साथ-साथ इसका हिन्दी पाठ उपलब्ध नहीं कराया गया है। एक सदस्य ने यह औचित्य-प्रश्न उठाया कि चूंकि इस प्रकार की परिपाटी रही है, अत: इस परिपाटी से हटकर यदि

कुछ किया जाना है, तो इसके लिए कोई संकल्प उपस्थित करना होगा। उपसभापति ने यह व्यवस्था दी, "मेरे विचार में इस सदन में ऐसी कोई परिपाटी निर्धारित नहीं की गई है...अब हम आगे के लिए इसे निर्धारित करना चाहते हैं..." (सदस्यों को प्रत्येक विधेयक के अंग्रेजी पाठ के साथ ही इसका हिन्दी पाठ भी उपलब्ध कराया जाना चाहिए)।[41]

पुर:स्थापन से पूर्व विधेयक का प्रकाशन

सभापति, उनसे अनुरोध किये जाने पर, विधेयक को पुर:स्थापित किये जाने के लिए कोई प्रस्ताव उपस्थित न किये जाने पर भी विधेयक को राजपत्र में प्रकाशित किये जाने का आदेश दे सकते हैं। ऐसी स्थिति में विधेयक को 'उद्देश्यों और कारणों का कथन' 'विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन संबंधी ज्ञापन' तथा 'वित्तीय ज्ञापन' यदि कोई हो, सहित प्रकाशित किया जाता है।

निम्नलिखित मामलों में विधेयकों के राजपत्र में प्रकाशनार्थ अनुरोध प्राप्त हुए थे और उन्हें स्वीकार कर लिया गया था:

1. हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, 1954, 26 मई, 1954 को एक प्रस्ताव द्वारा राजपत्र में प्रकाशित किया गया और 22 दिसम्बर, 1954 को (एक प्रस्ताव द्वारा) पुर:स्थापित किया गया (आगे देखिए);

2. औषधि (संशोधन) विधेयक, 1954, 28 मई, 1954 को राजपत्र में प्रकाशित किया गया और 23 अगस्त, 1954 को पुर:स्थापित किया गया; और

3. रेल गोदाम (विधि विरुद्ध) कब्जा विधेयक, 1954, 6 अगस्त, 1954 को राजपत्र में प्रकाशित किया गया और 23 अगस्त, 1954 को पुर:स्थापित किया गया।

ऐसी स्थिति में विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए अनुमति प्रदान करने हेतु कोई प्रस्ताव उपस्थित किया जाना आवश्यक नहीं है और यदि विधेयक को बाद में पुर:स्थापित कर दिया जाता है, तो उसे पुन: प्रकाशित किया जाना आवश्यक नहीं है।[42] अगला कदम किसी ऐसे विधेयक को पुर:स्थापित करना होता है जोकि विधेयक के पुर:स्थापनार्थ किसी प्रस्ताव को उपस्थित किये जाने से भिन्न हो। मंत्री या विधेयक का प्रभारी सदस्य मात्र यह वक्तव्य देता है कि वह विधेयक को पुर:स्थापित करता है और तत्पश्चात् सभापति यह घोषणा करता है कि विधेयक को पुर:स्थापित कर दिया गया है। तथापि, ऐसे किसी विधेयक में उसे औपचारिक रूप से पुर:स्थापित किये जाने से पूर्व कोई परिवर्तन किये जाने पर अन्य किसी विधेयक की भांति ही उसे पुर:स्थापित किये जाने के लिए अनुमति हेतु प्रस्ताव उपस्थित करना होता है।

हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, 1954 को पुर:स्थापित किये जाने से पूर्व राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। तथापि, पुर:स्थापित किये जाने वाले विधेयक में कुछ संशोधन किये गये थे।[43] अत: प्रस्ताव उपस्थित कर विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति प्राप्ति की गई थी और उक्त प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर विधेयक को 22 दिसम्बर, 1954 को पुर:स्थापित कर दिया गया था।

पुर:स्थापित किये जाने वाले विधेयकों की प्रतियों का परिचालन

आरंभ के वर्षों में, पुर:स्थापित किये जाने वाले विधेयकों की प्रतियों का सदस्यों को अग्रिम रूप से परिचालन किये जाने की कोई परिपाटी नहीं थी। विधेयकों का पुर:स्थापन किये जाने के पश्चात् ही उनकी प्रतियां परिचालित की जाती थीं। इसका कारण यह दिखाई पड़ता है कि स्थापित परिपाटी के अनुसार, विधेयकों का पुर:स्थापन किये जाने पर विरोध नहीं किया जाता था।[44]

एक बार, पुर:स्थापन की अवस्था पर, एक गैर-सरकारी सदस्य ने अपने विधेयक के बारे में एक लघु व्याख्यात्मक वक्तव्य दे दिया था। यह सुझाव दिया गया था कि सदस्यों को विधेयकों को पुर:स्थापित किये जाने से पूर्व उनकी प्रतियां उपलब्ध करायी जायें, ताकि वे विधेयकों के पुर:स्थापन के लिये अनुमति देने या देने से इंकार करने के लिए कहे जाने से पूर्व उन विधेयकों के संबंध में अपनी धारणा बना सकें। सभापति ने यह विचार प्रकट किया था कि जब तक विधेयकों को पुर:स्थापित नहीं किया जाता, तब तक उनको परिचालित कर दिये जाने की कोई परिपाटी नहीं है। तथापि, उन्होंने इस सुझाव पर विचार करने पर सहमति दे दी थी।[45]

एक अन्य अवसर पर, संबंधित सदस्य से अपने विधेयक की व्याख्या करने के लिये भी कहा गया था और तत्पश्चात् उन्हें अपने विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति दी गयी थी। उन्होंने यह शिकायत की थी कि यहां तक कि उन्हें पुर:स्थापित किये जाने वाले उनके विधेयक के प्रति आधिकारिक रूप से उपलब्ध नहीं करायी गयी थी।[46]

पहले भी एक ऐसी मिसाल रही थी जब गृह मंत्री ने राज्य पुनर्गठन विधेयक के प्रारूप, जिसे राज्यों के विचारार्थ भेजा जा रहा था, और संविधान के संशोधन हेतु सम्बद्ध प्रस्तावों की एक प्रति सभा पटल पर रखी थी। उसे सभा पटल पर रखते हुए मंत्री (श्री गोविन्द बल्लभ पंत) ने यह कहा था कि: "मैं ऐसा किया जाना उपयुक्त समझता हूं।"[47]

लम्बे समय से स्थापित परिपाटी के अनुसार, विधेयक को सामान्यत: तब तक कार्यावलि में शामिल नहीं किया जाता है, जब तक कि सदस्यों को विधेयक को पुर:स्थापित किये जाने के प्रस्तावित दिवस से कम-से-कम दो दिन पूर्व तक विधेयक की प्रतियां उपलब्ध नहीं करवायी जाती हैं।[48]

ऐसे कुछ दृष्टांत रहे हैं जब विधेयक के अग्रिम रूप से परिचालन के बिना उसके पुर:स्थापन पर आपत्ति की गयी और इसीलिये उसका पुर:स्थापन आस्थगित किया गया।

एक समय दिल्ली में लगातार भारी वर्षा होने के कारण सदस्यों को संसदीय पत्र समय पर नहीं मिल पाये थे। उन पत्रों में उस दिन पुर:स्थापित किये जाने के लिए निर्धारित चार विधेयकों की प्रतियां भी थीं।[49] अत:, परिपाटी के अनुसार विधेयकों की प्रतियां दो दिन पूर्व परिचालित किये बिना ही उनको पुर:स्थापित किये जाने पर आपत्ति प्रकट की गयी थी। इसलिये, कुछ सदस्य यह चाहते थे कि उन विधेयकों का पुर:स्थापन आस्थगित कर दिया जाये। सभापीठ ने उनकी बात को मान लिया था।[50]

एक अन्य अवसर पर, व्यवसाय संघ और औद्योगिक विवाद (संशोधन) विधेयक, 1988 के पुर:स्थापन पर इसलिए आपत्ति प्रकट की गयी थी क्योंकि विधेयक को पुर:स्थापित किये जाने के पूर्व उसकी प्रतियां परिचालित नहीं की गयी थीं। तथापि, उसे पुर:स्थापित किये जाने की अनुमति उपसभापति के इस स्पष्टीकरण के बाद ही दी गयी थी कि यह विधेयक महत्वपूर्ण है और सदस्यों को विधेयक के विचारण की अवस्था पर अपने विचार व्यक्त करने का पर्याप्त अवसर दिया जायेगा। इस पर भी कुछ सदस्य सदन से उठकर चले गये थे।[51]

पुरःस्थापन से पूर्व विधेयक की प्रतियों का परिचालन किए जाने की आवश्यकता से सभापति छूट दे सकता है यदि संबंधित मंत्री सभापति को पत्र लिखकर उन समुचित कारणों का उल्लेख कर दे जिनकी वजह से विधेयक को पहले परिचालित किये बिना ही पुरःस्थापित कर दिये जाने का प्रस्ताव रखा गया है।

> दंड विधि (संशोधन) विधेयक, 1995 और संविधान की छठी अनुसूची (संशोधन) विधेयक, 1995 को क्रमशः 18 मई, 1995 और 17 अगस्त, 1995 को पुरःस्थापित किया गया था और इस मामले में भी पुरःस्थापित किये जाने वाले विधेयकों की प्रतियां पहले परिचालित नहीं की गयी थीं लेकिन संबंधित मंत्री द्वारा सभापति को लिखे गये पत्रों से स्पष्ट किये गये कारणों के अनुसार उन विधेयकों की अत्यावश्यकता को देखते हुए ऐसा करने की अनुमति दी गयी थी।[52]

विधेयक का पुरःस्थापन (प्रथम वाचन)

कोई भी मंत्री जो किसी विधेयक को पुरःस्थापित करना चाहता हो, उसे विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव करने के अपने इरादे की लिखित रूप से सूचना देनी होती है। यह सूचना सभा के सत्रावसान पर कालातीत नहीं होती है और यदि विधेयक को आगामी सत्र में पुरःस्थापित किए जाने का अनुरोध किया जाता है तो उसके लिए नए सिरे से सूचना देना आवश्यक नहीं है। तथापि, उस विधेयक के मामले में जिसके संबंध में संविधान के अंतर्गत प्रदान की गई स्वीकृति अथवा संस्तुति अप्रभावी हो गई है, नए सिरे से सूचना देना आवश्यक हो जाता है।[53] यदि वह संबंधित मंत्री जिसके नाम से वह मद कार्यावलि में शामिल है, सदन में अनुपस्थित रहता है तो उसका उपमंत्री अथवा कोई अन्य मंत्री उसकी ओर से प्रस्ताव कर सकता है बशर्ते सभापति ने उस मंत्री से लिखित रूप से अनुरोध प्राप्त होने पर उसे ऐसा करने की अनुमति दे दी हो।

विधेयक को पुरःस्थापित किए जाने के निर्धारित दिवस को सभापति प्रभारी मंत्री को पुकारता है जो (कार्यावलि में यथावर्णित दीर्घ नाम के संदर्भ में) यह प्रस्ताव करता है कि विधेयक को पुरःस्थापित किए जाने की अनुमति प्रदान की जाए। सभापति द्वारा प्रस्ताव पर मत लिए जाने और उसके स्वीकृत होने के बाद मंत्री विधेयक को पुरःस्थापित करता है। विधेयक के पुरःस्थापन के समय मंत्री द्वारा कोई आश्वासन नहीं दिया जा सकता है।

> 5 मई, 1989 को असम विश्वविद्यालय विधेयक, 1989 के पुरःस्थापन के समय, एक सदस्य ने आपत्ति उठाई थी और असम के उत्तरी भाग में एक अन्य विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु शिक्षा एवं संस्कृति राज्य मंत्री से आश्वासन की मांग की थी। सदस्य द्वारा की गई आपत्ति को अस्वीकार करते हुए उपसभापति ने निम्नलिखित निर्णय दिया था:

जब विधेयक पर विचार किया जाएगा तो मंत्री आपको आश्वासन देंगे। आपको प्रक्रिया की जानकारी होनी चाहिए। विधेयक के पुरःस्थापन के समय आश्वासन नहीं दिया जा सकता है। विधेयक के पुरःस्थापन के समय एक प्रक्रिया का अनुपालन किया जाता है। आपने अपनी बात कह दी है। परंतु विधेयक पर विचार किए जाने के समय मंत्री आपको आश्वासन देंगे।[54]

सदस्यों को इस चरण में भाषण देने की अनुमति भी नहीं होती है।

24 मार्च 1972 को जब एक सदस्य द्वारा संविधान (संशोधन) विधेयक, 1972 (अनुच्छेद 12 के संशोधनार्थ) को पुर:स्थापित करने की अनुमति मांगी जा रही थी तो एक अन्य सदस्य उक्त विधेयक के बारे में चंद शब्द कहना चाह रहे थे। इस पर उपसभापति ने टिप्पणी की कि:

> यह अभी केवल पुर:स्थापन के चरण में है। यदि आपके पास विधेयक के पुर:स्थापन के संबंध में कोई आपत्ति अथवा औचित्य का प्रश्न नहीं है, तो उन्हें उक्त विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति दी जानी चाहिए। आपको इस समय कुछ कहने की अनुमति नहीं दी जाएगी।[55]

इसी प्रकार 30 जनवरी, 1976 को कर्मकार शिक्षा योजना विधेयक, 1976 के पुर:स्थापन हेतु प्रस्ताव उपस्थित करने के पश्चात् सदस्य विधेयक के संबंध में भाषण देना चाहते थे। सभापति ने उनसे कहा कि वे इस समय भाषण नहीं दे सकते हैं। सदस्य के जोर देने पर सभापति ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

> यह अनुमत्य नहीं है। आप फिर वही कार्य क्यों कर रहे हैं जो प्रक्रिया के विरुद्ध है?[56]

परम्परानुसार, पुर:स्थापन के प्रस्ताव का सामान्यत: विरोध नहीं किया जाता है। यदि कोई सदस्य पुर:स्थापन स्तर पर उसका विरोध करना चाहता है, तो वह उसके लिए अग्रिम रूप से लिखित सूचना देता/देती है।

27 मार्च, 1990 को जब गृह मंत्री ने सभा में संविधान (चौसठवां संशोधन) विधेयक, 1990 पुर:स्थापित करने हेतु सभा की अनुमति मांगी तो विधेयक के पुर:स्थापन का विरोध करने हेतु सभापति द्वारा एक सदस्य को अनुमति प्रदान की गई थी। उनके बोलने के तत्काल पश्चात्, एक अन्य सदस्य इस विषय पर बोलना चाहते थे। उनको बोलने की अनुमति देने से मना करते हुए उपसभापति ने कहा कि कौल एवं शकधर के अनुसार किसी विधेयक के पुर:स्थापन का विरोध करने की मंशा रखने वाले सदस्य को अपनी मंशा जाहिर करते हुए पहले ही लिखित में सभापति को सूचित करना चाहिए और चूंकि पहले सदस्य ने अपने विचार व्यक्त करने के बारे में पहले ही सूचित किया था इसलिए उन्हें विधेयक के पुर:स्थापन का विरोध करने की अनुमति दी गई थी। परंतु सदस्य ने तर्क दिया कि पहले नियम, कौल और शकधर का स्थान बाद में आता है। अत:, उन्हें बोलने की अनुमति दी जानी चाहिए।

उपसभापति ने उक्त सदस्य को अनुमति देने से मना करते हुए निम्नलिखित निर्णय दिया:

जो कोई सदस्य किसी विधेयक के पुर:स्थापन का विरोध करना चाहता है तो उन्हें इसके लिए सभापति को लिखित में सूचित करना चाहिए...मैं आपको अनुमति नहीं देता हूं...यह सभापीठ के विवेकाधिकार पर निर्भर है।[57]

यदि विधेयक के पुर:स्थापन की अनुमति के प्रस्ताव का विरोध किया जाता है तो सभापति, यदि ठीक समझे, तो उस सदस्य को जो प्रस्ताव का विरोध करता है और उस सदस्य को जिसने प्रस्ताव किया था, संक्षिप्त व्याख्यात्मक वक्तव्य की अनुमति देने के बाद और आगे चर्चा कराए बिना प्रस्ताव पर मत ले सकता है। जहां प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया जाता है कि वह विधेयक ऐसे विधान का सूत्रपात करता है जो राज्य सभा के विधायी अधिकार से बाहर है, तो सभापति उस पर पूर्ण चर्चा की अनुमति दे सकता है।[58]

ऐसे कई मामले हुए हैं जब विधेयकों के पुर:स्थापन के प्रस्तावों का उनके पुर:स्थापन स्तर पर ही विरोध किया गया है; और कई बार विधेयकों को मत-विभाजन के बाद पुर:स्थापित किए जाने की अनुमति दी गई है। कुछ मामले इस प्रकार हैं:

विशेष विवाह विधेयक, 1952 (इसका विरोध करने वाले सदस्य को एक वक्तव्य देने की अनुमति दी गई, मंत्री ने उसका उत्तर दिया और उसके बाद विधेयक को पुर:स्थापित कर दिया गया);[59] हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर (नया राज्य) विधेयक, 1954;[60] अस्पताल और अन्य संस्थाएं (विवाद निपटान) विधेयक, 1982;[61] एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार (संशोधन) विधेयक, 1983;[62] अंतर्राज्यिक जल-विवाद (संशोधन) विधेयक 1986;[63] भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् (संशोधन) विधेयक, 1987 (मत-विभाजन के बाद पुर:स्थापित किया गया);[64] संविधान (उनसठवां संशोधन) विधेयक, 1988 (उन सभी सदस्यों को जिन्होंने नोटिस दिए थे, पुर:स्थापन स्तर पर बोलने की अनुमति दी गई);[65] संविधान (इकसठवां संशोधन) विधेयक, 1988;[66] और बैंककारी विनियमन (संशोधन) विधेयक, 1994 (मत-विभाजन के बाद पुर:स्थापित किया गया)।[67]

एक अवसर पर व्यापार संघ (संशोधन) विधेयक, 1994 को पुर:स्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव का विरोध किया गया था; प्रस्ताव पर सभा में मतदान नहीं कराया गया था।[68]

एक अन्य अवसर पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय विधेयक, 2004 को पुर:स्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव पर सभा में मतदान कराया गया था। प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ और विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति प्रदान नहीं की गई।[69]

इसी प्रकार, रानी लक्ष्मीबाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय विधेयक, 2011 का 28 दिसम्बर, 2011 को उसके पुर:स्थापन के दौरान विरोध किया गया और उसे आस्थगित कर दिया गया। बाद में 22 मई, 2012 को विधेयक को सभा में पुर:स्थापित करने की अनुमति दी गई।

230वें सत्र के दौरान जब गृह मंत्री ने साम्प्रदायिक हिंसा निवारण (न्याय तक पहुंच और हानि पूर्ति) विधेयक, 2014 को पुर:स्थापित करने की अनुमति लेने हेतु प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो विपक्ष के नेता और अन्य सदस्यों ने पुर:स्थापन का विरोध किया और इसके परिणामस्वरूप विधेयक के पुर:स्थापन के प्रस्ताव को 5 फरवरी, 2014 को आस्थगित कर दिया गया।

विधेयक के पुर:स्थापन के बाद उसका प्रकाशन एवं परिचालन

जब कोई विधेयक पुर:स्थापित कर दिया जाता है, तो उस स्थिति को छोड़कर जब पुर:स्थापन से पहले ही उसे प्रकाशित कर दिया गया हो, वह विधेयक सचिवालय द्वारा उस विधेयक के उद्देश्य एवं कारण संबंधी विवरण, वित्तीय ज्ञापन तथा प्रत्यायोजित विधान संबंधी ज्ञापन, यदि कोई हों, सहित उसी तारीख को जिस तारीख को विधेयक पुर:स्थापित किया गया हो, भारत के राजपत्र (असाधारण भाग-II, खंड 2) में प्रकाशित किया जाता है।[70] चूंकि पुर:स्थापित किए जाने वाले विधेयक की प्रतियां राज्य सभा के सदस्यों के बीच सामान्यत: परिचालित कर दी जाती हैं, इसलिए यथा पुर:स्थापित विधेयक की प्रतियां उन्हें पुन: परिचालित नहीं की जाती हैं। किन्तु, राज्य सभा में विधेयक के पुर:स्थापित किए जाने के बाद उसकी प्रतियां लोक सभा के सदस्यों के बीच पारस्परिक आधार पर परिचालित की जाती हैं। ये प्रतियां विधि मंत्रालय, संसदीय कार्य मंत्रालय, उच्चतम न्यायालय, राष्ट्रपति के सचिवालय, प्रधानमंत्री के कार्यालय आदि को भी भेजी जाती हैं।

शुरू में, जैसाकि केन्द्रीय विधान मंडल में होता था, एक सदन में पुर:स्थापित किए गए विधेयकों की प्रतियां, एक स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में, दूसरे सदन के सदस्यों के बीच परिचालित नहीं की जाती थीं। 4 अगस्त, 1952 को विधि मंत्री (श्री सी.सी. बिस्वास) ने लोक सभा द्वारा यथापारित भ्रष्टाचार निवारण (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 1952 पर विचार करने हेतु प्रस्ताव करते हुए यह सुझाव दिया था कि जब कोई विधेयक लोक सभा से आता है तो उस विधेयक, जिस रूप में वह लोक सभा में पुर:स्थापित किया गया था, की प्रतियां, उसके उद्देश्य एवं कारण संबंधी विवरण तथा अन्य संबद्ध दस्तावेजों के लिए उद्धरणों, जो भी संलग्न हों, सहित राज्य सभा के सदस्यों को भी उपलब्ध करायी

जानी चाहिए। इनके न होने से राज्य सभा के सदस्यों को बहुत असुविधा होती थी। उन्होंने सभापति से अनुरोध किया कि भविष्य में राज्य सभा के सदस्यों के लिए भी विधेयक की प्रतियां, आदि परिचालित किए जाने के लिए सचिव को अनुदेश दिया जाए।[71] तद्नुसार, तत्कालीन सचिव ने लोक सभा के सचिव के सामने इस मामले को उठाया था और इस बात पर सहमति हो गई थी कि एक सदन में पुर: स्थापित किए गए विधेयकों की प्रतियां दूसरे सदन के सदस्यों को भी उपलब्ध करायी जानी चाहिए।[72] तभी से यह परिपाटी चली आ रही है कि एक सदन में पुर: स्थापित किए गए विधेयकों की प्रतियां दूसरे सदन के सदस्यों के लिए परिचालित की जाती हैं।

विधेयक के पुर:स्थापन के बाद प्रस्ताव (द्वितीय वाचन)

विधेयक पुर:स्थापित होने के बाद, संबंधित मंत्री अपने विधेयक के बारे में निम्नलिखित कोई प्रस्ताव कर सकता है अर्थात् (1) इस पर विचार किया जाए; अथवा (2) इसे राज्य सभा की प्रवर समिति के सुपुर्द किया जाए; अथवा (3) इसे लोक सभा की सहमति से दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सौंपा जाए; अथवा (4) इसे इस पर राय जानने के लिए परिचालित किया जाए।[73]

किसी भी प्रस्ताव को विधेयक की प्रतियां सदस्यों के उपयोग के लिए उपलब्ध करवा दिए जाने के बाद ही उपस्थित किया जा सकता है। यदि विधेयक की प्रतियां प्रस्ताव किए जाने वाले दिन से कम-से-कम दो दिन पहले तक उपलब्ध न करवायी गयी हों तो कोई भी सदस्य आपत्ति कर सकता है तथा ऐसी आपत्ति सभापति द्वारा प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति दिए जाने तक बनी रहती है।[74] भले ही विधेयक की प्रतियां सदस्यों को इसके पुर:स्थापन से दो दिन पहले परिचालित की जानी अपेक्षित होती हैं, आमतौर पर विधेयक के संबंध में अगला प्रस्ताव तब तक विधेयक पुर:स्थापित किए जाने वाले दिन ही नहीं किया जाता जब तक कि सभापति संबंधी मंत्री के अनुरोध पर सभी तथ्यों पर विचार करने और सदन की राय लेने के बाद इसकी अनुमति न दें। तथापि, ऐसे उदाहरण भी हैं जब जिस दिन विधेयक पुर:स्थापित किया गया, उसी दिन उस पर विचार भी किया गया।[75]

विचार के लिए प्रस्ताव

किसी विधेयक पर विचार करने (अथवा उसे पारित करने) का कोई भी प्रस्ताव उसके प्रभारी सदस्य के अलावा किसी अन्य सदस्य द्वारा नहीं किया जा सकता।[76] विद्यमान परिपाटी के अनुसार, सामान्यतया विधेयक का प्रभारी सदस्य औपचारिक रूप से प्रस्ताव करता है और उसके बाद अपना भाषण देता है।

एक बार जब संबंधित मंत्री ने बिना भाषण किए केवल प्रस्ताव कर दिया और यह कहा कि पहले वह सदस्यों के विचार सुनना चाहेंगे, तो एक सदस्य ने आपत्ति की। इस प्रक्रिया पर आपत्ति करने वाले सदस्य ने मांग की थी कि मंत्री को विधेयक के उपबंधों का विवरण देना ही चाहिए। सभा मध्याह्न भोजन के लिए निर्धारित समय से पहले ही भोजनावकाश के लिए स्थगित हो गई और मंत्री ने सभा के पुन: समवेत होने के बाद भाषण दिया।[77]

एक अन्य अवसर पर, जबकि संबंधित मंत्री तो भाषण देकर विधेयक के उपबंधों का विवरण देना चाहता था किन्तु उसे ऐसा करने की अनुमति नहीं दी गई, क्योंकि विधेयक को बिना चर्चा के पारित किया जाना था और यह बात मंत्री पर भी लागू थी।[78]

> एक अन्य अवसर पर, प्रधानमंत्री (श्री राजीव गांधी) ने पहले औपचारिक रूप से संविधान (चौंसठवां और पैंसठवां संशोधन) विधेयकों, 1989 (पंचायतों और नगरपालिकाओं के संबंध में) पर विचार करने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किए और उसके बाद दोनों विधेयकों से संबंधित मंत्रियों ने बारी-बारी से विधेयकों के उपबंधों का विवरण देते हुए अपने भाषण दिए।[79]

इस चरण में विधेयक के किसी खंड में संशोधनों का प्रस्ताव करने की अनुमति नहीं दी जाती। किन्तु यदि प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव करता है कि विधेयक पर विचार किया जाए, तो कोई भी अन्य सदस्य संशोधन के रूप में प्रस्ताव रख सकता है कि विधेयक को सभा की प्रवर समिति अथवा लोक सभा की सहमति से दोनों सभाओं की संयुक्त समिति को भेज दिया जाए अथवा विधेयक को संशोधन में विनिर्दिष्ट की जाने वाली तिथि तक के लिए राय जानने हेतु परिचालित कर दिया जाए। यदि प्रभारी सदस्य प्रस्ताव रखता है कि विधेयक को सदन की प्रवर समिति को भेजा जाए, तो कोई भी सदस्य संशोधन के रूप में यह प्रस्ताव रख सकता है कि इसे दोनों सदनों की संयुक्त समिति को भेजा जाए, अथवा इसका विलोमत: भी हो सकता है अथवा इसे राय जानने के लिए परिचालित किया जाए।[80]

विधेयक को प्रवर समिति अथवा संयुक्त समिति को भेजने अथवा इसे परिचालित करने का संशोधन विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव रखे जाने के फौरन बाद रखा जाता है, प्रस्ताव को स्वीकार किए जाने के बाद अथवा विधेयक पर खण्डश: विचार किए जाने के दौरान संशोधन नहीं रखा जा सकता। फिर भी ऐसे अवसर आए हैं जब विधेयक पर विचार किए जाने का प्रस्ताव रखे जाने और उस पर आंशिक चर्चा हो चुकने के बाद विधेयक के प्रभारी सदस्य ने सदस्यों द्वारा दिए गए सुझावों के प्रति सम्मान की भावना प्रदर्शित करते हुए स्वयं ही विधेयक को प्रवर समिति अथवा संयुक्त समिति को भेजे जाने का प्रस्ताव रखा।[81]

> लोक सभा द्वारा यथापारित लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, 2011 पर विचार करते समय, एक सदस्य ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि इस विधेयक को सभा की प्रवर समिति के पास भेजा जाए। बाद में, प्रभारी मंत्री ने भी इस विधेयक को प्रवर समिति के पास भेजने के लिए एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। सभापति ने मंत्री द्वारा उपस्थित किए गए प्रस्ताव पर मत लिया जिसे 21 मई, 2012 को स्वीकार किया गया।

जिस दिन विधेयक पर विचार किए जाने का प्रस्ताव रखा जाता है अथवा उसके बाद के किसी ऐसे दिन जिसके लिए विधेयक पर चर्चा स्थगित की जाती है, विधेयक के सिद्धांतों और इसके उपबंधों पर मोटे तौर पर चर्चा की जाती है किन्तु उस पर, विधेयक के सिद्धांतों को समझाने के लिए जितनी चर्चा आवश्यक है, उससे अधिक विस्तार से चर्चा नहीं की जाती।[82] मिलती-जुलती प्रकृति के दो विधेयकों पर विचार किए जाने के प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाने के बाद उन पर साथ-साथ चर्चा की जा सकती है किन्तु प्रस्ताव सदन में अलग-अलग रखे जाने चाहिए।[83]

सार्वजनिक राय जानने के लिए परिचालन

विधेयक पुर:स्थापित कर दिए जाने के बाद विधेयक का प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को उस पर राय जानने के प्रयोजनार्थ परिचालित किया जाए।[84] ऐसा प्रस्ताव विधेयक के प्रभारी सदस्य द्वारा उपस्थित किए गए विधेयक पर विचार करने अथवा उसे प्रवर

या संयुक्त समिति को सौंपे जाने के प्रस्ताव में संशोधन के माध्यम से भी रखा जा सकता है।[85] विधेयक के परिचालन के लिए किए जाने वाले प्रस्ताव में उस पर सार्वजनिक राय जानने हेतु अवधि निर्दिष्ट की जानी चाहिए।[86]

सार्वजनिक राय जानने के लिए विधेयक को राज्य सरकारों के माध्यम से परिचालित किया जाता है। उनसे विधेयक को अपने-अपने राजपत्र में प्रकाशित करने और विधेयक के उपबंधों पर अपने, राज्य विधायिकाओं और ऐसे सरकारी निकायों एवं अन्य व्यक्तियों के विचार, जिनसे राज्य सरकारें परामर्श लेना उपयुक्त समझें, प्रस्ताव में निर्दिष्ट अवधि के भीतर दो प्रतियों में भेजने के लिए कहा जाता है।[87]

विधेयक पर राय प्राप्त होने के बाद सचिवालय में उनकी जांच की जाती है और उनका सम्पादन किया जाता है, ताकि उनमें कोई आपत्तिजनक अथवा अनादरसूचक बात न रहे। अप्रासंगिक अथवा अशिष्ट बातों को उससे हटा दिया जाता है। इस प्रकार संपादित और संकलित विचारों को मुद्रित करवाने के बाद विधेयक के प्रभारी सदस्य द्वारा सभा पटल पर रखा जाता है और सदस्यों को यह परिचालित किया जाता है।[88]

जब विधेयक को राय जानने के प्रयोजन से प्रचालित करने का प्रस्ताव किया जाता है और विधेयक को निदेशानुसार परिचालित कर दिया जाता है और तत्संबंधी राय प्राप्त हो जाती है तो यदि प्रभारी सदस्य उसके बाद विधेयक के संबंध में आगे कार्यवाही जारी रखना चाहता है तो वह यह प्रस्ताव करता है कि विधेयक को सदन की प्रवर समिति अथवा दोनों सदनों की संयुक्त समिति को भेजा जाए बशर्ते सभापति ने विधेयक पर विचार किए जाने के प्रस्ताव की अनुमति न दी हो।[89]

राज्य सभा में पुर:स्थापित निम्नलिखित विधेयक राय जानने के लिए परिचालित किए गए थे:-

> विशेष विवाह विधेयक, 1952;[90] छावनी (संशोधन) विधेयक, 1952;[91] हिन्दू विवाह और विवाह विच्छेद विधेयक, 1952;[92] हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता विधेयक, 1953।[93] केवल छावनी (संशोधन) विधेयक, 1952 को प्रवर समिति को सौंपा गया था, अन्य तीनों विधेयकों को संयुक्त समितियों को सौंपा गया था और अंतत: सभी विधेयक पारित हो गए थे।

विधेयक को किसी प्रवर/संयुक्त समिति को सौंपे जाने हेतु प्रस्ताव

जब किसी विधेयक को प्रवर समिति को सौंपे जाने का प्रस्ताव किया जाता है तो सामान्य प्रक्रिया और परिपाटी यह है कि प्रस्ताव में समिति में नियुक्ति के लिए प्रस्तावित सदस्यों के नाम भी दिए जाते हैं।[94]

> जब ट्रेड मार्क विधेयक, 1995, जिस रूप में वह लोक सभा द्वारा पारित किया गया था, विचार के लिए कार्यावलि में शामिल किया गया था, तो कुछ सदस्य चाहते थे कि इसे सदन की प्रवर समिति को सौंपा जाए। उद्योग मंत्री इसके लिए सहमत हो गए थे और उन्होंने विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने का प्रस्ताव औपचारिक रूप से प्रस्तुत किया था। तथापि, नियुक्ति के लिए प्रस्तावित सदस्यों के नामों की घोषणा उस समय नहीं की गई थी। उनकी घोषणा, उपसभापति द्वारा अगले दिन की गई थी।[95]

यदि कोई सदस्य प्रवर समिति में काम करने के लिए राजी न हो तो उसे उस समिति का सदस्य नियुक्त नहीं किया जाता। प्रस्तावक सदस्य को यह सुनिश्चित करना होता है कि वह जिस सदस्य के नाम का प्रस्ताव करना चाहता है, वह समिति में काम करने के लिए राजी है।[96]

> विधि मंत्री ने विशेष विवाह विधेयक, 1952 को संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव रखा था। कुछ सदस्यों द्वारा उन्हें समिति में सम्मिलित किये जाने से अनिच्छा प्रकट किये जाने पर मंत्री ने दूसरे नाम दिए थे।[97]
>
> एक सदस्य ने संबंधित मंत्री द्वारा पेटेंट (संशोधन) विधेयक, 1995 को, जिस रूप में वह लोक सभा द्वारा पारित किया गया था, सदन की प्रवर समिति को सौंपे जाने का प्रस्ताव किए जाने पर कतिपय सदस्यों की इच्छाओं का सम्मान करते हुए अपना नाम प्रस्ताव में होने के बावजूद कहा था कि उसने संसदीय कार्य मंत्री को पहले ही सूचित कर दिया है कि वह समिति में कार्य करने के लिए उपलब्ध नहीं होगा।[98]

यदि कोई गैर-सरकारी सदस्य और उसके साथ-साथ विधेयक के प्रभारी मंत्री विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव करने हेतु उसमें संशोधन की सूचना देते हैं, तो ऐसी स्थिति में मंत्री द्वारा दी गई सूचना को प्राथमिकता दी जाती है।

> भारतीय पशु चिकित्सा परिषद् विधेयक, 1981 पर कार्यावलि के अनुसार विचार किया जाना था। विधेयक के प्रभारी मंत्री ने विधेयक को एक संयुक्त समिति को भेजने के प्रस्ताव की सूचना दी। प्रस्ताव को अनुपूरक कार्यावलि में शामिल करके परिचालित कर दिया गया। इससे पहले एक सदस्य ने भी प्रस्ताव में संशोधन करने की सूचना इस बात पर विचार करने के लिए दी थी कि विधेयक को एक संयुक्त समिति को भेज दिया जाए। विधेयक को संयुक्त समिति को भेजे जाने के सरकारी प्रस्ताव को स्वीकृत किए जाने के बाद गैर-सरकारी सदस्य के संशोधन को नहीं लिया गया, हालांकि इसमें शामिल सदस्यों के नाम उन नामों से भिन्न थे जो मंत्री के प्रस्ताव में प्रस्तावित किए गए थे। उपसभापति ने एक औचित्य प्रश्न के संबंध में यह निर्णय दिया कि चूंकि विधेयक के प्रभारी सदस्य ने स्वयं विधेयक को संयुक्त समिति को भेजने का प्रस्ताव किया है, इसलिए किसी अन्य सदस्य द्वारा संशोधन के रूप में कोई प्रस्ताव नहीं किया जा सकता; यह संशोधन केवल विधेयक पर विचार करने के प्रस्ताव में किया जा सकता है।[99]
>
> एक अन्य अवसर पर विधेयक के प्रभारी मंत्री ने चिट फंड विधेयक, 1982 जिस रूप में लोक सभा में पारित किया गया, पर विचार करने हेतु सूचना दी थी। राज्य सभा में यह मांग की गई कि विधेयक को सदन की प्रवर समिति को भेज दिया जाए जैसाकि लोक सभा में किया गया था। इसलिए मंत्री ने तद्नुसार एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इससे पहले, विधेयक को प्रवर समिति को भेजे जाने हेतु सदस्यों द्वारा प्रस्तुत किए गए संशोधनों को इस आधार पर स्वीकार नहीं किया गया कि सरकारी प्रस्ताव को प्राथमिकता प्राप्त है और इसलिए उसे स्वीकृत कर लिया गया।[100]

किन्तु, यदि सदस्यों द्वारा प्रस्तुत किए गए संशोधनों की विषय-वस्तु भिन्न-भिन्न हो तो उन्हें अलग-अलग रूप में ही माना जाता है, हालांकि सबका प्रयोजन विधेयक को प्रवर समिति को भेजे जाने का ही होता है।

> प्रेस परिषद् विधेयक, 1956 पर विचार किए जाने के प्रस्ताव में, विधेयक को प्रवर समिति को भेजे जाने संबंधी तीन संशोधन प्राप्त हुए थे, जो इस प्रकार थे, (1) पंद्रह सदस्यों से प्राप्त संशोधन जिसमें आठ दिनों के भीतर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था; (2) बीस सदस्यों से प्राप्त संशोधन जिसमें आगामी सत्र के प्रथम दिन तक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था; और (3) इक्कीस सदस्यों से प्राप्त संशोधन जिसमें आगामी सत्र के प्रथम सप्ताह के अंतिम दिन तक प्रतिवेदन प्रस्तुत

करने के लिए कहा गया था। ये संशोधन उपस्थित किए गए और चूंकि प्रत्येक संशोधन को सदस्यों की संख्या और प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की प्रस्तावित समय-सीमा के कारण अलग-अलग माना गया था, इसलिए उन्हें अलग-अलग ही रखा गया।[101]

विधेयक को प्रवर समिति को भेजने के प्रस्ताव में केवल राज्य सभा के सदस्यों के नाम शामिल किए जाते हैं। सरकारी विधेयक के मामले में सामान्यत: प्रभारी मंत्री का नाम प्रस्ताव में शामिल किया जाता है।

किन्तु, व्यापार चिन्ह विधेयक, 1995 और पेटेंट (संशोधन) विधेयक, 1995 को प्रवर समितियों को भेजे जाने के प्रस्तावों में किसी भी मंत्री का नाम शामिल नहीं किया गया था।[102]

जो मंत्री दूसरे सदन के सदस्य होते हैं, उन्हें भी प्रस्ताव में शामिल किया जा सकता है किन्तु समिति के सदस्यों के रूप में जिन मंत्रियों के नाम इस प्रकार शामिल किए जाएंगे, उन्हें उस समिति में कोई मताधिकार प्राप्त नहीं होगा।[103]

यदि विधेयक को प्रवर समिति अथवा संयुक्त समिति को भेजे जाने संबंधी मूल प्रस्ताव में शामिल किए गए नामों में कोई परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता हो तो, उस स्थिति को छोड़कर जब सभा बिना किसी औपचारिक संशोधन के यह परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाए, एक संशोधन का प्रस्ताव किया जाता है।

हिन्दू विवाह और विवाह विच्छेद विधेयक, 1952 को उपर्युक्त समिति को भेजे जाने के प्रस्ताव में प्रस्तावित दो सदस्यों के नामों में परिवर्तन किया गया था क्योंकि वे सेवानिवृत्त होने वाले थे। तब सभा ने संशोधित रूप में प्रस्ताव स्वीकृत किया था।[104]

प्रतिलिप्याधिकार विधेयक, 1956 को संयुक्त समिति को भेजे जाने के मूल प्रस्ताव में राज्य सभा से दस सदस्यों और लोक सभा से बीस सदस्यों के नाम प्रस्तावित किए गए थे। किन्तु प्रस्ताव उपस्थित करते हुए मंत्री ने राज्य सभा से पन्द्रह सदस्यों और लोक सभा से तीस सदस्यों के नाम प्रस्तावित किए। तब सभापति ने मंत्री को सभा की अनुमति मांगने के लिए कहा और मंत्री ने वैसा ही किया। उसके बाद सभापति ने सभा से पूछा कि क्या प्रस्तावित परिवर्तन करने के लिए मंत्री को सभा की अनुमति प्राप्त है। किसी भी सदस्य ने अपनी असहमति प्रकट नहीं की।[105]

राज्य पुनर्गठन विधेयक, 1956 को समिति को भेजे जाने के प्रस्ताव पर सभा में मतदान कराए जाने से पहले उसमें उन नामों को प्रतिस्थापित करने के लिए संशोधन किया गया था जो मूल प्रस्ताव में प्रस्तावित किए गए थे।[106]

रेल संरक्षण बल विधेयक, 1956 पर विचार करने के प्रस्ताव में विधेयक को प्रवर समिति को भेजे जाने के लिए एक अन्य संशोधन का प्रस्ताव किया गया था। उस संशोधन में सदस्यों के और नाम जोड़ने के लिए एक और संशोधन का प्रस्ताव किया गया था। किन्तु ये संशोधन अस्वीकृत हुए थे।[107]

लोकपाल विधेयक, 1985 को एक संयुक्त समिति को भेजने हेतु सहमति का प्रस्ताव स्वीकृत होने के बाद एक मुद्दा उठाया गया कि समिति में किसी महिला सदस्य को शामिल नहीं किया है। तभी संबंधित मंत्री ने उसमें संशोधन करने और समिति में अन्य सदस्य के स्थान पर एक महिला सदस्य को शामिल करने की पेशकश की। किन्तु सभा ने इस मामले में अंतर्ग्रस्त प्रक्रियात्मक पहलू पर विचार करने के बाद यह दृष्टिकोण अपनाया कि मंत्री को इस प्रयोजन के लिए एक औपचारिक संशोधन का प्रस्ताव करना चाहिये। उसी दिन मध्याह्न भोजनावकाश समाप्त होने के बाद जब सभा पुन: समवेत हुई तो ऐसा ही किया गया।[108]

संदाय और निपटान प्रणाली (संशोधन) विधेयक, 2014, निरसन और संशोधन विधेयक, 2014 तथा भू-संपदा (विनियमन और विकास) विधेयक, 2013 को प्रवर समितियों को भेजे जाने के प्रस्ताव पर सभा में मतदान कराए जाने से पहले उनमें मूल प्रस्ताव में प्रस्तावित किए गए नामों को प्रतिस्थापित करने के लिए सभा द्वारा ऐसे परिवर्तन करने के लिए सहमत होने के पश्चात् संशोधन किया गया था।[109]

किसी समिति में कितने सदस्य नियुक्त किए जा सकते हैं यह निर्धारित नहीं किया गया है और यह संख्या अलग-अलग समिति के संबंध में अलग-अलग हो सकती है। किन्तु परिपाटी के अनुसार जहां तक संभव हो सके समिति का संघठन ऐसा होना चाहिये कि वह सभा के सभी दलों/समूहों का प्रतिनिधित्व करे।

जब संविधान (अस्सीवां संशोधन) विधेयक, 1993 को संयुक्त समिति को भेजे जाने के लिए सहमति का प्रस्ताव संबंधित मंत्री द्वारा उपस्थित किया गया तो सदस्यों ने समिति में कुछ दलों का प्रतिनिधित्व न रखे जाने पर आपत्ति की। इसलिए प्रस्ताव पर आगे विचार किया जाना स्थगित कर दिया गया। अगले दिन संबंधित मंत्री ने सदस्यों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों का आदर करते हुए नए सिरे से एक प्रस्ताव उपस्थित किया।[110]

जब पेंटेट (संशोधन) विधेयक, 1995 को प्रवर समिति को भेजे जाने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया और वह स्वीकृत हो गया तो कुछ सदस्यों ने इस बात पर आपत्ति की कि प्रस्तावित समिति में सभा के कुछ प्रमुख दलों/समूहों का प्रतिनिधित्व नहीं रखा गया है। इस बात पर आग्रह किया गया कि समिति का संघठन ऐसा होना चाहिये कि उससे सदन का संघठन प्रतिबिम्बित हो। बाद में, एक अनौपचारिक चर्चा के बाद संबंधित मंत्री ने एक संशोधित प्रस्ताव प्रस्तुत किया किन्तु उसके बारे में भी यही कहा गया कि उससे सभा के विभिन्न दलों/समूहों का प्रतिनिधित्व प्रतिबिम्बित नहीं होता है। प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के बाद कुछ सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिया जिससे समिति में सत्ता पक्ष और विपक्षी दलों की सदस्यता का लगभग वही अनुपात हो गया जोकि उनका सदन में था।[111]

समिति की नियुक्ति से संबंधित प्रस्ताव में एक विशिष्ट तारीख अथवा अवधि का उल्लेख किया गया होता है और समिति को उस तारीख तक अथवा उस अवधि के भीतर सदन को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होता है। जहां किसी विशिष्ट तारीख का उल्लेख न किया गया हो वहां समिति के लिए सामान्य अनुदेश ये होते हैं कि वह 'आगामी सत्र के प्रथम सप्ताह के अंतिम दिन तक' अथवा 'आगामी सत्र के प्रथम दिन' अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे।

संविधान (तृतीय संशोधन) विधेयक, 1954 को संयुक्त समिति को सौंपे जाने के सहमति प्रस्ताव को राज्य सभा द्वारा 16 सितम्बर, 1954 को स्वीकृत किया गया था और समिति ने निर्धारित तारीख 20 सितम्बर, 1954 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया था,[112] महापत्तन न्यास विधेयक, 1963 संबंधी प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने के लिए तीन दिन का समय निर्धारित किया गया था,[113] चिट फंड विधेयक, 1982 के संबंध में चार दिन,[114] और व्यापार चिन्ह विधेयक, 1995 के संबंध में चौदह दिनों का,[115] खान और खनिज (विकास और विनियमन) संशोधन विधेयक, 2015 के लिए आठ दिन,[116] तथा कोयला खान विशेष उपबंध विधेयक, 2015 के लिए आठ दिन का[117] समय निर्धारित किया गया था।

ऐसी परम्परा रही है कि समिति ने नियुक्त किए जाने के लिए प्रस्तावित सदस्यों को विधेयक के प्रवर समिति अथवा संयुक्त समिति को सौंपे जाने संबंधी प्रस्ताव पर सामान्यत: बोलने की अनुमति नहीं दी जाती।[118]

जब अस्पृश्यता (अपराध) विधेयक, 1954 के संबंध में दोनों सभाओं की संयुक्त समिति में शामिल होने के लिए लोक सभा की सिफारिश पर सहमति का प्रस्ताव विचार के लिए लिया गया तो डा. बी.आर. अम्बेडकर, जिनका नाम संयुक्त समिति में शामिल किए जाने के लिए प्रस्तावित सदस्यों में शामिल था, ने कहा कि उक्त विधेयक पर चर्चा के दौरान उनके लिए चुप रहना असंभव है और वह इस परम्परा से परिचित हैं कि जो व्यक्ति प्रवर समिति का सदस्य होता है उसे विधेयक के प्रवर समिति को सौंपे जाने संबंधी प्रस्ताव पर बोलना या बहस में भाग नहीं लेना चाहिए और यह कि यदि सभा में इस परम्परा का कड़ाई से पालन किया जाना है तो वह चाहेंगे कि समिति में शामिल होने वाले सदस्यों की सूची में से उनका नाम हटा दिया जाए।

उपसभापति ने कहा:

हां, यह परम्परा अटल है; हम इसका पालन करते आए हैं...हमने इस सभा में जिस परम्परा का पालन किया है वह यह है कि प्रवर समिति में शामिल सदस्य ऐसे प्रस्ताव पर नहीं बोलते हैं। एक या दो अवसरों पर इसकी अनुमति देने से मना किया गया है...और मुझे बताया गया है कि दूसरी सभा में भी यही परम्परा है।[119]

ऐसे ही एक अवसर पर, 21 मई, 2012 को जब श्री नरेश अग्रवाल द्वारा लोक सभा द्वारा यथा पारित लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, 2011 को राज्य सभा की प्रवर समिति को सौंपे जाने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया तो पन्द्रह सदस्यों के नाम समिति ने सदस्य होने के लिए प्रस्तावित किए गए थे जिनमें राज्य सभा में विपक्ष के नेता श्री अरुण जेटली का नाम शामिल था। उनका नाम प्रस्तावित किए जाने के बावजूद, श्री अरुण जेटली ने इस प्रस्ताव पर चर्चा में हस्तक्षेप करने की इच्छा व्यक्त की और उन्हें इसकी अनुमति दी गई।[120]

जहां तक प्रस्ताव पर चर्चा के विस्तार का संबंध है, परम्परा के अनुसार जब विधेयक पर सहमति का प्रस्ताव किया जाता है तो कुछ सामान्य टिप्पणियां ही की जाती हैं, इस चरण में विधेयक पर पूर्ण चर्चा आवश्यक नहीं है।[121] विधेयकों को संयुक्त समितियों को सौंपने के प्रस्तावों को बिना चर्चा के ही स्वीकृत किया जाना सामान्य परिपाटी बन गई है।

भारतीय पशु चिकित्सा विधेयक, 1981; मानसिक स्वास्थ्य विधेयक, 1981; पोत-परिवहन अभिकर्ता (लाइसेंसिंग) विधेयक 1987; एक्वायर्ड इम्यूनो डेफिशिएंसी सिन्ड्रोम (एड्स) निवारण विधेयक, 1989; लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1990 संयुक्त समितियों को सौंपने के प्रस्ताव बिना चर्चा के ही स्वीकृत किए गए थे।[122]

सभा द्वारा किसी विधेयक को प्रवर समिति अथवा संयुक्त समिति को सौंपे जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के बाद सभा विधेयक के सिद्धांतों के प्रति वचनबद्ध हो जाती है।

जब सदन में निवारक निरोध (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 1952 को संयुक्त समिति को सौंपने हेतु सहमति प्रदान करने के प्रस्ताव पर चर्चा हो रही थी तो एक औचित्य प्रश्न उठाया गया था कि प्रस्ताव को स्वीकार किए जाने के बाद सदन को विधेयक के सिद्धांतों पर आपत्ति करने से विवर्जित नहीं किया जाना चाहिए। सभापति ने व्यवस्था दी थी कि "जब यह प्रस्ताव इस सदन द्वारा स्वीकार कर लिया गया है तो इसमें संदेह नहीं कि सदन इसके सिद्धांतों के प्रति वचनबद्ध हो गया है। किन्तु प्रवर समिति में कार्य करने वाले कोई भी सदस्य यदि खुले रूप से अथवा अन्यथा अपनी आपत्तियां व्यक्त करना चाहें, तो वे ऐसा कर सकते हैं।" उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि जब यह विधेयक इस सदन में दूसरे सदन से आया था तो सदन को इसके सिद्धांतों, इसकी विवक्षाओं, ब्यौरों और खंडों इत्यादि पर चर्चा करने की पूरी आजादी थी।[123]

राज्य सभा द्वारा विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपे जाने का प्रस्ताव स्वीकृत किए जाने के बाद इसे एक संदेश के साथ लोक सभा को सहमति के लिए भेजा जाता है। प्रस्ताव में समिति में नियुक्त राज्य सभा के सदस्यों के नाम दिए जाते हैं और समिति में लोक सभा के सदस्यों की संख्या भी नियत की जाती है। लोक सभा से अनुरोध किया जाता है कि वह समिति के लिए अपने सदस्यों को नामनिर्देशित करे और उनके नामों की सूचना राज्य सभा को दे। संयुक्त समिति में राज्य सभा और लोक सभा के सदस्यों का अनुपात 1:2 है।

लोक सभा में निवारक निरोध (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 1952 को बयालीस सदस्यों की एक संयुक्त समिति, जिसमें लोक सभा से तीस सदस्य और राज्य सभा से बारह सदस्य थे, को सौंपने हेतु प्रस्ताव स्वीकृत किया था। प्रस्ताव पर सहमति प्रदान करने के दौरान एक मुद्दा उठाया गया कि पहले संयुक्त समिति के गठन हेतु अपनायी जाने वाली प्रक्रिया निश्चित की जाए और संयुक्त समिति हेतु इस सदन द्वारा नियुक्त किए जाने वाले सदस्यों की संख्या का मामला दूसरे सदन के आदेश के लिए नहीं छोड़ा जाए। सभापति ने टिप्पणी की थी कि संयुक्त प्रवर समितियों की स्थापना हेतु अपनायी जाने वाली प्रक्रिया पूरी तरह तैयार होने तक उन्होंने सरकार पर इस बात के लिए दबाव डाला था कि वह जहां तक हो सके ऐसी संयुक्त समितियों को इस संबंध में निर्धारित की जाने वाली प्रक्रिया संबंधी नियमों के तैयार होने के मुद्दे की परवाह किए बिना ही गठित करे और इस बार जिस प्रक्रिया का पालन किया जा रहा है, उससे सदन बाध्य नहीं होगा।[124]

नियम समिति ने इस मामले पर विचार किया और उसकी यह राय थी कि प्रत्येक संयुक्त समिति में लोक सभा और राज्य सभा द्वारा नामनिर्देशित किए जाने वाले सदस्यों की संख्या का अनुपात 2:1 होना चाहिए। समिति ने इस प्रयोजनार्थ दोनों सदनों के प्रक्रिया संबंधी नियमों में शामिल करने हेतु विधेयकों से संबंधित संयुक्त समिति के लिए कुछ नियम भी तैयार किए थे। किंतु लोक सभा की नियम समिति की यह राय थी कि इस संबंध में परंपरा संतोषजनक रूप से चल रही है और इस विषय पर नियमों में कोई विस्तृत उपबंध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।[125] अत: यह अनुपात आपसी परामर्श से निर्धारित किया गया है।

यदि दूसरे सदन द्वारा स्वीकृत किसी सहमति प्रस्ताव में कोई तथ्यात्मक त्रुटि है अथवा दूसरा सदन पहल करने वाले सदन द्वारा पहले से ही स्वीकृत प्रस्ताव की शर्तों में संशोधन करते हुए कोई सिफारिश करता है तो, या तो वह त्रुटि दूर कर दी जाती है अथवा एक अन्य प्रस्ताव स्वीकृत करने के माध्यम से संशोधन किया जाता है और एक संदेश के माध्यम से पहले सदन को इसकी सूचना दी जाती है।

संयुक्त समिति में हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता विधेयक, 1953 के बारे में सहमति प्राप्त करने के प्रस्ताव को स्वीकृत करने के दौरान लोक सभा ने यह सिफारिश की थी कि संयुक्त समिति को निर्देश दिया जाए कि वह मूल प्रस्ताव में बताए गए "आगामी सत्र के प्रथम सप्ताह के अंतिम दिन अथवा उससे पहले" की बजाय 31 मार्च, 1955 को अथवा उससे पहले अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करे। लोक सभा के इस संदेश की सूचना राज्य सभा को 10 दिसंबर, 1954 को दी गई और राज्य सभा ने इस सिफारिश से सहमति का प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया।[126]

राज्य सभा में परिसीमा विधेयक, 1962 को राज्य सभा के दस और लोक सभा के बीस सदस्यों की एक संयुक्त समिति को सौंपने हेतु एक प्रस्ताव पारित किया। लोक सभा ने अपने सहमति संदेश में तीस सदस्यों को नियुक्त किया। लोक सभा में एक प्रस्ताव के माध्यम से इस त्रुटि को ठीक किया गया। राज्य सभा को एक संदेश प्राप्त हुआ, जिसमें राज्य सभा को दस अधिक सदस्यों के नाम हटाने के संबंध में सूचना दी गई थी।[127]

लोक सभा ने पोत-परिवहन अभिकर्ता (लाइसेंसिंग) विधेयक, 1987 संबंधी संयुक्त समिति के लिए अपने तीस सदस्यों के नामों की सूचना राज्य सभा को दी थी। लोक सभा ने पहले सूचित किए गए एक सदस्य के नाम को दूसरे नाम से प्रतिस्थापित करने के संबंध में पहले किए गए प्रस्ताव को संशोधित करने हेतु दूसरा प्रस्ताव स्वीकृत किया और इस आशय का संदेश राज्य सभा को भेजा।[128]

पीठासीन अधिकारियों द्वारा किसी विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपा जाना

लोक सभा में पुर:स्थापित किये गये संविधान (इक्यासीवां संशोधन) विधेयक, 1996 (नये अनुच्छेद 330-क और 332-क का अन्त:स्थापन) पर विचार करने के प्रस्ताव पर हुई चर्चा के अन्त में लोक सभा ने सभापति से परामर्श कर इस विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपे जाने और यह निर्देश देने के लिए अध्यक्ष को अधिकृत किया कि संयुक्त समिति शरदकालीन सत्र, 1996 के पहले सप्ताह के अन्तिम दिन तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करे। तदनुसार, विधेयक को इकतीस सदस्यों—इक्कीस सदस्य लोक सभा से और दस सदस्य राज्य सभा से—वाली संयुक्त समिति को सौंप दिया गया।[129]

विधेयक को विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समिति को सौंपा जाना

अप्रैल, 1993 में विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों की शुरुआत से ही उक्त समितियां उन विधेयकों की जांच करने के उपरांत उन पर अपने प्रतिवेदन संसद् के दोनों सदनों को प्रस्तुत करती हैं जो उनके संबंधित मंत्रालयों/विभागों से संबद्ध हों। किसी भी सदन में पुर:स्थापित इन विधेयकों को सभापति अथवा अध्यक्ष द्वारा, जैसी भी थिति हो इन समितियों को सौंपा जाता है।[130] विधेयक को, इस प्रकार सौंपे जाने हेतु अपनायी जाने वाली प्रक्रिया यह है कि किसी विधेयक के सभा में पुर:स्थापित होने के बाद यदि उसकी विषय-वस्तु सभापति के नियंत्रण में कार्य करने वाली समिति से संबंधित होती है तो वह उसे उस समिति को सौंप देता है।[131] यदि विधेयक किसी ऐसी समिति से संबंधित है, जो लोक सभा के अध्यक्ष के नियंत्रण में है तो अध्यक्ष द्वारा सभापति से परामर्श करने के उपरांत विधेयक समिति को भेजा जाता है। लोक सभा में भी ऐसी ही प्रक्रिया अपनायी जाती है।[132] ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जबकि विधेयकों को पुर:स्थापन से पहले ही अथवा सभा में उन पर विचार किए जाने के दौरान ही विभाग-संबंधित समितियों को सौंप दिया गया।

केबल टेलीविज़न नेटवर्क (रेग्युलेशन) विधेयक, 1993 पर, जिस रूप में राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया था, संबंधित मंत्री द्वारा बताए जाने के अनुसार अत्यावश्यकता को देखते हुए 10 अगस्त, 1993 को विचार किया जाना था। मांग की गई थी कि इसे संबंधित समिति को सौंपा जाए। अत: विधेयक पर विचार नहीं किया गया। तदुपरांत अध्यक्ष ने सभापति से परामर्श करके विधेयक को सूचना और प्रसारण तथा संचार मंत्रालयों से संबंधित स्थायी समिति को सौंप दिया।[133]

सभापति ने अध्यक्ष से परामर्श करके पब्लिक सैक्टर लोहा और इस्पात कंपनी (पुनर्सरचना) और प्रकीर्ण उपबंध (संशोधन) विधेयक, 1993 (जिसे लोक सभा में पुर:स्थापित किया जाना था) को उद्योग तथा इस्पात और खान मंत्रालयों से संबंधित स्थायी समिति को सौंप दिया था।[134]

व्यवसाय संघ (संशोधन) विधेयक, 1994 को पुर:स्थापित करने की अनुमति दिए जाने के प्रस्ताव का राज्य सभा में पुर:स्थापन के दौरान विरोध किया गया था, इसलिए प्रस्ताव ही उपस्थित नहीं किया गया। बाद में अध्यक्ष द्वारा इसे श्रम और कल्याण संबंधी स्थायी समिति को सौंप दिया गया था।[135]

(1) दिल्ली उच्च न्यायालय के अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन, भत्ते, छुट्टियां और पेंशन विधेयक, 1994 तथा (2) उच्चतम न्यायालय के अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन, भत्ते, छुट्टियां और पेंशन विधेयक, 1994 पर विचार करने हेतु प्रस्तावों पर 22 और 23 अगस्त, 1994 को चर्चा की गई थी। 23 अगस्त, 1994 को विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री ने कतिपय सदस्यों द्वारा दिए गए सुझावों से सहमत होते हुए सूचित किया कि सभापति से इन विधेयकों को गृह मंत्रालय से संबंधित स्थायी समिति को सौंपने का अनुरोध किया जाएगा। तद्नुसार, सभापति ने विधेयकों को समिति को सौंप दिया।[136]

जब कभी विधेयक स्थायी समितियों को सौंपे जाते हैं, सदस्यों को तद्नुसार संसदीय समाचार भाग-II के माध्यम से सूचित किया जाता है। सभापति अथवा अध्यक्ष द्वारा विधेयक को स्थायी समिति को सौंपते समय समय-सीमा निर्दिष्ट की जा सकती है, जिसके दौरान समिति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर देना चाहिए।[137]

जैसाकि ऊपर बताया गया है पब्लिक सैक्टर लोहा और इस्पात कंपनी (पुनर्संरचना) और प्रकीर्ण उपबंध (संशोधन) विधेयक, 1993 को संबंधित स्थायी समिति को सौंपा गया था और समिति को अपना प्रतिवेदन एक माह के अन्दर प्रस्तुत करना था। तथापि, समिति के लिए इस समय-सीमा को 18 मार्च, 1994 तक बढ़ाया गया था।[138] दंड विधि संशोधन विधेयक, 1995 दिनांक 18 मई, 1995 को गृह कार्य संबंधी स्थायी समिति को इन निर्देशों के साथ सौंपा गया कि वह दो दिनों के भीतर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे।[139] कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध (संशोधन) विधेयक, 1997 दिनांक 22 अक्तूबर, 1997 को श्रम और कल्याण संबंधी स्थायी समिति को इन निर्देशों के साथ सौंपा गया कि वह 31 अक्तूबर, 1997 तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे।[140] लॉटरी (विनियमन) विधेयक, 1998 और उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश (सेवा की शर्तें) संशोधन विधेयक, 1998 दिनांक 10 जून, 1998 को गृह कार्य संबंधी स्थायी समिति को इन निर्देशों के साथ सौंपा गया कि वह 3 जुलाई, 1998 तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे।[141] इसी प्रकार, वित्त संबंधी संसदीय स्थायी समिति को अगले सत्र के प्रथम दिन तक स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ (संशोधन) विधेयक, 1998 की जांच करनी थी।[142] (30 जुलाई, 1998 को समिति को सौंपा गया)। गृह कार्य संबंधी स्थायी समिति को दिनांक 7 दिसंबर, 1998 को सौंपे गए लोकपाल विधेयक, 1998 की दिनांक 11 दिसंबर, 1998 तक जांच की जानी थी तथा प्रतिवेदन दिया जाना था।[143] केन्द्रीय सतर्कता आयोग विधेयक, 1998 दिनांक 10 दिसंबर, 1998 को गृह कार्य संबंधी संसदीय स्थायी समिति को इन निर्देशों के साथ सौंपा गया कि वह 16 दिसंबर, 1998 तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे।[144] अर्द्धचालक एकीकृत परिपथ अभिन्यास डिजाइन विधेयक, 1999 को दिनांक 21 जनवरी, 2000 को विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पर्यावरण एवं वन संबंधी संसदीय स्थायी समिति को सौंपते हुए यह आवश्यक महसूस किया गया कि समिति द्वारा जांच करने और प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समय को 15 फरवरी, 2000 तक विनिर्दिष्ट किया जाए।[145] इसी प्रकार, नागरिकता (संशोधन) विधेयक, 2003 को दिनांक 30 मई, 2003 को गृह कार्य संबंधी स्थायी समिति को इन निर्देशों के साथ सौंपा गया कि वह अगले सत्र (199वां सत्र) के प्रथम सप्ताह तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे।[146]

इसी तरह भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2008 दिनांक 19 दिसंबर, 2008 को सूचना प्रौद्योगिकी संबंधी थायी समिति को जांच करने तथा 31 जनवरी, 2009 तक प्रतिवेदन

प्रस्तुत करने हेतु सौंपा गया।[147] परमाणुवीय नुकसान के लिए सिविल दायित्व विधेयक, 2010 विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पर्यावरण और वन संबंधी स्थायी समिति को जांच तथा दो माह के अंदर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु सौंपा गया था;[148] तकनीकी शिक्षा संस्थाओं, आयुर्विज्ञान शिक्षा संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में अऋजु व्यवहार का प्रतिषेध विधेयक, 2010 और विदेशी शिक्षा संस्था (प्रवेश और प्रचालन का विनियमन) विधेयक, 2010 मानव संसाधन विकास संबंधी स्थायी समिति को जांच करने तथा दो माह के अंदर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु सौंपे गए थे;[149] संसदीय और विधान सभा निर्वाचन-क्षेत्रों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति प्रतिनिधित्व का पुन:समायोजन विधेयक, 2013 कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय संबंधी स्थायी समिति को जांच करने तथा चार सप्ताह के अंदर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु सौंपे गये थे।[150]

एक सदन द्वारा विभाग-संबंधित स्थायी समिति को सौंपा गया और पारित किया गया विधेयक दूसरे सदन द्वारा प्रवर समिति को सौंपा जा सकता है।

व्यापार चिन्ह विधेयक, 1995 को 6 अगस्त, 1993 को संबद्ध विभाग-संबंधित स्थायी समिति को सौंपा गया था। विधेयक को लोक सभा द्वारा 29 मई, 1995 को पारित किया गया था। राज्य सभा ने विधेयक को 7 अगस्त, 1995 को प्रवर समिति को सौंपा था। इसी प्रकार राज्य सभा में पुर:स्थापित तट रक्षक (संशोधन) विधेयक, 1996 विभाग संबंधित रक्षा संबंधित संसदीय स्थायी समिति को सौंपा गया, जिसने 22 अप्रैल, 1997 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। बाद में विधेयक 6 अगस्त, 1997 को राज्य सभा की प्रवर समिति को पुन: सौंपा गया और 24 नवंबर, 1997 को प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया। अंतत: 28 नवंबर, 2001 को विधेयक वापस ले लिया गया।[151]

विभाग संबंधित स्थायी समिति को सौंपा गया और मूलत: पुर:स्थापित सदन में लंबित विधेयक उस सभा की प्रवर समिति को सौंपा जा सकता है।

स्थावर संपदा (विनियमन) और विकास विधेयक, 2013 दिनांक 14 अगस्त, 2013 को राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया। विधेयक विभाग संबंधित शहरी विकास संबंधी स्थायी समिति को 9 सितंबर, 2013 को सौंपा गया। समिति का प्रतिवेदन 13 फरवरी, 2014 को सदन के पटल पर रखा गया। विधेयक दिनांक 6 मई, 2015 को राज्य सभा की प्रवर समिति को पुन: सौंपा गया। प्रवर समिति का प्रतिवेदन 30 जुलाई, 2015 को सदन के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

विधेयक संबंधी संयुक्त समितियों की तरह विभाग-संबंधित स्थायी समितियां भी लोक सभा भंग होने के परिणामस्वरूप निष्क्रिय हो जाती हैं। जहां तक अध्यक्ष के नियंत्रण वाली समितियों का संबंध है, राज्य सभा के पुर:स्थापित एवं लंबित ऐसे विधेयक, जिन्हें पूर्ववर्ती समितियों को सौंपा गया था, उन्हें उनके पुनर्गठन के उपरांत नये सिरे से सौंपे जा सकते हैं। सभापति के नियंत्रण वाली समितियों के मामले में पुनर्गठन के पश्चात् वे स्वत: ही उन्हें पूर्व में सौंपे गये विधेयकों पर विचार करना आरंभ कर सकती हैं।[152]

प्रवर/संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के उपस्थापन के बाद की प्रक्रिया

किसी विधेयक पर राज्य सभा की प्रवर समिति अथवा सभाओं की संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के उपस्थापन के बाद प्रभारी सदस्य निम्नलिखित में से कोई भी प्रस्ताव कर सकता है। अर्थात् विधेयक पर, समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विचार किया जाए; अथवा विधेयक

को, प्रतिवेदित रूप में, बिना किसी परिसीमा के अथवा केवल विशेष खंडों या संशोधनों के संबंध में अथवा समिति को विधेयक में कोई विशेष या अतिरिक्त उपबंध करने के अनुदेशों के साथ पुन: सौंपा जाए; अथवा विधेयक को, यथास्थिति, प्रतिवेदित रूप में उस पर राय या और आगे राय जानने के प्रयोजन के लिए परिचालित या पुन:परिचालित किया जाए। यदि प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव करता है कि विधेयक पर प्रवर समिति अथवा संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विचार किया जाए तो कोई भी सदस्य इस प्रकार का प्रस्ताव किए जाने पर इस आधार पर आपत्ति कर सकता है कि सदस्यों को विधेयक की प्रति दो दिन पहले उपलब्ध नहीं करवायी गयी है और जब तक सभापति प्रस्ताव किए जाने की अनुमति न दे तब तक ऐसी आपत्ति अभिभावी रहेगी।[153] इस प्रस्ताव पर वाद-विवाद समिति के प्रतिवेदन पर विचार किए जाने और उसे सौंपे गए विषयों तक सीमित रहता है। किन्तु सदस्य विधेयक के सिद्धांतों के सुसंगत कोई वैकल्पिक सुझाव दे सकते हैं।[154]

यदि प्रभारी सदस्य प्रस्ताव करता है कि विधेयक पर प्रतिवेदित रूप में विचार किया जाए तो कोई सदस्य ऐसे संशोधन का प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक यथास्थिति समिति को पुन: सौंपा जाए अथवा उस पर राय जानने या आगे और राय जानने के प्रयोजन से परिचालित या पुन:परिचालित किया जाए।[155]

> वित्त मंत्री द्वारा बैंककारी विधि (संशोधन) विधेयक, 1968 पर प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदन रूप में विचार करने का प्रस्ताव किए जाने पर एक सदस्य ने इस संशोधन का प्रस्ताव रखा कि विधेयक को पुन: प्रवर समिति को सौंपा जाए और यह मांग की कि उसके संशोधन पर मंत्री के प्रस्ताव पर चर्चा करने से पहले चर्चा की जाए और मत लिया जाए। उपसभापति ने इस पर सहमति नहीं दी और कहा कि परंपरा यह रही है कि प्रस्ताव तथा उसके संबंध में संशोधनों पर एक साथ चर्चा की जाए।[156]
>
> 19 मार्च, 2015 को जब केन्द्रीय इस्पात और खान मंत्री श्री नरेन्द्र सिंह तोमर ने खान और खनिज (विकास और विनियमन) संशोधन विधेयक, 2015 पर राज्य सभा की प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विचार किए जाने का प्रस्ताव किया, तो श्री पी. राजीव ने विधेयक पर और विचार किए जाने के लिए उसी प्रवर समिति को पुन: सौंपने का प्रस्ताव उपस्थित किया।[157]
>
> इसी प्रकार, 20 मार्च, 2015 को जब कोयला मंत्रालय के राज्य मंत्री श्री पीयूष गोयल ने कोयला खान (विशेष उपबंध) विधेयक, 2015 पर राज्य सभा की प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विचार किए जाने का प्रस्ताव किया, तो श्री पी. राजीव ने विधेयक पर और विचार किए जाने के लिए उसी प्रवर समिति को पुन: सौंपने का प्रस्ताव उपस्थित किया। संशोधन का प्रस्ताव करते हुए उन्होंने कहा कि विधेयक को प्रवर समिति को पुन: सौंपा जाना आवश्यक है जिससे प्रवर समिति के कार्यकरण के लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बनाए रखा जाए और सभी भावी प्रवर समितियों को यह संदेश जाए कि उन्होंने यदि उपयुक्त तरीके से कार्य न किया, तो यह सभा सर्वोच्च है और उसके पास मौजूदा नियमों के अनुसार उसी विधेयक को और जांच के लिए उसी समिति को पुन: सौंपने की शक्ति है।[158]

स्थायी समिति द्वारा प्रतिवेदन के उपस्थापन के बाद की प्रक्रिया

किसी विधेयक के संबंध में स्थायी समिति के प्रतिवेदन के उपस्थापन के बाद विधेयक पर विचार किया जाता है और उसके बाद खंडश: विचार किया जाता है। दूसरे शब्दों में प्रवर अथवा संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदित विधेयकों के विपरीत स्थायी समिति द्वारा प्रतिवेदित

विधेयक पर विचार करने के संबंध में कोई प्रस्ताव नहीं किया जाता। इसका कारण संभवत: यह हो सकता है कि स्थायी समिति का प्रतिवेदन 'व्यापक सर्वसम्मति पर आधारित' और 'सुझावात्मक महत्व' का होता है और इसलिए उसे 'समिति द्वारा विचारित सलाह माना जाता है'।[159] यह विधेयक के प्रभारी मंत्री अथवा अन्य सदस्य पर निर्भर करता है कि वह समिति द्वारा की गई सिफारिशों अथवा सुझावों को ध्यान में रखकर आवश्यक संशोधनों का सभा में प्रस्ताव करे।

जिस स्थायी समिति को डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय विधेयक, 1994 सौंपा गया था उसने विधेयक में कई संशोधन करने का सुझाव दिया था और संशोधनों का प्रस्ताव विधेयक के प्रभारी मंत्री द्वारा विधेयक पर खंडश: विचार के दौरान किया गया।[160]

खंडश: विचार किया जाना

विधेयक पर विचार किए जाने संबंधी प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के बाद विधेयक को खंडश: विचार के लिए रखा जाता है। सभापति प्रत्येक खंड को अलग-अलग ले सकता है और जब इससे संबंधित संशोधन निबटा दिए जाते हैं तो वह प्रस्ताव रखता है: "यह खंड (अथवा संशोधित रूप में यह खंड, जैसी भी स्थिति हो) विधेयक का अंग बने"।[161] यदि सभापति ठीक समझे तो किसी खंड पर विचार किया जाना स्थगित कर सकता है।[162]

प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष (राष्ट्रीय महत्व की घोषणा) संशोधन विधेयक, 1953 पर खंडश: विचार के दौरान एक औचित्य प्रश्न उठाया गया था कि विधेयक में कुछ स्पष्ट त्रुटियां हैं और जब तक इन त्रुटियों को दूर न कर दिया जाए तब तक इस पर आगे कार्यवाही करना अपेक्षित नहीं होगा। सभापति ने व्यवस्था दी थी कि यदि सभा को मालूम है कि इसमें त्रुटियां हैं, तो यह जानते हुए विधेयक पारित करना उचित नहीं है इसलिए, उसने विधेयक पर विचार किए जाने को उस दिन मध्याह्न 12 बजे तक के लिए स्थगित कर दिया था। दोपहर 12 बजे विधेयक को विचार के लिए रखा गया और मंत्री ने त्रुटियों को दूर करने हेतु संशोधनों का प्रस्ताव किया।[163]

नागालैंड राज्य (संशोधन) विधेयक, 1981 के एक खंड में यह उपबंध किया गया था कि "जब तक संसद द्वारा संविधान के अनुच्छेद 158 के खंड (3) के अंतर्गत इस संबंध में उपबंध नहीं किया जाता तब तक नागालैंड के राज्यपाल के भत्ते और विशेषाधिकार वही होंगे, जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्धारित करे।" "संविधान के" शब्दों को हटाने के लिए एक शुद्धि-पत्र जारी किया गया था, एक सदस्य ने तर्क पेश किया कि ऐसा औपचारिक संशोधन के माध्यम से किया जाना चाहिए था न कि शुद्धि-पत्र के माध्यम से। उपसभापति ने सहमति प्रदान की किन्तु यह कहा कि भविष्य में ऐसा किया जाना चाहिए और इसे पूर्वोदाहरण के रूप में उद्धृत नहीं किया जाएगा।[164]

यदि कोई अनुसूची अथवा अनुसूचियां हों, तो उस पर या उन पर खंडों को निपटाने के बाद विचार किया जाता है। अनुसूचियों में उसी रीति से संशोधन किया जा सकता है जिस रीति से खंडों में संशोधन किया जाता है। मूल अनुसूचियों पर विचार किए जाने के बाद नई अनुसूचियों पर विचार किया जाता है।[165] खंडों और अनुसूचियों को एक साथ एक ही प्रस्ताव में रखा जा सकता है। विधेयक के खंड एक, अधिनियमन सूत्र, प्रस्तावना, यदि कोई हो, और शीर्षक पर अन्य सभी खंडों और अनुसूचियों (नए खंडों और नई अनुसूचियों सहित) को निपटा दिए जाने के बाद विचार किया जाता है।

खंडों का संशोधन

किसी संशोधन की सूचना, किसी अन्य सूचना की तरह ही[166] लिखित रूप में महासचिव को संबोधित की जानी अपेक्षित है, जिस पर सदस्य द्वारा विधिवत् रूप से हस्ताक्षर किये जाने चाहिये और उसे समय-समय पर संसदीय समाचार में अधिसूचित कार्य के समय के दौरान ही सूचना अनुभाग में भेजा जाना चाहिए।[167] ऐसी सूचना सभा में विधेयक पर विचार किये जाने से कम से कम एक दिन पहले तक दी जानी अपेक्षित है। कोई भी सदस्य संशोधन की अपेक्षित सूचना न दिये जाने की स्थिति में उस संशोधन को उपस्थित किये जाने के प्रस्ताव पर आपत्ति कर सकता है और जब तक सभापति उस संशोधन के उपस्थित किये जाने की अनुमति न दे तब तक ऐसी आपत्ति कायम रहती है।[168] सभापीठ को कुछ विशिष्ट मामलों में इससे अल्पावधि की सूचना पर संशोधन उपस्थित किये जाने की अनुमति देने का विवेकाधिकार है।[169] संशोधन सही रूप में होना चाहिये और यदि आवश्यक समझा जाये, तो उसे परिचालित किये जाने से पूर्व उसको संबंधित सदस्य के परामर्श से सचिवालय द्वारा उपयुक्त रूप से संपादित किया जाता है।

संशोधनों की स्वीकार्यता निम्नलिखित शर्तों के अधीन होगी:

(1) संशोधन विधेयक के क्षेत्र के भीतर होना चाहिए और जिस खंड से उसका संबंध हो, उसके विषय से संगत होना चाहिये।[170]

नागालैंड राज्य (संशोधन) विधेयक, 1981 में मूल विधेयक की धारा 32 में कोई संशोधन किया जाना शामिल नहीं था। सम्बद्ध मंत्री ने नियमों को सभा पटल पर रखे जाने से संबंधित उस धारा की उप-धारा (2) में संशोधन का प्रस्ताव रखा था। उन्होंने उस संशोधन के संबंध में नियम 96(i) को आस्थगित करने हेतु एक प्रस्ताव की सूचना भी दी थी। उस संशोधन को एक पृथक् सूची में एक पाद-टिप्पण के साथ परिचालित किया गया था जिसमें नियम 96(i) को आस्थगित करने हेतु प्रस्ताव की ओर ध्यान आकर्षित किया गया था और इसे भी अलग से परिचालित किया गया था। नियम को आस्थगित करने के प्रस्ताव को उपस्थित किया गया था और तत्पश्चात् उस संशोधन को स्वीकृत किया गया था।[171]

(2) ऐसा कोई संशोधन स्वीकार्य नहीं है जिसका प्रभाव केवल नकारात्मक मत हो।[172]

यद्यपि ऐसा कोई संशोधन परिचालित किया जाये जिसका उद्देश्य विधेयक के किसी खंड का विलोपन करना है, और उसे सभा में मत लेने के लिये उपस्थित तक कर दिया जाये, तो भी इस शर्त के सिद्धांत के अनुसार ऐसी स्थिति में उचित कार्यवाही उस खंड के विरुद्ध मत देना ही है। तथापि, यह शर्त उस मामले में लागू नहीं होती जिसमें संशोधन का उद्देश्य केवल कुछ शब्दों या यदि कोई उप-खंड हों, तो उनका विलोपन करना ही है बशर्ते कि ऐसे किसी संशोधन का समूचे खंड के विलोपन का प्रभाव न हो।

जब एक सदस्य संविधान (संशोधन) विधेयक, 1971 के एक खंड को निकाल देने हेतु एक संशोधन का प्रस्ताव उपस्थित करना चाहते थे, तो सभापति ने इसे इस आधार पर अनुचित ठहराया था कि यह एक नकारात्मक संशोधन था और सदस्य उस खंड के विरुद्ध मत दे सकते थे।[173]

(3) कोई संशोधन उसी प्रश्न पर सभा के किसी पूर्व निर्णय से असंगत नहीं होना चाहिये।[174]

(4) कोई संशोधन तुच्छ या ऐसा नहीं होना चाहिये जिससे कि वह खंड अबोध्य हो जाये या व्याकरण की दृष्टि से ठीक न रह जाये जिसे संशोधित करने का उसमें प्रस्ताव किया गया हो।[175]

यदि कोई संशोधन किसी अनुवर्ती संशोधन या अनुसूची का उल्लेख करे या उसके बिना यह बोधगम्य न हो तो प्रथम संशोधन उपस्थित किये जाने से पहले अनुवर्ती संशोधन या अनुसूची की सूचना देनी होगी जिससे कि वे संशोधन समग्र रूप से बोधगम्य हो सकें।[176]

संशोधनकारी विधेयक में संशोधन

किसी अधिनियम में संशोधन चाहने वाले विधेयक में संशोधन किये जाने का क्षेत्र सीमित है। सामान्यतया, मूल अधिनियम की उन धाराओं में, जिनका संशोधनकारी विधेयक में जिक्र नहीं किया गया हो, संशोधन तब तक स्वीकार्य नहीं है जब तक कि वे संशोधनकारी विधेयक के माध्यम से किये जाने वाले संशोधनों के अनुवर्ती न हों या विधेयक के क्षेत्र के भीतर न आते हों।

जब संविधान (सातवां संशोधन) विधेयक, 1956 विचाराधीन था, तब एक सदस्य ने संविधान के अनुच्छेद 29, 30 और 35 का संशोधन करने के लिये, जिनका विधेयक में जिक्र नहीं किया गया था, कुछ संशोधन उपस्थित करने की अनुमति मांगी थी। उपसभापति ने उन संशोधनों को नियम विरुद्ध घोषित कर दिया था। जब सदस्य ने विधेयक पर खंडशः विचार के दौरान यह मुद्दा उठाया और कहा था कि इसी तरह के संशोधन पर लोक सभा में विचार की अनुमति दी गयी थी, तो उपसभापति ने कहा था कि इस सभा की यह परिपाटी रही है कि उस धारा में संशोधन की अनुमति नहीं दी जाती जिसके संबंध में सरकार द्वारा संशोधन किये जाने की मांग नहीं की जा रही हो।[177]

निरसनकारी और संशोधनकारी विधेयक में संशोधन

किसी निरसनकारी और संशोधनकारी विधेयक का उद्देश्य "अप्रचलित विनियमनों को हटाना, अनावश्यक बातों को निकाल देना तथा असंगत अधिनियमनों को अस्वीकार कर देना है।" यह निर्णय किया गया है कि किसी निरसनकारी और संशोधनकारी विधेयक में केवल पूर्णतया औपचारिक संशोधन ही शामिल होने चाहिए जिन पर कोई विवाद न हो तथा जिनसे कोई सिद्धांत का प्रश्न न उठ सके।

निरसनकारी और संशोधनकारी विधेयक, 1953 पर खंडशः विचार की अवस्था पर, दिल्ली सड़क परिवहन प्राधिकरण अधिनियम, 1950 और अग्रिम संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1952 से संबंधित दो प्रविष्टियों को मूल संशोधन माना गया था और उनको कुछ सदस्यों द्वारा आपत्ति व्यक्त करने पर संशोधन उपस्थित कर हटा दिया गया था तथा उपसभापति ने यह स्वीकार किया था कि उक्त प्रविष्टियां औपचारिक स्वरूप की नहीं थीं।[178]

उन विधियों को जारी रखने संबंधी विधेयक में संशोधन किया जाना, जिनकी कालावधि समाप्त हो रही हो

यदि किसी ऐसे अधिनियम को जारी रखना अपेक्षित हो, जिसकी अवधि सीमित है, तो उसकी अवधि एक निर्दिष्ट तिथि तक बढ़ाने के लिए संसद में अलग से एक विधेयक लाया जाता है। ऐसे विधेयकों में संशोधन की गुंजाइश बहुत ही सीमित होती है। मूल अधिनियम की ऐसी धाराओं में संशोधन चाहने वाले संशोधनों को इस विधेयक के क्षेत्र से बाहर रखा जाता है, जिन्हें इस विधेयक में शामिल न किया गया हो।

> निवारक नज़रबंदी (संशोधन) विधेयक, 1954 पर चर्चा के दौरान एक सदस्य मूल अधिनियम में कुछ संशोधन की अनुमति चाहते थे। उपसभापति ने उन्हें व्यवस्था के विरुद्ध करार देते हुए टिप्पणी की कि यह विधेयक 'कालावधि समाप्त होने वाली विधियों को जारी रखने हेतु विधेयक' की श्रेणी के अंतर्गत आता है और हाउस ऑफ कॉमन्स में स्थापित परंपरा के अनुसार चलते हुए, मूल अधिनियम में, जिसे जारी रखने का प्रस्ताव है, संशोधन चाहना उचित नहीं होगा।[179]
>
> पुनः जब एक सदस्य ने निवारक नज़रबंदी (अनुवर्त्तन) विधेयक, 1957 में उस क्षेत्र के संबंध में संशोधन प्रस्तुत करने की अनुमति मांगी जिस पर इसे लागू होना था, उपसभापति ने इस विषय पर पहले दी गई व्यवस्था को दोहराया और 'मेज़ पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस', 15वां संस्करण (पृ. 532-33) से उद्धृत किया कि "कालावधि समाप्त होने वाली विधियों को जारी रखने हेतु विधेयक" के संबंध में उपस्थित किए जाने वाले संशोधन के संबंध में निम्नलिखित शर्तें लागू होती हैं:
>
> (क) यदि कोई संशोधन ऐसे अधिनियम के उपबंधों में संशोधन चाहता है, जिसे जारी रखने अथवा स्थायी बनाने का प्रस्ताव है अथवा पहले ही कालावधि समाप्त किसी संविधि को विधेयक में शामिल करने का प्रस्ताव है, तो वह संशोधन विधेयक के सीमा-क्षेत्र में नहीं आता है; और
>
> (ख) उस तिथि के बदलने के लिए विधेयक के प्रवर्त्तनशील खंड में संशोधन का प्रस्ताव किया जा सकता है, जिस तिथि तक उस विधेयक को लागू रहना हो।[180]

राष्ट्रपति की सिफारिश की अपेक्षा वाले संशोधन

यदि कोई सदस्य ऐसा संशोधन उपस्थित करना चाहता हो, जिसे संविधान के अधीन राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी या सिफारिश के बिना सभा में उपस्थित नहीं किया जा सकता, तो वह सूचना के साथ राष्ट्रपति द्वारा मंत्री की मार्फत भेजी गई सिफारिश को अनुबद्ध करेगा और सदस्य द्वारा दी गई संशोधन की सूचना तब तक मान्य नहीं होगी जब तक इस अपेक्षा का पालन नहीं हो जाता।[181]

परंपरा यह है कि सदस्य आमतौर पर अपनी ओर से राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करने के लिए सचिवालय को अपना आवेदन देते हैं। सदस्य के पत्र की एक प्रति सिफारिश की अपेक्षा वाले संशोधन के साथ संबद्ध मंत्रालय को आवश्यक कार्यवाही के लिए भेजी जाती है। संशोधन पर सिफारिश देने अथवा रोकने संबंधी राष्ट्रपति के आदेश की सूचना संबंधित मंत्री द्वारा महासचिव को लिखित रूप से दी जाती है।[182] यदि समय हो, तो इसे 'संसदीय समाचार' भाग-2 में प्रकाशित किया जाता है।[183]

27 अगस्त, 2010 को परमाणुवीय नुकसान के लिए सिविल दायित्व विधेयक, 2010 के खंड 6 के संबंध में गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा दिये गये संशोधनों को संविधान की धारा 117(1) के अंतर्गत राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करने के बाद ही उपस्थित किया गया था।[184]

2 सितंबर, 2013 को लोक सभा द्वारा यथापारित भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार विधेयक, 2013 के खंड 97 के संबंध में गैर-सरकारी सदस्य द्वारा दिये गये संशोधन के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक हुई चूंकि यह संशोधन भूस्वामियों को दिये गये प्रतिकर से स्टाम्प शुल्क और आयकर से मुक्त करता है। संशोधन उपस्थित करने हेतु उक्त सिफारिश ग्रामीण विकास मंत्री द्वारा संसूचित की गई।

19 फरवरी, 2014 को दो सदस्यों से आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन विधेयक, 2014 के विचार और पारण के संबंध में संशोधनों की सूचना प्राप्त हुई। चूंकि इस विधेयक के खंड 46 और 67 के प्रस्तावित संशोधन संविधान के अनुच्छेद 117(i) से संबोधित है; 20 फरवरी 2014 को गृह मंत्री द्वारा सचिवालय को इस विधेयक के विचार हेतु राष्ट्रपति की सिफारिश संसूचित की गई।

सामान्यतया राज्य सभा में संशोधन की ऐसी सूचनाएं प्राप्त होती हैं जिनमें आय-कर या उत्पाद शुल्क में किंचित फेर-बदल करने अर्थात् सदन के समक्ष वित्त विधेयक में निर्धारित दरों में संशोधन करने या कर में कमी करने का अनुरोध किया जाता है। ऐसी सूचनाओं को राष्ट्रपति की सिफारिशें प्राप्त करने हेतु वित्त मंत्रालय को भेज दिया जाता है और ऐसी सूचनाओं के प्रस्ताव को सिफारिशें प्राप्त किये बिना सदन में उपस्थित नहीं किया जा सकता है,[185] क्योंकि राज्यों की अभिरुचि वाला कोई ऐसा कर या शुल्क लगाने या उसमें कोई परिवर्तन करने वाले संशोधनों को राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना उपस्थित नहीं किया जा सकता है।[186]

भारतीय टैरिफ (चौथा संशोधन) विधेयक, 1952 के खंड 2 में दो संशोधनों को राज्य सभा में नियम विरुद्ध घोषित कर दिया गया था, क्योंकि उनके लिये नियमों के अधीन राष्ट्रपति की संस्वीकृति अपेक्षित थी और इस संबंध में संस्वीकृति प्रदान नहीं की गयी थी।[187]

तथापि, ऐसे किसी संशोधन के प्रस्ताव को उपस्थित करने हेतु राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक नहीं है जिसका उद्देश्य विधेयक में प्रस्तावित किसी कर को समाप्त करना या उसमें कमी करना है।[188]

संशोधनों की सूची

जिन संशोधनों की सूचना दी जा चुकी हो, उनका विन्यास समय-समय पर जारी की गयी संशोधन सूची में यथासाध्य उसी क्रम में किया जाता है जिसमें कि उन पर सदन में विचार किया जा सके। किसी खंड में एक ही स्थान पर एक जैसा प्रश्न उठाने वाले संशोधनों का विन्यास करते समय उस संशोधन को पूर्वता दी जाती है जिसके संबंध में विधेयक के प्रभारी सदस्य से सूचना प्राप्त हो गई हो। इसके अध्यधीन संशोधनों का विन्यास उस क्रम में किया जाता है जिसमें कि उनकी सूचनायें प्राप्त हुई हों।[189] सामान्यतया सूची में संशोधनों का खंड-वार इस क्रम में विन्यास किया जाता है: किसी विद्यमान खंड के लिये नया खंड प्रतिस्थापित करने हेतु संशोधन; किसी उप-खंड या उप-पैरा का विलोपन करने हेतु संशोधन;

किसी विद्यमान उप-खंड या उप-पैरा के लिये किसी उप-खंड या उप-पैरा को प्रतिस्थापित करने हेतु संशोधन; कतिपय शब्दों का विलोपन करने हेतु संशोधन; कतिपय शब्दों को प्रतिस्थापित करने, जोड़ने या अन्तःस्थापित करने हेतु संशोधन; और किसी नये खंड को जोड़ने या अन्तःस्थापित करने हेतु संशोधन। एक से अधिक सदस्यों से प्राप्त हुई एक ही तरह के संशोधनों की सूचनाओं की स्थिति में, सदस्यों के नाम सहबद्ध कर दिये जाते हैं। किसी विधेयक के खंडों और अनुसूचियों से संबंधित संशोधनों को उन संशोधनों से अलग से सूचीबद्ध किया जाता है, जिन्हें विधेयक के विचारार्थ उपस्थित किया गया हो अर्थात् किसी विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने हेतु संशोधन या किसी विधेयक पर राय जानने के प्रयोजनार्थ परिचालित करने हेतु संशोधन। किसी विधेयक के संबंध में संशोधनों की अनेक सूचियां जारी की जा सकती हैं; यदि समय हो, तो उन सभी संशोधनों की एक समेकित सूची भी जारी की जा सकती है। संशोधनों की सूचियों को राज्य सभा के सभी सदस्यों, मंत्रियों और अन्य व्यक्तियों को परिचालित किया जाता है।[190]

सदन का सत्रावसान होने पर संशोधनों की सभी सूचनाएं व्यपगत हो जाती हैं और अगले सत्र के लिये नई सूचनायें दी जानी चाहिए।[191] तथापि, किसी सरकारी विधेयक के मामले में कोई संशोधन, जिसकी सूचना प्रभारी मंत्री से मिली हो, इस बात के कारण व्यपगत नहीं हो जाता है कि वह मंत्री या सदस्य नहीं रहा है और ऐसा संशोधन विधेयक नये प्रभारी मंत्री के नाम से मुद्रित कर दिया जाता है।[192]

सभापति को प्रस्तावित किये जाने वाले नये खंडों या संशोधनों का चयन करने की शक्ति प्राप्त है और यदि वह ठीक समझे, तो ऐसे किसी सदस्य से, जिसने संशोधन की सूचना दी हो, उस संशोधन के उद्देश्य की ऐसी व्याख्या करने के लिये कह सकता है जिससे कि वह उस पर कोई निर्णय ले सके।[193]

संशोधनों का उपस्थित किया जाना, उन पर विचार किया जाना और उनका वापस लिया जाना

जब यह प्रस्ताव कि विधेयक पर विचार किया जाये, स्वीकृत हो गया हो, तब कोई सदस्य सभापति द्वारा पुकारे जाने पर उसमें वह संशोधन उपस्थित करता है जिसकी उसने पहले सूचना दे दी हो। समय बचाने और तर्कों की पुनरावृत्ति न होने देने की दृष्टि से एक-दूसरे पर निर्भर अनेक संशोधनों को लाने हेतु एक ही चर्चा की अनुमति दी जाती है।[194] किसी विधेयक के खंड में संशोधन का प्रस्ताव उस खंड को सभा के समक्ष रखे जाने के तत्काल पश्चात् उपस्थित करना पड़ता है। सदस्य को अपना संशोधन प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए सभा में उपस्थित होना चाहिये जब उस खंड को विचारार्थ लिया जाये जिससे यह संबद्ध है। एक सदस्य द्वारा किसी अन्य सदस्य की ओर से संशोधन प्रस्ताव उपस्थित करने के संबंध में नियमों में कोई प्रावधान नहीं है। यदि कोई सदस्य उस समय सभा में उपस्थित न हो जब प्रस्ताव उपस्थित करने हेतु उसका नाम पुकारा जाये तो वह प्रस्ताव उपस्थित करने का अवसर खो देता है।

जब किसी विशिष्ट खंड में संशोधन उपस्थित किये गये हों तो सदस्य उस खंड और उससे संबंधित संशोधनों पर अपने विचार प्रकट कर सकते हैं। यदि समय हो तो संशोधनों को सभा पटल पर रखने वाले सदस्यों को अपने संशोधनों के पक्ष में अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिल जाता है। साधारणतया संशोधनों पर विधेयक के उन खंडों के क्रम में विचार किया जाता है जिनसे वे संबंधित होते हैं।[195] किसी खंड पर चर्चा पूर्ण हो जाने के पश्चात् सभापीठ उपस्थित किये गये संशोधनों को सभा का मत लेने के लिये रखती है।

उपस्थित किये गये किसी संशोधन को प्रस्ताव उपस्थित करने वाले सदस्य द्वारा इसके वापस किये जाने हेतु किए गये विशिष्ट अनुरोध पर ही उसे सभा की अनुमति से वापस लिया जा सकता है। यदि संशोधन को वापस लेने की अनुमति का विरोध किया जाता है तो उसे निपटाये जाने हेतु सभा का मत लेने के लिये रखना पड़ेगा।[196] यदि किसी संशोधन पर कोई संशोधन प्रस्तावित किया गया हो तो मूल संशोधन तब तक वापस नहीं लिया जा सकता है जब तक कि उससे संबंधित प्रस्तावित संशोधन का निपटारा न कर दिया जाये।[197]

विधेयक का पारण (तृतीय वाचन)

जब विधेयक के सभी खंडों और अनुसूचियों, यदि कोई हों पर विचार कर लिया गया हो तथा सभा का मत ले लिया गया हो, तब विधेयक का प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को पारित किया जाये।[198]

> एक अवसर पर, जब गृह मंत्री ने यह प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया कि संघ राज्य क्षेत्र शासन (संशोधन) विधेयक, 1977 को यथासंशोधित रूप में पारित किया जाये, तब कुछ प्रक्रियागत प्रश्न उठाये गये थे। उपसभाध्यक्ष ने नियम 126 के साथ पठित नियम 71 का उल्लेख करते हुए यह टिप्पणी करके इस मामले को वहीं समाप्त कर दिया था कि : "हमारे नियमों में ऐसा कुछ नहीं है जिससे कि सभापीठ को यह शक्ति प्राप्त हो कि वह प्रभारी सदस्य को इस बात के लिए बाध्य कर सके कि प्रस्ताव पारित कराने के लिये उसे उपस्थित किया जाये। चूंकि प्रभारी सदस्य उपस्थित नहीं कर रहे हैं इसलिये इस संबंध में आगे कुछ नहीं किया जा सकता है।" एक अन्य विधेयक, दिल्ली प्रशासन (संशोधन) विधेयक, 1977 को तत्पश्चात् विचारार्थ लिया गया और उसमें भी संशोधन किया गया और मंत्री ने उस विधेयक के संबंध में अगला प्रस्ताव भी उपस्थित नहीं किया था।[199] दोनों ही विधेयक लोक सभा के विघटन पर व्यपगत हो गये थे।

इस प्रस्ताव पर आपत्ति की जा सकती है कि विधेयक यथासंशोधित रूप में उसी दिन पारित किया जाए जिस दिन विधेयक पर विचारण समाप्त हुआ हो।[200] तथापि, इस संबंध में सामान्य प्रथा यह है कि प्रस्ताव उसी दिन उपस्थित किया जाता है।

विधेयक को पारित किए जाने संबंधी प्रस्ताव पर सभा द्वारा किए गये औपचारिक, मौखिक अथवा किसी संशोधन के आनुषंगिक संशोधनों को छोड़कर किसी अन्य संशोधन को उपस्थित नहीं किया जा सकता।[201]

इस प्रस्ताव पर कि "विधेयक (अथवा यथासंशोधित रूप में विधेयक) को पारित किया जाये", चर्चा विधेयक के समर्थन में अथवा विधेयक अस्वीकृत करने के लिए दिए जाने वाले

तर्कों तक सीमित रहेगी और भाषण करते समय सदस्य विधेयक के ब्यौरे का उससे अधिक उल्लेख नहीं करेगा जितना उसके तर्कों के प्रयोजन के लिए आवश्यक हो, जो सामान्य रूप के होंगे।[202]

> आवश्यक वस्तु (संशोधन) विधेयक, 1957 के तृतीय वाचन के दौरान एक सदस्य ने विधेयक के उपबंधों के कार्यान्वयन हेतु कुछ सुझाव प्रस्तुत किए। एक अन्य सदस्य ने औचित्य का प्रश्न उठाते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि प्रक्रिया संबंधी नियम के नियम 96 (पूर्व नियम) के अनुसार, तृतीय वाचन पर सदस्य को स्वयं को विधेयक के समर्थन में अथवा विधेयक की अस्वीकृति पर तर्क प्रस्तुत करने तक ही सीमित रहना चाहिए।
>
> उपसभापति ने कहा:
>
> उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा। उन्होंने कार्यान्वयन हेतु सुझाव प्रस्तुत किए...नियम कहता है कि विधेयक के समर्थन में अथवा विधेयक के विरोध में आप कुछ टिप्पणियां कर सकते हैं, परंतु वे आपकी टिप्पणियां किसी भी तरह की नहीं थी। आपने इसके कार्यान्वयन हेतु कतिपय सुझाव प्रस्तुत किए थे।[203]

प्रत्यक्ष गलतियों का ठीक किया जाना

विधेयक के राज्य सभा द्वारा पारित हो जाने के बाद सभापति को प्रत्यक्ष गलतियों को ठीक करने और ऐसे अन्य परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त होगी, जो राज्य सभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों के आनुषंगिक हों।[204]

> एक अवसर पर सभापति द्वारा सूचित किया गया कि उन्होंने दो विधेयकों, अर्थात् मुस्लिम वक्फ़ विधेयक और बालक विधेयक, के अधिनियमन सूत्र में एकरूपता बनाए रखने के लिए संशोधन किया है। एक सदस्य द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या ऐसा संशोधन के अलावा किसी अन्य तरीके से किया जा सकता है तो सभापति ने टिप्पणी की कि प्रत्यक्ष गलतियों को ठीक करने हेतु उनको आवश्यक शक्तियां प्राप्त हैं।[205]
>
> बजट पर सामान्य चर्चा आरंभ होने से पहले वित्त मंत्री ने सभा में एक वक्तव्य दिया था और उन्होंने सभा का ध्यान उनके द्वारा लोक सभा में पुर:स्थापित वित्त विधेयक, 1956 में हुई मुद्रण की अशुद्धियों की ओर दिलाया था।[206]

राज्य सभा द्वारा पारित किए गए विधेयक, विधायी परामर्शी, विधि मंत्रालय को संवीक्षा के लिए भेजे जाते हैं ताकि सभापति को प्रत्यक्ष गलतियों इत्यादि को ठीक करने में मदद मिल सके। नियम यह है कि विधायी परामर्शी द्वारा बतायी गयी और सभापति द्वारा स्वीकार की गई प्रत्यक्ष गलतियों को विधेयकों को लोक सभा को भेजने से पहले ठीक कर दिया जाता है। संसद की दोनों सभाओं द्वारा पारित ऐसे विधेयकों की, जो राज्य सभा के पास हों, राष्ट्रपति को उनकी अनुमति के लिए भेजने से पहले, अनिवार्य रूप से संवीक्षा की जाती है। ऐसी संवीक्षा विधेयक की अनुमति प्राप्त प्रति के मुद्रित होने से पहले और उसके बाद सभापति द्वारा उस पर हस्ताक्षर किए जाने से पहले की जाती है।

> लोक सभा द्वारा यथापारित सूचना प्रदाता संरक्षण विधेयक, 2011 राज्य सभा के सभापटल पर 28 दिसंबर 2011 को रखा गया। राज्य सभा द्वारा 21 फरवरी 2014 को बिना किसी संशोधन के विधेयक पर विचार एवं उसे पारित कर दिया गया। परिणामस्वरूप, विधेयक के

खंड 1 में अधिनियमन सूत्र और कैलेंडर वर्ष (2011) में आया "बासठवां" गणतन्त्र वर्ष "पैंसठवां वर्ष" और "2014" के स्थान पर जारी रहते यदि विधेयक पर विचार एवं उसके पारण के दौरान मंत्री द्वारा औपचारिक संशोधन उपस्थित किए जाते।

कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय में राज्य मंत्री ने दिनांक 29 अप्रैल, 2014 के अपने पत्र के अंतर्गत सभापति से सूचना-प्रदाता संरक्षण विधेयक, 2011 के खंड 1 और अधिनियमन सूत्र में नियम 108 के अर्थ में परिवर्तन को प्रत्यक्ष गलतियों के रूप में व्यवहृत करने का अनुरोध किया। सभापति द्वारा राज्य मंत्री का अनुरोध स्वीकार्य नहीं किया गया और विधेयक को अनुच्छेद 111 के तहत गणतंत्र वर्ष ओर कैलेंडर वर्ष को परिवर्तित किए बिना राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत कर दिया गया। सूचना प्रदाता संरक्षण विधेयक, 2011 को 9 मई, 2014 को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई और यह 2014 का अधिनियम संख्यांक 17 बन गया।[207]

विधेयक पर वाद-विवाद का स्थगन

राज्य सभा में विधेयक पर चल रही चर्चा के किसी भी चरण में सभापति की सहमति से यह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकेगा कि विधेयक पर वाद-विवाद स्थगित कर दिया जाए।[208]

लोक सभा द्वारा यथा पारित संसद (निरर्हता निवारण) संशोधन विधेयक, 1974 पर आगे विचार किए जाने को एक सदस्य द्वारा उपस्थित किए गए और सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के माध्यम से स्थगित कर दिया गया था।[209]

सभापति विधेयक पर वाद-विवाद को स्थगित किए जाने के प्रस्ताव को सभा के समक्ष रखने से पहले एक से अधिक सदस्यों को विरोध करने अथवा बोलने की अनुमति दे सकते हैं। विधेयक पर वाद-विवाद को स्थगित करने के प्रस्ताव के अस्वीकृत हो जाने अथवा वापस लिए जाने पर विधेयक पर वाद-विवाद चलता रहता है।

एक सदस्य ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि आवश्यक सेवाएं बनाए रखने का अध्यादेश, 1968 और संबंधित विधेयक का निरनुमोदन चाहने वाले संकल्पों पर वाद-विवाद को स्थगित किया जाए। यह प्रस्ताव मत-विभाजन द्वारा अस्वीकृत हो गया।[210]

जब लोक सभा द्वारा यथापारित रूप में महापत्तन न्यास विधेयक, 1963 पर चर्चा चल रही थी, तो एक मामला उठाया गया था कि क्या विधेयक को लोक सभा की प्रवर समिति की बजाय संयुक्त समिति को सौंपा जाना चाहिए था। जैसे ही महत्वपूर्ण प्रश्न उठे, एक सदस्य ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि विधेयक पर आगे चर्चा को स्थगित किया जाए। सदस्यों द्वारा अपने विचार व्यक्त किए जाने के बाद, सदस्य ने सभा की अनुमति से प्रस्ताव वापस ले लिया और विधेयक पर वाद-विवाद चालू रहा।[211]

किन्तु, यदि सभापति की राय यह हो कि वाद-विवाद के स्थगन का कोई प्रस्ताव राज्य सभा के नियमों का दुरुपयोग है तो वह उस पर या तो तुरन्त मत ले सकेंगे या प्रस्ताव को प्रस्थापित करने से इंकार कर सकेंगे।[212]

विधेयक का वापस लिया जाना

किसी विधेयक का प्रभारी सदस्य विधेयक के किसी भी चरण में प्रस्ताव कर सकेगा कि विधेयक को वापस लिए जाने की अनुमति दी जाए और यदि ऐसी अनुमति दे दी जाती है तो उस विधेयक के संबंध में कोई और प्रस्ताव नहीं किया जाएगा।[213] कुछ ऐसे कारण

जिनके आधार पर विधेयकों को वापस लिए जाने की अनुमति दी गई है, इस प्रकार हैं: विधेयक में शामिल विधायी प्रस्ताव को हटाया जाना है; अथवा सरकार विधेयक पर आगे कार्यवाही नहीं करना चाहती है; अथवा सरकार इस विषय पर एक व्यापक विधेयक लाना चाहती है। कुछ ऐसे विधेयकों का, जो राज्य सभा में पुर:स्थापित तो किए गए किन्तु बाद में उन्हें वापस ले लिया गया, नीचे उल्लेख किया गया है और उनके वापस लिए जाने की संबंधित तारीखें कोष्ठकों में दी गई हैं।

> पोत परिवहन अभिकर्त्ता (अनुज्ञापन) विधेयक, 1987 (11 मार्च, 1991); व्यवसाय संघ और औद्योगिक विवाद (संशोधन) विधेयक, 1988 (30 मई, 1990); प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण (संशोधन) विधेयक, 1988 (26 मार्च, 1992); भवन और अन्य सन्निर्माण कर्मकार (रोजगार एवं सेवा शर्तों का विनियमन) विधेयक, 1988 (28 नवम्बर, 1995); खेल-कूद रंगभेद निवारण विधेयक, 1988 (26 अगस्त, 1995); अर्जित प्रतिरक्षण न्यूनता संलक्षण (एड्स) निवारण विधेयक, 1989 (12 अगस्त, 1992); संविधान (सत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1990 (13 जून, 1994); लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1990 (13 जून, 1994); विकलांग कल्याण एवं अधिकार संरक्षण बोर्ड विधेयक, 1991 (22 अगस्त, 1995); मानसिक अवरुद्धता और प्रमस्तिष्कीय अंगघातग्रस्त व्यक्ति कल्याण राष्ट्रीय न्यास विधेयक, 1991 (2 जून, 1995); विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (संशोधन) विधेयक, 1991 (1 जून, 1995); अधिवक्ता (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 1992 (30 मार्च, 1995); कंपनी विधेयक, 1993 (10 सितम्बर, 1996); अवक्रय (संशोधन) विधेयक 1989 (12 सितंबर, 1996); पांडिचेरी (प्रशासन) संशोधन विधेयक, 2000 (1 अगस्त, 2000); दंड विधि संशोधन विधेयक, 1995 (7 दिसंबर, 2001); दिल्ली विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, 2000 (13 मार्च, 2002); भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक, 1986 (21 मार्च, 2002); और कंपनी विधेयक, 1997 (7 मई, 2003)। प्रत्यायोजित विधान (संशोधन) विधेयक, 2003 (7 दिसंबर, 2004); निजी सुरक्षा रक्षक और अभिकरण (विनियमन) विधेयक, 1994 (24 मार्च, 2005); माध्यस्थम् और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2003 (12 अगस्त, 2003); प्राइवेट विश्वविद्यालय (स्थापना और विनियमन) विधेयक, 1995 (14 अगस्त, 2007); विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (संशोधन) विधेयक, 1995 (24 अप्रैल, 2008); अनुसूचित जातियां, अनुसूचित जनजातियां और अन्य पिछड़े वर्ग (पद और सेवाओं में आरक्षण) विधेयक, 2004 (22 दिसंबर, 2008); संविधान (इकसठवां संशोधन) विधेयक, 1998 (3 दिसंबर, 2009); लाटरी (निषेध) विधेयक, 1999 (7 मई, 2010); प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2006 (3 दिसंबर, 2010); श्रम विधि (विवरणी देने और रजिस्टर रखने से कतिपय स्थापनों को छूट) संशोधन और प्रकीर्ण उपबंध विधेयक, 2005 (23 मार्च, 2011); भारतीय चिकित्सा परिषद् (संशोधन) विधेयक, 2005 (21 मार्च, 2013); संसदीय और विधान सभा निर्वाचन-क्षेत्रों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति प्रतिनिधित्व पुन:समायोजन विधेयक, 2013 (7 अगस्त, 2013); भारतीय चिकित्सा परिषद् विधेयक, 2013 (19 अगस्त, 2013); औषधि और प्रसाधन सामग्री (संशोधन) विधेयक, 2007 (29 अगस्त, 2013); संसदीय और विधान सभा निर्वाचन क्षेत्रों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति प्रतिनिधित्व पुन:समायोजन (दूसरा) विधेयक, 2013 (10 दिसंबर, 2013); लोक प्रतिनिधित्व (दूसरा संशोधन और विधिमान्यकरण) विधेयक (18 दिसंबर, 2013) और सांप्रदायिक हिंसा (निवारण, नियंत्रण और पीड़ितों का पुनर्वास) विधेयक, 2005 (5 फरवरी, 2014)।

जब कोई विधेयक प्रवर या संयुक्त समिति के विचाराधीन हो तो विधेयक को वापस लेने के प्रस्ताव की सूचना स्वत: समिति को सौंपी गई मानी जाएगी और समिति द्वारा राज्य सभा को दिए प्रतिवेदन में अपनी राय व्यक्त किए जाने के बाद वह प्रस्ताव कार्यावलि में रखा जाएगा।[214]

जब किसी विधेयक का आरंभ एवं पारण लोक सभा में हुआ हो और वह राज्य सभा में लंबित हो तो प्रभारी सदस्य को राज्य सभा में एक प्रस्ताव प्रस्तुत करना होगा जिसमें लोक सभा से यह सिफारिश की जाएगी कि लोक सभा राज्य सभा द्वारा विधेयक को वापस

लेने की अनुमति दिए जाने से सहमत हो और जब यह प्रस्ताव राज्य सभा द्वारा स्वीकृत हो जाए और उस पर लोक सभा द्वारा सहमति प्रदान कर दी जाए तब प्रभारी सदस्य विधेयक को वापस लेने की अनुमति के लिए प्रस्ताव करेगा।[215] उसके बाद उस आशय का एक संदेश लोक सभा को भेजा जाता है।

विद्युत मंत्रालय, कोयला मंत्रालय तथा नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय के राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) श्री पीयूष गोयल ने 11 मई, 2015 को लोक सभा द्वारा 12 दिसंबर, 2014 को पारित और राज्य सभा में लंबित कोयला खान (विशेष उपबंध) विधेयक, 2014 को वापस लेने के लिए प्रस्ताव उपस्थित किया।[216]

इसी प्रकार राज्य सभा में आरंभ और पारित और लोक सभा में लंबित पड़े किसी विधेयक को वापस लेने के लिए लोक सभा में वही प्रक्रिया अपनाई जाती है।[217] नीचे कुछ ऐसे उदाहरण दिए गए हैं जिनमें पूर्व में राज्य सभा द्वारा पारित किए गए और लोक सभा में लंबित पड़े विधेयक को वापस लेने के लिए लोक सभा की सिफारिश के अनुसार राज्य सभा में सहमति का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया।

मणिपुर राज्य पहाड़ी लोक (प्रशासन) विनियमन (संशोधन) विधेयक, 1954; अधिवक्ता (संशोधन) विधेयक, 1965; अधिवक्ता (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 1968; आयुध (संशोधन) विधेयक, 1981; भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् (संशोधन) विधेयक, 1992; माल बहुविधि परिवहन विधेयक 1992; दंत चिकित्सक (संशोधन) विधेयक, 1992; संविधान (इकहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1990[218] और भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (संशोधन) विधेयक, 2013।

निर्धारित परिपाटी के अनुसार जब सरकार द्वारा किसी विधेयक को वापस लिए जाने का अनुरोध किया जाता है तब संबंधित मंत्री द्वारा उस तारीख, जिस तारीख को विधेयक को वापस लिए जाने का प्रस्ताव किया जाना है, से पहले विधेयक को वापस लिए जाने के कारणों को दर्शाने वाला एक विवरण सदस्यों में परिचालित किया जाता है।[219]

यदि किसी विधेयक को वापस लेने की अनुमति के प्रस्ताव का विरोध किया जाता है जो सभापति, यदि वह उचित समझें, प्रस्ताव उपस्थित करने वाले सदस्य को तथा प्रस्ताव का विरोध करने वाले सदस्य को संक्षिप्त व्याख्यात्मक विवरण देने की अनुमति दे सकते हैं और उसके बाद, बिना किसी वाद-विवाद के प्रस्ताव पर मत लेते हैं।[220]

लेडी हार्डिंग आयुर्विज्ञान महाविद्यालय और अस्पताल विधेयक, 1959 पर विचार करने के प्रस्ताव पर चर्चा के बीच में ही स्वास्थ्य मंत्री ने घोषणा की कि सरकार का विधेयक पर आगे कार्यवाही करने का विचार नहीं है। सदस्यों ने औचित्य का प्रश्न उठाते हुए यह आपत्ति की कि मंत्री को चर्चा पूरी होने के बाद ही विधेयक को वापस लेने की अनुमति मांगनी चाहिए थी। उपसभापति ने नियम 117 (पुराना) का उल्लेख करते हुए मंत्री और विधेयक को वापस लिए जाने का विरोध करने वाले सदस्य को वक्तव्य देने की अनुमति दे दी। उसके बाद विधेयक को वापस लिए जाने का प्रस्ताव औपचारिक रूप से सभापीठ द्वारा उपस्थित किया गया और मत-विभाजन द्वारा स्वीकार कर लिया गया।[221]

16 अगस्त, 1995 को लोक सभा द्वारा यथापारित भारतीय तार (संशोधन) विधेयक, 1995 को 17 अगस्त, 1995 को राज्य सभा के पटल पर रखा गया था। सरकार ने दूरसंचार विनियामक

प्राधिकरण विधेयक, 1995 नाम से एक व्यापक विधेयक लाने का प्रस्ताव किया और इसलिए लोक सभा द्वारा पारित विधेयक को वापस लेने का प्रस्ताव किया। किन्तु कुछ सदस्यों ने विधेयक को वापस लिए जाने का विरोध किया और इसलिए प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जा सका।[222]

विधेयकों की पंजी से विधेयक का हटाया जाना

सचिवालय द्वारा एक विधेयक पंजी रखी जाती है, जिसमें सभा में पुर:स्थापित किए गए विधेयकों को दर्ज किया जाता है। जब राज्य सभा में आरंभ होने वाले किसी विधेयक के बारे में विधेयक के विभिन्न चरणों से संबद्ध कोई भी प्रस्ताव राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है तो उस विधेयक के संबंध में कोई और प्रस्ताव नहीं किया जाता और ऐसा विधेयक राज्य सभा में लंबित विधेयकों की पंजी से हटा दिया जाता है। संबद्ध प्रस्ताव निम्नलिखित हैं: विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति दी जाए; विधेयक को प्रवर समिति अथवा संयुक्त समिति को सौंपा जाए; विधेयक पर विचार किया जाए; विधेयक पर प्रवर समिति अथवा संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप से विचार किया जाए; विधेयक को (अथवा यथास्थिति संशोधित रूप में विधेयक को) पारित किया जाए।[223] यदि किसी विधेयक को वापस ले लिया जाता है[224] अथवा किसी विधेयक को पुर:स्थापन के बाद अनुच्छेद 117(1) के अंतर्गत आने के कारण धन विधेयक ठहराया जाता है,[225] तो भी सभा के समक्ष लंबित विधेयक को लंबित विधेयकों की पंजी से हटा दिया जाता है।

लोक सभा द्वारा संशोधन सहित लौटाए गए धन विधेयकों से इतर विधेयक

यदि धन विधेयक के अतिरिक्त कोई विधेयक राज्य सभा द्वारा पारित करके लोक सभा को भेजा गया हो और लोक सभा उसे संशोधन सहित राज्य सभा को लौटा दे तो वह सभा पटल पर रखा जाता है।[226] संशोधित विधेयक के पटल पर रखे जाने के बाद कोई भी मंत्री दो दिन की सूचना देने के बाद या सभापति की सहमति से बिना सूचना दिए प्रस्ताव कर सकता है कि संशोधनों पर विचार किया जाए।[227] संशोधनों पर विचार किए जाने के प्रस्ताव की सूचना प्राप्त होने पर इसे कार्यावलि में शामिल किया जाता है। यदि संशोधनों पर विचार किए जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो सभापति उन संशोधनों को राज्य सभा के सामने ऐसी रीति से रखता है जिसे वह उन पर विचार के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक समझे।[228]

लोक सभा द्वारा किए गए संशोधन की विषय-वस्तु से संगत कोई संशोधन उपस्थित किया जा सकता है किन्तु विधेयक में कोई और संशोधन तब तक उपस्थित नहीं किया जाएगा जब तक कि वह लोक सभा द्वारा किए गए किसी संशोधन से आनुषंगिक या वैकल्पिक न हो।[229]

यदि राज्य सभा लोक सभा द्वारा किए गए संशोधन से सहमत होती है तो वह लोक सभा को इस आशय का एक संदेश भेजती है, किन्तु यदि वह उस संशोधन से सहमत नहीं है या किसी और संशोधन या वैकल्पिक संशोधन का प्रस्ताव करती है, तो वह विधेयक को संशोधित रूप में लोक सभा को इस आशय के एक संदेश के साथ लौटा देती है।[230]

यदि विधेयक इस संदेश के साथ राज्य सभा को लौटा दिया जाता है कि लोक सभा उस संशोधन/उन संशोधनों पर ज़ोर देती है जिनसे राज्य सभा असहमत है तो यह समझा जाता है कि संशोधन/संशोधनों के बारे में सभाएं अंतिम रूप से असहमत हो गई हैं।[231] ऐसे मामले में राष्ट्रपति विधेयक पर विचार-विमर्श और मतदान के प्रयोजनार्थ दोनों सदनों की एक संयुक्त बैठक आमंत्रित करने की अपनी मंशा को अधिसूचित कर सकता है।[232] दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों के तीन उदाहरण मिलते हैं अर्थात्, दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1959, बैंकिंग सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1978 और आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002 के संबंध में।[233]

लोक सभा में आरंभ होने वाले तथा राज्य सभा को पारेषित विधेयक

जब लोक सभा में आरंभ होने वाला कोई विधेयक लोक सभा द्वारा पारित करके राज्य सभा को पारेषित कर दिया जाता है तो लोक सभा द्वारा यथापारित विधेयक को अग्रेषित करने वाले संदेश की महासचिव द्वारा सूचना दी जाती है और विधेयक को सभा पटल पर रखा जाता है।[234]

लोक सभा से प्राप्त संदेश ही विधेयक को राज्य सभा में प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त है।

> 4 सितंबर, 1970 को, प्रधान मंत्री द्वारा संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, 1970 प्रस्तुत किया जाने वाला था तो औचित्य के एक प्रश्न पर एक सदस्य ने कहा कि यह स्पष्ट नहीं है कि विधेयक को लोक सभा द्वारा संविधान में निर्धारित अपेक्षित बहुमत के साथ पारित किया गया है क्योंकि सभापति ने पहले कहा था कि विधेयक के पक्ष में 336 मत पड़े हैं और तत्पश्चात संशोधित कर इसे 331 कर दिया गया। बाद में उन्होंने कहा कि वे अब भी इस बात की जांच कर रहे हैं कि विधेयक के पक्ष में कुल कितने मत डाले गए हैं। इस प्रकार, जब तक यह मामला जांच के अधीन रहा यह नहीं माना जा सका कि इसे लोक सभा द्वारा पारित कर दिया गया है और इस प्रकार इसे राज्य सभा में उठाया नहीं जा सका। इस मुद्दे पर काफी विचार-विमर्श किया गया जिसके पश्चात सभापति ने यह विनिर्णय किया:
>
> > मैं इस बिंदु को स्वीकार नहीं करता हूं। मैं औचित्य के इस प्रश्न को अस्वीकार करता हूं। मुझे लोक सभा से यह संदेश प्राप्त हुआ है कि विधेयक को लोक सभा द्वारा पारित कर दिया गया है। मेरे लिए यह पर्याप्त है...मैं समझता हूं कि अध्यक्ष ने कहा है कि इससे परिणाम प्रभावित नहीं होगा।[235]

महासचिव द्वारा लोक सभा से संदेश प्राप्त होने की सूचना दिए जाने के पश्चात, सभा पटल पर विधेयक के रखे जाने के साथ-साथ लोक सभा द्वारा यथापारित विधेयक की प्रतियां राज्य सभा के सदस्यों को परिचालित की जाती हैं। यदि संदेश ऐसे समय प्राप्त होता है जब राज्य सभा का सत्र न चल रहा हो तो संदेश को संसदीय समाचार भाग 2 में प्रकाशित किया जाता है।[236] ऐसे किसी विधेयक को लोक सभा द्वारा पारित किए जाने से पहले, लोक सभा विधेयक को सदनों की संयुक्त समिति को सौंपने हेतु प्रस्ताव स्वीकृत कर सकती है और राज्य सभा से समिति में शामिल होने की संस्तुति कर सकती

है। महासचिव द्वारा लोक सभा से प्राप्त इस आशय के संदेश को सभा को सूचित किया जाता है। उसके बाद विधेयक का प्रभारी मंत्री उचित सूचना देने के बाद लोक सभा की सिफारिश से सहमति व्यक्त करते हुए एक प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है और साथ ही यह भी निश्चित कर सकता है कि राज्य सभा का अमुक-अमुक सदस्य संयुक्त समिति में कार्य करने के लिए नामनिर्देशित किया जाएगा।

लोक सभा द्वारा यथापारित विधेयक को सभापटल पर रख दिए जाने के बाद संबंधित मंत्री कभी भी 'विधेयक पर विचार किया जाए' नामक प्रस्ताव को उपस्थित करने के अपने इरादे की सूचना दे सकता है।[257] जब तक कि सभापति अन्यथा निर्देश न दे, इस प्रस्ताव को सूचना प्राप्त होने के दिन से दो दिन बाद की तिथि से पहले की कार्यावलि में शामिल नहीं किया जाता।[238] इस संबंध में सामान्य प्रक्रिया यह है कि अत्यावश्यकता की स्थिति में जब भी कोई मंत्री यह चाहता है कि विधेयक पर दो दिन बाद की तिथि से पहले विचार किया जाए तो वह सभापति को एक पत्र लिखकर उनसे दो दिन की सूचना अवधि से छूट दिए जाने का अनुरोध करता है। सभापति प्रत्येक मामले पर गुणावगुण आधार पर विचार करके तदनुसार निर्देश देता है।[239]

> लोक सभा द्वारा यथापारित रूप में असम पुनर्गठन (मेघालय) विधेयक, 1969 के संबंध में संदेश की सूचना 24 दिसंबर, 1969 को दी गई थी और विधेयक पर उसके फौरन बाद नियम 123 के निलंबन हेतु एक प्रस्ताव को औपचारिक रूप से स्वीकृत करके विचार हेतु रखा गया।[240]
>
> जब 15 दिसंबर, 1977 को, लोक सभा द्वारा 14 दिसंबर, 1977 को यथापारित रूप में कंपनी (संशोधन) विधेयक, 1977 पर विचार किया जाना था तो सदस्यों द्वारा इस आधार पर आपत्ति की गई कि दो दिन का नोटिस नहीं दिया गया है। उपसभापति ने टिप्पणी की कि ऐसा करना उचित है क्योंकि सभापति इस विधेयक को दो दिन से पहले की कार्यावलि में शामिल करने पर सहमत हो गए थे।[241]
>
> मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) विधेयक, 1986 जो 6 मई, 1986 को लोक सभा द्वारा पारित किया गया था और जिस पर 8 मई, 1986 को विचार किया जाना था, पर विचार किए जाने के संबंध में जब आपत्ति की गई तब सभापति ने यह टिप्पणी की कि सूचना देने की अनिवार्यता समाप्त करने का उनको प्राधिकार है और उन्होंने कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसरण में ही ऐसा किया है।[242]
>
> 15 दिसंबर, 1961 को लोक सभा द्वारा यथापारित एक बहुत बड़े धन विधेयक—प्रत्यक्ष कर विधि (संशोधन) विधेयक, 1987 पर 16 दिसंबर, 1987 को विचार किए जाने पर सदस्यों ने आपत्ति की क्योंकि उन्हें पर्याप्त समय नहीं दिया गया था। उपसभापति ने टिप्पणी की कि भविष्य में जब कभी महत्वपूर्ण, विशेषकर उपर्युक्त प्रकार के विधेयक विचार किए जाने हेतु सूचीबद्ध किए जाने हों, तो यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उसके उपबंधों को पूरा पढ़ने के लिए सदस्यों को पर्याप्त समय मिले ताकि "सभा में होने वाली चर्चा सार्थक हो सके।"[243]

जिस दिन प्रस्ताव को कार्यावलि में रखा जाता है, उस दिन मंत्री यह प्रस्ताव करता है कि लोक सभा द्वारा यथापारित विधेयक पर विचार किया जाए। उस दिन या उसके बाद किसी दिन जिसके लिए चर्चा स्थगित की जाए, विधेयक के सिद्धांत और सामान्य उपबंधों

पर चर्चा की जाती है किन्तु विधेयक के ब्यौरे पर उससे अधिक चर्चा नहीं की जाती जितनी कि उसके सिद्धान्तों की व्याख्या करने के लिए आवश्यक हो।[244]

यदि विधेयक को सदनों की संयुक्त समिति को पहले से न सौंपा गया हो तो कोई भी सदस्य इस स्तर पर इस संशोधन का प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक प्रवर समिति को सौंपा जाए। यदि संशोधन स्वीकृत हो जाता है तो विधेयक प्रवर समिति को सौंपा गया माना जाता है और समिति में उसके संबंध में वही प्रक्रिया अपनाई जाती है जो कि राज्य सभा में पुरःस्थापित किए गए और प्रवर समिति को सौंपे गए किसी भी अन्य विधेयक के संबंध में अपनाई जाती है।[245] लोक सभा में पुरःस्थापित किए गए और उसके द्वारा पारित किए गए निम्नलिखित विधेयक राज्य सभा की प्रवर समिति को सौंपे गए थे:

> महापत्तन न्यास विधेयक, 1963; बैंककारी विधि (संशोधन) विधेयक, 1968; चिट फंड विधेयक, 1982; पेटेंट्स (संशोधन) विधेयक, 1995; व्यापार चिन्ह विधेयक, 1995; धन शोधन निवारण विधेयक 1999; उच्च न्यायालय वाणिज्यिक प्रभाग विधेयक, 2009; वक्फ़ (संशोधन) विधेयक, 2010; यातना निवारण विधेयक, 2010 और लोकपाल तथा लोकायुक्त विधेयक 2011 ।

यदि यह प्रस्ताव कि विधेयक पर विचार किया जाए, स्वीकृत हो जाता है तो विधेयक पर खंडशः विचार किया जाता है। संशोधनों पर विचार करने और विधेयक पारित करने की प्रक्रिया वही है जो राज्य सभा में आरंभ होने वाले विधेयकों के संबंध में नियमावली में दी गई है जैसाकि ऊपर स्पष्ट किया गया है।[246] यदि विधेयक बिना किसी संशोधन के पारित हो जाए तो लोक सभा को यह सूचित करते हुए सन्देश भेजा जाता है कि राज्य सभा ने विधेयक को बिना किसी संशोधन के स्वीकार कर लिया है।[247] यदि विधेयक संशोधनों के साथ पारित किया जाए तो विधेयक इस संदेश के साथ लोक सभा को लौटा दिया जाता है कि वह राज्य सभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों (पूर्णतया आनुषंगिक और औपचारिक संशोधनों सहित) पर सहमति प्रदान करे।[248] राज्य सभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों को, लोक सभा को संदेश के साथ लौटाए गए विधेयक की प्रति में समाविष्ट कर दिया जाता है। लोक सभा द्वारा यथापारित कुछ ऐसे महत्वपूर्ण विधेयक जिनमें राज्य सभा द्वारा संशोधन किया गया था, इस प्रकार हैं:

> दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1990; जांच आयोग (संशोधन) विधेयक, 1990; प्रसार भारती (भारतीय प्रसारण निगम) विधेयक, 1990; मध्य प्रदेश पुनर्गठन विधेयक, 2000; उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक, 2000; बिहार पुनर्गठन विधेयक, 2000;[249] वैज्ञानिक और नवीकृत अनुसंधान अकादमी विधेयक, 2011; संविधान (एक सौ अठारहवां संशोधन) विधेयक, 2012; भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2013; महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और प्रतितोष) विधेयक, 2013; भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार विधेयक, 2013 पथ विक्रेता (जीविका संरक्षण और पथ विक्रय विनियमन) विधेयक, 2014।

यदि लोक सभा राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधनों या उनमें से किसी संशोधन से असहमत हो या राज्य सभा द्वारा किए गए किसी संशोधन को और संशोधनों के साथ स्वीकार करे या राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधनों के स्थान पर और संशोधनों का प्रस्ताव करे तो विधेयक और अधिक संशोधित रूप में लोक सभा से प्राप्त होने पर राज्य सभा के पटल

पर रखा जाता है।[250] उसके बाद कोई भी मंत्री, दो दिन की सूचना देकर अथवा सभापति की सहमति से सूचना दिए बिना ही, यह प्रस्ताव कर सकता है कि संशोधनों पर विचार किया जाए।[251]

यदि यह प्रस्ताव कि संशोधनों पर विचार किया जाए, स्वीकृत हो जाता है तो सभापति संशोधनों को राज्य सभा के समक्ष ऐसी रीति से रखता है जिसे वह उन पर विचार करने के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक समझे।[252] लोक सभा द्वारा किए गए संशोधनों के विषय से संगत संशोधन उपस्थित किए जा सकते हैं, किन्तु विधेयक में कोई और संशोधन तब तक उपस्थित नहीं किया जा सकता जब तक कि वह लोक सभा द्वारा किए गए संशोधन से आनुषंगिक या उसका विकल्प न हो।[253] राज्य सभा, लोक सभा द्वारा मूल रूप से पारित या लोक सभा द्वारा और अधिक संशोधित, जैसी भी स्थिति हो, विधेयक से सहमत हो सकती है, अथवा विधेयक को इस संदेश के साथ लौटा सकती है कि वह उस संशोधन या संशोधनों का, जिनसे लोक सभा असहमत है, आग्रह करती है।[254] यदि बाद वाली स्थिति हो तो यह समझा जाता है कि संशोधनों के बारे में दोनों सदन अन्तिम रूप से असहमत हैं।[255]

जब लोक सभा में आरम्भ होने वाले तथा राज्य सभा को पहुंचाए गए किसी विधेयक के संबंध में राज्य सभा में उपस्थित किए गए निम्नलिखित प्रस्तावों में से कोई प्रस्ताव राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाए तो यह समझा जाता है कि विधेयक राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है: (i) विधेयक को राज्य सभा की प्रवर समिति को सौंपा जाए; (ii) विधेयक पर विचार किया जाए; (iii) राज्य सभा की प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक पर विचार किया जाए; अथवा (iv) विधेयक को अथवा यथासंशोधित विधेयक (व्यथास्थिति) को पारित किया जाए।[256] एक बार ऐसा हुआ था जब लोक सभा द्वारा पारित विधेयक पर विचार किए जाने का प्रस्ताव राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया था। 5 दिसंबर, 1977 को लोक सभा द्वारा यथापारित बैंककारी सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1977 राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया था। इसी प्रकार 18 मार्च, 2002 को लोक सभा द्वारा यथापारित आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002 राज्य सभा द्वारा 21 मार्च, 2002 को अस्वीकृत कर दिया गया। इन दोनों ही मामलों में इस प्रयोजन के लिए दोनों सदनों की एक संयुक्त बैठक बुलाई गई थी।[257]

विधेयकों को स्वीकृति

जब कोई विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है और वह राज्य सभा के पास है तो तत्पश्चात् उसकी एक प्रति पर सभापति द्वारा हस्ताक्षर किये जाते हैं और उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु उनके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।[258] सभापति द्वारा, या उपसभापति द्वारा, यह वह सभापति के कर्त्तव्यों का निर्वहन कर रहा हो, दो सहमति प्रतियां इस आशय के प्रमाणपत्र के साथ पृष्ठांकित की जाती हैं कि विधेयक को संसद के सदनों द्वारा पारित कर दिया गया है। राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात् एक प्रति सचिवालय में प्राप्त की जाती है और दूसरी प्रति विधि और न्याय मंत्रालय में रहने

दी जाती है जिसके माध्यम से विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु उनके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। सभापति के नई दिल्ली में अनुपस्थित होने पर, अविलम्बनीयता की स्थिति में महासचिव सभापति की ओर से (या उपसभापति की ओर से जब वह सभापति के कर्त्तव्यों का निर्वहन कर रहे हों) विधेयक का प्रमाणीकरण कर सकेगा।[259]

> सभापति की अनुपस्थिति में महासचिव द्वारा प्रमाणीकृत विधेयक मणिपुर पंचायती राज विधेयक, 1994 था, जिसे 12 अप्रैल, 1994 को प्रमाणीकृत किया गया था। लौह अयस्क खान श्रम कल्याण उपकर विधेयक, 1961; प्रौद्योगिकी संस्थान विधेयक, 1961 और योग उपक्रम (प्रबंध ग्रहण) विधेयक, 1977 को भी महासचिव द्वारा उपसभापति की ओर से प्रमाणीकृत किया गया था।

जब कोई विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो उनके पास या तो यह घोषणा करने का विकल्प है कि (क) वह विधेयक को स्वीकृति देता है, या (ख) कि वह उसकी स्वीकृति रोकता है[260] और (ग) वह सिवाय धन विधेयक के, किसी भी विधेयक को सभा को अपनी इस सिफारिश के साथ लौटा सकता है कि वे विधेयक पर या उसके किन्हीं विनिर्दिष्ट उपबंधों पर पुनर्विचार करें और विशिष्टतया किसी ऐसे संशोधन पर विचार करें जिसका वह अपने संदेश में उल्लेख करे।[261] प्रथम स्थिति में विधेयक कानून बन जाता है। दूसरी स्थिति में, विधेयक को वीटो (अस्वीकार) कर दिया जाता है और वह कानून नहीं बन सकता है। तीसरी स्थिति में, यदि विधेयक संसद के सदनों द्वारा संशोधन सहित या उसके बिना फिर से पारित कर दिया जाता है और राष्ट्रपति के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वह उस पर स्वीकृति नहीं रोकेगा।[262]

(क) *विधेयक को स्वीकृति*

राष्ट्रपति द्वारा इस रूप में स्वीकृति दी जाती है:

> "मैं इस विधेयक को स्वीकृति देता हूं...राष्ट्रपति।"

यदि किसी कारण से, राष्ट्रपति के प्रकार्यों का उपराष्ट्रपति द्वारा निर्वहन किया जा रहा है या उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्यभार संभाल रहा है या मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति के प्रकार्यों का निर्वहन कर रहा है, तो पृष्ठांकन में "राष्ट्रपति" शब्द में आवश्यक परिवर्तन कर दिये जाते हैं।

> 1961 में तेईस विधेयकों, 1965 में एक विधेयक और 1982 में तीन विधेयकों पर उपसभापति द्वारा हस्ताक्षर किये गये थे और उन्हें उपराष्ट्रपति द्वारा, जोकि उस समय राष्ट्रपति के प्रकार्यों का निवर्हन कर रहे थे, स्वीकृति दी गयी थी। 1977 में आठ विधेयकों पर उपसभापति द्वारा हस्ताक्षर किये गये थे और उस समय राष्ट्रपति के पद का कार्यभार संभाल रहे उपराष्ट्रपति द्वारा उन्हें स्वीकृति दी गयी थी।[263] 1969 में छह विधेयकों पर उपसभापति द्वारा हस्ताक्षर किये गये थे और उन्हें श्री एम. हिदायतुल्लाह (भारत के मुख्य न्यायाधीश) द्वारा स्वीकृति दी गयी थी जो उस समय राष्ट्रपति के प्रकार्यों का निर्वहन कर रहे थे।

(ख) *स्वीकृति रोक लेना*

राष्ट्रपति द्वारा निम्नलिखित रूप में स्वीकृति रोक ली जाती है:

> "मैं इस विधेयक पर स्वीकृति रोकता हूं/रोकती हूं....राष्ट्रपति।"

संसद् के दोनों सदनों द्वारा यथापारित संसद् सदस्य वेतन, भत्ते और पेंशन (संशोधन) विधेयक, 1991 सचिवालय द्वारा राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु भेजा गया था। उक्त विधेयक को राष्ट्रपति महोदय द्वारा स्वीकृति रोके जाने के पृष्ठांकन सहित सचिव, विधि और न्याय मंत्रालय के माध्यम से इस सचिवालय को लौटाया गया।[264] स्वीकृति पर रोक लगाने के संबंध में उपसभापति ने तदनुसार राज्य सभा को सूचित किया।[265]

लोक सभा में पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य संघ विनियोग विधेयक, 1954 उस राज्य के संबंध में राष्ट्रपति की उद्घोषणा के निरसन के कारण लोक सभा को राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करने से पहले वापस कर दिया गया था। अध्यक्ष ने इस मामले में लोक सभा में एक उद्घोषणा की।[266]

किसी गैर-धन विधेयक को पुनर्विचार हेतु लौटाया जाना

जब कभी संसद् के सदनों द्वारा पारित कोई विधेयक राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिये लौटाया जाता है, तब पुनर्विचार के लिए विनिर्दिष्ट किसी प्रश्न या किन्हीं प्रश्नों को सभापति द्वारा सदन के समक्ष उपस्थित किया जाना अपेक्षित है और उस/उन पर उस रीति से चर्चा की जाती है और मत लिया जाता है जिससे किसी विधेयक के संशोधनों को लिया जाता है, अथवा ऐसी कोई अन्य रीति भी अपनायी जा सकती है जिसे सभापति सभा द्वारा उस/उन पर विचार किये जाने के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक समझे।[267]

> भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक, 1986 को, जिस रूप में वह संसद के सदनों द्वारा पारित किया गया था, 19 दिसंबर, 1986 को राष्ट्रपति के पास भेजा गया था। राष्ट्रपति ने इस विधेयक को, विशेष रूप से इसके खंड 16 पर पुनर्विचार किये जाने के लिए (जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ, केन्द्र और राज्य सरकारों अथवा उनके द्वारा प्राधिकृत अधिकारियों को कतिपय आधार पर डाक-वस्तुओं को बीच में ही रोक लेने अथवा उन्हें निरुद्ध किये जाने की शक्ति दिए जाने का प्रावधान था), 7 जनवरी, 1990 को राज्य सभा को लौटा दिया। चूंकि उस समय सभा का सत्र नहीं चल रहा था, अत: राष्ट्रपति का यह संदेश संसदीय समाचार में प्रकाशित किया गया।[268] इस विधेयक को, राष्ट्रपति द्वारा लौटाए गए रूप में, सभा के पुन: समवेत होने पर महासचिव द्वारा 12 मार्च, 1990 को राज्य सभा के पटल पर रखा गया। राष्ट्रपति के संदेश की एक प्रति लोक सभा सचिवालय को भी सूचना के लिए भेजी गई थी[269] तब से वह विधेयक सभापटल पर रखा रहा और उस पर उस समय तक पुनर्विचार नहीं हुआ, जब तक कि उसे 21 मार्च, 2002 को वापस नहीं ले लिया गया।
>
> इस संदर्भ में, एक प्रश्न उठा कि क्या यह विधेयक नौवीं लोक सभा के भंग हो जाने से व्यपगत हो गया है जबकि यह विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष उनकी स्वीकृति के लिए लम्बित था और बाद में राष्ट्रपति द्वारा इसे राज्य सभा को लौटा दिया गया था और तभी से यह राज्य सभा में विचारार्थ लंबित है। इसलिए इस मामले को विधि और न्याय मंत्रालय के पास भेजा गया, जिनका मत इस प्रकार था:
>
> > उन परिस्थितियों को संविधान के अनुच्छेद 107 के खंड (5) में निर्दिष्ट किया गया है, जिनमें कोई विधेयक व्यपगत हो जाता है। अनुच्छेद 107 ऐसे विधेयक से संबद्ध नहीं है, जिसे राष्ट्रपति के पास उनकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। तदनुसार, किसी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजे जाने के बाद, यदि लोक सभा भंग

भी हो जाती है, तो भी राष्ट्रपति के पास विचार के लिए लंबित पड़ा विधेयक व्यपगत नहीं होता। इस विचार का समर्थन डी.डी. बसु द्वारा अपनी पुस्तक 'कमेंटरी ऑन द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' (वाल्यूम-जी, 1983, पृष्ठ 38) में भी पुरुषोत्तमन नम्बूदिरी बनाम केरल राज्य के मुकदमे में (1962 सप्लीमेंटरी) (1) एस.सी.आर. 753 उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गये निर्णय से उद्धृत करते हुए किया गया है। एम.एन. कौल और एस.एल. शकधर द्वारा भी प्रैक्टिस एंड प्रोसीज़र ऑफ पार्लियामेंट नामक पुस्तक में (1991) पृ. 176 में इस विचार का समर्थन किया गया है। अत: लोक सभा के भंग होने के परिणामस्वरूप, राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए लंबित कोई विधेयक व्यपगत नहीं होता।

राष्ट्रपति द्वारा किसी विधेयक को संविधान के अनुच्छेद 111 के परन्तुक के अनुसरण में संसद् के सदनों के पुनर्विचार के लिए लौटाये जाने पर, संसद् के दोनों सदनों द्वारा उस विधेयक पर नए सिरे से विचार किया जाना अपेक्षित होता है। जैसाकि राज्य सभा सचिवालय की टिप्पणी में बताया गया है, भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक, 1986 राज्य सभा में अभी लंबित है। यदि अनुच्छेद 107 के खंड (4) में अंतर्विष्ट सिद्धांत को भी लागू किया जाए, जिसमें यह व्यवस्था है कि राज्य सभा में लंबित कोई ऐसा विधेयक जिसे लोक सभा में पारित न किया हो, लोक सभा के भंग होने पर भी व्यपगत नहीं होगा, तो भी इस विधेयक को व्यपगत हुआ नहीं कहा जा सकता। इसलिए, किसी भी प्रकार, विचाराधीन विधेयक, जो अब राज्य सभा में लंबित है, को नौवीं लोक सभा के भंग हो जाने से व्यपगत हुआ नहीं कहा जा सकता।[270]

एक अन्य अवसर पर संसद के दोनों सदनों द्वारा यथापारित संसद् (निरर्हता निवारण) संशोधन विधेयक, 2006 25 मई, 2006 को राष्ट्रपति के समक्ष उनकी सहमति के लिए प्रस्तुत किया गया। अनुच्छेद 111 के उपबंधों के अनुसरण में यह विधेयक राष्ट्रपति के द्वारा विधेयक पर पुनर्विचार संबंधी संदेश के साथ लौटा दिया गया था, जिसे 31 मई, 2006 को संसदीय समाचार भाग-2 में प्रकाशित किया गया था। राष्ट्रपति द्वारा लौटाया गया विधेयक 25 जुलाई, 2006 को सदन के पटल पर रखा गया था। इस विधेयक पर पुन: विचार किया गया और 27 जुलाई, 2006 को राज्य सभा द्वारा पुन: पारित किया गया। लोक सभा ने राज्य सभा द्वारा यथापारित विधेयक पर पुन: विचार किया और 31 जुलाई, 2006 को इसे पारित किया। इस विधेयक को 18 अगस्त, 2006 को राष्ट्रपति ने सहमति प्रदान की और यह 2006 का अधिनियम सं. 31 बना।

तथापि, संविधान के अनुच्छेद 368 के अर्थान्तर्गत, संविधान में संशोधन चाहने वाले किसी विधेयक के मामले में, राष्ट्रपति के पास दोनों सदनों द्वारा अपेक्षित विशेष बहुमत द्वारा पारित किसी विधेयक पर अपनी स्वीकृति देने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं रहता।[271]

अनुच्छेद 111 में, राष्ट्रपति द्वारा किसी विधेयक पर अपनी सहमति दिए जाने या सहमति रोके जाने अथवा उस विधेयक को पुनर्विचार के लिए लौटाए जाने के बारे में कोई समय-सीमा निश्चित नहीं की गई है। ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जब किसी विधेयक को सदनों द्वारा पारित किए जाने के दिन ही राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हो गई थी। उदाहरण के लिए, संविधान (पचहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1991 राज्य सभा द्वारा अंतिम रूप से 12 मार्च, 1991 को पारित किया गया था और उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति उसी दिन प्राप्त हो गई थी। इसी प्रकार, पंजाब में आम चुनाव रद्द किए जाने संबंधी विधेयक, 1991 भी राज्य सभा द्वारा अंतिम रूप से 17 सितंबर, 1991 को पारित किया गया था और उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति उसी दिन प्राप्त हो गई थी।

विधेयक की स्वीकृति-प्राप्त प्रति को महासचिव द्वारा सभापटल पर रखा जाता है। जिन विधेयकों के संबंध में लोक सभा सचिवालय द्वारा स्वीकृति प्राप्त की जाती है, उन विधेयकों की प्रति को जिस रूप में राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति दी गई है, लोक सभा के महासचिव द्वारा अभिप्रमाणित करके राज्य सभा सचिवालय को सभापटल पर रखे जाने के लिए भेजा जाता है। इसी प्रकार जब किसी विधेयक पर राज्य सभा सचिवालय द्वारा स्वीकृति प्राप्त की जाती है, तब उस विधेयक की राज्य सभा के महासचिव द्वारा अभिप्रमाणित प्रति लोक सभा सचिवालय को भेजी जाती है।

धन विधेयक और वित्तीय विधेयक

संविधान के अंतर्गत, लोक वित्त से संबंधित विधेयकों को तीन श्रेणियों में बांटा गया है:

(क) वास्तविक रूप से धन विधेयक अर्थात् वे विधेयक जो केवल अनुच्छेद 110 के अंतर्गत दिये गये सभी खंडों अथवा किसी भी एक खंड में उल्लिखित मामलों से संबंधित हैं।

(ख) अन्य वित्तीय विधेयक जो अनुच्छेद 110 के खंड (क) से (च) में विनिर्दिष्ट किसी भी मामले से तथा अन्य मामलों से भी संबंधित हैं।

(ग) ऐसे विधेयक जो उपर्युक्त श्रेणी (क) और (ख) के अंतर्गत नहीं आते परन्तु जिनमें भारत की संचित निधि में से किया जाने वाला व्यय अंतर्ग्रस्त है।

धन विधेयकों को अनुच्छेद 110 के अंतर्गत परिभाषित किया गया है। उपर्युक्त श्रेणी (ख) और (ग) के अंतर्गत आने वाले अन्य वित्तीय विधेयकों को अनुच्छेद 117 के क्रमश: खंड (1) और (3) में शामिल किया गया है।

धन विधेयक

धन विधेयक की परिभाषा

किसी भी ऐसे विधेयक को धन विधेयक समझा जाता है यदि उसमें केवल निम्नलिखित सभी या किसी एक विषय से संबंधित उपबंध हैं, अर्थात् (क) किसी कर का अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन; (ख) भारत सरकार द्वारा धन उधार लेने या कोई प्रत्याभूति देने का विनियमन अथवा भारत सरकार द्वारा अपने ऊपर ली गई या ली जाने वाली किन्हीं वित्तीय बाध्यताओं से संबंधित विधि का संशोधन; (ग) भारत की संचित निधि या आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा; ऐसी किसी निधि में धन जमा करना या उसमें से धन निकालना; (घ) भारत की संचित निधि में से धन का विनियोग; (ङ) किसी व्यय को भारत की संचित निधि पर भारित व्यय घोषित करना या ऐसे किसी व्यय की रकम को बढ़ाना; (च) भारत की संचित निधि या भारत के लोक लेखे मद्धे धन प्राप्त करना अथवा ऐसे धन की अभिरक्षा या उसका निर्गमन अथवा संघ या राज्य के लेखाओं की संपरीक्षा; या (छ) उपखंड (क)

से उपखंड (च) में विनिर्दिष्ट किसी भी विषय का कोई आनुषंगिक विषय।[272] तद्नुसार, यदि किसी विधेयक में उपखंड (क) से (च) में विनिर्दिष्ट सभी मामले या उनमें से कोई भी मामला शामिल है और यदि उसमें अन्य मामले भी शामिल हों, तो इस बात का निर्णय करना कि क्या ऐसा विधेयक धन विधेयक है कि नहीं, इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या उक्त अन्य मामले उपखंड (क) से (च) में विनिर्दिष्ट किसी भी मामले के आनुषंगिक मामले हैं। तथापि, कोई विधेयक केवल इस कारण धन विधेयक नहीं समझा जाएगा कि वह जुर्मानों या अन्य धन संबंधी शास्तियों के अधिरोपण का अथवा अनुज्ञप्तियों के लिए फीस या की गई सेवाओं के लिए फीस की मांग का या उनके संदाय का उपबंध करता है अथवा इस कारण भी धन विधेयक नहीं समझा जाएगा कि वह किसी स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिए किसी कर के अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन का उपबंध करता है।[273]

धन विधेयक का प्रमाणीकरण

यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, तो उस पर लोक सभा के अध्यक्ष का विनिर्णय अंतिम होता है।[274] जब कोई धन विधेयक राज्य सभा को पारेषित किया जाता है तब ऐसे प्रत्येक धन विधेयक पर लोक सभा के अध्यक्ष के हस्ताक्षर सहित यह प्रमाणपत्र पृष्ठांकित किया जाता है कि वह एक धन विधेयक है।[275] यह प्रमाणपत्र इस रूप में होता है: "मैं एतद्द्वारा प्रमाणित करता हूं कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 110 के अर्थान्तर्गत एक 'धन विधेयक' है।"

जब सभा द्वारा भारतीय टैरिफ (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 1952 को, लोक सभा द्वारा पारित रूप में विचार के लिये लिया ही जाने वाला था, उस विधेयक को धन विधेयक के रूप में प्रमाणित किये जाने के संबंध में प्रश्न उठाया गया। सदस्य ने यह तर्क दिया कि इस बात को राज्य सभा (काउंसिल ऑफ स्टेट्स) के लिये छोड़ दिया जाना चाहिये कि यह लोक सभा अध्यक्ष को सिफारिश करे कि कोई विशिष्ट विधेयक, जो उसके विचारार्थ आया है, अनुच्छेद 110 के अर्थ के दायरे में धन विधेयक नहीं है। सदन के नेता ने अन्य बातों के साथ-साथ यह विचार प्रकट किया कि "हम इस सभा में ऐसा कोई निर्णय नहीं ले सकते हैं जिससे इस प्रश्न पर लोक सभा के अध्यक्ष का निर्णय पूर्णतया निरर्थक हो जाए। ...."जब हमें लोक सभा अध्यक्ष से इस संबंध में प्रमाणपत्र प्राप्त हो जाता है तो उस स्थिति में राज्य सभा को इस प्रश्न पर पुन: विचार करने का कोई अधिकार नहीं है।" सभापति ने यह कहा, "यदि आप यह कहने लगें कि यह 'केवल' धन विधेयक नहीं है, तो इस विश्व में 'केवल' कुछ भी नहीं है। प्रत्येक बात का अन्य सभी बातों पर प्रभाव पड़ता है। आप यह कभी नहीं कह सकते हैं कि इसके वित्तीय अंश का राजनीतिक अथवा औद्योगिक अथवा अन्य पहलुओं से कोई संबंध नहीं है।" उन्होंने यह कहते हुए चर्चा को समाप्त कर दिया कि यह एक धन विधेयक है और सभा को इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या यह उस पर कोई सिफारिशें देने के लिये तैयार है। सभा को इतना ही अधिकार प्राप्त है।[276]

1953 में, भारतीय आय-कर (संशोधन) विधेयक, 1952 का धन विधेयक के रूप में प्रमाणन किये जाने के प्रश्न पर दोनों सभाओं के बीच विवाद उत्पन्न हो गया था। सभापति ने इस संबंध में निम्नलिखित विचार प्रकट किये:

> अनुच्छेद 110(1) में बताया गया है कि धन विधेयक क्या है। अनुच्छेद 110(2) में बताया गया है कि कौन-सा विधेयक धन विधेयक नहीं है। अनुच्छेद 110(3) में कहा गया है कि यदि इस संबंध में कोई आशंका उत्पन्न होती है तो उस पर लोक सभा के अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होगा। यह आशंका भिन्न-भिन्न ढंग से उत्पन्न हो सकती है: प्रथमत:, लोक सभा में जब किसी विधेयक पर कार्यवाही आरंभ की जाती है तो यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि "क्या यह एक धन विधेयक है?" या जब किसी विधेयक पर काउंसिल ऑफ स्टेट्स में कार्यवाही आरंभ की जाती है तो यह आशंका व्यक्त की जा सकती है कि क्या यह एक धन विधेयक है और तत्पश्चात् यह मामला लोक सभा के अध्यक्ष के पास भेजना होगा या यह आशंका लोक सभा अध्यक्ष के मन में ही उत्पन्न हो सकती है, जैसाकि अब हमें यह सूचित किया जाता है कि लोक सभा अध्यक्ष के मन में इस विधेयक को लेकर आशंका उत्पन्न हो गयी थी और तत्पश्चात् उन्होंने यह निर्णय किया कि यह एक धन विधेयक है। यह प्रश्न अनुच्छेद 110(4) द्वारा शासित होता है। जब कोई विधेयक राज्य सभा को पारेषित किया जाता है तब ये लोक सभा अध्यक्ष के एक प्रमाणपत्र के साथ पारेषित किया जाता है जिसमें यह कहा जाता है कि यह एक धन विधेयक है। इस विशिष्ट मामले में हम सामान्यतया ब्रिटेन की संसद (ब्रिटिश पार्लियामेंट) की प्रक्रिया द्वारा शासित होते हैं। वहां पर संसद अधिनियम की धारा (3) में यह उल्लेख किया गया है कि जब कोई धन विधेयक "हाउस ऑफ लार्ड्स" को भेजा जाता है, उसे स्पीकर (हाउस ऑफ कामन्स के अध्यक्ष) के इस प्रमाणपत्र के साथ पृष्ठांकित किया जायेगा कि यह एक धन विधेयक है। ऐसा प्रमाणपत्र सभी प्रयोजनों हेतु निर्णायक होता है और उस पर किसी भी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी। वहां पर इस तरह की प्रक्रिया है जिससे हम शासित होते हैं।[277]

इस मामले का अंततोगत्वा उस समय समाधान हो गया था जब प्रधान मंत्री ने यह विचार व्यक्त किया था कि:

> ...यह घोषणा करने में कि कोई विधेयक धन विधेयक है लोक सभा अध्यक्ष का प्राधिकार ही अंतिम है। जब लोक सभा अध्यक्ष इस आशय का प्रमाणपत्र दे देते हैं, तो उसे कहीं भी चुनौती नहीं दी जा सकती है। लोक सभा अध्यक्ष इस बात के लिए बाध्य नहीं हैं कि वह इस संबंध में किसी निर्णय पर पहुंचने के लिए या अपना प्रमाणपत्र देने के लिए किसी से परामर्श करे।[278]

धन विधेयकों के संबंध में विशेष प्रक्रिया

किसी धन विधेयक को राज्य सभा में पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता है।[279] जब कोई धन विधेयक लोक सभा द्वारा पारित किया जाता है तो उसके पश्चात् उसे राज्य सभा को उसकी सिफारिशों के लिए पारेषित किया जाता है। लोक सभा द्वारा पारित तथा राज्य सभा को भेजा गया कोई धन विधेयक, यथाशीघ्र, महासचिव द्वारा सभा पटल पर रखा जाता है।[280] यह प्रस्ताव कि विधेयक पर विचार किया जाये, स्वीकृत होने के बाद विधेयक को खण्डश: विचार के लिए लिया जाता है। इस अवस्था पर विधेयक में वे संशोधन उपस्थित किये जाते हैं जिनकी सिफारिश लोक सभा को जानी हो।[281] विधेयक पर खण्डश: विचार किये जाने और संशोधनों का, यदि कोई हों, निबटारा किये जाने के बाद विधेयक का प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव उपस्थित करता है कि विधेयक को लौटाया जाये।[282] जब यह प्रस्ताव कि विधेयक को लौटाया जाये, स्वीकृत हो जाये तो उस स्थिति में जब राज्य सभा कोई सिफारिशें न करे तो इस संदेश के साथ कि राज्य सभा को इस संबंध में लोक सभा को कोई सिफारिशें नहीं करनी हैं और ऐसी स्थिति में जब राज्य सभा किन्हीं संशोधनों

की सिफारिश करती है तो लोक सभा को इस संदेश के साथ सूचित करते हुए कि अमुक संशोधनों की सिफारिश की गई है, विधेयक लोक सभा को लौटा दिया जाता है।[283] विधेयक को उसकी प्राप्ति की तारीख से चौदह दिन की अवधि के भीतर लोक सभा को अपनी सिफारिशों सहित, यदि कोई हों, लौटाया जाना अपेक्षित है।[284]

ऐसा होने पर लोक सभा, राज्य सभा की सभी या किन्हीं सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है।[285] यदि लोक सभा, राज्य सभा की किसी सिफारिश को स्वीकार कर लेती है तो धन विधेयक राज्य सभा द्वारा सिफारिश किये गए और लोक सभा द्वारा स्वीकार किये गए संशोधनों सहित दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया समझा जाता है।[286] यदि लोक सभा, राज्य सभा की किसी भी सिफारिश को स्वीकार नहीं करती है तो धन विधेयक, राज्य सभा द्वारा सिफारिश किये गये किसी संशोधन के बिना, दोनों सदनों द्वारा उस रूप में पारित किया गया समझा जाता है जिसमें वह लोक सभा द्वारा पारित किया गया था।[287]

ऐसे कई दृष्टान्त रहे हैं जब धन विधेयकों को राज्य सभा द्वारा अपनी सिफारिशों सहित लौटाया गया था और राज्य सभा द्वारा की गयी सिफारिशों को लोक सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। ऐसे दृष्टान्त निम्नलिखित हैं:

> त्रावणकोर-कोचीन विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1956 के मामले में राज्य सभा ने विधेयक के संबंध में एक अध्यादेश का निरसन करने वाले एक खंड को जोड़े जाने की सिफारिश की थी।[288]
>
> संघ उत्पाद-शुल्क (वितरण) विधेयक, 1957 और संपदा-शुल्क तथा रेल यात्री किराया शुल्क (वितरण) विधेयक, 1957 के मामले में राज्य सभा ने वित्त आयोग की सिफारिशों का उल्लेख करने के लिये इन विधेयकों के पूरे नामों में एक संशोधन किये जाने की सिफारिश की थी।[289]
>
> आयकर विधेयक, 1961 में, राज्य सभा ने विधेयक के खण्ड 13, 88 और 288 में संशोधन किये जाने की सिफारिश की थी।[290]
>
> विनियोग (रेल) विधेयक, 1985; विनियोग (रेल) (संख्यांक 2) विधेयक, 1985; विनियोग विधेयक, 1985; विनियोग (संख्यांक 2) विधेयक, 1985; और पंजाब विनियोग विधेयक, 1985 में, राज्य सभा ने गणतन्त्र वर्ष में एक संशोधन, अर्थात् पैंतीसवें को छत्तीसवें करने के संबंध में सिफारिश की थी।[291]

ऐसे दृष्टांत भी हैं जब राज्य सभा ने धन विधेयकों को अपनी सिफारिशों के साथ लौटा दिया था और लोक सभा ने राज्य सभा द्वारा की गई सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया था। दो उदाहरण निम्नलिखित हैं:

> राज्य सभा ने वित्त (संख्यांक 2) विधेयक, 1977 के पांच खंडों और विधेयक की अनुसूची में संशोधन किये जाने की सिफारिश की थी।[292]
>
> राज्य सभा ने वित्त विधेयक, 1978 के खंड 36 में संशोधन किये जाने की सिफारिश की थी।[293]

लोक सभा से, राज्य सभा द्वारा संस्तुत संशोधनों के संबंध में उसके निर्णय की सूचना देने वाला एक संदेश प्राप्त होता है और इस संदेश की सूचना सभा को दी जाती है।[294]

यदि राज्य सभा विधेयक को निर्धारित चौदह दिन की अवधि के भीतर नहीं लौटाती है तो इस अवधि की समाप्ति पर इस विधेयक को लोक सभा द्वारा यथापारित रूप में संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया गया समझा जाता है।[295] चौदह दिन की अवधि की गणना राज्य सभा सचिवालय में विधेयक प्राप्त होने की तिथि से की जाती है, राज्य सभा में इसके सभापटल पर रखे जाने की तिथि से नहीं।[296] चूंकि साधारण खंड अधिनियम, 1897 संविधान के निर्वाचन पर लागू होता है,[297] इसलिए उक्त चौदह दिन की अवधि की गणना इस अधिनियम की धारा 9(1) के अनुसार की जाती है। अत: राज्य सभा द्वारा धन विधेयक के प्राप्त होने की तिथि को इसमें शामिल नहीं किया जाता है। आमतौर पर लोक सभा द्वारा पारित विधेयक को उस सदन द्वारा यथाशीघ्र राज्य सभा को भेज दिया जाता है बशर्ते कि अध्यक्ष द्वारा अन्यथा निदेश न दिया जाए।

यहां ये भारतीय टैरिफ (संशोधन) विधेयक, 1955, जोकि एक धन विधेयक था, को लोक सभा द्वारा उस समय पारित किया गया था जब राज्य सभा का सत्र नहीं चल रहा था, किन्तु इसका बाद में समवेत होना निश्चित था। अध्यक्ष ने लोक सभा को सूचित किया कि कानूनी व्याख्या के अनुसार, जब राज्य सभा का सत्र न चल रहा हो, तब भी विधेयक को राज्य सभा के सचिव को भेजा जा सकता है और ऐसा माना जाएगा कि विधेयक राज्य सभा को प्राप्त हो गया है। तथापि, उन्होंने लोक सभा के सचिव को निदेश दिया था कि विधेयक को राज्य सभा को तत्काल न भेजकर थोड़े समय बाद भेजा जाए जिससे कि चौदह दिन की अवधि राज्य सभा का सत्र प्रारंभ होने से पहले ही समाप्त न हो जाये। इससे राज्य सभा को विधेयक पर चर्चा करने का अवसर मिल सकेगा। तद्नुसार, लोक सभा द्वारा 26 जुलाई, 1955 को पारित यह विधेयक 16 अगस्त, 1955 को राज्य सभा को पुन: समवेत होने पर उसे भेजा गया था।[298]

इसी प्रकार त्रावणकोर-कोचीन विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1956, जोकि एक धन विधेयक था, को लोक सभा द्वारा जब 29 मार्च, 1956 को पारित किया गया था तो राज्य सभा का सत्र नहीं चल रहा था और इसे राज्य सभा के 23 अप्रैल, 1956 को पुन: समवेत होने पर ही उसे भेजा गया था।[299]

ऐसे कई उदाहरण हैं जब राज्य सभा धन विधेयकों को निर्धारित अवधि के भीतर लोक सभा को नहीं लौटा सकी और इसलिए संबंधित विधेयकों को इस अवधि के बाद संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया गया था।

विनियोग (रेल) संख्यांक 4 और 5 विधेयक, 1978 लोक सभा द्वारा यथापारित रूप में 21 दिसम्बर, 1978 को सचिवालय में प्राप्त हुए थे और विनियोग (संख्यांक 5) विधेयक, 1978, 22 दिसम्बर, 1978 को प्राप्त हुआ था। राज्य सभा 26 दिसम्बर, 1978 को विधेयकों पर विचार किए बिना ही अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई थी। अत: प्रथम दो विधेयकों को 5 जनवरी, 1979 को और तीसरे विधेयक को 6 जनवरी, 1979 को पारित किया गया मान लिया गया था।

भारत की आकस्मिकता निधि (संशोधन) विधेयक, 1994; विनियोग (संख्यांक 6) विधेयक, 1994; और विनियोग (रेल) संख्यांक 6 विधेयक, 1994 लोक सभा द्वारा यथापारित रूप में सचिवालय में क्रमश: 19, 20 और 22 दिसम्बर, 1994 को प्राप्त हुए थे। विधेयकों पर 23 दिसम्बर, 1994

को राज्य सभा के अनिश्चित काल के लिए स्थगित होने से पहले विचार नहीं किया जा सका। इसलिए इन तिथियों से 14 दिन की अवधि बीत जाने के बाद इन विधेयकों को दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया मान लिया गया था।

विनियोग (संख्यांक 5) विधेयक, 1995 लोक सभा द्वारा यथापारित रूप में 7 दिसम्बर, 1995 को सचिवालय में प्राप्त हुआ था। सभा के लगातार बार-बार स्थगित होने के कारण इस विधेयक पर 21 दिसम्बर, 1995 तक विचार नहीं किया जा सका। तथापि, विधेयक को 22 दिसम्बर, 1995 की कार्यावलि में भी नहीं रखा गया था जब सभा अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दी गई थी। अत: यह ऐसा एकमात्र उदाहरण है, जबकि राज्य सभा का सत्र चल रहा था और सभा द्वारा धन विधेयक को लौटाने के लिए निर्धारित 14 दिन की अवधि बीत गई। वर्ष 1996-97 के लिए केन्द्रीय बजट, उत्तर प्रदेश तथा जम्मू और कश्मीर बजट से संबंधित दस विधेयक लोक सभा द्वारा यथापारित रूप में सचिवालय को 12 मार्च, 1996 को प्राप्त हुए थे, उनमें से छह विधेयकों से संबंधित संदेशों की सूचना सभा को उसी दिन देकर उन्हें सभापटल पर रख दिया गया।[300] अन्य चार विधेयकों से संबंधित संदेशों को 'संसदीय समाचार' के माध्यम से परिचालित किया गया[301] क्योंकि सभा निर्धारित समय से पहले उसी दिन अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गई थी इसलिए इन विधेयकों को 27 मार्च, 1996 को संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया गया।

विनियोग विधेयक (सं. 2) विधेयक, 1998[302] (12 जून, 1998 को सचिवालय में प्राप्त हुआ) पर राज्य सभा द्वारा विचार नहीं किया जा सका क्योंकि सभा उसी दिन 3 जुलाई, 1998 तक स्थगित हो गई। विनियोग (रेल) लेखानुदान, 1999; विनियोग (रेल) सं. 2 विधेयक, 1999 और विनियोग (रेल) विधेयक, 1999[303] (राज्य सभा में 15 मार्च, 1999 को प्राप्त हुआ); विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1999; विनियोग विधेयक, 1999 और विनियोग (सं. 2) विधेयक 1999[304] (18 मार्च, 1999 को प्राप्त हुआ) पर भी विचार नहीं किया जा सका क्योंकि राज्य सभा 19 मार्च, 1999 को 12 अप्रैल, 1999 तक के लिए स्थगित हो गई। इसी तरह, सूती वस्त्र उपकर (निरसन) विधेयक, 2000[305] तथा प्रत्यक्ष कर विधि (प्रकीर्ण) निरसन विधेयक, 2000[306] लोक सभा द्वारा पारित रूप में क्रमश: 8 और 11 मई, 2000 को प्राप्त हुए थे। विधेयकों पर 17 मई, 2000 को राज्य सभा के अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित होने पर विचार नहीं किया जा सका। इन सभी विधेयकों को उन तारीखों से 14 दिन की अवधि समाप्त होने के पश्चात् सभाओं द्वारा पारित हुआ समझा गया। विनियोग (सं. 4) विधेयक, 2002 तथा विनियोग (सं. 5) विधेयक, 2002 और विनियोग (रेल) सं. 3 विधेयक, 2002[307] और विनियोग (रेल) सं. 4 विधेयक, 2002[308] लोक सभा द्वारा पारित रूप में क्रमश: 1 और 12 अगस्त, 2002 को प्राप्त हुए थे। इन विधेयकों को भी राज्य सभा के 12 अगस्त, 2002 को अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित होने के कारण विचारार्थ नहीं लिया जा सका था। उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) संशोधन विधेयक, 2008 को लोक सभा में 22 दिसम्बर, 2008 को पारित किया था। चूंकि राज्य सभा 23 दिसम्बर, 2008 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गई, राज्य सभा द्वारा यह विधेयक पारित नहीं किया जा सका और चौदह दिनों की अवधि बीत जाने पर दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया गया।[309]

धन विधेयक के पारित होने के बाद लोक सभा सचिवालय द्वारा विधेयक पर अध्यक्ष के इस पृष्ठांकन के प्रमाण-पत्र के साथ यह कहते हुए कि यह संविधान के अनुच्छेद 110 के अर्थांतर्गत एक धन विधेयक है,[310] राष्ट्रपति की अनुमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। जिस धन विधेयक को पारित हुआ मान लिया गया हो, उसके संबंध में उक्त प्रमाण-पत्र के अलावा यह पृष्ठांकन भी किया जाता है कि संबंधित विधेयक को "भारत के संविधान के अनुच्छेद 109 के खंड (5) के अंतर्गत संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया गया

है।[311] तथापि, किसी ऐसे राज्य से संबंधित धन विधेयक के बारे में, जहां राष्ट्रपति शासन लागू हो, अनुच्छेद 110 के संदर्भ को अध्यक्ष के प्रमाण-पत्र में सम्मिलित नहीं किया जाता है"।

धन विधेयक को सदनों की संयुक्त समिति को नहीं सौंपा जा सकता।

आयकर विधेयक, 1961 को लोक सभा की प्रवर समिति को सौंपा गया था। राज्य सभा में जब इस संबंध में प्रश्न पूछा गया तो सभापति द्वारा स्पष्ट किया गया कि केवल वित्त विधेयकों को संयुक्त समिति को सौंपा जा सकता है, धन विधेयकों को नहीं। चूंकि अध्यक्ष द्वारा प्रमाणित किया गया है कि यह एक धन विधेयक है, अत: इसे संयुक्त समिति को सौंपे जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।[312]

धन विधेयक को राज्य सभा में पुर:स्थापित किए जाने पर आपत्ति

राज्य सभा में कोई विधेयक पुर:स्थापित किए जाने पर या उसके पश्चात् किसी प्रक्रम में, यदि यह आपत्ति की जाती है कि विधेयक अनुच्छेद 110 के अर्थान्तर्गत, एक धन विधेयक है और राज्य सभा में इस पर कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए तो सभापति, यदि वह आपत्ति को वैध ठहाराए, निदेश देता है कि इस विधेयक के संबंध में आगे कार्यवाही समाप्त कर दी जाए।[313] यदि सभापति को आपत्ति की वैधता के संबंध में कोई सन्देह हो तो उसे इस मामले को लोक सभा अध्यक्ष को सौंपना होता है और संविधान के अनुच्छेद 110 के खंड (3) के अनुसार इस प्रश्न पर उसका निर्णय अंतिम होता है।[314]

जब एक सदस्य ने पेंशन विधेयक, 1977, जिसके अंतर्गत अन्य बातों के साथ-साथ, सेवानिवृत्त केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को पेंशन संबंधी और अन्य लाभ प्रदान किए जाने का उपबंध किया गया था, को पुर:स्थापित करने के लिए अनुमति मांगी तो वित्त राज्य मंत्री ने इस आधार पर उस प्रस्ताव का विरोध किया कि उक्त विधेयक एक धन विधेयक है। कुछ चर्चा करने के बाद उक्त प्रस्ताव पर निर्णय को आगामी सत्र के लिए स्थगित कर दिया गया।[315] आगामी सत्र में इस प्रस्ताव पर पुन: चर्चा आरम्भ होने पर उपसभाध्यक्ष ने कहा कि चूंकि यह मामला सन्देहास्पद है, इसलिए इस विधेयक को उस पर निर्णय लिए जाने के लिए नियम 186(8) के अंतर्गत अध्यक्ष को सौंप दिया जाना चाहिए।[316] तद्नुसार, उसे अध्यक्ष को सौंप दिया गया था।[317] अध्यक्ष ने यह कहा कि उक्त विधेयक संविधान के अनुच्छेद 110(1)(छ) के साथ पठित अनुच्छेद 110(1)(ङ) के दायरे में आता है और इसलिए यह एक धन विधेयक है। उपसभापति ने तद्नुसार अध्यक्ष का निर्णय घोषित कर दिया और यह व्यवस्था दी कि उक्त विधेयक को राज्य सभा में पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता।[318]

वित्तीय विधेयक

अनुच्छेद 117 में वित्तीय विधेयकों के संबंध में विशेष उपबंध किए गए हैं। इन्हें मोटे तौर पर दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है– (i) ऐसे विधेयक जो अनुच्छेद 110 के खंड (1) के उपखंड (क) से (च) में विनिर्दिष्ट किसी विषय के लिए उपबंध करते हैं किन्तु उनमें केवल यही विषय शामिल नहीं होते हैं बल्कि इनके अलावा अन्य विषय भी शामिल होते हैं, अर्थात् ऐसा विधेयक जिसमें कराधान का खंड विनिर्दिष्ट तो किया गया है किन्तु वह केवल कराधान से ही संबंधित नहीं होता है। ऐसे विधेयक अनुच्छेद 117 के खंड (1) के

अंतर्गत आते हैं; (ii) साधारण विधेयक जिन्हें अधिनियमित और प्रवर्तित किए जाने पर भारत की संचित निधि में से व्यय करना पड़ेगा। ऐसे विधेयक अनुच्छेद 117 के खंड (3) के अंतर्गत आते हैं। संदर्भ की सुविधा के लिए पहले वाले विधेयकों को श्रेणी 'क' के वित्त विधेयक और बाद वाले विधेयकों को श्रेणी 'ख' के वित्त विधेयक कहा जा सकता है।

श्रेणी 'क' के वित्तीय विधेयक

ऐसे विधेयकों की दो बातें धन विधेयकों के समान होती हैं, अर्थात् (i) इन्हें राज्य सभा में पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता है और (ii) इन्हें तब तक पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता जब तक राष्ट्रपति द्वारा सिफारिश न की गई हो।[319] किन्तु, ये धन विधेयक नहीं हैं, इसलिए अनुच्छेद 109 के खण्ड (2) से (5) तक के उपबंध इन पर लागू नहीं होते और इसलिए इन विधेयकों को अस्वीकृत करने अथवा उनमें संशोधन करने का राज्य सभा को उसी तरह पूरा अधिकार होता है जैसाकि उसे गैर-वित्तीय विधेयकों के मामले में होता है। इन विधेयकों को साधारण विधेयकों की तरह ही राज्य सभा में पारित किया जाना होता है और ऐसे किसी विधेयक पर दोनों सदनों के बीच अंतिम रूप से असहमति होने पर अनुच्छेद 108 में विनिर्दिष्ट एक संयुक्त बैठक बुलाए जाने के उपबंध का सहारा लिया जाता है।

अनुच्छेद 117(1) के अंतर्गत, अनुच्छेद 110(1)(क) से (च) में विनिर्दिष्ट किसी विषय के लिए उपबंध करने वाला कोई भी संशोधन राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना प्रस्तावित नहीं किया जा सकता। किन्तु किसी कर को घटाने या उसका उत्सादन करने हेतु कोई संशोधन किए जाने के लिए ऐसी सिफारिश अपेक्षित नहीं है।[320]

> एक सदस्य ने वित्त अधिनियम, 1961 के एक खंड में संशोधन के प्रस्ताव की अनुमति मांगी ताकि भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 के अंतर्गत सरकारी कर्मचारियों को उनकी ग्रेच्युटी के संबंध में प्राप्त छूट को निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के संबंध में भी लागू किया जा सके। वित्त मंत्री (श्री मोरारजी आर. देसाई) ने बताया कि इस संशोधन का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता क्योंकि यह इस अर्थ में इसकी शक्ति से बाहर है कि इस संबंध में राष्ट्रपति की पूर्व-सहमति लेना आवश्यक होता है। इससे पहले कि संशोधन पर मत लिया जाता, एक सदस्य ने इस मुद्दे पर उपसभापति का विचार जानना चाहा। उपसभापति ने कहा कि यह आवश्यक नहीं है। तथापि, वह संशोधन अस्वीकृत हो गया।[321] 1 मई, 1961 को उपसभापति ने स्पष्ट किया कि जब उन्होंने यह कहा था कि संशोधन के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक नहीं है तब उनके ध्यान में अनुच्छेद 117(1) था। उन्होंने अपनी राय में संशोधन करते हुए कहा कि अनुच्छेद 274(1) के अंतर्गत किसी ऐसे संशोधन के प्रस्ताव के लिए, जो किसी ऐसे कर या शुल्क जिसमें राज्य हितबद्ध हैं, में परिवर्तन करता है, राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश अपेक्षित है। यह कहा जा सकता है कि जिस आयकर में परिवर्तन करने के लिए विशिष्ट संशोधन की अनुमति मांगी गई थी, वह ऐसा कर है जिसमें राज्य हितबद्ध हैं क्योंकि उसके शुद्ध आगम राज्यों को बांट दिए जाते हैं। इसीलिए ऐसे संशोधन के लिए अनुच्छेद 274(1) के अंतर्गत राष्ट्रपति की सिफारिश अपेक्षित है।[322]

श्रेणी 'ख' के वित्तीय विधेयक

किसी भी साधारण विधेयक में, अन्य बातों के साथ-साथ, ऐसा (ऐसे) उपबंध समाविष्ट हो सकता है (सकते हैं) जिसके (जिनके) पारित होने पर भारत की संचित निधि में से

व्यय करना पड़ेगा, उदाहरण के लिए, अधिकारियों या अन्य प्राधिकारियों की नियुक्ति के लिए प्रावधान करना आदि, ऐसे विधेयक में एक साधारण विधेयक के सभी घटक होते हैं अर्थात् उसे किसी भी सदन में प्रारंभ किया जा सकता है और राज्य सभा को उसे अस्वीकृत करने या उसमें संशोधन करने का पूरा अधिकार होता है। किन्तु उसमें विनिर्दिष्ट किए गए ऐसे वित्तीय उपबंध की दृष्टि से जिसमें व्यय अंतर्ग्रस्त है, उसे किसी सदन द्वारा तब तक पारित नहीं किया जा सकता जब तक ऐसे विधेयक का विचार करने के लिए राष्ट्रपति ने सिफारिश न की हो।[323]

अनुच्छेद 117(3) के अंतर्गत, लोक सभा द्वारा यथापारित विधेयक के संबंध में राज्य सभा के लिए अलग से राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करनी होती है।

> लोक सभा द्वारा यथापारित राष्ट्रीय सुरक्षा विधेयक, 1980 पर विचार किए जाने से पहले, राज्य सभा द्वारा विधेयक पर विचार किए जाने हेतु अलग से राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करने के संबंध में एक औचित्य प्रश्न उठाया गया था। उपसभापति ने सूचित किया कि मंत्री द्वारा महासचिव को संबोधित एक पत्र में उस सिफारिश के संबंध में बताया गया था और यह टिप्पणी की कि सम्बद्ध मंत्री से प्राप्त पत्र इस बात का पर्याप्त सबूत है कि सिफारिश की गयी है।[324] इसी तरह का प्रश्न मंत्री द्वारा चाय (संशोधन) विधेयक, 1980 पर लोक सभा द्वारा यथापारित रूप में विचार किये जाने का प्रस्ताव उपस्थित किये जाने के पश्चात् पुन: उठाया गया था। इस मामले में, "लोक सभा द्वारा यथापारित रूप में" शब्द उस विधेयक के संबंध में सिफारिशों की सूचना देने वाले पत्र में छोड़ दिये गये थे। उपसभापति ने यह व्यवस्था दी थी कि यदि विधेयक लोक सभा द्वारा पारित किया गया था, तो पत्र में तद्नुसार कहा जाना चाहिए और यदि विधेयक राज्य सभा में प्रवर्तित हुआ हो तो उनकी सिफारिश की तारीख दी जानी चाहिए।[325] चार विनियोग विधेयक, 1981 पर विचार के समय जिस तारीख को राष्ट्रपति ने सिफारिश की थी, उसे दर्शाने में चूक किये जाने के संबंध में एक प्रश्न उठाया गया था और तब उपसभापति ने अपनी पूर्ववर्ती व्यवस्था को दोहराते हुए यह विचार प्रकट किया था कि "राष्ट्रपति की ओर से दो सिफारिशें होनी चाहियेः एक जब विधेयक लोक सभा में पुर:स्थापित किया जाता है, और दूसरे जब लोक सभा द्वारा पारित किये जाने के पश्चात् उसे इस सभा के समक्ष लाया जाता है।...इसलिये, यह आवश्यक था कि जब राष्ट्रपति ने सिफारिश की थी तो वह तारीख दी जानी चाहिए।"[326]
>
> इससे पहले भी एक मौके पर जब यह औचित्य प्रश्न उठाया गया था कि विशेष विवाह विधेयक, 1952 पर अनुच्छेद 117(3) के अधीन राष्ट्रपति की सिफारिश अपेक्षित है, तब सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह विचार प्रकट किया था कि सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया प्रत्येक विधेयक, जिससे भारत की संचित निधि में से कुछ व्यय करना पड़ सकता है, अनुच्छेद 117 के खंड (3) के कार्यक्षेत्र के भीतर नहीं आता है और उन्होंने अनुच्छेद 255 के उपबंध को ध्यान में रखते हुए यह भी कहा कि सभा के लिये यह उचित नहीं है कि इस अवस्था पर विधेयक पर विचार रोक दिया जाये।[327]
>
> संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक, 1991, लोक सभा द्वारा यथापारित रूप में, के मामले में राज्य सभा द्वारा उस पर विचार किये जाने हेतु राष्ट्रपति की सिफारिश के संबंध में "अनुमति देते समय उसकी संवीक्षा के अध्यधीन" सूचित किया गया।[328] तथापि, आखिरकार विधेयक पर अनुमति रोक ली गयी थी।

कौन से विधेयक वित्तीय विधेयक नहीं हैं

अनुच्छेद 117 का खंड (2), उस अनुच्छेद के खंड (1) का अपवाद है और जिसमें यह बताया गया है कि कौन-कौन से विधेयक खंड (1) के कार्यक्षेत्र के दायरे के अंतर्गत

वित्त विधेयक नहीं हैं। अत: कतिपय विशिष्ट विषयों के लिये उपबंध करने वाले विधेयक, अर्थात् जुर्मानों या अन्य धनीय शास्तियों के अधिरोपण का अथवा अनुज्ञप्तियों के लिये फीस की या की गयी सेवाओं के लिए फीस की मांग का या उनके संदाय का उपबंध करने वाले अथवा किसी स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिये किसी कर के अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन करने वाले विधेयक, यद्यपि प्रथम दृष्टया उनमें वित्तीय स्वरूप के उपबंध अंतर्विष्ट हों, संविधान के प्रयोजनों के लिये वित्तीय विधेयक नहीं हैं और इसलिये सभा में उनके पुर:स्थापन या पारण के संबंध में कोई विशेष घटक नहीं है। साधारण विधेयकों की तरह उन्हें किसी भी सदन में पुर:स्थापित किया जा सकता है, उनके लिये राष्ट्रपति की सिफारिश अपेक्षित नहीं है, और उन्हें राज्य सभा द्वारा साधारण रीति से अस्वीकार किया जा सकता है या उनमें संशोधन किया जा सकता है। लेकिन यदि ऐसे किसी विधेयक से भारत की संचित निधि में से व्यय अंतर्ग्रस्त हो, तो ऐसे विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव उपस्थित करने से पूर्व अनुच्छेद 117(3) के अधीन राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करनी पड़ेगी।

अनुच्छेद 117(1) के अधीन किसी विधेयक को पुर:स्थापित किये जाने पर आपत्ति किया जाना

यदि किसी ऐसे विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव की सूचना प्राप्त हो, जिसमें संविधान के अनुच्छेद 117 के खंड (1) में उल्लिखित किन्हीं विषयों का उपबंध किया गया हो, तो सभापति निदेश दे सकेगा कि इसे कार्यावलि में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।[329]

किसी विधेयक के पुर:स्थापन के लिए रखे जाने पर कोई सदस्य उस अवस्था पर या उसके पश्चात् किसी अवस्था पर आपत्ति कर सकेगा कि संविधान के अनुच्छेद 117 के खंड (1) के अर्थ के दायरे के अंतर्गत यह विधेयक एक वित्तीय विधेयक है और इसे राज्य सभा में पुर:स्थापित नहीं किया जाना चाहिए।[330] यदि सभापति यह निर्णय देता है कि यह विधेयक एक वित्तीय विधेयक है, तो वह विधेयक पर चर्चा तुरन्त समाप्त कर देता है और यह निदेश देता है कि इसे कार्यावलि से निकाल दिया जाए और इसे राज्य सभा में लम्बित विधेयकों की पंजी से हटा दिया जाए।[331]

तथापि, यदि सभापति को आपत्ति की वैधता के सम्बन्ध में कोई संदेह हो, तो उसे उस मामले को लोक सभा अध्यक्ष के पास भेजना पड़ेगा और यदि लोक सभा अध्यक्ष तथा सभापति के बीच कोई सहमति न हो, तो सभापति को उस मामले की सूचना राज्य सभा को देनी पड़ेगी और इस बारे में राज्य सभा की राय मालूम करनी पड़ेगी कि क्या वह इस विधेयक के संबंध में आगे कार्यवाही करना चाहती है।[332]

2 जून 1995 को, कल्याण मंत्री ने मानसिक अवरुद्धता और प्रमस्तिष्कीय अंगघातग्रस्त व्यक्ति कल्याण राष्ट्रीय न्यास विधेयक, 1991 को, जिसे राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया था, वापस लिये जाने का एक प्रस्ताव उपस्थित किया था। विधेयक को वापस लिये जाने के कारणों के कथन में, मंत्री ने यह कहा था कि:

> विधेयक के खंड 19 में यह उपबंध किया गया है कि न्यास अपनी आय, लाभों या व्युत्पन्न अभिलाभों के संबंध में आयकर या किसी अन्य कर का संदाय करने का दायी नहीं होगा। भारत के संविधान के अनुच्छेद 110(1) के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 117(1) के अधीन यह विधेयक एक वित्तीय विधेयक होगा। तथापि, इसे अनजाने में राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया था। अत:, इसे राज्य सभा से वापस लिया जा रहा है और इसे लोक सभा में पुर:स्थापित किया जायेगा।[333]

वित्तीय विधेयक को प्रवर/संयुक्त समिति को सौंपा जाना

धन विधेयक को दोनों सदनों की संयुक्त समिति को नहीं सौंपा जा सकता है। तथापि, वित्तीय विधेयक के संबंध में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है। ऐसे कई अवसर आये हैं जब राज्य सभा ने उन वित्तीय विधेयकों को अपनी प्रवर समितियों को सौंपा था जिन्हें पहले लोक सभा, जहां वे पुर:स्थापित किये गये थे, की प्रवर समितियों को सौंपा गया था।

> जीवन बीमा निगम विधेयक, 1956 के संबंध में वित्त मंत्री द्वारा विचार किये जाने का प्रस्ताव उपस्थित किये जाने के पश्चात् एक सदस्य ने उस विधेयक को एक प्रवर समिति को सौंपे जाने हेतु एक संशोधन उपस्थित किया था। वित्त मंत्री (श्री सी.डी. देशमुख) ने एक 'औचित्य के प्रश्न' पर बोलते हुए कहा कि विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपने की संभावना के प्रश्न पर विचार किया गया था; किन्तु लोक सभा के प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 92 के परन्तुक को ध्यान में रखते हुए यह महसूस किया गया कि जीवन बीमा निगम विधेयक को संयुक्त समिति को नहीं सौंपा जा सकता क्योंकि विधेयक का खंड 37 संविधान के अनुच्छेद 110 के उपबंधों के अंतर्गत आता है। जिसके अंतर्गत यह एक 'वित्तीय विधेयक' बन जाता है। इस संदर्भ में, एक सदस्य ने कहा कि संविधान के अनुच्छेद 110 में यह नहीं कहा गया है कि किसी वित्तीय विधेयक को संयुक्त समिति को नहीं सौंपा जा सकता। उनका तो यहां तक कहना था कि संविधान में यह भी नहीं कहा गया है कि कोई 'धन विधेयक' संयुक्त समिति को नहीं सौंपा जाना चाहिए। जहां तक वित्तीय विधेयकों का संबंध है, दोनों सदनों की शक्तियां इस बात को छोड़कर कि ऐसे विधेयक दूसरे सदन में भी पुर:स्थापित करने होंगे, एक समान हैं। जहां तक वित्तीय विधेयकों का संबंध है, इस बारे में राज्य सभा को यह अधिकार है कि वह लोक सभा की सिफारिशों से सहमत न हो और ऐसी असहमति होने की स्थिति में, एक संयुक्त बैठक बुलाई जा सकती है। इस संदर्भ में, उपसभापति ने इस प्रकार से निर्णय दिया:
>
> > जहां तक वित्तीय विधेयकों का संबंध है, इन्हें प्रवर समिति को सौंपने की बाबत इस सभा को उतना ही अधिकार प्राप्त है, जितना कि लोक सभा को और यह कि हमारे नियमों के अंतर्गत भी ऐसी व्यवस्था है कि जब कोई संयुक्त समिति न हो और लोक सभा में किसी विधेयक को प्रवर समिति को सौंप दिया गया हो, तो इस सभा को भी यह अधिकार है कि वह उस विधेयक को अपनी प्रवर समिति को सौंप दे। अत:, इसमें कोई औचित्य का प्रश्न नहीं है; किन्तु निस्संदेह, माननीय वित्त मंत्री प्रस्ताव का विरोध कर सकते हैं और मैं इस पर सभा में मत लूंगा।[334]
>
> महापत्तन न्यास विधेयक, 1963 के मामले में भी, उस समय इसी प्रकार का एक मुद्दा उठा था जब विधेयक को इस आधार पर कि विधेयक अनुच्छेद 117(1) से संबंधित है, दोनों सदनों की संयुक्त समिति को न सौंपकर लोक सभा की प्रवर समिति को सौंप दिया गया था। यद्यपि विधेयक की तात्कालिकता को ध्यान में रखते हुए, इस मामले पर आगे कार्रवाई नहीं की गई और राज्य सभा ने विधेयक को अपनी प्रवर समिति को सौंप दिया।[335]
>
> पुन:, जब बैंककारी विधि (संशोधन) विधेयक, 1968 को भी संयुक्त समिति को न सौंपकर लोक सभा द्वारा किसी मुद्दे को आधार बनाकर इसे अपनी प्रवर समिति को सौंप दिया गया था,

> तब भी संबंधित मंत्री महोदय ने कहा था कि चूंकि विधेयक अनुच्छेद 110 में विनिर्दिष्ट कुछ मामलों से संबंध रखता है, इसलिए इसे संयुक्त समिति को नहीं सौंपा गया। किन्तु, उन्होंने राज्य सभा के इस अधिकार को स्वीकार किया कि वह किसी विधेयक को प्रवर समिति को सौंप सकती है और अन्ततोगत्वा, ऐसा ही किया गया।[336]

अध्यादेशों का प्रतिस्थापन चाहने वाले विधेयक

अध्यादेशों का प्रख्यापन

उस समय को छोड़कर जब संसद् के दोनों सदन सत्र में हों, यदि ऐसे किसी समय राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तुरंत कार्रवाई करना उसके लिए आवश्यक हो गया है, तो वह ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित कर सकेगा जो उन्हें उन परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत हों।[337] राष्ट्रपति द्वारा इस प्रकार प्रख्यापित किये गये अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होता है जो संसद् के किसी अधिनियम का होता है; किन्तु ऐसा प्रत्येक अध्यादेश संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाना आवश्यक होता है और संसद् के पुन: समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर या यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले-पहले दोनों सदन उस अध्यादेश का निरनुमोदन चाहने वाला संकल्प पारित कर देते हैं, तो इनमें से दूसरे संकल्प के पारित होने पर उक्त अध्यादेश प्रवर्तन में नहीं रहता। इसे राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय वापस भी लिया जा सकता है।[338]

राष्ट्रपति, किसी सदन में पुर:स्थापित किए गए और उस सदन[339] के समक्ष अथवा किसी समिति[340] के समक्ष लम्बित पड़े किसी विधेयक के उपबंधों को लागू किए जाने के लिए अथवा किसी एक सदन द्वारा पहले ही पारित, किन्तु दूसरे सदन द्वारा पारण के लिए लंबित विधेयक के उपबंधों को प्रवर्तित किये जाने के लिए[341] अथवा किसी बिल्कुल नए विषय पर अथवा किसी अस्थायी प्रयोजन हेतु[342] अध्यादेश जारी कर सकता है।

सभा में आपत्ति उठाया जाना

सदस्यों ने सरकार द्वारा अध्यादेश, विशेषकर संसद् सत्र के अति निकट की तारीखों पर, जारी करने के अधिकार का बार-बार इस्तेमाल करने पर आपत्ति की है।

> उदाहरण के लिए 15 नवम्बर, 1971 को सदस्यों ने बहुत-से अध्यादेश जारी किए जाने पर आपत्ति की थी और अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा था कि संसद, जो शीघ्र ही समवेत होने वाली है, का अनुमोदन लिए बिना अध्यादेशों के माध्यम से कुछ कर लगाए जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस संदर्भ में, उपसभापति ने कहा कि:
>
>> जैसाकि माननीय सदस्यों द्वारा इस ओर इंगित किया गया है, इस सभापटल पर बहुत से अध्यादेश रखे जा रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि सामान्यत: अध्यादेश अत्यंत असामान्य अथवा असाधारण परिस्थितियों में ही जारी किए जाने चाहिए। सामान्य परिस्थितियों में, इस विधायी प्रक्रिया का अवलंबन नहीं लेना चाहिए। सभा के नेता द्वारा भी इसी बात की ओर इशारा करते हुए कहा गया है कि सही अर्थों में यदि कहा जाए तो संविधान के उपबंधों के अनुसार यह कोई आपात की स्थिति नहीं है, फिर भी कुछ-कुछ आपात जैसी है; मेरे विचार से उनका कहने का अभिप्राय यह है कि हालांकि संविधान के उपबंधों के अंतर्गत आपात की उद्घोषणा नहीं की गई

> है, फिर भी स्थिति कुछ-कुछ आपात जैसी है और इसलिए, उन्होंने कहा था कि ऐसी असाधारण परिस्थितियों के अंतर्गत ऐसे अध्यादेश जारी करना सरकार के लिए अनिवार्य हो गया था...किन्तु, सरकार का यह संवैधानिक दायित्व है कि जब कोई अध्यादेश जारी किया जाता है तो उस अध्यादेश की एक प्रति सरकार को यथासंभव शीघ्र संसद् के दोनों सदनों के पटल पर अवश्य रखनी होती है। उसका यह एक संवैधानिक दायित्व होता है।
>
> मैंने पहले भी कहा है कि अध्यादेश जारी करने के संबंध में संवैधानिक उपबंध विद्यमान हैं। यह एकदम से अलग मुद्दा है कि क्या ऐसा करना राजनैतिक, प्रजातांत्रिक अथवा नैतिक दृष्टि से उचित है या नहीं, किन्तु जैसाकि मैंने पहले भी कहा है, लगभग सभी विपक्षी दलों ने इस संबंध में अपने मन की अति कटु भावनाएं और बहुत ही कड़े विचार प्रकट किए हैं। मुझे आशा है कि इस सभा में पूरे विपक्ष द्वारा व्यक्त किए गए ऐसे कड़े विचारों पर सरकार अवश्य ध्यान देगी और भविष्य में, अध्यादेश जारी करने और कानून बनाने के लिए इस प्रकार से बिल्कुल ही अवलंबन नहीं लिया जाएगा और यदि कभी जरूरत पड़े भी तो ऐसा बहुत कम-से-कम अवसरों पर किया जाएगा।[343]

इसके पश्चात्, 17 नवम्बर, 1980 को सदस्यों ने इस अध्यादेश जारी किए जाने पर आपत्ति उठाई। तब सभापति की टिप्पणी इस प्रकार थी, "...जहां तक सरकार एवं इन अध्यादेशों को पारित कराने की बाबत उसकी नीति को देखते हुए इन अध्यादेशों पर मेरी प्रतिक्रिया का संबंध है, मैं पहले ही यह कह चुका हूं कि मैं अध्यादेशों को पसन्द नहीं करता..."[344]

पुनः, जब वित्त (संशोधन) अध्यादेश, 1987 को सभापटल पर रखा जा रहा था, तब भी सरकार द्वारा राजस्व संबंधी अध्यादेश जारी किए जाने की बाबत औचित्य का प्रश्न उठाया गया था। इसका सभापति द्वारा निम्नलिखित रूप से उत्तर दिया गया:

> मैं आशा करता हूं, कि सरकार इन विचारों तथा संविधान की मर्यादा को ध्यान में रखेगी और भविष्य में, अध्यादेश, विशेष रूप से वित्तीय अध्यादेश यथासंभव कम-से-कम अवसरों पर और केवल तभी जारी किए जाएंगे जब ऐसा करना बिल्कुल ही अनिवार्य तथा अत्यावश्यक हो।[345]

अध्यादेश का सभापटल पर रखा जाना

राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों को संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाना अपेक्षित होता है।[346] सामान्यतया इन अध्यादेशों को, राष्ट्रपति द्वारा इनके प्रख्यापन के पश्चात् बुलाई गई सभा की उस पहली बैठक में रखा जाता है, जिसमें सदन का औपचारिक कामकाज किया जाता है। उस अध्यादेश के संबंध में, जिसमें सभा के समक्ष लम्बित किसी विधेयक के उपबंधों को पूर्णतः अथवा अंशतः अथवा संशोधनों सहित शामिल किया गया हो, उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने वाला एक विवरण भी अध्यादेश के साथ-साथ सभापटल पर रखा जाना अपेक्षित होता है, जिनके अंतर्गत अध्यादेश के माध्यम से विधान बनाया जाना आवश्यक हो गया था।[347]

राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्यों के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों को भी राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों की ही तरह सभापटल पर रखा जाता है। यदि किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा, उस राज्य के संबंध में राष्ट्रपति की उद्घोषणा के जारी होने से पहले जारी किए गए किसी अध्यादेश को राज्य विधान-मंडल के समक्ष न रखा जा सका हो तो उसे भी सभापटल पर रखा जा सकता है।

असम के राज्यपाल द्वारा असम विनियोग (लेखानुदान) अध्यादेश, 1981, 31 मार्च, 1981 को विधान सभा का चार महीने की अवधि के लिए सत्रावसान करने के बाद 1 अप्रैल, 1981 को प्रख्यापित किया गया था। उसके बाद विधान सभा की बैठक 29 जून, 1981 को केवल एक दिन के लिए हुई। अगले दिन इस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो गया। संसद् का सत्र 17 अगस्त, 1981 को आरंभ हुआ। असम विनियोग विधेयक, 1981 जोकि इस सभा के विचाराधीन था, के सम्बन्ध में यह मुद्दा उठाया गया कि क्या राज्यपाल के अध्यादेश को अनुच्छेद 213(2)(क) के तहत सभापटल पर रखा जाना अपेक्षित था।[348] अध्यादेश की वैधता अवधि 31 जुलाई, 1981 को समाप्त हो गई किन्तु इसे विधान सभा की बैठक की तिथि अर्थात् 29 जून, 1981 से अनुच्छेद 213(2)(क) के तहत छह सप्ताह के लिए और बढ़ा दिया गया। अत: यह अध्यादेश 9 अगस्त, 1981 को निष्प्रभावी हो गया। अध्यादेश को 29 जून, 1981 को विधान सभा के पटल पर रखे जाने की जिम्मेदारी बनती थी और विधान सभा इस अध्यादेश का उसी दिन अथवा उसके बाद की किसी तिथि को निरनुमोदन कर सकती थी किन्तु इससे पहले कि वह ऐसा कर पाती, राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। न तो इस अध्यादेश को विधान सभा में रखा गया और न ही विधान सभा द्वारा इस पर कोई कार्यवाही ही की गई। अत: सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह व्यवस्था भी दी कि "इसे विधान सभा के पटल पर रखे जाने की जिम्मेदारी की शुरुआत हुई थी और उसे पूरा नहीं किया गया, संविधान में ऐसा कोई उपबंध नहीं है कि इस प्रयोजनार्थ संसद् विधान सभा की स्थानापन्न बन जाए। छह सप्ताह बीत जाने के बाद अध्यादेश का निरनुमोदन करने वाला कोई भी संकल्प संसद् में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता और अध्यादेश को सभा, जिसका सत्र 29 जून, 1981 को आरंभ हुआ था, के पटल पर रखे जाने का मामला भी समाप्त हो गया क्योंकि इसका निरनुमोदन करने वाला संकल्प विधान सभा अथवा संसद् में रखा जाना संभव नहीं था...एक ऐसे अध्यादेश को सभापटल पर रखने से, सिवाय इसके कि माननीय सदस्यों को इसकी सूचना मिलती, कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, जिसकी वैधता अवधि दो बार समाप्त हो गई हो और सदस्यों को सूचना देने का प्रयोजन तो अध्यादेश की प्रतियां संसदीय पुस्तकालय में उपलब्ध करवाने से पर्याप्त रूप से सिद्ध हो गया है। अत: किसी भी संवैधानिक उपबंध का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है। यदि अनुच्छेद 213(2)(क) का अक्षरश: पालन किया जाए तो अध्यादेश को विधान सभा की बैठक होने पर पटल पर रखा जाना आवश्यक था, इसे 29 जून, 1981 को विधान सभा के पटल पर रखा गया, किन्तु उस त्रुटि की भरपाई उसे हमारी सभा के पटल पर रखकर नहीं की जा सकती क्योंकि हमारी सभा अनुच्छेद 213(2)(क) के अंतर्गत 17 अगस्त 1981 को कार्य नहीं कर सकती थी।[349]

अध्यादेश का स्थान लेने वाला विधेयक

यदि सरकार किसी अध्यादेश के उपबंधों को दीर्घ अवधि के लिए जारी रखना चाहती है अथवा उन्हें स्थायी बनाना चाहती है तो उसका स्थान लेने वाला एक विधेयक लाया जाता है। जब कभी किसी अध्यादेश का स्थान लेने वाला, संशोधन सहित या बिना संशोधन के कोई विधेयक लाया जाता है तो सभा के सामने विधेयक के साथ उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने वाला एक विवरण भी रखा जाना अपेक्षित होता है, जिसके कारण अध्यादेश के माध्यम से विधान बनाना आवश्यक हो गया था।[350]

एक अवसर पर संबंधित मंत्री ने विशेष संरक्षा समूह अध्यादेश, 1995 को प्रख्यापित करने हेतु आवश्यक परिस्थितियों से संबंधित विवरण को सभापटल पर रखने के स्थान पर उसे सभा में पढ़ा था।[351]

सामान्यत: किसी अध्यादेश का निरनुमोदन चाहने वाले किसी परिनियत संकल्प और संबंधित सरकारी विधेयक पर साथ-साथ चर्चा की जाती है।[352] यदि संकल्प स्वीकृत हो जाता

है तो इसका अर्थ यह होगा कि अध्यादेश का निरनुमोदन हो गया है और विधेयक स्वत: समाप्त हो जाएगा। यदि संकल्प अस्वीकृत हो जाता है तो विधेयक पर विचार करने हेतु प्रस्ताव पर मत लिया जाता है और विधेयक पर बाकी चरणों की कार्यवाही की जाती है।

> दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अध्यादेश, 1991 का निरनुमोदन चाहने वाले संकल्प और उससे संबंधित विधेयक पर चर्चा 5 अगस्त, 1991 को की गई थी। संकल्प उपसभापति के निर्णायक मत से स्वीकृत हुआ। विधेयक पर आगे कोई कार्यवाही नहीं की गई।[353]

> काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, 1958, जिसे इस विषय पर पहले जारी किए गए एक अध्यादेश का स्थान लेना था, को लोक सभा में पुर:स्थापित किया गया था और राज्य सभा की बैठक एक सप्ताह बाद 18 अगस्त, 1958 को आयोजित हुई, इस बैठक में अध्यादेश को सभापटल पर रखा गया। इस बीच लोक सभा ने विधेयक को अपनी प्रवर समिति को सौंप दिया। राज्य सभा में इस आधार पर विशेषाधिकार का एक प्रश्न उठा कि अध्यादेश को राज्य सभा के पटल पर रखा जाना चाहिए था और उसे इसका निरनुमोदन करने का अवसर दिया जाना चाहिए था तथा विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपा जाना चाहिए था। इस मुद्दे पर सभापति ने व्यवस्था दी कि सदस्यों को विधेयक के लोक सभा से आने पर उसमें परिवर्तन/संशोधन करने का मौका दिया जाएगा तथा बैठक के आयोजन में विलंब होने तथा विधेयक पर शीघ्र कार्यवाही की आवश्यकता के कारण विधेयक को प्रवर समिति को सौंपा गया। तथापि, सभापति ने स्पष्ट किया कि इसे पूर्वोदाहरण नहीं समझा जाएगा।[354]

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक

सूचना

किसी गैर-सरकारी सदस्य को, अर्थात् मंत्री के अतिरिक्त किसी अन्य सदस्य को, जो किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव करना चाहता हो, अपने इस इरादे की सूचना एक मास पहले देनी होती है जब तक कि सभापति इससे कम समय की सूचना पर प्रस्ताव किए जाने की अनुमति न दे दे।[355] सूचना के साथ विधेयक की एक प्रति उद्देश्यों तथा कारणों के कथन सहित संलग्न किया जाना अपेक्षित होता है। यदि इस कथन में संशोधन किया जाना आवश्यक समझा जाता है तो ऐसा सभापति के निदेशानुसार[356] और संबंधित सदस्य के परामर्श और सहमति से किया जाता है। पचास के दशक के आरंभिक वर्षों में एक सदस्य गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए निर्धारित किसी एक दिन में तीन से अधिक विधेयक पुर:स्थापित नहीं कर सकता था। तथापि, 1977 के बाद से सभापति के निर्देशानुसार, कोई सदस्य एक सत्र में अधिकतम तीन विधेयक पुर:स्थापित कर सकता है।[357] किसी विधेयक को, उसके सदृश किसी विधेयक के लोक सभा में लंबित रहते हुए भी राज्य सभा में पुर:स्थापित किए जाने के संबंध में कोई रोक नहीं है।

प्रारूपण

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों का प्रारूप तैयार करने का मुख्य उत्तरदायित्व संबंधित सदस्यों का है। तथापि, सचिवालय सदस्यों को हर संभव तकनीकी सहायता और परामर्श

प्रदान करता है ताकि उनके विधेयक तकनीकी या प्रक्रियागत आधारों पर अमान्य न हो जायें। जब विधेयक प्राप्त होता है तो उसकी इस अध्याय में पूर्वोल्लिखित अनेक बातों को ध्यान में रखते हुए संवीक्षा की जाती है। जब किसी विधेयक का किसी सदस्य द्वारा समुचित रूप से प्रारूप तैयार नहीं किया गया हो, तो उससे इस विषय में परामर्श किया जाता है और विधेयक में कोई परिवर्तन अपेक्षित हो, तो ऐसा केवल संबंधित सदस्य की अनुमति से ही किया जाता है।

पूर्ववर्तिता

गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा दी गयी विधेयकों की सूचनाओं की सापेक्ष पूर्ववर्तिता, सभापति द्वारा दिये गये आदेश के अनुसार, लॉटरी द्वारा उस दिन निर्धारित की जाती है, जिसका कि सभापति निदेश दें, परन्तु जो उस दिन से कम-से-कम पंद्रह दिन पूर्व होता है जिसके संबंध में लॉटरी होगी।[358] सापेक्ष पूर्ववर्तिता निम्नलिखित क्रम में होती है, अर्थात् : (क) वे विधेयक जिनका पुर:स्थापन किया जाना है; (ख) वे विधेयक जो राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 111 के अधीन लौटाये गये हों; (ग) वे विधेयक जो राज्य सभा द्वारा पारित किये गये हों तथा लोक सभा द्वारा संशोधनों सहित लौटाये गये हों; (घ) वे विधेयक जो लोक सभा द्वारा पारित किये गये हों तथा राज्य सभा को पहुंचाये गये हों; (ङ) वे विधेयक जिनके संबंध में विधेयक पर विचार किये जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका हो; (च) वे विधेयक जिनके संबंध में किसी संयुक्त/प्रवर समिति का कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जा चुका हो; (छ) वे विधेयक जो उन पर राय जानने के लिये परिचालित किये गये हों; (ज) वे विधेयक जो पुर:स्थापित किये गये हों और जिनके संबंध में कोई और प्रस्ताव न किया गया हो; और (झ) अन्य विधेयक।[359]

एक ही खंड के अधीन आने वाले विधेयकों की सापेक्ष पूर्ववर्तिता लॉटरी द्वारा निर्धारित की जाती है।[360] तथापि, उन विधेयकों के मामले में, जिन्हें पुर:स्थापित किया जाना है, उनको कार्यावलि में उस क्रम से सूचीबद्ध किया जाता है जिस क्रम में उनके संबंध में सूचनायें प्राप्त हुई हों और इस प्रयोजनार्थ कोई बैलट नहीं किया जाता है। जहां तक उपर्युक्त खंड (ज) के अधीन आने वाले विधेयकों का संबंध है, दस सदस्यों के नाम लॉटरी द्वारा निकाले जाते हैं।[361] राज्य सभा के सभापति के निदेशानुसार लॉटरी से प्राप्त प्राथमिकता पूरे सत्र के लिए वैध रहती है। तथापि, ऐसे सदस्यों जिन्होंने लॉटरी में प्रथम दस स्थान प्राप्त किये हैं, के नामों में से मात्र पांच सदस्यों (अंशत: विचार किए गये विधेयकों, यदि कोई हों), को छोड़कर के विधेयक को, उनकी प्राथमिकता क्रम में विचार हेतु कार्यसूची में शामिल किया जाता है।[362] यदि किसी सदस्य के नाम में एक से अधिक विधेयक लंबित हों, तो वह अपने विधेयकों में से एक विधेयक का चयन कर सकता है।[363]

यदि कोई सदस्य जिसका विधेयक विचार और पारण हेतु सूचीबद्ध है, विचार हेतु अपने विधेयक को उपस्थित करने हेतु सभापीठ द्वारा बुलाये जाने पर अनुपस्थित रहता है, तो वह अपनी प्राथमिकता खो देगा और उसका नाम इस प्रयोजन हेतु आबंटित तारीख के बाद किसी दिन, तय की गई प्राथमिकता के अंत में रख दिया जाएगा।[364]

नियम 25 के संशोधन किए जाने से पहले परिपाटी यह चली आ रही थी कि उन विधेयकों का जो पुर:स्थापित किए गए हों और जिनके संबंध में कोई और प्रस्ताव न किया गया हो या स्वीकृत न हुआ हो उनके पुर:स्थापन के क्रमानुसार वर्गों में विन्यास किया जाता था और प्रत्येक वर्ग में सापेक्ष पूर्ववर्तिता का निर्धारण लॉटरी द्वारा किया जाता था और ऐसे दस विधेयकों को, जिनके संबंध में, आगामी प्रस्तावों की सूचना प्राप्त हो गई हो, सम्बद्ध कार्यावलि में शामिल कर लिया जाता था। इसलिए, नियम संबंधी समिति की सिफारिश पर इस नियम में संशोधन कर दिया गया ताकि विधेयकों की बजाय विधेयकों के प्रभारी सदस्यों के नामों का बैलट किया जाए, (बैलट किए गए दस सदस्यों में से) किसी भी सदस्य को किसी एक सत्र में विचार किए जाने के लिए एक से अधिक विधेयक की अनुमति नहीं दी जाती। इस संशोधन की सिफारिश करते हुए समिति ने टिप्पणी की:

> इस (पुरानी) प्रक्रिया के कारण उन सदस्यों को बहुत निराशा होती है जो बाद में विधेयक पुर:स्थापित करते हैं और इसलिए जिन्हें सभा में अपने विधेयकों पर विचार किए जाने हेतु वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। कई बार तो इस प्रक्रिया के कारण विधेयक सभा में विचार किए जाने हेतु इतनी देर से आते हैं कि विधेयकों के पुर:स्थापित किए जाने का प्रयोजन ही निष्फल हो जाता है। विगत में कई ऐसे अवसर आए हैं जब विधेयक 3-4 वर्ष बीत जाने के बाद चर्चा के लिए आए हैं और कुछ मामलों में तो वे आए ही नहीं चूंकि इन विधेयकों को प्रस्तुत करने वाले सदस्य इस बीच सेवानिवृत्त हो चुके थे...समिति उम्मीद करती है और उसे विश्वास भी है कि प्रस्तावित प्रक्रिया से गैर-सरकारी सदस्यों की निराशा को काफी हद तक दूर किया जा सकेगा तथा गैर-सरकारी सदस्यों की पहल पर ज्यादा से ज्यादा विधेयक सभा में चर्चा के लिए आएंगे।[365]

तथापि, 1969 के प्रारंभ में कार्य मंत्रणा समिति के ध्यान में यह बात लाई गई थी कि गैर-सरकारी सदस्यों के बहुत सारे विधेयक लंबित पड़े हैं और उन सबको कार्यावलि में शामिल करने की परिपाटी अपनाने से व्यावहारिक तौर पर कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। तब समिति ने यह सिफारिश की थी कि आगे से प्राथमिकता के क्रम में केवल उन्हीं प्रथम दस विधेयकों को किसी दिन विशेष की कार्यावलि में शामिल किए जाने की जरूरत है जिनके संबंध में आगामी प्रस्तावों की सूचनाएं प्राप्त हो गई हों।[366]

पुर:स्थापन

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के निपटानार्थ आवंटित दिन को उस दिन के लिए गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य की सूची में पहली मद के रूप में पुर:स्थापनार्थ विधेयकों को दर्ज किया जाता है।[367] किसी विधेयक को वापस लेने हेतु अनुमति के लिए किसी प्रस्ताव के मामले में, उस विधेयक को पुर:स्थापनार्थ विधेयकों से पहले दर्ज किया जाता है।[368]

परिपाटी के अनुसार किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने के प्रस्ताव का विरोध नहीं किया जाता है लेकिन अनेक दृष्टांत ऐसे हैं जिनमें गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों को पुर:स्थापित करने के प्रस्तावों का विरोध किया गया था और उन्हें सदन द्वारा भी अस्वीकृत कर दिया गया था।

उदाहरणार्थ, संविधान (दसवां संशोधन) विधेयक, 1956 (विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए अनुमति के प्रस्ताव को मत-विभाजन द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया था),[369] सदस्यों के वेतन और भत्ते, 1968 के संबंध में दो विधेयक (प्रस्ताव अस्वीकृत हुए),[370] संविधान (संशोधन) विधेयक, 1993 (अनुच्छेद 370 के विलोपनार्थ, प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ),[371] संविधान (संशोधन) विधेयक, 1993 (अनुच्छेद 30 के विलोपनार्थ, विरोध के बाद प्रस्ताव वापस ले लिया गया)।[372] संविधान (संशोधन)

विधेयक, 2004 (उद्देशिका का संशोधन) (विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति प्रदान नहीं की गई)[373]; सीमा-शुल्क (संशोधन) विधेयक, 2004 (तत्कालीन वित्त मंत्री ने विधेयक का इस आधार पर विरोध किया कि विधेयक धन विधेयक था और तद्नुसार विधेयक के पुर:स्थापन को आस्थगित कर दिया गया। अन्तत: सभा को अध्यक्ष का निर्णय सूचित किया गया कि यह एक धन विधेयक है)[374]; संविधान (संशोधन) विधेयक, 2006 (अनुच्छेद 370 का लोप) (विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति प्रदान नहीं की गई)।[375]

पुर:स्थापन के पश्चात् प्रस्ताव

विधेयक के पुर:स्थापन के पश्चात् उसके संबंध में अगला प्रस्ताव विधेयक के पुर:स्थापित किये जाने वाले दिन ही नहीं किया जाता है। जैसाकि पहले ही बताया जा चुका है, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के पुर:स्थापन के पश्चात् अगली विधायी अवस्थाओं के बारे में सापेक्ष अग्रता का निर्धारण लॉटरी निकाल कर किया जाता है। पूरी सत्रावधि में एक लॉटरी निकाली जाती है। लॉटरी में प्राप्त प्राथमिकता के आधार पर प्रभारी सदस्य अपने विधेयक के संबंध में अपना कोई भी अगला प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है। तथापि, कोई सदस्य उसी सत्र में एक से अधिक विधेयक विचारार्थ नहीं ले सकता है।[376] चूंकि लॉटरी में विधेयकों के केवल ऐसे दस प्रभारी सदस्यों के नाम ही निकाले जाते हैं, जिनके नाम से एक से अधिक विधेयक लंबित होते हैं, अत: विधेयकों की लॉटरी के परिणाम को अधिसूचित करते समय उनसे अगले प्रस्तावों हेतु कार्यावलि में सम्मिलित किये जाने हेतु अपने किसी एक विधेयक का चयन करने का अनुरोध किया जाता है।[377]

पचास के दशक के आरंभ में एक अवसर पर एक सदस्य ने एक ही बैठक में तीन विधेयक उपस्थित कर दिये। पहला विधेयक अस्वीकृत हो गया, दूसरे विधेयक पर अनुच्छेद 117(3) के अंतर्गत राष्ट्रपति की अनुशंसा के अभाव में आगे विचार नहीं किया गया और तीसरे विधेयक पर विचार किया गया।[378]

गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक पर प्रस्तावक की अनुपस्थिति में चर्चा की जा सकती है, यदि विधेयक पहले से ही उपस्थित किया जा चुका हो।

17 अगस्त, 1995 को जब गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक पर आगे चर्चा जारी थी, एक सदस्य ने व्यवस्था का प्रश्न उठाया और विधेयक के प्रस्तावक की अनुपस्थिति में विधेयक पर चर्चा करने की वैधता पर सवाल किया। उन्होंने तर्क किया कि विधेयक का प्रभारी सदस्य अन्य सदस्यों द्वारा किए प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उपस्थित नहीं है और यह कि मंत्री केवल तभी बोल सकता है जब प्रस्तावक उनके प्रश्नों का उत्तर दे चुका हो। व्यवस्था के प्रश्न को खारिज करते हुए उपसभाध्यक्ष ने निम्नलिखित विनिर्णय किया:

> जहां तक विधेयक पर चर्चा का संबंध है, नियमानुसार विधेयक को उपस्थित करने वाले सदस्य के लिए सभा में उपस्थित होना अनिवार्य नहीं है। एक बार जब विधेयक को सभा में उपस्थित कर दिया जाता है और इस पर चर्चा ही होती है तो यह सभा की संपत्ति हो जाता है। इसलिए सभा किसी मामले पर आगे विचार करने हेतु सक्षम होती है। यह चर्चा वैध है और आपका व्यवस्था का प्रश्न खारिज किया जाता है....।[379]

गैर-सरकारी सदस्यों के किसी विधेयक पर विचार के समय यदि संबंधित सदस्य चर्चा का उत्तर देने के लिए उपस्थित नहीं होता है, तो उक्त विधेयक के प्रभारी सदस्य की अनुपस्थिति में संबंधित मंत्री द्वारा हस्तक्षेप किये जाने के पश्चात् प्रस्ताव पर सभा में मतदान कराया जा सकता है।[380]

लोक सभा में मूलत: प्रारंभ और पारित हुए तथा राज्य सभा को भेजे गए किसी गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक को राज्य सभा में किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए आवंटित दिन को विचारार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है।

राष्ट्रपति की अनुशंसा

किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा उपस्थित किये गये ऐसे विधेयक के संबंध में, जिसके लिए राष्ट्रपति की अनुशंसा आवश्यक हो, संबंधित सदस्य को ऐसी अनुशंसा के लिए राष्ट्रपति को आवेदन करना होता है। सचिवालय को सदस्य से राष्ट्रपति की अनुशंसा प्राप्त करने हेतु अनुरोध प्राप्त होने पर सदस्य के पत्र को आवश्यक कार्यवाही के लिए संबंधित मंत्रालय को अग्रेषित कर दिया जाता है। संबंधित मंत्री सदस्य को राष्ट्रपति के आदेशों की सूचना देता है और सचिवालय को भी इस आशय की सूचना दे दी जाती है। सचिवालय को संबंधित मंत्री से राष्ट्रपति के आदेश के बारे में सूचना प्राप्त होने पर सदस्य को इसकी सूचना दे दी जाती है और इसे संसदीय समाचार (बुलेटिन) में प्रकाशित कर दिया जाता है।[381]

राष्ट्रपति की अनुशंसा प्राप्त न होने पर विधेयक पर आगे कार्यवाही नहीं की जाती है और इसे प्राप्त न किये जाने की दशा में विधेयक पर विचार किये जाने को स्थगित कर दिया जाता है।

> एक सदस्य द्वारा पुर:स्थापित किये गये अनाथालय और विधवा आश्रम विधेयक, 1954 को अनुच्छेद 117(3) के अंतर्गत राष्ट्रपति की अनुशंसा, जिसके लिए सदस्य ने आवेदन किया था, प्राप्त नहीं हुई थी। सभापति ने तद्नुसार सदन को सूचित किया और इसलिए उक्त विधेयक पर विचार नहीं किया जा सका।[382]

> एक सदस्य ने स्वयं अपने द्वारा पुर:स्थापित उच्चतर शिक्षा समन्वयमूलक मानक विधेयक, 1953 पर विचार करने के लिए एक प्रस्ताव उपस्थित किया। उस समय यह औचित्य प्रश्न उठाया गया था कि चूंकि इस विधेयक के कुछ खंडों में भारत की संचित निधि से व्यय अंतर्ग्रस्त है, अत: इसके लिए अनुच्छेद 117(3) के अंतर्गत राष्ट्रपति की अनुशंसा प्राप्त किया जाना आवश्यक है। उपसभापति ने औचित्य प्रश्न को उचित ठहराते हुए सदस्य को राष्ट्रपति की अनुशंसा प्राप्त करने हेतु आवेदन करने का परामर्श दिया। उक्त विधेयक के संबंध में तब तक आगे की कार्यवाही आस्थगित कर दी गई थी।[383]

> बेरोज़गारी राहत विधेयक, 1953 के प्रभारी सदस्य द्वारा उक्त विधेयक पर विचार करने के लिए प्रस्ताव उपस्थित किये जाने से पूर्व उपसभापति ने यह कहा कि इसमें एक तकनीकी दोष यह है कि इस विधेयक के संबंध में राष्ट्रपति की अनुशंसा आवश्यक है। प्रस्ताव उपस्थितकर्ता ने यह बताया कि उन्होंने इसके लिए आवेदन किया हुआ है और अनुशंसा की प्राप्ति तक इस विधेयक पर विचार किये जाने को स्थगित रखा जाये। उपसभापति ने इससे अपनी सहमति व्यक्त करते हुए विधेयक पर विचार किये जाने को स्थगित कर दिया।[384]

किसी विधेयक के संबंध में राष्ट्रपति की अनुशंसा प्राप्त न होने की स्थिति में पूर्व में उक्त विधेयक को 'लंबित विधेयक पंजी' से निकाल दिया जाता था।[385] तथापि, इस समय ऐसे विधेयकों को लॉटरी में सम्मिलित नहीं किया जाता है।[386]

वाद-विवाद की समय-सीमा

सामान्य प्रयोजन समिति ने 28 अप्रैल, 2008 को हुई अपनी बैठक में यह निर्णय लिया कि गैर-सरकारी सदस्य के कार्य के लिए नियत किए गए दिन विचार/चर्चा के लिए गए गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक का निपटान उसी दिन कर लेना चाहिए। समिति ने यह भी निर्णय लिया कि सभापति के निदेश में गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक पर चर्चा के लिए दो घंटों की निर्धारित समय-सीमा का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए।[387]

वाद-विवाद का स्थगन

प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक पर वाद-विवाद को उसी या अगले सत्र में गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए आवंटित अगले दिन तक के लिए स्थगित कर दिया जाता है और लॉटरी में प्राधिमानता प्राप्त कर लेने पर ही उस पर आगे चर्चा हेतु उसे कार्यावलि में सम्मिलित किया जाता है।[388] वाद-विवाद अनियत तिथि के लिए स्थगित कर दिये जाने पर बाद में गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए आवंटित किसी दिन को यदि संबंधित सदस्य अपने विधेयक पर आगे वाद-विवाद का इच्छुक हो, तो उसे स्थगित वाद-विवाद को पुन: आरंभ करने के लिए सूचना देनी होगी। उस स्थिति में इस प्रकार की सूचना को उस दिन के लिए सम्मिलित किये गये अन्य विधेयकों की अपेक्षा प्राधिमानता दी जाती है।[389] गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर वाद-विवाद को सदन में उपस्थित किये गये और स्वीकृत प्रस्तावों पर स्थगित किया गया है। कुछ दृष्टांत नीचे दिये गये हैं:

> प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष (राष्ट्रीय महत्व की घोषणा) दूसरा संशोधन विधेयक, 1954 पर चल रही चर्चा में हस्तक्षेप करते हुए शिक्षा मंत्री के संसदीय सचिव ने यह बताया कि सरकार का इस विषय पर एक व्यापक विधान लाने का विचार है। अत: उक्त विधेयक के उपस्थितकर्ता ने यह कहा कि प्रस्तावित विधेयक के लाये जाने तक उनके विधेयक को लंबित रखा जाये और आगे की कार्यवाही को स्थगित कर दिया जाये। सदन ने इस पर अपनी सहमति व्यक्त की।[390]
>
> कुछ चर्चा के बाद एक सदस्य ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि संविधान (संशोधन) विधेयक, 1962 (आठवीं अनुसूची के संशोधनार्थ) पर वाद-विवाद स्थगित कर दिया जाये। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।[391] भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1963 के संबंध में भी वाद-विवाद के स्थगन के लिए इसी प्रकार का प्रस्ताव उपस्थित किया गया और वह स्वीकृत हुआ।[392] दो संविधान संशोधन विधेयकों (अनुच्छेद 143 और अनुच्छेद 291 के संशोधनार्थ) पर वाद-विवाद को प्रस्ताव उपस्थित किये जाने और उनकी स्वीकृति पर पहले विधेयक को आगामी सत्र तक तथा दूसरे विधेयक को अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित कर दिया गया था।[393]

राय जानने के लिए परिचालन

सरकारी विधेयकों की तरह ही अनेक बार गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के बारे

में भी राय जानने के प्रयोजन से उन्हें परिचालित किया गया है। ऐसे विधेयकों और उनके संबंध में बाद में हुई प्रगति का यहां नीचे उल्लेख किया गया है:

1. अनाथालय और विधवा आश्रम विधेयक, 1956।[394]
2. ऐतिहासिक अभिलेख (राष्ट्रीय महत्व के) विधेयक, 1957।[395]
3. भारतीय समुद्री बीमा विधेयक, 1959।[396]
4. लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1962।[397]
5. भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1963।[398]
6. दिल्ली किराया नियंत्रण (संशोधन) विधेयक, 1964।[399]
7. अक्षम व्यक्तियों की नसबंदी विधेयक, 1964।[400]
8. पत्तन सुरक्षा बल विधेयक, 1968।[401]
9. बोनस संदाय (संशोधन) विधेयक, 1966।[402]

क्रम संख्या 1 पर उल्लिखित विधेयक को विधेयक के प्रभारी सदस्य द्वारा वापस ले लिया गया,[403] क्रम संख्या 2, 4 और 8 पर उल्लिखित विधेयक संबंधित सदस्यों के सदस्यता से निवृत्त हो जाने के कारण व्यपगत हो गये; क्रम संख्या 3 और 5 पर उल्लिखित विधेयकों को क्रमश: संयुक्त और प्रवर समितियों को सौंपा गया[404] और उन्हें अंतत: पारित कर दिया गया; क्रम संख्या 6 पर उल्लिखित विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपा गया और संबंधित सदस्य द्वारा उसे बाद में वापस ले लिया गया,[405] क्रम संख्या 7 और 9 पर उल्लिखित विधेयकों को प्रवर समितियों को सौंपे जाने के प्रस्ताव अस्वीकृत हुए।[406]

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों को परिचालित किये जाने के प्रस्तावों को वापस लिये जाने या अस्वीकृत होने के दृष्टांत भी देखने को मिलते हैं।

जब एक सदस्या ने अपने द्वारा पुर:स्थापित 'स्त्री और बालक संस्था अनुज्ञापन विधेयक, 1953' पर राय जानने के लिए उसे परिचालित करने हेतु प्रस्ताव उपस्थित किया तब यह आपत्ति की गई थी, संसद् सम्पूर्ण भारत के लिए, जिस पर कि उक्त विधेयक लागू होना आशयित है, कानून नहीं बना सकती है। उपसभापति ने सदस्या से उक्त विधेयक को वापस लेने और उसके स्थान पर नया विधेयक, यदि आवश्यक हो, लाने के लिए कहा।[407]

एक अन्य अवसर पर एक सदस्य द्वारा पुर:स्थापित तेल हाइड्रोजनीकरण निवारण विधेयक, 1962 पर राय जानने के लिए उसे परिचालित करने के लिए उपस्थित किये गये प्रस्ताव को सदन द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया।[408]

विधेयक पंजी

सरकारी विधेयकों की भांति ही सचिवालय द्वारा एक ऐसी पृथक पंजी रखी जाती है, जिसमें सदन में गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा पुर:स्थापित किये गये विधेयकों को दर्ज किया जाता है। सरकारी विधेयकों को निकाले जाने से संबंधित नियम गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर भी लागू होते हैं।[409] सदन द्वारा उसी तरह का विधान पारित कर दिये जाने या उक्त कारण से सदस्य द्वारा अपना विधेयक वापस ले लिए जाने की स्थिति में सदन के समक्ष लंबित गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों को 'विधेयक-पंजी' से निकाल दिया जाता है।

27 फरवरी, 1987 को एक गैर-सरकारी सदस्य ने मतदान के लिए न्यूनतम आयु को 21 वर्ष से कम कर 18 वर्ष करने के लिए अनुच्छेद 326 में संशोधनार्थ संविधान (संशोधन) विधेयक, 1987 पुर:स्थापित किया था। विधेयक पर विचार करने के प्रस्ताव पर 4 और 25 नवम्बर, 1988 को चर्चा की गई, लेकिन चर्चा पूरी नहीं हुई। 20 दिसम्बर, 1988 को संसद् ने संविधान

(बासठवां संशोधन) विधेयक, 1988 पारित कर दिया और विधेयक को अनुसमर्थन के लिए राज्य विधान-मंडलों को भेज दिया गया था। नियम 266 के अनुसरण में सभापति द्वारा दिये गये निदेश के अंतर्गत अगले सत्र में गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए नियत पहले दिन अर्थात् शुक्रवार, 24 फरवरी, 1989 की कार्यावलि में आगे विचार किये जाने हेतु उक्त विधेयक को सम्मिलित नहीं किया गया। उसे 'विधेयक-पंजी' से भी हटा दिया गया। संबंधित सदस्य को तद्नुसार सूचित कर दिया गया।[410]

तथापि, एक अन्य अवसर पर एक गैर-सरकारी सदस्य द्वारा 20 दिसम्बर, 1991 को मान्यता-प्राप्त राजनीतिक दल द्वारा खड़े किये गये उम्मीदवार की मृत्यु होने की दशा में ही मतदान स्थगित किये जाने के लिए पुर:स्थापित किये गये लोक-प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1991 को संसद् द्वारा उसी विषय पर सरकारी विधेयक पारित कर दिये जाने और 26 मार्च, 1992 को (1992 का अधिनियम 2) राष्ट्रपति द्वारा उसे अपनी अनुमति प्रदान कर दिये जाने पर 30 अप्रैल, 1992 को वापस ले लिया गया।[411]

विधेयक के प्रभारी सदस्य के सदन का सदस्य न रहने[412] या उसे मंत्री नियुक्त कर दिये जाने[413] पर भी सदन के समक्ष लंबित गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक को गैर-सरकारी सदस्यों को विधेयक-पंजी से निकाल दिया जाता है।

पूर्व में मंत्री के रूप में अपनी नियुक्ति पर प्रभारी सदस्य को उसके द्वारा पुर:स्थापित किये गये विधेयक को वापस लेने के लिए औपचारिक रूप से एक प्रस्ताव उपस्थित करना पड़ता था। तद्नुसार, उदाहरणार्थ, संबंधित मंत्रियों द्वारा 2 जून, 1967 और 28 दिसम्बर, 1990 को इस आशय के औपचारिक प्रस्ताव उपस्थित कर विधेयकों को वापस लिया गया था।[414] लेकिन 1995 में सभापति द्वारा जारी किये गये एक निदेश के पश्चात् दो गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा पुर:स्थापित किये गये 126 विधेयकों को उन्हें मंत्री नियुक्त कर दिये जाने के उपरांत पंजी से हटा दिया गया था।[415]

गैर-सरकारी सदस्यों के विधि में अधिनियमित विधेयक

दोनों सदनों में गैर-सरकारी सदस्यों की पहल पर अब तक चौदह विधेयक कानून-पुस्तिका का अंग बन चुके हैं; इनमें से पांच विधेयकों पर राज्य सभा में कार्यवाही आरंभ हुई और नौ विधेयकों पर लोक सभा में। उन विधेयकों के अतिरिक्त, राज्य सभा ने 5 अगस्त, 1977 को श्री त्रिलोकी सिंह द्वारा पुर:स्थापित किये गये अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, 1977 को भी 2 मार्च, 1979 को पारित किया था। उक्त विधेयक की सूचना लोक सभा को दी गयी थी और उसे 9 मार्च, 1979 को लोक सभा के पटल पर रख दिया गया था, जहां यह इस पर बिना कोई विचार हुए 22 अगस्त, 1979 को छठी लोक सभा भंग हो जाने के कारण व्यपगत हो गया।

राज्य सभा द्वारा पारित होने वाला गैर-सरकारी सदस्य का नवीनतम विधेयक विपरीत लिंगी व्यक्तियों के अधिकार विधेयक, 2014 है जो श्री तिरुची शिवा द्वारा 12 दिसम्बर, 2014 को राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया था और 24 अप्रैल, 2015 को पारित किया गया था।[416] विधेयक 29 अप्रैल, 2015 को लोक सभा के पटल पर रखा गया था[417] और यह वहां विचार तथा पारण के लिए लंबित है। यदि यह लोक सभा द्वारा पारित हो जाता है तो यह 1970 से अब तक ऐसा पहला गैर-सरकारी सदस्य का विधेयक होगा जो अधिनियम बनेगा।

नीचे दिए गए विवरण में चौदह विधेयकों का ब्यौरा दिया गया है।

गैर-सरकारी सदस्यों के अधिनियमित किए गए विधेयकों का विवरण

क्र. सं.	विधेयक का संक्षिप्त नाम	लोक सभा			राज्य सभा			अधिनियम संख्या / स्वीकृति की तिथि
		पुर:स्थापन (पु.)/ विचार (वि.)/ पारित (पा.) किए जाने की तिथि	विधेयक प्रस्तुत करने वाले सदस्य का नाम	प्रवर/संयुक्त समिति को भेजा गया अथवा नहीं	पुर:स्थापन (पु.)/ विचार (वि.)/ पारित (पा.) किए जाने की तिथि	विधेयक प्रस्तुत करने वाले सदस्य का नाम	प्रवर/संयुक्त समिति को भेजा गया अथवा नहीं	
1	2	3	4	5	6	7	8	9
1.	मुस्लिम वक्फ विधेयक, 1952	16.7.52 (पु.) 30.7.52 (वि.) 13.3.53 (वि.) 14.8.53 (वि.) 26.11.53 (वि.) 18.2.54 (वि.) 4.3.54 (वि.) 12.3.54 (वि. एवं पा.)	सैय्यद मोहम्मद अहमद काज़मी (कांग्रेस)	13.3.53 को प्रवर समिति को सौंपा गया	15.3.54 (सभापटल पर रखा गया) 23.4.54 (वि. एवं पा.)	श्री अख्तर हुसैन (कांग्रेस)	-	1954 का अधिनियम 29 21.5.54
2.	दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1953 (धारा 435 में संशोधन)	27.11.53 (पु.) 29.4.55 (वि.) 5.8.55 (वि.) 27.7.56 (वि. एवं पा.)	श्री रघुनाथ सिंह (कांग्रेस)	-	3.8.56 (सभापटल पर रखा गया) 10.8.56 (वि. एवं पा.)	श्री जे.एन. कौशल (कांग्रेस)	-	1956 का अधिनियम 39 1.9.56

1	2	3	4	5	6	7	8	9
3.	भारतीय पंजीकरण (संशोधन) विधेयक, 1955 (धारा 2 आदि में संशोधन)	16.9.55 (पु.) 16.12.55 (वि.) 15.3.56 (वि.) 23.3.56 (वि. एवं पा.)	श्री एस.सी. सामन्त (कांग्रेस)	-	19.12.55 (सभापटल पर रखा गया) 9.3.56 (वि. एवं पा.)	श्री पी.टी. लिऊवा (कांग्रेस)	-	1956 का अधिनियम 17 6.4.56
4.	विधान-मंडलों की कार्यवाही (प्रकाशन का संरक्षण) विधेयक, 1956 [विधेयक को लोक सभा द्वारा पारित कर दिए जाने पर शीर्षक को इस रूप में परिवर्तित कर दिया गया — "संसद् की कार्यवाही (प्रकाशन का संरक्षण) विधेयक, 1956"]	24.2.56 (पु.) 23.3.56 (वि.) 6.4.56 (वि.) 1.5.56 (वि.) 4.5.56 (वि. एवं पा.)	श्री फिरोज़ गांधी (कांग्रेस)	6.4.56 को प्रवर समिति को भेजा गया	7.5.56 (सभापटल पर रखा गया) 11.5.56 (वि. एवं पा.)	डॉ. सुब्बारायां (कांग्रेस)	-	1956 का अधिनियम 24 26.5.56
5.	स्त्री और बालक संस्था (अनुज्ञापन) विधेयक, 1954	26.2.54 (पु.) 10.8.56 (वि.) 24.8.56 (वि.) 25.8.56 (वि.) 30.11.56 (वि.) 7.12.56 (वि. एवं पा.)	राजमाता कमलेन्दु-मति शाह (निर्दलीय)	24.8.56 को प्रवर समिति को भेजा गया	10.12.56 (सभापटल पर रखा गया) 14.12.56 (वि. एवं पा.)	डा. श्रीमती सीता परमानन्द (कांग्रेस)	-	1956 का अधिनियम 105 30.12.56
6.	प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष (राष्ट्रीय महत्व की घोषणा) विधेयक, 1954	31.8.56 सभा पटल पर रखा गया) 7.12.56 (वि. एवं पा.)	श्री बलवंत सिंह मेहता (कांग्रेस)	-	3.12.54 (पु.) 17.12.54 (वि.) 24.8.56 (वि. एवं पा.)	डा. रघुवीर सिंह (कांग्रेस)	-	1956 का अधिनियम 70 15.12.56

7.	हिन्दू विवाह (संशोधन) विधेयक, 1956 (धारा 10 में संशोधन)	3.12.56 सभापटल पर रखा गया) 7.12.56 (वि. एवं पा.)	श्रीमती उमा नेहरू (कांग्रेस)	-	24.8.56 (पु.) 30.11.56 (वि. एवं पा.)	डा. श्रीमती सीता परमानंद (कांग्रेस)	-	1956 का अधिनियम 73 20.12.56
8.	दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1957 (धारा 198 में संशोधन)	20.12.57 (पु.) 11.9.59 (वि.) एवं पा.) 27.11.59 (वि. एवं पा.) 23.8.60 (वि. एवं पा.) 23.12.60 (वि. एवं पा.)	श्रीमती सुभद्रा जोशी (कांग्रेस)	-	7.12.59 (सभापटल पर रखा गया) 19.2.60 (वि.) 19.8.60 (वि. एवं पा.)	डा. श्रीमती सीता परमानंद (कांग्रेस)	-	1960 का अधिनियम 56 26.12.60
9.	अनाथालय और अन्य पूर्त आश्रम (पर्यवेक्षण और नियंत्रण) विधेयक, 1960	26.2.60 सभापटल पर रखा गया) 18.3.60 (वि. एवं पा.)	श्री दीवान चन्द शर्मा (कांग्रेस)	-	8.5.59 (पु.) 4.9.59 (वि.) 30.11.59 (वि. 19.2.60 (वि. एवं पा.)	श्री कैलाश बिहारी लाल (कांग्रेस)	4.9.59 को संयुक्त समिति को भेजा गया	1960 का अधिनियम 10 9.4.60
10.	समुद्री बीमा विधेयक, 1963 (राज्य सभा में भारतीय समुद्री बीमा विधेयक, 1959 के रूप में पुर:स्थापित किया गया)	14.3.63 सभापटल पर रखा गया) 5.4.63 (वि. एवं पा.)	श्री दीवान चन्द शर्मा (कांग्रेस)	-	20.2.59 (पु.) 17.8.62 (वि.) 8.3.63 (वि. एवं पा.)	श्री एम.पी. भार्गव (कांग्रेस)	17.8.62 को संयुक्त समिति को भेजा गया	1963 का अधिनियम 11 18.4.63
11.	हिन्दू विवाह (संशोधन) विधेयक, 1963	22.2.63 (पु.) 4.12.64 (वि. एवं पा.)	श्री दीवान चन्द शर्मा (कांग्रेस)	-	8.12.64 (सभापटल पर रखा गया) 11.12.64 (वि. एवं पा.)	श्री एम.पी. भार्गव (कांग्रेस)	-	1964 का अधिनियम 44 20.12.64

1	2	3	4	5	6	7	8	9
12.	संसद् सदस्य वेतन और भत्ता (संशोधन) विधेयक, 1964 (धारा 3 और 5 में संशोधन)	10.4.64 (पु.) 24.4.64 (वि. एवं पा.)	श्री रघुनाथ सिंह (कांग्रेस)	-	28.4.64 (सभापटल पर रखा गया) 8.5.64 (वि.) 18.9.64 (वि. एवं पा.)	श्री एम.पी. भार्गव (कांग्रेस)	-	1964 का अधिनियम 26 29.9.64
13.	भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1967 (धारा 292, 293 आदि में संशोधन)	20.12.67 (सभापटल पर रखा गया) 14.3.68 (वि.) 29.3.68 (वि.) 11.4.68 (वि.) 1.5.69 (वि.) 16.5.69 (वि.) एवं पा.)	श्री दीवान चन्द शर्मा (कांग्रेस)	11.4.68 को प्रवर समिति को भेजा गया	3.5.63 (पु.) 26.2.65 (वि.) 19.8.66 (वि.) 22.5.67 (वि.) 4.8.67 (वि.) 1.12.67 (वि.) 15.12.67 (वि. एवं पा.) 22.8.69 (वि. एवं पा.)	श्री दीवान चमन लाल (कांग्रेस)	-	1969 का अधिनियम 36 7.9.69
14.	उच्चतम न्यायालय की अपील (दांडिक) की अधिकारिता का विस्तारण विधेयक, 1968 [लोक सभा और राज्य सभा द्वारा पारित कर दिये जाने पर शीर्षक को इस रूप में परिवर्तित कर दिया गया - उच्चतम न्यायालय (दांडिक अपीली अधिकारिता विस्तारण) विधेयक, 1970]	15.11.68 (पु.) 3.4.69 (वि.) 18.4.69 (वि.) 17.11.69 (वि. 19.12.69 (वि. एवं पा.) 25.3.70 (वि. 31.7.70 (वि. एवं पा.)	श्री आनंद नारायण मुल्ला (निर्दलीय)	18.4.69 को प्रवर समिति को भेजा गया	22.12.69 (सभापटल पर रखा गया) 20.3.70 (वि. एवं पा.)	श्री एम.पी. भार्गव (कांग्रेस)	-	1970 का अधिनियम 28 9.8.70

संविधान संशोधन विधेयक

संविधान में संशोधन करने की संसद् की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 368 में संसद् को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान की गई है और इसकी प्रक्रिया को विनिर्दिष्ट किया गया है। गोलक नाथ मामले तक उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया था कि संसद् बिना किसी प्रकार के अपवाद[418] के संविधान के किसी भी उपबंध में संशोधन कर सकती है और यह संविधान के सभी उपबंधों[419] के संबंध में इस शक्ति का प्रयोग कर सकती है। तथापि, गोलक नाथ के मामले में न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि मौलिक अधिकार को "छीनने या उसे न्यून करने" वाला संविधान संशोधन अवैध होगा।[420] इस निर्णय से संसद् ने संविधान (चौबीसवां संशोधन) अधिनियम बनाया जिसमें स्पष्टत: यह घोषणा की गई थी कि संविधान के उपबंधों में संशोधन करने की संसद् की संविधायी शक्ति पर किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं होगा और किसी मौलिक अधिकार को छीनने या उसे न्यून करने को प्रतिबंधित करने वाला अनुच्छेद 13, अनुच्छेद 368 के अंतर्गत किये गये किसी संविधान संशोधन पर लागू नहीं होता है।[421]

केशवानन्द भारती मामले में,[422] उच्चतम न्यायालय ने गोलक नाथ मामले में दिये गये निर्णय की समीक्षा करते हुए अन्य बातों के साथ-साथ यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 संसद् को संविधान के मूल ढांचे या व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिए अधिकृत नहीं करता है। उच्चतम न्यायालय द्वारा इंदिरा नेहरू गांधी[423] मामले में संविधान के मूल ढांचे के सिद्धांत की पुन: अभिपुष्टि की गई और इसे लागू किया गया। मिनर्वा मिल्स[424] मामले में, न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि संविधान में संसद् को सीमित संशोधनकारी शक्ति प्रदान की गई है और इस तरह से सीमित संशोधनकारी शक्ति संविधान की एक मूलभूत विशेषता है। अत: संसद् अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान को निरस्त या निराकृत करने या इसकी मूल और अनिवार्य विशिष्टताओं को नष्ट करने के लिए स्वयं अधिकार प्राप्त करने हेतु अपनी संशोधनकारी शक्ति का विस्तार नहीं कर सकती है। न्यायालय ने बाद के मामलों में भी मूल ढांचे की इस धारणा को स्पष्ट किया है।[425]

अनुच्छेद 368 की विशेषताएं

संविधान में संशोधन करने की संसद् की शक्ति पर ऊपर वर्णित निर्बंधनों के अतिरिक्त, अनुच्छेद 368 के बारे में कुछ रुचिकर बातों का भी यहां उल्लेख किया जा रहा है।

(i) संसद् द्वारा संविधान में संशोधन करते समय अपनी साधारण विधायी शक्ति से भिन्न संविधायी शक्ति का प्रयोग किया जाता है;

(ii) किसी विधेयक को पुर:स्थापित करके ही किसी संशोधन की कार्यवाही आरंभ की जा सकती है;

(iii) ऐसे विधेयक को संसद् के किसी भी सदन में आरंभ किया जा सकता है;

(iv) इस तरह से आरंभ किये गये विधेयक को प्रत्येक सदन में उस सदन की कुल सदस्य-संख्या के बहुमत द्वारा तथा उस सदन के उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों से कम-से-कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित किया जाना चाहिए;

(v) प्रत्येक सदन में विशेष बहुमत की अनिवार्यता को देखते हुए किये जाने वाले किसी संशोधन पर दोनों सदनों में असहमति या किसी संविधान संशोधन विधेयक को एक सदन द्वारा पारित कर दिये जाने पर उसे दूसरे सदन द्वारा पारित नहीं किये जाने की स्थिति में संयुक्त बैठक के लिए कोई उपबंध नहीं है। ऐसी स्थिति में वह संशोधन या विधेयक यथास्थिति, विफल हो जाता है। जहां नीचे ऐसे दृष्टांत दिये गये हैं जिनमें एक सदन द्वारा पारित संविधान संशोधन विधेयकों को दूसरे सदन में अपेक्षित बहुमत प्राप्त नहीं हो सका था और इसलिए वे विधेयक विफल हो गये थे:

पूर्ववर्ती शासकों के विशेषाधिकारों की समाप्ति और उन्हें प्रदत्त राशि को बंद किये जाने के बारे में संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, 1970, लोक सभा द्वारा पारित रूप में, पर विचार करने के लिए उपस्थित किये गये प्रस्ताव पर राज्य सभा में 149 मत पक्ष में और 75 मत विरोध में दिये गये। अत: उक्त प्रस्ताव मत के मामूली अंतर या एक मत से विफल हो गया।

[$\frac{(149 + 75) \times 2}{3} = 149\frac{1}{3}$ मतों की आवश्यकता थी]

इसके परिणामस्वरूप उक्त विधेयक विफल हो गया।[426]

पंचायतों और नगरपालिकाओं के बारे में संविधान (चौंसठवां और पैंसठवां संशोधन) विधेयकों, 1989, लोक सभा द्वारा पारित रूप में, पर विचार करने के लिए उपस्थित किये गये प्रस्तावों पर राज्य सभा में 157 मत पक्ष में और 83 मत विरोध में दिये गये। अत: उक्त प्रस्ताव 3 मत से विफल रहे।

[$\frac{(157 + 83) \times 2}{3} = 160$ मतों की आवश्यकता थी]

परिणामस्वरूप उक्त विधेयक विफल हो गया।[427]

पंजाब में राष्ट्रपति शासन के संबंध में संविधान (चौसठवां संशोधन) विधेयक, 1990, राज्य सभा द्वारा पारित रूप में[428], पर विचार करने के लिए उपस्थित किये गये प्रस्ताव पर लोक सभा में 236 मत प्राप्त हुए जोकि उस सदन की कुल सदस्य संख्या[429] अर्थात् 545 से अपेक्षित बहुमत से कम थे। अत: उक्त विधेयक वहां विफल हो गया। एक नया विधेयक अर्थात् संविधान (पैंसठवां संशोधन) विधेयक, 1990 लोक सभा में पुर:स्थापित किया गया और उसे अपेक्षित बहुमत से पारित किया गया।[430] राज्य सभा ने 10 अप्रैल, 1990 को पहले सदन द्वारा किसी प्रस्ताव पर किये गये निर्णय पर उक्त प्रस्ताव की उसी सत्र में पुनरावृत्ति को वर्जित करने वाले नियम 228 को निलंबित करने के प्रस्ताव को स्वीकृत कर उक्त विधेयक पर विचार कर उसे पारित कर दिया।[431]

(vi) इस सदन द्वारा पारित कर दिये गये किसी संविधान संशोधन विधेयक को दूसरे सदन द्वारा अपेक्षित बहुमत से पारित नहीं किये जाने पर दूसरे सदन से भेजे गये संदेश द्वारा पहले सदन को तद्नुसार सूचित कर दिया जाता है।

पिछले पैराग्राफ में उल्लिखित संविधान (चौंसठवां संशोधन) विधेयक के मामले में राज्य सभा में उक्त विधेयक के बारे में जानने की इच्छा व्यक्त करते हुए कुछ सदस्यों ने एक मामला उठाया था।[432] लोक सभा से संदेश प्राप्त होने से पूर्व ही राज्य सभा स्थगित हो गई थी। अत: उक्त संदेश को संसदीय समाचार (बुलेटिन) के माध्यम से परिचालित किया गया था।[433]

(vii) विधेयक को पारित कर दिये जाने पर उसे राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसे विधेयक को अपनी अनुमति प्रदान करनी होती है। राष्ट्रपति ऐसे विधेयक को अपनी अनुमति देने से इंकार नहीं कर सकता है और न वह किसी साधारण विधेयक की तरह उस विधेयक को संसद् को लौटा ही सकता है।

लोक सभा सचिवालय द्वारा (विधि मंत्रालय के माध्यम से) पंजाब के संबंध में संविधान (उनसठवां संशोधन) विधेयक, 1988 राष्ट्रपति की अनुमति के लिए प्रस्तुत किया गया था। राजनीतिक दलों के नेताओं ने राष्ट्रपति से उक्त विधेयक को संसद् के पुनर्विचारार्थ लौटाने या इसे मामले को परामर्श हेतु उच्चतम न्यायालय को सौंपने का अनुरोध किया। राष्ट्रपति ने महान्यायवादी से परामर्श किया। महान्यायवादी की राय में संविधान में संशोधन संबंधी किसी मामले में इस अनुच्छेद के अंतर्गत राष्ट्रपति को कोई विवेकाधिकार प्रदान नहीं किया गया है।[434]

(viii) अनुच्छेद 368 के परन्तुक में उल्लिखित किसी उपबंध में परिवर्तन करने वाले संशोधन का कम-से-कम आधे राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन किया जाना चाहिए।

(ix) इस प्रकार का अनुसमर्थन राज्य विधान-मंडलों द्वारा पारित किये गये संकल्पों द्वारा किया जाना चाहिए।

(x) राज्य विधान-मंडलों द्वारा किसी संशोधनकारी विधेयक के अनुसमर्थन के लिए कोई विशिष्ट समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है, तथापि, संशोधनकारी विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए प्रस्तुत किये जाने से पूर्व ध्यान में रखा जाने वाला अनुसमर्थन कर दिया जाना चाहिए। विधेयक पर अपनी सहमति देने के बाद यदि राज्य विधान-मंडल इसका अनुसमर्थन करता है तो प्रथानुसार संकल्प की एक प्रति विधि मंत्रालय को भेजी जाती है।

(xi) केवल संसद् ही संविधान में संशोधन कर सकती है और इस संबंध में राज्यों की भूमिका अनुच्छेद 368 के परन्तुक में उल्लिखित कतिपय प्रकार के संशोधनों के अनुसमर्थन तक ही सीमित है।

राज्य सभा में पुर:स्थापित किये गये संविधान संशोधन विधेयक

किसी मंत्री या गैर-सरकारी सदस्य द्वारा संविधान संशोधन लाया जा सकता है। जहां तक संविधान में संशोधन करने वाले गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों का संबंध है, उन्हें प्राय: प्रत्येक सत्र में नियमों के अध्यधीन, दोनों सदनों में पुर:स्थापित किया जाता है। लेकिन अभी तक ऐसे किसी विधेयक को पारित नहीं किया गया है। जहां तक सरकारी विधेयकों का संबंध है, इस बात पर विचार किये बिना कि उन्हें किस वर्ष में पुर:स्थापित किया गया है, उनकी क्रमवर्ती संख्या उन्हें विशिष्ट पहचान प्रदान करती है। यह बात पारित किये जाने वाले और संसद् के अधिनियम बनने वाले विधेयकों पर भी लागू होती है। राज्य सभा में अब तक निम्नलिखित संविधान संशोधन विधेयक पुर:स्थापित किये गये हैं और पारित किये गये हैं:

संविधान (इक्कीसवां संशोधन) विधेयक, 1967 (सिंधी भाषा को आठवीं अनुसूची में सम्मिलित किया जाना), 20 मार्च, 1967 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (उनसठवां संशोधन) विधेयक, 1988 (पंजाब के संबंध में उद्घोषणा), 14 मार्च, 1988 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (बासठवां संशोधन) विधेयक, 1989 (लोक सभा में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों

और आंग्ल-भारतीय समुदाय के लिए आरक्षण जारी रखना), 20 दिसम्बर, 1989 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (छिहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1992, संविधान (सत्तरवां संशोधन) अधिनियम के रूप में अधिनियमित (राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए दिल्ली और पुदुचेरी संघ राज्य क्षेत्रों की विधान सभाओं के सदस्यों को निर्वाचक-मंडल में सम्मिलित किया जाना), 3 अप्रैल, 1992 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (इक्यासीवां संशोधन) विधेयक, 1994, संविधान (अठहत्तरवां संशोधन) अधिनियम के रूप में अधिनियमित (कतिपय राज्य अधिनियमों को नौवीं अनुसूची में शामिल किया जाना), 19 अप्रैल, 1994 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (पचासीवां संशोधन) विधेयक, 1994, संविधान (छिहत्तरवां संशोधन) अधिनियम के रूप में अधिनियमित (शैक्षिक संस्थानों आदि में स्थानों के आरक्षण के बारे में तमिलनाडु अधिनियम को नौवीं अनुसूची में शामिल किया जाना), 24 अगस्त, 1994 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (सतहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1995 (राज्य के अधीन सेवाओं में किसी श्रेणी या श्रेणियों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की पदोन्नति के मामलों में आरक्षण के संबंध में), 31 मई को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (अठहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1995 (नौवीं अनुसूची में कतिपय प्रविष्टियों को शामिल करना), 19 अप्रैल, 1994 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (उनासीवां संशोधन) विधेयक, 1999 (स्थानों के आरक्षण और विशेष प्रतिनिधित्व के लिए समय विस्तार हेतु), 26 अक्तूबर, 1999 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (अस्सीवां संशोधन) विधेयक, 2000 (राज्यों में लेवी और कर निर्धारण के बारे में), 9 मार्च, 2000 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (इक्यासीवां संशोधन) विधेयक, 2000 (उत्तरोत्तर वर्ष या वर्षों में आरक्षित रिक्तियों को भरने के लिए), 8 मई, 2000 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (बयासीवां संशोधन) विधेयक, 2000 (अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए किसी परीक्षा में अर्ह अंकों में छूट या मूल्यांकन के स्तर को कम करने का उपबंध) 23 दिसम्बर, 1999 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (तिरासीवां संशोधन) विधेयक, 2000 (अरुणाचल प्रदेश राज्य पर अनुच्छेद 243 के उपबंध लागू न होना) 17 दिसम्बर, 1999 को पुर:स्थापित किया गया; संविधान (पचानवेवां संशोधन) विधेयक, 2009 को (लोक सभा और राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण की समय-सीमा साठ वर्षों से बढ़ाकर सत्तर वर्ष करने हेतु) 30 जुलाई, 2009 को पुर:स्थापित किया गया था; संविधान (एक सौ आठवां संशोधन) विधेयक, 2008 (लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान करने हेतु) को 6 मई, 2008 को पुर:स्थापित किया गया और 9 मार्च, 2010 को पारित किया गया तथा संविधान (एक सौ सत्रहवां संशोधन विधेयक), 2012 (अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को प्रोन्नति में भूतलक्षी प्रभावी यानी 17 जून, 1995 से निर्बाध रूप से आरक्षण का प्रावधान करने हेतु) को 5 सितम्बर, 2012 को पुर:स्थापित किया गया और 17 दिसंबर, 2012 को पारित किया गया। न्यायिक नियुक्तियां आयोग के गठन का उपबंध करने वाले संविधान (एक सौ बीसवां संशोधन) विधेयक, 2013 को भी राज्य सभा द्वारा 5 सितंबर, 2013 को पारित किया गया।

ऊपर उल्लिखित विधेयकों के अतिरिक्त, राज्य सभा में सरकार द्वारा निम्नलिखित संविधान संशोधन विधेयक भी पुर:स्थापित किये गये थे, परन्तु उन्हें प्रत्येक विधेयक के समक्ष उल्लिखित कारणों से अधिनियमित नहीं किया जा सका:

संविधान (इकतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1975 (अनुच्छेद 361 के अंतर्गत प्रधान मंत्री को संरक्षण), 9 अगस्त, 1975 को पुर:स्थापित किया गया और उसी दिन पारित कर दिया गया और 5 जनवरी, 1976 को लोक सभा को भेज दिया गया; पांचवीं लोक सभा के भंग हो जाने पर यह व्यपगत हो गया।

संविधान (इकसठवां संशोधन) विधेयक, 1968 ('खेल-कूद' का राज्य सूची से समवर्ती सूची में अंतरण) 24 नवम्बर, 1988 को पुर:स्थापित किया गया। इस विधेयक को 3 दिसम्बर, 2009 को वापस लिया गया।

संविधान (चौसठवां संशोधन) विधेयक, 1990 (पंजाब के संबंध में उद्घोषणा का विस्तार) 27 मार्च, 1990 को पुर:स्थापित किया गया, 28 मार्च, 1990 को पारित किया गया और लोक सभा को भेज दिया गया; यह 30 मार्च, 1990 को वहां विफल हो गया।

संविधान (सत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1990 (संविधान के अनुच्छेद 324 का संशोधन) 30 मई, 1990 को पुर:स्थापित किया गया; इसे 13 जून, 1994 को वापस ले लिया गया, क्योंकि सरकार इस विधेयक पर कोई कार्यवाही नहीं करना चाहती थी।

संविधान (इकहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1990 (लोक सभा और राज्य विधान सभाओं में स्थानों का पुनर्समायोजन) 30 मई, 1990 को पुर:स्थापित किया गया, इसे 29 अप्रैल, 1992 को पारित कर दिया गया और 4 मई, 1992 को लोक सभा को भेज दिया गया; लोक सभा ने 7 मई, 1992 को विधेयक को एक प्रवर समिति को सौंप दिया; 13 जून, 1994 को राज्य सभा द्वारा दी गई सहमति से 14 जून, 1994 को विधेयक को वापस ले लिया गया।

संविधान (उनासीवां संशोधन) विधेयक, 1992 (जनसंख्या नियंत्रण और छोटा परिवार प्रतिमान) 22 दिसम्बर, 1992 को पुर:स्थापित किया गया; विभाग-संबंधित मानव संसाधन विकास संबंधी संसदीय स्थायी समिति को सौंप दिया गया; 22 मार्च, 1995 को समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया गया; यह राज्य सभा में लंबित है।

संविधान (तिरासीवां संशोधन) विधेयक, 1997, 28 जुलाई, 1997 को पुर:स्थापित किया गया; यह विधेयक 29 नवम्बर, 1997 को विभाग-संबंधित मानव संसाधन विकास संबंधी संसदीय स्थायी समिति को सौंप दिया गया; समिति का प्रतिवेदन 24 नवम्बर, 1997 को सौंपा गया; इस विधेयक को 27 नवंबर, 2001 को वापस लिया गया।

संशोधनों की श्रेणियां

संविधान में संशोधनों की तीन श्रेणियों का उपबंध किया गया है।[435] प्रथम श्रेणी में ऐसे संशोधन आते हैं जिन्हें संसद् द्वारा साधारण बहुमत से पारित विधि द्वारा प्रवृत्त किया जा सकता है। दूसरी श्रेणी में ऐसे संशोधन आते हैं जिन्हें संसद् द्वारा विनिर्दिष्ट 'विशेष बहुमत' से प्रवृत्त किया जा सकता है। तीसरी श्रेणी के संशोधनों को विशेष बहुमत से पारित कर दिये जाने के उपरांत उनका कम-से-कम आधे राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन किया जाना आवश्यक होता है। तथापि, इस श्रेणीकरण में 'संविधान के ऐसे असंख्य अनुच्छेदों'[436] को सम्मिलित नहीं किया गया है जोकि मामलों को संसद् द्वारा विधि द्वारा निपटाये जाने के लिए छोड़ देते हैं—उदाहरणार्थ, अनुच्छेद 11 के अंतर्गत नागरिकता प्रदान किया जाना—चूंकि ऐसी विधियों से संविधान के मूल स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अत: तीन श्रेणियों के अंतर्गत ही संशोधनकारी प्रक्रिया का यहां नीचे वर्णन किया गया है।

साधारण बहुमत से संशोधन

निम्नलिखित विषयों से संबंधित विधेयक को सामान्य विधेयक मानते हुए साधारण बहुमत से पारित किया जाता है — नये राज्यों का प्रवेश या उनकी स्थापना या नये राज्यों का गठन और विद्यमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन;[437] राज्यों में विधान परिषदों का सृजन या समाप्ति;[438] अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों का प्रशासन और नियंत्रण;[439] असम, मेघालय और मिज़ोरम राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन;[440] अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेशों में संशोधन।[441]

इस श्रेणी के संशोधन पर सामान्य विधायी प्रक्रिया लागू होती है। तथापि, इससे पूर्व कि संसद् ऐसे कुछ संशोधनों के बारे में विधान बनाये, संविधान में इस संबंध में कतिपय शर्तें विनिर्दिष्ट की गई हैं। उदाहरणार्थ, राष्ट्रपति की अनुशंसा और राष्ट्रपति द्वारा ऐसे विधेयक को विनिर्दिष्ट अवधि के अंदर संबंधित राज्य के विधान-मंडल को उस पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए भेजे जाने पर ही किसी नये राज्य आदि के गठन के लिए विधेयक संसद् के किसी सदन में पुरःस्थापित किया जा सकता है।[442] इसके अतिरिक्त, राज्यों में किसी विधान परिषद् की समाप्ति या सृजन के लिए संसद् अपनी कानून बनाने की शक्ति का उसी स्थिति में प्रयोग कर सकती है जबकि संबंधित राज्य की विधान सभा द्वारा विधान सभा में उपस्थित और मतदान करने वाले कम-से-कम दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से इस आशय का कोई संकल्प पारित किया गया हो।[443]

विशेष बहुमत से संशोधन

ऊपर उल्लिखित उपबंधों और अनुसूचियों के अतिरिक्त, जिन्हें साधारण बहुमत से संशोधित किया जा सकता है, संविधान के किसी अन्य उपबंध में संशोधन करने वाले विधेयक को संसद् के प्रत्येक सदन में विशेष बहुमत अर्थात् "उस सदन की कुल सदस्य-संख्या के बहुमत और सदन में उपस्थित और मतदान करने वाले कम-से-कम दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत" से पारित करना होता है। संविधान में वर्णित कुल सदस्य-संख्या से किन्हीं रिक्तियों या किसी कारण से अनुपस्थित सदस्यों पर विचार किये बिना उस सदन की कुल सदस्य-संख्या अभिप्रेत है।[444] किसी प्रश्न पर कराये गये मतदान के परिणाम की घोषणा करते समय तटस्थ रहने वालों (मतदान में भाग न लेने वाले सदस्यों) पर विचार नहीं किया जाता है।

> किसी संविधान संशोधन विधेयक पर मतदान के सम्बन्ध में किसी सदस्य ने यह इच्छा प्रकट की कि सभापति 'उपस्थित और मतदान करने वाले' अभिव्यक्ति की व्याख्या करें और यह भी सुनिश्चित करना चाहा कि क्या बहुमत का निर्णय करते समय मतदान में भाग नहीं लेने वाले सदस्यों की गणना भी की जायेगी। उपसभापति ने यह कहते हुए कि सामान्य अर्थों में मतदान से 'हां' वाले या 'ना' वाले अभिप्रेत हैं, अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि "यह बात सुस्थापित हो चुकी है कि किसी प्रश्न पर कराये गये मतदान के परिणाम की घोषणा करते समय "तटस्थ रहने वालों" (मतदान में भाग न लेने वाले सदस्यों) पर विचार नहीं किया जाता है। यदि कोई सदस्य 'इलैक्ट्रोनिक वोट रिकॉर्डर' के माध्यम से या मत-पर्चों पर या किसी भी अन्य तरीके से मतदान में भाग नहीं लेने की इच्छा व्यक्त करता है, तो वह सदन में मात्र अपनी उपस्थिति और मतदान में भाग न लेने की अपनी इच्छा ही प्रकट करता है। वह 'उपस्थित और मतदान करने वाले' वाक्यांश के अर्थान्तर्गत अपना मत दर्ज नहीं करता है। 'उपस्थित और मतदान करने वाले' अभिव्यक्ति 'हां' वाले या 'ना' वाले सदस्यों के लिए मत देने वाले सदस्यों से सम्बन्धित है न कि उनसे जो सदन में मात्र उपस्थित होते हैं और सदन के समक्ष किसी प्रश्न पर किये गये मतदान में न तो पक्ष में और न ही विरोध में मत देते हैं। विगत में भी इस सदन में यही परिपाटी रही है ताकि सदस्य जब कभी भी मतदान में भाग नहीं लें, तो मत-विभाजन के परिणाम की घोषणा के प्रयोजनार्थ उनकी गणना न की जाये। निर्वाचन में भी यदि कोई मतदान नहीं करता है, तो उसके मत की गणना नहीं की जाती है।"[445]

विशेष बहुमत और कतिपय विधेयकों का राज्य विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन किये जाने की शर्तों के अतिरिक्त, संविधान में संविधान संशोधन विधेयकों के संबंध में सदन में अपनायी

जाने वाली अन्य किसी प्रक्रिया को विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है। जैसीकि उच्चतम न्यायालय द्वारा टिप्पणी की गई है, "संसद् को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान करते समय इसके गठन का उपबंध करके और प्रत्येक सदन द्वारा बनाये जाने वाले नियमों (अनुच्छेद 118) के साथ-साथ इसके सामान्य विधायी कार्य के संचालनार्थ कतिपय प्रक्रिया विनिर्दिष्ट करके संविधान-निर्माताओं की यह मंशा रही होगी कि संसद् अनुच्छेद 368 के स्पष्ट उपबंधों के अनुरूप यथासंभव सीमा तक उक्त प्रक्रिया का पालन करे।"[446] तथापि, राज्य सभा के प्रक्रिया विषयक नियमों में ऐसे विधेयकों के संबंध में कोई विशेष उपबंध नहीं किये गये हैं और इसलिए अनुच्छेद 368 की अपेक्षाओं के अध्यधीन सामान्य विधेयकों संबंधी नियम ही लागू होते हैं।

> प्रारूप नियमों संबंधी समिति ने इस पर विचार किया कि क्या संविधान संशोधन विधेयकों संबंधी प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए विशेष नियम बनाये जाने चाहिए और वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि वर्तमान परिपाटी और प्रक्रिया संतोषप्रद रही है और इस प्रयोजनार्थ विशिष्ट उपबंध बनाया जाना अनावश्यक है।[447]

यद्यपि अनुच्छेद 368 की सही-सही व्याख्या करने पर किसी संविधान संशोधन विधेयक को पारित करने के लिए केवल अंतिम चरण में ही विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है, तथापि, परिपाटी के अनुरूप और अत्यधिक सावधानी बरतते हुए विधेयक के सभी प्रभावी चरणों में अर्थात् विधेयक पर विचार करने के प्रस्ताव को स्वीकार करने, खण्डों और अनुसूचियों को स्वीकार करने और विधेयक को पारित किये जाने के प्रस्ताव को स्वीकार करने में संवैधानिक अपेक्षा का पालन किया जाता है।

> 1951 में लोक सभा अध्यक्ष द्वारा लिखे गये एक पत्र के उत्तर में महान्यायवादी ने निम्नलिखित राय व्यक्त की थी:
>
> > "जब विधेयक को प्रत्येक सदन में पारित किया जाये" अभिव्यक्ति का संबंध विधेयक को अंतिम चरण में पारित किये जाने से है। अत: अनुच्छेद 368 के अंतर्गत जिस बहुमत पर बल दिया गया है वह केवल अंतिम चरण में होने वाले मतदान पर ही लागू होता है तथापि, सही दिशा में गलती करना और विधेयक को पारित किये जाने के सभी चरणों में अपेक्षित बहुमत पर बल देते हुए इसका कड़ाई से पालन किया जाना श्रेयस्कर है।[448]

तथापि, विधेयक को किसी प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपे जाने के किसी प्रस्ताव को साधारण बहुमत से पारित किया जा सकता है।

> क्रमश: 1954 और 1955 के संविधान के तीसरे और चौथे संशोधन विधेयकों को संयुक्त समितियों को सौंपे जाने के प्रस्तावों को पहले विशेष बहुमत से स्वीकृत किया गया था।[449] तथापि, बाद में प्रस्तावों को साधारण बहुमत से स्वीकृत किया गया था।[450]

किसी प्रस्ताव को विशेष बहुमत से पारित करने के लिए हमेशा मत-विभाजन कराया जाता है। सभापति मतदान के परिणाम की घोषणा करते समय इस बात का विशेष रूप से उल्लेख करता है कि प्रस्ताव विशेष बहुमत से स्वीकृत किया गया है। प्रत्येक खंड या

अनुसूची पर सभा में पृथक-पृथक मत लिया जाता है और उसे विशेष बहुमत से पारित किया जाता है। तथापि, सभापति सदन की सहमति से खंडों या अनुसूचियों के किसी समूह पर सदन में एक साथ मत ले सकता है।

11 सितम्बर, 1956 को संविधान (सातवां संशोधन) विधेयक, 1956 पर विचार करने के प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् उपसभापति ने उनतीस खंडों और एक अनुसूची वाले विधेयक पर, जिसमें यदि प्रत्येक खंड की पृथक-पृथक विशेष बहुमत से निपटाये जाने पर कम-से-कम तीस बार मत-विभाजन करना पड़ता, खंडश: विचार करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाये जाने की घोषणा की:

> ...मैं प्रस्ताव करता हूं कि पहले संशोधनों पर विचार किया जाये। हम सभी खंडों में सभी संशोधनों को निपटाने के बाद सदन का समय बचाने की दृष्टि से सभी खंडों पर एक साथ विचार करेंगे...किसी संशोधन को स्वीकार कर लिए जाने पर हम उस खंड पर भी मत लेंगे।

तद्नुसार, पहले संशोधनों को निपटाया गया, उन्हें या तो वापस ले लिया गया या फिर ध्वनि मत से अस्वीकृत कर दिया गया। सदस्यों के विचार जानने के पश्चात् उन्होंने खंड 6, 18 और 24 पर अलग-अलग और अन्य खंडों और अनुसूची पर एक साथ मत लिया। इस तरह से खंडों और अनुसूची के निपटान में सिर्फ चार बार मत-विभाजन कराना पड़ा; लेकिन मत-विभाजन के परिणाम को प्रत्येक खंड और अनुसूची पर पृथक-पृथक रूप से लागू किया गया।[451]

31 अगस्त, 1978 को संविधान (पैंतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1978 पर खण्डश: विचार आरंभ किये जाने से पूर्व सभापति ने उसके सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली निम्नलिखित प्रक्रिया की घोषणा की:

> ...किसी खंड विशेष पर विचार करते समय खंडों में संशोधनों को उपस्थित किया जा सकता है, उन पर विचार किया जा सकता है और उनका निपटान किया जा सकता है। यदि किसी संशोधन को साधारण बहुमत से स्वीकृत कर लिया जाता है, तो उस यथासंशोधित खंड विशेष पर तत्काल मत लिया जायेगा। यथासंशोधित खंड को स्वीकृत करने के लिए यथाविनिर्दिष्ट विशेष बहुमत आवश्यक होगा। यदि संशोधित खंड को विनिर्दिष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है, तो उस स्थिति में उस खंड विशेष को सदन द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाना समझा जायेगा। तत्पश्चात् ऐसे सभी खंडों पर, जिनके संबंध में कोई संशोधन नहीं है या जिनके संबंध में संशोधन स्वीकृत नहीं किये गए हैं; एक साथ मत लिया जायेगा। यदि कोई सदस्य किसी खंड विशेष पर पृथक से मत लिये जाने का आग्रह करता है, तो तद्नुसार उस खंड पर मतदान कराया जायेगा।[452]

सदन ने उक्त प्रक्रिया पर अपनी सहमति व्यक्त की।

विशेष बहुमत से संशोधन और राज्य विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन

यदि किसी संविधान संशोधन में राष्ट्रपति के निर्वाचन[453] या संघ या राज्यों[454] या उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों[455] की कार्यपालिका शक्ति के विस्तार या संघ और राज्यों[456] के मध्य विधायी शक्तियों के विभाजन या संसद् में राज्यों के प्रतिनिधित्व या संविधान में यथाविनिर्दिष्ट संशोधन प्रक्रिया[457] से संबंधित अनुच्छेदों में कोई परिवर्तन किया जाता है, तो उक्त संशोधन को विशेष बहुमत से पारित कर दिये जाने के पश्चात् ऐसे संशोधन के लिए उपबंध करने

वाले विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए प्रस्तुत किये जाने से पूर्व कम-से-कम आधे राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा इस आशय के संकल्प पारित करके उसका अनुसमर्थन किया जाना भी आवश्यक होता है। संविधान में राज्य विधान-मंडलों के पास भेजे गये संशोधनों के अनुसमर्थन के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है।

विधि मंत्रालय की इस बारे में हमेशा राय ली जाती है कि क्या किसी संशोधन विशेष का राज्य विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन किया जाना आवश्यक है। किसी मामले पर संदेह की स्थिति में सभापति महान्यायवादी की राय जानने के लिए उक्त मामले को उनके पास भेज सकते हैं।

> संविधान (पच्चीसवां संशोधन) विधेयक, 1971 अनुच्छेद 31 के संशोधनार्थ और नये अनुच्छेद 31-ग को जोड़े जाने के लिए प्रस्तुत किया गया। विधि और न्याय मंत्री ने सदन में यह वक्तव्य दिया कि यह प्रश्न किया गया है कि क्या विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए प्रस्तुत किये जाने से पूर्व विधेयक में प्रस्तावित संशोधनों का अनुच्छेद 368 के परंतुक के अंतर्गत राज्य विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन किया जाना आवश्यक है। इसके लिए यह तर्क दिया जा सकता है कि अनुच्छेद 31-ग के लिए प्रयुक्त की गई शब्दावली से न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में कुछ कमी हो जाती है और इसलिए इस अनुच्छेद का अनुसमर्थन किया जाना आवश्यक है। सरकार का यह दृष्टिकोण था कि इस प्रकार के अनुसमर्थन की आवश्यकता नहीं है। तथापि, संभावित कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से और अत्यधिक सावधानी बरतते हुए विधेयक को अनुसमर्थन के लिए राज्य विधान-मंडलों के पास भेजने का निर्णय किया गया।[458]

> संविधान (बासठवां संशोधन) विधेयक, 1988 लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिए निर्वाचन में मतदान की आयु 21 वर्ष से कम करके 18 वर्ष करने के लिए प्रस्तुत किया गया था। विधि मंत्रालय के परामर्श पर विधेयक को अनुसमर्थन के लिए राज्य विधान-मंडलों के पास भेजा गया। इसी दौरान एक सदस्य ने विशेष उल्लेख के माध्यम से सदन में यह मामला उठाते हुए यह तर्क दिया कि उक्त विधेयक का अनुसमर्थन किये जाने की आवश्यकता नहीं है।[459] बाद में एक सदस्य के सुझाव पर सभापति ने इस मामले पर महान्यायवादी की राय जानने हेतु इसे उनके पास भेज दिया जिन्होंने विधि मंत्रालय के विचार और विधेयक को राज्य विधान-मंडलों के पास अनुसमर्थन के लिए भेजने की अभिपुष्टि कर दी।[460]

संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, 1971 से पूर्व राज्यों द्वारा अनुसमर्थन संबंधी प्रक्रिया यह थी कि केन्द्रीय विधि मंत्रालय राज्य विधान-मंडलों का अनुसमर्थन प्राप्त कर तद्नुसार सचिवालय को सूचित कर देता था। 1969 में गोवा में हुए पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में यह निर्णय किया गया था कि "...विधान-मंडल से विधान-मंडल को संसूचना दी जानी चाहिए, चाहे यह राज्य सभा हो या लोक सभा, इसे सीधे राज्य विधान-मंडलों के पास भेजा जाना चाहिए और इसमें किसी भी मंत्रालय को शामिल नहीं किया जाना चाहिए।" इस मामले में तब से ही सचिवालय द्वारा राज्य विधान-मंडल के सचिवालयों को संसूचनाएं भेजी जाती हैं। संसद् के दोनों सदनों द्वारा यथापारित विधेयक की प्रति को अग्रेषित करते हुए उन्हें अनुसमर्थन के लिए निम्नलिखित सामान्य संकल्प प्रारूप का भी सुझाव दिया जाता है:

> यह सदन अनुच्छेद 368 के खंड (2) के परन्तुक के खंड...कार्यक्षेत्र के अंतर्गत संसद् के दोनों सदनों द्वारा यथापारित संविधान (संशोधन) विधेयक 20...द्वारा भारत के संविधान में किये जाने वाले संशोधन का अनुसमर्थन करता है।[461]

प्रस्तावित संशोधन का अपेक्षित संख्या में राज्य विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन कर दिये जाने के उपरांत विधेयक के संबंध में सभापति द्वारा हस्ताक्षरित निम्न पृष्ठांकन सहित विधेयक को विधि मंत्रालय के सचिव के माध्यम से राष्ट्रपति के पास उनकी अनुमति के लिए भेज दिया जाता है: "उपर्युक्त विधेयक को संविधान के अनुच्छेद 368 के उपबंधों के अनुरूप संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया गया है और इसका उक्त अनुच्छेद के खंड (2) के परन्तुक के अंतर्गत यथाअपेक्षित इस आशय के संकल्पों द्वारा कम-से-कम आधे राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन भी कर दिया गया है।" विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करते समय विधि मंत्रालय को टिप्पण के साथ संकल्पों की "जेरोक्स" प्रतियां भी भेजी जाती हैं।

अब तक अट्ठानवें संविधान संशोधनों में से उनतालीस संशोधनों के संबंध में ही विधेयकों को अनुसमर्थन के लिए राज्य विधान-मंडलों के पास भेजा गया है। ये विधेयक हैं: दूसरा, तीसरा, छठा, सातवां, आठवां, तेरहवां से सोलहवां, बाईसवां से पच्चीसवां, अट्ठाईसवां, तीसवां से बत्तीसवां, पैंतीसवां, छत्तीसवां, अड़तीसवां, उनतालीसवां, बयालीसवां से छियालीसवां, इक्यावनवां, बावनवां, चौवनवां, इकसठवां, बासठवां, सत्तरवां, तिहत्तरवां से पिचहत्तरवां, चौरासीवां, अट्ठासीवां, उन्यासीवां और पंचानवेवां।[462] जैसाकि पहले ही बताया जा चुका है, तेईसवें संशोधन तक विधि मंत्रालय अनुसमर्थन प्राप्त करता था। चवालीसवें, बासठवें और पचानवेवें संशोधनों के अतिरिक्त, जिनके संबंध में लोक सभा सचिवालय द्वारा अनुसमर्थन प्राप्त किया गया था, बाद के संशोधनों के संबंध में राज्य सभा सचिवालय द्वारा अनुसमर्थन प्राप्त किया गया था।

दल-परिवर्तन विरोधी विधि के रूप में विख्यात संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 का राज्य विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन नहीं किया गया था। उच्चतम न्यायालय द्वारा इस मुद्दे पर एक बार यह विचार किया गया था कि क्या अनुसमर्थन के अभाव में यह सम्पूर्ण संवैधानिक संशोधन दोषपूर्ण है। न्यायालय ने उक्त अधिनियम द्वारा अंत:स्थापित की गई दसवीं अनुसूची की वैधता को उचित ठहराया, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 136, 226 और 227 की पदावली और इनके प्रभाव में किये गये परिवर्तन के कारण इसके अनुसमर्थन के अभाव में इसके पैराग्राफ 7 को अवैध घोषित कर दिया। ऐसा करते समय बहुमत ने पैराग्राफ 7 को शेष अनुसूची से विभाज्य होना माना। तथापि, न्यायाधीशों के अल्पमत ने यह निर्णय दिया कि अनुसमर्थन के अभाव में यह सम्पूर्ण संवैधानिक संशोधन अधिनियम अविधिमान्य है।[463]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. उदाहरणार्थ देखिए मानवीय अंगों का प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 (1994 का 42) और पेटेंट (संशोधन) विधेयक, 1995। माध्यस्थम और संराधन अधिनियम, 1996 में एक से अधिक उद्देशिकाएं हैं
2. 1954 में अंगीकृत अधिनियमन सूत्र यह था "हमारे गणराज्य के....वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो; राज्य सभा वाद-विवाद, 6.5.1954, कॉलम 5291। संसद् के दोनों सदनों द्वारा यथापारित रूप में वर्तमान सूत्र सबसे पहले हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर (नया राज्य) विधेयक, 1954 में प्रयुक्त किया गया था

3. उदाहरणार्थ, देखिए 18.5.1995 को राज्य सभा में पुरःस्थापित दंड विधि संशोधन विधेयक, 1995 तथा 21.8.1995 को लोक सभा में पुरःस्थापित दंड विधि (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 1995। तथापि, संविधान संशोधन विधेयकों के संदर्भ में लघु शीर्षकों के अंतर्गत संख्याएं क्रमवर्ती रूप से दी जाती हैं
4. उदाहरणार्थ, देखिए मानवीय अंगों का प्रतिरोपण अधिनियम, 1994
5. उदाहरणार्थ, देखिए दंड विधि संशोधन विधेयक, 1995
6. साधारण खंड अधिनियम, 1897, धारा 5(1)
7. उदाहरणार्थ, देखिए संविधान (एक सौ सत्रहवां संशोधन) विधेयक, 2012
8. उदाहरणार्थ, देखिए लोक प्रतिनिधित्व (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 1994
9. उदाहरणार्थ, देखिए आवश्यक वस्तु (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1981 तथा आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप अधिनियम, 1995
10. उदाहरणार्थ, देखिए राष्ट्रीय डिजाइन संस्थान विधेयक, 2013
11. उदाहरणार्थ, देखिए वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958, धाराएं 357 और 390
12. साधारण खंड अधिनियम, 1897, धारा 6
13. उदाहरणार्थ, देखिए माध्यस्थम और संराधन विधेयक, 1995, उच्चतर शिक्षा और अनुसंधान विधेयक, 2011 और रानी लक्ष्मीबाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय विधेयक, 2012
14. बीमा विधि (संशोधन) विधेयक, 2008, सशस्त्र बल अधिकरण (संशोधन), 2012 तथा भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2012
15. नियम 62(1)
16. -वही- परंतुक
17. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.7.1982, कालम 226-27; फा. सं. संख्या 2/16/82-बी
18. नियम 65
19. विधेयकों को तैयार करने और पारित करने संबंधी ज्ञापन, विधि मंत्रालय (1958), पृष्ठ 12 (इसके पश्चात् ज्ञापन के रूप में उल्लिखित)
20. नियम 64
21. उदाहरणार्थ, देखिए वाणिज्य पोत परिवहन (संशोधन) विधेयक, 1993, 6.12.1993 को राज्य सभा में पुरःस्थापित रूप में
22. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 4.12.1953, कालम 1277-86
23. संविधान सभा (वि.) वाद-विवाद, 9.12.1947, पृष्ठ 1568
24. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.12.1956, कालम 2489-97
25. -वही- 4.9.1959, कालम 2968-69
26. -वही- 11.5.1963, कालम 3128-51; 30.8.1965, कालम 1924; 7.12.1965, कालम 4077-78; 1.6.1967, कालम 1740-42; 23.12.1968, कालम 5331; 23.1.1985, कालम 192-93; 19.3.1986, कालम 165-66 और 26.8.1987, कालम 265
27. -वही- 8.5.1986, कालम 223-81
28. -वही- 23.01.1985, कालम 191-93
29. अनुच्छेद 107(1)
30. अनुच्छेद 107(2)
31. ज्ञापन पृष्ठ 3
32. बक्शी, पी.एम., लेजिस्लेटिव प्रोसेस: आइडियल्स एंड रिऐलिटी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 23-24
33. -वही- पृष्ठ 26

34. ज्ञापन, पृष्ठ 4
35. -वही- पृष्ठ 5
36. -वही- पृष्ठ 5-13
37. वार्षिक प्रतिवेदन, संसदीय कार्य मंत्रालय, 1994-95, पृष्ठ 47
38. प्रक्रिया के प्रारूप नियम संबंधी समिति का प्रतिवेदन
39. फा. सं. आरएस 1/5/2014-बी
40. उदाहरणार्थ, देखिए हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर (नया राज्य) विधेयक, 1954 का प्रलेख-सार पृष्ठ और फाइल सं. सीएस/7/11/54-एल(बी)
41. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.12.1967, कालम 3587-88
42. नियम 61
43. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.3.1955, कालम 2716-17
44. संसदीय समाचार (2), 8.5.1952
45. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.8.1956, कालम 2115-17
46. -वही- 14.12.1956, कालम 2499-2501
47. -वही- 16.3.1956, कालम 2899
48. सभापति द्वारा निर्देश, संसदीय समाचार (2), दिनांक 8.11.2012
49. 28.8.1987 के लिए संशोधित कार्यावलि
50. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.8.1987 कालम 221-25
51. -वही- 13.5.1988, कालम 370-89
52. फा. सं. 1/28/95-बी और 1/42/95-बी
53. नियम 225
54. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.5.1989 कालम 322-25
55. -वही- 24.3.1972 कालम 104
56. -वही- 30.1.1976, कालम 100
57. -वही- 27.3.1990, कालम 239-41
58. नियम 67
59. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 28.7.1952, कालम 2102-07
60. -वही- 15.3.1954, कालम 2737-40
61. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.5.1982, कालम 242-49
62. -वही- 22.12.1983, कालम 283-85
63. -वही- 19.3.1986, कालम 159-66
64. -वही- 26.8.1987, कालम 263-75
65. -वही- 14.3.1988, कालम 253-302
66. संसदीय समाचार (1), 24.11.1988
67. -वही- 23.2.1994
68. -वही- 2.5.1994
69. -वही- 4.2.2004
70. नियम 68
71. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 4.8.1952, कालम 2847-48। तथापि औपचारिक पुर:स्थापन से पूर्व विशेष विवाह विधेयक, 1952 की प्रतियां उपलब्ध न कराने के संबंध में मंत्री की टिप्पणियों के लिए देखिए काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 28.7.1952, कालम 2106
72. फा. सं. सी.एस. 22(35)/52-एल(बी)

73. नियम 69
74. -वही- परंतुक
75. उदाहरणार्थ, 14 मार्च, 1988 को संविधान (उनसठवां संशोधन) विधेयक, 1988 पुर:स्थापित किया गया तथा उस पर तत्काल विचार आरंभ कर दिया गया और संविधान (पचासीवां संशोधन) विधेयक 24 अगस्त, 1994 को पुर:स्थापित किया गया और उसे उसी दिन पारित कर दिया गया; और 5 मई, 2010 को तमिलनाडु विधान परिषद् विधेयक, 2010 पुर:स्थापित किया गया और उसी दिन उसे पारित कर दिया गया
76. नियम 71
77. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.7.1967, कालम 130-34
78. -वही- 2.6.1995, संविधान (छियासीवां संशोधन) विधेयक, 1995 के संबंध में
79. -वही- 14.8.1989, कालम 73-96
80. नियम 70(2)
81. उदाहरणार्थ, देखिए लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, 2011 को प्रवर समिति को भेजे जाने के संबंध में 29.12.2011 और 21.5.2012 का संसदीय समाचार(1)
82. नियम 70(1)
83. उदाहरणार्थ, आवश्यक वस्तु (विशेष उपबंध) विधेयक, 1981 तथा चोर-बाज़ारी निवारण और आवश्यक वस्तु आपूर्ति अनुरक्षण (संशोधन) विधेयक, 1981 पर 23 अप्रैल, 1981 को एक साथ विचार किया गया; यान-हरण निवारण अधिनियम, 1982 तथा सिविल विमानन सुरक्षा विधि विरुद्ध कार्य दमन विधेयक, 1982 पर 2 नवंबर, 1982 को एक साथ विचार किया गया। इसी प्रकार विनियोग (रेल) संख्यांक 3 विधेयक, 2013, विनियोग (संख्यांक 3) विधेयक, 2013 और वित्त विधेयक, 2013, लोक सभा द्वारा यथापारित रूप में 2 मई, 2013 को विचार और पारण हेतु लिए गए
84. नियम 69(iv)
85. नियम 70(2)
86. -वही-
87. फा. सं. सी.एस. 22/14/52-एल(बी)
88. संसदीय समाचार (2), 17.2.1953
89. नियम 70(3)
90. संसदीय समाचार (1), 7.8.1952
91. -वही- 7.8.1952
92. -वही- 20.12.1952
93. -वही- 20.4.1953
94. आगे और भी नियम 72(1) और राज्य सभा वाद-विवाद, 25.1.1980, कालम 70-71
95. संसदीय समाचार (1), 7.8.1995 और 8.8.1995
96. नियम 72(2)। तथापि देखिए, राज्य सभा वाद-विवाद, 7.12.1971, कालम 19-20, 14.4.1972, कालम 119
97. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.9.1953, कालम 2502
98. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.6.1995, कालम 323
99. -वही- 2.3.1982, कालम 293-303
100. -वही- 2.8.1982, कालम 207-15
101. -वही- 11.12.1956, कालम 2104-06
102. संसदीय समाचार (1), 8.8.1995; संसदीय समाचार (2), 15.11.1995

103. अनुच्छेद 88, उदाहरणार्थ, सरदार एस.एस. मजीठिया, उप-रक्षा मंत्री तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद, शिक्षा मंत्री, जो लोक सभा के सदस्य थे, को क्रमश: छावनी (संशोधन) विधेयक, 1952 तथा बालक विधेयक, 1953 संबंधी राज्य सभा की प्रवर समिति का सदस्य बनाया गया; देखिए काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 6.12.1952, कालम 1013; और 19.12.1953, कालम 2953
104. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.3.1954, कालम 2886-88
105. राज्य सभा वाद-विवाद 16.2.1956, कालम 61-62
106. -वही- 2.5.1956, कालम 1031
107. -वही- 25.5.1957, कालम 1536
108. -वही- 29.8.1985, कालम 28-32 और 70-72
109. संसदीय समाचार (1), 23.12.2014 और 6.5.2015
110. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.8.1993, कालम 304-12
111. -वही- 2.6.1995; संसदीय समाचार (2), 15.11.1995
112. संसदीय समाचार (1), 16.9.1954 और 20.9.1954
113. -वही- 16.9.1963
114. -वही- 2.8.1982
115. -वही- 8.8.1995
116. संसदीय समाचार (1), 11.3.2015
117. -वही- 11.3.2015
118. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.9.1953, कालम 2551
119. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.9.1954, कालम 2417-21
120. -वही- 21.5.2012, पृष्ठ 395-397
121. काउंसिल ऑफ स्टेट्स 24.7.1952, कालम 1876
122. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.3.1982; 27.7.1982; 27.4.1988 और 7.1.1991
123. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 24.7.1952, कालम 1880-18, 81; तथापि, इस मसले के संबंध में क्रमश: उपाध्यक्ष तथा अध्यक्ष के विनिर्णयों हेतु लोक सभा वाद-विवाद, 17.12.1953, कालम 2427 और 30.4.1956, कालम 6744-51 भी देखिए
124. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 24.7.1952, कॉलम 1875-76
125. फा. सं. सी.एस./3/52-एल
126. संसदीय समाचार (1), 25.8.1954 और लोक सभा संसदीय समाचार (1), 8.12.1954; संसदीय समाचार (1), 10.12.1954 और 20.12.1954
127. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.9.1962, कालम 5809-10 और लोक सभा संसदीय समाचार (1), 7.9.1962
128. संसदीय समाचार (1), 13.5.1988
129. लोक सभा संसदीय समाचार (1), 13.9.1996; और संसदीय समाचार (2), 7.10.1996
130. नियम 270(ख) और 273
131. संसदीय समाचार (2), 8.9.1995
132. -वही- 26.8.1995 और 13.9.1995
133. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.8.1993, कालम 640-42; और संसदीय समाचार (2), 13.8.1993
134. संसदीय समाचार (2), 10.1.1994
135. संसदीय समाचार (1), 2.5.1994; और संसदीय समाचार (2), 9.6.1994
136. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.8.1994, कालम 379-419 और 23.8.1994, कालम 389-90; संसदीय समाचार (1), 23.8.1994 और संसदीय समाचार (2), 26.8.1994

137. नियम 273(ख)
138. संसदीय समाचार (2), 10.1.1994 और 1.3.1994
139. -वही- 18.5.1995
140. -वही- 22.10.1997
141. संसदीय समाचार (2), 10.6.1998
142. -वही- 30.7.1998
143. -वही- 7.12.1998
144. -वही- 10.12.1998
145. -वही- 21.1.2000
146. -वही- 30.5.2003
147. -वही- 19.12.2008
148. -वही- 13.5.2010
149. -वही- 13.05.2010
150. -वही- 19.03.2013
151. लोकपाल विधेयक, 2011 लोक सभा में 4 अगस्त, 2011 को पुर:स्थापित किया गया और कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय संबंधी विभाग संबंधित संसदीय स्थायी समिति को सौंपा गया जिसने 9 दिसंबर, 2011 को सभा में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। समिति की सिफारिशों के आधार पर लोकपाल विधेयक, 2011, 22 दिसंबर, 2011 को वापस ले लिया गया और 'लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, 2011' नाम से एक संशोधित विधेयक लोक सभा में पुन: पुर:स्थापित किया गया। 27 दिसंबर, 2011 को विधेयक कतिपय संशोधनों के साथ लोक सभा में पारित किया गया और राज्य सभा द्वारा उस पर विचार-विमर्श हेतु 29 दिसम्बर, 2011 को चर्चा के लिए लिया गया परंतु चर्चा समाप्त नहीं हुई। 21 मई, 2012 को राज्य सभा ने विधेयक को राज्य सभा की प्रवर समिति को सौंप दिया जिसने 23 नवंबर, 2013 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। अंतत: विधेयक राज्य सभा और लोक सभा द्वारा क्रमश: 17 और 18 दिसम्बर, 2013 को पारित कर दिया गया।
152. फा. सं. 5/1/96-13बी; संसदीय समाचार (2), 4.10.1996
153. नियम 93
154. नियम 94
155. नियम 93(2)
156. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.12.1968, कालम 2249-65
157. संसदीय समाचार (1), 19.3.2015
158. -वही- 20.3.2015
159. नियम 274(1) नियम 277 के साथ पठित
160. संसदीय समाचार (1), 25.8.1994
161. नियम 104
162. नियम 105
163. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 20.4.1953, कालम 3322-29 और 3402-03
164. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.8.1981, कालम 228-35
165. नियम 106
166. नियम 107
167. नियम 223
168. नियम 95
169. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.11.1957, कॉलम 164-69, 245-46 और 10.12.1971, कालम 44
170. नियम 96(i)

171. फा. सं. 1/1/81-बी और राज्य सभा वाद-विवाद, 24.8.1981
172. नियम 96(ii)
173. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.8.1971, कालम 240-41
174. नियम 96(iii)
175. नियम 96(iv)
176. नियम 96(v)
177. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.9.1956, कालम 4150-53 और 4177-78
178. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 20.4.1953, कालम 3329-61
179. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.12.1954, कालम 2657-60
180. -वही- 20.12.1957, कालम 3452-53; 18.2.1958, कालम 780-84 भी देखिए
181. नियम 97
182. नियम 98
183. संसदीय समाचार (2), 8.5.1989
184. आर एस 1/38/2010-बी
185. अनुच्छेद 117(1), परंतुक
186. अनुच्छेद 274(1)
187. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 24.11.1952, कालम 124
188. अनुच्छेद 117(1), परंतुक; राज्य सभा वाद-विवाद, 28.4.1961, कालम 1277 और 1.5.1961, कालम 1403-04
189. नियम 100
190. नियम 95(2)
191. नियम 225
192. नियम 95(1), परंतुक
193. नियम 99
194. नियम 96(v), परंतुक
195. नियम 101
196. आगे और भी नियम 229(2)
197. नियम 103
198. नियम 109
199. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.4.1977, कालम 221 और 265
200. नियम 109(2) और (3)
201. नियम 109(4)
202. नियम 110
203. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.6.1957, कालम 2728-33
204. नियम 108; उदाहरणार्थ, फा. सं. 1/68/88-बी और 1/12/92-बी
205. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 6.5.1954, कालम 5291
206. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.3.1956, कालम 1571
207. फा. सं. आरएस-1/62/2010-बी
208. नियम 117
209. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.8.1975, कालम 72-74
210. -वही- 24.12.1968, कालम 5542
211. -वही- 16.9.1963, कालम 4319-29
212. नियम 230(2)

213. नियम 118
214. नियम 118, परंतुक
215. -वही- द्वितीय परंतुक
216. संसदीय समाचार (1), 11.5.2015
217. लोक सभा नियम 110, द्वितीय परंतुक
218. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.5.1956, 27.7.1966, 17.11.1970, 28.7.1983, 25.2.1993, 1.3.1993 और 13.6.1994
219. फा. सं. 1/6/88-बी; 1/1/91-बी और 1/35/95-बी
220. नियम 119
221. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.8.1959, कालम 254-64; 27.7.1966, कालम 446-58 और 17.11.1970 कालम 168-69 भी देखिए
222. फा. सं. 1/35/95-बी; और राज्य सभा वाद-विवाद, 22.8.1995, कालम 368
223. नियम 120(1)
224. नियम 120(2)
225. नियम 185(3)
226. नियम 112
227. नियम 113
228. नियम 114(1)
229. नियम 114(2)
230. नियम 115
231. नियम 116
232. अनुच्छेद 108(1)
233. विस्तृत ब्यौरे के लिए देखिए ऊपर अध्याय-5
234. नियम 121
235. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.9.1970, कालम 33-43
236. संसदीय समाचार (2), 21.12.2012
237. नियम 122
238. नियम 123
239. सूचना के छोड़ दिए जाने के लिए देखिए फा. सं. 1/12/92-बी, नागरिकता (संशोधन) विधेयक, 1993 और फा. सं. 1/4/2013, दंड विधि (संशोधन) विधेयक, 2013 के संबंध में
240. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.12.1969, कालम 5859
241. -वही- 15.12.1977, कालम 180-87
242. -वही- 8.5.1986, कालम 280
243. -वही- 16.12.1987, कालम 78-93
244. नियम 124
245. नियम 125
246. नियम 126
247. नियम 127
248. नियम 128
249. संसदीय समाचार (1), 30.3.1990, 10.4.1990, 5.9.1990, 9.8.2000, 10.8.2000, 11.8.2000, 21.12.2011 और 19.12.2012
250. नियम 129
251. नियम 130

252. नियम 131(1)
253. नियम 131(2)
254. नियम 132
255. नियम 133
256. नियम 134
257. विस्तृत ब्यौरे के लिए देखिए ऊपर अध्याय-5 और राज्य सभा वाद-विवाद, 8.12.1977
258. अनुच्छेद 111; नियम 135
259. नियम 135, परंतुक उदाहरणार्थ, देखिए फा. सं. 6/9/93-बी
260. अनुच्छेद 111
261. -वही- परंतुक
262. -वही-
263. उदाहरणार्थ, संसदीय समाचार (2), 29.4.1977 एवं 8.7.1977
264. फा. सं. 1/3/91-बी
265. संसदीय समाचार (1), 9.3.1992
266. लोक सभा वाद-विवाद, 5.4.1954, कालम 4035
267. नियम 136
268. संसदीय समाचार (2), 10.1.1990
269. फा. सं. 1/51/68-बी
270. -वही-
271. अनुच्छेद 368
272. अनुच्छेद 110(1)
273. अनुच्छेद 110(2)
274. अनुच्छेद 110(3)
275. अनुच्छेद 110(4)
276. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 31.5.1952, कालम 910-15
277. -वही- 30.4.1953, कालम 4455-56
278. -वही- 6.5.1953, कालम 5040
279. नियम 109(1)
280. नियम 186(1)
281. नियम 186(4)
282. नियम 186(5)
283. नियम 186(6)
284. अनुच्छेद 109(2)
285. -वही-
286. अनुच्छेद 109(3)
287. अनुच्छेद 109(4)
288. संसदीय समाचार (1), 27.4.1956
289. -वही- 19.12.1957
290. -वही- 4.9.1961
291. -वही- 30.1.1985
292. -वही- 28.7.1977
293. -वही- 9.5.1978
294. -वही- 3.5.1956, 21.12.1957, 8.9.1961, 3.8.1977, 11.5.1978; और 31.1.1985

295. अनुच्छेद 109(5)
296. अनुच्छेद 109(2)
297. अनुच्छेद 367
298. लोक सभा वाद-विवाद, 1.8.1995, कालम 8950-53; संसदीय समाचार (1), 16.8.1955
299. कौल और शकधर, पृष्ठ 473, पाद टिप्पण (फुटनोट) 19
300. संसदीय समाचार (1), 12.3.1996
301. संसदीय समाचार (2), 12.3.1996
302. संसदीय समाचार (1), 12.6.1998
303. -वही- 15.3.1999
304. -वही- 18.3.1999
305. -वही- 8.5.2000
306. -वही- 11.5.2000
307. -वही- 1.8.2002
308. -वही- 12.8.2002
309. संसदीय समाचार (2), 11.2.2009
310. अनुच्छेद 110(4)
311. उदाहरणार्थ, भारत की आकस्मिकता निधि (संशोधन) विधेयक, 1994, संसद् के सदनों द्वारा पारित रूप में और सर्वोच्च न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) संशोधन विधेयक, 2008
312. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.4.1961, कॉलम 900-02
313. नियम 186(7)
314. नियम 186(8)
315. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.3.1978, कालम 176-85
316. -वही- 5.5.1978, कालम 164-76
317. फा. सं. 2/14/77-बी
318. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.7.1978, कालम 190-91
319. अनुच्छेद 117(1)
320. -वही-
321. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.4.1961, कालम 1273-77
322. -वही- 1.5.1961, कालम 1403-04
323. अनुच्छेद 117(3)
324. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.12.1980, कालम 207
325. -वही- 24.12.1980, कालम 256-66
326. -वही- 18.3.1981, कालम 283-90
327. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.9.1953, कालम 2501
328. फा. सं. 1/31/91-बी
329. नियम 185(1)
330. नियम 185(2)
331. नियम 185(3)
332. नियम 185(4)
333. फा. सं. 1/3/91-बी
334. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.5.1956, कालम 3562-64
335. -वही- 16.9.1963, कालम 4260-4340
336. -वही- 26.8.1968, कालम 4530

337. अनुच्छेद 123(1)
338. अनुच्छेद 123(2)
339. उदाहरणार्थ, नागालैंड राज्य (संशोधन) अध्यादेश, 1981 राज्य सभा में 19.2.1981 को पुर:स्थापित किया गया उक्त विषय संबंधी विधेयक के संबंध में प्रख्यापित किया गया था। अध्यादेश राज्य सभापटल पर 18.8.1981 को रखा गया था
340. उदाहरणार्थ, रुग्ण कपड़ा उपक्रम (राष्ट्रीयकरण) संशोधन अध्यादेश, 1995 और केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल (संशोधन) अध्यादेश, 2009
341. उदाहरणार्थ, निक्षेपागार अध्यादेश, 1996, उक्त विषयक विधेयक लोक सभा द्वारा पारित कर दिया गया है और राज्य सभा में लंबित है
342. उदाहरणार्थ, लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अध्यादेश, 1985, जिसके स्थान पर कोई विधेयक पुर:स्थापित नहीं किया गया
343. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.11.1971, कालम 193-98
344. -वही- 17.11.1980, कालम 217-30
345. -वही- 6.11.1987, कालम 237-42
346. अनुच्छेद 123(2)
347. नियम 66(2)
348. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.8.1981, कालम 320-46 और 26.8.1981, कालम 139-49
349. -वही- 8.9.1981, कालम 221-23
350. नियम 66(1)
351. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.2.1995
352. तथापि, देखिए, राज्य सभा वाद-विवाद, 23.6.1971, कालम 45-47 और 24.6.1971, जब निरनुमोदन संकल्प तथा आंतरिक सुरक्षा अध्यादेश, 1971 संबंधी विधेयक पर पृथक-पृथक चर्चा की गई थी और राज्य सभा वाद-विवाद, 8.12.1977, जब बैंककारी सेवा आयोग (उत्सादन) विधेयक, 1977 के संबंध में निरनुमोदन संकल्प और प्रस्ताव पर अलग-अलग मतदान कराया गया था
353. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.8.1991, कालम 181
354. -वही- 18.8.1958, कालम 98-110
355. नियम 62(1) और (3)
356. नियम 62(1)
357. संसदीय समाचार (2), 2.5.1997
358. नियम 25(1)
359. नियम 25(2)
360. नियम 25(3)
361. नियम 25(3), प्रथम परंतुक और नियम 29(4)
362. संसदीय समाचार (2), 2.5.1997
363. नियम 25(3), द्वितीय परंतुक
364. संसदीय समाचार (2), 12.11.2014
365. नियम समिति का चौथा प्रतिवेदन, (14.5.1986 को अंगीकृत), पृष्ठ 1-2
366. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 28.4.1969
367. नियम 25(2)(क)
368. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.12.1990, कालम 285-90 और कार्यावलि 30.4.1992
369. संसदीय समाचार (1), 24.8.1956

370. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.11.1968, कालम 2016-17
371. -वही- 30.7.1993, कालम 364-71
372. संसदीय समाचार (1), 13.8.1993
373. -वही- 9.7.2004
374. -वही- 3.12.2004
375. -वही- 24.11.2006
376. नियम 25(3) और तृतीय परंतुक
377. उदाहरणार्थ, संसदीय समाचार (2), 20.2.1996
378. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 4.12.1953, कालम 1286, 1304 और 1351
379. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.8.1995, कालम 316
380. राज्य सभा वाद-विवाद; देश में विदेशी राष्ट्रिकों का आगमन निवारण विधेयक, 1991, 12.8.1994, कालम 266-67 और बोनस संदाय (संशोधन) विधेयक, 2012; और राज्य सभा वाद-विवाद, 22.2.2013, कालम 108-110
381. उदाहरणार्थ, संसदीय समाचार (2), 1.5.2013
382. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.12.1954, कालम 2433-34
383. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 4.12.1953, कालम, 1304-22
384. -वही- 5.3.1954, कालम 1809-10
385. फा. सं. 2/36/91-बी
386. फा. सं. 2/18/92-बी
387. संसदीय समाचार (2) सं. 36268, 2.5.1997
388. नियम 28(1)
389. नियम 28(2)
390. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.12.1954, कालम 2513-15
391. -वही- 23.8.1963, कालम 1289
392. -वही- 18.8.1967, कालम 4918
393. -वही- 29.11.1968, कालम 1995
394. -वही- 30.11.1956
395. -वही- 30.8.1957
396. -वही- 21.8.1959
397. -वही- 13.12.1963
398. -वही- 26.2.1965
399. -वही- 4.3.1966
400. -वही- 14.3.1969
401. -वही- 23.2.1968
402. -वही- 7.8.1970
403. -वही- 21.8.1959
404. -वही- 17.8.1962 और 19.3.1966
405. -वही- 28.3.1969
406. -वही- 20.3.1970 और 26.3.1971
407. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 4.12.1953, कालम 1277-86
408. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.9.1963, कालम 3113
409. नियम 120
410. फा. सं. 2/1/87-बी

411. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.4.1992, कालम 309-10 और फा. सं. 2/65/91-बी
412. नियम 120(3)
413. संसदीय समाचार (2) 23.11.1995 में प्रकाशित सभापीठ का निदेश, (संख्या 35373)
414. -वही-
415. संसदीय समाचार (2), 27.11.1995
416. -वही- 12.12.2004 और 24.4.2015
417. -वही- 29.4.2015
418. शंकरी प्रसाद सिंह देव बनाम भारत का संघ, एआईआर 1951, उच्चतम न्यायालय 458
419. सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर 1965, उच्चतम न्यायालय 845
420. एल.सी. गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1967, उच्चतम न्यायालय 1643
421. खंड (3) और (5)
422. संत केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, एआईआर 1973, उच्चतम न्यायालय 1461
423. श्रीमती इन्दिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण, एआईआर 1975, उच्चतम न्यायालय 2299
424. मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत का संघ, एआईआर 1980, उच्चतम न्यायालय 1789
425. वामन राव बनाम भारत का संघ, एआईआर 1981, उच्चतम न्यायालय 271; भीम सिंहजी बनाम भारत का संघ, एआईआर 1981, उच्चतम न्यायालय 234; एस.पी. गुप्ता बनाम भारत का राष्ट्रपति, एआईआर 1982, उच्चतम न्यायालय 149; एस.पी. सम्पत कुमार बनाम भारत का संघ, एआईआर 1987, उच्चतम न्यायालय 386; पी. सांबामूर्ति बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 1987, उच्चतम न्यायालय 663; किहोता होल्लोहोन बनाम जचिल्हु और अन्य, एआईआर 1993, उच्चतम न्यायालय 412; एस.आर. बोम्मई बनाम भारत का संघ, एआईआर, 1994 उच्चतम न्यायालय 1918
426. संसदीय समाचार (1), 5.9.1970
427. -वही- 13.10.1989
428. -वही- 28.3.1990
429. लोक सभा संसदीय समाचार (1), 30.3.1990
430. -वही- 5.4.1990
431. संसदीय समाचार (1), 10.4.1990
432. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.3.1990, कालम 306-15
433. संसदीय समाचार (2), 4.4.1990
434. आर. वेंकटरामन, "माई प्रेज़िडेंशियल इअर्स", पृष्ठ 142-47
435. शंकरी प्रसाद सिंह देव बनाम भारत का संघ, एआईआर 1951, उच्चतम न्यायालय 458
436. संविधान सभा वाद-विवाद, खंड-IX, 17.9.1949, पृष्ठ 1660
437. अनुच्छेद 2-4
438. अनुच्छेद 169
439. संविधान की पांचवीं अनुसूची, पैरा 7
440. संविधान की छठी अनुसूची, पैरा 21
441. अनुच्छेद 341 और 342
442. अनुच्छेद 3
443. अनुच्छेद 169(1)
444. कौल और शकधर, पृष्ठ 542, पाद-टिप्पण (फुटनोट) 463
445. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.10.1989, कालम 178-79
446. शंकरी प्रसाद सिंह देव बनाम भारत का संघ, एआईआर 1951, उच्चतम न्यायालय 458
447. प्रारूप प्रक्रिया नियम संबंधी समिति का प्रतिवेदन, पृष्ठ-viii

448. कौल और शकधर, पूर्वोक्त
449. संसदीय समाचार (1), 16.9.1954 और 19.3.1995
450. -वही- 2.5.1956, 16.5.1956, 12.12.1962, 25.1.1963 और 21.12.1991
451. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.9.1956, कालम 4147 और 4201-19
452. -वही- 31.8.1978, कालम 107
453. अनुच्छेद 54 और 55
454. अनुच्छेद 73 और 162
455. अनुच्छेद 241, भाग-V का अध्याय-IV और भाग-VI का अध्याय-V
456. भाग-XI का अध्याय-I और 7वीं अनुसूची
457. अनुच्छेद 368
458. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.12.1971, कालम 18-19
459. -वही- 19.12.1988, कालम 8-15
460. फा. सं. 1/67/88-बी
461. फा. सं. 1/28/92-बी
462. राज्य सभा सचिवालय द्वारा अनुरक्षित संविधान फाइल रिकॉर्ड से
463. किहोता होल्लोहोन बनाम जचिल्हु और अन्य, पूर्वोक्त

अध्याय-22

संकल्प

संसद् में अधिकांश कार्य प्रस्तावों के जरिए किया जाता है। किसी विषय पर विचार-विमर्श हो जाने के बाद प्रस्ताव पर सभा में मतदान कराया जाता है जिसे तकनीकी तौर पर मतदान लेना कहा जाता है। "इस प्रकार मतदान के निर्णय से प्राप्त निष्कर्ष प्रस्ताव को, एक संकल्प अथवा आदेश का रूप दे देता है।"[1] प्रत्येक मतदान जब उस पर सहमति हो जाये तो, वह सभा के आदेश अथवा संकल्प का रूप धारण कर लेता है। सभा अपने संकल्पों के माध्यम से अपनी राय और अपने प्रयोजनों की घोषणा करती है।[2]

कोई भी सदस्य, नियमों के अधीन, सामान्य जनहित के मामले से सम्बन्धित संकल्प राज्य सभा में प्रस्तुत कर सकता है।[3] संकल्पों को इस प्रकार से श्रेणीबद्ध किया जा सकता है : (i) गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प अर्थात् वे संकल्प जो नियत दिन मंत्री के अलावा राज्य सभा के सदस्य द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं (ii) सरकारी संकल्प अर्थात वे संकल्प जो मंत्रियों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं (iii) परिनियत संकल्प अर्थात वे संकल्प जो संविधान में निहित उपबंध अथवा संसद् के अधिनियम का पालन करते हुए प्रस्तुत किये जाते हैं।

क. गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प

सूचना और लॉटरी का निकाला जाना

जब तक सभापति द्वारा अन्यथा निर्देश न दिया जाये, शुक्रवार को होने वाली बैठक में अढ़ाई घंटे से अन्यून समय गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए आवंटित किया जाता है।[4] गैर-सरकारी संकल्पों और विधेयकों के लिए वैकल्पिक शुक्रवार आवंटित किए जाते हैं। गैर-सरकारी सदस्य अर्थात् मंत्री [5] के अतिरिक्त कोई सदस्य, जो गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए नियत दिन संकल्प उपस्थित करना चाहता है, इस आशय की सूचना लॉटरी निकालने की तिथि से कम से कम दो दिन पूर्व देगा।[6]

> पचपनवें सत्र (1966) तक यह प्रक्रिया थी कि सदस्य आवंटित दिनों के लिए संकल्पों की सूचना निर्धारित समय-सीमा के भीतर दिया करते थे और जो संकल्प गृहीत कर लिए जाते थे उन्हें संसदीय समाचार में अधिसूचित किया जाता था और सत्र के दौरान आवंटित दिनों की कार्यावलि में शामिल करने के लिए उनमें से पांच संकल्पों का चयन करने की दृष्टि से लॉटरी निकाली जाती थी। वर्तमान प्रक्रिया उस सत्र से प्रारंभ की गई थी।[7] तथापि, नई परिपाटी को शामिल करने के लिए नियम समिति की सिफारिश पर नियम 154 का बाद में संशोधन किया गया।[8]

नियत दिन [9] के लिए उन सभी सदस्यों के नामों की लॉटरी निकाली जाती है जिनसे इस प्रकार की सूचनायें प्राप्त होती हैं और वे सदस्य जिन्हें लॉटरी में पहले पांच स्थान प्राप्त होते हैं लॉटरी निकालने की तिथि से दस दिन के अन्दर एक-एक संकल्प की सूचना देने के पात्र होते हैं।[10] प्रत्येक नियत दिन के लिए अलग से लॉटरी निकाली जाती है। लॉटरी निकालने की तिथि और समय सत्रारम्भ से पूर्व संसदीय समाचार भाग-2 में अधिसूचित किये जाते हैं। परिपाटी के अनुसार, संकल्प रखने के लिए पात्र सदस्यों के नामों का सामान्यत: नियत दिन से इक्कीस दिन से पूर्व बैलट किया जाता है। तथापि, आमंत्रण जारी किये जाने की तिथि और नियत दिन

में समय का अंतराल यदि इक्कीस दिन से कम हो तो लॉटरी निकालने की तिथि पहले कर दी जायेगी।

> उदाहरण के लिए अस्सीवां सत्र 8 मई, 1972 को प्रारम्भ हुआ था और सदस्यों को आमंत्रण 18 अप्रैल, 1972 को भेजे गए थे। 12 मई, 1972 के नियत दिन के लिए लॉटरी निकालने की तिथि 21 अप्रैल, 1972 के स्थान पर 25 अप्रैल, 1972 अर्थात् आमंत्रण जारी करने के एक सप्ताह बाद, निर्धारित की गई थी।[11]

रूप

संकल्प सभा द्वारा सम्मति की घोषणा के रूप में या ऐसे अन्य रूप में हो सकता है जिसे सभापति उपयुक्त समझें, जैसाकि, किसी स्थिति पर चिन्ता की अभिव्यक्ति के रूप में[13], किसी नीति के उलटने, परिवर्तन करने, पुनरीक्षा करने, पुन: प्रतिपादन करने के आग्रह के रूप में,[14] किसी विधान अथवा संविधान संशोधन के लिए आग्रह के रूप में[15] अथवा लोकहित के मामले की ओर शीघ्र ध्यान आकर्षित करते हुए[16] अथवा किसी विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से अपील करते हुए[17] आदि।

ग्राह्यता की शर्तें

कोई संकल्प ग्राह्य हो सके, इसके लिए संकल्प (1) स्पष्टत: तथा यथार्थत: अभिव्यक्त किया जाना चाहिए[18], (2) उसमें सारवान रूप से एक निश्चित मुद्दा उठाया जाना चाहिए[19] । (3) उसमें तर्क, अनुज्ञान, व्यंग्यात्मक पद, अभ्यारोप या मानहानिकारक कथन नहीं होने चाहिए,[20] (4) उसमें व्यक्तियों को पदेन अथवा लोक हैसियत के अतिरिक्त उनके आचरण या चरित्र का उल्लेख नहीं होना चाहिए;[21] और (5) वह किसी ऐसे मामले से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए जो भारत के किसी भाग में क्षेत्राधिकार रखने वाले किसी न्यायालय के न्याय-निर्णयाधीन हो।[22]

> संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन नौ राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए 17 फरवरी, 1980 को जारी की गई उद्घोषणाओं का प्रतिसंहरण करने का अनुरोध करते हुए एक सदस्य ने संकल्प की सूचना दी। सभापति की जानकारी में यह बात लाई गई कि उद्घोषणाओं को चुनौती देने के लिए अनेक याचिकायें उच्च न्यायालयों में लम्बित हैं। सभापति ने अपने कक्ष में सभा के नेता सहित विभिन्न समूहों के नेताओं तथा अन्य सदस्यों के विचार सुने। सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्न व्यवस्था देते हुए संकल्प को ग्राह्य करने से इंकार कर दिया :
>
> > यह असंभाव्य है कि संकल्प के कारण सभा में इसी प्रकार के मामलों की विस्तृत चर्चा नहीं होगी। यद्यपि इस प्रकार का संकल्प राष्ट्रपति की उद्घोषणा का अनुमोदन या निरनुमोदन नहीं करता, इसमें वही आधार शामिल किये जायेंगे जोकि याचिकाओं में शामिल किए गये हैं। इस तथ्य के अतिरिक्त कि यदि वह संकल्प पारित हो जाता है तो यह उस सामान्य प्रक्रिया को प्रभावित नहीं करता है जिनकी संविधान में परिकल्पना की गई है। यह प्रत्यक्षत: उन आधारों को चर्चा के लिए सभा में लाने का प्रयास है जिन पर याचिकायें आधारित हैं। वस्तुत: यह नियम 157 के उप-नियम (v) के अन्तर्गत मामले का सार है जिसे सभा ने अपने और न्यायालयों के बीच में शिष्टाचार के विषय के रूप में स्वयं निर्मित किया है। संकल्प को ग्राह्य करना इस प्रकार बनाये गये शिष्टाचार का उल्लंघन होगा।[23]

जो संकल्प पीठासीन अधिकारी के प्रशासनिक क्षेत्राधिकार में हो, वह भी ग्राह्य नहीं किया जाता है। तथापि, इस प्रकार के उदाहरण हैं जब सामान्य किस्म के संकल्प, यद्यपि वे मूलत: या परोक्षत: ऐसे क्षेत्राधिकार में आते हों, ग्राह्य किए गए हैं और उपस्थित किए गए हैं।

संसद् के कर्मचारियों सहित, सभी वर्गों के सरकारी कर्मचारियों की भर्ती, प्रोन्नति और सेवा-शर्तों को विनियमित करने के लिए कानून बनाने की आवश्यकता के सम्बन्ध में एक संकल्प उपस्थित किया गया था और उस पर चर्चा की गई थी। तथापि, सभा की अनुमति से यह संकल्प वापस ले लिया गया था।[24]

एक अन्य संकल्प संसद् की कार्यवाही को दूरदर्शन पर दिखाये जाने के सम्बन्ध में उपस्थित किया गया था। इस संकल्प को अन्तत: वापस ले लिया गया था। तथापि, सरकार ने आश्वासन दिया कि प्रस्ताव में समाविष्ट मुद्दों और समस्याओं को लोक सभा और राज्य सभा की सामान्य प्रयोजन समिति के समक्ष रखा जाएगा।[25]

सभा में कोई संकल्प उपस्थित किए जाने के बाद तात्विक रूप से उसी विषय को उठाने वाला संकल्प या संशोधन पूर्व संकल्प उपस्थित होने की तिथि से एक वर्ष के भीतर उपस्थित नहीं किया जा सकता है।[26] यदि कोई संकल्प सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया है या वापस ले लिया गया समझा गया है तो तात्विक रूप से उसी विषय को उठाने वाला कोई संकल्प उसी सत्र के दौरान उपस्थित नहीं किया जा सकता।[27] किसी संकल्प में तात्विक रूप से वैसा ही विषय भी नहीं उठाया जाना चाहिये जिस पर सभा उसी सत्र में पहले ही निर्णय दे चुकी है।[28]

सभापति इस बात का निर्णय करता है कि क्या कोई संकल्प अथवा उसका कोई भाग नियमों के अधीन ग्राह्य है या नहीं है और सभापति संकल्प अथवा उसके किसी भाग को यदि उनकी राय में नियमों के अनुरूप न हो तो अस्वीकार कर सकता है।[29] सदस्य द्वारा जिस संकल्प की सूचना दी गई है, उसकी संवीक्षा करने पर यदि वह अग्राह्य पाया जाता है तो सम्बन्धित सदस्य को दूसरा संकल्प देने के लिये कहा जाता है। ग्राह्य किए गए संकल्प पहले संसदीय समाचार भाग-2 में अधिसूचित किए जाते हैं और तत्पश्चात् लॉटरी में निकाले गए क्रम से कार्यावलि में शामिल किए जाते हैं। गृहीत संकल्प की एक प्रति सम्बद्ध मंत्रालयों को भेजे जाने हेतु संसदीय कार्य मंत्रालय को अग्रेषित कर दी जाती है।

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर स्थगित बहस को पुन: प्रारम्भ करना

जब किसी गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प पर चर्चा अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी जाती है तो संकल्प उपस्थित करने वाला सदस्य यदि ऐसे संकल्प पर गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए नियत किसी परवर्ती दिन चर्चा जारी रखना चाहता है तो वह स्थगित की गई चर्चा को पुन: प्रारम्भ करने के लिए सूचना दे सकता है और ऐसी सूचना प्राप्त हो जाने पर इस प्रकार के संकल्प को उस दिन के लिए नियत अन्य संकल्पों पर वरीयता प्राप्त होगी।[30]

जब कोई प्रस्ताव पारित हो जाता है तो गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प पर वाद-विवाद उसी या अगले सत्र में गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए नियत आगामी दिवस हेतु स्थगित कर दिया जाता है तो उसे आगामी चर्चा के लिए तब तक निश्चित नहीं किया जाता जब तक कि लॉटरी निकालने में उसे वरीयता न मिल जाये।[31] तद्नुसार, जब तक प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जाता अथवा सभा आम सहमति से सहमत नहीं होती तब तक उस संकल्प को, जोकि अनिर्णीत रहता है, स्वाभाविक रूप से अगले सत्र में नहीं ले जाया जाता। चर्चा अनिर्णीत रहती है और संकल्प उस सत्र के अंत में व्यपगत हो जाता है।

> कुछ ऐसे उदाहरण हैं जब उपस्थित किए गये और स्वीकृत किए गए प्रस्ताव पर गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प पर चर्चा को गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए नियत पहले दिन में पहली मद में लिए जाने के लिए अगले सत्र में ले जाया गया है। ये दो उदाहरण पांचवें दशक[32] के प्रारम्भ के हैं और अन्य दो उदाहरण इन उदाहरणों के चालीस वर्ष बाद के हैं।[33] तथापि, 2001 और 2014 की अवधि के दौरान पंद्रह से भी अधिक ऐसे अवसर आए जब गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों को आगामी सत्र में ले जाया गया था।[34]

जब कोई संकल्प सभा में उपस्थित किया जा चुका हो तो निम्नलिखित में से कोई एक आकस्मिकता पैदा हो सकती है; यह स्वीकृत हो सकता है; यह अस्वीकृत हो सकता है, इसे वापस लिया जा सकता है; इस पर बहस हो सकती है (अर्थात् स्वीकृत किए, अस्वीकृत किए या वापस लिए बिना ही चर्चा अनिर्णीत रह सकती है), या उस पर बाद में फिर बहस जारी रखने के लिए उसे स्थगित किया जा सकता है।

गृहीत संकल्प

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए नियत दिन की कार्यावलि में, यदि कोई ऐसा संकल्प हो जिसके कुछ भाग पर चर्चा की जा चुकी हो तो उसके अतिरिक्त, आमतौर पर उन सदस्यों के नामों से पांच संकल्प होते हैं जो लॉटरी के ड्रा में सफल होते हैं।[35] तथापि, लॉटरी निकाले जाने पर सफल रहने वाले सारे सदस्य यदि अपने संकल्प प्रस्तुत नहीं करते हैं तो कार्यावलि में पांच से कम संकल्प रखे जा सकते हैं।[36] संकल्पों को कार्यावलि में उसी क्रम में रखा जाता है जिस क्रम में सदस्यों के नाम लॉटरी के परिणाम में निकलते हैं। कोई संकल्प जिस पर दिन के अंत में आंशिक रूप से चर्चा होती है, उसे उसी सत्र में आगामी नियत दिन के लिए निर्धारित अन्य सभी संकल्पों पर वरीयता प्राप्त रहती है।[37] यदि किसी दिन की कार्यावलि में निर्धारित संकल्प पर उस दिन चर्चा नहीं की जाती है तो उसे वापस ले लिया गया समझा जाता है और सत्र के दौरान[38] किसी परवर्ती दिन इस पर चर्चा तब तक नियत नहीं की जाती जब तक कि उस सत्र में उस दिन के लिए निकाली गई लॉटरी में नाम निकले हुए सदस्य द्वारा इसे पुनः नहीं दिया जाता।

समय का आवंटन

सत्र में प्रत्येक वैकल्पिक शुक्रवार को अंतिम अढ़ाई घंटे का समय गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए आवंटित किया जाता है। सभापति सभा के नेता से परामर्श करके इस प्रयोजन हेतु शुक्रवार की बजाय कोई अन्य दिन आवंटित कर सकता है। यदि शुक्रवार को सभा की बैठक न हो तो सभापति यह निदेश दे सकता है कि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए सप्ताह में किसी अन्य दिन अढ़ाई घंटे का समय आवंटित किया जाये।[39] कार्य की आकस्मिकताओं के कारण समय को बदला भी जा सकता है।

संकल्पों के लिए समय-सीमा

कार्य मंत्रणा समिति को यह सिफारिश करने की शक्ति प्राप्त है कि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए कितना समय आवंटित किया जाना चाहिए।

कई अवसरों पर संकल्प के लिए अढ़ाई घंटे का समय आवंटित करते हुए या ऐसा किए बिना ही कार्य मंत्रणा समिति ने सिफारिश की है कि संकल्प पर चर्चा उसी दिन पूरी होनी चाहिए।[40]

एक बार एक सदस्य ने जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य को राजनयिक मान्यता दिये जाने के संबंध में 7 मार्च, 1969 को एक संकल्प उपस्थित किया। संकल्प पर 21 मार्च, 1969 को भी चर्चा हुई लेकिन वह अधूरी रही। संकल्प के प्रस्तावक सदस्य ने यह प्रस्ताव किया कि "संकल्प पर बहस के समय को बढ़ाया जाये।" मत विभाजन से प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया और सत्र की समाप्ति पर संकल्प व्यपगत हो गया।[41]

सामान्य प्रयोजन समिति ने 28 अप्रैल, 2008 को हुई अपनी बैठक में निर्णय लिया कि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प पर बहस के लिए दो घंटों की समय-सीमा का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। समिति द्वारा इस बात की भी सिफारिश की गई थी कि किसी दिन बहस के लिए उठाए गए गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प का निपटान उसी दिन किया जाना चाहिए।

किसी संकल्प पर कोई भाषण, सभापति की अनुमति वाले मामले को छोड़कर, पन्द्रह मिनट से अधिक समय का नहीं हो सकता। तथापि, संकल्प का प्रस्तावक उसे उपस्थित करते समय और संबद्ध मंत्री पहली बार भाषण देते समय तीस मिनट तक या उतने अधिक समय तक जितने की सभापति अनुज्ञा दे, भाषण दे सकता है।[42] किंतु यह सुनिश्चित करने के लिए कि किसी संकल्प पर नियत समयावधि में ही चर्चा समाप्त की जानी चाहिए, सभापति ने 2 मई, 1997 को एक निदेश जारी किया कि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प पर अधिकतम दो घंटे की समय-सीमा तक चर्चा की जा सकती है।[43]

संकल्प को उपस्थित किया जाना

वह सदस्य, जिसके नाम से संकल्प कार्यावलि में दर्ज है, जब तक कि वह इसे वापस नहीं लेना चाहता, अपना नाम पुकारे जाने पर संकल्प उपस्थित करता है और कार्यावलि में उल्लिखित शब्दों में औपचारिक प्रस्ताव द्वारा अपना भाषण प्रारम्भ करता है।[44]

कोई सदस्य, सभापति की अनुज्ञा से, अपनी ओर से किसी ऐसे अन्य सदस्य को संकल्प उपस्थित करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है जिसका नाम कार्यावलि में उसी संकल्प के लिए नीचे दिया गया है और इस प्रकार प्राधिकृत सदस्य तद्नुसार संकल्प उपस्थित कर सकता है।[45]

संकल्प को उपस्थित करने के लिए बुलाये जाने पर यदि कोई सदस्य अनुपस्थित हो तो उसकी ओर से इस बारे में लिखित रूप में प्राधिकृत कोई अन्य सदस्य, सभापति की अनुज्ञा से, उसके नाम से दिये गये संकल्प को उपस्थित कर सकता है।[46]

एक बार एक सदस्य ने एक अन्य सदस्य की ओर से एक संकल्प उपस्थित किया। उस संकल्प के निपटान के पश्चात् उसने पहले वाले संकल्प से आगे कार्यावलि में उल्लिखित अपना संकल्प भी उपस्थित किया।[47]

संशोधन

संकल्प उपस्थित किये जाने के बाद कोई सदस्य, संकल्पों से संबंधित नियमों के अध्यधीन संकल्प में संशोधन उपस्थित कर सकता है।[48] यदि इस प्रकार के संशोधन की सूचना उस दिन से एक दिन पूर्व नहीं दी गई है जिस दिन संकल्प उपस्थित किया गया है तो कोई भी सदस्य

संशोधन लाये जाने पर आपत्ति प्रकट कर सकता है और जब तक सभापति संशोधन को उपस्थित करने की अनुमति न दे दे, तब तक इस प्रकार की आपत्ति अभिभावी रहती है।[49] जिन संशोधनों की सूचनायें प्राप्त हो चुकी होती हैं उनकी सूचियां समय-समय पर सदस्यों में वितरित की जाती हैं।[50]

> विभिन्न भारतीय भाषाओं में साहित्य की स्थितियों की जांच करने हेतु एक समिति की नियुक्ति से संबंधित संकल्प पर तेरह संशोधन उपस्थित किए गए थे।[51]
>
> एक बार एक संकल्प को स्वीकृत घोषित कर दिया गया। तथापि, इस आधार पर आपत्ति की गई कि उस पर मत-विभाजन हेतु कुछ सदस्यों की मांग सभापीठ द्वारा नहीं मानी गई थी। कुछ देर के लिए सभा को स्थगित करना पड़ा। इसके पुन: समवेत होने पर, सभापीठ ने प्रस्तावक को दो संशोधन उपस्थित करने की अनुमति दी। तब संकल्प, यथासंशोधित रूप में, स्वीकृत हुआ।[52]

चर्चा का दायरा और उत्तर देने का अधिकार

किसी संकल्प पर चर्चा सर्वथा संगत और उसकी परिधि के भीतर होनी चाहिए।[53] संकल्प के प्रस्तावक को उत्तर देने का अधिकार प्राप्त है। प्रस्तावक की अनुपस्थिति में संकल्प पर निर्णय लेने के लिए उस पर मतदान कराया जाता है।

> एक बार देश में खाद्य स्थिति संबंधी एक संकल्प के बारे में सभा ने संबंधित मंत्री को बहस में हस्तक्षेप न करने की अनुमति दी (क्योंकि खाद्य स्थिति पर अगले सप्ताह चर्चा प्रस्तावित थी।[54]
>
> किसी संकल्प पर एक शुक्रवार को हुई चर्चा अधूरी रही। एक पखवाड़े के बाद जब संकल्प पर और आगे विचार-विमर्श किया जाना था तो एक सदस्य ने सूचित किया कि मंत्री के उत्तर के दृष्टिगत संकल्प को वापस लेने हेतु उसे प्रस्तावक से एक तार प्राप्त हुआ है और प्रस्तावक ने एक तार सचिवालय को भी भेजा है। तथापि, संकल्प पर मत लिया गया और वह अस्वीकृत हो गया।[55]
>
> 207वें सत्र के दौरान किसी संकल्प पर 10 मार्च, 2006 को आरंभ की गई चर्चा अगले गैर-सरकारी सदस्यों के दिन अर्थात् 19 मई, 2006 को पुन: आरम्भ की जानी थी। परन्तु संकल्प के प्रस्तावक के अनुपस्थित होने के कारण इस पर मत लिया गया और यह अस्वीकृत हो गया।[56]
>
> 218वें सत्र के दौरान संकल्प पर 26 नवम्बर, 2009 को आरंभ की गई चर्चा 11 दिसम्बर, 2009 को पुन: आरम्भ की जानी थी। परन्तु संकल्प के प्रस्तावक के अनुपस्थित होने के कारण इस पर मत लिया गया और यह अस्वीकृत हो गया।[57]

संकल्प पर मत लेना और उसे विभाजित करना

जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कि उपस्थित किए गए संकल्प को या तो स्वीकृत, अस्वीकृत किया जाता है, वापस लिया जाता है, स्थगित किया जाता है या बहस में ही समाप्त कर दिया जाता है। पहली तीन आकस्मिकतायें उस समय घटित होती हैं जब पीठासीन अधिकारी चर्चा के अंत में संकल्प पर सभा का मत लेता है। जब कई मुद्दों वाले किसी संकल्प पर चर्चा हो चुकी हो तो सभापति संकल्प का विभाजन कर सकता है और प्रत्येक मुद्दे या किसी मुद्दे पर जैसा भी वह उचित समझे अलग से मत ले सकता है।[58] सभापति संकल्प पर सभा का मत लेने से पूर्व तथ्यत: उसे संशोधित भी कर सकता है।

23 अगस्त, 1954 को सभापति ने काउंसिल ऑफ स्टेट्स का नाम बदलकर राज्य सभा किए जाने की घोषणा की थी।[59] पीठासीन अधिकारी ने उस संकल्प को, जिस पर पिछले सत्र से चर्चा चल रही थी, संकल्प के मूल पाठ में निम्न रूप से संशोधनों सहित मत लेने के लिए उपस्थित किया :

(1) मूल संकल्प के प्रारंभिक शब्दों "यह परिषद्" के स्थान पर "यह सभा" प्रतिस्थापित किए गए; और

(2) "प्रस्तावित" (सैन्य सहायता) शब्द हटा दिया गया।

तथापि, संकल्प अस्वीकृत हो गया।[60]

सभा द्वारा स्वीकृत किए गए प्रत्येक संकल्प की एक प्रति सचिवालय द्वारा सम्बद्ध मंत्री को भेजी जाती है।[61]

संकल्प को वापस लिया जाना

कार्यावलि में जिस सदस्य के नाम में कोई संकल्प हो, वह पुकारे जाने पर, संकल्प वापस ले सकता है और उस अवस्था में अपने आपको उस आशय के कथन मात्र तक ही सीमित रखता है।[62]

तीन अकादमियों के काम-काज की जांच हेतु एक समिति की नियुक्ति से संबंधित एक संकल्प कार्यावलि में था। शिक्षा और युवा कार्य मंत्री ने समिति नियुक्त करने के सरकार के निर्णय की सूचना सभा को दी। इस बात के दृष्टिगत सदस्य ने कहा कि वह संकल्प उपस्थित नहीं करना चाहता और इसलिए संकल्प उपस्थित नहीं किया गया।[63]

लेकिन यदि कोई संकल्प या उसमें कोई संशोधन उपस्थित कर दिया गया है तो उसे सभा की अनुमति के बिना वापस नहीं लिया जा सकता।[64] सभापति द्वारा सभा की इच्छा जानने से सभा की अनुमति का महत्व प्रकट होता है। यदि कोई भी सदस्य असहमति प्रकट नहीं करता तो अनुमति दे दी जाती है और यदि कोई असहमति का स्वर सुनाई देता है तो सभापति संकल्प को सभा के निर्णय हेतु प्रस्तुत करता है।[65]

अपने संकल्प पर बहस का उत्तर देते हुए एक सदस्य ने सभा से उसे वापस लेने की अनुमति मांगी। उपसभापति ने सभा से पूछा कि क्या प्रस्तावक को ऐसी अनुमति दे दी जाये। एक सदस्य ने कहा, 'नहीं'। तत्पश्चात्, संकल्प पर सभा का मत लिया गया और वह अस्वीकृत हो गया।[66]

संकल्प को वापस न लिया जाना

कार्यावलि में जिस सदस्य के नाम से कोई संकल्प हो और जिस पर चर्चा पूर्ण हो चुकी हो, वह पुकारे जाने पर, उस आशय के कथन मात्र द्वारा सभा की अनुमति से इसे वापस ले सकता है। तथापि, संकल्प का प्रस्तावक यदि अपने संकल्प को वापस लेने के लिए पुकारे जाने पर ऐसा करने से इनकार करता है, तो सभापति संकल्प पर सभा का निर्णय लेता है।

226वें सत्र के दौरान, 4 मई, 2012 को उपस्थित किया गया, तेलंगाना के पृथक् राज्य के गठन संबंधी आगे स्थानांतरित संकल्प 17 अगस्त, 2012 को आगे की चर्चा के लिए लिया गया। संकल्प पर बहस पूरी हुई परंतु सदस्य ने इसे वापस लिए जाने के लिए पुकारे जाने पर ऐसा करने से इनकार कर दिया। सभापति ने तदनुसार संकल्प पर मत लिया और यह अस्वीकृत हो गया।[67]

किसी सदस्य का कार्यकाल समाप्त होने के कारण संकल्प को सूची से हटा दिया जाना

किसी सदस्य के संकल्प पर 17 मार्च, 1972 को चर्चा हुई। उस दिन चर्चा पूरी नहीं हुई। 2 अप्रैल, 1972 को उस सदस्य का कार्यकाल समाप्त हो गया। संकल्प को परवर्ती दिन अर्थात् 7 अप्रैल, 1972 की कार्यावलि में शामिल कर लिया गया। तथापि, संकल्प को इस आधार पर कार्यावलि से हटाने के लिए एक संशोधित कार्यावलि जारी की गई कि गैर-सरकारी सदस्य द्वारा उपस्थित किया गया और सभा में लम्बित संकल्प उस सदस्य के सभा का सदस्य न रहने पर व्यपगत हो जाता है।[68] इसी तरह का एक अवसर 8 मार्च, 2002 को एक सदस्य द्वारा संकल्प उपस्थित करने के बाद दोबारा तब आया जब उस दिन संकल्प पर चर्चा पूरी नहीं हो पाई। 9 अप्रैल, 2002 को सदस्य सेवानिवृत्त हो गए। उपर्युक्त सादृश्य के अनुसार संकल्प व्यपगत[69] मान लिया गया और उसे संसदीय समाचार भाग-2 दिनांक 11 अप्रैल, 2002 में अधिसूचित कर दिया गया।

गैर-सरकारी सदस्यों के स्वीकृत किये गए संकल्प

1952 से लेकर अब तक अनेक संकल्पों पर चर्चा हुई है। जो संकल्प स्वीकृत हुए हैं उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

> 'अवांछनीय फिल्मों के प्रदर्शन का निषेध—यह श्रीमती लीलावती मुंशी द्वारा उपस्थित किया गया।[70] (1959 में चलचित्र अधिनियम संशोधित किया गया); पाकिस्तान से विस्थापित हुए व्यक्तियों को मताधिकार—यह श्री बी.सी. घोष द्वारा उपस्थित किया गया।[71] (1955 में नागरिकता अधिनियम संशोधित किया गया); एन.सी.सी./ए.सी.सी. के दायरे को बढ़ाया जाना—यह डा. (श्रीमती) सीता परमानन्द द्वारा उपस्थित किया गया।[72] रेलवे, सरकारी कम्पनियों आदि द्वारा विज्ञापनों के लिए भारतीय स्वामित्व वाली/नियंत्रण वाली विज्ञापन एजेंसियों को प्राथमिकता दिया जाना—यह श्रीमती वायलेट अल्वा द्वारा उपस्थित किया गया;[73] लोअर हुगली के पश्चिमी किनारे पर कोयला और कच्ची धातु संबंधी बन्दरगाह का पूर्ण मशीनीकरण—यह प्रो. हुमायूं कबीर द्वारा उपस्थित किया गया[74]; विश्व में सभी सरकारों से परमाणु परीक्षणों को रोकने की अपील—यह श्री मुल्क गोविन्दा रेड्डी द्वारा उपस्थित किया गया[75]; फिल्मों के प्रदर्शन को स्वीकृति दिए जाने की प्रक्रियाओं की जांच के लिए समिति की नियुक्ति—यह श्री एस.बी. बोबडे द्वारा उपस्थित किया गया[76] (खोसला समिति); पूर्व राजाओं के प्रिवी पर्स तथा विशेषाधिकारों का उत्सादन—यह श्री बांका बिहारी दास द्वारा उपस्थित किया गया था[77] (इस प्रयोजन का संविधान संशोधन विधेयक राज्य सभा में गिर गया था; बाद में इसे पुन: पुर:स्थापित किया गया और यह पारित हो गया); भारतीय स्वामित्व/नियंत्रण वाली विज्ञापन कंपनियों को विज्ञापन दिया जाना— यह श्री जोआकिम अल्वा द्वारा उपस्थित किया गया[78] (यह श्रीमती वायलेट अल्वा द्वारा उपस्थित किए गए संकल्प को आगे बढ़ाते हुए उपस्थित किया गया); शहरी गंदी बस्तियों का सुधार—यह श्रीमती मोनिका दास द्वारा उपस्थित किया गया;[79] अफगानिस्तान में रक्त-पात रोकने के लिए विश्व समुदाय से अपील करना—यह श्री चतुरानन मिश्र द्वारा उपस्थित किया गया[80]; महिलाओं पर अत्याचार—यह श्री वीरेन जे. शाह द्वारा उपस्थित किया गया।[81]

गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प के प्रस्तावक द्वारा चर्चा पर उत्तर दिए जाने के पश्चात्: चर्चा को पुन: आरंभ किए जाने की आवश्यकता नहीं है। 24 मार्च, 1995 को देश में बढ़ते अपराधों विशेष रूप से महिलाओं के विरुद्ध बढ़ते अपराधों पर काबू पाने के लिए उठाए गए कदमों के

संबंध में किसी गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प पर चर्चा के पश्चात् संकल्प के प्रस्तावक श्री वीरेन जे. शाह ने बहस का उत्तर दिया। उसके शीघ्र पश्चात् श्री वी. नारायणसामी संकल्प पर बोलने के लिए खड़े हुए। परंतु उपसभाध्यक्ष ने कहा कि संकल्प पर उत्तर दिए जाने के पश्चात् सदस्य भाषण नहीं दे सकता। सदस्य द्वारा बोलने के लिए आग्रह किए जाने पर भी उपसभाध्यक्ष ने कहा कि संकल्प पर मत लिए जाने के समय उस पर पुन: चर्चा आरम्भ करने की सभा की कोई परिपाटी नहीं रही है। परन्तु सदस्य ने अपने बोलने के अधिकार पर आग्रह किया और नियम 154-166 का हवाला दिया। उनके तर्क को खारिज करते हुए उपसभाध्यक्ष ने समुक्ति की :

> मैंने पहले ही यह विनिर्णय दे दिया है...कि संकल्प के प्रस्तावक द्वारा उत्तर दिए जाने के पश्चात् मैंने इसकी अनुमति नहीं दी है...मैं किसी को भी इसकी अनुमति नहीं दूंगा। कोई नियम मुझे इस मुद्दे को पुन: आरंभ करने की अनुमति नहीं देता। नियम स्पष्ट है।[82]

ख. सरकारी संकल्प

सरकारी संकल्पों के लिए प्रक्रिया को विनियमित करने हेतु कोई अलग नियम नहीं है। कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं में सरकारी संकल्प, गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों से भिन्न होते हैं। सरकार के किसी सदस्य अर्थात् मंत्री द्वारा दी गई संकल्प की सूचना सरकारी संकल्पों की श्रेणी में आती है। उनमें इस प्रकार से लॉटरी से नाम निकालने की प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती जिस प्रकार से गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के मामले में अपनाई जाती है। सरकारी संकल्पों की सूचना देने हेतु कोई समय-सीमा निर्दिष्ट नहीं की गई है, हालांकि वास्तविक व्यवहार में मंत्री अपने संकल्पों की सूचना उन तिथियों से काफी समय पूर्व ही दे देते हैं जिन तिथियों में संकल्पों पर सभा में चर्चा किए जाने का प्रस्ताव होता है। इसके अतिरिक्त नियमों के अनुसार गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर केवल नियत दिनों में और नियत घंटों में ही चर्चा होती है। सरकारी संकल्पों पर सरकारी कार्य के लिए नियत किसी भी दिन चर्चा हो सकती है। इन खास विशिष्टताओं को छोड़कर, सरकारी संकल्पों पर भी सामान्यत: वही नियम लागू होते हैं जोकि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर लागू होते हैं। किसी मंत्री द्वारा संकल्प की सूचना दिए जाने और सभापति द्वारा उसे ग्राह्य किये जाने के बाद यह संसदीय समाचार में सरकारी संकल्प शीर्षक के अंतर्गत छपता है। सरकारी संकल्प पर चर्चा हेतु समय की सिफारिश कार्य मंत्रणा समिति करती है और इस प्रकार सभा के नेता के साथ परामर्श से तिथि नियत की जाती है।[83] संकल्प, जिस मंत्री के नाम में हो उसी के द्वारा अथवा उसकी अनुपस्थिति में उसकी ओर से किसी अन्य मंत्री द्वारा उपस्थित किया जा सकता है। सरकारी संकल्प पर चर्चा सरकारी विधेयक[84] अथवा किसी अन्य मद पर विचारण के साथ-साथ की जा सकती है। (उदाहरण के लिए, रेलवे अभिसमय समिति के प्रतिवेदन संबंधी संकल्प पर रेल बजट या विनियोग (रेल) विधेयक के साथ-साथ चर्चा की जाती है।)[85]

जहां तक मत लिए जाने का संबंध है, सरकारी संकल्प को किसी सदस्य द्वारा उपस्थित किए गए प्रस्ताव पर तरजीह दी जाती है यहां तक कि चाहे उन पर एक साथ चर्चा क्यों न की गई हो। 26 अप्रैल, 1989 को कर्णाटक में राष्ट्रपति शासन का अनुमोदन करने वाले परिनियत संकल्प और कर्णाटक के राज्यपाल को वापस बुलाए जाने की अनुशंसा करने वाले प्रस्ताव पर साथ-साथ चर्चा करते समय उपसभापति ने पहले संकल्प पर मत लिया। आपत्ति किए जाने पर, उपसभापति ने विनिर्णय दिया :

संकल्प और प्रस्ताव पर एक साथ चर्चा की गई परन्तु संकल्प, सरकार द्वारा उपस्थित किया गया था। अत: पहले इस पर मत लिया जाना है और प्रस्ताव इस बात के लिए नहीं बल्कि किसी अन्य बात के लिए था।[86]

सरकारी संकल्प सामान्यतया निम्नलिखित प्रयोजनों के लिए होते हैं :

(1) अंतर्राष्ट्रीय संधियों, अभिसमयों अथवा करारों का अनुमोदन करने वाले संकल्प

संविधान के अधीन भारत सरकार को विदेशों से संधि और करार आदि करने तथा किसी संधि, आदि को लागू करने का अधिकार है।[87] संवैधानिक रूप से भारत सरकार के लिए यह जरूरी नहीं है कि उसके द्वारा किसी संधि अथवा अंतर्राष्ट्रीय करार का अनुसमर्थन करने से पूर्व वह संसद् की स्वीकृति प्राप्त करे। यह बात संसद् पर छोड़ दी गई है कि वह इसे कानून द्वारा नियमित करे।[88] निम्नलिखित मामलों में विधान द्वारा इस संधि को प्रभावी बनाने की अपेक्षा की जायेगी :

(क) जहां विदेशी ताकत के लिए धनराशि[89], जिसे भारत की संचित निधि से लिया गया हो, का उपबंध किया गया हो;

(ख) जहां संधि से किसी भारतीय नागरिक के न्यायालय के विचार योग्य अधिकार प्रभावित होते हों[90];

(ग) जहां सम्पत्ति, जीवन अथवा स्वतंत्रता का वापस लिया जाना या शुल्क लगाया जाना अपेक्षित हो, जिसे केवल कानून द्वारा किया जा सकता हो।[91]

इन अपवाद स्वरूप मामलों को छोड़कर कार्यपालिका संधियां करने के लिए सक्षम है। संविधान के अनुच्छेद 1 के तर्कों द्वारा भारतीय क्षेत्रों को किसी विदेशी राज्य के हवाले करने के लिए स्वयं संविधान में संशोधन किया जाना आवश्यक होगा।[92]

तथापि, कभी-कभी मंत्रिगण अंतर्राष्ट्रीय करारों तथा अभिसमयों को संसदीय अनुमोदन दिलाने अथवा भारत सरकार द्वारा अनुसमर्थन दिलाने के प्रयोजनार्थ संकल्पों को सभा पटल पर रख देते हैं। ऐसे भी उदाहरण हैं कि अभिसमयों और संधियों को सरकारी संकल्पों द्वारा संसद् की स्वीकृति प्रदान करायी गयी है। उदाहरण के लिए साहित्यिक और कलात्मक रचनाओं के संरक्षण हेतु बर्न अभिसमय;[93] सशस्त्र संघर्ष की स्थिति में सांस्कृतिक सम्पत्ति के संरक्षण हेतु हेग अभिसमय;[94] सार्वभौमिक प्रतिलिप्यधिकार अभिसमय,[95] संकल्प पारित करके संसद् द्वारा मंजूरी दी गई थी; जबकि ताशकंद घोषणा पर सरकारी प्रस्ताव द्वारा चर्चा की गयी थी जिसे एक संशोधन के साथ इस विषय में[96] सरकार के पक्ष का अनुमोदन करते हुए स्वीकार कर लिया गया था। भारत और यू.एस.एस.आर. के बीच शांति, मैत्री और सहयोग की संधि पर सरकार द्वारा उस विषय पर पूर्व में दिए गये वक्तव्य पर उठाये गये प्रस्ताव पर चर्चा की गई थी।[97]

(2) सरकार की कतिपय नीतियों को घोषित अथवा उनका अनुमोदन करने वाले संकल्प

कोई सरकारी संकल्प सरकार के किसी कार्य अथवा नीति के लिए सभा के अनुमोदन को अभिलिखित करने की मांग कर सकता है। अनेक अवसरों पर ऐसे संकल्पों को राज्य सभा में पेश किया जाता है उन पर चर्चा की जाती है और उन्हें स्वीकृत किया जाता है।

पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं[98] में अंतर्विष्ट सिद्धांतों, उद्देश्यों और विकास-कार्यक्रमों के अनुमोदनार्थ प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा एक संकल्प उपस्थित किया गया था। भाषा नीति,[99] राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति;[100] राष्ट्रीय शिक्षा नीति और उन पर की जाने वाली कार्यवाही संबंधी कार्यक्रम;[101] राष्ट्रीय आवास नीति;[102] कृषि नीति;[103] और केन्द्रीय सड़क निधि के सृजन[104] आदि के अनुमोदनार्थ हाल में संकल्प पारित किए गये हैं।

इसी प्रकार से राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय तथा मानवतावादी महत्व की घटनाओं के संबंध में सरकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले संकल्प भी सभा के समक्ष लाये गए तथा स्वीकार किए गये।

चीन के आक्रमण के बाद 8 नवम्बर, 1962 को एक संकल्प उपस्थित किया गया और 13 नवम्बर, 1962 को स्वीकृत किया गया जिसमें भारत की पवित्र भूमि[105] से आक्रमणकारियों को बाहर खदेड़ने के लोगों के निश्चय को व्यक्त किया गया था। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद को नीतियों की निंदा तथा भर्त्सना करते हुए विदेश मंत्रालय में राज्य मंत्री ने एक संकल्प उपस्थित किया था जिसे स्वीकृत किया गया था।[106] इसी प्रकार सदन के नेता और विदेश राज्य मंत्री ने 2 मार्च, 2001 को एक संकल्प उपस्थित किया जिसमें अफगानिस्तान में तालिबान की निंदा की गई जिसने बामियान में दो हजार वर्ष पुरानी बौद्ध प्रतिमाओं और बौद्ध मंदिरों को तोड़ डाला था। उक्त संकल्प सर्वसम्मति से सभा में स्वीकृत हुआ।[107] 18 मार्च, 2002 को सरकार ने विश्व हिंदू परिषद् एवं बजरंग दल से संबंधित भीड़ द्वारा उड़ीसा के राज्य विधानमंडल की परिसंपत्ति एवं परिसर में जबरन घुस आने पर चिंता जताई और क्षोभ प्रकट किया और एक संकल्प उपस्थित किया जिसमें इस कृत्य की निंदा की गई। उक्त संकल्प स्वीकृत हुआ[108] 228वें सत्र के दौरान, दिनांक 15 मार्च, 2013 को सभा ने पाकिस्तान की राष्ट्रीय सभा द्वारा 14 मार्च, 2013 को पारित संकल्प को अस्वीकार करने संबंधी संकल्प को सर्वसम्मति से पारित किया और भारत के आंतरिक मामलों में किसी हस्तक्षेप को अस्वीकार किया। सभा ने यह भी दोहराया कि पाकिस्तान के अवैध कब्जे वाले क्षेत्र सहित जम्मू और कश्मीर राज्य भारत का अभिन्न अंग है और सदैव रहेगा।[109]

(3) समितियों की सिफारिशों का अनुमोदन करने वाले संकल्प

कभी-कभी कुछ समितियों के प्रतिवेदनों में अन्तर्विष्ट सिफारिशों को सभा द्वारा अनुमोदित कराने के लिए सरकार द्वारा संकल्प लाये जाते हैं। उदाहरण के लिए रेलवे अभिसमय समिति की सिफारिशों को रेल मंत्री द्वारा लाये गये संकल्प द्वारा निरपवाद रूप से अनुमोदित कर दिया जाता है।

ग. परिनियत संकल्प

संविधान के किसी उपबंध अथवा संसद् के किसी अधिनियम के अनुसरण में सभा पटल पर रखे जाने वाले संकल्प परिनियत संकल्प कहलाते हैं। कोई मंत्री या कोई गैर-सरकारी सदस्य ऐसे संकल्पों के लिए सूचना दे सकता है। स्वयं परिनियमों की शर्तों में निर्धारित किया गया है कि क्या किसी प्रस्ताव अथवा संकल्प के द्वारा उनके अधीन कोई विशेष कार्यवाही की जानी चाहिए। यदि किसी प्रस्ताव द्वारा ऐसा किया जाना अपेक्षित हो तो वह परिनियत संकल्प होगा; यदि परिनियम

में किसी विशेष विषय के लिए कोई संकल्प उपस्थित किए जाने के प्रावधान है तो उसे परिनियत संकल्प कहा जायेगा। कतिपय अधिनियमितियों में एक विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर सरकार द्वारा संकल्प लाया जाना स्पष्टत: अपेक्षित है।

> सीमा शुल्क अधिनियम, 1975 के अधीन, केन्द्रीय सरकार को संरक्षण शुल्क में वृद्धि के संबंध में किसी अधिसूचना के लिए अधिसूचना सभा पटल पर रख दिए जाने के दिन से 15 दिनों की अवधि के भीतर उपस्थित किए गए संकल्प द्वारा संसद् को स्वीकृति लेनी होती है।[110]

> राजभाषा अधिनियम, 1963 के अधीन, किसी समिति के गठन के लिए अधिनियम की धारा 3 के प्रभावी हो जाने की तारीख से 10 वर्षों के बाद एक संकल्प लाया गया।[111] [अधिनियम की धारा 3, 26 जनवरी, 1965 को प्रभावी हुई थी तथा संकल्प सभा में 24 जुलाई, 1975 को उपस्थित और स्वीकृत किया गया था।][112]

किसी संकल्प के प्रस्तावक को उस पर चर्चा के दौरान सभा में उपस्थित रहना चाहिए। दिनांक 10 दिसम्बर, 1974 को आंतरिक सुरक्षा का अनुरक्षण (संशोधन) अध्यादेश का निरनुमोदन करने वाले एक परिनियत संकल्प का प्रस्तावक सदस्य उस समय उपस्थित नहीं था जब अध्यादेश पर सभा का अनुमोदन मांगने वाले संकल्प पर चर्चा की जा रही थी। उपसभाध्यक्ष ने समुक्ति की कि :

> मैं यह समुक्ति किए बिना नहीं रह सकता कि न तो संकल्प का प्रस्तावक यहां उपस्थित है और न ही उन सदस्यों में से कोई यहां उपस्थित हैं जिन्होंने इस संकल्प से अपने नाम संलग्न किए थे। चूंकि विपक्ष चाहता है कि किसी सदस्य के संकल्प उपस्थित किए जाने के समय मंत्री उपस्थित रहे तो उन्हें भी वाद-विवाद को सुनने के लिए उपस्थित रहना चाहिए।[113]

जब तक कि संविधान अथवा संसद् के अधिनियम जिनके अंतर्गत उसे सभा पटल पर रखा जाता है, में किसी परिनियत संकल्प को उपस्थित करने की कोई अवधि विनिर्दिष्ट नहीं की जाती है तब तक किसी परिनियत संकल्प को उपस्थित करने के लिए कोई विशेष अवधि नहीं है। उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 61, 67, 90 और 94 में राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, राज्य सभा के उप सभापति और लोक सभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को हटाने के लिए संकल्पों को उपस्थित करने के लिए कम से कम 14 दिन के आशय की सूचना देने का प्रावधान है। परिनियत संकल्प के गृहीत हो जाने के बाद उसे सदस्यों की सूचना के लिए "परिनियत संकल्प" नामक शीर्षक के अन्तर्गत संसदीय समाचार भाग-2 में प्रकाशित किया जाता है। यह लॉटरी निकाले जाने की शर्त के अध्यधीन नहीं है, भले ही इस संबंध में किसी गैर-सरकारी सदस्य ने सूचना दे दी हो। इस पर चर्चा के लिए समय का आवंटन सरकार द्वारा सरकारी कार्य के लिए आवंटित समय में से किया जाता है। यह कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर किया जाता है। संविधान अथवा संसद् के अधिनियमों के अधीन उठाये जाने वाले परिनियत संकल्प निम्नलिखित होते हैं:

संविधान के अधीन संकल्प

संविधान में राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग चलाने के लिए संसद के किसी भी सदन में संकल्प उपस्थित किया जा सकता है, किन्तु उपराष्ट्रपति को हटाने[115], और राज्य सभा के उपसभापति को हटाने के लिए[116], राज्य सभा में संकल्पों को उपस्थित किए जाने का प्रावधान है। ऐसा संकल्प

उपस्थित करने का कोई अवसर अभी तक नहीं आया है। इनके अलावा, राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों के निरनुमोदन,[117] राज्य सूची में दिए गये किसी विषय[118] के संबंध में संसद् द्वारा विधान बनाने, अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन,[119] आपातकालीन स्थिति का अनुमोदन करने वाली उद्घोषणा,[120] और किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने की स्थिति[121] तथा वित्तीय आपात् स्थिति की स्थिति में संकल्पों को उठाया जा सकता है।[122]

(क) अध्यादेश के निरनुमोदन के लिए संकल्प (अनुच्छेद 123)

जैसाकि प्रथा है, कोई सदस्य, किसी अध्यादेश के प्रख्यापित होने के तुरन्त बाद ही, इस तथ्य पर विचार किए बिना कि क्या सत्र के लिए आमंत्रण-पत्र प्रेषित कर दिए गए हैं अथवा नहीं, ऐसे संकल्प की सूचना देने का हकदार है। तथापि, गृहीत संकल्प सत्र के आरंभ होने से कुछ दिन पूर्व संसद समाचार भाग-2 में प्रकाशित हो जाता है। सभी सूचनाएं उन सदस्यों के नाम में, जिनसे ये प्राप्त हुई हैं, उनकी प्राप्ति के समयानुसार गृहीत तथा सुव्यवस्थित की जाती हैं।

सामान्यत: किसी अध्यादेश का निरनुमोदन करने वाले किसी परिनियत संकल्प के संबंध में किसी सदस्य द्वारा दी गई सूचना तथा अध्यादेश का प्रतिस्थापन करने वाले सरकारी विधेयक पर एक साथ चर्चा की जाती है।

> एक अवसर पर, प्रक्रिया संबंधी काफी लम्बी चर्चा के बाद सदन आन्तरिक सुरक्षा अध्यादेश, 1971 का निरनुमोदन चाहने वाले संकल्प तथा सम्बद्ध विधेयक पर पृथक्-पृथक् रूप से विचार करने के लिए सहमत हो गया था।[123]

जिन सदस्यों से सूचनाएं प्राप्त होती हैं, उन सभी के नाम कार्यसूची में सम्मिलित किए जाते हैं। पहले संकल्प उपस्थित किया जाता है। तत्पश्चात् संबंधित मंत्री संबद्ध विधेयक को चर्चा के लिए उपस्थित करता है और उसके बाद उन दोनों पर एक साथ चर्चा होती है। चर्चा की समाप्ति के बाद, सामान्यत: संकल्प का प्रस्तावक पहले उत्तर देता है और उसके बाद संबंधित मंत्री उत्तर देता है। तत्पश्चात् पहले संकल्प पर मतदान होता है क्योंकि यदि संकल्प स्वीकृत हो जाता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि अध्यादेश का निरनुमोदन चाहने वाला संकल्प और विधेयक स्वत: अस्वीकार हो जायेगा। यदि संकल्प अस्वीकृत हो जाता है तो विधेयक पर विचार किये जाने के प्रस्ताव पर मतदान होता है और विधेयक के आगे के चरणों पर कार्यवाही की जाती है।

> एक अवसर पर दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अध्यादेश, 1991 के निरनुमोदन के लिए संकल्प उप-सभाध्यक्ष के निर्णायक मत द्वारा गृहीत हुआ और संबद्ध विधेयक, जिस पर संकल्प के साथ ही चर्चा हुई थी, पर आगे कार्यवाही नहीं की गई थी।[124]

> तथापि, उससे पूर्व एक अवसर पर राज्य सभा में बैंककारी सेवा आयोग (निरसन) अध्यादेश, 1977 का निरनुमोदन चाहने वाले संकल्प पर जिसे एक मतदान द्वारा उपस्थित किया गया था तथा लोक सभा द्वारा यथा पारित संबद्ध विधेयक पर विचार करने के प्रस्ताव, जिसे संबंधित मंत्री द्वारा उपस्थित किया गया था, पर साथ-साथ चर्चा की गई थी। संकल्प स्वीकृत हुआ था। इसके प्रभाव से प्रस्ताव रद्द माना गया। किन्तु प्रस्ताव पर अलग से भी मतदान हुआ और उसे रद्द कर दिया गया।[125] बाद में विधेयक को पारित करने के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक हुई थी।

इसी प्रकार राज्य सभा में एक सदस्य द्वारा उपस्थित किए गए आतंकवाद निवारण (दूसरा) अध्यादेश, 2001 का निरनुमोदन करने वाले संकल्प और संबद्ध मंत्री के इसमें संबंधित विधेयक पर लोक सभा द्वारा पारित रूप में विचार किए जाने के प्रस्ताव पर एक साथ चर्चा की गई। संकल्प स्वीकृत हुआ। इसके प्रभाव से प्रस्ताव अस्वीकृत समझा गया। किन्तु प्रभाव को भी पृथक् रूप से प्रस्तुत किया गया और उसे अस्वीकृत किया गया।[126] इसलिए, दोनों सभाओं की 26 मार्च, 2002 को एक संयुक्त बैठक हुई जिसमें विधेयक पारित किया गया।

(ख) राज्य-संबंधी विषय पर संसद् द्वारा विधान बनाने के लिए संकल्प (अनुच्छेद 249)

अध्याय 1 में अनुच्छेद 249 की पृष्ठभूमि पहले ही रेखांकित की जा चुकी है जिसमें राज्य सूची में दिए गए किसी विषय में कानून बनाने के लिए संकल्प पारित करने संबंधी विषय में राज्य सभा को विशेष शक्ति प्रदान की गई है। अनुच्छेद में यह उपबंध किया गया है कि यदि राज्य सभा ने उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों में से कम-से-कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प किया है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि संसद् राज्य सूची में प्रमाणित ऐसे विषय के संबंध में, जो उस संकल्प में विनिर्दिष्ट है, विधि बनाये तो जब तक वह संकल्प प्रवृत्त है, संसद् के लिए उस विषय के संबंध में भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाना विधिपूर्ण होगा।[127] ऐसा संकल्प, एक वर्ष से अनधिक ऐसी अवधि के लिए प्रवृत्त रहेगा, जो उसमें विनिर्दिष्ट की जाए। तथापि, राज्य सभा मूल संकल्प को प्रवृत्त बनाये रखने के लिए उत्तरोत्तर संकल्प पारित कर सकती है किन्तु ऐसे प्रत्येक संकल्प की सीमित अवधि केवल एक वर्ष की होगी।[128] किसी संकल्प द्वारा संसद् को प्रदान की गई शक्ति के माध्यम से बनाया गया कोई कानून, संकल्प के निष्प्रभावी हो जाने के 6 माह बाद निष्प्रभावी हो जायेगा सिवाय उन बातों के संबंध में जो उक्त अवधि की समाप्ति से पूर्व की गई हो अथवा किए जाने से छोड़ दी गई थीं।[129]

अनुच्छेद 249 का 1950 में अस्थायी संसद् द्वारा काले धन पर प्रभावी नियंत्रण करने हेतु सर्वप्रथम सहारा लिया गया था, जिसने कि 12 अगस्त, 1950 को एक संकल्प पारित किया था राज्य सभा ने 22 जुलाई, 1952 को अपेक्षित बहुमत से निम्नलिखित संकल्प पारित किया था:

जबकि अस्थायी संसद् ने तत्समय प्रवृत्त संविधान के अनुच्छेद 249 की धारा (1) के अनुसरण में 12 अगस्त, 1950 को पारित संकल्प (जिसे इसके बाद उक्त संकल्प कहा गया है) द्वारा यह उद्घोषित किया था कि राष्ट्रीय हित में यह अनिवार्य है कि अस्थायी संसद् 15 अगस्त, 1950 से एक वर्ष की अवधि के लिए राज्य सूची में प्रमाणित निम्नलिखित विषयों के संबंध में कानून बनाये, अर्थात्:

(i) सूची-III की 33वीं प्रविष्टि के उपबंधों के अध्यधीन राज्य सूची के भीतर व्यापार तथा वाणिज्य; और

(ii) सूची-III की 33वीं प्रविष्टि के उपबंधों के अध्यधीन वस्तुओं के उत्पादन, आपूर्ति और वितरण;

और यत: अस्थायी संसद् द्वारा 7 जून, 1951 को पारित एक अन्य संकल्प द्वारा, उक्त संकल्प को 15 अगस्त, 1951 से और एक वर्ष की अवधि के लिए प्रवृत्त रखा गया था;

और यत: राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक है कि संसद् को 15 अगस्त, 1952 से और एक वर्ष की अवधि के लिए उपरोक्त विषयों के बारे में कानून बनाने की शक्ति प्रदान की जानी चाहिए;

यह परिषद् उक्त अनुच्छेद के खंड (2) के परन्तुक के अनुसरण में यह संकल्प करती है कि वह उक्त संकल्प को उस तारीख से जब यह संकल्प प्रवृत्त नहीं रहेगा उससे और एक वर्ष की अवधि के लिए प्रवृत्त रहने का अनुमोदन करती है।[130]

अस्थायी संसद् ने इस संकल्प के अनुसरण में आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियां) संशोधन अधिनियम, 1950 तथा माल आपूर्ति और मूल्य अधिनियम, 1950 अधिनियमित किए।

पुन: 1951 में अस्थायी संसद् ने निम्नलिखित संकल्प पारित किया :

> यत: कतिपय निष्क्रान्त संपत्ति के बेहतर प्रबंधन और निपटान के लिए गैर-निष्क्रांत लोगों से निष्क्रांत लोगों के हितों को अलग करने का उपबंध करने हेतु कानून बनाना आवश्यक है और ऐसे कानून अन्य बातों के साथ-साथ अन्य सूची में प्रगणित विषयों से संबंधित हो सकते हैं;
>
> यह सभा संविधान के अनुच्छेद 249, जिस रूप में राष्ट्रपति द्वारा इसे संविधान के अनुच्छेद 392 के अधीन अंगीकृत किया गया है और जिस रूप में यह इस समय प्रवृत्त है, के अनुसरण में यह संकल्प करती है कि यह राष्ट्रीय हित में आवश्यक है कि संसद् राज्य सूची की प्रविष्टि 18 और 30 में प्रगणित निम्नलिखित विषयों के संबंध में 15 जून, 1951 से एक वर्ष की अवधि के लिए कानून बनाये, अर्थात्:
>
> > भूमि में अथवा उस पर अधिकार, कृषि संबंधी भूमि का अन्तरण और अन्य संक्रामण, साहूकारी और साहूकार तथा कृषि ऋणग्रस्तता से राहत।[131]

पाकिस्तान से विस्थापित व्यक्तियों के पुनर्वास और उन्हें बसाने से संबंधित समस्या का समाधान करने के लिए अंत:कालीन संसद् ने इस संकल्प के अनुसरण में निष्क्रांत हित (पृथक्करण) अधिनियम, 1951 अधिनियमित किया।

लगभग 35 वर्षों के दौरान यह अनुच्छेद निष्क्रिय रहा और उसके बाद अगस्त, 1986 में पुन: इसका अवलम्ब लिया गया। 13 अगस्त, 1986 को राज्य सभा ने अपेक्षित बहुमत से निम्नलिखित संकल्प पारित किया:

> यत: पश्चिमोत्तर सीमा से घुसपैठ और सीमावर्ती क्षेत्रों में अनियंत्रित आतंकवादी गतिविधियों के कारण पंजाब और भारत के अन्य पश्चिमोत्तर सीमावर्ती क्षेत्रों में स्थिति अत्यंत गंभीर हो गयी है;
>
> अत: यह सभा संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसरण में यह संकल्प करती है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक है कि संसद् 12 अगस्त, 1986 से एक वर्ष की अवधि के लिए निम्नलिखित विषयों के संबंध में कानून बनाये, अर्थात् :
>
> > लोक व्यवस्था (परन्तु जिसमें नौसेना, थल सेना अथवा वायु सेना अथवा संघ की कोई अन्य सशस्त्र सेना या संघ के नियंत्रणाधीन किसी अन्य बल या उसके अधीन सिविल शक्ति की सहायतार्थ किसी दस्ते का प्रयोग सम्मिलित नहीं है) (राज्य सूची सूची-II की प्रविष्टि-1);
> >
> > पुलिस (रेलवे और ग्राम पुलिस सहित) सूची-I की प्रविष्टि 2क के उपबंधों के अध्यधीन (राज्य सूची-सूची-II की प्रविष्टि-2)
> >
> > कामगारों, सुधारगृहों, बोर्स्टल संस्थाएं तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थाएं और उनमें निरुद्ध व्यक्ति, कारागारों और अन्य संस्थाओं के प्रयोग के लिए अन्य राज्यों के साथ व्यवस्था (राज्य सूची-सूची-II की प्रविष्टि-4);
> >
> > इस सूची में किसी विषय के संबंध में कानून के विरुद्ध अपराध (राज्य सूची-सूची-II की प्रविष्टि-64);
> >
> > इस सूची में किन्हीं विषयों के संबंध में उच्चतम न्यायालय को छोड़कर सभी न्यायालयों की अधिकारिता और शक्तियां (राज्य सूची-सूची-II की प्रविष्टि-65);
> >
> > किसी न्यायालय में ली गई फीस को शामिल न करते हुए इस सूची में किसी भी विषय के संबंध में फीस (राज्य सूची-सूची-II की प्रविष्टि-66)।[132]

तथापि, उक्त संकल्प के अनुसरण संसद् द्वारा कोई विधान पारित नहीं किया गया था।

अनुच्छेद 249 के संबंध में सरकारिया आयोग के विचार

सरकारिया आयोग ने केन्द्र-राज्य संबंधों के संदर्भ में इस अनुच्छेद को लोप करने संबंधी सुझाव पर विचार किया था। तथापि, आयोग ने निम्नलिखित विचार व्यक्त किये :

> इस अनुच्छेद द्वारा प्रदान की गई शक्तियों के दुरुपयोग किये जाने के विरुद्ध तीन अन्त:निर्मित सुरक्षोपाय किए गये हैं। पहला सुरक्षोपाय यह है कि संसद् केवल तभी अधिकार-क्षेत्र ग्रहण कर सकती है जब राज्य सभा में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों में से दो-तिहाई सदस्य उस आशय का संकल्प पारित कर दें। दूसरे, संकल्प में राज्य सूची में प्रगणित वह विषय, जिसके संबंध में संसद् को राष्ट्रीय हित में कानून बनाने के लिए प्राधिकृत किया जा रहा हो, विनिर्दिष्ट करना अपेक्षित है। सूची-II में दी गई कतिपय प्रविष्टियां बहुत-से विषयों का गुच्छा बन गई है। अत: राज्य सभा उस संकल्प को किसी एक प्रविष्टि में विशेषत: उन विषयों में से किसी एक के संबंध में (जो किसी विषय का एक पहलू भी हो सकता है) विशिष्ट रूप से सीमित करने के लिये मुक्त है। तीसरे, अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन पारित कोई संकल्प एक वर्ष से अन्यून अवधि के लिए प्रवृत्त बना रह सकता है जैसाकि उसमें विनिर्दिष्ट हो जब तक कि उसे किसी नये संकल्प द्वारा एक वर्ष से अन्यून अवधि के लिए बढ़ा न दिया जाये। खंड (1) के अनुसरण में पारित कोई कानून, संकल्प के प्रवृत्त न रहने के बाद छ: महीने की अवधि समाप्त होने पर प्रवृत्त नहीं रहेगा। यह सच है कि ये सुरक्षोपाय दोषरहित नहीं हैं। किन्तु मुख्य बात यह है कि हर स्थिति में, शक्ति का प्रयोग संसद्, जो सभी राज्यों के लोगों के प्रतिनिधियों द्वारा बनती है, द्वारा किया जायेगा; स्वयं इस बात की गारंटी है कि इसका दुरुपयोग नहीं होगा। ऐसा कोई आक्षेप नहीं है कि जब 1950-51 में उपरोक्त विधान को पारित करने के लिए इस शक्ति का प्रयोग किया गया था तो इससे राज्यों अथवा उनके लोगों के हितों को कोई नुकसान पहुंचा था। हाल के एक मामले में संसद् को शक्ति दी गई थी कि वह पश्चिमोत्तर सीमा पर उत्पन्न स्थिति, जिसे अनुच्छेद 249 के अधीन राज्य सभा के संकल्प के अनुसार "अत्यंत गम्भीर" बताया गया था, संबंधी कुछ विषयों के बारे में कानून बनाये।
>
> अनुच्छेद में असाधारण प्रवृत्ति की अविलम्बनीय समस्याओं, जो अस्थायी तौर पर राष्ट्रीय महत्व की बन जाती है, से राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावी रूप से निपटने के लिए सरल तथा तेजी से निपटने का उपबंध किया गया है। अनुच्छेद का उपयोग उस स्थिति में किया जा सकता है जहां तेजी से कार्यवाही किया जाना महत्वपूर्ण बात हो तथा जहां अनुच्छेद 352 और 356 के आपातकालीन उपबंधों का आह्वान किया जाना आवश्यक अथवा समीचीन नहीं माना जाता है। अनुच्छेद 249 की तुलना में अनुच्छेद 252 में जिस प्रक्रिया का उपबंध किया गया है, वह जटिल है और उसमें बहुत समय लग जाता है। इसलिए यह न्यायोचित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 252 में अनुच्छेद 249 के समान प्रभावोत्पादक अथवा किसी बेहतर विकल्प का उपबंध है अत: हमारे समक्ष उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर यह कहना सम्भव नहीं है कि इस असाधारण शक्ति का दुरुपयोग किया गया है। इसका प्रयोग असाधारण परिस्थितियों में अस्थायी अवधियों के लिए, जिन्हें उत्तरोत्तर संकल्पों द्वारा अनिश्चित काल के लिए नहीं बढ़ाया गया है, पूर्ण संयम के साथ किया गया है।[133]

(ग) अखिल भारतीय सेवा के सृजन हेतु संकल्प (अनुच्छेद 312)

यदि राज्य सभा किसी ऐसे संकल्प द्वारा जिसका उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों में से कम-से-कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा मतदान द्वारा समर्थन किया गया हो, घोषणा करती है कि ऐसा करना राष्ट्रीय हित में आवश्यक अथवा समीचीन है, तो संसद् कानून द्वारा संघ तथा राज्यों के लिए समान एक अथवा अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन का उपबंध कर सकती है।[134] इस अनुच्छेद के अधीन राज्य सभा में 6 दिसम्बर, 1961 को भारतीय इंजीनियरी सेवा, भारतीय वन सेवा और भारतीय चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा के सृजन के लिए एक संकल्प

स्वीकृत हुआ था।[135] इस संकल्प के अनुसरण में संसद् ने अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 में संशोधन किया ताकि इन सेवाओं को विधान में शामिल किया जा सके। पुन: 30 मार्च, 1965 को राज्य सभा ने भारतीय कृषि सेवा और भारतीय शिक्षा सेवा के लिए एक संकल्प पारित किया।[136]

संयोग से यह भी बता दिया जाये कि एक गैर-सरकारी सदस्य ने भी अनुच्छेद 312 के अधीन उपरोक्त सेवाओं (भारतीय कृषि सेवा को छोड़कर) तथा भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन हेतु परिनियत संकल्प की अधिसूचना दी थी। संकल्प दो सत्रों में गृहीत हुआ किन्तु चर्चा तक नहीं पहुंच सका।[137]

(घ) आपात्कालीन स्थिति की उद्घोषणा के अनुमोदनार्थ संकल्प (अनुच्छेद 352)

यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाता है कि गंभीर आपात्कालीन स्थिति बनी हुई है जिससे भारत या उसके किसी क्षेत्र का युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से खतरा पैदा हो गया है, तो वह उद्घोषणा द्वारा सम्पूर्ण भारत अथवा उद्घोषणा में विनिर्दिष्ट उसके किसी भाग के बारे में इस आशय की घोषणा कर सकता है।[138] ऐसी प्रत्येक उद्घोषणा को, सिवाय ऐसी किसी घोषणा के मामले में जो पूर्ववर्ती घोषणा का प्रतिसंहरण करती हो तथा एक माह पूरा होने पर प्रवृत्त न रह गयी हो, तथा जब तक उसे उक्त अवधि के समाप्त होने से पूर्व संकल्प द्वारा संसद् की दोनों सभाओं में गृहीत न कर लिया गया हो, संसद् की प्रत्येक सभा के समक्ष रखना होता है।[139]

यदि उद्घोषणा के जारी किए जाने की अवधि के दौरान अथवा उसके एक माह के भीतर लोक सभा भंग हो जाती है तथा इसी दौरान राज्य सभा संकल्प द्वारा उद्घोषणा का अनुमोदन कर देती है तो उद्घोषणा लोक सभा के पुनर्गठन के बाद उसकी पहली बैठक से 30 दिन तक प्रभावी बनी रहती है।[140] लोक सभा संकल्प द्वारा 30 दिनों के भीतर उद्घोषणा का अनुमोदन कर सकती है। इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, जब तक कि वह प्रतिसंहृत नहीं हो जाती, उद्घोषणा को स्वीकृत करने वाले दूसरे संकल्प को पारित हो जाने से और छह माह की अवधि के लिए प्रवृत्त बनी रहेगी।[141] यदि किसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला कोई संकल्प दोनों सभाओं द्वारा पारित हो जाता है, तो वह उद्घोषणा जब तक कि वह प्रतिसंहृत नहीं हो जाती, और छह माह की अवधि के लिए प्रवृत्त बनी रहेगी।[142] यदि लोक सभा ऐसी छह माह की किसी अवधि के दौरान भंग हो जाती है तो राज्य सभा संकल्प पारित कर सकती है तथा इस प्रकार उद्घोषणा आगे प्रवृत्त बनी रह सकती है, जब तक कि, लोक सभा अपने पुनर्गठन के बाद अपनी पहली बैठक से 30 दिनों के भीतर किसी संकल्प को पारित नहीं कर देती।[143] इस प्रकार राज्य सभा को लोक सभा के भंग हो जाने के दौरान, किसी उद्घोषणा का अनुमोदन किये जाने के संबंध में विशेष शक्ति दी गई है।

उद्घोषणा का अनुमोदन करने अथवा उसे आगे प्रवृत्त बनाये रखने वाले संकल्प को संसद् के किसी सदन में उस सदन की पूर्ण सदस्यता के बहुमत से और उस सदन में उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से पारित किया जाना अपेक्षित है।[144]

अनुच्छेद 352 को संविधान (चवालीसवां) संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा पर्याप्त संशोधित कर दिया गया है। अन्य बातों के साथ-साथ संशोधन में यह उपबन्ध किया गया है कि उद्घोषणा को (संविधान में दो

माह के मूल प्रावधान के बजाय) एक माह के भीतर संसद् की दोनों सभाओं के संकल्पों द्वारा अनुमोदित कराया जाना होता है और ऐसे संकल्पों को जैसाकि ऊपर विनिर्दिष्ट है (पूर्व निर्धारित साधारण बहुमत की अपेक्षा) विशेष बहुमत द्वारा पारित कराना होता है। यह उपबन्ध भी किया गया है कि आपात्कालीन स्थिति की उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाये रखने के लिए प्रत्येक छह माह के लिए दोनों सभाओं के संकल्पों द्वारा अनुमोदित कराया जाना अपेक्षित है। अन्य महत्वपूर्ण उपबन्ध यह किया गया है कि लोक सभा को आपात्कालीन स्थिति की उद्घोषणा को अनुमोदित करने की शक्ति दी गई है और उस सभा के 1/10 सदस्य सूचना द्वारा भी आपात्कालीन स्थिति की उद्घोषणा को जारी रखने पर विचार करने हेतु लोक सभा की विशेष बैठक की मांग कर सकते हैं।

ऐसे तीन अवसर आये हैं जब अनुच्छेद 352 के अधीन आपात्कालीन स्थिति की उद्घोषणाएं जारी की गईं। 26 अक्तूबर, 1962 को जारी की गई उद्घोषणा को 8 नवम्बर, 1962 को संसद् की दोनों सभाओं के पटल पर रखा गया था। उसका 13 और 14 नवम्बर, 1962 को क्रमश: राज्य सभा तथा लोक सभा द्वारा अपने-अपने संकल्पों द्वारा अनुमोदन किया गया। 3 दिसम्बर, 1971 को जारी की गई उद्घोषणा को 4 दिसम्बर, 1971 को संसद् की दोनों सभाओं के पटल पर रखा गया। उसका राज्य सभा तथा लोक सभा द्वारा एक ही दिन संकल्प पारित करके अनुमोदन किया गया। 25 जून, 1975 को जारी की गई उद्घोषणा को 21 जुलाई, 1975 को संसद् की दोनों सभाओं के पटल पर रखा गया। उसे 22 जुलाई, 1975 को राज्य सभा तथा 23 जुलाई, 1975 को लोक सभा द्वारा अनुमोदित किया गया।

(ङ) किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने के संबंध में उद्घोषणा के अनुमोदनार्थ संकल्प (अनुच्छेद 356)

उद्घोषणा का सभा पटल पर रखा जाना

यदि राष्ट्रपति का किसी राज्य के राज्यपाल से प्रतिवेदन प्राप्त होने पर या अन्यथा, यह समाधान हो जाता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता, तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा उस राज्य की सरकार के सभी या कोई कृत्य ग्रहण करते हुए उस प्रयोजनार्थ अन्य आनुषंगिक और पारिणामिक उपबन्ध कर सकेगा।[145] ऐसी किसी उद्घोषणा का किसी पश्चात्वर्ती उद्घोषणा का प्रतिसंहरण किया जा सकेगा या उसमें परिवर्तन किया जा सकेगा।[146] प्रत्येक उद्घोषणा को संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखना होगा।[147]

जब उड़ीसा के संबंध में अनुच्छेद 356 के अधीन उद्घोषणा सभा पटल पर रखी जा रही थी तो कुछ सदस्यों ने यह आपत्ति उठाई थी कि चूंकि उसकी अवधि समाप्त हो चुकी थी, उसे सभा पटल पर नहीं रखा जा सकता। उस पर सभापति ने यह व्यवस्था दी थी :

> ...संविधान में प्रत्येक उद्घोषणा का सभा के पटल पर रखा जाना अपेक्षित है। इसकी वैधता क्या है, यह कब समाप्त होगी, ये ऐसे विषय हैं जिन पर इस अवस्था में चर्चा नहीं की जा सकती। जहां तक इसके सभा पटल पर रखे जाने का संबंध है यह संविधान की आवश्यकता है और इसे कोई भी चुनौती नहीं दे सकता।[148]

किसी उद्घोषणा को सभा पटल पर रखते हुए राज्यपाल के प्रतिवेदन की प्रति का सभा पटल पर रखा जाना, जहां राष्ट्रपति ने उस प्रतिवेदन पर कार्यवाही की है, आवश्यक नहीं है।

जब केरल के बारे में गृह मंत्री ने उद्घोषणा की एक प्रति सभा पटल पर रखी तो औचित्य प्रश्न पर यह मांग की गई थी कि राज्यपाल के प्रतिवेदन को उद्घोषणा के साथ सभा पटल पर रखा जाना चाहिए। सभापति ने विचार व्यक्त किया था कि:

(क) गृह मंत्री के वक्तव्य के अनुसार, उन दस्तावेजों को, जिन पर उद्घोषणा आधारित हो, सभा पटल पर रखने की संवैधानिक बाध्यता नहीं है;

(ख) मंत्री महोदय, प्रासंगिक मुद्दे से संबद्ध पर्याप्त सूचना देंगे;

(ग) संसद् सर्वोपरि है किन्तु वह स्वयं निर्मित नियमों से बंधी है, ऐसे कई नियम हैं जिनमें कहा गया है कि ऐसे गोपनीय प्रकृति के दस्तावेजों को जिनका लोक-हित में प्रकाशन उचित नहीं है, सभा पटल पर रखे जाने की आवश्यकता नहीं है।

अत: सभापति ने कहा कि जब उन्होंने यह महसूस किया कि लोक-हित की दृष्टि से दस्तावेज का प्रकाशन उचित नहीं है, तो वह मंत्री को उसे सभा के पटल पर रखने के लिए बाध्य नहीं कर सके।[149]

पुन: बाद में एक अवसर पर एक औचित्य प्रश्न किए जाने पर कि राज्यपाल के प्रतिवेदन को उद्घोषणा के साथ सभा पटल पर रखा जाये, सभापीठ ने व्यवस्था दी कि यदि सरकार उसे सभा पटल पर रखने की इच्छुक हो, तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु वह सरकार को उसे सभा के पटल पर रखने का निर्देश नहीं देंगे क्योंकि उनकी राय में कानून द्वारा उसे सभा पटल पर रखा जाना अपेक्षित नहीं है।[150]

पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाये जाने से संबंधित संकल्प के दौरान, राज्यपाल के प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखने की मांग की गई थी। तथापि, पूर्व निर्णय के अभाव में मामले पर आगे कार्यवाही नहीं की गई।[151]

हालांकि परिपाटी के अनुसार सामान्यत: राज्यपाल का प्रतिवेदन प्रारम्भिक उद्घोषणा के साथ सभा पटल पर रखा गया है। यद्यपि, कुछ अवसरों पर पूरे प्रतिवेदन के स्थान पर केवल प्रतिवेदन का सारांश ही रखा गया है।[152]

उद्घोषणा का अनुमोदन

कोई उद्घोषणा, जब तक कि उसे राष्ट्रपति द्वारा प्रतिसंहृत न कर दिया गया हो, दो माह की अवधि के पश्चात् प्रवृत्त नहीं रहेगी, जब तक कि इस अवधि के समाप्त होने से पहले संसद् की दोनों सभाओं द्वारा उसे संकल्प द्वारा अनुमोदित न कर दिया गया हो।[153]

यदि ऐसी कोई उद्घोषणा (जो पूर्व उद्घोषणा को प्रतिसंहृत करने वाली उद्घोषणा न हो) जारी कर दी जाती है जबकि लोक सभा भंग हो गयी हो अथवा वह दो माह की अवधि के भीतर भंग कर दी गई हो और यदि राज्य सभा संकल्प द्वारा उद्घोषणा का अनुमोदन कर देती है किन्तु लोक सभा ने उस अवधि के समाप्त हो जाने से पूर्व ऐसा न किया हो, तो उद्घोषणा उस तारीख से, जबकि लोक सभा की अपने पुनर्गठन के बाद पहली बैठक हो, 30 दिन समाप्त होने के बाद प्रवृत्त नहीं रहेगी, जब तक कि उक्त अवधि की समाप्ति से पूर्व लोक सभा भी उद्घोषणा का अनुमोदन करते हुए संकल्प पारित न कर दे।[154]

इस उपबन्ध के अधीन राज्य सभा के दो अवसरों पर विशेष सत्र हुए, पहली बार तमिलनाडु और नागालैंड के संबंध में उद्घोषणा को जारी रखने का अनुमोदन करने के लिए तथा दूसरी बार हरियाणा के संबंध में उद्घोषणा का अनुमोदन करने के लिए। दोनों ही अवसरों पर लोक सभा भंग हो चुकी थी।[155]

उद्घोषणा का प्रपत्र इस प्रकार है: कि यह सभा संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन...राज्य के संबंध में दिनांक...को राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई उद्घोषणा का अनुमोदन करती है।[156]

उद्घोषणा को जारी रखने वाले संकल्प का प्रपत्र इस प्रकार है: यह सभा संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन...राज्य के संबंध में दिनांक...को राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई उद्घोषणा को दिनांक....से और छह मास की अवधि के लिए प्रवृत्त बनाये रखने का अनुमोदन करती है।[157]

संकल्प पर संशोधन

उद्घोषणा को सशर्त अनुमोदन देने का कोई उपबंध नहीं है।

एक अवसर पर जब एक सदस्य ने पश्चिमी बंगाल के संबंध में उद्घोषणा संबंधी एक संकल्प में एक संशोधन इस रूप से उपस्थित करना चाहा कि "इसे अनुमोदित करते हुए सभा सरकार को यह निदेश देती है कि वह जून से पहले मध्यावधि चुनाव कराये" तब सभापीठ ने यह कहते हुए इसे अनुचित ठहराया कि यह क्षेत्राधिकार के बाहर है और यह विचार व्यक्त किया कि "आप संकल्प को या तो अनुमोदित कर सकते हैं अथवा रद्द कर सकते हैं परन्तु आप इसका विस्तार नहीं कर सकते।"[158]

तथापि, राज्य सभा में उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले संकल्प पर संशोधन गृहीत किए गए हैं और उपस्थित किए गए हैं जिनसे संकल्प में शर्त लगाई जा सके अथवा राय व्यक्त की जा सके या इसकी अवधि को सीमित किया जा सके। उपस्थित किए गये संशोधनों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

(1) पेप्सू के संबंध में उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले संकल्प के संबंध में संशोधन उपस्थित किए गये थे कि संकल्प के अंत में निम्नलिखित जोड़ा जाये, अर्थात् "किन्तु पेप्सू के राज्य प्रमुख को इन कृत्यों के प्रत्यायोजन पर खेद व्यक्त करते हैं;" "परन्तु सरकार को आदेश देती है कि वह राज्य में अब से तीन महीनों के भीतर चुनाव कराये;[159] (2) आन्ध्र के संबंध में "अनुमोदन करती है" शब्दों के स्थान पर "अनुचित समझती है" शब्दों को प्रतिस्थापित करने के लिए संशोधन उपस्थित किए गये थे; एक प्रतिस्थानी संकल्प भी उपस्थित किया गया था कि राष्ट्रपति की उद्घोषणा पर विचार करने के बाद इस सभा की यह सम्मति है कि राष्ट्रपति द्वारा आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल के सभी कृत्यों को स्वयं ग्रहण किये जाने से पहले आन्ध्र विधान सभा में विपक्ष के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करने हेतु आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल द्वारा पर्याप्त प्रयास किए जाने चाहिए[160] (संशोधन अस्वीकृत कर दिए गए); (3) एक सदस्य ने पंजाब के संबंध में एक संशोधन प्रस्तुत किया कि उद्घोषणा के जारी रहने की सीमा (छह महीने के बजाय) "31 दिसम्बर, 1989 तक" तय कर दी जाए;[161] एक अन्य अवसर पर एक सदस्य ने संकल्प के अंत में एक यह पैराग्राफ जोड़ना चाहा : "कि यह सभा यह संकल्प और करती है कि पंजाब विधान सभा के आम चुनाव अधिक से अधिक 1 जनवरी, 1991 तक करा दिए जाएं;"[162] (4) जम्मू और कश्मीर के संबंध में एक सदस्य ने यह संशोधन प्रस्तुत किया: "कि यह सभा यह संकल्प और करती है कि राज्य विधान सभा के पुनर्जीवन और नए चुनाव कराने के लिए तब तक कोई कदम नहीं उठाए जाएंगे जब तक कि वर्तमान आतंकवादी गतिविधियों पर पूर्णत: अंकुश नहीं लग जाता;"[163] एक अन्य सदस्य ने इस आशय का संशोधन प्रस्तुत किया कि राज्य विधान सभा के चुनाव 1 नवम्बर, 1990 से पहले करा दिए जाएं;[164] एक अन्य संशोधन में उद्घोषणा की अवधि को (छह महीने के बजाय) तीन महीने तक[165] सीमित करना चाहा गया; एक अन्य संशोधन में इस संकल्प में एक यह पैराग्राफ शामिल करना चाहा गया कि "जम्मू और कश्मीर विधान सभा के चुनाव तथा लोक सभा में उस राज्य से छह सीटों के चुनाव चार महीने के भीतर कराए जाएंगे।"[166]

संकल्प का निरनुमोदन

इस उद्घोषणा का निरनुमोदन चाहने वाला संकल्प भी अग्राह्य है क्योंकि अनुच्छेद 356

में ऐसे किसी संकल्प के लिए कोई प्रावधान नहीं है। यदि सभा चाहे तो उद्घोषणा को अनुमोदित करने के लिए इस संकल्प को मत द्वारा पराजित कर सकती है जैसाकि सभापति महोदय ने अपने निर्णय में कहा है :

> जैसाकि सब जानते हैं, स्वयं संविधान में अध्यादेश और उद्घोषणा के बीच अंतर किया गया है। अनुच्छेद 123 के अंतर्गत अध्यादेश निरुनुमोदन चाहने वाले संकल्पों के अध्यधीन हो सकते हैं लेकिन अनुच्छेद 356 के अंतर्गत तद्नुरूप कोई प्रावधान नहीं किया गया है। अतएव निरनुमोदन चाहने वाले प्रस्ताव को ग्रहण नहीं किया जा सका।[167]

> पहले एक बार जब जम्मू और कश्मीर राज्य संबंधी उद्घोषणा से संबंधित कागजात जो संविधान के अनुच्छेद 356 के अंतर्गत जारी किए गए थे, सभा पटल पर रखे गए थे, तब एक सदस्य ने यह अनुरोध किया था कि चूंकि राज्य संबंधी ऐसी उद्घोषणा का अनुमोदन चाहने वाला परिनियत संकल्प सरकार द्वारा प्रस्तुत किया गया था, अतएव, सदस्यों को उद्घोषणा के निरनुमोदन का संकल्प प्रस्तुत करने का अधिकार भी होना चाहिए। अत: सदस्य महोदय ने सभापति से यह अनुरोध किया था कि "वह इस संभावना की जांच करें कि इसके बाद से संसद्-सदस्य को भी यह एक अवसर मिलना चाहिए, और यह अवसर उसे अधिकारपूर्वक मिलना चाहिए कि वह इस मामले को उठाए, ताकि इस पर कार्यपालिका की ही पूरी तरह से मनमर्जी न चले।" सभापति ने यह निर्णय किया कि यदि सरकार उद्घोषणा का अनुमोदन नहीं चाहती है तो उसे संकल्प प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है और यदि वह संकल्प प्रस्तुत नहीं करती है तो उद्घोषणा व्यपगत हो जाती है अत: चर्चा की कोई बात नहीं है। ऐसा तभी होगा जब उद्घोषणा जारी रहे कि सभा में चर्चा के लिए कुछ मौजूद है।[168]

उद्घोषणा के प्रतिसंहरण के लिए प्रस्ताव

अतएव संवैधानिक उपबंध की दृष्टि से उद्घोषणा के निरनुमोदन के लिए संकल्प की सूचना ग्रहण नहीं की जाती है। परंतु सदस्य राष्ट्रपति को उद्घोषणा के प्रतिसंहरण की सिफारिश करने वाले प्रस्ताव की सूचना दे सकता है। ऐसे प्रस्ताव इस आधार पर स्वीकृत किए गए हैं कि स्वयं संविधान में राष्ट्रपति की उद्घोषणा के प्रतिसंहरण पर विचार किया गया है।[169]

> एक बार, पश्चिमी बंगाल के संबंध में उद्घोषणा के प्रतिसंहरण से संबंधित प्रस्ताव भी उस उद्घोषणा के सभा पटल पर रखे जाने से पूर्व ग्रहण किया गया था।[170]

पहले संबद्ध सरकारी संकल्पों के अनुमोदनार्थ चर्चा के लिए उद्घोषणाओं के प्रतिसंहरण संबंधी प्रस्तावों को भी कार्यावलि में शामिल करने की प्रथा थी। कभी-कभी एक जैसे मामले भी संयुक्त चर्चा के लिए सूचीबद्ध किए गए थे। कुछ ऐसे महत्वपूर्ण उदाहरण निम्नलिखित हैं :

> बिहार से संबंधित उद्घोषणा के प्रतिसंहरण का प्रस्ताव गृहीत किया गया[171] और कार्यावलि में उद्घोषणा का अनुमोदन चाहने वाले सरकारी संकल्प के साथ शामिल किया गया।[172] (लेकिन जिस सदस्य ने प्रस्ताव की सूचना दी थी कि वह उपस्थित नहीं था); राजस्थान संबंधी उद्घोषणा के प्रतिसंहरण के प्रस्ताव पर भी इस विषय के सरकारी संकल्प के साथ चर्चा की गई।[173] पश्चिमी बंगाल संबंधी उद्घोषणा के प्रतिसंहरण के प्रस्ताव पर भी उद्घोषणा के अनुमोदन वाले सरकारी संकल्प के साथ-साथ चर्चा की गई।[174] कर्णाटक के राज्यपाल की कार्यवाही के अनुमोदन और उसे वापस बुलाने की सिफारिश करने वाले प्रस्ताव पर कर्णाटक संबंधी उद्घोषणा के अनुमोदन वाले परिनियत संकल्प के साथ चर्चा की गई। (संकल्प स्वीकृत हुआ और प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ);[175] तमिलनाडु से संबंधित उद्घोषणा के प्रतिसंहरण के प्रस्ताव को इसकी उद्घोषणा के अनुमोदन वाले सरकारी संकल्प के साथ सूचीबद्ध किया गया।[176] (यह प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया गया क्योंकि विपक्ष ने बहिर्गमन कर दिया था) तथा नौ राज्यों से संबंधित उद्घोषणाओं के प्रतिसंहरण की राष्ट्रपति से सिफारिश करने वाले बहुप्रयोजनीय प्रस्ताव पर उद्घोषणाओं के अनुमोदन वाले नौ संकल्पों के साथ चर्चा की गई (प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ और संकल्प स्वीकृत हुए)।[177]

उपर्युक्त परंपरा के अनुसरण में जब उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश से संबंधित उद्घोषणाओं के प्रतिसंहरण की सिफारिश करने वाले प्रस्तावों को 21 दिसम्बर, 1992 को उनके अनुमोदन वाले संकल्पों के साथ चर्चा के लिए सूचीबद्ध किया गया तो कुछ सदस्यों ने इस परंपरा पर आपत्ति की। संकल्प स्वीकृत होने के बाद सभापीठ ने संकल्पों को यह कहते हुए सभा में नहीं रखा कि ये निष्फल हो गए हैं।[178]

इस संदर्भ में प्रसंगवश कुछ असामान्य पूर्वोदाहरणों का भी उल्लेख किया जा सकता है।

एक बार हरियाणा से संबंधित उद्घोषणा के अनुमोदन वाले सरकारी संकल्प के साथ एक सदस्य द्वारा निम्नलिखित प्रस्ताव के लिए सूचना दी गई जिसमें यह चर्चा भी की गई :

> "कि यह सभा पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल के उस राज्य में संयुक्त मोर्चा (यूनाइटेड फ्रंट) सरकार को बर्खास्त करने और डा. पी.सी. घोष के नेतृत्व वाली सरकार की अवैध स्थापना करने तथा इस प्रकार संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली को निर्ममतापूर्वक पैरों तले रौंदने के असंवैधानिक कृत्य की भर्त्सना करती है।"

यह संकल्प स्वीकृत हुआ और प्रस्ताव अस्वीकृत।[179]

एक बार एक सदस्य ने विशेषाधिकार का एक रोचक प्रश्न उठाया। उन्होंने लोक सभा की कार्यावलि की आन्ध्र राज्य विधायी (शक्तियों का प्रत्यायोजन) विधेयक, 1954 के पुर:स्थापन से संबंधित एक मद का उस सभा में उल्लेख किया। सदस्य का यह कहना था यह सूचना राष्ट्रपति की उद्घोषणा पर चर्चा किए जाने और राज्य सभा द्वारा स्वीकृत किए जाने से पूर्व ही जारी की जा चुकी थी। उन्होंने यह निवेदन किया कि चूंकि राष्ट्रपति की उद्घोषणा पर राज्य सभा के निर्णय की पूर्वाशा संविधान के उल्लंघन और सभा के विशेषाधिकार भंग के बराबर है, अत: यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाना चाहिए। सभापति महोदय ने निम्न निर्णय दिया:

अनुच्छेद 356 के खंड (1) के अंतर्गत जारी प्रत्येक उद्घोषणा पर संसद् की दोनों सभाओं की मंजूरी लेनी जरूरी है, लेकिन इस विधेयक को अनुच्छेद 357(1) में किए गए प्रावधान के अनुसरण में लोक सभा में पुर:स्थापित करना चाहा गया है। इस अनुच्छेद में यह बताया गया है कि: अनुच्छेद 356 के खंड (1) के अधीन की गई उद्घोषणा द्वारा....उसमें यह नहीं कहा गया है, "राष्ट्रपति द्वारा की गई और दोनों सभाओं द्वारा स्वीकृत की गई उद्घोषणा द्वारा।" उसमें मात्र यह कहा गया है : जहां अनुच्छेद 356 के खंड (1) के अधीन की गई उद्घोषणा द्वारा यह घोषणा की गई है कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद् द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन प्रयोक्तव्य होंगी वहां राज्य के विधान-मंडल की विधि बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान करने की। इस अनुच्छेद में आप यह देखेंगे कि संसद् द्वारा उद्घोषणा का अनुमोदन राष्ट्रपति को विधायी शक्ति प्रदान करने की आवश्यक पूर्व शर्त नहीं है। यह आगे इस तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि उद्घोषणा संसद् के अनुमोदन के बिना भी संविधान के अनुच्छेद 356(3) के अधीन दो महीने तक प्रवर्तन में हो सकती है। यह उद्घोषणा 15 नवम्बर को जारी की गई थी और अत: 15 जनवरी तक संसद् को अनुमोदन के बिना यह प्रवर्तन में हो सकती है और विधान बनाने की शक्ति देने का अधिकार उद्घोषणा के लिए विधान-मंडल के अनुमोदन को प्राप्त किए बिना भी इस अवधि में प्रयोग में लाया जा सकता है। अत: दोनों सभाओं द्वारा उद्घोषणा के अनुमोदन से पहले ही संसद् में इस विधेयक को पुर:स्थापित किए जाने का प्रस्ताव करते हुए संविधान का कोई उल्लंघन नहीं होता है। साथ ही, यह भी तर्क दिया जा सकता है कि भले ही यह विधि-सम्मत हो, फिर भी यह समयोचित नहीं होगा और इसे एक परिपाटी बनाया जा सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि संवैधानिक रूप से यह अधिक उपयुक्त रहेगा कि उद्घोषणा को अनुमोदन मिलने तक प्रतीक्षा की जाए और तत्पश्चात् विधेयक के पुर:स्थापन पर विचार किया जाए। मैं नहीं समझता कि इस संवैधानिक औचित्य का भी उल्लंघन हुआ है।

मैंने लोक सभा की सूचना मंगवाई है उसमें उसके पुर:स्थापन का ठीक समय नहीं बताया गया है। इस सभा द्वारा पारित किये जाने वाले, उद्घोषणा के अनुमोदन संबंधी संकल्प के लिए कुछ सोचकर ही समय विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है। तो गृह मंत्री जी यह चाहते हैं कि आज इस विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव उपस्थित किया जाए और उन्हें यह पूरी उम्मीद है कि हमारी सभा इस संकल्प को शीघ्र ही स्वीकृति प्रदान कर देगी और इस पर बहुत लंबी चर्चा नहीं करेगी। लेकिन हम हमेशा अधिक समय लेते हैं। साथ ही, उन्होंने वह समय विनिर्दिष्ट नहीं किया है जब इसका लोक सभा में पुर:स्थापन किया जाना है।

इसलिए मैं यह महसूस करता हूं कि लोक सभा की कार्यावलि में शामिल विधेयक के पुर:स्थापन के प्रस्ताव से राज्य सभा की कोई अवमानना नहीं होती है और इसमें संविधान के उल्लंघन की कोई बात नहीं है और किसी औचित्य के उल्लंघन की कोई बात नहीं है। वह लोक सभा में विधेयक के पुर:स्थापन से पूर्व इस सभा में उद्घोषणा का अनुमोदन चाहने वाले संकल्प के पारित होने की केवल प्रतीक्षा कर रहे हैं और अत: इसमें विशेषाधिकार का कोई सवाल नहीं है।[180]

एक बार, यह औचित्य प्रश्न उठाया गया था कि क्या किसी राज्य के लिए अनुदान संबंधी अनुपूरक मांगों को तत्संबंधी उद्घोषणा को संसद् का अनुमोदन मिलने से पूर्व सभा पटल पर रखा जा सकता है। उपसभाध्यक्ष का यह कहना था कि जैसे ही उद्घोषणा जारी होती है, राज्य सरकार के सभी कार्यों के लिए तब तक शक्ति प्राप्त कर ली जाती है, जब तक कि दो महीने की अवधि के भीतर उस उद्घोषणा को संसद् द्वारा अनुमोदित नहीं कर दिया जाता। तत्पश्चात्, अनुदान संबंधी अनुपूरक मांगें सभा पटल पर रखी गईं।[181]

उद्घोषणा की अधिकतम अवधि

संसद् के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित उद्घोषणा, यदि वापस नहीं ली जाती है तो, ऐसी उद्घोषणा के किए जाने की तारीख से छह मास की अवधि की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी। परंतु, यदि और जितनी बार ऐसी उद्घोषणा के प्रवर्तन को जारी रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो, वह उद्घोषणा यदि वापस नहीं ली जाती है तो, उस तारीख से, जिसको वह अन्यथा प्रवर्तन में नहीं रहती, छह मास की और अवधि तक प्रवृत्त बनी रहेगी किंतु ऐसी उद्घोषणा किसी भी दशा में तीन वर्ष से अधिक प्रवृत्त नहीं रहेगी।[182] यदि लोक सभा का विघटन छह मास की ऐसी अवधि के दौरान हो जाता है और ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प उक्त अवधि में राज्य सभा द्वारा पारित कर दिया गया है तो, वह उद्घोषणा, उस तारीख से, जिसको लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहती है यदि उक्त तीस दिन की अवधि की समाप्ति से पहले उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोक सभा द्वारा भी पारित नहीं कर दिया जाता है।[183]

परंतु उद्घोषणा किए जाने की तारीख से एक वर्ष की समाप्ति से आगे उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने के संबंध में कोई संकल्प संसद् के किसी भी सदन द्वारा तभी पारित किया जा सकता है जब ऐसे संकल्प के पारित किए जाने के समय आपात् स्थिति की उद्घोषणा यथास्थिति संपूर्ण भारत में अथवा संपूर्ण राज्य या उसके किसी भाग में प्रवर्तन में हो और निर्वाचन आयोग यह प्रमाणित कर दे कि ऐसे संकल्प में विनिर्दिष्ट अवधि के दौरान अनुमोदित उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखना, संबंधित राज्य की विधान सभा के आम चुनाव कराने में कठिनाइयों के कारण, आवश्यक है।[184]

शक्तियों का प्रत्यायोजन

संसद् के दोनों सदनों द्वारा उद्घोषणा का अनुमोदन किए जाने के पश्चात् सामान्यतः संसद् द्वारा एक अधिनियम पारित किया जाता है जिसमें संबंधित राज्य के विषय में कानून बनाने की शक्ति सहित कतिपय शक्तियां राष्ट्रपति को प्रत्यायोजित की जाती हैं। इस अधिनियम में यह उपबंध भी किया जाता है कि राज्य के लिए कोई कानून बनाने से पहले, राष्ट्रपति को जब कभी भी वह ऐसा करना व्यवहार्य समझे, इस प्रयोजनार्थ गठित की गई संसदीय समिति से परामर्श करना चाहिए। इस समिति में उस राज्य से आने वाले संसद् के दोनों सदनों के सदस्य शामिल किये जा सकते हैं। ऐसे कानूनों को जो राष्ट्रपति के अधिनियम कहलाते हैं, संसद् के दोनों सदनों के पटल पर रखा जाना अपेक्षित होता है और संसद् को यह शक्ति दी गई है कि वह उन्हें इस प्रकार से पटल पर रखे जाने की तारीख से तीस दिनों की अवधि के भीतर संशोधित करे।

कई सदस्यों ने पश्चिमी बंगाल (हिंसक गतिविधियों का निवारण) अधिनियम, 1970 का निरनुमोदन चाहने वाले एक प्रस्ताव की सूचना दी थी, जिसकी एक प्रति पश्चिमी बंगाल राज्य विधान-मंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1970 की धारा 3(3) के अंतर्गत 23 नवंबर, 1970 को सभा पटल पर रखी गई थी। इस प्रस्ताव को अधिनियम के निरसन के लिए एक संकल्प के रूप में गृहीत किया गया था।[185] इस पर चर्चा हुई और 17 दिसम्बर, 1970 को यह अस्वीकृत हुआ।

लोक सभा ने 12 अप्रैल, 1966 को केरल विश्वविद्यालय (संशोधन) अधिनियम, 1960 का संशोधन करने वाले संकल्प को स्वीकृत किया और राज्य सभा ने 12 मई, 1966 को इस संकल्प पर सहमति दी।[186]

उद्घोषणा में यह घोषणा की गई है कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियों का स्वयं संसद् द्वारा अथवा इसके प्राधिकार के अधीन प्रयोग किया जाएगा। इस घोषणा के कारण, संसद् को संबंधित राज्य की संचित निधि से धन निकालने के लिए विनियोग विधेयकों को पारित करने का अधिकार मिल जाता है और जिन पत्रों को राज्य विधान-मंडल के पटल पर रखा जाना अपेक्षित होता है, उन्हें इसके बजाय संसद् के पटल पर रखा जाता है।

अध्यादेश द्वारा संचित निधि में से धन का विनियोग

राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई उद्घोषणा के अधीन उनके द्वारा अपने अधिकार-क्षेत्र में लिए गए किसी राज्य के प्रशासन के लिए धन के विनियोग हेतु उस राज्य के बजट को, विद्यमान प्रथा के अनुसार, अध्यादेश द्वारा प्रमाणित नहीं किया जाता क्योंकि इस संबंध में प्रमुख सिद्धांत यह है कि संसद् की स्वीकृति के बिना कोई धन संचित निधि में से व्यय के लिए नहीं निकाला जा सकता। अतः, यदि सम्बद्ध राज्य के संबंध में विनियोग विधेयक पारित करने के लिए कोई आकस्मिक स्थिति उत्पन्न होने पर तथा राज्य सभा के सत्र में न होने पर इस सभा की बैठक इस प्रयोजनार्थ विशेष रूप से बुलायी जा सकती है।

उड़ीसा में राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने के परिणामस्वरूप, उस राज्य का बजट और राज्य के संबंधित विधेयकों के प्रयोजनार्थ 27 मार्च, 1961 को राज्य सभा का 33वां सत्र अल्प सूचना देकर बुलाया गया था। अल्प सूचना पर सत्र बुलाने के मामले को उसी दिन सभा में उठाया गया। विधि मंत्री ने स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा कि इसकी एक वजह यह थी कि अभी राज्य के बजट को तैयार और मुद्रित किया जाना था कि इस बीच राज्य सभा स्थगित हो गई। इस बारे में पहले भी एक उदाहरण विद्यमान था जब राष्ट्रपति ने ऐसे समय में अध्यादेश जारी करके राज्य का बजट पारित किया था जब त्रावणकोर-

कोचीन में 1956 में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। उस समय इस विचार को ध्यान में रखा गया था कि चूंकि राज्य सभा का सत्र नहीं चल रहा है, अत: बजट को अध्यादेश द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है। बाद में सरकार ने इस विचार पर जोर दिया कि संसद् की स्वीकृति लिए बिना संचित निधि में से एक भी पैसा खर्च नहीं किया जाना चाहिए। इसीलिए, राज्य सभा का सत्र अल्प सूचना देकर बुलाया गया।[187]

(च) वित्तीय आपात्काल की उद्घोषणा के अनुमोदन के लिए संकल्प (अनुच्छेद 360)

यदि राष्ट्रपति इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि जिससे भारत या उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में है, तो वह उद्घोषणा द्वारा वित्तीय आपात्काल की घोषणा कर सकेगा।[188] इस प्रकार की गई उद्घोषणा संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी और किसी पश्चात्वर्ती उद्घोषणा द्वारा वापस ली जा सकेगी या परिवर्तित की जा सकेगी। यह दो मास की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले संसद् के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा उसका अनुमोदन नहीं कर दिया जाता है। संसद् द्वारा अनुमोदित उद्घोषणा तब तक प्रवर्तन में रहेगी जब तक कि राष्ट्रपति इसे वापस नहीं ले लेता।[189] तथापि, प्रवृत्त वित्तीय आपात्काल की उद्घोषणा को वापस लेने अथवा परिवर्तित करने वाली राष्ट्रपति द्वारा बाद में जारी की गई उद्घोषणा को संविधान के अंतर्गत संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखना जरूरी नहीं है।

अनुच्छेद 352 और 356 के अधीन जारी की गई उद्घोषणाओं की भांति अनुच्छेद 360 के अधीन जारी की गई उद्घोषणा को भी लोक सभा का विघटन होने की स्थिति में राज्य सभा द्वारा अनुमोदित किया जा सकता है और इस प्रकार उद्घोषणा का समय बढ़ाया जा सकता है।[190]

संसद् के अधिनियमों के अधीन संकल्प

कुछ कानूनों में यह उपबंध है कि उनके अधीन बनाए गए नियम या अधिसूचनाएं एक विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर संसद् के संकल्पों द्वारा अनुमोदित किए जायेंगे और ये कानून ऐसे संशोधित रूप में प्रभावी होंगे अथवा निष्प्रभावी हो जाएंगे, जैसाकि संसद् अपने संकल्पों की मार्फत निदेश दे।

सीमा-शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 के अंतर्गत, वस्तुओं पर निर्यात-शुल्क लगाने से संबंधित केन्द्रीय सरकार की अधिसूचना को संसद् के दोनों सदनों का अनुमोदन मिलना जरूरी है।[191] तद्नुसार राज्य सभा द्वारा ऐसे संकल्प पारित कर दिए गए हैं, जो अधिसूचनाओं को अनुमोदित करते हैं।[192]

मंत्रियों के संबलमों और भर्ती से संबंधित अधिनियम, 1952 में 1977 में किए गए संशोधन के बाद, इसके अधीन बनए गए प्रारूप नियमों को उनके प्रवर्तन से पहले संसद् द्वारा अनुमोदित करना जरूरी है।[193]

इस उपबंध के अंतर्गत, मंत्री (भत्ते, चिकित्सीय उपचार और अन्य विशेषाधिकार) संशोधन नियमों के प्रारूप का अनुमोदन करने के लिए आवश्यक संकल्प सभा के समक्ष लाए गए हैं।[194]

केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1985 के अंतर्गत, कतिपय वस्तुओं पर लगाए जाने वाले मूलभूत उत्पाद-शुल्क में वृद्धि करने के लिए सरकारी संकल्प को अनुमोदित कराना जरूरी है।[195]

जब कोई राज्य राष्ट्रपति-शासन के अधीन होता है, तब कतिपय प्रयोजनों के लिए परिनियत संकल्प प्रस्तुत किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, विद्युत (प्रदाय) अधिनियम, 1948[196] के अंतर्गत, संबंधित राज्य विद्युत बोर्डो द्वारा लिए जा सकने वाले ऋण की अधिकतम राशि निर्धारित करने के लिए अनुमोदन प्राप्ति हेतु सरकारी संकल्प उपस्थित किए गए और वे स्वीकृत भी किए गए।[197]

संकल्पों का प्रभाव अथवा बल

संविधान अथवा संसद् के किसी परिनियम के किसी उपबंध के अनुसरण में सभा पटल पर रखे गए संकल्पों के संबंध में, उनके सही-सही पद-विन्यास और उनमें प्रयुक्त शब्दों को देखकर ही सरकार यह निर्णय कर पाती है कि उस संकल्प को क्रियान्वित किया जाए अथवा नहीं। किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किए गए संकल्प के संबंध में, जैसाकि पूर्व में बताए गए गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों को देखने से पता चलता है, कुछ संकल्प क्रियान्वित किए गए हैं और हो सकता है, कई संकल्प क्रियान्वित न किए गए हों। इस संदर्भ में तथा 10 अगस्त, 1978 को राज्य सभा द्वारा स्वीकृत संकल्प के संदर्भ में भी, जो कतिपय मंत्रियों के पारिवारिक सदस्यों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच करने के लिए एक समिति गठित करने के संबंध में था, इस तरह के संकल्प के प्रभाव के संबंध में एक प्रश्न उठाया गया था। इस दृष्टि से, संकल्पों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है, अर्थात् सांविधिक प्रभाव वाले संकल्प; वे संकल्प जिन्हें सदन अपनी कार्यवाहियों पर नियंत्रण रखने के मामले में स्वीकार करता है; और वे संकल्प जिनमें सदन की मात्र राय अभिव्यक्त की जाती है।

परिनियत संकल्प संविधान के अथवा संसद् के किसी परिनियम के अंतर्गत प्रस्तुत किए जाते हैं और जिनका बाध्यकारी प्रभाव होता है क्योंकि ऐसे संकल्पों को कानूनी परिणाम वाले कतिपय परिनियत उपबंधों के अंतर्गत स्वीकृत किया जाता है। इसके अतिरिक्त ऐसे संकल्प भी होते हैं जिन्हें सदन अपनी कार्यवाहियों की बाबत स्वीकृत करता है और ऐसे संकल्प कुछ-कुछ कानून के समान होते हैं जिनकी इस रूप में इनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए, विशेषाधिकार भंग करने के लिए सदन की अवमानना करने वाले व्यक्ति को दण्डित किये जाने वाला संकल्प। इस वर्ग में, 15 नवंबर, 1976 को राज्य सभा द्वारा स्वीकृत वह संकल्प भी आता है जिसमें सदन से किसी सदस्य को निष्कासित किये जाने की सिफारिश की गई है।

लेकिन बहुत से संकल्प सदन की राय की अभिव्यक्ति के वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। ऐसे संकल्पों के प्रयोजन और प्रभाव के बारे में यह उल्लेखनीय है कि "ये संकल्प सामान्यत: उन प्रस्तावों के प्रति, जो अभी तक अनिश्चित हैं अथवा जो जनमत के बीच विचारणीय हैं, सदन की भावना को परखने के लिए लाए जाते हैं।"[198] इस बारे में एक संविधान विशेषज्ञ का कहना है: "गैर-सरकारी सदस्यों के प्रस्ताव...सभा की राय जानने के लिए लाए जाते हैं। 'राय' का आदर्श होना जरूरी नहीं है, इस प्रकार उस राय का कुछ मूल्य होता है हालांकि वह मूल्य कोई महान मूल्य नहीं होता।"[199]

संविधान के अंतर्गत, राज्य सभा को परिनिंदा-प्रस्ताव अथवा सरकार में अविश्वास का प्रस्ताव पारित करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। 17 अगस्त, 1978 को जब 10 अगस्त, 1978 को राज्य सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के संदर्भ में, कुछ सदस्यों ने प्रस्ताव को क्रियान्वित किये जाने पर ज़ोर दिया तो, सभापति महोदय ने कहा कि यह प्रस्ताव सरकार को भेजी गई एक सिफ़ारिश है और समिति की नियुक्ति का प्रश्न इस बात पर निर्भर करेगा कि सरकार को प्रस्ताव में उल्लिखित दो विकल्पों में से कौन-सा विकल्प स्वीकार्य है।

इन परिस्थितियों में, सरकार के विरुद्ध स्वीकृत किसी संकल्प का ऐसा बल अथवा प्रभाव हो सकता है जो स्वयं सरकार इस प्रकार के संकल्प में सभा द्वारा व्यक्त की गई राय के प्रत्युत्तर में नैतिक रूप से अथवा राजनीतिक रूप से स्वीकार करना चाहे।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. जी.एफ.एम. कैंपियन, एन इंट्रोडक्शन टू दि प्रोसिज़र ऑफ हाउस ऑफ कॉमन्स, पृष्ठ 172, तीसरा संस्करण (1958), मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लंदन
2. अर्सकीन मे, ट्रीटीज़ ऑन द लॉ, प्रीविलेजिज़ प्रोसिडिंग्स एंड यूसेज़ ऑफ पार्लियामेंट, 24वां संस्करण, 2011, पृ. 424
3. नियम 156
4. नियम 24
5. नियम 2(1)
6. नियम 154
7. उदाहरण के लिए संकल्पों की स्वीकृत सूचियों के लिए देखिए संसदीय समाचार (2), 20.10.1965, 3.11.1965 और 17.11.1965 और 54वें सत्र के दौरान संकल्पों की लॉटरी के परिणाम के लिए देखिए संसदीय समाचार (2), 21.10.1965, 4.11.1965; और 18.11.1965, 55वें सत्र के दौरान प्रथम आवंटित दिवस अर्थात् 25.2.1966 के लिए संकल्पों की लॉटरी के परिणाम के लिए संसदीय समाचार (2), 19.2.1996 को भी देखें।
8. दूसरा प्रतिवेदन, नियम समिति (24.12.1981 को स्वीकृत तथा 15.1.1982 से प्रभावी)
9. नियम 26
10. नियम 154
11. संसदीय समाचार (2), 18.4.1972
12. नियम 155
13. कार्यावलि, 5.8.1994, 28.4.1995 और 25.8.1995
14. -वही- 30.3.1990, 25.5.1990, 6.3.1992 और 19.3.1993
15. -वही- 22.4.1994, 19.8.1994, 16.12.1994, 28.4.1995 और 26.5.1995
16. -वही- 16.12.1994
17. -वही- 24.8.1990
18. नियम 157(i)
19. नियम 157(ii)
20. नियम 157(iii)
21. नियम 157(iv)
22. नियम 157(v)
23. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.3.1980, कालम 124-29
24. संसदीय समाचार (1), 6.5.1983
25. -वही- 29.12.1989
26. नियम 165(i)
27. नियम 165(ii)
28. नियम 228
29. नियम 158
30. नियम 28(2)
31. नियम 28(1)

32. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 30.4.1954, कालम 4776 और राज्य सभा वाद-विवाद, 10.12.1954, कालम 1486
33. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.5.1994, कालम 443; 5.8.1994, कालम 407; 19.8.1994, कालम 363; 24.3.1995, कालम 543; और 10.12.1999, कालम 249; 20.4.2000, कालम 197-245; और 5.5.2000, कालम 235-53
34. -वही- 31.8.2001, पृ. 451; 26.08.2004, पृ. 239; 10.12.2004; पृ. 280; 16.12.2005, पृ. 283-285; 19.05.2006, पृ. 327; 18.08.2006, पृ. 347; 24.07.2009, पृ. 259; 11.12.2009, पृ. 266; 7.05.2010, पृ. 242; 21.08.2010, पृ. 72; 04.03.2011, पृ. 363; 18.05.2012, पृ. 319; 21.02.2014, पृ. 347; 14.12.2012, पृ. 347; 19.12.2014, पृ. 370
35. नियम 29(4)
36. कार्यावलि, 24.2.1994, 25.8.1995, 7.5.1993 (3 संकल्प) और 8.5.1992 (4 संकल्प)
37. नियम 27, परंतुक
38. नियम 163(3)
39. नियम 24
40. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 24.2.1982, 8.3.1982, 8.3.1982, 9.7.1982, 7.10.1982, 23.2.1983, 23.7.1985 और 21.2.1986
41. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.3.1969, कालम 5345-49
42. नियम 161
43. संसदीय समाचार (2), 2.5.1997
44. नियम 159(1)
45. नियम 159(2)
46. नियम 159(3); उदाहरण के लिए देखिए काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 11.9.1953, कालम 1956; राज्य सभा वाद-विवाद, 4.3.1955, कालम 1214; 4.5.1956, कालम 1259; 14.2.1958, कालम 495; 19.2.1965, कालम 312; और 16.2.1968, कालम 777
47. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 26.2.1954, कालम 1139 और 1247
48. नियम 160(1)
49. नियम 160(2)
50. नियम 160(3)
51. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 26.2.1953, कालम 1299-1302
52. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.3.1995, कालम 539
53. नियम 162
54. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.12.1965, कालम 3652
55. -वही- 26.5.1992, कालम 98
56. फा. सं. आर.एस. 06/01/2006-एल
57. फा. सं. आर.एस. 06/03/2009-एल
58. नियम 164
59. राज्य सभा वाद विवाद, 23.8.1954, कालम 36-37
60. -वही- 27.8.1954, कालम 668
61. नियम 166
62. नियम 163(1)
63. संसदीय समाचार (1), 14.8.1969
64. नियम 163(2)
65. नियम 229(2)

66. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.11.1963, कालम 885
67. फा. सं. आर.एस. 06/02/2012-एल
68. कार्यावलि, 7.4.1972; संशोधित कार्यावलि, 7.4.1972
69. फा.सं. आर.एस. 6(1)/2002-एल
70. संसदीय समाचार (1), 10.12.1954
71. -वही- 4.3.1955
72. -वही- 16.9.1955
73. -वही- 4.5.1956
74. -वही- 7.12.1956
75. -वही- 24.5.1957
76. -वही- 7.5.1965
77. -वही- 19.12.1969
78. -वही- 13.3.1970
79. -वही- 11.12.1981
80. -वही- 24.8.1990
81. -वही- 24.3.1995
82. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.3.1995, कालम 525-27
83. नियम 33(1)(क)
84. संसदीय समाचार (1), 19.12.1967
85. -वही- 18.3.1987, 29.3.1989
86. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.4.1989, कालम 199-200
87. सातवीं अनुसूची की संघ सूची (सूची-I), प्रविष्टियां 13 और 14
88. अनुच्छेद 253
89. जगन्नाथ सातू बनाम भारत का संघ, ए.आई.आर. 1960, एस.सी. 625
90. निर्मल बनाम भारत का संघ, ए.आई.आर. 1959, कालम 506; मगनभाई बनाम भारत का संघ, ए.आई.आर. 1969, एस.सी. 783
91. बसु, डी.डी., शॉर्टर कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया (13वां संस्करण, 2006), पृष्ठ 1174-75
92. संदर्भ बेरूबाड़ी यूनियन, ए.आई.आर. 1960, एस.सी. 845
93. संसदीय समाचार (1), 7.8.1952
94. -वही- 6.9.1957
95. -वही- 13.9.1957
96. -वही- 22.2.1966
97. -वही- 14.8.1971
98. -वही- 18.12.1952, 7.9.1956
99. -वही- 22.12.1967
100. -वही- 4.8.1983
101. -वही- 13.5.1986 और 22.8.1986
102. -वही- 9.8.1994
103. -वही- 3.8.1995
104. -वही- 1.4.1976, 13.5.1988
105. -वही- 13.11.1962
106. -वही- 20.8.1985
107. -वही- 2.3.2001
108. -वही- 18.3.2001
109. -वही- 15.3.2013

110. सीमा-शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975, धारा 7(3)
111. राजभाषा अधिनियम, 1963, धारा 4(1)
112. संसदीय समाचार (1), 24.7.1975
113. राज्य सभा वाद विवाद, 10.12.1974, कालम 248
114. अनुच्छेद 61
115. अनुच्छेद 67
116. अनुच्छेद 90
117. अनुच्छेद 123
118. अनुच्छेद 249
119. अनुच्छेद 312
120. अनुच्छेद 352
121. अनुच्छेद 356
122. अनुच्छेद 360
123. संसदीय समाचार (1), 23.6.1971 और 24.6.1971; कार्य संचालन संबंधी चर्चा के लिए देखिए राज्य सभा वाद-विवाद, 23.6.1971, कालम 45-97
124. -वही- 5.8.1991
125. -वही- 8.12.1977
126. -वही- 21.3.2002
127. अनुच्छेद 249(1)
128. अनुच्छेद 249(2)
129. अनुच्छेद 249(3)
130. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.7.1952, कालम 1481-92; और 22.7.1952, कालम 1628-86
131. अस्थायी संसद्, संसदीय समाचार (1), 5.6.1951
132. संसदीय समाचार (1), 13.8.1986
133. केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में सरकारिया आयोग का प्रतिवेदन, पैरा संख्या 2.25.09-10
134. अनुच्छेद 312
135. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.12.1961, कालम 1301-5
136. संसदीय समाचार (1), 30.3.1965
137. संसदीय समाचार (2), 8.9.1961, और 30.10.1961
138. अनुच्छेद 352(1)
139. अनुच्छेद 352(4)
140. -वही- परंतुक
141. अनुच्छेद 352(5)
142. -वही- पहला परंतुक
143. -वही- दूसरा परंतुक
144. अनुच्छेद 352(6)
145. अनुच्छेद 356(1)
146. अनुच्छेद 356(2)
147. अनुच्छेद 356(3)
148. राज्य सभा वाद-विवाद 23.3.1971, कालम 20-27
149. -वही- 10.8.1959, कालम 83-97
150. -वही- 12.11.1973, कालम 127-30
151. -वही- 9.11.1987, कालम 223-28
152. -वही- 18.8.1959, कालम 972; 24.3.1965, कालम 4429 और 20.3.1967, कालम 126

153. अनुच्छेद 356(3)
154. -वही- परंतुक
155. निन्यानवेवां सत्र (28.2.1977 और 1.3.1977); और 158वां सत्र (3.6.1991 और 4.6.1991)
156. पूर्व के वर्षों में संकल्पों में अपेक्षाकृत अधिक शब्दाभिव्यक्ति हुआ करती थी; देखिए काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 25.3.1953, कालम 2156; और राज्य सभा वाद-विवाद, 29.11.1954, कालम 193
157. संकल्प के पूर्व स्वरूप के लिए, देखिए काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 15.9.1953, कालम 2437; और राज्य सभा वाद-विवाद, 7.9.1956, कालम 3697
158. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.3.1968, कालम 4306-07
159. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 25.3.1953, कालम 2156
160. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.11.1954, कालम 201
161. -वही- 12.10.1989, कालम 102
162. -वही- 5.10.1990, कालम 88
163. -वही- 23.8.1990, कालम 315
164. -वही- कालम 314
165. -वही- 26.8.1991, कालम 180
166. -वही- 25.2.1992, कालम 264
167. -वही- 13.3.1980, कालम 124-29
168. -वही- 4.11.1986, कालम 213-15
169. उदाहरण के लिए देखिए संसदीय समाचार (2), 1.3.1968, 4.5.1968, 22.7.1969, 5.3.1973, और 6.3.1980
170. संसदीय समाचार (2), 12.7.1971
171. -वही- 22.7.1969
172. कार्यावलि, 21.8.1969
173. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.4.1967, कालम 1937-2020; 4.4.1967, कालम 2107-20
174. संसदीय समाचार (1), 21.7.1971
175. -वही- 25.4.1989, और 26.4.1989
176. कार्यावलि, 26.2.1991
177. संसदीय समाचार (1), 27.3.1980
178. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.12.1992, कालम 438
179. संसदीय समाचार (1), 22.11.1967, 27.11.1967
180. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.11.1954, कालम 348-52
181. -वही- 15.12.1981, कालम 229-35
182. अनुच्छेद 356(4)
183. -वही- परंतुक
184. अनुच्छेद 356(5)
185. संसदीय समाचार (2), 28.11.1970
186. लोक सभा वाद-विवाद, 12.4.1966, कालम 10626-655; राज्य सभा वाद-विवाद, 12.51966, कालम 1261-73
187. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.3.1961, कालम 9
188. अनुच्छेद 360(1)
189. अनुच्छेद 360(2)
190. -वही- परंतुक

191. सीमा-शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975, धारा 7 और 8
192. संसदीय समाचार (1), 28.11.1978
193. मंत्रियों के सम्बलमों और भत्तों से संबंधित अधिनियम, 1952, धारा 11(2)
194. संसदीय समाचार (1), 7.5.1986, 20.3.1987, 6.9.1990 और 17.8.1995
195. -वही- 3.9.1990
196. -वही- 11.3.1991 और 26.8.1993
197. विद्युत् (प्रदाय) अधिनियम, 1948 धारा 65(3)
198. जी.एफ.एम. कैंपियन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 109
199. आइवर जैनिंग्स, पार्लियामेंट, दूसरा संस्करण, 1957, पृष्ठ 363-64

अध्याय-23

प्रस्ताव और अल्पकालिक चर्चा

प्रस्ताव

परिभाषा और वर्गीकरण

प्रस्ताव सदस्य द्वारा सदन को दिया गया सुझाव है कि सभा कुछ कार्यवाही करे अथवा किसी कार्यवाही को किए जाने का आदेश दे अथवा किसी मामले के संबंध में मत व्यक्त करें। प्रस्ताव इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि, यदि स्वीकृति हो तो, इससे सदन के निर्णय अथवा इच्छा व्यक्त करने का आभास हो।[1] ऐसा मामला, जिसके लिए सभा का निर्णय अपेक्षित हो, उसका निर्णय सभापति सदस्य द्वारा रखे गए प्रस्ताव पर प्रश्न पूछकर करता है और 'हां' अथवा 'ना' में, जैसा भी मामला हो नियोजित करता है।[2] प्रस्ताव को उपस्थित करने के लिए सदस्य के खड़े होने और सभापीठ द्वारा सदन के निर्णय को सुनिश्चित करने के बीच की कार्यवाहियों से वाद-विवाद बनता है। इस प्रकार सभा का निर्णय प्राप्त करने में अनिवार्य अवस्थाएं ये है : प्रस्ताव उपस्थित करना, सभापीठ द्वारा प्रश्न का प्रस्ताव, प्रश्न पूछना और सभापीठ द्वारा सदस्यों की राय एकत्र करना।[3] यह अवस्थाएं एक दूसरे से संबद्ध हैं और इसलिए प्रस्ताव इस तरह से बनाया जाना चाहिए कि इससे सभा के निर्णय की अभिव्यक्ति हो।

प्रस्तावों को सुविधाजनक रूप से महत्वपूर्ण अथवा गौण प्रस्तावों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। महत्वपूर्ण प्रस्ताव उस विषय के संबंद्ध में एक स्वत: पूर्ण प्रस्ताव है जिसे प्रस्तावक प्रस्तुत करना चाहता है। गौण प्रस्ताव महत्वपूर्ण प्रस्ताव से संबंधित होता है और इसका प्रयोग सभा को इसे अत्याधिक उपयुक्त रूप से निपटाने के लिए सक्षम बनाना है।[4] उपसभापति के चुनाव के प्रस्ताव, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव और जहां पर अनुपस्थिति की अनुमति नहीं दी गई है वहां सदस्य के स्थान को रिक्त घोषित करने का प्रस्ताव[5], राज्य सभा में उपस्थित किए गए महत्वपूर्ण प्रस्तावों के उदाहरण हैं।

कुछ पदों पर आसीन व्यक्तियों के आचरण के संबंध में चर्चा केवल उचित ढंग से रखे गए महत्वपूर्ण प्रस्ताव पर ही हो सकती है।[6] संविधान में राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने के लिए और उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक, अथवा मुख्य निर्वाचन आयुक्त को हटाने के लिए संसद के प्रत्येक सदन द्वारा राष्ट्रपति के नाम प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए विशेष प्रक्रिया की व्यवस्था है।[7] इसी प्रकार, संकल्पों द्वारा उपराष्ट्रपति और राज्य सभा के उपसभापति को हटाने के लिए संविधान में व्यवस्था की गई है।[8] उपसभापति के चुनाव और राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव को छोड़कर किसी भी महत्वपूर्ण प्रस्ताव का अनुमोदन किए जाने की आवश्यकता नहीं है।[9]

यदि नपे-तुले शब्दों में कहा जाए तो ये प्रस्ताव "कि नीति अथवा स्थिति अथवा वक्तव्य अथवा किसी अन्य मामले पर विचार किया जाए", महत्वपूर्ण प्रस्ताव नहीं है और इन्हें आमतौर पर सदन के मतदान के लिए नहीं रखा जाता है क्योंकि किसी विषय पर सदन से उसका

निर्णय अथवा उसकी राय अभिलिखित करने के बारे में पूछे बिना इन्हें चर्चा का एक माध्यम ही समझा जाता है। तथापि, ऐसे संशोधनों को, जिनमें मूल प्रस्ताव को अंत में शब्द जोड़ने की मांग की गई हो, प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाती है।

उपर्युक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त, गैर-सरकारी सदस्यों अथवा सरकार की ओर से भी प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि प्रस्तावक गैर-सरकारी सदस्य है अथवा मंत्री है। पुन: कोई प्रस्ताव सांविधिक अथवा सामान्य प्रस्ताव (अर्थात, गैर-सांविधिक) हो सकता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि क्या ऐसा प्रस्ताव किसी सांविधिक उपबंध के अनुसरण में उपस्थित किया गया है अथवा सामान्य लोकहित की किसी मामले पर ही उपस्थित किया गया है।

प्रस्तावों से संबंधित सामान्य नियम :

सामान्य नियम यह है कि सभापति की सहमति से किए गए प्रस्ताव के बिना सामान्य लोकहित के विषय पर कोई चर्चा नहीं हो सकती।[10] प्रस्ताव की सूचना सदन के महासचिव को संबोधित करके लिखित में दिया जाना अपेक्षित है।[11] कोई प्रस्ताव ग्राह्य हो सके, इसके लिए उसमें सारवान रूप से एक निश्चित मुद्दा उठाया जाना चाहिए; उसमें तर्क, अनुमान, व्यंग्यात्मक पद, अध्यारोप अथवा मानहानिकारक कथन नहीं होने चाहिए, उसमें व्यक्तियों की सार्वजनिक हैसियत के अतिरिक्त उनके आचरण अथवा चरित्र का उल्लेख नहीं होना चाहिए, वह हाल ही में हुए किसी मामले तक सीमित रहना चाहिए, उसमें विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिए, उसमें ऐसे विषय पर फिर चर्चा नहीं चलायी जानी चाहिए जिस पर उसी सत्र में चर्चा हो चुकी हो, उसमें ऐसे विषय की चर्चा का पूर्वानुमान नहीं किया जाना चाहिए, जिस पर उसी सत्र में चर्चा होने की संभावना हो और वह किसी ऐसे विषय से संबंधित नहीं होना चाहिए जो भारत के किसी भाग में क्षेत्राधिकार रखने वाले किसी न्यायालय के न्यायनिर्णयाधीन हो। उसमें उस पत्र अथवा दस्तावेज के संबंध में चर्चा की मांग न की गई हो जिसे किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा सभा पटल पर रखा गया हो; वह सामान्यत: ऐसे मामलों से संबंधित नहीं होने चाहिए जो किसी संसदीय समिति के विचाराधीन हो; उसमें अभिमत की अभिव्यक्ति अथवा गूढ़ विधिक प्रश्न का हल अथवा कल्पित वाक्य की मांग न की गई हो; वह ऐसे किसी विषय से संबंधित नहीं होना चाहिए जो मुख्यत: भारत सरकार की चिंता का विषय न हो; उसमें ऐसे निकायों अथवा व्यक्तियों, जो मुख्य रूप से भारत सरकार के प्रति उत्तरदायी न हो, के नियंत्रणाधीन मामले को नहीं उठाया जाना चाहिए। वह ऐसे किसी विषय से संबंधित नहीं होना चाहिए। जिससे आधिकारिक रूप से मंत्री संबंधित न हो; उसमें किसी मित्र देश का अनादरात्मक रूप से उल्लेख न किया गया हो; वह ऐसे किसी विषय से संबंधित न हो अथवा ऐसी सूचना न मांगी गई हो जो गोपनीय प्रकृति की हो यथा मंत्रि मंडल की चर्चाएं अथवा किसी ऐसे विषय, जिसके संबंध में संवैधानिक, सांविधिक अथवा परम्परागत रूप से सूचना प्रकट न किया जाना बाध्यकारी हो, पर राष्ट्रपति को दिया गया परामर्श; वह किसी तुच्छ विषय से संबंधित न हो।[12]

सभापति किसी प्रस्ताव की ग्राह्यता का निर्णय करता है और वह तब किसी प्रस्ताव अथवा उसके किसी भाग को अस्वीकार कर सकता है जबकि वह, उसकी राय में, इन नियमों का पालन न करता हो।[13]

नियम सामान्य लोकहित के विषय पर चर्चा का प्रश्न उठाने के लिए किसी विशेष प्रकार के प्रस्ताव को विहित नहीं करते। तथापि, प्रयोग में लाया गया सामान्य तरीका यह है कि : "यह सदन स्थिति पर विचार करे, इत्यादि" अथवा "स्थिति अथवा प्रतिवेदन पर विचार किया जाये, इत्यादि।"

अनियत दिन वाले प्रस्ताव

यदि सभापति किसी प्रस्ताव की सूचना स्वीकार करता है लेकिन इस पर चर्चा के लिए कोई तिथि निश्चित न की गई हो, तो उसे समाचार (बुलेटिन) में "अनियत दिन वाले प्रस्ताव" शीर्षक से अधिसूचित किया जाता है।[14] यदि किसी गैर-सरकारी सदस्य का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है और तत्पश्चात उसी विषय पर सरकारी प्रस्ताव की सूचना प्राप्त होती है तो सरकारी प्रस्ताव भी स्वीकृत हो जाता है। यदि उस विषय पर प्रस्ताव द्वारा चर्चा करने का निर्णय हो जाता है तो सरकारी प्रस्ताव को गैर-सरकारी सदस्य के प्रस्ताव से वरीयता मिलती है क्योंकि 'अनियत दिन वाले प्रस्तावों' पर चर्चा सरकार के लिए आवंटित समय में होती है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वितीय प्रतिवेदन के संबंध में एक गैर-सरकारी सदस्य का प्रस्ताव स्वीकार किया गया था और उसे अनियत दिन वाले प्रस्ताव के रूप में अधिसूचित किया गया था।[15] इसके बाद उसी विषय पर एक सरकारी प्रस्ताव भी स्वीकार किया गया था। तथापि, चर्चा केवल सरकारी प्रस्ताव पर ही हुई थी क्योंकि संसदीय कार्य मंत्री ने घोषित कार्यों के कार्यक्रम में सरकारी प्रस्ताव पर चर्चा का ही उल्लेख किया गया था।[16]

रेल दुर्घटना के संबंध में एक गैर-सरकारी सदस्य का प्रस्ताव अनियत दिन वाले प्रस्ताव के रूप में स्वीकृत किया गया था।[17] इसके बाद उसी विषय पर एक सरकारी प्रस्ताव भी स्वीकृत किया गया था और उसे अधिसूचित किया गया था।[18] जब कार्य-सूची में केवल सरकारी प्रस्ताव को ही सम्मिलित किया गया तो एक व्यवस्था का प्रश्न उठाया गया था। उपसभाध्यक्ष ने निर्णय दिया था कि जब सरकारी कार्य के लिए नियत दिन को किसी सदस्य और सरकार से दो प्रस्ताव प्राप्त होते हैं तो सरकारी प्रस्ताव को वरीयता मिलेगी।[19]

तथापि, कई बार दोनों प्रस्तावों को, अर्थात एक ही विषय पर एक प्रस्ताव की सूचना गैर-सरकारी सदस्य द्वारा और दूसरे की मंत्री द्वारा दी जाती है, उन्हें एक साथ ही सूचीबद्ध किया जा सकता है और चर्चा की जा सकती है।

एक सदस्य ने निम्नलिखित प्रस्ताव की सूचना दी थी :

"कि यह सदन राष्ट्रपति से सिफारिश करता है कि पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल को तत्काल बर्खास्त कर दिया जाए।"

तत्पश्चात गृह मंत्री ने भी निम्नलिखित प्रस्ताव की सूचना दी :

"कि यह सदन पश्चिमी बंगाल में स्थिति के संबंध में सरकार की तरफ से 30 नवंबर, 1967 को राज्य सभा में दिए गए वक्तव्य का अनुमोदन करता है।"

दोनों ही प्रस्तावों को एक साथ ही स्वीकृत किया गया था और चर्चा की गई थी। गैर-सरकारी सदस्य के प्रस्ताव को अस्वीकार किया गया और सरकारी प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया गया था।[20]

प्रत्येक सत्र में कुछ प्रस्तावों को स्वीकृत किया जाता है और उन्हें 'अनियत दिन वाले प्रस्ताव' शीर्षक के अंतर्गत संसदीय समाचार (बुलेटिन) भाग-2 में प्रकाशित किया जाता है जिनमें देश में लोकहित के विभिन्न मामलों पर विविध प्रकार के विचार प्रतिबिम्बित किए जाते हैं और ध्यान केन्द्रित किया जाता है। एक अवसर पर एक प्रस्ताव (भेल-साइमन्ज एग्रीमेंट के संबंध में) निन्यानवें सदस्यों के नाम से स्वीकृत हुआ था।[21]

नियमों के अनुसार सभापति सदन में कार्य की स्थिति पर विचार करने के बाद और सदन के नेता के परामर्श से ऐसे किसी प्रस्ताव पर चर्चा के लिए कोई एक दिन या एक से अधिक दिन या किसी दिन का कोई भाग नियत कर सकता है। कार्यवलि में स्वीकृत प्रस्ताव संबंधी मद को उन सभी सदस्यों के नामों के समक्ष दर्शाया जाता है जिनसे सूचनाएं प्राप्त होती हैं।

प्रस्ताव पर चर्चा

सभापीठ द्वारा बुलाए जाने पर वे सदस्य, जिसके नाम से कार्यवलि में प्रस्ताव दर्ज है, यदि यह घोषणा नहीं करता है कि वह प्रस्ताव उपस्थित नहीं करना चाहता तो वह औपचारिक रूप से प्रस्ताव उपस्थित करता है और भाषण देता है।

संकल्पों के मामले की तरह, दूसरे सदस्य को उस सदस्य की ओर से, जिसके नाम से प्रस्ताव कार्यावलि में दर्ज है, प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए प्राधिकृत करने का नियमों में कोई प्रावधान नहीं है। यदि प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए सदस्य अनुपस्थित है तो दूसरे या तीसरे सदस्य अथवा आगे वाले सदस्य को, यदि कोई हो, जिसके नाम के आगे कार्यावलि में प्रस्ताव दर्ज हो, प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए बुलाया जाता है।

जहां पर दो प्रस्तावों का विषय एक समान हो तो दोनों पर एक साथ चर्चा की जा सकती है।

> दो प्रस्ताव—एक देश में सी.आई.ए. की गतिविधियों के संबंध में और दूसरा बढ़ती हुई जासूसी गतिविधियों के संदर्भ में देश की आंतरिक सुरक्षा के संबंध मेंइदो सदस्यों द्वारा अलग-अलग उपस्थित किए गए थे परन्तु उन पर चर्चा एक साथ ही हुई थी।[22]
>
> दो प्रस्तावइएक कच्छ के रण के संबंध में भारत-पाकिस्तान पश्चिमी सीमा आधिकरण के पंचाट को अस्वीकृत करने वाले और दूसरा पंचाट पर विचार करने के लिए जो दो सदस्यों के नामों के आगे दर्ज थेइ अलग-अलग उपस्थित किए गए थे परन्तु उन पर चर्चा एक साथ ही हुई थी।[23]
>
> एयर इंडिया और इंडियन एयरलाइंस कॉर्पोरेशन्स के वार्षिक प्रतिवेदनों के संबंध में एक ही सदस्य द्वारा एक साथ उपस्थित किए गए दो प्रस्तावों पर एक ही बैठक में संयुक्त चर्चा हुई थी।[24]

सामान्यतया एक सदस्य केवल एक ही प्रस्ताव उपस्थित करता है, परन्तु पहले के वर्षों में कुछ विरले अवसर ही हुए हैं जब एक ही सदस्य ने एक ही बैठक में दो प्रस्ताव उपस्थित किए हों।

21 दिसंबर, 1956 को एक सदस्य ने भारतीय विदेशी सेवा (शाखा-बी.) नियमावली के संबंध में एक प्रस्ताव उपस्थित किया था। चर्चा समाप्त होने के बाद उसने उसी बैठक में औद्योगिक वित्त निगम के 8वें प्रतिवेदन के संबंध में दूसरा प्रस्ताव उपस्थित किया था।[25]

30 अगस्त, 1957 को एक सदस्य ने हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्टरी प्रा.लिमिटेड के प्रतिवेदन के संबंध में एक प्रस्ताव उपस्थित किया था। तत्पश्चात, उसने उसी बैठक में अशोक होटल्स लिमिटेड के प्रतिवेदन के संबंध में; दूसरा प्रस्ताव भी उपस्थित किया था।[26]

सदस्य द्वारा प्रस्ताव उपस्थित किए जाने के बाद सभापति प्रस्ताव को सदन के समक्ष रखता है। फिर यदि कोई संशोधन हों तो उन्हें सदस्यों द्वारा उपस्थित किया जाता है और इसके बाद चर्चा होती है। सदस्यों और संबंधित मंत्री द्वारा वाद-विवाद में भाग लेने के बाद प्रस्ताव का प्रस्तावक उत्तर देने के रूप में पुन: बोल सकता है। संशोधनों पर, यदि कोई हैं तो, सदन का मत लिया जाता है और उनका निपटान होने के बाद मुख्य प्रस्ताव पर मत लिया जा सकता है। सामान्यतया, जैसाकि ऊपर कहा गया है, किसी प्रतिवेदन अथवा मामले पर विचार करने के लिए प्रस्ताव पर सदन का मत नहीं लिया जाता।

प्रस्ताव को सदस्य द्वारा उपस्थित किए गए रूप में स्वीकार किया जा सकता है अथवा संशोधन के साथ स्वीकार किया जा सकता है अथवा अस्वीकार किया जा सकता है। इसे सदन की अनुमति से वापस भी लिया जा सकता है अथवा इस पर विचार-विमर्श भी किया जा सकता है, अर्थात, सदन के किसी निर्णय को अभिलिखित किए बिना चर्चा के साथ समाप्त किया जा सकता है।

न्यायमूर्ति नानावती जांच आयोग के संबंध में की गई कार्रवाई संबंधी प्रतिवेदन को संशोधित किए जाने की आवश्यकता के संबंध में प्रस्ताव की दो सूचनाओं को स्वीकृत किया गया और दिनांक 11 अगस्त, 2005 के संसदीय समाचार-भाग II में अधिसूचित किया गया। 11 अगस्त 2005 को प्रस्ताव पर चर्चा की गई और उसे ध्वनि मत से अस्वीकृत किया गया।[27]

वोल्कर आयोग के प्रतिवेदन के संबंध में एक प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था और उसे दिनांक 25 नवंबर 2005 के संसदीय समाचार भाग-II में अधिसूचित किया गया था। इस प्रस्ताव की शर्तो को बाद में संशोधित किया गया और 29 नवंबर 2005 की कार्यावलि में शामिल किया गया। 29 नवंबर, 2005 को प्रस्ताव उपस्थित किया गया और उसे ध्वनि मत से अस्वीकृत कर दिया गया।[28]

220वें सत्र के दौरान देश पर मुद्रास्फीति के दबाव के संबंध में विपक्ष के नेता व अन्य के द्वारा प्रस्ताव की एक सूचना दी गई थी। तत्पश्चात प्रस्ताव की शर्ते संशोधित की गईं और उसे स्वीकृत करके संशोधित रूप में 4 अगस्त 2010 की कार्यावलि में शामिल किया गया। 5 अगस्त 2010 को चर्चा के उपरांत प्रस्ताव पर सभा का कोई निर्णय नहीं प्राप्त किया जा सका। तथापि, प्रस्ताव पर चर्चा के उपरांत राज्य सभा के उप सभापति द्वारा प्रस्ताव की शर्तो के अनुसरण में एक संकल्प उपस्थित किया गया और उसे पारित किया गया।

राज्य सभा के सभापति ने 29 नवंबर 2012 को हुई नेताओं की बैठक में सरकार के बहु-ब्रांड खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.) को अनुमति देने के निर्णय के संबंध में प्रस्ताव की सूचनाओं को ग्रहीत किया। इसके बारे में 30 नवंबर, 2012 को सभा में घोषणा की गई। 6 और 7 दिसंबर,

2012 को इस प्रस्ताव पर चर्चा हुई। 7 दिसंबर, 2012 को इस पर मत विभाजन हुआ और यह अस्वीकृत हुआ।[30]

किसी प्रस्ताव पर चर्चा अनिर्णायक रह सकती है। ऐसी स्थिति में, यदि सदन औपचारिक रूप से सहमत न हो अथवा उस प्रस्ताव पर वाद-विवाद को अगले सत्र में ले जाने पर सर्वसम्मति न हो तो अंत में संभावित रूप से यह प्रस्ताव व्यपगत हो जाता है।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त के सत्रहवें और अठारहवें प्रतिवेदनों पर 5 और 7 सितम्बर, 1970 (73वां सत्र) को चर्चा हुई थी; सदन चर्चा को अगले सत्र में ले जाने को सहमत था और उपसभापति ने 7 सितम्बर, 1970 को इस आशय की घोषणा की थी। इन प्रतिवेदनों पर 9 और 12 नवंबर, 1970 (74वां सत्र) को आगे चर्चा हुई थी।

राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर कतिपय सदस्यों के आचरण की निंदा के संबंध में एक प्रस्ताव पर चर्चा को इस आशय के लिए स्वीकृत किए गए एक प्रस्ताव द्वारा अगले सत्र के लिए स्थगित किया गया था।[31]

प्रस्ताव की पुनरावृत्ति और इसे वापस लिया जाना

प्रस्तावों के संबंध में सामान्य नियम यह है कि प्रस्ताव से ऐसा प्रश्न नहीं उठना चाहिए जो उस प्रश्न से पर्याप्त रूप से मिलता-जुलता हो जिस पर सदन में उसी सत्र में पहले ही निर्णय दे दिया हो।[32] तथापि यदि सभा की इच्छा ऐसे मिलते-जुलते प्रश्न को उठाने की हो, जिस पर उसी सत्र में चर्चा की गई थी तो नियम को आस्थगित कर दिया जाएगा।

राज्य सभा ने 28 मार्च, 1990 को संविधान (चौंसठवां संशोधन) विधेयक पारित किया था। यह विधेयक लोक सभा में पारित नहीं किया जा सका। उसी विषय पर दूसरा विधेयक संविधान (65वां संशोधन) विधेयक, 1990 (पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाए जाने के लिए) पुर:स्थापित किया गया था और इसे लोकसभा द्वारा पारित किया गया था। इससे पहले कि यह विधेयक विचारण के लिए राज्य सभा में लाया जाता, संबंधित मंत्री ने इस उद्देश्य हेतु नियम 228 को आस्थगित करने के लिए प्रस्ताव उपस्थित कर दिया।[33] प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया गया।

जिस सदस्य ने प्रस्ताव उपस्थित किया है वह इस प्रस्ताव को केवल सदन की अनुमति से ही वापस ले सकता है।[34] यह अनुमति प्रश्न के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि सभापति द्वारा सदन की राय जानने के लिए भी महत्वपूर्ण है। यदि कोई असहमति का स्वर सुनाई देता है अथवा कोई सदस्य वाद-विवाद को जारी रखने के लिए उठता है तो सभापति तत्काल ही वास्तविक प्रस्ताव को रख देता है। यदि प्रस्ताव में किसी संशोधन का प्रस्ताव किया गया है तो वास्तविक प्रस्ताव को तब तक वापस नहीं लिया जा सकता जब तक की संशोधन का निपटान नहीं किया जाता है[35] अथवा इसे सदन की अनुमति से वापस नहीं लिया जाता है।

जब एक सदस्य प्रस्ताव के संशोधन को वापस लेना चाहता था तो सभापीठ ने पूछा था कि क्या सदस्य ने इसे वापस लेने के लिए सभा की अनुमति ली है। कुछ सदस्यों ने नकारात्मक उत्तर दिया था। तत्पश्चात संशोधन पर मत लिया गया था और वह अस्वीकृत हुआ था।[36]

विलम्बकारी प्रस्ताव

प्रस्ताव किए जाने के पश्चात किसी भी समय सदस्य इस आशय का प्रस्ताव कर सकता है कि प्रस्ताव पर वाद-विवाद को स्थगित कर दिया जाए। यदि सभापति की यह राय है कि वाद-विवाद को स्थगित करने का प्रस्ताव सदन के नियमों का दुरुपयोग है तो वह या तो उसके संबंध में सभापीठ से तत्काल प्रश्न पूछ सकता है अथवा प्रश्न का प्रस्ताव अस्वीकार कर सकता है।[37]

> विलम्बकारी प्रस्ताव उन प्रस्तावों का एक जातीय नाम है जिसका उद्देश्य किए जा रहे कार्य के आगे विचारण को वर्तमान समय के लिए स्थगित करना है। यदि सभापति यह समझता है कि विलंबकारी प्रस्ताव सदन के नियमों का दुरुपयोग है तो वह या तो प्रस्ताव को स्वीकार करने से इन्कार कर सकता है अथवा इसे स्वीकार कर सकता है और इसके संबंध में तत्काल ही, अर्थात, इस पर वाद-विवाद कराए जाने की अनुमति दिए बिना, इसके संबंध में प्रश्न पूछ सकता है।[38]
>
> किसी विलंबकारी प्रस्ताव का अभिप्राय वाद-विवाद को स्थगित करना अथवा उसमें अनिश्चित विलंब करना है। यदि इस प्रस्ताव को उपस्थित किया जाता है और लाया जाता है, तो चर्चा के अधीन विषय को या तो छोड़ दिया जाता है अथवा वाद-विवाद को स्थगित कर दिया जाता है। विलंबकारी प्रस्ताव एक अधिक्रमण करने वाला प्रस्ताव है क्योंकि यदि इसे सभापीठ द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह एक नए प्रश्न के रूप में प्रस्ताव उपस्थित करता है जो वास्तविक प्रश्न का स्थान लेता है और इसे वास्तविक प्रश्न पर वाद-विवाद शुरू करने से पहले ही निपटाया जाना चाहिए।[39]
>
> उपरोक्त नियम में और कुछ अन्य नियमों में भी प्रयुक्त 'सदन के नियमों का दुरुपयोग' शब्दों के, संबंध में यह शब्द प्रस्ताव उपस्थित करने के अपने अधिकार का अनुचित उद्देश्य के लिए सदस्य द्वारा प्रयोग (अर्थात, कार्य संचालन में बाधा डालने अथवा अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के लिए अरूचिकर विचारों की अभिव्यक्ति करने से रोकना अथवा जिनको वे अभिव्यक्त नहीं करना चाहते) शब्द के रूप से परिभाषित किया जाए। किसी सदस्य के लिए जो भाषण बंद करने का प्रस्ताव उपस्थित करके अपने भाषण को समाप्त करने के लिए किसी प्रश्न पर बोलता रहा है संभवतया सदन के नियमों का दुरूपयोग समझा जाएगा।[40]

संशोधन

संशोधन एक गौण प्रस्ताव है जो दूसरे प्रस्ताव के ऊपर वाद-विवाद के बीच में उपस्थित किया जाता है, जो मुख्य प्रस्ताव और प्रश्न के संबंध में प्रस्ताव और निर्णय के मध्य वाद-विवाद और निर्णय का एक नया आवर्तन सन्निविष्ट करता है। संशोधन का उद्देश्य या तो सदन के समक्ष प्रश्न की ग्राहयता में वृद्धि करने की दृष्टि से प्रश्न को संशोधित करना है अथवा सदन में वास्तविक प्रश्न के विकल्प के रूप में एक भिन्न प्रस्ताव प्रस्तुत करना है।[41]

संशोधन उस प्रस्ताव से संबद्ध होना चाहिए और उस विषय-क्षेत्र के भीतर होना चाहिए जिसके लिए उसे उपस्थित किया गया है।[42] वह संशोधन, जो मात्र एक नकरात्मक मत का प्रभाव रखता है, ग्राह्य नहीं है।[43] किसी प्रश्न के संबंध में कोई संशोधन उसी प्रश्न पर पूर्व में लिए गए निर्णय का परस्पर विरोधी नहीं होना चाहिए।[44]

संशोधन सामान्यतया प्रस्ताव के रूप में या तो प्रस्ताव में कतिपय शब्दों को अंत: स्थापित

करने के लिए अथवा कतिपय शब्दों को हटाने के लिए अथवा मूल प्रस्ताव में शब्दों के लिए कतिपय शब्द प्रतिस्थापित करने के लिए उपस्थित किया जाता है।

प्रस्ताव में संशोधन की सूचना उस दिन, जिस दिन प्रस्ताव पर विचार किया जाना है, से कम से कम एक दिन पहले दी जाए, जब तक कि सभापति ऐसी सूचना के बिना संशोधन उपस्थित करने की अनुमति न दें।[45]

सभापति किसी ऐसे संशोधन को प्रस्तुत करने से इंकार कर सकता है जो उसकी राय में नियमों का उल्लंघन करता हो।[46] सभापति को उपस्थित किए जाने वाले संशोधनों का चयन करने का भी अधिकार है और यदि वह उपयुक्त समझे तो उस सदस्य को, जिसने संशोधन की सूचना दी है, संशोधन का उद्देश्य स्पष्ट करने के लिए बुला सकता है जिससे वह इस पर सुगमता से निर्णय दे सके।[47]

प्रस्ताव की विषय-वस्तु

लोक महत्व का कोई भी मामला किसी प्रस्ताव की विषय-वस्तु हो सकता है। गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा राज्य सभा में उपस्थित किए गए कुछ विशिष्ट प्रस्ताव निम्नलिखित हैं :

भारतीय जीवन बीमा निगम संबंधी समिति के निष्कर्षों के संबंध में सरकारी संकल्प;[48] राज्य सरकारों के कुछ मुख्य मंत्रियों और अन्य मंत्रियों के विरुद्ध आरोप;[49] पश्चिमी बंगाल में गैर-कानूनी घोष मंत्रिमंडल की बर्खास्तगी की सिफारिश (प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ);[50] दिल्ली में पुलिस द्वारा उत्तर प्रदेश के दो मंत्रियों के विरुद्ध बल प्रयोग (प्रस्ताव संशोधित रूप से स्वीकृत हुआ);[51] गुट-निरपेक्ष देशों के राज्याध्यक्षों अथवा शासनाध्यक्षों का दिल्ली में आयोजित सातवां सम्मेलन (प्रस्ताव स्वीकृत हुआ);[52] उप-प्रधान मंत्री और वित्त मंत्री की सहायता करने के लिए उनके पुत्र को नियोजित किए जाने का औचित्य (प्रस्ताव सदन में उपस्थित नहीं किया गया);[53] पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल के उस राज्य में संयुक्त मोर्चा सरकार को बर्खास्त करने की असंवैधानिक कार्यवाही की निन्दा (प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ);[54] राज्य सभा में 27 अगस्त, 1974 को तारांकित प्रश्न संख्या 730 और इस पर अनुपूरक प्रश्नों तथा इसके संबंध में राज्य सभा में उसी दिन वाणिज्य मंत्री के वक्तव्य से उत्पन्न सभी मामलों की जांच के लिए एक संसदीय समिति का गठन (पांडिचेरी लाइसेंस मामला) (प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ);[55] 3 नवंबर, 1962 को संविधान के अनुच्छेद 359 के खंड (1) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा दिए गए आदेश के अन्तर्गत संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 द्वारा प्रदत अधिकारों के कार्यान्वयन के लिए किसी न्यायालय में जाने के लगातार निलंबन से उत्पन्न स्थिति;[56] मक्खन सिंह तरसिक्का बनाम पंजाब राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के परिप्रेक्ष्य में भारत रक्षा अधिनियम, 1962 के अंतर्गत व्यक्तियों को लगातार रोके रखना;[57] 23 मार्च, 1970 को गुजरात में भूकंप के कारण जान और माल की हानि पर सदन की चिंता की अभिव्यक्ति करना और क्षेत्र के शोक संतप्त और प्रभावित व्यक्तियों के साथ इसकी सहानुभूति (प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, सभी सदस्य खड़े हुए);[58] प्रधान मंत्री और भूतपूर्व गृह मंत्री के परिवारों के सदस्यों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए दो अलग-अलग जांच आयोगों की नियुक्ति के संबंध में प्रस्ताव (प्रस्ताव स्वीकृत हुआ);[59] प्रधान मंत्री द्वारा केन्द्रीय मंत्रिमंडल के तीन मंत्रियों, अर्थात श्री लाल कृष्ण आडवाणी, डा. मुरली मनोहर जोशी और सुश्री उमा भारती जिनके विरुद्ध सी.बी.आई. ने जांच पूरी कर ली है तथा आरोप-पत्र दाखिल कर दिया है, को क्लीन चिट दिए जाने संबंधी प्रधान मंत्री के कथित वक्तव्य पर असहमति के संबंध में प्रस्ताव (प्रस्ताव स्वीकृत

हुआ)।[60] वोल्कर आयोग प्रतिवेदन के संबंध में प्रस्ताव [61]; गुजरात में लगातार हिंसा के संबंध में प्रस्ताव (प्रस्ताव स्वीकृत)[62]; अर्थ व्यवस्था पर स्फीतिकारक दबाव और आम जनता पर उसके प्रतिकूल प्रभाव के संबंध में प्रस्ताव [63]; बहु-ब्रांड खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति देने के सरकार के निर्णय को अस्वीकार करने के संबंध में प्रस्ताव।[64]

10 अगस्त, 1978 को स्वीकृत हुए प्रस्ताव की प्रगति

उपरोक्त सूची में उल्लिखित प्रस्ताव में अत्यधिक दिलचस्पी और विवाद उत्पन्न हुआ था जिसका विस्तृत उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है। एक सदस्य द्वारा प्रस्ताव की सूचना में जांच आयोग अधिनियम, 1952 के अंतर्गत दो अलग-अलग आयोगों की नियुक्ति करने की मांग की गई थी–पहला आयोग प्रधान मंत्री, श्री मोरारजी देसाई के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध लगाए गए भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए और दूसरा आयोग भूतपूर्व गृह मंत्री, श्री चरण सिंह के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए–स्वीकृत किया गया था। प्रस्ताव को संसदीय समाचार में "अनियत दिन वाले प्रस्ताव" शीर्षक के अंतर्गत अधिसूचित किया गया था।[65]

कार्य मंत्रणा समिति ने एक दिन आवंटित किया और इस पर चर्चा के लिए 10 अगस्त,1978 का दिन नियत किया था।[66] तदनुसार, प्रस्ताव को उस दिन चर्चा के लिए लिया गया। इससे पहले कि प्रस्ताव पर चर्चा शुरू होती इसकी ग्राह्यता के बारे में इन आधारों पर व्यवस्था के प्रश्न उठाए गए कि नियम 169 (i), (iii), (iv) और (vi) तथा जांच आयोग अधिनियम, 1952 की धारा 3 का भी उल्लंघन करता है, चूंकि उस अधिनियम के अंतर्गत राज्य सभा को आयोग की नियुक्ति के लिए सरकार से सिफारिश करने का कोई अधिकार नहीं है और इसलिए यह प्रस्ताव एक व्यर्थ का कार्य होगा।[67]

व्यवस्था के प्रश्नों को उपसभापति द्वारा यह निर्णय देते हुए खारिज कर दिया गया था कि (1) प्रस्ताव के मुख्य भाग में एक निश्चित मामले को पर्याप्त रूप से उठाया गया है, (2) प्रस्ताव उपस्थित करने में नियम 169 के उपबंध का पर्याप्त रूप से अनुपालन किया गया है और (3) क्या प्रस्ताव जांच आयोग अधिनियम का उल्लंघन करता है अथवा नहीं, यह बात प्रस्ताव स्वीकृत करते समय सभापति के समक्ष विचाराधीन नहीं थी और किसी भी मामले में जहां तक प्रस्ताव की चर्चा का संबंध है, वाद-विवाद बहुत अधिक संगत नहीं है जहां तक प्रस्ताव के बारे में वाद-विवाद निरर्थक होने के बारे में तर्क दिए जाने का संबंध है, उपसभापति ने यह टिप्पणी की "...सीमित प्रश्न... यह है कि क्या इसे चर्चा के लिए स्वीकार किया जाए और क्या इसे समुचित रूप से ग्राह्य किया गया है। इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, क्या यह व्यर्थ होगा अथवा नहीं यह पुन: एक ऐसी बात है जिससे हमारा इस अवस्था में कोई संबंध नहीं है...इसलिए, हमारे नियमों के उपबंधों और बहस को देखते हुए जिसे मैने सुना है और सबसे अधिक पूर्वोदाहरणों को देखते हुए, जिनमें यह बताया गया है कि इसी प्रकार के प्रस्ताव इस सदन में स्वीकार किए गए हैं, मेरा कहना है कि इसे समुचित रूप से स्वीकार किया गया है।"[68]

3 अगस्त, 1978 को सभापति ने उपरोक्त प्रस्ताव की ग्राह्यता के संबंध में सदस्यों द्वारा किए गए प्रश्नों को निपटाते समय दो पूर्वोदाहरण दिए थे जिनका उल्लेख ऊपर किया गया था। 27 अप्रैल, 1963 को जांच आयोग अधिनियम के अंतर्गत कंपनियों के प्रशासन की जांच करने के लिए एक

आयोग नियुक्त करने के संबंध में एक गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प पर चर्चा हुई और यह अस्वीकार हुआ था। वर्ष 1961 में एक पूर्व अवसर पर भी समाचार पत्र उद्योग ने स्वामित्व के एकाधिकार के प्रश्न की जांच करने के लिए जांच आयोग अधिनियम, 1952 के अंतर्गत एक जांच आयोग नियुक्त करने के संबंध में एक गैर-सरकारी सदस्य द्वारा दी गई सूचना वाले प्रस्ताव को स्वीकृत किया गया था इसे दो अवसरों पर बैलट पर स्थान मिला था।

पांच सदस्यों द्वारा प्रस्ताव में संशोधन प्रस्तुत किए गए थे। श्री भूपेश गुप्त द्वारा प्रस्तुत किए गए संशोधन पर सदन में मत लिया गया और मत-विभाजन द्वारा वह स्वीकृत हुआ। तत्पश्चात् यथा संशोधित प्रस्ताव 10 अगस्त, 1978 को मध्याह्न पश्चात 10.00 बजे निम्नलिखित संशोधित रूप से स्वीकृत किया गया :

कि भूतपूर्व गृह मंत्री, श्री चरण सिंह द्वारा प्रधान मंत्री के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों और प्रधान मंत्री द्वारा भूतपूर्व गृह मंत्री के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध लगाए गए प्रत्यारोपों, जिनके कारण देश में भारी क्षोभ उत्पन्न हुआ है, से संबंधित प्रधान मंत्री और भूतपूर्व गृह मंत्री, श्री चरण सिंह के बीच हुए पत्र-व्यवहार सहित सभी प्रकार के पत्र-व्यवहार और अन्य दस्तावेज प्रधान मंत्री द्वारा सदन में रखे जाने से इन्कार किए जाने पर खेद और अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए इस सभा की यह राय है कि यदि इस स्थिति से समुचित रूप से और अपेक्षित तात्कालितापूर्वक नहीं निपटा जाता है तो इससे न केवल सार्वजनिक जीवन में लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्तियों की परिहार्य बदनामी होने की संभावना है, बल्कि उससे देश में सार्वजनिक जीवन की विश्वसनीयता की अपूरणीय क्षति भी होगी अत: यह सभा सरकार से इन आरोपों पर समुचित और आवश्यक कार्यवाही करने हेतु इस सदन की एक समिति, जिसमें पन्द्रह सदस्य होंगे, जिसकी नियुक्ति राज्य सभा के सभापति द्वारा की जाएगी, से तत्काल दिशा-निर्देश एवं सलाह प्राप्त करें या वैकल्पिक तौर पर जांच आयोग अधिनियम, 1952 के अंतर्गत बिना किसी विलंब के तुरंत दो पृथक्-पृथक् जांच आयोगों को, उन्हें व्यापक जांच करने और उसके संबंध में शीघ्रतापूर्वक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का आदेश देते हुए, नियुक्त करे। एक प्रधान मंत्री, श्री मोरारजी देसाई के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध लगाए गए भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए और दूसरा भूतपूर्व गृह मंत्री, श्री चरण सिंह के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध लगाए गए भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए।[69]

एक दिन पूर्व स्वीकृत संकल्प के बारे में सभा के नेता (श्री लाल कृष्ण आडवाणी) द्वारा समाचार पत्र में की गई कुछ टिप्पणियों के संदर्भ में अगले दिन प्रस्ताव स्वीकृत किए जाने से उत्पन्न मामला उठाया गया।[70] 17 अगस्त, 1978 को सभापति ने सदन में निम्नलिखित घोषणा की:

सदन ने 10 अगस्त, 1978 को हुई अपनी बैठक में प्रधान मंत्री और भूतपूर्व गृह मंत्री, श्री चरण सिंह के परिवारों के सदस्य के विरुद्ध भ्रष्टाचार के कतिपय आरोपों की जांच करने हेतु इस सदन की एक समिति गठित करने या जांच आयोग अधिनियम, 1952 के अंतर्गत दो पृथक जांच आयोग गठित करने के संबंध में एक प्रस्ताव स्वीकृत किया। उक्त प्रस्ताव में सरकार से निम्नलिखित सिफारिश की गई है :

(1) आरोपों के विरुद्ध समुचित और आवश्यक कार्यवाही करने हेतु राज्य सभा के सभापति द्वारा नियुक्त की जाने वाली राज्य सभा के पन्द्रह सदस्यों की समिति से तत्काल दिशा-निर्देश और सलाह प्राप्त करें, या

(2) इस मामले में जांच आयोग अधिनियम, 1952 के अंतर्गत तुरंत दो पृथक जांच आयोग गठित करे।

अत: सरकार के समक्ष दो विकल्प हैं अर्थात या तो सरकार राज्य सभा के सदस्यों की समिति से दिशा-निर्देश और सलाह प्राप्त करे या तत्काल दो पृथक जांच आयोग गठित करे।

यह मामला कल भी सदन में उठाया गया था। मेरा मत यह है कि प्रस्ताव के अनुरूप मेरे द्वारा समिति नियुक्त किए जाने का प्रश्न सरकार के उस संकेत पर निर्भर करेगा कि उसे प्रस्ताव में उल्लेखित दो विकल्पों में से कौन सा विकल्प स्वीकार्य है। सरकार की राय जाने बिना इस समय समिति नियुक्त करने का कोई परिणाम नहीं निकलेगा। इसलिए, मैं सभा के नेता से अनुरोध करता हूं कि मुझे यह बताएं कि सरकार इस मामले में कौन- सी प्रक्रिया अपनाने का विचार रखती है।[71]

21 अगस्त, 1978 को सदन द्वारा किए गए प्रस्ताव के विभिन्न निहितार्थों के बारे में एक बार फिर यह मामला उठाया गया। उपसभापति ने सदन से इस मामले में सरकार की प्रतिक्रिया की घोषणा करने तक प्रतीक्षा करने का अनुरोध किया।[72] प्रधान मंत्री ने 24 अगस्त, 1978 को इस प्रस्ताव के संबंध में निम्नलिखित वक्तव्य दिया :

इस सभा द्वारा 10 अगस्त, 1978 को जो संकल्प स्वीकृत किया था, सरकार ने उस पर सावधानीपूर्वक और गंभीरता से विचार किया है। इस संकल्प का संबंध कथित भ्रष्टाचार के कतिपय आरोपों से है और इसमें सरकार से मांग की गई है कि वह या तो आरोपों के विरुद्ध समुचित और आवश्यक कार्यवाही करने हेतु राज्य सभा के सभापति द्वारा नियुक्त की जाने वाली राज्य सभा की पन्द्रह सदस्यीय समिति से तत्काल दिशा-निर्देश एवं सलाह प्राप्त करे अथवा जांच आयोग अधिनियम, 1952 के अंतर्गत तत्काल दो पृथक जांच आयोग गठित करे।

सरकार सदन के किसी भी संकल्प का अत्याधिक सम्मान करेगी लेकिन संकल्प का स्वरूप अनिवार्यत: अनुशंसात्मक होता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि संकल्प में भ्रष्टाचार के किन्हीं विशिष्ट उदाहरणों का उल्लेख नहीं किया गया है, सरकार जांच आयोग गठित करने को न्यायसंगत नहीं मानती है क्योंकि जांच आयोग का गठन सिर्फ लोक-महत्व के किसी निश्चित मामले की जांच के लिए किया जा सकता है।

इसी कारण से सरकार संकल्प में सुझायी गई वैकल्पिक कार्यवाही अर्थात सभापति द्वारा नियुक्त की जाने वाली समिति से दिशा-निर्देश एवं सलाह प्राप्त करने के प्रस्ताव को स्वीकार करना उचित नहीं समझती है।

तथापि, मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि मेरी सरकार प्रशासन में पवित्रता के उच्चतम मानदंड बनाए रखने के लिए किसी भी दवाब के सम्मुख नहीं झुकेगी तथा भ्रष्टाचार के किसी आरोप को टिका नहीं रहने देगी। जिससे उसकी छवि धूमिल होती हो। अत: इस संकल्प में निहित दोनों सिफारिशों में से किसी भी सिफारिश को स्वीकृत करने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए भी यदि कोई माननीय सदस्य संकल्प के संदर्भ में जबसे मेरी सरकार सत्ता में आई है तबसे भ्रष्टाचार के किन्हीं विशिष्ट आरोपों के संबंध में लिखकर दे तो सरकार उनकी जांच कराए जाने के लिए उसे भारत के मुख्य न्यायाधीश को प्रेषित करने का विचार रखती है।[73]

उपरोक्त वक्तव्य के बारे में सदस्यों ने अपने विचार प्रकट किए। तत्पश्चात, सभापति ने इस मामले में अपना सुविचारित मत प्रकट करने का वचन दिया। 29 अगस्त, 1978 को सभापति ने निम्नलिखित घोषणा की :

मैंने यह कहा था कि सदन द्वारा 10 अगस्त, 1978 को स्वीकार किए गए प्रस्ताव में सरकार से, अन्य बातों के साथ-साथ, सभापति द्वारा नियुक्त की जाने वाली समिति से दिशा-निर्देश और सलाह प्राप्त करने की सिफारिश की गई थी, मैने यह भी कहा था कि मेरे द्वारा किसी समिति की नियुक्ति

> इस बात पर निर्भर करेगी कि सरकार को प्रस्ताव में उल्लिखित दो विकल्पों में से कौन-सा विकल्प स्वीकार्य है। प्रधान मंत्री ने तद्नुसार 24 अगस्त, 1978 को सदन में एक वक्तव्य दिया।
>
> मैंने इस विषय पर प्रधान मंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य और सदस्यों द्वारा सदन में प्रकट किए गए विभिन्न विचारों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। प्रधान मंत्री के वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि सरकार ने प्रस्ताव में उल्लिखित दोनों विकल्पों में से किसी को भी स्वीकार नहीं किया है। 10 अगस्त के प्रस्ताव को पढ़कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि मेरे द्वारा समिति का गठन सरकार द्वारा उक्त समिति से सलाह एवं दिशा-निर्देश प्राप्त करने की इच्छा प्रदर्शित किए जाने पर निर्भर करता है और सरकार ने ऐसा करने से इंकार कर दिया है। प्रस्ताव में यह भी नहीं कहा गया है कि सरकार द्वारा प्रस्ताव में उल्लिखित दोनों विकल्पों में से किसी को स्वीकार किए जाने की स्थिति में भी मेरे द्वारा समिति नियुक्त की जानी चाहिए। इसलिए, मेरी राय में इन परिस्थितियों में उक्त प्रस्ताव के संदर्भ में मुझे ऐसी किसी समिति की नियुक्ति करने की आवश्यकता नहीं है।[74]

उक्त घोषणा के संबंध में सदस्यों ने अपने विचार प्रकट किए। एक सदस्य ने ऐसा प्रस्ताव भी पढ़ा, जिसकी कि वह सूचना दे चुका था, जिसमें यह कहा गया कि सरकार भ्रष्टाचार, आदि सभी आरोपों की जांच-पड़ताल हेतु उन्हें तत्काल उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को प्रेषित करे और उक्त जांच-पड़ताल के निष्कर्षों के बारे में सदन को सूचित करे। बाद में, सदस्यों से[75] जिसमें वह सदस्य भी शामिल था, जिसने 29 अगस्त, 1978 को सदन में अपना प्रस्ताव पढ़ा था,[76] (1) इस मामले में एक संसदीय समिति नियुक्त करने और (2) भारत के मुख्य न्यायाधीश को आरोप प्रेषित करने हेतु कई 'अनियत दिन वाले प्रस्ताव' प्राप्त हुए थे। एक सदस्य से, जिसे लॉटरी में दूसरा स्थान प्राप्त हुआ था, प्राप्त एक गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प को भी स्वीकृत किया गया था और उसे 23 फरवरी, 1979 को चर्चा के लिए अधिसूचित किया गया था।[77] 23 फरवरी, 1979 को गृह मंत्री (श्री एच.एम.पटेल) ने 10 अगस्त, 1978 को सदन द्वारा स्वीकृत किए गए प्रस्ताव पर हुई बहस को इस बात की जांच करने के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश को प्रेषित करने के सरकार के निर्णय के संबंध में सदन में एक वक्तव्य दिया कि क्या बहस में उल्लिखित और मार्च, 1977 की अवधि के बाद प्रधान मंत्री और भूतपूर्व गृह मंत्री के परिवारों के सदस्यों के विरुद्ध किन्हीं आरोपों के संबंध में प्रथम दृष्टया कोई मामला बनता है ताकि जांच आयोग अधिनियम, 1952 के अंतर्गत औपचारिक जांच कराने की बात को न्यायोचित ठहराया जा सके।[78] 26 और 27 फरवरी, 1979 को सदस्य ने सरकार के निर्णय पर अपने विचार प्रकट किए।[79]

4 फरवरी, 1980 को कुछ सदस्यों को अखबारों में प्रकाशित उस समाचार के बारे में जिसमें यह कहा गया था कि न्यायमूर्ति वैद्यलिंगम ने (जिन्हें यह मामला सौंपा गया था) अपना प्रतिवेदन सौंप दिया है और उसमें भूतपूर्व प्रधान मंत्री और भूतपूर्व गृह मंत्री के परिवारों के सदस्यों को अभ्यारोपित किया गया है, विशेष उल्लेख करने की अनुमति दी गई थी। कुछ सदस्यों द्वारा प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखे जाने की मांग की गई थी।[80]

5 फरवरी, 1980 को, संसदीय कार्य और संचार मंत्री (श्री भीष्म नारायण सिंह) ने विशेष न्यायाधीश, न्यायमूर्ति सी.ए. वैद्यलिंगम के प्रतिवेदन (25 जनवरी, 1980) में अंतर्विष्ट निष्कर्षों और सिफारिशों के सारांश की एक प्रति सदन के पटल पर रखी[81] और यह मामला वहीं समाप्त हो गया।

गुजरात में हिंसा की अवस्थिति के संबंध में प्रस्ताव

24 अप्रैल, 2002 को, सभापति ने सभा में निम्नलिखित घोषणा की :

> माननीय सदस्य, डा. मनमोहन सिंह और अन्य सदस्यों द्वारा दी गई सूचना के आधार पर मैंने निम्नलिखित प्रस्ताव को राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 170 के अधीन गृहीत कर लिया है :
>
> यह सभा गुजरात में छह सप्ताह से अधिक से चली आ रही हिंसा की अवस्थिति पर अपना गहन क्षोभ प्रकट करती है जिसकी वजह से काफी लोग मारे गए हैं, करोड़ों रुपयों की संपत्ति का नुकसान हुआ है और केन्द्र सरकार से आग्रह करती है कि वह नागरिकों का जीवन और संपत्ति बचाने के लिए तथा हिंसा के पीड़ितों और पुनर्वास हेतु संविधान के अनुच्छेद 355 के अंतर्गत प्रभावित हस्तक्षेप करे।[82]
>
> चर्चा बृहस्पतिवार, 2 मई 2002 को होगी।

2 मई, 2002 को श्री अर्जुन सिंह ने प्रस्ताव उपस्थित किया, जिस पर 3 मई, 2002 और 6 मई, 2002 को भी चर्चा जारी रही। 6 मई, 2002 को प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया। तत्पश्चात, सभापति ने सभा में निम्नलिखित टिप्पणी की:

> मैं राज्य सभा के माननीय सदस्यों को गुजरात संबंधी प्रस्ताव को एकमत से स्वीकार करने पर बधाई देता हूं। विपक्ष और सरकार द्वारा सहमत यह प्रस्ताव हमारे लोकतंत्र की समायोजन, समंजन और प्रतिस्कंदन की भावना का परिचायक है।
>
> मुझे पूरी आशा है कि यह आम राय हमारी लोकतांत्रिक संस्थाओं में लोगों के विश्वास को दृढ़ करने में सहायक होगी।
>
> राज्य सभा के कक्ष से उठी यह एक आवाज देश भर में गूंजेगी और राज्य के ऊपर मंडराते काले और घने बादलों को दूर हटाएगी। आशा है कि इससे गुजरात के लोगों के लिए स्थायी शांति का युग लाने में सहायता मिलेगी।

23 जुलाई, 2002 को, श्री प्रणब मुखर्जी ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 355 के अंतर्गत गुजरात राज्य में हस्तक्षेप हेतु राज्य सभा द्वारा नियम 170 के अधीन स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसरण में सरकार द्वारा उठाए गए कदमों के संबंध में अल्पकालिक चर्चा आरंभ की।

सरकारी प्रस्ताव

गैर-सरकारी सदस्यों की भांति, मंत्री भी सार्वजनिक हित से संबंधित मामलों पर प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं। सामान्य तौर पर ये प्रस्ताव महत्वपूर्ण प्रतिवेदनों, उदाहरणार्थ संघ लोक सेवा आयोग, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अथवा किसी अन्य आयोग के प्रतिवेदनों पर विचार करने के उद्देश्य से या मूल्य स्थिति जैसे मामलों या अन्य किसी मामले या किसी पत्र पर चर्चा करने के उद्देश्य के लिए होते हैं। इनके अलावा, कुछ अन्य महत्वपूर्ण सरकारी प्रस्ताव लाए गए हैं जिन पर राज्य सभा में चर्चा की गई है। उदाहरणार्थ:

> राज्य पुनर्गठन आयोग का प्रतिवेदन[83] भारत और चीन के प्रधानमंत्रियों के बीच हुई बातचीत समाप्त होने के बाद जारी की गई संयुक्त विज्ञप्ति;[84] भारत-चीन संबंधों के बारे में कोलम्बो प्रस्ताव;[85] गुजरात-पश्चिमी पाकिस्तान सीमा से संबंधित भारत-पाकिस्तान समझौता;[86] दल-बदल संबंधी समिति का प्रतिवेदन;[87] पंजाब पर श्वेत पत्र;[88] आठवें वित्त आयोग का प्रतिवेदन;[89] दक्षिण अफ्रीका की स्थिति;[90]

> केन्द्र-राज्य संबंधों पर सरकारिया आयोग का प्रतिवेदन;[91] भारत और सोवियत संघ गणराज्य के बीच शांति, मित्रता और सहयोग की संधि;[92] अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष ऋण;[93] पंचवर्षीय योजना (1978-83) का प्रारूप;[94] छठी पंचवर्षीय योजना; सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रति दृष्टिकोण (एप्रोच);[95] आर्थिक स्थिति;[96] ठक्कर आयोग प्रतिवेदन;[97] और राष्ट्रीय बाल नीति;[98] इत्यादि।

प्रस्ताव में संशोधन भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं और सरकारी प्रस्ताव संशोधित रूप में स्वीकृत किए जा सकते हैं। तथापि, सामान्यतया प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाने के तत्काल बाद ही संशोधन प्रस्तुत किए जाने चाहिए न कि चर्चा शुरू होने के बाद।

> संघ लोक सेवा आयोग के बाईसवें प्रतिवेदन पर विचार करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाने के बाद, सभापीठ ने घोषणा की कि एक सदस्य ने तीस संशोधन प्रस्तुत करने का नोटिस दिया था किन्तु चूंकि वह सदस्य उपस्थित नहीं था इसलिए उपरोक्त संशोधन प्रस्तुत नहीं किए जा सके। भोजनावकाश के बाद वह सदस्य सदन में आया और सभापीठ से यह अनुरोध किया कि यद्यपि वह चरण गुजर चुका है फिर भी अपवाद स्वरूप विशेष परिस्थितियों, जिनके कारण वे अपने संशोधन प्रस्तुत करने के लिए उपयुक्त समय पर सभा में उपस्थित नहीं हो सका, को ध्यान में रखते हुए उसे अपने संशोधन प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाए। उपसभापति ने यह सुनिश्चित कर लेने के बाद कि सदन को कोई आपत्ति नहीं है, उक्त सदस्य को अपने संशोधन प्रस्तुत करने की अनुमति दे दी और साथ ही यह स्पष्ट कर दिया कि यह एक पूर्वोदाहरण नहीं बनाना चाहिए।[99]

> राज्य पुनर्गठन आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए प्रस्तुत किए गए एक सरकारी प्रस्ताव के मामले में संशोधन प्रस्तुत करने का नोटिस दिया गया था। सभापति ने यह विनिर्णय दिया, "इस चरण में किन्हीं निर्णयों पर पहुंचने की आवश्यकता नहीं है। यह सिर्फ चर्चा है। इसलिए सभी संशोधन असंगत है।"[100]

कई अवसरों पर, कतिपय महत्वपूर्ण विषयों/पत्रों पर सरकारी प्रस्तावों के आधार पर चर्चा की गई है और अंत में सरकारी प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया गया है। उदाहरणस्वरूप, निम्नलिखित विषयों पर सरकारी प्रस्ताव स्वीकृत किए गए हैं:

> जम्मू और कश्मीर की स्थिति (प्रधान मंत्री, श्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत);[101] प्रैस आयोग का प्रतिवेदन;[102] निवारक नजरबंदी अधिनियम 1950 का कार्यकरण;[103] देश में खाद्यान्न की स्थिति;[104] भारतीय जीवन बीमा निगम के कार्यों के संबंध में जांच आयोग का प्रतिवेदन;[105] श्वेत पत्र संख्या II और बाद में भारत और चीन की सरकारों के बीच हुए पत्र-व्यवहार।[106] केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की हड़ताल;[107] असम की स्थिति;[108] तीसरी पंचवर्षीय योजना;[109] भारत-चीन सीमा की स्थिति;[110] कच्छ सीमा पर पाकिस्तान का आक्रमण;[111] भारत और पाकिस्तान के बीच द्विपक्षीय संबंधों के बारे में समझौता;[112] ताशकंद घोषणा;[113] महिलाओं की दशा पर समिति का प्रतिवेदन;[114] कश्मीर पर वक्तव्य;[115] अंतर्राष्ट्रीय स्थिति[116] (नौ वर्ष बीत जाने के बाद प्रस्ताव स्वीकृत किया गया) इत्यादि।

परिनियत प्रस्ताव *

संविधान या संसद् के किसी अधिनियम प्रावधान के अनुसार सदन में प्रस्तुत किए जाने वाले प्रस्तावों को 'परिनियत प्रस्ताव' कहा जाता है। मंत्री या गैर-सरकारी सदस्य में से कोई भी इस प्रकार के प्रस्ताव की सूचना दे सकता है।[117]

मंत्रियों द्वारा बारम्बार प्रस्तुत किए जाने वाले विशिष्ट परिनियत प्रस्ताव सदन के सदस्यों का विभिन्न परिनियत निकायों के लिए चयन किए जाने से संबंधित होते हैं।

---

*परिनियत प्रस्ताव की प्रक्रिया संबंधी ब्यौरे अध्याय 25 में अधीनस्थ विधान संबंधी समिति के अंतर्गत दिए गए हैं।

संसद् के अधिनियमों जिनके द्वारा केन्द्रीय सरकार को नियम आदि बनाने की शक्ति प्रदान की जाती है, में यह प्रावधान भी होते हैं कि संसद् निर्धारित अवधि के अन्दर इन नियमों में उपान्तर कर सकती है या उन्हें निष्प्रभावी कर सकती है। उस प्रावधान के अनुरूप सदस्यों द्वारा प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाते हैं और उस प्रयोजन के लिए सरकार के लिए नियत समय में से समय प्रदान किया जाता है। सदन द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव को बाध्यकारी बनाने के लिए जैसाकि संविधि के नियम निर्धारण संबंधी खण्ड में निर्दिष्ट है, उस पर दूसरे सदन की सहमति होना भी आवश्यक है।

> सरकार ने विस्थापित व्यक्ति (प्रतिकर और पुनर्वास) नियम, 1955 में लोक सभा द्वारा किए गए उपान्तरों पर सहमति प्रकट करते हुए राज्य सभा में चौदह प्रस्ताव प्रस्तुत किए थे। प्रत्येक उपान्तरित नियम के लिए पृथक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया और स्वीकृत हुआ।[118]
>
> 120वें सत्र (1981) के दौरान, परिनियत नियमों और आदेशों में उपान्तर करने के लिए गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा दी गई दस प्रस्तावों की सूचनाओं को स्वीकार किया गया जिनमें से सात पर चर्चा हुई, यद्यपि उनमें से कोई भी प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ।[119]

उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाए जाने संबंधी प्रस्ताव

उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश; राष्ट्रपति को संबोधित अपने पत्र के माध्यम से, अपने पद से इस्तीफा दे सकता है[120] परंतु उसे पद से तब तक नहीं हटाया जा सकता, जब तक राष्ट्रपति संसद् के प्रत्येक सदन में संबोधन के पश्चात् विहित तरीके से हटाए जाने संबंधी आदेश पारित नहीं करते।[121]

न्यायाधीश, चाहे वह उच्चतम न्यायालय का हो अथवा उच्च न्यायालय का, को हटाए जाने संबंधी संबोधन केवल 'प्रमाणित कदाचार' अथवा 'असमर्थता' के आधार पर ही राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ऐसे संबोधन राष्ट्रपति के समक्ष उसी सत्र में प्रस्तुत किए जाने चाहिए जिस सत्र में वह संसद के प्रत्येक सदन द्वारा पारित हो तथा जिसे प्रत्येक सदन की कुल सदस्यता का बहुमत प्राप्त हो तथा जिसे प्रत्येक सदन के उपस्थित तथा वोट देने वाले सदस्यों की दो तिहाई से अन्यून बहुमत का समर्थन प्राप्त हो।[122] यदि दोनों सदनों के संबोधन संविधान के पूर्वोक्त उपबंधों के अनुरूप हों, तब राष्ट्रपति न्यायाधीश को पद से हटाने संबंधी आदेश जारी करता है।

इस अधिनियम द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के तहत न्यायाधीश को हटाए जाने संबंधी राष्ट्रपति को प्रस्तुत किए जाने वाले प्रस्ताव की सूचना, यदि लोक सभा में प्रस्तुत की गई है, तो वह लोक सभा के कम से कम सौ सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित होनी चाहिए और यदि राज्य सभा में प्रस्तुत की गई है, तो वह राज्य सभा के कम से कम पचास सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित होनी चाहिए। अध्यक्ष अथवा सभापति, जैसी स्थिति हो, सम्यक विचार और परामर्श के पश्चात् प्रस्ताव को दाखिल करने को स्वीकृति प्रदान कर सकते हैं अथवा मना कर सकते हैं। प्रस्ताव स्वीकृत होने के परिणामस्वरूप, अध्यक्ष अथवा सभापति, जैसी स्थिति हो, तीन सदस्यों की

एक समिति का गठन करता है, जिसमें (i) उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीश; (ii) उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश; और (iii) प्रतिष्ठित न्यायाधीशों में से एक शामिल हो। यदि प्रस्ताव संबंधी सूचनाएं दोनों सभाओं में उसी दिन प्रस्तुत की जाती हैं, तो समिति केवल तभी गठित की जाएगी, यदि प्रस्ताव दोनों सभाओं में स्वीकृत कर लिए गए हों और तत्पश्चात् अध्यक्ष तथा सभापति द्वारा संयुक्त रूप से स्वीकृत कर लिए गए हों। यदि प्रस्ताव संबंधी सूचनाएं दोनों सदनों में भिन्न-भिन्न तारीखों को प्रस्तुत की जाती हैं तो बाद में दी जाने वाली सूचना अस्वीकृत हो जाएगी।

समिति न्यायाधीश के विरुद्ध निश्चित आरोप तय करेगी, जिसके आधार पर जांच-प्रक्रिया शुरू किए जाने का प्रस्ताव किया जाता है और शपथ संबंधी परीक्षण, दस्तावेजों के प्रस्तुतिकरण इत्यादि हेतु व्यक्तियों को बुलाने के संबंध में समिति को सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त होंगी। ऐसे आरोपों की सूचना न्यायाधीश को इस वक्तव्य के साथ दी जाएगी, जिन पर ऐसे प्रत्येक आरोप आधारित हैं और उन्हें ऐसे समय के अंदर, जैसा विहित किया जाए, अपने बचाव में लिखित वक्तव्य प्रस्तुत करने का उचित अवसर दिया जाएगा। कथित शारीरिक अथवा मानसिक असमर्थता के मामले में और जहां ऐसे आरोप को नकारा गया हो; अध्यक्ष अथवा, जैसी स्थिति हो, सभापति, अथवा जहां दोनों के द्वारा संयुक्त रूप से समिति गठित की गई है; के द्वारा न्यायाधीश की चिकित्सीय जांच हेतु चिकित्सा बोर्ड की नियुक्ति की जाएगी। जांच के अंत में समिति अपनी रिपोर्ट अध्यक्ष अथवा सभापति, जैसी स्थिति हो, अथवा जहां समिति संयुक्त रूप से दोनों के द्वारा गठित की गई है; के समक्ष प्रस्तुत करेगी और प्रत्येक आरोप पर अपने निष्कर्षों का अलग से उल्लेख करते हुए, पूरे मामले का इस तरह से निरीक्षण करेगी, जैसा कि वह उचित समझे। तत्पश्चात् रिपोर्ट संबंधित सभा, अथवा दोनों सभाओं, जहां समिति अध्यक्ष अथवा सभापति द्वारा संयुक्त रूप से नियुक्त की गई हो; के समक्ष रखी जाएगी।

यदि समिति कदाचार, अथवा असमर्थता के किसी आरोप से न्यायाधीश को दोषमुक्त घोषित कर देती है, तो संबंधित सभा अथवा सभाओं, जैसी स्थिति हो, में लंबित प्रस्ताव आगे नहीं बढ़ाये जाएंगे। यदि समिति की रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निहित हो कि न्यायाधीश किसी कदाचार का दोषी है अथवा किसी असमर्थता का शिकार है तो समिति की रिपोर्ट के साथ प्रस्ताव; सभा अथवा सभाओं, जहां यह लंबित हो; के द्वारा विचार हेतु ग्रहण कर लिया जाएगा। संवैधानिक उपबंधों के अनुसरण में प्रस्ताव अंगीकृत होने पर यह समझा जाएगा कि न्यायाधीश का कदाचार या उसकी असमर्थता साबित हो गई है और न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रार्थना करने वाला समावेदन उसी सत्र में जिसमें कि प्रस्ताव अंगीकृत किया गया है, संसद् के हर एक सदन द्वारा, राष्ट्रपति को विहित रीति से उपस्थापित किया जाएगा।

विगत में राज्य सभा में प्रस्ताव की ऐसी दो सूचनाएं प्रस्तुत की गई हैं : (I) भारत के संविधान के अनुच्छेद 124(4) के साथ पठित अनुच्छेद 217 के तहत प्रस्ताव की सूचना श्री सीताराम येचुरी द्वारा प्रस्तुत किया गया और 20 फरवरी, 2009 को 57 अन्य संसद् सदस्यों द्वारा कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सौमित्र सेन को हटाने की मांग की गई। राज्य सभा के माननीय सभापति द्वारा प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया गया और

27 फरवरी, 2009 की तिथि से राज्य सभा संसदीय समाचार भाग-2 जारी किया गया। प्रस्ताव को लंबित रखा गया और न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968 की धारा (3) की उप-धारा (2) के अनुसार न्यायाधीशों की एक जांच समिति का गठन किया गया। जब एक नैमित्तिक रिक्ति हुई, माननीय सभापति द्वारा समिति का पुन: गठन किया गया। जब-जब जांच समिति का गठन अथवा पुनर्गठन हुआ, प्रत्येक बार भारत के राजपत्र, असाधारण भाग-II, धारा-3, उप-धारा (iii) और संसदीय समाचार भाग-2 में एक अधिसूचना जारी की गई। समिति ने न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968 की धारा 31(3) के तहत न्यायाधीश सौमित्र सेन के विरुद्ध निश्चित आरोप तय किए थे, जिसकी जानकारी उन्हें इस अधिनियम की धारा 3(4) के तहत दी गई थी। न्यायाधीश को समिति के समक्ष स्वयं का बचाव करने का अवसर दिया गया था। समिति ने जांच परिणाम के पश्चात् 10 सितंबर, 2010 को अपनी रिपोर्ट सभापति को सौंपी। समिति की रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निहित था कि न्यायाधीश सौमित्र सेन कदाचार के दोषी हैं। वह रिपोर्ट गवाहों के साक्ष्य की एक प्रति के साथ जांच समिति के समक्ष प्रस्तुत की गई और जांच के दौरान प्रदर्शित दस्तावेज 10 नवंबर, 2010 को महासचिव द्वारा राज्य सभा के पटल पर रखा गया। न्यायाधीश (जांच) नियम, 1969 के नियम 9(3) के तहत यथावांछित रिपोर्ट जांच के दौरान साक्ष्य और दस्तावेजों के साथ उसी दिन लोक सभा के पटल पर रखे गए। रिपोर्ट की एक प्रति न्यायाधीश सेन को भेजी गई, जिन्होंने 18 जनवरी, 2011 को अपना लिखित उत्तर प्रस्तुत किया, जिसे राज्य सभा के सभी सदस्यों के मध्य परिचालित किया गया।

यह निर्णय लिया गया कि संविधान के अनुच्छेद 124(4) के साथ पठित अनुच्छेद 217 के तहत प्राप्त प्रस्ताव के केवल मूल हस्ताक्षरकर्ता ही जांच समिति के प्रतिवेदन पर विचार हेतु प्रस्ताव की पुन: सूचना दे सकते हैं। तदनुसार प्रस्ताव की सूचना श्री सीताराम येचुरी, श्री प्रशांत चटर्जी और श्री अरुण जेटली, नेता विपक्ष की ओर से प्राप्त की गई थी जिन्हें राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 170 के अधीन, 'अनियत दिन वाले प्रस्ताव' के रूप में स्वीकृत और सूचीबद्ध किया गया है। दिनांक 11 अगस्त, 2011 का एक संसदीय समाचार भाग-2 भी जारी किया गया था।

राज्य सभा के सभापति ने संसदीय कार्य मंत्रालय और विपक्ष के नेता के परामर्श से यह निर्णय लिया कि इस प्रस्ताव पर राज्य सभा में दिनांक 17 और 18 अगस्त, 2011 को चर्चा की जाएगी और न्यायाधीश सेन को 17 अगस्त, 2011 को सभा में अपनी प्रस्तुति देने का अवसर प्रदान किया जाएगा। तदनुसार तीन भागों वाली एक मद जिसमें मूल प्रस्ताव, उत्तरावर्ती प्रस्ताव तथा भारत के राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु एक संबोधन शामिल था, को 17 और 18 अगस्त, 2011 की कार्यावलि में शामिल किया गया था।

17 अगस्त, 2011 को श्री सीताराम येचुरी ने प्रतिवेदन पर विचार करने हेतु प्रस्ताव प्रस्तुत किया और इस पर वक्तव्य दिया। तत्पश्चात् न्यायाधीश सौमित्र सेन ने राज्य सभा चैंबर के प्रवेश द्वार पर स्थित सभा के कठघरे में सभापति के समक्ष स्थित उत्थित मंच/पीठिका से, जिसे विशेष रूप से इसी अवसर के लिए तैयार किया गया था, से सभा को संबोधित किया। न्यायाधीश सेन के पश्चात्, नेता विपक्ष एवं अन्य सदस्य भी बोले।

18 अगस्त, 2011 को प्रस्ताव पर चर्चा समाप्त हुई और तत्पश्चात् उस पर मतदान हुआ। प्रस्ताव और राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किए गए निवेदन को सभा द्वारा संविधान के अनुच्छेद 124(4) में किए गए उपबंध के अनुसार विशेष बहुमत से स्वीकार कर लिया गया। इसमें 189 सदस्यों ने प्रस्ताव के पक्ष में तथा 16 सदस्यों ने प्रस्ताव के विरोध में मतदान किया। राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किए जाने हेतु राज्य सभा द्वारा पारित संबोधन की अधिप्रमाणित प्रति के साथ राज्य सभा के महासचिव की ओर से लोक सभा के महासचिव को दिनांक 18 अगस्त, 2011 को एक संदेश संप्रेषित किया गया था।

लोक सभा में संबोधन सहित प्रस्ताव को दिनांक 5 सितम्बर, 2011 को विचार किए जाने हेतु सूचीबद्ध किया गया था। प्रस्ताव माननीय अध्यक्ष लोक सभा के नाम पर प्रस्तावित था। तथापि दूसरी सभा द्वारा इस मामले को उठाए जाने से पूर्व न्यायाधीश सेन ने 1 सितम्बर, 2011 को अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। तत्पश्चात् लोक सभा ने 5 सितम्बर, 2011 को हुई अपनी बैठक में इस बात पर सहमति व्यक्त की कि कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सौमित्र सेन को पद से हटाने की याचना करने संबंधी प्रस्ताव एवं संबोधन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए। महासचिव, लोक सभा ने महासचिव, राज्य सभा को एक संदेश संप्रेषित किया था जिसे राज्य सभा में 6 सितम्बर, 2011 को सूचित किया गया था।[123]

(2) 14 दिसम्बर, 2009 को प्रस्ताव की तीन सूचनाएं प्राप्त की गईं, जिनमें से प्रत्येक सूचना भारत के संविधान के अनुच्छेद 124(4) के साथ पठित अनुच्छेद 217 के तहत कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, न्यायाधीश पॉल डैनियल दिनाकरन को पद से हटाने के लिए भारत के राष्ट्रपति को एक निवेदन प्रस्तुत करने हेतु राज्य सभा के अनेक सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित थी। प्रथम सूचना राज्य सभा के 49 सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित थी। दूसरी सूचना पर राज्य सभा के 24 सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और तीसरी सूचना पर राज्य सभा के दो सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे। अत: तीनों सूचनाओं को मिलाकर राज्य सभा के 75 सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे। प्रस्ताव को राज्य सभा के सभापति द्वारा 17 दिसम्बर, 2009 को स्वीकृत किया गया और इस संबंध में 17 दिसम्बर, 2009 को एक राज्य सभा संसदीय समाचार भाग-2 जारी किया गया। इस प्रस्ताव को लंबित रखा गया और न्यायाधीश जांच अधिनियम 1968 की धारा (3) की उप-धारा (2) के अनुसार एक न्यायाधीश जांच समिति का गठन किया गया। जांच समिति के प्रत्येक गठन अथवा पुनर्गठन के समय पर भारत के राजपत्र, असाधारण, भाग-II, खण्ड-3, उप खण्ड (iii) में एक अधिसूचना और एक संसदीय समाचार भाग-2 जारी किए गए। इस दौरान न्यायाधीश दिनाकरन को मुख्य न्यायाधीश के पद पर सिक्किम उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया। समिति ने न्यायाधीश दिनाकरन के खिलाफ न्यायाधीश जांच अधिनियम 1968 की धारा 3(3) के तहत स्पष्ट आरोप लगाए थे जिसकी सूचना उन्हें इस अधिनियम की धारा 3(4) के अधीन संप्रेषित कर दी गई थी। न्यायाधीश को समिति के समक्ष स्वयं का बचाव करने का एक अवसर प्रदान किया गया। जांच का परिणाम आने से पूर्व न्यायाधीश पी.डी. दिनाकरन ने 29 जुलाई,

2011 के मध्याह्न से अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया और इस संबंध में न्याय विभाग द्वारा 16 अगस्त, 2011 को एक अधिसूचना जारी की गई। न्यायाधीश पी.डी. दिनाकरन के त्याग-पत्र के मद्देनजर, माननीय सभापति ने 23 सितम्बर, 2011 के अपने आदेश द्वारा जांच समिति को समाप्त कर दिया और इस संबंध में दिनांक 4 अक्टूबर, 2011 को भारत के राजपत्र, असाधारण, भाग II, खण्ड 3, उप-खण्ड (iii) में एक अधिसूचना तथा दिनांक 11 अक्तूबर, 2011 को एक संसदीय समाचार भाग-2 जारी किए गए।[124]

अल्पकालिक चर्चा

राज्य सभा में 1964 तक अविलंबनीय महत्व के मामले पर अल्पकालिक चर्चा के संबंध में कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं था। संविधान के अनुच्छेद 118 के खंड (1) के अंतर्गत प्रक्रिया संबंधी नियम बनाने की सिफारिश करने के लिए गठित की गई समिति ने निम्नलिखित टिप्पणियां की थीं:

> इन नियमों पर विचार करते हुए, समिति ने कुछ सदस्यों की इस भावना पर गौर किया कि "पत्रों संबंधी प्रस्ताव" से संबंधित प्रक्रिया इतनी कठिन है कि व्यवहार में इस प्रक्रिया के अंतर्गत किसी भी सूचना को स्वीकार करवाना कठिन होता है। "अनियत दिन वाले प्रस्ताव" संबंधी प्रक्रिया भी सदस्यों को अल्प-सूचना पर अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों पर चर्चा कराने की मांग करने हेतु पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं करती है। इसलिए, समिति ने यह सिफारिश की है कि राज्य सभा के नियमों में ऐसे प्रावधान किए जाने चाहिए जिससे सदस्य अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों पर ध्यानाकर्षण की सूचना देने तथा अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों पर अल्पकालिक चर्चा कराने की मांग करने में सक्षम हो सके।[125]

> अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर चर्चा उठाने के इच्छुक सदस्यों को लिखित सूचना देनी पड़ती है जिसमें उसे उठाए जाने वाले विषय का स्पष्टत: तथा यर्थाथत: उल्लेख करना पड़ता है। सूचना के साथ संबंधित विषय पर चर्चा उठाने के कारण बताने वाला एक व्याख्यात्मक टिप्पण संलग्न करना भी आवश्यक होता है और सूचना का समर्थन कम से कम दो अन्य सदस्यों के हस्ताक्षरों से होना चाहिए।[126]

यदि सभापति सूचना देने वाले सदस्य से तथा मंत्री से, जैसे वह आवश्यक समझे, ऐसी सूचना मांगने के पश्चात इस बात से संतुष्ट होता है कि उठाया जाने वाला इच्छित विषय अविलंबनीय और सदन में जल्दी ही किसी तिथि को उठाए जाने के लिए पर्याप्त लोक-महत्व का है, तो सूचना स्वीकृत कर ली जाती है। यदि अन्य रूप से उसी मामले पर चर्चा करने के लिए पहले ही कोई अवसर उपलब्ध हो तो सभापीठ द्वारा सूचना को अस्वीकृत किया जा सकता है।[127]

अल्पकालिक चर्चा की सूचनाओं को स्वीकृत कर लिए जाने के बाद उन्हें संसदीय समाचार में अधिसूचित किया जाता है। सामान्य तौर पर कार्य मंत्रणा समिति ही चर्चा के लिए समय आवंटित करती है। सूचना स्वीकृत हो जाने तथा चर्चा के लिए तिथि निश्चित हो जाने के बाद सूचना देने वाले सभी सदस्यों जिनमें सूचना का समर्थन करने वाले सदस्य भी शामिल होते हैं, के नाम से वह मद उस तिथि की कार्यावलि में शामिल की जाती है।

कार्यावलि में जिस सदस्य के नाम से अल्पकालिक चर्चा हो, यदि वह अनुपस्थित हो

या नाम पुकारे जाने पर वह चर्चा नहीं उठाए, तो उसमें दर्ज उससे अगले सदस्य का नाम उस चर्चा को उठाने के लिए पुकारा जाता है और इसी तरह यह क्रम जारी रहता है।

> नियंत्रक महालेखा परीक्षक के बोफोर्स संबंधी प्रतिवेदन पर अल्पकालिक चर्चा छह सदस्यों के नाम पर सूचीबद्ध थी। पहले पांच सदस्यों ने चर्चा नहीं उठाई तो फिर छठे सदस्य ने चर्चा उठाई।[128]

सदन के समक्ष न तो औपचारिक प्रस्ताव होता हैं और न मतदान होता है। जिस सदस्य ने सूचना दी हो वह संक्षिप्त वक्तव्य देकर चर्चा उठाता है। तत्पश्चात, अन्य सदस्यों को चर्चा में भाग लेने की अनुमति दी जाती है और अंत में संबद्ध मंत्री एक संक्षिप्त उत्तर देता है। चर्चा उठाने वाले सदस्य को उत्तर देने का कोई अधिकार नहीं होता है।[129]

सभापति, यदि वह ठीक समझे, तो भाषणों के लिए समय-सीमा विहित कर सकता है।[130] सभापति चर्चा के लिए उतने समय की अनुमति दे सकेगा जितनी वह उन परिस्थितियों में उचित समझेगा और जो ढाई घंटे से अधिक न होगी।[131] तथापि, चर्चा के विषय के महत्व को देखते हुए ढाई घंटे की समय-सीमा बढ़ाई भी जा सकती है, जैसा कि कई बार हुआ है, और कई अवसरों पर तो समय की अवधि इतनी अधिक हो जाती है कि 'अल्पकालिक चर्चा' शीर्षक अयथार्थ[132] लगने लगता है, क्योंकि उसकी परिणति, 'दीर्घकालिक चर्चा' के रूप में हो जाती है। ऐसी कई अल्पकालिक चर्चाएं हुई हैं, जो चार घंटे से भी अधिक समय तक चली हैं।[133]

ऐसे भी अवसर हुए हैं जब एक ही दिन की बैठक के लिए दो से अधिक अल्पकालिक चर्चाएं सूचीबद्ध की गईं और उन पर चर्चाएं हुई।[134] ऐसे भी उदाहरण हैं जब किसी पूर्व बैठक में उठाए गए विषय पर चर्चा की समाप्ति के बाद दूसरी 'अल्पकालिक चर्चा' हुई हो।[135]

अनियत दिन वाले प्रस्ताव और अल्पकालिक चर्चा—अंतर

'अनियत दिन वाले प्रस्ताव' और 'अल्पकालिक चर्चा', दोनों के बीच स्पष्ट अन्तर है। पहला 'सामान्य लोकहित के विषय' में उठाए जाने वाला प्रस्ताव है जबकि दूसरा 'अविलंबनीय लोक महत्व' के मामले को उठाए जाने से संबंधित है। प्रस्ताव के मामले में, सभा पटल पर संशोधन प्रस्तुत किया जा सकता है, प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले को उत्तर प्राप्त करने का अधिकार है और प्रस्ताव पर सदन में मत प्राप्त किया जा सकता है; जबकि अल्पकालिक चर्चा के मामले में सदन के समक्ष ना तो कोई औपचारिक प्रस्ताव होता है और ना ही कोई मत प्राप्त किया जाता है; संबंधित सदस्य द्वारा चर्चा उठाई जाती है और संबंधित मंत्री द्वारा उत्तर दिया जाता है।

राज्य सभा के प्रारंभिक वर्षों में यह प्रथा थी कि जब भी अल्पकालिक चर्चा के लिए कोई सूचना प्राप्त होती थी, उसे पहले 'अनियत दिन वाले प्रस्ताव' के रूप में गृहीत किया जाता था। उसके बाद, उसे कार्य मंत्रणा समिति के समक्ष रखा जाता था। कार्य मंत्रणा समिति द्वारा यह सिफारिश किए जाने पर ही कि उस विशेष मामले पर चर्चा करने के लिए समय आवंटित किया जाना चाहिए तभी अल्पकालिक चर्चा की सूचना प्राप्त की जाती थी और उसे

संसदीय समाचार भाग-2 में 'अल्पकालिक चर्चा' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित किया जाता था।

> शाह आयोग के प्रतिवेदन पर चर्चा करने के लिए प्रस्तावों और अल्पकालिक चर्चा की सूचनाएं गृहीत की गई थी और संसदीय समाचार में 'अनियत दिन वाले प्रस्ताव' शीर्षक के अंतर्गत अधिसूचित की गई थीं। कार्य मंत्रणा समिति ने यह सिफारिश की थी कि प्रतिवेदन पर चर्चा नियम 176 के अधीन की जानी चाहिए और तद्नुसार उस प्रस्ताव को उस नियम के अधीन चर्चा के लिए सूचीबद्ध किया गया था। कई सदस्यों ने इस प्रक्रिया पर आपत्ति प्रकट की थी। उपसभापति ने विस्तार से स्थिति स्पष्ट करते हुए सदन में यह कहा था:
>
> > बहुत लंबे समय से नियम 176 के अधीन सूचना देने वाले सदस्यों के नाम, नियम 170 एवं 171 के अधीन 'अनियत दिन वाले प्रस्ताव' के रूप में पहले से गृहीत प्रस्तावों की सूचनाएं के साथ जोड़े जाते रहे हैं। नियम 170 के अधीन ऐसा कोई प्रस्ताव न होने पर भी अल्पकालिक चर्चा की सूचनाओं को पहले 'अनियत दिन वाले प्रस्ताव' के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता था और फिर यह निर्णय ले लिए जाने के बाद कि विषय के नियम 176 के अधीन अल्पकालिक चर्चा के रूप में ले लिया जाए, तभी अल्पकालिक चर्चा के रूप में सूचना प्राप्त की जाती थी। इस प्रक्रिया के पीछे यही मंशा प्रतीत होती थी कि किसी विशेष विषय पर प्राप्त किए गए प्रस्तावों के बारे में सभी सदस्य अवगत हो सकें...विगत में भी, जैसाकि मैं पहले बता चुका हूं, इस प्रक्रिया को अपनाया जाता रहा था और कभी भी किसी ने कोई आपत्ति नहीं की। इसलिए, मेरे विचार में इस मामले में कोई अनियमितता नहीं की गई है।[136]

उपरोक्त प्रक्रिया को अब समाप्त कर दिया गया है। फिर भी, कभी-कभी इस संबंध में मामला महत्वपूर्ण और विवादास्पद हो जाता है कि किसी मामले पर चर्चा नियम 167 के अधीन प्रस्ताव के रूप में कराई जाए या नियम 176 के अधीन अल्पकालिक चर्चा के रूप में कराई जाए। राज्य सभा में सरकार के विरुद्ध स्थगन प्रस्ताव, निंदा प्रस्ताव या अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने की प्रक्रिया नहीं है। गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प के अतिरिक्त, नियम 167 के अधीन प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाना ही एकमात्र प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सदन अपनी राय दर्ज करा सकता है और सदस्य ऐसे प्रस्ताव के संबंध में संशोधन प्रस्तुत कर सकते हैं जिन पर सभा में मत लिया जाये और स्वीकृत कर लिये जायें। (जैसाकि 10 अगस्त, 1978 के प्रस्ताव के मामले में हआ था और 18 दिसंबर, 2000 को उपस्थित किया गया प्रस्ताव जिसे 19 दिसंबर, 2000 को स्वीकार किया गया था।) जबकि, नियम 167 के अधीन प्रक्रिया अपनाने के विपक्ष के अपने कारण हो सकते हैं, (सरकार को उलझन में डालना या उसकी आलोचना करना) सरकार इसे प्रतिकूल मत मान सकती है। अत: इस प्रकार का विवाद उत्पन्न हो जाता है। इस संबंध में हाल के दो दृष्टांत उद्धृत किये जा सकते हैं।

> बोफोर्स मामले संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर अल्पकालिक चर्चा शुरू होने से पूर्व एक सदस्य द्वारा प्रतिवेदन पर विचार करने के लिये अपनायी गयी प्रक्रिया के बारे में औचित्य का प्रश्न उठाया गया था। उस सदस्य ने अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रतिवाद किया कि यदि सरकार अल्पकालिक चर्चा के स्थान पर एक पूर्ण प्रस्ताव लेकर आती, तो सदस्य उस संबंध में संशोधन प्रस्तुत कर सकते थे। उपसभापति ने यह विनिर्णय दिया कि सामान्यतया इस प्रकार के प्रतिवेदनों

पर चर्चा नहीं की जाती है। फिर भी विषय-वस्तु के महत्व को देखते हुए अपवाद के रूप में इस पर चर्चा की जा रही है; और इस पर प्रस्ताव के रूप में चर्चा करने की अपेक्षा अल्पकालिक चर्चा के माध्यम से चर्चा करवाना अधिक उपयुक्त समझा गया।[137]

हवाला प्रकरण के मामले में भी यह विवाद उठा था कि सदन इस पर किस रूप में चर्चा करे। कुछ विपक्षी सदस्यों ने इस पर नियम 167 (प्रस्ताव) के अधीन चर्चा कराने की मांग की; जबकि सत्ता पक्ष के सदस्य इस पर नियम 176 (अल्पकालिक चर्चा) के अधीन चर्चा करना चाहते थे। उस मामले पर नियम 167 के अधीन चर्चा हो या 176 के अधीन, इस बारे में सदस्य यथास्थिति इसके पक्ष और विपक्ष में चर्चा करने के बारे में अपने-अपने विचार प्रकट करते रहे। एक प्रकार का गतिरोध बना रहा और अन्ततः उस मुद्दे पर चर्चा किये बिना सदन अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया।[138]

प्रस्ताव संबंधी सूचनाओं का अल्पकालिक चर्चा में संपरिवर्तन

211वें सत्र के दौरान, राज्य सभा के सभापति ने प्राप्त सूचनाओं पर निम्नलिखित विनिर्णय दिए:

"मुझे भारत-अमेरिका परमाणु समझौते से संबंधित विषयों पर नियम 168 के अधीन अनेक सूचनाएं प्राप्त हुई हैं। इन सूचनाओं की जांच करने पर मैंने यह पाया है कि कुछ प्रस्तावों में समझौते का निरनुमोदन करने अथवा अस्वीकार करने अथवा सभा में इस पर मतदान कराए जाने की मांग की गई है। अन्य मामलों में समझौते पर पुनः वार्ता किए जाने की मांग गई है। नियम 168 के अधीन प्रस्तावों की अन्य सूचनाएं भी हैं जिनमें समझौते पर चर्चा कराए जाने की मांग की गई है। चूंकि कार्यपालिका द्वारा किसी अंतर्राष्ट्रीय संधि अथवा समझौते पर संसद की स्वीकृति लिए जाने की कोई संवैधानिक बाध्यता नहीं है, इसलिए इन प्रस्तावों की ग्राह्यता, जिनमें संसद से अनुमोदन कराया जाना शामिल है, उचित नहीं होगा। अतः मैं, इन सूचनाओं को नियम 176 के अधीन चर्चा कराए जाने की सूचनाओं में परिवर्तित कर रहा हूं। कार्य मंत्रणा समिति ने पहले ही इस विषय को चर्चा के लिए चिन्हित कर लिया है।"[139]

223वें सत्र के दौरान, राष्ट्रमंडल खेल, 2010 के संबंध में युवा कार्यक्रम और खेल मंत्रालय में राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) द्वारा सभा पटल पर रखे गए स्वप्रेरित वक्तव्य पर राज्य सभा में विपक्ष के नेता द्वारा नियम 168 के तहत प्रस्ताव संबंधी सूचना प्रस्तुत की गई। फिर भी, बाद में संसदीय कार्य मंत्री और विपक्ष के नेता के परामर्श से नियम 176 के तहत प्रस्ताव संबंधी सूचना को अल्पकालिक चर्चा संबंधी सूचना में संपरिवर्तित करने का निर्णय लिया गया। यह चर्चा 9 अगस्त, 2011 को सदन में हुई।[140]

महत्वपूर्ण मामलों के संबंध में अल्पकालिक चर्चा

विवाद उत्पन्न होने के बावजूद भी, महत्वपूर्ण मामलों पर अल्पकालिक चर्चा के माध्यम से चर्चा कराने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। कुछ निम्नलिखित महत्वपूर्ण मुद्दों पर इस प्रक्रिया के अधीन चर्चा की गई है:

प्रिवी पर्स की समाप्ति;[141] मध्य प्रदेश विधान सभा का अनिर्धारित सत्रावसान;[142] राज्यपाल की भूमिका, शक्तियां, कार्य और उनकी नियुक्ति की पद्धति;[143] सरकार द्वारा राजभाषा नीति का कार्यान्वयन;[144] भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध-विराम संबंधी संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का संकल्प;[145] ब्रिटिश

आप्रवासन नियम;[146] पंजाब में विशेषकर पंजाब विधान सभा की घटनाओं के संदर्भ में संवैधानिक घटनायें;[147] राज्यपाल द्वारा मध्य प्रदेश विधान सभा का सत्रावासन किये जाने के संबंध में संवैधानिक स्थिति;[148] सत्र के दौरान पश्चिमी बंगाल विधान सभा में पुलिस का प्रवेश;[149] मंत्रालयों के गठन में राज्यपाल की भूमिका (उत्तर प्रदेश और बिहार के संदर्भ में) और उसके संवैधानिक निहितार्थ;[150] मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध एक अविश्वास प्रस्ताव स्वीकार किये जाने के बाद हरियाणा विधानसभा के सत्रावासान किए जाने के संवैधानिक निहितार्थ;[151] राज्य सभा के द्विवार्षिक चुनाव में धन के प्रयोग का आरोप और संसदीय लोकतंत्र के कार्यकरण और संरक्षण के संबंध में इसके निहितार्थ;[152] उत्तर प्रदेश में अनुच्छेद 356 के अंतर्गत उद्घोषणा जारी करने में वहां के राज्यपाल की भूमिका;[153] सदन में विनियोग (संख्यांक 3) विधेयक के दौरान एक सदस्य द्वारा कलकत्ता की एक कंपनी के विरुद्ध कंपनी कानून का उल्लंघन करके पोस्टरों के मुद्रण के संबंध में आरोप लगाया जाना;[154] एक मुख्य मंत्री पर भ्रष्टाचार और सत्ता का दुरुपयोग करने के आरोप के संबंध में राष्ट्रपति को दिये गये ज्ञापन पर सरकार द्वारा की गई कार्यवाही;[155] उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की वरीयता का अधिक्रमण और उनके त्यागपत्र;[156] 18 मई, 1974 को राजस्थान के पोखरन क्षेत्र में भूमि के अंदर किया गया परमाणु विस्फोट;[157] पांडिचेरी आयात अनुज्ञप्ति मामला;[158] नौ राज्यों के संबंध में उद्घोषणा;[159] गंगा-जल के बंटवारे के संबंध में भारत और बांग्लादेश के बीच समझौता;[160] न्यायमूर्ति शाह जांच आयोग के प्रतिवेदन;[161] औद्योगिक नीति;[162] जमशेदपुर दंगों के संबंध में जांच आयोग का प्रतिवेदन;[163] देश में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार;[164] कुओं-तेल सौदा;[165] पिछड़ा वर्ग आयोग का दूसरा प्रतिवेदन;[166] मंडल आयोग प्रतिवेदन का लागू नहीं किया जाना;[167] पशु-चर्बी का आयात;[168] आन्ध्र प्रदेश में हुई घटनाओं के परिणामस्वरूप वहां की सरकार में परिवर्तन;[169] देश में काली अर्थव्यवस्था के पहलू;[170] इंडियन एक्सप्रैस भवन के मामले में उच्चतम न्यायालय का निर्णय;[171] कुछ राज्य सरकारों और न्यायपालिका के विरुद्ध कुछ केन्द्रीय मंत्रियों के कथित वक्तव्य;[172] देश में पर्यावरण की सुरक्षा;[173] चुनाव सुधार;[174] बोफोर्स तोप सौदा;[175] सती होने की घटनाएं;[176] फेयरफैक्स के संबंध में जे.जे. ठक्कर-नटराजन आयोग का प्रतिवेदन;[177] एच.डी.डब्ल्यू. पनडुब्बी सौदा;[178] बोफोर्स संबंधी संयुक्त संसदीय समिति का प्रतिवेदन;[179] बोफोर्स के संबंध में नियंत्रक-महालेखा परीक्षक का प्रतिवेदन;[180] मंडल आयोग प्रतिवेदन को लागू करने का सरकार का निर्णय;[181] भूतपूर्व प्रधानमंत्री, श्री राजीव गांधी की अपर्याप्त सुरक्षा;[182] बोफोर्स सौदे संबंधी जांच में प्रगति;[183] विद्युत रेल इंजनों की खरीद हेतु ए.बी.बी. को संविदा दिया जाना;[184] रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद ढांचे का गिराया जाना;[185] श्री राजीव गांधी की हत्या के संबंध में वर्मा आयोग का प्रतिवेदन;[186] प्रतिभूति घोटाला;[187] और उस पर संयुक्त संसदीय समिति का प्रतिवेदन;[188] 'गैट' पर देश द्वारा अंतिम रूप से निर्णय लिया जाना;[189] चीनी का आयात;[190] चरार-ए-शरीफ की स्थिति (औपचारिक रूप से उपस्थित न किये गये प्रस्ताव पर प्रधान मंत्री का उत्तर);[191] वोहरा समिति के प्रतिवेदन के संदर्भ में अपराधियों और राजनीतिज्ञों के बीच सांठ-गांठ;[192] जम्मू और कश्मीर की स्थिति;[193] बीमा क्षेत्र में निजी भारतीय और विदेशी फर्मो को आमंत्रित करने का प्रस्ताव;[194] विश्व व्यापार संगठन का कार्यकरण और अंतरराष्ट्रीय व्यापार वार्ताओं में भारत की भागीदारी;[195] वित्त मंत्री के भूतपूर्व सलाहकार द्वारा उठाए गए मुद्दे और इससे उत्पन्न कथित अनुपयुक्तताएं;[196] सरकार की विनिवेश नीति;[197] राष्ट्रीय दूरभाष नीति 1999;[198] राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की गतिविधियों में भाग लेने के गुजरात सरकार के कर्मचारियों पर प्रतिबंध को समाप्त करने वाले परिपत्र को वापस लिए जाने पर गुजरात सरकार को सहमत करने में भारत सरकार की धर्म-निरपेक्षता जोकि भारत के संविधान के बुनियादी सिद्धांतों में से एक सिद्धांत है, की रक्षा करने में अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी का निर्वहन करने में विफलता;[199] बिहार में हाल ही की घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में राज्यों में सरकारों के गठन में राज्यपालों को अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियों के निर्वहन में भूमिका;[200] भारत के संविधान के अनुच्छेद 355 के अंतर्गत गुजरात राज्य में हस्तक्षेप हेतु राज्य सभा द्वारा नियम 170 के अधीन स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसरण में सरकार द्वारा उठाए गए कदम;[201] सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेश;[202] राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा स्वीकृत रूप में दसवीं पंचवर्षीय योजना;[203] बाबरी मस्जिद ध्वंस मामले में सी.बी.आई. की भूमिका;[204] देश में हजारों करोड़ रुपये का जाली स्टांप पेपर घोटाला;[205]

भारत-अमेरिका परमाणु समझौता;[206] एन.आर.ई.जी.पी. के तहत कोष का दुरुपयोग;[207] महाराष्ट्र में उत्तर भारतीयों पर हमले;[208] अनिवार्य वस्तुओं के दामों में वृद्धि;[209] लिबरहान आयोग प्रतिवेदन और बाबरी मस्जिद मामले में मुकदमा;[210] भोपाल गैस त्रासदी;[211] वोट के लिए नकद का भुगतान;[212] मुंबई में बम विस्फोट;[213] रक्षा मंत्रालय द्वारा आगस्टा वेस्टलैंड से वी.वी.आई.पी. हेलिकाप्टर की खरीदारी;[214] और महिलाओं और बच्चों के प्रति नृशंसता।[215]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. अब्राहिम एण्ड हॉट्रे, ए पार्लियामेन्टरी डिक्शनरी, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 122
2. नियम 246
3. नियम 247 और 248
4. अब्राहिम एंड हॉट्रे, पूर्वोक्त
5. नियम 7, 15 और 215
6. नियम 238(v)
7. अनुच्छेद क्रमशः 61, 121, 124(4) और (5), 148(1) और 324(5)
8. अनुच्छेद क्रमशः 67(ख) और 90(ग)
9. नियम 7(2) और 15
10. नियम 167
11. नियम 168
12. नियम 169(i) से (viii)
13. नियम 170
14. नियम 171
15. संसदीय समाचार (2), 19.2.1959
16. -वही- 21.2.1959; और संसदीय समाचार (1), 26.2.1959
17. -वही- 10.8.1962
18. -वही- 17.8.1962
19. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.8.1962, कालम 2614-23
20. संसदीय समाचार (1), 4.12.1967
21. संसदीय समाचार (2), 26.2.1979
22. संसदीय समाचार (1), 12.12.1967 और 13.12.1967
23. -वही- 5.3.1968 और 6.3.1968
24. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.9.1963, कालम 2633
25. -वही- 21.12.1956, कालम 3438 और 3451
26. संसदीय समाचार (1), 30.8.1957
27. -वही- 11.8.2005
28. -वही- 29.11.2005
29. -वही- 5.8.2010
30. -वही- 6.12.2012 और 7.12.2012
31. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.4.1971, कालम 209
32. नियम 228
33. संसदीय समाचार (1), 10.4.1990
34. नियम 229(1)
35. नियम 229(2); दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अध्यादेश, 1991 का निरनुमोदन चाहने वाले परिनियत संकल्प को वापस लिये जाने के संबंध में राज्य सभा वाद-विवाद, 5.8.1991, कालम 171-82 को भी देखिए

36. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.5.1967, कालम 1604-05
37. नियम 230
38. अब्राहिम एंड हॉट्रे, पूर्वोक्त, पृष्ठ 86
39. नॉर्मन वाइल्डिंग एंड फिलिप लॉण्डी, ऐन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ पार्लियामेंट, लंदन कैसेल एण्ड कंपनी लि. पृष्ठ 147
40. अब्राहिम एंड हॉट्रे, पूर्वोक्त, पृष्ठ 2
41. अर्सकीन मे, ट्रीटीज़ ऑन द लॉ, प्रीविलेजिज़ प्रोसिडिंग्स एण्ड यूसेज ऑफ पार्लियामेंट, 24वां संस्करण, पृष्ठ 405-06
42. नियम 231(1)
43. नियम 231(2)
44. नियम 231(3)
45. नियम 232
46. नियम 233(1)
47. नियम 233(2)
48. संसदीय समाचार (1), 11.9.1959
49. -वही- 31.3.1965
50. -वही- 23.12.1967
51. -वही- 19.12.1967
52. -वही- 24.3.1983
53. -वही- 29.8.1968
54. -वही- 22.11.1967
55. -वही- 11.9.1974
56. -वही- 10.5.1963
57. -वही- 19.9.1963
58. -वही- 24.3.1970
59. -वही- 10.8.1978
60. -वही- 19.12.2000
61. संसदीय समाचार (2), 25.11.2005
62. संसदीय समाचार (1) 24.4.2002
63. कार्यावलि, 4.8.2010
64. संसदीय समाचार (1), 6.12.2012
65. संसदीय समाचार (2), 31.7.1978
66. -वही- 4.8.1978
67. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.8.1978, कालम 235-46
68. -वही- कालम 251-52; 3.8.1978, कालम 206-20 भी देखिए
69. संसदीय समाचार (1), 10.8.1978
70. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.8.1978, कालम 130-44
71. -वही- 17.8.1978, कालम 163-207 और संसदीय समाचार (1), 17.8.1978
72. -वही- 21.8.1978, कालम 139-83
73. -वही- 24.8.1978, कालम 189-264 और 280-333
74. -वही- 29.8.1978, कालम 6-49
75. संसदीय समाचार (2), 22.11.1978, 13.12.1978, 14.12.1978, 13.1.1979 और 8.2.1979
76. -वही- 3.2.1979
77. -वही- 16.2.1979

78. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.2.1979, कालम 227-28
79. -वही- 26.2.1979, कालम 174-211; और 27.2.1979, कालम 125-32
80. -वही- 4.2.1980, कालम 32-64
81. -वही- 5.2.1980, कालम 1-2
82. संसदीय समाचार (1) 24.04.2002
83. -वही- 19.12.1955
84. -वही- 29.4.1960
85. -वही- 24.1.1963
86. -वही- 24.8.1965
87. -वही- 12.8.1969 और 13.8.1969
88. -वही- 24.7.1984 और 25.7.1984
89. -वही- 14.8.1984
90. -वही- 8.8.1986
91. -वही- 28.11.1988 और 30.11.1988
92. -वही- 14.8.1971
93. -वही- 3.12.1981
94. -वही- 10.5.1978, 9.9.1981 और 10.9.1981
95. -वही- 13.8.1984 और 17.8.1984
96. -वही- 2.12.1986, 3.12.1986 और 4.12.1986
97. -वही- 4.4.1989
98. -वही- 12.12.1974
99. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.11.1973, कालम 131-37
100. -वही- 19.12.1955, कालम 3183
101. संसदीय समाचार (1), 5.8.1952
102. -वही- 14.9.1955
103. -वही- 31.5.1956
104. -वही- 18.12.1957
105. -वही- 21.2.1958
106. -वही- 9.12.1959
107. -वही- 23.8.1960
108. -वही- 9.9.1960
109. -वही- 31.8.1961
110. -वही- 22.8.1962
111. -वही- 3.5.1965
112. -वही- 3.8.1972
113. -वही- 22.2.1966
114. -वही- 13.5.1975
115. -वही- 13.3.1975
116. -वही- 17.12.1981
117. विहित समयावधि के बारे में अधीनस्थ विधान संबंधी समिति के अंतर्गत पृथक् अध्याय में विस्तार से विचार किया गया है
118. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.9.1955, कालम 3208-3300
119. संसदीय समाचार (1), 24.9.1954, 30.9.1954, 10.12.1970 और 14.5.1986 को भी देखिए

120. अनुच्छेद 124(2)(क) और 217(1) (क)
121. अनुच्छेद 124(4) और (5) तथा 218
122. अनुच्छेद 124 (4) और 217(1) (ख)
123. फा. सं. आर.एस. 8.2.2009 एल.
124. फा. सं. आर.एस. 8.2.2009 एल.
125. प्रकिया विषयक प्रारूप नियमों संबंधी समिति का प्रतिवेदन (1963), पृष्ठ (vi)
126. नियम 176
127. नियम 177
128. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.7.1989, कालम 236
129. नियम 178
130. नियम 179
131. नियम 177
132. कुछ अवसरों पर कार्यावलि से शीर्षक 'अल्पकालिक चर्चा' को हटा दिया गया। उदाहरणार्थ, (आतंकवाद और सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों को बंद किये जाने के संबंध में) देखिए, कार्यावलि, 12.12.1991
133. उदाहरणार्थ, देखिए संसदीय समाचार (1), 11.11.1987; 12.11.1987; 13.11.1987; 16.11.1987; 17.11.1987; 18.11.1987; 19.11.1987; 14.12.1987; 28.4.1988; 29.4.1988; 11.5.1988; 12.5.1988; 2.8.1988; 3.8.1988; 4.8.1988; 15.11.1988; 16.11.1988; 21.7.1989; 25.7.1989; 27.7.1989; 7.8.1990; 8.8.1990; 1.10.1990; 5.10.1990; 22.2.1991; 25.2.1991; 4.6.1991; 12.12.1991; 16.12.1991; 17.12.1991; 19.12.1991; 2.4.1992; 18.12.1992; 21.12.1992; 9.7.1993; 29.12.1993; 30.12.1993; 9.3.1994; 15.3.1994; 8.8.1995; 9.8.1995; 23.8.1995; 24.8.1995; 29.11.1995; 4.12.1995; 17.7.1996; 3.12.1996; 5.12.1996; 6.3.1997; 10.3.1997; 28.7.1997; 29.7.1997; 30.7.1997; 5.8.1997; 6.8.1997; 28.5.1998; 29.5.1998, 15.7.1998; 7.12.1998; 8.12.1998; 13.3.1999; 15.3.1999; 30.11.1999; 28.2.2000; 1.3.2000; 2.3.2000; 25.4.2000; 26.4.2000; 27.7.2000; 31.7.2000; 1.8.2000; 27.11.2000; 28.11.2000; 24.7.2001; 25.7.2001; 30.7.2001; 31.7.2001; 1.8.2001; 2.8.2001; 8.8.2001; 9.8.2001; 10.8.2001; 16.8.2001; 17.8.2001; 20.8.2001; 27.8.2001; 28.8.2001; 22.11.2001; 26.11.2001; 27.11.2001; 4.12.2001; 5.12.2001; 10.12.2001; 7.3.2002; 11.3.2002; 18.7.2002; 23.7.2002; 24.7.2002; 31.7.2002; 1.8.2002; 21.11.2002; 22.11.2002; 4.12.2002; 23.7.2003, 5.8.2003, 26.7.2005, 22.8.2005, 23.8.2005, 23.8.2006, 30.9.2006, 22.9.2007, 4.12.2007, 5.12.2007, 4.8.2009, 3.8.2011 और 7.12.2010
134. उदाहरणार्थ, देखिए, राज्य सभा वाद-विवाद, 26.8.1995, 22.8.2005, 23.8.2005 और 5.12.2007
135. उदाहरणार्थ, देखिए, राज्य सभा वाद-विवाद, 11.11.1987 और 4.8.1988; 16.11.1988 और 19.12.1991
136. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.12.1978, कालम 215-20
137. -वही- 11.5.1988, कालम 365-90
138. -वही- 11.3.1996 और 12.3.1996
139. -वही- 20.8.2007
140. संसदीय समाचार (1) 9.8.2011
141. -वही- 31.7.1967
142. -वही- 24.7.1967
143. -वही- 20.11.1967
144. -वही- 22.2.1965 और 23.2.1965
145. -वही- 24.9.1965
146. -वही- 29.2.1968
147. -वही- 20.3.1968

148. संसदीय समाचार (1) 13.3.1969
149. -वही- 5.8.1969
150. -वही- 24.2.1970
151. -वही- 5.3.1970
152. -वही- 28.7.1970
153. -वही- 24.11.1970
154. -वही- 1.6.1972
155. -वही- 30.3.1973
156. -वही- 3.5.1973
157. -वही- 21.8.1974
158. -वही- 4.12.1974
159. -वही- 14.6.1977
160. -वही- 28.11.1977
161. -वही- 23.5.1979
162. -वही- 15.12.1980
163. -वही- 18.9.1981
164. -वही- 6.5.1982
165. -वही- 29.7.1982
166. -वही- 13.10.1982
167. -वही- 26.8.1983
168. -वही- 16.11.1983
169. -वही- 21.8.1984
170. -वही- 14.8.1985
171. -वही- 28.11.1985
172. -वही- 29.7.1986
173. -वही- 7.11.1986
174. -वही- 4.12.1986
175. -वही- 20.4.1987; 21.4.1987; 2.8.1988; 3.8.1988; 4.8.1988; 15.11.1988; 16.11.1988 और 13.10.1989
176. -वही- 10.11.1987
177. -वही- 14.12.1987
178. -वही- 28.4.1988 और 29.4.1988
179. -वही- 11.5.1988 और 12.5.1988
180. -वही- 21.7.189; 25.7.1989 और 27.7.1989
181. -वही- 1.10.1990 और 5.10.1990
182. -वही- 4.6.1991
183. -वही- 2.4.1992
184. -वही- 3.4.1992
185. -वही- 18.12.1992 और 21.12.1992
186. -वही- 14.5.1993
187. -वही- 9.7.1992
188. -वही- 29.12.1993 और 30.12.1993
189. -वही- 9.3.1994 और 15.3.1994

190. संसदीय समाचार (1), 28.8.1994 और 26.8.1994
191. -वही- 15.5.1995 और 16.5.1995
192. -वही- 8.8.1995; 23.8.1995 और 24.8.1995
193. -वही- 29.11.1995 और 4.12.1995
194. -वही- 11.12.1996
195. -वही- 27.7.1998
196. -वही- 13.3.1999 और 15.3.1999
197. -वही- 13.12.1999
198. -वही- 20.12.1999
199. -वही- 28.2.2000; 1.3.2000 और 2.3.2000
200. -वही- 13.3.2000
201. -वही- 23.7.2000 और 24.7.2002
202. -वही- 4.12.2002
203. -वही- 29.4.2003
204. -वही- 23.7.2003
205. -वही- 22.12.2003
206. -वही- 4.12.2007 और 5.12.2007
207. -वही- 5.12.2007, 6.12.2007 और 7.12.2007
208. -वही- 5.3.2008
209. -वही- 4.8.2009 और 6.8.2009
210. -वही- 9.12.2009 और 10.12.2009
211. -वही- 11.8.2010
212. -वही- 23.3.2011
213. -वही- 3.8.2011 और 4.8.2011
214. -वही- 27.2.2013
215. -वही- 22.4.2013

अध्याय-24

वित्तीय विषयों संबंधी प्रक्रिया

बजट

राष्ट्रपति, प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में 'वार्षिक वित्तीय विवरण'—भारत सरकार की अनुमानित आय और व्यय का एक विवरण—संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखने के लिए निर्देश देता है।[1] वार्षिक वित्तीय विवरण, जिसे अन्यथा बजट के रूप में जाना जाता है, दो भागों में प्रस्तुत किया जाता है। अर्थात् रेलवे वित्त से सम्बन्धित रेल बजट और सामान्य बजट, जो रेलवे को छोड़कर भारत सरकार की वित्तीय स्थिति की सम्पूर्ण तस्वीर पेश करता है।

बजट को प्रस्तुत करने की तिथि राष्ट्रपति के निर्देशानुसार निर्धारित की जाती है।[2] परम्परा के अनुसार रेल बजट लोक सभा में फरवरी के तीसरे सप्ताह में किसी समय और सामान्य बजट प्रत्येक वर्ष फरवरी माह के अंतिम कार्य-दिवस को प्रस्तुत किया जाता है।[3] इसके साथ ही साथ सम्बन्धित बजट की प्रतियां राज्य सभा के पटल पर रखी जाती हैं।

> एक मौके पर अंतरिम रेल बजट, जिसे लोक सभा में 27 फरवरी, 1996 को प्रस्तुत किया गया था, राज्य सभा के पटल पर उसी दिन नहीं रखा जा सका, क्योंकि सभा की बैठक अव्यवस्था के कारण स्थगित कर दी गई थी। बजट अगले दिन पटल पर रखा गया था।[4]
>
> सन् 1953 में 1953-54 के लिए रेल बजट रेल मंत्री, जिन्हें लोक सभा में उत्तर देना था, की अनुपस्थिति में सभा के नेता द्वारा सभा पटल पर रखा गया।[5]

चुनाव के वर्ष में बजट दो बार प्रस्तुत किया जा सकता है, पहले कुछ महीनों के लिए लेखानुदान और बाद में सरकार की सुविधा के अनुसार किसी तिथि को पूर्ण बजट।

> बजट सत्र आरम्भ होने से कुछ दिन पूर्व संसदीय कार्य मंत्रालय उस सत्र के दौरान सम्पन्न किये जाने वाले वित्तीय कार्यों की तिथियों का एक अस्थायी कार्यक्रम सचिवालय को भेजता है। इसे सदस्यों की सूचना के लिए बुलेटिन में प्रकाशित किया जाता है।[6]

वार्षिक वित्तीय विवरण में अन्तर्निहित व्यय के अनुमान, उस व्यय, जिसे संविधान ने भारत की संचित निधि पर प्रभारित किया है, को पूरा करने के लिए तथा अन्य व्यय को पूरा करने के लिए आवश्यक राशियों को अलग-अलग दर्शाते हैं।[7] प्रभारित व्यय को संसद् में मतदान के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन इस पर संसद् के किसी भी सदन में चर्चा की जा सकती है।[8] अन्य व्यय को अनुदान मांगों के रूप में लोक सभा में प्रस्तुत करना अपेक्षित है। जिसे किसी मांग पर अपनी सहमति देने या उसे अस्वीकार करने का विशेष अधिकार होता है अथवा वह किसी मांग में उल्लिखित राशि की कटौती की शर्त पर अपनी सहमति प्रदान कर सकती है।[9]

बजट सेटों का वितरण

बजट पत्रों के सेट — जिनमें वित्त मंत्री का भाषण (भाग क और ख); संघ सरकार का बजट; बजट का व्याख्यात्मक ज्ञापन; बजट: एक झलक; वित्त विधेयक; वित्त विधेयक के उपबंधों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन; अनुदान मांगों का संक्षिप्त विवरण; बजट दस्तावेजों की कुंजी; अनुदान मांगों संबंधी पुस्तकें शामिल हैं — सदस्यों में वितरित करने के लिए वित्त मंत्रालय से प्राप्त किए

जाते हैं। बजट की प्रति राज्य सभा के पटल पर रखे जाने के बाद सभा कक्ष की बाह्य लॉबी में सदस्यों को वितरित की जाती है। सदस्यों को संसदीय समाचार भाग-2 के एक पैरा द्वारा बजट सेटों को प्राप्त करने की प्रक्रिया के बारे में सूचित किया जाता है।[10]

वित्त विधेयक का कथित रूप से पहले ही पता चल जाना

2 मार्च, 1970 को कुछ सदस्यों ने सभा में शिकायत की कि राज्य सभा सदस्यों को 28 फरवरी, 1970 को बजट पत्र उपलब्ध नहीं कराए गए थे जबकि लोकसभा के सदस्यों को समय पर बजट संबंधी पत्र उपलब्ध करा दिए गए थे। इसके अतिरिक्त, उन्होंने कहा कि दूसरे दिन वित्त विधेयक म.प. 10.00 बजे के बाद लोक सभा में प्रस्तुत किया गया लेकिन बजट सेट (जिसमें वित्त विधेयक शामिल था) सदस्यों को पहले वितरित किए गए थे। सदस्यों ने कहा कि बजट-कराधान प्रस्तावों का पहले ही पता चल गया है – क्योंकि वित्त विधेयक लोक सभा में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व उसकी प्रतियां सदस्यों में बांटी गई हैं।[11] इस मामले के संबंध में सभापति ने निम्नलिखित व्यवस्था दी:

> 2 मार्च को राज्य सभा की बैठक में कुछ माननीय सदस्यों ने वित्त विधेयक, 1970 के पुर:स्थापन तथा उसके परिचालन के सम्बन्ध में कुछ मुद्दे उठाए। मैंने मामले की जांच करने तथा उस पर अपनी राय देने का वायदा किया था। संविधान के अनुच्छेद 112 के अंतर्गत प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में भारत सरकार की अनुमानित आय एवं व्यय का एक विवरण संसद् की दोनों सभाओं के समक्ष रखा जाता है। इस उपबंध का अनुसरण करते हुए 1970-71 के लिए भारत सरकार की अनुमानित आय एवं व्यय का एक विवरण 28 फरवरी को राज्य सभा के पटल पर रखा गया था। इस विवरण में वित्त विधेयक शामिल नहीं है, जिसे इस अवस्था में राज्य सभा के पटल पर नहीं रखा जाता है। वित्त विधेयक लोक सभा में पुर:स्थापित किया जाता है और इसे उस सभा द्वारा पारित किये जाने के बाद ही औपचारिक रूप से राज्य सभा के पटल पर रखा जाता है। यहां पर बजट के पहले पता चल जाने का कोई प्रश्न नहीं है क्योंकि कराधान प्रस्ताव जो बजट के भाग–ख में शामिल थे, लोक सभा सदस्यों को बजट भाषण के दौरान पता चल गए थे और बजट पत्र उसके बाद वितरित किये गए थे।
>
> तथापि, वित्त विधेयक की प्रतियां सदस्यों को वितरित बजट पत्रों का हिस्सा होती हैं। राज्य सभा के सदस्यों को बजट पत्र 28 फरवरी की रात्रि को उनके निवासों पर प्राप्त हुई थीं। राज्य सभा में हमारा, लोक सभा में उक्त विधेयक के औपचारिक पुर:स्थापन से पूर्व इसके वितरण के प्रश्न से कोई संबंध नहीं है। यह लोक सभा का मामला है। ऐसा प्रतीत होता है कि इससे संबंधित तथ्य एवं परिस्थितियां लोक सभा में 28 फरवरी को उसकी विशेष बैठक में जब यह विधेयक उस सभा में औपचारिक रूप से पुर:स्थापित किया गया था, स्पष्ट कर दिये गए थे। इसलिए यह मामला वहीं खत्म हो जाना चाहिए। यह सभा वित्त विधेयक पर तभी विचार करेगी जब उसे उचित समय पर लोक सभा में पारित करने के पश्चात् हमारे पास भेजा जाएगा।[12]

बजट का कथित रूप से पहले ही पता चल जाना

एक सदस्य ने बजट के कथित रूप से समय से पूर्व पता चल जाने के बारे में एक दिलचस्प मुद्दा उठाया। 29 फरवरी, 1984 को, जब वित्त मंत्री म.प. 6.32 बजे बजट पटल पर रख रहे थे तब सदस्य ने यह मुद्दा उठाया कि बजट का पहले ही पता चल गया है क्योंकि उसे उस दिन म.प. 6.30 बजे आकाशवाणी बुलेटिन के माध्यम से पहले ही प्रसारित किया गया था। उन्होंने अपना तर्क प्रस्तुत करने के विशेषाधिकार के हनन की लिखित सूचना दी और 1 मार्च, 1984 को भी यह मामला उठाया था। माननीय सभापति ने व्यवस्था दी: "विधि तुच्छ बातों पर ध्यान नहीं देती (डि मिनिमस नॉन क्यूरेट लेक्स) दो मिनट से विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठता।" सूचना अस्वीकार कर दी गई।[13]

बजट पर सामान्य चर्चा

बजट पर उस दिन कोई चर्चा नहीं होती है जिस दिन उसे प्रस्तुत किया जाता है।[14] बाद के दिनों में और उस समय के दौरान जिसे सभापति इस उद्देश्य के लिए आवंटित करते हैं, सभा बजट पर सम्पूर्ण रूप में अथवा उसमें शामिल सिद्धांत के किसी प्रश्न पर चर्चा करने के लिए स्वतंत्र होती है लेकिन कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जाता है और न बजट सभा में मतदान के लिए प्रस्तुत किया जाता है।[15] सभापति, यदि उपयुक्त समझें, भाषणों के लिए समय-सीमा निर्धारित कर सकते हैं।[16] वित्त मंत्री को (जिसमें कोई भी मंत्री शामिल है)[17] चर्चा की समाप्ति पर जवाब देने का सामान्य अधिकार होता है।[18] रेल बजट के मामले में यही प्रक्रिया लागू होती है और रेल मंत्री रेल बजट पर चर्चा के अंत में उत्तर देते हैं।

वित्तीय कार्य के लिए एक दिन आवंटित किये जाने के बावजूद भी विधेयक अथवा विधेयकों को पुर:स्थापित करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव किये जा सकते हैं और सभा द्वारा उस कार्य को, जिसके लिए वह दिन नियत किया गया है, शुरू किये जाने से पूर्व विधेयक अथवा विधेयकों को उस तिथि को सभा में पुर:स्थापित किया जा सकता है।[19] इस संदर्भ में वित्तीय कार्य में वह कोई कार्य भी शामिल है जिसे सभापति संविधान के अंतर्गत इस श्रेणी के अधीन समझते हैं।[20]

> विगत में ऐसे अवसर आए थे जब सामान्य बजट पर सामान्य चर्चा लोक सभा में आरम्भ होने से पूर्व राज्य सभा में आरम्भ हुई थी।
>
> राज्य सभा ने बजट (सामान्य) 1955-56 पर 3 मार्च, 1955 को सामान्य चर्चा शुरू की थी जबकि लोक सभा में यह चर्चा 16 मार्च, 1955 को आरम्भ हुई थी; बजट (सामान्य) 1959-60 पर सामान्य चर्चा राज्य सभा में 3 मार्च, 1959 को आरम्भ हुई, जबकि लोक सभा में यह 9 मार्च, 1959 को आरम्भ हुई थी। 1963 में, सामान्य बजट पर राज्य सभा और लोक सभा में सामान्य चर्चा क्रमश: 4 मार्च तथा 12 मार्च को आरम्भ हुई। 1965 में, राज्य सभा तथा लोक सभा में सामान्य चर्चा क्रमश: 10 और 22 मार्च को शुरू हुई। इसी प्रकार 2002 में, राज्य सभा तथा लोक सभा में बजट (सामान्य) पर चर्चा क्रमश: 18 और 19 मार्च, 2002 को हुई।[21]

मंत्रालयों के कार्यकरण पर चर्चा

विभाग-संबंधित समितियों को आरंभ करने से पूर्व बजट पर सामान्य चर्चा के बाद राज्य सभा लगभग तीन सप्ताहों के लिए स्थगित की जाती थी, जिस अवधि के दौरान लोक सभा अनुदानों पर मतदान करती थी और उसके पश्चात् वित्तीय कार्यों की बाकी अवस्थाओं अर्थात् विनियोग तथा वित्त विधेयकों पर विचार एवं उनके पारण को सम्पन्न करने के लिए वह पुन: समवेत होती थी। सभा की बैठक पुन: आरंभ होने के पहले सप्ताह में वह तीन या चार मंत्रालयों के कार्यकरण पर चर्चा किया करती थी। इस प्रक्रिया को आरंभ करने की पृष्ठभूमि निम्नलिखित थी :

> 20 मार्च, 1970 को कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में संसदीय कार्य मंत्री ने समिति को सूचित किया कि राज्य सभा के विभिन्न विरोधी ग्रुपों के नेताओं तथा कुछ अन्य सदस्यों की इच्छाओं का सम्मान करते हुए सरकार राज्य सभा का अगला सत्र एक सप्ताह पहले अर्थात् 27 अप्रैल, 1970 से बुलाने पर सहमत थी ताकि सभा कुछ मंत्रालयों के कार्यकरण संबंधी प्रतिवेदनों पर चर्चा कर सके। समिति ने निश्चय किया कि उस सप्ताह के दौरान चुने हुए पांच मंत्रालयों में से चार मंत्रालयों के कार्यकरण पर चर्चा की जानी चाहिए।[22]
>
> 24 अप्रैल, 1970 को कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में यह निर्णय लिया गया कि चर्चा, समय-सीमा रहित नियम 176 (अल्पकालिक चर्चा) के अनुसार होगी। कार्यावलि में एक मद '...मंत्रालय के कार्यकरण पर

चर्चा' होनी चाहिए, इसके अतिरिक्त इस उद्देश्य के लिए चार घंटे—म.प. 2.00 बजे से म.प. 6.00 बजे — आवंटित किए जाने चाहिए। एक दिन की बहस अगले दिन तक जारी नहीं रहनी चाहिए।[23]

16 जून, 1971 को कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में यह निर्णय लिया गया कि मंत्रालय के बारे में चर्चा में भाग लेने के लिए सूचना देने वाले सदस्यों की परस्पर अग्रता बैलट द्वारा निर्धारित की जानी चाहिए (परिणामस्वरूप सभी सदस्यों के नाम जिनकी ओर से सूचनाएं प्राप्त हुई थीं, कार्यावलि में संबंधित मद के अंतर्गत सूचीबद्ध थे)।[24]

2 अप्रैल, 1985 को कार्य मंत्रणा समिति ने सिफारिश की कि प्रत्येक मंत्रालय के कार्यकरण पर चर्चा पूरे दिन जारी रह सकती है और संबंधित मंत्री को अगले दिन उत्तर देना चाहिए।[25]

उक्त प्रक्रिया पर कार्य मंत्रणा समिति द्वारा पुनर्विचार किया गया। उसने यह सिफारिश की कि उन सभी सदस्यों के नाम, जिन्होंने एक विशेष मंत्रालय के कार्यकरण पर चर्चा में भाग लेने की इच्छा व्यक्त की है, सूचीबद्ध करने की प्रथा समाप्त की जाये और केवल उसी सदस्य का नाम कार्यावलि में शामिल किया जाये, जो चर्चा आरम्भ करने वाला हो, और ऐसा नाम विभिन्न दलों/ग्रुपों के नेताओं की सर्वसम्मति से तय किया जा सकता है।[26]

इस प्रकार, राज्य सभा में वित्तीय कार्यों के दौरान एक नई प्रक्रिया विकसित की गई और वह पिछले तीन दशकों के दौरान सुस्थापित हो गयी थी। वर्तमान प्रथा, जिसे विभाग-संबंधित समिति प्रणाली आरंभ करने के बाद भी नहीं बदला गया है, वह यह है कि कार्य मंत्रणा समिति नई प्रणाली के अन्तर्गत बजटकालीन सत्रावकाश के बाद सभा के पुन:समवेत होने के पहले सप्ताह में चर्चा के लिए तीन या चार मंत्रालयों/विषयों का चयन करती है। मंत्रालयों के कार्यकरण पर चर्चा आरम्भ करने वाले सदस्यों का चयन दलों/ग्रुपों द्वारा आपसी परामर्श से किया जाता है। कार्यावलि में केवल मंत्रालय के कार्यकरण पर चर्चा संबंधी सामान्य मद का ही उल्लेख होता है। सभापीठ को एक निश्चित समय पर संबंधित दल/ग्रुप के नेता/सचेतक की ओर से जिस सदस्य का नाम पहले ही प्राप्त होता है, उसे चर्चा आरम्भ करने के लिए कहा जाता है और तत्पश्चात् वह अल्पकालिक चर्चा की तरह चलता है। सम्बन्धित मंत्री अंत में उत्तर देता है और चर्चा समाप्त हो जाती है।

विनियोग और वित्त विधेयक

भारत की संचित निधि में से विधि द्वारा निर्धारित विनियोग के अतिरिक्त कोई धन नहीं निकाला जा सकता है।[27] लोक सभा द्वारा अनुदान स्वीकृत करने के बाद उन सभी अनुदानों को पूरा करने के लिए अपेक्षित पूरी धनराशि भारत की संचित निधि में से विनियोग हेतु उपबंध करने के लिए एक विधेयक उस सभा में पुर:स्थापित किया जाता है और व्यय भारत की संचित निधि में प्रभारित किया जाता है। विनियोग विधेयक लेखानुदान, अनुदान अथवा अतिरिक्त अनुदानों के लिए अनुपूरक मांगों से संबंधित हो सकता है। चूंकि संविधान के अनुच्छेद 110 की परिभाषा के अंतर्गत वे धन संबंधी विधेयक होते हैं इसलिए राज्य सभा को उन्हें प्राप्त करने की तिथि से 14 दिन की अवधि के भीतर लौटाना होता है।

संविधान में उपबंध है कि संसद् सामान्य विनियोग विधेयक पारित होने तक लेखानुदान, अर्थात् अग्रिम अनुदानों की अनुमति दे देती है।[28]

डा. अम्बेडकर, जिन्होंने संविधान में लेखानुदान से संबंधित उपबंध शामिल किया, ने कहा था कि वित्तीय विवरण और सरकार के कराधान प्रस्तावों तथा व्यय प्रस्तावों पर संसद् में पूर्ण चर्चा होनी चाहिए। चूंकि ये चर्चाएं किसी वित्तीय वर्ष के आरंभ होने से पूर्व पूरी नहीं की जा सकती हैं; इसलिए यह उपबंध किया गया जिससे कि (संसद्) प्रत्येक मांग के अधीन एकमुश्त अनुदान स्वीकृत कर सके, ये अनुदान अल्पावधि,

जब तक कराधान तथा व्यय संबंधी प्रस्तावों पर पूरी तरह चर्चा नहीं हो जाती तथा विनियोग अधिनियम पारित नहीं किया जाता है, के लिए सरकार का खर्च पूरा करने के लिए पर्याप्त होते हैं।[29]

सामान्यत:, लेखानुदान केवल दो माह के लिए ही पारित होता है। लेकिन चुनाव वर्ष के दौरान अथवा जब यह पूर्वानुमान लगाया जाता है कि मुख्य मांगों तथा विनियोग विधेयक को संसद् द्वारा पारित किए जाने में दो माह से अधिक समय लग सकता है, तब लेखानुदान दो माह से अधिक समय के लिए हो सकता है और यह तीन या चार महीनों के लिए हो सकता है, जैसाकि चुनावों के कारण 1996, 2004, 2009 और 2014 में हुआ था।[30]

प्रथा के अनुसार जब भी भारत की आकस्मिकता निधि से नई सेवा के लिए कोई धनराशि निकाली जाती है, तब संबंधित मंत्री दोनों सभाओं में एक वक्तव्य देता है।

विदेश मंत्रालय में राज्य मंत्री ने "प्रभारित व्यय" को पूरा करने के लिए भारत की आकस्मिकता निधि से निकाली जाने वाली 1.80 करोड़ रुपए की अग्रिम राशि के संबंध में एक वक्तव्य दिया था।[31]

पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय में राज्य मंत्री और वित्त मंत्रालय में राज्य मंत्री ने संयुक्त राज्य अमरीका के फेयरफैक्स ग्रुप के साथ की गई व्यवस्थाओं के लिए उत्पन्न परिस्थितियों की जांच करने के लिए जांच आयोग के गठन हेतु निधियों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए भारत की आकस्मिकता निधि से अग्रिम राशि लेने के संबंध में एक वक्तव्य दिया था।[32]

गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने, एक मामले में भारत की आकस्मिकता निधि से धनराशि निकालकर दिल्ली उच्च न्यायालय में जमा करने के संबंध में उक्त न्यायालय के आदेश का पालन करते हुए एक वक्तव्य दिया था।[33]

यदि चालू वित्त वर्ष के लिए किसी विशेष सेवा पर खर्च की जाने वाली किसी विनियोग अधिनियम द्वारा स्वीकृत धनराशि उस वर्ष के उद्देश्यों के लिए अपर्याप्त है अथवा यदि चालू वित्त वर्ष के लिए ऐसी किसी नई सेवा पर अनुपूरक या अतिरिक्त व्यय के लिए आवश्यकता उत्पन्न हो गई है जिसके बारे में उस वर्ष के वित्तीय विवरण में विचार नहीं किया गया, तो उस वर्ष के लिए अनुमानित राशि को दर्शाने वाला एक अन्य विवरण संसद् के दोनों सदनों के पटल पर रखा जाता है।[34]

जब संबंधित विनियोग विधेयक लोक सभा द्वारा पारित होने के पश्चात् राज्य सभा के समक्ष पेश किया जाता है, तब उसे अनुपूरक अथवा अतिरिक्त अनुदानों पर विचार करने का अवसर मिलता है।

यदि किसी सेवा में, उसके लिए उस वर्ष के दौरान स्वीकृत अनुदान राशि से अधिक धनराशि खर्च की गई है तो ऐसी अतिरिक्त धनराशि की मांग केवल लोक सभा में प्रस्तुत की जाती है।[35] व्यय वहन करने के पश्चात् अतिरिक्त अनुदान के लिए मांग की जाती है और इसे व्यय की 'अनुमानित' राशि के रूप में उल्लिखित नहीं किया जा सकता है। इसलिए इस प्रकार के विवरण को राज्य सभा के पटल पर रखने की आवश्यकता नहीं होती है। जब संबंधित विनियोग विधेयक लोक सभा में पारित होने के पश्चात् राज्य सभा में पेश किया जाता है। तब उसे अतिरिक्त अनुदान पर चर्चा करने का अवसर मिलता है।

वित्त विधेयक के मामले में राज्य सभा संशोधन की सिफारिशें भी कर सकती है, जैसाकि विधान संबंधी अध्याय में पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। राज्य सभा द्वारा विनियोग तथा वित्त विधेयक लौटाने पर वित्तीय कार्य अपने अंतिम चरण में पहुंच जाता है।

संसद् वित्तीय कार्य समय पर सम्पन्न करने के लिए किसी वित्तीय मामले अथवा भारत की संचित निधि में से धन के विनियोग हेतु किसी विधेयक के संबंध में संसद् के प्रत्येक सदन में इनसे संबंधित प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों को विधि द्वारा विनियमित कर सकती है।[36] अभी तक इस प्रकार का कोई विधान नहीं बनाया गया है।

एक बार बजट पर सामान्य चर्चा पूरी होने से पहले ही विनियोग (लेखानुदान) विधेयक पर विचारण हुआ था और उसे लौटा दिया गया था। तथापि, सभा में इस बात पर सहमति हुई कि इसे एक पूर्वोदाहरण के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए।[37]

11 मार्च, 1991 को राज्य सभा ने कुछ ही घंटों की अवधि में रेलवे और सामान्य बजटों, चार राज्यों और एक संघ राज्य क्षेत्र के बजटों से संबंधित सत्रह विधेयकों तथा एक वित्त विधेयक को पारित किया था।[38]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. अनुच्छेद 112 और नियम 181
2. नियम 181(1)
3. बजट के दिनों में राज्य सभा की बैठकों के लिए देखिए, अध्याय-11
4. संसदीय समाचार (1), 28.2.1996
5. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 18.2.53, कालम 615
6. उदाहरण के लिए देखिए, संसदीय समाचार (2), 28.2.1995
7. अनुच्छेद 112(2) और (3)
8. अनुच्छेद 113(1)
9. अनुच्छेद 113(2)
10. उदाहरण के लिए देखिए, संसदीय समाचार (2), 10.4.1995
11. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.3.1970, कालम 175-87
12. -वही- 12.3.1970, कालम 106-07
13. फा. सं. 35/3/84-एल.
14. नियम 181(2)
15. नियम 182(1)
16. नियम 182(3)
17. नियम 2
18. नियम 182(2)
19. नियम 184
20. नियम 184, स्पष्टीकरण
21. अध्याय 5 भी देखिए
22. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 25.3.1970
23. -वही- 24.4.1970
24. -वही- 16.6.1971
25. -वही- 2.4.1985
26. -वही- 20.4.1987
27. अनुच्छेद 114
28. अनुच्छेद 116
29. शिवा राव, बी., दी फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज़ कांस्टीट्यूशन—ए स्टडी, पृष्ठ 441-42

30. वित्त मंत्री का भाषण (फरवरी 1996), पैरा 32 और (फरवरी 2004), पैरा 1
31. संसदीय समाचार (1), 9.5.1988
32. -वही- 28.4.1987
33. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.4.1989, कालम 6
34. अनुच्छेद 115(1)(क)
35. अनुच्छेद 115(1)(ख)
36. अनुच्छेद 119
37. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.7.1991, कालम 399-400
38. संसदीय समाचार (1), 11.3.1991

अध्याय-25

समितियां

I. समिति की सामान्य संरचना

राज्य सभा की संसदीय समितियों को व्यापक रूप से दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है: (क) स्थायी समितियां और (ख) तदर्थ समितियां।

(क) स्थायी समितियां

स्थायी समितियां वे समितियां हैं जिनका चयन सभा द्वारा अथवा जिनका मनोनयन सभापति द्वारा प्रतिवर्ष अथवा समय-समय पर किया जाता है और ये समितियां स्थायी होती हैं। बारह स्थायी समितियां हैं और उनके क्रियाकलापों के संदर्भ में उन्हें निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :

जांच हेतु समितियां —

(क) याचिका समिति

(ख) विशेषाधिकार समिति

(ग) आचार समिति

संवीक्षा और नियंत्रण हेतु समितियां —

(क) सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति

(ख) अधीनस्थ विधान संबंधी समिति

(ग) सभापटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति

सलाह हेतु समितियां —

(क) कार्य मंत्रणा समिति

(ख) नियम समिति

सदन की व्यवस्था संबंधी समितियां —

(क) आवास समिति

(ख) सामान्य प्रयोजन समिति

(ग) राज्य सभा के सदस्यों के लिए कंप्यूटरों का उपबंध करने संबंधी समिति

(घ) संसद्-सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी समिति

राज्य सभा के सदस्यों के लिए कंप्यूटरों का उपबंध करने संबंधी समिति और संसद् सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी समिति के अतिरिक्त सभी स्थायी समितियों का कार्यकरण होता है जो राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों से संचालित होता है।

विभाग-संबंधित समितियां —

दोनों सभाओं की चौबीस विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों में से निम्नलिखित आठ समितियां राज्य सभा के सभापति के निदेश और नियंत्रण के अधीन कार्य करती हैं :

(क) वाणिज्य संबंधी समिति

(ख) गृह कार्य संबंधी समिति

(ग) मानव संसाधन विकास संबंधी समिति

(घ) उद्योग संबंधी समिति

(ङ) विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी, पर्यावरण और वन संबंधी समिति

(च) परिवहन, पर्यटन और संस्कृति संबंधी समिति

(छ) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण संबंधी समिति

(ज) कार्मिक, लोक शिकायत, विधि एवं न्याय संबंधी समिति

अन्य सोलह समितियां लोक सभा अध्यक्ष के नियंत्रण के अधीन कार्य करती हैं।

(ख) तदर्थ समितियां

तदर्थ समितियां वे समितियां हैं जो विशिष्ट मामलों पर विचार करने और प्रतिवेदन देने के लिए सभा द्वारा अथवा सभापति द्वारा अथवा दोनों सभाओं के पीठासीन अधिकारियों द्वारा संयुक्त रूप से गठित की जाती हैं और ज्योंही वे अपना कार्य पूर्ण कर लेती हैं, वे पदकाम-निवृत्त हो जाता है। इन समितियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:

(i) विधेयकों संबंधी प्रवर/संयुक्त समितियां—विधेयकों संबंधी प्रवर/संयुक्त समितियों को ऐसे विधेयकों जिन्हें समय-समय पर उनके पास भेजा जाता है, पर विचार करने और प्रतिवेदन देने के लिए विधेयक के प्रभारी मंत्री या किसी सदस्य द्वारा उपस्थित और सभा द्वारा स्वीकार किये गये विशिष्ट प्रस्ताव के संबंध में सभा (सभाओं) द्वारा गठित किया जाता है। ये समितियां अन्य तदर्थ समितियों से भिन्न होती हैं क्योंकि वे विधेयकों से संबंधित हैं और उनके द्वारा जो प्रक्रिया अपनाई जाती है वह प्रक्रिया संबंधी नियमों में विहित है। वे सभापति के निदेशों और नियंत्रण के अधीन कार्य करती हैं।

विधेयकों संबंधी प्रवर/संयुक्त समितियों के कुछ उदाहरण हैं — लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, 2011 संबंधी समिति, बीमा विधि (संशोधन) विधेयक, 2008 संबंधी प्रवर समिति, निरसन और संशोधन विधेयक, 2014 संबंधी प्रवर समिति, संदाय और निपटान प्रणाली (संशोधन) विधेयक, 2014 संबंधी प्रवर समिति, खान और खनिज (विकास और विनियम) संशोधन विधेयक, 2015 संबंधी प्रवर समिति, संविधान (एक सौ बाइसवां संशोधन) विधेयक, 2014 संबंधी प्रवर समिति, भू-संपत्ति (विनियमन और विकास) विधेयक, 2013 संबंधी प्रवर समिति, कोयला खान (विशेष उपबंध) विधेयक, 2015 संबंधी प्रवर समिति और भूमि अर्जन, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार (दूसरा संशोधन) विधेयक, 2015 संबंधी संयुक्त समिति।

(ii) वे समितियां, जिनका गठन समय-समय पर या तो सभा द्वारा प्रस्ताव उपस्थित करके, गृहीत करके अथवा सभापति द्वारा विशिष्ट विषयों की जांच करने और उस पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है। राज्य सभा में गठित ऐसी समितियों के उदाहरण इस प्रकार हैं: संविधान के अनुच्छेद 118 (2) के अधीन राज्य सभा के लिए प्रक्रिया संबंधी प्रारूप नियमों को तैयार करने के लिए 1962 में गठित समिति, राज्य सभा के तत्कालीन सदस्य के आचरण की जांच करने के लिए 1976 में गठित समिति, निरंकारियों और अकालियों के बीच समझौता कराने के लिए 1983 में गठित की गई दोनों सभाओं के सदस्यों की समिति, बोफोर्स तोप सौदे और बैंक प्रतिभूति घोटालों के संबंध में जांच करने के लिए क्रमश: 1988 और 1992 में नियुक्त की गई संयुक्त संसदीय समितियां, रेलवे वैगनों की खरीद से संबंधित सभी पहलुओं का अध्ययन करने के लिए सभा में प्रश्नकाल के दौरान सदस्यों की मांग पर सभापति द्वारा 1995 में गठित की गई समिति, कपास उत्पादकों की समस्याओं और वक्फ बोर्डों के कार्यकरण के बारे में सभापति द्वारा वर्ष 1996 में गठित की गई समितियां। संसद् भवन में प्रतिमाओं और चित्रों को लगाने के संबंध में, खान-पान सेवाओं के संबंध में और सदस्यों के लिए सुविधाएं प्रदान करने के संबंध में, परामर्श देने के उद्देश्य से लोक सभा अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति द्वारा आपस में परामर्श करके 1993 में गठित की गई तीन अन्य समितियां भी तदर्थ समितियों की श्रेणी में आती हैं। इसी प्रकार 15 दिसंबर, 2009 को गठित संसद् भवन परिसर के धरोहर स्वरूप के रखरखाव और विकास संबंधी संयुक्त संसदीय समिति इस श्रेणी के अंतर्गत आती है।

I. *वित्तीय और अन्य समितियां जिनमें राज्य सभा का प्रतिनिधित्व है*

राज्य सभा के सदस्य निम्नलिखित चार समितियों में प्रतिनिधित्व करते हैं अथवा इनसे जुड़े हुए हैं जिनका लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में उपबंध किया गया है:

(क) लोक लेखा समिति

(ख) सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति

(ग) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति

(घ) महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति

II. *लोक सभा नियमों के परिशिष्ट में उल्लिखित की गई समिति*

सभापति पुस्तकालय समिति में कार्य करने के लिए तीन सदस्यों को नामनिर्देशित करते हैं जिसका गठन लोक सभा अध्यक्ष द्वारा किया जाता है और इसका उल्लेख लोक सभा नियमों के परिशिष्ट-II में किया गया है।

III. *प्रस्तावों द्वारा गठित समितियां*

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य समितियां भी हैं जिनमें राज्य सभा का प्रतिनिधित्व है, ये समितियां दोनों सभाओं में प्रस्ताव गृहीत करके गठित की जाती हैं।

(क) रेलवे उपक्रम द्वारा सामान्य राजस्व को देय लाभांश की दर से समीक्षा करने के लिए संसदीय समिति (रेलवे अभिसमय समिति)

(ख) लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति

(ग) अन्य पिछड़े वर्गों (ओ.बी.सी.) के कल्याण संबंधी समिति

IV. *सांविधिक समिति*

सांविधिक समिति का गठन संसद् के अधिनियम द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए, संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के अधीन गठित सदस्यों के वेतन और भत्तों संबंधी संयुक्त समिति जिसमें दोनों सदनों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व होता है।

V. *परामर्शदात्री समितियां*

संसदीय कार्य मंत्री द्वारा विभिन्न मंत्रालयों से जुड़ी परामर्शदात्री समितियों में कार्य करने के लिए संसद् की दोनों सभाओं के सदस्यों को नामनिर्देशित किया जाता है।

VI. *सरकारी समितियां*

कई अन्य समितियां, परिषदें, बोर्ड इत्यादि भी हैं जिनका गठन सरकार द्वारा या तो परिनियमों के अनुसरण में या सरकारी संकल्प द्वारा किया जाता है जिनमें सदस्यों का प्रतिनिधित्व होता है।

राज्य सभा में समितियां सामान्यत: किस प्रकार गठित की जाती हैं

ऊपर उल्लिखित स्थायी समितियों का पुनर्गठन सामान्यत: प्रतिवर्ष बजट सत्र की समाप्ति से पूर्व किया जाता है। तथापि, यदि किसी वर्ष राज्य सभा के द्विवार्षिक चुनाव होते हैं, तब समितियों के पुनर्गठन की प्रक्रिया को आस्थगित किया जा सकता है ताकि ऐसे चुनावों के पश्चात् विभिन्न पार्टियों/दलों की सदस्य-संख्या के आधार पर विभिन्न समितियों में सीटों का आवंटन किया जा सके। उदाहरण के लिए वर्ष 1986 में जून, जुलाई और अगस्त में राज्य सभा के द्विवार्षिक चुनावों के कारण समितियों का पुनर्गठन अक्टूबर, 1986 के अंत

में किया गया था।[1] तथापि, 1987 में समितियों का पुनर्गठन प्रथा के अनुसार मई में ही किया गया।[2] पुन: वर्ष 1992 में समितियों का गठन नवंबर के मध्य में किया गया।[3] जबकि 1993 में समितियों के पुनर्गठन की प्रक्रिया हालांकि मई में आरंभ हो चुकी थी, पर वह उस वर्ष जुलाई में ही पूरी हो पाई।[4] वर्ष 1994 में समितियों का पुनर्गठन जून में किया गया था[5] और वर्ष 1995 तथा 1996 में उनका गठन क्रमश: अगस्त और जुलाई में किया गया था।[6] तथापि, वर्तमान प्रथा के अनुसार राज्य सभा की स्थायी समितियों और विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों का गठन सामान्यत: दो वर्षों में एक बार नए सिरे से किया जाता है और यह प्रक्रिया साधारणतया राज्य सभा के द्विवार्षिक निर्वाचन से जुड़ी होती है।

परम्परा और परिपाटी के अनुसार समितियों के पुनर्गठन के प्रयोजन हेतु विभिन्न स्थायी समितियों के संबंध में प्रत्येक दल/गुट के लिए कोटा निश्चित करने के लिए सभा के नेता/संसदीय कार्य मंत्री राज्य सभा में 5 या उससे अधिक सदस्य संख्या वाले विभिन्न दलों/गुटों के नेताओं के साथ एक अनौपचारिक बैठक करते हैं। वे प्रत्येक दल/गुट की संख्या के आधार पर विभिन्न समितियों के लिए आवंटन करते हैं। सचिवालय उपलब्ध सीटें, विभिन्न दलों का वर्तमान प्रतिनिधित्व आदि दर्शाते हुए दो वित्तीय समितियों (लोक लेखा समिति तथा सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति) तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति और अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण संबंधी समिति, जिसमें राज्य सभा प्रतिनिधित्व करती है, और राज्य सभा की स्थायी समितियों के संबंध में अनौपचारिक रूप से विवरण तैयार करता है और उसे भेजता है। तत्पश्चात् उपलब्ध स्थानों की संख्या से राज्य सभा की प्रभावी सदस्य-संख्या में भाग देने से कोटा निकाला जाता है। ये कोटा निकालने के लिए समितियों में राज्य सभा का प्रभावी प्रतिनिधित्व/समितियों के समग्र गठन पर विचार किया जाता है और इन समितियों को निम्न वर्गों में बांटा गया है : (1) दो वित्तीय समितियां और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति और अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण संबंधी समिति 7+7+10+10=34; (2) कार्य मंत्रणा समिति, विशेषाधिकार समिति तथा नियम समिति 9+10+14=33; (3) आवास समिति, याचिका समिति, सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति, और सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति 10+10+10+15+10=55। यह मान लेने से कि पहले वर्ग में 34 स्थान उपलब्ध हैं तथा राज्य सभा की प्रभावी संख्या 232 है (अर्थात् 245 में से रिक्तियों की संख्या 13 कम), तो इस वर्ग के लिए कोटा का निर्धारण इस प्रकार होगा कि 232/34=6.82 अर्थात् प्रत्येक 7 सदस्यों के लिए एक स्थान।

दलों/गुटों द्वारा पारस्परिक सहमति के बाद उनके नेताओं से अनुरोध किया जाता है कि वे किसी विनिश्चित तारीख तक अपने सदस्यों के नाम सभापति के विचारार्थ भेज दें। नामों का सुझाव देते समय दलों/गुटों के नेता सामान्यत: यह ध्यान रखते हैं कि जहां तक संभव हो सके कोई सदस्य लगातार दो बार से अधिक उस समिति का सदस्य न रहा हो। जहां तक छोटे गुटों, निर्दलीय और असम्बद्ध सदस्यों के लिए स्थानों का संबंध है, सभापति उनमें से सदस्यों को नामनिर्देशित करता है। अन्तत: जब नाम प्राप्त हो जाते हैं तो सभापति विभिन्न समितियों के लिए सदस्यों के नामनिर्देशन को स्वीकृति प्रदान करता है।

इस प्रकार नामनिर्देशित किए गए सदस्यों के नाम संसदीय समाचार भाग-2 में अधिसूचित किए जाते हैं। उन्हें औपचारिक रूप से व्यक्तिगत तौर पर भी सूचित किया जाता है।[7]

जहां तक पहले वर्ग में ऊपर लिखित समितियों का संबंध है, उनमें स्थानों को भरने के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचन किया जाएगा जोकि सभा में उस संबंध में प्रस्ताव स्वीकार होने के बाद किया जाएगा। तथापि, कोटा निर्धारण के लिए परामर्श की अनौपचारिक प्रक्रिया द्वारा सामान्यत: सर्वसम्मति का रास्ता अपनाया जाता है और निर्वाचन आवश्यक नहीं होता है।

जहां तक समितियों की अध्यक्षता का संबंध है राज्य सभा का सभापति कार्य मंत्रणा समिति[8], सामान्य प्रयोजन समिति और नियम समिति का अध्यक्ष भी होगा।[9] उपसभापति विशेषाधिकार समिति का अध्यक्ष होगा। अन्य स्थायी समितियों के संबंध में अर्थात् याचिका समिति, सरकारी आवश्वासनों संबंधी समिति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति, सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति तथा आवास समिति की अध्यक्षता सत्ताधारी दल और विपक्षी दलों द्वारा सभा में उनकी बड़ी संख्या के अनुपात में की जाती है। राज्य सभा के सभापति समितियों के अध्यक्षों की नियुक्ति संबंधित दलों/गुटों के नेताओं के परामर्श से करते हैं।

इस अध्याय में उपर्युक्त विभिन्न श्रेणियों की समितियों के गठन, कृत्यों इत्यादि के संबंध में निम्नलिखित शीर्षों के अंतर्गत उल्लेख किया गया है: पृथक् समितियां, विधेयकों के संबंध में प्रवर/संयुक्त समितियां, विभाग-संबंधित समितियां, वित्तीय और अन्य समितियां जिनमें राज्य सभा प्रतिनिधित्व करती है, सांविधानिक समितियां, तदर्थ समितियां और परामर्शदात्री समितियां।

II. पृथक् समितियां

कार्य मंत्रणा समिति

गठन

सभापति समय-समय पर कार्य मंत्रणा समिति नामनिर्देशित करता है जिसमें उपसभापति सहित ग्यारह सदस्य होते हैं।[10] सभापति, राज्य सभा, समिति का अध्यक्ष होता है।[11] ऐसी नामनिर्देशित की गई समिति तब तक कार्य करती रहती है जब तक कि एक नई समिति नामनिर्देशित न की जाए।[12] यदि सभापति किसी कारण से समिति की किसी बैठक की अध्यक्षता करने में असमर्थ हो तो उपसभापति उस बैठक में अध्यक्ष के रूप में कार्य करेगा।[13] यदि सभापति और उपसभापति दोनों उस बैठक की अध्यक्षता करने में असमर्थ हो तो समिति अपनी उस बैठक के लिए अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए किसी अन्य सदस्य को चुनेगी।[14] समिति में आकस्मिक रूप से रिक्त हुए स्थानों को सभापति नामनिर्देशन से भरेगा।[15] समिति की गणपूर्ति पांच से होगी।[16]

समिति की सीमित सदस्यता और सदन में दलों/वर्गों की संख्या अधिक होने के कारण सभापति के लिए प्रत्येक दल से सदस्यों को नामनिर्देशित करना संभव नहीं है। समिति को यथासंभव व्यापक बनाने के लिए उन दलों के नेताओं जिनकी सदस्य संख्या चार या उससे अधिक है और जिन्हें समिति में प्रतिनिधित्व नहीं मिलता है, उन्हें समिति की बैठकों में विशिष्ट

आमंत्रितियों के रूप में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है जिससे इसकी सिफारिशें सदन में सभी वर्गों को स्वीकार्य हो सकें। इसी प्रकार उपसभाध्यक्ष के पैनल के सदस्यों को, जो पहले से ही समिति के सदस्य नहीं हैं, विशिष्ट आमंत्रितियों के रूप में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है। ऐसे आमंत्रित सदस्य समिति की चर्चा में भाग लेते हैं लेकिन उन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता है और उन्हें समिति की गणपूर्ति के लिए भी नहीं गिना जाता है। सदन के नेता और राज्य सभा में विपक्ष के नेता और प्रभारी संसदीय कार्य मंत्री (मंत्रियों) को भी विशिष्ट आमंत्रितियों के रूप में आमंत्रित किया जाता है।

बैठक

कार्य मंत्रणा समिति की बैठकें सामान्यत: प्रत्येक सत्र के प्रथम दिन और जब सभा का सत्र चल रहा हो तो प्रत्येक बृहस्पतिवार (अधिकांशत: मध्याह्न पश्चात् 4 बजे) को सभापति के कक्ष में होती हैं। बैठकों के दिन, समय और स्थान में परिवर्तन हो सकता है और इसे सभापति की सुविधा के अनुसार निर्धारित किया जा सकता है।

कृत्य

समिति सरकारी विधेयकों तथा अन्य कार्यों के विभिन्न चरणों[17] तथा गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों के विभिन्न चरणों के लिए समय के नियतन की सिफारिश करती है।[18] समिति ऐसे अन्य कृत्य करेगी जो सभापति द्वारा समय-समय पर उसे सौंपे जाएं।[19] समिति कार्यों की अन्य मदों जैसे राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के लिए भी समय के नियतन की सिफारिश करती है,[20] यद्यपि ऐसी मदों के लिए समय नियतन की शक्ति सभापति में निहित है जो इस शक्ति का प्रयोग राज्य सभा के नेता के परामर्श से करेगा।[21] समिति 'अनियत दिन वाले प्रस्तावों' और अल्पकालिक चर्चाओं, जिनकी सूचना सदस्यों द्वारा दी गई है और सभापति द्वारा गृहीत की गई है पर चर्चा के लिए समय आवंटित करती है।[22] इसके अतिरिक्त सभा की बैठकें देर तक चलाने (अपवाद स्वरूप मामलों में प्रश्नकाल छोड़ने)[23] या मध्याह्न भोजन समय छोड़ने अथवा कम करने और अतिरिक्त बैठकें निर्धारित करने,[24] बैठकें रद्द करने[25] या शनिवार[26] को बैठक निर्धारित करने के संबंध में सभी प्रस्ताव सामान्यत: समिति के समक्ष इसके विचारार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं।

> समिति ने 10 मई, 2012 को हुई अपनी बैठक में यह निर्णय लिया कि संसद् की प्रथम बैठक की 60वीं वर्षगांठ मनाने हेतु विशेष बैठक रविवार 13 मई, 2012 को मध्याह्न 11.00 बजे से मध्याह्न पश्चात् 4.30 तक होगी।[27]

सरकार द्वारा सरकारी कार्य के संबंध में वरीयता का निर्धारण किया जाता है। तथापि, समिति ने कुछ मामलों में समिति के समक्ष रखी गई कार्य की मद के लिए सत्र के दौरान चर्चा हेतु पर्याप्त समय न होने की स्थिति में कार्य की विशिष्ट मदों को वरीयता देने की संस्तुति की है या उस समय और तारीख का सुझाव दिया है जिसमें सदन में कार्य की उस मद को लिया जाएगा या कार्य की कुछ मदों को स्थगित करने की सिफारिश की है।

कभी-कभी, समिति ने, सरकार से सदन में कुछ विशिष्ट विषयों पर चर्चा करने के लिए समय निकालने की स्वत: प्रेरित संस्तुति की है[28] और इस प्रकार की चर्चा के लिए तारीख या समय आवंटित करने की भी सिफारिश की है।[29]

एक बार समिति ने उपसभापति को कुछ प्रश्नों के उत्तरों से उत्पन्न मुद्दों पर आधे घंटे की चर्चा को स्वीकार करने की सिफारिश की।[30]

समिति ने 11 नवंबर, 2010 को हुई अपनी बैठक में कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री सौमित्र सेन को पद से हटाने हेतु संविधान के अनुच्छेद 124(4) के साथ पठित अनुच्छेद 217 के अधीन प्रस्ताव पर चर्चा हेतु 4 घंटे आवंटित किए।[31]

कभी-कभी समिति यह सिफारिश कर सकती है कि सभा बिना किसी चर्चा के कार्य की किसी मद को निबटा सकती है[32] या दो या दो से अधिक कार्य की मदों की विषय-वस्तु एक जैसी होने पर, सभा में उन मदों पर साथ-साथ चर्चा की जा सकती है[33] या किसी दिन एक विशेष विधेयक पुर:स्थापित किया जा सकता है और उसे समिति के पास भेजा जा सकता है या एक ही बैठक में विधेयक के सभी चरणों पर विचार किया जा सकता है।

समिति ने सिफारिश की कि सभा में 18 मई, 1995 को दंड विधि संशोधन विधेयक, 1995 पुर:स्थापित किया जाए और उसे विभाग-संबंधित गृह कार्य संबंधी संसदीय स्थायी समिति के पास भेजा जाए; तथा समिति दो दिन के अंदर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करे और 22 मई, 1995 को विधेयक विचार और पारण के लिए लिया जाए।[34]

समिति ने सिफारिश की कि छठी अनुसूची को असम राज्य के संबंध में उसके लागू होने के बारे में संविधान (संशोधन) विधेयक, 1995 को 17 अगस्त, 1995 को उसके पुर:स्थापन के तत्काल बाद विचार और पारण के लिए लिया जाएगा।[35]

समिति ने सिफारिश की कि राष्ट्रीय विरासत स्थल आयोग विधेयक, 2009 को इससे संबंधित विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समिति को उसके गठन के पश्चात् सौंप दिया जाए और समिति को इसकी जांच करके और यथोचित समयावधि के भीतर इसका प्रतिवेदन प्रस्तुत करना चाहिए।[36]

समिति ने सिफारिश की कि नालंदा विश्वविद्यालय विधेयक, 2010 को इससे सम्बद्ध प्रतिवेदन प्रस्तुत करना सम्बद्ध विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समिति को भेजे बिना 220वें सत्र के दौरान विचार तथा पारण हेतु विचारार्थ लिया जाए।[37]

समिति विधेयक या कार्य की किसी अन्य मद के संबंध में समय के आवंटन के लिए पहले से की गई सिफारिश की पुन: समीक्षा भी कर सकती है और इसकी तारीख और समय पर पुन: निर्धारित कर सकती है।[38]

परिपाटी के अनुसार समिति उन मंत्रालयों के नामों की सिफारिश करती है जिनके कार्यकरण पर सभा में बजट सत्र के दौरान चर्चा की जानी चाहिए और उस क्रम को भी निश्चित करती है, जिसके अनुसार उन पर चर्चा की जाती है।[39]

चूंकि समिति को गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों[40] और संकल्पों[41] के निबटान के लिए समय आवंटित करने की विशेष शक्ति दी गई है, इसलिए वह यह सिफारिश भी कर सकती है कि सभा शुक्रवार के लिए सूचीबद्ध गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य को छोड़

सकती है ताकि अत्यावश्यक सरकारी विधायी और अन्य कार्यों को पूरा किया जा सके और उस सप्ताह[42] या परवर्ती[43] या अगले सत्र[44] में किसी गैर-सरकारी सदस्यों के कार्यों के लिए समय आवंटित कर दे। समिति शुक्रवार के दिन गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए समय को किसी अन्य समय और दिन के लिए बदलने की भी सिफारिश कर सकती है।[45]

पूर्ववर्ती वर्षों में ऐसे अवसर आए हैं जब समिति ने यह सिफारिश की है कि गैर-सरकारी सदस्यों के कार्यों के लिए आवंटित दिवसों को सरकारी कार्य के दिवसों में परिवर्तित कर दिया जाए या शुक्रवारों के स्थान पर अन्य दिवस आवंटित किये जाएं।[46]

एक बार समिति ने सिफारिश की कि (1) मध्याह्न भोजनावकाश में आधे-घंटे की कटौती की जानी चाहिए; (2) सभा को प्रतिदिन म.प. 6.00 बजे तक बैठना चाहिए; (3) गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए आवंटित शुक्रवार के दिन को सरकारी कार्य के लिए आवंटित किया जाना चाहिए; और (4) सभा को सरकारी कार्य करने के लिए शनिवार के दिन बैठना चाहिए। एक सदस्य ने तर्क किया कि जहां तक समय आवंटित करने के समिति के कार्य का संबंध है, समिति की गैर-सरकारी सदस्यों के दिवस को सरकारी कार्य-दिवस में परिवर्तित करने से संबंधित सिफारिश नियमों की शक्ति से बाहर है और यह पहले से परिचालित की गई कार्यावलि को नकार देती है। सभापति ने कहा कि सत्र की शेष अवधि के दौरान अत्यावश्यक सरकारी कार्य को पूरा करने की दृष्टि से सरकार ने उनके समक्ष अभ्यावेदन किया कि एक विशेष दिन सरकारी कार्य के लिए आवंटित किया जाना चाहिए। उन्होंने इस अनुरोध को कार्य मंत्रणा समिति के विचार जानने के लिए उसके पास भेजा। बैठक में यह सहमति हुई कि सरकार के अनुरोध को मान लिया जाए। तथापि, सभा के नेता के इस आश्वासन के बाद यह मामला समाप्त हुआ कि सरकार गैर-सरकारी सदस्यों के लिए समय देने पर विचार करेगी।[47]

कई अवसरों पर समिति ने कतिपय प्रक्रियात्मक या विशेष मामलों पर भी विचार किया है।

17 मार्च, 1986 को समिति ने सिफारिश की कि 1986 में निवृत्त हो रहे सदस्यों को 18 मार्च, 1986 को शुभकामनाएं दी जानी चाहिए।[48] 14 मार्च, 1995 को समिति ने सिफारिश की कि अब से प्रतिवर्ष 3 अप्रैल को उपयुक्त तरीके से 'राज्य सभा दिवस' के रूप में मनाया जाए।[49] 26 फरवरी, 1996 को समिति ने सिफारिश की कि आन्ध्र प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री, श्री एन.टी. रामाराव की मृत्यु पर सभा में 27 फरवरी, 1996 को श्रद्धांजलि अर्पित की जाए।[50] समिति ने भारत सरकार के मंत्रालयों के कार्यकरण के संबंध में राज्य सभा में चर्चा, जो 1970 में बजट सत्र में शुरू की गई थी, की प्रक्रिया को निर्धारित किया।[51] समिति ने उस समय को निर्धारित किया जिसमें सामान्यत: मंत्री सभा में वक्तव्य देंगे,[52] उस क्रम का निर्धारण किया जिसमें सदस्यों से प्राप्त स्पष्टीकरण के नोटिसों को क्रमबद्ध किया जाएगा[53] और मंत्रियों के वक्तव्यों पर स्पष्टीकरण मांगने के लिए प्रक्रिया विहित की।[54]

एक अवसर पर समिति ने सिफारिश की कि सत्र के दौरान प्रति सप्ताह एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव या अल्पकालिक चर्चा पर बहस की जानी चाहिए।[55]

समिति ने समय-समय पर ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पर स्पष्टीकरण,[56] विशेष उल्लेख की सूचनाओं,[57] शून्य काल के उल्लेखों[58] और प्रश्नकाल के विनियमन[59] संबंधी प्रक्रिया पर भी विचार किया।

समिति ने सिफारिश की कि 'भारत छोड़ो आंदोलन' की 50वीं वर्षगांठ मनाने के लिए सभा की एक विशेष बैठक की जानी चाहिए।[60] समिति ने सभा में पच्चीस वर्ष की अबाधित सेवा पूरी करने वाले सदस्य, श्री भूपेश गुप्त को बधाई देने के लिए एक तारीख की सिफारिश की।[61]

समिति ने सभा की कार्यवाही के दूरदर्शन द्वारा प्रसारण के मामले पर चर्चा की और सर्वसम्मति से सिफारिश की कि राज्य सभा की कार्यवाही का लोक सभा की कार्यवाही के साथ-साथ दूरदर्शन द्वारा प्रसारण किया जाना चाहिए।[62]

समिति ने दूरदर्शन द्वारा लोक सभा की कार्यवाही को प्रसारित करने की स्थिति में इस सभा की प्रश्न काल की कार्यवाही को रिकार्ड करने के आकाशवाणी के प्रस्ताव को भी मंजूरी दे दी थी ताकि दोनों संचार माध्यमों से दोनों सभाओं के प्रश्न काल की कार्यवाही को दर्शकों और श्रोताओं को उपलब्ध कराया जा सके।[63] एक अन्य अवसर पर समिति ने सिफारिश की कि दोनों सभाओं के सामान्य महत्व के मामलों पर जैसे सभाओं की कार्यवाहियों का दूरदर्शन द्वारा प्रसारण किया जाना,[64] का निर्णय लेने के लिए एक संयुक्त सामान्य प्रयोजन समिति गठित की जानी चाहिए। समिति ने सिफारिश की कि जब राज्य सभा में शून्यकाल और विशेष उल्लेख के मामलों को उठाया जाता है, तब राज्य सभा की कार्यवाही को दूरदर्शन द्वारा सीधे प्रसारित किए जाने की फिलहाल जरूरत नहीं है।[65]

एक अवसर पर समिति ने देश में चुनाव रोकने के निर्वाचन आयोग के आदेश पर महान्यायवादी को अपनी राय देने के लिए सभा में बुलाने संबंधी सुझाव पर विचार किया। समिति का यह विचार था कि उन्हें बुलाए जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी।[66]

समिति ने सिफारिश की कि सरकारी विधायी कार्य करने के लिए प्रतिदिन कम से कम चार घंटे का समय होना चाहिए।[67]

एक अन्य अवसर पर समिति ने संयुक्त राष्ट्र की 50वीं वर्षगांठ मनाने के लिए सभापति द्वारा उपस्थित किये गये प्रारूप संकल्प पर विचार किया और यह सुझाव दिया कि इसे सुरक्षा परिषद् के पुनर्गठन को ध्यान में रखते हुए संशोधित किया जाना चाहिए।[68]

एक अन्य अवसर पर समिति ने सिफारिश की कि 26 नवंबर, 2008 को मुंबई में हुए आतंकी हमले पर इसकी प्रथम वर्षगांठ के उपलक्ष्य में सरकार प्रस्ताव ला सकती है तथा इस अवसर पर सभी राजनीतिक दलों के नेताओं द्वारा बोलने के पश्चात प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकृति दी जा सकती है।[69]

समिति का कार्यकरण

प्रत्येक सत्र के आरंभ होने से पहले, संसदीय कार्य मंत्रालय से सरकारी विधायी और अन्य कार्यों संबंधी एक कार्यक्रम प्राप्त होता है तथा उसे समय आवंटित करने हेतु समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। उसे समिति के सदस्यों को परिचालित किया जाता है।

आरंभिक वर्षों में, समिति से सरकारी विधायी और अन्य कार्यों के निपटान के लिए समय के आवंटन हेतु जब कभी भी अनुरोध किया गया, तभी उसकी बैठक बुलाई जाती थी। वर्तमान परम्परा के अनुसार, सामान्यत: समिति की बैठक सत्र के पहले ही दिन बुलाई जाती है और तत्पश्चात् सत्र के दौरान प्रति सप्ताह बृहस्पतिवार को बुलाई जाती है।

समिति की साप्ताहिक बैठकें नवंबर, 1977 से आरंभ हुई। 12 मार्च, 1981 को यह सुझाव दिया गया था कि समिति की बैठक प्रत्येक बुधवार को होनी चाहिए।[70] 25 मार्च, 1985 को यह निर्णय लिया गया कि (1) सदन के सत्र के दौरान समिति की बैठकें प्रत्येक बृहस्पतिवार और (2) प्रत्येक सत्र के पहले दिन बुलाई जाएं।[71]

समिति के निर्णय समिति के कार्यवृत्त में समाविष्ट किये जाते हैं जो समिति के सदस्यों और समिति की बैठक में उपस्थित विशेष आमंत्रितियों और अन्य सदस्यों को भी परिचालित किये जाते हैं।

कार्य की विभिन्न मदों के लिए समय के आवंटन पर विचार किये जाते समय, समिति निम्न कारकों पर ध्यान देती है : (1) विधेयक का विस्तार और महत्व; (2) किसी विषय में सदस्यों की सामान्य रुचि और दिलचस्पी; (3) विगत में या लोक सभा में इसी प्रकार के मामलों के संबंध में लिया गया समय; (4) किसी उपाय को शीघ्र निपटाये जाने या उस पर चर्चा किए जाने की आवश्यकता और तात्कालिकता या अन्यथा; और (5) सभा के पास उपलब्ध कुल समय।

कार्य मंत्रणा समिति की 23 जुलाई, 2009 को हुई बैठक में सभापति ने सभा में चर्चाओं के दौरान सदस्यों के बोलने के समय का आवंटन तथा इसके विनियमन संबंधी सुझाव दिये। सभापति ने बताया कि पीठासीन अधिकारी के लिए सदस्य के भाषण की समय-सीमा विनियमित करना मुश्किल होता है, क्योंकि इच्छुक प्रतिभागियों की पूरी सूची चर्चा शुरू होने के समय उपलब्ध नहीं होती है। कुछ चर्चा के पश्चात्, समिति सभापति के इस सुझाव से सहमत हो गई कि वे सदस्य जो चर्चा में बोलना चाहते हैं, उन्हें चर्चा शुरू होने से पूर्व 30 मिनट पहले तक पटल कार्यालय में अपना नाम दे देना चाहिए।

16 जुलाई, 2009 को हुई कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में सभापति ने सुझाव दिया कि केवल उन मामलों को, जो पिछले दिवस की बैठक के समापन के पश्चात की अवधि के दौरान उठते हैं, शून्यकाल के दौरान उठाए जाने की अनुमति दी जा सकती है। कुछ चर्चा के पश्चात् समिति सभापति के सुझाव से सहमत हो गई, जो कि पीठासीन अधिकारियों की समिति की सिफारिशों पर आधारित था, जिसकी रिपोर्ट 10 अक्टूबर, 2004 को कोलकाता में हुए 'भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन' में प्रस्तुत की गई थी।

22 अप्रैल, 2010 को हुई कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में सभापति ने सुझाव दिया कि सरकार सदस्यों और मंत्रियों को अग्रिम सूचना देने के लिए वर्ष, अर्थात् राज्य सभा के विभिन्न सत्रों की अवधि को नियत करने वाले वर्ष के दौरान सभा की शुरुआत तथा स्थगन की तारीख दर्शाने वाला संसदीय कैलेंडर प्रकाशित करने का विचार कर सकती है।

7 मार्च, 2013 को हुई कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में सभापति ने टिप्पणी की कि चर्चा की शुरुआत करने के पश्चात् वक्ताओं की सूची में बड़ी संख्या में सदस्यों के नामों को जोड़ा जाता है जिससे समय प्रबंधन में समस्या का सामना करना पड़ता है। उन्होंने सुझाव दिया कि संबंधित दलों के नेताओं को सुनिश्चित करना चाहिए कि चर्चा में भाग लेने के इच्छुक सदस्यों को अपने नाम चर्चा शुरू होने से 30 मिनट पहले ही दे देने चाहिए तथा इसका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए।

समय के आवंटन के संबंध में समिति का प्रतिवेदन

(क) नियमों में उपबंध

किसी विधेयक अथवा अन्य कार्य के बारे में समिति द्वारा अनुशंसित समय का आवंटन सभापति अथवा, उनकी अनुपस्थिति में, उपसभापति द्वारा सभा को सूचित किया जाना और संसदीय समाचार में अधिसूचित किया जाना अपेक्षित है।[72] सूचित किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र उपसभापति द्वारा अथवा उनकी अनुपस्थिति में सभापति द्वारा नामोद्दिष्ट समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा यह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकेगा, "कि राज्य सभा, यथास्थिति अमुक-अमुक विधेयक या विधेयकों, अथवा अन्य कार्यों के बारे में समिति द्वारा प्रस्तावित समय के आवंटन से सहमत है।" और यदि ऐसा प्रस्ताव राज्य सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाए तो वह इस प्रकार से प्रभावी होगा, जैसे कि वह सभा का आदेश हो। इस प्रकार के प्रस्ताव के संबंध में यह संशोधन उपस्थित किया जा सकेगा कि प्रतिवेदन या तो बिना परिसीमा के अथवा

किसी विशेष विषय के संबंध में समिति को पुनः सौंपा जाये। इस प्रकार के प्रस्ताव पर चर्चा के लिए आधे घंटे से अधिक समय नियत नहीं किया जाएगा और कोई सदस्य ऐसे प्रस्ताव पर पांच मिनट से अधिक नहीं बोलेगा।[73]

सभापति के पास विधेयक के किसी विशेष प्रक्रम या अन्य कार्य को पूरा करने के लिए समय के आवंटन के क्रम के अनुसार निश्चित समय पर विधेयक के उस प्रक्रम या अन्य कार्य के संबंध में सभी अवशिष्ट विषयों को निबटाने के लिए आवश्यक प्रत्येक प्रस्ताव पर तुरंत मत लेने की शक्ति है।[74]

समय के आवंटन के क्रम में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता, जब तक कि सभापति ऐसा न करें, जो सदन का अभिप्राय मालूम करके यदि इस बात से संतुष्ट हो जाये कि ऐसे परिवर्तन के लिए सामान्य सहमति है तो वह ऐसा परिवर्तन कर सकेगा।[75]

(ख) स्थापित प्रक्रिया और पद्धति

तथापि, उपर्युक्त प्रक्रिया का प्रायः इसके आरंभ से वास्तविक व्यवहार में अनुसरण नहीं किया जाता। सुस्थापित पद्धति के अनुसार, सभापीठ द्वारा सदन को समिति की सिफारिशें सामान्यतः उसी दिन घोषणा के रूप में सूचित कर दी जाती हैं जिस दिन समिति की बैठक होती है (या अगले दिन)। यह घोषणा उसी दिन संसदीय समाचार भाग-2 में अधिसूचित की जाती है। घोषणा को अंतिम समझा जाता है और तत्संबंधी कोई औपचारिक प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जाता।

5 अगस्त, 1952 को हुई अपनी पहली ही बैठक में, समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ कतिपय विधेयकों और एक गैर-सरकारी संकल्प के लिए समय आवंटित किया। समिति इस बात पर सहमत थी कि जबकि सामान्यतः सभापति समिति द्वारा निर्धारित किए गए कार्यक्रम को स्वीकार कर सकता है; तथापि, राज्य सभा को तत्कालीन नियम 28ङ (वर्तमान नियम 34 के तत्समान) में यथाविचारित कोई औपचारिक सूचना भेजना या समय के आवंटन का क्रम आवश्यक नहीं था। तथापि, निवारक निरोध (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1952 के संबंध में इस पर चर्चा के विभिन्न चरणों के लिए समिति ने एक विस्तृत समय-तालिका का प्रस्ताव रखा था। सभापति ने उस विधेयक के लिए समय के आवंटन के आदेश के संबंध में प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए समिति के एक सदस्य को नामनिर्दिष्ट किया।[76] सभापति ने समिति के परामर्शानुसार सदन में समय तालिका की घोषणा करते हुए अंत में यह कहा, "मुझे आशा है कि माननीय सदस्य इस व्यवस्था को पर्याप्त संतोषजनक पाएंगे।"[77] कोई औपचारिक प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया गया था।

तथापि, 14 अप्रैल, 1955 को सभापति द्वारा समय के आवंटन की घोषणा के पश्चात् उपसभापति ने निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया : "यह सदन आज सभापति द्वारा यथाघोषित सरकारी कार्य के संबंध में कार्य मंत्रणा समिति द्वारा प्रस्तावित समय के आवंटन से सहमत है।" प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।[78]

23 अगस्त, 1955 को हुई अपनी नौवीं बैठक में समिति ने यह सिफारिश की कि समिति द्वारा यथाप्रस्तावित समय के आवंटन के संबंध में सदन में कोई प्रस्ताव उपस्थित किये जाने की आवश्यकता नहीं है। तथापि सभापति द्वारा सदन में समय के आवंटन की घोषणा सामान्य ढंग से की जाएगी और उक्त आशय का संसदीय समाचार भी प्रकाशित किया जाएगा।[79]

(ग) उक्त परिपाटी पर आपत्ति

सदन की परिपाटी और समिति द्वारा समय के आवंटन से संबंधित नियमों के उपबंधों के बारे में अनेक अवसरों पर प्रश्न उठाए गए हैं।

29 अगस्त, 1966 को (समिति की सिफारिशों से सहमति व्यक्त करने संबंधी प्रस्ताव के बारे में) उपसभापति की इस घोषणा के संदर्भ में कि विनियोग (संख्यांक 3) विधेयक, 1966 पर विचार करने और उसे पारित करने के लिए कार्य मंत्रणा समिति ने एक घंटा आवंटित किया है, यह प्रश्न किये गये थे कि क्या उक्त नियम का पालन किया जा रहा है। एक सदस्य ने यह सुझाव दिया कि एक औपचारिक प्रस्ताव द्वारा सदन की यह इच्छा मालूम की जानी चाहिए कि क्या सदन विद्यमान परिपाटी का पालन करना चाहता है या विद्यमान परिपाटी में कोई संशोधन किया जाना चाहिए और उसे नियम के अनुरूप बनाया जाना चाहिए। उपसभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की :

...ऐसे नियम हैं जिनका प्रयोग नहीं किया जाता है। यहां विधि जैसी चीज भी है और परिपाटी और अभिसमय जैसी चीज भी है जिन्हें हमने अनेक वर्षों में स्थापित किया है। हमने किसी निश्चित नियम का पालन नहीं किया है कि हमें प्रस्ताव लाना चाहिए। हमने...घोषणा करने की परिपाटी को अपनाया है, क्योंकि हमने इसे सदन के सभी वर्गों के लिए संतोषप्रद पाया है और सभापीठ द्वारा भी अपने विवेक का उपयोग किया जा सकता है। यदि कोई औपचारिक प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है और उसे स्वीकार किया जाता है तो कठोर बात हो जाएगी और यदि यह निर्धारित किया जाता है कि एक घंटा समय दिया जाता है, तो समय एक घंटे से अधिक नहीं दिया जाएगा। सभापति अपने विवेक का उपयोग नहीं कर सकते हैं। यदि यह बात औपचारिक प्रस्ताव के रूप में है, तो सभापति ऐसे अवसरों पर अपने विवेक का उपयोग नहीं कर सकते हैं, इसलिए, मैं यह बात सदन की इच्छा पर छोड़ देता हूं कि क्या माननीय सदस्यगण कोई कठोर व्यवस्था चाहते हैं, क्या सभापति एक मिनट तक का ध्यान रखेंगे और समयावधि की पाबंदी का पालन करेंगे और विधि का कड़ाईपूर्वक पालन करेंगे या क्या आप वर्तमान परिपाटी को ही जारी रखना चाहते हैं जोकि बहुत संतोषजनक ढंग से कार्य कर रही है। मैं यही करूंगा जो कि सदन की इच्छा होगी। यदि सदन यह निर्णय करना चाहता है कि औपचारिक प्रस्ताव उपस्थित किया जाना चाहिए तो इस मामले को सही निर्णय लिये जाने के लिए सभापति के सुपुर्द किया जा सकता है।

उपसभापति की टिप्पणियों से सहमत होते हुए सदन के नेता (श्री एम.सी. छागला) ने आगे कहा :

यदि हम सदन के समक्ष एक औपचारिक संकल्प लाते हैं तो इस पर लंबी कटु चर्चा होगी तथा कार्यक्रम तैयार करना और अधिक कठिन हो जाएगा। अत: मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि इस प्रथा को जारी रहने दिया जाए। मैं...इस बात से सहमत हूं कि...कार्य मंत्रणा समिति ने जो निर्णय लिया था उसकी औपचारिक घोषणा होने के बाद सभापति समय बढ़ाने तथा उसका समायोजन करने के लिए स्वतंत्र हैं ताकि किसी मद विशेष के लिए पर्याप्त समय सुनिश्चित हो सके। जब सभापीठ को ऐसा लगता है कि समय पर्याप्त नहीं है तो मुझे विश्वास है कि वह अपने विवेक का प्रयोग करेंगे तथा समय बढ़ा देंगे। अत: मैं सभा से हस्तक्षेप न करने तथा वर्तमान प्रथा को जारी रहने देने का अनुरोध करता हूं।[80]

8 मार्च, 1966 को यह मामला समिति द्वारा गैर-सरकारी सदस्यों के दिन को सरकारी कार्य दिवस में बदलने की सिफारिश के संदर्भ में फिर आ गया। एक सदस्य ने तर्क दिया कि सभा में की गई घोषणा नियम 35 की अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं थी, क्योंकि कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया गया था और जबकि सभा द्वारा सामान्यत: सिफारिश का अनुमोदन किया जाना था। वह भी तब जब कि कार्य में मूलभूत रूप से परिवर्तन किया गया यथा गैर-सरकारी सदस्य दिवस को सरकारी कार्य दिवस में रूपांतरित कर दिया गया है।[81]

25 नवंबर, 1966 को जब सभापीठ ने कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसार सरकारी तथा अन्य कार्य के लिए समय आवंटन की घोषणा की तो किसी विधेयक को छोड़ने के लिए मुद्दा उठाया गया। उपसभापति ने व्यवस्था दी कि ऐसा नहीं किया जा सकता। यह सभा को तय करना है कि क्या वर्तमान परंपरा का अनुसरण किया जाना चाहिए अथवा नियम में दिए गए किसी औपचारिक प्रस्ताव को उपस्थित किया जाना चाहिए।[82]

घोषणा के बाद उठाए जा रहे इसी प्रकार के मुद्दों के संबंध में सभापति ने इसे सभा में इस बात पर आम सहमति जानने के लिए रखा कि क्या समिति की सिफारिश को स्वीकार किया जाए।[83]

जब एक सदस्य ने यह व्यवस्था का प्रश्न उठाया (कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश की घोषणा के पश्चात्) कि एक उपयुक्त प्रस्ताव होना चाहिए, तब उपसभापति ने टिप्पणी की :

> यह प्रक्रिया सदस्यों तथा सभा की सुविधा के लिए अपनाई गई है क्योंकि जब हम किसी प्रस्ताव को किसी बात पर चर्चा के लिए दो घंटे का समय निर्धारित करते हुए स्वीकार करते हैं तो दो घंटे का अर्थ केवल दो घंटे ही है– कभी-कभी हम सभापीठ तथा सभा के विवेक से तीन घंटे अथवा चार घंटे का समय ले लेते हैं। अत: यह प्रक्रिया मुद्दों पर समुचित चर्चा कराने के लिए ही अपनाई गई है।[85]

कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में एक बार महासचिव ने कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशों की घोषणा की परिपाटी के संबंध में सदन में सदस्यों द्वारा उठाए जा रहे विभिन्न मुद्दों से समिति को अवगत कराया और समिति से मार्गदर्शन मांगा। कुछ चर्चा के बाद आम सहमति यह थी कि वर्तमान परंपरा जारी रहनी चाहिए।[86]

(घ) नियम समिति के विचार

नियम समिति ने इस सुझाव पर विचार किया कि नियम 35 में निर्धारित की गई प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए (अर्थात् समय आवंटन के प्रस्ताव को स्वीकार करना)। समिति का विचार था कि कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशों की सभा में घोषणा किए जाने की परंपरा संतोषजनक ढंग से कार्य कर रही है और इसे जारी रखना चाहिए। समिति का यह भी विचार था कि सभापति उपयुक्त मामलों में कार्य मंत्रणा समिति के किसी सदस्य को प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए नामित कर सकते हैं जैसाकि नियम 35 में दिया गया है।[87]

समय के आवंटन की घोषणा न किया जाना

कई अवसरों पर समिति यह सिफारिश कर सकती है कि समिति द्वारा सरकारी अथवा अन्य कार्य के लिए किए गए समय के आवंटन के संबंध में कोई घोषणा न की जाए।

23 अगस्त, 1966 को हुई समिति की बैठक में समिति ने सरकारी कार्यों तथा गैर-सरकारी सदस्यों के कार्यों की कतिपय मदों के लिए समय आवंटित किया। इसने अतिरिक्त मदों के लिए भी समय आवंटित किया किन्तु निर्णय लिया कि अतिरिक्त मदों के लिए समय आवंटन संबंधी घोषणा फिलहाल नहीं की जाएगी।[88]

15 दिसंबर, 1978 को हुई समिति की बैठक में तत्कालीन प्रधान मंत्री तथा तत्कालीन गृह मंत्री के पारिवारिक सदस्यों के विरुद्ध आरोपों के संबंध में किसी अनियत दिन वाले प्रस्ताव पर चर्चा के लिए समय प्रदान करने संबंधी मामलों पर चर्चा की गई। चूंकि बैठक में किसी सरकारी विधायी तथा अन्य कार्य के लिए कोई समय आवंटित नहीं किया गया, समिति का मत था कि इस संबंध में सभा में कोई औपचारिक घोषणा न की जाए।[89]

18 अगस्त, 2011 और 2 मई, 2013 को हुई समिति की बैठक में सरकारी कार्य की मदों के लिए कोई समय आवंटित नहीं किया गया था। अत: इस संबंध में सभा में कोई घोषणा नहीं की गई।

समिति की सिफारिशों की प्रकृति

कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशें मात्र अनुशंसात्मक हैं और समिति द्वारा चर्चा के लिए अनुशंसित कोई विषय उस मामले में प्रयोज्य अन्य नियमों के अध्यधीन है।

6 मई, 1958 को उपसभापति ने कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशों की घोषणा की। चर्चा के लिए जिन मदों की सिफारिश की गई थी उनमें से एक मद बाढ़ की स्थिति भी थी। जब तीन से चार दिनों तक मामला कार्यावलि में सम्मिलित नहीं हुआ तो एक सदस्य ने इसको शामिल न किए जाने के बारे में मुद्दा उठाया [तत्कालीन नियम 28ज के संदर्भ में (वर्तमान नियम 37 के तत्समान)], उपसभापति ने व्यवस्था दी:

> कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशें मात्र अनुशंसात्मक हैं और अन्य कार्य संचालन नियमों के अध्यधीन हैं। चूंकि चर्चा किसी प्रस्ताव के आधार पर थी, सभापति को समय नियमों के अनुसार निश्चित करना था। नियमों में यह नहीं कहा गया है कि चूंकि यह मद कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशों में सम्मिलित है, इसे अवश्य लिया जाना चाहिए।[90]

याचिका समिति

याचिकाएं

शिकायतों के निवारण के लिए याचिका देने की अवधारणा को संविधान में अप्रत्यक्ष रूप से मान्यता मिली हुई है जिसमें उपबंध है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी शिकायत के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार है।[91] राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के अध्याय 10 में लोगों द्वारा याचिकाएं प्रस्तुत करने तथा इस प्रयोजन हेतु सभा की विशेष रूप से गठित समिति द्वारा उन पर विचार करने संबंधी नियम सम्मिलित हैं।[92]

याचिकाओं का विषय-क्षेत्र

सभापति की सहमति से ऐसे विधेयक के संबंध में याचिकाएं राज्य सभा को उपस्थित या प्रस्तुत की जा सकेंगी जो प्रकाशित किया गया हो अथवा पुर:स्थापित किया गया हो[93] अथवा जिसके बारे में प्रस्ताव की सूचना प्राप्त हुई हो;[94] अथवा कोई ऐसा अन्य विषय जो राज्य सभा के विचाराधीन कार्य से संबंधित हो;[95] अथवा कोई विषय जो सामान्य लोक हित का हो[96] परन्तु ऐसा न हो जो भारत के किसी भाग में अधिकारिता रखने वाले किसी न्यायालय या किसी जांच न्यायालय या किसी कानूनी न्यायाधिकरण या प्राधिकारी या किसी अर्द्धन्यायिक निकाय या आयोग के संज्ञान में हो; अथवा जिससे ऐसे विषय उठते हों जिनसे भारत सरकार मुख्यतया संबंधित न हो, अथवा जो किसी मूल प्रस्ताव या संकल्प के द्वारा उठाया जा सकता हो, अथवा जिसके लिए, विधि के अधीन, जिसमें अधीनस्थ विधान (अर्थात् नियम, विनियम या उपविधियां सम्मिलित होंगी जो केन्द्रीय सरकार या किसी प्राधिकारी द्वारा बनाए गए हों)

उपचार उपलब्ध है।[97] साधारणतया, सभापति द्वारा सभा को याचिका उपस्थित या प्रस्तुत किए जाने की सहमति देने से पहले, यदि आवश्यक हो, तो इस याचिका की जांच, इसकी विषय-वस्तु प्रथम दृष्टया अनुमत विषय-क्षेत्र के भीतर है या नहीं के बारे में सरकार की टिप्पणियां प्राप्त करने के बाद की जाती है।

याचिका का सामान्य प्रपत्र

याचिका एक विहित प्रपत्र में दी जाएगी। याचिका का सामान्य प्रपत्र राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों की प्रथम अनुसूची में दिया गया है और उसे ऐसे परिवर्तनों के साथ जो प्रत्येक मामले की परिस्थितियों में अपेक्षित हों, उपयोग में लाया जा सकेगा और यदि उसे इस प्रकार उपयोग में लाया जाये तो वह पर्याप्त होगा।[98] जैसाकि प्रपत्र में देखा जा सकता है, याचिका औपचारिक रूप से राज्य सभा को संबोधित की जानी चाहिए, उसमें संक्षेप में याचिकाकर्ता का नाम और पद या उसका विवरण होना चाहिए, याचिका देने वाले के मामले का संक्षिप्त विवरण और जिस विषय से उसका संबंध हो उसके बारे में याचिका देने वाले के निश्चित उद्देश्य का वर्णन करने वाली प्रार्थना के साथ समाप्त होगी।[99] (उदाहरणार्थ–"कि विधेयक के संबंध में आगे कार्यवाही की जाए या न की जाए" या "'याचिका देने वाले (वालों) के मामले के लिए विधेयक में विशेष उपबंध किया जाये" या राज्य सभा के समक्ष विधेयक या विषय अथवा सामान्य लोकहित के विषय के संबंध में कोई अन्य समुचित प्रार्थना)। प्रत्येक याचिका सम्मानपूर्ण और संयत भाषा में अभिव्यक्त होगी। प्रत्येक याचिका हिन्दी या अंग्रेजी में होगी। यदि कोई याचिका किसी अन्य भाषा में दी जाए, तो उसके साथ उसका हिन्दी या अंग्रेजी अनुवाद संलग्न होगा और उस पर याचिका देने वाले के हस्ताक्षर होंगे।[100]

> सचिव को हिन्दू उत्तराधिकारी विधेयक, 1954 से संबंधित नौ याचिकायें तेलुगु भाषा में प्राप्त हुई। मामले की सूचना 28 नवंबर, 1955 को सदन में दी गई। समिति ने याचिकाओं पर विचार किया और निदेश दिया कि विधेयक के विस्तार हेतु एक पत्र के रूप में उसके अंग्रेजी अनुवाद को परिचालित किया जाये।[101]

याचिका के प्रत्येक हस्ताक्षरकर्ता का पूरा नाम और पता उसमें दिया जाएगा और उसका प्रमाणीकरण हस्ताक्षरकर्त्ता द्वारा, यदि साक्षर हो तो उसके हस्ताक्षर से और यदि निरक्षर हो तो उसके अंगूठे के निशान से किया जायेगा।[102] किसी याचिका के साथ पत्र, शपथ-पत्र या अन्य प्रलेख संलग्न नहीं किये जाएंगे।[103] यदि याचिका किसी सदस्य द्वारा उपस्थित की जाए तो प्रत्येक याचिका पर वह प्रतिहस्ताक्षर करेगा।[104]

याचिका का सदन में उपस्थापन

जो सदस्य सदन में याचिका उपस्थापित करना चाहता है वह महासचिव को याचिका उपस्थित करने के अपने इरादे की पूर्व सूचना देगा।[105] ऐसी याचिका मिलने पर याचिका से संबंधित नियमों के अनुसार उसकी ग्राह्यता का निर्णय करने के लिए सचिवालय में उसकी

जांच की जाती है। यदि सभापति याचिका को ग्रहण कर लेता है तो संबद्ध सदस्य को उसके लिए सुविधाजनक तारीख को याचिका को प्रस्तुत करने की अनुमति मिल जाएगी और उस दिन की कार्यावलि में याचिका को प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक प्रविष्टि कर दी जाएगी। कार्यावलि में सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों के तत्काल बाद प्रस्तुत की जाने वाली मदों को सम्मिलित किया जाता है।

लोक सभा का सदस्य राज्य सभा में याचिका दे सकता है जिसे राज्य सभा में राज्य सभा के सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जाना होता है। उदाहरणार्थ, श्री राम कंवर बेरवा, संसद् सदस्य (लोक सभा) द्वारा हस्ताक्षरित बेरवा समुदाय को अनुसूचित जातियों की सूची में अंतर्विष्ट करने से संबंधित एक याचिका राज्य सभा में प्रस्तुत की गई थी।[106]

याचिका प्रस्तुत करने वाला सदस्य स्वयं को इस कथन तक सीमित रखेगा : "मैं...से संबंधित याचिका देने वाले (वालों)....द्वारा हस्ताक्षरित याचिका प्रस्तुत करता हूं" जैसाकि कार्यावलि में दिया गया है। इस कथन पर वाद-विवाद की अनुमति नहीं दी जाएगी।[107]

महासचिव द्वारा याचिका को प्रतिवेदित करना

प्रक्रिया विषयक नियमों में यह प्रावधान है कि याचिका किसी सदस्य द्वारा उपस्थित की जाए या महासचिव को अग्रेषित की जाए।[108] बाद की स्थिति में महासचिव द्वारा सभा को तथ्य के बारे में सूचित किया जाता है। राज्य सभा के प्रारंभिक वर्षों के दौरान सचिव ने अनेक अवसरों पर सदन के समक्ष लंबित विधेयकों के संबंध में उन्हें प्राप्त हुई याचिकाओं को सदन को प्रतिवेदित किया था।

सचिव ने हिन्दू विवाह और विवाह विच्छेद विधेयक, 1952 से संबंधित याचिकाएं प्रतिवेदित की थीं।[109] (विभिन्न बैठकों में कुल एक सौ तिहत्तर याचिकाएं प्रतिवेदित की गईं)। भारतीय टैरिफ (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1954, जिस रूप में उसे लोक सभा द्वारा पारित तथा राज्य सभा को भेजा गया,[110] दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1955,[111] संविधान (चौथा संशोधन) विधेयक, 1954,[112] हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, 1954 (नौ याचिकायें);[113] राज्य पुनर्गठन विधेयक, 1956 (विभिन्न बैठकों में से दो सौ तैंतीस याचिकायें प्रतिवेदित की गयीं);[114] लेडी हार्डिंग आयुर्विज्ञान महाविद्यालय और अस्पताल विधेयक, 1959 (चार याचिकायें);[115] बम्बई पुनर्गठन विधेयक, 1960 (दो याचिकायें);[116] अधिलाभकर विधेयक, 1963;[117] पंजाब पुनर्गठन विधेयक, 1966 (दो याचिकायें)।[118] इसके अतिरिक्त, सचिव ने एक गैर-सरकारी सदस्य द्वारा 8 दिसंबर, 1952 को राज्य सभा में पुर:स्थापित किये गये कारखाना (संशोधन) विधेयक, 1952 से संबंधित याचिकाएं (दो बैठकों में कुल चार सौ प्रतिवेदित की गयीं) को भी प्रतिवेदित किया।[119]

याचिका को समिति को सौंपा जाना

प्रत्येक याचिका, यथास्थिति, सदस्य द्वारा उपस्थापित किये जाने अथवा महासचिव द्वारा प्रतिवेदित किये जाने के बाद याचिका समिति को सौंपी समझी जाएगी।[120]

याचिका समिति का गठन

सभापति समय-समय पर एक याचिका समिति नामनिर्देशित करता है जिसमें दस सदस्य होते हैं।[121]

समिति सर्वप्रथम 1952 में गठित की गई थी जिसमें एक अध्यक्ष और चार सदस्य थे। 1964 तक सदस्य संख्या पांच रही जब उसे बढ़ाकर दस कर दिया गया।[122]

समिति का अध्यक्ष राज्य सभा के सभापति द्वारा समिति के सदस्यों में से नियुक्त किया जाता है। यदि उपसभापति समिति का सदस्य हो तो वह समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाएगा।[123] समिति तब तक कार्य करती रहेगी जब तक नई समिति को नामनिर्देशित न कर दिया जाए।[124] समिति में आकस्मिक रूप से रिक्त हुए स्थानों की पूर्ति सभापति द्वारा की जाएगी।[125] समिति की गणपूर्ति पांच से होगी।[126]

कार्य

वर्ष 1964 तक राज्य सभा में केवल ऐसे विधेयकों से संबंधित याचिकाएं प्राप्त की जा सकती थीं जो (1) भारत के राजपत्र में प्रकाशित या सदन में पुर:स्थापित किये गये हों अथवा जिनके संबंध में नियमों के अधीन प्रस्ताव की सूचना प्राप्त की गई हो अथवा (2) राज्य सभा के समक्ष लंबित पड़े कार्य से संबंधित मामलों से संबंधित याचिकाएं प्रस्तुत की जा सकती थीं। इस प्रकार समिति का कार्य सीमित था। समिति केवल सदस्यों की सूचना के लिए विस्तृत[127] या संक्षिप्त[128] रूप में याचिकाओं के परिचालन की सिफारिश करती थी ताकि सदस्य यदि वे चाहें तो याचिका में उल्लिखित मुद्दों का अनुसरण करके सदन में विधेयक के अनुक्रम को प्रभावित कर सकें। 1964 के बाद से जब राज्य सभा के प्रक्रिया नियमों को संशोधित किया गया तब से समिति के कार्य-क्षेत्र को बढ़ा दिया गया था। संशोधित नियमों के अधीन किसी सामान्य जनहित के मामले से संबंधित याचिकाएं भी प्रस्तुत की जा सकती हैं।[129]

अत: समिति के कार्य इस प्रकार हैं: (1) उसे सौंपी गई प्रत्येक याचिका की जांच करना;[130] (2) उस याचिका में की गई विशिष्ट शिकायतों को वह, ऐसा साक्ष्य प्राप्त करने के बाद जिसे वह ठीक समझे राज्य सभा को प्रतिवेदित करे और विचाराधीन मामले से संबंधित ठोस रूप में या भविष्य में ऐसे मामले रोकने के लिए, उपचारी उपायों का सुझाव देना।[131]

समिति का कार्यकरण

व्यवहार्यत: समिति उन याचिकाओं को, जोकि विधेयकों अथवा सदन के समक्ष लंबित मामलों से विस्तृत अथवा संक्षिप्त रूप से संबंधित हैं, सदस्यों को परिचालित करने का आदेश देती है।

> संविधान (चौथा संशोधन) विधेयक, 1954 को सचिव द्वारा प्रतिवेदित याचिका के संबंध में, समिति ने पाया कि याचिका देने वाले ने अपनी प्रार्थना के समर्थन में अनेक उदाहरण उद्धृत किये थे और चूंकि वे मामले दिल्ली उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में लंबित थे और वे मामले विचारधीन थे। अत: समिति ने इस विधेयक के पत्र के रूप में कुछ पैराओं की विषय-वस्तु एवं याचिका के अंतिम निवेदन को समाविष्ट करते हुए याचिका के सारांश का परिचालन करने का निर्देश दिया।[132]
>
> समिति ने अपने सातवें प्रतिवेदन में राज्य पुनर्गठन विधेयक से संबंधित याचिकाओं के विस्तृत परिचालन का निर्देश दिया था।[133] इसी विधेयक के संबंध में प्राप्त अनुवर्ती याचिकाएं जो पूर्व प्राप्त याचिकाओं के समरूप थीं, समिति ने निर्देश दिया कि इनके परिचालन की आवश्यकता नहीं है और सदस्यों को केवल तत्संबंधी प्रतिवेदन ही परिचालित किया जाए।[134]

जहां तक सामान्य लोक हित के मामलों से संबंधित याचिकाओं का संबंध है, समिति इनमें उल्लिखित परिवादों एवं शिकायतों का गहन परीक्षण करती है; सरकार के संबंधित मंत्रालयों अथवा विभागों से औपचारिक टिप्पणियां मंगवाती है तथा याचिका की विषय-वस्तु के संबंध में मंत्रालयों अथवा विभागों के प्रतिनिधियों और याचिकादाताओं सहित साक्षियों से पूछताछ करती है। यदि आवश्यक हो, तो संबंधित राज्य सरकारों से भी सूचना मंगाई जा सकेगी और राज्य सभा के सभापति की पूर्व अनुमति से समिति द्वारा राज्य सरकारों के अधिकारियों से पूछताछ भी की जा सकेगी।[135] समिति याचिका के विषय से संबंधित समस्या की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करने के लिए मौके पर जाकर अध्ययन भी करती है।

राज्य सभा के सभापति ने समिति के आंतरिक कार्यकरण के लिए इसे नियम बनाने में सक्षम करने हेतु 22 जून, 1976 को निम्नलिखित निदेश दिया था:

> "याचिका समिति इसके पास संदर्भित याचिका से संबंधित सभी मामलों, सभा में प्रस्तत किए अपने प्रतिवेदन में उल्लेखित सिफारिशों के कार्यान्वयन सहित, के संबंध में अपनी प्रक्रिया का निर्धारण करेगी।"[136]

निदेश के अनुसरण में समिति ने अपने आंतरिक कार्यकरण नियम बनाए हैं जो निम्नलिखित हैं:

सभा में याचिका प्रस्तुत किये जाने अथवा इसकी सूचना दिये जाने के पश्चात्, सचिवालय समिति के सदस्यों के सूचनार्थ याचिका की प्रतियां परिचालित करता है, साथ ही याचिका से संबंधित तथ्यों अथवा टिप्पणियों का परिचालन भी किया जाता है जब कभी संबंधित मंत्रालय से ये प्राप्त हों।

जब समिति की बैठक की तारीख एवं समय निर्धारित किया जाता है तब कार्यसूची सहित तत्संबंधित सूचना समिति के सदस्यों को परिचालित की जाती है।

समिति को परिचालित पत्रों को गोपनीय समझा जाता है और इनकी विषय-वस्तु को समिति-अध्यक्ष की अनुमति के बिना किसी के समक्ष प्रकट नहीं किया जा सकता।

समिति-अध्यक्ष के आदेशों से किसी ऐसे सदस्यों को भी समिति की बैठक में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जा सकता है जो समिति का सदस्य नहीं है किन्तु उसे मतदान का अधिकार नहीं होगा।

समिति की प्रत्येक बैठक की कार्यवाही का अभिलेख रखा जाता है। सचिवालय समिति की प्रत्येक बैठक का कार्यवृत्त तैयार करता है। इस तथ्य का उल्लेख संबद्ध बैठक के कार्यवृत्त में किया जाता है कि साक्ष्य समिति के समक्ष दिया गया है। समिति की प्रत्येक बैठक का कार्यवृत्त समिति के सदस्यों को परिचालित किया जाता है।

समिति द्वारा इस प्रकार के निदेश दिये जाने पर मामले के तथ्य अथवा याचिका के संबंध में सचिवालय संबद्ध मंत्रालय की टिप्पणियां मंगवाता है और उन्हें समिति के विचारार्थ रखा जाता है।

सचिवालय समिति की सिफारिशों को अंतर्विष्ट करते हुए प्रारूप प्रतिवेदन तैयार करता है जिसे अनुमोदनार्थ समिति के समक्ष रखा जाता है।

सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र उसकी प्रतियां सभा के सदस्यों और संबद्ध मंत्रालयों को परिचालित की जाती हैं। प्रतिवेदन की एक प्रति संबद्ध याचिकाकर्त्ता को भी भेजी जाती है। यदि याचिका पर एक से अधिक व्यक्तियों के हस्ताक्षर हों, तब प्रतिवेदन की प्रति केवल पहले हस्ताक्षरी को भेजी जाती है।

मंत्रालयों को प्रतिवेदन की प्रस्तुति की तारीख से छः मास की अवधि के भीतर समिति के प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों पर की गई कार्यवाही अथवा की जाने वाली कार्यवाही को दर्शाने वाला विवरण सचिवालय को भेजना होता है। इस प्रकार प्राप्त सूचना को ज्ञापनों के रूप में समिति के विचारार्थ रखा जाता है।

जहां कोई मंत्रालय समिति द्वारा की गई सिफारिशों को कार्यान्वित कराने की स्थिति में नहीं है अथवा इन्हें प्रवृत्त करने में किन्हीं कठिनाइयों का अनुभव करता है, वहां मंत्रालय के विचारों को समिति के समक्ष रखा जाता है, जो, यदि आवश्यक हो, इस मामले में मंत्रालय के मंतव्यों पर विचार करने के पश्चात् सभा में और प्रतिवेदन प्रस्तुत कर सकती है।[137]

प्रतिवेदन

समिति के प्रतिवेदन को सभा में समिति-अध्यक्ष द्वारा अथवा उसकी अनुपस्थिति में समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा रखा जाता है।[138] प्रतिवेदन में याचिका की विषय-वस्तु, हस्ताक्षरी व्यक्तियों की संख्या तथा क्या वह नियमों (याचिका से संबंध) के अनुरूप है और साथ ही क्या परिचालन का निर्देश दिया गया है अथवा नहीं, का उल्लेख करना होता है।[139]

> राज्य पुनर्गठन विधेयक, 1956 के संबंध में कुछ सदस्यों द्वारा प्रस्तुत याचिकाओं के मामले में समिति ने समुक्ति की कि उनमें से कुछ प्रारूप में नहीं थीं, न तो प्रत्यक्षतः संबोधित और न ही उनकी भाषा उपयुक्त थी। अतः समिति ने महसूस किया कि याचिका की विषय-वस्तु को सूचित करना ही पर्याप्त होगा। समिति ने यह भी समुक्ति की कि जब कोई सदस्य किसी याचिका को प्रस्तुत करता है, तब उसे याचिका की संवीक्षा स्वयं ही करनी चाहिए।[140] इसके पश्चात् सचिव द्वारा सभा में और याचिकाएं प्रतिवेदित की गईं और उन्हें समिति को भेजा गया। इनका परिचालन नहीं किया गया क्योंकि वे विलम्ब से प्राप्त हुई थीं और सभा में इस विधेयक पर विचार कुछ ही घंटों में पूरा होने वाला था। तथापि, समिति ने उनके मामले में केवल एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।[141]
>
> अधिलाभ कर विधेयक, 1963 से संबंधित एक याचिका के बारे में सचिव द्वारा सभा को सूचित किया गया। याचिका की जांच करने पर समिति ने पाया कि इसे सम्मानित और संयमित भाषा में नहीं लिखा गया है। इसको देखते हुए समिति ने निर्णय लिया कि इस याचिका के परिचालन की आवश्यकता नहीं है।[142]

समिति उसके पास भेजी गई याचिका में की गई विशिष्ट शिकायतों के संदर्भ में ऐसे साक्ष्य प्राप्त करने के बाद, जिसे वह ठीक समझे, विचाराधीन मामले से संबंधित या भविष्य में ऐसे मामलों को रोकने हेतु ठोस रूप में उपचारी उपायों का सुझाव देती है।[143]

जहां तक प्रवर समिति के समक्ष लंबित विधेयकों संबंधी याचिकाओं का संबंध है, इन्हें उस समिति को भेजा जाता है। राज्य पुनर्गठन विधेयक, 1956 के संबंध में प्राप्त याचिकाओं

के मामले में, जिन्हें सचिव द्वारा सभा को सूचित किया गया था, समिति ने उन पर प्रतिवेदन दिये और उन प्रतिवेदनों की प्रतियों को विधेयक संबंधी संयुक्त समिति के सदस्यों को अग्रेषित किया गया था।[144]

अभ्यावेदन

नियम समिति ने एक समय इस सुझाव के साथ इस पर सहमति व्यक्त कर दी थी कि याचिका समिति व्यक्तियों अथवा संघों से शिकायतों को दूर करने हेतु प्राप्त अभ्यावेदनों, पत्रों और 'तार' पर भी विचार करे और संस्तुति की कि सभापति इस संबंध में आवश्यक निदेश जारी करने पर विचार करे। तथापि, समिति ने बाद में इस निर्णय पर विस्तारपूर्वक पुनर्विचार किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि याचिका समिति नियमों और प्रक्रियाओं में उल्लिखित विद्यमान उपबंधों के दायरे में ही कार्य करे तथा इसके दायरे को विस्तृत बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है जिससे कि वह उन याचिकाओं पर विचार कर सके जिन्हें नियमों और प्रक्रियाओं में समाहित नहीं किया गया है। वह भी इस तथ्य के दृष्टिगत कि इन याचिकाओं की अधिमानता के लिए अन्य सामान्य रास्ते भी खुले हुए हैं। अत: समिति का अपने पूर्व निर्णय के प्रतिस्थापन में यह विचार था कि सभापति को इस संबंध में निदेश जारी करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

तथापि, राज्य सभा के सभापति ने 1 जुलाई, 2011 को निदेश[145] जारी किया था जिसमें उपबंध किया गया था कि याचिका समिति विभिन्न व्यक्तियों, एसोसिएशनों इत्यादि से प्राप्त ऐसे अभ्यावेदनों, पत्रों और 'तार' पर विचार करेगी जो याचिकाओं संबंधी नियमों के अंतर्गत नहीं आते। किन्तु ऐसे सभी अभ्यावेदन/पत्र जो गुमनाम होते हैं अथवा जिनमें कोई विशेष अनुरोध समाहित नहीं होते हैं, उन पर समिति द्वारा विचार नहीं किया जाता है तथा इन्हें सचिवालय द्वारा फाइल किया जाना होता है।

सचिवालय द्वारा उन सभी अभ्यावेदनों की जांच पड़ताल की जाती है जिन पर समिति द्वारा विचार किया जाता है और जिन मामलों में यह पाया जाता है कि अभ्यावेदन में उठाए गए मुद्दे को संबंधित मंत्रालय/विभाग के ध्यान में लाया जाना चाहिए तो उस अभ्यावेदन को इस मामले में उचित समझी जाने वाली किसी भी कार्रवाई हेतु उक्त मंत्रालय अथवा विभाग को अग्रेषित किया जाता है।

सदस्यों के आचरण के विरुद्ध भी कोई अभ्यावेदन इस परिपाटी के दृष्टिगत स्वीकार नहीं किया जाता है कि यह सभा अपने आंतरिक प्रक्रियागत मामलों मे बाह्य हस्तक्षेप की अनुमति नहीं देती है। इस सभा के सदस्यों के व्यक्तिगत आचरण के विरुद्ध शिकायतों को सभापति के समक्ष रखा जाता है और उन पर और कोई कार्रवाई नहीं की जाती है।[146]

विशेषाधिकार समिति

गठन

सभापति समय-समय पर एक विशेषाधिकार समिति का नामनिर्देशन करता है जिसमें दस सदस्य होते हैं।[147] समिति का अध्यक्ष समिति के सदस्यों में से राज्य सभा के सभापति

द्वारा नियुक्त किया जाता है।[148] यदि समिति का अध्यक्ष किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ हो तो सभापति उसी प्रकार से उसके स्थान पर समिति का एक अन्य अध्यक्ष नियुक्त करता है।[149] यदि समिति का अध्यक्ष किसी बैठक में अनुपस्थित रहता है तो समिति किसी अन्य सदस्य को उस बैठक में समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए चुनती है।[150]

> 1958 से स्थापित अभिसमय के अनुसार उपसभापति को सदैव समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्देशित किया जाता है और इसलिए उसे समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है। सर्वप्रथम समिति का गठन 22 मई, 1952 को किया गया था और उसके प्रथम अध्यक्ष श्री बी. पट्टाभि सीतारमैया थे।[151] तद्नंतर नियुक्त किये गये समिति के अध्यक्ष थे: श्री सी.सी. बिस्वास, विधि मंत्री तथा सदन के नेता;[152] और श्री जी.बी. पंत, गृह मंत्री और सदन के नेता।[153] 1958 से[154] 1969-70 के अतिरिक्त जब श्री एम.सी. सीतलवाड़ को समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था,[155] उपसभापति को समिति के अध्यक्ष के रूप में लगातार नियुक्त किया जा रहा है।

समिति में आकस्मिक रूप से रिक्त हुए स्थानों की पूर्ति सभापति द्वारा की जाती है।[156] समिति कोई नयी समिति नामनिर्देशित होने तक कार्य करती है।[157] सामान्यत: समिति का पुनर्गठन प्रत्येक वर्ष राज्य सभा की अन्य संसदीय समितियों के साथ किया जाता है। समिति की गणपूर्ति पांच से होती है।[158]

कार्य

(क) नियमों के अधीन

जब सदन द्वारा विशेषाधिकार प्रश्न उठाने की अनुमति दे दी जाती है, तो सदन प्रश्न पर विचार कर सकता है और निर्णय ले सकता है अथवा या तो उस सदस्य द्वारा जिसने विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया है या किसी अन्य सदस्य द्वारा किये गये प्रस्ताव पर उसे विशेषाधिकार समिति को सौंप सकता है।[159] सदन अपनी परिपाटी के अनुसार सामान्यत: उठाए गए प्रश्न के संबंध में किसी निर्णय पर पहुंचने से पूर्व विशेषाधिकार प्रश्नों को समिति को सौंप देता है।

सभापति स्वत: विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को जांच, छानबीन तथा उस पर प्रतिवेदन देने के लिए समिति को सौंप सकता है।[160] ऐसे मामलों में भी समिति का प्रतिवेदन सदन में प्रस्तुत किया जाता है और मामले में आगे कार्यवाही सदन के निर्णय के अनुसार की जाती है।

समिति का कर्त्तव्य है कि वह उसे सौंपे गये प्रत्येक विशेषाधिकार प्रश्न की जांच करे, प्रत्येक मामले के तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में यह निर्धारित करे कि क्या उसमें किसी विशेषाधिकार का हनन अंतर्ग्रस्त है या नहीं, और यदि है, तो उसका स्वरूप क्या है, वह किन परिस्थितियों में हुआ है और उस पर वह ऐसी सिफारिश कर सकती है, जो वह ठीक समझे[161] जिसमें अपराधियों के लिए दंड का विशिष्ट स्वरूप शामिल है।[162] समिति उसके द्वारा की गई सिफारिशों को अमली रूप देने के लिए सदन द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया भी सुझा सकती है।[163]

(ख) मंत्रणा कार्य

कभी-कभी सभापति ने विशेषाधिकार से संबंधित कतिपय मामलों के बारे में भी समिति से सलाह देने अथवा उन पर विशिष्ट रूप से विचार करने के लिए कहा है।

> दोनों सदनों की विशेषाधिकार समितियों ने संयुक्त बैठकें कीं और ऐसे मामलों में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के प्रश्न के संबंध में एक संयुक्त प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिनमें एक सदन के किसी सदस्य अथवा अधिकारी ने कथित रूप से विशेषाधिकार का हनन या दूसरे सदन की अवमानना की हो।[164]
>
> समिति के लिए एक ऐसे व्यक्ति, जो भारत का राष्ट्रिक या नागरिक नहीं है, के बारे में विशेषाधिकार अधिकारियों के पहलू और ऐसे मामलों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया की जांच करना तथा सभापति को उसका प्रतिवेदन देना अपेक्षित था।[165]
>
> अन्य बातों के साथ-साथ समिति को संविधान के अनुच्छेद 79 की सही परिधि से संबद्ध प्रश्नों पर विचार करने तथा यह जानने के लिए कि क्या राष्ट्रपति के संबंध में किये गये आक्षेपों को संसदीय संस्था के प्रति अपमान की संज्ञा दी जा सकती है ताकि उसे विशेषाधिकार के दायरे में लाया जा सके, विशेष रूप से संबोधित करने के लिए कहा गया था।[166]
>
> समिति ने ऐसे मामले में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया को अधिकथित किया है जिसमें सदन के किसी सदस्य से दूसरे सदस्य अथवा राज्य विधान-मंडल अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष साक्ष्य देने के वास्ते प्रस्तुत होने के लिए अनुरोध किया जाता है।[167]
>
> सभापति ने मुंबई के एक साप्ताहिक में छपे एक ऐसे लेख से उद्भूत मामले को समिति को उसकी राय हेतु सौंपा था जिसमें किसी सदस्य के संबंध में कतिपय आक्षेप लगाये गये थे।[168]
>
> एक अवसर पर, जब किसी सदस्य द्वारा किसी मंत्री के विरुद्ध आरोप लगाये गये थे और मंत्री ने उनसे इंकार किया और वे दोनों अपने मामलों को एक समिति के समक्ष साबित करने के लिए सहमत हो गये थे, तब सभापति ने मामले को, "यह सलाह देने के लिए कि मामले में क्या कार्रवाई की जानी चाहिए" समिति को सौंपा था।[169]

(ग) दल-परिवर्तन विरोधी नियमों के अधीन

राज्य सभा सदस्य (दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 के 18 मार्च, 1986 से लागू होने से, जोकि सभापति द्वारा संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 8 के अधीन बनाये गये थे, समिति को एक अतिरिक्त कार्य सौंप दिया गया है। सभापति यदि मामले के प्रकार और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस बात से संतुष्ट हो कि ऐसा करना आवश्यक अथवा समीचीन है, किसी सदस्य की दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता से संबंधित किसी याचिका को समिति को प्रारंभिक जांच करने तथा उसे प्रतिवेदन देने के लिए सौंप सकता है।[170]

शक्तियां

यदि समिति अपने कर्त्तव्य पालन के लिए व्यक्तियों की उपस्थिति अथवा पत्र अथवा अभिलेख प्रस्तुत कराना आवश्यक समझे तो उसे इसके लिए शक्ति प्राप्त है।[171] यदि ऐसा कोई प्रश्न उठता है कि क्या समिति के प्रयोजनों के लिए किसी व्यक्ति का साक्ष्य या किसी प्रलेख को प्रस्तुत किया जाना संगत है तो वह प्रश्न सभापति को सौंप दिया जाता है जिसका निर्णय अंतिम होता है।[172]

तथापि, सरकार किसी प्रलेख को प्रस्तुत करने से इस आधार पर इंकार कर सकती है कि उसका प्रकट किया जाना राज्य की सुरक्षा या हित के प्रतिकूल है।[173]

महासचिव द्वारा हस्ताक्षरित आदेश द्वारा साक्षी को आमंत्रित किया जाता है और उसे उपर्युक्त के अध्यधीन ऐसे प्रलेख प्रस्तुत करने पड़ते हैं जो समिति के उपयोग के लिए अपेक्षित हों।[174] तथापि, यह समिति के स्व-विवेक पर निर्भर करता है कि वह अपने सामने दिये गये किसी साक्ष्य को गुप्त या गोपनीय माने।[175]

समिति का कार्यकरण

समिति को विशेषाधिकार का कोई प्रश्न सौंपे जाने के बाद, समिति प्रश्न पर विचार करने के लिए समय-समय पर समवेत होती है।[176] सचिवालय समिति के विचारार्थ विषय से संबंधित एक ज्ञापन[177] या पृष्ठभूमि टिप्पण तैयार करता है। ज्ञापन/टिप्पण में अंतर्ग्रस्त मुद्दा (मुद्दे), मामले के तथ्य और समिति के समक्ष प्रश्न से संबंधित कानून, पद्धति और पूर्वोदाहरण संक्षेप में दिये हुए होते हैं। इस ज्ञापन/टिप्पण को समिति के सदस्यों को उस बैठक की सूचना के साथ भेजा जाता है जिसमें समिति द्वारा मामले पर विचार किया जाना होता है। समिति महासचिव को यह भी कह सकती है कि वह इस मामले में अंतर्विष्ट तथ्य तथा विधि के किसी विशिष्ट बिन्दु के संबंध में समिति के विचारार्थ एक ज्ञापन तैयार कराए।

> एम.ओ. मथाई के मामले में सचिव से यह अनुरोध किया गया था कि वह समिति के सूचनार्थ अन्य देशों विशेषत: यूनाइडेट किंगडम में सदन और उसके सदस्यों पर आक्षेप के संबंध में विधि और पूर्वोदाहरण निर्धारित करते हुए एक टिप्पण तैयार करें।[178]
>
> एक अन्य मामले में सचिव ने समिति के समक्ष एक पुलिस अधिकारी के मामले के संदर्भ में विधि एवं पूर्वोदाहरण को प्रस्तुत किया जिसमें पुलिस अधिकारी एक सदस्य के घर उसके द्वारा सभा में किये गये खुलासे के बारे में पूछने गया था।[179]
>
> एक अन्य मामले में समिति ने सचिवालय को राष्ट्रमंडल एवं अन्य देशों में पूर्वोदाहरणों, मामलों आदि, यदि कोई हो, का अध्ययन करने का निर्देश दिया जहां संविधान के अनुच्छेद 79 के समरूप उपबंध विद्यमान हैं ताकि समिति सभापति द्वारा सौंपे गये संवैधानिक प्रश्नों की जांच करने में सक्षम हो सके।[180]

विशेषाधिकार के प्रश्न की जांच करते हुए समिति उस सदस्य की सुनवाई कर सकती है जिसने सभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया है[181] अथवा उसे लिखित वक्तव्य द्वारा अपने मामले को स्पष्ट करने की अनुमति दे सकती है[182] अथवा विशेषाधिकार के विचाराधीन प्रश्न के संबंध में समिति के समक्ष अपने विचारों को रखने के लिए किसी सदस्य को सुन[183] भी सकती है अथवा उसे नहीं भी सुन सकती है, यदि ऐसा करना आवश्यक न हो।[184] कथित रूप से विशेषाधिकार का हनन करने वाले व्यक्ति को अथवा सभा की अवमानना करने वाले व्यक्ति को समिति के समक्ष स्पष्टीकरण देने और व्यक्तिगत रूप से स्पष्टीकरण देने हेतु, यदि आवश्यक हो, अवसर प्रदान करना समिति की सामान्य परिपाटी रही है। समिति बाहरी व्यक्तियों अथवा निकाय को अपने विचार-विमर्श में औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से संबद्ध नहीं करती है। तथापि, समिति, उसके विचाराधीन मामलों में विधि मंत्री की सहायता अथवा महान्यायवादी की सलाह मांग सकती है और पूर्ववर्ती से समिति की बैठकों में विशेष आमंत्रिती के रूप में भाग लेने का अनुरोध कर सकती है।[185]

एक मामले में समिति ने विधि मंत्री की सलाह मांगी जिन्हें समिति में एक अदालत में दाखिल किए गए हलफनामे में कतिपय अभिकथनात्मक वक्तव्यों से उत्पन्न विशेषाधिकार मामले के विधिक निहितार्थ के संबंध में आमंत्रित किया गया था।[186]

समिति ने (1) अवमाननाकर्त्ता पर जुर्माना लगाने की संसद् की शक्ति,[187] (2) अनुच्छेद 79 का दायरा और क्या राष्ट्रपति के संबंध में किए गए आक्षेप को संसदीय संस्था के प्रति अपमान की संज्ञा दी जा सकती है ताकि उसे विशेषाधिकार के दायरे में लाया जा सके,[188] और (3) विदेशी राष्ट्रिकों द्वारा भारत में रहते हुए किसी भी विशेषाधिकार के हनन अथवा सभा की अवमानना किए जाने के लिए उन पर समिति का क्षेत्राधिकार जैसे मामलों में महान्यायवादी की राय मांगी थी।[189]

जहां तक दल-परिवर्तन के आधार पर किसी सदस्य की निरर्हता के कार्यकरण का संबंध है, समिति द्वारा आरंभिक जांच करने के प्रयोजनार्थ अपनायी जाने वाली प्रक्रिया सामान्यत: सभा के विशेषाधिकार हनन के किसी प्रश्न पर उसके द्वारा जांच एवं निर्धारण करने वाली प्रक्रिया के समरूप होती है। समिति ऐसे किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती है कि कोई सदस्य 10वीं अनुसूची के अधीन उसे अपने मामले का अभिवेदन करने और समिति के समक्ष व्यक्तिगत रूप से अपनी बात कहने का अवसर दिए बिना निरर्हता के अध्यधीन हो जाता है।[190]

प्रतिवेदन

सभा द्वारा विशेषाधिकार संबंधी प्रश्न समिति को संदर्भित किए जाने के पश्चात् समिति को मामलों पर विचार करना पड़ता है और सभा द्वारा नियत समय के भीतर प्रतिवेदन देना पड़ता है।[191] समय का नियतन संकल्प में ही कर दिया जाता है अथवा यदि सभापति प्रश्न को समिति को सौंपता है तो समय का नियतन सभापति द्वारा किया जाता है।

7 अप्रैल, 1967 को सभापति ने सूचना दी कि एक सदस्य की गिरफ्तारी का मामला "इस अनुरोध के साथ समिति को सौंपा जा रहा है कि वह आगामी सत्र के अंत तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दें।"[192]

7 सितंबर, 1970 को सभापति ने समिति को इस अनुदेश के साथ विशेषाधिकार के हनन का एक परिवाद सौंपते हुए प्रस्ताव स्वीकार किया कि वह "आगामी सत्र के अंत तक सभा को तद्विषयक प्रतिवेदन करें।"[193]

7 अप्रैल, 1971 को भी सभा ने एक अन्य परिवाद समिति को सौंपते हुए इसी प्रकार का एक प्रस्ताव स्वीकार किया।[194]

जहां सभा ने प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु कोई समय निर्धारित न किया हो, वहां प्रतिवेदन को उस तारीख से एक मास के भीतर प्रस्तुत करना होता है जब मामला समिति को सौंपा गया है।[195] तथापि, सभा एक प्रस्ताव पारित करके किसी भी समय यह निर्देश दे सकती है कि समिति द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु समय प्रस्ताव में विनिर्दिष्ट तारीख तक के लिए बढ़ा दिया जाए।[196]

न्यायालय में दायर किए गए एक हलफनामे में उल्लिखित कतिपय लेखों के कारण उत्पन्न हुए विशेषाधिकार संबंधी प्रश्न को एक प्रस्ताव पारित करके सभा ने 1 मई, 1963 को समिति को भेजा। समिति ने अपना आरंभिक प्रतिवेदन[197] 16 दिसंबर, 1963 को यह संस्तुति करते हुए प्रस्तुत कर दिया कि अंतिम प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु इसे और समय दिया जाए। सभा ने प्रतिवेदन में उल्लिखित संस्तुति के संबंध में कुछ और समय बढ़ाये जाने पर अपनी सहमति प्रकट करते हुए 17 दिसंबर, 1963 को एक प्रस्ताव स्वीकृत किया। समिति ने अपना अंतिम प्रतिवेदन[198] 7 दिसंबर, 1966 को प्रस्तुत किया।

7 अप्रैल, 1967 को सभापति ने सभा में एक घोषणा द्वारा किसी सदस्य की गिरफ्तारी का मामला समिति को इस अनुरोध के साथ भेजा कि वह आगामी सत्र (60वां सत्र) के अंत से पूर्व तद्विषयक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे। समिति द्वारा यथा प्राधिकृत, समिति के अध्यक्ष ने सभा में 23 जून, 1967 को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का समय आगामी सत्र (61वां सत्र) के अंत तक बढ़ाने का अनुरोध करते हुए एक प्रस्ताव उपस्थित किया। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। प्रतिवेदन 14 अगस्त, 1967 को प्रस्तुत किया गया चूंकि 61वां सत्र 18 अगस्त, 1967 को समाप्त हो गया।[199]

श्री रामनाथ गोयनका के विरुद्ध शिकायत सभा द्वारा 7 सितंबर, 1970 को इस अनुदेश के साथ समिति को भेजी गई कि वह आगामी सत्र (74वां सत्र) के अंत से पहले अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे। इस समिति को सर्वप्रथम 75वें सत्र[200] के अंत तक समय बढ़ाये जाने की अनुमति दी गई और उसके बाद, 76वें सत्र के अंत तक समय बढ़ाया गया।[201] समिति ने 11 जून, 1971 को प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।[202]

समिति के प्रतिवेदन पर उसकी ओर से समिति का अध्यक्ष हस्ताक्षर करता है।[203] परन्तु जब समिति का अध्यक्ष अनुपस्थित हो अथवा वह तत्काल उपलब्ध न हो, तो उस अवस्था में समिति की ओर से प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर करने के लिए समिति किसी अन्य सदस्य का चयन कर सकती है।[204] सामान्यत: चली आ रही प्रथा के अनुसार, समिति के समक्ष दिए गए मौखिक साक्ष्य को समिति के प्रतिवेदन में शामिल नहीं किया जाता। तथापि, मामले के संबंध में प्राप्त हुए लिखित स्पष्टीकरणों/कथनों इत्यादि को प्रतिवेदन के साथ नत्थी कर दिया जाता है।[205]

असहमति का कोई कार्यवृत्त प्रतिवेदन के साथ नहीं जोड़ा जाता, परन्तु समिति प्रतिवेदन या कार्यवृत्त में यह उल्लेख कर सकती है कि अमुक सदस्य ने प्रतिवेदन या इसके निष्कर्षों या सिफारिशों पर असहमति प्रकट की है। समिति ने प्रतिवेदन में शामिल करने योग्य किसी सदस्य (सदस्यों) के विचारों से सम्बद्ध टिप्पण (टिप्पणों) को भी उसमें सम्मिलित करने की अनुमति दे दी है।

एक मामले में समिति ने एक पैरा में यह कहा था कि समिति का एक सदस्य समिति के बहुमत विचार से सहमत नहीं था। संबंधित सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया गया टिप्पण, जिसमें उसने अपनी असहमति प्रकट की थी, प्रतिवेदन के साथ जोड़ दिया गया।[206]

एक अन्य मामले में, समिति ने प्रतिवेदन के संगत पैरा के अंत में यह उल्लेख किया कि एक सदस्य विशेष अमुक विचार से सहमत नहीं था। परन्तु असहमत सदस्य के दृष्टिकोण को शामिल नहीं किया गया था।[207]

समिति के तीन सदस्यों के असहमतिपूर्ण टिप्पणों को अवमानना करने वालों को दिये जाने वाले दण्ड के प्रश्न पर समिति के उन्नीसवें प्रतिवेदन में जोड़ा गया था।[208]

समिति के अध्यक्ष द्वारा या उनकी अनुपस्थिति में समिति द्वारा विधिवत् प्राधिकृत किए गए समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा समिति का प्रतिवेदन सदन में उपस्थित किया जाता है।[209] सामान्यत: समिति उस तारीख को पहले ही नियत कर देती है जब उसे अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होता है।

प्रतिवेदन पर विचार

सभा को प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिये जाने के बाद, समिति के अध्यक्ष या समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा इस आशय का एक प्रस्ताव रखा जा सकता है कि प्रतिवेदन पर

विचार किया जाये,[210] जिसके संबंध में सभापति सदन का मत ले सकता है। कोई भी सदस्य प्रतिवेदन पर विचार किए जाने के प्रस्ताव में संशोधन करने की बाबत सूचना उस रूप में दे सकेगा जैसाकि सभापति उपयुक्त समझे।[211] कोई ऐसा संशोधन भी उपस्थित किया जा सकता है कि अमुक प्रश्न या तो बिना किसी परिसीमा के या किसी विशेष विषय के संदर्भ में समिति को पुनः सौंपा जाए।[212]

प्रतिवेदन पर विचार किये जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के बाद, यथास्थिति, समिति का अध्यक्ष या समिति का कोई सदस्य या कोई अन्य सदस्य भी यह प्रस्ताव कर सकेगा कि सभा प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिशों से सहमत है या सहमत नहीं है या कुछ संशोधनों के साथ सहमत हैं।[213] सामान्यतः जब समिति सदन द्वारा कुछ कार्रवाई किये जाने या किसी विशेष संदर्भ में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में सिफारिश करती है, तब उस आशय का प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है जिस पर सदन निर्णय लेता है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं जिनमें सदन द्वारा समिति के प्रतिवेदनों के संदर्भ में कुछ प्रस्ताव स्वीकार किए गए:

> समिति ने अपने पहले प्रतिवेदन में, अन्य बातों के साथ-साथ सचिवालय की अभिरक्षा में कुछ दस्तावेजों इत्यादि को न्यायालय इत्यादि के समक्ष प्रस्तुत करने के संबंध में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया की सिफारिश की थी। सदन ने समिति के प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया था।[214]
>
> लोक सभा और राज्य सभा की विशेषाधिकार समितियों ने 23 अगस्त, 1954 को दोनों सदनों को दिए गए अपने संयुक्त प्रतिवेदन में एक सदन के किसी सदस्य द्वारा अन्य सदन के विशेषाधिकार का उल्लंघन करने के मामले पर विचार करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का निर्धारण किया था। सभा के नेता ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया जिसमें समितियों की संयुक्त बैठकों में की गई सिफारिशों को स्वीकृत किया गया था।[215]
>
> समिति के बारहवें प्रतिवेदन में सदन में किसी सदस्य द्वारा किए गए रहस्योद्घाटनों के संबंध में पुलिस प्राधिकारियों द्वारा सदन के बाहर सदस्य से की गई पूछताछ के मुद्दे पर विचार किया गया है। इस प्रस्ताव के बारे में कि प्रतिवेदन पर विचार किया जाए, एक संशोधन प्रस्तुत किया गया कि प्रतिवेदन की विषय-वस्तु से संबंधित प्रश्न को समिति के पास पुनः भेजा जाए।[216] इस संशोधन को अस्वीकार कर दिया गया। कुछ अन्य संशोधन भी उपस्थित किए गए जैसे (1) किसी शब्द के स्थान पर कोई अन्य शब्द प्रतिस्थापित करना; (2) प्रतिवेदन से एक वाक्य हटाना; तथा (3) कतिपय शब्दों को जोड़ा जाना। तत्पश्चात् एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सदन पूर्वोक्त संशोधनों (जिन पर पहले सहमति हो गई थी) के साथ प्रतिवेदन के साथ "सहमत है" शब्दों के स्थान पर ये शब्द रखे जाएं, अर्थात् "समिति के प्रतिवेदन के साथ सहमत होते हुए सदन गृह मंत्री को यह निदेश देता है कि उन पुलिस अधिकारियों, जो किसी आपराधिक मामले की जांच कर रहे हैं और उस संबंध में, किसी संसद्-सदस्य द्वारा सदन में दिए गए वक्तव्य में उल्लिखित किसी दस्तावेज के बारे में पूछताछ करना चाहते हैं, के मार्ग-दर्शन के लिए कुछ अनुदेश तैयार किए जाएं और उसकी सूचना सदन को दी जाए।" संबंधित मंत्री के आश्वासन के बाद, संशोधन वापस ले लिया गया और फिर मूल प्रस्ताव पर मतदान हुआ तथा उसे स्वीकार कर लिया गया।[217]
>
> उन्नीसवां प्रतिवेदन एक मामले से संबंधित है जिसमें एक पुस्तक के मुख्य लेखक जो प्रकाशक भी थे, को जानबूझकर एवं बार-बार अपनी पुस्तक में संसद् की कार्यवाही एवं क्रियाकलाप को अनुचित ढंग से प्रस्तुत करने का दोषी पाया गया था और जिसके फलस्वरूप विशेषाधिकार हनन तथा सभा की अवमानना हुई थी। समिति ने सिफारिश की कि, जबकि मुख्य लेखक एवं प्रकाशक को जेल की सजा दी गई है, दो उप-लेखकों को सभा के कटघरे में बुलाया जाए तथा विदंडित किया जाए।

सदन के नेता द्वारा उपस्थित किए गए प्रस्ताव कि प्रतिवेदन पर विचार किया जाए, के संबंध में एक सदस्य ने संशोधन उपस्थित किया कि अवमानना करने वालों को दण्ड देने से संबंधित समिति की सिफारिशों पर पुनर्विचार के लिए मामला पुन: समिति को भेजा जाए। प्रस्ताव यथासंशोधित रूप में स्वीकार कर लिया गया। समिति ने मामले पर पुनर्विचार किया और दंड से संबंधित अपनी पूर्ववर्ती सिफारिश को संशोधित करते हुए एक अन्य प्रतिवेदन (बीसवां प्रतिवेदन) उपस्थित किया। तत्पश्चात् सदन के नेता ने बीसवें प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए एक प्रस्ताव उपस्थित किया। इसके बाद उन्होंने यह प्रस्ताव भी उपस्थित किया कि सदन उन्नीसवें प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट निष्कर्षों और बीसवें प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिशों से सहमत है।[218]

समिति ने अपने तैंतीसवें प्रतिवेदन में संसद् के अन्य सदन या राज्य विधान-मंडल या तत्संसक्त समिति के समक्ष सदन के सदस्य द्वारा साक्ष्य देने से संबंधित प्रक्रिया पर विचार किया और उसे विहित किया। समिति के सदस्य द्वारा उपस्थित किए गए प्रस्ताव पर सदन ने समिति का प्रतिवेदन स्वीकार कर लिया।[219]

कुछ अवसर आए हैं जब सदन समिति के प्रतिवेदनों से सहमत हो गया है,[220] जिसमें उसने सदन की अवमानना/विशेषाधिकार हनन करने के दोषी पाए गए व्यक्ति को दंडित करने की सिफारिश की थी। तथापि, यदि प्रतिवेदन में इस तथ्य का उल्लेख किया गया हो कि इसमें विशेषाधिकार हनन न तो अंतर्ग्रस्त है[221] या किया गया है[222] या इस मामले में सदन द्वारा आगे कोई कार्रवाई नहीं की गई है या मामले को आगे जारी रखने की जरूरत नहीं है,[223] तो उस स्थिति में आगे और कार्रवाई करने की जरूरत नहीं है। उस आशय की समिति की सिफारिश के अनुसरण में सदन द्वारा आगे कार्यवाही न करने के मामलों में वे प्रतिवेदन भी शामिल हैं जिनमें किसी दोषी ने अपने अपराध पर खेद प्रकट किया और बिना शर्त माफी मांगी है[224] या कि यदि सदन इस मामले में आगे कोई कार्यवाही नहीं करता है, तो वह अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रखेगा,[225] या मामले के विचारार्थ आगे और समय नहीं लिया जाएगा[226] या कि मामले को छोड़ दिया जाए[227] या उसे खत्म समझा जाए और उस पर कोई कार्यवाही न हो,[228] या कि मामले को अनुचित महत्व देने की आवश्यकता नहीं है।[229]

प्रक्रिया का विनियमन

सभापति, समिति में या राज्य सभा में विशेषाधिकार के प्रश्न पर विचार से संबंधित सभी मामलों के बारे में प्रक्रिया के विनियमन के लिए ऐसे निदेश दे सकेगा जिन्हें वह आवश्यक समझे।[230]

एक मामले में, सभापति ने समिति को उसके द्वारा भेजे गए विशेषाधिकार के प्रश्नों पर, इसमें शामिल सदस्य की टिप्पणियों पर उसके द्वारा विचार किए जाने तक, विचार करने को स्थगित करने का निदेश दिया।[231]

एक अन्य मामले में, समिति को इसे भेजे गए प्रश्न के संदर्भ में कतिपय मुद्दों पर ध्यान देने हेतु विशेष निदेश दिया गया।[232]

किन्तु सदस्य की अयोग्यता से संबंधित एक अन्य मामले में, जो समिति के विचाराधीन था, सभापति ने निदेश दिया कि समिति को, जिस सदस्य के विरुद्ध याचिका दी गई है उसकी निवृत्ति को ध्यान में रखते हुए इस संदर्भ में आगे कोई कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं है।[233]

आचार समिति

कई अवसरों पर संसद्-सदस्यों ने सार्वजनिक जीवन में सदाचार और नैतिक मूल्यों को प्रवर्तित करने के लिए एक आंतरिक स्वतः नियामक तंत्र विकसित किए जाने के पक्ष में अपने विचार व्यक्त किए थे। राज्य सभा में आचार समिति का गठन इस दिशा में एक कदम था।[234] 4 मार्च, 1997 को राज्य सभा के सभापति द्वारा राज्य सभा की आचार समिति गठित की गई ताकि सदस्यों के सदाचार और नैतिक आचरण पर नजर रखी जा सके और सदस्यों के आचरण और अन्य दुराचरण के संदर्भ में इसे भेजे गए मामलों की जांच की जा सके।[235]

गठन

इस समिति में दस सदस्य होते हैं जिन्हें समय-समय पर सभापति द्वारा नामनिर्देशित किया जाता है। समिति तब तक कार्य करती रहती है जब तक कि एक नई समिति गठित न की जाए। समिति में हुई आकस्मिक रिक्तियां सभापति द्वारा भरी जाती हैं।[236] समिति का अध्यक्ष समिति के सदस्यों में से राज्य सभा के सभापति द्वारा नियुक्त किया जाता है। यदि समिति का अध्यक्ष किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ हो तो सभापति उसके स्थान पर समिति का एक अन्य अध्यक्ष नियुक्त कर सकेगा। तथापि, यदि समिति का अध्यक्ष किसी बैठक में अनुपस्थित रहे, तो समिति किसी अन्य सदस्य को उस बैठक में समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए चुनेगी। समिति की गणपूर्ति कुल दस सदस्यों में से पांच सदस्यों की उपस्थिति से होती है।[238]

कृत्य

समिति के कार्यों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है: (i) मूलभूत कार्य; और (ii) अधिनियम एवं नियमों में वर्णित उपबंधों से प्रकट होने वाले कार्य।

समिति के मुख्य कृत्यों में सम्मिलित हैं–सदस्यों के सदाचार और नैतिक आचरण पर नज़र रखना, सदस्यों के लिए आचार संहिता तैयार करना और आचार संहिता में समय-समय पर संशोधनों या परिवर्धनों के लिए सुझाव देना, सदस्यों द्वारा आचार संहिता को कथित तौर पर भंग करने और सदस्यों के कोई अन्य दुराचरणों के आरोपों से संबंधित मामलों की जांच करना और स्वप्रेरणा से अथवा विशिष्ट अनुरोध प्राप्त होने पर समय-समय पर आचार विषयक मानदंडों से संबंधित प्रश्नों पर सदस्यों को सलाह देना।[239] इन नियमों में किसी बात के होते हुए, राज्य सभा का सभापति किसी सदस्य के नैतिक तथा अन्य दुराचरण से संबंधित मामले को जांच, अन्वेषण तथा प्रतिवेदन देने के लिए आचार समिति को भेज सकता है।[240]

समिति लोक प्रतिनिधित्व (तीसरा संशोधन) अधिनियम, 2002 की धारा 75क की उप-धारा (3) द्वारा सभापति को सौंपी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए उनके द्वारा बनाए गए

राज्य सभा सदस्य (आस्तियों एवं देयताओं की घोषणा) नियम, 2004 के संबंध में अभिलेखपाल एवं निरीक्षक का कार्य करती है। उक्त नियमों के अधीन प्रत्येक राज्य सभा सदस्य को उसके द्वारा शपथ अथवा प्रतिज्ञान लेने की तारीख से 90 दिनों के भीतर अपनी तथा अपने नजदीकी परिवार के सदस्यों की आस्तियों तथा देयताओं के संबंध में सूचना राज्य सभा के सभापति को प्रस्तुत करनी होगी। उक्त नियमों के अधीन ही सदस्यों की आस्तियों एवं देयताओं की घोषणा का रजिस्टर रखा जाता है तथा उस रजिस्टर में मौजूद सूचना को किसी व्यक्ति द्वारा अनुरोध किए जाने पर सभापति की लिखित अनुमति के पश्चात उसे प्रदान किया जा सकता है। उस रजिस्टर में उपलब्ध जानकारी संगत नियमों के अधीन तथा सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अधीन प्राप्त अनुरोध पर प्रदान की जाती है।

प्रक्रिया विषयक नियमों[241] के अंतर्गत यह समिति सदस्यों के हितों संबंधी रजिस्टर ऐसे रूप में जैसा कि समिति निर्धारित करे, रखती है जिसे सदस्यों को उनका अनुरोध प्राप्त होने पर निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराया जाता है। प्रत्येक सदस्य को विहित प्रपत्र में, पांच आर्थिक हितों के संबंध में सूचना की घोषणा करनी होगी, अर्थात् (i) लाभकारी निदेशकत्व, (ii) नियमित लाभकारी कार्यकलाप, (iii) नियंत्रक प्रकृति की शेयरधारिता, (iv) वैतनिक परामर्श और (v) व्यावसायिक अनुबंध[242],। रजिस्टर में रखी जा रही सूचना को किसी व्यक्ति को आचार समिति के छठे प्रतिवेदन में वर्णित कतिपय शर्तों को पूरा करने पर आचार समिति के अध्यक्ष की लिखित अनुमति पर उपलब्ध कराया जा सकता है। संगत नियमों के अधीन एवं सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अधीन प्राप्त अनुरोध पर भी रजिस्टर में निहित सूचना उपलब्ध कराई जा रही है। आचार समिति के अध्यक्ष ने 20 अक्तूबर, 2011 को सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन प्राप्त एक अनुरोध और राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियम के नियम 293 के उपनियम (3) के अधीन प्राप्त अनुरोधों पर 'सदस्यों के हितों संबंधी रजिस्टर' में निहित सूचना देने के लिए अपनी अनुमति प्रदान की।

शक्तियां

यदि समिति अपने कर्त्तव्य पालन के लिए व्यक्तियों की उपस्थिति अथवा पत्र अथवा अभिलेख प्रस्तुत कराना आवश्यक समझे तो उसे ऐसा मार्ग अपनाने की शक्ति होगी। तथापि, यदि यह प्रश्न पैदा हो जाए कि किसी व्यक्ति का साक्ष्य या प्रलेख की प्रस्तुति समिति के प्रयोजनों के लिए संगत है, तो यह मुद्दा सभापति के पास भेजा जाता है, जिसका निर्णय अंतिम होगा। समिति द्वारा किसी साक्षी को बुलाया भी जा सकेगा और वह ऐसे प्रलेख प्रस्तुत करेगा जो समिति के उपयोग के लिए अपेक्षित हों। यह समिति के स्वविवेक पर निर्भर होगा कि वह अपने सामने दिए गए किसी मौखिक अथवा दस्तावेजी साक्ष्य को गुप्त या गोपनीय माने।

किसी सदस्य द्वारा कथित अनैतिक व्यवहार या आचार संहिता के उल्लंघन या किसी सदस्य के हितों की गलत सूचना की शिकायत कोई भी व्यक्ति समिति से कर सकता है। समिति मामलों को स्वप्रेरणा से भी ले सकती है। सदस्य भी मामलों को समिति के पास भेज सकते हैं। कोई भी शिकायत समिति या उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी को लिखित

रूप में ऐसे रूप और रीति से की जाएगी जैसाकि समिति विनिर्दिष्ट करे। शिकायत करने वाले व्यक्ति को अपनी पहचान की घोषणा करनी होगी तथा अपने आरोपों को साबित करने के लिए सहायक साक्ष्य, दस्तावेजी या अन्यथा प्रस्तुत करने होंगे। समिति शिकायतकर्ता का नाम प्रकट नहीं करेगी, यदि शिकायतकर्ता द्वारा इस प्रकार का अनुरोध किया जाता है तथा यदि उसके अनुरोध को समुचित कारणों से समिति द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। केवल मीडिया की अप्रामाणिक रिपोर्ट पर आधारित शिकायत पर विचार नहीं किया जाएगा। समिति ऐसे किसी मामले पर विचार नहीं करेगी जो न्याय-निर्णयाधीन हो तथा इस नियम के उद्देश्य के लिए कि क्या ऐसा मामला न्याय-निर्णयाधीन है या नहीं, समिति के निर्णय को अंतिम निर्णय माना जाएगा।[243]

यदि समिति इस बात से संतुष्ट है कि शिकायत उचित रूप में है तथा मामला उसके अधिकार क्षेत्र के भीतर है, तो वह मामले को जांच के लिए ले सकती है। यदि समिति द्वारा यह पाया जाता है कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है तो मामले को समिति द्वारा जांच तथा प्रतिवेदन के लिए लिया जाता है। समिति अपने अधिदेश को कार्य रूप देने तथा समिति द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन कार्यरत किसी अधिकारी द्वारा जांच करने के लिए समय-समय पर नियम भी बना सकती है।[244]

जब भी समिति द्वारा यह पाया गया कि किसी सदस्य ने कोई अनैतिक व्यवहार या अन्य दुराचारपूर्ण कार्य किया है या संहिता/नियमों का उल्लंघन किया है, तो समिति निम्नलिखित दंडों में से एक या उससे अधिक दंड देने की सिफारिश कर सकती है; अर्थात् (क) निन्दा; (ख) भर्त्सना; (ग) विनिर्दिष्ट अवधि के लिए सदन से निलंबन; और (घ) समिति द्वारा उपयुक्त समझा गया कोई अन्य दंड।[245]

समिति का प्रतिवेदन समिति के अध्यक्ष या उसकी अनुपस्थिति में समिति के किसी भी सदस्य द्वारा सभा में प्रस्तुत किया जाता है।[246] प्रतिवेदन के सभा में उपस्थित किए जाने के पश्चात् समिति के अध्यक्ष या समिति के किसी सदस्य के नाम से एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है कि प्रतिवेदन पर विचार किया जाए।[247] कोई भी सदस्य प्रतिवेदन पर विचार किए जाने के प्रस्ताव में संशोधन की सूचना, ऐसे रूप में जैसाकि सभापति द्वारा उचित समझा जाए, दे सकता है।[248] प्रतिवेदन पर विचार किए जाने का प्रस्ताव स्वीकार किए जाने के पश्चात् समिति का अध्यक्ष या कोई सदस्य या कोई अन्य सदस्य, जैसी भी स्थिति हो, यह प्रस्ताव कर सकता है कि सभा प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट सिफारिशों से सहमत है या असहमत है या संशोधनों के साथ सहमत है।[249] सभापति, समिति या सभा के सदस्यों के नैतिक और अन्य दुराचरण के मामलों की जांच से संबंधित सभी प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए ऐसे निदेश जारी कर सकता है, जैसाकि वह आवश्यक समझे।[250]

समिति का कार्यकरण

आचार समिति ने अपने पहले प्रतिवेदन, जिसे 8 दिसंबर, 1998 को सभा में प्रस्तुत किया गया था और 15 दिसंबर, 1999 को इसके द्वारा स्वीकृत किया गया था, में सदस्यों के लिए आचार संहिता पर विस्तारपूर्वक विचार किए जाने के पश्चात् यह निश्चित निष्कर्ष

निकाला कि राज्य सभा के सदस्यों के लिए आचार संहिता की रूपरेखा तैयार की जाए। समिति ने अपने चौथे प्रतिवेदन में सदस्यों के लिए आचार संहिता पर भी विचार किया और उसका विचार था कि पहले प्रतिवेदन में अभिनिर्धारित संहिता पूर्णतया विस्तृत है और उसने इसे अनुमोदित किया। इसने पांच आर्थिक हितों को भी अभिनिर्धारित किया, जिनके लिए सदस्यों द्वारा "सदस्यों के हित संबंधी रजिस्टर" में दर्ज किए जाने हेतु सूचना प्रस्तुत करनी होगी। समिति का चौथा प्रतिवेदन 14 मार्च, 2005 को सभा में प्रस्तुत किया गया और 20 अप्रैल, 2005 को इसे स्वीकार किया गया।

समिति ने एक सदस्य के अनैतिक आचरण की जांच की। 12 दिसंबर, 2005 को एक निजी चैनल ने "ऑपरेशन दुर्योधन" नामक एक कार्यक्रम प्रसारित किया था जिसमें संसद् के कुछ सदस्यों को संसद् में प्रश्न पूछने के लिए धन प्राप्त करते हुए दिखाया गया था। इस कार्यक्रम में दिखाये गए सदस्यों में से एक सदस्य राज्य सभा का था। सर्वप्रथम समिति का ही विचार था कि आचार संहिता के पैरा (v) का उल्लंघन हुआ है, जिसमें कहा गया है कि :

> सदस्यों को सभा में मतदान करने या न करने के लिए, किसी विधेयक के पुर:स्थापित करने के लिए, किसी संकल्प को उपस्थित करने या संकल्प को उपस्थित न करने के लिए कोई प्रश्न पूछने या प्रश्न पूछने से प्रविरत रहने के लिए अथवा सभा या किसी संसदीय समिति के विचार-विमर्शों में भाग लेने के लिए कभी भी कोई फीस, पारिश्रमिक या फायदा प्राप्त करने की आशा नहीं करनी चाहिए और न ही उसे स्वीकार करना चाहिए।

अत: समिति ने सर्वसम्मति से सिफारिश की कि इस विषय पर इसके अंतिम प्रतिवेदन को प्रस्तुत किए जाने तक उक्त सदस्य को सभा से निलंबित कर दिया जाए। सदस्य के निलंबन से संबंधित पैरा को दिनांक 13 दिसंबर, 2005 के राज्य सभा संसदीय समाचार भाग-2 में प्रकाशित किया गया। तदुपरान्त, समिति ने सदस्य के आचरण की विस्तृत जांच की और अंतत: अपने सातवें प्रतिवेदन, जिसे 23 दिसंबर, 2005 को प्रस्तुत और स्वीकार किया गया, में उसके सभा की सदस्यता से निष्कासन की सिफारिश की क्योंकि उसका आचरण सभा की गरिमा को ठेस पहुंचाने वाला था तथा सभा द्वारा अंगीकार की गई आचार संहिता के अनुरूप नहीं था। तद्नुसार, सदस्य को सभा से निष्कासित कर दिया गया।[251]

इसी प्रकार, 19 दिसंबर, 2005 को एक अन्य निजी चैनल ने "संसद् सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना" के कार्यान्वयन में कुछ संसद्-सदस्यों के अनुचित आचरण का आरोप लगाते हुए "ऑपरेशन चक्रव्यूह" शीर्षक से एक कार्यक्रम प्रसारित किया था। इस कार्यक्रम में दिखाए गए दो सदस्य राज्य सभा के थे। यह मामला भी राज्य सभा के सभापति द्वारा आचार समिति को सौंपा गया था। अपने आठवें प्रतिवेदन, जिसे 24 फरवरी, 2006 को सभा में प्रस्तुत किया गया था, में आचार समिति ने इन दोनों सदस्यों के बारे में अपनी सिफारिश की।

तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, मामलों की पृथक् रूप से जांच करने के बाद, इन मामलों में एक मामले में समिति ने पाया कि इस ऑपरेशन की फिल्म बनाने वाली एजेंसी और इस ऑपरेशन को प्रसारित करने वाले चैनल ने स्पष्टतया रिश्वत लेने के लिए सदस्य

को फुसलाने के वास्ते अनैतिक और संभवत: अवैध तरीके अपनाए थे। इस ऑपरेशन की फिल्म बनाने वाली एजेंसी ने सदस्य को अपने जाल में फंसाने के लिए प्रलोभन का इस्तेमाल किया; बार-बार प्रलोभन दिए; और सभी संसद्-सदस्यों के विरुद्ध व्यापक आरोप लगाए। जिस तरीके से प्रसारक द्वारा इस कार्यक्रम को पेश किया गया था उससे यह प्रभाव पड़ा कि सदस्य भ्रष्ट हैं जबकि टेपों से इसकी पुष्टि नहीं हुई। समिति ने पाया कि जांच कंपनी और प्रसारक दोनों के ही कृत्यों से जनता की आंखों में बिना किसी पर्याप्त कारण के सदस्य की छवि धूमिल हुई और इससे सदस्य की प्रतिष्ठा को अकल्पनीय क्षति पहुंची।

अत: समिति का विचार था कि इस कार्यक्रम की फिल्म बनाने वाली एजेंसी और इस प्रकरण (एपिसोड) को प्रसारित करने वाले चैनल ने इस सभा और इसके सदस्यों के विशेषाधिकार को भंग किया होगा और उनकी अवमानना की होगी। "चूंकि आचार समिति को विशेषाधिकार को भंग करने के प्रश्नों की जांच करने का अधिदेश नहीं है, अत: इसने इस मामले की आगे जांच न करने का निर्णय किया।" अत: समिति ने सिफारिश की कि "सभापति सदस्य की शिकायत को आगे की जांच करने और प्रतिवेदन देने के लिए विशेषाधिकार समिति के पास भेजने पर विचार कर सकते हैं।"[252]

तथापि, दूसरे सदस्य के मामले में विस्तृत जांच के बाद, समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि सदस्य के आचरण से "राज्य सभा के सदस्यों के लिए आचार संहिता" के खंड (i) और (xiv) का उल्लंघन हुआ है जिनमें क्रमश: कहा गया है कि :

(i) सदस्यों को ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए जिससे संसद् की बदनामी होती हो तथा जिससे उनकी विश्वसनीयता प्रभावित होती हो;

(ii) सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सार्वजनिक जीवन में नैतिकता, प्रतिष्ठा, शालीनता और मूल्यों का उच्च स्तर बनाए रखें।

समिति ने यह भी पाया कि इस मामले में शामिल सदस्य ने अपने आचरण से घोर अपकृत्य ही नहीं किया अपितु उन्होंने अपने आचरण से सभा की गरिमा को ठेस पहुंचाई और इस तरह से काम किया जो उन मानकों के अनुरूप नहीं है जिसकी सभा सदस्यों से अपेक्षा करने की हकदार है। "चूंकि सदस्य के आचरण से सदन और इसके सदस्यों की बदनामी हुई तथा राज्य सभा सदस्यों की आचार संहिता का उल्लंघन हुआ है, समिति ने महसूस किया कि उन्होंने सदस्य बने रहने का अपना अधिकार खो दिया है।" अत: समिति ने सिफारिश की कि सदस्य को सभा की सदस्यता से निष्कासित कर दिया जाए।[253] सभा द्वारा 21 मार्च, 2006 को समिति का आठवां प्रतिवेदन स्वीकार किया गया। तद्नुसार, संबंधित सदस्यों को सभा से निष्कासित कर दिया गया।[254]

राज्य सभा सदस्य (आस्तियों तथा देयताओं की घोषणा) नियम, 2004 के नियम 3 के उप-नियम (1) में अन्य बातों के साथ-साथ राज्य सभा के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य को अपना पद ग्रहण करने हेतु शपथ अथवा प्रतिज्ञान लेने की तारीख से 90 दिनों के भीतर

चल और अचल सम्पत्ति के संबंध में सूचना देने को बाध्यकारी बनाया गया है जो संयुक्त रूप से स्वयं उनके, उनके पति/उनकी पत्नी और उनके आश्रित बच्चों के स्वामित्व में हो अथवा जो पृथक-पृथक रूप से उनके स्वामित्व में हो अथवा जिसके वे लाभ-भोगी हों। 'आश्रित बच्चों' पद की परिभाषा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 75क की उपधारा (5) के स्पष्टीकरण (v) में निहित है जो उक्त नियम पर लागू होता है। 'आश्रित बच्चों' पद की इस परिभाषा में संशोधन की आवश्यकता महसूस की गई क्योंकि आश्रित बच्चों का निर्धारण करने के लिए आयु सीमा पर कोई रोक नहीं है। समिति ने अपने नौवें प्रतिवेदन जिसे 18 फरवरी, 2009 को सभा में प्रस्तुत किया गया, में यह सिफारिश की कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 75-क की उप-धारा (5) के स्पष्टीकरण (v) में, 'आश्रित बच्चे' की परिभाषा को कुटुम्ब पेंशन की संदायगी के संदर्भ में केन्द्रीय सिविल सेवा (सी.सी.एस.) (पेंशन) नियम, 1972 में दी गई परिभाषा से प्रतिस्थापित कर दिया जाए। समिति के अनुसार यह परिभाषा अधिक युक्तिसंगत और उपयुक्त प्रतीत होती है। यह भी उल्लेख किया गया है कि उपर्युक्त प्रतिवेदन को सभा स्वीकार नहीं कर सकती। राज्य सभा के सभापति द्वारा एक निर्णय लिया गया था कि यह प्रतिवेदन सभा की संपत्ति रहेगा और उस पर कोई कार्रवाई किए जाने की आवश्यकता नहीं है।

अधीनस्थ विधान संबंधी समिति

अधीनस्थ विधान संबंधी समिति की स्थापना राज्य सभा में इस बात की संवीक्षा करने और सदन को यह प्रतिवेदन करने के लिए की गई है कि क्या नियमों, विनियमों, उपविधियों, योजनाओं अथवा अन्य परिनियत संलेखों को बनाने की संविधान द्वारा प्रदत्त या संसद् द्वारा प्रत्यायोजित शक्तियों का प्रयोग उस परिदान या प्रत्यायोजन के अंतर्गत, जैसी भी स्थिति हो, उचित रूप से किया गया है।[255]

गठन

समिति का गठन पहली बार 30 सितंबर, 1964 को राज्य सभा के सभापति द्वारा किया गया।[256] समिति में पन्द्रह सदस्य होते हैं जो सभापति द्वारा नामनिर्देशित किए जाते हैं।[257] समिति कोई नई समिति नामनिर्देशित होने तक कार्य करती रहती है।[258] समिति में आकस्मिक रूप से रिक्त हुए स्थानों की पूर्ति राज्य सभा का सभापति नामनिर्देशन द्वारा करता है।[259] समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति राज्य सभा के सभापति द्वारा समिति के सदस्यों में से की जाती है।[260] यदि राज्य सभा का उपसभापति समिति का सदस्य हो तो उसे समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है।[261]

यदि समिति का अध्यक्ष किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ है, तो सभापति उसी प्रकार से उसके स्थान पर अन्य सदस्यों को अध्यक्ष के रूप में नियुक्त करता है।[262] यदि समिति का अध्यक्ष किसी बैठक से अनुपस्थित रहता है तो समिति किसी अन्य सदस्य को उस बैठक में अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए चुनती है।[263]

समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति पांच है।[264] समिति का अध्यक्ष प्रथमत: मत नहीं देता परन्तु मतों की संख्या समान होने की अवस्था में उसका मत निर्णायक होता है।[265]

शक्तियां

यदि समिति अपने कर्त्तव्य पालन के लिए व्यक्तियों की उपस्थिति अथवा पत्र अथवा अभिलेख प्रस्तुत कराना आवश्यक समझे तो उसे इसके लिए शक्ति प्राप्त है।[266] तथापि, सरकार किसी प्रलेख को प्रस्तुत करने से इस आधार पर इंकार कर सकती है कि उसका प्रकट किया जाना राज्य की सुरक्षा या हित के प्रतिकूल है।[267] इसके अध्यधीन, महासचिव के हस्ताक्षर वाले आदेश के द्वारा किसी साक्षी को आमंत्रित किया जा सकता है और वह ऐसे प्रलेख प्रस्तुत करेगा जो समिति के उपयोग के लिए अपेक्षित हों।[268] यह समिति के स्वविवेक पर निर्भर करता है कि वह अपने समक्ष दिए गए किसी साक्ष्य को गुप्त या गोपनीय माने।[269]

कृत्य

संविधान अथवा संसद् द्वारा किसी अधीनस्थ प्राधिकारी को प्रत्यायोजित वैधानिक कृत्यों के अनुसरण में बनाए गए प्रत्येक नियम, विनियम, उपविधि, योजना अथवा अन्य परिनियम संलेख के (जिसे इसके पश्चात् "आदेश" कहा गया है) जिसको संसद् के समक्ष रखा जाना अपेक्षित हो, राज्य सभा के समक्ष इस प्रकार रखे जाने के बाद, समिति विशेष रूप से इस बात पर विचार करती है कि [270]—

(1) क्या वह आदेश संविधान के उपबंधों अथवा उस अधिनियम के अनुकूल है जिसके अनुसरण में वह बनाया गया है;

विकिरण सुरक्षा नियम, 1971 की संवीक्षा करते समय समिति ने यह पाया कि एक नियम, जिसमें सक्षम प्राधिकारी को अधिनियम के उपबंधों से छूट प्रदान करने की शक्ति दी गई थी, को परमाणु ऊर्जा अधिनियम, 1962, जिसके अंतर्गत नियम बनाए गए थे, की विधायी स्वीकृति प्राप्त नहीं थी।[271]

(2) क्या उसमें कोई ऐसा विषय अंतर्विष्ट है जिस पर समिति की राय में संसद् के अधिनियम में और अधिक समुचित तरीके से विचार किया जाना चाहिए;

एक मामले में समिति ने सिफारिश की कि किसी समझौते पर किसी अधिनियम के अध्यारोही प्रभाव के संबंध में उपबंध कानून में ही किया जाना चाहिए और उसे कानून द्वारा ही प्राधिकृत किया जाना चाहिए न कि नियमों द्वारा।[272]

जांच आयोग (केन्द्रीय) नियम, 1972 की जांच करते समय समिति ने एक ऐसे नियम पर आपत्ति प्रकट की जिससे आयोग अथवा सरकार को कर-निर्धारकों को भुगतान किए जा सकने वाले यात्रा तथा अन्य भत्तों को निर्धारित करने की शक्ति प्राप्त होती थी क्योंकि जांच आयोग अधिनियम, 1952 में ऐसा कोई उपबंध नहीं था। वास्तव में, अधिनियम में कर-निर्धारकों की नियुक्ति के लिए कोई विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं था। अत: समिति ने सिफारिश की कि इन मामलों का उपबंध नियमों में करने की बजाए संविधि में ही और अधिक समुचित रूप से किया जाए तथा इनके लिए प्राधिकृत भी किया जाए।[273]

(3) क्या उस आदेश में कोई करारोपण करना अथवा कोई शुल्क इत्यादि लगाना अंतर्विष्ट है;

कई मामलों में समिति ने, जिस अधिनियम के अंतर्गत नियम बनाए गए हैं, उस अधिनियम के अंतर्गत बिना किसी विनिर्दिष्ट प्राधिकार के मात्र नियमों द्वारा शुल्क इत्यादि लगाने पर आपत्ति की है। उदाहरण

के लिए, समिति ने इस बात का विशेष उल्लेख किया कि छावनी अधिनियम, 1924 की धारा 282 छावनी बोर्ड को टीकाकरण का प्रयोजन हेतु कोई शुल्क लगाने की शक्ति प्रदान नहीं करती। इस संबंध में समिति ने कहा: "उन शुल्कों, प्रभारों इत्यादि के मामले में जिनके बारे में समिति की धारणा थी कि संविधि (कानून) के अंतर्गत उन्हें लगाए जाने की अनुमति नहीं है और जिनके विनियमन के लिए संविधि (कानून) में संशोधन करना पड़ेगा, मंत्रालय को इस प्रकार के शुल्क, प्रभार इत्यादि वसूल करना बंद करने के लिए संबंधित प्राधिकारियों को प्रशासनिक निर्देश जारी करने चाहिए।[274]

(4) क्या इससे न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बाधा उत्पन्न होती है;

दिल्ली विकास प्राधिकरण (आवास-संपदा का प्रबंधन और निपटान) विनियम, 1968 के विनियम 59 में यह उपबंध किया गया है कि किसी विवाद पर प्राधिकरण का निर्णय अंतिम होगा। इस संबंध में समिति ने महसूस किया कि इसका अर्थ यह भी लगाया जा सकता है कि विनियम में दिल्ली विकास प्राधिकरण और अन्य पक्षों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों में न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को शायद समाप्त कर दिया गया है और कि दिल्ली विकास प्राधिकरण अधिनियम, 1957 में, जिसके अंतर्गत यह विनियम बनाया गया था, उक्त विवादों को न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर रखने का प्राधिकार अथवा शक्ति प्रदान नहीं की गई है।[275]

(5) क्या यह उन उपबंधों में से किसी उपबंध को भूतलक्षी प्रभाव प्रदान करता है जिसके संबंध में संविधान अथवा अधिनियम स्पष्ट रूप से ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं करता;

समिति ने देखा कि कीटनाशी नियम, 1971 में यह उपबंध था कि ये 1 अगस्त, 1971 को प्रभावी होंगे जबकि वे 30 अक्टूबर, 1971 को ही प्रकाशित किए गए थे। इस प्रकार से इन नियमों को भूतलक्षी प्रभाव दिया गया; यद्यपि वह अधिनियम जिसके अंतर्गत ये नियम बनाए गये थे, ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं करता।[276]

एक अन्य मामले में, समिति ने केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 और उसके अंतर्गत बनाए गए इस आशय के नियमों के अधीन जारी की गई छूट अधिसूचना के संबंध में 1970-71 में लोक लेखा समिति के समक्ष प्रस्तुत की गई महान्यायवादी की इस राय से सहमति व्यक्त की थी कि अधीनस्थ विधान का भूतलक्षी प्रभाव से प्रवर्तन करने के लिए शक्ति प्रदान करने वाली विधि के बिना, इस तरह के किसी विधान का कोई भूतलक्षी प्रभाव नहीं हो सकता।[277]

एक अन्यान्य मामले में समिति ने वित्त मंत्रालय के आर्थिक कार्य विभाग द्वारा विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम, 1999 के अधीन बनाए गए फेमा विनियमों को भूतलक्षी प्रभाव देने के मामले की पड़ताल की, जिसमें समिति ने अधीनस्थ विधान को भूतलक्षी प्रभाव देने के विपरीत अपनी पूर्व में दी गई सिफारिशों को दोहराया। समिति को मंत्रालय ने आश्वस्त किया कि वह इस संबंध में समिति की सिफारिशों का पालन करेगा।[278]

(6) क्या उस आदेश में भारत की संचित निधि अथवा लोक राजस्व में से व्यय अंतर्ग्रस्त है;

गर्भ का चिकित्सीय समापन नियम, 1972 में अन्य बातों के साथ-साथ, बोर्डों के गठन का उपबंध भी किया गया है, जबकि जिस अधिनियम के अधीन नियम बनाए गए थे, उसमें विनिर्दिष्ट रूप से ऐसे बोर्डों का गठन करने का उपबंध नहीं किया गया है। इसलिए समिति ने महसूस किया कि इन बोर्डों का गठन करने से लोक राजस्व को इस नियम के कारण प्रभार वहन करना पड़ा।[279]

एक अन्य मामले में समिति ने प्रदर्शन-कर पर अधिभार लागू करने के लिए छावनी परिषद् को शक्ति प्रदान करने वाली अधिसूचना के प्रति आपत्ति की थी और छावनी परिषद् को इसे राज्य सरकार को हस्तांतरित करने के लिए प्राधिकृत किया था। समिति ने महान्यायवादी की राय ली जिन्होंने अधिसूचना को वैध और विधिमान्य नहीं ठहराया और राज्य सरकार को अधिभार की निवल आय सुपुर्द करने की आवश्यकता को विधिक आधार पर समान रूप से अनुचित ठहराया।[280]

(7) क्या संविधान या अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्ति का, जिनके अनुसरण में वह बनाई गई है, असामान्य या अप्रत्याशित उपयोग किया गया प्रतीत होता है;

समिति का यह विचार था कि दिल्ली विकास प्राधिकरण के पास दिल्ली विकास प्राधिकरण (बंधपत्रों का निर्गम और प्रबंधन) विनियम, 1970 बनाने की शक्ति नहीं है, क्योंकि जिस अधिनियम के अधीन ये विनियम बनाए गए थे वह ऐसा करने के लिए इस तरह का कोई प्राधिकार प्रदान नहीं करता है। समिति के विचार में यह शक्ति का अप्रत्याशित प्रयोग था जिसे अधिनियम में परिकल्पित नहीं किया गया है या इसमें ऐसा अभिप्रेत नहीं है।[281]

(8) क्या अधीनस्थ विधान के निर्माण में अनावश्यक विलंब हुआ है;

समिति ने समय-समय पर ऐसे अनेक मामलों का उल्लेख किया है जहां नियम बनाए जाने[282] या उन्हें सभापटल पर रखे जाने[283] में विलंब हुआ है या समय पर नियम नहीं बनाए गए हैं।[284]

समिति ने विभिन्न अधिनियमों के अंतर्गत नियमों/विनियमों को बनाने में हुए विलंब पर बार-बार अपनी चिंता व्यक्त की है तथा इसीलिए छः महीने की अवधि के भीतर अधीनस्थ विधान बनाने की प्रक्रिया को पूरा करने की सिफारिश की है। यदि ऐसा करना संभव नहीं है तो संबंधित मंत्रालयों/विभागों को निरपवाद रूप से समिति को विलंब के कारणों की जानकारी देनी चाहिए तथा प्रक्रिया को पूरा करने के लिए समय बढ़ाने की मांग करनी चाहिए। तथापि, समिति ने टिप्पणी की कि अधिकांश मामलों में मंत्रालय/विभाग छः महीने के विहित समय में अधीनस्थ विधान बनाना सुनिश्चित करने में विफल रहे। उन्होंने समिति से समय बढ़ाने के लिए आग्रह भी नहीं किया। इसको देखते हुए, समिति ने सिफारिश की है कि अधीनस्थ विधान बनाने में हुए विलंब की स्थिति में, संबंधित मंत्रालय/विभाग को संसद् को ऐसे विलंब के वास्तविक कारणों के बारे में जानकारी देने के लिए सभापटल पर रखे जा रहे नियमों/विनियमों के साथ 'विलंब संबंधी विवरण' संलग्न करना चाहिए।[285]

समिति ने इस तथ्य को कि विशेषीकृत नियमों/विनियमों का मसौदा तैयार करने में बहुत परामर्श किए जाते हैं, स्वीकार करते हुए अपनी आशा व्यक्त की कि प्रशासनिक मंत्रालय नियमों को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया को नियत समय में पूरा कर लेगा।[286]

(9) क्या अधीनस्थ विधान के प्रकाशन तथा उसे सभापटल पर रखने में कोई विलंब हुआ है;

समिति ने इस तथ्य को गंभीरता से लिया है कि मंत्रालय बार-बार नियमों/विनियमों/आदेशों को सभा पटल पर रखने में हुए विलंब के परिणामस्वरूप सरकारी मुद्रणालय से अधिसूचनाओं की मुद्रित प्रतियों को विलंब से प्राप्त होने का उल्लेख करते हैं। यह सलाह दी गई है कि ऐसी स्थिति का समय से पहले ही आकलन कर लिया जाए तथा ऐसी व्यवस्था की जाए ताकि अधिसूचनाओं के मुद्रण में भविष्य में ऐसे विलंब न हों।[287] कुछ मामलों में, मंत्रालयों ने "प्रशासनिक कारणों" को अधिसूचनाओं को सभा पटल पर रखने में हुए विलंब का कारण माना है। समिति ने अधिसूचनाओं की विलंब से प्राप्त मुद्रित प्रतियों को "प्रशासनिक कारणों" तथा प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं इत्यादि को अधिसूचनाओं को सभा पटल पर रखने में हुए विलंब का आधार मानते हुए स्वीकार करने से मना कर दिया है। समिति ने मंत्रालयों को ऐसे कारणों से अधिसूचनाओं को सभापटल पर रखने में हुए विलंब को रोकने के लिए सक्रिय उपाय करने को कहा है।[288]

समिति को इस तथ्य का पता चला है कि कई मामलों में विलंबित अधिसूचना को विलंब के कारण की व्याख्या करने वाले कथन के बिना ही सभापटल पर रखा जा रहा था। समिति ने अनुभव किया कि ऐसा नहीं करके मंत्रालय/विभाग इस संदर्भ में संसद् के अनुदेशों से बच रहे थे। अधिसूचनाओं को सभापटल पर रखने में हुआ विलंब, वास्तव में सभा में प्रस्ताव लाकर अधिसूचनाओं को संशोधित/ रद्द करने के सदस्यों के अधिकार में विलंब है। समिति ने इसे काफी गंभीरता से देखा है। अत: समिति

ने नियमों/विनियमों इत्यादि के गठन एवं सभापटल पर रखने में हुए विलंब के कारणों की व्याख्या करने के लिए संबंधित मंत्रालयों के सचिवों को बुलाने का निर्णय लिया है।[289]

समिति ने टिप्पणी की कि नियमों/विनियमों की अधिसूचना के दिनांक तथा उन्हें सदन में रखने के बीच सामान्यत: लंबा अंतराल होता है। चूंकि नियम/विनियम सदन में रखने से पूर्व भी लागू रहते हैं, अत: इस संबंध में लंबे अंतरालों का गहरा प्रभाव पड़ने की संभावना रहती है और वह भी खासकर, तब जब ऐसी अधिसूचना संसद् में प्रस्ताव लाकर संशोधित/रद्द कर दी जाए।[290]

अधिसूचनाओं के मुद्रण के फलस्वरूप होने वाले विलंब के संदर्भ में भारत सरकार मुद्रणालय के प्रशासनिक मंत्रालय ने समिति के समक्ष स्वीकार किया कि मंत्रालय/विभाग भारत सरकार मुद्रणालय से सा.का.नि. एवं का.आ. नम्बर ले सकते हैं तथा तैयार होने वाली मुद्रित प्रतियों का इंतजार किए बिना ही सदन में सभापटल पर रखने हेतु साइक्लोस्टाइल्ड प्रतियों की अपेक्षित संख्या तैयार कर सकते हैं।[291]

(10) क्या किसी कारण से, आदेश के रूप या अभिप्राय के किसी विशदीकरण की आवश्यकता है;

उदाहरण के लिए, समिति ने (1) अधीनस्थ प्राधिकरण के आदेशों के विरुद्ध अपील का उपबंध करने[292] (2) जहां कहीं आवश्यक हो, वहां नियमों के भंग के लिए शास्ति का उपबंध करने[293] (3) किसी व्यथित व्यक्ति के लिए उसे सुने जाने या अभ्यावेदन करने का अवसर प्रदान करने,[294] (4) किसी मामले को अस्वीकार करने के कारणों को अभिलिखित करने,[295] (5) भर्ती नियमों में कतिपय मामलों में संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श करने का उपबंध करने;[296] (6) अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि की सलाहकार समिति में किसी महिला के प्रतिनिधित्व का उपबंध करने;[297] और (7) त्रुटिपूर्ण आदेशों में संशोधन करने के लिए नियमों में उपांतरण करने हेतु सिफारिशें की हैं।[298]

(11) क्या निर्मित अधीनस्थ विधान में अत्यधिक प्रत्यायोजन शामिल हैं या मसौदा में कुछ कमियां हैं;

समिति ने राष्ट्रीय फैशन टैक्नालॉजी संस्थान अधिनियम, 2006 के अंतर्गत निर्मित विधानों एवं अध्यादेशों की जांच के दौरान टिप्पणी की कि कुछ मामलों में अधिनियम के तहत उल्लिखित आवश्यक विवरण बनाए गए अधीनस्थ विधानों में उपलब्ध नहीं थे। अधिकांश मामलों में, जहां पूर्ण विवरण सहित विधान/अध्यादेश निर्मित किए जाने थे, उसे विवेकाधीन शक्तियों में परिवर्तित कर दिया गया था तथा आगे प्रत्यायोजन उपलब्ध कराए गए थे। समिति की राय में, आगे का यह प्रत्यायोजन अनुचित तथा अधिनियम की आत्मा के विरुद्ध था। समिति ने अनुभव किया कि कोई भी प्राधिकारी, जिसे अधीनस्थ विधान बनाने के लिए संसद् की ओर से शक्तियां प्रत्यायोजित की गई हैं, इन शक्तियों को किसी भी प्राधिकारी को पुनर्प्रत्यायोजित अथवा उन्हें विवेकाधीन शक्तियों में परिवर्तित नहीं कर सकता।[299]

'एम्स' विनियम, 1999 की जांच के दौरान समिति का यह मानना था कि नियमों में कोई भी अस्पष्टता विवेकाधीन शक्तियों का अवसर दे देती है। समिति ने अनुभव किया कि यदि नियम स्पष्ट एवं अधिनियम के शब्दों एवं आत्मा के अनुरूप हों, तो इससे पारदर्शिता में वृद्धि होगी तथा अनावश्यक मुकदमेबाजी भी रुकेगी।[300]

दूसरे उदाहरण में, समिति ने 'परिभाषा खंड' के तहत प्रशासनिक आदेश के माध्यम से (औपचारिक अधिसूचना के माध्यम से नहीं) मूल शक्तियों के बाद उपयोग करने के विचार के विरुद्ध अपनी राय दी, जिसके फलस्वरूप आशोधन/अमान्यीकरण हेतु सांविधिक प्रस्ताव को लाकर संसदीय संवीक्षा की अवहेलना की गई। विधि और न्याय मंत्रालय ने भी इस संबंध में समिति के दृष्टिकोण पर सहमति जताई। तत्पश्चात् समिति ने इस कमजोरी को दूर करने या सांविधिक आदेशों के निर्माण एवं सभा पटल पर रखने के संदर्भ में परमाणु ऊर्जा अधिनियम, 1962 की अस्पष्टता को दूर करने के लिए विधि और न्याय मंत्रालय तथा परमाणु ऊर्जा विभाग को शीघ्र कार्रवाई करने का निर्देश दिया।[301]

समिति ने इस तथ्य को भी संज्ञान में लिया कि कतिपय सांविधिक/स्वायत्त निकायों के मसौदा नियमों/ विनियमों का, इस बहाने से कि इस उद्देश्य के लिए उनके अपने कानूनी अधिकारी होते हैं, विधि और न्याय मंत्रालय के द्वारा जांच नहीं की जा रही है। समिति ने सिफारिश की कि प्रशासनिक मंत्रालयों को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि ऐसे सांविधिक/स्वायत्त संगठनों के संदर्भ में विनियमों की विधि और न्याय मंत्रालय द्वारा समुचित रूप से जांच कर ली गई है।[302]

दंत चिकित्सक अधिनियम, 1958 के तहत निर्मित कतिपय विनियमों की जांच के दौरान समिति ने पाया कि ये विनियम उचित प्रारूप में नहीं थे। विनियमों का अंकन क्रम में तथा एक समान रूप में नहीं किया गया था जिसके फलस्वरूप किसी विनियम को निश्चित संख्या से अभिनिर्देशित करना प्राय: असंभव था। अत: समिति ने सिफारिश की कि विधि और न्याय मंत्रालय द्वारा इन विनियमों का पुन: मसौदा तैयार किया जाए तथा उनकी जांच की जाए।[303]

नियम 209 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन इसके कार्यकरण के विस्तार को ध्यान में रखते हुए समिति ने पाया कि उसके द्वारा केवल उन्हीं आदेशों की जांच की जा सकती है जिन्हें संसद् के समक्ष प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित है और जिन्हें सदन के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा चुका है और जो समिति के जांच क्षेत्र के अधीन आते हैं। तथापि, समिति ने महसूस किया कि इसके पास न केवल सभापटल पर रखे गये नियम, विनियम, उपविधि और परिनियम, जिन्हें सामान्य रूप से आदेश कहा गया है, की जांच करने की शक्ति होनी चाहिए बल्कि किसी भी रूप में अधीनस्थ विधान के सभी संलेखों की जांच करने की शक्ति होनी चाहिए, जिन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाया गया है या संसद् द्वारा प्रत्यायोजित किया गया है और जिन्हें सदन के समक्ष रखा गया हो या नहीं।[304] तदनुसार, राज्य सभा के सभापति ने इस संबंध में नियम 266 के अधीन निम्नलिखित निदेश जारी किए :

(1) अधीनस्थ विधान संबंधी समिति उन सभी 'आदेशों' की जांच कर सकती है, चाहे उन्हें राज्य सभा के समक्ष रखा गया हो या नहीं, जिन्हें ऐसे आदेशों को बनाने के लिए किसी अधीनस्थ प्राधिकरणों को शक्ति प्रत्यायोजित करने वाले संविधान अथवा संविधि के उपबंधों के अनुसरण में बनाया गया है।

(2) समिति उन विधेयकों के उपबंधों की जांच कर सकती है जिनमें निम्नलिखित का प्रस्ताव है :

(क) 'आदेश' बनाने के लिए शक्तियां प्रत्यायोजित करना; अथवा

(ख) ऐसी शक्तियों को प्रत्यायोजित करने वाले पूर्ववर्ती अधिनियमों में संशोधन करना जिससे कि यह देखा जा सके कि क्या उनमें 'आदेशों' को राज्य सभा के समक्ष रखे जाने हेतु उपयुक्त उपबंध कर दिए गए हैं।

(3) समिति किसी 'आदेश' से संबंधित किसी अन्य विषय अथवा आदेश से उत्पन्न अधीनस्थ विधान के किसी मामले की जांच कर सकती है।[305]

उपयुक्त निदेशों के जारी होने के पश्चात्, समिति ने 21 मार्च, 1968 को राज्य सभा में पुर:स्थापित किए गए अखिल भारतीय सेवा (संसद् के समक्ष विनियमों को रखा जाना) विधेयक, 1968 के रूप में और विषय-वस्तु दोनों की जांच की, क्योंकि समिति ने महसूस किया कि 'इस विधेयक का इस अर्थ में असामान्य स्वरूप है कि यह विधेयक भारत में किसी विधान-मंडल अथवा किसी भी स्थिति में संसद् में पुर:स्थापित होने वाला अपनी तरह का पहला विधेयक था। प्रस्तावित विधान में प्रत्यायोजित विधान और इस पर संसद् के नियंत्रण के दृष्टिकोण से एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न अंतर्ग्रस्त था, और...समिति को इस बात की आशंका थी कि भविष्य में जब कभी भी यह ज्ञात

होता है कि परिनियम संलेख को सभापटल पर रखा जाना अपेक्षित था, परन्तु उसे सभापटल पर इस प्रकार रखा नहीं गया था, इस विधेयक का पूर्व उदाहरण के रूप में प्रयोग किए जाने की संभावना थी।[306] समिति ने विधेयक की उत्पत्ति और इसकी विषय-वस्तु का अध्ययन किया और इस संबंध में कतिपय सुझाव दिए।[307]

व्यवहार में समिति भारत सरकार द्वारा अथवा सरकार के प्रति अंतिम रूप से उत्तरदायी किसी अन्य अधीनस्थ प्राधिकरण द्वारा किए गए और राजपत्र में प्रकाशित होने वाले अथवा सभापटल पर रखे जाने वाले सभी 'आदेशों' की जांच करती है। समिति राज्य सरकारों द्वारा संसद् के किसी अधिनियम द्वारा उन्हें प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए किए गए 'आदेशों' की जांच नहीं करती (उदाहरणार्थ, संसद् द्वारा मोटर वाहन अधिनियम या श्रम विधियों के अधीन किए गए आदेश)। इस प्रकार, समिति उन नियमों की जांच नहीं करती जो अनुच्छेद 145 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा और सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन न्यायालयों द्वारा किए जाते हैं तथा उन नियमों की भी जांच नहीं करती जो राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 98(3) के अधीन राज्य सभा के सभापति और लोक सभा अध्यक्ष के साथ परामर्श करके बनाए जाते हैं।

एक अवसर पर समिति ने निर्णय लिया था कि संविधान के अनुच्छेद 240 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा कतिपय संघ राज्य क्षेत्रों के लिए बनाए गए विनियमों के अन्तर्गत बनाए गए नियमों की संवीक्षा की जाएगी। तथापि, ऐसे विनियम को संसद् में पारित अधिनियम के बराबर समझा गया, इसलिए समिति ने महसूस किया कि ऐसा विनियम अधीनस्थ विधान की श्रेणी के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता है।[308] तत्पश्चात् जब समिति ने राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 240 के अधीन प्रख्यापित दादरा और नागर हवेली (प्रशासन) विनियम, 1988 में महिलाओं को अधिक प्रतिनिधित्व देने की सिफारिश की तो समिति का ध्यान विनियमों की संवीक्षा न करने संबंधी समिति के पूर्व निर्णय की ओर आकर्षित किया गया।[309] इसलिए, समिति ने 1988 के विनियमों के संबंध में मामले में आगे कार्यवाही न करने का निर्णय लिया।[310]

तथापि, एक अवसर पर समिति ने निर्णय किया कि संविधान के अनुच्छेद 240 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए विनियमों के अंतर्गत बनाए गए नियमों की संवीक्षा की जाएगी और इसे दोनों सभाओं के पटल पर भी रखा जाएगा।[311]

एक अवसर पर समिति ने संविधान के अनुच्छेद 324(5) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए मुख्य निर्वाचन आयुक्त (सेवा-शर्तें) नियम, 1972 की जांच की।[312]

तथापि, समिति राष्ट्रपति शासन के अधीन किसी राज्य के संबंध में संसद् द्वारा अधिनियमित राज्य विधान-मंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम के अनुसरण में राष्ट्रपति के अधिनियम की जांच कर सकती है,[313] क्योंकि यह अधिनियम राष्ट्रपति के अधिनियम को संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखने के लिए प्रावधान करता है और इसके संशोधन या संसद् द्वारा संकल्प के माध्यम से संशोधन करने का प्रावधान करता है।[314]

समिति का कार्यकरण

समिति को समिति में अधीनस्थ विधान के किसी प्रश्न पर विचार से संबंधित सभी विषयों के बारे में अपनी प्रक्रिया स्वयं निर्धारित करने की शक्ति प्राप्त है।[315] समिति ने अपने आन्तरिक कार्यकरण के लिए नियमों का एक सेट बनाया है।[316]

नियमों, विनियमों और आदेशों की संवीक्षा के दौरान यदि अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा नियम बनाने वाली शक्ति के प्रयोग के संबंध में कोई मुद्दा उठाया गया है तो स्पष्टीकरण सचिवालय द्वारा संबंधित मंत्रालय/विभाग से मांगा जाएगा।

तत्पश्चात् वह मामला उन उपबंधों, जिन पर आपत्ति उठाई गई है तथा आपत्तियों के कारणों के ब्यौरे सहित ज्ञापन के रूप में, जिसमें मंत्रालय को पूछे गए मुद्दे और उन पर उसकी टिप्पणियां अन्तर्विष्ट हों, समिति के समक्ष रखा जाता है। समिति ज्ञापन पर विचार करती है और अपने निष्कर्ष निकालती है। यदि यह आवश्यक हुआ तो समिति और अधिक स्पष्टीकरण के लिए मंत्रालय के प्रतिनिधियों को समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए बुलाती है ताकि उन्हें व्यक्तिगत रूप से सुना जा सके। समिति द्वारा संवीक्षा किए गए विभिन्न मुद्दों के संबंध में समिति की समुक्तियों और सिफारिशों को इसके प्रतिवेदनों में दिया गया है।

समिति द्वारा किया जाने वाला एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य इस बात की निगरानी करना है कि क्या ऐसे सांविधिक नियम, विनियम और उप विधियों जिन्हें अधिनियम संविधि के लागू होने की तारीख से छह महीने के भीतर बनाया जाना अपेक्षित है, को बनाया गया है। ऐसे मामले जिनमें नियम, विनियम विहित सीमा के भीतर नहीं बनाए गए हैं, में सचिवालय निरपवाद रूप से नियम/विनियम आदि नहीं बनाए जाने के कारणों का पता लगाने और समिति से समय बढ़ाने का अनुरोध करने की उन्हें सलाह देने के लिए संबंधित मंत्रालय के साथ मामला उठाता है। नियम/विनियम बनाने में अत्यधिक देरी के विशिष्ट मामलों में संबंधित मंत्रालय के प्रतिनिधियों को नियम/विनियम बनाने में देरी के कारणों और शीघ्र सभापटल पर रखे जाने के लिए किए जा रहे उपायों से अवगत कराने के लिए समिति के समक्ष बुलाया जा सकता है।

समिति उन अभ्यावेदनों, जोकि नियमों और विनियमों से संबंधित होते हैं और अन्य प्रत्यायोजित विधानों, जिन्हें विभिन्न संगठनों, संस्थाओं तथा गैर-सरकारी निकायों द्वारा इसे प्रस्तुत किया जाता है, की जांच और संवीक्षा करती है। समिति अपनी समुक्तियां और सिफारिशें देने से पूर्व, ऐसी संस्थाओं और संगठनों के प्रतिनिधियों के विचार सुनती है तथा अभ्यावेदनों में उल्लेखित मुद्दों पर स्पष्टीकरण मांगती है तथा संबंधित मंत्रालयों/विभागों से भी आवश्यक स्पष्टीकरण मांगती है।[317]

> समिति ने दिल्ली स्कूल शिक्षा नियम, 1973 के संबंध में शिक्षण संस्थाओं/संगठनों के विचारों को जानने के लिए एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की थी और उस पर व्यक्तियों और संस्थाओं के विचार भी सुने थे।[318] एक अन्य अवसर पर, समिति ने मोटर स्पिरिट एंड हाई स्पीड डीजल (रेगुलेशन ऑफ सप्लाई एंड डिस्ट्रीब्यूशन एंड प्रिवेंशन ऑफ मैलप्रैक्टिसिस) ऑर्डर, 1998 के आधार पर मोटर स्पिरिट और हाई स्पीड डीजल का भंडारण, आपूर्ति, वितरण, परिवहन और बिक्री में लगे विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों/एजेंसियों के विचारों को आमंत्रित करने के लिए प्रेस विज्ञप्ति जारी की थी।[319]

यद्यपि आंतरिक नियमों के अधीन सचिवालय समिति के लिए तथा उसकी ओर से

नियमों इत्यादि की जांच करता है, ज्ञापन तैयार करता है और अन्य आरम्भिक कार्य करता है। समिति के सदस्यों को स्वयं आदेशों की जांच करने और सुझाव देने की छूट है। इस प्रयोजनार्थ उन्हें समय-समय पर सभापटल पर रखे गए सभी आदेशों की प्रतियां दी जाती हैं।

जब कभी समिति के संवीक्षाधीन 'आदेश' में कोई महत्वपूर्ण कानूनी मामला उठता है और यदि समिति की राय है कि महान्यायवादी[320] और विधि मंत्रालय की कानूनी राय आवश्यक है तो ऐसी राय मालूम की जाती है और तब समिति महान्यायवादी या विधि मंत्रालय की राय पर विचार करने के बाद निर्णय लेती है।

उप-समिति का गठन

समिति नियमों इत्यादि का अध्ययन करने और उनकी संवीक्षा करने के लिए एक उप-समिति गठित कर सकती है।

> एक अवसर पर, समिति ने सात सदस्यों वाली एक उप-समिति गठित की थी ताकि "कुछ महत्वपूर्ण नियमों का गहन अध्ययन किया जा सके और उनकी संवीक्षा की जा सके।"[321]

अध्ययन दौरे

समिति अपने विचाराधीन 'आदेशों' के विभिन्न पहलुओं के संबंध में मौके पर अध्ययन करने के लिए और संबंधित संगठन के अधिकारियों और प्रतिनिधियों से विचार-विमर्श करने के लिए किसी भी संगठन का अध्ययन दौरा भी कर सकती है।[322] अध्ययन दौरे के दौरान हुई चर्चाओं के आधार पर तैयार किए गए अध्ययन संबंधी नोट को संबंधित मंत्रालय को उनकी टिप्पणियों के लिए भेजा जाता है।

प्रतिवेदन

समिति अपने द्वारा जांच किए गए विभिन्न 'आदेशों' और उनसे संबधित अन्य किसी मामले के संबंध में समय-समय पर अपने प्रतिवेदन सदन में प्रस्तुत करती है। यदि समिति की यह राय है कि कोई 'आदेश' पूर्णतः या अंशतः रद्द किया जाना चाहिए या उसमें किसी प्रकार का संशोधन किया जाना चाहिए तो वह उक्त राय तथा उसके कारण सदन को सूचित करेगी।[323] यदि समिति की यह राय है कि किसी आदेश से संबंधित कोई अन्य विषय सदन की जानकारी में लाया जाना चाहिए, तो यह तदनुसार कार्य करती है।[324] यह निर्णय किया गया है कि समिति पूर्व सत्र के दौरान सभापटल पर रखे गये सभी आदेशों के संबंध में प्रत्येक सत्र में एक सामान्य प्रतिवेदन, विलंबों और अन्य कर्मियों का विश्लेषण करते हुए, प्रस्तुत करेगी। समिति विशिष्ट आदेशों को विस्तृत अध्ययन और उस पर प्रतिवेदन देने के लिए भी चयन कर सकेगी।[325]

समिति का प्रतिवेदन सदन में समिति के अध्यक्ष द्वारा या उनकी अनुपस्थिति में समिति के किसी सदस्य, जिसे प्राधिकृत किया गया हो, द्वारा प्रस्तुत किया जाएगा।[326]

सिफारिशों का क्रियान्वयन

समिति का प्रतिवेदन सभा में उपस्थित किए जाने के बाद समिति की सिफारिशों को सरकार के संबंधित मंत्रालयों/विभागों को उन पर आवश्यक अनुवर्ती कार्यवाही के लिए भेजा जाता है। मंत्रालय या तो सिफारिशों को पूर्णत: स्वीकार कर लेते हैं और उनको क्रियान्वित करते हैं या उन्हें अंशत: स्वीकार करते हैं और क्रियान्वित करते हैं तथा बाकी सिफारिशों को क्रियान्वित करने में अपनी कठिनाइयों को व्यक्त करते हैं। कभी-कभी वे सिफारिशों को बिल्कुल स्वीकार नहीं करते हैं और समिति के विचारार्थ अपने दृष्टिकोण/कठिनाइयों को भेजते हैं।

यदि मंत्रालय द्वारा व्यक्त की गई कठिनाइयों/राय से समिति सहमत हो जाती है, तो वह या तो इसमें संशोधन करती है या सिफारिशों को छोड़ देती है। यदि मंत्रालय का उत्तर संतोषजनक नहीं पाया गया, तो समिति अपनी सिफारिशों पर कायम रहती है। समिति अपनी सिफारिशों के क्रियान्वयन के संबंध में समय-समय पर सभा को सूचना देती है।

समिति द्वारा की गई सिफारिशों पर मंत्रालयों/विभागों द्वारा त्वरित कार्यवाही सुनिश्चित करने के लिए समिति ने निम्नलिखित समयबद्ध प्रक्रिया तैयार की है और मंत्रालयों द्वारा अपनाए जाने वाले दिशानिर्देश जारी किए हैं:

(1) समिति की सिफारिश को मंत्रालय को भेज दिए जाने के पश्चात् मंत्रालय को सिफारिश प्राप्त होने के एक महीने के भीतर सिफारिश को स्वीकार करने अथवा अन्यथा के संबंध में समिति को सूचित करना चाहिए।

(2) सिफारिशों को स्वीकार करने अथवा समिति को आश्वासन और वचन देने के मामलों में मंत्रालय को सिफारिशों को सूचित करने की तारीख से तीन महीने के भीतर लागू करना चाहिए। उस मामले में, जहां अन्य निकायों से परामर्श, जनता के विचार आमंत्रित करना इत्यादि प्रारंभिक प्रक्रियाएं एक परिनियम अथवा अन्यथा के माध्यम से की जानी हो, तो उस अवधि को तीन महीने के लिए बढ़ाया जा सकता है।

(3) किसी भी तरह से स्वीकार की गई सभी सिफारिशों को छह महीनों के भीतर लागू कर दिया जाना चाहिए।

(4) किसी मामले में जहां मंत्रालय की यह स्पष्ट राय है कि कार्यवाही को पूरा करने के लिए छह महीने का समय अपर्याप्त है, तो उसे सिफारिश को सूचित करने की तारीख से तीन महीने के भीतर समिति को सूचित करना चाहिए ताकि यदि मंत्रालय की कुछ समस्याएं हों, तो समिति उन पर विचार कर सके।

(5) उस मामले में जहां मंत्रालय सिफारिश के संबंध में अपनी कुछ राय देना चाहता है अथवा उस मामले में जहां कोई सिफारिश किसी कारणवश क्रियान्वित न की जा सकती हो, तो मंत्रालय समिति को तीन महीने के भीतर इस संबंध में सूचित करे।[327]

सामान्य सिफारिशें

समिति द्वारा समय-समय पर की जाने वाली समुक्तियों और सिफारिशों का, जोकि सामान्य प्रकृति की हैं और जिनका 'आदेश' के संदर्भ में बार-बार उल्लेख किया जाता है, संक्षिप्त रूप नीचे दिया गया है :

(क) नियम बनाने के संबंध में समय-सीमा

परिनियम के अंतर्गत बनाए जाने हेतु अपेक्षित नियम और विनियम यथाशीघ्र बना लिये जाने चाहिए परन्तु परिनियम के लागू होने की तारीख से छह महीने के पश्चात् किसी भी स्थिति में नहीं बनाया जाना चाहिए।

विलंब से बचने के लिए मंत्रालय प्रारंभ में व्यापक परन्तु स्पष्ट नियम बना सकते हैं; उन्हें एक विशिष्ट विषय पर एक ही बार में सभी नियम तैयार करने के लिए प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है विशेषकर जब विभिन्न प्राधिकरणों/निकायों से उस मामले में परामर्श किया जाना हो। बाद में अनुभव के आधार पर ऐसे नियमों में संशोधन किया जा सकता है अथवा नये नियम जोड़े जा सकते हैं। यह मान लिया गया है कि नियम यथासंभव परिशुद्ध होने चाहिए, परन्तु यह परिशुद्धता शीघ्रता की कीमत पर नहीं होनी चाहिए। मंत्रालयों को भी यह प्रक्रिया स्थापित करनी चाहिए कि यदि नियम छह महीने की अवधि के भीतर नही बनाए जाते, तो मंत्रालय के सचिव अथवा सचिव स्तरीय विभागाध्यक्ष को तद्नुसार सूचित करना चाहिए जो एक विस्तृत टिप्पण के माध्यम से संबंधित मंत्री को सूचित करेगा और उस पर मंत्री महोदय के आदेश लेगा। इस प्रकार के टिप्पण से निरपवाद रूप से इस तथ्य का उल्लेख होगा कि क्या यह मामला विशेष एक संसदीय समिति के ध्यान में अथवा टिप्पणों में शामिल है अथवा नहीं।[328] नियम बनाने के लिए विहित समय-सीमा के परिप्रेक्ष्य में मंत्रालय नियम बनाने के लिए समय बढ़ाये जाने हेतु समिति से अनुरोध कर सकते हैं और समिति मामले के सभी पहलुओं पर विचार करके समय बढ़ाए जाने के अनुरोध को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत कर सकती है।[329]

(ख) नियमों का पिछला प्रकाशन

राजपत्र में प्रारूप नियम प्रकाशित किए जाने की तारीख से तीस स्पष्ट दिनों की न्यूनतम अवधि जनता को उस पर अपनी टिप्पणियां देने हेतु दी जानी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रारूप आदेश के पिछले प्रकाशन की कानूनी अपेक्षाओं को अक्षरश: पूरा किया गया है।[330]

(ग) राजपत्र में नियमों का प्रकाशन

अन्य कानूनों की भांति, प्रत्यायोजित विधान न केवल निश्चित होने चाहिए अपितु निर्धारित भी होने चाहिए। अत: ऐसे विधान का प्रकाशन प्रभावित जनता की सुरक्षा और सरकारी अभिकरण को प्रजातांत्रिक सिद्धांतों के अनुरूप बनाए रखने के प्रयोजन दोनों के लिए एक महत्वपूर्ण तथ्य हैं।

अत:, सरकार द्वारा तैयार किए गए नियम राजपत्र में प्रकाशित किए जाने चाहिए चाहे उस परिनियम में, जिसके अंतर्गत ये नियम बनाए गए हैं, ऐसे प्रकाशन के लिए विशिष्ट रूप से उपबंध न किया गया हो।[331]

(घ) नियमों का सभापटल पर रखा जाना

सभी परिनियमों में यह उपबंध किया गया है कि उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों को उन्हें बनाए जाने के पश्चात् संसद् के दोनों सदनों के सभापटल पर "जितना शीघ्र हो सके" रख दिया जाना चाहिए। सांविधिक प्रपत्रों को सभापटल पर रखने के संबंध में उस अभिव्यक्ति के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कोई आधिकारिक सरकारी घोषणा नहीं की गई है। सामान्यत: इसका अर्थ यह है "एक युक्तियुक्त अवधि के भीतर"। चूंकि प्रत्यायोजित विधान पर नियंत्रण लगाने का एक प्रभावशाली तरीका प्रपत्रों को सभापटल पर रखना है, इसलिए, 'आदेशों' को सदन के समक्ष रखने में कोई असाधारण अथवा अन्यायपूर्ण विलंब नहीं होना चाहिए, सदन के समक्ष रखे जाने वाले नियमों और आदेशों को (1) यदि सदन चल रहा हो तो राजपत्र में उनके प्रकाशन के पन्द्रह दिन के भीतर; और (2) यदि सदन नहीं चल रहा हो तो आगामी सत्र के प्रारंभ होने के पन्द्रह दिन के पश्चात् सदन के समक्ष उन्हें रख दिया जाना चाहिए।[332] समिति की सिफारिशों के अनुसरण में गृह मंत्रालय ने 1980 में एक परिपत्र के माध्यम से इस मामले के संबंध में समेकित निर्देश जारी किए थे।[333]

अब प्रत्येक आदेश, जिसे दोनों सभाओं के समक्ष रखा जाना हो, को (i) यदि सदन नहीं चल रहा हो, तो सत्र के दौरान, राजपत्र में आदेश के प्रकाशन की ठीक पश्चात्वर्ती तारीख और (ii) यदि सदन चल रहा हो, तो आदेश के प्रकाशन की तारीख को, इसके जारी रहने के दौरान और यदि प्रकाशन की तारीख और सत्र की समाप्ति की तारीख के बीच समय अंतराल पन्द्रह पूर्ण दिनों से कम हो, तो उक्त सत्र के ठीक पश्चात्वर्ती सत्र की समाप्ति से पहले सभापटल पर रखा जाना चाहिए। अब से भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों को राज्य सभा के सभापटल पर संसद् के विभिन्न अधिनियमों के अंतर्गत जारी किए गए आदेशों को रखने के मामले में इस समय-सारणी का पालन करना चाहिए।[334]

(ङ) किसी राज्य के राष्ट्रपति शासन के अधीन होने के मामले में नियमों का सभा पटल पर रखा जाना

जहां तक किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने के दौरान राज्य सरकार से संबंधित नियमों, आदेशों, अधिसूचनाओं इत्यादि को सदन के समक्ष रखे जाने का संबंध है, उन्हें प्रकाशन के तीस दिन की अवधि के भीतर सभापटल पर रखा जा सकता है।[335]

(च) सभा पटल पर रखे जाने से संबंधित आदर्श फॉर्मूला

सांविधिक नियमों को संसद् के दोनों सदनों में सभापटल पर रखे जाने से संबंधित निम्नलिखित फॉर्मूले को सभी विधानों में सम्मिलित किया जाता है जिसमें केन्द्रीय सरकार द्वारा नियम बनाए जाने का उपबंध किया गया है:

केन्द्रीय सरकार द्वारा इस अधिनियम के अधीन बनाए गए प्रत्येक नियम को उसे बनाए जाने के पश्चात् शीघ्रातिशीघ्र एक या दो या उससे अधिक उत्तरोत्तर सत्रों में पूरे होने वाले तीस दिन की पूर्ण अवधि के भीतर, जब संसद् का सत्र चल रहा हो, संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा और यदि उस सत्र के तुरन्त बाद वाले सत्र की समाप्ति से पूर्व दोनों सदन नियम में कोई संशोधित करने के लिए सहमत हो जाते हैं अथवा दोनों सदन इस बात पर सहमत हो जाते हैं कि नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् यथास्थिति नियम केवल ऐसे संशोधित रूप में प्रभावी होंगे अथवा उनका कोई प्रभाव नहीं होगा, तथापि, यह कि इस प्रकार का कोई संशोधन अथवा विलोपन उस नियम के अधीन पूर्व में की गई किसी भी अभिपुष्टि के पूर्वाग्रह के बिना किया जाएगा।[336]

(छ) संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन नियमों का सभापटल पर रखा जाना

सरकार द्वारा भर्ती और सेवा शर्तों के नियम या तो संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए जाते हैं या संसद् द्वारा पारित विभिन्न अधिनियमों के अधीन बनाए जाते हैं। संसद् के विभिन्न अधिनियमों के अधीन बनाए गए नियमों को जहां एक ओर संसद् के समक्ष रखा जाता है, वहीं अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए गए नियमों को सामान्यतया सभापटल पर नहीं रखा जाता है। इसका कोई कारण नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए गए नियमों को संसद् के समक्ष नहीं रखा जाना चाहिए। कुछ मामले ऐसे हैं जिनमें संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए गए नियमों को संसद् के समक्ष रखा गया। इसलिए समिति ने पुरजोर रूप से महसूस किया है और यह सिफारिश की है कि एक-समान परिपाटी कायम करने के लिए प्रत्यायोजित प्राधिकार के अधीन बनाए गए सभी नियमों को, चाहे वे संसद् द्वारा पारित विभिन्न अधिनियमों के अधीन बनाए गए हों या संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए गए हों, संसद् के समक्ष रखा जाना चाहिए। तथापि, यदि सरकार महसूस करती है कि अनुच्छेद 309 में नियमों को सभापटल पर रखने का उपबंध न होने के कारण उसके अधीन बनाए गए नियमों को सभापटल पर नहीं रखा जाता है तो समिति सिफारिश करती है कि संविधान के अनुच्छेद 309 में समुचित संशोधन किया जाना चाहिए ताकि उसके अधीन बनाए गए नियमों को सभापटल पर रखना सुनिश्चित किया जा सके।[337]

(ज) नियमों का भूतलक्षी प्रभाव

यदि किसी मामले विशेष में किन्हीं अपरिहार्य कारणों से नियमों को भूतलक्षी प्रभाव देना है तो सरकार को इस प्रयोजनार्थ वैध स्वीकृति लेकर तुरंत कार्यवाही करनी चाहिए, और यहां तक कि जब कोई परिनियम भूतलक्षी प्रभाव देने की शक्ति प्रदान करता है तो नियम के साथ व्याख्यात्मक ज्ञापन होना चाहिए, जिसमें उन कारणों और परिस्थितियों का उल्लेख होना चाहिए जिनसे भूतलक्षी प्रभाव देना आवश्यक हुआ।[338] इसके अलावा, यह

सुनिश्चित किए जाने का ध्यान रखा जाना चाहिए कि इसके परिणामस्वरूप कोई भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित न हो।[339]

(झ) नियम/विनियम बनाते समय उचित और परिशुद्ध भाषा का प्रयोग

नियम बनाते समय कार्यकारी मंत्रालयों और विधि मंत्रालय को उचित और परिशुद्ध भाषा का प्रयोग सुनिश्चित करना चाहिए ताकि ज्यादा स्पष्टीकरण जारी न करने पड़ें। अधीनस्थ विधान के मामले में, नियम निर्माताओं का अभिप्राय प्रयोग की गई भाषा से स्पष्ट हो जाना चाहिए क्योंकि न्यायालयों और अन्य के लिए इसके बारे में जानने का कोई अन्य मार्ग नहीं है जबकि प्राथमिक विधान के मामले में भूमिका स्तर पर विधेयकों के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन और विधान-मंडलों में वाद-विवादों से नियम निर्माताओं के अभिप्राय के बारे में जानना संभव हो सकता है।[340]

(ञ) नियमों/विनियमों/आदेशों को वेबसाइट पर अपलोड करना

अधिनियमों के विभिन्न उपबंधों के तहत बनाए गए नियम, विनियम इत्यादि को राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है तथा सभापटल पर रखा जाता है। समिति ने टिप्पणी की है कि इन नियमों एवं विनियमों को सभापटल पर रखने के पश्चात् भी इन अधिसूचनाओं तक संसद् सदस्यों एवं आम जनता की पहुंच मुश्किल होती है। इसको देखते हुए समिति ने सिफारिश की है कि सभापटल पर रखे गए ऐसे नियम, विनियम इत्यादि को संबंधित मंत्रालयों द्वारा उनके वेबसाइट पर तत्काल उसी दिन जिस दिन उन्हें सभापटल पर रखा गया है, निरपवाद रूप से अपलोड कर देना चाहिए।[341]

(ट) समिति की ओर से मंत्रालयों/विभागों को भेजे गए पत्रादि का उत्तर देने में विलंब

समिति से पत्र प्राप्त होने पर, एक सप्ताह के भीतर पावती भेज दी जानी चाहिए और इसे संबंधित संयुक्त सचिव के ध्यान में लाना चाहिए, जिन्हें यह सुनिश्चित करने के लिए इसकी निगरानी करना चाहिए कि टिप्पणियां इत्यादि भेजने में कोई अनुचित विलंब न हो। संयुक्त सचिव समिति को उत्तर देने में हुए किसी अनुचित विलंब के लिए स्वयं उत्तरदायी होंगे। टिप्पणियां अधिमानत: एक माह के भीतर भेज दी जानी चाहिए। यदि मंत्रालय में पत्र की प्राप्ति के तीन माह के भीतर टिप्पणियां भेजना संभव न हो, तो समिति को विलंब के कारणों की सूचना दी जा सकती है और समय बढ़ाए जाने के लिए समिति से विशेष अनुरोध किया जाये। टिप्पणियों और समय बढ़ाये जाने के अनुरोध इत्यादि को एक ऐसे अधिकारी द्वारा भेजा जाना चाहिए जो अवर सचिव से कम रैंक का न हो। समिति के अध्ययन दौरों के दौरान, चर्चा की विषय-वस्तु से परिचित एक अधिकारी, जो उप सचिव से कम रैंक का न हो, समिति की सहायता करने के लिए उपस्थित रहना चाहिए।[342]

सांविधिक प्रस्तावों की प्रक्रिया

1. प्रत्यायोजित विधान पर संसदीय नियंत्रण के लिए सदस्यों को सभापटल पर रखे गए अधीनस्थ विधान के संशोधन/अमान्यकरण संबंधी प्रस्ताव लाने हेतु सूचना देने का अधिकार है। इस उद्देश्य हेतु, नियमों, विनियमों इत्यादि के संक्षिप्त विषय, सभापटल पर रखने की

तारीख, अधिसूचना की संख्या एवं दिनांक जैसे विवरणों को दर्शाने वाले संसदीय समाचार भाग-2 को सत्र के दौरान साप्ताहिक आधार पर सूचना हेतु सदस्यों के बीच परिचालित किया जाता है।

2. सदस्य ऐसे प्रस्ताव को प्रस्तुत करने की सूचना नियमों, विनियमों इत्यादि को सभापटल पर रखने के पश्चात् ही दे सकते हैं तथा ऐसे प्रस्ताव हेतु सूचना देने संबंधी उनका अधिकार उस सत्र, जिसमें कि इसे सभापटल पर रखने की 30 दिनों की अवधि पूरी हो गई हो, के आगामी एक अतिरिक्त सत्र तक बढ़ जाती है। सभापटल पर रखने की अवधि की गणना करने के दौरान अन्तर सत्रावधि एवं सभी अवकाशों को निकाल दिया जाता है एवं केवल बैठक दिवसों पर ही विचार किया जाता है। समिति ने सभापटल पर रखने संबंधी वर्तमान फार्मूला में परिवर्तन लाने के लिए अपने पाँचवें प्रतिवेदन में निम्नलिखित सिफारिशें की हैं :–

(i) 30 दिनों की सांविधिक अवधि एक सत्र या दो या ज्यादा क्रमागत सत्रों में पूरी की जा सकती है; और

(ii) 'आदेश' में परिशोधनों के सुझाव का अधिकार उस सत्र, जिसमें कि इसे सभापटल पर रखने की 30 दिनों की अवधि पूरी हो गई हो, के आगामी एक अतिरिक्त सत्र तक बढ़ा देना चाहिए।[343]

तदनुसार, समिति ने संसद् के दोनों सदनों के समक्ष सांविधिक नियमों को रखने संबंधी मसौदा परिशोधित फार्मूला को अनुमोदित किया, जिसे विधि और न्याय मंत्रालय ने भविष्य के समस्त विधानों, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा नियम बनाने की व्यवस्था करते हैं, में शामिल करने का प्रस्ताव किया।[344]

समिति ने यह भी सिफारिश की कि परिशोधित फार्मूला केवल नए विधान में ही नहीं, वरन् वर्तमान अधिनियमों में भी, जब कभी भी उन्हें संशोधित करने के लिए विधेयक संसद् के समक्ष प्रस्तुत किए जाएं, शामिल किया जाना चाहिए। मंत्रालय को संसद् के समक्ष लंबित विधेयकों के संबंध में भी नए फार्मूला को शामिल करना चाहिए।[345]

> विलोपन/संशोधन हेतु प्रस्ताव उपस्थित किए जाने के लिए समय सीमा का मामला श्री के.एन. बालगोपाल, संसद्-सदस्य द्वारा भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण (प्रमुख विमानपत्तन) विकास शुल्क नियम, 2011 के लिए संशोधन की सूचना उपस्थित किए जाने पर विचारार्थ सामने आया। यह मामला विधि और न्याय मंत्रालय के विधायी विभाग को सौंपा गया जिसने समिति की सिफारिशों के साथ सहमति जताई।[346]

संशोधन/विलोपन हेतु प्रस्ताव उपस्थित किए जाने हेतु सदस्य द्वारा अपना आशय स्पष्ट करते हुए इस रूप में सूचित किया जाना चाहिए ताकि उस पर सभापति द्वारा यथोचित रूप में विचार किया जा सके और यह महासचिव को संबोधित किया जाना चाहिए। तत्पश्चात् इस प्रकार की सूचना समिति अनुभाग (अधीनस्थ विधान) द्वारा प्रक्रियान्वित की जाती है और यदि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है तो इसे संसदीय समाचार भाग-2 में प्रकाशित किया

जाता है। बाद में, सभापति सभा के नेता से परामर्श करके सभा द्वारा प्रस्ताव पर विचार करने हेतु तारीख और समय नियत करते हैं जिसे उस दिन की कार्यावलि में उस सदस्य (उन सदस्यों) के नाम के साथ अन्तर्विष्ट किया जाता है जिसने/जिन्होंने सूचना प्रस्तुत की थी। समान मुद्दे पर सूचना (सूचनाओं) को एक साथ संयोजित किया जा सकता है।

संबंधित सदस्य, जिसने प्रस्ताव की सूचना दी है, वह आवंटित तारीख और समय पर संशोधन अथवा इसका विलोपन प्रस्तुत करता है और अन्य सदस्य भी सभापति की अनुमति से इसमें भाग ले सकते हैं। इसके बाद, संबंधित मंत्री चर्चा में हस्तक्षेप करते हुए सरकार का दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकता है जिसके पश्चात् प्रस्ताव के प्रस्तावक को उत्तर देने का अधिकार है। इसके बाद सभापति प्रस्ताव को सभा के निर्णयार्थ रखते हैं।

यदि राज्य सभा द्वारा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है तो उसे लोक सभा की सहमति हेतु भेज दिया जाता है। सहमति की स्थिति में यह पुनः राज्य सभा को लौटाया जाता है और मंत्रालय को संसद् के निर्णय और नियमों/विनियमों में संशोधन अथवा विलोपन, जैसा भी मामला हो, के संबंध में संसूचित कर दिया जाता है। हालांकि, यदि दोनों सभाओं में प्रस्ताव स्वीकृत नहीं किया जाता है तो नियम/विनियम यथावत् रहते हैं।

अधिसूचनाओं के सभापटल पर रखे जाने की स्थिति में, यदि मूल अधिनियम में रखे जाने वाले उपबंध विद्यमान नहीं हैं, सदस्य द्वारा संशोधन/विलोपन का प्रस्ताव उपस्थित किए जाने का अधिकार इस दलील पर समाप्त नहीं होता कि मूल अधिनियम में इसके सभापटल पर रखने का प्रावधान नहीं है। यह स्थिति डा. वी. मैत्रेयन, संसद्-सदस्य द्वारा तमिलनाडु विधान परिषद् अधिनियम, 2010 के अधीन जारी परिषद् निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन (तमिलनाडु) आदेश, 2010 के विलोपन/संशोधन हेतु प्रस्ताव की सूचना प्रस्तुत करते समय स्पष्ट हुई थी।[347]

एक अन्य उदाहरण में श्री के. एन. बालगोपाल, संसद्-सदस्य ने अपने पत्र के माध्यम से राज्य सभा के सभापति से यह अनुरोध किया कि वह संसदीय समीक्षा के अधीन नाभिकीय समिति के लिए असैन्य दायित्व नियम, 2011 में लोक दायित्व को भी शामिल करें। उन्होंने उक्त नियमों के संशोधनार्थ प्रस्ताव उपस्थित करने के अपने तीन प्रयासों जो एक या अन्य कारणों से विफल हो गए थे, का भी उल्लेख किया। सदस्य ने अपने बार-बार प्रयास किए जाने के बावजूद मुख्यतः स्थिति के नियंत्रण से बाहर होने के कारण विधायी प्रस्ताव उपस्थित नहीं कर पाने के लिए चिंता व्यक्त की। उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि इस प्रकार की स्थिति में कार्यपालिका द्वारा नियम, विनियम इत्यादि संसदीय संवीक्षा के बिना ही पारित हो जाएंगे और सदस्यों का नियम/विनियम/आदेश आदि में संशोधन का अधिकार केवल कागजी कार्यवाही बनकर रह जाएगा। अतः उन्होंने, राज्य सभा के सभापति से संसद् द्वारा अधीनस्थ विधान की समीक्षा को सुनिश्चित किए जाने हेतु इस मामले पर ध्यान देने का अनुरोध किया। राज्य सभा के सभापति ने श्री के. एन. बालगोपाल द्वारा उठाए गए मुद्दे पर विचार करने हेतु इस मुद्दे को अधीनस्थ विधान संबंधी समिति को सौंप दिया क्योंकि उस समय किसी प्रस्ताव को उपस्थित किए जाने हेतु सूचना अवधि पूरी हो चुकी थी। समिति ने पहले ही उक्त नियमों को विस्तृत जांच हेतु ग्रहण कर लिया था।[348]

सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति

उत्पत्ति

सदन में प्रश्नों के उत्तर देते समय या अन्य कार्यवाहियों के दौरान मंत्री सदन में आश्वासन, वायदे या वचन देते हैं। उदाहरण के लिए एक मंत्री यह वायदा करता है कि वह मामले पर विचार करेगा या आश्वासन देता है कि वह कतिपय मामले की जांच करेगा या वह वचन देता है कि वह सदन द्वारा अपेक्षित सूचना बाद में प्रस्तुत करेगा। सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का गठन ऐसे आश्वासनों, वायदों या वचनों के क्रियान्वयन पर अनुवर्ती कार्यवाही करने के लिया किया गया है। यह समिति नियम समिति की सिफारिश पर राज्य सभा में पहली बार 1 जुलाई, 1972 को गठित की गई थी। नियम समिति ने सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति के गठन की सिफारिश करते हुए राज्य सभा में मंत्रियों द्वारा दिये गये आश्वासनों के सबंध में उस समय विद्यमान व्यवस्था को ध्यान में रखा। उस समय यह प्रक्रिया थी कि संसदीय कार्य विभाग उन मामलों पर कार्यवाही करता था तथा संबंधित मंत्रियों/विभागों से आवश्यक सूचना एकत्रित करता था और उसे संसदीय कार्य मंत्री द्वारा यथासमय सभापटल पर रखा जाता था। आश्वासनों पर की गई कार्रवाई का पहला विवरण राज्य सभा के पटल पर 5 अगस्त, 1952 को रखा गया था।[349] यह पद्धति अप्रभावी पायी गई क्योंकि "पूरी बात मंत्रियों की सद्इच्छा पर निर्भर करती थी," इसलिए राज्य सभा की सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति की आवश्यकता महसूस हुई।[350]

गठन

समिति में दस सदस्य होते हैं जो सभापति द्वारा नामनिर्देशित किए जाते हैं।[351] यह समिति नई समिति नामनिर्देशित होने तक कार्य करती है।[352] समिति में आकस्मिक रूप से रिक्त हुए स्थानों की पूर्ति सभापति द्वारा नामनिर्देशन के जरिए की जाती है।[353] समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति पांच से होगी।[354]

समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति समिति के सदस्यों में से राज्य सभा के सभापति द्वारा की जाएगी।[355] परन्तु यदि उपसभापति समिति का सदस्य हो तो उसे समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाएगा।[356] यदि समिति का अध्यक्ष किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ हो तो सभापति उसी प्रकार से उसके स्थान पर समिति का एक अन्य अध्यक्ष नियुक्त कर सकेगा।[357] यदि समिति का अध्यक्ष किसी बैठक से अनुपस्थित रहे तो समिति किसी अन्य सदस्य को उस बैठक में समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए चुनती है।[358] समिति का अध्यक्ष प्रथमत: मत नहीं दे सकता है लेकिन किसी विषय पर मतों की संख्या समान होने की अवस्था में उसका निर्णायक मत होता है।[359]

कृत्य

समिति के कृत्यों में, मंत्रियों द्वारा समय-समय पर दिए गए आश्वासनों, वचनों, प्रतिज्ञाओं आदि की संवीक्षा करना और निम्नलिखित बातों के बारे में प्रतिवेदन देना सम्मिलित है (क) ऐसे आश्वासन, वचन, प्रतिज्ञाएं आदि कहां तक कार्यान्वित कर दिए गए हैं; और

(ख) यदि वे कार्यान्वित कर दिए गए हैं तो क्या वह कार्यान्वयन इस काम के लिए आवश्यक न्यूनतम समय में हुआ है।[360]

शक्तियां

यदि समिति अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए व्यक्तियों की उपस्थिति अथवा पत्र अथवा अभिलेख प्रस्तुत कराना आवश्यक समझे तो उसे ऐसा करने की शक्ति प्राप्त है।[361] परन्तु सरकार किसी प्रलेख को प्रस्तुत करने से इस आधार पर इंकार कर सकती है कि उसका प्रकट किया जाना राज्य की सुरक्षा या हित के प्रतिकूल होगा।[362]

> एक मामले में समिति ने सरकार को किन्हीं दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए कहा। संबंधित मंत्री ने समिति के अध्यक्ष को भेजे गए पत्र में अनुरोध किया कि राज्य के हित में उस दस्तावेज का खुलासा न करने की छूट प्रदान की जाए। समिति के अध्यक्ष ने समिति को दिए गए अपने संक्षिप्त वक्तव्य में टिप्पणी की थी कि समिति को सूचना न देने के लिए सरकार ने राज्य सभा के प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों में उपलब्ध अति-विशिष्ट उपबंध का आश्रय लिया है। तथापि, समिति ने महसूस किया कि ऐसे दस्तावेजों को प्रस्तुत करने से राज्य के हितों को किसी तरह नुकसान नहीं होगा और इसलिए समिति ने सरकार से अपने निर्णय की समीक्षा करने और सूचना भेजने का अनुरोध किया। लेकिन सरकार मामले पर पुन: विचार करने के बाद दस्तावेज न देने संबंधी अपने मूल निर्णय पर कायम रही। समिति को संबंधित विभाग के सचिव द्वारा सूचित किया गया कि "मामले पर राज्य मंत्री और मंत्रिमंडल द्वारा विचार किया गया"। मामला समिति के पास रहा जिस पर यह टिप्पणी की गई कि :
>
>> अत: यह स्पष्ट है कि दस्तावेजों को प्रस्तुत न करने का निर्णय सरकार के उच्चतम स्तर पर लिया गया था। समिति को खेद है कि वह प्रासंगिक दस्तावेजों को रोकने के मुद्दे पर सरकार से असहमत है। यह बात और भी ज्यादा खेदजनक है कि सरकार द्वारा उन मामलों पर भी कार्यपालिका के विशेषाधिकार का दावा किया गया जो संवेदनशील नहीं हैं[363] राज्य के हित से समझौता करने की बात तो छोड़ ही दीजिए।

इस नियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए महासचिव द्वारा हस्ताक्षरित आदेश के किसी साक्षी को आमंत्रित किया जा सकेगा और वह ऐसे प्रलेख प्रस्तुत करेगा जो समिति के उपयोग के लिए अपेक्षित हों।[364] यह समिति के स्वविवेक पर निर्भर होगा कि वह अपने सामने दिए गए किसी साक्ष्य को गुप्त या गोपनीय माने।[365]

समिति का कार्यकरण

समिति में आश्वासनों, वचनों, प्रतिज्ञाओं इत्यादि से संबंधित किसी प्रश्न पर विचार करने संबंधी सभी मामलों पर समिति स्वयं अपनी प्रक्रिया का निर्धारण करती है। समिति ने अपने आंतरिक कार्यकरण के लिए नियम निर्धारित किए हैं।[366] समिति के कार्यकरण के विभिन्न प्रक्रियागत चरण निम्नानुसार हैं :

(क) आश्वासनों का चयन : सचिवालय आश्वासन बनने वाली अभिव्यक्तियों की मानक सूची के आधार पर आश्वासनों, यदि कोई हैं, का चयन करने के लिए सदन की दिन-प्रतिदिन की कार्यवाहियों के शब्दश: अभिलेख का अध्ययन करता है। आश्वासनों के विवरण की सूची की जांच संसदीय मंत्रालय से प्राप्त विवरणों

से की जाती है। परिपाटी यह है कि किसी मंत्री द्वारा दिए गए किसी वक्तव्य/ विवरण को आश्वासन मानने का अधिकार समिति के पास है, इसलिए सचिवालय द्वारा चयनित ऐसे आश्वासनों को भी आश्वासनों की सूची में शामिल किया जाता है, जिन्हें संसदीय कार्य मंत्रालय ने आश्वासनों में शामिल न किया हो और संसदीय कार्य मंत्रालय को सूचना दे दी जाती है कि वह भी आश्वासनों को अपनी सूची में शामिल कर ले।

(ख) आश्वासन बनने वाले विवरण के संबंध में निर्णय : मंत्री द्वारा दिए गए किसी विवरण को आश्वासन न माने जाने के अनुरोध सहित भारत सरकार के मंत्रालयों/ विभागों के आश्वासनों को छोड़ने के सभी अनुरोधों को समिति के विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है। समिति के अध्यक्ष को उन मामलों में, जिनमें मंत्रालय द्वारा समय-समय पर, समय बढ़ाने के लिए किए गए अनुरोधों की अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं होती, आश्वासनों के कार्यान्वयन की जांच करने और समय बढ़ाने के लिए प्राधिकृत किया गया है।

(ग) सरकार द्वारा की गई कार्यवाही को दर्शाने वाले विवरणों की जांच : संसदीय कार्य मंत्री समय-समय पर आश्वासनों इत्यादि के कार्यान्वयन के संबंध में सरकार द्वारा की गई कार्रवाई को दर्शाने वाले विवरण सदन के पटल पर रखते हैं। इन विवरणों की जांच इस दृष्टि से की जाती है कि उन आश्वासनों की पहचान की जा सके जिन्हें पूर्णत: या संतोषजनक रूप से कार्यान्वित किया गया प्रतीत नहीं होता है या आश्वासनों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, जिनके कार्यान्वयन में अपरिहार्य विलंब हुआ है। इस प्रकार के सभी आश्वासनों को समिति के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है।

(घ) ज्ञापनों को तैयार करना : सचिवालय समिति द्वारा विचार किए जाने वाले विभिन्न मुद्दों पर ज्ञापन तैयार करता है। ज्ञापन में मंत्री द्वारा दिए गए आश्वासन, आश्वासन को कार्यान्वित करने के लिए सरकार द्वारा की गई कार्रवाई, आश्वासन के वास्तविक कार्यान्वयन की सीमा और क्या यह कार्यान्वयन प्रयोजन के लिए आवश्यक न्यूनतम समय में किया गया है, इसका संक्षेप में उल्लेख होता है।

(ङ) समिति की बैठकें इत्यादि : जब समिति की बैठक की तारीख और समय निश्चित कर दिया जाता है, तब समिति के सदस्यों को बैठक की तारीख से पहले सामान्यत: उनके स्थानीय पतों पर कार्यसूची के साथ-साथ तत्संबंधी नोटिस परिचालित किया जाता है।

यदि आवश्यक समझा जाए तो आश्वासनों को कार्यान्वित करने के लिए सरकार द्वारा की गई कार्रवाई के संबंध में संबंधित मंत्रालयों के सचिवों को साक्ष्य देने के लिए बुलाया जाता है। कतिपय मामलों में समिति का अध्यक्ष मंत्रालयों के प्रतिनिधियों से अपने मंत्रालयों से संबंधित आश्वासनों को कार्यान्वित करने में की गई प्रगति या उनके द्वारा अनुभव की गई मुश्किलों को स्पष्ट करने के लिए अपने समक्ष उपस्थित होने के लिए कह सकता है।

समिति आश्वासन के कार्यान्वयन से संबंधित तथ्यों का पता लगाने के लिए मौके पर अध्ययन भी करती है।

प्रतिवेदन

समिति का अध्यक्ष या उनकी अनुपस्थिति में समिति का कोई सदस्य सदन में समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। आश्वासनों के कुछ विशिष्ट मामलों के अतिरिक्त, प्रतिवेदन में सामान्यतः ऐसे मामले अंतर्विष्ट होते हैं जिनमें सरकार ने आश्वासनों के कार्यान्वयन में काफी समय लिया है, आश्वासनों के कार्यान्वयन के लिए समय बढ़ाने का अनुरोध किया है, वे आश्वासन जिन्हें पूर्णतः या संतोषजनक रूप से कार्यान्वित किया गया प्रतीत नहीं होता, लंबित आश्वासनों की समीक्षा और आश्वासनों को छोड़ने की सिफारिश अंतर्विष्ट होती है। चूंकि समिति इन सभी पहलुओं का अध्ययन करती है, इसलिए आश्वासनों के संबंध में कोई मुद्दा जैसे कि विलंब इत्यादि को सदन में सामान्यतः उठाने की अनुमति नहीं दी जाती।[367]

> एक बार जब सदन के पटल पर आश्वासन संबंधी विवरण को रखने में हुए विलंब के संबंध में औचित्य का प्रश्न उठाना चाहा गया, तब उपसभापति ने निर्णय दिया कि समिति इसे देखेगी और इस मामले पर सदन का समय लेने की कोई आवश्यकता नहीं है।[368]

कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें

(1) मंत्रियों द्वारा सदन में समय-समय पर दिए गए आश्वासनों को यथाशीघ्र कार्यान्वित करने की बात सुनिश्चित करने के लिए समिति ने सरकार द्वारा उन्हें कार्यान्वित करने के लिए तीन महीनों की समय-सीमा निर्धारित की है क्योंकि किसी तरह का असाधारण विलंब हो जाने पर कुछ आश्वासनों इत्यादि के अप्रचलित हो जाने की सम्भावना होती है और कार्यान्वयन में विलंब हो जाने पर उनका पूरा महत्व समाप्त हो जाता है।[369]

(2) जहां तक कतिपय ऐसे विवरणों को आश्वासन मानने का संबंध है जबकि वे आश्वासन बनने वाली अभिव्यक्तियों की मानक सूची के अनुरूप नहीं होते, समिति ने स्पष्ट किया है कि सूची सर्वांगीण नहीं है, बल्कि निदर्शी है और सूची की अभिव्यक्ति के पर्यायवाची या उसके सदृश होने या किसी अन्य अभिव्यक्ति की आश्वासन के साथ थोड़ी-सी सादृश्यता होने पर, उस अभिव्यक्ति को आश्वासन माना जाता है। इस संबंध में समिति का विशिष्ट क्षेत्राधिकार है कि वह इस संबंध में निर्णय करे कि क्या कोई विशेष उत्तर आश्वासन बनता है कि नहीं और संबंधित मंत्रालय/विभाग इस प्रकार के निर्णय पर प्रश्न-चिन्ह लगाने में सक्षम नहीं हैं।[370]

(3) मंत्रालयों को कार्यान्वयन संबंधी विवरण तैयार करते समय पूरी सावधानी बरतनी चाहिए ताकि आश्वासनों में सम्मिलित सभी तरह के मुद्दों को शामिल किया जा सके और प्रश्न में मांगी गई जानकारी की मुख्य बात को टाला न जा सके।[371]

समिति ने आश्वासनों को छोड़ने के संबंध में निम्नानुसार टिप्पणी की है :

(क) इस मामले में मंत्रालय इस तर्क के आधार पर समिति के पास न जाए कि जांच में काफी समय लगेगा या यह अनुमान लगाना व्यावहारिक नहीं है कि एक आश्वासन को पूरा करने में कितना समय लगेगा।[372]

केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी.बी.आई.) द्वारा जांच किए जाने के आधार पर आश्वासन छोड़ दिए जाने के संबंध में अनेक अनुरोध प्राप्त हुए हैं। ऐसे मामलों हेतु यह निर्णय लिया गया है कि केवल चार्जशीट दाखिल किए जाने के बाद ही समिति द्वारा उक्त मामले में आश्वासन छोड़ देने पर विचार किया जाएगा। ऐसे समय तक मंत्रालय द्वारा समिति को उक्त मामले के घटनाक्रमों के बारे में सूचित किया जाता रहेगा।[373]

(ख) समिति को मात्र यह सूचना देना कि आश्वासन को पूरा करने के लिए तीव्र कार्रवाई की जा रही है, यह आश्वासन को पूरा करने के लिए ठोस आधार पर कार्रवाई करने की आवश्यकता का कोई विकल्प नहीं है।[374]

(ग) आश्वासन को परिसमाप्त करने या छोड़ने हेतु आवश्यक सूचना को न देने के लिए जन-हित का सर्वव्यापी तर्क देना अपने आप में पर्याप्त नहीं है।[375]

(घ) जहां तक मंत्रालयों/विभागों द्वारा इस आधार पर आश्वासन छोड़ने का अनुरोध करने का संबंध है कि मंत्री जी प्रश्न पर आश्वासन नहीं देना चाहते थे और उन्होंने तो प्रश्न का उत्तर देते समय सिर्फ उपलब्ध वास्तविक स्थिति को बताया था, समिति ने टिप्पणी की है कि "किसी मंत्री द्वारा की गई टिप्पणी को जानकारी देने के समय के संदर्भ में देखा जाता है तथा उसकी ऐसी जानकारी हासिल करने की मंशा से तुलना की जाती है। किसी मंत्री द्वारा की गई किसी टिप्पणी की जांच करते समय यदि यह पाया जाता है कि सदस्य द्वारा चाही गई जानकारी समय पर उपलब्ध न होने के कारण नहीं दी जा सकी, तो आवश्यक जानकारी को बाद में उपलब्ध करा दिये जाने की मंशा सुस्पष्ट है, ऐसी मंशा के इस प्रकार के अभिव्यक्तिकरण को संबंधित मंत्रालय से सुस्पष्ट करा लेना समिति का कर्त्तव्य बन जाता है"।[376]

(ङ) मंत्रालयों/विभागों को तुच्छ आधारों पर किसी आश्वासन को छोड़ने के लिए समिति से अनुरोध नहीं करना चाहिए विशेषत: उन मामलों के संबंध में जिन पर पहले ही विचार कर लिया गया हो और समिति उन पर सहमत न हुई हो। आश्वासनों को छोड़ देने के अनुरोध केवल वास्तविक मामलों में ही किए जाने चाहिए जहां उन्हें व्यवहार्यत: पूरा करना संभव न हो। ऐसा केवल एक अपवाद होना चाहिए न कि नियम।[377]

(च) यदि तीन मास की निर्धारित समय-सीमा के भीतर आश्वासनों को पूरा करने में कोई वास्तविक और व्यावहारिक कठिनाइयां हों तो मंत्रालयों/विभागों को विलंब के विशेष कारणों तथा आश्वासन को पूरा करने हेतु अपेक्षित संभाव्य समय का उल्लेख करते हुए समिति के पास सीधे जाना चाहिए तथा इसकी एक प्रति संसदीय कार्य मंत्रालय को भेजी जानी चाहिए। मंत्रालयों/विभागों को समय-सीमा को बढ़ाने के लिए संसदीय कार्य मंत्रालय से सीधे अनुरोध नहीं करना चाहिए।[378]

(छ) मंत्रालयों को भारत के संविधान द्वारा परिभाषित क्षेत्राधिकारों का सावधानीपूर्वक पालन करना चाहिए और इस आधार पर किसी कालातीत चरण में आश्वासन छोड़ने के लिए समिति से अनुरोध नहीं करना चाहिए कि मामला राज्य विषय से संबंध रखता है।[379]

सरकार और समिति के बीच असहमति

आश्वासनों को पूरा करने के संबंध में समिति और सरकार के बीच किसी गंभीर स्वरूप की अंतिम असहमति हो जाने की स्थिति में समिति मामले की रिपोर्ट सभा को देगी।

मेडिकल कॉलिजों में नामांकन हेतु आरक्षित स्थानों में प्रवेश के संबंध में तारांकित प्रश्न संख्या 200 का उत्तर राज्य सभा में 21 जुलाई, 1982 को दिया गया। इसके उत्तर में संबद्ध मंत्री ने कहा था कि 1982-83 सत्र के लिए स्थानों का आवंटन अभी किया जाना है। यह सूचना कार्यान्वयन विवरण में दी गई थी जिसे 25 फरवरी, 1983 को राज्य सभा के पटल पर रखा गया था। तथापि, 1982 में सरकार द्वारा नामित उम्मीदवारों के नाम, उनके माता-पिता के नाम, व्यवसाय और पदनाम के बारे में विशिष्ट सूचना जैसाकि प्रश्न के भाग (ग) में मांगी गई थी, कार्यान्वयन विवरण में नहीं दी गई थी। समिति ने इस मामले को सरकार के साथ उठाया तथा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के सचिव को भी सुना। समिति को बताया गया कि सूचना सरकार के पास उपलब्ध नहीं है। समिति ने तद्नुसार रिपोर्ट दी।[380] समिति ने ऐसी परिस्थितियों से निपटने के लिए प्रक्रिया विषयक नियमों में विशिष्ट उपबंध करने हेतु वांछनीयता का पता लगाने के लिए इस मामले को नियम समिति को सौंप दिया। तथापि, नियम समिति इस सुझाव से सहमत नहीं हुई। उसका यह विचार था कि इस प्रकार के मामलों में समिति सभा को रिपोर्ट कर सकती है और तत्पश्चात् यह प्रश्न सभा के विनिश्चय हेतु छोड़ दिया जाना चाहिए।[381]

आश्वासनों की अभिव्यक्तियों की मानक सूची

समिति ने उन अभिव्यक्तियों की निम्नलिखित मानक सूची को अनुमोदित किया है जिन्हें आश्वासन के रूप में समझा जाता है:

मामला विचाराधीन है; मैं इसकी जांच करूंगा; जांच की जा रही है; मैं माननीय सदस्य को सूचित कर दूंगा; यह मूलत: राज्य सरकार का मामला है किन्तु मैं इसकी जांच करूंगा; मैं राज्य सरकारों को लिखूंगा; मैं सभा को आश्वासन देता हूं कि माननीय सदस्य के सभी सुझावों पर सावधानीपूर्वक विचार किया जायेगा; मैं अपने दौरे के दौरान मौके पर जाकर स्थितियों का अध्ययन करूंगा; मैं मामले पर विचार करूंगा; मैं इस पर विचार करूंगा; मैं राज्य सरकार को सुझाव दूंगा; हम मामले को संकल्प का रूप देंगे; मैं देखूंगा कि इस बारे में क्या किया जा सकता है; कुछ बोलने से पूर्व मैं मामले की जांच करूंगा; सुझाव पर विचार किया जाएगा;... को होने वाले सम्मेलन में मामले पर विचार किया जाएगा; मामले की अभी जांच की जा रही है और यदि कुछ करने की आवश्यकता हुई तो निश्चित रूप से किया जाएगा; मामले को....सरकार के समक्ष उठाया जाएगा; मेरे पास कोई सूचना नहीं है लेकिन मैं मामले की जांच हेतु तैयार हूं; आवश्यक आंकड़े एकत्र करने के प्रयास किये जा रहे हैं; नियम बनाते समय सुझावों को ध्यान में रखा जाएगा; यदि माननीय सदस्य चाहते हैं तो मैं और अनुदेश दे सकता हूं; प्रतिवेदन को अंतिम रूप देने के बाद इसकी एक प्रति को संसद् ग्रंथागार में रख दिया जाएगा; मैं इसे माननीय सदस्य को भिजवा दूंगा; मैं समझता हूं कि ऐसा किया जा सकता है; यदि माननीय सदस्य का आरोप सच है तो निश्चय

ही मामले की जांच कराऊंगा; हमें इसका पता करना होगा; मैं,....सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट करूंगा जोकि, मुझे आशा है, इस दिशा में पर्याप्त कदम उठाएगी; यह सुझाव कार्रवाई हेतु है जिस पर विचार किया जाएगा; (रेल बजट पर चर्चा) विभिन्न सदस्यों द्वारा उठाए गये सभी मुद्दों पर विचार किया जाएगा और सभी सदस्यों को उसके परिणाम से अवगत करा दिया जाएगा; सूचना एकत्र की जा रही है और इसे राज्य सभा के पटल पर रख दिया जाएगा; और मैं स्थिति की समीक्षा कर रहा हूं। इसके अतिरिक्त, सभापति, उपसभापति अथवा उपसभाध्यक्ष द्वारा मंत्रियों से संबंधित कार्रवाई की बाबत निर्देश और ऐसे सभी और विशिष्ट विषय, जिन पर सूचना मांगी गई और वादा किया गया है, भी आश्वासनों, आदि की श्रेणी में आते हैं।[382]

आश्वासनों का कंप्यूटरीकरण

आश्वासनों से संबंधित सभी संगत ब्यौरों अर्थात् आश्वासन सं; प्रश्न सं. और तारीख; विषय जिस सीमा तक आश्वासन कार्यान्वित किया गया; विलंबित होने के कारण; तारीख सहित विस्तार सं.; खोज सुविधा; कार्यान्वयन संबंधी प्रतिवेदनों को सभा पटल पर रखने की तारीख और आश्वासनों को छोड़ने की तारीख इत्यादि को दर्शाने वाला वेब समर्थकृत आउटपुट से सज्जित एक क्लाइन्ट सरवर-आधारित सॉफ्टवेयर विकसित किया गया है जिससे आश्वासनों के कार्यान्वयन की प्रगति की निगरानी की जा सके और इसे http:1/172.16.11.99/cga/main.htm. पर देखा जा सकता है।

सभापटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति

प्रस्तावना

राज्य सभा के पटल पर रखे जाने वाले पत्रों को विस्तृत रूप से निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :

(i) संविधान के उपबंधों के अधीन रखे जाने वाले प्रतिवेदन, संसद् के अधिनियमों तथा नियमों तथा सभा अथवा पीठासीन अधिकारी के निदेशानुसरण में रखे गए नियम, विनियम संकल्प/आदेश अथवा पत्र;

(ii) संसद् के विशेष अधिनियमों द्वारा अधिष्ठापित अथवा कंपनी अधिनियम, 2013 के अधीन निगमित सरकारी कंपनियों के प्रतिवेदन;

(iii) सरकार द्वारा वित्त-पोषित समितियों अथवा सहकारी समितियों अथवा उन संस्थाओं और निकायों के प्रतिवेदन जिनका वित्त-पोषण सरकार द्वारा किया जाता है अथवा जिनके लिए सरकार द्वारा पर्याप्त अनुदान दिया जाता है;

(iv) राज्य सरकारों के साथ संयुक्त उद्यमों के प्रतिवेदन;

(v) कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 394 और 395 के अधीन सरकारी कंपनियों के प्रतिवेदन;

(vi) सभा के पटल पर रखा जाने वाला कोई अन्य पत्र।

सभा पटल पर लगभग हर बैठक में रखे जाने वाले पत्रों के विशद् परिमाणों और प्रकारों तथा इस तथ्य पर विचार करते हुए कि सभापटल पर रखे जाने वाले पत्र सदस्यों के अग्रिम संवीक्षणार्थ उपलब्ध नहीं होते हैं, सदस्यों के लिए सभापटल पर रखे गये पत्रों के सभी पक्षों के मामलों में सतर्कता बरतना सर्वदा संभव नहीं है। स्वयं सभा भी पटल पर रखे गये प्रत्येक प्रलेख की गहन संवीक्षा करने की स्थिति में नहीं होती है। इसी पृष्ठभूमि में समिति के गठन की आवश्यकता अनुभव की गई।

उत्पत्ति

नियम समिति ने सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति की स्थापना के संबंध में राज्य सभा के एक सदस्य से प्राप्त एक सुझाव पर विचार किया। उक्त सुझाव के समर्थन में यह उल्लेख किया गया कि अधिकांश पत्रों को सभापटल पर एक वर्ष के उपरांत ही रखा गया और यह एक सामान्य परिपाटी हो गई थी कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयोग तथा संघ लोक सेवा आयोग के दो से तीन वर्षों तक के प्रतिवेदनों को एक साथ चर्चा के लिए लिया गया।[383] तथापि, इन सुझावों पर अंतिम निर्णय लेने से पहले, नियम समिति ने निदेश दिया कि इन्हें राज्य सभा में विभिन्न दलों/वर्गों के नेताओं के पास उनके विचार जानने के लिए भेज दिया जाए।[384] नेताओं की सहमति के अनुसार, समिति ने संस्तुति की कि राज्य सभा में भी लोक सभा में इसी तरह की समिति की तर्ज पर एक समिति होनी चाहिए।[385]

नियम समिति का दूसरा प्रतिवेदन, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ समिति की उक्त संस्तुति समाहित है, राज्य सभा में 22 मई, 1979 को प्रस्तुत किया गया। लगभग दो वर्षों तक यह प्रतिवेदन सभा में लंबित रहा; कार्यसूची[386] में समिति के प्रतिवेदन संबंधी प्रस्ताव को दो बार शामिल किया गया किन्तु एक या किसी अन्य कारण से इस प्रतिवेदन को विचारण एवं स्वीकृति के लिए नहीं लिया जा सका।

एक सरकारी कंपनी के वार्षिक प्रतिवेदन के संबंध में एक सदस्य (श्री इरा सेज़ियन, जो संयोगवश उस समय लोक सभा में सभापटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति के प्रथम अध्यक्ष थे और बाद में राज्य सभा की इसी समिति के प्रथम अध्यक्ष भी बने) द्वारा उठाए गए एक औचित्य प्रश्न के संदर्भ में समिति की विनिर्दिष्ट सिफारिश का 22 अप्रैल, 1981 को सदन में उल्लेख हुआ। यद्यपि यह वार्षिक प्रतिवेदन था। परन्तु इसमें केवल छः महीने की अवधि का ही लेखा-जोखा था और कंपनी के लेखाओं के परीक्षण के संबंध में विलंब हुआ था। एक अन्य सदस्य ने उसमें इस विसंगति का उल्लेख किया था कि प्रतिवेदन के अंग्रेजी रूप में तो अप्रैल से सितंबर, 1977 तक की अवधि का उल्लेख किया गया था जबकि उसके हिन्दी अनुवाद में अप्रैल से दिसंबर, 1977 तक की अवधि का उल्लेख किया गया था। इस मुद्दे पर सदन में काफी गर्मागर्मी हुई। राज्य सभा के एक सदस्य और पूर्व महासचिव, श्री बी.एन. बैनर्जी ने यह सुझाव दिया था कि एक समिति का गठन किया जाना चाहिए जो इन मुद्दों की जांच करे। सदन के नेता ने राज्य सभा में विभिन्न दलों के नेताओं के साथ इस मामले पर चर्चा करने का वायदा किया।[387]

नियम समिति का प्रतिवेदन सदन द्वारा 24 दिसंबर, 1981 को (राज्य सभा के 120वें सत्र के अंतिम दिन) उस दिन सदन के अनिश्चितकाल तक के लिए स्थगित होने से पूर्व म.प. 9.00 बजे स्वीकार किया गया था। नियमों में किए गए संशोधनों को 15 जनवरी, 1982 से लागू किया गया।[388] पहली बार समिति का गठन 3 मार्च, 1982 को किया गया।[389]

गठन

समिति[390] में दस सदस्य होते हैं जिन्हें सभापति द्वारा नामनिर्देशित किया जाता है।[391] यह समिति किसी नई समिति के नामनिर्देशित होने तक कार्य करती है।[392] समिति में आकस्मिक रूप से रिक्त हुए स्थानों की पूर्ति सभापति द्वारा नामनिर्देशन के जरिए की जाती है।[393] समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति पांच होती है।[394]

समिति का अध्यक्ष समिति के सदस्यों में से राज्य सभा के सभापति द्वारा नियुक्त किया जाता है।[395] परन्तु यदि उपसभापति समिति का सदस्य हो तो उसे समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है।[396] यदि समिति का अध्यक्ष किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ हो तो सभापति उसी प्रकार से उसके स्थान पर समिति का एक अन्य अध्यक्ष नियुक्त करता है।[397] यदि समिति का अध्यक्ष किसी बैठक से अनुपस्थित रहता है तो समिति किसी अन्य सदस्य को उस बैठक में समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए चुनती है।[398] समिति का अध्यक्ष प्रथमत: मत नहीं दे सकता, परन्तु किसी विषय पर मतों की संख्या समान होने की अवस्था में उसका मत निर्णायक होता है।[399]

कृत्य

मंत्री द्वारा पत्र राज्य सभा के समक्ष रख दिए जाने के पश्चात् समिति निम्नलिखित बातों पर विचार करती है :

(क) क्या संविधान के उन उपबंधों या संसद् के उस अधिनियम अथवा किसी अन्य विधि, नियम या विनियम का अनुपालन हुआ है जिसके अनुसरण में पत्र को इस प्रकार रखा गया है;

(ख) क्या पत्र को सदन के समक्ष रखने में कोई अनुचित विलम्ब हुआ है, और यदि हां, तो (1) क्या इस प्रकार के विलम्ब के कारणों को स्पष्ट करने वाला एक विवरण भी पत्र के साथ-साथ सदन के समक्ष रखा गया है और (2) क्या वे कारण संतोषजनक हैं; और

(ग) क्या पत्र को सदन के समक्ष अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में रखा गया है, और यदि नहीं, तो (1) क्या पत्र को हिन्दी में न रखने के कारणों को स्पष्ट करने वाला एक विवरण भी पत्र के साथ-साथ राज्य सभा के समक्ष रखा गया है, और (2) क्या वे कारण संतोषजनक हैं।[400]

समिति सभा पटल पर रखे गए पत्रों के संबंध में ऐसे अन्य कार्य करती है जो इसे सभापति द्वारा समय-समय पर सौंपे जाते हैं।[401]

25 फरवरी, 1987 को, जब सीमा-शुल्क और उत्पाद-शुल्क से संबंधित अनेक अधिसूचनाओं को सभा पटल पर रखा जा रहा था तो उन्हें बजट प्रस्तुत किए जाने से पूर्व जारी करने के औचित्य के बारे में सदन में प्रश्न उठाया गया था। सभापति ने उनके संबंध में वास्तविक स्थिति ज्ञात करने के लिए समिति को निदेश दिया। तद्नुसार समिति ने मामले पर विचार किया और 9 अक्तूबर, 1987 को सभापति के समक्ष एक (विशेष) प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। सभापति ने समिति के निष्कर्ष के आधार पर 28 मार्च, 1988 को अपना निदेश दिया।[402]

23 अगस्त, 1994 को, जब वित्त मंत्रालय में राज्य मंत्री 1993-94 के वर्ष के लिए भारतीय स्टेट बैंक के वार्षिक प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखने वाले थे, तब कतिपय सदस्यों ने इस प्रतिवेदन के सभा पटल पर रखे जाने के प्रति मुख्यत: इस आधार पर आपत्ति की थी कि बैंक की वार्षिक आम बैठक उचित ढंग से नहीं हुई थी और प्रतिवेदन आदि विधिवत् ढंग से स्वीकार नहीं किए गए थे। उपसभापति ने प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखे जाने की अनुमति देते हुए इस मामले को विस्तृत जांच और प्रतिवेदन हेतु समिति के पास भेज दिया।[403]

शक्तियां

समिति को यह शक्ति प्रदान की गई है कि अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए जिन व्यक्तियों की उपस्थिति अथवा जिन पत्रों अथवा अभिलेखों को प्रस्तुत कराना वह आवश्यक समझे, तो वह ऐसा कर सकती है।[404] तथापि, सरकार किसी प्रलेख को प्रस्तुत करने से इस आधार पर इंकार कर सकती है कि उसे प्रकट करना राज्य की सुरक्षा या हित के प्रतिकूल होगा।[405] इस नियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, महासचिव द्वारा हस्ताक्षरित आदेश के द्वारा किसी साक्षी को आमंत्रित किया जा सकता है और वह ऐसे प्रलेख प्रस्तुत करेगा जो समिति के उपयोग के लिए आवश्यक समझे जाएं।[406] यह समिति के स्वविवेक पर निर्भर करेगा कि वह अपने समक्ष दिए गए किसी साक्ष्य को गुप्त या गोपनीय माने।[407]

समिति का कार्यकरण

समिति सभापटल पर रखे गए पत्रों की जांच से संबंधित सभी मामलों के संबंध में अपनी प्रक्रिया स्वयं निर्धारित करती है।[408] तदनुसार, समिति ने सिफारिशों/समुक्तियों के रूप में कुछ नियम बनाए हैं। सभापटल पर रखे गए प्रत्येक पत्र और उस संबंध में किसी सदस्य से प्राप्त सुझाव या सभा अथवा सभापति से प्राप्त किसी निदेश के संबंध में सबसे पहले सचिवालय द्वारा कार्रवाई की जाती है, और यदि आवश्यक हो, तो उस संबंध में एक ज्ञापन तैयार किया जाता है। समिति के अध्यक्ष द्वारा इसका अनुमोदन किए जाने के पश्चात् इस ज्ञापन को संबंधित मंत्रालय से प्राप्त पत्र संबंधी तथ्यों या टिप्पणियों और पृष्ठभूमि टिप्पणों सहित समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इसके पश्चात् समिति की बैठक की सूचना सहित संबद्ध पत्र सदस्यों को परिचालित किए जाते हैं। इस प्रकार परिचालित किए गए पत्रों को गोपनीय समझा जाता है।

प्राय: संगठन/संस्थान सभा में अपने पत्रों को पटल पर रखने में देरी करते हैं और अनेक पक्षों यथा मंत्रालय के व्यापक समीक्षा विवरण की अनुपस्थिति; हिन्दी/अंग्रेजी अनुवाद में समस्या, लेखा संबंधी आपत्तियां प्रकट होना और प्रतिवेदनों में इसके उत्तरों पर समिति

की सिफारिशों का अनुपालन नहीं करते। तदनुसार समिति इस प्रकार के मामलों के संबंध में चयनित सरकारी संस्थानों/संस्थानों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ उक्त उल्लिखित मुद्दों पर उनके प्रशासनिक मंत्रालयों/विभागों के प्रतिनिधियों से विचार-विमर्श करने हेतु स्थानीय/शैक्षणिक दौरा करने का निर्णय करती है।

प्रतिवेदन

समिति का प्रतिवेदन सभा में समिति के अध्यक्ष द्वारा या उसकी अनुपस्थिति में, समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।[409]

रखे गए पत्रों के बारे में सदन में मामले उठाने पर प्रतिबंध

समिति के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आने वाले किसी मामले को उठाने के इच्छुक सदस्य को उसके बारे में समिति से संपर्क करना चाहिए और उसे सीधे सदन में नहीं उठाना चाहिए।[410]

सामान्य सिफारिशें

पत्रों को सभापटल पर रखे जाने के लिए समिति ने जो मुख्य दिशा-निर्देश निर्धारित किये हैं, वे इस प्रकार हैं :

संसद् के अधिनियमों द्वारा स्थापित सरकारी उपक्रमों अथवा कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 394 और 395 के अन्तर्गत निगमित कंपनियों अथवा सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत पंजीकृत सोसाइटियों अथवा किसी अन्य संगठन/बोर्ड जिनके वार्षिक प्रतिवेदन इत्यादि संसद् के सदनों के पटल पर रखे जाते हैं, के वार्षिक प्रतिवेदन और लेखापरीक्षित लेखे, उन पर जब कभी आवश्यक होने पर लेखापरीक्षक और भारत के नियंत्रक महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन/समीक्षा/टिप्पणियों सहित और सरकार के प्रतिवेदन/समीक्षा लेखे बंद होने के नौ माह के भीतर सभापटल पर रखे जाने चाहिए।[411]

विलम्ब होने पर प्रलेखों के साथ-साथ सभापटल पर विलंब के कारणों को स्पष्ट करने वाला विवरण भी रखा जाना चाहिए। यदि निर्धारित अवधि के भीतर पत्रों को सभा पटल पर रखे जाने में विलंब होने की संभावना हो तो प्रशासनिक मंत्रालय को समय बढ़वाने के लिए कारण बताते हुए पर्याप्त समय पूर्व ऐसा करने हेतु समिति से संपर्क करना चाहिए। पत्रों को रखे जाने के समय समिति द्वारा दी गई समय-वृद्धि का उल्लेख किया जाना चाहिए।[412]

कंप्यूटरीकरण के युग में, समिति ई-नेटवर्क से युक्त फारमेट में लेखा के रखरखाव और उसे अद्यतन रखने हेतु सूचना प्रौद्योगिकी और पर्याप्त कुशल श्रमशक्ति के प्रयोग पर बल देती रही है ताकि वास्तविक समय आधार पर लेखे रखे जा सकें और उन्हें राज्य सभा के पटल पर समय से तैयार करके, पूर्ण करके समय पर रखा जा सके।

सरकारी उपक्रमों/कंपनियों/सोसाइटियों इत्यादि के सभापटल पर रखे जाने वाले प्रतिवेदनों में निम्नलिखित सम्मिलित होना चाहिए :

(1) वार्षिक प्रतिवेदन; (2) लेखापरीक्षित लेखे; (3) नियंत्रक और महालेखापरीक्षक द्वारा दी गई टिप्पणियां जब भी दी गई हों; (4) नियंत्रक और महालेखापरीक्षक द्वारा समीक्षा जब भी की गई हो; (5) लेखापरीक्षक की टिप्पणियों और नियंत्रक और महालेखापरीक्षक की टिप्पणियों और समीक्षा का उत्तर; (6) सरकारी कंपनियों के संबंध में कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 394 और 395 के अंतर्गत सरकार द्वारा प्रतिवेदन और उन अन्य संस्थाओं की समीक्षा जिनका प्रतिवेदन सरकार द्वारा रखा जाता है और (7) संसद् में प्रस्तुत किया जाने वाला सरकारी कंपनी/संगठन का वार्षिक बजट।[413]

जब भी कुछ अपेक्षाओं की पूर्ति हो जाती है, तो सरकारी टिप्पण में अन्य अपेक्षाओं के पूरा न किये जाने की बात को स्पष्ट रूप से दर्शाया जाना चाहिए। इसके पश्चात् जब भी शेष भाग सभापटल पर रखे जाते हैं तो उस समय भी अन्य भागों को पहले पूरा कर दिये जाने संबंधी ब्यौरों का उल्लेख किया जाना चाहिए।[414]

सभापटल पर रखे गये सभी प्रलेखों/विवरणों पर स्थान, तिथि तथा हस्ताक्षर करने वाले का नाम तथा पदनाम भी लिखा होना चाहिए।[415]

दिये गये वक्तव्यों तथा सभापटल पर रखे गये पत्रों में दी गई जानकारी को संगत रूप से यथार्थपूर्ण तथा पर्याप्त होना चाहिए और इन्हें संविधान/संविधियों/अधिनियमों/नियमों/विनियमों/संकल्पों/आदेशों/निर्देशों के उपबंधों की अपेक्षाओं को भी पूरा करना चाहिए। यदि इनमें से कोई भी अपेक्षा पूरी नहीं की जाती है, तो समिति किसी भी पत्र को अपूर्ण मानती है।[416]

सामान्यतया प्रतिवेदनों/प्रलेखों के अंग्रेजी तथा हिन्दी दोनों रूपान्तर सभापटल पर एक साथ रखे जाते हैं। तथापि, आपवादिक मामलों में जहां दोनों रूपान्तरणों का एक साथ रखा जाना संभव न हो अथवा जहां सभापति ने किसी विशिष्ट अनुरोध पर और विशेष कारणों से अनुमति दे दी हो, तो मंत्रालय/विभाग को चाहिए कि किसी एक रूपान्तरण को सभा पटल पर रखते समय उन्हें दूसरा रूपान्तरण न रखने के कारणों को स्पष्ट करने वाला विवरण तथा दूसरे रूपान्तरण को प्रस्तुत करने में लगने वाले समय का संकेत करने वाला एक विवरण निरपवाद रूप से सभापटल पर रखना चाहिए। ऐसे मामलों में, दूसरा रूपान्तरण या तो उसी सत्र में या अधिक से अधिक अगले सत्र के प्रथम सप्ताह में सभापटल पर रखना आवश्यक होता है और उसके साथ इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाते हुए एक विवरण भी रखना होता है कि पहला रूपान्तरण अंग्रेजी या हिन्दी में अमुक तिथि को सभापटल पर पहले ही रखा जा चुका है।[417-418]

विलंब के कारणों को दर्शाने वाले विवरण में कालानुक्रम से जानकारी दी जानी चाहिए जिसमें लेखाओं को संकलित किये जाने, उन्हें लेखापरीक्षा के लिए भेजने, लेखापरीक्षा प्रतिवेदन का प्रारूप प्राप्त होने, लेखापरीक्षा संबंधी उठाई गई आपत्तियों के उत्तर देने, अंतिम रूप से लेखा परीक्षा प्रतिवेदन प्राप्त होने, लेखाओं का अनुवाद और मुद्रण तथा सभा पटल पर रखने के लिए उन्हें मंत्रालयों को भेजे जाने की तारीखों का उल्लेख किया गया हो ताकि सभा विलंब होने की प्रावस्था तथा विलंब के कारणों के साथ-साथ इस बात का भी पता लगा सके कि वास्तव में कितना विलंब हुआ है तथा जहां कहीं आवश्यक हो, उपचारी उपायों का सुझाव भी दे सके।[419]

वार्षिक प्रतिवेदन और लेखापरीक्षित लेखे पुनरीक्षा विवरणों तथा विलंब के कारणों वाले विवरणों सहित, यदि कोई हों, तो साथ-साथ सभापटल पर रखे जाने चाहिए ताकि दिए गए समय पर संगठन के कार्यकरण के संबंध में संसद् के समक्ष एक पूर्ण तथा सही स्थिति स्पष्ट हो सके।[420]

सभापटल पर प्रतिवेदन के विलंब से रखे जाने की सभी विवशतापूर्ण परिस्थितियों में समय बढ़वाने के लिए प्रशासनिक मंत्रालय को अपरिहार्य रूप से समिति से संपर्क करना चाहिए। किन्तु समय बढ़वाने को एक नियमित प्रथा नहीं बनाया जाना चाहिए और इससे यथासंभव बचा जाना चाहिए।[421]

लेखापरीक्षा संबंधी आपत्ति का समुचित रूप से उत्तर दिया जाना चाहिए और उसे लेखापरीक्षित लेखों के साथ दिखाया जाना चाहिए।

आवास समिति

गठन

आवास समिति उन चार समितियों में से एक है जिनका गठन पहली बार 1952 में किया गया था। वर्ष 1986 तक नियम पुस्तिका में इसके लिए कोई उपबंध नहीं था। नियम समिति ने नोट किया कि आवास समिति, जोकि राज्य सभा के प्रारंभ से ही अस्तित्व में रही है, के लिए मुख्य नियमों में उपबंध नहीं किया गया था। समिति को आवास समिति को नियमों में कोई स्थान न दिए जाने के पीछे कोई कारण नजर नहीं आया। तदनुसार, नियम समिति ने चौथे प्रतिवेदन (1986) में प्रक्रिया विषयक नियमों में आवास समिति के संबंध में एक नया अध्याय सम्मिलित करने की सिफारिश की।[422]

समिति[423] में दस सदस्य होते हैं जो राज्य सभा के सभापति द्वारा नामनिर्देशित किए जाते हैं।[424] समिति कोई नई समिति नामनिर्देशित किये जाने तक कार्य करती है।[425] समिति में आकस्मिक रूप से रिक्त हुए स्थानों की पूर्ति सभापति द्वारा नामनिर्देशन के माध्यम से की जाती है।[426] समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति तीन है।[427]

समिति का अध्यक्ष सभापति द्वारा समिति के सदस्यों में से नियुक्त किया जाता है।[428] यदि समिति का अध्यक्ष किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ हो तो सभापति उसी प्रकार से उसके स्थान पर समिति का एक अन्य सदस्य को अध्यक्ष के रूप में नियुक्त कर सकता है।[429] यदि समिति का अध्यक्ष किसी बैठक में अनुपस्थित है तो समिति किसी अन्य सदस्य को उस बैठक में समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए चुनती है।[430] समिति का अध्यक्ष प्रथमत: मत नहीं देता है परन्तु किसी विषय पर मतों की संख्या समान होने की अवस्था में उसका मत निर्णायक होता है।[431]

कृत्य

समिति के कृत्य इस प्रकार हैं : (1) सदस्यों के निवास स्थानों से संबंधित सभी मामलों के संबंध में कार्यवाही करना; (2) सदस्यों को दी गई आवास, टेलीफोन, खाद्य पदार्थ

तथा चिकित्सीय सहायता जैसी अन्य सुविधाओं की देख-रेख करना और (3) सदस्यों को ऐसी सुविधाएं देने के बारे में विचार करना और उन्हें प्रदान करना, जिन्हें समय-समय पर आवश्यक समझा जाए।[432]

शक्तियां

यदि समिति अपने कर्त्तव्य पालन के लिए व्यक्तियों की उपस्थिति अथवा पत्र अथवा अभिलेख प्रस्तुत कराना आवश्यक समझे तो उसे ऐसा मार्ग अपनाने की शक्ति प्राप्त हैं।[433] परन्तु सरकार किसी प्रलेख को प्रस्तुत करने से इस आधार पर इंकार कर सकती है कि उसका प्रकट किया जाना राज्य की सुरक्षा या हित के प्रतिकूल है।[434] इसके अध्यधीन, महासचिव द्वारा हस्ताक्षरित आदेश के द्वारा किसी साक्षी को आमंत्रित किया जा सकता है और वह ऐसे प्रलेख प्रस्तुत करेगा जो समिति के उपयोग के लिए अपेक्षित हों।[435] यह समिति के स्वविवेक पर निर्भर करता है कि वह अपने सामने दिए गए किसी साक्ष्य को गुप्त या गोपनीय माने।[436]

समिति का कार्यकरण

यह समिति सदस्यों के लिए आवास और अन्य सुविधाओं से जुड़े सभी मामलों के विषय में अपनी प्रक्रिया स्वयं निर्धारित करती है।[437]

सदस्यों के लिए आवास और अन्य सुविधाओं से संबंधित सभी प्रस्तावों, सुझावों इत्यादि पर जहां कहीं आवश्यक होता है, सचिवालय कार्यकारी प्राधिकारियों के परामर्श से विचार करता है। समिति के समक्ष प्रस्तुत की जाने वाली मदों की संख्या पर्याप्त हो जाने पर समिति के अध्यक्ष के आदेश के अधीन समिति की बैठक की तारीख और समय निश्चित किए जाते हैं। बैठक में संबंधित कार्यकारी प्राधिकारियों के प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया जाता है ताकि वे समिति के विचाराधीन प्रस्तावों के निहितार्थों से समिति को अवगत करा सकें और समिति द्वारा मांगी जाने वाली जानकारी उपलब्ध करा सकें।

समिति सदस्यों के लिए रिहायशी सुविधा और अन्य सुविधाओं से जुड़े किन्हीं विशिष्ट मुद्दों की जांच करने के लिए एक या कई उप-समितियां नियुक्त कर सकती है।[438]

दोनों सदनों के सदस्यों के साझे हित से संबंध रखने वाले प्रस्तावों, सुझावों आदि पर दोनों सदनों की आवास समितियों के अध्यक्ष विचार करते हैं और निर्णय लेते हैं।

प्रतिवेदन

समिति का प्रतिवेदन इसके अध्यक्ष द्वारा या उनकी अनुपस्थिति में, समिति के किसी सदस्य द्वारा सदन में उपस्थित किया जाता है।[439] तथापि, सामान्यत: समिति नियमित रूप से अपना कोई प्रतिवेदन सदन में उपस्थित नहीं करती। अपनी स्थापना से लेकर अब तक समिति ने केवल ग्यारह प्रतिवेदन सदन में उपस्थित किए हैं।[440] समिति की बैठकों के कार्यवृत्त समिति के सदस्यों में परिचालित किए जाते हैं और उनके प्रासंगिक अंश उपयुक्त प्राधिकारियों

को आवश्यक कार्यवाही हेतु अग्रेषित कर दिए जाते हैं। समिति को अपनी सिफारिशों या निर्णयों के कार्यान्वयन के संबंध में हुई प्रगति की समय-समय पर सूचना दी जाती है। समिति की सिफारिशें सरकार द्वारा सामान्यत: कार्यान्वित कर दी जाती हैं। यदि सरकार वैसा करने में असमर्थ हो तो, समिति सरकार की आपत्तियों पर विचार कर सकती है और आवश्यकता पड़ने पर अपनी पूर्ववर्ती सिफारिशों में संशोधन कर सकती है।

नियम समिति

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

संसद् का प्रत्येक सदन अपने प्रक्रिया और कार्य-संचालन को नियंत्रित करने के लिए, संविधान के उपबंधों के अध्यधीन, नियम बना सकता है।[441]

जब तक ऐसे नियम नहीं बने तब तक भारतीय संसद् के विषय में, ऐसे परिवर्द्धनों और अनुकूलनों के अध्यधीन राज्य सभा के मामले में जो सभापति द्वारा उनमें किए गए वही प्रक्रिया-विषयक नियम और स्थायी आदेश लागू रहे जो भारतीय संविधान के प्रवृत्त होने से तुरन्त पहले भारत राज्य के विधान-मंडल के मामले में लागू थे।[442] अन्य शब्दों में, 13 मई, 1952 को जब राज्य सभा की पहली बैठक हुई तब इसके अपने कोई प्रक्रिया-विषयक नियम नहीं थे। राज्य सभा में प्रक्रिया और कार्य-संचालन को नियंत्रित करने के प्रयोजन से राज्य सभा के सभापति ने संविधान के अनुच्छेद 118 के खंड (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का उपयोग करते हुए संविधान के प्रवृत्त होने से तुरंत पहले लागू संविधान सभा (विधायी) प्रक्रिया एवं कार्य-संचालन विषयक नियमों को संशोधित और अंगीकृत किया और इन्हें भारत के राजपत्र, असाधारण, दिनांक 16 मई, 1952 में प्रकाशित किया गया।

> सभापति ने सभा में घोषणा की कि संविधान प्रवृत्त होने से तुरन्त पहले लागू प्रक्रिया एवं कार्य-संचालन विषयक नियमों में उन्होंने परिवर्द्धन किया है और उन्हें इस सत्र को शासित करने वाले नियमों के रूप में अपनाया है।[443]

नियम समिति का सबसे पहला नामनिर्देशन 22 मई, 1952 को हुआ था। इसके चौदह सदस्य थे, नियम समिति ने यथा-संशोधित और यथा-अंगीकृत नियमों में संशोधनों के सुझाव प्राप्त किए और उन पर विचार किया। समिति ने अपना पहला प्रतिवेदन सभापति को 10 जुलाई, 1952 को प्रस्तुत किया। सभापति ने संशोधनों को अपनी स्वीकृति दी और इन्हें राजपत्र, दिनांक 11 जुलाई, 1952 में प्रकाशित किया गया। (ये संशोधन प्रश्नों के विषय में थे और इनमें आधे घंटे की चर्चा का उपबंध था।)[444]

समिति ने दूसरा प्रतिवेदन सभापति को 2 अगस्त, 1952 को प्रस्तुत किया। सभापति द्वारा सुझाए गए संशोधनों को सभापति ने स्वीकृति दे दी और ये राजपत्र में 4 अगस्त, 1952 को प्रकाशित किये गये। (इन संशोधनों में कार्य मंत्रणा समिति का उपबंध किया गया था।)[445]

समिति का तीसरा प्रतिवेदन सभापति को 14 अगस्त, 1952 को प्रस्तुत किया गया। सभापति द्वारा सुझाए गए संशोधन 12 सितंबर, 1952 के राजपत्र में प्रकाशित किये गये। (ये संशोधन उपसभापति के निर्वाचन से संबंधित नियमों के बारे में और विधेयकों के बारे में थे।)[446]

समिति का चौथा प्रतिवेदन सभापति को 24 सितंबर, 1952 को प्रस्तुत किया गया। सभापति द्वारा स्वीकृत संशोधन 23 जनवरी, 1953 के राजपत्र में प्रकाशित किये गये। (ये संशोधन विधेयक संबंधी प्रवर समिति के प्रतिवेदन और धन विधेयक पर विचार के विषय में थे)।[447]

सभापति को 23 जनवरी को प्रस्तुत किया गया समिति का पांचवां प्रतिवेदन दोनों सदनों की संयुक्त समितियों के गठन के बारे में था। समिति के सुझाव को लोक सभा अध्यक्ष को सौंप दिया गया ताकि उस सदन के नियमों में तद्नुरूप संशोधन अंतर्विष्ट किए जा सकें। किन्तु, इस मामले में आगे कोई कार्यवाही नहीं की गई।[448]

इस प्रकार, जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, सभापति द्वारा यथा-संशोधित और यथा-स्वीकृत पुराने नियम ही राज्य सभा के संचालन और प्रक्रिया को तब तक शासित करते रहे जब तक कि 1964 में उनके स्थान पर नए नियम नहीं बना दिये गये।

नये नियम

7 सितंबर, 1962 को श्रीमती वायलट आल्वा ने एक संकल्प उपस्थित किया कि संविधान के अनुच्छेद 118 (1) के अधीन प्रक्रिया विषयक प्रारूप नियमों की सिफारिश करने के लिए राज्य सभा की एक समिति का गठन किया जाए। यह समिति संकल्प में उल्लिखित पन्द्रह सदस्यों से मिलकर बनी थी। यह संकल्प उसी दिन स्वीकृत हो गया। बाद में संकल्प के अनंतिम पैराग्राफ में प्रदत्त शक्ति का उपयोग करते हुए सभापति ने इस समिति में अन्य बारह सदस्य सम्मिलित कर दिए।[449] इस समिति का प्रतिवेदन सभा में 29 नवंबर, 1963 को उपस्थित किया गया।

27 मई, 1964 को समिति के सदस्यों, श्री मुल्क गोविंद रेड्डी ने दो प्रस्ताव उपस्थित किये कि प्रतिवेदन पर विचार किया जाए और इन नियमों को संविधान के अनुच्छेद 118 (1) के अधीन सदन की प्रक्रिया एवं कार्य-संचालन विषयक नियमों के रूप में स्वीकृत किया जाए। ये प्रारूप नियम 2 जून, 1964 को स्वीकृत किए गए। इन नियमों को भारत के राजपत्र, असाधारण भाग-I, खंड-1, दिनांक 1 जुलाई, 1964 में प्रकाशित किया गया। सभापति ने 1 जुलाई, 1964 की तारीख को इन नियमों के प्रवृत्त होने की तारीख के रूप में नियत किया।[450]

नियमों में, अन्य बातों के साथ-साथ, पहली बार ध्यान दिलाने और अल्पकालिक चर्चा के लिए प्रक्रियाएं पुरःस्थापित की गईं। अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का भी गठन किया गया और याचिका समिति का विषय क्षेत्र विस्तृत कर दिया गया।

गठन

नियम समिति राज्य सभा के सभापति द्वारा नामनिर्देशित की जाती है और उसमें राज्य सभा के सभापति तथा उपसभापति सहित सोलह सदस्य शामिल हैं।[451] राज्य सभा का सभापति समिति का अध्यक्ष होता है।[452] समिति नई सिमिति के नामनिर्देशित होने तक कार्य करती है।[453] समिति में आकस्मिक रूप से रिक्त स्थान सभापति द्वारा भरे जाते हैं।[454]

यदि सभापति किसी कारण से समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने में असमर्थ हो तो उपसभापति उसके स्थान पर समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है।[455] यदि सभापति और उपसभापति, दोनों ही किसी कारण से किसी बैठक का सभापतित्व करने में असमर्थ हों, तो समिति उस बैठक के लिए अध्यक्ष के रूप में कार्य करने हेतु किसी अन्य सदस्य को चुन सकती है।[456]

समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति सात सदस्यों से होगी।[457] समिति का अध्यक्ष प्रथमत: मत नहीं देगा, किन्तु किसी विषय पर मतों की संख्या समान होने की अवस्था में उसका मत निर्णायक होगा।[458]

कृत्य

समिति का कार्य सदन की प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन के विषयों पर विचार करना और इन नियमों में ऐसे संशोधनों अथवा अभिवर्द्धन की सिफारिश करना है जो आवश्यक समझे जाएंगे।[459] नियमों में संशोधन अथवा अभिवर्द्धन के लिए सुझाव मंत्री सहित सदन के किसी भी सदस्य द्वारा अथवा समिति द्वारा स्वयं अथवा सचिवालय द्वारा दिये जा सकते हैं।[460] सचिवालय सदस्यों के पास नियमों में संशोधन के लिए उनके सुझाव आमंत्रित करते हुए परिपत्र भी जारी करता है।[461]

समिति का कार्यकरण

नियमों में संशोधन और अभिवर्धन के लिए सभी सुझावों और प्रस्तावों की पहले सचिवालय द्वारा जांच की जाती है और उन्हें ज्ञापनों के रूप में समिति के समक्ष रखा जाता है जिसमें प्रत्येक प्रस्ताव के निहितार्थ बताए जाते हैं। ये ज्ञापन समिति के सदस्यों को परिचालित किए जाते हैं।

> सत्रह विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों के गठन के संबंध में 11 मार्च, 1993 को दोनों सदनों की नियम समितियों की संयुक्त बैठक हुई थी। इसकी अध्यक्षता राज्य सभा के सभापति ने की थी।[462]

प्रतिवेदन

समिति की सिफारिशों का प्रतिवेदन, समिति की बैठकों के कार्यवृत्त सहित, उपसभापति अथवा उसकी अनुपस्थिति में समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा सदन में प्रस्तुत किया जाता है।[463]

> समिति का सातवां प्रतिवेदन उपसभापति द्वारा सभापीठ से प्रस्तुत किया गया था।[464]

प्रतिवेदन में अन्य बातों के साथ-साथ समिति द्वारा सिफारिश किए गए संशोधन और उनसे संबद्ध कारण तथा ऐसे सुझाव जिन पर समिति ने विचार किया, किन्तु उनसे सहमत नहीं हुई, शामिल हैं।

प्रतिवेदन पर विचार

प्रतिवेदन के प्रस्तुत किए जाने के बाद, उपसभापति अथवा उसकी अनुपस्थिति में सभापति द्वारा नामोद्दिष्ट समिति का कोई सदस्य यह प्रस्ताव कर सकेगा कि समिति के प्रतिवेदन पर विचार किया जाए।[465] कोई सदस्य प्रतिवेदन पर विचार करने के प्रस्ताव में संशोधन की सूचना उस रूप में दे सकेगा, जैसे सभापति उपयुक्त समझे।[466] प्रतिवेदन पर विचार करने का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के बाद, उपसभापति अथवा उसकी अनुपस्थिति में सभापति द्वारा नामोद्दिष्ट समिति का कोई सदस्य प्रस्ताव कर सकेगा कि राज्य सभा प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिशों से सहमत है, अथवा संशोधन सहित सहमत है।[467] नियमों के संशोधन जिस रूप में वे राज्य सभा द्वारा अनुमोदित हों, सभापति द्वारा नियत तिथि से प्रभावी होते हैं।[468] उसके बाद संशोधन राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है और सदस्यों की सूचना के लिए संसदीय समाचार जारी किया जाता है।

तथापि, राज्य सभा में सभापति द्वारा की गई घोषणा के द्वारा पूर्व पदनाम 'सचिव' को बदलकर नया पदनाम 'महासचिव' कर दिया गया। सभा इस बात पर सहमत थी कि संगत नियमों में तद्नुसार संशोधन किया जाए।[469]

नियमों के संशोधन संबंधी सिफारिशों का सार

नियम समिति द्वारा 10 अप्रैल, 1972 को राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये प्रथम प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट समिति की सिफारिशों के आधार पर जुलाई, 1972 में नियमों में संशोधन किये गये थे। संशोधन अन्य बातों के साथ-साथ अधीनस्थ विधान संबंधी समिति के कार्यों में विस्तार से संबंधित थे जिससे उसे संविधान के अधीन बनाये गये नियमों और विनियमों की संवीक्षा करने की शक्ति प्रदान की जा सके। नियमों में सरकारी आश्वासनों संबंधी एक नयी समिति का भी प्रावधान किया गया था।[470]

नियम समिति द्वारा 2 मई, 1979 को राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये अपने दूसरे प्रतिवेदन में नियमों में और संशोधन करने की सिफारिश की गई थी। जिन संशोधनों की सिफारिश की गई थी उनमें से कुछ गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों, अल्प सूचना प्रश्न पूछे जाने और राज्य सभा के सदस्यों द्वारा पद के त्याग करने संबंधी मौजूदा प्रक्रिया के बारे में थे। समिति ने यह सिफारिश भी की थी कि राज्य सभा की 'सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति' होनी चाहिए और सदस्यों को सदन में कोई आरोप लगाने से पूर्व सभापति और संबद्ध मंत्री को सूचना देनी आवश्यक होनी चाहिए।

समिति ने 2 दिसंबर, 1981 को राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये अपने तीसरे प्रतिवेदन में नियमों में और संशोधन की सिफारिश की थी। उनमें से महत्वपूर्ण सिफारिशें ये थीं कि उपसभापति को कार्य मंत्रणा समिति और नियम समिति का सदस्य बनाया जाना चाहिए; यदि शुक्रवार को कोई बैठक न हो तो गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य सप्ताह के किसी अन्य दिन निपटाया जाना चाहिए; कार्य मंत्रणा समिति को गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए भी समय आवंटित करना चाहिए, जैसा कि वह सरकारी कार्य के मामले में किया करती है; गैर-सरकारी सदस्य का संकल्प सदन द्वारा व्यक्त की जाने वाली राय की घोषणा से भिन्न रूप में होना चाहिए। विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को विचारार्थ सौंपने के प्रस्ताव को जैसाकि पहले किया जाता था सदन के नेता के बजाए प्रश्न उठाने वाले सदस्य द्वारा अथवा किसी अन्य सदस्य द्वारा उपस्थित किया जाना चाहिए। समिति ने, अपने सदस्यों की गिरफ्तारी, उन्हें निरुद्ध किये जाने और रिहा किये जाने आदि से संबंधित नियमों के सैट का भी सुझाव दिया जिनमें राज्य सभा के सभापति को सूचना देने के प्राधिकारों की आवश्यकता बताई गई थी।

राज्य सभा ने 24 दिसंबर, 1981 को हुई अपनी बैठक में सभापति द्वारा समिति के नामनिर्देशित किसी सदस्य द्वारा उपस्थित किये गये प्रस्ताव पर उल्लिखित दूसरे और तीसरे प्रतिवेदनों पर सहमति प्रकट की थी, ऐसा करते हुए सदन ने समिति की कतिपय सिफारिशों में परिवर्तन किया और नियमों में

संशोधन किए। सदन द्वारा अंतिम रूप से सहमत संशोधनों को सभापति द्वारा 15 जनवरी, 1982 को प्रवृत्त किया गया।[471]

समिति ने राज्य सभा में 19 मार्च, 1986 को प्रस्तुत अपने चौथे प्रतिवेदन में नियमों में अन्य संशोधनों की सिफारिश की थी। समिति ने नियम 25 के उप-नियम (3) में संशोधन की सिफारिश की थी जिससे कि विधेयकों पर बैलट करने के बजाए, उन व्यक्तियों के नामों का बैलट किया जाएगा जो उन विधेयकों के प्रभारी हैं और बैलट में पहले दस स्थान प्राप्त करने वाले सदस्यों को अपने विधेयक चुनने के लिए कहा जाएगा। यह भी उपबंध किया गया था कि कोई भी सदस्य उसी सत्र में विचार के लिए एक से अधिक विधेयक का चयन नहीं कर सकेगा। समिति द्वारा नियम 28 के उप-नियम (2) में समुचित संशोधन की भी सिफारिश की गई थी क्योंकि यह महसूस किया गया था कि किसी ऐसे विधेयक पर जिस पर वाद-विवाद को अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया गया था मतदान (बैलट) की प्रक्रिया करना आवश्यक नहीं है और इसकी बजाए ऐसे विधेयक को अन्य विधेयकों से अग्रता प्राप्त होनी चाहिए। नियम 29 के उप-नियम (4) के संबंध में जिस संशोधन की सिफारिश की गई थी वह पारिणामिक स्वरूप का था। समिति ने प्रक्रिया संबंधी नियमों में आवास समिति से संबंधित एक नये अध्याय अर्थात् नियम 212त से 212ब वाले अध्याय XVIIग को सम्मिलित करने की सिफारिश की थी जोकि राज्य सभा के बनाए जाने के समय प्रारंभ से ही विद्यमान थे परन्तु उन्हें नियमों के मुख्य समूह में स्थान नहीं दिया गया था। सदन ने संशोधनों पर 14 मई, 1986 को सहमति प्रकट की थी और उन्हें सभापति द्वारा 1 जुलाई, 1986 से प्रवृत्त किया गया था।[472]

समिति ने 19 अगस्त, 1992 को सभा में प्रस्तुत किए गए अपने पांचवें प्रतिवेदन में (i) मानव संसाधन विकास; (ii) उद्योग; और (iii) श्रम पर तीन समितियों के गठन की सिफारिश की। राज्य सभा ने अगले दिन, अर्थात् 20 अगस्त, 1992 को प्रतिवेदन स्वीकार किया।

तदुपरान्त, सामान्य प्रयोजन समिति और नियम समिति, दोनों ने 23 फरवरी, 1993 को संपूर्ण मामले पर दुबारा विचार किया। इस विषय पर, दोनों सदनों की नियम-समितियों ने 11 मार्च, 1993 को एक संयुक्त बैठक में आगे भी चर्चा की। इन चर्चाओं के परिणामस्वरूप, समिति ने प्रत्येक सभा में पहले गठित की गई तीन समितियों के स्थान पर सत्रह विभाग-संबंधी संसदीय स्थायी समितियों के गठन की सिफारिश की। इस संबंध में समिति का छठवां प्रतिवेदन सभा में 24 मार्च, 1993 को प्रस्तुत किया गया और सभा द्वारा उसमें कुछेक संशोधनों के साथ उसे 29 मार्च, 1993 को स्वीकार कर लिया गया। उसी दिन से नियमों को लागू कर दिया गया था।[473]

समिति का सातवां प्रतिवेदन 14 फरवरी, 1995 को प्रस्तुत किया गया था। प्रश्नों की नोटिस-अवधि को पूरे 10 से 15 दिवसों तक बढ़ाये जाने से संबंधित संस्तुतियों के साथ-साथ प्रश्नों की स्वीकार्यता की कुछेक शर्तें, प्रश्नों (तारांकित तथा अतारांकित) की संख्या-सीमा तथा किसी सदस्य की विसम्मति के कार्यवृत्त का प्रतिवेदन एक प्रवर समिति को देने की संस्तुति की। कुछ संशोधनों के साथ 30 मई, 1995 को सभा द्वारा समिति का प्रतिवेदन स्वीकार किया गया। सभा द्वारा अनुमोदित संशोधनों को 15 जून, 1995 से लागू कर दिया गया।[474]

समिति का आठवां प्रतिवेदन 12 मई, 2000 को सभा में प्रस्तुत किया गया तथा इसे 15 मई 2000 को स्वीकृत किया गया। समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ सिफारिशें कीं: (i) प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों के संग्रह में विशेष उल्लेख को अंतर्विष्ट करना जिसके प्रयोजनार्थ 180 (क) से लेकर 180 (ङ) तक नये नियमों का सुझाव दिया, (ii) नियम 168 के तहत सूचना (प्रस्ताव की सूचना) के प्रारूप में संशोधन करना ताकि इसे अधिक सुस्पष्ट बनाया जा सके, (iii) नियम 168 के अंतर्गत दी गई प्रस्ताव की सूचनाओं की जांच/स्वीकृति हेतु मानदंडों को सशक्त बनाने की दृष्टि से नियम 169 में नए उप-खंडों (ix) से (xviii) का जोड़ा जाना, (iv) नियमों के स्थगन हेतु प्रस्ताव से संबंधित नियम 267 में संशोधन करना ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह नियम सभा के समक्ष उस दिन की कार्यावलि के प्रासंगिक हैं, और (v) राज्य सभा के प्रक्रिया और कार्य संचालन विषयक नियमों के संग्रह में सामान्य प्रयोजन समिति को अंतर्विष्ट करना और सामान्य प्रयोजन समिति के संचालन हेतु नये नियमों 278-285 का सुझाव दिया। सभा द्वारा यथा अनुमोदित संशोधनों को 1 जुलाई, 2000 से लागू किया गया। 20 जुलाई, 2004 को सभा में समिति का नौवां और दसवां प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया और उसी दिन ये स्वीकृत हो गए। नौवें प्रतिवेदन में अन्य बातों के साथ-

साथ राज्य सभा के प्रक्रिया और कार्य-संचालन विषयक नियमों के संग्रह में आचार समिति से संबंधित नियमों को शामिल करने की सिफारिश की गई। दसवें प्रतिवेदन में, समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ सात नई विभाग संबंधित संसदीय स्थायी समितियों के गठन का सुझाव दिया।

समिति का ग्यारहवां प्रतिवेदन 8 दिसंबर, 2006 को सभा में प्रस्तुत किया गया, समिति ने : (i) मत विभाजन की घंटी बजाए जाने का समय दो मिनट से बढ़ाकर तीन मिनट 30 सेकंड करने के संबंध में नियम 252 में संशोधन करने; और (ii) जो मंत्री राज्य सभा के सदस्य नहीं हैं, उन्हें भी नियम 241 के अधीन व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति प्रदान करने के संबंध में उक्त नियम में संशोधन करने की सिफारिश की।[475]

समिति का बारहवां प्रतिवेदन 14 सितंबर, 2009 को सभा में प्रस्तुत किया गया। समिति ने अन्य बातों के साथ, ये सिफारिश की[476]: (i) तत्समय प्रवृत्त नियम 43 के स्थान पर नए नियम का प्रतिस्थापन, पहले लागू नियम के अंतर्गत तारांकित सूची में किसी सदस्य का नाम अधिकतम तीन बार शामिल हो सकता था, एक बार प्रथम प्रश्नकर्ता के रूप में और दूसरी बार किन्हीं अन्य सदस्यों के साथ मिलकर। समिति ने समुक्ति की कि मौखिक उत्तर के लिए औसतन मात्र चार से छह तारांकित प्रश्न ही लिए जाते हैं और शेष तारांकित प्रश्नों के लिखित उत्तर उसी तरह सभा पटल पर रख दिए जाते हैं जैसे कि वे भी अतारांकित प्रश्न हों। अतः, समिति ने महसूस किया कि अगर किसी सदस्य का नाम तारांकित सूची में केवल एक बार ही शामिल किया जाए तो और अधिक सदस्य प्रश्नों के संबंध में अनुपूरक प्रश्न पूछ पाएंगे, अतः नए नियम 43 में उपबंध किया गया कि मौखिक उत्तर के लिए किसी एक दिन को प्रश्न-सूची में एक सदस्य के एक से अधिक तारांकित प्रश्न नहीं रखे जाएंगे, (ii) नियम 54 के उप-नियम (3) का नए नियम द्वारा प्रतिस्थापन। पूर्व में विद्यमान नियम के अधीन, यदि वह सदस्य जिसके नाम पर प्रश्न सूचीबद्ध होता था और वह अनुपस्थित होता था, या उसने प्रश्न नहीं किया, तो सभापति किसी सदस्य के आग्रह पर उस प्रश्न का उत्तर दिए जाने का निदेश देते थे। परिणामस्वरूप कई मौकों पर सदस्य के अनुपस्थित होने अथवा प्रश्न नहीं पूछने पर संबंधित मंत्री द्वारा उत्तर नहीं दिया गया, जिसके कारण अन्य सदस्य और सभा अनुपूरक प्रश्न पूछने से और सरकार से यथेष्ठ सार्वजनिक महत्व के मुद्दे पर सूचना प्राप्त करने से वंचित रह जाती थी। नियम 54 के नए उप-नियम (3) के अनुसार यदि प्रश्न पुकारे जाने पर न पूछा जाए या जिस सदस्य के नाम में वह प्रश्न हो, वह अनुपस्थित हो तो सभापति निदेश देगा कि उसका उत्तर दिया जाए। इस नए उप-नियम के परिणामस्वरूप यदि कोई प्रश्न पुकारे जाने पर न पूछा जाए या जिस सदस्य के नाम से वह प्रश्न सूचीबद्ध हो, वह अनुपस्थित हो तो भी उस प्रश्न का उत्तर दिया जाएगा और अन्य सदस्य उस प्रश्न के संबंध में अनुपूरक प्रश्न भी पूछ सकेंगे। नए नियम के बन जाने से नियम 55 अप्रासंगिक हो गया और समिति ने उसे हटा दिए जाने की सिफारिश की।

प्रश्नों के समय के बारम्बार बाधित रहने के कारण नियम समिति ने सामान्य प्रयोजन समिति को प्रस्ताव किया कि प्रश्नों के समय को म.पू. 11.00 बजे से म.प. 12.00 बजे तक के स्थान पर मध्याह्न 12.00 से म.प. 1.00 बजे तक कर दिया जाए। परिणामतः म.पू. 11.00 बजे जिस पहली मद पर कार्य प्रारंभ होगा वह सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र होंगे, तत्पश्चात् 12.00 बजे तक शून्य काल और विशेष उल्लेख लिए जाएंगे। सामान्य प्रयोजन समिति इस प्रस्ताव पर सहमत हुई और उसने सिफारिश की कि सभा की बैठक के सामान्य समय को एक घंटे बढ़ा दिया जाए और तद्नुसार सभा म.पू. 11.00 बजे से म.प. 1.00 बजे तक तथा म.प. 2.00 बजे से म.प. 6.00 बजे तक बैठे, केवल शुक्रवार को भोजनावकाश के पश्चात् सभा म.प. 2.30 पर पुनः समवेत होगी। नियम समिति सामान्य प्रयोजन समिति के प्रस्तावों से सहमत थी और तद्नुसार उसने अपने तेरहवें प्रतिवेदन में ये सिफारिशें कीं: (i) प्रश्नों के समय में परिवर्तन के संबंध में राज्य सभा के प्रक्रिया एवं कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 38 में संशोधन; (ii) मौखिक उत्तर दिए जाने के प्रश्नों की संख्या को 20 से घटाकर 15 किए जाने के सबंध में नियम 51क का संशोधन; और (iii) ध्यानाकर्षण प्रस्तावों को लिए जाने के समय के संबंध में नियम 180(5) का संशोधन, नियम 38 के संशोधन के परिणामस्वरूप समिति का तेरहवां प्रतिवेदन 25 नवंबर, 2014 को सभा में प्रस्तुत किया गया था और उसे 26 नवंबर, 2014 को स्वीकृत किया गया था।[477]

सामान्य प्रयोजन समिति

राज्य सभा के प्रक्रिया संबंधी नियमों में पहले सामान्य प्रयोजन समिति का प्रावधान नहीं था यद्यपि, सभापति द्वारा प्रतिवर्ष इसका गठन किया जाता था ताकि सभा से संबंधित ऐसे मामलों पर विचार किया जा सके जो समय-समय पर सभापति द्वारा इसके पास भेजे जाएं और उनके बारे में परामर्श लिया जा सके। राज्य सभा की नियम समिति इस आठवें प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट सिफारिश के अनुसरण में एक नए अध्याय XXIII को शामिल करके 1 जुलाई, 2000 से नियमों के संग्रह में सामान्य प्रयोजन समिति का उपबंध किया गया था। इस समिति में, सभापति, उपसभापति, उपसभाध्यक्षों के पैनल के सदस्य, सभी स्थायी संसदीय समितियों के अध्यक्ष, राज्य सभा में मान्यता-प्राप्त दलों और समूहों के नेतागण और सभापति द्वारा नामित अन्य सदस्य शामिल होते हैं। अत: सामान्य प्रयोजन समिति की सदस्यता के लिए कोई संख्या निर्धारित नहीं की गई है। सभापति इस समिति का पदेन अध्यक्ष होता है।

पहली समिति का गठन 22 मई, 1957 को किया गया था और उसमें सोलह सदस्य थे, 12 अगस्त, 1976 को गठित की गई समिति में इक्कीस सदस्य थे, 7 अगस्त, 1995 तथा 31 जुलाई, 1996 को गठित की गई समितियों के सदस्यों की संख्या क्रमश: पच्चीस और इक्कीस थी। कुछेक अवसरों को छोड़कर, जबकि समिति का पुनर्गठन अन्य समितियों की भांति नहीं किया गया, इस समिति का गठन 1957 से किया जाता रहा है।

इस समिति का कार्य है : सभा अथवा सदस्यों से संबंधित ऐसे मामलों पर विचार करना और उनके बारे में सभापति को परामर्श देना जो किसी अन्य संसदीय समिति के अधिकार-क्षेत्र में न आते हों।

एक अवसर पर, समिति ने सांसदों के एयरकंडीशनरों के किराए आदि तथा अतिरिक्त आवासीय स्थान से संबंधित मामले पर विचार नहीं किया क्योंकि यह मामला आवास समिति के कार्य क्षेत्र में आता है।[478]

अब तक समिति ने प्रक्रिया संबंधी, समारोह संबंधी तथा कार्य निष्पादन संबंधी अनेक मामलों पर विचार किया है। समिति के गठन को देखें तो यह समिति, अन्य संसदीय समितियों की तुलना में अधिक सादृश्य-मूलक वाली है और इसलिए सामान्य रुचि के महत्वपूर्ण मामले सदैव इस समिति के समक्ष उपस्थित किए जाते हैं। इस समिति द्वारा जिन महत्वपूर्ण मामलों पर विचार किया गया है, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

(क) प्रक्रिया संबंधी : वर्तमान सदस्यों की मृत्यु आदि पर सभा का स्थगन;[479] मई-दिवस पर बैठक न बुलाना;[480] संसदीय समितियों के दिल्ली से बाहर दौरे पर जाने संबंधी मार्ग निर्देश;[481] 1974 के विशेषोल्लेख सं. 1 में उच्चतम न्यायालय को उत्तर न देना (राष्ट्रपति के चुनाव के संबंध में);[482] प्रश्नों के बैलट किए जाने की प्रक्रिया;[483] ध्यानाकर्षण प्रक्रिया;[484] राज्य सभा के सदस्य (दल-बदल के आधार पर अनर्हता) नियम, 1985 के प्रारूप का अनुमोदन;[485] विभाग-संबंधित

संसदीय स्थायी समितियों का गठन;[486] सभापति के कक्ष में नए चुने गए राज्य सभा के सदस्यों की शपथ/प्रतिज्ञान,[487] प्रश्न-प्रक्रिया।[488]

(ख) समारोह संबंधी : बंगलादेश राहत कोष के लिए संसद-सदस्यों का अंशदान;[489] मई, 1977 में राज्य सभा की पच्चीसवीं जयंती और 100वें सत्र का समारोह;[490] राज्य सभा के प्रथम सभापति डा. एस. राधाकृष्णन् की सौवीं वर्षगांठ का समारोह;[491] राष्ट्र-गान/वंदेमातरम् के साथ सत्र का आरंभ/समापन;[492] दिसंबर, 2003 में राज्य सभा के 200वें सत्र का समारोह।[493]

(ग) कार्य-निष्पादन अथवा सुविधाओं संबंधी : राज्य सभा कक्ष में ध्वनि-प्रणाली,[494] राज्य सभा की दर्शक-दीर्घा में प्रवेश-स्थान पर "मेटल डिटेक्टर" का लगाया जाना,[495] संसद्-सदस्यों के अतिथियों/परिवार के सदस्यों के लिए उसी दिन प्रवेश-पत्र को जारी करना,[496] हिंदी में राज्य सभा के वाद-विवाद को प्रकाशित करना;[497] महिला-दर्शकों की तलाशी;[498] संसद्-सदस्यों को ब्रीफकेसों का वितरण;[499] कक्ष में सीटों का नवीकरण;[500] राज्य सभा के सदस्यों का परिचय-पैटर्न व प्रिंटिंग;[501] सदस्य-परिचय का प्रकाशन;[502] राज्य सभा के क्षेत्र में सी.सी.टी.वी. (क्लोज सर्किट टी.वी.) का लगाया जाना;[503] सचिवालय में म.पू. 10 से म.प. 6 बजे तक कार्य-घंटों का निर्धारण और पांच दिन के सप्ताह का आरंभ;[504] संसद्-सदस्यों के रक्त-ग्रुप की पहचान;[505] कक्ष में ए.वी.आर./एस.आई./मास्टर क्लॉक/ध्वनि प्रणाली का प्रतिस्थापन;[506] संसदीय समितियों के अध्यक्षों के कार्यालयों में अतिरिक्त दूरभाष सुविधा;[507] जल-पान सेवा में सुधार;[508] केन्द्रीय-कक्ष की शीत-व्यवस्था में सुधार;[509] संसद्-सदस्यों के लिए अधिचिन्ह,[510] संसद्-सदस्यों के लिए परिवहन और चिकित्सा सुविधाए;[511] सचिवालय में अनुसंधान सुविधाओं को पुष्ट करना;[512] संसद्-सदस्यों को कम्प्यूटरों की आपूर्ति और उनके लिए कम्प्यूटर-प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन;[513] संसद् की कार्यवाही को दूरदर्शन पर दिखाना;[514] संसद-सदस्यों के लिए सामान्य फैक्स सुविधाएं;[515] ई-मेल के जरिए प्रश्नों की सूचनाओं की प्राप्ति, राज्य सभा के सदस्य-परिचय का आरूप, संसद् भवन के प्रांगण में सुरक्षा उपाय, संसदीय समितियों के समक्ष राज्य सरकारों के अधिकारियों के साक्ष्य संबंधी प्रक्रिया;[516] राज्य सभा के वाद-विवादों के आकार के रॉयल आक्टेवो (रॉयल 8 वी.ओ.) से बदलकर ए-4 अथवा ए-5 आकार का करना, विशेष उल्लेखों के लिए प्रक्रिया सबंधी नियमों में विशिष्ट उपबंध करना, प्रस्तावों से संबंधित नियमों का संशोधन।[517] समिति कुछ मामलों में विस्तार से विचार करने लिए उप-समितियां बना सकती है।

समिति ने, राज्य सभा में ध्वनि-प्रणाली की जांच के लिए एक विशेषज्ञ-समिति का गठन किया[518] समिति ने मई, 1977 में राज्य सभा की 25वीं वर्षगांठ तथा 100वां सत्र मनाने के लिए विस्तृत कार्यक्रम की रूप-रेखा बनाने के संबंध में सभापति को एक उप-समिति गठित करने के लिए प्राधिकृत किया था।[519]

सभापति ने संसद् पर एक डाक्यूमेंटरी फिल्म के निर्माण के संबंध में लोकसभा की सामान्य प्रयोजन समिति की उप-समिति में शामिल करने के लिए सदस्यों को नामनिर्देशित किया।[520] इस समिति ने 5 सितंबर, 1988 को डा. एस. राधाकृष्णन की जन्म शताब्दी के कार्यक्रम का ब्यौरा तैयार करने के लिए एक उप-समिति नियुक्त की।[521]

समिति ने यह इच्छा व्यक्त की राज्य सभा और लोक सभा की नियम समितियों के सदस्यों की एक उप-समिति का गठन किया जाए ताकि लोक सभा की नियम समिति के प्रारूप दूसरे प्रतिवेदन में यथा-अनुशंसित संसद् की स्थायी समितियों के गठन से संबंधित मामले पर विचार किया जा सके।[522]

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी, इलैक्ट्रॉनिकी और केन्द्रीय लोक निर्माण विभागों के विशेषज्ञों की समिति को निदेश दिया गया कि वह राज्य सभा के लिए समुचित ए.वी.आर./एस.आई./ध्वनि व्यवस्था का तकनीकी रूप से मूल्यांकन और पहचान करे।[523]

समिति ने संसदीय समितियों के बीच आधिकारिक अतिव्याप्ति के मुद्दे की जांच करने के लिए सभापति को उप-समिति गठित करने हेतु प्राधिकृत किया और सभापति ने इस प्रयोजनार्थ एक पांच सदस्यीय उप-समिति को नामनिर्देशित किया,[524] जिसने कई बार बैठकें कीं और इस मुद्दे पर विचार किया। तत्पश्चात्, राज्य सभा के सभापति द्वारा लोक सभा के अध्यक्ष से परामर्श करके इस मामले की जांच करने के लिए एक संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया गया।[525] और इस उप-समिति के सदस्यों को संयुक्त समिति के सदस्यों के रूप में नामनिर्देशित किया गया।

राज्य सभा की सामान्य प्रयोजन समिति के 4 मार्च, 2008 को हुई अपनी बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसरण में सभापति ने संसदीय समितियों के अध्ययन दौरों से संबंधित दिशा-निर्देशों संबंधी सभी पहलुओं की समीक्षा करने तथा मुख्य समिति को अपना प्रतिवेदन सौंपने के उद्देश्य से एक छोटी उप-समिति का गठन किया।[526] इस उप-समिति ने अपना प्रतिवेदन 16 दिसंबर, 2008 को माननीय सभापति को सौंपा,[527] जिस पर मुख्य समिति ने 18 दिसंबर, 2008 को हुई अपनी बैठक में विचार किया और उसे अनुमोदन प्रदान किया।[528]

समिति ने पहले सभा में कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं किया। तथापि, 1 जुलाई 2000 से नियमों के संग्रह में समिति का उपबंध किए जाने के फलस्वरूप नियम 283 के तहत समिति के लिए यह उपबंध है कि यदि वह उपयुक्त समझे तो किसी ऐसे मामले पर जोकि इसके कार्य के दौरान प्रकाश में आया अथवा उत्पन्न हुआ हो और जिसे यह सभापति अथवा सभा के ध्यान में लाना आवश्यक समझती हो, एक विशेष प्रतिवेदन तैयार कर सकती है, इसके बावजूद कि यह मामला इसके विचारार्थ विषय से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित नहीं है अथवा इसके क्षेत्राधिकार में नहीं आता अथवा तत्संबंधी नहीं है। तथापि, समिति के निर्णयों को सम्मिलित करने वाले समिति के कार्यवृत्तों को रखा जाता है और उन्हें समिति के सदस्यों को परिचालित किया जाता है। कार्यवृत्त के उद्धरणों को भी आवश्यक कार्यवाही हेतु संबंधित प्राधिकारियों को अग्रेषित किया जाता है।

राज्य सभा के सदस्यों हेतु कंप्यूटरों के प्रावधान संबंधी समिति

यह समिति 18 मार्च, 1997 को राज्य सभा के सभापति द्वारा गठित की गई थी। यह एक आठ सदस्यीय समिति है जो राज्य सभा के कार्यकरण में सूचना प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग से संबंधित मानदंडों का निर्णय, समय-समय पर सदस्यों को कंप्यूटर हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर उपलब्ध करवाने के प्रावधानों के साथ-साथ सदस्यों को सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों का उपयोग कुशलतापूर्वक करने में सक्षम बनाने हेतु प्रशिक्षण प्रदान करने के मानदंड तैयार करने तथा राज्य सभा में सूचनाओं के विकीर्णन में इलेक्ट्रोनिक साधन के उपयोग को बढ़ाना सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाती है। राज्य सभा के सदस्यों को सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न साधन उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से इस समिति ने राज्य सभा के सभापति के अनुमोदन से "कंप्यूटर उपस्कर का प्रावधान (सदस्य और अधिकारी) नियम, 2008" तैयार किया जो 1 अप्रैल, 2008 से प्रवृत्त हुए। इन नियमों के अंतर्गत वित्तीय पात्रता योजना समाहित है जिसका उपयोग करके सदस्य अपने संसदीय कार्य में सहायतार्थ अपनी पसंद का कंप्यूटर उपस्कर अधिप्राप्त कर सकते हैं। राज्य सभा के उपसभापति अथवा सदन का कोई वरिष्ठ सदस्य इस समिति का अध्यक्ष होता है।

संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी समिति

चूंकि संसद्-सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना (एम.पी. लैड) के अधीन विभिन्न कार्य संबंधी मदों के क्रियान्वित न होने अथवा कार्यान्वयन में विलंब संबंधित बहुत सी शिकायतें सदस्यों से प्राप्त हो रही थीं। अत: यह महसूस किया गया कि कोई प्रभावी निगरानी तंत्र होना चाहिए जिससे एम.पी. लैड योजना के अधीन परियोजनाओं का यथोचित एवं तीव्र कार्यान्वयन हो सके। यह भी महसूस किया गया कि जिलों के अधिकारियों और संसद सदस्यों के बीच घनिष्ठ समन्वय होना चाहिए तथा एम.पी. लैड योजना से संबंधित समस्याओं की निगरानी के लिए राज्य सभा के उपसभापति की अध्यक्षता में एक पृथक् संसदीय समिति होनी चाहिए इस उद्देश्य से 5 सितंबर, 1998 को राज्य सभा में दस सदस्यीय समिति गठित की गई। राज्य सभा के उपसभापति इस समिति के अध्यक्ष होते हैं। वर्तमान में, राज्य सभा की एम.पी. लैड्स संबंधी समिति विभिन्न दलों/समूहों के तेरह सदस्यों वाली समिति है।

इस योजना के तहत प्रत्येक संसद्-सदस्य अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्र में प्रति वर्ष पांच करोड़ रुपये तक की धनराशि तक के विकासात्मक प्रकृति के कार्यों की सिफारिश कर सकता है। राज्य सभा का कोई भी चयनित सदस्य उस राज्य में जहां से वह चुना गया है, में एक या अधिक जिलों में संबंधित जिला प्रशासन के माध्यम से कार्यों की सिफारिश कर सकता/सकती है। राज्य सभा के नामनिर्देशित सदस्य देश में कहीं भी कार्यों की सिफारिश कर सकते हैं।

एम.पी.एल.ए.डी.एस. संबंधी समिति ने अपने कार्यकाल के दौरान अब तक निम्नलिखित प्रतिवेदन प्रस्तुत किए हैं :—

वर्ष	की गई बैठकों की संख्या	प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदनों की संख्या
1998	2	-
1999	3	प्रथम प्रतिवेदन 23 दिसंबर, 1999 को प्रस्तुत किया गया
2000	6	-
2001	7	दूसरा प्रतिवेदन 11 दिसंबर, 2001 को प्रस्तुत किया गया
		तीसरा प्रतिवेदन 18 दिसंबर, 2001 को प्रस्तुत किया गया
2002	8	चौथा प्रतिवेदन 17 दिसंबर, 2002 को प्रस्तुत किया गया
2003	4	-
2004	7	पांचवां प्रतिवेदन 7 दिसंबर, 2004 को प्रस्तुत किया गया
2005	8	-
2006	4	-
2007	3	-
2008	5	छठा प्रतिवेदन 23 अक्तूबर, 2008 को प्रस्तुत किया गया
2009	3	-
2010	4	-
2011	6	-
2012	4	-
2013	2	सातवां प्रतिवेदन 12 मार्च, 2013 को प्रस्तुत किया गया
2014	2	-
2015	2	

III. विधेयकों संबंधी प्रवर अथवा संयुक्त समितियां

प्रस्ताव उपस्थित करने और सभा द्वारा उसे स्वीकार कर लिये जाने के पश्चात् विधेयक समय-समय पर प्रवर समितियों को सौंपे जाते हैं जिसके संबंध में सदस्यों के नाम प्रस्ताव में विशिष्ट रूप से उल्लिखित किए जाते हैं। इसी तरह से विधेयक लोक सभा की सहमति से संयुक्त समितियों को सौंपे जा सकते हैं, जिसमें दोनों सभाओं के सदस्य होते हैं। ऐसी प्रवर/संयुक्त समितियां तदर्थ समितियां होती हैं क्योंकि उन्हें केवल उनको सौंपे गए विशिष्ट विधेयकों पर विचार करने के लिए ही नियुक्त किया जाता है और ये समितियां सभा(ओं) को अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के बाद पदकार्य निवृत्त हो जाती हैं।

ये समितियां सभा में किसी विधेयक के द्वितीय पाठन के प्रथम चरण पर नियुक्त की जाती हैं। इस चरण में, विधेयक का प्रभारी सदस्य स्वयं ही यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को सदन की एक प्रवर समिति अथवा लोक सभा की सहमति से सभाओं की एक संयुक्त समिति को सौंपा जाए। तथापि, यदि विधेयक का प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव उपस्थित करता है कि विधेयक पर विचार किया जाए, तो कोई अन्य सदस्य यह संशोधन उपस्थित कर सकता है कि विधेयक को प्रवर अथवा संयुक्त समिति को सौंप दिया जाए।[529] प्रस्ताव अथवा संशोधन, जैसा भी मामला हो, को स्वीकार कर लेने पर विधेयक को प्रवर समिति को सौंप दिया जाता है, और यदि विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपा जाना हो तो ऐसा सहमति प्रस्ताव स्वीकार कर लेने पर और लोक सभा द्वारा समिति के सदस्यों की नियुक्ति कर लेने पर किया जाता है।

गठन

किसी विधेयक संबंधी प्रवर समिति के सदस्य, सभा द्वारा तभी नियुक्त किए जाते हैं जब यह प्रस्ताव किया जाये कि विधेयक एक प्रवर समिति को सौंपा जाए।[530] विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपे जाने के प्रस्ताव में समिति में नियुक्त किए जाने वाले राज्य सभा के सदस्यों की संख्या और नाम दिए जाते हैं और लोक सभा द्वारा उस समिति में नियुक्त किए जाने वाले सदस्यों की संख्या भी दी जाती है। किसी संयुक्त समिति में राज्य सभा और लोक सभा के सदस्यों का अनुपात 1:2 है। प्रवर/संयुक्त समिति की सदस्यता की वास्तविक संख्या निर्धारित नहीं है, यह प्रत्येक समिति में अलग-अलग होती है।

यदि कोई सदस्य प्रवर समिति में काम करने के लिए राजी न हो तो उसे उस समिति का सदस्य नियुक्त नहीं किया जाता। प्रस्तावक को यह सुनिश्चित करना होगा कि क्या उसके द्वारा प्रस्तावित सदस्य समिति में काम करने के लिए राजी है।[531]

विधेयक के प्रभारी सदस्य अथवा मंत्री को सामान्यत: समिति में सदस्य के रूप में शामिल किया जाता है। किसी प्रवर/संयुक्त समिति का गठन सभा(ओं) में विभिन्न पार्टियों/दलों की सदस्य-संख्या को दर्शाता है।

> जब संविधान (अस्सीवां संशोधन) विधेयक को एक संयुक्त समिति को सौंपे जाने की सहमति का प्रस्ताव किया गया तो कुछ पार्टियों के सदस्यों को उसमें शामिल न किए जाने पर आपत्ति प्रकट की गई थी। प्रस्ताव को स्थगित करना पड़ा था।[532]

सामान्य नियम के रूप में केवल एक ही विधेयक प्रवर/संयुक्त समिति को सौंपा जाता है परन्तु यदि किसी मामले में एक ही विषय पर दो विधेयक हों, तो उन्हें एक ही प्रस्ताव अथवा दो अलग-अलग प्रस्तावों द्वारा एक ही प्रवर/संयुक्त समिति को सौंपा जा सकता है।

> दो मंत्रियों ने लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1993 और संविधान (अस्सीवां संशोधन) विधेयक, 1993 को संयुक्त समितियों को भेजने और दोनों समितियों में सदस्यों के नामों के साथ सहमति के लिए पृथक् प्रस्ताव उपस्थित किए। उपसभापति द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि दोनों विधेयकों पर एक ही समिति कार्य करेगी। विधि मंत्री इस विचार से सहमत थे।[533]

संयुक्त समिति के बारे में प्रस्ताव

संयुक्त समिति द्वारा अपनाए जाने वाली प्रक्रिया के बारे में कोई नियम नहीं हैं। अत: इस प्रयोजन के लिए सभा में एक स्वत: पूर्ण प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है। प्रस्ताव में संयुक्त समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति, समिति के लिए लागू होने वाली प्रक्रिया के नियम, समिति द्वारा अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने में लगने वाले समय और अंत में समिति में शामिल होने के लिए दूसरी सभा द्वारा सहमति के संबंध में अनुरोध और समिति में कार्य करने के लिए नियुक्त किए गए इसके सदस्यों के नामों की सूचना देने के बारे में, निर्धारण किया जाता है। सामान्यत: उस सभा के विधेयकों संबंधी प्रवर समिति, जिसमें प्रस्ताव शुरू किया जाता है, से संबंधित नियम, संयुक्त समिति पर भी लागू होते हैं। स्वीकार हो जाने पर प्रस्ताव को सहमति के लिए तथा समिति में काम करने के लिए सदस्यों के नामनिर्देशन के लिए दूसरी सभा में भेजा जाता है।

जैसा पहले ही कहा गया है,[534] लोक सभा के विघटन पर संयुक्त समिति भी विघटित समझी जाती है। यदि विधेयक को इसके पास भेजा जाता है तो संयुक्त समिति का नए सिरे से पुनर्गठन किया जाता है।

जिस सभा में संयुक्त समिति के गठन का प्रस्ताव शुरू किया जाता है वह समिति की प्रभारी होती है तथा समिति उस सभा के पीठासीन अधिकारी के निर्देश और नियंत्रण में कार्य करती है।[535] समिति के प्रतिवेदन को प्रस्तुत करने के लिए समय की बढ़ोत्तरी की अनुमति, यदि अपेक्षित हो, उसी सभा से मांगी जाती है। जब ऐसी समयवृद्धि की अनुमति दी जाती है तब दूसरे सदन को औपचारिक संदेश द्वारा सूचित किया जाता है।

तथापि, जिस समय प्रतिलिप्यधिकार (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1992 और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2015 के संबंध में सभाओं की संयुक्त समिति की नियुक्ति के लिए प्रस्ताव लाया गया और लोक सभा द्वारा स्वीकार किया गया तो माननीय लोकसभाध्यक्ष ने इन समितियों के अध्यक्ष के रूप में क्रमश: राज्य सभा के सदस्य श्री सैयद सिब्ते रज़ी और राज्य सभा के सदस्य श्री भुपेन्द्र यादव को नियुक्त किया।[536]

इसी प्रकार, भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार (दूसरा संशोधन) विधेयक, 2015 के संबंध में संयुक्त समिति के प्रतिवेदन को प्रस्तुत

करने के लिए समय विस्तार प्रदान करने का अनुरोध संबंधी प्रस्ताव को लोक सभा की दिनांक 27.11.2015 को होने वाली बैठक को भारत के संविधान के लिए प्रतिबद्धता संबंधी चर्चा के लिए अनन्य रूप से समर्पित किए जाने के कारण समिति के अध्यक्ष द्वारा उपस्थित नहीं किया जा सका। माननीय लोकसभाध्यक्ष ने सभा में यह घोषणा की कि उन्होंने सभा की ओर से शीतकालीन सत्र के अंतिम दिन तक का समय विस्तार प्रदान कर दिया है। महासचिव ने इस संबंध में लोक सभा से प्राप्त संदेश की सूचना सभा को दी।

आकस्मिक रिक्तियां

प्रवर समिति में आकस्मिक रूप से रिक्त हुए स्थानों की पूर्ति राज्य सभा में किये गये एक प्रस्ताव पर नियुक्ति द्वारा की जाती है।[537] आकस्मिक रिक्तियों को भरने के प्रस्ताव संबंधित मंत्री द्वारा दिया जाएगा और सचिवालय द्वारा तत्संबंधी प्रक्रिया की जाएगी और उसे स्वीकार किया जाएगा। स्वीकृत प्रस्ताव को सचिवालय द्वारा संसदीय कार्य मंत्रालय को यह अनुरोध करते हुए भेजा जाएगा कि वह इस मद को कार्यावलि में शामिल करें। तत्पश्चात् मंत्रालय उस मद को वांछित तारीख को कार्यावलि में शामिल करने के लिए पटल कार्यालय को भेजता है। संबंधित मंत्री उस प्रस्ताव को उस तारीख को जिस दिन के लिए वह सूचीबद्ध है, सभा में स्वीकृत किए जाने के लिए प्रस्तुत करेगा। संयुक्त समिति के मामले में जिसकी पहल राज्य सभा द्वारा की गई हो, यदि राज्य सभा की सदस्यता में रिक्ति हैं तो राज्य सभा में रिक्ति को भरने के लिए सुझाये गये सदस्य का नाम बताने वाला एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है और सदन द्वारा उसे स्वीकार करने के पश्चात् लोक सभा सचिवालय को एक पत्र द्वारा इस तथ्य की सूचना दी जाती है। यदि रिक्ति लोक सभा की सदस्यता में है तो वह रिक्ति उस सदन द्वारा इस प्रयोजन के लिए राज्य सभा द्वारा स्वीकार किये गये प्रस्ताव में की गयी सिफारिश पर भरी जाती है। प्रस्ताव को राज्य सभा में स्वीकार करने के पश्चात सहमति के लिए तथा रिक्ति को भरने के लिए उस सदन के किसी सदस्य के नामनिर्देशन के लिए लोक सभा को भेजा जाता है। लोक सभा से प्रस्ताव पर सहमति का संदेश प्राप्त होने के पश्चात् उसकी सूचना राज्य सभा को दी जाती है। लोक सभा में बनने वाली इसी संयुक्त समिति के मामले में यही प्रक्रिया उल्टे क्रम से अपनाई जाती है।

समिति का अध्यक्ष

समिति का अध्यक्ष समिति के सदस्यों में से राज्य सभा के सभापति द्वारा नियुक्त किया जाता है परन्तु यदि उपसभापति समिति का सदस्य हो तो उसे समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाएगा।[538] यदि समिति का अध्यक्ष किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ हो तो सभापति उसी प्रकार से उसके स्थान पर समिति का एक अन्य अध्यक्ष नियुक्त कर सकेगा।[539] यदि समिति का अध्यक्ष किसी बैठक में अनुपस्थित रहे तो समिति किसी अन्य सदस्य को उस बैठक में समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए चुन सकती है।[540] किसी विषय पर मतों की संख्या समान होने की अवस्था में समिति का अध्यक्ष अथवा अध्यक्षता करने वाला अन्य व्यक्ति दूसरा या निर्णायक मत देता है।[541]

गणपूर्ति

समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति समिति की समस्त सदस्य संख्या के एक-तिहाई से होती है।[542] यदि समिति की किसी बैठक के लिए निश्चित समय पर या ऐसी किसी बैठक के दौरान किसी समय गणपूर्ति न हो, तो समिति के अध्यक्ष को उस बैठक को गणपूर्ति होने तक या तो निलंबित रखना पड़ता है अथवा उस बैठक को किसी आगामी दिन के लिए स्थगित करना पड़ता है।[543] यदि समिति की बैठक गणपूर्ति के अभाव में उस समिति की बैठक के लिए निश्चित दो तिथियों के लिए लगातार स्थगित की जा चुकी हो तो, समिति के अध्यक्ष को इस बात की सूचना सभा को देनी पड़ती है।[544]

पोत परिवहन अभिकर्ता (अनुज्ञापन) विधेयक, 1989 संबंधी संयुक्त समिति के अध्यक्ष (श्री बी.ए. मासोदकर) ने 28 जुलाई, 1989 को सभा को सूचना दी कि समिति की अनेक बैठकों को गणपूर्ति के अभाव में स्थगित कर देना पड़ा था। राज्य सभा में ऐसा पहली बार हुआ था कि नियम 74 (3) के अधीन ऐसी कोई सूचना दी गई थी।[545]

अनुपस्थित सदस्यों को सेवामुक्त किया जाना

यदि कोई सदस्य समिति के अध्यक्ष की अनुमति के बिना समिति की लगातार दो या दो से अधिक बैठकों से अनुपस्थित रहे तो ऐसे सदस्य को समिति से सेवामुक्त करने के लिए सदन में प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है।[546] यह केवल सामर्थ्यकारी उपबंध है और इसका अब तक प्रयोग नहीं किया गया है।

समिति के सदस्यों से भिन्न सदस्य किसी बैठक में उपस्थित रह सकते हैं

जो सदस्य प्रवर समिति के सदस्य न हों, वे समिति के विचार-विमर्श के दौरान उपस्थित रह सकते हैं किन्तु वे न तो समिति को संबोधित कर सकते हैं और न ही समिति के सदस्यों में बैठ सकते हैं।[547] तथापि, कोई मंत्री समिति के अध्यक्ष की अनुमति से उस समिति को सम्बोधित कर सकेगा जिसका वह सदस्य न हो।[548]

उप-समितियां नियुक्त करने की शक्ति

समिति विधेयक से संबंधित किन्हीं विशेष बातों की जांच करने के लिए उप-समिति या अध्ययन दल नियुक्त कर सकती है। ऐसी उप-समिति को निर्देश के आदेश में जांच-पड़ताल की बात या बातों का स्पष्ट उल्लेख किया जाता है। उप-समिति के प्रतिवेदन पर सारी समिति द्वारा विचार किया जाता है।[549]

हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, 1954 संबंधी संयुक्त समिति ने सहदायिकी सम्पत्ति में किसी महिला संबंधी को हिस्सा दिए जाने संबंधी एक संशोधन पर विचार करने के लिए एक उप-समिति नियुक्त की थी।[550]

जल प्रदूषण निवारण विधेयक, 1969 संबंधी संयुक्त समिति ने तीन अध्ययन दल नियुक्त किए थे,[551] अवक्रय विधेयक, 1968 संबंधी संयुक्त समिति ने अवक्रेताओं के हितों पर विचार करने के लिए तीन उप-समितियां नियुक्त की थीं,[552] बागान श्रम (संशोधन) विधेयक, 1973 संबंधी संयुक्त समिति ने तीन अध्ययन दल नियुक्त किए थे।[553]

कार्य

विधेयक संबंधी किसी प्रवर/संयुक्त समिति का कार्य यह सुनिश्चित करने के लिए विधेयक के पाठ की खंडशः जांच करना है कि विधेयक में किए जाने वाले उपाय का इरादा स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता है और प्राप्त किया जाने वाला उद्देश्य यथेष्ट रूप से व्यक्त किया गया है।

समिति इस प्रयोजन के लिए विधेयक की विषय-वस्तु में रूचि रखने वाले विशेषज्ञों अथवा व्यक्तियों और संगठनों से ज्ञापन आमंत्रित कर सकती है अथवा उनका मौखिक साक्ष्य ले सकती है। समिति सरकारी अधिकारियों से विधेयक के विभिन्न उपबंधों के पीछे अंतर्निहित नीति को स्पष्ट करने तथा उनसे समिति द्वारा अपेक्षित जानकारी और पृष्ठभूमि सामग्री उसे मुहैया कराने को भी कह सकती है। समिति साक्ष्य सुनने के बाद विधेयक के विभिन्न उपबंधों पर विचार करती है और अपना निष्कर्ष देती है तथा इरादे को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए विधेयक के खंडों आदि में संशोधन कर सकती है। समिति के विचार-विमर्श में उसकी सहायता करने के लिए संबंधित मंत्री और मंत्रालय के अधिकारी तथा विधायी परामर्शी (प्रारूपकार) भी समिति की बैठकों में उपस्थित रहते हैं।

समिति विधेयक से संबद्ध किसी मामले का मौके पर अध्ययन करने के लिए संगठनों और संस्थाओं आदि का भी दौरा कर सकती है। उदाहरणतः खाद्य अपमिश्रण निवारण (संशोधन) विधेयक, 1974 संबंधी संयुक्त समिति ने प्रयोगशालाओं के कार्यकरण का अध्ययन करने के लिए संस्थाओं का दौरा किया था।[554]

बैठकें

समिति की बैठकें ऐसे दिनों में होती हैं जिन्हें समिति का अध्यक्ष निश्चित करे।[555] परन्तु यदि समिति का अध्यक्ष तत्काल न मिल सके तो महासचिव उस मंत्री के परामर्श से जिसके मंत्रालय का सम्बन्ध विधेयक से हो, बैठक की तिथि और समय निश्चित कर सकता है।[556]

जिस समय राज्य सभा की बैठक हो रही हो उस समय भी समिति की बैठक हो सकती है, परन्तु राज्य सभा में विभाजन की मांग किये जाने पर समिति का अध्यक्ष समिति की कार्यवाही ऐसे समय तक के लिए निलंबित कर देगा जिसके भीतर, उसकी राय में, सदस्य विभाजन में मत दे सकते हैं।[557]

समिति की बैठक संसद् भवन की परिसीमा के भीतर की जाती है।[558] परंतु यदि किसी अवस्था में संसद् भवन की परिसीमा के बाहर ऐसी बैठक करना आवश्यक समझा जाए तो इस विषय का निर्देश सभापति द्वारा किया जाएगा। जिसका निर्णय समिति को संसद् भवन के बाहर या अन्यत्र बैठक करने की अनुमति देने के अंतिम होता है।[559] अनेक अवसरों पर समितियों को दिल्ली के बाहर बैठकें करने की अनुमति दी गई है। ऐसे भी दृष्टांत हैं जब राज्य सभा के सभापति ने समिति की[560] अथवा उसके अध्ययन दलों अथवा उप-समितियों[561] की दिल्ली से बाहर बैठकें करने के लिए समिति के अनुरोध को नहीं माना।

साक्ष्य

सामान्यत: समिति पहली बैठक में यह निर्णय लेती है कि वह विधेयक के संबंध में उसके द्वारा किए गए उपायों से प्रभावित विभिन्न संबंधित व्यक्तियों से साक्ष्य लेगी या नहीं अथवा विशेषज्ञ साक्ष्य आवश्यक अथवा उपयोगी होंगे या नहीं। यदि समिति साक्ष्य लेने का निर्णय करती है तो सामान्यत: व्यक्तियों, संघों अथवा संगठनों से विधेयक के संबंध में ज्ञापन मांगते हुए एक प्रेस नोट जारी किया जाता है और ऐसा ज्ञापन प्राप्त करने के लिए एक तिथि निर्धारित की जाती है।

तथापि, भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1963 संबंधी प्रवर समिति ने इस बात के मद्देनजर प्रेस विज्ञप्ति जारी न करने का निर्णय किया था कि विधेयक को पहले ही उस पर सार्वजनिक राय प्राप्त करने के लिए परिचालित किया जा चुका था।[562] समिति ने विशेषज्ञ साक्षियों को सुना।

कुछ मामलों में, समितियों ने विधेयकों के विभिन्न उपबंधों के संबंध में प्रश्नावलियां जारी की हैं। उदाहरणत: भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1972 और केन्द्रीय एवं अन्य सोसाइटी (विनियमन) विधेयक, 1974 संबंधी संयुक्त समितियों ने भी प्रश्नावलियां जारी की थीं।[563]

समिति के अध्यक्ष को ज्ञापन का अध्ययन करने के पश्चात् यह निर्णय करने का प्राधिकार है कि समिति के समक्ष मौखिक साक्ष्य देने के लिए किसे आमंत्रित किया जाये इस प्रयोजन के लिए, केवल उन्हीं संघों अथवा व्यक्तियों को बुलाया जाता है जिन्होंने इस प्रयोजन के लिए कोई विशिष्ट अनुरोध किया हो। समिति का अध्यक्ष इस बारे में सदस्यों द्वारा दिये गये सुझावों पर भी विचार करता है।

कोई प्रवर/संयुक्त समिति ऐसे किसी सदस्य को अपने समक्ष साक्ष्य देने के लिए बुला सकती है जोकि समिति का सदस्य नहीं हो।

कई बार ऐसा हुआ है जब विधेयकों संबंधी संयुक्त/प्रवर समितियों द्वार संसद् सदस्यों को या तो प्रतिनिधि होने की हैसियत से अथवा समिति द्वारा विचार किये जा रहे मामलों के संबंध में विशेषज्ञ के रूप में साक्ष्य देने के लिए आमंत्रित किया गया है। उदाहरणार्थ, श्री एम.सी. सीतलवाड, श्री ए.एन. मुल्ला और श्री जी.एस. पाठक, जो कि संसद् सदस्य थे, राज्य सभा की भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1963 संबंधी प्रवर समिति के समक्ष उपस्थित हुए थे,[564] श्री सीतलवाड, सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1968 संबंधी संयुक्त समिति के समक्ष भी उपस्थित हुए थे,[565] श्री इन्द्रदीप सिन्हा, संसद् सदस्य अखिल भारतीय किसान सभा के प्रतिनिधि के रूप में भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1972 संबंधी संयुक्त समिति के समक्ष उपस्थित हुए थे,[566] श्री एस. एन. मिश्र, संसद् सदस्य, किराना समिति, दिल्ली के प्रतिनिधि के रूप में खाद्य अपमिश्रण निवारण (संशोधन) विधेयक, 1974 संबंधी संयुक्त समिति के समक्ष उपस्थित हुए थे।[567]

एक मामले में, जल प्रदूषण निवारण विधेयक, 1969 संबंधी संयुक्त समिति का एक सदस्य साक्षी के रूप में समिति के समक्ष उपस्थित हुआ था।[568] पुन: जल प्रदूषण निवारण विधेयक, 1969 संबंधी संयुक्त समिति के समक्ष सूचना और प्रसारण मंत्रालय में राज्य मंत्री (श्री आई.के. गुजराल) साक्षी के रूप में उपस्थित हुए थे।[569]

यदि समिति अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए किन्हीं व्यक्तियों की उपस्थिति अथवा कागजात या अभिलेखों की प्रस्तुति आवश्यक समझती है तो उसे यह आवश्यकता पूरी करने की शक्ति प्राप्त है।[570] यदि इस आशय का कोई प्रश्न उठता है कि क्या समिति के प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति का साक्ष्य अथवा किसी प्रलेख की संस्तुति संगत है तो वह प्रश्न सभापति को भेजा जाता है जिसका निर्णय अंतिम होता है।[571]

एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार (एम.आर.टी.पी.) विधेयक, 1963 संबंधी संयुक्त समिति ने वित्त मंत्रालय से उन गैर-सरकारी कंपनियों के नाम के सबंध में जानकारी मांगी थी जिन्हें भारतीय स्टेट बैंक द्वारा ऋण दिया गया था और जिनमें बैंक के निदेशकों की दिलचस्पी थी। वित्त मंत्रालय ने यह तर्क दिया कि भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम, 1955 की धारा 44(1) के अधीन इस प्रकार की जानकारी प्रकट किए जाने पर प्रतिबंध लगाए जाने के कारण यह जानकारी नहीं दी जा सकती। कुछ सदस्यों ने यह महसूस किया कि कानूनी प्रतिबंध होने के बावजूद इस प्रकार की जानकारी से किसी संसदीय समिति को वंचित नहीं रखा जा सकता। तथापि, कुछ सदस्यों का यह विचार था कि वित्त मंत्रालय का तर्क न्यायोचित है। इस मतभेद के कारण अंतत: यह मामला निदेश हेतु सभापति के समक्ष भेज दिया गया। सभापति ने यह व्यवस्था दी:

> भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम, 1955 की धारा 44(1) के अभिव्यक्त उपबंध को ध्यान में रखते हुए, भारतीय स्टेट बैंक से यह नहीं कहा जा सकता कि वह उनमें से प्रत्येक कंपनी का नाम, जिनमें बैंक के निदेशकों की दिलचस्पी थी, तथा उन्हें दिए गए ऋण की राशि और उसके लिए, लिए गए ब्याज की दर संयुक्त समिति के समक्ष प्रकट करे। सभापति ने आगे कहा कि उपर्युक्त अधिनियम की धारा 44 के उपबंध सभी पर लागू होते हैं और इस संबंध में संसद् अथवा इसकी समितियों के पक्ष में अपवाद स्वरूप कुछ नहीं किया जा सकता तथा यदि संसद् यह उचित समझती है कि संसद् अथवा उसकी समितियों को भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम, 1955 की धारा 44(1) के उपबंधों से छूट प्रदान की जानी चाहिए तो उक्त धारा में संशोधन करना आवश्यक होगा। इन परिस्थितियों में सभापति ने यह निर्णय किया कि वह सरकार को यह निदेश दे पाने की स्थिति में नहीं है कि वह संयुक्त समिति को उन गैर-सरकारी कंपनियों के नाम तथा ब्यौरा उपलब्ध कराए जिन्हें भारतीय स्टेट बैंक द्वारा ऋण की मंजूरी दी गई थी और जिनमें निदेशकों की दिलचस्पी थी।[572]

तथापि, सरकार इस आधार पर कोई प्रलेख प्रस्तुत करने से मना कर सकती है कि उसका प्रकट करना राष्ट्र की सुरक्षा या हित के प्रतिकूल होगा।[573] इसके नियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए महासचिव द्वारा हस्ताक्षरित आदेश के द्वारा किसी साक्षी को बुलाया जा सकता है और वह ऐसे प्रलेख प्रस्तुत करेगा जो समिति के उपयोग के लिए अपेक्षित हों।[574]

समिति विशेषज्ञ साक्ष्य और इसके किसी उपाय से प्रभावित विशेष हितों वाले लोगों के प्रतिनिधियों की सुनवाई कर सकती है।[575]

राज्य सभा द्वारा बनाई गई संयुक्त समितियों के ऐसे उदाहरण हैं जिनमें उन्होंने विदेशों के विशेषज्ञ साक्षियों की सुनवाई भी की है।

उदाहरण के लिए, प्रतिलिप्यधिकार विधेयक, 1955 संबंधी संयुक्त समिति ने इंटरनेशनल कॉन्फेडरेशन ऑफ ऑथर्स एंड कंपोजर्स, पेरिस, परफॉर्मिंग राइट सोसाइटी, लंदन और ब्रिटिश जॉइंट कॉपीराइट काउंसिल, लंदन के प्रतिनिधियों की सुनवाई भी की थी। उनकी सुनवाई के बारे में एक प्रतिनिधि ने तो यह कहा : "जब मैं तीस देशों के लेखक समाजों में अपनी रिपोर्ट दूंगा तो मैं इस बात का उल्लेख अवश्य करूंगा कि आपने मेरी बात बहुत धैर्य से और काफी देर तक सुनी।"[576]

पुन:, जल प्रदूषण निवारण विधेयक, 1969 संबंधी संयुक्त समिति ने पर्यावरण और जन-स्वास्थ्य के संबंध में नौ विदेशी विशेषज्ञों की बात सुनी थी।[577] समिति के समक्ष उपस्थित हुए एक वैज्ञानिक के शब्दों में, "यह हमारे देश, जो भारत से 10,000 मील दूर है, के किसी नागरिक के लिए असाधारण सौभाग्य की बात है कि उसे विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र, भारत की संसद् को संबोधित करने का अवसर मिला।"[578]

समिति को दिया गया कोई भी दस्तावेज समिति की जानकारी और सहमति के बिना वापस नहीं लिया जा सकता अथवा बदला नहीं जा सकता।[579]

साक्षी को जांच के लिए बुलाए जाने से पूर्व समिति प्रक्रिया के तरीके तथा साक्षी से पूछे जा सकने वाले प्रश्नों के स्वरूप के बारे में निर्णय करती है।[580] प्रारंभ में साक्षी को इस बात की अनुमति दी जाती है कि वह समिति को पहले ही दिए गए अपने ज्ञापन को पूरा करने के लिए समिति के समक्ष मौखिक टिप्पण करे। यदि साक्षी ने ज्ञापन नहीं दिया है तो उसे समिति के समक्ष विषय वस्तु के बारे में अपने विचार संक्षेप में व्यक्त करने की अनुमति दी जा सकती है। तत्पश्चात्, अध्यक्ष तथा सदस्य साक्षी से ऐसे प्रश्न पूछते हैं जिन्हें वे विधेयक की विषय वस्तु या उससे सम्बद्ध किसी विषय के संबंध में आवश्यक समझते हों।[581] किसी साक्षी से यह कहा जा सकता है कि वह समिति के समक्ष कोई अन्य संगत मुद्दे रखे जिनके बारे में कुछ नहीं कहा गया है और जिन्हें साक्षी समिति के समक्ष रखना अनिवार्य समझता है।[582]

जब कभी साक्षी को साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए बुलाया जाता है तो समिति की कार्यवाही का शब्दश: अभिलेख रखा जाता है।[583] समिति के समक्ष रखे गये साक्ष्य को समिति के सदस्यों को उपलब्ध कराया जाता है।[584] साक्ष्य की एक प्रति पुष्टि के लिए साक्षी को भेजी जाती है और उसे यह सलाह दी जाती है कि वह इसे सभापटल पर रखे जाने तक गुप्त रखे।

समिति यह निर्णय करती है कि क्या इसके समक्ष दिये गये साक्ष्य का पूर्ण रिकार्ड ही सभापटल पर रखा जाए अथवा आंशिक रूप से या सारांश रूप में सभापटल पर रखा जाए।[585] और क्या समिति को दिया गया लिखित ज्ञापन साक्ष्य के परिशिष्ट के रूप में मुद्रित किया जाना चाहिए अथवा सभापटल पर रखा जाना चाहिए या सदस्यों द्वारा संदर्भ के लिए पुस्तकालय में रखा जाना चाहिए।

बागान श्रम (संशोधन) विधेयक, 1973 संबंधी संयुक्त समिति ने यह निर्णय किया था कि समिति के समक्ष दिया गया पूर्ण साक्ष्य सभापटल पर रखा जाना चाहिए। तथापि, मितव्ययिता को ध्यान में रखते हुए साक्ष्य को मुद्रित करवाने की आवश्यकता नहीं है और साक्ष्य को सभापटल पर रखे जाने के बाद उसके दो सेट संसद् के पुस्तकालय में रखे जाने चाहिए।[586]

इसी प्रकार का निर्णय खाद्य अपमिश्रण निवारण (संशोधन) विधेयक, 1974[587] तथा केन्द्रीय और अन्य संस्थाएं (विनियमन) विधेयक, 1974 संबंधी संयुक्त समितियों द्वारा किया गया था।[588]

मानसिक स्वास्थ्य विधेयक, 1981 संबंधी संयुक्त समिति ने इसके समक्ष दिये गये सम्पूर्ण साक्ष्य को सभापटल पर रखने तथा रिपोर्ट पेश किए जाने के बाद प्राप्त ज्ञापन के एक सेट को संसद् सदस्यों द्वारा संदर्भ के लिए संसद् के पुस्तकालय में रखने का निर्णय किया था।[589]

एक अवसर पर, जल प्रदूषण निवारण विधेयक, 1969 संबंधी संयुक्त समिति का एक सदस्य समिति को दिए गए एक दस्तावेज अथवा दस्तावेजों के संबंध में संभावित विशेषाधिकार हनन जैसा एक प्रश्न समिति के ध्यान में लाना चाहता था। समिति ने एक बोर्ड के सदस्य-सचिव का साक्ष्य अभिलिखित किया था कि उसे उस बोर्ड के अध्यक्ष द्वारा समिति को दिए गए एक प्रतिवेदन की चक्रलिखित प्रति कैसे प्राप्त हुई और किस तरह से उसे सचिवालय द्वारा सदस्यों को परिचालित कर दिया गया था। यह साक्ष्य समिति द्वारा बंद कमरे में अभिलिखित किया गया था। साक्ष्य के दौरान विधि मंत्रालय तथा स्वास्थ्य मंत्रालय के अधिकारियों को वहां से चले जाने के लिए कहा गया था। सचिवालय के अधिकारियों को भी वहां से चले जाने के लिए कहा गया था।[590] साक्ष्य का शब्दश: प्रतिवेदन रखा गया था परन्तु समिति ने यह निर्णय किया कि बोर्ड के सदस्य-सचिव द्वारा दिए गए साक्ष्य, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, को छोड़कर संपूर्ण साक्ष्य को सभापटल पर रखा जाएगा।[591] [महाराष्ट्र

सरकार को संदर्भाधीन प्रतिवेदन इस तरह से दे दिए जाने के संबंध में मंत्रालय के अधिकारियों द्वारा बिना शर्त क्षमा याचना किए जाने की बात को दृष्टिगत रखते हुए समिति ने यह मामला वापस ले लिया था।][592]

लोक सभा भंग होने के परिणामस्वरूप पूर्व संयुक्त समिति के समाप्त हो जाने के कारण नए सिरे से गठित की गई संयुक्त समिति के मामले में, सामान्यत: नई समिति यह निर्णय करती है कि पूर्व संयुक्त समिति द्वारा किए गए कार्य को नई समिति के कार्य के एक अंग के रूप में समझा जाए। पूर्व समिति द्वारा अभिलिखित सभी ज्ञापनों आदि मौखिक साक्ष्य को नई समिति के ज्ञापनों तथा मौखिक साक्ष्य के अंग के रूप में समझा जाता है।[593]

यदि समिति यह निर्णय करती है कि संपूर्ण साक्ष्य या इसका कुछ अंश अथवा सारांश, जो भी स्थिति हो, सभापटल पर रखा जाना है तो उसका मुद्रण पृथक् खंड में किया जाता है। समिति के अध्यक्ष द्वारा प्रमाणित ऐसे साक्ष्य की एक प्रति स्वयं उसके द्वारा अथवा समिति द्वारा इस कार्य के लिए प्राधिकृत सदस्य द्वारा सभापटल पर रखी जाती है। इसे सदन के समक्ष प्रतिवेदन के साथ पेश नहीं किया जाता है बल्कि पृथक् रूप से सभापटल पर रखा जाता है। किसी संयुक्त समिति के मामले में एक प्रमाणित प्रति लोक सभा सचिवालय को भेजी जाती है ताकि उसे राज्य सभा में पेश किए जाने के साथ ही साथ लोक सभा में भी सभापटल पर रखा जा सके। सभापटल पर रखे जाने के बाद साक्ष्य की प्रतियां दोनों सदनों के सदस्यों को परिचालित कर दी जाती है।

किसी समिति के समक्ष दिया गया साक्ष्य समिति के किसी सदस्य द्वारा अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा तब तक प्रकाशित नहीं किया जा सकता, जब तक कि वह औपचारिक रूप से सभापटल पर न रख दिया जाए।[594] समिति के समक्ष उपस्थित होने पर साक्षी को भी साक्ष्य संबंधी कार्यवाही शुरू होने से पूर्व समिति के अध्यक्ष द्वारा तदनुसार सूचित किया जाता है। तथापि, सभापति स्वविवेक से यह निदेश दे सकती है कि ऐसा साक्ष्य औपचारिक रूप से सभापटल पर रखे जाने से पूर्व गुप्त रूप से सदस्यों को उपलब्ध कराया जाए।[595]

प्रक्रिया

साक्ष्य यदि कोई है तो उसकी सुनवाई के बाद समिति विधेयक पर खंडश: विचार करती है, सदस्य अपने संशोधन, यदि कोई हैं तो पेश करते हैं जिन्हें सदस्यों को पहले ही परिचालित कर दिया जाता है। समिति में संशोधन उपस्थित करने की प्रक्रिया ऐसे अनुकूलनों के साथ, जो चाहे रूपभेद के हों अथवा कोई अंश जोड़कर या निकाल कर किये गये हों, जिन्हें सभापति आवश्यक या सुविधानजक समझे, यथासाध्य वही होगा, जिसका अनुसरण राज्य सभा में किसी विधेयक के विचार प्रक्रम में किया जाता है।[596]

केवल समिति के सदस्यों को संशोधनों की सूचना देने का अधिकार है। सामान्यत: सभा में संशोधनों की ग्राह्यता को शासित करने वाले नियम समिति पर भी लागू होते हैं।[597] विधेयक को किसी समिति के समक्ष भेजे जाने से पूर्व सदस्यों द्वारा सभापटल पर रखी गई संशोधनों की सूचनाएं भी समिति को भेज दी गई समझी जाती हैं। तथापि, जब संशोधन की सूचना किसी ऐसे सदस्यों से प्राप्त हुई हो जो समिति का सदस्य नहीं है तो ऐसा

संशोधन समिति द्वारा तब तक नहीं लिया जाता है जब तक कि वह समिति के किसी सदस्य द्वारा उपस्थित न किया जाए।[598] संशोधनों को सभापटल पर रखने के अलावा, समिति का सदस्य कोई ज्ञापन अथवा टिप्पण भी दे सकता है जिससे समिति के विचारार्थ विधेयक के संबंध में उसके विचार अन्तर्विष्ट हों। समिति के अध्यक्ष के निदेश के अधीन ऐसे ज्ञापन/टिप्पण समिति के सदस्यों को परिचालित किए जाते हैं।

प्रक्रिया संबंधी बातें

सभापति समय-समय पर समिति के अध्यक्ष के लिए ऐसे निर्देश जारी कर सकेगा जिन्हें वह समिति की प्रक्रिया को विनियमित करने तथा उसके कार्य के संयोजन के लिए आवश्यक समझे।[599] यदि प्रक्रिया की किसी बात के बारे में अथवा अन्यथा कोई संदेह उत्पन्न हो तो समिति का अध्यक्ष, यदि वह ठीक समझे, उस मुद्दे को सभापति को भेज देगा जिनका निर्णय अंतिम होगा।[600]

समिति को इससे संबंधित प्रक्रिया के विषयों के बारे में संकल्प सभापति के विचारार्थ पारित करने की शक्ति प्राप्त है जो प्रक्रिया में ऐसे परिवर्तन कर सकेगा जिन्हें वह आवश्यक समझे।[601]

समिति का कार्यकरण

चूंकि जब विधेयक को समिति के समक्ष भेजा जाता है तो इसे सदन द्वारा सिद्धांततः स्वीकार कर लिया जाता है, अतः समिति को पूर्ण विधेयक पर सामान्य चर्चा की अनुमति नहीं दी जाती है। तथापि, ऐसे उदाहरण हैं जबकि समिति ने अपने समक्ष दिए गए साक्ष्य के परिप्रेक्ष्य में विधेयक के उपबंधों पर सामान्य चर्चा की है।

> बागान श्रम (संशोधन) विधेयक, 1973,[602] खाद्य अपमिश्रण निवारण विधेयक, 1974[603] तथा केन्द्रीय और अन्य संस्थाएं (विनियमन) विधेयक 1974[604] संबंधी संयुक्त समितियों ने संबद्ध विधेयक के विभिन्न उपबंधों पर सामान्य चर्चा की थी।

इस मूल परिसीमा के अध्यधीन, किसी प्रवर/संयुक्त समिति को किसी विधेयक में संशोधन करने की व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं। समिति किसी भी विधेयक में संशोधन कर सकती है जिसमें उसका दीर्घ शीर्षक और लघु शीर्षक शामिल हैं।

> भारतीय चिकित्सा और होम्योपैथी केन्द्रीय परिषद् विधेयक, 1968 संबंधी संयुक्त समिति ने विधेयक के दीर्घ और लघु शीर्षकों को बदल दिया था ताकि विधेयक को केवल भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् तक ही सीमित रखा जा सके और उसने होम्योपैथी के लिए पृथक् विधेयक अधिनियमित किए जाने की सिफारिश की थी।[605]

> इसी प्रकार, जल प्रदूषण निवारण विधेयक, 1969 संबंधी संयुक्त समिति ने विधेयक के लंबे शीर्षक में संशोधन किया था ताकि जल प्रदूषण के निवारण के अतिरिक्त उस पर नियंत्रण भी किया जा सके तथा उसके लघु शीर्षक में परिवर्तन करके उसे जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम कर दिया।[606]

इसी प्रकार समिति विधेयक में नए उपबंध शामिल कर सकती है या विधेयक का दायरा सीमित कर सकती है। यथोचित मामलों में समिति विधेयक को वापस लिए जाने की सिफारिश कर सकती है।

एक अवसर पर, खाद्य अपमिश्रण निवारण (संशोधन) विधेयक, 1974 संबंधी संयुक्त समिति के एक सदस्य ने समिति के अध्यक्ष की अनुमति से समिति में एक संकल्प उपस्थित किया था ताकि समिति द्वारा यह सिफारिश की जा सके कि समिति के समक्ष उपस्थित हुए एक सरकारी साक्षी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए विधेयक रखने वाला सदस्य विधेयक को वापस ले ले। तथापि, चर्चा के बाद सदस्य द्वारा संकल्प वापस ले लिया गया।[607]

संशोधनकारी एक विधेयक के मामले में, संशोधनकारी विधेयक द्वारा लिए गए मूल अधिनियम की केवल उन धाराओं का उल्लेख उसमें होना चाहिए जिनमें संशोधन किया जाना है अलावा इसके कि जहां मूल अधिनियम की किन्हीं अन्य धाराओं में विधेयक के खंडों द्वारा आवश्यक रूप से संशोधन या परिवर्तन करने की आवश्यकता है और जिनका उनसे अत्यधिक संबंध है। तथापि, इस प्रतिबंध को देखते हुए समिति यथोचित मामलों में मूल अधिनियम के संशोधन के संबंध में अपने प्रतिवेदन में सुझाव दे सकती है।

उदाहरण के लिए, बागान श्रम (संशोधन) विधेयक, 1973 संबंधी संयुक्त समिति ने मूल अधिनियम में संशोधन करने के लिए कुछ सुझाव दिए थे।[608]

खाद्य अपमिश्रण निवारण (संशोधन) विधेयक, 1974 संबंधी संयुक्त समिति ने मूल अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन के संबंध में प्रतिवेदन के एक परिशिष्ट में कुछ सुझाव दिए थे।[609]

किसी विधेयक में किए गए संशोधनों को समिति द्वारा स्वीकार कर लिये जाने के बाद विधायी काउंसेल द्वारा उन्हें विधेयक में शामिल किया जाता है। यह विधायी काउंसेल समिति की सभी बैठकों में उपस्थित रहता है। समिति सामान्यत: विधायी काउंसेल को उस विधेयक में गौण या मौखिक अथवा प्रारूपण संबंधी या आनुषंगिक परिवर्तन करने का प्राधिकार देती है। समिति का प्रारूप-प्रतिवेदन सचिवालय द्वारा तैयार किया जाता है और उसे विधायी काउंसेल के पास उनके सत्यापन तथा जांच के लिए भेज दिया जाता है और फिर उसके बाद वह इसे वापस भेज देते हैं। उसके सुझावों को, यदि कोई हों तो, प्रारूप-प्रतिवेदन में समुचित रूप से शामिल कर लिया जाता है। उसके बाद इसे समिति के अध्यक्ष के समक्ष रखा जाता है तथा उनके निदेश पर, समिति के सदस्यों, संबद्ध मंत्रालय के प्रतिनिधियों तथा विधायी काउंसेल को परिचालित किया जाता है।

प्रवर समिति के निर्णयों का अभिलेख रखा जाता है और समिति के अध्यक्ष के निदेशानुसार उसे समिति के सदस्यों को परिचालित किया जाता है।[610] कार्यवृत्त को भी समिति के प्रतिवेदन के साथ संलग्न कर दिया जाता है तथा उसे प्रतिवेदन के एक भाग के रूप में ही सभा पटल पर रखा जाता है।

प्रतिवेदन के लिए समय का बढ़ाया जाना

समिति द्वारा किसी विधेयक पर विचार किए जाने के बाद, उसे सदन द्वारा निश्चित किए गए समय के भीतर उसके संबंध में अपना प्रतिवेदन देना होता है।[611] जैसाकि पहले बताया जा चुका है, विधेयक को किसी प्रवर/संयुक्त समिति के पास भेजे जाने के प्रस्ताव में ही समय-सीमा निश्चित कर दी जाती है जिसके भीतर समिति को प्रतिवेदन दे देना चाहिए। तथापि, जहां सदन ने प्रतिवेदन उपस्थित करने के लिए कोई समय-सीमा निश्चित न की हो, वहां प्रतिवेदन उस तिथि से तीन माह की समाप्ति होने से पहले-पहले उपस्थित

कर दिया जाना आवश्यक होता है जिस तिथि को सभा ने समिति को विधेयक सौंपे जाने का प्रस्ताव स्वीकृत किया था।[612] सभा किसी भी समय, प्रस्ताव स्वीकृत करके निदेश दे सकती है कि समिति द्वारा प्रतिवेदन के उपस्थित किये जाने के लिए समय प्रस्ताव में उल्लिखित तिथि तक बढ़ा दिया जाए।[613]

समिति समय-समय पर उस समय-सीमा के बारे में निर्णय करती है जो उसका कार्य पूरा करने के लिए आवश्यक होती है तथा वह समिति के अध्यक्ष को यह प्राधिकार भी देती है कि वह सदन द्वारा मूल रूप से पहले ही निश्चित किए गए समय के समाप्त होने से पहले अथवा आरंभ में या बाद में बढ़ाई गई समय-सीमा के समाप्त होने से पूर्व ही समय बढ़ाने संबंधी प्रस्ताव पेश कर दें। ऐसे अवसर भी आए हैं जबकि समिति के प्रतिवेदनों को उपस्थित किये जाने के लिए समय बढ़ाये जाने संबंधी प्रस्तावों का विरोध किया गया है, परन्तु संबद्ध अध्यक्ष द्वारा स्थिति स्पष्ट किए जाने के बाद उन्हें स्वीकार भी कर लिया गया।

> हिन्दू विवाह और संबंध विच्छेद संबंधी विधेयक, 1952 पर विचार करने के लिए गठित संयुक्त समिति के प्रतिवेदन को उपस्थित करने के लिए समय बढ़ाए जाने संबंधी प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया गया था कि इससे यह पता चलता है कि "सरकार किस तरह से किसी सामाजिक विधान को विलंबित करने की दिशा में प्रयास करते हुए अपना कामकाज निपटाती है, इसके लिए कारण वह चाहे जो भी दे।" तथापि बाद में यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया था।[614]
>
> जब उपर्युक्त विधेयक संबंधी संयुक्त समिति के प्रतिवेदन को उपस्थित करने के लिए आगामी सत्र के दूसरे सप्ताह के अंतिम दिन तक समय और बढ़ाए जाने के संबंध में विधि और अल्पसंख्यक कार्य मंत्री (श्री सी.सी. बिस्वास) ने एक प्रस्ताव पेश किया तो उस समय बहुत ही दिलचस्प घटना घटी। प्रस्ताव पेश किए जाने के तुरंत बाद एक सदस्य ने इसका विरोध कर दिया। तब उस बारे में प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू ने यह टिप्पणी की कि : "मैं चाहूंगा कि इस मामले पर पुनर्विचार किया जाए। प्रवर समिति की बैठकें अनिश्चितकाल से चल रही हैं परन्तु वह किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंची हैं। लेकिन, हम कार्यवाही को आगे कैसे बढ़ाएं? समिति अब दूसरी बार और अधिक समय मांग रही है...। मैं चाहता हूं कि इस संबंध में अवश्य कुछ किया जाना चाहिए।" तब मंत्री महोदय ने प्रस्ताव लाए जाने के कारण स्पष्ट किए। सभापति ने उनसे प्रस्ताव वापस लेने तथा इस पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया। जब एक सदस्य ने इस बात की ओर संकेत किया कि समिति के विरुद्ध कुछ आक्षेप किया गया है, तो प्रधान मंत्री ने यह बताया कि जिस समिति की नियुक्ति पिछले सत्र के दौरान की गई थी, उसे तीन महीने तक बैठकें करने का समय दिया गया है। "यदि वे तीन महीने तक बैठकें करने से इंकार कर देते हैं, तो इसमें सदन की कोई गलती नहीं है। यदि वे केवल तभी बैठकें करना चाहें जब सदनों की बैठकें न चल रही हों और यदि वे हर शनिवार या रविवार को भी बैठक न कर सकते हों क्योंकि वे भी बहुत थक चुके होते हैं, तो उस हालत में प्रवर समिति में अन्य सदस्यों की नियुक्ति की जानी चाहिए।" जब मंत्री महोदय ने स्पष्ट किया कि समिति की बैठक प्रतिदिन हो रही है और वह पहले ही चौदह बैठकें कर चुकी है, तो तब प्रधान मंत्री महोदय ने यह टिप्पणी कि : "यदि वे उसी गति से कार्य करते रहे जिस गति से वे अब तक करते आ रहे हैं तो उन्हें किसी निर्णय पर पहुंचने के लिए लगभग बीस वर्ष लग जाएंगे।" सभापति ने भी निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:
>
> > "अब तक दिए गए सभी भाषण पूर्णत: अंसगत हो जाते हैं क्योंकि मैंने सदन में इस प्रस्ताव पर अभी तक मत नहीं लिया है। जैसे ही श्री बिस्वास ने अपना प्रस्ताव पेश किया था, वैसे ही मुझे आपके खड़े होकर बोलने से पहले इस प्रस्ताव पर मत लेना चाहिए था। बेहतर यही होता कि आप प्रस्ताव वापस ले लेते और मामले पर पुनर्विचार करते... अब आप आज ही प्रवर समिति की बैठक बुलाइए, उसमें मामले पर पुनर्विचार करिए और तब कल प्रात: एक नए प्रस्ताव के साथ यहां आइए। हम आपको प्रस्ताव पेश करने की अनुमति दे देंगे"।[615]

इस घटना के तीसरे दिन एक नया प्रस्ताव लाया गया जिसमें आगामी सत्र के प्रथम सप्ताह के अंतिम दिन तक समयावधि बढ़ाने के लिए कहा गया था। विधि मंत्री ने समिति का कार्यकरण विस्तार से स्पष्ट किया। एक सदस्य ने, जो समिति का सदस्य भी था, प्रधान मंत्री की उक्त टिप्पणी के विरोधस्वरूप समिति से अपने त्यागपत्र की घोषणा कर दी। बाद में प्रधान मंत्री ने अपनी मंशा स्पष्ट की और समिति के किसी भी सदस्य को और समिति की किसी भावना को ठेस पहुंची हो, तो उसके लिए "खेद" व्यक्त किया और क्षमायाचना भी की। उन्होंने यह भी अनुरोध किया कि इस मामले पर विचार कर लेने के बाद और इसकी पृष्ठभूमि तथा कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए, सदन को पेश किया गया प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए और ऐसा ही किया गया। जिस सदस्य ने त्यागपत्र दिया था, उसने भी अपना त्यागपत्र वापस ले लिया।[616]

जब एक अन्य अवसर पर, विदेशी अभिदान (विनियमन) विधेयक, 1973 संबंधी संयुक्त समिति प्रतिवेदन को उपस्थित करने के लिए समय बढ़ाए जाने संबंधी प्रस्ताव पेश किया गया था, तो तब भी समय बढ़ाए जाने के बारे में कुछ मुद्दे उठाए गए थे। सभापति ने टिप्पणी की कि, "गत दो सत्रों के दौरान प्राप्त अपने अल्प अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि कुछ सदस्य कुछ स्थानों का दौरा करना चाहते हैं। प्रतिवेदन दिए जाने में विलंब का एक कारण यह भी है। यदि सदन सहमत हो तो मैं अपने विवेक का इस्तेमाल करूंगा और समिति को अनेक स्थानों पर जाने की अनुमति नहीं दूंगा।"[617]

प्रतिवेदन

बहुत पहले से चली आ रही एक निश्चित रूपरेखा के अनुसार प्रतिवेदन तैयार किया जाता है। प्रारंभिक पैराओं में, विधेयक तथा समिति की कार्यवाही के बारे में सामान्य जानकारी दी जाती है अर्थात् विधेयक को पुर:स्थापित करने की तिथि, वह तिथि जब समिति को विधेयक सौंपे जाने संबंधी प्रस्ताव पेश किया गया था, उस पर चर्चा की गई तथा सदन या सदनों, जैसी भी स्थिति हो, उसे स्वीकार किया गया, समिति द्वारा की गई बैठकों का ब्यौरा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए बढ़ाया गया समय, यदि ऐसा हो, तो इत्यादि-इत्यादि। यदि समिति को कोई ज्ञापन, आदि प्राप्त हुए हों, अथवा समिति ने किसी का कोई साक्ष्य लिया हो या यदि कोई अध्ययन संबंधी दौरे हुए हों अथवा यदि कुछ अध्ययन दलों/उप-समितियों की नियुक्ति हुई हो, तो इन सब तथ्यों का उल्लेख भी प्रारंभिक पैराओं में किया जाता है।

प्रतिवेदन के मुख्य भाग में, समिति विधेयक के विभिन्न खंडों में इसके द्वारा किये गए परिवर्तनों पर अपनी टिप्पणी करती है। समिति सदन/सरकार के ध्यान में लाने के लिए सामान्य टिप्पणियां या सिफारिशें भी कर सकती है।

उदाहरण के लिए बागान श्रम (संशोधन) विधेयक, 1973 संबंधी संयुक्त समिति ने सदन का ध्यान बागान श्रमिकों के लिए किए जाने वाले कल्याणकारी उपायों को कार्यान्वित न किए जाने की ओर दिलाया।[618]

भारतीय चिकित्सा और होम्योपैथी केन्द्रीय परिषद् विधेयक, 1968 संबंधी संयुक्त समिति ने यह सिफारिश की कि होम्योपैथी के लिए एक केन्द्रीय परिषद् का गठन किये जाने के लिए संसद् में शीघ्र ही एक पृथक् विधेयक पुर:स्थापित किया जाए।[619]

प्रतिवेदन अंतत: सदन से की गई सामान्य सिफारिश के साथ समाप्त होता है कि विधेयक, या समिति द्वारा यथासंशोधित विधेयक को सदन द्वारा पारित किया जाए। जहां किसी विधेयक में परिवर्तन किये गये हों वहां समिति, यदि ऐसा करना ठीक समझे, विधेयक के

प्रभारी सदस्य से यह सिफारिश कर सकती है कि उसका अगला प्रस्ताव यह होना चाहिए कि विधेयक को जिस रूप में उसे समिति द्वारा संशोधित किया गया है परिचालित किया जाए, या, जहां विधेयक पहले ही परिचालित किया जा चुका हो, वहां इसे पुनः परिचालित किया जाए।[620]

समिति द्वारा यथासंशोधित प्रतिवेदन और विधेयक पर विचार किया जाना

समिति द्वारा यथासंशोधित प्रारूप-प्रतिवेदन तथा विधेयक पर उसकी अंतिम बैठक में विचार किया जाता है। उसके बाद, यथासंशोधित विधेयक को समिति द्वारा स्वीकृत किया जाता है और तत्पश्चात् समिति प्रारूप-प्रतिवेदन को स्वीकृत करती है। इन्हें स्वीकृत करने के पश्चात् समिति प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए सदन द्वारा निर्धारित की गई तिथि के भीतर एक तिथि निश्चित करती है और समिति सदन को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समिति के अध्यक्ष को अथवा उनकी अनुपस्थिति में किसी अन्य सदस्य को प्राधिकृत भी करती है। किसी संयुक्त समिति के मामले में, लोक सभा के एक सदस्य का अथवा उसकी अनुपस्थिति में किसी अन्य सदस्य को राज्य सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के साथ ही साथ उसकी एक प्रति उस सदन के पटल पर भी रखे जाने के लिए चयन किया जाता है।

समिति के प्रतिवेदन पर समिति की ओर से समिति के अध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षर किए जाते हैं। यदि समिति के अध्यक्ष अनुपस्थित रहते हैं या वह तत्काल उपलब्ध नहीं होते, तो समिति प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर करने के लिए समिति की ओर से किसी अन्य सदस्य का चयन कर सकती है।[621]

समिति के किसी सदस्य द्वारा असहमति-कार्यवृत्त, यदि कोई हों, सचिवालय को भेजने के लिए समिति द्वारा एक तिथि भी निर्धारित की जाती है। असहमति संबंधी कार्यवृत्त, यदि कोई हों, प्रतिवेदन प्रस्तुत करने से पहले उसके साथ संलग्न कर दिये जाते हैं।

असहमति संबंधी कार्यवृत्त

समिति का कोई भी सदस्य विधेयक से संबंधित या प्रतिवेदन में उल्लेखित किसी भी मामले पर अपना असहमति संबंधी कार्यवृत्त अभिलिखित कर सकता है।[622] असहमति-कार्यवृत्त समिति द्वारा इस प्रयोजनार्थ निर्धारित की गई तिथि और समय पर या उससे पूर्व समिति के अधिकारी को देना अथवा सूचना अनुभाग को भेजना आवश्यक होता है। असहमति संबंधी कार्यवृत्त हिन्दी अथवा अंग्रेजी में हो सकते हैं और उसी प्रकार से प्रस्तुत भी किए जाते हैं। सदस्यों के लिए असहमति संबंधी कार्यवृत्त संयुक्त रूप से देने की भी अनुमति है। असहमति संबंधी कार्यवृत्त संयत एवं शालीन भाषा में व्यक्त किया जाना चाहिए और इसमें समिति पर कोई छींटा-कशी नहीं की जानी चाहिए। यदि सभापति की राय में असहमति-कार्यवृत्त में कुछ इस प्रकार के शब्द, वाक्यांश अथवा अभिव्यक्तियां हैं जो असंसदीय हैं या अन्यथा रूप से अनुचित हैं तो वह ऐसे शब्दों, वाक्यांशों अथवा अभिव्यक्तियों को असहमति संबंधी कार्यवृत्त से निकाले जाने का आदेश दे सकता है। इसी प्रकार राज्य सभा के सभापति को भी ऐसी

परिस्थितियों में किसी असहमति-कार्यवृत्त से निकाले जाने तथा सभी निर्णयों की समीक्षा करने की शक्ति प्राप्त है और इस पर उनका निर्णय अंतिम होगा।[623] कोई भी सदस्य प्रतिवेदन पर अपना टिप्पण भी दे सकता है जोकि असहमति-कार्यवृत्त से अलग होता है और वह प्रतिवेदन को सदन में उपस्थित किये जाते समय उसके साथ संलग्न किया जाता है।

प्रतिवेदन का प्रस्तुत किया जाना

किसी विधेयक के संबंध में समिति का प्रतिवेदन, असहमति संबंधी कार्यवृत्त सहित, यदि कोई हो, सभा में समिति के अध्यक्ष अथवा उनकी अनुपस्थिति में समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा उपस्थित किया जाता है।[624]

सदन में उपस्थित किए गए प्रतिवेदन सामान्यतया समिति के सदस्यों की सूची, अध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षरित समिति का प्रतिवेदन, असहमति संबंधी कार्यवृत्त, यदि कोई हो, समिति द्वारा यथा-सूचित विधेयक, विधेयक को किसी समिति को सौंपते समय सदन (सदनों) द्वारा स्वीकृत किया गया/किए गए प्रस्ताव (प्रस्तावों) का मूल पाठ; उप-समिति का प्रतिवेदन/अध्ययन-टिप्पण, यदि कोई हो, प्राप्त हुए ज्ञापनों के विवरण, उन साक्षियों के नामों की सूची जिन्होंने समिति के समक्ष दिया; बैठकों के कार्यवृत्त और उपाबंधों आदि के रूप में सदस्यों को उपलब्ध कराई गई अन्य महत्वपूर्ण सामग्री शामिल होती है।

किसी संयुक्त समिति के मामले में प्रतिवेदन की एक अधिप्रमाणित प्रति इसके राज्य सभा में उपस्थित करने के साथ ही लोक सभा के सभापटल पर रखने के लिए लोक सभा सचिवालय को भेजी जाती है।

सामान्यतया समिति का प्रतिवेदन सदन में उपस्थित किया जाता है लेकिन यदि समिति ऐसे समय में अपना प्रतिवेदन पूरा कर लेती है जब सदन का सत्र नहीं होता तो समिति का अध्यक्ष इसे सभापति के सामने उपस्थित कर सकता है। ऐसे मामले में, तथ्य संसदीय समाचार में प्रकाशित होता है। प्रतिवेदन समिति अध्यक्ष अथवा उनकी अनुपस्थिति में समिति के किसी सदस्य द्वारा अगले सत्र के दौरान प्रथम सुविधाजनक अवसर पर सदन में उपस्थित किया जाता है। सदन में प्रतिवेदन उपस्थित करते समय, समिति अध्यक्ष अथवा उनकी अनुपस्थिति में प्रतिवेदन उपस्थित करने वाला सदस्य इस आशय का एक संक्षिप्त वक्तव्य दे सकता है कि प्रतिवेदन सभापति के समक्ष उस समय प्रस्तुत किया गया था जब सभा का सत्र नहीं था और यह कि प्रतिवेदन के मुद्रण, प्रकाशन अथवा परिचालन के आदेश सभापति द्वारा दिए गए थे।

जहां समिति प्रतिवेदन को सभापति के समक्ष प्रस्तुत करने के बाद और सदन में इसके प्रस्तुत किए जाने से पहले भंग हो जाती है, प्रतिवेदन महासचिव द्वारा प्रथम सुविधाजनक अवसर पर सदन के पटल पर रखा जाना होता है। प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखते समय महासचिव को इस आशय का वक्तव्य भी देना होता है कि प्रतिवेदन समिति के भंग होने से पहले सभापति के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और सभापति ने प्रतिवेदन के मुद्रित किए जाने, प्रकाशित किए जाने एवं परिचालित किए जाने का आदेश दिया था, महासचिव को सदन को उस तथ्य का भी समाचार देना होता है।[625]

किसी अन्य मामले में, कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत करते समय समिति का अध्यक्ष, अथवा उसकी अनुपस्थिति में, प्रतिवेदन प्रस्तुत करने वाला सदस्य यदि कोई टिप्पणी करता है तो उसे तथ्य के संक्षिप्त विवरण तक ही सीमित रहना होगा, परन्तु इस स्थिति में कोई वाद-विवाद नहीं हो सकता।[626]

> भारतीय चिकित्सा और होम्योपैथी केन्द्रीय परिषद् विधेयक, 1968 के संबंध में संयुक्त समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए समिति अध्यक्ष ने एक के बजाए दो केन्द्रीय परिषद् स्थापित किए जाने – एक भारतीय चिकित्सा के लिए और दूसरी होम्योपैथी के लिए–की समिति की सर्वसम्मत सिफारिश के संबंध में विचार व्यक्त किए।[627]

> एक अन्य अवसर पर, चिट फंड विधेयक, 1982 के संबंध में प्रवर समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने के तत्काल पश्चात् सदस्यों ने समिति अध्यक्ष को बधाई दी तथा राज्य सभा द्वारा किए गए अधिकारों के दावे का भी उल्लेख किया गया (लोक सभा द्वारा पारित एक विधेयक को सदन की एक प्रवर समिति को सौंपने में, जब लोक सभा में समिति स्तर पर सम्बद्ध नहीं हुई थी)।[628]

प्रतिवेदनों का मुद्रण एवं प्रकाशन

समिति के प्रतिवेदन को मुद्रित किया जाता है और उसकी प्रतियां सदस्यों को परिचालित की जाती हैं। समिति द्वारा प्रतिवेदित प्रतिवेदन और विधेयक भी राजपत्र में प्रकाशित किए जाते हैं।[629]

जब सदन का सत्र न हो तो सभापति उसके सामने उपस्थित किए गए प्रतिवेदन के मुद्रण, प्रकाशन एवं परिचालन का आदेश दे सकता है। यह तथ्य संसदीय समाचार में प्रकाशित किया जाता है। इस तथ्य, कि प्रतिवेदन के मुद्रण आदि का आदेश सभापति ने दिया था, का उल्लेख सदन की दोबारा बैठक के दौरान प्रतिवेदन के उपस्थित किए जाते समय/सभा पटल पर रखे जाते समय समिति के अध्यक्ष अथवा महासचिव, जैसी भी स्थिति हो, द्वारा किया जाता है जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है।[630]

IV. विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियां

पृष्ठभूमि

विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समिति प्रणाली अथवा अधीनस्थ समितियों की शुरुआत का विषय समय-समय पर संसद् और विभिन्न मंचों के विचाराधीन रहा। उदाहरण के लिए इस विषय पर 1978 में भुवनेश्वर में हुए 'अधिष्ठाता अधिकारी' सम्मेलन में चर्चा हुई थी जिसमें 'कमेटी सिस्टम' के संबंध में अधिष्ठाता अधिकारियों की एक समिति नियुक्त की गई थी। उस समिति के प्रतिवेदन पर 1985 में लखनऊ में हुए सम्मेलन में विचार किया गया और उसे स्वीकृत किया गया। तीन समितियों, अर्थात् कृषि संबंधी समिति, विज्ञान और प्रौद्योगिकी संबंधी समिति और पर्यावरण तथा वन संबंधी समिति का गठन करके लोक सभा ने शुरुआत की थी।[631] समिति में 22 सदस्य थे– 15 सदस्य लोक सभा से थे और 7 सदस्य राज्य सभा से थे– जो कि सम्बद्ध अधिष्ठाता अधिकारियों द्वारा नामनिर्देशित किए जाने थे।[632]

राज्य सभा की नियमों संबंधी समिति ने भी इस विषय पर विचार किया था और ऊपर उल्लिखित तीन समितियों के समान मानव संसाधन विकास, उद्योग और श्रम संबंधी तीन नयी समितियां बनाने की सिफारिश की थी जिसमें संसद् के दोनों सदनों के सदस्य हों।[633] सदन ने समिति के प्रतिवेदन को 20 अगस्त, 1992 को स्वीकार किया। तत्पश्चात्,

सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति और नियमों संबंधी समिति ने संयुक्त रूप से संपूर्ण मामले पर नये सिरे से विचार किया।[634] इस विषय पर 11 मार्च, 1993 को राज्य सभा के सभापति की अध्यक्षता में राज्य सभा और लोक सभा की नियमों संबंधी समितियों की संयुक्त बैठक में फिर विचार-विमर्श हुआ। इस विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप संघ सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के संबंध में सत्रह विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों के गठन का निर्णय लिया गया।

उपरोक्त निर्णय के अनुसरण में, नियमों संबंधी समिति ने अपने छठे प्रतिवेदन में राज्य सभा में इस प्रयोजनार्थ बनाए गए प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में नये नियमों को शामिल किए जाने की सिफारिश की।[635] समिति के प्रतिवेदन को सदन के कुछ संशोधनों सहित 29 मार्च, 1993 को स्वीकृत किया। विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों सबंधी नये नियम (268-277) इस मामले में सभापति से निर्देश मिलने पर 29 मार्च, 1993 को लागू हुए। विभाग-संबंधित समिति प्रणाली का उद्घाटन 31 मार्च, 1993 को संसद् भवन के केन्द्रीय कक्ष में हुए एक समारोह में भारत के उपराष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति श्री के. आर. नारायणन के हाथों हुआ, जिन्होंने इन समितियों में उपायों पर और अधिक विस्तृत सोच-विचार के माध्यम से सरकार की संसद् के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए इस प्रणाली को हमारी संसदीय प्रणाली के विकास में नये चरण के रूप में वर्णित किया। इसका आशय प्रशासन को कमजोर बनाना अथवा उसकी आलोचना करना नहीं है बल्कि और अधिक सार्थक संसदीय समर्थन के द्वारा इसे और मजबूत बनाना है।[636]

तद्नुसार, निम्नलिखित सत्रह विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों का गठन 8 अप्रैल, 1993 को राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा पहली बार हुआ जिनमें कार्य करने के लिए क्रमशः राज्य सभा और लोक सभा से सदस्य नामनिर्देशित किए गए।

तत्पश्चात्, 20 जुलाई, 2004 को सात और समितियां शामिल की गईं और बाद में, राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियम की तीसरी अनुसूची के नियम 268 के अंतर्गत आवश्यक संशोधन किए गए। इस प्रकार जब भी किसी नए मंत्रालय/विभाग का सृजन किया जाता है अथवा किसी मंत्रालय/विभाग के नाम में परिवर्तन किया जाता है तो इस संबंध में तीसरी अनुसूची में संशोधन किये जाते हैं। विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समिति की वर्तमान स्थिति नीचे दिए अनुसार है:

क्र.सं.	समिति का नाम	मंत्रालय
1	2	3
	भाग-I	
1.	वाणिज्य संबंधी समिति	वाणिज्य और उद्योग
2.	गृह कार्य संबंधी समिति	(1) गृह (2) उत्तर-पूर्वी क्षेत्र विकास
3.	मानव संसाधन विकास संबंधी समिति	(1) मानव संसाधन विकास (2) युवक कार्यक्रम और खेल (3) महिला और बाल विकास

1	2	3
4.	उद्योग संबंधी समिति	(1) भारी उद्योग और लोक उद्यम (2) सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम
5.	विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पर्यावरण और वन संबंधी समिति	(1) विज्ञान और प्रौद्योगिकी (2) अंतरिक्ष (3) पृथ्वी विज्ञान (4) परमाणु ऊर्जा (5) पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन
6.	परिवहन, पर्यटन और संस्कृति संबंधी समिति	(1) नागर विमानन (2) सड़क परिवहन और राजमार्ग (3) पोत परिवहन (4) संस्कृति (5) पर्यटन
7.	स्वास्थ्य और परिवार कल्याण संबंधी समिति	(1) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण (2) आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी (आयुष)
8.	कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय संबंधी समिति	(1) विधि और न्याय (2) कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन
9.	कृषि संबंधी समिति	(1) कृषि (2) खाद्य-प्रसंस्करण उद्योग
	भाग-II	
10.	सूचना प्रौद्योगिकी संबंधी समिति	(1) संचार और सूचना प्रौद्योगिकी (2) सूचना और प्रसारण
11.	रक्षा संबंधी समिति	रक्षा
12.	ऊर्जा संबंधी समिति	(1) नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा (2) विद्युत
13.	विदेशी कार्य संबंधी समिति	(1) विदेश (2) प्रवासी भारतीय कार्य

1	2	3
14.	वित्त संबंधी समिति	(1) वित्त (2) कंपनी कार्य (3) योजना (4) सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन
15.	खाद्य, उपभोक्ता मामले और सार्वजनिक वितरण संबंधी समिति	उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण
16.	श्रम संबंधी समिति	(1) श्रम और रोजगार (2) वस्त्र (3) कौशल विकास और उद्यमिता
17.	पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस संबंधी समिति	पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस
18.	रेल संबंधी समिति	रेल
19.	शहरी विकास संबंधी समिति	(1) शहरी विकास (2) शहरी रोजगार और गरीबी उपशमन
20.	जल संसाधन संबंधी समिति	जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण
21.	रसायन और उर्वरक संबंधी समिति	रसायन और उर्वरक
22.	ग्रामीण विकास संबंधी समिति	(1) ग्रामीण विकास (2) पेयजल और स्वच्छता (3) पंचायती राज
23.	कोयला और इस्पात संबंधी समिति	(1) कोयला (2) खान (3) इस्पात
24.	सामाजिक न्याय और अधिकारिता संबंधी समिति	(1) सामाजिक न्याय और अधिकारिता (2) जनजातीय कार्य (3) अल्पसंख्यक कार्य

ये समितियां प्रक्रिया के नियमों की एक अनुसूची में विनिर्दिष्ट की गई हैं।[637] सभापति और अध्यक्ष को समय-समय पर एक दूसरे के साथ विचार-विमर्श करके अनुसूची में परिवर्तन करने की शक्ति प्रदान की गई है।[638]

संरचना

किसी भी समिति में 31 से अधिक सदस्य नहीं होते – 10 सदस्य सभापति द्वारा नामनिर्देशित किए जाते हैं और 21 सदस्य अध्यक्ष द्वारा संबद्ध सदनों के सदस्यों में से नामनिर्देशित किए जाते हैं। तथापि, मंत्री के रूप में नियुक्त सदस्य नामनिर्देशित नहीं किया जाता अथवा वह किसी भी समिति का सदस्य नहीं रह सकता।[639]

इन समितियों की संरचना/पुनर्संरचना के लिए अपनाया गया सामान्य तरीका यह है कि सभी 24 समितियों में आवंटन के लिए स्थानों का हिसाब-किताब राज्य सभा में विभिन्न पार्टियों/समूहों की क्रमश: संख्या के आधार पर किया जाता है। चूंकि समितियों में राज्य सभा के सदस्यों की कुल संख्या से अधिक स्थान हैं और चूंकि मंत्री समितियों के सदस्य नहीं रह सकते, अत: कभी-कभी सभी समितियों में सभी स्थान नहीं भी भर पाते। इसके मद्देनजर ऐसी भी स्थितियां होती हैं जब एक सदस्य को एक से अधिक समितियों में नामनिर्देशित किया जाता है। पार्टियों को उपलब्ध सम्पूर्ण स्लाट्स का पता लगाने के बाद विभिन्न समितियों में पार्टियों के लिए एक दूसरे के मुकाबले स्थानों के आवंटन की गणना की जाती है और पार्टियों के नेताओं से यह अनुरोध किया जाता है कि वे स्थानों के आवंटन के अनुसार विभिन्न स्थायी समितियों में नामनिर्देशन के लिए अपने सदस्यों के बारे में सूचित करें।[640]

उपरोक्त भाग-I में विनिर्दिष्ट प्रत्येक समिति का अध्यक्ष सभापति द्वारा संबंधित समितियों में से नियुक्त किया जाता है, और भाग-II में विनिर्दिष्ट प्रत्येक समिति का अध्यक्ष लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किया जाता है।[641] समितियों की सदस्यता की तरह उनकी अध्यक्षता भी सत्ताधारी दल और प्रमुख विपक्षी दलों के बीच बंटी होती है। अप्रैल, 1993 में पहली बार गठित की गई समितियों में से गृह कार्य संबंधी समिति, विज्ञान और प्रौद्योगिकी संबंधी समिति और पर्यावरण तथा वन संबंधी समिति की अध्यक्षता सत्ताधारी पार्टी के सदस्यों के पास थी और वाणिज्य, उद्योग और परिवहन और पर्यटन संबंधी समितियों की अध्यक्षता विपक्ष के सदस्यों के पास थी। मानव संसाधन विकास संबंधी समिति की अध्यक्षता एक स्वतंत्र (असम्बद्ध) सदस्य के पास थी। समिति के किसी भी सदस्य का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक नहीं होता है।[642]

कार्य

समितियों का कार्य संबंधित मंत्रालयों/विभागों की अनुदान मांगों पर विचार करना तथा उन पर अपना प्रतिवेदन देना है तथापि, समितियां कटौती प्रस्ताव की तरह का कोई सुझाव नहीं दे सकतीं।[643] इस संबंध में समितियों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया यह है कि सदन में बजट पर सामान्य चर्चा के समाप्त हो जाने के बाद सदनों को एक निर्धारित अवधि के लिए स्थगित कर दिया जाता है। इस अवधि के दौरान, समितियां संबंधित मंत्रालयों की अनुदान मांगों पर विचार करती हैं और निर्धारित अवधि में अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करती हैं। प्रत्येक मंत्रालय की अनुदान मांगों के संबंध में अलग-अलग प्रतिवेदन होता है।[644]

ऐसे भी चार उदाहरण रहे हैं जब अनुदान मांगों को विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी

समिति के पास नहीं भेजा गया था— 207वें सत्र के दौरान वर्ष 2006 में पांच राज्यों में आसन्न विधान सभा के चुनावों के कारण, 217वें सत्र के दौरान वर्ष 2009 में विभाग संबंधित संसदीय स्थायी समिति के गठन में देरी के कारण, 222वें सत्र के दौरान वर्ष 2011 में पांच राज्यों में विधान सभा चुनावों के कारण तथा 232वें सत्र के दौरान, वर्ष 2014 में आम चुनावों के पश्चात् सोलहवीं लोक सभा के गठन के परिणामस्वरूप भी ऐसा घटित हुआ। इन सभी चारों अवसरों, पर, विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समिति द्वारा अनुदान मांगों पर विचार के संबंध में राज्य सभा के कार्य संचालन विषयक नियमों के नियम संख्या 272 को निलंबित करने का प्रस्ताव संसदीय कार्य मंत्री द्वारा उपस्थित किया गया।[645]

> 1993 में, समितियों के गठन के बाद 31 मार्च को दोनों सदनों की बैठक स्थगित हो गई, 19 अप्रैल को लोक सभा की बैठक पुन: समवेत हुई और राज्य सभा की बैठक उसके एक सप्ताह पश्चात् समवेत हुई (अलग सत्र)। इस तरह, समितियों में अनुदान मांगों पर विचार करने के लिए तीन सप्ताह का समय लगाया गया।
>
> 1994 में, सदनों की बैठक 19 अप्रैल को पुन: समवेत होने के लिए 18 मार्च को स्थगित हुई और 1995 में, समितियों में अनुदान मांगों पर विचार करने के लिए सदनों की बैठक 31 मार्च को, 24 अप्रैल तक के लिए स्थगित हुई।
>
> 1996 में, आम चुनावों के बाद 22 जुलाई, 1996 को बजट रखा गया था। अनुदान मांगों पर विचार करने के लिए 2 अगस्त, 1996 से 26 अगस्त, 1996 तक के लिए सदन को स्थगित किया गया।

समितियां सभापति अथवा लोक सभा अध्यक्ष द्वारा, जैसी भी स्थिति हो, उसे सौंपे गए संबंधित मंत्रालयों/विभागों से सम्बद्ध विधेयकों की भी जांच करती हैं और उन पर अपना प्रतिवेदन देती हैं।[646] सामान्यतया, समितियां किसी भी सदन में पुर:स्थापित किए गए केवल ऐसे विधेयकों की जांच करती हैं जो उन्हें संबंधित पीठासीन अधिकारियों द्वारा सौंपे जाते हैं।[647] तथापि, ऐसे भी उदाहरण रहे हैं जब समितियों को विधेयक पुर:स्थापन की अवस्था से पहले भी भेजे गए हैं।[648] विधेयक पीठासीन अधिकारियों द्वारा एक दूसरे के साथ मंत्रणा करके संबंधित समितियों को भेजे जाते हैं। जब भी कोई विधेयक इनमें से किसी समिति के पास भेजा जाता है सदस्यों को संसदीय समाचार में एक पैराग्राफ के माध्यम से सूचित कर दिया जाता है।[649]

समितियां उन्हें भेजे गए विधेयक के सामान्य सिद्धांतों और खंडों पर विचार करती हैं और उन पर सभापति/अध्यक्ष द्वारा विनिर्दिष्ट समय के भीतर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती हैं।[650]

> दंड विधि संशोधन विधेयक, 1995, जिस रूप में वह राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया था, गृह कार्य संबंधी समिति को भेजा गया था, ऐसा करते समय सभापति ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि समिति को अपना प्रतिवेदन दो दिन के भीतर दे देना चाहिए।[651]
>
> लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1995 भी जिस रूप में वह राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया था, गृह कार्य संबंधी समिति को भेजा गया था। सभापति ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि समिति का अपना प्रतिवेदन यथासम्भव प्रस्तुत कर देना चाहिए ताकि विधेयक को संसद् के उस सत्र के दौरान पारित किया जा सके।[652]

तथापि, ऐसे अवसर आ सकते हैं जब समितियों के लिए निर्धारित अवधि के भीतर उन्हें भेजे गये विधेयक पर अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करना संभव न हो। ऐसे अवसरों पर, समितियां विधेयक पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समयावधि बढ़वाने हेतु सभापति से संपर्क करती हैं।

लाटरी (विनियमन) विधेयक, 1998, जिस रूप में इसे 27 मई, 1998 को लोक सभा में पुर:स्थापित किया गया था, को 10 जून, 1998 को गृह कार्य संबंधी समिति के पास भेजा गया था। ऐसा करते समय राज्य सभा के सभापति ने इच्छा व्यक्त की कि समिति को 3 जुलाई, 1998 तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर देना चाहिए।[653] तथापि, समिति ने महसूस किया कि निर्धारित अवधि के भीतर विधेयक पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करना संभव नहीं होगा। अत: इसने राज्य सभा के सभापति से समय बढ़ाये जाने की मांग की और उन्होंने 6 जुलाई, 1998 तक अवधि बढ़ा दी।[654]

लोक पाल विधेयक, 1998, जिस रूप में इसे 3 अगस्त, 1998 को लोक सभा में पुर:स्थापित किया गया था, को 7 दिसम्बर, 1998 को गृह कार्य संबंधी समिति के पास भेजा गया था। ऐसा करते समय, राज्य सभा के सभापति ने इच्छा व्यक्त की कि समिति को 11 दिसम्बर, 1998 तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर देना चाहिए।[655] तथापि, समिति ने महसूस किया कि निर्धारित समयावधि के भीतर विधेयक पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करना संभव नहीं होगा। अत: इसने राज्य सभा के सभापति से समय बढ़ाये जाने की मांग की और उन्होंने वर्ष 1999 के बजट सत्र के प्रथम सप्ताह के अंतिम दिन तक इसकी समयावधि बढ़ा दी।[656]

केन्द्रीय सतर्कता आयोग विधेयक, 1998, जिस रूप में इसे 7 दिसम्बर, 1998 को लोक सभा में पुर: स्थापित किया गया था, को 10 दिसंबर, 1998 को गृह कार्य संबंधी समिति के पास भेजा गया था। ऐसा करते समय, राज्य सभा के सभापति ने इच्छा व्यक्त की कि समिति को 16 दिसंबर, 1998 तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना चाहिए।[657] तथापि, समिति ने महसूस किया कि निर्धारित अवधि के भीतर विधेयक पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करना संभव नहीं होगा। अत: उसने राज्य सभा के सभापति से समय बढ़ाये जाने की मांग की और उन्होंने वर्ष 1999 के बजट सत्र के प्रथम सप्ताह के अंतिम दिन तक इसकी समयावधि बढ़ा दी।[658]

भारतीय नागर विमानन प्राधिकरण विधेयक, 2013 को राज्य सभा के सभापति द्वारा जांच करने और दो महीने के भीतर अर्थात् 17 नवंबर, 2013 तक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए 18 सितंबर, 2013 को परिवहन, पर्यटन और संस्कृति संबंधी समिति को सौंपा गया। तथापि, समिति ने महसूस किया कि निर्धारित अवधि के भीतर विधेयक पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करना संभव नहीं होगा क्योंकि विधेयक काफी लंबा था और समिति ने विधेयक से संबंधित महत्वपूर्ण हितार्थियों को अभी तक नहीं सुना था। तद्नुसार समिति के अध्यक्ष ने तीन महीने अर्थात् 17 फरवरी, 2014 तक समय बढ़ाने का अनुरोध किया। तथापि सभापति ने पूर्वोक्त विधेयक के सबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए दो महीने अर्थात् 17 जनवरी, 2014 तक का समय बढ़ाया।

भारत सरकार के मंत्रालय/विभाग अपने कार्यकरण के संबंध में वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करते हैं। इन्हें सचिवालय द्वारा सदस्यों को परिचालित किया जाता है ताकि अनुदान मांगों/विनियोग विधेयकों संबंधी चर्चा में उन्हें मदद मिल सके। समितियों का कार्य मंत्रालयों/विभागों के इन वार्षिक प्रतिवेदनों पर भी विचार करना तथा उन पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना भी है।[659] सामान्यतया, समितियां गहन अध्ययन के लिए वार्षिक प्रतिवेदन में उल्लिखित मुद्दों/विषयों का चयन करती हैं और उन पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती हैं।

समिति का कार्य सदनों में उपस्थित किए गए राष्ट्रीय मूलभूत दीर्घकालिक नीति दस्तावेजों पर विचार करना तथा उन पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना भी है।[660] यदि वे दस्तावेज सभापति अथवा अध्यक्ष, जैसी भी स्थिति हो, द्वारा उसे भेजे जाएं।[661]

विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय के राज्य मंत्री ने नई प्रौद्योगिकी नीति के संबंध में प्रारूप पत्र की एक प्रति इस निवेदन के साथ सभापति को भेजी कि वह इसे विचार के लिए विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी, पर्यावरण और वन संबंधी समिति को भेजें। मंत्री को नियम 270 (घ) का अनुपालन करने और दस्तावेज को पहले सभा पटल पर रखने की सलाह दी गई। इस मामले में आगे और कोई सुनवाई नहीं हुई।[662]

वे मामले जिन पर समिति द्वारा विचार नहीं किया जाता

नियमों में समिति के कार्यों पर निम्नलिखित दो प्रतिबंध लगाये गये हैं :

(1) समिति संबंधित मंत्रालयों/विभागों के दैनिक प्रशासनिक मामलों पर विचार नहीं करेगी;[663] और

(2) समिति सामान्यतया ऐसे मामलों पर विचार नहीं करेगी जो किसी अन्य समिति के क्षेत्राधिकार में हों।[664]

एक अवसर पर, जब विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पर्यावरण और वन संबंधी समिति परमाणु ऊर्जा के अनुसंधान तथा विकास पहलू को लेना चाहती थी, सभापति ने फाइल में यह निर्णय दिया कि चूंकि अन्य स्थायी समिति (ऊर्जा संबंधी) परमाणु ऊर्जा के कार्य को देख रही है उसी विषय पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी समिति में चर्चा करना परेशानी की बात होगी।[665]

प्रतिवेदन

समितियों के प्रतिवेदन विस्तृत सर्वसम्मति पर आधारित होते हैं।[666] तथापि, इन समितियों का कोई सदस्य समिति के प्रतिवेदन के संबंध में असहमति-कार्यवृत्त अभिलिखित करा सकता है।[667] समितियों के प्रतिवेदन, असहमति-कार्यवृत्तों सहित, यदि कोई हों, सदनों में उपस्थित किए जाते हैं।[668] यदि सदन का सत्र न हो तो इन समितियों के प्रतिवेदन सभापति को भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं और बाद में जब सदन की बैठक हो तो समिति अध्यक्ष/महासचिव द्वारा सदन में उपस्थित किए जा सकते हैं।[669]

परिवहन और पर्यटन संबंधी समिति के अध्यक्ष (श्री प्रमोद महाजन) ने महापत्तनों के गैर-सरकारीकरण नीति संबंधी समिति का बीसवां प्रतिवेदन 25 जनवरी, 1996 को सभापति को उपस्थित किया क्योंकि सदन का सत्र नहीं चल रहा था।[670] तत्पश्चात् 27 फरवरी, 1996 को प्रतिवेदन लोक सभा के पटल पर रख दिया गया और अगले दिन राज्य सभा में वह प्रस्तुत किया गया।[671]

इसी तरह, मानव संसाधन विकास संबंधी समिति के अध्यक्ष (श्री पी. उपेन्द्र) ने गैर-सरकारी विश्वविद्यालय (स्थापना और विनियमन) विधेयक, 1995 के संबंध में 26 मार्च, 1996 को समिति का इकतालीसवां प्रतिवेदन सभापति को प्रस्तुत किया जब सदन का सत्र नहीं चल रहा था। तत्पश्चात्, प्रतिवेदन को नवगठित समिति के किसी सदस्य द्वारा 29 अगस्त, 1996 को लोक सभा के पटल पर रखा गया और राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया था।[672]

गृह कार्य संबंधी समिति का उनतीसवां, तीसवां और इकतीसवां प्रतिवेदन सदन/सभापति को प्रस्तुत नहीं किया जा सका क्योंकि समिति का कार्यकाल 7 अप्रैल, 1996 को समाप्त हो गया। सभापति ने यह निर्देश दिया कि जब राज्य सभा की दोबारा बैठक हो तो प्रतिवेदन (महासचिव द्वारा) सभा पटल पर रखे जाएं, तदनुसार कार्यवाही की गई थी।[673]

वर्ष 1966 से, विभिन्न विभाग-संबंधित समितियों के अध्यक्षों ने अपनी-अपनी समितियों के प्रतिवेदन सत्र नहीं चलने के दौरान राज्य सभा के सभापति को प्रस्तुत किए। अब इस परिपाटी को आमतौर पर अपनाया जाता रहा है।[674]

विभाग-संबंधित स्थायी समितियों के प्रतिवेदन प्रत्ययकारी महत्व के होते हैं और इन्हें समितियों द्वारा दी गई विचारित सलाह समझा जाता है।[675] इसके बावजूद भी समितियां अन्य स्थायी समितियों की तरह अपनी सिफारिशों के कार्यान्वयन पर अनुवर्ती कार्यवाही करती हैं।

> उदाहरणार्थ, परिवहन और पर्यटन संबंधी समिति ने समिति की सिफारिशों के कार्यान्वयन में अत्यधिक विलंब पर गंभीरतापूर्वक विचार किया और चर्चा के बाद यह निर्णय लिया कि समिति की सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिए सरकार के लिए तीन महीने का समय पर्याप्त होगा।[676]

समिति द्वारा प्रतिवेदन स्वीकार किए जाने के बाद, अंतिम प्रतिवेदन में परिवर्तन करने के लिए समिति के अध्यक्ष का कोई निदेश, यदि कोई हो, को महासचिव के ध्यान में लाया जाना चाहिए। समिति के/की अध्यक्ष को इस प्रकार के उनके मौखिक निदेशों के संबंध में सचिवालय से अनिवार्य रूप से लिखित रूप में अनुवर्ती कार्रवाई करना चाहिए ताकि गलतफहमी की कोई गुंजाइश न हो।

> विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पर्यावरण एवं वन संबंधी समिति के 212वें प्रतिवेदन को समिति द्वारा उसे स्वीकार किए जाने के बाद समिति के अध्यक्ष के निदेशों पर सचिवालय द्वारा परिवर्तित किया गया जिससे सचिवालय के कार्यकरण की आलोचना हुई थी। उस समय राज्य सभा के सभापति ने यह निर्देश दिया कि समिति द्वारा प्रतिवेदन को स्वीकार किए जाने के बाद सचिवालय की किसी आलोचना से बचने के लिए अंतिम प्रतिवेदन में परिवर्तन करने के लिए समिति के अध्यक्ष के निदेशों को महासचिव की जानकारी में लाया जाना चाहिए।[677] समिति के अध्यक्ष द्वारा दिए जाने वाले इस प्रकृति के मौखिक निर्देश स्टाफ हेतु निरपवाद से लिखित में भी जारी किए जाएं ताकि किसी प्रकार की शंका की कोई गुंजाइश न रहे।

प्रवर समिति के नियमों की उपयुक्तता

विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों से संबंधित नियम सर्वागीण नहीं हैं। अत: दूसरे रूप में राज्य सभा में विधेयकों के संबंध में प्रवर समितियों संबंधी नियम आवश्यक परिवर्तन सहित राज्य सभा के अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत कार्य करने वाली स्थायी समितियों पर लागू होते हैं। जहां तक लोक सभा के अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत कार्य करने वाली समितियों को संबंध है, लोक सभा में अन्य संसदीय समितियों पर लागू होने वाले सामान्य नियम विभाग संबंधित समितियों पर भी लागू होते हैं।[678]

समिति की बैठकों के संबंध में सभापति का निदेश

सभापति समितियों की बैठकों के संबंध में राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन विषयक नियम के तहत निदेश भी दे सकते हैं। उदाहरण के लिए, 8 दिसंबर, 2000 को सभापति ने निम्नलिखित निदेश दिया:

> "जब तक कि सभापति इसकी अनुमति न दें, राज्य सभा की बैठक प्रारंभ होने के पश्चात् और जिस दिन राज्य सभा की बैठक चल रही हो, उस दिन 15.00 बजे से पूर्व समिति की कोई बैठक नहीं की जाएंगी।"[679]

V. वित्तीय तथा अन्य समितियां जिनमें राज्य सभा का प्रतिनिधित्व रहता है

ऐसी समितियां भी हैं जिनकी शुरुआत लोक सभा द्वारा की गई है और जिनके संबंध में लोक सभा की प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में प्रावधान है। तथापि, राज्य सभा के सदस्य भी इन समितियों से सम्बद्ध हैं। इन समितियों का विवरण संक्षेप में नीचे दिया गया है:

(क) *लोक लेखा समिति*

समिति में अधिक से अधिक पन्द्रह सदस्य लोक सभा से और सात सदस्य राज्य सभा से सम्बद्ध होने के लिए होंगे।[680] इन्हें आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा सम्बद्ध सदन द्वारा प्रति वर्ष अपने सदस्यों में से निर्वाचित किया जाता है।

समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है, तथापि, किसी विशेष मामले में दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव से इसे बढ़ाया भी जा सकता है।

> लोक लेखा समिति की अवधि 30 अप्रैल, 1968 तक बढ़ाने का एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ चूंकि समिति का कार्यकाल उसी वर्ष 31 मार्च को समाप्त होना था। यह प्रस्ताव संसदीय कार्य मंत्री द्वारा उपस्थित किया गया। एक संशोधन द्वारा उन सदस्यों को निकाल दिया गया जिनका कार्यकाल उस वर्ष 2 अप्रैल को समाप्त होना था।[681]

पिछली समिति का कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व प्रतिवर्ष एक नई समिति निर्वाचित की जाती है परन्तु वह पिछली समिति का कार्यकाल समाप्त होने पर ही कार्य आरंभ करती है। सामान्यत: समिति की स्थापना प्रति वर्ष मई में की जाती है और इसकी अवधि अगले वर्ष की 30 अप्रैल को समाप्त होती है। राज्य सभा को समिति में शामिल होने और सात सदस्यों को समिति से सम्बद्ध होने के लिए नामनिर्देशित करने का अनुरोध करते हुए लोक सभा में एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है। लोक सभा से प्रस्ताव प्राप्त होने पर सदन को इसके सबंध में महासचिव द्वारा सूचित किया जाता है।[682] तत्पश्चात् संसदीय कार्य मंत्री सात सदस्यों के निर्वाचन का प्रस्ताव उपस्थित करते हैं, जिसे स्वीकार कर लिया जाता है।[683] तत्पश्चात् सात सदस्यों के निर्वाचन का कार्यक्रम निर्धारित किया जाता है और उसे संसदीय समाचार में अधिसूचित किया जाता है।[684] निर्वाचन का परिणाम संसदीय समाचार में अधिसूचित किया जाता है[685] तथा समिति में काम करने के लिए निर्वाचित राज्य सभा सदस्यों के नाम प्रेषित करते हुए एक संदेश लोक सभा को भेज दिया जाता है।

समिति की आकस्मिक रिक्तियां राज्य सभा में एक प्रस्ताव उपस्थित करके भरी जाती हैं। समिति में कार्यरत किसी राज्य सभा सदस्य का कार्यकाल समाप्त होने पर इस प्रकार की निवृत्ति से समिति में उत्पन्न होने वाली रिक्ति को राज्य सभा के एक अन्य सदस्य को नामनिर्देशित करके भरा जाता है। ऐसे मामले में समिति की अवशिष्ट अवधि के लिए राज्य सभा से एक अन्य सदस्य नामनिर्देशित करने की सिफारिश करते हुए लोक सभा में एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है।

लोक लेखा समिति एक से अधिक उप-समितियों को नियुक्त कर सकती है, इनमें से प्रत्येक समिति को उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले किसी भी मुद्दे की जांच हेतु अविभाज्य समिति की शक्तियां प्राप्त होंगी और उक्त उप-समिति के प्रतिवेदन को किसी भी पूर्ण समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन माना जाएगा। समिति का अध्यक्ष उप-समिति के संयोजक को नियुक्त करेगा, उप समिति द्वारा प्रतिवेदन की अंतिम रूप दिये जाने के पश्चात् उसे लोक लेखा समिति के अध्यक्ष को सौंपा जाएगा। उप-समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने तथ उसे अपनाने हेतु बैठक किए जाने से पूर्व प्रतिवेदन के मसौदे की प्रतियां समिति के सभी सदस्यों को उपलब्ध कराई जाएंगी।

समिति का मुख्य कार्य विनियोजन लेखों, भारत सरकार के वार्षिक लेखों तथा संसद् के समक्ष रखे गए ऐसे अन्य लेखों की जांच करना है जिनकी जांच समिति उचित

समझती है। समिति निगमों, स्वायत्त एवं अर्ध-स्वायत्त निगमों के लेखा विवरणों की जांच भी करती है। (उन सरकारी उपक्रमों को छोड़कर जिन्हें सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति को आवंटित किया गया है)।[686]

समिति का प्रतिवेदन लोक सभा में प्रस्तुत किए जाने के साथ ही सदन के सभापटल पर रखा जाता है। सामान्यत: समिति के प्रतिवेदनों पर तब तक चर्चा नहीं की जाती है जब तक कि गंभीर प्रकृति का कोई विशिष्ट मुद्दा न हो।

> 27 अगस्त, 1966 को यह प्रस्ताव (जिसे पहले अनियत दिन वाले प्रस्ताव के नाम से गृहीत किया गया था)[687]। उपस्थित किया गया कि "लोक लेखा समिति के पचासवें प्रतिवेदन के पैरा 4.128 में अन्तर्विष्ट समिति के अवलोकनों के संदर्भ में लोक लेखा समिति के पचपनवें प्रतिवेदन पर विचार किया जाए।" इस प्रस्ताव के बारे में दो संशोधन उपस्थित किए गए। चर्चा के पश्चात् संशोधन वापस ले लिए गए और चर्चा समाप्त हो गई।[688]
>
> इससे पूर्व उपरोक्त प्रतिवेदन के संबंध में, समिति के एक सदस्य ने खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास और सहयोग मंत्री द्वारा दिए गए साक्ष्य को समाविष्ट करते हुए 1 अगस्त, 1966 को हुई लोक लेखा समिति की अट्ठाइसवीं बैठक की कार्यवाही की शब्दश: प्रति सभा पटल पर रखी।[689] (वह प्रतिवेदन पचासवें प्रतिवेदन के पैरा 4.128 के संबंध मे 18 मई, 1966 को लोक सभा में दिए गए मंत्री जी के वक्तव्य से उद्भूत हुआ।)

ऐसे अवसर भी आए हैं जबकि मंत्रियों ने लोक लेखा समिति के प्रतिवेदनों में किए गए अवलोकनों पर सभा में वक्तव्य दिये हैं।

> राजस्व तथा सिविल व्यय मंत्री ने समिति द्वारा लंदन में कतिपय जीपों के लिए और 1948 में महाद्वीप में रक्षा सेवाओं हेतु कतिपय रक्षा भंडारों के लिए दिए गए आर्डरों के संबंध में उसके नौवें प्रतिवेदन में किए गए कतिपय अवलोकनों के संबंध में वक्तव्य दिया।[690]
>
> वित्त मंत्री ने आयरन एंड स्टील कंट्रोलर के साथ और उनके द्वारा किए गए कतिपय वस्तु-विनियम वाले सौदों के संबंध में समिति के पचासवें प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट कतिपय अवलोकनों के संदर्भ में एक वक्तव्य दिया।[691]

(ख) *सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति*

समिति में लोक सभा के पन्द्रह सदस्य और राज्य सभा के सात सदस्य समिति से सहबद्ध रहने के लिए होते हैं।[692] इस संदर्भ में प्रक्रिया वही है जैसाकि लोक लेखा समिति के मामले में अपनाई जाती है।[693] समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष है, तथापि इसे किसी विशेष मामले में सभा द्वारा प्रस्ताव उपस्थित करके बढ़ाया जा सकता है।[694]

समिति का कार्य लोक सभा में प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों की चौथी अनुसूची में विनिर्दिष्ट सरकारी उपक्रमों की कार्यप्रणाली की जांच करना है। समिति के प्रत्येक प्रतिवेदन को लोक सभा में प्रस्तुत किए जाने के साथ-साथ ही राज्य सभा के सभा पटल पर रखा जाता है।[695]

> एक अवसर पर सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के एक प्रतिवेदन में (साथ ही प्राक्कलन समिति के एक प्रतिवेदन में) की गईं सिफारिशों के संबंध में सरकार के उन उत्तरों को दर्शाने वाले विवरण सभा पटल पर रखे गए जो समिति (समितियों) के प्रतिवेदन (प्रतिवेदनों) में समाविष्ट करने हेतु सरकार द्वारा समय पर नहीं प्रस्तुत किए गए थे।[696]

> 24 नवंबर, 1961 को राज्य उपक्रमों के संबंध में एक संयुक्त समिति के गठन हेतु लोक सभा में एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया था। समिति में राज्य सभा के सदस्यों को शामिल किए जाने पर आपत्ति करते हुए औचित्य का प्रश्न उठाया गया था। विधि मंत्री ने औचित्य के प्रश्न का विरोध किया। प्रस्ताव पर आगे बहस नहीं हुई। लोक सभा के भंग होने से वह मुद्दा समाप्त हो गया। 28 अगस्त, 1962 की लोक सभा की कार्यावलि में इस विषय पर दो प्रस्ताव भी शामिल किए गए थे। पहला प्रस्ताव सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के गठन के लिए था और दूसरा यह कि जब समिति वे कृत्य निष्पादित करेगी जोकि प्राक्कलन समिति की परिसीमा के अंतर्गत आते हैं, तो वह केवल लोक सभा सदस्यों के साथ ही कार्य करेगी।
>
> यह मामला 27 अगस्त, 1962 को राज्य सभा में उठाया गया। इस प्रस्ताव पर लोक सभा में और आगे चर्चा नहीं हुई। 21 सितंबर, 1963 को इन प्रस्तावों से आपत्तिजनक अंशों को हटाते हुए लोक सभा में दो नए प्रस्ताव उपस्थित किए गए और उन पर चर्चा हुई। लोक सभा द्वारा 20 नवंबर, 1963 को यथासंशोधित प्रस्ताव स्वीकार कर लिए गए। राज्य सभा ने 26, 27 और 28 नवंबर, 1963 को प्रस्ताव पर बहस की और 2 सितंबर, 1963 को इसे स्वीकार कर लिया तथा समिति में शामिल होना प्रारंभ कर दिया।

समिति ने संसद् के समक्ष अपने अध्ययन दौरों के दौरान प्रकाश में आयी सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों के कार्यकरण से संबंधित खामियों को सामने लाने तथा पता चली इन खामियों को दूर करने तथा संबंधित उपक्रमों के कार्यकरण को चुस्त-दुरुस्त बनाने के लिए सरकार को टिप्पणियां/सिफारिशें देने की आवश्यकता प्रायः महसूस की थी।

> इसके परिणामस्वरूप, इस मामले पर समिति द्वारा 7 सितंबर, 2000 को हुई इसकी बैठक में विस्तृत विचार किया गया और संसद् की दोनों सभाओं के पटल पर अपने अध्ययन दौरे के प्रतिवेदन तैयार करने तथा रखने के लिए 'लोक सभा की प्रक्रिया और कार्य संचालन विषयक नियमों' के नियम 281 के अंतर्गत एक संकल्प पारित किया गया और इसे अध्यक्ष के विचारार्थ व आदेशों हेतु प्रस्तुत किया गया। अध्यक्ष ने 20 नवंबर, 2000 को इस मामले में अपनी स्वीकृति प्रदान की और तब से, समिति लोक सभा में अपने प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ राज्य सभा के सभा पटल पर अपने अध्ययन दौरों का प्रतिवेदन रखती आ रही है।

(ग) *रेलवे अभिसमय समिति*

रेलवे अभिसमय समिति एक तदर्थ समिति है जो रेलवे उपक्रम द्वारा सामान्य राजस्व को देय लाभांश की दर की समीक्षा करने के लिए और सामान्य वित्त के साथ-साथ रेल वित्त के संबंध में अन्य आनुषंगिक मामलों की समीक्षा करने के लिए इस बारे में अपनी सिफारिशें करने के लिए गठित की गई हैं। तथापि, पिछले कुछ वर्षों से समिति रेलवे के कार्यकरण के साथ-साथ रेल वित्त के विभिन्न पहलुओं की भी जांच कर रही है। सामान्य राजस्व में रेलवे द्वारा जमा किए जाने वाले लाभांश की दर की सिफारिश करने के अलावा यह मूल्यह्रास आरक्षित निधि, विकास निधि, पेंशन निधि, पूंजी निधि और संरक्षा निधि जैसी रेलवे की विभिन्न निधियों में विनियोजन के स्तर के संबंध में भी सुझाव देती है। 1949, 1954, 1960 और 1965 की समितियों ने स्वयं को अनुवर्ती पंचवर्षीय अवधि के दौरान रेल उपक्रमों द्वारा अदा की जाने वाली लाभांश की दर के निर्धारण के प्रश्न तक ही सीमित रखा। सर्वप्रथम 1971 से, रेलवे द्वारा सामान्य राजस्व में जमा किए जाने वाले लाभांश की

दर की सिफारिश करने के अलावा, रेलवे अभिसमय समिति, रेलवे के कार्यकरण के साथ-साथ रेल वित्त से संबंधित मामलों की गहन जांच हेतु अन्य विषयों पर भी गौर कर रही है।

लोक सभा में प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में समिति के कार्यकरण के संबंध में कोई अलग से नियम नहीं बनाए गए हैं। अत: यह समिति लगभग उसी ढंग से कार्य करती है जैसे कि लोक सभा की अन्य वित्त समितियां कार्य करती हैं जिनके लिए बाकायदा नियम बने हुए हैं।

समिति का गठन समय-समय पर लोक सभा में सरकार द्वारा उपस्थित किए गए तथा राज्य सभा द्वारा सहमति प्रदान किए गए संकल्प द्वारा किया जाता है।[697] इसमें अठारह सदस्य होते हैं जिनमें से लोक सभा के बारह सदस्य अध्यक्ष (स्पीकर) द्वारा और राज्य सभा के छ: सदस्य सभापति द्वारा नामनिर्देशित किए जाते हैं। वित्त मंत्री तथा रेल मंत्री[698] सामान्य समिति में नामनिर्देशित किए गए सदस्यों में शामिल होते हैं। एक बार गठित कर ली गई समिति लोक सभा के भंग होने तक कार्य करती रहती है और उसी के साथ ही भार-मुक्त होती है बशर्ते कि यह अंतिम प्रतिवेदन उससे पहले ही प्रस्तुत न कर दें।[699]

उक्त समिति समय-समय पर अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। सदन में प्रतिवेदन पर चर्चा एक संकल्प के रूप में की जाती है जिसे रेल मंत्री द्वारा प्रतिवेदन में अंतर्निहित सुझावों का अनुमोदन करते हुए उपस्थित किया जाता है और यह चर्चा रेल बजट पर होने वाली सामान्य चर्चा के साथ-साथ की जाती है।[700]

> एक अवसर ऐसा भी आया कि जब राज्य सभा ने यह संकल्प पारित किया कि सदन द्वारा 21 दिसंबर, 1954 को एक संकल्प स्वीकृत करके अनुमोदित की गई रेलवे अभिसमय समिति, 1954 की सिफारिशों के प्रवृत्त बने रहने की अवधि एक वर्ष के लिए अर्थात् 31 मार्च, 1961 तक बढ़ा दी गई है।[701]

(घ) *अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति*

इस समिति में तीस सदस्य होते हैं – बीस लोक सभा से और दस राज्य सभा से – जो एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति के अनुसार संबद्ध सदनों द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। समिति का कार्यकाल एक वर्ष होता है।[702]

समिति के कार्यों में ये कार्य शामिल हैं: अनुसूचित जाति आयोग और अनुसूचित जनजाति आयोग द्वारा संविधान के अनुच्छेद क्रमश: 338(5)(घ) तथा 338क(5)घ के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदनों की जांच करना और संसद् को यह सूचित करना कि संघ सरकार को क्या-क्या उपाय करने चाहिए तथा समिति द्वारा प्रस्तावित उपायों की बाबत सरकार द्वारा पहले की गई कार्यवाही क्या है, सेवाओं इत्यादि में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के उचित प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए सरकार द्वारा किए गए उपायों की जांच करना और अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए कल्याणकारी उपायों के कार्यकरण के विषय में सूचित करना।[703]

समिति का पुनर्गठन सामान्यत: एक वर्ष के लिए किया जाता है जो 1 मई को प्रारंभ होता है और आगामी वर्ष की 30 अप्रैल को समाप्त होता है। इस प्रयोजन के लिए राज्य सभा से समिति के दस सदस्यों को नामनिर्देशित करने की सिफारिश करने वाला एक प्रस्ताव लोक सभा में उपस्थित किया जाता है और उसे स्वीकृत भी किया जाता है। इस प्रस्ताव के संबंध में लोक सभा से प्राप्त संदेश की सूचना सदन को महासचिव द्वारा दी जाती है। समिति के लिए निर्वाचित किए गए राज्य सभा के सदस्यों के नामों की सूचना महासचिव द्वारा एक संदेश के माध्यम से लोक सभा को प्रेषित की जाती है।

(ङ) *अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण संबंधी समिति*[704]

इस समिति का गठन लोक सभा द्वारा एक प्रस्ताव के स्वीकार किए जाने तथा राज्य सभा द्वारा सहमति दिए जाने पर हुआ। इस समिति में तीस सदस्य होते हैं—लोकसभा से बीस और राज्य सभा से दस — जो संबद्ध सदनों द्वारा एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधि पद्धति के अनुसार निर्वाचित किए जाते हैं। समिति का कार्यकाल इसकी प्रथम बैठक की तारीख से एक वर्ष के लिए होता है।

समिति के कार्यों में शामिल हैं— राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम, 1993 के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदनों पर विचार करना तथा संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासन सहित संघ सरकार के क्षेत्राधिकार में आने वाले मामलों के लिए संघ सरकार द्वारा क्या-क्या उपाय किए जाने चाहिए, तथा समिति द्वारा प्रस्तावित उपायों पर संघ सरकार द्वारा की गई कार्यवाही के संबंध में दोनों सदनों को रिपोर्ट करना, संघ सरकार के नियंत्रणाधीन सेवाओं और पदों में (सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों, सांविधिक एवं अर्ध-सरकारी निकायों तथा संघ राज्य क्षेत्रों में नियुक्तियों सहित) अन्य पिछड़े वर्गों, विशेषकर अति पिछड़े वर्गों का समुचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए संघ सरकार द्वारा किए गए उपायों की समीक्षा करना, संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासनों सहित संघ सरकार के क्षेत्राधिकार में आने वाले अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण से संबंधित सभी मामलों पर सामान्य रूप से विचार करना और उससे दोनों सदनों को अवगत कराना तथा ऐसे मामलों की जांच करना जो समिति को उपयुक्त लगते हों अथवा सदन या अध्यक्ष द्वारा विशेष रूप से निर्दिष्ट किए गए हों।

समिति का गठन एक बार में एक वर्ष के लिए किया जाता है। इसके गठन की प्रक्रिया लोक लेखा समिति, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों संबंधी समिति तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के समान ही है।

(च) *लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति*

समिति का गठन लोक सभा द्वारा इस आशय का प्रस्ताव स्वीकृत किए जाने और राज्य सभा में उसे सहमति प्रदान किए जाने के पश्चात् किया जाता है। इस समिति में पन्द्रह सदस्य होते हैं — दस लोक सभा से और पांच राज्य सभा से — जो संबद्ध सदनों द्वारा एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार निर्वाचित किए जाते हैं। समिति का गठन प्रत्येक लोक सभा के कार्यकाल तक के लिए किया जाता

है। पद्धति के अनुसार निर्वाचित किए जाते हैं। समिति का गठन प्रत्येक लोक सभा के कार्यकाल तक के लिए किया जाता है।

समिति का कार्य सामान्यत: सरकारी समितियों के गठन एवं स्वरूप की जांच करना और उनके संबंध में यह सिफारिश करना है कि संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) के अंतर्गत कौन से पद उनके धारक को संसद् सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए अर्ह अथवा निरर्ह करते हैं। समिति समय-समय पर यथा-संशोधित संसद् (निरर्हता का निवारण) अधिनियम, 1959 की अनुसूची में समय-समय पर किए जाने वाले किन्हीं संशोधनों की भी सिफारिश करती है। समिति का प्रतिवेदन लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है और साथ ही साथ राज्य सभा के सभापटल पर भी रखा जाता है।[705]

(छ) *ग्रंथालय समिति*

ग्रंथालय समिति का गठन प्रत्येक वर्ष लोक सभा अध्यक्ष द्वारा संसदीय ग्रंथालय के विकास से संबंधित सभी मामलों पर उन्हें सलाह देने के लिए किया जाता है। वर्तमान में, इस समिति में अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित लोक सभा के छह सदस्य तथा राज्य सभा के सभापति द्वारा नाम-निर्देशित राज्य सभा के तीन सदस्य होते हैं। लोक सभा अध्यक्ष द्वारा इस समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति समिति के सदस्यों में से ही की जाती है परन्तु यह तब जबकि लोक सभा उपाध्यक्ष इस समिति का सदस्य हो तो इस समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाएगा। इस समिति में नैमेत्तिक रिक्तियां, लोक सभा के मामले में लोक सभा अध्यक्ष द्वारा तथा राज्य सभा के सदस्यों के मामले में राज्य सभा के सभापति द्वारा नामनिर्देशन के माध्यम से भरी जाती हैं। ग्रंथालय समिति पुस्तकालय की सभी उपार्जनों की गुणवत्ता और उनकी मात्रा का पर्यवेक्षण करती है तथा ग्रंथालय और इसकी आनुषंगिक सेवाओं के कार्यकरण में और सुधार किये जाने हेतु टिप्पणियां एवं सुझाव देती है। इस समिति का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक नहीं होता है।

(ज) *महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति*

संसद् की दोनों सभाओं में प्रस्तुत किए गए संकल्पों के अनुसरण में, नियम समिति (11वीं लोक सभा) ने 6 मार्च, 1997 को लोक सभा में रखे गये अपने दूसरे प्रतिवेदन में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने हेतु समिति के गठन की सिफारिश की थी। 29 अप्रैल, 1997 को पहली बार महिला सशक्तिकरण समिति का गठन किया गया था।

समिति में अधिक से अधिक तीस सदस्य होते हैं जिसमें लोक सभा के सदस्यों में से अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित बीस सदस्य और राज्य सभा के सदस्यों में से राज्य सभा के सभापति द्वारा नामनिर्देशित दस सदस्य होते हैं।

समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष का होता है। महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति के कार्य निम्नलिखित हैं:[706]

(i) राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदन पर विचार करना और संघ-शासित प्रदेशों के प्रशासनों सहित संघ सरकार के क्षेत्राधिकार में आने वाले

मामलों के संबंध में महिलाओं की स्थिति/दशा में सुधार लाने हेतु संघ सरकार द्वारा किए जाने वाले उपायों पर प्रतिवेदन देना;

(ii) सभी मामलों में महिला समानता, दर्जा और प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए संघ सरकार द्वारा किए गए उपायों की जांच करना;

(iii) विधायी निकायों/सेवाओं और अन्य क्षेत्रों में महिलाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने और उनकी व्यापक शिक्षा हेतु संघ सरकार द्वारा किए गए उपायों की जांच करना;

(iv) महिलाओं के लिए कल्याण कार्यक्रमों की कार्यप्रणाली पर प्रतिवेदन देना;

(v) समिति द्वारा प्रस्तावित उपायों पर संघ-शासित प्रदेशों के प्रशासनों और संघ सरकार द्वारा की गई कार्यवाही पर प्रतिवेदन देना; और

(vi) लोक सभा अथवा अध्यक्ष और राज्य सभा अथवा सभापति द्वारा समिति को विशिष्टतया प्रेषित किए गए अथवा ऐसे अन्य मामले जिन्हें समिति उपयुक्त समझे, की जांच करना।

लोक सभा में समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाता है और इसके साथ ही इसकी एक प्रति राज्य सभा के पटल पर रखी जाती है।

VI. सांविधिक संयुक्त समितियां

(क) *संसद्-सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति*

संसद्-सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति एक सांविधिक समिति है जो संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के अधीन इस अधिनियम के अंतर्गत नियम बनाने के लिए गठित की गई है।[707] इसमें राज्य सभा के पांच सदस्य होते हैं जो सभापति द्वारा मनोनीत किए जाते हैं और दस सदस्य लोक सभा के होते हैं जो अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किये जाते हैं। इस संयुक्त समिति का सदस्य अपने मनोनयन की तारीख से एक वर्ष तक पदासीन रहता है और संयुक्त समिति में उत्पन्न होने वाली किसी आकस्मिक रिक्ति को यथास्थिति सभापति या अध्यक्ष के नामनिर्देशित द्वारा भरा जाता है।[708] संयुक्त समिति अपना अध्यक्ष स्वयं चुनती है।[709] समिति को इसकी प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति भी प्रदान की गई है।[710] यह समिति कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं करती।

समिति का कार्य केन्द्रीय सरकार से विचार-विमर्श करने के पश्चात् चिकित्सा, आवास, टेलीफोन सुविधाओं इत्यादि जैसे मामलों का प्रावधान करने के लिए और सामान्यत: उन विभिन्न भत्तों के भुगतान का विनियमन करने के लिए नियम बनाना है जिनके लिए इस अधिनियम के अंतर्गत संसद्-सदस्य हकदार हैं।[711] समिति द्वारा बनाए जाने वाले नियम तब तक प्रभावी नहीं होते जब तक कि उन्हें दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा अनुमोदित करके उनकी पुष्टि न कर दी जाए तथा जब तक वे राजपत्र में प्रकाशित न हो जाएं।[712]

(ख) *राजभाषा संबंधी संयुक्त संसदीय समिति*

राजभाषा समिति का गठन 1975 में संसद् के दोनों सदनों में एक संकल्प स्वीकृत करके किया गया है।[713] समिति में तीस सदस्य होते हैं– बीस लोक सभा से और दस राज्य सभा से – जो एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार चुने जाते हैं। समिति संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग में हुई प्रगति की समीक्षा करती है और इस संबंध में सिफारिशें करके अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करती है।[714] समिति के निर्वाचन का प्रस्ताव 22 जनवरी, 1976 को स्वीकृत किया गया था और राज्य सभा के सदस्यों को समिति में कार्य करने के लिए 29 जनवरी, 1976 को निर्वाचित किया गया था।[715]

(ग) *न्यायाधीश (जांच) नियम, 1969 संबंधी तदर्थ संयुक्त समिति*

न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के अंतर्गत नियम बनाने के लिए संसद् के दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति गठित की गई थी। इसमें लोक सभा के दस सदस्य और राज्य सभा के पांच सदस्य हैं जिन्हें संबद्ध पीठासीन अधिकारियों द्वारा नामनिर्देशित किया जाता है।[716]

(घ) *राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियमों के अधीन गठित तदर्थ परामर्शदात्री समितियां*

जब कभी भी संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन किसी राज्य के संबंध में की गई उद्घोषणा के अंतर्गत कानून बनाने के लिए राष्ट्रपति को शक्ति प्रदान की जाती है, तब संसद् इस प्रयोजन के लिए राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम अधिनियमित करती है। उस अधिनियम में यह प्रावधान है कि राष्ट्रपति जब भी ऐसा करना व्यवहार्य समझे, संबद्ध पीठासीन अधिकारियों द्वारा नामनिर्देशित किए जाने वाले संसद् सदस्यों की किसी समिति से विचार-विमर्श कर सकता है। इस प्रकार की समितियां अनेक बार गठित की गई हैं।[717]

VII. तदर्थ समितियां

ऊपर उल्लिखित समितियों के अतिरिक्त, विशिष्ट मामलों या विषयों की जांच करने या उनके बारे में सूचित करने के लिए भी तदर्थ आधार पर समितियां स्थापित की जा सकती हैं। ऐसी समितियां या तो (1) सदन द्वारा एक प्रस्ताव उपस्थित और स्वीकृत करके, अथवा (2) सभा की इच्छा अथवा सभा में सहमति के आधार पर सभापति द्वारा, अथवा (3) किसी सदन में उपस्थित किए गए और दूसरे सदन में सहमति प्रदान कर स्वीकृत किए गए प्रस्ताव पर दोनों सदनों द्वारा संयुक्त रूप से, अथवा (4) दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा परस्पर विचार-विमर्श के द्वारा स्थापित की जा सकती हैं। इन्हें तदर्थ समितियां कहा जाता है क्योंकि किसी प्रतिवेदन के प्रस्तुत होने के बाद अथवा समनुदेशित कार्य के समापन

या फिर समय बीत जाने के साथ ये पदकार्य निवृत्त हो जाती हैं। तदर्थ समितियां समय-समय पर इन सब पद्धतियों से गठित की गई हैं जैसाकि नीचे दिए गए उदाहरणों से देखा जा सकता है।

(1) राज्य सभा द्वारा गठित समिति : राज्य सभा ने, राज्य सभा सदस्य (सुब्रह्मण्यम स्वामी का मामला) के आचरण एवं क्रियाकलापों की जांच करने के लिए दस सदस्यों वाली एक समिति नियुक्त करने हेतु गृह मंत्रालय, कार्मिक विभाग तथा संसदीय कार्य विभाग में राज्य मंत्री द्वारा उपस्थित किया गया एक प्रस्ताव स्वीकार किया।[718]

(2) सभापति द्वारा नियुक्त समिति : सभापति ने एक मामले पर उठाए गए प्रश्न पर प्रति-प्रश्नों के दौरान सदन की इच्छानुसार रेलवे वैगनों की आपूर्ति से संबंधित सभी पहलुओं की जांच करने के लिए एक रेलवे वैगन समिति नियुक्त की। उन्होंने कपास उत्पादकों की समस्याओं, जिनके बारे में 26 जुलाई, 1996 को एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पेश किया था, से संबंधित एक अन्य समिति नियुक्त की। इसके अतिरिक्त, उन्होंने वक्फ बोर्डों के कार्यकरण, जिसके बारे में 9 सितंबर, 1996 को एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पेश किया गया था, से संबंधित एक और समिति भी नियुक्त की।[719]

(3) प्रस्तावों द्वारा नियुक्त की गई संयुक्त समितियां : इस शीर्षक के अंतर्गत स्थापित की गई कुछ समितियां निम्नानुसार हैं :

> (1) दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956) की प्रारूप सबंधी समितियां लोक सभा द्वारा 11 मई, 1956 को स्वीकृत किए गए और राज्य सभा द्वारा 14 मई, 1956 को सहमति प्रदान किए गए प्रस्ताव के अनुसार गठित की गई थीं।[720]
>
> (2) राजभाषा आयोग की सिफारिशों की जांच करने तथा इस संबंध में अनुच्छेद 344 (5) के अधीन राष्ट्रपति को अपनी राय सूचित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 344 (4) के अधीन एक सरकारी प्रस्ताव के संबंध में राजभाषा संबंधी एक संसदीय समिति का गठन किया गया था।[721]
>
> (3) लोक सभा द्वारा 22 जून, 1971 को स्वीकृत किए गए और राज्य सभा द्वारा 25 जून, 1971 को सहमति प्रदान किए गए प्रस्ताव के अनुपालन में निर्वाचन विधि (1971) में संशोधन करने के लिए एक संयुक्त समिति नियुक्त की गई थी।[722]
>
> (4) लोक सभा द्वारा 19 दिसंबर, 1980 को स्वीकृत किए गए और राज्य सभा द्वारा 24 दिसंबर, 1980 को सहमति प्रदान किए गए प्रस्तावों के अनुपालन में दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1980) के कार्यकरण की जांच करने के लिए संयुक्त समिति गठित की गई थी।[723]
>
> (5) लोक सभा द्वारा 6 अगस्त, 1987 को स्वीकृत किए गए और राज्य सभा द्वारा 12 अगस्त, 1987 को सहमति प्रदान किए गए एक प्रस्ताव के अनुपालन में बोफोर्स ठेके की जांच करने के लिए तीस सदस्यों वाली—बीस लोक सभा से और दस राज्य सभा से—एक संयुक्त संसदीय समिति गठित (1987) की गई थी।[724]
>
> इस समिति के प्रतिवेदन पर 11 और 12 मई, 1988 को अल्पकालिक चर्चा के माध्यम से सभा में बहस की गई। जब इस तरह के प्रतिवेदन पर बहस के स्वरूप के संबंध में मुद्दे उठाए गए तो उपसभापति ने यह विचार व्यक्त किया कि :

यह संसदीय समिति का प्रतिवेदन है। इस तरह के प्रतिवेदन सामान्यत: सभा के समक्ष रखे जाते हैं और उन पर चर्चा नहीं होती है। तथापि, इस विषयवस्तु के महत्व पर विचार करते हुए अपवादस्वरूप, हम इस प्रतिवेदन को चर्चा हेतु ले रहे हैं और एक प्रस्ताव के माध्यम से इस पर चर्चा करने की अपेक्षा अल्पकालिक चर्चा के माध्यम से इस पर बहस करना अधिक उपयुक्त समझा गया।[725]

(6) लोक सभा द्वारा 6 अगस्त, 1992 को स्वीकृत किए गए और राज्य सभा द्वारा 7 अगस्त, 1992 को सहमति प्रदान किए गए प्रस्ताव का अनुपालन करते हुए प्रतिभूति घोटालों के संबंध में तीस सदस्यों-बीस सदस्य लोक सभा से और दस राज्य सभा से - एक संयुक्त संसदीय समिति गठित की गई।[726] इस समिति के प्रतिवेदन पर भी 29 और 30 सितंबर, 1993 को अल्पकालिक चर्चा के माध्यम से बहस की गई थी।

(7) लोक सभा द्वारा 26 अप्रैल, 2001 को स्वीकृत किए गए और राज्य सभा द्वारा उसी तारीख को सहमति प्रदान किए गए प्रस्ताव का अनुपालन करते हुए शेयर बाजार घोटाले और तत्संबंधी मामलों के संबंध में तीस सदस्यों वाली एक संयुक्त ससंदीय समिति (जे.पी.सी.) गठित की गई। (2001)[727]

(8) लोक सभा द्वारा 24 फरवरी, 2011 के स्वीकृत किए गए राज्य सभा द्वारा 1 मार्च, 2011 को सहमति प्रदान किए गए एक प्रस्ताव के अनुपालन में दूरसंचार लाइसेंस और स्पेक्ट्रम के आवंटन और कीमत निर्धारण से संबंधित मामलों की जांच करने के लिए लोक सभा से बीस सदस्य और राज्य सभा से दस सदस्यों वाली एक संयुक्त ससंदीय समिति (जे.पी.सी.) गठित की गई। (2011)[728]

(9) 27 फरवरी, 2013 को राज्य सभा में एक प्रस्ताव उपस्थित किया कि मैसर्स अगस्ता वैस्टलैंड से रक्षा मंत्रालय द्वारा वी.वी.आई.पी. हेलिकॉप्टरों की खरीद में रिश्वत के भुगतान के आरोपों और इस सौदे मे कथित बिचौलिये की भूमिका की जांच करने के लिए तीस सदस्यों, जिसमे 10 सदस्य राज्य सभा से और 20 सदस्य लोक सभा से हो, वाली दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति गठित की जाए और उसे सभा द्वारा स्वीकार किया गया। राज्य सभा से प्राप्त संदेश की सूचना 4 मार्च, 2013 को लोक सभा में दी गई तथापि संयुक्त समिति गठित नहीं हुई।[729]

(4) पीठासीन अधिकारियों द्वारा संयुक्त समितियां : पीठासीन अधिकारियों द्वारा परस्पर परामर्श करके समय-समय पर निम्नलिखित समितियां नियुक्त की गई थीं :

(1) संसद् भवन में अभिलेख संबंधी समिति।[730]

(2) संसदीय, विधिक और प्रशासनिक शब्दों के लिए समकक्ष हिन्दी शब्द निर्धारित करने संबंधित समिति।[731]

(3) तीसरी, चौथी और पांचवीं पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारूप संबंधी समितियां।[732]

(4) संसद् भवन में चित्र और प्रतिमाएं तथा अतिरिक्त संसदीय इमारत के निर्माण संबंधी समितियां।[733]

(5) संसद भवन में खान-पान संस्थापनाओं के कार्यकरण की जांच करने संबंधी समिति।[734]

(6) निरंकारियों तथा अकालियों के बीच समझौता कराने के लिए संसद्-सदस्यों की समिति (1983)।

26 अगस्त, 1983 को लोक सभा में की गई घोषणा के अनुसार मूलत: अध्यक्ष द्वारा गठित की जाने वाली समिति में नौ सदस्य होने थे। बाद में इस समिति को विस्तृत करने तथा इसे बाइस सदस्यों की संयुक्त समिति बनाने का निर्णय लिया गया जिसमे पन्द्रह लोक सभा से और सात सदस्य राज्य सभा से लेने का निर्णय हुआ। इस समिति को राज्य सभा के नियमों के अधीन कार्य करना था। समिति के अध्यक्ष का चुनाव स्वयं समिति द्वारा ही किया जाना था।[735] यह समिति लोक सभा भंग होने पर समाप्त हो गई।

(7) संसद् परिसर में खान-पान संबंधी संसदीय समिति (1993)[736]

(8) संसद भवन परिसर में खाद्य प्रबंधन संबंधी समिति (2009) को अन्य बातों के साथ-साथ संसद भवन परिसर में स्थित रेलवे खान-पान इकाइयों में उपलब्ध कराए जाने वाले खाद्य पदार्थों की दरों में संशोधन और इन इकाइयों को चलाने के लिए दी जाने वाली राजसहायता पर विचार करने के लिए गठित किया गया था। इसमें पंद्रह सदस्य थे जिसमें दस लोक सभा से और पांच राज्य सभा से थे।[737]

(9) संसद् परिसर में राष्ट्रीय नेताओं के चित्र/प्रतिमाओं की प्रतिष्ठापना संबंधी संसदीय समिति (फरवरी, 1993) दोनों सदनों के महासचिवों को समिति का सदस्य होने के लिए विशेष रूप से मनोनीत किया गया और समिति परामर्श हेतु लोक सभा या राज्य सभा के किसी अन्य सदस्य को विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित करने के लिए सक्षम थी। लोक सभा के उपाध्यक्ष इस समिति के अध्यक्ष थे।[738]

(10) संसद्-सदस्यों के लिए सुविधाओं तथा पारिश्रमिक के लिए सुझाव देने संबंधी संयुक्त संसदीय समिति (1993)। समिति को ये शक्तियां प्राप्त थीं। (1) सूचना मांगना; (2) साक्षियों से पूछताछ करना; (3) विशेषज्ञों से सलाह प्राप्त करना; और (4) और कोई उपाय करना। समिति को यथाशीघ्र अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का निदेश दिया गया और इसे अन्य संसदीय समितियों जैसी प्रतिष्ठा और सुविधाएं प्रदान की गईं।[739] समिति ने 23 दिसंबर, 1993 को एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।[740]

(11) पंजाबी सूबे की मांग की जांच करने और इस प्रश्न के एक संतोषजनक हल पर पहुंचने में मंत्रिमंडल की एक समिति की सहायता करने के लिए लोक सभा के अध्यक्ष की अध्यक्षता में दोनों सदनों की एक तदर्थ संसदीय समिति गठित की गई थी।[741] समिति का प्रतिवेदन संसद् में प्रस्तुत किया गया था।[742]

(12) अलग-अलग फैक्टरियों के लिए उर्वरकों की विभिन्न किस्मों का प्रतिरक्षण मूल्य निर्धारित करने वाले तंत्र की समीक्षा करने के लिए तथा उर्वरक उद्योग के कामकाज का सामान्य अध्ययन करने के लिए ग्यारह सदस्यों की एक संयुक्त संसदीय समिति गठित की गई जिसमें सात सदस्य लोक सभा से थे और चार सदस्य राज्य सभा से।[743]

(13) लोक सभा और राज्य सभा सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों पर लागू वेतन और भत्तों आदि के ढांचे में वांछनीय परिवर्तनों के संबंध में पीठासीन अधिकारियों को सलाह देने के लिए तीन बार संसदीय समितियां गठित की गई।[744]

(14) संविधान (इक्यासीवां संशोधन) विधेयक, 1996 (अनुच्छेद 330क और 332क का अंत:स्थापन), जो लोक सभा में पुर: स्थापित किया गया था। एक संयुक्त समिति को सौंपा गया जिसमें कुल इकतीस सदस्य थे – दस सदस्य राज्य सभा से और इक्कीस सदस्य लोक सभा से। समिति का गठन लोक

सभाध्यक्ष तथा राज्य सभा के सभापति द्वारा परस्पर परामर्श करके समिति के सदस्यों को नामनिर्देशित करके किया गया।[745]

(15) लोक सभा के आठ सदस्यों और राज्य सभा के तीन सदस्यों से बनी ग्यारह सदस्यीय संसद भवन परिसर में सुरक्षा संबंधी संयुक्त संसदीय समिति (2004) का गठन अन्य बातों के साथ-साथ विशेषत: समय-समय पर सुरक्षा संबंधी संयुक्त संसदीय समिति द्वारा की गई सिफारिशों के संदर्भ में संसद भवन परिसर में सुरक्षा उपस्कर स्थापित करने संबंधी कार्य प्रगति की समीक्षा और विचार/निर्णय हेतु लंबित सुरक्षा पहलुओं पर विचार करने हेतु किया गया था।

(16) मृदु पेय, फलों के रस और अन्य पेय पदार्थों मे कीटनाशक अवशेषों और इनके लिए सुरक्षा मानक संबंधी संयुक्त संसदीय समिति (2004) का गठन इस संबंध में प्रतिवेदन देने के लिए किया गया था कि क्या मृदु पेय में कीटनाशक अवशेषों के संबंध में विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र (सी.एस.ई.) के हालिया निष्कर्ष सही है या नहीं और मृदु पेय, फलों के रस और अन्य पेय पदार्थों जिनमें जल मुख्य अवयव है, के लिए समुचित सुरक्षा मानक विकसित करने के लिए मानंदड क्या होंगे। इस समिति में पंद्रह सदस्य थे जिनमें दस लोक सभा और पांच राज्य सभा के थे।[746]

(17) संसद भवन परिसर में संरक्षण, जीर्णोद्धार, पुनरुद्धार और अनुरक्षण आदि कार्यों से संबंधित नीतियां, दिशानिर्देश और कार्यक्रम तैयार करने हेतु वर्ष 2009 में संसद भवन परिसर के विरासत स्वरूप के रखरखाव और विकास संबंधी संसदीय स्थायी समिति का गठन किया गया था जिसमें लोक सभा के छह और राज्य सभा के तीन सदस्यों सहित कुल नौ सदस्य थे और लोक सभा के अध्यक्ष इसके अध्यक्ष थे। राज्य सभा के उपसभापति केन्द्रीय शहरी विकास मंत्री और केन्द्रीय गृह मंत्री इस समिति के पदेन सदस्य हैं जबकि संसदीय कार्य मंत्री इस समिति के विशेष आमंत्रिती हैं।[747]

VIII. परामर्शदात्री समितियां

विभिन्न मंत्रालयों से सम्बद्ध संसद्-सदस्यों की परामर्शदात्री समितियां 1969 से कार्य कर रही हैं। इन समितियों का मुख्य उद्देश्य सरकार की नीतियों और कार्यक्रम पर तथा उनके कार्यान्वयन के तरीके पर सरकार और संसद-सदस्यों के बीच अनौपचारिक सलाह किया जाना है। इन समितियों की सदस्यता स्वैच्छिक है और इसे सदस्यों और उनकी पार्टियों के नेताओं की मर्जी पर छोड़ दिया गया है। एक समिति में सदस्यों की अधिकतम संख्या चालीस तक हो सकती है। तथापि, कोई न्यूनतम सदस्य संख्या निर्धारित नहीं की गई है। इन समितियों की अध्यक्षता समितियों से संबंधित मंत्रालयों के प्रभारी मंत्री द्वारा की जाती है।

इन समितियों की बैठकें संसद् के सत्र और अन्तरसत्रावधि, दोनों के दौरान ही आयोजित की जाती हैं। समिति की कार्यसूची चर्चा हेतु सदस्यों से प्राप्त हुए मुद्दों और सम्बद्ध मंत्रालय के सुझावों के आधार पर तैयार की जाती है। इन समितियों द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया जाता। परामर्शदात्री समिति द्वारा एकमत से की गई सिफारिश को सरकार स्वीकार कर सकती है। इन बैठकों में होने वाली चर्चा के अनौपचारिक स्वरूप को ध्यान में रखते हुए सदस्यों और साथ ही साथ सरकार का भी यह कर्तव्य है कि वे इन समितियों में घटित किसी भी घटना का उल्लेख सदन में न करें।[748]

IX. सरकारी समितियां

सरकार द्वारा संसद के किसी अधिनियम अथवा किसी संकल्प के अनुसरण में अनेक समितियां, परिषदें, बोर्ड आदि (इसके बाद जिनका उल्लेख सरकारी समिति के रूप में किया गया है) गठित किए जाते हैं अथवा स्थापित किए जाते हैं जिनमें संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व होता है।[749] मौटे तौर पर इन समितियों का कार्य कतिपय मुद्दों पर सरकार को सलाह देना है। प्रतिनिधित्व का तरीका जो चाहे सदस्यों में से चुनाव द्वारा हो अथवा सभापति द्वारा नामनिर्देशन द्वारा और चुने गए/नामनिर्देशित सदस्य के कार्यकाल का उल्लेख उसी अधिनियम/संकल्प में होता है जिसके अधीन समिति गठित की जाती है। साधारणतया सदस्यों को संबंधित मंत्री/मंत्रालयों के अनुरोध पर सभापति द्वारा समिति में नामनिर्देशित किया जाता है। सभापति द्वारा किसी सदस्य को नामनिर्देशित कर दिए जाने के बाद उसका नाम संसदीय समाचार में प्रकाशित किया जाता है और सम्बद्ध मंत्रालय को बता दिया जाता है।

सांविधिक स्तर रखने वाली अनेक सरकारी समितियां हैं जिनमें सदन द्वारा एकल हस्तांतरणीय मत के माध्यम से आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव किया जाता है।[750] ऐसे मामलों में इस उद्देश्य के लिए सभा में प्रस्ताव उपस्थित किए जाते हैं और सभापति चुनाव का कार्यक्रम निर्धारित करता है जिसमें नामांकन, नाम वापस लेने और चुनाव आदि की तिथियों शामिल होती हैं। कार्यक्रम की घोषणा संसदीय समाचार के माध्यम से की जाती है। चुनाव का परिणाम भी संसदीय समाचार में प्रकाशित किया जाता है। तथापि, राज्य सभा में एक परिपाटी बन गयी है कि जिस दल/समूह को इन निकायों के लिए सदस्यता दी जानी होती है उसका निर्णय संसदीय कार्यमंत्री जो कि सरकार का मुख्य सचेतक भी होता है, द्वारा अन्य दलों के सचेतकों के परामर्श से किया जाता है। इस प्रकार सामान्यतया चुनाव को टाला जाता है। कुछ अवसरों पर ही चुनाव होता है।

जब कभी मंत्रालय किसी विषय पर सलाहकार स्वरूप की विभागीय समितियां गठित करते हैं और उसमें किसी सदस्य को नाम निर्देशित करने की इच्छा व्यक्त करते हैं तो इसकी अनुमति के लिए वे राज्य सभा के सभापति से अनुरोध करते हैं। यह प्रथा अथवा परिपाटी सचिवालय को यह सुनिश्चित करने के लिए कि समिति की सदस्यता उस सदस्य को लाभ के पद का धारक न बनाये, और मंत्रालय/सदस्य को तदनुसार सलाह देने के लिए समिति के स्वरूप की जांच करने हेतु ऐसे मामलों को लाभ के पद संबंधी संयुक्त समिति को सौंपने का अधिकार देती है।[751]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. संसदीय समाचार (2), 30.10.1986
2. -वही- 25.5.1987
3. -वही- 16.11.1992
4. -वही- 26.7.1993
5. -वही- 6.6.1994
6. -वही- 7.8.1995; 31.7.1996
7. फा.सं. 3/93-टी.
8. नियम 30"(2)
9. नियम 217(2)
10. नियम 30(1)
11. नियम 30(2)
12. नियम 30(3)
13. नियम 30(4)
14. नियम 30(5)
15. नियम 31
16. नियम 32
17. उदाहरणार्थ, कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 1.6.1995
18. नियम 33(1)
19. नियम 33(3)
20. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 27.4.1995 (पैरा 3)
21. नियम 14
22. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 22.2.1965; 25.8.1965 और 1.8.1966
23. -वही- 17.12.1992 और 10.12.2008
24. -वही- 26.04.2007, 10.3.2011, 21.12.2011, 4.3.2012, 24.4.2012, 12.8.2013, 27.8.2013, और 6.9.2013
25. -वही- 1.3.2007, 26.4.2007, 3.5.2007, 23.8.2007, 30.8.2007, 29.2.2008, 24.4.2008, 11.11.2010, 17.3.2011, 25.8.2011, 2.9.2011, 1.12.2011, 12.8.2013, 23.8.2013
26. -वही- 7.8.1995, 26.4.2007, 12.8.2010, 25.8.2011, 12.8.2013 और 6.9.2013
27. -वही- 10.5.2012
28. -वही- 31.7.1995, 26.2.1996, 25.7.1996, और 29.8.1996
29. -वही- 23.3.1995, 7.3.1996, 11.7.1996, 18.7.1996 और 3.12.2009
30. -वही- 30.3.1992; 11.8.1994, 5.5.2005, 28.7.2006 भी देखिए।
31. -वही- 11.11.2010, 21.2.2011, 11.8.2011
32. -वही- 7.8.1995; 16.8.1995, 7.12.1995 और 17.12.2009
33. -वही- 14.3.1995; 23.3.1995; 27.4.1995 और 29.2.1996
34. -वही- 18.5.1995
35. -वही- 16.8.1995
36. -वही- 23.7.2009
37. -वही- 12.8.2010
38. -वही- 10.12.2004 और 17.8.2005

39. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 27.4.1995
40. -वही- 28.9.1964; 7.12.1964; 8.11.1995; 1.8.1966; 8.12.1967; 21.2.1968 और 25.11.1968
41. -वही- 21.9.1964; 12.3.1965; 25.8.1965; 8.11.1965; 23.8.1966; 10.11.1966 और 26.7.1968
42. -वही- 30.3.1995, 10.12.2009, 17.12.2009, 15.4.2010, 22.4.2010 और 26.8.2010
43. -वही- 26.2.1996
44. -वही- 1.6.1995
45. -वही- 19.12.1991
46. -वही- 14.8.1956; 16.11.1962; 2.6.1964; 3.12.1965; 6.5.1966; 5.8.1969; 13.3.1970, 20.7.1971; 3.5.2007; और 12.8.2010
47. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.3.1968, कालम 3871-82
48. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 17.3.1986
49. -वही- 14.3.1995
50. -वही- 26.2.1996
51. -वही- 20.3.1970; 24.4.1970; 16.6.1971; 2.4.1985 और 20.4.1987
52. -वही- 9.8.1985
53. -वही- 1.8.1986
54. -वही- 25.7.1991; 1.8.1991 और 12.8.1993
55. -वही- 10.7.1992
56. -वही- 13.10.1982 और 16.7.1991
57. -वही- 10.7.1992, 19.8.1993 और 30.11.2006
58. -वही- 5.5.1993, 30.11.2006 और 16.7.2009
59. -वही- 30.11.2006
60. -वही- 6.8.1992
61. -वही- 13.6.1977
62. -वही- 20.11.1991
63. -वही- 10.7.1992
64. -वही- 18.8.1994
65. -वही- 7.12.1994
66. -वही- 5.8.1993
67. -वही- 12.8.1993 और 19.8.1993
68. -वही- 7.12.1994
69. -वही- 19.11.2009
70. -वही- 12.3.1981
71. -वही- 25.3.1985
72. नियम 34
73. नियम 35
74. नियम 36
75. नियम 37
76. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 6.8.1952

77. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 7.8.1952, कालम 3284-85
78. -वही- 14.4.1955, कालम 4719-20
79. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 23.8.1955, 21.9.1955 भी देखें। कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश नवंबर, 1959 से संसदीय समाचार (भाग-2) 27.11.1959 के माध्यम से संसदीय समाचार (2) में अधिसूचित की जा रही है।
80. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.8.1966, कालम 4586-98
81. -वही- 8.3.1968, कालम 3871-79
82. -वही- 25.11.1996, कालम 2900-17
83. -वही- 24.3.1971, कालम 9-19
84. -वही- 16.8.1974, कालम 91
85. -वही- 8.12.1978, कालम 211-30
86. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 15.12.1978
87. नियम समिति का पहला प्रतिवेदन, पृष्ठ 10-11, कार्यवृत्त, 21.5.1971
88. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 24.8.1966
89. -वही- 15.12.1978
90. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.5.1958, कालम 2129-33
91. अनुच्छेद 350
92. नियम 137 से 153
93. नियम 137
94. नियम 138(i)
95. नियम 138(ii)
96. नियम 138(iii)
97. नियम 138(iii) (क) से (घ)
98. नियम 139(1)
99. नियम 143
100. नियम 139(2) और (3)
101. याचिका समिति का छठा प्रतिवेदन, 28.11.1955
102. नियम 140
103. नियम 141
104. नियम 142
105. नियम 144
106. संसदीय समाचार (1), 5.12.1973; याचिका समिति का 41वां प्रतिवेदन
107. नियम 146
108. नियम 145
109. संसदीय समाचार (1), 20.9.1954, 27.9.1954, 26.11.1954, 30.11.1954 और 3.12.1954 याचिका समिति का पहला और दूसरा प्रतिवेदन (क्रमशः 30.9.1954 और 6.12.1954 को प्रस्तुत किए गए)
110. संसदीय समाचार (1), 27.9.1954, याचिका समिति का प्रथम प्रतिवेदन (30.9.1954 को प्रस्तुत किया गया)

111. संसदीय समाचार (1), 28.2.1955, याचिका समिति का चौथा प्रतिवेदन (18.3.1955 को प्रस्तुत किया गया)
112. -वही- 19.4.1955, याचिका समिति का पांचवां प्रतिवेदन (19.4.1955 को प्रस्तुत किया गया)
113. -वही- 28.11.1955, याचिका समिति का छठा प्रतिवेदन (28.11.1955 को प्रस्तुत किया गया)
114. -वही- 7.5.1956, 30.7.1956, 22.8.1956 और 24.8.1956 याचिका समिति का 7वां, 8वां 9वां, 10वां और 11वां प्रतिवेदन (क्रमश: 4.5.1956, 9.5.1956, 2.8.1956, 24.8.1956 और 25.8.1956 को प्रस्तुत किया गया)
115. -वही- 10.8.1959, याचिका समिति का 12वां प्रतिवेदन (10.8.1959 को प्रस्तुत किया गया)
116. -वही- 20.4.1960, याचिका समिति का 13वां प्रतिवेदन (22.4.1960 को प्रस्तुत किया गया)
117. -वही- 29.4.1963, याचिका समिति का 14वां प्रतिवेदन (30.4.1963 को प्रस्तुत किया गया)
118. -वही- 9.9.1966, याचिका समिति का 17वां प्रतिवेदन (7.11.1966 को प्रस्तुत किया गया)
119. -वही- 23.2.1953 और 27.4.1953
120. नियम 150
121. नियम 147(1)
122. प्रारूप प्रक्रिया नियमों संबंधी समिति का प्रतिवेदन
123. नियम 149
124. नियम 147(2)
125. नियम 147(3)
126. नियम 148
127. याचिका समिति का पहला, दूसरा, तीसरा और 17वां प्रतिवेदन
128. याचिका समिति का 5वां प्रतिवेदन
129. प्रारूप प्रक्रिया नियमों संबंधी समिति का प्रतिवेदन
130. नियम 151(1)
131. नियम 152(2)
132. याचिका समिति का 5वां प्रतिवेदन (19.4.1955)
133. याचिका समिति का 7वां प्रतिवेदन (4.5.1956)
134. याचिका समिति का 8वां प्रतिवेदन (9.5.1956)
135. राज्य सभा के सभापति का निर्देश, 20.1.1999, संसदीय समाचार (2), 28.1.1999 में प्रकाशित किया गया।
136. याचिका समिति, राज्य सभा सचिवालय से संबंधित नियमों तथा निर्देशों संबंधी पॉम्फलेट (जून, 1996), प्रस्तावना, पृष्ठ 3
137. -वही- प्रस्तावना, पृष्ठ 15-17
138. नियम 153
139. नियम 152(1)
140. याचिका समिति का 10वां प्रतिवेदन (24.8.1956)
141. याचिका समिति का 11वां प्रतिवेदन (25.8.1956)
142. याचिका समिति का 14वां प्रतिवेदन (30.4.1963)
143. नियम 152(2)
144. याचिका समिति का 7वां प्रतिवेदन (4.5.1956) और 8वां प्रतिवेदन (9.5.1956)
145. संसदीय समाचार (2), 2.11.2011
146. फा. सं. 5(12)/91-समिति-II; फा. सं. 5(37)/94-समिति-II और 5(45क)/91-समिति-II
147. नियम 192(1)
148. नियम 193(1)
149. नियम 193(2)

150. नियम 193(3)
151. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 28.5.1952, कालम 588
152. -वही- 16.5.1953, कालम 6119; 15.5.1954, कालम 6538 और राज्य सभा वाद-विवाद, 4.5.1955, कालम 6784
153. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.5.1957, कालम 1103
154. -वही- 22.4.1958, कालम 49
155. -वही- 19.5.1969, कालम 3720
156. नियम 192(3)
157. नियम 192(2)
158. नियम 194
159. नियम 191
160. नियम 203
161. नियम 195(1)
162. विशेषाधिकार समिति का 19वां प्रतिवेदन
163. नियम 195(2)
164. लोक सभा और राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति की संयुक्त बैठक संबंधी प्रतिवेदन (1954)
165. विशेषाधिकार समिति का 25वां प्रतिवेदन (पैरा 4)
166. विशेषाधिकार समिति का 27वां प्रतिवेदन (पैरा 3)
167. विशेषाधिकार समिति का 33वां प्रतिवेदन
168. विशेषाधिकार समिति का 26वां प्रतिवेदन (पैरा 2)
169. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.5.1979, कालम 142-143 और फा. सं. 35/27/78-एल.
170. राज्य सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 का नियम 2(ख) और 7(4)
171. नियम 196(1)
172. -वही- पहला परन्तुक
173. -वही- दूसरा परन्तुक
174. नियम 196(2)
175. नियम 196(3)
176. नियम 197(1)
177. उदाहरणार्थ, देखिए विशेषाधिकार समिति का 29वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 9
178. याचिका समिति का दूसरा प्रतिवेदन, पृष्ठ 4
179. विशेषाधिकार समिति का 12वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 15
180. विशेषाधिकार समिति का 27वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 10
181. विशेषाधिकार समिति का तीसरा, 15वां, 18वां और 12वां प्रतिवेदन
182. विशेषाधिकार समिति का 30वां प्रतिवेदन (पृष्ठ 5) और विशेषाधिकार समिति का 34वां प्रतिवेदन (पैरा 7)
183. विशेषाधिकार समिति का 16वां प्रतिवेदन
184. विशेषाधिकार समिति का 23वां, 24वां, 26वां, 28वां, 31वां और 35वां प्रतिवेदन
185. विशेषाधिकार समिति का पहला, दूसरा और तीसरा प्रतिवेदन
186. विशेषाधिकार समिति का 8वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 10
187. विशेषाधिकार समिति का 19वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 16-17
188. विशेषाधिकार समिति का 27वां प्रतिवेदन, परिशिष्ट-II
189. विशेषाधिकार समिति का 25वां प्रतिवेदन, परिशिष्ट-IV
190. राज्य सभा सदस्य (दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 का नियम 7(7)
191. नियम 197(1)

192. विशेषाधिकार समिति का 11वां प्रतिवेदन
193. विशेषाधिकार समिति का 13वां प्रतिवेदन, परिशिष्ट-IV
194. विशेषाधिकार समिति का 14वां प्रतिवेदन, परिशिष्ट-III
195. नियम 197(1), पहला परन्तुक
196. -वही- दूसरा परन्तुक
197. विशेषाधिकार समिति का 5वां प्रतिवेदन
198. विशेषाधिकार समिति का 8वां प्रतिवेदन
199. विशेषाधिकार समिति का 11वां प्रतिवेदन
200. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.12.1970, कालम 123-26
201. -वही- 7.4.1971, कालम 84-85
202. विशेषाधिकार समिति का 13वां प्रतिवेदन
203. नियम 197(3)
204. नियम 197(3), परन्तुक
205. विशेषाधिकार समिति का 11वां, 21वां, 25वां, 28वां से 32वां, और 34वां से 36वां प्रतिवेदन
206. विशेषाधिकार समिति का 8वां प्रतिवेदन, पैरा 6
207. विशेषाधिकार समिति का 16वां प्रतिवेदन, पैरा 7
208. विशेषाधिकार समिति का 19वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 8-11
209. नियम 198
210. नियम 199
211. नियम 200
212. -वही- परन्तुक
213. नियम 201
214. विशेषाधिकार समिति का पहला प्रतिवेदन, 2.5.1958 को स्वीकृत किया गया
215. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.12.1954, कालम 866-67
216. -वही- 20.12.1968, कालम 5032-75
217. डाइजेस्ट, पृष्ठ 218-19
218. -वही- पृष्ठ 421-25
219. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.3.1993, कालम 300-09
220. विशेषाधिकार समिति का चौथा प्रतिवेदन (आर्गेनाइजर केस), डाइजेस्ट, पृष्ठ 598-99; याचिका समिति का तीसरा प्रतिवेदन (थॉट केस), डाइजेस्ट, पृष्ठ 416; विशेषाधिकार समिति का छठा प्रतिवेदन (आईना केस), डाइजेस्ट, पृष्ठ 601-02, विशेषाधिकार समिति का 7वां प्रतिवेदन (राम गोपाल गुप्ता केस), डाइजेस्ट, पृष्ठ 604; विशेषाधिकार समिति का 8वां प्रतिवेदन (ठाकरे केस), डाइजेस्ट, पृष्ठ 600
221. विशेषाधिकार समिति का 11वां, 14वां और 32वां प्रतिवेदन
222. विशेषाधिकार समिति का छठा, 17वां और 26वां प्रतिवेदन
223. विशेषाधिकार समिति का 22वां, 24वां और 25वां प्रतिवेदन
224. विशेषाधिकार समिति का 9वां, 18वां, 28वां, 29वां, 31वां और 35वां प्रतिवेदन
225. विशेषाधिकार समिति का दूसरा और 7वां प्रतिवेदन
226. विशेषाधिकार समिति का तीसरा प्रतिवेदन
227. विशेषाधिकार समिति का 15वां प्रतिवेदन
228. विशेषाधिकार समिति का 27वां प्रतिवेदन
229. विशेषाधिकार समिति का 10वां और 22वां प्रतिवेदन
230. नियम 202
231. विशेषाधिकार समिति, 23वां प्रतिवेदन, पैरा 3

232. विशेषाधिकार समिति, 27वां प्रतिवेदन, पैरा 3
233. फा. सं. 46/89-टी (खंड IV)
234. पहला प्रतिवेदन आचार समिति (8.12.1998 को प्रस्तुत, 15.12.1999 को स्वीकृत)
235. संसदीय समाचार (2), 5.3.1997 आचार समिति से संबंधित नियम 20.7.2004 से प्रभावी हुए।
236. नियम 287
237. नियम 288
238. नियम 289
239. नियम 290
240. नियम 303
241. नियम 293
242. आचार समिति का चौथा प्रतिवेदन
243. नियम 295
244. नियम 296
245. नियम 297
246. नियम 298
247. नियम 299
248. नियम 300
249. नियम 301
250. नियम 302
251. संसदीय समाचार (2), 23.12.2005
252. आचार समिति का 8वां प्रतिवेदन (24.2.2006 को प्रस्तुत), पृष्ठ 20
253. -वही- पृष्ठ 29
254. संसदीय समाचार (2), 21.3.2006
255. नियम 204
256. संसदीय समाचार (2), 30.9.1964
257. नियम 205(1)
258. नियम 205(2)
259. नियम 203(2)
260. नियम 206(2)
261. नियम 206(1), परंतुक
262. नियम 262(2)
263. नियम 206(3)
264. नियम 207(1)
265. नियम 207(2)
266. नियम 208(1)
267. -वही- परंतुक
268. नियम 208(2)
269. नियम 208(3)
270. नियम 209
271. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 14वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 5
272. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 22वां प्रतिवेदन, पैरा 17
273. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 17वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 15-16
274. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 13वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 11; 102वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 9; 23वां प्रतिवेदन, पैरा 9 और 29वां प्रतिवेदन, पैरा 17

275. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 8वां प्रतिवेदन, पैरा 7
276. -वही- चौदहवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 32
277. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 15वां प्रतिवेदन, पैरा 101, 16वां प्रतिवेदन, पैरा 32; 22वां प्रतिवेदन, पैरा 49-50, 26वां प्रतिवेदन, पैरा 20-22 और 39वां प्रतिवेदन, पैरा 56-72 भी देखिए
278. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 212वां प्रतिवेदन, पैरा 52
279. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 15वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 4
280. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 10वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 1-5
281. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 15वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 28
282. उदाहरणार्थ, देखिए, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 10वां, 14वां, 23वां, 39वां, 41वां, 44वां, 57वां, 59वां, 72वां और 73वां प्रतिवेदन
283. उदाहरणार्थ, देखिए, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का पहला, दूसरा और चौथा प्रतिवेदन
284. उदाहरणार्थ, देखिए, अधीनस्थ विधान संबंधी का 19वां और 102वां प्रतिवेदन
285. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 192वां प्रतिवेदन, पैरा 2 (xiv)
286. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 212वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 15
287. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 189वां प्रतिवेदन, पैरा 2 (vi)
288. -वही- 189वां प्रतिवेदन पैरा 2 (xii)
289. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति की 24वीं बैठक का कार्यवृत्त, 201वां प्रतिवेदन
290. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 212वां प्रतिवेदन, पैरा 62
291. -वही- 212वां प्रतिवेदन, पैरा 66
292. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 14वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 14, 39; और 19वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 9
293. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 15वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 9 और 16वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 4
294. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का का 19वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 7; 20वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 8-9; 96वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 13 और 27वां प्रतिवेदन, पैरा 10
295. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 19वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 11
296. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 18वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 3, और 19वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 28
297. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 15वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 23
298. उदाहरणार्थ, देखिए अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 20वां, 26वां और 27वां प्रतिवेदन
299. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 212वां प्रतिवेदन, पैरा 31-33
300. -वही- पैरा 21
301. -वही- पैरा 58
302. -वही- पैरा 70(v)
303. -वही- पैरा 70(i)
304. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का पहला प्रतिवेदन, पृष्ठ 1
305. -वही- संसदीय समाचार (2), 10.4.1984 भी देखें
306. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 5वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 2
307. -वही- पृष्ठ 3-6
308. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 41वां प्रतिवेदन, पैरा 5-11
309. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 97वां प्रतिवेदन
310. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 109वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 9-11
311. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 41वां प्रतिवेदन, पैरा 11
312. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 64वां प्रतिवेदन, पैरा 2 से 2.18
313. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का पहला प्रतिवेदन, पृष्ठ 6-7
314. उदाहरणार्थ, केरल राज्य विधान-मंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1965, धारा 3

315. नियम 212
316. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का पहला प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, 28.11.1964
317. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 101वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 16-24; 104वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 26-27 और 106वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 5; 81 से 83वां प्रतिवेदन, 87वां प्रतिवेदन और 45वां प्रतिवेदन भी देखिए
318. अधीनस्थ विधान सम्बन्धी समिति का 50वां प्रतिवेदन
319. फा. सं. 5(9)/99-समिति-I
320. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 10वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 1-5 और 21वां प्रतिवेदन, पैरा 12-15
321. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 16वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 1 और 19वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 2-4
322. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 107वां प्रतिवेदन, परिशिष्ट I-IV और 108वां प्रतिवेदन, परिशिष्ट-I और II
323. नियम 210(1)
324. नियम 210(2)
325. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति की बैठक का कार्यवृत्त, 11.12.2000
326. नियम 211
327. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 13वां प्रतिवेदन, पैरा 31 और 32
328. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 9वां प्रतिवेदन, पैरा 48; 60वां प्रतिवेदन, पैरा 7.1 और 102वां प्रतिवेदन, पैरा 201
329. उदाहरणार्थ देखिए, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 9वां, 26-28वां, 30वां, 39वां, 45-47वां और 49वां प्रतिवेदन
330. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का छठा प्रतिवेदन, पैरा 8
331. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का पहला प्रतिवेदन, पैरा 22-23
332. -वही- पैरा 30-32
333. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 39वां प्रतिवेदन, गृह मंत्रालय का परिपत्र, दिनांक 24.01.1980
334. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 131वां प्रतिवेदन, पैरा 7
335. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का छठा प्रतिवेदन, पैरा 19
336. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 10वां प्रतिवेदन, पैरा 57; पृष्ठभूमि के लिए देखिए अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का पांचवां प्रतिवेदन, पैरा 20-25 और 9वां प्रतिवेदन, पैरा 34-39
337. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 82वां प्रतिवेदन पैरा 4.31
338. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 15वां प्रतिवेदन, पैरा 101
339. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 81वां प्रतिवेदन, पैरा 4.12
340. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 86वां प्रतिवेदन, पैरा 2.21
341. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 201वां प्रतिवेदन, पैरा 3
342. -वही-
343. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 5वां प्रतिवेदन, पैरा 24 और 25
344. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति की 24वीं बैठक का कार्यवृत्त, 201वां प्रतिवेदन
345. अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का 10वां प्रतिवेदन, पैरा 57-58
346. फा. सं. आर.एस. 15(i)/2011-अधीनस्थ विधान संबंधी समिति
347. फा. सं. आर.एस. 15(i)/2010-अधीनस्थ विधान संबंधी समिति
348. फा. सं. आर.एस. 15(3)/2011-12-अधीनस्थ विधान संबंधी समिति
349. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.8.1952, कालम 2947
350. नियम समिति का पहला प्रतिवेदन, पृष्ठ 2
351. नियम 212ख(1)
352. नियम 212ख(2)

353. नियम 212ख(3)
354. नियम 212घ(1)
355. नियम 212ग(1)
356. -वही-, परन्तुक
357. नियम 212ग(2)
358. नियम 212ग(3)
359. नियम 212घ(2)
360. नियम 212क
361. नियम 212ङ(1)
362. -वही-, परंतुक
363. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का 41वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 10
364. नियम 212ङ(2)
365. नियम 212ङ(3)
366. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का पहला प्रतिवेदन, परिशिष्ट-I
367. नियम 212(ण)
368. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.03.1981, कालम 205-08
369. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का पहला प्रतिवेदन, पैरा 6 और दूसरा प्रतिवेदन, पैरा 3.1
370. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का 31वां प्रतिवेदन, पैरा 7
371. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का 52वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 4
372. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का 26वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 9
373. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का 67वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 2
374. -वही-
375. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का पैरा 11
376. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का 25वां प्रतिवेदन, पैरा 10 और 31वां प्रतिवेदन, पैरा 6
377. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का 40वां प्रतिवेदन, पैरा 4
378. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का चौथा प्रतिवेदन, पैरा 4 और 5वां प्रतिवेदन, पैरा 4.11
379. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का 52वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 10
380. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का 27वां प्रतिवेदन, पृष्ठ 2-3 (15.3.1985 को प्रस्तुत किया गया)
381. नियम समिति की दिनांक 27.1.1986 और 23.8.1989 की बैठकों का कार्यवृत्त
382. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का पहला प्रतिवेदन, परिशिष्ट-IV
383. नियम समिति का दूसरा प्रतिवेदन, पृष्ठ 3
384. -वही- कार्यवृत्त, 13.9.1978, पृष्ठ 23
385. -वही- कार्यवृत्त, 24.1.1979, पृष्ठ 25
386. 31.3.1980 और 11.12.1980 की कार्यावलि
387. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.4.1981, कालम 192
388. संसदीय समाचार (2), 15.1.1982
389. -वही- 3.3.1982
390. नियम 212ज(1)
391. नियम 212झ(1)
392. नियम 212झ(2)
393. नियम 212झ(3)
394. नियम 212ट(1)
395. नियम 212ञ(1)
396. -वही-, परन्तुक

397. नियम 212ञ(2)
398. नियम 212ञ(3)
399. नियम 212ट(2)
400. नियम 212ज(2)
401. नियम 212ज(3)
402. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.3.1998, कालम 254-57
403. सभापटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति का 54वां प्रतिवेदन (11.3.1996 को प्रस्तुत किया गया)
404. नियम 212ठ(1)
405. -वही-, परन्तुक
406. नियम 212ठ(2)
407. नियम 212ठ(3)
408. नियम 212ढ
409. नियम 212ड
410. नियम 212(ण)
411. सभापटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति का पहला प्रतिवेदन, पैरा 26
412. -वही- पैरा 27
413. -वही- पैरा 28
414. -वही- पैरा 32
415. -वही- पैरा 33
416. -वही- पैरा 34
417. -वही- पैरा 35
418. सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति का कार्यवृत्त, 15.02.1984
419. सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति का 22वां प्रतिवेदन, पैरा 3
420. सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति का 21वां प्रतिवेदन, पैरा 3.17
421. सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति का 51वां प्रतिवेदन, पैरा 5.30
422. नियम समिति का चौथा प्रतिवेदन, पृष्ठ 2
423. नियम 212त
424. नियम 212थ(1)
425. नियम 212थ(2)
426. नियम 212थ(1)
427. नियम 212घ(1)
428. नियम 212द(1)
429. नियम 212द(2)
430. नियम 212द(3)
431. नियम 212ध(2)
432. नियम 212प
433. नियम 212न(1)
434. -वही-, परन्तुक
435. नियम 212न(2)
436. नियम 212न(3)
437. नियम 212ब
438. आवास समिति का प्रतिवेदन, पृष्ठ 1
439. नियम 212V

440. आवास समिति का पहला प्रतिवेदन (7.8.1986 को प्रस्तुत किया गया); दूसरा प्रतिवेदन (29.12.1993 को प्रस्तुत किया गया); तीसरा प्रतिवेदन (22.12.1995 को प्रस्तुत किया गया); चौथा प्रतिवेदन (14.3.1997 को प्रस्तुत किया गया); पांचवां प्रतिवेदन (7.3.2000 को प्रस्तुत किया गया); छठा प्रतिवेदन (9.8.2001 को प्रस्तुत किया गया); सातवां प्रतिवेदन (7.3.2002 को प्रस्तुत किया गया); आठवां प्रतिवेदन (12.8.2002 को प्रस्तुत किया गया); नौवां प्रतिवेदन (18.8.2003 को प्रस्तुत किया गया); दसवां प्रतिवेदन (18.8.2003 को प्रस्तुत किया गया); और 11वां प्रतिवेदन (18.12.2003 को प्रस्तुत किया गया)
441. अनुच्छेद 118(1)
442. अनुच्छेद 118(2)
443. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 16.5.1952, कालम 44-45; अधिसूचना सं.-II सी.एस./52, 16.5.1952; और भारत का राजपत्र, भाग-I, खण्ड-1, पृष्ठ 1347-49
444. अधिसूचना सं. सी.एस./3/52-एल., 11.7.1952; भारत का राजपत्र, भाग-I, खण्ड-1, पृष्ठ 1761-62
445. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 4.8.1952, कालम 2888-89, और अधिसूचना सं. सी.एस./3/62-एल.; भारत का राजपत्र, भाग-I, खण्ड-1, पृष्ठ 1849
446. अधिसूचना सं. सी.एस./3/52-एल., 12.9.1952; और भारत का राजपत्र, भाग-I, खण्ड-1, पृष्ठ 436
447. अधिसूचना सं. आर.एस./3/53-एल., 23.1.1953 (संदर्भ संसदीय समाचार (2), 12.2.1953) और भारत का राजपत्र, भाग-I, खण्ड-1, पृष्ठ 36
448. फा. सं. सी.एस./3/1/54-एल.
449. प्रारूप प्रक्रिया नियमों संबंधी समिति का प्रतिवेदन, पैरा 1, परिशिष्ट-II
450. अधिसूचना सं. आर.एस.13/1/63-एल (2), 1.7.1964; भारत का राजपत्र (असाधारण), भाग-I, का खण्ड-1 में प्रकाशित और संसदीय समाचार (2), 1.7.1964
451. नियम 217(1)
452. नियम 217(2)
453. नियम 217(3)
454. नियम 217(4)
455. नियम 217(5)
456. नियम 217(6)
457. नियम 218(1)
458. नियम 218(2)
459. नियम 216
460. नियम समिति का दूसरा प्रतिवेदन, पृष्ठ 1
461. नियम समिति का पहला, दूसरा, तीसरा और चौथा प्रतिवेदन (सभी का पैरा 1)
462. नियम समिति का छठा प्रतिवेदन, पैरा 2
463. नियम 219
464. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.2.1995, कालम 436
465. नियम 220(1)
466. नियम 220(2)
467. नियम 220(3)
468. नियम 220(4)
469. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.11.1973, कालम 153-54
470. संसदीय समाचार (2), 1.7.1972
471. -वही- 15.1.1982
472. -वही- 1.7.1986
473. -वही- 30.3.1993

474. संसदीय समाचार (2), 12.6.1995
475. -वही- 15.12.2006
476. -वही- 3.2.2010
477. -वही- 26.11.2014
478. सामान्य प्रयोजन समिति का कार्यवृत्त, 7.3.1989
479. -वही- 1.9.1972
480. -वही-
481. -वही- 24.8.1973
482. सामान्य प्रयोजन समिति का कार्यवृत्त, 8.51974
483. -वही-
484. -वही- 21.3.1975
485. -वही- 12.8.1985, 26.8.1985, 29.8.1985 और 12.12.1985
486. -वही- 17.8.1992 और 23.2.1993
487. -वही- 17.3.1994
488. -वही- 18.3.1994
489. -वही- 28.7.1971
490. -वही- 2.9.1976
491. -वही- 5.5.1988 और 11.8.1988
492. -वही- 23.11.1992
493. सभापति द्वारा 200वें सत्र के समारोह की तैयारियों के समन्वय एवं निगरानी के लिए 18.10.2003 को सामान्य प्रयोजन समिति की एक उप-समिति गठित की गई थी
494. सामान्य प्रयोजन समिति का कार्यवृत्त, 1.9.1972
495. -वही- 21.3.1975
496. -वही-
497. -वही- 22.12.1978
498. -वही- 24.2.1981
499. -वही- 26.8.1981 और 5.5.1982
500. -वही- 5.5.1982
501. -वही-
502. -वही- 7.3.1989
503. -वही- 23.1.1985
504. -वही- 24.7.1985 और संसदीय समाचार (2), 25.7.1985
505. -वही-
506. -वही- 30.4.1986
507. -वही- 11.8.1989
508. -वही-
509. -वही-
510. -वही- 7.3.1989 और 11.8.1989
511. -वही- 7.3.1989
512. -वही- 7.3.1989 और 11.8.1989
513. -वही- 7.3.1989; 14.2.1995 और 4.5.1995
514. -वही- 26.11.1991
515. -वही- 14.2.1995

516. सामान्य प्रयोजन समिति का कार्यवृत्त, 9.12.1998
517. -वही- 28.7.1999
518. -वही- 1.9.1972
519. -वही- 2.9.1976 और 2.5.1977
520. -वही- 23.1.1985
521. -वही- 5.5.1988
522. -वही- 23.2.1993
523. -वही-
524. संसदीय समाचार (2), 9.3.1999
525. -वही- 6.12.2000
526. सामान्य प्रयोजन समिति का कार्यवृत्त, 4.3.2008
527. संसदीय समाचार (2), 12.12.2008
528. सामान्य प्रयोजन समिति का कार्यवृत्त, 18.12.2008
529. नियम 70, 71
530. नियम 72(1)
531. नियम 72(2)
532. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.8.1993, कालम 304-12
533. -वही- 5.8.1993, कालम 289-92
534. देखिए, अध्याय-6
535. नियम 87
536. लोक सभा संसदीय समाचार (2), 27.12.1992, 1.1.2016 और राज्य सभा संसदीय समाचार 1.1.2016
537. नियम 72(3)
538. नियम 73(1)
539. नियम 73(2)
540. नियम 73(3)
541. नियम 77
542. नियम 74(1)
543. नियम 74(2)
544. नियम 74(3)
545. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.7.1989, कालम 307
546. नियम 75
547. नियम 76
548. -वही-, परन्तुक
549. नियम 78
550. संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, पैरा 8
551. -वही- पैरा 7
552. -वही- पैरा 10
553. -वही- पैरा 9
554. -वही- पैरा 8
555. नियम 79
556. -वही-, परन्तुक
557. नियम 80
558. नियम 81

559. नियम 81, परन्तुक; दौरों के संबंध में, संसदीय समाचार (2), 16.4.1987 भी देखिये, जिसमें सभापति का निर्देश दिया गया है
560. उदाहरणार्थ, भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1972 संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन और 24.3.1975 का कार्यवृत्त; खाद्य अपमिश्रण निवारण (संशोधन) विधेयक, 1974 संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन और 29.4.1975 का कार्यवृत्त
561. उदाहरणार्थ, बागान श्रमिक (संशोधन) विधेयक, 1973 सम्बन्धी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन और 7.10.1974 का कार्यवृत्त
562. प्रवर समिति का प्रतिवेदन, पैरा 4
563. संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, पैरा 9, और कार्यवृत्त, 21.11.1974
564. प्रवर समिति का प्रतिवेदन, परिशिष्ट-II
565. संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, कार्यवृत्त, 25.10.1969
566. -वही- 27.9.1974
567. -वही- 5.11.1974
568. -वही- 12.10.1972
569. -वही- 22.9.1972
570. नियम 84(1)
571. -वही-, पहला परंतुक
572. संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, कार्यवृत्त, 17.9.1968 (पृष्ठ 79-80)
573. नियम 84(1), दूसरा परन्तुक
574. नियम 84(2)
575. नियम 84(3)
576. दि सैकेंड चैम्बर नामक पुस्तक में बी.जी. गुजर द्वारा लिखित आलेख "इम्पैक्ट ऑफ कमेटीज़ ऑन लैजिस्लेटिव प्रोसैस इन दि राज्य सभा", पृष्ठ 389
577. संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, कार्यवृत्त, 14.9.1971 और 15.9.1971
578. संयुक्त समिति साक्ष्य, खंड 1, पृष्ठ 46
579. नियम 84(4)
580. नियम 85(1)
581. नियम 85(2) और (3)
582. नियम 85(4)
583. नियम 85(5)
584. नियम 86(1)
585. नियम 86(2)
586. संयुक्त समिति के प्रतिवेदन का कार्यवृत्त, 20.2.1975
587. -वही- 26.9.1975
588. -वही- 17.9.1975
589. -वही- पैरा 23
590. -वही- 30.10.1972
591. -वही- 10.11.1972
592. -वही-
593. मानसिक स्वास्थ्य विधेयक, 1981 संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, पैरा 15; जल प्रदूषण (निवारण) विधेयक, 1969 संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, पैरा 8
594. नियम 86(3)
595. -वही-, परन्तुक

596. नियम 82(2)
597. देखिए, अध्याय-21
598. नियम 83
599. नियम 87(1)
600. नियम 87(2)
601. नियम 88
602. संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, कार्यवृत्त, 30.10.1974; 1.11.1974 और 2.11.1974
603. -वही- 7.2.1975; 10.2.1975 और 11.2.1975
604. -वही- 4.10.1975; 6.10.1975; 21.10.1975 और 22.10.1975
605. -वही- पैरा 12
606. -वही- पृष्ठ (viii)
607. -वही- 7.2.1975
608. -वही- पृष्ठ 2-3
609. -वही- पैरा 13
610. नियम 89
611. नियम 90(1)
612. -वही-, पहला परन्तुक
613. -वही-, दूसरा परन्तुक
614. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.8.1954, कालम 721-24
615. -वही- 22.9.1954, कालम 2989-91
616. -वही- 24.9.1954, कालम 3241-53
617. -वही- 11.12.1974, कालम 127
618. संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, पैरा 14
619. -वही- पैरा 12
620. नियम 90(4)
621. नियम 90(5)
622. नियम 90(6)
623. नियम 90[(7)(i)]
624. नियम 91(1)
625. सभापति का निर्देश, संसदीय समाचार (2), 25.1.1996
626. नियम 91(2)
627. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.11.1969, कालम 168-69
628. -वही- 6.8.1982, कालम 181-86
629. नियम 92
630. सभापति का निर्देश, पूर्वोक्त में
631. लोक सभा की नियम समिति का दूसरा और चौथा प्रतिवेदन (आठवीं लोक सभा), जुलाई, 1989
632. संसदीय समाचार (1), 19.7.1989 और 4.8.1989
633. नियम समिति का 5वां प्रतिवेदन (19.8.1992 को प्रस्तुत किया गया)
634. सामान्य प्रयोजन समिति का कार्यवृत्त 23.2.1993
635. नियम समिति का छठा प्रतिवेदन (24.3.1993 को प्रस्तुत किया गया)
636. वी.एस. रमा देवी द्वारा लिखित पुस्तक "डिपार्टमेंट रिलेटिड पार्लियामेंटरी स्टैंडिंग कमेटीज़ (राज्य सभा)—एन ओवर व्यू" नई दिल्ली, राज्य सभा सचिवालय, 1995
637. प्रक्रिया विषयक नियमों की तीसरी अनुसूची

638. नियम 268, परन्तुक
639. नियम 269(1); संसदीय समाचार (2), 20.7.2004
640. फा. सं. 52/1/94-एल
641. नियम 269(2)
642. नियम 269(3)
643. नियम 270(क)
644. नियम 272
645. संसदीय समाचार (1), 18.3.2006, 27.7.2009, 14.3.2011 और 24.7.2014
646. नियम 270(ख)
647. नियम 273(क)
648. विवरण के लिए देखिए, अध्याय 21
649. उदाहरणार्थ, संसदीय समाचार (2), 9.6.1995 और 13.9.1995
650. नियम 273(ख)
651. संसदीय समाचार (2), 18.5.1995
652. -वही- 30.5.1995
653. -वही- 10.6.1998
654. फा. सं. 6(1)/98-सी.एस. (एच.ए.), सभापति द्वारा 10.12.1998 को समयावधि बढ़ायी गई
655. संसदीय समाचार (2), 7.12.1998
656. फा. सं. 6(6)/1998-सी.एस. (एच.ए.), सभापति द्वारा 10.12.1998 को समयावधि बढ़ायी गई
657. संसदीय समाचार (2), 10.12.1998
658. फा. सं. 6(7)/1998-सी.एस. (एच.ए.), सभापति द्वारा 22.12.1998 को समयावधि बढ़ायी गई
659. नियम 270(ग)
660. संसदीय समाचार (2), 17.12.1993
661. नियम 270(घ)
662. फाइल सं. 12.1.93-एस. एण्ड टी.
663. नियम 270, परन्तुक
664. नियम 276
665. विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पर्यावरण और वन संबंधी समिति का कार्यवृत्त, 7.12.1995; 7.3.1996 और फा. सं. 12/5/95-एस. एण्ड टी.
666. नियम 274(1)
667. नियम 274(2)
668. नियम 274(3); उद्योग संबंधी समिति के एक प्रतिवेदन के साथ संलग्न न किये गये विसम्मति टिप्पण से संबंधित विवाद के बारे में राज्य सभा वाद-विवाद, 29.8.1996 और 30.8.1996 को भी देखिए
669. संसदीय समाचार (2), 25.1.1996
670. -वही- 30.1.1996 और फा. सं. 2/4/94-टी. एण्ड टी.
671. संसदीय समाचार (1), 28.2.1996
672. संसदीय समाचार (2), 27.3.1996; संसदीय समाचार (1), 29.8.1996
673. फा. सं. 3(1)/1/95-सी.एस. (एच.ए.); 3(2)/1/95-सी.एस. (एच.ए.) और 3(3)/1/95-सी.एस. (एच.ए.); संसदीय समाचार (1), 27.8.1996
674. वर्ष 1996 के पश्चात् उद्योग संबंधी समिति ने 16 प्रतिवेदन, परिवहन, पर्यटन और संस्कृति संबंधी समिति ने 12 प्रतिवेदन, गृह कार्य संबंधी समिति ने 13 प्रतिवेदन, वाणिज्य संबंधी समिति ने 5 प्रतिवेदन, विज्ञान और प्रौद्योगिकी संबंधी समिति ने 8 प्रतिवेदन, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण संबंधी समिति ने 3 प्रतिवेदन, कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय संबंधी समिति ने 3 प्रतिवेदन और मानव संसाधन विकास संबंधी समिति ने 9 प्रतिवेदन सत्र के नहीं चलने के दौरान राज्य सभा के सभापति को प्रस्तुत किए

675. नियम 277
676. परिवहन और पर्यटन संबंधी समिति का कार्यवृत्त, 14.7.1994
677. फा. सं. आर.एस. 9/2/2010-समिति अनुभाग (एस. एंड टी.)
678. नियम 275
679. संसदीय समाचार (2), 8.12.2000
680. लोक सभा नियम 309
681. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.03.1968, कालम 6492-97
682. उदाहरणार्थ, संसदीय समाचार (1), 15.3.1995
683. -वही- 28.3.1995
684. उदाहरणार्थ, संसदीय समाचार (2), 28.3.1995
685. -वही- 28.4.1995
686. लोक सभा नियम 308; समिति के विस्तृत कार्यकरण के लिए देखिए "कौल और शकधर", पृष्ठ 854
687. संसदीय समाचार (2), 11.8.1996
688. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.8.1996, कालम 4361-504
689. संसदीय समाचार (1), 11.8.1966
690. -वही- 21.12.1954
691. -वही- 19.5.1966
692. लोक सभा नियम 312ख (1)
693. संसदीय समाचार (1), 15.3.1995
694. राज्य सभा वाद-विवाद, 26.3.1968, पूर्वोक्त
695. लोक सभा नियम 312क. समिति के विस्तृत कार्यकरण के लिए देखिए 'कौल और शकधर', पृष्ठ 884
696. संसदीय समाचार (1), 24.9.1965
697. उदाहरण के लिए देखें, लोक सभा संसदीय समाचार (1), 16.9.1991, राज्य सभा संसदीय समाचार (1), 17.9.1991 और फा. सं. 5/1/91-एल
698. पहली बार, वित्त मंत्री रेलवे अभिसमय समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्देशित नहीं किए गए (1989) लेकिन 10 नवंबर, 1990 को नई सरकार बनने के बाद नए रेल मंत्री को सदस्य के रूप में नामनिर्देशित नहीं किया गया और पूर्व रेल मंत्री समिति के सदस्य बने रहे। रेलवे अभिसमय समिति (1991) के गठन पर रेल मंत्री और वित्त मंत्री दोनों को समिति का सदस्य नामनिर्देशित नहीं किया गया। लेकिन बाद में हुई रिक्तियों हेतु रेल मंत्री और वित्त मंत्री दोनों को नामनिर्देशित कर लिया गया। रेलवे अभिसमय समिति (1996) में केवल रेल मंत्री को नाम निर्देशित किया गया। रेलवे अभिसमय समितियों (1998), (1999), (2004) और (2009) में दोनों मंत्रियों में से किसी को भी सदस्य के रूप में नामनिर्देशित नहीं किया गया
699. उदाहरणार्थ, समिति का 12वां प्रतिवेदन (जो अंतिम था) 10वीं लोक सभा के 15.5.1996 को भंग होने से पूर्व 12.3.1996 को प्रस्तुत किया गया
700. संसदीय समाचार (1), 3.5.1995 और 9.5.1995
701. -वही- 8.5.1959
702. लोक सभा नियम 331ख(1)
703. -वही- 331क. समिति के विस्तृत कार्यकरण के लिए देखें "कौल और शकधर", पृष्ठ. 918
704. संसदीय समाचार (2), 21.12.2011
705. समिति के विस्तृत कार्यकरण के लिए देखिए, "कौल और शकधर", पृष्ठ 917
706. लोक सभा नियम 331(क)
707. संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 9(1)
708. -वही- धारा 9(2क)
709. -वही- धारा 9(2), उदाहरणार्थ, देखिए, संसदीय समाचार (2), 26.2.1996
710. -वही-
711. -वही- धारा 9(3)

712. संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 9(4)
713. संसदीय समाचार (1), 24.7.1975
714. राजभाषा अधिनियम, 1963, धारा 4
715. संसदीय समाचार (2), 29.1.1976
716. न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968, धारा 7; संसदीय समाचार (2), 26.3.1969
717. उदाहरणार्थ, संसदीय समाचार (2), 9.2.1996, उत्तर प्रदेश के संबंध में
718. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.9.1976, कालम 8-38
719. -वही- 2.8.1995; 9.8.1995; संसदीय समाचार (2), 6.8.1996 और फा. सं. 44/3/96-एल
720. लोक सभा वाद-विवाद, 11.5.1956, कालम 7986-93 और राज्य सभा वाद-विवाद, 14.5.1956, कालम 2023-28
721. संसदीय समाचार (1), 3.9.1957 और 11.9.1957
722. लोक सभा वाद-विवाद, 22.6.1971, कालम 176-82 और राज्य सभा वाद-विवाद, 25.6.1971, कालम 262-63
723. -वही- 19.12.1980, कालम 359-61; और राज्य सभा वाद-विवाद, 24.12.1980, कालम 279-80
724. -वही- 6.8.1987, कालम 484-569; और राज्य सभा वाद-विवाद, 12.8.1987, कालम 287-401
725. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.5.1988, कालम 372
726. लोक सभा संसदीय समाचार (1), 6.8.1992; और संसदीय समाचार (1), 7.8.1992
727. संसदीय समाचार (1), 26.4.2001; और संसदीय समाचार (2), 27.4.2001
728. संसदीय समाचार (2), 11.3.2011
729. संसदीय समाचार (1) 27.02.2013; और लोक सभा संसदीय समाचार (1), 4.3.2013
730. संसदीय समाचार (2), 27.4.1956
731. लोक सभा संसदीय समाचार (2), 7.5.1956
732. संसदीय समाचार (2), क्रमशः 7.9.1960; 20.9.1966 और 18.12.1973
733. कौल और शकधर, पृष्ठ 658, पाद-टिप्पण 34
734. संसदीय समाचार (2), 7.9.1973
735. संसदीय समाचार (1), 8.12.1983
736. संसदीय समाचार (2), 17.12.1993
737. -वही- 15.10.2009
738. -वही- 22.2.1993
739. -वही- 8.6.1993
740. संसदीय समाचार (1), 23.12.1993
741. कौल और शकधर, पृष्ठ 770, पाद-टिप्पण 9
742. संसदीय समाचार (1), 18.3.1966
743. -वही- 20.11.1991
744. -वही- 17.8.1973; 21.7.1986 और 20.10.1997
745. संसदीय समाचार (2), 7.10.1996
746. संसदीय समाचार (1), 22.8.2003
747. संसदीय समाचार (2), 15.12.2009
748. विस्तृत कार्यकरण और दिशा-निर्देशों के लिए देखिए, संसदीय कार्य मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन, 1994-95, अध्याय-VI
749. "समितियां और अन्य निकाय जिनमें राज्य सभा का प्रतिनिधित्व है" - नामक पुस्तिका में ऐसी समितियों की सूची दी गई है और यह पुस्तिका समय-समय पर राज्य सभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित की जाती है
750. -वही-
751. उदाहरणार्थ, फा. सं. 4/7/1994-समिति-II और फा. सं. 4/10/95-समिति-II

अध्याय-26

प्रक्रिया के सामान्य नियम

सूचनाएं

सामान्य प्रक्रिया

सदस्य द्वारा सभा में उठाये जाने वाले प्रत्येक मामले में, चाहे वह प्रश्न, संकल्प, प्रस्ताव, विधेयक, संशोधन या अन्यथा किसी रूप में हो, सूचना देने की आवश्यकता होती है। नियमों द्वारा अपेक्षित प्रत्येक सूचना को लिखित में देना होता है जिसे महासचिव को संबोधित करना होता है और सूचना देने वाले सदस्य को इस पर हस्ताक्षर करने होते हैं और शनिवार, रविवार या सार्वजनिक अवकाश के अतिरिक्त प्रत्येक दिन[1] म.पू. 10 बजे से म.प. 4 बजे[2] के बीच इसे सूचना कार्यालय में देना होता है। म.प. 4 बजे के बाद छोड़ी गई या प्राप्त की गई सूचनाएं या जब सूचना कार्यालय बंद हो तो छोड़ी गई सूचनाएं अगले दिन के कार्य दिवस में दी गई मानी जाती हैं[3] परंतु तत्पश्चात् प्रत्येक सत्र के आरंभ होने से पूर्व संसदीय समाचार भाग-2 में यथा अधिसूचित रूप में विभिन्न कार्य श्रेणियों हेतु संशोधित की जाती हैं।[4]

सदस्य व्यक्तिगत रूप से या अपने संदेशवाहकों द्वारा या डाक द्वारा अपनी सूचनाएं भेज सकते हैं।

> नियम समिति का यह विचार था कि फैक्स के माध्यम से प्राप्त की गई सूचनाओं/पत्रों को प्रामाणिक समझा जाना चाहिए बशर्ते कि वे हस्ताक्षरित हों और बाद में उनकी लिखित सूचनाएं प्राप्त हो जाएं[5] तथापि प्रतिवेदन को स्वीकार करते समय तक सभा ने समिति की सिफारिश को स्वीकार नहीं किया था।[6]

सदस्यों की सुविधा के लिए सूचना कार्यालय के बाहर रखे बक्से के अतिरिक्त एक दूसरा बक्सा, संसद् भवन के मुख्य स्वागत कक्ष में राज्य सभा स्वागत पटल के पास रखा गया है ताकि सदस्यों के वैयक्तिक स्टाफ कार्य दिवस के दौरान प्रश्नों, प्रस्तावों, संकल्पों इत्यादि संबंधी सूचनाएं जमा कर सकें। यह बक्सा सभी कार्य दिवसों पर मध्याह्न पूर्व 10.00 बजे तथा मध्याह्न पश्चात् 2.00 बजे दिन में दो बार खोला जाता है। मध्याह्न पूर्व 10.00 बजे तथा मध्याह्न पश्चात् 2.00 बजे के बीच इसमें दी गई सूचनाओं को, उसी दिन सूचना कार्यालय में मध्याह्न पश्चात् 2.00 बजे प्राप्त माना जाएगा तथा मध्याह्न पश्चात् 2.00 बजे के पश्चात् जमा की गई सूचनाएं अगले कार्य दिवस को सूचना कार्यालय में मध्याह्न पूर्व 10.00 बजे के पश्चात् प्राप्त मानी जाएंगी। सदस्यों को यह भी सूचित किया जाता है कि कार्य समय के पश्चात् सूचनाओं को जमा करने हेतु संसद् भवन में सूचना कार्यालय के बाहर एक बक्सा रखा हुआ है, जिसे अगले कार्य दिवस पर मध्याह्न पूर्व 10.00 बजे खोला जाएगा तथा उसमें जमा की गई सारी सूचनाओं को मध्याह्न पूर्व 10.00 बजे प्राप्त माना जाएगा।

शून्यकाल संबंधी सूचनाएं मध्याह्न पूर्व 9.30 बजे से मध्याह्न पूर्व 10.00 बजे के बीच बक्से में डाली जा सकती हैं और बक्से को मध्याह्न पूर्व 10.00 बजे खोला जाता है। सूचनाओं को बक्से में डालने के अलावा, सदस्य सूचनाओं को जमा करने के लिए अपने स्टाफ को

सीधे सूचना कार्यालय में भी भेज सकते हैं तथा सूचना प्राप्त करने के सही समय को रिकार्ड भी कर सकते हैं।

सामान्यत: सूचनाओं की प्राप्ति तथा अग्रगामी प्रेषण हेतु निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जाती है : (i) सूचना कार्यालय में सूचनाओं की प्राप्ति हेतु एक ट्रे रखी गई है। इसके अलावा, कार्य समय के पश्चात् तथा राजपत्रित अवकाश के दिन सूचनाएं सूचना कार्यालय तथा स्वागत कार्यालय के बाहर रखे गए बक्सों में डाली जा सकती हैं; (ii) सूचना कार्यालय में सूचनाएं प्राप्त होने पर प्रत्येक सूचना पर तिथि, समय एवं डायरी संख्या तुरंत डाल दी जाती है तथा सूचना कार्यालय डायरी सॉफ्टवेयर में सदस्य का नाम, सूचना के प्रकार और उसके विषय की प्रविष्टि कर दी जाती है जिसके पश्चात् कंप्यूटर द्वारा डायरी संख्या तथा प्राप्ति का समय दिया जाता है; तथा (iii) कंप्यूटर साफ्टवेयर में सूचनाओं के डायरीकरण के पश्चात्, उन्हें संबंधित शाखाओं को तुरंत भेज दिया जाता है।[7]

संशोधन, प्रस्ताव, प्रश्न, ध्यान दिलाने की सूचना, अल्पकालिक चर्चा, विशेष उल्लेख आदि जैसे विभिन्न प्रयोजनों के लिए सूचना देने हेतु मानक मुद्रित फार्म सदस्यों के प्रयोग के लिए सूचना कार्यालय में रखे जाते हैं।

सामान्यत: नियमों के अधीन निर्धारित सूचना की अवधि में सूचना देने के लिए आग्रह किया जाता है जो प्रस्ताव या संकल्प निर्धारित अवधि में नहीं आते उन्हें प्राय: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जाती। तथापि, सूचनाओं की अवधि निश्चित करने वाले नियम सभापति को यह अनुमति भी प्रदान करते हैं कि उपयुक्त मामलों में सूचनाओं की अवधि के लिए आग्रह न किया जाए और किसी विशेष मामले को लघु सूचना पर या यहां तक कि बिना सूचना ही स्वीकार कर लिया जाए।

प्रश्नों और संकल्पों के संबंध में सूचना की अवधि का परिकलन करने के लिए वह दिन जब सूचना प्राप्त होती है और वह दिन जब प्रश्न का उत्तर दिया जाना है या संकल्प को प्रस्तुत किया जाना है, छोड़ दिया जाता है।

नियमों द्वारा या सभापति के निदेश के अधीन अपेक्षित मुख्य सूचनाएं और सूचनाओं की अवधि निम्नलिखित है:—

(i) प्रश्न–15 पूर्ण दिन;[8] (ii) आधे घंटे की चर्चा–3 दिन;[9] (iii) गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प–सूचना, लाटरी निकालने के दो दिन पूर्व और संकल्प का पाठ, लाटरी निकालने के दिन से 10 दिनों तक;[10] (iv) संकल्पों/प्रस्तावों पर संशोधन–एक दिन;[11] (v) गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों को पुर:स्थापित करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव-एक माह;[12] (vi) विधेयको में संशोधन–एक दिन;[13] (vii) विशेष उल्लेख–प्रस्तावित उल्लेख से एक दिन पहले म.प. 5 बजे तक;[14] और (viii) कतिपय विधेयकों के संबंध में प्रस्ताव–2 दिन।[15]

सदस्य द्वारा किसी विधेयक या संकल्प पर संशोधन की सूचना संबंधित मद को कार्यावलि में शामिल किए जाने से पूर्व अग्रिम रूप से दी जा सकती है।[16] ऐसे संशोधनों को उसी दिन से एक दिन पहले सदस्यों में परिचालित किया जाता है जिस दिन के लिए संबंधित मद कार्यावलि में शामिल की गई है।

कोई भी सदस्य सदन में शपथ अथवा प्रतिज्ञान लेने और सभा में अपना स्थान ग्रहण करने से पहले सूचनाएं दे सकता है। तथापि वह सभा के सदस्य के रूप में प्रश्न पूछने अथवा संकल्प उपस्थित करने अथवा किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने जैसे अन्य कार्य का तब तक निर्वहन नहीं कर सकता, जब तक कि उसने शपथ अथवा प्रतिज्ञान न ले लिया हो और सभा में अपना स्थान ग्रहण न कर लिया हो।

सभा की सेवा से निलंबित किये गये किसी सदस्य द्वारा पहले दी गई सूचनाओं को उसके निलंबन की अवधि के दौरान कार्यावलि या प्रश्नों, संशोधनों आदि की सूचियों में शामिल नहीं किया जाता। उस अवधि के दौरान उस के द्वारा दी गई किसी सूचना को भी स्वीकार नहीं किया जाता।

शून्यकाल में उल्लेखों के माध्यम से वर्तमान एवं अति लोक महत्व के मामलों को उठाने की परिपाटी राज्य सभा में विनियमित की गई है। सभापति उठाए जाने वाले ऐसे मामलों, जो "अनुमति से उठाए जाने वाले मामलों" के रूप में संसदीय समाचार भाग-1 में सूचित किए गए हों, की अनुमति दे सकते हैं। सभापटल पर पत्रों को रखने तथा सामान्य प्रकृति के अन्य कार्यों जो कि मध्याह्न पूर्व 11.00 बजे लिए जाने वाले प्रथम कार्य हों, के पश्चात् सदस्यों द्वारा शून्यकाल में उल्लेख किए जाते हैं जो कि ऐसे अधिकतम पंद्रह (15) मामले हो सकते हैं। यदि समय हो, तो मध्याह्न 12.00 बजे तक विशेष उल्लेख किए जाते हैं।[17] लोक महत्व के मामलों को उठाने संबंधी विशेष उल्लेख की प्रक्रिया को इस संबंध में बनाए गए नियमों को शामिल कर सुदृढ़ किया गया है।[18]

सूचनाओं का परिचालन

महासचिव द्वारा प्रत्येक सदस्य को ऐसी प्रत्येक सूचना या अन्य किसी पत्र की प्रति, जोकि इन नियमों के अंतर्गत सदस्यों को उपलब्ध कराई जानी अपेक्षित है, परिचालित करने का हर संभव प्रयास किया जाता है।[19] नियमों के अनुसार, महासचिव द्वारा सदस्यों को निम्नलिखित पत्रों को परिचालित करना आवश्यक होता है:– (i) सत्र के आमंत्रण,[20] (ii) उपसभापति के चुनाव की सूचना,[21] (iii) कार्यावलि,[22] और (4) विधेयक/संकल्पों पर संशोधनों की सूचियां।[23] किसी सूचना या अन्य पत्र की प्रति यदि ऐसे ढंग से और ऐसे स्थान पर रखी जाती है जैसा कि सभापति समय-समय पर आदेश दें तो ऐसी अवस्था में सूचना या अन्य पत्र को प्रत्येक सदस्य के प्रयोग के लिए उपलब्ध कराया गया समझा जाएगा।[24]

सूचना में संशोधन संबंधी सभापति की शक्ति

यदि सभापति की राय में कोई सूचना ऐसे शब्दों, वाक्यांशों या अभिव्यक्तियों को समाविष्ट करती है जो कि विवादी, असंसदीय, व्यंग्यात्मक, असंगत, शब्दाडम्बरपूर्ण या अन्यथा अनुपयुक्त है तो वह उस सूचना के परिचालन से पहले अपने विवेकानुसार उसमें संशोधन कर सकते हैं।[22]

संशोधनों की सूचनाओं, जोकि बोधगम्य नहीं हैं या जो संबंधित विधेयक का खंड बनती हैं या ऐसे संकल्प या प्रस्ताव जो अबोधगम्य या व्याकरणिक त्रुटियों सहित हैं, को सदस्यों में परिचालित किए जाने से पहले, यदि आवश्यक हो, तो संबद्ध सदस्यों के साथ विचार-विमर्श करके उपयुक्त रूप से सम्पादित की जाती हैं।

सूचनाओं का व्यपगत हो जाना

सदन के सत्रावसान पर, विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति चाहने वाली सूचनाओं को छोड़कर अन्य सभी लंबित सूचनाएं व्यपगत हो जाती हैं और यदि सदस्य उस मामले को अगले सत्र में उठाना चाहता है तो उसे फिर से सूचना देनी होती है। तथापि, ऐसे विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति के लिए भी नई सूचना की आवश्यकता होती है जिसके संबंध में संविधान के तहत मंजूरी या सिफारिश दी गई हो और यदि पहले दी गई मंजूरी या सिफारिश प्रभावी न रही हो।[26]

> एक सदस्य ने 18 मार्च, 1963 को एक समाचारपत्र के विरुद्ध विशेषाधिकार के भंग के मामले की सूचना दी थी। 20 मार्च, 1963 को राज्य सभा का सत्रावसान कर दिया गया। सदस्य ने नई सूचना दी "यदि उसकी पूर्व सूचना पर कोई कार्रवाई नहीं की गई हो तो" तत्पश्चात् मामले को विशेषाधिकार समिति के पास भेजा गया।[27]

समिति के समक्ष लंबित कोई कार्य केवल सदन के सत्रावसान के कारण से ही व्यपगत नहीं हो जाता और समिति ऐसे सत्रावसान के बावजूद भी अपना कार्य जारी रखती है।[28]

राष्ट्रपति की सिफारिश

नये राज्यों के निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन संबंधी विधेयकों[29] और कराधान को प्रभावित करने वाले विधेयक जिनमें राज्यों का हित हो,[30] के संबंध में राज्य सभा में विधेयकों के पुर:स्थापन के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश की आवश्यकता होती है। ऐसे विधेयक, जिसमें भारत की संचित निधि से व्यय शामिल हैं, पर विचार करने और उसे पारित करने के लिए भी राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक होती है।[31]

राष्ट्रपति की प्रत्येक सिफारिश को संबद्ध मंत्री द्वारा लिखित में निम्न रूप में महासचिव को प्रेषित किया जाता है:

> राष्ट्रपति ने प्रस्तावित विधेयक, प्रस्ताव, संकल्प या संशोधन की विषयवस्तु सूचित किये जाने पर विधेयक के पुर:स्थापन पर या संशोधन उपस्थित करने पर अपनी पूर्व अनुमति दी है या वह सभा में विधेयक के पुर:स्थापन या प्रस्ताव, संकल्प या संशोधन उपस्थित करने की सिफारिश करते हैं या सभा को विधेयक पर विचार करने की सिफारिश करते हैं।[32]

जब लोक सभा द्वारा पारित विधेयक राज्य सभा में भेजा जाता है तब संबंधित मंत्री विधेयक को, लोक सभा द्वारा पारित रूप में राज्य सभा में विचार करने के लिए आवश्यक सिफारिश के साथ भेजते हैं। यद्यपि जब विधेयक सभा में लंबित था तब इसी प्रकार की सिफारिश प्राप्त की गई थी और लोक सभा को पहले भेजी गई थी। अन्य शब्दों में, विधेयक के संबंध में प्रत्येक सदन के लिए एक पृथक् सिफारिश की आवश्यकता होती है।[33]

सदस्यों द्वारा अनुपालन किये जाने वाले नियम

जब सभा की बैठक हो रही हो या सभा में बोलते हुए सदस्यों को कुछ नियमों का अनुपालन करना होता है।[34] संचालन नियमों से संबद्ध अध्याय 9 में इनका उल्लेख किया गया है। तथापि, उनमें से न्यायाधीन मामलों का नियम संसदीय प्रक्रिया में विशेष महत्व रखता है और अत: उसे विस्तार में दिये जाने की आवश्यकता है।

न्यायाधीन मामलों पर चर्चा

सदस्य किसी ऐसे तथ्य का उल्लेख नहीं कर सकते जिस पर न्यायिक निर्णय लंबित हो।[35] संविधान के उपबंधों और नियमों के अधीन संसद् में भाषण की स्वतंत्रता है।[36] इस स्वतंत्रता पर कतिपय प्रतिबंध कुछ सीमा तक स्वेच्छा से लगाये गये हैं। एक प्रतिबंध यह है कि न्यायालय में न्याय-निर्णयन हेतु लंबित मामलों पर सभा में चर्चाएं नहीं करनी चाहिए ताकि न्यायालय ऐसे मामलों पर विचार करते समय न्यायालय में विचारण की परिधि के बाहर कही गई किसी भी बात से अप्रभावित रहते हुए कार्य करें। यह प्रश्न कि क्या कोई मामला विशेष न्यायाधीन है, का निर्णय सभापति द्वारा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर किया जाता है।

नियमों के अंतर्गत, ऐसा कोई भी मामला सदन में प्रश्नों,[37] प्रस्तावों,[38] संकल्पों[39] के रूप में नहीं उठाया जा सकता जोकि किसी न्यायालय में न्याय निर्णयन के अधीन हो, जिसका कार्यक्षेत्र भारत के किसी भी भाग में हो।

> 25 नवंबर, 1986 को कोई सदस्य केरल के किसी न्यायालय के किसी विनिर्णय के संबंध में प्रश्न उठाना चाहते थे। उन्होंने कहा कि केरल उच्च-न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री सुकुमारन ने अपने विनिर्णय में कहा था कि विद्युत मंत्री, श्री आर. बालाकृष्णन पिल्लै ने अपने पद की शपथ का उल्लंघन किया था और राज्य मंत्री के रूप में उनकी पुनर्नियुक्ति असंवैधानिक थी। सभापति ने टिप्पणी की :
>
> > अब मुझे रुक जाना चाहिए। जैसाकि मैंने इस मामले को समझा है मुद्दा यह है। केरल उच्च न्यायालय ने कहा है कि इस मामले को केरल उच्च न्यायालय की खंडपीठ को विनिर्दिष्ट कर दिया गया है कि वह उन्हें सलाह दें कि क्या उठाए गए मामले पर संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उनके पास शक्ति है। इसलिए, पुन: यह पूर्णत: न्यायाधीन है और कोई निर्णय नहीं लिया गया है। मेरे विचार में, मैं चर्चा की अनुमति नहीं दे सकता। इसलिए, मैं कहता हूं कि मैं इसे नियम विरुद्ध घोषित करता हूं।[40]

7 दिसंबर, 1970 को किसी सदस्य ने सिंचाई और विद्युत मंत्री का ध्यान केन्द्रीय सरकार द्वारा आंध्र प्रदेश सरकार को नागार्जुन सागर बांध की ऊंचाई 'क्रेस्ट गेटों' की स्थापना करके बढ़ाने की अनुमति देने के विरुद्ध महाराष्ट्र सरकार द्वारा किए जा रहे कथित प्रतिवाद की ओर दिलाया था। कुछ सदस्यों द्वारा पूछे गए कतिपय प्रश्नों के प्रत्युत्तर में मंत्री ने कहा था कि वे इस मामले पर चर्चा नहीं कर पाएंगे चूंकि यह न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित है। जब वह सदस्य मंत्री जी से जानकारी मांगने पर जोर देता रहा तो उपसभापति ने टिप्पणी की :

> माननीय मंत्री जी ने अभी-अभी बताया है कि श्री धारिया अथवा श्री राजू द्वारा पूछे गये सभी प्रश्न ऐसे मामलों से संबंधित हैं जिन्हें न्यायाधिकरण को निर्दिष्ट किया जाना है और जिसका निर्णय न्यायाधिकरण द्वारा किया जाना है। इसलिए, माननीय मंत्री कोई जानकारी नहीं देना चाहते हैं क्योंकि इससे न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही पक्षपातपूर्ण हो सकती है। अत: वे तथ्य जो न्यायाधिकरण के समक्ष विचारार्थ हैं, उनके संबंध में माननीय मंत्री को जानकारी देने के लिए बाध्य करना वांछनीय नहीं है...[41]

22 जुलाई, 2003 को किसी सदस्य को उच्च पदासीन आरोपी के विरुद्ध सी.बी.आई. द्वारा लगाए गए अभियोगों को वापस लेने के मुद्दे को उठाने की अनुमति दी गई। तथापि, नियत समय पर वे उस प्रस्ताव के बारे में पूछताछ करने लगे कि उन्होंने नियम 170 के अधीन इस विषय पर चर्चा करने की सूचना दी थी। उन्होंने कहा कि सूचना नियम 168 के अधीन दी गई थी और नियम 170 के अधीन चर्चा हो सकती है। उन्होंने आगे यह भी उल्लेख किया कि उनके द्वारा पेश किए गए प्रस्ताव में, उन्होंने यह उल्लेख किया था कि मामले पर चर्चा करते हुए वे न्यायपालिका अथवा न्यायाधीन मामले के कार्यकरण में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तथा पूर्व उदाहरणों के अनुसार जिन्हें पूर्व अवसरों पर अपनाया गया, इसमें इस बात की गुंजाइश थी अगर कोई प्रस्ताव आंशिक रूप से न्यायाधीन प्रतीत होता है तो उस अंश जो न्यायाधीन नहीं है उस पर चर्चा की जा सकती है। इस संबंध में उन्होंने पूर्व दृष्टांतों का भी उल्लेख किया। इस प्रस्ताव की ग्राह्यता के संबंध में चर्चा चलती रही और सदस्यों ने श्री मुखर्जी द्वारा उठाए प्रक्रियात्मक पहलू में भी भागीदारी की। इस मुद्दे पर अन्य सदस्य भी बोलना चाहते थे और इसके परिणामस्वरूप बार-बार व्यवधान हुआ। अंत में, सभापति ने नियमानुसार स्थिति को स्पष्ट किया:

> राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियम के नियम 168 के अधीन आज मुझे प्राप्त हुई प्रस्ताव की सूचना....। मैंने इस सूचना पर नियम 169 के आलोक में गौर किया जो इस प्रकार के प्रस्ताव की ग्राह्यता की शर्तों को दर्शाता है। नियम 169 (viii) यह उल्लेख करता है, "वह किसी ऐसे विषय से संबंधित नहीं होगा जो भारत के किसी भाग में क्षेत्राधिकार रखने वाले किसी न्यायालय के न्याय-निर्णयाधीन हो"। बाबरी मस्जिद विध्वंस मामला जिसका उल्लेख आपकी सूचना में किया गया है वह न्यायालय में न्याय-निर्णयाधीन है। इसलिए मैं नियम 168 के अधीन इस प्रस्ताव की ग्राह्यता को अनुमति नहीं दे सकता।[42]

27 फरवरी, 2006 को किसी सदस्य ने प्रश्न पूछने के लिए धनराशि लेने संबंधी प्रकरण और सी.डी. के परिचालन जिसमें राज्य सभा के एक सदस्य शामिल थे, के संबंध में न्यायाधीन मामले को उठाने की अनुमति मांगी। तथापि, सभापति ने संबंधित सदस्य को पूर्व सूचना दिए जाने तक इस मुद्दे को उठाने की अनुमति नहीं दी। यद्यपि, वह सदस्य इस मामले को उठाने के लिए जोर देते रहे। एक अन्य सदस्य ने जांच आयोग गठित किए जाने की मांग की। व्यवधानों के बीच कुछ सदस्यों ने इस मामले को आचार समिति को सौंपने की मांग की। इस संबंध में, सभापति ने अपना निर्णय देते हुए कहा :

> मैं माननीय सदस्यों से पूछना चाहता हूं कि जब कोई मामला न्यायाधीन हो, तो उस न्यायाधीन मामले को मैं आचार समिति को कैसे दे सकता हूं। मैं न्यायाधीन मामले को आचार समिति को नहीं दे सकता।[43]

तथापि, एक बार सभापति ने न्यायाधीन मामले के क्षेत्राधिकार, जिनके अंतर्गत इस पर चर्चा की जानी चाहिए, को परिभाषित करते हुए कुछ पहलुओं पर चर्चा करने की अनुमति प्रदान की थी।

12 दिसंबर 1994 को सभापटल पर पत्र रखे जाने के तत्काल पश्चात्, डा. बिप्लव दासगुप्ता ने बाबरी मस्जिद मुद्दे के समाधान के संबंध में एक मुद्दा उठाया। प्रो. विजय कुमार मल्होत्रा भी इस मुद्दे में सम्मिलित हो गए तथा कतिपय टिप्पणियां कीं। इस समय पर सैयद सिब्ते रज़ी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में लंबित विषय पर चर्चा करने की वांछनीयता के संबंध में औचित्य प्रश्न उठाया। औचित्य प्रश्न का उत्तर देते हुए, उपसभापति ने यह निर्णय दिया:

> "मैं यही कहूंगा कि कोई भी मामला जो किसी न्यायालय के समक्ष लंबित है, न्यायाधीन है, हम उसे इस सभा में नहीं उठाते हैं। चूंकि सभापति साहब ने डा. बिप्लव दासगुप्ता को अनुमति प्रदान की है– मैं शीर्षक को पढ़ता हूं, जो कहता है, 'बाबरी मस्जिद मुद्दे का समाधान' – हम स्वयं को इस विषय तक ही सीमित रखेंगे। हम इसकी बारीकियों में नहीं जाएंगे। किसी समस्या के समाधान के बारे में बात करने की अनुमति है किन्तु हमें इसकी बारीकियों में नहीं जाना चाहिए क्योंकि इससे हमें कठिनाई हो सकती है चूंकि मामला न्यायालय में लंबित है।"[44]

न्यायाधीन का नियम विधेयकों पर लागू नहीं होता

एक आपत्ति यह की गई थी कि मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों की सुरक्षा), विधेयक 1986 को सभा में विचारार्थ नहीं लिया जा सका क्योंकि भरण-पोषण संबंधी कुछ मामले न्यायालयों में लंबित थे। सभापति ने विनिर्णय दिया:

...यह एक प्रभुत्वसंपन्न निकाय है और इसे किसी भी मामले पर विधि बनाने की शक्ति प्राप्त है चाहे यह न्यायालय में लंबित है या नहीं।[45]

अन्य बातों के साथ-साथ न्यायाधीन नियम के क्षेत्र के बारे में विचार करने के लिए पीठासीन अधिकारियों की एक समिति नियुक्त की गई। अत: समिति ने निम्नलिखित निर्देश दिये हैं जो कि मात्र निदर्शी है, व्यापक नहीं :

(1) भाषण की स्वतंत्रता एक मूलभूत अधिकार है जबकि न्यायाधीन का नियम स्वेच्छा से लागू किया गया एक प्रतिबंध है। अत: जहां आवश्यकता हो, वहां भाषण की स्वतंत्रता को वरीयता दी जानी चाहिए।

(2) विशेषाधिकार के मामलों में न्यायाधीन के नियम को लागू नहीं किया जाता।

(3) न्यायाधीन का नियम सामान्यतया विधि-निर्माण पर लागू नहीं होता।

(4) न्यायाधीन का नियम भारत के किसी भाग में सिविल और दाण्डिक न्यायालयों में और सेना न्यायालयों के समक्ष विचाराधीन कार्रवाइयों पर लागू होना चाहिए और यह नियम सामान्यतया अन्य न्यायिक अथवा अर्द्ध-न्यायिक निकायों जैसे अधिकारियों आदि पर लागू नहीं होना चाहिए जो कि प्राय: तथ्यों का पता लगाने वाले निकाय होते हैं।

(5) न्यायाधीन का नियम, प्रश्नों, विवरणों, प्रस्तावों (विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति, विधेयक के विचारार्थ, विधेयक को प्रवर/संयुक्त समिति को भेजने, किसी विधेयक पर राय जानने के लिए उसे परिचालित करने तथा विधेयक को पारित किये जाने से संबंधित प्रस्तावों को छोड़कर), संकल्पों तथा अन्य चर्चाओं (डिबेट्स) पर लागू होता है।

(6) न्यायाधीन का नियम न्यायालय में विचाराधीन किन्हीं विशिष्ट मामलों पर ही लागू होता है। इसके लिए मामले के संपूर्ण क्षेत्र को नहीं रोका जाता।

(7) परस्पर संबद्ध मामलों में जिनका एक भाग तो न्यायाधीन हो और एक भाग न्यायाधीन न हो, ऐसे मामलों में न्यायाधीन भाग से इतर भाग पर चर्चा की अनुमति दी जा सकती है।

(8) न्यायाधीन के नियम को केवल उसी अवधि के दौरान लागू किया जाता है जब उस मामले पर न्यायालय में या किसी सैनिक न्यायालय में सक्रिय रूप से विचार चल रहा हो इसका अर्थ निम्न प्रकार से होगा :–

(क) दाण्डिक मामलों में – आरोप पत्र दायर करने के समय से लेकर निर्णय दिये जाने तक।

(ख) सेना न्यायालयों में – आरोप लगाये जाने के समय से लेकर आरोपों की पुष्टि होने तक।

(ग) सिविल वादों में – विवादक विरचित किये जाने से लेकर निर्णय दिये जाने तक।

(घ) रिट याचिकाओं में – उनके स्वीकार किये जाने के समय से लेकर आदेशों के पारित होने तक।

(ङ) व्यादेश याचिकाएं – उनके स्वीकार किये जाने के समय से आदेशों के पारित होने तक।

(च) अपीलें – अपील को स्वीकार किए जाने के समय से निर्णय दिये जाने तक।[46]

किसी राज्य में मंत्री के रूप में नियुक्त किये गये सदस्य का सभा की कार्यवाही में भाग लेना

संसद् के किसी सदन के सदस्य के किसी राज्य में मंत्री के रूप में नियुक्त किये जाने से वह सदन की सदस्यता के अयोग्य नहीं हो जाता और वह विधानमंडल में सदस्य निर्वाचित हुए बिना ही सदन का सदस्य और साथ ही साथ राज्य में मंत्री पद पर भी 6 माह की अवधि तक के लिए बने रह सकता है। विगत में एक से भी अधिक बार ऐसे सदस्यों द्वारा सदन की कार्रवाई में भाग लेने या मतदान में उपस्थित होने के संबंध में मुद्दे उठाए जाते रहे हैं। एक मामले में, राज्य सभा के एक सदस्य ने जिन्हें किसी राज्य में मंत्री के रूप में नियुक्त किया गया था, सदन की कार्यवाही में हिस्सा लिया। इस प्रकार के एक अन्य मामले में राज्य सभा के एक सदस्य जिन्हें राज्य के मुख्य मंत्री के रूप में नियुक्त किया गया था, संविधान (उनसठवां संशोधन) विधेयक, 1988 पर मतदान करने के लिए सदन में उपस्थित थे। सभापति महोदय ने इन अवसरों पर यह टिप्पणी की थी :

> किसी संसद्-सदस्य जिसने राज्य में मंत्री के रूप में कार्यभार ग्रहण किया है, द्वारा सदन की कार्रवाई में भाग लेते रहने की उपयुक्तता के प्रश्न पर मैं मात्र इतनी-सी टिप्पणी करूंगा कि यह कुछ विचित्र सा लगता है कि राज्य में मंत्री के रूप में कार्यरत ऐसा कोई संसद्-सदस्य राज्य सभा में भी उपस्थित रहे और उसकी कार्रवाई में भाग ले।[47]

> अत: सभापति महोदय ने अन्य किसी अवसर पर यह कहा कि वह संबद्ध सदस्य को मत न देने के लिए निदेश नहीं दे सके। विधेयक पर मत देने वाले संबद्ध सदस्य ने यह कहा कि "मेरे व्यक्तिगत हित से राष्ट्रीय हित की सर्वोच्चता कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।"[48]

लोकसभा के सदस्य, जो मंत्री हैं, के द्वारा राज्य सभा की कार्यवाहियों में व्यवधान

प्रत्येक मंत्री को किसी भी सभा में, सभाओं की किसी भी संयुक्त बैठक में अथवा संसद् की किसी भी समिति जिसके लिए सदस्य के रूप में उसे नाम-निर्देशित किया जा सकता है, कि कार्यवाहियों में बोलने और अन्यथा उसमें भाग लेने का अधिकार है परन्तु उसे मत देने का अधिकार नहीं है।[49] ऐसे दृष्टांत विद्यमान हैं जब मंत्रियों, जो लोक सभा के सदस्य थे, ने सभा की कार्यवाहियों में व्यवधान उत्पन्न किया था।

19 फरवरी, 2014 को लोक सभा से संबंधित मंत्रियों ने राज्य सभा की कार्यवाहियों में व्यवधान उत्पन्न किया था। राज्य सभा में विपक्ष के नेता श्री अरुण जेटली ने औचित्य प्रश्न उठाया था कि क्या कोई व्यक्ति जो राज्य सभा का सदस्य नहीं है, को सभा जहां वह मंत्री के रूप में भाग ले रहा है, कि कार्यवाहियों में व्यवधान उत्पन्न करने का अधिकार है। उन्होंने ध्यान दिलाया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद88 के अनुसार किसी सदन का सदस्य जिसे मंत्री के रूप में नियुक्त किया जाता है वह दूसरे सदन को सम्बोधित कर सकता है और प्रश्नों के उत्तर दे सकता है। उन्होंने यह मुद्दा उठाया कि क्या लोक सभा का कोई सदस्य जो मंत्री है, कार्यवाही को सम्बोधित किए बिना राज्य सभा की कार्यवाहियों में व्यवधान उत्पन्न कर सकता है। इसके लिए उपसभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> माननीय सदस्यो, मेरे अनुसार माननीय विपक्ष के नेता ने एक उचित मुद्दा उठाया है कि दूसरे सदन का कोई सदस्य, मंत्री के रूप में, यहां आकर बोल सकता है और प्रश्नों का उत्तर दे सकता है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 88 में नितांत स्पष्ट है। उसे सदन में आकर व्यवधान उत्पन्न करने की अनुमति नहीं दी जाती है अथवा उससे ऐसी आशा नहीं की जाती है। अत: माननीय मंत्रियों द्वारा जो किया जा रहा है वह कृत्य अशोभनीय है। मैं उनसे अनुरोध करता हूं कि वे अपने सदन में चले जाएं, अथवा अपनी सीटों पर बैठ जाएं...[50]

किसी व्यक्ति के खिलाफ आरोप लगाया जाना

संविधान में किसी भी सदस्य को सभा में वाक्-स्वातंत्र्य प्रदान किया गया है और उसे सदन में कही गई किसी भी बात के लिए किसी भी न्यायालय, सिविल या दांडिक कार्यवाही से उन्मुक्ति प्रदान की गई है।[51] तथापि, यह संवैधानिक विशेषाधिकार संविधान के अन्य उपबंधों तथा सदन के नियमों के अध्यधीन है।

सदन के एक नियम के अधीन यह उपबंध किया गया है कि उच्च पदाधिकारियों के आचरण के संबंध में संविधान के अधीन उचित ढंग से कोई सारगर्भित प्रस्ताव लाए जाने के अलावा, चर्चा नहीं की जानी चाहिए।[52] संविधान में यह उपबंध किया गया है कि उसमें बताए गए ढंग से कुछ पदाधिकारियों, उदाहरण के लिए – राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, उपसभापति, उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, भारत के नियंत्रक महालेखापरीक्षक, मुख्य चुनाव आयुक्त आदि, के आचरण पर चर्चा की जा सकती है। अन्य उच्च कृत्यकारियों, जैसे राज्यपालों के आचरण पर सभापति द्वारा स्वीकृत रूप में पेश किये गये यथोचित प्रस्तावों पर चर्चा की जा सकती है। वस्तुत:, सदन ने राज्यपालों द्वारा अपनी सरकारी हैसियत से विभिन्न रूपों में कार्यकरण किए जाने के संबंध में चर्चा की है।

> सदन ने (i) किसी राज्य के राज्यपाल को बर्खास्त किए जाने की सिफारिश[53] और (ii) किसी राज्य में सरकार को बर्खास्त करने में राज्यपाल द्वारा की गई कार्यवाही की निन्दा करने[54] संबंधी प्रस्तावों पर चर्चा की है। तथापि, दोनों ही प्रस्ताव अस्वीकृत हो गए थे।
>
> सदन ने राज्यपालों द्वारा विधानसभाओं के विघटन[55], सत्रावसान[56], निलंबन[57] के संबंध में ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पर चर्चा अथवा अल्पकालिक चर्चा भी की है।
>
> राज्यपालों की भूमिका, शक्ति, कृत्यों और नियुक्ति की पद्धति संबंधी मामलों पर भी ध्यानाकर्षण प्रस्तावों और अल्पकालिक चर्चा के माध्यम से चर्चा की गई है।[58]

जहां तक मुख्य मंत्री या किसी राज्य सरकार के मंत्री के आचरण का संबंध है, यदि वह मामला संघ सरकार के क्षेत्राधिकार के भीतर आता है या उसके विचाराधीन है, तो उस पर चर्चा की जा सकती है। ऐसे कुछ उदाहरण भी विद्यमान हैं जब मुख्य मंत्रियों/राज्यों के मंत्रियों से संबंधित मामलों को राज्य सभा में उठाया गया है।

> किसी राज्य सरकार के मंत्री द्वारा अनुसूचित जातियों के विरुद्ध की गई कुछ अपमानजनक टिप्पणियों के संबंध में अल्पकालिक चर्चा की गई थी।[59]
>
> एक अल्पकालिक चर्चा का संबंध सरकार द्वारा की गई कार्रवाई से था जो सरकार ने राष्ट्रपति को प्रस्तुत किए गए उस ज्ञापन पर की जिसमें एक मुख्य मंत्री के विरुद्ध भ्रष्टाचार और शक्ति के दुरुपयोग का आरोप लगाया गया था।[60]
>
> किसी मुख्य मंत्री के विरुद्ध लगाये गये आरोपों संबंधी जांच आयोग का प्रतिवेदन भी प्रस्ताव का विषय बना।[61]
>
> एक भूतपूर्व राज्य मंत्री पर लगे कतिपय आरोपों के संबंध में उड़ीसा (वर्तमान में ओडिशा) सरकार को केन्द्रीय जांच ब्यूरो के प्रतिवेदन और उस पर मंत्रिमंडलीय उप-समिति के निष्कर्षों की एक प्रति देने में केन्द्रीय गृह मंत्रालय की कथित अनिच्छा के संबंध में एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव भी सभा में लाया गया था।[62]
>
> संविधान को भीतर से कमजोर बनाने के संबंध में मुख्यमंत्री का वक्तव्य ध्यानाकर्षण प्रस्ताव का विषय बना था।[63]
>
> जब किसी सदस्य ने किसी राज्य के मुख्य मंत्री पर की गई किसी अन्य सदस्य की कतिपय टिप्पणियों पर इस आधार पर औचित्य का प्रश्न उठाया कि किसी मुख्य मंत्री के आचरण पर केवल मूल प्रस्ताव के आधार पर चर्चा की जा सकती है, तो तब उपसभापति ने कुछ पूर्वोदाहरणों को उद्धृत करते हुए यह निर्णय दिया कि किसी मुख्य मंत्री के आचरण पर चर्चा करने के लिए कोई मूल प्रस्ताव सभा में लाने का इस प्रकार का कोई उपबंध नहीं है।[64]

नियमतः, कोई भी सदस्य किसी भी अन्य सदस्य या दूसरी सभा के किसी सदस्य के विरुद्ध तब तक कोई अपमानजनक या आपत्तिजनक आरोप नहीं लगा सकता जब तक कि आरोप लगाने वाले सदस्य ने सभापति को और सम्बद्ध मंत्री को पूर्व-सूचना न दे दी हो, ताकि मंत्री उस मामले में उत्तर देने के प्रयोजनार्थ मामले की जांच करा सके।[65] इसके बावजूद, सभापति महोदय किसी भी समय किसी भी सदस्य को इस प्रकार का कोई आरोप लगाने से रोक सकते हैं। यदि उनका यह मत हो कि इस प्रकार का आरोप सभा की गरिमा के लिए उचित नहीं है अथवा ऐसा आरोप लगाने से कोई जनहित सिद्ध नहीं होगा।[66]

30 मई, 1967 को, किसी सदस्य ने औद्योगिक योजना और लाइसेंस नीति के संबंध में हज़ारी प्रतिवेदन पर चर्चा में भाग लेते हुए लोक सभा के सदस्य डॉ. राम मनोहर लोहिया के विरुद्ध कतिपय आरोप लगाए थे। 5 जून, 1967 को अन्य सदस्य ने कहा कि श्री लोहिया के विरुद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध नहीं होते और इसलिए वे आधारहीन थे, और इसलिए यह सभा के विशेषाधिकार का उल्लंघन है।

6 जून, 1967 को, जब सभापति ने संबंधित सदस्य को श्री लोहिया के विरुद्ध लगाए गए आरोपों पर अपना रुख स्पष्ट करने को कहा, तो वह उन पर अडिग रहा और वापस लेने से इंकार कर दिया। सभापति ने सदस्य से उनसे मिलने और अपने आरोप को सिद्ध

करने को कहा। उक्त बैठक में संबंधित सदस्य अपने आरोपों को सिद्ध नहीं कर पाए और यह स्वीकार किया कि उनके पास अपने आरोपों के समर्थन में कोई भी प्राथमिक साक्ष्य नहीं हैं। सभापति ने उन्हें लिखित वक्तव्य देने का निदेश दिया जिसमें उन्होंने कहा : "मैंने यह कभी नहीं कहा कि डा. लोहिया को मेरी उपस्थिति में पैसा दिया गया था। मेरी डॉ. लोहिया को बदनाम करने की कोई मंशा नहीं थी, और मैंने उन्हें बदनाम करने और सभा को भ्रमित करने के लिए कोई षड्यंत्र नहीं किया। श्री राजनारायण ने अपने भाषण में मेरी पार्टी कांग्रेस और कांग्रेस सरकार को बिरला साम्राज्य का अर्दली कहा था और मुझे उन्हें उन्हीं की भाषा में जवाब देना पड़ा।"

19 जून, 1967 को सभापति ने इस मामले में अपना विनिर्णय दिया और कहा:

> मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि सदस्य, जो वर्तमान मामले जैसी प्रकृति वाले आरोपों को सिद्ध करने की स्थिति में न हों, उन्हें इस तरह के वक्तव्य नहीं देने चाहिए। सदस्यों द्वारा इस तरह की प्रकृति वाले आरोप और प्रत्यारोप संसद् की गरिमा को खराब करते हैं। जैसा कि मे ने बहुत सुंदर शब्दों में कहा है, "अच्छा स्वभाव और संयम संसदीय भाषा की विशेषताएं हैं। जब कोई सदस्य वाद-विवाद में अपने विपक्षियों की राय और आचरण व्यक्त कर रहा होता है तभी संसदीय भाषा सबसे ज्यादा वांछनीय होती है।" मैं यह भी कहना चाहूंगा कि यह एक अच्छा नियम होगा कि एक सदन के सदस्यों को दूसरे सदन के सदस्यों के विरुद्ध आरोप अथवा अभियोग लगाने के लिए सदन में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपयोग नहीं करना चाहिए। जैसा कि श्री याजी ने कहा कि डा. लोहिया को बदनाम करने अथवा सभा को भ्रमित करने की उनकी कोई मंशा नहीं थी, मैं चाहूंगा कि इस मामले को यहीं विराम दिया जाए। मुझे आशा है कि जो मैंने कहा है श्री शीलभद्र याजी उसे ध्यान में रखेंगे।[67]

जब किसी सदस्य द्वारा किसी अन्य सदस्य या मंत्री के विरुद्ध आरोप लगाये जाते हैं और वह सदस्य या मंत्री उन आरोपों से इंकार कर देता है तो यह इंकार सामान्यत: उस सदस्य को स्वीकार कर लेना चाहिए जिसने यह आरोप लगाये हैं। सभापति उस सदस्य को आरोप साबित करने के लिए भी कह सकते हैं और जांच के पश्चात् सभा को अपने निष्कर्षों के परिणाम से अवगत करा सकते हैं।[68]

सामान्यत: जब कोई सदस्य कोई पूर्व सूचना दिये बगैर ही आरोप लगाता है तब उस विषय से संबंधित नियम के प्रावधानों का सहारा लिया जाता है और सदस्य को नियम का पालन करने के लिए कहा जाता है। कई मामलों में, यह आरोप कार्यवाही का हिस्सा बन जाते हैं और यदि उनका प्रतिवाद न किया जाए तो उससे संबद्ध सदस्य का सम्मान और प्रतिष्ठा प्रभावित हो सकती है। अत:, जहां ऐसे कोई आरोप अभिलिखित हो चुके हों, जिस मंत्री या सदस्य के विरुद्ध आरोप लगाये गये हैं, उसे उसी दिन या बाद में स्थिति को स्पष्ट करने के लिए सदन में वक्तव्य देने की अनुमति दी जाती है और उससे मामला समाप्त हो जाता है।[69]

जहां तक सदन में किसी बाहरी व्यक्ति पर आरोप लगाये जाने का संबंध है, प्रथा और परिपाटी यह है कि किसी ऐसे व्यक्ति के नाम का उल्लेख नहीं किया जा सकता

जो सभा में अपना बचाव नहीं कर सकता।[70] तथापि, यदि ऐसा आरोप पुलिस अथवा किसी अन्य जांच प्राधिकरण द्वारा छानबीन के किसी मामले की विषय वस्तु बन जाता है तो पुलिस अथवा जांच प्राधिकरण सदस्य के पास नहीं जा सकता और उसकी सूचना के स्रोत को प्रकट करने अथवा उसके पास उपलब्ध साक्ष्य को अर्पित करने के लिए नहीं बुला सकता जिससे पुलिस अथवा जांच प्राधिकरण को उनकी जांच में मदद मिल सके। विशेषाधिकार, संबंधी समिति ने कार्यवाही निर्धारित की हुई है जिसका ऐसे मामलों में अनुसरण किया जाना चाहिए, जैसा कि विशेषाधिकारों से संबंधित अध्याय-8 में उल्लेख किया गया है।

व्यक्तिगत स्पष्टीकरण

कोई सदस्य अथवा कोई मंत्री सभापति की अनुमति से कोई भी व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दे सकता है यद्यपि सदन के समक्ष कोई मामला नहीं है, लेकिन इस स्थिति में कोई भी वाद-विवाद योग्य मामला नहीं उठाया जा सकता और कोई भी वाद-विवाद शुरू नहीं किया जाना चाहिए।[71]

> एक सदस्य ने बर्दवान में हुई एक घटना के संबंध में वक्तव्य दिया जिसके बारे में कुछ दिन पहले एक अन्य सदस्य द्वारा सदन में उल्लेख किया गया था। एक औचित्य प्रश्न उठाया गया था कि सदस्य को ऐसे मामले के संबंध में, जोकि व्यक्तिगत रूप से उससे संबंधित नहीं है बल्कि केवल एक राजनैतिक दल से संबंधित है, वक्तव्य देने की अनुमति दी जा सकती है या नहीं। सभापति ने तत्कालीन नियम 203 (वर्तमान 241 नियम का तद्नुरूपी) का उल्लेख करते हुए यह निर्णय दिया कि सदस्य ने सदन में मुद्दे को उठाने के लिए सभापति की पूर्वानुमति नहीं ली थी अत: उनका संदर्भाधीन वक्तव्य सदन में देना उचित नहीं था। वह यह दर्शाने के लिए घटना के बारे में एक दल का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे थे कि उस दल के विरुद्ध की गई आलोचना न्यायोचित नहीं थी। इससे वाद-विवाद योग्य मामला पुर:स्थापित हो गया जोकि नियम के अंतर्गत अनुज्ञेय नहीं था। सभापति ने यह भी टिप्पणी की :
>
>> यह सच है कि व्यक्तिगत स्वरूप के स्पष्टीकरण के संबंध में सदन प्राय: दयालुता दर्शाता है और यह इस प्रकार के वक्तव्य को देने की अनुमति दे देता है, बशर्ते कि सभापीठ से पहले ही अनुमति प्राप्त कर ली गई हो। लेकिन व्यक्तिगत स्पष्टीकरण की उचित सीमाओं से परे सामान्य तर्क और टिप्पणियां व्यवस्था से बाहर हैं। व्यक्तिगत स्पष्टीकरण की कृपा इस चेतावनी सहित प्रदान की जानी चाहिए कि कोई भी वाद-विवाद योग्य मामला न उठाया जाए और कोई वाद-विवाद नहीं किया जाएगा।[72]
>
> एक अवसर पर एक सदस्य को 5 मार्च 1969 को बिरला व्यवसाय के संबंध में चर्चा में हस्तक्षेप करते समय उप-प्रधान मंत्री और वित्त मंत्री द्वारा उस सदस्य के संबंध में की गई कतिपय टिप्पणियों के संबंध में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण की अनुमति प्रदान की गई थी। सदस्य को लिखित में व्यक्तिगत रूप से सूचित किया गया कि उसके व्यक्तिगत स्पष्टीकरण में केवल बजट प्रस्तावों के संबंध में संक्षिप्त उल्लेख होना चाहिए अन्य मामले का नहीं। तथापि, सदस्य द्वारा व्यक्तिगत रूप से स्पष्टीकरण दे दिए जाने के पश्चात् अगले दिन सभापति ने जब यह देखा कि सदस्य ने उसे दी गई अनुमति का अतिक्रमण किया है, और उसने ऐसे मामलों का उल्लेख किया है जो उनके व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के लिए प्रासंगिक नहीं हैं तो उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:
>
>> यह स्पष्टतया प्रक्रिया तथा सुस्थापित परिपाटियों के विरुद्ध है। मैं यह कहना चाहूंगा कि यदि इस तरह के मामलों में मेरा अनुग्रह चाहने वाले सदस्य इसका दुरुपयोग करेंगे तो मुझे इस बात पर गंभीरता से विचार करना पड़ेगा कि भविष्य में मुझे इस बात के लिए आग्रह करना है या नहीं कि इस तरह का विशेषाधिकार चाहने वाला सदस्य पहले से ही लिखित रूप में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण का विवरण प्रस्तुत करे और उस वक्तव्य को देने से पहले मुझे दिखाए।[73]

एक अन्य अवसर पर जब एक मंत्री ने पहले सदन में दिए गए अपने किसी त्रुटिपूर्ण वक्तव्य के लिए क्षमा मांगते हुए एक व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिया परन्तु साथ ही कुछ अन्य मामलों तथा विभिन्न अन्य नेताओं के नामों का भी उल्लेख किया तो एक सदस्य ने नियम 241 के अंतर्गत औचित्य प्रश्न उठाया। सभापति ने कहा कि वे भाषण को पढ़ेंगे और यदि उसमें कोई बात चर्चा योग्य मामले के निबंधन के अंतर्गत आती है तो वह उसे निकाल देंगे।[74]

अनुमति प्रदान कर दिए जाने पर संबद्ध सदस्य वक्तव्य देता है और उस पर कोई अन्य प्रश्न पूछने या स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति नहीं दी जाती है जिसके पीछे यह अभिप्राय होता है कि व्यक्तिगत स्पष्टीकरण चर्चा का रूप न ले ले। जैसा कि कहा गया है, "ये वक्तव्य सभा के अनुग्रह से दिए जाते हैं न कि अधिकार के रूप में, चूंकि सदन के समक्ष उस समय कोई प्रश्न नहीं होता है और कोई चर्चा भी नहीं की जा सकती।"[75]

जब किसी सदस्य ने मंत्री द्वारा दिए गए किसी व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के संबंध में स्पष्टीकरण मांगने के लिए कोई प्रश्न करना चाहा तो सभापति ने यह टिप्पणी की कि : "आप इस पर यहां चर्चा नहीं कर सकते...व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के संबंध में कोई प्रश्न नहीं पूछे जाते हैं"[76]

एक सदस्य द्वारा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने के पश्चात् अनेक सदस्य उसके बारे में औचित्य प्रश्न उठाना चाहते थे और उस मामले पर बहस करना चाहते थे। उपसभापति ने यह टिप्पणी की कि उस पर चर्चा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यदि सदस्य किसी मुद्दे पर चर्चा करना चाहते हैं तो उन्हें इस प्रयोजन के लिए समुचित प्रक्रिया का अनुपालन करना चाहिए। मंत्री एवं सदस्य दोनों के ही विचार कार्यवाही में प्रकाशित हुए हैं और यह मामला वहीं समाप्त हो गया।[77]

व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के विषय क्षेत्र के संबंध में संसदीय कार्य की व्यवस्था से संबद्ध अध्याय-15 में पहले ही वर्णन किया गया है। इस संबंध में निम्नलिखित बातों को भी संबद्ध किया जा सकता है :

जब कोई सदस्य कोई व्यक्तिगत वक्तव्य देता है तो सभा यह मान लेती है कि वह ऐसा पूरी ईमानदारी से करता है। जैसाकि प्रोफ्यूमो मामले में 17 जून, 1963 को हुई बहस के दौरान श्री हेराल्ड विल्सन ने कहा था, "यह सदन किसी प्रश्न या बहस के बिना इस पूर्वधारणा के आधार पर व्यक्तिगत वक्तव्य देने की स्वतंत्रता प्रदान करता है कि जो कुछ भी कहा है उसे ईमानदारी से कहा गया है।"[78]

राज्य सभा में अनुमति प्रदान किए गए कुछ व्यक्तिगत स्पष्टीकरणों का भी उल्लेख किया जा सकता है :

(क) गुमराह करने वाले प्रेस समाचारों के बारे में स्पष्टीकरण देना

एक सदस्य को सदन में दिए गए उसके वक्तव्य के बारे में गुमराह करने वाले कतिपय प्रेस समाचारों के बारे में स्पष्टीकरण देने की अनुमति प्रदान की गई थी।[79]

एक सदस्य ने कावेरी मामले के संबंध में उसके बारे में छपे एक प्रेस समाचार के संबंध में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिया।[80]

एक सदस्य ने यह व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिया था कि इंडियन एक्सप्रेस-भवन मामले के संबंध में राज्य सभा में दिए गए उसके भाषण को काट-छांट कर छापा गया है और ऐसे कुछ अंशों को जिनमें उसने संबद्ध न्यायाधीश की प्रशंसा की थी, "खेदपूर्ण धारणा" को सही करने तथा तथ्यों को स्पष्ट करने के लिए प्रेस से निकाल दिया गया। जब एक अन्य

सदस्य ने इस बारे में कुछ कहा तो सभापति ने इसे अभिलिखित न करने का निर्देश दिया और यह टिप्पणी की कि "व्यक्तिगत स्पष्टीकरण पर कोई भी व्यक्ति कोई टिप्पणी नहीं कर सकता है।"[81]

(ख) किसी सदस्य के बारे में की गई टिप्पणियों का खंडन करना

एक सदस्य ने उस वक्तव्य का खंडन करने के लिए व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिया जो उसके द्वारा कथित रूप से केन्द्रीय कक्ष में दिया गया बताया गया था।[82]

(ग) गिरफ्तारी संबंधी स्पष्टीकरण

एक सदस्या ने अपनी गिरफ्तारी और उन परिस्थितियों के संबंध में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिया, जिनके अंतर्गत उन्हें तिहाड़ जेल, दिल्ली में स्थानांतरित किया गया तथा राज्य सभा के सत्र में उपस्थित होने के लिए संसद् भवन लाया गया।[83]

(घ) स्थिति की व्याख्या

एक सदस्य ने अपने घर पर पड़े छापे आदि के संबंध में स्थिति को स्पष्ट करने के लिए व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिया। जब एक अन्य सदस्य ने यह औचित्य प्रश्न उठाया कि व्यक्तिगत स्पष्टीकरण सदन के कार्य से संबद्ध नहीं है तो उपसभापति ने स्पष्ट किया कि सदन के एक सदस्य के रूप में सदस्य की छवि मलिन होने के कारण उन्हें इसकी अनुमति दी गई।[84]

राज्य सभा के पांच सदस्यों को व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की इजाजत दी गई क्योंकि समाचार पत्रों में प्रकाशित खबरों में राम स्वरूप जासूसी मामले में दायर आरोप-पत्र में उनका नाम आया था।[85]

(ङ) आरोपों का खंडन

प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक विशिष्ट माह के उनके टेलीफोन-प्रभार के संबंध में एक सदस्य द्वारा लगाये गए आरोप का खंडन करते हुए सभा पटल पर एक विवरण रखा।[86]

एक अवसर पर सभापति ने सदन में निम्नलिखित घोषणा की :

> "भारतीय मूल के कतिपय अनिवासी-भारतीयों द्वारा भारतीय कंपनियों के अधिग्रहण की बोलियों संबंधी ध्यानाकर्षण सूचना पर चर्चा के दौरान एक माननीय मंत्री ने अन्य बातों के साथ-साथ यह उल्लेख भी किया कि निवेशित धनराशि "प्रधान मंत्री का धन, राजनीतिक धन तथा ऐसा धन है जो ईमानदारी से नहीं कमाया गया है।" दुर्भाग्यवश सदन में प्रधान मंत्री के उपस्थित न होने के कारण यह टिप्पणी अभिलिखित हो गई और इसका खंडन नहीं किया जा सका। अब मुझे बताया गया है कि यह आरोप पूर्णतया निराधार है। चूंकि आरोप अभिलिखित हो गया है, इसलिए मैं यह उचित समझता हूं कि इसका खंडन भी अभिलिखित किया जाना चाहिए।"[87]

(च) स्पष्टीकरण और जवाबी-स्पष्टीकरण

सामान्य प्रथा यह है कि किसी सदस्य द्वारा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिए जाने के बाद मूलत: टिप्पणी करने वाले सदस्य को जवाबी-स्पष्टीकरण देने की अनुमति नहीं दी जाती

है। दोनों सदस्यों के वक्तव्य अभिलिखित हो जाने के बाद मामले को समाप्त समझ लिया जाता है।

> तथापि, एक सदस्य ने सदन में एक अन्य सदस्य द्वारा उनसे संबद्ध उल्लिखित मामले के संदर्भ में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिया। अगले दिन परवर्ती सदस्य ने पूर्ववर्ती सदस्य द्वारा उनके विषय में उल्लिखित मामले के संदर्भ में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिया।[88]

> एक मंत्री ने अन्य मंत्रालय के मंत्री की हैसियत से कार्य करते हुए अपने पूर्व पद के विरुद्ध किसी सदस्य द्वारा लगाए गए कतिपय आरोपों के संबंध में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिया था। तीन दिन पश्चात् उस सदस्य ने मंत्री द्वारा लगाये गये आरोपों से इनकार करते हुए सभापति की अनुमति से एक वक्तव्य दिया।

> जब अनेक सदस्य उठकर खड़े हो गये, तो सभापति ने टिप्पणी की कि: "यह नियम है कि वक्तव्य दिये जाने के बाद अन्य कोई व्यक्तिगत वक्तव्य नहीं होगा। किन्तु यदि किसी मंत्री या अन्य द्वारा तथ्य का वक्तव्य दिया गया हो, तो उसका प्रतिवाद किया जा सकता है।" इसलिए इसकी अनुमति दी गई।[89]

(छ) वक्तव्य का स्पष्टीकरण

एक सदस्य को यह स्पष्ट करने हेतु व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी गई थी कि गलतफहमी के कारण उन्होंने एक अनुपूरक प्रश्न के दौरान समाचार पत्र में प्रकाशित हुए कार्टून का हवाला दे दिया था। उन्होंने सदन की कार्यवाही में से अपने उस अनुपूरक प्रश्न को निकाल देने का अनुरोध किया। सभापति ने यह निर्णय दिया कि सदस्य का वक्तव्य अभिलिखित किया जाएगा।[90]

एक सदस्य ने कहा कि डालमिया-जैन कंपनी समूह के बार में जांच आयोग के प्रतिवेदन के संबंध में प्रस्ताव पर बोलते हुए उन्होंने कहा था कि चुनाव के लिए पंद्रह लाख रुपये एकत्रित किये गये थे। उस सदस्य को इस आंकड़े को सही करके इसके स्थान पर कई लाख रुपये कहने की अनुमति दी गई थी। उन्होंने यह भी कहा कि वह अपने वक्तव्य के समर्थन में सभा पटल पर एक पत्र रख रहे हैं।[91]

(ज) मंत्रियों द्वारा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण

किसी मंत्री के लिए, जो दूसरे सदन का सदस्य है, सदन के सदस्यों द्वारा उसके विरुद्ध लगाये गये आरोपों या की गई टिप्पणियों का खंडन करने हेतु व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। अनेक बार ऐसे वक्तव्य दिये गये हैं।[92]

> एक राज्य मंत्री या उप मंत्री को उसके और उसके कैबिनेट मंत्री के बीच तथाकथित विवाद के संबंध में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी गई थी। कुछ सदस्यों ने औचित्य का प्रश्न उठाया कि चूंकि संबंधित मंत्री सदन की सदस्या नहीं हैं, वह व्यक्तिगत स्पष्टीकरण नहीं दे सकतीं। उपसभापति ने औचित्य के प्रश्न को अवैध ठहराते हुए इस बात पर बल दिया कि यदि संबंधित मंत्री केवल लोक सभा की सदस्या रही होतीं, तो सभापीठ द्वारा उनके विरुद्ध किसी प्रकार के आरोप की अनुमति नहीं दी जाती। अनुमति इसलिए दी गई थी क्योंकि वह मंत्री के नाते सदन में आयी थीं... दोनों सदनों के सदस्यों के प्रश्नों के प्रति जवाबदेह थीं। दूसरी बात यह है कि सभापति ने अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए उसे व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी थी और इसलिए वह सदन में आयी थीं।[93]

भाषणों का क्रम और उत्तर का अधिकार

जब किसी प्रस्ताव को उपस्थित करने वाला सदस्य प्रस्ताव पर अपने विचार व्यक्त कर लेता है, तो उसके बाद अन्य सदस्य उस प्रस्ताव पर उस क्रम में, जैसाकि सभापति उन्हें आमंत्रित करता है, अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं। यदि इस प्रकार आमंत्रित कोई सदस्य अपने विचार व्यक्त नहीं करता है तो उसे चर्चा के किसी आगामी चरण में, सभापति की अनुमति के बिना, प्रस्ताव पर अपने विचार व्यक्त करने का हक नहीं होता है।[94]

उत्तर के अधिकार के प्रयोग को छोड़कर या जैसा इन नियमों द्वारा अन्यथा उपबंधित हो, कोई भी सदस्य, सभापति की अनुमति के बिना, प्रस्ताव पर केवल एक बार अपने विचार व्यक्त कर सकता है।[95] प्रस्ताव को उपस्थित करने वाला सदस्य उत्तर के रूप में अपने विचार व्यक्त कर सकता है और यदि प्रस्ताव किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा उपस्थित किया जाता है, तो संबंधित मंत्री सभापति की अनुमति लेकर प्रस्ताव को उपस्थित करने वाले सदस्य के उत्तर देने के बाद अपने विचार व्यक्त कर सकता है (भले ही उसने चर्चा में पहले अपने विचार व्यक्त किये हो अथवा नहीं)।[96] तथापि, किसी संकल्प अथवा विधेयक पर संशोधन उपस्थित करने वाले सदस्य को तब तक उत्तर देने का अधिकार नहीं है जब तक सभापति से इसकी अनुमति नहीं मिल जाती।[97]

समापन

किसी प्रस्ताव के किये जाने के बाद किसी भी समय कोई सदस्य यह प्रस्ताव उपस्थित कर सकेगा कि: "प्रस्ताव पर अब मत लिया जाये" और जब तक कि सभापति को यह प्रतीत न हो कि प्रस्ताव इन नियमों का दुरुपयोग है या कि उचित वाद-विवाद के अधिकार का उल्लंघन करता है, सभापति यह प्रस्ताव करता है कि: "प्रस्ताव पर अब मत लिया जाये।"[98] यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो उससे आनुषंगिक प्रस्ताव या प्रस्तावों पर, और अधिक वाद-विवाद किए बिना तुरन्त मत लिया जाता है, बशर्ते कि सभापति ने किसी सदस्य को इसका उत्तर देने का ऐसा अधिकार दे दिया हो।[99] यदि समापन-प्रस्ताव स्वीकृत नहीं होता है, तो तब प्रस्ताव पर वाद-विवाद उसी स्तर से पुनः आरंभ होता है, जहां उसमें व्यवधान उत्पन्न किया गया था।[100]

> दंड विधि संशोधन विधेयक, 1952 पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई थी। एक सदस्य ने सभापति की अनुमति से वाद-विवाद के समापन का प्रस्ताव उपस्थित किया था। एक अन्य सदस्य ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। उपसभापति ने घोषणा की कि प्रस्ताव पर उचित वाद-विवाद हो चुका है और उन्होंने प्रस्ताव उपस्थित किया कि: "प्रस्ताव पर अब मत लिया जाये।" उनका यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। तत्पश्चात् संबंधित मंत्री ने वाद-विवाद का उत्तर दिया (हालांकि इसका उत्तर अगले दिन तक भी चलता रहा)।[101]

> हिन्दू विवाह और विवाह-विच्छेद विधेयक, 1952 को संयुक्त समिति को सौंपे जाने के प्रस्ताव पर लगभग दस घंटे चर्चा की गई थी। एक सदस्य ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि : "प्रस्ताव पर अब मत लिया जाये।" सभापति ने प्रस्ताव पर मत लेने से पूर्व यह टिप्पणी की कि लगभग सभी विचारों को व्यक्त किया जा चुका है। तत्पश्चात् उन्होंने प्रस्ताव पर मत लिया। उस प्रस्ताव का समर्थन करने वाले सदस्यों की गणना करने के बाद वह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। तत्पश्चात् मंत्री ने उत्तर दिया।[102]

दूसरी पंचवर्षीय योजना में "सार्वजनिक सहयोग" को सूचीबद्ध किये जाने संबंधी गैर-सरकारी सदस्य के एक संकल्प पर चर्चा चल रही थी। मध्याह्न पश्चात् 5.00 बजे से 5 मिनट पहले एक सदस्य ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि: "प्रस्ताव पर अब मत लिया जाये।" प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव उपस्थित करने वाले सदस्य ने इसका उत्तर भी दिया। उसके बाद, संकल्प सभा की अनुमति से वापस लिया गया।[103]

युवाओं के लिए एक स्थायी बोर्ड का गठन किये जाने से संबंधित गैर-सरकारी सदस्य के एक संकल्प के बारे में एक सदस्य ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि : "प्रस्ताव पर अब मत लिया जाए।" प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ। चर्चा जारी रही।[104]

वाद-विवाद की परिसीमा

जब कभी किसी विधेयक के संबंध में किसी प्रस्ताव पर या अन्य किसी प्रस्ताव पर वाद-विवाद अनुचित रूप से लंबा हो जाए, तो सभापति सभा की राय मालूम करने के बाद वाद-विवाद समाप्त करने का समय नियत कर सकेगा।[105]

जब तक वाद-विवाद समय से पूर्व समाप्त न हो गया हो, तब तक सभापति किसी विधेयक या प्रस्ताव विशेष पर चर्चा करने या उसे पारित करने के लिए निर्धारित समय-सीमा के अनुसार, नियत समय पर तुरन्त ऐसे समस्त प्रस्तावों पर मत लेता है जो मूल प्रस्ताव पर सदन के निर्णय का निश्चय करने के लिए आवश्यक हो।[106]

विशेष विवाह विधेयक, 1952 पर तीन दिन तक चर्चा चली थी। 4 मई, 1954 को, उपसभापति उस समय विद्यमान नियम 207 (वर्तमान नियम 245 के तत्समान नियम) के अधीन विधेयक पर वाद-विवाद को समाप्त करना चाहते थे। परन्तु उन्होंने सदन की राय जानने के बाद जब यह देखा कि बहुत से सदस्य वाद-विवाद को जारी रखना चाहते हैं तो वाद-विवाद जारी रहा।[107]

निर्णय के लिए प्रश्न

जिस विषय पर सदन का निर्णय अपेक्षित हो, उसका निर्णय सदस्य द्वारा किए गए प्रस्ताव पर सभापति द्वारा मत लेकर किया जाता है।[108] प्रस्ताव उपस्थित किए जाने के बाद, सभापति औपचारिक रूप से प्रस्ताव को सदन के विचारार्थ प्रस्तुत करता है। प्रस्ताव पर वाद-विवाद की समाप्ति पर, वह प्रस्ताव को सदन के समक्ष निर्णय के लिए इस प्रकार रखता है: "प्रस्ताव यह है कि '......' (यहां सभापति, सदस्य द्वारा उपस्थित किए गए प्रस्ताव को उन्हीं शब्दों में दुहराता है)। जो प्रस्ताव के पक्ष में हैं वे "हां" कहेंगे जो प्रस्ताव के विरुद्ध हैं, वे "ना" कहेंगे।" यदि किसी प्रस्ताव में दो या उससे अधिक अलग प्रस्ताव हों तो सभापति द्वारा उन्हें अलग-अलग प्रस्तावों के रूप में उपस्थित किया जाए।[109]

जब तक सभापति द्वारा प्रस्ताव उपस्थित न कर दिया गया हो और सदन में वह प्रस्ताव सभा की सम्पत्ति नहीं बन जाए तथा प्रस्तावकर्त्ता के भाषण की समाप्ति के उपरांत प्रस्ताव उपस्थित न कर दिया जाए, तब तक उस प्रस्ताव पर कोई वाद-विवाद नहीं हो सकता।

एक बार एक मंत्री ने एक विधेयक पर संयुक्त समिति के प्रतिवेदन को प्रस्तुत करने के संबंध में समय बढ़ाने के लिए एक प्रस्ताव उपस्थित किया। इसके तुरंत बाद ही प्रस्ताव पर कुछ सदस्यों तथा प्रधान मंत्री के भाषण हो गए। उस पर सभापति ने यह टिप्पणी की :

> यहां पर दिए गए सभी भाषण पूर्णत: असंगत हैं क्योंकि मैंने सदन के समक्ष प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया है।[110]

जब तक, विशेष रूप से नियमों के अधीन प्रावधान न किया गया हो अथवा सदन में इस संबंध में कोई सहमति न हो गई हो तब तक कोई प्रस्ताव, सामान्यत: सदन के निर्णय के लिए प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

कई अवसरों पर, सदन ने कार्य मंत्रणा समिति की संस्तुति अथवा सभा के मतैक्य से बिना चर्चा किए ही विधेयक पारित किए हैं।

जब किसी सदस्य के निलंबन के आशय का प्रस्ताव उपस्थित करके उसे निलंबित कर दिया जाता है तो उस प्रस्ताव पर किसी प्रकार के वाद-विवाद की अनुमति नहीं है।[111]

किसी प्रस्ताव पर सभापति द्वारा "हां" और "ना" दोनों प्रकार के मत ले लेने के बाद, किसी भी सदस्य को उस प्रस्ताव पर बोलने की अनुमति नहीं है।[112]

सभापटल पर पत्रों का रखा जाना

मंत्रियों द्वारा पत्रों का रखा जाना

सभापटल पर पत्र, संविधान के विशिष्ट उपबंध, संसद् के परिनियमों, प्रक्रिया संबंधी नियमों अथवा उसके संबंध में प्रचलनों तथा परम्पराओं के अनुपालन स्वरूप रखे जाते हैं। कार्य-विन्यास से संबंधित अध्याय 15 में ऐसे अनेक प्रकार के पत्र सूचीबद्ध हैं जो संसद् में प्रस्तुत किए जाते हैं।

यदि कोई मंत्री सदन में किसी डिस्पैच या अन्य राज्य के पत्र (स्टेट पेपर) का उल्लेख करता है जिसे सदन में उपस्थित न किया गया हो, तो उसके लिए वह संबंधित पत्र सभा पटल पर रखना आवश्यक है।[113] तथापि, यह नियम ऐसे दस्तावेजों पर लागू नहीं होता है जिनके लिए मंत्री ने यह कहा हो कि उनकी प्रकृति इस प्रकार की है कि उन्हें प्रस्तुत करना लोक हित में असंगत होगा।[114]

डा. के. एन. काटजू, गृह तथा राज्य (स्टेट्स) मंत्री ने भारतीय प्रशासनिक सेवा (भर्ती) नियम, 1954 संशोधन संबंधी प्रस्ताव पर अपने भाषण के दौरान सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा लिखे गये व्यक्तिगत पत्र का कुछ वह अंश पढ़ा जो उस मामले से संबंधित था जिस पर चर्चा हो रही थी। व्यवस्था के प्रश्न के आधार पर किसी सदस्य ने यह मांग की कि उक्त पत्र सभापटल पर रखा जाये। मंत्री ने कहा कि यह लोकहित में नहीं होगा कि कोई व्यक्तिगत पत्र सभापटल पर रखा जाए। उस पर उपसभापति ने यह व्यवस्था दी कि यद्यपि उक्त पत्र व्यक्तिगत है, तथापि राज्य (स्टेट) के मामले से किसी सीमा तक संबंधित भी है, लेकिन चूंकि मंत्री ने यह कहा है कि इसे सभापटल पर रखना लोकहित में नहीं होगा तो इस पर नियम 211 (पुराना) का प्रथम परन्तुक लागू होगा और इसलिए इसे सभापटल पर रखने की आवश्यकता नहीं है।[115]

वित्त मंत्रालय में राज्य मंत्री ने एक प्रश्न के उत्तर में कंपनी लॉ बोर्ड की रिपोर्ट में से उद्धृत किया था। उस पर यह मांग की गई कि नियम 249 के अधीन उक्त रिपोर्ट सभापटल पर रखी जाए। उसके लिए सभापति ने मंत्री को रिपोर्ट सभापटल पर रखने का निर्देश दिया था। बाद में, मंत्री ने रिपोर्ट सभापटल पर रखी थी।[116]

राजघाट पर सुरक्षा संबंधी चूकों की ओर ध्यान दिलाये जाने के प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान, सबंधित मंत्री ने कराची स्थित भारतीय कंसुल जनरल की टिप्पणी उद्धृत की थी। यह टिप्पणी एक तार द्वारा विदेश मंत्रालय में प्राप्त हुई थी। यह मांग की गई कि तार को सभापटल पर रखा जाए। संबंधित मंत्री का कहना था कि वैसा करना जनहित में नहीं होगा। स्थिति की वास्तविकता को जानने के लिए, सभापति ने तार की एक प्रति मंगवा कर पढ़ी और यह निर्णय दिया कि चूंकि उस तार में कंसुल जनरल की टिप्पणी के अतिरिक्त अन्य बातें भी थीं, अत: उसको प्रकट करना जनहित में नहीं होगा। सभापति ने इस मामले में उद्धृत पत्रों को सभापटल पर रखने से बचाने से संबंधित नियम 249 के परन्तुक को लागू किया और मंत्री की बात को सही ठहराया।[117]

19 सितंबर, 1963 को एक मुख्य मंत्री के विरुद्ध आरोपों की जांच से संबंधित एक प्रश्न के उत्तर में प्रधान मंत्री, श्री जवाहरलाल नेहरू ने (कांग्रेस पार्टी की) एक उप-समिति जिसे (कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा) आरोप सौंपे गए थे, के प्रतिवेदन का उल्लेख किया था। कुछ सदस्यों ने मांग की कि उस प्रतिवेदन को सभापटल पर रखा जाए। प्रधान मंत्री ने बताया कि प्रतिवेदन उनकी अभिरक्षा में नहीं है। अगले दिन यहीं मांग पुन: की गई। प्रधान मंत्री ने, विशेषकर जबकि वह प्रतिवेदन समाचार पत्रों में छप चुका था और उन्हें उसे सदस्यों को दिखाने में कोई आपत्ति नहीं थी, इस मामले को सभापति के निर्णय के लिए छोड़ दिया। सभापति ने निर्णय दिया कि वह प्रधान मंत्री को प्रतिवेदन को सभापटल पर रखने के लिए नहीं कहेंगे क्योंकि इससे एक गलत पूर्वोदाहरण स्थापित होगा और प्रतिवेदन पहले ही छप चुका है और वह एक सार्वजनिक दस्तावेज बन चुका है। उनका मानना था कि पुराने नियम 211 की दृष्टि से वह प्रतिवेदन न तो कोई डिस्पैच था न कोई राज्य पत्र। तत्पश्चात्, प्रधान मंत्री ने स्पष्ट किया कि वह उस पत्र को सभापटल पर रखने के मार्ग में कोई बाधा खड़ी नहीं कर रहे थे। तब सभापति ने कहा कि उन्होंने उस पत्र को सभापटल पर रखने में प्रधान मंत्री की तत्परता पर विचार किया है, परन्तु वह प्रधान मंत्री को उस पत्र को सभापटल पर रखने के लिए नहीं कहेंगे क्योंकि वह कोई पूर्वोदाहरण स्थापित करना नहीं चाहते हैं।[118]

लेफ्टिनेंट जनरल कौल की पुस्तक "दि अनटोल्ड स्टोरी" से संबंधित एक तारांकित प्रश्न के अनुपूरक प्रश्नों के दौरान, एक सदस्य ने जानना चाहा कि क्या रक्षा मंत्री, जिन्हें यह प्रश्न संबोधित किया गया था, "नेफा" में पराजय पर जनरल हिंडरसन के प्रतिवेदन को सभापटल पर रखने के लिए तैयार हैं। मंत्री ने बताया कि उस प्रतिवेदन को प्रकाशित करना जनहित में नहीं होगा। एक अन्य सदस्य ने औचित्य का प्रश्न उठाया कि यदि मंत्री उस प्रतिवेदन को सभापटल पर रखने से बचने के लिए सभापीठ का आश्रय लेना चाहते हैं तो उन्हें (मंत्री जी को) प्रतिवेदन को सभापटल, पर न रखने की अनुमति सभापति से लेनी होगी। सभापति ने टिप्पणी की : "... सरकार को मेरी अनुमति के बिना भी यह आग्रह करने का अधिकार है कि पत्रों को सभापटल पर रखना जनहित में नहीं है। परन्तु, उस स्थिति में सभा के सुचारु कार्यकरण के लिए सरकार को वैसा आग्रह सभापीठ के परामर्श से ही करना चाहिए।"[119]

जिस समय मंत्री ऐसे डिस्पैच या राज्य पत्र का संक्षेप या सारांश अपने शब्दों में प्रस्तुत कर देता है तो उस समय संगत पत्रों को सभापटल पर रखना आवश्यक नहीं है।[120]

ध्यान दिलाये जाने की एक चर्चा का उत्तर देते हुए मंत्री ने दो-तीन पत्रों को उद्धृत किया था। एक सदस्य ने औचित्य का प्रश्न उठाकर उन पत्रों को सभापटल पर रखने की मांग की। उपसभापति ने निर्णय दिया कि नियम 249 के परन्तुक के अधीन मंत्री ने जो कुछ कहा वह मंत्री के मुख्य वक्तव्य में भी सम्मिलित था और, इसलिए, उन पत्रों को सभापटल पर रखना आवश्यक नहीं है।[121]

मंत्रियों के बीच हुए पत्राचार का सभापटल पर रखा जाना

जुलाई-अगस्त, 1978 में हुए राज्य सभा के सत्र में बार-बार यह मांग की गई कि प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई और तत्कालीन गृह मंत्री श्री चरण सिंह के बीच हुए उस

पत्राचार को सभापटल पर रखा जाए जो एक-दूसरे के परिवार के सदस्यों पर भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में था। 19 जुलाई, 1978 को इस विषय पर ध्यान दिलाये जाने की चर्चा का उत्तर देते हुए, प्रधान मंत्री ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की कि यह एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि मंत्रियों के बीच होने वाला पत्राचार विशेषाधिकार वाले पत्राचार होते हैं। यह मंत्रियों के बीच विचारों के स्वतंत्र और बेलगाम आदान-प्रदान के लिए अत्यंत आवश्यक है और इसे 'मे' की पुस्तक "पार्लियामेंटरी प्रेक्टिस" में भी मान्यता दी गई है। प्रधान मंत्री ने यह भी कहा कि वह सरकारी कामकाज के निष्पादन में इस सिद्धांत का अनुपालन करने का विचार रखते हैं।[122]

पत्रों को सभापटल पर रखने की निरंतर मांग और शोर-शराबे के कारण कई दिन तक सभा के समय से पहले स्थगित होते रहने के पश्चात् सभापति ने निम्नलिखित घोषणा की :

> "सदस्यों को स्मरण होगा कि 24 जुलाई, 1978 को मैंने इस सभा को सूचित किया था कि प्रधान मंत्री और पूर्व गृह मंत्री श्री चरण सिंह के बीच हुए पत्राचार को सभा पटल पर रखने से संबंधित मामले का कोई हल मैं ढूढूंगा। जैसाकि आप जानते हैं, मैंने इस मामले पर सभा के नेता, विपक्ष के नेता तथा सभा में अन्य ग्रुपों और दलों के नेताओं के साथ बातचीत की है। इसलिए, इस मामले के प्रति विपक्षी दलों की तीव्र भावनाओं से मैं अवगत हूं। 24 तारीख को सभा में दिये गये अपने वचन के पश्चात्, मैंने सभा के नेता से संपर्क स्थापित किया था और इस मामले पर विस्तार से बातचीत की थी।
>
> मैंने सरकार को यह परामर्श दिया है कि बेहतर होगा कि यदि सरकार इस पत्राचार को विपक्ष के नेता और हमारी बैठकों में भाग लेने वाले सभा के अन्य दलों और ग्रुपों के नेताओं के अवलोकन के लिए सभापति के कक्ष में रख दे। उक्त पत्राचार के अवलोकन की औपचारिक पद्धति वही होगी जो दिसंबर, 1974 में आयात लाइसेंस के मामले में अपनाई गई थी। सरकार मेरे सुझाव पर सहमत हो गई है। मुझे आशा है कि सभा के सभी सदस्य इससे संतुष्ट होंगे।"[123]

तथापि, यह मामला सभा में उठाया जाता रहा। पहले यह मांग की जाती रही कि पत्राचार को सभापटल पर रखा जाए और उसके पश्चात् इस विषय में अनियत-दिन-वाला प्रस्ताव स्वीकृत किये जाने का आग्रह किया जाता रहा।[124] जहां तक इस पत्राचार को सभापटल पर रखने का संबंध था, 3 अगस्त, 1978 को सभापति ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

> इस सभा में दो मुद्दे उठाए गए। पहला मुद्दा कुछ सदस्यों द्वारा प्रधान मंत्री और पूर्व गृह मंत्री श्री चरण सिंह के बीच हुए पत्राचार को सभापटल पर रखने के संबंध में दिये गये प्रस्तावों की सूचना से संबंधित था। सदस्यों को इस बात की जानकारी है कि यह मामला इस सत्र के आरंभ होने की तारीख अर्थात् 17 तारीख से ही इस सभा में वस्तुतः उठाया जाता रहा है। 27 जुलाई, 1978 को मैंने अपने इस निर्णय की घोषणा की थी कि राज्य सभा में विभिन्न दलों, ग्रुपों के नेता और कुछ अन्य सदस्य उक्त पत्राचार का अवलोकन सभापति के कक्ष में कर सकते हैं। मैंने यह घोषणा, हमारी बैठक में भाग लेने वाले सभी नेताओं से परामर्श करने के बाद की; उसके पश्चात् मैंने इस मामले में घोषणा की और सभा ने इसे स्वीकार कर लिया था और इसका किसी ने भी विरोध नहीं किया था। इस बात को ध्यान में रखते हए, मेरा यह विचार है कि उक्त पत्राचार को सभापटल पर रखने के संबंध में इन सदस्यों द्वारा उक्त प्रस्तावों की सूचनाओं के माध्यम से की गई मांग का प्रश्न नहीं उठता।[125]

पांडिचेरी लाइसेंस मामले के संबंध में सी.बी.आई. के प्रतिवेदन का सभापटल पर रखा जाना

इससे पहले भी आयात लाइसेंस के मामले का उल्लेख किया गया है। यह भारतीय संसद् के प्रक्रियागत इतिहास में एक ऐतिहासिक पूर्वोदाहरण है और इसके बाद में, जब

कभी भी उस जैसे या लगभग उस जैसे अवसर आए हैं, तब इस मामले में अपनाई गई प्रक्रिया का ही हमेशा संदर्भ दिया गया है। इसलिए, यहां पर इसका और विस्तार से उल्लेख किया जा रहा है।[126]

13 अगस्त, 1974 को पूछे गये तारांकित प्रश्न सं 380 के अनुपूरक प्रश्न के रूप में यह मामला प्रकाश में तब आया जब एक सदस्य ने इस बात का उल्लेख किया कि संसद् के कतिपय सदस्य यह कह रहे हैं कि पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र में यनम और माही में कतिपय फर्मों को लाइसेंस देने की सिफारिश करते हुए एक पत्र पर उनके जाली हस्ताक्षर किए गए हैं।[127] इसके बाद एक ऐसी रिपोर्ट के आधार पर 27 अगस्त, 1974 को एक प्रश्न (तारांकित प्रश्न 730) पूछा गया। प्रश्न के उत्तर में वाणिज्य मंत्री ने मामले में लिप्त सदस्यों के नाम और जिन-जिन फर्मों को लाइसेंस जारी किए गए थे, उनके नाम बताए। उपसभापति ने मंत्री को सदस्यों के हस्ताक्षरों की जांच करने का निदेश दिया। उसी शाम को मंत्री ने यह कहते हुए एक वक्तव्य दिया कि 18 सदस्यों ने मुझसे कहा था कि उनके नाम से जाली हस्ताक्षर किए गए हैं।[128] 11 सितंबर, 1974 को सदन ने 27 अगस्त, 1974 के प्रश्न से उत्पन्न सभी मामलों की जांच करने के लिए एक संसदीय समिति की नियुक्ति चाहने वाले प्रस्ताव पर चर्चा की। परंतु मत-विभाजन द्वारा प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।[129] फिर भी सदस्य इस मामले के संबंध में अपनी बात कहते रहे।

जब 4 दिसंबर, 1974 को विपक्ष के कतिपय सदस्यों ने सरकार से यह चाहा कि वह इस मामले में केन्द्रीय जांच ब्यूरो का प्रतिवेदन सभापटल पर रखे, तो तब गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री इस बारे में इस आधार पर सहमत नहीं हुए कि केन्द्रीय जांच ब्यूरो का प्रतिवेदन एक गोपनीय तथा संवेदनशील दस्तावेज है, जोकि इसे सभा पटल पर न रखा जाना ज्ञात परम्परा के विरुद्ध है और कि इसे सभा पटल पर रखा जाना लोक हित के लिए प्रतिकूल होगा। उन्होंने अपने समर्थन में सभापति (डा. ज़ाकिर हुसैन) द्वारा दिए गए विनिर्णय को उद्धृत किया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा गया है, उपरोक्त व्यवस्था को भी उद्धृत किया। "इस मामले में मैंने सरकार से सलाह भी ली है। सरकार सी.बी.आई. की रिपोर्ट एवं कैबिनेट उपसमिति के जांच परिणामों को सभापटल पर रखने के लिए प्रस्ताव नहीं करती क्योंकि उसकी राय में ये गुप्त एवं गोपनीय दस्तावेज हैं और यह उसका विशेषाधिकार है। इन परिस्थितियों में, मैं सरकार द्वारा इन दस्तावेजों को सभापटल पर रखने के लिए आग्रह नहीं कर पाऊंगा। उपसभापति ने कहा: "मैं डा. जाकिर हुसैन की व्यवस्था का पालन करता हूं और मैं उसके विरुद्ध नहीं जा सकता।"[130]

इस विलंबित मुद्दे का समाधान करने के लिए उपसभापति ने यह सुझाव दिया कि "इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस मामले में कोई भी पूर्वोदाहरण स्थापित नहीं किया जाएगा और न ही इस सदन में दिए गए किसी विनिर्णय का उल्लंघन किया जाएगा, सरकार को सभी विपक्षी गुटों के सभी नेताओं और संसदीय कार्य मंत्री आदि को भी बुलाए जाने की संभावना पर विचार करना चाहिए और कि केन्द्रीय जांच ब्यूरो का प्रतिवेदन सभापति

को सौंपा जा सकता है और कि वे सभी नेतागण गोपनीयता की शपथ लेकर इस प्रतिवेदन का अध्ययन कर सकते हैं ताकि वे किसी बात को प्रेस के लोगों के समक्ष प्रकट न करें।[131]

9 दिसंबर, 1974 को प्रधान मंत्री, श्रीमती इंदिरा गांधी ने केन्द्रीय जांच ब्यूरो का प्रतिवेदन सभापटल पर रखे जाने के कारणों को स्पष्ट करते हुए सदन में एक वक्तव्य दिया; परन्तु यह भी कहा कि "किए जा रहे पूर्णतः अन्यायपूर्ण प्रचार को ध्यान में रखते हुए और विपक्ष की भावनाओं का आदर करते हुए तथा विधिक औचित्य बनाए रखते हुए," सरकार यह सुझाव स्वीकार करने को तैयार है कि विपक्ष के नेता विश्वास और गोपनीयता की शपथ लेते हुए, केन्द्रीय जांच ब्यूरो के प्रतिवेदन, साक्षियों द्वारा दिए गए बयानों और जांच के दौरान जब्त किए गए प्रलेखों, हस्त-लेख विशेषज्ञ की रिपोर्ट और यहां तक कि उन "केस डायरीज़" का भी अवलोकन कर सकते हैं, जिन्हें अभियुक्त तक को भी नहीं दिखाया जाता।[132]

10 दिसंबर, 1974 को सभापति ने कहा कि वे विभिन्न राजनीतिक दलों से परामर्श करेंगे और इस प्रयोजनार्थ बैठक के लिए तिथि निर्धारित करेंगे। सभा के निर्णय का महत्व सभापति की इन टिप्पणियों में प्रतिबिम्बित होता था: "वास्तव में, मुझे यह कहना है कि इसका श्रेय इस सभा को मिलना चाहिए। हमने बहुत अच्छा कार्य किया है और यह अत्यंत अच्छे वातावरण में होगा।"[133]

राष्ट्रपति तथा प्रधान मंत्री के बीच हुए पत्राचार को सभापटल पर रखना

सदन में उस पत्र पर चर्चा की मांग की गई, जिसके समाचार पत्र में प्रकाशित मूल-पाठ के आधार पर ऐसा आभास मिलता है कि यह पत्र राष्ट्रपति द्वारा प्रधान मंत्री को लिखा गया है। सभापति ने चर्चा किए जाने की अनुमति नहीं दी और इस विषय पर विस्तृत व्यवस्था दी। उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है कि राष्ट्रपति तथा प्रधान मंत्री के बीच हुए पत्राचार की गोपनीयता लोकतंत्र तथा राष्ट्र के व्यापक हित में बनाई रखी जाए।[134]

राज्य के पत्राचार को सभापटल पर रखना

गुजरात में हुई हिंसा की घटनाओं के संबंध में एक प्रश्न पर पूछे गये विविध प्रश्नों के दौरान संबंधित मंत्री ने बताया कि उन्होंने इस बारे में गुजरात के मुख्य मंत्री को लिखा है और मुख्य मंत्री ने इसका उत्तर भी दे दिया है। एक सदस्य यह जानना चाहते थे कि क्या मंत्री महोदय उस उत्तर को सभापटल पर रखेंगे। गृह मंत्री ने कहा कि उन्हें इसे सभा पटल पर रखने की कोई आवश्यकता नजर नहीं आती। सभापति महोदय ने भी कहा कि यह पत्राचार सभापटल पर नहीं रखा जा सकता।[135]

किसी प्रतिवेदन के संसदीय ग्रंथालय में रखे जाने को सभापटल पर रखा गया माना जाना

16 मार्च, 1981 को, एक सदस्य ने उपसभापति द्वारा 11 मार्च, 1981 को दिए गए निदेश का उल्लेख किया कि स्वर्ण नीलामी संबंधी पुरी समिति का प्रतिवेदन न केवल ग्रंथालय

में रखा जाए बल्कि दोनों सभाओं के पटल पर भी रखा जाए। वित्त मंत्री, श्री वेंकटरामन ने स्पष्ट किया था कि क्योंकि प्रतिवेदन के कुछ अप्राधिकृत पाठ लीक होने शुरू हो गए थे, इसलिए प्रतिवेदन को तुरंत ग्रंथालय में रखवा दिया गया क्योंकि सभा पटल पर रखे जाने के लिए इतनी अधिक प्रतियां तैयार करने में समय लगता।

जब उपसभापति ने यह टिप्पणी की कि सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए ऐसा करना पर्याप्त था, तो एक सदस्य ने प्रतिवेदन को सभापटल पर रखे जाने की मांग की, ताकि उस पर चर्चा की जा सके। इस पर उपसभापति ने कहा कि "एक बार ग्रंथालय में प्रतिवेदन रखे जाने पर, सदस्य वहां इसे देख सकते हैं। यह प्रतिवेदन को सभापटल पर रखने जैसा ही है।"

एक अन्य सदस्य ने यह इंगित किया कि इसे सभापटल पर रखने और ग्रंथालय में रखे जाने के बीच एक गुणात्मक भेद है। उन्होंने कहा कि प्रतिवेदन को सभापटल पर रखने में प्रामाणिकता है क्योंकि ऐसे में कोई उसके लिए उत्तरदायी होता है। सदस्यों द्वारा लगातार मांग किए जाने पर वित्त मंत्री ने कहा कि वह सभापीठ के निदेश का पालन करेंगे। वहां व्यवधान जारी रहा और उपसभापति ने सभा को आश्वासन दिया कि जब मंत्री के पास प्रतिवेदन की पर्याप्त प्रतियां मौजूद होंगी, वह उन्हें सभापटल पर रखेंगे।[136]

सभापटल पर पत्र को रखने की सक्षमता

सरकार इस बात का निर्णय करती है कि कौन-सा प्रतिवेदन या पत्र सभापटल पर रखा जाना है। जब कभी भी सदस्यों ने किसी ऐसे प्रतिवेदन या पत्र को सभापटल पर रखे जाने का अनुरोध किया है तब सभापति ने सरकार को किसी भी प्रकार का कोई निर्देश देने से इनकार किया है।

जब एक मंत्री महोदय एक विधेयक को प्रवर समिति को सौंपे जाने के लिए एक प्रस्ताव उपस्थित कर रहे थे तब एक औचित्य प्रश्न उठाया गया था कि विशेषज्ञ समिति के उस प्रतिवेदन को सभापटल पर रखा जाए जिसका विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों तथा कारणों के कथन में उल्लेख किया गया था। उपसभापति ने यह कहते हुए उस औचित्य-प्रश्न के विरुद्ध व्यवस्था दी कि वह उक्त प्रतिवेदन को प्रस्तुत करने के लिए सरकार को विवश नहीं कर सकते।[137]

सदन को ठक्कर आयोग के उस प्रतिवेदन पर चर्चा करनी थी जिसे 27 मार्च, 1989 को सभापटल पर रखा गया था। मुद्दा यह था कि अंतरिम तथा अंतिम प्रतिवेदन, जो सभा पटल पर रखे गये हैं, क्या पूर्ण प्रतिवेदन हैं या क्या सरकार ने उसके कुछ अंश रोक लिए हैं। सरकार द्वारा अन्य संबंधित प्रपत्रों को सभा पटल पर रखे जाने से इंकार किए जाने पर विपक्ष ने चर्चा में भाग न लेने का निर्णय लिया था। सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह व्यवस्था दी थी कि जो राय महान्यायवादी ने सरकार को दी है और जो उन तक सरकार द्वारा प्रेषित की गई है उसके संबंध में वह इस मामले में सरकार को किसी प्रकार का निदेश जारी करने की स्थिति में नहीं है।[138]

स्वास्थ्य मंत्री द्वारा श्री जयप्रकाश नारायण के उपचार से संबंधित अंतरिम प्रतिवेदन को सभापटल पर नहीं रखा गया था, यद्यपि इसे सभापटल पर रखने के लिए कार्यावलि में दर्ज किया गया था। मंत्री ने उक्त प्रतिवेदन को सभापटल पर न रखे जाने के कारणों को स्पष्ट करने के लिए सदन के समक्ष एक वक्तव्य दिया था।[139]

रेल तथा परिवहन उप मंत्री ने दिल्ली सड़क परिवहन प्राधिकरण अधिनियम, 1950, जिसे औपचारिक रूप से लागू नहीं किया गया था, के अधीन एक अधिसूचना की एक प्रति सभापटल पर रखने की अनुमति चाही थी। एक सदस्य द्वारा औचित्य-प्रश्न उठाये जाने से पूर्व सभा के नेता ने स्वत: यह बात उठाई कि सदन द्वारा पिछले दिन लिए गए इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए कि इस अधिनियम के अधीन की गई कार्यवाही की वैधता के लिए एक नया विधान बनाया जाना आवश्यक है, अधिसूचना को सभापटल पर नहीं रखा जा सकता। इसीलिए, अधिसूचना को सभापटल पर नहीं रखा गया।[140]

पूर्वी पाकिस्तान से अल्पसंख्यकों के निष्क्रमण किए जाने संबंधी एक तारांकित प्रश्न के अनुपूरक प्रश्नों का जवाब देते समय संबंधित मंत्री ने कहा था कि सरकार द्वारा नियुक्त की गई समिति का प्रतिवेदन प्राप्त हो जाने के पश्चात् इस बात पर विचार किया जाएगा कि उस प्रतिवेदन को सभापटल पर रखा जा सकेगा या नहीं। एक सदस्य ने यह तर्क दिया कि प्रश्न को सभापटल पर रखा जाना चाहिए या नहीं, इस बात को सरकार की स्वेच्छा पर नहीं छोडा जाना चाहिए किन्तु इसका विनिर्णय तो सभापति द्वारा ही किया जाएगा। सभा के नेता (श्री एम.सी. छागला) ने स्पष्ट किया कि संविधान में यह स्थिति है कि यदि संसद् किसी समिति को नियुक्त करती है कि उसका प्रतिवेदन सभापटल पर रखा जाना चाहिए; किन्तु यदि सरकार किसी समिति को नियुक्त करती है तो सरकार के लिए उस समिति के प्रतिवेदन को सभापटल पर रखना अनिवार्य नहीं है। प्रतिवेदन की प्राप्ति के पश्चात सरकार उसका अध्ययन करेगी कि क्या उसमें ऐसा कुछ है जिससे देश की सुरक्षा अथवा इसके अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है और फिर यह विनिर्णय करेगी कि क्या उस प्रतिवेदन को सभापटल पर रखा जा सकता है या नहीं। सभापति ने सभा के नेता की राय पर अपनी सहमति व्यक्त की।[141]

जब महाराष्ट्र-मैसूर-केरल सीमा विवाद संबंधी आयोग के प्रतिवेदन को सभापटल पर रखा जा रहा था तब कई मुद्दे उठाए गए थे कि प्रतिवेदन को सभापटल पर नहीं रखा जा सकता क्योंकि यह प्रतिवेदन न तो सदन के किसी विनिर्णय के अनुसरण में है और न ही सदन द्वारा नियुक्त किसी समिति के परिणामस्वरुप प्रस्तुत किया जा रहा है। यह तर्क दिया गया कि यह प्रतिवेदन असंबद्ध दस्तावेज है। एक अन्य तर्क यह दिया गया था कि वह प्रतिवेदन काल-बाधित प्रतिवेदन था और उसे सभापटल पर नहीं रखा जाना चाहिए। उपसभापति ने नियम 249 तथा 250 का उल्लेख किया जिनको उस सदस्य ने अपने पहले तर्क के समर्थन में उद्धृत किया था और यह कहा था, नियम 250 उन सभी दस्तावेजों से संबंधित है जो किसी भी नियम या प्रक्रिया अथवा पूर्वोदाहरण के अधीन सभापटल पर रखे गये हों। सभी दस्तावेज सभापटल पर एक बार रख दिए जाने के पश्चात् सार्वजनिक दस्तावेज बन जाते हैं। तत्पश्चात् वे सदस्यों के लिए उपलब्ध होते हैं, उन्हें समाचार पत्रों में प्रकाशित किया जा सकता है और जनता द्वारा उसका मनचाहे रूप में उपयोग किया जा सकता है। सदन में यह सामान्य प्रथा रही है कि दस्तावेजों अथवा प्रतिवेदनों को सामान्यत: मंत्रियों द्वारा सभापटल पर रखा जाता है। प्रथा यह रही है कि यदि सरकार किसी दस्तावेज को सभापटल पर रखना चाहती है तो सभापति की अनुमति से वह ऐसा कर सकती है और ऐसा वह कर करती रही है। जहां तक समय-सीमा का संबंध है, सभापटल पर दस्तावेजों के रखे जाने के लिए किसी प्रकार की कोई समय-सीमा विहित नहीं की गई है। अत: प्रतिवेदन काल-बाधित नहीं हुआ है।[142]

महासचिव द्वारा सभापटल पर पत्रों का रखा जाना

एक पूर्ववर्ती अध्याय में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि महासचिव भी समय-समय पर कुछ पत्र सभापटल पर रखता है जैसे राष्ट्रपति का अभिभाषण, राष्ट्रपति द्वारा सहमति प्राप्त विधेयक, इत्यादि।[143]

एक अवसर पर सभापति ने निम्नलिखित घोषणा की थी :

मुझे प्रधान मंत्री के भूतपूर्व विशेष सहायक श्री एम.ओ. मथाई के विरुद्ध लगाए गए कतिपय आरोपों के संबंध में प्रधान मंत्री से एक पत्र और एक टिप्पण प्राप्त हुआ है। कैबिनेट सचिव के प्रतिवेदन

पर वित्त मंत्री और नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की टिप्पणियां भी मेरे पास भेजी गई थीं। मैं सचिव से इन दस्तावेजों की एक-एक प्रति सभापटल पर रखने के लिए कह रहा हूं।

तत्पश्चात् सचिव ने निम्नलिखित पत्र सभापटल पर रखे :

(1) प्रधान मंत्री के पूर्व विशेष सहायक श्री एम.ओ. मथाई के विरुद्ध लगाए गए कतिपय आरोपों के संबंध में प्रधान मंत्री द्वारा सभापति को भेजा गया दिनांक 6 मई, 1959 का पत्र।

(2) उन आरोपों के संबंध में प्रधान मंत्री का टिप्पण।

(3) आरोपों के संबंध में कैबिनेट सचिव के प्रतिवेदन पर वित्त मंत्री और नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की टिप्पणियां।

सभापति ने घोषणा की कि ये पत्र उस दिन सदन के मध्याह्न भोजन के लिए स्थगित होने से पूर्व सदस्यों में परिचालित किए जाएंगे।[144]

सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों का प्रमाणीकरण

सभापटल पर रखा जाने वाला पत्र या दस्तावेज संबंधित मंत्री या सदस्य द्वारा यथाविधि प्रमाणित किया जाता है। यह प्रमाणीकरण मंत्रियों को जारी स्थायी अनुदेशों के अनुसार पत्र के पहले पृष्ठ पर किया जाता है। मंत्री द्वारा रखे जाने वाले पत्र या दस्तावेज के संबंध में कार्यावलि में प्रविष्टि दर्ज की जाती है। गैर-सरकारी सदस्य को कोई पत्र सभापटल पर रखने का अधिकार नहीं होता है, जब तक कि सभापति द्वारा उन्हें वैसा करने की अनुमति न दी गई हो। किसी सदस्य द्वारा प्रमाणीकरण की आवश्यकता केवल तब ही होती है जब उसे पत्र सभापटल पर रखने की अनुमति दी गई हो।

दिन विशेष को सभापटल पर रखे जाने वाले सभी पत्रों अथवा दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां सभा की बैठक शुरू होने से पूर्व सभापटल पर रख दी जाती हैं और बाद में उन्हें संसद् के ग्रंथालय में भेज दिया जाता है।

सभापटल पर पत्र रखने की प्रक्रिया

मंत्रियों द्वारा सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों के अंग्रेजी और हिन्दी दोनों रूपांतरण होना आवश्यक है। जहां सभापति ने पत्र का केवल एक ही रूपांतर रखने की अनुमति दी हो, मंत्री को उसका दूसरा रूपांतर उसके साथ ही में न रखने के कारणों को दर्शाने वाला विवरण भी सभापटल पर रखना पड़ता है।

जब कोई मंत्री किसी पत्र या दस्तावेज को सभापटल पर रखना चाहता है तो संबंधित मंत्रालय उस पत्र की मंत्री द्वारा यथाविधि प्रमाणित अंग्रेजी और हिन्दी की एक-एक प्रति सहित सभी तरह से परिपूर्ण उसी पत्र की हिन्दी और अंग्रेजी की प्रतियां, जिस दिन उस पत्र को मंत्री द्वारा सभापटल पर रखे जाने का प्रस्ताव होता है, उससे कम से कम दो दिन पहले सचिवालय को भेज देता है। विशेष परिस्थितियों में, सभापति, अनुरोध किए जाने पर,

मंत्री को अल्पावधि सूचना के आधार पर पत्र सभापटल पर रखने की अनुमति दे सकता है। यदि वह मंत्री, जिसके नाम पर कार्यावलि में मद दर्ज है, उपस्थित नहीं हो, तो सभापति को पूर्व सूचना देकर मद में दर्ज वह पत्र अन्य मंत्री द्वारा सभापटल पर रखा जा सकता है।

सभापटल पर रखे जाने वाले पत्र को सचिवालय के पास भेजते समय संबंधित मंत्रालय को यह उल्लेख करना आवश्यक होता है कि पत्र किस संविधि के अंतर्गत रखा जाने वाला है और उसे किस तारीख को रखे जाने का प्रस्ताव है। मंत्रालयों से प्राप्त होने के बाद पत्रों की सचिवालय में इस बात की जांच की जाती है कि वे उन सांविधिक आवश्यकताओं, यदि कोई हों, के अनुरूप हैं या नहीं। यदि यह पाया जाता है कि पत्र को सभापटल पर रखने में विलंब हुआ है तो संबंधित मंत्री को उस पत्र के साथ, पत्र को सभापटल पर रखने में हुए विलंब के कारणों को दर्शाने वाला विवरण, अंग्रेजी और हिन्दी दोनों में सभा पटल पर रखना अपेक्षित होता है। यह विवरण भी संबंधित मंत्री द्वारा यथाविधि प्रमाणित होना आवश्यक होता है।

यदि मंत्री ने उस तारीख विशेष, जिस दिन वह पत्र सभापटल पर रखना चाहता है, का उल्लेख किया होता है तो उस तारीख की कार्यावलि में उसकी प्रविष्टि कर ली जाती है। यदि किसी तारीख का उल्लेख नहीं किया गया हो, तो सामान्यतः उसकी प्रविष्टि, सदन में उस मंत्री द्वारा प्रश्नों के उत्तर देने के लिए आवंटित आगामी दिन की कार्यावलि में की जाती है। वह प्रविष्टि उस मंत्री के नाम में जाती है जिसने उस पत्र को प्रमाणित किया हो। पत्र पर क्रम संख्या अंकित कर दी जाती है और या उसे शीर्षक दे दिया जाता है और कार्यावलि में उसी का या संक्षेप में विषय का उल्लेख किया जाता है।

सभापटल पर किसी पत्र के रखे जाने का अर्थ यह नहीं होता है कि मंत्री महोदय को सभापटल पर सूचीबद्ध पत्र वास्तव में रखना ही है अथवा उसे अपने हाथों से वहां धरना ही है। इस बारे में प्रक्रिया तो यह है कि उचित प्रकार से अधिप्रमाणित किया गया पत्र पहले से ही सचिवालय में जमा करा दिया जाता है यह पत्र सभापटल पर तभी उपलब्ध कराया जाता है जब मंत्री महोदय औपचारिक रूप से इस बारे में उल्लेख करते हैं कि मैं कार्यावलि में यथा-इंगित पत्र सभापटल पर रखता हूं और कि, तो मंत्री महोदय द्वारा सभापटल पर औपचारिक रूप से पत्र रखे जाने के पश्चात् सदस्यों द्वारा अनुरोध किये जाने पर ही इस प्रकार के पत्र को संदर्भ अथवा अध्ययन के लिए उपलब्ध कराया जाता है।

> एक गैर-सरकारी संकल्प पर अपना भाषण समाप्त करने के पश्चात् कोई सदस्य सभा के पटल तक चला गया और सभापटल पर कोई दस्तावेज रखने की चेष्टा की। जब किसी अन्य सदस्य ने सभापीठ से यह पूछा कि क्या सभापटल पर कोई पत्र रखा जा रहा है, तो उपाध्यक्ष ने टिप्पणी की: "यहां पर अपने हाथों से दिया गया कोई पत्र स्वतः सभापटल पर रखा गया पत्र नहीं हो जाता"।[145]
>
> ऐसे ही एक अन्य अवसर पर किसी सदस्य ने सभापटल पर समाचार-पत्रों संबंधी कुछ सामग्री रखनी चाही जिससे कि वे अभिलेख का भाग बनें। जब उपसभापति ने उस सदस्य से यह टिप्पणी

करते हुए उन्हें वापस ले लेने को कहा: "यदि मैं इसी तरह से पत्र लेता रहूं तो इसके लिए एक पृथक् भंडार-गृह की आवश्यकता पड़ेगी। सभापटल पर पत्रों को रखने का यह कोई तरीका नहीं है।"[146]

वक्तव्य देने के बाद पत्र का रखा जाना

दूसरी पंचवर्षीय योजना के संबंध में योजना आयोग के प्रतिवेदन को प्रस्तुत करते समय प्रधान मंत्री, श्री जवाहरलाल नेहरू ने लंबा भाषण दिया। भाषण के अंत में, सभापति ने टिप्पणी की कि इस प्रतिवेदन को प्रस्तुत करने के लिए प्रधान मंत्री को इतना लंबा-चौड़ा भाषण देने की आवश्यकता नहीं थी। किंतु, फिर भी ऐसा करके उन्होंने सभा का सम्मान ही किया है और इसे लाभान्वित किया है।[147]

इसी प्रकार से प्रधान मंत्री, श्री जवाहरलाल नेहरू ने नेताजी जांच समिति के प्रतिवेदन के संबंध में एक वक्तव्य दिया था तथा इसके पश्चात, सभापटल पर प्रतिवेदन की एक प्रति रखी।[148]

रखे जा रहे पत्र की संवैधानिकता

सभापीठ सभा पटल पर रखे जा रहे किसी पत्र की संवैधानिकता के संबंध में कोई उद्घोषणा नहीं करता।

जब वित्त मंत्रालय में राज्य मंत्री संघ राज्य क्षेत्र पांडिचेरी की संचित निधि में से कतिपय व्यय को प्राधिकृत करने से संबंधित राष्ट्रपति के आदेश को अन्तर्विष्ट करने वाली मंत्रालय की अधिसूचना की एक प्रति सभा के पटल पर रखने ही वाले थे, तभी एक सदस्य ने प्रतिवाद कर दिया कि ऐसा करना असंवैधानिक है। तब सभापति ने यह व्यवस्था दी:

> सभापीठ विभिन्न प्रलेखों की संवैधानिक विधिमान्यता के संबंध में कोई उद्घोषणा नहीं करता। इतना ही नहीं, इस मामले में, इस प्रलेख की संवैधानिक विधिमान्यता न्याय निर्णयाधीन है। सभा पटल पर किसी प्रलेख के रखे जाने का तात्पर्य केवल यह है कि उसकी विषय-वस्तु के बारे में सदस्यों को सूचना प्रदान की जा रही है। इसके अलावा, विधेयक में इस प्रलेख का हवाला भी दे दिया गया है और यह एक ऐसा मामला होगा जिसे वाद-विवाद में भी उल्लिखित किया जा सकता है। इस दस्तावेज को लोकसभा में पहले ही रखा जा चुका है और अब यह एक सरकारी दस्वावेज बन चुका है। मेरी धारणा यह है कि यह प्रलेख इस सभा के पटल पर भी रखा जाएगा।[149]

सभापटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति को सभा पटल पर रखे गए पत्रों की नियमानुसार जांच करने का कार्य सौंपा जाता है। अधीनस्थ विधान संबंधी समिति 'आदेशों' (अर्थात नियम, विनियम आदि) के विभिन्न पक्षों की नियमानुसार संवीक्षा करती है।

सभापटल पर रखे गए पत्रों को सरकारी माना जाना

सभापटल पर रखे गए सभी पत्रों को सरकारी माना जाता है[150] और वे सभा के स्थाई अभिलेख बन जाते हैं। पत्रों को संसद् ग्रंथागार में रखा जाता है तथा इनका उल्लेख सभा की मुद्रित कार्यवाही में किये जाने के साथ-साथ इन पर ग्रंथागार सूचकांक डाला जाता है।

सभापटल पर रखे गए पत्र का परिचालन

सभापटल पर रखे गए पत्रों की प्रतियां सदस्यों को परिचालित की जाती हैं, यदि मंत्री ऐसा चाहें अथवा सदन में इस प्रकार की सामान्य मांग की जाए। जिन पत्रों पर सभा में चर्चा की जाती है जैसे बजट प्रलेख, संघ लोक सेवा आयोग, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

के प्रतिवेदन, अ.जा./अ.ज.जा. आयुक्त आदि निरपवाद रूप से सदस्यों को परिचालित किये जाते हैं।

> एक अवसर पर, प्रधान मंत्री, श्री जवाहरलाल नेहरू ने स्पष्ट किया था कि सरकार द्वारा जीवन बीमा निगम के मामलों की जांच से संबंधित पत्रों को सभापटल पर तत्काल रखना संभव नहीं था लेकिन फिर भी सरकार उनके प्रकाशन को अगले सत्र तक विलंबित रखना नहीं चाहती थी। अत: उन्होंने सभापति से परामर्श लिया था कि क्या सरकार के लिए अगले सत्र की प्रतीक्षा करने के स्थान पर पत्रों को सदस्यों के पास भेजना और फिर उन्हें सभापटल पर रखना संभव होगा। कुछ चर्चा के बाद सभापति ने यह टिप्पणी की थी : "हमारा निष्कर्ष यह है कि सरकार द्वारा इस मामले पर विचार करने और उसके द्वारा कतिपय निर्णयों पर पहुंचने के बाद संघ लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदन और सरकार के निर्णयों को हमारे सचिव के पास भेजा जाएगा जो उन्हें सदस्यों को वितरित करेंगे।"[151]

पत्र को सभापटल पर पुन: रखना

जब संविधान अथवा किसी कानून में यह उपबंध हो कि उनके अधीन जारी किए 'आदेशों' को एक विशेष अवधि में सभा पटल पर रखा जाना चाहिए तो इस कार्य को एक सत्र में पूरा किया जाना अपेक्षित होता है और यदि यह इस तरह पूरा नहीं किया जाता तो 'आदेश' को आगामी सत्र अथवा सत्रों में सभापटल पर पुन: रखना अपेक्षित होता है जब तक कि उक्त अवधि एक सत्र में पूरी न हो जाए। जब 'आदेशों' को अलग-अलग तारीखों पर दोनों सदनों के सभापटल पर रखा जाता है तो उनको सभापटल पर रखे जाने के लिए अपेक्षित अवधि बाद की तारीख से शुरू होती है।

जब किसी कानून में यह उपबंध किया गया हो कि उसके अधीन तैयार किए गए 'आदेशों' को एक निश्चित अवधि में सभापटल पर रखा जाना चाहिए जोकि एक अथवा दो अथवा ज्यादा सत्रों को मिलाकर हो सकती है, तो 'आदेशों' को प्रारंभ में एक सत्र में रखे जाने के बाद उन्हें आगामी सत्रों में रखा गया माना जाता है जब तक कि वह निर्धारित अवधि पूरी होती है और इस प्रकार ऐसा 'आदेश' सभापटल पर रखे जाने की निर्धारित अवधि के पूरा होने के समय में आगामी सत्रों में सभापटल पर औपचारिक रूप से पुन: नहीं रखा जाता है।

एक सत्र के दौरान सभापटल पर रखे गए कानूनी आदेशों की सूची

सचिवालय प्रत्येक सत्र के दौरान साप्ताहिक आधार पर सदस्यों की जानकारी के लिए उस सत्र के दौरान राज्य सभा के पटल पर रखे गए, विधान की प्रत्यायोजित शक्तियों के अधीन बनाए गए कानूनी नियमों और आदेशों की सूची के साथ-साथ कानूनों के उन संगत उपबंधों, जिनके अधीन उन्हें सभापटल पर रखा जाता है तथा सभापटल पर रखे जाने की अवधि और उस अवधि के भीतर उन नियमों और आदेशों में संशोधन किया जा सकता है, को भी प्रकाशित करता है।[152]

संवेदनशील अधिसूचनाओं को सभापटल पर रखा जाना

संवेदनशील अधिसूचनाएं वे अधिसूचनाएं हैं जो प्रतिवर्ष पचास लाख रुपये से अधिक राजस्व वाले निर्यात-शुल्कों, आयात-शुल्कों अथवा उत्पाद-शुल्कों में परिवर्तन करती है। इनमें

उन मामलों को छोड़ दिया जाता है जहां मौजूदा रियायत दी जा रही है।[153] इन अधिसूचनाओं को लोक सभा की अधीनस्थ विधान संबंधी समिति की सिफारिशों के अनुसार समय पर सभा पटल पर रखा जाना अपेक्षित होता है।[154] ऐसी अधिसूचनाओं को सभापटल पर रखने के लिए अनुपूरक कार्य सूची उस दिन सभा के उठने से पूर्व जारी की जाती है ताकि सदस्य अधिसूचनाओं की अन्तर्वस्तु को पहले ही जान सकें।[155]

संसदीय शिष्टमंडल के प्रतिवेदन को सभापटल पर रखा जाना

सभापति और अध्यक्ष ने निम्नलिखित कार्य के लिए 12 अगस्त, 1960 से दस दिन की अवधि के लिए असम राज्य का दौरा करने के लिए नौ सदस्यों वाले एक शिष्टमंडल की नियुक्ति की थी :

(1) वहां स्थिति का मूल्यांकन करना;

(2) सुधार के लिए उपाय सुझाना; और

(3) वहां ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए उपाय सुझाना।

शिष्टमंडल से दोनों सभाओं के पीठासीन अधिकारियों को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने को कहा गया था।[156] समिति के एक सदस्य द्वारा सभापति को प्रतिवेदन भेजा गया था जिन्होंने सदस्यों से सभा के समक्ष प्रतिवेदन रखने को कहा था। तदनुसार, समिति के सदस्यों के पत्रों के साथ प्रतिवेदन को सभापटल पर रखा गया था।[157]

पत्रों की अभिरक्षा

सदन अथवा सदन की किसी समिति या सचिवालय के सभी अभिलेखों, दस्तावेज़ों और पत्रों की अभिरक्षा महासचिव में निहित होती है। जब कोई दस्तावेज़ सदन में प्रस्तुत किया जाता है या सदन की किसी समिति या सचिवालय को भेजा जाता है तब वह सदन के अभिलेखों का अंग बन जाता है। यदि महासचिव की अभिरक्षाधीन किसी ऐसे दस्तावेज़ को, जो सदन अथवा उसकी किसी समिति की कार्यवाही या अन्यथा से संबंधित हो, किसी न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता हो तो उसे निर्धारित प्रक्रिया जैसा कि विशेषाधिकार से संबंधित अध्याय 8 में उल्लेख किया गया है, के अनुसार सदन की अनुमति से ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 78 (2) के अधीन, सदन की कार्यवाही को, प्राधिकृत संसदीय प्रकाशन को प्रस्तुत करके ही प्रमाणित किया जा सकता है। इसलिए राज्य सभा को कठिनाई केवल तभी होती है जब राज्य सभा की कार्यवाही के अप्रकाशित दस्तावेज़ों को न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता हो। अधिकांशत: अन्य मामलों में सामान्य रूप से प्रथमत: दस्तावेज़ों की केवल प्रमाणित प्रति ही मांगी जाती है।

अधिशासी प्राधिकारियों अर्थात् पुलिस को जब किसी संसद्-सदस्य से संबंधित कोई ऐसी जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता होती है जिसके अभिलेख महासचिव के कब्जे

में रहते हैं अथवा उक्त प्राधिकारी प्रपत्रों की जांच करना चाहें या उसकी प्रतिलिपियां लेना चाहें तो इसकी अनुमति इस अनुबंध के अध्यधीन दी जाती है कि उन्हें सभापति की पूर्वानुमति के बिना न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाएगा।

> राज्य सभा के एक सदस्य द्वारा की गई शिकायत के आधार पर पंजीकृत मामले के संबंध में जांच किए जाने हेतु महासचिव के कब्जे में रहने वाले अभिलेख से कतिपय प्रपत्रों को देखने के लिए नई दिल्ली के सहायक पुलिस उपायुक्त से एक अनुरोध प्राप्त हुआ। सभापति ने इस संबंध में विशेषाधिकार समिति द्वारा जांच कराई तथा सभा को सूचित किया कि समिति ने महसूस किया कि सभापति पुलिस प्राधिकारियों को प्रपत्रों की जांच करने तथा प्रपत्रों की प्रतिलिपियों (फोटो प्रति सहित) तैयार करने की अनुमति दे सकते हैं तथा समिति का मत था कि उक्त प्रपत्र अथवा उनकी प्रतिलिपियों को सभापति से इस आशय की पूर्वानुमति लिए बिना न्यायालय में प्रयोग या प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए। तदनुसार, सभापति ने पुलिस प्राधिकारियों को इस चेतावनी सहित अनुमति दे दी कि उनकी पूर्वानुमति ली जानी चाहिए।[158]

गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पत्रों को सभापटल पर रखा जाना

राज्य सभा की प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो गैर-सरकारी सदस्य को सभापटल पर पत्र रखने का अधिकार प्रदान करता है। यदि किसी मामले में विशेष परिस्थितियों में कोई गैर-सरकारी सदस्य किसी पत्र को सभापटल पर रखना चाहता है तो उसे सभापति को इस बारे में पूर्व सूचना देनी चाहिए जिससे कि वह उस पत्र को देख सके तथा तब इस बारे में निर्णय कर सके कि उसे सदस्य के पत्र को सभापटल पर रखने की अनुमति प्रदान करनी चाहिए अथवा नहीं। पत्र सभा पटल पर तब ही रखा जा सकता है जब सभापति द्वारा अनुमति प्रदान कर दी गई हो।[159] तथा वह सदस्य द्वारा अधिप्रमाणित हो।[160]

> बिड़ला उद्योग को लाइसेंस से संबंधित एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने औद्योगिक लाइसेंस के संबंध में डा. हजारी के प्रतिवेदन के अंश पढ़ने शुरू कर दिये। एक अन्य सदस्य ने मांग की कि उक्त सदस्य जिस प्रतिवेदन में उद्धरण दे रहे हैं उसकी एक अधिप्रमाणित प्रति सभापटल पर रखने के लिए उनसे कहा जाए। एक मंत्री ने कहा कि प्रतिवेदन सरकार को प्रस्तुत किए जाने पर संबंधित मंत्री ही वह व्यक्ति हो सकता है जो इस बात का निर्णय करेगा कि उक्त प्रतिवेदन जनहित में सभापटल पर रखा जाना चाहिए अथवा नहीं। तत्पश्चात्, संबंधित मंत्री ने कहा कि वह प्रतिवेदन की एक प्रति अगले दिन सभापटल पर रख देंगे। सभापति ने विचार व्यक्त किया :
>
>> जहां तक नियम 249 का संबंध है वह केवल मंत्री से संबंधित है। यदि मंत्री किसी प्रपत्र से उद्धरण देता है तो उन्हें उसे सभापटल पर रखने के लिए बाध्य किया जा सकता है। गैर-सरकारी सदस्यों के मामले में ऐसा कोई नियम नहीं है। इसे पूर्णत: मेरे स्वविवेक पर छोड़ दिया गया है। कई बार ऐसी स्थितियां आ जाती हैं जिनमें स्वविवेक का प्रयोग करना बहुत हानिकारक हो सकता है और इसका दुरुपयोग किया जा सकता है। अत: मैं एक दृष्टांत पैदा नहीं करना चाहूंगा, खासतौर पर इसलिए कि मंत्री महोदय ने स्वयं यह कहा है कि वह इसे सभा पटल पर रख देंगे।[161]
>
> जब एक सदस्य ने उस पत्र की एक फोटो प्रति, जोकि उसे प्राप्त हुआ था, सभापटल पर रखने का आग्रह किया तो उपसभापति ने टिप्पणी करते हुए कहा था :
>
>> कोई सदस्य किसी दस्तावेज का उल्लेख कर सकता है, वह उसे पढ़कर सुना सकता है अथवा उसका सारांश प्रस्तुत कर सकता है, इसकी अनुमति है, लेकिन सभापटल पर रखने

की अनुमति नहीं है। यह पीठासीन अधिकारी के विवेकाधीन है। मैं इसे सभापटल पर रखे जाने की अनुमति नहीं दूंगा।[162]

ऐसे कई अवसर हुए हैं जब गैर-सरकारी सदस्यों को पत्र और दस्तावेज सभापटल पर रखने की अनुमति दी गई है। कुछ महत्वपूर्ण अवसरों का यहां उल्लेख किया जाता है।

एक सदस्य ने सरकारी क्षेत्र के एक उपक्रम में हड़ताल के संबंध में उसे प्राप्त हुए तार का उल्लेख किया। सभा के नेता द्वारा उत्तर दिये जाने के बाद सदस्य ने तार को सभापटल पर रखने हेतु सभापति से अनुमति मांगी, जो दे दी गई थी।[164]

जब एक सदस्य ने अपने संकल्प के समर्थन में कुछ ऐसे पत्रों की विषय वस्तु का उल्लेख किया जोकि कतिपय व्यक्तियों द्वारा सरकार को भेजे गये थे तो उपसभापति ने यह व्यवस्था दी कि यद्यपि सदस्य ने पत्र पढ़ कर नहीं सुनाए हैं, तथापि इस तथ्य के दृष्टिगत रखते हुए कि उन्होंने सभा में उनका उल्लेख किया है, और यह आरोप लगाया है कि सरकार ने उनका उत्तर नहीं दिया है, इसलिए उन्हें उन पत्रों को सभापटल पर रखना चाहिए। सदस्य ने कहा कि वह उन्हें सभापटल पर रख देंगे।[164]

एक सदस्य ने "देश में मैनेजिंग एजेंसी हाउसिज़ के कुछ प्रतिनिधियों की ओर से कम्पनी विधेयक, 1953 के संबंध में संयुक्त समिति को प्रस्तुत किये गए गोपनीय ज्ञापन" की एक प्रति सभापटल पर रखी जिसका उल्लेख सदस्य ने अपने भाषण में किया था।[165]

विपक्ष के नेता (श्री जयपाल रेड्डी) ने विश्व बैंक के अध्यक्ष को भेजे गए वित्त मंत्री के दिनांक 11 नवंबर, 1991 के पत्र, अनुलग्नक सहित की एक प्रति सभापटल पर रखी। [उसी दिन मध्याह्न पश्चात् वित्त मंत्री ने भी उक्त पत्र की एक प्रति इसके संलग्नकों सहित सभापटल पर रखी]।[166]

तदनन्तर एक अवसर पर, विपक्ष के नेता (श्री एस. जयपाल रेड्डी) को एशिया ब्राउन बॉवेरी (ए.बी.बी.) कंपनी को एक ठेके के दिए जाने के संबंध में निम्नलिखित पत्रों की एक-एक फोटो प्रति सभापटल पर रखने की अनुमति दी गई जिन्हें सभापटल पर रखने की अनुमति उन्होंने इस विषय पर चर्चा आरम्भ करते हुए मांगी थी:

(1) निविदा समिति का टिप्पण।

(2) सदस्य (विद्युत), रेलवे बोर्ड का टिप्पण।

(3) डी.ई.ए. का दिनांक 7 फरवरी, 1992 का टिप्पण।

(4) 10 फरवरी, 1992 को हुई अंतर-मंत्रालयीय बैठक का कार्यवृत।

(5) दिनांक 30 अक्टूबर, 1991 का ज्ञापन संख्या 87/एफ (एफ.ई.एक्स.)/115/1/ए.डी.बी.।

(6) प्रौद्योगिकी अंतरण सहित 6000 हार्स पावर-3 फेज ए.सी. विद्युत चालित रेल इंजनों को प्राप्त करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय निविदा जी-140/आर (कामर्शियल रीबिड्स) के संबंध में निविदा समिति की सिफारिशें।[167]

एक सदस्य ने पांचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप संबंधी कतिपय पत्रों को सभापटल पर रखना चाहा। अवलोकन के पश्चात् उपसभापति ने विषय से संबंधित निम्नलिखित पत्रों की एक-एक फोटोस्टेट प्रति सभापटल पर रखे गये पत्रों के रूप में समझे जाने की अनुमति दे दी:

(1) दि वर्ल्ड बैंक/आई.एफ.सी./एम.आई.जी.ए. कार्यालय ज्ञापन; दिनांक 10 जून, 1992; विषय: राजकोषीय समायोजन और आठवीं योजना।

(2) दि वर्ल्ड बैंक/इंटरनेशनल फाइनेंस कारपोरेशन कार्यालय ज्ञापन; दिनांक 10 जून, 1992; विषय: आठवीं योजना।

(3) आठवीं योजना – शिक्षा क्षेत्र।

(4) उद्योग – आठवीं योजना।[168]

एक सदस्य को 'ए नोट ऑन दि इम्पोर्ट ऑफ शुगर बाई डिपार्टमेंट आफ फूड इन 1989' नामक शीर्षक के तहत प्रकाशित एक पत्र की सत्यापित प्रति के रूप में उसके द्वारा अधिप्रमाणित किए हुए कुछ पत्र सभापटल पर रखने की अनुमति दी गई।[169]

एक सदस्य ने पुरुलिया कांड के संबंध में गृह मंत्रालय के संयुक्त सचिव तथा पश्चिमी बंगाल के मुख्य सचिव के बीच हुए पत्राचार की एक-एक प्रति सभा पटल पर रखी।[170]

4 दिसंबर, 2002 को सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के संबंध में अल्पकालिक चर्चा के दौरान एक सदस्य ने एयरपोर्ट सेंटूर होटल, मुंबई की बिक्री और पुनबिक्री में हुई अनियमितताओं का आरोप लगाया और कुछ दस्तावेज़ों से इसे उद्धृत किया। उपसभाध्यक्ष ने उन्हें तब उक्त दस्तावेजों को प्रमाणित करने और उन्हें सभापटल पर रखने का निदेश दिया। तदनुसार जैसाकि सदस्य ने आग्रह किया था, सभापति ने अनुमति प्रदान की और निम्नलिखित पत्रों को सभापटल पर रखा गया माना गया तथा ये संसदीय समाचार भाग-2 दिनांक 11 दिसंबर, 2002 में प्रकाशित किए गए :—

(i) होटल कॉरपोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड और बत्रा हास्पिटेलिटी प्राइवेट लिमिटेड के बीच दिनांक 18 अप्रैल, 2002 का बिक्री करार।

(ii) श्री अरूण दास, उपाध्यक्ष-निवेश जे.पी. मोर्गन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा श्री ए.एल. बत्रा, चेयरमैन एवं प्रबंध निदेशक, ए.एल. बत्रा ग्रुप, नई दिल्ली को भेजा गया दिनांक 1 जनवरी, 2002 का पत्र।

(iii) नागर विमानन मंत्रालय में संयुक्त सचिव, श्री सनत कौल द्वारा श्री आर.सी. अग्रवाल, प्रबंध निदेशक, होटल कॉरपोरेशन आफ इंडिया, मुंबई एयरपोर्ट को भेजा गया दिनांक 2 जनवरी, 2002 का अर्द्धसरकारी पत्र सं. 18050/130/2001-ए.आई.।

(iv) श्री आर.सी. अग्रवाल, प्रबंध निदेशक द्वारा श्री सनत कौल, संयुक्त सचिव, नागर विमानन मंत्रालय को भेजा गया दिनांक 4 जनवरी, 2002 का पत्र सं एच.क्यू:एसीसीटीएस / 440:501:410।

(v) श्री के. के. गुप्ता, विनिवेश मंत्रालय द्वारा श्री सनत कौल, संयुक्त सचिव, नागर विमानन मंत्रालय को भेजा गया दिनांक 22 जनवरी, 2002 को अर्द्धशासकीय पत्र सं. 7/37/2001—वि.मं. (खंड II)।

(vi) श्री एस. अय्यर, कार्मिक प्रबंधक सहारा हॉस्पिटेलिटी प्राइवेट लिमिटेड (पहले इसे बत्रा हॉस्पिटेलिटी प्राइवेट लिमिटेड के रूप में जाना जाता था) द्वारा श्री पी. एस. डिसूजा, उप महाप्रबंधक, होटल कॉरपोरेशन आफ इंडिया, मुंबई को भेजा गया दिनांक 22 नवंबर, 2002 का पत्र सं. बी.एच. पी.एल./का./बी-91/180)।

(vii) श्री संजय निरुपम, संसद सदस्य द्वारा भारत के प्रधान मंत्री, श्री अटल बिहारी वाजपेयी को भेजा गया 23 अक्टूबर 2002 का पत्र।[171]

किसी सदस्य ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.) के संबंध में योजना आयोग द्वारा गठित संचालन समिति (अगस्त, 2002) के प्रतिवेदन की एक प्रति सभापटल पर रखने की मांग की जिसका उन्होंने और कुछ अन्य सदस्यों ने 6-7 दिसंबर, 2012 को बहु-ब्रांड खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के संबंध में एक प्रस्ताव पर हुई चर्चा के दौरान हवाला दिया था। सभापति ने उक्त प्रतिवेदन[172] की एक प्रति सभापटल पर रखने की अनुमति उस सदस्य को प्रदान की।

पत्र को सभापटल पर रखने की अनुमति न दिया जाना

एक सदस्य ने श्री एम.ओ. मथाई द्वारा अभिकथित रूप में पश्चिमी बंगाल की राज्यपाल कुमारी

पद्‌मजा नायडू को लिखे गये उस पत्र की एक प्रति सभापटल पर रखनी चाही, जिसमें बताया गया था कि श्री मथाई ने एक सदस्य द्वारा सभा में प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी पर लगाये गये आरोप की पुष्टि की थी। सभापति ने इस विषय में संबोधित व्यक्ति तथा संबोधनकर्ता से सदस्य द्वारा दिये गये दस्तावेज़ के आधार पर स्वयं जांच पड़ताल की और निम्नलिखित व्यवस्था दी:

> संसद की सभा एक विशेषाधिकार प्राप्त स्थान होता है क्योंकि संसदीय कार्यवाहियों को संविधान में उन्मुक्ति प्रदान की गई है। मेरी राय मे व्यक्तियों के निजी पत्राचार को सभापटल पर नहीं रखने दिया जा सकता और इस प्रकार उन्हें उन्मुक्ति प्रदान की गई है जिसका लाभ वे अन्यथा नहीं उठा सकते थे। इसलिए मैं उक्त पत्र को सभापटल पर रखने की इजाजत नहीं दे सकता हूं। संसद् सदस्यों को सभा में बोलने की स्वतंत्रता है। किन्तु मेरी राय में व्यक्तियों के निजी पत्राचार के आधार पर, जो इस सभा में कोई वक्तव्य देने के अधिकारी नहीं है, सदस्यों द्वारा आरोप लगाने के लिए बोलने की स्वतंत्रता का उपयोग करने की प्रथा का उपयोग किया जाना अवांछनीय है।[173]

एक सदस्य ने किसी अन्य सदस्य द्वारा उल्लिखित घटना के संबंध में उनके दल के सचिव द्वारा दिए गए वक्तव्य को सभा पटल पर रखना चाहा। उन्हें इसकी अनुमति नहीं दी गई क्योंकि सदस्य ने इसकी पूर्व सूचना नहीं दी थी और पत्र को सभापति को नहीं दिखाया था और "ऐसे वक्तव्य को सभा पटल पर रखने देने की अनुमति देना तथा एतद्द्वारा उसे सभा का हिस्सा बना देना उचित नहीं होगा।"[174]

27 जुलाई, 2005 को विपक्ष के नेता ने दूरदर्शन साक्षात्कार जिसका उन्होंने देश में सीमा पार आतंकवाद तथा आतंकवादी गतिविधियों की बढ़ती घटनाओं के फलस्वरूप उत्पन्न स्थिति के संबंध में खासकर अयोध्या में हुए हमले के संदर्भ में, अल्पकालिक चर्चा में भाग लेने के दौरान उल्लेख किया था, की पूरी लिखित प्रतिलिपि को सभापटल पर रखने की मांग की। सभापति ने दस्तावेज को सभा पटल पर रखे जाने की अनुमति नहीं दी, क्योंकि इसे न तो सम्यक रूप से प्रमाणित किया गया था और न ही सदस्य ने इसे औपचारिक रूप से सभापटल पर रखा था और इसी कारण इसे सदन का कार्यवाहियों की हिस्सा नही माना गया।[175]

एक सदस्य ने दिल्ली के मुख्य मंत्री द्वारा प्रधान मंत्री को लिखे गए, जिसका उन्होंने लिबराहन आयोग रिपोर्ट तथा 9 दिसंबर, 2009 के बाबरी मस्जिद मामले के विचारण के संबंध में अल्पकालिक चर्चा में भाग लेने के दौरान उल्लेख किया था, को सभा पटल पर रखने की अनुमति मांगी। अधिप्रमाणन में तकनीकी त्रुटि तथा 31 मार्च, 1967 को सभापति द्वारा दिए गए विनिर्णय कि व्यक्तियों की निजी चिट्ठी कि पत्री को सभापटल पर नहीं रखा जा सकता है, के आलोक में अनुमति नहीं दी गई थी तथा पत्र को सभापटल पर रखा गया नहीं माना गया।[176]

एक सदस्य ने 'कन्नड़ विकास प्राधिकरण के ज्ञापन' की एक प्रति सभापटल पर रखने की अनुमति मांगी। यह अनुमति नहीं दी गई क्योंकि सदस्य द्वारा किया गया अनुरोध सभापीठ द्वारा दिए गए निर्देशों में विनिर्दिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं था तथा दस्तावेज (मूल प्रति) सदस्य को लौटा दिया गया।[178]

दस्तावेज की प्रति से उद्धृत करना

एक सदस्य ने, किसी पुलिस अधीक्षक द्वारा एक कम्पनी को भेजे गए पत्र में से पढ़ना आरम्भ कर दिया। उपसभापति के पूछने पर सदस्य ने स्वीकार किया कि वह मूल पत्र नहीं वरन् उसकी साइक्लोस्टाइल प्रति है। उपसभापति ने यह कहते हुए उसे पत्र पढ़ने की इजाजत नहीं दी कि सदस्य उसकी केवल मूल अथवा प्रमाणित प्रति से ही पढ़ सकता है और यदि वह उसे सभा पटल पर रखने के लिए तैयार है, तभी वह उसमें से पढ़ सकता है।[178]

गोपनीय दस्तावेज़ों (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के प्रतिवेदन) को पटल पर रखा जाना अथवा उसमें से उद्धृत करना

जब कोई सदस्य किसी गोपनीय दस्तावेज, जिसे जनहित में प्रकट नहीं किया गया है, से कोई अंश उद्धृत करता है और उसे सदन के पटल पर रखना चाहता है तब उसे, ऐसे दस्तावेज अथवा उसकी प्रति सभापति को प्रस्तुत करनी पड़ती है और सभापति महोदय इस मामले में सरकार से परामर्श कर सकते हैं तत्पश्चात् वह निर्णय करते हैं कि उसे पटल पर रखने की अनुमति दी जाये अथवा नहीं। फिर भी सदस्यों से अपेक्षा की जाती है कि जो सामग्री उनके हाथ में आती है, वे उसका उपयोग करने में अपने विवेक का इस्तेमाल करें।[179]

प्रश्नकाल समाप्त होने के बाद एक सदस्य ने दावा किया कि उसके पास उड़ीसा सरकार के दो मुख्य मंत्रियों तथा कुछ अन्य मंत्रियों के खिलाफ कुछ आरोपों के बारे में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के प्रतिवेदन और उस मंत्रिमंडल उप-समिति के निष्कर्षों की भी एक प्रति है और उसने उन दस्तावेजों की प्रति सभापटल पर रखने के लिए सभापति की अनुमति मांगी। सभापति ने इसकी अनुमति नहीं दी और सदस्य से कहा कि वह दस्तावेज उन्हें प्रस्तुत करें ताकि वह उनकी जांच कर निर्णय कर सकें। बाद में जब सदस्य ने केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के प्रतिवेदन में से उद्धृत करने का प्रयास किया तब सभापति ने कहा कि उक्त प्रतिवेदन सरकारी दस्तावेज है और उसे सभापटल पर नहीं रखा गया है। इसलिए माननीय सभापति ने उसमें से उद्धृत करने की अनुमति नहीं दी और सदस्य से फिर कहा कि वह दस्तावेज की प्रति उन्हें प्रदान करें ताकि वह सरकार से परामर्श करके उस पर निर्णय कर सकें। सभापति महोदय ने कहा कि एक गैर-सरकारी सदस्य सभापति की अनुमति के बिना कोई पत्र सभापटल पर नहीं रख सकता है। कुछ दिनों बाद उक्त पत्रों की जांच के बाद सभापति ने निम्नलिखित व्यवस्था दी :

> मैंने श्री लोकनाथ मिश्र द्वारा दिये गये पत्रों को देखा है और इस मामले में सरकार से भी परामर्श किया। सरकार केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की रिपोर्ट तथा मंत्रिमंडल उप-समिति के निष्कर्ष सभापटल पर नहीं रखना चाहती है क्योंकि उसका विचार है कि ये गुप्त एवं गोपनीय दस्तावेज हैं और इस प्रकार ये विशिष्ट प्रकार के हैं। इन परिस्थितियों में, मैं इन दस्तावेजों को सभापटल पर रखने के लिए सरकार पर जोर नहीं डाल पाऊंगा।
>
> अगला प्रश्न यह है कि क्या श्री लोकनाथ मिश्र को, जिनके पास ये दस्तावेज हैं और जो इन्हें सी.बी.आई. प्रतिवेदन तथा मंत्रिमंडल उप-समिति की प्रतियां बताते हैं, इन्हें सभापटल पर रखने की अनुमति दी जा सकती है। मुझे खेद है, मैं उन्हें यह अनुमति नहीं दे सकता। इन दस्तावेजों का स्वरूप ही गोपनीय एवं गुप्त प्रकार का है और इसलिए मैं उन्हें सभापटल पर रखने की अनुमति नहीं दे सकता। इसके अतिरिक्त जाहिर है कि श्री लोकनाथ मिश्र उन पत्रों को अधिप्रमाणित नहीं कर सकते हैं जिन्हें वे पटल पर रखना चाहते हैं।
>
> जहां तक इस बात का संबंध है कि श्री लोकनाथ मिश्र सभा में अपने भाषण के दौरान इस पत्र में उल्लिखित तथ्यों का कहां तक उपयोग कर सकते हैं मैं केवल इतना ही कहूंगा कि इस मामले को स्वयं सदस्य की सद्भावना एवं विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए।[180]

जब कुछ संसद्-सदस्यों, विधायकों, मंत्रियों आदि के टेलीफोनों को 'टैप' किए जाने के संबंध में एक मामला उठाया जा रहा था तो टेलीफोनों को टैप किए जाने के संबंध में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की रिपोर्ट के सभा पटल पर रखे जाने के संबंध में एक मांग की गई थी। प्रधान मंत्री ने अन्य बातों के साथ-साथ कहा कि :

> "केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की रिपोर्ट जांच आयोग की रिपोर्ट नहीं है। जांच अभिकरणों की रिपोर्ट सभापटल पर नहीं रखी जाती। एक ऐसा अवसर है जब गैर-सरकारी सदस्यों ने किसी उद्देश्य से केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो या अन्य अभिकरणों का प्रतिवेदन सभापटल पर रखा था लेकिन इस संसद् के इतिहास में सरकार ने कभी भी किसी जांच अभिकरण का प्रतिवेदन सभापटल पर नहीं रखा क्योंकि तब जांच अभिकरण के लिए उपयुक्त रूप से कार्य करना संभव नहीं हो पाएगा। अन्यथा मेरे पास छुपाने के लिए अथवा प्रतिवेदन को इस सदन से दूर रखने के लिए कुछ भी नहीं है। यह देखने के लिए जांच अभिकरण प्रभावी ढंग से कार्य करे मैं यह कहने के लिए बाध्य हूं कि... मैं इसमें हिस्सा नहीं लूंगा... मेरा मार्गदर्शन नियमों, विधियों और परम्पराओं ने किया है।"

जब एक सदस्य ने यह कहा कि "यह प्रतिवेदन है जो मैं सभापटल पर रखना चाहता हूं, " उपसभापति ने कहा कि "मेरी अनुमति के बिना इसे सभापटल पर नहीं रखा जा सकता। उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। यह उचित नहीं है।"[181]

मंत्री द्वारा वक्तव्य

लोक महत्व के विषयों या विभिन्न मामलों के संबंध में सरकार की नीति के बारे में संसद् को अवगत कराने की दृष्टि से मंत्रीगण, सभापति की सहमति से, समय-समय पर सभा में वक्तव्य देते हैं। नियम के अनुसार वक्तव्य देते समय कोई प्रश्न नहीं पूछा जा सकता।[182] मंत्रीगण अपने अधिकारिक विदेश दौरों के परिणाम अथवा अन्य देशों के साथ हस्ताक्षरित संधियों तथा साथ ही साथ राष्ट्रीय महत्व के मामलों के बारे में भी सदन को सूचित करते हैं।

यदि कोई मंत्री नीतिगत मामले अथवा लोक महत्व के अन्य मामलों के संबंध में स्वत: वक्तव्य देना चाहता है तो वह सभापति को संबोधित एक पत्र लिखता/लिखती है, जिसके साथ वक्तव्य की एक प्रति (अंग्रेजी तथा हिन्दी में) अग्रेषित की जाती है, जिसमें सभापति द्वारा यथा नियत किसी विशिष्ट तिथि और समय अथवा किसी दूसरे दिन अथवा समय पर सदन में उक्त विषय के संबंध में वक्तव्य देने की इच्छा अभिव्यक्त की गई रहती है। तत्पश्चात् इससे संबंधित मद को कार्यावलि में शामिल किया जाता है। मंत्री द्वारा सदन में वक्तव्य देते समय मंत्रालय से प्राप्त वक्तव्य की प्रतियां सदस्यों को परिचालित की जाती हैं। तथापि, अति महत्वपूर्ण मामलों में उसी दिन वक्तव्य देने के लिए मंत्री से अनुरोध प्राप्त होने पर, यदि समय हो तो एक अनुपूरक कार्यावलि जारी की जाती है तथा सदस्यों के सूचनार्थ उसे परिचालित किया जाता है। वक्तव्यों को सामान्यत: उस दिन अथवा मंत्री द्वारा निर्दिष्ट दिन के अंतिम मद के रूप में सूचीबद्ध किया जाता है। केवल मंत्री के स्पष्ट अनुरोध तथा सभापति द्वारा सहमत होने पर ही समय दर्शाया जाता है। तथापि प्रधान मंत्री द्वारा दिए जाने वाले वक्तव्य को प्रश्नकाल के तुरन्त बाद सूचीबद्ध किया जाता है। कभी-कभी मंत्रियों द्वारा सभापति के निर्देशों के अनुसरण में वक्तव्य भी दिए जाते हैं। यह एक परिपाटी है कि मंत्री कम से कम उसी दिन संसद् के दोनों सदनों में एक जैसा वक्तव्य दे।[183]

दिये जाने वाले वक्तव्य की प्रतियों का परिचालन

परम्परा के अनुसार, दिये जाने वाले वक्तव्य की अंग्रेजी तथा हिन्दी में प्रतियां सदस्यों में, सदन में ही परिचालित करनी होती हैं।

जब एक मंत्री पंजाब की स्थिति के बारे में वक्तव्य देने वाले थे, तो कुछ सदस्यों ने यह शिकायत की कि उन्हें वक्तव्य की प्रतियां नहीं दी गयी हैं। जब मंत्री ने यह कहा कि प्रतियां आ रही हैं, तो सभापति ने यह अधिनिर्णय दिया कि मंत्री द्वारा वक्तव्य शुरू करते समय ही तत्काल वक्तव्य की प्रतियां सदस्यों में परिचालित की जानी चाहिए थीं; अन्यथा सदस्यों के लिए समझ पाना कठिन होगा।[184]

वक्तव्य की प्रतियां

राज्य सभा के दो सौ पंद्रहवें सत्र (फरवरी 2009) तक भारत सरकार के मंत्रालयों/ विभागों ने मंत्री के वक्तव्य के अंग्रेजी संस्करण की 300 प्रतियां तथा हिंदी संस्करण की 100 प्रतियां मंत्री द्वारा वक्तव्य दिए जाने के अपेक्षित समय से काफी पहले ही सभा पटल पर उपलब्ध करा दी। इसके अतिरिक्त, उनसे फ्लॉपी डिस्केट में वक्तव्य की इलेक्ट्रॉनिक प्रति उपलब्ध करवाने का अनुरोध भी किया गया था।

तथापि, वर्तमान में सदस्यों, प्रेस एवं मीडिया तथा अन्य अभिकरणों को वितरित किए जाने के लिए प्रस्तावित वक्तव्यों की प्रतियों की संख्या को संशोधित किया गया है। मंत्रालय/ विभाग दिए जाने वाले वक्तव्य के अंग्रेजी संस्करण की 300 प्रतियां तथा हिन्दी संस्करण की 150 प्रतियां उपलब्ध कराते हैं। वे वक्तव्य की इलेक्ट्रॉनिक प्रति भी सीडी में उपलब्ध कराते हैं। विभाग-संबंधी संसदीय स्थायी समितियों के प्रतिवेदनों में अंतर्विष्ट सिफारिशों के क्रियान्वयन की स्थिति के संबंध में संबंधित मंत्रालयों/विभागों द्वारा वक्तव्यों की पच्चीस-पच्चीस प्रतियां अंग्रेजी तथा हिन्दी में उपलब्ध कराई जाती हैं।

वक्तव्य देने तथा स्पष्टीकरण मांगने हेतु समय

लोक महत्व के मामलों पर दिया जाने वाला वक्तव्य सभा की बैठक के उत्तरार्द्ध में या तो म.प. 5 बजे या सूचीबद्ध कार्य के पूरा होने के पश्चात् उस दिन के लिए सभा समाप्त होने से पहले कार्यावलि में सूचीबद्ध किया जाता है। यह परिपाटी कार्य मंत्रणा समिति द्वारा 8 अगस्त, 1985 को हुई अपनी बैठक में की गई सिफारिशों के आधार पर विकसित हुई, जिसके अनुसार जो मंत्री सभा में वक्तव्य देने की इच्छा रखता है, वह सभापति की सहमति से सामान्यत: म.प. 5 बजे या उसके पश्चात् जब तक कि सभापति किसी दूसरे समय पर वक्तव्य दिए जाने की अनुमति न दे, ऐसा कर सकता है।

नियम के अनिवार्य उपबंध के होते हुए भी, काफी समय से राज्य सभा में सदस्यों को 'मंत्री द्वारा दिये गये वक्तव्य' पर कुछ स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति देने की एक परिपाटी अथवा प्रथा बन गयी है।[185] साधारणतया वक्तव्य देने के तुरन्त बाद स्पष्टीकरण मांगे जाते हैं। तथापि, यदि वक्तव्य लम्बा हो या अत्यंत महत्वपूर्ण विषय के बारे में हो तो स्पष्टीकरण स्थगित किये जा सकते हैं और अगले दिन या बाद के किसी दिन पूछे जा सकते हैं।[186] कभी-कभी स्पष्टीकरणों का सिलसिला अगले दिन तक भी चलता रहता है।[187]

उदाहरण के लिए, शुक्रवार, 22 नवम्बर, 1991 को तीन वक्तव्य दिये गये थे; उनमें से दो पर स्पष्टीकरण सोमवार, 25 नवंबर, 1991 को मांगे गये थे; तीसरे वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मंगलवार, 26 नवम्बर, 1991 को मांगे गये।

मंत्री सभी स्पष्टीकरणों का तत्काल या अगले दिन[188] अथवा बाद के किसी दिन[189] उत्तर देते हैं; यह बात सभा के कार्य या वक्तव्य की विषय वस्तु पर निर्भर करती है।

तथापि, मंत्री के उत्तर के पश्चात् कोई भी स्पष्टीकरण नहीं मांगा जा सकता है।

16 अगस्त, 1993 को गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री श्री राजेश पायलट अपने द्वारा दिए गए वक्तव्य के स्पष्टीकरण का उत्तर दे रहे थे, एक सदस्य ने कुछ और प्रश्न पूछने की मांग की। इस पर उपसभापति ने अपना विनिर्णय दिया, "मंत्री के उत्तर के पश्चात् कोई भी स्पष्टीकरण नहीं हो सकता है।"[190]

केवल स्वप्रेरणा से दिये गये वक्तव्य पर स्पष्टीकरण

मंत्री द्वारा दिये गये वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मांगने के लिए सदस्यों को अनुमति देने की राज्य सभा में लम्बे समय से चली आ रही प्रथा को देखते हुए, कभी-कभी यह सवाल उठता है कि क्या मंत्री द्वारा दिया गया वक्तव्य स्वप्रेरणा से दिया गया है या किसी मामले पर सदस्यों द्वारा की गयी कुछ टिप्पणियों के प्रतिक्रिया स्वरूप है। बाद वाले मामले में, सामान्यत:, कोई स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति नहीं दी जाती।

जब प्रधान मंत्री बोफोर्स तोपों की खरीद के संबंध में कुछ सदस्यों द्वारा उठाये गये कतिपय मुद्दों का जवाब दे रहे थे, तो एक सदस्य उस पर एक स्पष्टीकरण मांगना चाहते थे। तब सभापति ने निर्णय दिया था कि यदि प्रधान मंत्री ने स्वप्रेरणा से वक्तव्य दिया है तो सदस्य को स्पष्टीकरण मांगने का हक है। प्रधान मंत्री का वक्तव्य सदस्यों के प्रश्नों की प्रतिक्रिया स्वरूप था। अत: स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति नहीं दी गयी।[191]

सभापति के निर्देशानुसार, वित्त मंत्री ने विश्व बैंक को लिखे अपने पत्र की एक प्रति सभापटल पर रखी।[192] अगले दिन मांग की गयी कि विश्व बैंक का पूर्ण प्रतिवेदन सभापटल पर रखा जाये। उस दिन के अंतिम क्षणों में मंत्री, उठाये गये मुद्दों के जवाब में, एक वक्तव्य देना चाहते थे लेकिन जब उस पर कुछ आपत्तियां की गयीं तो मंत्री को उस वक्तव्य को सभापटल पर रखने की अनुमति दी गयी।[193] इसलिए सदस्य वक्तव्य पर स्पष्टीकरण नहीं मांग सके। अगले दिन इस आशय का प्रक्रियात्मक विवाद उठा कि क्या सभापटल पर रखा गया वक्तव्य स्वत: प्रेरित वक्तव्य था और सदस्यों को उस पर स्पष्टीकरण मांगने का अधिकार है।[194] उपसभापति ने निर्णय दिया है कि वित्त मंत्री द्वारा सभापटल पर रखा गया वक्तव्य उस प्रकार का वक्तव्य नहीं था जिस पर स्पष्टीकरणों के मांगने की अनुमति दी जाए।[195]

तथापि, एक अवसर पर, सभापति के निर्देशानुसार, सभा में कुछ दिन पहले सदस्यों द्वारा नर्मदा सरोवर परियोजना पर किए गए विशेष उल्लेखों की प्रतिक्रिया में इस विषय पर जब सम्बद्ध मंत्री अपना वक्तव्य देने आये तो उपसभापति ने स्पष्ट किया कि यह वक्तव्य सदस्यों द्वारा उठाये गये मुद्दों को स्पष्ट करने के लिए दिया जाने वाला है और आगे कोई और स्पष्टीकरण न मांगे जाएं। लेकिन सदस्य इस बात से सहमत नहीं हुए। आखिरकार, वक्तव्य को चार घंटे से अधिक समय तक इस निदेश के साथ स्थगित किया गया कि वक्तव्य की अंग्रेजी तथा हिन्दी की प्रतियां सदस्यों में परिचालन के लिए तैयार की जानी चाहिए। तत्पश्चात् वक्तव्य दिया गया और उस पर स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति दी गई।[196]

तथापि, यदि वक्तव्य नहीं दिया जाता है, लेकिन मंत्री को वक्तव्य को सभापटल पर रखने की अनुमति दी जाती है तो उस पर सभापीठ द्वारा निर्धारित समय पर स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति दी जा सकती है।[197]

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली के एक वैज्ञानिक द्वारा आत्महत्या के संबंध में 9 मई, 1972 को सभापटल पर एक वक्तव्य रखा गया था। सदस्यों ने अगले दिन स्पष्टीकरण मांगे। मुद्दों को स्पष्ट करने वाला एक और वक्तव्य 16 मई, 1972 को सभापटल पर रखा गया। 18 मई, 1972 को उस विषय के संबंध में एक अल्पकालिक चर्चा हुई।

27 अगस्त, 2012 को प्रधान मंत्री ने कोयला ब्लॉकों के आबंटन और कोयला उत्पादन की वृद्धि संबंधी कार्यनिष्पादन लेखा परीक्षा प्रतिवेदन के संबंध में वक्तव्य के कुछ पैरा पढ़े और वक्तव्य के शेष भाग को शोर-गुल के बीच सभा पटल पर रखा। तथापि, कोई स्पष्टीकरण नहीं मांगे गये।

अत: स्पष्टीकरण मांगने की प्रथा सभा की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बन गयी है। सभा शायद ही इस 'अधिकार' का त्याग करती है। सभा इस 'अधिकार' का प्रयोग उस समय नहीं भी कर सकती जब वक्तव्य की विषय-वस्तु पर चर्चा के लिए अन्यथा अवसर उपलब्ध कराया गया हो।[198] अथवा समय के अभाव में वक्तव्य दिया जा सकता है, या सदस्यों द्वारा स्पष्टीकरण मांगे बगैर इसे पटल पर रखा जा सकता है।

प्रधान मंत्री ने जवाहर रोजगार योजना पर एक वक्तव्य दिया। उस पर इस आश्वासन के साथ कोई स्पष्टीकरण नहीं मांगा गया कि सभा वक्तव्य और योजना पर चर्चा करेगी,[199] जो 12 मई, 1989 को की गयी।

इस प्रथा का लाभ यह है कि यह सदस्यों को लोक महत्व के विषय पर चर्चा करने का एक अतिरिक्त अवसर प्रदान करती है। इससे सदस्यों को कुछ और जानकारी प्राप्त करने या सरकार की विचारधारा के संबंध में संकेत प्राप्त करने में सहायता मिलती है। तथापि, कभी-कभी प्रथा या प्रक्रिया से भी सभापीठ और समस्त सदन, इन दोनों के लिए समस्या उत्पन्न हो जाती है। सभापीठ को समस्या का सामना इसलिए करना पड़ता है, क्योंकि किसी-किसी विशेष अवसर पर अनेक सदस्य स्पष्टीकरण प्राप्त करना चाहते हैं और सभापीठ के लिए यह चयन करना कठिन हो जाता है कि बोलने के इच्छुक इतने अधिक सदस्यों में से किस सदस्य को बुलायें और किसे न बुलायें। सदन के समक्ष समस्या समय के अभाव की रहती है, जैसाकि अन्य देशों की संसदों में भी होता है। यदि वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मांगने की प्रक्रिया लंबी हो जाती है या वाद-विवाद के रूप में बदल जाती है तो इसमें काफी समय लग जाता है।

139वें सत्र (1986) के दौरान मंत्रियों द्वारा दिये गये वक्तव्यों पर सदस्यों द्वारा स्पष्टीकरण मांगने में 18 घंटों का समय लग गया; 159वें सत्र (1991) के दौरान 21 घंटे, 155वें सत्र (1990) के दौरान 22 घंटे और 25 मिनट तथा 153वें सत्र (1990) के दौरान 23 घंटे और 19 मिनट का समय सदस्यों द्वारा स्पष्टीकरण मांगने में लग गया। कुछ वक्तव्यों पर तो 3-4 घंटे तक स्पष्टीकरण दिये गये और एक अवसर ऐसा भी आया जब स्पष्टीकरणों के कारण एक ही वक्तव्य पर तीन बैठकों में सात घंटे का समय लग गया (तथापि, वह वक्तव्य अत्यधिक महत्वपूर्ण था, अर्थात् राजीव गांधी हत्याकांड के मामले में एक अभियुक्त के भाग जाने से संबंधित था।)[200]

एक अवसर पर उप-सभापति ने यह टिप्पणी की :

"आजकल, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पर तथा मंत्रियों के वक्तव्यों पर स्पष्टीकरणों के दौरान कही जाने वाली बातों में कोई अंतर नहीं रह गया है। इन दोनों ही अवसरों पर सदस्यगण भाषण देने लग जाते हैं। बस इन दोनों के नाम में ही अंतर रह गया है"।[201]

वक्तव्य पर स्पष्टीकरणों का विनियमन

सभापति द्वारा एक प्रकार की विनियामक पद्धति अपनायी गयी। उन्होंने मंत्री के वक्तव्य पर स्पष्टीकरण के संबंध में निम्नलिखित प्रक्रिया निर्धारित की:

(1) किसी 'वक्तव्य' पर स्पष्टीकरण मांगने हेतु किसी दल/समूह से केवल एक ही सदस्य को बुलाया जाये।

(2) यदि एक से अधिक सदस्य स्पष्टीकरण चाहते हों, तो समय के क्रम के हिसाब से सबसे पहले अनुरोध करने वाले सदस्य का अनुरोध स्वीकार किया जाये और समय के क्रम के अनुसार, बाद में प्राप्त होने वाले उसी दल/समूह के अन्य सदस्यों के अनुरोध की अनदेखी कर दी जाये।

(3) मंत्री द्वारा वक्तव्य दिये जाने से पहले ही सदस्यों द्वारा वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मांगने का अनुरोध किया जाना चाहिए। वक्तव्य के बाद प्राप्त हुए अनुरोध पर सामान्यतया विचार नहीं किया जायेगा।[202]

तदनन्तर कार्य मंत्रणा समिति ने इस मामले पर विचार किया और निम्नलिखित प्रक्रिया की सिफारिश की :

(1) किसी वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मांगने के लिए चार या इससे अधिक सदस्यों की संख्या वाले किसी दल/समूह से केवल एक ही सदस्य को बुलाया जाये; और जहां तक कांग्रेस (आई) दल का संबंध है, स्पष्टीकरण मांगने के लिए इस दल के 2-3 सदस्यों को बुलाया जा सकता है।

(2) चार सदस्यों से कम संख्या वाले ग्रुपों के सदस्यों को परस्पर मिलाकर एक संयुक्त ग्रुप बनाकर बारी-बारी से वक्तव्य पर स्पष्टीकरण मांगने का अवसर उन्हें दिया जाए। सदन में किसी एक वक्तव्य के लिए तीन से अधिक सदस्यों को अवसर नहीं दिया जाना चाहिए।

(3) जिन सदस्यों को स्पष्टीकरण मांगने के लिए बुलाया जाता है, उनके नाम सभापीठ को दलों/समूहों के नेताओं/सचेतक (व्हिप) द्वारा दिये जाने चाहिए।

(4) स्पष्टीकरण मांगते समय किसी भी सदस्य को तीन मिनट से अधिक समय नहीं लेना चाहिए।[203]

159वें सत्र के अंतिम तीन दिनों में जब वक्तव्य दिये गये थे, तब समिति की इस सिफारिश को कार्यान्वित किया गया। कुछ सदस्यों ने इस आधार पर नई प्रक्रिया पर आपत्ति की कि इससे स्पष्टीकरण मांगने की उनकी स्वतंत्रता और अधिकार में कमी आयेगी। तथापि, सभा के नेता ने यह टिप्पणी की: "हम सबके लिए यह समझना आवश्यक है कि हमें कुछ अनुशासन का पालन करना है। कार्य मंत्रणा समिति में सभी राजनीतिक दलों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है...हमने यह वायदा किया है।"[204]

वक्तव्यों पर उसी समय तत्काल स्पष्टीकरण मांगने की बजाय सदस्यों के लिए यह विकल्प भी खुला है कि वे समुचित सूचना देकर मंत्री महोदय के वक्तव्य पर चर्चा आरम्भ करा सकते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने विद्यमान हैं, जब सभा में मंत्रियों के कतिपय महत्वपूर्ण वक्तव्यों पर अल्पकालिक चर्चा के रूप में अथवा प्रस्ताव[205] के रूप में भी

चर्चा की गई है। ऐसे किसी वक्तव्य पर तत्काल चर्चा भी की जा सकती है।[206] ऐसे भी उदाहरण हैं जब मंत्रियों/प्रधान मंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य को उत्तरवर्ती दिनों में सामान्य चर्चा में परिणत कर दिया गया।[207]

> सदन में 29 जुलाई, 1982 को पिछले दिन कुओ-तेल सौदे के संबंध में दिए गए वक्तव्य, जोकि सार्वजनिक उपक्रमों संबंधी समिति के सैंतालीसवें प्रतिवेदन की विषय-वस्तु थी, पर 6 घंटे की चर्चा हुई; संबंधित मंत्रियों द्वारा दिए गए वक्तव्यों के आधार पर भोपाल गैस त्रासदी,[208] प्रतिभूति घोटाला,[209] वस्त्र नीति,[210] दक्षिणी अफ्रीका में जातीय उपद्रवों,[211] आदि के संबंध में चर्चा की गई। राम-जन्म भूमि-बाबरी मस्जिद ढांचे को गिराए जाने संबंधी वक्तव्य पर भी तत्काल चर्चा की गयी।[212]

सभापीठ द्वारा निर्देश दिये जाने पर वक्तव्य

सभापीठ द्वारा निदेश दिये जाने पर भी मंत्री द्वारा वक्तव्य दिया जाता है। ऐसी स्थिति में, सदस्यों को कोई अनुपूरक कार्यावलि जारी और परिचालित नहीं की जाती है।[213]

पहले से ही स्वीकृत किए गए ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के संबंध में वक्तव्य देना

कोई भी मंत्री ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के उत्तर में भी वक्तव्य देता है। तथापि, इससे किसी मंत्री को ध्यानाकर्षण प्रस्ताव को शुरू करते समय बिना कोई प्रतीक्षा किए उसी विषय पर स्वप्रेरित वक्तव्य देने से मनाही नहीं है।

> जब मंत्री महोदय मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश में हरिजनों की झोपड़ियों के जलाये जाने के संबंध में एक वक्तव्य देने ही वाले थे तो तब एक औचित्य का प्रश्न उठाया गया और कहा गया कि मंत्री महोदय किसी ऐसे विषय के संबंध में वक्तव्य नहीं दे सकते जिसे अगले दिन के लिए स्वीकृत किए जाने की संभावना है। तब सभापति ने यह सुझाव दिया कि मंत्री महोदय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के शुरू होने तक ऐसे वक्तव्य को स्थगित कर सकते हैं। सभा के नेता ने सभापति का ध्यान नियम 251 की ओर दिलाया और यह कहा कि मंत्री महोदय को यह अधिकार है कि वह सभापति की अनुमति प्राप्त करने के बाद सभा में वक्तव्य दे सकते हैं, भले ही उस समय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव अथवा विशेष उल्लेख का कोई मामला लंबित हो। चूंकि, इस मुद्दे पर विवाद उत्पन्न हो गया था, इसलिए सभा की बैठक सभापति के कक्ष में परामर्श करने के लिए मध्याह्न भोजन के लिये निर्धारित समय से पूर्व ही स्थगित कर दी गई। सभा की बैठक के पुन: आरम्भ होने के बाद, उपसभापति ने यह घोषणा की कि सभापति से यह निर्देश प्राप्त हुआ है कि मंत्री महोदय को वक्तव्य देने की अनुमति दी जा सकती है और कि उस पर कोई प्रश्न नहीं पूछा जाना चाहिए और कि इस विषय पर नियमित चर्चा करने के लिए ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पर विचार करने की अनुमति अगले दिन के लिए दी जायेगी।[214]

अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने वाले विधेयक के संबंध में वक्तव्य

जब कभी किसी अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने वाला विधेयक आशोधन सहित या बिना आशोधन के सभा में पुर:स्थापित किया जाता है, उन परिस्थितियों, जिनके कारण अध्यादेश द्वारा तत्काल विधान बनाना आवश्यक हो गया था, को स्पष्ट करने वाला विवरण विधेयक के साथ सभापटल पर रखा जाता है और विवरण सदस्यों को परिचालित किए जाते हैं।[215]

विभाग संबंधित संसदीय स्थायी समितियों की सिफारिशों के कार्यान्वयन की स्थिति के संबंध में वक्तव्य

24 सितंबर, 2004 को राज्य सभा के सभापति ने राज्य सभा की प्रक्रिया और कार्य संचालन विषयक नियमों के नियम 266 के उपबंधों के अनुसरण में निम्नलिखित निर्देश दिया:

> संबंधित मंत्री अपने मंत्रालय के संबंध में राज्य सभा की विभाग संबंधित संसदीय स्थायी समितियों के प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिशों के कार्यान्वयन की स्थिति के संबंध में छः माह में एक बार वक्तव्य देंगे।[216]

अब यह एक नियमित तौर पर किया जाने लगा है। ऐसा वक्तव्य देने हेतु मंत्री सचिवालय को वक्तव्य की एक प्रति के साथ अग्रिम सूचना देते हैं जिसमें उस तिथि को दर्शाते हैं जब वे वक्तव्य देना चाहते/चाहती हैं। तद्नुसार कार्यावलि में एक मद शामिल किया जाता है। तथापि, प्रचलन में ऐसे वक्तव्य सामान्यतया मंत्री द्वारा सभापटल पर रखे जाते हैं और दिये/पढ़े नहीं जाते हैं।

मत-विभाजन

सामान्य प्रक्रिया

जब तक संविधान में अन्यथा उपबंधित न हो,[217] किसी भी सदन की किसी बैठक में अथवा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में सभी प्रश्नों पर अध्यक्ष अथवा सभापति या अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे व्यक्ति को छोड़कर सभा में उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत द्वारा लिये जाते हैं।[218]

"साधारणतया, सदन में प्रश्नों पर निर्णय मतदान के द्वारा लिये जाते हैं तथा किसी प्रश्न को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने के लिये साधारण बहुमत की आवश्यकता होती है। कभी-कभी किसी प्रस्ताव पर निर्णय करने के लिए मत-विभाजन भी हो जाता है जिससे किसी प्रश्न के पक्ष में और विपक्ष में मतदान करने के इच्छुक सदस्य वास्तविक रूप से दो गुटों में विभाजित हो जाते हैं।"[219] यद्यपि सदन में मतदान की स्वचालित मतांकन रिकार्डर प्रणाली के लागू हो जाने के कारण, सदन के वास्तविक रूप में दो गुटों में विभाजित होने के बहुत ही कम अवसर रह गए हैं, फिर भी मतदान प्रक्रिया के लिए "मत-विभाजन" शब्द का निरन्तर प्रयोग किया जाता रहा है।

चर्चा की समाप्ति पर सभापति सदन के समक्ष प्रस्ताव उपस्थित करते हैं और जो सदस्य प्रस्ताव का समर्थन करना चाहते हैं, उन्हें उसके पक्ष में 'हां' कहने के लिए और जो प्रस्ताव का विरोध करना चाहते हैं, उन्हें उसके विपक्ष में 'ना' शब्द कहने के लिए आमंत्रित करते हैं।[220] तब सभापति कहते हैं (अस्थायी रूप से) "मैं सोचता हूं कि पक्ष में (और विपक्ष में मतदान करने वाले सदस्यों ने, जैसी भी स्थिति हो) अपना मत व्यक्त कर दिया है।" यदि निर्णय के संबंध में सभापति की राय पर चुनौती नहीं दी जाती, तो वह दोबारा कहते हैं (निश्चित रूप से) "पक्ष में (और विपक्ष में मतदान करने वाले सदस्यों ने, जैसी भी स्थिति हो), अपना मत व्यक्त कर दिया है" और सदन के समक्ष रखे गए प्रस्ताव पर तद्नुसार निर्णय लिया जाता है।[221] यदि प्रस्ताव पर निर्णय के संबंध में सभापति की राय को सदन में चुनौती दी जाती है तो तब उस अवस्था में यदि वह उचित समझे, तो "पक्ष में" और "विपक्ष में" मतदान करने वाले सदस्यों को क्रमशः अपने-अपने स्थानों पर खड़ा होने के लिये

कह सकता है, और सदस्यों की गिनती करने के बाद सदन के निर्णय की बाबत घोषणा कर सकता है। ऐसी स्थिति में मतदान करने वाले सदस्यों के नाम अभिलिखित नहीं किये जाते।[222]

> जिस समय तमिलनाडु में राष्ट्रपति-शासन की अवधि बढ़ाये जाने का संकल्प मतदान के लिये उपस्थित किया गया था, तब उस समय मत-विभाजन की मांग की गई थी। सभापीठ द्वारा सदस्यों से कहा गया कि वे अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो जायें और "पक्ष में" तथा "विपक्ष में" मतदान करने वाले सदस्यों की गिनती करने के बाद संकल्प को स्वीकृत घोषित किया गया था। एक सदस्य ने इस प्रक्रिया पर आपत्ति उठायी थी परन्तु नियम 252(3) को ध्यान में रखते हुए उनकी इस आपत्ति को वैध नहीं ठहराया गया।[223]

यदि किसी प्रस्ताव पर निर्णय के संबंध में सभापति की राय को चुनौती दी जाती है और यदि वह उपरोक्त प्रक्रिया नहीं अपनाता है तो तब वह आदेश देता है कि अमुक प्रस्ताव पर मत-विभाजन कराया जाए।[224] इसके साढ़े तीन मिनट के बाद, सभापति, दूसरी बार प्रस्ताव उपस्थित करता है और यह घोषणा करता है कि क्या उसकी राय में प्रस्ताव के "पक्ष में" और "विपक्ष में" मतदान करने वाले सदस्यों ने मत व्यक्त कर दिया है।[225] यदि इस प्रकार घोषित की गयी राय को पुनः चुनौती दी जाती है, तो तब स्वचालित मत रिकार्डर मशीन को चलाकर अथवा सदस्यों को लॉबियों में भेजकर मतदान कराया जा सकता है।[226]

जब तक सदस्यगण सभापति की राय को चुनौती नहीं देते और वे मत-विभाजन की मांग नहीं करते, जिस अवस्था में सभापति मत-विभाजन कराये जाने का आदेश देता है, तब तक प्रश्नों पर सामान्यतया ध्वनि-मत के द्वारा ही निर्णय लिया जाता है। जब किसी प्रश्न पर ध्वनि-मत से निर्णय लिया जाता है, तब सभापति "पक्ष में" और "विपक्ष में" मतदान करने वाले सदस्यों की संख्या की घोषणा नहीं करता।

> सैद्धान्तिक रूप से वह (सभापीठ) सदस्यों की आवाज से उत्पन्न होने वाले स्वरों की तीव्रता का आकलन करके यह निश्चय करते हैं कि "पक्ष में" अथवा "विपक्ष में" उठने वाले स्वरों में से किनके स्वर अधिक हैं। व्यावहारिक दृष्टि से, सभापति का निर्णय सदन में व्यक्त की गई राय के सन्तुलन के बारे में उनके ज्ञान पर आधारित होता है। जब तक कुछ सदस्य उनके उस समय के निर्णय को "जी नहीं", कहकर चुनौती नहीं देते, जब वह यह कहते हैं कि उनके विचार से "पक्ष में" अथवा "विपक्ष में" मतदान करने वाले सदस्यों ने अपना मत व्यक्त कर दिया है, तब सभापीठ द्वारा घोषणा की जाती है कि प्रस्ताव के "पक्ष में" अथवा "विपक्ष में", मतदान करने वाले सदस्यों ने, जैसी भी स्थिति हो, अपना मत व्यक्त कर दिया है। तथापि, यदि, अल्पमत वर्ग अथवा कोई अकेला सदस्य उनके ऐसे निर्णय को चुनौती देता है तो तब वह निर्देश देते हैं कि लॉबी खाली करा दी जाए।[227]

यदि कोई सदस्य किसी प्रस्ताव के संबंध में सभापीठ के निर्णय को चुनौती देना चाहता है, तो उसे सभापीठ द्वारा "मैं सोचता हूं कि पक्ष में अथवा विपक्ष में मतदान करने वाले सदस्यों ने अपना मत व्यक्त कर दिया है" कहने के तत्काल बाद और उनके द्वारा प्रस्ताव के परिणाम की घोषणा किये जाने से पूर्व ऐसा कर लेना चाहिए।

> एक ऐसा अवसर भी आया जब एक गैर-सरकारी सदस्य के किसी संकल्प को ध्वनि-मत से स्वीकृत किया गया घोषित कर दिया गया। इस पर सदस्यों ने यह कहकर आपत्ति उठायी कि उन्होंने तो परिणाम की घोषणा करने से पूर्व मत-विभाजन की मांग की थी। परिणामस्वरूप इस मामले पर विवाद उत्पन्न हो गया और इसलिए सदन की बैठक कुछ समय के लिए परामर्श करने के

लिये स्थगित कर दी गयी। सदन के पुन: समवेत होने के पश्चात् उपस्थितकर्ता सदस्य द्वारा दो संशोधन उपस्थित किये जाने की अनुमति दी गई थी और यथासंशोधित संकल्प पर मत लिया गया और उसे पुन: स्वीकृत किया गया।[228]

जब मत-विभाजन होने वाला होता है, तो तब केवल संबंधित सदन के सदस्यों को ही भीतरी-लॉबी (इनर लॉबी) में उपस्थित रहने का अधिकार होता है और अन्य सभी व्यक्तियों को लॉबी को खाली कर देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, मत-विभाजन के लिए लॉबी को खाली करना आवश्यक होता है। दूसरे सदन का ऐसा सदस्य, जो मंत्री भी हो, सदन में उपस्थित रह सकता है, हालांकि उसे मत देने का कोई अधिकार नहीं है। तथापि, यह अधिक बेहतर होगा कि ऐसा सदस्य सदन में उपस्थित ही न रहे जिससे कि संभावित आपत्तियों से बचा जा सके।

जब राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव पर लाए गए एक संशोधन पर मत लिया जा रहा था, तब एक सदस्य ने प्रधान मंत्री को छोड़कर अन्य सभी मंत्रियों, जोकि उस सदन के सदस्य नहीं थे, से यह अनुरोध किया कि वे सभी मतदान से पूर्व सदन से बाहर चले जायें। तथापि, विपक्ष के नेता (श्री लालकृष्ण आडवाणी) इस सुझाव से सहमत नहीं हुए। उनकी यह राय थी कि जो-जो मंत्री संबद्ध सदन के सदस्य नहीं थे, वे उस सदन में उपस्थित रह सकते थे, इस पर सभापति ने यह टिप्पणी की: "जो भी व्यक्ति इस सदन का सदस्य नहीं है, मैं उसे मत देने की अनुमति नहीं दूंगा।" मामला यहीं समाप्त हो जाता है।[229]

संविधान (चौसठवां संशोधन) विधेयक पर विचार किये जाने वाले प्रस्ताव पर सदन में मत लिए जाने से पहले एक सदस्य द्वारा उन मंत्रियों की उपस्थिति के संबंध में आपत्ति उठाई गई जोकि उस सदन के सदस्य नहीं थे। यह सदस्य चाहते थे कि जब किसी मामले पर निर्णय होने वाला हो, तो तब संबंधित मंत्रियों को सभा से चले जाने के लिए कह दिया जाना चाहिए। तथापि, सभापति ने इस आपत्ति को यह कहते हुए नहीं माना कि सभापीठ को कोई अधिकार नहीं है कि वह उन्हें सदन से बाहर चले जाने के लिए कहे। यह उनकी स्वेच्छा पर निर्भर करता है। तथापि, उन्हें भीतरी लॉबी में नहीं जाना चाहिए।[230]

परम्परा के अनुसार, जहां किसी विधेयक के खण्डों अथवा खण्डों पर लाए गए संशोधनों के संबंध में अनेकों बार मत-विभाजन कराये जायें, ये सब एक के बाद एक कराये जाते हैं, वहां लॉबी को बार-बार खाली कराये जाने की आवश्यकता नहीं होती।

मत-विभाजन की घंटियों का संचालन

राज्य सभा और लोक सभा की मत-विभाजन घंटियों पर क्रमश: लाल और हरा रंग किया जाता है।

इन दोनों प्रकार की मत-विभाजन घंटियों की ध्वनि में भिन्नता यह है कि राज्य सभा की घंटी रुक-रुक कर बजती है जबकि लोक सभा की घंटी लगातार बजती है।

जब कभी राज्य सभा में मत-विभाजन का आह्वान किया जाता है तो उस समय महासचिव अपनी मेज पर लगे बटन को दबाता है जिससे मत-विभाजन के उद्देश्य से सदस्यों को सदन में बुलाने के लिए संसद् भवन, संसदीय सौध और संसदीय ग्रंथालय भवन के विभिन्न हिस्सों में एक सौ चौबीस स्थानों पर साढ़े तीन मिनट घंटी बजती है।

संसद् के दोनों कक्षों के लिए मत-विभाजन घंटियां संसद् भवन, संसदीय सौध की सभी मंजिलों में लगाई गई हैं, परन्तु विशेषकर समिति कक्षों, पुस्तकालय कक्षों, मंत्रियों के कक्षों, सूचना कार्यालय, डाक घर, जलपान गृह के कक्षों और प्रतीक्षालय हॉलों में अथवा उनके आस-पास लगाई गई हैं।[231]

मत-विभाजन के दौरान किसी भाषण का नहीं किया जाना

जब मत-विभाजन के लिए आह्वान कर दिया गया हो और लॉबियों को खाली कराया जा रहा हो तो उस समय वाद-विवाद बन्द कर दिया जाता है और कोई भी सदस्य बोलने के लिये अथवा सदन को सम्बोधित करने के लिए खड़ा नहीं हो सकता। जब लॉबियों को खाली कराया जा रहा हो तो कार्यवाहियों में कोई भाषण अथवा निवेदन अभिलिखित नहीं किया जाता है।

मत-विभाजन की अनुमति नहीं देने का सभापति का स्वनिर्णय

इसके लिये कि सदन को साधारण से अवसरों पर मत-विभाजन के लिए बाध्य न किया जाए, सभापति को, यदि वह समझे कि मत-विभाजन की मांग अनावश्यक रूप से की जा रही है, मत-विभाजन के अनुरोध को अस्वीकार करने का अधिकार प्राप्त है। वह उन सदस्यों को, जो उसके निर्णय का समर्थन करते हैं और उन सदस्यों को, जो उसके निर्णय को चुनौती देते हैं, बारी-बारी से खड़े होने के लिए भी कह सकता है और उसके आधार पर, जैसा वह उपयुक्त समझे, घोषणा कर सकता है कि निर्णय 'हां' वालों (अथवा 'ना' वालों) के पक्ष में गया। जैसाकि पहले बताया गया है।

> एक अवसर पर जब एक सदस्य ने अपने संशोधन पर मत-विभाजन के लिए कहा था तो उपसभाध्यक्ष ने सदस्यों का ध्यान नियम 252 के उप-नियम (3) की ओर दिलाया और उप-नियम में "यदि वह उपयुक्त समझे" शब्दों पर जोर दिया और टिप्पणी की थी कि संबंधित सदस्य ने मत-विभाजन के लिए कहने को वास्तव में समुचित नहीं समझा।[232]

स्वचालित मतांकन यंत्र (ऑटोमैटिक वोट रिकॉर्डर) द्वारा मत-विभाजन

यदि सभापति यह निर्णय करता है कि स्वचालित मतांकन यंत्र चलाकर मत लिये जाने चाहिए तो वह तद्नुसार निदेश देता है और यंत्र चालू कर दिया जाता है। प्रत्येक सदस्य को एक निश्चित सीट दी जाती है और सदस्य उसी सीट से इस उद्देश्य के लिए उपलब्ध कराए गए अपेक्षित बटन को दबाकर अपना मतदान करता है। दिसम्बर 1994 में राज्य सभा में एक नयी कम्प्यूटर नियंत्रित एकीकृत ध्वनि, साथ-साथ भाषांतरण प्रणाली और मतांकन प्रणाली की स्थापना की गई थी। उस प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक सदस्य के लिए एक एकीकृत माइक्रोफोन और मतदान करने के लिए 'कंसोल' उपलब्ध कराया गया है जिसमें चार बटन होते हैं-"पी.आर.ई.एस." – "पी." उपस्थित होने के लिये, "ए.बी.एस.टी." – "ओ" मतदान में भाग न लेने के लिये; "ए.वाई.ई.एस." – "ए" "हां" के लिये और "एन.ओ.ई.एस." – "एन" "ना" के लिये। वहां पर एक "लाल" (रेड) रंग का सुरक्षा बटन (वोट एक्टिवेशन) भी अलग से भाषा चयनकर्ता (लेंगुएज सेलेक्टर) पर लगाया गया है, जिसे मतदान वाले बटन

के अलावा दबाना पड़ता है। वैध मत दर्ज कराने के लिए दोनों ही बटनों को मतदान समाप्ति के समय एक साथ दबाना पड़ता है।

> उदाहरण के लिये, यदि मतदान की अवधि दस सेकिण्ड है, तो बटनों को दसवें सेकिण्ड तक दबाए रखे गए बटनों से वोट दर्ज किया जाएगा। एक अथवा इन दोनों बटनों को मतदान की अवधि समाप्त होने से पहले छोड़ देने पर मत दर्ज नहीं किया जाएगा।

मतदान की अवधि के दौरान, सदस्य किसी भी समय अपने मत को बदल सकता है। जब मतदान की अवधि समाप्त होगी तो केवल उस समय दिया गया मत दर्ज किया जाएगा। मतगणना का समय कुल परिणाम प्रदर्शन पट्ट/वृहत् स्क्रीन हॉल प्रदर्शन (टोटल रिजल्ट डिस्पले बोर्ड्स/लार्ज स्क्रीन हॉल डिस्प्ले) पर दिखाया जाता है। कक्ष में दो किस्म के प्रदर्शन पट्ट उपलब्ध कराए गए हैं। एक सैट पर व्यक्तिगत परिणाम दर्शाए जाते हैं और दूसरे पर कुल परिणाम दर्शाए जाते हैं।

व्यक्तिगत परिणाम पैनल सभापति के आसन के दोनों तरफ स्थित हैं जो कक्ष की बैठने की व्यवस्था के समान ही भौगोलिक योजना के अनुसार ही लगाए गए हैं। प्रत्येक सदस्य के लिए तद्नुरूपी मत-विभाजन, प्रदर्शन क्रम के साथ, पैनल पर दर्शाया जाता है जो एक हरे रंग का अक्षर 'ए' हां के लिये एक लाल रंग का अक्षर 'एन' नहीं के लिये, एक पीले रंग का अक्षर 'ओ' मतदान में भाग न लेने के लिये, और एक कहरूवे के रंग का अक्षर 'पी' उपस्थित होने के लिए होता है।

ये मतदान करते समय तात्कालिक परिवर्तन होते हुए दर्शाए जाते हैं और इन्हें मतदान समाप्त होने पर 'ए', 'एन' अथवा 'ओ' तीन वर्णों पर 'स्थिर' (फ्रोजन) कर दिया जाता है। कुल परिणाम सभापीठ के बाईं और दायीं तरफ स्थित प्रदर्शन पैनल पर आ जाते हैं।

महासचिव की मेज पर एक कुंजी पटल लगाया गया है जिसे सभापति के निर्देश पर संचालित करके महासचिव मतदान प्रक्रिया को आरम्भ कर देता है और ऐसा करने से पहले वह, यदि सभापीठ द्वारा निदेश दिया जाता है, तो सदन के सदस्यों को उस प्रक्रिया के विषय में बताता भी है। मतदान प्रक्रिया कक्ष के दो कोनों में लगे वृहत् स्क्रीन प्रदर्शन (लार्ज स्क्रीन डिस्पले) पर संगीतमय ध्वनि से प्रारम्भ होती है।[233]

संकेतक पट्ट पर मतदान का परिणाम आने पर महासचिव "हां" वाले और "ना" वाले सदस्यों की कुल संख्या को सभापति के समक्ष प्रस्तुत करता है। मत-विभाजन के परिणाम को सभापति द्वारा घोषित किया जाता है और इसे चुनौती नहीं दी जा सकती।[234]

ऐसा कोई सदस्य जो किसी ऐसे कारण से, जिसे सभापति पर्याप्त समझे, अपना मतदान नहीं कर सका हो तो उसे मत-विभाजन के परिणाम की घोषणा से पहले, उसे वह प्रस्ताव के पक्ष में है अथवा इसके विरुद्ध है, मौखिक रूप से कहकर अपना मत दर्ज कराने की अनुमति दी जा सकती है[235] इसी प्रकार से यदि किसी सदस्य को लगता है कि उसने गलती से गलत बटन दबाकर मतदान कर दिया है तो उसे मत-विभाजन के परिणाम की घोषणा होने से पहले ही अपनी गलती ठीक करने की अनुमति दी जाती है।[236]

15 दिसम्बर, 1961 को उपसभापति ने संविधान (ग्यारहवां संशोधन) विधेयक, 1961 के एक खण्ड के संशोधन के संबंध में मतदान आंकड़ों को सही करने के संबंध में निम्नलिखित घोषणा की थी:

> ...बहुत-से सदस्य खड़े हो गए और यह निवेदन किया कि उन्होंने सदन के समक्ष रखे गए प्रस्ताव को सही ढंग से नहीं समझा है और इसलिए अपने मत समुचित रूप से दर्ज नहीं करा सके। कुछ सदस्यों ने यह बताया कि उन्होंने मतदान ही नहीं किया था; कुछ सदस्यों ने कहा कि उन्होंने संशोधन के पक्ष में गलती से मतदान कर दिया था; और एक सदस्य ने बताया कि उसने इसके पक्ष में मतदान करने की बजाए इसके विरोध में मतदान किया था। मैंने उन सदस्यों को अपने नाम देने की अनुमति दी थी और तद्नुसार उनके नाम अभिलिखित किए गए थे और सदन का निर्णय घोषित करने के उद्देश्य से उन्हें ध्यान में रखा गया था; जिस रूप में निर्णय की घोषणा की गई थी वह निम्नलिखित रूप में था: 'हां' वाले...25; 'ना' वाले...134।
>
> मत-विभाजन सूची की फोटोस्टेट प्रति की जांच करने पर यह पाया गया कि उन 10 सदस्यों ने, जिनके नाम उपरोक्त अभिलेख में दर्ज थे, जैसा कि ऊपर बताया गया है, वास्तव में मतदान में भाग लिया था और उनके नाम "हां" वाली सूची में शामिल थे। इन सदस्यों ने केवल यही अनुरोध किया था कि उनकी गलतियों को सही करके उनके नाम "हां" वाली सूची से "ना" वाली सूची में स्थानांतरित कर दिये जायें। मत-विभाजन के परिणाम की घोषणा करते समय उन दस सदस्यों के नाम यद्यपि "ना" वाली सूची में शामिल कर लिये गये थे तथापि उनके नाम "हां" वाली सूची से हटाये नहीं गये थे। एक और सदस्य ने गलती से "ना" में मतदान कर दिया था और वह अपनी गलती ठीक कराना चाहता था और निर्णय की घोषणा करते समय उस सदस्य का नाम भी "हां" वाली सूची में शामिल कर लिया गया लेकिन उसका नाम "ना" वाली सूची से भी निकाला नहीं गया था।
>
> राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों के नियम 214क (पुराना) के उप-नियम (5) के अन्तर्गत यदि किसी सदस्य को यह पता चले कि उसने भूल से गलत बटन दबाकर मतदान कर दिया है और यदि वह उसे विभाजन का परिणाम घोषित किये जाने से पहले सभापीठ की जानकारी में लाता है तो उसे अपनी भूल में सुधार करने की अनुमति दी जा सकती है।
>
> अत: इससे यह पता चल सकेगा कि विभाजन संबंधी आंकड़े की घोषणा करने में गलती थी। सदन संशोधन के संबंध में पहले ही निर्णय ले चुका है और निश्चित रूप से इस गलती का इसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। फिर भी, मेरे विचार से अभिलेख में सही स्थिति दर्शायी जानी चाहिए।
>
> तदनुसार, मैंने सदन के 12 दिसम्बर, 1961 के अभिलेख में आवश्यक सुधार करने का निर्देश दे दिया है। सुधार के फलस्वरूप विभाजन का परिणाम इस प्रकार होगा: 'हां' वाले.....15, 'ना' वाले....134।

उसके बाद, एक सदस्य ने औचित्य का प्रश्न उठाते हुए यह बताया कि इस व्यवस्था के कारण एक गलत पूर्वोदाहरण बन गया है और परिणाम की घोषणा हो जाने के बाद मतदान संबंधी आंकड़े में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। उपसभापति ने पुन: (पुराने) नियम 214क(5) वर्तमान नियम 253(5) के अनुरूप का उल्लेख किया और यह कहा :

> जिस दिन मतदान कराया गया था उस दिन कई सदस्यों ने यह कहते हुए निवेदन किया कि उन्होंने गलत मतदान कर दिया है, और इसलिए उनका मत ध्वनिमत से रिकॉर्ड किया गया था। इसकी जांच फोटोस्टेट प्रति से भी नहीं की जा सकी थी क्योंकि वह प्रति कार्यालय में अगले दिन ही उपलब्ध हो पायी थी। और मैं यह पाता हूं कि दस व्यक्तियों ने दो बार मतदान कर दिया है। अब केवल फोटोस्टेट प्रति के अनुरूप अभिलेख में सुधार करने का अनुरोध किया गया है और "हां" वाली सूची या "ना" वाली सूची में किसी के मत को बाहर नहीं निकाला गया है। मेरे विचार में इसमें कोई औचित्य का प्रश्न नहीं है और दिया गया विनिर्णय सही है।[237]

पर्चियों के वितरण के माध्यम से मत-विभाजन

सभा में पर्चियों के वितरण द्वारा मत-विभाजन के तरीके का इस्तेमाल केवल तभी किया जाता है, जब स्वचालित मतांकन यंत्र खराब हो गया हो। जब कभी इस तरीके से मत-विभाजन आवश्यक होता है, सदस्यों को अपने मत को दर्ज करवाने के लिए 'हां/ना' वाली मुद्रित पर्चियां उनकी सीट पर दी जाती हैं। सदस्यों के उपयोग के लिए पर्चियां ब्लॉक-वार अलग-अलग रंगों में मुद्रित की जाती हैं। सदस्यों को इन पर्चियों पर अपने हस्ताक्षर करके तथा अपना नाम, विभाजन क्रमांक और तिथि को उचित स्थान पर सुपाठ्य रूप में लिखकर अपनी पसंद के अनुसार अपना मत दर्ज करना होता है।

मतों को अभिलिखित करने के बाद विभाजन-लिपिक प्रत्येक सदस्य से इन पर्चियों को इकट्ठा करके सभापटल अधिकारी को सौंप देते हैं, जो उनकी छंटनी करता है, अभिलिखित मतों की गणना करके परिणाम संकलित करता है। तत्पश्चात् सभापीठ द्वारा इस प्रकार प्राप्त परिणाम की घोषणा की जाती है और इसके बाद प्रत्येक सदस्य के मत के विवरण सहित इसे मुद्रित किए जाने वाले वाद-विवाद में शामिल कर लिया जाता है।

> संविधान (पैंसठवां संशोधन) विधेयक, 1989 पर विचार किए जाने के प्रस्ताव पर सभापति ने यह निदेश किया था: किसी भी भ्रम से बचने के लिए पर्चियां वितरित की जाती हैं। प्रत्येक सदस्य अपनी विभाजन-संख्या का उल्लेख करेगा और 'हां' अथवा 'ना' लिखेगा और अपने हस्ताक्षर करेगा ताकि हमारे पास इसका अभिलेख रहे।[238]

लॉबियों में जाने के माध्यम से मत-विभाजन

जब सभापति यह निर्णय करे कि सदस्यों द्वारा सभा कक्षों में जाकर मत अभिलिखित करवाये जाने चाहिए तो वह 'हां' वाले सदस्यों को दायें सभा कक्ष में और 'ना' वाले सदस्यों को बायें सभा कक्ष में जाने के लिए कहेगा। यथास्थिति 'हां' वालों और 'ना' वालों के सभा कक्ष में, प्रत्येक सदस्य अपनी विभाजन-संख्या बोलता है और विभाजन-लिपिक विभाजन-सूची में सदस्य की विभाजन-संख्या पर निशान लगाते हुए, साथ-साथ सदस्य का नाम पुकारता है।[239]

सभा कक्षों में मतदान पूर्ण होने के बाद, विभाजन-लिपिक विभाजन-सूचियां महासचिव को देता है। जो मतों की गणना करके 'हां' और 'ना' वाले मतों का जोड़ सभापति को प्रस्तुत करता है।[240] तत्पश्चात् सभापति द्वारा मत-विभाजन के परिणाम की घोषणा की जाती है और उस पर आपत्ति नहीं की जा सकती।[241]

कोई सदस्य जो रोग या अशक्तता के कारण विभाजन सभा कक्ष तक जाने में असमर्थ हो, वह सभापति की अनुमति से, अपना मत या तो अपने स्थान पर या सदस्यों के सभा कक्ष में अभिलिखित करा सकेगा।[242] यदि किसी सदस्य को यह पता चले कि उसने भूल से गलत सभा कक्ष में मत दे दिया है, तो यदि वह उसे सभापति की जानकारी में मत-विभाजन का परिणाम घोषित किये जाने से पहले लाये, तो उसे अपनी भूल सुधारने की अनुमति दी जा सकेगी।[243] जब मत-विभाजन सूचियां महासचिव की मेज पर लायी जायें तो कोई सदस्य,

जिसने उस समय तक अपना मत अभिलिखित न कराया हो, किन्तु जो तब अपना मत अभिलिखित कराना चाहता हो, सभापति की अनुमति से ऐसा कर सकेगा।[244]

सभा ने आवश्यक सेवा विधेयक, 1981 के खण्ड-14 के संबंध में मत लेने के लिए बहुत लम्बी बैठक की थी। इस अवधि के दौरान, सभा में 58 मत-विभाजन कराये गये थे। उनमें से 54 स्वचालित मतांकन यंत्र चलाकर तथा 4 सभा कक्ष में जाकर कराये गये थे।[245]

'उपस्थित और मतदान करने वाले' में मतदान न करने वाले की गणना न किया जाना

जैसाकि विधान से संबंधित अध्याय-21 में पहले ही दिया जा चुका है, उपस्थित रहते हुए भी किसी मत-विभाजन में भाग नहीं लेने वाले सदस्यों की किसी मुद्दे के परिणाम की घोषणा करते समय गणना नहीं की जाती है। कोई सदस्य, जो मतदान में या तो इलेक्ट्रॉनिक मतांकन यंत्र द्वारा या मत पर्ची पर या किसी अन्य रीति से "मतदान न करने वाले" के रूप में मत दर्ज कराता है, तो वह ऐसा केवल सभा में अपनी उपस्थिति दर्शाने और मतदान में भाग न लेने के अपने आशय की सूचना देने के लिये करता है। वह संविधान के संशोधन से सम्बद्ध अनुच्छेद 368 में प्रयुक्त "उपस्थित रहना और मतदान करना" शब्दों के अर्थ के अन्तर्गत अपना मत अभिलिखित नहीं कराता है।

13 अक्तूबर, 1989 को एक सदस्य ने इलेक्ट्रॉनिक मतांकन यंत्र में संविधान (संशोधन) विधेयक पर मतदान के दौरान 'मतदान न करने वाले' की व्याख्या के संबंध में व्यवस्था का प्रश्न उठाया। संविधान (संशोधन) विधेयकों को सभा के विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है जोकि संविधान के अनुच्छेद 368 के अंतर्गत परिभाषित किया गया है; जिसमें यह कहा गया है कि सभा में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत से विधेयक पारित करने होंगे। सदस्य ने इस मामले को उठाया क्योंकि इलेक्ट्रॉनिक उपकरण में 'हां वाले', 'ना वाले' और 'मतदान न करने वाले' तीन बटन होते हैं और उनका यह कहना था कि यदि कोई सदस्य उपस्थित हो और वह 'मतदान न करने वाले' बटन को दबाता है, तो वह भी मतदान रहा है और इसीलिए सभा की कुल उपस्थित और मतदान करने वाली संख्या में वह शामिल हो जाता है। अत: महत्वपूर्ण यह नहीं है कि उसने विधेयक के विरोध में मतदान किया, बल्कि यह कि उसने विधेयक का समर्थन नहीं किया। वह 'उपस्थित और मतदान करने वाले' शब्दों के संबंध में सभापति की व्याख्या तथा यह जानने के इच्छुक थे कि क्या विशेष बहुमत, जिन्होंने पक्ष अथवा विपक्ष में मतदान किया है, का निर्णय करने के दौरान उन सदस्यों की संख्या की भी गणना की जाएगी, जिन्होंने 'मतदान न करने वाले' के रूप में मतदान किया। उपसभापति ने कहा:

> मैं विधिक आशय को ही पढ़ूंगा। परन्तु मैं यह भी कहना चाहता हूं कि सामान्यत: मतदान का अर्थ यह होता है कि आप यहां 'हां' अथवा 'नहीं' के रूप में मतदान कर रहे हैं। 'मतदान न करने वाले' उपस्थित सदस्यों की गणना के लिए होती है ताकि इसे सही किया जा सके। मेरी समझ यही है। मैं विधिक दस्तावेज जो सचिवालय को प्राप्त हुआ है, का ही संदर्भ लूंगा। संविधान के अनुच्छेद 368(2) में अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध किया गया है कि संविधान का संशोधन करने वाले विधेयक को प्रत्येक सदन में उस सदन की कुल सदस्यता के बहुमत तथा उस सदन के उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा पारित होना जरूरी है। एक प्रश्न उठाया गया है कि क्या कोई सदस्य जिसने मतदान में भाग नहीं लिया है उसे अनुच्छेद के अर्थ के अन्तर्गत उपस्थित तथा मतदान करने वाला माना जायेगा। दूसरे शब्दों में, प्रश्न यह है कि क्या मतदान में भाग नहीं लेने वाले की किसी भी प्रकार से मतदान के प्रयोजनार्थ गिनती की जा सकती है। यह बात साबित हो चुकी है कि किसी भी मतदान में मत नहीं करने वाले का किसी भी प्रश्न के संबंध में परिणाम की घोषणा में विचार नहीं किया जाता है। एक सदस्य जो सदन में केवल अपनी उपस्थिति सूचित करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक मत रिकॉर्डर या मतदान पर्ची या किसी अन्य तरीके से

> 'मतदान न करने वाले' के रूप में मतदान करता है तथा उसका उद्देश्य मतदान में भाग नहीं लेना है। वह 'उपस्थित तथा मतदान करने वाले' शब्दों के अर्थ के अन्तर्गत अपने मतदान को रिकॉर्ड नहीं करता है। 'उपस्थित तथा मतदान करने वाले' अभिव्यक्ति का संबंध उनसे है जो 'हां वाले' अथवा 'ना वाले' के लिए मतदान करते हैं, न कि उनसे जो मात्र उपस्थित रहते हैं, परंतु सदन के समक्ष न तो किसी प्रश्न के पक्ष में अथवा विरोध में मतदान करते हैं। विगत में सदन में यह एक प्रथा भी रही है कि जब कभी भी सदस्य मतदान में शामिल नहीं रहे हैं, उनकी गणना किसी मत विभाजन के परिणाम की घोषणा करने के प्रयोजनार्थ नहीं की गयी है। यहां तक कि किसी चुनाव में आप भाग नहीं लेते हैं, तो आपके मतदान की गणना नहीं की जाएगी।[246]

पीठासीन अधिकारियों द्वारा मत दिया जाना

संविधान के अधीन, सभापति या सभापति के रूप में कार्य कर रहा व्यक्ति मत-विभाजन में अपना मत नहीं दे सकता है। उसके पास तो केवल निर्णायक मत होता है जिसका वह मतों की समानता होने के मामले में प्रयोग करेगा।[247] उपसभापति या उपसभाध्यक्षों की तालिका के उस सदस्य को जो मतदान के समय पीठासीन हो, मत-विभाजन के समय मतदान करने से विवर्जित किया गया है और वह मतों की संख्या बराबर होने की स्थिति में निर्णायक मत दे सकता है और ऐसी स्थिति में उसके लिए ऐसा करना आवश्यक है।

पीठासीन अधिकारी/समिति के अध्यक्ष द्वारा निर्णायक मत दिया जाना

जैसाकि ऊपर कहा गया है संविधान, अध्यक्ष के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति को प्रथमत: मतदान करने से विवर्जित करता है अर्थात् वह एक साधारण सदस्य की तरह किसी मत-विभाजन में मतदान नहीं कर सकता है; वह केवल निर्णायक मत दे सकता है जो उसके लिए मतों की संख्या बराबर होने की स्थिति में देना आवश्यक है।

> राज्य सभा में पहली बार जब दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अध्यादेश, 1991 का निरनुमोदन चाहने वाले परिनियत संकल्प पर मत लिया गया था और मतों की संख्या बराबर [39 मत संकल्प के पक्ष में और 39 मत उसके विरोध में] हो गई थी तब उपसभाध्यक्ष ने मतों की बराबरी को भंग करने के लिए संकल्प के पक्ष में निर्णायक मत दिया था।[248]

संसदीय समितियों के मामले में राज्य सभा के प्रक्रिया-विषयक नियमों में समिति के अध्यक्ष द्वारा दूसरा या निर्णायक मत देने के संबंध में भिन्न-भिन्न उपबंध दिये गये हैं। उदाहरण के लिए, किसी विधेयक संबंधी प्रवर समिति का अध्यक्ष या उस समिति का सभापतित्व करने वाले अन्य व्यक्ति को दूसरा या निर्णायक मत देने का अधिकार दिया गया है,[249] जबकि अधीनस्थ विधान, सरकारी आश्वासनों, सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समितियों और आवास समिति के मामले में विशेष रूप से यह उपबंध किया गया है कि ऐसी किसी समिति का अध्यक्ष प्रथमत: मतदान नहीं करेगा किन्तु किसी मामले में मतों की संख्या बराबर होने की स्थिति में उसका निर्णायक मत होगा और वह निर्णायक मत देगा।[250] याचिका समिति और विशेषाधिकार समिति से संबंधित नियमों में इस पहलू पर कुछ नहीं कहा गया है।

मत-विभाजन का परिणाम

स्थापित प्रथा के अनुसार, जब कभी भी सदन में किसी विधेयक, प्रस्ताव, संकल्प इत्यादि पर मतदान किया जाता है, तो सभापति द्वारा मत-विभाजन के परिणाम की घोषणा किए जाने के पश्चात् वह संसदीय समाचार भाग-1 में परिणाम 'शुद्धि के अध्यधीन' पाद-टिप्पण के साथ परिलक्षित होता है। तत्पश्चात्, सदन में घोषित परिणाम का मत रिकॉर्डिंग शीट में दर्शाये गए परिणाम के साथ मिलान किया जाता है तथा मतदान के अंतिम परिणाम की गणना सदस्यों से प्राप्त मतदान पर्ची पर विचार करने के पश्चात् की जाती है। इस तरह से प्राप्त अंतिम परिणाम संपादन (अंग्रेजी) अनुभाग को राज्य सभा के अंतिम मुद्रित वाद-विवाद में शामिल करने के लिए भेजा जाता है। तथापि, 227वें सत्र (नवंबर-दिसंबर, 2012) से रिकॉर्ड की जांच करने के पश्चात् मत-विभाजन के अंतिम परिणाम सदस्यों की सूचना के लिए संसदीय समाचार भाग-2 में उसी दिन प्रकाशित किए जाते हैं।[251]

औचित्य प्रश्न

भूमिका

एक सबसे अधिक परेशान करने वाली संसदीय प्रक्रिया जो किसी पीठासीन अधिकारी के सामने आती है और जिससे उसे निपटना पड़ता है, वह है चर्चा के दौरान उठाया जाने वाला औचित्य प्रश्न। इस प्रक्रिया से वास्तव में ही सभापीठ के सामने समस्याएं पैदा हो जाती हैं और इससे उन सदस्यों में रोष पैदा होता है जो नियमों का पालन करते हैं और औचित्य प्रश्न की आड़ में तर्क-वितर्क या चर्चा के मामले नहीं उठाते। सभापीठ की समस्या यह है कि वह जब तक सदस्य के कथन को कम-से-कम काफी हद तक न सुन ले तब तक वह (सभापीठ) यह निर्णय करने की स्थिति में नहीं होता कि यह औचित्य प्रश्न नहीं है। निस्संदेह सभापीठ किसी भी ऐसे सदस्य को डांट सकता है जो अशिष्टतापूर्वक और बारम्बार 'कल्पित' या अनुचित औचित्य प्रश्न उठाता हो। किन्तु यहां यह बात भी है कि सभापति सामान्यत: औचित्य प्रश्न सुनने से इनकार नहीं कर सकता। तथापि, कुछ ऐसी परिस्थितियां होती हैं जिनमें सभापीठ सीधे प्रश्न सुनने से इनकार कर सकता है ताकि कम-से-कम उन परिस्थितियों में "औचित्य प्रश्नकर्त्ताओं" को अपनी ही बात मनवाने का मौका न मिले और उन प्रश्नों को करने या उनके बारे में सुनने में सभा का समय बरबाद न हो जोकि स्पष्टत: औचित्य प्रश्न नहीं हैं।

औचित्य प्रश्न क्या होता है

औचित्य प्रश्न, प्रक्रिया संबंधी उन नियमों या संविधान के उन अनुच्छेदों जिनसे सभा के कार्य विनियमित होते हैं, की व्याख्या या प्रवर्तन से संबंधित एक ऐसा प्रश्न है जो सभा में उठाया जाता है और सभापीठ के निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

कोई भी सदस्य सभापति के तत्काल ध्यान में कोई भी ऐसा प्रसंग ला सकता है जिसे वह आदेश का उल्लंघन अथवा सभा की किसी ऐसी लिखित या अलिखित विधि जिसके

बारे में सभापति को पता न चले, का अतिक्रमण मानता हो, तथा वह प्रक्रिया में किसी भी अस्पष्टता के संबंध में सभापति से मार्गदर्शन एवं सहायता भी मांग सकता है। केवल ऐसे मामलों में किसी भी सदस्य को यह अधिकार होता है कि वह खड़े होकर चर्चा के बीच ही में टोकते हुए यह कहे, "सभापति महोदय, एक औचित्य प्रश्न के संबंध में" और उसके बाद उसके समक्ष संक्षेप में औचित्य प्रश्न रखे, हालांकि बहुधा सदस्यों के बीच यह संदेह बना रहता है कि सही-सही अर्थों में औचित्य प्रश्न क्या होता है, और ज्यादातर उत्तर होता है, "यह औचित्य प्रश्न का मामला नहीं है।"[252]

राज्य सभा के नियमों में उपबंध

राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों का नियम 258 सदस्य को औचित्य प्रश्न पूछने की शक्ति प्रदान करने का उपबंध करता है। यह उपबंध इस प्रकार है:

(1) कोई सदस्य किसी समय कोई औचित्य प्रश्न सभापति के निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकेगा, किन्तु ऐसा करते हुए वह स्वयं को प्रश्न के कथन तक ही सीमित रखेगा।

(2) सभापति उन समस्त औचित्य प्रश्नों का, जो पैदा हों, निर्णय करेगा और उसका निर्णय अन्तिम होगा।

औचित्य प्रश्न किस प्रकार पूछा जाता है

जिस सदस्य का औचित्य प्रश्न हो उसे खड़े होकर 'औचित्य प्रश्न' कहना चाहिए। जब तक सभापीठ सदस्य की पहचान न कर ले और अनुमति न दे दे तब तक सदस्य को औचित्य प्रश्न के संबंध में आगे चर्चा नहीं करनी चाहिए।[253] तत्पश्चात्, उसे अपने औचित्य प्रश्न पर बोलने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। अपना औचित्य प्रश्न उठाने के दौरान उसे सभा की प्रक्रिया से संबंधित उस विशिष्ट नियम अथवा संविधान को उद्धृत करना चाहिए जिसकी उपेक्षा अथवा अनदेखी या जिसका उल्लंघन किया गया है। जब सभापति बोल रहे हों तो किसी भी सदस्य को न तो खड़े होकर और न ही बैठकर बोलना चाहिए। सभापति की बात शान्तिपूर्वक सुनी जानी चाहिए और यदि कोई सदस्य बोलना चाहता है तो उसे सभापति के बैठ जाने के बाद तथा सभापति द्वारा बोलने के लिये उसका नाम पुकारे जाने के बाद ही खड़ा होना चाहिए।[254] ऐसे मामले जिन पर सभापति कोई सहायता नहीं कर सकता, औचित्य प्रश्न का विषय नहीं बनने चाहिए। यदि सदस्य मंत्री से स्पष्टीकरण चाहता है या मंत्री द्वारा दिए गए किसी वक्तव्य पर आपत्ति प्रकट करना चाहता है तो उसे सभापति की स्वीकृति से सभा में ऐसा कहना चाहिए न कि औचित्य प्रश्न के रूप में उसे उठाना चाहिए।

औचित्य प्रश्न उठाए जाने के बाद अपनाई जाने वाली प्रक्रिया

औचित्य प्रश्न उठाने का अधिकार सदस्य का महत्वपूर्ण अधिकार है और उस समय विचाराधीन किसी मामले अथवा किसी कार्य के संबंध में किसी भी समय उसके द्वारा इसका प्रयोग किया जा सकता है। जब औचित्य प्रश्न उठाया जाता है, तो सभा की कार्रवाई स्थगित हो जाती है। औचित्य प्रश्न उठाए जाने पर जो सदस्य उस समय सभा में अपने विचार व्यक्त कर रहा हो, उसे अपना स्थान ग्रहण कर लेना चाहिए।[255] औचित्य प्रश्न पर चर्चा की अनुमति नहीं दी जाती, परन्तु यदि सभापति उचित समझे, तो वह अपना निर्णय देने से पहले सदस्यों के विचार सुन सकता है। यह उस समय सभा के समक्ष प्रस्तुत कार्य के संबंध में ही उठाया जा सकता है; "सभा के समक्ष कार्य" का अभिप्राय उस दिन की कार्यावलि में शामिल किए गए कार्य से है।

जब किसी विषय-वस्तु के संबंध में दो अथवा इससे अधिक औचित्य प्रश्न उठाए जाते हैं तो सभापति एक के बाद एक उन पर कार्रवाई कर सकता है और अपना निर्णय दे सकता है।

जो सदस्य औचित्य प्रश्न उठाना चाहता है उसे सभापीठ द्वारा निर्णय दिए जाने से पूर्व अपनी बात कहने का अधिकार है। औचित्य प्रश्न के संबंध में सदस्य द्वारा अपने विचार व्यक्त किये जाने पर सभापीठ यह निर्णय करता है कि जो मुद्दा उठाया गया है वह औचित्य प्रश्न है या नहीं और यदि है, तो वह उस पर अपना निर्णय देता है जो अंतिम होता है। सदस्य सभापीठ की व्यवस्था का विरोध नहीं कर सकते, ऐसा करना सभा और सभापीठ की अवमानना करना होता है। सभापीठ द्वारा दी गई व्यवस्था पर सभा में चर्चा नहीं की जा सकती और न ही इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण मांगा जा सकता है।

किसी सदस्य द्वारा उठाए गए औचित्य प्रश्न का यदि सभापीठ द्वारा संज्ञान नहीं लिया जाता है तो यह पूरी तरह से सही है। सभापीठ किसी औचित्य प्रश्न पर अपनी व्यवस्था को उस समय सुरक्षित रख सकता है और बाद में किसी दिन अपनी व्यवस्था दे सकता है। इसी प्रकार उपसभापति अथवा पीठासीन सदस्य किसी औचित्य प्रश्न को सभापति के निर्णय हेतु सुरक्षित रख सकते हैं।

औचित्य प्रश्न कौन उठा सकता है

जैसाकि नियम 258 में प्रावधान है कि 'कोई भी सदस्य' औचित्य प्रश्न प्रस्तुत कर सकता है। नियम 2 परिभाषित करता है कि 'सदस्य' का तात्पर्य राज्य सभा के सदस्य से है। इस संदर्भ में, औचित्य प्रश्न उठाने के लिए मंत्री की सक्षमता के बारे में राज्य सभा में प्रश्न उठाया गया है। जहां तक ऐसे मंत्री का सम्बन्ध है, जोकि सभा का सदस्य है, उसे सभा के सदस्य की हैसियत से सभी अधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त हैं, यद्यपि कभी-कभी ऐसे मंत्री के औचित्य प्रश्न उठाने अथवा उसके सम्बन्ध में बोलने के अधिकार पर भी आपत्ति की गई है लेकिन सभापीठ द्वारा उस अधिकार को बनाए रखा गया है।[256]

जहां तक ऐसे मंत्री का संबंध है जोकि सभा का सदस्य नहीं है, अनेकों बार ऐसे मंत्री द्वारा राज्य सभा में औचित्य प्रश्न उठाये जाने अथवा उसके संबंध में बोलने पर आपत्ति की गई है और सभापीठ ने व्यवस्था दी है कि ऐसे मंत्री को औचित्य प्रश्न उठाने अथवा पहले ही किसी सदस्य द्वारा उठाए गए औचित्य प्रश्न के संबंध में बोलने का अधिकार है।

> एक मंत्री (जोकि इस सभा के सदस्य नहीं थे) जोकि एक विधेयक के संबंध में उठाए गए औचित्य प्रश्न पर बोल रहे थे, से इस आधार पर आपत्ति की गई थी कि औचित्य प्रश्न विशुद्ध रूप से सभा के अधिकारों और विशेषाधिकारों से संबंधित है और उसके संबंध में केवल सभा के सदस्य ही बोल सकते हैं। सभापति महोदय ने उसके विरुद्ध व्यवस्था दी थी, उन्होंने टिप्पणी की थी कि: "सभी मंत्री किसी भी सभा में बोलने का अधिकार रखते हैं।"[257]
>
> जब एक मंत्री, जोकि दूसरी सभा के सदस्य थे, औचित्य प्रश्न उठाना चाहते थे, तब एक सदस्य द्वारा आपत्ति की गयी थी कि वह (मंत्री) नियम 258 के अनुसार ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि वह इस सभा के सदस्य नहीं हैं। सभापति ने उस नियम और नियम 2 का उल्लेख करते हुए यह टिप्पणी की थी:
>
> > "...संविधान में एक महत्वपूर्ण विधि दी गई है। अनुच्छेद 88 में यह कहा गया है, "प्रत्येक मंत्री और भारत के महान्यायवादी को यह अधिकार होगा कि वह सदन... आदि में बोले और उसकी कार्यवाहियों में अन्यथा भाग ले"। इस बात का संबंध "उसकी कार्यवाहियों में अन्यथा भाग ले" से है। क्या "कार्यवाहियों में अन्यथा भाग ले" का आशय यह है कि वह किसी अन्य सदस्य की तरह कार्यवाहियों में भाग लेगा या नियमों की सीमा से बाहर निकलकर? यहां हम इस सिद्धांत का अनुसरण करते हैं, कि सभापति पूर्व निर्णयों को ध्यान में रखे। मुझे बताया गया है कि एक बार पूर्ववर्ती सभापति ने यह विनिर्णय दिया था कि जिस समय माननीय मंत्री सदन में हो उस समय उसे औचित्य प्रश्न उठाने का हक होगा। मेरे विचार से इस सदन में एक बार जो निर्णय लिया जा चुका है, उससे हटाना गलत होगा।[258]
>
> जब एक मंत्री ने औचित्य प्रश्न उठाया तो एक सदस्य ने यह आपत्ति की कि संबंधित मंत्री को ऐसा करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है; एक मंत्री होने के नाते वह सदन में उपस्थित हो सकते हैं। अन्यथा वह सदन के लिए बाहरी व्यक्ति हैं और औचित्य प्रश्न उठाने का अधिकार तभी प्राप्त होता है जब वह व्यक्ति सदन का सदस्य हो, किसी अन्य स्थिति में इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस पर उपसभापति ने यह विनिर्णय दिया था कि:
>
> > वह (अर्थात् मंत्री) कार्यवाहियों में भाग ले सकते हैं। यह प्रक्रिया का मामला है। इस संबंध में संविधान में एक उपबंध है कि वह कार्यवाहियों में भाग ले सकते हैं और उस आधार पर वह औचित्य प्रश्न भी उठा सकते हैं।[259]

औचित्य प्रश्न क्या नहीं होता या औचित्य प्रश्न किस समय नहीं उठाया जाना चाहिए

उपर्युक्त नियम में उन परिस्थितियों की परिकल्पना अथवा उल्लेख नहीं किया गया है जिनमें किसी सदस्य द्वारा औचित्य प्रश्न उठाये जा सकते हैं अथवा नहीं और नियम में स्पष्ट रूप से यह परिभाषित भी नहीं किया गया है कि कौन-सा औचित्य प्रश्न है और कौन-सा नहीं। उन सभी परिस्थितियों को भी स्पष्ट करना संभव नहीं है जिनमें सभापीठ द्वारा किसी औचित्य प्रश्न को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का विनिर्णय दिया जा सकता है। तथापि, राज्य सभा, लोक सभा या अन्यत्र विभिन्न पीठासीन अधिकारियों द्वारा दिए गये विनिर्णयों और पूर्व निर्णयों के आधार पर कुछ ऐसी परिस्थितियां दी जा सकती

हैं जिनमें कोई प्रश्न निश्चित रूप से औचित्य प्रश्न नहीं होता है या जिनमें कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है। उनमें से कुछ का वर्णन नीचे किया गया है।

सभापीठ के विनिर्णयों पर औचित्य प्रश्न नहीं होता है

कोई सदस्य सभापीठ के विनिर्णयों पर औचित्य प्रश्न नहीं उठा सकता है।

जब एक सदस्य प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए उठे, तो दूसरे सदस्य ने नियम 169(ii), (viii), (ix) और (xii) के अंतर्गत औचित्य प्रश्न उठाया। सदस्य को यह स्पष्ट किया गया कि नियम 169 स्वीकार्यता की शर्तों से संबंधित है और जब सभापति द्वारा एक बार प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है, तब स्वीकार्यता के आधार पर प्रश्न उठाने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है। सभापति भी इस बात से सहमत हुए। तथापि जब सदस्य ने आग्रह किया कि वह औचित्य प्रश्न उठाना चाहता है, तो सभापति ने बताया:

सभापति के निर्णय या विनिर्णयों पर कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है।[260]

जो कार्य सदन के समक्ष न हो उसके बारे में औचित्य प्रश्न नहीं होता है

कोई सदस्य ऐसे कार्य के बारे में औचित्य प्रश्न नहीं उठा सकता है जो सदन के समक्ष न हो। कार्यवाही के संचालन और किए जाने वाले कार्य के संबंध में ही औचित्य प्रश्न उठाया जा सकता है। औचित्य प्रश्न उस कार्य के संबंध में होना चाहिए जो सदन के समक्ष हो।[261]

एक विधेयक पर चर्चा के दौरान, एक सदस्य ने प्रश्नों के समय के दौरान मंत्री महोदय से पूछे गये एक प्रश्न के संबंध में एक औचित्य प्रश्न उठाना चाहा। उपसभापति ने यह कहकर उसे अस्वीकार कर दिया कि सदस्य ऐसी घटना पर कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठा सकते जो उसी दिन घटित हुई हो; वह विद्यमान वाद-विवाद के संबंध में औचित्य का प्रश्न उठा सकते हैं और सदस्य को चाहे कोई भी प्रश्न क्यों न पूछना हो उसे वह अगले दिन प्रश्नकाल के पश्चात् पूछ सकते हैं या वह सदस्य संबंधित मंत्री को पत्र लिख सकते हैं।[262]

किसी औचित्य प्रश्न के संबंध में कोई औचित्य प्रश्न नहीं पूछा जाएगा

जब एक सदस्य अपना औचित्य प्रश्न उठा रहा था तब एक अन्य सदस्य ने एक औचित्य प्रश्न उठाना चाहा। यद्यपि सभापति ने उसे ऐसा करने की अनुमति प्रदान नहीं की थी फिर भी उस सदस्य ने सभापीठ पर अपनी बात सुनने के लिए दबाव डाला क्योंकि उसकी अपनी राय में उसका औचित्य प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण था। दूसरे सदस्य के औचित्य प्रश्न को नामंजूर करते हुए उपसभापति ने टिप्पणी की, "यह संसदीय प्रथा नहीं है। जब एक औचित्य प्रश्न उठाया गया हो तब आप दूसरा औचित्य प्रश्न नहीं उठा सकते। औचित्य प्रश्न पर औचित्य प्रश्न नहीं होता है।"[263]

सभापति के विचाराधीन किसी मामले के संबंध में किसी औचित्य प्रश्न का न पूछा जाना

जब एक सदस्य ने किसी ऐसे मामले के संबंध में औचित्य प्रश्न उठाना चाहा जिसके बारे में उसने सभापति को लिखा था तब उपसभापति ने यह टिप्पणी की कि चूंकि यह मामला अब सभापति के विचाराधीन है इसलिए, सदस्य द्वारा उठाए गए औचित्य प्रश्न पर आगे कार्यवाही जारी रखने की कोई आवश्यकता नहीं है।[264]

मंत्री की टिप्पणी पर प्रश्न पूछने के लिये किसी औचित्य प्रश्न का न उठाया जाना

जब एक सदस्य ने कलकत्ता शहर के संबंध में प्रधान मंत्री द्वारा की गई कुछेक टिप्पणियों के संबंध में औचित्य प्रश्न उठाना चाहा तब उपसभापति ने यह टिप्पणी की कि मंत्री कोई भी उत्तर दे सकता है चाहे सदस्य उससे सहमत हो या नहीं। इस पर प्रश्न नहीं पूछा जा सकता।[265]

प्रश्नकाल तथा आधे घंटे की चर्चा के दौरान कोई औचित्य प्रश्न नहीं पूछा जाएगा

यह अब एक सुस्थापित प्रथा है कि प्रश्नकाल के दौरान कोई औचित्य प्रश्न नहीं पूछा जा सकता है। संभवत: ऐसा इसलिए है "क्योंकि सामान्य इच्छा यही होती है कि प्रश्नों के लिए उपलब्ध सीमित समय के दौरान अधिकाधिक कार्य किया जा सके"। राज्य सभा में पीठासीन अधिकारी जब तक कि वह प्रश्न असाधारण न हो, प्रश्नकाल के दौरान औचित्य प्रश्नों को उठाए जाने की अनुमति देने से निरन्तर इनकार करते रहे हैं।[266]

तथापि, ऐसे कतिपय उद्धरण भी हैं जब असाधारण बात को ध्यान में रखते हुए अपवाद स्वरूप इस प्रथा का त्याग भी किया गया है जैसाकि प्रश्नों से संबंधित अध्याय 17 में बताया गया है।

इसी कारण आधे घंटे की चर्चा के दौरान भी औचित्य प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।[267]

विभाजन के दौरान कोई औचित्य प्रश्न नहीं पूछा जाएगा

जब पीठासीन अधिकारी किसी प्रस्ताव पर मत लेने के दौरान अथवा प्रस्ताव पर मत लेने के पश्चात् मत-विभाजन के दौरान मत संग्रहीत करने में व्यस्त होते हैं तब वह औचित्य प्रश्न नहीं सुनेंगे; क्योंकि यदि वह ऐसा करते हैं तो मत-विभाजन और किसी प्रस्ताव के संबंध में अनुवर्ती मत-निर्धारण में कई घंटों का समय लग सकता है।[268]

प्रक्रिया के संबंध में परामर्श का अनुरोध करने हेतु कोई औचित्य प्रश्न नहीं पूछा जाएगा

अनेक अवसरों पर जब सदस्य स्थिति को असंतोषजनक मानते हैं तब वे सभापीठ से यह परामर्श देने का अनुरोध करते हैं कि इसके निराकरण के लिए प्रक्रिया संबंधी समाधान क्या हैं? सामान्यत: यह परामर्श औचित्य प्रश्न के माध्यम से मांगा जाता है। ऐसे मामलों में सभापीठ द्वारा सदस्य को कहा जा सकता है कि उसे कोई भी परामर्श औचित्य प्रश्न के माध्यम से नहीं मांगना चाहिए।

अन्य अवसर अथवा स्थितियां

(1) औचित्य प्रश्न विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं होता है।[269]

(2) सदस्य औचित्य प्रश्न को निम्नलिखित के लिए नहीं उठाएगा :

(क) सूचना मांगने के लिए; या

(ख) अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए; या

(ग) जब किसी प्रस्ताव के संबंध में कोई प्रश्न सदन में पूछा गया हो; या

(घ) जोकि परिकल्पनात्मक हो; या

(ङ) विभाजन की घंटी न बज पाने या सुनायी न देने पर।[270]

(3) कार्यावलि की किसी मद के निपटारे के पश्चात् उस मद के संबंध में कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। दूसरे शब्दों में, बिना किसी बात के कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।

(4) किसी सदस्य की निरर्हता से संबंधित मंत्रियों अथवा सदस्यों द्वारा दिए गए कथित परस्पर विरोधी वक्तव्यों के संबंध में कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।

(5) औचित्य प्रश्न में प्रक्रिया का संदर्भ दिया जाना चाहिए न कि किसी प्रस्ताव आदि से संबंधित ठोस तर्कों का।

(6) किसी सदस्य द्वारा एक ही विषय के संबंध में एक बार से अधिक औचित्य प्रश्न नहीं उठाए जा सकते।

(7) जब सभापति सदन के समक्ष कोई प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहे हों या अपना विनिर्णय सुना रहे हों या टिप्पणी कर रहे हों या कुछ बोल रहे हों, उस वक्त कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।

(8) ऐसे मामलों को औचित्य प्रश्न का विषय नहीं बनाया जाना चाहिए जिनमें सभापीठ द्वारा राहत प्रदान नहीं की जा सकती।

(9) उन औचित्य प्रश्नों को पुन: नहीं उठाया जा सकता, जिन पर पहले निर्णय हो चुका है।

(10) किसी विधेयक या संकल्प के संबंध में कोई औचित्य प्रश्न तब तक नहीं उठाया जा सकता जब तक कि कार्यावलि में दर्ज उस विधेयक या संकल्प से संबंधित प्रस्ताव को सदन के समक्ष प्रस्तुत नहीं कर दिया जाता। इसी प्रकार से, किसी संकल्प या प्रस्ताव की ग्राह्यता या ऐसे आग्रह को कि किसी प्रस्ताव या संकल्प को प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जाए, उससे संबंधित औचित्य प्रश्न को, ऐसे किसी प्रस्ताव या संकल्प के प्रस्तुत किये जाने तथा सदन के समक्ष रख दिये जाने के पश्चात् ही, उठाया जा सकता है।

(11) इस तथ्य का अभिनिर्धारण कि कोई प्रश्न औचित्य प्रश्न है या नहीं यह इस बात पर निर्भर नहीं करता कि क्या सभापीठ उसके संबंध में किसी प्रकार की राहत प्रदान कर सकती है या नहीं अपितु इस बात पर निर्भर करता है कि इसमें नियमों, निर्देशों और संविधान के विभिन्न उपबंधों की ऐसी व्यवस्था अंतर्ग्रस्त है या नहीं, जो सदन की कार्यवाही को विनियमित करती है और इसमें ऐसी बात उठाई गई है या नहीं, जिसका विनिर्णय केवल सभापीठ ही कर सकती है।

(12) सभापीठ ऐसे किसी औचित्य प्रश्न पर अपनी व्यवस्था नहीं दे सकती है जिसमें यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या कोई विधेयक संवैधानिक रूप से सदन की विधायी सक्षमता के दायरे में आता है या नहीं अथवा किसी प्रस्ताव/संकल्प से संबंधित चर्चा के अंतर्गत किसी उद्घोषणा/समझौते/संधि की संवैधानिकता है या नहीं। ऐसे मामलों पर निर्णय लेने की जिम्मेदारी सभा की है।

(13) कार्य को क्रमबद्ध करने से संबंधित किसी औचित्य प्रश्न में उस दिन के लिये कार्यावलि में पहले ही से दर्ज मदों के क्रम का उल्लेख होना चाहिए। इसे किसी ऐसे नए मद को अंतर्विष्ट करने के लिये नहीं उठाया जा सकता जोकि कार्यावलि में दर्ज नहीं हो।

(14) किसी पूर्व बैठक की कार्यवाही से संबंधित कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है।

(15) सभापीठ द्वारा दी गई व्यवस्थाओं के संबंध में कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।[271]

उन स्थितियों, जब औचित्य प्रश्न उठाए जाने चाहिए या जब औचित्य के प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, की उपर्युक्त सूची औचित्य प्रश्न की धारणा के संबंध में केवल निदर्शी है। कोई भी नियम या व्यवस्था, चाहे वह कितना ही व्यापक हो, सम्भवतया काल्पनिक औचित्य प्रश्नों को उठाए जाने की बात को रद्द नहीं कर सकता है या ऐसे अनुचित औचित्य प्रश्नों को उठाने से नहीं रोक सकता है जिससे कि बाद में स्थिति अव्यवस्था में बदल सकती है। सदन में अधिक तनाव या विवादों के समय औचित्य प्रश्न बढ़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में औचित्य प्रश्न सभापीठ के लिये अत्यधिक परेशानीजनक समस्याएं खड़ी करते हैं।

सामान्यतया जब सदस्य औचित्य प्रश्न उठाते हैं तो सभापीठ को तब तक इस बात का कोई आभास नहीं होता है कि सदस्य क्या कहने जा रहे हैं जब तक कि वे अपनी बात कह नहीं लेते हैं। अनेक मामलों में उठाया गया प्रश्न बिल्कुल भी औचित्य प्रश्न न होकर या तो चर्चा के मुद्दे में बाधा डालने या सदन की कार्यवाही में विलम्ब करने का प्रयास मात्र होता है।[272] वास्तव में ऐसी स्थिति आ सकती है जब सभापीठ को इस बात पर विचार करना पड़े कि किसी विशेष अवसर पर औचित्य प्रश्नों की भरमार की ऐसी स्थिति आ जाए तब सभापीठ के लिये यह कहना औचित्यपूर्ण हो जाता है कि वह और कोई औचित्य प्रश्न नहीं सुनेंगे।

आधिकारिक कार्यवाहियों का विवरण तैयार करना

महासचिव द्वारा राज्य सभा की प्रत्येक बैठक की कार्यवाही का पूरा विवरण तैयार करवाया जाता है और उसे यथासाध्य ऐसे रूप में तथा ऐसी रीति से प्रकाशित करवाया जाता है जैसा सभापति समय-समय पर निर्देश दें।[273]

कार्यवाही का वृत्तलेखन

कतिपय ऐसे शब्दों, पदावलियों और अभिव्यक्तियों को छोड़कर, यदि कोई हों, जो सदस्यों द्वारा सभापीठ की अनुमति के बिना कही गई हों और सभापीठ द्वारा उन्हें सदन की कार्यवाही से निकालने या अभिलेखीकृत न करने का आदेश दिया गया हो। सदन में कही गई प्रत्येक बात का शब्दश: अभिलेख आधिकारिक वृत्तलेखकों द्वारा किया जाता है।

राज्य सभा की दिन-प्रतिदिन की कार्यवाहियों के शब्दश: अभिलेख को तैयार करने संबंधी कार्य सचिवालय में शब्दश: वृत्तलेखन सेवा के संयुक्त सचिव (वृत्तलेखन) के अधीन कार्य कर रहे अंग्रेजी और हिन्दी के वृत्तलेखकों द्वारा किया जाता है। वृत्तलेखकों द्वारा आशुलिपि में लिखी गई टिप्पणियों को तुरन्त कम्प्यूटर द्वारा टाइप किया जाता है ताकि वाद-विवाद की प्रतियां उस दिन की कार्यवाही समाप्ति पर सदन के उठने के कुछ घंटे के भीतर ही उपलब्ध हो जाएं सिवाए उन दिनों के जब सदन की बैठक असामान्य रूप से अधिक समय तक चलती है। इस स्थिति में कार्यवाही के बाद के भाग को अगले दिन अनुपूरक अंक के रूप में जारी किया जाता है। वाद-विवाद की प्रतियों को सामान्यतया दो भागों में जारी किया जाता है: भाग-1 जिसमें तारांकित तथा अतारांकित प्रश्न और उनके उत्तर होते हैं तथा भाग-2 जिसमें प्रश्नों के अलावा बाकी कार्यवाही होती है।

अंग्रेजी तथा हिन्दी/उर्दू में हुई कार्यवाहियों का वृत्तलेखन वृत्तलेखकों द्वारा मूल रूप में किया जाता है। कुछ क्षेत्रीय भाषाओं में दिए गए भाषणों को साथ-साथ अंग्रेजी तथा हिन्दी में भाषान्तरित करने की व्यवस्था है और ऐसे मामलों में भाषान्तरकारों द्वारा किए गए पाठ का उल्लेख वाद-विवाद में पाद-टिप्पणी के साथ होता है जिसमें सदन में दिए गए मूल भाषण की भाषा का उल्लेख होता है। स्थापित परिपाटी के अनुसार अंग्रेजी और हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषा में बोलने के इच्छुक सदस्य सभापीठ को एक घंटे की पूर्व सूचना पर ऐसा कर सकते हैं।

जब तैयार किए गए भाषण या वक्तव्य मंत्रियों या सदस्यों द्वारा पढ़े जाते हैं और जब भाषणों को विस्तृत टिप्पणों की सहायता से दिया जाता है तो सही प्रतिलेख के लिए भाषण समाप्त होने पर इन तैयार भाषणों, विवरणों, टिप्पणों इत्यादि को वृत्तलेखकों को सौंप दिया जाता है।[274]

सदन में पूरी कार्यवाही की साथ-साथ डिजिटल और टेप रिकार्डिंग के लिए व्यवस्था विद्यमान है। इससे वृत्तलेखकों को सही प्रतिलेखन में सहायता मिलती है तथा संदेह होने पर उनके द्वारा लिखित कार्यवाहियों की परिशुद्धता की भी इससे पुष्टि होती है।

वृत्तलेखकों की प्रति को कार्यवाही का प्रामाणिक अभिलेख माना जाता है। यदि वृत्तलेखकों द्वारा अभिलिखित कार्यवाही की परिशुद्धता के संबंध में कोई विवाद उठता है तो डिजिटल/ टेप रिकार्डिंग से इनकी प्रति जांच की जा सकती है।

एक अवसर पर यह विवाद उठने पर कि सदस्य ने जो कुछ कहा था वह संसदीय था या असंसदीय, इसका पता करने के लिए वृत्तलेखक से उनकी कॉपी से वाद-विवाद का संबद्ध भाग पढ़ने के लिए कहा गया था।[275]

किसी सदस्य द्वारा किसी दिन दिए गये प्रत्येक भाषण अथवा पूछे गए प्रत्येक प्रश्न की, जिस रूप में उसे शासकीय रिपोर्टरों ने नोट किया है, इलैक्ट्रोस्टेट की हुई एक प्रति संबंधित सदस्य के पास पुष्टि के लिए साधारणत: अगले दिन प्रात:काल भेजी जाती है। उसे सम्यक् रूप से अनुमोदित करके चौबीस घंटे के अन्दर और किसी भी अवस्था में तीसरे दिन दोपहर 12 बजे तक संपादन (अंग्रेजी) अनुभाग को भेज देना चाहिए। दिवस के अंत में कार्यवाहियों का एक शब्दश: रिकार्ड इलेक्ट्रानिक स्वरूप में राज्य सभा की वेबसाइट पर भी अपलोड किया जाता है। ऊपर निर्दिष्ट समय के पश्चात् प्राप्त होने वाली शुद्धियों को प्रेस में छपने के लिए भेजी जाने वाली पांडुलिपियों में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। सदस्य द्वारा अनुमोदित प्रति की प्राप्ति में विलम्ब होने की दशा में रिपोर्टर द्वारा दिए गए विवरण को ही इस्तेमाल कर लिया जाता है।

यदि उद्धरण दिये जायें तो उद्धरण की प्रतियां रिपोर्टर को अवश्य ही उपलब्ध कराई जानी चाहिए, केवल उन मामलों को छोड़कर जिनमें किसी प्रसिद्ध रिपोर्ट के, जो आसानी से उपलब्ध है, पृष्ठ आदि का स्पष्ट निर्देश कर दिया गया है।

यदि किसी भारतीय भाषा में उद्धरण, श्लोक आदि दिये गये हों तो सदस्य को चाहिए कि अपने भाषण की प्रति अनुमोदन के लिए प्राप्त होने पर उसमें उद्धरण दर्ज कर दें और उसका अर्थ पहले न दिया हो तो उक्त उद्धरण के बाद उसका अर्थ भी लिख दें।

अधिकारीय प्रतिवेदन में सदस्यों के भाषण बिल्कुल उसी रूप में प्रकाशित होने चाहिए जिस रूप में वे सभा में दिये गये हों। भाषण की प्रतियां उनके पास अभिपुष्टि हेतु और स्पष्ट अशुद्धियों को सुधारने के प्रयोजनार्थ भेजी जाती हैं न कि इस प्रयोजन के लिए कि उनका साहित्यिक रूप सुधारा जाए अथवा उनमें कोई अंश जोड़कर अथवा उनमें से कोई अंश हटाकर उसके सार-रूप में परिवर्तन किया जाए। इन भाषणों में केवल मामूली अशुद्धियां, उदाहरणार्थ, व्याकरण संबंधी त्रुटियां, गलत रूप से दिये गये उद्धरण, आंकड़ों, नाम आदि को ठीक किया जा सकता है। यदि सदस्यों द्वारा कोई शुद्धियां की जायें तो वे स्याही से साफ तथा पढ़े जा सकने वाले अक्षरों में की जानी चाहिए ताकि उन्हें मुद्रित होने वाले प्रतिवेदन में ठीक-ठीक सम्मिलित किया जा सके।[276]

अधिकारीय प्रतिवेदन में कही गई बातों का अभिलेख होता है। अत: इसमें वर्णनात्मक अभिलेखन नहीं किया जाता है। उदाहरणार्थ, क्रुद्ध भाव-भंगिमा, जोरदार प्रशंसा अथवा व्यंग्यात्मक हंसी को अधिकारीय प्रतिवेदन में नहीं दर्शाया जाता है जब तक कि किसी सदस्य द्वारा उनका संदर्भ न दिया जाए। निधन संबंधी उल्लेख के अंत में सदस्यों द्वारा मौन धारण करने और बहिर्गमन को ही सामान्य रूप से दर्शाया जाता है।

समितियों की कार्यवाहियों का अभिलेखन

जब किसी साक्षी को साक्ष्य देने के लिए बुलाया जाता है तो संसदीय समिति की कार्यवाहियों का शब्दश: अभिलेख रखा जाता है।[277] इस प्रकार की कार्यवाही के प्रासंगिक भाग को अभिपुष्टि हेतु साक्षी और संबद्ध सदस्यों को भेजा जाता है जिन्हें विनिर्दिष्ट तिथि के भीतर वापस करना होता है। शब्दश: कार्यवाहियों को गोपनीय माना जाता है और अध्यक्ष की अनुमति के बिना उसे किसी को भी उपलब्ध नहीं करवाया जा सकता है। कार्यवाहियों को अभिपुष्टि हेतु जिन साक्षियों के पास भेजा जाता है उन्हें यह सूचना दी जाती है कि कार्यवाहियां गोपनीय रखी जाएं और वे इसके किसी भी अंश को प्रकाशित न करें। जहां तक समिति की अन्य कार्यवाहियों का संबंध है, समिति के निर्णयों को कार्यवृत्त के रूप में अनुरक्षित किया जाता है।[278]

राज्य सभा की कार्यवाही से शब्दों का निकाला जाना

यदि सभापति की यह राय हो कि वाद-विवाद में किसी ऐसे शब्द या शब्दों को प्रयुक्त किया गया है, जो मानहानिकारक या अशिष्ट अथवा असंसदीय या अशोभनीय हैं, तो वह स्वविवेक से आदेश दे सकेगा कि ऐसे शब्द या शब्दों को सदन की कार्यवाही में से निकाल दिया जाये।[279] व्यवहार में इस शक्ति का विस्तार कर दिया गया है और कुछ मामलों में सभापति ने स्वविवेक से ऐसे शब्दों को कार्यवाही में से निकालने का आदेश दिया है जिन्हें वह राष्ट्रीय हित के अथवा किसी विदेशी राज्य के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने के प्रतिकूल समझे, जो विदेशी मित्र-राज्यों के राज्याध्यक्षों सहित उच्च पदाधिकारियों के प्रति अपमानजनक हो;[280] राष्ट्रीय भावनाओं अथवा समाज के किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाते हों; जिनसे सेना की प्रतिष्ठा घटने की संभावना हो; अच्छे आशय के न हों अथवा अन्यथा आपत्तिजनक हों और जिनसे सदन की अपकीर्ति की सम्भावना हो। सदन की कार्यवाही से निम्नलिखित अवस्थाओं में शब्दों को निकालने का आदेश स्वत: सभापति द्वारा दिया जा सकता है:

(i) यदि वह यह समझे कि कतिपय शब्द मानहानिकारक, अशिष्ट, असंसदीय अथवा अशोभनीय हैं;

(ii) किसी सदस्य अथवा मंत्री द्वारा आपत्तिजनक शब्दों को, उन्हें उच्चारित करते समय अथवा बाद में सभापति के ध्यान में लाया जाये और सभापति उससे सहमत हो;

(iii) जब सचिवालय के किसी अधिकारी द्वारा अथवा अन्यथा आपत्तिजनक शब्दों की ओर सभापति का ध्यान आकृष्ट किया जाये और सभापति इस बात से सहमत हो;

(iv) जब कभी कोई सदस्य स्वयं यह अनुरोध करे कि उसके भाषण से कतिपय शब्दों को निकाल दिया जाए और सभापति इस बात से सहमत हो;

एक सदस्य ने सभापति से अनुरोध किया कि उसके उस अनुपूरक प्रश्न को कार्यवाही से निकाल दिया जाए जिसे उसने गलतफहमी से पूछ लिया था। सभापति ने यह कहते हुए सहमति नहीं दी कि सदस्य द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण रिकॉर्ड में चला जायेगा।[281]

(v) यदि सदस्यों द्वारा एक दूसरे के विरुद्ध अपमानजनक टिप्पणियां की गई हों;

एक बहस के दौरान कुछ सदस्यों के बीच कुछ कहा-सुनी हो गई। एक सदस्य ने दूसरे सदस्य द्वारा की गई कतिपय टिप्पणियों को वापस लेने की मांग करते हुए व्यवस्था का प्रश्न उठाया। उस दिन सभा को स्थगित करने से पूर्व उपसभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा कि उन्होंने रिकॉर्ड देख लिया था और उन टिप्पणियों को हटा दिया जायेगा।[282]

(vi) जब कोई सदस्य अपने शब्दों को वापस ले लेता है।

एक सदस्य ने कोई टिप्पणी की जिसे उसने सभापति के निर्देश देने पर वापस ले लिया। यद्यपि असंशोधित कार्यवाही में वे शब्द शामिल नहीं हैं परन्तु उसका यह वक्तव्य कि उसने उन शब्दों को वापस ले लिये हैं कार्यवाही में शामिल कर लिया गया है, तो उस सदस्य ने अगले दिन इस मामले को सभा में उठाया और यह तर्क दिया कि "वापस लिया गया" और "निकाल दिया गया" शब्दों के बीच अन्तर है और कहा कि जब उसने सभापीठ की आज्ञा का पालन किया और उन शब्दों को वापस ले लिया तो उन्हें कार्यवाही से निकाला नहीं जा सकता था। सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ कहा कि "टिप्पणियों को कार्यवाही से निकालने का अधिकार मेरा विवेकाधिकार है और यह उन मामलों तक ही सीमित नहीं है जबकि कोई माननीय सदस्य मेरे निर्देशों का उल्लंघन करता है। किसी टिप्पणी को वापस लिया जा सकता है, और उसके बावजूद इसका स्वरूप ऐसा हो सकता है कि यह नियम 261 के अधीन दी गई मेरी शक्तियों के अन्तर्गत आता हो।"[283]

जब कोई सदस्य बोलने के लिए न बुलाए जाने पर भी बोलता है अथवा अपना स्थान ग्रहण किए जाने के लिए कहे जाने के बावजूद बोलता रहता है अथवा सभापीठ की अनुमति के बिना बोलता है तो सभापति यह निर्देश दे सकता है कि ऐसे सदस्य की टिप्पणियां रिकॉर्ड पर न जाएं।[284] इसी प्रकार, यदि कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य अथवा मंत्री के भाषण के बीच व्यवधान करना जारी रखता है तो सभापीठ यह निर्देश दे सकता है कि व्यवधान को अभिलिखित न किया जाए।[285]

जब किसी सदस्य ने सभापीठ की अवज्ञा करके बोलना चाहा तो सभापति ने आदेश दिया कि सदस्य ने जो कुछ भी कहा है वह "रिकॉर्ड में नहीं जायेगा"। व्यवस्था संबंधी एक प्रश्न उठाया गया कि सभापति को ऐसा आदेश देने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है कि कार्यवाही का कोई अंश रिकॉर्ड पर न जाए। परंतु सभापीठ ने निर्णय दिया कि उन्हें नियम 259 (व्यवस्था बनाए रखने और निर्णयों का प्रवर्तन करने हेतु सभापति की शक्ति के संबंध में) के अधीन यह शक्ति प्राप्त है।[286]

एक बार जब कुछ सदस्य एक साथ अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए उठ खड़े हुए और उन्होंने औचित्य का प्रश्न उठाया तथा सभापति द्वारा बैठने के लिए कहने के बावजूद अपना स्थान पुन: ग्रहण नहीं किया, तब खड़े होकर उन्होंने यह टिप्पणी की: "जब मैं खड़ा हूं और कोई माननीय सदस्य बोल रहा हो, तो मेरा वृत्तलेखकों को यह अनुदेश है कि वह जो कुछ कहें, उसे बिल्कुल अभिलिखित न किया जाए। यह स्थायी अनुदेश है।"[287] कुछ दिनों के बाद एक सदस्य ने सभापति से इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए अपने विनिर्णय पर पुनर्विचार करने का अनुरोध किया कि नियम यह नहीं कहते कि जब सभापति महोदय खड़े हों और तब कोई सदस्य कुछ कहे, तो उसकी बात स्वत: ही अभिलेख से बाहर हो जाती है। तत्पश्चात् सभापति ने स्पष्ट किया कि उनकी यह बात उसी दिन के लिए थी और हर अवसर पर वह विशेष निदेश देंगे।[288]

सभापति जब पीठासीन हो, केवल तभी नहीं अपितु वह बाद के किसी भी दिन को कही गई बात को कार्यवाही से बाहर निकालने का आदेश दे सकता है।

> एक सदस्य ने अपनी उस आपत्तिजनक टिप्पणी को वापस ले लिया, जो उसने तब की थी जब सभापति महोदय पीठासीन थे। इसके बाद उन्होंने उपसभाध्यक्ष को कार्यवाही में से टिप्पणियों को बाहर निकालने का आदेश दिया। अगले दिन सदस्य ने अन्य बातों के साथ-साथ यह दावा करते हुए सदन में मामला उठाया कि सभापति कार्यवाही में से कथनों को बाहर निकालने के ऐसे आदेश अपने चैम्बर से नहीं दे सकते; वह सभापीठ पर आसीन होने पर ही ऐसा कर सकते हैं। सभापति ने टिप्पणी की कि सभापति ऐसा कर सकते हैं और इसमें स्थान की कोई बात नहीं है; यह आवश्यक नहीं है कि उन्हें सदन की कार्यवाही में से किसी कथन को बाहर निकालने का निदेश देने के लिए सदन में सभापीठ पर विद्यमान होना चाहिए।[289]
>
> 21 और 25 जुलाई, 1989 को भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन पर हुई अल्पकालिक चर्चा के दौरान उनके विरुद्ध की गई कुछ आपत्तिजनक टिप्पणियों को राज्य सभा के एक भूतपूर्व सदस्य द्वारा किए गए अभ्यावेदन पर सभापति ने 151वें सत्र (18 अगस्त, 1989) के आखिरी दिन सदन की कार्यवाही से निकालने के आदेश दिए थे। सदस्यों को टिप्पणियों को कार्यवाही से निकालने की सूचना संसदीय समाचार में प्रकाशित पैरा के माध्यम से दी गई।[290]
>
> एक सदस्य द्वारा 30 अप्रैल, 1992 को लोक सभा सचिवालय के संबंध में की गई कतिपय टिप्पणियों को, जिन पर तब ध्यान नहीं गया था, बाद में सदन की कार्यवाही से निकाला गया और तदनुसार संबंधित सदस्य को सूचित किया गया।[291]

पीठासीन अधिकारी का शब्दों को कार्यवाही से बाहर निकालने के बारे में निर्णय या यह निदेश कि कुछ भी अभिलिखित नहीं किया जाएगा, अंतिम होता है और इस संबंध में सभापति के समक्ष कोई अपील नहीं की जा सकती।

> प्रश्नकाल के तुरंत बाद एक सदस्य ने एक उपसभाध्यक्ष द्वारा पहले दिए गए निदेश के संदर्भ में सभापीठ के यह कहने कि "कार्यवाही में कुछ भी शामिल नहीं किया जाएगा" के अधिकार पर प्रश्न-चिह्न लगाया और उसने आगे कहा कि जब तक नियमों का उल्लंघन नहीं होता और संविधान की अवमानना नहीं होती, तब तक वह ऐसी बात नहीं कह सकते। उन्होंने उपसभाध्यक्ष द्वारा इस प्रकार से निकाली जा रही कुछ कार्यवाहियों के संबंध में आपत्ति प्रकट की। इसके उत्तर में सभापति ने टिप्पणी की कि:
>
> > "मैं निश्चित रूप से सभापीठ पर मौजूद उपसभाध्यक्ष द्वारा दिए गए विनिर्णय का समर्थन करता हूं। यह विनिर्णय मेरे द्वारा किए गए निर्णय के समान है। यदि मैं उन विनिर्णयों की समीक्षा करना शुरू कर दूं, तो कार्य कभी भी समाप्त नहीं होगा और काफी मुश्किलें भी पैदा हो जायेंगी।"[292]

एक से अधिक अवसर पर सभापीठ द्वारा दिए गए इस निदेश के संबंध में कि अभिलेख में कुछ भी शामिल नहीं किया जाएगा, सदन में मामला उठाया गया है। उदाहरण के लिए 6 अगस्त, 1980 को इस मुद्दे पर लम्बी बहस हुई। एक सदस्य ने यह तर्क किया कि नियम 260 के अधीन महासचिव को कार्यवाही का पूरा ब्योरा तैयार करवाना होता है। इस संबंध में कोई विशिष्ट नियम नहीं है कि "सभापति निदेश दे कि कुछ भी अभिलेख में शामिल नहीं किया जाएगा।" उपसभापति ने टिप्पणी की कि नियम 266 (अवशिष्ट शक्ति) के अधीन सभापीठ को सदन की कार्यवाहियों को विनियमित करने की शक्ति प्राप्त है।[293]

27 अगस्त, 1988 को पुन: प्रश्नकाल के दौरान जब सभापति ने यह विनिर्णय दिया कि अनुपूरक प्रश्नों के अतिरिक्त, जो बातें सभा में कही गई हैं, उनमें से किसी भी बात

को अभिलेख में शामिल नहीं किया जाएगा, तब इस पर सदस्यों ने अभिलेख से सदस्यों की अभिव्यक्तियों को हटाने पर आपत्ति की थी। सभापति का कहना था:

> "यह एक सुस्थापित परंपरा है। अन्यथा आपको उतने वृत्तलेखकों की आवश्यकता पड़ेगी जितने यहां सदस्य हैं...मेरा विनिर्णय बिल्कुल स्पष्ट है कि जो बात कही गई है, उसमें से कुछ भी अभिलेख में शामिल नहीं किया जाएगा। जो अभिलेख में है, उसे नहीं निकाला जायेगा।"[294]

नियम समिति ने भी इस मुद्दे पर विचार किया। राज्य सभा के सभापति, जो समिति के अध्यक्ष भी हैं, ने स्पष्ट किया कि सभापीठ द्वारा नियम 259 के अधीन इस शक्ति का प्रयोग किया जा रहा है और यदि सदस्यों की यह इच्छा है तो इस विषय के संबंध में एक विशिष्ट नियम को नियमों में अन्तर्विष्ट किया जा सकता है।[295]

कार्यवाही में से निकाले गए शब्दों का संकेत

सदन की कार्यवाही में से इस तरह निकाले गये अंश को तारांक द्वारा दर्शाया जाता है और कार्यवाही में निम्नलिखित व्याख्यात्मक पाद-टिप्पण समाविष्ट की जाती है: "सभापीठ के आदेशानुसार निकाला गया।"[296] यदि शब्दों को उत्तरवर्ती दिन निकाला जाता है, तो निकाले गए अंश का संकेत केवल मुद्रित वाद-विवाद में तारांक द्वारा दर्शाया जाता है। यदि सभापीठ ने निदेश दिया है कि किसी सदस्य के भाषण के किसी भी अंश को अभिलिखित नहीं किया जाएगा तो कार्यवाही के अन्त में यह पाद-टिप्पणी दी जाती है "अभिलिखित नहीं किया गया।"

शब्दों और टिप्पणों को न केवल सदस्यों के भाषणों से बल्कि मंत्रियों के भाषणों से भी निकाले जाने का आदेश दिया जाता है।

> 16 जुलाई, 1996 को जम्मू और कश्मीर में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाए जाने संबंधी संकल्प पर चर्चा में गृह मंत्री श्री इन्द्रजीत गुप्त ने जम्मू और कश्मीर में हुए लोक सभा चुनावों में मतदान अधिकारियों के आचरण के संबंध में टिप्पणी की थी। गृह मंत्री की टिप्पणी पर कई सदस्यों ने कड़ी आपत्ति की थी जिस पर उपसभाध्यक्ष (सुश्री सरोज खापर्डे) ने गृह मंत्री की टिप्पणी और उस टिप्पणी के सुस्पष्ट उल्लेखों को कार्यवाही से निकाले जाने का आदेश दिया।

> 29 जुलाई, 1998 को तत्कालीन गृह मंत्री श्री एल.के. आडवाणी ने एक निर्णयाधीन मामले के संबंध में महाराष्ट्र सरकार के कतिपय कार्यों के संबंध में टिप्पणी की थी। सभा में बोलते समय सदस्यों को जिन मार्गदर्शी सिद्धांतों का पालन करना होता है उनके अनुसार संसद् में वाक्-स्वातंत्र्य संबंधी एक स्वारोपित प्रतिबंध यह है कि न्यायालयों के समक्ष न्यायनिर्णय के लिए लंबित पड़े मामलों पर सभा में चर्चा करने से बचना चाहिए ताकि न्यायालय ऐसे मामलों पर कार्रवाई करते समय मुकदमे के कार्यक्षेत्र से बाहर कही गई किसी भी बात से प्रभावित हुए बिना कार्य कर सकें। जब कुछ सदस्यों ने पीठासीन उपसभापति महोदय का ध्यान एक न्याय-निर्णयाधीन मामले पर गृह मंत्री की टिप्पणी की ओर खींचा तो उपसभापति ने गृह मंत्री की आपत्तिजनक टिप्पणियों को हटा दिया।

कार्यवाही से निकाला जाना तथा बाद में पुनः शामिल किया जाना

5 अगस्त, 1993 को प्रश्नकाल के तुरंत बाद श्री यशवंत सिन्हा ने सभापति की पूर्वानुमति से इंडो-रशियन क्रॉयोजेनिक राकेट इंजन सौदे के संबंध में रूस द्वारा इनकी आपूर्ति रोकने के प्रश्न पर शून्य-काल के दौरान एक वक्तव्य दिया और उसमें तत्कालीन वित्त मंत्री

डा. मनमोहन सिंह के संबंध में कुछ टिप्पणियां कीं जो पीठासीन उपसभापति डा. (श्रीमती) नजमा ए. हेपतुल्ला द्वारा कार्यवाही से निकाल दी गई थीं। उस समय उपसभापति ने यह टिप्पणी की थी कि श्री सिन्हा की टिप्पणियां अप्रासंगिक हैं। अगले दिन 6 अगस्त, 1993 को जब श्री यशवंत सिन्हा ने यह पाया कि वित्त मंत्री के बारे में उनकी टिप्पणियां 5 अगस्त, 1993 की "असंशोधित/प्रकाशन के लिए नहीं" वाद-विवाद में से निकाल दी गई हैं तो उन्होंने सभापति को एक पत्र लिखकर अपनी टिप्पणियों को पुन: वाद-विवाद में शामिल करने का अनुरोध किया क्योंकि उनकी टिप्पणियों को असंसदीय नहीं माना जा सकता था। जब श्री यशवंत सिन्हा का सभापति को किया गया अनुरोध उपसभापति के पास भेजा गया तो उपसभापति ने पुनर्विचार करने के उपरांत श्री सिन्हा की कार्यवाही से निकाली गई टिप्पणियों को पुन: वाद-विवाद में शामिल कर लिया।

समिति की कार्यवाही में से शब्दों का निकाला जाना

यदि समिति के अध्यक्ष की राय में किसी विसम्मति-टिप्पण में ऐसे शब्द, वाक्यांश या पद हों जो असंसदीय अथवा अन्यथा अनुपयुक्त हों तो वह ऐसे शब्दों, वाक्यांशों अथवा पदों को विसम्मति-टिप्पण से निकाल दिए जाने का आदेश दे सकेगा।[297] अध्यक्ष को इसी प्रकार की परिस्थितियों में शब्दों को निकाले जाने या विसम्मति-टिप्पण में से निकाले गए शब्दों के बारे में लिए गए सभी निर्णयों की पुनरीक्षा करने की भी शक्ति प्राप्त है और उसका निर्णय अंतिम होता है।[298]

राज्य सभा और उसकी दीर्घाओं आदि में अनजान व्यक्तियों का प्रवेश

राज्य सभा की बैठकों के दौरान सभा के उन भागों में, जो केवल सदस्यों के उपयोग के लिए ही रक्षित न हों, अनजान व्यक्तियों का प्रवेश सभापति द्वारा दिए गए आदेशों के अनुसार विनियमित किया जाता है।[299] जब सदन की बैठक चल रही हो तो सभा-कक्ष सदस्यों के अनन्य उपयोग के लिए ही आरक्षित होता है और इसमें किसी अनजान व्यक्ति को प्रवेश की अनुमति नहीं दी जाती है। यदि कोई अनजान व्यक्ति यह जानते हुए कि वह सभा की सदस्यता के लिए अर्हित नहीं है, सदन में प्रवेश करता है और बैठता है, तो वह पांच सौ रुपए के जुर्माने का भागी होगा जो संघ को देय ऋण के रूप में वसूल किया जाएगा।[300] सदन के अन्य भाग जहां विनिर्दिष्ट स्थितियों में अनजान व्यक्तियों को जाने की अनुमति दी जा सकती है, आंतरिक/बाह्य लॉबी, दीर्घाएं और केन्द्रीय कक्ष हैं। चैम्बर, लॉबी और दीर्घा सदन के आंतरिक क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं।

सचिवालय के किसी अधिकारी अथवा अन्य सभा के किसी कर्मचारी को सदन की बैठक के दौरान सदन में प्रवेश करने का अधिकार होगा।[301] इसलिए संसदीय शब्दावलि में, उन सभी व्यक्तियों को अनजान व्यक्ति कहा जाता है जो सदन के सदस्य या अधिकारी नहीं हैं।[302] विभिन्न दीर्घाओं में अनजान व्यक्तियों का प्रवेश सभापति के निर्देशों के अनुसार विनियमित होता है।

सभापति जब भी उचित समझे, सभा के किसी भी भाग से बाहरी व्यक्तियों को बाहर जाने का आदेश दे सकता है।[303] आगन्तुक कार्ड/पास के दूसरी ओर निम्नलिखित अनुदेशों को हिन्दी और अंग्रेजी में लिखा गया है :

1. प्रवेश उपलब्ध स्थान के अध्यधीन होगा।

2. यह पास बिना किसी सूचना दिए निरस्त किया जा सकता है और इसके लिए कोई कारण भी नहीं बताया जाएगा।

3. वह व्यक्ति (जिसके नाम में यह पास जारी किया गया है) इसे सुरक्षित रखने और सदुपयोग के लिए उत्तरदायी होगा। यह पास जिस अवधि के लिए जारी किया गया है उसके पूरे होने पर लौटा दिया जाना चाहिए अथवा राज्य सभा के केन्द्रीकृत पास निर्गम प्रकोष्ठ शाखा द्वारा पुनः वैध करवाया जाना चाहिए।

4. सभा की कार्यवाही देखने के बाद, आगन्तुकों को समय समाप्त होने के बाद अथवा सुरक्षा कर्मचारी द्वारा ऐसा कहे जाने पर, जो भी पहले हो, तुरंत संसद् भवन परिसर से बाहर आ जाना चाहिए।

5. आगंतुकों द्वारा प्रतिषिद्ध क्षेत्रों में घूमते हुए पाए जाने की स्थिति में उन्हें संसद् भवन परिसर से तुरंत बाहर भेज दिया जाएगा।

6. आगंतुक मौन रहेंगे और उनके द्वारा, प्रशंसात्मक अभिव्यक्ति, चिल्लाना और पर्चे बांटना प्रतिषिद्ध है। जहां तक संभव हो किसी प्रकार की आवाजाही न की जाए।

7. यह पास ड्यूटी पर तैनात सुरक्षा अधिकारी द्वारा मांगे जाने पर दिखाया जाना चाहिए।

8. कोई आगंतुक, चाहे उसके पास वैध आगंतुक कार्ड क्यों न हो, उन्हें किसी भी समय बिना कोई कारण बताए दीर्घा से बाहर जाने को कहा जा सकता है।

9. आगंतुकों को भवन में आपत्तिजनक वस्तुएं (जैसे छड़ी, छाता, हैण्ड बैग, अटेची केस, पुस्तकें आदि) और इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएं (जैसे मोबाइल फोन, कैमरे, सी.डी., पेन ड्राइव, रेडियो, आई-पॉड/आई पैड, लैपटॉप इत्यादि) लाने की अनुमति नहीं है। वे टोकन केबिन में ऐसी वस्तुओं की घोषणा कर दें और उन्हें जमा कर दें।

10. संसद् भवन परिसर में कोई शस्त्र लाने की अनुमति नहीं है। शस्त्र धारण किए जाने पर, उसे संसद् भवन परिसर के बाहर छोड़ दें।

11. ऐसे आगंतुक जिनके पास नकद राशि हो या जिसके हैंडबैग में मूल्यवान वस्तुएं हों, वे लॉकर की मांग कर सकते हैं।

12. 10 वर्ष से कम आयु के बच्चों को दीर्घा में प्रवेश की अनुमति नहीं होगी।

13. कोई भी अतिलंघन के लिए संबंधित व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई किये जाने हेतु वे स्वयं भागी होंगे।

14. संसद् भवन परिसर में धूम्रपान सख्त वर्जित है।

15. मीडिया के साथ बातचीत या साक्षात्कार की अनुमति नहीं है।

16. कृपया संसद् भवन परिसर के अनुशासन और शिष्टाचार को बनाये रखने में सुरक्षा कर्मचारियों के साथ सहयोग करें।

17. कोई जरूरत पड़ने पर निकटतम सुरक्षा कार्मिक से संपर्क करें और उनसे सहयोग करें।

18. किसी भी प्रयोजन के लिए पास की फोटोकॉपी/स्कैनिंग/उसमें हेरफेर करना सख्त वर्जित है।

19. दौरा पूरा होने के बाद प्रवेश पत्र को निकास द्वार पर ड्यूटी पर तैनात सुरक्षा सहायक के पास अवश्य जमा करा दें।

20. इस पास के खो जाने की सूचना तत्काल सी.पी.आई.सी., राज्य सभा और संचार नियंत्रण कक्ष को दी जानी चाहिए।

सदस्य दर्शक दीर्घाओं में जा सकते हैं किन्तु यह वांछनीय नहीं होगा कि वे दर्शक दीर्घा में अधिक देर तक रुकें।

> एक बार किसी सदस्य ने एक व्यवस्था का प्रश्न उठाया कि क्या सभा का कोई सदस्य दर्शक दीर्घा में जा सकता है और वहां से सभा की कार्यवाही देख सकता है, उपसभापति ने टिप्पणी की कि यद्यपि सदस्यगण विभिन्न दीर्घाओं में जा सकते हैं किन्तु किसी सदस्य के लिये यह उपयुक्त नहीं होगा कि वह उस दीर्घा के लिये किसी कार्डधारक के स्थान पर स्वयं बैठे रहें जो दर्शकों के लिये है।[304]

राज्य सभा की दीर्घाएं

राज्य सभा कक्ष की दर्शक दीर्घाओं में सार्वजनिक दीर्घा, विशिष्ट दर्शक दीर्घा, प्रेस दीर्घा और लोक सभा के सदस्यों की दीर्घाएं होती हैं। एक सरकारी दीर्घा (सभापति के आसन के दायीं तरफ स्थित) और एक विशेष बॉक्स (सभापति के आसन के बायीं तरफ स्थित) भी हैं।

सार्वजनिक दीर्घा सामान्यत: जनता के प्रयोग के लिए है। कोई सदस्य केवल उन व्यक्तियों के लिए दर्शक-कार्ड जारी करने के लिए आवेदन कर सकता है जिन्हें वह व्यक्तिगत

रूप से जानता हो और वे उसके निजी मित्र अथवा संबंधी हों अथवा कुछ चुनिंदा मामलों में सदस्य उन व्यक्तियों के लिए दर्शक-कार्ड जारी कराने के लिए आवेदन कर सकते हैं जिनका परिचय उन व्यक्तियों ने कराया हो जिन्हें वे व्यक्तिगत रूप से जानते हों। इस दीर्घा में प्रवेश के लिए कार्ड आवेदन करने पर ही जारी किए जाते हैं। इस संबंध में संसदीय समाचार में निम्नलिखित पैराग्राफ जारी किया जाता है:

> सदस्यों का ध्यान विशेष रूप से निम्नलिखित प्रमाण-पत्र की ओर दिलाया जाता है, जो उनके द्वारा सभा की दीर्घाओं के लिए दर्शक-कार्डों हेतु आवेदन करते समय दिया जाता है:
>
> > "उपरोक्त नाम का दर्शक मेरा रिश्तेदार/मित्र है जिसे मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूं और उसकी पूरी जिम्मेदारी लेता हूं"
>
> सदस्यों से अनुरोध है कि वे कृपया इस बात को सुनिश्चित कर लें कि जिन व्यक्तियों के लिए दर्शक-कार्ड बनवा रहे हैं उन्हें वे व्यक्तिगत रूप से जानते हैं।
>
> सदस्यों से अनुरोध है कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि आवेदन-पत्रों में आवश्यक विवरण विधिवत् रूप से भरा हो। यदि उसमें सभी आवश्यक विवरण नहीं दिए गए होंगे तो दर्शक-कार्ड जारी करना संभव नहीं होगा।
>
> सदस्यों से यह भी अनुरोध है कि दर्शक-कार्ड सभा की जिस दिन की बैठक के लिए अभिप्रेत हो, तत्संबंधी आवेदन-पत्र उससे एक दिन पहले म.प. 3.00 बजे तक सूचना कार्यालय में दे दिया जाए।
>
> सदस्यों से यह अनुरोध भी किया जाता है कि देश में मौजूदा सुरक्षा वातावरण को देखते हुए उसी दिन के लिए दर्शक-कार्ड जारी किए जाने के लिए अनुरोध न करें।[305]

विशिष्ट दर्शक दीर्घा प्रख्यात व्यक्तियों, पूर्व संसद्-सदस्यों, राज्यों के मंत्रियों इत्यादि, विदेशी राजनयिकों और सभापति के परिवार के सदस्यों के लिए है।

प्रेस दीर्घा प्रत्यायित संवाददाताओं के लिए है जिन्हें महासचिव द्वारा सभापति के सामान्य आदेशों के अनुसार पास जारी किए जाते हैं।

लोक सभा दीर्घा विशेष रूप से लोक सभा के सदस्यों के लिए है ताकि वे राज्य सभा की कार्यवाही देख सकें।

अधिकारी दीर्घा भारत सरकार के केवल उन अधिकारियों के लिए है जिनकी उपस्थिति सभा में होने वाले कार्य के संबंध में अपेक्षित होती है।

विशेष बॉक्स राष्ट्रपति के परिवार तथा अतिथियों, विदेशी राष्ट्राध्यक्षों और विदेशी संसदीय शिष्टमंडलों इत्यादि के लिए आरक्षित है।

लॉबी

राज्य सभा लॉबी में आंतरिक लॉबी (इसे डिवीजन लॉबी भी कहा जाता है) तथा बाहरी लॉबी आती है। यह लॉबी वर्तमान तथा भूतपूर्व संसद्-सदस्यों के बैठने आदि के लिए है।

केन्द्रीय कक्ष

केन्द्रीय कक्ष (सेंट्रल हॉल) मुख्यत: संसद्-सदस्यों के प्रयोग के लिए है। भूतपूर्व सदस्यों को केन्द्रीय कक्ष में फोटो पहचान-पत्र के आधार पर प्रवेश की अनुमति है जोकि संबंधित

सचिवालय द्वारा उन्हें जारी किया जाता है। कतिपय समाचार-पत्रों के संवाददाताओं को भी, जिनके पास प्रेस-पास होते हैं, अपना पास दिखाने पर केन्द्रीय कक्ष में प्रवेश की अनुमति है।

केन्द्रीय कक्ष के लिए प्रवेश-पत्र के लिए राज्य सभा के सूचना कार्यालय द्वारा उन व्यक्तियों के लिए अनुशंसा की जाती है जिनके लिए सदस्यों द्वारा विशेष रूप से लिखित में अनुरोध किया जाता है। केन्द्रीय कक्ष में प्रवेश की सुविधा के लिए निम्नलिखित श्रेणी के व्यक्ति ही पात्र हैं :

1. विधान सभा/विधान परिषद् के वर्तमान सदस्य;
2. मुख्य मंत्री/राज्यों के मंत्री;
3. राज्यों के भूतपूर्व मंत्री;
4. वर्तमान सदस्य के पति/पत्नी, पुत्र/पुत्री।[306]

इस प्रयोजन के लिए आवश्यक फार्म सूचना कार्यालय में उपलब्ध हैं।

केन्द्रीय कक्ष में राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान केन्द्रीय कक्ष की दर्शक दीर्घा में प्रवेश के लिए निर्धारित फार्म में आवेदन देना आवश्यक है। केन्द्रीय कक्ष की दर्शक दीर्घाओं में राज्य सभा के सदस्यों तथा उनके अतिथियों के लिए बैठने के स्थान अत्यन्त सीमित हैं। इसके लिए प्रवेश-पत्र "पहले आओ-पहले पाओ" के आधार पर जारी किए जाते हैं।[307]

नियमों का निलम्बन

कोई सदस्य, सभापति की सहमति से, प्रस्ताव कर सकेगा कि राज्य सभा के समक्ष उपस्थित किसी विशेष प्रस्ताव पर किसी नियम का लागू किया जाना निलम्बित कर दिया जाए और यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाये तो संबंधित नियम उस समय के लिए निलम्बित कर दिया जाता है। यदि नियमों के विशेष अध्याय के अधीन किसी नियम के निलम्बन के लिए कोई उपबंध पहले से ही मौजूद हो तो नियमों के निलम्बन संबंधी सामान्य नियम लागू नहीं होता।[308] जैसा कि सभापति ने एक अवसर पर टिप्पणी की थी, "मेरी स्वीकृति द्वारा ही प्रश्नकाल निलम्बित किया जा सकता है। मैं स्वीकृति नहीं दे रहा हूं।...मेरी स्वीकृति के बिना कोई भी नियम निलम्बित नहीं किया जा सकता।[309]

यद्यपि, यह सभापति के विवेकाधीन है कि वह नियम के निलम्बन के प्रस्ताव को उपस्थित करने के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान करे। विवेक का प्रयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक तथा सतर्कता से और सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् ही किया जाता है। निलम्बन के प्रत्येक अनुरोध पर उसके गुण-दोष पर विचार करने के पश्चात् ही सभापति द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाती है। अनेक अवसरों पर सभापति ने प्रस्ताव, विशेष रूप से प्रश्नकाल के संबंध में उपस्थित करने के लिए स्वीकृति देने से इनकार कर किया।[310] एक अवसर पर एक सामान्य प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सत्र के दौरान प्रश्नकाल, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव और गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य को पूर्णतया निलम्बित कर दिया जाए।[311]

सभापति की अवशिष्ट शक्तियां

सभापति को ऐसे सभी मामलों, जिनका नियमों में विशिष्ट और पर्याप्त रूप से उपबंध नहीं किया गया है, को निपटाने की शक्तियां प्राप्त हैं। ऐसे सभी मामले, जिनका नियमों में विशिष्ट रूप से उपबंध न किया गया हो, और नियमों के विस्तृत प्रवर्तन से संबंधित सब प्रश्न ऐसी नीति से विनियमित किए जाएंगे जिसका कि सभापति समय-समय पर निदेश दें।[312] इन शक्तियों का प्रयोग करते हुए सभापति ने प्रश्नों, समितियों, विशेष उल्लेख, रजिस्टर से विधेयकों को निकाले जाने आदि से संबंधित अनेक मामलों में समय-समय पर निदेश जारी किए हैं। अंतर्निहित शक्तियों के अधीन सभापति सभा की कार्यवाही के विवरण में से शब्दों को निकाले जाने का आदेश उन आधारों पर दे सकता है जिनका उपबंध शब्दों के निकाले जाने से संबंधित नियम में नहीं है।

सदस्यों द्वारा दिया जाने वाला प्रथम भाषण प्रक्रिया तथा कार्य संचालन विषयक नियम के किसी विशिष्ट नियम द्वारा शासित नहीं होता है। इसलिए ऐसे प्रथम भाषण के लिए कोई समय-सीमा नहीं है। तथापि 25 अगस्त, 2010 को सभापति ने एक निदेश जारी किया जिसमें विहित किया गया कि किसी सदस्य का प्रथम भाषण से दिवस के लिए निर्धारित कार्य हेतु समय प्रबंधन प्रभावित न हो और वह 15-20 मिनट से अधिक समय का न हो।"[313]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. संसदीय समाचार (2), 6.2.1996 (संख्या 35512)
2. नियम 223(1)
3. नियम 223(2)
4. संसदीय समाचार (2), 12.11.2015 (सं. 54605)
5. नियम समिति का सातवां प्रतिवेदन (14.2.1995 को प्रस्तुत किया गया)
6. संसदीय समाचार (1), 30.5.1995
7. कार्यालय प्रक्रिया की अनुभागीय नियम-पुस्तिका (एस.एम.ओ.पी.), राज्य सभा शाखा (पटल कार्यालय, सूचना कार्यालय और लॉबी कार्यालय), राज्य सभा सचिवालय, सितम्बर, 2010, पृष्ठ 67
8. नियम 39
9. नियम 60(2)
10. नियम 154
11. नियम 160(2) और 232
12. नियम 62(3)
13. नियम 95(1)
14. संसदीय समाचार (2), 6.2.1996 (संख्या 35513), नियम 180ग (1)
15. नियम 113 और 123
16. संसदीय समाचार (2), 19.2.1996 (संख्या 35527), नियम 180(1)
17. नियम समिति का तेरहवां प्रतिवेदन, 25 नवम्बर, 2014 को प्रस्तुत किया गया और वह 26 नवम्बर, 2014 को सभा द्वारा स्वीकृत हुआ

18. नियम 180क से 180ङ
19. नियम 224(1)
20. नियम 3(1)
21. नियम 7(1)
22. नियम 29(1)
23. नियम 95(2) और 160(3)
24. नियम 224(2)
25. नियम 227
26. नियम 225
27. याचिका समिति का चौथा प्रतिवेदन, पैरा 3
28. नियम 226
29. अनुच्छेद 3
30. अनुच्छेद 274(1)
31. अनुच्छेद 117(3)
32. नियम 234
33. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.12.1980, कालम 256-66; और 18.3.1981, कालम 283-90
34. नियम 235-40
35. नियम 238(1)
36. अनुच्छेद 105(1)
37. नियम 47(2)(xix)
38. नियम 169(viii)
39. नियम 157(v)
40. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.11.1986, कालम 183-84
41. -वही- 7.12.1970, कालम 98-116
42. -वही- 22.7.2003 पृष्ठ 330-43
43. -वही- 27.2.2006, पृष्ठ 240 (विनिर्णय हिन्दी में दिया गया)
44. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.12.1994, कालम 324-26
45. -वही- 8.5.1986 कालम 281
46. पागे समिति का प्रतिवेदन, पैरा 26-28 और 30
47. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.11.1964, कालम 330-31; और 15.3.1988, कालम 218-22;
48. -वही- 15.3.1988, कालम 221 और 226
49. अनुच्छेद 88
50. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.2.2014, पृष्ठ 333-335
51. अनुच्छेद 105(1) और (2)
52. नियम 238(v)
53. संसदीय समाचार (1), 4.12.1967
54. -वही- 22.11.1967
55. -वही- 30.3.1977
56. -वही- 13.3.1969; 5.3.1970 और 27.4.1981
57. -वही- 12.5.1986
58. -वही- 24.11.1970, 24.2.1970, 16.2.1968, 20.11.1967, 20.3.1967
59. -वही- 11.5.1968
60. -वही- 30.3.1973

61. संसदीय समाचार (1), 21.12.1964
62. -वही- 8.6.1967
63. -वही- 22.7.1969
64. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.12.1987, कालम 309
65. नियम 238क
66. -वही- परन्तुक
67. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.5.1967, कालम 1410-11; 5.6.1967, कालम 2208-16; 6.6.1967, कालम 2439-43; 19.6.1967, कालम 4656-58
68. डाइजेस्ट, पृष्ठ 604-05
69. व्यक्तिगत स्पष्टीकरण संबंधी प्रक्रिया के लिए आगे देखिए
70. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.3.1978, कालम 122
71. नियम 241 और राज्य सभा वाद-विवाद, 3.4.1989, कालम 127-28
72. राज्य सभा वाद विवाद, 22.11.1962, कालम 2161-62
73. -वही- 11.3.1969, कालम 3151
74. -वही- 30.3.1988, कालम 66-67
75. अब्राहम एण्ड हॉट्रे, ए पार्लियामेन्टरी डिक्शनरी, पृष्ठ 144
76. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.8.1973, कालम 84
77. -वही- 31.7.1980, कालम 160
78. एन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ पार्लियामेंट, पृष्ठ 560
79. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.11.1955, कालम 569; राज्य सभा वाद-विवाद, 29.2.1956, कालम 1078 को भी देखिए
80. -वही- 1.8.1991, कालम 270-74
81. -वही- 3.12.1985, कालम 190-91
82. -वही- 8.8.1977, कालम 8-9
83. संसदीय समाचार (1), 4.12.1978
84. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.5.1990, कालम 187-97
85. संसदीय समाचार (1), 21.2.1986
86. -वही- 16.12.1969
87. -वही- 4.8.1983
88. संसदीय समाचार (1), 15.12.1977; और 16.12.1977
89. राज्य सभा वाद-विवाद, 20.11.1980, कालम 223
90. -वही- 21.11.1962, कालम 1944
91. -वही- 19.8.1963, कालम 644-45
92. संसदीय समाचार (1), 29.8.1973 (श्री एल.एन. मिश्र के द्वारा); 18.2.1975 (श्री चन्द्रजीत यादव के द्वारा); 14.8.1978 (श्री बीजू पटनायक के द्वारा); 16.8.1978 (श्री जॉर्ज फर्नान्डीज के द्वारा); 27.3.1979 (श्री रवीन्द्र वर्मा के द्वारा); 13.12.1985 (श्री नटवर सिंह के द्वारा); 5.8.1980 (श्री सी. एम. स्टीफन के द्वारा); 17.11.1980 (श्री सी.पी.एन. सिंह के द्वारा); 30.8.1990 (श्रीमती मेनका गांधी के द्वारा); 28.8.1991 (श्री पवन सिंह घटोवर के द्वारा)
93. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.8.1990, कालम 152-57
94. नियम 242(1)
95. नियम 242(2)
96. नियम 242(3)
97. -वही- परन्तुक

98. नियम 242(1)
99. नियम 242(2)
100. ए पार्लियामेन्टरी डिक्शनरी, पूर्वोक्त में भी, पृष्ठ 58
101. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.7.1952, कालम 1948
102. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.3.1954, कालम 2877-78
103. -वही- 31.8.1956, कालम 2969-70
104. -वही- 8.12.1967, कालम 3222
105. नियम 245(1)
106. नियम 245(1)
107. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.5.1954, कालम 5068-70
108. नियम 244
109. नियम 247
110. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.9.1954, कालम 2989-91
111. नियम 256(2)
112. नियम 248
113. नियम 249
114. -वही- पहला परन्तुक
115. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.9.1954, कालम 3282-87
116. -वही- 14.3.1972, कालम 98-100 (कालम 100 पर पाद-टिप्पण) और 14.4.1972, कालम 84
117. -वही- 12.11.1986, कालम 163-65
118. -वही- 20.9.1963, कालम 4972-97
119. -वही- 21.3.1967, कालम 266-71
120. नियम 249, दूसरा परन्तुक
121. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.3.1984, कालम 239-41
122. -वही- 19.7.1978, कालम 239-302
123. संसदीय समाचार (1), 27.7.1978
124. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.7.1978, कालम 106-34; 1.8.1978, कालम 176-231; 2.8.1978, कालम 159-92
125. -वही- 3.8.1978, कालम 216
126. -वही- 3.4.1989, कालम 20, 53; और 4.4.1989, कालम 38-39
127. -वही- 13.8.1974, कालम 5-8
128. -वही- 27.8.1974, कालम 21-34, 232-54
129. संसदीय समाचार (1), 11.9.1974
130. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.12.1974, कालम 206-36
131. -वही- 5.12.1974, कालम 174-75; 6-12-1974, कालम 158-59
132. -वही- 9.12.1974, कालम 125-27
133. -वही- 10.12.1974, कालम 139-143 और 11.12.1974, कालम 122-23
134. -वही- 20.3.1987, कालम 259-66
135. -वही- 8.1.1976, कालम 6
136. -वही- 16.3.1981, कालम 168-72
137. -वही- 19.12.1953, कालम 2894
138. -वही- 4.4.1989, कालम 52-53

139. राज्य सभा वाद-विवाद, 8.3.1978, कालम 119-34
140. -वही- 21.4.1953, कालम 3460
141. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.2.1966, कालम 1320-23
142. -वही- 18.12.1970, कालम 108-14
143. अध्याय-4 के अंतर्गत देखिए
144. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.5.1959, कालम 2205-06
145. -वही- 23.1.1976, कालम 151-152
146. -वही- 9.3.1984, कालम 289
147. -वही- 15.5.1956, कालम 2170-85
148. -वही- 11.9.1956, कालम 4078-82
149. -वही- 22.4.1974, कालम 92
150. नियम 250
151. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.5.1959, कालम 2196-2201
152. संसदीय समाचार (2), 5.2.1996 (संख्या 35502)
153. कौल और शकधर, पृष्ठ 1033
154. -वही- पृष्ठ 1034
155. अनुपूरक कार्यावलि, 20.3.1995
156. संसदीय समाचार (2), 8.8.1960; 10.8.1960
157. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.8.1960, कालम 2720
158. -वही- 24.7.1980, कालम 84; संसदीय समाचार (1) उसी तारीख का और फा. सं. 35/9/80-एल
159. -वही- 22.11.1962, कालम 2161-62
160. -वही- 21.3.1967, कालम 371-73
161. -वही- 6.4.1967, कालम 2560-79; राज्य सभा वाद-विवाद, 26.7.1996 भी देखिए
162. -वही- 31.3.1969, कालम 6388
163. काउंसिल ऑफ स्टेट्स वाद-विवाद, 27.4.1953, कालम 4106
164. -वही- 25.11.1952, कालम 192-93
165. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.9.1955, कालम 3499-3500
166. संसदीय समाचार (1), 26.9.1992
167. संसदीय समाचार (2), 9.4.1992 (संख्या 32975)
168. -वही- 30.7.1992
169. संसदीय समाचार (1), 26.8.1994
170. -वही- 8.3.1996
171. संसदीय समाचार (2), 11.12.2002
172. -वही- 19.12.2012
173. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.3.1967, कालम 1663-79
174. -वही- 22.11.1962, कालम 2161-62; राज्य सभा वाद-विवाद, 22.2.1996, कालम 933-34 भी देखिए
175. फा.सं. आर.एस. 4/2005-टी और राज्य सभा वाद-विवाद, 27.7.2005 पृष्ठ 193-97
176. फा.सं. आर.एस. 4/2009-टी और राज्य सभा वाद-विवाद, 9.12.2009 पृष्ठ 259-263
177. फा.सं. आर.एस. 4/2013-टी
178. राज्य सभा वाद-विवाद 28.11.1958, कालम 600-02
179. -वही- 28.2.1963, कालम 1176, 1216-18

180. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.2.1965, कालम 492-95, 604-09; 26.2.1965, कालम 1337-38; और 2.3.1965, कालम 1496-97
181. -वही- 26.2.1991, कालम 182
182. नियम 251
183. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.6.1980, कालम 210
184. -वही- 24.2.1987, कालम 228
185. -वही- 22.2.1966, कालम 846
186. -वही- 31.7.1991, कालम 372-73; 1.8.1991, कालम 256-96, 344-51; 2.8.1991, कालम 290-318; 6.8.1991, कालम 173-84; 7.8.1991, कालम 274-84; 6.9.1991, कालम 353-55; 9.9.1991, कालम 252-84; 26.11.2007; पृष्ठ 226-30; 29.11.2007 पृष्ठ 246-47; 22.10.2008; पृष्ठ 213; 23.10.2008, पृष्ठ 224-32; 31.7.2009 पृष्ठ 208-210; 6.8.2009, पृष्ठ 248-260; 4.12.2009, पृष्ठ 234-65; 7.12.2009, पृष्ठ 224-33; 24.2.2010, पृष्ठ 138-39; 25.2.2010, पृष्ठ 285-89; 4.3.2010; पृष्ठ 249-51; 28.4.2010, पृष्ठ 307-13; 29.4.2010, पृष्ठ 332; 3.5.2010, पृष्ठ 335-39; 6.5.2010; पृष्ठ 309-17; 15.4.2010, पृष्ठ 198-259; 19.4.2010, पृष्ठ 254-78; 4.8.2010, पृष्ठ 346-49, 6.8.2010, पृष्ठ 267-93; 26.8.2010, पृष्ठ 223-27; 31.8.2010, पृष्ठ 301-05; 21.12.2011, पृष्ठ 329-34; और 27.12.2011; पृष्ठ 3-23
187. -वही- 27.11.1991, कालम 339-48; और 29.11.1991, कालम 153-71, 243-47
188. -वही- 3.11.1998, कालम 289-378; और 4.11.1988 कालम 328-40
189. -वही- 27.11.1991, कालम 339-48; 24.22.010, पृष्ठ 138-39; 25.2.2010 पृष्ठ 285-89; 4.3.2010, पृष्ठ 249-51; 28.4.2010, पृष्ठ 307-13; 29.4.2010, पृष्ठ 332; 3.5.2010 335-39; और 6.5.2010, पृष्ठ 309-317
190. -वही- 16.8.1993 का 272-73
191. -वही- 28.4.1987, कालम 184
192. संसदीय समाचार (1), 26.2.1992
193. -वही- 27.2.1992
194. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.2.1992, कालम 247-71
195. -वही- 3.3.1992, कालम 259-64
196. संसदीय समाचार (1), 27.8.1993
197. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.8.1993, कालम 333-34 और 18.8.1993, कालम 417-23
198. -वही- 26.11.1985, कालम 240-41; और 10.12.1985, कालम 179-333
199. संसदीय समाचार (1), 28.4.1989
200. -वही- 24.7.1991, 25.7.1991 और 26.7.1991
201. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.7.1985, कालम 249
202. संसदीय समाचार (2), 8.7.1991 (संख्या 32369)
203. कार्य मंत्रणा समिति का कार्यवृत्त, 1.8.1991; संसदीय समाचार (2), 2.8.1991
204. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.8.1991, कालम 357
205. -वही- 4.12.1967, कालम 2347; 13.12.1967, कालम 3909; 17.08.2011, पृष्ठ 1-17 और 278-317; और 27.08.2011, पृष्ठ 8-134
206. संसदीय समाचार (1), 28.5.1998, 26.2.2001, 7.12.2005, 11.12.2008, 17.8.2011 और 27.8.2011
207. -वही- 8.8.2011, 9.8.2001, 18.12.2001, 19.12.2001, 31.7.2003, 4.8.2005, 8.8.2005, 27.2.2006 और 11.3.2006
208. -वही- 21.1.1985
209. -वही- 9.7.1992
210. -वही- 13.8.1985 और 14.8.1985

211. संसदीय समाचार (1), 20.8.1985
212. -वही- 18.12.1992 और 21.12.1985
213. -वही- 26.2.2013 और 15.3.2013
214. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.3.1980, कालम 150-60
215. संसदीय समाचार (1), 16.2.2006; 3.3.2008, 13.2.2009 और 26.2.2013
216. संसदीय समाचार (2), 28.9.2004
217. देखिए अनुच्छेद 61(4), 67(ख), 90(ग), 94(ग), 124(4) 148(1), 217(1) (ख), 249(1), 312(1), 352(6) तथा 368 जिनके अंतर्गत उल्लिखित मामलों के निर्णय हेतु विशिष्ट बहुमत अपेक्षित है
218. अनुच्छेद 100(1)
219. एन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ पार्लियामेंट, पृष्ठ 212
220. नियम 252(1)
221. नियम 252(2)
222. नियम 252(3)
223. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.7.1988, कालम 299-300
224. नियम 252(4) (क)
225. नियम 252(4) (ख)
226. नियम 252(4) (ग)
227. अब्राहम एण्ड हॉट्रे, ए पार्लियामेन्टरी डिक्शनरी, पृष्ठ 166
228. संसदीय समाचार (1), 24.3.1995
229. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.1.1980, कालम 347-48
230. -वही- 13.10.1989, कालम 290-94
231. संसदीय समाचार (2), 22.5.1996 (संख्या 35674)
232. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.10.1982, कालम 220-22
233. इस पद्धति के विस्तृत कार्यकरण के संबंध में देखिए, राज्य सभा सचिवालय द्वारा 2 दिसम्बर, 1994 को इस विषय पर निकाली गयी पुस्तिका
234. नियम 253(3)
235. नियम 253(4)
236. नियम 253(5)
237. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.12.1961, कालम 2501-27
238. -वही- 13.10.1989, कालम 301
239. नियम 254(1)
240. नियम 254(2)
241. नियम 254(3)
242. नियम 254(4)
243. नियम 254(5)
244. नियम 254(6)
245. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.9.1981, कालम 612
246. -वही- 13.10.1989, कालम 178-79
247. अनुच्छेद 100(1)
248. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.8.1991, कालम 180-82
249. नियम 77
250. नियम 207(2), 212घ(2), 212(ट)(2), 212ध(2)

251. संसदीय समाचार (1) और संसदीय समाचार (2), 7.12.2012, 17.12.2012 19.12.2012 और 20.12.2012
252. एन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ पार्लियामेंट, पृष्ठ 565
253. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.2.1982, कालम 3-11; 22.8.1990, कालम 228
254. नियम 236 और 243
255. हैंडबुक फॉर मैम्बर्स, पृष्ठ 65
256. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.3.1979, कालम 259-61; और 30.5.1990, कालम 268-77
257. -वही- 2.5.1963, कालम 1828
258. -वही- 25.1.1980, कालम 52-56; साथ ही देखिए, राज्य सभा वाद-विवाद, 15.12.1980, कालम 207-15
259. -वही- 23.12.1980, कालम 49-78
260. -वही- 18.12.2000 पृष्ठ 18-19
261. -वही- 8.9.1961, कालम 3911-16
262. -वही- 14.3.1985, कालम 265-69
263. -वही- 21.8.1984, कालम 196, इसे भी देखिए, राज्य सभा वाद-विवाद, 1.3.1979, कालम 259-61
264. -वही- 15.11.1971, कालम 223-241
265. -वही- 21.3.1985, कालम 154
266. -वही- 5.12.1967, कालम 2459; 13.2.1968, कालम 61; 19.1.1976, कालम 21; 1.3.1978, कालम 17; 4.5.1984, कालम 16-17, 193-94; और 5.9.1990, कालम 11
267. -वही- 9.3.1979, कालम 226-27
268. हैनसॉर्ड, 23.3.1964, कालम 172
269. लोक सभा नियम 376(5)
270. -वही- 376(6)
271. कौल और शकधर, पृष्ठ 980-84
272. हैनसॉर्ड, 26.3.1952, कालम 786
273. नियम 260
274. हैंडबुक फॉर मैम्बर्स, पृष्ठ 82-83
275. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.11.1996, कालम 2964
276. संसदीय समाचार (2), 22.5.1996 (संख्या 35680)
277. नियम 85(5)
278. नियम 89
279. नियम 261
280. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.8.1961, कालम 1242-43
281. -वही- 21.11.1962, कालम 1944
282. -वही- 27.3.1985, कालम 364, 405
283. -वही- 11.6.1971, कालम 141-45
284. -वही- 8.12.1971, कालम 3; और 15.4.1987, कालम 210-11
285. -वही- 13.11.1987, कालम 207-08
286. -वही- 14.5.1974, कालम 135-40
287. -वही- 23.7.1980, कालम 14-16
288. -वही- 25.7.1980, कालम 119-20
289. -वही- 11.6.1971, कालम 141-45

290. संसदीय समाचार (2), 18.8.1989
291. फा. सं. 41/1/92-एल
292. राज्य सभा वाद-विवाद, 1.7.1980, कालम 125-26
293. -वही- 6.8.1980, कालम 275-88
294. -वही- 27.4.1988, कालम 10-12
295. नियम समिति का पहला प्रतिवेदन, पृष्ठ 9
296. नियम 262
297. नियम 90(7)(i)
298. नियम 90(7)(ii)
299. नियम 264
300. अनुच्छेद 104
301. नियम 263
302. अब्राहम एण्ड हॉट्रे, ए पार्लियामेन्टरी डिक्शनरी, पृष्ठ 208
303. नियम 265
304. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.4.1955, कालम 6279 और 6300
305. संसदीय समाचार (2), 9.2.1995
306. -वही- 9.2.1955
307. -वही- 7.2.1995 (संख्या 34929)
308. नियम 267
309. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.5.1990, कालम 1-2
310. देखिए, अध्याय-17
311. -वही-
312. नियम 266
313. संसदीय समाचार (2), 25.08.2010

अध्याय-27

राज्य सभा की विभिन्न सेवाएं

राज्य सभा सचिवालय

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व केन्द्रीय विधायिका के दो सदन हुआ करते थे, अर्थात् लेजिस्लेटिव असेंबली और काउंसिल ऑफ स्टेट। 15 अगस्त, 1947 से इन दोनों सदनों को एक ही सदन, यानि भारत की संविधान सभा (विधायी) में बदल दिया गया। 26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान लागू होने पर यह संविधान सभा अस्थायी संसद् में बदल गई और इसने संविधान द्वारा संसद् के दोनों सदनों को प्रदत्त सभी अधिकारों का प्रयोग करना और कर्त्तव्यों का पालन करना आरम्भ कर दिया और तब तक ऐसा करना जारी रखा जब तक वर्ष 1952 में, प्रथम आम चुनावों के बाद दोनों सदनों का विधिवत् गठन नहीं किया गया। अस्थायी संसद् के स्थान पर संसद् के दो सदन अर्थात् लोक सभा और राज्य सभा का गठन हुआ और इस प्रकार गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1919 के अन्तर्गत केन्द्रीय विधान सभा की स्थापना से लेकर केन्द्रीय विधायिका के सदन अथवा सदनों की निरंतरता बनी रही।

चूंकि संसद् राज्य का विधायी अंग है, इसलिये आवश्यक है कि इसका अपना एक अलग सचिवालय हो, जो कार्यपालिका से स्वतन्त्र हो और प्रत्येक सदन के सचिवालय को प्रत्यक्ष रूप से अपने ही पीठासीन अधिकारी के मार्गदर्शन और प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन कार्य करना चाहिए।[1] यह विचार उस समय का है जब स्वर्गीय श्री विट्ठलभाई पटेल केन्द्रीय विधान सभा के अध्यक्ष थे और जिन्होंने तत्कालीन कार्यकारी सरकार के हस्तक्षेप से विधायी सचिवालय की स्वतंत्रता की रक्षा की थी। संविधान सभा में, डा. भीमराव अम्बेडकर ने कहा था कि संविधान में अनुच्छेद 98 को शामिल करने का तात्कालिक संदर्भ अध्यक्षों के सम्मेलन द्वारा पारित संकल्प था जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ विधायिका के लिए पृथक सचिवालयी स्टाफ की मांग की गई थी। इसलिए, अनुच्छेद 98 संविधान का हिस्सा बना।[2] इसमें कहा गया है कि :

(1) संसद् के प्रत्येक सदन का पृथक् सचिवीय कर्मचारिवृंद होगा : परंतु इस खंड की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह संसद् के दोनों सदनों के लिए सम्मिलित पदों के सृजन को निवारित करता है।

(2) संसद्, विधि द्वारा, संसद् के प्रत्येक सदन के सचिवीय कर्मचारिवृंद में भर्ती का और नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन कर सकेगी।

(3) जब तक संसद् खंड (2) के अधीन उपबंध नहीं करती है तब तक राष्ट्रपति, यथास्थिति, लोक सभा के अध्यक्ष या राज्य सभा के सभापति से परामर्श करने के पश्चात् लोक सभा के या राज्य सभा के सचिवीय कर्मचारिवृंद में भर्ती के और नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों के विनियमन के लिए नियम बना सकेगा और इस प्रकार बनाए गए नियम उक्त खंड के अधीन बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए प्रभावी होंगे।

तदनुसार, संविधान के लागू होने और राज्य सभा की स्थापना होने के साथ मई, 1952 में "काउंसिल ऑफ स्टेट्स सेक्रेटेरियट" नामक एक पृथक् और स्वतन्त्र सचिवालय अस्तित्व में आया। 1954 में इस सचिवालय का नाम बदलकर "राज्य सभा सचिवालय" (राज्य सभा सेक्रेटेरियट) कर दिया गया।[3] नवम्बर, 1973 तक सचिवालय का प्रधान पद सचिव का होता था। इसी महीने में सभापति द्वारा सदन में की गई एक उद्घोषणा से इस पद का नाम पुन: निर्दिष्ट कर महासचिव रख दिया गया।[4]

भर्ती और सेवा शर्तें नियम

संविधान में संसद् के दोनों सदनों के सचिवीय स्टाफ के संबंध में किए गए विशेष उपबंध स्पष्ट रूप से न केवल संसद् और इसके दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों की स्वतंत्रता की सुरक्षा करने के लिए बनाए गए हैं बल्कि इस बात को भी सुनिश्चित करते हैं कि इन सचिवालयों में योग्य, बुद्धिमान और उचित शैक्षिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों की भर्ती की जा सके जो इन सचिवालयों द्वारा किये जाने वाले विशेष प्रकृति के कार्य को संभाल सकें। यह उद्देश्य संविधान के अनुच्छेद 98 के खंड (3) में निहित उपबंध द्वारा पूरा हो जाता है जिसके अधीन पीठासीन अधिकारी संबंधित सचिवालयों में नियुक्त किये जाने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति और सेवा शर्तों संबंधी नियम बनाने के मामले में अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं। मार्च, 1957 तक जिस समय राज्य सभा सचिवालय अपने प्रारम्भिक चरण में था, तो इसके पास अपने कर्मचारियों की भर्ती और अन्य सेवा शर्तों पर नियन्त्रण रखने संबंधी कोई नियम नहीं थे। वे समय-समय पर यथासंशोधित विधान सभा विभाग (सेवा शर्तें) नियम, 1929 द्वारा शासित होते रहे। भारत के राष्ट्रपति द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 98(3) के अधीन राज्य सभा के सभापति के साथ परामर्श करके राज्य सभा सचिवालय (नियुक्ति और सेवा शर्तें) नियम बनाये गये और इन नियमों को 15 मार्च, 1957 में प्रख्यापित किया गया।

इसी विचारधारा ने भारत सरकार और संघ लोक सेवा आयोग को इस बात पर सहमत होने के लिए प्रेरित किया है कि संसद् के सचिवालयों के अधिकारियों से जुड़े मामलों के संबंध में आयोग से परामर्श करने की आवश्यकता नहीं है और तदनुसार संघ लोक सेवा आयोग (परामर्श से छूट) विनियम, 1958 में इस आशय का एक उपबंध किया गया है। अत: अधिकारियों की भर्ती के मामले में आयोग से परामर्श नहीं किया जाता और जब कभी ऐसी भर्ती की आवश्यकता होती है, दोनों सचिवालय अपने-अपने संबंधित पीठासीन अधिकारी के आदेशाधीन इन अधिकारियों की सीधी भर्ती करते हैं।[5] नियोजनालय (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959[6] संसद् के स्टाफ से संबंधित किसी नियोजन में होने वाली किसी भी रिक्ति पर लागू नहीं होता, और न ही संसद् के किसी भी सदन के सचिवीय स्टाफ के रूप में नियुक्त होने वाले किसी भी व्यक्ति पर प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 लागू होता है।[7] इस प्रकार सचिवालय अपनी भर्तियां स्वयं करता है और सभापति के मार्गदर्शन और नियन्त्रण में एक स्वतन्त्र निकाय के रूप में कार्य करता है।

विगत में एक गैर-सरकारी सदस्य द्वारा उपस्थित संकल्प के माध्यम से सदन में कुछ चर्चा हुई है जिसमें यह सुझाव दिया गया कि, जैसाकि अनुच्छेद 98 के खंड (3) से

दृष्टिगोचर होता है, संसद् को संसद् के किसी भी सदन के सचिवीय स्टाफ की भर्ती और नियुक्त व्यक्तियों की सेवा शर्तों को विनियमित करने संबंधी कानून बनाना चाहिये। इस मामले में सरकार का दृष्टिकोण यह रहा है कि संविधान में जहां दो विकल्पों, यथा संसद् के कानून तथा राष्ट्रपति द्वारा बनाये गये नियम, की व्यवस्था है, वहां इसका यह अर्थ नहीं लिया जा सकता कि एक विकल्प दूसरे विकल्प की तुलना में श्रेष्ठ है। सरकार का यह अभिमत भी है कि राष्ट्रपति द्वारा राज्य सभा के सभापति के साथ परामर्श करके बनाये गये वर्तमान भर्ती नियम, जैसाकि खंड (3) के अधीन वर्णित हैं काफी संतोषजनक सिद्ध होते रहे हैं और खंड (2) को अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। तथापि, सभा की अनुमति से संकल्प वापिस ले लिया गया।[8]

एक गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक यथा राज्य सभा सचिवालय (भर्ती और सेवा-शर्तें) विधेयक, 1968 पर भी राज्य सभा में चर्चा हुई थी। इस संबंध में सरकार का दृष्टिकोण यह रहा था कि इस तरह के कानून की आवश्यकता नहीं है; इसके साथ-साथ सरकार संविधान में वर्णित किसी भी कानून के विरुद्ध नहीं थी लेकिन सरकार का मानना था कि दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों को उसकी आवश्यकता महसूस करनी चाहिये और इसके लिये उनकी तरफ से ही पहल होनी चाहिये। विधेयक सभा की अनुमति से वापिस ले लिया गया।[9]

सुस्थापित परंपरा के अनुसार, भारत सरकार के मंत्रालयों और विभागों को सरकार द्वारा जारी किये गये आदेश सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों पर स्वत: ही लागू नहीं हो जाते हैं। जारी किये गये प्रत्येक आदेश की सचिवालय में जांच की जाती है और यदि उसे सचिवालय के कर्मचारियों पर लागू करने का निर्णय किया जाता है तो इस प्रयोजनार्थ एक अभिग्रहण आदेश जारी किया जाता है। यह प्रक्रिया वित्तीय स्वरूप के आदेशों पर भी लागू होती है।

संविधान के अन्तर्गत संसद् के दोनों सदनों के सचिवालयों को प्राप्त विशेष स्थिति को देखते हुए दूसरे केन्द्रीय वेतन आयोग (1957-59) की सिफारिशें सचिवालय के कर्मचारियों पर स्वत: ही लागू नहीं की गई। तथापि, वित्त मंत्रालय के साथ परामर्श करके सभापति द्वारा जारी किए गए आदेशों के अन्तर्गत उक्त वेतन आयोग द्वारा सिफारिश किये गये वेतनमानों के आधार पर राज्य सभा सचिवालय के कर्मचारियों के वेतनमान विस्तृत रूप से पुनरीक्षित किये गये थे। तीसरे केन्द्रीय वेतन आयोग ने अपने प्रतिवेदन में यह कहा था कि संविधान के अनुच्छेद 98 के प्रावधानों को दृष्टि में रखते हुए संसद् के सचिवालयों के कर्मचारियों को आयोग की परिधि से बाहर रखा गया है। इस स्थिति के परिप्रेक्ष्य में दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों ने राज्य सभा और लोक सभा के सचिवालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए वेतन, भत्तों, अवकाश और सेवा-निवृत्ति संबंधी लाभों की संरचना के बारे में प्रतिवेदन देने हेतु संसद् की एक समिति गठित की थी।[10]

राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिये जाने के अनुसरण में, दोनों सचिवालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों को 1 जनवरी, 1973 से केन्द्रीय सचिवालय में समान पदों के लिये वेतन आयोग द्वारा

अनुशंसित वेतनमानों के समतुल्य वेतनमानों की अनुमति दे दी गई। 1 दिसम्बर, 1974 से संसद् के सचिवालयों में विभिन्न पदों को पुन: नामित किया गया और उन पदों के लिए समिति द्वारा की गई सिफारिशों के अनुरूप वेतनमान निर्धारित किये गये। समिति की सिफारिशों के संदर्भ में किये गये उल्लेखनीय परिवर्तनों में सचिवालय का क्रियात्मक आधार पर पुनर्गठन करना शामिल था जिसके अन्तर्गत सचिवालय को दस सेवाओं में विभाजित कर दिया गया और विभिन्न पदों के नाम में परिवर्तन कर दिया गया था जिनसे उन पदों को सौंपे जाने वाले कार्यों के स्वरूप का पता चल सके। तदनन्तर, 13 जून, 1980 से कुछ सेवाओं का पुनर्गठन किया गया।

केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों पर लागू चौथे वेतन आयोग के प्रतिवेदन के प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों ने वर्ष 1986 में एक अन्य वेतन समिति नियुक्त की थी।[11] इस समिति की संरचना भी पूर्व समिति जैसी ही थी, जिसकी अध्यक्षता प्राक्कलन समिति के अध्यक्ष द्वारा की गयी थी और उसके सदस्यों में वित्त मंत्री सहित दोनों सदनों के सदस्य शामिल थे। समिति ने वेतनमानों आदि के सम्बन्ध में सिफारिश करने के अलावा यह सिफारिश भी की थी कि दोनों सचिवालयों के विभिन्न पदों के नाम वैसे ही होने चाहिए जैसे वे भारत सरकार में हैं। तदनुसार, विभिन्न पदों के नाम और वेतनमान 1 जनवरी, 1986 से संशोधित कर दिये गये।

पांचवें वेतन आयोग की सिफारिश पर भारत सरकार के निर्णयों के संदर्भ में 1997 में एक संसदीय वेतन समिति गठित की गई।[12] ग्यारहवीं लोक सभा के भंग होने के कारण समिति अपनी अंतिम सिफारिशें देने का कार्य पूरा नहीं कर सकी। बारहवीं लोक सभा के गठन के पश्चात्, 1998 में वेतन समिति का पुनर्गठन किया गया।[13] समिति ने अप्रैल, 1999 में विचार-विमर्श का कार्य पूरा किया और 26 अप्रैल, 1999 को राज्य सभा के सभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष को वेतनमानों के संबंध में पहला प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट सिफारिश को स्वीकार किये जाने के परिणामस्वरूप सभी प्रकार के पदों के वेतनमान तथा कतिपय पदों के पदनाम 1 जनवरी, 1996 से संशोधित किये गये। असंपन्न कार्य मदों पर विचार करने के लिए तेरहवीं लोक सभा में संसदीय वेतन समिति का पुन: गठन किया गया।[14] राज्य सभा तथा लोक सभा सचिवालय के कर्मचारियों के संबंध में भत्तों, सुख-सुविधाओं, आदि तथा अन्य मुद्दों के संबंध में समिति का दूसरा प्रतिवेदन 13 अगस्त, 2001 को राज्य सभा के सभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष को प्रस्तुत किया गया था। उसमें अंतर्विष्ट सिफारिशें सभापति तथा अध्यक्ष द्वारा स्वीकार कर ली गईं और इस सचिवालय में लागू की गईं। छठे केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के लागू होने के पश्चात् 2008 में एक संसदीय वेतन समिति गठित की गई थी। समिति ने फरवरी, 2009 में अपना प्रतिवेदन राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष को प्रस्तुत कर दिया था। प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों को दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा यथास्वीकृत रूप में लागू किया गया था। सभी श्रेणियों के वेतनमानों को 1 जनवरी, 2006 से संशोधित किया गया था।

राज्य सभा सचिवालय (भर्ती और सेवा शर्तें) नियम, 1957 के अधीन राज्य सभा सचिवालय (भर्ती के तरीके और नियुक्ति सम्बन्धी अर्हताएं) आदेश, 1958 नामक एक आदेश

जारी किया गया जो 1 अगस्त, 1958 से प्रभावी हो गया था, जिसके अन्तर्गत विभिन्न श्रेणी के पदों पर नियुक्ति किये जाने हेतु आवश्यक अर्हताएं और उन पदों को भरे जाने के लिए भर्ती के तरीके आदि निर्धारित किये गये थे। इस आदेश का 1969 के एक अगले आदेश से अधिक्रमण कर दिया गया जिसका पुन: 1 दिसम्बर, 1974 के आदेश से अधिक्रमण कर दिया गया जिसमें समय-समय पर संशोधन किए गए।[15] राज्य सभा सचिवालय (भर्ती के तरीके और नियुक्ति संबंधी अर्हताएं) आदेश, 1974 और तदुपरांत इसमें किए गए संशोधनों को पिछले आदेशों का अधिक्रमण करते हुए 25 अगस्त, 2009 को राज्य सभा सचिवालय (भर्ती के तरीके और नियुक्ति संबंधी अर्हताएं) आदेश, 2009 जारी करके समेकित और अद्यतन किया गया एवं इस आदेश में समय-समय पर संशोधन किए गए हैं। इन नियमों के अन्तर्गत सचिवालय के कर्मचारियों के संदर्भ में नियुक्ति प्राधिकारी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी राज्य सभा का सभापति होता है। तथापि, इन नियमों के अंतर्गत यह प्रावधान है कि सभापति प्रथम श्रेणी के पदों (जिसे अब समूह 'क' पद कहा जाता है) को छोड़कर अन्य पदों से सम्बन्धित इन मामलों में महासचिव या सचिवालय के किसी अन्य अधिकारी को अपनी शक्तियां प्रत्यायोजित कर सकता है। इस परन्तुक के अनुसार सभापति ने समूह 'ख' और 'ग' पदों पर नियुक्ति करने और उनसे संबंधित अनुशासनात्मक मामले निपटाने के लिये अपनी शक्तियां महासचिव को प्रत्यायोजित कर रखी हैं। ये नियम सभापति को संयुक्त सचिव के स्तर तक का पद अपने ही स्तर पर और संयुक्त सचिव के ऊपर के स्तर का पद वित्त मंत्रालय के साथ परामर्श करके सृजित करने के लिए प्राधिकृत करते हैं। सभापति वित्त मंत्रालय के साथ परामर्श करने के उपरान्त वेतनमानों में परिवर्तन करने के लिए भी प्राधिकृत है। राज्य सभा सचिवालय (भर्ती और सेवा शर्तें) नियम, 1937 के नियम 10 में यह भी प्रावधान है कि अधिकारियों की सेवा की शर्तों को विनियमित करने के संबंध में यदि नियमों में कोई प्रावधान नहीं हो या अपर्याप्त प्रावधान किया गया हो तो उन अधिकारियों पर वही नियम लागू होंगे जो केन्द्रीय सचिवालय में समकक्ष पद धारण करने वाले अधिकारियों पर लागू होते हैं। लेकिन यहां भी सभापति, वित्त मंत्रालय से परामर्श करने के बाद इन नियमों को कतिपय संशोधनों, परिवर्तनों या अपवादों के साथ अनुकूलित कर सकता है।

भर्ती प्रक्रिया

राज्य सभा सचिवालय में समूह 'क' के पदों पर सभी नियुक्तियां सभापति द्वारा की जाती हैं। संसद् के सचिवालयों में विभिन्न पदों पर भर्ती करने के लिए वर्ष 1974 में लोक सभा सचिवालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन एक संयुक्त भर्ती प्रकोष्ठ की स्थापना की गई थी। इस प्रकोष्ठ में दोनों सचिवालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों को तैनात किया जाता था। यह प्रकोष्ठ विज्ञापन प्रकाशित कराने, आवेदनों की जांच करने, लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार का आयोजन करने और अभ्यर्थियों का अन्तिम रूप से चयन करने का सम्पूर्ण कार्य करता था। अक्तूबर, 2008 में राज्य सभा सचिवालय में विभिन्न पदों पर भर्ती करने के लिए एक पृथक भर्ती प्रकोष्ठ की स्थापना की गई थी। यह प्रकोष्ठ प्रतियोगिता परीक्षाओं और/या साक्षात्कार के माध्यम से सचिवालय में विभिन्न सेवाओं और पदों के लिए भर्ती करता है। 2008 में भर्ती प्रकोष्ठ की स्थापना होने तक राज्य सभा सचिवालय में सभी भर्तियां उपरोक्त संयुक्त भर्ती प्रकोष्ठ द्वारा की जाती थीं।

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़े वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षण

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़े वर्गों के कर्मचारियों के लिये आरक्षण संबंधी मामलों में सरकारी अनुदेशों का सचिवालय द्वारा सीधी भर्ती और पदोन्नति दोनों ही मामलों में पालन किया जाता है। विभिन्न ग्रेडों में इन श्रेणियों के अभ्यर्थियों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की दृष्टि से आयु-सीमा, शैक्षणिक योग्यता और लिखित परीक्षा/साक्षात्कार में किए गए प्रदर्शन के मामले में विशेष छूट, जहां कहीं लागू हो, प्रदान की जाती है।

विस्तृत संगठनात्मक ढांचा

सचिवालय का प्रमुख महासचिव होता है, जिसका दर्जा भारत सरकार के कैबिनेट सचिव के समतुल्य है। सचिवालय को अब कार्यात्मक आधार पर दस सेवाओं में संगठित किया गया है। प्रत्येक सेवा के अन्तर्गत कई अनुभाग होते हैं जो सदन को कुशल सेवा प्रदान करने हेतु विभिन्न मामले निपटाते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है:

(1) ***विधायी, वित्तीय, अधिशासी और प्रशासनिक सेवा***

यह सेवा सदन के कार्य से जुड़े कार्यों, जैसे विधान कार्य, प्रश्न, कार्यावलि तैयार करने आदि को निपटाती है। इस सेवा के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न अनुभाग निम्नलिखित हैं:

(i) विधायी अनुभाग – यह अनुभाग सदन का सत्र बुलाने तथा सत्रावसान किये जाने, उसकी बैठकों और राष्ट्रपति का अभिभाषण, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, अल्पकालिक चर्चा, संकल्प, प्रस्ताव, विशेष उल्लेख और शून्यकाल के उल्लेख आदि हेतु दी जाने वाली सूचनाओं पर कार्यवाही करता है। यह अनुभाग नियम समिति एवं विशेषाधिकार समिति से जुड़े कार्यों को भी निपटाता है।

(ii) विधेयक कार्यालय – यह अनुभाग सभी विधायी कार्यों, अर्थात् विधेयकों को निपटाता है।

(iii) पटल कार्यालय – इस अनुभाग की मुख्य जिम्मेदारी कार्यावलि, संसदीय समाचार तैयार करना, शपथ/प्रतिज्ञान की व्यवस्था करना, दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि तथा अन्य उल्लेखों को तैयार करना, राष्ट्रपति/उपराष्ट्रपति और उपसभापति का चुनाव, राज्य सभा के सदस्यों के चुनाव से संबंधित मामले इत्यादि हैं।

(iv) लॉबी ऑफिस – इस अनुभाग का कार्य सदस्यों की उपस्थिति, अनुपस्थिति की अनुमति के आवेदन से जुड़ा कार्य और राज्य सभा कक्ष का सामान्य अनुरक्षण है।

(v) सूचना कार्यालय – यह अनुभाग सदन के कार्य के संबंध में सदस्यों से सभी सूचनाएं एवं कागजात, दर्शकों के पास बनाने के लिए व कार पार्किंग लेबल जारी करने के लिए आवेदन प्राप्त करता है।

(vi) प्रश्न शाखा – यह अनुभाग प्रश्नों तथा आधे घंटे की चर्चा से संबंधित सभी मामलों का कार्य करता है।

(vii) समिति अनुभाग – यह अनुभाग विभिन्न स्थायी समितियों/विभाग-संबंधित समितियों/विधेयकों संबंधी प्रवर समितियों का कार्य करते हैं।

(viii) समिति समन्वय अनुभाग – समिति समन्वय अनुभाग का सृजन अक्तूबर, 2003 में समिति अनुभाग-II के द्विभाजीकरण के पश्चात् सभी समितियों के लिए नोडल अनुभाग के रूप में कार्य करने के लिए किया गया था। यह अनुभाग मुख्यतया मंत्रियों से विभिन्न सांविधिक निकायों के लिए राज्य सभा के सदस्यों के निर्वाचन के लिए प्राप्त प्रस्तावों की सूचनाओं से संबंधित कार्यवाही; संयुक्त संसदीय समितियों के लिए सदस्यों के निर्वाचन/नामनिर्देशन; ऐसी समितियां, जिनमें राज्य सभा के सदस्यों का प्रतिनिधित्व है, के लिए आकस्मिक रिक्तियों को भरे जाने समेत राज्य सभा की स्थायी समितियों तथा विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों का गठन, समिति समन्वय, इत्यादि जैसे कार्य निपटाता है।

(ix) सम्मेलन और नयाचार अनुभाग – यह अनुभाग संसदीय शिष्टमंडलों, सदस्यों के विदेशों में अध्ययन दौरे के लिए विदेशी मुद्रा जारी करने संबंधी मामलों इत्यादि सहित नयाचार के मामले देखता है।

(x) सदस्यों की सुख-सुविधा संबंधी अनुभाग – यह अनुभाग आवास समिति के कार्य सहित सदस्यों को दी जाने वाली सुख-सविधाओं और सहूलियतों का कार्य देखता है।

(xi) सदस्यों के वेतन और भत्ते संबंधी शाखा – जैसाकि नाम से ही पता चल जाता है, यह शाखा सदस्यों को वेतन, भत्ते और भूतपूर्व सदस्यों को पेंशन से संबंधित सभी मामलों, सदस्यों को पहचान-पत्र एवं रेल पास इत्यादि जारी करने का कार्य करता है।

(xii) सूचना प्रौद्योगिकी अनुभाग (हार्डवेयर और साफ्टवेयर) – ये अनुभाग सदस्यों के लिए कंप्यूटर के प्रावधान तथा सचिवालय के कम्प्यूटरीकरण से संबंधित कार्य करते हैं। ये अनुभाग राज्य सभा के सदस्यों को कम्प्यूटरों के प्रावधान संबंधी समिति को भी सहायता प्रदान करते हैं।

(xiii) कार्मिक अनुभाग, ओ. एंड एम. अनुभाग, स्थापना अनुभाग (सामान्य और लेखा तथा बजट), सामान्य प्रशासन अनुभाग, भंडार अनुभाग, वितरण शाखा, बिक्री और अभिलेखागार अनुभाग, वित्तीय प्रकोष्ठ, आरटीआई प्रकोष्ठ तथा प्रशिक्षण प्रकोष्ठ सचिवालय को प्रशासनिक, वित्तीय, अधिशासी और अन्य सहायता और सदस्यों को वाद-विवाद, लेखन सामग्री इत्यादि का वितरण, नये चुने हुए सदस्यों के लिए विषय बोध पाठ्यक्रम के आयोजन, कर्मचारियों को प्रशिक्षण, स्टेशनरी और स्मृति चिह्न मदों की खरीद, राज्य सभा प्रकाशनों की बिक्री, सूचना का अधिकार

अधिनियम, 2005 के उपबंधों के कार्यान्वयन इत्यादि में सहायता देते हैं। ओ एंड एम अनुभाग को संगठनात्मक पैटर्न में सुधार तथा प्रक्रियाओं के सरलीकरण, इत्यादि द्वारा सचिवालय में अधिक दक्षता एवं पारदर्शिता लाने की जिम्मेदारी मिली हुई है। इस अनुभाग द्वारा सचिवालय के कार्यकरण से संबंधित कार्य प्रक्रिया संबंधी मेनुअल के संकलन, परिचालन और कार्यान्वयन; वार्षिक कार्य योजनाओं के संकलन और समीक्षा, वार्षिक प्रतिवेदन का संकलन, निरीक्षण प्रतिवेदनों का निरीक्षण और विश्लेषण; कार्यभार का आकलन इत्यादि जैसे कार्य किए जाते हैं।

(2) ***पुस्तकालय, संदर्भ, अनुसंधान, प्रलेखन एवं सूचना सेवा (लार्डिस)***

लार्डिस संवैधानिक मामलों और संसदीय प्रक्रिया से संबंधित प्रश्नों के संबंध में माननीय सभापति, माननीय उपसभापति और महासचिव द्वारा किए गए उल्लेखों, भारत की राज्य विधान सभाओं और अन्य देशों की विधायिकाओं द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के बारे में सूचना का संग्रह, भाषणों, संदेशों, लेखों, अनुसंधान टिप्पणों को तैयार करना, विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय निकायों द्वारा मांगी गई सूचना प्रस्तुत करना, राज्य सभा सचिवालय के पुस्तकालय का प्रबंधन, पत्र-पत्रिकाओं का अनुरक्षण और परिचालन और राज्य सभा के प्रत्येक द्विवार्षिक निर्वाचन के बाद सदस्य परिचय जिसमें सदस्यों का जीवन-वृत्त होता है, सहित विभिन्न प्रकाशनों को प्रकाशित करने से संबंधित कार्य करता है। कार्य की बदलती हुई और विविध प्रकृति को देखते हुए, इसकी जरूरतों को ध्यान में रखते हुए इस सेवा को विभिन्न इकाइयों में पुनर्गठित करने की आवश्यकता महसूस की गई और तदनुसार, सितम्बर, 2008[16] में इसे आठ इकाइयों में पुनर्गठित किया गया (i) सामान्य अनुसंधान एकक, (ii) प्रकाशन और सदस्य परिचय एकक, (iii) पुस्तकालय और संदर्भ एकक, (iv) मीडिया, शिक्षा और दृश्य-श्रव्य एकक और (v) चार अनुसंधान एकक। लार्डिस के पुनर्गठन के साथ पूर्ववर्ती अनुसंधान और पुस्तकालय अनुभाग और प्रेस और मीडिया एकक का पूर्वोक्त एककों में विलय कर दिया गया।

मीडिया, शिक्षा और दृश्य-श्रव्य एकक : प्रेस और मीडिया एकक को 17 नवम्बर, 2003 को मीडिया संगठनों, संवाददाताओं और पत्रकारों के साथ संपर्क करने के लिए नोडल अनुभाग के रूप में सृजित किया गया। दिनांक 19 सितम्बर, 2008 से लार्डिस सेवा के पुनर्गठन के एक भाग के रूप में इस एकक का नाम बदलकर मीडिया, शिक्षा और दृश्य-श्रव्य एकक किया गया। इस एकक के कार्यों में अन्य बातों के साथ-साथ राज्य सभा की पत्रकार दीर्घा हेतु समाचार पत्रों/समाचार एजेंसियों को प्रत्यायित करना; समाचार-पत्रों/समाचार एजेन्सियों को पत्रकार दीर्घा के लिए वार्षिक, सत्रावधि और अस्थाई पास जारी करना; संसद् भवन परिसर में प्रवेश के लिए मीडिया कर्मियों को वार्षिक और सत्रावधि पार्किंग लेबल जारी करना; सरकारी प्रचार संगठनों और संचार मीडिया, प्रेस संवाददाताओं, समाचार-पत्रों और अन्य मीडिया निकायों के साथ समन्वय करना; प्रेस कांफ्रेन्स आयोजित करना; प्रेस विज्ञप्तियों के द्वारा राज्य सभा तथा इसके सचिवालय की गतिविधियों का प्रचार करना; प्रेस प्रतिनिधियों को संसदीय पत्रों की आपूर्ति के लिए सत्रावधि के दौरान प्रेस काउंटर का प्रबंधन

करना; और प्रेस एवं मीडिया से संबंधित अन्य विविध कार्य शामिल हैं। राज्य सभा के माननीय सभापति द्वारा दिनांक 18 मार्च, 2008 को एक मीडिया सलाहकार समिति गठित की गई। इस समिति में राज्य सभा की पत्रकार दीर्घा के वार्षिक पास धारक मीडियाकर्मी शामिल हैं। इस समिति का प्राथमिक कार्य राज्य सभा की पत्रकार दीर्घा में विभिन्न मीडिया संगठनों के प्रवेश के संबंध में राज्य सभा सचिवालय को सलाह देना है ताकि वे सभा की कार्यवाही को कवर कर सकें। यह एकक मीडिया सलाहकार समिति को सचिवालयी सहायता प्रदान करता है।

(3) *शब्दशः वृत्तलेखन (रिपोर्टिंग) सेवा*

जैसाकि पूर्व अध्याय में उल्लेख किया गया था, महासचिव राज्य सभा की प्रत्येक बैठक के बाद इसकी कार्यवाहियों का पूर्ण प्रतिवेदन तैयार कराता है। रिपोर्टिंग सेवा में अंग्रेजी और हिन्दी में उच्च स्तर के और तीव्र गति से लिखने वाले वृत्तलेखक (रिपोर्टर) तैनात हैं जो सदन की कार्यवाही और गवाहों के साक्ष्य लेते समय समितियों की कार्यवाहियों को शब्दशः लिखते हैं।

यह एक विशेष प्रकार की सेवा है जो सदन के कार्यकरण के लिए आवश्यक है और मई, 1952 में राज्य सभा के आरम्भ होने से ही अस्तित्व में है।

(4) *निजी सचिव और आशुलिपि सेवा*

इस सेवा के अन्तर्गत विभिन्न वर्गों के निजी सचिवों और आशुलिपिकों को रखा गया है। उन्हें संसदीय समितियों के अध्यक्षों और सचिवालय के अधिकारियों के साथ सम्बद्ध किया जाता है। जहां तक सदस्यों के संसदीय कार्य का संबंध है, उनकी आशुलिपि संबंधी और टंकण (अंग्रेजी तथा हिन्दी में) संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सभाकक्ष के पास ही आशुलिपिकों का पूल स्थित है।

(5) *युगपत् भाषान्तरण सेवा*

यह एक अन्य उच्च कुशलता-प्राप्त और विशेष प्रकार की सेवा है जिसे राज्य सभा में सितम्बर, 1964[17] में सदन में भाषणों के युगपत् भाषान्तरण के लिये उपकरण लगाने के साथ ही प्रारम्भ किया गया था। इस सेवा में हिन्दी, अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषाओं में प्रशिक्षित भाषान्तरकार तैनात हैं। हिन्दी/अंग्रेजी में भाषान्तरण में प्रारम्भिक सफलता के बाद चार भारतीय भाषाओं, यथा कन्नड़, मलयालम, तमिल और तेलुगु में दिए गए भाषणों के हिन्दी और अंग्रेजी में युगपत् भाषान्तरण सुविधाओं का प्रारम्भ हुआ।[18]

राज्य सभा में 4 मार्च, 1970 को एक सदस्य द्वारा तमिल भाषा में दिए गये भाषण के लिए पहली बार हिन्दी और अंग्रेजी में सीधा भाषान्तरण उपलब्ध कराया गया।[19] धीरे-धीरे हिन्दी और अंग्रेजी में युगपत् भाषान्तरण सेवा को संविधान की आठवीं अनुसूची में सूचीबद्ध अन्य भारतीय भाषाओं तक बढ़ाया गया था।

इससे वे सदस्य भी सदन के वाद-विवादों में सक्रिय भाग ले पाते हैं जो अपने

विचारों को हिन्दी अथवा अंग्रेजी में पर्याप्त रूप से व्यक्त नहीं कर सकते थे। इस प्रकार से संविधान के अनुच्छेद 120 में निहित उद्देश्य व्यापक रूप से पूरा हुआ।

इस समय राज्य सभा की समस्त कार्यवाहियों का हिन्दी से अंग्रेजी और अंग्रेजी से हिन्दी में भाषान्तरण उपलब्ध कराने के अतिरिक्त निम्नलिखित शर्तों पर असमिया, बांग्ला, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, तमिल, तेलुगु और उर्दू भाषाओं में दिए गए भाषणों के हिन्दी और अंग्रेजी में युगपत् भाषान्तरण की व्यवस्था है: (1) वाद-विवाद के दौरान दिये गए भाषणों का उपरोक्त भाषाओं से अंग्रेजी और हिन्दी में भाषान्तरण किया जाएगा; (2) इन भाषाओं से अंग्रेजी और हिंदी में भाषान्तरण प्रश्नों के समय के तत्काल पहले की अवधि के दौरान उपलब्ध नहीं होता है, जब ऐसे मामले उठाये जाते हैं जो कार्यावलि में दर्ज नहीं हैं, न ही यह टिप्पणियों, समुक्तियों अथवा वाद-विवाद के बीच में व्यवधानों के लिए उपलब्ध है;[20] (3) इन भाषाओं में से किसी भाषा में भाषण देने के इच्छुक सदस्य को पटल अधिकारी को, वह भाषा बताते हुए जिसमें वह भाषण देना चाहता है, इस आशय की कम-से-कम एक घंटे पहले सूचना देनी पड़ती है।[21]

5 सितम्बर, 1988 को जब एक सदस्य ने "डा.एस. राधाकृष्णन को श्रद्धांजलि" के संबंध में बिना कोई पूर्व सूचना दिये तमिल भाषा में बोलना शुरू किया था तो सभापति ने सदस्य को सम्बोधित करके टिप्पणी की थी; "...सामान्य प्रथा यह है कि जब आप अंग्रेजी और हिन्दी के अलावा किसी अन्य भाषा में बोल रहे हों तो आपको पहले सूचित करना होगा कि आप अमुक भाषा में बोलेंगे ताकि युगपत् अनुवाद की व्यवस्था की जा सके। अतः, इस समय आप कृपया अंग्रेजी में बोलिए।"[22]

8 और 27 मार्च, 1979 को प्रश्नों के समय के दौरान अंग्रेजी और हिन्दी के अलावा अन्य भाषाओं का प्रयोग करने के संबंध में सभापति द्वारा दलों/समूहों के नेताओं के साथ की गई बैठकों में इस मामले पर निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाए जाने पर सहमति हुई और सभापति ने 28 मार्च, 1979 को उसकी घोषणा की:

(i) यह सुविधा केवल उन्हीं सदस्यों द्वारा प्राप्त की जा सकती है जिनके नाम से मौखिक उत्तरों के लिये प्रश्न सूची में प्रश्न दर्ज होते हैं;

(ii) इसके संबंध में संबंधित सदस्यों द्वारा मौखिक उत्तरों के लिये सूचीबद्ध प्रश्न वाले दिन के पूर्व कार्य-दिवस को मध्याह्न पश्चात् 3.00 बजे तक लिखित में पूर्व सूचना देनी होगी;

(iii) यह सुविधा उन सदस्यों, जिनके नाम से मौखिक उत्तरों के लिये प्रश्नों की सूची में प्रश्न दर्ज हैं, के अतिरिक्त दूसरे सदस्यों को उपलपब्ध नहीं होगी;

(iv) मुद्रित वाद-विवाद (मूल संस्करण) में हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में पूछे गए अनुपूरक प्रश्नों के केवल अंग्रेजी रूपांतर को ही शामिल किया जाएगा जैसाकि इस समय विधेयकों, संकल्पों, इत्यादि पर वाद-विवाद में भाग लेते समय सदस्यों द्वारा हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के अलावा किसी अन्य भाषा में दिए गए भाषणों के संबंध में पहले से ही किया जा रहा है।[23]

सदस्यों को संसदीय समाचार में एक पैरा द्वारा प्रत्येक सत्र प्रारम्भ होने पर इस प्रक्रिया के बारे में सूचित किया जाता है।[24]

भाषांतरण को सुनने की सुविधा पत्रकार दीर्घा और अन्य दर्शक दीर्घाओं की अग्रणी पंक्तियों में अर्थात् विशिष्ट दर्शक दीर्घा, लोक सभा सदस्यों के लिये दीर्घा और विशेष प्रकोष्ठ में भी उपलब्ध कराई गई है। संसद् भवन, संसदीय सौध और संसद् ग्रंथालय भवन के समिति कक्षों में भी युगपत् भाषान्तरण पद्धति की व्यवस्था है।

(6) ***मुद्रण और प्रकाशन सेवा***

यह सेवा संसदीय और सत्रावधि पत्रों के मुद्रण के लिए उत्तरदायी है। वाद-विवाद और समिति प्रतिवेदनों के अलावा, यह समय-समय पर सचिवालय द्वारा प्रकाशित किए जाने वाले सभी नियमित और तदर्थ प्रकाशनों को भी मुद्रित करता है। राज्य सभा के सदस्यों का 'सदस्य परिचय' और 'कार्यरत राज्य सभा' जैसे प्रमुख प्रकाशनों का मुद्रण भी इस सेवा द्वारा किया जाता है।

सत्र संबंधी पत्रों अर्थात समन, अधिसूचनाएं, कार्यावलियां, सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों की सूची, विधेयकों, संसदीय समाचार भाग-1 और 2, प्रश्नों की सूचियां, सारांश आदि का मुद्रण भारत सरकार मुद्रणालय, मिंटो रोड, नई दिल्ली में किया जाता है।

अधिकांश प्रकाशन हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित किये जाते हैं। राज्य सभा के वाद-विवाद को दो रूपों में प्रकाशित किया जाता है; एक 'मूल रूप' जिसमें सदस्यों द्वारा अंग्रेजी तथा हिन्दी में दिये गए भाषणों को उसी भाषा में प्रकाशित किया जाता है जिसमें उसे सभा में दिया गया था। अन्य भाषाओं में दिए गए भाषणों का अंग्रेजी में अनुवाद किया जाता है और उसे वाद-विवाद में एक पाद-टिप्पण के साथ शामिल किया जाता है जिसमें उस भाषा का उल्लेख होता है जिसमें मूल भाषण दिया गया था। यदि कोई सदस्य हिन्दी के अतिरिक्त किसी अन्य भारतीय भाषा में भाषण देता है और लिखित में अनुरोध करता है कि उसके भाषण का हिन्दी अनुवाद मुद्रित वाद-विवाद (मूल रूप) में समाविष्ट किया जाना चाहिए तो उसके अनुरोध को स्वीकार कर लिया जाता है।[25] सदन में उर्दू में दिए गए भाषणों के मामले में उर्दू भाषण को देवनागरी लिपि के तत्काल पश्चात् एक पाद-टिप्पण "उर्दू लिपि में लिप्यंतरण" के साथ उर्दू लिपि शामिल की जाती है। यह नई व्यवस्था फरवरी, 2000 (189वें सत्र) से की गई है।[26] पहले प्रथा यह थी कि सदन में दिये गए उर्दू भाषणों को वाद-विवाद के मूल रूप में ही शामिल किया जाता था। दूसरा, भाषण के मूल रूप का हिन्दी रूपान्तर सम्पादन और अनुवाद सेवा द्वारा अलग से तैयार किया जाता है, जिसमें हिन्दी के अलावा सभी अन्य भाषाओं में दिए गए भाषणों का हिन्दी में अनुवाद किया जाता है।

प्रत्येक दिन की कार्यवाहियों को अलग-अलग संकलित कर मुद्रित किया जाता है और तदनुसार उन पर संख्या अंकित की जाती है। सदस्यों को उनकी पसन्द के अनुसार वाद-विवाद के मूल अथवा हिन्दी रूपान्तर की एक प्रति नि:शुल्क भेजी जाती है; जो सदस्य अपनी प्रतियां सजिल्द चाहते हैं उन्हें जिल्द का शुल्क भुगतान करने पर सजिल्द खण्ड भेजे जाते हैं।

वाद-विवाद से किसी सामग्री के उद्धरण का प्रतिलिप्यधिकार प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम के अधीन सचिवालय को प्राप्त है।[27] वाद-विवाद से सामग्री को उद्धृत करने की अनुमति हेतु व्यक्तियों, संस्थाओं, वर्तमान सदस्यों तथा भूतपूर्व सदस्यों से अनुरोध सचिवालय में प्राप्त किए जाते हैं। वर्तमान सदस्यों/भूतपूर्व सदस्यों, तथा अन्य व्यक्तियों को भी अनुमति गुण-दोष के आधार पर तथा इस अनुबन्ध के अध्यधीन दी जाती है कि संबद्ध पक्ष के लिए यह आवश्यक है कि वह सामग्री के स्रोत को अभिस्वीकृत करे, "राज्य सभा के सभापति की अनुमति से राज्य सभा वाद-विवाद दिनांक...से उद्धृत" तथा सचिवालय को अभिलेख के लिए प्रकाशन की दो प्रतियां भेजें और इस प्रकार के उद्धरण की अनुमति किसी तरह की मानहानिकारक प्रकार की सामग्री के उद्धरण के कारण पैदा होने वाली किसी कानूनी कार्यवाही से संरक्षण प्रदान नहीं करेगी।[28]

(7) *सम्पादन और अनुवाद सेवा*

इस सेवा में ग्यारह अनुभाग हैं – संपादन (अंग्रेजी) अनुभाग, संपादन (हिन्दी) अनुभाग, अनुवाद अनुभाग-**I**, अनुवाद अनुभाग-**II**, अनुवाद (ओआईएच) अनुभाग, अनुवाद (समिति) अनुभाग-**I**, अनुवाद (समिति) अनुभाग-**II**, सारांश अनुभाग, अंग्रेजी वाद-विवाद अनुभाग, राजभाषा प्रभाग और डिजिटाइजेशन तथा हिन्दी वेब अद्यतन प्रकोष्ठ।

संपादन (अंग्रेजी) अनुभाग : यह अनुभाग मुख्यत: राज्य सभा वाद-विवादों अथवा राज्य सभा के अधिकारीय प्रतिवेदनों के मूल रूपांतर का संपादन और उसको तैयार करने का कार्य करता है और इन वाद-विवादों के परिशिष्ट एवं अनुक्रमणिकाएं भी तैयार करता है। सदन के पटल पर रखे गए, मुद्रण में असुविधाजनक, जटिल तालिकाबद्ध विषयवस्तु वाले लेखे विवरणों को वाद-विवाद से हटाकर प्रत्येक सत्र के लिए परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित किया जाता है। वास्तव में ये वाद-विवाद के अनुपूरक हैं। 219वें सत्र से वाद-विवाद के अंग्रेजी रूपान्तर का संदर्भ उपलब्ध कराने तथा सदन के कार्य के अधिकारीय अभिलेख तक पहुंच बनाने के दृष्टिकोण से ऑनलाइन अनुक्रमणिकाएं तैयार की जाती हैं और वे सत्र-वार मुद्रित की जाती हैं। अनुक्रमणिका के दो भाग होते हैं अर्थात् विषय-अनुक्रमणिका और नाम-अनुक्रमणिका। यह अनुभाग राज्य सभा के अधिकारिक वाद-विवादों से सामग्री का उपयोग करने/उद्धृत करने के लिए माननीय संसद्-सदस्यों/भूतपूर्व संसद्-सदस्यों/संस्थानों/व्यक्तियों से प्राप्त अनुरोधों के संबंध में राज्य सभा के महासचिव की ओर से अनुमति पत्र भी जारी करता है।

संपादन (हिन्दी) अनुभाग : यह अनुभाग मुख्यत: राज्य सभा वाद-विवादों का हिन्दी में शब्दश: अनुवाद करने, संपादन (अंग्रेजी) अनुभाग से प्राप्त संपादित वाद-विवादों की मास्टर कॉपी तैयार करने और राज्य सभा के सदस्यों तथा मंत्रि-परिषद के सदस्यों की वर्णक्रमानुसार सूची (हिन्दी प्रति) तैयार करने का कार्य करता है। अगस्त, 2010 से इस अनुभाग को हिन्दी वाद-विवादों को हिन्दी वेबसाइट पर अद्यतन करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। मुद्रण अनुभाग से प्राप्त होने वाली हिन्दी वाद-विवादों की सभी सी.डी., इस अनुभाग द्वारा सामग्री को वेबसाइट पर अपलोड किए जाने के बाद मुद्रण अनुभाग को लौटा दी जाती हैं।

अनुवाद अनुभाग-I : यह अनुभाग राज्य सभा की कार्यवाहियों से सीधे तौर से संबंधित संसदीय दस्तावेजों जैसे सभापटल पर रखे जाने वाले पत्र, कार्यावलि, संसदीय समाचार भाग-1 और भाग-2, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक, विधेयकों में होने वाले संशोधन, प्रस्ताव, संकल्प, अधिसूचनाएं, ध्यान दिलाए जाने संबंधी प्रस्ताव, आधे घंटे की चर्चा इत्यादि का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध कराता है। यह अनुभाग राज्य सभा सचिवालय द्वारा समय-समय पर निकाले जाने वाले विभिन्न प्रकाशनों का हिन्दी रूपान्तर भी उपलब्ध कराता है। अगस्त, 2007 में राज्य सभा के सभापति द्वारा आरंभ किए गए 'मंत्रा राज्य सभा' नामक मशीन समर्थित अनुवाद उपकरण का उपयोग अनुभाग में तीन संसदीय पत्रों अर्थात, सभापटल पर रखे जाने वाले पत्र, कार्यावलि (विधायी कार्यों को छोड़कर) तथा संसदीय समाचार भाग-1 के अनुवाद/पुनरीक्षण हेतु किया जा रहा है।

अनुवाद अनुभाग-II : इस अनुभाग को मुख्य रूप से प्रश्न शाखा से प्राप्त तारांकित और अतारांकित प्रश्नों की सूची, अल्प सूचना प्रश्नों के हिंदी अनुवाद की जिम्मेदारी सौंपी हुई है। आंधे घंटे की चर्चा और अल्प सूचना वाले प्रश्न प्राप्त होने पर उन्हें सबसे अधिक प्राथमिकता दी जाती है और उनका अत्यधिक सावधानीपूर्वक अनुवाद किया जाता है। ऐसे प्रश्नों की सूची की हिन्दी पाण्डुलिपि अंतिम मुद्रण हेतु तत्काल मुद्रण अनुभाग को भेजी जाती है।

अनुवाद (ओआईएच) अनुभाग-II : इस अनुभाग को मुख्य रूप से प्रश्न शाखा से मूल रूप में हिन्दी में प्राप्त प्रश्नों की सूची का अंग्रेजी रूपांतर उपलब्ध कराने का कार्य सौंपा गया है।

अनुवाद (समिति) के दो अनुभाग हैं जो राज्य सभा की 11 समितियों से संबंधित समिति प्रतिवेदनों, की गई कार्रवाई संबंधी प्रतिवेदनों, सूचनाएं, बैठकों के कार्यवृत्तों, ज्ञापनों, प्रेस विज्ञप्तियों, प्रश्नावलियों, दौरे के कार्यक्रमों, पत्रों, सूत्रों, कार्यावलि मदों के मसौदों, टिप्पणियों, आरटीआई प्रश्नों, प्रकाशनों का हिन्दी रूपांतर उपलब्ध कराते हैं। इसके अतिरिक्त, अनुभाग संसदीय समितियों से हिन्दी में प्राप्त पत्रों, याचिकाओं, अभ्यावेदनों/ज्ञापनों जैसे विभिन्न पत्रों का अंग्रेजी रूपांतर भी उपलब्ध कराता है।

सारांश अनुभाग : इस अनुभाग को सत्रावधि के दौरान राज्य सभा की दैनिक कार्यवाहियों का सारांश सीआरसी (अंग्रेजी और हिन्दी दोनों में) स्वरूप में तैयार करने का कार्य सौंपा गया है। वाद-विवाद का सारांश वाद-विवाद के दौरान दिए गए महत्वपूर्ण सुझावों और उठाए गए मुद्दों का सार होता है और उसमें विस्तृत ब्यौरा शामिल नहीं किया जाता। सारांश को वाद-विवाद के दिन ही मुद्रित किया जाता है और सत्रावधि के दौरान दैनिक आधार पर राज्य सभा की वेबसाइट पर अपलोड किया जाता है।

राजभाषा प्रभाग : राज्य सभा सचिवालय के कार्यालयी कामकाज में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 18 सितम्बर, 2000 को इस अनुभाग का सृजन किया गया था। यह अनुभाग राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा हिन्दी के प्रयोग के संबंध में प्रतिपादित मानदण्डों, उपबंधों और उद्देश्यो को ध्यान में रखते हुए वर्ष भर कार्य

करता है और तदनुसार योजनाओं, कार्यक्रमों और विधिक प्रावधानों के कार्यान्वयन हेतु प्रयास किए जाते हैं। यह अनुभाग राजभाषा अधिनियमों और नियमों के पूर्ण अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए नियमित रूप से सचिवालय के विभिन्न अनुभागों/शाखाओं का निरीक्षण करता है। महासचिव की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति सचिवालय में इसके कार्यान्वयन की निरंतर निगरानी रखती है और समुचित परामर्श प्रदान करती है। यह अनुभाग प्रतिवर्ष 'हिन्दी पखवाड़ा' का भी आयोजन करता है और 'नूतन प्रतिबिम्ब' नामक एक वार्षिक पत्रिका प्रकाशित करता है। उपर्युक्त कार्यों के अलावा, यह अनुभाग गैर-हिन्दी भाषी अधिकारियों/कर्मचारियों को राजभाषा विभाग द्वारा चलाए जाने वाले विभिन्न पाठ्‌यक्रमों के माध्यम से हिन्दी सीखने की सुविधा प्रदान करता है और अंग्रेजी टंकण करने वाले लिपिकों को गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा चलाए जाने वाले विभिन्न हिन्दी टंकण पाठ्यक्रमों के माध्यम से हिन्दी टंकण सीखने के लिए प्रोत्साहित करता है।

डिजिटाइजेशन और हिन्दी वेब अद्यतन प्रकोष्ठ : इस प्रकोष्ठ का प्रमुख कार्य राज्य सभा के संपादित वाद-विवादों की सॉफ्ट-कॉपी से संलग्न उपयुक्त मेटा-डाटा सृजित करके उन्हें डिजिटाइज करना है ताकि डेटा की सर्च क्षमता विकसित की जा सके। इसके साथ-साथ इस अनुभाग का कार्य राज्य सभा के वाद-विवाद पोर्टल पर डिजिटाइज्ड वाद-विवादों को अपलोड करना और राज्य सभा की हिन्दी वेबसाइट को अद्यतन रखना भी है। हिन्दी वेबसाइट को राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र (एनआईसी) के साथ नियमित रूप से अद्यतन रखने के लिये गहन समन्वय रखा जाता है।

(8) ***संसद् सुरक्षा सेवा***

संसद् सुरक्षा सेवा, संसद् भवन परिसर की सुरक्षा की देखरेख के लिए उत्तरदायी है। राज्य सभा सचिवालय के निदेशक (सुरक्षा) द्वारा, राज्य सभा सचिवालय की संसद् सुरक्षा सेवा पर प्रचालनात्मक नियंत्रण रखा जाता है तथा प्रशासनिक प्राधिकार राज्य सभा सचिवालय के पास निहित है। लोक सभा सचिवालय के संयुक्त सचिव (सुरक्षा) के पास राज्य सभा सचिवालय तथा लोक सभा सचिवालय, दिल्ली पुलिस, संसद् सेवा समूह (पीडीजी) का समग्र प्रभार होता है और वह संपूर्ण संसद् भवन परिसर की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी है। संसद् सुरक्षा सेवा ऐतिहासिक और प्रतिष्ठित संसद् भवन परिसर, माननीय संसद् सदस्यों और अति महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सुरक्षा हेतु सुरक्षा कर्तव्यों का निर्वहन करती है।

संसद् सुरक्षा सेवा का मुख्य उत्तरदायित्व संसद्-सदस्यों, आगंतुकों तथा कर्मचारियों की सुरक्षा हेतु संसद् भवन परिसर के भीतर सक्रिय, निवारक और रक्षात्मक सुरक्षोपाय उपलब्ध कराना और उन्हें बनाए रखना है। इसके लिए आधुनिक सुरक्षा उपकरणों की सहायता से संसद् भवन परिसर में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों और भौतिक वस्तुओं की समुचित पहचान, सत्यापन, अधिप्रमाणन और स्वीकृति के आधार पर परिसर में पहुंच को नियंत्रित किया जाता है। चूंकि पिछले वर्षों के दौरान विभिन्न आतंकवादी संगठनों/समूहों, उनकी चतुराईपूर्ण योजनाओं, आसूचना प्रणाली, कार्यों और आतंकवादियों को आर्थिक संरक्षण और शह देने वाले संगठनों द्वारा अपनाए जा रहे स्थानापन्न युद्ध कौशल में कई गुना वृद्धि होने के कारण खतरे की

आशंका में लगातार वृद्धि हो रही है, संसद् भवन परिसर के लिए खतरा उत्पन्न करने वाले आतंकवादी संगठनों/व्यक्तियों की लगातार बदलती कार्य प्रणाली से निपटने के लिए सुरक्षा व्यवस्था में नई सुरक्षा प्रक्रियाओं को लागू किया गया है।

इस लक्ष्य को हासिल करने में दिल्ली पुलिस (डीपी), संसद् सेवा समूह (पीडीजी), राष्ट्रीय आपदा मोचन बल (एनडीआरएफ), आसूचना ब्यूरो (आईबी), विशेष सुरक्षा दल (एसपीजी), राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड (एनएसजी) इत्यादि सहायता करते हैं। संसद् सुरक्षा सेवा समग्र समन्वयकारी अभिकरण के रूप में कार्य करती है। संसद् सुरक्षा सेवा अचूक और प्रयोक्ता अनुकूल सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए इन सुरक्षा अभिकरणों के साथ समुचित संपर्क और प्रभावी समन्वयन बनाए रखती है।

संसद् भवन परिसर में सुरक्षा व्यवस्था रखने के उद्देश्य हैं – सभी संसद्-सदस्यों सहित अति विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा करना; सदनों, लॉबियों, दीर्घाओं और केन्द्रीय कक्ष की तोड़-फोड़ के किसी भी कार्य से रक्षा करना; संसद् भवन परिसर में महत्वपूर्ण प्रतिष्ठापनों और स्थानों की चौकसी करना; संसद् भवन एस्टेट के अन्दर और बाहर कानून और व्यवस्था बनाए रखना; यह सुनिश्चित करना कि कोई भी अनधिकृत व्यक्ति संसद् भवन परिसर में प्रवेश न करे; विभिन्न दीर्घाओं में आगंतुकों का प्रवेश विनियमित करना; और संसद् भवन एस्टेट में यातायात विनियमित करना।

संसद् भवन में सामान्य सुरक्षा संबंधी कर्तव्यों के अतिरिक्त संसद् सुरक्षा सेवा कर्मी महत्वपूर्ण राष्ट्रीय पर्वों जैसे राजपथ पर गणतंत्र दिवस परेड, स्वतंत्रता दिवस पर लाल किले पर ध्वजारोहण के अवसर पर, राष्ट्रपति भवन में 'एट होम' समारोहों में राज्य सभा के माननीय सभापति, माननीय प्रधान मंत्री, लोक सभा के माननीय अध्यक्ष, राज्य सभा के उपसभापति, कैबिनेट मंत्रियों के आधिकारिक आवासों पर तथा हैदराबाद हाउस में भी कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं।

राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के चुनाव में संसद् सुरक्षा सेवा सुरक्षा संबंधी एक बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह मत-पत्रों से भरी मत-पेटियों को स्थानीय पुलिस की सशस्त्र सुरक्षा में, विमानपत्तन से संसद् भवन तक लाने के लिए राज्यों की विधान सभाओं के साथ समन्वय स्थापित करती है। मत-पेटियां विनिर्दिष्ट 'स्ट्रॉंग रूम' में रखी जाती हैं। संसद् सुरक्षा सेवा के अधिकारियों की निगरानी में सशस्त्र रक्षक इसकी चौबीसों घंटे सुरक्षा करते हैं। यह कक्ष निर्वाचन अधिकारी/सहायक निर्वाचन अधिकारी की मौजूदगी में प्रतिदिन खोला जाता है और मोहरबंद किया जाता है। मतगणना की समाप्ति और परिणाम घोषित किए जाने के बाद रिक्त मत-पेटिकाएं विधिवत् रूप से भारत निर्वाचन आयोग को लौटा दी जाती हैं।

अंतर-सत्रावधि के दौरान सारे देश से और विश्व के विभिन्न हिस्सों से संसद् भवन देखने आने वाले आगंतुकों को संसद् भवन परिसर का शो राउण्ड कराना संसद् सुरक्षा सेवा द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्यकलापों में एक महत्वपूर्ण कार्यकलाप है। संसद् सुरक्षा सेवा के सुरक्षा सहायकों को यह सुनिश्चित करने के लिए तैनात किया जाता है कि वे आगंतुकों, विदेशी गणमान्यजनों और शिष्टमंडलों के साथ रहें तथा संसद् के इतिहास

और संसद की कार्यवाही संचालित करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं तथा परंपराओं के बारे में तथ्यात्मक एवं ब्यौरे-वार जानकारी दें। छात्रों के लिए 'शो राउण्ड' कमोबेश शिक्षा दौरे के रूप में डिजाइन किया गया है। आगंतुकों को संसद् सदन के गलियारों में स्थापित प्रतिमाओं, चित्रों तथा भित्ति-चित्रों के बारे में संक्षिप्त जानकारी भी दी जाती है।

संसद्-सदस्यों के लिए संसद् भवन एस्टेट के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र और मार्गों को खुला और उन्मुक्त रखने के लिए, संसद् भवन एस्टेट के अन्दर निम्नलिखित कार्यकलाप प्रतिषिद्ध हैं :

> कोई जनसभा आयोजित करना; पांच अथवा उससे अधिक लोगों का एकत्र होना; आग्नेयास्त्र, बैनर, इश्तहार, लाठी, भाले, तलवार, छड़ी और रोड़े ले जाना; संसद् भवन के अहाते में सभापति की लिखित पूर्व अनुमति के बिना कोई साहित्य, प्रश्नावली, पुस्तिका, प्रेस नोट, पर्ची अथवा कोई अन्य मुद्रित अथवा अन्यथा सामग्री वितरित करना; नारेबाजी करना; भाषण आदि देना; जुलूस निकालना अथवा प्रदर्शन करना; धरना देना; कोई अन्य ऐसी गतिविधि और आचरण प्रदर्शित करना जोकि संसद्-सदस्यों को कोई बाधा अथवा रुकावट पहुंचा सकता है या पहुंचाने के लिए प्रवृत्त है।

संसद् भवन की परिसीमा में संसद् सदस्य भी कोई प्रदर्शन, धरना, हड़ताल, उपवास या कोई धार्मिक कृत्य नहीं कर सकते। सुरक्षा ड्यूटी पर तैनात सुरक्षाकर्मियों के अतिरिक्त किसी अन्य के द्वारा संसद् भवन परिसर के किसी भी भाग में हथियार और गोला-बारूद ले जाना या उनका प्रदर्शन करना सख्त मना है।

संसद् भवन एस्टेट जिसमें संसद् भवन की इमारत, संसदीय सौध, संसद् ग्रंथालय भवन शामिल हैं, में सुरक्षा प्रबंध राज्य सभा के सभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष के आदेशानुसार समय-समय पर परिवर्तित किये जा सकते हैं।

13 दिसम्बर, 2001 को संसद् भवन पर आतंकवादी हमले के परिणामस्वरूप सुरक्षा संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के निर्णयों के अनुसरण में सुरक्षा व्यवस्था बढ़ा दी गई। वाहनों तथा पैदल चलने वालों के संचलन को विनियमित करने के लिए संसद् भवन परिसर में सभी प्रवेश स्थानों (एक्सेस प्वाइंट्स) को सुव्यवस्थित बनाया गया। प्रवेश नियंत्रण स्थानों पर अत्याधुनिक सुरक्षा उपकरणों की स्थापना के साथ अनधिकृत प्रवेश की रोकथाम का पुन: आकलन किया गया है और उसे अधिक प्रभावी बनाया गया है।

संसद् सुरक्षा सेवा के प्रशिक्षण स्कंध को संसद् सुरक्षा के अधिकारियों व कर्मचारियों को प्रतिष्ठित संस्थानों में प्रशिक्षण दिलाए जाने का दायित्व सौंपा गया है। पेशेवर कौशल बढ़ाने के उद्देश्य से अधिकारियों/कर्मचारियों को विभिन्न सुरक्षा अभिकरणों में विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए भेजा जाता है। आपदा प्रबंधन और आकस्मिकता योजनाओं की आवधिक समीक्षा के अनुरूप समय-समय पर स्थान खाली कराने, बचाव कार्य इत्यादि से संबंधित मॉक सेक्योरिटी ड्रिल कराए जाते हैं।

सफाई स्कंध : सफाई स्कंध को राज्य सभा सचिवालय की अधिकारिता वाले क्षेत्र में सर्वोत्तम सफाई सेवाएं प्रदान करने का दायित्व सौंपा गया है। संसद् सुरक्षा सेवा का

सफाई स्कंध राज्य सभा क्षेत्र में नियमित रूप से उत्पन्न होने वाले कूड़े-कचरे की सफाई और संग्रहण/निस्तारण के द्वारा स्वच्छता के उच्च मानक स्थापित करता है। सफाई स्कंध नियमित रूप से संसद् भवन, संसदीय सौध तथा नॉर्थ एवेन्यू स्थित राज्य सभा सचिवालय के कार्यालयों में दो पालियों में सफाई कर्मियों को तैनात करता है। प्रैस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पीटीआई) भवन स्थित राज्य सभा सचिवालय के कार्यालयों में सेवा प्रदान करने वाली निजी कंपनी द्वारा किए जाने वाले स्वच्छता कार्य की निगरानी भी करता है।

(9) ***स्टाफ कार चालक तथा डिस्पैच राइडर सेवा और***

(10) संदेशवाहक सेवा

इन सेवाओं में स्टाफ कार चालक, 'डिस्पैच राइडर', संदेशवाहक तथा कक्ष परिचर सम्मिलित हैं। 'डिस्पैच राइडर' मुख्यत: सत्र के दौरान संसद् सदस्यों के निवास पर संसदीय पत्रों की द्रुत तथा तत्काल सुपुर्दगी के कार्य में लगे हैं। कक्ष परिचरों को संसद् सदस्यों की सहायता तथा उन्हें सूचना और संदेश के संप्रेषण एवं संसद् सदस्यों के बुलावे इत्यादि जैसी तत्काल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कक्ष/लॉबी में तैनात किया जाता है।

वेतन और लेखा कार्यालय

सचिवालय के साथ संलग्न राज्य सभा का एक पृथक् लेखा कार्यालय, अर्थात् 'वेतन और लेखा कार्यालय' है, जिसका कार्य आंतरिक लेखापरीक्षा कराना, भुगतान को प्राधिकृत करना तथा सचिवालय के कर्मचारियों के विनियोजन लेखाओं, भविष्य निधि लेखाओं और नई पेंशन योजना का रख-रखाव करना है। वेतन और लेखा कार्यालय आवश्यक लेखापरीक्षा के बाद संसद् सदस्यों के वेतन और यात्रा भत्ते/दैनिक भत्ते के बिलों के भुगतान के लिए उत्तरदायी है।

वेतन और लेखा कार्यालय भूतपूर्व संसद्-सदस्यों तथा राज्य सभा सचिवालय के कर्मचारियों से संबंधित पेंशन के मामलों पर कार्यवाही करने तथा पेंशन भुगतान आदेश (पी.पी.ओ.) जारी करने के लिए भी उत्तरदायी है, किंतु पेंशन के संवितरण की व्यवस्था सामान्यतया सार्वजनिक क्षेत्र के विभिन्न बैंकों के द्वारा की जाती है जैसाकि पेंशनभोगी चाहते हैं।

राज्य सभा के वेतन और लेखा कार्यालय को भारत के उपराष्ट्रपतियों के पेंशन के मामलों पर कार्यवाही करने तथा उन पर अंतिम निर्णय लेने का कार्य भी सौंपा गया है। उपराष्ट्रपति पेंशन अधिनियम, 1997, जिसमें सेवानिवृत्त हो चुके तथा सेवानिवृत्त होने वाले उपराष्ट्रपतियों को पेंशन के भुगतान तथा अन्य सुविधाओं का उपबंध किया गया है, को 28 मई, 1997 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल चुकी है।

उपराष्ट्रपति पेंशन (संशोधन) अधिनियम, 2002 में यह भी उपबंध है कि उस व्यक्ति की पत्नी अथवा पति, जिसकी उपराष्ट्रपति का पदभार धारण करने की अवधि के दौरान या उसका कार्यकाल समाप्त होने पर या उसके कार्यालय से त्यागपत्र देने के बाद मृत्यु हो जाती है, उसे शेष जीवन के लिए पेंशन के पचास प्रतिशत की दर पर पारिवारिक (फैमिली) पेंशन का भुगतान किया जाएगा, जैसाकि सेवानिवृत्त होने वाले उपराष्ट्रपति के लिए स्वीकार्य है। इस अधिनियम को 23 मई, 2002 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई थी।

राज्य सभा की कार्यवाही का सीधा प्रसारण

7 दिसंबर, 1994 को कार्य मंत्रणा समिति द्वारा लिये गये निर्णय के अनुसार, शून्य-काल और विशेष उल्लेख को छोड़कर राज्य सभा की कार्यवाही का निम्न शक्ति वाले ट्रांसमीटर (एल.पी.टी.) के माध्यम से सीधा प्रसारण उसी दिन आरंभ हो गया।[29] सामान्य प्रयोजन समिति ने सदन की कार्यवाही के दूरदर्शन कवरेज को जारी रखने के प्रश्न पर विचार किया और वह वर्तमान व्यवस्था को जारी रखने के लिए सहमत हो गई।[30] 20 फरवरी, 1997[31] को सामान्य प्रयोजन समिति की एक बैठक में लिये गए निर्णय के अनुसार शून्य-काल एवं विशेष उल्लेख समेत सभा की संपूर्ण कार्यवाही का सीधा प्रसारण 21 फरवरी, 1997 से आरंभ हुआ। चैनल 9 पर यह प्रसारण किया गया और संसद् भवन से लगभग पन्द्रह किलोमीटर तक की दूरी के क्षेत्र में देखा जा सकता था। राज्य सभा के प्रश्नकाल की कार्यवाही का सीधा प्रसारण दूरदर्शन द्वारा राष्ट्रीय नेटवर्क पर हर दूसरे सप्ताह किया जाता था।

राज्य सभा के तत्कालीन सभापति स्व. श्री भैरों सिंह शेखावत तथा लोक सभा के तत्कालीन अध्यक्ष श्री सोमनाथ चटर्जी द्वारा 14 दिसम्बर, 2004 को दूरदर्शन के दो अनन्य सैटेलाइट चैनलों अर्थात् क्रमश: डी.डी. राज्य सभा तथा डी.डी. लोक सभा के शुभारंभ के साथ ही दोनों सदनों की कार्यवाही का पूरे देश में सीधा प्रसारण किया जाने लगा।

इस दिशा में एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल हुई, जब राज्य सभा के 200वें सत्र के अवसर पर आयोजित समारोह के भाग के रूप में 11 दिसम्बर, 2003 को राज्य सभा के तत्कालीन सभापति स्व. श्री भैरों सिंह शेखावत द्वारा राज्य सभा की कार्यवाही का वेबसाइट द्वारा सीधे प्रसारण का उद्घाटन किया गया। लोक सभा की कार्यवाही का भी वेबसाइट द्वारा सीधा प्रसारण 11 दिसम्बर, 2003 को आरंभ हुआ।

राज्य सभा टेलीविजन (आरएसटीवी) : जनता से संवाद

राज्य सभा टेलीविजन (आरएसटीवी) 24x7 प्रसारण वाला संसदीय टेलीविजन चैनल है जिसका पूर्ण स्वामित्व राज्य सभा का है और प्रचालन भी राज्य सभा द्वारा किया जाता है। इस चैनल का उद्देश्य संसदीय कार्यों/मामलों विशेषकर राज्य सभा के कार्यकरण और उससे संबंधित घटनाक्रमों का विस्तृत कवरेज और विश्लेषण प्रस्तुत करना है। संसद् के सत्रों के दौरान राज्य सभा की कार्यवाही के सीधे प्रसारण के अतिरिक्त आरएसटीवी सभा की कार्यवाही का सूक्ष्म विश्लेषण तथा अन्य संसदीय कार्यक्रमों तथा घटनाक्रमों को प्रस्तुत करता है। मौजूदा राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर कार्यक्रम प्रसारित करने के साथ-साथ यह अपने सुधी दर्शकों को सूचना और जानकारीपरक कार्यक्रमों के प्रसारण के लिए भी मंच उपलब्ध कराता है। चैनल का वेब प्रसारण भी होता है जो राज्य सभा के होमपेज अर्थात www.rajyasabha.nic.in/RSTV अथवा www.rstv.nic.in पर और इनके साथ-साथ

यू ट्यूब पर उपलब्ध है। राज्य सभा के माननीय सभापति ने 25 मई, 2010 को आरएसटीवी की स्थापना को मंजूरी प्रदान की थी। आरएसटीवी ने 26 अगस्त, 2011 को अपना प्रसारण (ट्रांसमिशन) प्रारंभ किया था और 18 दिसंबर, 2011 को यह पूरी तरह 24x7 समाचार और वर्तमान घटनाक्रम को समर्पित चैनल बन गया।[32]

इस चैनल ने भारत में पहली बार संसदीय समितियों के कामकाज के बारे में आम जनता को विस्तृत जानकारी मुहैया कराने का प्रयास किया है। इसके साथ-साथ यह सभा में उपस्थित किए जाने वाले विधेयकों तथा संसद् के समक्ष विचाराधीन विधेयकों पर विशेष ध्यान देता है। राज्य सभा टेलीविजन द्वारा आने वाले दिनों में अपने दर्शकों के हितार्थ राज्य सभा को विशेष तरज़ीह देते हुए भारत की संसद् के कार्यकरण के अन्य कई पक्षों को भी अपने कार्यक्रमों में शामिल करने की योजना है।

जवाबदेह और उत्तरदायी लोक प्रसारणकर्ता की भूमिका के अनुरूप राज्य सभा टी.वी. के कार्यक्रमों की अवधारणा विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र में संसद् और लोगों के बीच मौजूदा जीवंत संबंध पर आधारित है। वस्तुत: इसका उद्देश्य निर्वाचितों और निर्वाचकों के बीच सेतु का कार्य करना है। साथ ही, इसका यह भी उद्देश्य है कि राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय मामलों पर लोगों को निष्पक्ष दृष्टिकोण उपलब्ध कराया जाए। एक ओर, यह लोगों के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के लगभग सभी पहलुओं को छूने का प्रयास करता है और दूसरी ओर यह कला और संस्कृति[33] पर आधारित अपने कार्यक्रमों के माध्यम से भारतीय समाज की विविधता और जीवंतता को उजागर करने का ईमानदार प्रयास भी करता है।

राज्य सभा का बजट

राज्य सभा का बजट दो भागों में विभाजित है, सभापति तथा उपसभापति के संदर्भ में प्रभारित व्यय और राज्य सभा के सदस्यों, विपक्ष के नेता और उनके सचिवालय, मान्यता-प्राप्त दलों/समूहों के नेताओं, उप-नेता या मुख्य सचेतक के सचिवालय, राज्य सभा सचिवालय प्रशिक्षण एकक, राज्य सभा टेलीविजन (आरएसटीवी) और वेतन एवं लेखा कार्यालय, राज्य सभा के संदर्भ में दत्तमत व्यय। सचिवालय संसदीय कार्य की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बजट प्रस्ताव प्रस्तुत करता है तथा वित्त मंत्रालय की सहमति हेतु उन्हें वहां भेज देता है। जब भी मंत्रालय किसी प्रस्ताव पर आपत्ति करता है, तो सचिवालय और मंत्रालय परस्पर चर्चा के द्वारा उस मामले का समाधान कर लेते हैं। भारत सरकार के अन्य मंत्रालयों के समान दोनों सदनों के संदर्भ में पृथक् अनुदान मांगें भी उनके समक्ष रखी जाती हैं। संसद् विनियोजन अधिनियम के माध्यम से प्रतिवर्ष व्यय स्वीकृत करती है।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. एस.एस. भालेराव (संपादित), 'द सेकेण्ड चेम्बर', पृष्ठ 408, में राज्य सभा सचिवालय द्वारा दिया गया एक लेख 'सचिवालय का विकास'
2. संविधान सभा वाद-विवाद, भाग 9 (30 जुलाई से 18 सितंबर, 1949), दिनांक 30 जुलाई, 1949
3. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.8.1954, कालम 36-37
4. -वही- 15.11.1973, कालम 153-54
5. 'सचिवालय का विकास', पूर्वोक्त, पृष्ठ 408-09
6. धारा 3(1)(ङ)
7. धारा 2(घ)
8. संसदीय समाचार (1), 6.5.1983
9. राज्य सभा वाद-विवाद, 14.4.1972, कालम 100-159 और 19.5.1972, कालम 135
10. संसदीय समाचार (1), 17.8.1973
11. -वही- 21.7.1986
12. संसदीय समाचार (2), 20.10.1997
13. -वही- 20.11.1998
14. -वही- 28.7.2000
15. द राज्य सभा सेक्रेटेरियट (मेथड्स ऑफ रिक्रूटमेंट एंड क्वालिफ़िकेशन्स फॉर अपॉइंटमेंट) ऑर्डर, 1974
16. कार्यालय आदेश भाग 1 सं. 4/2008-कार्मिक, दिनांक 19 सितंबर, 2008 द्वारा
17. संसदीय समाचार (2), 5.9.1964
18. -वही- 20.2.1970
19. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.3.1970, कालम 188-90
20. संसदीय समाचार (2), 20.2.1970 और 10.4.1987
21. -वही- 23.2.1996
22. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.9.1998, कालम 36
23. संसदीय समाचार (2), 28.3.1979
24. -वही- 22.5.1996
25. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.3.1996, कालम 300-05; 19.3.1986, कालम 257-59; और 8.5.1987, कालम 380-86
26. फा. सं. ई.ओ.डी./आरएस/2000
27. प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम, 1957, धारा 2(ट)(ii) के साथ पठित धारा 17
28. फा. सं. 20/80-86-संपादन (अंग्रेजी)
29. संसदीय समाचार (2), 6.12.1994
30. सामान्य प्रयोजन समिति का कार्यवृत्त, 14.2.1995
31. -वही- 20.2.1997
32. वार्षिक प्रतिवेदन 2014, ओ. एंड एम. अनुभाग, राज्य सभा सचिवालय।
33. www.rstv.nic.in/rstv/aboutus.asp

परिशिष्ट

राज्य सभा के सत्र

सत्र	आमंत्रण भेजने की तिथियों का क्रम	सत्र आरंभ होने की तिथि	सत्र समाप्त होने की तिथि (अनिश्चित काल के लिये स्थगन)	सत्रावसान की तिथि	वास्तविक कार्य दिवसों की कुल संख्या	
1	2	3	4	5	6	
पहला	17.04.1952	13.05.1952	31.05.1952		13	
		14.07.1952	14.08.1952	19.08.1952	25	60
दूसरा	09.09.1952	24.11.1952	22.12.1952	03.01.1953	22	
तीसरा	14.01.1953	11.02.1953	09.03.1953		20	
		25.03.1953	16.05.1953	19.05.1953	31	100
चौथा	05.08.1953	24.08.1953	23.09.1953	25.09.1953	24	
पांचवां	01.10.1953	23.11.1953	24.12.1953	26.12.1953	25	
छठा	12.01.1954	15.02.1954	18.03.1954		25	
		19.04.1954	19.05.1954	22.05.1954	25	103
सातवां	13.06.1954	23.08.1954	30.09.1954	01.10.1954	29	
आठवां	08.10.1954	25.11.1954	24.12.1954	24.12.1954	24	
नौवां	10.01.1955	21.02.1955	04.05.1955	06.05.1955	50	
दसवां	26.05.1955	16.08.1955	01.10.1955	04.10.1955	35	111
ग्यारहवां	14.10.1955	21.11.1955	24.12.1955	26.12.1955	26	
बारहवां	30.12.1955	15.02.1956	16.03.1956	17.03.1956	23	
तेरहवां	22.03.1956	23.04.1956	31.05.1956	02.06.1956	29	113
चौदहवां	09.06.1956	30.07.1956	13.09.1956	15.09.1956	34	
पन्द्रहवां	25.09.1956	19.11.1956	22.12.1956	23.12.1956	27	
सोलहवां	18.02.1957	18.03.1957	29.03.1957	30.03.1957	10	
सत्रहवां	24.04.1957	13.05.1957	01.06.1957	01.06.1957	17	78
अठारहवां	19.06.1957	12.08.1957	14.09.1957	14.09.1957	23	
उन्नीसवां	17.09.1957	18.11.1957	24.12.1957	24.12.1957	28	
बीसवां	28.12.1957	10.02.1958	14.03.1958	15.03.1958	23	
इक्कीसवां	19.03.1958	22.04.1958	10.05.1958	12.05.1958	16	91
बाईसवां	20.05.1958	18.08.1958	27.09.1958	01.10.1958	30	
तेईसवां	09.10.1958	24.11.1958	24.12.1958	25.12.1958	22	

1	2	3	4	5	6	
चौबीसवां	03.01.1959	09.02.1959	13.03.1959	14.03.1959	26	
पच्चीसवां	20.03.1959	20.04.1959	08.05.1959	09.05.1959	15	87
छब्बीसवां	19.05.1959	10.08.1959	11.09.1959	12.09.1959	24	
सत्ताईसवां	18.09.1959	23.11.1959	22.12.1959	23.12.1959	22	
अट्ठाईसवां	31.12.1959	08.02.1960	11.03.1960	12.03.1960	25	
उनतीसवां	16.03.1960	06.04.1960	29.04.1960	01.05.1960	18	87
तीसवां	06.05.1960	08.08.1960	09.09.1960	10.09.1960	24	
इकतीसवां	20.09.1960	28.11.1960	23.12.1960	24.12.1960	20	
बत्तीसवां	26.12.1960	14.02.1961	18.03.1961	23.03.1961	24	
तैंतीसवां	23.03.1961	27.03.1961	30.03.1961	31.03.1961	04	
चौतीसवां	02.04.1961	19.04.1961	05.05.1961	10.05.1961	13	75
पैंतीसवां	07.06.1961	14.08.1961	08.09.1961	09.09.1961	19	
छत्तीसवां	11.09.1961	27.11.1961	15.12.1961	16.12.1961	15	
सैंतीसवां	14.02.1962	12.03.1962	30.03.1962	31.03.1962	13	
अड़तीसवां	03.04.1962	17.04.1962	11.05.1962	12.05.1962	18	
उनतालीसवां	16.05.1962	14.06.1962	26.06.1962	28.06.1962	11	91
चालीसवां	30.06.1962	06.08.1962	07.09.1962	09.09.1962	23	
इकतालीसवां	28.10.1962	08.11.1962	12.12.1962		26	
		21.01.1963	25.01.1963	29.01.1963	05	
बयालीसवां	31.01.1963	18.02.1963	20.03.1963	21.03.1963	22	
तैंतालीसवां	23.03.1963	22.04.1963	11.05.1963	17.05.1963	17	100
चवालीसवां	27.05.1963	13.08.1963	21.09.1963	23.09.1963	29	
पैंतालीसवां	29.09.1963	18.11.1963	23.12.1963	24.12.1963	27	
छियालीसवां	30.12.1963	10.02.1964	17.03.1964	18.03.1964	27	
सैंतालीसवां	20.03.1964	21.04.1964	08.05.1964	09.05.1964	14	97
अड़तालीसवां	10.05.1964	27.05.1964	06.06.1964	09.06.1964	08	
उनचासवां	18.07.1964	07.09.1964	03.10.1964	05.10.1964	20	
पचासवां	07.10.1964	16.11.1964	24.12.1964	25.12.1964	28	
इक्यावनवां	04.01.1965	17.02.1965	31.03.1965	02.04.1965	29	
बावनवां	04.04.1965	03.05.1965	14.05.1965	15.05.1965	10	96
तिरपनवां	01.06.1965	16.08.1965	24.09.1965	25.09.1965	29	
चौवनवां	29.09.1965	03.11.1965	11.12.1965	13.12.1965	28	

1	2	3	4	5	6	
पचपनवां	18.12.1965	14.02.1966	07.04.1966	12.04.1966	36	109
छप्पनवां	16.04.1966	03.05.1966	19.05.1966	20.05.1966	13	
सत्तावनवां	21.05.1966	25.07.1966	10.09.1966	12.09.1966	35	
अट्ठावनवां	14.09.1966	07.11.1966	10.12.1966	13.12.1966	25	
उनसठवां	04.03.1967	18.03.1967	11.04.1967	13.04.1967	17	91
साठवां	16.04.1967	22.05.1967	24.06.1967	25.06.1967	26	
इकसठवां	03.07.1967	24.07.1967	18.08.1967	24.08.1967	20	
बासठवां	04.09.1967	20.11.1967	27.12.1967	30.12.1967	28	
तिरसठवां	08.01.1968	12.02.1968	28.03.1968	29.03.1968	33	103
चौसठवां	04.04.1968	29.04.1968	13.05.1968	15.05.1968	12	
पैंसठवां	20.05.1968	22.07.1968	31.08.1968	04.09.1968	28	
छियासठवां	18.09.1968	18.11.1968	28.12.1968	30.12.1968	30	
सड़सठवां	04.01.1969	17.02.1969	31.03.1969	02.04.1969	30	102
अड़सठवां	03.04.1969	28.04.1969	19.05.1969	21.05.1969	17	
उनहत्तरवां	28.05.1969	21.07.1969	29.08.1969	30.08.1969	28	
सत्तरवां	16.09.1969	17.11.1969	24.12.1969	26.12.1969	27	
इकहत्तरवां	03.01.1970	20.02.1970	04.04.1970	07.04.1970	29	107
बहत्तरवां	09.04.1970	27.04.1970	23.05.1970	27.05.1970	20	
तिहत्तरवां	01.06.1970	27.07.1970	07.09.1970	09.09.1970	30	
चौहत्तरवां	12.09.1970	09.11.1970	18.12.1970	23.12.1970	28	
पचहत्तरवां	15.03.1971	23.03.1971	07.04.1971	14.04.1971	13	89
छिहत्तरवां	17.04.1971	24.05.1971	25.06.1971	29.06.1971	25	
सतहत्तरवां	01.07.1971	19.07.1971	14.08.1971	19.08.1971	20	
अठहत्तरवां	29.09.1971	15.11.1971	24.12.1971	26.12.1971	31	
उनासीवां	18.01.1972	13.03.1972	14.04.1972	15.04.1972	23	99
अस्सीवां	17.04.1972	08.05.1972	03.06.1972	05.06.1972	21	
इक्यासीवां	10.06.1972	31.07.1972	04.09.1972	06.09.1972	25	
बयासीवां	12.09.1972	13.11.1972	23.12.1972	28.12.1972	30	
तिरासीवां	03.01.1973	19.02.1973	31.03.1973	02.04.1973	30	105
चौरासीवां	04.04.1973	30.04.1973	19.05.1973	25.05.1973	14	
पचासीवां	28.05.1973	23.07.1973	04.09.1973	07.09.1973	29	
छियासीवां	13.09.1973	12.11.1973	24.12.1973	25.12.1973	32	
सतासीवां	09.01.1974	18.02.1974	26.03.1974	27.03.1974	25	109
अठासीवां	29.03.1974	22.04.1974	14.05.1974	17.05.1974	16	
नवासीवां	30.05.1974	22.07.1974	11.09.1974	12.09.1974	40	
नब्बेवां	24.09.1974	11.11.1974	21.12.1974	24.12.1974	28	

1	2	3	4	5	6	
इक्यानवेवां	18.01.1975	17.02.1975	26.03.1975	31.03.1975	28	
बानवेवां	17.04.1975	25.04.1975	14.05.1975	16.05.1975	14	58
तिरानवेवां	09.07.1975	21.07.1975	09.08.1975	03.09.1975	16	
चौरानवेवां	15.12.1975	05.01.1976	06.02.1976	09.02.1976	23	
पचानवेवां	11.02.1976	08.03.1976	03.04.1976	05.04.1976	20	
छियानवेवां	07.04.1976	10.05.1976	28.05.1976	29.05.1976	14	84
सतानवेवां	04.06.1976	10.08.1976	03.09.1976	05.09.1976	18	
अठानवेवां	17.09.1976	03.11.1976	15.11.1976	17.11.1976	09	
निन्यानवेवां	22.02.1977	28.02.1977	01.03.1977	02.03.1977	02	
सौवां	24.03.1977	27.03.1977	11.04.1977	12.04.1977	10	
एक सौ एकवां	13.05.1977	11.06.1977	28.06.1977	29.06.1977	13	70
एक सौ दोवां	02.07.1977	17.07.1977	09.08.1977	11.08.1977	17	
एक सौ तीनवां	15.09.1977	14.11.1977	24.12.1977	28.12.1977	28	
एक सौ चारवां	25.01.1978	20.02.1978	23.03.1978	28.03.1978	23	
एक सौ पांचवां	30.03.1978	24.04.1978	18.05.1978	19.05.1978	17	
एक सौ छहवां	27.05.1978	17.07.1978	31.08.1978	05.09.1978	32	97
एक सौ सातवां	16.10.1978	20.11.1978	26.12.1978	26.12.1978	25	
एक सौ आठवां	11.01.1979	19.02.1979	28.03.1979	29.03.1979	27	
एक सौ नौवां	07.04.1979	24.04.1979	23.05.1979	25.05.1979	20	
एक सौ दसवां	03.06.1979	09.07.1979	16.07.1979	03.08.1979	06	54
एक सौ ग्यारहवां	07.08.1979	20.08.1979	20.08.1979	24.08.1979	01	
एक सौ बारहवां	15.01.1980	23.01.1980	05.02.1980	06.02.1980	10	
एक सौ तेरहवां	23.02.1980	11.03.1980	31.03.1980	31.03.1980	14	
एक सौ चौदहवां	23.05.1980	09.06.1980	09.07.1980	10.07.1980	23	90
एक सौ पन्द्रहवां	10.07.1980	23.07.1980	18.08.1980	19.08.1980	16	
एक सौ सोलहवां	14.10.1980	17.11.1980	24.12.1980	27.12.1980	27	
एक सौ सत्रहवां	07.01.1981	16.02.1981	26.03.1981	31.03.1981	26	
एक सौ अठारहवां	04.04.1981	20.04.1981	08.05.1981	12.05.1981	14	
एक सौ उन्नीसवां	27.07.1981	17.08.1981	18.09.1981	22.09.1981	25	89
एक सौ बीसवां	24.10.1981	23.11.1981	24.12.1981	28.12.1981	24	
एक सौ इक्कीसवां	15.01.1982	18.02.1982	31.03.1982	01.04.1982	29	
एक सौ बाईसवां	05.04.1982	26.04.1982	06.05.1982	12.05.1982	09	
एक सौ तेईसवां	12.05.1982	08.07.1982	13.08.1982	17.08.1982	24	82
एक सौ चौबीसवां	11.09.1982	04.10.1982	05.11.1982	09.11.1982	20	

1	2	3	4	5	6	
एक सौ पच्चीसवां	15.01.1983	18.02.1983	25.03.1983	01.04.1983	21	
एक सौ छब्बीसवां	02.04.1983	26.04.1983	10.05.1983	13.05.1983	11	77
एक सौ सत्ताईसवां	23.06.1983	25.07.1983	26.08.1983	30.08.1983	23	
एक सौ अट्ठाईसवां	17.10.1983	15.11.1983	22.12.1983	24.12.1983	22	
एक सौ उनतीसवां	30.01.1984	23.02.1984	23.03.1984	31.03.1984	22	
एक सौ तीसवां	04.04.1984	23.04.1984	10.05.1984	17.05.1984	14	63
एक सौ इकतीसवां	28.06.1984	23.07.1984	29.08.1984	11.09.1984	27	
एक सौ बत्तीसवां	02.01.1985	17.01.1985	31.01.1985	09.02.1985	09	
एक सौ तैंतीसवां	27.02.1985	13.03.1985	29.03.1985	02.04.1985	14	
एक सौ चौंतीसवां	09.04.1985	29.04.1985	21.05.1985	28.05.1985	16	89
एक सौ पैंतीसवां	28.06.1985	23.07.1985	29.08.1985	30.08.1985	26	
एक सौ छत्तीसवां	16.10.1985	18.11.1985	20.12.1985	24.12.1985	24	
एक सौ सैंतीसवां	31.01.1986	20.02.1986	20.03.1986	22.03.1986	20	
एक सौ अड़तीसवां	27.03.1986	21.04.1986	14.05.1986	17.05.1986	15	86
एक सौ उनतालीसवां	26.06.1986	17.07.1986	22.08.1986	30.08.1986	24	
एक सौ चालीसवां	09.10.1986	04.11.1986	10.12.1986	12.12.1986	27	
एक सौ इकतालीसवां	30.01.1987	23.02.1987	20.03.1987	24.03.1987	19	
एक सौ बयालीसवां	27.03.1987	13.04.1987	12.05.1987	19.05.1987	19	92
एक सौ तैंतालीसवां	07.07.1987	27.07.1987	31.08.1987	03.09.1987	25	
एक सौ चवालीसवां	13.10.1987	06.11.1987	06.12.1987	18.12.1987	29	
एक सौ पैंतालीसवां	29.01.1988	22.02.1988	30.03.1988	06.04.1988	26	
एक सौ छियालीसवां	08.04.1988	25.04.1988	13.05.1988	18.05.1988	15	89
एक सौ सैंतालीसवां	24.06.1988	27.07.1988	06.09.1988	29.09.1988	26	
एक सौ अड़तालीसवां	05.10.1988	02.11.1988	20.12.1988	05.01.1989	22	
एक सौ उनचासवां	31.01.1989	21.02.1989	04.04.1989	05.04.1989	25	
एक सौ पचासवां	06.04.1989	24.04.1989	11.05.1989	23.05.1989	14	
एक सौ इक्यावनवां	24.06.1989	18.07.1989	18.08.1989		22	71
		11.10.1989	13.10.1989	20.10.1989	03	
एक सौ बावनवां	07.12.1989	20.12.1989	29.12.1989	06.01.1990	07	
एक सौ तिरपनवां	05.02.1990	12.03.1990	30.03.1990		15	
		09.04.1990	10.04.1990	12.04.1990	02	
एक सौ चौवनवां	16.04.1990	30.04.1990	01.06.1990	08.06.1990	23	74
एक सौ पचपनवां	19.06.1990	07.08.1990	07.09.1990		21	
		01.10.1990	05.10.1990	11.10.1990	03	
एक सौ छप्पनवां	29.11.1990	27.12.1990	11.01.1991	22.01.1991	10	

1	2	3	4	5	6	
एक सौ सत्तावनवां	30.01.1991	21.02.1991	13.03.1991	14.03.1991	12	
एक सौ अट्ठावनवां	24.05.1991	03.06.1991	04.06.1991	08.06.1991	02	
एक सौ उनसठवां	28.06.1991	11.07.1991	07.08.1991	14.08.1991	19	74
एक सौ साठवां	14.08.1991	26.08.1991	18.09.1991	26.09.1991	18	
एक सौ इकसठवां	02.11.1991	20.11.1991	21.12.1991	23.12.1991	23	
एक सौ बासठवां	23.01.1992	24.02.1992	03.04.1992	07.04.1992	28	
एक सौ तिरसठवां	08.04.1992	27.04.1992	14.05.1992	25.05.1992	13	
एक सौ चौसठवां	18.06.1992	08.07.1992	20.08.1992	25.08.1992	31	90
एक सौ पैंसठवां	26.10.1992	24.11.1992	23.12.1992	24.12.1992	18	
एक सौ छियासठवां	02.02.1993	22.02.1993	31.03.1993	01.04.1993	25	
एक सौ सड़सठवां	07.04.1993	26.04.1993	14.05.1993	18.05.1993	14	
एक सौ अड़सठवां	07.07.1993	26.07.1993	27.08.1993	23.09.1993	22	79
एक सौ उनहत्तरवां	12.11.1993	02.12.1993	30.12.1993	07.01.1994	18	
एक सौ सत्तरवां	02.02.1994	21.02.1994	18.03.1994		16	
		18.04.1994	13.05.1994		19	
		13.06.1994	15.06.1994	18.06.1994	03	75
एक सौ इकहत्तरवां	07.07.1994	25.07.1994	26.08.1994	05.09.1994	24	
एक सौ बहत्तरवां	17.11.1994	07.12.1994	23.12.1994	27.12.1994	13	
एक सौ तिहत्तरवां	31.01.1995	13.02.1995	14.02.1995		02	
		14.03.1995	31.03.1995		12	
		24.04.1995	02.06.1995	15.06.1995	27	77
एक सौ चौहत्तरवां	06.07.1995	31.07.1995	26.08.1995	06.09.1995	16	
एक सौ पचहत्तरवां	11.11.1995	27.11.1995	22.12.1995	29.12.1995	20	
एक सौ छिहत्तरवां	05.02.1996	26.02.1996	12.03.1996	14.03.1996	10	
एक सौ सतहत्तरवां	18.05.1996	24.05.1996	30.05.1996	13.06.1996	02	
एक सौ अठहत्तरवां	24.06.1996	10.07.1996	02.08.1996		17	64
		26.08.1996	13.09.1996	19.09.1996	13	
एक सौ उनासीवां	01.11.1996	20.11.1996	20.12.1996	24.12.1996	22	
एक सौ अस्सीवां	01.02.1997	20.02.1997	21.03.1997		36	
		22.04.1997	16.05.1997	21.05.1997		
एक सौ इक्यासीवां	16.06.1997	23.07.1997	01.09.1997	02.09.1997	23	68
एक सौ बयासीवां	13.10.1997	19.11.1997	01.12.1997	09.12.1997	09	
एक सौ तिरासीवां	21.03.1998	25.03.1998	02.04.1998	06.04.1998	06	
एक सौ चौरासीवां	29.04.1998	27.05.1998	04.08.1998	10.08.1998	35	59
एक सौ पचासीवां	20.10.1998	30.11.1998	23.12.1998	31.12.1998	18	

1	2	3	4	5	6	
एक सौ छियासीवां	25.01.1999	22.02.1999	19.03.1999			
		15.04.1999	23.04.1999	29.04.1999	23	
एक सौ सतासीवां	15.10.1999	21.10.1999	29.10.1999	02.01.1999	06	48
एक सौ अठासीवां	08.11.1999	29.11.1999	23.12.1999	27.12.1999	19	
एक सौ नवासीवां	01.02.2000	23.02.2000	16.03.2000	23.05.2000		
		17.04.2000	17.05.2000		38	
एक सौ नब्बेवां	22.06.2000	24.07.2000	25.08.2000	28.08.2000	22	85
एक सौ इक्यानवेवां	03.11.2000	20.11.2000	22.12.2000	22.12.2000	25	
एक सौ बानवेवां	30.01.2001	19.02.2001	23.03.2001			
		16.04.2001	27.04.2001	03.05.2001	31	
एक सौ तिरानवेवां	20.06.2001	23.07.2001	31.08.2001	03.09.2001	29	81
एक सौ चौरानवेवां	29.10.2001	19.11.2001	19.12.2001	21.12.2001	21	
एक सौ पचानवेवां	23.01.2002	25.02.2002	22.03.2002			
		15.04.2002	17.05.2002	22.05.2002	38	
एक सौ छियानवेवां	27.06.2002	15.07.2002	12.08.2002	14.08.2002	21	82
एक सौ सत्तानवेवां	31.10.2002	18.11.2002	20.12.2002	24.12.,2002	23	
एक सौ अठानवेवां	30.01.2003	17.02.2003	09.05.2003	10.05.2003	37	
		07.04.2003				
एक सौ निन्यानवेवां	30.06.2003	21.07.2003	22.08.2003	26.08.2003	21	74
दो सौवां	11.11.2003	02.12.2003	23.12.2003	10.02.2004	16	
		30.01.2004	05.02.2004	10.02.2004	04	
दो सौ एकवां	27.05.2004	04.06.2004	10.06.2004	11.06.2004	05	
दो सौ दोवां	18.06.2004	05.07.2004	23.07.2004	30.08.2004	24	50
		16.08.2004	26.08.2004			
दो सौ तीनवां	16.11.2004	01.12.2004	23.12.2004	24.12.2004	17	
दो सौ चारवां	31.01.2005	25.02.2005	24.03.2005			
		19.04.2005	13.05.2005	17.05.2005	38	
दो सौ पांचवां	08.07.2005	25.07.2005	30.08.2005	01.09.2005	24	85
दो सौ छहवां	03.11.2005	23.11.2005	23.12.2005	28.12.2005	23	
दो सौ सातवां	28.01.2006	16.02.2006	22.03.2006			
		10.05.2006	23.05.2006	25.05.2006	35	
दो सौ आठवां	06.07.2006	24.07.2006	25.08.2006	30.08.2006	22	77
दो सौ नौवां	03.11.2006	22.11.2006	19.12.2006	21.12.2006	20	

1	2	3	4	5	6	
दो सौ दसवां	06.02.2007	23.02.2007	21.03.2007	21.05.2007		
		26.04.2007	17.05.2007		31	
दो सौ ग्यारहवां	27.07.2007	10.08.2007	10.09.2007	11.09.2007	17	65
दो सौ बारहवां	05.11.2007	15.11.2007	07.12.2007	12.12.2007	17	
दो सौ तेरहवां	11.02.2008	25.02.2008	20.03.2008	10.05.2008		
		15.04.2008	06.05.2008		30	46
दो सौ चौदहवां	09.09.2008	17.10.2008	24.10.2008	24.12.2008	16	
		10.12.2008	23.12.2008			
दो सौ पंद्रहवां	22.01.2009	12.02.2009	26.02.2009	02.03.2009	10	
दो सौ सोलहवां	26.05.2009	04.06.2009	09.06.2009	12.06.2009	04	63
दो सौ सत्रहवां	16.06.2009	02.07.2009	07.08.2009	11.08.2009	26	
दो सौ अठारहवां	29.10.2009	19.11.2009	22.12.2009	27.12.2009	23	
दो सौ उन्नीसवां	03.02.2010	22.02.2010	16.03.2010	11.05.2010	15	
		15.04.2010	07.05.2010		17	81
दो सौ बीसवां	07.07.2010	26.07.2010	31.08.2010	03.09.2010	26	
दो सौ इक्कीसवां	15.10.2010	09.11.2010	13.12.2010	17.12.2010	23	
दो सौ बाइसवां	28.01.2011	21.02.2011	16.03.2011	29.03.2011	17	
		17.03.2011	25.03.2011		06	73
दो सौ तेइसवां	12.07.2011	01.08.2011	08.09.2011	15.09.2011	26	
दो सौ चौबीसवां	03.11.2011	22.11.2011	30.12.2011	05.01.2012	24	
दो सौ पच्चीसवां	16.02.2012	12.03.2012	30.03.2012	28.05.2012	14	
		24.04.2012	22.05.2012		21	74
दो सौ छब्बीसवां	19.07.2012	08.08.2012	07.09.2012	12.09.2012	19	
दो सौ सत्ताईसवां	02.11.2012	22.11.2012	20.12.2012	24.12.2012	20	
दो सौ अट्ठाईसवां	05.02.2013	21.02.2013	22.03.2013	10.05.2013	21	
		22.04.2013	08.05.2013		11	63
दो सौ उनतीसवां	19.07.2013	05.08.2013	07.09.2013	10.09.2013	21	
दो सौ तीसवां	13.11.2013	05.12.2013	18.12.2013		10	
		05.02.2014	21.02.2014	27.02.2014	12	
दो सौ इकतीसवां	30.05.2014	09.06.2014	11.06.2014	13.06.2014	03	64
दो सौ बत्तीसवां	25.06.2014	07.07.2014	14.08.2014	14.08.2014	27	
दो सौ तैंतीसवां	29.10.2014	24.11.2014	23.12.2014	23.12.2014	22	
दो सौ चौतीसवां	29.01.2015	23.02.2015	20.03.2015*	28.03.2015	19	
दो सौ पैंतीसवां	08.04.2015	23.04.2015	13.05.2015	14.05.2015	13	69
दो सौ छत्तीसवां	27.06.2015	21.07.2015	13.08.2015	10.09.2015	17	
दो सौ सैंतीसवां	11.11.2015	26.11.2015	23.12.2015	06.01.2016	20	

*सभा 23.04.2015 को पुन: समवेत होने के लिए स्थगित। तथापि, 28.03.2015 को राष्ट्रपति द्वारा सत्रावसान कर दिया गया था।

विषय-अनुक्रमणिका

अधीनस्थ विधान संबंधी समिति

— — का कार्यकरण, 811
— — का गठन, 805
— — की उप-समितियां, 813
— — की शक्तियां, 806
— — की सिफारिशें, 814
— — के अध्ययन दौरे, 813
— — के कृत्य, 806
— — के प्रतिवेदन, 813

अध्यादेश

— — का निरनुमोदन, 666, 668
— — का स्थान लेने वाला विधेयक, 668
— — का प्रख्यापन, 666
— — का सभापटल पर रखा जाना, 667
— — की वैधता, 666
— — के संदर्भ में राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्य, 667
— — द्वारा विधेयक के उपबंधों को लागू किया जाना, 666
— — संबंधी विवरण, 667
— — सभा में आपत्ति उठाया जाना, 666

अनजान व्यक्ति

— — का उपवर्जन, 222
— — का प्रवेश, 965

अनुपस्थिति की अनुमति

— — का न दिया जाना, 388
— — की अवधि, 384
— — के आधार, 385
— — के आवेदनों को निपटाया जाना, 387
— — के कारण सीट का रिक्त घोषित किया जाना, 389
— — के दौरान भत्ते आदि, 392
— — के सम्बन्ध में न्यायालयों को सूचना उपलब्ध कराना, 392
— — के संबंध में संवैधानिक विधिक उपबंध, 382
— — के संबंध में संसद-सदस्य को सूचना उपलब्ध कराना, 392
— — को रद्द किया जाना, 392
— — देने की प्रक्रिया, 384
उपसभापति को — —, 390
उपस्थिति पंजी, 382
ऐसे सदस्य को — — जिसने शपथ नहीं ली है, 391
मंत्रियों को — —, 390
सदस्यों को — —, 384
सभा के नेता को — —, 390

अल्पकालिक चर्चा

अनियत दिन वाले प्रस्ताव और
— — में अंतर, 755
— — का महत्व, 754
— — के अंतर्गत जिन मामलों पर चर्चा की गई, 757
— — के संबंध में समिति की समुक्तियां, 754
— — संबंधी प्रक्रिया, 754
— — समय-सीमा से अधिक, 755

अवमानकर्त्ता पर जुर्माने का, अधिरोपण, 245

असंसदीय अभिव्यक्तियों का प्रयोग न करना, 298, 299

आचरण के नियम

असंगत बातें कहना या बार-बार एक ही बात कहना, 300
— — के संबंध में आरोप/निंदा, 279
— — के संबंध में दोषी सदस्यों को दण्डित किया जाना, 279
— — के संबंध में प्रथाएं और परंपराएं, 284
— — के संबंध में भर्त्सना, 280
— — के संबंध में राज्य विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन, 279

—— के संबंध में सामान्य बातें, 278
निलंबन, 282
निष्कासन, 284
प्रश्नों को सभापीठ के माध्यम से पूछा जाना, 300
बोलते समय नियमों का पालन किया जाना, 295
व्यक्तिगत और आर्थिक हित प्रकट करने संबंधी, 301
सदन में पालनीय नियम, 287
सदन से बाहर चले जाने का आदेश, 281
सभापति के खड़े होने पर प्रक्रिया, 301

आचार संहिता, 303

आचार समिति
—— का कार्यकरण, 802
—— का गठन, 800
—— की शक्तियां, 801
—— के कृत्य, 800
—— आठवां प्रतिवेदन, 803
—— चौथा प्रतिवेदन, 803
—— सातवां प्रतिवेदन, 803

आधे घंटे की चर्चाएं
—— की संख्या, 527
—— के लिए समय, 527
—— के संबंध में प्रक्रिया, 527
—— के संबंध में लॉटरी द्वारा निर्णय किया जाना, 527
—— के संबंध में सूचना, 526
सदस्य की अनुपस्थिति और ——, 528

आपात्
(उद्घोषणा के अंतर्गत **देखिए**)

आरोप
—— का खंडन, 915
—— न लगाया जाना, 296
—— लगाया जाना, 299, 910-13
—— बाहरी व्यक्ति के विरुद्ध, 912
—— सदस्यों के विरुद्ध, 296, 300

आवास समिति
—— का कार्यकरण, 834
—— का गठन, 833
—— की शक्तियां, 834
—— के कृत्य, 833
—— के प्रतिवेदन, 834

आश्वासन
—— का चयन, 822
—— की संवीक्षा, 821
—— को पूरा न किया जाना, 827
—— संबंधी समिति, 821
सरकार द्वारा दिए गए ——, 821

उत्तर देने का अधिकार, 917

उद्घोषणा
—— का अनुमोदन/जारी रहना, 720, 722, 727
—— का प्रतिसंहरण, 724
—— का प्रभाव, 724
—— का सभापटल पर रखा जाना, 721
—— की अवधि, 726
—— के अवसर, 721
—— के संबंध में राज्य सभा की शक्तियां, 13, 15
राष्ट्रीय आपातकाल की ——, 720
वित्तीय आपातकाल की ——, 716, 728
संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने के कारण ——, 716, 721

उपराष्ट्रपति
—— का निर्वाचन, 82
—— की सूची, 83
—— के निर्वाचन को शून्य घोषित करने के आधार, 84
—— पदेन सभापति, 80
राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन, 80
—— हेतु निर्वाचन अधिकारी का निर्वाचन, 139-40

उपसभाध्यक्ष तालिका, 96-98

उपसभापति
—— का निर्वाचन, 90

— — का वेतन इत्यादि, 93
— — की अनुपस्थिति, 94
उपसभापतियों की सूची, 92-93
— — के कर्त्तव्य, 93
— — के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं, 99

उपस्थिति पंजी
— — न्यायालयों को सूचना उपलब्ध कराना, 392
— — सदस्य को सूचना उपलब्ध कराना, 392

उल्लेख
गंभीर और महत्वपूर्ण अवसरों पर होने वाले — —, 439
त्रासद घटनाओं का — —, 441
दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि, 420
निवृत्त होने वाले सदस्यों/ निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों के संबंध में — —, 445
बधाइयां, प्रशंसा और अभिनन्दन, 434
राज्य सभा के महासचिव के बारे में — —, 438
विदेशों के शिष्टमंडलों के संबंध में,— —, 439
सत्र की समाप्ति पर — —, 445
प्रशंसा और श्रद्धांजलि, 433
निर्विरोध, 444
राहत या चिंता, 438
विदाई उद्‌गार, 445

एकल संक्रमणीय मत, 45

औचित्य का उल्लंघन , 254

औचित्य-प्रश्न
— — उठाए जाने के बाद अपनाई जाने वाली प्रक्रिया, 953
— — उठाए जाने के संबंध में नियम, 952
— — कब उठाया जाए, 954
— — क्या नहीं होता, 954
— — किस प्रकार पूछा जाता है, 952
— — की परिभाषा, 951
प्रश्नों का समय और — —, 956

कक्ष, राज्य सभा
— — में पीठासीन अधिकारी की कुर्सी, 372
— — में दीर्घाएं, 372, 967
— — में बैठने की क्षमता, 371
— — में बैठने की व्यवस्था, 372
— — में सीटों का आवंटन, 374

कारावास, 245

कार्य
— — और संसदीय कार्य मंत्रालय, 407
— — का क्रम, 407
कार्यावलि, 414
— — की घोषणा, 395, 407
— — की मदें, 415
— — की व्यवस्था, 406
लोक महत्व के मामलों पर मंत्रियों द्वारा वक्तव्य, 399
— — के लिए समय का आवंटन, 405
— — के प्रस्ताव और प्रबंधन, 403
— — के संबंध में परामर्श, 319
विधेयकों के पुर:स्थापित करने या वापस लेने के लिए प्रस्ताव, 319
व्यक्तिगत स्पष्टीकरण, 402
सभापटल पर रखे गए पत्र, 396
सरकारी कार्य संबंधी वक्तव्य, 407
समितियों के लिए निर्वाचन हेतु प्रस्ताव, 402
गैर-सरकारी सदस्यों का — —, 411
वित्तीय — —, 405
विधान — —, 403
चर्चा, 404
सरकारी — —, 405
संकल्प, 403
अशुद्धियों को ठीक करने के लिए वक्तव्य/विवरण, 398
ध्यानाकर्षण के उत्तर में दिये गए वक्तव्य, 398

कार्य की व्यवस्था
("कार्य" के अंतर्गत **देखिए**)

कार्य मंत्रणा समिति
—— का कार्यकरण, 781
—— का गठन, 777
—— का प्रतिवेदन, 782
—— की प्रक्रिया संबंधी बातें, 873
—— की सिफारिशें, 786
—— के कृत्य, 778
—— में पार्टियों/दलों का प्रतिनिधित्व, 320

कार्यावलि, 414

कार्यवाही
—— का प्रसारण, 996
—— का मिथ्या निरूपण, 225
—— का विनियमन, 227
—— का विवरण तैयार करना, 958
—— का वृत्त-लेखन, 959
—— का समय-पूर्व प्रकाशन, 224
—— को नियंत्रित करने का, अधिकार, 223
—— से शब्दों का निकाला जाना, 961
—— से निकाले जाने तथा बाद में पुन: शामिल किये जाने के संबंध में, 964
—— से निकाले गये अंशों का प्रकाशन, 224, 964
समितियों की ——, 964

गणपूर्ति
सभा की ——, 33
समिति की ——, 849

गिरफ्तारी/निरोध
—— के अधीन निवारक निरोध, 231
—— के अधीन रहते हुए सत्र में उपस्थिति होना, 231
—— के अधीन सदस्य के पत्र-व्यवहार पर रोक, 235
—— के अधीन सदस्यों के साथ बुरा बर्ताव किया जाना, 235
—— के संबंध में विशेषाधिकार, 231
—— के संबंध में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण, 913
—— के संबंध में सूचना, 233
दांडिक अपराध, —— से उन्मुक्ति नहीं, 231
सदन की प्रसीमा में ——, 233
सदस्यों को हथकड़ी लगाया जाना, 237
—— से स्वतंत्रता, 230

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक
—— का प्रारूप तैयार किया जाना, 669
—— का पुर:स्थापन, 671
—— का राय जानने के लिए परिचालन, 674
—— की पंजी, 675
—— के अब तक अधिनियमित विधेयक, 676
—— के संबंध में राष्ट्रपति की अनुशंसा, 673
—— के संबंध में लॉटरी निकाला जाना, 670
—— के संबंध में सूचना, 669
—— पर वाद-विवाद का स्थगन, 674

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प
—— का रूप, 705
—— की ग्राह्यता, 705
—— की सूचना और लॉटरी का निकाला जाना, 704
—— को सूचीबद्ध किया जाना, 707
—— पर वाद-विवाद, 706, 709
—— समय का आवंटन, 707

चर्चा
अनियत दिन वाले प्रस्ताव, 738, 755
अल्पकालिक ——, 395, 404, 736, 754

आधे घंटे की ——, 526-28
उच्च प्राधिकारियों का आचरण, 910
—— के संबंध में नियम, 906
—— के संबंध में सामान्य नियम, 404
ध्यानाकर्षण ——, 398
न्यायाधीन मामलों पर ——, 906
प्रथाएं और परंपराएं ——, 284
प्रस्तावों पर ——, 404, 739, 743
बजट पर ——, 767
मंत्रालयों के कार्यकरण पर ——, 767
राट्रपति के अभिभाषण पर ——, 395
लोक-महत्व के मामले पर ——, 395, 399
विधेयकों पर ——, 621, 624, 636, 640, 644
संकल्पों के संबंध में ——, 395, 404

चेतावनी/भर्त्सना/धिक्कार, 280

चौथी अनुसूची
26 नवम्बर, 1949 की स्थिति के अनुसार ——, 31
26 जनवरी, 1950 की स्थिति के अनुसार ——, 21
1956 में यथासंशोधित ——, 23
सीटों का वर्तमान आवंटन, 26

तदर्थ समिति
प्रस्ताव द्वारा नियुक्त की गई ——, 878
राज्य सभा द्वारा गठित ——, 878
सभापति द्वारा नियुक्त की गई ——, 878
सलाह देने के लिए नियुक्त पीठासीन अधिकारी, 879

दल/समूह
—— को मान्यता, 310, 318
—— को मान्यता देने के संबंध में सभापति का निदेश, 310
—— को सुविधाएं, 318
—— के संबंध में दसवीं अनुसूची में उपबंध, 311
—— के संबंध में विवरण, वर्ष 1952 से सदन में स्थिति, 321-25
निरर्हता, 313
राज्य सभा में —— की बदलती रहने वाली स्थिति, 321
—— से निष्कासन, 315
विभाजन, 314
विलय, 313

दसवीं अनुसूची
—— के अधीन अपवाद, 36
—— के अधीन उपबंध, 35
—— के अधीन याचिकाएं, 38
—— के अधीन किसी दल की सदस्यता, 312
—— के अधीन दल-परिवर्तन के आधार, 35-36
—— के अधीन बनाए गए नियम, 38
—— के अधीन सदस्य का उसके दल से निष्कासन, इसके प्रभाव, 315-18
—— के अधीन सभापति की शक्तियां, 36-37

दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि
काले हाशिए वाला संसदीय समाचार, 428
के दौरान स्थगन, 424
अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तियों के निधन पर श्रद्धांजलि, 432
देश के महत्वपूर्ण व्यक्तियों को श्रद्धांजलि, 431
भूतपूर्व सभापतियों को श्रद्धांजलि, 428
भूतपूर्व महासचिव को श्रद्धांजलि, 438-39
लोक सभा के आसीन सदस्य के निधन पर श्रद्धांजलि, 430
श्रद्धांजलि प्रकट करने की सामान्य प्रक्रिया, 420
शोक संकल्प, 428
सामान्य प्रयोजन संबंधी समिति की सिफारिशें, 423

द्वितीय सदन
—— का विकास, 1
—— की आवश्यकता, 2, 14

—— की उपयोगिता, 12
—— के लाभ, 12
—— के विषय पर एम. अनंतशयनम अय्यंगर, 5
—— के विषय पर एबे सीयेज़, 11
—— के विषय पर गोपालस्वामी अय्यंगर, 2
—— के विषय पर डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, 12
—— के विषय पर हेनरी मेने, 1
—— के संबंध में आरंभिक प्रस्ताव, 3-8
—— के संबंध में संघ संविधान समिति, 1-2
दीर्घायें इत्यादि, 967
धन विधेयक
—— का प्रमाणीकरण, 656
—— के राज्य सभा में पुर: स्थापन पर आपत्ति, 661
—— की परिभाषा, 655
—— संबंधी विशेष प्रक्रिया, 655-61
धन्यवाद प्रस्ताव
—— के दौरान मंत्रियों की उपस्थिति, 209
—— पर चर्चा, 205
—— पर संशोधन, 207
राष्ट्रपति को —— भेजा जाना, 211
ध्यानाकर्षण
अनुपस्थित सदस्य द्वारा ——, 564
एक दिन में एक से अधिक —— पर चर्चा, 555
—— का गृहीत किया जाना, 548
—— का गृहीत न किया जाना, 551
—— का स्थगित किया जाना, 557
—— किए जाने का समय, 556
—— की रीति, 559
—— की समाप्ति, 568
—— के उत्तर में मंत्री द्वारा वक्तव्य, 560
—— के माध्यम से उठाए गए महत्वपूर्ण विषय, 571-74
—— के संबंध में गृहीत सूचना के बारे में जानकारी, 555
—— को चर्चा में परिवर्तित किया जाना, 569
वक्तव्यों का संशोधन/मुद्दों के बारे में और स्पष्टीकरण, 568
—— शुरू किये जाने संबंधी प्रक्रिया, 546
—— संबंधी नियम 180 के उपबंध, 547
—— संबंधी वक्तव्य की प्रतियों का परिचालन, 560
—— संबंधी सूचना का व्यपगत हो जाना, 554
—— संबंधी सूचनाएं देने की प्रक्रिया, 550
—— संबंधी सूचनाओं की पूर्ववर्तिता, 553
—— संबंधी स्पष्टीकरण मांगने के लिये प्रक्रिया, 565
स्पष्टीकरणों का उत्तर, 567
न्यायालय में विचाराधीन मामले पर —— 571
—— स्पष्टीकरण मांगे जाने के लिए समय-सीमा, 566
—— मंत्री को अंतरण, 551
—— सूचना का रूपान्तरण, 551
नियम समिति
—— का कार्यकरण, 837
—— का गठन, 836
—— के प्रतिवेदन, 837
—— की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, 835
—— की सिफारिशें, 838
—— के कृत्य, 837
—— संबंधी नए नियम, 836
निरर्हताएं (सदस्यों हेतु)
—— के संबंध में नि.आ. का निर्णय, 35
—— के संबंध में राष्ट्रपति का निर्णय, 35
—— के संबंध में संवैधानिक उपबंध, 30, 56

—— के संबंध में सांविधिक उपबंध, 33, 56
घोषणात्मक खंड, 33
दल-परिवर्तन के आधार पर ——, 35

निलंबन
नियमों का ——, 969
बैठकों का ——, 343
सदस्यों का ——, 282

निष्कासन, 246, 284, 315

न्यायालय
उच्चतम न्यायालय और विशेषाधिकार का मामला, 267
बोलने की स्वतंत्रता, —— की कार्यवाही से छूट, 219
—— में दस्तावेज/अभिलेख उपलब्ध कराया जाना, 228, 392
—— में साक्षी के रूप में उपस्थित होने से छूट, 232
विशेषाधिकारों का उल्लंघन और —— में शपथ-पत्रों/याचिकाओं में दिये गये विवरण, 243
संसद् के विशेषाधिकार और ——, 269

पत्रों के लिए प्रस्ताव, 545

परामर्शदात्री समितियां, 299, 775, 881

परिनियत संकल्प
(संकल्प और सरकारी संकल्प के अंतर्गत **देखिये**)

पीठासीन अधिकारी
अस्थायी सभापति, 96
उपसभाध्यक्ष तालिका, 96
उपसभापति, 92-96
तालिका से बाहर के सदस्य द्वारा सभापतित्व, 98
सभापति, 80, 85

पीठासीन अधिकारियों द्वारा नियुक्त संयुक्त समितियां, 879

प्रश्न
अनुपस्थित सदस्यों के ——, 509
अनुपूरक ——, 514
अनुपूरक —— की सीमा, 517
अल्प सूचना——, 524
आधे घंटे की चर्चा, 526
कंप्यूटरीकरण और, ——, 528
कुछ आकस्मिकताओं में —— का निपटारा, 471
—— का अंतरण, 507
—— का मंत्रियों द्वारा उत्तर, 500
—— का वापस लिया जाना या स्थगित किया जाना, 505
—— का समेकन, 496
—— की ग्राह्यता, 479
—— की ग्राह्यता के संबंध में, 478
—— की ग्राह्यता की शर्तें, 482, 491
—— सभापति का निर्णय, 491
—— की संख्या के संबंध में सीमा, 479, 481
—— की सूचना का रूप, 477
—— की सूचनाएं, 475
—— की सूचनाएं देने हेतु प्रपत्र, 478
—— के उत्तर और अनुपूरक प्रश्नों के बीच संबंध, 530
—— के उत्तर दिया जाना, 500
—— के उत्तरों का संशोधन, 503
—— के उत्तरों का समय से पहले प्रचार, 524
—— के उत्तरों की प्रतियों का उपलब्ध कराया जाना, 498
—— के पुकारे जाने और पूछने का क्रम और रीति, 496
—— के लिए लॉटरी निकाला जाना, 492
—— के लिए समय नियत न करना, 459
—— के लिए दिन नियत करना, 481
—— के लिए समय, 458
—— को सभापीठ के माध्यम से पूछा जाना, 300

गैर-सरकारी सदस्यों से ——, 482
मंत्रियों को सूचना भेजना, 478
सदस्यों के नामों का एक साथ दिया जाना, 495
राज्य सभा की वेबसाइट पर, —— के उत्तर अपलोड किया जाना 529
समान —— का एक साथ लिया जाना, 497
—— सूची, 492, 508
—— असंतोषजनक उत्तर, 501

प्रश्नों का समय
निर्धारित समय से पूर्व —— समाप्त होना, 469
—— का बढ़ाया जाना, 467
—— का निपटान, 471
—— का निलम्बन, 464
—— के दौरान औचित्य-प्रश्न, 470
—— के दौरान प्रश्नकर्त्ता की अनुपस्थिति, 513
—— के दौरान मंत्री का उत्तरदायित्व, 502
—— के दौरान लिये जाने वाले प्रश्न, 517
—— के दौरान हिन्दी तथा अंग्रेजी से भिन्न किसी अन्य भाषा का प्रयोग, 523
—— को रद्द किए जाने का प्रभाव, 472
न्यायालय के न्यायनिर्णयाधीन, 488
बढ़ाई गई सत्रावधि के दौरान ——, 461
बैठक रद्द किए जाने के कारण —— का अन्तरण, 463
—— परिवर्तित किया जाना, 463

प्रस्ताव
विशेषाधिकार हनन की सूचना के संबंध में ——, 737
अनियत दिन वाले ——, 738
गैर-सरकारी सदस्य का ——, 737, 743
गौण ——, 736
परिनियत ——, 749
—— का वर्गीकरण, 736
—— की परिभाषा, 736
—— की पुनरावृत्ति और इसे वापस लिया जाना, 741
—— की विषय-वस्तु, 743
—— के संबंध में कार्य मंत्रणा समिति की भूमिका, 744
—— के संबंध में विधेयकों का पुर-स्थापन/वापस लेना, 492
—— पर चर्चा, 739
—— पर संशोधन, 742
लोक-महत्व के विषय संबंधी ——, 737
—— से संबंधित सामान्य नियम, 737
स्थगन ——, 544
महत्वपूर्ण ——, 736, 743
राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद —— द्वारा चर्चा, 736
विलम्बकारी ——, 742
समितियों के लिए निर्वाचन संबंधी ——, 402
सरकारी ——, 748
—— द्वारा नियुक्त की गई संयुक्त समितियां, 775

बजट
—— का अर्थ, 765
—— का कथित रूप से पहले ही पता चल जाना, 766
—— का प्रस्तुत किया जाना, 765
—— की प्रक्रिया, 765
—— पत्रों का वितरण, 765
—— पर चर्चा, 404, 767
मंत्रालयों के कार्यकरण पर चर्चा, 767
राज्य सभा सचिवालय का ——, 997
रेल ——, 765
लेखानुदान, 768
वार्षिक वित्तीय विवरण, 765
वित्त, 768

सरकार का समय, 405
विनियोग विधेयक, 768
सामान्य ––, 765

बैठक
अवसर, 332
–– का नियत किया जाना, 328
–– का नियत न किया जाना, 332
–– का रद्द किया जाना, 332
–– का स्थगन/निलंबन, 340, 343, 424
–– का समाप्त होना, 345
–– की अस्थायी सारणी, 328
–– की गणपूर्ति, 338
–– की रीति, 334
–– के दौरान मध्याह्न अवकाश, 342
–– के निलंबन का समय, 343
–– के प्रारंभ का समय, 334
–– को अनियत दिन के लिए स्थगित किया जाना, 350
छुट्टियों का मनाया जाना, 329
निर्धारित समय के पूर्व ––, 346
मध्यरात्रि के बाद भी –– का जारी रहना, 348
राज्य सभा की पहली ––, 351
राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत बजाया जाना, 349
विशेष ––, 350
संयुक्त ––, 151
शनिवार को ––, 329

बोलने की स्वतंत्रता, इत्यादि, 219

भाषण
उत्तर का अधिकार, 917
–– का क्रम, 917
–– की स्वतंत्रता, 219
–– के दौरान कतिपय नियमों का पालन, 287-300
पहली बार ––, 292, 970
–– में भाषा का प्रयोग, 87

मंत्रियों द्वारा वक्तव्य
अध्यादेश का स्थान लेने वाला विधेयक, 397
ध्यानाकर्षण के उत्तर में ––, 398
–– की प्रतियों का परिचालन, 936
–– पर स्पष्टीकरण, 937
–– में अशुद्धियों को ठीक किया जाना, 398
लोक-महत्व के मामलों पर ––, 399, 936
विभाग-संबंधित स्थायी समितियों की सिफारिशों का कार्यान्वयन, 941

मंत्री
–– का परिचय, 114
–– की अनुपस्थिति, 390
–– की नियुक्ति, 114, 117
–– के रूप में गैर-सदस्यों के अधिकार, 114, 117
–– द्वारा वक्तव्यों का दिया जाना, 936
राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के दौरान –– की उपस्थिति, 209
सदस्य न रहने पर ––, 114, 117

मत-विभाजन
घंटियों का संचालन, 944
पर्चियों के वितरण के माध्यम से ––, 948
–– के परिणाम की घोषणा, 951
–– के संबंध में सामान्य प्रक्रिया, 942
पीठासीन अधिकारी/समिति के अध्यक्ष द्वारा निर्णायक मत दिया जाना, 950
–– में गलती ठीक करना आदि, 951
–– में भाग न लेना, 949
लॉबियों में जाने के माध्यम से ––, 948
सभापीठ का विवेकाधिकार, 950
स्वचालित मतांकन यंत्र (आटोमैटिक वोट रिकॉर्डर) द्वारा ––, 945

महान्यायवादी
—— की नियुक्ति, 119
—— के कार्य, 119
—— के संसद के साथ संबंध, 120
महासचिव
—— की भूमिका तथा स्थिति, 123
—— की सूची, 127, 128
—— के कृत्य, 126
—— द्वारा सभापटल पर रखे गये पत्र, 398
राष्ट्रपति का अभिभाषण और ——, 199, 204
संसदीय समितियां और ——, 125
सचिवालय और —— , 126
याचिका
महासचिव और ——, 788
—— का उपस्थिति किया जाना, 787
—— का प्रपत्र, 787
—— का विषय-क्षेत्र, 786
—— को समिति को सौंपा जाना, 788
दसवीं अनुसूची के अधीन ——, 38
—— समिति, 788
याचिका समिति
—— का कार्यकरण, 789
—— का प्रतिवेदन, 791
—— के कार्य, 789
—— को अभ्यावेदन, 792
राज्य सभा
—— का आह्वान, 175
—— का ढांचा और संरचना, 14, 20, 24
—— का प्रारंभिक गठन, 22
—— का राजनैतिक स्वरूप, 310
—— का लोक सभा के साथ संबंध, 16
—— का विकास, 1
—— का सत्रावसान, 188
—— का स्थगन, 186
—— का हिन्दी नामकरण, 11, 20
—— की दीर्घाएं, 967
—— की बैठकें, 328
—— की वित्तीय शक्तियां, 8, 13
—— की विशेष शक्तियां, 8, 16
—— की शक्तियां, 13-16
—— की सदस्य-संख्या, 20
—— के नामनिर्देशित सदस्य, 5, 21
—— के निर्वाचित सदस्यों की संख्या में परिवर्तन, 10-11
—— के बजट प्राक्कलनों की छानबीन, 167
—— के लिए निर्वाचन, 4, 13, 20, 24
—— के संबंध में संवैधानिक उपबंध, 20
—— के सत्र, 174
—— के सदस्यों को आहूत किया जाना, 178
—— बैठने की व्यवस्था, 371
—— में दल-स्थिति बदलना, 321
—— में निरंतरता और परिवर्तन, 15
—— में सामान्य बजट पर चर्चा, 166
—— में संविधान का प्रारूप, 4-9
—— में स्थानों का आवंटन, 26
—— से वित्त मंत्री, 169
—— सदस्यता, 29
राज्य सभा का राजनैतिक स्वरूप
(दल/समूह के अंतर्गत **देखिए**)
राज्य सभा की कार्यवाही से शब्दों का निकाला जाना, 961
राज्य सभा के लिए निर्वाचन
उप-चुनाव, 40, 45
उम्मीदवारी वापिस लिया जाना, 42, 44
एकल संक्रमणीय मत की प्रक्रिया, 45
द्विवार्षिक, 40
नाम-निर्देशनों की छानबीन, 42, 48
निर्वाचन आयोग और ——, 40-42
—— के लिए अधिसूचना, 42
—— के लिए आवश्यक राशि, 43

—— के लिए नाम-निर्देशन, 43
—— के लिए निर्वाचक, 45
—— के लिए निर्वाचन अधिकारी, 41
—— के लिए मतदान, 44
—— के लिए संघ राज्य क्षेत्रों का निर्वाचक-मण्डल, 40
—— में शपथ या प्रतिज्ञान, 43
—— संबंधी सामान्य प्रक्रिया, 40
—— निर्वाचक-मण्डल, 40

राज्य सभा सचिवालय
—— का गठन, 979
—— का बजट, 997
—— का हिन्दी नामकरण, 11, 20, 980
—— की आवश्यकता, 8
—— की भर्ती प्रक्रिया, 983
—— के लिए स्टाफ संबंधी उपबंध, 8
—— के भर्ती नियम, 980
—— में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षण, 984
—— में मुद्रण और प्रकाशन सेवा, 989
—— में विभिन्न सेवाएं, 984
राज्य सभा की कार्यवाही का सीधा प्रसारण, 996
राज्य सभा टेलीविजन, 996
वेतन और लेखा कार्यालय, 995
सभापति का नियंत्रण और निर्देश, 88
—— संबंधी संसदीय वेतन समिति, 981

राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को स्थानों का आवंटन
(चौथी अनुसूची के अंतर्गत **देखिए**)

राज्य सभा सदस्यों हेतु कम्प्यूटरों के उपबंध संबंधी समिति, 844

राजभाषा संबंधी संयुक्त समिति, 877

राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत की धुन का बजाया जाना, 349

राष्ट्रपति
अब तक हुए —— के निर्वाचन, 141
राज्यों में —— शासन, 721
—— और राज्य सभा, 213
—— और संसद्, 138
—— का उत्तराधिकारी, 143
—— का निर्वाचन, 138
—— की अर्हताएं, 142
—— की पदावधि, 142
—— की शक्तियां और कार्य, 144
—— को धन्यवाद प्रस्ताव ज्ञापित करना, 211
—— के चुनाव में निर्वाचन अधिकारी, 140
—— के निर्वाचन में मतों का महत्व, 139
—— के उल्लेख के संबंध में सभा में प्रक्रियागत प्रतिबंध, 146
—— द्वारा अभिभाषण, 133, 198
—— द्वारा आह्वान, 174
—— द्वारा विधेयकों का लौटाया जाना, 653
—— द्वारा विधेयकों को स्वीकृति, 651-53
—— द्वारा संदेश, 212
—— द्वारा पद की शपथ, 144
—— पर आक्षेप, 254, 298
—— पर महाभियोग, 143
राज्य सभा और विधेयकों के संबंध में —— की सिफारिश, 639, 673, 905
संसदीय विशेषाधिकार और ——, 146

राष्ट्रपति का अभिभाषण
—— का महत्व, 200
—— के दौरान अशांति, 201
—— के संबंध में संवैधानिक उपबंध, 198
—— की तारीख और समय, 198
—— की प्रति का रखा जाना, 203
—— की विषय-वस्तु, 202
—— पर धन्यवाद प्रस्ताव, 205
—— पर चर्चा, 205
—— पर धन्यवाद प्रस्ताव का स्थगन, 209

—— पर धन्यवाद प्रस्ताव में संशोधन, 207
—— में त्रुटियों का संशोधन, 204
—— से संबंधित समारोह, 199

रीति-रिवाज और परम्पराएं
(आचरण के नियम के अंतर्गत **देखिए**)

लाभ के पद
अतिरिक्त सांविधिक निरर्हताएं, 33
अपवाद, 32
—— के निर्धारक, 31
—— के संबंध में घोषणात्मक खंड, 33
—— सदस्यों की निरर्हता, 30
—— संबंधी संयुक्त समिति, 31
संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959, 32

लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति, 31, 874

लेखानुदान, 12, 768-69

लोक सभा
—— का भंग होना, 191
—— का राज्य सभा के साथ संबंध, 16, 17
—— का हिन्दी नामकरण, 20
—— की विशेष शक्तियां, 148

लोक सभा के भंग होने का प्रभाव
संसदीय समितियों के समक्ष लंबित कार्य पर ——, 192-94
विधायी कार्य पर ——, 191

व्यक्तिगत स्पष्टीकरण
मंत्रियों द्वारा ——, 916
—— के संबंध में प्रक्रिया, 912
—— देना, 401
—— का विषय-क्षेत्र, 914

वाद-विवाद
आलोचना करना, 290, 291
उत्तर का अधिकार, 917
तुच्छ बातों के सम्बन्ध में, 299
दीर्घाओं का उल्लेख, 291
पहली बार भाषण, 292
वक्तव्यों का खण्डन, 291
—— का प्रकाशन, 989
—— का समापन, 917
—— की परिसीमाएं, 918
—— की भाषा, 87
—— के दौरान आरोप, आक्षेप आदि, 296, 297
—— के दौरान पालनीय नियम, 287
—— के दौरान पुनरावृत्ति, 300
—— के दौरान व्यवधान न डाला जाना, 289
—— के दौरान सभापति के खड़े होने पर प्रक्रिया, 301
—— में भाग लेने के तरीके, 295
—— में वक्ताओं की सूची, 319
व्यक्तिगत हित का प्रकट किया जाना, 301
सभापति, अध्यक्ष, सचिवालय आदि से संबंधित मामलों का उल्लेख न किया जाना, 286, 287
सभापीठ की दृष्टि में आना, 289
समिति के प्रतिवेदनों के लिए समय का नियतन, 782

वापस लिया जाना
नामों का ——, 42, 44
प्रश्नों का ——, 505
प्रस्तावों का ——, 741
बाहरी व्यक्तियों को अपवर्जित किया जाना, 222
विधेयकों का ——, 402, 644
सभा से सदस्यों का ——, 281
संशोधनों का ——, 641

वार्षिक वित्तीय विवरण
(बजट के अंतर्गत **देखिए**)

वित्त विधेयक
— — का कथित रूप से पहले ही पता चल जाना, 766
राज्य सभा और — —, 767-78
वित्तीय विधेयक
— — की श्रेणियां, 661-63
— — के सम्बन्ध में राज्य सभा की स्थिति, 14
— — को प्रवर/संयुक्त समितियों को सौंपा जाना, 665
जो वित्तीय विधेयक नहीं हैं, 663
वित्तीय कार्य, 405
वित्तीय प्रक्रिया, 765
विदाई में कहे गए शब्द, 445
विधान
(विधेयक के अधीन **देखिए)**
विधेयक
अध्यादेशों का स्थान लेने के लिए — — 668, 716, 723
अनुच्छेद 117(1) के अधीन पुर:स्थापित किये जाने पर आपत्ति किया जाना, 664
अवसानोन्मुखी विधि (जारी रखना), 610
गैर-सरकारी सदस्य के — —, 669, 677-80
धन — — की विशेष प्रक्रिया के सम्बन्ध में, 655-61
निर्धारित समय के भीतर नहीं लौटाए गए धन — —, 658-59
मूल— —, 610
राज्य सभा द्वारा संशोधित— —, 650, 651
वित्त— —, 768
वित्तीय— —, 661
वित्तीय — —, श्रेणी 'क', 662
वित्तीय — —, श्रेणी 'ख', 662
विधायी नीति के निर्माण संबंधी — —, 615
— — का परिचालन, 620, 623, 625, 674
— — का पारण, 642
— — का पुर:स्थापन, 402, 623
— — का प्रकाशन, 619, 623
— — का प्रभारी सदस्य, 625
— — का प्ररूप, 608-10
— — का संशोधन, 637-42
— — का हिन्दी पाठ, 619
— — की पंजी, 618, 647, 675-76
— — की प्रतियां, 620
— — की वैधता, 610
— — की संवीक्षा, 617-19
— — के उद्देश्यों और कारणों का कथन, 610
— — के खण्ड इत्यादि, 608-09
— — के पुर:स्थापन के संबंध में सदन का चयन, 616
— — के प्रकार, 610
— — के लिए आवश्यक बातें, 610
— — के वाचन, 614, 621, 624, 642
— — के संबंध में नीति का निरूपण, 615
— — के संबंध में संदेश, 647, 648, 660
— — के संबंध में सदन की विधायी सक्षमता, 611
— — को तैयार किया जाना, 616
— — को पुर:स्थापित, परिपाटी के सम्बन्ध में, 624
— — को प्रवर/संयुक्त समितियों को भेजा जाना, 626, 634, 773, 846
— — को राष्ट्रपति द्वारा लौटाया जाना, 653
— — को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति, 651-53
— — को वापस लिया जाना, 402, 644
— — को समितियों को भेजा जाना, 626
जो कि वित्तीय — — नहीं हैं, 623
कौन-से, वित्तीय — — नहीं हैं, 663
तृतीय वाचन, 642
द्वितीय वाचन, 624

धन — — का प्रमाणीकरण, 656
धन — — राज्य सभा में पुर: स्थापित किये जाने पर आपति, 661
धन — — संयुक्त समिति को नहीं सौंपा जाना, 665
धन — — के संबंध में विशेष प्रक्रिया, 657
— — को स्थायी समितियों को भेजा जाना, 632
निरसनकारी और संशोधनकारी — —, 638
— — पंजी से हटाया जाना, 647
— — पुनर्विचार हेतु लौटाया जाना, 653
— — पर खण्डश: विचार किया जाना, 636
— — पर राष्ट्रपति की सिफारिश, 639, 673, 905
प्रथम वाचन, 621
प्रस्ताव, पुर:स्थापन के बाद, 624
— — में स्पष्ट गलतियों का ठीक किया जाना, 88, 643
लोक सभा में आरम्भ होने वाले — —, 648
राज्य सभा में आरम्भ किये जाने वाले — —, 615
— — वाद-विवाद का स्थगन, 644
विनियोग — —, 768
विचार के लिए प्रस्ताव, 624
समेकन, 610
संशोधन, 610
संशोधनों, वापिस लिया जाना, 641
संशोधित, 610
सार्वजनिक राय जानने के लिए, 625, 674
स्वीकृति को रोक लेना, 652
सभापति द्वारा प्रमाणन, 89
संविधान संशोधन — —, 681
सरकारी — —, 615

विधेयकों संबंधी प्रवर/संयुक्त समितियां
— — में मंत्रियों की नियुक्ति, 628
— — में सदस्यों की नियुक्ति, 628
— — के बारे में प्रस्ताव, 626, 846
— — के बारे में प्रस्ताव पर चर्चा, 630
— — में सदस्यों की संख्या, 629
— — विसम्मति टिप्पण, 859
— — द्वारा प्रतिवेदन के उपस्थापन के बाद की प्रक्रिया, 634
समिति द्वारा यथा-प्रतिवेदित रूप में विधेयक पर विचार किया जाना, 859

विनियोग विधेयक, 768

विपक्ष का नेता
— — की सूची, 113
— — के उत्तरदायित्व, 109
— — के कार्य, 109
— — को वेतन एवं भत्ते, 111
— — को सुविधाएं आदि, 109
— — संसद में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, (1977), 110

विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियां
— — की पृष्ठभूमि, 861
— — की संरचना, 865
— — की सूची, 862-64
— — के कार्य, 865
— — के प्रतिवेदन, 868
— — से संबंधित नियम, 868
— — में प्रवर समिति के नियमों का लागू होना, 869
— — द्वारा विचार नहीं किये जाने वाले मामले, 868

विलम्बकारी प्रस्ताव, 742

विशेष उल्लेख
प्रत्येक बैठक में — — की संख्या, 597
— — करने का समय, 598
— — करने की रीति, 599
— — का आरम्भ, 593
— — के दौरान केबिनेट मंत्री की उपस्थिति, 601
— — के संबंध में अनुवर्ती कार्यवाही, 602
— — के संबंध में सभापति का विवेक, 596

— — संबंधी प्रक्रिया, 595
— — संबंधी समय-सीमा, 600
संसदीय समाचार भाग-1 में — — का समावेश, 601
— — हाल के घटनाक्रम, 599

विशेषाधिकार का उल्लंघन
ऐसे मामले जिनमें — — नहीं होता, 249
— — और औचित्य, 254-57
दूसरे सदन द्वारा — —, 260-66
— — नगर निकाय द्वारा, 253
— — सदस्यों द्वारा, 260
— — सदस्यों के विरुद्ध शिकायतें, 260

विशेषाधिकार समिति
— — का कार्यकरण, 795
— — का गठन, 792
— — की प्रक्रिया का विनियमन, 799
— — की शक्तियां, 794
— — के कार्य, 793
— — के प्रतिवेदन, 796
— — के प्रतिवेदन पर विचार, 797
सभापति द्वारा — — को सौंपा जाना, 266

वेतन, भत्ते आदि
अल्प-अंतराल के दौरान सदस्यों के भत्ते, 69
राज्य सभा के उपसभापति के — —, 93
राज्य सभा के सभापति के — —, 85
विपक्ष के नेता के — —, 111
— — संबंधी संसद्-सदस्यों की संयुक्त समिति, 876
सदस्यों की दूरभाष सुविधाएं, 71
सदस्यों की वायु-यात्रा हकदारी, 68
सदस्यों के कार्यालय व्यय भत्ते, 67
सदस्यों के निर्वाचन-क्षेत्र भत्ते, 67
सदस्यों के यात्रा भत्ते, 68-70
सदस्यों के — —, 66

शून्य-काल
— — का आरंभ, 584
— — का उद्देश्य, 585
— — का समय और अवधि, 583
— — की परिभाषा, 583
— — के संबंध में अनुवर्ती कार्यवाही, 591
— — के संबंध में कार्य मंत्रणा समिति का मत, 588
— — के संबंध में नियम समिति, 588
— — के संबंध में वर्तमान प्रथा, 589
— — को विनियमित करना, 586
— — सरकार का उत्तर देने के लिए बाध्य न होना, 590
— — हाल के घटनाक्रम, 590

संकल्प
अखिल भारतीय सेवा के सृजन संबंधी — —, 719
अध्यादेशों के निरनुमोदन करने संबंधी — —, 716, 723
अनुच्छेद 249 के अंतर्गत विधान बनाने संबंधी — —, 717-19
अनुच्छेद 352 के अधीन उद्घोषणा के अनुमोदनार्थ — —, 720
अनुच्छेद 356 के अधीन उद्घोषणा के अनुमोदन के लिए — —, 721
अनुच्छेद 360 के अधीन उद्घोषणा के अनुमोदन के लिए — —, 728
गैर-सरकारी सदस्यों के — —, 411, 706, 711
— — प्रधान मंत्री द्वारा, 445
परिनियत — —, 714, 729
— — में संशोधन, 709
— — विदेश मंत्री द्वारा, 445
— — और कार्यों की व्यवस्था, 395
— — का प्रभाव/बल, 729
— — के अर्थ, 704
— — के प्रकार, 403, 704

संसद के अधिनियमों के अधीन ——, 728
—— सदन के नेता द्वारा, 445
—— सभापीठ द्वारा, 444
सरकारी ——, 712

संयुक्त/प्रवर समितियां
—— का अध्यक्ष, 848
—— का कार्यकरण, 855
—— का गठन, 846
—— का प्रतिवेदन, 858
—— की उप-समितियां, 849
—— की नियुक्ति का प्रस्ताव, 846
—— की बैठकें, 850
—— के कार्य, 850
—— के प्रतिवेदनों का मुद्रण, 861
—— के बारे में प्रस्ताव, 847
—— में असहमति संबंधी कार्यवृत्त, 859
—— में गणपूर्ति, 849
—— में रिक्तियां, 848
साक्ष्य, 851-54

संविधान संशोधन
अनुच्छेद 368 के अंतर्गत ——, 681
राज्य विधानमंडलों द्वारा अनुसमर्थन, 688
राज्य सभा में पुर:स्थापित किये गये —— विधेयक, 683
—— की श्रेणियां, 685
संसद् की शक्ति के संबंध में ——, 681

संशोधन
जिन विधियों की कालावधि समाप्त हो रही हो, उन्हें जारी रखने संबंधी विधेयकों में ——, 639
धन्यवाद प्रस्ताव में रखे जाने वाले ——, 207
निरसनकारी विधेयकों में ——, 638
प्रस्तावों में ——, 742
विधेयकों के खंडों में ——, 637, 650
विधेयकों में ——, 637-40
संकल्प में ——, 723
संविधान में ——, 681-65

संशोधन विधेयक
—— की श्रेणियां, 685
—— की सूची, 640
—— की स्वीकार्यता, 637
—— को वापस लिया जाना, 641

संसद् के विशेषाधिकार
अभिरक्षाधीन किसी सदस्य के पत्र-व्यवहार रोका जाना, 235
अवमान और ——, 217
असद्भावनापूर्वक गिरफ्तारी, 234
उच्चतम न्यायालय और ——, 267
एक सदन का दूसरे सदन की कार्यवाही पर टिप्पण नहीं करना, 267
ऐसे मामले जिनमें विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं होता, 249
—— का उल्लंघन और औचित्य, 254
कार्यवाही का मिथ्या-निरूपण, 225
कार्यवाही का समय-पूर्व प्रकाशन, 224
कार्यवाही विनियमित करने का अधिकार, 227
कार्यवाही से निकाले गए अंश का प्रकाशन, 224
कारावास, 245
गिरफ्तारी की गलत सूचना देना, 235
गिरफ्तारी की सूचना भेजने में विलंब, 235
गिरफ्तारी से स्वतंत्रता, 230
न्यायालय में साक्षी के रूप में उपस्थित होने से छूट, 232
दल से संबंधित मामले, 251
दस्तावेजों का न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना, 228
न्यायालय की कार्यवाही से उन्मुक्ति, 219
निवारक निरोध, 231
जुर्माने का अधिरोपण, 245

जब संसद् का सत्र चल रहा हो तो सदन से बाहर नीतिगत/महत्वपूर्ण वक्तव्य दिया जाना कोषगांठ किया जाना, 256
बाहरी व्यक्तियों को अपवर्जित करने का अधिकार, 222
बोलने की स्वतंत्रता, 219
भ्रामक वक्तव्य, 247
लांछन लगाया जाना, 238
विदेशी राष्ट्रिक और – –, 269
राज्य विधानमंडल की समिति के समक्ष साक्षी के रूप में उपस्थित होना, 267
राज्य सभा के सदस्यों को राज्य सरकार की कुछ समितियों में शामिल न किया जाना, 253
विधिक प्रक्रिया और गिरफ्तारी, 233
रिट याचिकाओं/शपथ-पत्रों में दिये गये विवरण, 243
– – का अवमान, 217
– – का उल्लंघन करने के लिए दंड, 245
– – का स्वरूप, 217
– – के प्रश्न से निपटने संबंधी प्रक्रिया, 257
– – के विशिष्ट उदाहरण, 252
– – के संबंध में पारिणामिक शक्तियां, 219
– – के संबंध में प्रक्रिया विषयक नियम, 219
– – के संबंध में संवैधानिक उपबंध, 218
– – के संबंध में सदन की शक्तियां, 244
– – के संबंध में सदन की शास्तिक शक्तियां, 219
– – के संबंध में सांविधिक उपबंध, 218
– – को संहिताबद्ध किया जाना, 269
संसद् भवन के समक्ष जुलूस पर पाबंदी, 252
संयुक्त प्रतिवेदन, 294
आक्षेप लगाने वाले भाषण और लेख, 239
सदन/इसके सदस्यों पर सदस्य द्वारा जानकारी प्रकट किया जाना, 269
सदस्यों का निरादार, 253
सदस्यों पर हमला आदि, 244
सदस्यों को अभित्रस्त किया जाना, 244
सदस्यों को सदन में उपस्थित होने से रोका जाना, 234
हथकड़ी लगाया जाना, 237

संसद् के सदन
राज्य सभा के कार्य पर लोक सभा के भंग होने का प्रभाव, 191
राष्ट्रपति और – –, 138, 144-46
– – की विशेष शक्तियां, 148-49
– – की संयुक्त बैठकें, 151-54
– – के बीच संबंध, 148
– – के बीच विवाद, 158
– – के बीच संवाद, 149
– – के संबंध में प्रक्रिया विषयक नियम, 154
– – के हिन्दी नाम, 20
– – द्वारा एक दूसरे की कार्यवाही पर टिप्पणी किए जाने पर प्रतिबंध, 264

संसद् सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति, 876

संसद् सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी समिति
– – का गठन, 844
– – के प्रतिवेदन, 845

संसदीय शिष्टाचार
(आचरण विषयक नियमों के अंतर्गत **देखिये**)

सचेतक – –, 121-23

सत्र
अनियत तिथि के लिए स्थगन, 186
नव-निर्वाचित सदस्यों को सूचना, 181

राष्ट्रपति द्वारा आह्वान, 175
–– की अवधि का बढ़ाया जाना, 185
सत्रावसान, 188
सदस्यों को आहूत किया जाना, 178, 181

सत्रावसान
–– का विधेयक आदि पर प्रभाव, 189-90
–– संबंधी प्रक्रिया, 188-89

सदन का नेता
–– की अनुपस्थिति, 390
–– की परिभाषा, 103
–– की मंत्रणा भूमिका, 104-05
–– की सूची, 108-09
–– की स्थिति, 103-04
–– के उत्तरदायित्व, 102, 105-07
–– के कार्यालय की उत्पत्ति, 102
–– के संबंध में पागे समिति, 103
–– द्वारा उपस्थित संकल्प, 107
–– द्वारा कार्यों का प्रत्यायोजन, 105
शपथ/प्रतिज्ञान, 104

सदस्य
नाम-निर्देशित ––, 21, 48, 55
व्यक्तिगत हित, –– द्वारा घोषणा, 301
–– का निर्वाचन, 40
–– का निष्कासन, 284
–– की अर्हताएं, 29
–– की निरर्हताएं, 30, 32
–– की पदावधि, 51-56
–– की पेंशन, 66, 72
–– के लिए आचार संहिता, 303-04
–– के लिए संसद्-सदस्य का पदनाम, 50
–– के संबंध में निलंबन, 282, 803
–– के संबंध में स्थानीय क्षेत्र विकास योजना का कार्यान्वयन, 803
–– के विरुद्ध आरोप, 300
–– के वेतन और भत्ते, 66-72
–– को सीटों का आवंटन, 374
–– को अभित्रस्त किया जाना, 244
–– को हथकड़ी लगाया जाना, 237
–– द्वारा आचरण के नियम, 800-05
–– द्वारा करने और न करने योग्य बातें, 278
–– द्वारा त्याग-पत्र, 65
उत्तर का अधिकार, 917
–– द्वारा शपथ, 357
–– संवैधानिक उपबंध, 30
–– हेतु शिष्टाचार, 278
–– द्वारा संसद् भवन की प्रसीमा के भीतर धरना/प्रदर्शन, 294
–– द्वारा संसद् भवन की प्रसीमा में पुस्तिकाओं आदि का वितरण, 292
–– द्वारा स्थानों का खाली करना, 56-66
–– पर हमला, 244

सदस्यों को अभित्रस्त किया जाना, 244

सदस्यों द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान
अवसर की गंभीरता, 367
–– किए जाने का क्रम, 362
–– के समय व्यवधान, 368
–– का प्रारूप और भाषा, 363
–– करने की प्रक्रिया, 360
–– करने की समय-सीमा, 360
–– करने के पूर्व किसी सदस्य के अधिकार आदि, 358
संवैधानिक/वैधानिक उपबंध, 357
सभापति के कक्ष में ––, 365

सदस्यों पर हमला, 244

सभा के निर्णय, 918-19

सभा को स्थगित किया जाना
अनियत तिथि के लिए ––, 186, 350
अन्य परिस्थितियों के कारण ––, 186-88, 344-45
गणपूर्ति का न होना, 338-42
थोड़े समय के लिए ––, 343, 426

निर्धारित समय से पूर्व ——, 186
बाकी दिन के लिए ——, 186-88, 346, 424
बिना घंटी बजाये ——, 340
मंत्री की अनुपस्थिति में ——, 343
सत्र के पहले दिन ——, 424
सदस्य आदि के निधन के कारण ——, 332-34, 346, 425
सभा में अव्यवस्था उत्पन्न होने के कारण ——, 186-87, 346

सभापटल पर रखा जाना
उद्घोषणाएं, 721
कानूनी आदेशों की सूची ——, 396, 929
गोपनीय दस्तावेज आदि ——, 922, 935
मंत्रियों के बीच संवाद, 920
पत्र रखने संबंधी प्रक्रिया, 926
राज्य के पत्राचार ——, 923
राष्ट्रपति का अभिभाषण ——, 198
राष्ट्रपति के कानून ——, 727
राष्ट्रपति तथा प्रधान मंत्री के बीच पत्राचार ——, 923
संवेदनशील अधिसूचनाएं ——, 929
संसदीय शिष्टमंडल का प्रतिवेदन ——, 930
सभापटल पर पुनः रखा जाना, 929

सभापटल पर रखे गए पत्र
—— की प्रक्रिया, 919
गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा ——, 931
मंत्रियों द्वारा ——, 919-20
महासचिव द्वारा ——, 925
—— का परिचालन, 928
—— का प्रमाणीकरण, 926
—— की अभिरक्षा, 930
—— की संवैधानिकता, 928
—— के संबंध में अनुमति, 932-33
—— के संबंध में सक्षमता, 924

सभापटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति
—— का कार्यकरण, 830
—— का गठन, 829
—— की पृष्ठभूमि/उत्पत्ति, 827-28
—— की शक्तियां, 830
—— की सिफारिशें, 831-33
—— के कार्य, 830
—— के प्रतिवेदन, 831

अस्थायी सभापति, 96

सभापति, राज्य सभा
—— की कुर्सी, 372
—— का निर्वाचन, 81
—— की अवशिष्ट शक्तियां, 970
—— की शक्तियां और कर्तव्य, 85-90
—— की शक्तियां, दसवीं अनुसूची के अधीन, 36
—— की सूची, 83
—— के वेतन, भत्ते आदि, 85
—— द्वारा दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि तथा अन्य उल्लेख, 88
—— द्वारा निर्णायक मत, 86
—— द्वारा नियुक्त तदर्थ समितियां, 773, 879
—— द्वारा विभिन्न निकायों के लिए नामनिर्देशन, 89

समय का आवंटन
—— सरकारी कार्य के लिए, 405-06

समापन प्रस्ताव, 917

समितियां
विभाग-संबंधित ——, 773, 861-69
—— का गठन, 775-77
—— का वर्गीकरण, 772-75
—— की अध्यक्षता, 777
—— की कार्यवाही की सूचना, 961
—— की सामान्य संरचना, 772
—— के लिए निर्वाचन/नामांकन, 319
तदर्थ ——, 772-73, 877-81
परामर्शदात्री ——, 299, 775, 881-82
सरकारी ——, 775, 882-83

साक्षी की जांच प्रक्रिया के संबंध में, 851-854

समितियां जिनमें राज्य सभा का प्रतिनिधित्व रहता है

अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण संबंधी समिति, 874
अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन-जातियों संबंधी समिति, 873-74
ग्रंथालय समिति, 875
महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति, 875-76
रेलवे अभिसमय समिति, 872-73
लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति, 874-75
लोक लेखा समिति, 870-71
सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति, 871-72

सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति

आश्वासनों की अभिव्यक्ति, 826
—— का कंप्यूटरीकरण, 827
—— का कार्यकरण, 822-23
—— का गठन, 821
—— का प्रतिवेदन, 824
—— की उत्पत्ति, 821
—— की प्रक्रिया, 822
—— की महत्वपूर्ण सिफारिशें, 824-26
—— की शक्तियां, 822
—— के कृत्य, 821
सरकार के साथ असहमति, 826

सरकारी संकल्प

सरकार की नीतियों का अनुमोदन करने हेतु ——, 712-14

सरकारी समितियां, 882-83

साक्षी के रूप में सदस्य

न्यायालयों के समक्ष ——, 232
समिति के समक्ष ——, 267

सामान्य प्रयोजन समिति

—— का गठन, 841
—— की संरचना, 841
—— के कार्य, 841
—— द्वारा उपसमितियां गठित करना, 843
—— द्वारा विशेष प्रतिवेदन, 843
—— द्वारा विचार किए जाने वाले महत्वपूर्ण मामले, 841-43

सीटों का आवंटन

उपसभापति के लिए ——, 372, 374
छोटे समूहों के लिए ——, 374, 376
प्रधान मंत्री के लिए ——, 372
भूतपूर्व मंत्रियों के लिए ——, 375
भूतपूर्व राज्यपालों के लिये ——, 375
मान्यता-प्राप्त दलों/समूहों के लिए ——, 374-75
राज्य सभा के सदस्य मंत्रियों के लिए ——, 374
विपक्ष के नेता के लिए ——, 372, 375
विपक्षी दलों/समूहों के लिए ——, 376
सदन के नेता के लिए, 372
सदन के भूतपूर्व नेताओं के लिए, 375
—— में परिवर्तन, 377

सीटों की व्यवस्था

(कक्ष, राज्य सभा और सीटों का आवंटन के अंतर्गत **देखिए**)

सूचनाएं

सूचनाओं का परिचालन, 904
प्रश्न से संबंधित सूचना, 902-03
सूचनाएं देने की सामान्य प्रक्रिया, 902
सूचनाओं का व्यपगत हो जाना, 905
सूचनाओं का संशोधन, 902, 904

स्थानों का खाली होना

अनुपस्थिति के कारण ——, 389
एक से अधिक सदनों के लिए निर्वाचन, 57, 60
एक से अधिक स्थानों के लिए निर्वाचन, 59
त्याग-पत्र के कारण ——, 65
दसवीं अनुसूची के अधीन ——, 57
निर्वाचन शून्य घोषित किया जाना, 62
लाभ का पद, 56
राज्य सभा के वर्तमान सदस्य द्वारा, —— 60
सदस्य की अनुपस्थिति ——, 63